

इहलौकिक और पारलौकिक उन्नतिपर समान जोर है। वैदिकोत्तर स्मृतियोंमें धर्मका लक्षण ही यह है कि अभ्युदय और निश्रेयसकी उन्नति सिद्ध गला ही धर्म है। + वैदिक संस्कृतिमें वे सारे तत्त्व ज्ञानमें मौजूद हैं, जो मनुष्यको आदर्श बना सकते हैं। ५ संस्कृतिमें आत्मा और परमात्मामें इद विश्वास रखती यह विश्वास मनुष्यमें आध्यात्मिकता उत्पन्न करता वैदिक संस्कृति प्रकृति और उससे बने भौतिक शरीर (ताको स्वीकार करती है और इसीलिए शरीरकी एक आवश्यकताओंकी पूर्ति के लिए सब प्रकारकी प्राहु उन्नति करनेकी भी प्रेरणा देती है। वेदोंमें आदेश है मनुष्य इस संसारमें रहकर उत्तमोत्तम भोग भोगे। दका मनुष्य कहता है—

नह भुव वसुन पूर्वस्पाति  
ग्रह धनानि सजयामि शश्वत । ऋ १०।४८।१  
म धनका सबसे प्रथम स्वामी हूँ, मैंने हमेशा धनोको  
। है ।  
और जगह जगह परमात्मासे भी प्रार्थना की गई है कि ' हे  
आत्मन् ! हमें उत्तम उत्तम धनाका स्वामी बनाइये  
। गाय, घोड़े और सुवर्ण आदि धन सहस्रोंकी सख्यामे  
। है । इस प्रकार वेदम भौतिक उन्नति करनेकी भी

प्रेरणा है। यह संसार हमारा घर है, हम इसके स्वामी हैं।  
हमें सुख देनेके लिए ही परमात्माने इस संसारका निर्माण  
किया है। महात्मा बुद्धन इसके विपरीत लोगोंको यह ज्ञान  
दिया कि ' संसार क्षणभंगुर है, यह अत्यन्त दुःखमय है,  
अतः हे मनुष्यो ! यह संसार हेय है। इसके छोड़ दो  
और सन्यासी या भिक्षुक होकर यहां रहो '। पर वेद इसके  
विपरीत लोगोंको आदेश देता है कि—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत् शत समाः ।

यजु ४०।२

' हे मनुष्यो ! इस संसारमें तुम शुभ कर्म करते हुए सौ  
वर्ष तक आनन्दसे जीवो '। वेदके पुरप-सूत्रमें तथा गीता-  
क ग्यारहवें अध्यायमें यह बात बड़े विस्तारसे समझाई है  
कि यह विश्व सच्चिदानन्द परमात्माका ही रूप है। आनन्द  
मय परमात्मा इसमें सर्वत्र व्याप्त है। उसका व्याप्तस्वरूप  
पवित्र है—

पवित्र ते वितत ब्रह्मणस्पते

प्रभुर्गान्नाणि पर्येपि विश्वत । ऋ १।८३।१

अतः जो विश्व आनन्दमय परमात्माका रूप है, वह दुःख  
मय कैसे हो सकता है ? यह जगत् पचभूतात्मक है। ये  
पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश पचभूत भी हमें  
सुख ही देते हैं। पृथिवी हमें आधार देकर, जल हमारी

३ ' शास्त्रयोनित्वात् ' वे सू १।१।३

महत ऋग्वेदादे शास्त्रस्य अनेकविद्यास्यानोपबृंहितस्य प्रदायवत् सर्वार्थावघोतिन सर्वज्ञकल्पस्य योनि कारण  
महत् । नहीदास्य शास्त्रस्य ऋग्वेदादित्क्षणस्य सर्वज्ञ गुणान्वितस्य सर्वज्ञान्यत संभवोऽस्ति । ऋग्वेदाद्या  
रूपस्य सर्वज्ञानावरस्य अप्रयत्ननैव लीलाभ्यायेन पुरपनि श्रवणवत् यस्मान्महतो भूतात् योने सभव । ( शास्त्र  
भाष्य )

४ न पीरपेयत् तत्कस्तुं पुरपस्यामावात्— सा सू ५।४६

वेद पीरपय नहीं, क्योंकि उसका बनानेवाला कोई पुरप नहीं हो सकता ।

५ यस्य नि शसित वेदा यो वदम्योऽखिल जगत् ।

निर्मम तमहं बन्धे विद्यार्थि महेश्वरम् ॥ सायण, ऋग्वेदभाष्य—प्रस्तावना ।

६ अनादिनिधना विद्या वायुरमृष्टा स्वयंभुवा ।

वद शब्दस्य पवादी निमिमात स ईश्वर ॥ महाभारत दान्ति पव २३।२४—२६

७ तस्माद्यज्ञात्सर्वदुत ऋष सामानि जनिरे ।

छन्दानि जनिरे तस्माद्यज्ञात्सर्वदुत ॥ ऋ १०।१९।१

×

×

×

यस्मात्सोऽग्नक्षन् पशुर्वस्मात्पाकयन् ।

सामानि यरप होमाम्यधवीऽग्निरसो मुखम् ॥ अथर्व १०।१२०

प्याम पुष्टाकर, अग्नि हमें उष्णता देकर, वायु हमें जीवन या प्राण देकर और आकाश हमें अवकाश देकर सब तरहसे सुख प्रदान करता है। जब ये पाँचों मूल हमें सुख देनेवाले हैं, तो उनसे बना हुआ विश्व हमारे लिए दुःखदायी कैसे हो सकता है ?

अतः यह विश्व मनुष्यको सुख प्रदान करनेवाला है। पर जब मानव इन्हींको अन्तिम ध्येय समझकर इनमें सर्वथा लिस हो जाता है और अध्यात्मकी उपेक्षा कर देता है, तब वह दुःखी हो जाता है। इसीलिए वेद कहता है—

तेन तस्केन भुंजीथाः

मा गृधः कस्य स्थिज्जनम् । यजु. ४०।१

“हे मनुष्यो ! इन सांसारिक भोगोंका त्यागभावसे भोग करो। कभी लालच मत करो। यह सब समाजका धन है।” त्यागभावसे किया हुआ कर्म कर्तव्य के लिए कभी भी दुःखका कारण नहीं बनता।

इस प्रकार वेदने दूसरे पक्ष निःश्रेयसपर भी अन्यधिक बल दिया है। अथर्ववेदमें इसीको मानवजीवनका अन्तिम लक्ष्य बताया है—

आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं  
ब्रह्मचर्यं च मह्यं दत्त्वा यजत ब्रह्मलोकम् ॥

अथर्व. १२।७।१।१

“हे देव ! मुझे आयु, प्राण, प्रजा, पशु, यत्न, धन और ब्रह्मतेज ये सब देकर अन्तमें ब्रह्मलोक ( मोक्ष ) भी प्राप्त करानो।”

संसार और जीवनका उद्देश्य हमारा उत्तरोत्तर विकास है। उत्तरोत्तर विकासका ही नाम अमृतत्व है +। यही निःश्रेयस है x ।

वैदिक संस्कृतिकी दूसरी विशेषता है “प्रगतिशीलता”। यह संस्कृति अपने अर्थोंमें कभी संकुचित नहीं रही। वेदमें कई ऐसे शब्द हैं, जो वैदिककालमें किसी एक निश्चित अर्थके शोतक थे पर आज उनका अर्थ बहुत विस्तृत हो गया है।

उदाहरणार्थ— ‘यज्ञ’ शब्दको ही ले सकते हैं। वैदिककालमें इसका प्रयोग देवताओंके लिए किए जानेवाले अग्नि-होत्रादि कर्मके लिए ही होता था, पर बादमें अनेक अर्थोंमें

इसका प्रयोग होने लगा। इसी परिवर्तित अर्थको लेकर गीतामें ● वैदिक यज्ञोंके साथ साथ ज्ञानयज्ञ, तपोयज्ञ आदि यज्ञोंका भी वर्णन है। महर्षि दयानन्दने तो इसको और विस्तृत अर्थमें लेकर अपने आर्थोद्देश्यरत्नमालामें लिखा है— “शिल्प-व्यवहार और पदार्थविज्ञान जो कि जगत्के उपकारके लिए किया जाता है, उसको ( भी ) यज्ञ कहते हैं।”

इसी प्रकार पहले वेद शब्द केवल ऋग्, यजु, साम और अथर्व इनको ही कहा जाता था। पर कालान्तरमें ब्राह्मण और उपनिषदोंको भी वेद नामसे पुकारा जाने लगा। ( मंत्रब्राह्मणयोर्वेद नामधेयम् )

वैदिक संस्कृतिकी तीसरी विशेषता है “असाम्प्रदायिकता”। वेद किसी विशेष जाति, या सम्प्रदायका धन नहीं है। उसका प्रकाश परमेश्वरने सम्पूर्ण मानवजातिके हितके लिए किया था। वेदके मंत्रसे भी हमारे कथनकी पुष्टि होती है—

यथेमां याचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः ।

ब्रह्म राजन्याभ्यां शूद्राभ्य चार्याभ्य च स्वाय चारणाय ।

यजु. २६।२

“मैं ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र, आर्य और सेवक सभी मनुष्योंके हितके लिए इस कल्याणी वाणीका—वेदका—उपदेश करता हूँ।”

अन्य सम्प्रदायोंकी तरह वैदिकधर्म कभी यह नहीं कहता कि तुम हमारे धर्ममें दीक्षित हो जाओ, वही तुम मोक्षपदके अधिकारी हो सकोगे। उसका तो यही कथन है कि कोई भी मनुष्य चाहे वह किसी जाति, सम्प्रदाय या मतका हो, उत्तम कर्म करके मोक्षपदको प्राप्त कर सकता है। इसीकी अवधारणा इस प्रकार कहा है—

प्रजापतेराधृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं

कश्यपस्य ज्योतिषा घर्चसा च ।

जरद्विष्टः कृतवीर्यो विहायाः

सहभ्रातुः सुकृतश्चरेयम् ॥ अथर्व. १०।१।२०

“मैं प्रजापतिके ज्ञानरूपी कवचसे ढका हुआ तथा सूर्यके तेज और वचसे युक्त होकर वृद्धावस्थापर्यन्त त्रियाशील रह कर अनन्तकालतक उत्तम कर्म करता रहूँ।”

+ जीवा ज्योतिरक्षीमहि । ( क. ७।३।२६ ) ;

यप्रानन्दाश्च मोक्षाश्च मुदः प्रमुद आसते ।...तत्र मायुर्वेदं कृषि ( क. ९।१३।११ )

x भारतीय संस्कृतिका विकास— वैदिकधारा— डॉ. मंगलदेव शास्त्री, पृ. १०

● गीता ४।२५-३०, ३२

“ इस प्रकार चिरकालसे विचार सर्वोपार्जिता और परस्पर सम्पर्की भावनासे परिपूर्ण सम्प्रदायवाद् तद्भिभूत दार्शनिक साहित्य और जातिपातिव्य भेदभावसे जर्जरित भारतीय जनतामें एक जातीयताके नवीन जीवनका मंचार करनेके लिए एकमात्र प्रगतिशील तथा असांख्यदायिक वैदिक संस्कृतिक आदर्शका ही आश्रय लिया जा सकता है । ” x

वैदिक संस्कृतिकी चौथी विशेषता है “ समत्वकी भावना । ” वैदिक संस्कृति तो वह गंगा है, जो अज्ञात स्थलसे निकल कर अनेक छोटे-मोटे विचाररूपी नदियोंको अपने अन्दर समेटती हुई लोगोंको शान्ति प्रदान करती है । वैदिक संस्कृतिका मुख्य ध्येय है, लोगोंमें समत्वकी भावना उत्पन्न कर जगत्में शान्ति स्थापित करना ।

समत्व भावनासे समाजको सगठित करना ही वैदिक का मात्र लक्ष्य है । जबतक समाजका सघटन नहीं होता, तब तक व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्वका उत्कर्ष आकाशगुण्यक समान है । प्रत्येक व्यक्ति समाजका एक आवश्यक अङ्ग है । जिस प्रकार शरीरके अंगोंकी एकामता उत्कृष्ट स्वास्थ्यका लक्षण है, उसी प्रकार समाजके व्यक्तियोंका ऐक्य स्वस्थ समाजका निदर्शक है । ऋग्वेदका पूरा सगठन-सूक्त इस महत्त्वपूर्ण विज्ञानकी खोजके समाने प्रस्तुत करता है—

सं गच्छध्व सं वदध्व सं यो मनोसि जानताम् ।

देवाः भाग यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥

समानी यः आकृति समाना हृदयानि य ।

समानमस्तु वो मनो यथा य सुसहासति ॥

ऋ १०।१९।१२, ४

“ तुम सगठित होकर चलो, सगठित होकर बोले और तुम्हारे मन भी परस्पर अनुकूल हो । तुम्हारे सकटप समान हों, तुम्हारे हृदय समान हों, तुम्हारे मन एक हो । ”

मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् ।

मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे ।

मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥ यजु. ५।३४

“ मैं सब प्राणियोंको मित्रकी दृष्टिसे देखूँ और सब प्राणी मुझे मित्रकी दृष्टिसे देखें । ”

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवावुपपद्यति ।

सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न वि चिन्तितसति ॥

यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानत ।

तत्र को मोहः कः शोकः ष्वत्त्वमनुपपद्यतः ॥

यजु ४०।६७

“ जो गरी प्राणियोंको अपनी आत्माके समान ही देखता है व उन्हे उसी प्रकार जानता भी है तथा गरी प्राणियोंमें स्वयंको देखता है, वह कभी किसीमें भेदभाव नहीं करता । ”

दूसरी प्रकार अन्धान्य मन्त्रोंमें भी समत्व-भावनाका उच्चारण पाया है ।

इस समत्व-भावनाके फलस्वरूप ही हम अपनी अपनी सर्वोपार्जित साम्प्रदायिक भावनाओंको पृथक् रूपसे भारतके सम्मान महात्त ध्यक्तियोंमें, चाहे वे किसी सम्प्रदायक या जातिके हों जाते हैं, समत्वका, समादरका, श्रद्धाका अनुभव करते हैं । हमारा कर्तव्य है कि हम उनको उस वैदिक तत्वात्मापर गुने असांख्यदायिक वातावरणमें लायें, जिससे उनके उपदेशाधुनिकता का लाभ समस्त देशोंको ही सदा, गरी संसारको हो ।

वैदिक संस्कृतिकी पाचवी विशेषता है “ अविर् भारतीय-भावना । ” वैदिक प्रकाश सर्वप्रथम इसी भारत भूपर हुआ । अतः यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि वैदिक संस्कृतिका उद्गमस्थल भी यही है । वैदिकमें अपनी मातृभूमिके प्रति जो उदात्त भावनायें प्रकट की गई हैं, वेसा अद्भुत दुर्लभ हैं । अथर्ववेदका पूरा “ पृथिवी-सूक्त ” ( १२।१ ) मातृभूमिके गुणोंको गाता है । वैदिक ऋषियोंका सारा प्रेम इस सतत सूर्य उत्पन्न पड़ा है । वे उद्वासरसे घोषणा करते हैं—

माता भूमिः पुनोअहं पृथिव्याः ।

x x x

वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम ।

‘ हे मातृभूमि ! तू मेरी माता है, मैं तेरा पुत्र हूँ । जत मैं सब प्रकारसे तुझे अपनी बलि देनेके लिए तैयार हूँ । ’

देशकी रक्षा अपने हर पुत्रसे बलिदानकी कामना करती है । मातृभूमिकी दृष्टिमें अमीर-गरीब, उच्च-नीच, काले-गोरे, आस्तिक-नास्तिक सब एक समान हैं । सब उसके पुत्र हैं, चाहे वह किसी भी सम्प्रदाय, जाति या वर्णका हो । यह भारतीय भावना वैदिक संस्कृति द्वारा वैदिक ऋषियोंने लोगोंमें भरनेका प्रयत्न किया । वैदिक संस्कृतिकी बलिहृत भारतीय भावनाका अभिप्राय यही है कि हम साम्प्रदायिक संघर्षकी समस्याका समाधान वैदिक संस्कृतिकी दृष्टिसे कर सकें । उनमें एकता स्थापित कर सकें ।

इसी एकता-स्थापनकी दृष्टिसे हमारे पूर्वजोंने तीर्थयात्रा की कल्पना की थी । शकराचार्यजीने भारतके चारों कोनपर चार पीठ इसीलिए स्थापित किए थे कि उनसे शिष्य भार

तकी चारो कोनोंमें सुरक्षा कर सके। प्राचीन माहिलोंमें वीर्ययात्रामें पैदल यात्राका बड़ा महत्व वर्णित है। वह भी इसीलिए कि सब भारतमें एकता स्थापित हो। रामेश्वरमें कैलास या जगन्नाथपुरीसे ट्रारिका जानेवाले पदवीर्ययात्रीको पूरा भारत पार करना पड़ता था। इस प्रकार वह अनेक प्रान्तोंके निवासियोंमें अपना सम्पर्क साधकर चलाता था। और उनमें आपसमें प्रेम और स्नेह भाव बढ़ता था। इस प्रकार सहज ही एकता स्थापित हो जाती थी। इसकी हमारे देशके प्राचीन नेताओंने अच्छी तरह अनुभव किया था। इसी लिए हमारे धार्मिक तीर्थस्थान देशके कोने-कोनेमें नियत किए गए थे। सम्प्रदायोंमें परस्पर समानता और सम्मानकी भावना स्थापित करनेसे, ऐसे जातीय पयों और महापुरुषोंकी जयन्तियोंकी स्थापनामें उनमें स्नेह सम्पर्क स्थापित करनेमें ही एकता निम्न हो सकती है।

### वैदिक संस्कृति-परम्पराओं वेदकी प्रतिष्ठा

वैदिक संस्कृति का उद्गम वेदसे ही हुआ है। वही सत्य परम प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता है। अन्य स्मृति आदिकी प्रामाणिकता वेदोंकी अनुकूलतापर ही निर्भर है। यदि वे वचन वेदवचनोंसे अनुकूल हैं, तो तो प्रामाणिक हैं अन्यथा नहीं। पर वेदवचनोंकी प्रामाणिकता परस्परनें लिए साथ वेद ही प्रमाण हैं। भारतकी सारी परम्परा वेदको अपनी मूर्तुति के उद्गम स्थानके रूपमें देखती है। वेदोत्तर प्रयोगों इन वेदोंका वर्णन बहुत बड़े पैमाने पर किया है। इस विषयमें कविशय ग्रंथोंमें वेद विषयक वचन उद्धृत करना अप्रामाणिक न होगा।

शतपथ ब्राह्मणमें—

‘ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद उम महान पुण्यक नि धार्यके समान हैं।’<sup>१</sup>

‘उम परमात्माने धम और तरव द्वारा प्रयी विद्याको प्रकट किया।’

शतपथ ब्राह्मणके अनुसार वेदोंमें सब विद्यायें सम्य हैं—  
तद्यन्तस्यै प्रयी सा विद्या। न मा १।१।१।१  
तैत्तिरीय ब्राह्मणमें—  
अयं वै सर्वा विद्या। त मा ३।१।१।१।१  
सारी विद्यायें वेदमें हैं।

सब सम्य विद्यायें वेदोंमें निहित हैं।

ऋक्सामे वै सारम्यतानुन्मौ। त १।१।१।१

ऋग्वेद और सामवेद सरम्यताके भरने हैं।<sup>२</sup> जिस प्रकार भरनेसे पानीकी धारायें निकलकर प्यायें और समस्त प्राणि योंकी प्याय पुत्राकर उरं<sup>३</sup> प्रान्ति प्रदान करती है, उसी प्रकार वेदमें ज्ञानकी धारायें निकलकर दुर्मी मनुष्योंको प्रान्ति प्रदान करती है<sup>४</sup> +।

वेद ही उम परमात्माका ज्ञानके साधन हैं।<sup>५</sup> वेदोंका न जानेना उस महानकी नहीं जान सकता<sup>६</sup> ×।

इसी प्रकार उपनिषदोंमें भी वेदोंका बड़ा महत्व बताया है। ईशोपनिषद् तो यजुर्वेदका ३० वा अध्याय है, जिसमें अध्यात्मज्ञानका उपदेश बड़े सुन्दर शब्दोंमें दिया है। मनुस्मृतिमें वेदोंके विषयमें कहा है—

येवेऽस्तिलो धर्ममूलम् (२।१)

सयं प्रानमयो हि नः (२।२)

चातुरण्ये त्रयो लोकाश्चत्वारध्याधमा पृथक्।

भूतं भन्यं मरिष्य च नयं वेदाप्रतिपद्यति ॥

(१।१।१०)

वेदाभ्यामो हि त्रिमस्य तपः परमिहोच्यते ॥

(२।१।११)

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र पुरते धमम्।

न जीरन्नेत्र श्रुत्यमानु गच्छति सान्ययः ॥

(२।१।१८)

अर्थात् वेद पढ़ेका मूल है और वह सब ज्ञानोंमें पुण है। चार पग, तीन शोक, चार आश्रम,<sup>७</sup> भूत, वर्णमान, <sup>८</sup>

१ त्रिपुण्यविषयके स्वयं प्रामाण्यम्— मां. सू. ७।१।१—परमात्माकी त्रिपुण्यविषयके प्रकट होनेके कारण वेद स्वयं प्रमाण हैं।

२- (१) पृथ्वी अरे अन्य महतो भूतस्य नि धर्मिणम्।

एतद् यदृक्वेदो, यदुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदो ॥ न मा १।१।१।१।१

(२) न धामात्मेनानो प्रकट प्रथममन्यते प्रदीपित विद्याम्। न. मा १।१।१।१

+ वेदका राष्ट्रीय स्मृति— त्रिपुण्य वेदवाच्यरति। पृ. ३

× जोवेदविमनुने है वृत्त्यम्। तै. ३।१।१।१।१



भविष्य सब कुछ वेदसे ही सिद्ध होता है। वेदाध्ययन ब्राह्मणका सर्वोत्तम तप है। जो ब्राह्मण वेदोंको छोड़कर अन्य वेदोत्तर ग्रंथोंके अध्ययनमें श्रम करता है, वह शीघ्र कुल सहित शूद्र बन जाता है।

वेद शब्द 'विद् ज्ञाने' धातुसे सिद्ध हुआ है, जिसका अर्थ है ज्ञान। प्राचीनकालमें इसी अर्थमें वेद शब्दका प्रयोग होता था। पर कालान्तरमें जाकर उसका अर्थ संकुचित हो गया और आपस्तम्ब सूत्रके कालमें केवल मंत्र व ब्राह्मण भागका ही नाम वेद रह गया। और आगे चलकर केवल संहिता या मंत्र भागका ही नाम वेद रह गया। इस मतका पोषण महर्षि दयानन्दने अपने ग्रंथोंमें किया है।

चैकोल्लोवाकिया देशकी भाषामें आज भी विज्ञान या सायन्सको 'वेद' कहते हैं। +

अन्तिम मतके अनुसार ऋग्, यजु, साम और अथर्व ये चार ही संहिता या वेद हैं।

### वेदत्रयी

मनुस्मृति, गीता आदि ग्रंथोंमें त्रयी विद्याका भी उल्लेख है × इसी आधार पर कई लोगोंका यह मत है कि प्रथम ऋग्, यजु और साम ये तीन ही वेद थे और अथर्व बादमें वेदोंमें शामिल किया गया। कतिपय विचारक उसे वेद ही नहीं मानते —। पर हमारा मत यह है कि जहाँ जहाँ चार वेदोंका उल्लेख है, वहाँ उसका अभिप्राय चार वेद ग्रंथोंसे है और जहाँ त्रयीका उल्लेख है वहाँ उसका अभिप्राय है ऋग्, यजु और साम। मीमांसा सूत्रोंमें इस समस्याका समाधान प्रस्तुत किया है—

ऋग् यजुर्वाग्यशेन पादव्यवस्था

गीतिषु सामाख्या

शेषे यजुः शब्दः (मीमांसा दर्शन २।१।३५-३७)

'अथर्वे कारण पादबद्ध व्यवस्थावाले मंत्र ऋक् हैं। गायन किए जानेवाले मंत्र साम हैं। और बाकी बचा हुआ गद्य भाग यजु है।' इस प्रकार अथर्ववेदके मंत्र पादबद्ध

होनेके कारण अथर्ववेदका अन्तर्भाव ऋग्वेदमें ही हो जाना है। अतः वेदोंके ग्रंथ चार होनेपर भी उनका समावेश (१) ऋग् (ऋग्वेद, अथर्ववेद), (२) गद्य (यजुर्वेद) और (३) गायन (सामवेद) इन तीनोंमें हो जाता है। इसलिए वेदत्रयी या वेद चतुष्टयमें मूलतः कोई भेद न होकर केवल रचिका ही भेद है।

### ऋग्वेदसंहिता

यह संहिता सबसे बड़ी और प्राचीन है। इससे अधिक प्राचीन ग्रंथ किसी भी पुस्तकालयमें नहीं मिलता। महा-भाष्यके अनुसार इस वेदकी इक्कीस शालाएँ थीं ॥ पर आज उनमें केवल पांच शालाएँ ही उपलब्ध हैं। आजकी प्रचलित ऋग्वेद संहिता शाकल शालासे सम्बन्धित है।

इस संहितामें दस मण्डल हैं। एक मण्डलमें अनेक सूक्तोंका संग्रह है। इस संहिताके मण्डल, सूक्त और मंत्रोंकी तालिका इस प्रकार है—

मण्डल	सूक्तसंख्या	मंत्रसंख्या
प्रथम मण्डल	१९१	२००६
द्वितीय मण्डल	४३	४२९
तृतीय मण्डल	६२	६१०
चतुर्थ मण्डल	५८	५८९
पंचम मण्डल	८७	७२७
षष्ठ मण्डल	७५	७६५
सप्तम मण्डल	१०४	८४१
अष्टम मण्डल	९२	१६३६
नवम मण्डल	११४	११०८
दशम मण्डल	१९१	१७५४
	१०१७	१०४७२

जिससे स्तुतिकी जाए उसे ऋक् कहते हैं। ॥ इस संहितामें प्रत्येक सूक्तके पहले ऋषि, देवता और छन्दका नामोल्लेख है। इनमें 'ऋषि' शब्दके विषयमें विद्वानोंका मतभेद है।

● मंत्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम् (आपस्तम्बयज्ञपरिभाषा सूत्र ३।१)

+ भारतीय संस्कृतिका विकास— डॉ० मंगलदेव शास्त्री, पृ. ५६- फुटनोट २

× त्रयी वै विद्या ऋचो यज्ञं च सामानि— श. ब्रा. ७।१।७।१

अथैव सनातनम् ... ऋग्यजुः सामलक्षणम्— मनु. १।२३

— व्यापमंजरी— प्रमाण प्रकरण।

१ एकविंशतिधा बाह्यव्ययम्— महाभाष्य पस्पशाग्निक।

२ ऋग्मिः ईसन्ति— निरुक्त १३।०

कुछका मत यह है कि ये ऋषि केवल मन्त्रद्रष्टा या उन उन मन्त्रोंका साक्षात्कार करनेवाले थे, ( ऋषयो मन्त्र द्रष्टार ) • तथा अन्योका मत है कि ये ऋषि उन उन सूक्तों या मन्त्रोंके रचयिता थे । • इस विषयमें मतभेद चाहे कुछ हो, पर यह निर्विवाद सत्य है कि हर सूक्तमें ऋषिका महत्त्वपूर्ण स्थान है । इसी प्रकार जिस सूक्तमें जिसकी स्तुति की गई है, वह उस सूक्तका देवता है । और प्रत्येक मन्त्र छन्दोसे नियन्त्रित है । इस प्रकार वेदोमें ऋषि, देवता और छन्द अत्यावश्यक तत्त्व हैं ।

### यजुर्वेद

यह गद्यभाग है । इसमें आध्दुप सभी मन्त्रोंको गद्यकी तरहसे बोला जाता है । महाभाष्यमें इसकी १०१ शाखाओंका उल्लेख मिलता है • पर आज केवल इसकी पाच शाखायें ही उपलब्ध हैं ।

इसका शुक्ल और कृष्ण ये दो भेद हैं । माध्यन्दिन और काण्व ये दो शुक्लकी और तैत्तिरीय, मैत्रायणी और कठ ये तीन कृष्ण यजुर्वेदकी सहिताय हैं, इनमें कृष्णको प्राचीन और शुक्लको अर्वाचीन माना जाता है । लोगोंका मत है कि शुक्लमें मन्त्र भाग है और कृष्णमें मन्त्रोंक साथ-साथ ब्राह्मण भाग भी सम्मिलित होगया है । कृष्ण यजुर्वेदकी शाखाओंका विस्तार प्रायः दक्षिण भारतमें तथा शुक्ल यजुर्वेदका उत्तर भारतमें है । शुक्लमें भी काण्व-सहिताकी अपेक्षा माध्यन्दिन-सहिताका ज्यादा प्रचार है । प्रायः सारा उत्तर भारत माध्यन्दिन शाखाकी वाजसनेयी सहिताको प्रामाणिकता प्रदान करता है ।

वाजसनेयी सहितामें ४० अध्याय और १९७५ मन्त्र या कण्डिकायें हैं ।

### सामवेद

इसकी ननक शाखाय हैं । चरणस्पूहमें कहा है—

१ तत्र सामवेदस्य शाखासहस्रमासीत् ।

• राणयणीया, सात्यमुत्पा, कालाप, महाकालाप, कोथुमा, लगालिकाश्चेति ।

• ऋषिर्दशनात् । स्तोमान्दशैलौपमन्यव - निरुक्त २।१।

• यस्य वाक्य स ऋषि — ऋक्सर्वानुक्रमणी १।२।४

• एकशतमध्वर्युंशाखा — महाभाष्य, पस्पशाह्निक

+ सहस्रवर्मा सामवेद — महाभाष्य, पस्पशाह्निक

× नवधाथर्वणो वेद — महाभाष्य, पस्पशाह्निक

कोथुमाना षड्भेदाः भवन्ति-सारायणीया, वातरायणीया, वैधृता, प्राचीना, तैजसा, आनिष्काश्चेति ।

महाभाष्यमें भी इसके शाखा सहस्रका उल्लेख है । +

‘साम-तर्पण-विधि’ में सामवेदकी तरह शाखायें बताई हैं । उनके नामोंकी गणना भी की है, जो इस प्रकार है—

१ राणायण, २ शाट्टमुन्य, ३ प्यास, ४ भागुरी, ५ मौलुण्डी, ६ मौलुलवी, ७ भानुमान-औपमन्यव, ८ काराटि, ९ मशक गार्य, १० वार्पागन्य, ११ कुथुम, १२ शाळिहोत्र और १३ जैमिनी । सामवेदकी इन शाखाओंमें आज केवल राणायणीय, कौथुमी और जैमिनी ये तीन ही उपलब्ध हैं ।

इस वेदक पूर्वाचिक और उत्तराचिक दो भाग हैं । और मन्त्र जुल मिलाकर १८७५ हैं ।

### अथर्ववेद

महाभाष्यमें इसकी नौ शाखाओंका उल्लेख है × । पर अज शौनक और वैश्वदेव ये दो ही सहिताय मिलती हैं और उनमें भी शौनक सहिताका ही आज प्रचलन अधिक है ।

अथर्ववेदमें २० काण्ड, ७३० सूक्त और ६००० मन्त्र हैं । इनमें १२०० से अधिक मन्त्र स्पष्ट ऋग्वेदके ही हैं । इस वेदके २० वें काण्डके अधिकांश मन्त्र ऋग्वेदके ही हैं ।

### संहिताओंका विषय व क्रम

ऋग् शब्द स्तुत्यर्थक ‘ऋच’ धातुसे बना है । अतः ऋक् ऋच यह सिद्ध करता है कि ऋग्वेदमें देवताओंकी स्तुतिया हैं । ये देव पृथिवी, अन्नरक्ष और द्यौ इन तीन स्थानोंमें रहते हैं । इसका मुख्य विषय ज्ञान है ।

यजुर्वेदका विषय है कर्म । इसका अध्यायोका क्रम भी कर्मकाण्डकी क्रियाक अनुसार ही रखा गया है । प्रथम अध्यायसे द्वितीय अध्यायके २८ वे मन्त्रतक दर्शपूर्णमास यज्ञका वर्णन है । इसी प्रकार ३८ वें अध्यायतक विभिन्न यज्ञोंके सम्बन्धमें मन्त्र विनियोगका उल्लेख है । ३९ वें अध्या

यमें सबसे अन्तिम यज्ञ 'अंत्येष्टि' है। पर अन्तर्गत ४० में अध्यायका सम्बन्ध यज्ञसे न होकर ज्ञानसे है।

सामवेदका विषय उपासना है। इसमें गायनोंसे देवताओंके अर्चन करनेकी विधि बताई है।

अथर्ववेदका विषय विज्ञान है। इसमें जल चिकित्सा, अग्नि चिकित्सा, आदि विषयोंका भरपूर वर्णन है।

ऋग्वेदके अध्ययनसे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि ऋग्वेदके प्रथम, नवम और दसम मण्डलको छोड़कर बाकीके मण्डल ऋषिभार संग्रहीत हैं। एक एक मण्डल एक एक ऋषि पर है। जैसे सम्पूर्ण द्वितीय मण्डलका ऋषि 'मृत्स-मद् भार्गव' है, तीसरेका 'गायी विश्वामित्र' है और चतुर्थका 'यामदेव गौतम' है। प्रथम और दसम मण्डलमें अनेक ऋषि हैं। केवल नवम मण्डल ऐसा है, जो देवता पर आधारित है। इस ११४ सूक्तवाले सम्पूर्ण मण्डलका देवता 'पवमान सोम' है। इसी प्रकार अथर्ववेदमें भी कई काण्ड ऋषिभार और कई देवताभार संग्रहीत हैं। सामवेदका पूर्वार्धिक भाग देवताभार है। उसमें काण्डों का नाम भी देवताओंके आधार पर है। जैसे आग्नेय काण्डमें केवल अग्नि देवताका वर्णन है। ऐन्द्र काण्डमें इन्द्र संबंधी स्तुति है। इसी प्रकार अन्य देवताओंका भी वर्णन है। इस प्रकार हमने देखा कि वेदोंका संग्रह दो प्रकारसे ही सकता है, (१) ऋषि अनुसार और (२) देवतानुसार।

इन वेदोंमें हमने यह भी देखा कि सभी देवताओंके मंत्र बिलोरे पड़े हैं। जैसे अग्निका १ सूक्त प्रथम मण्डलका प्रथम सूक्त है, फिर अग्निका दूसरा सूक्त इसी मण्डलका २६-वाँ सूक्त है। बीसके २४ सूक्तोंमें अग्न्यान्व देवताओंकी वर्णन है। इसी प्रकार दूसरे देवताओंके सूक्त भी गिन्ने पड़े हैं। इसके बलावा दूसरे वेदोंमें उन्हीं देवताओंके सूक्त आवे हैं, जिनके ऋग्वेदमें आए हैं। इससे होता यह है कि किसी एक देवतापर अन्वेषण करनेवाले विद्वान्को चारों वेदोंको देखना पड़ता है और इसके लिए मंत्रानुक्रमणिका, पदानुक्रमणिका ऐसे अनेक ग्रंथोंकी आवश्यकता होती है, इसके साथ ही उसकी शक्ति और समयमा भी बड़ा व्यय होता है। इन सब कारणोंको ध्यानमें लातेमें हमारे मनमें यह विचार आया कि यदि एक एक देवताके चारों वेदोंमें बिलोरे हुए सूक्तोंको एक स्थानपर के आया जाए, तो अध्ययनकर्ताकी बहुत सुविधा हो सकती है। इस प्रकार देवताभार मंत्र संग्रहीत कल्पना हमारे मस्तिष्कमें उत्पन्न हुई और उस कल्पनाको कार्यरूपमें परिणत करने एवं देवताके अनुसार

मंत्र संग्रहीत होनेके कारण उस ग्रंथका नाम 'द्वयत-संहिता' रखनेका हमने निश्चय किया।

### द्वयतसंहिताकी आवश्यकता

जब मनुष्य जगत् पर अपनी दृष्टि डालता है, तो उसे सर्वप्रथम देवताओंके दर्शन होते हैं, जैसे पृथिवी, अग्नि, वायु, मेघ, नदिवाँ, समुद्र, पर्वत, अन्तरिक्ष, आकाश आदि। प्रत्येक मनुष्यको इन देवताओंका दर्शन होता है। ये देवता पृथिवी, अन्तरिक्ष और धी इन तीनों स्थानोंमें रहते हैं।

इनमें पृथिवी, जल, पर्वत, अग्नि आदि देवता प्रत्यक्ष हैं और वायु आदि कतिपय अदृश्य हैं। पर इन अदृश्य देवताओंके अस्तित्वको भी मनुष्य जान सकता है। इस प्रकार ये देवदृष्ट्य हर मनुष्यके अनुभवमें अन्तर्गत कारण प्रत्यक्ष हैं, काल्पनिक नहीं।

इन देवताओंके बिना मानवजीवनका अस्तित्व ही असम्भव है। यदि वायु न हो, तो प्राणके अभावमें इस भूगोलसे प्राणियोंका अस्तित्व ही न रहे। सूर्य और चन्द्रके अभावमें सारी वनस्पतियाँ ही समाप्त हो जायें। पृथिवी सबको रहनेके लिए स्थान देती है, जल सबको प्यास बुझाता है, आकाश सबको आवागमनकी सुविधा देता है। इस प्रकार सभी देवदृष्ट्य हमारी सहायता करते हैं। जिससे कि हम जीवित रहते और अपना कार्य करते हैं। हमारे जीवनके आनन्दमय होनेका सारा श्रेय इन्हीं देवोंने है। इनका और हमारे जीवनका बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है। मानव जब इन देवोंसे विरोध करता है और इनके द्वारा बताये गए अनुकूल मार्गपर नहीं चलता, तो वह दुःखी होता है। अतः हमारे जीवनकी दुःखमय और सुखमय स्थिति इन्हीं देवताओंपर निर्भर करती है।

परमात्मा, जीवत्मा, प्रकृति, अग्नि, इन्द्र आदि अनेक देवता इस विश्वमें हैं, जो चारों ओर रहकर अपने तेजसे सबका कल्याण करते हैं। ये देवता जैसे दिखते हैं, वैसे ही प्राणीके शरीरमें भी हैं। मनुष्यशरीरके प्रत्येक अंगमें किसी न किसी देवताका निवास अवश्य है। इस विषयमें अथर्ववेदका कथन इस प्रकार है—

यदा त्वष्टा व्यवृणत् पिता त्वष्टर्य उत्तरः ।

गृहं कृत्वा मर्त्यं देवाः पुरुषमाविद्यान् ॥

(अथर्व. १११८)

'जब त्वष्टा ने इस शरीरका निर्माण किया तो देवोंने इस मर्त्य शरीरको अपना घर बनाया और इसमें आकर वे रहने लगे।' इसी प्रकार इस शरीरमें 'स्वप्न, निद्रा, शुषा,

सुरेकर्म, बल, भोज, ध्रुवा, तृणा, श्रद्धा, श्रद्धा, विद्या, अविद्या आदि सभीने प्रवेग किया। इस शरीरमें प्रविष्ट होकर देवेनि यहां यज्ञ करना आरंभ किया। उसमें दृष्टियां समिधायें बर्नी और वीर्य या रेतस् वी बना। इसी शरीरमें ब्रह्म भी प्रविष्ट हुआ। इसीलिए इस शरीरको विद्वान् 'ब्रह्म' भी कहते हैं। बन्तमें उपसंहार करते हुए अथर्ववेदके ऋषिने एक वही सुन्दर उपमा दी है—

सर्वा ह्यस्मिन् देवता  
गायो गोष्ठ इवास्ते।

(अथर्व. ११।८।३२)

“ त्रिम प्रकार गावें बाडेमें रहती हैं, उसी प्रकार सब देव इस शरीरमें स्थित हैं।” गावें बाडेमें सुरक्षित रहती हैं और वहां उनका पोषण होता है। फिर जानकार गोपाल उनको डुहता है और दूधसे पुष्ट होता है। इसी प्रकार इस शरीरमें भी देवता सुरक्षित हैं और विद्वान् इन देवताओंको डुहकर उनसे भोज, वेज आदि प्राप्त कर पुष्ट होते हैं। इस शरीरमें स्थित जीवात्मा परमात्माका ही अंश है। गीतामें श्रीकृष्णने इसका प्रतिपादन किया है—

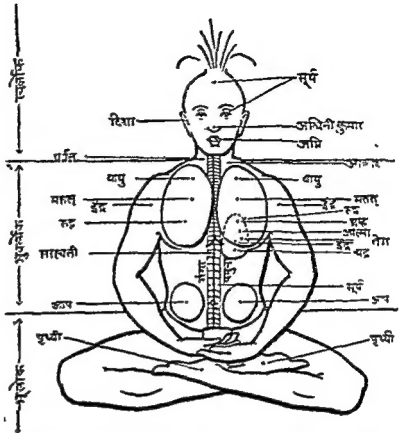
ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।

“ मेरा (परमात्माका) ही अंश इस शरीरमें जीवके रूपमें स्थित है। परमात्मा और आत्माके हमी सम्बन्धको दर्शानेमें अग्नि और चिन्मार्गीक दृष्टान्तसे स्पष्ट किया है। अग्नि और उसके स्फुलिंगमें परिमाणकी दृष्टिसे भेद होनेपर भी तत्त्वतः कोई भेद नहीं है। उसी प्रकार परमात्मा और आत्मामें भी तत्त्वतः कोई भेद नहीं है।

अध्यात्म, अधिभूत, और अधिदैवत क्षेत्रमें  
देवताओंका स्थान

अध्यात्मका अर्थ उपनिषद्में शरीर किया है (अध्यात्मतम शरीरम्)। इस शरीरमें कौनसा देवता किस अंगमें रहता है, वह निम्न तालिकासे स्पष्ट हो सकता है—

शरीरमें	देवताका अंश
आँखमें	सूर्यका अंश
नाकमें	वायुका अंश



इस चित्रमें यह दिखवाया है कि किस देवताका अंश शरीरके किस अंगमें रहता है।

मुखमें	अग्निका अंश
छातीमें	चन्द्रका अंश
सुजात्रोंमें	इन्द्रका अंश
पैरोंमें	पृथिवीका अंश

इस प्रकार सभी इन्द्रियोंमें देवताओंके अंश विद्यमान हैं। इसका और अधिक स्पष्टीकरण उपरके चित्रसे हो सकता है।

आधिमातृक क्षेत्रमें

अधिभूतका अर्थ है नमात्र। इस मानव समाजमें भी देव विभिन्न रूपोंमें स्थित हैं। समाजका भी एक शरीर है जो सर्वदा कार्यम्वल रहता है। कौनसा देवता समाजमें किस रूपमें है, यह निम्न कोष्टकसे स्पष्ट होसकता है—

विश्वमें	समाजमें
अग्नि	बका, ज्ञानी
इन्द्र	क्षत्रिय
ऋषु	काशियर
पृथिवी	शूद्र

इस प्रकार सभी देव समाजमें भी विभिन्न रूपोंमें विद्यमान हैं।

आधिदैविक क्षेत्रमें तो देव प्रत्यक्ष ही हैं। सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि देव आधिदैविकक्षेत्रमें प्रत्यक्षतया कार्य कर ही रहे हैं। इस प्रकार तीनों क्षेत्रोंमें इन देवोंका कार्य चल रहा है। इन तीनों क्षेत्रोंमें कार्य करनेवाले देवोंका संकलन इस प्रकार किया जासकता है—

अध्यात्ममें	अधिभूतमें	अधिदैवतमें
बाणी	वक्ता	अग्नि
सौर्य	शूर	इन्द्र
युद्धेच्छा	सैनिक	मरुत
प्राण	प्राणी	वायु
कारीगरी	कारीगर	त्वष्टा
ज्ञान	ज्ञानी	ब्रह्मणस्पति
पांव	शूद्र	पृथिवी
नाटिका	नटियां	आपः, जलप्रवाह

इस प्रकार व्यक्तियों गुण रूपसे, समाज और राष्ट्रमें गुणी रूपसे और विश्वमें देवताके रूपसे ये देव रहते हैं।

### विश्व-एक विराट् शरीर

वेदोंमें विश्वका वर्णन एक शरीरके रूपमें है। वह एक विराट् शरीर है। व्यक्ति-शरीरमें जिस प्रकार आत्माका स्थान प्रमुख है, उसी तरह इस विराट्-शरीरमें परमात्मा मुख्य है। उसके भी आंख, नाक आदि अंग हैं। अथर्ववेदमें इस विराट् शरीरका वर्णन इस प्रकार है—

यस्य भ्रामिः प्रमाऽन्तरिक्षमुतोदरम् ।

दिवं यश्चक्रे मूर्धनि तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥

यस्य सूर्यश्चक्षुः चन्द्रमाश्च पुनर्णवः ।

अग्नि यश्चक्रे आस्यं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥

यस्य घातः प्राणापानी चक्षुरगिरसोऽभयन् ।

दिशो यश्चक्रे प्रक्षालनीस्तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥

( अथर्व. १०।३२-३४ )

“ भूमि तिसरें पैर, अन्तरिक्ष पेट और घों सिर है, उम महान् ब्रह्मको नमस्कार है। सूर्य और चन्द्र जिसकी आंखें हैं, अग्नि जिसका मुख है, उस ज्येष्ठ ब्रह्मको नमस्कार है। वायु जिसके प्राण और अपान हैं, अग्निसू जिसकी नाखें हैं तथा दिशाएँ जिसके कान हैं उस ज्येष्ठ ब्रह्मको नमस्कार है ” ।

इसी प्रकार इस विराट् शरीरके सहस्रों मस्तकका भी वेदोंमें वर्णन है—

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपाद् ।

स भूमिं सवेतो बृत्वाऽत्यन्तिष्ठद्दशांगुलम् ॥

पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।

उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनाति रोहति ॥

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः ।

उरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत ॥

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षुः सूर्यो अजायत ।

मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत ॥

नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो घौः समवर्तत ।

पद्भ्यां भूमिः दिशः श्रोत्रात्

तथा लोका अकल्पयन् ॥

( ऋ. १०।१०।१, २, १२, १४ )

‘ हजारों सिर, हजारों आंख और हजारों पैरवाला एक विराट् पुरुष इस भूमिको चारों ओर व्याप्त किए हुए है। यहां जो कुछ हो चुका है, जो है और आगे जो भी होनेवाला है, वह सब पुरुष ही है। ब्राह्मण इस विराट् पुरुषके मुख, क्षत्रिय बाहू, वैश्य दोनों जाँघें और शूद्र पैर हैं। इस विराट् पुरुषके मनसे चन्द्रमा, आंखसे सूर्य, मुखसे इन्द्र और अग्नि और प्राणसे वायु प्रकट हुआ। नाभिसे अन्तरिक्ष, सिरसे घों, पैरोंसे भूमि और कानसे दिशाएँ उत्पन्न हुईं । ’

गीताके ११ वें अध्यायमें इस विराट् पुरुषका बड़े विस्तारसे वर्णन है। श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुनको अपने विराट् स्वरूप दिखानेका जहां वर्णन है, वहां उसका अभिप्राय इस विश्वके विराट् शरीरसे है। पुराणोंमें भी इस विराट् पुरुषका वर्णन है।

यहां एक प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि जब वेदोंमें परमात्माका वर्णन ‘ अकार्यं, अव्ययं, अस्नाधिरं ’ ( यजु. ४०।६ ) शरीररहित, जलम आदि शारीरिक व्याधियोंसे रहित, नसनाडियोंके बंधनसे रहित, इस प्रकार आया है, तो उसीके शरीरका वर्णन करना क्या यह बात सिद्ध नहीं करता कि वेद विरुद्धत्वादि दोषोंसे युक्त है। इस शंकाका समाधान इस तरह हो सकता है कि वास्तवमें परमात्मा शरीरही है ही, इसलिए उसके विश्वशरीरका उपरोक्त वर्णन अलंकाररूप ही समझना चाहिए। जिस प्रकार निराकार जीवात्माको भी शरीरी अर्थात् शरीरसे युक्त कहा गया है, उसी प्रकार यहां परमात्माके विषयमें भी समझना चाहिए।

इस प्रकार इन देवताओंका जब हमने आधिदैविक अध्ययन किया, तब हमारे सामने एक बड़ा रहस्य खुला, कि यह विश्व वस्तुतः एक महान् राज्य है, जिसमें विभिन्न स्थातों के मंत्रीगण अपना अपना विभाग सम्हाले हुए हैं। ये अपना कार्य बड़ी दक्षता एवं सावधानीके साथ करते हैं। कोई किसी विभागमें हस्तक्षेप नहीं करता। किसी प्रजावंश राज्यकी जो स्थिति होती है, ठीक वही स्थिति इस विश्व-राज्यमें है। इस राज्यमें भी विभिन्न देवताओंने विभिन्न विभाग सम्हाल रखे हैं। इस सूत्रके आधार पर जब हमने इन देवताओंका और इस विश्वराज्यका और गहरा अध्ययन किया, तो विश्वराज्यके मंत्रिमण्डलकी जो कल्पना साकार हुई, वह इस प्रकार थी—

- १ परब्रह्म— विश्वराज्यके राष्ट्रपति।
- २ परमात्मा— उपराष्ट्रपति।
- ३ अदितिः— ( प्रकृति, देवमाता )— विश्वराज्यके मंत्री एवं उपमंत्रियोंकी निर्माण करनेवाली एक आदिशक्ति।

### ध्येय

- १ पुरुषः— विराट् पुरुष, समाज पुरुष और व्यक्ति पुरुष इन तीनोंमें शान्ति स्थापना ही मुख्य ध्येय है।

### संसदध्यक्ष

- १ सदस्यस्पातिः— विधान सभाके अध्यक्ष।
- २ क्षेत्रस्पातिः— विधान सभाके उपाध्यक्ष और लघु समितिके अध्यक्ष।

### मंत्रिमण्डल

#### १ शिक्षामंत्रालय

- १ ज्ञानदेवाः अग्निः— शिक्षा मंत्री।
- २ प्रलणस्पतिः— उपशिक्षामंत्री।
- ३ गृहस्पातिः— उपशिक्षामंत्री या शिक्षा-मन्त्रि।

#### रक्षा-मंत्रालय

- ४ इन्द्रः— रक्षामंत्री।
- ५ उपेन्द्रः— उपरक्षामंत्री।
- ६ रुद्रः— सेनाध्यक्ष।
- ७ मरुतः— सैनिक।

#### स्वास्थ्यमंत्रालय

- ८ अभियन्ता— स्वास्थ्यमंत्री ( एक दवाकरमं या दवाय चिकित्सामें प्रवीण और दूसरा औषधि चिकित्सामें प्रवीण )।

९ औषधिः— औषधियोंका व्यवस्थापक।

१० सोमः— औषधियोंका राजा।

११ अन्नम्— उत्तम खानपानकी व्यवस्था करनेवाला।

१२ गौः— राज्यमें उत्तम दूधकी व्यवस्था करनेवाला।

### साधमंत्रालय

- १३ पूषा— साधमंत्री।
- १४ सूर्यः— शोधनमंत्री।
- १५ सविता—
- १६ आदित्यः—

### अर्थमंत्रालय

१७ वसुः— अर्थमंत्री।

### उद्योगमंत्रालय

- १८ विश्वकर्मा— उद्योगमंत्री।
- १९ वास्तोष्पातिः— गृहनिर्माण-मंत्री।
- २० त्वष्टा— शस्त्रास्त्रनिर्माणमंत्री।
- २१ क्रतुः— कुटीरउद्योग-मंत्री।

### जलयान-मंत्रालय

- २२ वरुणः— यानमंत्री।
- २३ चन्द्रमा— मानव-समाधानमंत्री।
- २४ पर्जन्यः— हविमंत्री।
- २५ आपः—
- २६ नद्यः—

### जीवन-मंत्रालय

२७ वायुः— जीवनमंत्री।

### प्रकाश-मंत्रालय

२८ विद्युत्— प्रकाशमंत्री।

### स्त्री-मंत्रालय

२९ उषा— बालिका संरक्षणमंत्री।

### बाल-मंत्रालय

३० वेनः— बाल संरक्षणमंत्री।

### गुप्तचर-मंत्रालय

३१ कः— गुप्तचरमंत्री।

### वाहन-मंत्रालय

३२ अश्वः— वाहन व मंचारमंत्री।

### राष्ट्रगीत

३३ पृथिवी सूक्तः—

इस प्रकार सय देवोंका विभाग है। यह विभाग हमने उन उन देवताओंके गुणोंके आधारपर किया है। दिग्दर्शन मात्रके लिए यहाँ कुछ प्रमाण देते हैं—

### उपेष्टु ब्रह्म

यह विश्वराज्यका राष्ट्रपति है। जिस प्रकार किसी प्रजातन्त्र राज्यमें राष्ट्रपतिके पास नाममात्रका अधिकार होते हैं, उसी प्रकार यह निर्विकार ब्रह्म है। पर इसका सम्पूर्ण मन्त्रिमण्डल पर अड्डा रहता है। इसका वर्णन वेदोंमें इस प्रकार है—

यस्मिन्भूमिरन्तरिक्षं द्यौर्यस्मिन्नध्याहिता ।

यनाग्निश्चन्द्रमा सूर्यो वातस्तिष्ठन्त्याहिताः

स्कंभं तं बृहि कतमः स्विदेव सः ॥

यनादित्याश्च रद्राश्च वसयश्च समाहिताः ।

भूतं च यत्र भव्यं च सर्वे लोकाः प्रतिष्ठिताः ।

स्कंभं तं बृहि कतमः स्विदेव सः ।

यत्र देवा ब्रह्मविदो ब्रह्मज्येष्ठमुपासते ।

यो वे तान्विद्यात्प्रत्यक्षं स ब्रह्मा वेविता स्यात् ॥

महद्यक्षं भुवनस्य मध्ये

तपसि क्रान्ते सलिलस्य पृष्ठे ॥

तस्मिन्नुपयन्ते य उ के च देवाः ।

वृक्षस्य स्कंधः परित इव शाखाः ॥

अथर्व १०।७।१२, २२, २४, ३८

“जिसमें भूमि, अन्तरिक्ष और धी स्थित हैं, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य और वायु भी जिसमें स्थित हैं, वही सबका आधारस्तेम है और वही आनन्दमय है।”

“जिसमें आदित्य, रद्र, वसु, भूत, वर्तमान, भविष्य और सभी लोक प्रतिष्ठित हैं, वही सबका आधार है और वही आनन्दमय है।”

“यहाँ ब्रह्मज्ञानी और देव श्रेष्ठ ब्रह्मकी उपासना करते हैं, जो उनका प्रत्यक्ष जानता है, वह जगत् ब्रह्म कहलायगा।”

“भुवनके मध्यभागमें जो बड़ा पृथ्वीय तथ्य है, वही ब्रह्म है। जलव पृष्ठभागपरकी उपोषिमें वह प्रकट होता है। जिसमें वृक्षमें शाखायें चारों ओरसे आश्रित रहती हैं उसी प्रकार इस ब्रह्ममें देवता आश्रित रहते हैं।”

### परमात्मा

यह विश्वराज्यका उपराष्ट्रपति है और विश्वराज्यके संचालन परमशक्ति महायत्न करता है। वह प्रकृतिरे माय मिल्कर शशिरचनाका कार्य करता है। परमशक्ति स्वरूप

निष्क्रिय है, जब कि परमात्माका स्वरूप सक्रिय है। उसका वर्णन इस प्रकार है—

अकामोऽधीरो अमृतः स्वयंभूः

रसेन हृत्तो न कुतश्चनो नः ।

तमेव विद्वान् न विभाय मृत्योः

आत्मानं धीरं अजरं सुवानम् ॥ अथर्व १०।८।४४

“कामनारहित, बुद्धि देनेवाला, अमर, अपनी शक्तिये रहनेवाला रस ग्रहणसे तृप्त होनेवाला, सर्वत्र व्याप्त, धैर्यवान्, जरारहित, सदा तरुण आत्मा है। उसे जाननेवाला मृत्युसे नहीं डरता।”

### अदिति

यह वह शक्ति है, जिससे देवताओंका निर्माण होता है। इसीको वैद्वान्दर्शनमें मायाके नामसे कहा गया है। “युलोक, अन्तरिक्ष, माता, पिता, पुत्र सब देव, पञ्चजन तथा जो कुछ होनेवाला है और हो चुका है, यह सब अदिति है।” सय देव अदितिके ही रूप हैं।

“ब्रह्म” अन्वक्ष है और “अदिति” प्रजा है। प्रजामेंसे प्रतिनिधि जुने जाते हैं और इन्हींकी सभा बनती है।

।

### पुरुष

व्यक्ति, समाज और विराट् इन तीनों स्थानोंमें जो पुरुष स्थित है, उन सबका एक उद्देश्य है कि इन तीनों जगहोंमें शान्ति स्थापित करना। “करोडो सिर, पैर व हाथवाला एक मानवसमाजरूपी पुरुष सर्वत्र है।” वह तीनों कालोंमें रहता है। समाजमें रहनेवाले ज्ञानी, शूर, वैश्य और कारीगर या शूद्र इस समाज पुरुषके सिर, बाहु, पैर और पाव हैं। सय मानवोंका मिलकर एक शरीर है, अतः शरीरमें जिस प्रकार अङ्गोंमें सहकार होता है, उसी प्रकार इस मानवसमाजमें भी मानवोंका परस्पर सहकार होना चाहिये।

इसी प्रकार विराट्पुरुषकी भी एक देह है, जिसमें सूर्य, चन्द्र आदि देवगण अङ्ग बने हुए हैं। “इस विराट्पुरुषमें चन्द्रमा मन, सूर्य, आँख, इन्द्र और अग्नि सुँह, वायु प्राण, धृति, पृथिवी पांव और दितायें कान हैं।”

हम विराट्पुरुष और ध्यक्षिपुरुषमें सहकारको बताकर मनुष्यसमाजमें भी उसीकी निष्ठा देना चेदका श्रेय है।

सदस्पति और क्षेत्रपति ये दोनों विश्वसंसदके प्रमण अन्वक्ष और उपाध्वक्ष हैं। “जो संसदका अन्वक्ष है, मैं उसमें योग्य मलाह माँगता हूँ, वह मुझे योग्य सलाह देवे।” “सदस्यः + पतिः” शब्द भी इसी बातका द्योतक है।

‘सदसः’ पद ‘सदस्’ शब्दकं पछी विभक्तिके एकवचन-का रूप है। ‘सदस्’ का अर्थ होता है ‘समा’। अतः ‘सदसः-पति’ का अर्थ है समापति या समाध्यक्ष। इसका महायक क्षेत्रपति है। इनमें सदसस्पति राज्यपरिषद्का अध्यक्ष है और क्षेत्रपति मंसू या लोकसभाका।

इसके बाद विश्वराज्यके मंत्रिमण्डलका स्थान आता है। उसमें ‘विद्याधनं सर्वधनप्रधानं’ के न्यायसे अग्निका स्थान सर्वप्रथम है।

### अग्नि

यह शिक्षामंत्री है। इसका कार्य ज्ञानका प्रसार करना व कराना है। वेदमंत्रोंमें आए हुए उनके विशेषणोंसे पता चलता है कि वह ज्ञानी है—

पायकः— ज्ञानसे लोगोंको पवित्र करनेवाला।

अपिहृत् (अ. १३११६) — अपियोंका निर्माण करनेवाला।

अचितमः (३१४१३) — सर्वश्रेष्ठ ज्ञानी।

जातवेदाः (१४४१३) — जिससे ज्ञान प्रकट हुआ है।

मेधिरः (१३११२) — बुद्धिमान्।

विद्वान् (११४५५) — ज्ञानी।

सु-येदः (४७१६) — उत्तम ज्ञानी।

सुरिः (३१४१४) — बड़ा विद्वान्।

प्रचेताः (साम. १५१४) — विशेष ज्ञानी।

आर्यस्य धर्घनः (१५१५) — आर्य या श्रेष्ठ पुत्रोंको बढानेवाला।

अपिः (१५१९) — ज्ञानी, मंत्रद्रष्टा।

ये समस्त विशेषण यह सिद्ध करते हैं कि अग्निका कार्य ज्ञानका प्रसार करके लोगोंको ज्ञानी बनाकर उन्हें पवित्र करना है।

‘ब्रह्मणस्पति’ और ‘बृहस्पति’ इसकी सहायता करते हैं। ब्रह्मका अर्थ ही ज्ञान है। पुराणोंमें बृहस्पतिकी देवोंका ज्ञानगुरु बनाया है।

### इन्द्र

यह रक्षामंत्री है। यह सदा आर्योंकी रक्षामें लचर रहता है। हमेशा दानवाओंसे मुगजित रहता है। यह लोहेका टोप पहनता है और उसपर जरीकी पगड़ी बांधता है, इसीलिए इसे वेदोंमें ‘शिरी’ कहा है। यह ‘अद्रि-यः’ अर्थात् पहाड़ोंमें रहता है। पहाड़ोंपर किये बनाकर उनमें रहता है। अथवा यह गुरिछा अर्थात् पर्वतीय मुढमें भी बड़ा प्रवीण है।

हमेशा वज्रको हाथमें धारण किये रहनेके कारण यह ‘वज्र-हस्त’ कहलाता है। यह लोक कल्याण करता है। यह बड़ा वीर है, इसलिये (जनुषा अभ्रातृव्यः) जन्मसे ही शत्रु-रहित है। इसका एक कारण और भी है कि यह ‘अशत्रुः’ है अर्थात् स्वयं भी किसीसे बिना कारण शत्रुता नहीं करता। इसके कनिषय विशेषण इस प्रकार हैं—

वायृधानः (साम. १४११) — अपनी शक्तियें बढाने-वाला है।

वृषमः (१३६१) — बैलके समान मशक।

वज्रबाहुः (१४२६) — वज्रके समान कठोर भुजाओं-वाला।

वीर्यैः वृद्धः (१४८०) — पराक्रमसे महान्।

महिषः तुविश्रुष्यः (१४४६) — भैंसेके समान पुष्ट और शक्तिमान्।

इस प्रकार वह बलवान् है और सबपर शासन करता है। पर वह स्वयंकी शक्तिमें ही महान् है, किसी दूसरेकी शक्तिकी सहायतासे वह शक्तिमान् या महान् नहीं है। यह ‘अयुध्य’ है, उसके साथ युद्ध करना कोई आमान काम नहीं। क्योंकि वह ‘बुद्ध्ययन’ अर्थात् अपने स्थानसे एक कदम भी हिलनेवाला नहीं है। वह शत्रुओंके किये लड़नेवाला, वज्रके समान कठोरवाला और युद्धमें विजयी होकर शत्रुओंको नष्ट करता है। इन्द्रके ये उपरोक्त वर्णन इस बातके प्रमाण हैं कि जिस देशका राज्य देसे चलनाही थीर रखके हाथमें रहेगा, वह देश कभी भी दान या भव-नत नहीं हो सकता।

उपेन्द्र अर्थात् विष्णु, रुद्र और मरु भी इसीके समान चलताही हैं। रुद्रका नाम भी ‘रुद्र’ इसीलिए है कि यह शत्रुओंको रगता है। निरन्तरकर यास्कने ‘शत्रुघ्नां रोद-यिता’ कहकर रुद्रका निर्वचन किया है। मरु भी ‘मर + उत्’ है अर्थात् मरतेदमतक उठ उठकर लड़ने-वाले हैं। इस प्रकार विश्वराज्यका रक्षामंत्रालय श्रेष्ठ वीरोंके आधीन है।

### अश्विनौ

ये जुड़वें हैं। ये दोनों अपने चिकित्सा कर्ममें बहुत कुशल हैं। वेदोंमें इनकी कार्य कुशलताका अनेक जगह वर्णन है। इन्होंने शस्त्रक्रियाके अनेक अपूर्वकाम किये हैं। खेल रात्राकी पुत्री विदरलाकी दांग हूट जानेपर उनकी सोहेकी दांग लगाया, अग्ने कण्वकी आँखें दीक कराना, स्वयंकी दूधमें



जवान बनाना ये सब इनकी धित्विताकी विलक्षणता बताते हैं। कायाकल्पका सिद्धान्त आज प्रायः सर्वमान्य हो गया है। कई पाश्चात्य डॉक्टरोंने कायाकल्पपर प्रयोग भी किए और उन्हें देखकर आश्चर्य हुआ कि उनकी उमर २०-२५ वर्ष कम होगई। अधिनी भी कायाकल्प करते थे। इनकी भौषधयोजना और शस्त्रक्रियाके सम्बन्धमें वेदोंमें निम्न वर्णन है—

गां पिन्वतं— गायको दुधार और पुष्ट बनाते हैं।

अर्यतः जिन्वतं— घोड़ोंको वेगवान् बनाते हैं।

धीरं वर्धयतं— पुत्र या सन्तानोंको शक्तिशाली बनाते हैं।

व्यधनं पुनः युवानं वक्रथुः— बड़े व्यवन करिकों फिर तरुण बनाया।

अपरित्याय कण्वाय चक्षुः प्रत्यधत्तम्— अन्धे कण्व को नई बाँसों प्रदान कीं।

विद्वपलायै आयसीं जघां प्रत्यधत्तम्— विद्वपलाकी लोहेकी रंग लगाई और उसे चलने फिरने योग्य बनाया।

इस प्रकार अधिनी देवोंका वर्णन है। गौः, ओषधि, सोम अन्न देवता अधिनीकी इस कार्यमें सहायता करते हैं और इस प्रकार विश्वराजका स्वास्थ्यमेंशाल्य सुचारुरूपसे चलता है।

## पूषा, सूर्य, सविता

ये तीनों लोगोंका पोषण करते हैं। 'पुष्-पोषणे' पोषण करना इस धातुसे पूषा शब्द बना है। सूर्यकी किरणोंसे पोषण प्राप्त होना स्पष्ट और सर्वमान्य सिद्धान्त है ही। 'सूर्य किरणोंमें स्नान करनेसे हृदयके रोग और पीछिया दूर होते हैं' (अ. १।५०।११)। सूर्यमें आरोग्यसंवर्धनके संपूर्ण साधन हैं। उन साधनोंसे वह सब रोग दूर करता है। जो इसकी शरणमें जाता है, वह कभी रोगके आधीन नहीं हो सकता।

## भग

यह अर्थमन्त्री है। भगका अर्थ ही ऐश्वर्य है। अतः विश्व-राज्यका सारा ऐश्वर्य भगके अधिकारमें रहता है। यह सबको गाय, घोड़े, घन, ऐश्वर्य आदिसे युक्त करता है। उसका वेदने इस प्रकार वर्णन किया है—

भग प्रणेतृभगं मृत्यरापो भगोमां धियमुदवा ददन्नः।  
भग प्र णो जनय गोभिरभ्यैः

भग प्र नृभिर्नुपतः म्याम । अ. ७।७।१३

“ हे भग देव ! तू नेता है, हमारा सम्हालक है। घेरे

पासका ऐश्वर्य प्राप्त है, हमेंना रहनेवाला है। तू हमें भी ऐश्वर्य देकर सुरक्षित कर। गाय, घोड़े प्रदान कर हमें भागवान् बना। हम वीरपुत्रोंसे युक्त हों, ऐसी कृपा कर। ”

## उषा

उषाके रूपमें वेदोंने एक आदर्श स्त्रीका वर्णन किया है। यह एक उत्तम पुत्री, उत्तम पत्नी और उत्तम नेत्री है। यह सबसे पहले उठती है और सबको उठाती है। यह गृहिणीका कर्तव्य है कि वह सबसे सर्वप्रथम उठे, फिर घरको स्वच्छ करके दूसरोंको भी उठाये। वह “ पित्रा ” है, हमेशा रंग-बिरंगे परिधानोंसे सजी रहती है। कोई भी स्त्री मलिन या दीन वेशभूषा धारण न करे। वह दिम्पलकोंका पालन करती है। उसे वेदमें “ दिव्यः दुहिता ” (घुलोककी पुत्री) कहा है। वह लोगोंको सत्कर्ममें प्रवृत्त करती है। वह “ भुयनस्य पत्नी ” अर्थात् संसारका पालन करनेवाली होनेके कारण सबके कर्मोंका निरीक्षण करती रहती है। यह सूर्यकी पत्नी है। यह इतनी आदर्श है कि कति भी इसकी स्तुति या प्रशंसा करते हैं। इसका कार्यक्षेत्र केवल घरतक ही सीमित नहीं है, अपितु यह रथमें बैठकर सर्वत्र संचार करती है। इसपर कोई कुपटि नहीं डाल सकता, क्योंकि यह वीर है, रथनीतिमें कुशल है। “ यह अपने साथ अन्य देवों-को लेकर शत्रुओंके किलोंपर आक्रमण करती है और उनका विध्वंस करती है। ”

इस प्रकार वेदने उषाके रूपमें एक वीर, धीर, सबला, उत्तम पत्नी, पुत्रीका चरित्र-चित्रण किया है। इससे वैदिक-कालमें स्त्रियोंकी स्थितिका सही अन्दाजा लगाया जा सकता है।

इसी प्रकार अन्य मंत्रीगण भी अपना कार्य सुचारुरूपसे बिना किसी छलकपटके करते हैं।

## उपसंहार

इस प्रकार संक्षेपमें हमने अपनी योजनाकी रूपरेखा प्रस्तुत की। जब हमने “ दैवत-संहिता ” के प्रपनका निश्चय किया, तो हमें कई विद्वानोंने यह लिखा कि वेदोंका वर्तमान-रूप एक शाश्वतरूप है, अनादिकालसे वेद इसी रूपमें चले आए हैं, अतः उसके वर्तमानरूपको विह्वल करना उचित नहीं। हमने उनसे यही नम्र निवेदन किया कि जब क्रियायोंके अनुसार आप्रिय संहिता पहले बन चुकी है तो देवताओंके अनुसार “ दैवत संहिता ” बनानेमें क्या आपत्ति है। हमने मंत्रके छन्दों, स्वरों या पदोंमें कोई परिवर्तन नहीं किया, न मंत्रोंमें हमने अपनी ओरसे कुछ मिलाया ही। हाँ, इतना

अवश्य किया कि जो चारों वेदोंमें पुनरुक्त मंत्र आए हैं, उनको हमने एक ही धार लिया है। हमारे पास कई ऐसे पत्र आए थे, जिनमें लेखकोंने हमें सुझाया कि चारों वेदोंकी एक पुस्तक बना दी जाए, तो अत्युत्तम होगा। इस सुझावका हमने स्वागत किया और देवताओंके अनुसार चारों वेदोंका एक ग्रंथमें संग्रह कर दिया। इस ग्रंथको प्रकाशित करते हुए हमने समय-समय पर विद्वानोंसे सलाह भी ली। हम उन विद्वानोंके आभारी हैं, जिन्होंने अपनी सलाह देकर हमारा मार्ग प्रदर्शन किया।

इस 'दैवतसंहिता' की कुछ अपनी भी विशेषतायें हैं, जो इस प्रकार हैं—

( १ ) इन्द्र आदि देवोंके चारों वेदोंके मंत्र एक जगह आ जानेके कारण वेदानुसंधानकर्ताओंको बड़ी सुविधा हो गई है। उन्हें अब चारों वेद टटोलनेकी जरूरत नहीं।

( २ ) इस संहितामें विश्वराज्यकी जो कल्पना हमने प्रस्तुत की है, वह अपूर्व है।

( ३ ) मंत्रोंके स्वरोंकी शुद्धता पर बहुत ध्यान दिया गया है। इसको प्रकाशित करते समय हमें उन विद्वानोंका सहयोग प्राप्त हुआ है, जिन्हें वेद कण्ठस्थ है। अतः स्वर-विषयक दोषोंकी संभावना कम या नहींके बराबर ही है।

( ४ ) वेदोंमें देवताओंके वर्णनके रूपमें सय प्रकारका ज्ञान दिया है। अतः उन देवताओंके गुणधर्मोंका परिचय हमें विशेष मिले, इसलिए हमने देवतावार मंत्रोंका वर्गीकरण किया है।

( ५ ) हमने यथासंभव यहीं प्रयास किया है कि पुस्तकका कलेवर बड़ा न हो। इस दृष्टिसे हमने मंत्रोंका मुद्रण दो कालमें किया है।

( ६ ) दैवत संहिताके अन्तमें परिशिष्टके रूपमें हमने अन्य संहिताओंके भी मंत्र दिए हैं। इससे संहिताओंके तुलनात्मक अध्ययनमें पर्याप्त आसानी होगी।

इस प्रकार दैवतसंहिताका मुद्रण हमने किया है। इसमें हमें जिन जिन विद्वानोंसे सलाह या अन्य प्रकारकी महा-यत्ना मिली हैं, हम उनके आभारी हैं। इस "दैवत-संहिता" के मुद्रण-कार्यमें "श्री पं. मनोहरजी विद्यालंकार चावडीबाजार, दिल्ली" ने ३८०० रु. प्रदान देकर हमारी जो सहायता की है, उसके लिए हम उनके अत्यन्त कृतज्ञ हैं। पाठक इस हमारे प्रयत्नका हार्दिक अभिनन्दन करेंगे, ऐसी आशा है। इसके साथ ही वेद-विद्वानोंसे हमारा नम्र निवेदन है, कि इस ग्रंथमें जो दोष या न्यूनता उनकी दृष्टिमें आए, हमें सूचित करनेकी कृपा करें, ताकि आगामी संस्करणमें उस दोषका परिमार्जन कर सकें।

निवेदककर्ता,

पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

अध्यक्ष- स्वाध्याय-मण्डल





# १ परब्रह्म ।

## १ परब्रह्म ।

अथर्ववेद कांड ४, सूक्त १

( ऋषिः — वेनः । देवता — बृहस्पतिः, आदिशः । छंदः — त्रिष्टुप् ; २, ५ पुरोऽनुष्टुप् )

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्  
वि सीमितः सुरुचो येन आवः ।  
स बुच्या उपमा अस्य विष्टाः  
सतश्च योनिमसतश्च वि र्वः ॥ १ ॥  
इयं पित्र्या राष्ट्रयेत्वग्रै  
प्रथमार्य जुनुषे ध्वनेष्टाः ।  
तसा एतं सुरुचं ह्यारमं  
धर्मं श्रीणन्तु प्रथमार्य घास्यवे ॥ २ ॥  
प्र यो जज्ञे विद्वानस्य वन्धु-  
विश्वा देवानां जनिमा विवक्ति ।  
ब्रह्म ब्रह्मण उज्जमार मच्या-  
शीचैरुचैः स्वधा अभि प्र तस्यौ ॥ ३ ॥  
स हि दिवः स पृथिव्या ऋतस्या  
मही क्षेमं रोदसी अस्क्रमायत् ।

मृदान्मही अस्क्रमायद्वि जातो  
द्यां सद्य पाथिबं च रजः ॥ ४ ॥  
स बुच्यादाष्ट जुनुपोऽभ्यग्रं  
बृहस्पतिर्देवता तस्य सप्राद् ।  
अह्यच्छुक्रं ज्योतिषो जनिष्टा-  
र्य धूमन्तो वि र्वसन्तु विर्वाः ॥ ५ ॥  
नूनं तदस्य क्वायो हिनोति  
महो देवस्य पर्यस्य धाम ।  
एष जज्ञे बहुभिः साकमित्या  
पूर्वं अर्धे विर्षिते ससन्तु ॥ ६ ॥  
योऽर्यवाणं पितरं देवर्षन्धुं  
बृहस्पतिं नमसावं च गच्छात् ।  
त्वं विश्वेषां जनिता यथासः  
कविर्देवो न दमयत्स्वधावान् ॥ ७ ॥ (७)

## ३ ज्येष्ठ ब्रह्म ।

अथर्ववेद कांड १०, सूक्त ८ ( ऋषिः — कुत्सः । देवता — माता )

यो भूतं च मर्त्यं च  
 सर्वं यथाधितिष्ठति ।  
 स्वर्गस्य च केवलं  
 तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥ १ ॥  
 स्कम्भेनेमे विष्टभिते  
 द्यौश्च भूमिश्च तिष्ठतः ।  
 स्कम्भ इदं सर्वमात्मन्वदु  
 यत्प्राणानिमिषच्च यत् ॥ २ ॥  
 तिस्रो ह प्रजा अत्यायमायन्  
 न्यर्ण्या अर्कमभितोऽविशन्त ।  
 बृहन् ह तस्यौ रजसो विमानो  
 हरितो हरिणीरा विवेश ॥ ३ ॥  
 द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं  
 त्रीणि नम्पानि क उ तधिकेत ।  
 तत्राहतास्त्रीणि शतानि शङ्खः  
 पृष्टिश्च खीला अविचाचला ये ॥ ४ ॥  
 इदं सवितुर्वि जानीहि  
 षडपमा एकं एकजः ।  
 तस्मिन् हापित्वमिच्छन्ते  
 य एषामेकं एकजः ॥ ५ ॥  
 आविः सन्निहितं गुहा  
 जरन्नाम महत्पदम् ।  
 तत्रेदं सर्वमार्षितम्  
 एजत् प्राणत्प्रतिष्ठितम् ॥ ६ ॥  
 एकचक्रं वर्तत एकनेमि  
 सहस्राक्षरं प्र पुरो नि पृथा ।  
 अर्धेन विश्वं भुवनं जजान  
 यदस्यार्धं कं १ तदभूव ॥ ७ ॥

पञ्चवाही बृहत्प्रेमेयां  
 प्रष्टयो युक्ता अनुसंवहन्ति ।  
 अयातमस्य ददृशे न यातं  
 परं नेद्रीयोऽर्वरं दवीयः ॥ ८ ॥  
 तिर्यग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नस्  
 तस्मिन् यशो निहितं विश्वरूपम् ।  
 तदासतु ऋषयः सप्त साकं  
 ये अस्य गोपा महतो बभूवुः ॥ ९ ॥  
 या पुरस्ताद्युज्यते या च पृथात्  
 या विश्वतो युज्यते या च सर्वतः ।  
 यया बृहः प्राङ् तापते  
 तां त्वां पृच्छामि कतमा सार्चाम् ॥ १० ॥  
 यदेजति पतति यच्च तिष्ठति  
 प्राणदप्राणानिमिषच्च यद् भुवत् ।  
 तदाधर श्रियीं विश्वरूपं  
 तत्संभूय भवत्येकमेव ॥ ११ ॥  
 अनन्तं विततं पुरुषा-  
 नन्तमन्तवच्चा समन्ते ।  
 ते नाकपालश्चरति विचिन्वन्  
 विद्वान्भुतभुत भव्यमस्य ॥ १२ ॥  
 भुजापतिश्चरति गर्भे अन्तर  
 अर्हस्यमानो बहुधा वि जायते ।  
 अर्धेन विश्वं भुवनं जजान  
 यदस्यार्धं कतुमः स केतुः ॥ १३ ॥  
 ऊर्ध्वं भरन्तश्चक्रं  
 कुम्भेनैवोदहार्यम् ।  
 पश्यन्ति सर्वे चक्षुषा  
 न सर्वे मनसा विदुः ॥ १४ ॥

## २ परब्रह्म ।

अथर्ववेद कांड ५, सूक्त ६

(ऋषिः - अथर्वी । देवताः - सोमार्हो । १ ब्रह्म, २ कर्माणि, ३-४ रुद्रगणाः । ५-८ सोमार्हो, ९ हेतिः, १०-१४ सवर्गमा रदः ।)

ब्रह्मं जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्  
 वि सीमन्तः सुरुचो वेन आबः ।  
 स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः  
 सतश्च योनिमसतश्च वि बः ॥ १ ॥  
 अनाम्ना ये बः प्रथमा  
 यानि कर्माणि चक्रिरे ।  
 वीरान् नो अश्र मा दमन्  
 तद् व एतत्परो दंभे ॥ २ ॥  
 सहस्रधार एव ते समस्वरन्  
 द्विषो नाके मधुजिह्वा असध्वतः ।  
 तस्य स्पशो न नि मिपन्ति भूर्ध्वयः  
 पदेपदे पाशिनः सन्ति सेतवे ॥ ३ ॥  
 पर्यं पु प्र धन्वा वाजसातये  
 परि वृत्राणि सुसर्णिः ।  
 द्विपस्तदध्यर्णवेनैयसे सनिसुसो  
 नामासि त्रयोदशो मास इन्द्रस्य गृहः ॥ ४ ॥  
 न्नेष्टेनारात्सीरसौ स्वाहा ।  
 तिग्मार्युधौ तिग्महेती सुशेवौ  
 सोमारुद्राविह सु मृडतं नः ॥ ५ ॥  
 अपेतेनारात्सीरसौ स्वाहा ।  
 तिग्मार्युधौ तिग्महेती सुशेवौ  
 सोमारुद्राविह सु मृडतं नः ॥ ६ ॥

अपेतेनारात्सीरसौ स्वाहा ।  
 तिग्मार्युधौ तिग्महेती सुशेवौ  
 सोमारुद्राविह सु मृडतं नः ॥ ७ ॥  
 मुमुक्तमस्मान्दुरितादवघाञ्  
 जुषेथां यज्ञममृतमस्मासु घत्तम् ॥ ८ ॥  
 चक्षुषो हेते मनसो हेते  
 ब्रह्मणो हेते तपसश्च हेते ।  
 मेन्या मेनिरस्यमेनयस्ते सन्तु  
 येष्टस्मा अम्यघायन्ति ॥ ९ ॥  
 योष्टस्माश्चक्षुषा मनसा चित्वाकृत्या  
 च यो अघायुरभिदासात् ।  
 त्वं तानग्रे मेन्यामेनीन् कृणु स्वाहा ॥ १० ॥  
 इन्द्रस्य गृहोऽसि । तं त्वा प्र पद्ये  
 तं त्वा प्र विशामि सर्वगुः सर्वपूरुषः ।  
 सर्वात्मा सर्वतनुः सह यन्मेऽस्ति तेन ॥ ११ ॥  
 इन्द्रस्य शर्मासि । तं त्वा प्र पद्ये  
 तं त्वा प्र विशामि सर्वगुः सर्वपूरुषः  
 सर्वात्मा सर्वतनुः सह यन्मेऽस्ति तेन ॥ १२ ॥  
 इन्द्रस्य वर्मासि । तं त्वा प्र पद्ये  
 तं त्वा प्र विशामि सर्वगुः सर्वपूरुषः  
 सर्वात्मा सर्वतनुः सह यन्मेऽस्ति तेन ॥ १३ ॥  
 इन्द्रस्य वरूथमासि । तं त्वा प्र पद्ये  
 तं त्वा प्र विशामि सर्वगुः सर्वपूरुषः  
 सर्वात्मा सर्वतनुः सह यन्मेऽस्ति तेन ॥ १४ ॥

## ३ ज्येष्ठं ब्रह्म ।

अथर्ववेद कांड १०, सूक्त ८ ( ऋषिः — कुत्सः । देवता — आरामा )

यो मृतं च मर्त्यं च  
 सर्वं यश्चाधितिष्ठति ।  
 स्वर्गस्य च केवलं  
 तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥ १ ॥  
 स्कम्भेनेमे विष्टमिते  
 द्यौश्च भूमिश्च तिष्ठतः ।  
 स्कम्भ इदं सर्वमात्मन्वद्  
 यत्प्राणाभिमिपश्च यत् ॥ २ ॥  
 तिस्रो ह प्रजा अस्यायमायुन्  
 न्य१न्या अर्कममितोऽविशन्त ।  
 बृहन् ह तस्यौ रजसो विमानो  
 हरितो हरिणीरा विवेश ॥ ३ ॥  
 द्वादश प्रचयश्चक्रमेकं  
 त्रीणि नम्यानि क उ तर्धिकेत ।  
 तत्राहतास्त्रीणि श्रुतानि शृङ्गवः  
 पृष्टिश्च खीला अविचाचला ये ॥ ४ ॥  
 इदं सवितरि जानीहि  
 पडयमा एक एकजः ।  
 तस्मिन् हापित्वमिच्छन्ते  
 य एषामेक एकजः ॥ ५ ॥  
 आविः सन्निहितं गुहा  
 जरन्नाम महत्पदम् ।  
 तत्रेदं सर्वमार्पितम्  
 एनेत् प्राणत्प्रतिष्ठितम् ॥ ६ ॥  
 एकचक्रं वर्तत एकनेमि  
 सहस्राक्षं प्र पुरो नि पृथा ।  
 अर्धेन विश्वं ध्रुवं जजान  
 यदस्यार्धं क १ तद्वभूव ॥ ७ ॥

पञ्चवाही वहत्यग्नेम्यां  
 प्रष्टयो युक्ता अनुसंवहन्ति ।  
 अयातमस्य ददृशे न यातं  
 परं नेद्रीयोऽवरं दवीयः ॥ ८ ॥  
 तिर्यग्विलथमस ऊर्ध्ववृष्णस्  
 तस्मिन् यशो निहितं विश्वरूपम् ।  
 तदासतु ऋषयः सप्त साकं  
 ये अस्य गोपा महतो बभूवुः ॥ ९ ॥  
 या पुरस्ताद्युज्यते या च पश्चात्  
 या विश्वतो युज्यते या च सर्वतः ।  
 यया यज्ञः प्राङ् तापते  
 तां त्वां पृच्छामि कतुमा सर्चाप् ॥ १० ॥  
 यदेर्जति पतति यच्च तिष्ठति  
 प्राणदप्राणाभिमिपश्च यद् ध्रुवत् ।  
 तदाधार पृथिवी विश्वरूपं  
 तत्संभूयं भवत्येकमेव ॥ ११ ॥  
 अनन्तं विततं पुरुषा-  
 नन्तमन्तवच्चा समन्ते ।  
 ते नाकपालधरति विचिन्मन्  
 विद्वान्भूतमुत मर्त्यमस्य ॥ १२ ॥  
 प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तर  
 अदृश्यमानो बहुधा वि जायते ।  
 अर्धेन विश्वं ध्रुवं जजान  
 यदस्यार्धं कतुमः स केतुः ॥ १३ ॥  
 ऊर्ध्वं मरन्तमुद्रकं  
 कुम्भेनैवोदहार्यम् ।  
 पश्यन्ति सर्वे चक्षुषा  
 न सर्वे मर्नसा विदुः ॥ १४ ॥

दूरे पुणेन वसति  
 दूर ऊनेन हीयते ।  
 महद्यक्ष भुवनस्य मध्ये  
 तस्मै बलि राष्ट्रभूतौ भरन्ति ॥ १५ ॥  
 यतः सूर्य उदेति-  
 अस्तं यत्र च गच्छति ।  
 तदेव मन्येऽहं ज्येष्ठं  
 तदु नात्येति किं च न ॥ १६ ॥  
 ये अर्वाङ्मध्यं उत वा पुराणं  
 वेदं विद्वांसमभितो वदन्ति ।  
 आदित्यमेव ते परि वदन्ति सर्वे  
 अग्निं द्वितीयं त्रिवृतं च हंसम् ॥ १७ ॥  
 सहस्राक्षं विर्यतावस्य पक्षौ  
 हरैर्हंसस्य पततः स्वर्गम् ।  
 स देवान्सर्वानुरस्युपदधं  
 संपश्यन् याति भुवनानि विश्वा ॥ १८ ॥  
 सत्येनोर्ध्वस्तपति  
 ब्रह्मणावाङ् वि पश्यति ।  
 प्राणेन तिर्यङ् प्राणति  
 यस्मिन् ज्येष्ठमधि श्रितम् ॥ १९ ॥  
 यो वै ते विद्यादुरणी  
 याम्या निर्मध्यते वसु ।  
 स विद्वान् ज्येष्ठं मन्येतु  
 स विद्यात् ब्राह्मणं महत् ॥ २० ॥  
 अपादग्रे सममवत्  
 सो अग्रे स्वशूराभरत् ।  
 चतुर्ष्पाद् भूत्वा भोग्यः  
 सर्वमादत्त भोजनम् ॥ २१ ॥  
 भोग्यो भवद्यो  
 अश्रमदद्द्रु ।

यो देवमुत्तरार्वन्तम्  
 उपासति सनातनम् ॥ २२ ॥  
 सनातनमेनमाहु-  
 रुताद्य स्यात्पुनर्णवः ।  
 अहोरात्रे प्र जयिते  
 अन्यो अन्यस्य रूपयोः ॥ २३ ॥  
 शतं सहस्रमयुतं न्यविदम्  
 असंख्येयं स्वर्गस्मिन्निविष्टम्  
 तदस्य मन्त्र्यभिपश्यत एव  
 तस्माद् देवो रोचत एष एतत् ॥ २४ ॥  
 बालादेकमणीयस्कम्  
 उतैकं नैव दृश्यते ।  
 ततः परिव्रजयीसी  
 देवता सा मम प्रिया ॥ २५ ॥  
 इयं कल्याण्यंशुजरा  
 मर्त्यस्यामृतां गृहे ।  
 यस्मै कृता श्रुपे स  
 यश्चकार जजार सः ॥ २६ ॥  
 त्वं स्त्री त्वं पुमानसि  
 त्वं कुमार उत वा कुमारी ।  
 त्वं जीर्णो दुण्डेन बध्नसि  
 त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः ॥ २७ ॥  
 उतैषां पितोत वा पुत्र एषाम्  
 उतैषां ज्येष्ठ उत वा कनिष्ठः ।  
 एको ह देवो मनसि प्रविष्टः  
 प्रथमो जातः स तु गर्भे अन्तः ॥ २८ ॥  
 पूर्णात्पूर्णमुदचति  
 पूर्णं पूर्णेन सिन्ध्यते ।  
 उतो तदुद्य विद्याम्  
 यतस्तत्परिचिन्धते ॥ २९ ॥



एषा सनत्नी सनमेव जाता  
 एषा पुराणी परि सर्वं बभूव ।  
 मही देव्युपसो विभाती  
 सैकैकैकेन मिषता वि चरे ॥ ३० ॥  
 अविर्षे नाम देवता  
 श्रुतेनास्ते परीवृता ।  
 तस्या रूपेणेमे वृक्षा  
 हरिता हरितस्रजाः ॥ ३१ ॥  
 अन्ति सन्तं न जहाति  
 अन्ति सन्तं न पश्यति ।  
 देवस्य पश्य काव्यं  
 न भमार न जीर्यति ॥ ३२ ॥  
 अपूर्वेणैषिता वाचस्  
 ता वदन्ति यथायथम् ।  
 वदन्तीर्यत्र गच्छन्ति  
 तदाहुर्ग्राहणं महत् ॥ ३३ ॥  
 यत्र देवार्थं मनुष्याश्च  
 आरा नामाविव श्रिताः ।  
 अपां त्वा पुष्पं पृच्छामि  
 यत्र सन्मायया हितम् ॥ ३४ ॥  
 येभिर्वीर्यं इषितः प्रवाति  
 ये ददन्ते पञ्च दिशः सध्रीचीः ।  
 य आहुतिमत्यमन्यन्त देवा  
 अपां नेतारः कतमे त आसन् ॥ ३५ ॥  
 इमामेषां पृथिवीं वस्तु एको-  
 ऽन्तरिक्षं पर्येको बभूव ।  
 दिवमेषां ददते यो विधर्ता  
 विश्वा आशाः प्रति रक्षन्त्येकै ॥ ३६ ॥  
 यो विद्यात्स्रवं विततं  
 यस्मिन्नोताः प्रजा इमाः ।

स्रवं स्रत्रस्रं यो विद्यात्  
 स विद्याद् ब्राह्मणं महत् ॥ ३७ ॥  
 वेदाहं स्रवं विततं  
 यस्मिन्नोताः प्रजा इमाः ।  
 स्रवं स्रत्रस्याहं वेद  
 अथो यद्ब्राह्मणं महत् ॥ ३८ ॥  
 यदन्तरा चावापृथिवी  
 अभिरैत्प्रदहन्विश्वदावप्युः ।  
 यत्रातिष्ठन्नेकपत्नीः परस्तात्  
 केवासीन्मातुरिश्वा तदानीम् ॥ ३९ ॥  
 अप्स्वाप्सीन्मातुरिश्वा प्रविष्टः  
 प्रविष्टा देवाः सलिलान्यासन् ।  
 बृहन् देवस्य रजसो विमानः  
 पर्वमानो हरित आ विवेद्य ॥ ४० ॥  
 उत्तरेणेव गापत्रीम्  
 अमृतेऽधि वि चक्रमे ।  
 साम्ना ये सामं संविदुः  
 अजस्तदहंशे कृ ॥ ४१ ॥  
 निषेधनः संगमनो वधनां  
 देव इव सविता सत्यधर्मा ।  
 इन्द्रो न तस्यौ  
 समरे धनानाम् ॥ ४२ ॥  
 पुण्डरीकं नवद्वारं  
 त्रिभिर्गुणभिरावृतम् ।  
 तस्मिन्यद्यधर्मात्मन्वत्  
 तद्वै ब्रह्मविदो विदुः ॥ ४३ ॥  
 अकामो धीरो अमृतः स्वयंभू  
 रसेन तृप्तो न कुतश्चनोर्नः ।  
 तमेव विद्वान्न विमाय मृत्योः  
 आत्मानं धीरमजरं युवानम् ॥ ४४ ॥ (६५)

## ४ उच्छिष्टं महः ।

अथधेवेष्ट कांड ११, सूक्त ७ ( ऋषिः — अथर्वा । देवता — अथर्वान, उच्छिष्टः । )

उच्छिष्टे नाम रूपं  
 चोच्छिष्टे लोक आर्हितः ।  
 उच्छिष्ट इन्द्रश्चापिश्च  
 विश्वमन्तः समाहितम् ॥ १ ॥  
 उच्छिष्टे घावापृथिवी  
 विश्वं भूतं समाहितम् ।  
 आपः समुद्र उच्छिष्टे  
 चन्द्रमा वात आर्हितः ॥ २ ॥  
 सञ्चुच्छिष्टे असंशोभौ  
 मृत्युर्वाजः प्रजापतिः ।  
 लोक्या उच्छिष्ट आयंस्त  
 ब्रह्म ब्रह्मापि श्रीमयि ॥ ३ ॥  
 इहो ईहस्थिरो न्यो  
 ब्रह्म विश्वसृजो दक्ष ।  
 नामिमिव सर्वतश्चक्रम्  
 उच्छिष्टे देवताः श्रिताः ॥ ४ ॥  
 शक्रसाम यजुरुच्छिष्ट  
 उद्गीथः प्रस्तुतं स्तुतम् ।  
 द्विङ्गार उच्छिष्टे स्वरः  
 साम्नो मेडिश्च तन्मयि ॥ ५ ॥  
 ऐन्द्राग्रं पावमानं  
 महानोम्नीर्महाव्रतम् ।  
 उच्छिष्टे यज्ञसाङ्गानि  
 अन्तर्गर्भं इव मातरि ॥ ६ ॥  
 राजसूयं वाजपेयम्  
 अमिष्टोमस्तदध्वरः ।  
 अर्काश्चमेघावुच्छिष्टे  
 जीवर्हिर्मदिन्तमः ॥ ७ ॥

अग्न्याधेयमयो दीक्षा  
 कामप्रश्नन्दंसा सह ।  
 उत्सन्ना यज्ञाः सन्त्राणि  
 उच्छिष्टेऽधि समाहिताः ॥ ८ ॥  
 अग्निहोत्रं च श्रद्धा च  
 षपट्कारो यतं तपः ।  
 दक्षिणेष्टं पूर्वं चोच्छिष्टे-  
 ऽधि समाहिताः ॥ ९ ॥  
 एकरात्रो द्विरात्रः  
 सद्यःक्रीः प्रक्रीकृष्यः ।  
 ओतं निहितमुच्छिष्टे  
 यज्ञस्याणुनि विद्यया ॥ १० ॥  
 चतुरात्रः पञ्चरात्रः  
 षड्रात्रश्चोमयः सह ।  
 षोडशी सप्तरात्राश्चोच्छिष्टा-  
 अक्षिरे सर्वे ये यज्ञा अमृतं हिताः ॥ ११ ॥  
 प्रतीहारो निघर्न  
 विश्वजिष्वाभिजिष्च यः ।  
 साङ्गातिरात्रावुच्छिष्टे  
 द्वादशाहोऽपि तन्मयि ॥ १२ ॥  
 सूनृता संनतिः क्षेमः  
 स्वधोर्जामृतं सहः ।  
 उच्छिष्टे सर्वे प्रत्यञ्चः  
 कामा कामेन तावपुः ॥ १३ ॥  
 नव भूर्माः समुद्रा  
 उच्छिष्टेऽधि श्रिता दिवः ।  
 आ सूर्यो भ्रातृयुच्छिष्टे-  
 ऽहोरात्रे अपि तन्मयि ॥ १४ ॥

उपहव्यं विपुवन्तं  
 ये च यज्ञा गुहा हिताः ।  
 विमर्ति भर्ता विश्वस्य  
 उच्छिष्टो जनितुः पिता ॥ १५ ॥  
 पिता जनितुरुच्छिष्टो-  
 ऽसौः पौत्रः पितामहः ।  
 स क्षियति विश्वस्येशानो  
 वृषा भूम्यामतिघ्न्यः ॥ १६ ॥  
 ऋतं सत्यं तपो राष्ट्रं  
 श्रमो धर्मश्च कर्म च ।  
 भूतं मविष्यदुच्छिष्टे  
 वीर्यं लक्ष्मीर्बलं बलं ॥ १७ ॥  
 समृद्धिरोज आकृतिः  
 क्षत्रं राष्ट्रं पटुर्न्यः ।  
 संवत्सरोऽप्युच्छिष्टे  
 इडा प्रेया प्रहा हविः ॥ १८ ॥  
 चतुर्होतार आश्रित्यः  
 चातुर्मास्यानि नीविदः ।  
 उच्छिष्टे यज्ञा होत्राः  
 पशुबन्धास्तदिष्टयः ॥ १९ ॥  
 अर्धमासाश्च मासाश्च  
 आर्तवा ऋतुभिः सह ।  
 उच्छिष्टे घोषिणीरार्षः  
 स्तनयित्तुः श्रुतिर्मही ॥ २० ॥  
 शकंराः सिकता अश्मान्  
 ओषधयो वीरुघृस्त्रणा ।

अन्नाणि विद्युतो वर्षम्  
 उच्छिष्टे संश्रिता श्रिता ॥ २१ ॥  
 राद्विः प्राप्तिः संमाप्तिः  
 न्याप्तिर्मह एघृतुः ।  
 अत्याप्तिरुच्छिष्टे भूतिः  
 चाहिता निहिता हिता ॥ २२ ॥  
 यच्च प्राणति प्राणेन  
 यच्च पश्यति चक्षुषा ।  
 उच्छिष्टाज्जिरे सर्वे  
 दिवि देवा दिविश्रितः ॥ २३ ॥  
 ऋचः सामानि च्छन्दांसि  
 पुराणं यजुषा सह ।  
 उच्छिष्टाज्जिरे सर्वे  
 दिवि देवा दिविश्रितः ॥ २४ ॥  
 प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्र-  
 मक्षितिश्च क्षितिश्च या ।  
 उच्छिष्टाज्जिरे सर्वे  
 दिवि देवा दिविश्रितः ॥ २५ ॥  
 आनन्दा मोदाः प्रमुदो-  
 ऽमीमोदमुदश्च ये ।  
 उच्छिष्टाज्जिरे सर्वे  
 दिवि देवा दिविश्रितः ॥ २६ ॥  
 देवाः पितरो मनुष्या  
 गन्धर्वाप्सरसश्च ये ।  
 उच्छिष्टाज्जिरे सर्वे  
 दिवि देवा दिविश्रितः ॥ २७ ॥

## ५ पुरुषे ब्रह्म ।

॥ १ ॥ (भा० य० २३।१, ११, १७-५२)

कः स्विदेकाकी चरति  
 क उं स्विज्जायते पुनः ।  
 कि० स्विद्धिमसं भेषजं  
 कि० वावर्पनं महत् ॥ ९ ॥  
 का स्विदासीत् पूर्वचित्तिः  
 कि० स्विदासीद्ब्रह्मद्वयः ।  
 का स्विदासीत् पिलिप्पिला  
 का स्विदासीत् पिशाङ्गिला ॥ ११ ॥  
 कि० स्विद् सूर्यसमं ज्योतिः  
 कि० समुद्रसमं सरः ।  
 कि० स्विद् पृथिव्यै वर्षीयः  
 कस्य मात्रा न विद्यते ॥ ४७ ॥  
 ब्रह्म सूर्यसमं ज्योति-  
 र्घाः समुद्रसमं सरः ।  
 इन्द्रः पृथिव्यै वर्षीयान्  
 गोस्तु मात्रा न विद्यते ॥ ४८ ॥

पृच्छामि त्वा चित्तये देवमात्र  
 यदि त्वमात्र मनसा जगन्ध ॥  
 येषु विष्णुश्चिपु पदेधेष्टः  
 तेषु विश्वं भुवनमा विवेश ॥ ४९ ॥  
 अपि तेषु त्रिषु पदेध्वस्मि  
 येषु विश्वं भुवनमा विवेश ॥  
 सद्यः पर्येमि पृथिवीमुत् घाम्  
 एकेनाङ्गेन दिवो अस्य पृष्ठम् ॥ ५० ॥  
 केच्यन्तः पुरुष आ विवेश  
 कान्यन्तः पुरुषे अपितानि ।  
 एतद्ब्रह्मन्नुप ब्रह्मामसि त्वा  
 कि० स्विन्नः प्रति बोधास्पत्र ॥ ५१ ॥  
 पञ्चस्वन्तः पुरुष आ विवेश  
 तान्यन्तः पुरुषे अपितानि ।  
 एतत् त्वात्र प्रतिमन्वानो अस्मि  
 न मायया भवस्युत्तरो मत् ॥ ५२ ॥ (१००)

## ६ ब्रह्मणि देवताः ।

( अथर्व० ५।२४।१-१७ )

( १-५२ ) अथर्वा । [ ब्रह्मकर्म ] । ब्रह्मकर्मोत्तमः १ सविता, २ अग्निः, ३ द्यावापृथिवी, ४ वरुणः, ५ मित्रावरुणौ,  
 ६ महत, ७ सोम, ८ वायुः, ९ सूर्य, १० चन्द्रमा, ११ इन्द्रः, १२ महता पिता, १३ मृत्यु, १४ यम,  
 १५ पितरः, १६ तता, १७ ततामहा । अतिशक्तीः १-१०, १२-१४ चतुष्वदातिशक्तीः  
 ११ शक्तीः, १५-१६ त्रिपदा भुरिजगतीः, १७ त्रिपदा विराट् शक्तीः ।

सविता प्रसवानामधिपतिः स मावतु ।  
 अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां  
 पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां  
 चित्त्यामस्यामाकृत्यामस्या-  
 माशिस्यस्यां देवहृत्यां स्वाहा ॥ १ ॥

अग्निर्वनस्पतानामधिपतिः स मावतु ।  
 अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् ॥ २ ॥  
 द्यावापृथिवी दातृणामधिपती ते मावताम् ।  
 अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् ॥ ३ ॥  
 वरुणोऽपामधिपतिः स मावतु ।  
 अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् ॥ ४ ॥ (१०४)

मित्रावरुणौ वृष्ट्याधिपतिः तौ मां वतु ।  
 अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् ॥ ५ ॥  
 मरुतः पर्यतानामधिपतयस्ते मां वतु ।  
 अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् ॥ ६ ॥  
 सोमो धीरुघामधिपतिः स मां वतु ।  
 अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् ॥ ७ ॥  
 वायुरन्तरिक्षस्याधिपतिः स मां वतु ।  
 अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् ॥ ८ ॥  
 सूर्यश्चक्षुषामधिपतिः स मां वतु ।  
 अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् ॥ ९ ॥  
 चन्द्रमा नक्षत्राणामधिपतिः स मां वतु ।  
 अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् ॥ १० ॥  
 इन्द्रो दिवोऽधिपतिः स मां वतु ।  
 अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् ॥ ११ ॥

मरुतां पिता पशूनामधिपतिः स मां वतु ।  
 अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् ॥ १२ ॥  
 मृत्युः प्रजानामधिपतिः स मां वतु ।  
 अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् ॥ १३ ॥  
 यमः पितॄणामधिपतिः स मां वतु ।  
 अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् ॥ १४ ॥  
 पितरः परे ते मां वतु ।  
 अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् ॥ १५ ॥  
 तृता अरि ते मां वतु ।  
 अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् ॥ १६ ॥  
 ततस्ततामहास्ते मां वतु ।  
 अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् ॥ १७ ॥ (११७)

## ७ परमं गुह्यं धाम ।

अथर्व. कांड २, सूक्त १ ( ऋषिः - देवः । देवता - ब्रह्मा, आत्मा )

येनस्तत्पश्यत्परमं गुहा यद्  
 यत्र विश्वं भवत्येकरूपम् ।  
 इदं पृथिरदुहजार्यमानाः  
 स्वविदो अभ्यनृपतु ब्राह्मणः ॥ १ ॥  
 प्र तद्वोचिदुमृत्तस्य विद्वान्  
 गन्धर्वो धाम परमं गुहा यत् ।  
 त्रीणि पदानि निर्हिता गुहास्य  
 यस्तानि वेद स पितृष्पितासत् ॥ २ ॥  
 स नः पिता जनिता स उत धन्वः  
 धामानि वेद भवन्तानि विश्वा ।

यो देवानां नामध एक एव  
 तं संप्रभं भवन्ता यन्ति सर्वा ॥ ३ ॥  
 परि द्यार्वापृथिवी सद्य आयुम्  
 उपातिष्ठे प्रथमजामृतस्य ।  
 वार्चमिव वृत्तरि भुवनेष्टा  
 घास्युरेप नन्वेष्टेपो अग्निः ॥ ४ ॥  
 परि विश्वा भवन्तान्यायम्  
 श्रुतस्य तन्तुं विरतं दृष्टे कम् ।  
 यत्र देवा अमृतमानशानाः  
 संप्राने योनावध्यैर्यन्त ॥ ५ ॥ (१००)

## ८ महद्ब्रह्म ।

अथर्व. कांड १, सूक्त ३१ ( ऋषि — ब्रह्मा । देवता — वावाशुमिवी )

इदं जनासो विदथे  
महद्ब्रह्म वदिष्यति ।  
न तत्पृथिव्यां नो द्विवि  
येन प्राणान्ति वीरुधः ॥ १ ॥

अन्तरिक्ष आसां स्थाम्  
श्रान्तुसदामिव ।  
आस्थानमस्य भूतस्य  
विदुष्टद्वेषसो न वा ॥ २ ॥

यद्रोदसी रेजमाने  
भूमिश्च निरतक्षतम् ।  
आर्द्रं तदद्य सर्वदा  
समुद्रस्यैव स्रोत्याः ॥ ३ ॥  
विश्वमन्याममीवार  
तदन्यस्यामधिश्चितम् ।  
दिवे च विश्ववेदसे  
पृथिव्यै चाकरं नमः ॥ ४ ॥

## ९ तुरीयं ब्रह्म ।

अथर्व. कांड ७, सूक्त १ ( ऋषि — अथर्वी ' ब्रह्मवर्चसकाम ' । देवता — आरामा )

धीवी वा ये अनयन्वाचो अग्रं  
मनसा वा येऽवदभूतानि ।  
तुरीयेन ब्रह्मणा वावृषानास्  
तुरीयेणामन्वतु नाम धेनोः ॥ १ ॥

स वेद पुत्रः पितरं स मातरं  
स सूनुर्भवत्स भुवत्पुनर्मेघः ।  
स द्यामौर्गोदन्तरिक्षं स्वर्गः  
स इदं विश्वमभवत्स आभवत् ॥ २ ॥

## १० ब्रह्मवासिः ।

अथर्व. कांड ७, सूक्त ६६ ( ६८ ) ( ऋषि. — ब्रह्मा । देवता= ब्रह्मा )

यद्यन्तरिक्षे यदि वात आस  
यदि वृक्षेषु यदि वोल्पेषु ।

यदश्रवन्पुत्रव उद्यमानं  
तद्ब्राह्मणं पुनरस्मानुपैतु ॥ १ ॥ (१९९)



## २ परमात्मा ।

### आत्मन् ।

॥ १ ॥ ( अ० ३।७-८ )

( १-२ ) गायत्री विद्यामित्रः । त्रिष्टुप् ।

अमिरस्मि जन्मना जातवेदा  
धृतं मे चक्षुरमृतं म आसन् ।  
अर्कस्त्रिधातु रजसो विमानः  
अजस्रो घर्मो हविरस्मि नाम ॥ ७ ॥  
प्रिमिः पवित्रैरुपुण्ड्रयुक्  
हृदा मतिं ज्योतिरस्तु प्रजानन् ।  
वर्षिष्ठं रत्नमकृत स्वधामिः  
आदिद् धावापृथिवी पर्यपश्यत् ॥ ८ ॥

॥ २ ॥ ( अ० ४।७-८ )

( १-८ ) प्रवदस्युः पौरुषस्यः । त्रिष्टुप् ।

मम हिता राष्ट्रं क्षत्रियस्य  
विश्वायोर्विश्वे अमृता यथा नः ।  
क्रतुं सचन्ते वरुणस्य देवाः  
राजामि कुष्टेऽरुपमस्य वज्रैः ॥ १ ॥  
अहं राजा वरुणो मघं तानि  
असुर्याणि प्रथमा धारयन्त ।  
क्रतुं सचन्ते वरुणस्य देवाः  
राजामि कुष्टेऽरुपमस्य वज्रैः ॥ २ ॥  
अहमिन्द्रो वरुणस्ते महिष्वा  
उर्वी गर्भीरे रजसी सुमेकं ।

स्वष्टेव विश्वा भुवनानि विद्वान्  
समैरयं रोदसी धारयं च ॥ ३ ॥  
अहमपो अपिन्वमुक्षमाणा  
धारयं दिवं सदेन क्रतुस्य ।  
श्रुतेन पुत्रो अदितैर्भूतावा  
उत त्रिधातुं प्रथयद् वि भूर्म ॥ ४ ॥  
मां नरः स्वस्था वाजयन्तो  
मां वृताः समरणे हवन्ते ।  
कृणोभ्याजि मघवाहमिन्द्र  
इयमिं रेणुमभिभृत्योजाः ॥ ५ ॥

अहं ता विश्वा चकरं न किर्मा  
दैव्यं सहो वरते अप्रवीतम् ।  
यन्मा सोमासो ममदुन्यदुक्षया  
उमे मयेते रजसी अपारे ॥ ६ ॥

॥ ३ ॥ ( अ० १०।११-१२ )

( १-२१ ) लघु देन्द्रः । गायत्री ।

इति वा इति मे मनो गामश्च सनुयामिति ।  
कुवित् सोमस्यापामिति ॥ १ ॥  
प्र वाता इव दोषत उन्मा पीता अयमव ।  
कुवित् सोमस्यापामिति ॥ २ ॥  
उन्मा पीता अयंसत् रथमश्वा इवाश्वरः ।  
कुवित् सोमस्यापामिति ॥ ३ ॥

( १२० )

परि धावापृथिवी सद्य इत्वा  
 परि लोकान् परि दिशः परि स्वः ।  
 श्रुतस्य तन्तुं धितं चित्तं चित्तं  
 तदपश्यत् तदभवत् तदासीत् ॥ १२ ॥  
 सदेसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।  
 सनि मेधामेयासिपथं स्वाहा ॥ १३ ॥  
 यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते ।  
 तया मामद्य मेधयाऽप्ये मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥ १४ ॥  
 मेधां मे वरुणो ददातु  
 मेधामग्निः प्रजापतिः ।  
 मेधामिन्द्रश्च वायुश्च  
 मेधां धाता ददातु मे स्वाहा ॥ १५ ॥  
 इदं मे ब्रह्म च क्षत्रं  
 चोमे श्रियमश्रुताम् ।  
 मयि देवा दधतु श्रियम्  
 उत्तमां तस्यै ते स्वाहा ॥ १६ ॥  
 ॥ १३ ॥ ( वा० य० ४०१-१५ )  
 ईशा वास्यमिदं सर्वं  
 यत् किं च जगत्यां जगत् ।  
 तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा  
 मा गृधः कस्य सिद्धानम् ॥ १ ॥  
 कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतश्च समाः ।  
 एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरैः ॥ २ ॥  
 असुर्या नाम ते लोका  
 अन्धेन तमसावृताः ।  
 तांस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति  
 ये के चात्महन्ता जनाः ॥ ३ ॥  
 अनेन देवं मनसो जवीयो  
 नेनेत्या आप्नुवन् पूर्वमशीत् ।

तद्धारतोऽन्यानर्त्येति तिष्ठत्  
 तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति ॥ ४ ॥  
 तदेजति तत्रैजति तदूरे तदन्तिके ।  
 तदुन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥ ५ ॥  
 यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मनेवानुपश्यति ।  
 सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विचिंक्षितसति ॥ ६ ॥  
 यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद् विजानतः ।  
 तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः ॥ ७ ॥  
 स पर्यगाच्छुक्रमकायमवगमम्  
 अस्त्राविरथं शुद्धमपापविद्धम् ।  
 कुर्विर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थार्थं  
 व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाम्यः ॥ ८ ॥  
 अन्धं तमः प्र विंशन्ति येऽसंभूतिमुपासते ।  
 ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्याश्च रताः ॥ ९ ॥  
 अन्यदेवाहुः संभवादन्यदाहुरसंभवात् ।  
 इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥ १० ॥  
 संमतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयं सह ।  
 विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा संभूत्यामृतमश्नुते ॥ ११ ॥  
 अन्धं तमः प्र विंशन्ति येऽविद्यामुपासते ।  
 ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायाश्च रताः ॥ १२ ॥  
 अन्यदेवाहुर्विद्याया अन्यदाहुरविद्यायाः ।  
 इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥ १३ ॥  
 विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह ।  
 अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्यायामृतमश्नुते ॥ १४ ॥  
 वायुरानिलममृतमथेदं भस्मान्तं शरीरम् ।  
 ओ३म् कृतो स्मरः श्रुवे स्मरः कृतं स्मरः ॥ १५ ॥



॥ १४ ॥ ( अथर्व० २।७।१-५ )

( ७१-७५ ) मातुनामा । गन्धर्वाध्वरसः [ भुवनस्पतिसूक्तम् ] ।

त्रिष्टुप्, १ विराड्जगती, ४ त्रिषाद्विराट्नाम्री गायत्री,

५ भुरिगनुष्टुप् ।

दिव्यो गन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिः

एक एव नमस्यो विक्ष्वीढ्यः ।

तं स्वा यौमि ब्रह्मणा दिव्य देव  
नमस्ते अस्तु दिवि ते सधस्थम् ॥ १ ॥

दिवि स्पृष्टो यजतः स्यैत्वक्-

अवयाता हरसो दैव्यस्य ।

मृडाद्रेन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिः

एक एव नमस्यो सुक्षेवाः ॥ २ ॥

अनवद्यामिः सप्त जगम आभिः

अप्सरास्वपिं गन्धर्व आसीत् ।

समुद्र आसां सदनं म आङ्गुः

यतः सुध आ च परा च यन्ति ॥ ३ ॥

अग्निये दिद्युन्धर्वाग्निये या

विश्वावसं गन्धर्व सचक्ष्वे ।

ताभ्यो वो देवीनम इत्कुणोमि ॥ ४ ॥

याः कृन्दास्तमिषीचयोऽक्षकामा मनोमृहः ।

ताभ्यो गन्धर्वपत्नीभ्योऽप्सराभ्योऽकरं नमः ॥ ५ ॥

॥ १७ ॥ ( अथर्व० ७।१।१-७ )

( ८१-१४१ ) अथर्वो ( ब्रह्मवर्चध्वरसः ) । त्रिष्टुप्,

२ विराट् जगती ।

धीती वा ये अनयन् वाचो

अग्रं मनसा वा येऽवदन्नुतानि ।

तूतीयेन ब्रह्मणा वावृधानास्

तुरीयेनामन्वतु नाम धेनोः ॥ १ ॥

स वेद पुत्रः पितरं स मातरं

स सुनुर्भुवत् स भुवत् पुनर्मघः ।

स धामौणोदन्तरिक्षं स्वः

स इदं विश्वममवत् स आऽमवत् ॥ २ ॥

॥ १८ ॥ ( अथर्व० ७।७।१ ) त्रिष्टुप् ।

अथर्वाणं पितरं देवबन्धुं

मातुर्गर्भं पितरसुं युवानम् ।

य इमं यज्ञं मनसा चिकेत

प्र णो वोचस्तमिहेह ब्रवः ॥ १ ॥

॥ १९ ॥ ( अथर्व० ७।३।१ )

अया विष्ठा जनयन् कर्वराणि

स हि घृणिरुर्वराय गातुः ।

स प्रत्युदैद घृणं मध्वो अग्रं

स्वयां तुन्वा तुन्वा भैरयत ॥ १ ॥

॥ २० ॥ ( अथर्व० ७।५।१-५ )

त्रिष्टुप्, ३ षंफि, ४ अनुष्टुप् ।

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवासु

तानि धर्मीणि प्रयमान्यासन् ।

ते ह नार्क महिमानः सचन्तु

यत्र पूर्वं साध्याः सन्ति देवाः ॥ १ ॥

यज्ञो बभूव स आ बभूव

स प्र जज्ञे स उ वावृचे पुनः ।

स देवानामर्धपतिर्बभूव

सो अस्मासु द्रविणमा दधातु ॥ २ ॥

यदेवा देवान् हविषाऽयजन्त

अमर्त्यान् मनुसामर्त्येन ।

मर्देम तत्र परमे व्योमन्

पश्येम तदुदितौ स्येस्य ॥ ३ ॥

यत् पुरुषेण हविषा यज्ञं देवा अतन्वत ।

अस्ति नु तस्मादोर्जायो यद्विहव्येनेजिरे ॥ ४ ॥

मुग्धा देवा उत धुनायजन्त

उत गोरक्षे पुरुषाऽयजन्त ।

य इमं यज्ञं मनसा चिकेत

प्र णो वोचस्तमिहेह ब्रवः ॥ ५ ॥

( १११ )

॥ २३ ॥ ( अथर्व० ७ २१।१ )

( १८१-१९४ ) ब्रह्मा । आत्मा ( एव विभुः ) ।

शक्तो विराड्गर्मा जगती ।

समेत विश्वे वचसा पतिं दिव

एको विभूरतिथिर्जनानाम् ।

स पूर्यो नूतनमाविवांसत्

तं वर्तनिरतुं वावृत एकमित् पुरु ॥ १ ॥

॥ २४ ॥ ( अथर्व० ७।६।१ ) पुरः परीष्णिवृहती ।

पुनर्मैत्विन्द्रियं पुनरात्मा

द्विषिणं ब्राह्मणं च । पुनरुद्रयो धिष्या

यथास्थाम कल्पयन्तामिहैव ॥ १ ॥

॥ २५ ॥ ( अथर्व० ७।१०३।१ )

आत्मा ( क्षत्रियः ) । त्रिष्टुप् ।

को अस्या नो द्रुहोऽवधर्वत्या

उन्नैप्यति क्षत्रियो वस्य इच्छन् ।

को यज्ञकामं क उ पूर्तिकामः

को देवपुं वतुते दीर्घमायुः ॥ १ ॥

॥ २६ ॥ ( अथर्व० ७।१०४।१ ) आत्मा ( गौः ) त्रिष्टुप् ।

कः शशै घेनुं वरुणेन दुत्ताम्

अथर्वणे सुदुष्टां नित्यवत्साम् ।

वृहस्पतिना सुख्यं जुषाणो

यथावशं तन्वः कल्पयाति ॥ १ ॥

॥ २७ ॥ ( अथर्व० ९।१०।१९, २४-२९ )

गौः विराट्, अध्यात्मं ( आत्मा ) । त्रिष्टुप्,

२४ चतुष्पदा पुररश्तिर्गतिर्गतिर्गती ।

क्रुचः पदं मात्रया कल्पयन्तो-

ऽर्धर्चनं चाकल्पुर्विद्योमजतम् ।

त्रिषाद् ब्रह्मं पुरुषं वि तष्टे

तेन जीवन्ति प्रादिशुश्रूतसः ॥ १९ ॥

विराट् नाग्विराट् पृथिवी

विराडन्तरिक्षं विराट् प्रजापतिः ।

विराण्पृत्युः साध्यानामधिराजो बभूव

तस्य भूतं भव्यं वशे

स मे भूतं भव्यं वशे कृणोतु ॥ २४ ॥

शक्रमयं धूममारादपश्यं

विपूवतां पर एनावरेण ।

उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीरास्

तानि घर्माणि प्रथमान्यासन् ॥ २५ ॥

॥ २८ ॥ ( अथर्व० १९।५१।१-२ )

( आत्मा ) १ आत्मा, २ सविता च । १ एकपदा  
ब्राह्मी अनुष्टुप्, २ त्रिषाधवमध्योष्णिङ् ।

अयुतोऽहमयुतो म आत्मा-

ऽयुतं मे चक्षुरयुतं मे श्रोत्रम्

अयुतो मे प्राणोऽयुतो मेऽपानो

अयुतो मे व्यानोऽयुतोऽहं सर्वः ॥ १ ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽग्निर्नोः

बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रहृत आ रभे ॥ २ ॥

कांड २, सूक्त ११

( श्रुतिः — दृक् : देवता — इत्यावृषणम् )

दृष्या दूर्परसि हेत्या हेतिरसि मेन्या मेनिरसि ।

आप्नुहि श्रेयांसमर्तिं सुमं क्राम ॥ १ ॥

स्रक्त्योऽसि प्रतिसरोऽसि प्रत्यभिचरणोऽसि ।

आप्नुहि श्रेयांसमर्तिं सुमं क्राम ॥ २ ॥

प्रति तममि चरं योऽस्मान्देष्टि यं वयं द्विष्मः ।

आप्नुहि श्रेयांसमर्तिं सुमं क्राम ॥ ३ ॥

सूरिरसि वचोधा असि तनुपानोऽसि ।

आप्नुहि श्रेयांसमर्तिं सुमं क्राम ॥ ४ ॥

शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि स्वरसि ज्योतिरसि ।

आप्नुहि श्रेयांसमर्तिं सुमं क्राम ॥ ५ ॥ ( १२७ )



## ३ अध्यात्मम् ।

### अध्यात्मम् ।

॥ १ ॥ ( अथर्व० ११।८।१-३४ ) ( १-३४ ) कौरवपिः । अन्यात्मं, मन्युः । अतुष्टुः । ३३ पद्यशब्दः ।

यन्मन्युर्जायामावहत् संकल्पस्य गृहादधि ।  
 क आसं जन्त्याः केवराः कर्तुं ज्येष्ठवरोऽभवत् १  
 तपश्चैवान्तां कर्म चान्तर्महर्षिर्णिवे ।  
 त आसं जन्त्यास्ते वरा त्रयं ज्येष्ठवरोऽभवत् २  
 दक्षं साकर्मजायन्त देवा देवेभ्यः पुरा ।  
 यो वै तान्विद्यात् प्रत्यक्षं स वा अद्य महद्देव ३  
 प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च या ।  
 व्यानोदानौ वाङ्मनस्ते वा आकृतिमाऽवहन् ४  
 अजाता आसन्मृतवोऽधो घाता घृहस्पतिः ।  
 इन्द्रामी अश्विना तर्हि कं ते ज्येष्ठवर्षासत ५  
 तपश्चैवास्तां कर्म चान्तर्महर्षिर्णिवे ।  
 तपो ह जज्ञे कर्मणस्तप्ते ज्येष्ठवर्षासत ६  
 येत आसीद्भूमिः पूर्वा यामेन्द्रातय इद्विदुः ।  
 यो वै तां विद्यान्नामया स मन्येत पुराणवित् ७  
 कुत इन्द्रः कुतः सोमः कुतो अग्निरजायत ।  
 कुतस्त्वष्टा समभवत् कुतो घाताऽजायत ८  
 इन्द्रादिन्द्रः सोमात् सोमो अमेरुमिरजायत ।  
 त्वष्टा ह जज्ञे त्वष्टृर्धातुर्धाताऽजायत ९

ये त आसन् दक्षं जाता देवा देवेभ्यः पुरा ।  
 पुत्रेभ्यो लोकं दुत्वा कस्मिंस्ते लोक आसते १०  
 यदा केशानस्थि स्नाव मांसं मज्जानमाऽमरत् ।  
 शरीरं कृत्वा पार्दवत् कं लोकमनु प्राविशत् ११  
 कुतः केशान् कुतः स्नाव कुतो अस्थीन्याऽमरत् ।  
 अङ्गापर्वणि मज्जानं को मांसं कुत आऽमरत् १२  
 संसिचो नाम ते देवा ये संसारान्त्सममरन् ।  
 सर्वे समिच्य मर्त्यं देवाः पुर्णमाऽविशन् १३  
 ऊरू पादावष्टीवन्तौ शिरो हस्तावयो मुखं ।  
 पुष्टीर्विजृम्भे पार्श्वे कस्तत् समदघादयिः १४  
 शिरो हस्तावयो मुखं जिह्वां ग्रीवाश्च कीर्कमाः ।  
 त्वचा प्रावृत्य सर्वं तत् संघा समदघान्मही १५  
 यत् तच्छरीरमशयत् संघया सिंहं महत् ।  
 येनेदमद्य रोचते को अस्मिन् वर्णमाऽमरत् १६  
 सर्वे देवा उपांशिनन् तदजानाद्भूः सती ।  
 ईशा वशस्य या जाया साऽस्मिन् वर्णमाऽमरत् १७  
 यदा त्वष्टा व्यर्तणत् पिता त्वष्टुर्ष्य उत्तरः ।  
 गृहं कृत्वा मर्त्यं देवाः पुर्णमाऽविशन् १८ ( २८१ )

स्वप्नो वै तन्द्रीनिश्रंतिः पाप्मानो नाम देवताः ।  
 जरा खालत्यं पालित्यं शरीरमनु प्राविशन् १९  
 स्तेयं दुष्कृतं वृजिनं सत्यं यज्ञो यशो ब्रह्म ।  
 बलं च क्षत्रमोजश्च शरीरमनु प्राविशन् २०  
 भूतिश्च वा अभूतिश्च रातयोऽरातयश्च याः ।  
 क्षुब्धश्च सर्वास्तृष्णाश्च शरीरमनु प्राविशन् २१  
 निन्दाश्च वा अनिन्दाश्च यच्च हन्तेति नेति च ।  
 शरीरं श्रद्धा दक्षिणाऽश्रद्धा चानु प्राविशन् २२  
 विद्याश्च वा अविद्याश्च यच्चान्यदुपदेक्ष्यम् ।  
 शरीरं ब्रह्म प्राविशद्वचः सामाधो यजुः २३  
 आनन्दा मोदाः प्रमदोऽमीमोदमुदश्च ये ।  
 हसो नृरिष्टां नृत्तानि शरीरमनु प्राविशन् २४  
 आलापाश्च प्रलापाश्चामीलापलपश्च ये ।  
 शरीरं सर्वे प्राविशन्नायुजः प्रयुजो यजुः २५  
 प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च याः ।  
 व्यानोदानौ वाय्वानः शरीरेण त ईयन्ते २६  
 आशिपश्च ग्रशिपश्च संशिपो विशिपश्च याः ।  
 चिच्चानि सर्वे संकल्पाः शरीरमनु प्राविशन् २७  
 आस्तेयीश्च वास्तेयीश्च त्वरणाः कृपणाश्च याः ।  
 गुह्योऽनुज्ञा स्यूता अपस्ता बीमत्सावसादयन् २८  
 अस्थिं कृत्वा समिधं तदुष्टापो असादयन् ।  
 रेतः कृत्वाऽऽर्ज्यं देवाः पुरुषमाऽर्विञ्चन् २९  
 या आपो याश्च देवता या विराट् ब्रह्मणा सह ।  
 शरीरं ब्रह्म प्राविशच्छरीरेऽर्षि प्रजापतिः ३०  
 सूर्यश्चक्षुर्वीर्यं प्राणं पुरुषस्य वि भेजिरे ।  
 अथास्तेतरमात्मानं देवाः प्राप्यच्छन्नप्रये ३१  
 तस्माद्दे विद्वान् पुरुषमिदं भक्षेति मन्यते ।  
 सर्वा यः सिन् देवता गावो गोष्ठ इवासते ३२

प्रथमेन प्रमारेण त्रेधा विध्वङ् वि गच्छति ।  
 अद एकेन गच्छत्यद  
 एकेन गच्छतीहैकेन नि पवते ३३  
 अप्सु स्तीमासु वृद्धासु शरीरमन्तरा हितम् ।  
 तस्मिच्छवोऽप्यन्तरा तस्माच्छवोऽप्युच्यते ३४

कांड १३, सूक्त १

(श्रुतिः — ब्रह्मा देवता — अध्यात्मम् ।)

उदेहिं वाजिन्यो अप्सवन्तर  
 इदं राष्ट्रं प्र विश्वं सूनृतावत् ।  
 यो रोहितो विश्वमिदं जजान  
 स त्वां राष्ट्राय सुभृतं विभर्तु ॥ १ ॥  
 उद्वाज आ गन्धो अप्सवन्तर  
 विश्व आ रोह त्वद्योनयो याः ।  
 सोमं दधानोऽप ओषधीर्गाः  
 चतुष्पदो द्विपद आ वैशयेह ॥ २ ॥  
 यूयमुग्रा मरुतः पृश्निमातरः  
 इन्द्रेण युजा प्र मृणीतु शत्रून् ।  
 आ वो रोहितः शृणवत्सुदानवस्  
 त्रिपुतासो मरुतः स्वादुसंसुदः ॥ ३ ॥  
 रुहो रुरोह रोहित आ रुरोह  
 गर्भो जनीनां जुलुषामुपस्यम् ।  
 तस्मिन् संरुपन्वन्विन्दुन्पदुर्वीर  
 गातुं प्रपश्यन्निह राष्ट्रमाहाः ॥ ४ ॥  
 आ ते राष्ट्रमिह रोहितोऽहापीद्  
 व्यास्थिन्मृधो अमयं ते अभूत् ।  
 तस्मै ते धावापृथिवी रेवतीभिः  
 कामं दुहायामिह शर्कराभिः ॥ ५ ॥  
 रोहितो धावापृथिवी जजान  
 तन्न तन्तुं परमेष्ठी ततान ।  
 तत्र शिश्रियेऽज एकपादः  
 अददत् धावापृथिवी बलेन ॥ ६ ॥ (१६७)

रोहितो द्यावापृथिवी अदंहत्  
 तेन स्वस्तिमितं तेन नार्कः ।  
 तेनान्तरिक्षं विमिता रजांसि  
 तेन देवा अमृतमन्वविन्दन् ॥ ७ ॥  
 वि रोहितो अमृशद्विश्वरूपं  
 समाकुर्वाणः प्ररुहो रुहय ।  
 दिवं रुद्ध्वा मंहता महिम्ना  
 सं तं राष्ट्रमनक्त पर्यसा घृतेन ॥ ८ ॥  
 यास्ते रुहः प्ररुहो यास्त आरुहो  
 यार्भिरापूणासि दिवमन्तरिक्षम् ।  
 तासां ब्रह्मणा पर्यसा वाङ्मनो  
 विशि राष्ट्रे जागृहि रोहितस्य ॥ ९ ॥  
 यास्ते विश्वस्तपसः संभूयुः  
 वत्सं गायत्रीमनु ता इहागुः ।  
 तास्त्वा विश्वन्तु मनसा श्रिवेन  
 संमाता वत्सो अम्येतु रोहितः ॥ १० ॥  
 ऊर्ध्वो रोहितो अधि नार्कं अस्याद्  
 विश्वा रूपाणि जनयन्पुत्रां कविः ।  
 त्रिमेनाभिज्योतिषा वि माति  
 तुषीये चक्रे रजसि प्रियाणि ॥ ११ ॥  
 सहस्रयज्ञो वृषभो जातवेदा  
 घृताहुतः सोमपृष्ठः सुवीरः ।  
 मा मा हासीन्नाथितो नेत्वा  
 जहानि गोपेयं च मे वीरपेयं च धेहि ॥ १२ ॥  
 रोहितो यज्ञस्य जनिता मुखं च  
 रोहिताय वाचा श्रोत्रेण मनसा जुहोमि ।  
 रोहितं देवा यन्ति सुमनस्यमानाः  
 स मा रोहैः सामित्यै रोहयतु ॥ १३ ॥

रोहितो यज्ञं न्यदिधादिश्वकर्मणे  
 तस्मात्तेजांस्युप भेमान्यागुः ।  
 वोचेयं ते नार्मि भुवनस्याधि मज्जनि ॥ १४ ॥  
 आ त्वां रुरोह वृहत्पुष्टं पृक्षिर्  
 आ ककुब्धर्चसा जातवेदः ।  
 आ त्वां रुरोहोष्णिहाक्षरो वपट्कार  
 आ त्वां रुरोह रोहितो रेतसा सह ॥ १५ ॥  
 अयं वंस्ते गर्भं पृथिव्या  
 दिवं वस्तेऽयमन्तरिक्षम् ।  
 अयं ब्रह्मस्य विष्टपि स्वर्लोकान्व्यानिशे ॥ १६ ॥  
 वाचस्पते पृथिवी नः स्योना  
 स्योना योनिस्तत्पा नः सुशेवा ।  
 इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु  
 तं त्वां परमेष्ठिन्यपरिरायुषा वर्षसा दधातु ॥ १७ ॥  
 वाचस्पत श्रुतवः पञ्च ये नो  
 वैश्वकर्मणाः परि ये संवभूयुः ।  
 इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु  
 तं त्वां परमेष्ठिन्यपरि रोहितु  
 आयुषा वर्षसा दधातु ॥ १८ ॥  
 वाचस्पते सौमन्तं मनश्च  
 गोष्ठे नो गा जनय योनिषु प्रजाः ।  
 इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु  
 तं त्वां परमेष्ठिन्यपरिहमायुषा वर्षसा दधामि ॥ १९ ॥  
 परि त्वा घात्सविता देवो अग्निर्  
 वर्षसा मित्रावरुणावग्नि त्वा ।  
 सर्वा अरातीरवक्रामन्नेदीदं  
 राष्ट्रमकरः सनुतावत् ॥ २० ॥  
 यं त्वा पृषती रथे अष्टिवहति रोहित ।  
 शुभा यासि रिणन्नपः ॥ २१ ॥

अक्षुब्धता रोहिणी रोहितस्य  
 सूरिः सुवर्णा वृहती सुवर्चा ।  
 तथा वाजान्विधरूपान्जयेम्  
 तथा विश्वाः पृथना अभि प्याम ॥ २२ ॥  
 हृदं सद्यो रोहिणी रोहितस्य  
 असौ पन्थाः पृथती येन याति ।  
 तां गन्धर्वाः कश्यपा उन्नयन्ति  
 तां रक्षन्ति कश्यपोऽप्रमादम् ॥ २३ ॥  
 सूर्यस्याश्वा हरयः केतुमन्तः  
 सदा बहन्त्यमृताः सुखं रथम् ।  
 घृतपावा रोहितो आजमानो  
 दिवं देवः पृथतीमा विवेक्ष ॥ २४ ॥  
 यो रोहितो वृषमस्तिग्मशृङ्गः  
 पर्यग्निं परि ध्वं वृभूव ।  
 यो विष्टभाति पृथिवीं दिवं च  
 तस्माद्दिवा अधि सृष्टीः सृजन्ते ॥ २५ ॥  
 रोहितो दिव्यमारुहन्महत्तः पर्यर्णवात् ।  
 सर्वां करोह रोहितो रुहः ॥ २६ ॥  
 वि मिमीष्व पर्यस्वती घृताचीं  
 देवानां घृतुरनपस्पृगेण ।  
 इन्द्रः सोमं पिबतु क्षेमो अस्तु  
 अग्निः प्र स्तौतु वि मृधो जुदस्व ॥ २७ ॥  
 समिद्धो अग्निः समिधानो घृतवृद्धो घृताहुतः ।  
 अभीषाद् विंश्चापाह्मिः सप्तर्षान्दन्तु ये मम २८  
 हन्स्वैनान्प्र देहत्वरिषो नः वृत्तन्परि ।  
 क्रव्यादाग्निना वयं सप्तर्षान्प्र देहामसि ॥ २९ ॥  
 अवाचीनानव जृहीन्द्र वज्रेण बाहुमान् ।  
 अपो सप्तर्षान्मात्रकान्प्रस्तेजोभिरादिपि ॥ ३० ॥

अग्ने सप्तर्षान्धरान्यादय  
 अस्मद्वययो सजातमुत्पियानं बृहस्पते ।  
 इन्द्राग्नी मित्रावरुणावधरे  
 पद्यन्तामप्रतिमन्युयमानाः ॥ ३१ ॥  
 उद्यंस्त्वं देव सूर्य सप्तर्षानव मे जहि ।  
 अवेनानश्मना जहि ते यन्त्वधमं तमः ॥ ३२ ॥  
 वत्सो विराजो वृषभो मेतीनां  
 आ करोह शुक्रपृष्ठाऽन्तरिक्षम् ।  
 घृतेनार्कमभ्यर्चन्ति वत्सं  
 ब्रह्म सन्तं ब्रह्मणा वर्धयन्ति ॥ ३३ ॥  
 दिवं च रोहं पृथिवीं च रोह  
 राष्ट्रं च रोह द्रविणं च रोह ।  
 प्रजां च रोहामृतं च रोह  
 रोहितेन तन्वं सं स्पृशस्व ॥ ३४ ॥  
 ये देवा राष्ट्रभृतोऽभितो यन्ति ध्वंम् ।  
 तेषु रोहितः संविद्वानो  
 राष्ट्रं देवातु समनुसर्मानः ॥ ३५ ॥  
 उश्वा यज्ञा ब्रह्मपता वहन्ति  
 अश्वगतो हरयस्त्वा वहन्ति ।  
 तिरः समुद्रमति रोचतेऽणवम् ॥ ३६ ॥  
 रोहिते द्यावापृथिवी अधि श्रिते  
 वंसृजितिं गोजितिं संघनाजितिं ।  
 सहस्रं यस्य जनिमानि सप्त च  
 वोचेयं ते नामिं सुवनस्याधिं मुज्मनि ॥ ३७ ॥  
 यथा यासि प्रदिशो दिशश्च  
 यथाः पशूनामुत चर्षणीनाम् ।  
 यथाः पृथिव्या अदित्या उपसृष्टे  
 अहं भूपासं सजितेव चारुः ॥ ३८ ॥ (१९९)

अमुत्र सन्निह वेत्येतः संस्तानि पश्यसि ।  
 इतः पश्यन्ति रोचनं दिवि सूर्यं विपश्चितम् ॥ ३९ ॥  
 देवो देवान्मर्चयस्सन्तश्चरस्यर्णवे ।  
 समानमग्निमिन्धते तं विंदुः कवयः परं ॥ ४० ॥  
 अवः परेण पर एनावरेण  
 पदा वत्सं विभ्रंती गौरुदस्यात् ।  
 सा कद्रोची कं स्विदधं परागात्  
 क्व स्विच्छते नहि युथे अस्मिन् ॥ ४१ ॥  
 एकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी  
 अष्टापदी नवपदी बभ्रुवुषी ।  
 सहस्राक्षरा भुवनस्य पङ्क्तिस्  
 तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति ॥ ४२ ॥  
 आरोहन्ध्याममृतः प्रावं मे वचः ।  
 उक्त्वा यज्ञा ब्रह्मपूता वहन्ति  
 अश्वगतो हरयस्त्वा वहन्ति ॥ ४३ ॥  
 वेदु तत्तै अमर्त्यं यत्त आक्रमणं दिवि ।  
 यत्तै सधस्यं परमे ष्योमिन् ॥ ४४ ॥  
 सूर्यो द्यां सूर्यः पृथिवीं सूर्य आपोऽति पश्यति ।  
 सूर्यो मृतस्यैकं चक्षुरा रुरोह दिवं महीम् ॥ ४५ ॥  
 उर्वीरासन्परिचयो वेदिर्भूमिरकल्पत ।  
 तत्रैतावमी आर्वच हिमं ग्रंसं च रोहितः ॥ ४६ ॥  
 हिमं ग्रंसं चाधाय यूपान्कृत्वा पर्वतान् ।  
 वर्षाज्यावमी ईजाते रोहितस्य स्वविंदः ॥ ४७ ॥  
 स्वविंदो रोहितस्य ब्रह्मणाग्निः समिध्यते ।  
 तसां हंसतस्तसां हिमस्तसां यज्ञोऽजायत ॥ ४८ ॥  
 ब्रह्मणाग्नी वावृषानौ ब्रह्मवृद्धौ ब्रह्माहुतौ ।  
 ब्रह्मैवावमी ईजाते रोहितस्य स्वविंदः ॥ ४९ ॥  
 सत्ये अन्यः समाहितोऽप्यन्यः समिध्यते ।  
 ब्रह्मैवावमी ईजाते रोहितस्य स्वविंदः ॥ ५० ॥

यं वातः परि शुम्भन्ति यं वेन्द्रो ब्रह्मणस्पतिः ।  
 ब्रह्मैवावमी ईजाते रोहितस्य स्वविंदः ॥ ५१ ॥  
 वेदिं भूमिं कल्पयित्वा दिवं कृत्वा दक्षिणाम् ।  
 ग्रंसं तदग्निं कृत्वा चुकार विश्वं  
 आत्मन्वद्वर्षेणाज्येन रोहितः ॥ ५२ ॥  
 वर्षमाज्यं ग्रंसो अग्निर्वेदिर्भूमिरकल्पत ।  
 तत्रैतान्पर्वतानग्निर्गीर्भिरूर्ध्वं अकल्पत ॥ ५३ ॥  
 गीर्भिरूर्ध्वान्कल्पयित्वा रोहितो भूमिमब्रवीत् ।  
 त्वयीदं सर्वं जायतां यद्भूतं यच्च माव्यम् ॥ ५४ ॥  
 स यज्ञः प्रथमो भूतो भव्यो अजायत ।  
 तस्माद्ब्र जज्ञ इदं सर्वं यत्किं चेदं विरोचते  
 रोहितेन ऋषिणामृतम् ॥ ५५ ॥  
 यश्च गां पदा स्फुरति प्रत्यङ् सूर्यं च मेहति ।  
 तस्य वृश्वाभिते मूलं न च्छायां करवोऽपरम् ॥ ५६ ॥  
 यो मांभिच्छायमत्येपि मां चाग्निं चान्तरा ।  
 तस्य वृश्वाभिते मूलं न च्छायां करवोऽपरम् ॥ ५७ ॥  
 यो अद्य देव सूर्य त्वां च मां चान्तरायति ।  
 दुष्पण्यं तस्मिच्छमलं दुरितानि च मूजमहे ॥ ५८ ॥  
 मा प्र गां पथो वयं मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः ।  
 मान्त स्थुनो अरातयः ॥ ५९ ॥  
 यो यज्ञस्य प्रसाधनस्तन्तुदेवेष्वाततः ।  
 तमाहुतमग्नीमहि ॥ ६० ॥

कांड ११, सूक्त १

( ऋषिः - ब्रह्मा । देवता - अध्यात्मं, रोहितादिलदेवत्वम् । )  
 उदस्य केतवो दिवि शुक्रा भार्जन्त ईरते ।  
 आदित्यस्य नृचक्षुसो महिब्रतस्य मीढुपः ॥ १ ॥  
 दिशां प्रज्ञानां स्वरयन्तमर्चिषां  
 सुपक्षमांशुं पुतयन्तमर्णवे ।  
 स्तवाम् सूर्यं भुवनस्य गोपां  
 यो रश्मिभिर्दिशं आमाति सर्वाः ॥ २ ॥ ( १२१ )

यत्प्राह् प्रत्यङ् स्वधया यासि शीमं  
 नानारूपे अहनी कर्षि मायया ।  
 तदादित्य महि तत्ते महि श्रवो  
 यदेको विश्वं परि भूम जायसे ॥ ३ ॥  
 विपश्चितं तरणिं आजमानं  
 वहन्ति यं हरितः सप्त बह्वीः ।  
 सुताद्यमत्त्रिर्दिवमृन्निनाय  
 तं त्वा पश्यन्ति परियान्तमाजिम् ॥ ४ ॥  
 मा त्वा दभन्परियान्तमाजि  
 स्वस्ति दुर्गा अति याहि शीमम् ।  
 दिवं च सूर्य पृथिवीं च देवीम्  
 अहोरात्रे विमिमानो यदेपि ॥ ५ ॥  
 स्वस्ति ते सूर्य चरसे रथाय  
 येनोभावन्तौ परियासिं सुद्यः ।  
 यं ते वहन्ति हरितो बहिष्ठाः  
 शतमश्वा यदि वा सप्त बह्वीः ॥ ६ ॥  
 सुखं सूर्य रथमंशुमन्तं स्योनं  
 सुबाहिमर्षिं तिष्ठ वाजिनम् ।  
 यं ते वहन्ति हरितो बहिष्ठाः  
 शतमश्वा यदि वा सप्त बह्वीः ॥ ७ ॥  
 सप्त सूर्यो हरितो यातवे रथे  
 हिरण्यत्वचसो बृहतीर्युक्त ।  
 अमोचि शूक्रो रजसः परस्तात्  
 विधूर्य देवस्तमो दिवमारुहत् ॥ ८ ॥  
 उत्केतुना बृहता देव आगन्  
 अपावृक्तमोऽग्निं ज्योतिरश्नत् ।  
 दिव्यः संपूर्णः स श्रीरो व्यष्ट्युत्  
 अदितः पुत्रो भवनाजि विश्वा ॥ ९ ॥

उद्यत्रदमीना तनुपे विश्वा रूपाणि पुष्पासि ।  
 उमा समुद्रौ क्रतूना वि मांसि  
 सर्वाँहोक्रान्परिभृर्भ्राजमानः ॥ १० ॥  
 पूर्वापरं चरतो माययैतौ  
 शिशु क्रीडन्तौ परि यातोऽर्णवम् ।  
 विश्वान्यो भुवना विचष्टे  
 हिरण्यैरन्यं हरितो वहन्ति ॥ ११ ॥  
 द्विवि त्वात्रिरथायत्सूर्या मासाय कर्तवे ।  
 स एपि सुधृतस्तपन्विश्वा भूतावचाकशत् ॥ १२ ॥  
 उभावन्तौ समर्षसि वसतः संमानराविव ।  
 नन्वेहेतदितः पुरा ब्रह्म देवा अमी विदुः ॥ १३ ॥  
 यत्संपुद्रमनुं श्रितं तत्सिपासति सूर्यः ।  
 अश्वांस्य विततो महान्पूर्वश्वापरश्च यः ॥ १४ ॥  
 तं समान्नोति जूतिमिस्ततो नाप चिकित्सति ।  
 तेनामृतस्य भक्षं देवानां नाप रुन्धते ॥ १५ ॥  
 उदु त्वं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः ।  
 इधे विश्वाय सूर्यम् ॥ १६ ॥  
 अप त्वे तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तभिः ।  
 सूराय विश्वचक्षसे ॥ १७ ॥  
 अदृश्रमस्य केतवो वि रश्मयो जना अन्तु ।  
 भ्राजन्तो अग्रयो यथा ॥ १८ ॥  
 तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कदसि सूर्य ।  
 विश्वमा मांसि रोचन ॥ १९ ॥  
 प्रत्यङ् देवानां विश्वः प्रत्यङ्कुदेपि मानुषीः ।  
 प्रत्यङ् विश्वं स्वादृष्टे ॥ २० ॥  
 येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जना अन्तु ।  
 त्वं वरुण पश्यासि ॥ २१ ॥  
 वि धामेपि रजस्पृध्वहमिमानो अक्तभिः ।  
 पश्यन् जन्मानि सूर्य ॥ २२ ॥



सप्त त्वा हरितो रये वहन्ति देव सूर्य ।  
 शोचिष्केशं विचक्षणम् ॥ २३ ॥  
 अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूर्यो रयस्य नृप्यः ।  
 तामिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥ २४ ॥  
 रोहिणो दिवमारुहचर्षा तपस्वी ।  
 स योनिमैति स उ जायते पुनः  
 स देवानामधिपतिर्भव ॥ २५ ॥  
 यो विश्वचर्षणिरुत विश्वतोमुखः  
 यो विश्वतस्पाणिरुत विश्वतस्पृषः ।  
 स बाहुभ्यां भरति स पतत्रैर्  
 घावापृथिवी जनयन्देव एकः ॥ २६ ॥  
 एकपाद् द्विपदो भूयो वि चक्रमे  
 द्विपात्रिपादमुभ्येति पश्चात् ।  
 द्विपाद् पदपदो भूयो वि चक्रमे  
 त एकपदस्तन्वं समासते ॥ २७ ॥  
 अतन्द्रो यास्यन्हरितो यदास्याद्  
 द्वे रूपे कृणुते रोचमानः ।  
 केतुमानुघन्तसहमानो रजसि  
 विश्वा आदित्य प्रवतो वि मासि ॥ २८ ॥  
 षण्महौ असि सूर्यं बडादित्य महौ असि ।  
 महास्ते महतो महिमा स्वमादित्य महौ असि ॥ २९ ॥  
 रोचसे दिवि रोचसे अन्तरिक्षे पतङ्ग  
 पृथिव्यां रोचसे रोचसे अप्सवृन्तः ।  
 उमा संमुद्रौ रुच्या व्यापिथ  
 देवो देवासि महिषः स्वजित् ॥ ३० ॥  
 अर्वाह् पुरस्तान्प्रयतो व्युष्व  
 आशुर्विपृथित्यतयन्पतङ्गः ।  
 विष्णुर्विचिन्तः शवसाधितिष्ठन्  
 प्र केतुना सहते विश्वमेजद् ॥ ३१ ॥

चित्रश्चिक्त्वान्महियः सुपर्णः  
 आरोचयुत्रोदसी अन्तरिक्षम् ।  
 अहोरात्रे परि सूर्यं वसाने  
 प्रास्य विश्वा तिरतो वीर्याणि ॥ ३२ ॥  
 तिग्मो विभ्राजन्तन्वं शिशानः  
 अरंग्मासः प्रवतो रराणः ।  
 ज्योतिष्मान्पक्षी महिषो वयोषा  
 विश्वा आस्थात्प्रदिशः कल्पमानः ॥ ३३ ॥  
 चित्रं देवानां केतुरनीकं  
 ज्योतिष्मान्प्रदिशः सूर्य उद्यन् ।  
 दिवाकरोऽति घुमैस्तर्मासि  
 विश्वातारीहुरितानि शुक्रः ॥ ३४ ॥  
 चित्रं देवानामुदगादनीकं  
 चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।  
 आप्राद् घावापृथिवी अन्तरिक्षं  
 सूर्य आत्मा जगत्स्तस्पृष ॥ ३५ ॥  
 उद्या पतन्तमरुणं सुपर्ण  
 मर्च्य दिवस्तुराणि भ्राजमानम् ।  
 पदयाम त्वा सवितारं यमाहूर्  
 अजस्रं ज्योतिर्यदविन्दुदत्त्रिः ॥ ३६ ॥  
 दिवस्पृष्टे घावमानं सुपर्ण  
 अदित्याः पुत्रं नायकाम उपं यामि मीतः ।  
 स नः सूर्य प्र तिर दीर्घ  
 आयुर्मा रिषाम सुमती तं स्याम ॥ ३७ ॥  
 सहस्राक्षं विर्यतावस्य पृथौ  
 हरैर्हसस्य पततः स्वर्गम् ।  
 स देवान्सर्वानुराम्युपदध  
 संपदयन्त्याति सर्वनानि विश्वा ॥ ३८ ॥ ( ३९ )

रोहितः कालो अमवद्रोहितोऽग्नें प्रजापतिः ।  
 रोहितो यज्ञानां मुखं रोहितः स्वराभरत् ॥३९॥  
 रोहितो लोको अमवद्रोहितोऽत्यंतपद्मिन् ।  
 रोहितो रश्मिभिर्भूमिं समुद्रमनु सं चरत् ॥४०॥  
 सर्वा दिशः समचरद्रोहितोऽधिपतिर्दिवः ।  
 दिवं समुद्रमाद्भुमिं सर्वं भूतं वि रक्षति ॥४१॥  
 आरोहन्त्युक्रो बृहतीरतन्द्रो  
 द्वे रूपे कृणुते राचमानः ।  
 चित्रधिक्षित्वान्महिषो वतं  
 आया यावतो लोकान्भि यद्विभार्ति ॥ ४२ ॥  
 अम्यन्यदेति पर्यन्यदस्यते  
 अहोरात्राभ्यां महिषः कल्पमानः ।  
 सूर्यं वयं रजसि क्षियन्ते  
 गातुविदं हवामहे नाधमानाः ॥ ४३ ॥  
 पृथिवीमो महिषो नाधमानस्य गातुर्  
 अदब्धचक्षुः परि विश्वं वभूव ।  
 विश्वं संपश्यन्सुविदत्रो यजत्र  
 इदं शृणोतु यदुहं ब्रवीमि ॥ ४४ ॥  
 पर्यस्य महिमा पृथिवीं समुद्रं  
 ज्योतिषा विभ्राजन्परि घामन्तरिक्षम् ।  
 सर्वं संपश्यन्सुविदत्रो यजत्र  
 इदं शृणोतु यदुहं ब्रवीमि ॥ ४५ ॥  
 अबोध्यधिः समिधा जनानां  
 प्रति श्रेनुमिवायसीमुपासम् ।  
 युद्धा इव प्र वयामुजिहानाः  
 प्र मानवः सिस्त्रे नाकुमच्छ ॥ ४६ ॥

काण्ड १३, सूक्त ३

( अग्निः— अग्निः । देवता— अग्न्यात्मन्, संहितादित्यदेवस्यम् । )

य इमे धावापृथिवी जज्ञान  
 यो द्रापि कृत्वा भुवनानि वस्ते ।

यस्मिन्क्षियन्ति प्रदिशः पटुर्वार  
 याः पतङ्गो अनु विचाकशीति ।  
 तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो  
 य एवं विद्रांसं ब्राह्मणं जिनाति ।  
 उदैपय रोहित प्र क्षिणीहि  
 ब्रह्मज्यस्य प्रति मृश्च पाशान् ॥ १ ॥  
 यस्मादातां ऋतुथा पर्वन्ते  
 यस्मात्समुद्रा अधि विक्षरन्ति ।  
 तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो ॥ २ ॥  
 यो मारयति प्राणयति यस्मात्  
 प्राणान्ति भुवनानि विश्वा ।  
 तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो ॥ ३ ॥  
 यः प्राणेन धावापृथिवी तर्पयति  
 अपानेन समुद्रस्य जठरं यः पिपति ।  
 तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो ॥ ४ ॥  
 यस्मिन्विराट् परमेष्ठी प्रजापतिः  
 अग्निर्वैश्वानरः सह पृथ्व्या श्रितः  
 यः परस्य प्राणं परमस्य तेज आदुदे ।  
 तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो ॥ ५ ॥  
 यस्मिन्पटुर्वीः पञ्च दिशो अधिश्रिताः  
 चर्तन् आपो यज्ञस्य त्रयोऽक्षराः ।  
 यो अन्तरा रोदसी क्रुद्धश्चसुपक्षत् ।  
 तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो ॥ ६ ॥  
 यो अञ्जादो अन्नपतिर्वभूत् ब्रह्मणस्पतिकृत यः ।  
 भूतो मविष्यद् भुवनस्य यस्पतिः ।  
 तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो ॥ ७ ॥  
 अहोरात्रैर्विमितं त्रिशदङ्गं  
 त्रयोदश मासं यो निर्भिमीति ।  
 तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो ॥ ८ ॥ (३७५)

कृष्णं न्यायं हरयः सुपर्णाः  
 अपो वसाना दिव्यमुत्पतन्ति ।  
 त आर्चयन्तसदनादृतस्यं ।  
 तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो० ॥ ९ ॥  
 यत्तं चन्द्रं कश्यप रोचनावत्  
 यत् संहितं पुष्कलं चित्रमानु ।  
 यस्मिन्सूर्या आपिताः सप्त साकम्  
 तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो० ॥ १० ॥  
 बृहदेनमर्तुं बलं पुरस्ताद्  
 रथन्तरं प्रति गृह्णाति पथात् ।  
 ज्योतिर्वसानि सदुमप्रमादम्  
 तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो० ॥ ११ ॥  
 बृहदुत्पतः पृथु आसीद्रथन्तरं  
 अन्यतः पर्वले मघीची ।  
 यद्रोहितमर्जनयन्तु देवाः ।  
 तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो० ॥ १२ ॥  
 स वर्कणः सायमग्निर्मवति  
 स मित्रो भवति प्रातरुद्यम् ।  
 स सविता भूत्वान्तरिक्षेण याति  
 स इन्द्रो भूत्वा तपति मध्यतो दिवम् ।  
 तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो० ॥ १३ ॥  
 सहस्राक्षं विपतावस्य पृथी  
 हरिर्हसस्य पततः स्तुर्गम् ।  
 स देवान्सर्वानुरस्युपदयं  
 संपश्यन्पाति सर्वानि विश्वा ।  
 तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो० ॥ १४ ॥  
 अयं स देवो अश्ववृन्तः  
 सहस्रमूलः पुरुषाको अर्तिव्रतः ।  
 य इदं विश्वं सर्वं जजान् ।  
 तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो० ॥ १५ ॥

शुक्रं वहन्ति हरयो रघुपदः  
 दुवं दिवि वर्चसा आर्जमानम् ।  
 यस्योर्ध्वा दिवं तन्वुस्तपन्ति  
 अर्वाह सुवर्णैः पटैरिव भाति ।  
 तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो० ॥ १६ ॥  
 येनादित्यान्हरितः संवहन्ति  
 येन यज्ञेन ब्रह्मो यन्ति प्रजानन्तः ।  
 यदेकं ज्योतिर्वहुषा विभर्ति ।  
 तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो० ॥ १७ ॥  
 सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रं  
 एको अश्वो वहति सप्तनामा ।  
 त्रिनाभिं चक्रमर्जरमनुवं  
 यत्रेमा विश्वा भ्रुवर्षि तस्थुः ।  
 तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो० ॥ १८ ॥  
 अष्टा युक्तो वहति वहिरुग्रः  
 पिता देवानां जनिता मतीनाम् ।  
 श्रुतस्य तन्तुं मनसा मिमानः  
 सर्वा दिशः पवते मातरिश्वा ।  
 तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो० ॥ १९ ॥  
 सम्यञ्च तन्तुं श्रदिशोऽनु सर्वा  
 अन्तर्गोयज्याममृतस्य गर्भे ।  
 तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो० ॥ २० ॥  
 निमृचस्त्रिस्रो व्युपो ह निम्रम्  
 त्रीणि रजामि दिवो अङ्ग तिस्रः ।  
 विद्या ते अग्ने त्रेधा जनित्रं  
 त्रेधा देवानां जनिमानि विभ्र ।  
 तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो० ॥ २१ ॥  
 वि य औणीत्पृथिगो जार्यमान  
 आ समुद्रमर्दधादुन्तरिक्षे ।  
 तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो० ॥ २२ ॥ ( ३८९ )

स्वमग्ने क्रतुभिः केतुभिर्हितः  
 अर्धकः समिद्ध उदरोचया दिवि ।  
 किमभ्यार्चन्मरुतः पृश्निमातरो  
 यद्रोहितमर्जनयन्त देवाः ।  
 तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो० ॥ २३ ॥  
 य आत्मदा बलदा यस्य विश्वं  
 उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।  
 सोऽस्येते द्विपदो यश्चतुष्पदः ।  
 तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो० ॥ २४ ॥  
 एकपाद् द्विपदो भूयो वि चक्रमे  
 द्विपात्त्रिपादमभ्येति पश्चात् ।  
 चतुष्पाच्चक्रे द्विपदामभिस्त्रे  
 संपश्यन्पृच्छतिष्ठतिष्ठमानः ।  
 तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो० ॥ २५ ॥  
 कृष्णायाः पुत्रो अर्जुनो रात्र्या वृत्तोऽजायत ।  
 स ह घामभि रोहति रुहो रुरोह रोहितः ॥ २६ ॥

कांड १३, सूक्त ४

( मयि.— प्रश्ना । देवता— अग्न्यात्मन्, राहितादित्यदेवस्यम् । )

त एति सविता स्वर्दिवस्पृष्टेऽवचाकश्यत् ॥ १ ॥  
 रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥ २ ॥  
 स घाता स विघर्ता स वायुर्नभ उल्लितम् ।  
 रश्मिभिः० ॥ ३ ॥  
 सोऽर्यमा स वरुणः स रुद्रः स महादेवः ।  
 रश्मिभिः० ॥ ४ ॥  
 सो अग्निः स उ सूर्यः स उ एव महायमः ।  
 रश्मिभिः० ॥ ५ ॥  
 तं घृत्मा उर्व तिष्ठन्पेक्षीर्षाणो युता दश ।  
 रश्मिभिः० ॥ ६ ॥

पश्चात्प्राञ्च आ तन्वन्ति यद्गदेति वि भासति ।  
 रश्मिभिः० ॥ ७ ॥  
 तस्यैष मारुतो गणः ॥ एति शिक्याकृतः ॥ ८ ॥  
 रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥ ९ ॥  
 तस्येमे नव कोश विष्टम्भा नवधा हितः ॥ १० ॥  
 स प्रजाभ्यो वि पश्यति यच्च प्राणति यच्च न ॥ ११ ॥  
 तमिदं निर्गतं सहः स एष एक एकवृदेक एव ॥ १२ ॥  
 एते असिन्देवा एकवृत्तो भवन्ति ॥ १३ ॥  
 कीर्तिश्च यशश्चाम्भश्च नमश्च  
 ब्राह्मणवर्चसं चार्त्तं चान्नाद्यं च ॥ १४ ॥  
 य एतं देवमेकवृत्तं वेद ॥ १५ ॥  
 न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते ।  
 य एतं० ॥ १६ ॥  
 न पञ्चमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते ।  
 य एतं० ॥ १७ ॥  
 नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते ।  
 य एतं० ॥ १८ ॥  
 स सर्वैस्मै वि पश्यति यच्च प्राणति यच्च न ।  
 य एतं० ॥ १९ ॥  
 तमिदं निर्गतं सहः स एष एक एकवृदेक एव ।  
 य एतं० ॥ २० ॥  
 सर्वे असिन्देवा एकवृत्तो भवन्ति । य एतं० ॥ २१ ॥  
 ब्रह्म च तपश्च कीर्तिश्च  
 यशश्चाम्भश्च नमश्च ब्राह्मणवर्चसं  
 चार्त्तं चान्नाद्यं च । य एतं० ॥ २२ ॥  
 भूतं च भव्यं च श्रद्धा च  
 रुचिश्च स्वर्गश्च स्वधा च ॥ २३ ॥  
 य एतं देवमेकवृत्तं वेद ॥ २४ ॥  
 स एव मृत्युः सोऽष्टवृत्तं सोऽष्टवृत्तं स रक्षः ॥ २५ ॥

स रुद्रो वसुवर्निर्वसुदेयं  
 नमोवाके वषट्कारोऽनु संहितः ॥ २६ ॥  
 तस्येमे सर्वे यातव उपे प्रशिपमामते ॥ २७ ॥  
 तस्याम् सर्वा नक्षत्रा वक्ष्ये चन्द्रमसा सह ॥ २८ ॥  
 स वा अहोऽजायत तस्मादहरजायत ॥ २९ ॥  
 स वै रात्र्या अजायत तस्माद्रात्रिरजायत ॥ ३० ॥  
 स वा अन्तरिक्षादजायत  
 तस्मादन्तरिक्षमजायत ॥ ३१ ॥  
 स वै वायोरजायत तस्माद्वायुरजायत ॥ ३२ ॥  
 स वै दिवोऽजायत तस्माद् द्यौरध्यजायत ॥ ३३ ॥  
 स वै दिग्भ्योऽजायत तस्माद्दिशोऽजायन्त ३४  
 स वै भूमिरजायत तस्माद्भूमिरजायत ॥ ३५ ॥  
 स वा अमरजायत तस्मादमिरजायत ॥ ३६ ॥  
 स वा अक्ष्योऽजायत तस्मादापोऽजायन्त ॥ ३७ ॥  
 स वा श्रग्भ्योऽजायत तस्मादृचोऽजायन्त ३८  
 स वै यज्ञादेजायत तस्माद्यज्ञोऽजायत ॥ ३९ ॥  
 स यज्ञस्तस्य यज्ञः स यज्ञस्य शिरस्कृतम् ॥ ४० ॥  
 स स्तनयति स वि द्योतते  
 स तु अश्मानमस्यति ॥ ४१ ॥  
 पापाय वा भद्राय वा पुंरुपायास्तुराय वा ॥ ४२ ॥  
 यद्वा कृणोष्योपघीर्यद्वा वर्षसि  
 भद्रया यद्वा जन्ममवीर्यधः ॥ ४३ ॥  
 तावांस्ते मघवन्महिमोपां ते तुन्वाः शतम् ॥ ४४ ॥  
 उपो ते वक्ष्ये वदानी यदि वासि न्युद्धिदम् ॥ ४५ ॥  
 भूयानिन्द्रो नमुनाद्भूयानिन्द्रासि मृत्युर्मयः ॥ ४६ ॥  
 भूयानरात्याः शच्याः पतिस्त्वमिन्द्रासि  
 विभूः प्रभूरिति त्वोपांसहे वयम् ॥ ४७ ॥  
 नमस्ते अस्तु पश्यतु पश्य मा पश्यत ॥ ४८ ॥  
 अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥ ४९ ॥

अम्भो अमो महः सह इति त्वोपांसहे वयम् ।  
 नमस्ते० । अन्ना० ॥ ५० ॥  
 अम्भो अरुणं रजतं रजः सह इति त्वोपांसहे  
 वयम् । नमस्ते० । अन्ना० ॥ ५१ ॥  
 उरुः पृथुः सुभूर्भुव इति त्वोपांसहे वयम् ।  
 नमस्ते० । अन्ना० ॥ ५२ ॥  
 प्रथो वरो व्यचो लोक इति त्वोपांसहे वयम् ।  
 नमस्ते० । अन्ना० ॥ ५३ ॥  
 भवद्वसुरिदद्वसुः संयद्वसुः  
 आयद्वसरिति त्वोपांसहे वयम् ॥ ५४ ॥  
 नमस्ते अस्तु पश्यतु पश्य मा पश्यत ॥ ५५ ॥  
 अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥ ५६ ॥

काण्ड १५, सूक्त १

( शशि. — अथर्वा । देवता — अध्यात्म, प्रात्य । )

( १ )

प्रात्य आसीदीयमान एव स प्रजापतिं समैरयत् १  
 स प्रजापतिः सुवर्णमात्मन्पश्यत्तत्प्राजनयत् ॥ २ ॥  
 तदेकमभवत्तल्लालामभवत्तन्महदभवत्  
 तज्ज्येष्ठमभवत्तद्ब्रह्मभवत्तत्तपः  
 अभवत्तत्सत्यमभवत्तेन प्राजायत ॥ ३ ॥  
 सोऽवर्धत स महानभवत्स महादेवोऽभवत् ॥ ४ ॥  
 स देवानामीशां पर्येतस ईशानोऽभवत् ॥ ५ ॥  
 स एकव्रात्योऽभवत्स धनुरादत्त  
 तदुवेन्द्रधनुः ॥ ६ ॥  
 नीलमस्योदरं लोहितं पृष्ठम् ॥ ७ ॥  
 नीलेनैवाप्रियं प्रार्तव्यं प्रोणीति  
 लोहितेन द्विपन्तं विच्यतीति  
 ब्रह्मवादिनो वदन्ति ॥ ८ ॥

( २ )

स उदतिष्ठत्स प्राचीं दिशमनु व्यचिखत् ॥ ११ ॥

स्वमग्ने कर्तुभिः केतुभिर्हितः  
 अर्कः समिद्र उदरोचया दिवि ।  
 किमभ्यार्चिन्मरुतः पृथिमातरो  
 यद्रोहितमर्जनयन्त देवाः ।  
 तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो० ॥ २३ ॥  
 य आत्मदा बलुदा यस्य विश्वं  
 उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।  
 योऽस्येशे द्विपदो यश्चतुष्पदुः ।  
 तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो० ॥ २४ ॥  
 एकपाद् द्विपदो भूयो वि चक्रमे  
 द्विपास्त्रिपादमभ्युति पश्चात् ।  
 चतुष्पाच्चक्रे द्विपदाममिखरे  
 संपश्यन्पृङ्क्तिमृपतिष्ठमानः ।  
 तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो० ॥ २५ ॥  
 कृष्णायाः पुत्रो अर्जुनो रात्र्या वृत्तोऽजायत ।  
 स ह धामधि रोहति रुहो रुरोह रोहितः ॥ २६ ॥

काण्ड १३, सूक्त ४

( ऋषिः— ब्रह्मा । देवता— अभ्यारमम्, राहितादित्यदेवत्वम् । )

॥ एति सविता स्वर्दिवस्पृष्टोऽवचाकश्चत् ॥ १ ॥  
 रश्मिभिर्नम आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥ २ ॥  
 स घाता स विधर्ता स वायुर्नम उर्लिङ्गितम् ।  
 रश्मिभिः० ॥ ३ ॥  
 सोऽर्ष्यमा स वरुणः स रुद्रः स महादेवः ।  
 रश्मिभिः० ॥ ४ ॥  
 सो अग्निः स उ सूर्यः स उ एव महायमः ।  
 रश्मिभिः० ॥ ५ ॥  
 तं यत्मा उपं विष्टन्त्येकशीर्षाणो युता दश ।  
 रश्मिभिः० ॥ ६ ॥

पश्चात्प्राञ्च आ तन्वन्ति यदुदेति वि भासति ।  
 रश्मिभिः० ॥ ७ ॥  
 तस्यैष मारुतो गुणः स एति शिष्याकृतः ॥ ८ ॥  
 रश्मिभिर्नम आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥ ९ ॥  
 तस्येमे नव कोशा विष्टम्मा नवधा हिताः ॥ १० ॥  
 स प्रजाभ्यो वि पश्यति यच्च प्राणति यच्च न ॥ ११ ॥  
 तमिदं निर्गतं सहः स एष एकं एकवृदेक एव ॥ १२ ॥  
 एते असिन्देवा एकवृतो भवन्ति ॥ १३ ॥  
 कीर्तिश्च यश्चाभ्यमश्च नमश्च  
 ब्राह्मणवर्चसं चान्नं चात्रायं च ॥ १४ ॥  
 य एतं देवमैकवृतं वेद ॥ १५ ॥  
 न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते ।  
 य एतं० ॥ १६ ॥  
 न पञ्चमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते ।  
 य एतं० ॥ १७ ॥  
 नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते ।  
 य एतं० ॥ १८ ॥  
 स सर्वस्मै वि पश्यति यच्च प्राणति यच्च न ।  
 य एतं० ॥ १९ ॥  
 तमिदं निर्गतं सहः स एष एकं एकवृदेक एव ।  
 य एतं० ॥ २० ॥  
 सर्वे असिन्देवा एकवृतो भवन्ति । य एतं० ॥ २१ ॥  
 ब्रह्म च तपश्च कीर्तिश्च  
 यश्चाभ्यमश्च नमश्च ब्राह्मणवर्चसं  
 चान्नं चात्रायं च । य एतं० ॥ २२ ॥  
 भूतं च भव्यं च श्रद्धा च  
 रुचिश्च स्वर्गश्च स्वधा च ॥ २३ ॥  
 य एतं देवमैकवृतं वेद ॥ २४ ॥  
 ॥ एव मृत्युः सोऽमृतं सोऽश्म्वं स रक्षः ॥ २५ ॥

विद्युत्पृथ्वी स्तनयित्नुर्मागधो  
विज्ञानं वासोऽहंरुष्णीपं  
रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः ॥ २५ ॥  
श्रुतं च विश्रुतं च परिष्कन्दौ मनौ विपुथम् ॥ २६ ॥  
मातरिश्वा च पर्वमानश्च विपथवाहौ  
वातः सारथी रेष्मा प्रतोदः ॥ २७ ॥  
कीर्तिश्च यशश्च पुरःसुरावेनं कीर्तिः  
गच्छत्या यशो गच्छति य एवं वेद ॥ २८ ॥

( ३ )

स संवत्सरमूर्ध्वोऽतिष्ठत्तं देवा अंब्रवन्  
व्रात्य किं नु तिष्ठसीति ॥ १ ॥  
सोऽब्रवीदासुन्दी मे सं भरन्तिवति ॥ २ ॥  
तस्मै व्रात्यायासुन्दी सममरन् ॥ ३ ॥  
तस्या ग्रीष्मश्च वमन्तश्च  
द्वौ पादावास्तां शरच्च वर्षाश्च द्वौ ॥ ४ ॥  
बृहच्च रथन्तरं चानूच्येष्ट आस्तां  
यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं च तिरिच्ये ॥ ५ ॥  
ऋचः प्राञ्चस्तन्तवो यजूंषि तिर्यश्चः ॥ ६ ॥  
वेदं आस्तरणं ब्रह्मोपवर्हणम् ॥ ७ ॥  
सामासाद उद्गीथोऽपथ्रयः ॥ ८ ॥  
तामासुन्दी व्रात्य आरोहत् ॥ ९ ॥  
तस्य देवजनाः परिष्कन्दा आसन्  
संकल्पाः प्रहाय्याश्च विश्वानि मृतान्युपसदः ॥ १० ॥  
विश्वान्येवास्य मृतान्युपसदो  
भवन्ति य एवं वेद ॥ ११ ॥

( ४ )

तस्मै प्राच्या दिशः ॥ १ ॥  
वासन्तौ मासौ गोप्सारावर्कुर्वन्  
बृहच्च रथन्तरं चानुष्ठातारौ ॥ २ ॥

वासन्तावेनं मासौ प्राच्या दिशो गोपायतो  
बृहच्च रथन्तरं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ ३ ॥  
तस्मै दक्षिणाया दिशः ॥ ४ ॥  
ग्रीष्मो मासौ गोप्सारावर्कुर्वन्  
यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं चानुष्ठातारौ ॥ ५ ॥  
ग्रीष्मावेनं मासौ दक्षिणाया दिशो गोपायतो  
यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ ६ ॥  
तस्मै प्रतीच्या दिशः ॥ ७ ॥  
वार्षिकौ मासौ गोप्सारावर्कुर्वन्  
वैरूप्यं च वैराजं चानुष्ठातारौ ॥ ८ ॥  
वार्षिकावेनं मासौ प्रतीच्या दिशो गोपायतो  
वैरूप्यं च वैराजं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ ९ ॥  
तस्या उदीच्या दिशः ॥ १० ॥  
शारदौ मासौ गोप्सारावर्कुर्वन्  
श्येतं च नौघसं चानुष्ठातारौ ॥ ११ ॥  
शारदावेनं मासावुदीच्या दिशो गोपायतो  
श्येतं च नौघसं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ १२ ॥  
तस्मै ध्रुवाया दिशः ॥ १३ ॥  
हेमनौ मासौ गोप्सारावर्कुर्वन्  
भूमिं चाग्निं चानुष्ठातारौ ॥ १४ ॥  
हेमनावेनं मासौ ध्रुवाया दिशो गोपायतो  
भूमिश्चाग्निश्चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ १५ ॥  
तस्मा ऊर्ध्वाया दिशः ॥ १६ ॥  
शैशिरौ मासौ गोप्सारावर्कुर्वन्  
दिवं चादित्यं चानुष्ठातारौ ॥ १७ ॥  
शैशिरावेनं मासावूर्ध्वाया दिशो गोपायतो  
द्यौश्चादित्यश्चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ १८ ॥

तं बृहच्च रथन्तरं चादित्याश्च  
 विश्वे च देवा अनुव्यचलन् ॥ २ ॥  
 बृहते च वै स रथन्तराय च  
 आदित्येभ्यश्च विश्वेभ्यश्च  
 देवेभ्य आ वृश्ते  
 य एवं विद्वांसं ब्राह्मणमुपवदति ॥ ३ ॥  
 बृहद्वश्च वै स रथन्तरस्य च  
 आदित्यानां च विश्वेषां च  
 देवानां प्रियं धाम भवति  
 तस्य प्राच्यां दिशि ॥ ४ ॥  
 श्रद्धा पुंश्चली मित्रो मागधो  
 विज्ञानं वासोऽहंरुष्णीपं  
 रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः ॥ ५ ॥  
 भूतं च भविष्यच्च परिष्कुन्दौ मनो विपथम् ॥ ६ ॥  
 मातरिषां च परमानश्च विपथवाहौ  
 वातुः सारथी रेष्मा प्रतोदः ॥ ७ ॥  
 कीर्तिश्च यज्ञश्च पुराःसुरावैर्न  
 कीर्तिर्गच्छत्या यज्ञो गच्छति य एवं वेद ॥ ८ ॥  
 स उदतिष्ठत्स दक्षिणां दिशमनु व्यचलत् ॥ ९ ॥  
 तं यन्नायज्ञिर्यं च वामदेव्यं च  
 युज्यश्च यजमानश्च पशवश्चानुव्यचलन् ॥ १० ॥  
 यज्ञायज्ञियाय च वै स वामदेव्याय च  
 युगाय च यजमानाय च  
 पशुभ्यश्चा वृश्ते य एवं  
 विद्वांसं ब्राह्मणमुपवदति ॥ ११ ॥  
 यज्ञायज्ञिर्यस्य च वै स  
 वामदेव्यस्य च युज्यस्य च  
 यजमानस्य च पशूनां च प्रियं धाम भवति  
 तस्य दक्षिणायां दिशि ॥ १२ ॥

उषाः पुंश्चली मन्त्रो मागधो  
 विज्ञानं वासोऽहंरुष्णीपं  
 रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः ॥ १३ ॥  
 अमावास्या च पौर्णमासी च  
 परिष्कुन्दौ मनो विपथम् ।  
 मातरिषां । कीर्तिश्च ॥ १४ ॥  
 स उदतिष्ठत्स प्रतीचीं दिशमनु व्यचलत् १५  
 तं वैरूपं च वैराजं चापश्च  
 वरुणश्च राजानुव्यचलन् ॥ १६ ॥  
 वैरूपाय च स वैराजाय च  
 अश्वश्च वरुणाय च राज्ञः  
 आ वृश्ते य एवं विद्वांसं ब्राह्मणमुपवदति ॥ १७ ॥  
 वैरूपस्य च वै स वैराजस्य च  
 आपां च वरुणस्य च राज्ञः  
 प्रियं धाम भवति तस्य प्रतीच्यां दिशि ॥ १८ ॥  
 इरा पुंश्चली हस्तो मागधो  
 विज्ञानं वासोऽहंरुष्णीपं  
 रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः ॥ १९ ॥  
 अहश्च रात्री च परिष्कुन्दौ मनो विपथम् ।  
 मातरिषां । कीर्तिश्च ॥ २० ॥  
 स उदतिष्ठत्स उदीचीं दिशमनु व्यचलत् ॥ २१ ॥  
 तं श्येतं च नौघसं च सप्तर्ष्यश्च  
 सोमश्च राजानुव्यचलन् ॥ २२ ॥  
 श्येताय च वै स नौघसाय च  
 सप्तर्षिभ्यश्च सोमाय च राज्ञः  
 आ वृश्ते य एवं विद्वांसं ब्राह्मणमुपवदति ॥ २३ ॥  
 श्येतस्य च वै स नौघसस्य च  
 सप्तर्षीणां च सोमस्य च  
 राज्ञः प्रियं धाम भवति तस्योदीच्यां दिशि ॥ २४ ॥



विद्युत्पुंश्चली स्तनयितुर्मागुधो  
 विज्ञानं वासोऽहंरुष्णीपं  
 रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः ॥ २५ ॥  
 श्रुतं च विश्रुतं च परिष्कुन्दौ मनौ विपथम् ॥ २६ ॥  
 मातरिश्वां च पर्वमानश्च विपथवाहौ  
 वातः सारथी रेष्मा प्रतोदः ॥ २७ ॥  
 कीर्तिश्च यशश्च पुरःसुरावेनं कीर्तिः  
 गच्छत्या यशो गच्छति य एवं वेद ॥ २८ ॥

( ३ )

स सैवत्सरमुच्चोऽतिष्ठत्तु देवा अन्नवन्  
 ब्राह्म्य किं नु तिष्ठसीति ॥ १ ॥  
 सोऽब्रवीदासुन्दी मे सं भरन्त्विति ॥ २ ॥  
 तस्मै ब्राह्म्यासासुन्दी सममरन् ॥ ३ ॥  
 तस्या ग्रीष्मश्च वसन्तश्च  
 द्वौ पादावास्ता शरच्च वर्षाश्च द्वौ ॥ ४ ॥  
 बृहच्च रथन्तरं चानुच्येष्टे आस्तां  
 यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं च तिरश्च्ये ॥ ५ ॥  
 ऋचः प्राञ्चस्तन्त्रो यजूषि तिर्यश्चः ॥ ६ ॥  
 वेद आस्तरणं ब्रह्मोपवर्हणम् ॥ ७ ॥  
 सामासाद उद्गीथोऽपथयः ॥ ८ ॥  
 तामासुन्दी ब्राह्म्य आरोहत् ॥ ९ ॥  
 तस्य देवजनाः परिष्कुन्दा आसन्  
 संकल्पाः प्रहाय्याश्च विश्वानि मृतान्युपसदः ॥ १० ॥  
 विश्वान्येवास्य मृतान्युपसदौ  
 भवन्ति य एवं वेद ॥ ११ ॥

( ४ )

तस्मै प्राच्या दिशः ॥ १ ॥  
 वासन्तौ मासौ गोप्तारावर्कुर्वन्  
 बृहच्च रथन्तरं चानुष्ठातारौ ॥ २ ॥

वासन्तावेनं मासौ प्राच्या दिशो गोपायतो  
 बृहच्च रथन्तरं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ ३ ॥  
 तस्मै दक्षिणाया दिशः ॥ ४ ॥  
 ग्रेष्मो मासौ गोप्तारावर्कुर्वन्  
 यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं चानुष्ठातारौ ॥ ५ ॥  
 ग्रेष्मावेनं मासौ दक्षिणाया दिशो गोपायतो  
 यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं चानु तिष्ठतो य एवं वेद  
 तस्मै प्रतीच्या दिशः ॥ ७ ॥  
 वार्षिकौ मासौ गोप्तारावर्कुर्वन्  
 वैरूपं च वैराजं चानुष्ठातारौ ॥ ८ ॥  
 वार्षिकावेनं मासौ प्रतीच्या दिशो गोपायतो  
 वैरूपं च वैराजं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ ९ ॥  
 तस्मा उदीच्या दिशः ॥ १० ॥  
 शारदौ मासौ गोप्तारावर्कुर्वन्  
 श्वेतं च नौघसं चानुष्ठातारौ ॥ ११ ॥  
 शारदावेनं मासौ उदीच्या दिशो गोपायतो  
 श्वेतं च नौघसं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ १२ ॥  
 तस्मै ध्रुवाया दिशः ॥ १३ ॥  
 हैमनौ मासौ गोप्तारावर्कुर्वन्  
 भूमिं चाग्निं चानुष्ठातारौ ॥ १४ ॥  
 हैमनावेनं मासौ ध्रुवाया दिशो गोपायतो  
 भूमिश्चाग्निश्चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ १५ ॥  
 तस्मा ऊर्वाया दिशः ॥ १६ ॥  
 शैशिरौ मासौ गोप्तारावर्कुर्वन्  
 दिवं चादित्यं चानुष्ठातारौ ॥ १७ ॥  
 शैशिरावेनं मासौ ऊर्वाया दिशो गोपायतो  
 द्यौश्चादित्यश्चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ १८ ॥

( ५ )

तस्मै प्राच्यां दिशो अन्तर्देशाद्  
 भूमिंश्चासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ १ ॥  
 भूव एनमिष्वासः प्राच्यां दिशो  
 अन्तर्देशादनुष्ठातानुं तिष्ठति  
 नैर्न शुर्वो न भुवो नेशानः ॥ २ ॥  
 नास्यं पृश्नन्न संमानान्दिनस्ति य एवं वेद ॥ ३ ॥  
 तस्मै दक्षिणाया दिशो अन्तर्देशाद्  
 शुर्वमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ ४ ॥  
 शुर्व एनमिष्वासो दक्षिणाया दिशो  
 अन्तर्देशादनुष्ठातानुं तिष्ठति  
 नैर्न शुर्वो न भुवो नेशानः । नास्यं पृश्नन्न ॥ ५ ॥  
 तस्मै प्रतीच्यां दिशो अन्तर्देशाद्  
 पृश्नपतिमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ ६ ॥  
 पृश्नपतिरेनमिष्वासः प्रतीच्यां दिशो  
 अन्तर्देशादनुष्ठातानुं तिष्ठति ॥ नास्यं ॥ ७ ॥  
 तस्मा उदीच्या दिशो अन्तर्देशाद्  
 उग्रं देवमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ ८ ॥  
 उग्र एनं देव इष्वास उदीच्या दिशो  
 अन्तर्देशादनुष्ठातानुं तिष्ठति ॥ नास्यं ॥ ९ ॥  
 तस्मै ध्रुवायां दिशो अन्तर्देशाद्  
 रुद्रमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ १० ॥  
 रुद्र एनामिष्वासो ध्रुवायां दिशो  
 अन्तर्देशादनुष्ठातानुं तिष्ठति ॥ नास्यं ॥ ११ ॥  
 तस्मा ऊर्ध्वायां दिशो अन्तर्देशाद्  
 महादेवमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ १२ ॥  
 महादेव एनमिष्वास ऊर्ध्वायां दिशो  
 अन्तर्देशादनुष्ठातानुं तिष्ठति ॥ नास्यं ॥ १३ ॥  
 तस्मै सर्वेभ्यो अन्तर्देशेभ्य इशानम्  
 इष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ १४ ॥

ईशान एनमिष्वासः सर्वेभ्यो  
 अन्तर्देशेभ्योऽनुष्ठातानुं  
 तिष्ठति नैर्न शुर्वो न भुवो नेशानः ॥ १५ ॥  
 नास्यं पृश्नन्न संमानान्दिनस्ति य एवं वेद ॥ १६ ॥

( ६ )

स ध्रुवां दिशमनु व्यचिलत् ॥ १ ॥  
 तं भूमिंश्चाग्निश्वोपधयश्च वनस्पतयश्च  
 वानस्पत्याश्च वीरुधंश्चानुव्यचिलन् ॥ २ ॥  
 भूमेश्च वै सोऽग्नेश्वोपधानां च  
 वनस्पतीनां च वानस्पत्यानां च  
 वीरुधां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ ३ ॥  
 स ऊर्ध्वां दिशमनु व्यचिलत् ॥ ४ ॥  
 तमृतं च सुत्यं च सूर्यश्च चन्द्रश्च  
 नक्षत्राणि चानुव्यचिलन् ॥ ५ ॥  
 श्रुतस्य च वै स सत्यस्य च  
 सूर्यस्य च चन्द्रस्य च  
 नक्षत्राणां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ ६ ॥  
 स उत्तमां दिशमनु व्यचिलत् ॥ ७ ॥  
 तमृचश्च सामानि च यजूंषि च  
 ब्रह्म चानुव्यचिलन् ॥ ८ ॥  
 ऋचां च वै स साग्रां च यजुषां च  
 ब्रह्मणश्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ ९ ॥  
 स बृहतीं दिशमनुव्यचिलत् ॥ १० ॥  
 तमितिहासश्च पुराणं च गाथाश्च  
 नाराशंसीश्चानुव्यचिलन् ॥ ११ ॥  
 इतिहासस्य च वै स पुराणस्य च  
 गाथानां च नाराशंसीनां च  
 प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ १२ ॥  
 स परमां दिशमनु व्यचिलत् ॥ १३ ॥ ( ५४१ )

तमाहवनीयंश्च गार्हपत्यंश्च दक्षिणामिथं  
यज्ञश्च यजमानश्च पशवंश्चानुव्यचिलन् ॥ १४ ॥

आहवनीयस्य च वै स गार्हपत्यस्य च  
दक्षिणाग्नेश्च यज्ञस्य च  
यजमानस्य च पशूनां च  
प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ १५ ॥  
सोऽनादिष्टां दिशमनु व्यचिलत् ॥ १६ ॥

तमुत्वंश्चार्तवाश्च लोकोश्च लौक्याश्च  
मासांश्चार्धमासांश्चाहोरात्रे चानुव्यचिलन् ॥ १७ ॥

श्रुतूनां च वै स अर्तिवानां च  
लोकाणां च लौक्यानां च मासानां च  
आर्धमासानां चाहोरात्रयोश्च  
प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ १८ ॥

सोऽनादिष्टां दिशमनु व्यचिलत्  
ततो नावत्स्यैर्मन्यत ॥ १९ ॥

तं दितिक्षादितिक्षेडा च  
इन्द्राणी चानुव्यचिलन् ॥ २० ॥

दितेश्च वै सोऽदितिक्षेडायाश्चेन्द्राण्याश्च  
प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ २१ ॥

स दिशोऽनु व्यचिलत्  
तं विराडनु व्यचिलत्

सर्वे च देवाः सर्वाश्च देवताः ॥ २२ ॥

विराजश्च वै स सर्वेषां च  
देवानां सर्वासां च देवतानां

प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ २३ ॥

स सर्वानन्तर्देशाननु व्यचिलत् ॥ २४ ॥

तं प्रजापतिश्च परमेष्ठी च  
पिता च पितामहश्चानुव्यचिलन् ॥ २५ ॥

प्रजापतिश्च वै स परमेष्ठिनश्च  
पितुश्च पितामहस्य च  
प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ २६ ॥

( ७ )

स महिमा सद्रुमुत्वान्तं पृथिव्या  
अगच्छत्स समुद्रोऽभवत् ॥ ८ ॥

तं प्रजापतिश्च परमेष्ठी च  
पिता च पितामहश्चापश्च श्रद्धा च

वर्षं भुत्वानुव्यवर्तयन्त ॥ ९ ॥

ऐनमापो गच्छत्यैनं श्रद्धा गच्छति  
ऐनं वर्षं गच्छति य एवं वेद ॥ १० ॥

तं श्रद्धा च युद्धश्च लोकश्चात्तं चास्माद्यं च  
भुत्वार्भिर्पर्यावर्तयन्त ॥ ११ ॥

ऐनं श्रद्धा गच्छत्यैनं युद्धो गच्छति  
ऐनं लोको गच्छत्यैनमन्नं गच्छति

ऐनमन्नाद्यं गच्छति य एवं वेद ॥ १२ ॥

( ८ )

सोऽरज्यत् ततो राजन्योऽजायत ॥ १ ॥

स विश्वः सर्वन्धुनन्मन्नाद्यमुभ्युदतिष्ठत् ॥ २ ॥

विशां च वै स सर्वन्धूनां चान्नस्य चास्माद्यस्य च  
प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ ३ ॥

( ९ )

स विशोऽनु व्यचिलत् ॥ १ ॥

तं समा च समितिश्च सेनां च

सुरां चानुव्यचिलन् ॥ २ ॥

समायाश्च वै स समितेश्च सेनायाश्च सुरायाश्च

प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ ३ ॥

( १० )

तद्यस्यैवं विद्वान्ब्राह्म्यो

राज्ञोऽतिथिर्गृहानागच्छेत् ॥ १ ॥

श्रेयांसमेनमात्मनो मानयेत्  
 तथा ह्यत्राय ना वृश्चते तथा राष्ट्राय ना वृश्चते ॥ २ ॥  
 अतो वै ब्रह्म च क्षत्रं चोदतिष्ठतां  
 ते अत्रुतां कं प्र विंशयेति ॥ ३ ॥  
 अतो वै बृहस्पतिमेव ब्रह्म प्रा विंशतु  
 इन्द्रं क्षत्रं तथा वा इति ॥ ४ ॥  
 अतो वै बृहस्पतिमेव ब्रह्म प्राविंशदिन्द्रं क्षत्रम् ५  
 इयं वा उ पृथिवी बृहस्पतिर्द्यौरेवेन्द्रः ॥ ६ ॥  
 अयं वा उ अग्निर्ब्रह्मासाधारित्यः क्षत्रम् ॥ ७ ॥  
 ऐनं ब्रह्म गच्छति ब्रह्मवर्चसी भवति ॥ ८ ॥  
 यः पृथिवीं बृहस्पतिमग्निं ब्रह्म वेद ॥ ९ ॥  
 ऐनमिन्द्रियं गच्छतीन्द्रियवान्भवति ॥ १० ॥  
 य आदित्यं क्षत्रं दिवमिन्द्रं वेद ॥ ११ ॥

(११)

तद्यस्यैवं विद्वान्ब्राह्मणोऽतिथिर्गृहानागच्छेत् ॥ ११ ॥  
 स्वयमेनमभ्युदेत्यं ब्रूयाद्ब्रान्यं क्वाऽवात्सीर्  
 ब्राह्मणोदकं ब्राह्मणं तर्पयन्तु  
 ब्राह्मणं यथा ते प्रियं तथास्तु  
 ब्राह्मणं यथा ते वृक्षस्तथास्तु  
 ब्राह्मणं यथा ते निकामस्तथास्त्विति ॥ २ ॥  
 यदेनमाह ब्राह्मणं क्वाऽवात्सीरिति  
 पुण्य एव तेन देवपानानयं रुन्दे ॥ ३ ॥  
 यदेनमाह ब्राह्मणोदकमित्येष एव तेनारु रुन्दे ॥ ४ ॥  
 यदेनमाह ब्राह्मणं तर्पयन्त्विति  
 प्राणमेव तेन वर्षापांसं कुरुते ॥ ५ ॥  
 यदेनमाह ब्राह्मणं यथा ते प्रियं तथास्त्विति  
 प्रियमेव तेनारु रुन्दे ॥ ६ ॥  
 ऐनं प्रियं गच्छति  
 प्रियः प्रियस्य भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥

यदेनमाह ब्राह्मणं यथा ते वृक्षस्तथास्त्विति  
 वृक्षमेव तेनारु रुन्दे ॥ ८ ॥  
 ऐनं वृक्षो गच्छति  
 वृक्षो वृक्षिना भवति य एवं वेद ॥ ९ ॥  
 यदेनमाह ब्राह्मणं यथा ते निकामस्तथास्त्विति  
 निकाममेव तेनारु रुन्दे ॥ १० ॥  
 ऐनं निकामो गच्छति  
 निकामे निकामस्य भवति य एवं वेद ॥ ११ ॥

(१२)

तद्यस्यैवं विद्वान्ब्राह्मण उद्धृतेष्वपिपु  
 अधिश्रितेऽभिहोत्रेऽतिथिर्गृहानागच्छेत् ॥ १ ॥  
 स्वयमेनमभ्युदेत्यं ब्रूयाद्  
 ब्राह्मणं सृज होष्यामीति ॥ २ ॥  
 स चातिसृजेज्जुहुयात् चातिसृजेज् जुहुयात् ॥ ३ ॥  
 स य एवं विदुषा ब्राह्मणेनार्तिसृष्टो जुहोति ॥ ४ ॥  
 प्र पितृयाणं पन्थां जानाति प्र देवयानम् ॥ ५ ॥  
 न देवेष्वा वृश्चते हुतमस्य भवति ॥ ६ ॥  
 पर्यस्यासिल्लोक आपतनं शिष्यते  
 य एवं विदुषा ब्राह्मणेनार्तिसृष्टो जुहोति ॥ ७ ॥  
 अथ य एवं विदुषा  
 ब्राह्मणेनार्तिसृष्टो जुहोति ॥ ८ ॥  
 न पितृयाणं पन्थां जानाति न देवयानम् ॥ ९ ॥  
 आ देवेषु वृश्चते अहुतमस्य भवति ॥ १० ॥  
 नास्यासिल्लोक आपतनं शिष्यते  
 य एवं विदुषा ब्राह्मणेनार्तिसृष्टो जुहोति ॥ ११ ॥

(१३)

तद्यस्यैवं विद्वान्ब्राह्मणः  
 एकां रात्रिमर्तिथिर्गृहं वसति ॥ १ ॥  
 ये पृथिव्या पुण्यां लोकाः  
 तानेव तेनारु रुन्दे ॥ २ ॥

तद्यस्यैवं विद्वान्ब्राह्मणः  
 द्वितीयां रात्रिमतिथिर्गृहे वर्सति ॥ ३ ॥  
 येऽन्तरिक्षे पुण्यां लोकास्तानेव तेनार्चं रुन्दे ॥ ४ ॥  
 तद्यस्यैवं विद्वान्ब्राह्मणः  
 तृतीयां रात्रिमतिथिर्गृहे वर्सति ॥ ५ ॥  
 ये दिवि पुण्यां लोकास्तानेव तेनार्चं रुन्दे ॥ ६ ॥  
 तद्यस्यैवं विद्वान्ब्राह्मणः  
 चतुर्थीं रात्रिमतिथिर्गृहे वर्सति ॥ ७ ॥  
 ये पुण्यानां पुण्यां लोकास्तानेव तेनार्चं रुन्दे ॥ ८ ॥  
 तद्यस्यैवं विद्वान्ब्राह्मणः  
 अपरिमिता रात्रीरतिथिर्गृहे वर्सति ॥ ९ ॥  
 य एवापरिमिताः पुण्यां लोकाः  
 तानेव तेनार्चं रुन्दे ॥ १० ॥  
 अयं यस्याप्राप्त्यो ब्राह्मणब्रह्मो नामविभ्रति  
 अतिथिर्गृहानागच्छेत् ॥ ११ ॥  
 कर्षेदेनं न र्वेनं कर्षेत् ॥ १२ ॥  
 अस्यै देवताया उदकं याचामीमां देवतां वासय  
 इमामिमां देवतां परि वेवेष्मीति  
 एनं परि वेविष्यात् ॥ १३ ॥  
 तस्यामेवास्य तद्देवतायां  
 हुतं भवति य एवं वेदं ॥ १४ ॥  
 ( १४ )  
 स यत्प्राचीं दिशमनु व्यचलत्  
 मारुतं शर्यो मूत्वानुव्यचलत्  
 मनोऽन्नादं कृत्वा ॥ १ ॥  
 मर्नसान्नादेनार्चमत्ति य एवं वेदं ॥ २ ॥  
 स सद्दक्षिणां दिशमनु व्यचलत्  
 इन्द्रो मूत्वानुव्यचलद्रैलमन्नादं कृत्वा ॥ ३ ॥  
 बलेनान्नादेनार्चमत्ति य एवं वेदं ॥ ४ ॥  
 स यत्प्रतीचीं दिशमनु व्यचलत्

वरुणो राजा मूत्वानुव्यचलद्  
 अपोऽन्नादीः कृत्वा ॥ ५ ॥  
 अद्भिरन्नादिभिरन्नमत्ति य एवं वेदं ॥ ६ ॥  
 स यदुदीचीं दिशमनु व्यचलत्  
 सोमो राजा मूत्वानुव्यचलत्  
 समर्पिर्भेदुत आहुतिमन्नादो कृत्वा ॥ ७ ॥  
 आहुत्यान्नाद्यान्नमत्ति य एवं वेदं ॥ ८ ॥  
 स यद् भ्रुवां दिशमनु व्यचलत्  
 विष्णुर्मूत्वानुव्यचलद्विराजमन्नादो कृत्वा ॥ ९ ॥  
 विराजांन्नाद्यान्नमत्ति य एवं वेदं ॥ १० ॥  
 स यत्पश्चिमं व्यचलत्  
 रुद्रो मूत्वानुव्यचलदोषधीरन्नादीः कृत्वा ॥ ११ ॥  
 ओषधीभिरन्नादीभिरन्नमत्ति य एवं वेदं ॥ १२ ॥  
 स यत्पितृननु व्यचलत्  
 यमो राजा मूत्वानुव्यचलत्  
 स्वधाकारमन्नादं कृत्वा ॥ १३ ॥  
 स्वधाकारेणान्नादेनार्चमत्ति य एवं वेदं ॥ १४ ॥  
 स यन्मनुष्याऽननु व्यचलत्  
 अग्निर्मूत्वानुव्यचलत्स्वाहाकारमन्नादं कृत्वा ॥ १५ ॥  
 स्वाहाकारेणान्नादेनार्चमत्ति य एवं वेदं ॥ १६ ॥  
 स यदूर्वां दिशमनु व्यचलत्  
 बृहस्पतिर्मूत्वानुव्यचलद्रूपदकारमन्नादं कृत्वा ॥ १७ ॥  
 रूपदकारेणान्नादेनार्चमत्ति य एवं वेदं ॥ १८ ॥  
 स यद्देवाननु व्यचलत्  
 ईशानो मूत्वानुव्यचलन्मन्युर्मन्नादं कृत्वा ॥ १९ ॥  
 मन्युर्नान्नादेनार्चमत्ति य एवं वेदं ॥ २० ॥  
 स यत्प्रजा अनु व्यचलत्  
 प्रजापतिर्मूत्वानुव्यचलत्प्राणमन्नादं कृत्वा ॥ २१ ॥  
 प्राणेनान्नादेनार्चमत्ति य एवं वेदं ॥ २२ ॥  
 स यत्सर्वानन्तर्देशाननु व्यचलत्  
 परमेष्ठो मूत्वानुव्यचलद्रक्षांन्नादं कृत्वा ॥ २३ ॥

ब्रह्मणाज्ञादेनाज्ञमस्ति य एवं वेद ॥ २४ ॥  
(१५)

तस्य व्रात्यस्य ॥ १ ॥

सप्त प्राणाः सप्तापानाः सप्त व्यानाः ॥ २ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य प्रथमः प्राणः

ऊर्ध्वो नामायं सो अग्निः ॥ ३ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य द्वितीयः प्राणः

प्रादो नामासौ स आदित्यः ॥ ४ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य तृतीयः प्राणः

अक्ष्मूढो नामासौ स चन्द्रमाः ॥ ५ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य चतुर्थः प्राणः

विभूर्नामायं पर्वमानः ॥ ६ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य पञ्चमः प्राणः

योनिर्नाम ता इमा अपः ॥ ७ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य षष्ठः प्राणः

प्रियो नाम त इमे पृथ्वः ॥ ८ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य सप्तमः प्राणः

अपर्मितो नाम ता इमाः प्रजाः ॥ ९ ॥

(१६)

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य प्रथमः

अपानः सा यैर्णमासी ॥ १ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य द्वितीयः

अपानः सार्धका ॥ २ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य तृतीयः

अपानः मामाग्रास्य ॥ ३ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य चतुर्थः

अपानः सा श्रुद्धा ॥ ४ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य पञ्चमः

अपानः सा दृषा ॥ ५ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य षष्ठः

अपानः म यज्ञः ॥ ६ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य सप्तमः

अपानस्ता इमा दक्षिणाः ॥ ७ ॥

(१७)

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य प्रथमो व्यानः

सेयं भूमिः ॥ १ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य द्वितीयो व्यानः

तदुत्तरिक्षम् ॥ २ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य तृतीयो व्यानः

सा घाः ॥ ३ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य चतुर्थो व्यानः

तानि नक्षत्राणि ॥ ४ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य पञ्चमो व्यानः

त श्रुतवः ॥ ५ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य षष्ठो व्यानः

त आर्तवाः ॥ ६ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य सप्तमो व्यानः

स सैवत्सुरः ॥ ७ ॥

तस्य व्रात्यस्य । सुमानमर्थे परि यन्ति देवाः

सैवत्सुरं वा एतदुत्तवोऽनुपरियन्ति व्रात्यं च ॥ ८ ॥

तस्य व्रात्यस्य । यदादित्यमभिसंविशन्ति

अमावास्यां चैव तत्पौर्णमासी च ॥ ९ ॥

तस्य व्रात्यस्य । एकं तदैषाममृतत्वं

इत्याहुतिरेव ॥ १० ॥

(१८)

तस्य व्रात्यस्य ॥ १ ॥

यदस्य दक्षिणमस्यसौ स आदित्यः

यदस्य सव्यमस्यसौ स चन्द्रमाः ॥ २ ॥

योऽस्य दक्षिणः कर्णोऽयं सो अग्निः

योऽस्य सव्यः कर्णोऽयं स पर्वमानः ॥ ३ ॥

अहोरात्रे नासिके दितिश्चादितिष श्रीपंकपाले

मैवत्सुरः शिरः ॥ ४ ॥

अहो प्रत्यह् व्रात्यो

रात्र्या प्राह् नमो व्रात्योप ॥ ५ ॥



## ४ परमेश्वरः ।

१ भुवनस्य पतिः ।

कांड १, सूक्त १

(श्रुतिः — मातृनामा । देवता — गन्धर्वाप्सरसः ।)

द्विष्यो गन्धर्वो भुवनस्य यस्यपतिः  
एक एव नमस्यो विष्णोर्दयः ।  
तं त्वा योमि ब्रह्मणा दिव्य देव  
नमस्ते अस्तु दिवि ते सधस्यम् ॥ १ ॥

दिवि स्पृष्टो यज्ञतः धर्मत्वक्  
अवयाता हरसो दैव्यस्य ।  
मृडाद्गन्धर्वो भुवनस्य यस्यपतिः  
एक एव नमस्यो सुशेवाः ॥ २ ॥

अनवद्यामिः समं जगम आमिः  
अप्सरास्वपि गन्धर्व आसीत्  
समुद्र आसां सदनं म आहुः  
यतः सद्य आ च परां च यन्ति ॥ ३ ॥  
अग्निरे दिद्युन्नक्षत्रिये या विश्वावसुं गन्धर्वं सचञ्चे  
ताम्यो वो देवीर्नम इत्कृणोमि ॥ ४ ॥  
याः कलन्दास्तमिपीचयोऽक्षकामा मनोमुहः ।  
ताम्यो गन्धर्वपत्नीभ्योऽप्सराभ्योऽकरं नमः ॥ ५ ॥

२ अमृतदाता ।

कांड ६, सूक्त १

(श्रुतिः — अथर्व । देवता — सविता )

दोषो गाय बृहद्राय द्युमदेहि ।  
आर्धवेण स्तुहि देवं सवितारम् ॥ १ ॥

तमं पुहि यो अन्तः सिन्धौ सूनुः ।  
सत्यस्य युवानमद्रोषवाचं सुशेवम् ॥ २ ॥  
स यां नो देवः सविता साविषदुमृतानि भूरि ।  
उमे सुष्टुती सुगार्तवे ॥ ३ ॥

३ सरस्वान् देवः ।

कांड ७, सूक्त ४० (४१)

(श्रुतिः — प्रत्नवः । देवता — सरस्वान् )

यस्य व्रतं पशवो यन्ति सर्वे  
यस्य व्रत उपतिष्ठन्त आपः ।  
यस्य व्रते पुष्टपतिर्निर्विष्टः  
तं सरस्वन्तुमर्षसे हवामहे ॥ १ ॥  
आ मृत्यञ्च द्वाशुपे द्वाभंसं  
सरस्वन्तं पुष्टपतिं रयिष्ठाम् ।  
रायस्पोषं ध्रुवस्यं वसताः  
इह हुवेम सदनं रयीणाम् ॥ २ ॥

४ महान् शासकः ।

कांड १, सूक्त १०

(श्रुति — अथर्व । देवता — सोम, मरुतः ।)

अदारीसृद् भवतु देव सोम  
असिन्पुक्षे मरुतो मृडतां नः ।  
मा नो विददमिभा मो अशस्तिः  
मा नो विदद् वृजिना द्वेष्ट्या या ॥ १ ॥  
यो अद्य सेन्यो वधोऽद्यायूनामुदीरते ।  
युवं तं मित्रावरुणावसाधोवयते परि ॥ २ ॥

इतश्च यदमुतेश्च यद्धं वैरुण यावय ।  
 वि मृहच्छर्मं यच्छ वरीषो यावया वृषम् ॥३॥  
 शास इत्था महां अस्पमित्रसाहो अस्तुतः ।  
 न यस्य हन्यते सखा न जीयते कदाचन ॥४॥

### ५ विश्वस्य एकएव सम्राट् ।

कांड ६, सूक्त ३१

( ऋषि — अथर्व ( स्वस्त्ययनकाम ) । देवता — अग्नि )

ऋतावानं वैश्वानरमुतस्य ज्योतिर्पस्पतिम् ।  
 अजस्रं धर्ममीमहे ॥ १ ॥  
 स विश्वा प्रति चाकल्प ऋतूरुत्सृजते वृषी ।  
 यज्ञस्य वयं उत्तिरन् ॥ २ ॥  
 अग्निः परेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य ।  
 सम्राडेको वि राजति ॥ ३ ॥

### ६ सत्यधर्मा प्रजापतिः ।

कांड ७, सूक्त ५४

( ऋषि — अथर्व । देवता — इन्द्र, अग्नि, उषि । )

यज्ञ इन्द्रो अयेनधमिः  
 विश्वं देवा मरुतो यस्त्वर्काः ।  
 तदस्मभ्यं सखिता सत्यधर्मा  
 प्रजापतिरनुमतिर्नि यच्छात् ॥ १ ॥

### ७ व्यापकः श्रेष्ठो देवः ।

कांड ७, सूक्त २५ ( २६ )

( ऋषि — मध्वतिथि । देवता — विष्णु, वरुण । )

ययोरोजसा स्कभिता रजांसि  
 यौ वीर्यैर्वीरर्तमा शविष्ठा ।  
 यो पत्येति अप्रतीतौ सहोभिः  
 विष्णुमगन्वरुणं पूर्वहृतिः ॥ १ ॥  
 यस्पेदं प्रदिशि यद्विरोचते  
 प्र चानंति वि च चष्टे शचीभिः ।  
 पुरा देवस्य धर्मेणा सहोभिः  
 विष्णुमगन्वरुणं पूर्वहृतिः ॥ २ ॥

### ८ विश्वशकटसंचालकः ।

कांड ४, सूक्त ११

( ऋषि — सुवामिरा । देवता — अनडुत, इन्द्र )

अनड्वान्दाधार पृथिवीमुत यां  
 अनड्वान्दाधारोर्ध्वान्तरिक्षम् ।  
 अनड्वान्दाधार प्रादिशुः पटुर्वीः  
 अनड्वान्विश्वं भुवन्मा विवेश ॥ १ ॥  
 अनड्वानिन्द्रः स पशुभ्यो वि चष्टे  
 त्रयां लुको वि मिमीते अध्वनः ।  
 भूतं भविष्यद्भुवना दुहानः  
 सर्वां देवानां चरति वृत्तानि ॥ २ ॥  
 इन्द्रो जातो मनुष्येष्वन्तर  
 धर्मस्तपश्चरति शोशुचानः ।  
 सुप्रजाः सन्तस उदारे न सर्पत  
 यो नाश्रीषादनुडुहो विज्ञानम् ॥ ३ ॥  
 अनड्वान्दुहे सुकृतस्य लोके  
 ऐर्न प्याययति पबमानः पुरस्तात् ।  
 पर्जन्यो धारां मरुत ऊर्ध्वो अस्य  
 यज्ञः पयो दक्षिणा दोहो अस्य ॥ ४ ॥  
 यस्य नेषे यज्ञपतिर्न यज्ञः  
 नास्य द्रोतेषे न प्रतिप्रहीता ।  
 यो विश्वजिह्विश्वमृद्विश्वकर्म  
 धर्मं नो ब्रूत यत्तमश्चतुष्पात् ॥ ५ ॥  
 येन देवाः स्वरारुरुहू  
 हित्वा शरीरममृतस्य नाभिमम् ।  
 तेन मेष्म सुकृतस्य लोकं  
 धर्मस्य व्रतेन तपसा यज्ञस्यधः ॥ ६ ॥  
 इन्द्रो रूपेणाग्निर्यद्वेन प्रजापतिः परमेष्ठी विराट् ।  
 विश्वानरे अक्रमत वैश्वानरे अक्रमतानुद्वकमत ।  
 सोऽदंहयत् सोऽधारयत् ॥ ७ ॥



मर्षमेतदनहुहो यत्रैष बहु आर्हितः ।  
 एतावदस्य प्राचीनं यावान्प्रत्यह् समर्हितः ॥ ८ ॥  
 यो वेदानहुहो दोहान्तसप्तानुपदस्वतः ।  
 प्रजां च लोकं चाप्नोति तयो सप्तकृपयो विदुः ९  
 पद्भिः सेदिमवक्रामचिरां जहृषाभिरुत्खिदन् ।  
 श्रमेणानड्वान्कीलालं कीनाशश्चामि गच्छतः १०  
 द्वादश वा एता रात्रीर्व्रत्यां आहुः प्रजापतेः ।  
 तत्रोप ब्रह्म यो वेदु तद्वा अनहुहो व्रतम् ॥ ११ ॥  
 दुहे सायं दुहे प्रातर्दुहे मर्ष्यदिनं परं ।  
 दोहा ये अस्य संयन्ति तान्निष्ठासुपदस्वतः ॥ १२ ॥

### ९ सर्व-साक्षी प्रभुः ।

कांड ४, सूक्त १६

( ऋषिः— ब्रह्मा । देवता— वरुणः, सत्यानृतान्वीक्षणम् )

बृहन्नैषामधिष्ठाता अन्तिकारिष्य पश्यति ।  
 य स्तायन्मन्यते चरन्सर्वं देवा इदं विदुः ॥ १ ॥  
 यस्तिष्ठति चरति यश्च वश्चति  
 यो निलायं चरति यः प्रतङ्कम् ।  
 द्वौ सैनपद्य यन्मप्रयेते  
 राजा तद्वेदु वरुणस्तृतीयः ॥ २ ॥  
 उत्वेयं भूमिर्वरुणस्य राज्ञः  
 उतासौ द्यौर्वृहती दुरेअन्ता ।  
 उतो समुद्रौ वरुणस्य कुक्षौ  
 उतासिन्नल्प उदके निर्लीनः ॥ ३ ॥  
 उत यो घार्मतिसर्पात्परस्तात्  
 न स मृच्यपतै वरुणस्य राज्ञः ।  
 दिव स्पशः प्र चरन्तीदमस्य  
 सहस्राक्षा अति पश्यन्ति भूमिम् ॥ ४ ॥  
 सर्वं तद्राजा वरुणो वि चष्टे  
 यदन्तरा रोदसी यत्परस्तात् ॥

संख्याता अस्य निमिषो जनानां  
 अक्षानिव श्रद्धा नि मिनोति तानि ॥ ५ ॥  
 ये ते पाशो वरुण सप्तसप्त  
 प्रेषा तिष्ठन्ति विषिता रुशन्तः ।  
 छिनन्तु सर्वे अनृतं वदन्तं  
 यः सत्यवायति तं सृजन्तु ॥ ६ ॥  
 श्रुतेन पाशैरमि धेहि वरुणैर्न  
 मा ते मोच्यनृतवाह नृचक्षः ।  
 आस्तां जालम उदरं श्रंसयित्वा  
 कोशं इवावन्धः परिकृत्यमानः ॥ ७ ॥  
 यः समाम्योऽं वरुणो यो व्याम्यः  
 यः सैदुष्योऽं वरुणो यो विदुष्यः ।  
 यो देवो वरुणो यश्च मानुषः ॥ ८ ॥  
 तैस्त्वा सर्वैरमि व्यामि पाशैर्  
 असावामुष्यायणामुष्याः पुत्र ।  
 तानु ते सर्वाननुसंदिशामि ॥ ९ ॥

### १० भुवनेषु ज्येष्ठो देवः ।

कांड ५, सूक्त ०

( ऋषि — बृहदिवो अथर्वा । देवता— वरुणः )

तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं  
 यतो जज्ञ उग्रस्त्वेनृम्णाः ।  
 सद्यो जेज्जानो नि रिणाति शत्रून्  
 अनु यदेनं मदन्ति विश्व ऊमाः ॥ १ ॥  
 वावृधानः शर्वसा भूर्योजाः  
 शत्रुर्दासार्य मियसं दधाति ।  
 अर्च्यनक्ष व्यनक्ष सस्ति  
 सं ते नवन्त प्रभृता मदेषु ॥ २ ॥  
 त्वे क्रतुमपि पृच्छन्ति भूरि  
 द्विर्यदेते प्रिभ्वन्त्यूमाः ।

इतश्च यदमुतश्च यद्वधं वरुण यावय ।  
वि महच्छर्मं यच्छ वरीयो यावया वृषम् ॥३॥  
शास इत्या यहाँ अस्यमित्रसाहो अस्तुतः ।  
न यस्य हन्यते सखा न जीयते कदाचन ॥४॥

### ५ विश्वस्य एकएव सम्राट् ।

कांड ६, सूक्त ३ :

( ऋषिः— अथर्व ( सत्ययनवामः ) । देवता— अग्निः )

ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिष्पतिम् ।  
अजस्रं धर्ममीमहे ॥ १ ॥  
स विश्वा प्रति चाकल्प ऋतुरुत्सृजते वृषी ।  
यज्ञस्य वयं उत्तिरन् ॥ २ ॥  
अग्निः परेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य ।  
सम्राडेको वि राजति ॥ ३ ॥

### ६ सत्यधर्मा प्रजापतिः ।

कांड ७, सूक्त २४

( ऋषिः— अथर्व । देवता— इंद्र, अग्निः, वरुणः । )

यन्न इन्द्रो अखनुद्यदग्निः  
विश्वे देवा मरुतो यस्त्वर्काः ।  
तदुस्मभ्यं सविता सत्यधर्मा  
प्रजापतिरनुमतिर्नि यच्छात ॥ १ ॥

### ७ व्यापकः श्रेष्ठो देवः ।

कांड ७, सूक्त २५ ( २६ )

( ऋषि — मधतिथिः । देवता— विष्णुः, वरुणः । )

ययोरोजसा स्कमिता रजांसि  
यो वीर्यं विरतमा शविष्ठा ।  
यो पत्येति अग्रवीती सहोभिः  
विष्णुमगन्वर्हणं पूर्वहृतिः ॥ १ ॥  
यस्येदं प्रदिशि यद्विरोचते  
प्र चानति वि च चष्टे शचीभिः ।  
परा देवस्य धर्मेणा सहोभिः  
विष्णुमगन्वर्हणं पूर्वहृतिः ॥ २ ॥

### ८ विश्वशकटसंचालकः ।

कांड ४, सूक्त ११

( ऋषि - यजुर्वेदिः । देवता— अनडुत, इंद्रः )

अनड्वान्दाधार पृथिवीमुत यां  
अनड्वान्दाधारोर्ध्वे न्तरिक्षम् ।  
अनड्वान्दाधार प्रदिशः पटुर्वीः  
अनड्वान्विश्वं भवंनमा विवेश ॥ १ ॥  
अनड्वानिन्द्रः स पशुभ्यो वि चष्टे  
त्रयां लुक्रो वि मिमीते अध्वनः ।  
भूतं मविष्यद्भुवना दुहानः  
सर्वां देवानां चरति वृथानि ॥ २ ॥  
इन्द्रो जातो मनुष्येष्वन्तर  
धर्मस्तत्पर्यरति शोशुचानः ।  
सुप्रजाः सन्तस उदारे न सर्पव  
यो नाश्रीयादनडुहो विज्ञानन् ॥ ३ ॥  
अनड्वान्दुहे सुकृतस्य लोके  
एनं प्याययति पवंमानः पुरस्तात् ।  
पर्जन्यो धारां मरुत ऊर्ध्वो अस्य  
यज्ञः पयो दक्षिणा दोहो अस्य ॥ ४ ॥  
यस्य नेत्रे यज्ञपतिर्न यज्ञः  
नास्यं दातेशे न प्रतिग्रहीता ।  
यो विश्वजिद्विश्वमृद्विश्वकर्म  
धर्मं नो ब्रूत पतमश्रुत्पात् ॥ ५ ॥  
येन देवाः स्वरावरुहुर  
हित्वा शरीरममृतस्य नाभिम ।  
तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं  
धर्मस्य ब्रूतेन तपसा यज्ञस्यवः ॥ ६ ॥  
इन्द्रो रूपेणामिर्वेदेन प्रजापतिः परमेष्ठी विराट् ।  
विश्वानरे अक्रमत वैश्वानरे अक्रमतानडुहकमत ।  
सोऽदहयत् सोऽधारयत् ॥ ७ ॥

स्तोत्रं मे विश्रमा पोहि शचीभिर्  
अन्तर्विष्वांसु मानुषीषु दिक्षु ॥ ८ ॥  
आ तै स्तोत्राण्युद्यतानि यन्तु  
अन्तर्विष्वांसु मानुषीषु दिक्षु ।  
देहि नु मे यन्मे अदत्तो असि  
युज्यो मे सप्तपदः सखासि ॥ ९ ॥  
सुमा नौ बन्धुर्वरुण सुमा जा  
वेदाहं तद्यन्त्राविषा सुमा जा ।  
ददामि तद्यत्ते अदत्तो अस्मि  
युज्यस्ते सप्तपदः सखासि ॥ १० ॥  
देवो देवाय गृणते वयोषा  
विप्रो विप्राय स्तुवते सुमेधाः ।  
अजीजिनो हि वरुण स्ववावन्  
अयवर्णि पितरं देवबन्धुम् ।  
तस्मा उ राघः कणुहि सुप्रशस्तं  
सखा नो असि परमं च बन्धुः ॥ ११ ॥

## १२ प्रातःकाले ईश्वर-प्रार्थना ।

कांड ३, सूक्त १६

( ऋषिः— अथर्व । देवता— बृहस्पति, बृहदेवत्यम् । )

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे  
प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना ।  
प्रातर्मर्गं पुषणं ब्रह्मणस्पतिं  
प्रातः सोममुत रुद्रं हवामहे ॥ १ ॥  
प्रातर्जितं भर्गमुग्रं हवामहे  
वयं पुत्रमर्दितैर्यो विधर्ता ।  
आभ्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरधिद्  
राजो चिद्यं भर्गं भक्षीत्याहं ॥ २ ॥  
भग प्रणेतृभग सत्पराघः  
भगमा धियमुदेवा ददन्नः ।

भग प्र णो जनय गोभिरश्वैः  
भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ॥ ३ ॥  
उतेदानीं भगवन्तः स्याम  
उत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम् ।  
उतोदितौ मघवन्तस्यैव वयं  
देवानां सुमतौ स्याम ॥ ४ ॥  
भर्ग एव भर्गवा अस्तु देवः  
तेना वयं भर्गवन्तः स्याम ।  
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीमि  
स नो भग पुरस्ता भवेह ॥ ५ ॥  
समंश्चरायोपसो नमन्त दधिक्षावैव शुचये पदार्थ ।  
अर्वाचीनं वसुविदुं भर्गं मे  
रथमिवाश्वा वाजिन आ वहन्तु ॥ ६ ॥  
असावतीर्गोमतीर्न उपासः  
वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः ।  
घृतं दुहाना विस्वतः प्रपीताः  
युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

## १३ एकएव उपास्यः ।

कांड ८, सूक्त ९

( ऋषिः— अथर्व, वसपः, सर्वे ऋषयः । देवता— विराट् । )

कृतस्तौ जातौ कृतमः सो अर्घः  
कसाल्लोकात्कृतमस्याः पृथिव्याः ।  
वत्सो विराजः सलिलादुदेता  
तौ त्वा पृच्छामि कतुरेणं दुग्धा ॥ १ ॥  
यो अकन्दयत्सलिलं महित्वा  
योनिं कृत्वा त्रिमुञ्जं शयानः ।  
वत्सः कामदुषो विराजः  
स गुहां चक्रे तन्जिः पराचैः ॥ २ ॥

स्वादोः स्वादीयः स्वादनां सृजा  
 समदः सु मधु मधुनाभि योधीः ॥ ३ ॥  
 यदि चिन्तु त्वा घना जयन्तं  
 रणेरणे अनुमदन्ति विप्राः ।  
 ओजीयः शुष्मिन्स्थिरमा तनुष्व  
 मा त्वा दमन्दुरेवासः कशोकाः ॥ ४ ॥  
 त्वया वयं शशबहे रणेपु  
 प्रपश्यन्तो युधेन्यानि भूरि ।  
 सोदयामि त आयुधा वचोभिः  
 सं ते शिशामि ब्रह्मणा वयांसि ॥ ५ ॥  
 नि तर्हिपेऽर्वरे परे च  
 यस्मिन्नाविधावेसा दुराणे ।  
 आ स्थापयत मातरं जिगन्तुं  
 अत इन्वतु कर्वराणि भूरि ॥ ६ ॥  
 स्तुष्व वंश्मन्पुरुषत्मानं समृम्बाणं  
 इनतममाप्तमाप्तयानाम् ।  
 आ दर्शति शर्वसा भूयीजाः  
 म संक्षति प्रतिमानं पृथिव्याः ॥ ७ ॥  
 इमा ब्रह्म बृहर्हिवः कृणवद्  
 इन्द्राय शूपर्मप्रियः स्वर्पाः ।  
 महो गोत्रस्य क्षयति स्वराजा  
 तुरादिद्विषमर्णवत् तपस्वान् ॥ ८ ॥  
 एवा महान्बृहर्हिवो अथर्वा  
 अवोचत्स्वा तुन्वमिन्द्रमेव ।  
 स्वसारी मातरिम्बरी अग्निमे  
 दिन्वान्ति धेने शर्वसा वर्धयन्ति च ॥ ९ ॥

११ श्रेष्ठो देवः ।

वाङ् ५, सूक्त ११

( कविः- अथर्व । देवता- वरुणः )

कथं महे अर्गुरापाववीरिह  
 कथं पित्रे हरये स्वेपनृम्णः ।

पृश्नि वरुण दक्षिणां दद्यावान्  
 पुनर्मघ त्वं मनसाचिकित्सीः ॥ १ ॥  
 न कामेन पुनर्मघो भवामि  
 सं चक्षे कं पृश्निमेतामुपाजे ।  
 केन नु त्वमथर्वन्काव्येन  
 केन जातेनासि जातवेदाः ॥ २ ॥  
 सत्यमहं गभीरः काव्येन  
 सत्यं जातेनास्मि जातवेदाः ।  
 न मे दासो नार्यो महित्वा  
 ब्रतं मीमाय यदहं धरिष्ये ॥ ३ ॥  
 न त्वदन्यः क्विर्तरो न मेघया  
 धीरतरो वरुण स्वधावन् ।  
 त्वं ता विश्वा भुवनानि वेत्थ  
 स चिन्तु त्वज्जनो मायी धिमाय ॥ ४ ॥  
 त्वं शृङ्ग वरुण स्वधावन्  
 विश्वा वेत्थ जनिमा सुप्रणीते ।  
 किं रजस एना पुरो अन्यत्  
 अस्त्येना किं परेणावरममुर ॥ ५ ॥  
 एकं रजस एना पुरो अन्यदस्ति  
 एना पुर एकेन दुर्णेशी चिदुवाक् ।  
 तर्चे विद्वान्वरुण प्र ब्रवीमि  
 अधोर्वचसः पुणर्यो भवन्तु ।  
 नीचैर्दासा उप सर्पन्तु सूर्मिम् ॥ ६ ॥  
 त्वं शृङ्ग वरुण ब्रवीमि  
 पुनर्मघेऽनुपाति भूरि ।  
 मा पु पूर्णास्म्येक्षतावतो भूत्  
 मा त्वा वोचमराधसं जनासः ॥ ७ ॥ (७१५)  
 मा मा वोचमराधसं जनासः  
 पुनस्ते पृश्नि जरितर्ददामि ।

स्तोत्रं मे विश्वमा याहि शचीमिर-  
अन्तर्विष्वांसु मानुषीषु दिक्षु ॥ ८ ॥

आ ते स्तोत्राण्युद्यतानि यन्तु  
अन्तर्विष्वांसु मानुषीषु दिक्षु ।  
देहि तु मे यन्मे अदत्तो अस्मि  
युज्यो मे सप्तपदः सखासि ॥ ९ ॥

सुमा नो बन्धुर्वरुण सुमा जा  
वेदाहं तद्यज्ञाविषा सुमा जा ।  
ददामि तद्यत्ते अदत्तो अस्मि  
युज्यस्ते सप्तपदः सखासि ॥ १० ॥

देवो देवाय गृणते वयोषा  
विप्रो विप्राय स्तुवते सुमेधाः ।  
अजीजनो हि वरुण स्वधावन्  
अथर्वाणं पितरं देवबन्धुम् ।  
तस्मा उ राधः कण्वि सुप्रशस्तं  
सखा नो अस्ति परमं च बन्धुः ॥ ११ ॥

१२ प्रातःकाले ईश्वर-प्रार्थना ।

कांड ३, सूक्त १६

( ऋषिः— अथर्वी । देवता— बृहस्पतिः, बहुरूपतयम् । )

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे  
प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना ।  
प्रातर्मर्गं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं  
प्रातः सोममुत रुद्रं हवामहे ॥ १ ॥  
प्रातर्जितं मर्गमुग्रं हवामहे  
वयं पुत्रमदितेयो विघर्ता ।  
आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुराश्विद्  
राजो चिद्यं मर्गं भूषीत्याहं ॥ २ ॥  
मग प्रणेतुर्भग सत्यराधः  
मगेमा धियमुदवा ददन्तः ।

मग प्र णो जनय गोभिरश्वैः  
मग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ॥ ३ ॥

उतेदानीं मर्गवन्तः स्याम  
उत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम् ।  
उतोदितौ मध्वन्तसूर्यस्य वयं  
देवानां सुमतौ स्याम ॥ ४ ॥

मर्ग एव मर्गवाँ अस्तु देवः  
तेना वयं मर्गवन्तः स्याम ।  
तं त्वा मग सर्व इज्जोहवीमि  
स नो मग पुराता भवेह ॥ ५ ॥  
समं ध्वरायोपसो नमन्त दधिक्रावेव शुचये पुदार्य ।  
अर्वाचीनं वसुविदं मर्गं मे  
रथमिवासा वाजिन आ वहन्तु ॥ ६ ॥

असावतीर्गोमतीर्न उपासः  
वीरवतीः सदमृच्छन्तु भद्राः ।  
घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीताः  
युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

१३ एकएव उपास्यः ।

कांड ८, सूक्त ९

( ऋषिः— अथर्वी, ऋषयः, सर्वे ऋषयः । देवता— विराट् । )

कृतस्तौ जातौ कंतमः सो अर्घः  
कसाल्लोकात्कंतमस्याः पृथिव्याः ।  
वत्सौ विराजः सलिलादुदौता  
तौ त्वा पृच्छामि कतरेण दुग्धा ॥ १ ॥  
यो अक्रन्दयत्सलिलं महित्वा  
योनौ कृत्वा त्रिसृजं शयानः ।  
वत्सः कामदुयो विराजः  
स गुहां चक्रे तन्विः पराचैः ॥ २ ॥

यानि त्रीणि बृहन्ति येषां  
 चतुर्थं विद्युनक्ति वाचम् ।  
 ब्रह्मेनद्विद्याचर्पसा विपश्चिदु  
 यस्मिन्नेकं युज्यते यस्मिन्नेकम् ॥ ३ ॥  
 बृहतः परि सामानि पृष्ठात्पञ्चाधि निर्मिता ।  
 बृहद्बृहत्या निर्मितं कुतोऽधि बृहती मिता ॥ ४ ॥  
 बृहती परि मात्राया मातृमात्राधि निर्मिता ।  
 माया ह जज्ञे मायाया मायाया मातली परि ॥ ५ ॥  
 वैश्वानरस्य प्रतिमोपरि द्यौः  
 यावद्वादसी विषवाधे अग्निः ।  
 ततः पृष्ठादाद्यतो यन्ति स्तोमाः  
 उदितो यन्त्यग्नि पृष्ठमहः ॥ ६ ॥  
 पद त्वा पृच्छाम ऋषयः कश्यपेमे  
 त्वं हि युक्तं युयुक्षे योग्यं च ।  
 विराजमाहुर्ब्रह्मणः पितरं तां  
 नो वि वैहि यतिषा सतिभ्यः ॥ ७ ॥  
 यां प्रच्युतामनुं युष्माः प्रच्यवन्ते  
 उपतिष्ठन्त उपतिष्ठमानाम् ।  
 यस्यां प्रते प्रसवे यक्षमेजति  
 सा विराट्पयः परमे व्योमन् ॥ ८ ॥  
 अम्राणैति प्राणेन प्राणवीनां  
 विराट् स्वराजमभ्येति पश्चात् ।  
 विश्वं मृशन्तीमभिरूपां विराजं  
 पश्यन्ति त्वे न त्वं पश्यन्त्येनाम् ॥ ९ ॥  
 को विराजो मिथुनत्वं प्र बंदु  
 क ऋन्त्क उ कल्पमस्याः ।  
 म्रमान्को अस्याः कतिषा विदुग्धान्  
 को अस्या धाम कतिषा प्युष्टीः ॥ १० ॥

इयमेव सा या प्रथमा व्यौच्छद  
 आस्वितरासु चरति प्रविष्टा ।  
 महान्तो अस्यां महिमानो अन्तः  
 वर्धुर्जिगाय नवगजनित्री ॥ ११ ॥  
 छन्दःपक्षे उपसा पेषिशाने  
 समानं योनिमनु सं चरेते ।  
 क्षर्यपत्नी सं चरतः प्रजानती  
 केतुमती अजरे भूरिरेतसा ॥ १२ ॥  
 ऋतस्य पन्थामनुं तिस्र आगुः  
 त्रयो घर्मा अनु रेव आगुः ।  
 प्रजामेका जिवन्त्यूर्जमेका  
 राष्ट्रमेका रक्षति देवयुनाम् ॥ १३ ॥  
 अग्नीषोमावदधुर्या तुरीयासीद्  
 यज्ञस्य पक्षावृषयः कल्पयन्तः ।  
 गायत्रीं त्रिष्टुभं जगतीमनुष्टुभं  
 बृहदुक्तीं यजमानाय स्वराभिरन्तीम् ॥ १४ ॥  
 पञ्च व्युष्टिरनु पञ्च दोहा  
 गां पञ्चनाम्नीमृतबोऽनु पञ्च ।  
 पञ्च दिशः पञ्चदशेन कृत्वाः  
 ता एकमूर्ध्नीरभि लोकमेकम् ॥ १५ ॥  
 पद जाता मृता प्रथमजतस्य  
 पद सामानि पदहं बहन्ति ।  
 पदयोगं सरिमनु सामंसाम्  
 पदाहुयावापृथिवीः पदुवीः ॥ १६ ॥  
 पदाहुः शीतान्यदं साम उष्णान्  
 ऋतुं नो ब्रूत यत्तमोऽर्तिरिक्तः ।  
 सप्त संपूर्णाः क्वयो नि पदुः  
 सप्त च्छन्दास्त्वनु सप्त दीधाः ॥ १७ ॥ (७५७)

सप्त होमाः समिधो ह सप्त  
मधूनि सप्तर्वो ह सप्त ।  
सप्ताज्यानि परि मृतमायन्  
ताः सप्तगुप्ता इति शुश्रूमा वयम् ॥ १८ ॥  
सप्त च्छन्दांसि चतुरुत्तराणि  
अन्यो अन्यस्मिन्नध्यापितानि ।  
कथं स्तोमाः प्रति तिष्ठन्ति तेषु  
तानि स्तोमेषु कथमार्षितानि ॥ १९ ॥  
कथं गायत्री त्रिवृतं व्यापि  
कथं त्रिपुष्पञ्चदशेन करपते ।  
त्रयस्त्रिंशेन जगती कथमनुष्टुप्कथमेकविंशः ॥ २० ॥  
अष्ट जाता भूता प्रथमजर्तस्य  
अष्टेन्द्रत्विजो दैव्या ये ।  
अष्टयोनिरादितिरष्टपुत्रा  
अष्टमी रात्रिममि हव्यमेति ॥ २१ ॥  
इत्थं श्रेयो मन्यमानेदमागमं  
युष्माकं सुख्ये अहमेस्मि शेवा ।  
समानजन्मा क्रतुरस्ति वः शिवः  
स वः सर्वाः सं चरति प्रजानन् ॥ २२ ॥  
अष्टेन्द्रस्य षड्यमस्य ऋषीणां सप्त सप्तधा ।  
अपो मनुष्याश्च नोपधीस्तां उ पञ्चानु सेचिरे ॥ २३ ॥  
केवलीन्द्राय दुदुहे हि गृष्टिः  
वर्श पीयूषं प्रथमं दुहाना ।  
अथातर्पयच्चतुरश्वतुर्घा  
देवान् मनुष्यांश्च असुरानुत ऋषीन् ॥ २४ ॥  
को नु गौः क एक ऋषिः  
किमु घाम का आशिर्षः ।  
युधं पृथिव्यामेकवृद्धेर्कर्तुः कंतमो नु सः ॥ २५ ॥  
एको गौरिकं एकऋषिरिकं घामैकघाशिर्षः ।  
युधं पृथिव्यामेकवृद्धेर्कर्तुर्नाति रिन्यते ॥ २६ ॥

## १४ विश्वसंचालकः ।

कांड ६, सूक्त ३५

(ऋषिः- कौशिकः । देवता- वैश्वानरः )

वैश्वानरो न ऊतय आ प्र यातु परावर्तः ।  
अग्निर्नः सुष्टवीरुपं ॥ १ ॥  
वैश्वानरो न आगमदिमं युजं सजूरुपं ।  
अग्निरुक्थेध्वहसु ॥ २ ॥  
वैश्वानरोऽङ्गिरसां स्तोममृकथं च चाकलपत् ।  
एषु घञ्जुं स्तुर्धिमत् ॥ ३ ॥

## १५ सर्वव्यापक ईश्वरः ।

कांड ७ सूक्त २६

(ऋषिः- मेघातिथिः । देवता- विष्णुः ।)

विष्णोर्नु कुं प्रा वोचं वीर्याणि  
यः पार्थिवानि विममे रजोसि ।  
यो अस्कमायदुत्तरं सुघस्थं  
विचक्रमाणखेधोरुमायः ॥ १ ॥  
प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्याणि  
भूगो न भीमः कुचरो गिरिग्राः  
परावत आ जंगम्यात्परस्याः ॥ २ ॥  
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेपु  
आबिक्षिपन्ति ध्रुवनानि विश्वा ।  
उरु विष्णो वि क्रमस्तोरु क्षयाय नस्कृधि ।  
घृतं घृतयोने पिबु प्रप्र युजपतिं तिर ॥ ३ ॥  
इदं विष्णुर्वि चक्रमे मेघा नि दधे पदा ।  
समूढमस्य पांसुरे ॥ ४ ॥  
त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाम्यः ।  
इतो घर्मीणि धारयन् ॥ ५ ॥  
विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो ब्रतानि पस्पृशे ।  
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ६ ॥ (७७२)

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ।

दिवीवि चक्षुराततम् ॥ ७ ॥

दिवो विष्ण उत वो पृथिव्या

महो विष्ण उरोरन्तरिक्षात् ।

हस्तौ पूणस्व बहुभिर्वसव्यैः

आप्रयच्छ दक्षिणादोत सुव्यात् ॥ ८ ॥

१६ व्यापको देवः ।

कांड ७, सूक्त ८७

( ऋषिः— अथर्वी । देवता— रुद्र । )

यो अमौ रुद्रो यो अस्त्वन्तः

यं ओषधीर्वीरुधं आविवेक्ष ।

य इमा विश्वा ध्रुवनानि चाकलपे

तस्मै रुद्राय नमो अस्त्वमये ॥ १ ॥

१७ दिव्यः सुपर्णः ।

कांड ९, सूक्त १०

( ऋषि — ऋद्धा । देवता— गो, विराट्, अग्न्यात्मन् । )

यद्वायुत्रे अधि गायत्रमार्हितं

श्रैष्टुभं वा श्रैष्टुमान्निरवक्षत ।

यद्वा जगज्जगत्याहितं पदं

य इत्तद्विदुस्ते अमृतत्वमानश्चुः ॥ १ ॥

गायत्रेण प्रति मिमीते अकं

अर्केण साम श्रैष्टुभेन वाकम् ।

वाकेन वाकं द्विपदा चतुष्पदा

अधरेण मिमते मुप्त चाणीः ॥ २ ॥

जगता मिन्युं दिव्यस्किमायद्

रधंतरे एयं पर्यपश्यत् ।

गायत्रस्य समिधस्त्रिस्त आहुः

ततो मृदा प्र रिरिचे महित्वा ॥ ३ ॥

उपे ह्ये मुदपां येनुमेता

गुह्यो गोपुगुत दौर्ददनाम् ।

श्रेष्ठं सवं सविता साविपन्नः

अमीद्भो घर्मस्तद् पु प्र वोचत् ॥ ४ ॥

हिङ्कुण्वती वसुपत्नी वधनां

वत्समिच्छन्ती मर्नसाम्यागात् ।

दुहामश्विम्यां पयो अफयेयं

सा वधतां महते सौमगाय ॥ ५ ॥

गौरमीमेदभि वत्सं मियन्तं

मूर्धानं हिङ्कुण्वतोन्मातवा उ ।

सृकाणं घर्ममभि वावशाना

मिमाति मायुं पर्यते पयोभिः ॥ ६ ॥

अयं स शिङ्कुते येन गौरमीवृता

मिमाति मायुं च्वसनावधि श्रिता ।

सा चित्तिभिर्नि हि चकार मर्त्यान्

विद्युद्भवन्ती प्रति वन्निमौहत ॥ ७ ॥

अनच्छये तुरगात् जीवं

एजद् ध्रुवं मय्य आ पस्त्यानाम् ।

जीवो मृतस्य चरति स्वधामिर्

अमर्त्यो मर्त्येना सयोनः ॥ ८ ॥

विधुं द्रद्राणं संलिलस्य पृष्ठे

युवानं सन्तं पलितो जंगार ।

देवस्य पश्य काव्यं महित्वा

अद्या ममार स ह्यः समान ॥ ९ ॥

य इ चकार न सो अस्व वेदु

य इ ददर्श हिङ्गिष्ठ तस्मात् ।

स मातुर्याना परिवीतो अन्तः

बह्व्रजा निष्कविरा विवेश ॥ १० ॥

अपश्य गोपामनिपद्यमानं

आ च परा च पयिमिथरन्तम् ।

स सधीचीः स विपूचीर्वसानः

आ बरीवति ध्रुवनेऽन्तः ॥ ११ ॥ (०८६)



द्यौर्मैः पिता जनिता नाभिरत्र  
 बन्धुर्नो माता पृथिवी महियम् ।  
 उच्चानयोश्चमोऽयोनिरन्तः  
 अत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाघात ॥ १२ ॥  
 पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः  
 पृच्छामि वृष्णो अश्वस्य रेतः ।  
 पृच्छामि विश्वस्य भुवनस्य नाभिं  
 पृच्छामि वाचः परमं व्योमि ॥ १३ ॥  
 इयं वेदि परो अन्तः पृथिव्या  
 अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतः ।  
 अयं यज्ञो विश्वस्य भुवनस्य नाभिः  
 ब्रह्मायं वाचः परमं व्योमि ॥ १४ ॥  
 न वि जानामि यदि वेदमस्मि  
 निष्यः संनद्धो मनमा चरामि ।  
 यदा मार्गन्प्रथमजा ऋतस्य  
 आदिद्वाचो अश्ववे भागमस्याः ॥ १५ ॥  
 अपाङ् प्राहेति स्वधया गृभीतः  
 अमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ।  
 ता अश्वन्ता विपूचीना विनन्ता  
 न्यूनं चिकपुने नि चिकपुरन्यम् ॥ १६ ॥  
 सुसार्धगर्भा भुवनस्य रेतः  
 विष्णोः स्थितवन्ति प्रदिशा विधर्मणि ।  
 ते धीतिर्मिर्मनसा ते विपुश्चितः  
 परिभुवः परि भवन्ति विश्वतः ॥ १७ ॥  
 ऋचो अक्षरं परमे व्योमिन्  
 यसिन्देवा अग्नि विश्वे निपेदुः ।  
 यस्तन्न वेद किमुचा करिष्यति  
 य इत्तद्विदुस्ते अमी समासते ॥ १८ ॥  
 अचः पदं मार्गया कल्पयन्तः  
 अर्धर्चनं चाकल्पुर्विधमेजत ।

विपाद् ब्रह्म पुरुषं वि तष्टे  
 तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः ॥ १९ ॥  
 सुयवसाद्भगवती हि भुया  
 अघा वयं भगवन्तः स्याम ।  
 अग्नि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं  
 पिवं शुद्धमुदकमाचरन्ती ॥ २० ॥  
 गौरिन्मिमाय सलिलानि तक्षति  
 एकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी ।  
 अष्टापदी नवपदी चम्बुपदी  
 सहस्राक्षरा भुवनस्य पङ्क्तिः  
 तस्याः समुद्रा अग्नि नि क्षरन्ति ॥ २१ ॥  
 कृष्णं नितानं हरयः सुपर्णा  
 अयो वसाना दिवमृतपतन्ति ।  
 त आर्बवृत्रन्तसर्दनाहृतस्य  
 आदिद् घृतेन पृथिवीं व्युद्भिः ॥ २२ ॥  
 अपादेति प्रथमा पद्धतीनां  
 कस्तद् वा मित्रावरुणा चिकेत ।  
 गर्भो मारं भरत्या विदस्याः  
 ऋतं पिपुत्यनृतं नि पाति ॥ २३ ॥  
 विराड् वाग् विराद् पृथिवी  
 विरादन्तरिक्षं विराट् प्रजापतिः ।  
 विरादप्रत्युः साध्यानामधिराजो बभूव  
 तस्य मृतं मन्यं वधे ॥ २४ ॥  
 स मे भूतं मन्यं वधे कृणोत  
 शक्रमयं धूममारादपश्यं  
 विपुवतो पर एनावरेण ।  
 उक्षाणं पृथिमपचन्त वीराः  
 तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ॥ २५ ॥ (८००)  
 त्रयः केयिनं ऋतुध वि चक्षते  
 संवत्सरे वपत एकं एषाम् ।

विश्वमन्यो अभिचष्टे शचीभिः  
 भ्राजिरिकस्य ददृशे न रूपम् ॥ २६ ॥  
 चत्वारि वाक्परिमिता पदानि  
 तानि विदुर्बाह्विणा ये मनीषिणः ।  
 गुहा त्रीणि निर्हिता नेङ्गयन्ति  
 तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ॥ २७ ॥  
 इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुः  
 अथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।  
 एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति  
 अग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥ २८ ॥

१८ द्वौ सयुजौ सुपर्णौ ।

कांड १, सूक्त १

( अथ - महा । देवता - वाम , अश्विन , आदित्य । )

अस्य वामस्य पलितस्य होतुः  
 तस्य भ्राता मध्यमो अस्वश्रः ।  
 तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्य  
 अत्रापदं विदपतिं सप्तपुत्रम् ॥ १ ॥  
 सप्त युजन्ति रथमेकचक्रं  
 पक्षो अश्वो वदति सप्तनामा ।  
 त्रिनामि चक्रमर्जरमतयं  
 गन्धमा पिशा चतुर्नामि तुष्टुः ॥ २ ॥  
 इमं रथमग्निं ये सप्त तस्युः  
 सप्तचक्रं सप्त पदन्त्यश्वाः ।  
 सप्त स्पर्शरो अग्निं मं नवन्त  
 यत्र गत्रां निर्हिता सप्त नामा ॥ ३ ॥  
 को देदृशे प्रथमं जायमानं  
 अथन्वन्तं यदनुष्या विमर्षि ।  
 भूम्या अगृगृणात्मा कां चिन्  
 कां त्रिदशमसृषे मातृष्टमेतत् ॥ ४ ॥

इह भवीतु य ईमङ्ग वेद  
 अस्य वामस्य निर्हितं पदं वेः ।  
 शीर्ष्णः शीरं दुहते गावो अस्य  
 अग्निं वसाना उदकं पदापुः ॥ ५ ॥  
 पाकः पृच्छामि मनसाविजानन्  
 देवानामेना निर्हिता पदानि ।  
 वृत्ते वृष्कयेऽपि सप्त तन्तु  
 चि तन्निरे कवय ओतवा उ ॥ ६ ॥

अचिकित्वांश्चिकितुष्विदं  
 कवीन्पृच्छामि विद्वानो न विद्वान् ।  
 वि यस्तुस्तम्भ पडिमा रजांसि  
 अजस्य रूपे किमपि स्वदेकम् ॥ ७ ॥

माता पितरमुत आ वभाज  
 धीत्यग्रे मनेसा सं हि जग्मे ।  
 सा भीभत्सुर्गमैरसा निर्विद्धा  
 नमस्वन्तु कर्मायुः ॥ ८ ॥

युक्ता मात  
 अतिमुद्भवं  
 अमीमेद्वत्तो  
 विश्वरूप्यं

मातुः

पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं  
दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम् ।

अथेमे अन्य उपरे विचक्षणे  
सप्तचक्रे पदरं आहुरापीतम् ॥ १२ ॥

द्वादशारं नहि तज्जराय  
वर्धति चक्रे परि धामृतस्य ।  
आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र  
सप्त शतानि विशतिश्च तस्युः ॥ १३ ॥

सर्गेमि चक्रमजरं वि बाधृत  
उत्तानायां दश युक्ता वहन्ति ।  
धर्मस्य चक्षु रजसैत्यार्यतं  
यस्मिन्नातृस्युर्मुर्वनानि विश्वा ॥ १४ ॥

त्रियः सुतीस्ता उ मे पुंस आहुः  
पश्यदक्षुष्यान् वि चेतदुन्धः ।  
कृषिर्पुत्रः पुत्रः स ईमा चिकेतु  
यस्ता विजानात्स पितुष्पितासत् ॥ १५ ॥

साकंजानां सप्तममाहुरेकजं  
पडिष्टमा ऋषयो देवजा इति ।  
तेषामिष्टानि विहितानि धामुश  
स्याग्ने रजन्ते विकृतानि रूपशः ॥ १६ ॥

अवः परेण पर एनावरेण  
पदा वृत्सं चित्रंती गौरुदम्यात् ।  
सा कद्रीची कं म्यिदधं परागाव  
कृ स्तिस्सते नहि यूये अस्मिन् ॥ १७ ॥

अवः परेण पितरं यो अस्य वेद  
अवः परेण पर एनावरेण ।  
कवीयमानः क इह प्र वाचदु  
देयं मनुः कुतो अधि प्रजातम् ॥ १८ ॥

ये अवाञ्छस्ता उ पराच आहुः  
ये पराञ्छस्ता उ अवाच आहुः ।

इन्द्रश्च या चक्रयुः सोम तानि  
धुरा न युक्ता रजसो वहन्ति ॥ १९ ॥

द्वा सुपर्णा मयुजा सखाया  
समानं वृक्षं परि पस्वजाते ।  
तयोर्न्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति  
अनश्नन्नन्यो अमि चाकशीति ॥ २० ॥

यस्मिन्वृक्षे मध्वदः सुपर्णा  
निविशन्ते सुर्वते चाधि विश्वे ।  
तस्य यदाहुः पिप्पलं स्वाद्वे  
तन्नोन्नशयः पितरं न वेद ॥ २१ ॥

यत्रा सुपर्णा अमृतस्य मक्षं  
अनिमेषं विदद्यामिस्वरान्ति ।  
एना विश्वस्य भुवनस्य गोपाः  
स मा धारः पाकमत्रा विवेश ॥ २२ ॥

१९ सर्वाधारः ।

कांड, १०, सूक्त ७

(अयोः- अथर्वा । देवना- इदम् आत्मा वा ।)

कस्मिन्नङ्गे तपो अस्याधि तिष्ठति  
कस्मिन्नङ्गे क्रतुमस्याप्याहितम् ।  
कृ ब्रतं कृ श्रद्धासं तिष्ठति  
कस्मिन्नङ्गे सत्यमस्य प्राविष्टितम् ॥ १ ॥

कस्मादद्वादीप्यते अप्रिरस्य  
कस्मादद्वात्पवते मातरिशां ।  
कस्मादद्वादि मिमीतेऽधि चन्द्रमा  
मह स्कम्भस्य मिमानो अद्भम् ॥ २ ॥

कस्मिन्नङ्गे तिष्ठति भूमिरस्य  
कस्मिन्नङ्गे तिष्ठत्यन्तारिक्षम् ।  
कस्मिन्नङ्गे तिष्ठत्पाहिता घोः  
कस्मिन्नङ्गे तिष्ठत्पुचरं दिवः ॥ ३ ॥ (८८८)

कर्तुं प्रेप्सन्दीप्यत ऊर्ध्वो अग्निः  
 कर्तुं प्रेप्सन्पवते मातुरिशा ।  
 यत्र प्रेप्सन्तीरभियन्त्यावृतः  
 स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ ४ ॥  
 कर्धिमासाः कर् यन्ति मासाः  
 संवत्सरेण सह सैविदानाः ।  
 यत्र यन्त्युत्तवो यत्रार्तिवाः  
 स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ ५ ॥  
 कर्तुं प्रेप्सन्ती युवती विरूपे  
 अहोरात्रे ब्रूवतः संविदुग्ने ।  
 यत्र प्रेप्सन्तीरभियन्त्यापः  
 स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ ६ ॥  
 यस्मिन्स्तुब्ध्वा प्रजापतिः  
 लोकान्तर्षो अघोरयत् ।  
 स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ ७ ॥  
 यत्परममवमं यच्च मध्यमं  
 प्रजापतिः समुजे विश्वरूपम् ।  
 किर्यता स्कम्भः प्र विवेश तत्र  
 यन्न प्राविशत्किञ्चिद्वभूव ॥ ८ ॥  
 किर्यता स्कम्भः प्र विवेश भूतं  
 किर्यद्भविष्यदुन्वाग्रयेऽस्य ।  
 एकं यदङ्गमर्कणोत्सहस्रवा  
 किर्यता स्कम्भः प्र विवेश तत्र ॥ ९ ॥  
 यत्र लोकाश्च कोशाश्चापो ब्रह्म जना विदुः ।  
 असंश्च यत्र सचान्तं  
 स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ १० ॥  
 यत्र तपः पराक्रम्य व्रतं धारयत्युत्तरम् ।  
 कृतं च यत्र श्रद्धा चापो ब्रह्म समाहिता  
 स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ ११ ॥

यस्मिन्भूमिरन्तरिक्षं धीर्यस्मिन्मघ्याहिताः ।  
 यत्राग्निश्चन्द्रमाः सूर्यो वातस्तिष्ठन्त्यापिताः  
 स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ १२ ॥  
 यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा अहंगे सर्वे समाहिताः ।  
 स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ १३ ॥  
 यत्र ऋषयः प्रथमजा ऋचः साम् यजुर्मही ।  
 एकर्षिर्यस्मिन्नापिताः  
 स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ १४ ॥  
 यत्रामृतं च मृत्युश्च पुरुषेऽर्षि समाहिते ।  
 समुद्रो यस्य नाड्ययुः पुरुषेऽर्षि समाहिताः  
 स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ १५ ॥  
 यस्य चतस्रः प्रदिशो नाड्ययुः स्तिष्ठन्ति प्रथमाः ।  
 यज्ञो यत्र पराक्रान्तः  
 स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ १६ ॥  
 ये पुरुषे ब्रह्म विदुस्ते विदुः परमेष्ठिनम् ।  
 यो वेदं परमेष्ठिनं यश्च वेदं प्रजापतिम् ॥  
 ज्येष्ठं ये ब्राह्मणं विदुस्ते स्कम्भमनुसाविदुः ॥ १७ ॥  
 यस्य शिरो वैश्वानरश्चक्षुरङ्गिरसोऽमवन् ।  
 अङ्गानि यस्य यातवः  
 स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ १८ ॥  
 यस्य ब्रह्म मुखमाहुर्जिह्वा मधुकशामुत ।  
 विराजुषूचो यस्याहुः  
 स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ १९ ॥  
 यस्मादृचो अपातंश्चन्यजुर्यस्मादुपाकपन् ।  
 सामानि यस्य लोमान्ययर्वाहिगारसो मुखं  
 स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ २० ॥  
 असञ्छायां प्रतिष्ठन्तीं परमामेव जना विदुः ।  
 उतो सन्मन्यन्तेऽवरे ये ते शारांमुपासते ॥ २१ ॥

यत्रादित्याश्च रुद्राश्च वसवश्च समाहिताः ।  
 मृतं च यत्र मर्त्यं च सर्वं लोकाः प्रतिष्ठिताः  
 स्कम्भं तं ब्रूहि कृतमः स्विदेव सः ॥ २२ ॥  
 यस्य त्रयस्त्रिंशदेवा निधिं रक्षन्ति सर्वदा ।  
 निधिं तमय को वेद यं देवा अभिरक्षथ ॥ २३ ॥  
 यत्र देवा ब्रह्मविदो ब्रह्म ज्येष्ठमुपासते ।  
 यो वै तान्विधात्प्रत्यक्षं स ब्रह्मा वेदिता स्यात् ॥ २४ ॥  
 बृहन्तो नाम ते देवा येऽसंतः परं जिज्ञिरे ।  
 एकं तदङ्गं स्कम्भस्यासदाहुः परो जनाः ॥ २५ ॥  
 यत्र स्कम्भः प्रजुनयन्पुराणं व्यवर्तयत् ।  
 एकं तदङ्गं स्कम्भस्य पुराणमनुसंविदुः ॥ २६ ॥  
 यस्य त्रयस्त्रिंशदेवा अङ्गो गात्रा विभेजिरे ।  
 तान्वै त्रयस्त्रिंशदेवानेकं ब्रह्मविदो विदुः ॥ २७ ॥  
 हिरण्यगर्भं परममनन्त्युद्यं जना विदुः ।  
 स्कम्भस्तदग्रे प्रासिञ्चद्विरण्यं लोके अन्तरा २८  
 स्कम्भे लोकाः स्कम्भे तपः स्कम्भेऽध्युतमाहितम् ।  
 स्कम्भं त्वा वेद प्रत्यक्षमिन्द्रे सर्वं समाहितम् २९  
 इन्द्रे लोका इन्द्रे तप इन्द्रेऽध्युतमाहितम् ।  
 इन्द्रं त्वा वेद प्रत्यक्षं स्कम्भे सर्वं प्रतिष्ठितम् ३०  
 नाम नात्रा जोहवीति पुरा सूर्यात्पुरोपसः ।  
 यदुजः प्रथमं संवभूव स ह तत्स्वराज्यमियाय  
 यस्मान्नान्यत्परमस्ति भूतम् ॥ ३१ ॥  
 यस्य भूमिः प्रमान्तरिक्षमुतोदरम् ।  
 दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ३२  
 यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः ।  
 अपि यश्चक्रे आसं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ३३  
 यस्य वातः प्राणापानौ चक्षुरङ्गिरसोऽभवन् ।  
 दिशो यश्चक्रे प्रजापतीः  
 तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥ ३४ ॥

स्कम्भो दाधार द्यावापृथिवी उमे इमे  
 स्कम्भो दाधारोर्वृन्तरिक्षम् ।  
 स्कम्भो दाधार प्रदिशः पटुर्वीः  
 स्कम्भ इदं विश्वं भुवनमा विवेश ॥ ३५ ॥  
 यः अमाचपसो जातो लोकान्तर्वाप्तमानशे ।  
 सोमं यश्चक्रे केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ३६  
 कथं वातो नेलयति कथं न रमते मनः ।  
 किमापः सत्यं प्रेप्सन्तीनेलयन्ति कदा च न ३७  
 महद्यक्षं भुवनस्य मध्ये  
 तपसि क्रान्तं सलिलस्य पृष्ठे ।  
 तस्मिन् छयन्ते य उ के च देवा  
 वृक्षस्य स्कन्धः परित इव शारदाः ॥ ३८ ॥  
 यस्मै हस्ताभ्यां पादाभ्यां वाचा श्रोत्रेण चक्षुषा ।  
 यस्मै देवाः सदा बलिं प्रयच्छन्ति विमितेऽमितं  
 स्कम्भं तं ब्रूहि कृतमः स्विदेव सः ॥ ३९ ॥  
 अप तस्य हतं तमो व्यावृत्तः स पाप्मना ।  
 सर्वाणि तस्मिन् ज्योतीषि  
 यानि त्रीणि प्रजापतौ ॥ ४० ॥  
 यो वै तसं द्विरण्यं तिष्ठन्तं सलिले वेद ।  
 स वै गुह्यः प्रजापतिः ॥ ४१ ॥  
 तन्त्रमेकं युवती विरूपे  
 अस्याकामं वयतः पण्ययाम् ।  
 प्राण्या तन्तृस्तिरते घृते अन्या  
 नापं वृक्षाते न गमातो अन्तम् ॥ ४२ ॥  
 तथोरहं परिनृत्यन्त्योरिव  
 न वि जानामि यतरा परस्तात् ।  
 पुमानेनद्वयत्युद्गणचि  
 पुमानेनदि जमाराधि नाकं ॥ ४३ ॥  
 इमे मयूखा उप तस्तमुदिचं  
 सामानि चक्रुस्तसराणि वातवे ॥ ४४ ॥ (८३९)

## २० ईश्वरस्य प्रचंडं सामर्थ्यम् ।

कांड ६, सूक्त ३३

(श्रुतिः— जाटिकायनः । देवता— इन्द्रः ।)

यस्येदमा रजो युजस्तुजे जना वनं स्वर्गः ।  
 इन्द्रस्य रन्त्यं बृहत् ॥ १ ॥  
 नार्धप आ दधृपते धृषाणो धृषितः शर्वः ।  
 पुरा यथा व्यथिः श्रव इन्द्रस्य नार्धपे शर्वः ॥ २ ॥  
 स नो ददातु तां रयिमुक्तं पिशङ्गसंदहम् ।  
 इन्द्रः पतिस्तुविष्टमो जनेष्वा ॥ ३ ॥

## २१ परमेश्वरस्य महिमा ।

कांड ६, सूक्त ६१

(श्रुतिः— अथर्वः । देवता— रुद्रः ।)

मद्यमापो मधुमदेरपन्तां  
 मद्यं सरो अमरज्ज्योतिषे कम् ।  
 मद्यं देवा उत विश्वे तपोजा  
 मद्यं देवा संविता व्यचो धात् ॥ १ ॥  
 अहं विवेच पृथिवीमुत धां  
 अहमूर्तरंजनयं सप्त साकम् ।  
 अहं सत्यमनृतं यददामि  
 अहं देवीं परि वाचं विश्व ॥ २ ॥  
 अहं जज्ञान पृथिवीमुत धां  
 अहमूर्तरंजनयं सप्त सिन्धुम् ।  
 अहं सत्यमनृतं यददामि  
 यो अग्नीषोमावर्जुषि सर्वाया ॥ ३ ॥

## २२ तेजस्वी ईश्वरः ।

कांड ६, सूक्त ३४

(श्रुतिः— आश्विनः । देवता— अग्निः ।)

प्राप्ये वाचमीरय वृषमायं क्षितीनाम् ।  
 स नः पर्पदति द्विपः ॥ १ ॥

यो रक्षांसि निजूर्वेत्यग्निस्तिग्मेन शोचिषा ।

स नः पर्पदति द्विपः ॥ २ ॥

यः परंस्याः परावतस्तिरो धन्वातिरोवते ।

स नः पर्पदति द्विपः ॥ ३ ॥

यो विश्वाभि विपश्यति ध्रुवना सं च पश्यति ।

स नः पर्पदति द्विपः ॥ ४ ॥

यो अस्य पारे रजसः शुक्रो अग्निरजायत ।

स नः पर्पदति द्विपः ॥ ५ ॥

## २३ विजयी इन्द्रः ।

कांड ६, सूक्त ९

(श्रुतिः— अथर्वः । देवता— सोमः, वनस्पतिः ।)

इन्द्राय सोममृत्विजः सुनोता च धावत ।

स्तोतुर्यो वचः शृण्वद्भवं च मे ॥ १ ॥

आ यं विशन्तीन्द्वो वयो न वृक्षमन्धसः ।

विरेश्वन्वि मृधो जहि रक्षस्विनीः ॥ २ ॥

सुनोता सोमपात्रे सोममिन्द्राय वृजिर्णे ।

युवा जेतेशानः स पुरुदुतः ॥ ३ ॥

## २४ विजयी देवः ।

कांड ७, सूक्त ४४

(श्रुतिः— प्रस्कन्वः । देवता— इन्द्रः, विष्णुः ।)

उभा जिग्मर्धुने परा जपेधे

न परा जिग्मे कतरश्चनैनयोः ॥ १ ॥

इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृषेयां

त्रेधा सहस्रं वि तर्दरेयेयाम् ॥ २ ॥

## २५ ईश्वरस्य ध्यानं ।

कांड ७, सूक्त ७१

(श्रुतिः— अथर्वः । देवता— अग्निः ।)

परं त्वाग्ने पुरं ययं विप्रं सहस्य धीमहि ।

पृषद्वर्णं दिवेदिवे हुन्तारं भङ्गुरावतः ॥ १ ॥

## २६ रक्षक-ईश्वरः ।

कांड ७, सूक्त ६३

( ऋषिः— मरीचिः काश्यपः । देवता— आत्वेन्द्राः । )

पुतनाजितं सहमानमग्निं  
उक्थैर्हवामहे परमात्सुधस्यात् ।

स नः पर्यदति दुर्गाणि विश्वा

क्षामहेवोऽतिं दुरितान्यग्निः ॥ १ ॥

## २७ नृचक्षः इयेनः ।

कांड ७, सूक्त ४१

( ऋषिः— प्रह्वः । देवता— इयेनः । )

अति धन्वान्यत्यपस्ततर्द  
इयेनो नृचक्षा अवसानदुर्धः ।

तरन्विश्वान्यवरा रजांसि

इन्द्रेण सख्या शिव आ जंगम्यात् ॥ १ ॥

इयेनो नृचक्षा दिव्यः सुपर्णः

सहस्रपाञ्चतयैर्निर्वयोधाः ।

स नो नि यच्छादसु यत्परामृतं

असाकमस्तु पितृषु स्वधावत् ॥ २ ॥

## २८ एकः पतिः ।

कांड ७, सूक्त २१

( ऋषिः— ब्रह्मा । देवता— आत्मा । )

समेत विश्वे वचसा पतिं दिव

एको विभूरतिरिर्जनानाम् ।

स पूर्वो नूतनमाविवांसु

तं वर्तनिरतुं वावृत् एकमित्पुरु ॥ १ ॥

## २९ सर्वस्य उत्पादकः ।

कांड ७, सूक्त १४

( ऋषिः— अथर्वः । देवता— सविता । )

अभि त्वं देवं संवितारं प्रोष्योऽ कविकंतुम् ।

अचोभि सत्यसंव रत्नधामभि प्रियं मातुम् ॥ १ ॥

ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा अदिद्युतत्सर्वमनि ।

हिरण्यपाणिरमिमीत सुकृतुः कृपात्स्वः ॥ २ ॥

सावीर्हि देव प्रथमार्थं पित्रे

वृष्माणमसै वरिमाणमसै ।

अयास्मभ्यं सवितुर्वार्याणि

दिवोदिव आ सुंश भूरि पश्वः ॥ ३ ॥

दमूना देवः संविता वरेण्यः

दधद्रक्षं दक्षं पितृभ्य आरूयि ।

पिवात्सोमं मुमददेनमिष्टे

परिजमा चिरक्रमते अस्य धर्मणि ॥ ४ ॥

## ३० सविता देवः ।

कांड ७, सूक्त १५

( ऋषिः— भृगुः । देवता— सविता । )

तां संवितः सत्यसर्वा सुचित्रां

आहं वृणे सुमतिं विश्ववाराम् ।

यामस्य कण्ठो अर्दुहृत्प्रपीनां

सहस्रचारं महिषो मगाय ॥ १ ॥

## ३१ कवीनां ज्योतिः ।

कांड ७, सूक्त २०

( ऋषिः— ब्रह्मा । देवता— मंगोका, १ म. १ । )

अयं सहस्रमा नो ह्ये कवीनां

मत्विज्योतिर्विधर्मणि ॥ १ ॥

ब्रह्मः सुमीचीरुपसः समैरयन् ।

अरेपसः सचैतसः स्वसरे मन्युमर्त्तमाश्रिते गोः २

## ३२ स्वस्तिदा पोषकः ।

कांड ७, सूक्त ९

( ऋषिः— सगरिब्रह्मः । देवता— पूषा । )

प्रपथे पूषामर्जनिष्ट पूषा

प्रपथे दिवः प्रपथे पृथिव्याः ।

उमे अभि प्रियतमे सुधस्ये

आ च परा च चरति प्रजानन् ॥ १ ॥ (८९८)

पूषेमा आशा अनु वेद सर्वाः  
सो अस्माँ अभयतमेन नेपत् ।

स्तुस्तिदा आर्घुणि सर्ववीरः

अप्रयुच्छन्पुर एतु प्रजानन् ॥ २ ॥

पूषन्तव व्रते वयं न रिष्येम कदा चन ।

स्तोतारस्त इह स्मसि ॥ ३ ॥

परि पूषा प्रस्ताद्वस्तं दधातु दक्षिणम् ।

पुनर्नो नष्टमाजतु सं नष्टेन गमेमहि ॥ ४ ॥

३३ परमं धाम ।

कांड १, सूक्त १३

(ऋषि- मृगशिरा । देवता- विद्युत् ।)

नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयिज्ञवे ।

नमस्ते अस्त्वश्मने येना दूडाशे अस्मसि ॥ १ ॥

नमस्ते प्रवतो नपाद्यतस्तपः समृहसि ।

मृडया नस्तन्मृष्यो मयस्तोकेभ्यस्कुधि ॥ २ ॥

प्रवतो नपाज्जम एवास्तु तुभ्यं

नमस्ते हेतये तपुषे च कुपमः ।

त्रिभ ते धाम परमं गुहा यत्

समुद्रे अन्तर्निहितासि नमिः ॥ ३ ॥

यां त्वा देवा अलुजन्तु विश्वे

इष्टे कृष्णाना असनाय धृष्णुम् ।

सा नो मृड विदये गृणाना

तस्यै ते नमो अस्तु देवि ॥ ४ ॥

३४ विश्वंभरः ।

कांड २, सूक्त १६

(ऋषि - मद्रा । देवता- प्राण, अयान, आयु ।)

प्राणापानौ मृत्योर्मा पातुं स्वाहा ॥ १ ॥

घावापृथिवी उपश्रुत्या मा पातुं स्वाहा ॥ २ ॥

यस्य चक्षुषा मा पाहि स्वाहा ॥ ३ ॥

अग्रे त्रैश्वानर विश्वेर्मा देवैः पाहि स्वाहा ॥ ४ ॥

विश्वंभर विश्वेन मा भरसा पाहि स्वाहा ॥ ५ ॥

३५ कस्मै देवाय हविषा विधेम ?

कांड ४, सूक्त १

य आत्मदा बलदा यस्य विश्वं

उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।

योष्टुस्तेष्वे द्विपदो यश्चतुष्पदः

कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १ ॥

यः प्राणतो निर्मिपुतो महित्वा

एको राजा अगतो बभूव ।

यस्य च्छायामृतं यस्य मृत्युः

कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ २ ॥

यं क्रन्दसी अवतश्चस्कमाने

मियसानि रोदसी अह्वयेषाम् ।

यस्यासौ पन्था रजसो विमानः

कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ३ ॥

यस्य द्यौर्वा पृथिवी च मही

यस्याद उर्वान्तरिक्षम् ।

यस्यासौ सरो विततो महित्वा

कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ४ ॥

यस्य विश्वं हिमवन्तो महित्वा

समुद्रे यस्य रसामिदाहुः ।

इमार्थे प्रदिशो यस्य बाहू

कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ५ ॥

आपो अग्ने विश्वमावन्

गर्भे दद्याना अमृतो ऋतज्ञाः ।

यासु देवीष्वधि देव आसीत्

कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ६ ॥ (११६)



हिरण्यगर्भः समवर्ततग्रि

मृतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।

स दाधार पृथिवीमुत द्यां

कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ७ ॥

आपो वत्सं जनयन्तीर्गर्भमग्रे समैरयन् ।

तस्योत जायमानस्योत्वं आसीद्विरण्ययः

कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ८ ॥

३६ ब्रह्मा ।

कांड १०, सूक्त २

(श्रुतिः- नारायणः । देवता- पार्ष्णिस्तुतम्, पुरुषः,  
ब्रह्मप्रकाशनम् ।)

केन पार्ष्णीं आमृतं पूरुषस्य

केन मांसं समृतं केन गुल्फौ ।

केनाङ्गुलीः पेशनीः केन खानि

केनोच्छ्रुल्लङ्घौ मन्थतः कः प्रतिष्ठाप्य ॥ १ ॥

कस्मान्न गुल्फावधरावकृण्वन्

अष्टौवन्ताञ्जुत्तरौ पूरुषस्य ।

जङ्घे निर्ऋत्य न्यदिधुः क्व सिवत्

जानुनोः संघी क उ तर्धिकेत ॥ २ ॥

चतुष्टयं युज्यते संहितान्तं

जानुभ्यामुर्ध्वं शिथिरं कवन्धम् ।

श्रोणी यदूरु क उ तज्जजान

याम्यां कुसिन्धं सुदंठं बभूव ॥ ३ ॥

कर्ति देवाः कतमे त आसन्

य उरौ ग्रीवाधिक्युः पूरुषस्य ।

कति स्तनौ व्यदिधुः कः कफोढौ

कर्ति स्कन्धानकर्ति पृष्टारचिन्वन् ॥ ४ ॥

को अस्य बाहू सममरद्वीर्यं करवादिति ।

अंसौ को अस्य तदेवः कुसिन्धे अघ्या दधौ ॥ ५ ॥

कः सुप्त खानि वि ततर्द ग्रीर्षणि

कर्णोन्मिर्मा नासिके चक्षणी मुखम् ।

येषां पुरुषा विजयस्य मृक्षानि

चतुष्पादो द्विपदो यन्ति यामम् ॥ ६ ॥

हन्वोर्हि जिह्वामदधात्पुरुचीं

अघां महीमधिं शिथ्राय वाचम् ।

स आ वरीवर्ति मृवनेभ्यन्तः

अपो वसानः क उ तर्धिकेत ॥ ७ ॥

मस्तिष्कमस्य यतमो छलाटं

ककार्तिर्कां प्रथमो यः कपालम् ।

चित्वा चित्त्वं हन्वोः पूरुषस्य

दिवं करोह कतमः स देवः ॥ ८ ॥

प्रियाप्रियाणि बहुला स्वप्नं संवाधतुन्यः ।

आनन्दानुगो नन्दाश्च कस्माद्ब्रह्मति पूरुषः ॥ ९ ॥

आतिस्वतिर्निर्ऋतिः कुतो उ पुरुषेऽमतिः ।

रादिः समद्विरूपद्विर्मितिरुदितयः कुतः ॥ १० ॥

को अस्मिन्नापो व्यदधाद्विपवृतः

पुरुवृतः सिन्धुसृत्याय जाताः ।

तोवा अरुणा लोहिनीस्ताम्रघ्रा

ऊर्ध्वा अवाचीः पुरुषे तिरश्चीः ॥ ११ ॥

को अस्मिन्नूपमदधात्को मृक्षानं च नाम च ।

गातुं को अस्मिन्कः कतुं कश्चरिषाणि पूरुषे १२

को अस्मिन्प्राणमवयत्को अपानं व्यानसु ।

समानमस्मिन्को देवोऽधि शिथ्राय पूरुषे ॥ १३ ॥

को अस्मिन्यज्ञमदधात्को देवोऽधि पूरुषे ।

को अस्मिन्स्तव्यं कोऽनृतं

कुतो मृत्युः कुतोऽमृतम् ॥ १४ ॥

को अस्मिन् वासः पर्यदधादेको अस्यायुरकल्पयत् ।

बलं को अस्मिन् प्रायच्छत्

को अस्याकल्पयज्जवम् ॥ १५ ॥

केनापो अन्वतसुतु केनाहरकरोदुचे ।  
 उपसं केनान्वैन्द्र केन सायंभवं ददे ॥ १६ ॥  
 को अस्मिन्नेतो न्यदिषात्तन्तुरा तांयतामिति ।  
 मेधां को अस्मिन्मध्यैहृत्  
 को बाणं को नृतो दधौ ॥ १७ ॥  
 केनेमां भूमिर्माणोत्केन पर्यभवदिवम् ।  
 केनामि मृद्धा पर्वतात् केन कर्माणि पूरुषः ॥ १८ ॥  
 केन पर्जन्यमन्वेति केन सोमं विचक्षणम् ।  
 केन यज्ञं च श्रद्धां च केनास्मिन्निहितं मनः ॥ १९ ॥  
 केन श्रोत्रियमाप्नोति केनेमं परमेष्ठिनम् ।  
 केनेममग्निं पूरुषः केन संवत्सरं ममे ॥ २० ॥  
 ब्रह्म श्रोत्रियमाप्नोति ब्रह्मेमं परमेष्ठिनम् ।  
 ब्रह्मेममग्निं पूरुषो ब्रह्म संवत्सरं ममे ॥ २१ ॥  
 केन देवा अतु क्षियति केन दैवजनीर्विशः ।  
 केनेदमन्यन्नक्षत्रं केन सत्स्रवर्ग्ययते ॥ २२ ॥  
 ब्रह्म देवा अतु क्षियति ब्रह्म दैवजनीर्विशः ।  
 ब्रह्मेदमन्यन्नक्षत्रं ब्रह्म सत्स्रवर्ग्ययते ॥ २३ ॥  
 केनेयं भूमिर्विहिता केन द्यौरुत्तरा हिता ।  
 केनेदमूर्ध्वं तिर्यक्चान्तरिक्षं व्यचौ हितम् ॥ २४ ॥  
 प्रक्षेणा भूमिर्विहिता ब्रह्म द्यौरुत्तरा हिता ।  
 प्रक्षेदमूर्ध्वं तिर्यक्चान्तरिक्षं व्यचौ हितम् ॥ २५ ॥  
 मूर्धानमस्य संसीध्वार्धमा हृदयं च यत् ।  
 मन्त्रिष्वाद्दूर्ध्वं प्रैर्यत्पर्वमानोऽधि शीर्षतः ॥ २६ ॥  
 तद्वा अर्धेणः शिरो देवकोशः सम्वजितः ।  
 तत्प्राणो अग्नि रक्षति शिरो अन्नमथो मनः ॥ २७ ॥  
 ऊर्ध्वो तु गृष्टाश्चित्पिष्टं तु मृष्टाः ।  
 गर्वा दिशः पूरुष आ संभूषां ३ ।  
 पुरं यो ब्रह्मणो वेदु यस्याः पूरुष उच्यते ॥ २८ ॥  
 यो ये तां ब्रह्मणो वेदामृतेनावृतां पुरम् ।  
 पश्मे ब्रह्म च प्राप्तास्य पशुः प्राणो ब्रह्मो ददुः ॥ २९ ॥

न वै तं चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा ।  
 पुरं यो ब्रह्मणो वेदु यस्याः पूरुष उच्यते ॥ ३० ॥  
 अष्टाचक्रा नवंद्वारा देवानां पूरयोध्या ।  
 तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ॥ ३१ ॥  
 तस्मिन्हिरण्यये कोशे व्यरि त्रिप्रतिष्ठिते ।  
 तस्मिन्यष्टाक्षमात्मन्वत्तद्वै ब्रह्मविदो विदुः ॥ ३२ ॥  
 प्रभ्राजमानां हरिणीं यशसा संपरिवृताम् ।  
 पुरं हिरण्ययीं ब्रह्मा विवेशापराजिताम् ॥ ३३ ॥

३७ दिव्यं महः ।

कांड ६, सूक्त १०

( श्रवि - अथवा । देवता - चरमा । )

अन्तरिक्षेण पतति विश्वा मृतावचाकेशतु ।  
 शुनो दिव्यस्य यन्महस्तेनो ते हविषा विधेम ॥ १ ॥  
 ये त्रयः कालकाञ्चा दिवि देवा इव श्रिताः ।  
 तान्सर्वानह्व ऊतयेऽस्मा अरिष्टतातये ॥ २ ॥  
 अप्सु ते जन्मे दिवि ते सुधस्यं  
 समुद्रे अन्तर्भहिमा ते पृथिव्याम् ।  
 शुनो दिव्यस्य यन्महस्तेनो ते हविषा विधेम ॥ ३ ॥

३८ स्वर्ज्योतिः ।

कांड ४, सूक्त १४

( श्रवि - मय । देवता - आर्य, अग्निः । )

अजो वा शीघ्रेरजनिष्ट शोकात्  
 सो अपश्यज्जनितामग्ने ।  
 तेन देवा देवतामग्ने आयन्  
 तेन रोहाञ्जुरुर्मेष्यासः ॥ १ ॥  
 कर्मपुत्रमग्निना नाकमुखाहस्तेषु पित्रतः ।  
 दिवस्पृष्ठं स्वर्गित्वा मिथा देवेभिराप्सवम् ॥ २ ॥  
 पृष्टात्पृथिव्या अहमन्तरिक्षमारुहं  
 अन्तरिक्षादिवमारुहम् ।  
 दिवो नाकेस्य पृष्टात्स्वर्ग्योतिरिगामहम् ॥ ३ ॥

स्वर्ग्यन्तो नार्पक्षन्त आ द्यां रोहन्ति रोदसी ।  
यज्ञं ये विश्वतोभारं सुविद्वांसो वितेनिरे ॥ ४ ॥

अग्ने प्रेहि प्रथमो देवतानां  
चक्षुर्देवानामुत मानुषाणाम् ।  
इयंक्षमाणा भृगुभिः सजोषाः  
स्वर्ग्यन्तु यजमानाः स्वास्ति ॥ ५ ॥

अजमनजिम् पर्यसा धृतेनं  
दिव्यं सुपर्णं पयसं बृहन्तम् ।  
तेन मेष्म सुकृतस्य लोकं  
स्वर्गिरोहन्तो अग्निं नाकमुत्तमम् ॥ ६ ॥

पञ्चोदनं पञ्चभिरह्यगुलिभिः  
दक्ष्योर्द्वर पञ्चघैतमौदनम् ।  
प्राच्यां दिशि शिरो अजस्यं वेदि  
दक्षिणायां दिशि दक्षिणं वेदि पार्श्वम् ॥ ७ ॥

प्रतीच्यां दिशि मसदमस्य वेदि  
उत्तरस्यां दिश्युत्तरं वेदि पार्श्वम् ।  
ऊर्ध्वायां दिश्युजस्यानूकं वेदि  
दिशि ध्रुवायां वेदि पाजस्यम् ॥ ८ ॥

अन्तरिक्षं मध्यतो मध्यमस्य  
श्रुतमजं श्रुतया प्रोर्णुहि त्वचा  
सर्वरक्षैः संभृतं विश्वरूपम् ।  
स उत्तिष्ठेतो अग्निं नाकमुत्तमं  
प्रक्षिप्यतुभिः प्रति तिष्ठ दिक्षु ॥ ९ ॥

३९ द्रविणोदा जातवेदाः ।  
॥ काण्ड, १९, सूक्त १  
(ऋषिः—अथर्वहिराः । देवता—अग्निः ।)

दिवस्पृषिण्याः पर्यन्तरिक्षाद्  
वनस्पतिभ्यो अघोषधीभ्यः ।  
यत्र यत्र विर्मतो जातवेदाः  
तत्र स्तुतो जुषमाणो न एहि ॥ १ ॥

यस्ते अप्सु महिमा यो वनेषु  
य ओषधीषु पशुष्वप्सु न्तः ।  
अग्ने सर्वास्तन्वः सं रभस्व  
ताभिर्न एहि द्रविणोदा अजस्रः ॥ २ ॥

यस्ते देवेषु महिमा स्वर्गः  
या ते तनूः पितृष्विवेशं ।  
पृष्टिर्या ते मनुष्येषु पप्रथे  
अग्ने तया रयिमस्मासुं वेदि ॥ ३ ॥

श्रुत्कर्णाय क्वयं वेद्याय  
वचोभिर्वाकैरुप यामि रातिम् ।  
यतो भयममयं तन्नो अस्तु  
अवं देवानां यज हवो अमे ॥ ४ ॥

४० जगतः राजा ।

काण्ड १९, सूक्त ५

(ऋषिः—अथर्वहिराः । देवता—इन्द्रः ।)

इन्द्रो राजा जगतर्धर्षणीनां  
अग्निं क्षमि विपुरुषं यदस्ति ।  
ततो ददाति दाशुषे वधन्ति  
चोदुद्राघ उपस्तुतश्चिदुर्वाक् ॥ १ ॥

४१ ब्रह्मा ।

काण्ड १९, सूक्त ४३

(ऋषिः—ब्रह्मा । देवता—ब्रह्मा, बहवो देवाः ।)

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सुह ।  
अग्निर्मा तत्र नयत्प्रभिर्मघा दधातु मे ।  
अग्रं स्वाहा ॥ १ ॥  
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सुह ।  
वायुर्मा तत्र नयत् वायुः प्राणान्दधातु मे ।

वायवे स्वाहा ॥ २ ॥  
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सुह ।  
सूर्यो मा तत्र नयत् सूर्यः सूर्यो दधातु मे ।  
सूर्याय स्वाहा ॥ ३ ॥ (१०१)

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तर्पसा सह ।  
 चन्द्रो मा तत्र नयतु मनश्चन्द्रो दधातु मे ।  
 चन्द्राय स्वाहा ॥ ४ ॥  
 यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तर्पसा सह ।  
 सोमो मा तत्र नयतु पयः सोमो दधातु मे ।  
 सोमाय स्वाहा ॥ ५ ॥  
 यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तर्पसा सह ।  
 इन्द्रो मा तत्र नयतु चलमिन्द्रो दधातु मे ।  
 इन्द्राय स्वाहा ॥ ६ ॥  
 यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तर्पसा सह ।  
 आपो मा तत्र नयन्त्वमृतं मोषं तिष्ठतु ।  
 अग्न्यः स्वाहा ॥ ७ ॥  
 यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तर्पसा सह ।  
 ब्रह्मा मा तत्र नयतु ब्रह्मा ब्रह्म दधातु मे ।  
 ब्रह्मणे स्वाहा ॥ ८ ॥

## ४२ आत्मा ।

काण्ड १९, सूक्त ५१

( ऋषिः - ब्रह्मा । देवता - आत्मा, सविता च । )

अयुतोऽहमयुतो म आत्मायुतं मे चक्षुः  
 अयुतं मे श्रोत्रमयुतो मे प्राणोऽयुतो  
 मेऽपानोऽयुतो मे व्यानोऽयुतोऽहं सर्वैः ॥ १ ॥  
 देवस्यै त्वा सन्नितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां  
 पूष्णो हस्ताभ्यां प्रसृत आ रमे ॥ २ ॥

## ४३ प्रजापतिः ।

काण्ड १६, सूक्त १

( ऋषि - अपमर्षा । देवता - प्रजापति । )

( १ )

अतिमृष्टो अपां वृषमः  
 अतिमृष्टा अपयो द्विष्याः ॥ १ ॥

रुजन्परिरुजन्मृणन्प्रमृणन् ॥ २ ॥

म्रोको मनोहा खनो निर्दाह

आत्मदूर्पिस्तनुदूर्पिः ॥ ३ ॥

इदं तमतिं सृजामि तं माम्यवनिक्षि ॥ ४ ॥

तेन तमभ्यतिसृजामः

योऽहं स्थान्द्रेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥ ५ ॥

अपामग्रमसि समुद्रं वोऽभ्यवसृजामि ॥ ६ ॥

योऽहं पृथ्वीमिरति तं सृजामि

म्रोकं खनिं तनुदूर्पिम् ॥ ७ ॥

यो बं आपोऽग्निराविवेश

स एष यद्वो घोरं तदेतत् ॥ ८ ॥

इन्द्रस्य व इन्द्रियेणामि पिञ्चेत् ॥ ९ ॥

अरिप्रा आपो अपं रिप्रमस्मत् ॥ १० ॥

प्रास्मदेनो वहन्तु प्र दुग्धज्यं वहन्तु ॥ ११ ॥

शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः

शिवया तन्वोषं स्पृशत त्वचं मे ॥ १२ ॥

शिवानग्नीनं प्रपदो हवामहे

मयि क्षत्रं वचं आ धत्त देवीः ॥ १३ ॥

( २ )

निर्दुर्मृष्यं रुजं मधुमती वाक् ॥ १ ॥

मधुमती स्थ मधुमती वाचमुदेयम् ॥ २ ॥

उपहृतो मे गोपा उपहृतो गोपीयः ॥ ३ ॥

सुश्रुतौ कर्णौ मद्रश्रुतौ कर्णौ

मद्रं श्लोकं श्रयासम् ॥ ४ ॥

सुश्रुतिश्च मोषश्रुतिश्च मा हांसिष्टां

सोपणं चक्षुरजंघं ज्योतिः ॥ ५ ॥

ऋषीणां प्रस्तरोऽसि

नमोऽस्तु देवाय प्रस्तराय ॥ ६ ॥ (१९०)

( ३ )

मूर्धाहं रयीणां मूर्धा समानानां भूयासम् ॥ १ ॥

रुजश्च मा वेनश्च मा हासिष्टां

मूर्धा च मा विधर्मा च मा हासिष्टाम् ॥ २ ॥

उर्वश्च मा चमसश्च मा हासिष्टां

धर्ता च मा धरुणश्च मा हासिष्टाम् ॥ ३ ॥

विमोक्षश्च मारुपविश्च मा हासिष्टां

आर्द्रदानुश्च मा मातरिष्ठां च मा हासिष्टाम् ॥ ४ ॥

मृदुस्पर्शश्च आत्मा जमणा नाम हर्षः ॥ ५ ॥

असंतापं मे हृदयमूर्धा गव्यपूतिः

समुद्रो अस्मि विधर्मणा ॥ ६ ॥

( ४ )

नामिरहं रयीणां नामिः समानानां भूयासम् ॥ १ ॥

स्वासदसि सुपा अमृतो मर्त्येष्वाम् ॥ २ ॥

मा मा प्राणो हासीत्

भो अपानः अवहाय परां गात् ॥ ३ ॥

सूर्यो माहः पात्वभिः पृथिव्या वापुर्न्तरिक्षात्

यमो मनुष्येभ्यः सरस्वती पार्थिवेभ्यः ॥ ४ ॥

प्राणापानौ मा मा हासिष्टं मा जने प्र मेवि ॥ ५ ॥

स्वस्त्यष्टोपसंक्षेपः

सर्वे आपः सर्वगणो अग्नीय ॥ ६ ॥

शक्रवरी स्थ पञ्चवो भोषं स्येपुः

मित्रावरुणौ मे प्राणापानावग्निर्मृद्वं दृष्टुम् ॥ ७ ॥

विद्य तं स्वप्न जनित्रं

निर्मित्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः ।

अन्तर्को० । तं त्वा० ॥ ४ ॥

विद्य तं स्वप्न जनित्रं

अभूत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः ।

अन्तर्को० । तं त्वा० ॥ ५ ॥

विद्य तं स्वप्न जनित्रं

निर्मित्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः ।

अन्तर्को० । तं त्वा० ॥ ६ ॥

विद्य तं स्वप्न जनित्रं

पराभूत्याः पुत्रोऽसि कनस्य करणः ।

अन्तर्को० । तं त्वा० ॥ ७ ॥

विद्य तं स्वप्न जनित्रं

देवत्राणीनां पुत्रोऽसि यमस्य करणः ।

अन्तर्को० । तं त्वा० ॥ ८ ॥

अन्तर्को० । तं त्वा०

॥ ९ ॥

तं त्वा० जन्तुः तं त्वा०

॥ १० ॥

जाग्रदुप्यं स्वप्नेदुप्यं मृ ॥ ९ ॥  
 अनामिष्यतो वरानविंतेः  
 संकल्पानमृच्या द्रुहः पाशान् ॥ १० ॥  
 तदुमुष्मां अमे देवाः परां वहन्तु  
 वधिर्यथासद्विधुरो न साधुः ॥ ११ ॥

(७)

तेनैनं विद्याम्यभूत्यैनं विद्यामि  
 निभूत्यैनं विद्यामि  
 पराभूत्यैनं विद्यामि ग्राह्यैनं विद्यामि  
 तमसेनं विद्यामि ॥ १ ॥  
 देवानामिनं घोरैः क्रूरैः प्रैरभिप्रेष्यामि ॥ २ ॥  
 वैश्वानरस्यैनं दंष्ट्रयोरपि दधामि ॥ ३ ॥  
 एषानेवाव सा गरत् ॥ ४ ॥  
 योऽस्मान्द्वेष्टि तमात्मा द्वेष्टु ॥ ५ ॥  
 यं वयं द्विष्मः स आत्मानं द्वेष्टु  
 निद्विषन्तं दिवो निः पृथिव्या  
 निरन्तरिक्षाद्भजाम ॥ ६ ॥  
 सुयामंश्चाक्षुष ॥ ७ ॥  
 इदमहमाहुष्यायणेऽमुष्याः पुत्रे दुष्वप्यं मृजे ८  
 यदुदोऽजो अम्यगच्छन्यहोषा यत्पूर्वा रात्रिम् ९  
 यजाग्रद्यत्सुप्ता यद्विषा यन्नक्तम् ॥ १० ॥  
 यदहरहरमिगच्छामि तस्मादेनमव दये ॥ ११ ॥  
 तं जहि तेन मन्दस्व तस्य पृथीरपि शृणीहि १२  
 स मा जीवीचं प्राणो जहातु ॥ १३ ॥

(८)

जितमुस्माकमुद्भिन्नमुस्माकं  
 अतमुस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं  
 सूरिस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं  
 प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।

तस्मादुष्टं निर्मजामः  
 अमुमाहुष्यायणमुष्याः पुत्रमुसौ यः ।  
 रा ग्राह्याः पाशान्मा मोचि ।  
 तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुः  
 निर्वैद्यामीदमेनमधुराश्च पादयामि ॥ १-४ ॥ १ ॥  
 जितमुस्माकमुद्भिन्नमुस्माकं ।  
 स निर्भूत्याः पाशान्मा मोचि ।  
 तस्येदं वर्चस्तेजः ॥ ५ ॥ २ ॥  
 जितमुस्माकमुद्भिन्नमुस्माकं ।  
 सोऽभूत्याः पाशान्मा मोचि ।  
 तस्येदं वर्चस्तेजः ॥ ६ ॥ ३ ॥  
 जितमुस्माकमुद्भिन्नमुस्माकं ।  
 स निर्भूत्याः पाशान्मा मोचि ।  
 तस्येदं वर्चस्तेजः ॥ ७ ॥ ४ ॥  
 जितमुस्माकमुद्भिन्नमुस्माकं ।  
 स पराभूत्याः पाशान्मा मोचि ।  
 तस्येदं वर्चस्तेजः ॥ ८ ॥ ५ ॥  
 जितमुस्माकमुद्भिन्नमुस्माकं ।  
 स देवजामीनां पाशान्मा मोचि ।  
 तस्येदं वर्चस्तेजः ॥ ९ ॥ ६ ॥  
 जितमुस्माकमुद्भिन्नमुस्माकं ।  
 स बृहस्पतेः पाशान्मा मोचि ।  
 तस्येदं वर्चस्तेजः ॥ १० ॥ ७ ॥  
 जितमुस्माकमुद्भिन्नमुस्माकं ।  
 स प्रजापतेः पाशान्मा मोचि ।  
 तस्येदं वर्चस्तेजः ॥ ११ ॥ ८ ॥  
 जितमुस्माकमुद्भिन्नमुस्माकं ।  
 स ऋषीणां पाशान्मा मोचि ।  
 तस्येदं वर्चस्तेजः ॥ १२ ॥ ९ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०  
 स आर्षेयानां पाशान्मा मौचि ।  
 तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ १३ ॥ १० ॥  
 जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०  
 सोऽङ्गिरसां पाशान्मा मौचि ।  
 तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ १४ ॥ ११ ॥  
 जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०  
 स आङ्गिरसानां पाशान्मा मौचि ।  
 तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ १५ ॥ १२ ॥  
 जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०  
 सोऽयर्वणां पाशान्मा मौचि ।  
 तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ १६ ॥ १३ ॥  
 जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०  
 स आयर्वणानां पाशान्मा मौचि ।  
 तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ १७ ॥ १४ ॥  
 जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०  
 स वनस्पतीनां पाशान्मा मौचि ।  
 तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ १८ ॥ १५ ॥  
 जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०  
 स वानस्पत्यानां पाशान्मा मौचि ।  
 तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ १९ ॥ १६ ॥  
 जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०  
 स ऋतूनां पाशान्मा मौचि ।  
 तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ २० ॥ १७ ॥  
 जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०  
 स आर्तवानां पाशान्मा मौचि ।  
 तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ २१ ॥ १८ ॥  
 जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०  
 स मासानां पाशान्मा मौचि ।

तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ २२ ॥ १९ ॥  
 जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०  
 सोऽर्धमासानां पाशान्मा मौचि ।  
 तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ २३ ॥ २० ॥  
 जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०  
 सोऽहोरात्रयोः पाशान्मा मौचि ।  
 तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ २४ ॥ २१ ॥  
 जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०  
 सोऽहोः संयतोः पाशान्मा मौचि ।  
 तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ २५ ॥ २२ ॥  
 जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०  
 स द्यावापृथिव्योः पाशान्मा मौचि ।  
 तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ २६ ॥ २३ ॥  
 जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०  
 स इन्द्रान्योः पाशान्मा मौचि ।  
 तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ २७ ॥ २४ ॥  
 जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०  
 स मित्रावरुणयोः पाशान्मा मौचि ।  
 तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ २८ ॥ २५ ॥  
 जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०  
 स राज्ञो वरुणस्य पाशान्मा मौचि ।  
 तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ २९ ॥ २६ ॥  
 जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०  
 स मृत्योः पद्वीशान् पाशान्मा मौचि ।  
 तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ ३०-३३ ॥ २७ ॥

(१)

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं  
 अम्यष्टां विश्वाः पृथ्वा अराधीः ॥ १ ॥  
 (१००९)

तदुमिराह तदु सोमं आह  
 पूषा मां धात्सुकृतस्य लोके ॥ २ ॥  
 अगन्म स्वर्गः स्वर्गिगन्म  
 सं स्वर्गस्य ज्योतिषागन्म ॥ ३ ॥  
 वसोभूयां वसुमान्यज्ञो वसु वंशिपीथ  
 वसुमान्भूयासं वसु मयि धेहि ॥ ४ ॥

४४ प्राणः ।

कांड ७, सूक्त ४

(ऋषि - अथर्वी मन्त्राच्येसकामः । देवता - वायु ।)

एकया च दुशभिश्चा सुहुते  
 द्वाभ्यामिष्ट्यै विश्रुत्या च ।  
 तिसृभिश्च बहसे त्रिंशता च  
 विसृग्भिर्वाय इह ता वि मुञ्च ॥ १ ॥

४५ आत्मयज्ञः ।

कांड ७, सूक्त ५

(ऋषि - अथर्वी 'मन्त्राच्येसकामः' । देवता - आत्मा ।)

युजेन यज्ञमयजन्त देवाः  
 तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।  
 ते ह नार्कं महिमानः सचन्तु  
 यत्र पूर्वं साध्याः सन्ति देवाः ॥ १ ॥  
 यज्ञो बभूव स आ बभूव  
 स प्र जज्ञे स उ वावृधे पुनः ।  
 स देवानामधिपतिर्वभूव  
 सो अम्मासु द्रविणमा दधातु ॥ २ ॥  
 यदेवा देवान्हविषार्पजन्तामत्यन्मनसाभर्त्येन ।  
 मदम तत्र परमे व्योमिन्पश्येम तदुदितौ सूर्यस्य ३  
 यत्पुरुषेण हविषा युष्टं देवा अतन्वत ।  
 अस्ति तु तस्मादोजीषो यद्विहव्येनजिरे ॥ ४ ॥  
 मुग्धा देवा उत शुनायजन्तु  
 उत गोरक्षः पुरुषार्पजन्तु ।

य इमं युजं मनसा चिकेत  
 प्र णो वोचस्तमिहेह व्रवः ॥ ५ ॥

४६ त्रितः धर्ता ।

कांड ५, सूक्त १

(ऋषि - बृहद्विदोऽथर्वी । देवता - वरुणः ।)

ऋधं ह्यमन्त्रो योनिं य आ वभूव  
 अमृतोत्सर्वधमानः सुजन्मा ।  
 अदग्धासुर्भ्राजमानोऽहंव  
 त्रितो धर्ता दाधार त्रीणि ॥ १ ॥  
 आ यो धर्माणि प्रथमः सुसादु  
 ततो वपुषि कणुषे पुरुषि ।  
 धास्युषोनिं प्रथम आ विवेश  
 आ यो वाचमनुदितां चिकेत ॥ २ ॥  
 यस्ते शोकाय तन्वतिरेच  
 क्षरद्विरप्यं शुचयोऽनु स्वाः ।  
 अत्रा दधेते अमृतानि नाम  
 अस्मे वस्त्राणि विश्व परयन्ताम् ॥ ३ ॥  
 प्र यदेते प्रतुरं पूर्वं गुः  
 सदांसद आतिष्ठन्तो अजुष्यम् ।  
 कविः शुपस्यं मातरां रिहाणे  
 जाम्यै पुष्यं पतिमेरयेधाम् ॥ ४ ॥  
 तदु पु ते महत्पुषुज्मन्ममः  
 कविः कान्वेना कृणोमि ।  
 यत्सम्यञ्चावभियन्तावमि क्षां  
 अत्रा मही रोधचक्रे वावृधेत ॥ ५ ॥  
 सप्त मर्यादाः कुर्यस्ततस्तुः  
 तासांमिदेकामभ्यं हुरो गात्र ।  
 आयोर्ह स्कुम्म उपमस्य नीढे  
 पर्यां विसर्गे धरुणेषु तस्यौ ॥ ६ ॥ (१०८७)



उतामृतासुर्वत एमि कृष्वन्  
असुरात्मा तन्वस्तत्सुमद्रुः ।

उत वा शक्रो रत्नं दधाति  
ऊर्जया वा यत्सर्चते हविर्दोः

उत पुत्रः पितरं क्षत्रमीडे  
ज्येष्ठं मर्यादमह्वयन्स्वस्तये ।

दर्शन्नु ता वरुण यास्ते विष्टा  
आचरन्ततः कृण्वो वर्षपि

अर्धमर्धेन पर्यसा षणक्षि  
अर्धेन शुष्म वर्षसे अमुर ।

अर्वि वृधाम शग्मियं सखायं  
वरुणं पुत्रमर्दित्या हविरम् ।

कविशस्तान्यस्मै वर्षपि  
अवोचाम रोदसी सत्यवाचा

४७ दिव्य-दृष्टिः ।

कांड ४, सूक्त २०

( ऋषिः - मातृनामा । देवता - मातृनामा । )

आ पश्यति प्रति पश्यति परा पश्यति पश्यति ।  
दिवमुन्तरिक्षमाद्भुमिं सर्वं तद्वि पश्यति ॥ १ ॥

तिस्रो दिवस्त्रिः पृथिवीः  
पद् चेमाः प्रदिशः पृथक् ।

त्वयाहं सर्वा भूतानि पश्यामि देव्योपधे ॥ २ ॥  
दिव्यस्य सुपर्णस्य तस्य हासि कनोर्निका ।

सा भूमिमा रुरोहिय वृक्षं श्रान्ता वधूरिव ॥ ३ ॥  
तां मे सहस्राक्षो देवो दक्षिणे हस्त आ दधत् ।

तयाहं सर्वं पश्यामि यथं शूद्र उतार्यः ॥ ४ ॥  
आविष्कृणुष्व रूपाणि मात्मानमपं गृहथाः ।

अयो सहस्रचक्षो त्वं प्रति पश्याः किमीदिनः ५  
दृश्यं मा यातुधानान्दृश्यं यातुधान्यः ।

पिशाचान्तसर्वान्दृशेति त्वा रंम ओपधे ॥ ६ ॥

कश्यपस्य चक्षुरसि शुन्यार्थं चतुरक्ष्याः ।

वीधे सूर्यमिव सर्पन्तं मा पिशाचं तिरस्करः ॥ ७ ॥  
उदग्रमं परिपाणाधानुधानं किमीदिनम् ।

तेनाहं सर्वं पश्याम्युत शूद्रमुतार्यम् ॥ ८ ॥  
यो अन्तरिक्षेण पतति दिवं यथातिसपति ।

भूमिं यो मन्यते नाथं तं पिशाचं प्र दक्ष्य ॥ ९ ॥

४८ आत्मवलम् ।

कांड ५, सूक्त ९

( ऋषिः - मद्रा । देवता - वानोपतिः, आत्मा । )

दिवं स्वाहा ॥ १ ॥  
पृथिव्यै स्वाहा ॥ २ ॥

अन्तरिक्षाय स्वाहा ॥ ३ ॥  
अन्तरिक्षाय स्वाहा ॥ ४ ॥

दिवे स्वाहा ॥ ५ ॥  
पृथिव्यै स्वाहा ॥ ६ ॥

सूर्यो मे चक्षुर्वीरः प्राणेशः  
अन्तरिक्षमात्मा पृथिवी शरीरम् ।

अस्तुतो नामाहमयमस्मि स आत्मानं  
नि दधे द्यावापृथिवीभ्यां गोपीधाय ॥ ७ ॥

उदायुरुद्रलमुत्कृतमुत्कृत्यामुन्मनीषामुदिन्द्रियम् ।  
आयुष्कुदायुष्पत्नी स्वधावन्तो

गोपा मे स्तु गोपायतं मा ।  
आत्मसदो मे स्तं मा मा हिसिष्टम् ॥ ८ ॥

४९ आत्मवलम् ।

कांड ५, सूक्त १०

( ऋषिः - मद्रा । देवता - वास्तोपतिः । )

अश्मवर्म मेऽसि यो मा प्राच्यां दिशः  
अधायुरमिदासात् । एतत्स ऋच्छात् ॥ १ ॥

अश्मवर्म मेऽसि यो मा दक्षिणां दिशः  
अधायुरमिदासात् । एतत्स ऋच्छात् ॥ २ ॥

(११०१)

तदुमिराह तदु सोम आह

पूषा मां धात्सुकृतसं लोके

अगन्म स्वः स्वरिगन्म

सं धर्यस्य ज्योतिपागन्म

वसोमूयाय वसुमान्युद्यो वसु वंशिपीय

वसुमान्मूयामं वसु मयि चेहि

४४ प्राणः ।

कांड ७, सूक्त ४

(ऋषि - अथर्वी प्रज्ञावचसकामः । देवता - वायुः ।)

एकया च दशभिश्च सुहुते

द्वाभ्यामिष्टये विंशत्या च ।

तिसृभिश्च बहसे त्रिंशता च

त्रियुग्भिर्भावाय इह ता वि शृंश्च

॥ १ ॥

४५ आत्मयज्ञः ।

कांड ७, सूक्त ५

(ऋषि - अथर्वी 'प्रज्ञावचसकामः' । देवता - आत्मा ।)

यज्ञेन यज्ञमेयजन्त देवाः

तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।

ते ह नार्कं महिमानः सचन्त

यत्र पूर्वं माघ्याः सन्ति देवाः

यज्ञो यंभूव म आ यंभूव

म प्र जज्ञे म त वावृधे पुनः ।

स देवानामधिपतिर्धूम्र

मो अमासु द्रविणमा दधातु

यदेवा देवान्द्रविणार्पयन्तामर्त्यान्मनसा मर्त्येन ।

मर्त्येन स तं परमे व्योमिन्पश्येत्तदुदितो मूर्यस्य ३

यत्पुरुषेण द्रविणा यज्ञं देवा अतन्वत ।

अस्मि नु तस्मादोजीषो यद्ब्रह्मैवेति ज्ञे ॥ ४ ॥

मुग्धा देवा एत न्नानार्पयन्त

एत गोरक्षः पुरुषार्पयन्त ।

य इमं यज्ञं मनसा चिकेत

प्र णो वोचस्तमिहेह ब्रवः

४६ त्रितः धर्ता ।

कांड ५, सूक्त १

(ऋषि - बृहद्विबोध्यर्वा । देवता - वरुणः ।)

ऋषेभ्यमत्रो योनिं य आं वृभूव

अमृतासुर्वधमानः सुजन्मा ।

अदन्वासुर्भ्राजमानोऽहंव

त्रितो धर्ता दाधार त्रीणि

आ यो धर्माणि प्रथमः मुसादु

ततो वर्षणि कृणुषे पुरुणि ।

द्यास्युयोनिं प्रथम आ विवेश

आ यो वाचमनुदितां चिकेत

यस्ते शोकाय तन्वतिरेच

क्षरक्षिरण्यं शुचयोऽनु स्वाः ।

अत्रा दधेते अमृताणि नाम

अस्मे वक्त्राणि विश पर्यन्ताम्

प्र यदेते प्रतुरं पूर्य गुः

सदःसद आतिष्ठन्तो अजुर्यम् ।

कृषिः शुपस्यं मातरां रिहाणे

जाम्ये धुर्यं पतिमेरयेधाम्

तद पु ते महत्पृथुमन्ममः

कृषिः काव्येना कृणोमि ।

यत्सम्यञ्चावभियन्तावमि क्षां

अत्रा मही रोषचक्रे वावृधेते

सप्त मूर्यादाः कुर्यस्ततस्तुः

तासामिदेकामृष्यं हुरो गात्र ।

आयोहं स्कम्भ उपमस्य नीहे

पयां विसर्गे घृणेषु तस्यो

॥ ६ ॥ (१०८७)

जानीत स्मै न परमे व्योमिन्  
देवाः सर्घस्था विद लोकमत्र ।

अन्वागन्ता यजमानः स्वस्ति  
हृष्टापूर्त स्म कृणुताविरस्मै

॥ २ ॥

देवाः पितरः पितरो देवाः ।

यो अस्मि सो अस्मि

॥ ३ ॥

स पंचामि स ददामि स यजे

स दुचान्मा यूपम्

॥ ४ ॥

नाकै राजन्प्रति तिष्ठ तत्रैतत्प्रति तिष्ठतु ।

विद्धि पूर्वस्य नो राजन्स देव सुमना भव ॥५॥

५३ वद्धस्य मोचनम् ।

कांड ६, सूक्त १११

( ऋषिः- अथर्वी । देवता- अग्निः । )

इमं मे अग्ने पुरुषं मुमुग्धि

अयं यो धृदः सुपत्नो लाल्पयति ।

अतोऽर्घिं ते कृणवद्भ्रातृघेयं

यदानुन्मदितोऽसति

॥ १ ॥

अग्निष्टे नि शमयतु यदि ते मन उद्युतम् ।

कुणोमिं विद्वान्मेपुजं यदानुन्मदितोऽसति ॥२॥

द्वेधेनसादुन्मदितुमुन्मत्तं रक्षसृषारिं ।

कुणोमिं विद्वान्मेपुजं यदानुन्मदितोऽसति ॥३॥

पुनस्त्वा दुरप्सरसः पुनरिन्द्रः पुनर्मर्गः ।

पुनस्त्वा दुर्विश्वे देवा यदानुन्मदितोऽसति ॥४॥

५४ अमरत्वस्य प्राप्तिः ।

कांड ७, सूक्त १०६

( ऋषिः- अथर्वी । देवता- जातवेदा वरुणश्च । )

यदस्मृति चक्रम किं चिदग्ने

उपास्मि चरणं जातवेदः ।

ततः पाहि त्वं नः प्रचेतः

शुभे सपिभ्यो अमृतत्वमस्तु नः

॥ १ ॥

५५ दैव्यं वचः ।

कांड ७, सूक्त १०५

( ऋषिः- अथर्वी । देवता- मन्त्रोक्तः । )

अपक्रामन्पौष्टिषयादृणानो दैव्यं वचः ।

प्रणीतोरभ्यावर्तस्व विश्वेभि सखिभिः सह ॥१॥

५६ ऊर्ध्वावस्थानं ।

कांड ७, सूक्त १०२

( ऋषिः- प्रजापतिः । देवता- यावापृथिवी, अमरिष सृगुः । )

नमुस्कृत्य यावापृथिवीभ्यामन्तरिक्षाय मृत्यवे ।

मेक्षाम्यूर्ध्वस्तिष्ठन्मा मां हिसिपुरीश्वराः ॥१॥

५७ ब्रह्मचारी ।

( अथर्व ११।५।१-१६ )

ब्रह्मचारी । [ ब्रह्मचर्यम् ] । त्रिष्टुप्, १ पुरोऽतिजागता विराट्-  
गर्मा, २ पञ्चपदा बृहतीगर्मा विराट् शक्रा, ३ उरोबृहती,

६ शक्रवरगर्मा ऋतुषदा जगती, ७ विराट्गर्मा, ८ पुरो-  
ऽतिजागता विराट् जगती, ९ बृहतीगर्मा, १० अरिष्टः

११, १२ जगती, १३ शक्रवरगर्मा ऋतुषदा

विराडतिजगती, १५ पुरस्ताज्जगती, १४,

१६-२२ अतुष्टुप्, २३ पुरोबाह्वताति-

जागतगर्मा, २५ एकादशामाद्युष्टिङ्,

२६ मध्येऽथेतिहविशगर्मा ।

ब्रह्मचारीष्णंश्चरति रोदसी उमे

तस्मिन् देवाः संयनसो भवन्ति ।

स दाधार पृथिवी दिवं च

स आचार्यं तपसा पिपति ॥ १ ॥

ब्रह्मचारिणं पितरो देवजनाः

पृथग्देवा अनुसंयन्ति सर्वे ।

मुन्धर्वा एनमन्वायन्

त्रयस्त्रिंशत् त्रिंशताः षट्सहस्राः

सर्वान्तस्ते देवास्तपसा पिपति ॥ २ ॥ ( ११।८ )

आचार्यं उपनयमानो

ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः ।

अश्मवर्म मेऽसि यो मा प्रतीच्या दिशः  
 अघायुरभिदासात् । एतत्स क्रच्छात् ॥ ३ ॥  
 अश्मवर्म मेऽसि यो मोदीच्या दिशः  
 अघायुरभिदासात् । एतत्स क्रच्छात् ॥ ४ ॥  
 अश्मवर्म मेऽसि यो मो ध्रुवाया दिशः  
 अघायुरभिदासात् । एतत्स क्रच्छात् ॥ ५ ॥  
 अश्मवर्म मेऽसि यो मोर्ध्वाया दिशः  
 अघायुरभिदासात् । एतत्स क्रच्छात् ॥ ६ ॥  
 अश्मवर्म मेऽसि यो मा दिशामन्तर्द्वेष्यः  
 अघायुरभिदासात् । एतत्स क्रच्छात् ॥ ७ ॥  
 बृहता मन उप ह्वये मातरिश्चना प्राणापानौ ।  
 सूर्याचक्षुरन्तरिक्षाच्छ्रोत्रं पृथिव्याः शरीरम् ।  
 सरस्वत्या वाचस्पत्यं हवामहे मनोयुजा ॥ ८ ॥

### ५० पशुपतिः ।

कांड १, सूक्त १४

( ऋषिः— अथर्व । देवता— पशुपतिः । )

य ईशे पशुपतिः पशूनां  
 चतुष्पदामृत यो द्विपदाम् ।  
 निष्क्रीतः ॥ यद्विषं मागमेतु  
 रायस्वोपा यजमानं सचन्ताम् ॥ १ ॥  
 प्रमुञ्चन्तो ह्रुवनस्य रेतां  
 शातं धत्त यजमानाय देवाः ।  
 उपाकृतं शशमानं यदस्यात्  
 प्रियं देवानामर्प्येतु पायः ॥ २ ॥  
 ये वक्ष्यमानमनु दीक्षांना  
 अन्विषन्तु मनसा चक्षुषा च ।  
 अग्निष्टानग्रे प्र मुमोक्तु देवः  
 विश्वकर्मा प्रजया संरक्षणः ॥ ३ ॥  
 ये ग्राह्याः पृथ्वी विश्वरूपा  
 विरूपाः सन्तो यद्वैधैरूपाः ।

वायुष्टानग्रे प्र मुमोक्तु देवः  
 प्रजापतिः प्रजया संरक्षणः ॥ ४ ॥  
 प्रजानन्तः प्रति गृह्णन्तु पूर्वं  
 प्राणमङ्गम्यः पर्याचरन्तम् ।  
 दिवं गच्छ प्रति तिष्ठा शरीरैः  
 स्वर्गं याहि पृथिविर्देवयानैः ॥ ५ ॥

### ५१ धृतराजः राजा ।

कांड ७, सूक्त ८१

( ऋषिः— शुनःशेखः । देवता— वरुणः । )

अप्सु ते राजन्वरुण गृहो हिरण्ययो मिथः ।  
 ततो धृतराजो राजा सर्वा धामानि मुञ्चतु ॥ १ ॥  
 धाम्नोऽधाम्नो राजन्निरो वरुण मुञ्च नः ।  
 यदापो अह्न्या इति वरुणेति यदूचिम  
 ततो वरुण मुञ्च नः ॥ २ ॥  
 उदुत्तमं वरुण पार्श्वमस्मद्  
 अवाधमं वि मध्वमं श्रयाय ।  
 अधो वयमादित्य व्रते तव  
 अनागसो अदितये स्याम ॥ ३ ॥  
 प्रासत्पाशांन्वरुण मुञ्च सर्वान्  
 य उत्तमा अधमा वारुणा ये ।  
 दुष्वप्यै दुरितं नि स्वास्मद्  
 अथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम् ॥ ४ ॥

### ५२ सुमना भव ।

कांड ६, सूक्त १२१

( ऋषिः— सृष्टः । देवता— विश्वदेवाः । )

एतं संघस्थाः परि वो ददामि  
 मे श्रेयधिमावहाज्जातवेदाः ।  
 अन्वागन्ता यजमानः स्वस्ति  
 तं स्म जानीत परमे व्योमन् ॥ १ ॥ (११११)

जानीत स्मैनं परमे व्योमिन्  
 देवाः सधस्या विद लोकमत्र ।  
 अन्वागन्ता यजमानः स्वस्ति  
 इष्टापूर्ते स्म कृणुताविरस्मै ॥ २ ॥  
 देवाः पितरः पितरो देवाः ।  
 यो अस्मि सो अस्मि ॥ ३ ॥  
 स पंचामि स ददामि स यजे  
 स दुक्षान्मा यूपम् ॥ ४ ॥  
 नाकं राजन्प्रति तिष्ठ तत्रैतत्प्रति तिष्ठतु ।  
 विद्धि पूर्वस्य नो राजन्त्स देव सुमनां भव ॥ ५ ॥

५३ वद्धस्य मोचनम् ।

कांड ६, सूक्त १११

( ऋषिः- अथर्व । देवता- अग्निः । )

इमं मे अग्ने पुरुषं मुमुग्धि  
 अयं यो वद्धः सुयतो लालपीति ।  
 अतोऽर्धं ते कृणवद्भागुधेयं  
 यदानुन्मदितोऽसंसि ॥ १ ॥  
 अग्निष्टे नि शमयतु यदि ते मन उद्युतम् ।  
 कृणोमि विद्वान्मैपुजं यदानुन्मदितोऽसंसि ॥ २ ॥  
 देवेनसादुन्मदितुमुन्मत्सं रक्षसुस्पर्शं ।  
 कृणोमि विद्वान्मैपुजं यदानुन्मदितोऽसंसि ॥ ३ ॥  
 पुनस्त्वा दुरप्सरसः पुनरिन्द्रः पुनर्मर्गः ।  
 पुनस्त्वा दुर्विश्वे देवा यथानुन्मदितोऽसंसि ॥ ४ ॥

५४ अमरत्वस्य प्राप्तिः ।

कांड ७, सूक्त १०६

( ऋषिः- अथर्व । देवता- जातिवेदा वरुणः । )

यदस्मृति चक्रेम किं चिदमे  
 उपारिम चरणं जातवेदः ।  
 ततः पाहि त्वं नः प्रचेतः  
 शुभे सखिभ्यो अमृतत्वमस्तु नः ॥ १ ॥

५५ दैव्यं वचः ।

कांड ७, सूक्त १०५

( ऋषिः- अथर्व । देवता- मनत्रोका । )

अपक्रामन्पौरुषेयादृणानो दैव्यं वचः ।  
 प्रणीतोत्तरम्पावर्तस्व विश्वेभि सखिभिः सह ॥ १ ॥

५६ ऊर्ध्वावस्थानं ।

कांड ७, सूक्त १०९

( ऋषिः- प्रजापतिः । देवता- वायुपुत्रिणी, अन्नपिबन्तः । )

नमस्कृत्य द्यावापृथिवीभ्यामन्तरिक्षाय मृत्यवे ।  
 मेक्षाम्यूर्ध्वस्तिष्ठन्मा मां हिसिपुरीश्वराः ॥ १ ॥

५७ ब्रह्मचारी ।

( अथर्व ११११-१६ )

ब्रह्मचारी । [ ब्रह्मचर्यम् ] । शिष्टं १ । पुरोऽतिमागता विराट्-  
 गर्गा, २ पञ्चरथा बृहतीगर्गा विराट् चक्राः, ३ उरोबृहती,  
 ६ शक्रवरगर्गा चतुष्पदा अगर्गा, ७ विराट्गर्गा, ८ पुरो-  
 अतिमागता विराट् अगर्गा, ९ बृहतीगर्गा, १० मुरिहः  
 ११, १२ अगर्गा, १३ शक्रवरगर्गा चतुष्पदा  
 विराट्तिगर्गा, १५ पुरस्ताज्ज्योतिः, १४,  
 १६-२२ अनुपु, २३ पुरोबर्हिताति-  
 आगर्गा, २५ एकावसानास्त्रुणिहः,  
 २६ मध्येज्योतिहस्तिगर्गा ।

ब्रह्मचारीष्णंश्चरति रोदसी उमे  
 तस्मिन् देवाः संमनसो भवन्ति ।  
 म दोधार पृथिवी दिवं च  
 स आचार्यं तपसा पिपति ॥ १ ॥  
 ब्रह्मचारिणं पितरो देवजनाः  
 पृथग्देवा अनुसंयन्ति मयं ।  
 गन्धर्वा एनमन्वायन्  
 प्रयंसिश्चत् शिशुताः पंसद्वहाः  
 मर्वन्तस् देवास्तपसा पिपति ॥ २ ॥ ( ११८ )  
 आचार्यं उपनयमानो  
 ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः ।

तं रात्रींस्तिष्ठ उदरं विभर्ति  
 तं जातं द्रष्टुमभिसंपन्ति देवाः ॥ ३ ॥  
 इयं समित् पृथिवि द्यौर्द्वितीया  
 उतान्तरिक्षं समिधा पृणाति ।  
 ब्रह्मचारी समिधा मेखलया  
 श्रमेण लोकांस्तपसा पिपति ॥ ४ ॥  
 पूर्वी जातो ब्रह्मणो ब्रह्मचारी  
 घृमे वसानस्तपसोदतिष्ठत् ।  
 तस्माज्जातं ब्राह्मणं ब्रह्म ज्येष्ठं  
 देवाश्च सर्वे अमृतैर्न साकम् ॥ ५ ॥  
 ब्रह्मचार्येति समिधा समिद्धः  
 काष्णं वसानो दीक्षितो दीर्घश्मश्रुः ।  
 स सद्य एति पूर्वस्मादुत्तरं समुद्रं  
 लोकान्तसंगृभ्य मुहुराचरिक्त् ॥ ६ ॥  
 ब्रह्मचारी जनयन् ब्रह्मापो लोकं  
 प्रजापतिं परमेष्ठिनं विराजम् ।  
 गर्भो भूत्वाऽमृतस्य योनौ  
 इन्द्रो ह भूत्वाऽसुरास्ततर्ह ॥ ७ ॥  
 आचार्यस्ततश्च नर्मसी उमे इमे  
 उर्वी गम्भीरे पृथिवी दिवं च ।  
 ते रक्षति तपसा ब्रह्मचारी  
 तस्मिन् देवाः संमनसो मगन्ति ॥ ८ ॥  
 इमां भूमिं पृथिवीं ब्रह्मचारी  
 भिक्षामा जमार प्रथमो दिवं च ।  
 ते कृत्वा समिधावुपास्ते  
 तयोरपिता भुवनानि विश्वा ॥ ९ ॥  
 अर्वाग्न्यः परो अन्यो द्विस्त्वृष्टाद्  
 गुहां निधी निहितीं ब्राह्मणस्य ।  
 तौ रक्षति तपसा ब्रह्मचारी  
 तद् केवलं कृणुते ब्रह्मं विद्वान् ॥ १० ॥

अर्वाग्न्य इतो अन्यः पृथिव्या  
 अग्नी समेतो नर्मसी अन्तरेमे ।  
 तयोः श्रयन्ते रश्मयोऽर्धं दृढाः  
 ताना तिष्ठति तपसा ब्रह्मचारी ॥ ११ ॥  
 अमिकन्दन् स्तनयन्मरुणः क्षितिङ्गः  
 बृहच्छेपोऽनु भूमौ जमार ।  
 ब्रह्मचारी सिञ्चति सानौ रेतः  
 पृथिव्यां तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः ॥ १२ ॥  
 अग्नौ सूर्यं चन्द्रमसि मातरिश्वन्  
 ब्रह्मचार्योऽप्यु समिधमा दधाति ।  
 तासामर्चापि पृथग्भूते चरन्ति  
 तासामाज्यं पुरुषो वर्पमापः ॥ १३ ॥  
 आचार्यो मृत्युर्वरुणः सोम ओषधयः पर्यः ।  
 जीमूता आसन्तस्त्वांस्तैरिदं स्वर्गं राभूतम् १४  
 अमा घृतं कृणुते केवलमाचार्यो भूत्वा  
 वरुणो यद्यदैच्छत् प्रजापतौ ।  
 तद् ब्रह्मचारी प्रायच्छत्  
 स्वान् मित्रो अस्यात्मानः ॥ १५ ॥  
 आचार्यो ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी प्रजापतिः ।  
 प्रजापतिर्वि राजति विराडिन्द्रोऽभवद्दृशी ॥ १६ ॥  
 ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति ।  
 आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते ॥ १७ ॥  
 ब्रह्मचर्येण कन्याश्च युवानं विन्दते पतिम् ।  
 अनङ्गान् ब्रह्मचर्येणाशौ घातं जिहीषति ॥ १८ ॥  
 ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाप्तवत् ।  
 इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वर्गं राभूतम् ॥ १९ ॥  
 ओषधयो भूतमव्यमहोरात्रे वनस्पतिः ।  
 संवत्सरः सहर्तुमिस्ते जाता ब्रह्मचारिणः ॥ २० ॥  
 पार्थिवो द्विष्याः पशव आरण्या ग्राम्याश्च ये ।  
 अपक्षाः पक्षिणश्च ये ते जाता ब्रह्मचारिणः ॥ २१ ॥

पृथक् सर्वे प्राजापत्याः प्राणानात्मसु विभ्रति ।  
 तान्तसर्वान् ब्रह्म रक्षति ब्रह्मचारिण्याभृतम् ॥ २२ ॥  
 देवानामितत् परिपुतं  
 अनभ्यारूढं चरति रोचमानम् ।  
 तस्माज्जातं ब्राह्मणं ब्रह्म ज्येष्ठं  
 देवाश्च सर्वे अमृतेन साकम् ॥ २३ ॥  
 ब्रह्मचारी ब्रह्म आजद्विमर्ति  
 तस्मिन् देवा अधि विश्वे समोताः ।  
 प्राणापानौ जनयन्माद् व्यानं  
 वाचं मनो हृदयं ब्रह्म मेधाश्च ॥ २४ ॥  
 चक्षुः श्रोत्रं यशो अस्मासु घेहि  
 अन्नं रेतो लोहितमुदरम् ॥ २५ ॥  
 तानि कल्पद्रुमचारी सलिलस्ये पृष्ठे  
 तपोऽतिष्ठत् तप्यमानः समुद्रे ।  
 स स्नातो धनुः पिङ्गलः  
 पृथिव्यां चन्द्र रोचते ॥ २६ ॥

( अथर्वण १९।४०।१-४ )

ब्रह्म । [ ब्रह्मपक्षः ] । १ अतुष्टुः २ श्यवसाना कडुमनो  
 पथ्यापंक्तिः ३ त्रिष्टुप् ४ जगती ।

ब्रह्म होता ब्रह्म यज्ञा ब्रह्मणा स्वरवो मिताः ।  
 अघ्वर्युर्ब्रह्मणो जातो ब्रह्मणोऽन्तर्हितं हविः ॥ १ ॥  
 ब्रह्म सुचो घृतवतीर्ब्रह्मणा वेदिरुद्धिता ।  
 ब्रह्म यज्ञस्य तस्यै च श्रुतिवजो ये हविष्कृतः ।  
 समिताय स्वाहा ॥ २ ॥  
 अंहोमृचे प्र भरे मनीषां  
 आ सुत्राण्ये समतिमवृणानः ।  
 इदमिन्द्र प्रति हव्यं गुमाय  
 सत्याः संन्तु यजमानस्य कामाः ॥ ३ ॥  
 अंहोमृचै वृषभं यज्ञियांनां  
 विराजन्तं प्रथममंश्वराणाम् ।  
 अपां नपातमग्निना हुवे चियं  
 इन्द्रियेण त इन्द्रियं दत्तमोजः ॥ ४ ॥ ( ११६६ )

## पुरुषः ।

॥ १ ॥ ( अ० १०.९०।१-१६ )

( १-५८ ) नारायण । अत्रष्टपु, २६ श्रिष्टप ।

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।  
 स भूमिं विश्वतो वृत्त्वा ऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥१॥  
 पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम् ।  
 उतामृतत्वस्येशानो यदज्ञेनातिरोहति ॥ २ ॥  
 एतावानस्य महिमा ऽतो ज्वायँश्च पूरुषः ।  
 पादौऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं द्विवि ३  
 त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादौऽस्येहामृतपुनः ।  
 ततो विश्वं क्व व्यक्रामत् साशनानशुने अमि ४  
 तस्माद्द्विराळं जायत विराजो अधि पूरुषः ।  
 स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥५॥  
 यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमर्त्तन्वत ।  
 वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इष्मः शरद्धविः ६  
 तं यज्ञं बर्हिषि प्रीक्षन् पुरुषं जातममृतः ।  
 तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥७॥  
 तस्माद्यज्ञात्सर्वं हुतः संमृतं पृषदाज्यम् ।  
 पृश्नतांश्चके वायव्या नारण्यान्ग्राभ्याश्च ये ॥८॥

तस्माद्यज्ञात्सर्वं हुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।  
 छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥९॥  
 तस्मादश्वा अजायन्त ये के चौभयादवतः ।  
 गार्वाह जज्ञिरे तस्मात् तस्माज्जाता अजावर्षा १०  
 यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।  
 मुखं किमस्य कौ बाहू का ऊरू पादा उच्येते ११  
 ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः ।  
 ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत १२  
 चन्द्रमा मनसो जात—क्षक्षोः सूर्यो अजायत ।  
 मुखादिन्द्रश्चाभिर्ध्र प्राणाद्वायुरजायत ॥१३॥  
 नाभ्यां आसीदुत्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।  
 पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्  
 तथा लोकौ अकल्पयन् ॥ १४ ॥  
 सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ।  
 देवा यद्यज्ञं तन्वाना अर्बन्पुरुषं पशुम् ॥१५॥  
 यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः  
 तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।  
 ते ह नाकं महिमानः सचन्त  
 यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥ १६ ॥  
 ( ११८२ )



॥ २ ॥ ( अथर्व० १९।६, १-६, ९, १६, १६ )

सहस्रचाहुः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।  
 स भूमिं विश्वतो ब्रुत्वाऽत्यतिष्ठदशाङ्गुलम् ॥१॥  
 त्रिभिः पृच्छिर्धामरोहत् पादस्येहार्मवत् पुनः ।  
 तथा व्यक्रामद्विष्वङ्शनानशने अनु ॥२॥  
 तार्वन्तो अस्य महिमान्स्ततो ज्यायांश्च पूरुषः ।  
 पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ३  
 पूरुष एवेदं सर्वं यद्धृतं यच्च आव्यम् ।  
 उतामृतस्वस्येश्वरो यदुन्येनार्मवत्सह ॥ ४ ॥  
 यत् पूरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।  
 मुखं किमस्य किं बाहू किमूरु पादा उच्येते ॥५॥  
 ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यो भवत् ।  
 मध्ये तदस्य यद्वैश्यः पृच्छां शूद्रो अजायत ६  
 विराडग्रे समभवद् विराजो अधि पूरुषः ।  
 स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमर्षो पुरः ॥९॥  
 तं यज्ञं प्रावृषा प्रीक्षन्पुरुषं जातमग्नयः ।  
 तेन देवा अयजन्त साध्या वसवश्च ये ॥११॥  
 भूभ्रो देवस्य बृहतो अंशवः सप्त सप्तवीः ।  
 राह्वः सोमस्याजायन्त जातस्य पूरुषादधि ॥१६॥

॥ ३ ॥ ( अथर्व० १०।९।१-३३ )

पाणिभूक्तम्, पूरुषः, मध्यमकाशनम् । अनुष्टुप् : १-४ ;  
 ५, ८ मिष्टुप्, ९, ११ जगती ; २८ भुरिष्टुहती ।

केन पाष्णीं आर्भुते पूरुषस्य  
 केन मांसं संमृतं केन गुल्फौ ।  
 केनाङ्गुलीः पेशनीः केन खानि  
 केनोच्छुङ्क्षी मध्यतः कः प्रतिष्ठाम् ॥ १ ॥  
 कस्मान्नु गुल्फावधारावकृण्वन्  
 अष्ट्रिवन्तःवृत्तरो पूरुषस्य ।  
 जह्वं निरित्य न्यदधुः क्व स्त्रित्  
 जानुनोः संघी क उ तर्चिकेत ॥ २ ॥

चतुष्टयं युज्यते संहितान्तं  
 जानुभ्यामूर्ध्वं शिथिरं कवन्धम् ।  
 श्रोणी यदूरु क उ तर्जजान्  
 याम्यां कुसिन्धं सुदृढं वभूव ॥ ३ ॥  
 कति देवाः कतमे त आसन्  
 य उरो ग्रीवाश्चिक्युः पूरुषस्य ।  
 कति स्तनौ व्यदधुः कः कफोर्हो  
 कति स्कन्वान् कति पृष्टारविन्वन् ॥ ४ ॥  
 को अस्य बाहू समभरद् वीर्यं करवादिति ।  
 अंसौ को अस्य तदेवः कुसिन्धे अघ्या दधौ ॥५॥  
 कः सप्त खानि वि ततदे शीर्षणि  
 कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम् ।  
 येषां पुरुषा विजयस्य मूलानि  
 चतुष्पादो द्विपदो यन्ति यामम् ॥ ६ ॥  
 हन्वोर्हि जिह्वामदधात् पुरुषीं  
 अधा महीमधि शिश्राय वाचम् ।  
 स आ वरीवति भुवनेष्वन्तः  
 अपो वसानः क उ तर्चिकेत ॥ ७ ॥  
 मस्तिष्कमस्य यत्पथो ल्लाटं  
 कफार्दिकां प्रथमो यः कपालम् ।  
 चित्वा चित्यं हन्वोः पूरुषस्य  
 दिवं रुरोह कतमः स देवः ॥ ८ ॥  
 प्रियाप्रियाणि बहुला स्वमं संचाभृतन्यः ।  
 आनन्दानुग्रो नन्दाश्च कसाद् बहति पूरुषः ॥९॥  
 आतिरिवातिरिक्कतिः कुतो नु पूरुषेऽमंतिः ।  
 राद्विः समद्विरव्यृद्धिर्मतिरुदितयः कुतः ॥ १० ॥  
 को अस्मिन्नापो व्यदधाद्विपुवृतः  
 पुरुवृतः सिन्धुसृत्यां जातः ।  
 तीव्रा अरुणा लोहिनीस्ताम्रघ्नरा  
 ऊर्वा अवाचीः पूरुषे तिरथीः ॥ ११ ॥

को अस्मिन् रूपमदधात् को मृणानं च नाम च ।  
 गातुं को अस्मिन् कः केतुं कश्चरित्राणि पूरुषे ॥ १२ ॥  
 को अस्मिन् प्राणमवयत् को अपानं व्यानम् ।  
 समानमस्मिन् को देवोऽधि शिष्याय पूरुषे ॥ १३ ॥  
 को अस्मिन् यज्ञमदधादेको देवोऽधि पूरुषे ।  
 को अस्मिन्सुतस्य कोऽनृतं  
 कुतो मृत्युः कुतोऽमृतम् ॥ १४ ॥  
 को अस्मै वासः पर्यदधात्  
 को अस्यायुरकल्पयत् ।  
 वलं को अस्मै प्रायच्छत्  
 को अस्याकल्पयज्जवम् ॥ १५ ॥  
 केनापो अन्वतनुत् केनाहरकरोद्भुवे ।  
 उपसं केनान्वैन्द्र केन सायंभवं ददे ॥ १६ ॥  
 को अस्मिन् रेतो न्यदिधात्  
 तन्तुरा तोयतामिति ।  
 मेधां को अस्मिन्नध्वीहत्  
 को बाणं को नृतो दधौ ॥ १७ ॥  
 केनेमां भूमिमौणोत् केन पर्यभवदिवम् ।  
 केनाभि मृहा पर्वतान् केन कर्माणि पूरुषः ॥ १८ ॥  
 केन पर्जन्यमन्वेति केन सोमं विचक्षणम् ।  
 केन यज्ञं च ध्रुवां च केनास्मिन् निर्हितं मनः ॥ १९ ॥  
 केन श्रोत्रियमाप्नोति केनेमं परमेष्ठिनम् ।  
 केनेममग्निं पूरुषः केन संवत्सरं ममे ॥ २० ॥  
 ब्रह्म श्रोत्रियमाप्नोति ब्रह्मेमं परमेष्ठिनम् ।  
 ब्रह्मेममग्निं पूरुषो ब्रह्म संवत्सरं ममे ॥ २१ ॥  
 केन देवां अनु क्षियति केन देवजनीर्विशः ।  
 केनेदमन्यग्रथं केन सत्त्वग्रमुच्यते ॥ २२ ॥  
 ब्रह्म देवां अनु क्षियति ब्रह्म देवजनीर्विशः ।  
 ब्रह्मेदमन्यग्रथं ब्रह्म सत्त्वग्रमुच्यते ॥ २३ ॥

केनेयं भूमिर्विहिता केन द्यौरुत्तरा हिता ।  
 केनेदमूर्ध्वं तिर्यक् चान्तरिक्षं व्यचो हितम् ॥ २४ ॥  
 ब्रह्मणा भूमिर्विहिता ब्रह्म द्यौरुत्तरा हिता ।  
 ब्रह्मेदमूर्ध्वं तिर्यक् चान्तरिक्षं व्यचो हितम् ॥ २५ ॥  
 मूर्धानमस्य संसीव्यार्थवा हृदयं च यत् ।  
 मस्तिष्कादूर्ध्वः प्रैरयत् पर्वमानोऽधि शीर्षतः ॥ २६ ॥  
 तद्वा अथर्वणः शिरो देवकोशः समुज्जितः ।  
 तत् प्राणो अभि रक्षति शिरो अन्नमथो मनः ॥ २७ ॥  
 ऊर्ध्वो नु सुष्टाश्चित्तिर्यद् नु सुष्टाः  
 सर्वा दिक्षः पूरुष आ वंभूवोऽरे ।  
 पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पूरुष उच्यते ॥ २८ ॥  
 यो वै तां ब्रह्मणो वेदाभ्युतेनावृतां पुरम् ।  
 तस्मै ब्रह्म च ब्राह्मश्च क्षुः प्राणं प्रजां ददुः ॥ २९ ॥  
 न वै तं चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा ।  
 पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पूरुष उच्यते ॥ ३० ॥  
 अष्टाचक्रा नभश्चारा देवानां पूर्योऽप्या ।  
 तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ॥ ३१ ॥  
 तस्मिन् हिरण्यये कोशे ज्यौरे त्रिप्रतिष्ठिते ।  
 तस्मिन् यद्यक्षमात्मन्वत् तद्वै ब्रह्मविदो विदुः ॥ ३२ ॥  
 प्रभ्राजमानां हरिणीं यशसा संपरीवृताम् ।  
 पुरं हिरण्ययीं ब्रह्मा विविद्यापराजिताम् ॥ ३३ ॥  
 ॥ ४ ॥ ( वा० य० ३१।१८-२२ )  
 वेदाहमेतं पूरुषं महान्तं  
 आदित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।  
 तमेव विदित्वाति मृत्युमेति  
 नान्यः पन्था विद्यतेऽन्याय ॥ १८ ॥  
 प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तर  
 अजायमानो बहुधा वि जायते ।  
 तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीराः  
 तस्मिन् ह तस्यूर्ध्वनानि विश्वा ॥ १९ ॥ ( १९६६ )

यो देवेभ्य आतर्पति यो देवानां पुरोहितः ।  
 पूर्वा यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मणे २०  
 रुचं ब्राह्मं जनयेन्तो देवा अग्रे तर्दयुवन् ।  
 यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यान् तस्य देवा असन् वशे २१  
 श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च परन्यायहोरात्रे  
 पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम् ।  
 दुष्पन्नपाणामुं मे इषाण सर्वलोकं मे इषाण ॥२२  
 ॥ ५ ॥ ( वा० य० ३११-१० )  
 तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तद् चन्द्रमाः ।  
 तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म सा आपः स प्रजापतिः ॥१॥  
 सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि ।  
 नैनमुर्ध्वं न तिर्यञ्चं न मध्ये पारं जग्रभत् ॥२॥  
 न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः ।  
 हिरण्यगर्भे इत्येष मा मा हिंसीदित्येषा  
 यस्मान्न जात इत्येषः ॥ ३ ॥  
 एषो ह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः  
 पूर्वा ह जातः स उ गर्भे अन्तः ।  
 स एव जातः स जनिष्यमाणः  
 प्रत्यह् जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः ॥ ४ ॥  
 यस्माज्जातं न पुरा किं चनैव  
 य आवभूव भुवनानि विश्वा ।  
 प्रजापतिः प्रजया संधरराणः  
 श्रीणि ज्योतिंश्चपि सचतुं स षोडशी ॥ ५ ॥  
 येन द्यौरग्रा पृथिवी च दृढा  
 येन स्रुस्तमितं येन नाकः ।  
 यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः  
 कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ६ ॥  
 यं क्रन्दसी अवसा तस्तमाने  
 अम्पैक्षतां मनसा रेजमाने ।  
 यत्राधि स्र उदितो विमाति  
 कस्मै देवाय हविषा विधेम ।

आपो ह यद्गृहतीर्यधिदापः ॥ ७ ॥  
 वेनस्तत् पश्यन्निहितं गुहा सत्  
 यत्र विश्वं भवत्येकनीडम् ।  
 तस्मिन्निदंश्च सं च वि चैति सर्वं  
 स ओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु ॥ ८ ॥  
 प्र तद्वोचेदमृतं नु विद्वान्  
 गन्धर्वो धाम विभृतं गुहा सत् ।  
 त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य  
 यस्तानि वेदु स पितुः पिताऽसत् ॥ ९ ॥  
 स नो चर्धुर्जनिता स विधाता  
 धामानि वेदु सुवनानि विश्वा ।  
 यत्र देवा अमृतमानशानाः  
 तुताये धामन्नधरैर्यन्त ॥ १० ॥  
 ॥ ६ ॥ ( वा० य० ८।५३ )  
 भूर्धुवः स्वः सुप्रजाः प्रजार्भिः स्याम  
 सुवीरा वीरैः सुपोपाः पोषैः ॥ ५३ ॥  
 ॥ ७ ॥ ( वा० य० ३६।१२ )  
 यतो-यतः समीहसे ततो नो अमयं कुरु ।  
 शं नः कुरु प्रजाम्योऽमयं नः पशुम्यः ॥२२॥  
 ॥ ८ ॥ ( वा० य० ४०।१७ )  
 हिरण्यमेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।  
 योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम् ।  
 ओ३म् खं ब्रह्म ॥ १७ ॥  
 ॥ ९ ॥ ( अथर्व० ६।६१।१-३ )  
 ( ७७-१०५ ) अथर्वः । इदः ( विद्यपरा )  
 १ विष्णुः, २-३ भुरिः ।  
 मद्यमापो मधुमदेर्यन्तां  
 मद्यं स्रुतां अमरज्ज्योतिषे कम् ।  
 मद्यं देवा उत विश्वे तपोजा  
 मद्यं देवः सविता व्यचो धाव ॥ १ ॥

अहं विवेच पृथिवीमुत द्यां  
अहमृतूरजनयं सप्त साकम् ।

अहं सत्यमनृतं यददामि

अहं दैवीं परि वाचं विशश्च ॥ २ ॥

अहं जंजान पृथिवीमुत द्यां

अहमृतूरजनयं सप्त सिन्धून् ।

अहं सत्यमनृतं यददामि

यो अग्नीषोमावजुषे सखाया ॥ ३ ॥

॥ १० ॥ ( अथर्व० ८।९।१-२६ )

( वदयया, सर्वे कृपया, छन्दासि च ), विगाट । त्रिष्टुप्, २  
पङ्क्तिः, ३ आस्तारपङ्क्तिः, ४-७, २३, २५-२६

अनुष्टुप्, ८, ११-१२, २२ जगती, ९ अरिक्, १४

चतुश्चरदातिजगती ।

कुतस्तौ जातौ कतमः सो अर्थः

कस्माच्छोकात् कतमस्याः पृथिव्याः ।

यस्तौ विराजः सलिलादुदैता

तौ त्वां पृच्छामि कतरेण दुग्धा ॥ १ ॥

यो अक्रन्दयत् सलिलं महित्वा

योनिं कृत्वा त्रिभुजं शयानः ।

यस्तः कामदुघौ विराजः

स गुहां चक्रे तुन्वाः पराचैः ॥ २ ॥

यानि श्रीणि ग्रहन्ति

येषां चतुर्थं विद्युनक्ति वाचम् ।

ब्रह्मनेष्टु विद्यात् तपसा विपश्चिद्

यस्मिन्नेकं युज्यते यस्मिन्नेकम् ॥ ३ ॥

पृष्टतः परि मामानि पृष्ठात् पश्चाधि निमिता ।

पृष्टदृष्ट्या निर्मितं कुतोऽधि पृष्टी मिता ॥ ४ ॥

पृष्टी परि माश्राया मातुर्माश्राधि निर्मिता ।

माया हे जज्ञे मायायां मायाया मातुर्मा परि ॥ ५ ॥

पशुशानरस्य प्रतिमोपरि द्यौः

पाश्रोदसी विषयाधे अग्निः ।

ततः पृष्ठादामुतौ यन्ति स्तोमाः

उदितो यन्त्यभि पृष्ठमहः ॥ ६ ॥

पट् त्वां पृच्छाम ऋषयः कश्यपेमे

त्वं हि युक्तं युयुक्षे योग्यं च ।

विराजमाहुर्ब्रह्मणः पितरं

तां नो वि घेहि यतिषा सखिम्यः ॥ ७ ॥

यां प्रच्युतामनु यज्ञाः प्रच्यवन्त

उपतिष्ठन्त उपतिष्ठमानाम् ।

यस्यां भवे प्रसवे यक्षमेजति

सा विराहुपयः परमे व्योमिन् ॥ ८ ॥

अप्राणैति प्राणेन प्राणतीनां

विराद् त्वरार्जमभ्येति पश्चात् ।

विश्वं मृशन्तीमभिरूपां विराजं

पश्यन्ति त्वे न त्वे पश्यन्त्येनाम् ॥ ९ ॥

को विराजो मिथुनत्वं प्र वेदु

क ऋतून् क उ कल्पमस्याः ।

क्रमान् को अस्याः कतिधा विदुर्धान्

को अस्या धाम कतिधा व्युष्टीः ॥ १० ॥

इयमेव सा या प्रथमा व्यौच्छत्

आस्वितरासु चरति प्रविष्टा ।

महान्तौ अस्यां सहिसान्तौ अन्तः

वभूर्जिगाय नवगजानित्री ॥ ११ ॥

छन्दः पथे उपसा पेपिधाने

समानं योनिमनु सं चरेते ।

सूर्यपत्नी सं चरतः प्रजानुती

केतमती अजरे भूरिरितसा ॥ १२ ॥

ऋतस्य पन्थामनु तिस्र आगुः

त्रयो घर्मा अनु रेत् आगुः

प्रजामेका त्रिन्वत्युजमेका

राष्ट्रमेका रथति देवयूनाम् ॥ १३ ॥ (१२५८)

अग्नीषोमावदधुर्या तुरीयासीद्  
यज्ञस्य पक्षावृषयः कल्पयन्तः ।  
गायत्रीं त्रिष्टुभं जगतीमनुष्टुभं  
बृहदकीं यजमानाय स्वराभरन्तीम् ॥ १४ ॥  
पञ्च षुष्टीरनु पञ्च दोहा  
गां पञ्चनाग्नीमृतवोऽनु पञ्च ।  
पञ्च दिशः पञ्चदशेन कलसाः  
ता एकमूर्धिरभि लोकमेकम् ॥ १५ ॥  
पद् जाता भूता प्रथमजर्तस्य  
पदु सामानि पदहं बहन्ति ।  
पदयोगं सीरमनु सामसाम्  
पदाहुर्धावापृथिवीः पदुर्वीः ॥ १६ ॥  
पदाहुः शीतान् पदु मास उष्णान्  
ऋतुं नो ब्रूत यतमोऽतिरिक्तः ।  
सप्त सृषणाः कवयो नि पेंदुः  
सप्त च्छन्दास्यनु सप्त दीक्षाः  
सप्त होमाः सुमिधो ह सप्त  
मधूनि सप्तर्ववो ह सप्त ।  
सप्तार्ज्यानि परि भूतमायन्  
ताः सप्तगृधा इति शुश्रुमा वयम् ॥ १८ ॥  
सप्त च्छन्दांसि चतुरुत्तराणि  
अन्यो अन्यस्मिन्नध्यापितानि ।  
कथं स्तोमाः प्रति तिष्ठन्ति तेषु  
तानि स्तोमेषु कथमार्पितानि ॥ १९ ॥  
कथं गायत्री त्रिवृतं व्यापि  
कथं त्रिष्टुप् पञ्चदशेन कल्पते  
त्रयस्त्रिंशेन जगती कथं  
अनुष्टुप् कथमेकविंशः ॥ २० ॥  
अष्ट जाता भूता प्रथमजर्तस्य  
अष्टेन्द्रत्विजो दैव्या ये

अष्टयोनिरदितिरष्टपुत्रा  
अष्टमीं रात्रिमभि द्व्यमेति ॥ २१ ॥  
इत्थं श्रेयो मन्यमानेदमार्गम्  
गुप्ताकं सख्ये अहमस्मि शेवा  
समानजन्मा क्रतुरस्ति वः शिवः  
स वः सर्वाः सं चरति प्रजानन् ॥ २२ ॥  
अष्टेन्द्रस्य पद्वयमस्य ऋषीणां सप्त सप्तधा ।  
अपो मनुष्याश्च नोपधीस्तां उ पश्चानुं सेचिरे २३  
केवलीन्द्राय दुद्रहे हि गृष्टिः  
वर्षं पीयूषं प्रथमं दुर्हाना  
अथातर्पयन्नतुरंश्चतुर्धा  
देवान् मनुष्यांश्च असुरानुत ऋषीन् ॥ २४ ॥  
को नु गौः क एकऋषिः किम् धाम का आशिपः  
यक्षं पृथिव्यामेकवृदेकर्तुः कतमो नु सः ॥ २५ ॥  
एको गौरैकं एकऋषिरैकं धामैकवाशिपः ।  
यक्षं पृथिव्यामेकवृदेकर्तुर्नार्तिं रिच्यते ॥ २६ ॥  
॥ ११ ॥ (अथयं ८।१०।१-६५)  
अथर्वार्चः । विराट् । (पद पर्यायः) । १-१३, [प्रथमः  
पर्यायः] १ त्रिपदाचो पङ्क्तिः, २-७ याज्ञुषी जगती,  
१, ९ साम्यनुष्टुप्; आर्च्यनुष्टुप्; ५, १२ विराट्  
गायत्री; ११ वागी दृढी ।  
(१)  
विराट् वा इदमग्र आसीत्  
तस्यां जातायाः सर्वमधिमेत् ॥ १ ॥  
इयमेवेदं भविष्यतीति ॥ २ ॥  
सोदक्रामत् सा गार्हपत्ये न्यक्रामत् ॥ ३ ॥  
गृहमेधी गृहपतिर्भवति य एवं वेद ॥ ४ ॥  
सोदक्रामत् साऽऽहवनीये न्यक्रामत् ॥ ५ ॥  
यन्त्येस्य देवा देवर्हति भियो देवानां भवति  
य एवं वेद ॥ ६ ॥  
सोदक्रामत् मा दक्षिणाग्रे न्यक्रामत् ॥ ७ ॥  
(१६३७)

यज्ञतो दक्षिणीयो वासतेयो भवति य एवं वेद ७  
 सोदक्रामत् सा सभायां न्यक्रामत् ॥ ८ ॥  
 यन्त्यस्य सभां सम्यो भवति य एवं वेद ॥ ९ ॥  
 सोदक्रामत् सा समितौ न्यक्रामत् ॥ १० ॥  
 यन्त्यस्य समितिं साप्रित्यो भवति य एवं वेद ११  
 सोदक्रामत्सामन्त्रणे न्यक्रामत् ॥ १२ ॥  
 यन्त्यस्यामन्त्रणमामन्त्रणीयो भवति  
 य एवं वेद ॥ १३ ॥

१-१० [ द्वितीयाः पर्यायः ] १ त्रिपदा साम्बुष्टुपः;  
 २ त्रिपदायां चतुष्टुपदोपरिष्टाद्विराट्चतुष्टुपः ३ एकपदा  
 याजुषी गायत्री; ४ एकपदा साम्नी पक्षि; ५  
 विराट् गायत्री; ६ आर्यवृत्तुष्टुपः ७ साम्नी  
 पक्षि; ८ आध्वरी गायत्री; साम्बुष्टुपः  
 १० साम्नी बृहती ।

( २ )

सोदक्रामत् साऽन्तरिक्षे चतुर्धा विक्रान्तातिष्ठत् १  
 तां देवमनुष्या अमुवक्षिष्यमेव तद्वेद  
 यदुभयं उपजीवेमिमांशुप ह्यामहा इति ॥ २ ॥  
 तामुपाह्वयन्त ॥ ३ ॥  
 ऊर्ज एहि स्वध एहि सूनृत एहीरावत्येहीति ॥ ४ ॥  
 तस्या इन्द्रो वृत्स आसीद्  
 गायत्र्य मिधान्यम्रमूषः ॥ ५ ॥

बृहच्च रथन्तरं च द्वौ स्तनावास्तां  
 यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं च द्वौ ॥ ६ ॥  
 ओषधीरेव रथन्तरेण देवा अदुहुन् व्यचौ बृहता ७  
 अपो वामदेव्येन यज्ञं यज्ञायज्ञियेन ॥ ८ ॥  
 ओषधीरेवासं रथन्तरं दृष्टे व्यचौ बृहत् ॥ ९ ॥  
 अपो वामदेव्यं यज्ञं यज्ञायज्ञियं य एवं वेद १०

१-८ [ तृतीयाः पर्यायः ] १ चतुष्टुपदा विराट्चतुष्टुपः २ आर्ची  
 त्रिष्टुपः ३, ५, ७ चतुष्टुपदा प्राजापत्या पक्षि; ४, ६,  
 ८ आर्ची बृहती ।

( ३ )

सोदक्रामत् सा वनस्पतीनागच्छत्  
 तां वनस्पतयोऽग्नत् सा संवत्सरे समभवत् ॥ १ ॥

तस्माद् वनस्पतीनां संवत्सरे वृषणमपि रोहति  
 वृथ्वेऽस्याप्रियो आर्तव्यो य एवं वेद ॥ २ ॥  
 सोदक्रामत् सा पितृनागच्छत्  
 तां पितरोऽग्नत् सा मासि समभवत् ॥ ३ ॥  
 तस्मात् पितृभ्यो मास्पृपमास्यं ददति  
 प्र पितृयानं पन्थां जानाति य एवं वेद ॥ ४ ॥  
 सोदक्रामत् सा देवानागच्छत्  
 तां देवा अग्नत् सार्धमासे समभवत् ॥ ५ ॥  
 तस्माद् देवभ्योऽर्धमासे वपद् कुर्वन्ति  
 प्र देवयानं पन्थां जानाति य एवं वेद ॥ ६ ॥  
 सोदक्रामत् सा मनुष्याऽनागच्छत्  
 तां मनुष्या अग्नत् सा सद्यः समभवत् ॥ ७ ॥  
 तस्मान्मनुष्येभ्य उमयष्टुरुप हरन्ति  
 उपास्य गृहे हरन्ति य एवं वेद ॥ ८ ॥

( १-१६, १-१६ ) [ चतुर्थः पञ्चमौ प्रयायौ ] २२, २३, २५,  
 २९ (प्र०) चतुष्टुपदा साम्नी अगती; २२-२४, २८-२९  
 (द्वि०) साम्नी बृहती, २२, २६, (तृ०) साम्बुष्टुपः २२,  
 २३, २६, २९ (च०) आर्च्यतुष्टुपः २३ (तृ०) आर्ची  
 गायत्री; २४-२५, २८ (प्र०) चतुष्टुपदा त्रिष्टुपः  
 २४ (तृ०) प्राजापत्यातुष्टुपः २४-२५, २७  
 आर्ची त्रिष्टुपः २५-२६ (द्वि०) साम्बु-  
 ष्ठिक् २५, २७-२८ (तृ०) विराट् गायत्री;  
 २७ (प्र०) चतुष्टुपदा प्राजापत्या अगती;  
 २७ (द्वि०) साम्नी बृहती त्रिष्टुपः  
 २८ (च०) त्रिपदा आर्ची मुरि-  
 म्गायत्री; २९ (तृ०)  
 साम्बुष्टुपः ।

( ४ )

सोदक्रामत् सासुरानागच्छत्  
 तामसुरा उपाह्वयन्त माय एहीति ॥ १ ॥  
 तस्या विरोचनः प्राहर्दिर्वृत्स  
 आसीदयस्पात्रं पात्रम् ॥ २ ॥  
 तां दिग्मूर्धन्त्योऽष्टिक् तां मायामेवाधोक् ॥ ३ ॥

( १३०५ )

तां मायामसुरा उप जीवन्ति  
 उपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥ ४ ॥  
 सोदक्रामत् सा पितृनागच्छत्  
 तां पितर उपाह्वयन्त स्वध एहीति ॥ ५ ॥  
 तस्या युमो राजा वत्स आसीद्  
 रजतपात्रं पात्रम् ॥ ६ ॥  
 तामन्तको मार्त्यवोऽधोक् तां स्वधामेवाधोक् ॥ ७ ॥  
 तां स्वधां पितर उप जीवन्ति  
 उपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥ ८ ॥  
 सोदक्रामत् सा मनुष्याङ्गनागच्छत्  
 तां मनुष्याङ्ग उपाह्वयन्तेरावृत्येहीति ॥ ९ ॥  
 तस्या मनुर्वैवस्वतो वत्स आसीत्  
 पृथिवी पात्रम् ॥ १० ॥  
 तां पृथीं वैन्योऽधोक् तां कृषिं च  
 सस्यं चाधोक् ॥ ११ ॥  
 ते कृषिं च सस्यं च मनुष्याङ्ग उप जीवन्ति ।  
 कृष्टराधिरुपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥ १२ ॥  
 सोदक्रामत् सा सप्तश्रुषीनागच्छत्  
 तां सप्तश्रुषय उपाह्वयन्त ब्रह्मवृत्येहीति ॥ १३ ॥  
 तस्याः सोमो राजा वत्स आसीच्छन्दुः पात्रम् १४  
 तां बृहस्पतिराङ्गिरसोऽधोक्  
 तां ब्रह्मं च तपश्चाधोक् ॥ १५ ॥  
 तद् ब्रह्मं च तपश्च सप्तश्रुषय उप जीवन्ति  
 ब्रह्मवर्चस्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद १६

(५)

सोदक्रामत् सा देवानागच्छत्  
 तां देवा उपाह्वयन्तोर्ज एहीति ॥ १ ॥  
 तस्या इन्द्रो वत्स आसीधमसः पात्रम् ॥ २ ॥

तां देवः संविताधोक् तामूर्जमेवाधोक् ॥ ३ ॥  
 तामूर्जां देवा उप जीवन्ति  
 उपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥ ४ ॥  
 सोदक्रामत् सा गन्धर्वाप्सरस आगच्छत् ।  
 तां गन्धर्वाप्सरस उपाह्वयन्त पुण्यगन्ध एहीति ५  
 तस्याश्चित्ररथः सौर्यवर्चसो वत्स आसीत्  
 पुष्करपर्ण पात्रम् ॥ ६ ॥  
 तां वसुरुचिः सौर्यवर्चसोऽधोक्  
 तां पुण्यमेव गन्धमधोक् ॥ ७ ॥  
 तं पुण्यं गन्धं गन्धर्वाप्सरस उप जीवन्ति  
 पुण्यगन्धिरुपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥ ८ ॥  
 सोदक्रामत् सेतरज्जनानागच्छत्  
 तामितरज्जना उपाह्वयन्त तिरोधु एहीति ॥ ९ ॥  
 तस्याः कुर्वरो वैश्रुणो वत्स  
 आसीदामपात्रं पात्रम् ॥ १० ॥  
 तां रज्जतनाभिः कावेरकोधोक्  
 तां तिरोधामेवाधोक् ॥ ११ ॥  
 तां तिरोधामितरज्जना उप जीवन्ति  
 तिरो धत्ते सर्वं पाप्मानंरुपजीवनीयो भवति  
 य एवं वेद ॥ १२ ॥  
 सोदक्रामत् सा सृषानागच्छत्  
 तां सृषा उपाह्वयन्त विषयृत्येहीति ॥ १३ ॥  
 तस्यास्तथको वैशालेयो वत्स  
 आसीदलावुपात्रं पात्रम् ॥ १४ ॥  
 तां धृतराष्ट्र ऐरावतोऽधोक् तां त्रिपमेवाधोक् १५  
 तद्विषं सृषा उप जीवन्ति  
 उपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥ १६ ॥

(१३३०)

१-४ [ ७४ पर्यायः ] १ द्विपदा विराट् गायत्री, २ द्विपदा  
साम्नी त्रिष्टुप्, ३ द्विपदा प्राजापत्यानुष्टुप्, ४ द्विपदा-  
चर्युष्णिक् ।

तद् यस्मा एवं विदुषेऽलायुनामिषिञ्चेत्  
प्रत्याह्न्यात् ॥ १ ॥  
न च प्रत्याह्न्यान्मनसा त्वा  
प्रत्याह्न्यमीति प्रत्याह्न्यात् ॥ २ ॥  
यत् प्रत्याहन्ति विपमेव तत् प्रत्याहन्ति ॥ ३ ॥

विपमेवास्याप्रियं आतृग्यमनुविषिञ्च्यते  
य एवं वेदं ॥ ४ ॥

॥ १२ ॥ ( अथर्व० १९।७९।१ )  
मृगशिरा मन्त्राः । परमात्मा देवाय । त्रिष्टुप् ।

यस्मात् कोशोदुदमराम वेदं  
तस्मिन्तरयं दध्म एनम् ।  
कुतमिष्टं ब्रह्मणो वीर्येण  
तेन मा देवास्तपसानतेह ॥ १ ॥ ( १३१९ )

संसदच्यक्षः

## सदसस्पतिः ।

॥ १ ॥ ( ऋ० १।१८।६ ९ )  
( १-४ ) मेधातिथि कण्ठ । ( ९ नराक्षसो वा ) । गायत्री ।  
सदसस्पतिमनुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।  
सुनि मेधामयासिपम् ॥ ६ ॥  
यस्माद्वते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन ।

स धीनां योगमिन्वति ॥ ७ ॥  
आहोति हविष्कृतिं प्राञ्च कृणोत्यधुरम् ।  
होत्रा देवेषु गच्छति ॥ ८ ॥  
नराक्षसं सुष्टुष्टम्—मर्षस्य सप्रथस्तमम् ।  
दिवो न सन्नमस्वसम् ॥ ९ ॥ ( १३४१ )

संसदुपाच्यक्षः

## क्षेत्रपतिः ।

॥ १ ॥ ( ऋ० ४।५७।१-३ )  
( १-३ ) वामदेवो गीतम् । १ अनुष्टुप्, २-३ त्रिष्टुप् ।  
क्षेत्रस्य पतिना वयं हितेनैव जयामसि ।  
गामर्षं पोषयित्वा स नो मृळातीदृशे ॥ १ ॥  
क्षेत्रस्य पते मधुमन्तमभि  
धेनुर्वि पयो अस्मासु धुक्च ।  
मधुयुतं घृतमिव सुपतं

ऋतस्य नः पतयो मृळयन्तु ॥ २ ॥  
मधुमतीरोपधीर्वाव आपो  
मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम् ।  
क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान् नो अस्तु  
अरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम ॥ ३ ॥  
॥ १ ॥ ( या० य० १६।१८ )  
क्षेत्राणां पतये नमः ॥ १८ ॥ ( १३४३ )





# अदितिः, आदित्याश्च ।

## ( १ ) अदितिः ।

॥ १ ॥ ( अ० १।८९।१० )

( १ ) × गेतमो राहृगणः । त्रिष्टुप् ।

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षं—मदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।

विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम्

१० १

॥ २ ॥ ( अ० ८।१८४-७ )

( २-५ ) हरिश्चन्द्रिः काव्यः । उष्णिक् ।

देवेभिर्देव्यदिते जरिष्टमर्मन्ना गन्धि । स्मत् सुरिभिः पुरुषिषे सुशर्मभिः

४

ते हि पुत्रासो अदिते—विदुर्द्वर्पासि योर्वे ।

अंहोश्चिदुरुचक्रयोऽनेहसः

५

अदितिर्नो दिवा पशु—मदितिर्नक्तमद्वयाः । अदितिः पात्वंहसः सदावृषा

६

उत स्या नो दिवा मति—रदितिरुत्था गमत् । सा श्रुताति मयस्करदपु सिधः

५

॥ ३ ॥ ( अ० ८।६७ १०-१२ )

( ६-८ ) मत्स्यः साम्मन्द्, मन्त्रावधिमन्त्र्यः यद्वयो या मत्स्या जालनद्धाः । गाव्यः ।

उत त्वामदिते म—हृद् देव्युषं ब्रुवे । समुज्जीकाममिष्टये

१०

पपि दीने गमीर आ उग्रपुत्रे जिघांसतः । मार्कस्तोकरुषं नो रिपत्

११

अनेहो न उरुयज उरुचि वि प्रसर्वे । कृधि तोकायं जीवसे

१२

॥ ४ ॥ ( ९-१५ ) ( वा० य० ११।५६-५७, ५९ )

सिनीवाली सुकपुर्दा सुकुरीरा स्वां पश्या । सा तुभ्यमदिते मृगोद्या दवान् हव्ययोः

२

उखां कृणोतु शक्रया वाहुभ्यामर्दितिविद्या ।

माता पुत्रं यथोपस्थे सामिं विमर्त्तु गर्भं आ । मखस्य शिरोऽसि  
अदित्यै रास्नास्यर्दितिष्टे बिले गृह्णातु ।

५७ १०

कृत्वाय सा महीमुखां मृन्मयीं योनिमग्र्यै ।

पुत्रेभ्यः प्रायेच्छ्रुददितिः श्रपयानिति

५९ ११

॥ ५ ॥ ( चा० य० २१/५-७ ) अथर्व० ७।६।१-२ ;

महीमु पु मातरं सुव्रतानामृतस्य पत्नीमवसे ह्रुवेम ।

तुविश्वत्रामजरन्तीमुरुची सुशर्माणमर्दिति सुप्रणीतिम्

५

सुत्रामाणं पृथिवीं धामनेहसं सुशर्माणमर्दिति सुप्रणीतिम् ।

देवीं नारवं स्वर्ित्रामनांगसमस्त्रवन्तीमा रूहेमा स्वस्त्यै

६

सुनावमा रूहेयमस्त्रवन्तीमनांगसम् । श्वतरित्रा स्वस्त्यै

७ १४

॥ ६ ॥ ( चा० य० २९।४ ) वै० [ अति० ] २१०९ ।

स्तीर्णं बहिः सुष्टरीमा जुपाणोरु पृथु प्रथमानं पृथिव्याम् ।

देवैर्भिर्युक्तमर्दितिः सजोषाः स्योनं कृष्णानां सुविते देवातु

४ १५

॥ ७ ॥ ( अथर्व० ७।६।४ ) वा० य० २, ५, १८, २० ।

( १६-१७ ) अथर्वी । विराट् जगती ।

षाजस्य तु प्रसवे मातरं महीमर्दिति नाम वचसा करामहे ।

यस्या उपस्थं उर्वरं न्तरिक्षं सा नः शर्म त्रिवरुथं नि यच्छातु

४ १६

॥ ८ ॥ ( अथर्व० ७।७।१ ) आर्वी जगती ।

दितेः पुत्राणामर्दितेरकारिणमव देवानां बृहतामर्नर्मणाम् ।

तेषां हि धाम गमिपक् संप्रद्रियं नैनान् नमसा परो अस्ति कश्चन

१ १७

अदिति-सहचारी देवगण ।

( १ ) सोमः, अदितिः ।

॥ ९ ॥ ( अथर्व० ६।७।१-२ )

येन सोमादितिः पया मित्रा वा यन्त्यद्रुहः । तेन नोऽवसा गृहि

१

येन सोम साहन्त्या सूरान् रुन्धयांसि नः । तेना नो अभि वोचत

२ ११

## ( २ ) आदित्याः ।

॥ १० ॥ ( ऋ० १।४१।४-६ )

( १८-२० ) कण्वो घोरः । गायत्री ।

सुगः पन्थां अनृक्षुर आदित्यास ऋतं यते । नात्रावस्तादो अस्ति वः ४  
 यं यज्ञं नयथा नर आदित्या ऋजुनां पथा । प्र वः स धीतये नशत् ५  
 स रत्नं मर्त्यो वसु विश्वं तोकमुत रमना । अच्छां गच्छत्यस्तुतः ६ २०

॥ ११ ॥ ( ऋ० २।१७।१-१७ )

( २१-३७ ) कुमो गार्त्समदो, गृत्समदो वा । शिष्टम् ।

इमा गिर आदित्येभ्यो घृतस्नूः सुनाद् राजेभ्यो जुह्वा जुहोमि ।  
 शृणोतु मित्रो अर्यमा मगौ नस्तुविज्ञातो वरुणो दक्षो अंशः १  
 इमं स्तोमं सक्रतवो मे अद्य मित्रो अर्यमा वरुणो जुपन्त ।  
 आदित्यासः शुच्यो धारपृता अवृजिना अनयथा अरिष्टाः २  
 त आदित्यास उरवो मभीरा अदन्धामो दिप्सन्तो भूर्यक्षाः ।  
 अन्तः पश्यन्ति वृजिनोत साधु सर्वं राजेभ्यः परमा चिदन्ति ३  
 धारयन्त आदित्यासो जगत् स्या देवा विश्वस्य श्वनस्य गोपाः ।  
 दीर्घाधियो रक्षमाणा असुर्य मृतानान्श्वर्यमाना क्रुणानि ४  
 विद्यामादित्या अरसो वो अस्य यदर्यमन् भय आ चिन्मयोभु ।  
 युष्माकं मित्रावरुणा प्रणीतौ परि श्वत्रैव दुरितानि वृज्याम् ५ २५  
 सुगो हि वो अर्यमन् मित्र पन्थां अनृक्षुरो वरुण साधुरस्ति ।  
 तेनादित्या अर्षि वोचता नो यच्छता नो दुष्परिहन्तु शर्म ६  
 पिपर्तु नो अदिती राजपुत्रा जति द्वेपांस्यर्यमा सुगेभिः ।  
 बृहन्मित्रस्य वरुणस्य शर्मो प स्याम पुरुवीरा अरिष्टाः ७  
 तिस्रो भूमीर्धारयन् औरुत द्युन् त्रीणि व्रता विदथे अन्तर्गेषाम् ।  
 ऋतेनादित्या मर्हि वो महितं तदर्यमन् वरुण मित्र चारु ८  
 त्री रौचिना दिव्या धारयन्त हिरण्ययाः शुच्यो धारपृताः ।  
 अस्वप्नजो अनिमिषा अदन्धा उरुशंसं क्रुज्ये मर्त्याय ९  
 त्वं विश्वेषां वरुणासि राजा ये च देवा असुर ये च मर्ताः ।  
 श्रुतं नो रास्व श्रददौ विचक्षे ऽव्यामार्यपि सुधितानि पूरि १० ३०

न दक्षिणा वि चिकित्ते न सूच्या न प्राचीनमादित्या नोत पश्चा ।	
पाक्यां चिद् वसवो धीर्यो चिद् युष्मानीतो अमयं ज्योतिरदयाम्	११
यो राजस्य ऋतुनिभ्यो ददाश यं वर्धयन्ति पुष्टयश्च नित्याः ।	
स रेवान् याति प्रथमो रथेन वसुदावा विदथेयु प्रशस्तः	१२
शुचिरपः सुयवसा अदब्ध उप क्षेति वृद्धवयाः सुवीरः ।	
नकिष्टं घ्नन्त्यन्तितो न दूराद् य आदित्यानां भवति प्रणीतो	१३
अदिते मित्र वरुणोत मृळ यद् वो वयं चकृमा कचिदामः ।	
उर्वश्याममयं ज्योतिरिन्द्र मा नो दीर्घा अभि नश्नु तमिस्राः	१४
उभे अस्मै पीपयतः समीची दिवो वृष्टि सुभगो नाम पुण्यन् ।	
उभा क्षयावाजयन् याति पुत्राभावर्यो भवतः साधू अस्मै	१५ ३५
या वो माया अभिद्रुहे यजत्राः पाशा आदित्या रिपवे विचृत्ताः ।	
अश्वीच तौ अति वेपं रथेना रिष्टा उरावा शर्मन्त्स्याम	१६
माहं मघोनो वरुण मित्रस्य भूरिदाम आ विदुं शूनमापेः ।	
मा रायो राजन्त्सुयमादव स्यां बृहद् वंदेम विदथे सुवीराः	१७ ३७

॥ ११ ॥ ( ऋ० ७।५।१-३ )

( ३८-५३ ) मित्रावरुणिवर्षस्त्रिष्टः । त्रिष्टुप् ।

आदित्यानामवसा नृतेनेन सक्षीमहि शर्मणा शतमेन ।	
अनागास्त्वे अदितित्वे तुरास इमं यज्ञं दधतु श्रोपमाणाः	१
आदित्यासो अदितिर्मादयन्तां मित्रो अर्यमा वरुणो रजिष्ठाः ।	
अस्माकं सन्तु सुर्वनस्य गोपाः पिवन्तु सोममवसे नो अद्य	२
आदित्या विश्वे मरुतश्च विश्वे देवाश्च विश्वे ऋमवश्च विश्वे ।	
इन्द्रो अग्निरश्विनां तुष्टवाना यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः	३ ४०

॥ १३ ॥ ( ऋ० ७।५।१-३ )

आदित्यासो अदितयः स्याम् पूर्देवत्रा वसवो मर्त्यत्रा ।	
सनेम मित्रावरुणा सनन्तो भवेम द्यावापृथिवी भवेन्तः	१
मित्रस्तन्नो वरुणो मामहन्त शर्मं तोकाय तर्नयाय गोपाः ।	
मा वो सृजेमान्यजातमेनो मा तत् कर्म वसवो यचयध्वे	२ ४१

तुरण्यवोऽङ्गिरसो नक्षन्त रत्नं देवस्य सवितुरिंधानाः ।

पिता च तन्नो महान् यज्ञश्चो विश्वे देवाः समनसो जुपन्त

२ ४३

॥ १४ ॥ ( ऋ० ७।६।४-१३ )

गायत्री, १०-१३ प्रगाथः = ( समा बृहती+विपमा सतोबृहती )

यद्वद्य सूर उदिते जनांगा मित्रो अर्यमा । सुवार्ति सविता भगः ४

सुग्रावीरस्तु स क्षयः प्र जु यामन्त्सुदानवः । ये नो अंहोऽतिपिप्रति ५ ४५

उत खराजो अदिति रदन्धस्य व्रतस्य ये । महो राजान ईशते ६

प्रति त्नां सूर उदिते मित्रं शृणीषे वरुणम् । अर्यमणं रिशार्दसम् ७

राया हिरण्यया मृतिरियमवृकाय शर्वसे । इयं विप्रो मेघसांतये ८

ते स्याम देव वरुण ते मित्र सूरिभिः सह । इपं स्वंध धीमहि ९

बृहवः सूरचक्षसो ऽभिजिह्वा क्रतावृधः ।

त्रीणि ये येष्टुर्विदधानि धीतिमिर्विश्वांनि परिभूतिभिः १० ५०

वि ये द्रष्टुः शरदं मासमादहैर्यज्ञमक्तुं चादत्तम् ।

अनाप्यं वरुणो मित्रो अर्यमा क्षत्रं राजान आश्रत ११

तद् वो अद्य मनामहे सूक्तैः सूर उदिते ।

यदोहते वरुणो मित्रो अर्यमा युयमृतस्य रथ्यः १२

क्रतावान् क्रतुजाता क्रतावृधो घोरासो अनृतद्विपः ।

तेषां वः सुप्ते सुच्छदिष्टमे नरः स्याम ये च सूरयः १३ ५३

॥ १५ ॥ ( ऋ० ८।१।१-३, १०-१२ )

( ५४-६९ ) इरिग्विष्टिः काण्वः । उष्णिहः ।

इदं ह नूनमेषां सुप्तं भिक्षेतु मर्त्यः । आदित्यानामर्पूष्यं सर्वांमनि १

अनर्वाणो क्षेपां पन्था आदित्यानाम् । अदन्वाः सन्ति पायवः सुगेष्टुधः २ ५५

तद् सु नः सविता भगो वरुणो मित्रो अर्यमा । शर्म यच्छन्तु सप्रथो यदीमहे ३

अपामीवामप सिधमपं सेधत दुर्मतिम् । आदित्यासो युयोर्वना नो अंहसः १०

युयोता शर्मस्मदा आदित्यास उतामतिम् । ऋषग् द्वेपः कृणुत विश्ववेदसः ११

तद् सु नः शर्म यच्छताऽऽदित्या यन्ममोचति । एनंखन्तं चिदेनसः सुदानवः १२

यो नः कश्चिद् रिरिंक्षति रक्षस्त्वेन मर्त्यैः । स्वैः प एवै रिरिषीष्ट युर्जनः १३

समिद् तमघमश्नवद् दुःशंसं मर्त्यं रिपुम् । यो अस्मन्ना दुर्हणावो उप द्रुयुः १४ ६१

पाकत्रा र्भ्यन देवा हृत्सु जानीथ मर्त्यम् । उप द्वयं चाद्र्यं च वसवः १५  
 आ शर्म पर्वताना मोतापां वृणीमहे । द्यावाक्षामारे असद् रपस्कृतम् १६  
 ते नो मूद्रेण शर्मणा युष्माकं नावा वसवः । अति विश्वानि दुरिता पिपर्वत १७  
 तुचे तनाय तत् सु नो द्राघीय आयुर्जीवसे । आदिन्यासः सुमहसः कृणोतन १८ ६५  
 यज्ञो हीळो वो अन्तर आदित्या अस्ति मूळत ।  
 युष्मे इद् वो अपि प्मासि सजात्यै १९  
 बृहद् वरुणं मरुतां देवं त्रातारमश्विना । मित्रमीमहे वरुणं स्वस्तये २०  
 अनेहो मित्रार्यमन् नृवद् वरुण शंस्यम् । त्रिवरुणं मरुतो यन्त नश्छर्दिः २१  
 ये चिद्धि मृत्युर्वन्धव आदित्या मनवः स्मसि ।  
 प्र स न आयुर्जीवसे तिरेतन २२ ६३

॥ १६ ॥ ( ऋ० ८।११।३४-३५ )

( ८०-७१ ) सोमरिः काण्वः । ३४ उष्णिक्, ३५ सतोवृहती ।

यमादित्यासो अद्रुहः पारं नयथ मर्त्यम् । मघोनां विश्वेषां सुदानवः ३४ ७३  
 यूयं राजानः कं विचर्षणीसहः क्षयन्तं मानुषां अनु ।  
 वृयं ते धो वरुण मित्रार्यम्—न्त्यामेहृतस्य रथ्यः ३५ ७१

॥ १७ ॥ ( ऋ० ८।४७।१-१३ )

( ७२-८४ ) त्रित आप्यः । महापृथ्विः ।

महिं वो महतामघो वरुण मित्रं द्राशुषे ।

यमादित्या अमि द्रुहो रक्षथा नेमघं नश—दनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः १  
 पिदा देवा अघाना—मादित्यासो अपाकृतिम् ।

पृथा वयो यधोपरि व्यस्मे शर्म यच्छता—नेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः २  
 व्यस्मे अधि शर्म तत् पृथा वयो न यन्तन ।

विश्वानि विश्वेदमो वरुण्या मनामहे ज्ञेहमो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ३  
 यस्मा अरासत् धर्मं जीवातुं च प्रचेतमः ।

मनोविधम्य घेदुम आदित्या राप ईशते ज्ञेहमो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ४ ७  
 परि नो वृणजध्रुपा दुर्गाणि रथ्यो यथा ।

स्यामेदिन्द्रस्य शर्म—ण्यादित्यानां मृतावस्य—नेहमो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ५ ७

परिहृतेदुना जनो युष्मादत्तस्य वायति ।

देवा अर्दभ्रमाश वो यमादित्या अहेतना नेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ६  
न तं तिग्मं चन त्यजो न द्रांसदुभि तं गुरु ।

यस्मा उ शर्म सप्रथ आदित्यासो अराध्व मनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ७  
युष्मे देवा अपि प्मसि युष्यन्त इव वर्मसु ।

यूयं मुहो न एनसो यूयमभीदुरुष्यता नेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ८  
अदितिर्न उरुष्यत्व दितिः शर्म यच्छतु ।

माता मित्रस्य रेवतो ऽर्यम्णो वरुणस्य चा नेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ९ ८०  
यद् देवाः शर्म शरणं यद् भद्रं यदनातुरम् ।

त्रिघातु यद् वरुण्यं तदस्मासु वि यन्तना नेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः १०  
आदित्या अघ हि ख्यता धि क्लादिषु स्पशः ।

सुतीर्यमवतो यथा तु नो नेपथा सुग मनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ११  
नेह भद्रं रक्षास्त्रिने नावयै नोपया उत ।

गवै च भद्रं धेनवै वीराय च श्वस्यते ऽनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः १२  
यदाविर्यदपीच्यं देवासो अस्ति दुष्कृतम् ।

त्रिते तद् विश्वमाप्त्य आरे असद् दधातना नेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः १३ ८४  
॥ १८ ॥ ( क्र० ८६७।१-९, १३-२१ )

( ८५-१०९ ) मत्स्याः साममदः, मैत्रावरुणिर्मन्यः, बहवो वा मत्स्या जालनदाः । गायत्री ।

त्यान् तु क्षत्रियाँ अघ आदित्यान् याचिपामहे । सुमृष्टीकौ अभिष्टये १ ८५

मित्रो नो अत्यहृति वरुणः पर्पदयमा । आदित्यासो यथा विदुः २

तेषां हि चित्रमुक्थ्यं वरुणमस्ति द्वाशुषे । आदित्यानामरुक्ते ३

महि वो महतामत्रो वरुण मित्रार्यमन् । अवांसा वृणीमहे ४

जीवान् नो अभि धेतुना ऽऽदित्यासः पुरा हथात् । कद्धं स्य हवनश्रुतः ५

यद् वः श्रान्तायं सुन्वते वरुणमस्ति यच्छर्दिः । तेनां नो अधि वोचत ६ १०

अस्ति देवा अहोरुर्वस्ति रत्नमनागसः । आदित्या अद्रुतेनसः ७

मा नः सेतुः सिपेदयं मुहे वृणक्तु नस्परि । इन्द्र इदि श्रुतो वृशी ८

मा नो मुचा रिपुणां वृजिनानामविष्यवः । देवा अभि प्र मृंसत ९

ये मूर्धानः क्षितीना मदन्धासः स्वयंशसः । व्रता रथन्ते अद्रुहः १३ १४

ते न आत्सो वृकाणां—मादित्यासो मुमोचत । स्तेनं वृद्धमिवादिते	१४	९५
अपो पु ण इयं शरु—रादित्या अप दुर्मतिः । अस्मदेत्वजमुषी	१५	
अश्वद्वि वः सुदानव आदित्या ऊतिमिवैयम् । पुरा नूनं पुंमुज्जहे	१६	
अश्वन्तं हि प्रचेतसः प्रतियन्तं चिदेनसः । देवाः कृणुथ जीवसे	१७	
तत् सु नो नव्यं सन्यस आदित्या यन्मुमोचति । घन्धाद् वृद्धमिवादिते	१८	
नास्माकमस्ति तत् तर आदित्यासो अतिष्कदे । यूयमस्मभ्यं मृत्युत	१९	१००
मा नो हेतिविवस्वत आदित्याः कृत्रिमा शरुः । पुरा नु जरसो वधीत्	२०	
वि पु द्वेपो व्यहृति—मादित्यासो वि संहितम् । विष्वग् वि वृहता रपः	२१	१०१

॥ १९ ॥ ( ऋ० ८।१०।१६ )

( १०३ ) जमदग्निर्भागवः । सतोवृहती ।

ते हिंन्विरे अरुणं जेन्यं वस्वे—कं पुत्रं तिसृणाम् ।		
ते धामान्यमृता मर्त्याना—मदच्छा अमि चक्षते	६	१०१

॥ २० ॥ ( ऋ० १०।१८।५।१-३ )

( १०४-१०६ ) सत्यधृतिर्घाकणिः । आवित्यः ( स्वस्त्ययनम् ) । गायत्री ।

महिं श्रीणामवोऽस्तु शुक्षं मित्रस्यार्यस्याः । दुराधर्षं वरुणस्य	१	
नहि तेषाममा चन नार्जसु वारुणेषु । इशे रिपुवधशंसः	२	१०५
यस्मै पुत्रासो अदितेः प्र जीवसे मर्त्याय । ज्योतिर्यच्छन्त्यजस्रम्	३	१०६

॥ २१ ॥ ( १०७-११० ) ( चा० य० ८।१-५ )

उपयामगृहीतोऽस्यादित्येभ्यस्त्वा ।		
विष्णं उरुगायैष ते सोमस्त५ रक्षस्व मा त्वा दभन्	१	
कदा चन स्तरीरसि नेन्द्रं सशसि दाशुषे ।		
उपोपेक्षु मघवन् भूय इक्षु ते दानं देवस्य पृथ्यत आदित्येभ्यस्त्वा	२	
कदा चन प्रयुच्छस्युमे निर्पासि जन्मनी ।		
तुरीयादित्यं सर्वनं त इन्द्रियमातस्यावृषतं दिव्यादित्येभ्यस्त्वा	३	
युक्षो देवानां प्रत्येति सुभ्रमादित्यासो भवता मृदयन्तः ।		
आ वोऽर्वाचीं सुमतिर्वयूत्यादु५होत्रिद्या वरिवोविचरासदादित्येभ्यस्त्वा	४	११०
विर्वस्वन्नादित्येष ते सोमणीयस्तस्मिन् मत्स्व	५	१११

॥ २२ ॥ ( चा० य० १३।३, ५ )

अदं जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद् वि सीमतः सुरुचो येन आवः ।		
स घृज्या उपमा अस्य गिष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च विवः	३	११२



द्रुप्तश्चस्कन्द पृथिवीमनु धामिमं च योनिमनु यश्च पूर्वः ।

समानं योनिमनु सञ्चरन्तं द्रुप्तं जुहोम्यनु सप्त होत्राः

५ ११३

॥ २३ ॥ ( वा० य० १७।५९-६० )

विमानं एष दिवो मध्यं आस्त आपप्रिवान् रोदसी अन्तरिक्षम् ।

स विश्वार्चिरमिचष्टे घृतार्चिरन्तरा पूर्वमपरं च केतुम्

५९

उक्षा समुद्रो अरुणः सुपर्णः पूर्वस्य योनिं पितुराविवेश ।

मध्यं दिवो निर्हितः पृश्निरश्मा विचक्रमे रजसस्पात्यन्तौ

६० ११५

॥ २४ ॥ ( वा० य० २३।५; ३१।१७ )

युञ्जन्ति ब्रह्मरूपं चरन्तं परं तस्युपः । रोचन्ते रोचना दिवि

५

अद्भ्यः सम्भृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्तताप्रे ।

तस्य त्वष्टा विदधद् रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे

१७ ११७

॥ २५ ॥ ( वा० य० ३३।८१-८२ )

इमा उ त्वा पुरुवसो गिरौ वर्धन्तु या मम ।

पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनुपत

८१

यस्यायं विश्व आयो दासः शेषविषा अरिः ।

तिरश्चिदुयै रुशमे पर्विरवि तुभ्येत्सो अज्यते रयिः

८२

अयं सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्र इव पप्रये ।

सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये

८३ १००

॥ २६ ॥ ( अथर्व० २।३१।१-६ ) [ दे० ( आयुर्वेद० ) ११५ सूक्तं द्रष्टव्यम् । ]

॥ २७ ॥ ( अथर्व० १६।३।१-६ )

( १२१-१६३ ) ग्रहाः । १ आसुरी गायत्री; २-३ आर्च्यनुष्टुप्; ४ प्राजापत्या त्रिष्टुप्;

५ साम्युष्णिक्; ६ द्विपदा सामी त्रिष्टुप् ।

मूर्धाहं रयीणां मूर्धा समानानां भूयासम्

१

रुजश्च मा वेनश्च मा हांसिष्टां मूर्धा च मा विधर्मा च मा हांसिष्टाम्

२

उर्वश्च मा चमसश्च मा हांसिष्टां घृता च मा घरुणश्च मा हांसिष्टाम्

३

विमोक्षश्च मार्षपविश्च मा हांसिष्टामार्षदानुश्च मा मातरिणां च मा हांसिष्टाम्

४ १२४

× वा० य० २३।५ = दे० [ इन्द्रः ] २४, अथर्व० २०, २६, ४, ४७, १०, ६९, ९; साम० १४६८

\* बृहस्पतिर्म आत्मा नृमणा नाप ह्यः ५ ११५  
असंतापं मे हृदयमुर्ध्वं गन्धर्वतिः समुद्रो अस्मि विधर्मणा ६ ११६

॥ २८ ॥ ( अथर्व० १६।४।१-७ )

१, ३ सामान्यनुष्टुप्; २ सामान्युष्णिक्; ४ त्रिपदाऽनुष्टुप्; ५ आसुरी गायत्री; ६ आर्च्युष्णिक्; ७ त्रिपदा विराट्गर्भाऽनुष्टुप् ।

नाभिंरहं रयीणां नाभिः समानानां भूयासम् १  
स्वासदासि सुपा अमृतो मर्त्येष्व २  
मा मां प्राणो हासीन्मो अपानोऽब्रुहाय परां गातु ३  
सूर्यो माहः पात्वभिः पृथिव्या वायुरन्तरिक्षाद् यमो मनुष्येभ्यः सरस्वती पार्थिवेभ्यः ४ ११०  
प्राणापानौ मा मां हासिष्टं मा जने प्र मैषि ५  
स्वस्त्यधोपसौ द्रोपसंश्च सर्वे आपः सर्वेगणो जशीय ६  
शकरी स्य पशवो मोषं स्थेषुभिन्नावरुणौ मे प्राणापानावभिर्मे दक्षं दधातु ७ १११

॥ २९ ॥ ( अथर्व० १७।१।१-३० )

१ जगती; १-८ इयवसाना; १-३ अतिजगती; ६-७, १९ अत्यष्टिः; ८, ११, १६ अतिधृतिः;  
९ पञ्चपदा शकरी; १०-१३, १६, १८-१९, २४ इयवसाना; १० अष्टपदा धृतिः;  
१२ कृतिः; १३ प्रकृतिः; १४-१५ पञ्चपदा शकरी; १७ पञ्चपदा विराडतिशकरी;  
१८ भूरिगष्टिः; २४ विराडत्यष्टिः; १-५ पदपदा; ११-१३, १६, १८-१९, २४  
सप्तपदा; २० ककुप्; २१ चतुष्पदा उपरिष्टाद्बृहती; २२ याजुषी  
अनुष्टुप्; २३ निबृहद्बृहती ( २१-२३ द्विपदा ); २५-२६ अनुष्टुप्;  
२७, ३० जगती; २८-२९ त्रिष्टुप् ।

विपासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम् ।  
सहमानं सहोजितं स्वजितं गोजितं संघनाजितम् ।

ईदयं नाम ह इन्द्रमार्युम्मान् भूयासम् १  
विपासहिं० । सहमानं० । ईदयं नाम ह इन्द्रं प्रियो देवानां भूयासम् २ १११  
विपासहिं० । सहमानं० । ईदयं नाम ह इन्द्रं प्रियः प्रजानां भूयासम् ३  
विपासहिं० । सहमानं० । ईदयं नाम ह इन्द्रं प्रियः पशूनां भूयासम् ४  
विपासहिं० । सहमानं० । ईदयं नाम ह इन्द्रं प्रियः समानानां भूयासम् ५  
उद्विषादिदि मूर्प्यं पचंसा माम्पुदिदि ।  
द्विषंथ मघं रष्यंतु मा प्राहं दिपते रघं तवेद् विष्णो यदुषां वीर्याणि ।  
न्ये नः पूर्णादि पशुभिर्विस्वरूपैः गुधायौ मा वेहि परमे व्योमन् ६ ११२

उद्विष्टदिदिह सूर्यं वर्चसा माम्युदिदिह ।

यांश्च पश्यामि यांश्च न तेषु मा सुमतिं कृधि तवेद् विष्णो० । त्वं नः०

७ १४०

मा त्वा दमन्तसलिले अप्सवन्तये पाशिन उपतिष्ठन्त्यत्र ।

द्वित्वाशस्ति दिवमारुक्ष एतां स नो मृड सुमतौ तै स्याम तवेद् विष्णो० । त्वं नः०

८

त्वं न इन्द्र मुहते सौमगायादब्धेभिः परि पाह्यक्तुमिस्तवेद् विष्णो० । त्वं नः०

९

त्वं न इन्द्रोतिभिः शिवाभिः शतंभो मव ।

आरोहस्त्रिदिवं दिवो गृणानः सोमपीतये प्रियघामा स्वस्तये तवेद् विष्णो० । त्वं नः०

१०

त्वमिन्द्रासि विश्वजित् सर्ववित् पुरुहुतस्त्वमिन्द्र ।

त्वमिन्द्रं मुहयं स्तोममेरयस्व स नो मृड सुमतौ तै स्याम तवेद् विष्णो० । त्वं नः०

११

अदब्धो दिवि पृथिव्यामुतासि न तं आपुर्महिमानमन्तरिक्षे ।

अदब्धेन ब्रह्मणा वावृधानः स त्वं न इन्द्र दिवि पृथग् यच्छ तवेद् विष्णो० । त्वं नः०

१२ १४५

या तं इन्द्र तनुरप्सु या पृथिव्यां यान्तराग्री या तं इन्द्र पर्वमाने स्वर्दिदि ।

ययेन्द्र तन्वाइन्तरिक्षं व्यापिथ तथा न इन्द्र तन्वाइ शर्म यच्छ तवेद् विष्णो० । त्वं नः०

१३

त्वमिन्द्र ब्रह्मणा वर्धयन्तः सुत्रं नि पेटुर्ऋषयो नार्धमानास्तवेद् विष्णो० । त्वं नः०

१४

त्वं तुतं त्वं पर्येष्यस्ते सहस्रधारं विदथं स्वर्दिदं तवेद् विष्णो० । त्वं नः०

१५

त्वं रक्षसे प्रदिशश्चतस्रस्त्वं शोचिषा नमसी वि मांमि ।

त्वमिमा विश्वा भवन्तानु तिष्ठस ऋतस्य पन्यामन्त्रेपि विद्वांस्तवेद् विष्णो० । त्वं नः०

१६

पञ्चभिः पराङ् तपस्येकयावार्द्धशस्तिमेपि सुदिने वार्धमानस्तवेद् विष्णो० । त्वं नः०

१७ १५०

त्वमिन्द्रस्त्वं महेन्द्रस्त्वं लोकस्त्वं प्रजापतिः ।

तुभ्यं यज्ञो वि तापते तुभ्यं जुहति जुहंतस्तवेद् विष्णो० । त्वं नः०

१८

असति सत् प्रतिष्ठितं सति भूतं प्रतिष्ठितम् ।

भूतं ह भव्य आहितं भव्यं भूते प्रतिष्ठितं तवेद् विष्णो० । त्वं नः०

१९

शुक्रोऽसि आजोऽसि । स यथा त्वं आजता आजोऽस्येवाहं आजता आज्यासम्

२०

रुचिरासि रोचोऽसि । स यथा त्वं रुच्या रोचोऽस्येवाहं पशुभिश्च ब्राह्मणवर्चसेन

च रुचिपीय

२१

उद्यते नम उदायते नम उदिताय नमः । विराजे नमः स्वराजे नमः सप्राजे नमः

२२ १५५

अस्तंयते नमोऽस्तमेप्यते नमोऽस्तमिताय नमः । विराजे नमः स्वराजे नमः०	२३
उदंगादयमादित्यो विश्वेन तपसा सह ।	
सपत्नान् महीं रन्धयन् मा चाहं द्विपते मधं तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।	
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायी मा घेहि परमे ज्योमिन्	२४
आदित्य नावमारुक्षः शतारित्रां स्वस्तये । अहर्मात्यपीपरो रात्रिं सत्रातिं पारय	२५
सूर्य नावमारुक्षः शतारित्रां स्वस्तये । रात्रिं मात्यपीपरोऽहः सत्रातिं पारय	२६
प्रजापतेरावृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च ।	
जरदष्टिः कुतवीर्यो विहायाः सहस्रायुः सुकृतश्चरेयम्	२७ १६०
परीवृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च ।	
मा मा प्रापन्निपवो दैव्या या मा मालुपीरवसृष्टा वधाय	२८
श्रुतेन गुप्त श्रुतमिश्च सर्वभूतेन गुप्तो मर्त्येन चाहम् ।	
मा मा प्रापत् पाप्मा मोत मृत्युरन्तर्दधेऽहं संलिलेन वाचः	२९
अभिर्मा गोप्ता परि पातु विश्वत उद्यन्तस्यो नुदता मृत्युपाशान् ।	
व्यूच्छन्तीरुपसः पर्वता ध्रुवाः सहस्रं प्राणा मय्या यतन्ताम्	३० १६१

॥ ३० ॥ ( अथर्व० १९।१८।४ )

( १६४ ) अथर्वी । आर्च्यनुष्टुप् ।

वरुणं त आदित्यवन्तमृच्छन्तु । ये मांघ्रायवं एतस्यां दिशोऽभिदासात् ४ १६४

( १६५ ) ॥ ३१ ॥ ( अथर्व० २०।१३।६ )

आदित्या इ जरितुरङ्गिरोभ्यो दक्षिणामनयन् ।

तां ह जरितुः प्रत्यायन्ताम् इ जरितुः प्रत्यायन्

६ १६५

आदित्य-सहचारी देवगणः ।

( १ ) आदित्योपसः ।

॥ ३२ ॥ [ दै० ( उपा ) १८७-१९१ मन्त्राः द्रष्टव्याः । ]

( २ ) अग्निमित्रवरुणादित्यविश्वेदेवाः ।

( १६६ ) ॥ ३३ ॥ ( चा० य० १११ )

व्रतं कृणुताग्निर्ब्रह्माग्निर्यज्ञो वनस्पतिर्यज्ञिर्यः ।

देवां धियं मनामहे सुमृदीकामभिष्टये वचोर्षां यज्ञवाहसः सुतीर्या नो असद्वशे ।

ये देवा मनोजाता मनोयुजो दसकृतवस्ते नोऽवन्तु ते नः पान्तु तेभ्यः स्वाहा

११ १६६

( ३ ) आदित्या वसवोऽङ्गिरसः पितरः ।

॥ ३४ ॥ ( अथर्व० २१११४ ) ( १६७ ) मरद्वाजः । त्रिष्टुप् ।

अशीतिभिस्त्विष्टभिः सामगेभिरादित्येभिर्वसुभिराङ्गिरोभिः ।

इष्टापूर्वमवतु नः पितृणामाहुं दंढे हरसा दैव्येन

४ १६७

( ४ ) भगादित्याः ।

॥ ३५ ॥ ( अथर्व० ३११६१२-३, ५ ) ( १६८-१७० ) ; अथर्वी । त्रिष्टुप् ।

प्रातर्जितं भगमुग्रं हवामहे वयं पुत्रमदितुर्यो विधत्ता ।

आश्विद् यं मन्यमानस्तुराश्विद् राजां विद् यं भगं मसीत्याहं

२

भग प्रणेतुर्मग सत्पराधो भगेमां धियमुदेवा ददर्शः ।

३

भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्मग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम

भग एव भगवाँ अस्तु देवस्तेना वयं भगवन्तः स्याम ।

तं त्वा भग सर्व इजोहवीमि स नो भग पुरस्ता भवेह

५ १७०

( ५ ) बृहस्पतिः, आदित्यः ।

॥ ३६ ॥ ( अथर्व० ४१११-७ ) +

( १७१-१७७ ) घेनः । त्रिष्टुप्, २, ५ पुरोऽनुष्टुप् ।

वक्षं जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद् वि सीमतः सुरुचो वेन आचः ।

स चुघ्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च वि वः

१

इयं पित्र्या राष्ट्रैत्वग्नें प्रथमार्यं अनुपेँ धुवनेष्ठाः ।

तस्मा एतं सुरुचं ह्यारमक्षं धर्मं धीणन्तु प्रथमार्यं घास्यवे

२ १७२

अस्तंयते नमोऽस्तमेप्यते नमोऽस्तमिताय नमः । विराजे नमः स्वराजे नमः०	२३
उदगादयमादित्यो विश्वेन तपसा सह ।	
सपत्नान् मह्यं रन्धयन् मा चाहं द्विपते रघुं तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।	
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायी मा धेहि परमे व्योमिन्	२४
आदित्य नायमारुक्षः शतारित्रां स्वस्तये । अहर्मात्यपीपरो रात्रिं सत्रातिं पारय	२५
सूर्य नायमारुक्षः शतारित्रां स्वस्तये । रात्रिं मात्यपीपरोऽहः सत्रातिं पारय	२६
प्रजापतेरावृतो ब्रह्मणा बर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च ।	
जरदष्टिः कृतवीर्यो विहायाः सहस्रायुः सुकृतश्चरेयम्	२७ १६०
परीवृतो ब्रह्मणा बर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च ।	
मा मा प्रापन्निर्षवो दैव्या या मा मातुंपीरवसृष्टा वधाय	२८
ऋतेन गुप्त ऋतुमिक्ष सर्वभूतेन गुप्तो भव्येन चाहम् ।	
मा मा प्रापत् पाप्मा मोत मृत्युरन्तर्दधेऽहं संल्लिलेन वाचः	२९
अमिमां गोप्ता परि पातु विश्वत उद्यन्तक्षर्यो नुदता मृत्युपाशान् ।	
व्युच्छन्तीरुपसः पर्वता ध्रुवाः सहस्रं प्राणा मय्या यतन्ताम्	३० १६१

॥ ३० ॥ ( अथर्व० १९।१८।४ )

( १६४ ) अथर्वा । आचर्यनुष्टुप् ।

वरुणं त आदित्यवन्तमृच्छन्तु । ये माघायव एतस्यां दिशोऽभिदासात् ४ १६४

( १६५ ) ॥ ३१ ॥ ( अथर्व० २०।१३।६ )

आदित्या ह जरितराङ्गिरोभ्यो दक्षिणामनयेन् ।

तां ह जरितुः प्रत्यायंस्ताम् ह जरितुः प्रत्यायन् ६ १६५

## ( ३ ) मित्रः, मित्रावरुणौ च ।

॥ ४० ॥ ( ऋ० १।१५।११ )

( १८४ ) दीर्घतमा औचथ्यः । जगती ।

मित्रं न यं शिष्या गोपुं गन्धर्वः स्वाध्व्यो विदथे अप्सु जीजनन् ।

अरेजेतां रोदसी पार्जसा गिरा प्रति प्रियं यजतं जनुषामर्षः

१ १८४

॥ ४१ ॥ ( ऋ० ३।५९।१-९ ) ×

( १८५-१९३ ) गायिनो विश्वामित्रः । त्रिष्टुप्, ६-९ गायत्री ।

मित्रो जनान् यातयति ब्रुवाणो मित्रो दाधार पृथिवीमुत धाम् ।

मित्रः कृष्टीरनिमिषाभि चेटे मित्राय हव्यं घृतवज्रहोत

१ १८५

प्र स मित्रं मर्तो अस्तु प्रयस्वान् यस्त आदित्यं शिक्षति व्रतेन ।

न हन्यते न जीयते त्योतो नैनमहो अश्रोत्यन्तितो न दूरात्

२

अनमीवास हलपा मदन्तो मितर्ज्वो वरिमन्ना पृथिव्याः ।

आदित्यस्य व्रतमपक्षियन्तो वयं मित्रस्य सुमर्तो स्याम

३

अयं मित्रो नमस्यः सुशेवो राजा सुसत्रो अजनिष्ट वेधाः ।

तस्य वयं सुमर्तौ यक्षियस्याऽपि भद्रे सौमनसे स्याम

४

महौ आदित्यो नमसोपसद्यो यातयज्जनो गृणते सुशेवः ।

तस्मा एतत् पन्यतमाय जुष्टं मग्नौ मित्राय हविरा जुहोत

५

मित्रस्य चर्पणीघृतो ऽवो देवस्य सानसि । द्युमं चित्रश्रवस्तमम्

६ १९०

अभि यो महिना दिवं मित्रो बभूव सप्रथाः । अभि श्रवोभिः पृथिवीम्

७

मित्राय पश्वं योमरे जना अभिष्टिशवसे । स देवान् विशान् चिमर्ति

८

मित्रो देवेन्द्रायुषु जनाय वृक्तवर्हिषे । हयं इष्टव्रता अकः

९ १९३

॥ ४२ ॥ ( १९४ ) ( वा० य० ११।५३ )

मित्रः सःसृज्यं पृथिवीं भूमिं च ज्योतिषा सह ।

सुजातं जातवेदसमपुष्पाय त्वा सःसृजामि प्रजाम्यः

५३ १९४

॥ ४३ ॥ ( अथर्व० १२।१९।१ )

( १९५ ) अथर्वा मुरिगृहती ।

मित्रः पृथिव्योदक्रामत् तां पुरं प्र गयामि वः ।

तामा विंशतु तां प्र विंशतु सा वः शर्मं च वर्मं च यच्छतु

१ १९५

प्र यो जज्ञे विद्वानस्य चन्द्रर्विश्वा देवानां जनिमा विवक्ति ।  
 ब्रह्म ब्रह्मण उज्जभार मध्याग्नीचैरुचैः स्वधा अभि प्र तस्यो  
 स हि दिवः स पृथिव्या क्रतुस्था मही क्षेमं रोदसी अस्कभायत् ।  
 महान् मही अस्कभायद् वि जातो धां सन्न पार्थिवं च रजः  
 स बुध्न्यादाप्त्र जुनुपोऽभ्यग्रं बृहस्पतिर्देवता तस्य सम्राट् ।  
 अहर्षच्छ्रुक्रं ज्योतिषो जनिष्टार्थं धूमन्तो वि र्सन्तु विप्राः  
 नूनं तदस्य क्वाव्यो हिनोति महो देवस्य पूर्वस्य धाम ।  
 एष जज्ञे बहुभिः साकमित्था पूर्वं अर्धे विपिते ससन्न  
 योऽथर्वाणं पितरं देवर्षेन्धुं बृहस्पतिं नमसायं च गच्छात् ।  
 त्वं विश्वेषां जनिता यथासः कृविर्देवो न दभायत् स्वधावान्

३

४

५ १७५

६

७ १७७

### ( ६ ) दिवादित्यौ ।

॥ ३७ ॥ ( अथर्व० ४।३९।५-६ )

( १७८-१७९ ) अङ्गिराः । ५ त्रिपदा महाबृहती, ६ संस्तरपक्षिः ।

दिव्यादित्याय समनमन्त्स आर्घोत् ।

यथा दिव्यादित्याय समनमन्नेवा मह्यं संनमः सं नमन्तु

द्यौर्धेनुस्तस्मा आदित्यो वत्सः । सा मे आदित्येन वत्सेनेपमूर्जं कामं दुहाम् ।

आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा

५

६ १७९

### ( ७ ) आदित्यादयः ।

॥ ३८ ॥ ( अथर्व० ५।२१।१०-१२ )

( १८०-१८२ ) ब्रह्मा । अनुष्टुप्, ११ बृहतीगर्गा त्रिष्टुप् ।

आदित्यं चक्षुरा दत्स्व मरीचयोऽनु धावत । पत्सङ्गिनीरा सजन्तु विगते बाहुवीर्ये

यूयमुग्रा मरुतः पृश्निमातर इन्द्रेण युजा प्र मृणीत शत्रून् ।

सोमो राजा वरुणो राजा महादेव उत मृत्युरिन्द्रः

एता देवसेनाः सूर्यकेतवः सचेतसः । अमित्रान् नो जयन्तु स्वाहा

१० १८०

११

१२ १८१

### ( ८ ) आदित्या रुद्रा वसवश्च ।

॥ ३९ ॥ ( १८३ ) ( अथर्व० १०।१३।९ )

आदित्या रुद्रा वसवस्त्वेतु त इदं राघः प्रति गृष्णीसङ्गिरः ।

इदं राघो विष्णु प्रभु इदं राघो बृहत्पृथुं

९ १८३



## ( ३ ) मित्रः, मित्रावरुणौ च ।

॥ ४० ॥ ( ऋ० १।१५।११ )

( १८४ ) दीर्घतमा औचक्ष्यः । जगती ।

मित्रं न यं शिष्या गोपुं गुण्यवः स्वाध्यां विदधे अप्सु जीर्जनम् ।

अरेजितां रोदसी पार्जसा गिरा प्रति प्रियं यजतं जुनुषामवः ।

१ १८४

॥ ४१ ॥ ( ऋ० ३।५९।१-९ ) ×

( १८५-१९३ ) गायत्री विश्वामित्रः । त्रिष्टुप्, ६-९ गायत्री ।

मित्रो जनान् यातयति ब्रुवाणो मित्रो दाधार पृथिवीमुत धाम् ।

मित्रः कृष्टीरनिमिषाभि चष्टे मित्राय हव्यं घृतवज्रहोत

१ १८५

प्र स मित्रं मर्तो अस्तु प्रयस्वान् यस्त आदित्यं शिक्षति व्रतेन ।

न हन्यते न जीयते त्वोतो नैनमंहो अश्रोत्यन्तितो न दुरात्

२

अनमीवास इळया मदन्तो मितज्ञवो वरिमन्ना पृथिव्याः ।

आदित्यस्य व्रतमुपक्षिपन्तो वयं मित्रस्य सुमर्तो स्याम

३

अयं मित्रो नमस्यः सुशेषो राजा सुश्वो अजनिष्ट वेधाः ।

तस्य वयं सुमर्तो यक्षियस्याऽपि मूद्रे सौमनसे स्याम

४

मह्यं आदित्यो नमसोपसद्यो यातयज्जनो गृणते सुशेवः ।

तस्मा एतत् पन्थतमाय जुष्टं मग्नौ मित्राय हविरा जुहोत

५

मित्रस्य चर्षणीधृतो ऽवो देवस्य सानसि । द्युम्नं चित्रश्रवस्तमम्

६ १९०

अभि यो महिना दिवै मित्रो बभूव सप्रथाः । अभि श्रवोभिः पृथिवीम्

७

मित्राय पश्वं येमिरे जना अभिष्टिशवसे । स देवान् विश्वान् विमर्ति

८

मित्रो देवेन्द्रायुषु जनाय वृक्तवर्हिषे । ह्यं इष्टव्रता अकः

९ १९३

॥ ४२ ॥ ( १९४ ) ( वा० य० ११।५३ )

मित्रः सः सृज्यं पृथिवीं भूमिं च ज्योतिषा सह ।

सुजातं जातवेदसमयस्मार्त्ता सः सृजामि प्रजाभ्यः

५३ १९४

॥ ४३ ॥ ( अथर्व० १९।१९।१ )

( १९५ ) अथर्वं भुरिगृहती ।

मित्रः पृथिव्योदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।

तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्मं च चर्मं च यच्छत

१ १९५

॥ ४४ ॥ ( ऋ० १।२।७-९ )

( १९६-१९८ ) मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । गायत्री ।

मित्रं हुवे पुतदक्षं वरुणं च रिशादंसम् । धियं धृताचीं सार्धन्ता ७  
 ऋतेन मित्रावरुणा वृतावृषावृतस्पृशा । क्रतुं बृहन्तमाशाये ८  
 कवी नो मित्रावरुणा तुविजाता उरुक्षया । दक्षं दधाते अयसम् ९ १९८

॥ ४५ ॥ ( ऋ० १।२३।४-६ )

( १९९-२०१ ) मेघातिथिः काण्वः । गायत्री ।

मित्रं वयं हवामहे वरुणं सोमपीतये । जज्ञाना पुतदक्षसा ४  
 ऋतेन यावृतावृषा वृतस्य ज्योतिषस्पती । ता मित्रावरुणा हुवे ५ २००  
 वरुणः प्राविता भुवन् मित्रो विश्वामिरुतिभिः । करतां नः सुरार्धसः ६ २०१

॥ ४६ ॥ ( ऋ० १।४३।३ )

( २०२ ) कण्वो घोरः । गायत्री ।

यथा नो मित्रो वरुणो यथा रुद्रधिकेतति । यथा विश्वं सजोषसः ३ २०२

॥ ४७ ॥ ( ऋ० १।१३६।१-७ )

( २०३-२१३ ) परच्छेपो देवोदासिः । अत्यष्टिः, ७ त्रिष्टुप् ।

प्र तु ज्येष्ठं निचिराम्पां बृहन्नमो हव्यं मतिं भरता मृळ्यद्भ्यां स्वादिष्टं मृळ्यद्भ्याम् ।  
 ता सभ्राजा धृतासुती यज्ञेयज्ञ उपस्तुता ।

अथैनोः क्षत्रं न कर्तश्चनाधृषे देवत्वं न चिदाधृषे १

अदक्षि गातुरुवे वरीयसी पन्या ऋतस्य समर्थस्त रश्मिभिः शशुर्भगस्य रश्मिभिः ।

धुधं मित्रस्य सार्धनमर्यम्णो वरुणस्य च ।

अथा दधाते बृहदुक्थ्यं वयं उपस्तुत्यं बृहद् वयं २

ज्योतिष्मतीमर्दति धारयति क्षति स्वंतीमा संचेते दिवेदिवे जागृवांसो दिवेदिवे ।

ज्योतिष्मत् क्षत्रमाश्रते आदित्या दानुनस्पती ।

मित्रस्तपोर्वरुणो यातयज्ञनो ऽर्यमा यातयज्ञनः ३ २०५

अयं मित्राय वरुणाय श्रतंमः सोमो भूत्ववपानेष्वायंगो देवो देवेष्वायंगः ।

तं देवांसो जुपेरत विश्वं अघ सजोषसः ।

यथा राजाना करयो यदीमह ऋतावाना यदीमहे ४ २०६

यो मित्राय वरुणाय विध्वज्जनों ऽन्वर्णं तं परि पातो अहंसो दाश्वांसं मर्तमंहमः ।  
तमर्यमाभि रक्ष—त्यृजुयन्तमनु ब्रतम् ।

उक्थैर्य एनोः परिभूयति ब्रतं स्तोमैराभूयति ब्रतम् ५  
नमो दिवे बृहते रोदसीर्या मित्राय वोचं वरुणाय मीळहुपे सुमृळीकाय मीळहुपे ।  
इन्द्रमग्निमुप स्तुहि द्युक्षमर्यमणं मगम् ।

ज्योतीर्वन्तः प्रजया सचेमहि सोमस्योती सचेमहि ६  
ऊती देवानां वयमिन्द्रवन्तो मंसीमहि स्वयंशसो मरुद्भिः ।  
अग्निमित्रो वरुणः शर्म यंसन् सदश्याम मघवानो वयं च ७ २०९

॥ ४८ ॥ ( १।१३७।१-३ ) अतिशक्ती ।

सुपुमा यातमद्रिभिर्गोर्ध्रीता मत्सरा इमे सोमांसो मत्सरा इमे ।  
आ राजाना दिविस्पृशा ऽस्मन्ना गन्तुमुप नः ।

इमे वा मित्रावरुणा गवांशिरः सोमाः शुक्रा गवांशिरः १ २१०  
इम आ यातमिन्द्रवः सोमांसो दद्यांशिरः सुतांसो दद्यांशिरः ।  
उत वामुपसो वृधि साकं धर्मस्य रुश्मिभिः ।

मुतो मित्राय वरुणाय पीतये चार्कृताय पीतये २  
तां वा धेनुं न वासुरीमंशुं दुहन्त्याद्रिभिः सोमं दुहन्त्याद्रिभिः ।  
अस्मन्ना गन्तुमुप नो ऽर्वाञ्चा सोमपीतये ।

अयं वा मित्रावरुणा नृभिः सुतः सोम आ पीतये सुतः ३ २१०

॥ ४९ ॥ ( ऋ० १।१९।१० ) अत्याष्टिः ।

यद्व त्पन्मित्रावरुणावृतादभ्यादुदाये अनृतं स्वेन मन्युना दक्षस्य स्वेन मन्युना ।  
युवोरित्याधि सञ्ज स्वपश्याम हिरण्ययम् ।

धौमिश्चन मनसा स्वैर्भिरक्षभिः सोमस्य स्वैर्भिरक्षभिः २ २१३

॥ ५० ॥ ( ऋ० १।१५।१०-९ )

( २१७-२३० ) दीर्घतमा औचक्ष्यः । जगती ।

यद्व त्यद् वां पुरुमीळहस्यं सोमिनः प्र मित्राग्नो न दधिरे स्वाधुवः ।

अध कृतं निदतं गातुमर्चत उत श्रुतं वृषणा पुस्त्यावतः २

आ वा भूपन् क्षितयो जन्म रोदस्योः प्रगान्यं वृषणा दक्षसे महे ।

यदीमृताय भरधो यदर्वते प्र होत्रया शिम्पा वीयो अचरम् ३ २१५

॥ ४४ ॥ ( अ० १।१।७-९ )

( १९६-१९८ ) मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । गायत्री ।

मित्रं हुवे पुतर्दक्षं वरुणं च रिशादसम् । धियं घृताचीं सार्धन्ता ७  
 ऋतेन मित्रावरुणा वृतावृधावृतस्पृशा । ऋतुं बृहन्तमाश्राये ८  
 कवी नो मित्रावरुणा तुविज्जाता उरुक्षया । दक्षं दधाते अयसम् ९ १९८

॥ ४५ ॥ ( अ० १।१३।४-६ )

( १९९-२०१ ) मेघातिथिः काण्वः । गायत्री ।

मित्रं वृषं हवामहे वरुणं सोमपीतये । जज्ञाना पुतर्दक्षसा ४  
 ऋतेन यावृतावृधा वृत्तस्य ज्योतिर्पस्पती । ता मित्रावरुणा हुवे ५ २००  
 वरुणः प्राविता हवन् मित्रो विश्वामिरुतिभिः । कर्ता नः सुरार्धसः ६ २०१

॥ ४६ ॥ ( अ० १।४।३।१ )

( २०२ ) कण्वो घोरः । गायत्री ।

यथा नो मित्रो वरुणो यथा रुद्रश्चितति । यथा विश्वे सजोपसः ३ २०२

॥ ४७ ॥ ( अ० १।१३।१-७ )

( २०३-२११ ) परुच्छेपो दैवोदासिः । अत्यष्टिः, ७ त्रिष्टुप् ।

अ सु ज्येष्ठं निचिराम्यां बृहन्नमो हव्यं मूर्ति भरता मृलयद्भ्यां स्वादिष्टं मृलयद्भ्याम् ।  
 ता सत्राजा घृतासुती युक्षेयन्तु उपस्तुता ।

अथैनोः क्षत्रं न कृतक्षनाधृषे देवत्वं नू चिद्राधृषे १

अदंशि गातरुवे वरीयसी पन्था ऋतस्य समयंस्त रश्मिभिश्चक्षुर्भगेस्य रश्मिभिः ।

घृक्षं मित्रस्य सार्धन मर्यम्णो वरुणस्य च ।

अथा दधाते बृहदुक्थं वयं उपस्तुत्यं बृहद् वयः २

ज्योतिर्मतीमर्दिति धारयतिक्षितिं स्वर्वतीमा संचेते दिवेदिवे जागृवांसां दिवेदिवे ।

ज्योतिर्मत् क्षत्रमाश्राते आदित्या दानुनस्पती ।

मित्रस्तयोर्वरुणो यातयर्जनो ऽर्यमा यातयर्जनः ३ २०५

अयं मित्राय वरुणाय शतमः सोमो भूत्ववृषानेष्वाभंगो देवो देवेष्वाभंगः ।

तं देवासीं जुपेरत् विश्वे अघ सजोपसः ।

तथा राजाना करथो यदीमह ऋतावाना यदीमहे ४ २०६

यो मित्राय वरुणाय विधुज्जनोऽन्वर्णं तं परि पातो अहंसो दाश्वंसं मर्तमहंसः ।  
तमर्यमाभि रक्ष—त्यृजुयन्तमनु व्रतम् ।

उक्थैर्य एनोः परिभूषति व्रतं स्तोमैराभूषति व्रतम् ५  
नमो दिवे वृहते रोदसीभ्यां मित्राय वोचं वरुणाय मीळहुपे सुमृळीकार्य मीळहुपे ।

इन्द्रमग्निष्टुपे स्तुहि द्युक्षमर्यमणं मगम् ।  
ज्योर्जीवन्तः प्रजया सचेमहि सोमस्योती सचेमहि ६

ऊती देवानां वयमिन्द्रवन्तो मंसीमहि स्वयंशसो मरुद्भिः ।  
अग्निमित्रो वरुणः शर्म यंसन् तदश्याम भववानो वयं च ७ २०९

॥ ४८ ॥ ( १।१३७।१-३ ) अतिशक्ती ।

सुपुमा यातुमाद्रिमि—गोश्रीता मत्सरा इमे सोमांसो मत्सरा इमे ।  
आ राजाना दिविस्पृष्टाऽस्मत्रा गन्तुमुप नः ।

इमे वा मित्रावरुणा गवांशिरः सोमाः शुक्रा गवांशिरः १ २१०  
इम आ यातुमिन्द्रवः सोमांसो दध्याशिरः सुतांसो दध्याशिरः ।

उत वामुपसो बुधि साकं सूर्यस्य रुद्रिमभिः ।  
सुतो मित्राय वरुणाय पीतये चारुर्ऋताय पीतये २

तां वा धेनुं न वासरी—मंशुं दुहन्त्यद्रिमिः सोमं दुहन्त्यद्रिमिः ।  
अस्मत्रा गन्तुमुप नो उवाञ्चा सोमपीतये ।

अयं वा मित्रावरुणा नृभिः सुतः सोम आ पीतये सुतः ३ २११  
॥ ४९ ॥ ( ऋ० १।१३९।१ ) अत्यष्टिः ।

यद्द त्यन्मित्रावरुणावृताद—ध्यादुदाये अनृतं स्वेन मनुना दक्षस्य स्वेन मनुना ।  
सुवोरित्थाधि सप्र—स्वर्षश्याम हिरण्यर्यम् ।

धीमिश्चन मनसा स्वेभिरक्षभिः सोमस्य स्वेभिरक्षभिः ४ २१२  
॥ ५० ॥ ( ऋ० १।१५१।१-९ )

( २१४-२३१ ) दीर्घतमा औचथ्यः । जगती ।

यद्द त्यद् वा पुरुमीळहस्यं सोमिनः य मित्रांसो न दधिरे स्वाध्वः ।  
अध क्रतुं विदतं गातुमर्चत उत श्रुतं वृषणा पुस्त्यावतः २

आ वा भूपन् क्षितयो जन्म रोदस्योः प्रवाच्यं वृषणा दक्षसे महे ।  
यदाप्रताय भरयो यदर्वते य होत्रया शिष्यां वीथो अध्वरम् ३ २१५  
३ [ ६० अदितिः० ]

प्र सा क्षितिरसुर या महिं प्रिय ऋतावानावृतमा घोषयो बृहत् ।	
युवं दिवो बृहतो दक्षमाभुवं गां न धुर्युषं युञ्जाथे अपः	४
मही अत्र महिना वारमृण्वथो ज्रेणवस्तुज आ सत्रेन धेनवः ।	
स्वरन्ति ता उपरताति सूर्यमा मिश्रुच उपसस्तक्ववीरिव	५
आ वामृताय केशिनीरनृपत् मित्र यत्र वरुण गातुमर्चयः ।	
अव त्मनां सृजतं पिन्वतं धियो युवं विप्रस्य मन्मनामिरज्यथः	६
यो वां यज्ञैः शशमानो ह दाशति कविर्होता यजति मन्मसाधनः ।	
उपाह तं गच्छथो धीथो अश्वरमच्छा गिरः सुमतिं गन्तमस्मयू	७
युवां यज्ञैः प्रथमा गोभिरञ्जत ऋतावाना मनसो न प्रयुक्तिषु ।	
भरन्ति वां मन्मना संयता गिरो ऽदृप्यता मनसा रेवदाशाये	८ ११०
रेवद् वयो दधाय रेवदाशाये नरा मायाभिरितरुजि माहिनम् ।	
न वां द्यावोऽहभिर्नोत सिन्धवो न देवत्वं पुणयो नानंशुर्भघम्	९ १११

॥ ५१ ॥ ( ऋ० १।१५२।१-७ ) विष्टुप् ।

युवं वस्त्राणि पीवसा वसाथे सुवोरच्छिद्रा मन्तवो ह सर्गाः ।	
अवातिरतमनृतानि विश्वं ऋतेन मित्रावरुणा सचेथे	१
एतच्चुन त्सो वि चिकेतदेषां सत्यो मन्त्रः कविश्रुस्त ऋतावान् ।	
त्रिरश्रिं हन्ति चतुरश्रिरुग्रो देवनिदो ह प्रथमा अजूर्यन्	२
अपादेति प्रथमा पृथ्वीनां कस्तद् वां मित्रावरुणा चिकेत ।	
गर्भो आरं भरत्या चिदस्य ऋतं पिपत्यनृतं नि तारीत्	३
प्रयन्तमिह परि जारं कनीनां पश्यामसि नोर्पनिपद्यमानम् ।	
अनवपृग्णा वितता वसानं प्रियं मित्रस्य वरुणस्य धाम	४ ११५
अनश्वा जातो अनभीशुरवा कर्निकदत् पतयदूर्ध्वसानुः ।	
अचित्तं ब्रह्मे जुजुपुर्गुवानः प्र मित्रे धाम वरुणे गुणन्तः	५
आ धेनवो मामतेयमवन्ती ब्रह्मप्रियं पीपयन्त्सस्मिन्नध्वन् ।	
पित्वो मिथेत वपुर्नानि विद्वा नासाविवासन्नर्दिविश्रुष्येत्	६
आ वां मित्रावरुणा हव्यजुष्टि नमसा देवाववसा ववृतायाम् ।	
अम्माकं ब्रह्म पृथेनासु ससा अस्माकं वृष्टिर्दिव्या सुपारा	७ ११८

॥ ५२ ॥ ( ऋ० १।१५३।१-४ )

यजामहे वां महः सजोषां हव्येभिर्मित्रावरुणा नमोभिः ।	
घृतैर्घृतस्नु अघ्र यद् वामसो अघ्वर्थवो न घीतिभिर्भरन्ति	८
प्रस्तुतिर्वा घाम न प्रयुक्तिरयामि मित्रावरुणा सुवृक्तिः ।	
अनक्ति यद् वां विदथेषु होता सुभ्रं वां सूरिवृषणाविर्यक्षन्	२ २३०
पीपायं धेनुरदितिर्ऋताय जनाय मित्रावरुणा हविर्दे ।	
हिनोति यद् वां विदथे सपर्यन्तस रातहव्यो मारुपो न होता	३
उत वां विक्षु मद्यास्वन्धो गाव आपश्च पीपयन्त देवीः ।	
उतो नो अस्य पूर्यः पतिर्दन् वीतं पातं पर्यस उत्सियायाः	४ २३१

॥ ५३ ॥ ( ऋ० २।११४-६ ) ×

( २३३-२३५ ) गृत्समद् ( आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद् ) मार्गयः शौनकः । गायत्री ।	
अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोमं ऋतावृधा । ममेदिह श्रुतं हवम्	४
राजानावनभिद्रुहा ध्रुवे सदस्युत्तमे । सहस्रस्थूण आसाते	५
ता सम्राजां घृतासुती आदित्या दानुनस्पती । सचैते अनवह्वरम्	६ २३५

॥ ५४ ॥ ( ऋ० ३।६२।१६-१८ ) +

( २३६-२३८ ) नाथिनो विश्वामित्रः, जमदग्निर्वा । गायत्री ।

आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् । मद्या रजांसि सुक्रतू	१६
उरुधंसा नमोवृधा मद्वा दक्षस्य राजथः । द्राविष्ठाभिः शुचित्रता	१७
गृणाना जमदग्निना योनावृतस्य सीदतम् । पातं सोममृतावृधा	१८ २३८

॥ ५५ ॥ ( ऋ० ५।६२।१-९ )

( २३९-२४७ ) श्रुतविदात्रेयः । त्रिष्टुप् ।

ऋतेन ऋतमपिहितं ध्रुवं वां स्वयंस्य यत्र विमुचन्त्यश्वान् ।	
दर्श श्रुता सह तस्युस्तदेकं देवानां श्रेष्ठं वषुषामपश्यम्	१
तत् सु वां मित्रावरुणा महित्वमीर्मा तस्युपरिहर्षिर्दुदुहे ।	
विश्वाः पिन्वथः स्वसंरस्य घेना अलु वामेकः पविरा ववर्त	२
अधारयतं पृथिवीमुत द्यां मित्रं राजाना वरुणा महोभिः ।	
वर्धयन्मोषधीः पिन्वन्तं गा अव वृष्टिं सृजतं जीरदानू	३ २४१

× ऋ० ७, ४१, ४ = वा० य० ७, ९;

+ ऋ० ३, ६२, १६ = वा० य० २१।८; आ० २२०, ६६३

आ वामश्वांसः सुयुजो वहन्तु यतरंमय उप यन्त्वर्वाक् ।	
धृतस्य निणिगाले वर्तते वा—सुप सिन्धवः प्रुदिवि क्षरन्ति	४
अनु श्रुताममति वर्धदुर्वी बहिर्वि यजुषा रक्षमाणा ।	
नमस्वन्ता धृतदुश्वाधि गर्ते मित्रासाथे वरुणेळास्वन्तः	५
अकविहस्ता सुकृते परस्पा यं त्रासाथे वरुणेळास्वन्तः ।	
राजाना क्षत्रमहंणीयमाना सहस्रस्थूणं विमूथः सह द्वौ	६
हिरण्यनिणिगयो अस्य स्थूणा वि भ्राजते दिव्यश्रुजार्जनीव ।	
भद्रे क्षेत्रे निर्मिता तिल्विले वा सुनेम मध्वो अधिगत्यस्य	७ २४५
हिरण्यरूपमुपसो व्युष्टा—वर्यःस्थूणमुदिता सूर्यस्य ।	
आ रौहयो वरुण मित्र गर्ते—मत्तश्चक्षाये अर्दिति दिति च	८
यद् बहिष्टं नातिविधे सुदान् अल्लिष्टं शर्म भुवनस्य गोपा ।	
तेन नो मित्रावरुणावविष्टं सिपासन्तो जिगीवांसः स्याम	९

॥ ५६ ॥ ( क्र० ५१६३१-७ )

( २४८-२६१ ) अर्चनामा आश्रयः । जगती ।

ऋतस्य गोपावधि तिष्ठथो रथं सत्यधर्माणा परमे व्योमनि ।	
यमत्र मित्रावरुणावथो युर्व तस्मै वृष्टिर्मधुमत् पिन्वते दिवः	१
सुभ्राजावस्य भुवनस्य राजथो मित्रावरुणा विदथे स्वर्दृशो ।	
वृष्टिं वां राधो अमृतत्वमीमहे धावापृथिवी वि चरन्ति तन्यवः	२
सुभ्राजा उग्रा धृपभा दिवस्पती पृथिव्या मित्रावरुणा विचर्षणी ।	
चित्रेभिरभ्रैरुप तिष्ठथो रवं धां वर्षयथो असुरस्य मायया	३ ५५०
माया वा मित्रावरुणा दिवि श्रिता सूर्यो ज्योतिश्चरति चित्रमायुधम् ।	
तमभ्रेण वृष्टया गृह्यो दिवि पर्जन्य द्रप्सा मधुमन्त ईरते	४
रथं युञ्जते मरुतः शुभे सुखं शूरो न मित्रावरुणा गविष्टिषु ।	
रजांसि चित्रा वि चरन्ति तन्यवो दिवः सभ्राजा पर्यसा न उक्षतम्	५
वाचं मु मित्रावरुणाविरावती पर्जन्यश्चित्रां वेदति त्विषीमतीम् ।	
अभ्रा वसत मरुतः मु मायया धां वर्षयतमरुणाभरेपसम् ।	६
धर्मेणा मित्रावरुणा विपश्चिता व्रता रक्षेथे असुरस्य मायया ।	
ऋतेन विश्वं सुर्वनं वि राजथः सूर्यमा धंत्यो दिवि चित्र्यं रथम्	७ २५४



॥ ५७ ॥ ( ऋ० ५।६४।१-७ ) अनुष्टुप्, ७ पङ्क्तिः ।

वरुणं वो रिशादस—मृचा मित्रं हवामहे । परिं व्रजेवं वाहो जगन्नांसा स्वर्णरम् १ २५५  
 ता वाहवा सुचेतना प्र यन्तमस्मा अर्चते । शेवं हि जार्यं वा विश्वासु क्षासु जोगुवे २  
 यन्नूनमश्यां गतिं मित्रस्य यायां पथा । अस्य प्रियस्य शर्मण्य हिंसानस्य सश्विरे ३  
 युवाभ्यां मित्रावरुणो पुमं धेयामुचा । यद्र क्षयं मघोनां स्तोतूणां च स्पृघसे ४  
 आ नो मित्र सुदीतिमि—वरुणश्च सुघस्य आ । स्वे क्षयं मघोनां सखीनां च वृघसे ५  
 युवं नो येपुं वरुण क्षत्रं बृहच्च विमथः । उरुणो वाजसातये कृतं राये स्वस्तये ६ २६०  
 उच्छन्त्यां मे यजता देवक्षत्रे रुशद्रवि ।

सुतं सोमं न हस्तिमि—रा पङ्क्तिर्धौवतं नरा विभ्रतावर्चनानसम् ७ २६१

॥ ५८ ॥ ( ऋ० ५।६५।१-६ )

( २६२-२७२ ) रातहव्य आश्रयः । अनुष्टुप्, ६ पङ्क्तिः ।

यश्चिकेत स सुक्रतु—देवत्रा स व्रवीतु नः । वरुणो यस्य दर्शतो मित्रो वा वनते गिरः १  
 ता हि श्रेष्ठवर्चमा राजाना दीर्घश्रुचमा । ता सत्पती ऋतावृथ ऋतावाना जनेजने २  
 ता वामियानोऽर्घसे पूर्वा उप व्रुवे सचा । स्वश्वांसु सु चेतुना वाजो अभि प्र दावने ३  
 मित्रो अंहोशिदादुरु क्षपाय गातु वनते । मित्रस्य हि प्रत्यूतः सुप्रतिरास्ति विधतः ४ २६५  
 ययं मित्रस्यार्चसि स्याम सप्रथस्तमे । अनेहसस्तवोर्तयः सत्रा वरुणशेषः ५  
 युवं मित्रेमं जनु यतथुः सं च नयथः ।  
 मा मघोनः परिं ख्यतं मो अस्माकमृषीणां गोपीथे न उरुप्यतम् ६ २६७

॥ ५९ ॥ ( ऋ० ५।६६।१-६ ) अनुष्टुप् ।

आ चिकितान सुक्रतु देवां र्मत रिशादसा । वरुणाय ऋतपेशसे दधीत प्रयसे महे १  
 ता हि क्षत्रमविहृतं सम्यगसुर्यमाशान्ते । अर्धं व्रतेव मानुषं स्वर्गं चापि दर्शतम् २ २७०  
 ता वामेपे रथाना—मुर्वी गव्यूतिमेषाम् । रातहव्यस्य सुपुति दुष्टकू स्तोर्मर्मनामहे ३  
 अथा हि काव्या युवं दक्षस्य पुभिर्भ्रुता । नि केतुना जनानां चिकेथे पृतदक्षसा ४  
 तदृतं पृथिवि बृह—च्छ्रवण्य ऋषीणाम् । जयसानावरं पृथ्व—तिं धरान्ति यामीमः ५  
 आ यद् वामीयचक्षसा मित्रं वयं च सुर्यः । व्यचिष्टे बहुपाग्ये यतेमहि स्वराज्ये ६ २७२

॥ ६० ॥ ( ऋ० ५।६७।१-५ )

( २७३-२८३ ) यजन आश्रयः । अनुष्टुप् ।

चक्षित्या देव निष्कृत—मादित्या यजतं बृहत् । वरुण मित्रार्थमनु वर्षिष्ठं क्षत्रमाश्रये १  
 आ यद् योनिं हिरण्यं वरुण मित्रं सदधः । धर्तारा चर्षणीनां युन्तं सुम्रं रिशादसा २ २७५

विश्वे हि विश्वेवदसो वरुणो मित्रो अर्यमा । व्रता पदेव सश्विरे पान्ति मर्त्ये रिपः ३  
 ते हि सत्या ऋतस्पृशं ऋतार्वानो जनेजने । मुनीथासः सुदानवो—ऽहोधिदुरुचक्रयः ४  
 को नु वा मित्रास्तुतो वरुणो वा तनूनाम् । तत् सु वामपते मति—रात्रिम्य एपंत मतिः ५ २३

॥ ६१ ॥ ( ऋ० ५.६८।१-५ ) गायत्री ।

प्र वो मित्राय गायत वरुणाय विषा मिरा । महिक्षत्रावृतं बृहत् १  
 सम्राजा या घृतयोनी मित्रश्चोभा वरुणश्च । देवा देवेषु प्रशस्ता २ २८०  
 ता नः शक्तं पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य । महिं वां क्षत्रं देवेषु ३  
 ऋतमृतेन सपन्ते—पिरं दक्षमाशाते । अद्रुहो देवा वधेते ४  
 वृष्टिर्धावा रीत्यापि—पस्पती दानुमत्याः । बृहन्तं गर्तमाशाते ५ २८१

॥ ६२ ॥ ( ऋ० ५।६९।१-४ )

( २८४-२९८ ) उरुचक्रित्रात्रेयः । त्रिष्टुप् ।

त्री रौचुना वरुणं त्रीरुत धृन् त्रीणि मित्र धारयथो रजोसि ।  
 वावृधानावमतिं क्षत्रियस्या—ऽनुं व्रतं रक्षमाणावजुर्धम् १  
 इरावतीर्वरुण धेनवो वां मधुमद् वां सिन्धवो मित्र दुहे ।  
 त्रयस्तस्यवृषभसस्तिसृणां धिपणानां रेतोधा वि द्युमन्तः २ २८५  
 प्रातर्देवीमर्दिति जोहवीमि मध्वर्दिन् उर्दिता सूर्यस्य ।  
 राये मित्रावरुणा सर्वताते—कें तोकाय तनयाय शं योः ३  
 या घर्तरा रजसो रोचनस्यो—तादित्या दिव्या पार्थिवस्य ।  
 न वां देवा अमृता आ भिनन्ति व्रतानि मित्रावरुणा ध्रुवाणि ४ २८६

॥ ६३ ॥ ( ऋ० ५।७०।१-४ ) गायत्री ।

पुरुर्णा चिद्वयस्त्य—वो नूनं वां वरुण । मित्रं वसिं वां सुमतिम् १  
 ता वां सम्यग्द्रुहाणे—पमश्याम धार्यसे । वयं ते रुद्रा स्याम २  
 पातं नो रुद्रा पायुभि—रुत त्रायेथां सुत्रात्रा । तुर्याम् दस्यून् तनूभिः ३ २९०  
 मा कस्याद्भुतक्रत् यक्षं भुजेमा तनूभिः । मा शेषसा मा तनसा ४ २९१

॥ ६४ ॥ ( ऋ० ५।७१।१-३ )

( २९२-२९७ ) यादुवृक्त आत्रेयः गायत्री ।

आ नो गतं रिशादसा वरुण मित्रं वर्हणा । उपेमं चारुमध्वरम् १  
 विश्वस्य हि प्रचेतसा वरुण मित्र राजधः । ईशाना पिप्यतं धियः २ २९३

उपे नः सुतमा गतं वरुण मित्रं द्राशुपः । अस्य सोमस्य पीतये ३ २९४

॥ ६५ ॥ ( ऋ० ५।७२।१-३ ) उष्णिष् ।

आ मित्रे वरुणे वृषं गोभिर्जुहुमो अत्रिवत् । नि वहिषि सदतं सोमपीतये १ २९५

व्रतेन स्यो ध्रुवक्षेमा धर्मणा यात्यर्जना । नि वहिषि मदतं सोमपीतये २

मित्रश्च नो वरुणश्च जुपेतां यज्ञमिष्टये । नि वहिषि मदनां सोमपीतये ३

॥ ६६ ॥ ( ऋ० ६।६७।१-११ )

( २९८-३०८ ) बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । त्रिष्टुप् ।

विशेषां वः सुतां ज्येष्ठतमा गोभिर्मित्रावरुणा वावृधर्ष्यं ।

सं या रश्मेर्व यमतुर्यमिष्टा द्वा जनां अर्ममा वाहुभिः स्वैः १

ह्ययं मद् वां प्र स्तृणीते मनीषोप प्रिया नर्मसा बहिरच्छ ।

युन्तं नो मित्रावरुणावष्टुष्टं हृदिष्यद् वां वरुण्यं सुदान् २

आ यातं मित्रावरुणा सुशस्त्युप प्रिया नर्मसा ह्ययमाना ।

सं यावमः स्यो अपसेव जनां ऋधीयतथिद् यतयो महित्वा ३ ३००

अश्वा न या वाजिनां पुतर्षन्धू क्रुता यद् गर्भमदितिर्मरंध्यं ।

प्र या महिं मुहान्ता जार्यमाना घोरा मर्ताय रिपवे नि दीधः ४

विश्वे यद् वां मुहन्ता मन्दमानाः क्षत्रं देवामो अदधुः सुजोषाः ।

परि यद् भूयो रोदसी चिदुर्वा सन्ति स्पशो अदधामो अमूराः ५

ता हि क्षत्रं धारयेथे अनु धन् इहेथे सार्जुमपमादिंव घोः ।

हृब्धो नक्षत्र उत विश्वदेवो भूमिमातान् वां घासिनायोः ६

ता विग्रं धेथे जठरं पूणध्या आ यत् मद्य सभृतयः पूणन्ति ।

न मृप्यन्ते युवतयोऽजाता वि यत् पयो विश्वजिन्वा भरन्ते ७

ता जिह्वया सदमेदं सुमेधा आ यद् वां सत्यो अरतिश्रुते भूत् ।

तद् वां महित्वं घृतान्नावस्तु युवं द्राशुपे वि वयिष्टमहं ८ ३०५

प्र यद् वां मित्रावरुणा स्पर्धन् प्रिया धाम युवधिता मिनन्ति ।

न ये देवाम ओहमा न मर्ता अयंजमाचो अप्यो न पुत्राः ९

वि यद् वाचं कीस्तासो मरन्ते अंसन्ति के विन्निविदां मनाः ।

आद् वां व्रवाम सत्यान्युक्था नर्किदेवमिर्यतथो महित्वा १०

अवोस्त्रिया वां हृदिषो अभिष्टां युवोर्मित्रावरुणावर्ध्वाय ।

अनु यद् गावः स्फुरात्रंजिप्यं घृण्यं यद् रणे वृषणं युनर्जन् ११

॥ ६७ ॥ ( ऋ० ७।५०।१ )

( २०९-२४७ ) मित्रावरुणिवेसिष्ठा । जगती ।

आ मां मित्रावरुणेह रक्षतं कुलाययद् विश्वयन्मा न आ गेन् ।  
अजक्रावं दुर्दृशीकं तिरो दधे मा मां पथेन रपसा विदुत् त्सरः ।

१ ३०९

॥ ६८ ॥ ( ऋ० ७।६०।९-११ ) शिष्टम् ।

एष स्य मित्रावरुणा नुचक्षा उभे उदेति सूर्यो अभि जमन् ।  
विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च गोपा ऋजु मतेषु वृजिना च पश्यन्  
अयुक्त सप्त हरितः सधस्थाद् या ई वहन्ति सूर्यं घृताचीः ।  
धामानि मित्रावरुणा युवाकुः सं यो यूथेव जनिमानि चष्टे  
उद् वां पुक्षासो मधुमन्तो अस्थुरा सूर्यो अरुहच्छुक्रमर्णः ।  
यस्मा आदित्या अश्वेनो रदन्ति मित्रो अर्यमा वरुणः सृजोषोः  
इमे चेतारो अनृतस्य भूरे—मित्रो अर्यमा वरुणो हि सन्ति ।  
इम ऋतस्ये वावृधुर्दुरोणे शुग्मासः पुत्रा अदितेरदध्याः  
इमे मित्रो वरुणो दूळभासो ऽचेतसं चिचितपन्ति दक्षैः ।  
अपि ऋतं सुचेतसं वर्तन्त—स्तिरश्विदंहः सुपधा नयन्ति  
इमे दिवो अनिमिषा पृथिव्या—श्विक्रित्वाभौ अचेतसं नयन्ति ।  
प्रव्राजे चिन्नद्यौ ग्राधमस्ति पारं नो अस्य विष्पितस्यं पर्यन्  
यद् गोपावददितिः शर्म मद्रं मित्रो यच्छन्ति वरुणः सुदासैः ।  
तस्मिन्ना लोकं तनयं दधाना मा कर्म देवहेळनं तुरासः  
अव वेदि होत्राभिर्यजेत् रिपुः काश्चिद् वरुणधुतः सः  
परि द्वेपोभिर्यमा वृणक्तू—रुं सुदासै वृषणा उ लोकम्  
सस्वधिद्धि समृतिस्त्वेष्टेषा—मपीन्वेन सहसा सहन्ते ।  
युष्मद् भिया वृषणो रेजमाना दक्षस्य चिन्महिना मुळता नः  
यो ब्रह्मणे सुमतिमायजति वाजस्य सातौ परमस्यं रायः ।  
सीक्षन्त मन्युं मघवानो अर्य उरु क्षयाय चक्रिरे सुधातुं  
द्वयं देव पुरोहितिर्युवम्प्रा यज्ञेषु मित्रावरुणावकारि ।  
विश्वानि दुर्गा विपृतं तिरो नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः

२ ३१०

३

४

५

६

७ ३१५

८

९

१०

११

१२ ३१०

॥ ६९ ॥ ( अ० ७।६।११-७ )

उद् वां चक्षुर्वरुण मुप्रतीकं देवयोरिति स्वर्धस्तत्त्वान् ।	
अभि यो विश्वा भुवनानि चष्टे स मन्युं मर्त्येष्वामि चिकेत	१
प्र वां स मित्रावरुणावृतावा विप्रो मन्मानि दीर्घश्रुदियति ।	
यस्य ब्रह्माणि सुक्रतु अवाथ आ यत् कत्वा न श्रदः पूणैथे	२
प्रोरोमित्रावरुणा पृथिव्याः प्र दिव ऋष्याद् बृहत् सुदान् ।	
स्पशौ दद्याथे ओषधीषु विष्टु—धग्यतो अनिमिपं रक्षमाणा	३
शंसा मित्रस्य वरुणस्य धाम शुष्मो रोदमी बद्धये महित्वा ।	
अयन् मासा अयज्वनामवीराः प्र यज्ञमन्मा वृजनं तिराते	४
अमूरा विश्वा वृषणाविमा वां न यासुं चित्रं ददृशे न यक्षम् ।	
द्रुहः सचन्ते अनृता जनानां न वां निष्यान्यचित्ते अभूवन्	५ ३२५
समुं वां यज्ञं मह्यं नमोमि—हुवे वां मित्रावरुणा स्वाधः ।	
प्र वां मन्मान्यचसे नवानि कृतानि ब्रह्म जुजुपन्नमानि	६
द्वयं देव पुरोहितिर्युवभ्यां युक्षेपु मित्रावरुणावकारि ।	
विश्वानि दुर्गा पिष्टं तिरो नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः	७ ३२७

॥ ७० ॥ ( अ० ७।६।१४-६ )\*

द्यावाभूमी अदिते त्रासीयां नो ये वां जुहुः सृजनिमान ऋष्वे ।	
मा हेतै मूम वरुणस्य वायो—र्मा मित्रस्य प्रियतमस्य नृणाम्	४
प्र बाहवां मिसृतं जीवसे न आ नो गव्यूतिमुक्षतं घृतेन ।	
आ नो जने श्रवयतं युवाना श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमा	५
न मित्रो वरुणो अर्यमा न—स्तमने तोकाय वरिवो दधन्त ।	
सुगा नो विश्वा सुपथानि मन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः	*६ ३३०

॥ ७१ ॥ ( अ० ७।६।११-५ )

दिवि क्षयन्ता रजमः पृथिव्यां प्र वां घृतस्य निर्णिजौ ददीरन् ।	
हव्यं नो मित्रो अर्यमा सुजातो राजा सुष्ट्रो वरुणो जुषन्त	१ ३३१

× अ० ७, ६०, ५ = वा० य० २१, ९ । \* अ० ७।६।१६

आ राजाना मह ऋतस्य गोपा सिन्धुपती क्षत्रिया यातमर्वाक् ।

इळो नो मित्रावरुणोत वृष्टि—मवं दिव ईन्वतं जीरदानू २

मित्रस्तन्नो वरुणो देवो अर्यः प्र साधिष्ठेभिः पथिभिर्नयन्तु ।

ब्रवद् यथा न आदुरिः सुदास इषा मदेम सह देवगोपाः ३

यो वां गतं मनसा तक्षदेत—मूर्ध्वा धीतिं कृण्वद् धारयंच ।

उक्षेयो मित्रावरुणा घृतेन ता राजाना सुक्षितीस्तर्पयेथाम् ४

एष स्तोमो वरुण मित्र तुभ्यं सोमः शुक्रो न वायवेऽयामि ।

अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधी—र्युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ५ ३३५

॥ ७२ ॥ ( ऋ० ७।६५।१-५ )

प्रति वां हर उदिते सूक्तै—मित्रं हुवे वरुणं पूतदक्षम् ।

ययौरसुर्यमक्षितं ज्येष्ठं विश्वस्य यामन्नाचिता जिगृह १

ता हि देवानामसुरा तावया ता नः क्षितीः करतमूर्जेयन्तीः ।

अश्याम मित्रावरुणा वयं वां धावा च यत्र पीपयन्नहा च २

ता मूरिपाशावनृतस्य सेतू दुरत्येतू रिपवे मर्त्याय ।

ऋतस्य मित्रावरुणा पथा वा—सुपो न नावा दुरिता तरेम ३

आ नो मित्रावरुणा हव्यजुष्टिं घृतेर्गव्यंतिमुक्षतमिळाभिः ।

प्रति वामत्र वरुमा जनाय पृणीतमुद्रो दिव्यस्य चारोः ४

एष स्तोमो वरुण मित्र तुभ्यं सोमः शुक्रो न वायवेऽयामि ।

अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधी—र्युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ५ ३४०

॥ ७३ ॥ ( ऋ० ७।६६।१-३, १७-१९ ) गायत्री ।

प्र मित्रयोर्वरुणयोः स्तोमो न एतु शूर्यः । नमस्वान् तुविज्ञातयोः १

या धारयन्त देवाः सुदक्षा दक्षपितरा । असुर्याय प्रमहसा २

ता नः स्तिपा तनुपा वरुण जरितृणाम् । मित्रं साधयंतं धियः ३

काव्येमिरद्राम्या ऽऽयातं वरुण ध्रुमत् । मित्रश्च सोमपीतये १७

दिवो धामभिर्वरुण मित्रथा यातमद्रुहा । पिबंतं सोममातुजी १८ ३४५

आ यातं मित्रावरुणा जुपाणावाहुतिं नरा । पातं सोममृताशुषा १९ ३४६

॥ ७४ ॥ ( ऋ० ८।६५।१-९, १३-१४ )

( ३४७-३६७ ) विश्वमना धियश्चः । उणिक्, ०३ उणिग्गर्भा ।

ता वां विश्वस्य गोपा देवा देवेषु यजिर्या । ऋतावाना यजसे पूतदक्षसा १ ३४७

मित्रा तना न रुध्याइ वरुणो यश्च सुक्रतुः । सनात् सुजाता तनया धृतव्रता २  
 ता माता विश्ववेदसा ऽसुरीय प्रमहसा । मही जलानादितिर्ऋतावरी ३  
 महान्ता मित्रावरुणा मम्राजा देवावसुरा । ऋतावानावृतमा घोषतो बृहत् ४ ३५०  
 नपाता शर्वसो मूहः सूनू दक्षस्य सुक्रतुः । मुप्रदानू इषो वास्त्वधि क्षितः ५  
 सं या दानूनि येमथुर्दिव्याः पार्थिवीरिषः । नर्मस्वतीरा वां चरन्तु वृष्टयः ६  
 अधि या बृहतो दिवोऽमि यूथेव पश्यतः । ऋतावाना मम्राजा नर्मसे हिता ७  
 ऋतावाना नि पैदतुः साम्राज्याय मुक्रतुः । धृतव्रता क्षत्रियां क्षत्रमांशतुः ८  
 अक्ष्णाश्चिद् गातुचित्तरा ऽनुत्यणेन चक्षसा । नि चिन्मिपन्ता निचिरा नि चिक्पतुः ९ ३५५  
 तद् वायं वृणीमहे वरिष्ठे गोपयत्यम् । मित्रो यत् पान्ति वरुणो यदर्यमा १३  
 उत नः सिन्धुरपां तन्मरुतस्तदुश्विना । इन्द्रो विष्णुर्मातृङ्गांसः सजोपसः १४  
 ते हि ष्मा वसुषो नरो ऽभिमातिं कयस्य चित् । तिग्मं न क्षोर्दः प्रतिघ्नन्ति भूर्णयः १५  
 अयमेक इत्या पुरूरु चष्टे वि विदपतिः । तस्य व्रतान्यनु वक्षरामसि १६  
 अनु पूर्वाण्योक्त्या साम्राज्यस्य सक्षिम । मित्रस्य व्रता वरुणस्य दीर्घश्रुत् १७ ३६०  
 परि यो रश्मिना दिवो ऽन्तान् मुमे पृथिव्याः । उमे आ प्रमौ रोदसी महित्वा १८  
 उद्गु प्य शरणे दिवो ज्योतिरयस्त सूर्यः । अग्निर्न शुक्रः समिधान आहुतः १९  
 वचो दीर्घप्रसन्ननीशे वाजस्य गोमता । ईशे हि पित्वोऽविपस्य दावने २०  
 तत् सूर्य रोदसी उमे दोषा वस्तोरुषं श्रुवे । भोजेष्वसौ अभ्युक्षरा सदा २१  
 ऋन्नमृक्षप्यार्यने रजतं हरयाणे । रथं युक्तमसनाम सुपामणि २२ ३६५  
 ता मे अरुपाणां हरीणां नितोशना । उतो नु कृत्वाणां नृवाहसा २३  
 सदमीशू कशावन्ता विप्रा नविष्ठया मती । महो वाजिनावर्चन्ता सचासनम् २४ ३७०

॥ ७१ ॥ ( ऋ० ८।१०।१-४ ) +

( ३६८-३७१ ) जमदग्निर्माग्वयः १-० प्रगायः= ( गृहती+सतो गृहती ), २ गायत्री, ३ सतो गृहती ।

ऋषगित्या स मर्त्यैः शशमे देवतातये ।

यो नूनं मित्रावरुणावभिष्टय आचक्रे हव्यदातये १

वर्षिष्ठक्षत्रा उरुचक्षसा नरा राजाना दीर्घश्रुत्तमा ।

ता बाहुता न दुंसना रथयतः साकं सूर्यस्य रश्मिभिः २

प्र यो वां मित्रावरुणा जजिरो द्रुतो अद्रवत् । अयःशीर्षा मदैरघुः ३ ३७०

न यः संपृच्छे न पुनर्द्वीतये न सैवादाय रमते ।  
तस्मान्नो अद्य समृतेरुत्पत्तं बाहुभ्यां न उरुत्पत्तम्

४ ३७१

॥ ७६ ॥ ( ऋ० १०।१३।१२-७ )

( ३७०-३७७ ) शकपूतो नामधेयः । विराटरूपा, ०, ६ प्रस्तारपङ्क्तिः, ७ महासतोवृहती ।

ता वा मित्रावरुणा धारयन्क्षिती सुपुत्रोर्पितत्वता यजामसि ।

युवोः क्राणाय सख्यै—रभि प्याम रक्षसः

२

अवा चिन्नु यहिर्धियामहे वा—मभि प्रियं रेकणः पत्यमानाः ।

दुद्रां वा यत् पुष्यति रेकणः सम्वारन् नर्किरस्य मधानि

३

असावन्यो असुर स्यत्त द्यौ—स्त्वं विश्वेषां वरुणासि राजा ।

मूर्धा रथस्य चाक्रन् नैतावतैनसान्तकृद्भुक्

४

अस्मिन्त्स्वेतच्छकपूत एनो हिते मित्रे निर्गतान् हन्ति वीरान् ।

अयोर्वा यद्वात् तन्मूषवः प्रियासुं यज्ञियास्वर्वा

५ ३७५

युवोर्हि मातादितिर्विचेतसा द्यौर्न भूमिः पर्यसा पुपुतनि ।

अवं प्रिया दिदिष्टन् सरो निनिक्त रश्मिभिः

६

युवं क्षमराजावसीदतं तिष्ठद् रथं न धूर्पदं वनर्पदम् ।

ता नः कणूक्यन्ती—र्नमेधस्तत्रे अंहसः सुमेधस्तत्रे अंहसः

७

॥ ७७ ॥ ( ३७८-३८१ ) ( वा० य० ७।१० ) +

राया वृषः संसवाः श्वो मदेम हव्येन देवा यवसेन गावः ।

तां वेतुं मित्रावरुणा युवं नो विश्वार्हा वचुमनपस्फुरन्तीम्

१० ३७८

॥ ७८ ॥ ( वा० य० १०।१६, ११ )

हिरण्यरूपा उपमो निरोक् उभाविन्द्रा उदिथः सूर्यश्च ।

आरोहतं वरुण मित्र गच्छेत्तत्तद्वक्षायामदितिं दिवि च मित्रोऽसि वरुणोऽसि

१६

मित्रावरुणयोस्तत्रा प्रज्ञास्रोः प्रक्षिपां युनजिम

२१ ३८०

॥ ७९ ॥ ( वा० य० १०।१६ )

अन्तरा मित्रावरुणा चरन्तीं सुर्वं यजानामभि संविदामि ।

उषामां वा० मुहिरण्ये मुशित्वे क्रतस्य योनाग्निह मादयामि

६ ३८१



॥ ८० ॥ ( चा० य० ३३।७० )

काव्ययोराजानेषु कृत्वा दक्षस्य दुरोणे । रिशार्दसा सघस्य आ

७२ ३८२

॥ ८१ ॥ ( अथर्व० १।२८।१ ) +

( ३८३ ) शम्भुः । त्रिष्टुप् ।

मित्र एनं वरुणो वा रिशार्दा जरामृत्युं कृणुतां संविदानौ ।  
तदग्निहोता वयुनानि विद्वान् विश्वा देवानां जनिमा विवक्ति

२ ३८३

॥ ८२ ॥ ( अथर्व० ३।२५।१-६ )

( ३८४-३८९ ) भृगुः । अनुष्टुप् ।

उत्तुदस्त्वोत्तुदतु मा धृथाः शयने स्वे ।

इषुः कामस्य या भीमा तया विध्यामि त्वा हृदि

१

आधीपर्णा कामशल्यामिषुं संकल्पकुलमलाम् ।

तां सुसैनतां कृत्वा कामो विध्यतु त्वा हृदि

२ ३८५

या प्लीहानै शोषयति कामस्येषुः सुसैनता ।

प्राचीनपक्षा व्योषि तया विध्यामि त्वा हृदि

३

शुचा विद्धा व्योषिषा शुष्कास्याभि सर्प मा ।

मृदुनिर्मन्युः केवली प्रियवादिन्यनुव्रता

४

आजामि त्वाजन्त्या परि मातुरथो पितुः । यथा मम क्रतावसो मम चित्तमुपायसि ५

व्यस्यै मित्रावरुणौ हृदश्चित्तान्यस्यतम् । अथैनामकृतं कृत्वा ममैव कृणुतं वरुणै ६ ३८९

॥ ८३ ॥ ( अथर्व० ४।२९।१-७ ) [ आयुर्वेदप्रकरणे सूक्तं ( २६४ ) द्रष्टव्यम् । ]

॥ ८४ ॥ ( अथर्व० १।२०।१ )

( ३९०-३९४ ) अथर्वा । अनुष्टुप् ।

यो अद्य सेन्यो वधेऽघायूनामुदीरते । युवं तं मित्रावरुणावसयावयतं परि

२ ३९०

॥ ८५ ॥ ( अथर्व० ५।२४।५ ) चतुष्पदातिऽशकरो ।

मित्रावरुणौ वृष्ट्याधिपती तौ मावताम् ।

अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोघायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्यामस्यामार्क-

त्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहृत्यां स्वाहा

५ ३९१

॥ ८६ ॥ ( अथर्व० ६।३१।३ ) त्रिष्टुप् । +

अभयं मित्रावरुणाविहास्तु नोऽर्चिपात्रिणो नुदतं प्रतीचः ।  
मा ज्ञातारं मा प्रतिष्ठां विदन्त मिथो विघ्नाना उप यन्तु मृत्युम्

३ ३९२

॥ ८७ ॥ ( अथर्व० ६।८९।३ ) अनुष्टुप् ।

मह्यं त्वा मित्रावरुणौ मह्यं देवी सरस्वती ।  
मह्यं त्वा मध्यं भूम्या उमावन्तौ समस्यताम्

३ ३९३

॥ ८८ ॥ ( अथर्व० ६।९७।७ ) जगती ।

स्वधास्तु मित्रावरुणा विपश्चिता प्रजावत् क्षत्रं मधुनेह पिन्वतम् ।  
वाधेयां दूरं निर्ऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्र शुमुक्तमस्मत्

२ ३९४

॥ ८९ ॥ ( अथर्व० २।१०।३ )

( ३९५ ) ब्रह्मा । त्रिष्टुप् ।

अपादेति प्रथमा पृथ्वीनां कस्तद्धा मित्रावरुणा चिकेत ।  
गमो भारं मरत्या चिदस्या क्रतुं पिपत्यनृतं नि पाति

२३ ३९५

॥ ९० ॥ ( अथर्व० १०।५।११ )

( ३९६ ) सिन्धुद्वीपः । पद्यापङ्क्तिः ।

मित्रावरुणयोर्भाग स्य । अपां शुक्रमापो देवीर्वचो अस्मासु यत्त ।  
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकार्य सादये

११ ३९६

॥ ९१ ॥ ( ३९७-३९९ ) ( सा० ९८६-९८७ ) ७

ता वां सम्यग्द्रुहाणिपमदयाम धाम च । वयं वा मित्रा स्याम  
पातं नो मित्रा पापुमिरुत त्रायेथां सुत्रात्रा । साक्षाम दस्युं तन्मभिः

२

३ ३९८

॥ ९२ ॥ ( सा० १६४७ ) x

त्वा विष्णुवृहन् क्षया मित्रो गृणाति वरुणः । त्वां श्रयो मदत्यनु मारुतम्

३ ३९९

मित्र-मित्रावरुण-सहचारी-देवगणः ।

## ( १ ) मित्रावरुणौ नभस्यश्च ।

॥ ९३ ॥ ( ऋ० २।३६।६ )

गृत्समद ( आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद् ) मार्गधः शौनकः । जगती ।

जूपेयां यज्ञं चोषतं हवस्य मे सृचो होता निविदः पून्या अर्नु ।

अच्छा राजाना नम एत्यावृतं प्रशास्त्रादा पिंवतं सोम्यं मधुं

६ ४००

## ( २ ) मित्रावरुणादित्याः ।

॥ ९४ ॥ ( ऋ० ८।१०।१।५ )

जमदग्निमर्गिणः । घृहती ।

प्र मित्राय प्रार्यम्णे संचध्यमृतावसो ।

वृत्तुध्यं वरुणे छन्द्यं वचः स्तोत्रं राजसु गायत

५ ४०१

## ( ३ ) उखामित्रौ ।

॥ ९५ ॥ ( या० य० ११।६४ )

उत्याय घृहती भुवोटुं तिष्ठ ध्रुवा त्वम् ।

मित्रैतां तं उखां परिददाम्यमित्या एपा मा भेदि

६४ ४०२

## ( ४ ) सविता ।

॥ ९६ ॥ ( ऋ० १।२।५-८ ) +

( ४०३-४०६ ) मेघातिथिः काण्वः । गायत्री ।

हिरण्यपाणिमृतये	सवितारमुप ह्वये । स चेत्ता देवता पदम्	५
अपां नपातमवसे	सवितारमुप स्तुहि । तस्य व्रतान्युश्मसि	६
विमक्तारं हवामहे	वसोश्चित्रस्य राक्षसः । सवितारं नूचक्षसम्	७ ४०
सखाय आ नि पीदत	सविता स्तोम्यो नु नः । दाता राक्षांसि शुम्भति	८ ४०

॥ ९७ ॥ ( ऋ० १।२।३-५ )

( ४०७-४०९ ) साजीगतिः शुनाशोपः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः । ( ५ भगो वा ) । गायत्री ।

अभि त्वां देव सवितु	रीशानं वार्याणाम् । सदावन् भागमीमहे	३
यश्चिद्धि तं इत्या भगः	शशमानः पुरा निदः । अद्वेषो हस्तयोर्दधे	४
भगमक्तस्य ते वय	मुदंशेम् तवावसा । मुधानै राय आरभे	५ ४०

॥ ९८ ॥ ( ऋ० १।३।५।७-११ ) ×

( ४१०-४१९ ) हिरण्यस्तूप आह्निरसः । त्रिष्टुप्, ९ जगती ।

आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो	निवेश्यन्नमृतं मर्त्यं च ।	
हिरण्ययेन सविता रथेना	ऽऽ देवो याति भुवनेनानि पश्यन्	२ ४१
याति देवः प्रवता यात्युद्रता	याति शुभ्राम्भ्यां यजतो हरिभ्याम् ।	
आ देवो याति सविता परावतो	ऽपु विश्वा दुरिता बाधमानः	३
अमीवृतं कथनैर्विश्वरूपं	हिरण्यग्रम्यं यजतो बृहन्तम् ।	
आस्थाद् रथं सविता चित्रभानुः	कृष्णा रजोमि तर्विपीं दधानः	४
वि जनाञ्छयावाः श्रित्तिपादो अरुयन्	रथं हिरण्यप्रउगं वहन्तः ।	
शशद् विश्वः सवितुर्दन्वस्यो	पस्ये विश्वा भुवनेनानि तस्युः	५
तिस्रो धारवः सवितुर्दा उपस्थाँ	एका युमस्य भुवने विरापाट् ।	
आणि न रथ्यममृताधि तस्यु	रिह व्रवीत य उ तश्चिकेतत्	६
वि मुपणो अन्तरिक्षाण्यख्यद्	गभीरवेषा अमूरः सुनीधः ।	
अवेदानी एर्यः कथिकेत	कतुर्मा धां रश्मिरस्या ततान	७
अष्टौ र्पण्यत् कृत्तुमः प्रथिप्या	सी घन्व योजना सप्त सिन्धून् ।	
दिरण्याधः मविता देव आगाद्	दधद्रनां डाशुपे वार्याणि	८ ४१

हिरण्यपाणिः सविता विचर्षणि—रुमे धावापृथिवी अन्तरीयते ।	
अपामीवां चाधते वेति मूर्य—मभि कृष्णेन रजसा धामृणोति	९
हिरण्यहस्तो असुरः सुनीथः सुमृत्कीकः खवां यात्वर्वाङ् ।	
अपसेधन् रक्षसो यातुधाना—नस्याद् देवः प्रतिदोषं गृणानः	१०
ये ते पन्थाः सवितः पूर्यासो जरेणवः सुकृता अन्तरिक्षे ।	
तेभिर्नो अद्य पथिभिः सुगेभी रक्षा च नो अधि च ब्रूहि देव	११ ४१९

॥ ९९ ॥ ( अ० २।३८-१-११ )

( ४००-४२० ) गृत्समद ( आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद् ) मार्गवः शौनकः । शिष्टम् ।

उदु ष्य देवः सविता सुवायं शश्वत्तमं तदपा बहिरस्थात् ।	
नूनं देवेभ्यो वि हि धाति रत्न—मथामेजद् वीतिहोत्रं स्वस्तौ	१ ४००
विश्वस्य हि श्रुष्टये देव ऊर्ध्वः प्र वाहवां पूथुपाणिः सिसर्ति ।	
आपश्चिदस्य व्रत आ निमृग्रा अयं चिद् वातो रमते परिजमन्	२
आशुभिश्चिद्यान् वि मुचाति नून—मरीरिपदतमानं चिदेतोः ।	
अद्यपूर्णां चिन्नर्यां अविध्या—मनुं व्रतं सवितुर्मोक्यागात्	३
पुनः समेव्यद् विततं वयन्ती मध्या कर्तोर्न्यघाच्छक्रम घीरः ।	
उत् सहायास्याद् व्यूँ तूरदर्धर—रमतिः सविता देव आगात्	४
नानाकौंसि दुर्यो विश्वमायु—र्वि तिष्ठते प्रमवः शोको अग्रेः ।	
ज्येष्ठं माता सुनवे भागमाधा—दन्वंस्य केतमिपितं मविश	५
समाववर्ति विष्टितो जिगीषु—विश्वेषां कामश्चरताममाभूत् ।	
शश्वो अपो विकृतं हित्व्यागा—दनुं व्रतं सवितुर्देव्यस्य	६ ४०५
त्वया हितमप्यमप्सु भागे धनान्वा मृगयसो वि तस्थुः ।	
वनांनि विभ्यो नकिरस्य तानि व्रता देवस्य सवितुर्मिनन्ति	७
याद्राध्यं वरुणो योनिमप्य—मनिश्चितं निमिषि जह्वराणः ।	
विश्वो मार्तोण्डो व्रजमा पुशुगीत् स्थशो जन्मानि सविता व्याकः	८
न यस्येन्द्रो वरुणो न मित्रो व्रतमर्यमा न मिनन्ति रुद्रः ।	
नारातयस्तमिदं सस्त्रि द्वे देवं सवितारं नमोभिः	९
भगं धियं वाजयन्तुः पुरंधि नराशमो प्रास्पतिर्नो अव्याः ।	
आये वामस्य संग्धे रयीणां प्रिया देवस्य सवितुः स्याम	१० ४०९

असम्यं तद् दिवो अद्भ्यः पृथिव्या—स्त्वया दुत्तं काम्यं राघ आ गात ।  
 शं यत् स्तोतृभ्य आपये मवा—त्युरुशंसाय सवितर्जसिरे

११ ४३०

॥ १०० ॥ ( ऋ० ३१६१०-१० )x

( ४३१-४३२ ) गायिनो विश्वामित्रः । गायत्री ।

तत् सवितुर्वरेण्यं मगो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात्

१०

देवस्य सवितुर्वरेण्यं वाजयन्तः पुरंधरा । मगस्य रातिर्मीमहे

११

देवं नरः सवितारं विप्रा यज्ञैः सुवृक्तिभिः । नमस्यन्ति द्विगेपिताः

१२ ४३१

॥ १०१ ॥ ( ऋ० ४१५३१-७ )

( ४३४-४४६ ) वामदेवो गौतमः । जगती ।

तद् देवस्य सवितुर्वार्यं महद् धृणीमहे असुरस्य प्रचेतसः ।

हृदियेन दाशुपे यच्छति त्मना तन्नो महौ उदयान् देवो अक्तुभिः

१

दिवो धर्ता भुवनस्य प्रजापतिः पिशङ्गं द्रापिं प्रति मुञ्चते कृविः ।

विचक्षणः प्रथयन्नापूणन्धर्व—जीजनत् सविता सुन्नमुक्थ्यम्

२ ४३५

आप्ता रजांसि दिव्यानि पार्थिवा श्लोकं देवः कणुते स्वाय धर्मणे ।

प्र बाहू अस्ताक् सविता सर्वाभिनि निवेश्यन् प्रसुवन्नक्तुभिर्नगत्

३

अदाभ्यो भुवनानि प्रचाकंशद् व्रतानि देवः सविताभि रक्षते ।

प्रास्तां बाहू भुवनस्य प्रजाम्यो धृतव्रतो महो अजमेस्य राजति

४

प्रिरन्तरिक्षं सविता महित्वना श्री रजांसि परिभूत्रीणि रोचना ।

तिस्रो दिवः पृथिवीस्तिस्र इन्वति त्रिभिर्वैरभि नो रक्षति त्मना

५

वृहत्सुन्नः प्रसवीता निवेशनो जगतः स्थातुरुभयस्य यो वशी ।

स नो देवः सविता शर्म यच्छ—त्वसे क्षयाय त्रिवरुणमंहसः

६

आगन् देव ऋतुमिर्वर्धतु क्षयं दधातु नः सविता सुप्रजामिपम् ।

स नः सुपामिरहमिश्च जिन्वतु प्रजान्तं रयिमस्मे समिन्वतु

७ ४४०

॥ १०२ ॥ ( ऋ० ४१५४१-६ ) जगती, ६ त्रिष्टुप् ।

अभूद् देवः सविता वन्द्यो नु न इदानीमहं उपवाच्यो नृभिः ।

यि यो रत्ना भजति मानवेभ्यः श्रेष्ठं नो अत्र द्रविणं यथा दधत्

१

देवेभ्यो हि प्रयुमं यज्ञियेभ्यो ऽमृतत्वं मुवामि मागृहत्तमम् ।

आदिद् दामानं सवितुर्वरुणेषु ऽनृचीना जीविता मानुषेभ्यः

२ ४४१

अचिंत्ती यच्चकृमा दैव्ये जने दीनैर्दधैः प्रभृती परुषत्वता ।	
देवेषु च सवितुर्मर्तुपेषु च त्वं नो अत्र सुवतादनागसः	३
न ग्रमिष्ये सवितुर्दैव्यस्य तद् यथा विश्वं भुवनं धारयिष्याति ।	
यत् पृथिव्या वरिमन्त्रा खड्गुरिर्वर्ष्मन् दिवः सुवति स्तव्यमस्य तत्	४
इन्द्रज्येष्ठान् बृहद्भ्याः पर्वतेभ्यः क्षया एभ्यः सुवसि पुस्त्यावतः ।	
यथायथा पुतयन्तो विधेमिर एवैव तस्थुः सवितः सुवार्य ते	५ ४४५
ये ते त्रिरहन्त्सवितः सुवासो दिवेदिवे सौमंगमासुवन्ति ।	
इन्द्रो धार्यापृथिवी सिन्धुरिन्द्रो रादित्येनो अर्दितिः शर्म यंसत्	६ ४४६

॥ १०३ ॥ ( ऋ० ५।८।११-५ ) ×

( ४४७-४६० ) दयावाश्व आश्रयः । जगती ।

युजते मन उत युजते धियो विश्वा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः ।	
वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिन्दुतिः	१
विश्वा रूपाणि प्रति मुञ्चते कविः प्रासावीद् भद्रं द्विपदे चतुष्पदे ।	
वि नाकमल्पत् सविता वरेण्यो ऽनु प्रयाणमुपसो वि राजति	२
यस्य प्रयाणमन्वन्य इद् युयु—द्वेवा देवस्य महिमानमोर्जसा ।	
यः पार्थिवानि विममे स एतंशो रजांसि देवः सविता महित्वना	३
उत यासि सवितस्त्रीणि रोचनो—त सूर्यस्य रुदिमभिः समृन्वसि ।	
उत रात्रीमुभयतः परीयस उत मित्रो भवसि देव धर्मेभिः	४ ४५०
उतेशिषे प्रसवस्य न्वमेक इ—दुत पुषा भवसि देव यामभिः ।	
उतेदं विश्वं भुवनं वि राजसि श्यावाश्वस्ते सवितुः स्तोममानये	५ ४५१

॥ १०४ ॥ ( ऋ० ५।८।११-९ ) + । गायत्री, १ अनुष्टुप् ।

तत् सवितुर्वृणीमहे वयं देवस्य भोजनम् । श्रेष्ठं सर्वघातं तु तुरं भगस्य धीमहि ।	
अस्य हि स्वयंशस्तरं सवितुः कचन प्रियम् । न मिनन्ति स्वरज्यम्	२
स हि रत्नानि दाशुषे सुवति सविता भगः । तं भागं चित्रमीमहे	३
अद्या नो देव सवितः प्रजावत् सावीः सौमंगम् । परां दुःष्वप्यं भुव	४ ४५१
विश्वानि देव सवित—र्दुरितानि परां सुव । यद् भद्रं तन्न आ सुव	५
अनागसो अर्दितये देवस्य सवितुः सुवे । विश्वा वामानि धीमहि	६ ४५७

× ऋ. ५।८।११-३ = वा य. ५. १४; ११।४, ६; ३७, २; १२, ३ । अथर्व, ७, ७१, ६ ( उत्तरार्धः ) ।

+ ऋ. ५।८।१४-५ = वा ऋ ३०, ३; सा. १४१ ।

आ विश्वदेवं सत्पतिं सूक्तैरद्या वृणीमहे । सत्यमवं सविताम् ७
य इमे उभे अहनी पुर एत्यप्रयुञ्जन् । स्वाधीदेवः सविता ८
य इमा विश्वा जाता न्याश्रावयन्ति श्लोकैर्न । प्र च भुवार्ति मविता ९ ४६०

॥ १०५ ॥ ( ऋ० २।७६।१-६ )

( ४६१-४६६ ) बाहस्पत्यो भरद्वाजः । जगती, ४-६ त्रिष्टुप् ।

उदु प्य देवः सविता हिरण्यया वाह अयंस्तु मयनाय सुकृतुः ।
घृतेन पाणी अभि घृणुते मखो युवां मुदक्षो रजसो विधर्मणि १
देवस्य वयं सवितुः सर्वामनि श्रेष्ठे स्याम वसुनश्च दावने ।
यो विश्वस्य द्विपदो यश्चतुष्पदो निवेशने प्रमवे चामि भूर्मनः २
अदब्धेभिः सवितः पायुभिर्घ्नं शिवेर्मिदं परि पाहि नो गयम् ।
हिरण्यजिह्वः सविताय नव्यंसे रक्षा मार्किनो अवशम ईशत ३
उदु प्य देवः सविता दमना हिरण्यपाणिः प्रतिदोषमस्यात् ।
अयोहितुर्पजतो मुन्द्रजिह्व आ दाशुपे सुवति भूरि वामम् ४
उदु अयो उपवक्तेव वाह हिरण्यया सविता सुप्रतीका ।
दिवो रोहांस्यरुहत् पृथिव्या अरीरमत पतयत् कच्चिदम्भम् ५ ४६१
वाममुय सवितर्वाममु श्रो दिवोदेवे वाममस्मभ्यै सावीः ।
वामस्य हि क्षयस्य देव भूरि-रया धिया वामभार्जः स्याम ६ ४६६

॥ १०६ ॥ ( ऋ० ७।३८।१-६ )

( ४६७-४७६ ) मैत्रावरुणिरसिष्ठः । ६ उत्तराघंस्व भगो वा । त्रिष्टुप् ।

उदु प्य देवः सविता ययाम हिरण्ययीममतिं यामशिश्नेत् ।
नूनं भगो हव्यो मानुषेभि-र्पि यो रत्नां पुरुषमुर्दधाति १
उदु तिष्ठ सवितः शुष्यस्य हिरण्यपाणे प्रभृतावृतस्य ।
व्युर्ग्रीं पृथ्वीममतिं सृजान आ नृभ्यो मर्तमोजनं सृजानः २
अपि धृतः सविता देवो अस्तु यमा चिद् विश्वे नर्मो गृणन्ति ।
म नः स्तोमान् नमस्यथ नो धाद् विश्वेभिः पात पायुभिर्नि मरीन् ३
अभि यं देव्यदितिगुणाति मुने देवस्य सवितुर्गुणाणा ।
अभि सृजानो वरुणा गृणन्त्यभि मित्रामो अयमा सृजोपाः ४ ४७०
अभि ये मित्रो वसुषः गर्पन्ते राति दिवो रात्रिपाचः पृथिव्याः ।
अदिर्पुष्य उत नः गृणानु वरुष्येर्कधनुभिर्नि पातु ५ ४७१



अनु तन्नो जास्पतिर्मसीष्ट रत्नं देवस्य सवितुरित्यानः ।

भगममुग्रोऽवसे जोहवीति भगममुग्रो अघं याति रत्नम्

६ ४७१

॥ १८७ ॥ ( ऋ० ७।४।१-४ )

आ देवो यातु मविता सुरत्नोऽन्तरिक्षप्रा वहमानो अथैः ।

हस्ते दधानो नर्या पुरुषि निवेश्यश्च प्रसुवश्च भूमं

१

उदस्य चाह शिथिरा बृहन्ता हिरण्यया दिवो अन्ता अनष्टाम् ।

नूनं सो अस्य महिमा पणिष्ट खरंश्चिदस्मा अतु दादपस्याम्

२

स वा नो देवः सविता सुहावा ऽऽ साविपद् वसुपतिर्वर्धनि ।

विश्रयमाणो अमतिमरूचीं मर्तभोजनमघं रासते नः

३ ४७५

इमा गिरः सवितारं सुजिह्वं पूर्णगभस्तिमीळते सुपाणिम् ।

चित्रं वयो बृहदसे दधातु यूतं पात स्वास्तिभिः सदा नः

४ ४७६

॥ १८८ ॥ ( ऋ० १०।१३९।१-३ )

( ४७७-४७९ ) देवगन्धर्वो विश्वावसुः । त्रिष्टुप् ।

मूर्धरश्मिर्हरिकेशः पुरस्तात् सविता ज्योतिरुदयां अर्जसम् ।

तस्य पुषा प्रसवे याति विद्रा न्तसंपद्यन् विश्वा भुवनानि गोपाः

१

नृचक्षा एष दिवो मघ्य आस्त आपप्रिवान् रोदसी अन्तरिक्षम् ।

स विश्वार्चीरभि चष्टे घृताचीं रन्तरा पूर्वमपरं च केतुम्

२

रायो युध्नः संपर्मन्तो वसूला विश्वा रूपाभि चष्टे रुचीभिः ।

देव इव सविता सत्यधर्मेन्द्रो न तस्थौ समरे घनानाम्

३ ४७९

॥ १८९ ॥ ( ऋ० १०।१४९।१-५ )

( ४८०-४८४ ) अर्चन् हिरण्यस्नूयः । त्रिष्टुप् ।

सविता यन्त्रैः पृथिवीमरम्णा दस्कम्भने सविता धामदंहत् ।

अथमिवाधुक्षदुर्निमन्तरिक्षं मूर्तुं वद्धं सविता संमुद्रम्

१ ४८०

यत्रा समुद्रः स्क्रभितो व्यौन दपां नपात् सविता तस्य वेद ।

अतो भरत आ उत्थितं रजो ऽतो यावापृथिवी अग्रथेताम्

२

पथेदमन्यदमवद् यजत्र मर्मर्त्यस्य भुवनस्य भूना ।

सुपर्णो अह्न सवितुर्मरुत्मान् पूर्वो जातः स उ अस्यानु धर्मं

३ ४८१

गार्वं हव ग्रामं यूयुधिरिवाश्वान् वाश्रेवं वत्सं सुमना दुहाना ।

पतिरिव जायामभि नो न्येतु धर्ता दिवः सविता विश्ववारः ।

४

हिरण्यस्तूपः सवितर्यथा त्वा ऽऽङ्गिरसो जुह्वे वाजं असिन् ।

एवा त्वाचर्चन्वसे वन्दमानः सोमस्थेवांशुं प्रति जागराहम् ।

५ ४८४

॥ ११० ॥ ( ४८५-५१६ ) ( वा० य० १।१०, ३६ ) +

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्वाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।

१० ४८५

सवितुस्त्वा प्रसव उत्पुनाभ्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः ।

सवितुर्वैः प्रसव उत्पुनाभ्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः ।

३१ ४८६

॥ १११ ॥ ( वा० य० ४।४, २५ ) \*

चित्पतिर्मा पुनातु वाक्पतिर्मा पुनातु देवो मा सविता पुनात्वच्छिद्रेण पवित्रेण  
सूर्यस्य रश्मिभिः ।

तस्य ते पवित्रपते पवित्रपूतस्य यत्कामः पुने तच्छंकेयम् ।

४

अभि त्वं देव ऽसवितारमोण्योः कृविक्रतुमर्चामि सत्यसंव रत्नधामभि प्रियं मतिं कृषिम् ।

ऊर्ध्वा यस्यामतिर्मा अदिद्युतत्सर्वामनि हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपा स्वः २५ ४८८

॥ ११२ ॥ ( वा० य० ५।३९ )

देवं सवितरेषु ते सोमस्त रक्षस्व मा त्वा दमन् ।

एतत् त्वं देव सोम देवो देवाँर उपागा इदमहं मनुष्यान्तसह रायस्पोषेण स्वाहा ३९ ४८९

॥ ११३ ॥ ( वा० य० ८।७ )

उपयामगृहीतोऽसि सावित्रोऽसि चनो धार्ध्नो धा असि चनो मयि धेहि ।

जिन्वं यद्यं जिन्वं यज्जपति भगाय देवाय त्वा सवित्रे

७ ४९०

॥ ११४ ॥ ( वा० य० ९।६; ११।७, ३०, १ ) ×

देवं सवितुः प्रमुव यद्यं प्रमुव यज्जपति भगाय ।

दिप्यो गन्धर्वः केंतपूः केंत नः पुनातु वाचस्पतिर्वाजं नः स्वदतु स्वाहा ।

१ ४९१

+ वा० य० १।११, ५४; ३।१३; ५।१०, ७६; ६।१, ९, ३०; ९।३०, ३८; १०।६; ११।९, ७८, १८।३७, ७०।३; २१।१  
३७।१; ३८।६। अथर्व १९।५१, १० ।

• अथर्व, ७।१४।१-२ । वा० ४८४ ।

× वा० य० ९।५; १८, ३० = दे० [ अदिभिः ] १६ ।

॥ ११५ ॥ ( वा० य० १०,५; २८ ) X

सवित्रे स्वाहा ॥ ५ ॥

सवितामि सत्यप्रंसवः

२८ ४९३

॥ ११६ ॥ ( वा० य० ११,१-३,८,११,६३ )

युञ्जानः प्रथमं मनस्तुच्चार्य सविता धियः ।

अग्नेज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याभरत्

१

युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सुवे । स्वर्ग्याय शक्या

२ ४९५

युक्त्वाय सविता देवान्स्त्वर्यतो धिया दिवम् ।

बृहज्ज्योतिः करिष्यतः सविता प्रसुधाति तान्

३

इमं नो देव सवितर्यज्ञं प्रणय देवान्यु सखिविदं सत्राजितं धनजितं स्रजितम् ।

अत्रा स्तोमं समर्थय गायत्रेण रथन्तरं बृहद्रायप्रवर्त्तनि स्वाहा

८

हस्तं आघाय सविता विश्वदग्निं हिरण्ययीम् ।

अग्नेज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याभरत्

११

देवस्त्वा सवितोद्वपतु सुपाणिः स्यङ्गुरिः सुपाहुकृत शक्या ।

अव्यथमाना पृथिव्यामाशा दिश आपृण

६३ ४९९

॥ ११७ ॥ ( वा० य० १७,७३ )

तां सवितुर्वरेण्यस्य चित्रामाहं वृणे मुमतिं विश्वजन्याम् ।

यामस्य कण्वो अदुहुत् प्रपीनां महत्संधारां पर्यसा महीं गाम्

७४ ५००

॥ ११८ ॥ ( वा० य० १९,४३ )

उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण मयेन च । मां पुनीहि विश्वतः

४३ ५०१

॥ ११९ ॥ ( वा० य० २०,७० ) ४

य इन्द्र इन्द्रियं दधुः सविता वरुणो मर्गः । स सुत्रामां दधिर्षतिर्यजमानाय सद्यत ७०

५०२

॥ १२० ॥ ( वा० य० २१,११ )

शमिता नो वनस्पतिः सविता प्रसुवन् मर्गम् ।

ककुप् छन्द इहेन्द्रियं वशा वेहद्रयो दधुः

२१ ५०३

॥ १२१ ॥ ( वा० य० २०,११-१२ )

देवस्य चेततो महीं प्र सवितुर्हवामहे । सुमतिं सत्यराभसम्

११

सुष्टुतिं सुमतीवृधो रतिं सवितुर्मीमहे । प्र देवाय मतीविदं

१२ ५०५

रातिः सत्पतिं महे सवितारमुप ह्वये । आसवं देववीतये १३  
 देवस्य सवितुर्मतिमासवं विश्वदैव्यम् । धिया भगं मनामहे १४ ५०३

॥ ११५ ॥ ( चा० य० ३००४ )

विभक्तारः हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः । सवितारं नृचक्षसम् ४ ५०८

॥ ११६ ॥ ( चा० य० ३५०-३,५ )

सविता ते शरीरेभ्यः पृथिव्याल्लोकमिच्छतु । तस्मै युज्यन्तामुस्रियाः २  
 सविता पुनातु ३ ५१०

सविता ते शरीराणि मातुरुपस्थ आ यंपतु । तस्मै पृथिवि शं भव ५ ५११

॥ ११७ ॥ ( चा० य० ३७११-१११४-१५ )

देवस्त्वा सविता मध्वानक्तु । ११

सुपदा पश्वाद् देवस्य सवितुराधिपत्ये चक्षुर्मे दाः १२

गर्भो देवानां पिता मतीनां पतिः प्रजानाम् ।

सं देवो देवेन सवित्रा गतु सः सूर्येण रोचते १४

समग्निरग्निना गतु सं दैवेन सवित्रा सः सूर्येणारोचिष्ट ।

स्वाहा समग्निरुपसा गतु सं दैव्येन सविता सः सूर्येणारुरुचत १५ ५१५

॥ ११८ ॥ ( ३८८ )

सवित्रे त्वं ऋमुमते विमुमते वाजवते स्वाहा ८ ५१६

॥ ११९ ॥ ( अथर्व० ११८१३ +

( ५१७ ) द्रविणोदाः । विराडास्तारपदकिल्लिपुप् ।

यत् तं आत्मानि तुन्वा धोरमस्ति यद् वा केऽपि प्रतिचक्षणे वा ।

सर्वं तद् वाचाप हन्मो वयं देवस्त्वा सविता संदयतु ३ ५१७

॥ १२० ॥ ( अथर्व० ५१२४१ )

( ५१८-५१४ ) अथर्वा । चतुष्पदाऽतिशकरी ।

सविता प्रसवानामधिपतिः स मांयतु ।

असिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोघायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्पामस्यामाहू-  
 त्यामस्यामाधिप्यस्यां देवहृत्यां स्वाहा १ ५१८

॥ १२८ ॥ ( अथर्व० ६।१।१-३ )

उष्णिक्, १ त्रिपदा पिपीलिकमध्या साम्नी जगती, २-३ पिपीलिकमध्या पुर उष्णिक् ।

दोषो गाय बृहद् गाय ध्रुमद् घेहि । आर्यवर्ण स्तुहि देवं संवितारम् ८

तष्टुं णुहि यो अन्तः सिन्धौ स्रुतः । मृत्यस्य युवानमद्रोषवाचं सुशेवम् २ ५२०

स था नो देवः संविता साविपदमृतानि भूरि । उभे सुष्टुती सुगार्तवे ३ ५०१

॥ १२९ ॥ ( अथर्व० ७।१४।३-४ ) +

३ त्रिष्टुप्, ४ जगती ।

साधीहि देवं प्रथमार्य पित्रे वर्ष्माणमसौ वरिमाणमसौ ।

अथास्मभ्यं सवितुर्वार्याणि दिवोर्दिव आ सुवा भूरि पश्वः ३

दमूना देवः संविता वरेण्यो दधद् रत्नं दक्षं पितृभ्य आर्युपि ।

पिवात् सोमं ममर्ददेनमिष्टे परिज्मा चित् क्रमते अस्य धर्मेणि ४ ५१३

॥ १३० ॥ ( अथर्व० १२।१६।१ ) अनुष्टुप् ।

असपत्नं पुरस्तात् पश्चाच्चो अमयं कृतम् ।

सविता मा दक्षिणत उत्तरान्मा शचीपतिः १ ५०४

॥ १३१ ॥ ( अथर्व० ५।१५।१० )

( ५०५-५०६ ) ब्रह्मा । अनुष्टुप् ।

सवितुः श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्योः ।

पुरांसं पुत्रमा घेहि दशमे मांसि सूरवे १२ ५१५

॥ १३२ ॥ ( अथर्व० ५।०६।२ ) द्विपदा प्राज्ञापन्या बृहती ।

युनक्तु देवः संविता प्रज्ञानशस्मिन् युजे महिषः स्वाहा ३ ५०६

॥ १३३ ॥ ( अथर्व० ७।१६।१ )

( ५२७ ) मृगाः । त्रिष्टुप् ।

बृहस्पते सवितुर्वर्धयैनं ज्योतयैनं महते सौरगाय ।

संशितं चित् संतरं सं शिशाधि विश्वं एनमनु मदन्तु देवाः १ ५०७

॥ १३४ ॥ ( अथर्व० १०।५।१२ )

( ५०८ ) सिन्धुदीप्तः । उष्णिक् ।

देवस्य सवितुर्माग स्य । अपां शुक्रमापो देवोर्वैश्वो उन्मृष्टं वन ।

प्रजापतेर्वो चास्मास्मै लोकार्यं मादये

सविता-सहचारी देवगणः ।

## ( १ ) सवित्राद्याः ।

॥ १३५ ॥ ( ५१९-५३० ) ( वा० य० १०।३० )

सवित्रा प्रसवित्रा सरस्वत्या वाचा त्वष्टा रूपैः पूष्णा  
 पशुभिरिन्द्रेणास्मे बृहस्पतिना ब्रह्मणा वरुणेनौजसाग्निना  
 तेजसा सोमेन राजा विष्णुना दशम्या देवतया प्रसूतः प्रसर्पाभि

३० ५१९

## ( २ ) सवित्रादयः ।

॥ १३६ ॥ ( वा० य० ३९।६ )

सविता प्रथमेऽहन्निर्द्वितीये वायुस्तृतीये आदित्यश्चतुर्थे  
 चन्द्रमाः पञ्चम ऋतुः षष्ठे मरुतः सप्तमे बृहस्पतिरष्टमे ।  
 मित्रो ननुमे वरुणो दशम इन्द्रं एकादशे विश्वे देवा द्वादशे

६ ५१०

## ( ३ ) इन्द्रः, भगः, सविता ।

॥ १३७ ॥ ( अथर्व० १।२६।९ )

( ५३१ ) ब्रह्मा । त्रिपदा एकावसाना साक्षी त्रिष्टुप् ।

सत्त्वाभावस्मभ्यमस्तु रातिः सत्येन्द्रो भगः सविता चित्राधाः

२ ५११

## ( ४ ) सविता, आदित्याः, रुद्राः, वसवः ।

॥ १३८ ॥ ( अथर्व० ६।६८।१ )

( ५३२ ) अथर्वा । पुरो विराटतिशाकरगर्भा चतुष्पदा जगती ।

आपर्मगन्तमविता क्षुरेणोष्णेन वाय उदुकेनेहि ।

आदित्या रुद्रा वसव उन्दन्तु सचेतसः सोमस्य राज्ञो वषत् प्रचेतसः

१ ५११

## ( ५ ) बृहस्पतिः सविता मित्रोऽर्यमा भगोऽश्विनौ ।

॥ १३९ ॥ ( अथर्व० ६।१०३।१ )

( ५३३ ) उच्छोचन । अनुष्टुप् ।

मृदानं वो बृहस्पतिः मृदानं मविता कर्तु ।

मृदानं मित्रो अर्यमा मृदानं भगो अश्विना

१ ५११

## ( ५ ) सूर्यः ।

॥ १४० ॥ ( ऋ० १।५०।२-२३ ) \*

( ५३४-४६ ) प्रस्कण्वः काण्वः । गायत्री, १०-१३ अनुष्टुप् ।

उदु त्पं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृष्टे विश्वाय सूर्यम्	१	
अप त्पे तागवो यथा नक्षत्रा यन्त्यंक्तभिः । सूराय विश्वचक्षमे	२	५३५
अदथमस्य केतवो वि रश्मयो जना अर्तु । भ्राजन्तो अग्रयो यथा	३	
तुरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य । विश्वमा भासि रोचुनम्	४	
प्रत्यङ् देवानां विश्वः प्रत्यङ्मुदेषि मानुषान् । प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दशे	५	
येना पावक चक्षसा धुरण्यन्तं जना अर्तु । त्वं वरुण पश्यसि	६	
वि घामेपि रजस्पृध्वं मिमानो अक्तभिः । पश्यज्जमानि सूर्य	७	५४०
सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य । शोचिष्केशं विचक्षण	८	
अयुक्त सप्त शुन्ध्यवः सरो रथस्य नृप्यः । तामिर्याति स्वयुक्तिभिः	९	
उद ययं तमस्तपरि ज्योतिष्पश्यन्त उत्तरम् । देवं दैवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् १०		
उद्यन्नध मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवंम् । हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय ११		
शुकैषु मे हरिमाणं रोपणाकासु दधमसि । अथो हारिद्रिवेषु मे हरिमाणं नि दधमसि १२		५४५
उदगादुयमादित्यो विश्वेन सहसा सुह । द्विपन्तं महीं रन्धयन् मो अहं द्विपुते रधम् १३		५४६

॥ १४१ ॥ ( ऋ० १।११।२-६ ) +

( ५४७-५० ) कृत्स् आङ्गिमे. । त्रिष्टुप् ।

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणभ्यामे ।		
आप्रा घावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगत्स्तस्युपध	१	
सूर्यो देवीमुपसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पृथात् ।		
यत्रा नरो देवपन्तो युगानि वितन्ते प्रति मद्राप्य मद्रम्	२	
मद्रा अश्वा हरितः सूर्यस्य चित्रा एतग्मा अनुमार्द्यासः ।		
नमस्पन्तो दिव आ पृष्ठमस्युः परि घावापृथिवी यन्ति मयः	३	५४९

\* ऋ० १।५०।२-१०, १२-१३ = वा० य० ७, ४२। ८, ४०-४१, ४०, ४१, ४३, ४२-४३, ४३, ४४, ४५, ४६, ४७, ४८, ४९, ५०, ५१, ५२, ५३, ५४, ५५, ५६, ५७, ५८, ५९, ६०, ६१, ६२, ६३, ६४, ६५, ६६, ६७, ६८, ६९, ७०, ७१, ७२, ७३, ७४, ७५, ७६, ७७, ७८, ७९, ८०, ८१, ८२, ८३, ८४, ८५, ८६, ८७, ८८, ८९, ९०, ९१, ९२, ९३, ९४, ९५, ९६, ९७, ९८, ९९, १००, १०१, १०२, १०३, १०४, १०५, १०६, १०७, १०८, १०९, ११०, १११, ११२, ११३, ११४, ११५, ११६, ११७, ११८, ११९, १२०, १२१, १२२, १२३, १२४, १२५, १२६, १२७, १२८, १२९, १३०, १३१, १३२, १३३, १३४, १३५, १३६, १३७, १३८, १३९, १४०, १४१, १४२, १४३, १४४, १४५, १४६, १४७, १४८, १४९, १५०, १५१, १५२, १५३, १५४, १५५, १५६, १५७, १५८, १५९, १६०, १६१, १६२, १६३, १६४, १६५, १६६, १६७, १६८, १६९, १७०, १७१, १७२, १७३, १७४, १७५, १७६, १७७, १७८, १७९, १८०, १८१, १८२, १८३, १८४, १८५, १८६, १८७, १८८, १८९, १९०, १९१, १९२, १९३, १९४, १९५, १९६, १९७, १९८, १९९, २००, २०१, २०२, २०३, २०४, २०५, २०६, २०७, २०८, २०९, २१०, २११, २१२, २१३, २१४, २१५, २१६, २१७, २१८, २१९, २२०, २२१, २२२, २२३, २२४, २२५, २२६, २२७, २२८, २२९, २३०, २३१, २३२, २३३, २३४, २३५, २३६, २३७, २३८, २३९, २४०, २४१, २४२, २४३, २४४, २४५, २४६, २४७, २४८, २४९, २५०, २५१, २५२, २५३, २५४, २५५, २५६, २५७, २५८, २५९, २६०, २६१, २६२, २६३, २६४, २६५, २६६, २६७, २६८, २६९, २७०, २७१, २७२, २७३, २७४, २७५, २७६, २७७, २७८, २७९, २८०, २८१, २८२, २८३, २८४, २८५, २८६, २८७, २८८, २८९, २९०, २९१, २९२, २९३, २९४, २९५, २९६, २९७, २९८, २९९, ३००, ३०१, ३०२, ३०३, ३०४, ३०५, ३०६, ३०७, ३०८, ३०९, ३१०, ३११, ३१२, ३१३, ३१४, ३१५, ३१६, ३१७, ३१८, ३१९, ३२०, ३२१, ३२२, ३२३, ३२४, ३२५, ३२६, ३२७, ३२८, ३२९, ३३०, ३३१, ३३२, ३३३, ३३४, ३३५, ३३६, ३३७, ३३८, ३३९, ३४०, ३४१, ३४२, ३४३, ३४४, ३४५, ३४६, ३४७, ३४८, ३४९, ३५०, ३५१, ३५२, ३५३, ३५४, ३५५, ३५६, ३५७, ३५८, ३५९, ३६०, ३६१, ३६२, ३६३, ३६४, ३६५, ३६६, ३६७, ३६८, ३६९, ३७०, ३७१, ३७२, ३७३, ३७४, ३७५, ३७६, ३७७, ३७८, ३७९, ३८०, ३८१, ३८२, ३८३, ३८४, ३८५, ३८६, ३८७, ३८८, ३८९, ३९०, ३९१, ३९२, ३९३, ३९४, ३९५, ३९६, ३९७, ३९८, ३९९, ४००, ४०१, ४०२, ४०३, ४०४, ४०५, ४०६, ४०७, ४०८, ४०९, ४१०, ४११, ४१२, ४१३, ४१४, ४१५, ४१६, ४१७, ४१८, ४१९, ४२०, ४२१, ४२२, ४२३, ४२४, ४२५, ४२६, ४२७, ४२८, ४२९, ४३०, ४३१, ४३२, ४३३, ४३४, ४३५, ४३६, ४३७, ४३८, ४३९, ४४०, ४४१, ४४२, ४४३, ४४४, ४४५, ४४६, ४४७, ४४८, ४४९, ४५०, ४५१, ४५२, ४५३, ४५४, ४५५, ४५६, ४५७, ४५८, ४५९, ४६०, ४६१, ४६२, ४६३, ४६४, ४६५, ४६६, ४६७, ४६८, ४६९, ४७०, ४७१, ४७२, ४७३, ४७४, ४७५, ४७६, ४७७, ४७८, ४७९, ४८०, ४८१, ४८२, ४८३, ४८४, ४८५, ४८६, ४८७, ४८८, ४८९, ४९०, ४९१, ४९२, ४९३, ४९४, ४९५, ४९६, ४९७, ४९८, ४९९, ५००, ५०१, ५०२, ५०३, ५०४, ५०५, ५०६, ५०७, ५०८, ५०९, ५१०, ५११, ५१२, ५१३, ५१४, ५१५, ५१६, ५१७, ५१८, ५१९, ५२०, ५२१, ५२२, ५२३, ५२४, ५२५, ५२६, ५२७, ५२८, ५२९, ५३०, ५३१, ५३२, ५३३, ५३४, ५३५, ५३६, ५३७, ५३८, ५३९, ५४०, ५४१, ५४२, ५४३, ५४४, ५४५, ५४६, ५४७, ५४८, ५४९, ५५०, ५५१, ५५२, ५५३, ५५४, ५५५, ५५६, ५५७, ५५८, ५५९, ५६०, ५६१, ५६२, ५६३, ५६४, ५६५, ५६६, ५६७, ५६८, ५६९, ५७०, ५७१, ५७२, ५७३, ५७४, ५७५, ५७६, ५७७, ५७८, ५७९, ५८०, ५८१, ५८२, ५८३, ५८४, ५८५, ५८६, ५८७, ५८८, ५८९, ५९०, ५९१, ५९२, ५९३, ५९४, ५९५, ५९६, ५९७, ५९८, ५९९, ६००, ६०१, ६०२, ६०३, ६०४, ६०५, ६०६, ६०७, ६०८, ६०९, ६१०, ६११, ६१२, ६१३, ६१४, ६१५, ६१६, ६१७, ६१८, ६१९, ६२०, ६२१, ६२२, ६२३, ६२४, ६२५, ६२६, ६२७, ६२८, ६२९, ६३०, ६३१, ६३२, ६३३, ६३४, ६३५, ६३६, ६३७, ६३८, ६३९, ६४०, ६४१, ६४२, ६४३, ६४४, ६४५, ६४६, ६४७, ६४८, ६४९, ६५०, ६५१, ६५२, ६५३, ६५४, ६५५, ६५६, ६५७, ६५८, ६५९, ६६०, ६६१, ६६२, ६६३, ६६४, ६६५, ६६६, ६६७, ६६८, ६६९, ६७०, ६७१, ६७२, ६७३, ६७४, ६७५, ६७६, ६७७, ६७८, ६७९, ६८०, ६८१, ६८२, ६८३, ६८४, ६८५, ६८६, ६८७, ६८८, ६८९, ६९०, ६९१, ६९२, ६९३, ६९४, ६९५, ६९६, ६९७, ६९८, ६९९, ७००, ७०१, ७०२, ७०३, ७०४, ७०५, ७०६, ७०७, ७०८, ७०९, ७१०, ७११, ७१२, ७१३, ७१४, ७१५, ७१६, ७१७, ७१८, ७१९, ७२०, ७२१, ७२२, ७२३, ७२४, ७२५, ७२६, ७२७, ७२८, ७२९, ७३०, ७३१, ७३२, ७३३, ७३४, ७३५, ७३६, ७३७, ७३८, ७३९, ७४०, ७४१, ७४२, ७४३, ७४४, ७४५, ७४६, ७४७, ७४८, ७४९, ७५०, ७५१, ७५२, ७५३, ७५४, ७५५, ७५६, ७५७, ७५८, ७५९, ७६०, ७६१, ७६२, ७६३, ७६४, ७६५, ७६६, ७६७, ७६८, ७६९, ७७०, ७७१, ७७२, ७७३, ७७४, ७७५, ७७६, ७७७, ७७८, ७७९, ७८०, ७८१, ७८२, ७८३, ७८४, ७८५, ७८६, ७८७, ७८८, ७८९, ७९०, ७९१, ७९२, ७९३, ७९४, ७९५, ७९६, ७९७, ७९८, ७९९, ८००, ८०१, ८०२, ८०३, ८०४, ८०५, ८०६, ८०७, ८०८, ८०९, ८१०, ८११, ८१२, ८१३, ८१४, ८१५, ८१६, ८१७, ८१८, ८१९, ८२०, ८२१, ८२२, ८२३, ८२४, ८२५, ८२६, ८२७, ८२८, ८२९, ८३०, ८३१, ८३२, ८३३, ८३४, ८३५, ८३६, ८३७, ८३८, ८३९, ८४०, ८४१, ८४२, ८४३, ८४४, ८४५, ८४६, ८४७, ८४८, ८४९, ८५०, ८५१, ८५२, ८५३, ८५४, ८५५, ८५६, ८५७, ८५८, ८५९, ८६०, ८६१, ८६२, ८६३, ८६४, ८६५, ८६६, ८६७, ८६८, ८६९, ८७०, ८७१, ८७२, ८७३, ८७४, ८७५, ८७६, ८७७, ८७८, ८७९, ८८०, ८८१, ८८२, ८८३, ८८४, ८८५, ८८६, ८८७, ८८८, ८८९, ८९०, ८९१, ८९२, ८९३, ८९४, ८९५, ८९६, ८९७, ८९८, ८९९, ९००, ९०१, ९०२, ९०३, ९०४, ९०५, ९०६, ९०७, ९०८, ९०९, ९१०, ९११, ९१२, ९१३, ९१४, ९१५, ९१६, ९१७, ९१८, ९१९, ९२०, ९२१, ९२२, ९२३, ९२४, ९२५, ९२६, ९२७, ९२८, ९२९, ९३०, ९३१, ९३२, ९३३, ९३४, ९३५, ९३६, ९३७, ९३८, ९३९, ९४०, ९४१, ९४२, ९४३, ९४४, ९४५, ९४६, ९४७, ९४८, ९४९, ९५०, ९५१, ९५२, ९५३, ९५४, ९५५, ९५६, ९५७, ९५८, ९५९, ९६०, ९६१, ९६२, ९६३, ९६४, ९६५, ९६६, ९६७, ९६८, ९६९, ९७०, ९७१, ९७२, ९७३, ९७४, ९७५, ९७६, ९७७, ९७८, ९७९, ९८०, ९८१, ९८२, ९८३, ९८४, ९८५, ९८६, ९८७, ९८८, ९८९, ९९०, ९९१, ९९२, ९९३, ९९४, ९९५, ९९६, ९९७, ९९८, ९९९, १०००.

तत् सूर्यस्य देवत्वे तन्महिम्नं मध्या कर्तोर्विततं सं जेभार ।  
 यदेदयुक्त हरितः सधस्यादात् रात्री वासस्तनुते सिमस्यै  
 तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणते द्यौरुपस्यै ।  
 अनन्तमन्यद् रुद्रदस्य पाजः कृष्णमन्यद्हरितः सं भ्ररन्ति  
 अद्या देवा उदित्ता सूर्यस्य निरहंसः पिपृता निरवद्यात् ।  
 तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ता—मदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः

४ ५१०

५

६ ५५१

॥ १४२ ॥ ( ऋ० १।१६४-४४-४७ ) ×

( ५५३-५४ ) दीर्घतमा औचस्यः । ऋष्टुप् ।

इन्द्रं मित्रं वरुणममिमाहु—रथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।  
 एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यमि यमं मातरिश्वानमाहुः  
 कृष्णं नितानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति  
 त आववृत्रन्तसदेनाहृतस्या—दिद् घृतेन पृथिवी व्युद्यते

४६

४७ ५५४

॥ १४३ ॥ ( ऋ० ४।४०।५ ) +

( ५५५ ) वामदेवो गौतमः । जगती ।

हंसः शुचिपद् वसुरन्तरिक्षस—द्रोता वेदिपदतिथिर्दुरोणसत् ।  
 नृपद् वरुसहृतसद् व्योमस—दग्जा गोजा क्रतुजा अद्विजा ऋतम्

५ ५५५

॥ १४४ ॥ ( ऋ० ५।४०।५ )

( ५५६ ) अत्रिर्भाम । अनुष्टुप् ।

यत् त्वा सूर्य स्वर्मानु—स्तमसाविष्यदासुरः । अर्धेन विद् यथा मुग्धो भुव्नानन्यदीधयुः

५५६

॥ १४५ ॥ ( ऋ० ७।६०।१ )

( ५५७-५६७ ) मैत्रावरुणिवेसिष्ठ । ऋष्टुप् ।

यदुद्य सूर्यो ब्रवोऽनागा उद्यन् मित्राय वरुणाय सत्यम् ।  
 वृषं देवत्रादिते स्याम् तव प्रियामो अर्यमन् गुणन्तः

१ ५५७

॥ १४६ ॥ ( ऋ० ७।६२।१-३ )

उत् सूर्यो बृहदूर्चीर्षथेत् पुरु विश्वा जनिम् मातृगणाम् ।  
 ममो दिवा ददृशे रोचमानः कृत्वा कृतः सुकृतः कर्तुमिर्भुत्  
 सूर्यं प्रति पुरो न उद् गा एभिः स्तोमैर्भिरेत्येभिरेवैः ।  
 प्र नो मित्राय वरुणाय वोचो—ऽनागतो अर्यम्ये अप्रये च

१

२ ५५९



वि नः सहस्रं शुरुषो रदन्तुतावानो वरुणो मित्रो अग्निः ।  
यच्छन्तु चन्द्रा उपमं नो अर्कमा नः कामं पूपुरन्तु स्तवानाः

३ ५६०

॥ १४७ ॥ ( ऋ० ७६३।१-४ )

उद्वेति सुमगो विश्वचक्षाः साधारणः सूर्यो मानुषाणाम् ।

चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्य देवश्चमेव यः समविष्यक् तर्मासि

१

उद्वेति प्रसवीता जनानां महान् केतुरर्णवः सूर्यस्य ।

समानं चक्रं पर्याविर्वृत्सन् यदेतशो वहति ध्रुवं युक्तः

२

विभ्राजमान उपसामुपस्थाद् रैमैरुदैत्यनुमद्यमानः ।

एष मे देवः सविता चच्छन्दु यः समानं न प्रमिनाति धाम

३

दिवो रुक्म उरुचक्षा उद्वेति दुर्यर्थस्तुरणिभ्राजमानः ।

नूनं जनाः सूर्येण प्रधृता अयन्नर्थानि कृण्वन्नर्पासि

४ ५६४

॥ १४८ ॥ ( ऋ० ७६६।१४-१६ ) +

प्रगाथः = ( समा गृहती + विपमा सतो गृहती ) १६ पुर उष्णिक् ।

उदु त्यद् दर्शत वपुर्दिव एति प्रतिह्वरे ।

यदीमाशुर्वहति देव एतशो विश्वस्मै चक्षसे अरम्

१४ ५६५

शीर्ष्णः शीर्ष्णो जगत्स्तस्थुषस्पतिं सुमया विशुमा रजः ।

सप्त स्वसारः सुविताय सूर्यं वहन्ति हरितो रथे

१५

तच्चक्षुर्वहति शक्रमुचरत् । पश्येम श्रुदः श्रुतं जीवेम श्रुदः श्रुतम्

१६ ५६७

॥ १४९ ॥ ( ऋ० ८।१०।१।१-१२ ) ×

( ५६८-६९ ) जमदग्निर्मग्नवः । प्रगाथः = ( विपमा गृहती + समा सतो गृहती )

घण्महो असि सूर्यं चक्षादित्य महो असि ।

महस्ते सतो महिमा पनस्पते ऽद्धा देव महो असि

११

वद् सूर्यं थवसा महो असि सत्रा देव महो अग्नि ।

मुद्धा देवानामसूर्यः पुरोहितो विश्व ज्योतिरदाम्यम्

१२ ५६९

॥ १५० ॥ ( ऋ० १०।३।१-१२ )×

( ५७०-८१ ) सौर्योऽभितपाः । जगती, १० त्रिष्टुप् ।

- नमो मित्रस्य वरुणस्य चक्षसे महो देवाय तदृतं संपर्यत ।  
 दुरेदृशे देवजाताय केतवे दिवस्पुत्राय सूर्याय शंसत १ ५७०
- सा मां सत्योक्तिः परिं पातु विश्वतो धावा च यत्र ततनचहानि च ।  
 विश्वमन्यन्ति विशते यदेजति विश्वाहाऽऽपो विश्वाहोदेति सूर्यः २
- न ते अदेवः प्रदिशे नि वांसते यदेतुशेभिः पतरै र्युर्यसि ।  
 प्राचीर्नमन्यदनु वर्तते रज उदुन्येन ज्योतिषा यासि सूर्य ३
- येन सूर्य ज्योतिषा वार्धसे तमो जगच्च विश्वमुदियपि मानुना ।  
 तेनासद् विश्वामर्निरामनाहुति मपार्मावामप दुष्ण्वन्य सुव ४
- विश्वस्य हि प्रेषितो रक्षसि व्रत महैळ्यक्षुचरसि स्वधा अनु ।  
 यदुद्य त्वा सूर्योपव्रवामहे तं नो देवा अनु मंसीरतु क्रतुम् ५
- तं नो धावापृथिवी तन्न आप इन्द्रः शृण्वन्तु मरुतो हवं वचः ।  
 मा शूने भूम सूर्यस्य संदृशि मद्रं जीवन्तो जरणामशीमहि ६ ५७५
- विश्वाहा त्वा सुमनसः सुचक्षसः प्रजावन्तो अनमीवा अनागसः ।  
 उद्यन्तं त्वा मित्रमहो दिवेदिवे ज्योग् जीवाः प्रति पश्येम सूर्य ७
- महि ज्योतिर्विभ्रतं त्वा विचक्षण भास्वन्तं चक्षुषेचक्षुषे मर्या ।  
 आरोहन्तं बृहतः पार्जसुस्परि वृषं जीवाः प्रति पश्येम सूर्य ८
- पस्य ते विश्वा भुवनानि केतुना प्र चरेते नि च विशन्ते अक्षुभिः ।  
 अनागास्त्वेन हरिकेय सूर्याऽऽहाहा नो वस्यसावस्यसोदिहि ९
- शं नो मनु चक्षसा शं नो अद्वा शं मानुना शं हिमा शं घृणेन ।  
 यथा शमघ्नञ्जमसद् दुरोणे तत् सूर्यं द्रविणं घेहि चित्रम् १०
- अस्माकं देवा उमयापु जन्मन् शुभं यच्छत द्विपदे चतुष्पदे ।  
 अदत् पिर्यदृज्यमानमाशितं तदुम्मे शं योरुपो दधातन ११ ५८०
- यद् वां देवायकृम जिह्वा गुरु मनसो वा प्रपुंती देवहेळनम् ।  
 मरावा यो नो अभि दुष्टुनापते तस्मिन् तदेनो वसवो नि चेतन १२ ५८१

॥ १५१ ॥ ( ऋ० १०।१५८।१-५ )

( ५८१-८६ ) चक्षुः सौर्यः । गायत्री, २ स्वरान् ।

सूर्यो नो दिवस्पातु वातो अन्तरिक्षात् । अग्निर्नः पार्थिवेभ्यः	१
जोषां सवितर्यस्य ते हरः शतं सुवाँ अहति । पाहि नो दिद्युतः पतन्त्याः	२
चक्षुर्नो देवः सविता चक्षुर्न उत पर्वतः । चक्षुर्वाता दधातु नः	३
चक्षुर्नो धेहि चक्षुषे चक्षुर्विर्यं तनूयः । सं चेदं वि च पश्येम	४ ५८५
सुसंहर्षं त्वा वयं प्रति पश्येम सूर्य । वि पश्येम नृचक्षुसः	५ ५८६

॥ १५२ ॥ ( ऋ० १०।१७०।१-४ ) ७

( ५८७-९० ) विश्राद् सौर्यः । जगती, ४ आत्तारपङ्क्तिः ।

विश्राद् बृहत् पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यत्पनात्रावर्हुतम् ।	
वातेज्जतो यो अमिरक्षति त्मना प्रजाः पुषोप पुरुषा वि राजति	१
विश्राद् बृहत् सुभृतं वाजसातमं धर्मेन् दिवो धरुणे सत्यमर्पितम् ।	
अमित्रहा बृत्रहा दंसुहर्तमं ज्योतिर्जने असुरहा संपन्नहा	२
इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमं विश्वजिद् धनजिदुत्पते युइत् ।	
विश्वश्राद् आजो महि सूर्यो ह्यश उरु प्रप्रेये सह आजो अन्युतम्	३
विश्राज्ज्योतिषा स्वर्गच्छो रोचनं दिवः ।	
येनेमा विश्वा भुवनान्याभृता विश्वकर्मणा विश्वदेव्यावता	४ ५९०

॥ १५३ ॥ ( ५९१-६०९ ) ( वा० य० १।११ )

मूताय त्वा नारातये स्वरभिविर्येयं दहन्तां दुर्याः पृथिव्यामुर्वन्तरिक्षमन्वेमि ।	
पृथिव्यास्त्वा नामाँ सादयाम्भर्दित्या उपस्येज्रे हव्यश् रक्ष	११ २९१

॥ १५४ ॥ ( वा० य० २।२६ ) x

स्वयंभूरसि श्रेष्ठो रश्मिवर्चोदा अमि वचो मे देहि । सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते	२६ २९२
---	--------

॥ १५५ ॥ ( वा० य० ३।१०-१० )

भूर्ध्रुवः स्तुर्धौरिव भूमा पृथिवीव वरिष्णा ।	
तस्मास्ते पृथिवि देवयजनि पूष्टमिन्द्रादमन्नाद्यायादधे	५ ५९३

x ऋ० १०, १७०, १-३ = वा० य० ३३, ३०; सा० ६१८, १४५३-१४५५

x वा० य० २।२६ ( उत्तरार्धः ) = अथर्व० १०, ५, ३७ ( ८ ); वा० य० २।२७

सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा । सूर्यो वचो ज्योतिर्वचः स्वाहा ।

ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा

९

सज्जदेवेन सवित्रा सज्जरूपसेन्द्रवत्या । जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा

१० ५९५

॥ १६५ ॥ ( वा० य० ११३३ )

अर्ध्वनामध्वपते प्र मां तिर स्वस्ति मेऽस्मिन् पृथि देवयाने भूयात्

३३ ५९६

॥ १५७ ॥ ( वा० य० ८१४० )

अहंश्रमस्य केतवो वि रश्मयो जनाँर अनु । आजन्तो अग्र्यो यथा ।

उपयामर्गहीतोऽसि सूर्याय त्वा आज्ञायैपते योनिः सूर्याय त्वा आज्ञाय ।

सूर्यं आजिष्ठ आजिष्ठस्त्वं देवेष्वसि आजिष्ठोऽहं मनुष्येषु भूयासम्

४० ५९७

॥ १५८ ॥ ( वा० य० ११५८ )

परमेष्ठी त्वां सादयतु दिवस्पृष्टे ज्योतिर्भमतीम् ।

विश्वस्मै प्राणायानाय व्यानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ ।

सूर्यस्तेऽधिपतिस्तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद

५८ ५९८

॥ १५९ ॥ ( वा० य० २०१६, २१ )

यदि जाग्रद्वादि स्वम् एनांशसि चक्रमा वयम् ।

सूर्यो मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्व हंसः

१६

उद्वयं तमसस्पति स्तुः पश्यन्त उत्तरम् ।

देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुक्तमम्

२१ ६००

॥ १६० ॥ ( वा० य० ३३१३३-३५, ४१ )

दैव्यावध्वर्य आ गंतु रथेन सूर्यत्वचा । मध्वा युञ्जत समञ्जाथे

३३

आ न इहामिषिदये सुशस्ति विश्वानरः सविता देव एत ।

अपि यथा युवानो मत्संथा नो विश्वं जगदमिषित्वे मनीषा

३४

यदुद्य कच्च वृग्रहद्गदा अभि सूर्य । सूर्यं तदिन्द्र ते वर्ये

३५

धारयन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य मधत ।

पयानि जाते जर्जमान ओजसा प्रति भागं न दीधिम

४१ ६०४

॥ वा० य० ८१४१ ॥ × वा० य० १२१४३=२० [ अति० ] ५०१ मन्त्र दृश्यः ।

+ वा० य० २०१६=अध्वर्यवे ( ६१३५१६-० ) यन्मेषः कथं, तथा च वा० य० २०१२१, २०१२०, १५, १४, १८, १७

= अ० १८०११० अध्वर्यवे ७१५११३ यन्मेषः च दृश्यते ।

• वा० य० ३३१३५, ४१ = २० [ इन्द्रः ] ५४३३, ५३७८ ।

॥ १६१ ॥ ( चा० य० ३६।९, १४ ) x

शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वयमा ।

शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुक्मः

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुचरत् ।

पश्येम श्रदः शतं जीवेम श्रदः शतं शृणुयाम श्रदः शतं प्र ब्रवाम श्रदः

शतमदीनाः स्याम श्रदः शतं भूयश्च श्रदः शतात्

॥ १६२ ॥ ( चा० य० ३७।१६-१८ )

धृता दिवो वि माति तपसस्पृथिव्यां धृता देवो देवानाममर्त्यस्तपोजाः ।

वाचमसे नि यच्छ देवायुवम्

अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परां च पृथिविभिरन्तम् ।

स सध्रीचीः स विपूचीर्वसान् आ वरीवति सुवनेष्वन्तः

विश्वासां ध्रुवां पते विश्वस्य मनसस्पते विश्वस्य वचसस्पते सर्वस्य वचसस्पते ।

देवध्रुवं देव धर्म देवो देवान् पाद्यश्च प्रावीरनुं वां देववीतये ।

मधु माध्वीभ्यां मधु माध्वीभ्याम्

॥ १६३ ॥ ( अथर्व० १।३।५ )

( ६१०-६२० ) अथर्वी । पथ्यापत्किः ।

विद्या शरस्य पितरं धर्मं शतवृष्ण्यम् ।

तेना ते तन्वेष्टुं शं करं पृथिव्यां ते निपेचनं वदिष्टं अस्तु बालिति

॥ १६४ ॥ ( अथर्व० २।२।११-५ )

[ एकावसानम् ] १-४ निचूद्विपमा गायत्री, ५ सुरिनिवपमा ।

धर्मं यत् ते तपस्तेन तं प्रति तप योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः

सूर्यं यत् ते हरस्तेन तं प्रति हर योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः

सूर्यं यत् ते अर्चस्तेन तं प्रत्यर्चं योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः

सूर्यं यत् ते शोचस्तेन तं प्रति शोचं योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः

सूर्यं यत् ते तेजस्तेन तमतेजसं कृणु योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः

॥ १६५ ॥ ( अथर्व० ५।१४।९ ) चतुष्पदाऽतिशकरी ।

सूर्यश्चक्षुषामधिपतिः स भावतु ।

अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायांस्यां प्रतिष्ठायांस्यां चित्यामस्यामा-  
कृत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहृत्यां स्वाहा । ९ ६१६

॥ १६६ ॥ ( अथर्व० ७।१३।१-२ ) अनुष्टुप् ।

यथा सूर्यो नक्षत्राणामुद्यंस्तेजांस्याददे एवा स्त्रीणां च पुंसां च द्विपतां वर्च आ ददे ।  
यावन्तो मा सपत्नानामायन्तं प्रतिपश्यथ ।

उद्यन्तसूर्यं इव सुप्तानां द्विपतां वर्च आ ददे २ ६१८

॥ १६७ ॥ ( अथर्व० १९।१७।५ ) अतिजगती ।

सूर्यो मा द्यावापृथिवीभ्यां प्रतीच्या दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिन्लूये तां पुरं प्रेमि ।

स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ५ ६१९

॥ १६८ ॥ ( अथर्व० १९।१८।५ ) सत्राडाच्यनुष्टुप् ।

सूर्यं ते द्यावापृथिवीवन्तमृच्छन्तु । ये माघायव प्रतीच्या दिशोऽभिदासात् ५ ६२०

॥ १६९ ॥ ( अथर्व० १९।१९।३ ) भुरिगृहती ।

सूर्यो दिवोर्दक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।

तामा विंशतु तां प्र विंशतु सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ३ ६२१

॥ १७० ॥ ( अथर्व० १९।२३।२३ ) देवी पङ्क्तिः ।

सूर्याभ्यां स्वाहा २४ ६२२

॥ १७१ ॥ ( अथर्व० २।३६।५ )

( ६२३ ) पतिवेदनः । अनुष्टुप् ।

मगस्य नावमा रोह पूर्णामनुपदस्वतीम् । तयोपप्रतारस्य यो वरः प्रतिक्राम्यः ५ ६२३

॥ १७२ ॥ ( अथर्व० ४।४०।७ )

( ६०४ ) शुक्रः । त्रिष्टुप् ।

य उपरिष्टाज्जुहति जातवेद ऊर्ध्वायां दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।

सूर्यं मत्वा ते परांश्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेणं हन्मि ७ ६२४

॥ १७३ ॥ ( अथर्व० ६।५१।१ )

( ६१५ ) यागतिः । अनुष्टुप् ।

उत्सूर्यो दिव णंति पुरो रक्षांसि निजर्वन् ।

आदित्यः पर्वेनेभ्यो विश्वरूपो अष्टष्टा १ ६२५

॥ १७४ ॥ ( अथर्व० १६।१।३-४ )

( ६२६-९७ ) यमः । ३ सास्त्री पङ्क्तिः, ४ परोष्णिक् ।

अगन्म स्वः१ स्वर्गन्म सं सूर्यस्य ज्योतिपागन्म

३

वस्योभूयाय वसुमान् यज्ञो वसु वंशिपीय वसुमान् भूयासं वसु मार्यं धेहि

४

६२७

॥ १७५ ॥ ( साम० ४५८ )

( ६२८ ) गौराङ्गिरसः । अतिजगती ( अष्टिर्वा ) ।

अयं सहस्रयानवो दृशः कवीनां मतिज्योतिर्विधर्म ।

ब्रह्मः समीचीरुपसः समैरयदरेपसः । सचेतसः स्वसरे मन्युमन्तश्चिता गोः

२

६२८

॥ १७६ ॥ ( साम० १७९०-९२ ) × सुकश्च आङ्गिरसः । गायत्री ।

सूर्य-सहचारी देवगणः ।

( १ ) सूर्यः पर्जन्यामयो वा, सरस्वान् सूर्यो वा ।

॥ १७७ ॥ ( ऋ० १।१६४।५१-५२ )

( ६२९-३० ) दीर्घतमा औचदयः । ५१ अनुष्टुप्, ५२ त्रिष्टुप् ।

समानमेतद्दुदकमुच्चैत्यव चार्हभिः ।

भूमिं पर्जन्या जिन्वन्ति दिवं जिन्यन्त्यग्र्यः

५१

दिव्यं सुपूर्णं वायुसं बृहन्तं मृपां गर्भं दर्शतमोर्षधीनाम् ।

अभीपतो वृष्टिर्मिस्तुर्ष्यन्तं सरस्वन्तमवसे जोहवीमि

५२

६३०

( २ ) सूर्यमित्रावरुणाः ।

॥ १७८ ॥ ( ऋ० ७।६३।५ )

( ६३१ ) मैत्रावरुणिर्षसिष्ठः । त्रिष्टुप् ।

यत्रा चक्रुर्मृतां गातुर्मस्मै श्येनो न दीयन्नर्वेति पार्थः ।

प्रति वां स्र उदिते विधेम नमोमिर्मित्रावरुणोत हव्यैः

५

६३१

( ३ ) सूर्याविवाहः ।

॥ १७९ ॥ ( ऋ० १०।८५।६-१६ )

( ६३२-५८ ) सावित्री सूर्या ऋषिका । अनुष्टुप्, १४ त्रिष्टुप् ।

रैम्यासीदनुदेर्या नाराशंसी न्योचनी ।

सूर्यायां मद्रमिद् वामो गार्धर्येति परिष्कृतम्

६

६३२

चित्तिरा उपवर्हिणं चक्षुरा अम्यञ्जनम् ।	
द्यौर्भूमिः कोश आसीद् यदयात् सूर्या पतिम्	७
स्तोमा आसन् प्रतिघयः कुरीरं छन्द ओपशः ।	
सूर्यायां अश्विना वरा ऽशिरासीत् पुरोगवः	८
सोमो वधूयुरमव दुश्विनास्तामुमा वरा ।	
सूर्या यत् पत्ये शंसन्तीं मनसा सविताददात्	९ ६१५
मनो अस्या अन आसीद् द्यौरासीदुत च्छदिः ।	
शुक्रावन्द्वाहावास्तां यदयात् सूर्या गृहम्	१०
ऋक्सामाम्यामभिहितौ गावौ ते सामनावितः ।	
श्रोत्रं ते चक्रे आस्तां द्विवि पन्याधराचुरः	११
शुचीं ते चक्रे यास्या व्यानो अक्ष आहतः ।	
अनो मनस्सयं सूर्या ऽऽरोहत् प्रयती पतिम्	१२
सूर्यायां बहत्तुः प्रागात् सविता यमवासृजत् ।	
अघासु हन्यन्ते गावो ऽर्जुन्योः पयुंक्षते	१३
यदश्विना पुच्छमानावयातं त्रिचक्रेण बहत्तं सूर्यायाः ।	
विश्वे देवा अनु तद् वामजानन् पुत्रः पितराववृणीत पुषा	१४ ६४०
यदयातं शुमस्पती वरेयं सूर्यामुषं । कैकं चक्रं वामासीत् कं देप्रायं तस्यधुः	१५
दे ते चक्रे सूर्ये ब्रह्माणं क्रतुया विदुः ।	
अर्धकं चक्रं यद् गृहा तदद्भ्यतय इद् विदुः	१६ ६४१

## ( ४ ) सूर्या-सावित्री ।

॥ १८० ॥ ( अ० १०।८।५।३२-४७ )

अनुष्टुप्, ३४ उरोवृहती, ३६-३७, ४४ त्रिष्टुप्, ४३ जगती ।

मा विदन् परिपन्थिनो य आसीदन्ति दंपती ।	
सुगेभिर्दुर्गमतीता मप द्रान्त्वरांतयः	३२
सुमङ्गलीरियं वधू रिमां समेत पश्यत ।	
सोमार्ग्यमस्य दुत्वाया ऽथास्तं वि परेतन	३३
तृष्टमेवत् कर्दकमेत दपाष्ठवद् विपवश्चैतदचवे ।	
सूर्या यो मृदा विघात इद् वाधूयमर्हति	३४ ६४५



आशंसनं विशसनं मर्यो अधिविकर्तनम् ।	
सूर्यायाः पश्य रूपाणि तानि ब्रह्मा तु शुन्धति	३५
गुम्णामि ते सौमगत्वाय हस्तं मया पत्यां जरदष्टिर्यथासः ।	
मगो अरुमा संविता पुरंधि मर्हं त्वाद्गुर्गर्हिपत्याय देवाः	३६
तां पूषञ्छिवर्तमाभेरयस्व यस्यां बीजं मनुष्या इव पन्ति ।	
या न ऊरू उशती विशयाति यस्यामुशन्तः प्रहराम शेपम्	३७
तुभ्यमग्रे पर्यवह न्सूयां वंदतुनां सह ।	
पुनः पतिभ्यो जायां दा अग्रे प्रजयां सह	३८
पुनः पत्नीमाभिरंदा दायुंषा सह वर्चसा ।	
दीर्घायुरस्या यः पतिर्जीवाति श्रदः श्रवम्	३९ ६५०
सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविदु उत्तरः ।	
तृतीयो अग्रिष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः	४०
सोमो ददद् गन्धर्वाय गन्धर्वो ददद्दुमये ।	
रयि च पुत्रांश्चादा दुमिर्मममर्यो इमाम्	४१
इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्रुतम् ।	
क्रीळन्तो पुत्रैर्नमृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे	४२
आ नः प्रजां जनयतु प्रजापतिराजरसाय समनक्त्वयमा ।	
अर्दुर्मङ्गलीः पतिलोकमा विशुं शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे	४३
अघोरक्षुरपतिभ्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः ।	
वीरसुदेवकामा स्योना शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे	४४ ६५५
इमां त्वमिन्द्र मीद्वः सुपुत्रां सुमगां कृणु ।	
दशास्यां पुत्राना वैहि पतिमेकादशं कृषि ।	४५
सम्राज्ञी शशुरे भव सम्राज्ञीं शश्र्वां भव ।	
ननान्दरि सम्राज्ञीं भव सम्राज्ञी अर्धि देवपुं	४६
समजन्तु विष्वे देवाः समापो हृदयानि नी ।	
सं मातरिश्वा सं घाता समु देष्ट्रीं दधातु नी	४७ ६५८

## [ ५ ] सूर्य-वैश्वानरोऽग्निः ।

॥ १८१ ॥ ( क्र० १०१८०१-१९ )

( ६५९-७७ ) आङ्गिरसो मूर्धन्वान्, चामदेव्यो वा । त्रिष्टुप् ।

- हविष्पान्तमजरं स्वर्दिदि दिविस्पृश्याहुतं जुष्टमग्नौ ।  
 तस्य भर्मेणे भुवनाय देवा भर्मेणे कं स्वधर्मा पप्रथन्त १
- ग्रीणि भुवनं तमसापगूळह माविः स्वरभवज्जाते अग्नौ ।  
 तस्य देवाः पृथिवी द्यौरुतापो ऽरण्यन्नोपधीः सुरुये अंस २ ६६०
- देवेभिर्निवपितो यज्ञियैभिर्गग्निं स्तोपाप्यजरं बृहन्तम् ।  
 यो भानुना पृथिवीं चामुतेसा मातृतान् रोदसी अन्तरिक्षम् ३
- यो होताऽऽसीत् प्रथमो देवजुष्टो यं समाज्जन्वाज्येना वृणानाः ।  
 स पतन्नीत्स्वरं स्या जगद्यच्छ्वात्रमग्निरेकृणो ज्ञातवैदाः ४
- यज्ञातवेदो भुवनस्य मूर्धन्नातिष्ठो अग्ने सह रौचनेन ।  
 तं त्वाहेम मतिभिर्गीभिरुक्थैः स यज्ञियो अभवो रोदसिग्राः ५
- मूर्धा भुवो भवति नक्तमग्निस्ततः सूर्यो जायते प्रातरुद्यन् ।  
 मायामु तु यज्ञिपानामेतामपो यत् तूणिश्चरति प्रजानन् ६
- हृशेन्यो यो महिना समिद्धो ऽरोचत दिवियोनिर्विभावा ।  
 तस्मिन्नाग्नी सूक्तवाकेन देवा हविर्विश्च आजुहवुस्तनूपाः ७ ६६५
- सूक्तवाकं प्रथममादिदग्निमादिद्विविरजनयन्त देवाः ।  
 स एषां यज्ञो अभवत् तनूपास्तं द्यौर्वेदु तं पृथिवी तमार्षः ८
- यं देवासोऽर्जनयन्ताग्निं यस्मिन्नाजुहवुर्भुवनानि विश्वा ।  
 गो अर्चिषा पृथिवीं चामुतेसा मृज्यमानो अतपन्महित्वा ९
- स्तोमेन हि दिवि देवासो अग्निमर्जीजनच्छक्तिमी रोदसिग्राम् ।  
 तमु अकृण्वन् त्रेधा भुवे कं स ओपधीः पचति विश्वरूपाः १०
- यदेदेनमर्दधुर्यज्ञियासो दिवि देवाः सूर्यमादित्यम् ।  
 यदा चरिष्णु मिथुनावभृता मादित् प्रापश्यन् भुवनानि विश्वा ११
- विश्वस्मा अग्निं भुवनाय देवा वैश्वानरं केतुमह्वामकृण्वन् ।  
 आ यस्ततानोपसो विप्रातीरपो ऊर्णोति तमो अर्चिषा यन् १२ ६७०

वैश्वानरं कवयो यज्ञियांसो ऽग्निं देवा अजनयन्नजुयम् ।	
नक्षत्रं प्रत्नमभिनच्चरिष्णु यक्षस्यार्घ्यक्षं तविषं बृहन्तम्	१३
वैश्वानरं विश्वहा दीदिवांसं मन्यैरग्निं कविमच्छां वदामः ।	
यो मंहिम्ना परिवभूवोर्वी उतावस्तादुत देवः पुरस्तात्	१४
द्वे स्रुती अंशूणवं पितृणां—महं देवानामुत मर्त्यानाम् ।	
ताभ्यामिदं विश्वमेजत् समैति यदन्तरा पितरं मातरं च	१५
द्वे समीची विभृतश्चरन्तं शीर्षतो जातं मनसा विमृष्टम् ।	
स प्रत्यहं विश्वा भुवन्नानि तस्था—वप्रयुच्छन् तुरणिर्भ्राजमानः	१६
यत्रा वदेते अवरः परश्च यज्ञन्योः कतरो नौ वि वेद ।	
आ शैकुरित् संघमादुं सखायो नक्षन्त यज्ञं क इदं वि वोचत्	१७ ६७५
कत्यप्रयः कति स्रयोसुः कत्युपासुः कत्युं सिदापः ।	
नोपस्तिजं वः पितरो वदामि पुच्छामि वः कवयो विद्वन्ते कम्	१८
यावन्मात्रमुपसो न प्रतीकं सुपण्योऽङ्गे वसते मातरिभ्यः ।	
तावद् दधात्युप यज्ञमायन् ब्राह्मणो होतुरवरो निषीदन्	१९ ६७७

( ६ ) सूर्यो, हरिमा हृद्रोगश्च ।

॥ १८१ ॥ [ दै० ( आयुर्वेद० ) ४८९-९० मन्त्राः द्रष्टव्याः । ]

( ७ ) सूर्यः प्रजापतिः ।

॥ १८२ ॥ [ दै० ( आयुर्वेद० ) १३३९-३३ मन्त्री द्रष्टव्याः । ]

( ८ ) सूर्याचन्द्रमसौ ।

॥ १८४ ॥ ( अथर्व० ६।८३।१ ) x

( ६७८ ) भगः । अनुष्टुप् ।

अपचितः प्र पतत सुपणो वसतेरिव ।

स्रयः कृणोतु मेपजं चन्द्रमा वोऽपोच्छत

१ ६७८

॥ १८५ ॥ ( अथर्व० ७।८१।१-६ ) +

( ६७९-८४ ) अथर्व। त्रिष्टुप्, ३ अनुष्टुप्, ४ आस्तारपङ्क्तिः, ५ स्वरादास्तारपङ्क्तिः ।

पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशु श्रीर्दन्तौ परि यातोऽर्णवम् ।

विश्वान्यो भुवना विचष्टे ऋतुरन्यो विदधंजायसे नवः

१ ६७९

नवो नवो मवसि जायमानोऽह्नां केतुरुपसामिष्यग्रम् ।

भागं देवेभ्यो वि दधास्यायन् प्र चन्द्रमस्तिरसे दीर्घमायुः

२ ६८०

सोमस्यांशो युधां पतेऽनूनो नाम वा असि ।

अनूनं दर्श मा कृषि प्रजया च घनेन च

३

दुशोऽसि दर्शतोऽसि समग्रोऽसि समन्तः ।

समग्रः समन्तो भूयासं गोभिरथैः प्रजया पशुभिर्गृहैर्धनेन

४

योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तस्य त्वं प्राणेना प्यायस्व ।

आ वयं प्याशिपीमहि गोभिरथैः प्रजया पशुभिर्गृहैर्धनेन

५

यं देवा अंशुमाप्याययन्ति यमक्षितुमक्षिता मुक्षयन्ति ।

तेनास्मानिन्द्रो वरुणो बृहस्पतिरा प्याययन्तु भुवनस्य गोपाः

६ ६८४

( ९ ) सूर्यः आपश्च ।

॥ १८६ ॥ ( अथर्व० ७।१०७।१ )

( ६८५ ) भृगुः । अनुष्टुप् ।

अथ दिवस्तारयन्ति सप्त सूर्यस्य रश्मयः ।

आपः समुद्रिया धारास्तास्ते शल्यमसिससन्

१ ६८५

( १० ) सूर्यः गौः ।

॥ १८७ ॥ ( अथर्व० १०।४८।१-६ )

( ६८६-९१ ) शिलम्, ४-६ सर्पराज्ञी । गायत्री ।

अभि त्वा वर्चसा गिरः सिञ्चन्तीराचरन्पवः । अभि वत्सं न घेनवः

१

ता अर्पन्ति शुभ्रियः पृश्नन्तीर्वर्चसा म्रियः । जातं जाश्रीर्यथा हृदा

२

वर्जापवसाध्वः कीर्तिम्रियमाणमावहन् । मह्यमायुर्वृतं पर्यः

३

आपं गौः पृश्निरक्रीदसदन्मातरं पुरः । पितरं च प्रयन्तस्त्रुः

४

अन्तश्चरति रोचना अस्य प्राणादपानतः । व्यख्यन्महिषः स्त्रुः

५

मिश्रदाम्ना मि राजनि पाक् पतङ्गो अंशिश्रियत् । प्रति वस्तोरहर्घुभिः

६ ६९१

## ( ६ ) त्वष्टा, धाता, पूषा, भगः, अर्यमा ।

[ १ ] त्वष्टा । \*

॥ १८८ ॥ ( ऋ० १०।१८।६ )

( ६९२ ) संकुसुको यामायनः । जिष्णुप् ।

आ रोहताधुर्जरसं घृणाना अनुपूर्वं यतमाना यतिष्ठ ।

इह त्वष्टा सृजनिमा सृजोषा दीर्घमायुः करति जीवसे वः

६ ६९२

॥ १८९ ॥ [ ६९३-९७ ] ( वा० य० २।२४ ) ×

सं वचसा पर्यसा सं तनुभिरगन्महि मनसा सः शिवेन ।

त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायोऽनुमायुः तन्वो यद्विलिष्टम्

२४ ६९३

॥ १९० ॥ ( वा० य० ६।७ )

उपावीरस्युप देवान् दैवीर्विश्वः प्रागुरुश्रिजो वह्निमान् ।

देवं त्वष्टर्वसुं रम हव्या तं स्वदन्ताम्

७ ६९४

॥ १९१ ॥ ( वा० य० ८।१७ ) +

धाता रातिः संवितेदं जुपन्तां प्रजापतिर्निधिषा देवोऽग्निः ।

त्वष्टा विष्णुः प्रजयां सः शराणा यजमानाय द्रविणं दधातु स्वाहा

१७ ६९५

॥ १९२ ॥ ( वा० य० १०।४४ )

त्वष्टा दधच्छुष्ममिन्द्राय वृष्णेऽपाकोऽविष्टुर्यशसे पुरुषि ।

वृषा यजन् वृषणं भूरिरेता मूर्धन् यज्ञस्य समनक्तु देवान्

४४ ६९६

॥ १०३ ॥ ( वा० य० १९।९ )

त्वष्टा वीरं देवकामं जजान त्वष्टरवी जायत आशुरसः ।

त्वष्टेदं विश्वं भुवनं जजान ब्रह्मः कर्तारमिह यक्षि होतः

९ ६९७

॥ १९४ ॥ ( अथर्व० ३।३।१५ )

( ६९८-९९ ) ग्रह्या । विराट् प्रस्तारपहंकिः ।

त्वष्टा दुहित्रे वेहतं युनक्तीतीदं विश्वं भुवनं वि याति ।

व्यं हं सर्वेण प्राप्मना वि यस्मेण समायुषा

५ ६९८

\* दे० [ अग्निः ( आग्नी सूक्तानि ) ] १९१५, १९२७, १९३९, १९५०, १९६१, १९७१, १९८९, २०००, २०११, २०२२, २०३४, २०४५, २०५७, २०६९, २०८१, २०९२, २१०३, २११४, २१२६, २१३८ ।

× वा० य० ८।१४, १६; अथर्व० ६।५३।३ ( पाठभेदेन ) । + अथर्व० ७।१७।४ ।

( अथर्व० ५।१६।८ ) द्विपदा प्राजापत्या वृहती ।

त्वष्टा युनक्तु बहुधा नु रूपा असिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा

८ ६९९

॥ १९५ ॥ ( अथर्व० ६।१३।३ )

( ७०० ) वृहज्जुक् । त्रिष्टुप् ।

सं वर्चसा पर्यसा सं तनुभिरगन्महि मनसा सं शिवेन ।

त्वष्टा नो अत्र ररियः कृणोत्वन्तु नो माष्टु तन्वोऽे यद् विरिष्टम्

३ ७००

॥ १९६ ॥ ( अथर्व० ६।७८।३ )

( ७०१-२ ) अथर्व । अनुष्टुप् ।

त्वष्टा ज्ञायामजनयत् त्वष्टास्यै त्वां पतिम् ।

त्वष्टा सहस्रमार्युपि दीर्घमार्युः कृणोतु वाम्

३ ७०१

॥ १९७ ॥ ( अथर्व० ६।८१।३ )

यं परिहस्तमविमरादितिः पुत्रकाम्या ।

त्वष्टा तमस्या आ वध्नाद् यथा पुत्रं जनादिति

३ ७०२

त्वष्ट-सहचारी देवगणः ।

( १ ) त्वष्टा शुक्रश्च ।

॥ १९८ ॥ ( ऋ० २।३६।३ )

( ७०३ ) गृत्समद ( आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद् ) भार्गवः शौनकः । जगती ।

अमेव नः सुहवा आ हि गन्तं न नि बर्हिषि सदतना रणिष्टन ।

अथा मन्दस्व जुजुषाणो अन्धसु स्त्वष्टदेवेभिर्जनिभिः सुमद्रणः

३ ७०३

( २ ) त्वष्टा, पर्जन्यः, ब्रह्मणस्पतिः, अदितिः ।

॥ १९९ ॥ ( अथर्व० ६।४।१ )

( ७०४ ) अथर्व । पञ्चमवृहती ।

त्वष्टा मे दैव्यं वर्चः पर्जन्यो ब्रह्मणस्पतिः ।

पुत्रैर्भार्यभिरदितिर्नु पातु नो दुष्टं त्रायमाणं सहः

१ ७०४

[ २ ] धाता ।

॥ २०० ॥ ( ऋ० १०।१८।५ )

( ७०५ ) संकुसुको यामायनः । त्रिष्टुप् ।

यथाहान्यनुपूर्वं भवन्ति यथ ऋतवं ऋतुभिर्यन्ति साधु ।

यथा न पूर्वमपरो जहात्येवा धातुरार्युपि कल्पयेषाम्

५ ७०५

॥ २०१ ॥ ( अथर्व० १३।४।३ )  
( ७०६ ) ब्रह्मा । प्राजापत्याऽनुष्टुप् ।

स धाता स विधृता स वायुर्नम उच्छ्रितम् ।

रश्मिभिर्नम आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः

३ ७०६

॥ २०२ ॥ ( अथर्व० १८।३।१६ )  
( ७०७-१० ) । अथर्वी । जगती ।

धाता मा निर्ऋत्या दक्षिणाया दिशः पातु वाहुच्युता पृथिवी धामिबोपरि ।

लोककृताः पथिकृता यजामहे ये देवानां हुतमांगा इह स्य

२६ ७०७

धातु-सहचारी-देवगणः ।

( १ ) धाता, सविता, इन्द्रः, त्वष्टा, अदितिः ।

॥ ३०३ ॥ ( अथर्व० ३।८।१ )

धाता रुतिः सवितेदं जुषन्तामिन्द्रस्त्वष्टा प्रति हयन्तु मे वचः ।

हुवे देवीमदितिं शूरपुत्रां सज्जानां मध्यमेष्टा यथासानि

२ ७०८

( २ ) धाताविधातारौ, ऋतवः ।

॥ १०४४ ॥ ( अथर्व० ३।१०।१० )

ऋतुर्गर्वावैर्म्यो माद्रथः सैवत्सरेर्म्यः ।

धात्रे विधात्रे समृधे मृतस्य पतये यजे

१० ७०९

( ३ ) धाता, विधाता, सविता, आदित्याः, रुद्राः, अश्विनौ ।

॥ २०५ ॥ ( अथर्व० ५।३।९ )

धाता विधाता भुवनस्य यस्पतिर्देवः सवितामिमातिपाहः ।

आदित्या रुद्रा अश्विनोमा देवाः पान्तु यजमानं निर्ऋथात्

९ ७१०

( ४ ) धाता, सविता ।

॥ २०६ ॥ ( अथर्व० ७।१७।१-३ )

( ७११-१३ ) मृगुः । १-२ गायत्री, ३ त्रिष्टुप् ।

धाता दधातु नो रुथिमीशानो जगत्स्पतिः । स नः पूर्णेन यच्छतु

१

धाता दधातु दाशुषे प्राची जीवातुमर्शिताम् ।

वयं देवस्य धीमहि सुमतिं विधराधसः

२ ७११

धाता विश्वा वार्या दधातु प्रजाकामाय दाशुषे दुरोणे ।

तस्यै देवा अमृतं सं व्ययन्तु विश्वे देवा अदितिः सजोषाः

३ ७१३

( ५ ) सविता, धाता, पूषा, त्वष्टा ।

॥ २०७ ॥ ( अथर्व० ११।६।३ )

( ७१४ ) शन्ताति । अनुष्टुप् ।

ब्रूमे देवं सवितारं धातारमुत पुषणम् । त्वष्टारमग्निं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वहंसः

३ ७१४

[ ३ ] पूषा ।

॥ २०८ ॥ ( ऋ० १।२३।२३-२५ )

( ७१५-१७ ) मेघातिथिः काण्व । गायत्री ।

आ पूषञ्चित्रवर्हिप—माघृणे धरुणं दिवः । आजा नष्टं यथा पशुम्

१३ ७१५

पूषा राजानमाघृणि—रपगूळं गुहां हितम् । अविन्दक्चित्रवर्हिपम्

१४

उतो स मद्भमिन्दुभिः पद् युक्तो अनुसेपिधत् । गोमिर्ववं न चर्कपत्

१५ ७१७

॥ २०९ ॥ ( ऋ० १।४९।१-२० )

( ७१८-२७ ) कण्वो घोरः । गायत्री ।

सं पूषन्नध्वनस्तिरु व्यहो विमृचो नपात् । सक्ष्वा देव प्र णस्पूरः

१

यो नः पूषन्नघो वृको दुःशेव आदिदैशति । अपं स्म तं पृथो जहि

२

अप त्वं परिपन्थिनं मृषीवाणं दुरश्चितम् । दूरमधि सुतेरज

३ ७२०

स्वं तस्य द्याविनो ऽघशैसस्य कस्य चित् । पदामि तैष्ठ तपुषिम्

४

आ तत् तै दस मन्तुमः पृपुन्नवो वृणीमहे । येन पितृनचोदयः

५

अधा नो विश्वसौमग हिरण्यवाशीमत्तम । धनानि सुपणां कृधि

६

अति नः सुधतो नय सुगा नः सुपथां कृणु । पूर्षन्निह क्रतुं विदः

७

अमि सुयवंसं नय न नवज्वारो अध्वने । पूर्षन्निह क्रतुं विदः

८ ७२५

अग्निं पूषिं प्र यंसि च शिश्रीहि प्रास्युदरम् । पूर्षन्निह क्रतुं विदः

९

न पूषणं मेधामसि सूक्तेरमि गृणीमसि । वरुणि दुस्मर्मांमहे

१० ७२७

॥ २१० ॥ ( ऋ० १।१३८।१-४ )

( ७२८-३१ ) परच्छेपो दैघोदासि । अत्यष्टिः ।

प्रप्र पूष्णस्तुविजातस्य द्यसवे महित्वमस्य तवसो न तन्दते स्तोत्रमस्य न तन्दते ।

अर्चामि सुम्रयद्भ—मन्त्यूर्ति मयोध्वम् ।

विश्वस्य यो मने आयुयवे मुखो देव आयुयवे मुखः

१ ७२८



प्र हि त्वां पूषन्नजिरं न यामनि स्तोमैभिः कृण्व ऋणवो यथा मृध  
उष्ट्रो न पीपरो मृधः ।

हुवे यत् त्वां मयोमुवं देवं सुख्याय मर्त्यैः ।

अस्माकमाङ्गुपान् द्युम्निनस्कृद्धि वाजेषु द्युम्निनस्कृद्धि २

यस्य ते पूषन्तसुखे विपन्यवः कृत्वा चित् सन्तोऽवसा वुमुजिर

इति कृत्वा वुमुजिरे ।

तामनु त्वा नवीयसीं नियुतं राय ईमहे ।

अहैकमान उरुशंसु सरीं मव वाजैवाजे सरीं मव ३ ७३०

अस्या ऊ पु ण उप सातये भुवो ऽहैकमानो ररिवां अजाश्च श्वस्वतामजाश्च ।

ओ पु त्वा वधूतीमहि स्तोमैर्भिर्दस्म साधुभिः ।

नहि त्वां पूषन्नतिमन्य आघृणे न ते सुख्यमपहुने ४ ७३१

॥ ७३१ ॥ ( ऋ० ३।६१।७-९ )

( ७३०-३१ ) गायिनो विश्वामित्रः । गायत्री ।

इयं ते पूषन्नाघृणे सुष्टुतिर्देव नन्यसी । अस्माभिस्तुभ्यं शस्यते ७

तां जुषस्व गिरं मम वाजयन्तीमवा धिर्यम् । वधुयुरिव योषणाम् ८

यो विश्वामि विपश्यति भुवना सं च पश्यति । म नः पूषावित्रा ईवन् ९ ७३२

॥ ७३२ ॥ ( ऋ० ६।४८।१३-१९ )

( ७३५-३८ ) शंयुर्वाहस्पत्य ( वृणपाणिः ) १६ ककुप्, १७ मतांरुहन्, १८ द्वा ईग्वह, १९ वृहती ।

आ मां पूषन्नुपे द्रव शंसिषुं तु ते अपिकर्ण आघृणे । इवा इवा अगानयः १६ ७३३

मा काकम्भीरमुद् वृहो वनस्पति मर्शस्तीर्णि हि नीनक्रः ।

मोत सरो अह एवा चन ग्रीवा आदर्षते वेः १७

द्वैरिव वेऽनुकमस्तु सुख्यम् । अर्च्छितस्य दन्वन्तः दन्वन्तः दन्वन्तः १८

परो हि मर्त्यैरसि समो देवैरुत श्रिया ।

अभि ख्यः पूषन् पृथनासु नृस्त्व मवां नूनं ददां दुग १९

॥ ७३३ ॥ ( ऋ० ६।७३।१-३ )

( ७३२-७३३ ) वाहमन्यो नरकः । मर्त्यः, ८ अनुष्टुप् ।

वयमुं त्वा पयस्पते रथं न वार्धकादवे । विन ईरुदृग्महि

अभि नो नर्य वसु वीरं प्रयनदक्षिणः । इमं वृद्धपतिं नय

अर्दिस्सन्तं चिदाघृणे	पुपन् दानाय चोदय । पुणेश्चिद् वि ऋदा मनः	३
वि पुथो वाजसातये	चिनुहि वि मृधो जहि । सार्धन्तामुग्र नो धियः	४
परि तन्धि पणीना	मारया हृदया कवे । अर्थेमस्मभ्यं रन्धय	५
वि पूपन्नारया तुद	पणेरिच्छ हृदि प्रियम् । अर्थेमस्मभ्यं रन्धय	६
आ रिख किकिरा कृणु	पणीनां हृदया कवे । अर्थेमस्मभ्यं रन्धय	७ ७३५
यां पूपन् ब्रह्मचोदनी	मारां विमर्ष्याघृणे ।	
तया समस्य हृदय	मा रिख किकिरा कृणु	८
या ते अष्टा गोत्रोपशा	ऽऽघृणे पशुसाधनी । तस्यास्ते सुन्नमीमहे	९
उत नो गोपणि धियं	मश्वसां वाजसामुत । नृवत् कृणुहि वीतये	१० ७३८

॥ २१४ ॥ ( ऋ० ६।५४।१-१० ) + गायत्री ।

सं पूपन् विदुषा नय	यो अज्जसानुशासति । य एवेदमिति ब्रवंत्	१
सम् पूष्णा गमेमहि	यो गृहो अभिशासति । इम एवेति च ब्रवंत्	२ ७५०
पूष्णाश्चक्रं न रिष्यति	न कोशोऽव पद्यते । नो अस्य व्यथते पविः	३
यो अस्मै हविषाविष	न्न तं पूषाऽपि मृष्यते । प्रथमो विन्दते वसु	४
पूषा गा अन्वेतु नः	पूषा रक्षस्त्वर्वतः । पूषा वाजं सनोतु नः	५
पुपन्ननु प्र गा इहि	यजमानस्य सुन्वतः । अस्माकं स्तुवतामुत	६
मार्किर्निश्नमार्की रिप	न्मार्की सं शारि केवटे । अथारिष्टाभिरा गहि	७ ७५५
शृण्वन्तं पूपर्ण वय	मिथ्यमनएवेदसम् । ईशानं राय ईमहे	८
पूपन् तव व्रते वयं	न रिष्येम कदा चन । स्तोतारस्त इह स्मसि	९
परि पूषा परस्ता	द्वस्तं दधातु दक्षिणम् । पुनर्नो नृपमाजतु	१० ७५८

॥ २१५ ॥ ( ऋ० ६।५५।१-६ )

एहि वां विमृचो नपा	दाघृणे सं संचावहै । रथीकृतस्य नो भव	१
रथीतमं कपदिनु	मीशानं राधसो मुहः । रायः सखायमीमहे	२ ७६०
रायो धारास्याघृणे	वसो राशिरजाश्व । धीवतोधीवतः सखा	३
पूपर्ण नृजाश्व	मुप स्तोषाम वाजिनम् । स्वसुर्यो जार उच्यते	४
मातुर्दिधिपुमब्रवं	स्वसुर्जारः शृणोतु नः । आतन्द्रस्य सखा मम	५
आजासः पूपर्ण रथे	निशृम्मास्ते जनुधियम् । देवं ब्रह्मन्तु विभ्रतः	६ ७६४

॥ २१६ ॥ ( ऋ० ६।५६।१-६ ) गायत्री, ६ अनुष्टुप् ।

य एनमादिदेशति करम्भादिति पूषणम् । न तेन देव आदिशे १ ७६५  
 उत घा स रथीतमः सख्या सत्पतिर्युजा । इन्द्रो वृत्राणि जिघ्रते २  
 उतादः परुषे गवि सूरश्चक्रं हिरण्यम् । न्यैरयद् रथीतमः ३  
 यद्यु त्वा पुरुष्टुत ब्रवाम दस मन्तुमः । तत् सु नो मन्म साधय ४  
 इमं च नो गवेपणं सातये सीपघो गणम् । आरात् पूषन्नसि श्रुतः ५  
 आ ते स्वस्तिमीमह आरेअंघामुपावसुम् । अघा च सर्वतातये श्वश्च सर्वतातये ६ ७७०

॥ २१७ ॥ ( ऋ० ६।५८।१-४ ) × त्रिष्टुप्, २ जगती ।

ध्रुवं ते अन्यद् यजत ते अन्यद् विपुरुषे अहनी द्यौरिवासि ।  
 विश्वा हि माया अवासि स्वबावो भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु १  
 अजामघः पशुपा वाजपस्त्यो धियंजिन्वो ध्रुवने विश्वे अर्पितः ।  
 अष्टौ पूषा शिथिरामुद्धरीष्वजत् संचक्षाणो ध्रुवना देव ईयते २  
 यास्ते पूषन्नावो अन्तः समुद्रे हिरण्ययीरन्तरिक्षे चरन्ति ।  
 तामिर्यासि दुत्या सूर्यस्य कामेन कृतं श्रवं इच्छमानः ३  
 पूषा सुबन्धुर्दिव आ पृथिव्या इळस्पतिर्मघवा दुसर्वर्चाः ।  
 यं देवासो अददुः सूर्यायै कामेन कृतं तवसं स्वश्रमम् ४ ७७४

॥ २१८ ॥ ( ऋ० १०।१७।३-६ ) +

( ७७५-७८ ) देवअवा यामायनः । त्रिष्टुप् ।

पूषा त्वैतश्च्यवयतु प्र विद्वा ननष्टपशुर्धुवनस्य गोपाः ।  
 स त्वैतेभ्यः परि ददत् पितृभ्यो ऽभिर्देवेभ्यः सुविदुर्विरेभ्यः ३ ७७५  
 आयुर्विश्वायुः परि पासति त्वा पूषा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात् ।  
 यत्रासते सुकृतो यत्र ते युयुस्तत्र त्वा देवः संविता दधातु ४  
 पूषेमा आशा अनु वेदु सर्वाः सो अस्मो अर्मयतमेन नेपत् ।  
 स्वस्तिदा आर्घुणिः सर्वधीरो ऽप्रयुच्छन् पुर एत प्रज्ञानन् ५  
 प्रपथे पयामजनिष्ट पूषा प्रपथे दिवः प्रपथे पृथिव्याः ।  
 उमे अमि प्रियतमे सघस्ये आ च परा च चरति प्रज्ञानन् ६ ७७८

॥ २१९ ॥ ( ऋ० १०।२६।१-९ )

( ७७९-८७ ) विमद पेन्द्रः प्राजापत्यो वा, वासुको वसुरुद्रा । अनुष्टुप्, १,४ उष्णिक् ।

प्र ह्यच्छा मनीषाः स्पर्हा यन्ति नियुतः । प्र दुस्ता नियुद्रथः पूषा अविष्टु माहिनः १

यस्य त्यन्महित्वं वाताप्यमयं जनः । विप्र आ वैसद्धीतिभिः धिकेत सुष्टुतीनाम् २ ७८०

स वेद सुष्टुतीनामिन्दुर्न पूषा वृषा । अभि प्सुरः प्रुपायति व्रजं न आ प्रुपायति ३

मंसीमहि त्वा वय मस्माकं देव पूषन् । मतीनां च सार्धनं विप्राणां चाध्वम् ४

प्रत्यर्धिर्यज्ञानां मश्वहयो रथानाम् । ऋषिः स यो मनुर्हितो विप्रस्य यावयत्सुरः ५

आधीपमाणायाः पतिः शुचायाश्च शुचस्य च ।

वासोवायोऽर्वाणां मा वासांसि मर्वजत् ६

इनो वाजानां पतिरिनः पुष्टीनां सखा । प्र इमश्रु ह्यतो दूधोद् वि वृथा यो अदाभ्यः ७ ७८१

आ ते रथस्य पूष कजा धुरं ववत्युः । विश्वस्यार्थिनः सखा सनोजा अनपच्युतः ८

अस्माकमूर्जा रथं पूषा अविष्टु माहिनः । श्ववद् वाजानां वृष इमं नः शृणवद्भवम् ९ ७८२

॥ २२० ॥ [ ७८८ ] ( घा० य० ३३।४२ ) ×

पृथस्पथः परिपति वचस्या कामेन कृतो अभ्यनङ्कम् ।

स नो रासच्छ्रुषश्चन्द्राग्रा धिर्यधियश् सीपधाति प्र पूषा । ४२ ७८८

॥ २२१ ॥ [ ६० ( आयुर्वेद० १७६५-६७ ) मन्त्राः द्रष्टव्या । ]

पूषा-सहचारी देवगण ।

( १ ) मरुतः, पूषा, बृहस्पतिः, अग्निः ।

॥ २२२ ॥ ( अथर्व० ७।३३।१ )

( ७८९ ) ब्रह्मा । पथ्यापदक्ति ।

सं मां सिञ्चन्तु मरुतः सं पूषा सं बृहस्पतिः ।

सं मायमग्निः सिञ्चतु प्रजयां च धनेन च दीर्घमार्युः कृणोतु मे १ ७८९

( २ ) अग्निः, सोमः, पूषा ।

॥ २२३ ॥ ( अथर्व० १६।९।१ )

( ७९० ) यम । आचर्युष्णिक् ।

तदगिराह तद् सोम आह पूषा मां घात सुकृतस्य लोके २ ७९०

## [ ४ ] मगः ।

॥ २२४ ॥ ( ऋ० १।२४।५ )

( ७९१ ) भार्जिगर्तिः शुनःशेषः, स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः । गायत्री ।

मगमक्तस्य ते वय—मुदशेम तवावसा । मुर्धानं राय आरभे ५ ७९१

॥ २२५ ॥ ( ऋ० ७।३८।६ उत्तरार्धः )

( ७९२-९७ ) मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । त्रिष्टुप् ।

मगमुग्रोऽवसे जोहवीति मगमुत्तुग्रे अघं याति रत्नम् ६ ७९२

॥ २२६ ॥ ( ऋ० ७।४१।२-६ ) ×

प्रातर्जितं मगमुग्रं हुवेम वयं पुत्रमर्दिनेर्यो विघर्ता । २

आभ्रश्चिद् यं मन्यमानस्तुरश्चिद् राजा चिद् यं मगं मक्षीत्याह २

मग प्रणेतुर्मग सत्यराधो मगेमां धियमुदेवा ददन्मः । ३

मग प्र णो जनय गोभिरश्चै—र्मग प्र नृमिर्नृवन्तः स्याम ३

उतेदानीं मगवन्तः स्यामो—त प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम् । ४

उतोदिता मघवन्तस्यैव वयं देवानां सुमतां स्याम ४ ७९५

मग एव मगवां अस्तु देवा—स्तेन वयं मगवन्तः स्याम । ५

तं त्वां मग सर्वं इजोहवीति स नो मग पुरएता मवेह ५

समंश्चरायोपसो नमन्त दधिक्रावैव शुचये पदार्थ । ६

अर्वाचीनं वसुविदं मगं नो रथमिवाथा वाजिन आ वदन्त ६ ७९७

॥ २२७ ॥ ( अथर्व० १।३०।५ )

( ७९८ ) प्रजापतिः । अनुष्टुप् ।

एयमेगन् पतिकामा जर्निकामोऽहमार्गमम् । ५ ७९८

अश्वः कर्निकदुद् यथा मगेनाहं सहार्गमम् ५ ७९८

॥ २२८ ॥ ( अथर्व० १।३६।७ )

( ७९९ ) पतिवेदनः । अनुष्टुप् ।

इदं हिरण्यं गुल्गुल्वयमौक्षो अथो मगः । एते पतिभ्यस्त्वामेदुः प्रतिक्रामाय वेत्तवे ७ ७९९

॥ २२९ ॥ ( अथर्व० ५।२६।९ )

( ८०० ) मला । [ एकावसाना ] त्रिपदा विपीलिकमप्या पुरजणिक् ।

मगो पुनक्त्वाशिपो न्वंसा अस्मिन् यज्ञे प्रविद्वान् युनक्तु सुयुजः स्वाहा ९ ८००

॥ १३० ॥ ( अथर्व० ६।११९।१-३ )

( ८०१-३ ) अथर्वाङ्गिराः । अनुष्टुप् ।

भगेन मा शोशयेन साकमिन्द्रेण मेदिना । कृणोमि भुगिनं भार्य द्रान्त्वरातयः १  
 येन वृक्षां अम्भर्मवो भगेन वर्चसा सह । तेन मा भुगिनं कृण्वर्ष द्रान्त्वरातयः २  
 यो अन्धो यः पुनःसरो भगो वृक्षेष्वारहितः । तेन मा भुगिनं कृण्वर्ष द्रान्त्वरातयः ३ ८०१

॥ ६३१ ॥ ( अथर्व० १४।१।५०-५१, ५३, ६० )

( ८०४-७ ) सूर्या सावित्री । ५०, ५३ त्रिष्टुप्, ५१ अनुष्टुप्, ६० पराऽनुष्टुप् ।

गृह्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्ययासः ।  
 भगो अर्यमा सविता पुरंधिर्मह्यं त्वाद्गुर्गर्हिपत्याय देवाः ५०  
 भगस्ते हस्तमग्रहीत् सविता हस्तमग्रहीत् ।  
 पत्नी त्वमसि धर्मणाहं गृहपतिस्तव ५१ ८०५  
 त्वष्टा वातो व्यदिधाच्छुभे कं बृहस्पतेः प्रशिषां कवीनाम् ।  
 तेनेमां नारीं सविता, भगश्च सूर्यामिव परं घचां प्रजया ५३  
 भगस्ततश्च चतुरः पादान् भगस्ततश्च चत्वार्युष्पलानि ।  
 त्वष्टा पिपेश मध्यतोऽनु वर्ध्नान्तसा नो अस्तु सुमङ्गली ६० ८०७

भग-सहचारी-देवगणः ।

( १ ) अंशः, भगः, वरुणः, मित्रः, अर्यमा, अदितिः, मरुतः ।

॥ ६३२ ॥ ( अथर्व० ६।१।९ )

( ८०८ ) अथर्वा । प्रस्तारपङ्क्तिः ।

अंशो भगो वरुणो मित्रो अर्यमादितिः पान्तु मरुतः ।  
 अप तस्य देवो गमेदभिद्भुतो यावयच्छत्रुमन्तितम् २ ८०

( २ ) धाता, अर्यमा, भगः, अश्विनौ ।

॥ ६३३ ॥ ( अथर्व० १४।२।१३ )

( ८०९ ) सूर्या सावित्री । त्रिष्टुप् ।

श्रिवा नारीयमस्तमार्गन्निभं धाता लोकमस्यै दिदेश ।  
 तामर्यमा भगो अश्विनोमा प्रजापतिः प्रजया वर्धयन्तु १३ ८०

## [ ५ ] अर्यमा ।

॥ २३४ ॥ ( अथर्व० ६।६०।१-३ )

( ८१०-१२ ) अथर्वो । अनुष्टुप् ।

अयमा यात्यर्यमा पुरस्ताद् विधितस्तुपः । अस्या इच्छन्नग्न्युवै पतिमुत जायामजानये १ ८१०  
 अथेमदियमर्यमन्नन्यासां समनं यती । अह्नो न्वर्यमन्नस्या अन्याः समनमारयति २  
 घाता दाधार पृथिवी घाता घामुत सूर्यम् ।

घाताऽस्या अग्न्युवै पति दधातु प्रतिकाम्यम् ३ ८१२

॥ २३५ ॥ ( अथर्व० ११।६।४ )

( ८१३ ) शन्तातिः । अनुष्टुप् ।

गन्धर्वाप्सरसो ब्रूमो अश्विना ब्रह्मणस्पतिम् ।

अर्यमा नाम यो देवस्ते नो भुञ्जन्त्वेहसः ४ ८१३

॥ २३६ ॥ ( अथर्व० १३।४।४ )

( ८१४-१६ ) ब्रह्मा । प्राजापत्याऽनुष्टुप् ।

सोऽर्यमा स वरुणः स रुद्रः स महादेवः ।

रश्मिभिर्नम आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ४ ८१४

अर्यमन्-सहचारी-देवगणः ।

## ( १ ) अर्यमा, पूषा, बृहस्पतिः, इन्द्रः ।

॥ २३७ ॥ ( अथर्व० ३१।४।२ ) अनुष्टुप् ।

सं वः सृजत्वर्यमा सं पूषा सं बृहस्पतिः ।

समिन्द्रो यो धनंजयो मयि पुष्यत यद्वसु २ ८१५

## ( २ ) मित्रः, वरुणः, त्वष्टा, अर्यमा, महादेवः ।

॥ २३८ ॥ ( अथर्व० ९।७।७ ) त्रिपदा विपीलिकमप्या निचृद्रायत्री ।

मित्रश्च वरुणश्चासौ त्वष्टा चार्यमा च द्रोणीं महादेवो वाह ७ ८१६

## ( ३ ) अर्यमा, भगः, बृहस्पतिः, देवीः ।

॥ २३९ ॥ ( अथर्व० ३।१०।३ )

( ८१७ ) वसिष्ठः । अनुष्टुप् ।

प्र णो यच्छत्वर्यमा प्र भगः प्र बृहस्पतिः ।

प्र देवीः प्रोत सनुता रयि देवी दधातु मे ३ ८१७

## ( ७ ) विष्णुः ।

॥ १४० ॥ ( ऋ० १।१०।१६-११ ) +

( ८१८-१३ ) मेघातिथिः काण्यः । गायत्री ।

अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे । पृथिव्याः सप्त धामभिः	१६
इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् । समृद्धमस्य पांसुरे	१७
त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाग्यः । अतो धर्माणि धारयन्	१८ ८१०
विष्णोः कर्माणि पश्यतु यतो व्रतानि पस्पशे । इन्द्रस्य युज्युः सखा	१९
तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सुरयः । दिवीं चक्षुराततम्	२०
तद् विप्रासो विपुन्यवो जागृतांसः समिन्धते । विष्णोर्यत् परमं पदम्	२१ ८११

॥ १४१ ॥ ( ऋ० १।१५।११-६ ) +

( ८१४-३७ ) दीर्घतमा औचध्यः । त्रिष्टुप् ।

विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि ।	
यो अस्कभायदुत्तरं सुधस्य विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः	१
प्र तद् विष्णुः स्तवते वीर्येण भूगो न भीमः कुंचरो गिरिष्ठाः ।	
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणे—ष्वधिष्ठियन्ति भुवनानि विश्वा	२ ८१५
प्र विष्णवे शूषमेतु मन्म गिरिक्षित उरुगायाय वृष्णे ।	
य इदं दीर्घं प्रयतं सुधस्य—मेको विममे त्रिभिरित् पदेभिः	३
यस्य श्री पूर्णा मधुना पदान्यक्षीयमाणा सुधया मदन्ति ।	
य उ त्रिघातु पृथिवीमुत घा—मेको दाघातु भुवनानि विश्वा	४
तदस्य प्रियमभि पाथो अश्यां नरो यत्र देवयवो मदन्ति ।	
उरुक्रमस्य स हि वन्धुरित्था विष्णोः पदे परमे मध्व उत्तः	५
ता वां वास्तुन्युदमसि गर्भ्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः ।	
अश्राह तर्दुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमव भाति भूरि	६ ८१९

॥ १४२ ॥ ( ऋ० १।१५।१४-६ ) जगती ।

तत्तदिदस्य पांस्यं गृणीमसी नस्य त्रातरवुकस्य मीळुप्यः ।	
यः पार्थिवानि त्रिभिरिद् विगामभि—रुरु कर्मिष्टोरुगायार्य जीवसे	४ ८२०

+ ऋ० १।१०।१७-११ = वा० य० ५, १५; ३४, ४३-४४; ६, ४-५; १३, ३३; अथर्व. ७, २६, ४-७; सा० २०१, १६६९-७४ ।

• ऋ. १।१५।१-२, ६ = वा० य० ५, १८, २०; ६, ३; अथर्व ७।२६।१-२, ३ ( प्रथमचरणः ) ।



द्वे इदं स्य क्रमणे स्वर्द्धोऽभिख्याय मर्त्यो भुरण्यति ।  
तृतीयमस्य नकिरा दधर्पति वयश्चन पतयन्तः पतत्रिणः  
चतुर्भिः साकं नवति च नामभिश्चक्रं न वृत्तं व्यतीरवीविपत् ।  
बृहच्छरीरो विमिमान् क्रकभिर्बुवाकुमारः प्रत्येत्याहुवम्

५

६ ८३१

॥ २४३ ॥ ( ऋ० १।६५६।१-५ )

मवा मित्रो न शेव्यो घृतासुतिर्विभूतद्युश्च एवया उ सप्रधाः ।  
अधा ते विष्णो विदुषा चिदर्घ्यः स्तोमो यज्ञश्च राघ्यो हविर्मता  
यः पुर्ण्ययं वेधसे नवीयसे सुमज्जानये विष्णवे ददाशति ।  
यो जातमस्य महतो महि व्रधत् सेदु श्रवोभिर्पुण्यं चिदुर्म्यसत्  
गम् स्तोतारः पुण्यं यथा विद क्रतस्य गर्भं जनुषां पिपर्तन ।  
आस्यं जानन्तो नाम चिद् विवक्तन मदस्ते विष्णो सुमतिं भंजामहे  
तमस्य राजा वरुणस्तमश्चिना क्रतुं सचन्त मारुतस्य वेधसः ।  
द्राघार दक्षमुत्तममहविदै व्रजं च विष्णुः सखिवा अपोर्णते  
आ यो विवार्य सचर्याय दैव्य इन्द्राय विष्णुः सुकृते सुकृतरः ।  
वेधा अजिन्वत् त्रिपद्यस्य आर्यमृतस्य भागे यजमानमामजत्

१

२

३ ८३५

४

५ ८३७

॥ २४४ ॥ ( ऋ० ७।९९।१-३, ७ ) +

( ८३८-४७ ) मंत्रावरुणियसिष्ठः । त्रिष्टुप् ।

परो मात्रया तन्वा वृषान् न ते महित्वमन्वश्नुवन्ति ।  
उमे ते विश्व रजसी पृथिव्या विष्णो देव त्वं परमस्य विन्से  
न ते विष्णो जायमानो न जातो देवं महिन्नः परमन्तमाप ।  
उदस्तन्ना नाकमुष्वं बृहन्तं दाधर्यं प्राचीं ककुभं पृथिव्याः  
इरावती घेनुमती हि भूतं स्यवसिनी मनुषे दशस्या ।  
व्यस्तन्ना रोदसी विष्णवेते द्राधर्यं पृथिवीमभितो मयूखैः  
वपत् ते विष्णवाः स आ कृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम् ।  
वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरां मे यूयं पात म्वास्तिभिः मदा नः

१

२

३

७ ८४१

॥ १४५ ॥ ( ऋ० ७।१००।१-६ )

नू मर्तो दयते सन्निध्यन् यो विष्णो उरुगायाय दार्शत् ।	
प्र यः सत्राचा मनसा यजात एतावन्तं नयमाविवासात्	१
त्वं विष्णो सुमतिं विश्वजेन्या मप्रयुतामेवयावो मतिं दाः ।	
पचो यथा नः सुवितस्य भूरे रथावतः पुरुश्चन्द्रस्य रायः	२
त्रिदेवः पृथिवीमेव एतां वि चक्रमे शतर्चसं महित्वा ।	
प्र विष्णुरस्तु त्वसस्तर्वायान् त्वेपं ह्यस्य स्वविरस्य नामं	३
वि चक्रमे पृथिवीमेव एतां क्षेत्राय विष्णुर्मनुषे दशस्यन् ।	
ध्रुवासो अस्य कीरयो जनास उरुक्षितिं सुजनिमा चकार	४ ८४५
प्र तत् ते अद्य क्षिपिविष्ट नाम्नाऽयः धंसामि व्युनानि विद्वान् ।	
तं त्वा गृणामि त्वसमर्तव्यान् क्षयन्तमस्य रजसः पराके	५
किमित् ते विष्णो परिचक्ष्यं भूत् प्र यद् ब्रवक्षे क्षिपिविष्टो अस्मि ।	
मा वपो अस्मदपं गूह एतद् यदुन्यरूपः समित्ये बभूव	६ ८४७

॥ १४६ ॥ ( ८४८-६० ) ( चा० य० १।१७,३० )

गायत्रेण त्वा छन्दसा परिगृह्णामि त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामि जागतेन	
त्वा छन्दसा परिगृह्णामि ।	
सुक्ष्मा चासि शिवा चासि स्योना चासि सुपदा चास्यूर्जस्वती चासि पर्यस्वती च	२७
अदित्यै रास्नासि विष्णोर्वैष्णोऽस्यूर्जे त्वाऽर्द्धवेन त्वा चक्षुषावपश्यामि ।	
अमेजिह्वासि सुहृदेवभ्यो धाम्ने धाम्ने मे भव यजुषे यजुषे	३० ८४१

॥ १४७ ॥ ( चा० य० १।१८, १५ )

ध्रुवा असदन्वृतस्य योनौ ता विष्णो पाहि पाहि युञ्ज पाहि युञ्जपतिं पाहि मां	
यन्तुयुम्	६ ८४७
अर्दिघ्ना विष्णो मा त्वावक्रमिषं वसुमतीमग्ने ते च्छायासुपस्थेपं विष्णो	
स्थानमसीत इन्द्रो वीर्यमकृणोदुर्ध्वोऽध्वर आस्थाय	८
दिवि विष्णुर्व्यक्रश्स्त जागतेन छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान् देष्टि यं च	
वयं द्विष्णोऽन्तरिक्षे विष्णुर्व्यक्रश्स्त त्रैष्टुभेन छन्दसा ततो निर्भक्तो	
योऽस्मान् देष्टि यं च वयं द्विष्मः पृथिव्या विष्णुर्व्यक्रश्स्त गायत्रेण	
छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान् देष्टि यं च वयं द्विष्मः	२५ ८५१

॥ २४८ ॥ ( वा० य० ५।१, १९, २१, २३-२५, ३८ ) x

अग्नेस्तनूरांसि विष्णवे त्वा सोमस्य तनूरांसि विष्णवे त्वातिथेरातिथ्यमसि विष्णवे  
त्वा श्येनार्य त्वा सोमभृते विष्णवे त्वाऽग्रयं त्वा रायस्पोपदे विष्णवे त्वा १

दिवो वा विष्ण उत वा पृथिव्या महो वा विष्ण उरोरन्तरिक्षात् ।

उमा हि हस्ता वसुना पुणस्वा प्र यंचल दक्षिणादोत सन्याद् विष्णवे त्वा १९

विष्णो रराटमसि विष्णोः शप्त्रे स्थो विष्णोः स्यूरसि विष्णोर्ध्रुवोऽसि ।

वैष्णवमसि विष्णवे त्वा

२१ ८५५

रक्षोहर्णं बलगहनं वैष्णवीमिदमहं तं बलगमुत्किरामि यं मे निष्टयो यममात्यौ

निचखानेदमहं तं बलगमुत्किरामि यं मे सभानो यमसमानो निचखा-

नेदमहं तं बलगमुत्किरामि यं मे सवन्धुर्यमसवन्धुनिचखानेदमहं तं

बलगमुत्किरामि यं मे सजातो यमसजातो निचखानोत्कृत्यां किरामि २३

खराडसि सपत्नहा संत्रराडस्यभिमातिहा जंनराडसि रक्षोहा संत्रराडस्यमिग्रहा २४

रक्षोहर्णो वो बलगहनः प्रोक्षामि वैष्णवान् रक्षोहर्णो वो बलगहनोऽर्चनयामि

वैष्णवान् रक्षोहर्णो वो बलगहनोऽर्वस्तृणामि वैष्णवान् रक्षोहर्णो वां

बलगहना उपे दक्षामि वैष्णवी रक्षोहर्णो वां बलगहनौ पर्युहामि वैष्णवी

वैष्णवमसि वैष्णवा स्थ

२५

उरु विष्णो विक्रमस्त्रो क्षयाथ नस्कृषि ।

घृतं घृतयोने पिब प्रप्रं यज्वपतिं तिर स्वाहा

३८ ८५९

॥ २४९ ॥ ( वा० य० ८।१ )

उपयामगृहीतोऽस्यादित्येभ्यस्त्वा ।

विष्णो उरुगायेप ते सोमस्त रक्षस्व मा त्वा दमन्

१ ८६०

॥ २५० ॥ ( अथर्व० ७।२६।१-३, ८ )

विष्णोर्नु कं प्रा वोचं वीर्याणि यः पार्थिवानि विममे रजामि ।

पो अस्केमायुदुत्तरं सधस्यं विचक्रमाणद्येधोरुगायः

१

प्र तद् विष्णुं स्तवते वीर्याणि मृगो न मीमः कुन्वरो गिरिष्ठाः ।

परावत आ जंगम्यात् परस्याः

३ ८६१

यस्योरुपुं त्रिषु विक्रमणेष्वधिधियन्ति सुवर्नानि विश्वा ।

उरु विष्णो वि क्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि ।

घृतं घृतयोने पिब प्रप्रं यज्ञपतिं तिर

३

दिवो विष्ण उत वा पृथिव्या मुहो विष्ण उरोरन्तरिक्षात् ।

हस्तौ पृणस्व बहुभिर्वसव्यैराप्रयच्छ दक्षिणादोत सव्यात्

८ ८१३

॥ ६५१ ॥ ( अथर्व० १०।५।१५-३५ )

( ८६५-७५ ) कौशिकः । व्यवसाना पट्पदा यथाक्षरं शक्यतिशकरी ।

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा पृथिवीसंशितोऽधितेजाः ।

पृथिवीमनु वि क्रमेऽहं पृथिव्यास्तं निर्मेजामो योऽहं सान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।

स मा जीवीत् तं प्राणो जहात्

२५ ८६५

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहाऽन्तरिक्षसंशितो वायुतेजाः ।

अन्तरिक्षमनु वि क्रमेऽहमन्तरिक्षात् तं निर्मेजामो० । स मा जीवीत् तं प्राणो० २६

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा द्यौर्मशितः सूर्यतेजाः ।

दिवमनु वि क्रमेऽहं दिवस्तं निर्मेजामो० । स मा जीवीत् तं प्राणो जहात् २७

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा दिक्मशितो मनस्तेजाः ।

दिशोऽनु वि क्रमेऽहं दिग्म्यस्तं निर्मेजामो० । स मा जीवीत् तं प्राणो० २८

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहाऽऽशांसशितो वारतेजाः ।

आशा अनु वि क्रमेऽहमाशाभ्यस्तं निर्मेजामो० । स मा जीवीत् तं प्राणो० २९

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा ऋक्संशितः सामतेजाः ।

ऋचोऽनु वि क्रमेऽहमृग्म्यस्तं निर्मेजामो० । स मा जीवीत् तं प्राणो जहात् ३० ८७०

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा यज्ञसंशितो ब्रह्मतेजाः ।

यज्ञमनु वि क्रमेऽहं यज्ञात् तं निर्मेजामो० । स मा जीवीत् तं प्राणो जहात् ३१

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहोर्षधीसंशितः सोमतेजाः ।

ओषधीरनु वि क्रमेऽहमोषधीभ्यस्तं निर्मेजामो० । स मा जीवीत् तं प्राणो० ३२

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहाप्सुसंशितो वरुणतेजाः ।

अपोऽनु वि क्रमेऽहमप्यस्तं निर्मेजामो० । स मा जीवीत् तं प्राणो जहात् ३३

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा कृषिसंशितोऽर्भतेजाः ।

कृषिमनु वि क्रमेऽहं कृष्यास्तं निर्मेजामो० । स मा जीवीत् तं प्राणो जहात् ३४ ८७३

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा प्राणसंशितः पुरुषतेजाः ।

प्राणमनु वि क्रमेऽहं प्राणात् तं निर्भेजामो० । स मा जीवीत् तं प्राणो जहात् ३५ ८७१

विष्णु-सहचारी-देवगणः ।

( १ ) विष्णु-त्वष्टृ-प्रजापति-धातारः ।

॥ २५० ॥ ( क्र० १०१८४१ ) +

( ८७६ ) त्वष्टा गर्भकर्ता, विष्णुर्वा प्राजापत्यः । अनुष्टुप् ।

विष्णुर्योनं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिशतु ।

आ सिञ्चतु प्रजापति-धृता गर्भं दधातु ते १ ८७३

( २ ) विष्णुर्वरुणश्च ।

॥ २५३ ॥ ( ८७७ ) ( वा० य० ८५९ ) ×

ययोरोजसा श्कभिता रजांसि वीर्येभिर्वीरर्तमा श्विष्ठा ।

या पत्येते अप्रतीता सहोभिर्विष्णूं अगन्वरुणा पूर्वहृता ५९ ८७७

॥ २५४ ॥ ( अथर्व० ७२५१० )

( ८७८ ) मेधातिथिः । भ्रिष्टुप् ।

यस्येदं प्रदिशि यद् विरोचते प्र चानति वि च चष्टे शर्वाभिः ।

पुरा देवस्य धर्मेणा सहोभिर्विष्णुमगन्वरुणं पूर्वहृतिः २ ८७८

( ८ ) विवस्वान् ।

॥ २५५ ॥ ( ८७९ ) ( वा० य० २१३० )

विर्यस्वते स्वाहा ३० ८७९

॥ २५६ ॥ ( अथर्व० ६/११६/१-३ ) \*

( ८८० ८९ । जाटिकायनः । जगती, २ त्रिष्टुप् ।

यद् यामं चक्रनिखनन्तो अग्रे कार्पावणा अश्विदो न विद्यया ।

वैवस्वते राजनि तज्जुहोम्यथ यज्ञियं मधुमदस्तु नोऽन्नम् १ ८८०

वैवस्वतः कृणवद् मागधेयं मधुमागो मधुना सं सृजाति ।

मातुर्यदेन इषितं न आगन् यद् वा पितारपराद्धो जिहोदे २

यदीदं मातुर्यदि वा पितुर्नः परि भ्रातुः पुत्राचेतस एन आगन् ।

याचन्तो असान् पितरः सचन्ते तेषां सर्वेषां शिवो अस्तु मृत्युः ३ ८८०

यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ।

उरु विष्णो वि क्रमस्वरु क्षयाय नस्कृधि ।

घृतं घृतयोने पित्र प्रप्रं यज्ञपतिं तिर

३

दिवो विष्ण उत वा पृथिव्या महो विष्ण उरोरन्तरिक्षात् ।

हस्ता पृणस्त बहुभिर्वसव्यैराप्रयच्छ दक्षिणादोत सव्यात्

८ ८६३

॥ ६५१ ॥ ( अथर्व १०।५।१५-३५ )

( ८६५-७५ ) कौशिकः । व्यवसाना पदपदा यथाक्षरं शक्यंतिशकरी ।

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा पृथिवीसंशितोऽधितेजाः ।

पृथिवीमनु वि क्रमेऽहं पृथिव्यास्तं निर्भजामो योऽनुऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।

स मा जीवीत् तं प्राणो जहात्

२५ ८६१

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहाऽन्तरिक्षसंशितो वायुतेजाः ।

अन्तरिक्षमनु वि क्रमेऽहमन्तरिक्षात् तं निर्भजामो । स मा जीवीत् तं प्राणो २६

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा द्यौसंशितः सूर्यतेजाः ।

दिवमनु वि क्रमेऽहं दिवस्तं निर्भजामो । स मा जीवीत् तं प्राणो जहात् २७

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा दिक्संशितो मनस्तेजाः ।

दिशोऽनु वि क्रमेऽहं दिग्भ्यस्तं निर्भजामो । स मा जीवीत् तं प्राणो २८

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहाऽऽशांसंशितो वाततेजाः ।

आशा अनु वि क्रमेऽहमाशाभ्यस्तं निर्भजामो । स मा जीवीत् तं प्राणो २९

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा ऋक्संशितः सामतेजाः ।

ऋचोऽनु वि क्रमेऽहमृग्भ्यस्तं निर्भजामो । स मा जीवीत् तं प्राणो जहात् ३० ८८

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा यज्ञसंशितो ब्रह्मतेजाः ।

यज्ञमनु वि क्रमेऽहं यज्ञात् तं निर्भजामो । स मा जीवीत् तं प्राणो ज

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहौषधीसंशितः सोमतेजाः ।

ओषधीरनु वि क्रमेऽहमोषधीभ्यस्तं निर्भजामो । स मा जीवीत् तं

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहाप्सुसंशितो वरुणतेजाः ।

अपोऽनु वि क्रमेऽहमप्यस्तं निर्भजामो । स मा जीवीत् तं प्राणो

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा कृषिसंशितोऽर्धतेजाः ।

कृषिमनु वि क्रमेऽहं कृष्यास्तं निर्भजामो । स मा जीवीत् तं ३१

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा प्राणसंशितः पुरुषतेजाः ।

प्राणमनु वि क्रमेऽहं प्राणात् तं निर्भजामो० । स मा जीवीत् तं प्राणो जहात् ३५ ८७५

विष्णु-सहचारी-देवगणः ।

( १ ) विष्णु-त्वष्टृ-प्रजापति-धातारः ।

॥ २५० ॥ ( ऋ० १०।१८४।१ ) +

( ८७६ ) त्वष्टा गर्भकर्ता, विष्णुर्वा प्राजापत्यः । अनुष्टुप् ।

विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिशतु ।

आ सिञ्चतु प्रजापति-धाता गर्भं दधातु ते

१ ८७६

( २ ) विष्णुर्वरुणश्च ।

॥ २५३ ॥ ( ८७७ ) ( चा० य० ८।५२ ) ×

ययोरोजसा स्कमिता रजांशसि वीर्येभिर्वीरतमा शर्विष्ठा ।

या पत्येते अप्रतीता सहोभिर्विष्णू अगन्वरुणा पूर्वहूतौ

५९ ८७७

॥ २५४ ॥ ( अथर्व० ७।२५।२ )

( ८७८ ) मेधातिथिः । त्रिष्टुप् ।

यस्येदं प्रदिशि यद् विरोचते प्र चानति वि च चष्टे शर्चीभिः ।

पुरा देवस्य धर्मेणा सहोभिर्विष्णुमगन्वरुणं पूर्वहूतिः

२ ८७८

( ८ ) विवस्वान् ।

॥ २५५ ॥ ( ८७९ ) ( चा० य० १२।३० )

३० ८७९

विवस्वते स्वाहा

॥ २५६ ॥ ( अथर्व० ६।११६।१-३ ) \*

( ८८० ८९ ) जाटिकायनः । जगती, ० त्रिष्टुप् ।

यद् यामं चक्रनिखनन्तो अग्रे कार्षीणिना अन्नविदो न विद्यया ।

१ ८८०

वैवस्वते राजनि तज्जुहोम्यथ यज्ञियं मधुमदस्तु नोऽन्नम्

वैवस्वतः कृणवद् मागधेयं मधुमागो मधुना सं संजाति ।

२

मातुर्यदेन इषितं न आगन् यद् वा पितापराद्धो जिह्मिदे

यदीदं मातुर्यदि वा पितुर्नः परि भ्रातुः पुत्राचेतस एन आगेन ।

३ ८८०

यावन्तो अस्मान् पितरः सचन्ते तेषां सर्वेषां शिवो अस्तु मन्युः

## ( ९ ) संवत्सरः कालः ।

॥ २५७ ॥ ( ऋ० १।१६४।४८ )

( ८८३ ) दीर्घतमा औचध्यः । त्रिष्टुप् ।

द्वादश प्रधर्यश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तर्धिकेत ।

तस्मिन्साकं त्रिशता न शुक्लवैः ऽर्पिताः पुष्टिर्न चलाचलास्तः

४८ ८८३

॥ २५८ ॥ [ ८८४-८६ ] ( वा० य० २१।१८ )

संवत्सराय स्वाहा

२८ ८८४

॥ २५९ ॥ ( वा० य० २७।४५ )

संवत्सरोऽसि परिवत्सरोऽसीदावत्सरोऽसीद्वत्सरोऽसि वत्सरोऽसि ।

उपसस्ते कल्पन्तामहोरात्रास्तैः कल्पन्तामर्धमासास्तैः कल्पन्ता मासास्ते

कल्पन्तामृतवस्ते कल्पन्ताः संवत्सरस्ते कल्पताम् ।

प्रेत्या एत्यै स चाञ्च प्र च सारय ।

सुपूर्णचिदसि तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवः सीद

४५ ८८५

॥ २६० ॥ ( वा० य० ३०।१५ )

संवत्सराय पर्यायिणीं परिवत्सरायाविजातामिदावत्सरायातीत्वंरीमिद्वत्सराया-

तिष्कद्वरीं वत्सराय विजर्जराः संवत्सराय पलिकनीम्

१५ ८८६

॥ २६१ ॥ ( अथर्व० ३।२०।८ )

( ८८६-८९ ) अथर्वो । अनुष्टुप् ।

आयमगन्तसंवत्सरः पतिरेकाष्टके तव ।

सा न आयुष्मतीं प्रजां रायस्पोषेण सं सृज

८ ८८७

॥ २६२ ॥ ( अथर्व० ४।१५।१३ ) ×

संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः ।

वार्चं पर्जन्यजिन्वितां प्र मृद्भृका अवादिषुः

१३ ८८८

॥ २६३ ॥ ( अथर्व० ११।७।१८ )

समृद्धिरोज आकृतिः स्रवं राष्ट्रं पटुर्न्यः ।

संवत्सरोऽध्युच्छिष्ट इडां प्रैषा ग्रहां द्विविः

१८ ८८९

॥ २६४ ॥ ( अथर्व० १५।३।१ ) पिपीलिकमध्या गायत्री ।

स संवत्सरमूर्ध्वोऽतिष्ठत् तं देवा अजुवन् वात्य किं नु तिष्ठसीति

१ ८९०



॥ २६५ ॥ ( अथर्व० ११।५।२० )

( ८९१ ) ब्रह्मा । अनुष्टुप् ।

ओषधयो भूतमव्यमहोरात्रे वनस्पतिः ।

संवत्सरः सहर्तभिस्ते ज्ञाता ब्रह्मचारिणः

२० ८९१

॥ २६६ ॥ ( अथर्व० ११।५।३१-३० )

( ८९२-९०६ ) श्रुगुः । अनुष्टुप् ; १-४ त्रिष्टुप् ; ५ निचृत् पुरस्ताद्वहती ।

कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः सहस्राश्वो अजरो भूरिः ।

तमा रोहन्ति कवयो विपश्चितस्तस्य चक्रा भुवनानि विश्वा १

सप्त चक्रान् वहति काल एष सप्तास्य नामीरमृतं न्वर्षः ।

स इमा विश्वा भुवनान्यजत् कालः स ईयते प्रथमो नु देवः २

पूर्णः कुम्भोऽधि काल आहितस्तं वै पश्यामो बहुधा नु सन्तः ।

स इमा विश्वा भुवनानि प्रत्यङ्कालं तमाहुः परमे व्योमिन् ३

स एव सं भुवनान्यामरत् स एव सं भुवनानि पर्येत ।

पिता सन्नमवत् पुत्र एषां तस्माद् वै नान्यत् परमस्ति तेजः ४ ८९५

कालोऽमृं दिवमजनयत् काल इमाः पृथिवीरुत ।

काले ह भूतं मन्यं चेपितं ह वि तिष्ठते ५

कालो भूतिर्मसृजत काले तपति धर्मः ।

काले ह विश्वा भूतानि काले चक्षुर्वि पश्यति ६

काले मनः काले ग्राणः काले नामं समाहितम् ।

कालेन सर्वा नन्दन्त्यागतेन प्रजा इमाः ७

काले तपः काले ज्येष्ठं काले ब्रह्मं समाहितम् ।

कालो ह सर्वस्येश्वरो यः पिताऽऽसीत् प्रजापतिः ८

तेनैपितं तेन ज्ञातं तद् तस्मिन् प्रतिष्ठितम् ।

कालो ह ब्रह्मं भूत्वा विमर्ति परमेष्ठिनम् ९ ९००

कालः प्रजा असृजत कालो अग्रे प्रजापतिम् ।

स्वयंभूः कदपः कालात् तपः कालादजायत १० ९०१

॥ २६७ ॥ ( अथर्व० १२/५४।१-१५ )

अनुष्टुप्, १ त्रिपदाऽऽर्षी गायत्री; ५ त्र्यस्रसना पदपदा विराडष्टिः ।

कालादापः समभवन् कालाद् ब्रह्म तपो दिशः ।

कालेनोदेति सूर्यः काले नि विशते पुनः

कालेन वारः पवते कालेन पृथिवी मही । घौर्मही काल आहिता

कालो ह भूतं भव्यं च पुत्रो अजनयत् पुरा ।

कालाद्वचः समभवन् यजुः कालादजायत

कालो यज्ञं समैरयद् देवेभ्यो भागमाक्षितम् ।

काले गन्धर्वाप्सरसः काले लोकाः प्रतिष्ठिताः

कालेऽयमङ्गिरा देवोऽथर्वा चाधि तिष्ठतः ।

इमं च लोकं परमं च लोकं पुण्यांश्च लोकान् विष्टृतीश्च पुण्याः ।

सर्वोल्लोकानभिजित्य ब्रह्मणा कालः स ईयते परमो नु देवः

## ( १० ) ऋतवः ।

॥ २६८ ॥ ( ऋ० १।१५।१-१२ ) +

( ९०७-१८ ) मेधातिथिः काण्वः । [ ऋतुदैवताः = १ इन्द्रः, २ मरुतः, ३ त्वष्टा, ४ अग्निः, ५ इन्द्रः, ६ मित्रावरुणौ, ७-१० द्रविणोदाः, ११ अभिनवौ, १२ अग्निः ] । गायत्री ।

इन्द्र सोमं पिबं ऋतुना ऽऽ त्वा विशन्त्विन्दवः । मत्सुरासुस्तदोक्तसः

मरुतः पिबन्त ऋतुना पोत्राद् यज्ञं पुनीतन । यूयं हि ह्य सुदानवः

अग्नि यज्ञं गृणीहि नो ग्रावो नेष्टः पिबं ऋतुना । त्वं हि रत्नधा अस्ति

अग्ने देवाँ इहा वह सादया योनिषु त्रिषु । परि भूष पिबं ऋतुना

ब्राह्मणादिन्द्र राघसः पिवा सोममूर्तुर्नु । तवेद्वि सख्यमस्तुतम्

युवं दर्शं धृतव्रत मित्रावरुण दूळर्मम् । ऋतुना यज्ञमाशये

द्रविणोदा द्रविणसो ग्रावहस्तासो अध्वरे । यज्ञेषु देवर्माकृते

द्रविणोदा दंदात् नो वर्धनि यानि शृण्विरे । देवेषु ता वनामहे

द्रविणोदाः पिपीपति जुहोत प्र चं तिष्ठत । नेष्टादुर्भिरिष्यत

यत् त्वा तुरीयमृतुमिन्द्रविणोदो यजामहे । अथ स्मा नो दुर्दिमव १०

अश्विना पिबतं मधु दीर्घाग्नी शुचित्रता । ऋतुना यज्ञवाहसा ११  
गाहपत्येन सन्त्य ऋतुना यज्ञनोरमि । देवान् देवयुते यज १२ ११८

॥ २६९ ॥ ( ऋ० १।३६।१-६ ) ×

( १११-३० ) गृत्समद ( आह्निरसः शानहोत्राः पश्चाद् ) भार्गवः शौनकः । ऋतुदेयताः-१ इन्द्रो मधुश्च, २ मरुतो माधवश्च, ३ त्वष्टा शुक्रश्च, ४ अग्निः शुचिश्च, ५ इन्द्रो नमश्च, ६ मित्रावरुणो नमम्यश्च । जगती ।

तुभ्यं हिन्वानो वसिष्ठ गा अपो ऽर्घुक्षन्तमीमविभिरद्रिभिर्नरः ।  
पिबेन्द्र स्वाहा प्रहुतं वषट्कृतं होत्रादा सोमं प्रथमो य ईश्विषे १  
यज्ञैः संमिश्राः पृषतीभिर्ऋष्टिभिर्बामं च्छुभ्रासो अजिषु प्रिया उत ।  
आसथा बर्हिर्भैरतस्य स्रनवः पोत्रादा सोमं पिबता दिवो नरः २ ११०  
अमेव नः सुहवा आ हि गन्तव न्नि बर्हिषि मदतना रणिष्टन ।  
अथा मन्दस्व जुजुषाणो अन्वसु स्त्वष्टं देवेभिर्जनिभिः सुमङ्गणः ३  
आ वक्षि देवा इह विप्र यक्षि चो शन् होतृनिपदा योनिषु त्रिषु ।  
प्रति वीहि प्रस्थितं सोम्यं मधु पिवाग्नीध्रात् त्वं भागस्य तृष्णहि ४  
एष स्य तं त्वनो नृम्यवर्धनः सह ओजः प्रदिवि वाहोर्हितः ।  
तुभ्यं सुतो मधवन् तुभ्यमामृतं स्वमस्य ब्राह्मणादा तृप्तं पिब ५  
जुषेथो यज्ञं बोधतं हवस्य मे सत्तो होता निविदः पुण्या अनु ।  
अच्छा राजाना नम एत्याधृतं प्रशास्त्रादा पिबतं सोम्यं मधु ६ ११४

॥ २७० ॥ ( अथर्व० २।३७।१-६ ) ×

[ ऋतुदेयताः- १-४ द्रविणोदा ऋतवश्च, ५ अश्विनो, ६ अग्निः ऋतुश्च ।

मन्दस्व होत्रादनु जोषमन्त्रसो ऽर्घ्ययज्ञः स पूर्णो वष्टयासिचम् ।  
तस्मा एतं भरत तद्वशो दुदि होत्रात् सोमं द्रविणोदः पिबं ऋतुभिः १ ११५  
यमु पूर्वमहुवे तमिदं हुवे सेदु हव्यो द्रदियो नाम पत्यते ।  
अर्घ्युभिः प्रस्थितं सोम्यं मधु पोत्रात् सोमं द्रविणोदः पिबं ऋतुभिः २  
मेधन्तु ते बह्व्यो येमिरीयसे ऽरिपण्यन् वीळयस्वा वनस्पते ।  
आयूया धृष्णो अभिगूर्या त्वं नेष्टात् सोमं द्रविणोदः पिबं ऋतुभिः ३  
अपादो ग्रादुत पोत्रादमत्तो त नेष्टादनुषत् प्रयो हितम् ।  
तुरीयं पात्रमर्मुक्तममर्त्य द्रविणोदाः पिबतु द्राविणोदुसः ४ ११८

अवाञ्चमद्य ययै नुवाहणं रथं युञ्जाथामिह वा विमोचनम् ।

पुङ्क्त हवींषि मधुना हि कै गतमथा सोमं पिबतं वाजिनीवक्ष्

जोष्यंसे समिधं जोष्याहुतिं जोषि ब्रह्म जन्यं जोषिं सुष्टुतिम् ।

विश्वेभिर्विश्वैः ऋतुना वसो मह उशन् देवा उशतः पायया हविः

॥ २७१ ॥ [ १३१ ४८ ] ( वा० य० ७।३० )

उपयामगृहीतोऽसि मधवे त्वोपयामगृहीतोऽसि माधवाय त्वोपयामगृहीतोऽसि

शुक्राय त्वोपयामगृहीतोऽसि शुचये त्वोपयामगृहीतोऽसि नमसे त्वोपयाम-

गृहीतोऽसि नभस्याय त्वोपयामगृहीतोऽसीषे त्वोपयामगृहीतोऽस्यूर्जे त्वोप-

यामगृहीतोऽसि सहसे त्वोपयामगृहीतोऽसि सहस्राय त्वोपयामगृहीतोऽसि

तपसे त्वोपयामगृहीतोऽसि तपस्याय त्वोपयामगृहीतोऽस्यहसस्पतये त्वा ३० १११

॥ २७२ ॥ ( वा० य० १३।२५ )

मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृत् अग्रेरन्तःश्रेष्ठोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी

कल्पन्तामाप ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः ।

ये अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी इमे ।

वासन्तिकावृत् अभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा अभिसंविशन्तु तया

देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे संदितम्

२५ ११२

॥ २७३ ॥ ( वा० य० १४।६, १५-१६, २७, २९ )

शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृत् अग्रेरन्तः० ।०। ग्रैष्मावृत् अभिकल्पमाना०

६

नमश्च नभस्यश्च वार्षिकावृत् अग्रेरन्तः० ।०। वार्षिकावृत् अभिकल्पमाना०

१५

इष्योर्जश्च शारदावृत् अग्रेरन्तः० ।०। शारदावृत् अभिकल्पमाना०

१६

सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृत् अग्रेरन्तः० ।०। हैमन्तिकावृत् अभिकल्पमाना०

२७

एकादशभिस्तवत ऋतवोऽसृज्यन्तार्तवा अधिपतय आसन्

२९

॥ २७४ ॥ ( वा० य० १५।१७ )

तपश्च तपस्यश्च शैशिरावृत् अग्रेरन्तः० ।०। शैशिरावृत् अभिकल्पमाना०

५७

॥ २७५ ॥ ( वा० य० १७।३ )

ऋतवं स्य ऋतावृधं ऋतुष्ठा स्य ऋतावृधः ।

पृत्युतो मघ्युतो विराजो नाम कामदद्या अर्क्षीयमाणाः

३

१११

॥ ७७ ॥ ( वा० य० २१।७३-७८ )

वसन्तेन ऋतुना देवा वसवस्त्रिवृता स्तुताः ।

रथन्तरेण तेजसा हविरिन्द्रे वयो दधुः

२३ ९३०

ग्रीष्मेण ऋतुना देवा रुद्राः पञ्चदशे स्तुताः ।

बृहता यशसा बलं हविरिन्द्रे वयो दधुः

२४

वर्षामिर्ऋतुनादित्या स्तोमे सप्तदशे स्तुताः ।

वैरूपेण विशाजसा हविरिन्द्रे वयो दधुः

२५

शारदेन ऋतुना देवा एकविंश ऋभवं स्तुताः ।

वैराजेन श्रिया श्रियं हविरिन्द्रे वयो दधुः

२६

हेमन्तेन ऋतुना देवास्त्रिणवे मरुतं स्तुताः ।

बलेन शक्वरीः सहो हविरिन्द्रे वयो दधुः

२७

शैशिरेण ऋतुना देवास्त्रयस्त्रिंशोऽमृता स्तुताः ।

सत्येन रेवतीः क्षत्रं हविरिन्द्रे वयो दधुः

२८ ९४५

॥ ७७७ ॥ ( वा० य० २२।७८ )

ऋतुभ्यः स्वाहाऽऽर्चयेभ्यः स्वाहा

२८ ९४६

॥ ७७८ ॥ ( वा० य० २३।४० )

ऋतवस्त ऋतुथा पर्वं श्रमितारो वि शसतु ।

संवत्सरस्य तेजसा शमीभिः शम्यन्तु त्वा

४० ९४७

॥ ७७९ ॥ ( वा० य० २६।१४ )

ऋतवस्ते यज्ञं वि तन्यन्तु मासां रुधन्तु ते हविः ।

संवत्सरस्ते यज्ञं दधातु नः प्रजां च परि पातु नः

१४ ९४८

॥ ७८० ॥ ( अथ० ३।१०।९ )

( ९४९-६४ ) अथर्वा । अनुष्टुप् ।

ऋतून् यज ऋतुपतीनार्तमानुत हायनान् ।

समाः संवत्सरान् मासान् भूतस्य पर्वथे यजे

९ ९४९

॥ ७८१ ॥ ( अथ० ५।७८।१३ ) पुरउष्णिक् ।

ऋतुमिष्टार्तवैरायुषे चर्चमे त्वा ।

संवत्सरस्य तेजसा तेन महेन्दु कण्ममि

१३ ९५०

॥ १८१ ॥ ( अथर्व० ११।३।१७ ) आसुर्यनुष्टुप् ।

ऋतवः प॒क्तारं आ॒र्तवाः स॒र्मिन्धते

१७ १५१

॥ १८३ ॥ ( अथर्व० १५।३।४ ) द्विपदाऽऽच्युष्णिक् ।

तस्या॑ ग्री॒ष्मश्च॑ वस॒न्तश्च॑ द्वौ पा॒दावास्तां॑ श॒रच्च॑ वर्षा॒श्च द्वौ

४ १५१

॥ १८४ ॥ ( अथर्व० १५।४।२-३, ५-६, ८-९, ११-१२, १४-१५, १७-१८ )

वा॒स॒न्तौ मा॒सौ गो॒प्तारा॒वकु॑र्वन् बृ॒हच्च॑ रथं॒तरं चा॒नु॒ष्टा॒तारौ

२

वा॒स॒न्तावे॑नं मा॒सौ प्रा॒च्या दि॒शो गो॑पायतो बृ॒हच्च॑ रथं॒तरं चा॒नु ति॒ष्ठतो

य ए॒वं वेदं

३

ग्री॒ष्मौ मा॒सौ गो॒प्तारा॒वकु॑र्वन् य॒ज्ञाय॑ज्ञि॒र्यं च॑ वा॒मदे॒व्यं चा॒नु॒ष्टा॒तारौ

५

ग्री॒ष्मावे॑नं मा॒सौ दक्षि॑णाया दि॒शो गो॑पायतो य॒ज्ञाय॑ज्ञि॒र्यं च॑ वा॒मदे॒व्यं

चा॒नु ति॒ष्ठतो य ए॒वं वेदं

६

वा॒र्षि॒कौ मा॒सौ गो॒प्तारा॒वकु॑र्वन् वै॒रूपं॑ च॒ वैरा॑जं चा॒नु॒ष्टा॒तारौ

८

वा॒र्षिका॑वे॒नं मा॒सौ प्र॒ती॒च्या दि॒शो गो॑पायतो वै॒रूपं॑ च॒ वैरा॑जं चा॒नु ति॒ष्ठतो

य ए॒वं वेदं

९

शा॒र॒दौ मा॒सौ गो॒प्तारा॒वकु॑र्वन् छ॒यैतं॑ च॒ नौघ॑सं चा॒नु॒ष्टा॒तारौ

११

शा॒र॒दावे॑नं मा॒साबु॑दी॒च्या दि॒शो गो॑पायतो छ॒यैतं॑ च॒ नौघ॑सं चा॒नु ति॒ष्ठतो

य ए॒वं वेदं

१२

है॒म॒नौ मा॒सौ गो॒प्तारा॒वकु॑र्वन् भूमिं॑ चा॒ग्निं चा॒नु॒ष्टा॒तारौ

१४

है॒म॒नावे॑नं मा॒सौ ध्रु॒वायां॑ दि॒शो गो॑पायतो भूमि॑श्चा॒ग्निश्चा॒नु ति॒ष्ठतो य ए॒वं वेदं

१५

शै॒शि॒रौ मा॒सौ गो॒प्तारा॒वकु॑र्वन् दि॒वं चा॒दित्यं॑ चा॒नु॒ष्टा॒तारौ

१७

शै॒शि॒रावे॑नं मा॒सावू॑र्वायां दि॒शो गो॑पायतो द्यौ॑श्चा॒दित्यश्चा॒नु ति॒ष्ठतो य ए॒वं वेदं

१८

॥ १८५ ॥ ( अथर्व० १०।६।१८ )

( १६५ ) बृहस्पति । अनुष्टुप् ।

ऋ॒तव॑स्त॒र्मव॑भ॒तार्त॑वास्त॒र्मव॑भ॒त । सं॒वत्स॑रस्तं व॒द्वा सर्वा॑ मू॒वं वि र॑क्षति

१८

॥ १८६ ॥ ( अथर्व० ११।४।४ )

( १६६ ) मार्गचो घेदभि । अनुष्टुप् ।

यत् प्रा॒ण ऋ॒तावा॑ग॒तिऽभि॑क्र॒न्दत्यो॑प॒धीः ।

सर्वे॑ त॒दा ऋ॒ मो॒दते॑ यत् किं च॒ भू॒म्या॒मधि॑

४

१६

॥ २८७ ॥ ( अथर्व० ११।६।१७, २२ )

( १६७-६८ ) शन्तातिः । अनुष्टुप् ।

ऋतुर्न भूम ऋतुपर्वीनार्तवानुत हायनान् ।

समाः संवत्सरान् मासांस्ते नो मृच्चन्त्वंहंसः ।

१७

या देवीः पञ्च प्रदिशो ये देवा द्वादशर्तवः ।

संवत्सरस्य ये दंष्ट्रास्ते नः सन्तु सदा शिवाः ।

२२ १६८

॥ २८८ ॥ ( अथर्व० ११।१।३६ )

( १६९ ) अथर्वा । विपरीतपादलक्ष्मा पङ्क्तिः ।

ग्रीष्मस्ते भूमे वर्षाणि शरद्वैमन्तः शिशिरो वसन्तः ।

ऋतवस्ते विहिता हायनीरहोरात्रे पृथिवि नो दुहाताम् ।

३६ १६९

॥ २८९ ॥ ( अथर्व० १६।८।२१ )

( १७० ) यमः । आसुरी पङ्क्तिः ।

स आर्तवानां पाशान्मा मौचि

२१ १७०

॥ २९० ॥ ( अथर्व० ७।१।१२९ )

( १७१ ) ग्रहाः । त्रिष्टुप् ।

ऋतेन गुप्त ऋतुमिश्च सर्वभूतेन गुप्तो मन्येन चाहम् ।

मा मा प्रापत् प्राप्ता मोत मृत्युरन्तर्दधेऽहं संछिलेन वाचः ।

२९ १७१

( ११ ) चन्द्रमाः ।×

॥ २९१ ॥ ( ऋ० १०।८।१९ ) \*

( १७२ ) सावित्री सूर्या ऋषिका । त्रिष्टुप् ।

नवोनवो भवति जायमानो ऽहो कृत्युपसमित्यग्रम् ।

भागं देवेभ्यो वि दधात्यापन् प्र चन्द्रमास्तिरते दीर्घमायुः ।

१९ १७२

॥ २९२ ॥ ( ऋ० १०।९।१३ ) +

( १७३ ) नारायणः । अनुष्टुप् ।

चन्द्रमा भर्तसो ज्ञात यज्ञोः सूर्यो अजायत ।

मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद् वायुरजायत

१३ १७३

॥ २९३ ॥ [ २७३-७९ ] ( या० य० १।२८ )

पुरा क्रूरस्य विसृपो विरश्निद्रुदादार्य पृथिवी जीवदानुम् ।

यामैर्यश्चन्द्रमसि स्वधामिस्त्वाम् धीरांसो अनुदिश्य यजन्ते

२८ १७४

\* २१० [ आयुर्वेद० ] ६-७, ३९, ६८, ७१, ८८, ९१, ११६, १२३, १५४, २३२, २४५, २६८, २७३, ३१२ सूक्तानि द्रष्टव्यानि ।

\* अथर्व० ७, ८१, ९, १४, १, २३, + अथर्व १९, ६, ७ ।

११ [ दे० अदितिः० ]

॥ १९४ ॥

चन्द्राय स्वाहा ( वा० य० ११।१८ ) + चन्द्रमसे किलासम् । ( वा० य० ३०।११ ) २८ १७१

॥ १९५ ॥ ( वा० य० १३।४, १० )

एष ते योनिश्चन्द्रमास्ते महिमा ।

यस्ते नक्षत्रेषु चन्द्रमसि महिमा संवभूव तस्मै ते महिम्ने प्रजापतये देवेभ्यः स्वाहा ४

सूर्ये एकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः ।

अग्निहिंसस्य भेषजं भूमिरावपनं महत् १० १७३

॥ १९६ ॥ ( वा० य० ३१।१२ )

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।

श्रोत्राद् वायुश्च ग्राणश्च मुखादग्निरजायत १२ १७८

॥ १९७ ॥ ( वा० य० ३३।९० )

चन्द्रमा अप्सवृन्तरा सुपर्णो धावते दिवि ।

रयि पिशङ्गं बहलं पुरुस्पृहं हरिरिति कनिकदत् १० १७९

॥ १९८ ॥ ( अथर्व० १।३।४ )

( १८०-१० ) अथर्वा । पय्यापहृत्किः ।

विद्या क्षरस्य पितरं चन्द्रं क्षतवृण्यम् ।

तेनां ते तन्वेष्टुं शं करं पृथिव्यां तं निषेचनं बहिष्टे अस्तु बालिति ४ १८०

॥ १९९ ॥ ( अथर्व० २।११।१-५ )

( एकावसानम् ) १-४ निवृद्धिपमा गायत्री, ५ भुरिग्विपमा ।

चन्द्र यत् ते तपस्तेन तं प्रति तप योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः १

चन्द्र यत् ते हरस्तेन तं प्रति हर योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः २

चन्द्र यत् तेऽचिस्तेन तं प्रतिर्च योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ३

चन्द्र यत् ते शोचिस्तेन तं प्रति शोच योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ४

चन्द्र यत् ते तेजस्तेन तमतेजसं कृणु योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ५ १८५

॥ २०० ॥ ( अथर्व० ५।१४।१० ) चतुष्पदातिशकरो ।

चन्द्रमा नक्षत्राणामधिपतिः स मावतु ।

अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोघार्यामस्यां प्रतिष्ठायांमस्यां

चिर्यामस्यामाकृत्यामस्यामाश्लिष्यस्यां देवहृत्यां स्वाहा १० १८६



॥ ३०१ ॥ ( अथर्वं ६।७।१-२ ) अनुष्टुप् ।

तेन मुतेन हविषामा प्यायतां पुनः ।

ज्यायां यामस्मा आवाधुस्तां रसेनाभि वर्धताम्

१

अभि वर्धतां पर्यस्ताभि राष्ट्रेण वर्धताम् । स्यात्वा सहस्रवर्चसेमौ स्वामनुपक्षितौ

२ १८८

॥ ३०२ ॥ ( अथर्वं १८।४।८९ ) पञ्चपदा पद्यापङ्क्तिः । x

चन्द्रमा अप्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि ।

न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो चित्रं मे अस्य रोदसी

८९ १८९

॥ ३०३ ॥ ( अथर्वं १९।१९।४ ) अनुष्टुप् ।

चन्द्रमा नक्षत्रैरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।

तामा विशतु तां प्र विशतु सा वः शर्मं च वर्मं च यच्छतु

१९०

॥ ३०४ ॥ ( अथर्वं ११।१।७ )

( १९१ ) शान्तातिः । अनुष्टुप् ।

मुञ्चन्तु मा अप्रथ्यादिहोरात्रे अथो ज्ञायाः ।

सोमो मा देवो मुञ्चतु यमाहुश्चन्द्रमा इति

१९१

॥ ३०५ ॥ ( अथर्वं १९।१७।५ )

( १९२-१३ ) भृग्यक्रियाः । अनुष्टुप् ।

सोमस्त्वा पात्वोपधीभिर्नक्षत्रैः पातु सूर्यः ।

माद्भयस्त्वा चन्द्रो बृत्रहा वार्तः प्राणेन रथतु

२

घृतेन त्वा समुक्षाम्यम आन्येन वृधेयम् ।

अग्नेश्चन्द्रस्य सूर्यस्य मा प्राणं प्रायिनो दमन्

५ १९३

॥ ३०६ ॥ ( अथर्वं १९।४३।४ )

( १९४ ) ब्रह्मा । ज्येष्ठसिन्धुः शङ्खमती पथ्यापङ्क्तिः ।

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह । चन्द्रो मा तत्र नयतु मनश्चन्द्रो दधातु मे ॥

१९४

चन्द्रमा-सहचारी-देवगणः ।

( १ ) सूर्यः चन्द्रश्च ।

॥ ३०७ ॥ ( अथर्वं १।१५।३ )

( १९५-१६ ) ब्रह्मा । त्रिपाद् गायत्री ।

यथा सूर्यश्च चन्द्रश्च न विमीतो न रिप्यतः । एवा मे प्राण मा विमेः

३ १९५

## ( २ ) द्यौः, पृथिवी, सूर्यः, चन्द्रमाः, अन्तरिक्षं च ।

॥ ३०८ ॥ ( अथर्व० ८।१।१२ ) ज्यवसाना पञ्चपदा जगती ।

मा त्वा क्रव्यादभि मैस्तारात् संकसुकाञ्चर ।

रक्षतु त्वा द्यौ रक्षतु पृथिवी सूर्यश्च त्वा रक्षतां चन्द्रमाश्च । अन्तरिक्षं रक्षतु देवहेत्याः १२ १९६

॥ ३०९ ॥ ( अथर्व० ११।६।५ )

( १९७ ) शान्तातिः । अनुष्टुप् ।

अहोरात्रे इदं ब्रूमः सूर्याचन्द्रमसांबुमा ।

विश्वानादित्यान् ब्रूमस्ते नो भुञ्जन्तवर्हसः ।

५ १९७

## ( ३ ) दिक्चन्द्रमसः ।

॥ ३१० ॥ ( अथर्व० ४।३९।७-८ )

( २९८-२९९ ) अङ्गिराः । ७ त्रिपदा महायुहती, ८ सस्तारपङ्क्तिः ।

दिक्षु चन्द्राय समनमन्तस आर्भोत् ।

यथा दिक्षु चन्द्राय समनमन्नेवा मयं संनमः सं नमन्तु

७

दिशो धेनवस्तासां चन्द्रो वृत्सः । ता मे चन्द्रेण वृत्सेनेषुमूर्जं कामं दुहाम् ।

आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा

८ १९९

## ( ४ ) अग्निः, चन्द्रमाश्च ।

॥ ३११ ॥ ( अथर्व० ६।८६।२ )

( १००० ) अथर्व । अनुष्टुप् ।

समुद्र ईशे स्रवतामग्निः पृथिन्या वृशी ।

चन्द्रमा नक्षत्राणामीशे त्वमेकवृषो भव

२ १०००

## ( १२ ) रात्रिः ।

॥ ३१२ ॥ ( ऋ० १।११३।१ [ उत्तरार्ध ] )

( १००१ ) वृत्स आङ्गिरस । त्रिष्टुप् ।

यथा प्रधता सवितुः सवार्य एवा रात्र्युपसे योनिमारैक्

१ १००१

॥ ३१३ ॥ ( ऋ० १०।१०।९ )

( १००० ) वैवस्वतो यमः क्रयिः । त्रिष्टुप् ।

रात्रींभिरस्मा अहभिर्जशस्येत् धर्मस्य चक्षुर्मुहुर्नुमिमीयात् ।  
 दिवां पृथिव्या मिथुना सर्वन्धू यमीर्मुमस्य विमृयादजाभि

९ १००९

॥ ३१४ ॥ ( ऋ० १०।१२।७।१-८ )

( १००३-१०१० ) कुक्षिकः सौमरः, रात्रिर्वा मारद्वाजी । गायत्री ।

रात्री व्यख्यदायती पुरुषा देव्युक्षमिः । विश्वा अधि श्रियोऽधित १  
 ओर्ध्वप्रा अर्मर्त्या निवर्तो देव्युद्धतः । ज्योतिषा वाधते तमः २  
 निरु स्वसारमस्कृतो पसं देव्यायती । अपेदु हासते तमः ३ १००५  
 सा नो अद्य यस्या वयं नि ते यामन्नविस्महि । वृक्षे न वसति वयः ४  
 नि ग्रामासो अविशत नि पदन्तो नि पक्षिणः । नि ज्येनासंश्चिदर्थिनः ५  
 यावपा वृक्यं वृकं यवयं स्तेनमृम्ये । अथा नः सुतरा भव ६  
 उप मा पेषिषत् तमः कृष्णं व्यक्तमस्थित । उप क्रणेव यातय ७  
 उप ते गा इवाकरं वृणीष्व दुहितर्दिवः । रात्रि स्तोमं न जिग्युषे ८ १०१०

॥ ३१५ ॥ [ १०११-१६ ] ( या० य० ३।१८ )

चित्रावसो स्वस्ति ते पारमशीय १८ १०११

॥ ३१६ ॥ ( या० य० २३।१० ) ×

घौरासीत् पूर्वचित्रिश्च आसीद् बृहद्रथः ।  
 अर्विरासीत् पिलिपिला रात्रिरासीत् पिशङ्गिला १२ १०१२

॥ ३१७ ॥ ( या० य० २४।२५ )

अहं पारार्वतानालभते रात्र्यै सीचापूरहोरात्रयोः सन्धिम्यो  
 जतुर्मासंभ्यो दात्योहान्सर्वत्सराय महतः सुपर्णान् २५ १०१३

॥ ३१८ ॥ ( या० य० ३०।२१ )

रात्र्यै कृष्णं पिङ्गाक्षम् २१ १०१४

॥ ३१९ ॥ ( या० य० ३४।१० ) ×

आ रात्रि पार्थिव रजः पितुरप्रायि धार्मभिः ।  
 दिवः सदाऽभि बृहती वि तिष्ठत आ त्येनं वर्तते तमः ३२ १०१५

॥ ३१० ॥ ( घा० य० ३७।११ [ उत्तरार्धः ] ) +

रात्रिः केतुनां जुषताऽ सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा

२१ १०१६

॥ ३११ ॥ ( अथर्व० १।१६।१ )

( १०१७ ) चातनः । अनुष्टुप् ।

येमावास्यां३ रात्रिमुदस्थुर्वाजमत्विणः ।

अभिस्तुरीयो यातुहा सो अस्मभ्युमार्धि ब्रवतु

१ १०१७

॥ ३१२ ॥ ( अथर्व० २।१५।२ )

( १०१८-१९ ) ब्रह्मा । त्रिपाद् गायत्री ।

यथाहश्च रात्रीं च न विभीतो न रिप्यतः । एवा मे प्राण मा विभेः

२ १०१८

॥ ३१३ ॥ ( अथर्व० २।१४।३० ) प्राजापत्याऽनुष्टुप् ।

स वै रात्र्या अजापतु तस्माद् रात्रिरजापतु

३० १०१९

॥ ३१४ ॥ ( अथर्व० ५।५।१ )

( १०२०-२९ ) अथर्व । अनुष्टुप् ।

रात्रीं माता नमः पितार्यमा ते पितामहः ।

सिद्धाची नाम वा असि सा देवानामसि स्वसा

१ १०२०

॥ ३१५ ॥ ( अथर्व० १५।१।५, १३, २१, २९ ) द्विपदाऽऽर्ची गायत्री ।

श्रद्धा पुंश्चली मित्रो मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीपं रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ  
कलमलिर्मुणिः

५

उषाः पुंश्चली मन्त्रौ मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीपं रात्री केशा हरितौ०

१३

इरा पुंश्चली हसौ मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीपं रात्री केशा हरितौ०

२१

विद्युत् पुंश्चली स्तनयितुर्मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीपं रात्री केशा हरितौ०

२९ १०२४

॥ ३१६ ॥ ( अथर्व० १५।१३।१, ३, ५, ७, ९ )

१ साम्युष्णिक्, ३, ५, ७ आसुरी गायत्री; ९ द्विपदानिचृद्गायत्री ।

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्य एकां रात्रिमर्तिथिर्गृहे वसति

१ १०२५

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यो द्वितीयां रात्रिमर्तिथिर्गृहे वसति

३

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यस्तृतीयां रात्रिमर्तिथिर्गृहे वसति

५

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यश्चतुर्थीं रात्रिमर्तिथिर्गृहे वसति

७

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्योऽपरिमिता रात्रीरर्तिथिर्गृहे वसति

९ १०२९

॥ ३१७ ॥ ( अथर्व० ६।१२८।२ )

( ११० ) अद्विष्टाः । अनुष्टुप् ।

मद्राहं नो मर्ष्यदिने मद्राहं सायमस्तु नः ।

मद्राहं नो अह्नां पाता रात्री मद्राहमस्तु नः

२ १०३०

॥ ३१८ ॥ ( अथर्व० १९।७।१०-९ )\*

( १०३१-५१ ) गोपथः । अनुष्टुप् ; १ पञ्चपदाऽनुष्टुप्गर्भा पराऽतिजगती ;

६ पुरस्ताद्वृहती ; ७ व्यवसाना पदपदा जगती ।

न यस्याः पारं ददंशे न योयुवद् विश्वमस्यां नि विशते यदेजति ।

अरिंष्टासस्त उर्वि तमस्वति रात्रिं पारमशीमहि मद्रं पारमशीमहि १

ये ते रात्रि नृचक्षसो द्रष्टारो नवतिर्नव । अशीतिः सन्त्यष्टा उतो ते सप्त सप्तविः ३

पृष्टिश्च पदं च रेवति पञ्चाशत् पञ्च सुप्तयि । चत्वारश्चत्वारिंशच्च त्रयस्त्रिंशच्च वाजिनि ४

द्वौ च ते विशतिश्च ते रात्र्येकादशावमाः । तेभिर्नो अद्य पायुभिर्नु पाहि दुहितर्दिनः ५

रक्षा मार्किर्नो अघर्षस ईशत मा नो दुःशंस ईशत ।

मा नो अद्य गवां स्तेनो मार्वाणां वृक ईशत

६ १०३५

मार्वाणां मद्रे तस्करो मा नृणां यातुधान्यः ।

परमेभिः पृथिभि स्तेनो धावतु तस्करः । परेण दुत्वती रज्जुः परेणाघायुरर्षतु ७

अध रात्रि तृष्टधूममशीर्षाणमहि कृणु । हनु वृकस्य जम्भयास्तेन तं द्रुपदे जहि ८

त्वयि रात्रि वसामसि स्वपिप्यामसि जागृहि ।

गोभ्यो नुः शर्म यच्छाश्वेभ्यः पुरुषेभ्यः

९ १०३८

॥ ३१९ ॥ ( अथर्व० १९।७।११-६ )

अनुष्टुप् ; १ त्रिपदाऽऽर्षी गायत्री ; २ त्रिपदा विराडनुष्टुप् ; ३ वृहतीगर्भाऽनुष्टुप् ;

५ पथ्यापङ्क्तिः ।

अथो यानि च यस्मां ह यानि चान्तः परीणिहि । तानि ते परि ददासि १

रात्रि मार्तरुषसे नः परि देहि । उषा नो अह्ने परि ददात्वहस्तुभ्यं विभावरि २ १०४०

यत् किं चेदं पतर्यति यत् किं चेदं सरीसृपम् ।

यत् किं च पर्वतायासत्वं तस्मात् त्वं रात्रि पाहि नः ३

सा पथात् पाहि सा पुरः सोत्तरादघरादुत ।

गोपायं नो विभावरि स्तोतारस्त इह स्मसि

४ १०४२

ये रात्रिमनुतिष्ठन्ति ये च मृतेषु जाग्रति  
 पशून् ये सर्वान् रक्षन्ति ते न आत्मसु जाग्रति ते नः पशुपुं जाग्रति ५  
 वेद वै रात्रि ते नाम धृताची नाम वा असि ।  
 तां त्वां भरद्वाजो वेद सा नो वित्तेऽधि जाग्रति ६ १०४४

॥ ३३० ॥ ( अथर्व० १९।५०।१-७ ) अनुष्टुप् ।

अथ रात्रि तुष्टधूममशीर्षाणमहिं कृणु । अक्षौ वृकस्य निर्जह्यास्तेन तं द्रुपदे जहि १ १०४५  
 ये ते राज्यन्द्वाहस्तीक्ष्णशृङ्गाः स्वाश्रवः । तेर्मिनो अथ पारयार्ति दुर्गाणि विश्वहा २  
 रात्रिरात्रिमरिष्यन्तस्तरैम तन्वा वयम् । गम्भीरमप्लवा हव न तरेयुररातयः ३  
 यथा श्राम्यार्कः प्रपतन्नपवान् नालुविद्यते । एवा रात्रि प्र पातय यो अस्माँ अभ्यघायति ४  
 अप स्तेनं वासो गोअजमुत तस्करम् । अथो यो अर्बतः शिरोऽभिघाय निनीपति ५  
 यदद्या रात्रि सुमगे विभजन्त्ययो वसु । यदेतदस्मान् भोजय यथेदुन्यानुपायसि ६ १०५०  
 उपसे नः परि देहि सर्वान् राज्येनागसः । उपा नो अहे आ भजादहस्तुभ्यं विमावरि ७ १०५१

॥ ३३१ ॥ ( अथर्व० १९।४९।१-१० )

( १०५०-६० ) गोपथः, भरद्वाजश्च । अनुष्टुप् ; १-५, ८ त्रिष्टुप् ; ६ आस्तारपङ्क्तिः, ७ पद्यापङ्क्तिः ।  
 १० व्यवसाना पट्पदा जगती ।

इषिरा योषा युवतिर्दमूना रात्री देवस्य सवितुर्भगस्य ।  
 अश्वक्षमा सुहवा संभृतश्रीरा पशौ द्यावापृथिवी महित्वा १  
 अति विश्वान्परुहद् गम्भीरो वर्षिष्ठमरुहन्त भविष्ठाः ।  
 उशती राज्यन् सा भद्रामि तिष्ठते मित्र इव स्वधार्मिः २  
 वयं वन्दे सुमगे सुजात आजगन् रात्रि सुमना इह स्याम् ।  
 अस्माँघ्रापस्व नर्याणि ज्ञाता अथो यानि गन्यानि पुष्ट्या ३  
 सिंहस्य राज्यंशती पीपस्य व्याघ्रस्य द्वीपिनो वर्च आ ददे ।  
 अश्वस्य व्रभे पुरुषस्य मायुं पुरु रूपाणि कणुपे विमाती ४ १०५५  
 शिवां रात्रिमनुस्य च हिमस्य माता सुहवा नो अस्तु ।  
 अस्व स्तोमस्य सुमगे नि वोध येन त्वा वन्दे विश्वासु दिक्षु ५  
 स्तोमस्य नो विमावरि रात्रि राजेव जोपसे ।  
 आसाम् सर्ववीरा भवाम् सर्ववेदसो व्युच्छन्तीरनूपसः ६ १०५७

शम्यां ह नाम दधिषे मम दिप्सन्ति ये घना ।

रात्रीहि तान्सुतपा य स्तेनो न विद्यते यत् पुनर्न विद्यते  
मद्रासि रात्रि चमसो न विष्टो विष्वं गोरूप युवतिर्विमर्षि ।

७

चक्षुष्मती मे उशती वर्षिषि प्रति त्वं दिव्या न क्षाममुकयाः  
यो अद्य स्तेन आर्यत्यघायुर्मर्त्यो रिपुः ।

८

रात्री तस्य प्रतीत्य प्र ग्रीवाः प्र शिरों हनत्

९ १०६०

प्र पादौ न यथार्यति प्र हस्तौ न यथाश्लिषत् ।

यो मलिम्बुरुपायति स संविष्टो अपायति ।

अपायति स्वपायति शुष्के स्थाणावपायति

१० १०६१

॥ ३३२ ॥ ( १०६०-६७ ) ( घा० य० ६।११ )

अहोरात्रे गच्छ स्वाहा

२१ १०६०

॥ ३३३ ॥ ( घा० य० १४।३० )

नयद्रुग्मिस्तुवत् शूद्रार्यावसृज्येतामहोरात्रे अर्षिपत्नी आस्ताम्

३० १०६३

॥ ३३४ ॥ ( घा० य० १८।१३ )

अहोरात्रे ऊर्वघ्नीवे पृहद्रयन्तरे च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्

२३ १०६४

॥ ३३५ ॥ ( घा० य० २१।१८ )

अहोरात्रेभ्यः स्वाहा

२८ १०६५

॥ ३३६ ॥ ( घा० य० २३।४१ )

अर्धमासाः परुथपि ते मासा आ च्छयन्तु शम्यन्तः ।

अहोरात्राणि मरुतो विलिष्टं हृदयन्तु ते

४१ १०६६

॥ ३३७ ॥ ( घा० य० ३१।१० )

श्रीर्षं ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमक्षिनौ व्याचक्षुः ।

हृष्णर्षिपाणासुं मे हपाण सर्वलोके मे हपाण

२ १०६७

॥ ३३८ ॥ ( अथर्व० ६।१०८।१२ )

( १०६८ ) अदित्याः । अनुष्टुप् ।

अहोरात्राभ्यां नक्षत्रेभ्यः सूर्याचन्द्रमसोभ्याम् ।

मद्राहमसम्यं राजन्ठर्कधूम त्वं ऊषि

३ १०६८

॥ ३३९ ॥ ( अथर्व० १५।१।११ )

( १०६९-७३ ) अथर्वो । आसुरी गायत्री ।

अहश्च रात्री च परिष्कन्दौ मनो विपथम्

२२ १०६९

॥ ३४० ॥ ( अथर्व० १५।६।१७-१८ ) १७ आर्ची पङ्क्तिः, १८ विराट् जगती ।

तमृतवर्धार्तिवाश्च लोकाश्च लौक्याश्च मासाश्चार्धमासाश्चाहोरात्रे चानुव्यचिलन् १७ १०७०

ऋतूनां च वै स आर्तिवानां च लोकानां च लौक्यानां च मासानां चार्धमासानां

चाहोरात्रयोश्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद १८ १०७१

॥ ३४१ ॥ ( अथर्व० १५।१८।४-५ ) आर्च्यनुष्टुप् ।

अहोरात्रे नार्सिके दितिक्षादितिथ शीर्षकपाले सैवत्सरः शिरः ४

अर्द्धा अत्यह् वास्यो रात्र्या प्राह नमो वास्याय ५ १०७२

॥ ३४२ ॥ ( अथर्व० १६।८।१४ ) +

( १०७४ ) यमः । आसुरी जगती ।

सोऽहोरात्रयोः पाशान्मा मोचि

२४ १०७४

रात्रि-सहचारी-देवगणः ।

रात्रिः, धेनुः ।

॥ ३४३ ॥ ( अथर्व० ३।१०।१-४ )

( १०७५-७७ ) १-३ अनुष्टुप्, ४ त्रिष्टुप् ।

यां देवाः प्रतिनन्दन्ति रात्रिं चेतुर्ध्रुवापतीम् ।

संवत्सरस्य या पत्नी सा नो अस्तु सुमङ्गली २ १०७५

संवत्सरस्य प्रतिमां यां त्वां रात्र्युपास्महे ।

सा न आर्यभर्ता प्रजां रायस्पोषेण सं सृज ३

इयमेव सा या प्रथमा व्यौच्छद्वास्वितरासु चरति प्रविष्टा ।

महान्तो अस्या महिमानो अन्तर्वर्धभिर्गाय नवगजनित्री ४ १०७६



॥ ३२४ ॥ ( अथर्व० १०८१-२३ )

( १०७८ ) नारायणः । यामः । जगती ।

ऋः सुप्तं स्नानि वि ततर्द श्रीणि कर्णविमौ नार्त्तिके चर्षणीं मुत्तम्  
येषां पुत्रा विजयस्य महानि चतुष्पादो द्विपदो यन्ति यामम्

६ १०७८

( १३ ) पूर्णिमा ।

॥ ३२५ ॥ ( अथर्व० ७८०१-२३, २ )

( १०७९-८६ ) अथर्वो । त्रिष्टुप्, २ अनुष्टुप् ।

पूर्णा पश्चाद्भुत पूर्णा पुरस्ताद्भुतं चतुः पौर्णमासी विंशत्य ।  
तस्यां देवैः संवसन्तो महित्वा नाकस्य पुष्टे समिषा मंदम  
बृषमं वाजिनं वृयं पौर्णमासं यजामहे ।

१

स नो ददात्वर्क्षितां शयिमनुपदस्वतीम्

२ १०८०

पौर्णमासी प्रथमा यज्ञियासीदह्नां रात्रिणामविश्वरेषु ।

ये त्वां यज्ञैर्यज्ञिये अर्चयन्त्यमी ते नाकं सुकृतः शर्विष्टाः

४

॥ ३२६ ॥ ( अथर्व० १५१६११ ) साम्युष्णिक् ।

तस्य ब्राह्मणः । योऽस्य प्रथमोऽपानः सा पौर्णमासी

१ १०८१

( १४ ) राका ।

॥ ३२७ ॥ ( ऋ० २१३२१४-५ )

( १०८१-८४ ) श्रुत्समद ( काङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद् ) भार्गवः शौनकः । जगती ।

राकामहं मुहूर्तां सुष्टुती हुवे शृणोतुं नः सुमगा बोधतु त्मना ।

सीव्यत्त्वर्षः सूच्याच्छिद्यमानया ददातु वीरं श्रुतदायमुक्थ्यम्

४

यास्तं राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि द्राक्ष्ये वर्क्षिनि ।

तामिर्नो अथ सुमना उपार्गाहि सहस्रपोषं सुमगे राणा

५ १०८४

( १५ ) अमावास्या ।

॥ ३२८ ॥ ( अथर्व० ७१७११-४ )

( १०८५-९१ ) अथर्वो । त्रिष्टुप्, १ जगती ।

यत् ते देवा अकृण्वन् मागधेयमर्मावास्ये संवसन्तो महित्वा ।

तेनां नो यज्ञं पिष्टुहि विश्ववारे रयिं नो धेहि सुमगे सुवीरम्

१ १०८५

अहमेवास्म्यमावास्याः मामा वसन्ति सुकृतो मयीमे ।

मार्यं देवा उमये साध्याधेन्द्रज्येष्ठाः समगच्छन्तु सर्वे

२ १०८६

आगन् रात्रीं संगमनीं वसन्तमूर्जे पुष्टं वस्त्रविश्रयन्ती ।

अमावास्या चैव हविषा विघ्नेमोर्जे दुर्हाना पर्यसा न आगन् ३

अमावास्ये न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परिभूर्जजान ।

यत् कामास्ते जुहुमस्तत्रो अस्तु वयं स्याम पतयो ग्यीणाम् ४ १०८८

॥ ३४९ ॥ ( अथर्व० १५।१।१४ ) साम्नी पृहकिः ।

अमावास्या च पौर्णमासी च परिष्कन्दौ मनो विपथम् १४ १०८९

॥ ३५० ॥ ( अथर्व० १५।१६।३ ) साम्युष्णिक् ।

तस्य ब्राह्मस्य । योऽस्य तृतीयोऽपानः सामावास्या ३ १०९०

॥ ३५१ ॥ ( अथर्व० १५।१७।९ ) द्विपक्ष साम्नी मिष्टुप् ।

तस्य ब्राह्मस्य । यदादित्यमभिसंविशन्त्यमावास्या चैव तत् पौर्णमासी च ९ १०९१

### ( १६ ) सिनीवाली ।

॥ ३५२ ॥ ( ऋ० ३।३१।६-७ ) ×

( १०९२-९३ ) शरसमदः ( आङ्गिरसः शौनहोत्रः पञ्चाद् ) भार्गवः शौनकः । अनुष्टुप् ।

सिनीवालि पृथुष्टके या देवानामसि स्वसा ।

जुषस्व हुष्यमाहुतं प्रजां देवि दिदिदिद नः ६

या सुवाहुः स्वहुरिः सुष्टमा बहुसवरी ।

तस्यै विश्वतस्यै हविः सिनीवाल्यै जुहोतन ७ १०९३

॥ ३५३ ॥ ( अथर्व० ७।४६।३ )

( १०९४ ) अथर्वः । मिष्टुप् ।

या त्रिपत्नीन्द्रमयि प्रतीचीं सहस्रस्तुकाभियन्ती देवी ।

विष्णोः पत्नि तुभ्यं राता हवीषि पतिं देवि राधसे चोदयस्व ३ १०९४

॥ ३५४ ॥ [ १०९५ ] ( घा० य० ११।५५ ) ×

सःसृष्टां वसुमी रुद्रैर्घोरैः कर्मण्यां मुदम् ।

हस्ताभ्यां मुद्रौ कृत्वा सिनीवाली कृणोतु ताम् ५५ १०९५

॥ ३५५ ॥ ( अथर्व० ९।४।१४ )

( १०९६ ) धृष्टा । अनुष्टुप् ।

गुदा आसन्तिसनीगुल्फाः सूर्यायास्त्वचमग्नवन् ।

उत्थातुर्ग्नवन् पुदः कृपुभं यदकल्पयन् १४ १०९६

१४ १०९६

सिनीवाली-सहचारी-देवगणः ।

( १ ) गुग्गू-सिनीवाली-राका-सरस्वतीन्द्राणीवरुणानीः ।

॥ ३५६ ॥ ( अ० २।३०।३ )

( १०९७ ) गृत्समद ( आक्षिरसः शौनहोत्रः पश्चाद् ) भार्गवः शौनकः । अनुष्टुप् ।

या गुग्गूया सिनीवाली या राका या सरस्वती । इन्द्राणीमह ऊतये वरुणानीं स्वस्तये ३ १०९७

( २ ) बृहस्पतिः, सिनीवाली, अनुमतिः ।

॥ ३५७ ॥ ( अथर्व० २।२६।२ )

( १०९८ ) सविता । त्रिष्टुप् ।

इमं गोष्ठं पशवः सं संवन्तु बृहस्पतिरा नयतु प्रजानन् ।

सिनीवाली नयत्वाग्रमेपामाजग्मुषो अनुमते नि यच्छ

२ १०९८

( ३ ) सिनीवाली-सरस्वत्याश्विनः ।

॥ ३५८ ॥ ( अथर्व० ५।२५।३ ) ×

( १०९९ ) ग्रहा । अनुष्टुप् ।

गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति । गर्भं ते अश्विनो मा धत्तां पुष्करस्रजा ३ १०९९

( ४ ) प्रजापतिः, अनुमतिः, सिनीवाली ।

॥ ३५९ ॥ ( अथर्व० ६।११।३ )

( ११०० ) प्रजापतिः । अनुष्टुप् ।

प्रजापतिरनुमतिः सिनीवालयीचीकल्पत् । स्तूपयमन्यत्र दधत् पुमांससु दधद्भिह ३ ११००

( ५ ) विष्णुः, सरस्वती, सिनीवाली, भगः ।

॥ ३६० ॥ ( अथर्व० १४।२।१५, २१ )

( ११०१-११०२ ) सूर्या सावित्री । १५ भुरिह, २१ अनुष्टुप् ।

प्रतिं तिष्ठ विराडसि विष्णुरिविह सरस्वति ।

सिनीवालि प्र जायतां भगस्य सुमतावसत्

१५

शर्म वमेतदा हरास्यै नार्या उपत्तरे । सिनीवालि प्र जायतां भगस्य सुमतावसत् २१ ११०१

( ६ ) सरस्वती, सिनीवाली ।

॥ ३६१ ॥ ( अथर्व० १९।३१।१० )

( ११०२ ) सविता । अनुष्टुप् ।

आ मे धनं सरस्वती पर्यस्फाति च धान्यम् । सिनीवालयुषा बहादुयं चौदुम्बरो माणिः १० ११०२

## ( १७ ) कुहूः ।

॥ ३६२ ॥ ( अथर्व० ७।४७।१-२ )

( ११०४-११०५ ) अथर्वी । १ जगती, २ त्रिष्टुप् ।

कुहूं देवीं सुकृतं विघ्ननापसमसिन् यज्ञे सुहवां जोहवीमि ।

सा नो रयिं विश्ववारिं नि रञ्छाद् ददातु वीरं श्रुतदायमुक्थ्यम् ।

कुहूर्देवानाममृतस्य पत्नी हव्या नो अस्य हविषो जुपेत ।

शृणोतु यज्ञमशृती नो अघ रायस्पोषं चिकितुषीं दधातु

## ( १८ ) नक्षत्राणि ।

॥ ३६३ ॥ [ ११०६-१३ ] ( वा० य० १४।१९ )

नक्षत्राणि छन्दः

॥ ३६४ ॥ ( वा० य० १८।१८, ४० )

नक्षत्राणि च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्

तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो मेकुरयो नाम । ताम्यः स्वाहा

॥ ३६५ ॥ ( वा० य० २०।१८ ) X

नक्षत्रेभ्यः स्वाहा नक्षत्रियेभ्यः स्वाहा

॥ ३६६ ॥ ( वा० य० २३।४३ )

द्यौस्ते पृथिव्यन्तरिक्षं वायुश्छिद्रं पृणातु ते ।

स्यस्ते नक्षत्रैः सह लोकं कृणोतु साधुषा

॥ ३६७ ॥ ( वा० य० २५।९ )

नक्षत्राणि रूपेण

॥ ३६८ ॥ ( वा० य० ३०।१०, २१ )

प्रज्ञानाय नक्षत्रदुर्गम् ॥ १० ॥ नक्षत्रेभ्यः किमिरम्

॥ ३६९ ॥ ( अथर्व० २।२।४ )

( १११४ ) मातृनामा । त्रिपाक्षिराज्नाम गायत्री ।

अत्रिये दिद्यन्नक्षत्रिये या विश्वावसुं गन्धर्वं सचेध्वे ।

ताम्यो यो देवीर्नम इत् कृणोमि

॥ ३७० ॥ ( अथर्व० ३।७।७ )

( १११५ ) मृग्यक्षिरा । अनुष्टुप् ।

अपयामे नक्षत्राणामपयाम उपमांभुत । अपयाम् सर्वं दुर्मृतमप्यं क्षेत्रियमुच्छत

७ १११५

॥ ३७१ ॥ ( अथर्व० ६।१७८।१, ४ )

( १११६-१७ ) अद्विराः । अनुष्टुप् ।

शक्रधूमं नक्षत्राणि यद् राजानमकुर्वत । मद्राहमस्मै प्रायच्छन्निदं राष्ट्रमसादिति १  
यो नो मद्राहमकरः सायं नक्तमथो दिवा । तस्मै ते नक्षत्रराज शक्रधूमं सदा नमः ४ १११७

॥ ३७२ ॥ ( अथर्व० ९।७।१५ )

( १११८-१९ ) ब्रह्मा । साम्नी बृहती ।

विश्वव्यचाश्वमौषधयो लोमानि नक्षत्राणि रूपम् १५ १११८

॥ ३७३ ॥ ( अथर्व० १३।६।७८ ) प्राजापत्याऽनुष्टुप् ।

तस्यामू सर्वा नक्षत्रा वशे चन्द्रमसा सह २८ १११९

॥ ३७४ ॥ ( अथर्व० १०।१।२०-२३ )

( ११२०-२१ ) नारायणः । अनुष्टुप् ।

केन देवाँ अनु क्षियति केन दैवजनीर्विशः । केनेदमन्यन्नक्षत्रं केन सत् क्षत्रमुच्यते २२ ११२०  
ब्रह्म देवाँ अनु क्षियति ब्रह्म दैवजनीर्विशः ।

ब्रह्मेदमन्यन्नक्षत्रं ब्रह्म सत् क्षत्रमुच्यते २३ ११२१

॥ ३७५ ॥ ( अथर्व० ११।६।१० )

( ११२२ ) शन्तातिः । अनुष्टुप् ।

दिवं ब्रूमो नक्षत्राणि भूमिं यक्षाणि पर्वतान् ।

समुद्रा नद्यो विशन्तास्ते नो मुञ्चन्त्वहंसः १० ११२३

॥ ३७६ ॥ ( अथर्व० १५।१७।४ )

( ११२३ ) अथर्वा । साम्युष्णिक् ।

तस्य ब्राह्मस्य । योऽस्य चतुर्थो व्यानस्तामि नक्षत्राणि ४ ११२४

॥ ३७७ ॥ ( अथर्व० १९।७।१-५ )

( ११२४-२४ ) गार्ग्यः । त्रिष्टुप्, ४ मुरिक् ।

चित्राणि साकं द्विवि रौचनानि सरीसृपाणि ध्रुवने जवानि ।

तुर्मिशं सुमतिमिच्छमानो अहानि गीर्भिः संपर्यामि नार्कम् १

सुहवमग्रे कृत्तिका रोहिणी चास्तु मद्रं मृगशिरः शमार्द्रा ।

पुनर्वसू सूनृता चारु पुष्यो मानुराश्लेषा अर्यनं मघा मे २ ११२५

पुष्यं पूर्वा फल्गुन्यौ चात्र हस्तश्चित्रा श्रिवा स्वाति सुखो मे अस्तु ।

राधे विद्यासे सुहवतुराषा ज्येष्ठा सुनक्षत्रमरिष्ट मूलम् ३ ११२६

अन्नं पूर्वां रासतां मे अपाढा ऊर्जं देव्युत्तरा आ वहन्तु ।

अभिजिन्मे रासतां पुण्यमेव श्रवणः श्रविष्ठाः कुर्वतां सुपुष्टिम्

४

आ मे महच्छतभिषग् वरीय आ मे द्रुया प्रोष्ठपदा सुशर्म ।

आ रेवती चाश्वयुजौ भगं म आ मे रयि भरण्य आ वहन्तु

५ १११८

॥ ३७८ ॥ ( अथर्व० १९।८।१-५,७ ) त्रिष्टुप्, १ विराह उगती ।

यानि नक्षत्राणि दिव्यश्चरिषि अप्सु भूमौ यानि नगेषु दिक्षु ।

प्रकल्पयेच्चन्द्रमा यान्येति सर्वाणि ममैतानि शिवानि सन्तु

१

अष्टाविंशानि शिवानि शम्भानि सह योगं भजन्तु मे ।

योगं प्र पद्ये क्षेमं च क्षेमं प्र पद्ये योगं च नमोऽहोरात्राम्भ्यामस्तु

२ १११०

स्वस्तितं मे सुप्रातः सुसायं सुदिवं सुभृगं सुशकुनं मे अस्तु ।

सुहवमग्रे खस्त्यश्मत्यं गत्वा पुनरायाभिनन्दन

३

अनुहवं परिहवं परिवादं परिश्रवम् । सर्वैर्मे रिक्तकुम्भान् परा तान् संवितः सुव

४

अपपापं परिश्रवं पुण्यं भक्षीमहि क्षवम् । शिवा तं पाप नासिकां पुण्यगन्धामि मेहताम्

५

स्वस्ति नो अस्त्वभयं नो अस्तु नमोऽहोरात्राम्भ्यामस्तु

७ १११४

नक्षत्राणि-सहचारी-देवगणः ।

( १ ) द्यौः, चक्षुः, नक्षत्राणि, सूर्यः ।

॥ ३७९ ॥ ( अथर्व० ६।१०।३ )

( ११३५ ) शन्तातिः । साक्षी गृहती ।

दिवे चक्षुषे नक्षत्रेभ्यः सूर्यायाधिपतये स्वाहा

३ १११५

( २ ) सूर्यः, चन्द्रः, नक्षत्राणि ।

॥ ३८० ॥ ( अथर्व० १५।६।५ - ६ )

( ११३६-३७ ) अथर्व । ५ साक्षी त्रिष्टुप्, ६ निष्टुद्गृहती ।

तमृतं च मृत्यं च धर्यश्च चन्द्रश्च नक्षत्राणि चानुग्यचिलन्

५

ऋतस्य च वै स मृत्यस्य च धर्यस्य च चन्द्रस्य च नक्षत्राणां च

प्रियं धाम भवति य एवं वेद

६ १११७



## शिक्षा-विभाग

### शिक्षा-मंत्री

# १ अग्निदेवता ।

॥ १ ॥ (ऋग्वेदस्य मण्डलं १, सूक्तं १, मंत्राः १-९) [ १-९ ] मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । गायत्री (८×१) ।

॥३॥ अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्नधातमम् १  
 अग्निः पूर्वैर्भिर्भ्रातृभिर् इदं यो नृत्तनैरुत । स देवाँ एह वंक्षति २  
 अग्निना रयिमश्नवत् पोषमेव दिवेदिवे । यज्ञसं वीरवचमम् ३  
 अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि । स इद् देवेषु गच्छति ४  
 अग्निहोता कृषिकृतस् सत्यश्चित्रश्रवस्तमः । देवो देवेभिरा गमत् ५  
 यदुक्तं दाशुषे त्वम् अग्ने भद्रं करिष्यसि । तवेत् तव सत्यमङ्गिरः ६  
 तप त्वामे दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वृषम् । नमो भरन्त एमसि ७  
 राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम् । वर्धमानं स्वे दमे ८  
 स नः पितर्य सुनवे अग्ने सूपायनो मव । सचंस्वा नः स्वस्तये ९

॥ २ ॥ (ऋ० १। १२। १-१२) [ १० - २६ ] मेघातिथिः काण्वः । गायत्री ।

अग्निं दूतं घृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुकृतम् १०  
 अग्निमग्निं हवीममिस् सदा हवन्त विद्वपतिम् । हव्यवाहं पुरुप्रियम् ११  
 अग्ने देवाँ इहा वंह जज्ञानो वृक्तबर्हिषे । अग्निं होतां न ईदयः १२  
 तौ उग्रतो वि बौधय यदग्ने यासि दूत्यम् । देवैरा संतिसि बर्हिषि १३

घृताहवन दीदिवः	प्रति प्म रिपतो दह । अग्ने त्वं रक्षस्विनः	१४
अग्निनाग्निः समिध्यते	कृविर्गृहपतिर्युवा । हव्यवाड् जुह्वांस्यः	१५
कृविमग्निमुप स्तुहि	सत्यधर्माणमध्वरे । देवर्मभीवचार्तनम्	१६
यस्त्वामग्ने हविर्पतिर्	दुतं देव सपर्यति । तस्य स प्राविता मंत्र	१७
यो अग्निं देववीतये	हविर्मां आविवांसति । तस्मै पावक मृळय	१८
स नः पावक दीदिवो	ऽग्ने देवा इहा वह । उप युजं हविर्ध नः	१९
स नः स्तवान् आ भर	गायत्रेण नवीयसा । रयि वीरवतीमिपम्	२०
अग्ने शुक्लेण शोचिषा	विश्वाभिर्देवर्हतिभिः । मं स्तोमं जुपस्व नः	२१

॥ ३ ॥ ( क्र० १।१५।४, १२ )

अग्ने देवा इहा वह	सादया योनिषु त्रिषु । परि भूष पिबं क्रतुना	२२
गाहपत्येन सन्त्य	क्रतुना यज्ञनीरसि । देवान् देवयते यज	२३

॥ ४ ॥ ( क्र० १।२०।९-१० )

अग्ने पर्त्तीरिहा वह	देवानामृशतीरुपं । त्वष्टारं सोमपीतये	२४
आ मा अग्न इहावसे	होत्रां यविष्ठ भारतीम् । वरूत्रां धिपणां वह	२५

॥ ५ ॥ ( क्र० १।२३।२४ ) अत्रुष्टुप् ( ८×४ ) ।

सं माग्ने वर्षसा सृज	सं प्रजया समायुषा ।	
विद्युर्मै अस्य देवा	इन्द्रो विद्यात् सह ऋषिभिः	२४

॥ ६ ॥ ( क्र० १।२४।२ )

[ १७-२९ ] शुनःशेष आजीगतिः स कृत्रिमो वैश्वामिमो देवरातः । त्रिष्टुप् ( ११×४ ) ।

अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां	मनामहे चार्क देवस्य नाम ।	
स नो मृता अर्दितये पुनर्दात्	पितरं च दृश्ये मातरं च	२७

॥ ७ ॥ ( क्र० १।२६।१-१० ) गायत्री ( ८×३ ) ।

वसिष्ठा हि मिषेप्य	यज्ञाण्युजां पते । सेमं नो अघ्नं यज्ञ	२८
नि नो होता वरेण्यस्	सदा यविष्ठ मन्मभिः । अग्ने दिरितमृता वचः	२९
आ दि र्मा सूनर्षे पिता	ऽऽपिर्वज्रत्यापये । सरा सार्ये वरेण्यः	३०



आ नो वही रिश्रादसो	वरुणो मित्रो अर्यमा । सीदन्तु मनुषो यथा	३१
पूर्व्यं होतॄस्य भो	मन्दस्व सख्यस्य च । इमा उ पु श्रुधी गिरः	३२
यच्चिद्धि शश्वता तना	देवंदेवं यजामहे । त्वे इद्रूयते इविः	३३
प्रियो नो अस्तु-विश्वतिर	होता मन्द्रो वरेण्यः । प्रियाः स्वग्रयो वयम्	३४
स्वग्रयो हि वार्य	देवासो दधिरे च नः । स्वग्रयो मनामहे	३५
अथा न उभयेपाम्	अमृत मर्त्यानाम् । मिथः संन्तु प्रशस्तयः	३६
विश्वेभिरमे अग्निभिर्	इमं यज्ञमिदं वर्चः । चनो धाः सहसो यदो	३७

॥ ८ ॥ ( क्र० १ । २७ । १-२२ ) ।

अश्वं न त्वा वारवन्तं	वन्दध्या अग्निं नमोभिः । सम्राजन्तमध्वराणाम्	३८
स धा नः सूनुः शर्वसा	पृथुप्रगामा सुशेवः । मीद्वो अस्माकं वभूयात्	३९
स नो दूराद्यासाच्च	नि मर्त्यादद्यायोः । पाहि सदमिद्व विश्वायुः	४०
इमम् पु त्वमस्माकं	सनिं गांयुत्रं नव्यासम् । अग्रे देवेषु प्र वोचः	४१
आ नो भज परमेष्वा	वाजेपु मध्यमेपु । शिक्षा वस्वो अन्तमस्य	४२
विभक्तार्तिं चित्रमानो	सिन्धोर्लुमा उपाक आ । सद्यो दाशुपे धरसि	४३
यममे प्र पुत्सु मर्त्यम्	अवा वाजेपु यं जुनाः । स यन्ता शश्वतीरिपः	४४
नकिरस्य सहन्त्य	पर्येता कयस्य चित् । वाजो अस्ति श्रवाग्यः	४५
स वाजं विश्वचर्षणिर्	अर्धद्विरस्तु तरुता । विश्वेभिरस्तु सनिता	४६
जरायोधु तद् विविद्धि	विश्वेर्विशे यज्ञियाय । स्तोमं रुद्राय दशीकम्	४७
स नो मुहो अनिमानो	धूमकेतुः पुरुश्चन्द्रः । धिये वाजाय दिन्वतु	४८
स रेयो इव विश्वतिर	दव्यः केतुः शृणोतु नः । उक्थ्यगिर्वहद्भानुः	४९

॥ ९ ॥ ( क्र० १ । ३२ । १-२८ ) [ ५०-६७ ] हिरण्यग्नूय आह्नितसः ।  
जगती ( १२×३ ) ; ५७, ६५, ६७ त्रिष्टुप् ( ११×२ ) ।

त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरा ऋषिर्	देवो देवानामभवः शिवः मरुता ।	
तर्ष व्रते कययो विश्वनापमो	ऽजायन्त मरुतो भार्जदृष्टयः	५०
त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरस्तमः	कविर्देवानां परि भूयमि व्रतम् ।	
विश्वविश्वस्मै भुवनाय मेधिगे	दिमाता श्रुयः कतिना निद्रायवे	५१

त्वमग्ने प्रथमो मातरिर्धन आविर्भव सुकृतया विवस्वते ।	
अरेजेतां रोदसी होतृवूर्ये ऽसंभोर्भारमयजो महो वंसो	५२
त्वमग्ने मनये धामवाशयः पुरुरवसे सुकृते सुकृतरः ।	
श्वात्रेण यत् पित्रोर्मुच्यसे पर्या ऽऽ त्वा पूर्वमनयन्नापरं पुनः	५३
त्वमग्ने वृषभः पुष्टिवर्धन उद्यतसुचे भवसि श्रवाय्यः ।	
य आहुतिं परि वेदा वपदकृतिम् एकायुरग्ने विश आविवांससि	५४
त्वमग्ने वृजिनवर्तनि नरं सक्रमन् पिपिं विदथे विचर्पणे ।	
यः श्वरसाता परितक्म्ये धने दुग्धेभिश्चित् समृता हंसि भूर्यसः	५५
त्वं तमग्ने अमृतत्प उत्तमे मर्ते दधासि श्रवसे दिवेदिवे ।	
यस्तावपाण उभयाय जन्मने मयः कृणोपि प्रय आ च सूर्ये	५६
त्वं नो अग्ने सनधे धर्मानां यशसं कारुं कृणुहि स्ववानः ।	
ऋष्याम कर्मापता नवेन देवैर्द्यावापृथिवी प्रार्वतं नः	५७
त्वं नो अग्ने पित्रोरूपस्थ आ देवो देवेष्मन्वद्य जागृविः ।	
तनुकृद् बोधि प्रमतिश्च कारवे त्वं कल्पाण वसु विश्वमोषिणे	५८
त्वमग्ने प्रमतिस्त्वं पितासि नत् त्वं वयस्कृत् तवं जामयो वयम् ।	
सं त्वा रायः शतिनः सं संहसिणः सुवीरं यन्ति व्रतपामदाम्य	५९
त्वमग्ने प्रथममायुमायवे देवा अकृण्वन् नहुपस्य निःपतिम् ।	
इदामकृण्वन् सनुपस्य द्रासन्तां पितुर्यत् पुत्रो ममेकस्य जायते	६०
त्वं नो अग्ने त्वं देव पायुभिर् मघोनो रक्ष त्वन्धश्च वन्ध ।	
द्राता तोरुस्य तनये गवामसि अनिमेषं रक्षमाणस्तवं व्रते	६१
त्वमग्ने यज्यन्ते पायुरन्तरो ऽनिपुद्गायं चतुरक्ष ईध्यमे ।	
यो रातह्वयोऽनुकाय धार्यसे कीरोधिन् मन्त्रं मर्नसा वनोपि तम्	६२
त्वमग्ने उर्यगमाय चाघर्ते स्पाष्टं यद् रेवणः परमं वनोपि तत् ।	
आश्रम्यं चिन् प्रमतिरुच्यमे पिता प्र पाकं आस्मि प्र दिशो विदुष्टैः	६३
त्वमग्ने प्रयतदधिणं नरं वभेज स्पृतं परि पाणि निधतः ।	
स्पाष्टधन्ना यो वंगर्ता स्योनृत् जीविपात्रं यजते गोपमा दिवः	६४

इमामग्ने शरणिं मीमृषो न इममध्वानं यमगाम दूरात् ।	
आपिः पिता प्रमतिः सोम्यानां भूमिरस्यृषिकृन् मर्त्यानाम्	६५
मनुष्वदग्ने अङ्गिरस्वदङ्गिरो ययातिवत् सदाने पूर्ववच्छुचे ।	
अच्छं याह्या वहा दैव्यं जनम् आ सादय बर्हिषि यक्षिं च ग्रियम्	६६
एतेनाग्ने ब्रह्मणा वावृधस्व शक्तीं वा यत्तं चकूमा विदा वा ।	
उत प्र णेप्यभि वस्यो अस्मान्त् सं नः सृज सुमत्या वार्जवत्या	६७

॥ १० ॥ ( ऋ० १।३६।१-१२, ५-२० )

[ ६८-८५ ] कण्वो घोरः । प्रगाथः = वृहती ( ८।८।१२।८ ) + सतो वृहती ( १२।८।१२।८ ) ।

प्र वो यं हं पुरुणां विशां देवयतीनाम् ।	
अग्निं सूक्तेभिर्वचोभिरीमहे यं सीमिदुन्य ईर्यते	६८
जनांसो अग्निं दधिरे सहोवृधं हविर्प्मन्तो विधेम ते ।	
स त्वं नो अद्य सुमना इहाविता भवा वाजेषु सन्त्य	६९
प्र त्वा दूतं वृणीमहे होतारं विश्वेदसं ।	
महस्ते सतो वि चरन्त्यर्चयो दिवि स्पृशन्ति भानवः	७०
देवासस्त्वा वरुणो मित्रो अर्यमा सं दूतं प्रत्नमिन्धते ।	
विश्वं सो अग्ने जयति त्वया धनं यस्ते ददाश मर्त्यः	७१
मुन्द्रो होता गृहर्षतिर् अग्ने दूतो विशाममि ।	
त्वे विश्वा संगतानि व्रता ध्रुवा यानि देवा अकृष्वत	७२
त्वे इदग्ने सुभगे यविष्ठु विश्वमा हूयते हविः ।	
स त्वं नो अद्य सुमना उताऽपरं यक्षिं देवान्सुवीर्या	७३
तं धेमित्या नमस्विन् उपं स्वराजमासते ।	
होत्राभिरग्निं मनुषुः समिन्धते तितिर्वासो अति सिधः	७४
मन्तो वृत्रमंतरन् रोदसी अप उरु धयाय चक्रिरे ।	
भवत् कण्वे वृषा घृम्न्याहुतः क्रन्दुदध्नो गर्विष्टिपु	७५
सं सीदस्व मह्यो अग्नि शोचस्व देववीर्यमः ।	
वि धूममग्ने अरुपं मिषेध्य सृज प्रशस्त दर्शतम्	७६

यं त्वा देवासो मनवे दधुरिह यजिष्ठं हव्यवाहन ।

यं कण्वो मेध्यातिथिर्धनस्पृतं यं वृषा यष्टुपस्तुतः

७७

यमग्निं मेध्यातिथिः कण्वं ईध क्रतादधि ।

तस्य त्रेपो दीदियुस्तमिमा क्रचस् तमग्निं वर्धयामसि

७८

रायस्पृधि स्वधावोऽस्ति हि ते ऽग्ने देवेष्वाप्यम् ।

त्वं वाजस्य श्रुत्यस्य राजसि स नो मृळ महौ असि

७९

पाहि नो अग्ने रक्षसः पाहि धूर्तेरराण्यः ।

पाहि रीपत उत वा जिघांसतो बृहद्भानो यविष्ठय

८०

धनेव विष्यग् वि जहाराण्यस् तपुर्जम्भ यो अस्मध्रुक् ।

यो मर्त्यः शिशीति अत्यक्तुभिर् मा नः स त्रिपरीशत

८१

अग्निर्वज्रे सुवीर्यम् अग्निः कण्वाय सौमंगम् ।

अग्निः प्रारब्धं मित्रोत मेध्यातिथिम् अग्निः साता उपस्तुतम्

८२

अग्निना तुर्वशं यदुं परावर्त उग्रादेवं हवामहे ।

अग्निर्नयन् नववास्त्वं बृहद्रथं तुर्वीति दस्यवे सहः

८३

नि त्वामग्ने मनुर्दधे ज्योतिर्जनाय शश्वते ।

दुर्दिधे कण्वं क्रतुजात उक्षितो यं नमस्यन्ति कृष्टयः

८४

त्वेपासो अग्नेरमवन्तो अर्चयो भीमासो न प्रतीतये ।

रक्षस्विनः सद्रमिघातुमार्वतो विश्वं समत्रिणं दह

८५

॥ ११ ॥ ( क्र० १।४४।१-१४ )

[ ८६ - १०९ ] प्रस्कण्वः काण्वः । प्रगाथः = गृहती ( ८१।८।१२।८ ) + सतो गृहती ( १२।८।१२।८ )

अग्ने विवस्वदुपसय चित्रं राघो अमर्त्य ।

आ दाशुषे जातवेदो बहा त्वम् अ

जुष्टो हि दूतो अंसि हव्यवाहनो

मज्जरक्षिभ्यामुपसा सुवीर्यम् अ

अया दत्तं वृणीमहे

धूमकेतुं माक्रजीकं

अ

अ

अ

अ

अ

पुष्टिः

पु

पु

पु

पु

८६

श्रेष्ठं यविष्ठमर्तिथिं स्वाहुतं जुष्टं जनाय दाशुपे ।

देवाँ अच्छा यातवे जातवेदसम् अग्निमीळे व्युष्टिषु

८९

स्तविष्यामि त्वामहं विश्वस्यामृत भोजन ।

अग्ने त्रातारममृतं मियेध्य यजिष्ठं हव्यवाहन

९०

सुशंसो बोधि गृणते यविष्ठश्च मधुजिह्वः स्वाहुतः ।

प्रस्कण्वस्य प्रतिरन्नायुर्जविसं नमस्या दैव्यं जनम्

९१

होतारं विश्ववेदसं सं हि त्वा विश्व इन्धते ।

स आ वह पुरुहूत प्रचेतसो अग्ने देवाँ इह द्रवत्

९२

सवितारमुपसमाश्रिता मगम् अग्निं व्युष्टिषु ध्रुपः ।

कण्वासस्त्वा सुतसोमास इन्धते हव्यवाहं स्वध्वर

९३

पतिर्ह्यध्वराणाम् अग्ने दूतो विश्वामसि ।

उपयुध आ वह सोमपीतये देवाँ अद्य स्वर्दृश्यः

९४

अग्ने पूर्वा अनुपसो विभावसो दृदिधं विश्वदर्शतः ।

असि ग्रामेण्विता पुरोहितो असि यज्ञेषु मानुषः

९५

नि त्वा यज्ञस्य सार्धनम् अग्ने होतारमृत्विजम् ।

मनुष्वद् दैव धीमहि प्रचेतसं जीरं दूतमर्मत्यम्

९६

यद् देवानां मित्रमहः पुरोहितो ऽन्तरो यासि दूर्यम् ।

सिन्धोर्विषु प्रस्त्रानितास ऊर्मयो अग्नेभ्रीजन्ते अर्चयः

९७

श्रुधि श्रुत्कर्णं वह्निभिर् देवरंभे मयावभिः ।

आ सीदन्तु वह्निपि मित्रो अर्धमा प्रातर्यावाणो अध्वरम्

९८

गृण्वन्तु स्तोमं मरुतः मुदानवो ऽग्निजिह्वा ऋतावृधः ।

पिबन्तु सोमं वरुणो धृतव्रतो ऽश्विर्यामुपसा सृजः

९९

॥ १२ ॥ ( ऋ० १ । ४५ । १-१० ) अनुष्टुप् ( ८५४ ) ।

ग्ने वषेहि रुद्राँ आदित्याँ उत । यज्ञाँ स्वध्वरं जनं मनुजातं धृतप्रपम् १००  
 यीवानो हि दाशुपे देवा अग्ने विचंतमः । तान् रोहिदश्च गिर्वणस् त्रयस्त्रिंशत्तमा वह १०१  
 मेषयदविचज् जातवेदो विरूचन् । अङ्गिरस्वन् महिमत प्रस्कण्वस्य धुषी हवम् १०२

यं त्वा देवासो मनने दुधुरिह यजिष्ठं हव्यवाहन ।	
यं कण्वो मेघ्यातिथिर्धनस्तुतं यं वृषा यमुपस्तुतः	७७
यमग्निं मेघ्यातिथिः कण्वं ईध ऋतादधि ।	
तस्य प्रेषो दीदियुस्तमिमा कचस् तमग्निं वर्धयामसि	७८
रायस्पर्धि स्वधावोऽस्ति हि ते ऽग्रं देवेष्वाप्यम् ।	
त्वं वाजस्य श्रुत्यस्य राजसि स नो मृल महौ असि	७९
पाहि नो अग्रे रक्षसः पाहि धूर्तेराव्यः ।	
पाहि रीपत उत वा जिघांसतो बृहद्भानो यविष्ठय	८०
घनेव विष्णुं वि जह्वराव्यस् तपुर्जम्भ यो अस्मधुक् ।	
यो मर्त्यः शिशीति अत्यक्तुभिर् मा नः स रिपुरीशत	८१
अग्निर्वन्ने सुवीर्यम् अग्निः कण्वाय सौभगम् ।	
अग्निः प्रावन् मित्रोत मेघ्यातिथिम् अग्निः साता उपस्तुतम्	८२
अग्निना तुर्वशं यदु परावर्त उग्रादेवं हवामहे ।	
अग्निर्नयन् नववास्त्वं बृहद्रथं तुर्वीति दस्यवे सहः	८३
नि त्वामग्ने मर्तुर्दधे ज्योतिर्जनाय शश्वते ।	
दीदेथ कण्वं ऋतजात उक्षितो यं नमस्यन्ति कृष्टयः	८४
त्वेपासो अग्रेरमेवन्तो अर्चयो भीमासो न प्रतीतये ।	
रक्षस्विनः सदमिधातुमाव्रतो विश्वं समन्त्रिणं दह	८५

॥ ११ ॥ ( क्र० १ । ४४ । १-१४ )

[ ८६ - १०९ ] प्रस्कण्वः काण्वः । प्रगाधः = बृहती ( ८१ । ८ । १२ । ८ ) + खतो बृहती ( १२ । ८ । १२ )

अग्रे विवस्वदुपसंश चित्रं राधो अमर्त्य ।	
आ दाशुषे जातवेदो ब्रह्मा त्वम् अद्या देवाँ उपर्धुधः	८६
जुष्टो हि द्रुतो आसि हव्यवाहनो ऽग्रं रथीरध्वराणाम् ।	
सज्जरथिम्पोमुपसा सुवीर्यम् अस्मे घेहि श्रवो बृहत्	८७
अद्या दूतं वृणीमहे वसुमग्निं पुरुप्रियम् ।	
धूमकेतुं भाक्रजीकं व्युष्टिषु यज्ञानामध्वरत्रियम्	८८

श्रेष्ठं यविष्ठमर्तिथिं स्वाहुतं जुष्टं जनाय द्वाशुपे ।  
देवाँ अच्छा यातवे जातवेदसम् अग्निमीळे व्युष्टिषु ८९

स्तविष्यामि त्वामहं विश्वस्यामृत भोजन ।  
अग्ने त्रातारममृतं मियेध्य यजिष्ठं हव्यवाहन ९०  
सुशंसो वोधि गृणते यविष्ठय मधुजिह्वः स्वाहुतः ।  
प्रस्कण्यस्य प्रतिरन्नायुर्ज्विसे नमस्या दैव्यं जर्नम् ९१

होतारं विश्ववेदसं सं हि त्वा विश इन्धते ।  
स आ वह पुरुहूत प्रचेतसो अग्ने देवाँ इह द्रवत् ९२  
सवितारमुपसमाश्विना भगम् अग्नि व्युष्टिषु क्षपः ।  
कण्वांसस्त्वा सुतसोमास इन्धते हव्यवाहं स्वध्वर ९३

पतिर्धैध्वराणाम् अग्ने दूतो विशामसि ।  
उपयुध आ वह सोमपीतये देवाँ अद्य स्वर्दशः ९४  
अग्ने पूर्वा अनूपसो विभावसो दीदेथ विश्वदर्शतः ।  
असि ग्रामेण्वविता पुरोहितो असि यज्ञेषु मानुषः ९५

नि त्वा यज्ञस्य सार्धनम् अग्ने होतारममृत्विजम् ।  
मनुष्वद् देव घीमहि प्रचेतसं जीरं दूतममर्त्यम् ९६  
यद् देवानां मित्रमहः पुरोहितो अन्तरो यासि दूत्यम् ।  
सिन्धौरिव प्रस्वनितास ऊर्मयो अग्नेर्ब्राजन्ते अर्चयः ९७

श्रुधि श्रुत्कर्णं वह्निभिर् देवरग्ने मयावभिः ।  
आ सीदन्तु वह्निपि मित्रो अर्यमा प्रातर्यावाणो अध्वरम् ९८  
शृण्वन्तु स्तोमं मरुतः सुदानवो अग्निजिह्वा ऋतावृषः ।  
पिबन्तु सोमं वरुणो धृतव्रतो अश्विन्यामुपसा सजः ९९

॥ १२ ॥ ( ऋ० १ । ४५ । १-१० ) अनुष्टुप् ( ८×४ ) ।

मग्ने यवेरिह रुद्राँ आदित्याँ उत । यजाँ स्वध्वरं जनं मनुजातं धृतमुपम् १००  
सीवानो हि द्वाशुपे देवा अग्ने विचेतसः । तान् रोहिदश्च गिर्यणस् त्रयस्त्रिंशत्तुमा वह १०१  
यमेपवदविचज् जातवेदो विरूपवत् । अङ्गिरस्वन् महिषवत् प्रस्कण्यस्य श्रुषी हवम् १०२

महिकैरव उतये प्रियमेधा अहपत । राजन्तमध्वराणाम् अग्निं शुक्लेण शोचिषा १०३  
घृताहवन सन्त्य इमा उ पु श्रुधी गिरः । याभिः कर्णस्य सुनत्रो हवन्तेऽर्चसे त्वा १०४  
त्वां चित्रश्रवस्तप हवन्ते विश्व जन्तवः । शोचिष्केशं पुरुप्रिय अग्ने हव्याय वोह्वे १०५  
नि त्वा होतारमृत्विजं दधिरे वंसुविचमम् । श्रुत्कर्णं सप्रयस्तमं विप्रो अग्ने दिर्विष्टिषु १०६  
आ त्वा विप्रो अचुच्यवुः सुतसोमा अभि प्रयः । बृहद् भा विप्रतो हविर् अग्ने मर्तीय द्राक्षुषं १०७  
प्रातर्याव्णः सहस्रकृत सोमपेयाय सन्त्य । इहाद्य दैव्यं जनं बृहिरा सादया वसो १०८  
अर्वाञ्च दैव्यं जनम् अग्ने यश्च सहतिभिः । अयं सोमः सुदानवस् तं पात तिम्रोऽह्वयम् १०९

॥१३॥ (क्र० १।५८।१-९) [ ११०-१२३ ] नोधा गौतमः । जगती, (१६५४) ११५-१२३ त्रिष्टुप् (११५४) ।

नू चिद् सहोजा अमृतो नि तुन्दते होतां यद् दूतो अर्भवद् विवस्वतः ।  
वि साधिष्ठेभिः पृथिभी रजौ मम आ देवताता हविषां विवासति ११०  
आ स्वमद्य युवमानो अजरस् तृप्त्रविष्यन्नतसेषु तिष्ठति ।  
अत्यो न पृष्ठं भुषितस्य रोचते दिवो न सानुं स्तनयन्नाचिक्रदत् १११  
क्राणा रुदेभिर्वसुभिः पुरोहितो होता निपत्तो रयिपाळमर्त्यः ।  
रथो न विष्वज्जसान आयुषु व्यानुपग् वार्या देव क्रण्वति ११२  
वि वारज्जतो अतसेषु तिष्ठते वृथा जुहभिः सृण्यां तुविष्यणिः ।  
तृषु यदग्ने वनिनो वृषायसै कृष्णं त एम रुशदूर्मे अजर ११३  
तर्पुर्जम्भो वन आ वार्तचोदितो यूथे न साह्वौ अत्र वाति वंसंगः ।  
अभिब्रजन्नाक्षितं पार्जसा रजः स्थातुश्चरथं भयते पतत्रिणः ११४  
दधुष्टा भृगवो मानुषेष्वा रयि न चारुं सुहवं जनेभ्यः ।  
होतारमग्ने अतिथिं वरेण्यं मित्रं न शेवै दिव्याय जन्मने ११५  
होतारं सुप्त जुहोते यजिष्ठं यं वाघतो वृणते अघ्नुरेषु ।  
अग्निं विश्वेषामरति वसूनां सपर्यामि प्रयसा यामि रत्नम् ११६  
अच्छिद्रा सनो सहसो नो अद्य स्तोतृभ्यो मित्रमहः शर्म यच्छ ।  
अग्ने गृणन्तमंहस उरुष्य ऊर्जो नपात् पुभिरायसीभिः ११७  
मया वरुथं गृणते विभावो भवा मघवन् मघवन्त्यः शर्म ।  
उरुण्याग्ने अंहसो गृणन्तं प्रातर्मक्षु धियावसुर्जगम्यात् ११८



॥ १४ ॥ ( ऋ० १।६०।१-५ )

[ ११९-१२३ ] नोघा गौतमः । त्रिष्टुप् ।

वह्निं यशसं विदथस्य केतुं	सुग्राव्यं दूतं मद्योऽर्थम् ।	
द्विजन्मानं रमिमिव प्रशस्तं	रातिं मरुद् भृगवे मातरिश्वा	११९
अस्य शासुरुभयासः सचन्ते	हविष्मन्त उशिजो ये च भर्ताः ।	
दिवश्चित् पृथो न्यसादि होता	ऽऽपृच्छथो विस्पतिर्विक्षु वेधाः	१२०
तं नव्यसी हृद् आ जायमानम्	अस्मत् सुकीर्तिर्मधुजिह्वमश्याः ।	
यमृत्विजो वृजने मानुपासः	प्रयस्वन्त आयवो जीर्जनन्त	१२१
उशिक् पावको वसुमानुषेषु	वरैण्यो होताघायि विक्षु ।	
दमूना गृहपतिर्दम आ	अग्निर्धेवद् रयिपती रयीणाम्	१२२
तं त्वा वयं पतिमग्रे रयीणां	प्र शंसामो मतिभिर्गोतमासः ।	
आशुं न वाजंभरं मर्जयन्तः	प्रातर्मक्षु धियावसुर्जगम्यात्	१२३

॥ १५ ॥ ( ऋ० १।६५।१-१० )

[ १२४-२१४ ] पराशरः शाक्त्यः । द्विपदा विराट् ।

पश्वा न तापुं, गुहा चतन्तं	नमो युजानं, नमो वहन्तम्	१२४
सुजोषा धीराः, पदैरनु ग्मन्	उपे त्वा सीदन्, विश्वे यजत्राः	१२५
ऋतस्य देवा, अनु वृता गुर	भुवत् परिष्टिर, यौनं भूम	१२६
वर्धन्तीमार्पः, पन्ता सुशिक्षिम्	ऋतस्य योना, गर्भे सुजातम्	१२७
पुष्टिर्न रुषा, क्षितिर्न पृथ्वी	गिरिर्न भुजम्, क्षोद्रो न शुभ्र	१२८
अत्यो नाज्मन्, त्सर्गप्रतक्तः	सिन्धुर्न क्षोद्रः, क ई वराते	१२९
जामिः सिन्धुर्ना, आतेव स्वस्त्राम्	इम्यान् न राजा, वनान्यत्ति	१३०
यद्वातजुतो, वना व्यस्थाद्	अग्निर्ह दाति, रोमां पृथिव्याः	१३१
शसित्यप्सु, हंसो न सीदन्	कत्वा चेतिष्ठो, विशामुपभुन्	१३२
सोमो न वेधा, ऋतप्रजातः	पशुर्न शिवा, विश्वदूरेमाः	१३३

॥ १६ ॥ ( ऋ० १।६६।१-१० )

रयिर्न चित्रा, स्रो न संदग्	आयुर्न प्राणो, नित्यो न मनुः	१३४
तक्का न भूर्णिर, वना सिपक्ति	पयो न धेनुः, शुचिर्विमावा	१३५

दाधार क्षेमम्, ओको न रण्वो	यवो न पक्षो, जेता जनानाम्	१३६
ऋषिर्न स्तुम्वा, विष्णु प्रशस्तो	वाजी न शीतो, वयों दधाति	१३७
दुरोकशोचिः, क्रतुर्न नित्यो	जायेव योनाव्, अरं विश्वस्मै	१३८
चित्रो यदभ्राट्, ह्येतो न विष्णु	स्थो न रुक्मी, त्वेपः समत्सु	१३९
सेनेव सुष्टा, ऽमं दधाति	अस्तुर्न दिद्युत्, त्वेपप्रतीका	१४०
यमो ह जातो, यमो जनित्वं	ज्जारः कनीनां, पतिर्जनीनाम्	१४१
तं वंश्चराथो, वयं वंसत्यास्	तं न गावो, नक्षन्त इदम्	१४२
सिन्धुर्न क्षोदः, प्र नीचीरैनोन्	नवन्त गावः, स्वर्द्धशीके	१४३

॥ १७ ॥ ( ऋ० १। ६७। १-१० )

वनैषु जायुर, मतेषु मित्रो	वृणीते श्रुष्टि, राजेवाजुर्यम्	१४४
क्षेमो न साधुः, क्रतुर्न भद्रो	भुवत् स्वाधीर, होता हव्यवाद्	१४५
हस्ते दधानो, नृम्णा विश्वानि	अमे देवान् धाद्, गुहा निपीदन्	१४६
विदन्तीमत्र, नरो धियधा	हुदा यत् तृष्टान्, मन्त्रां अर्शसन्	१४७
अजो न क्षा, दाधारं पृथिवीं	तस्तम्भं धां, मन्त्रैभिः सत्यैः	१४८
प्रिया पदानि, पश्वो नि पाहि	विश्वारुग्ने, गुहा गुहं गाः	१४९
य ई चिकेतु, गुहा भवन्तम्	आ यः ससाद्, धारामृतस्य	१५०
वि ये चतन्ति, क्रता सपन्तु	आदिद् वव्रनि, प्र वेवाचास्मै	१५१
वि यो धीरुत्सु, रोधेन् महित्वा	उत प्रजा, उत प्रसूषन्तः	१५२
चित्तिरुपां, दर्मे विश्वायुः	समेव धीराः, संमाय चक्रुः	१५३

॥ १८ ॥ ( ऋ० १। ६८। १-१० )

श्रीणन्तुर्प स्याद्, दिवं भुरण्युः	स्थातुश्चरथम्, अक्तून् व्यूणोत्	१५४
परि यदैपाम्, एको विश्वेषां	भुवद् देवो, देवानां महित्वा	१५५
आदिद् ते विश्वे, क्रतुं जुपन्तु	शुक्लाद्यद् दैव, जीवो जनिष्ठाः	१५६
भजन्तु विश्वे, देवत्वं नाम	क्रतं सपन्तो, अमृतमेवैः	१५७
ऋतस्य प्रेषा, ऋतस्य धीतिर्	विश्वारुग्नि, अपांसि चक्रुः	१५८
यस्तुभ्यं दाशाद्, यो वा ते शिशात्	तस्मै चिकित्वान्, रयिं दयस्व	१५९
होता निषन्तो, मनोरपेत्ये	स चिन् न्वासां, पती रयीणाम्	१६०

इच्छन्त॒ रेतो॑, मिथस्तनू॒पु	सं जानत॒ स्वैर॑, दक्षैर॒मृताः	१६१
पित॒र्न पुत्राः॑, कर्तुं॒ जुषन्त॑	श्रोण॒न् ये अ॑स्य, श्रासं॒ तुरासः॑	१६२
वि राय॑ और्णो॒द्, दुरः॑ पुरु॒क्षः	पिपे॒श नाकं॑, स्तृभिर्द॒मृनाः॑	१६३

॥ १९ ॥ ( ऋ० १ । ६९ । १-१० )

शुक्रः॑ शु॒शुक्लौ॑, उ॒पो न जा॒रः	प॒प्रा संमी॑ची, दि॒वो न ज्योतिः॑	१६४
परि॑ प्रजातः, क॒त्वा चभू॑थ	भुवो॑ दे॒वानां॑, पि॒ता पु॒त्रः सन्	१६५
वेधा॑ अ॒द॒प्तो, अ॒ग्निर्वि॒जानन्	ऊ॒र्ध्न गो॒नां, स्वा॒द्या पि॒तृनाम्	१६६
जने॑ न शेव, आ॒ह॒र्यः सन्	म॒ध्ये नि॒प॒त्तो, रु॒ण्वो दु॒रोणे॑	१६७
पु॒त्रो न जा॒तो, रु॒ण्वो दु॒रोणे॑	चा॒जी न प्री॑तो, वि॒शो वि ता॑रीत्	१६८
वि॒शो यद॑द्वे, नृ॒भिः सनी॑ला	अ॒ग्निर्दे॒वत्वा, विश्वा॑न्य॒श्याः	१६९
न कि॑ष्ट ए॒ता, व्र॒ता मि॑नन्ति	नृ॒भ्यो यदे॑भ्यः, श्रु॒ष्टिं च॒कर्षं	१७०
तत् तु ते॑ द॒सो, यद॑हन्त॒समानै॑र	नृ॒भिर्यद् यु॒क्तो, वि॒वे रपा॑सि	१७१
उ॒पो न जा॒रो, वि॒भावो॒न्नः	संज्ञा॑तरु॒पश्चि॒कैतद॑स्मै	१७२
त्मना॑ वहन्तो, दु॒रो व्य॑पृ॒ण्वन्	नव॑न्त॒ विश्वे॑, स्व॒र्ग ई॒दीर्घे॑	१७३

॥ २० ॥ ( ऋ० १ । ७० । १-११ )

व॒नेम॑ पूर्वी॒र, अ॒र्यो मनी॑षा	अ॒ग्निः सु॒शोको॑, वि॒श्वान्य॑श्याः	१७४
आ दै॒व्यानि॑, व्र॒ता चि॑कित्वा॒न् आ मा॑नु॒षस्य॑, ज॒नस्य॑ जन्मं		१७५
ग॒र्भो यो अ॒पां, ग॒र्भो वना॑नां	ग॒र्भश्च॑ स्था॒तां, ग॒र्भश्च॑र॒धाम्	१७६
अ॒द्रौ चिद॑स्मा, अ॒न्तर्दु॒रोणे॑	वि॒शां न वि॒श्वो, अ॒मृतः॑ स्था॒धीः	१७७
स हि॑ क्ष॒पावो॑, अ॒ग्नी र॒यीणां॑	दा॒श॒द् यो अ॑स्मा, अ॒रं सु॑क्तः	१७८
ए॒ता चि॑कित्वा, भू॒मा नि पा॑हि	दे॒वानां॑ जन्म, म॒र्ताश्च॑ वि॒द्वान्	१७९
व॒र्धान्यं॑ पूर्वीः, क्ष॒पो वि॑रू॒पाः	स्था॒तुश्च॑ रथ॒म्, कृत॑प्रवी॒तम्	१८०
अ॒राधि॑ हो॒ता, स्व॒र्गे नि॒प॒त्तः	कृ॒ण्वन् वि॒श्वानि॑, अ॒पांसि॑ स॒त्या	१८१
गो॒षु प्र॒श॒स्ति, वने॑षु धि॒पे	म॒रन्त॑ वि॒श्वे, व॒लिं स्व॑र्णः	१८२
वि त्वा॑ नरः, पु॒रु॒षा संप॑र्यन्	पि॒त॒र्न जि॒ज्ञेर्, वि वे॑दो॒ भर॑न्त	१८३
सा॒धुर्न गृ॑ध्र॒न्, अ॒स्तेव॑ श॒रो	या॒तव॑ ग्री॒मस्, त्वे॒पः मु॑म॒त्सु	१८४

॥ २१ ( क्र० १।७१।१-१० ) । त्रिष्टुप् ।

उप प्र जिन्वन्नुशतीरुशन्तं पतिं न नित्यं जनयः सनीळाः ।  
 स्वसारः श्यावीमरुषीमजुषन् चित्रमुच्छन्तीमुषसं न गावः १८५  
 वीळ चिद् दृह्वा पितरो न उक्थैर् अद्रिं रुञ्जन्नङ्गिरसो रवेण ।  
 चुक्रुर्दिवो बृहतो गातुमस्मे अहः स्वविविदुः केतुमुस्ताः १८६  
 दधन्वतं धनयन्त्रस्य घीतिम् आदिदुर्यो दिधिष्वोरे विभृत्राः ।  
 अतप्यन्तीरुपसौ यन्त्यच्छा देवाब् जन्म प्रयसा वर्धयन्तीः १८७  
 मयीद् यदीं विभृतो मातरिश्वा गृहेगृहे ज्येतो जेन्यो भूत् ।  
 आदौ राज्ञे न सहीयसे सच्चा सच्चा दूत्यं भृगवाणो विवाय १८८  
 महे यत् पित्र ई रसं दिवे कर् अव त्सरत् पृशन्पथिकित्वान् ।  
 सुजदस्ता घृपता दिद्युमस्मै स्वार्या देवो दुहितरि त्विषिं घात् १८९  
 स्व आ यस्तुभ्यं दम् आ विभाति नमो वा दाशदुशतो अनु द्यन् ।  
 वधीं अग्ने वर्यो अस्य द्विवर्हा यासद् राया सरथं यं जुनासि १९०  
 अग्नि विश्वा अभि पृथः सचन्ते समुद्रं न स्रवतः सप्त यद्भीः ।  
 न जामिभिर्वि चिकिते वर्यो नो विदा देवेषु प्रमतिं चिकित्वान् १९१  
 आ यद्विपे नृपतिं तेज आनुद् शचि रेतो निषिक्तं द्यौरभीकं ।  
 अग्निः शर्धमनयद्यं युवानं स्वाध्यं जनयत् सुदयच १९२  
 मनो न योऽध्वनः सद्य एति एकः सत्रा स्रो वस्व ईशे ।  
 राजाना मित्रावरुणा सुपाणी गोपु प्रियममृतं रक्षमाणा १९३  
 मा नो अग्ने सूर्या पित्र्याणि प्र मर्षिष्ठा अभि विदुःकविः सन् ।  
 नमो न रूपं जरिमा भिनाति पुरा तस्या अभिशस्तेरधीहि १९४

॥ २२ ॥ ( क्र० १।७२।१-१० )

नि काव्या वेधसः शश्वतस्कर् हस्ते दधानो नर्या पुरुणि ।  
 अग्निभृगुद् रयिपती रयीणां सत्रा चक्राणो अमृतानि विश्वा १९५  
 अग्ने युगं परि पन्तं न विन्दन् इच्छन्तो रिशे अमृता अमृताः ।  
 अमृषुर्वः पदुर्व्यां धियंघाम् तस्थुः पदे परमे चार्वेधः १९६

तिस्रो यदग्ने शरदस्त्वामिच्छं ह्युचिं धृतेन शुचयः सपर्यान् ।  
नामानि चिद् दधिरे यज्ञियानि अमृदयन्त तन्वः सुजाताः १९७

आ रोदसी वृहती वेविदानाः प्र रुद्रियां जग्नरे यज्ञियांसः ।  
विदन् मतो नेमधिंता चिकित्वान् अग्निं पदे परमे तस्थिवांसम् १९८

संजानाना उर्ष सीदन्नभिञ्जु पवीवन्तो नमस्यं नमस्यन् ।  
रिरिक्कांसस्तुन्यः कृण्वत स्वाः सखा सख्युनिमिषि रक्षमाणाः १९९

त्रिः सप्त यद् गुह्यानि त्वे इत् पदाविदन् निहिता यज्ञियांसः ।  
तेभीं रक्षन्ते अमृतं सजोषाः पशञ्च स्यातृश्चरथं च पाहि २००

विद्वाँ अग्ने वयुनानि क्षितीनां व्यानुषक्छुरुषो जीवसे धाः ।  
अन्तर्विद्वाँ अध्वनो देवयानान् अतन्द्रो दूतो अमवो हविर्वाट् २०१

स्वाध्वो दिव आ सप्त यही रायो दुरो व्यृतज्ञा अजानन् ।  
विदद् गव्यं सरमा दृहमूर्ध्व येन नु कं मानुषी भोजते विद् २०२

आ ये विश्वा स्वपत्यानि तुष्टुः कृण्वानासो अमृतत्वाय गातुम् ।  
महा महद्भिः पृथिवी वि तस्थे माता पुत्रैरदितिर्धायसे वेः २०३

अधि श्रियं नि दधुश्चारुमस्मिन् दिवो यदुक्षी अमृता अकृण्वन् ।  
अर्ध क्षरन्ति सिन्धवो न मृष्टाः प्र नीचीरग्ने अरुपीरजानन् २०४

॥ २३ ॥ ( अ० १ । ७३ । १-१० )

रयिर्न यः पितृविचो वयोधाः सुप्रणीतिश्चिकित्सां न शासुः ।  
स्योनशीरतिर्धिर्न ग्रीणानो होतव्यं सन्न विप्रतो वि तारीत् २०५

देवो न यः सविता मृत्यमन्मा क्रत्वा निपाति वृजनानि विश्वा ।  
पुरुप्रशस्तो अमतिर्न मृत्य आत्मेव शैवो दिधिपाय्यो भूत् २०६

देवो न यः पृथिवीं विश्वधाया उपक्षेति हितर्मित्रो न राजा ।  
पुरःसदः शर्मसदो न धीरा अनवद्या पतिजुष्टेव नारीं २०७

तं त्वा नरो दम् आ नित्यमिदम् अग्ने सचन्त क्षितिपु ध्रुवास्तु ।  
अधि द्युक्षं नि दधुर्भ्यस्मिन् मवा विश्वापुर्धरुणो रयीणाम् २०८

वि पृथो अग्रे मघवानो अश्वयुर्	वि सूरयो ददतो विश्वमार्युः ।	
सनेम वाजं समिथेष्वर्यो	भागं देवेषु श्रवसे दधानाः ।	२०९
ऋतस्य हि धेनवो वावशानाः	स्मदूष्नीः पीपयन्तु द्युभक्ताः ।	
परावतः सुमतिं भिक्षमाणा	वि सिन्धवाः समर्या ससुराद्रिम्	२१०
त्वे अग्रे सुमतिं भिक्षमाणा	दिवि श्रवो दधिरे यज्ञिपांसः ।	
नक्ता च चक्रुरपसा विरूपे	कुष्णं च वर्णमरुणं च सं धुः	२११
यान् राये मरुतन्सुषूदो अग्रे	ते स्याम मघवानो वयं च ।	
छायेव विश्वं भुवनं सिसाधे	आपप्रिवान् रोदसी अन्तरिक्षम्	२१२
अर्वञ्जिरग्रे अर्वतो नृभिर्नृन्	धीरैर्वीरान् वलुयामा त्वोताः ।	
ईशानासः पितृविचस्य रायो	वि सूरयः शतहिमा नो अश्वुः	२१३
एता ते अग्रे उचथानि वेधो	जुष्टानि सन्तु मर्नसे हृदे च ।	
शकेम रायः सुधुरो यमं ते	अधि श्रवो देवमक्तं दधानाः	२१४

॥ २४ ॥ ( अ० १ । ७४ । १-९ ) [ २१५-२५५ ] गोतमो राहूगणः । गावप्री ।

उपप्रयन्तो अघ्वरं	मन्त्रं वोचेमाग्रये । अरे अस्मे च दृण्वते	२१५
यः स्त्रीहितीषु पूर्यः	संजग्मानासु कृष्टिषु । अरक्षद् द्राशुषे गयम्	२१६
उत भुवन्तु जन्तव	उदग्रिर्वृत्रहाजनि । धनंजयो रणैरणे	२१७
यस्य दूतो असि धये	वेपिं हव्यानि वीतये । दस्मत् कृणोष्वध्वरम्	२१८
तमिह सुदृव्यमञ्जिरः	सुदेवं सहसो गहो । जना आहुः सुघर्हिषम्	२१९
आ च बहासि तौ इह	देवां उप प्रशस्तये । हव्या सुध्वन्द्र वीतये	२२०
न योरुपव्दिदव्यः	शृण्वे रथस्य कचन । यदग्रे यासि दूत्यम्	२२१
त्वोतो वाज्यहयो	अग्निं पूर्वस्मादपरः । प्र द्राघौ अग्रे अस्थात्	२२२
उत ध्रुमत् सुवीर्यं	बृहदग्रे विवामसि । देवेभ्यो देव द्राशुषे	२२३

॥ २५ ॥ ( अ० १ । ७५ । १-५ )

जुपस्व सप्रयस्तमं	घर्षो देवर्ष्यस्तमम् । हव्या जुष्टान आसनि	२२४
अथा ते अङ्गिरस्तम	अग्रे वेधस्तम प्रियम् । वोचेम ऋषे सानसि	२२५
फलं जामिर्जनानाम्	अग्रे को द्राश्वध्वरः । को ह कस्मिन्नसि ध्रितः	२२६

त्वं जामिर्जनानाम् अग्ने मित्रो असि प्रियः । सखा सखिम्य ईद्व्यः २२७  
यजा नो मित्रावरुणा यजा देवाँ ऋतं बृहत् । अग्ने यधि स्वं दमम् २२८

॥ २६ ॥ ( ऋ० १ । ७६ । १-५ ) त्रिष्टुप् ।

का त उपेतिर्भनसो वराय भुवदग्ने शतमा का मनीषा ।  
को वा यज्ञैः परि दक्षं त आप केन वा ते मनसा दाशेम २२९  
एक्ष्य इह होता नि पीद अदव्यः सु पुरएता भवा नः ।  
अवतां त्वा रोदसी विश्वमिन्वे यजा महे सौमनसार्य देवान् २३०  
प्र सु विश्वान् रक्षसो घक्ष्यग्ने भवा यज्ञानामभिष्टितिपात्रा ।  
अथा बह सोमपतिं हरिम्याम् आतिथ्यमस्मै चक्रमा सुदानै २३१  
प्रजावता वचसा वहिरासा च हुवे नि च सत्सीह देवैः ।  
वेपि होत्रमुत पोत्रं यजत्र घोषि प्रयन्तर्जनितुर्वधनाम् २३२  
यथा विप्रस्य मनुषो हविर्भिर् देवाँ अयजः कविभिः कविः सन् ।  
एवा होतः सत्यतर त्वमघ अग्ने मन्द्रया जुह्वा यजस्व २३३

॥ २७ ॥ ( ऋ० १ । ७७ । १-५ )

कथा दाशेमाग्रये कास्मै देवजुष्टोच्यते भामिने गीः ।  
यो मर्त्येष्वमृतं ऋतावा होता यजिष्ठ इत् कुणोति देवान् २३४  
यो अँवुरेषु शतम ऋतावा होता तमू नमोभिरा कृणुध्वम् ।  
अभिर्यद् वेर्मर्ताय देवान् त्स चा घोषाति मनसा यजाति २३५  
स हि ऋतुः स मर्यः स साधुर् मित्रो न भूदङ्गुतस्य रथीः ।  
तं मेधेषु प्रथमं देवयन्तीर् विश्व उपे ब्रुवते दुस्ममारीः २३६  
स नो नृणां नृत्तमो रिशार्दा आग्निर्मिरोज्वसा चेतु धीतिम् ।  
तनां च ये मुघवानः शर्विष्ठा वार्जप्रसृता इष्यन्त मन्म २३७  
एवाग्निर्गोर्तमिर्क्रतावा विप्रैर्भिरस्तोष्ट जातवेदाः ।  
स एषु द्युमं पीपयत् स वाजं स पुष्टिं याति जोषमा चिकित्वान् २३८

॥ २८ ॥ ( ऋ० १ । ७८ । १-५ ) गायत्री

अभि त्वा गोर्तमा गिरा जातवेदो विचर्षणे । द्युमैरभि प्र णोनुमः २३९

तमु त्वा गोर्तमो गिरा	रायस्कार्मो दुवस्यति ।	द्युर्नराभि प्र णोनुमः	२४०
तमु त्वा वाजसातमम्	अङ्गिरस्यद् हवामहे ।	द्युर्नराभि प्र णोनुमः	२४१
तमु त्वा वृत्रहन्तमं	यो दस्यैवधनुषे	द्युर्नराभि प्र णोनुमः	२४२
अवोचाम् रहुगणा	अग्रये मधुमद् वचः	द्युर्नराभि प्र णोनुमः	२४३

॥ २९ ॥ ( ऋ० १ । ७९ । १-१२ )

२४४-४६ त्रिष्टुप्, २४७-४९ उष्णिक्, २५०-२५५ गायत्री ।

हिरण्यकेशो रजसो विसारे	ऽहिर्धुनिर्वात इव धर्जीमान् ।	
शुचिभ्राजा उपसो नवेदा	यज्ञस्वतीरपस्युवो न सुत्याः	२४४
आ ते सुपर्णा अभिनन्त एवैः	कुण्डो नोनाव वृषभो यद्रीदम् ।	
शिवाभिर्न स्मर्यमानाभिरागात्	पतन्ति मिहः स्तनयन्त्यभ्रा	२४५
यदीमृतस्य पर्यसा पियानो	नयन्नुतस्य पथिमी रजिष्ठैः ।	
अर्यमा मित्रो वरुणः परिज्मा	त्वचं पृञ्चन्त्युपरस्य योनां	२४६
अग्ने वाजस्य गोमत्	ईशानः महसो यहो ।	अस्मे धेहि जातवेदो महि श्रवः २४७
स ईशानो वसुष्कविह	अग्निरीळिन्यो गिरा	रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि २४८
क्षपो राजन्नुत त्मना	ऽग्ने वस्तोरुतोपसः	स तिम्रजम्भ रक्षसो दह प्रति २४९
अवा नो अग्न ऊतिभिर्	गायत्रस्य प्रमर्मणि	विश्वामु धीषु वन्द्य २५०
आ नो अग्ने रुयि भर	सत्रासाहं वरेण्यम्	विश्वामु पुत्सु दुष्टरम् २५१
आ नो अग्ने सुचेतुना	रुयि विश्वायुषोपसम्	माडीकं धेहि जीवसे २५२
प्र पूतास्तिग्मशोचिपे	वाचो गोतमाग्रये	भरस्व सुमन्युगिरः २५३
यो नो अग्नेऽभिदासति	अन्ति दूरे पदीष्ट सः	अस्माकमिदं वृधे भव २५४
सहस्राक्षो निर्वर्षणिर्	अग्नी रक्षांमि सेधति ।	होता गृणीत उक्थ्यः २५५

॥ ३० ॥ ( ऋ० १ । ९४ । १-१६ )

[ २५६-२७१ ] कुत्स आङ्गिरस । जगताः, २७०-७१ त्रिष्टुप् ।

इमं स्तोममर्हते जातवेदसे	रथमिव सं महेमा मनीषया ।	
भूता हि नः प्रमतिरस्य संमदि	अग्ने सूर्ये मा रिपामा वयं तव	२५६
यस्मै त्वमायजसे स साधति	अनुवां धेति दधते गृवीषम्	
म त्वाव नेनमश्नोत्यंहतिर्	अग्ने सुग्न्ये मा रिपामा वयं तव	२५७



शक्रेम त्वा सुमिधं साधया धियस् त्वे देवा हविरदन्त्याहुतम् ।  
 त्वमादित्याँ आ वृह तान् हवुःश्रमसि अग्नें सख्ये मा रिषामा वयं तव २५८  
 भरांमेधमं कृणवामा हवींषि ते चित्तर्यन्तः पर्वणापर्वणा वयम् ।  
 जीवातवे प्रतरं साधया धियो अग्नें सख्ये मा रिषामा वयं तव २५९  
 विशां गोपा अस्य चरन्ति जन्तवो द्विपञ्च यदुत चतुष्पदक्षुभिः ।  
 चित्रः प्रक्रेत उपसो महो असि अग्नें सख्ये मा रिषामा वयं तव २६०  
 त्वमध्वर्युरुत होतासि पूर्यः प्रशास्ता पोता जुनुषा पुरोहितः ।  
 विश्वा विद्राँ आर्विज्या धीर पुष्यसि अग्नें सख्ये मा रिषामा वयं तव २६१  
 यो विश्वतः सुप्रतीकः सद्यद्भुसि दूरे चित् सन्तलिद्विवार्ति रोचसे ।  
 रात्र्यान् चिदन्यो अति देव पश्यासि अग्नें सख्ये मा रिषामा वयं तव २६२  
 पूर्वो देवा भवतु सुन्वतो रथो ऽस्माकं शंसो अम्यस्तु दूढ्यः ।  
 तदा जानीतोत पुष्यता वचो अग्नें सख्ये मा रिषामा वयं तव २६३  
 वृधैर्दुःशंसो अयं दूढ्यो जहि दूरे वा ये अन्ति वा के चिदुग्रिणः ।  
 अथा यज्ञाय गृणते सुगं कृधि अग्नें सख्ये मा रिषामा वयं तव २६४  
 यदयुक्था अरुषा रोहिता रथे वार्तजता वृषभस्यैव ते रवः ।  
 आदिन्वसि वनिनो धूमकेतुना अग्नें सख्ये मा रिषामा वयं तव २६५  
 अथ स्वनादुत धिभ्युः पतत्रिणो द्रप्ता यत् ते यवसादो व्यस्थिरन् ।  
 सुगं तत् ते तावकेभ्यो रथेभ्यो अग्नें सख्ये मा रिषामा वयं तव २६६  
 अयं मित्रस्य वरुणस्य धार्यसे ऽवयातां मरुतां हेलो अद्भुतः ।  
 मृळा सु नो भूत्वेषां मनः पुनर् अग्नें सख्ये मा रिषामा वयं तव २६७  
 देवो देवानामसि मित्रो अद्भुतो वसुर्वर्धनाममि चारुंरध्वरे ।  
 शर्मन् तस्याम तव सुप्रथस्तमे अग्नें सख्ये मा रिषामा वयं तव २६८  
 तत् ते भद्रं यत् समिद्धः स्वे दमे सोमाहुतो जरसे मृळ्यत्तमः ।  
 दधासि रत्नं द्रविणं च दाशुपे अग्नें सख्ये मा रिषामा वयं तव २६९  
 यस्मै त्वं सुद्रविणो ददाशो ऽनागास् त्वमदिते सर्वताता ।  
 यं भद्रेण शर्वसा चोदयासि प्रजार्चता राधमा ते स्याम २७०

स त्वमग्ने सौभगत्वस्य विद्वान् अस्माकमायुः प्र तिरेह देव ।  
तन् नो मित्रो वरुणो मामहन्ताम् अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः २७१

॥ ३१ ॥ ( ऋ० १ । १२७ । १-११ )

[ २७२—२९१ ] परुच्छेपो दैवोदासिः । अत्याष्टिः, २७७ अतिधृतिः ।

अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुं सूनुं सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् ।  
य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा ।  
धृतस्य विभ्राष्टिमलुं वष्टि शोचिषा ऽऽजुह्वानस्य सर्पिषः २७२  
यजिष्ठं त्वा यजमाना हुवेम ज्येष्ठमङ्गिरसां विप्र मन्मभिर विप्रैभिः शुक्र मन्मभिः ।  
परिज्मानमिव द्यां होतारं चर्पणीनाम् ।  
शोचिष्केशं वृषणं यमिमा विश्वः प्रावन्तु जूतये विश्वः २७३  
स हि पुरु चिदोर्जसा विरुक्मता दीद्यानो भवति द्रुहन्तरः परशुर्न द्रुहन्तरः ।  
वीळ चिद् यस्य समृतौ श्रुवद् वनेव यत् स्थिरम् ।  
निष्पहमाणो यमते नार्यते धन्वासह्य नार्यते २७४  
दृष्ट्वा चिदस्मा अलु दुर्यथां विदे तेजिष्ठाभिररणिभिर्दाष्टयवसे ऽग्नये द्वाष्टयवसे ।  
प्र यः पुरुणि गार्हते तक्षद् वनेव शोचिषा ।  
स्थिरा चिदन्ना नि रिणात्योर्जसा नि स्थिराणि चिदोर्जसा २७५  
तमस्य पृक्षमुपरासु धीमहि नक्तं यः सुदर्शतरो दिवातराद् अप्रायुषे दिवातरात् ।  
आदस्यायुग्रमणवद् वीळ शर्म न सुन्वे ।  
भक्तमभक्तमग्नौ व्यन्तो अजरा अग्नयो व्यन्तो अजराः २७६  
स हि शर्षो न मारुतं तुविष्वणिर् अग्रस्वतीपूर्वराष्ट्रिणिर् आर्तेनास्विष्टनिः ।  
आदद्व्यन्यादुदिर् यज्ञस्य केतुरहणा ।  
अघं स्मास्य हर्षतो हपीवतो विश्वे जुपन्त पन्थां नरः शुभे न पन्थाम् २७७  
द्विता यदीं कीस्तासो अभिघवो नमस्यन्त उपवोचन्त भृगवो मग्नन्तो द्वाशा भृगवः ।  
अग्निरीशे वरुणां शुचियो धर्गिरैषाम् ।  
प्रियां अपिधीर्वनिपीष्ट मेधिर आ वनिपीष्ट मेधिरः २७८

- विश्वासां त्वा विशां पतिं हवामहे सर्वासां समानं दर्पति भुजे सत्यर्गिर्वाहसं भुजे ।  
 अतिथिं मानुषाणां पितुर्न यस्यासया ।  
 अमी च विश्वे अमृतासु आ वयौ हव्या देवेष्वा वयः २७९
- त्वमग्ने सहसा सहन्तमः शुष्मिन्तमो जायसे देवतातये रुयिर्न देवतातये ।  
 शुष्मिन्तमो हि ते मदो द्युष्मिन्तम उत क्रतुः ।  
 अथ स्मा ते परिं चरन्त्यजर श्रुष्टीवानो नाजर २८०
- प्र वो महे सहसा सहस्वत उपधुधे पशुपे नाग्रये स्तोमौ बभूत्वग्रये ।  
 प्रति यदीं हविष्मान् विश्वासु सासु जोगुवि ।  
 अग्ने रेमो न जेत ऋषूणां जूणिर्होत ऋषूणाम् २८१
- स नो नेदिष्टं ददृशान् आ भर अग्ने देवेभिः सचंनाः सुचेतुनां महो रायः सुचेतुनां ।  
 महिं शविष्ठ नस्कधि संचक्षे भुजे अस्यै ।  
 महिं स्तोवृम्यो मघवन् त्सुवीर्यं मयीरुग्रो न शर्वसा २८२

॥ ३२ ॥ ( ऋ० १ । १२८ । १-८ )

- अयं जायत मनुषो धरीमणि होता यजिष्ठ उशिजामनु व्रतम् अग्निः स्वमनु व्रतम् ।  
 विश्वश्रुष्टिः सखीयते रुयिर्विव श्रवस्यते ।  
 अदन्धो होता नि पदद्विळस्पदे परिवीत इळस्पदे २८३
- तं यज्ञसाधमपि वातयामसि क्रतुस्य पथा नमसा हविष्मता देवताता हविष्मता ।  
 स न ऊर्जामुपाभृति अया कृपा न ज्यैरिति ।  
 यं मातरिश्वा मनवे परावतो देवं भाः परावतः २८४
- एवेन सद्यः पर्येति पार्थिवं मुहुर्गी रेतो वृषभः कर्निकदद् दधद् रेतः कर्निकदद् ।  
 शतं चक्षाणो अक्षमिर् देवो वनेषु तुर्वणिः ।  
 सद्यो दधान उपरेषु सानुषु अग्निः परेषु सानुषु २८५
- स सुक्रतुः पुरोहितो दमेदमे अग्निर्यज्ञस्याध्वरस्य चेतति क्रत्वा यज्ञस्य चेतति ।  
 क्रत्वा वेधा ईष्यते विश्वा जातानि पस्पशे ।  
 यतो घृतश्रीरतिथिरजायत वह्निर्वेधा अजायत २८६

कृत्वा यदस्य तविषीषु पृथ्वते ऽग्नेरवेण मरुतां न भोज्या ईषिराय न भोज्या ।

स हि ष्मा दानमिन्वति वसूनां च मृज्मना ।

स नस् त्रासते दुरितादभिहृतः संसादुघादभिहृतः

२८७

विश्वो विहाया अतिर्वसुर्दधे हस्ते दक्षिणे तरणिर्न शिश्रथच् छूवस्पया न शिश्रथत् ।

निश्वस्मा इदिपुध्यते देवत्रा हव्यमोहिषे ।

विश्वस्मा इत् सुकृते वारमृण्यति अग्निर्द्वारा व्यृण्यति

२८८

स मानुषे वृजने शंतमो हितोऽग्नेऽभिर्यज्ञेषु जेन्यो न विस्पतिः प्रियो यज्ञेषु विस्पतिः ।

स हव्या मानुषाणाम् इळा कुतानि पत्यते ।

स नस् त्रासते वरुणस्य धूर्तेर महो देवस्य धूर्तेः

२८९

अग्निं होतारमीळते वसुधितिं प्रियं चेतिष्ठमरति न्यैरिरे हव्यवाहं न्यैरिरे ।

विश्वायुं विश्ववेदसं होतारं यजतं कविम् ।

देवासां रण्वमवसे वसूयवो ग्रीभी रण्वं वसूयवः

२९०

॥ ३३ ॥ ( ऋ० १ । १३२ । ७ )

ओ पू णो अग्ने शृणुहि त्वमीळितो देवेभ्यो ब्रवासि यज्ञियेभ्यो राजभ्यो यज्ञियेभ्यः ।

यद्वा त्यामङ्गिरोभ्यो धेनुं देवा अर्दत्तन ।

वि तां दुहे अर्यमा कर्तरी सचौ एष तां वेद मे सचा

२९१

॥ ३४ ॥ ( ऋ० १ । १४० । १-१३ )

[ २९२-३६० ] दीर्घतमा ओचथ्य । जगती, ३०१ त्रिष्टुप्वा, ३०३-४ त्रिष्टुप् ।

वेद्विपदे प्रियधामाय सुधुतं धासिमिन् प्र भरा योनिमग्रये ।

वस्त्रेणिव वासया मन्मना शुचिं ज्योतीरथं शुक्रवर्णं तमोहजम्

२९२

अभि द्विजन्मा त्रिवृदन्नमृज्यते संवत्सरे वावृषे जग्धमी पुनः ।

अन्यस्यासा जिह्वया जेन्यो वृषा न्यून्येन वनिर्नो मृष्ट वारुणः

२९३

कृष्णप्रुतां वेजिजे अस्य सक्षिता उभा तरेते अभि मातरा शिशुम् ।

प्राचारिहं घृसयन्तं तपुच्युतम् आ साच्यं कर्षयं वर्धनं पितुः

२९४

मुमुक्षोः मनरे मानवस्यते रघुद्रुवः कृष्णगीतास ऊ लुवः ।

अममना अजिगसां रघुप्यदो वातज्ञता उप यज्यन्त आश्रयः

२९५

आदस्य ते ध्वसयन्तो वृधेरते कृष्णमभ्यं महि वर्षः करिकृतः ।	
यत् सीं महीमवन्ति ग्रामि मर्मगृह्ण अमिश्रसन् तस्तनयश्चेति नानन्दत्	२९६
भूपन् न योजिं वभ्रुप नम्रते वृषेव पत्नीरभ्येति रोहवत् ।	
ओजायमानस् तन्वश्च शुम्भते भीमो न शृङ्गा दविधाव दुर्गृभिः	२९७
स संस्तिरो विष्टिरः सं गृमायति ज्ञानन्नेव जानतीनित्य आ श्ये ।	
पुनर्वर्धन्ते अपि यन्ति देव्यम् अन्यद् वर्षः पित्रोः कृण्वते सचा	२९८
तमग्रुवः केशिनीः सं हि रैभिर ऊर्ध्वासु तस्युर्मग्रुपीः प्रायवे पुनः ।	
तासां जरां प्रमुञ्चन्तेति नानन्दद् असुं परं जनयञ्जीवमस्तुतम्	२९९
अधीवासं परि मात् रिहचहं तुविश्रेभिः सत्त्वमियाति वि जयः ।	
वयो दर्धत् पृद्धते रेरिहत् सदा अनु श्येनी सचते वर्तनीरहं	३००
अस्माकमपे मधवत्सु दीद्विहि अध श्वसीवान् वृषभो दर्मनाः ।	
अवास्या शिशुमतीरदीदेर् वमेव युत्सु परिजर्धराणः	३०१
इदमग्रे सुधितं दुधितादधि प्रियादुं चिन् मन्मनः प्रेयो अस्तु ते ।	
यत् ते शुक्रं तन्योऽं रोचते शुचि तेनास्मभ्यं वनसे रत्नमा त्वम्	३०२
रथाय नार्यमुत नो गृहाय नित्याग्निं पृद्धती रास्यमे ।	
अस्माकं धीरा उत नो मधोनो जनोंश्च या पारयाच्छर्म या च	३०३
अमी नो अग्न उक्थमिज् जुगुर्या द्यावाक्षामा सिन्धवश्च स्वर्गताः ।	
गव्यं यव्यं यन्तो दीर्घाहा इपं वरमरुण्यो वरन्त	३०४

॥ ३५ ॥ ( ऋ० १ । १४१ । १-१३ ) जगती, ३१६-१७ त्रिष्टुप् ।

पङ्क्तिथा तद् वर्षुपे धायि दर्शतं देवस्य मर्गः सहसो यतो जनि ।	
यदीमुप ह्वरति सार्धते मतिर् कृतस्य घेना अनयन्त समुतः	३०५
पृक्षो वर्षुः पितुमान् नित्य आ श्ये द्वितीयमा सप्तशिवासु मातृपु ।	
तृतीयमस्य वृषभस्य दोहसे दशप्रमति जनयन्त योषणः	३०६
निर्यदीं बुभान् महिषस्य वर्षस ईशानायः शर्वमा क्रन्तं सूरयः ।	
यदीमनु प्रदिवो मर्ध आघवे गुहा सन्तं मातरिषा मशायति	३०७

प्र यत् पितुः परमाग्नीयते परि आ पृथुघो वीरुघो दंसु रोहति ।  
 उभा यदस्य जनुषं यदिन्वत आदिद् यविष्ठो अमवद् घृणा शुचिः ३०८  
 आदिन्मातृराविशद् यास्वा शुचिर् अहिंस्पमान उर्विया वि वाश्वे ।  
 अनु यत् पूर्वा अरुहत् सनाजुवो नि नव्यमीप्सवरासु धावते ३०९  
 आदिद्वोतारं वृणते दिविष्टिषु भगमिव पपृचानासं फञ्जते ।  
 देवान् यत् क्रत्वा मज्मनां पुरुष्टुतो मर्तुं शंसं विश्वधा वेति धार्यसे ३१०  
 वि यदस्याद् यजतो वार्तचोदितो ह्यारो न वक्ता जरणा अनाकृतः ।  
 तस्य पत्नम् दुक्षुपः कृष्णजहसः शुचिजन्मनो रज आ व्यध्वनः ३११  
 रयो न यातः शिकंभिः कृतो घाम् अङ्गभिररूपेभिरीयते ।  
 आदस्य ते कृष्णासौ दक्षि सूरयः शूरस्येव त्वेपथादीपते वयः ३१२  
 त्वया ह्यग्रे वरुणो धृतव्रतो मित्रः शाश्वदे अर्यमा सुदानवः ।  
 यत् सीमन् क्रतुना विश्वथा विशुर् अरान् न नेमिः परिभूरजायथाः ३१३  
 त्वमग्रे शशमानाय सुन्वते रत्नं यविष्ठ देवतातिमिन्वसि ।  
 तं स्वा नु नव्यं सहसो युवन् वयं भगं न कारे महिरत्न धीमहि ३१४  
 अस्मे रयि न स्वयं दर्मनसं भगं दक्षं न पृचासि घर्णसिम् ।  
 रुर्मोर्वि यो यमंति जन्मनी उमे देवानां शंसंमृत आ चं सुक्रतुः ३१५  
 उत नः सुद्योत्मा जीराश्वो होता मन्द्रः शृणवच् चन्द्ररथः ।  
 स नो नेपुन्नेपतमैरमूरो ऽग्निर्ब्रामं सुवितं वस्यो अच्छ ३१६  
 अस्ताव्यग्निः शिमीवद्भिर्कैः साम्राज्याय प्रतुरं दधानः ।  
 अमी च ये मघवानो वयं च मिहं न सूरौ अति निष्टतन्युः ३१७

॥ ३६ ॥ ( क्र० १ । १४३ । १-८ ) जगती, ३२५ त्रिष्टुप् ।

प्र तव्यसीं नव्यसीं धीतिमग्रये वाचो मतिं सहसः सुनवे मरे ।  
 अपां नपाद् यो वसुभिः सह प्रियो होता पृथिव्यां न्यसीदद्रुत्तियः ३१८  
 स जार्यमानः परमे व्योमनि आरिरगिरमवन् मातरिधने ।  
 अस्य क्रत्वा समिधानस्य मज्मना प्र धावा शोचिः पृथिवी अरोचयद् ३१९

अस्य त्वेपा अजरा अस्य भानवः । सुसंदृशः सुप्रतीकस्य सुद्युतः । मात्वक्षसो अत्यक्तुर्न सिन्धवो ऽग्रे रेंजन्ते असंसन्तो अजराः	३२०
यमेरिरे भृगवो विश्ववेदसं नामा पृथिव्या श्रवणस्य मज्जना । अग्निं तं गीर्भिर्हिनुहि स्व आ दमे य एको वस्वो वरुणो न राजति	३२१
न यो वराय मरुतामिव स्वनः सेनेव सुष्टा दिव्या यथाशनिः । अग्निर्जन्मैस् तिगितैरंति भवति योधो न शत्रून् त्स वना न्यञ्जते	३२२
कुविभो अग्निरुचयस्य वीरसद् वसुष्कुविद् वसुभिः काममावरत् । चोदः कुवित् त्तुज्यात् सातये धियः शुचिप्रतीकं तमया धिया गृणे	३२३
घृतप्रतीकं व ऋतस्य धूर्पदम् अग्निं मित्रं न संमिधान ऋज्वते । इन्धानो अक्रो विदथेपु दीर्घच् छुक्रवर्णामुर्दु नो यंसते धियम्	३२४
अप्रयुच्छन्नप्रयुच्छद्भिरग्रे शिवोर्धनः पायुर्भिः पाहि शुग्मैः । अदब्धेभिरदपितेभिरिष्टे ऽग्निमिपद्भिः परि पाहि नो जाः	३२५

॥ ३७ ॥ ( ऋ० १ । १४४ । १-७ ) जगती ।

एति प्र होता व्रतमस्य मायया ऊर्ध्वा दधानः शुचिपेशसं धियम् । अग्निं सुचैः क्रमते दक्षिणावृतो या अंस्य धामं प्रथमं ह निंसते	३२६
अभीमृतस्य दोहना अनूपत् योनौ देवस्य सदेने परीवृताः । अपामुपस्ये विभृतो यदावेसद् अर्धे स्वधा अर्धयद् याभिरीर्यते	३२७
युयूतः सर्वयसा तदिद् वपुः समानमर्थं वितरित्रता मिथः आदौ मग्नो न हव्यः समस्मदा बोहूर्न रदमीन् त्समयंसु सारथिः	३२८
यमीं ह्य सर्वयसा सपर्यतः समाने योना मिथुना समोक्ता । दिवा न नक्तं पलितो युवाजनि पुरु चरन्जरो मारुपा युगा	३२९
तमीं हिन्वन्ति धीतयो दश त्रिशो देवं मर्तासं कृतये हवामहे । धनोरथिं प्रवत् आ स ऋष्वति अग्निव्रजिर्विभुना नवाधित	३३०
त्वं ह्यग्ने दिव्यस्य राजसि त्वं पार्थिवस्य पशुषा इव त्मना । एनीं त एते बृहती अग्निधिया हिरण्ययी वक्त्ररी वहिराश्वते	३३१

अग्ने जुपस्य प्रति हर्षं तद् वचो मन्द्र स्वर्धावु क्रतुजात सुक्रतो ।  
यो विश्वतः प्रत्यङ्मुसि दर्शतो रणवः संदृष्टौ पितुमाँ हव क्षयः ३३२

॥ ३८ ॥ ( ऋ० १ । १४५ । १-५ ) जगती, ३३७ त्रिष्टुप् ।

तं पृच्छता स जंगामा स वेदु स चिंक्रित्वाँ ईयते सा न्वीयते ।  
तस्मिन्सन्ति प्रशिपस्तस्मिन्निष्टयः स वाजस्य शर्वसः शुष्मिणस्पतिः ३३३

तमित् पृच्छन्ति न सिमो वि पृच्छति स्वेनेव धीरो मनसा यदग्रमीत् ।  
न मृष्यते प्रथमं नापरं वचो ऽस्य क्रत्वा सचते अप्रदपितः ३३४

तमिद् गच्छन्ति जुह्वस्तमर्वतोर् विश्वान्येकः शृण्वद् वचांसि मे ।  
पुरुषैस् तत्तरिष्यसाधनो ऽच्छिद्रोतिः शिशुरादत्त सं रमः ३३५

उपस्थायं चरति यत् समारत सद्यो जातस् तत्सार युज्येभिः ।  
अभि श्वान्तं मृशते नान्वे मुदे यदौ गच्छन्त्युशतोरपिष्ठितम् ३३६

स ई' मुगो अप्यो वनर्गुर् उप त्वच्युपमस्यां नि धायि ।  
व्यव्रवीद् वयुना मर्त्येभ्यो ऽग्निविद्रौ क्रतुचिद्धि सत्यः ३३७

॥ ३९ ॥ ( ऋ० १ । १४६ । १-५ ) त्रिष्टुप् ।

त्रिमूर्धानं सत्तरदिम गृणीषे ऽनूनमग्निं पित्रोरुपस्थे ।  
निपत्तमस्य चरतो ध्रुवस्य विश्वा दिवो रौचनापप्रिवांसम् ३३८

उक्षा मुहौ अभि ब्रवक्ष एने अजरस् तस्थावितर्कतिर्ऋष्वः ।  
उर्च्याः पदो नि दधाति सानौ रिहन्त्यूधौ अरुपासौ अस्य ३३९

समानं वत्समभि संचरन्ती विष्वग् धेनू वि चरतः सुमेके ।  
अनपवृज्याँ अर्ध्वनो मिमानि विश्वान् केतौ अधि महो दधाने ३४०

धीरांसः पदं कवयो नयन्ति नानां हृदा रक्षमाणा अजुष्यम् ।  
सिपांसन्तः पर्यपश्यन्त सिन्धुम् आविरेभ्यो अभवत् स्रयो नृन् ३४१

दिदृक्षेण्यः परि काष्ठासु जेन्य इळेन्यो महो अर्भीय जीवसे ।  
पुरुषा यदभवत् सरहैभ्यो गर्भेभ्यो मुधर्वा विश्वदर्शतः ३४२

॥ ४० ॥ ( ऋ० १ । १४७ । १-५ )

कथा तै अग्ने शुचयन्त आयोर् ददाशुर्वाजैभिराशुपाणाः ।  
उभे यत् तोके तनये दधाना क्रतस्य सामन् रणयन्त देवाः ३४३



वोधा मे अस्य वर्चसो याविष्ट मंहिष्ठस्य प्रमृतस्य स्वधावः ।  
 पीयति त्वो अनु त्वो गृणाति वन्दारुम् ते तन्वं वन्दे अग्ने ३४४  
 ये पायवो मामतेयं ते अग्ने पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन् ।  
 ररक्ष तान् सुकृतो विश्ववेदा दिप्सन्त इद् रिपवो नार्हं देभुः ३४५  
 यो नो अग्ने अरिर्वो अघायुर् अरातीवा मर्चयति द्वयेन ।  
 मन्यो गुरुः पुनरस्तु सो अस्मा अनु मृषीष्ट तन्वं दुरुक्तः ३४६  
 उत वा यः सहस्य प्रविष्टान् मतो मर्तं मर्चयति द्वयेन ।  
 अतः पाहि स्तयमानं स्तुवन्तम् अग्ने मार्किनो दुरितार्य घायीः ३४७

॥ ४१ ॥ ( ऋ० १ । १४८ । १-५ )

मयीद् यदीं विष्टो मातरिश्वा होतारं विश्वाप्सु विश्वदेव्यम् ।  
 नि यं दधुर्मनुष्यासु विक्षु स्वर्णं चित्रं वपुषे विभारम् ३४८  
 दृष्टानमिन्न ददमन्तु मन्म अग्निर्वरुधं मम तस्य चाकन् ।  
 जुपन्त विश्वान्यस्य कर्म उपस्तुतिं भरमाणस्य कारोः ३४९  
 नित्यं चिक्षु यं सदेने जगुग्ने प्रशस्तिभिर्दधिरे यज्ञियांमः  
 प्र ह नयन्त गृमयन्त इष्टो अश्वाभ्यो न रुध्यो रारहाणाः ३५०  
 पुरुषिण् दुस्मो नि रिणाति जग्भैर् आद् रौचते वन आ विभावा ।  
 आदस्य वातो अनु वाति शोचिर् अस्तुर्न श्रयोमसुनामनु धृत् ३५१  
 न यं रिपवो न रिपण्यवो गर्भे सन्तै रेपुणा रेपयन्ति ।  
 अन्धा अंपश्या न दमन्नमिख्या नित्यास इ भेतारो अरक्षन् ३५२

॥ ४२ ॥ ( ऋ० १ । १४९ । १-५ ) विराट्

महः स राय एपति पतिर्दध् इन इनस्य वर्मुनः पद आ ।  
 उप ध्रजन्तमद्रयो विघमिन् ३५३  
 स यो वृषा नरां न रोदस्योः श्रवोभिरस्ति जीवपीतसर्गः ।  
 प्र यः संस्त्राणः शिश्रीत योनौ ३५४  
 आ यः पुरं नार्मिणीमदीदिद् अत्यः कविर्नमन्योऽ नार्वा ।  
 धरो न रुरुकाञ्छतात्मा ३५५

अभि द्विजन्मा ग्री रौचनानि विश्वा रजांसि शुशुचानो अस्थात् ।

होता यजिष्ठो अपां सधस्थे

३५६

अयं स होता यो द्विजन्मा विश्वा द्रुधे चार्याणि श्रवस्या ।

मर्तो यो अस्मै सुतुको ददार्श

३५७

॥ ४३ ॥ ( ऋ० १ । १५० । १-३ ) अणिक ।

पुरु त्वा दाश्वान् वौचे अरिरग्ने तर्ष स्विदा । तोदस्यैव शरण आ मुहस्य ३५८

व्यनिनस्य धनिनः ग्रहोपे चिदररूपः । कदा चन प्रजिगत्तो अदैवयोः ३५९

स चन्द्रो विप्र मर्त्यो महो वार्धन्तमो दिवि । प्रेत तै अग्ने वज्रपः स्याम ३६०

॥ ४४ ॥ ( ऋ० १ । १८९ । १-८ )

( ३६१-३६८ ) अगस्त्यो मैत्रावरुणः । शिष्टप ।

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।

युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूरिपिष्टां ते नमउक्ति विधेम ३६१

अग्ने त्वं पारया नव्यो अस्मान् त्वस्तिभिरति दुर्गाणि विश्वा ।

पृथ्वी पृथ्वी बहुला न उर्वी भवां तोकाय तनयाय शं योः ३६२

अग्ने त्वमस्मद् युयोध्यमीवा अनग्निना अभ्यमन्त कृष्टीः ।

पुनरस्मभ्य सुविताय देव क्षां विश्वेभिरमृतैर्भिर्यजत्र ३६३

पाहि नो अग्ने पायुभिरजसैर् उत प्रिये सदेन आ शुशुकान् ।

मा ते भयं जस्तितायै यविष्ठ नूनं विदुन् मापरं सहस्रः ३६४

मा नो अग्नेऽव सृजो अघाय अविष्यवै रिषवै दुच्छुनोयै ।

मा दुत्वते दशते मादते नो मा रीपते सहसावन् परा दाः ३६५

मि घ त्वावो ऋतजात यंसद् गृणानो अग्ने तन्वेऽ वरूथम् ।

मिथाद् रिरिक्षोरुत वा निनित्सोर अभिहुतामसि हि देव शिष्पद् ३६६

त्वं ताँ अय उमयान् वि विद्वान् वेपि प्रपित्वे मनुषो यजत्र ।

अभिपित्वे मनवे शास्यो भूर् मर्मजेन्य उशिग्भिर्नाकः ३६७

अघोचाम निवचनान्यस्मिन् मानस्य सनुः सहसाने अग्नौ ।

वयं सहस्रमृषिभिः सनेम विद्यामेयं वृजनं जीरदानुम् ३६८

॥ ४५ ॥ ( ऋग्वेदस्य द्वितीयं मण्डलं २, सूक्तं १, मन्त्राः १-१६ )

जगती । ( ३६९—४१५ ) गृत्समदः शौनकः ( आह्निरसः शौनहोत्रो मार्गवः ) ।

त्वमग्ने द्युमिस् त्वमांशुशुक्षणिस् त्वमद्भयस् त्वमश्मनस् परि ।	
त्वं वैनस्यस् त्वमोषधीभ्यस् त्वं नृणां नृपते जायसे शुचिः	३६९
तवाग्ने होत्रं तवं पोत्रमुत्विष्यं तवं नेष्ट्रं त्वमग्निर्दृतायतः ।	
तवं प्रशास्त्रं त्वमध्वरीयसि ब्रह्मा चासि गृहपतिश् च नो दमै	३७०
त्वमग्ने इन्द्रो वृषभः सतामसि त्वं विष्णुरुक्णायो नमस्यः ।	
त्वं ब्रह्मा रयिचिद् ब्रह्मणस्पते त्वं विधर्तः सचसे पुरंध्या ।	३७१
त्वमग्ने राजा वरुणो धृतव्रतस् त्वं मित्रो भवसि दुस्म ईह्यः ।	
त्वमर्थमा सत्पतिर्यस्य संभृजं त्वमंशो विदथे देव भाजयुः	३७२
त्वमग्ने त्वष्टा विघ्नते सुवीर्यं तव भावो मित्रमहः सजात्यम् ।	
त्वमांशुहेमा ररिपे स्वन्न्यं त्वं नुरां शर्धो असि पुरुवसुः	३७३
त्वमग्ने रुद्रो अर्हुरो महो दिवस् त्वं शर्धो मारुतं पृक्ष ईशिपे ।	
त्वं वातरुणैर्यासि शंगयस् त्वं पूषा विघ्नतः पांसि नु त्मना	३७४
त्वमग्ने द्रविणोदा अरंकुते त्वं देवः संविता रन्धा असि ।	
त्वं भगो नृपते वस्व ईशिपे त्वं पायुर्दमै यस् तेऽविघत्	३७५
त्वमग्ने दम् आ विदपतिं विशस् त्वां राजानं सुविदत्रमृज्जते ।	
त्वं विश्वानि स्वनीक पत्यसे त्वं सहस्राणि श्रुता दश प्रति	३७६
त्वमग्ने पितरमिष्टिभिर्नरस् त्वां भ्रात्राय श्रम्या तनुरुचम् ।	
त्वं पुत्रो भवसि यस् तेऽविघत् त्वं सखा सुशेवः पास्याधृषः	३७७
त्वमग्ने क्रमुराके नमस्यस् त्वं वार्जस्य क्षुमतो राय ईशिपे ।	
त्वं वि भ्रास्पनुं दक्षि द्रावने त्वं विशिर्भुरसि यजमातनिः	३७८
त्वमग्ने अदिदिदेव द्राशुपे त्वं होत्रा भारती वर्धसे गिरा ।	
त्वमिन्द्रो शतहिमासि दक्षमे त्वं वृत्रहा वसुपते सरस्वती	३७९
त्वमग्ने सुमृत उत्तमं वयस् तवं स्पार्है वर्ण आ मंदगि ध्रियः ।	
त्वं वार्जः प्रतरणो बृहन्नसि त्वं रयिर्वहुलो विश्वतस्पृथुः	३८०

त्वामग्न आदित्यास आस्यं । त्वां जिह्वां शुचयश् चक्रिरे कवे ।  
 त्वां रातिपाचो अध्वरेषु सन्धिरे त्वे देवा हविरदन्त्याहुतम् । ३८१  
 त्वे अग्ने विश्वे अमृतसो अद्रुह आसा देवा हविरदन्त्याहुतम्  
 त्वया मर्तासः स्पन्दन्त आसुति त्वं गर्भो वीरुषां जज्ञिषे शुचिः । ३८२  
 त्वं तान् त्सं च प्रति चासि मज्जना अग्ने सुजात प्र च देव रिच्यसे ।  
 पुक्षो यदत्र महिना वि ते भुवद् अनु द्यावापृथिवी रोदसी उभे ३८३  
 ये स्तोतृभ्यो गोअग्रामध्वपेशसम् अग्ने रातिमुपसृजन्ति सूरयः ।  
 अस्माञ्च तांश्च प्र हि नेपि वस्य आ बृहद् वदेम विदधे सुवीराः । ३८४

॥ ४६ ॥ ( ऋ० २ । २ । १-१३ )

यज्ञेन वर्धत जातवेदसम् अग्नि यजध्वं हविषा तना गिरा ।  
 समिधानं सुप्रयमं स्वर्णरं द्युक्षं होतारं वृजनेषु धूर्पदम् ३८५  
 अभि त्वा नक्तीरुपसो ववाशिरे अग्ने वृत्सं न स्वसरेषु धेनवः ।  
 दिव हवेदरुतिर्मानुषा युगा आक्षपो भासि पुरुनार संयतः ३८६  
 न देवा युधे रजसः सुदंसं दिवस्पृथिव्योररति न्यैरिरे ।  
 रथमिव वेद्यं शुक्रशोचिषम् अग्नि मित्रं न क्षितिषु प्रशंस्यम् ३८७  
 तमुक्षमाणं रजसि स्व आ दमे चन्द्रमिव सुरुचं ह्यार आ दधुः ।  
 पृथ्व्याः पतरं चितयन्तमक्षभिः पाथो न पायुं जनसी उभे अनु ३८८  
 स होता विश्वं परि भूत्वध्वरं तमु हव्यैर्मनुष क्रजते गिरा ।  
 हिरिशिप्रो वृधसानासु जध्वरद् द्यौर्न स्तृभिश् चितयद् रोदसी अनु ३८९  
 स नो रेवत् समिधानः स्वस्तये संददुस्वान् रयिमस्मासु दीदिहि ।  
 आ नः कृष्ण्य सुविताय रोदसी अग्ने हव्या मनुषो देव वीतये ३९०  
 दा नो अग्ने बृहतो दाः महसिणो दुरो न वाजं श्रुत्या अपा वृधि ।  
 प्राची द्यावापृथिवी ब्रह्मणा कृधि स्वर्णं शुक्रमुपसो वि दिद्युतः ३९१  
 म ईधान उपसो राम्या अनु स्वर्णं दीदेरूपेण भानुना ।  
 होत्रोभिरुभिर्मनुषः स्वध्वरो राजा विशामतिथिश् चारुणये ३९२

एवा नो अग्ने अमृतेषु पृथ्व्यं धीष् पीपाय बृहद्विषु मानुषा ।  
 दुहाना धेनुर्वृजनेषु कारवे त्मना अतिर्न पुरुषमिषणि  
 वयमग्ने अर्वता वा सुवीर्यं ब्रह्मणा वा चितयेमा जनाँ अति ।  
 अस्माकं धुम्रमधि पञ्च कृष्टिषु उच्चा स्पर्धुर्ण शुशुचीत दुष्टरम्  
 स नो बोधि सहस्य प्रशंस्यो यस्मिन् त्सुजाता इपर्यन्त सुरयः ।  
 यमग्ने यज्ञमुपयन्ति वाजिनो नित्यं तोके दीदिवांसं स्वे दमे  
 उभयांसो जातवेदः स्याम ते स्तोतारौ अग्ने सुरयश् च शर्मणि ।  
 वसवो रायः पुरुषन्द्रस्य भूयसः प्रजावतः स्वपत्यस्यं शग्धि नः  
 ये स्तोतृभ्यो० ( ३८४ )

३९३

३९४

३९५

३९६

॥ ४७ ॥ ( ऋ० २ । ८ । १-६ ) गायत्री, ४०२ अनुष्टुप् ।

वाजयन्निव न रथान् योगौ अग्रेरुपं स्तुहि । यज्ञस्तमस्य मीहुपः  
 यः सुनीयो ददागुपे अजुर्यो जरयन्नरि । चरुप्रतीक आहुतः  
 य उ श्रिया दमेष्वा द्रोपोपसिं प्रशस्यते । यस्य व्रतं न मीर्यते  
 आ यः स्वर्धुर्ण भानुना चित्रो मिमात्स्यर्चिषा । अज्ञानो अर्जरभि  
 अग्निमनु स्वराज्यम् अग्निमुकथानि वानृषुः । विश्वा अधि धियो दधे  
 अग्नेरिन्द्रस्य सोमस्य देवानामुतिभिर्ग्रेयम् । अरिप्यन्तः सचेमहि अभि प्याम पृतन्यतः

३९७

३९८

३९९

४००

४०१

४०२

॥ ४८ ॥ ( ऋ० २ । ९ । १-६ ) त्रिष्टुप् ।

नि होता होतृपदेने विदानस् त्वेपो दीदिवाँ अमदत् सुदर्शः ।  
 अदन्धव्रतप्रमतिर्षसिष्ठः सहस्रंभरः शुचिजिह्वो अग्निः  
 त्वं दूतस् त्वमु नः परस्पास् त्वं यस्य आ वृषम प्रणेता ।  
 अग्ने तोकस्यं नस् तने तनूनाम् अग्रयुच्छन् दीद्यद् बोधि गोपाः  
 विधेम ते परमे जन्मन्त्रमे विधेम स्तोमस्त्वरे सधस्यं ।  
 यस्माद् योनैरुदारिया यजे तं प्र त्वे हवीर्षि जुहुरे ममिद्वे  
 अग्ने यजस्व हविषा यजीयाश् छृष्टी देष्ममभि गृणीहि रायः ।  
 त्वं शसि रयिपती रयीणां त्वं शुक्रस्य वर्चमो मनोता

४०३

४०४

४०५

४०६

उभयं ते न क्षीयते वसव्यं दिवोदिवे जायमानस्य दस्म ।  
 कृधि धुमन्तं जरितारमग्ने कृधि पतिं स्वपत्यस्यं रायः ४०७  
 सैनानीकेन सुविदत्रो अस्मे यथा देवां आर्यजिष्ठः स्वस्ति ।  
 अदग्धो गोपा उत नः परस्पा अग्ने द्युमदुत रेवद् दिदीहि ४०८

॥ ४९ ॥ ( अ० २ । १० । १-६ )

जोहत्रो अग्निः प्रथमः पितेव इवस्पदे मनुषा यत् समिद्धः ।  
 श्रियं वमानो अमृतो विचेता मर्मजेन्यः श्रवस्वयः स वाजी ४०९  
 श्रूया अग्निश् चित्रभानुर्हवै मे विश्वाभिर्गोभिर्मृतो विचेताः ।  
 श्यावा रथं वहतो रोहिता वा उतारुणार्ह चक्रे विमृत्रः ४१०  
 उक्तानार्यामजनयन् त्सुपूतं श्ववदग्निः पुरुपेशासु गर्भः ।  
 शिरिणायां चिदकुना महोभिर् अपरीवृतो वसति प्रचेताः ४११  
 जिघर्म्यग्निं हविषा घृतेन प्रतिक्षियन्तं भुवनानि विश्वा ।  
 पृथुं तिरश्चा वयसा बृहन्तं व्यचिष्टमग्नै रभसं दृशानं ४१२  
 आ विश्वतः प्रत्यञ्चं जिघमि अरक्षसा मनसा तज्जुपेत ।  
 मर्यशीः स्पृहयद् वर्णो अग्निर् नाभिमृशे तन्मात्रं जश्नेराणः ४१३  
 ज्ञेया भागं संहसानो वरेण त्वादृतासो मनुवद् वंदेम ।  
 अर्ननमग्निं जुह्वा वचस्या मधुपृचं धनसा जोहवीमि ४१४

॥ ५० ॥ ( अ० २ । ४१ । १९ तृतीयः पादः ) गायत्री ।

अग्निं च हव्यवाहनम् ४१५

॥ ५१ ॥ ( अ० २ । ४ । १-२ ) ( ४१६-४४६ ) सोमाहुतिर्भागवः । त्रिष्टुप् ।

हुवे वः सुद्योत्मानं सुवृक्तिं विश्वामग्निमतिथिं सुश्रयसम् ।  
 मित्र इव यो दिधिषाग्यो भूद् देव आदिवे जने जातवेदाः ४१६  
 इमं विघन्तो अपां सघस्ये द्वितादधुर्मृगवो विश्वाइयोः ।  
 एष विश्वान्पुम्यस्तु भूमा देवानामग्निरतिर्जिराश्वः ४१७  
 अग्निं देवातो मानुषीषु विश्वे प्रियं धुः क्षेप्यन्तो न मित्रम् ।  
 त दीदयदश्वतीरुम्या आ दक्षाय्यो यो दास्वन्ते दम् आ ४१८

अस्य रुष्वा स्वस्येव पुष्टिः संदष्टिरस्य हियानस्य दक्षोः ।  
 वि यो भरिभ्रदोर्धधीषु जिह्वाम् अत्यो न रथ्यो दोषवीति वारान् ४१९  
 आ यन्मे अर्भवं वनदः परन्त उशिग्न्यो नार्मिमीत वर्णम् ।  
 स चित्रेण चिकिते रंसु मासा जुजुर्वा यो मुहुरा युवा भूत् ४२०  
 आ यो वना तातृपाणो न भाति वार्ण पथा रथ्येव स्वानीत् ।  
 कृष्णाध्वा तर्प् रुष्वश् चिकेत धौरिव स्मर्यमानो नभोभिः ४२१  
 स यो व्यस्थादुभि दक्षदुर्वी पशुर्नेति स्वयुरगोपाः ।  
 अभिः शोचिष्मो अतुसान्युष्णान् कृष्णव्यधिरस्वदयन् भूमं ४२२  
 नू ते पूर्वस्यार्चसो अधीतौ तृतीयं विदये मन्मं शंसि ।  
 अस्मे अग्ने संयद्वीरं बृहन्तं क्षुमन्तं वाजं स्वपत्यं रयि दाः ४२३  
 त्वया यथा गृत्समदासो अग्ने गुहा वन्वन्त उपरो अभि प्युः ।  
 सुवीरासो अभिमातिपाहः स्मत् सुरिभ्यो गृणते तद् वयो धाः ४२४

॥ ५२ ॥ ( ऋ० २ । ५ । १-८ ) । अनुष्टुप् ।

होताजनिष्ट चेतनः पिता पितृभ्य ऊतये ।  
 प्रयक्षजेन्यं वसुं शकेमं वाजिनो यमम् ४२५  
 आ यस्मिन् त्सप्त रुमयम् तता यज्ञस्य नेतरि ।  
 मनुष्यद् दैव्यमष्टमं पोता विश्वं तदिन्वति ४२६  
 दधन्वे वा यदीमनु वोचद् ब्रह्माणि वेरु तत् ।  
 परि विश्वानि काव्या नेमिश् चक्रमिवाभयत् ४२७  
 साकं हि शुर्विना शुर्विः प्रशास्ता क्रतुनाजनि ।  
 विद्वो अस्य वृता ध्रुवा वया इवानु रोहते ४२८  
 ता अस्य वर्णमायुवो नेष्टुः सचन्त धेनवः ।  
 कुवित् तिसृभ्य आ वरं स्वसारो या इदं ययुः ४२९  
 यदी मातुरुष स्वसा धृतं भरन्त्यस्थित ।  
 तासामध्वर्युरागतौ यवो वृष्टीर्न मोदते ४३०  
 स्वः स्वाय धारयमे कृणुतामुत्तिगृत्विजम् ।  
 स्तोमं यज्ञं चादरं वनेमा ररिमा वयम् ४३१

यथा विद्वो अरं कर्द् विश्वेभ्यो यजतेभ्यः ।

अयमग्ने त्वे अपि यं यज्ञं चक्रुमा वयम्

४३२

॥ ५३ ॥ ( ऋ० २ । ६ । १-८ ) गायत्री ।

इमां मे अग्ने समिधम्	इमामुपसर्द वनेः ।	इमा उ पु श्रुधी गिरः	४३३
अया ते अग्ने विधेम	ऊर्जो नपादश्वमिष्टे ।	एना सूक्तेन सुजात	४३४
तं त्वा गीर्भिर्गिर्विणसं	द्रविणस्युं द्रविणोदः ।	सपर्येम सपर्यनः	४३५
स बोधि सूरिर्मघवा	वसुपते वसुदावन् ।	युयोध्यस्मद् द्वेपांसि	४३६
स नो वृष्टिं दिवस्पति	स नो वाजमनर्वाणम् ।	स नः सहस्रिणीरिपः	४३७
ईळांनायावस्यवे	यविष्ठ दूत नो गिरा ।	यजिष्ठ होतुरा गंहि	४३८
अन्तर्हीम्न ईर्यसे	विद्वान् जन्मोभयां करो ।	दूतो जन्येव मित्र्यः	४३९
स विद्वो आ च पिप्रयो	यक्षि चिकित्वा आनुपक् ।	आ चास्मिन् त्सस्ति बर्हिषि	४४०

॥ ५४ ॥ ( ऋ० २ । ७ । १-६ )

श्रेष्ठं यविष्ठ भारत	अग्ने द्युमन्तमा भर ।	वसो पुरुस्पृहै रयिम्	४४१
मा नो अरातिरीशत	देवस्य मर्त्यस्य च ।	परि तस्या उत द्विपः	४४२
विश्वो उत त्वया वयं	धारा उद्वन्या इव ।	अति गाहेमहि द्विपः	४४३
शुचिः पावक वन्दो	अग्ने बृहद् वि रौचसे ।	त्वं द्युतोभिराहुतः	४४४
त्वं नो असि भारत	अग्ने वृशाभिरुक्षभिः ।	अष्टार्पदीभिराहुतः	४४५
ह्वन्नः सर्पिरासुतिः	प्रतो होता वरेण्यः ।	सहसस्पुत्रो अद्भुतः	४४६

॥ ५५ ॥ ( ऋग्वेदस्य तृतीय मण्डल ३, सूक्तं १, मन्त्रा १-२१ )

( ४४७-५७३ ) विद्वामित्रो गाथिन । त्रिष्टुप् ।

सोमस्य मा तवसं वक्ष्ये	वर्हि चकर्थ विदये यज्यै ।	
देवो अच्छा दीर्घद् युजे अद्रि	शमाये अग्ने त्वन् जुपस्व	४४७
प्राश्च यज्ञं चक्रुम वर्धेतां गीः	समिद्धिरधि नमसा दुवस्पन् ।	
दिवः शशासुविदया कवीनां	गृत्साय चित् तवसे गातुमीषुः	४४८
मयो दधे मेधिरः पूतर्दक्षो	दिवः सुवन्धुर्जनुषा पृथिन्याः ।	
अर्विन्दमु दर्शतमप्स्यन्तर	देवासो अभिमपसि स्वर्तृणाम्	४४९



अवर्धयन् त्सुभगं सप्त यद्वाहीः	श्वेतं जज्ञानमरूपं महित्वा ।	
शिशुं न जातमर्थाकरश्वा	देवासो अग्निं जनिमन् वपुष्यन्	४५०
शुक्रेभिरङ्गै रजं आततन्वान्	ऋतुं पुनानः क्रगिभिः पवित्रैः ।	
शोचिर्वसानः पर्यायुरपां	त्रियो मिमीते बृहतीरनूनाः	४५१
वज्राजा सीमनदतीरदन्धा	दिवो यद्वाहीरवसाना अनयाः ।	
सना अत्र युवतयः सयोनीर्	एकं गर्भं दधिरे मत्त वाणीः	४५२
स्तीर्णा अस्य संहतो विश्वरूपा	घृतस्य योनौ स्रवथे मधूनाम् ।	
अस्युरत्र धेनवः पिन्वमाना	मही दुस्मस्य मातरा समीची	४५३
यन्त्राणः धनो सहस्रो व्यद्यौद्	दधानः शुक्रा रभसा वर्षी ।	
धोतन्ति धारा मधुनो घृतस्य	वृषा यत्र वावृधे काव्येन	४५४
पितुश्चिद्वर्जनुपा विषेद्	व्यस्य धारा असृजद् वि धेनाः ।	
गुहा चरन्तं सखिभिः शिवेभिर्	दिवो यद्वाहिभिर्न गुहां बभूव	४५५
पितुश्च गर्भं जनितुश्च वज्रे	पूर्वोरेको अधयत् पीप्यानाः ।	
वृष्णो मपत्नी शुचये सवन्धू	उभे अस्मै मनुष्येभ्य नि पाहि	४५६
उरौ महौ अनिवाधे ववृध	आपो अग्निं यज्ञसः सं हि पूर्वीः ।	
ऋतस्य योनावशयद् दमना	जामीनामग्निरपस्वि स्वसृणाम्	४५७
अक्रो न वग्निः समिधे महीना	दिदृक्षेयः सुनवे भार्गवीकः ।	
उदुस्त्रिया जनिता यो जज्ञान	अपां गभो नृतमो यद्वा अग्निः	४५८
अपां गर्भं दर्शतमोर्षधीनां	वना जज्ञान सुभगा विरूपम् ।	
देवासंश्च चिन्मनसा सं हि जग्मुः	पनिष्ठं जातं त्वरसं दुवस्यन्	४५९
बृहन्त इद् मानवो भार्गवीकम्	अग्निं संचन्त विद्युतो न शुक्राः ।	
गृहेव वृद्धं सदैसि स्वे अन्तर	अपार ऊर्वे अमृतं दुहानाः	४६०
ईळे च त्वा यजमानो हविर्भिर्	ईळे सयित्वं सुमतिं निकामः ।	
देवैरपो मिमीहि सं जग्निरे	रक्षा च नो दम्येमिरनीकः	४६१
उपसेतारस् तव सुप्रणीते	अग्ने त्रिथानि घन्या दधानाः ।	
सुरेतसा श्रवसा तुजमाना	अभि प्याम पृतनापूरदेवान्	४६२

आ देवानामभवः केतुरग्ने मन्द्रो विश्वानि काव्यानि विद्वान् ।	
प्रति मर्तो अवासयो दमूना अनु देवान् रथिरो यासि सार्धन्	४६३
नि हुरोणे अमृतो मर्त्यानां राजा ससाद विदथानि सार्धन् ।	
घृतप्रतीक उर्विया व्यधौद् अग्निर्विश्वानि काव्यानि विद्वान्	४६४
आ नो गहि सख्येभिः शिवेभिर् महान् महीभिरुतिभिः सख्यन् ।	
अस्मे रथि बहूलं संतरुत्रं सुवाचै भागं यशसं कृषी नः	४६५
एता तै अग्ने जनिमा सनानि प्र पूर्वाय नृतनानि वोचम् ।	
महान्ति वृष्णे सर्वना कृतेमा जन्मजन्मन् निहितो जातवेदाः	४६६
जन्मजन्मन् निहितो जातवेदा विश्वामित्रेभिरिष्यते अजस्रः ।	
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्य अपि मन्त्रे सौमनसे स्याम	४६७
इमं यज्ञं सहसावन् त्वं नो देवत्रा धेहि सुक्रतो रराणः ।	
प्र यासि होतृर्बृहतीरिपो नो अग्ने महि द्रविणमा यजस्व	४६८
इक्षामग्ने पुरुदसं सनि गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।	
स्यान्नः सुनुस् तनयो विजावा अग्ने सा तै सुमतिर्भूत्वस्मे	४६९

॥ ५६ ॥ ( ऋ० ३।५। १-११ )

प्रत्यगिरूपसुश् चोर्कितानो ऽग्रेधि विप्रः पदुवीः कवीनाम् ।	
पृथुपाजा देवयद्विः समिद्धो ऽपु द्वारा तमसो बहिरावः	४७०
प्रेद्विप्रवोवृधे स्तोमेभिर् गीभिः स्तोतृणां नेमस्ये उक्थैः ।	
पूर्वीर्ऋतस्य संदृशश् चक्रानः सं दूतो अघौद्रुपसो विरोके	४७१
अघाग्यमिर्मानुपीपु विक्षु अपां गर्भो मित्र ऋतेन सार्धन् ।	
आ हर्षतो यजतः सान्वस्याद् अभूदु विप्रो हव्यो मतीनाम्	४७२
मित्रो अग्निर्मवति यत् समिद्धो मित्रो होता वरुणो जातवेदाः ।	
मित्रो अघ्वर्युर्ऋतिरो दमूना मित्रः सिन्धूनामुत पर्वतानाम्	४७३
पाति प्रियं रिपो अग्रं पदं वेः पाति युद्धश् चरणं धर्मस्य ।	
पाति नामा सुप्तशीर्षणमग्निः पाति देवानामुपमादमृष्वः	४७४

ऋभृश् चक्र ईदृषं चारु नाम	विधानि देवो वयुनानि विद्वान् ।	
ससस्य चर्म धृतवत् पदं वेस्	तदिदृशी रक्षत्यग्रपुच्छन्	४७५
आ योनिमग्निधृतवन्तमस्थात्	पृथुग्रगाणमुशन्तमुशानः ।	
दीर्घानः शुचिर्ऋष्यः पात्रकः	पुनःपुनर्मातरा नर्व्यसी कः	४७६
सद्यो जात ओषधीभिर्वचसे	यदी वर्धन्ति प्रस्वो धृतेन ।	
आर्ष इव प्रवता शुम्भमाना	उरूप्यदग्निः पित्रोरुपस्थे	४७७
उदु पुतः समिधा यद्वो अद्यौद्	वर्ष्मन् दिवो अग्नि नामा पृथिव्याः ।	
मित्रो अग्निरीड्यो मातरिश्वा	दूतो वक्षद् यजथाय देवान्	४७८
उदस्तम्मीत् समिधा नार्कमुष्वाडे	अग्निर्मवन्नुत्तमो रौचनानाम् ।	
यदी मृगुस्यः परि मातरिश्वा	गुहा सन्त हव्यवाहं समीधे	४७९
इत्थामग्ने० (४६९)		

॥ ५७ ॥ ( अ० ३ । ६ । १-११ )

प्र कारवो मनूना वच्यमाना	देवद्रीचीं नयत देवयन्तः ।	
दक्षिणावाद् वाजिनी प्राच्येति	हविर्मरन्त्यग्रये घृताचीं	४८०
आ रोदसी अपृणा जायमान	उत प्र रिक्था अघ नु प्रयज्यो ।	
दिवश् चिदमे महिना पृथिव्या	वच्यन्तां ते बह्वयः सप्तजिह्वाः	४८१
द्यौश् च त्वा पृथिवी यज्ञियांसो	नि होतारं सादयन्ते दर्माय ।	
यदी विशो मानुषीर्देव्यन्तीः	प्रयस्वतीरीकते शुक्रमर्चिः	४८२
महान् त्मघस्थे ध्रुव आ निरपतो	अन्तर्धात्रा मार्हिने हर्यमाणः ।	
आस्त्रे सपत्नी अजरे अमृक्ते	सवर्दुधे उरुगायस्य धेनु	४८३
प्रता ते अमे महतो महानि	तव कत्वा रोदमी आ ततन्ध ।	
त्वं दूतो अमत्रो जार्यमानस्	त्वं नेता वृषम चर्षणीनाम्	४८४
ऋतस्य वा केशिना योग्यामिर्	घृतस्नुवा रोहिता धुरि र्षिष्व ।	
अथा वह देवान् देव विश्वान्	स्वध्वरा कणुहि जातवेदः	४८५
दिवश् चिदा ते रुचयन्त रोका	उपो विमातीरु मांमि पूर्वाः ।	
अपो यदम उग्रघग् वनेषु	होतर्मन्त्रस्य पुनर्यन्त देवाः	४८६

उरौ वा ये अन्तरिक्षे मदन्ति दिवो वा ये रौचने सन्ति देवाः ।

ऊर्मा वा ये सुहर्वांसो यजत्रा आयेभिरे रथ्यो अग्रे अर्धाः ४८७

ऐभिरे सरथं याद्वर्वाङ् नानारथं वा विमवो ह्यथाः ।

पत्नीवतस् त्रिशतं त्रींश् च देवान् अनुष्वधमा वह मादयस्व ४८८\*

स होता यस्य रोदसी चिदुर्वी यज्यंजमभि वृधे गृणीतः ।

प्राची अध्वरेवं तस्यतुः सुमेके क्रतावरी क्रतजातस्य सत्ये ४८९

इळामे० (४६९)

॥ ५८ ॥ (ऋ० ३।७।१-११)

प्र य आरुः शितिपृष्ठस्य धासेर् आ मातरां विविशुः सप्त वाणीः ।

परिक्षितां पितरां सं चरेते प्र संस्राति दीर्घमायुः प्रयक्षे ४९०

दिवक्षंसो धेनवो वृष्णो अर्धा देवीरा तस्थौ मधुमद् वहन्तीः ।

क्रतस्य त्वा सदसि क्षेमयन्तं पर्येकां चरति वर्तुनि गौः ४९१

आ सीमरोहत् सुयमा भवन्तीः पतिंश् चिकित्वान् रयिविद् रयीणाम् ।

प्र नीलपृष्ठो अतसस्य धातेस् ता अवासयत् पुरुधप्रतीकः ४९२

महिं त्वाष्ट्रमूर्जयन्तीरजुषं स्तंभूयमानं वहतो वहन्ति ।

व्यङ्गेभिर्दिद्युतानः सधस्य एकांमिष रोदसी आ विवेश ४९३

जानन्ति वृष्णो अरुपस्य श्रेयम् उत ब्रध्नस्य शासने रणन्ति ।

दिवोरुचः सुरुचो रोचमाना इळा येषां गण्या माहिंता गीः ४९४

उतो पितृम्यां प्रनिदानु घोषं महो महज्यामनयन्त शूपम् ।

उक्षा ह यत्र परि धानमक्तोर् अनु स्वं धाम जरितुर्ववक्ष ४९५

अध्वर्युभिः पञ्चभिः सप्त त्रिभिः प्रियं रक्षन्ते निहितं पदं वेः ।

प्राञ्चीं मदन्त्युक्ष्णो अजुषा देवा देवानामनु हि व्रता गुः ४९६

दैव्या होतासं प्रथमा न्यृञ्जे सप्त पृक्षासः स्वधया मदन्ति ।

क्रतं गमन्त क्रतमिद् त आहुर् अनु व्रतं व्रतपा दीप्यानाः ४९७

पृषापयन्तं महे अत्याय पूर्वीर् वृष्णे चित्राय रश्मयः सुयामाः ।

दैवं होतमन्त्रतरंश् चिकित्वान् महो देवान् रोदमी एह वांक्षे ४९८

पुक्षप्रयजो द्रविणः सुवाचः सुकेतव उपसो रेवदृषुः ।  
 उतो चिदग्रे महिना पृथिच्याः कृतं चिदेनः सं महे दशस्य  
 इळाममे० (४६९)

४९९

॥ ५९ ॥ ( क्र० ३।९।१-९ ) वृद्धता, ५०८ त्रिष्टुप् ।

सखायस् त्वा वयमहे देवं मर्तास ऊतये ।  
 अपां नपातं सुभगं सुदीदिति सुप्रतर्तिमनेहसम्  
 कार्पमानो वृना त्वं यन्मातृरजगन्नपः ।

५००

न तत् ते अग्रे प्रमृपे निवर्तनं यद् दूरे सन्निहामवः

५०१

अर्तिं तृष्टं धवसिथ अथैव सुमना असि ।

प्रप्राण्ये यन्ति पर्यन्य आसते येषां सख्ये असि श्रितः

५०२

ईयिषांसमति सिधः शश्वतीरति सश्वतः ।

अन्वीमविन्दन् निचिरासो अद्रुहो अप्सु सिंहमिव श्रितम्

५०३

ससृवांसमिव त्मना अग्निमित्था तिरोहितम् ।

येन नयन् मातुरिश्वा परावर्ता देवेभ्यो मथितं परि

५०४

तं त्वा मर्ता अगृभ्णत देवेभ्यो हव्यवाहन ।

विश्वान् यद् युष्माँ अभिपासि मानुष तव क्रत्वा यविष्य

५०५

तद् भद्रं तव दुंसन पाकाय चिच्छदयति ।

त्वां यदग्रे पशवः सुमासते समिद्धमपिश्वरे

५०६

आ जुहोता स्वध्वरं शीरं पावकश्रोचिपम् ।

आशुं दूतमजिरं प्रत्तमीढ्यं श्रुयी देवं संपर्यत

५०७

त्रीर्णं शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिशच देवा नव चासपर्यन् ।

औक्षन् घृतरस्त्वेणन् बहिरस्मा आदिद्धोतारं न्यसादयन्त

५०८

॥ ६० ॥ ( क्र० ३।१०।१-९ ) उष्णिक् ।

त्वामग्रे मनीषिणः सम्राजं चर्षणीनाम् । देवं मर्तास इन्धते समध्वरे ५०९

त्वां यज्ञेष्वृत्विजम् अग्रे होतारमीढ्ये । गोपा क्रतुस्य दीदिहि स्वे दमे ५१०

स घा यस् ते ददाशति समिधा जातवेदमे । सो अग्रे घत्ते सुवीर्यं स पुंस्पति ५११

स केतुरध्वराणाम् अग्निर्देवेभिरा गमत् । अज्ञानः सप्त होतृभिर्हविष्मते ५१२  
 प्र होत्रे पुन्यं वचो अग्नये भरता बृहत् । विषां ज्योतीषि विभ्रते न वेधसे ५१३  
 अग्निं वर्धन्तु नो गिरो यतो जार्यत उक्थ्यः । महे वाजाय द्रविणाय दर्शतः ५१४  
 अग्ने यजिष्ठो अध्वरे देवान् देवयते यज । होता मन्द्रो वि राजस्यति सिधः ५१५  
 स नः पावक दीदिहि द्युमदस्मे सुवीर्यम् । मवां स्तोतृभ्यो अन्तमः स्वस्तये ५१६  
 तं त्वा विप्रां विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते । हव्यवाहममर्त्यं सहोवृधम् ५१७

॥ ६१ ॥ ( क्र० ३ । ११ । १-९ ) गायत्री ।

अग्निहोता पुरोहितो अध्वरस्य विचर्यणिः । स वेद यज्ञमानुषक् ५१८  
 स हव्यवाहमर्त्य उशिग् दूतश् चनोहितः । अग्निर्धिया समृण्वति ५१९  
 अग्निर्धिया स चैतति केतुर्यज्ञस्य पुन्यः । अर्थं ह्यस्य तरणिं ५२०  
 अग्निं सुनुं सनश्चतं सहसो जातवेदसम् । बर्हिं देवा अकृण्वत ५२१  
 अदाभ्यः पुरस्ता विश्वामग्निमानुषीणाम् । तूर्णां रथः सदा नवः ५२२  
 साह्वान् विश्वा अमियुजः क्रतुर्देवानाममृतः । अग्निस् तुविश्र्वस्तमः ५२३  
 अग्निं प्रयांसि वाहसा द्राक्षां अश्रोति मर्त्यैः । क्षयं पावकशोचिपः ५२४  
 परि विश्वानि सुधिता अमेरदयाम् मन्मभिः । विप्रांसो जातवेदसः ५२५  
 अग्ने विश्वानि वार्या वाजेषु सनिषामहे । त्वे देवास एरिरे ५२६

॥ ६२ ॥ ( क्र० ३ । २४ । १-५ ) ५२७ अनुष्टुप् ; ५२८-५३१ गायत्री ।

अग्ने सहस्र पृतना अभिमातीरपास्य । दुष्टस् तर्जरातीर् वचो धा यज्ञवाहसे ५२७  
 अग्ने इत्या समिध्यसे वीतिहोत्रो अमर्त्यः । जुषस्व ह नो अध्वरम् ५२८  
 अग्ने द्युमेन जागृवे सहसः हनवाहुत । एदं बर्हिः सन्दो मर्म ५२९  
 अग्ने विश्वेभिरग्निभिर् देवेर्मर्महया गिरः । यज्ञेषु य उ चापवः ५३०  
 अग्ने दा दाशुपे रयि वीरवन्तं परीणसम् । शिशीहि नः हनुमतः ५३१

॥ ६३ ॥ ( क्र० ३ । २५ । १-५ ) विराट् ।

अग्ने दिवः सुतुरसि प्रचेताम् तनां प्रथिन्या उत विश्ववेदाः । ५३२  
 ऋषेण देवां इह यज्ञा चिकित्वाः ५३२  
 अग्निः मनोति धीर्याणि विद्वान् त्सनोति वाजममृताप भपन् । ५३३  
 स नो देवां एह वंदा पुरुषो ५३३

अग्निर्धावापृथिवी विश्वजन्त्ये	आ भाति देवी अमृते अमूरः ।	
क्षयन् वाजैः पुरुश्चन्द्रो नमोभिः		५३४
अम इन्द्रश् च दाशुषो दुरोणे	सुतावतो यज्ञमिहोष यातम् ।	
अमर्धन्ता सोमपेयाय देवा		५३५
अग्ने अपां समिध्यसे दुरोणे	नित्यं सूनो सहसो जातवेदः ।	
सधस्थानि मह्यमान उती		५३६

॥ ६४ ॥ ( ऋ० ३ । २७ । १-१५ ) गायत्री ।

प्र वो वाजा अभिर्घवो	हविष्मन्तो घृताच्या । देवाजिगाति सुन्नयुः	५३७
ईळे अग्निं विपथितै	गिरा यज्ञस्य सार्धनम् । श्रुष्टीवान्न धितवानम्	५३८
अग्ने शक्रेम ते वयं	यमं देवस्य वाजिनः । अति द्वेयांसि तरेम	५३९
समिध्यमानो अध्वरेड्	अग्निः पाचक ईडथः । शोचिर्ष्कशस् तमीमहे	५४०
पृथुपाजा अमर्त्यो	घृतनिर्णिक् स्वाहुतः । अग्निर्यज्ञस्य हव्यवाद्	५४१
तं सुवाचो यतस्तुच	इत्या धिया यज्ञवन्तः । आ चक्रुरग्निमृतये	५४२
होता देवो अमर्त्यः	पुरस्तादिति मायया । विदधानि प्रचोदयन्	५४३
वाजी वाजेषु धीयते	अध्वरेषु प्र णीयते । विप्रो यज्ञस्य सार्धनः	५४४
धिया चक्रे वरेण्यो	भूतानां गर्भमा दधे । दक्षस्य पितरं तना	५४५
नि त्वा दधे वरेण्यं	दक्षस्येळा सहस्कृत । अग्ने सुदीतिमग्निजम्	५४६
अग्निं यन्तुरमन्तुरम्	ऋतस्य योगे वनुर्षः । विप्रा वाजैः समिन्धते	५४७
ऊजो नपातमध्वरे	दीदिव्यांसमुष धवि । अग्निमीळि कुचिकृतम्	५४८
ईळेन्यो नमस्यस्	तिरस् तमांसि दर्शतः । समग्निरिध्यते वृषा	५४९ #
वृषो अग्निः समिध्यते	अथो न देववाहनः । तं हविष्मन्त ईळते	५५० #
वृषणं त्वा वयं वृषन्	वृषणः समिधीमहि । अग्ने दीधतं बृहत्	५५१ #

॥ ६५ ॥ ( ऋ० ३ । २८ । १-६ )

५५२-५५३, ५५७ गायत्री, ५५४ उष्णिक्, ५५५ त्रिष्टुप्, ५५६ जगती ।

अग्ने जुपस्व नो हविः	पुरोळाशं जातवेदः । ग्रातःमावे धियावसो	५५२
पुरोळा अग्ने पचतस्	तुस्यं वा घा परिष्कृतः । तं जुपस्व यविष्ठय	५५३
अग्ने वीहि पुरोळागम्	आहुतं तिरोअक्षयम् । सहसः सुनुरस्यध्वरे हितः	५५४

माध्यंदिने सर्वने जातवेदः पुरोळार्शमिह कवे जुषस्य ।	
अग्ने यद्वस्य तव भागधेयं न प्र मिनन्ति विदथेषु धीराः	५५५
अग्ने तृतीये सर्वने हि कार्निपः पुरोळार्श सहसः स्रनवाहुतम् ।	
अथा देवेष्वध्वरं विपन्यया धा रत्नवन्तममृतेषु जामृविम्	५५६
अग्ने वृधान आहुतिं पुरोळार्श जातवेदः । जुषस्य तिरोअद्वयम्	५५७

॥ ६६ ॥ ( ऋ० ३ । २९ । १-१६ ) त्रिष्टुप्.

५५८, ५६१, ५६७, ५६९ अनुष्टुप्, ५६३, ५६८, ५७१, ५७२ जगती ।

अस्तीदमधिमन्यन्म अस्ति प्रजननं कृतम् ।	
एतां विश्वनीमा भर अग्नि मन्थाम पूर्वधा	५५८
अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भे इव सुधितो गर्भिणीषु ।	
द्विदेदिह ईडयो जागृवद्भिर् हविष्मद्भिर्मनुष्यैर्मिरभिः	५५९
उत्तानायामव भरा चिकित्वान् तस्यः प्रकीर्ता वृषणं जजान ।	
अरुपस्तूपो रुशदस्य पाज इळायास् पुत्रो वयुनेऽजनिष्ट	५६०
इळायास् त्वा पदे वयं नामा पृथिव्या अधि ।	
जातवेदो नि धीमहि अग्ने हव्याय वोहवे	५६१
मन्यता नरः क्विमद्वयन्तं प्रचेतसममृतं सुप्रतीकम् ।	
यद्वस्य केतुं प्रथमं पुरस्ताद् अग्नि नरो जनयता सुशेवम्	५६२
यदी मन्यन्ति वाहुभिर्वि रौचते अश्वो न वाज्यरूपो वनेष्वा ।	
चित्रो न यामन्नशिनोरनिवृतः परि वृणक्त्यश्मन्स् तृणा दहन्	५६३
जातो अग्नी रौचते चेकितानो वाजी विप्रः कविश्वस्तः सुदारुः ।	
यं देवास् ईडयं विश्वविदं हव्यवाहमदधुरध्वरोषु	५६४
सीदं होतुः स्व उं लोके चिकित्वान् त्सादया यज्ञं संकृतस्य योनौ ।	
देवावीर्देवान् हविषा यजासि अग्ने बृहद् यजमाने वयो धाः	५६५
कृणोत घृमं वृषणं सखायो अस्तेघन्त इतन् वाजमच्छ ।	
अयमग्निः पृतनायाद् सुवीरो येन देवासो असेहन्त दस्यून्	५६६



अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः ।	
तं जानन्नग्र आ सीद अथा नो वर्धया गिरः	५६७
तनूनपादुच्यते गर्भे आमुरो नराशंसो भवति यद् विजायते ।	
मातरिश्वा यदमिमीत मातरि धातस्य गर्भो अमवत् सरीमणि	५६८
सुनिर्मया निर्मथितः सुनिधा निहितः कृषिः ।	
अग्रे स्वध्वरा कृणु देवान् देवयते यज	५६९
अर्जो जनन्नमतुं मर्त्यो सो अस्मेमाणं तुरणिं वीळुज्जम्भम् ।	
दश स्वसारो अग्रवः समीचीः पुमांसं जातमभि सं रभन्ते	५७०
प्र सप्तहोता सनकादरोचत मातुरुपस्थे यदशौचदूर्धनि ।	
न नि मिपति सुरणो दिवेदिवे यदसुरस्य जठरादजायत	५७१
अभिवायुषो मरुतामिव प्रयाः प्रथमजा ब्रह्मणो विश्वमिद् विदुः ।	
धुन्नवद् ब्रह्म कुशिकाम एरिर एकएको दमे अग्नि ममीधिरे	५७२
यदुध त्वा प्रयति युजे अस्मिन् होतश् चिकित्वोऽवृणीमहीह ।	
ध्रुवमया ध्रुवमुताश्रमिष्ठाः प्रजानन् विद्रो उर्प याहि सोमम्	५७३

॥ ६७ ॥ ( अ० ३ । १३ । १-७ ) [ ५७४-५८७ ] ऋषभो वैश्वामित्रः । अनुष्टुप् ।

प्र वो देवायामये बर्हिष्ठमर्चास्मै ।	
गमद् देवेभिरा स नो यजिष्ठो बर्हिरा संदत्	५७४
श्रुतावा यस्य रोदसी दक्षं सचन्त ऊतयः ।	
हविष्मन्तस् तमीळते तं संनिप्यन्तोऽवसे	५७५
स यन्ता विप्र एषां स यज्ञानामथा हि पः ।	
अग्निं तं वो दुवस्यत दाता यो वर्निता मघम्	५७६
स नः शर्माणि वीतये अग्निर्यच्छतु शतमा ।	
यतो नः प्रुष्पावद् वसु दिवि क्षितिभ्यो अप्स्वा	५७७
द्वीद्विवांसमपूर्य चस्वीभिरस्य धीतिभिः ।	
भ्रकाणो अभिमिन्धते होतारं विपतिं विश्राम	५७८

उत नो ब्रह्मन्नविष उक्थेषु देवहृतमः ।

शं नः शोचा मुरुद्रुघो अग्ने सहस्रसार्तमः

५७९

नू नो रास्व सहस्रवत् तोकनत् पुष्टिमद् वसु ।

द्युमदग्ने सुवीर्यं वर्षिष्ठमनुपक्षितम्

५८०

॥ ६८ ॥ ( ऋ० ३ । १४ । १-७ ) त्रिष्टुप् ।

आ होता मन्द्रो विदधान्यस्थात् सत्यो यज्ञां कवितमः स वेधाः ।

विद्युदग्नेः सहस्रस्पृत्रो अग्निः शोचिष्केशः पृथिन्यां पार्जो अश्रेत्

५८१

अयामि ते नमउक्तिं जुपस्व ऋतावस् तुभ्यं चेतते सहस्वः ।

विद्रां आ वक्षि विदुषो नि पत्सि मध्य आ वहिरूतये यज्ञत्र

५८२

द्रवतां त उपसा वाजयन्ती अग्ने वार्तस्य पृथ्याभिरच्छ ।

यत् सीमज्जन्ति पूर्यं हविभिर् आ वन्धुरेव तस्थतुर्दुरोणे

५८३

मित्रश् च तुभ्यं वरुणः सहस्वो अग्ने विश्वे मरुतः सुमर्मर्चन् ।

यच्छोचिषा सहस्रस्पृत्र तिष्ठा अभि क्षितीः प्रथयन् त्सर्वो नृन्

५८४

वयं ते अद्य ररिमा हि कामम् उत्तानहस्ता नमसोपसद्य ।

यजिष्ठेन मनसा यक्षि देवान् अस्तेघता मन्मना विप्रो अग्ने

५८५

त्वद्वि पुत्र सहस्रो वि पूर्वीर् देवस्य यन्त्युतयो वि वाजाः ।

त्वं दैहि सहस्रिणं रयिं नो अद्रोघेण वचसा सत्यमग्ने

५८६

तुभ्यं दक्ष कविक्रतो यानीमा देव मर्तोसो अघुरे अकर्म ।

त्वं विश्वस्य सुरधेस्य बोधि सर्वं तदग्ने अमृत स्वदेह

५८७

॥ ६९ ॥ ( ऋ० ३ । १५ । १-७ ) ( ५८८-५९९ ) उत्कीलः कात्यः । त्रिष्टुप् ।

वि पार्जसा पृथुना शोशुचानो वार्धस्व द्विपो रक्षसो अमीवाः ।

सुशर्मणो बृहतः शर्मणि स्याम् अग्नेरहं सुहवस्य प्रणीतौ

५८८

त्वं नो अस्या उपसो व्युष्टौ त्वं हर उदिते बोधि गोपाः ।

जन्मेव नित्यं तनयं जुपस्व स्तोमं मे अग्ने तन्वां सुजात

५८९

त्वं नृचक्षा वृषमानु पूर्वीः कृष्णास्वग्ने अरुपो वि माहि ।

यसो नेपि च पर्षि चात्यहः कृधी नो राय उशिजो यविष्ठ

५९०

अपाहो अग्ने वृषभो दिदीदि	पुरो विश्वाः सौमगा संजिगीवान् ।	
यज्ञस्य नेता प्रथमस्य पायोर्	जातवेदो बृहतः सुप्रणीते	५९१
अच्छिद्रा शर्म जरितः पुरूणि	देवाँ अच्छा दीधानः सुमेधाः ।	
स्थो न सस्त्रिभिर्वक्षि वाजम्	अग्ने त्वं रोदसी नः सुमेकै	५९२
प्र पीपय वृषभ जित्वा वाजान्	अग्ने त्वं रोदसी नः सुदोधे ।	
देवेभिर्देव सुरुचा रुचानो	मा नो भर्तस्य दुर्मतिः परि छात्	५९३
इत्थामग्ने० ( ४६९ )		

॥ ७० ॥ ( अ० ३ । १६ । १-६ ) प्रगाथः ( = बृहती + सतोबृहती । )

अयमग्निः सुवीर्यस्य ईशे महः सौमगस्य ।	
राय ईशे स्वपत्यस्य गोमत् ईशे वृत्रहथानाम्	५९४
इमं नरो मरुतः सश्वता वृधं यस्मिन् रायः श्वेवृधासः ।	
अभि ये सन्ति पृतनासु दूह्यो विश्वाहा शत्रुमादशुः	५९५
स त्वं नो रायः शिशीहि मीढ्यो अग्ने सुवीर्यस्य ।	
तुर्विद्युन् वरिष्ठस्य प्रजावतो अनमीवस्य शुष्मिणः	५९६
चक्रियो विश्वा श्ववनाभि सांसहिश् चक्रिदेवेष्वा दुर्वः ।	
आ देवेषु यतत आ सुवीर्य आ शंस उत नृणाम्	५९७
मा नो अग्नेऽर्मतये मावीरतायै रीरघः ।	
मागोतायै सहसस्पुत्र मा निदे अप द्वेपांस्या कृधि	५९८
शुग्धि वाजस्य सुमग प्रजावतो अग्ने बृहतो अध्वरे ।	
स राया भूर्यसा सृज मयोद्युना तुर्विद्युश्च यशस्वता	५९९

॥ ७१ ॥ ( अ० ३ । १७ । १-५ ) ६००—६०१ कतो वैश्वामित्रः । त्रिष्टुप् ।

समिध्यमानः प्रथमानु धर्मा	ममकुभिरज्यते विश्ववारः ।	
शोचिर्क्लेशो घृतनिर्णिक् पावकः	सुयज्ञो अग्निर्यजथाय देवान्	६००
यथार्यज्ञो होत्रमग्ने पृथिन्या	यथा दिवो जातवेदश् चिकित्वान् ।	
एवानेन हविषा यक्षि देवान्	मनुष्वद् यज्ञं प्र तिरिममघ	६०१

त्रीण्यायुषि तव जातवेदस् तिस्र आजानीरुपसस् ते अग्ने ।  
 ताभिर्देवानामवो याक्षि विद्वान् अथा भव यजमानाय शं योः ६०२  
 अग्निं सुदीतिं सुदशं गृणन्तो नमस्यामस् त्वेदं जातवेदः ।  
 त्वां दूतमरुतिं हव्यवाहं देवा अकृण्वन्नमृतस्य नामिम् ६०३  
 यस् त्वद्वोता पूर्वी अग्ने यजीयान् द्विता च सत्ता स्रधया च शंभुः ।  
 तस्यानु धर्मं प्र यजा चिकित्वो अथा नो धा अधुरं देववीती ६०४

॥ ७२ ॥ ( ऋ० ३ । १८ । १-५ )

भवां नो अग्ने सुमना उपेतौ सखेव सख्ये पितरेव साधुः ।  
 पुरुद्वहो हि क्षितयो जनानां प्रति प्रतीचीर्दहतादरातीः ६०५  
 तपो ऽग्ने अन्तरो अमित्रान् तपा शंसमररुपः परस्य ।  
 तपो वसो चिकित्तानो अचित्तान् वि ते तिष्ठन्तामजरं अयासः ६०६  
 हुभेनाम इच्छमानो घृतेन जुहोमि हव्यं तरसे बलाय ।  
 यानुदीशे ब्रह्मणा वन्दमान इमां धियं शतसेयाय देवीम् ६०७  
 उच्छोचिषा सहसस्पृत्र स्तुतो बृहद् वयः शशमानेषु धेहि ।  
 रेवदग्ने विश्वामित्रेषु शं योर् मर्मज्मा ते तन्नां भूरि कृत्वः ६०८  
 कृधि रत्नं सुसनिर्धनानां स घेदग्ने भवसि यत् समिद्धः ।  
 स्तोतुर्दुरोणे सुभगस्य रेवत् सुग्रा कूरला दधिषे वर्षेपि ६०९

॥ ७३ ॥ ( ऋ० ३ । १९ । १-५ ) [ ६१०—६२६ ] गायत्री कौशिकः ।

अग्निं होतारं प्र वृणे मियेधे गृत्से क्वि विश्वविदुममूरम् ।  
 स नो यक्षद् देवताता यजीयान् राये वाजाय वनते मधानि ६१०  
 प्र ते अग्ने हविर्मतीमियमि अच्छा सुद्युम्नां रातिनीं धृताचीम् ।  
 प्रदक्षिणिद् देवतातिष्ठराणः मं रातिभिर्वसुभिर्वज्रमथेत् ६११  
 स तेजीपसा मर्नसा त्वोत उत शिक्ष स्वपत्यस्य शिक्षोः ।  
 अग्ने रायो नृतमस्य प्रभृतौ भूयाम ते सुष्टुतयश् च वसः ६१२  
 भूरीणि हि त्वे दधिरे अनीका अग्ने देवस्य यज्यवो जनांसः ।  
 न आ वद् देवतानि यविष्ठ शर्धो यदुद्य दिच्यं यजांसि ६१३

यत् त्वा होतारमनर्जन् प्रियेयं निपादयन्तो यजथाय देवाः ।  
स त्वं नो अग्रेऽवितेह घोधि अधि श्रवांसि धेहि नस् तनूषं ६१४

॥ ७४ ॥ ( ऋ० ३ । २० । २-४ )

अग्ने ग्री ते वाजिना ग्री पृथस्थां तिस्रस् ते जिह्वा ऋतजात पूर्वीः ।  
तिस्र उ ते तन्वां देववाताम् तामिर्नः पाहि गिरो अप्रयुच्छन् ६१५  
अग्ने भूरीणि तव जातवेदो देवं स्वधावोऽमृतस्य नाम ।  
याश् च माया मायिनां विश्वमिन् त्वे पूर्वीः सँदधुः पृथ्वन्धो ६१६  
अभिनेता भगं इव क्षितीनां देवीनां देव ऋतुपा ऋतावा ।  
स घृत्रहा सनयो विश्ववेदाः पर्पद् विश्वातिं दुरिता गृणन्तम् ६१७

॥ ७५ ॥ ( ऋ० ३ । २१ । १-५ )

६१८, ६२१ विष्टुप्, ६१९-२० अनुष्टुप्, ६२२ विराड्-रूपा सतो नृहती ।

इमं नो यज्ञममूर्तेषु धेहि इमा हव्या जातवेदो जुषस्व ।  
स्तोकानामग्ने मेदसो घृतस्य होतः प्राद्यान प्रथमो निषध ६१८  
घृतवन्तः पावक ते स्तोकाः श्रोतन्ति मेदसः ।  
स्वर्धर्मन् देववीतये श्रेष्ठं नो धेहि वार्यम् ६१९  
तुभ्यं स्तोका घृतयुतो अग्ने विप्राय सन्त्य ।  
ऋषिः श्रेष्ठः समिध्यसे यज्ञस्य प्राविता मेर ६२०  
तुभ्यं श्रोतन्त्यग्निगो शचीवः स्तोकांमो अग्ने मेदसो घृतस्य ।  
कविशस्तो बृहता भानुनागा हव्या जुषस्व मेधिर ६२१  
ओजिष्ठं ते मध्यतो मेदु उद्धृतं प्र ते वयं ददामहे ।  
श्रोतन्ति ते वमो स्तोका अधि त्वचि प्रति तान् देवयो विहि ६२२  
॥ ७६ ॥ ( ऋ० ३ । २२ । १-५ ) ६२६ पुरीष्याग्नयः । विष्टुप्, ६२६ अनुष्टुप् ।  
अयं सो अग्निर्यस्मिन् त्सोमं इन्द्रः सुतं दधे जठरं वावज्ञानः ।  
सहस्रिणं वाज्रमत्यं न ममि मसृवान् त्पन् त्स्तपसे जातवेदः ६२३  
अग्ने यत् ते द्विवि वर्चः पृथिव्यां यदोषधीष्वप्स्वा यज्ञय ।  
येनान्तरिक्षमुर्वीतुतन्यं त्वेषः म भानुरर्णवो नृचक्षाः ६२४

अग्ने दिवो अर्णमच्छा जिगासि अच्छा देवा ऊंचिपे धिष्ण्या ये ।

या रौचने परस्तात् सूर्यस्य याश्चावस्तादुपतिष्ठन्त आपः

६२५

पुरीष्यासो अग्रयः प्रावृणोभिः सजोषसः ।

जुपन्ता यज्ञमद्रुहो अनमीवा इषो महीः

६२६

इळामग्ने० ( ४६९ )

॥ ७७ ॥ ( ऋ० ३ । २३ । १-५ )

६२७-६३० देवश्रवा देववातश्च भारता । त्रिष्टुप्, ६२९ सतोवृहती ।

निर्मथितः सुधित आ सधस्थे युवा कविर्ध्वरस्य प्रणेता ।

जूर्यस्वभिरजरो वनेषु अत्रा दधे अमृतं जातवैदाः

६२७

अमन्थिष्ठां भारता रेवदग्निं देवश्रवा देववातः सुदक्षम् ।

अग्ने वि पश्य बृहताभि राया इषां नो नेता संवतादनु धून्

६२८

दश क्षिपः पूर्ण्य सीमजीजनन् तमुजातं मातृषु प्रियम् ।

अग्निं स्तुहि देववातं देवश्रवो यो जनानामसंद वशी

६२९

नि त्वा दधे वर आ पृथिव्या इळायास्पदे मुदिनत्वे अह्वाम् ।

ह्यप्रदत्त्यां मानुष आपयायां सरस्वत्यां रेवदग्ने दिदीहि

६३०

इळामग्ने० ( ४६९ )

॥ ७८ ॥ ( ऋग्वेदस्य चतुर्थे मण्डले , सूक्तं १, मंत्राः १, ६-२० )

[ ६३१-७५५ ] वामदेवो गौतमः । त्रिष्टुप्, ६३१ अष्टिः ।

त्वां क्षग्ने सदुमित् समन्यवो देवासो देवमरुति न्यैरिर इति कृत्वा न्यैरिरे ।

अमर्त्यं यजतु मर्त्येष्वाम देवमार्देवं जनतु प्रचेतसं विश्वमार्देवं जनतु प्रचेतसम् ६३१

अस्य श्रेष्ठा सुमर्गास संदग् देवस्य चित्रतमा मर्त्येषु ।

शुचिं घृतं न तप्तमघ्न्यायाः स्पार्हा देवस्य मंहनेव धेनोः

६३२

धिरस्य ता परमा सन्ति सत्या स्पार्हा देवस्य जनिमान्प्रेः ।

अनन्ते अन्तः परिवीत आगान् शुचिः नुक्रो अयो रोरुचानः

६३३

स द्रुतो विश्वेदमि वंष्टि मघा होता हिरण्यरथो रुरजिह्वः ।

रोहिदशो वपुष्पो जिभाता सदा रणवः पितृमतीव संगत

६३४

स चैतयन् मनुषो यज्ञवन्धुः	प्र तं म्हा रश्नया नयन्ति ।	
स क्षेत्स्यस्य दुर्यासु सार्धन्	देवो मर्तस्य सघ्नित्वमाप	६३५
स तू नो अग्निर्नयतु प्रजानन्	अच्छा रत्नं देवमक्तं यदस्य ।	
धिया यद् विश्वे अमृता अकृष्वन्	धौप्पिता जनिता सत्यमृधन्	६३६
स जायत प्रथमः पुस्त्यासु	महो बुधे रजसो अस्य योनौ ।	
अपादशीर्षा गृहमानो अन्ता	आयोयुवानो वृषभस्य नीळे	६३७
प्र शर्षे आर्ते प्रथमं विपन्याँ	ऋतस्य योना वृषभस्य नीळे ।	
स्पाहो युवा वपुष्यो विभावा	सप्त प्रियासोऽजनयन्त वृष्णै	६३८
अस्माकमग्रं पितरो मनुष्या	अभि प्र सेदुर्कृतमाशुपाणाः ।	
अश्मव्रजाः सुदुघा वृत्रे अन्तर	उदुस्ता आजन्मपसो हुवानाः	६३९
ते मर्मजत दह्वांसो अद्रि	तदेपामन्ये अभितो वि वोचन् ।	
पुष्येन्द्रासो अभि कारमर्चन्	विदन्त ज्योतिश् चक्रुषन्त धीभिः	६४०
ते गन्ध्यता मनसा हृध्रमुब्धं	गा येमानं परि पन्तमद्रिष ।	
हृहं नरो वचसा दैव्येन	व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः	६४१
ते मन्वत प्रथमं नाम धेनोस्	त्रिः सप्त मातुः परमाणि विन्दन् ।	
तज्जानतीरभ्यनूपत वा	आविर्भूवदरुणीर्यशसा गोः	६४२
नेशत् तमो दुधितं रोचत घौर	उद् देव्या उपसो भानुरर्त ।	
आ स्यौ बृहत्तस् तिष्ठदजो	ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन्	६४३
आदित् पश्चा बुबुधाना व्यख्यन्	आदिद् रत्नं धारयन्त शुभक्तम् ।	
विश्वे विश्वासु दुर्यासु देवा	मित्रं धिये वरुण सत्यमस्तु	६४४
अच्छा वोचेय शुशुचानमग्नि	होतारं विश्वमरसं यजिष्ठम् ।	
शुच्यूधो अवृणन्न गवाम्	अन्धो न पुतं परिपिक्तमंशोः	६४५
विश्वेपामदितिर्यज्ञियांनां	विश्वेपामतिथिर्मानुषाणाम् ।	
अग्निर्देवानामव आवृणानः	सुमृलीको भवतु जातवैदाः	६४६

॥ ७२ ॥ ( ऋ० ४ । २ । १-२० ) त्रिष्टुप् ।

यो मर्त्येष्वमृतं क्रतावा देवो देवेष्वरतिर्निधायि ।

होता यजिष्ठो म्हा शुच्यै हव्यैरभिर्मनुष ईर्य्यै

६४७

इह त्वं हनो सहसो नो अद्य जानो जातो उभयो अन्तरंगे ।	
दुत ईयसे युयुजान ऋष्य ऋजुमुष्कान् वृषणः शुक्रांश्च	६४८
अत्या वृधस्नू रोहिता घृतस्नू ऋतस्य मन्ये मर्नसा जविष्ठा ।	
अन्तरीयसे अरुपा युञ्जानो युष्माश् च देवान् विश आ च मर्तान्	६४९
अर्यमणं वरुणं मित्रमेवाम् इन्द्राविष्णू मरुतो अश्विनोत् ।	
स्वश्वो अग्रे सुरथः सुराधा एतं वह सहविषे जनाय	६५०
गोमौ अग्रेऽर्विमौ अश्वी यज्ञो नृवत्सत्ता सदमिदमृष्यः ।	
इळायाँ एपो असुर प्रजावान् दीर्घो रयिः पृथुगुभः सभावान्	६५१
यस् तं इध्म जभरत् सिग्निदानो मुर्धानं वा ततपते त्नाया ।	
भुवस् तस्य स्वतर्वाः पायुरंगे विश्वस्मात् सीमघायुत उरुष्य	६५२
यस् ते भरादङ्गियते चिदन्नं निशिर्षन् मन्द्रमर्तिथिमुदीरत् ।	
आ देगुरिनधते दुरोणे तस्मिन् रयिर्ध्रुवो अस्तु दास्यान्	६५३
यस् त्वा दोषा य उपसिं प्रशंसात् प्रियं वा त्वा कृण्वते हविष्मन् ।	
अश्वो न स्वे दम् आ हेम्यावान् तमंहसः पीपरो दाश्वांसम्	६५४
यस् तुर्म्यमग्रे अमृताय दाशुद् दुवस् त्वे कृण्वते यतस्तुक् ।	
न स राया शशमानो वि योपत् नैनमंहः परि वरदद्यायोः	६५५
यस्य त्वमग्रे अचुरं जुजोपो देवो मर्तस्य सुधितं रराणः ।	
प्रीतेदसद्वोत्रा सा यविष्ठ अताम् यस्य विधतो वृधासः	६५६
चित्तिमचित्तिं चिनवद् वि विद्वान् पृष्ठेवं वीता वृजिना च मर्तान्	
राये च नः स्वपत्याय देव दिर्तिं च रास्यादितिष्ठुरुष्य	६५७
कविं शशासुः कवयोऽदब्धा निघारयन्तो दुर्योस्वायोः ।	
अतस् त्वं दृश्यो अग्न एतान् पङ्क्तिः पश्येरद्भुताँ अर्य एवैः	६५८
त्वमग्रे वाधते सुप्रणीतिः सुतसोमाय विधते यविष्ठ ।	
रत्नं भर शशमानाय घृष्टे पृथु अन्द्रमवसे चर्षणिग्राः	६५९
अघां ह यद् वयमग्रे त्वाया पङ्क्तिर्हस्तेभिश् चक्रमा तन्मभिः ।	
रथं न व्रन्तो अर्पसा भुरिजोर् ऋतं यैष्ठुः सुधय आशुपाणाः	६६०



अधा मातुरुपसः सप्त विभ्रा जार्येमहि प्रथमा वेधसो नृन् ।  
दिवस्पुत्रा अङ्गिरसो भवेम अङ्गि रुजेम धनिर्न शुचन्तः ६६१

अधा यथा नः पितरः परासः प्रज्ञासौ अग्न क्रतुर्माशुपाणाः ।  
शुचीदयन् दीधितिमुक्थशासः क्षामा भिन्दन्तो अरुणीरप्य वन् ६६२

सुकर्माणः सुरुचो देवयन्तो अयो न देवा जनिमा धमन्तः ।  
शुचन्तो अग्निं ववृधन्त इन्द्रंस् ऊर्वं गव्यं परिपदन्तो अगमन् ६६३

आ यूथेवं क्षुमर्ति पश्यो अरुयद् देवानां यज् जनिमान्त्पुंग्र ।  
मतीनां चिदुर्वशीरिक्नुमन् वृधे चिदर्य उपरस्यायोः ६६४

अकर्म ते स्वपसो अभूम क्रतुमवसन्नूपसो विभातीः ।  
अनूनमग्निं पुरुषा सुध्वन्द्रं देवस्य मर्मजतश् चारु चक्षुः ६६५

एता ते अग्न उचथानि वेधो अगोचाम कवये ता जुपस्व ।  
उच्छोचस्व कृणुहि वस्यसो नो महो रायः पुरुवार प्र यन्धि ६६६

॥ ८० ॥ ( अ० ४ । ३ । २-१६ )

अयं योनिश् चक्रुमा यं वयं ते जायेव पत्य उग्रती सुवासाः ।  
अर्वाचीनः परिवीतो नि पीद इमा उ ते स्वपाक प्रतीचीः ६६७

आशुष्वते अहपिताय मन्म नृचक्षसे सुमृजीकार्य वेधः ।  
देवार्पं अस्तिममृताप शंस प्रावेव सोता मधुपुद् यमीके ६६८

त्वं चिन्नः शम्या अग्रे अस्या क्रतुस्य बोध्यतचित् स्वाधीः ।  
कदा ते उक्थ्या संघमाद्यानि कदा भवन्ति सुख्या गृहे ते ६६९

कथा ह तद् वरुणाय त्वमग्रे कथा दिवे गर्हसे कन्न आगः ।  
कथा मित्राय मीहुषे पृथिव्यै ब्रवः कर्दर्यम्णे कद् मगाय ६७०

कद्विष्णासु वृषसानो अग्रे कद् वाताय प्रतवसे शुभये ।  
परिज्मने नासत्याय धे ब्रवः कर्दग्रे रुद्राय नृमे ६७१

कपा महे पुष्टिमराय पुष्णे कद् रुद्राय मुर्मताय हविर्दे ।  
कद् विष्णवे उरुगापाय रेतो ब्रवः कर्दग्रे शरवे बृहत्यै ६७२

कथा शर्धीय मृस्तामृताय कथा सुरे वृहते पृच्छधर्मानः ।	
प्रति व्रवोऽदितये तुराय साधा दिवो जातवेदश् चिकित्त्वान्	६७३
ऋतेन ऋते निर्यतमीळ आ गोर आमा सचा मधुमत् पक्वमग्ने ।	
कृष्णा सती रुशता धासिनैषा जामयेण पर्यसा पीपाय	६७४
ऋतेन हि प्मा वृषभश् चिदुक्तः पुमो अग्निः पर्यसा पृच्छेन ।	
अस्पन्दमानो अचरद् वयोधा वृषा शुक्रं दुदुहे पृश्निरुधः	६७५
ऋतेनाद्वि व्यसन् भिदन्तः समङ्गिरसो नवन्त गोभिः ।	
शूनं नरः परि पदन्नुषासम् आविः स्वरभवज् जाते अग्नौ	६७६
ऋतेन देवीरमृता अमृक्ता अणोभिरापो मधुमङ्गिरग्ने ।	
वाजी न संगेषु प्रस्तुभानः प्र सदमिद् सवितवे दधन्युः	६७७
मा कस्य यक्षं सदमिदुरो गा मा घेयस्य प्रमिनतो मापेः ।	
मा भ्रातुरग्ने अनृजोर्ऋणं वेर मा सख्युर्दक्षं रिपोर्भुजेम	६७८
रक्षा णो अग्ने तव रक्षणेभी रारक्षणः सुमख प्रीणानः ।	
प्रति प्फुर वि रुज वीह्वहो जहि रक्षो महि चिद् बावृधानम्	६७९
एभिर्भैव सुमना अग्ने अकैर् इमान् त्स्पृश मन्मभिः शूर वाजान् ।	
उत ब्रह्माण्यङ्गिरो जुपस्य मं ते श्नुस्तिद्वेववाता जरेत	६८०
एता विश्वा विदुषे तुभ्यं वेधो नीथान्यग्ने निण्या वचांसि ।	
निवचना कुवये काव्यानि अशंसिषं मतिभिर्विप्र उक्थैः	६८१
॥ ८१ ॥ ( ऋ० ४ । ६ । १-११ )	
ऊर्ध्व ऊ पु णो अघ्वरस्य होतर् अग्ने तिष्ठ देवताता यजीयान् ।	
त्वं हि विश्वमभ्यसि मन्म प्र वेधसश् चित् तिरसि मनीषाम्	६८२
अमरो होता न्यसादि विक्षु अग्निरमन्द्रो विदयेषु प्रचेताः ।	
ऊर्ध्व मातुं सवितेवाग्नेन् मेतैव धूमं स्तभायदुप द्याम्	६८३
यता मुजूर्णा रातिनी घृताचीं प्रदक्षिणिद् देवतातिमुखाणः ।	
उदु स्वरुर्नवजा नाक्रः पथो अनक्ति सुर्धितः सुमेकः	६८४

स्तीर्णे वह्निर्पि समिधाने अग्रा ऊर्ध्वो अर्ध्व्यर्जुजुपाणो अस्यात् ।

पर्यग्निः पशुपा न होता त्रिविष्टयेति प्रदिवं उगणः ६८५

परि त्मना मितद्वरेति होता अग्निर्मन्द्रो मधुवचा क्रतावा ।

द्रवन्त्यस्य वाजिनो न शोका भयन्ते विश्वा शुर्वना यदभ्राट् ६८६

भद्रा ते अग्ने स्वर्नाक संदग्धं घोरस्य सतो विपुणस्य चारुः ।

न यत् ते शोचिस् तमसा वरन्त न ध्वस्मानस् तन्वीडे रेप आ धुः ६८७

न यस्य सातुर्जनितीरवारि न मातरापितरा नू चिदिष्टौ ।

अधा मित्रो न सुधितः पावको अग्निर्दीदाय मानुपीषु विभु ६८८

द्विर्य पञ्च जीजनन् त्संवसानाः स्वसारो अग्नि मानुपीषु विभु ।

उपधुर्धमय्योडे न दन्तं शुक्रं स्वासं परशुं न तिग्मम् ६८९

तव त्वे अग्ने हरितो घृतला रोहितास ऋज्वञ्चः स्वञ्चः ।

अरुपासो घृषण ऋजुमुष्का आ देवतातिमहन्त दुस्माः ६९०

ये ह त्वे ते सहमाना अयासस् त्वेपासो अग्ने अर्चयन् चरन्ति ।

इयेनासो न दुवसनासो अर्थं तुविष्वणसो मारुतं न शर्धः ६९१

अकारि ब्रह्म समिधानं तुभ्यं शंसात्युक्थं यजते व्यू धाः ।

होतारमग्निं मनुषो नि पेंदुर नमस्यन्त उशिजः शंसमायोः । ६९२

॥ ८२ ॥ ( ऋ० ४ । ७ । १-११ ) त्रिष्टुप्, ६९३ जगता, ६९४-९८ अनुष्टुप् ।

अयमिह प्रथमो धावि घातुभिर् होता यजिष्ठो अक्षरेप्वीड्यः ।

यमर्मवानो भृगवो विरुचुर् वनेषु चित्रं विम्वं विशेविशे ६९३

अग्ने कदा तं आनुपग् शुर्वद् देवस्य चेतनम् ।

अथा हि त्वां जगृभिरे मतीसो विक्षीड्यम् ६९४

क्रतावानं विचेतसं पश्यन्तो घामिव स्तर्भिः ।

विश्वेपामध्वराणां हस्कर्तारं दमेदमे ६९५

आशुं दूतं विवस्वतो विश्वा यश् चर्षणीरग्नि ।

आ जभुः केतमायवो भृगवाणं विशेविशे ६९६

तमीं होतारमानुषक् चिकित्वांसं नि पैदिरे ।	
रणं पापकशोचिषं यजिष्ठं सप्त धामभिः	६९७
तं शश्वतीषु मारुषु वन आ वीतमश्रितम् ।	
चित्रं सन्तं गुहां हितं सुवेदं कूचिदुर्थिनम्	६९८
ससस्य यद् विद्युता सस्मिन्नूधन् ऋतस्य धामन् रणयन्त देवाः ।	
महौं अप्रिर्नर्मसा रातहव्यो वेरध्वराय सदमिदृतावा	६९९
वेरध्वरस्य दूत्यानि विद्वान् उभे अन्ता रोदसी संचिकित्वान् ।	
दूत ईयसे प्रदिवं उराणो विदुष्टो दिव आरोधनानि	७००
कृष्णं त एम रुशतः पुरो भाश् चरिष्णुर्चिर्वपुषामिदेकम् ।	
यदप्रवीता दधते ह गर्भे सद्यश् चिज् जातो भवसीदु दूतः	७०१
सद्यो जातस्य ददृशानमोजो यदस्य धातो अनुगतिं शोचिः ।	
वृणक्ति तिग्मामतसेपु जिह्वां स्थिरा चिदन्ना दयते वि जम्भैः	७०२
तुषु यदन्ना तुषुणा वगक्षं तुषु दूतं कृणुते यद्वो अग्निः ।	
वार्तस्य मेळि संचते निजूर्धन् आशुं न वाजयते हिन्वे अवी	७०३

॥ ८३ ॥ ( ऋ० ४ । ८ । १-८ ) गायत्री ।

दूतं वो विश्वरेदसं हव्यवाहममर्त्यम् । यजिष्ठमृजसे गिरा	७०४
स हि वेदा उसुधितिं महौं आरोधनं दिवः । स देवा एह वक्षति	७०५
म वेद देव आनमं देवां ऋतायते दमे । दातिं प्रियाणि चिद् वसु	७०६
स होता सेदु दूत्यं चिकित्वां अन्तरीयते । विद्वौ आरोधनं दिवः	७०७
ते स्याम ये अग्र्ये ददाशुर्द्व्यदातिभिः । य ईं पुष्यन्त इन्धते	७०८
ते राया ते सुरीर्यैः ससवासो वि वृण्विरे । ये अग्ना दधिरे दुवः	७०९
अस्मे रायो दिवेदिवे सं चरन्त पुरुस्पृहः । अस्मे वाजास ईरताम्	७१०
स प्रिग्रश् चर्षणीनां शर्वसा मानुषाणाम् । अतिं क्षिप्रेवं विष्यति	७११

॥ ८४ ॥ ( ऋ० ४ । ९ । १-८ )

अग्रं मृष्ट महौं अग्नि य ईमा देव्युं जनम् । इयेर्य ग्रहिरासदम्	७१२
म मानुषीषु दूद्यमां पिबु प्राचीरमर्त्यः । दूतो विश्वेषां भवत्	७१३

स सद्य परि णीयते	होता मन्द्रो दिविष्टिषु । उत पोता नि पीदति	७१४
उत आ अग्निरध्वर	उतो गृहपतिर्दमे । उत ब्रह्मा नि पीदति	७१५
वेपि ह्यध्वरीयताम्	उपवृक्ता जनानाम् । हव्या च भारुपाणाम्	७१६
वेपीद् वस्य द्रुत्यं	यस्य जुजोषो अध्वरम् । हव्यं मर्तस्य वोहवे	७१७
अस्माकं जोष्यध्वरम्	अस्माकं यज्ञमद्विरः । अस्माकं ऋणुषी हवम्	७१८
परि ते दूळमो रथो	अस्माँ अश्रोतु विश्वतः । येन रक्षसि दाशुषः	७१९

॥ ८५ ॥ ( ऋ० ४ । १० । १-८ )

पदपांक्तिः, (७२३, ७२५, ७२६ उष्णिग्याः), ७२४ महापदपांक्तिः, ७२७ उष्णिक् ।

अग्ने तमघ	अश्वं न स्तोमैः	ऋतुं न मद्रं	हृदिस्पृशम् । ऋध्यामा तु ओहैः	७२०
अघ्ना हग्ने	ऋतोर्मद्रस्य	दक्षस्य साधोः । रथीर्ऋतस्य	वृहतो वृभूर्य	७२१
एभिर्नो अर्कर	भवा नो अवाह	स्वर्णे ज्योतिः । अग्ने विश्वेभिः	सुमना अनीकैः	७२२
आभिष्टे अघ	गीभिर्गुणन्तो	अग्ने दाशेम । प्र ते दिवो न	स्तनयन्ति शुष्माः	७२३
तव स्वादिष्ट	अग्ने संदष्टिर्	इदा चिदहं	इदा चिदुक्तोः । श्रिये रुक्मो न	रौचत उपाके ७२४
धुतं न पूतं	तनूरिषाः	शुचि हिरण्यम् । तत् ते रुक्मो न	रौचत स्वधावः	७२५
कृतं चिद्धि ध्मा	सर्नेभि, द्वेपो	अग्ने इनोपि मर्तात् । इत्या यजमानादृतावः		७२६
शिवा नः सख्या	सन्तु, आत्रा	अग्ने द्वेवेषु युष्मे । सा नो नाभिः	सदने सस्मिन्मृधन्	७२७

॥ ८६ ॥ ( ऋ० ४ । ११ । १-६ ) त्रिष्टुप् ।

मद्रं ते अग्ने सहसिन्ननीकम्	उपाक आ रौचते ध्वस्य ।	
रुशद् दृशे दृदशे नक्तया चिद्	अरुधितं इश आ रूपे अन्नम्	७२८
वि पाक्षग्ने गृणते मनीषां	खं वेपसा तुविजातु स्तवानः ।	
विश्वेभिर्न्यद् वावनः	शुक द्वेवैस् तर्त्रो रास्व सुमहो भूति मन्म	७२९
त्वदग्ने काव्या त्वन्मनीषास्	त्वदुक्था जायन्ते राघ्यानि ।	
त्वदेति द्रविणं वीरपेक्षा	इत्याधिषे दाशुपे मर्तीय	७३०
त्वद् वाजी बाजंमरो विहाया	अभिष्टिकृञ् जायते मृत्युष्मः ।	
त्वद् रपिद्वेवर्जतो मयोभुम्	त्वदाशुर्जुवाँ अग्ने अवी	७३१
त्वामग्ने प्रयमं देव्यन्तो	देवं मर्ता अमृत मन्द्राजिह्वम् ।	
द्वेपोपुतमा विवागन्ति धीभिर्	दमनं गृहपतिर्मरुम्	७३२

आरे अस्मदमतिमारे अहं आरे विश्वां दुर्मतिं यन्निपासि ।  
दोषा शिवः संहसः स्रनो अग्ने यं देव आ चित् सचसे स्वस्ति ७३३

॥ ८७ ॥ ( ऋ० ४ । १२ । १-६ )

यम् त्वामग्नं इनधते यत्सुक् त्रिस् ते अन्नं कृणवत् सस्मिन्नहन् ।  
स सु द्युन्नैरभ्यस्तु प्रसन्नत् तव कृत्वा जातवेदग् चिकित्वान् ७३४  
इध्मं यम् ते जभरच्छथमाणो महो अग्ने अनीकमा संपर्यन् ।  
स इधानः प्रतिं दोषामुपासं पुष्यन् रयिं संचते भन्नमित्रान् ७३५  
अग्निरीशि बृहतः क्षत्रियस्य अग्निर्वाजस्य परमस्य रायः ।  
दधाति रत्नं विधते यर्विष्टो व्यानुषद् मर्त्याय स्वधावान् ७३६  
यच्चिद्धि ते पुरुषत्रा यविष्ठ अचित्तिभिश् चक्रुमा कश्चिदागः ।  
कृधी पर्वस्माँ अदितेरनागान् व्येनांसि शिश्रथो विष्वगग्ने ७३७  
महग् चिदग्न एनसो अभीकं ऊर्वाद् देवानामुत मर्त्यानाम् ।  
मा ते सखायः सदमिद् रिपाम् यच्छां तोकाय तर्नयाय शं योः ७३८  
यथा ह त्यद वंसवो गौर्यं चित् प्रदि पितामसुञ्चता यजत्राः ।  
एवो प्वस्मन्मुञ्चता व्यंहः प्र तार्यग्ने प्रतुरं न आयुः ७३९

॥ ८८ ॥ ( ऋ० ४ । १३ । १-५ )

प्रत्यगिरुषमामग्रमख्यद् विभातीनां सुमना रत्नधेयम् ।  
शातमश्विना सुकृतो दुगेणम् उत् सूर्यो ज्योतिषा देव एति ७४०  
ऊर्ध्वं भानुं सेविता देवो अश्वेद् द्रुप्तं दर्विष्वद् गविषो न सत्त्वा ।  
अनु व्रतं वरुणो यन्ति मित्रो यत् सूर्यं दिव्यारोहयन्ति ७४१  
यं मीमकृण्वन् तमसि विष्ट्वे ध्रुवधेमा अनवस्पन्तो अर्थम् ।  
तं सूर्यं हरितः सप्त प्रह्वीः स्पशं विश्वस्य जगतो वहन्ति ७४२  
वर्हिष्ठमिर्हरन् यामि तन्तुम् अव्यययन्मितिं देव वस्म ।  
दर्विष्वतो रदमयः सूर्यस्य चमेवावापुस् तमो अप्सवृन्तः ७४३  
अनायतो अनिचदः कृधायं न्यहृत्तानोऽयं पयते न ।  
कया यानि स्वधया को ददर्श दिवः स्वग्मः ममृतः पानि नार्कम् ७४४

॥ ८९ ॥ ( ऋ० ४ । १४ । १-५ )

प्रत्यग्निरुपसो जातवेदा अस्यद् देवो रोचमाना महोभिः ।	
आ नासत्योरुगाया रथेन इमं यज्ञमुप नो यातमच्छ	७४५
ऊर्ध्वं केतुं संविता देवो अश्रेज् ज्योतिर्विश्वस्मै भुवनाय कृण्वन् ।	
आग्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं वि सूर्यो रश्मिभिर् चोर्कितानः	७४६
आवहन्त्यरुणीज्योतिषागान् मही चित्रा रश्मिभिर् चोर्किताना ।	
प्रबोधयन्ती सुविताय देवी उपा ईयते सुयुजा रथेन	७४७
आ वां वहिष्ठा इह ते वहन्तु रथा अश्वास उपमो व्युष्टौ ।	
इमे हि वां मधुपेयाय सोमो अस्मिन् यज्ञे वृषणा मादयेथाम्	७४८
अनायतो० (७४४)	

॥ ९० ॥ ( ऋ० ४ । १५ । १-६ ) गायत्री ।

अग्निर्होता नो अध्वरे वाजी सन् परि णीयते । देवो देवेषु यज्ञियः	७४९
परि त्रिविष्टयध्वरं यात्यग्नी रथीरिव । आ देवेषु प्रयो दधत्	७५०
परि वाजपतिः कविर् अग्निर्हव्यान्यक्रमीत् । दधद् रत्नानि दाशुपे	७५१
अयं यः सृज्ये पुरो दैववाते समिध्यते । द्युमौ अमित्रदम्भनः	७५२
अस्य घा वीर ईवतो अग्नेरीशीतु मर्त्यः । तिग्मजम्भस्य मीहुर्पः	७५३
तमर्वन्तं न सानसिम् अरुणं न दिवः त्रिशुम् । मर्मज्यन्ते दिवेदिवे	७५४

॥ ९१ ॥ ( ऋग्वेदस्य पञ्चमं मण्डलं, सूक्तं १, मन्त्राः १-१२ )

( ७५५-७६६ ) बुधगविष्टिरावायेयौ । त्रिष्टुप् ।

अवोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति घेनुमिवायतीमुपासम् ।	
यद्वा इव प्र ययामुजिहानाः प्र भानवः सिसृते नाकमच्छ	७५५
अवोधि होता यजथाय देवान् ऊर्ध्वो अग्निः सुमनाः प्रातरस्यात् ।	
समिद्धस्य रुशददशि पाजो महान् देवस् तमसा निरमोचि	७५६
यदीं गणस्य रशनामजीगः शुचिरक्ते शर्वभिर्गोभिर्गभिः ।	
आद् दक्षिणा युज्यते वाजयन्ती उत्तानामूर्ध्वो अधयज् जुह्वमिः	७५७

अग्निमच्छा देवयतां मनांसि चक्षुषीव सूर्यं सं चरन्ति ।	
यदीं सुवति उपसा विरूपे श्वेतो वाजी जायते अग्रे अह्वाम्	७५८
जनिष्ट हि जेन्यो अग्रे अह्वां हितो हितेर्गुरो वनेषु ।	
दमेदमे सप्त रत्ना दधानो अग्निर्होता नि पसादा यजीयान्	७५९
अग्निर्होता न्यसीदद् यजीयान् उपस्थे मातुः सुरमा उं लोके ।	
युवां कविः पुरुनिष्ठ क्रुतावां धर्ता कृष्टीनामुत मध्यं इन्द्रः	७६०
प्र णु त्वं विप्रमध्वरेषु साधुम् अग्निं होतारमीळते नमोभिः ।	
आ यस् ततान् रोदसी क्रुतेन नित्यं भृजन्ति वाजिनं घृतेन	७६१
मार्जाल्यो मृज्यते स्वे दमूनाः कविप्रशस्तो अतिथिः शिवो नः ।	
सहस्रमृद्नो वृषभस् तदौजा विश्वो अग्रे सहसा प्रास्यन्यान्	७६२
प्र सुद्यो अग्रे अत्येप्यन्यान् आविर्यस्मै चारुतमो वृभूर्य ।	
इलेन्यो वपुष्यो विभावां प्रियो विशामतिथिर्मानुषीणाम्	७६३
तुन्यं भरन्ति क्षितयो यविष्ठ वलिमग्रे अन्तित ओत दूरात् ।	
आ भन्दिष्ठस्य सुमतिं चिकिद्धि बृहत् तै अग्रे महि शर्म भद्रम्	७६४
आद्य रथं मानुमो मानुमन्तम् अग्रे तिष्ठ यजतेभिः समन्तम् ।	
विद्वान् पंथीनामूर्ध्वान्तरिक्षम् एह देवान् हरिरदाय वक्षि	७६५
अगोचाम कुवये मेघ्याय वचो वन्दारु वृषमाय वृष्णे ।	
गर्गिष्ठिरो नमसा स्तोममग्नौ दिवीन रुक्ममुकुण्डमश्वेत्	७६६

॥ ९२ ॥ ( ऋ० ५।२।१-१२ )

( ७६७-७७८ ) कुमार आत्रेयः, वृशो वा जानः, उमो वा, २, ९ वृशो जानः । त्रिष्टुप्, १२ शक्यती ।

कुमारं माता युवतिः ससृग्धं गुहां विमर्ति न ददाति पित्रे ।	
अनीकमस्य न मिनज्जनासः पुरः पश्यन्ति निहितमरुतौ	७६७
कमेतं त्वं युवते कुमारं पेपीं निमर्षि महिषी जजान ।	
पूर्वाहिं गर्भः शरदां वृवर्ध अपश्यं ज्ञातं यदद्यत माता	७६८
हिरण्यदन्तं शुचिर्वर्णमारात् क्षेत्रादपश्यमायुधा मिर्मानम् ।	
दृढानो अस्मा अमृतं विपृक्नु किं मामेनिन्द्राः कृणवन्ननुकथाः	७६९



क्षेत्रादपश्यं सनुतश् चरन्तं सुमद् युथं न पुरु शोभमानम् ।	
न ता अंगुष्ठचर्जनिए हि पः पलिङ्गीरिद् युवतयो भवन्ति	७७०
के मे मर्यकं वि र्वन्त गोभिर् न येषां गोपा अरणश् चिदासं ।	
य ई जगृध्रव ते संजन्तु आजाति पथ उप नश् चिकित्वान्	७७१
वसां राजानं वसति जनानाम् अरातयो नि दधुर्मर्त्येषु ।	
ब्रह्माण्यत्रैरव तं संजन्तु निन्दितारो निन्द्यासो भवन्तु	७७२
शुनश्चिच्छेपं निर्दितं सहस्राद् यूपादमुञ्चो अशमिए हि पः ।	
एवास्मर्दन्ने वि मुमुग्धि पाशान् होतेश् चिकित्व इह तू निपद्य	७७३
हृणीयमानो अप हि मदयेः प्र मे देवानां व्रतपा उवाच ।	
इन्द्रो विद्रो अनु हि त्वा चक्ष तेनाहमग्ने अर्तुशिष्ट आगाम्	७७४
वि ज्योतिषा बृहता भान्यभिर् आविर्विश्वानि कृणुते महित्वा ।	
मार्देवीर्मायाः संहते दुरेवाः शिशिंति शृङ्गे रक्षसे विनिक्षे	७७५
उत स्वानासो दिवि पन्त्रग्रेस् तिग्मायुधा रक्षसे हन्तवा उ ।	
मर्दे चिदस्य प्र रुजन्ति मामा न वरन्ते परिवाधो अर्देवीः	७७६
एतं ते स्तोमं तुविजात विप्रो रथं न धीरः स्वर्पा अतक्षम् ।	
यदीदमे प्रति त्वं देव हर्याः स्वर्वतीरुप एना जयेम	७७७
तुविशीर्वो वृषभो वावृधानो अश्वार्थः समजाति वेदः ।	
इतीममग्निमुमृता अवोचन् बर्हिष्मते मनवे शर्म यंसद्विष्मते मनवे शर्म यमत्	७७८

॥ ९३ ॥ ( अ० ५ । ३ । १-२, ४-१२ )

( ७७९-८१० ) वसुधुत आत्रेयः । ७७९ विराट्, ७८०-७८९ त्रिष्टुप् ।

त्वमग्ने वरुणो जायसे यत् त्वं मित्रो भवसि यत् समिद्रः ।	
त्वे विश्वे सहसस्पृश देवास् त्वमिन्द्रो दाशुषे मर्त्याय	७७९
त्वमर्यमा भवसि यत् कनीनां नाम स्वधावन् गुह्यं विमर्षि ।	
अज्जन्ति मित्रं सुधितं न गोभिर् यद् दंपती समनसा कुणोपि	७८०
तव श्रिया सुदृशो देव देवाः पुरु दर्शाना अमृतं सपन्त ।	
होतारमग्निं मनुषो नि पैदर दशस्यन्त उशिजः अंसमायोः	७८१

न त्वद्धोता पूर्वो अग्ने यजीयान् न कान्यैः पुरो अस्ति स्वधावः ।

विशश् च यस्या अतिथिर्भवासि स यज्ञेन वनवद् देव मर्तान् ७८२

वयमग्ने वनुयाम् त्वोता वसूयवो हविषा दुर्घ्यमानाः ।

वयं समये विदधेष्वाह्वौ वयं राया सहसस्पुत्र मर्तान् ७८३

यो न आगो अभ्येनो भराति अधीदधमघशंसे दधात ।

जही चिकित्वो अभिशस्तिमेताम् अग्ने यो नो मर्चयति ह्येन ७८४

त्वामस्या व्युपि देव पूर्वै दूतं कृष्णाना अयजन्त हव्यैः ।

संस्थे यदग्र ह्यसे रयीणां देवो मर्तैर्वसुभिरिध्यमानः ७८५

अथ स्पृधि पितरं योधि विद्वान् पुत्रो यस् तै सहसः स्रल ऊहे ।

कदा चिकित्वो अभि चक्षसे नो अग्ने कदा ऋतुचिद् यातयासे ७८६

भूरि नाम वन्दमानो दधाति पिता वसो यदि तज् जोषयासे ।

कुविद् देवस्य सहसा चकानः सुस्ममभिर्वनते वावृधानः ७८७

त्वमुङ्ग जरितारं यविष्ठ विश्वान्यग्ने दुरितार्ति पयि ।

स्तेना अदध्रन् रिपवो जनासो अज्ञातकेता वृजिना अभूवन् ७८८

इमे यामासस् त्वद्रिगभूवन् वसवे वा तदिदागो अवाचि ।

नाहायमग्निरभिश्स्तये नो न रीपते वावृधानः परा दात् ७८९

॥ ९४ ॥ ( श्रु० ५।४।१-११ ) त्रिष्टुप् ।

त्वामग्ने वसुपतिं वसूनाम् अभि प्र मन्दे अध्वरेषु राजन् ।

त्वया वाजं वाजयन्तो जयेम अभि प्याम पृतसुतीर्मर्त्योनाम् ७९०

हव्यवाल्गिरजरः पिता नो विभुर्विभावा सुदशीको अस्मे ।

सुगार्हपत्याः समिपो दिदीहि अस्मद्यक् सं मिमीहि श्रवांसि ७९१

विशां कविं विप्रति मानुषीणां शुचिं पावकं धृतपृष्ठमग्निम् ।

नि होतारं विश्वविदं दधिध्वे स देवेषु वनते चार्याणि ७९२

जुपस्वाम् इळ्या सजोषा यतमानो रुग्मभिः सूर्यस्य ।

जुपस्व नः समिधं जातवेद आ च देवान् हविरघाय वक्षि ७९३

जुष्टो दर्मना अतिथिर्दुरोण इमं नो यज्ञमुप याहि विद्वान् ।  
विश्वा अग्ने अभियुजो विहत्या शत्रूयतामा भ्राता भोजनानि ७९४

वृधेन दस्युं प्र हि चातयस्व वयः कृण्वानस् तन्वेडे स्वायै ।  
पिपिर्षि यत् सहसस्पृत्र देवान् तसो अग्ने पाहि नृतम् वाजं अस्मान् ७९५

वयं ते अग्न उक्थैर्विधेम वयं हव्यैः पावक भद्रशोचे ।  
अस्मे रयि विश्ववारं समिन्व अस्मे विश्वानि द्रविणानि धेहि ७९६

अस्माकमग्ने अध्वरं जुपस्व सहसः स्रनो त्रिषधस्थ हव्यम् ।  
वयं देवेषु सुकृतः स्याम शर्मेणा नस् त्रिवरूथेन पाहि ७९७

विश्वानि नो दुर्गहा जातवेदः सिन्धुं न नात्रा दुरिताति पपि ।  
अग्ने अत्रिवधमसा शृणानोडे अस्माकं बोध्यविता तनूनाम् ७९८

यस् त्वा हृदा कीरिणा मन्यमानो अमर्त्यं मर्त्यो जोह्वयिभि ।  
जातवेदो यशो अस्मासु धेहि प्रजाभिरग्ने अमृतत्वमश्याम् ८००

यस्मै त्वं सुकृते जातवेद उ लोकमग्ने कृणवः स्योनम् ।  
अश्विनं स पुत्रिणं वीरवन्तं गोमन्तं रयि नशते स्वस्ति ८००

॥ ९५ ॥ ( ऋ० ५ । ६ । १-१० ) पङ्क्तिः ।

अग्निं तं मन्ये यो वसुर् अस्तं यं यन्ति धेनवः ।  
अस्तमर्वन्त आशवो अस्तं नित्यासो वाजिन इषं स्तोतृभ्य आ भर ८०१

सो अग्नियो वसुर्गुणे सं यमायन्ति धेनवः ।  
समर्वन्तो रघुद्रुवः सं सुजातासः सूरय इषं स्तोतृभ्य आ भर ८०२

अग्निहि वाजिनं विशे ददाति विश्वचर्षणिः ।  
अग्नी राये स्वाशुवं स प्रीतो याति वार्यम् इषं स्तोतृभ्य आ भर ८०३

आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् ।  
यद्वा स्या ते पनीयसी समिद् दीदर्यति धावि इषं स्तोतृभ्य आ भर ८०४

आ ते अग्न क्रुचा हविः शुक्रस्य शोचिपस्पते ।  
सुश्रन्द्वा दस्म विश्वे हव्यवाट् तुभ्यं हवत इषं स्तोतृभ्य आ भर ८०५

प्रो त्ये अग्रयोऽग्निषु	विश्वं पुण्यन्ति धार्यम् ।	
ते हिंन्विरे त ईन्विरे	त इपण्यन्त्यानुपग्	इपं स्तोत्रम्य आ भर ८०६
तव त्ये अग्ने अर्चयो	महिं ब्राधन्त वाजिनः ।	
ये पत्वंभिः शफानां	ब्रजा भुरन्त गोनाम्	इपं स्तोत्रम्य आ भर ८०७
नवां नो अग्र आ भर	स्तोत्रम्यः सुखितीरिपः ।	
ते स्याम् य आनुचुस्	त्वादतासो दमेदम्	इपं स्तोत्रम्य आ भर ८०८
उभे सुश्चन्द्र सर्पिषो	दर्वां श्रीणीप आसनि ।	
उतो न उत् पुण्या	उक्थेपुं शवसस्पत	इपं स्तोत्रम्य आ भर ८०९
एवाँ अग्निमजुर्यमूर्	गीर्भिर्यज्ञेभिरानुपक् ।	
दधदुस्मे सुवीर्यम्	उत त्यदाश्चइव्यम्	इपं स्तोत्रम्य आ भर ८१०

॥ ९६ ॥ ( ऋ० ५।७।१-१० ) ( ८११-८२७ ) इप आत्रेयः । अनुष्टुप्, ८२० पञ्चकः ।

सखायः सं वः सम्यञ्चम्	इपं स्तोमं चाग्रये ।	
वर्षिष्ठाय क्षितीनाम्	ऊजो नष्टे सहस्वते	८११
कुत्रा चिद् यस्य समृतौ	रुष्वा नरो नृपदने ।	
अहेन्तश् चिद् यमिन्धते	संजनयन्ति जन्तवः	८१२
सं यद्विपो वनामहे	सं हव्या मानुषाणाम् ।	
उत द्युमस्य शवस	ऋतस्य रुदिमा ददे	८१३
सः स्मा कृणोति केतुमा	नक्तं चिद् दूर आ सुते ।	
पावको यद् वनस्पतीन्	ग्र स्मा मिनात्यजरः	८१४
अव स्म यस्य वेपणे	स्वेदं पृथिषु जुहति ।	
अमीमह स्वर्जेन्यं	भूमां पृष्ठेवं रुरुहुः	८१५
यं मर्त्यः पुरुस्पृहं	विदद् विश्वस्य धार्यसे ।	
ग्र स्वादनं पितूनाम्	अस्तैताति चिदायवे	८१६
स हि ष्मा धन्वाक्षितं	दाता न दात्या पशुः ।	
हिरिंश्मश्रुः शुचिदन्	ऋश्वरानिभृष्टविपिः	८१७

शुचिः प्म यस्मा अत्रिचत् प्र स्वर्धितीव रीयते ।

सुपूरघत माता क्राणा यदानशे भगम् ८१८

आ यस्ते सर्पिरासुते अग्ने शमस्ति धायसे ।

ऐषु द्युममुत श्रव आ चित्तं मर्त्येषु धाः ८१९

इति चिन् मन्युमग्निजस् त्वादातमा पशुं ददे ।

आदग्ने अर्पणतो अग्निः सासह्याद् दस्यून ह्यः सासह्यान्नु ८२०

॥ ९७ ॥ ( ऋ० ५ । ८ । १-७ ) जगती ।

त्वामग्ने ऋतायवः समीधिरे प्रत्नं प्रत्नासं ऊतये सहस्रकृत ।

पुरुष्वन्द्रं यजतं विश्वधायसं दग्धनसं गृहपतिं वरेण्यम् ८२१

त्वामग्ने अतिथिं पूज्यं विशः शोचिष्केनं गृहपतिं नि पैदिरे ।

बृहत्केतुं पुरुषं धनस्पतं सुशर्माणं स्ववसं जरद्विषम् ८२२

त्वामग्ने मानुषीरीकृते विशो होत्राविदं विविचिं रत्नधातमम् ।

गुहा सन्तं सुभग विश्वदर्शतं तुविष्णुणसं सुयजं घृतधिर्यम् ८२३

त्वामग्ने धर्णासि विश्वधा वयं गीर्भिर्गुणन्तो नमसोप सोदिम ।

स नो जुषस्व समिधानो अङ्गिरो देवो मर्त्यस्य यशसा सुदीतिभिः ८२४

त्वमग्ने पुरुषो विशेविशे वयो दधासि प्रत्नया पुरुष्टुत ।

पुरुष्यन्ता सहसा वि राजसि त्विषिः सा ते तित्विषाणस्य नाध्वे ८२५

त्वामग्ने समिधानं यविष्य देवा दुतं चक्रिरे हव्यवाहनम् ।

उरुजपसं घृतयोनिमाहुतं त्वेपं चक्षुर्दधिरे चोदयन्मति ८२६

त्वामग्ने प्रदिव आहुतं घृतैः सुम्रायवः सुप्रमिघा समीधिरे ।

स वावधान ओषधीभिरुक्षितोऽभि जयासि पार्थिवा वि तिष्ठसे ८२७

॥ ९८ ॥ ( ऋ० ५ । ९ । १-७ )

( ८२८-८४१ ) गय आत्रेयः । अनुष्टुप् । ८३२; ८३३ पदाक्तिः ।

त्वामग्ने हविष्मन्तो देवं मर्तास ईकृते ।

मन्ये त्वा जातवेदसं स हव्या वक्ष्यानुपक् ८२८

अग्निर्होता दास्वतुः क्षयस्य वृक्तवर्हिषः ।

सं यज्ञासुश् चरन्ति यं सं वाजासः श्रवस्यवः ८२९

उत स्म यं शिशुं यथा नवं जनिष्टारणी ।	
धर्तारं मानुषीणां विशामग्निं स्वधूरम्	८३०
उत स्म दुर्गभीयसे पुत्रो न ह्यार्याणाम् ।	
पुरू यो दग्धासि वना अग्रे पशुर्न यवसे	८३१
अघं स्म यस्पार्चयः सम्यक् संयन्ति धूमिनः ।	
यदीमहं प्रितो दिवि उप ध्मातेव धमति शिशीति ध्मातरीं यथा	८३२
तद्वाहमग्नं ऊतिभिर् मित्रस्य च प्रशस्तिभिः ।	
द्वेपोयुतो न दुरिता तुर्याम मर्त्यानाम्	८३३
तं नो अग्रे अभी नरो रयिं सहस्र आ भर ।	
स क्षेपयत् स पोषयद् भवद् वाजस्य सातय उतैधि पृत्सु नो वृधे	८३४

॥ ९९ ॥ ( ऋ० ५। १०। १-७ ) अनुष्टुप्. ८३८, ८४१ पङ्क्तिः ।

अग्नं ओजिष्ठमा भर द्युन्नमस्मभ्यमग्निगो ।	
प्र नो राया परीणसा रत्ति वाजाय पन्थाम्	८३५
त्वं नो अग्रे अद्भुतं कृत्वा दक्षस्य मंहना ।	
त्ये असुर्यो मारुहत् क्राणा मित्रो न यज्ञियः	८३६
त्वं नो अग्न एषां गयं पुष्टिं च वर्धय ।	
ये स्तोमेभिः प्र सूरयो नरो मघान्यान्शुः	८३७
ये अग्रे चन्द्र ते गिरः शुम्भन्त्यश्वराधसः ।	
शुष्मेभिः शुष्मिणो नरो दिवश्चिद् येषां बृहत् सुकीर्तिर्बोधति त्मना	८३८
तव त्ये अग्रे अर्चयो भ्राजन्तो यन्ति धृष्णुया ।	
परिज्मानो न विद्युतः स्वानो रयो न वाजशुः	८३९
न नो अग्न ऊतये सवाधसश्च रातये ।	
अस्माकोसश्च सूरयो विश्वा आशोस् तरीषणि	८४०
त्वं नो अग्रे अङ्गिरः स्तुतः स्तवान् आ भर ।	
होतृभिश्चामहं रयिं स्तोतृभ्यः स्तवसे च न उतैधि पृत्सु नो वृधे	८४१

॥ १०० ॥ ( ऋ० ५ । ११ । १-६ ) ( ८४२-८६५ ) सुतमर आत्रेयः । जगती ।

जनस्य गोपा रजनिष्ट जागृविर् अग्निः सुदर्शः सुविताय नव्यसे ।  
घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा धुमद् वि माति भरतेस्युः शुचिः ८४२  
यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहितम् अग्निं नरस् त्रिपक्षस्थे समीधिरे ।  
इन्द्रेण देवैः सरथं स वहिषि सीदन्निं होता यजथाय सुकृतुः ८४३  
असंमृद्यो जायसे मात्रोः शुचिर् मन्द्रः कविरुदतिष्ठो विवस्वतः ।  
घृतेन त्वावर्धयन्नम आहुत धूमस् तै केतुरमवद् दिवि श्रितः ८४४  
अग्निर्नो यज्ञस्य वेतु साधुया अग्निं नरो वि भरन्ते गृहेगृहे ।  
अग्निर्दूतो अभवद्व्यवाहनो अग्निं वृणाना वृणते कविकृतम् ८४५  
तुभ्येदमग्ने मधुमत्तमं वचस् तुभ्यं मनीषा इयमस्तु शं हुदे ।  
त्वां गिरः सिन्धुमिषावनीर्षहीर् आ वृणन्ति शर्वसा वर्धयन्ति च ८४६  
त्वामग्ने अङ्गिरसो गुहा हितम् अन्वविन्दञ्छिथियाणं वनेवने ।  
स जायसे मध्यमानः सहो महत् त्वामाहुः सहसस्पुत्रमङ्गिरः ८४७

॥ १०१ ॥ ( ऋ० ५ । १२ । १-६ ) त्रिष्टुप् ।

प्राग्रये बृहते यज्ञियाय ऋतस्य वृष्णे असुराय मन्म ।  
घृतं न यज्ञ आस्येऽं सुपृतं गिरं भरे वृषभार्य प्रतीचीम् ८४८  
ऋतं चिकित्व ऋतमिच् चिकिद्धि ऋतस्य धारा अर्जु तन्धि पूर्वीः ।  
नाहं यातुं सहसा न द्वयेन ऋतं संपाम्यरुषस्य वृष्णः ८४९  
कया नो अग्न ऋतयन्नृतेन श्रवो नवेदा उचर्यस्य नव्यः ।  
वेदां मे देव ऋतुपा ऋतुनां नाहं पतिं सनितुरस्य रायः ८५०  
के तै अग्ने रिपवे वर्धनासः के पायवः सनिपन्त धुमन्तः ।  
के धासिमग्ने अनृतस्य पान्ति क आसतो वर्चसः सन्ति गोपाः ८५१  
सखायस् ते विपुणा अग्न एते शिवास् सन्तो अशिवा अभूवन् ।  
अर्घ्यत स्वयमेते वचोभिर् ऋजूयते वृजिनानि ब्रुवन्तः ८५२  
यस् तै अग्ने नमसा यज्ञमीदं ऋतं स पात्यरुषस्य वृष्णः ।  
तस्य क्षयः पुथुरा साधुरेतु प्रसर्षाणस्य नहुषस्य शेषः ८५३

॥ १०२ ॥ ( ऋ० ५ । १३ । १-६ ) गायत्री ।

अर्चन्तस् त्वा हवामहे	अर्चन्तः समिधीमहि	। अग्रे अर्चन्त उतये	८५४
अग्नेः स्तोमं मनामहे	सिधमद्य दिविस्पृशः	। देवस्य द्राविणस्यवः	८५५
अग्निर्जुषत नो गिरो	होता यो मानुषेष्वा	। स यक्षद् दैव्यं जनम्	८५६
त्वमग्ने सप्रथा असि	जुष्टो होता वरेण्यः	। त्वया यज्ञं वि तन्वते	८५७
त्वमग्ने वाजसातमं	विप्रां वर्धन्ति सुष्टुतम्	। स नो रास्व सुवीर्यम्	८५८
अग्ने नेमिराँ इव	देवाँस् त्वं परिभूरसि	। आ राधश् चित्रमृजसे	८५९

॥ १०३ ॥ ( ऋ० ५ । १४ । १-६ )

अग्निं स्तोमेन बोधय	समिधानो अमर्त्यम् ।	हव्या देवेषु नो दधत्	८६०
तमध्वरेष्वीलते	देवं मर्ता अमर्त्यम् ।	यजिष्ठं मानुषे जने	८६१
तं हि शश्वन्त ईळते	स्रुचा देवं धृतश्रुता ।	अग्निं हव्याय वोहवे	८६२
अग्निर्जातो अरोचत	मन् दस्पून् ज्योतिषा तमः ।	अविन्दद् गा अपः स्वः	८६३
अग्निमीलेन्यं कृधि	धृतष्टं सपर्यत ।	वेतुं मे शृणवद्ववम्	८६४
अग्निं धृतेन वावृधुः	स्तोमैर्भिर्विश्वर्चपणिम् ।	स्वाधीर्भिर्वचस्युभिः	८६५

॥ १०४ ॥ ( ऋ० ५ । १५ । १-५ ) ( ८६६-८७० ) धरुण आह्निरसः । त्रिष्टुप् ।

प्र वेधसे कवये वेद्याय	गिरं भरे यशसे पून्यार्य ।		
धृतप्रसक्तो असुरः सुशेवो	रायो धर्ता धरुणो वस्रो अग्निः		८६६
ऋतेन ऋतं धरुणं धारयन्त	यज्ञस्य ज्ञाके परमे व्योमन् ।		
दिवो धर्मेन् धरुणं सेदुपो नृम्	जातैरजातां अग्नि ये ननक्षुः		८६७
अंहोयुर्वस् तन्वस् तन्वते वि	वयो महद् दुष्टं पून्यार्य ।		
स संवतो नवजातस् ततुर्थात्	सिंहं न क्रुद्धमभितः परिं पुः		८६८
मातेव यद् भरसे पप्रथानो	जनं जनं धारयसे चक्षसे च ।		
वयोवयो जरसे यद् दर्शानः	परि त्मना त्रिपुरुषो जिगासि		८६९
यानो नु ते शर्वसस्यात्वन्तम्	उरुं दोषं धरुणं देव रायः ।		
पदं न तायुर्गुहा दर्शानो	महो राये चितयश्च त्रिमस्यः		८७०



॥ १०५ ॥ ( क्र० ५ । १६ । १-५ ) [ ८७१-८८० ] पूरुषत्रेयः । अनुष्टुप्, ८७५ पङ्क्तिः ।

बृहद् वयो हि भानवे ऽर्चा देवायाग्रये ।  
यं मित्रं न प्रशस्तिमिर् मतीसो दधिरे पुरः ८७१

स हि द्युभिर्जनानां होता दक्षस्य ब्राह्मोः ।  
वि हव्यमभिरानुपग् भगो न धारमृण्वति ८७२

अस्य स्तोमे मघोर्नः सख्ये बृद्धशौचिपः ।  
विश्वा यस्मिन् तुविष्वणि समये शुष्ममादधुः ८७३

अथा ह्यप्र एपां सुवीर्यस्य मंहना ।  
तमिद् यहं न रोदसी परि श्रवो बभूवतुः ८७४

न न एहि वार्यम् अग्ने गृणान आ भर ।  
ये वयं ये च सूरयः स्वस्ति धामहे सचा उत्तैर्वि पृतसु नो वृधे ८७५

॥ १०६ ॥ ( क्र० ५ । १७ । १-५ ) अनुष्टुप्, ८८० पङ्क्तिः ।

आ यज्ञैर्देव मर्त्यं इत्या तव्यांसमूतये ।  
अग्निं कृते स्वध्वरे पूरुर्जीतावसे ८७६

अस्य हि स्वयंशस्तर आसा विधर्मन् मन्यसे ।  
तं नार्कं चित्रशौचिपं मन्द्रं पुरो मनीषया ८७७

अस्य वासा उ अर्चिषा य आयुक्त तुजा गिरा ।  
दिवो न यस्य रेतसा बृहच्छोचन्त्यर्चयः ८७८

अस्य क्रत्वा विचेतसो दुस्मस्य वसु रथ आ ।  
अथा विश्वासु हव्यो ऽग्निर्विष्णु प्र शस्यते ८७९

न न इद्धि वार्यम् आसा संचन्त सूरयः ।  
ऊर्जो नपादुमिष्टये पाहि शग्धि स्वस्तय उत्तैर्वि पृतसु नो वृधे ८८०

॥ १०७ ॥ ( क्र० ५ । १८ । १-५ )

[ ८८१-८८५ ] द्वितो मृकवादा आत्रेयः । अनुष्टुप्, ८८५ पङ्क्तिः ।

प्रातरग्निः पुरुषियो विश्वः स्तवेतातिथिः ।  
विश्वानि यो अमर्त्यो हव्या मर्तेषु रण्यति ८८१

द्वितीयं मृक्तवाहसे	स्वस्य दक्षस्य मंहना ।	
इन्द्रं स धत्त आनुपक्	स्तोता चित् ते अमर्त्य	८८२
तं वो दीर्घायुशोचिपं	गिरा हुवे मघोनाम् ।	
अरिष्टो येषां रथो	व्यश्वदावन् नीयते	८८३
चित्रा वा येषु दीर्घतिर	आसन्नकथा पान्ति ये ।	
स्तीर्णं वहिः स्वर्णरे	श्रवांसि दधिरे परि	८८४
ये मे पञ्चाशतं ददुर्	अश्वानां सधस्तुति ।	
घुमदमे महि श्रवां	बृहत् कृधि मघोनां नृवदंसुत नृणाम्	८८५

॥ १०८ ॥ ( क्र० ५। १९। १-५ )

[ ८८६—८९० ] यमिरात्रेय । ८८६-८८७ गायत्री, ८८८-८८९ अनुष्टुप्, ८९० विराड् रुपा ।  
 अभ्यवस्थाः प्र जायन्ते प्र वध्वेर्वधिश् चिकेत । उपस्थे मातुर्वि चष्टे ८८६  
 जुहुरे वि चितयन्तो ऽनिमिपं नृम्णं पान्ति । आ दृह्नां पुरं विविशुः ८८७  
 आ श्वेत्रेयस्य जन्तवो घुमद् वर्धन्त कृष्टयः ।  
 निष्कग्रीवो बृहदुक्थ एना मघ्वा न वाजयुः ८८८  
 प्रियं दुग्धं न काम्यम् अजामि जाम्योः सचा ।  
 घर्मो न वाजजठुरो ऽदब्धुः शश्वतो दभः ८८९  
 नीळन् नो रजम् आ ध्रुवः सं भस्मना वायुना वेविदानः ।  
 ता अस्य सन् ध्रुवजो न तिग्माः सुसंशिता वृक्षयो वक्षणेस्थाः ८९०

॥ १०९ ॥ ( क्र० ५। २०। १-४ ) [ ८९१-८९४ ] प्रयस्वन्त आत्रेयाः । अनुष्टुप्, ८९४ पङ्क्तिः ।

यमंघ्रे वाजसातम्	त्वं चिन् मन्यसे रयिम् ।	
तं नो गीभिः श्रवाय्यै	देवत्रा पनया युजम्	८९१
ये अग्ने नेरयन्ति ते	बृद्धा उग्रस्य शर्वसः ।	
अप द्वेपो अप ह्वरो	ऽन्यव्रतस्य सधिरे	८९२
होतारं त्वा वृणीमहे	ऽग्ने दक्षस्य सार्धनम् ।	
यज्ञेर्षु पूर्य गिरा	प्रयस्वन्तो हवामहे	८९३
इत्या यथा त ऊतये	सहसावन् दिवेदिवे ।	
राय श्रुताय मुव्रतो	गोभिः प्याम सधुमादो वीरैः स्याम सधुमादः	८९४

॥ ११० ॥ ( ऋ० ५ । २१ । १-४ ) [ ८९५-८९८ ] सप्त आग्नेयः । अनुष्टुप्, ८९८ पङ्क्तिः ।

मनुष्वत् त्वा नि धीमहि मनुष्वत् समिधीमहि । अग्ने मनुष्वर्दङ्गिरो देवान् देवयते यज ८९५  
 त्वं हि मारुपे जने ऽग्ने सुप्रीत इष्यमे । सुर्वस् त्वा यन्त्यानुपक् सुजात सर्पिरासुते ८९६  
 त्वां विश्वे सजोषसो देवासो दूतर्मक्रत । सपर्यन्तम् त्वा कवे यज्ञेषु देवमीकृते ८९७  
 देवं वो देवयज्यया अग्निमीकीतु मर्त्यैः ।  
 समिद्धः शुक्र दीदिहि क्रतुस्य योनिमासदः सप्तस्य योनिमासदः ८९८

॥ १११ ॥ ( ऋ० ५ । २२ । १-४ ) [ ८९९-९०२ ] विश्वसामा आग्नेयः । अनुष्टुप्, ९०२ पङ्क्तिः ।

प्र विश्वसामन्नग्निवद् अर्ची पावकशोचिषे । यो अर्ध्वरेष्वीदयो होता मन्द्रतमो विशि ८९९  
 न्युमि जातवेदसं दर्घाता देवमृत्विजम् । प्र यज्ञ एत्वानुपग् अद्या देवव्यचस्तमः ९००  
 चिकित्विन् मनसं त्वा देवं मर्तोस ऊतये । वरेण्यस्य तेऽवस इयानासो अमन्महि ९०१  
 अग्ने चिकिद्वयस्य न इदं वचः सहस्य ।  
 तं त्वा सुशिप्र दंपते स्तोमैर्वर्धन्त्यत्रयो गीभिः शुम्भन्त्यत्रयः ९०२

॥ ११२ ॥ ( ऋ० ५ । २३ । १-४ ) [ ९०३-९०६ ] धुम्नो विदयचर्पणिराग्नेयः । अनुष्टुप्, ९०६ पङ्क्तिः ।

अग्ने सहन्तमा मर धुम्नस्य ग्रासहा रयिम् । विश्वा यश् चर्पणीरग्नि आइसा वार्जेषु मामहत् ९०३  
 तमग्ने पृतनापहं रयिं सहस्व आ मर । त्वं हि सत्यो अद्भुतो दाता वार्जस्य गोमतः ९०४  
 विश्वे हि त्वा सजोषसो जनसो वृत्तवर्हिषः । होतां सर्वसु प्रियं व्यपन्ति वार्या पुरु ९०५  
 स हि प्मा विश्वचर्पणिर् अभिमाति सहो द्रुधे ।  
 अग्र एषु क्षयेष्वा रेवन् नः शुक्र दीदिहि धुमन् पावक दीदिहि ९०६

॥ ११३ ॥ ( ऋ० ५ । २४ । १-४ )

[ ९०७-९१० ] यन्धुः सुयन्धुः धृतयन्धुर्विप्रयन्धुश्च क्रमेण गोपायना लोपायना वा । छिपदा विगद ।

अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो मवा वरुध्यः ९०७  
 वसुर्ध्रिर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि धुमचमं रयिं दाः ९०८  
 स नो वोधि श्रुधी हवम् उरुप्या णो अघायतः संमस्मात् ९०९  
 तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुमार्थं नूनमीमहे सखिम्यः ९१०

॥ ११४ ॥ ( ऋ० ५ । २५ । १-२ ) [ ९११-९२७ ] वस्यव आग्नेयाः । अनुष्टुप् ।

अच्छा वो अग्निमवसे देवं गांसि स नो वसुः ।  
 रासत् पुत्र ऋषूणाम् क्रतागं पर्यति द्विपः ९११

स हि सत्यो यं पूर्वं चिद् देवासंश्चिद् यमीधिरे ।	
होतारं मन्द्रजिह्वमित् सुदीतिभिर्विभार्वसुम्	११२
स नो धीतो वरिष्ठया श्रेष्ठया च सुमत्या ।	
अग्रे रायो दिदीहि नः सुवृक्तिभिर्वरेण्य	११३
अग्निदेवेषु राजति अग्निर्मतेष्वाविशन् ।	
अग्निनीं हव्यवाहनो ऽग्निं धीभिः संपर्यत	११४
अग्निस् तुविश्रवस्तमं तुविब्रह्माणमुत्तमम् ।	
अतूर्तं श्रावयत् पतिं पुत्रं ददाति दाशुषे	११५
अग्निर्देदाति सत्पतिं सासाह यो युष्ठा नृभिः ।	
अग्निरत्यं रघुष्यदं जेतारमपराजितम्	११६
यद् बाहिष्ठं तदुग्रये बृहदर्चं विभावसो ।	
महिषीव त्वद् रायिस् त्वद् वाजा उदीरते	११७
तव द्युमन्तो अर्चयो ग्रावेवोऽपते बृहत् ।	
उतो ते तन्यतुर्यथा स्वानो अर्तं त्मना दिवः	११८
एवो अग्निं वसूयवः सहसानं ववन्दिम ।	
स नो विश्वा अति द्विषः पर्पन्नावेव सुकृतुः	११९

॥ ११५ ॥ ( ऋ० ५ । २६ । १-८ ) गायत्री ।

अग्रे पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया । आ देवान् वक्षि यक्षि च	१२०
तं त्वा घृतस्त्रवीमहे चित्रभानो स्वर्दृशम् । देवाँ आ वीतये वह	१२१
वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तं समिधीमहि । अग्रे बृहन्तमच्चरे	१२२
अग्रे विश्वेभिरा गहि देवेभिर्हव्यदातये । होतारं त्वा वृषीमहे	१२३
यजमानाय सुन्वत आग्रे सुवीर्यं वह । देवैरा संसि बर्हिषि	१२४
समिधानः सहस्रजिद् अग्रे धर्मणि पुष्यसि । देवानो दूत उक्थ्यः	१२५
न्यः प्रि जातवेदसं होत्रवाहं यरिष्ठम् । दधाता देवमुत्विजम्	१२६
प्र यज्ञ णत्वानुपग् अथा देवव्यचस्तमः । स्तृणीत बर्हिरासदे	१२७

॥ ११६ ॥ ( ऋ० ५ । २७ । १-५ )

[ १२८-१३२ ] व्यरुणस्त्रैवृष्णः, त्रसदस्युः पौरुकुत्सः, अश्वमेधश्च भारताः राजानः ( अग्निर्मां  
इति केचित् ) । त्रिष्टुप्, १३१-१३२ अनुष्टुप् ।

अनस्वन्ता सत्पतिर्मांमहे मे गात्रा चेतिष्ठो असुरो मुधोनः ।  
त्रैवृष्णो अग्ने दुशर्मिः सहस्रैर् वैश्वानर व्यरुणश् चिकेत १२८  
यो मे शता च विंशति च गोनां हरीं च युक्ता सुधुरा ददाति ।  
वैश्वानर सुष्टुतो वावृधानो अग्ने यच्छ व्यरुणाय शर्म १२९  
एवा तै अग्ने सुमतिं चक्रानो नविष्ठाय नवमं त्रसदस्युः ।  
यो मे गिरिस् तुविजातस्य पूर्वार् युक्तेनाभि व्यरुणो गुणार्ति १३०  
यो म इति प्रयोचति अश्वमेधाय मुरये ।  
ददद्वा सुनि यते ददन्मेधामृतायते १३१  
यस्य मां परुषाः शतम् उद्धर्यन्त्युक्षणः ।  
अश्वमेधस्य दानाः सोमा इव ज्योतिरः १३२

॥ ११७ ॥ ( ऋ० ५ । २८ । १-६ )

१३३-१३८ ] विश्वयारात्रेयी । १३३, १३५ त्रिष्टुप्, १३४ जगती, १३६ अनुष्टुप्, १३७-१३८ गायत्री ।

समिद्धो अग्निर्दिवि शोचिरश्रेत् प्रत्यङ्मुपसंष्टुर्विया वि मांति ।  
एति प्राचीं विश्ववारा नमोभिर् देवा ईळोना हविषो धृताचीं १३३  
समिध्यमानो अमृतस्य राजसि हविष् कृष्वन्तं सचसे स्वस्तये ।  
विश्वं स धत्ते द्रविणं यमिन्वसि आतिथ्यमग्ने नि च धत्त इत् पुरः १३४  
अग्ने शर्धं महते सारमगाय तव घुम्रान्युत्तमानि सन्तु ।  
सं जास्पत्यं सुयममा कृणुष्व शत्रूयतामभि तिष्ठा महांसि १३५  
समिद्धस्य प्रमहसो अग्ने वन्दे तव श्रियम् ।  
वृषभो घुम्रवो अग्निं सर्माध्वेर्विध्यसे १३६  
समिद्धो अग आहुत देवान् यक्षि स्वध्वर । त्वं हि हव्यवाळमि १३७  
आ जुहोता दुवस्पत अग्निं प्रपत्यध्वरे । वृणीष्वं हव्यवाहनम् १३८

॥ ११८ ॥ ( अग्न्येदस्य पष्ठं मण्डलं, सूक्तं १, मन्त्राः १-१६ )

[ ९३९ १०९० ] भरद्वाजो वार्हस्पत्यः । त्रिष्टुप् ।

त्वं ह्यग्ने प्रथमो मनोता अस्या धियो अमवो दस्म होता ।	
त्वं सीं वृषन्नकृणोर्दुष्टरीतु सहो विश्वस्मै सहसे सहर्घ्य	९३९
अधा होता न्यसीदो यजीयान् इळस्पद इपयन्नीद्वः सन् ।	
तं त्वा नरः प्रथमं देवयन्तों महो राये चितर्यन्तो अनु गमन्	९४०
वृतेष्व यन्तं बहुभिर्वसव्यैर्दुस् त्वे रयि जागृतांसो अनु गमन् ।	
रुशन्तमग्निं दर्शतं बृहन्तं वृषान्तं विश्वहा दीदृवांसम्	९४१
पदं देवस्य नमसा व्यन्तः श्रवस्यवः श्रवं आपन्नमृक्त्वम् ।	
नामानि चिद् दधिरे यज्ञियानि भद्रायां ते रणयन्तु संदृष्टौ	९४२
त्वां वर्धन्ति क्षितयः पृथिव्यां त्वां रायं उमयांसो जनानाम् ।	
त्वं ज्ञाता तरणे चेत्यौ भूः पिता माता सद्मिन्मातृपाणाम्	९४३
सपर्येण्यः स प्रियो विश्वभिर् होता मन्द्रो नि पसादा यजीयान् ।	
तं त्वा वयं दम् आ दीदृवांसम् उर्य जुवाधो नमसा सदेम	९४४
तं त्वा वयं सुध्योऽहं नव्यमग्ने सुम्रायव ईमहे देवयन्तः ।	
त्वं विशो अनयो दीर्घानो दिवो अग्ने बृहता रश्चनेन	९४५
विशां क्विं विशपतिं शश्वतीनां नितोशनं वृषभं चर्पणीनाम् ।	
प्रेतीपणिमिपर्यन्तं पावकं राजन्तमग्निं यजतं रयीणाम्	९४६
सो अग्र ईजे शशमे च मतो यस्त आनदं समिधा हव्यदातिम् ।	
य आहुतिं परि वद्रा नमोभिर विश्वेत् स वामा दधते त्वोतः	९४७
अस्मा उ ते महि महे विधेम नमोभिरग्ने समिधोत हव्यैः ।	
वेदीं स्रनो सहसो गीर्भिरुक्थैर् आ तं भद्रायां सुमतौ यतेम	९४८
आ यस् तवन्त्य रोदसी वि मासा श्रवोमिथ श्रवस्योस् तरुनः ।	
बृहद्विर्वाजैः स्थिरेभिरस्मे रेवद्विरेभ्यो वितुरं वि माहि	९४९
नृषद वंसो सद्मिर्देहास्मे भूरिं तोकाय तनयाय पथः ।	
पूर्वीरिपो बृहतीरारेअधा अस्मे मद्रा सौश्रवसानि सन्तु	९५०

पुरुष्यग्रे पुरुषा त्वाया वसुनि राजन् वसुतां ते अद्याम् ।

पुरुणि हि त्वे पुरुवार सन्ति अग्रे वसुं विधत्ते राजानि त्वे

९५१

॥ ११९ ॥ ( ऋ० ६ । २ । १-११ ) अनुष्टुप्. ९६२ शकरी ।

त्वं हि क्षैतवद् यशो ऽग्रे मित्रो न पत्यसे । त्वं विचर्षणे श्रवो वसो पुष्टिं न पुंष्यसि ९५२  
 त्वां हि पर्मा चर्षणयो यज्ञेभिर्गीर्भिरीकते । त्वां वाजी यात्यवृको रजस्तुर्विश्चर्षणिः ९५३  
 सजोपस् त्वा दिवो नरो यज्ञस्य केतुर्मिन्धते । यद्द स्य मानुषो जनः सुभ्रायुर्जुहे अंध्वरे ९५४  
 ऋधन् यस् तं सुदानये धिया मर्तेः शशमेते । ऊतो पवृहतो दिवो द्विपो अहो न तरति ९५५  
 समिधा यस् तु आहुतिं निश्चितिं मर्त्यो न शत । वृषावन्तं स पुंष्यति क्षयमग्रे शताशुपम् ९५६  
 त्वेपस् तं धूम ऋण्वति दिवि पञ्चक्र आततः । सरो न हि द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे ९५७  
 अथा हि विक्षीव्यो ऽसिं प्रियो नो अतिथिः । रण्वः पुरीव जूर्यः सुनुर्न त्रययार्यः ९५८  
 ऋत्वा हि द्वौणे अज्यसे ऽग्रे वाजी न कृत्यः । परिज्मेव स्वधा गयो ऽत्यो न ह्यार्यः शिशुः ९५९  
 त्वं त्या चिदच्युता अग्रे पशुर्न यवसे । धामा ह यत् तं अजर वना वृथन्ति शिकसः ९६०  
 वेपि ह्यध्वरीयताम् अग्रे होता दमे विशां । समृधो विश्यते कृणु जूयस्व हव्यमक्षिरः ९६१  
 अच्छा नो मित्रमहो देव देवान् अग्रे वोचः समृतिं रोदस्योः ।  
 बीहि स्वस्ति सुंसिति दिवो नृन् द्विपो अहांसि दुरिता तरेम, ता तरेम, तवावसा तरेम ९६२

॥ १२० ॥ ( ऋ० ६ । ३ । १-८ ) त्रिष्टुप् ।

अग्रे स क्षेपदत्तपा ऋतेजा उरु ज्योतिर्नशते देवयुष्टे ।  
 यं त्वं मित्रेण वरुणः सजोपा देव पासि त्यजसा मर्तमंहः ९६३  
 ईजे यज्ञेभिः शशमे शमीभिर् ऋधद्वायाग्रये ददाश ।  
 एवा च न तं यज्ञसामजुष्टिर् नाहो मर्ते नशते न प्रदक्षिः ९६४  
 सरो न यस्य दशतिरेपा भीमा यदेति शुचतस् तु आ धीः ।  
 हेषस्वतः शुरुघो नायमक्तोः कुवा चिद् रण्वो वसतिर्वेनेजाः ९६५  
 तिग्मं चिदेम महि वर्षो अस्य मसदश्चो न यममान आसा ।  
 विजेहमानः परशुर्न जिह्वां द्रविर्न द्रावयति दारु धर्षत् ९६६  
 स इदस्तेव प्रति धादसिप्यब् लिशीत तेजोऽयमो न धाराम् ।  
 चित्रव्रजविररतियो अक्तोर् वेन द्रुपद्वा रघुपत्मजंहाः ९६७

स ईं रेभो न प्रति वस्त उस्ताः	श्रोचिषा रारपीति मित्रमहाः ।	
नक्तं य ईमरुपो यो दिवा नृन्	अमर्त्यो अरुपो यो दिवा नृन्	९६८
दिवो न यस्य विधतो नवीनोद्	वृषा रुध ओषधीषु नृनोत् ।	
घृणा न यो ध्रजसा पत्मना यन्	ना रोदसी वसुना दं सुपती	९६९
धायोभिर्वा यो युज्येभिरकैर्	विद्युन्न दविद्योत् स्वेभिः शुर्मैः ।	
शर्धो वा यो मरुतां ततक्ष	ऋयुर्न त्वेपो रभसानो अघात्	९७०

॥ १२१ ॥ ( ऋ० ६।४।१-८ )

यथा होतुर्मनुषो देवताता	यज्ञेभिः सन्नो सहस्रो यजासि ।	
एवा नो अद्य समना समानान्	उञ्जन्न उञ्जतो यक्षि देवान्	९७१
स नो विभार्वा चक्षणिर्न वस्तोर्	अग्निर्वन्दारु वेद्यश् चनो धात् ।	
विश्वायुर्यो अमृतो मर्त्येषु	उपुर्ध्वद्भूदतिथिर्जातवेदाः	९७२
द्यावो न यस्य पनयन्त्यम्भं	भासांसि वस्ते स्यो न शुक्रः ।	
वि य इनोत्यजरः पावको	ऽभ्रस्य चिच्छिन्नयत् पूर्याणि	९७३
वधा हि सन्नो अस्वश्चसद्वा	चक्रे अग्निर्जनुपाज्मानम् ।	
स त्वं न ऊर्जसन् ऊर्जी धा	राजेव जेरवृके क्षेप्यन्तः	९७४
नितिक्ति यो वारुणमन्नमति	वायुर्न राष्ट्रत्येत्यक्तन् ।	
तुर्याम् यस् त आदिशामरातीर्	अस्यो न हतः पततः परिहृत्	९७५
आ स्यो न भानुमद्भिरकैर्	अग्रे ततन्थ रोदसी वि भासा ।	
चित्रो नयत् परि तमोऽस्यक्तः	श्रोचिषा पत्मन्नौशिजो न दीर्यन्	९७६
त्वां हि मन्द्रतममर्कशोकैर्	ववृमहे महि नः श्रोप्यग्रे ।	
इन्द्रं न त्वा शर्वसा देवता	वायुं पृणन्ति राधसा नृतमाः	९७७
नू नो अग्रेऽवृकेभिः स्वस्ति	वेपि रायः पृथिभिः पर्वहः ।	
ता सुरिर्म्यो गृणते रासि सुन्नं	मदेम शतहिमाः सुवीराः	९७८

॥ १२२ ॥ ( ऋ० ६।५।१-७ )

हुवे वः सुनुं सहस्रो युवानम्	अद्रोघवाचं मतिमिर्यविष्मत् ।	
य इन्वति द्रविणानि प्रचेता	विश्ववाराणि मुरुवारो अघ्रुक	९७९



त्वे वदन्ति पुर्वणीक होतर् दोषा वस्तोरेरिरे यजियांसः । क्षामेव विश्वा ध्रुवनानि यस्मिन् त्सं सौमगानि दधिरे पावके	९८०
त्वं विश्वं प्रदिवः सीद आसु कत्वा रथीरभवो वार्याणाम् । अत इनोपि विधत्ते चिकित्वा व्यानुपग् जातवेदो वदन्ति	९८१
यो नः सनुत्यो अभिदासदग्ने यो अन्तरो मित्रमहो वनुप्यात् । तमजरैर्भिवृषभिसु तव स्वैस् तपां तपिष्ठ तपसा तपस्वान्	९८२
यस् तै यज्ञेन समिधा य उक्थैर् अर्कैर्मिः सूनो सहस्रो ददाश्वत् । स मर्त्येष्वमृत प्रचेता राया द्युमेन श्रवसा वि भाति	९८३
स तत् कृधीपितस् तूर्यमग्ने स्पृधो वाघस्व सहसा सहस्वान् । यच्छस्यसे द्युभिरक्तो वर्चोभिसु तज् जुषस्व जरितुर्घोषि मन्म	९८४
अश्याम तं कार्ममग्ने तवोती अश्याम रयि रयिवः सुवीरम् । अश्याम वाजमभि वाजयन्तो ऽश्याम द्युमन्मजरारै ते	९८५

॥ १२३ ॥ ( अ० ६।६। १-७ )

प्र नव्यसा सहसः सनुमच्छा यज्ञेन गातुमव इच्छमानः । वृश्चद्वनं कृष्णयामं रुजन्तं वीती होतारं दिव्यं जिगाति	९८६
सं श्वितानस् तन्यत् रौचनस्था अजरैर्भिर्नानदक्षिर्यविष्टः । यः पावकः पुरुतमः पुरुणि पृथून्यग्निरनुयाति भवेन्	९८७
वि ते विष्वग् वार्तजूतासो अग्ने मामासः शुचे शुचयश् चरन्ति । तुविप्रक्षासो दिव्या नवग्वा वनां वनन्ति घृपता रुजन्तः	९८८
ये ते शुक्रासः शुचयः शुचिष्मः क्षां वपन्ति विपितासो अश्वः । अर्घं भ्रमस् तं उर्विया वि भाति यातयप्रानो अधि सानु पृश्नेः	९८९
अर्घं जिह्वा पापतीति प्रवृष्णो गोपुयुधो नाशनिः सृजाना । शूरस्येव प्रसितिः क्षातिरभेर् दुर्वर्तुर्भीमो दयते वनानि	९९०
आ मानुना पार्थिवानि जयांसि महस् तोदस्यं घृपता ततन्य । स वाघस्वार्प मया सहोभिः स्पृधो वनुप्यन् वनुषो नि जूर्ध्व	९९१

स चित्रं चित्रं चितयन्तमस्मे चित्रक्षत्र चित्रतमं वयोधाम् ।

चन्द्रं रयिं पुरुवीरं बृहन्तं चन्द्रं चन्द्राभिर्गृणते युवस्व

९९२

॥ १२४ ॥ ( ऋ० ६ । १० । १-७ ) त्रिष्टुप् । ९९२ द्विपदा विराट् ।

पुरो वो मन्द्रं दिव्यं सुवृक्तिं प्रयति यज्ञे अग्निमध्वरे दधिध्वम् ।

पुर उक्थेभिः स हि नो विभावा स्वध्वरा करति जातवेदाः

९९३

तमु धुमः पुर्वणीक होतृर् अग्ने अग्निभिर्मनुष इधानः ।

स्तोमं यमस्मै मुमतेव शुभं घृतं न शुचिं मतयः पवन्ते

९९४

पीपाय स श्रवसा मर्त्येषु यो अग्नये ददाशु विप्र उक्थैः ।

चित्राभिस् तमूतिभिश् चित्रशोचिर् ब्रजस्य साता गोमतो दघाति

९९५

आ यः पप्रौ आर्यमान उर्वी दरेदशा भासा कृष्णाध्वा ।

अधं बहु चित् तम् ऊर्म्यायास् तिरः शोचिषा ददशे पावकः

९९६

नू नेश् चित्रं पुरुवाजाभिरूती अग्ने रयिं मघवज्यश् च धेहि ।

ये राधसा श्रवसा चात्यन्यान् त्सुवीर्येभिश् चाभि सन्ति जनान्

९९७

इमं यज्ञं चनो घा अग्न उशन् यं त आसानो जुहुते हविष्मान् ।

भरद्वाजेषु दधिपे सुवृक्तिम् अवीर्वाजस्य गध्यस्य सातौ

९९८

वि द्वेपासीनुहि-वर्धयेळां मदेम शतहिमाः सुवीराः

९९९

॥ १२५ ॥ ( ऋ० ६ । ११ । १-६ ) त्रिष्टुप् ।

यजस्व होतरिपितो यजीयान् अग्ने वाधो मरुतां न प्रयुक्ति ।

आ नो मित्रावरुणा नासत्या धावा होत्राय पृथिवी बंवृत्याः

१०००

त्वं होता मन्द्रतमो नो अभ्रुग् अन्तर्देवो विदथा मर्त्येषु ।

पावकया जुह्वाऽ वद्धिरासा अग्ने यजस्व तन्वां तव स्वाम्

१००१

घन्या चिद्धि त्वे धिपणा वष्टि प्र देवान् जन्मं गृणते यज्यै ।

वेपिष्टो अङ्गिरसां यद्ध विप्रो मधुं च्छन्दो भनति रेभ इष्टौ

१००२

अर्दिद्युतत् स्वर्पाको विभावा अग्ने यजस्व रोदसी उरूची ।

आयुं न यं नमसा रातर्हन्त्या अञ्जन्ति सुप्रयसं पञ्च जनाः

१००३

वृद्धे ह यन्नमसा बर्हिर्गौ अयामि सुग् धृतवती सुवृन्तिः ।

अम्यसि सद्य सदर्ने पृथिव्या अथापि यज्ञः सूर्ये न चक्षुः १००४

दशस्या नः पुर्वणीक होतर् देवभिर्ग्रे अग्निभिरिधानः ।

रायः सनो सहसो वाचसाना अति ससेम वृजनं नाहः १००५

॥ १२६ ॥ ( ऋ० ६ । १२ । १-६ )

मध्ये होता दुरोणे बर्हिपो राज् अग्निस् तोदस्य रोदसी यजघ्यै ।

अयं स सुनुः सहस क्रतावा दुरात् सूर्यो न शोचिषा ततान १००६

आ यस्मिन् त्वे स्वपाके यजत्र यक्षद् राजन्त्सर्वतवेत्तु नु द्यौः ।

त्रिपथस्यस् ततरुषो न जंहो हव्या मयानि मानुषा यजघ्यै १००७

तेजिष्ठा यस्यारतिर्वनेराद् तोदो अध्वन्न वृधसानो अद्यौत् ।

अद्रोघो न द्रविता चैतति त्मन् अमत्योऽवर्ष ओपधीषु १००८

सास्माकैभिरेतरी न शूषैर् अग्निः ष्वे दम् आ जातवेदाः ।

दृष्टो धन्वन् क्रत्वा नार्वा उस्तः पितेर्व जारयार्यं यज्ञैः १००९

अर्च स्मास्य पनयन्ति भासो वृथा यत् तक्षदनुयाति पृथ्वीम् ।

सद्यो यः स्पन्द्रो विपितो षवीयान् ऋणो न तापुरति धन्वा राद् १०१०

स त्वं नो अर्वन्निदाया विश्वेभिरग्रे अग्निभिरिधानः ।

वेपि रायो वि यासि दुच्छुना मदेम श्रतर्हिमाः सुव्रीराः १०११

॥ १२७ ॥ ( ऋ० ६ । १३ । १-६ )

त्वद् विश्वा सुमग् सौमगानि अग्ने वि यन्ति वनिनो न वयाः ।

श्रुष्टी रपिर्वाजो वृत्रतूर्य दिवो वृष्टिरीडयो रीतिरपाप् १०१२

त्वं मगो न आ हि रत्नमिपे परिज्मेव क्षयसि दुस्मर्चाः ।

अग्ने मित्रो न वृद्धत क्रतस्य असि क्षत्ता वामस्य देव भूरः १०१३

स सत्पतिः शर्वसा हन्ति वृत्रम् अग्ने विप्रो वि पुणेर्मति वाजम् ।

यं त्वं प्रचेत क्रतजात राया सजोषा नप्रापां दिनोपि १०१४

यस् ते सनो सहसो गीर्मिस्त्वयैर् यज्ञैर्मतो निशिति वेद्यानद् ।

विश्वं स देव प्रति वारमग्रे धृत्ते धान्यं पत्यते वम्यैः १०१५

ता नृभ्य आ सौश्रुता सुवीरा अग्रे धनो सहसः पुण्यसे धाः ।

कृणोषि यच्छर्वसा भूरि पश्वो वयो वृकाधारये जसुरये १०१६

वशा धनो सहसो नो विहाया अग्रे लोकं तनयं वाजि नो दाः ।

विश्वाभिर्गाभिर्भिरभि पूतिमदयां मदम शतर्हिमाः सुवीराः १०१७

॥ १२८ ॥ ( ऋ० ६ । १४ । १-६ ) अनुष्टुप्. ९६२ शक्वरी ।

अग्रा यो मर्त्यो दुवो धियं जुजोषं घीतिभिः । मस्रु प प्र पुर्व्य इपं दुरीतावसे १०१८

अग्निरिद्वि प्रचेता अग्निर्वेधस्तम ऋषिः । अग्निं होतारमीळते यज्ञेषु मनुषो विशः १०१९

नाना ह्यग्नेऽवसे स्पर्धन्ते रायो अर्यः । तूर्वेन्तो दस्युमायवो व्रतैः सीक्षन्तो अग्रतम् १०२०

अग्निरप्तामृतीपहं धीरं ददाति सप्ततिम् । यस्य व्रसन्ति शर्वसः संचक्षि शत्रवो भिया १०२१

अग्निर्हि विघ्नानां निदो देवो मर्तृशुरुप्यति । सहावा यस्यावृतो रयिर्वाजेष्ववृतः १०२२

अच्छा नो मित्रमहो० (९६२)

॥ १२९ ॥ ( ऋ० ६ । १५ । १-१९ )

जगती, १०२५, १०३७ शक्वरी, १०२८ अतिशान्वरी, १०३९ अनुष्टुप्, १०४० वृहती

१०३२-३६, १०३८, १०४१ त्रिष्टुप् ।

इमम् पु यो अतिथिमुपवृधं विश्वासां विशां पतिमृजसे गिरा ।

वेतीद् दिवो जनुषा कश्चिदा शुचिर् ज्योक् चिदसि गर्भो यदच्युतम् १०२३

मित्रं न यं सुधितं भृगवो दुधुर् वनस्पतावीढ्यं मूर्ध्वशोचिषम् ।

स त्वं सुप्रीतो वीतहंन्ये अद्भुत प्रशस्तिभिर्महयसे दिवेदिवे १०२४

स त्वं दक्षस्यावृको वृधो भूरर्यः परस्य अन्तरस्य तरुणः ।

रायः धनो सहसो मर्त्येष्व आ छर्दिष्येच्छ वीतहंन्याय सप्रथो भरद्वाजाय सप्रथः १०२५

द्युतानं वो अतिथिं स्वर्णरम् अग्निं होतारं मनुषः स्वधुरम् ।

मित्रं न द्युधवचसं सुवृत्किर्भिर हव्यवाहमरतिं देवमृजसे १०२६

पावकया यश् चितर्यन्त्या कृपा धामन् रुच उपसो न भानुना ।

तूर्वच यामन्नेतश्चस्य नू रण आ यो धृणे न तत्प्राणो अजरः १०२७

अग्निमग्निं वः समिधा दुवस्पत प्रियं प्रियं वो अतिथिं गृणीषणि ।

उपं वो गीर्भिरमृतं निवामत देवो देवेषु वनन्ते हि वार्य देवो देवेषु वनन्ते हि नो दुवः १०२८

समिद्धमग्निं समिधां गिरा गृणे शुचिं पात्रकं पुरो अघ्वरे ध्रुवम् ।  
विश्रं होतारं पुरुवारमद्रुहं कविं सुभ्रैरौमहे जातवेदसम् १०२९

त्वां दूतमग्ने अमृतं युगेयुगे हव्यवाहं दधिरे पायुमीड्यम् ।  
देवासंश च मर्तासंश च जामृविं विभुं विश्वपतिं नमस्ता नि पैदिरे १०३०

विभूर्पन्नप्र उभयाँ अनु व्रता दूतो देवानां रजसी समीयसे ।  
यत् तं धीतिं सुमतिमावृणीमहे ऽर्घं स्मा नस् त्रिवरूथः शिवो मव १०३१

तं सुप्रतीकं मुद्दशं स्वञ्चम् अविद्वांसो विदुष्टं सपेम ।  
स यक्षद् विश्वा वयुनानि विद्वान् प्र हव्यमग्निरमृतेषु वोचत् १०३२

तमग्ने पास्युत तं पिपिषि यस् त आनदं कवये शूर धीतिम् ।  
यज्ञस्य वा निश्चितिं वोदिति वा तमित् पृणक्षि शर्वमोत राया १०३३

त्वमग्ने वनुष्यतो नि पाहि त्वमृ नः सहसावन्नवधात् ।  
सं त्वा ध्वस्मन्वदुम्येतु पाथः सं रुयिः स्पृहयार्यः सहस्री १०३४

अग्निहोता गृहपतिः स राजा विश्वा वेदु जर्निमा जातवेदाः ।  
देवानामृत यो मर्त्यानां यजिष्ठः स प्र यजतामृतावा १०३५

अग्ने यदद्य विशो अघ्वरस्य होतः पार्वकशोचे वेष्टं हि यज्वा ।  
ऋता यजासि महिना वि यद् भूर् हव्या वह यविष्ठ या तं अद्य १०३६

अग्निं प्रयांसि सुधितानि हि रुयो, नि त्वा दधीत रोदसी यजघ्नै ।  
अवा नो नर्चन् वज्रं सततै, अग्ने विश्वानि दुस्तिता तस्मै, तस्मै तस्मै तस्मै १०३७

अग्ने विश्वेभिः स्वनीक देवैर् उर्णावन्तं प्रथमः सीदु योनिम् ।  
कुलायिनं धृतवन्तं सवित्रे यज्ञं नय यजमानाय साधु १०३८

इममु त्यमधर्ववद् अग्निं मन्यन्ति वेधमः ।  
पमङ्गयन्तमानयन् अमूर्ं श्याच्याभ्यः १०३९

जर्निप्वा देववीतये सुर्वताता स्वस्तये ।  
आ देवान् वस्यमृताँ ऋतावृधो यज्ञं देवेषु पिस्पृशः १०४०

इषमृ त्वा गृहपते जनानाम् अग्ने अकर्म समिधां वृहन्तम् ।  
अस्पूरि नो गार्हपत्यानि मन्तु तिग्मेन नस् तेजसा मं दिश्याधि १०४१

॥ १३० ॥ ( क्र० ६ । १६ । १-१८ ) -

गायत्रीः १०४२, १०४७ वर्धमाना; १०६८ ( १०८८-१०८९ अनुष्टुप्; १०८७ मिष्टुप् ।

त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः ।	देवेभिर्मानुषे जने १०४२
स नो मन्द्राभिर्ध्वरे जिह्वाभिर्यजा महः ।	आ देवान् वक्षि यक्षि च १०४३
वेत्था हि वैधो अर्ध्वनः पथश्च देवाज्जसा ।	अग्ने यज्ञेषु सुकृतो १०४४
त्वामीळि अध द्विता भरतो वाजिभिः शुनम् ।	ईजे यज्ञेषु यज्ञिषम् १०४५
त्वमिमा वार्या पुरु दिवोदासाय सुन्वते ।	भरद्वाजाय दाशुषे १०४६
त्वं दूतो अमर्त्य आ वहा दैव्यं जनम् ।	शृण्वन् विप्रस्य सुष्टुतिम् १०४७
त्वमग्ने स्वाध्वोऽ मर्तासो देववीतये ।	यज्ञेषु देवमीळते १०४८
तव प्र यक्षि संदशम् उत क्रतुं सुदानवः ।	विश्वे जुषन्त कामिनः १०४९
त्वं होता मनुर्हितो वहिरासा विदुष्टरः ।	अग्ने यक्षि दिवो विशः १०५०
अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये ।	नि होतां सत्सि वहिषि १०५१
तं त्वा समिद्धिराक्षिरो घृतेन वर्धयामसि ।	बृहच्छोचा यविष्ठय १०५२
स नः पृथु भ्रवाय्यम् अच्छा देव विवाससि ।	बृहदग्ने सुवीर्यम् १०५३
त्वमग्ने पुष्करादधि अथर्वा निरमन्थत ।	मुभो विश्वस्य वाघतः १०५४
तमु त्वा दुध्यङ्गुषिः पुत्र ईधे अथर्वणः ।	वृत्रहर्णं पुरंदरम् १०५५
तमु त्वा पाथ्यो वृषा समीधे दस्युहन्तमम् ।	धनंजयं रणे रणे १०५६
एषू पु ब्रवाणि ते ऽग्र इत्येतं गिरः ।	एभिर्वर्षासु इन्दुभिः १०५७
यत्र कं च ते मनो दक्षं दधस उत्तरम् ।	तत्रा सदः कृणवसे १०५८
नहि ते पूर्वमक्षिपद् भुवन्नेमानां वसो ।	अथा दुवो वनवसे १०५९
आशिरगामि भारतो वृत्रहा पुरुचेतनः ।	दिवोदासस्य सत्पतिः १०६०
स हि विश्वाति पार्थिवा रयिं दाशन् महित्वना ।	वन्वन्नवातो अस्तृतः १०६१
स प्रत्नवन्नवीयसा अग्ने घृन्नेन संयता ।	बृहत् तन्वन् भानुना १०६२
प्र वः सखायो अग्नये स्तोमं यज्ञं च धृष्णया ।	अर्चं गायं च वेधसे १०६३
स हि यो मानुषा युगा सीदुद्रोतां कविक्रतुः ।	दूतश्च च हव्यवाहनः १०६४
ता राजाना शुचित्रता आदित्यान् भारुतं गणम् ।	वसो यक्षीह रोदसी १०६५
वस्वीं ते अग्ने संदष्टिर् इपयते मर्त्याय ।	ऊर्जो नपाद्रमृतस्य १०६६
क्रत्वा दा अस्तु श्रेष्ठो ऽद्य त्वा वन्वन्त्सुरेक्षणाः ।	मर्ते आनाश सुवृक्षितम् १०६७

ते ते अग्ने त्वोता इपर्यन्तो विश्वमार्युः ।	
तरन्तो अर्यो अरातीर् वन्वन्तो अर्यो अरातीः	१०६८
अग्निस् तिग्मेन शोचिषा यासद् विश्वं न्यत्रिणम् ।	अग्निर्नो वनते रयिम् १०६९
सुवीरं रयिमा भर जातवेदो विचर्षणे ।	जहि रक्षांसि सुकतो १०७०
त्वं नः पाहंहसो जातवेदो अघायतः ।	रक्षां णो ब्रह्मणस् कवे १०७१
यो नो अग्ने दुरेष आ मतो वधाय दाशति ।	तस्मान्नः पाहंहसः १०७२
त्वं तं देव जिह्या परि वाधस्व दुष्कृतम् ।	मतो यो नो जिघासति १०७३
भरद्वाजाय सप्रथः शर्म यच्छ सहन्त्य ।	अग्ने वरेण्यं वसु १०७४
अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद् द्रविणस्युर्विपन्यया ।	सर्मिद्रः शुक्र आहुतः १०७५
गर्मे मातुः पितुष्पिता विदिद्युतानो अक्षरे ।	सीदंश्चूतस्य योनिमा १०७६
ब्रह्म प्रजावदा भर जातवेदो विचर्षणे ।	अग्ने यद् द्रीदयद् द्विवि १०७७
उप त्वा रण्वसंसदशं प्रयस्वन्तः सहस्कृत ।	अग्ने ससृज्महे गिरः १०७८
उप च्छायामिव घृणेर् अगन्म शर्म ते वयम् ।	अग्ने हिरण्यसंसदशः १०७९
य उग्र इव शर्यहा तिग्मशृङ्गो न वंसंगः ।	अग्ने पुरो कुरोजिथ १०८०
आ यं हस्ते न खादिनं शिशुं जातं न विभ्रति ।	विश्रामग्निं स्वध्वरं १०८१
प्र देवं देववीतये भरता वसुचित्तमम् ।	आ स्वे योनौ नि पीदतु १०८२
आ जातं जातवेदसि प्रियं शिश्रीतार्तिधिम् ।	स्योन आ गृहपतिम् १०८३
अग्ने युक्ष्वा हि ये तव अश्वासो देव साधवः ।	अरु वहन्ति मन्यवे १०८४
अच्छा नो याक्षा ब्रह्म अभि प्रयांसि वीतये ।	आ देवान् त्सोमपीतये १०८५
उदग्ने भारत धुमद् अर्जसेण दर्विद्युतत् ।	शोचा वि मांसजर १०८६
वीती यो देवं मतो दुवस्येद् अग्निवीतीताध्वरे द्रविष्मान् ।	
होतारं सत्ययज्ञं रोदस्योर् उज्जानहस्तो नमसा विवासेत्	१०८७

आ ते अम ऋचा हविर हृदा तष्टं भरामसि । ते ते भवन्तुक्ष्णं ऋपमासो वशा उत १०८८  
 अग्निं देवासो अग्रियम् इन्धतं वृत्रहन्तमम् । येना वसून्पामृता वृहा रक्षांसि वाजिनो १०८९

॥ १३१ ॥ ( ऋ० ६ । ४८ । १-१० )

( १०९०-१०९९ ) शयुयार्हस्पत्य. ( तृणपाणि ) । प्रगाय = १०९०, १०९२ वृहती, १०९१, १०९३ सतोवृहती, १०९४ वृहती, १०९५ महा सतोवृहती, १०९६ महा वृहती, १०९७ महा सतो वृहती, १०९८ वृहती, १०९९ सतोवृहती ।

यज्ञायज्ञा वो अग्रये गिरागिरा च दक्षसे ।  
प्रप्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिषम् १०९०

ऊर्जो नपातुं स हिनायमस्मयुर दाशेम हुन्यदातये ।  
ध्रुवद् वाजैर्ध्रुविता भुवद् वृध उत त्राता तनुनाम् १०९१

वृषा क्षमे अजरो महान् निभास्यर्चिषा ।  
अजस्त्रेण शोचिषा शोशुचच् छुचे सुदीतिभिः सु दीदिहि १०९२

महो देवान् यजसि यक्ष्यानुषक् तव ऋत्रोत दुंसना ।  
अर्वाचः सीं कृणुह्यमेऽजसे रास्त्र वाजोत वैस्त्र १०९३

यमापो अद्रयो वना गर्भमृतस्म पिप्रति ।  
सहसा यो मथितो जायते नृभिः पृथिव्या अधि सानवि १०९४

आ यः पशौ भानुना रोदसी उभे धूमेन घात्रे दिवि ।  
तिरस् तमो ददृश ऊर्म्यास्वा श्यावास्वरूपो वृषा श्यावा अरूपो वृषा १०९५

पृहद्विरमे अर्चिभिः शुक्रेण देव शोचिषा ।  
भ्रुव्वाजे समिधानो यन्निष्ठ्य रेवन्नः शुक्र दीदिहि ध्रुमत् पांचक दीदिहि १०९६

निष्वासां गृहपतिर्निशामसि त्वमग्ने मानुषीणाम् ।  
शतं पूर्भिर्यविष्ठ पाद्यंहमः समेद्वारं शतं हिमाः स्तोतृभ्यो ये च ददति १०९७

त्वं नन् चित्र उत्था वसो राधांसि चोदय ।  
अस्य रायस् त्वमग्ने रथीरमि विदा गाद्यं तुचे तु नः १०९८

पथिं तोकं तनयं पूर्वमिष्टम् अदन्धैरप्रयुत्वभिः ।  
अग्ने हेर्वामि दैव्या युयोधि नो ऽद्वेवानि ह्वरीमि च १०९९



॥ १३२ ॥ ( ऋग्वेदस्य सप्तमं मण्डलं, सूक्तं १, मन्त्राः १-२५ )

[ ११००-१२१३ ] वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । विराट्, १११८-२४ त्रिष्टुप् ।

अग्निं नरो दीर्घितिभिररण्योर्	हस्तंच्युती जनयन्त प्रशस्तम् ।	
दूरेदृश्यं गृहपतिमथर्धुम्		११००
तमग्निमस्ते वसवो नृपृष्वन्	त्सुप्रतिचक्ष्मवसे कुतश् चित् ।	
दृक्षाय्यो यो दम् आस नित्यः		११०१
भेद्वो अग्ने दीदिहि पुरो नो	ऽजस्रया सूर्या यविष्ठ ।	
त्वां दक्षन्त उर्प यन्ति वाजाः		११०२
प्र ते अमयोऽग्निभ्यो वरं निः	सुवीरांसः शोशुचन्त धुमन्तः ।	
यत्रा नरः सुमासते सुजाताः		११०३
दा नो अग्ने धिया रयि सुवीरं	स्वपत्यं सहस्य प्रशस्तम् ।	
न यं यावा तरति यातुमावान्		११०४
उप यमेति युवतिः सुदक्षं	द्रोपा वस्तोर्हविष्मती घृताची ।	
उप स्वैनमरमतिर्वसुधुः		११०५
विश्वा अग्नेऽप्य दहारातीर्	येभिस् तपोभिरदहो जरूथम् ।	
प्र निस्वरं चातयस्वामीषाम्		११०६
आ यस् ते अग्न इषुते अनीकं	वसिष्ठ शुक्र दीदिवः पार्वक ।	
उतो न एभिः स्तवधैरिह स्याः		११०७
वि ये ते अग्ने भेजिरे अनीकं	मर्ता नरः पित्र्यांसः पुरुत्रा ।	
उतो न एभिः सुमना इह स्याः		११०८
इमे नरो वृत्रहर्त्येषु शूरा	विश्वा अदेवीरभि संन्तु मायाः ।	
ये मे धियं पनयन्त प्रशस्ताम्		११०९
मा शूने अग्ने नि पदाम नृणां	माशेषसोऽवीरन्ता परिं त्वा ।	
प्रजावतीषु दुर्योगु दुर्ध		१११०
यमश्वी नित्यंष्टुपपार्ति यजं	प्रजावन्तं स्वपत्यं क्षयं नः ।	
स्वर्जन्मना शेषसा वानृधानम्		११११

पाहि नो अग्ने रक्षसो अजुष्टात् त्वा युजा पृतनायूराभि प्याम्	पाहि धूर्तेरररूपो अघायोः ।	१११२
सेदग्निरग्नीरत्यस्त्वन्यान् सहस्रपाथा अक्षरा समेति	यत्र वाजी तनयो वीळुपाणिः ।	१११३
सेदग्नियो वंजुप्यतो निपाति सुजातासुः परि चरन्ति वीराः	समेद्वारमंहस उरुप्यात् ।	१११४
अयं सो अग्निराहुतः पुरुत्रा परि यमेत्यध्वरेषु होता	यमीशानः समिदिन्वे हविष्मान् ।	१११५
त्वे अग्न आहवनानि भूरि उमा कृण्वन्तो बहू मियेधे	ईशानास आ जुहुयाम नित्या ।	१११६
इमो अग्ने वीततमानि हुव्या प्रति न ई सुरभीणि व्यन्तु	ऽजस्रो वाक्षि देवतातिमच्छ ।	१११७
मा नो अग्नेऽवीरति परा दा मा नः क्षुधे मा रक्षसं क्रतावो	दुर्वाससेऽमृतये मा नो अस्यै । मा नो दमे मा वन आ जुह्व्याः	१११८
नू मे ब्रह्माण्यग्र उच्छंशाधि रातौ स्यामोभयास आ तै	त्वं देव मध्वञ्जः सुपूदः । युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः	१११९
त्वमग्ने सुहवो रण्वसदृक् मा ते सचा तनेये नित्य आ घृद्	सुदीती क्षनो सहसो दिदीहि । मा वीरो अस्मन्नयो वि दासीत्	११२०
मा नो अग्ने दुर्भृतये सचा मा तै अस्मान् दुर्भृतयो मृमाचिद्	एष देवेद्वैष्यपिषु प्र वीचः । देवस्य क्षनो सहसो नश्नन्त	११२१
स मर्तो अग्ने स्वनौक रेवान् म देवता वसुवनि दधाति	अमर्त्ये य आजुहोति हुव्यम् । यं सुरिर्यो पृच्छमान एति	११२२
महो नो अग्ने सुमित्रस्य विद्वान् येन युयं सहमागन् मदमे	रयि सुरिभ्य आ वहा बृहन्तम् । अविक्षितास आपुपा सुवीराः	११२३
नू मे ब्रह्माण्यग्रं (१११९)		

॥ १३३ ॥ ( क्र० ७ । ३ । १-१० ) त्रिष्टुप् ।

अग्निं वा देवमग्निभिः सजोषा यजिष्ठं दूतमध्वरे कृणुध्वम् ।  
यो मर्त्येषु निधुर्विर्कृतावा तपुर्मूर्धा घृतान्नः पावकः ११२४

प्रोधदधो न यवसेऽविप्यन् यदा महः संवरणाद् व्यस्थात् ।  
आदस्य वातो अनु वाति शोचिर् अर्धं स्म ते व्रजनं कृष्णमस्ति ११२५

उद्यस्य ते नवजातस्य वृष्णो ऽग्ने चरन्त्यजरां इधानाः ।  
अच्छा घामरूपो धूम एति सं दूतो अग्न इयसे हि देवान् ११२६

वि यस्य ते पृथिव्यां पाजो अर्थेत् तृषु यदन्ना समवृक्तं जम्भैः ।  
सेनैव सृष्टा प्रसितिष्ट एति यवं न दस जुह्वां विवेक्षि ११२७

तमिद् दोषा तमुपसि यविष्ठम् अग्निमत्यं न मर्जयन्त नरः ।  
निशिगाना अतिथिमस्य योनौ दीदार्य शोचिराहुतस्य वृष्णः ११२८

सुसंढक् तं खनीकं प्रतीकं वि यद् रुक्मो न रोचंस उपाके ।  
दिवो न तं तन्यतुरेति शुष्मंश् चित्रो न स्मरः प्रतिं चक्षि भ्रातृम् ११२९

यथा वः स्वाहाप्रये दार्शेम् परीळाभिर्धृतवद्विश् च हव्यैः ।  
तेभिर्नो अग्ने अर्मितैर्महांभिः शतं पूभिरार्यसीभिर्नि पाहि ११३०

या वां ते सन्ति दाशुषे अधृष्टा गिरो वा याभिर्नृवतीरुप्याः ।  
ताभिर्नः स्रनो सहसो नि पाहि सत् सुरीब् जरितृब् जातवेदः ११३१

निर्यद् पूतेषु स्वर्षितिः शुचिर्गात् स्वर्गा कृपा रुन्नाङ् रोचमानः ।  
आ यो मात्रोरुद्येन्यो जनिष्ट देवयज्याय सुक्रतुः पावकः ११३२

एता नो अग्ने सौमगा दिदीहि अपि क्रतुं सुचेतसं वतेम ।  
विश्वा स्तोतृभ्यो गृणते च सन्तु यूयं पात स्वास्तिभिः सदा नः ११३३

॥ १३४ ॥ ( क्र० ७ । ४ । १-१० )

प्र वः शुक्राय मानवे भरध्वं हव्यं मतिं चाग्रये सूर्यतम् ।  
यो दैव्यानि मानुषा जनुषि अन्तर्विश्वानि विद्यना जिगाति ११३४

स गृत्तो अग्निस् तरुणश् चिदस्तु यतो यविष्ठो अजनिष्ट मातुः ।  
सं यो वना युवते शुचिदन् भूरि चिदन्ना समिदन्ति सद्यः ११३५

अस्य देवस्य संसधनीकिं यं मर्तीसः श्येतं जंगुत्रे ।	
नि यो गृभं पौरुषेयीमुवोचं दुरोकमग्निरायवे शुशोच	११३६
अयं कविरकविषु प्रचेता मर्तेष्वग्निरमृतो नि घायि ।	
स मा नो अत्र जुहुरः सहस्वः सदा त्वे सुमनसः स्याम	११३७
आ यो योनिं देवकृतं ससाद कृत्वा ह्यग्निरमृतां अतारीत् ।	
तमोपधीश् च वनिनश् च गर्भं भूमिश् च विश्वघायसं विभर्ति	११३८
ईशे ह्यग्निरमृतस्य भूरे ईशे रायः सुवीर्यस्य दातोः ।	
मा त्वा वयं सहसावन्नीरा माप्सवः परि पदाम् मारुवः	११३९
परिपद्यं ह्यरणस्य रेक्णो नित्यस्य रायः पतयः स्याम ।	
न शेषो अग्रे अन्यजातमस्ति अचेतानस्य मा पथो वि दुक्षः	११४०
नहि प्रभायारणः सुशेवो ऽन्योदर्यो मनसा मन्तवा उ ।	
अर्धा चिदोक्तः पुनरित् स एति आ नो वाज्यंभीपाळेतु नव्यः	११४१
त्वमग्रे वनुष्यतो० ( १०३४ )	
एता नो अग्रे० ( ११३४ )	

॥ १३५ ॥ ( ऋ० ७।७।१-७ )

प्र वो देवं चित् सहसानमग्निम् अश्वं न वाजिनं हिपे नमोभिः ।	
मया नो दूतो अध्वरस्य विद्वान् तमना देवेषु विविदे मितद्रुः	११४२
आ याक्षमे पृथ्याङ् अनु स्वा मन्द्रो देवानां सूर्यं जुषाणः ।	
आ सानु शुर्मर्नदर्यन् पृथिन्या जम्भेभिर्विश्वमुग्रधग् वनानि	११४३
ग्राचीनो यज्ञः सुधितं हि वह्निः श्रीणीते अग्निराल्लितो न होता ।	
आ मातरा विश्ववारे ह्यवानो यतो यविष्ठ जज्ञिषे सुशेवः	११४४
मयो अप्यरे रथिरं जनन्त मारुपासो विचेतसो य एषाम् ।	
विश्वमर्घायि विष्पतिर्दुरोणेङ् अग्निमन्त्रो मधुवचा क्रतावा	११४५
अमादि पृतो यदिराजगन्वान् अग्निर्धृत्वा नृपदेने विपुता ।	
घांश् च यं पृथिवी वावृषाते आ यं होता यजेति विश्ववारम्	११४६

एते द्युन्नेभिर्विश्वमातिरन्त मन्त्रं ये वारं नर्या अतक्षन् ।  
 प्र ये विश्वस् तिरन्त श्रोपमाणा आ ये मे अस्य दीर्घयन्तस्य ११४७  
 नृ त्वामग्र ईमहे वसिष्ठा ईशानं सूनो सहमो वसूनाम् ।  
 इयं स्तोतृभ्यो मधर्वञ्च आनङ् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ११४८

॥ १३६ ॥ ( ऋ० ७।८।१-७ )

इन्धे राजा समर्यो नमोभिर् यस्य प्रतीकमाहुतं धृतेन ।  
 नरो हव्येभिरीकते सुवाघ आगिरग्र उपसामशोचि ११५९  
 अयमु प्य सुमहौ अवेदि होता मन्द्रो मनुषो यद्धो अग्निः ।  
 वि भा अकः ससृजानः पृथिव्यां कृष्णपत्रिरोपधीभिर्ववक्षे ११५०  
 कया नो अग्ने वि वसः सुवृक्षित कामं स्वधामृणवः शस्यमानः ।  
 कदा मवेम पतयः सुदत्र रायो वन्तारो दुष्टरस्य साधोः ११५१  
 प्रप्रायमग्निर्मरुतस्य शृण्वे वि यत् स्रयो न रोचते बृहद्गाः ।  
 अभि यः पूरं पृतनासु तस्थौ धुतानो दैव्यो अतिथिः शुशोच ११५२  
 असन्धित्वे आहवनानि भूरि भुवो विश्वेभिः सुमन्ता अनीकैः ।  
 स्तुतश्चिदग्रे शृण्विषे गृणानः स्वयं वर्धस्व तन्वं सुजात ११५३  
 इदं वचः शतसाः संसहस्रम् उदग्रये जनिपीष्ट द्विवर्ही ।  
 शं यत् स्तोतृभ्य आपये भवाति धुमर्दमीवचातनं रक्षोहा ११५४  
 नृ त्वामग्र ईमहे वसिष्ठा० ( ११५० )

॥ १३७ ॥ ( ऋ० ७।९।१-६ )

अवोधि जार उपसामुपस्थाद् होता मन्द्रः क्वचित्तमः पावकः ।  
 दधाति केतुमुभयस्य जन्तोर् हव्या देवेषु द्रविणं सुकृतुं ११५५  
 स सुकृतुर्यो वि दुरः पणीनां पुनानो अकं पुरुमोजसं नः ।  
 होता मन्द्रो विशां दर्मुनास् तिरस् तमो ददृशे राम्याणां ११५६  
 अमूरः क्वविरदितिर्विवस्वान् त्सुमंसन्मित्रो अतिथिः शिवो नः ।  
 चित्रमानुरूपसां मात्यग्रे ऽपां गर्भैः प्रस्व आ विविश ११५७

ईक्षेन्यो वो मनुषो युगेषु समनगा अंशुचज् जातवेदाः ।  
 सुसुदृशा भानुना यो विभाति प्रति गार्वंः समिधानं बुधन्त ११५८  
 अग्ने याहि दूत्यं मा रिपण्यो देवां अच्छा ब्रह्मकृतां गुणेन ।  
 सरस्वतीं मरुतो अश्विनापो यक्षिं देवान् रत्नधेयाय विश्वान् ११५९  
 त्वामग्ने समिधानो वसिष्ठो जरुथं हन् यक्षिं राये पुरंधिम् ।  
 पुरुणीथा जातवेदो जरस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ११६०

॥ १३८ ॥ ( ऋ० ७ । १० । १-५ ) ।

उपो न जारः पृथु पाजो अश्रेद् दर्विद्युत्त दीद्यच्छोशुचानः ।  
 वृषा हरिः शुचिरा भाति भासा धियो हिन्वान उशतीरजीगः ११६१  
 स्वर्णं वस्तोरुपसामरोचि यज्ञं तन्वाना उशिजो न मन्म ।  
 अग्निर्जन्मानि देव आ वि विद्वान् द्रवद् दूतो देवयावा बर्निष्ठः ११६२  
 अच्छा गिरो मृत्यो देवयन्तीर् अग्निं यन्ति द्रविणं भिक्षमाणाः ।  
 सुसुदृशं सुप्रतीकं स्वर्चं हव्यवाहमरतिं मानुषाणाम् ११६३  
 इन्द्रं नो अग्ने वसुभिः सुजोषा रुद्रं रुद्रेभिरा वहा बृहन्तम् ।  
 आदित्येभिरादिति विश्वर्जन्यां बृहस्पतिमृक्षभिर्विश्ववारम् ११६४  
 मन्द्रं होतारमुशिजो यर्विष्टम् अग्निं विश ईक्षते अध्वरेषु ।  
 स हि क्षपावा अमवद् रयीणाम् अतन्द्रो दूतो यजथाय देवान् ११६५

॥ १३९ ॥ ( ऋ० ७ । ११ । १-५ )

महाँ अस्पध्वरस्यं प्रक्रेतो न क्रूते त्वदुमृता मादयन्ते ।  
 आ विश्वेभिः सरथं याहि देवैर् न्यग्ने होता प्रथमः संदेह ११६६  
 त्वामीक्षते अजिरं दूत्याय हविष्मन्तः सद्रमिन् मानुषासः ।  
 यस्य देवैरामदो बर्हिर्गग्ने ऽहान्यस्मै मुदिनां भवन्ति ११६७  
 त्रिन् चिदुक्तोः प्र चिकितुर्वर्गन्ति त्वे अन्तर्दाशुषे मर्त्याय ।  
 मनुष्यदम इह यक्षि देवान् मवां नो दूतो अभिशस्तिपावा ११६८  
 अग्निरीशि बृहतो अध्वरस्य अग्निर्विश्वस्य हविषः कृतस्य  
 त्रानुं संस्य यमवो जुपन्त अथा देवा दधिरे हव्यवाहम् ११६९

अग्ने वह हविरघाय देवान् इन्द्रज्येष्ठास इह मादयन्ताम् ।  
इमं यज्ञं दिवि देवेषु धेहि यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ११७०

॥ १४० ॥ ( ऋ० ७ । १२ । १-३ )

अगन्म महा नमसा यविष्ठं यो दीदाय समिद्धः स्वे दुरोणे ।  
चित्रमानुं रोदसी अन्तरुर्वी स्वाहुतं विश्वतः अत्यञ्जम् ११७१

स मद्वा विश्वा दुरितानि साह्वान् अग्निः एवे दम् आ ज्ञातवेदाः ।  
स नो रक्षिपद् दुरितादवद्याद् अस्मान् गृणत उत नो मघोनः ११७२

त्वं वरुण उत मित्रो अग्ने त्वां वर्धन्ति मतिभिर्वसिष्ठाः ।  
त्वे वसुं सुपणनानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ११७३

॥ १४१ ॥ ( ऋ० ७ । १४ । १-३ ) त्रिष्टुप्, ११७४ पृहती ।

समिधा ज्ञातवेदसे देवाय देवहृतिभिः ।  
हविभिः शुक्रशोचिषे नमस्विनो वयं दाशेमाग्र्ये ११७४

वयं ते अग्ने समिधा विधेम वयं दशिम सुष्टुती यजत्र ।  
वयं धृतेनाध्वरस्य होतर वयं देव हविषा मद्रशोचे ११७५

आ नो देवेभिरुप देवहृतिम् अग्ने याहि वपेदकृतिं जुषाणः ।  
तुभ्यै देवाय दार्शतः स्याम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ११७६

॥ १४२ ॥ ( ऋ० ७ । १५ । १-१५ ) गायत्री ।

उपसघाय मीहुप आस्ये जुहुता हविः । यो नो नेदिष्ठमाप्यम् ११७७

यः पञ्च चर्षणीरुभि निपसाद् दमेदमे । क्वविर्गृहपतिर्युवा ११७८

स नो वेदो अमात्यम् अग्नी रक्षतु विश्वतः । उवास्मान् पात्वंहसः ११७९

नवं नु स्तोममग्र्ये दिवः श्येनाय जीवनम् । वस्यः कुविद् वुनार्ति नः ११८०

स्पर्हा यस्य त्रियो ह्ये रयिर्वीरवतो यथा । अग्ने यत्तस्य शोचतः ११८१

सेमां वेतु वपेदकृतिम् अभिर्जुपत नो गिरः । यजिष्ठो हव्यवाहनः ११८२

नि त्वा नस्य विप्रते धूमन्तं देव धीमहि । सुवीरमग्र आहुत ११८३

धप उन्नश्च च दीदिहि स्वग्रयस् त्वया वपम् । सुवीरम् त्वमस्मयुः ११८४

उप त्वा सातये नरो विप्रांसो यन्ति प्रीतिभिः । उपार्क्षरा सहस्रिणी ११८५

अग्नी रक्षांसि सेधति शुक्रशोचिरमर्त्यः । शुचिः पावक ईर्ष्यः ११८६  
 स नो राधास्या भर ईशानः सहसो यहो । भगश् च दातु वार्यम् ११८७  
 त्वमग्ने वीरवृद् यशो देवश् च सविता भगः । दितिश् च दाति वार्यम् ११८८  
 अग्ने रक्षा णो अंहसः प्रति प्म देव रीपंतः । तपिष्ठैरजरो दह ११८९  
 अघा मही न आपासि अनाघृष्टो नृपीतये । पूर्ववा श्रतभुंजिः ११९०  
 त्वं नः प्राह्वंहसो दोषाविस्तरघायतः । दिवा नक्तमदाम्य ११९१

॥ १४३ ॥ ( ऋ० ७ । १६ । १-१२ ) प्रगायः- ( घृहती, सतोयृहती । )

एना वो अग्नि नमसा ऊर्जो नपातमा हुवे ।  
 प्रियं चेतिष्ठमरतिं स्वध्वरं विश्वस्य द्रुतममृतम् ११९२  
 स योजते अरुपा विश्वमोजसा स दुद्रवत् स्वाहुतः ।  
 सुव्रता यज्ञः सुशमी वर्धना देवं राधो जनानाम् ११९३  
 उदस्य शोचिरस्थाद् आजुह्वानस्य मीहुपः ।  
 उद्धमासो अरुपासो दिविस्पृशः समग्निर्मन्धते नरः ११९४  
 तं त्वा दूतं कृण्महे युञ्जस्तमं देवा आ वीतये वह ।  
 विश्वा ह्नो सहसो मर्तमोजना रास्व तद् यत् त्वमहे ११९५  
 त्वमग्ने गृहपतिस् त्वं होता नो अध्वरे ।  
 त्वं पोता विश्वया प्रचेता यक्षि वेपि च वार्यम् ११९६  
 कृधि रत्नं यजमानाय सुकृतो त्वं हि रत्नधा असि ।  
 आ न ऋते शिशीहि विश्वमृत्विजं सुशंसो यश् च दधते ११९७  
 त्वे अग्ने स्वाहुत प्रियासः सन्तु सूरयः ।  
 यन्तारो ये मृषवानो जनानाम् ऊर्वान् दयन्त गोनाम् ११९८  
 येपामिडा घृतहस्ता दुरोण ओ अपि प्राता निपीदति ।  
 ताम् प्रापस्व सदस्य द्रुहो निदो यच्छा नः शर्म दीर्धुव ११९९  
 स मन्द्रपा च जिह्वा वहिरामा विदुष्टरः ।  
 अग्ने रपि मृषयस्यो न आ वह हृन्पदाति च सृदय १२००



ये राधांसि ददत्यश्व्या मघा कार्मेन श्रवसो महः ।	
तां अहंसः पिपृहि पर्वभिष्टं शतं पुर्मिर्यविष्य	१२०१
देवो वो द्रविणोदाः पूर्णा विवध्यासिचम् ।	
उद् वा सिञ्चध्वमुप वा पृणध्वम् आदिद् वो देव ओहते	१२०२
तं होतारमध्वरस्य प्रचेतसं वह्निं देवा अकृण्वत ।	
दधाति रत्नं विधत्ते सुवीर्यम् अग्निर्जनाय दाशुषे	१२०३

॥ १४४ ॥ ( ऋ० ७ । १७ । १-७ ) द्विपदा त्रिष्टुप् ।

अग्ने भवं सुप्रमिधा समिद्ध उत वह्निर्विष्या वि स्तृणीताम्	१२०४
उत द्वारं उशतीर्वि श्रयन्ताम् उत देवां उशत आ वहेह	१२०५
अग्ने वीहि हविषा यक्षिं देवान् त्वध्वरा कृणुहि जातवेदः	१२०६
स्वध्वरा करति जातवेदा यक्षद् देवां अमृतां प्रिययश्च	१२०७
वंस्व विश्वा वार्याणि प्रचेतः सत्या मयन्त्याग्निषो नो अद्य	१२०८
त्वाम् ते दधिरे हव्यवाहं देवासो अग्न ऊर्जे आ नपातम्	१२०९
ते ते देवाय दाशतः स्याम महो नो रत्ना वि दध श्यानः	१२१०

॥ १४५ ॥ ( ऋ० ७ । ५० । २ ) जगती ।

यद् विजामन् परुषि वन्दनं ध्रुवद् अष्टीवन्तो परिं कुलकौ च देहव ।	
अग्निष्टञ्छोचन्नप वाघतामितो मा मां पद्येन रपसा विदुत् त्सरः	१२११

॥ १४६ ॥ ( ऋ० ७ । १०४ । १०, १४ ) त्रिष्टुप् ।

यो नो रसं दिप्सति पित्वो अग्ने यो अश्वांनां यो गवां यस् तृन्ताम् ।	
रिपुः स्तेनः स्तैयकृद् दुश्रमेतु नि प हीयतां तन्वाङ्गे तनां च	१२१२
यदि वाहमनृतदेव आस मोघं वा देवां अप्यूहे अग्ने ।	
किमस्मभ्यं जातवेदो हणीषे द्रोघवार्चस् ते निर्ऋयं संचन्ताम्	१२१३

॥ १४७ ॥ ( ऋग्वेदस्य अष्टमं मण्डलम् । सूक्तं ११, मन्त्राः १-१० )

( १२१४-१२२३ ) यत्सः काण्यः । गायत्री, १२१४ प्रतिष्ठा, १२१५ वर्धमाना, १२२३ त्रिष्टुप् ।

त्वमग्ने व्रतपा असि देव आ मर्त्येष्व	१२१४
--------------------------------------	------

त्वमसि प्रशस्यो विदधेषु सहन्त्य । अग्ने रथीरध्वराणाम् १२१५  
 स त्वमस्मदप द्वियो युयोधि जातवेदः । अर्देवीरग्ने अरातीः १२१६  
 अन्ति चित् सन्तमर्ह यज्ञं मर्त्यस्य रिपोः । नोप वेपि जातवेदः १२१७  
 मर्ता अमर्त्यस्य ते भूरि नाम मनामहे । विप्रासो जातवेदसः १२१८  
 विप्रं विप्रासोऽवसे देवं मर्तास ऊतये । अग्निं ग्रीभिर्हवामहे १२१९  
 आ तै वत्सो मनो यमत् परमार्चित् सुधस्थात् । अग्ने त्वां-कामया गिरा १२२०  
 पुरुत्रा हि सद्यङ्गसि विशो विश्वा अरु प्रभुः । समत्सु त्वा हवामहे १२२१  
 समत्स्यग्निमवसे वाजयन्तो हवामहे । वाजेषु चित्रराघसम् १२२२

प्रज्ञो हि कमीज्यो अध्वरेषु सनाच्च होता नव्यश् च सत्ति ।  
 स्वां चाग्ने तन्वं पिप्रयस्व अस्मभ्यं च सौमग्यमा यजस्व १२२३

॥ १४८ ॥ ( ऋ० ८ । १९ । १-३३ )

( १२२४-१२६९ ) सोमरिः काण्वः । प्रगाथः= ( ककुप्+ सतोबृहती ), १२५० द्विपदा विराट् ।

तं गूर्धया स्वर्णरं देवासो देवमरतिं दधन्विरे । देवत्रा हव्यमोहिरे १२२४  
 विभूतरतिं विप्र चित्रशोचिपम् अग्निमीळिष्व यन्तुरम् ।  
 अस्य मेघस्य सोम्यस्य सोमरे प्रेमध्वराय पून्यम् १२२५  
 यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होताममर्त्यम् । अस्य यज्ञस्य सुकृतम् १२२६  
 ऊजो नपातं सुमगं सुदीदितिम् अग्निं श्रेष्ठशोचिपम्  
 स नो मित्रस्य वरुणस्य सो अपाम् आ सुमं यक्षते द्विवि १२२७  
 यः समिधा य आहुती यो वेदेन ददाश्रमर्तो अग्रये । यो नमसा स्वध्वरः १२२८  
 तस्येदर्वन्तो रंहयन्त आशवस् तस्य द्युम्रितं यज्ञः ।  
 न तमहो देवकृतं कृतं च न मर्त्यकृतं नशत् १२२९  
 स्वग्रयो यो अग्निभिः स्याम धनो सहस ऊजां पते । सुवीरस् त्वमस्मद्युः १२३०  
 प्रशंसमानो अतिथिर्न मित्रियो ऽग्नी रथो न वेद्यः ।  
 त्वे क्षेमासो अपि सन्ति साधवस् त्वं राजा रथीणाम् १२३१  
 सो अद्वा दार्ध्वरो ऽग्ने मर्त्यः सुमग् स प्रशंस्यः । स धीभिरेस्तु सनिता १२३२

- यस्य त्वमूर्ध्वो अघ्वराय तिष्ठसि ध्वयदीरः स साधते ।  
 सो अर्वद्विः सन्निता स विपन्युभिः स शूरैः सन्निता कृतम् १२३३
- यस्याग्निर्वपुर्गृहे स्तोमं चनो दधीत विश्ववार्यः । हन्या वा वेविपुद् विपः १२३४
- विप्रस्य वा स्तवतः सहसो यहो मध्वतमस्य रातिपुं ।  
 अवोदेवमुपरिमर्त्य कृधि वसो विविदुषो वचः १२३५
- यो अग्निं हव्यदातिभिर् नमोभिर्वा सुदक्षमाविर्वासति । गिरा वाजिरशोचिपम् १२३६
- समिधा यो निर्गिती दाशददिति धामभिरस्य मर्त्यः ।  
 विश्वेत् स धीभिः सुगगो जना अतिं धुन्नरुद्र इव तारिपत् १२३७
- तदग्ने धुन्नमा भर यत् सासहत् सदने कं चिद्विर्णम् । मृत्युं जनस्य दूह्यः १२३८
- येन चष्टे वरुणो मित्रो अर्यमा येन नासत्या भगः ।  
 धयं तत् ते शवसा गातुवित्तमा इन्द्रत्वोता विधेमहि १२३९
- ते धेदग्ने स्वाघ्योऽ ये त्वा विप्र निदधिरे नृचक्षसम् । विप्रोतो देव सुकृतम् १२४०
- त इद् वेदिं सुभग त आहुतिं ते सोतुं चक्रिरे दिवि ।  
 त इद् वाजैर्भिर्जिग्युर्महद्वनं ये त्वे कामे न्येतिरे १२४१
- भद्रो नो अगिराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अघ्वरः । भद्रा उव प्रशस्तयः १२४२
- भद्रं मनः कृशुष्व वृत्रतूर्ये येना समत्सु सासहः ।  
 अर्व स्थिरा रत्नुहि भूरि शर्धता वनेर्मा ते अमिष्टिभिः १२४३
- ईळे गिरा मनुहितं यं देवा दूतमरति न्येतिरे । यजिष्ठं हव्यवाहनम् १२४४
- तिग्मजम्माय तरुणाय राजते प्रयो गायस्यप्रये ।  
 यः पिशते सूनृताभिः सुवीर्यम् अग्निधृतेभिराहुतः १२४५
- यदीं धृतेभिराहुतो वाशीमभिर्मरत उचाव च । अमुर इव निर्णिजम् १२४६
- यो हन्यान्यैरयता मनुहितो देव आसा सुगन्धिना ।  
 विवासते वार्याणि स्वधुरो होता देवो अमर्त्यः १२४७
- यदग्ने मर्त्यस् त्वं स्यामहं मित्रमहो अमर्त्यः । सहमः यनवाहुत १२४८

न त्वा रासीयाभिर्शस्तये वसो न पापत्वार्य सन्त्य ।	
न मे स्तोतामतीवा न दुर्हितः स्यादग्ने न पापया	१२४९
पितुर्न पुत्रः सुभृतो दुरोण आ देवाँ एतु प्र णो हविः	१२५०
तवाहमग्र ऊतिभिर् नेदिष्टाभिः सचेय जोषमा वसो । सदा देवस्य मर्त्यः	१२५१
तव क्रत्वा सनेयं तव रातिभिर् अग्ने तव प्रशंस्तिभिः ।	
त्वामिदाहुः प्रमति वसो मम अग्ने हर्षस्व दातवे	१२५२
प्र सो अग्ने तत्रोतिभिः सुवीराभिस् तिरते वाजर्ममभिः । यस्य त्वं सख्यमावरः	१२५३
तव द्रप्सो नीलवान् वाश क्रत्विय इन्धानः सिष्णवा ददे ।	
त्वं महीनामुपसामसि प्रियः क्षपो वस्तुषु राजसि	१२५४
तमार्गन्म मोभरयः सहस्रमुष्कं स्वभिष्टिमवसे । सम्राजं वासदस्यवम्	१२५५
यस्य ते अग्ने अन्ये अग्रय उपक्षितो वया इव ।	
विपो न द्युम्ना नि युवे जनानां तव क्षत्रार्णो वर्धयन्	१२५६

॥ १४९ ॥ ( ऋ० ८ । १०३ । १-१३ )

बृहतीः १२६१ विराङ्कृपा, १२६३, १२६५, १२६७, १२६९, सतोबृहतीः

१२६४, १२६८ ककुप्, १२६६ हसीयसी ।

अदग्निं गातुवित्तमो यस्मिन् ब्रतान्यादधुः ।	
उपो ण जातमार्यस्य वर्धनम् अग्निं नक्षन्त नो गिरः	१२५७
प्र दैवोदासो अग्रिर् देवाँ अच्छ्वा न मुज्मना ।	
अनु मातरं पृथिवीं वि वावृते तस्यौ नाकस्य सानवि	१२५८
यस्माद् रेजन्त कृष्टयश् चर्कृत्यानि कृण्वतः ।	
सहस्रसां मेघसाताविच त्मना अग्निं धीभिः संपर्यत	१२५९
प्र यं राये निर्नीपसि मतो यस् ते वसो दाशत ।	
स वीरं धत्ते अग्न उक्थशंसिनं त्मना सहस्रपोषिणम्	१२६०
म दृहे चिदुमि वृणत्ति वाजम् अर्धेता स धत्ते अर्धिति अर्धः ।	
त्वे देव्या सदा पुरुवसो निश्वा वामानि धीमदि	१२६१

यो विश्वा दयते वसु होता मन्द्रो जनानाम् ।	
मघोर्न पात्रां प्रथमान्यस्मै प्र स्तोमा यत्त्यग्र्ये	१२६२
अश्वं न गीर्भी रथ्यं सुदानवो मर्मज्यन्ते देवयवः ।	
उभे तोके तनये दस्म विद्वते पथि राघो मघोर्नाम्	१२६३
प्र मंहिष्ठाय गायत क्रुतान्नं बृहते श्रुक्रशोचिषे ।	
उपस्तुतासो अग्र्ये	१२६४
आ वैसते मघवा घीरवद् यज्ञः समिद्रो द्युभ्याहुतः ।	
कुविन्नो अस्य सुमतिर्नवीयसी अच्छा वाजंभिरागमत्	१२६५
प्रेष्ठसु प्रियाणां स्तुत्यांस्त्वारिथिम् ।	
अग्नि रथानां यमम्	१२६६
उदिता यो निर्दिता वेदिता वसु आ यज्ञियो बवर्तति ।	
दुष्टरा यस्य प्रवृणे नोर्मयो धिया वाजं सिपांसतः	१२६७
मा नो हणीतामार्तिथिर् वसुरग्निः पुरुप्रशस्त एषः ।	
यः सुहोता स्वध्वरः	१२६८
मो ते रिपुन्ये अच्छोक्तिभिर्वसो ज्ञे केभिश् चिदेवैः ।	
कीरिश् चिद्धि त्वामीह दूत्याय रातहव्यः स्वध्वरः	१२६९

॥ १५० ॥ ( ऋ० ८ । २३ । १-३० )

( १२७०-१२९९ ) विभ्रमना धैयध्वः । उज्जिह्व ।

ईक्ष्वा हि प्रतीव्यं यजस्व ज्ञातव्येदसम् । चरिष्णुधूममगृभीतशोचिषम्	१२७०
ज्ञानं विश्वचर्पणे अग्नि विभ्रमनो गिरा । उत स्तुपि विष्पधेसो रथानाम्	१२७१
येषामावाध श्रुगमिष इषः पृक्षश् च निग्रमे । उपविदा वह्निर्विन्दते वसु	१२७२
उदस्य शोचिरस्पाद् दीदियुषो व्यज्रम् । तपुर्जम्मस्य सुद्युतो गणधिर्यः	१२७३
उर्दु तिष्ठ स्वध्वर स्त्वानो देव्या कृपा । अभिरुया मासा बृहता शुशुक्रनिः	१२७४
अग्ने याहि सुशस्तिभिर् हव्या जुह्वान आनुपक। यथा दूतो बभूव हव्यवाहनः	१२७५
अग्नि वः पूर्य हुवे होतारं चर्षणीनाम् । तमया वाचा गृणे तथु वः स्तुपे	१२७६
पृष्ठे मिरहुतकतुं यं कृपा सुदयन्त इत् । मित्रं न जने सुधितमृतावनि	१२७७

ऋतावानमृतायवो यज्ञस्य सार्धनं गिरा । उपो एनं जुजुर्पुनर्मसस्पदे ।	१२७८
अच्छा नो अङ्गिरस्तमं यज्ञासो यन्तु संयतः । होता यो अस्ति विस्वा यज्ञस्तमः ।	१२७९
अग्रे तव त्वे अजर इन्धानासो बृहद् भाः । अश्वा इव घृषणस् तविपीयवः ।	१२८०
स त्वं न ऊजां पते रयिं रोस्व सुवीर्यम् । प्रावं नस् तोके तनये समत्स्वा ।	१२८१
यद्वा उं विदपतिः श्रितः सुप्रीतो मनुषो विशि । विश्वेदग्निः प्रति रक्षोसि सेधति ।	१२८२
श्रुष्यग्निं नवस्य मे स्तोमस्य वीर विशपते । नि मायिनस् तपुषा रक्षसो दह ।	१२८३
न तस्य मायया चन रिपुरीशीतु मर्त्यः । यो अग्रये ददाश हव्यदातिभिः ।	१२८४
व्यश्वस् त्वा वसुविदम् उक्षण्णुरप्रीणाद्यैः । महो राये तमु त्वा समिधीमहि ।	१२८५
उशना काव्यस् त्वा नि होतारमसादयत् । आयजि त्वा मनवे जातवेदसम् ।	१२८६
विश्वे हि त्वां सजोपसो देवासो दूतमक्रत । श्रुष्टी देव प्रथमो यज्ञियो भुवः ।	१२८७
इमं धा वीरो अमृतं दूतं कृष्वीतु मर्त्यः । पावकं कृष्णवर्तनि विहायसम् ।	१२८८
तं हुवेम यतस्तुचः सुभासं शुक्रशौचिपम् । विशामग्निमजरं प्रत्नमीड्यम् ।	१२८९
यो अस्मै हव्यदातिभिर् आहुतिं मतोऽविधत् । भरि पोषं स धेचे वीरवद् यशः ।	१२९०
प्रथमं जातवेदसम् अग्निं यज्ञेषु पूर्यम् । प्रति सुगोति नमसा हविष्मती ।	१२९१
आग्निर्विधेमाग्रये ज्येष्ठाभिर्व्यश्ववत् । महिष्ठाभिर्मतिभिः शुक्रशौचिपे ।	१२९२
नूनमर्चं विहायसे स्तोमैभिः स्फुरयूषवत् । ऋषे वैयश्च दम्पायाग्रये ।	१२९३
अतिथिं मानुषाणां सूनुं वनस्पतीनाम् । विप्रा अग्निमवसे प्रत्नमीळते ।	१२९४
महो विश्वो अभि पतोऽग्निं हव्यानि मानुषा । अग्रे नि पस्ति नमसाधि बहिषि ।	१२९५
वंस्वा नो वार्यां पुरु वंस्व रायः पुरुस्पृहः । सुवीर्यस्य प्रजावतो यशस्वतः ।	१२९६
त्वं वीरो सुपाम्णे अग्रे जनाय चोदय । सदा वसो रतिं यविष्ठ शश्वते ।	१२९७
त्वं हि सुप्रतरसि त्वं नो गोमतीरिपः । महो रायः सातिमग्ने अपा वृधि ।	१२९८
अग्रे त्वं यशा असि आ मित्रावरुणा वह । ऋतावाना सप्रजा पतदक्षसा ।	१२९९

॥ १५१ ॥ ( ऋ० ८ । ३९ । १-१० ) [ १३००-१३०९ ] नामाकः काण्वः । महापदकिः ।

अग्निमस्तोप्यग्निमयम् अग्निमीळा यजर्च्यं ।  
 अग्निर्देवां अनेकतु न उमे हि विदये कविर अन्तश्चरति दूत्यं । नमन्तामन्यके समे १३००  
 न्यग्ने नव्यमा वचस् तनूषु शंसमेषाम् ।  
 न्यराती रराव्यां विश्वा अयो अरातीर् इतो युञ्जन्त्वामुरो नमन्तामन्यके समे १३०१

अग्ने मन्मानि तुभ्यं कं धृतं न जुह्व आसनि ।	
स देवेषु प्र चिकिद्दि त्वं ह्यसि पूर्यः शिशो दूतो विवस्वतो नर्मन्तामन्यके संमे	१३०२
तत्तदग्निर्वयो दधे यथायथा कृपण्यति ।	
ऊर्जाहुतिर्वह्नां शं च योश् च मयो दधे विश्वस्यै देवहृत्यै नर्मन्तामन्यके संमे	१३०३
स चिकेतु सहीयसा अग्निश् चित्रेण कर्मणा ।	
स होता शश्वतीनां दक्षिणाभिरुभीवृत इनोति च प्रतीव्यं नर्मन्तामन्यके संमे	१३०४
अग्निर्जाता देवानामग्निर् वेदु मतीनामपीव्यम् ।	
अग्निः स द्रविणोदा अग्निर्द्वारा व्यूणुते स्वाहुतो नवीयसा नर्मन्तामन्यके संमे	१३०५
अग्निर्देवेषु संघसुः स विभु यज्ञियास्वा ।	
स मुदा काव्या पुरु विश्वं भूमेव पुप्यति देवो देवेषु यज्ञियो नर्मन्तामन्यके संमे	१३०६
यो अग्निः सुप्तमानुषः श्रितो विश्वेषु सिन्धुषु ।	
तमागन्म त्रिपुस्त्यं मन्धातुर्देस्यहन्तमम् अग्नि यज्ञेषु पूर्य नर्मन्तामन्यके संमे	१३०७
अग्निस् त्रीणि त्रिधातुनि आ क्षेति विदधा कविः ।	
स त्रीरेकादृशो इह यज्ञं च पिप्रयं च नो विप्रो दूतः परिष्कृतो नर्मन्तामन्यके संमे	१३०८
त्वं नो अग्न आयुषु त्वं देवेषु पूर्य वस्व एक इरज्यसि ।	
त्वामापः परिस्रुतः परि यन्ति स्वसेतवो नर्मन्तामन्यके संमे	१३०९

॥ १५२ ॥ ( क्र० ८। ४३। १-३३ ) [ १३१०-१३८८ ] विरूप आङ्गिरसः । गायत्री ।

इमे विप्रस्य वेधसो	अग्नेरस्तृतयज्वनः	। गिरः स्तोमांस ईरते	१३१०
अस्यै ते प्रतिहर्षति	जातवेदो विचर्षणे	। अग्ने जनानि सुष्टुतिम्	१३११
आरोका इव घेदहं	तिग्मा अग्ने तव त्विषः	। दुद्धिर्वनानि वप्सति	१३१२
हरयो धूमकेतवो	वातजूता उप धावि	। यतन्ते वृथंगप्रयः	१३१३
एते ते वृथंगप्रयं	इद्वासुः समदधते	। उपसामिव केतवः	१३१४
कृष्णा रजांसि पत्सुतः	प्रयाणे जातवेदसः	। अग्निर्यद् रोधति क्षमि	१३१५
घासि कृष्णान ओषधीर्	वप्सदग्निर्न वायति	। पुनर्धनं तरुणीरपि	१३१६
जिह्वाभिरह नर्ममद्	अर्चिषा जज्ञणामवन्	। अग्निर्वनेषु रोचते	१३१७
अप्स्वमे साधेष्टव	सौपधीरनुं रुध्यते	। गर्मे सन् जायते पुनः	१३१८

उदग्ने तव तद् घृताद् अर्ची रोचतु आहुतम् ।	निसानं जुहोहे मुते	१३१९
उक्षात्राय वशात्राय सोमपृष्ठाय वेधसे	स्तोमैर्विधेमाग्रये	१३२०
उत त्वा नर्मसा वयं होतर्वरेण्यक्रतो	अग्ने समिद्धिरीमहे	१३२१
उत त्वा भृगुवच्छुचे मनुष्वदग्र आहुत	अङ्गिरस्वद्वामहे	१३२२
त्वं ह्यग्ने अग्निना विप्रो विप्रेण सन्तसता	सरा सख्या समिध्यसे	१३२३
स त्वं विप्राय द्राशुये रयि देहि सहस्रिणम्	अग्ने वीरवतीमिपम्	१३२४
अग्ने भ्रातुः सहस्कृत रोहिदश्च शुचित्रत	इमं स्तोमं जुपस्व मे	१३२५
उत त्वाग्ने सम स्तुतो वाश्राय प्रतिहर्षते	गोष्ठं गाव इवाशत	१३२६
तुभ्यं ता अङ्गिरस्तम विश्वाः सुक्षितयः पृथक्	अग्ने कामाय येमिरे	१३२७
अग्निं धीभिर्मनीपिणो मेधिरासो विपश्चितः	अन्नसद्याय हिन्विरे	१३२८
तं त्वामज्मेपु वाजिनं तन्वाना अग्ने अघुरम्	वह्निं होतारमीळते	१३२९
पुरुत्रा हि सद्भृसि विशो विश्वा अनु प्रभुः	समत्सु त्वा हवामहे	१३३०
तमीळिष्व य आहुतो अग्निर्विभ्राजते धृतैः	इमं नः शृण्वद्ववम्	१३३१
तं त्वा वयं हवामहे शृण्वन्तं जातवेदसम्	अग्ने मन्तमप द्विपः	१३३२
विशां राजानमर्द्धतम् अध्यक्षं धर्मणामिमम्	अग्निमीळि स उ श्रवत्	१३३३
अग्निं विश्वायुवेपसं मर्यं न वाजिनं द्वितम्	समिं न वाजयामसि	१३३४
मन् मुधाण्यप द्विपो दहन् रक्षीसि विश्वाहा	अग्ने तिग्मेन दीदिहि	१३३५
यं त्वा जनांस इन्धते मनुष्वदङ्गिरस्तम	अग्ने स घोधि मे वचः	१३३६
यदग्ने दिविजा असि अप्सुजा वा सहस्कृत	तं त्वा गीर्भिर्हवामहे	१३३७
तुभ्यं घेत ते जना इमे विश्वाः सुक्षितयः पृथक्	घासिं हिन्वन्त्यत्तवे	१३३८
ते घेदग्ने स्वाध्वो ऽहा विश्वा नृचक्षसः	तरन्तः स्याम दुर्गहा	१३३९
अग्निं मन्द्रं पुरुप्रियं शीरं पावकशोचिपम्	हृद्धिर्मन्द्रेभिरीमहे	१३४०
स त्वमग्ने विमार्वसुः सृजन्त्ययो न रुग्निभिः	शर्धन् तमांसि जिघ्रसे	१३४१
तत् तं सहस्व ईमहे दात्रं यन्नोपदस्यति	त्वदग्ने वार्यं वसु	१३४२

॥ १५३ ॥ ( क्र० ८ । ४४ । १-३० )

समिधामि दुवस्पत धृतैर्वौधयुतातिथिम् ।	आस्मिन् हव्या जुहोतन	१३४३
अग्ने स्तोमं जुपस्व मे धर्धस्यानेन मर्मना ।	प्रति सुक्तानि हर्य नः	१३४४



अग्निं दूतं पुरो दधे हव्यवाहसृषं ब्रुवे । देवाँ आ सांदयादिह १३४५
उत् तं बृहन्तो अर्चयः समिधानस्य दीदिवः । अग्ने शुक्रासं ईरते १३४६
उप त्वा जुहोते मम घृताचीर्यन्तु हर्यत । अग्ने हव्या जुपस्व नः १३४७
मन्द्रं होतारमृत्विजं चित्रभानुं विभार्वसुम् । अग्निमीळे स उं श्रवत् १३४८
प्रजं होतारमीद्व्यं जुष्टमग्निं कृचिकेतुम् । अध्वराणामभिर्ययम् १३४९
जुषाणो अङ्गिरस्तम इमा हव्यान्यानुपक् । अग्ने यज्ञं नय क्रतुधा १३५०
समिधान उं सन्त्य शुक्रशोच इहा वंह । चिकित्वान् दैव्यं जनम् १३५१
विप्रं होतारमद्रुहं धूमकेतुं विभार्वसुम् । यज्ञानां केतुमीमहे १३५२
अग्ने नि पाहि नस् त्वं प्रति म देव रीपतः । भिन्धि द्वेषः सहस्कृत १३५३
अग्निः प्रजेन मन्मना शुम्भानस् तन्वं स्वाम् । कविर्विप्रेण वावृधे १३५४
ऊजो नपातमा हुवे अग्निं पावकशोचिपम् । अस्मिन् यज्ञे स्वध्वरे १३५५
स नो मित्रमहुस् त्वम् अग्ने शुक्रेण शोचिपां । देवैरा संस्ति वृद्धिर्धि १३५६
यो अग्निं तन्नोते दमे देवं मतेः सपर्यति । तस्मा इद् दीदयद् वसु १३५७
अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत् पतिः पृथिव्या अयम् । अपां रतांसि जिन्वति १३५८
उदग्ने शुचयस् तवं शुक्रा भार्जन्त ईरते । तव ज्योतीर्यचर्यः १३५९
ईशिपे वार्यस्य हि दात्रस्याग्ने स्वर्पतिः । स्तोता स्यां तव शर्मेणि १३६०
त्वामग्ने मनीषिणस् त्वां हिन्वन्ति चित्तिभिः । त्वां वर्धन्तु नो गिरः १३६१
अदब्धस्य स्वधार्वातो दूतस्य रेमतुः सदा । अग्नेः सख्यं वृणीमहे १३६२
अग्निः शुचिर्ब्रततमः शुचिर्विप्रः शुचिः कविः । शुची रोचत आहुतः १३६३
उत त्वा घीतयो मम गिरो वर्धन्तु विश्वहा । अग्ने सख्यस्य बोधि नः १३६४
यदग्ने स्यामहं त्वं त्वं वा घा स्या अहम् । स्युष्टे सत्या इहाशिपः १३६५
वसुर्वसुपतिर्हि क्रम् अस्यग्ने विभार्वसुः । स्याम ते सुमतावधि १३६६
अग्ने घृतव्रताय ते समुद्रायैव सिन्धवः । गिरो वात्रासं ईरते १३६७
युवानि विश्वतिं कविं विश्वादे पुरुवेपसम् । अग्निं शुम्भामि मन्माभिः १३६८
यज्ञानां रथ्ये वयं तिग्मजम्भाय वीळ्वे । स्तोमैरिपेमाग्रये १३६९
अयमग्ने त्वे अपि जरिता भूतु सन्त्य । तस्मै पावक मृळ्य १३७०
धीरो ह्यस्यग्रसद् विप्रो न जागृविः सदा । अग्ने दीदर्यसि धावि १३७१

पुराग्नें दुरितेभ्यः पुरा मुध्रेभ्यः कवे । अ ण आयुर्वसो तिर १३७२

॥१५४॥ ( ऋ० ८ । ७५ । १-१६ )

युक्ष्वा हि दैवहूतमौ अश्वौ अग्ने रथीरिव । नि होता पुर्व्यः सन्दः १३७३  
 उत नो देव देवा अच्छा वोचो विदुष्टरः । अद् निश्वा वार्या कृधि १३७४  
 त्वं ह यद् यविष्ठ्य सहसः स्रनवाहुत । क्रतावा यज्ञियो भुवः १३७५  
 अयमग्निः सहस्रिणो वाजस्य जतिनस्पतिः । मुर्धा कृवी रयीणाम् १३७६  
 तं नेमिमृभयो यथा नमस्व सहतिभिः । नेदीयो यज्ञमङ्गिरः १३७७  
 तस्मै नूनमभिघवे वाचा विरूप नित्यया । वृष्णे चोदस्व सुष्टुतिम् १३७८  
 कष्टं ज्निदस्य सेनया अघेरपाकचक्षसः । पुणि गोपु स्तरामहे १३७९  
 मा नो देवानां विशः प्रत्नातीरिबोत्ताः । कृशं न हासुरभ्याः १३८०  
 मा नः समस्य दृढ्यः परिद्वेपसो अंहतिः । ऊर्मिर्न नावमा बंधीत् १३८१  
 नमस् ते अग्न ओजसे गुणन्ति देव कृष्टयः । अमैरुमित्रमर्दय १३८२  
 कुवित् सु नो गर्विष्ट्ये अग्ने संवेपिपो रयिम् । उरुक्रुदुरु णस् कृधि १३८३  
 मा नो असिन् महाधने परा वर्भारभृद् यथा । संवर्गं सं रयिं जय १३८४  
 अन्यमस्रिज्या इयम् अग्ने सिपयत्तु दुच्छुना । वर्धो नो अमवच्छवः १३८५  
 यस्यार्जुपन्नमस्विनः शमीमर्दुर्भेरास्य वा । तं धेदुभिर्वृधार्चति १३८६  
 परस्या अधि संवतो सर्वो अभ्या तर । यत्राहमस्मि तौ अव १३८७  
 विद्या हि ते पुरा वयम् अग्ने पितुर्यथावसः । अधा ते सुभ्रमीमहे १३८८

॥१५५॥ ( ऋ० ८।६०।१-२० ) [ १३८९-१४०८ ] मगः प्रागाथः ।

प्रागाथः= ( वृहती+सतोवृहती ) ।

अग्न आ याज्ञभिभिर् होतां त्वा वृणीमहे ।  
 आ त्वामनक्तु प्रयता हविर्मती यजिष्ठं वहिरासदे १३८९  
 अच्छा हि त्वा सहसः स्रनो अङ्गिरः सुचश् चरन्त्यध्वरे ।  
 ऊर्जो नपातं धृतकेशमीमहे अग्नि यज्ञेषु पुर्व्यम् १३९०  
 अग्ने कनिर्विधा असि होता पावक यक्ष्यः ।  
 मुन्द्रो यजिष्ठो अध्वरेप्नीदद्यो विप्रैभिः शुक्र मन्यभिः १३९१

अद्रोघमा बहोशतो यविष्य देवाँ अजस्र वीतर्ये ।	
अग्निं प्रयामि सुधिता वंसो गहि मन्दस्व धीतिर्मिहितः	१३९२
त्वमित् सुप्रथा असि अग्ने त्रातर्कृतस् कविः ।	
त्वां विप्रांसः समिधान दीदिव आ विंवासान्ति वेधसः	१३९३
शोचां शोचिष्ठ दीदिहि विशे मयो रास्व स्तोत्रे मुह्यँ असि ।	
देवानां शर्मन् मम सन्तु सुरयः शत्रूपाहः स्वग्रयः	१३९४
यथा चिद् बुद्धमंतसम् अग्ने संजृवंसि धर्मि ।	
एवा दह मित्रमहो यो अस्मद्भुग् दुर्मन्मा कश् च वेनति	१३९५
मा नो मर्ताप रिपवँ रक्षस्विने माचशसाय रीरथः ।	
अस्त्रैश्चक्षिस् तरणिमिर्यविष्य गिर्वेभिः पाहि पायुभिः	१३९६
पाहि नो अग्न एकया पाह्युत द्वितीयया ।	
पाहि ग्रीभिस् तिसृभिर्रुजां पते पाहि चतुर्मृभिर्वसो	१३९७
पाहि विश्वस्माद् रक्षसो अराव्याः प्र स्म वाजेंपु नोऽव ।	
त्वामिद्धि नेदिष्ठं देवतांतंय आपि नक्षामहे वृधे	१३९८
आ नो अग्ने वयोवृधं रयिं पावकू शंस्यं ।	
रास्वा च न उपमाते पुरुस्पृष्टं सुनीती स्वयंशस्तरम्	१३९९
येन वंताम् घृतनाम् शर्धतम् तरन्तो अर्य आदिशः ।	
स त्वं नो वधे प्रयसा शचीवसो जिन्वा धियो वसुविदः	१४००
शिश्नानो वृषभो यथा अग्निः शृङ्गे दर्विध्वत् ।	
तिन्मा अस्य हन्यो न प्रतिवृषे सुजम्भः सहसो यहुः	१४०१
नहि ते अग्ने वृषभ प्रतिवृषे जम्भासो यद् वितिष्ठसे ।	
स त्वं नो होतुः सुहृत् हविष्कृधि वंस्वा नो वार्या पुरु	१४०२
शेषे वनेषु मात्रोः सं त्वा मर्तांस इन्धते ।	
अतन्द्रो हव्या बहसि हविष्कृत आदिद् देवेषु राजसि	१४०३
सप्त होतारस् तमिदीळते त्वा अग्ने सुत्यजमर्हयम् ।	
मिनत्स्यद्वि तर्पसा त्रि शोचिषा प्रार्थे विष्ट जनाँ अति	१४०४

अग्निमग्निं वो अग्निं गुं हुवेम वृक्षतर्हिपः ।	
अग्निं हितप्रयसः शश्वतीप्वा होतारं चर्षणीनाम्	१४०५
केतेन शर्मन्तसचते सुपामणि अग्ने तुभ्यं चिकित्वना ।	
इपण्यया नः पुरुषमा भर वाजं नेदिष्ठमूतये	१४०६
अग्ने जरितविंशतिस् तेपानो देव रक्षसः ।	
अग्रोपिवान् गृहपतिर्महाँ असि दिवस्पायुर्दुरोणयुः	१४०७
मा नो रक्ष आ वंशीदाष्टृणीवसो मा यातुर्यातुमावताम् ।	
परोगव्युत्थनिरामप क्षुधम् अग्ने सेध रक्षस्विनः	१४०८

॥ १५६ ॥ ( ऋ० ८ । ७१ । १-१५ )

[ १४०८—१४२३ ] सुदीति-पुरुमीदृच्छावाङ्गिरसौ, तयोर्वान्यतरः । गायत्री, १४१८-१४२३ प्रगाथः=( बृहती, सतोबृहती ) ।

त्वं नो अग्ने महोभिः पाहि विश्वस्या अरातेः । उत द्विपो मर्त्यस्य	१४०९
नहि मनुः पौरुषेय ईशे हि वः प्रियजात । त्वमिदं सि क्षपावान्	१४१०
स नो विश्वेभिर्देवेभिर् ऊर्जो नपाद् भद्रं शोचे । रयिं देहि विश्ववारम्	१४११
न तमग्ने अरातयो मति युवन्त रायः । यं त्रायसे दाश्वांसम्	१४१२
यं त्वं विप्र मेधसातौ अग्ने हिनापि धनाय । स तवोती गोषु गन्ता	१४१३
त्वं रयिं पुरुवीरम् अग्ने द्वाशुपे मर्ताय । प्र णो नय वस्यो अच्छ	१४१४
उरुप्या णो मा परा दा अघायुते जातवेदः । दुराघ्येऽ मर्ताय	१४१५
अग्ने मार्किटे देवस्य रातिमदेवो युयोत । त्वमीशिपे वसूनाम्	१४१६
स नो वस्य उप मासि ऊर्जो नपान्माहिंस्य । सखे वसो जरितुभ्यः	१४१७
अच्छा नः शरिशोचिषं गिरो यन्तु दर्शतम् ।	
अच्छा यज्ञामो नमसा पुरुवसुं पुरुप्रशस्तमूतये	१४१८
अग्निं मूनुं सहसो जातवेदसं दानाय वार्याणाम् ।	
दिता यो भूदमृतो मर्त्येप्वा होता मन्द्रतमो विशि	१४१९
अग्निं वो देवयज्यया अग्निं प्रयत्यध्वरे ।	
अग्निं घीषु प्रथममग्निमवति अग्निं क्षेत्राय सार्धसे	१४२०

अग्निरिषां सख्ये ददातु न ईशे यो वार्याणाम् ।  
अग्निं तोके तनये शश्वदीमहे वसुं सन्तं तनूषाम्

१४२१"

अग्निमीष्टिष्वार्षे गाथाभिः शीरशोचिभम् ।  
अग्निं राये पुरुमीह श्रुतं नरो अग्निं सुदीतये हृदिः

१४२२ X

अग्निं द्वेपो योतवे नो गृणीमसि अग्निं श्रं योज् च दातवे ।  
विश्वासु विश्ववितेव हव्यो भुवद् वस्तुर्ऋषूणाम्

१४२३

॥ १५७ ॥ ( क्र० ८ । ७२ । १-१८ ) [ १४२४-१४३१ ] हव्यतः प्रागाथः । गायत्री ।

हविष्कृणुध्वमा गर्भद् अध्वर्युर्वनते पुनः	। विडाँ अस्य प्रशासनम्	१४२४
नि तिग्ममभ्यर्गुं सीदुदोता मनावधि	। जुषाणो अस्य सग्यम्	१४२५
अन्तरिच्छन्ति तं जने रुद्रं परो मनीषया	। गृभ्णन्ति जिह्वायां ससम्	१४२६
जाम्यतीतपे घनुर् वयोधा अरुहन्नम्	। हृषद् जिह्यावधीत्	१४२७
चरन् वस्तो रुश्रिह निद्रातारं न विन्दते	। वेति स्तोतव अम्यम्	१४२८
उतो न्वस्य यन्महद् अश्वावद् योजनं बृहत्	। दामा रथस्य दहणे	१४२९
दुहन्ति सप्तैकाम् उप द्वा पञ्च सृजतः	। तीर्थे सिन्धोरधि स्वरे	१४३०
आ द्युर्मिर्विवस्वत् इन्द्रः कोशमचुच्यवीत्	। रोदया विवृता दिवः	१४३१
परि त्रिधातुरध्वरं जुर्णिरिति नवीयमी	। मध्या होतारो अजते	१४३२
सिञ्चन्ति नमसावतम् उद्यावक्त्रं परिज्मानम्	। नीचीनवारमाक्षितम्	१४३३
अभ्यारुमिदद्रयो निर्यिक्तं पुष्करे मधु	। अवतस्य विसर्जने	१४३४
गाव् उपावतावृतं मही यज्ञस्य रप्सुदा	। उभा कर्णा हिरण्यया	१४३५
आ सुते सिञ्चतु त्रियं रोदस्योरभिथ्रियम्	। रसा दधीत वृषभम्	१४३६
ते जानतु स्वमोक्षयं सं वत्सामो न मातृभिः	। मिथो नसन्त जामिभिः	१४३७
उप सक्त्रेषु वप्सतः कृणुते वरुणं दिवि	। इन्द्रे अग्रा नमः स्वः	१४३८
अयुक्षत् पिप्पुषीमिषम् ऊर्जं मत्तर्पदीमरिः	। सूर्यस्य सप्त रुश्मिभिः	१४३९
सोमस्य मित्रावरुणा उर्दिता सूर आ ददे	। तदातरस्य मेपजम्	१४४०
उतो न्वस्य यत् पदं इर्यतस्य निधान्यम्	। परि चां जिह्यातनत्	१४४१

॥ १५८ ॥ ( ऋ० ८।७४।१-१२ )

[ १४४२ १४५३ ] गोपवन आत्रेय । अनुष्टुम्भुतः प्रगाथाः = ( अनुष्टुप् + गायत्री ) ।

विशोविशो वो अतिथिं वाजयन्तः पुरुप्रियम् ।

अग्निं वो दुर्यं वचः स्तुपे शूपस्य मन्मभिः १४४२

यं जनासो हृनिष्मन्तो मित्रं न सर्पिरासुतिम् । प्रशंसन्ति प्रशस्तिभिः १४४३

पन्यांसं जातवैदसं यो देवतात्युद्यता । हन्यान्यैरयद् द्विवि १४४४

आगन्म वृत्रहन्तं ज्येष्ठमग्निमानवम् ।

यस्य श्रुतर्षो बृहन् आक्षो अनीक एधते १४४५

अमृतं जातवैदसं तिरस् तमांसि दर्शतम् । घृताहवनमीढ्यम् १४४६

सवाधो यं जना इमेडे ऽग्निं हव्येभिरीळते । जुह्वानासो यतस्तुचः १४४७

इय ते नव्यंसी मतिर् अग्ने अर्धाग्यस्सदा ।

मन्द्र सुजातु सुकृतो ऽमूर् दस्मातिथे १४४८

सा तै अग्ने शंतमा चनिष्ठा भवतु प्रिया । तया वर्षस्व सुष्टुतः १४४९

सा द्युस्तेर्द्युभिनीं बृहद् उपोप श्रवांसि श्रवः । दधीत वृत्रतूर्ये १४५०

अथमिद् गां रथप्रां त्रेपमिन्द्रं न सत्पतिम् ।

यस्य श्रवांसि तूर्जं पन्यपन्यं च कृष्टयः १४५१

यं त्रा गोपर्वनो गिरा चनिष्ठदधे अङ्गिरः । स पावक श्रुधी हवम् १४५२

यं त्या जनासु ईळते सवाधो वाजसातये । स वोधि वृत्रतूर्ये १४५३

॥ १५९ ॥ ( ऋ० ८।८४।१-९ ) ( १४५४-१४६२ ) उशना काव्यः । गायत्री ।

प्रेष्ठं वो अतिथिं स्तुपे मित्रमिव प्रियम् । अग्निं रथं न वेद्यम् १४५४

कनिमिन् प्रचेतसं यं देवासो अर्धं द्विता । नि मर्त्येष्वाद्बुधः १४५५

त्वं यनिष्ठ दाशुपो नृः पाहि शृणुधी गिरः । रक्षां लोकमुत् त्मना १४५६

कया ते अग्ने अङ्गिर ऊर्जी नपादुपस्तुतिम् । वराय देव मन्यवै १४५७

दाशेम् कस्य मनसा यन्नस्य सहसो यहो । कर्तुं वोच इदं नमः १४५८

अथा त्वं हि नस् करो विश्वा अस्मभ्यं सुक्षितीः । वाजद्रविणसो गिरः १४५९

कस्य नूनं परीणसो धियो जिन्वसि दंपते । गोपाता यस्य ते गिरः १४६०

तं भर्जयन्त युक्तुं पुरोयावानमाजिषु । स्वेषु क्षयेषु चाजिनम् १४६१

भेलि क्षेममिः साधुमिद नक्रियं तन्ति हन्ति यः । अयं सुवीर एधते १४६२

॥ १६० ॥ ( ऋ० ८ । १०२ । १-२२ )

१४६३-१४८४ प्रयोगो भार्गवः, पात्रकोऽग्निर्हस्पात्यो वा, गृहपति-ययिष्ठो सहस्रः पुत्रौ अन्यतरो वा ।

त्वमग्ने गृहद् वयो	दधासि देव दाशुषे	। क्विर्गृहपतिर्युवा	१४६३
स न ईळानया सह	देवाँ अग्ने दुवस्युवा	। चिकिद् विमान्वा वह	१४६४
त्वया ह स्विद् युजा वयं	चोदिष्टेन ययिष्ठ्य	। अग्निं प्मो वाजसातये	१४६५
और्विभृगुवच्छुचिम्	अमवान्वदा हुवे	। अग्निं समुद्रवामसम्	१४६६
हुवे वारत्स्वनं क्विं	पर्जन्यक्रन्धं सहः	। अग्निं समुद्रवामसम्	१४६७
आ सवं सवितुर्यथा	भगस्येव भुजि हुवे	। अग्निं समुद्रवामसम्	१४६८
अग्निं चो वृधन्तम्	अध्वराणां पुरुतमम्	। अन्ध्रा नष्टे सहस्यते	१४६९
अयं यथा न अभुवत्	त्वया रूपेव तक्ष्या	। अस्य कृत्वा यशस्वतः	१४७०
अयं विश्वा अग्निं श्रियो	अग्निर्देवेषु पत्यते	। आ वाजैरुप नो गमत्	१४७१
विश्वेषामिह स्तुहि	होतृणां यशस्तमम्	। अग्निं यज्ञेषु पूर्यम्	१४७२
शीरं पावकशोचिपं	ज्येष्ठो यो दमेष्वा	। दीदार्य दीविश्रुतमः	१४७३
तमर्वन्तं न सानसि	गृणीहि विप्र शुष्मिणम्	। मित्रं न यातयज्जनम्	१४७४
उप त्वा जामयो गिगो	देदिशतीर्हविष्कृतः	। शायोरनीके अस्मिन्	१४७५
यस्य शिघ्रात्त्ववृत्तं	वर्हिस् तस्थावसंदिनम्	। आपश्च चिचि दधा पदम्	१४७६
पदं देवस्य मीहुपो	ऽनाष्टाभिरुतिभिः	। भद्रा सूर्य इवोपहृक्	१४७७
अग्ने घृतस्य धीतिभिस्	तेषानो देव शोचिषा	। आ देवान् वक्षि यक्षि च	१४७८
तं त्वजिनन्त मातरः	क्विं देवासो अक्षिरः	। हव्यवाहमर्मर्त्यम्	१४७९
प्रचेतसं त्वा कथे	अग्ने दूतं वरेण्यम्	। हव्यवाहं नि पेदिरे	१४८०
नहि मे अस्त्यङ्ग्या	न स्वर्धितिर्वनन्वति	। अथैतादृग् भगमि ते	१४८१
यदग्ने कानि कानि चिद्	आ ते दारुणि दुष्मसि	। ता जुपस्व ययिष्ठ्य	१४८२
यदच्युपजिह्विका	यद् वज्रो अतिसर्पति	। सर्वं तदस्तु ते घृतम्	१४८३
अग्निमिन्धानो मर्नसा	धियं सचेत मर्त्यः	। अग्निमीधि विवस्वभिः	१४८४

॥ १६१ ॥ ऋग्वेदस्य मण्डलं १० । सूक्त १ । मन्त्राः १-७ )

[ १४८५-१५३३ ] त्रित आप्त्यः । त्रिष्टुप् ।

अग्ने गृहन्नुपसामुष्वो अस्थान् निर्जगन्वान् तमसो ज्योतिपागात् ।

अग्निमानुना रुशता स्वह आ जातो विश्वा सर्वान्यप्राः

१४८५

स जातो गर्भो असि रोदस्योर्	अग्रे चारुर्विभृतु ओषधीषु ।	
चित्रः शिशुः पारि तर्मास्यक्तुर्	प्र मातृभ्यो अधि कर्निकदद् गाः	१४८६
विष्णुरित्था परममस्य विद्वान्	जातो बृहन्नभि पाति तृतीयम् ।	
आसा यदस्य पयो अकृतं स्वं	सचेतसो अग्न्यर्चन्त्यत्र	१४८७
अत उ त्वा पितृभृतो जनित्रीर्	अन्नावृधं प्रति चरन्त्यत्रैः ।	
ता इ प्रत्येपि पुनरन्यरूपा	असि त्वं विक्षु मानुषीषु होता	१४८८
होतारं चित्ररथमध्वरस्य	यज्ञस्ययज्ञस्य केतुं रुशन्तम् ।	
प्रत्यर्धि देवस्यदेवस्य भूहा	श्रिया त्वग्निमतिर्धि जनानाम्	१४८९
स तु ब्रह्माण्यध पेशनानि	वसानो अग्निर्नाभा पृथिव्याः ।	
अरूपो जातः पद इळायाः	पुरोहितो राजन् यक्षीह देवान्	१४९०
आ हि द्यावापृथिवी अग्न उभे	सदा पुत्रो न मातरा तृतन्ध ।	
प्र ग्राह्यच्छोशतो यविष्ठ	अथा बह सहस्येह देवान्	१४९१

॥ १६२ ॥ ( ऋ० १० । २ । १-७ )

पिप्रिहि देवा उद्यतो यविष्ठ	विद्रो क्रतुर्ऋतुपते यजेह ।	
ये दैव्या ऋत्विजस् तेभिरग्रे	त्वं होतृणामस्यायजिष्ठः	१४९२
घेपि होत्रमुत् पोत्रं जनानां	मन्धातासि द्रविणोदा क्रतावा ।	
स्वाहा वयं कृणवामा हवीषि	देवो देवान् यजत्वभिरहेन्	१४९३
आ देवानामपि पन्थामिगन्म	यच्छक्रवाम तदनु प्रवोहुम् ।	
अभिर्विद्वान् त्स यजात् सेदु होता	सो अध्वरान् त्स क्रतून् कल्पयाति	१४९४
यद् वो वयं प्रमिनाम व्रतानि	विदुषो देवा अविदुष्टरासः ।	
अग्निद विश्वमा पृणाति विद्वान्	येभिर्देवा क्रतुभिः कल्पयाति	१४९५
यत् पाक्या मनेसा दीनदक्षा	न यज्ञस्य मन्वते मर्त्यासः ।	
अग्निद्वोता क्रतुविद् विजानन्	यजिष्ठो देवा क्रतुशो यजाति	१४९६
विश्वेषां धध्वराणामनीकं	चित्रं केतुं जनिता त्वा जजान ।	
॥ आ यजस्व नृवतीरनु क्षाः	स्वाहा इयः क्षुमतीर्विश्वजन्त्याः	१४९७



यं त्वा द्यावापृथिवी यं त्वापुस् त्वष्टा यं त्वा सुजर्निमा जजार्न ।  
पन्थामनु प्रधिद्वान् पितृयार्णं द्युमदग्ने समिधानो वि भाहि

१४९८

॥ १६३ ॥ ( ऋ० १० । ३ । १-७ )

इनो राजन्नरतिः सर्मिद्धो रौद्रो दक्षाय सुपुमो अदशि ।  
चिकिद् वि भाति भासा बृहता असिक्नीमेति रुशतीमपाजन्  
कृष्णां यदेनीमभि वर्षसा भूज् जनयन् योषां बृहतः पितुर्जाम् ।  
ऊर्ष्वं भानुं धर्यस्य स्तभायन् दिवो वसुभिररतिर्वि भाति  
भद्रो भद्रया सचमान आगात् स्वसारं जारो अन्वेति पश्चात् ।  
सुप्रकेतैर्घुभिरभिर्वितिष्ठन् रुशद्भिर्वर्णैरभि राममस्थात्

१४९९

१५००

१५०१

अस्य यामासो बृहतो न वयून् इन्धाना अग्नेः सख्युः शिवस्य ।  
ईड्यस्य वृष्णो बृहतः स्वासो भामासो यामन्नक्तवशं चिकिरे  
स्वना न यस्य भामासः पर्वन्ते रोचमानस्य बृहतः सुदिर्वः ।  
ज्येष्ठैर्भिर्यस् तेजिष्ठैः श्रीलुमद्भिर् वार्षिष्ठैर्भानुभिर्भक्षति दाम्  
अस्य शुष्मासो ददृशानपर्वैर् जेहमानस्य स्वनयन् निशुद्धिः ।  
प्रत्नेभिर्यो रुशद्भिर्देवर्तमो वि रेभद्भिररतिर्भाति विभ्वा  
स आ वक्षि महि न आ च सत्सि दिवस्पृथिव्योररतिर्ध्रुवयोः ।  
अभिः सुतुकैः सुतुकैर्भिरश्चै रभस्वद्धी रमस्मौ एह गम्याः

१५०२

१५०३

१५०४

१५०५

॥ १६४ ॥ ( ऋ० १० । ४ । १-७ )

प्र ते यक्षि प्र ते ह्यमि मन्म भवो यथा वन्यो नो हवेषु ।  
चन्वन्निव प्रपा असि त्वमग्ने ह्यक्षवै पुरवै प्रत्न राजन्  
यं त्वा जनासो अभि संचरन्ति गाव उष्णाभिर्व ब्रजं यविष्ठ ।  
दूतो देवानामसि मर्त्यानाम् अन्तर्महोश् चरसि रोचनेन  
शिशुं न त्वा जेन्यं वर्धयन्ती माता विभर्ति सचनस्यमाना ।  
घनोरधि प्रवर्ता यासि हर्यन् जिगीषसे पशुरिवावसृष्टः  
मूरा अमूर न वयं चिकित्वो महित्वमग्ने त्वमज्ञ विंत्से ।  
शयै वमिश् चरति जिह्वयादन् रेरिहते शुवति निदपतिः मनू

१५०६

१५०७

१५०८

१५०९

कूचिञ्जायते सनयासु नव्यो वर्ने तस्थौ पलितो धूमकेतुः । अस्नातापो वृषभो न प्र वेति सचेतसो यं ग्रणयन्त मतीः	१५१०
तनूत्यजेथ तस्करा वनर्गू रक्षनाभिर्दशभिर्मरुध्वधीताम् । इयं ते अग्ने नव्यसी मनीषा युक्त्वा रथं न शुचयश्चिरद्वैः	१५११
ब्रह्म च ते जातवेदो नमश् च इयं च गीः सद्रुमिद वर्धनी भूत् । रक्षा णो अग्ने तनयानि तोका रक्षोत नस् तन्नोऽङ्ग अप्रयुच्छन्	१५१२

॥ १६५ ॥ ( ऋ० १० । ५ । १-७ )

एकः समुद्रो धरुणो रयीणां अस्मद्भुदो भूरिजन्मा वि चंष्टे । सिप्रकृत्यूर्धनिण्योरुपस्थ उत्संस्य मध्ये निहितं पदं वेः	१५१३
समानं नीलं वृषणो वसानाः सं जग्मिरे महिषा अर्धतीभिः । ऋतस्य पदं कवयो नि पान्ति गुहा नामानि दधिरे पराणि	१५१४
ऋतायिनीं मायिनीं सं दधाते मित्वा शिशुं जज्ञतुर्वर्धयन्ती । विश्वस्य नाभिं चरतो ध्रुवस्य क्वेष् चित् तन्तुं मनसा विघ्नन्तः	१५१५
ऋतस्य हि वर्तनयः सुजातम् हपो वाजाय प्रदिवः सचन्ते । अधीवासं रोदसी वावसाने घृतैरन्नैर्वावधाते मधूनाम्	१५१६
सप्त स्वसररुषीर्वावशानो विद्वान् मध्व उज्जभारा दृशे कम् । अन्तर्यमे अन्तरिक्षे पुराजा इच्छन् वृत्रिमविदत् पूषणस्य	१५१७
सप्त मर्यादाः कवयस् ततक्षुस् तासामेकामिदम्यैहुरो गात् । आयोर्है स्कम्भ उषमस्य नीले पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ	१५१८
असच्च सच्च परमे व्योमन् दक्षस्य जन्मन्नदितेरुपस्थै । अग्निर्है नः प्रथमजा ऋतस्य पूर्व आयुनि वृषभश् च धेनुः	१५१९

॥ १६६ ॥ ( ऋ० १० । ६ । १-७ )

अयं म यस्य शर्मन्नवोभिर् अग्रेरेषते जरिताभिष्टौ । ज्येष्ठेभिर्यो भानुभिर्ऋषूणां पर्येति परिवीतो विभावा	१५२०
यो भानुभिर्बिभावा विभाति अग्निदेवेभिर्ऋतावाजसः । आ यो विवायं सग्व्या ससिम्यो ऽपरिहृतो अत्यो न सतिः	१५२१

ईशे यो विश्वस्या देववीतिर् ईशे विश्वायुर्गसो व्युष्टौ ।	
आ यस्मिन् मना हवींष्यग्रौ अरिष्टरथः स्कन्नाति शूषैः	१५२२
शूषैर्मिर्वृषो जुपाणो अर्कैर् देवाँ अच्छा रघुपत्वा जिगाति ।	
मन्द्रो होता स जुह्वा ई यर्जिष्ठः संमिश्रो अगिरा जिघर्ति देवान्	१५२३
तमुस्तामिन्द्रं न रेजमानम् अग्निं गीर्भिर्नमोभिरा कृणुध्वम् ।	
आ यं विप्रासो मतिभिर्गृणन्ति ज्ञातवैदसं जुह्वं सहानाम्	१५२४
सं यस्मिन् विश्वा वध्मनि जग्मुर् वाजे नाश्वाः सप्तावन्त एवैः ।	
अस्मे ऊतीरिन्द्रं वाततमा अर्वाचीना अग्न आ कृणुष्व	१५२५
अघा हग्रे मद्वा निषद्या सद्यो जज्ञानो हव्यो वभूय ।	
तं ते देवासो अनु केतमायन् अर्धावर्धन्त प्रथमास ऊमाः	१५२६

॥ १६७ ॥ ( ऋ० १०।७।१-७ )

स्वस्ति नो दिवो अग्ने पृथिव्या विश्वायुर्धेहि यजथाय देव ।	
सचैमहि तव दस्म प्रकेतैर् उरुप्या ण उरुभिर्देव शंसैः	१५२७
इमा अग्ने मतयस् तुम्यं जाता गोभिरक्षैरभि गृणन्ति राधः ।	
यदा ते मतो अनु भोगमान्ड वसो दधानो मतिभिः सुजात	१५२८
अग्निं मन्ये पितरमग्निमापिम् अग्निं आतरं सदमित् सखायम् ।	
अग्नेरनीकं बृहतः संपर्य दिवि शुक्रं यजतं सूर्यस्य	१५२९
सिध्ना अग्ने धियो अस्मे सनुत्रीर् यं त्रायसे दम् आ नित्यहोता ।	
ऋताद्या स रोहिदक्षः पुरुक्षुर द्युभिरस्मा अहर्भिर्वागमस्तु	१५३०
द्युभिर्हितं मित्रमिव प्रयोगं प्रत्नमुत्विजमध्वरस्य जारम् ।	
वाहुभ्यामग्निमायवोऽज्जनन्त विष्णु होतारं न्यसादयन्त	१५३१
स्वयं यजस्व दिवि देव देवान् किं ते पाकः कृणवदप्रचेताः ।	
यथार्यज ऋतुभिर्देव देवान् एवा यजस्व तन्वं सुजात	१५३२
भवा नो अग्नेऽवितोत गोपा भवा वयस्कृदुत नो वयोधाः ।	
रास्वा च नः सुमहो हव्यदाति त्रास्वोत नस् तन्नो ई अप्रयुच्छन्	१५३३

॥ १६८ ॥ ( क्र० १०।८।१-६ ) [ १५३४-१५३९ ] त्रिशिरास्त्वापः ।

प्र केतुना वृहता यात्यग्निर आ रोदसी वृषमो रौरवीति ।	
दिवश् चिदन्तो उपमाँ उदानञ् अपामुपस्थे महिपो ववर्ध	१५३४
मुमोदु गर्भो वृषभः ककुब्जान् अस्त्रेमा वृत्सः शिमीवाँ अरावीत् ।	
स देवतात्युद्यतानि कृण्वन्त् स्वेपु क्षयेषु प्रथमो जिगाति	१५३५
आ यो मूर्धानं पित्रोररब्ध न्यङ्घ्रे दधिरे स्रो अर्णः ।	
अस्य पत्न्यन्नरूपीरश्वदुभा ऋतस्य योनौ तन्वो जुपन्त	१५३६
उपउपो हि वंसो अग्रमेपि त्वं यमयोरभवो विभावा ।	
ऋताय सप्त दधिपे पदानि जनयन् मित्रं तन्वेऽ स्वायै	१५३७
भुवश् चक्षुर्मह ऋतस्य गोपा भुवो वरुणो यदृताय वेपि ।	
भुवो अपा नपाजातवेदो भुवो दूतो यस्य हव्यं जुजोपः	१५३८
भुवो यज्ञस्य रजसश् च नेता यत्रा नियुज्जिः सचसे शिवाभिः ।	
दिवि मूर्धानं दधिपे स्वर्पा जिह्वामग्ने चकूपे हव्यवाहम्	१५३९

॥ १६९ ॥ ( क्र० १०।११।१-९ ) [ १५४०-१५५६ ] हविर्धान आङ्गिः । जगती, १५४६-४८ त्रिष्टुप् ।

वृषा वृष्णे दृदुहे दोहसा दिवः पर्यासि यद्दो अर्दितेरदाभ्यः ।	
विश्वं स वेद वरुणो यथा धिया स यज्ञियो यजतु यज्ञियो ऋतून्	१५४०
रपद् गन्धर्वारप्पा च योषणा नृदस्य नादे परि पातु मे मनः ।	
इष्टस्य मध्ये अर्दितिर्नि धातु नो भ्राता नो ज्येष्ठः प्रथमो वि वीचति	१५४१
मो चिन्नु भद्रा क्षुमती यशस्वती उपा उवाप्त मनवे स्वर्वती ।	
यदीमुग्रान्तमुग्रतामनु ऋतुम् अग्निं होतारं विदथाय जीजनन्	१५४२
अथ त्वं दृप्सं विश्वं मिच्छणं विरारमरदिपितः श्येनो अङ्घ्रे ।	
यदी विशो वृणते दृस्ममार्था अग्निं होतारमथ धीरजायत	१५४३
मदामि रणो यवसेव पुष्यते होत्राभिरग्रे मनुषः स्वध्वरः ।	
विप्रस्य वा यच्छेदमान उक्थ्यं वाजं समवाँ उपयामि भूरिभिः	१५४४
उदीरय पितरां जार आ भगम् इयधनि हयतो हृत् इयपति ।	
विपञ्चित वादिः स्वपम्पते मगस् तविप्यते असुरो वेपते मती	१५४५

यस् तं अग्ने सुमतिं मर्तो अक्षत् सहसः स्रनो अति स प्र शृण्वे ।  
इपं दधानो वहमानो अधैर् आ स द्युमाँ अमवान् भूपति धृन् १५४६

यदग्र एषा समितिर्भवाति देवी देवेषु यजता यजत्र ।  
रत्ना च यद् विमर्जासि स्वधावो भागं नो अत्र वसुमन्तं वीतात् १५४७

भुधी नो अग्ने सदर्ने सधस्थे युक्ष्वा रथममृतस्य द्रवितुम् ।  
आ नो वह रोदसी देवपुत्रे मार्किर्देवानामर्ष भूरिह स्याः १५४८

॥ १७० ॥ ( ऋ० १० । १२ । १-९ ) त्रिष्टुप् ।

धावां ह क्षामां प्रथमे ऋतेन अभिश्रावे भवतः सत्यवाचा ।  
देवो यन्मर्तान् यजथाय कृण्वन् सीदुद्वोता प्रत्यङ् स्वमसुं यन् १५४९

देवो देवान् परिभूर्ऋतेन वहां नो हव्यं प्रथमश् चिकित्वान् ।  
धूमकेतुः समिधा भार्गजीको मन्द्रो होता नित्यो वाचा यजीयान् १५५०

स्वारवृग् देवस्यामृतं यद्री गोर अतो ज्ञातासो धारयन्त उर्वी ।  
विश्वे देवा अनु तत् ते यजुर्गुर दुहे यदेनीं दिव्यं घृतं वाः १५५१

अर्चामि वां वर्धायापो घृतस्नु धावाभूमी शृणुतं रोदसी मे ।  
अहा यद् धावोऽस्तुनीतिमयन् मध्वा नो अत्र पितरां शिशीताम् १५५२

किं स्थिन्नो राजा जगृहे कदुस्य अतिं ब्रतं चक्रमा को वि वेद ।  
मित्रश् चिद्धि र्मा जुहुराणो देवाञ् छोको न यातामपि बाजो अस्ति १५५३

दुर्मन्त्वग्रामृतस्य नाम सलक्ष्मा यद् विपुरुषा भवाति ।  
यमस्य यो मनवते सुमन्तु अग्ने तमृष्व पाह्यप्रयुच्छन् १५५४

यस्मिन् देवा विदथे मादर्यन्ते विवस्वतः सदर्ने धारयन्ते ।  
स्र्ये ज्योतिरिदधुर्मास्यश्कृन् परि द्योतनिं चरतो अर्जसा १५५५

यस्मिन् देवा मन्मनि संचरन्ति अपीच्ये न वयमस्य विद्म ।  
मित्रो नो अत्रादितिरनागान् सविता देवो वरुणाय वोचत् १५५६

भुधी नो अग्ने सदर्ने सधस्थे० । (१५४८)

॥ १७१ ॥ ( ऋ० १०। १६। १—१४ )

[ १५५७-१५७० ] दमनो यामायनः । त्रिष्टुप्, १५६७-७० अनुष्टुप् ।

मैनमये चि दंहो मामि शोचो मास्य त्वचं चिक्षिपो मा शरीरम् ।	
यदा शृतं कृण्वो जातवेदो ऽथमेनं प्र हिणुतात् पितृभ्यः	१५५७
शृतं यदा करसि जातवेदो ऽथमेनं परि दत्तात् पितृभ्यः ।	
यदा गच्छात्यसुनीतिमेताम् अथा देवानां वशनीर्भवाति	१५५८
सूर्यं चक्षुर्गच्छतु वातमात्मा द्यां च गच्छ पृथिवीं च धर्मणा ।	
अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितम् ओषधीषु प्रति तिष्ठा शरीरः	१५५९
अजो भागस् तपसा तं तपस्व तं ते शोचिस् तपतु तं ते अर्चिः ।	
यास् ते शिवास् तन्यो जातवेदस् तामिर्वहेनं सुकृताम् लोकम्	१५६०
अथ सृज पुनरग्रे पितृभ्यो यस् त आहुतश् चरति स्वधार्मिः ।	
आयुर्वसान् उर्ष वेतु शेषः सं गच्छतां तन्यां जातवेदः	१५६१
यत् ते कृष्णः शंकुन आतुतोदं पिपीलः सर्प उत वा श्वापदः ।	
अग्निष्टद् विश्वादगदं कृणोतु सोमश् च यो ब्राह्मणो अविघ्नेश	१५६२
अग्नेर्वर्मं परि गोभिर्व्ययस्व सं ग्रोणुष्व पीवसा मेदसा च	
नेत् त्वा धृष्णुर्हरसा जर्हपाणो दधृग् विधुक्ष्यन् पर्यह्वयति	१५६३
इममग्रे चमसं मा वि जिह्वरः प्रियो देवानामुत सोम्यानाम् ।	
एष यश् चमसो देवपानम् तस्मिन् देवा अमृता मादयन्ते	१५६४
कृष्यादमग्निं प्र हिणोमि दूरं यमराज्ञो गच्छतु रिप्रवाहः ।	
इहैवापमितरो जातवेदा देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन्	१५६५
यो अग्निः कृष्यात् प्रविघ्नेश वो गृहम् इमं पश्यन्नितरं जातवेदसम् ।	
तं हरामि पितृयज्ञाय देवं स धर्माभिन्वात् परमे सुधस्ये	१५६६
यो अग्निः कृष्यावाहनः पितृन् यक्षदत्तानृषः ।	
प्रेतुं हव्यानि वोचति देवेभ्यश् च पितृभ्य आ	१५६७
उग्रन्तम् त्वा नि धीमहि उग्रन्तः समिधीमहि ।	
उग्रप्रुशत आ वह पितृन् हविषे अर्त्तवे	१५६८

यं त्वमग्ने समदहस् तमु निर्वापया पुनः ।

क्रियाम्बवर् रोहतु पाकदूर्वा व्यल्कशा

१५६९

शीर्तिके शीर्तिकावति हार्दिके हार्दिकावति ।

मण्डूक्यादे सु सं गम इमं स्वाग्निं हर्षय

१५७०

॥ १७२ ॥ ( ऋ० १० । २० । १-१० )

[ १५७१-१५८८ ] विमदपेन्द्रः, प्राजापत्यो वा, यस्तु कदा वास्तुकः । गायत्री, १५७१ एकपदा विराट् ( एष मन्त्रः शान्त्यर्थः ), १५७२ अनुष्टुप्, १५७९ विराट्, १५८० त्रिष्टुप् ।

भद्रं नो अपि वातय मनः

१५७१

अग्निमीळे भुजां यर्विष्टं शासा मित्रं दुर्धरीतुम् ।

यस्य धर्मन् त्वरेनीः सपर्यन्ति मातुरुषः

१५७२

यमासा कृपनीकं भासाकेतुं वर्धयन्ति । भ्राजते श्रेणिदन् १५७३

अयो विशां गातुरेति प्र यदानह् दिवो अन्तान् । कविरुध्रं दीधानः १५७४

जुपद्व्या मातुपस्य ऊर्ध्वस् तस्थावृम्बा यजे । मिन्वन् त्सर्वा पुर एति १५७५

स हि क्षेमो हविर्यज्ञः श्रुष्टीदस्य गातुरेति । अग्निं देवा वाशीमन्तम् १५७६

यज्ञासाहं दुवं इषे ऽग्निं पूर्वस्य शेवस्य । अद्रेः सुसुमायुमाहुः १५७७

नरो ये के चास्मदा विश्वेत् ते वाम आ स्युः । अग्निं हविषा वर्धन्तः १५७८

कृष्णः श्वेतोऽरुणो यामो अस्य ब्रह्म क्रज उत शोणो यशस्वान् ।

हिरण्यरूपं जनिता जजान

१५७९

एवा र्ते अग्ने विमदो मनीषाम् ऊर्जो नपादमूर्तेभिः सजोषाः ।

गिर आ बक्षत् सुमतीरियान इषमूर्जं सुक्षिति विश्वमामाः

१५८०

॥ १७३ ॥ ( ऋ० १० । २१ । १-८ ) आस्तात्पान्तिः ( ८+८+१२+१२ ) ।

आग्निं न स्ववृक्षितिर्म् होतां त्वा वृणीमहे ।

यज्ञाय स्तीर्णवर्हिषे वि वो मदं शीरं पावकशोचिपं विवक्षसे

१५८१

त्वामु ते स्वाधुवः शुम्भन्त्यश्वराघसः ।

वेति त्वामुपसेचनी वि वो मदु ऋजीतिरशु आहुतिविवक्षसे

१५८२

त्वे धर्माण आसते जुह्वभिः सिञ्चतीरिव ।

कृष्णा रूपाण्यर्जुना वि वो मदु विश्वा अधि श्रियो धिपे विवक्षसे

१५८३

यमग्ने मन्यसे रयिं सहसावन्नमर्त्य ।

तमा नो वाजसातये वि वो मदे यज्ञेषु चित्रमा भरा विर्वक्षसे १५८४

अग्निर्जातो अर्धर्वणा विदद् विश्वानि काव्या ।

भुवेद् द्रुतो विवस्वतो वि वो मदे प्रियो यमस्य काम्यो विर्वक्षसे १५८५

त्वां यज्ञेष्वीळते ऽग्नें प्रयत्यध्वरे ।

त्वं वसेनि काम्या वि वो मदे विश्वा दधासि दाशुपे विर्वक्षमे १५८६

त्वां यज्ञेष्वृत्विजं चारुमग्ने नि पैदिरे ।

घृतप्रतीकं मनुषो वि वो मदे शुक्रं चेतिष्ठप्रक्षभिर्विवक्षमे १५८७

अग्ने शुक्लेण शोचिषा उरु प्रथयसे ब्रुहत्

अभिक्रन्दन् वृषायसे वि वो मदे गर्भं दधासि जामिषु विर्वक्षसे १५८८

॥ १७४ ॥ (ऋ० १० । ४५ । १-१२) [१०८९-१६१०] यत्समिर्भालन्दनः । त्रिष्टुप् ।

द्विस्परिं प्रथमं जज्ञे अग्निर् अस्मद् द्वितीयं परिं जातवेदाः ।

तृतीयमुप्सु नृमणा अजस्रम् इन्धान एनं जरते स्वाधीः १५८९

विष्वा ते अग्ने त्रेधा त्रयाणि विष्वा ते धाम विभृता पुरुत्रा ।

विष्वा ते नाम परमं गुहा यद् विष्वा तस्यत्सं यत आजगन्थ १५९०

समुद्रे त्वां नृमणां अप्सवन्तर नृचक्षा ईधे दिवो अग्न ऊर्ध्वम् ।

तृतीयं त्वा रजसि तस्थिर्वासम् अपामुपस्थे महिषा अवर्धन् १५९१

अक्रन्ददग्निः स्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद् वीरुधः समञ्जन् ।

सद्यो जज्ञानो वि हीमिदो अरुयद् आ रोदसी भानुनां भात्यन्तः १५९२

श्रीणामुदारो धरुणो रयीणां मनीषाणां प्रार्पणः सोमगोपाः ।

वसुः सनुः सहसो अप्सु राजा वि मात्यग्रं उपसांमिधानः १५९३

विश्वस्य केतुर्धुवनस्य गर्भ आ रोदसी अपृणाज्जायमानः ।

वीळं चिदद्रिमभिनत् परायञ् जना यदग्निमयजन्त पञ्च १५९४

उगिरु पावको अरतिः सुमेधा मर्तेष्वग्निरमृतो नि घायि ।

इयंति धूममरुणं मरिभ्रद् उच्छ्रुक्तेण शोचिषा दामिनक्षन् १५९५



दृशानो रुक्म उर्विया व्यद्यौद् दुर्मर्षमायुः श्रिये रुचानः ।	
अग्निरमृतो अभवद् वयोभिर् यदेनं द्यौर्जनयत् सुरताः	१५९६
यस् तै अघ कृणवद् मद्रशोचे ऽपूपं देव घृतवन्तमग्रे ।	
प्र तं नय प्रतरं वस्यो अच्छ अभि सुम्रं देवमक्तं ययिष्ठ	१५९७
आ तं मज सौश्रवसेष्वग्रे उक्थयत्कथ आ मज सुस्थमानि ।	
प्रियः सूर्ये प्रियो अग्रा संवाति उज्जातेन भिनददुर्जनत्वैः	१५९८
त्वामग्रे यजमाना अनु धून् विश्वा वसुं दधिरे चार्वाणि ।	
स्वया सह द्रविणमिच्छमाना व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वंशुः	१५९९
अस्ताव्यग्निर्नरां सुशेवो वैश्वानर ऋषिभिः सोमगोपाः ।	
अद्वेपे घावापृथिवी हुवेम देवा घृत्त रयिमस्मे सुवीरम्	१६००

॥ १७५ ॥ ( ऋ० १० । ४६ । १-१० )

प्र होता जातो महान् नमोविन् नृपद्वा तदिदुपामुपस्थे ।	
दधिर्यो धायि स ते वयोसि मुन्ता वसूनि विधुते तनुपाः	१६०१
इमं विधन्तो अपां सधस्थे पशुं न नष्टं पदैरनु गमन् ।	
गुहा चरन्तमुशिजो नमोभिर् इच्छन्तो घीरा भृगयोऽविन्दन्	१६०२
इमं त्रितो भूर्यविन्दद्विच्छन् वैभूवसो मूर्धन्यग्यायाः ।	
स शेवृषो जात आ हर्म्येषु नाभिर्युवा भवति रोचनस्थ	१६०३
मन्द्रं होतारमुशिजो नमोभिः प्राञ्च यज्ञं नेतारमध्वराणाम् ।	
विशामकृण्वधरति पावकं हव्यवाहं दधतो मानुषेषु	१६०४
प्र भूर्जयन्तं मह्यं विपोषां भूरा अमूरं पुरां दुर्माणम् ।	
नयन्तो गर्भं वनां धिर्यं धूर् हिरिदमश्रुं नावाणि धनर्चम्	१६०५
नि पस्त्यासु त्रितः स्तंभयन् परिवीतो योनौ सीददुन्तः ।	
अतः संगृह्या विशां दमृना विधर्मणायन्त्ररीयते नृन्	१६०६
अस्याजरांसो दुमामरिवा अर्चदूमासो अग्रयः पावकाः ।	
क्षितिचर्यः श्वात्रासो मुरण्यवो वनर्षदो वायवो न सोमाः	१६०७

प्र जिह्वया भरते वेपो अग्निः प्र वयुनानि चेतसा पृथिव्याः ।  
तमाययः शुचयेन्तं पावकं मुन्द्रं होतारं दधिरे यजिष्ठम् १६०८

घाता यमग्निं पृथिवीं जर्निष्टाम् आपम् त्यष्टा भृगवो यं सहोमिः ।  
ईक्षेन्यं प्रधमं मातरिश्वा देवास् तंतक्षुर्मनवे यजत्रम् १६०९

यं त्वा देवा दधिरे हव्यवाहं पुरुस्पृहो मानुपासो यजत्रम् ।  
स यामन्त्रे स्तुते वयो धाः प्र देवयन् यज्ञसः सं हि पूर्वीः १६१०

॥ १७६ ॥ ( ऋ० १० । ५१ । १, ३, ५, ७, ९. ) [ १६११-१६२४ ] देवा ।

महत् तदुल्यं स्थविरं तदासीद् येनाविष्टितः प्रविशिश्यापः ।  
विश्वा अपश्यद् बहुधा तै अग्ने जातवेदस् तन्त्रो देव एकः १६११

ऐच्छाम त्वा बहुधा जातवेदः प्रविष्टमग्ने अप्सवोर्पधीषु ।  
तं त्वा यमो अचिरेच्छित्रमानो दशान्तरुष्यादतिरोचमानम् १६१२

एति मनुदेवयुर्यज्ञकामो ऽरंकृत्या तमसि क्षेप्यग्रे ।  
सुगान् पथः कृणुहि देवयानान् वहं हव्यानि सुमनस्यमानः १६१३

कुर्मस् त आयुरजरं यदग्ने यथा युक्तो जातवेदो न रिप्याः ।  
अथा बहासि सुमनस्यमानो भागं देवेभ्यो हरिषः सुजात १६१४

तव प्रयाजा अनुयाजाश् च केरल ऊर्जस्वन्तो हविषः सन्तु भागाः ।  
तवाग्ने यज्ञोऽयमस्तु सर्गस् तुभ्यं नमन्तां प्रदिशश् चतस्रः १६१५

॥ १७७ ॥ ( ऋ० १० । ५३ । १-३, ६-११ ) जगती, १६१६-१८, १६२१ त्रिष्टुप् ।

यमैच्छाम मनसा सोऽं ऽयमागाद् यज्ञस्य निद्वान् परेषश् चिकित्वान् ।  
म नो यधद् देवताता यजीयान् नि हि पत्सुदन्तरुः पूरो अस्मत् १६१६

अराधि होता निपदा यजीयान् अभि प्रयांसि सुधितानि हि ख्यत् ।  
यजामहं यजियान् हन्तं देवो ईळामहा ईळो आज्येन १६१७

साध्वीर्मर्दुवगीति नो अद्य यज्ञस्य जिह्वामनिदाम गुह्याम् ।  
स आपुराणात् सुरभिर्मसानो भद्रामर्कदेवहति नो अद्य १६१८

तन्तं तन्त्रन् रजमो भानुमन्विहि ज्योतिष्मतः पथो रक्ष धिया कृतान् ।  
अनुल्यणं रयत् जोगुणामपो मनुर्मव जनया दैव्यं जनम् १६१९

अज्ञानहो नक्षतनोत सोम्या इष्कृणुध्वं रक्षना ओत पिश्रत ।	
अधर्वाधुरं वहताभितो रथं येन देवासो अनयन्नाभि प्रियम्	१६२०
अश्मन्वती रीयते सं रभध्वम् उत् तिष्ठतु प्र तरेता सखायः ।	
अत्रा जहाम ये असन्नशेवाः शिवान् वयस्युत् तरेमाभि वाजान्	१६२१
त्वष्टा माया वेदपसामपस्तमो विभ्रत् पात्रा देवपानानि जंतमा ।	
शिशीते नूनं परशुं स्वायसं येन वृथादेतेशो ब्रह्मणस्पतिः	१६२२
सतो नूनं कययः सं शिशीतु वाशीभिर्याभिरमृताय तक्षथ ।	
विद्वांसः पदा गुह्यानि कर्तन् येन देवासो अमृतत्वमानशुः	१६२३
गमे योपामदधुर्वत्समासनि अपीच्येन मनसोत जिह्वया ।	
स विश्वार्हा सुमना योग्या अभि सिंपासनिर्वनते कार इजित्तिम्	१६२४

॥१७८॥ ( ऋ० १० । ६९ । १-१२ ) [१६२५-१६३६] सुमित्रो वाध्यश्वः । त्रिष्टुप्, १६२५-२६ जगती ।

भद्रा अयेर्वध्यश्वस्य संदृशो वामी प्रणीतिः सुरणा उपेतयः ।	
यदी सुमित्रा विशो अग्रं इन्धते घृतेनाहुतो जरते दर्विद्युतत्	१६२५
घृतमप्रेर्वध्यश्वस्य वर्धनं घृतमन्नं घृतम्बस्य मेदनम् ।	
घृतेनाहुत उर्विया वि पंप्रथे सूर्य इव रोचते संपिरामुतिः	१६२६
यत् ते मनुयदनीकं सुमित्रः संमीधे अग्ने तदिदं नवीयः ।	
स रेवच्छोच स गिरौ जुपस्व स वाजं दर्पि स इह श्रवो धाः	१६२७
यं त्वा पूर्वमीळितो वध्यश्वः संमीधे अग्ने स इदं जुपस्व ।	
स नः स्तिपा उत मवा तनुपा दात्रं रक्षस्व यदिदं ते अस्मे	१६२८
मवा घुम्नी वाध्यश्वोत गोपा मा त्वा तारीदुभिमातिर्जनानाम् ।	
शर इव घृणुदच्यवनः सुमित्रः प्र नु वौचं वाध्यश्वस्य नाम	१६२९
समुर्ज्या पर्वत्याहुं वस्रनि दासा वृत्राण्यार्या जिगेथ ।	
शर इव घृणुश् च्यवनो जनानां त्वमग्ने प्रतनापूरभि प्याः	१६३०
दीर्घवन्तुर्वृहदुक्षायमग्निः सहस्रस्तरीः शतनीथ क्रम्या ।	
घुमान् घुमत्सु नृभिर्मृज्यमानः सुमित्रेष्ट दीदयो देवयत्सु	१६३१

त्वे धेनुः सुदुर्घा जातवेदो ऽमथर्तेव समुना संवर्धुक् ।  
 त्वं नृभिर्दक्षिणावद्विरमे सुमित्रेभिरिष्यसे देव्यर्द्धिः १६३२  
 देवाश् चित् ते अमृता जातवेदो मद्भिमानं वाध्यश्च प्र वोचन् ।  
 यत् संपृच्छं मातुं पीयिषि आयन् त्वं नृभिरजयस् त्वार्वृधेभिः १६३३  
 पितेर्व पुत्रमविमरुपस्थे त्वामग्ने वध्यश्चः संपर्पन् ।  
 जुषाणो अस्य सुमिधं यविष्ठ उत पूर्वो अवनोर्ग्राधतश् चित् १६३४  
 शश्वदग्निर्वध्यश्चस्य शत्रून् नृभिर्जिगाय सुतसोमवद्विः ।  
 समनं चिददहन् चित्रभानो ऽव ग्राधन्तमभिनद् वृधश् चित् १६३५  
 अयमग्निर्वध्यश्चस्य वृग्रहा संनकात् प्रेदो नर्मसोपवाक्यः ।  
 स नो अजामीलुत वा विजामीन् अभि तिष्ठ शर्धतो वाध्यश्च १६३६

॥ १७९ ॥ ( ऋ० १० । ७९ । १-७ )

[ १६३७—१६५० ] अग्निः सौचीको, वैश्वानरो वा, (सतिर्याजंभरो वा) । श्रिष्टुः ।

अपश्यमस्य महतो महित्वम् अर्पत्यस्य मर्त्यासु विष्णु ।  
 नाना हनू विभृते सं भेते अर्तिन्वती वपस्ती भूर्यचः १६३७  
 गुहा शिरो निर्हितमृधगक्षी अर्तिन्वन्नत्ति जिह्या वनानि ।  
 अत्राण्यस्मै पृथग्भिः सं भरन्ति उत्तानहस्ता नमसाधि विष्णु १६३८  
 प्र मातुः प्रतुरं गुह्यमिच्छन् कृमारो न वीरुधः सर्पदुर्वीः ।  
 सुसं न एकमविदच्छुचन्तं रिरिह्वांसं रिप उपस्थे अन्तः १६३९  
 तद् वामृतं रोदसी प्र ब्रवीमि जायमानो मातरा गर्भो अत्ति ।  
 नाहं देवस्य मर्त्यश् चिकेत अग्रिरङ्ग विचेताः स प्रचेताः १६४०  
 यो अस्मा अन्नं तृप्ताद्दधाति आज्यैर्वृत्तेर्जुहोति पुष्यति ।  
 तस्मै सहस्रमक्षभिर्वि चक्षे ऽयं विश्वतः प्रत्यङ्मसि त्वम् १६४१  
 किं देवेषु त्यज एनश् चकर्थ अग्रे पृच्छामि नु त्वामावधान् ।  
 अत्रीळन् श्रीळन् हरिरत्तवेऽदन् वि पर्वशश् चकर्व गार्मिवासिः १६४२  
 विपृचो अध्वान् युधुजे वनेजा ऋजीतिमी रशनाभिर्गृभीतान् ।  
 चक्षदे मित्रो वसुभिः सुजातः ममानृधे पर्वमिवावधानः १६४३

॥ १८० ॥ ( क्र० १० । ८० । १-७ )

अग्निः सतिं वाजंभरं ददाति	अग्निर्वीरं श्रुत्यं कर्मनिःश्राम् ।	
अग्नी रोदसी वि चरत् समञ्जन्	अग्निर्नारीं वीरकुक्षिं पुरंधिम्	१६४४
अग्नेरमसः समिदस्तु मद्रा	अग्निर्मही रोदसी आ विवेत्र ।	
अग्निरेकं चोदयत् समस्तु	अग्निर्वृत्राणि दयते पुस्तणि	१६४५
अग्निर्ह त्वं जरतः कर्णमाव	अग्निश्चो निरदहजुरुधम् ।	
अग्निर्नि घर्म उरुप्यदन्तर	अग्निर्नृमेघं प्रजयासृजत् सम्	१६४६
अग्निर्दाद् द्रविणं वीरपेशा	अग्निर्ऋषिं यः महसां सुनोति ।	
अग्निर्दिवि हव्यमा तंतान	अग्नेर्धामानि विमृता पुरुत्रा	१६४७
अग्निमुक्थैर्ऋषयो वि ह्वयन्ते	अग्निं नरो यामनि वाधितासः ।	
अग्निं वयो अन्तरिक्षे पतन्तो	अग्निः महसा पारि याति गोनाम्	१६४८
अग्निं विश ईळते मारुपीर्या	अग्निं मनुषो नहुषो वि जाताः ।	
अग्निर्गान्धर्वीं पृथ्वीमृतस्य	अग्नेर्गव्यतिर्धृत आ निपत्ता	१६४९
अग्ने ब्रह्म क्रमवत् ततक्षुर्	अग्निं महामवोचामा सुवृक्षितम् ।	
अग्ने प्रायं जरितारं यविष्ठ	अग्ने महि द्रविणमा यजस्व	१६५०

॥ १८१ ॥ ( क्र० १० । ९१ । १-१५ ) [ १६५१-१६६५ ] अरुणो वैतहव्यः । जगती, १६६५ त्रिष्टुप् ।

सं जागुवद्भिर्जरमाण इध्यते	दग्ने दग्ना इपयन्निळस्पदे ।	
विश्वस्य होता हविषो वरेण्यो	विश्वविभार्वा सुपरा सखीयते	१६५१
स दर्शतश्चरतिथिर्गृहेगृहे	वनेवने शिश्रिये तक्ष्वीरिव ।	
जनंजनं जन्यो नार्ति मन्यते	विश आ धेति विश्वोक्ते विश्वविशम्	१६५२
सुदक्षो दक्षैः कर्तनासि सुकतुर्	अग्ने कविः काव्येनासि विश्वविद् ।	
वसुर्वर्षतां क्षयसि त्वमेक इद्	धार्वा च यानि पृथिवी च पुष्यतः	१६५३
प्रजानर्हमे तव योनिमृत्वियम्	इक्ष्वापास्पदे धृतवन्तमामदः ।	
आ ते चिकित्र उपसामिवेत्यो	जरेपसः सूर्यस्येव रुमयः	१६५४
तव धियो वृष्यस्येव त्रिद्युतंश्च	चित्राश् चिकित्र उपसां न केतवः ।	
यदोषधीरभिस्त्यो वनानि च	पारि स्वयं चिन्त्रे अर्चमास्ये	१६५५

तमोपधीर्दधिरे गर्भमृत्त्वियं तमापो अग्निं जनयन्त मातरः ।	
तमित् समानं वनिर्नेश् च वीरुधो ऽन्तर्वतीश् च सुवते च विश्वहो	१६५६
वातोपधूत इषितो वशाँ अनु तृषु यदन्ना वेविषद् वितिष्ठसे ।	
आ ते यतन्ते रथ्योई यथा पृथक् शर्घीस्यमे अजराणि धर्क्षतः	१६५७
मेधाकारं विदथस्य प्रसाधनम् अग्निं होतारं परिभूतमं मतिम् ।	
तमिदमे हविष्या समानमित् तमिन्महे वृणते नान्यं त्वत्	१६५८
त्वामिदग्रं वृणते स्वायवो होतारमग्रे विदथेषु वेधसः ।	
यद् देवयन्तो दधति प्रयांसि ते हविष्मन्तो मनवो वृक्षतर्वाहिपः	१६५९
तवाग्रे होत्रं तव पोत्रमृत्त्वियं तव नेष्ट्रं त्वमग्निदृतायतः ।	
तव प्रशास्त्रं त्वमध्वरीयसि ब्रह्मा चासि गृहर्पतिश् च नो दमे	१६६०
यस् तुभ्यमग्रे अमृताय मर्त्यः समिधा दाशदुत वा हविष्कृति ।	
तस्य होता भवसि यासि दूत्यं उषं ब्रूये यजस्यध्वरीयसि	१६६१
इमा अस्मै मतयो वाचो अस्मदाँ श्रचो गिरः सुष्टुतयः समंगमत ।	
वसूयवो वसवे जातवेदसे वृद्धासु चिद् वर्धनो यासु चाकनत्	१६६२
इमां प्रत्तायं सुष्टुतिं नवीयसीं वोचेयमस्मा उशते शुणोतु नः ।	
भूया अन्तरा इद्यस्य निसृष्ट्यै जायेव पत्य उशती सुवासाः	१६६३
यस्मिन्नश्वास ऋपभासं उक्षणो वशा मेपा अवसृष्टास आहुताः ।	
क्रीलालपे सोमपृष्ठाय वेधसे हुदा मतिं जनये चारुमग्नये	१६६४
अहाव्यग्रे हविरास्ये ते सुचीव धृतं चम्बीव सोमः ।	
वाज्रसर्नि रयिमस्मे सुवीरं प्रशस्तं घेहि यशसं बृहन्तम्	१६६५

॥ १८२ ॥ ( अ० १० । ११५ । १-९ )

[ १६६६-१६७३ ] उपस्तुतो वाग्निहव्यः । जगती, १६७३ त्रिष्टुप्, १६७४ शकरी ।

चित्र इच्छिग्रोस् तरुणस्य वक्षधो न यो मातरावप्येति धातवे ।	
अनूधा यदि जीजनदधा च नु ववक्षं सद्यो महि दूत्यं चरन्	१६६६
अग्निर्द नाम धायि दन्नपस्तमः सं यो वना युवते भस्मना द्रुता ।	
अभिप्रमुरा जुद्धां स्वध्वर इनो न प्रोद्यमानो यवसे वृषा	१६६७

तं वो विं न द्रुपदै देवमन्धस इन्दुं प्रोथन्तं प्रवर्षन्तमर्णवम् ।  
 आसा वह्निं न शोचिषा विरुज्जिनं महिब्रतं न सरजन्तमध्वनः १६६८  
 वि यस्य ते जयसानस्याजर धक्षोर्न वाताः परि सन्त्यच्युताः ।  
 आ रूवासो युयुधयो न सत्त्वनं त्रितं नशन्त प्र जियन्त इष्टये १६६९  
 स इदग्निः कर्ष्वतमः कर्ष्वसखा अर्यः परस्यान्तरस्य तरुणः ।  
 अग्निः पातु गृणतो अग्निः सूरीन् अग्निर्ददातु तेषामवो नः १६७०  
 वाजिन्तमाय सखसे सुपित्र्य तृषु च्यवानो अनु जातवैदसे ।  
 अनुद्रे चिद् यो धृपता वरं सते महिन्तमाय धन्वनेदविप्यते १६७१  
 एवाग्निर्मतः सह सूरिभिर् वसुः एवे सहमः सुनरो नृभिः ।  
 मित्रासो न ये सुधिता क्रतायवो द्यावो न द्युभैरग्नि सन्ति मालुपाञ्च १६७२  
 ऊर्जो नपात् सहसावभिति त्वा उपस्तुतस्य वन्दते वृषा वाक् ।  
 त्वां स्तोषाम त्वया सुवीरा द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः १६७३  
 इति त्वाग्ने वृष्टिहव्यस्य पुत्रा उपस्तुतासु कर्षयोऽवोचन् ।  
 तौश्च पाहि गृणतश्च चं सूरीन् वपद्वपद्वित्पूध्वासो अनक्षन्  
 नमो नम इत्युध्वासो अनक्षन् १६७४

१८३ ॥ ( अ० १० । १२२ । १-८ ) [ १६७१-१६८९ ] चित्रमहा वासिष्ठः । जगती, १६७५-१६७९ त्रिष्टुप् ।

वसुं न चित्रमहसं गृणीषे ग्रामं शेवमर्तिधिमद्विपुण्यम् ।  
 स रासते शुरुषो विश्वर्घायसो ऽग्निर्होता गृहपतिः सुवीर्यम् १६७५  
 जुषाणो अग्ने प्रति हर्य मे वचो विश्वानि विद्वान् वयुनानि सुक्रता ।  
 घृतनिर्णिग् ब्रह्मणे गातुमेरय तव देवा अजनयन्तु व्रतम् १६७६  
 सप्त धामानि परियन्नमत्यो दाशद् दाशुपे मुक्तं मामदृष्ट्व ।  
 सुवीरेण रुषिणाग्ने स्वाधुवा यम् त आनन्द ममिवा नं हन्त १६७७  
 यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहितं दृग्निर्पन्न ईष्टे मुद ज्ञादिनम् ।  
 गृणन्तमग्नि घृतपृष्ठमुक्षणं पुणन्तं देवं पृच्छते मुर्वानम् १६७८  
 त्वं दूतः प्रथमो वरेण्यः म दूयमानो दृष्ट्वाय मन्त्र ।  
 त्वां मर्जयन् मुक्तो दाशुषो गृहं त्वां मर्जयन्मुक्तो वि ऋतुः

इयं दुहन् त्सुदुर्घा विश्वघायसं यज्ञप्रिये यजमानाय सुक्रतो ।  
 अग्ने घृतस्नुम् त्रिर्हृतानि दीर्घद् वर्तिर्यज्ञं परियन् त्सुक्रतूयसे १६८०  
 त्वामिदस्या उपसो व्युष्टिषु द्रुतं कृण्वाना अयजन्त मानुषाः ।  
 त्वां देवा मह्याय्याय वाधुधुर् आज्यमग्ने निमृजन्तो अध्वरे १६८१  
 नि त्वा वर्तिष्ठा अहन्त वाजिनं गृणन्तो अग्ने विदधेषु वेधसः ।  
 रायस्पोषं यजमानेषु धारय यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः १६८२

॥ १८४ ॥ ( ऋ० १० । १०४ । १ ) [ १६८३ ] अग्निः । त्रिष्टुप् ।

इमं नो अग्न उषं यज्ञमेहि पञ्चयामं त्रिवृतं सप्ततन्तुम् ।  
 असौ हव्यवाकृत नः पुरोगा ज्योगेव दुर्ध्वं तम् आशेषिष्ठाः १६८३

॥ १८५ ॥ ( ऋ० १० । १४० । १-६ )

[ १६८४-१६८९ ] अग्निः पावकः । सतोपहृती, १६८४-८६ विष्टारपद्धतिः, १६८९ उपरिष्टाज्ज्योतिः ।

अग्ने तनु श्रयो वयो महिं भ्राजन्ते अर्चयौ विभावसो ।  
 बृहद्भानो शर्वसा वाजमुक्थ्यं दधासि दाशुषे कवे १६८४  
 पावकमर्चाः श्रुक्वर्चा अनूनमर्चा उदियषिं भानुना ।  
 पुत्रो मातरां विचरन्नुपांसि पूणक्षि रोदसी उभे १६८५  
 ऊर्जो नपाज्ञातवेदः सुशस्तिभिर् मन्दस्व धीतिभिर्हितः ।  
 त्वे इषः सं दधुर्भूरिवर्षसश् चित्रोतयो वामजाताः १६८६  
 इरज्यमग्ने प्रथयस्व जन्तुभिर् अस्मे रायो अमर्त्य ।  
 स दर्शतस्य वपुषो वि राजमि पूणाक्षि सानसिं क्रतुम् १६८७  
 इष्टवार्तारमध्वरस्य प्रचेतसं ध्वयन्तं राधसो महः ।  
 रातिं वामस्य सुमगां महीमिषं दधासि सानसिं रयिम् १६८८  
 ऋतावानं महिषं निषदर्यतम् अग्निं सुमार्गं दधिरे पुरो जनाः ।  
 धुत्कणं मप्रधस्तमं त्वा गिरा देव्यं मानुषा युगा १६८९



॥ १८६ ॥ ( ऋ० १० । १४२ । १-८ )

[ १६९०-१६९७ ] १६९०-१६९१ जरिता, १६९२-९३ द्रोणः, १६९४-९५ सारिखकः, १६९६-९७ स्तन्यमित्रः  
( एते शाङ्गाः ) । त्रिष्टुप्. १६९०-९१ जगती, १६९६-९७ अनुष्टुप् ।

अयमग्ने जरिता त्वे अमृदपि सहसः स्रजो नह्यन्यदस्त्याप्यम् ।  
भद्रं हि शर्म त्रिवर्यमस्ति त आरे हिंसां नमप दिद्युमा कृधि १६९०  
प्रवत् त्वे अग्ने जनिमा पितृयतः साचीव विश्वा भवन्ता न्यृजसे ।  
प्र सप्तयः प्र संनिपन्त नो धियः पुरश् चरन्ति पशुषा इव त्मना १६९१  
उत् वा उ परि वृणक्षि वप्सद् बहोरश्न उलपस्य स्वधावः ।  
उत् खिल्या उर्वराणां भवन्ति मा त्वे हेति तर्विषीं चुक्रुधाम १६९२  
यदुद्रतो निवतो यासि वप्सत् पृथगेपि प्रगृधिनीं व सेना ।  
युदा ते वातो अनुवार्ति शोचिर् वत्सेव इमश्रुं वपसि प्र भूर्म १६९३  
प्रत्यस्य अर्णयो ददश्च एकं नियानं बहवो रथासः ।  
शाह यदग्ने अनुमर्षृजानो न्यृहुत्तानामन्वेपि भूमिम् १६९४  
उत् ते शुष्मा जिहतामृत् त्वे अचिर् उत् त्वे अग्ने शशमानस्य वाजाः ।  
उच्छ्वस्व नि नम वर्धमान आ त्वाद्य विश्वे वसवः सदन्तु १६९५  
अपामिदं न्ययनं समुद्रस्य निवेशनम् ।  
अन्यं कृणुष्वेतः पन्थां तेन याहि वशां अनु १६९६  
आयने ते परायणे दूर्वा रोहन्तु पुष्पिणीः ।  
हृदाश् च पुण्डरीकाणि समुद्रस्य गृहा इमे १६९७

॥ १८७ ॥ ( ऋ० १० । १५० । १-५ )

[ १६९८-१७०२ ] मृळीको वासिष्ठः । वृहती, १७०१-२ उपरिष्टाज्ज्योतिः, १७०१ जगती वा ।

समिदश् चित् समिध्यसे द्वेभ्यो हव्यवाहन ।  
आदित्यै रुद्रैर्वसुभिर्न आ गंहि मृळीकार्यं न आ गंहि १६९८  
इमं यममिदं वचो जुजुषाण उपागंहि ।  
मतीतस् त्वा समिधान हवामहे मृळीकार्यं हवामहे १६९९

त्वामु जातवेदसं विश्ववारं गृणे धिया ।

अग्ने देवाँ आ वह नः प्रियव्रतान् मृळीकार्यं प्रियव्रतान् १७००

अग्निदेवो देवानामभवत् पुरोहितो अग्निं मनुष्याः ऋषयः समीधरे ।

अग्निं महो धनसातावहं हुवे मृळीकं धनसातये १७०१

अग्निरग्निं भरद्वाजं गर्विष्ठिरं प्रार्वन्नः कर्ष्वं त्रसदस्युमाहवे ।

अग्निं वसिष्ठो हवते पुरोहितो मृळीकार्यं पुरोहितः १७०२

॥ १८८ ॥ ( ऋ० १० । १५६ । १-५ ) [ १७०३-१७०७ ] केतुराग्नेयः । गायत्री ।

अग्निं हिन्यन्तु नो धियः ससिमाशुर्मिवाजिषु । तेन जेष्म धनं धनम् १७०३

यया गा आक्रामहे सेनयाग्ने तत्रोत्था । तां नो हिन्य मघत्तये १७०४

अग्ने स्थूरं रयिं भर पृथुं गोमन्तमश्विनम् । अङ्घ्रि खं वर्तया पणिम् १७०५

अग्ने नक्षत्रमजरम् आ सूर्यं रोहयो दिवि । दधञ् ज्योतिर्जनैर्म्यः १७०६

अग्ने केतुर्विशाममि ग्रेष्ठः श्रेष्ठ उपस्थसत् । बोधां स्तोत्रे वयो दधत् १७०७

॥ १८९ ॥ ( ऋ० १० । १७६ । १-४ ) [ १७०८-१७१० ] सूतुराग्नेयः । गायत्री, १७०९-१० अनुष्टुप् ।

प्र देवं देव्या धिया भरता जातवेदसम् । हव्या नो वक्षदानुपक् १७०८

अयमु प्य प्र देव्युर् होता युवाय नीयते ।

रथो न योरभीवृत्तो घृणीवाञ् चेतति त्मना १७०९

अयमग्निररुह्यति अमृतादिव जन्मनः ।

सहसन् चित् सहीमान् देवो जीवातवे कृतः १७१०

॥ १९० ॥ ( ऋ० १० । १८७ । १-५ ) [ १७११-१७१५ ] वत्स आग्नेयः । गायत्री ।

प्रागप्ये वाचमीरय वृषभार्य क्षित्तीनाम् । स नः पर्षदति द्विपः १७११

यः परम्पाः परावर्तस् तिरो धन्यातिरोचते । स नः पर्षदति द्विपः १७१२

यो रक्षांसि निज्वयति वृषां शुक्रेण शोचिषां । स नः पर्षदति द्विपः १७१३

यो विश्वामि विपश्यति ध्रुवना सं च पश्यति । स नः पर्षदति द्विपः १७१४

यो अम्य पारे रजगः शुक्रो अग्निरजायत । स नः पर्षदति द्विपः १७१५

॥ १९१ ॥ ( ऋ० १ । १९१ । १ ) [ १७१६ ] संयनन आदित्यः । अनुष्टुप् ।

मममिद् युयमे वृषन् अग्ने विश्वान्यर्य आ ।

इत्यम्यदे गर्मिष्यमे म नो वसुन्या भर

१७१६

## वैश्वानरोऽग्निः ।

॥ १९२ ॥ ( ऋ० १ । ५९ । १-७ ) [ १७१७-१७२३ ] नोधा गौतमः । त्रिष्टुप् ।

वृषा इदमे अमर्यस् ते अन्ये त्वे विश्वे अमृता मादयन्ते ।	
वैश्वानर नाभिरसि क्षितीनां स्थूणेषु जनीं उपमिद् ययन्थ	१७१७
मूर्धा दिवो नाभिरग्निः पृथिव्या अर्थाभवदरती रोदस्योः ।	
तं त्वा देवासोऽज्जनयन्त देवं वैश्वानर ज्योतिरिदार्याय	१७१८
आ स्र्ये न रुमयो ध्रुवासो वैश्वानरे दधिरेऽग्रा चर्मनि ।	
या पर्वतेष्वोपधीष्वसु या मानुषेष्वसि तस्य राजा	१७१९
बृहती हव सुनवे रोदसी गिरो होता मनुष्योऽङ्ग न दक्षः ।	
स्वर्वते सत्यशुष्माय पूर्वार वैश्वानराय नृत्तमाय युद्धीः	१७२०
दिवश् चित् ते बृहतो जातवेदो वैश्वानर प्र रिरिचे महित्वम् ।	
राजा कृष्टीनामसि मानुषीणां युधा देवेभ्यो वरिवश् चकर्थ	१७२१
प्र नू महित्वं वृषभस्य घोचं यं पूर्वो बृत्रहणं सचन्ते ।	
वैश्वानरो दस्युमग्निर्जघन्वा अधृनोत् काष्ठा अब अश्वरं भेत्	१७२२
वैश्वानरो महिम्ना विश्वकृष्टिर् भरद्वाजेषु यजतो विभावा ।	
शातवनेये श्रुतिनीभिरग्निः पुरुणीधे जरते सूनृतावान्	१७२३

॥ १९३ ॥ ( ऋ० १ । ६८ । १-३ ) [ १७२४-१७२६ ] कुत्स आहिरसः ।

वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम् राजा हि कं ध्रुवनानामग्निश्रीः ।	
इतो जातो विश्वमिदं वि चेटे वैश्वानरो यतते स्र्येण	१७२४
पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्यां पृष्टो विश्वा ओषधीरा विवेश ।	
वैश्वानरः सहसा पृष्टो अग्निः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम्	१७२५
वैश्वानर तव तत् सत्यमस्तु अस्मान् रायो मधवानः सचन्ताम् ।	
तद्यो मित्रो वरुणो मामहन्ताम् अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः	१७२६

॥ १९४ ॥ ( क्र० ३।२। १-१५ ) [ १७२७-१७५७ ] विश्वामित्रो गाथिनः । जगती ।

वैश्वानराय धिषणांमृतामृधे घृतं न पूतमग्रये जनामसि ।  
 द्विता होतारं मनुष्यं च वाघतो धिया रथं न कुलिशः समृणति १७२७  
 स रौचयज् जनुषा रोदसी उमे स भ्रात्रोरभयत् पुत्र ईदृशः ।  
 हव्यवाळमिरजरश् चनोहितो दूळभो विशामर्तिथिर्विभावसुः १७२८  
 कत्वा दक्षस्य तरुणो विधर्मणि देवास्तो अग्निं जनयन्तु चित्तिभिः ।  
 रुचानं भानुना ज्योतिषा महाम् अत्यं न वाजं सनिष्यन्तुपं द्रुवे १७२९  
 आ मन्द्रस्य सनिष्यन्तो वरेण्यं घृणीमहे अहंयं वाजमुग्मियम् ।  
 रातिं भृगाणामुशिजं कविक्रतुम् अग्निं राजन्तं दिव्येन शोचिषा १७३०  
 अग्निं सुन्नायं दधिरे पुरो जना वाजंश्रवसमिह वृक्तयर्हिपः ।  
 यतस्तुचः सुरुचं विश्वदैव्यं रुद्रं यज्ञानां साधंदिष्टिमपसाम् १७३१  
 पावकशोचे तव हि क्षयं परि होतयज्ञेषु वृक्तयर्हिषो नरः ।  
 अग्ने दुर्व इच्छमानासु आप्यम् उपासते द्रविणं धेहि तेभ्यः १७३२  
 आ रोदसी अपृणदा स्वर्भहज् जातं यदेनमपसो अधारयन् ।  
 सो अध्वराय परि गीयते कविर् अत्यो न वाजंसातये चनोहितः १७३३  
 नमुस्यते हव्यदातिं स्वध्वरं दुवस्यतु दम्यं जातवेदसम् ।  
 रथीर्मुतस्य वृहतो निचर्षणिर् अग्निर्दुवानामभवत् पुरोहितः १७३४  
 तिस्रो यद्वस्यं समिधः परिज्मनो श्रेरपुनन्नाशिजो अमृत्यवः ।  
 तासामेकामदधुर्मत्ये भुज्यु लोकमु द्वे उपं जामिमीयतुः १७३५  
 त्रियां कविं विश्वपतिं मानुषीरिपः सं सीमकृणन् त्वधिष्ठिं न तेजमे ।  
 न उद्वतो निवतो याति वेरिपत् स गर्भमेषु श्रवनेषु दीधरत् १७३६  
 स जिन्वते जुठरेषु प्रजज्ञिगान् वृषां चित्रेषु नानन्दन सिंहः ।  
 वैश्वानरः पृथुपाजा अमर्त्यो वसु रत्ना दयमानो वि द्वाशुये १७३७  
 वैश्वानरः प्रतथा नारुमारुहद् दिवस्पृष्टं मन्दमानः सुमन्मभिः ।  
 न परैरज् जनयन् जन्तुने धनं समानमज्मं पर्येति जामृचिः १७३८

श्रुतावानं यज्ञियं विप्रमुक्थ्यम् आ यं दधे मातरिश्वा दिवि क्षयम् ।  
तं चित्रयामि हरिकेशमीमहे सुदीप्तिमग्निं सुविताय नव्यसे १७३९  
शुचिं न यामन्निपिरं स्वर्दशं केतुं दिवो रौचनस्थामुपवृधम् ।  
अग्निं मूर्धानं दिवो अप्रतिष्कृतं तमीमहे नमसा वाजिनं बृहत् १७४०  
मन्द्रं होतारं शुचिर्मर्दयाविनं दर्शनसमुक्थ्यं विश्वचर्पणिम् ।  
रथं न चित्रं वपुषाय दर्शतं मनुर्हितं सदमिद् राय ईमहे १७४१

॥ १९५ ॥ ( ऋ० ३ । ३ । १-११ )

वैश्वानरायं पृथुपाजसे विपो रवां विघन्त वरुणेषु गातवे ।  
अग्निर्हि देवां अमृतो दुवस्यति अथा घर्माणि मनता न दृढपत् १७४२  
अन्तर्दूतो रोदसी दुस्म ईयते होता निर्यतो मनुषः पुरोर्हितः ।  
क्षयं बृहन्तं परि भूयति द्युमिर् देवेभिराग्निरिपितो धियावसुः १७४३  
केतुं यज्ञानां विदथस्व साधनं विप्रासो अग्निं महयन्तु चित्तिभिः ।  
अपांसि यस्मिन्नाधि संदधुर्गिरस् तस्मिन् त्मुन्नानि यजमान आ चके १७४४  
पिता यज्ञानाममुरो विप्रश्चितां विमानमग्निर्वयुर्न च वाघताम् ।  
आ विविज रोदसी भूरिवर्षसा पुरुप्रियो भन्दते घार्मभिः कृविः १७४५  
चन्द्रमग्निं चन्द्ररथं हरिं व्रतं वैश्वानरमप्सुपदं स्वर्दिदम् ।  
विगाहं तृणिं तर्धिपीभिरावृतं भूणिं देवास्त इह मुश्रियं दधुः १७४६  
अग्निर्देवेभिर्मनुष्यश्च जन्तुभिस् तन्त्रानो यज्ञं पुरुषेशं धिया ।  
रथीरन्तरीयते साधेदिष्टिभिर् जूरो दर्मना अभिशस्तिचातनः १७४७  
अग्ने जरस्व स्वपत्य आयुनि ऊर्जा पिन्वस्व समिपो दिदीहि नः ।  
वपांसि जिन्व बृहतश्च जाश्व उश्विग् देवानामसि सुक्रतुर्विषाम् १७४८  
विश्वतिं युद्धमतिं धि नरः सदा यन्तारं धीनामुश्रिञ्च वाघताम् ।  
अध्वराणां चेतनं जातवेदमं प्र ज्ञेमन्ति नमसा जूतिभिर्वृधे १७४९  
विभावां देवः सुरणः परि क्षितार् अग्निर्वभूव शर्वसा मुमद्रथः ।  
तस्य व्रतानि भूरिपोषिणो वृषम् उप भूषेम दम् आ मुगृक्षिभिः १७५०  
वैश्वानर तव घामान्या चक्रे येभिः स्वर्दिदमगो विचक्षण ।  
जाल आपृणां सर्वनानि रोदमी अग्ने ता विद्या परिभूरग्नि त्मना १७५१

वैश्वानुरस्य दंसनाभ्यो बृहद् अरिणादेकः स्वपस्पया कविः ।  
उभा पितरा मह्यन्नजायत अग्निर्घावापृथिवी भूरिरेतसा १७५२

॥ १२६ ॥ ( ऋ० ३ । २६ । १-३, ७-८ ) जगती, [ १७५६-१७५७ ] त्रिष्टुप् ।

वैश्वानरं मनसाग्निं निचाय्या हविष्मन्तो अनुपत्यं स्वर्विदम् ।  
सुदातुं देवं रंथिरं वसूयवो गीर्भां रणं कुशिकासो हवामहे १७५३

तं शुभ्रमग्निमवसे हवामहे वैश्वानरं मातरिश्वानमुक्थ्यम् ।  
बृहस्पतिं मनुषो देवतातये विप्रं श्रोतारमतिथिं रघुप्यदम् १७५४

अथो न क्रन्दुज् जनिभिः समिष्यते वैश्वानरः कुशिकेर्मिथुगेयुगे ।  
स नो अग्निः सुधीर्यं स्वश्चर्यं दधातु रत्नममृतं पु जागृविः १७५५

अग्निरस्मि जन्मना ज्ञातवेंदा घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन् ।  
अर्कस् त्रिधातु रजसो विमानो ऽजसो घर्भो हविरस्मि नाम १७५६

त्रिभिः पवित्रैरपुणोऽक्ष्यैर्कं हुदा मतिं ज्योतिरनु प्रजानन् ।  
वर्षिष्ठं रत्नमकृत स्वधाभिर् आदिद् घावापृथिवी पथपश्यत् १७५७

॥ १२७ ॥ ( ऋ० ४ । ५ । १-१५ ) [ १७५८-१७७२ ] वामदेवो गौतमः । त्रिष्टुप् ।

वैश्वानराय मीहुपे सजोपाः कथा दाशेमाग्रये बृहद् भाः ।  
अन्तेन बृहता वक्षथेन उप स्तभायदुपमिन्न रोधः १७५८

मा निन्दतु य इमां महीं रातिं देवो वृदौ मर्त्यीय स्वधावान् ।  
पाकाप गृत्तो अमृतो विचेता वैश्वानरो नृतमो यद्दो अग्निः १७५९

साम द्विर्हार्तं मर्हि तिग्ममृष्टिः सहस्रेता वृषभस् त्रिविष्मान् ।  
पदं न गोरपंगृहं विविद्वान् अग्निर्मह्यं प्रेदु बोचन्मनीषाम् १७६०

प्र तां अग्निर्विभसत् तिग्मजम्भस् तर्पिष्ठेन शोचिषा यः सुराधाः ।  
प्र ये मिनन्ति वरुणस्य घामं प्रिया मित्रस्य चेततो ध्रुवाणि १७६१

अभ्रातरो न योषणो व्यन्तः पतिरिपो न जनयो दुरेवाः ।  
पापामः मन्तो अनृता असत्या इदं पदमजनता गभीरम् १७६२

इदं मे अग्ने किरते पावक अमिनते गुरुं मारं न मन्म ।  
पृदद् दधाथ धृता गभीरं यद्दं पृष्ठं प्रपसा सप्तधातु १७६३

तमिन्नेदुध सन्ना सन्नाम् अमि कृत्वा पुनर्ती धीतिरदयाः ।	
ससस्य चर्मन्नाधि चारु पृश्नेर् अग्नें रूप आरुपितं जवारु	१७६४
प्रवाच्यं वचसः किं मे अस्य गुहां हितमृषं निणिग् वदन्ति ।	
यदुसियाणामप चारिव वन् पातिं प्रियं रूपो अग्रं पदं वेः	१७६५
इदमु त्यन्महि महामनीकं यदुसिया सचत पूर्यं गौः ।	
श्रुतस्य पदे अधि दीर्घानं गुहां रघुप्यद् रघुयद् विवेद	१७६६
अर्घं द्युतानः पित्रोः सचासा जर्मनुत गुह्यं चारु पृश्नेः ।	
मातृ पदे परमे अन्ति यद् गोर् वृष्णाः शोचिपुः प्रयतस्य जिह्वा	१७६७
श्रुतं वोचि नमसा पृच्छयमानस् तवाशसा जातवेदो यद्रीदम् ।	
त्वमस्य क्षयसि यद् विष्वे दिवि यदु द्रविणं यत् पृथिव्याम्	१७६८
किं नो अस्य द्रविणं कद् रत्नं वि नो वोचो जातवेदश् चिकित्त्वान् ।	
गुहाध्वनः परमं यन्नो अस्य रेकुं पदं न निर्दाना अगन्म	१७६९
का मर्यादा वयुना कद् वामम् अच्छा गमेम रचवो न वार्जम् ।	
कदा नो देवीरमृतस्य पत्नीः स्रो वर्णेन ततननुपासः	१७७०
अनिरेण वचसा फल्ग्वेन प्रतीत्येन कृधुनातृपासः ।	
अघा ते अग्ने किमिहा वदन्ति अनायुधास आसता सचन्ताम्	१७७१
अस्य श्रिये समिधानस्य वृष्णो वसोरनीकं दम् आ ह्रोच ।	
रुग्द् वसानः सुदशीकरूपः क्षितिर्नि राया प्रुवारो अघात्	१७७२

॥ १९८ ॥ ( ऋ० ६ । ७ । १-७ )

[ १७७३-१७९३ ] मरुताजो धार्दस्पत्यः । त्रिष्टुप्, १७७८—१७७९ जगती ।

मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम् ।	
कविं सत्राजमर्तिधिं जनानाम् आसन्ना पात्रं जनयन्त देवाः	१७७३
नार्भि यज्ञानां सदनं रयीणां महामाहावमभि सं नवन्त ।	
वैश्वानरं रथ्यमघ्वराणां यज्ञस्यं केतुं जनयन्त देवाः	१७७४
त्वद् विप्रो जायते वाज्यमे त्वद् वीरासो अभिमातिपाहः ।	
वैश्वानर त्वमस्मासु धेहि वसन्ति राजन् तस्यद्वयाप्याणि	१७७५

त्वां विश्वे अमृतं जायमानं शिशुं न देवा अभि सं नवन्ते ।  
 तत्र कर्तुभिरमृतत्वमायन् वैश्वानरं यत् पित्रोरदीदिः १७७६  
 वैश्वानरं तत्र तानि व्रतानि महान्यग्रे नक्रिरा दधर्ष ।  
 यज् जायमानः पित्रोरुपस्थे ऽर्विन्दः केतुं वयुनेष्वह्वाम् १७७७  
 वैश्वानरस्य विमितानि चक्षसा सानूनि दिवो अमृतस्य केतुना ।  
 तस्येदु विश्वा भुवनार्धिं भूर्धनि वया इव रुरुहुः सप्त विसृहेः १७७८  
 त्रि यो रजांस्यमिमीत सुकृत्तुर् वैश्वानरो वि दिवो रौचिना कृविः ।  
 परि यो विश्वा भुवनानि पप्रथे ऽदंध्यो गोपा अमृतस्य रक्षिता १७७९

॥ १९९ ॥ ( ऋ० ६ । ८ । १-७ ) जगती, १७८६ त्रिष्टुप् ।

पृक्षस्य वृष्णो अरुणस्य नू सहः प्र नु बौचं विदथा जातवेदसः ।  
 वैश्वानरार्यं मतिर्नव्यसी शुचिः सोमं इव पत्रते चारुरग्रये १७८०  
 स जायमानः परमे व्योमनि व्रतान्यग्निर्व्रतपा अरक्षत ।  
 व्य॑न्तरिक्षममिमीत सुकृत्तुर् वैश्वानरो महिना नाकमस्पृशत १७८१  
 व्यस्तन्नाद् रोदसी मिश्रो अद्भुतो ऽन्तर्वावदकृणोज् ज्योतिषा तमः ।  
 नि चर्मणीन धिपणो अवर्तयद् वैश्वानरो विश्वमघत्त वृष्ण्यम् १७८२  
 अपामुपस्थे महिषा अगृभ्णात् विशो राजानमुप तस्थुर्भूमिगम् ।  
 आ दूतो अग्निर्ममरद् विवस्वतो वैश्वानरं मातरिश्वा परावर्तः १७८३  
 युगेयुगे विदुष्यं गृणद्भ्यो ऽग्रे रयिं यद्यसं धेहि नव्यसीम् ।  
 पृष्येयं राजन्नघयंसमजर नीचा नि वृश्च वनिनं न तेजसा १७८४  
 अस्माकमग्रे मघवत्सु धारय अनामि क्षत्रमजरं सुवीर्यम् ।  
 ययं जयेम श्रुतिर्न सहस्रिणं वैश्वानरं वाजमग्रे तत्रोतिभिः १७८५  
 अदंध्यमिम् तव गोपार्भिरिष्टे ऽस्माकं पाहि त्रिषधस्य सूरीन् ।  
 रधां च नो दृष्ट्वां शयीं अग्रे वैश्वानरं प्र च तारीः स्तवानः १७८६

॥ २०० ॥ ( ६ । ९ । १-७ ) त्रिष्टुप् ।

अहं च कृष्णमहरज्जुनं च नि यंतंते रजसी वेद्याभिः ।  
 वैश्वानरो जायमानो न राजा अवातिरन् ज्योतिषाग्निम् तमांसि १७८७



नाहं तन्तुं न वि जानाम्योतुं	न यं वर्यन्ति समुरेऽतमानाः ।	
कस्य स्वित् पुत्र इह वक्तव्यनि	पुरो वंदात्यवरेण पित्रा	१७८८
स इत् तन्तुं स वि जानात्योतुं	स वक्तव्यन्यूतथा वंदाति ।	
य इं चिकेतदमृतस्य गोपा	अवग् चरन् पुरो अन्येन पश्यन्	१७८९
अयं होता प्रथमः पश्यतेमम्	इदं ज्योतिरमृतं मर्त्येषु ।	
अयं स जज्ञे ध्रुव आ निपत्तो	ऽमर्त्यस् तन्वाइ वर्धमानः	१७९०
ध्रुवं ज्योतिर्निहितं दृश्ये कं	मनो जविष्ठं पतर्यत्स्वन्तः ।	
विश्वे देवाः समनसः संकेता	एकं कर्तुमभि वि यन्ति साधु	१७९१
वि मे कर्णो पतयतो वि चक्षुर्	वीइदं ज्योतिर्हृदय आहितं यत् ।	
वि मे मनश् चरति दूरआधीः	किं स्विद् वक्ष्यामि किमु नू मनिष्ये	१७९२
विश्वे देवा अनमस्यन् भियानास्	त्वामग्ने तमसि तस्थिवासम् ।	
वैश्वानरोऽवतुतये नो	ऽमर्त्योऽवतुतये नः	१७९३

॥ २०१ ॥ ( क्र० ७ । ५ । १-९ ) [ १७९४-१८१२ ] वसिष्ठो मेधावहनिः । त्रिष्टुप् ।

प्राप्तये तुषसे भरध्वं	गिरं दिवो अरुतये पृथिव्याः ।	
यो विश्वेषाममृतानामुपस्थे	वैश्वानरो वावृधे जागृवद्भिः	१७९४
पृष्टो दिवि धाय्यग्निः पृथिव्यां	नेता सिन्धूनां वृषमः स्तियानाम् ।	
स मारुपीरभि विशो वि माति	वैश्वानरो वावृधानो वरेण	१७९५
त्वद् भिया विश आयन्नसिक्तीर्	असमना जहतीर्भोजनानि ।	
वैश्वानर पूरवे शोशुचानः	पुरो यदग्ने दुरयन्नदीदेः	१७९६
तव त्रिधातुं पृथिवी उत द्यौर्	वैश्वानर व्रतमग्ने सचन्त ।	
त्वं मासा रोदसी आ ततन्थ	अजसेण शोचिषा शोशुचानः	१७९७
त्वामग्ने हरितो वावशाना	गिरः सचन्ते धुनयो घृताचीः ।	
पतिं कृष्टीनां रुध्यं रयीणां	वैश्वानरमुपसां केतुमह्वाम्	१७९८
त्वे असुर्यं वसयो न्यृण्वन्	क्रतुं हि ते मित्रमहो जुपन्त ।	
त्वं दस्युरोर्कसो अग्न आज	उरु ज्योतिर्जनयुच्चायीप	१७९९

स जायमानः परमे व्योमन् वायुर्न पाथः परिं पासि सद्यः ।  
 त्वं भुवना जनयन्भि क्रन् अपत्याय जातवेदो दशस्यन्  
 तामग्ने अस्मे हृषमेरयस्व वैश्वानर धुमतीं जातवेदः ।  
 यया राघः पिन्वसि विश्ववार पृथु श्रवो द्राशुपे मर्याय  
 तं नो अग्ने मध्वयः पुरुक्षुं रयिं नि वाजं श्रुत्यै युवस्व ।  
 वैश्वानर महि नुः शर्म यच्छ रुद्रेभिरग्ने वसुभिः सजोषाः

१८००

१८०१

१८०२

॥ २०२ ॥ ( ऋ० ७ । ६ । १-७ )

प्र सम्राजो असुरस्य प्रशस्तिं पुंसः कृष्टीनार्मनुमाद्यस्य ।  
 इन्द्रस्येव प्र तवसस्कृतानि वन्दे दारं वन्दमानो विष्विम्  
 क्विं केतुं घासिं भानुमद्रेर हिन्वन्ति शं राज्यं रोदस्योः ।  
 पुरंदरस्य गीभिरा विवासे ज्ञेयतानि पूर्या महानि  
 न्यक्रतुन् ग्रथिनो मध्ववाचः पर्णिरश्रद्धो अवृधौ अयज्ञान् ।  
 प्रप्र तान् दस्यूरभिर्विवाय पूर्वश् चकारापरां अयज्यून  
 यो अपाचीने तमसि मदन्तीः प्राचींश् चकार नृतमः शचीभिः ।  
 तमीशानं वसवो अग्निं गृणीपे जनानतं दुमयन्तं पृतन्यून  
 यो देहोऽनेनमयद् वधुलैर् यो अर्यपत्नीरुपसंश् चकार ।  
 स निरुध्या नहुपो युहो अगिर विश्वश् चक्रे बलिहतः सहोभिः  
 यस्य शर्मन्नुप विश्वे जनास्त एवैस् तस्युः सुमतिं भिक्षमाणाः ।  
 वैश्वानरो वरमा रोदस्योर् आग्निः संसाद पित्रोरुपस्थम्  
 आ देवो ददे गुह्याङ्गे वध्वनि वैश्वानर उदित्ता सूर्यस्य ।  
 आ समुद्रादवरादा परस्माद् आग्निर्देदे दिव आ पृथिच्य्याः

१८०३

१८०४

१८०५

१८०६

१८०७

१८०८

१८०९

॥ २०३ ॥ ( ऋ० ७ । १३ । १-३ )

प्राग्रये विश्वशुचं धियुधं असुरग्ने मन्म घीतिं शरध्वम् ।  
 भरे हविर्न वहिर्वि प्रीणानो वैश्वानराय यतये मतीनाम्  
 त्वमग्ने शोचिषा शोशुचान् आ रोदसी अपृणा जायमानः ।  
 त्वं देवां अभिशस्तेरमुञ्चो वैश्वानर जातवेदो महित्वा

१८१०

१८११

जातो यदग्ने भुवना व्यस्यः पशून् न गोषा इयः परिज्मा ।  
वैश्वानर ब्रह्मणे विन्द गातुं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः

१८१२

## ३ रक्षोहाऽग्निः ।

॥ २०४ ॥ (श्रु० ४ । ४ । १-१५) [ १८१३-१८२७ ] चामदेयो गीतमः । प्रिष्टम् ।

कृणुष्व याजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवाँ इमेन ।  
तृष्णीमनु प्रसितिं दृणानो ऽस्तासि विष्यं रक्षसम् तर्पिष्ठः १८१३  
तव भ्रमास आशुया पतन्ति अनु स्पृश घृयता शोशुचानः ।  
तपूप्यमे जुहो पतङ्गान् असंदिता वि सृज विष्वगुल्काः १८१४  
प्रति स्पशो वि सृज तूष्णीतमो भवा पायुर्विशो अस्या अर्दधः ।  
यो नो दूरे अघशंसो यो अन्ति अग्रे मार्किष्टे व्यधिरा दधर्षात् १८१५  
उदग्ने तिष्ठ प्रत्या तनुष्व न्यमित्राँ ओपतात् तिग्महेते ।  
यो नो अरातिं समिधान चक्रे नीचा तं घक्ष्यतुसं न शुष्कम् १८१६  
ऊर्ध्वो मव प्रति विष्याध्यस्मद् आविष्कृणुष्व देव्यान्यग्रे ।  
अव स्थिरा तनुहि यातुज्जनां जामिमर्जामि प्र मृणीहि शत्रून् १८१७  
स ते जानाति सुमतिं यविष्ठ य ईवते ब्रह्मणे गातुमैरत् ।  
विभ्रान्वस्मै सुदिनानि रागो घुम्रान्ययो वि दुरो अभि धात्र १८१८  
सेदग्ने अस्तु सुमर्गः सुदानुर यस त्वा नित्येन हविषा य उक्थः ।  
पिप्रिपति स्व आयुषि दुरोणे विधेदस्मै सुदिना सासंदिष्टिः १८१९  
अर्चामि ते सुमतिं धोप्यर्वाक् सं ते वावार्ता जरतामियं गीः ।  
स्वशास् त्वा सुरधा मर्जयेम अस्मे सत्रार्णि धारयेरु धून् १८२०  
इह त्वा भूर्या चरेदुष त्मन् दोषावस्तर्दीद्विवांसमनु धून् ।  
श्रीरन्तस् त्वा सुमनसः सपेम अभि घुम्रा तंन्विवांसो जनानाम् १८२१  
यस् त्वा स्वधः सुहिरण्यो अग्न उपयाति वसुमता रथेन ।  
तस्य प्राता मवसि तस्य सग्ना यम् तं आतिथ्यमानुषम् जुजोषन् १८२२

महो रुजामि वन्धुता वचोभिस् तन्मा पितुर्गोतमादन्वियाय ।	
त्वं नो अस्य वचसश् चिकिद्धि होतर्यविष्ट सुकृतो दमूनाः	१८२३
अस्वमजस् तरणयः सुशेवा अतन्द्रासोऽवृका अश्रमिष्ठाः ।	
ते पायवः स्रग्भ्यश्चो निपद्य अग्रे तव नः पान्त्वमूर	१८२४
ये पायवो मामतेयं ते अग्रे पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन् ।	
ररक्ष तान् त्सुकृतो विश्ववेदा दिप्सन्त इद् रिपवो नाहं देशुः	१८२५
त्वया व्यं संधुन्यस् त्वोतास् तव प्रणीत्यश्याम् वाजान् ।	
उभा शंसां स्रदय सत्यताते ऽनुष्ठुया कृणुह्यहयाण	१८२६
अया ते अग्रे समिधा विधेम प्रति स्तोमं शस्यमानं गृभाय ।	
ददाशसो रक्षसः पाशुस्मान् द्रुहो निदो मित्रमहो अवद्यात्	१८२७

॥ २०५ ॥ ( अ० १० । ८७ । १-२५ )

[ १८२८—१८५२ ] पातुर्भास्त्राजः । त्रिष्टुप्, १८४९-५२ अनुष्टुप् ।

रक्षोहर्षं वाजिनमा जिघमि मित्रं प्रथिष्टुषं यामि शर्म ।	
शिशानो अग्निः क्रतुभिः समिद्धः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम्	१८२८
अयोद्वेष्टो अर्चिषा यातुधानान् उप स्पृश जातवेदः समिद्धः ।	
आ जिह्वया मूर्देवान् रमस्व क्रव्यादो वृक्त्वयि धत्स्वासन्	१८२९
उमोभयाविश्रुषं धेहि दंष्ट्रां हिंसः शिशानोऽवैरं परं च ।	
उत्तान्तरिक्षे परिं याहि राजन् जम्भैः सं धेह्यभि यातुधानान्	१८३०
यज्ञैरिषुः संनर्ममानो अग्रे वाचा श्रव्यां अशनिभिर्दिहानः ।	
ताभिर्दिध्य हृदये यातुधानान् प्रतीचो वाहन् प्रति भङ्घ्येषाम्	१८३१
अग्रे त्वचं यातुधानस्य भिन्धि हिंसाशनिर्हरसा हन्त्वेनम् ।	
प्र पर्याणि जातवेदः शृणीहि क्रव्यात् क्रविष्णुर्वि चिन्तोत वृक्कणम्	१८३२
यत्रेदानीं पश्यसि जातवेदस् तिष्ठन्तमग्र उत वा चरन्तम् ।	
यद् वान्तरिक्षे पृथिभिः पतन्तं तमस्तां विध्य शर्वा शिशानः	१८३३
उतारं च स्पृणुहि जातवेद आलेभानादृष्टिभिर्यातुधानात् ।	
अग्रे पश्यो नि जेहि शोर्मुचान आमादः श्विशस् तमद्वन्त्वेनीः	१८३४

इह प्र ब्रूहि यतुमः सो अग्ने	यो यातुधानो य इदं कृणोति ।	
तमा रमस्व सुमिधा यविष्ठ	नृचक्षसश् चक्षुषे रन्ध्रयैनम्	१८३५
तीक्ष्णेनाग्निं चक्षुषा रक्ष यज्ञं	प्राञ्चं वसुम्यः प्र णय प्रचेतः ।	
हिंसं रक्षोस्यभि शोशुचानं	मा त्वा दमन् यातुधानां नृचक्षः	१८३६
नृचक्षा रक्षः परि पश्य विक्षु	तस्य त्रीणि प्रति शृणीह्यग्रा ।	
तस्याग्ने पृष्टीर्हरसा शृणीहि	श्रेधा मूलं यातुधानस्य वृध	१८३७
त्रियोतुधानः प्रसितिं त एतु	ऋतं यो अग्ने अनृतेन इन्ति ।	
तमार्चिषा स्फूर्जयन् जातवेदः	समुक्षमेनं गृणते नि वृद्धि	१८३८
तदग्ने चक्षुः प्रति घेहि रेभे	शंफारुजं येन पश्यसि यातुधानम् ।	
अथर्ववज् ज्योतिषा दैव्येन	सत्यं धूर्वन्तमचितुं न्योपि	१८३९
यदग्ने अघ मिथुना अपातो	यद् वाचस् तृष्टं जनयन्त रेभाः ।	
मन्योर्मेनसः शरुच्याद् जायते	या तया विध्य हृदये यातुधानान्	१८४०
परां शृणीहि तपसा यातुधानान्	पराग्ने रक्षो हरसा शृणीहि ।	
परार्चिषा मूर्देवाब् छृणीहि	परासुतपो अभि शोशुचानः	१८४१
पराघ देवा वृजिनं शृणन्तु	प्रत्यगेनं शपथां यन्तु तृष्टाः ।	
वाचास् तेनं शरव ऋच्छन्तु मर्मन्	विध्वंस्यैतु प्रसितिं यातुधानः	१८४२
यः पौरुषेयेण ऋविषा समुक्ते	यो अश्वयेन पशुना यातुधानः ।	
यो अफ्याया भरति क्षीरमे	तेषां त्रीर्षाणि हरमापि वृध	१८४३
संवत्सरीणं पय उसिषायास्	तस्य माशीद् यातुधानो नृचक्षः ।	
पीयूषमग्ने यतमस् तितृप्सात्	तं प्रत्यञ्चमर्चिषा विध्य मर्मन्	१८४४
विपं गवां यातुधानाः पिबन्तु	आ वृश्यन्तामदितये दुरेवाः ।	
परंनान् देवः संविता दंदातु	परां मागमोपधीनां जयन्ताम्	१८४५
सनादग्ने मृणसि यातुधानान्	न त्वा रक्षाभि पृतनामु जिग्युः ।	
अनु दह सहमूरान् ऋच्यादो	मा ते हेत्या मुंसत दैव्यायाः	१८४६
त्वं नो अग्ने अघरादुदक्तात्	त्वं पश्चादुत रक्षा पुरस्तात् ।	
प्रति ते ते अजरांमस् तर्पिष्ठा	अघर्जं शोशुचतो दहन्तु	१८४७

पुथात् पुरस्तादधरादुदक्तात् कविः काव्येन परि पाहि राजन् ।	
सरे सखायमजरो जरिम्णे ज्ञे मर्ता अमर्त्यस् त्वं नः	१८४८
परि त्वाग्ने पुरं वयं विप्रं सहस्य धीमहि ।	
धूपद्वयं दिवेदिवे हन्तारं भङ्गरावताम्	१८४९*
विपेण भङ्गरावतः प्रति प्म रक्षसो दह ।	
अग्ने तिम्रेन शोचिषा तपुर्ग्राभिर्ऋष्टिभिः	१८५०
प्रत्यग्ने मिथुना दह यातुधानां किमीदिना ।	
सं त्वा शिशामि जागृहि अदब्धं विप्र मन्मभिः	१८५१
प्रत्यग्ने हरसा हरः शृणीहि विश्वतः प्रति ।	
यातुधानस्य रक्षसो बलं वि रुज वीर्यम्	१८५२
॥ २०६ ॥ ( ऋ० १० । ११८ । १-२ ) [ १८५३-१८६१ ] उरुक्षय आमहीयव । गायत्री ।	
अग्ने हंसि न्यगृणिं दीघन् मर्त्येणा । रे क्षये शुचिव्रत	१८५३
उत् तिष्ठसि स्नाहुतो घृतानि प्रति मोदसे । यत् त्वा सुचः समस्तिरन्	१८५४
स आहुतो वि रोचते अग्निरीक्ष्यो गिरा । सुचा प्रतीकमज्यते	१८५५
घृतेनाग्निः समज्यते मधुप्रतीक आहुतः । रोचमानो विभार्वसुः	१८५६
जरमाणः समिध्यसे देवेभ्यो हव्यवाहन । तं त्वा हवन्त मर्त्याः	१८५७
तं मर्ता अमर्त्यं घृतेनाग्निं संपर्यत । अदाम्यं गृहपतिम्	१८५८
अदाम्येन शोचिषा ज्ञे रक्षस् रं दह । गोषा कृतस्य दीदिहि	१८५९
स त्वमग्ने प्रतीकेन प्रत्योप यातुधान्यः । उरुक्षयेषु दीघत्	१८६०
तं त्वा गीभिर्ऋक्षया हव्यवाहं समीधिरे । यजिष्ठं मासुपे जने	१८६१

## ४ जातवेदा अग्निः ।

॥ २०६ ॥ ( ऋ० १ । १९ । १ ) [ १८६२ ] कक्षयो मारीचः । जिष्ठुप् ।

जातवेदके सुनवाम सोमम् अरातीयतो नि दहाति वेदः ।

म नः पर्पदति दुर्गाणि रिशा नावेष्ट सिन्धुं दुरितात्यभिः

१८६२

॥ २०८ ॥ ( ऋ० १० । १८८ । १-३ ) [ १८६३-१८६५ ] इयेन आग्नेयः । गायत्री ।

प्र नूनं जातवेदसम् अथ हिनोत वाजिनम् । इदं नो वहिरासदे १८६३

अस्य प्र जातवेदसो विप्रवीरस्य मीहुषः । महीमियमि सुष्टुतिम् १८६४

या रुचो जातवेदसो देवत्रा हव्यवाहनीः । ताभिर्नो यज्ञमिन्वतु १८६५

॥ २०९ ॥ ( अथर्ववेदे कां० ७ । ८४ (८९) । १ ) [ १८६६ ] मृगुः । जगती ।

अनाधृष्यो जातवेदा अमर्त्यो विराटशे धन्मृद् दीदिहीह ।

विश्वामीवाः प्रमुञ्चन् मानुषीभिः शिवाभिरद्य परि पाहि नो गर्गम् १८६६

## ५ घर्मोऽग्निः ।

॥ २१० ॥ ( ऋ० १ । ११२ । १ द्वितीयः पादः ) [ १८६७ ] कुत्स आगिरसः ।

अग्निं घर्मं सुरुचं यामन्निष्टये ।

१८६७

## ६ औपसोऽग्निः ।

॥ २११ ॥ ( ऋ० १ । ९५ । १-११ ) [ १८६८-१८७८ ] कुत्स आगिरसः । मिष्टुप् ।

द्वे विरूपे चरतुः स्वर्थे अन्यान्या वत्समुप धापयेते ।

हरिरुन्यस्यां भवति स्वधावाञ् छुक्रो अन्यस्यां ददशे सुवर्चाः १८६८

दशेभं त्वष्टृर्जनयन्त गर्गम् अर्तन्द्रासो युवतयो विमृत्रम् ।

तिग्मानीकं स्वयंशतं जनेषु विरोचमानं परि पीं नयन्ति १८६९

ग्रीणि जाना परि भूपन्त्यस्य समुद्र एकं दिव्येकमप्सु ।

पूर्वामनु प्र दिशं पार्थिवानाम् क्रतुर् प्रशासद् वि दधावनुषु १८७०

क इमं पो निष्पमा चिकेत वत्सो मातृर्जनयत स्वधाभिः ।

पहीनां गर्मो अपसांमुपस्थात् महान् कविर्निश् चरति स्वधावाञ् १८७१

आविष्टो वर्धते चारुरासु निक्षानामूर्ध्वः स्वयंशा उपस्थे ।

उमे त्वष्टुर्विम्यतुर्जायमानात् प्रतीची सिंहं अति जोषयेते १८७२

उमे भद्रे जोंपयेते न मेने गावो न वाथा उप तस्थुरेवः ।	
स दक्षाणां दक्षपतिर्वभूव अञ्जन्ति यं दक्षिणतो हविर्भिः	१८७३
उद् ययमीति सवितेर्व वाह उमे सिर्चां यतते भीम ऋञ्जन् ।	
उच्छृक्रमत्कमजते सिमस्मात् नवां मातृभ्यो वसना जहाति	१८७४
त्वेपं रूपं कृणुत उचरं यत् संपृञ्जानः सदर्ने गोभिरङ्गिः ।	
कृषिर्धुमं परि मर्मज्यते धीः सा देवताता समितिर्वभूव	१८७५
उरु ते जयः पर्येति युधं विरोचमानं महिषस्य धाम ।	
विश्वेभिरग्रे स्वयंशोभिरिद्धो ज्दग्धेभिः पायुभिः पाहस्मान्	१८७६
धन्वन् त्स्रोतः कृणुते गातुपूर्भि शुक्रैरुर्मिभिरभि नक्षति क्षाम् ।	
विश्वा सनानि जठरेषु घृते ऽन्तर्नवासु चरति प्रसृपु	१८७७
एवा नो अग्रे समिधां वृधानो रेवत् पावक श्रवसे वि माहि ।	
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ताम् अदितिः सिन्धुः पृथिवी उव द्यौः	१८७८

## ७ द्रविणोदा अग्निः ।

॥ २१२ ॥ ( ऋ० १ । ९६ । १-२ ) [ १८७९—१८८७ ] कुत्स आगिरसः । विष्टुप् ।

स प्रक्षया सहसा जायमानः सद्यः काव्यान्ति बळघत्त विश्वा ।	
आपश् च मित्रं धिपणां च साधन् देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम्	१८७९
स पूर्वया निविदां कव्यतापोर् इमाः प्रजा अंजनयन् मर्नताम् ।	
विवस्वता चक्षसा धामपश् च देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम्	१८८०
तमीळत प्रथमं यज्ञसाधुं विश आरीराहुतमृञ्जसानम् ।	
ऊर्जः पुत्रं भरतं सुप्रदातुं देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम्	१८८१
॥ मातरिधां प्रह्वारं पृष्टिर् विदद् गातुं तनयाय स्वर्चित् ।	
विशां गोपा र्जमिता रोदस्योर् देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम्	१८८२
नक्तोपामा वर्णमापेभ्याने धापयेति शिशुमेकं समीची ।	
पायाधामा रुक्मो अन्तर्वि माति देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम्	१८८३



रायो वृद्धः संगमनो वरुणां यज्ञस्य केतुर्मन्मसार्धनो वेः । अमृतत्वं रक्षमाणास एनं देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम्	१८८४
न च पुरा च सदनं रयीणां ज्ञातस्य च जायमानस्य च क्षाम् । मत्तश् च गोपां भवतश् च भूरर् देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम्	१८८५
द्रविणोदा द्रविणसम् तुरस्य द्रविणोदाः सनरस्य प्र यैमत् । द्रविणोदा वीरवतीमिषै नो द्रविणोदा रांसते दीर्घमायुः	१८८६
एवा नो अग्रे समिधा वृधानो ० । ( १८७८ )	

## ७ शुचिरग्निः ।

॥ २१३ ॥ ( अ० १।९७।१-८ ) ( १८८७-१८९४ ) कृष्ण अग्निः ॥ २१३ ॥

अप नः शोशुचदुधम्	अग्ने शुशुध्या गुविम् ।	
अप नः शोशुचदुधम्		१८८७
मुखेत्रिया सुगातुया	धमूया च यज्ञानं ।	
अप नः शोशुचदुधम्		१८८८
प्र यद् भन्दिष्ठ एषां	आस्माकान्द च मूर्धः ।	
अप नः शोशुचदुधम्		१८८९
प्र यत् ते अग्रे सूर्यो	ज्ञानं च ते ज्ञानं ।	
अप नः शोशुचदुधम्		१८९०
प्र यदग्नेः महस्वनो	विद्यते नन्दि नन्दिः ।	
अप नः शोशुचदुधम्		१८९१
त्वं हि विश्वतोमुख	विद्यते नन्दि नन्दिः ।	
अप नः शोशुचदुधम्		१८९२
दिपो नो विश्वतोमुख	अग्ने नन्दि नन्दिः ।	
अप नः शोशुचदुधम्		
म नः मिन्वामि नदश	अग्ने नन्दि नन्दिः ।	
अप नः शोशुचदुधम्		

## ८ अग्निरापो गावश्च ।

अग्निः सूर्यो वा आपो वा गावो वा धृतस्तुतिर्वा ।

॥ २१४ ॥ ( क्र० ४।५८। १-११ ) [ १८९५-१९०५ ] चामदेवो गौतमः । त्रिष्टुप्, १९०५ जगती ।

समुद्राद्दुर्मर्मधुमाँ उदारद् उपांशुना सममृतत्वमानद् ।

धृतस्य नाम शुभं यदस्ति जिह्वा देवानाममृतस्य नाभिः १८९५

त्रयं नाम प्र ब्रवामा धृतस्य अस्मिन् यज्ञे धारयामा नमोभिः ।

उपे ब्रह्मा शृणवच्छस्यमानं चतुःशृङ्गोऽवमीद् गौर एतत् १८९६

चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सुप्त हस्तांसो अस्य ।

त्रिधा यद्वो वृषभो रौरवीति महो देवो मर्त्यो आ विवेश १८९७

त्रिधा हितं पणिभिर्गुह्यमानं गर्वि देवासो धृतमन्वविन्दन् ।

इन्द्र एकं सूर्य एकं जजान वेनादेकं स्वधया निर्यतक्षुः १९९८

एता अर्पन्ति ह्यदात् समुद्रात् शतव्रजा रिपुणा नावचक्षे ।

धृतस्य धारा अभि चाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मर्घ्य आसाम् १९९९

सम्पक् स्रवन्ति सरितो न घेना अन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः ।

एते अर्पन्त्यूर्मयो धृतस्य मृगा इव क्षिपणोरीर्षमाणाः १९००

सिन्धोरिव प्राघ्ने शूघनासो वार्तप्रमियः पतयन्ति यद्वाः ।

धृतस्य धारा अरुपो न वाजी काष्ठा भिन्दद्भूमिभिः पिन्वमानः १९०१

अभि प्रवन्तु समनेव योषाः कल्याण्यः स्मर्यमानासो अप्रिम् ।

धृतस्य धाराः सुमिधो न सन्त ता जुषाणो हर्यति जातवेदाः १९०२

कन्या इव बहुतुमेतन्ना उ अर्क्यज्जाना अभि चाकशीमि ।

यत्र मोर्मः सूपते यत्र यज्ञो धृतस्य धारा अभि तत् पवन्ते १९०३

अभ्यर्पत मुष्टिं गव्यमाजिम् अस्मार्मु मद्रा द्रविणानि घच ।

इमं यद्यं नेपत देवता नो धृतस्य धारा मधुमत् पवन्ते १९०४

धामन् ते विश्वं सर्वनुमार्थं धितम् अन्तः समुद्रे हृद्यन्तरापुषि ।

अपामनीकं ममिथे य आभृतम् तमश्याम् मधुमन्तं त ऊर्मिम् १९०५

## ९ आप्रीसूक्तानि ।

॥ २१५ ॥ ( ऋ० १ । १३ । १-१२ )

१९०६-१५ मेधातिथिः काण्वः । आप्रीसूक्तं= [क्रमेण-१ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ तनूनपात्, ३ नराशंसः, ४ इळाः, ५ बर्हिः, ६ देवीः द्वा०, ७ उपासानका, ८ दैव्यां होतारौ प्रचेतसां, ९ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यः, १० त्वष्टा, ११ वनस्पतिः, १२ स्वाहाकृतयः] । गायत्री ।

सुसमिद्धो न आ बह देवाँ अग्ने इविष्मते । होतः पावक यक्षि च	१९०६
मधुमन्तं तनूनपाद् यज्ञं देवेषु नः कवे । अद्या कृणुहि धीतये	१९०७
नराशंसमिह प्रियम् अस्मिन् यज्ञ उषं ह्वये । मधुजिह्वं इविष्कृतम्	१९०८
अग्ने सुखतमे रथे देवाँ ईळित आ बह । असि होता मनुहितः	१९०९
स्तुणीत बर्हिरानुपग् घृतपृष्ठं मनीषिणः । यत्रामृतस्य चक्षणम्	१९१०
वि श्रयन्तामृतावृधो द्वारो देवीरंसुधतः । अद्या नूनं च यष्टवे	१९११
नक्तोपासां सुपशसा अस्मिन् यज्ञ उषं ह्वये । इदं नो बर्हिरासदे	१९१२
ता सुजिह्वा उषं ह्वये होतारा दैव्यां कवी । यज्ञं नो यक्षतामिमम्	१९१३
इळा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोध्ववः । बर्हिः सीदन्त्वसिधः	१९१४
इह त्वष्टारमग्रियं विश्वरूपमुषं ह्वये । अस्माकमस्तु केवलः	१९१५
अव सृजा वनस्पते देवं देवेभ्यो इविः । प्र दातुरस्तु चेतनम्	१९१६
स्वाहा यज्ञं कृणोतन इन्द्राय यज्वनो गृहे । तत्र देवाँ उषं ह्वये	१९१७

॥ २१६ ॥ ( ऋ० १ । १४२ । १-१३ )

१९१८-३० दीर्घमता औचर्यः । आप्रीसूक्तं= [क्रमेण- १ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ तनूनपात्, ३ नराशंसः, ४ इळाः, ५ बर्हिः, ६ देवीः द्वा०, ७ उपासानका, ८ दैव्यां होतारौ प्रचेतसां, ९ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यः, १० त्वष्टा, ११ वनस्पतिः, १२ स्वाहाकृतयः, १३ इन्द्रः] । अनुष्टुप् ।

समिद्धो अग्र आ बह देवाँ अद्य यत्सुचे । तन्तुं तनुष्व पुष्यं सुतसोमाय दाशुषे	१९१८
घृतवन्तमुषं मामि मधुमन्तं तनूनपात् । यज्ञं विप्रस्य मार्वतः शशमानस्यं दाशुषः	१९१९
शुचिः पावको अद्भुतो मध्वा यज्ञं मिमिक्षति । नराशंसम् त्रिरा दिवो देवो देवेषु यज्ञियः	१९२०
ईळितो अग्र आ बह इन्द्रं चित्रमिह प्रियम् । इयं हि त्वां मतिर्मम अच्छां सुजिह्व वृच्यते	१९२१
स्तृणानासो यत्सुचो बर्हिर्यज्ञे स्वध्वरे । वृद्धे देववर्षचस्तमम् इन्द्राय अग्ने सुप्रयः	१९२२
वि श्रयन्तामृतावृधः अग्रे देवेभ्यो महीः । पावकासः पुरुष्टुहो द्वारो देवीरंसुधतः	१९२३

आ भन्दमाने उपाके नक्तोपासा सुपेशसा । यद्ही ऋतस्य मातरा मीदतां बर्हिः सुमन् १९२४  
 मन्द्रजिह्वा जुगुर्वणी होतारा दैव्या कवी । यज्ञं नो यक्षतामिमं मिध्रमध दिविस्पृशम् १९२५  
 शुचिदेवेष्वपिता होत्रा मरुत्सु भारती । इला सरस्वती मही बर्हिः सीदन्तु यज्ञियाः १९२६  
 तन्नस् तुरीपमर्द्धन्तं पुरु वारं पुरु त्मना । त्वष्टा पोषाय विष्यतु राये नाभा नो अस्म्युः १९२७  
 अवसृजन्नुप त्मना देवान् यक्षि वनस्पते । अग्निर्हव्या सुषुदति देवो देवेषु मेधिरः १९२८  
 पूषन्वते मरुत्वते विश्वदेवाय वायवे । स्वाहा गायत्रेवपसे हव्यमिन्द्राय कर्तन १९२९  
 स्वाहाकृताण्या गहि उप हव्यानि वीतये । इन्द्रा गहि शुधी हवं त्वां हवन्ते अघ्नो १९३०

॥ २१७ ॥ ( अ० १ । १८८ । १-११ )

१९३१-४१ अगस्त्यो मैत्रावरुणः । आग्नेयस्कन् = ( क्रमेण- १ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ तनूनपातः, ३ इला, ४ बर्हिः, ५ देवीः द्वारः, ६ उपासानका, ७ दैव्यो होतारो प्रचेतसो, ८ तिस्रो देव्यः सन्वतीळाभारत्यः, ९ त्वष्टा, १० वनस्पतिः, ११ स्वाहाकृतयः ) । गायत्री ।

समिद्धो अथ राजसि देवो देवैः महस्रजित् । द्रुतो हव्या कविर्वह १९३१  
 तनूनपातं यते मध्वा यज्ञः समज्यते । दधत् सहस्रिणीरिपः १९३२  
 आजुह्वानो न ईड्यो देवा आ वक्षि यज्ञियान् । अग्ने सहस्रसा असि १९३३  
 प्राचीनं बर्हिरोजसा महस्रवीरमस्तृणन् । यत्रादित्या विराजय १९३४  
 विराट्सम्राड् विम्बीः प्रम्बीर बह्वीश्च भूर्यसीश्च याः । दुरो घृतान्यक्षरन् १९३५  
 मुरुक्मे हि सुपेशसा अग्निं श्रिया विराजतः । उपासावेह सीदताम् १९३६  
 प्रथमा हि सुवाचसा होतारा दैव्या कवी । यज्ञं नो यक्षतामिमम् १९३७  
 भारतीले सरस्वति या वः सर्वा उपब्रुवे । ता नश् चोदयत श्रिये १९३८  
 त्वष्टा रूपाणि हि प्रभुः पृशन् विश्वान् त्समानजे । तेषां नः स्फातिमा यज्ञ १९३९  
 उप त्मन्या वनस्पते पार्थो देवेभ्यः सृज । अग्निर्हव्यानि सिष्वदत् १९४०  
 पुरोगा अग्निदेवानां गायत्रेण समज्यते । स्वाहाकृतीषु रोचते १९४१

॥ २१८ ॥ ( अ० २ । ३ । १-११ )

१९४२-५२ एतसमदः शौनकः । आग्नेयस्कन् = [ क्रमेण- १ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ नराशंसः, ३ इला, ४ बर्हिः, ५ देवीः द्वारः, ६ उपासानका, ७ दैव्यो होतारो प्रचेतसो, ८ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यः, ९ त्वष्टा, १० वनस्पतिः, ११ स्वाहाकृतयः ] । शिष्टेषु १९४८ जगती ।

समिद्धो अग्निर्निर्हितः पृथिव्यां प्रत्यद् विश्वानि भुवनान्यस्यात् ।

होता पावकः प्रदिर्वः सुमेधा देवो देवान् यज्ञत्वमिर्हन्

१९४२

नराशंसः प्रति वामान्यज्जन् तिस्रो दिवः प्रति मुह्य स्वर्चिः ।	
घृतमुपा मनसा हव्यमुन्दन् मूर्धन् यज्ञस्य समनक्तु देवान्	१९४३
ईळितो अग्ने मनमा नो अहन् देवान् यक्षि मारुपात् पर्वो अद्य ।	
म आ वह मरुतां शर्धो अच्युतम् इन्द्रं नरो वहिपदं यजध्वम्	१९४४
देवं वहिर्वर्धमानं सुवीरं स्तीर्णं राधे सुमरं वेद्यस्थाम् ।	
घृतेनाक्तं वमवः सीदतेदं विश्वे देवा आदित्या यजियांसः	१९४५
वि श्रयन्तामुर्विया ह्यमाना द्वारो देवीः सुप्रायणा नमोभिः ।	
व्यर्चस्वतीर्वि ग्रथन्तामजुषा वर्णं पुनाना यशमं सुवीरम्	१९४६
साध्वर्पांसि मनतां न उक्षितं उपामानक्ता वृष्येव रण्विते ।	
तन्तुं त्वत् संवयन्ती समीची यज्ञस्य पेशः सुदुधे पर्यस्वती	१९४७
देव्या होतारा प्रधमा विदुष्टरं क्रजु यक्षतुः ममृचा वृषुष्टरा ।	
देवान् यजन्तावृतुधा ममज्जतो नामा पृथिव्या अधि सानुषु त्रिषु	१९४८
मरस्वती साधयन्ती धियं न इळा देवी भारती विश्वतृतिः ।	
तिस्रो देवीः स्वधया वहिरेदम् अछिद्रं पान्तु शरुणं निषर्ध	१९४९
पिशङ्गैरुपः सुमरो ययोधाः श्रुष्टी वीरो जायते देवकामः ।	
प्रजां त्वष्टा वि प्येतु नार्मिमुस्मे अथा देवानामप्येतु पार्थः	१९५०
वनस्पतिरवमुजजुषं स्याद् अग्निर्हविः संद्रयाति प्र घ्रीभिः ।	
त्रिधा समक्तं नयतु प्रजानन् देवेभ्यो देव्यः शमितोप हव्यम्	१९५१
घृतं मिमिक्षे घृतमस्य योनिर् घृते श्रितो घृतम्बस्य धाम ।	
अनुप्यधमा वह मादयस्व स्वाहाकृतं वृषम वक्षि हव्यम्	१९५२

॥ २१९ ॥ ( अ० ३ । ४ । १-११ )

१९५३-६३ विद्यमानिभ्यो गाधिनाः आप्रीस्तुक्तः [क्रमेण- १ इधमः सामिह्योऽग्निर्धा, २ तनूनपात्, ३ इळा, ४ यहि, ५ देवीः द्वारः, ६ उपामानक्ता, ७ देव्या होतारो प्रचेतसो, ८ तिस्रो देव्यः सरस्वतीऽन्नामागत्या, ९ त्वष्टा, १० वनस्पति, ११ स्वाहाकृतया ] । त्रिष्टुप् ।

मुमिन् समिन् सुमनां घोष्यस्मे शुचार्नुचा मुमतिं रांसि वस्वः ।  
आ देव देवान् यजर्थां वक्षि मग्ना मग्नीन् त्सुमनां यक्ष्यमे १९५३

यं देवाससु त्रिरहं न्यायजन्ते	दिवेदिवे वरुणो मित्रो अग्निः ।	
सेमं यज्ञं मधुमन्तं कृधी नृसु	तर्नृनपाद्भुतयोनिं विघ्नन्तम्	१९५४
प्र दीधितिर्विश्ववारा जिगाति	होतारमिच्छः प्रथमं यजध्वै ।	
अच्छा नमोभिर्वृषमं वृन्दध्वै	स देवान् यक्षदिपितो यजीयान्	१९५५
ऊर्ध्वो वा गातुरध्वरे अकारि	ऊर्ध्वा शोचांषि प्रार्थिता रजांसि ।	
दिवो वा नाभा न्यसादि होता	स्तृणीमहि देवव्यञ्जा वि वहिः	१९५६
सुप्त होत्राणि मनसा घृणाना	इन्वन्तो विश्वं प्रति यन्नुतेन ।	
नृपेशंसो विदथेपु प्र जाता	अभीष्टं यज्ञं वि चरन्त पूर्वाः	१९५७
आ मन्दमाने उपसा उपाके	उत स्मयेते तन्नाष्टं विरूपे ।	
यथा नो मित्रो वरुणो जुजोषद्	इन्द्रो मरुत्वां उत वा महोभिः	१९५८
दैव्या होतासा प्रथमा न्यञ्जे	सुप्त पृक्षासः स्वधया मदन्ति ।	
ऋतं शंसन्त ऋतमित् त आहुर	अनुं व्रतं व्रतपा दीघ्यानाः	१९५९
आ मारती भारतीभिः सुजोषा	इळां देवैर्मनुष्यैर्मिरभिः ।	
सरस्वती सारस्वतेभिर्वाक्	तिस्रो देवीर्ब्रह्मिरेदं संदन्तु	१९६०
तन्नस् तुरीपमघं पोषयिन्तु	देवं त्वष्टृर्वि रराणः स्पेस्व ।	
यतो वीरः कर्मण्यः सुदर्शो	युक्तग्राश जायते देवकामः	१९६१
वनस्पतेस्व सृजोष देवान्	अग्निर्हविः शमिता रूदयाति ।	
सेद् होता सत्यतरो यजाति	यथा देवानां जनिमानि वेद	१९६२
आ याक्षमे समिधानो अर्वाह	इन्द्रेण देवैः सूर्यं तुरेभिः ।	
वर्हिर्न आस्तामर्दितिः सुपुत्रा	स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम्	१९६३

॥ २२० ॥ ( अ० ५ । ५ । १-११ )

१९६४-७३ यानुभूत यात्रेयः । आप्रोक्ष्यन्तः = क्रमेण - १ इन्द्रः समिजोऽग्निर्या २ नराशंसः, ३ इळाः, ४ बर्हिः, ५ देव्याणां, ६ उपासानका ७ दैव्यां होताते प्रचेतसो, ८ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळा-भारत्यः, ९ रवया, १० वनस्पतिः, ११ स्यादाकृतयः । गायत्री ।

सुममिद्राय शोचिषं	धृतं तीव्रं जुहोतन	। अघ्यं जातवेदसे	१९६४
नराशंसः सुपूदति	इमं यजमदाभ्यः	। कविर्हि मधुहस्त्यः	१९६५

इल्लितो अग्र आ वह इन्द्रं चित्रमिह प्रियम् । सुखे रथेभिरुतये	१९६६
ऊर्णप्रदा वि प्रथस्व अम्यर्का अनूपत । मवा नः शुभ्र सातये	१९६७
देवीर्द्वारो वि श्रेयध्वं सुप्रायणा न ऊतये । प्रप्र यज्ञं पृणीतन	१९६८
सुप्रतीके वयोवृधा यही ऋतस्य मातरा । दोषामुपासमीमहे	१९६९
वातस्य पतमञ्जीलिता दैव्या होतारा मनुषः । इमं नो यज्ञमा रतम्	१९७०
इळा सरस्वती मही० । (१९१४)	
शिवस् त्वष्टरिहा गहि विश्वः पोष उत त्मना । यज्ञेयज्ञे न उदव	१९७१
यत्र वेत्यं घनस्पते देवानां गुह्या नामानि । तत्र हव्यानि गामय	१९७२
स्वाहाप्रये वरुणाय स्वाहेन्द्राय मरुद्भ्यः । स्वाहा देवेभ्यो हविः	१९७३

॥ २२१ ॥ ( अ० ७।२।१-११ )

१९७४-८० पक्षिष्ठो मैत्रायणः । आग्नीसूक्तं- (क्रमेण १ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ नराशंसः, ३ इळा, ४ यहिः, ५ देवीः ह्यारः, ६ उपासानका, ७ दैव्यो होतारो प्रचेतसो, ८ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळामारत्या, ९ त्वष्टा १० घनस्पतिः, ११ स्वाहाकृतयः ।) । त्रिष्टुप् ।

जुषस्व नः समिधमग्ने अद्य शोचा बृहद् यज्ञं धूममुष्णन् ।	
उप स्पृश दिव्यं सानु स्तपैः सं रश्मिभिस् तनूः सूर्यस्य	१९७४
नराशंसस्य महिमानमेषाम् उप स्तोपाम यज्ञतस्य यज्ञैः ।	
ये सुक्रतवः शुचयो धियंघाः स्वदन्ति देवा उभयानि हव्या	१९७५
इल्लेन्यं वो असुरं सुदर्शम् अन्तर्दुतं रोदसी सत्पुवार्वम् ।	
मुनुष्वदुमि मनुना समिद्धं समध्वराय सद्रुमिन्महेम	१९७६
सपर्यवो भरमाणा अभिद्यु प्र वृज्जते नर्ममा बृहिरुषौ ।	
आजुह्वाना घृतपृष्ठं पृषद्बुध अर्ध्वर्यवो हुनिषा मजयध्वम्	१९७७
स्वाध्मोष्ठे वि दुरो देवयन्तो ऽग्निश्रय रथयुदेवताता ।	
पूर्वीं शिशुं न मातरा रिहाणे समग्रो न समनेपञ्चन्	१९७८
उत योषणे दिव्ये मही न उपासानका सुदुषेव धेनुः ।	
महिपदा पुरुहूते मयोनी आ यज्ञिरे सुवितार्य श्रयेताम्	१९७९
विप्रो यज्ञेषु मानुषेषु कारु मन्ये वा ज्ञातवैदमा यजंष्ये ।	
ऊर्ध्वं नो अध्वरं कृतं हवेषु ता देवेषु वनयो वायीणि	१९८०

आ भारती भारतीभिः सजोषा० । (१९६०)

तत्रस् तुरीयमर्धं पोषयितु० । (१९६१)

वनस्पतेऽर्धं सजोषं देवान्० । (१९६२)

आ यज्ञये समिधानो अर्वाङ्० । (१९६३)

॥ २२२ ॥ ( क्र० ९। ५। १-११ )

१९८१-२१ असितः काश्यपो देयलो वा । आग्नीसक्तं=(क्रमेण- १ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ तनूनपात्, ३ इळा, ४ वह्निः, ५ देवीद्वारः, ६ उपासानका, ७ दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ, ८ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्याः, ९ त्वष्टा, १० वनस्पतिः, ११ स्वाहाकृतयः । गायत्री, ) १९९४-९७ अनुष्टुप् ।

समिद्धो विश्वतस्पतिः पर्वमानो वि राजति । ग्रीणन् वृषा कर्निकदत् १९८१

तनूनपात् पर्वमानः शृङ्गे शिशानो अर्पति । अन्तारिक्षेण रारजत् १९८२

इलैन्यः पर्वमानो रयिर्भि राजति धुमान् । मधोर्धाराभिरोजसा १९८३

वहिः प्राचीनमोजसा पर्वमानः स्तुणन् हरिः । देवेषु देव ईयते १९८४

उदातैर्जिहते बृहद् द्वारौ देवीर्हिरण्ययीः । पर्वमानेन सुष्टुताः १९८५

सुशिल्पे बृहती मही पर्वमानो वृषयति । नक्तोपासा न दर्शते १९८६

उमा देवा नृचक्षसा होतारौ दैव्या हुवे । पर्वमान इन्द्रो वृषा १९८७

भारती पर्वमानस्य सरस्वतीळा मही । इमं नो यज्ञमा गमन् तिस्रो देवीः सुपेशसः १९८८

त्वष्टारमग्रजां गोषां पुरोयावानुमा हुवे । इन्द्रुरिन्द्रो वृषा हरिः पर्वमानः प्रजापतिः १९८९

वनस्पतिं पर्वमान् मध्वा समदधि धारया । सहस्रवल्गं हरितं आजमानं हिरण्ययम् १९९०

विश्वे देवाः स्वाहाकृति पर्वमानस्या गत । वायुर्वृहस्पतिः सूर्यो ऽभिरिन्द्रः सजोषसः १९९१

॥ २२३ ॥ ( क्र० १०। ७०। १-११ )

१९९२-२००२ सुमित्रो वाच्यश्वः । आग्नीसक्तं= ( क्रमेण- १ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ नराशंसः, ३ इळा, ४ वह्निः, ५ देवीः द्वारः, ६ उपासानका, ७ दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ, ८ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्याः, ९ त्वष्टा, १० वनस्पतिः, ११ स्वाहाकृतयः ) । त्रिष्टुप् ।

इमां मे अग्रे समिधं जुपस्व इहस्पदे प्रति हयां घृताचीम् ।

वर्षेन् पृथिव्याः सुदिनत्वे अह्नाम् ऊर्ध्वो भव सुक्रतो देवयज्या १९९२

आ देवानामग्रपावेह यातु नराशंसो विश्वरूपेभिरथैः ।

ऋतस्य पथा नमसा मियेषो देवेभ्यो देवर्तमः सुपदत् १९९३



ग्रश्चत्तममीकृते दूत्याय हविष्मन्तो मनुष्यांसो अग्निम् ।	
वर्हिष्टैरधैः सुवृता रथेन आ देवान् वक्षि नि पदेह होतां	१९९४
वि प्रथतां देवजुष्टं तिरश्चा दीर्घं द्राघ्मा सुरभि भूत्वस्मे ।	
अहेकृता मनसा देव बहिर इन्द्रज्येष्ठां उशतो यक्षि देवान्	१९९५
दिवो वा सारु स्पृशता वरीयः पृथिव्या वा मार्त्रया वि श्रयध्वम् ।	
उशतीर्वा रो महिना महज्जिर देवं रथं रथयुधौरयध्वम्	१९९६
देवी दिवो इहितरां सुशिल्पे उपासानक्ता सदतां नि यानां ।	
आ वां देवास उशती उशन्त उरौ सीदन्तु सुभगे उपस्थं	१९९७
ऊर्ध्वो प्राचा बृहदग्निः समिद्धः प्रिया धामान्यदितेरुपस्थं ।	
पुरोहितावृत्विजा युजे अस्मिन् विदुष्टरा द्रविणमा यजेथाम्	१९९८
तिस्रो देवीर्घेहिर्दं वरीय आ सीदत चक्रमा वः स्योनम् ।	
मनुष्य इ यज्ञं सुधिता हवींषि इळां देवी घृतपर्दी जुपन्त	१९९९
देवं स्वष्ट्यर्द्धं चारुत्वमान् इ यदाङ्गिरसाममवः सचाभूः ।	
स देवानां पाथ उप प्र विद्वान् उशन् यक्षि द्रविणोदः सुरतः	२०००
वनस्पते रश्मयां नियूयां देवानां पाथ उप वक्षि विद्वान् ।	
स्वदाति देवः कृण्वद्दुर्वांषि अवतां घावांष्ट्रिषी हव मे	२००१
आग्ने वह वरुणमिष्ट्यं न इन्द्रं दिवो मरुतो अन्तरिक्षात् ।	
सीदन्तु बर्हिर्विश्व आ यजत्राः स्वाहा देवा अमृतो मादयन्ताम्	२००२

॥ २२४ ॥ ( ऋ० १० । ११० । १-११ )

११ जमदग्निमार्गवा, रामो वां जामदग्नयः । आग्नेसुक्तं = (क्रमेण-१ इध्मः समिद्धोऽग्निः, २ तनूनपात्, ३ इळा, ४ वाहं, ५ देवीः ह्यार, ६ उपासानका, ७ देव्यो होतारां प्रचेतसी, ८ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळामारत्याः, ९ त्वष्टा, १० वनस्पतिः, ११ स्वाहाहनयः) । त्रिष्टुप् । ( अथर्व० ५ । १० । १-११ [ अथर्ववेदे अंगिरा ऋषिः । ] काठक सं० १६ । २०, मैत्रायणी सं० ४११३ । ३, तै० ब्रा० ३८ । ३ )

समिद्धो अथ मनुषो दुरीणे देवो देवान् यजसि जातवेदः ।	
आ च वह मित्रमहश्च चिकित्वान् त्वं दूतः कविर्तसि प्रचेताः	२००३
तनूनपात् पथ ऋतस्य यानान् मघ्वा समञ्जन् त्वर्दया मुजिह ।	
मन्मानि धीमिरुत यज्ञमुन्धन् देवत्रा च कृणुष्वरं नः	२००४

आजुहान् ईद्व्यो वन्द्यश्च आ याह्ये वसुभिः सजोषाः । त्वं देवानामसि यद्बु होता स एनान् यक्षीपितो यजीयान्	२००५
ग्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्या वस्तोरस्या वृज्यते अग्रे अह्वाम् । व्यु प्रथते वितुरं वरीयो देवेभ्यो अर्दितये स्योनम्	२००६
व्यचस्वतीरुर्विया वि श्रयन्तां पतिभ्यो न जनयः शुम्भमानाः । देवीर्द्वारो बृहतीर्विश्वमिन्वा देवेभ्यो भवत सुप्रायणाः	२००७
आ सुष्वर्यन्ती यजते उपकि उपसानक्ता सदतां नि योनौ । दिव्ये योषणे बृहती सुरुक्मे अधि श्रियं शुक्रपिशं दधाने	२००८
दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा मिमाना यज्ञं मनुषो यजर्घ्यै । प्रचोदयन्ता विदर्थेषु कारू ग्राचीनं ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता	२००९
आ नो यज्ञं भारती त्र्यमेतु इळा मनुष्वदिह चेतयन्ती । तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं स्योनं सरस्वती स्वर्पसः सदन्तु	२०१०
य इमे द्यावापृथिवी जनित्री रूपैरपिश्रुर्वनानि विश्वा । तमद्य होतारपितो यजीयान् देवं त्वष्टारमिह यक्षि विद्वान्	२०११
उपावसृज त्मन्यां समञ्जन् देवानां पार्थ क्रतुथा हवीर्षि । वनस्पतिः श्रमिता देवो अग्निः स्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन	२०१२
सद्यो जातो व्यमिमीत यज्ञम् अग्निर्देवानामभवत् पुरोगाः । अस्य होतुः प्रदिदयत्तस्य वाचि स्वाहाकृतं हविरदन्तु देवाः	२०१३

॥ २२५ ॥ ( या० यजुर्वेद २०।३६-४६; तैत्ति० सं० २।६।८; काठकसं० ३।८।६; मेधापणीसं० ३।१।१। )

सर्मिद्धं इन्द्रं उपसामनीकिं पुरोरुचां पूर्वकृद् वावृधानः । त्रिभिर्द्वयस् त्रिधृगता चर्चवाहूर् जुधानं वृत्रं वि दुरो ववार	२०१४
नराश्रमः प्रति शरो मिमानस् तनूनपात् प्रति यज्ञस्य धामं । गोर्भिर्वपावान् मधुना समञ्जन् हिरण्यैश् चन्द्री यजति प्रचेताः	२०१५

मेधापणी-पाठभेदाः- २०१४ (१ धामिदा) ( २००४-५ मध्ये 'नराश्रमस्य' ' इति मन्त्रोऽग्रे या० यजुर्वेद २१-२५-३६ प्रत्ययः )

पाठभेदाः- २०१५ ( १ यज्ञः )

इदितो देवैर्हरिवाँ २ अग्निष्टिर्	आजुह्वानो हविषा शर्धमानः ।	
पुनन्दुरो गौत्रमिदं वज्रवाहुर्	आ यातु यज्ञमुप नो जुषाणः	२०१६
जुषाणो बर्हिर्हरिवान् न इन्द्रः	प्राचीर्नथं सीदैत् प्रदिशा पृथिव्याः ।	
उरुप्रथाः प्रथमानथं स्योनम्	आदित्यैरुक्तं वसुभिः सजोषाः	२०१७
इन्द्रं दुरः कवृप्पो धारमाना	वृषाणं यन्तु जनयः सुपत्नीः ।	
द्वारो देवीरुभितो वि श्रयन्ताथ	सुवीरा वीरं प्रथमाना महोभिः	२०१८
उपासानक्तो बृहती बृहन्तं	पर्यस्वती सुदुधे अरमिन्द्रम् ।	
तन्तुं तवं पेशसा संवयन्ती	देवानां देवं यजतः सुरुक्मे	२०१९
दैव्या मिमाना मनुष्यः पुरुत्रा	होतारविन्द्रं प्रथमा सुवाचा ।	
मूर्धन् यज्ञस्य मधुना दधाना	प्राचीनं ज्योतिर्हविषा वृधातः	२०२०
तिस्रो देवीर्हविषा वर्धमाना	इन्द्रं जुषाणा जर्नयो न पत्नीः ।	
अच्छिन्नं तन्तुं पर्यसा सरस्वती	इडां देवी भारती विश्वर्ततिः	२०२१
त्वष्टा दधृच् छुग्ममिन्द्राय वृष्णे	ऽपांकोऽर्विष्टुयश्से पुरुणि ।	
वृषा यजन् वृषणं भूरिरिता	मूर्धन् यज्ञस्य समनक्तु देवान्	२०२२
यनस्पतिर्यस्यो न पाशैस्	त्मन्या समज्जब् छमिता न देवः ।	
इन्द्रस्य हव्यैर्जठरं पृणानः	स्वदाति यज्ञं मधुना घृतेन	२०२३
स्तोकानामिन्दुं प्रति अर इन्द्रो	वृषायमाणो वृषमस् तुरापाद् ।	
घृतप्रपा मनसा मोदमानाः	स्वाहा देवा अमृता मादयन्तोम्	२०२४

॥ २२६ ॥ ( पा० यजुर्वेद २० । ५५-६६; मैत्रा० सं० ३।११।३; काठक सं० ३।८।८; तैत्ति० प्रा० १।६।१० )

समिद्धो अग्निराश्विना तप्तो यमो विराट् सुतः ।

दुहे धेनुः सरस्वती सोमंथं युक्मिहेन्द्रियम् २०२५

मैत्रा० पाठः- २०१६ ( १ गोत्रमुद् ), २०१७ ( १ ना, २ सीदात् ) २०१८ ( १ यन्ति ); २०१९ ( १ पेशसातो तन्तुना ),  
२०२० ( १ मनसा ; २ होताथ इन्द्रं ) २०२१ ( १ वृषां ) ; २०२२ ( १ दधदिन्द्राय शुभमयाधो )  
२०२३ ( १ इन्द्राजु ), २०२४ ( १ हव्यमुन्द्रं स्वाहृत्तं उपता हव्यमिन्द्रः )

काठ० पाठः- २०१९ ( १ पेशसातो तन्तुना ), २०२० ( १ मनसा ; २ होताथ इन्द्रं ) २०२१ ( १ वृषां ),  
२०२२ ( १ दधदिन्द्राय शुभमयाधो ) २०२४ ( १ हव्यमुन्द्रं मधुन्यस्य उपता स्वाहा )

तनुपा भिपजा सुते	अश्विनोभा सरस्वती ।	२०२६
मध्ना रजांसीन्द्रियम्	इन्द्राय पथिर्भैर्वहान्	
इन्द्रायेन्दुं सरस्वती	नराग्रंतेन नग्रहम् ।	२०२७
अधातामश्विना मधुं	भेषजं भिपजा सुते	
आजुह्वाना सरस्वती	इन्द्रायेन्द्रियाणि वीर्यम् ।	२०२८
इटाभिरश्विनामिपुं	समर्जं संधं रयिं दधुः	
अश्विना नमृचेः सुतं	सोमं शुक्रं परिस्रुता ।	२०२९
सरस्वती तमा भैरद्	वृहिपेन्द्राय पातये	
कृत्वा न व्यचस्वती	अश्विन्यां न दुरो दिशः ।	२०३०
इन्द्रो न रोदसी उभे	दुहे कामान् सरस्वती	
उपासानक्तमश्विना	दिवेन्द्रं सायमिन्द्रियैः ।	२०३१
सञ्जानाने सुपेयासा	समजाते सरस्वत्या	
पातं नो अश्विना दिवा	पाहि नक्तं सरस्वति ।	२०३२
दैव्या होतारा भिपजा	पातमिन्द्रं सचा सुते	
तिस्रस् त्रेधा सरस्वती	अश्विना भारतीडा ।	२०३३
तीव्रं परिस्रुता सोमम्	इन्द्राय सुपुनर्मदम्	
अश्विना भेषजं मधुं	भेषजं नः सरस्वती ।	२०३४
इन्द्रे त्रया यदाः श्रियं	रूपं रूपमधुः सुते	
कृतुधेन्द्रो वनस्पतिः	शशमानः परिस्रुता ।	२०३५
फीलालमश्विन्यां मधुं	दुहे धेनुः सरस्वती	
गोभिर्न मोर्ममश्विना	मार्मरेण परिस्रुता ।	२०३६
मर्मघातं मर्मस्वत्या	स्वाहेन्द्रं सुतं मधुं	

मंत्र ० पाठः- २०२६ ( १ पथिर्भैर्वहान् ), २०२८ ( १ अश्विना द्युः ), २०३३ ( १ इन्द्रायसुपुः )  
२०३६ ( १ मर्मघातं )

पाठः ० पाठः- २०२८ ( १ अश्विना द्युः ), २०३० ( १ दुहे ), २०३३ ( १ इन्द्रायसुपुः )  
२०३६ ( १ द्वितीयं ), तथा चर्माद २०३५ जोषलभते ); २०३६ ( १ मर्मघातं )

॥ २२७ ॥ ( चा० यजुर्वेद २१ । १२-२२; मैत्रा० सं० ३।११।११; काठक सं० ३।१।१०; तै० मा० २।६।१८ )

समिद्धो अग्निः समिद्धा सुसमिद्धो वरेण्यः ।

गायत्री छन्द इन्द्रियं त्र्यविर्गौर्वयो दधुः २०३७

तनुनपांश्च छुर्विव्रतस् तनुपाश्च सरस्वती ।

उष्णिहा छन्द इन्द्रियं दित्यवाद् गौर्वयो दधुः २०३८

इडाभिरग्निरिडयः सोमो देवो अमर्त्यः ।

अनुष्टुप् छन्द इन्द्रियं पञ्चाविर्गौर्वयो दधुः २०३९

सुबहिरग्निः पृषण्वान् स्तीर्णवंहिरमर्त्यः ।

बृहती छन्द इन्द्रियं त्रिवत्सो गौर्वयो दधुः २०४०

दुरो देवीर्दिशो महीर् ब्रह्मा देवो बृहस्पतिः ।

पङ्क्तिश् छन्द इहेन्द्रियं तुर्यवाद् गौर्वयो दधुः २०४१

उपे यही सुपेशसा विश्वे देवा अमर्त्याः ।

त्रिष्टुप् छन्द इहेन्द्रियं पृथवाद् गौर्वयो दधुः २०४२

दैव्या होतारा भिपजा इन्द्रेण सयुजा युजा ।

जगती छन्द इन्द्रियम् अनूह्वान् गौर्वयो दधुः २०४३

तिष्ठे इडा सरस्वती भारती मरुतो विशः ।

विराद् छन्द इहेन्द्रियं धेनुर्गानि वयो दधुः २०४४

त्वष्टा तुरीपो अङ्गुत इन्द्राग्री पुष्टिवर्धना ।

द्विषदा छन्द इन्द्रियम् उक्षा गानि वयो दधुः २०४५

शमिता नो वनस्पतिः सविता प्रसुवन् भगम् ।

ककुप् छन्द इहेन्द्रियं वंशा वेहदयो दधुः २०४६

स्वाहा यज्ञं वरुणः सुक्षत्रो मेपजं करत् ।

अतिच्छन्दा इन्द्रियं बृहद् ऋषयो गौर्वयो दधुः २०४७

मैत्रा० पाठ०— २०३७ ( १ त्रिवि० ); २०३८ ( १ अयं प्रथमोऽर्थो न दृश्यते; २ दण्डि ); २०४१ ( १ इन्द्रियं ); २०४४ ( १ त्रितो देवीरिडा मही; २ इन्द्रियं ); २०४६ ( १ ऋषयो गौर्वयो ), २०४७ ( १ बृहदद्या वेहदयो )

काठ० पाठ०— २०३७ ( १ त्रिवि० ); २०४१ ( २ इन्द्रियं ); २०४७ ( १ अतिच्छन्दः; २ वरुणायो )

॥ २२८ ॥ ( वा० यजुर्वेद २१ । २९—४०; मैत्रायणी सं० ३ । ११ । २; तै० ब्रा० २ । ६ । ११ )

होता यक्षत् समिधाग्निमिडस्पदे ऽश्विनेन्द्रं सरस्वती मजो धूम्रो न गोधर्मः कुर्वलै-  
र्भेषजं मधु शयैर्न तेज इन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य  
होतुर्यजं २०४८

होता यक्षत् तनूनपात् सरस्वती मविर्मेपो न भेषजं पथा मधुमता भरन्नश्विनेन्द्राय  
वीर्यं वदरैरुपवाकाभिर्भेषजं तोक्मभिः पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य  
होतुर्यजं २०४९

होता यक्षन्नराशं न नग्रहं पतिं सुर्या भेषजं भेषः सरस्वती भिपग् रथो न  
चन्द्रश्चिन्नो वपा इन्द्रस्य वीर्यं वदरैरुपवाकाभिर्भेषजं तोक्मभिः पयः सोमः  
परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतुर्यजं २०५०

होता यक्षद्विडेडित आजुह्वानः सरस्वती मिन्द्रं वलेन वर्धयन्नृपमेण गर्वेन्द्रियं म-  
श्विनेन्द्राय भेषजं यवैः कर्कन्धुभिर्मधुं लाजैर्न मासरं पयः सोमः परिस्रुता घृतं  
मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतुर्यजं २०५१

होता यक्षद् वहिर्रूपं नृदा भिपङ् नासत्या भिपञ्जाश्विनाश्वा शिशुमती भिपग् धेनुः  
सरस्वती भिपग् दुह इन्द्राय भेषजं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य  
होतुर्यजं २०५२

होता यक्षद् दुरो दिशः कवप्यो न व्यचस्वती राश्विभ्यां न दुरो दिशं इन्द्रो न  
रोदसी दुर्धे दुहे धेनुः सरस्वत्यै श्विनेन्द्राय भेषजं शुक्रं न ज्योतिरिन्द्रियं पयः  
सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतुर्यजं २०५३

होता यक्षत् सुपेशसोपे नक्तं दिवा श्विना समञ्जाते सरस्वत्या त्विषिमिन्द्रे न  
भेषजं श्येनो न रजसा हृदा श्रिया न मासरं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु  
व्यन्त्वाज्यस्य होतुर्यजं २०५४

मैत्रा० पाठ० - २०४९ ( १ मधुमदामरणः, २ वेत्वाज्यस्य ); २०५० ( १ सुराया, २ वेत्वाज्यस्य );  
२०५२ ( १ भिपगिन्द्राय दुह इन्द्रियं ); २०५३ ( १ दिशः, २ 'अश्विनेन्द्राय भेषजं' इति न  
दृश्यते ) २०५४ ( १ मञ्जानि सुपेशया गमयति, २ त्विषिमिन्द्रेण; ३ हृदा पयः; ४ वीतामा-  
पयस्य )

होता यक्षद् दैव्या होतांरा भिपज्ञाश्विनेन्द्रं न जागृवि दिवा नक्तं न भेषजंः शृपथं  
सरस्वती भिपक् सीत्सेन दुह इन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्राज्यस्य  
होतर्यजं २०५५

होता यक्षद् विस्रो देवीर्न भेषजं त्रयस्त्रिधातवोऽपसो रूषमिन्द्रं हिरण्यं माश्विनेटा न  
भारती वाचा सरस्वती महं इन्द्राय दुह इन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु  
व्यन्त्राज्यस्य होतर्यजं २०५६

होता यक्षद् सुरेतसमृषभं नर्यापसं त्वष्टारमिन्द्रमश्विना भिपजं न सरस्वतीमोजो न  
जुतिरिन्द्रियं वृको न रभसो भिपग् यशः सुर्या भेषजं श्रिया न मासरं  
पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्राज्यस्य होतर्यजं २०५७

होता यक्षद् वनस्पतिं शमितारं शतक्रतुं भीमं न मन्युं राजानं व्याघ्रं नमसा-  
श्विना भामं सरस्वती भिपगिन्द्राय दुह इन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु  
व्यन्त्राज्यस्य होतर्यजं २०५८

होता यक्षदुमिं स्वाहाज्यस्य स्तोकानां स्वाहा मेदसां पृथक् स्वाहा छागम-  
श्विम्यां स्वाहा भेषजं सरस्वत्यै स्वाहा ऋषभमिन्द्राय सिंहाय सहस इन्द्रियं  
स्वाहाभि न भेषजं स्वाहा सोममिन्द्राय स्वाहेन्द्रं सुत्रामाणं सवितारं वरुणं  
भिपजां पतिं स्वाहा वनस्पतिं प्रियं पायो न भेषजं स्वाहा देवा आज्यपा  
जुपाणो अग्निर्भेषजं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्राज्यस्य होतर्यजं २०५९

॥ २२८ ॥ ( पा० यजुर्वेद २७ । ११-२२; काठक सं० १८ । १७; मैत्रा० सं० २ । १२ । ६ )

ऊर्ध्वा अस्य समिधो भवन्ति ऊर्ध्वा शुक्रा शोचींश्चप्यग्नेः ।

धुमत्तमा सुप्रतीकस्य सुनोः

२०६०

वनूनपादसुरो विश्ववेदा देवो देवेषु देवं । पथो अनक्तु मध्वा घृतेन २०६१

मध्वा यज्ञं नक्षसे ग्रीणानो नराश्वसो अग्ने । सुरुदेवः सविता विश्ववारः २०६२

मैत्रा० पाठ०— २०५५ ( १ वीतामाज्यस्य ); २०५६ ( १ व्यमिन्द्रो ; २ महा ); २०५७ ( १ यशस्वश्वार-  
स्पष्टं गुणेशं श्वमः ; २ युराया ; ३ वेन्नाज्यस्य ); २०५८ ( १ वेन्नाज्यस्य ); २०५९ ( १ स्वाहा ;  
२ भेषजः ; ३ मिन्द्रियः ) [पंक्तिपदच्छेदपद्धतिः कश्चिद्विप्रा] २०६० ( १ देवेभ्यो देवयानान् )  
२०६२ ( १ नक्षति ; २ अग्निः ; )

काठ० पाठ०— [पंक्तिपदच्छेदपद्धतिर्विप्रा] २०६१ ( १ घृतेन.....ग्रीणानः इत्येव एका पंक्तिः ) २०६२ ( १ नक्षति )

अच्छायमंति शर्वसा घृतेनैकानो वह्निर्मसा ।

अग्निं सुचो अध्वरेषु प्रयत्सु

२०६३

स यक्षदस्य महिमानमग्नेः स ई मन्द्रो सुप्रयसः ।

वसुश्चेतिष्टो वसुधातमश्च

२०६४

द्वारो देवीरन्वस्य विश्वे व्रता ददन्ते अग्नेः ।

उरुव्यचंसो धाम्ना पत्यमानाः

२०६५

ते अस्य योषणे दिव्ये न योनी उपासानक्ता ।

इमं यज्ञमवतामध्वरं नः

२०६६

दैव्या होतारो ऊर्ध्वमध्वरं नो ज्येजिह्वामग्निं गृणीतम् ।

कृणुतं नः स्विष्टिम्

२०६७

तिस्रो देवीर्षिहिरेदं सद्दन्तु इडा सरस्वती भारती ।

मही गृणाना

२०६८

तन्नस्तुरीपमङ्गुलं पुरुक्षु त्वष्टा सुवीर्यम् ।

रायस्पोषं वि प्यतु नाभिर्मस्मे

२०६९

वनस्पतेऽयं सृजा रराणस्मना देवेषु ।

अग्निर्हव्यं शमिता हृदयाति

२०७०

अग्ने स्वाहा कृणुहि जातवेदं इन्द्राय हव्यम् ।

विश्वे देवा हविरिदं जुपन्ताम्

२०७१

॥ २३० ॥ ( अथर्व० का० ५।२७ )

१—१२ प्रह्ला । अग्निः १ घृहतीगर्भा त्रिष्टुप्; २ द्विपदा साक्षी भुरिगनुष्टुप्; ३ द्विपदाचीं घृहती;

४ द्विपदा साक्षी भुरिगृहती; ५ द्विपदा साक्षी त्रिष्टुप्; ६ द्विपदा विराण्णाम गायत्री।

७ द्विपदा साक्षी घृहती; ८ संस्तारपदक्तिः; ९ पदपदानुष्टुप्गर्भा पराति-

जगती; १०—१२ पुरडण्णिक ( २-७ एकाघसाना ) ।

उर्ध्वा अस्य समिधो भवन्ति ऊर्ध्वा शुक्रा शोर्चीप्यग्नेः ।

घुमत्तमा सुप्रतीकः सस्रनुस् तनूनपादस्रो भूरिपाणिः

२०७२

मैत्रा० पाठ०— २०६४ ( १ स ई मन्द्रा सुप्रयसा स्तरीमन् । बहिषो मित्रमहाः ) २०६५ ( १ विश्वा ); २०६७ ( १ होतार ऊर्ध्वमिध्वरः २ स्विष्टम् ); २०६८ ( १ त्योन्मः २ मही शब्दः नास्ति ) २०६९ ( १ तस्य )

२०७० ( १ विष्यः २ देवेभ्यः ) २०७१ ( १ जातवेदाः २ देवेभ्यः )

काठ० पाठ०— २०६१ ( १ अथर्वयं यन्ति; २ घृताचीः ईदना बहिः; २०६४ ( १ स्तनी मन्द्रसुप्रयष्ट ) २०६५ ( १ दिव्यो न योनिरुपायानमग्नेः ); २०६७ ( १ होतारोर्ध्वमिध्वरः २ स्विष्टम् ) २०६८ ( १ महीगृणानाः ); २०६९ ( १ त्वष्टः पोषाय विष्य नाभिमस्मे ) २०७० ( १ मृजः १ हविः )



देवो देवेषु देवः पथो अनक्ति मध्वा वृतेन ।	२०७३
मध्वा यज्ञं नक्षति प्रणानो नराशंसो अग्निः गुरुद् देवः सविता विश्वांगः	२०७४
अच्छायमेति शर्वसा धृता चिदीढानो वाह्निर्ममा	२०७५
अग्निः सुचो अच्वरेषु प्रयक्षु स यक्षदस्य महिमामग्नेः	२०७६
तुरी मुन्द्रासु प्रयक्षु वसवश्चातिष्ठन् वसुधातरश्च	२०७७
द्वारो देवीरन्वस्य विश्वे वृतं रक्षन्ति विश्वहा	२०७८
उरुव्यचमाम्नेर्घाम्ना पत्यमाने ।	
आ सुष्वयन्ती यजते उपाके उपासानक्तेमं यज्ञमवतामध्वरं नः	२०७९
दैवा होतार उर्ध्वम् अध्वरं नोऽग्नेर्जिह्वया अभि गृणत गृणता नः स्विष्टये ।	
तिस्रो देवीर्बहिरेदं सदन्तामिडा सरस्वती मही भारती गृणाना	२०८०
तन्नस्तुरीपमद्भुतं पुरुक्षु । देवं त्वष्टा रायस्पोषं वि प्य नाभिमस्य	२०८१
वनस्पतेर्षं सृजा रराणः । त्मना देवेभ्यो अग्निर् हव्यं शमिता स्वदयत	२०८२
अग्ने स्वाहा कृणुहि जातवेदः । इन्द्राय यज्ञं विश्वे देवा हविरिदं जुपन्ताम्	२०८३

॥ २३१ ॥ ( वा० यजुर्वेदे २८।१-११ )

होता यक्षत् समिधेन्द्रमिडस्पदे नाभा पृथिव्या अधि ।	
द्विबो वर्धन् त्समिध्यत् ओजिष्ठधर्षणीसहो वेत्वाज्यस्य होतयज्ञं	२०८४
होता यक्षत् तनूनपातप्रातिभिर्जेतारमपरराजितम् ।	
इन्द्रं देवधं स्वविदं पृथिभिर्मधुमत्तमर्नराशंसेन तेजसा वेत्वाज्यस्य होतयज्ञं	२०८५
होता यक्षदिडोभिरिन्द्रमीडितमाजुह्वानममर्त्यम् ।	
देवो देवैः सर्वायो वज्रहस्तः पुरन्दुरो वेत्वाज्यस्य होतयज्ञं	२०८६
होता यक्षद् वृहिपीन्द्रं निषद्वरं वृषभं नर्यापमम् ।	
वसुमी रुद्रैरादित्यैः सपुग्भिर्वहिरामदद् वेत्वाज्यस्य होतयज्ञं	२०८७
होता यक्षदोजो न वीर्यधं सहो द्वार इन्द्रमवर्धयन् ।	
सुप्रायणा अस्मिन् यग्ने विश्रयन्तामृतावृधो द्वार इन्द्राय मीढुपे च्यन्त्वाज्यस्य होतयज्ञं	२०८८
होता यक्षदुपे इन्द्रस्य घेन् सुदुधं मातरा मही ।	
सवातरो न तेजसा वत्समिन्द्रमवर्धता वीतामाज्यस्य होतयज्ञं	२०८९

होता यक्षद् दैव्या होतासा भिपजा सखाया हविषेन्द्रं भिपज्यतः ।

कवी देवौ प्रचेतसाविन्द्राय घत्त इन्द्रियं वीतामाज्यस्य होतुर्यजं २०९०

होता यक्षत् तिस्रो देवीर्न मेपजं त्रयस्त्रिधातवोऽपस इडा सरस्वती भारती महीः ।

इन्द्रपत्नीर्हविष्मतीर्व्यन्त्वाज्यस्य होतुर्यजं २०९१

होता यक्षत् त्वष्टारमिन्द्रं देवं भिपजं सुयजं घृतश्रियम् ।

पुरुषं सुरेतसं मघोनमिन्द्राय त्वष्टा दर्शदन्द्रियाणि वेत्वाज्यस्य होतुर्यजं २०९२

होता यक्षद् वनस्पतिं अमितारं अतक्रतुं धियो जोष्टारमिन्द्रियम् ।

मघ्वा समञ्जन् पृथिभिः सुगेभिः स्वदाति यज्ञं मधुना घृतेन वेत्वाज्यस्य होतुर्यजं २०९३

होता यक्षदिन्द्रं स्वाहाज्यस्य स्वाहा मेदसः स्वाहा

स्तोक्रानां स्वाहा स्वाहाकृतीनां स्वाहा हव्यस्तूतीनाम् ।

स्वाहा देवा आज्यपा जुषाणा इन्द्र आज्यस्य व्यन्तु होतुर्यजं २०९४

॥ २३२ ॥ ( चा० यजुर्वेद २८ । २४-३४ )

होता यक्षत् समिधानं महद् यज्ञः सुसमिद्धं वरेण्यमिमिन्द्रं वयोधसम् ।

गायत्री छन्द इन्द्रियं व्यवि गां वयो दधद् वेत्वाज्यस्य होतुर्यजं २०९५

होता यक्षत् तनूनपातमुद्भिद् यं गर्भमर्दितिर्दधे शुचिमिन्द्रं वयोधसम् ।

उष्णिहं छन्द इन्द्रियं दित्यवाहं गां वयो दधद् वेत्वाज्यस्य होतुर्यजं २०९६

होता यक्षदुडेन्यमीडितं वृत्रहन्तममिडाभिरीडयं सहः सोममिन्द्रं वयोधसम् ।

अनुष्टुभं छन्द इन्द्रियं पञ्चावि गां वयो दधद् वेत्वाज्यस्य होतुर्यजं २०९७

होता यक्षत् सुगर्हिषं पूषणन्तममर्त्यं सीदन्तं बर्हिषि प्रियेऽमृतेन्द्रं वयोधसम् ।

बृहती छन्द इन्द्रियं त्रिंशत्सं गां वयो दधद् वेत्वाज्यस्य होतुर्यजं २०९८

होता यक्षद् व्यचंसवतीः सुप्रायणा क्रतावृधो द्वारौ देवीर्हिरण्ययीर्ब्रह्माणमिन्द्रं वयोधसम् ।

पङ्क्ति छन्द इहेन्द्रियं तृपवाहं गां वयो दधद् व्यन्त्वाज्यस्य होतुर्यजं २०९९

होता यक्षत् सुपेयसा सशिल्ये बृहती उमे नक्तोपासा न दर्शते विश्वमिन्द्रं वयोधसम् ।

त्रिष्टुभं छन्द इहेन्द्रियं पष्ठवाहं गां वयो दर्धद् वीतामाज्यस्य होतुर्यजं २१००

होता यक्षन् प्रचेतसा देवानामुत्तमं यज्ञो होतासा दैव्या कनी सुयुजेन्द्रं वयोधसम् ।

जगती छन्द इन्द्रियमनदवाहं गां वयो दर्धद् वीतामाज्यस्य होतुर्यजं २१०१

होता यक्षत् पेशस्वतीस्त्रिस्तो देवीर्हिरण्ययीभरितीर्वृहतीर्मेहीः पतिमिन्द्रं वयोधसम् ।	
विराजं छन्द इहेन्द्रियं घेनुं गां न वयो दधद् व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यजं	२१०२
होता यक्षत् सुरेतसं त्वष्टारं पुष्टिर्वधेनं रूपाणि विभ्रतं पृथक् पुष्टिमिन्द्रं वयोधसम् ।	
द्विपदं छन्दं इन्द्रियमुक्षाणं गां न वयो दधद् वेत्वाज्यस्य होतर्यजं	२१०३
होता यक्षद् वनस्पतिंश्च अमितारंश्च शतक्रतुंश्च हिरण्यपर्णमुक्थिनंश्च	
रशनां विभ्रतं वशिं भगमिन्द्रं वयोधसम् ।	
ककुम् छन्दं इहेन्द्रियं वशां वेहतं गां वयो दधद् वेत्वाज्यस्य होतर्यजं	२१०४
होता यक्षत् स्वाहाकृतीरग्निं गृहपतिं पृथग् वरुणं भेषजं कविं क्षत्रमिन्द्रं वयोधसम् ।	
अतिच्छन्दसं छन्दं इन्द्रियं बृहदपमं गां वयो दधद् व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यजं	२१०५

२३३ ॥ ( वा० यजुर्वेद २९ । १-११ काठक, सं० ५।६।२; मैत्रा० सं० ३ । १६ । २; तै० ब्रा० ५।१।११ )

समिद्धो अजन्कृदरं मतीनां घृतमग्ने मधुमत् पिबमानः ।	
वाजी बहन् वाजिनं जातवेदो देवानां वक्षि प्रियमा सधस्यम्	२१०६
घृतेनाजन् त्सं पृथो देवयानान् प्रजानन् वाज्यप्येतु देवान् ।	
अनु त्वा सप्ते प्रदिशः सचन्तांश्च स्वधोमस्मै यजमानाय धेहि	२१०७
ईक्षुश्वासि बन्धश्च वाजिन्नाशुश्वासि मेर्ध्यश्च सप्ते ।	
अग्निर्वा देवैर्वसुभिः सजोषाः ग्रीतं वह्निं बहतु जातवेदाः	२१०८
स्तीर्णं वह्निः सुष्टीर्मा जुषाणोरु पृथु प्रथमानं पृथिव्याम् ।	
देवेभिर्युक्तमदितिः सजोषाः स्योनं कृष्णानां सुविते दधातु	२१०९
एता उ वः सुमगा विश्वरूपा वि पक्षाभिः श्रयमाणा उदारैः ।	
ऋष्याः सतीः कुर्वपः शुर्ममाना द्वारो देवीः सुग्रायैणा भवन्तु	२११०
अन्तरा मित्रावरुणा चरन्ती सूर्यं यज्ञानामभि संविद्वाने ।	
उपासो वांश्च सुहिरण्ये सुशिल्पे ऋतस्य योनीनिह सादयामि	२१११

मैत्रा० पाठ० — २१०७ ( १ तनूनास्थं, २ स्वधां देवैः ); २१०८ ( १ मेध्यवाशि ); २१०९ ( १ देवेभिरयम० )  
२११० ( १ विश्ववारा ); २१११ ( ४ योना दह )

काठ० पाठ० — २१०९ ( १ देवेभिरकप० ); २११० ( १ विश्ववारा; २ कवय, ३ सुग्रायणा ) २१११ ( १ योना दह )

प्रथमा वांश्च सरथिना सुवर्णां देवौ पश्यन्तौ भुवनानि विश्वा । अपिप्रथं चोदना वां मिमाणा होतांरा ज्योतिः प्रदिशा दिग्गन्ता	२११२
आदित्येन भारती वष्टु यज्ञं सरस्वती सह रुद्रेन आवीत । दृढोपहृता वसुभिः सजोषा यज्ञं नो देवीरमृतेषु धत्त	२११३
त्वष्टा वीरं देवकीमं जजान त्वष्टरवीं जायत आशुरथः । त्वष्टेदं विश्वं भुवनेन जजान वहोः कर्तारमिह यक्षि होतः	२११४
अथो धृतेन तमन्या समंक्तं उप देवां २ ऋतुशः पार्थ एतु । वनस्पतिर्देवलोकं प्रजानन्नाग्निना हव्या स्वदितानि वक्षत्	२११५
प्रजापतेस्तपसा वावृधानः सद्यो जातो दधिपे यज्ञमग्रे । स्वाहाकृतेन हविषा पुरोगा याहि मांघ्या हविरदन्तु देवाः	२११६

॥ २३४ ॥ ( वा० यजुर्वेद २१।२५-३६; काठकसं० १६।२०, मैत्रा० सं० ४।१३।३; तैत्ति० ब्रा० २।१।१)

मर्मिहो अद्य मनुषो दुरोणे देवो देवान् यजसि जातवेदः । आ च वह मित्रमहश्चिकित्वान् त्वं दूतः कविरसि प्रचेताः	२११७
तनूनपाद् पथ ऋतस्य यानान् मध्वां समजन् त्वदया सुजिह्व । मन्मानि धीमिरुत यज्ञमृन्धन् देवत्रा च कृणुष्वध्वरं नः	२११८
नराशथमस्य महिमानमेपामुप स्तोषाम यजतस्पर् यज्ञैः । ये सुकृतवः शुचयो धियंधाः स्वदन्ति देवा उभयानि हव्या	२११९
आजुह्वानं ईदियो वन्द्यश्वा याक्षग्रे वसुभिः सजोषाः । त्वं देवानाममि यह्व होता स एनान् यक्षीपितो यजीयान्	२१२०
प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्या वस्तोरस्या वृज्यते अग्रे अह्नाम् । व्यु प्रथते वितरं वरीषो देव्येभ्यो अर्दिनये स्योनम्	२१२१
व्यचम्वतीरुर्विया वि श्रेयन्तां पतिभ्यो न जनयः शुम्भमानाः । देवीर्दारी वृहतीर्विधमिन्वा देवेभ्यो भवत सुप्रायणाः	२१२२

मैत्रा० पाट० - २११३ ( १ श्वोने वृष्याना गुहिन दधातु ) २११४ ( १ त्वष्टेमा विश्वा भुवना ) २११५ ( १ ममणा  
२ देव ) २११६ ( १ सवदन्तु ) २१२० ( १ आजुह्वाना )

पाट० पाट० - २११९ ( १ मगिये २ ममणा ), २१२१ अयं मन्त्रो जाति ।

आ सु॒प्च॒र्यन्ती य॒जते उपा॒के उ॒पा॒मा॒न॒क्ता सद॒तां नि यो॒नौ ।	
दि॒व्ये योष॑णे वृ॒हती सु॒रु॒क्मे अ॒धि श्रि॒यं॑, शु॒क्र॒पि॒शं द॒धानि	२१२३
दै॒व्या हो॒ता॒रा प्र॒थ॒मा सु॒वा॒चा मि॒मा॒ना य॒ज्ञं म॒नु॒षो य॒ज्ञ॒र्घ्यं ।	
प्र॒चो॒द॒र्यन्ता वि॒दथे॑षु क॒ारु प्रा॒चीनं॑ ज्योतिः प्र॒दि॒शां दि॒शन्ता	२१२४
आ नो॑ य॒ज्ञं भा॒रती॑ तू॒र्य॒मे॒त्वि॒टा म॒नु॒ष्वदि॒ह चे॒त॒र्यन्ती ।	
ति॒स्रो दे॒वीर्षि॑हिरेदं॒ स्यो॒नं सर॑स्वती॒ स्व॒प॒सः सद॑न्तु	२१२५
य इ॒मे द्या॒वा॒पृथि॒वी ज॒र्नित्री रू॒पैर॑पि॒थं॒शुद् भु॒व॒ना॒नि वि॒श्वा ।	
त॒म॒घ हो॒त॒रि॒पि॒तो य॒जी॒यान् दे॒वं त्व॑ष्टा॒र॒मि॒ह य॒क्षि वि॒द्वान्	२१२६
उ॒पा॒र्व॒सृज॑ त्म॒न्या॒ सम॑ज्जन् दे॒वानां॑ पा॒थं ऋ॒तु॒था ह॒वी॒र्ध॒र्षि ।	
व॒न॒स्प॒र्तिः अ॒मि॒ता दे॒वो अ॒ग्निः स्व॑द॒न्तु ह॒व्यं म॑र्षु॒ना घृ॒तेन॑	२१२७
स॒द्यो जा॒तो व्य॑मिमीत य॒ज्ञ॒म॒ग्नि॒दे॒वाना॑म॒मव॑त् पुरो॒गाः ।	
अ॒स्य हो॒तुः प्र॒दि॒श॒यु॒तस्य॑ चा॒चि स्वा॑हा॒कृतं॑ ह॒वि॒र॒द॒न्तु दे॒वाः	२१२८

॥ २१५ ॥ ( ऋग्वेदीय-परिशिष्ट-प्रपाठ्याये १-१३ । मैत्रा० सं० ४ । १३ । २ः २०० । १, काठक सं० १५ । १३ः तै० ब्रा० ३ । ६ । २ । १ )

हो॒ता य॒क्षद॑ग्निं स॒मि॒धा सु॒प॒मि॒धा स॒मि॒द्धं॑ ना॒मा पृथि॑व्याः मंग॒ये वा॒म॒भ्य ।	
व॒र्ष्म॒न् दि॒व इ॒क्ष॒स्प॒दे वे॒त्वा॒ज्य॒स्य हो॒त॒र्य॒ज	२१२९
हो॒ता य॒क्षत् त॒नू॒न॒पा॒त॒म॒दि॒ते॒र्गं भु॒व॒न॒स्य गो॒पाम् ।	
म॒ध्वा॒द्य दे॒वो दे॒वेभ्यो॑ दे॒व॒या॒ना॒न् प॒थो अ॒न॒क्त वे॒त्वा॒ज्य॒स्य हो॒त॒र्य॒ज	२१३०
हो॒ता य॒क्षन्न॑रा॒द्यं॑ सं नृ॒शं॒ख॒नूः प्र॑णेत्रं ।	
गो॒भिर्व॑पा॒वान् त्स्या॑द् धी॒रैः अ॒क्ती॒वान् रथैः॑ प्रथ॒म॒या॒वा हि॒र॒ण्यैश्च॑न्त्री वे॒त्वा॒ज्य॒स्य हो॒त॒र्य॒ज	२१३१
हो॒ता य॒क्षद॑ग्निमी॒ळ ई॒ळि॒तो दे॒वो दे॒वा आ॒व॒क्ष॒द्द॒तो ह॒व्य॒वा॒ळ॒मूरैः॑ ।	
उ॒पे॒मं य॒ज्ञमु॑पे॒मो दे॒वो दे॒व॒ह॒ति॒मव॑तु वे॒त्वा॒ज्य॒स्य हो॒त॒र्य॒ज	२१३२

मैत्रा० पाठ०- २१२८ मंत्रः नोपलभ्यते, २१३१ ( १ नृगखं, नृक्षत्रोत्रं ); २१३२ ( १ इति मित, २ देवं आ च यक्षद्, ३ ० मूला ),

काठ० पाठ०- २१२९ ( १ यथियं ), २१३१ अयं मन्त्र नोपलभ्यते, २१३२ ( २ २ इति ने ४० ),

होता यक्षद् ग्रहिः सुष्टरीमोर्णप्रदा अस्मिन् यज्ञे वि च प्र च प्रथतां स्वासस्यं देवेभ्यः ॥  
एमेनदद्य चसवो रुद्रा आदित्याः सदैन्तु प्रियामिन्द्रस्यास्तु वेत्वाज्यस्य होतर्त्यज २१३३

होता यक्षद् दुर ऋष्याः कवप्यो कोषधावनीरुद्राताभिर्जिहतां विपक्षोभिः श्रयतां ।  
सुप्रायणा अस्मिन् यज्ञे विश्रयन्तामृतावृधो व्यन्त्वाज्यस्य होतर्त्यज २१३४

होता यक्षदुपासानक्ता बृहती सुपेशसा नृःपतिभ्यो योनिं कृष्वाने ।  
संस्मयमाने इन्द्रेण देवैरेदं ग्रहिः सीदतां वीतामाज्यस्य होतर्त्यज २१३५

होता यक्षद् दैव्या होतारा मन्द्रा पोतारा कवी प्रचेतसा ।  
स्विष्टमद्यान्यः करदिषा स्वमिगूर्तमन्य ऊर्जा सतवसेमं यज्ञं दिवि  
देवेषु धत्तां वीतामाज्यस्य होतर्त्यज २१३६

होता यक्षद् तिस्रो देवीरपसामपस्तमा अच्छिद्रमघेदमपस्तन्वतां ।  
देवेभ्यो देवीर्देवमपो व्यन्त्वाज्यस्य होतर्त्यज २१३७

होता यक्षत् त्वष्टारमर्चिष्टमपाकं रेतोधां विश्रवसं यज्ञोधां ।  
पुरुषरूपमकामकर्शनं सुपोषः पोषैः स्यात् सुवीरो वीरैर्वेत्वाज्यस्य हातर्त्यज २१३८

होता यक्षद् वनस्पतिमुपावत्तक्षद्वियो जोष्टारं शशमं नरः ।  
स्वदान् स्वधितिर्कृतुधाद्य देवो देवेभ्यो हव्यवाद् वेत्वाज्यस्य होतर्त्यज २१३९

अजैद्रमिरसनढाजं नि देवो देवेभ्यो हव्यवाद् प्राञ्जोभिर्हिन्वानो धेनाभिः ।  
कल्पमानो यज्ञस्यायुः प्रतिरन्नुपग्रेष्य होतर्हव्या देवेभ्यः २१४०

होता यक्षदग्निं स्वाहाज्यस्य स्वाहा मेदसः स्वाहा स्तोकानां स्वाहा  
स्वाहाकृतीनां स्वाहा हव्यस्यक्तीनाम् ॥

स्वाहा देवा आज्यपा जुपाणा अग्न आज्यस्य व्यन्तु होतर्त्यज २१४१

मंत्रा० पाठ०- २१३३ ( १ देवेभ्यः, स्वदन्तु ); २१३४ ( १ श्रयतां ); २१३५ ( नृःपतिभ्यो );  
२१३६ ( १ स्वदान्, २ हव्यावाद् ); २१४०-२१४२ मन्द्राः नोपलभ्यन्ते ।

पाठ० पाठ०- २१३४ ( १ श्रयतां ); २१३६ ( १ कररश्मिः, २ ०मन्वररश्मिः ); २१३८ ( १ ०मविष्टमपाकं );  
२१३९ ( १ स्वदान् ); २१४० अयं मंत्रो नोपलभ्यते ।

## अथर्ववेदेऽग्निमन्त्राः ।

(अथर्ववेदे कां० १, सू० ९, मं० ३-४ अथर्वा । त्रिष्टुप् ।)

येनेन्द्राय सममरः पर्या-स्युत्तमेन ब्रह्मणा जातवेदः ।

तेन त्वमग्न इह वर्धयेमं संजातानां श्रेष्ठ्य आ घेहेनम् २१४२

ऐषां यज्ञमुत वचो ददेऽहं रायस्पोषमुत चित्तान्वये ।

सपत्ना अस्मदधरे भवन्तूत्तमं नाकुमार्धि रोहयेमम् २१४३

(अथर्व० १ । १९ । १-४ । विष्टुद्धिपमा गायत्री, २१४८ भुरिग्विपमा ।)

अग्ने यत् ते तपस्तेन तं प्रति तप योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः २१४४

अग्ने यत् ते हरस्तेन तं प्रति हर योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः २१४५

अग्ने यत् तेऽर्विस्तेन तं प्रत्यर्च योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः । २१४६

अग्ने यत् ते शोचिस्तेन तं प्रति शोच योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः २१४७

अग्ने यत् ते तेजस्तेन तमतेजसं कृणु योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः २१४८

(अथर्व० २ । २९ । १-२ । २१४९ अनुष्टुप्, २१५० त्रिष्टुप् ।)

पार्थिवस्य रस देवा भगस्य तन्मोहे धले ।

आयुष्यमिषा अग्निः स्रयो वर्च आ धाद् बृहस्पतिः २१४९

आयुरसौ धेहि जातवेदः प्रजां त्वंहरधिनिधेह्यस्यै ।

रायस्पोषं सवितरा सुवांस्यै शतं जीवाति शरदस्तवायम् २१५०

(अथर्व० २ । ३४ । ३ । त्रिष्टुप् ।)

ये बध्यमानमनु दीध्याना अनैक्षन्त मर्नसा चक्षुषा च ।

अग्निष्टानग्रे प्र मुमोक्तु देवो विश्वकर्मा प्रजया संररणः २१५१

(अथर्व० कां० ३ । १ । १-३, ५-६ । २१५२ त्रिष्टुप्, २१५३ विराड्गमा भुरिक्, २१५४ अनुष्टुप्, २१५६ विरादपुर उष्णिक् ।)

अग्निर्नः शत्रून् प्रत्येतु विद्वान् प्रतिदहन्मभिर्गस्तिमरातिम् ।

स सेना मोहयतु परेषां निर्हस्ताथ कृणवज्रातवेदाः २१५२

यूयमुग्रा मरुत ईदृशे स्था—भि प्रेतं मृणतु सहध्वम् ।  
अभीमृणन् वसवो नाथिता इमे अग्निर्हीपां दूतः प्रत्येतुं विद्वान् २१५३

अग्नित्रसेनां भयवन् अस्मान् छत्र्यतीमभि ।  
युवं तानिन्द्र वृत्रहन् अग्निश्च दहतं प्रति २१५४  
इन्द्रः सेनां मोहयतु मरुतो मन्त्वोजसा ।  
चक्षुष्यागिरा दत्तां पुनरेतु पराजिता २१५५

( अथर्व० ३।१०।१—३।१५६ त्रिष्टुप् ; १५७-५८ अनुष्टुप् । )

अग्निर्हीपां दूतः प्रत्येतुं विद्वान् प्रतिदहन्नभिर्शस्तिमरातिम् ।  
स चित्तानि मोहयतु परेषां निर्हस्ताश्च कृणवज्जातवेदाः २१५६  
अपमग्निर्मृमुहद् यानि चित्तानि वो हृदि ।  
वि वो धमत्वोक्तः प्र वो धमतु सर्वतः २१५७  
इन्द्रं चित्तानि मोहय—सर्वाडाकृत्या चर ।  
अग्नेर्वर्तस्य धाज्या तान् विपृचो वि नाशय २१५८

( अथर्व० ३।३।१। त्रिष्टुप् )

अचिक्रदत् स्वपा इह भुवदग्ने व्यचिस्व रोदसी उरुची ।  
युजन्तु त्वा मरुतो विश्ववेदस आमुं नय नमसा रातहज्यम् २१५९

( अथर्व० ३।४।३ )

अच्छं त्वा यन्तु हविर्नः सजाता अग्निर्दुतो अजिरः मं चरात ।  
जायाः पुत्राः सुमर्नसो भवन्तु बहुं बलिं प्रति पश्यासा उग्रः २१६०

( अथर्व० ३।१७।१ । पञ्चपदा ककुम्सतीगर्भोऽष्टिः । )

प्राची दिग्गिरिर्धिपतिसितो रक्षितादित्या इषवः ।  
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु ।  
योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस् तं वो जम्भे दध्मः २१६१

( अथर्व० ४।४।६ । मुरिक् । )

अद्यापं अद्य मवित—रघ देवि मरस्वति ।  
अद्यास्य रंक्षणस्पते धनुर्वा तानया पसः २१६२



( अथर्व० ५।८। १-३। अनुष्टुप्, २१६४ इयवसाना पदपदा जगती । )

वैकङ्कतेनेध्मेनं देवेभ्य आज्यं वह ।

अमे ताँ इह मादय सर्व आ यन्तु मे हवम् २१६३

इन्द्रा याहि मे हवम् इदं करिष्यामि तच्छृणु ।

इम एन्द्रा अतिसरा आकृतिं सं नमन्तु मे ।

तेभिः शक्रेण वीर्यं जातवेदस्त्वनवशिन् २१६४

यदुसावमुतो देवा अदेवः संधिकीर्षति ।

मा तस्याग्निर्हव्यं वांसीद्वयं देवा अस्य मोषं गुर्मम्व हवमेतन् २१६५

( अथर्व ५।२४। २। चतुष्पदातिशकरी । )

अग्निर्वनस्पतीनाम् अधिपतिः स मावतु ।

अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां

चिरयामस्यामाकृत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहृत्यां स्वाहा २१६६

( अथर्व० ५।२८। १-२४ । त्रिष्टुप्, २१७२ पञ्चपदातिशकरी २१७३, ७५, ७६, ७८

ककुम्भत्यनुष्टुप् २१७९ पुरजणिक । )

नवं प्राणान् नवभिः सं मिमीते दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ।

हरिते ग्रीणि रजते ग्रीणि अयमि ग्रीणि तपसाविष्टितानि २१६७

अग्निः सूर्यश्चन्द्रमा भूमिरापो द्यौरन्तरिक्षं प्रदिशो दिशश्च ।

आर्तवा क्रतुभिः संविदाना अनेन मा त्रिवृता पारयन्तु २१६८

त्रयः पोषास्त्रिवृतिं श्रयन्ताम् अनक्तं पूषा पर्यसा वृतेन ।

अन्नस्य भूमा पुरुषस्य भूमा भूमा पशूनां त इह श्रयन्ताम् २१६९

इममादित्या वसुना समुल्लते मर्मणे वर्धय वावृक्षानः ।

इममिन्द्र सं सृज वीर्येणास्मिन् त्रिवृच्छ्रयतां पोषयिष्यु २१७०

भूमिं द्या पातु हरितेन विश्वम् दुग्धिः पिपृत्वैर्यसा सुजोषाः ।

वीरुष्टिरे अर्जुनं संविदानं दक्षं दघातु मुमनस्पमानम् २१७१

त्रेधा जातं जन्मनेदं हिरण्यमग्नेरेकं प्रियतमं वभूव सोमस्यैकं हिमितस्य परापतत् ।

अपामेकं वेधमां रेत आहुस् तत् ते हिरण्यं त्रिवृदुस्त्वायुषे २१७२

ज्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य ज्यायुषम् ।	
त्रेधामृतस्य चक्ष्णं त्रीण्यायूपि तेऽरुम्	२१७३
त्रयः सपत्नीस्त्रिवृता यदार्यन्तु एकाक्षरमभिसंभूय शक्राः ।	
प्रत्यौहन् मृत्युममृतेन साकम् अन्तर्दधाना दुरितानि निश्वा	२१७४
दिवस्त्रा पातु हरितं मध्यात् त्वा पात्रर्जुनम् ।	
भूम्या अयस्मयं पातु प्रागाद् देवपुरा अयम्	२१७५
इमास्तिस्रो देवपुरास्तास्त्वा रक्षन्तु सर्वतः ।	
तास्त्वं विभ्रद्वर्चस्व्युत्तरो द्विपतां भव	२१७६
पुरं देवानाममृतं हिरण्यं य अविधे प्रथमो देवो अग्रे ।	
तस्मै नमो दश प्राचीः कृणोम्यनु मन्यतां त्रिवृद्वागधे मे	२१७७
आ त्वा चतुत्वर्धमा पूषा बृहस्पतिः ।	
अहर्जतिस्व यन्माम तेन त्वार्तिं चृतामसि	२१७८
ऋतुभिर्द्वातुर्वै रायुपे वर्षसे त्वा ।	
संवत्सरस्य तेजसा तेन संहनु कृणमसि	२१७९
घृतादुद्धुमं मधुना समक्त भूमिर्द्वहमच्युत पारयिष्णु ।	
भिन्दत् सपत्नानघरांश्च कृणुदा मां रोह सहते सौमगाय	२१८०

( अथर्व० ६ । ३६ । १-३ । गायत्री । )

श्रुतावानं वैश्वानरम् ऋतस्य ज्योतिपुस्पतिम् । अर्जस घुर्ममीमहे	२१८१
म विश्वा प्रति चाक्लृष ऋतुरुत्सृजते वशी । यज्ञस्य वयं उत्तिरन्	२१८२
अग्निः परंपु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य । सुग्राडेको वि राजति	२१८३

( अथर्व० ६ । ११० । २-३ । त्रिष्टुप् । )

ज्येष्ठध्यां जातो निचृतेर्यमस्य मूलवर्हेणात् परिं पाक्षेनम् ।	
अत्येनं नेपद् दुरितानि निश्वा दीर्घायुत्वाय शतशारदाय	२१८४
व्याग्रेऽह्यर्जनिष्ट वीरो नक्षत्रजा जार्यमानः सुवीरः ।	
म मा वधीत् पितरं वर्षमानो मा मानरं म मिनीअर्निश्रीम्	२१८५

( अथर्व० ६ । १११ । १-४ । अनुष्टुप्, २१८६ परानुष्टुप् त्रिष्टुप् । )

इमं मे अग्रे पुरुषं मुमुग्धम्—यं यो वृद्धः सुर्यतो लालपीति ।  
 अतोऽधि ते कृणवद् भागधेयं यदनुन्मदितोऽसति २१८६  
 मेष्टे नि शमयतु यदि ते मनु उच्यतम् । कृणोमि विद्वान् भेषजं यदनुन्मदितोऽसति २१८७  
 नसादुन्मदितम् उन्मत्तं रक्षसस्परि । कृणोमि विद्वान् भेषजं यदनुन्मदितोऽसति २१८८  
 स्त्वा दुरप्सरसः पुनरिन्द्रः पुनर्भगः । पुनस्त्वा दुर्विधं देवा यदनुन्मदितोऽसति २१८९

( अथर्व० ६ । ११२ । १-३ । त्रिष्टुप् । )

मा ज्येष्ठं बंधीदुयमम्र एषां मूलवर्हेणात् परि पाद्येनम् ।  
 स ग्राह्याः पाशान् वि चृत प्रजानन् तुभ्यं देवा अनु जानन्तु विश्वं २१९०  
 उन्मुञ्च पाशांस्त्वमम्र एषां त्रयस्त्रिभिरुत्सिता येभिरासन् ।  
 स ग्राह्याः पाशान् वि चृत प्रजानन् पितापुत्रौ मातरं मुञ्च सर्वान् २१९१  
 येभिः पाशैः परिवित्तो विश्वदो ऽङ्गैश्च आपित उत्सितश्च ।  
 वि ते मुच्यन्तां विमुच्यो हि सन्ति भ्रूणानि पूषन् दुर्गितानि मृश्व २१९२

( अथर्व० ७ । ३४ ( ३५ ) । १ ॥ जगती । )

अग्रे जातान् प्र णुदा मे सुपन्नान् प्रत्यजाताञ्जातवेदो नुदस्व ।  
 अघस्पदं कृणुष्व ये पृतन्यवो ऽनागमस्ते वयमर्दितये स्पाम २१९३

( अथर्व० ७ । ३५ [ ३६ ] १-३ ॥ त्रिष्टुप्, २१९४ अनुष्टुप् । )

प्रान्यान् त्सपन्नान् त्सहसा सहस्व प्रत्यजातान् जातवेदो नुदस्व ।  
 इदं राष्ट्रं पिपूहि सामगाय विश्व एनमनु मदन्तु देवाः २१९४  
 इमा यास्ते शतं द्विराः सहस्रं धमनीरुत ।  
 तासां ते सर्वसामह—मममना विलमर्षधाम् २१९५  
 परं योनैरवरं ते कृणोमि मा त्वां प्रजाभि भूमोत घ्नन्तुः ।  
 अस्वँ त्वाप्रजसं कृणोम्य—श्मानं ते अपिधानं कृणोमि २१९६

( अथर्व० ७ । ३६ [ ३७ ] ४ ॥ अनुष्टुप् । )

यतेन त्वं व्रतपते समक्तो विश्वाहा मुमना दीदिहीद ।  
 तं त्वा वयं जातवेदुः समिद्धं प्रजावन्त उष मदेम सर्वे २१९७

( अथर्व० ७ । ७८ ( ८३ ) १-२॥ २१९८ परोष्णिक्, २१९९ त्रिष्टुप् । )

वि ते मुञ्चामि रश्नां वि योक्तुं वि नियोजनम् । इहैव त्वमर्जस्त एध्यमे २१९८  
अस्मै क्षत्राणि धारयन्तमग्ने युनज्मि त्वा ब्रह्मणा दैव्येन ।  
दीदिवहोऽस्मभ्यं द्रविणेह भद्रं प्रेमं वोचो हविर्दा देवतासु २१९९

( अथर्व० ७ । १०६ [ १११ ] । १ । वृहतीगर्मा त्रिष्टुप् । )

यदस्मृति चक्रम किं चिदग्न उपारिम चरणे जातवेदः ।  
ततः पाहि त्वं नः प्रचेतः शुभे सखिम्यो अमृतत्वमस्तु नः २२००

( अथर्व० ७ । ११५ [ १२० ] १-४॥ अनुष्टुप्, २२०२-३ त्रिष्टुप् । )

प्र पतितः पापि लक्ष्मि नश्येतः प्रामुतः पत । अयस्मयेनाङ्गेन द्विपते त्वा संजामसि २२०१

या मां लक्ष्मीः पतयान्तरुष्टाभिचस्कन्दु चन्दनेव वृक्षम् ।  
अन्यत्रास्मत् संजितस्तामितो धा हिरण्यहस्तो वसु नो रराणः २२०२

एकंशतं लक्ष्म्योऽहं मर्त्यस्य साकं तन्वा जनुपोऽधि जाताः ।  
तासां पार्ष्णि निरितः प्र हिंमः शिवा अस्मभ्यं जातवेदो नि यच्छ २२०३

एता एना व्याकरं सिले गा विष्टिता इव ।  
रमेन्तां पुण्यां लक्ष्मीर्याः पापीस्ता अनीनशम् २२०४

( अथर्व० १९ । ३ । १-४॥ त्रिष्टुप्, २२०६ मुरिक् । )

द्विस्पृष्टिष्याः पर्यन्तरिक्षाद् वनस्पतिभ्यो अघ्योपधीभ्यः ।  
यत्रयत्र विभृतो जातवेदास्ततस्तुतो जुपमाणो न एहि २२०५

यस्तं अप्सु महिमा यो वनेषु य ओषधीषु पुशुप्यस्त्वन्तः ।  
अग्ने सर्वास्तन्वः सं रभस्तु तामिर्न एहि द्रविणोदा अर्जस्तः २२०६

यस्तं देवेषु महिमा सृगो या ते तनूः पित्र्यानिवेश ।  
पुष्टिर्पा तं मनुष्येषु पश्ये अग्ने तया रयिमन्मासु धेहि २२०७

श्रुतर्णाय क्वये वेद्याय चर्चाभिर्वाकैरप याभि रातिम् ।  
यतो भयममेयं तन्नो अस्त्यन् देवानां यज हेतो अग्ने २२०८

अथर्व० २९ । ५ । १-४॥ त्रिष्टुप्, २२०९ पञ्चपदा चिरादतिजगती, २२१० जगती ।

यामाहुतिं प्रथमामर्धवा या जाता या हृष्यमर्कणोजातवेदाः ।  
तां न एतां प्रथमो जौहर्वामि तामिष्टो वंदतु हृष्यमग्नि-रग्नये स्वाहा २२०९

आकृतिं देवीं सुभगां पुरो दधे चित्तस्य माता सुहर्वा नो अस्तु ।  
यामाशामेमि केवली सा मे अस्तु विदेयमेनां मनसि प्रविष्टाम् २२१०  
आकृत्या नो बृहस्पत आकृत्या न उपा गहि ।  
अथो भगस्य नो घेहि अथो नः सुहर्वा भव २२११  
बृहस्पतिर्म आकृतिमाङ्गिरमः प्रति जानातु वाचमेताम् ।  
यस्य देवा देवताः संयंभुवः स सुप्रणीताः कामो अन्वेत्वग्मान् २२१२

( अथर्व० १२ । ३७ । १-४ ॥ २२१३ त्रिष्टुप्, २२१४ आस्तारपांकिः, २२१५ त्रिपदा महापृहती,  
२२१६ पुरोष्णिक् । )

इदं वचो अग्निना दत्तमागन् भगो यशः सह ओजो वयो बलम् ।  
त्रयस्त्रिंशद् यानि च वीर्याणि तान्यग्निः प्र ददातु मे २२१३  
वर्च आ घेहि मे तन्वांङ् सह ओजो वयो बलम् ।  
इन्द्रियाय त्वा कर्मणे वीर्यायि प्रति गृह्णामि शतशरदाय २२१४  
ऊर्जे त्वा बलाय त्वौर्जसे सहसे त्वा ।  
अग्निभूयाय त्वा राष्ट्रभूत्याय पर्युहामि शतशरदाय २२१५  
श्रुतुर्म्यध्वार्तवेभ्यो माध्वः सैवत्सुरेभ्यः ।  
धात्रे विधात्रे समृधे भूतस्य पतये यजे २२१६

( अथर्व० ४ । १४ । १-२ । शृगुः । त्रिष्टुप्, २२१८, २२२० अनुष्टुप्, २२१९ प्रस्ताम्पङ्क्तिः,  
२२२३, २२२५ जगती, २२२४ पञ्चपदातिशक्ती । )

अजो ह्यग्नेरजनिष्ट शोकात् सो अपश्यजनिशामग्रे ।  
तेन देवा देवतामग्र आयन् तेन रोहान् रुरुद्रमेष्यासः २२१७  
क्रमध्वमग्निना नाक-मुख्यान् हस्तेषु विभ्रतः ।  
दिवस्पृष्टं स्वर्गित्वा मिश्रा देवाभिराध्वम् २२१८  
पृष्ठाद् पृथिन्या अहमन्तरिक्षम् आरुहमन्तरिक्षाद् दिवमार्हम् ।  
दिवो नाकस्य पृष्ठाद् स्वर्गज्योतिरगामहम् २२१९  
स्वर्ग्यन्तो नापेक्षन्त आ द्यां रोहन्ति रोदसी ।  
यज्ञं ये विश्वतोधारं सुविद्रामो विवेनिरे २२२०

अग्ने ग्रेहि प्रथमो देवतानां चक्षुर्देवानामुत मानुषाणाम् ।  
 इयक्षमाणा भृगुभिः सजोपाः स्वर्गिन्तु यजमानाः स्वस्ति २२२१  
 अजमेनज्मि पर्यसा घृतेन दिव्यं सुपर्णं पयसं बृहन्तम् ।  
 तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं स्वर्गारोहन्तो अभि नाकमुत्तमम् २२२२  
 पञ्चौदनं पञ्चभिरङ्गुलिभिर्दव्योद्धर पञ्चधैतमौदनम् ।  
 प्राच्यां दिशि शिरो अजस्य धेहि दक्षिणायां दिशि दक्षिणं धेहि पार्श्वम् २२२३  
 प्रतीच्यां दिशि भसदेमस्य धेहि उत्तरस्यां दिश्युत्तरं धेहि पार्श्वम् ।  
 ऊर्ध्वायां दिश्यजस्यानकं धेहि दिशि ध्रुवायां धेहि पाजस्य अन्तरिक्षे मध्यतो मध्यमस्य २२२४  
 श्रुतमजं श्रुतया प्रोर्णहि त्वचा संचरङ्गैः संभृतं विश्वरूपम् ।  
 स उत्तिष्ठतो अभि नाकमुत्तमं पद्भिश्चतुर्भिः प्रति तिष्ठ दिक्षु २२२५

( अथर्व० ७ । ८४ । १ । जगती । )

अनाधृष्यो जातवेदा अमर्त्यो विराडमे क्षत्रभृद् दीदिहीह ।  
 निष्ठा अमीवाः प्रमुञ्चन् मानुषीभिः शिवाभिरथ परि पाहि नो गयम् २२२६

( अथर्व० ७ । १०८ [ ११३ ] । १-०॥ २००७ बृहतीगमां त्रिष्टुप्, २०२८ त्रिष्टुप् । )

यो न स्तायद् दिप्सति यो न आविः स्वो निद्वानरणो वा नो अमे ।  
 प्रतीच्येत्वरणी द्रत्वती तान् सैषामग्ने वास्तुं भूमो अपत्यम् २२२७

यो नः सुसाक्षाग्रतो वाभिदासान् निष्ठतो वा चरतो जातवेदः ।  
 धैश्वानरेण सयुजां सजोपास् तान् प्रतीचो निर्देह जातवेदः २२२८

( अथर्व० वां १२ । ० । १-१३, ३३-५१॥ त्रिष्टुप्, २०३३०, २०३३३, २०३८-४५, २०४७-४९, २०५१-५४, २११६, २०६४, २०६७ अनुष्टुप् ( २०४० ककुम्भती परावृहती, २०४४ निचृत्, २०५३ पुरस्तात्ककुम्भती ) । २१३१ धारुणारपदक्षितः, २२३४ भुरिगार्ची पदक्षितः २२५८ जगती; २२६१-६२ भुरिग, २२३५ अनुष्टुप्गमां विपरिणतपादलक्ष्मा पदक्षितः । २२५० पुरस्ताद्बृहती; २०५५ त्रिष्टुप् एकादश भुरिगार्ची गायत्री, २२५३ एकादश द्विष्टुप् त्रिष्टुप्, २०५९ एकादश द्विष्टुप् साक्षी त्रिष्टुप्, २२६० पञ्चपदा बाह्वतयैराजगमां जगती; २२६३ उपरिष्ठादिराद् बृहती, २०६५ पुरस्तादिराद् बृहती, २२६८ बृहतीगमां । )

नृदमा रीद न ते अग्रं लोक इदं सीसं मागुधेयं तु एहि ।

यो गोषु यक्ष्मः पुरुषेषु यक्ष्मस्तेन त्वं माकर्मधराह परेहि २२२९

अप्रधंमदुःशमाभ्यां करोणानुक्रोणे च । यक्ष्मं च मयं तेनेतो मृत्युं च निरंजामसि २२३०

निरितो मुत्सुं निर्रति निररातिमजामसि ।

यो नो द्वेष्टि तमद्वयमे अक्रव्याद्यमुं द्विप्मस्तमुं ते प्र सुवामसि २२३१

यद्यग्निः क्रव्याद्यदि वा व्याघ्र इमं गोष्ठं प्रविवेशान्योकाः ।

तं मायाज्यं कृत्वा प्र हिणोमि दूरं स गच्छत्वप्सुपदोऽप्यग्नीन् २२३२

यच्चा क्रुद्धाः प्रचक्रुर्मन्युना पुरुषे मृते । सुकल्पमग्ने तत् त्वया पुनस्त्वोद्दीपयामसि २२३३

पुनस्त्वादित्या रुद्रा वसवः पुनर्ब्रह्मा वसुनीतिरग्ने ।

पुनस्त्वा ब्रह्मणस्पतिराधाद् दीर्घायुत्वार्थं शतशरिदाय २२३४

यो अग्निः क्रव्यात् प्रविवेशं ( ऋ० १० । १६ । १० ) ( १५६६ )

क्रव्यादमग्निं प्र हिणोमि दूरं ( १० । १६ । ९ ) ( १५६६ )

क्रव्यादमग्निमिपितो हरामि जनान् दहन्तं वज्रेण मुत्सुम् ।

नि तं शास्मि गार्हपत्येन विद्वान् पितृणां लोकेऽपि भागो अस्तु २२३५

क्रव्यादमग्निं शशमानमुक्थ्यं प्र हिणोमि पृथिविभिः पितृयानैः ।

मा देवयानैः पुत्रा गा अत्रैवैधि पितृषु जागृहि त्वम् २२३६

समिन्धते संकसुको स्वस्तये शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः ।

जहाति रिप्रमत्येन एति समिद्धो अग्निः सुपुना पुनाति २२३७

देवो अग्निः संकसुको दिवस्पृष्टान्यारुहत् ।

मुच्यमानो निरेणसो ऽमौगस्माँ अशस्तायाः २२३८

अस्मिन् वयं संकसुके अग्नौ रिप्राणि मृज्महे ।

अभूम यज्ञियाः शुद्धाः प्र ण आयूषि तारियत् २२३९

संकसुको विकमुको निरुयो यथ निस्तरः । ते ते यक्ष्मं सवेदसो दूराद् दूरमनीनशन् २२४०

यो नो अथेषु वीरेषु यो नो गोप्त्रजाविषु । क्रव्यादं निर्णुदामसि यो अग्निर्जनयोपनः २२४१

अन्येभ्यस्त्वा पुरुषेभ्यो गोभ्यो अथेभ्यस्त्वा ।

निः क्रव्यादं नुदामसि यो अग्निर्जीवितयोपनः २२४२

यस्मिन् देवा अमृजत यस्मिन् मनुष्या उत । तस्मिन् घृतस्तावो मृष्टा त्वमग्ने दिवं रुह २२४३

समिद्धो अप आहुत म नो माम्यपक्रमीः । अत्रैव दीदहि घग्नि ज्योक् न मय्ये द्यौ २२४४

मीसे मृद्वं नडे मृद्वम् अग्नौ संकसुके न यत् । अघो अघ्यां रागायां शीर्षिक्त्तिमुपवर्हणे २२४५

यो नो अग्निः पितरो हृत्स्वन्तराविवेशामृतो मर्त्येषु ।

मय्यहं तं परिं गृह्णामि देवं मा सो अस्मान् द्विक्षत मा वयं तम् २२४६

अवावृत्य गार्हपत्यात् क्रव्यादा प्रेतदक्षिणा । प्रियं पितृभ्यं आत्मने ब्रह्मभ्यः कृणुता प्रियम् २२४७

द्विभागधनमादाय प्रक्षिणात्यवर्त्या । अग्निः पुत्रस्य ज्येष्ठस्य यः क्रव्यादनिराहितः २२४८

यत् कृपते यद् वनुते यच्च वृक्षेन त्रिन्दते । सर्वे मर्त्यस्य तन्नास्ति क्रव्याद्येदनिराहितः २२४९

अयज्ञियो हतवर्चा भवति सैनैन हरिश्चवे । छिनत्ति कृप्या गोर्धनाद् यं क्रव्यादनुवर्तते २२५०

मुहुर्गृध्रैः प्र वदत्यातिं मर्त्यो नीत्य । क्रव्याद्यानग्निरन्तिका दनुविद्वान्वितावति २२५१

ग्राक्षां गृहाः सं सृज्यन्ते स्त्रिया यन्त्रियते पतिः ।

ब्रह्मैव विद्वानेप्योक्षे यः क्रव्यादं निरादधत् २२५२

यद् अग्निं शर्मलं चकृम यच्च दुष्कृतम् । आपो मा तस्माच्छुम्भन्त्वग्नेः संकसुकाश्च यत् २२५३

ता अधरादुदीचीरावृषन् प्रजान्तीः पृथिभिर्देवयानैः ।

परितस्य वृषभस्याधिं पृष्ठे नवाश्वरन्ति सुरितः पुराणीः २२५४

अग्ने अक्रव्याग्निः क्रव्यादं नृदा देवयजनं बह २२५५

इमं क्रव्यादा निवेशाय क्रव्यादुमन्वगात् । व्याघ्रौ कृत्वा नानानं तं हरामि शिवापुरम् २२५६

अन्तर्धिर्देवानां परिधिर्मनुष्याणाम् । अग्निर्गार्हपत्य उभयानन्तरा श्रितः २२५७

जीरानामायुः प्र तिर त्वमग्ने पितृणां लोकमपि गच्छतु ये मृताः ।

सुगार्हपत्यो रितपन्नरातिम् उपांशुषां श्रेयसां धेह्यस्मै २२५८

सर्वानग्ने सहमानः सपत्नानैषामूर्जं रयिमस्मासु धेहि २२५९

इममिन्द्रं यद्विं पत्रिमन्वारमघ्नं स वो निर्वैक्षद् दुरितादवद्यात् ।

तेनापि हतं शरुमापतन्तं तेन रुद्रस्य परिं पातास्ताम् २२६०

अनुद्वाहं प्लवमन्वारमघ्नं स वो निर्वैक्षद् दुरितादवद्यात् ।

आ रोहव सतिर्नुर्वमेतां पृद्भिर्गोभिरमति तरेम २२६१

अरोराये अन्वेषि विश्रित् क्षेम्यस्तिष्ठन् प्रतरणः सुवीरः ।

अनांतरान् न्युमनमस्तत्पु बिभ्रज् ज्योगेव नः पुरुषगान्धिरेधि २२६२

ते देवेभ्य आ वृधन्ते पापं जीरन्ति मर्तुदा । क्रव्याद्यानग्निरन्तिकादश्वं ह्वानुवर्षते नृदम् २२६३

पृद्भिर्नृदा धनकाम्यान् क्रव्यादां ममासते । ते वा अन्येषां कुम्भीं पर्यादधति सर्वदा २२६४



१ पिपतिपति मनसा मुहुरा वर्तते पुनः । क्रव्यादान्प्रिरन्तिका दनुविद्वान्नितावति २२६५  
 अविः कुण्या भागधेयं पशूनां सीसं क्रव्यादपि चन्द्रं तं आहुः ।  
 मापाः पिष्टा भागधेयं ते दृव्यमरण्यान्या गह्वरं सचस्व २२६६  
 इषीकां जरतीमिष्टा तिलिपिञ्जं दण्डनं नडम् ।  
 तमिन्द्रं इध्मं कृत्वा यमस्याग्निं निरादधौ २२६७  
 प्रत्यञ्चमकं प्रत्यर्पयित्वा प्राविद्वान् पथां वि द्याविवेश ।  
 परामीषामध्वन्दिदेश द्विधेणायुषा समिमान् त्वृजामि २२६८

अथर्व १९ । ५५ । १-६ ॥ त्रिष्टुप्: २२७० आस्तरपांतिः २२७३ अथवसाना पंचपदा पुरस्ताज्ज्योतिष्मती॥)

रात्रिरात्रिमप्रयातुं भरन्तो ऽश्वयिव तिष्ठते घ्रासमस्मै ।  
 रायस्पोषेण समिषा मर्दन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम २२६९  
 या ते वसोर्वातु इषुः सा ते एषा तया नो मृढ ।  
 रायस्पोषेण समिषा मर्दन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम २२७०  
 सायंसायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातः प्रातः सौमनसस्य द्वाता ।  
 वसोर्वसोर्वसुदान एधि वयं त्वेन्धानास्तन्व्यं पुषेम २२७१  
 प्रातःप्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः सायंसायं सौमनसस्य द्वाता ।  
 वसोर्वसोर्वसुदान एधीन्धानास्त्वा श्रतंहिमा ऋधेम २२७२  
 अपश्वा दुग्धाश्वस्य भूयासम् । अन्नादायान्नपतये रुद्राय नमो अग्र्ये ।  
 सुभ्यः समां मे पाहि ये च सुभ्याः सभासदः २२७३  
 त्वमिन्द्रा पुरुहूत विश्वमायुर्च्यश्रवत् ।  
 अहरहर्वलिमिन् ते हरन्तो ऽश्वयिव तिष्ठते घ्रासमग्ने २२७४

( अथर्व १९ कां० १, सू० २५, मं० १-४ । भृग्वहिराः । २२७१ त्रिष्टुप् २२७६-७७ विराहर्मा, २२७८ पुरोऽनुष्टुप् । )

यदभिरापो अर्दहत् प्रविश्य यथाकृण्वन् धर्मधृतो नमोसि ।  
 तत्र त आहुः परमं जनित्रं स नः संविद्वान् परिं शृङ्गिघ तक्मन् २२७५  
 यद्यर्चिर्पदि वासि शोचिः शंसत्येपि यदि वा ते जनित्रम् ।  
 हृदुर्नोमासि हरितस्य देव स नः संविद्वान् परिं शृङ्गिघ तक्मन् २२७६

यदि शोको यदि वाभिश्शोको यदि वा राजो वरुणस्यासि पुत्रः ।  
 हृद्भुनामांसि हरितस्य देव स नः संविद्वान् परि वृद्धिंघ त्वमन्  
 नमः शीतार्य त्वमने नमो रूराय शोचिषे कृणोमि ।  
 यो अन्येद्युरुभयद्युरभ्येति तृतीयकाय नमो अस्तु त्वमने

२२७७

२२७८

( अथर्व० २ । ३५ । १ ॥ अङ्गिराः । शिष्टुप् । )

ये भक्षयन्तो न वसून्यानुधु—र्यानुग्रयो अन्वर्तप्यन्त धिष्ण्याः ।  
 या तेषामवया दुरिष्टिः सिष्टिं नृस्तां कृणवद् विश्वकर्मा

२२७९

( अथर्व० ४ । ३९ । १, २, ९, १० ॥ अङ्गिराः । २०८० शिष्टुप् महायहती, २२८१ संस्तारपक्षिकम् ।  
 २२८०-८२ शिष्टुप् । )

पृथिव्यामग्नये समनमन्त्स आभोत् ।

यथा पृथिव्यामग्नये समनम—न्नेवा मर्षं संनमः सं नमन्तु

२२८०

पृथिवी धेनुस्तस्या अभिर्वत्सः । सा मेऽग्निना वृत्सेनेपमूर्जे कामं दुहाम् ।  
 आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा

२२८१

अग्नावग्निश्चरति प्रविष्ट ऋषीणां पुत्रो अभिशस्तिषा उ ।

नमस्कारेण नमसा ते जुहोमि मा देवानां मिथुया कर्म भागम्

२२८२

हृदा पूतं मनसा जातवेदो विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।

सप्तास्यानि तव जातवेदस्तेभ्यो जुहोमि स जुपस्व हव्यम्

२२८३

( अथर्व० १ । ७ । १-७ ॥ चातनः । अनुष्टुप्, २२८८ शिष्टुप् । )

स्तुवानमग्ने आ वह यातुधानं किमीदिनम् । त्वं हि देव वन्दितो हुन्ता दस्योर्वभूविथ २२८४  
 आज्यस्य परमेष्ठिन् जातवेदस्तनुरग्निन् । अग्ने तौलस्य प्राज्ञान यातुधानान् वि लपय २२८५  
 वि लपन्तु यातुधानां अस्त्रिणो ये किमीदिनः । अथेदमग्ने नो हवि—रिन्द्रश्च अति हर्यतम् २२८६  
 अग्निः पूरु आ रमतां अग्नेन्द्रो नुदत वाहुमान् । ब्रवीतु सर्वो यातुमान् अयमसीत्येत २२८७

पश्याम ते धीर्यं जातवेदः प्र णो ब्रूहि यातुधानान्चक्षः ।

त्वया सते परितप्ताः पूरस्तात् त आ यन्तु प्रबुवाणा उपेदम्

२२८८

आ रमस जातवेदो ऽस्माकार्थीय जनिषे । दूतो नो अग्ने भूत्वा यातुधानान् वि लपय २२८९  
 त्वमग्ने यातुधानान् उपवदो हहा वह । अथैषामिन्द्रो वज्रेण अयि शीर्षाणि पृथत २२९०

( अथर्व० १ । ८ । ३-४ ॥ २२९१ अनुष्टुप्, २२९२ बार्हतगर्मा त्रिष्टुप् ।

यातुधानस्य सोमप जहि प्रजां नयस्व च । नि स्तुवानस्य पातय परमक्षुतावरम् २२९१

यत्रैषामग्ने जनिमानि वेत्य गुहां सतामत्त्रिणां जातवेदः ।

तांस्त्वं ब्रह्मणा वावृधानो जह्येपां शततर्हमग्ने

२२९२

( अथर्व० १ । ८ । १-२ । अनुष्टुप् । )

उप प्रागाद् देवो अग्नी रक्षोहामीवचातनः । दहन्प द्रयाविनो यातुधानान् किमीदिनः २२९३

प्रति दह यातुधानान् प्रति देव किमीदिनः । प्रतीचीः कृष्णवर्तने सं दह यातुधान्यः २२९४

( अथर्व० ४ । ३६ । १-१० ॥ अनुष्टुप्, २३०३ मुरिक् । )

वान् त्सत्यौजाः प्र दह त्वमिर्वैश्वानरो वृषां । यो नो दुरस्यादिप्ता चाथो यो नो अरातिपात् २२९५

यो नो दिप्सददिप्सतो दिप्सतो यश्च दिप्सति । वैश्वानरस्य दंष्ट्रयो रथेरपि दधामि तम् २२९६

य आगरे मृगयन्ते प्रतिक्रोशेऽमावास्ये । कृष्यादौ अन्यान् दिप्सतः सर्वास्तान् त्सहसा महे २२९७

सह पिशाचान् त्सह मैषां द्रविणं ददे । सर्वांन् दुरस्यतो हन्मि सं म आकृतिर्ऋष्यताम् २२९८

ये देवास्तेन हासन्ते सूर्येण भिमते जवम् । नदीषु पर्वतेषु ये सं तैः पशुभिर्विदे २२९९

तर्पनो अस्मि पिशाचानां व्याघ्रो गोमतामिव ।

श्वानः सिंहमिव दृष्ट्वा ते न विन्दन्ते न्यश्चनम्

२३००

न पिशाचैः सं शक्नोमि न स्तेनैर्न वनर्गुभिः । पिशाचास्तस्मान्नश्यन्ति यमहं ग्राममाविशे २३०१

यं ग्राममाविशत इदमुग्रं महो मम । पिशाचास्तस्मान्नश्यन्ति न पापमुप जानते २३०२

ये मा क्रोधयन्ति लपिता हस्तिन मशका इव । तानहं मन्ये दुहितान् जने अल्पशयूनिव २३०३

अभितं निर्ऋतिर्घत्ताम् अश्वमिवाश्वभिधान्यां । भ्रूवो यो महं कुर्ष्यति स उ पाशान् मृग्यते २३०४

( अथर्व० ५ । २९ । १-१५ । त्रिष्टुप्, २३०७ त्रिपदा विराणनाम गायत्री, २३०९ पुरोऽतिजगता विराजजगती २३१५-१८ अनुष्टुप् ( २३१५ मुरिक्, २३१७ चतुष्पदा परापृहती ककुम्भती । )

पूरस्ताद् युक्तो बह जातवेदो ऽग्ने विद्धि क्रियमाणं यथेदम् ।

त्वं भिपग् भैषजस्यासि कर्ता त्वया गामश्च पुरुषं सनेम

२३०५

तथा तदग्ने कृणु जातवेदो विध्वेभिर्देवैः सह संविद्वानः ।

यो नो दिदेव यतमो जघास यथा सो अस्य परिधिष्पताति

२३०६

यथा सो अस्य परिधिष्पताति तथा तदग्ने कृणु जातवेदः ।

विध्वेभिर्देवैः सह संविद्वानः

२३०७

अक्षयौ३ नि विध्य हृदयं नि विध्य जिह्वां नि तृन्दि प्र द्रुतो मृणीहि ।

पिशाचो अस्य यंतमो जघास अग्ने यविष्ठ प्रति तं दृणीहि २३०८

यदस्य द्रुतं विहृतं यत् पराभृतम् आत्मनो जग्धं यंतुमत् पिशाचैः ।

तदग्ने विद्वान् पुनरा भेर त्वं शरीरे मांसमसुमेरयामः २३०९

आमे सुपंके शयले विपंके यो मां पिशाचो अर्शने द्रुदम्भ ।

तद्वात्मनो प्रजयां पिशाचा वि यांतयन्तामगदो३यमस्तु २३१०

क्षीरे मां मुन्थे यंतमो द्रुदम्भा कृष्टपच्ये अर्शने धान्ये३ यः ।

तद्वात्मनो प्रजयां पिशाचा वि यांतयन्तामगदो३यमस्तु २३११

अपां मा पाने यंतमो द्रुदम्भं कृष्याद् यातूनां शयने शयानम् ।

तद्वात्मनो प्रजयां पिशाचा वि यांतयन्तामगदो३यमस्तु २३१२

दिवा मा नक्तं यंतमो द्रुदम्भं कृष्याद् यातूनां शयने शयानम् ।

तद्वात्मनो प्रजयां पिशाचा वि यांतयन्तामगदो३यमस्तु २३१३

कृष्यादमग्ने रुधिरं पिशाचं मनोहनं जहि जातवेदः ।

तमिन्द्रो वाजी वज्रेण हन्तु छिनत्तु सोमः शिरो अस्य धृष्णुः २३१४

सनादग्ने मृणसि यातुधानान्० ( ऋ० १० । ८७ । १९ ) ( १८४६ )

मृमाहर् जातवेदो यद्रुतं यत् पराभृतम् । गात्राण्यस्य वर्षन्ताम् अंशुरिवा प्यायतामयम् २३१५

सोमस्येव जातवेदो अंशुरा प्यायतामयम् । अग्ने विरप्श्चिन् मेघ्यम् अयक्ष्मं कृणु जीवतु २३१६

एतास्ते अग्ने ममिधः पिशाचजम्भेनीः । तास्त्वं जुषस्व प्रति चैना गृहाण जातवेदः २३१७

ताष्टाघीरग्ने समिधुः प्रति गृहाह्यचिपा । जहातु कृष्याद् रूपं यो अस्य मांसं जिह्विषति २३१८

( अथर्व० १० । ६ । १-५ ॥ शौनकः । त्रिष्टुप् २३०० चतुष्पदायी पङ्क्तिः, २३०३ विराट् प्रस्तारपङ्क्तिः )

समांस्त्वाग्ने ऋतवो वर्षयन्तु मंवत्सरा ऋषयो यानि सत्या ।

मं दिव्येन दीदिहि रोचनेन विद्या आ माहि प्रदिशश्चतस्रः २३१९

मं चेध्यस्वाग्ने प्र च वर्षयेमम् उचं तिष्ठ महते सौमगाय ।

मा ते रिपनुपसत्तारो अग्ने ब्रह्माणस्ते यज्ञसः सन्तु मान्ये २३२०

त्वामग्ने वृणते ब्राह्मणा इमे शिवो अग्ने मंवरणे भवा नः ।

गुणद्वहोर् अमिमातिजिद् भव स्व गये जागृह्यप्रमुच्छन् २३२१

क्षत्रेणाग्निं स्वेन सं रमस्व मित्रेणाग्निं मित्रधा यतस्व ।

सजातानां मध्यमेष्टा राजाग्ने अग्ने विहव्यो दीदिहीह

२३२२

अति निहो अति सिधो ऽत्यर्चितीरति द्विषः ।

विश्वा ह्यग्निं दुरिता तर त्वमथास्मभ्यं महवीरं रयिं दाः

२३२३

( अथर्व० ६ । १०८ । ४ । अनुष्टुप् । )

यामृषयो मृतकृतो मेघां मेघाविनो विदुः । तया मामद्य मेघया ऽग्ने मेघाविर्न कृणु २३२४

( अथर्व० ७ । ८७ ( ८७ ) । २-६ ॥ त्रिष्टुप्, २३२५ ककुम्भतो वृहती, २३२६ जगती । )

मय्यग्ने अग्निं गृह्णामि सह क्षत्रेण वर्चसा बलेन ।

मयि प्रजां मय्यार्युर्दधामि स्वाहा मय्यग्निम्

२३२५

इहैवाग्ने अग्निं धारया रयिं मा त्वा नि क्रुन् पूर्वचित्ता निकारिणः ।

क्षत्रेणाग्निं सुयममस्तु तुभ्यम् उपसत्ता वर्धतां ते अनिष्टृतः

२३२६

अन्वगिरुपसामग्रमल्पदन् वहानि प्रथमो जातवेदाः ।

अनु सूर्यं उपमो अनु रुमीन् अनु द्यावापृथिवी आ विवेश

२३२७

प्रत्यगिरुपसामग्रमल्पत् प्रत्यहानि प्रथमो जातवेदाः ।

प्रति सूर्यस्य पुरुधा च रुमीन् प्रति द्यावापृथिवी आ ततान

२३२८

घृतं ते अग्ने दिव्ये सुधस्ये घृतेन त्वां मनुर्द्या समिन्धे ।

घृतं ते देवीर्निष्टृत्य आ वहन्तु घृतं तुभ्यं दुःस्तां गावो अग्ने

२३२९

( अथर्व० ४ । २३ । १-७ । मृगारः । त्रिष्टुप्, २३३० पुरस्ताज्ज्योतिष्मती, २३३१ अनुष्टुप्, २३३५ प्रस्तारपङ्क्तिः । )

अग्नेर्मन्त्रे प्रथमस्य प्रचेतसः पार्श्वजन्यस्य बहुधा यमिन्धते ।

विशोविद्यः प्रविशिवांसमीमहे स नो मृञ्जत्वंहसः

२३३०

यथा हव्यं वहसि जातवेदो यथा यज्ञं कल्पयामि प्रजानन् ।

एषा देवेभ्यः सुमतिं न आ वहत स नो मृञ्जत्वंहसः

२३३१

यामेन् यामनुष्युक्तं वहिष्ठं कर्मेन् कर्मभारमगम् ।

अग्निमीमहे रसोहर्णं यज्ञवृषं यृताहुतं स नो मृञ्जत्वंहसः

२३३२

सजातं जातवेदमग्ने अग्निं वैश्वानरं विश्वम् ।

हव्यवाहं हवामहे स नो मृञ्जत्वंहसः

२३३३

येन कर्पयो बलमद्योतयन् युजा येनासुराणामयुवन्त मायाः ।	
येनाग्निना पृणीनिन्द्रो जिगाय स नो मुञ्चत्वंहसः	२३३४
येन देवा अमृतमन्वर्विन्दन् येनौषधीर्मधुमतीरकृण्वन् ।	
येन देवाः स्वपूराभरन् त्स नो मुञ्चत्वंहसः	२३३५
यस्येदं प्रदिशि यद् विरोचते यज्जातं जनितुर्न्युं च केवलम् ।	
स्तौम्यमि नाशितो जोहवीमि स नो मुञ्चत्वंहसः	२३३६

( अथर्व० ६।४९ १-२ ॥ गार्ग्यः । २३३७ अनुष्टुप्, २३३८ जगती । )

नहि ते अग्रे तुन्युः क्रूरमानंश्च मर्त्यः ।	
कृपिर्धमस्ति तेजनं स्व जरायु गौरिव	२३३७
मेघ इव वै सं च वि चोर्वच्यसे यदुत्तरद्रावुपरश्च रादतः ।	
शीर्ष्णा शिरोऽप्ससाप्सो अर्दयन् अंशन् बभस्ति हस्तिभिरासभिः	२३३८

( अथर्व० २।३६।१, २ । पतिवेदनः । २३३९ त्रिष्टुप्, २३४० भुक्ति । )

आ नो अग्रे सुमतिं सभूलो गमे—दिमां कुमारीं सह नो भगेन ।	
जुष्टा वरेषु समनेषु वल्गुरोषे पत्या सौभगमस्त्वस्यै	२३३९
इयमग्रे नारी पतिं विदेष्ट सोमो हि राजा सुभगां कृणोति ।	
सुवाना पुत्रान् महिषी भवाति गत्वा पतिं सुभगा वि राजतु	२३४०

( अथर्व० २०।२।२ । गृत्समदो मेघातिथिर्वा । विराट् गायत्री । )

अमिराग्नीध्रात् सुष्टुभः स्वर्कादृतना सोमं पिबतु	२३४१
--	------

( अथर्व० ४।४०।१ । शुक्रः । त्रिष्टुप् । )

ये पुरस्ताज्जुह्वति जातवेदः प्राच्या दिशोमिदासन्त्यस्मान् ।	
अग्निमृत्वा ते पराश्वो व्यथन्तां प्रत्यर्गेनान् प्रतिसरेण हन्मि	२३४२

( अथर्व० ३।३१।१, ६ । ग्रहा । अनुष्टुप् । )

वि देवा जुरसावृतन् वि स्वमग्रे अरात्या । व्यपूहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समार्युषा	२३४३
अग्निः प्राणान् त्सं दधाति चन्द्रः प्राणेन संहितः ।	
व्यपूहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समार्युषा	२३४४

( अथर्व० ५ । २६ । १ । द्विपदार्थो लण्णिक । )

यज्जैपि यज्ञे समिधः स्वाहा ऽग्निः प्रविद्वानिह वो युनक्तु २३४५

( अथर्व० ६ । ७१ । १-३ । जगती, २३४८ त्रिष्टुप् ।

यदन्नमग्निं बहुधा विरूपं हिरण्यमथमुत गामजामावेभम् ।  
यदेव किं च प्रतिजग्रद्वाहम् अग्निष्टद्वोता सुहुतं कृणोतु २३४६यन्मा हुतमहुतमाजगाम दुत्तं पितृभिरनुमतं मनुष्यैः ।  
यस्मान्मे मनु उदिषु रारजीत्यग्निष्टद्वोता सुहुतं कृणोतु २३४७यदन्नमभ्यनृतेन देवा द्रास्यन्नदास्यन्नत संगुणार्तिम् ।  
वैश्वानरस्य महतो महिम्ना शिवं मह्यं मधुमदुस्त्वनम् २३४८

( अथर्व० १९ । ६५ । १ । जगती । )

हरिः सुपर्णो दिवमारुहोऽर्चिषा ये त्वा दिप्सन्ति दिवमुत्पतन्तम् ।  
अव तां जहि हरसा जातवेदो ऽग्निभ्यदुग्रोऽर्चिषा दिवमा रोह ह्य २३४९

( अथर्व० १९ । ६६ । १ । अति जगती । )

अयोजाला असुरा मायिनो ऽयस्मर्यैः पार्श्वरुद्धिनो ये चरन्ति ।  
तांस्तै रन्धयामि हरसा जातवेदः सहस्रक्रष्टिः सपत्नान् प्रमृणन् पाहि वज्रः २३५०

( अथर्व० १९ । ६४ । १-४ ॥ अनुष्टुप् । )

अग्ने समिधमाहापं बृहते जातवेदसे । स मे अद्वां च मेघां च जातवेदाः प्र यच्छतु २३५१  
इध्मेन त्वा जातवेदः समिधा वर्षयामसि । तथा त्वमस्मान् वर्षय प्रजया च घर्णेन च २३५२  
यदग्ने यानि कानि चिदा ते दारुणि दुष्मसि । सर्व्वे वदस्तु मे शिवं तज्जुषस्य यविष्य २३५३  
एतास्तै अग्ने समिधस्त्वमिदः समिद्धव । आर्युरस्मासु धेह्यमृतत्वमाचार्यायि २३५४

( अथर्व० ३ । २१ । १-१० । षतिष्टुः । त्रिष्टुप्, २३५५ पङ्केनष्टुप्, २३५६-५७, २३६० मुरिक, २३५९ जगती, २३६० उपरिष्टाद्विराद्बृहती, २३६१ विषाद्वर्गा, २३६३ निचृदनुष्टुप्, २३६४ अनुष्टुप् । )

ये अग्रयो अप्सर्व्वन्तर्ये वृत्रे ये पुरुषे ये अश्मसु ।  
य आविवेशोपघर्षिणो वनस्पतीं स्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् २३५५यः सोमं अन्तर्पो गोप्सन्तर्य आविष्टो वर्यःसु यो मृगेषु ।  
य आविवेश द्विपदो यश्चतुष्पदस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् २३५६

य इन्द्रेण सरथं याति देवो वैश्वानर उत विश्वदाव्युः ।	
यं जोहवीमि पृतनासु सासहि तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत्	२३५७
यो देवो विश्वाद्यमु काममाहु—यं दातारं प्रतिगृह्णन्तमाहुः ।	
यो धीरः शुक्रः परिभूरदाभ्यस् तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत्	२३५८
यं द्वा होतारं मनसाभि सविदुस् त्रयोदश मौवुनाः पञ्च मानवाः ।	
वृचो धसें यशसें सुनृतांते तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत्	२३५९
उक्षात्राय वृशात्राय सोमपृष्ठा य वेषसे ।	
वैश्वानरज्यैष्ठेभ्यस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत्	२३६०
दिवं पृथिवीमन्वन्तरिक्षं ये विद्युतमनुमंचरन्ति ।	
ये दिक्ष्वन्तये वाते अन्तस् तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत्	२३६१
हिरण्यपाणिं सवितारमिन्द्रं बृहस्पतिं वरुणं मित्रमग्निम् ।	
विश्वान् देवानङ्गिरसो हवामह इमं क्रव्यादं शमयन्त्वग्निम्	२३६२
शान्तो अग्निः क्रव्याच् छान्तः पुरुषरेपणः ।	
अथो यो विश्वदाव्युः तं क्रव्यादमशीशमम्	२३६३
ये पर्वताः सोमपृष्ठा आप उक्तानशीशरीः ।	
वार्तः पर्जन्य आदग्निस् ते क्रव्यादमशीशमन्	२३६४
( अथर्व० ७ । १०९ (११४) । १-७ । यादरायणिः । अनुष्टुप् २३६५ चिराद् पुरस्ताद्बृहती, २३६६-६७, २३६९-७० विष्टुप् )	
इदमुग्राय घृत्रे नमो यो अक्षेपु तन्वशी ।	
पृतेन कलिं शिक्षामि स नो मृडातीदृशे	२३६५
पृतमप्तराभ्यो वह त्वमग्ने पांसुक्षेभ्यः सिकता अपथं ।	
यथामागं दृष्यतांति जुषाणा मदन्ति देवा उभयांनि हव्या	२३६६
अप्सरसः सघमादं मदन्ति हविर्धानमन्तरा सूर्यं च ।	
ता गे हस्ती सं सृजन्तु पृतेन सपत्नं मे कितवं रन्धयन्तु	२३६७
आदिनुवं प्रतिदीप्तं पृतनास्यो अग्नि धर ।	
पृथमिशाग्रन्या जटि यो अस्मान् प्रतिदीव्यति	२३६८



यो नो ध्रुवे धनमिदं चुकार यो अक्षाणां ग्लहनं शेषणं च ।

स नो देवो हविरिदं जुषाणो गन्धर्वोभिः सधुमादं मदेम २३६९

सर्वसत्र इति यो नामधेयम् उग्रपश्या रोष्टृमृतो हाधाः ।

तेभ्यो व इन्दवो हविषा विधेम वयं स्याम परयो रयीणाम् २३७०

देवान् यन्नाथितो हुवे ब्रह्मचर्यं यदपिम । अक्षान् यद् वृक्षनालमे ते नो मृडन्तीदृशे २३७१

( अथर्व० ६ । ४७ । १ । अक्षिराः प्रचेताः । निष्टुप् । )

अग्निः प्रातःसधने पात्वस्मान् वैश्वानरो विश्वरुद् विश्वशंभुः ।

स नः पावको द्रविणे दधातु आर्युष्मन्तः सहर्मक्षाः स्याम २३७२

( अथर्व० ७ । ६२ ( ६४ ) । १ । मरोचिः काश्यपः । जगती । )

अयमग्निः सत्पतिर्वृद्धवृष्णो रथीर्व पत्नीनंजयत् पुरोहितः ।

नामा पृथिव्यां निहितो दधिद्युतद् अधस्पदं कृणुतां ये पृतन्यवः २३७३

( अथर्व० ७ । ६३ ( ६५ ) । १ । जातवेदाः । जगती । )

पृतनाजितं सहमानमग्निमुक्थैर् हवामहे परमात् सधस्थात् ।

स नः पर्यदति दुर्गाणि विश्वा धार्मद् देवोऽति दुरितान्यग्निः । २३७४

( अथर्व० ६ । ३५ । १-३ । कौशिकः । गायत्री । )

वैश्वानरो न ऊतय आ प्र यातु परावतः । अग्निर्नः सुष्टुतीरुप २३७५

वैश्वानरो न आगमद् इमं यज्ञं सज्जरुप । अग्निरुक्थेय्वंहसु २३७६

वैश्वानरोऽक्षिरसां स्तोममुक्थं च चाकलपत् । ऐरुं धुमं स्वर्गिमत् २३७७

( अथर्व० ६ । ११७ । १-३ । निष्टुप् । )

अपमित्यमप्रतीक्षं यदास्मि यमस्य येनं गलिना चरामि ।

इदं तदग्रे अनृणो भवामि त्वं पात्रान् विचूर्तं वेत्थ सर्वान् २३७८

इहैव सन्तः प्रति दध एनज् जीवा जीवेभ्यो नि हराम एनत् ।

अपमित्यं धान्यं यज्ञघसाहम् इदं तदग्रे अनृणो भवामि २३७९

अनृणा अस्मिन्ननृणाः परस्मिन् तृतीयं लोके अनृणाः स्याम ।

ये देवयानाः पितृपाणाश्च लोकाः सर्वान् पयो अनृणा आ क्षियेम २३८०

( अथर्व० ६ । ११८ । १-३ । त्रिष्टुप् )

यद्वस्ताभ्यां चक्षुः किल्बिषाणि अक्षाणां गन्तुमुपलिप्समानाः ।  
 उग्रपश्ये उग्रजितौ तदद्य अप्सरसावनुं दत्तामुणं नः २३८१  
 उग्रपश्ये राष्ट्रभृत् किल्बिषाणि यदक्षवृत्तमनुं दत्तं न एतत् ।  
 ऋणाक्षो नर्णमर्त्समानो यमस्य लोके अधिरञ्जुरारयत् । २३८२  
 यस्मां ऋणं यस्य जायामुपमि यं यार्चमानो अम्यैमि देवाः ।  
 ते वाचं वादिषुमोत्तरां मदेवपत्नी अप्सरसावधीतम् २३८३  
 ( अथर्व० ६ । ११९ । १-३ । त्रिष्टुप् । )

यददीव्यन्नृणमुहं कृणोमि अदांस्यन्नग उत संगुणामि ।  
 वैश्वानरो नो अधिपा वसिष्ठ उदिन्नयाति सुकृतस्य लोकम् २३८४  
 वैश्वानराय प्रति वेदयामि यद्युणं संगरो देवतासु ।  
 स एतान् पाशान् विचर्त्त वेद सर्वांन् अर्थं पुकेन सह सं भवेम २३८५  
 वैश्वानरः पविता मां पुनातु यत् संगरमभिधावाभ्याशाम् ।  
 अनाजानन् मनसा यार्चमानो यत् तत्रैनो अप तत् सुवामि २३८६  
 ( अथर्व० ६ । १२१ । १, २, ४ । २३८७, २३८८, त्रिष्टुप्, २३८९, २३९० अनुष्टुप् । )

विषाणा पाशान् वि प्याध्यस्मद् य उक्तमा अघमा वारुणा ये ।  
 दुष्यस्य दुरितं नि प्वास्मद् अर्थं गच्छेम सुकृतस्य लोकम् २३८७  
 यद् दारुणि वृध्यसे यच्च रज्ज्वां यद् भूम्यां वृध्यसे यच्च वाचा ।  
 अपं तस्माद् गार्हपत्यो नो अग्रिर् उदिन्नयाति सुकृतस्य लोकम् २३८८  
 वि जिहीष्व लोकं कृणु मुन्धान्युञ्जासि वट्टकम् ।  
 योन्या इव प्रच्युतो गर्भः पृथः सर्वा अनु क्षिय २३८९

( अथर्व० ६ । ७३ । १-४ कव्यन्धः । अनुष्टुप्, २३९२ ककुम्भती । )

य एनं परिपीदन्ति ममादधन्ति चक्षसे । मन्त्रेदो अग्निर्जिह्वाभिर उदेत्तु हृदयादधि २३९०  
 अग्नेः मातृपुनस्याहं आरुपे पुदमा रभे । अद्धानिर्यस्य पश्यति धूममुद्यन्तमास्पतः २३९१  
 यो अघ्य मुमिधं वेद ध्रुविर्येण समाहिताम् । नार्भिहारे पुदं नि दधाति रा मृत्यवे २३९२

नैनं मन्ति पर्यायिणो न सन्नां अवं गच्छति । अग्रेयः क्षत्रियो विद्वान् नाम गृह्णात्यायुषे २३९३

( अथर्व० ६ । ७७ । १-३ । अनुष्टुप् । )

अस्थाद् द्यौरस्थात् पृथिवि अस्थाद् विश्वमिदं जगत् ।

आस्थाने पर्यता अस्थु स्थाभ्यश्चो अतिष्ठिपम् २३९४

य उदानम् पुरार्यणं य उदानन्प्यार्यनम् । आवर्तेन निर्वर्तेन यो गोपा अपि तं हवे २३९५

जातवेदो नि वर्तय धृतं ते सन्त्वाधृतः । महर्षे त उपावृतस् तारिर्नः पुनरा ऋधि २३९६

अग्निसहचारी देवगणः

## १२ वैश्वानरोऽग्निः सूर्यश्च ।

( ऋ० १० । ८८ । १-१९ ) मूर्धन्यानाद्दिरमो, वामदेव्यो वा । सौर्य-  
वैश्वानरोऽग्निः । त्रिष्टुप् । )

हविष्पान्तमजरं स्वर्दिदि दिविस्पृश्याहुतं जुष्टमग्नौ ।

तस्य भर्मेणे भुवनाय देवा धर्मेणे कं स्वधया पप्रथन्त २३९७

गीणं भुवनं तमसापगूळहम् आविः स्वरभवज्जाते अग्नौ ।

तस्य देवाः पृथिवी द्यौरुतापो ऽरण्यन्नोपधीः सख्ये अस्य २३९८

देवेभिन्धिपितो यज्ञियेभिर अग्निं स्तोपाण्यजरं ब्रूहन्तम् ।

यो भानुना पृथिवीं द्यामुतेमाम् आतुतान् रोदमी अन्तरिक्षम् २३९९

यो होतासीत् प्रथमो देवर्जुष्टो यं समाज्जन्नाज्येना वृणानाः ।

स पतन्नीत्वरं स्था जग्द् यत् श्वात्रमग्निरंक्रुणोजातवेदाः २४००

यज्ञातवेदो भुवनस्य मूर्धन् अतिष्ठो अग्रे सह रोचनेन ।

तं त्वाहेम मतिभिर्गीभिर्बुधैः स यज्ञियो अभवो रोदसिप्राः २४०१

मूर्धा भुवो भवति नक्तमग्निस् ततः सूर्यो जायते प्रातरुद्यन् ।

मायामू तु यज्ञियानामेताम् अपो यत् तूर्णिश्चरति प्रजानन् २४०२

दृष्टेन्यो यो महिना समिद्धो ऽरोचत दिवियोनिर्विमावा ।

तस्मिन्नग्नौ मूकतवाकेन देवा हविर्विश्च आजुहवृस्तनूपाः २४०३

- सूक्तवाकं प्रथममादिदग्निम् आदिद्विविरजनयन्त देवाः ।  
म एषां यज्ञो अभवत् तनूपास् तं द्यौर्वेदं तं पृथिवी तमापः २४०४
- यं देवासोऽर्जनयन्ताग्निं यस्मिन्नालुहवुर्ध्वनानि विश्वा ।  
सो अर्चिषा पृथिवीं घामुतेमाम् ऋजुयमानो अतपन्महित्वा २४०५
- स्तोमेन हि दिवि देवासो अग्निम् अर्जीजनञ्छर्वितभी रोदसिप्राम् ।  
तम् अकृण्वन् त्रेधा भुवे कं स ओषधीः पचति विश्वरूपाः २४०६
- यदेदेनमर्दघुर्यजियासो दिवि देवाः ध्र्यमादितेयम् ।  
यदा चरिष्णू मिथुनावभूताम् आदित् प्रापश्यन् भुर्वनानि विश्वा २४०७
- विश्वस्मा अग्निं भुर्वनाम् देवा वैश्वानरं केतुमहामकृण्वन् ।  
आ यस्ततानोपसो विभ्रातीर् अपो ऊर्णोति तमो अर्चिषा यन् २४०८
- वैश्वानरं कवयो यजियासो ऽग्निं देवा अर्जनयन्नजुर्म्यम् ।  
नक्षत्रं प्रबमर्भिनच्चरिष्णु यक्षस्याध्यक्षं तत्पिपं बृहन्तम् २४०९
- वैश्वानरं विश्वहो दीदुिवांसं मन्त्रैरग्निं कविमच्छा वदामः ।  
यो महिम्ना परिवभूवोर्वी उतावस्तादृत देवः परस्तात् २४१०
- द्वे स्रुती अग्रृणयं पितृणाम् अहं देवानामुत मर्त्यानाम् ।  
ताभ्यामिदं विश्वमेजत् समेति यदन्तरा पितरं मातरं च २४११
- द्वे समीची विभृतश्चरन्तं शर्पितो जातं मनसा निमृष्टम् ।  
म प्रत्यङ् विश्वा भुर्वनानि तस्थौ अग्रयुच्छन् तुरणिर्भार्जमानः २४१२
- यत्रा वेदेते अररः परंश्च यज्ञन्वोः कतरो नां वि वेद ।  
आ शेयुरित् संधमादं मग्नोयो नक्षन्त यज्ञं क इदं वि वोचत् २४१३
- कत्यप्रयः कति ग्र्यासुः कत्युपासुः कत्यु स्विदापः ।  
नोपस्पिजं वः पितरो यदामि पृच्छामि वः कययो विघ्नने कम् २४१४
- यानन्मायमुपसो न प्रतीकं गुप्योऽं वसते मातरिभ्यः ।  
तारं दृ दधात्पुर्षं यज्ञमायन् ब्राह्मणो होतृवरं निपीदन् २४१५

## १३ रक्षोहाऽग्निः ।

( ऋ० १० । १६२ । १-६ । रक्षोहा = ( गर्भम्य दोषनिवारकः ) ( अत्रानुसंधेया मन्त्राः १८१३-१८६१ )  
रक्षोहा ब्राह्म. । अनुष्टुप् । )

ब्रह्मणाग्निः संचिदानो रक्षोहा वाघतामिवः ।	
अमीवा यस्ते गर्भं दुर्णामा योनिमाशये	२४१६
यस्ते गर्भममीवा दुर्णामा योनिमाशये ।	
अग्निं ब्रह्मणा सह निष्कृव्यादमनीनशत्	२४१७
यस्ते हन्ति पतयन्तं निपत्स्तुं यः सरीसृपम् ।	
जातं यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि	२४१८
यस्त ऊरू विहरति अन्तरा दंपती शयं ।	
योनिं यो अन्तरारेळिह तमितो नाशयामसि	२४१९
यस्त्वा आता पतिर्भूत्वा जारो भूत्वा निपद्यते ।	
प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि	२४२०
यस्त्वा स्वमेन तमसा मोहयित्वा निपद्यते ।	
प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि	२४२१

## १४ अपां-न-पादग्निः ।

( ऋ० ० । ३५ । १-१५ । गृत्समदः शौनकाः । त्रिष्टुप् । )

उपैमसुक्षि वाजपुर्व्वस्यां चनो दधीत नाद्यो गिरो मे ।	
अपां नपादाशुहेमा कुवित् स सुपेशमस्करति जोषिपादि	२४२२
इमं स्वस्मै हृद आ सुतष्टं मन्त्रं वोचेम कुविदस्य वेदत् ।	
अपां नपादसुर्व्वस्य मद्वा विश्वान्ययो भुवना जजान	२४२३
समन्या यन्त्युपं यन्त्यन्याः समानमुर्व नद्यः पूषन्ति ।	
तमु शुचि शुचयो दीदिवार्सम् अपां नपातं परिं तस्थुरापः	२४२४
तमस्मेरा युवतयो युवानं मर्मज्यमानाः परिं यन्त्युपः ।	
स शुक्रेभिः शिकंभो रेवदुस्मे द्रीदायानिध्मो घृतनिर्णिगुप्सु	२४२५

अस्मै तिस्रो अङ्ग्यध्याय नारीर् देवार्य देवीर्दिधिपुन्त्यन्नम् ।	
कृता इवोप हि प्रसर्से अप्सु स पीयूषं धयति पूर्वस्रनाम्	२४२६
अश्वस्यात्र जनिमास्य च स्वरं द्रुहो रिपः संपृचः पाहि सूरिन् ।	
आमासु पुरु पुरो अग्रमृष्यं नारीतयो वि नशन्नानृतानि	२४२७
स्व आ दमे सुदुवा यस्य धेनुः स्वधां पीपाय सुम्वन्नमति ।	
सो अपां नपादूर्जयन्नप्स्वान्तरं वसुदेयाय विधृते वि भाति	२४२८
यो अप्स्या शुचिना दैव्येन क्रतावाजस्र उर्विया विभाति ।	
व्या इदन्या भुवनान्यस्य प्र जायन्ते वीरुधश्च प्रजाभिः	२४२९
अपां नपादा ह्यस्थादुपस्थं जिह्वानामूर्ध्वो विद्युतं वसानः ।	
तस्य ज्येष्ठं महिमानं वहन्तीर् हिरण्यवर्णाः परि यन्ति युद्धीः	२४३०
हिरण्यरूपः स हिरण्यसंदग्म अपां नपात्सेद् हिरण्यवर्णः ।	
हिरण्ययात् परि योनेर्निपथा हिरण्यदा दंदत्यन्नमस्मै	२४३१
तदस्यानीकमुत चारु नाम अपीच्यं वर्धते नष्टरुपाम् ।	
यमिन्धते युवतयः समित्था हिरण्यवर्णं धृतमन्नमस्य	२४३२
अस्मै वहूनामग्रमाय सर्ये यज्ञैर्विधेम नमसा इविभिः ।	
सं सानु भार्जिं दिधिषामि विलभैर् दधाम्यन्नैः परि वन्द क्रुग्मिः	२४३३
म इ वृषाजनयस् तासु गर्भं स इं शिशुर्धयति तं रिहन्ति ।	
सो अपां नपादनमिम्लातग्रणोऽन्यस्येवैह तन्वा विषेप	२४३४
अस्मिन् पदे परमे तस्थिवांसम् अक्षस्मभिर्विश्वहा दीदिवांसम् ।	
आपो नष्ट्रे धृतमन्नं वहन्तीः स्वयमत्कैः परि दीयन्ति युद्धीः	२४३५
अयाममग्रे सुक्षिति जनाय अयांससु मधवर्द्धयः सुवृक्तिम् ।	
रिभं तद् भद्रं यदवन्ति देवा वृहद् वदेम विदथे सुवीराः	२४३६

## १५ अग्नीन्द्रादयः ।

(मृ० ७।४१।१। यसिष्ठो मेत्रावरुणिः । अग्नीन्द्रमित्रावरुणाभ्यमगवृषग्रहणस्पतिसोमरुद्राः । जगती।)

प्रातरग्निं प्रातरिष्टं हवामहे प्रातर्गमित्रावरुणा प्रातरश्विना ।

प्रातर्भर्ता पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रं इवेम

२४३७

## १६ अग्निर्मरुतश्च ।

( ऋ० १ । १९ । १-९ । मेघातिथिः काण्वः । गायत्री । )

प्रति त्वं चारुमध्वरं	गोपीधाय प्र ह्यमे । मरुद्भिरग्न आ गहि	२४३८
नहि देवो न मर्त्यो	महस्तव कर्तुं परः । मरुद्भिरग्न आ गहि	२४३९
ये महो रजसो विदुर्	विश्वे देवामो अद्रुहः । मरुद्भिरग्न आ गहि	२४४०
ये उग्रा अर्कमानुचुर्	अनाष्टथाम ओजसा । मरुद्भिरग्न आ गहि	२४४१
ये शुभ्रा घोरवर्षसः	सुखघातो रियादसः । मरुद्भिरग्न आ गहि	२४४२
ये नाकस्यार्धे रोचने	दिवि देवास आसते । मरुद्भिरग्न आ गहि	२४४३
य ईद्वयन्ति पर्वतान्	तिरः समुद्रमण्वम् । मरुद्भिरग्न आ गहि	२४४४
आ ये तन्वन्ति रश्मिम्	तिरः समुद्रमोजसा । मरुद्भिरग्न आ गहि	२४४५
अभि त्वा पूर्वपीतये	मृजामि मोम्यं मधु । मरुद्भिरग्न आ गहि	२४४६

( ऋ० ८ । १०३ । १४ । सोमरिः काण्वः । अनुष्टुप् । )

आग्ने याहि मरुत्सरा रुद्रेभिः सोमपीतये ।

सोमया उप सुष्टुतिं मादयस्व स्वर्णरे २४४७

## १७ अग्निमित्रावरुणादयः ।

( ऋ० १ । ३५ । १ । हिरण्यस्त्व आङ्गिरसः । अग्निमित्रावरुणौ रात्रिः सविता च । जगती । )

हवाम्यग्निं प्रथमं स्वस्तये हवामि मित्रावरुणाविहावसे ।

हवामि रात्रीं जगतो निवेशनीं हवामि देवं सवितारमृतये २४४८

## १८ अग्निर्वरुणश्च ।

( ऋ० ४ । १ । १-५ । धामदेवो गोतमः । त्रिष्टुप्, २४४९ अग्नि जगती, २४५० धृतिः । )

स आतरं वरुणमग्ने आ ववृत्स्व देवाँ अच्छा मुमती यजर्वनसं ज्येष्ठं यजर्वनम् ।

ऋतावानमादित्यं चर्पणीधृतं राजानं चर्पणीधृतम् २४४९

सखे सखापमम्या ववृत्स्वाशुं न चक्रं रथ्येयं रथास्मम्यं दस्म रंता ।

आग्ने मृळीकं वरुणे सचा निदो मरुत्सु विश्वमानुषु ।

लोकार्यं तुजे शशुचान् शं कृष्यस्मम्यं दस्म शं कृषि २४५०

त्वं नो अग्रे वरुणस्य विद्वान्	देवस्य हेळोऽयं यामिसीष्ठाः ।	
यजिष्ठो वहितमः शोशुचानो	विश्वा द्वेपांसि प्र मुमुग्ध्युस्मत्	२४५१
स त्वं नो अग्रेऽवमो मवोती	नेदिष्ठो अस्या उपमो व्युष्टौ ।	
अयं यक्ष नो वरुणं रराणो	वीहि मृळीकं सुहवो न एधि	२४५२

### १९ अग्नाविष्णू ।

( अथर्व का० ७ । २९ ( ३० ) । १-२ । मेघातिथिः । त्रिष्टुप् । )

अग्राविष्णू महि तद्वा महित्वं	पाथो घृतस्य गुह्यस्य नाम ।	
दमेदमे सप्त रत्ना दधानौ	प्रति वां जिह्वा घृतमा चरण्यात्	२४५३
अग्राविष्णू महि धाम प्रियं वां	वीथो घृतस्य गुह्या जुपाणौ ।	
दमेदमे सुष्टुत्या वावृधानौ	प्रति वां जिह्वा घृतमुचरण्यात्	२४५४

### २० अग्निसूर्यौ ।

( ऋ० ८ । ५६ । ( ८ ) ५ । वात्यसित्यसूक्तम् । पृषधः काण्वः । पंक्तिः । )

अचैत्यमिधिक्रितुर्	हव्यवाद् स सुमद्रथः ।	
अग्निः शुक्रेण शोचिषां	बुहत्सुरो अरोचत दिवि सूर्यो अरोचत	२४५५

### २१ (केशिनः)-अग्निः सूर्यो वायुश्च ।

( ऋ० १ । १६४ । ४४ द्यौर्धतमा आचव्यः । त्रिष्टुप् । )

प्रयः क्षेतिर्न क्रतुथा नि चक्षते	संवत्सुरे वपत् एक एषाम् ।	
विश्वमेको आभि चष्टे शचीभिर्	धाजिरेकस्य ददृशे न रूपम्	२४५६

### २२ अग्निसूर्यानिलाः ।

( ऋ० ८ । १८ । १ शरिम्यटिः काण्वः । उष्णिक् । )

अग्निरग्निर्मिः पराच्	छं नस्तपत् सूर्यः । शं वार्तो वातु	अरपा अपु सिषेः २४५७
-----------------------	------------------------------------	---------------------



## अग्निःसूर्यवायवः ।

( ऋ० १० । १३६ । १-७ ॥ २४५८ जूतिः, २४५९ वातजूतिः २४६० विप्रजूतिः, २४६१ घृणाणकः, २४६२ करिकतः २४६३ पतशः, २४६४ ऋष्यशृङ्गः ( पते वातरशना मुनयः ) । ( कशिनः=)

अग्नि-सूर्य-वायवः । २४५८ । )

केश्यग्निं केशी विपं केशी विमर्ति रोदसी ।

केशी विश्वं स्वर्दशे केशीदं ज्योतिरुच्यते २४५८

मुनयो वातरशनाः पिशङ्गा वसते मला ।

वातुस्पानु धार्जि यन्ति यद् देवासो अविशत २४५९

उन्मदिता मौनैरेन वाता आ तस्थिमा वयम् ।

शरीरेदस्माकं यूयं मर्तासो अग्नि पश्यथ २४६०

अन्तरिक्षेण पतति विश्वा रूपावचाकशत् ।

मुनिर्दुवस्वदेवस्य सौकृत्याय सखा हितः २४६१

वातस्याश्चो वायोः सखा अथो देवेर्पितो मुनिः ।

उमौ समुद्रावा क्षेति यश्च पूर्वं उतापरः २४६२

अप्सरसां गन्धर्वाणां मुगाणां चरणे चरन् ।

केशी केतस्य विद्वान् त्सखा स्वादुर्मदिन्तमः २४६३

वायुरस्मा उपामन्यत् विनष्टि स्मा कुनन्नुमा ।

केशी विपस्य पात्रेण यद् रुद्रेणापिबत् सह २४६४

## अग्नीषोमो ।

( ऋ० १ । ९३ । १-१२ । गोतमो राहुगणः । २४६५-२४६७ अनुष्टुप् । २४६८-२४७१, २४७६ त्रिष्टुप् । २४७२ जगती त्रिष्टुप् । २४७३-२४७५ गायत्री ।

अग्नीषोमाग्निं सु मे शृणुतं वृषणा हवम् । प्रति सूक्तानि हर्यतं मवतं दाशुषे मयः २४६५

अग्नीषोमा यो अय वांम् इदं वचः सपर्यति । तस्मै घचं सुवीर्यं गवां पोषं स्वदन्वम् २४६६

अग्नीषोमा य आहुतिं यो वां दाशोद्विष्कृतिम् । स प्रजयां सुवीर्यं विश्रमायुष्यं भवत् २४६७

अग्नीषोमा चेति तद् वीर्यं वां यदमुष्णीतमवसं पणि गाः ।

अवातिरतं घृमयस्य शेपो ज्विन्दतं ज्योतिरेकं वृद्धम्यः २४६८

युवमेतानि द्विवि रौचनानि अग्निश्च सोम सकृत् अधत्तम् ।	
युवं सिन्धूरभिर्गस्तेरवद्याद् अग्नीपोमावमुञ्चतं गृभीतान्	२४६९
आन्यं द्विवो मातरिश्वा जभार अमध्नादन्यं परि श्येनो अद्रेः ।	
अग्नीपोमा ब्रह्मणा वावृधाना उरुं यज्ञाय चक्रयुरु लोकम्	२४७०
अग्नीपोमा हविषः प्रस्थितस्य वीतं हर्यंतं वृषणा जुषेधाम् ।	
सुशर्माणा स्ववसा हि भूतम् अथा घत्तं यजमानाय शं योः	२४७१
यो अग्नीपोमा हविषा सपर्याद् देवद्रीचा मनसा यो घृतेन ।	
तस्य व्रतं रक्षतं पातमहंसो विशे जनाय महि शर्म यच्छतम्	२४७२
अग्नीपोमा सवेदसा सहती वनतं गिरः । सं देवत्रा बभूवधुः	२४७३
अग्नीपोमावनेन वां यो वां घृतेन दाशति । तस्मै दीदयतं बृहत्	२४७४
अग्नीपोमाविमानि नो युवं हव्या जुजोपतम् । आ यातमुप नः सचा	२४७५
अग्नीपोमा पिपृतमर्धतो न आ प्यायन्तामुत्तिया हव्यसूदः ।	
असे बलानि मुषवत्सु घत्तं कृणुतं नो अश्वरं शुष्टिमन्तम्	२४७६

( अथर्व० ६ । ५४ । १-३ । ग्रह्या । अनुष्टुप् । )

इदं तद् युज उत्तरम् इन्द्रं शुभ्राम्यष्टये । अस्य क्षत्रं धियं महीं वृष्टिरिव वर्षया तृणम्	२४७७
अस्मै क्षत्रमग्नीपोमौ अस्मै धारयतं रयिम् । इमं राष्ट्रस्याभीवर्गे कृणुतं युज उत्तरम्	२४७८
सधेन्धुश्वासधेन्धुश्च यो अस्मां अभिदासति । सर्वं तं रन्धयासि मे यजमानाय सुन्वते	२४७९

( अथर्व० ६ । ५८ । ३ । अथर्वा ( यशस्कामः ) । अग्निः, इन्द्रः, सोमः । अनुष्टुप् । )

यशा इन्द्रो यशा अग्निर् यशाः सोमो अजायत ।	
यशा विश्वस्य भूतस्य अहमस्मि यशस्तमः	२४८०

( अथर्व० ६ । ९३ । ३ । शन्तातिः । अग्निपोमौ वरुणः मरुतः यातपर्जन्यौ । त्रिष्टुप् । )

प्रार्थघ्नं नो अघर्विषाम्यो वषाद् विश्वे देवा मरुतो विश्वेदसः ।	
अग्नीपोमा वरुणः पूतदक्षा वातापर्जन्ययोः सुमतौ स्याम	२४८१

( अथर्व० ७ । ११४ ( ११९ ) । १-२ ॥ मार्गवः । अग्नीपोमौ । अनुष्टुप् । )

आ ते ददे वृक्षणाम्य आ तेऽहं हृदयाद् ददे ।	
आ ते मुग्गेस्य संकाशात् सर्वं ते वर्च आ ददे	२४८२
प्रेतो यन्तु व्याप्यः प्राणध्याः प्रो अशस्तयः ।	
अग्नी रक्षस्त्रिर्निर्दन्तु सोमो हन्तु दुरस्यतीः	२४८३



सहायक उप-विद्यामन्त्री

## ब्रह्मणस्पतिः ।

॥ १ ॥ ( ऋ० १.१८.१-३ )

( १-३ ) मेधातिथिः काण्व । गायत्री ।

सोमानं स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते ।

कक्षीर्वन्तं य औशिजः

॥ १ ॥

यो रेवान् यो अमीन्हा वंसुवित् पुष्टिवर्धनः ।

स नः सिपक्त्तु यस्तुरः

॥ २ ॥

मा नः शंसो अररुपो घृतिः प्रणट् मर्त्यस्य ।

रक्षा णो ब्रह्मणस्पते

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥ ( ऋ० १.१८.१-८ )

( ४-११ ) वृषो वीर । प्रगाय =

[ विपदा बृहती-रामा घत बृहती । ]

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्रमेहे ।

उप प्र यन्तु मरुतः सुदानं

इन्द्रं प्राशूर्भवा सचा

॥ १ ॥

त्वामिद्धि सहसस्पुत्र मर्त्य उपव्रूते घने हिते ।

सुरीर्य मरुत आ स्वङ्ग्यं

दर्घीत यो व आचके

॥ २ ॥

प्रेतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्यैतु सूनृता ।

अच्छो वीरं नयं पदुक्तिराधम

देवा यधं नयन्तु नः

॥ ३ ॥

यो वाघते ददाति सूनरं वसु

स घत्ते अक्षिति श्रवः ।

तस्मा इळा सुवीरामा यजामहे

सुप्रवृत्तिमनेहसम्

॥ ४ ॥

प्र नूनं ब्रह्मणस्पति—मन्त्रं वदत्युष्यम् ।

यस्मिन्निद्रो वरुणो मिश्रो अर्यमा

देवा ओकांसि चक्रिरे

॥ ५ ॥

तमिद् वंचिमा विदधेपु शंभुं

मन्त्रं देवा अनेहसम् ।

इमां च वाचं प्रतिहर्यथा नरो

विशेद् वामा वो अश्रज्

॥ ६ ॥

को देवयन्तमश्रु—जतं को वृत्तार्द्धिपम् ।

प्रप्रं दुश्चान् पस्त्यामिरस्थित

अन्तर्वावत् क्षय दधे

॥ ७ ॥

उप सत्रं पृथीत हन्ति राजमिः

भये चित्र सुक्षिति दधे ।

नास्य वृत्ता न तंरुता महाघने

नाभे अस्ति वृत्तिर्गः

॥ ८ ॥

(११)

॥ ३ ॥ ( ऋ० १५३१२, ५, ९, ११, १७, १९ )

( १२-३८ ) गृह्यसूत्र ( भाष्यरसः श्रौतहोत्रः पथ्यात् )

भाग्य । जगती, १५, १९ त्रिष्टुप् ।

गुणानां त्वा गुणपतिं हवामहे  
 क्विं क्वीनामुपमश्रवस्तमम् ।  
 ज्येष्ठराजं ब्रह्मणा ब्रह्मणस्पत  
 आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम् ॥ १ ॥  
 न तमहो न दुरितं कुतश्चन  
 नारातयस्तितुर्न द्वयाविनः ।  
 विश्वा इदंस्माद् ध्वरसो वि चाधसे  
 यं सुगोपा रक्षसि ब्रह्मणस्पते ॥ ५ ॥  
 त्वया वयं सुवृधा ब्रह्मणस्पते  
 स्पर्धा वसुं मनुष्या दंदीमहि ।  
 या नो दूरे तल्लितो या अरातयः  
 अमि सन्ति जम्भया ता अनमसः ॥ ९ ॥  
 अनानुदो वृषभो जग्मिराहवं  
 निष्टम् शत्रुं पृथनासु सासहिः ।  
 असि सत्यं क्रणया ब्रह्मणस्पत  
 उग्रस्य चिद् दमिता वीळहर्षिणः ॥ ११ ॥  
 विश्वेभ्यो हि त्वा ध्रुवनेभ्यस्पति  
 त्वष्टाऽर्जनत् साम्नः साम्नः कृषिः ।  
 स क्रणचिद्वणया ब्रह्मणस्पतिः  
 द्रुहो हन्ता मह श्रुतस्य धर्तरी ॥ १७ ॥  
 ब्रह्मणस्पते त्वमस्य युन्ता  
 सूक्तस्य योधि तनयं च जिन्व ।  
 विश्वं तद् मुद्रं यदवन्ति देवा  
 पृहद् वंदेम विदये सुवीराः ॥ १९ ॥  
 ॥ ४ ॥ ( ऋ० १५४१-९, ११, १३-१५ ) जगती ।  
 यो नन्त्वान्यनमन्त्योऽजमोत  
 अर्ददमन्त्युना शम्भराणि वि ।

प्राच्यावियदच्युता ब्रह्मणस्पतिः  
 आ चार्विशद वसुमन्तं वि पथतम् ॥ २ ॥  
 तद् देवानां देवर्तमाय कर्त्तुं  
 अश्रन्न दृळ्हावदन्त वीळिता ।  
 उद्गा आजदमिन्द ब्रह्मणा वलं  
 अगूहत् तमो व्यचक्षयत् स्वः ॥ ३ ॥  
 अश्मास्यमवतं ब्रह्मणस्पतिः  
 मधुधारमभि यमोजसाऽवृणत् ।  
 तमेव विश्वे पपिरे स्वर्दशः  
 बहु साकं सिंसिचुरत्समुद्रिणम् ॥ ४ ॥  
 सना ता का चिद् ध्रुवना भवीत्वा  
 माग्निः श्ररद्भिर्दुरो वरन्त वः ।  
 अयतन्ता चरतो अन्यदन्यदिद्  
 या चकार वयुना ब्रह्मणस्पतिः ॥ ५ ॥  
 अभिनक्षन्तो अमि ये तमानुद्युः  
 निधिं पणीनां परमं गुहा हितम् ।  
 ते विद्वांसः प्रतिचक्ष्यान्ता पुनः  
 यतं तु आयन् तदुदीयुराविशम् ॥ ६ ॥  
 श्रुतावानः प्रतिचक्ष्यान्ता पुनः  
 आत आ तस्थुः क्वयो महस्पथा ।  
 ते ग्राहुभ्यां धमितमग्निमश्मनि  
 नकिः यो अस्त्यरणो जहुर्हि तम् ॥ ७ ॥  
 श्रुतज्येन क्षिमेण ब्रह्मणस्पतिः  
 यत्र वापि प्र तदर्शोति धन्वना ।  
 तस्य साध्वीरिपवो यामिरस्यति  
 नृचक्षसो दृश्ये कर्णयोनयः ॥ ८ ॥  
 स संनयः स विनयः पुरोहितः  
 स सुष्टुतः स युधि ब्रह्मणस्पतिः ।  
 चाश्मो यद् वाजं भरते मृती घनाद्  
 इत् यथैस्तपति तप्यतुर्व्या ॥ ९ ॥  
 ( १५ )

योऽवरे वृजने विश्वथा विश्वः  
महामुं रण्वः श्वसा वृक्षिथ ।  
स देवो देवान् प्रति पप्रथे पृथु  
विश्वेदु ता परिध्वंशणस्पतिः ॥ ११ ॥  
उताशिक्षा अलं शृण्वन्ति वह्नयः  
समेयो विप्रो मरते मती घना ।  
वील्लक्षेणा अनु वशं ऋणमादुदिः  
स ह वाजी समिधे ब्रह्मणस्पतिः ॥ १३ ॥  
ब्रह्मणस्पतेरभवद् यथावशं  
सत्यो मन्युर्महि कर्मा करिष्यतः ।  
यो गा उदाजत् स दिवे वि चाभजन्  
महीवं रीतिः श्वसाऽसरत् पृथक् ॥ १४ ॥  
ब्रह्मणस्पते सुयमस्य विश्वहा  
रायः स्याम रथ्योऽहं वयस्वतः ।  
वीरेषु वीरा उषं पृळ्वि नस्त्वं  
यदीशानो ब्रह्मणा वेपि मे हवम् ॥ १५ ॥

॥ ५ ॥ ( अ० ११५१-५ )

इन्धानो अग्निं वनवद् वनुष्यतः  
कृतब्रह्मा शूश्रुवद् रातहव्य इत् ।  
जातेन जातमति स प्र संसृते  
पयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥ १ ॥  
वीरेभिर्वीरान् वनवद् वनुष्यतो  
गोमीं रयिं पप्रथद् बोधति स्मना ।  
तोकं च तस्य तनयं च वर्धते  
ययं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥ २ ॥  
सिन्धुर्न क्षोद्रः शिर्षोवां ऋषायतो  
वृषेव वृधोरभि वृष्टयोजसा ।  
अपोरिव प्रसित्तिर्ह वतंवे  
ययं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥ ३ ॥

तस्मा अर्पन्ति दिव्या असुधतः  
स सत्त्वामिः प्रथमो गोपुं गच्छति ।  
अनिमृष्टवपिर्हन्त्योर्जसा  
ययं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥ ४ ॥  
तस्मा इद्विधे धुनयन्त सिन्धवः  
अच्छिद्रा शर्म दधिरे पुरुणि ।  
देवानां सुप्ते सुमगः स एधते  
ययं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥ ५ ॥

॥ ६ ॥ ( अ० ११६१-४ )

ऋजुरिच्छंती वनवद् वनुष्यतो  
देवयन्तिर्देवयन्तमभ्यसत् ।  
सुप्रावीरिद् वनवत् पृसु दुष्टं  
यन्वेदयन्त्याविं मंजाति भोजनम् ॥ १ ॥  
यजस्व वीर प्र विहि मनायतः  
अग्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूयै ।  
हविष्कृणुष्व सुमगो यथाऽसंसि  
ब्रह्मणस्पतेरव आ वृणीमहे ॥ २ ॥  
स इजनेन स विशा स जन्मना  
स पुत्रैर्वाजं भरते घना नृभिः ।  
देवानां यः पितरमाविवासति  
श्रद्धामना हविषा ब्रह्मणस्पतिम् ॥ ३ ॥  
यो अस्मै हव्यैर्घृतवद्भिरविधत्  
प्र तं प्राचा नयति ब्रह्मणस्पतिः ।  
उरुष्यतीमहंसो रथतो रिपोऽहं  
अहोर्ध्विदसा उरुचक्रिर्द्रुतः ॥ ४ ॥

॥ ७ ॥ ( अ० १०१५५०-३ )

( १५-४० ) तिरिम्बितो मारुताम् । अनुष्टुप् ।

चक्षो इतश्चक्षामुतः सर्वा भूणान्यारुर्षा ।  
अराय्यं ब्रह्मणस्पते तीक्ष्णशृङ्गो हृष्टभिर्हि ॥ १ ॥  
अदो यदाह प्रवृत्ते सिन्धोः पारि अपूरुषम् ।  
तदा रमस्य दुर्हणो तेन गच्छ परस्तरम् ॥ ३ ॥

॥ ८ ॥ ( ऋ० ९।८३।१ )

( ४१ ) पवित्र आदित्यः । [ पवमान सोमः ] अगती ।

पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते

प्रभृर्गात्राणि पर्येपि विश्वतः ।

अवसतनूनं तदामो अश्रुते

श्रुतासु इदहन्वस्तत् समाश्रित

॥ १ ॥

॥ ९ ॥ ( ऋ० १०।६७।७ )

( ४२ ) अयास आदित्यः । [ वृद्धगणि ] त्रिःपुत्रः ।

स ई सत्येभिः सखिभिः शुचिभिः

गोधापसं वि धनसैरददः ।

ब्रह्मणस्पतिर्वृषभिर्वराहैः

धर्मस्वैदेभिर्द्विषिण्य व्यानट्

॥ ७ ॥

॥ १० ॥ ( ऋ० १०।१७३।१ )

( ४३ ) अभीवर्त आदित्यः । अनुपुत्रः ।

अभीवर्तेन हविषा येनेन्द्रो अभिवावृते ।

तेनास्मान् ब्रह्मणस्पते, ऽभि राष्ट्राय वर्धय ॥ १ ॥

॥ ११ ॥ ( वा० य० ३।५।५९ )

सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे

मस रक्षन्ति सदमप्रमादम् ।

सप्तापः स्वर्पतो लोकमीधुः

तत्र जायतो अस्वमजौ सत्रसदौ च देवौ ॥ ५५ ॥

॥ १२ ॥ ( अथर्व० १।१९।१-६ )

( ४४-५० ) वषिष्ठः ( अभीवर्तमणिः ) । अनुपुत्रः ।

अभीवर्तेन मणिना येनेन्द्रो अभिवावृते ।

तेनास्मान् ब्रह्मणस्पतेऽभि राष्ट्राय वर्धय ॥ ११ ॥

अमिवृत्य सपत्नान्मि या नो अरातयः ।

अभि पृतन्यन्तं तिष्ठाभि यो नो दुरस्यति ॥ २ ॥

अभि त्वा देवः संविताभि सोमो अवीवृषत् ।

अभि त्वा विश्वा मृतान्यमीवृते यथासंसि ॥ ३ ॥

अभीवर्तो अभिमवः संपन्नधर्यणो मणिः ।

राष्ट्राय मह्यं वध्यतां मृषन्मैयः पराश्रुवे ॥ ४ ॥

उदुमा ययौ अगादुदिदं मामकं वचः ।

यथाऽहं श्रेष्ठोऽमान्यमपन्नः संपन्नहा ॥ ५ ॥

सपन्नधर्यणो वृषाभिराष्टौ विषासहिः ।

यथाऽहमेपां वीराणां विराजानि जनस्य च ॥ ६ ॥

॥ १३ ॥ ( अथर्व० ६।६।१ )

( ५१-५३ ) अथर्वः । अनुपुत्रः ।

योऽस्मान् ब्रह्मणस्पतेऽदेवो अभिमन्यते ।

सर्वं तं रन्धयासि मे यजमानाय सुवृते ॥ ११ ॥

( अथर्व० ६।७।१ ) अथर्वः । प्रह्लादः । अनुपुत्रः ।

सं वः पृथ्यन्तां तन्वतः सं मनोसि समु वृता ।

सं वोऽयं ब्रह्मणस्पतिर्मगः सं वो अजीगमत् ॥ १ ॥

( अथर्व० ६।१४।१ ) अथर्वः । ब्रह्मणस्पतिः । वराहः ।

यौ व्याघ्रावर्वरुडौ जिघंसतः पितरं मारुतं च ।

यौ दन्तौ ब्रह्मणस्पते शिवौ कृणु जातवेदः ॥ १ ॥

॥ १४ ॥ ( अथर्व० ७।५।१४ ) विराट् । अथर्वः ।

अयं यो वक्रो विपंरुर्गङ्गा

मुखानि वक्रा वृजिना कुणोपि ।

तानि त्वं ब्रह्मणस्पत इपीकामिव सं नमः ॥ ४ ॥

॥ १५ ॥ ( अथर्व० ११।१४।१ ) अनुपुत्रः ।

येन देवं संवितां परं देवा अघोरयन् ।

तेनेमं ब्रह्मणस्पते परं राष्ट्राय वचन ॥ १ ॥

॥ १६ ॥ ( अथर्व० ६।१०।१-३ )

( ५४-५६ ) अथर्वः । अनुपुत्रः ।

आ वृषायस्व शमिहि वर्षस्व प्रधर्यस्व च ।

यथाऽङ्गं वर्धतां शेषस्तेन योषितमिजहि ॥ १ ॥

येन कुशं वाजयन्ति येन हिन्वन्त्यातृम् ।

तेनास्य ब्रह्मणस्पते घनुरिवा तानया पसः ॥ २ ॥

आऽहं तेनोमि ते पमो अधि-ज्यामिव घनुरिवा ।

क्रमस्वशं हव रोहितमनवग्लायता सदा ॥ ३ ॥

॥ १७ ॥ ( अथर्व० ८।६।१५ )

( ५७ ) मातृगणः । अथर्वः । अनुपुत्रः ।

येषां पश्चात् प्रपदानि पुरः पार्ष्वाः पुरो मुखा ।

सलजाः शकधूमजा उरुण्डाः ।

ये च मट्मटाः कुम्भमुष्का अयाश्रवाः ।

तानस्या ब्रह्मणस्पते प्रतीवोधेन नाशय ॥ १५ ॥

( ५९ )

॥ १८ ॥ अथर्वं १९।८।६ ।

(५८) गमय । अनुष्टुप् ।

इमा या ब्रह्मणस्पते विपूचीर्वात ईरते ।

सग्नीचीरिन्द्र ताः कृत्वा मह्यं शिवर्तमांस्कृधि ६

॥ १९ ॥ (अथर्वं १९।६।१)

(५९-६१) मद्वा । विर दृष्याद्दृहती ।

तनूस्तन्वा मे सहे दृतः सर्वमायुरशीय ।

स्योनं मे सीद पुरुः पूणस्त्वं पर्वमानाः स्तुमे ॥ १ ॥

॥ २० ॥ (अथर्वं १९।६।२) अनुष्टुप् ।

प्रियं मां कृणु देवेषु प्रियं राजसु मां कृणु ।

प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतायै ॥ २ ॥

॥ २१ ॥ (अथर्वं १९।६।३) विराडुपरिष्टाद्दृहती ।

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान् स्येनं योधय ।

आयुः प्राणं प्रजां पशून् कीर्तिं यजमानं च वर्धय १

ब्रह्मणस्पति-सहचारी देवगणः

(श्रु० १।१८।७, ५)

मेघातिथि काण्व । ४ इन्द्रो ब्रह्मणस्पति-सोमश्च,

५ ब्रह्मणस्पति सोम इन्द्रो दक्षिणा च । गीतयत्री ।

स धां वीरो न रियति यमिन्द्रो ब्रह्मणस्पतिः ।

सोमो हिनोति मर्त्यम् ॥ ४ ॥

त्वं तं ब्रह्मणस्पते सोम इन्द्रश्च मर्त्यम् ।

दक्षिणा पातवंहसः ॥ ५ ॥

(श्रु० १।२४।१२)

गुप्तमदः (आविष, शोणहात्र, पश्चात्) गुप्तमद शौनक ।

इन्द्राब्रह्मणस्पति । त्रिष्टुप् ।

विश्व सत्यं मधवानां युवोरित्

आपञ्चन प्र मिनन्ति व्रतं वाम् ।

अच्छेन्द्राब्रह्मणस्पती हविर्नः

अन्नं पुजेव वाजिनां जिगातम् ॥ १२ ॥

(श्रु० ६।७।५।७)

पापुर्मात्रात्र । मुदभूमि-कवच-ब्रह्मणस्पते दृष्ट । पक्षिः ।

यत्र चाणाः सं पतन्ति कुमाराः विशिखो डैव ।

तत्रा नो ब्रह्मणस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु

विश्वाहा शर्म यच्छतु ॥ १७ ॥

(श्रु० ७।९।३।९)

मेघावर्णवसिष्ठ । इन्द्राब्रह्मणस्पति । त्रिष्टुप् ।

तमु ज्येष्ठं नर्मसा हविर्मिः

सुशेनं ब्रह्मणस्पतिं गृणीषे ।

इन्द्रं शोको महि देव्यः सपत्नु

यो ब्रह्मणो देवकृतस्य राजा ॥ ३ ॥

इयं वां ब्रह्मणस्पते सुनृक्तिः

ब्रह्मेन्द्राय वृजिणं अकारि ।

अविष्टं चियो जिगृतं पुरन्धीः

जज्ञस्तमयो वनुषामरांतीः ॥ ९ ॥

(अथर्वं १।१६।२)

अथर्वी । अग्नि, इन्द्र, मित्रावरुणौ, अश्विनौ, अमरः पूषा,

१ ब्रह्मणस्पति, सोम, इन्द्र । आर्षो जगती ।

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे

प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विनौ ।

प्रातर्मयं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं

प्रातः सोममुत रुद्रं हवामहे ॥ १ ॥

(अथर्वं ६।४।२)

अथर्वी । त्रिष्टुप्, पञ्चम्य, ब्रह्मणस्पतिः अदिति । पश्चाद्दृहती ।

तृष्टा मे देव्यं वर्चः पर्जन्यो ब्रह्मणस्पतिः ।

पुष्टैर्भ्रातृभिरदितिर्नु पातु नो दुष्टैर्भ्रातृपमाणं सहः १

(अथर्वं ६।५।१)

अथर्वी । अग्नि, साम, ब्रह्मणस्पतिः । अनुष्टुप् ।

यस्य कृष्णो हविर्गृहे तममे वर्धया त्वम् ।

तस्मै सोमो अर्घिं अवदयं च ब्रह्मणस्पतिः ॥ ३ ॥

(अथर्वं ७।३।०।१) श्रुतिगिरा । यावापृथिवी,

मित्र, ब्रह्मणस्पति उदितान् । बृहती ।

स्वाक्तं मे यावापृथिवी स्वाक्तं मित्रो अकरयम् ।

स्वाक्तं मे ब्रह्मणस्पतिः स्वाक्तं सविता करतु ॥ १ ॥

॥ ८ ॥ ( ऋ० १।८३।१ )

( ४१ ) पवित्र आह्निरसः । [ पवमान सोम ] अगता ।

पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते

प्रभृर्गात्राणि पर्येपि विश्वतः ।

अतस्तनुर्न तदामो अश्रुते

श्रुतासु इद्वहेन्तस्तत् समाशत ॥ १ ॥

॥ ९ ॥ ( ऋ० १० २७।७ )

( ४२ ) अयास्य आह्निरसः । [ घृहस्पति ] त्रिष्टुपः ।

स इँ सुस्येभिः सखिभिः शुचिभिः

गोघायसं वि धनुसैरदर्दः ।

ब्रह्मणस्पतिर्वृषभिर्वराहैः

धर्मस्वेदेभिर्मित्रिर्विणं व्यानद ॥ ७ ॥

॥ १० ॥ ( ऋ० १०।१७३।१ )

( ४३ ) अभीवर्त आह्निरसः । अनुष्टुपः ।

अभीवर्तेन हविषा येनेन्द्रो अभिरावृते ।

तेनास्मान् ब्रह्मणस्पते, ऽभि राष्ट्राय वर्तय ॥ १ ॥

॥ ११ ॥ ( वा० य० ३०।५५९ )

सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे

मस रक्षन्ति सदमप्रमादम् ।

सप्तापः स्वपतो लोकमीयुः

तत्र जाग्रतो अस्मज्जो सत्रसदौ च देवौ ॥ ५५ ॥

॥ १२ ॥ ( अथर्व० १।१९।१-६ )

( ४४-५० ) ऋषिष्ठ ( अभीवर्तमणि ) । अनुष्टुपः ।

अभीवर्तेन मणिना येनेन्द्रो अभिरावृते ।

तेनास्मान् ब्रह्मणस्पतेऽभि राष्ट्राय वर्धय ॥ ११ ॥

अभिवृत्त्यं सपत्नानुभि या नो अरांतयः ।

अभि पृतन्यन्तं तिष्ठाभि यो नो दुरस्यति ॥ २१ ॥

अभि त्वा देवः संविताभि सोमो अबीवृषत् ।

अभि त्वा विषो मृतान्यमीवृते यथासंति ॥ ३१ ॥

अभीवर्तो मभिभूतः सपत्नक्षयणो मणिः ।

राष्ट्राय महं वष्यतां मपत्तैस्यः पराश्वेवं ॥ ४१ ॥

उदमो यषो अगादुदिदं मीमकं वचः ।

पथाऽहं श्रेयुहोऽमान्यमपत्तः सपत्तहा ॥ ५१ ॥

सपत्नक्षयणो वृषाभिराष्ट्रो विपासहिः ।

यथाऽहमेपां वीराणां विराजानि जनस्य च ॥ ६१ ॥

॥ १३ ॥ ( अथर्व० ६।६।१ )

( ५१-५३ ) अथर्वी । अनुष्टुपः ।

योऽस्मान् ब्रह्मणस्पतेऽदेवो अभिमन्यते ।

सर्वं तं रन्धयासि मे यजमानाय सुन्वते ॥ ११ ॥

( अथर्व० ६७३।१ ) अथर्वी । ब्रह्मणस्पते । अनुष्टुपः ।

सं वः पृच्यन्तां तनयः सं मनोसि समु व्रता ।

सं वोऽयं ब्रह्मणस्पतिर्भगः सं वो अजीमवत् ॥ १ ॥

( अथर्व० ६१४०।१ ) अथर्वी । ब्रह्मणस्पति । करोवरा ।

यौ व्याघ्रावर्वरूढौ जिघ्रंसतः पितरं मातरं च ।

यौ दन्तौ ब्रह्मणस्पते शिवौ कृणु जातवेदः ॥ १ ॥

॥ १४ ॥ ( अथर्व० ७।५९।१४ ) विराट् पश्ताराणि ।

अयं यो वक्रो विपंरुष्यङ्गो

मुखानि वक्रा वृजिना कृणोपि ।

तानि त्वं ब्रह्मणस्पत इषीकामिव सं नेमः ॥ ४१ ॥

॥ १५ ॥ ( अथर्व० १९।१४।१ ) अनुष्टुपः ।

येन देवं संवितारं परि देवा अधारयन् ।

तेनेमं ब्रह्मणस्पते परि राष्ट्राय घत्तन ॥ १ ॥

॥ १६ ॥ ( अथर्व० ६।१०।१-३ )

( ५४-५६ ) अथर्वी । अनुष्टुपः ।

आ वृषायस्व श्वमिहि वर्धस्व प्रथयस्व च ।

यथाऽङ्गं वर्धतां शेषस्तेन योपितमिजहि ॥ १ ॥

येन कृणु वाजयन्ति येन हिन्वन्त्यातृम् ।

तेनास्य ब्रह्मणस्पते धनुर्निवा तानया पसे ॥ २१ ॥

आऽहं तेनोमि ते पमो अधि ज्यामिन् घन्ति ।

क्रमस्वर्श इव रोहितमनवग्लायता सदा ॥ ३१ ॥

॥ १७ ॥ ( अथर्व० ८।६।५५ )

( ५७ ) मातृनामा । श्ववसाना घतयता श्ववती ।

येषां पश्चात् प्रपदानि पुरः पार्ष्णीः पुरो मुखौ ।

सलजाः शकधूमजा उरुण्डा

ये च मट्मटाः कुम्भमुष्का अयाश्वः ।

तानस्या ब्रह्मणस्पते प्रतीषेधेन नाशय ॥ १५ ॥



॥ १८ ॥ अथर्वं १९।८।६ ।

( ५८ ) गार्ग्यः । अनुष्टुप् ।

इमा या ब्रह्मणस्पते विपूचीर्वात ईरते ।

सुग्रीचीरिन्द ताः कृत्वा मर्ह्यं शिवर्तमोस्कृधि ६

॥ १९ ॥ ( अथर्वं १९।६।१ )

( ५९-६१ ) ब्रह्मा । विर द्यध्यावृद्धी ।

तनूस्तन्वा मे सहे द्रुतः सर्वमायुरशीय ।

स्योनं मे सीद पुरुः पूणस्व पर्वमानः स्वर्गे ॥ १ ॥

॥ २० ॥ ( अथर्वं १९।६।२ ) अनुष्टुप् ।

प्रियं मां कृणु देवेषु प्रियं राजसु मां कृणु ।

प्रियं सर्वस्य पश्यत उत द्रुत उतार्ये ॥ २ ॥

॥ २१ ॥ ( अथर्वं १९।६।३ ) विरद्वगदिष्टाद्वृद्धी ।

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान् युजेन बोधय ।

आयुः प्राणं प्रजां पशून् कीर्तिं यजमानं च वर्धय १

ब्रह्मणस्पति-सहचारी देवगणः ।

( अ० १।१८।४, ५ )

मेधातिथिः काण्डः । ४ इन्द्रो ब्रह्मणस्पतिः सोमश्च ।

५ ब्रह्मणस्पतिः सोम इन्द्रो दक्षिणः च । गार्ग्योऽपि ।

स या बीरो न रिप्यति यमिन्द्रो ब्रह्मणस्पतिः ।

सोमो हिनोति मर्त्यम् ॥ ४ ॥

त्वं तं ब्रह्मणस्पते सोम इन्द्रश्च मर्त्यम् ।

दक्षिणा पातवंहसः ॥ ५ ॥

( अ० २।२४।१० )

ग्रासमदः ( आगिरसः, शौनदीना, पश्चात् ) ग्रासमदः शौनकः ।

इन्द्राब्रह्मणस्पति । त्रिष्टुप् ।

विश्वं सत्यं मधवाना युवोरित् ।

आपंश्चन प्र मिनन्ति व्रतं चाम् ।

अच्छेन्द्राब्रह्मणस्पती हविनः ।

अन्नं युजेव वाजिना जिमातम् ॥ १२ ॥

( अ० ६।७।५।१० )

वागुमोरादात्र । पुदभूमि-कवच-ब्रह्मणस्पत्य दक्षी । पक्षिः ।

यत्र चाणाः सं पतन्ति कुमाराः विंशितो द्वे ।

तत्रा नो ब्रह्मणस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु

विश्वाहा शर्म यच्छतु ॥ १७ ॥

( अ० ७।९।३, ९ )

मेधावर्णवसिष्ठः । इन्द्राब्रह्मणस्पति । त्रिष्टुप् ।

तमु ज्येष्ठं नमसा हविर्भिः ।

सुशेवं ब्रह्मणस्पतिं गृणीषे ।

इन्द्रं शोको महि दैव्यः सपक्तु

यो ब्रह्मणो देवकृतस्य राजा

॥ ३ ॥

इयं वा ब्रह्मणस्पते सुवृक्तिः ।

ब्रह्मेन्द्राय वृजिणं अकारि ।

अविष्टं धियो जिगृतं पुरन्धीः ।

जजस्तमयो वनुषामरातीः

॥ ९ ॥

( अथर्वं १।१६।१ )

अथर्वी । अग्निः, इन्द्रः, त्रिभ्रावर्णो, अश्विनौ, मरुतः, पूषा, ब्रह्मणस्पतिः, सोमः, रुद्रः । आर्षो भगवती ।

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे

प्रातमिन्नावर्णया प्रातरश्विनौ ।

प्रातमर्गं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं

प्रातः सोममुत रुद्रं हवामहे

॥ १ ॥

( अथर्वं ६।४।१ )

अथर्वी । त्वष्टा, पर्वन्वाः, ब्रह्मणस्पतिः अदितिः । पत्न्या बृहती ।

त्वष्टा मे दैव्यं वचः पूजन्त्यो ब्रह्मणस्पतिः ।

पूजन्तीति भिरदितिर्नु पातु नो दुष्टं त्रायमाणं सहः १

( अथर्वं ६।५।३ )

अथर्वी । अग्निः, सोमः, ब्रह्मणस्पतिः । अनुष्टुप् ।

यस्य कृण्मो हविर्गृहे तमग्ने वर्धया त्वम् ।

तस्मै सोमो अर्घिं व्रदयं च ब्रह्मणस्पतिः ॥ ३ ॥

( अथर्वं ७।३।०।१ ) सुवर्गिरा । यावोऽष्ट धिवी,

मित्रः, ब्रह्मणस्पतिः शशिला न । वृद्धी ।

स्वाक्तं मे यावोऽष्टधिवी स्वाक्तं मित्रो अकरयम् ।

स्वाक्तं मे ब्रह्मणस्पतिः स्वाक्तं सविता करतु ॥ १

( ७६ )



## सहायको द्वितीय उप-विद्यामंत्री

# बृहस्पतिः ।

॥ १ ॥ (अ० १।१३९-१०)

(१) परस्मैपदो देवोदाधिः । अथष्टिः ।

होवा यक्षश्च वनिनो वन्त वायं  
पृहस्पतिर्व्यजति वेन उद्यमिः पुरुवारोभिरुद्यमिः ।  
जगुम्मा दूरग्रीदिशुं श्लोकमद्वेष्ट रमनो ।  
अधोरपदरिन्दानि सुक्रतुः  
पुरु सघानि सुक्रतुः ॥१०॥

॥ १ ॥ (अ० १।१९०।१-८)

(१) (१-९) अगस्त्यो मेत्रावरुणि । त्रिष्टुप् ।

अनुवीर्णो वृषमं मन्द्रजिह्वं  
वृहस्पतिं वर्षेया नर्षमर्कः ।  
गायान्यः मरुचो यस्य देवा  
ग्रीमन्वन्ति नर्षमानस्य मर्ताः ॥ १ ॥  
समृषिया उप वाचः सचन्ते  
सर्गो न यो देवयतामसजि ।

वृहस्पतिः ॥ यज्ञो परांति  
विश्वार्धवत् समृते मोदरिषा ॥ २ ॥

उर्वस्तुति नर्मग उर्वति च  
श्रावः वेमग् सवितेव प्र बाह ।  
अस्य मग्वाह्नयोः यो अरिं  
मृगो न भीमो अरधगस्तुर्विष्मान् ॥ ३ ॥

अस्य श्लोकौ दिवीयन्ते पृथिव्या  
अत्यो न यैसश्च यक्षमुद् विचैतः ।

मृगाणां न हेतयो यन्ति चेमा  
वृहस्पतेराहिमायां अभि घ्नन् ॥ ४ ॥

ये त्वा देवोस्त्रिकं मन्यमानाः

पापा भद्रसंप्रजीवन्ति पुजाः ।

न दूढयेः अतु ददाति वामं  
वृहस्पते चर्यसु इत् पियारुम् ॥ ५ ॥

सुमेतुः सुयवसो न पन्था

दुर्नियन्तुः परिधीतो न मित्रः ।

अनुवीर्णो अभि ये चक्षते नः  
अपीवृता अपोर्णवन्तो अस्त्युः ॥ ६ ॥

सं यं स्तुमोऽवन्तयो न यन्ति

समुद्रं न स्रवतो रोधचक्राः ।

स विद्रो उमर्यं चष्टे अन्तर  
वृहस्पतिस्तर आपधं मृगः ॥ ७ ॥

एवा मरुस्तुविजातस्तुविष्मान्

वृहस्पतिर्वृषमो चावि देवा ।

स नः स्तुतो वीरवद् धातु गोमद  
विषामेवं वृजनं जीरदातुम् ॥ ८ ॥ (८)

॥ ३ ॥ ( अ० १।०३।१-४, ६-१०, ११-१६, १८ )

( १०-२५ ) यत्समद शोनक । अगती, १५ भिष्टुः ।

देवाश्चित् ते असुर्य प्रचेतसः ।  
बृहस्पते यद्विष्य भागमानशुः ।  
उस्मा इव सूर्यो ज्योतिषा महः  
विश्वेषामिज्जनिता ब्रह्मणामसि ॥ २ ॥

आ विवाच्या परिरापस्तमांसि च  
ज्योतिष्मन्तुं रथंमृतस्य तिष्ठसि ।  
बृहस्पते मीमर्षमित्रदम्भनं  
रक्षोहणं गोत्रमिदं स्वविदम् ॥ ३ ॥

सुनीतिर्मिर्नयसि त्रायसे जनं  
यस्तुभ्यं दास्यान्न तमहो अश्रवत् ।  
ब्रह्मद्विपस्तर्पनो मनुमीरंसि  
बृहस्पते महि सत् तं महिस्त्रुनम् ॥ ४ ॥

त्वं नो गोपाः पथिकू विचक्षणः  
तव व्रताय मृतिर्मिर्जामहे ।  
बृहस्पते यो नो अभि ह्रूरो दुषे  
स्वा तं मर्मतु दुष्पुना हरस्वती ॥ ५ ॥

उत वा यो नो मूर्चयादनागसः  
अरातीवा मरुः सानुको वृकः ।  
बृहस्पते अप् तं वर्तया पृथः  
सुग नो अस्य देववीतये कृषि ॥ ७ ॥

ज्ञातारं स्वा तन्नां हवामहे  
अवस्पर्तारधिवक्तारमस्मयम् ।  
बृहस्पते देवनिद्रो नि बहेय  
मा दुरेवा उत्तरं सुप्रभ्रमंश्च ॥ ८ ॥

त्वया व्यग्रं चर्म धीमहे बयो  
बृहस्पते परिणा सल्लिना युजा ।  
मा नो दुःशंसो अभिद्रिप्सुरीक्षत  
प्र मुशंसो मृतिमिस्तारिणीमहि ॥ १० ॥

अदेवेन मनसा यो रिपुण्यतिं  
ज्ञासामुग्रो मन्यमानो जिघांसति ।  
बृहस्पते मा प्रणक् तस्य नो वधो  
नि कर्म मन्युं दुरेवस्य शर्धतः ॥ १२ ॥

मरेषु हव्यो नर्मसोपसद्यो  
गन्ता वाजेषु सनिता घनघनम् ।  
विद्या इदुर्यो अभिद्रिप्सोर्धृ मृधो  
बृहस्पतिर्वि ववर्हा रथो इव ॥ १३ ॥

तेजिष्ठया तपनी रक्षसस्तप  
ये स्वा निदे दधिरे इष्टवीर्यम् ।  
आविस्तत् कृष्ण यदसत् त उक्थयं  
बृहस्पते वि परिरापो अर्दय ॥ १४ ॥

बृहस्पते अति यदुर्यो अर्हाद्  
द्युमद् विभाति क्रतुमजनेषु ।  
यद्दिदयच्छवस अतप्रजात  
तदुस्मासु द्रविणं घेहि चित्रम् ॥ १५ ॥

मा नः स्तेनेभ्यो ये अभि द्रुहस्पदे  
निरामिणीं रिपवोऽज्ञेषु जागृधुः ।  
आ देवानामोहेते वि त्रयो हृदि  
बृहस्पते न परः साम्नो विदुः ॥ १६ ॥

तव श्रियं व्यजिहीत पर्वतो  
गवां गोत्रमुदस्तञ्जो यदङ्गिरः ।  
इन्द्रेण युजा तर्मसा परीवृत  
बृहस्पते निरपामोञ्जो अर्णवम् ॥ १८ ॥

॥ ४ ॥ ( अ० १।१४ १, १० ) अगती ।

सेमामविद्विष्टि प्रमृतिं य ईशिपे  
अया विधिम् नवया महा गिरा ।  
यथा नो भीडान्स्तवते मरुता तप  
बृहस्पते सीषघः सोत नो मृतिम् ॥ १९ ॥

विभु प्रभु प्रथमं मेहनोवतः ।  
 बृहस्पतेः सुविदत्राणि राक्ष्या ।  
 इमा सातानि वेन्यस्य वाजिनो  
 येन जना उभये भुञ्जते विशः ॥ १० ॥  
 ॥ ११ ॥ ( ऋ० ३.३०९ ) त्रिष्टुप् ।  
 यो नः सनुत्य उत वा जिघत्सुः  
 अभिरुपाय तं विंगितेन विध्य ।  
 बृहस्पत आर्यधैर्जेपि शत्रून्  
 द्रुहे रीपन्तं परि धेहि राजन् ॥ ९ ॥  
 ॥ ६ ॥ ( ऋ० १.६११-६ )  
 ( १९-२० ) विश्वामित्रो गाविन । गावजो ।  
 बृहस्पते जुषस्व नो हव्यानि विश्वदेव्य ।  
 रास्व रत्नानि दाशुषे ॥ ४ ॥  
 शुचिमर्कैर्बृहस्पतिं मधुरेषु नमस्तु ।  
 अनाम्योज आ चंके ॥ ५ ॥  
 वृषमं चर्षणीनां विश्वरूपमदाभ्यम् ।  
 बृहस्पति वरेण्यम् ॥ ६ ॥  
 ॥ ७ ॥ ( ऋ० ४.१०१-९ )  
 ( २१-२७ ) वामदेवो गौतम । त्रिष्टुप्, १० जगती ।  
 यस्तुस्तम् सहा वि ज्मो अन्तान्  
 बृहस्पतिस्त्रिपद्यो र्वेण ।  
 तं प्रतनासु ऋषयो दीक्षानाः  
 पुरो विप्रो दधिरे मन्द्रजिह्वम् ॥ १ ॥  
 घुनेतयः सुप्रकेतं मदन्तो  
 बृहस्पते अमि ये नस्तत्ते ।  
 पृषन्तं मृप्रमदन्धमुर्वं  
 बृहस्पते रथतादस्य योनिम् ॥ २ ॥  
 बृहस्पते या परमा परावद्  
 अत आ तं ऋतुस्पृशो नि वेदुः ।  
 तम्यं रागा अंठा अद्रिदुग्धा  
 मर्षः धोतरयमिती विरप्यम् ॥ ३ ॥

बृहस्पतिः प्रथमं जायमानः  
 महा ज्योतिषः परमे व्योमन् ।  
 मत्तास्यस्तुविजातो र्वेण  
 वि सप्तर्शिमरचमत् तमांसि ॥ ४ ॥  
 स सुष्टुभा, स ऋकता गुणेन  
 वलं करोज फलिगं र्वेण ।  
 बृहस्पतिरुस्रिया, हव्यस्रुदः  
 कनिक्कदुद वावशतीरुदाजत् ॥ ५ ॥  
 एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे-  
 यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्मिः ।  
 बृहस्पते सुप्रज्ञा-वीरवन्तः  
 वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ६ ॥  
 म इद् राजा प्रतिजन्पानि विश्वा  
 शुष्मेण तस्यावभि वीर्येण ।  
 बृहस्पति यः सुभृतं विभर्ति  
 वल्गुपति वन्देत् पूर्वभाजम् ॥ ७ ॥  
 स इत् श्वेति सुधित ओकसि स्वे  
 तस्मा इळा पिन्वते विश्वदानीम् ।  
 तस्मै विश्वः स्यमेवा नमन्ते  
 यस्मिन् ब्रह्मा राजन्ति पूर्व एति ॥ ८ ॥  
 अप्रतीतो जयति सं धनानि  
 प्रतिजन्पान्युत या सजन्वा ।  
 अवस्यये यो वरिवः कृणोति  
 ब्रह्मेण राजा तमवन्ति देवाः ॥ ९ ॥  
 ॥ १० ॥ ( ऋ० ६.७११-३ )  
 ( ३०-४० ) मरुतामो बार्हस्पत्य । त्रिष्टुप् ।  
 यो अद्रिमित् प्रथमजा क्रुतावा  
 बृहस्पतिराद्भिरसो हविष्मान् ।  
 द्विर्बर्जमा प्राधर्मसत् पिता न  
 आ रोदसी वृषभो रोरवीति ॥ १ ॥ ( ११ )

जनाय चिद् य ईर्वत उ ज्ञोकं  
बृहस्पतिर्देवहूतो चकार ।

मन् बुत्राणि वि पुरो ददर्शीति  
जयच्छत्रमित्रान् पुत्सु साहन्

॥ २ ॥

बृहस्पतिः समजयद् वसूनि  
महो ब्रजान् गोर्मतो देव एषः ।

अपः सिपांसन्स्वभ्रप्रतीतो  
बृहस्पतिर्हन्त्यमित्रमर्कैः

॥ ३ ॥

॥ १ ॥ ( ऋ० ७९७१९, ४-८ )

मेत्रावदीर्घवसिष्ठः । त्रिष्टुप् ।

आ दैव्या वृणीमहेऽवांसि  
बृहस्पतिर्नो मह आ सखायः ।

यथा भवेम मीळहुपे अनांशा  
यो नो दाता परावतः पितेव

॥ २ ॥

स आ नो योनिं सदतु प्रेष्टो  
बृहस्पतिर्विश्ववारो यो अस्ति ।

कामो रायः सुवीर्यस्य तं दातु  
पर्यञ्चो अति सुधतो अरिष्टान्

॥ ४ ॥

तमा नो अर्कममृताय जुष्टं  
हमे चासुरमृतांसः पुराजाः ।

शुचिकन्दं यजतं पुस्त्यानां  
बृहस्पतिमनुवर्णं हुवेम

॥ ५ ॥

तं शुग्मासो अरुपासो अश्वा  
बृहस्पतिं सहवाहो वहन्ति ।

सहधिवद् यस्य नीलवत् सधस्यं  
नभो न रूपमेरुषं वसानाः

॥ ६ ॥

स हि शुचिः शतपत्रः स शुन्ध्युः  
हिरण्यवाशीरिपिरः स्रर्षाः ।

बृहस्पतिः स स्वावेक्ष क्रुष्वः  
पुरु सखिभ्य आसुति करिष्ठः

॥ ७ ॥

देवी देवस्य रोदसी जनित्री  
बृहस्पतिं वावृधतुर्महित्वा ।

दुक्षाम्याय दक्षता सखायः  
करद् ब्रह्मणे सुतरां सुगाधा

॥ ८ ॥

॥ १ ॥ ( ऋ० १०६७१-१२ )

अयास्य आशिरसः । त्रिष्टुप् ।

हमा धिर्यं सप्तशीर्ष्णीं पिता न  
ऋतप्रजातां बृहतीमविन्दत् ।

तुरीयं स्वजनयद् विश्वजन्म्यो  
ऽयास्यं उक्थमिन्द्राय शंसन्

॥ १ ॥

ऋतं शंसन्त ऋजु दीप्याना  
दिवस्पुत्रासो असुरस्य वीराः ।

विप्रं पदमङ्गिरसो दर्शना  
यज्ञस्य धर्मं प्रथमं मनन्त

॥ २ ॥

हंसेरिबु सखिभिर्वावदाद्भिः  
अश्मन्मयानि नहन्त व्यस्यन् ।

बृहस्पतिरभिकनिर्कदुद्रा  
उत प्रास्तौदुषं विद्वो अगायत्

॥ ३ ॥

अवो द्वाभ्यां पुर एकया गा  
गुहा तिष्ठन्तीरनृतस्य सेतौ ।

बृहस्पतिस्तमसि ज्योतिरिच्छन्  
उदुसा आकवि हि तिस्र आवः

॥ ४ ॥

विमिद्या पुरं शयथेमर्पाचीं  
निष्प्रीणिं साकमुदधेरुन्तत् ।

बृहस्पतिरुपसं सूर्यं गां  
अर्कं विवेद स्तनयमिव द्यौः

॥ ५ ॥

इन्द्रो बलं रक्षितारं दुषानां  
करोणेव वि चकृतो रवेण ।

स्वेदाञ्जिमिराशिरमिच्छमानो  
ऽरोदयत् पाणिमा गा अमुष्णात्

॥ ६ ॥

स इ सत्येभिः सतिभिः शुचिभिः  
 गोघायसं वि घनसैरदर्दः ।  
 ब्रह्मणस्पतिर्वृषभिर्धराहैः  
 धर्मस्वैदेभिर्द्रविणं व्यानट् ॥ ७ ॥  
 ते सत्येन मनसा गोपतिं गा  
 इयानास इपणयन्त घोभिः ।  
 बृहस्पतिर्मिथोजवचपेभिः  
 उदुस्त्रिया असूजत स्वयुग्भिः ॥ ८ ॥  
 तं वर्धयन्तो मृतिभिः शिवाभिः  
 सिंहमिव नानंदतं सुधस्यै ।  
 बृहस्पतिं वृषणं शरसातौ  
 भरेमरे अलुं मदेम जिष्णुम् ॥ ९ ॥  
 यदा वाजमसनद्विचरूपं  
 आ धामरुद्धदुर्चराणि सद्यं ।  
 बृहस्पतिं वृषणं वर्धयन्तो  
 नाना सन्तो विभ्रतो ज्योतिरसा ॥ १० ॥  
 सत्यामाशिषं कृशता वयोधै  
 कीरिं चिद्वयवयं स्वेभिरवैः ।  
 पश्चा मृषो अपं भवन्तु विश्वाः  
 तद् रौदसी शृणुतं विश्वमिन्वे ॥ ११ ॥  
 इन्द्रो महा भहता अर्णवस्य  
 मि मुर्धानमभिनदर्वुदस्य ।  
 अहन्नष्टिमरिणात् सप्त सिन्धून्  
 देवद्यौवापृथिवी प्रावतं नः ॥ १२ ॥  
 ॥ ११ ॥ ( अ० १०।६।१-१२ )  
 उदमृतो न वयो रक्षमाणा  
 वार्यदतो अघ्निरस्येव घोषाः ।  
 गिरिध्रजो नोर्मयो मर्दन्तो  
 पृहस्पतिर्मर्यादा अनावन् ॥ १ ॥

सं गोभिराद्भिरसो नक्षमाणो  
 भगं ब्रुवेदर्थमर्णं निनाय ।  
 जने मित्रो न दंपती अनाक्ति  
 वृहस्पते वाजवागैरवाजौ ॥ २ ॥  
 साध्वर्या अतिथिनीरिपिराः  
 स्पर्हाः सुवर्णा अनवधरूपाः ।  
 वृहस्पतिः पर्वतेभ्यो वितूर्या  
 निर्गा ऊपे यवमिव स्थिविभ्यः ॥ ३ ॥  
 आग्रुपायन् मधुन ऋतस्य  
 योनिर्मवाक्षिपन्नर्कं उल्कामिव घोः ।  
 वृहस्पतिकुदूरश्मनो गा  
 भूम्या उद्भेव वि त्वचं विभेद ॥ ४ ॥  
 अप ज्योतिषा तमो अन्तरिक्षाद्  
 उद्भः शीपालमिव वात आजत् ।  
 वृहस्पतिरनुमृश्या बलस्य  
 अभ्रमिव वात आ चक्र आ गाः ॥ ५ ॥  
 यदा बलस्य पीर्यतो जसुं भेद्  
 बृहस्पतिरमितपोभिरकैः ।  
 दक्षिर्न जिह्वा परिविष्टमार्दद्  
 आविनिर्धरिंकृणोदुस्त्रियाणाम् ॥ ६ ॥  
 बृहस्पतिरमत हि त्यदासां  
 नाम स्वरीणां सदेने गुहा यत् ।  
 आण्डेव भिच्वा शंकुनस्य गर्भं  
 उदुस्त्रियाः पर्वतस्य त्मनाजत् ॥ ७ ॥  
 अश्रापेनदं मधु पर्वपश्यन्  
 मत्स्यं न दीन उदनि क्षियन्तम् ।  
 निष्टर्जमार चमसं न वृक्षाद्  
 वृहस्पतिर्विरेवेणा विकृत्य ॥ ८ ॥  
 ( १११ )

सोषाम्बिन्दुत्स स्वः सो अग्नि  
अर्केण वि वधाधे तर्मासि ।  
बृहस्पतिर्गोवपुषो वृलस्य  
निर्मज्जानं न पर्वणो जभार ॥ ९ ॥

हिमेव पर्णा मुपिता वनानि  
बृहस्पतिनाकृपयद्वलो गाः ।  
अनानुकृत्यमपुनश्चकार  
पात्स्ययामासा मिथ उच्चरातः ॥ १० ॥  
अभि इयावं न कृशनेभिरश्वं  
नक्षत्रेभिः पितरो धामपिशन् ।  
रात्र्यां तमो अर्द्धज्योतिरहन्  
बृहस्पतिर्मिनदद्रि विदद्राः ॥ ११ ॥

इदमकर्म नमो अत्रियाय  
यः पूर्वीरन्वानोनवीति ।  
बृहस्पतिः स हि गोभिः सो अश्वैः  
स वीरेभिः स नृभिर्नो वयो भ्रातृ ॥ १२ ॥  
॥ १० ॥ ( अ० १०।१०२।४ )  
अप्रतिपद्येन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

बृहस्पते परि दीया रथेन  
रक्षोहाऽमित्रो अपुवार्धमानः ।  
प्रमज्जन्त्सेनाः प्रमृणो युधा जयन्  
असाकमेव्यविता रथानाम् ॥ ४ ॥  
॥ १३ ॥ ( अ० १०।१८०।१-३ )  
तपुर्मूर्धा भार्यस्पत्यः । त्रिष्टुप् ।

बृहस्पतिर्नयत दुर्गहा तिरः  
पुनर्नेपदुधशसाय मनम् ।  
क्षिपदशस्तिमपं दुर्मतिं हन्  
अथा कर्धजमानाय शं योः ॥ १ ॥  
नराशंसो नोऽवतु प्रयाजे  
शं नो अस्वमुयाजो हवेषु ।  
क्षिपदशस्तिमपं दुर्मतिं ॥ २ ॥

तपुर्मूर्धा तपत रक्षसो ये  
ब्रह्मद्विषः शरवे हन्तुवा तं ।  
क्षिपदशस्तिमपं दुर्मतिं ॥ ३ ॥

॥ १४ ॥ ( वा० य० २।१३ )  
बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोत्विरिष्टं  
यज्ञं समिमं दधातु ॥ १३ ॥  
॥ १५ ॥ ( वा० य० ४।७, ११ )  
बृहस्पतये हविषा विधेम स्वाहा ॥ ७ ॥  
बृहस्पतिष्टा सुभे रम्णातु ॥ २१ ॥  
॥ १६ ॥ ( वा० य० ६।८ )  
रेवती रमच्चं बृहस्पते धारया वसूनि ॥ ८ ॥  
॥ १७ ॥ ( वा० य० ७।२७ )

बृहस्पतये त्वा मद्यं वरुणो ददातु ॥ ४७ ॥  
॥ १८ ॥ ( वा० य० ९।१०-११ पूर्वाप )  
देवस्याहं संवितुः सुवे सत्यसंवसः  
बृहस्पतेरुत्तमं नाकं रुहेयम् ।  
देवस्याहं संवितुः सुवे सत्यप्रसवसः  
बृहस्पतेरुत्तमं नाकमरुहम् ॥ १० ॥  
बृहस्पते वार्जं जय बृहस्पतये वार्चं यदतु  
बृहस्पतिं वार्जं जापयत ॥ ११ ॥  
॥ १९ ॥ ( वा० य० १०।५ )

बृहस्पतये स्वाहा ॥ ५ ॥  
॥ २० ॥ ( वा० य० ३६।० )  
यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो  
वार्तिहृष्णं बृहस्पतिर्मे तदधातु ।  
शं नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः ॥ २ ॥  
( अथर्व० २।१३।०-३ )  
अथर्वः । बृहस्पतिः । त्रिष्टुप् ।

परि धत्त धत्त नो वर्चसिमं  
ज्रामृत्यं कणुत दीर्घमायुः ।  
बृहस्पति प्रार्थच्छ्रदासं एतत्  
सोमाय रात्रे परिधातुवा तं ॥ २ ॥

परीदं वासो अधिधाः स्वस्तये  
अभूर्गृष्टीनामभिश्चस्तिपा उ ।

शतं च जीवः शरदः पुरुची  
रायश्च पोषमुपसंव्ययस्व

॥ ३ ॥

॥ ६१ ॥ (अथर्व० ७।८।१)

उपरिवश्रव । निष्पृ ।

मद्रादधि श्रेयः प्रेहि  
वृहस्पतिः पुरस्ता ते अस्तु ।

अथेममुस्या वर आ पृथिव्या

आरेक्षन्तु कृणुहि सर्ववीरम्

॥ १ ॥

॥ ७० ॥ (अथर्व० १९।१८।१०)

अथर्व । द्विपदा प्राजापत्या निष्ठुप ।

वृहस्पतिं ते विश्वदेववन्तमुच्छन्तु ।

ये माघायव ऊर्वापो दिशोभिदासात् ॥१०॥

वृहस्पति-सहचारी देवगणः ।

(ऋ० १।३।३)

मेधातिथि काण्वः । इन्द्रवायुवृहस्पतिमित्रामिषूषमगा

दित्यमध्वर्याः । गायत्री ।

इन्द्रवायु वृहस्पतिं मित्रामिषूषं भगम् ।

आदित्यान्मारुतं गुणम्

॥ ३ ॥

(ऋ० ४।४९।१-६)

वामदेवो गौतमः । इन्द्रावृहस्पती । गायत्री ।

इदं वामास्ये हविः श्रियमिन्द्रावृहस्पती ।

उक्तं मर्दश्च यस्यते

॥ १ ॥

अयं वां परि पिच्यते सोमं इन्द्रावृहस्पती ।

षातुर्मदाय पीतये

॥ २ ॥

आ नं इन्द्रावृहस्पती गृहमिन्द्रश्च गच्छतम् ।

गोमपा सोमपीतये

॥ ३ ॥

अस्मे इन्द्रावृहस्पती रयिं घत्तं शतग्विर्नम् ।

अघावन्तं गृहमिषम्

॥ ४ ॥

इन्द्रावृहस्पती वयं मृत्ये गीर्भिर्देवामहे ।

अस्य सोमस्य पीतये

॥ ५ ॥

सोममिन्द्रावृहस्पती पिबतं दाम्नुषो गृहे ।

मादयेथां तदौकसा

॥ ६ ॥

(ऋ० ४।५०।१०, ११)

वामदेवो गौतमः । इन्द्रावृहस्पती । जगती, त्रिष्टुप ।

इन्द्रश्च सोमं पिबतं वृहस्पते

अस्मिन्यज्ञे मन्दसाना वृषण्वस ।

आ वां विशन्तिवन्देवः स्वामुवः

अस्मे रयिं सर्ववीरं नि यच्छतम् ॥ १० ॥

वृहस्पते इन्द्र वधतं नः

सचा सा वां सुमतिभूत्वस्मे ।

अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीः

जजस्तमयो वनुपामरातीः

॥ ११ ॥

(ऋ० ६।४७।१०)

ययो भारद्वाजः । देव-भूमि-वृहस्पतीन्द्राः । त्रिष्टुप ।

अगव्युति क्षेत्रमार्गान्म देवा

उर्वी सती भूमिर्हरणाभूत् ।

वृहस्पते प्र चिकित्सा गर्विष्ठौ

इत्था सते अरिश्च इन्द्र पन्थाम्

॥ २० ॥

(ऋ० ७।९७।१०)

मैत्रावरीणर्वशिष्ठः । इन्द्रावृहस्पती । त्रिष्टुप ।

वृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वोः

दिष्पस्येष्टाथे उत पार्थिवस्य ।

घत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद्

युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः

॥ १० ॥

(ऋ० ८।९६।१५)

तिरथीरोगिरथो युताथो वा माहतः । इन्द्रावृहस्पती । त्रिष्टुप ।

अर्घं द्रप्सो अश्वमत्या उपस्ये

अधोरयत् तन्वं तित्विपाणः ।

विशो अदेवीरम्याः चरन्तीः

वृहस्पतिना युजेन्द्रः ससाहे

॥ १५ ॥

(१५)



( अ० १०।१६७।३ )

विश्वामित्र-त्रमदमो । सोम-वरुण-बृहस्पति-अनुमति-मघवत्-  
घाता-विघातारः । अगती ।

सोमस्य राक्षो वरुणस्य धर्मणि

बृहस्पतेरनुमत्या उ धर्मणि ।

तवाहमद्य मघवन्नुपस्तुतो

घातुर्विघातः कलशो अमक्षयम् ॥ ३ ॥

( ? ) बृहस्पतिसवितारौ, बृहस्पत्यादयः ।

( या० य० १७।८-९ )

बृहस्पते सवितर्योधयैन्

संश्रितं चित्सन्तुरांशं संधं जिज्ञासि ।

वर्धयैनं महते सौमगाय

विश्वं एनमनु मदन्तु देवाः ॥ ८ ॥

अमुन्नभ्यादध यद्यमस्य

बृहस्पते अभिशस्तेरष्ट्रः ।

प्रत्यौहतामश्विना मृत्युर्मस्माद्

देवानामग्रे भिपजा शचीभिः ॥ ९ ॥

( अथर्व० १।८।१-२ )

यातनः । बृहस्पतिः अश्विनौ । अनुष्टुप् ।

इदं हविषां तु धानान् नदी केनमिवा बहत् ।

य इदं स्त्री पुमानकरीह स स्तुवतां जनः ॥ १ ॥

अयं स्तुवान् आगमदिमं स्म प्रति हयत ।

बृहस्पते वधे लब्ध्वामीपोमा वि विष्यतम् ॥ २ ॥

( अथर्व० १।६९।१ )

अथर्वः । अग्निः सूर्यः बृहस्पतिः । अनुष्टुप् ।

पाथिवस्य रसे देवा मर्गस्य तन्नोऽक्षं चले ।

आयुष्यमिसा अग्निः

सूर्या वर्च आ धाव बृहस्पतिः ॥ १ ॥

( अथर्व० ३।१४० )

ब्रह्मा । अर्यमा, पूषा, बृहस्पतिः इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

सं वः सृजत्वर्यमा सं पूषा सं बृहस्पतिः ।

समिन्द्रो यो धनं जयो मरिं पुष्यत यदसु ॥ २ ॥

( अथर्व० ३।१०।३, ४, ७ )

वसिष्ठः । ३ अर्यमा, मघा, बृहस्पतिः, देवीः, ४ सोमः, अग्निः,  
आदित्यः, विष्णुः, ब्रह्मा, बृहस्पतिः, ७ अर्यमा, बृहस्पतिः,  
इन्द्रः, वातः, विष्णुः, सरस्वती, सविता, वाजो । अनुष्टुप् ।

प्र णो यच्छत्वर्यमा प्र मगः प्र बृहस्पतिः ।

प्र देवीः प्रोत सुनृतां रधि देवी दधातु मे ॥ ३ ॥

सोमं राजानमवसेऽग्निं गीर्भिर्हवामहे ।

आदित्यं विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिं ॥ ४ ॥

अर्यमणं बृहस्पतिमिन्द्रं दानाय चोदय ।

वातं विष्णुं सरस्वतीं सवितारं च याजिनम् ॥ ७ ॥

( अथर्व० ३।२६।६ )

अथर्वः । बृहस्पतिगुता अवस्वन्तः । अगती ।

येऽस्मां सोर्वायां दिश्यवस्वन्तो

नाम देवास्तेषां वो बृहस्पतिरिषवः ।

ते नो मूढत ते नोऽधि ब्रूत

तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥ ६ ॥

( अथर्व० ३।१७।६ )

अथर्वः । बृहस्पतिः, शिवे, वषेम् । पंचपदा ककुम्मटी गमांऽष्टिः ।

ऊर्वा दिग्बृहस्पतिरधिपतिः ।

श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषवः ।

तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो

रक्षितभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु ।

योऽऽसान्द्रेष्टि यं वयं द्विमः

तं वो जम्भे दध्मः ॥ ६ ॥

( अथर्व० ४।१।१-७ )

वेनः । बृहस्पतिः, आदित्यः । त्रिष्टुप्, १, ५ परोऽनुष्टुप् ।

ब्रह्मं जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्

वि सीमतः सुरुचो वेन आवः ।

स बुध्न्या उपमा अर्यस्य विष्टाः

सतश्च योनिमसंतश्च वि धं ॥ १ ॥

इयं पित्र्या राष्ट्रयेत्त्वग्रै  
प्रथमायं जुषे सुवनेष्टाः ।  
तस्य एतं सुरुचं द्वारमहं  
धर्मं श्रीणन्तु प्रथमायं धास्यवे ॥ २ ॥

प्र यो ज्ञे विद्वानस्य वन्धुः  
विश्वो देवानां जनिमा विवक्ति ।  
ब्रह्म ब्रह्मण उज्जमात् मध्यात्  
नीचैरुच्चैः स्वधा अभि प्र तस्यौ ॥ ३ ॥

स हि दिवः स पृथिव्या ऋतुसा  
मही क्षेमं रोदसी अस्कमायत् ।  
महान्मही अस्कमायद्वि जातो  
घां सद्य पाथिवं च रजः ॥ ४ ॥

स पुष्पाद्राष्ट्रं जुषोऽभ्यग्रं  
पृथुस्पर्तिर्द्वेवता तस्य सम्राट् ।  
अहर्षच्छुक्रं ज्योतिषो जनिष्ट  
अयं धूमन्तो वि वसन्तु विप्राः ॥ ५ ॥

नूनं तदस्य क्वायो हि नोति  
महो देवस्य पर्यस्य धाम ।  
एष जज्ञे बहुभिः साकर्मित्या  
पूर्वं अर्घे विपिते मृसन्तु ॥ ६ ॥

योऽयं वानं पितरं देववन्धुं  
पृथुस्पर्ति नमसायं च गच्छात् ।  
त्वं विधेयां जनिता यथामः  
इविद्वेषो न दमायन्वु धारान्

(अथर्ववेद ५.१६.१०)

१०१. १०२. १०३. १०४. १०५. १०६. १०७. १०८. १०९. ११०.

जार्धना मद्रना यात्रमुर्ध्वी  
१११. ११२. ११३. ११४. ११५. ११६. ११७. ११८. ११९. १२०.

वृहस्पते ब्रह्मणा याज्ञवाह  
यज्ञो अयं स्वर्गिरिदं यजमानाय स्वाहा ॥ १२ ॥

(१) त्विषिः, वृहस्पतिः ।

॥ १४ ॥ (अथर्ववेद ६.१८.१-४)

अथर्वो (वर्चस्वामः) । त्रिष्टुप् ।

सिंहे व्याघ्र उत या पृदाकौ  
त्विषिरग्नौ ब्राह्मणे ध्येयं या ।  
इन्द्रं या देवी सुमगां जजान  
सा न ऐतु वर्चसा संविदाना ॥ १ ॥

या इस्तिनि द्वीपिनि या हिरण्ये  
त्विषिरप्सु गोषु या पुरुषेषु ।  
इन्द्रं या देवी सुमगां ॥ २ ॥

रथे अक्षेष्वापमस्य वाजे  
वाते पर्जन्ये वरुणस्य शुम्ने ।  
इन्द्रं या देवी सुमगां ॥ ३ ॥

राजन्ये दुन्दुभावार्यतायां  
अश्वस्य वाजे पुरुषस्य मायौ ।  
इन्द्रं या देवी सुमगां ॥ ४ ॥

॥ १५ ॥ (अथर्ववेद ६.१९.१-३)

१ अथर्वी, २ त्रिष्टुप्, ३ अनुष्टुप् ।

यज्ञो हविर्वर्धतामिन्द्रं जूतं  
सुमृतं सहस्रं  
दीर्घाय चर्ष  
वर्धय ज्येष्ठ ॥ १ ॥

विधेम

( ३ ) बृहस्पतिः ( इन्द्रः, द्यावापृथिवी, सविता ) ।

॥ २६ ॥ ( अथर्व० ६।१८।१-२ )

( यशस्कामः ) । १ जगती, २ प्रस्तावपङ्क्तिः ।

यशसं मेन्द्रो मघवान् कृणोत  
यशसं द्यावापृथिवी उमे इमे ।  
यशसं मा देवः सविता कृणोत  
प्रियो दातुर्दक्षिणाया इह स्याम् ॥ १ ॥  
यथेन्द्रो द्यावापृथिव्योर्यशस्वान्  
यथाऽऽप ओषधीषु यशस्वतीः ।  
एवा विश्वेषु देवेषु  
वयं सर्वेषु यशसः स्याम ॥ २ ॥

( अथर्व० ६।७३।१ )

अथर्वा । वरुणसोमोऽग्निमबृहस्पतिवसवः । शुरेक् ।

एह यातु वरुणः सोमो  
अभिर्बृहस्पतिर्वसुभिरेह यातु ।  
अस्य श्रियमुपसंयातु सर्व  
उग्रस्य चेतुः सं मनसः स जाताः ॥ १ ॥

( अथर्व० ६।१०३।१ )

चच्छीचनः । बृहस्पतिः सविता मित्रो अर्यमा भगो अश्विनौ ।  
अनुष्टुप् ।

सुदानं मो बृहस्पतिः सुदानं सज्जितं कर्तु ।  
सुदानं मित्रो अर्यमा सुदानं भगो अश्विनौ ॥ १ ॥

( अथर्व० ७।३३।१ )

भद्रा । मरुतः, पूषा, बृहस्पतिः, अग्निः । पद्यापङ्क्तिः ।

स मा सिचन्तु मरुतः  
सं पूषा सं बृहस्पतिः ।

सं मायमग्निः सिचतु प्रजया च घनेन च  
दीर्घमायुः कृणोत मे ॥ १ ॥

( अथर्व० ७।११।१ )

अंगिराः । इन्द्रा बृहस्पती । मिष्टुप् ।

बृहस्पतिर्नः परिपातु पश्चात्  
उतोत्तरस्मादधरादध्यायोः ।  
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः  
सखा सखिभ्यो वरीयः कृणोत ॥ १ ॥

( अथर्व० ७।५३।१ )

भद्रा । बृहस्पतिः, अश्विनौ । मिष्टुप् ।

अमुत्रभूयादधि यद्यमस्य  
बृहस्पतेरभिशस्तेरभुचः ।  
प्रत्यौहतामश्विना मृत्युमस्मद्  
देवानामग्रे भिपजा शचीभिः ॥ १ ॥

( अथर्व० १९।४०।१ )

भद्रा । बृहस्पतिः विश्वेदेवाश्च । परानुष्टुप्, मिष्टुप् ।

यन्मे छिद्रं मनसो यच्च वाचः  
सरस्वती मन्युमन्तैर्जगाम ।  
विश्वैस्तदेवैः सह सविदानः  
सं दधातु बृहस्पतिः ॥ १ ॥

( अथर्व० २७।१३।१ )

वामदेवः । इन्द्राबृहस्पती । जगती ।

इन्द्रश्च सोमं पिबत बृहस्पते  
असिन्यज्ञे मन्दसाना वृषन्वसू ।  
आ वा विश्वन्त्विन्दवः स्वाध्वः  
असे रयि सर्ववरिर्निर्यच्छतम् ॥ १ ॥

( २०८ )

## अध्यापकविघ्नशमनम् ।

॥ १ ॥ (अथर्व० ७।१४।६-९) (१-२) १ मङ्गा, २ मृगः। १ शत्रुघ्नशमनी, २ इन्द्रः। अनुष्टुप्।

ऋचं सामं यजामहे याम्यां कर्मणि कुर्वते । एते सदांसि राजतो युञ्जं देवेभ्यं यच्छतः ॥ १ ॥

ऋचं साम यदप्राक्षं हविरोजो यजुर्मलम् । एष मा तस्मान्मा हिंसीद्विदः पृष्टः शचीपते ॥ २ ॥  
(११०)





संरक्षण-विभागः ।

## इन्द्रदेवता ।

संरक्षण-मन्त्री ।

(१-६९) मधुच्छन्दा वैशामित्रः । गायत्री ।

॥ १ ॥ ( ऋ० १।३।४-६ )

इन्द्रा याहि चित्रमानो सुता इमे त्याययः ।

अण्वीमिस्तना पुतासः ॥ ४ ॥

इन्द्रा याहि धियेपितो विप्रजतः सुतार्यतः ।

उप ग्रहाणि धाधतः ॥ ५ ॥

इन्द्रा याहि तूतुजान् उप ग्रहाणि हरिवः ।

सुते दधिष्व नृधनः ॥ ६ ॥

॥ १ ॥ ( ऋ० १।४।१-१० )

सुरूपकृत्नुमतये सुदुर्धामिव गोदुर्हे ।

उदुर्धमसि धर्विधवि ॥ १ ॥

उर्ध्व नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिव ।

गोदा इद् रेयतो मर्दः ॥ २ ॥

अथा ते अन्तमानां विधाम सुमतीनाम् ।

मा नो अति ख्य भा गहि ॥ ३ ॥

१

परेहि विप्रमस्तुत-मिन्द्रं पृच्छा धिपश्चितम् ।

यस्ते सखिभ्य आ वरम् ॥ ४ ॥

उत श्रुयन्तु नो निदो निरन्यतश्चिदारत ।

दधाना इन्द्र इद् दुषः ॥ ५ ॥

उत नः सुमनां अरि-सर्वेषुर्दत्तं कृप्या ।

स्यामेदिन्द्रस्य शर्मेणि ॥ ६ ॥

एमाशुमाशये भर यज्ञधियं नृमादनम् ।

पतयन् मन्दयत्सखम् ॥ ७ ॥

अस्य पीत्वा शतक्रतो धनो धृत्राणामभवः ।

प्रायो धार्जेषु धार्जिनम् ॥ ८ ॥

तं त्या धार्जेषु धार्जिनं धार्ज्यामः शतक्रतो ।

धर्नानामिन्द्र सातये ॥ ९ ॥

यो ययोऽथर्निर्महान् त्सुपाः सुन्यतः सखा ।

तस्मा इन्द्राय गायत ॥ १० ॥

(१३)

॥ ३ ॥ (अ० १।५।१-१०)

आ त्वेता नि पीदते—न्द्रमभि प्र गांयत ।

सखायः स्तोमयाहसः ॥ १ ॥

पुरुतमं पुरुणा—मीशानं वार्याणाम् ।

इन्द्रं सोमं सचा सुते ॥ २ ॥

स पा नो योग आ मुंयत् स राये स पुरंध्याम् ।

गमद्राजैभिरा स नः ॥ ३ ॥

यस्य संस्थे न वृण्वते हरीं समस्तु शत्रवः ।

तस्मा इन्द्राय गायत ॥ ४ ॥

सुतपातै सुता इमे शुचयो यन्ति वीतये ।

सोमासो दध्याशिरः ॥ ५ ॥

त्वं सुतस्य पीतये सुयो वृद्धो अजायथाः ।

इन्द्र ज्यैष्ठ्याय सुकतो ॥ ६ ॥

आ त्वा विशन्वाशवः सोमास इन्द्र गिर्वेणः ।

शं तं सन्तु प्रवैतसे ॥ ७ ॥

त्वां स्तोमा अवीवृधन् त्वामुनया शतक्रतो ।

त्वां वर्धन्तु नो गिरः ॥ ८ ॥

अक्षितोतिः सनेदिमं वाजमिन्द्रः सहस्रिणम् ।

यस्मिन् विश्वानि पीस्या ॥ ९ ॥

मा नो मर्ता अभि द्रुहन् तूनामिन्द्र गिरिणः ।

ईशानो यवया धूमम् ॥ १० ॥

॥ ४ ॥ (अ० १।६।१-३, १०)

युजन्ति ध्रुमंरुं चरन्तं परि तस्थुर्यः ।

रोचन्ते रोचना दिवि ॥ १ ॥

युजन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे ।

शोणा धृणू नृयाहसा ॥ २ ॥

वेतुं वृण्वन्नेतये पेशो मर्या अपेशसे ।

समुपद्रिराजयथाः ॥ ३ ॥

इतो पां मातिमीमहे दियो वा पार्थिवादधि ।

इन्द्रं महो वा रजसः ॥ १० ॥

॥ ५ ॥ (अ० १।७।१-१०)

इन्द्रमिन्द्राथिनो बृह—दिन्द्रमर्चैर्गिरिणः ।

इन्द्रं वाणीरनुपत ॥ १ ॥

इन्द्र इक्षयोः सचा संमिदल आ यंचोयुता ।

इन्द्रो धृषी हिंरण्ययः ॥ २ ॥

इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्य रोहयद् दिवि ।

यि गोमिर्दिमेरयव ॥ ३ ॥

इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रघनेषु च ।

उग्र उग्रामिहृतिभिः ॥ ४ ॥

इन्द्रं वयं महाघ्नन् इन्द्रमर्चं हयामहे ।

युजं वृत्रेषु वज्रिणम् ॥ ५ ॥

स नो वृषघ्नमुं चवं सत्रादावृत्रपां वृधि ।

अस्मभ्यमप्रतिष्कृतः ॥ ६ ॥

तुजेतुञ्जे य उचरे स्तोमा इन्द्रस्य वज्रिणः ।

न विन्दे अस्य सुपुतिम् ॥ ७ ॥

वृषा यूथेव वंसंगः कृष्टीरियत्योजसा ।

ईशानो अमतिष्कृतः ॥ ८ ॥

य एकध्वरणीनां धसूनामिज्यति ।

इन्द्रः पञ्च क्षितीनाम् ॥ ९ ॥

इन्द्रं यो विभ्वतस्परि हवामहे जनैर्भ्यः ।

अस्माकमस्तु केवलः ॥ १० ॥

॥ ६ ॥ (अ० १।८।१-१०)

एन्द्रं सानासि रयि सजित्वानं, सदासहम् ।

वर्षिष्ठमुतये भर ॥ १ ॥

नि येन मुधिहृत्यया नि वृत्रा रणधामहे ।

त्वोतासो न्यर्वेता ॥ २ ॥

इन्द्र त्वोतासु आ वयं धृजं घना दंदीमहि ।

जयेम सं युधि स्पृधः ॥ ३ ॥

वयं शरैर्मिरस्तमि—रिन्द्र त्वया युजा वयम् ।

सासधामं पृतन्यतः ॥ ४ ॥

महो इन्द्रः परश्च नु महित्वमस्तु वज्रिणे ।  
 चीनं प्रथिना शर्वः ॥ ५ ॥  
 समोहे वा य आशत नरस्तोकस्य सनिती ।  
 विप्रोसो वा धियायव ॥ ६ ॥  
 यः कुक्षिः सोमपातमः समुद्र ईव पिबन्ते ।  
 उर्वीराणो न काकुर्द ॥ ७ ॥  
 एषा ह्यस्य मूतना विरप्सी गोमती मुही ।  
 एषा शाखा न दाशुर्व ॥ ८ ॥  
 एषा हि ते विवृतय ऊतय इन्द्र मार्यते ।  
 सद्यश्चिक् सन्ति दाशुर्व ॥ ९ ॥  
 एषा ह्यस्य काम्या स्तोम उक्थं च शस्या ।  
 इन्द्राय सोमपीतये ॥ १० ॥  
 ॥ ७ ॥ (अ० १।१।१-१०)  
 इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विभ्वभिः सोमपर्वभिः ।  
 महा भूमिधरोजसा ॥ १ ॥  
 एमैन सृजता सुते मन्दिमिन्द्राय मन्दिने ।  
 चक्रि विभ्वानि चनेये ॥ २ ॥  
 मत्स्या सुशिम मन्दिभिः स्तोमैर्मिर्विभ्वचरणे ।  
 सख्येषु सत्येन्या ॥ ३ ॥  
 असृप्रमिन्द्र ते गिरः प्रति त्वामुर्ददासत ।  
 भजोपा वृषमं पतिम् ॥ ४ ॥  
 सं चौदय चित्रमर्वाग् राधे इन्द्र वरेण्यम् ।  
 असदित ते विभु प्रमु ॥ ५ ॥  
 अस्मान्सु तत्र चोदयेन्द्र राये रमस्वतः ।  
 तुर्वेष्टुम्न यशस्वतः ॥ ६ ॥  
 सं गोमदिन्द्र याजय दस्मे पृथु भ्रजो बृहद् ।  
 विभ्वायुधैर्हाक्षितम् ॥ ७ ॥  
 अस्मे धेहि ध्रुवो बृहद् शुम्नं सहस्रमातेमम् ।  
 इन्द्र ता रथिनीरि ॥ ८ ॥  
 यलोरिन्द्र यलुपति गीर्मिर्गन्तं ऋग्मिर्यम् ।  
 होम गन्तारमुतये ॥ ९ ॥

सुतेसुते स्योक्से बृहद् बृहत पदरिः ।  
 इन्द्राय श्रुमर्चति ॥ १० ॥  
 ॥ ८ ॥ (अ० १।१०।१-११) अनुष्टुप् ।  
 गायन्ति त्वा गायत्रिणो ऽर्चन्त्यर्कमर्चिणः ।  
 ब्रह्माणस्त्वा शतशत उद् वृशमिव येमिरे ॥ १ ॥  
 यत् सानोः सानुमारुहद् भूर्यस्पष्ट कर्त्तवम् ।  
 तदिन्द्रो अर्थं चेतति युयेनं घृणिर्नजति ॥ २ ॥  
 युस्या हि केदिना हरी वृषणा कश्यपा ।  
 अथा न इन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुति चर ॥ ३ ॥  
 एहि स्तोमो अभि स्वयं ऽभि वृणीष्या ईव ।  
 ब्रह्म च नो वसो सवेन्द्र यज्ञं च वर्धय ॥ ४ ॥  
 उक्थमिन्द्राय शंस्यं वर्धनं पुरुनिषिधे ।  
 शक्रो यया सुतेषु णो रागणत् सद्येषु च ॥ ५ ॥  
 तमिन् सखित्व ईमे तं राये तं सुवीर्ये ।  
 स शक्र उत नः शक्र-दिन्द्रो वसु दयमानः ॥ ६ ॥  
 सुविवृतं सुनिरज-मिन्द्र त्वादातमिचक्ष ।  
 गयामर्षं वृजं वृधि वृणुष्व राधो अद्रिव ॥ ७ ॥  
 नहि त्वा रोदसी उमे ऋचायमानमिन्यत ।  
 जेषु स्पर्धेतीरपः सं गा अस्मभ्यं धनुहि ॥ ८ ॥  
 आशुत्कर्णं धुधी हव नू चिहधिष्व मे गिरं ।  
 इन्द्र स्तोममिमं मम कृष्या युजश्चिदन्तरम् ॥ ९ ॥  
 विष्वा हि त्वा वृषन्तमं वाजेषु हवनधुतम् ।  
 वृषन्तमस्य इमह ऊति सहस्रसातेमाम् ॥ १० ॥  
 आ त न इन्द्र कोशिक मन्दसानः सुते पिब ।  
 नय्यमायुः प्र स तिर कृधी सहस्रसामृषिम् ॥ ११ ॥  
 परि त्वा गिरिणो गिरं इमा भवन्तु विभ्वतः ।  
 वृद्धायुमनु वृज्यो जुष्टो भवन्तु जुष्टयः ॥ १२ ॥  
 ॥ ९ ॥ (अ० १।१।१-८)  
 अथा मापुष्टदशः । अनुष्टुप् ।  
 इन्द्रं विभ्वा अवीवृधन् त्समुद्रव्यचमं गिरं ।  
 रथीतमं रथिना वाजानां सत्पतिं पतिम् ॥ १ ॥

सुखे तं इन्द्र पाजिनो मा भेम शयसम्पते ।  
 त्वामभि प्र णोनुमो जेतामपराजितम् ॥ २ ॥  
 पूर्वोत्तिन्द्रस्य रातयो न वि दस्यन्त्युतयः ।  
 यद्री धाजस्य गोमतेः स्तोमस्यो महते मघम् ॥ ३ ॥  
 पुरां भिन्दुर्युषां क्वि—रामितीजा अजायत ।  
 इन्द्रो विध्वंस्य कर्मणो धृतां पञ्चो पुंगुपुतः ॥ ४ ॥  
 त्वं वलस्य गोमतो ऽर्पावरद्वियो विलम् ।  
 त्वां देवा अविभ्युपस् तुज्यमानास आविपुः ॥ ५ ॥  
 तद्वाहं शूर रातिभिः प्रत्यायं सिन्धुमायदनं ।  
 उपातिष्ठन्ति गिर्वणो विदुष्टे तस्य कारवः ॥ ६ ॥  
 मायाभिरिन्द्र मायिनं त्वं शुष्णमघातिरः ।  
 विदुष्टे तस्य मेधिरास् तेषां अवांस्युत्तिर ॥ ७ ॥  
 इन्द्रमीशानमोजला—भि स्तोमां अनूपत ।  
 सहस्रं यस्य रातयं उत वा सन्ति भूयसीः ॥ ८ ॥

॥ १० ॥ ( १।१६।१-९ )

मेधातिथिः काण्व. । गायत्री ।

आ त्वां वहन्तु हरयो वृषणं सोमपीतये ।  
 इन्द्रं त्वा सूरचक्षसः ॥ १ ॥  
 इमा धाना घृतस्तुयो हरी ह्योषं वक्षतः ।  
 इन्द्रं सुखतमे रथे ॥ २ ॥  
 इन्द्रं प्रातर्हवामह इन्द्रं प्रयत्नध्वरे ।  
 इन्द्रं सोमस्य पीतये ॥ ३ ॥  
 उप नः सुतमा गहि हरिभिरिन्द्र केशिभिः ।  
 सुते हि त्वा हवामहे ॥ ४ ॥  
 सोम नः स्तोममा गु—हृषेदं सर्वं सुतम् ।  
 गौरो न वृषितः पिब ॥ ५ ॥  
 इमे सोमासु इन्द्रवः सुतासो अघि बर्हिषि ।  
 तौ इन्द्र सहसे पिब ॥ ६ ॥  
 अयं ते स्तोमो अग्रियो हविस्पृगस्तु शतमः ।  
 अथा सोमं सुत पिब ॥ ७ ॥  
 विध्वमित् सर्वं सुत—मिन्द्रो मदाय गच्छति ।  
 वृत्रहा सोमपीतये ॥ ८ ॥

मेमं नः वाममा वृषण गोमिरथः शतमनो ।  
 स्तवाम त्वा हवाप्यः ॥ ९ ॥

॥ ११ ॥ ( का० ८।१।१-२९ )

[ प्रणायो ( धोरः ) क. का. १-२९ मेघातिथि-मेघातिथि  
 काण्वो । ] १-४ प्रणाय = ( विषया वृद्धी, यथा ह्ये. १।१ ),  
 ५-२९ वृद्धी ।

मा चित्तुग्यद् वि दंसत सलायो मा रिरप्यत ।  
 इन्द्रमित् स्तोता वृषणं सखा मुने ॥ १ ॥  
 मुदृगकथा च दंसत ॥ २ ॥  
 अयकृक्षिणं वृषमं यथाजुं गां न चर्पणीसर्गम् ।  
 विद्वेषणं संयननोभयंकरं मर्दिष्ठमुमपाविर्नम् ॥ ३ ॥  
 यक्षिदि त्वा जना इमे नाना हवन्त ऊतये ।  
 अस्माकं ब्रह्मेदमिन्द्र भूतु ते ॥ ४ ॥  
 ऽहा विध्वां च वर्धनम् ॥ ५ ॥  
 वि तर्तयन्ते मघयन् विपाक्षितोऽयं विषो जवानाम् ।  
 उप क्रमस्य पुरुषपुमा भरं धाजं नेदिष्ठमुतये ॥ ६ ॥  
 महे च न त्वामद्विष्यः परां शुल्काय देयाम् ।  
 न सहस्राय नायुताय यज्ञियो ॥ ७ ॥  
 न शताय शतामघ ॥ ८ ॥  
 यस्यो इन्द्रासि मे पितु—रुत भ्रातृमुज्जत ।  
 माता च मे छदययः सुमा वंसो ॥ ९ ॥  
 यस्तुत्वनाय राधसे ॥ १० ॥  
 कैयय केदंसि पुरुषा विदि, ते मनः ।  
 अलपि युष्म खजकृत् पुन्दर ॥ ११ ॥  
 प्र गायत्रा अगासिपुः ॥ १२ ॥  
 प्रास्मै गायत्रमर्चत वावातुर्यः पुन्दरः ।  
 याभिः काण्वस्योपं बर्हिषासदं ॥ १३ ॥  
 यासदं वज्री भिनत् पुरः ॥ १४ ॥  
 ये ते सन्ति दशग्विनः शतिनो वे संहर्षिणः ।  
 अर्वांसो ये ते वृषणो रघुद्रुवः ॥ १५ ॥  
 तेभिर्नस्तूयमा गहि ॥ १६ ॥



आ त्व॑द्य स॒धर्दु॒यां हु॒वे गा॒यत्र॒वो॒पस॒म् ।  
 इन्द्र॑ धेनुं सु॒दु॒धाम॒न्यामि॒षं—मु॒रु॒धा॒राम॒रु॒क॒न॒म् ॥ १० ॥  
 यत् तु॒दत् स॒र प॒तशं॑ य॒द् वा॒तस्य॑ प॒णिनां॑ ।  
 ब॒ह्वत् क॒त्स॒मा॒र्जुने॒यं श॒त॒क्र॒तुः  
 त्स॒रं ग॒न्ध॒र्वम॒स्तु॒तम् ॥ ११ ॥  
 य ऋ॒ते चि॒दमि॒ध्रिषः॑ पु॒रा ज॒घ्र॒भ्य आ॒तु॒दः ।  
 संघा॑ता संधिं म॒घवा॑ पुरु॒वसुः॑  
 इ॒ष्कर्ता॑ वि॒ह्व॒तं पु॒नः ॥ १२ ॥  
 मा र्भ॑म् नि॒ष्टया॑ इ॒वे—नृ॒ त्वद॑र॒णा इ॒व ।  
 घना॑नि न प्र॒जहि॒तान्य॑द्रि॒वो  
 दुरो॑पा॒सो अ॒म॒ग्नम॒हि ॥ १३ ॥  
 अ॒म॒ग्नम॒हीद॑ना॒शवो॑ ऽनु॒प्रास॑श्च वृ॒त्रह॑न् ।  
 स॒क्रव॑ सु॒ तं म॒हता॑ श॒र राघ॑सा  
 ऽनु॒ स्तोमं॑ मु॒दिम॒हि ॥ १४ ॥  
 य॒दि स्तोमं॑ म॒म श्र॒व—इ॒सा॒क॒मिन्द्र॑मि॒न्द्र॒यः ।  
 ति॒रः प॒यि॒त्रं स॒सृवा॑सं आ॒शवो॑  
 म॒न्द॒न्तु तु॒ग्न्या॒पृथः॑ ॥ १५ ॥  
 आ त्व॑द्य स॒धस्तु॑तिं या॒वातुः॑ स॒रयु॒रा ग॑हि ।  
 उ॒प॒स्तुति॑र्भ॒योनां॑ प्र त्वा॒द्य-  
 त्य॒धा ते॒ यमि॑म सु॒पुति॑म् ॥ १६ ॥  
 सो॒ता हि सोम॑म॒द्रि॒मि—रे॒मेन॑म॒प्सु धा॑यत ।  
 ग॒व्या य॒ज्ञेय॑ वा॒सय॑न्त॒ इन्द्रो॑  
 नि॒र्य॑श्नन् वृ॒क्षणा॑भ्यः ॥ १७ ॥  
 अ॒ध ऽमो॑ अ॒र्घ या॑ दि॒यो बृ॒हतो॑ रौ॒च॒नाद॑धि ।  
 अ॒या व॑र्ध॒स्व त॒न्या गिरा॑ म॒मा  
 ऽऽजा॑ता सु॒क्रतो॑ पू॒ण ॥ १८ ॥  
 इन्द्रा॑य सु॒मुदि॑न्त॒मं सोमं॑ सो॒ता च॑रे॒ण्यम् ।  
 श॒क्र ष॑णं पी॒पय॑द् वि॒श्व॒या धि॒या  
 हि॒न्या॒नं न या॑ज॒युम् ॥ १९ ॥  
 मा त्या॑ सोम॑स्य ग॒र्हया॑ स॒दा याच॑ग्र॒हं गिरा॑ ।  
 मूर्षि॑ म॒गं न स॒र्वेने॒षु धु॒क्रुध॑  
 क ई॒शानं॑ न या॒चिप॑त् ॥ २० ॥

म॒दे॒ने॒षितं॑ म॒द—मु॒ग्रमु॒ग्रेण॑ श॒र्वसा॑ ।  
 वि॒श्वे॒षां त॒स्तारं॑ म॒द॒च्युतं॑  
 म॒दे हि॒ प्मा॒ द॒वाति॑ नः ॥ २१ ॥  
 शे॒वारे॑ वा॒यी पुरु॑ दे॒वो म॑र्तीय द्वा॒गुपे॑ ।  
 स सु॒न्यते॑ च॒ स्तु॒यते॑ च॒ रा॒सते॑  
 वि॒श्व॒ग॒र्तो अ॒रि॒पु॒तः ॥ २२ ॥  
 प॒न्द्र॒ याहि॑ म॒त्स्व चि॒त्रेण॑ दे॒व राघ॑सा ।  
 स॒पे न॑ प्रा॒स्यु॒दं स॒पीति॑भिः  
 आ सोमं॑मि॒रु स्फि॑रम् ॥ २३ ॥  
 आ त्वां स॒हस्र॑मा श॒तं यु॒का रथे॑ हि॒र॒ण्ये॒ ।  
 ग्र॒ह॒यु॒जो ह॑र॒य इन्द्र॑ के॒शि॒नो  
 ब॒र्हन्तु॑ सोम॑पी॒तये ॥ २४ ॥  
 आ त्वा॒ रथे॑ हि॒र॒ण्ये॒ ह॒री म॒यूर॑शे॒ष्या ।  
 शि॒ति॒प॒ष्ठा व॑ह॒ता म॒घ्यो अ॒न्य॒सो  
 वि॒वर्ष॑ण॒स्य पी॒तये॑ ॥ २५ ॥  
 पि॒त्रा त्व॑स्य गि॒र्व॒णः सु॒तस्य॑ पू॒षपा॑ इ॒व ।  
 पा॒रि॒ष्क॒न॒स्य रु॒सि॒न इ॒यमा॑सु॒तिः  
 चा॒रु॒र्म॒दाय॑ प॒त्यते॑ ॥ २६ ॥  
 य ए॒को अ॑स्ति॒ द्वे॒स॒नो म॒हो उ॒ग्रो अ॒भि म॒र्तः ।  
 ग॒म॒त् स शि॒घ्री न॑ स यो॒प॒दा ग॑म॒त्  
 ह॒यं न॑ पा॒रि य॑र्जति ॥ २७ ॥  
 त्वं पु॒रं च॑रि॒ष्ण॒र्षे व॒धेः शु॒ष्णस्य॑ स पि॒णक् ।  
 त्वं मा॒ अनु॑ च॒रो अ॒र्घ द्वि॒ता  
 य॒दिन्द्र॑ ह॒व्यो मु॒वः ॥ २८ ॥  
 म॒म त्या॑ स॒र उ॑दि॒ते म॑म॒ म॒भ्यन्दि॑ने दि॒वः ।  
 म॒म प्र॑पि॒त्ये अ॒पि॒श॒रं रे॒ व॒सो  
 आ स्तो॑मा॒सो अ॒वृ॒त्सत॑ ॥ २९ ॥  
 ॥ १२ ॥ (अ० ८।१।१-३०)  
 [ने॒राति॒वि का॒ण्व, (आ॒दि॒म त्रि॒यमे॒षध) ] ।  
 गा॒व॒श्री, २८ अ॒नु॒प॒ ।  
 इ॒दं व॑सो सु॒तम॒न्यः पि॒त्रा सु॒पू॒र्णमु॑द॒रम् ।  
 अ॒ना॒म॒यिन् रु॒मा ते॑ ॥ १ ॥ (११६)

नृभिर्धृतः सुतो अग्ने-रव्यो यारैः परितुतः ।	इच्छन्ति देवाः सुव्यन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति ।
अध्वो न तिक्तो नृयैर्यु ॥ २ ॥	यन्ति प्रमादमर्तन्द्वाः ॥ १८ ॥
तं ते ययं यथा गोभिः स्वादुर्मकर्म श्रीणन्तः ।	ओ सु प्र याहि वाजैभिर्मा हृणीथा ब्रह्मसात् ।
इन्द्रं त्यास्मिन्सधुमादे ॥ ३ ॥	महो इयं युर्वजानिः ॥ १९ ॥
इन्द्र इत् सोमपा एक इन्द्रः सुतपा विभ्यायुः ।	मो प्वृच दुर्हणावान् त्वायं कर्तारो अस्त ।
अन्तर्देवान् मर्त्यैश्च ॥ ४ ॥	अधीर इषं जामाता ॥ २० ॥
न यं शुक्रो न दुराशी न तृप्ता उरुव्यचंसम् ।	विद्या हंस्य वीरस्य भूरिवाधरी सुमतिम् ।
अपस्पृण्वते सुहावेम् ॥ ५ ॥	त्रिषु जातस्य मनीसि ॥ २१ ॥
गोभिर्यदीमन्य अस्मन् मृगं न या मृगयन्ते ।	आ त् पिञ्च कर्णमन्त्रं न घा विष शवसानात् ।
अमितसरन्ति धेनुभिः ॥ ६ ॥	यशस्तरं शतमूर्तिः ॥ २२ ॥
अय इन्द्रस्य सोमाः सुतासः सन्तु देवस्य ।	ज्येष्ठेन सोतुरिन्द्राय सोमं वीराय शक्राय ।
स्वे क्षये सुतपात्रः ॥ ७ ॥	भरा पिबन्नयौय ॥ २३ ॥
अयः कोशासः श्वोतन्ति तिस्रश्चम्वः सुपर्णाः ।	यो वेदिष्ठो अय्यधि-एवभाव्यतं जरिवम् ।
समाने अधि भार्मन् ॥ ८ ॥	वाजं स्तोतृभ्यो गोमेन्तम् ॥ २४ ॥
शुचिरसि पुनरिष्टाः क्षीरैर्मध्युत आशीर्तः ।	पन्यपन्यमित् सौतार आ धायत मघाय ।
इमा मन्दिष्टुः शूरस्य ॥ ९ ॥	सोमं वीराय शूराय ॥ २५ ॥
इमे त इन्द्र सोमा-स्तीया अस्मे सुतासः ।	पाता वृत्रहा सुत-मा घा गमधारे अस्मत् ।
शुक्रा आशिरं याचन्ते ॥ १० ॥	नि यमते शतमूर्तिः ॥ २६ ॥
ता आशिरं पुरोब्दाश-मिन्द्रेमं सोमं श्रीणीहि ।	पह हरीं ब्रह्मयुजां शम्भा वक्षतः सत्वायम् ।
रेवन्तं हि त्यां शूगोभि ॥ ११ ॥	ग्रीभिः धृतं गिर्वणसम् ॥ २७ ॥
हस्तु पीतासौ युष्यन्ते दुर्मदासो न सुरायाम् ।	स्वादयः सोमा आ याहि श्रीताः सोमा आ याहि ।
ऊधुनं नृमा जरन्ते ॥ १२ ॥	शिप्रिधृषीवः शचीयो नायमच्छा सधुमादेम् ॥ २८ ॥
रेवो इद् रेवतः स्तोता स्यात् त्वावतो मघोर्नः ।	स्तुतश्च यास्तेषां वर्धन्ति मूढे राधसे नृगणाय ।
मेतु हरिषः धृतस्य ॥ १३ ॥	इन्द्रं कारिणं वृधन्तः ॥ २९ ॥
उष्यं च न शस्यमान-मगोररिरा चिकेत ।	गिरश्च यास्ते गिर्वाह उषया च तुभ्यं ताति ।
न गायत्रं गीयमानं ॥ १४ ॥	सत्रा दधिरे शवीसि ॥ ३० ॥
मा न इन्द्र पीयलवे मा वर्धते परा दाः ।	एवेदेप तुविकुर्मि-वीजो एको वज्रदस्तः ।
शिखां शचीयः शचीभिः ॥ १५ ॥	सनादमृको दयते ॥ ३१ ॥
एयमुं त्या तदिदयां इन्द्रं त्यायन्तः सपायः ।	हन्ता वृत्रं दक्षिणेने-न्द्रः पुरु पुरहता ।
कण्या उषयेभिर्जरन्ते ॥ १६ ॥	महान् महीभिः शचीभिः ॥ ३२ ॥
न घेमन्यदा पपन यज्ञिग्रपसो नविष्टौ ।	यस्मिन् विभ्याश्चर्षणयः उत च्योता अयसि च ।
तयेतु स्तोमं चिकेत ॥ १७ ॥	अनु घेन्मन्दी मघोर्नः ॥ ३३ ॥ (१४)

एष पुतानि चकारे—न्द्रो विश्वा योऽति शून्ने ।  
 घाजदावा मघोनाम् ॥ ३४ ॥  
 प्रमर्ता रथं गव्यन्तं—मपाकाच्चिद् यमवति ।  
 इनो वसु स हि वोळ्हा ॥ ३५ ॥  
 सनिता विप्रो अर्षेद्वि—हन्ता वृत्रं नृमिः शूरः ।  
 सत्योऽविता विघन्तम् ॥ ३६ ॥  
 यज्ञध्वेनं प्रियमेधा इन्द्रं सुग्राचा मनसा ।  
 यो भूत् सोमैः सत्यमद्वा ॥ ३७ ॥  
 गायध्रयसं सत्पतिं श्रवस्कामं पुरुमानम् ।  
 कर्ण्योसो गात घाजिनम् ॥ ३८ ॥  
 य ऋते बिद् वास्पदेभ्यो  
 दात् सखा नृभ्यः शचीयान् ।  
 ये अस्मिन् काममधिपन् ॥ ३९ ॥  
 इत्या धीर्यन्तमद्रिघः कण्वं मेघ्यातिथिम् ।  
 मेघो भूतोऽमि यन्नयः ॥ ४० ॥  
 ॥ १३ ॥ ( अ० ८।३।१-१४ )  
 [ मेघ्यातिथिः काव्य ] । प्रगायः = ( विषमा बृहती, समा  
 सतोबृहती ), २१ अनुष्टुप्, २२-२३ गायत्री, २४ बृहती ।  
 पिपां सुतस्य रसिनो मत्स्यां न इन्द्र गोमंतः ।  
 आपिनीं वोधि सद्यमाघो घृधेः  
 ऽस्माँ अघन्तु ते धियः ॥ १ ॥  
 भूयामं ते सुमतो आजिनो ययं  
 मा नः स्तुभिर्मातये ।  
 अस्माञ्जिगामिप्यतामिष्टिभिः  
 आ नः सुज्ञेयु यामय ॥ २ ॥  
 इमा उं त्वा पुरुवसो गिरं वधन्तु या मम ।  
 पावकयर्णाः शूर्चयो विपश्चितो  
 ऽमि स्तोमैरनूपत ॥ ३ ॥  
 अयं सहस्रमृषिभिः सहैरुतः समुद्र ईय पप्रथे ।  
 सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शयो  
 यज्ञेषु विप्रतज्ये ॥ ४ ॥

इन्द्रमिद् देवतातय इन्द्रं प्रयत्नध्वरे ।  
 इन्द्रं समीके वनिनो हवामह  
 इन्द्रं धनस्य सातये ॥ ५ ॥  
 इन्द्रो मद्वा रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्यमरोचयत् ।  
 इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिर्  
 इन्द्रे सुवानास इन्द्रवः ॥ ६ ॥  
 अमि त्वां पुर्धर्षीतय इन्द्र स्तोमैर्भिरायवः ।  
 समीचीनासं ऋभयः समस्वरन्  
 रुद्रा गृणन्तु पूर्वम् ॥ ७ ॥  
 अस्त्येदिन्द्रो वावृधे वृण्यं शयो  
 मर्दे सुतस्य विष्णवि ।  
 अथा तमस्य महिमानमाययो  
 ऽनुं पुयन्ति पुर्धया ॥ ८ ॥  
 तत् त्वां यामि सुधीर्यं तद् ब्रह्मं पुर्ध्वचितये ।  
 येना यतिभ्यो भृगवे धने हि ते  
 येन प्रस्कर्ण्यमाविध ॥ ९ ॥  
 येनां समुद्रमसृजो महीरुपसु  
 तदिन्द्र वृष्णि ते शयः ।  
 सुयः सो अस्य महिमा न संनरो  
 यं क्षोणीरनुचक्रदे ॥ १० ॥  
 शग्धी न इन्द्र यत् त्वां रयिं यामि सुधीर्यम् ।  
 शग्धिं घाजाय प्रथमं सिपांसते  
 शग्धिं स्तोमाय पूर्वम् ॥ ११ ॥  
 शग्धी नो अस्य यदं पौरमाविध  
 धियं इन्द्र सिपांसतः ।  
 शग्धिं यथा रुद्रो द्यार्यकं रुपम्  
 इन्द्र प्रायः स्वर्णरम् ॥ १२ ॥  
 कप्रव्यो अतसीनां तुरो गृणीत मर्त्यः ।  
 नदी न्यस्य महिमानमिन्द्रियं  
 स्यगृणन्त आनुशुः ॥ १३ ॥

कटुं स्तुवन्तं ऋतयन्तं देवतं

ऋषिः को विप्रं ओहते ।

कदा हयं मघवन्निन्द्रं सुन्वतः

कटुं स्तुवत आ गमः ॥ १४ ॥

उदु त्वे मधुमत्तमा गिरः स्तोमांस ईरते ।

सत्राजितो धनुसा अक्षितोतयो

वाज्रयन्तो रथो इव ॥ १५ ॥

कण्वा इव भृगवः सूर्यो इव

विभ्रमिद् धीतमानशुः ।

इन्द्रं स्तोमैर्मिर्महयन्त आर्यवः

प्रियमैधासो अस्वरन् ॥ १६ ॥

युत्वा हि वृषहन्तम् हरीं इन्द्र परावतः ।

अर्षाचीनो मघवन्त्सोमपीतय

उग्र ऋष्वेभिरा गंहि ॥ १७ ॥

इमे हि ते कार्ष्णो धायशुर्धिया

विम्रासो मेघसातये ।

स त्वं नो मघवन्निन्द्रं गिर्यणो

येनो न शृणुषी हवम् ॥ १८ ॥

निरिन्द्रं बृहतीभ्यो वृत्रं धनुभ्यो अस्फुरः ।

निर्युदस्य मृगयस्य मायिनो

निः पर्यतस्य गा आजः ॥ १९ ॥

निरग्रयो वरुचुर्निर सूर्यो निः सोमं इन्द्रियो रसः ।

निरन्तरिक्षादधमो महामर्दि

शूरे तर्दिन्द्रं पौंस्यम् ॥ २० ॥

यं मे दुहिन्द्रो मरुतः पार्कस्थामा कौरयाणः ।

विभ्रं तमना शोभिष्ठम्

उपेय विवि धार्वमानम् ॥ २१ ॥

रोहितं मे पार्कस्थामा सुधुरं कश्यग्राम् ।

अदाद् रायो वियोषेनम् ॥ २२ ॥

यस्मा अये दश प्रति धुरं यद्विभु वद्वयः ।

अग्नं ययो न तुग्नम् ॥ २३ ॥

आत्मा पितुस्तनूवासं ओजोदा अभ्यर्जनम् ।

तुरीयमिद् रोहितस्य पार्कस्थामानं

भोजं दातारमग्रवम् ॥ २४ ॥

॥ १४ ॥ (ऋ० ८।३१।१-३०)

[ मेधातिथिः काण्वः ] गायत्री ।

प्र कृतान्युज्जीषिणः कण्वा इन्द्रस्य गार्धया ।

मधे सोमस्य वोचत ॥ १ ॥

यः सृष्टिन्द्रमर्नर्शनिं पिष्टुं दासमहीशुवम् ।

वर्षाद्रुप्रो रिणन्नपः ॥ २ ॥

न्ययुदस्य विष्टुं यूप्मार्णं बृहत्स्तिर ।

कूपे तर्दिन्द्रं पौंस्यम् ॥ ३ ॥

प्रति धुताय वो धुपत् तूर्णांशं न गिरिरेधि ।

हुवे सुशिप्रमुतये ॥ ४ ॥

स गोरभ्यस्य वि भुजं मन्दानः सोम्येभ्यः ।

पुनं न शूर वपसि ॥ ५ ॥

यदि मे रारणः सुत उपथे वा वधसे वनः ।

आरादुपं स्वधा गंहि ॥ ६ ॥

वयं यो ते अपि प्ससि स्तोतारं इन्द्र गिर्यणः ।

त्वं नो जिन्व सोमपाः ॥ ७ ॥

उत नः पितुमा मर संरराणो अविक्षितम् ।

मघवन् भूरि ते वसु ॥ ८ ॥

उत नो गोमर्तस्क्रुधि हिरण्ययतो भुविर्नः ।

इळाभिः सं रभेमहि ॥ ९ ॥

वृवदुक्थं हवामहे सुप्रकर्कशमुतये ।

साधु कृण्वन्तमवसे ॥ १० ॥

यः संस्ये चिच्छतक्रतु—रादीं कृणोति वृत्रहा ।

जरिवर्म्यः पुरुवसुः ॥ ११ ॥

स नः शक्रश्चिदा शक्रद् दानयो अन्तरामराः ।

इन्द्रो विभ्रवाभिरुतिभिः ॥ १२ ॥

यो रायो धुनिर्महान रसुपारः सुन्वतः सती ।

तमिन्द्रमभि गायत ॥ १३ ॥

आयन्तारं महि स्थिरं पृतनानु श्रवोजितम् ।  
भूरेरीशानमोजसा ॥ १४ ॥  
नकिरस्य शचीनां नियन्ता सुचतानाम् ।  
नकिरिष्का न द्वादिति ॥ १५ ॥  
न नूनं ब्रह्मणामृणं प्राशानामस्ति सुन्वताम् ।  
न सोमो अप्रता पये ॥ १६ ॥  
पन्य इदुप गायत पन्य उक्थानि शंसत ।  
ब्रह्मा कृणोत पन्य इव ॥ १७ ॥  
पन्य आ ददिरच्छता सहस्रा वाज्यवृत्तः ।  
इन्द्रो यो यज्वनो धुधः ॥ १८ ॥  
यि पू चर स्वधा अनु कृष्टानामन्याहुर्धः ।  
इन्द्र पिब सुतानाम् ॥ १९ ॥  
पिब स्वधैरनयाना—मृत यस्तुग्न्ये सचा ।  
उतायमिन्द्र यस्तर्ध ॥ २० ॥  
अतीहि मनुष्याविणै सुपुधांसमृपारणे ।  
इमं शतं सुतं पिब ॥ २१ ॥  
इहि तिम्रः पपायत इहि पञ्च जना अति ।  
धेना इन्द्राधकाकशत् ॥ २२ ॥  
सूर्यो रुदिम यथा सृजा ऽऽत्वा यच्छन्तु मे गिरः ।  
निजमापो न सान्यक् ॥ २३ ॥  
अर्धयवा तु हि पिञ्च सोमं वीराय शिप्रिणे ।  
भरा सुतस्य पीतये ॥ २४ ॥  
य उद्रः फलिंगं मिन—म्यक् सिन्धूयार्जव ।  
यो गोषु पक्कं धारयत् ॥ २५ ॥  
अहन् वृत्रमृचीपम बीर्णवाभमहीशुर्वम् ।  
हिमेनाविष्यदवुदम् ॥ २६ ॥  
य उग्रार्य निपुटे ऽर्णाब्धाय प्रसक्षिणे ।  
ऐवत्तं ब्रह्म गायत ॥ २७ ॥  
यो विभोन्मभि मृता सोमस्य मदे अर्घसः ।  
तन्द्रो देधेयु चेतति ॥ २८ ॥  
तद्वा संधमाष्टा हरी हिरण्यकेदया ।  
योब्धामभि प्रयो हितम् ॥ २९ ॥

अर्वाञ्च त्वा पुरुषुत प्रियमधस्तुता हरी ।  
सोमपेयाय वज्रतः ॥ ३० ॥  
॥ १५ ॥ ( ऋ० ८।३३।१-१९ )  
[मिथ्यातिथिः काण्वः] । बृहती, १६-१८ गायत्री, १९ अउङ् ।  
वयं धं त्वा सुतावन्त आपो न वृत्तर्वाहिपः ।  
पवित्रस्य प्रन्त्रवणेपु वृत्रहन्  
परि स्तोतार आसते ॥ १ ॥  
स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उन्धितः ।  
कदा सुतं तृपाण ओक् आ गम्  
इन्द्र स्वदीध वंसगः ॥ २ ॥  
कर्णैर्भिर्धृष्णावा ध्रुपद् याजं दधि सहस्रिणम् ।  
पिशङ्गरूपं मघवन् विचरपणे मधू गोमन्तमीमहे ॥ ३ ॥  
पाहि गायान्यसो मद इन्द्राय मेध्यातिथे ।  
यः संमिद्लो ह्योयः सुते सचा  
यसी रथो हिरण्ययः ॥ ४ ॥  
यः सुपच्यः सुदार्शेण इनो यः सुनतुंगेण ।  
य आकुरः सहस्रा यः शतामघ  
इन्द्रो यः पुभिर्दादितः ॥ ५ ॥  
यो धृषितो योऽवृत्तो यो अस्ति इमध्रुपु श्रितः  
विभूतयुम्नदच्यवन्ः पुरुषुतः  
कत्वा गौरिव शाकिनः ॥ ६ ॥  
क इ वेद सुते सञ्चा पिरन्तं कद् धयो दधे ।  
अयं यः पुरो विभिन्नस्योजसा  
मन्दानः शिष्यन्धसः ॥ ७ ॥  
दाना मृगो न वारुणः पुंगुश चरय दधे ।  
नकिष्ठा नि र्यमदा सुने गमो  
महोत्थरन्योजसा ॥ ८ ॥  
य उग्रः सन्ननिष्ठः स्थितो रणाय संसृजः ।  
यदि स्तोतुर्मघां द्राणयदयं  
जेन्द्रो योपत्या गमत् ॥ ९ ॥

सत्यमित्या वृषेदसि वृषजतिर्नोऽवृतः ।

वृषा हुं प्र वृषिष्ये परायति

वृषो अर्वावर्ति धृतः

॥ १० ॥

वृषणस्ते अमीशयो वृषा कशा हिरण्ययी ।

वृषा रथो मघवन् वृषणा हरी

वृषा त्वं शतकृतो

॥ ११ ॥

वृषा सोतां सुनोतु ते वृषं वृजीपिभा भर ।

वृषा वृषन्वे वृषणं नदीप्या

सुभ्यं स्वातर्हरीणाम्

॥ १२ ॥

पद्मं याहि पीतये मधु शशिष्ठ सोम्यम् ।

नायमच्छा मघवां शृणुष्व गिते

ग्रहोन्मया च सुकृतः

॥ १३ ॥

षट्पुं त्वा रथेष्ठा—मा हरयो रथयुजः ।

तिरश्चिद्वयं सर्वनानि वृषहन्

अन्येषां या शतकृतो

॥ १४ ॥

अस्माकं मघान्तं स्ताम धिष्य महामह ।

अस्माकं ते सर्वना सन्तु शतमा

मदाय युक्ष सोमपाः

॥ १५ ॥

नहि पस्तव नो मम शास्त्रे अन्यस्य रण्यति ।

यो अस्मान् धीर आनयत्

॥ १६ ॥

इन्द्रधिद्वं या तदमगीत् मिष्या अंशास्यं मनः ।

उतो अहं कर्तुं रथम्

॥ १७ ॥

मतीं विद् या मदच्युतां मिथुना बहता रथम् ।

एवेद् धृष्युष्ण उत्तरा

॥ १८ ॥

अथः पश्यस्य मोपरि संतरां पादवौ हर ।

मा नं वनाप्यकां दृष्टान् तमी हि ग्रहा यभूर्विष्य ॥ १९ ॥

॥ १६ ॥ (अ० ८।४।१-१४)

[देवादिषु वाच्यः] । प्रणय = (विषया वृत्तौ, सम  
चनेवृत्तौ) ।

यदिन्द्र प्रागणानुद न्यग्वा हृयमे नृभिः ।

गिरमां पुन नृपूतो यन्मानयेऽसि प्रगर्ध नृपदं ॥ १ ॥

यद् वा रुमे रुदीमे श्यावके रूप इन्द्रं मादयसे सर्वा

कणांसस्त्या ब्रह्मभिः स्तोमवाहस

इन्द्रा यंच्छन्त्या गहि

॥ २ ॥

यथा गौरो अपा कृतं तृप्यन्नेत्यवोरणम् ।

आपित्वे नः प्रपित्वे तृयमा गहि

कर्णेषु सु सत्ता पिवं

॥ ३ ॥

मन्दन्तु त्वा मघवन्निन्देन्दवो राघोदेयाय सुनते ।

आमुष्या सोममपिवश्चमू सुतं

ज्येष्ठं तद् दधिप्रे सहः

॥ ४ ॥

प्र चैते सहसा सहो वमजं मन्युमांजसा ।

विश्वे त इन्द्र पतनायवो यज्ञो

नि वृक्षा इव येमिरे

॥ ५ ॥

सहस्रेणैव सचते यवीयुधा यस्त आनृक्षस्तुतिम्

पुत्रं प्रावर्गं कृणुते सुवीर्ये

दास्योति नर्मडकिमिः

॥ ६ ॥

मा मैम मा धमिप्पो—ग्रस्यं सख्ये तव ।

महत् ते वृष्णो अभिचस्यं कृतं

पश्येम तुर्वशं यदुम्

॥ ७ ॥

सव्यामर्तुं स्त्रिग्यं वावसे वृषा

न दानो अस्य रोपति ।

मघ्वा संपृक्ताः सारधेण धेनवः

तृयमेहि द्रवा पिवं

अश्वी रथी सुरूप इद् गोमां इदिन्द्र ते सर्वा ।

श्वान्नभाजा वयंसा सचते सदा

चन्द्रो याति सुमामुपं

॥ ८ ॥

अस्यो न तृप्यन्नवपानमा गहि

पिवा सोमं वशां अनु ।

निमेघमानो मघवन् द्विषेदिव

योर्जिष्ठं दधिप्रे सहः

॥ ९ ॥

अर्ष्यो द्रावया त्वं सोममिन्द्रः पिपासति ।

उपं नूनं सुयुजे वृषणा हरी

॥ १० ॥

आ च जगाम वृषदा

(११)

स्वयं चित् स मम्यते दागुरिर्जितो  
यत्रा सोमस्य तृप्सति ।

इदं ते अन्नं युज्यं समुक्षितं

तस्येहि प्र द्रवा पियं

॥ १२ ॥

रयेष्ठायाश्चरयेच सोममिन्द्राय सोतन ।

अधि ब्रध्रस्याद्रयो वि चक्षते

सुन्यन्तो दाभ्यंश्चरम्

॥ १३ ॥

उप ब्रध्रं याचाता वृषणा हरी इन्द्रमपसु वक्षतः ।

अर्वाञ्च त्वा सतयोऽश्चरधियो

यद्वन्तु सयनेदुप

॥ १४ ॥

॥ १७ ॥ ( क्र. ८।६।१-४९ )

[ वसः काणः ] । गायत्री ।

महो इन्द्रो य ओजसा पुर्जन्यो वृष्टिमां ईष ।

स्तोमैर्यत्सस्य वावृधे

॥ १ ॥

प्रजामृतस्य पिप्रतः यद् भरन्त यक्षयः ।

विप्रा ऋतस्य बाहसा

॥ २ ॥

कण्या इन्द्रं यदक्रत स्तोमैर्यत्सस्य माधनम् ।

जामि वृषन् आरुधम्

॥ ३ ॥

समस्य मन्यये विशो विभ्वा नमन्त कृष्टयः ।

समुद्रायेय सिन्धयः

॥ ४ ॥

ओजस्तदस्य तितिय उमे यत् समयतयत् ।

इन्द्रधर्मेषु रोदसी

॥ ५ ॥

यि चिद् वृत्रस्य दोधन्तो यजेण शतपर्वणा ।

शितो विमेद वृष्णिना

॥ ६ ॥

इमा अभि प्र जीनुमो विषामग्नेषु धीतयः ।

अग्नेः शोचिर्न दिष्टतः

॥ ७ ॥

शुहा सतीरुष तमना प्र यच्छोचन्त धीतयः ।

कण्या भूतस्य धारया

॥ ८ ॥

प्र तमिन्द्र नदीमहि रयि गोमन्तमभिवर्नम् ।

प्र ब्रह्म पुष्येचित्तये

॥ ९ ॥

भदमिदि पितुष्पति मेधामृतस्य जग्रम ।

अहं सूर्य इवाजनि

॥ १० ॥

अहं प्रत्नेन मन्मता गिरः शुम्भामि कण्ववत् ।  
येनेन्द्रः शुष्ममिद् दधे ॥ ११ ॥

ये त्वामिन्द्र न तुष्टुवु-क्रपयो ये च तुष्टुवुः ।

ममेद् वर्धेस्व सुष्टुतः ॥ १२ ॥

यदस्य मन्तुरध्वनीद् वि वृत्रं पर्वशो रुजन् ।

अपः समुद्रमेरयत् ॥ १३ ॥

नि शुष्ण इन्द्र धर्णसि वज्रं जघन्य दस्यधि ।

वृषा हुम्र शृण्वये ॥ १४ ॥

न घाव इन्द्रमोजसा नान्तरिक्षाणि धृजिर्णम् ।

न विव्यचन्त भूमयः ॥ १५ ॥

यस्त इन्द्र महीरुपः स्तमुयमान आशयत् ।

नि तं पद्यासु शिक्षयः ॥ १६ ॥

य इमे रोदसी मही संमीची समजप्रमीत् ।

तमोमिरिन्द्र तं गुहः ॥ १७ ॥

य इन्द्र यतपस्त्या भृगवो ये च तुष्टुवुः ।

ममेदुम्र शुष्णी हव्यम् ॥ १८ ॥

इमास्त इन्द्र पृथयो द्यूतं दुहत आशिरम् ।

पनामृतस्य पिप्पुर्णीः ॥ १९ ॥

या इन्द्र प्रस्वस्त्या ऽऽसा गर्भमर्चक्रिरन् ।

परि धर्मेव सूर्यम् ॥ २० ॥

त्वामिच्छत्यसस्पते कण्या उक्थेन वावृधुः ।

त्वां सुतासु इन्दवः ॥ २१ ॥

तयेदिन्द्र प्रणीतिपु-त प्रतास्तिरद्रियः ।

यज्ञो रितन्तुसाग्यः ॥ २२ ॥

आ न इन्द्र महीमियं पुरं न दधि गोमतीम् ।

उत प्रजां सुवीर्यम् ॥ २३ ॥

उत त्यदाभ्यद्वयं यदिन्द्र नाहुयोग्या ।

अग्ने विष्टु प्रदीदयत् ॥ २४ ॥

अभि यजे न तद्विष्टे सूर उषाकचक्षसम् ।

यदिन्द्र मूत्रयासि नः ॥ २५ ॥

यदङ्ग तथिगीयम् इन्द्रं प्रताजमि क्षितीः ।

महो अणार ओजसा ॥ २६ ॥

तं त्वां हविष्मतीविंश उप व्रुवत ऊतये ।  
 उरुज्वर्यसमिन्दुमिः ॥ २७ ॥  
 उपहरे गिणीणां सैगधे च नदीनाम् ।  
 धिया धिप्रो अजायत ॥ २८ ॥  
 अतः समुद्रमुद्धत—श्चिकित्वाँ अर्ब पश्यति ।  
 यतो विपान पजति ॥ २९ ॥  
 आदित् प्रवत्स्य रेतसो ज्योतिष्पदयान्ति वासुत्म् ।  
 पूरो यद्विध्यते दिवा ॥ ३० ॥  
 कण्वांस इन्द्र ते मति विभे वधेन्ति पौंस्यम् ।  
 उतो शविष्ठ वृष्ण्यम् ॥ ३१ ॥  
 इमां म इन्द्र सुष्टुति जुषस्व प्र सु मामव ।  
 उत प्र वधया मतिम् ॥ ३२ ॥  
 उत प्रहृणया वृष्यं तुभ्यं प्रवृद्ध वज्रिवः ।  
 धिप्रो अतस्म जीवसे ॥ ३३ ॥  
 अभि कण्वा अनूता—ऽऽपो न प्रवता यतीः ।  
 इन्द्रं वनन्यती मतिः ॥ ३४ ॥  
 इन्द्रमुनयानि वावृधुः समुद्रमिव सिन्धवः ।  
 अनुत्तमन्युमजरम् ॥ ३५ ॥  
 आ नो याहि पशवतो हरिभ्यां हर्यताभ्याम् ।  
 इममिन्द्र सुतं विव ॥ ३६ ॥  
 त्यामिद् धृप्रहन्तम् जनांसो वृत्तर्यहिपः ।  
 हर्यन्ते वार्जसातये ॥ ३७ ॥  
 धनु त्वा रोदसी उमे चक्रं न चर्येतदाम् ।  
 धनु मुयानाम् इन्द्रयः ॥ ३८ ॥  
 मग्दम्या सु म्वर्णर उतेन्द्र शर्यणार्चति ।  
 मन्वा विर्यम्यतो मूनी ॥ ३९ ॥  
 पायधान उप चवि वृगां यज्यरोरवीत् ।  
 यूपहा सोमपातमः ॥ ४० ॥  
 अश्विर्दि पर्व जा मरये—वः इदंान् भोजसा ।  
 रग्दं गोमृयन्तं वानु ॥ ४१ ॥  
 धमार्क त्वा सुता उप धीतृष्टा अभि प्रयः ।  
 दानं परम्प हरेयः ॥ ४२ ॥

इमां सु पुन्यां धियं मधोघृतस्य पियुपीम् ।  
 कण्वा उपयेन वावृधुः ॥ ४३ ॥  
 इन्द्रमिद् विमहीनां मेधे वृणीत मत्यैः ।  
 इन्द्रं सनिष्युस्तये ॥ ४४ ॥  
 अर्वाञ्च त्वा पुरुषुत प्रियमैधस्तुता हरी ।  
 सोमपेयाय वक्षतः ॥ ४५ ॥  
 ॥ १८ ॥ (अ० ८।११।१-१३)  
 [ पर्वतः काण्डः ] । उष्णिह्, ३३ वीक्ष्मती (विषलमतेव) ।  
 य इन्द्र सोमपातमो मदः शविष्ठ चेतति ।  
 येना हंसि न्युत्रिणं तमीमहे ॥ १ ॥  
 येना दशग्वमाध्रिगुं वेपयन्तं स्वर्णरम् ।  
 येना समुद्रमाविथा तमीमहे ॥ २ ॥  
 येन सिन्धुं महीरपो रयी इव प्रचोदयः ।  
 पन्थामृतस्य यार्तवे तमीमहे ॥ ३ ॥  
 इमं स्तोममभिष्टये धृतं न पुतमद्रिवः ।  
 येना तु सद्य भोजसा ववक्षिय ॥ ४ ॥  
 इमं जुषस्व गिर्वणः समुद्र इव पिन्वते ।  
 इन्द्र विभामिरुतिभिर्ववक्षिय ॥ ५ ॥  
 यो नो देवः पशवतः सखित्वनार्य मामहे ।  
 दिवो न वृष्टि प्रथर्यन् ववक्षिय ॥ ६ ॥  
 ववक्षुरस्य केतव उत यज्ञो गर्भस्थोः ।  
 यत् सूर्यो न रोदसी अवर्धयत् ॥ ७ ॥  
 यदि प्रवृद्ध सत्पते सुहस्रं महिषां अयः ।  
 आदित् तं इन्द्रियं महि प्र वावृधे ॥ ८ ॥  
 इन्द्रः सूर्यस्य रुदिमभि—न्यैशसानमोपति ।  
 अश्विनैव सासहिः ॥ वावृधे ॥ ९ ॥  
 इयं तं श्रुत्वियावती धीतिरेति नवीयसी ।  
 सपर्यन्ती पुगमिया मिमीत इत् ॥ १० ॥  
 गर्भो यशस्य देवयुः क्रतुं पुनीत आनुपक् ।  
 स्तोमैन्द्रस्य वावृधे मिमीत इत् ॥ ११ ॥  
 सुनिर्मितस्य पग्रथ इन्द्रः सोमस्य प्रीतये ।  
 प्राची यानीय सुन्यते मिमीत इत् ॥ १२ ॥ (११९)



यं विप्रं उक्थवाहसो ऽभिप्रमन्दुरायवः ।  
 घृतं न पिप्य आसन्पूतस्य यत् ॥ १३ ॥  
 उत स्वराजे अदितिः स्तोममिन्द्राय जीवनत् ।  
 पुरुप्रशस्तमुतयं ऋतस्य यत् ॥ १४ ॥  
 अभि बह्वय ऊतये ऽनूपत प्रशस्तये ।  
 न देव विप्रता हरीं ऋतस्य यत् ॥ १५ ॥  
 यत् सोममिन्द्र विष्णोषि यद् वा घ त्रित आप्ये ।  
 यद् वा मरुत्सु मन्दसे समिन्दुभिः ॥ १६ ॥  
 यद् वा शक्र परावति समुद्रे अधि मन्दसे ।  
 अस्माकमित् सुते रणा समिन्दुभिः ॥ १७ ॥  
 यद् वासि सुन्यतो वृषो यजमानस्य सत्पते ।  
 उन्नेय वा यस्य रण्यसि समिन्दुभिः ॥ १८ ॥  
 देवदेवं वोऽवस इन्द्रमिन्द्रं गृणीषणि ।  
 मर्धा वृषाय तुषणे व्यानशुः ॥ १९ ॥  
 श्लोमैर्युग्वाहसं सोमैभिः सोमपातमम् ।  
 शोभमिरिन्द्रं वायुधुर्व्यानशुः ॥ २० ॥  
 महीरस्य प्रणीतयः पूर्वाकृत प्रशस्तयः ।  
 येभ्य वसुनि द्राशुषे व्यानशुः ॥ २१ ॥  
 इन्द्रं घृत्राय हन्तवे देवासो दधिरे पुरः ।  
 इन्द्रं घाणीरनूपता समोजसे ॥ २२ ॥  
 महान्तं महिना घृयं स्तोमैर्मिह्वनश्रुतम् ।  
 पक्कैरभि प्र णौनुमः समोजसे ॥ २३ ॥  
 यं विधिको रोदसी नान्तरिक्षाणि वज्रिणम् ।  
 प्रमादिदस्य तितिवरे समोजसः ॥ २४ ॥  
 शदिन्द्रं घृतनाज्यं देवास्त्वा दधिरे पुरः ।  
 मादित् तं हयता हरीं वयश्नुतः ॥ २५ ॥  
 दा घृत्रं नदीघृतं शयसा वज्रिघर्वधीः ।  
 मादित् तं हयता हरीं वयश्नुतः ॥ २६ ॥  
 दा ते विष्णुरेजसा श्रीणि पदा विवक्रमे ।  
 मादित् तं हयता हरीं वयश्नुतः ॥ २७ ॥  
 दा ते हयता हरीं वायुघातं दिवेदिवे ।  
 मादित् ते विभ्या भुवनानि येमिरे ॥ २८ ॥

यदा ते मास्तीविंश—स्तुभ्यमिन्द्र नियेमिरे ।  
 आदित् ते विभ्या भुवनानि येमिरे ॥ २९ ॥  
 यदा सूर्यममुं दिवि शुक्रं ज्योतिरधारयः ।  
 आदित् ते विभ्या भुवनानि येमिरे ॥ ३० ॥  
 इमां तं इन्द्र सुष्टुतिं विप्रं इयति धीतिभिः ।  
 जामि पदेव पिप्रतां प्राध्वरे ॥ ३१ ॥  
 यदस्य धामनि प्रिये समीचीनासो अस्वरत् ।  
 नामा यदस्य दोहना प्राध्वरे ॥ ३२ ॥  
 सुवीर्यं स्वद्वयं सुगर्वमिन्द्र दक्षि नः ।  
 होतैव पूर्वचित्तये प्राध्वरे ॥ ३३ ॥

॥ १९ ॥ ( ऋ० ८।१३।१-३३ )

[ नारदः काण्वः ] । उणिक् ।

इन्द्रः सुतेषु सोमेषु कर्तुं पुनीत उक्थ्यम् ।  
 विद्रे वृषस्य दक्षसो महान् हि यः ॥ १ ॥  
 स प्रथमे व्योमनि देवानां सदेने वृषः ।  
 सुपारः सुधर्वस्तमः समस्तुजित् ॥ २ ॥  
 तमहे वाजसातय इन्द्र भराय शुष्मिणम् ।  
 भवा नः सुन्ने अन्तमः सर्पा वृधे ॥ ३ ॥  
 इयं तं इन्द्र गिर्वणो रतिः क्षरति सुन्यतः ।  
 मन्त्रानो अस्य बहिषो धि रजसि ॥ ४ ॥  
 नूनं तदिन्द्र दक्षि नो यत् त्वा सुन्यन्त ईमहे ।  
 रयिं नेक्षिणमा भरा स्यविदम् ॥ ५ ॥  
 स्तोता यत् ते विचित्रेणि—रतिप्रशार्धयद् गिरः ।  
 घ्या इवानु रोहते जुपन्त यत् ॥ ६ ॥  
 प्रत्नवज्रजया गिरः शृणुषी जेरितुर्दवम् ।  
 मर्दमदे वयक्षिया सुख्यने ॥ ७ ॥  
 श्रीलन्त्यम्य मृता आपो न प्रजता यतीः ।  
 अया धिया य उच्यते पतिर्दिवः ॥ ८ ॥  
 उतो पतिर्य उच्यते रुष्टीनामेक इद् यशी ।  
 नमोवधैरवसुभिः सुते रण ॥ ९ ॥  
 स्तुदि धृतं विपक्षितं हरी यस्य प्रसक्षिणा ।  
 गन्ताय द्राशुषो गृहं नमस्विनः ॥ १० ॥ ( १३० )

तुतुजानो महेमते ऽग्नेभिः प्रुषितम्भिः ।  
 आ याहि यममाग्निः शमिद्धि ते ॥ ११ ॥  
 इन्द्रं शविष्ठ सत्पते रयिं गुणत्सु धारय ।  
 ध्रुवः सूरिभ्यो अमृतं वसुत्वन्म ॥ १२ ॥  
 हवै त्वा सूर उदिते हवै मध्यांर्दने दिवः ।  
 जुषाण इन्द्र सतिभिर्न आ गेहि ॥ १३ ॥  
 आ तू गेहि प्र तु द्रव्य मत्स्या सुतस्य गोमंतः ।  
 तन्तुं तनुष्य पुष्यं यया विदे ॥ १४ ॥  
 यच्छक्रांसि पपावति यद्वर्षावति वृत्रहन् ।  
 यद् वा समुद्रे अर्घ्यसोऽधितेदंसि ॥ १५ ॥  
 इन्द्रं वर्षन्तु नो गिर इन्द्रं सुतासु इन्द्रवः ।  
 इन्द्रे हविर्पतीर्विशो अराणिषुः ॥ १६ ॥  
 तमिद् विप्रो अयस्यवः प्रवत्वंतीभिरुतिभिः ।  
 इन्द्रं क्षोणीरवर्धयन् वृषा इव ॥ १७ ॥  
 त्रिकंठुकेषु चेतनं देवासो यममनत ।  
 तमिद् वर्षन्तु नो गिरः सुदावृधम् ॥ १८ ॥  
 स्तोता यत् ते अनुमत उन्मथानृतुथा दुधे ।  
 शुचिः पावक उच्यते सो अद्भुतः ॥ १९ ॥  
 तदिद् रुद्रस्य चेतति यद्दं प्रलेपु धामसु ।  
 मनो यत्रा वि तद् दुधुर्विचैतसः ॥ २० ॥  
 यदि मे सख्यमावर इमस्य पाण्यर्घसः ।  
 येन विभ्या अति द्विपो अतारिम ॥ २१ ॥  
 कदा ते इन्द्र गिर्यणः स्तोता भवाति शंतमः ।  
 कदा नो गत्ये अद्रव्ये वसो दधः ॥ २२ ॥  
 उत ते सुपुता हरी वृषणा वदतो रथम् ।  
 अज्यस्य मदिन्तं यमीमहे ॥ २३ ॥  
 तमीमहे पुरुषुतं यद्दं प्रजामिरुतिभिः ।  
 नि वदिर्पि म्रिये मंददधं द्विता ॥ २४ ॥  
 पथेत्या सु पुरुषुतं अर्पिपुतामिरुतिभिः ।  
 पुक्षस्य पिप्युरीमिपमवां च नः ॥ २५ ॥  
 इन्द्र त्वमपितेदमी—त्या स्तुपुनो अद्रियः ।  
 अत्तादियमि ते पिथं मनोपुजम् ॥ २६ ॥

इह त्या मधमाया युजानः सोमपीतये ।  
 हरी इन्द्र प्रतर्कम् अमि स्वर ॥ २७ ॥  
 अमि स्वरन्तु ये तव रुद्रासः सशत धियम् ।  
 उतो मरुत्वतीर्विशो अमि प्रयः ॥ २८ ॥  
 इमा अंस्य प्रतैतयः पदं जुगन्तु यद् दिवि ।  
 नाभा यद्यस्य सं दधुर्यया विदे ॥ २९ ॥  
 अयं दीर्घाय चक्षसे प्राचि प्रयत्यध्वो ।  
 मिमीति यममानुपग्विचस्यं ॥ ३० ॥  
 वृषायमिन्द्र ते रथं उतो ते वृषणा हरी ।  
 वृषा त्वं शंतकतो वृषा हयः ॥ ३१ ॥  
 वृषा प्राचा वृषा मद्रो वृषा सोमो अयं सुतः ।  
 वृषा यमो यमिन्वसि वृषा हवः ॥ ३२ ॥  
 वृषा त्वा वृषणं हुवे वक्षिष्विजामिरुतिभिः ।  
 वावग्य हि प्रतिपुति वृषा हवः ॥ ३३ ॥

॥ २० ॥ (क्र० ८।१४।१-१५)

[ गोपकस्यसूक्तेनो काव्यायनो ] । गायत्री ।

यदिन्द्राहं यथा त्व—मीशीयं वस्व एक इव ।  
 स्तोता मे गोपेखा स्यात् ॥ १ ॥  
 शिखैयमस्मै दित्सैयं शचीपते मनीषिणे ।  
 यदहं गोपतिः स्याम् ॥ २ ॥  
 धेनुष्टं इन्द्र सुनुता यजमानाय सुन्वते ।  
 गामभ्यं पिप्युरी दुहे ॥ ३ ॥  
 न ते वर्तास्ति राधसु इन्द्र देवो न मर्त्यैः ।  
 यद् दित्संसि स्तुतो मधम् ॥ ४ ॥  
 यद्य इन्द्रमवर्धयद् यद् भूमिं व्यवर्तयत् ।  
 चक्राण ओपशं दिवि ॥ ५ ॥  
 वावृथानस्यं ते वयं विभ्या घनानि जिन्युः ।  
 कृतिमिन्द्रा वृषीमहे ॥ ६ ॥  
 व्यन्तरिक्षमतिर—न्मदे सोमस्य रोचना ।  
 इन्द्रो यदभिनन्द वलम् ॥ ७ ॥  
 उद् गा आजदक्षिरोम्य आविष्कृण्वन्मुहो मुहो ।  
 अयोधं जुनुदे घलम् ॥ ८ ॥ (११)

इन्द्रेण रोचुना दिवो दृळ्हानि दंष्ट्रितानि च ।  
 स्थिराणि न पराणुदै ॥ ९ ॥  
 अपामुर्मिमर्दधिव स्तोमं इन्द्राजिरायते ।  
 वि ते मदा अराजिपुः ॥ १० ॥  
 त्वं हि स्तोमवर्धन इन्द्रास्युत्थवर्धनः ।  
 स्तोतृणामुत मद्रुहत् ॥ ११ ॥  
 इन्द्रमित् केशिना हरी सोमपेयाय वक्षतः ।  
 उप यज्ञे सुरार्धसम् ॥ १२ ॥  
 अपां फेनेन नमुजेः शिर इन्द्रोदचरतयः ।  
 विश्वा यदजयः स्पृधः ॥ १३ ॥  
 मायामिहृत्सिखस्त इन्द्र धामारुक्षतः ।  
 अय दस्वैरधूनुयाः ॥ १४ ॥  
 असुन्यामिन्द्र संसदं विपूचीं व्यनाशयः ।  
 सोमपा उत्तरो भवेत् ॥ १५ ॥  
 ॥ ११ ॥ ( ऋ० ८।१५।१-१३ )  
 [ गोपूकलधसुक्तीनां काण्वायनो ] । उष्णिक् ।  
 तम्यमि प्र गांयत पुरुहूतं पुरुष्टुतं ।  
 इन्द्रं गीर्मिस्तविपमा विद्यासत ॥ १ ॥  
 यस्य द्वियहसो बृहत् सहो दाधार रोदसी ।  
 गिरिरात्रो अपः स्वर्धृपत्नना ॥ २ ॥  
 स राजसि पुरुष्टुतं एकौ वृत्राणि जिघ्रसे ।  
 इन्द्र जैत्रा श्रयस्या च यन्तवे ॥ ३ ॥  
 तं ते मदै गृणीमसि वर्धणं पूत्सु सांसहिम् ।  
 उ लोकहृत्तुमद्रिवो हरिश्चियम् ॥ ४ ॥  
 येन ज्योतींष्पायवे मनवे च विवेदिथ ।  
 मन्द्रानो अस्य वर्हिणे वि राजसि ॥ ५ ॥  
 तद्वा चित् त उभियनो ऽनु पुवन्ति पुर्यया ।  
 वृषपक्षीरपो जया दिवेदिथे ॥ ६ ॥  
 तव त्वदिन्द्रियं बृहत् तव शुष्ममुत कर्तुम् ।  
 यज्ञं शिराति धिपणा वरेण्यम् ॥ ७ ॥  
 तप घोरिन्द्र पीस्यं पृथिवी वर्धन्ति श्रवः ।  
 त्वामापः पर्येतासद्य हिन्विरे ॥ ८ ॥

त्वां विष्णुर्बृहन् क्षयो मित्रो गृणाति वरुणः ।  
 त्वां शघो मदत्यनु मारुतम् ॥ ९ ॥  
 त्वं वृषा जर्नानां मंहिष्ठ इन्द्र जक्षिपे ।  
 सत्रा विश्वा स्वपत्यानि दधिपे ॥ १० ॥  
 सत्रा त्वं पुरुष्टुतं एकौ वृत्राणि तोशसे ।  
 नान्य इन्द्रात् करणं भूय इन्वति ॥ ११ ॥  
 यदिन्द्र मन्मशस्त्वा नाना हवन्त ऊतये ।  
 अस्माकैर्मिर्नृमिरत्रा स्वर्जय ॥ १२ ॥  
 अरं क्षयाय नो महे विश्वा रूपाण्याविशान् ।  
 इन्द्रं जैत्राय हर्यया शचीयतिम् ॥ १३ ॥  
 ॥ १२ ॥ ( ऋ० ८।१६।१-१२ )  
 [ हरिश्चिदिः काण्वः ] । गावत्री ।  
 प्र सुभ्राजं वर्धणीनामिन्द्रं स्तोता नर्घ्यं गीर्मिः ।  
 नरं नृपाहं मंहिष्ठम् ॥ १ ॥  
 यस्मिन्मुक्त्यानि रण्यन्ति विश्वानि च श्रवस्याः ।  
 अपामवो न संमुद्रे ॥ २ ॥  
 तं सुष्टुत्या विधासे ज्येष्ठराजं भरे कुरुम् ।  
 महो वाजिनं सनिर्ग्यः ॥ ३ ॥  
 यस्यानूना गभीरा मदा उरवस्तदव्राः ।  
 हर्षमन्तः शरसातौ ॥ ४ ॥  
 तमिद् धनेषु हितेर्ष्यधिवाकाय हवन्ते ।  
 येनामिन्द्रस्ते जयन्ति ॥ ५ ॥  
 तमिच्छ्यो जैत्रायन्ति तं कृतेभिर्ध्वणयः ।  
 एष इन्द्रो वरिवस्वत् ॥ ६ ॥  
 इन्द्रो ब्रह्मेन्द्र ऋषि-रिन्द्रः पुरु पुरुहूतः ।  
 महान् मदाभिः शचीभिः ॥ ७ ॥  
 सः स्तोम्यः स हव्यः सत्यः सत्वा तुविकुर्मिः ।  
 एकश्चित् सप्रभिर्भूतिः ॥ ८ ॥  
 तमकैमिस्तं साममि-स्तं गांयत्रैर्ध्वणयः ।  
 इन्द्रं वर्धन्ति क्षितयः ॥ ९ ॥  
 प्रणेतां वस्यो अच्छा कर्तारं ज्योतिः समत्सु ।  
 सासदांसं युधामित्रान् ॥ १० ॥ ( १११ )

स नः परिः पारयाति स्वस्ति नाथा पुण्ड्रतः ।  
इन्द्रो विश्वा अति द्विपः ॥ ११ ॥

स त्वं न इन्द्र धार्जेभि—दंशस्या च गातुया च ।  
अच्छा च नः सुस्र नैपि ॥ १२ ॥

॥ १३ ॥ (ऋ० ८।१७।१-१५)

[ इरिम्बिठि काण्वः ] । [ १४ वास्तोष्यतिर्वा ] । गायत्री,  
प्रगाथः = ( १४ वृहती, १५ सतोवृहती ) ।

आ याहि सुपुमा हि त इन्द्र सोमं पिपा इमम् ।  
पदं धर्हिः सैशो मर्म ॥ १ ॥

आ त्या ब्रह्मयुजा हरी घहतामिन्द्र केशिना ।  
उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥ २ ॥

ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपा मिन्द्र सोमिनः ।  
सुतायन्तो हवामहे ॥ ३ ॥

आ नो याहि सुतायन्तो इस्माकं सुपुतीरुप ।  
पिपा सु शिप्रिभ्रग्नसः ॥ ४ ॥

आ तै सिञ्चामि कृस्यो—रनु गात्रा वि धावतु ।  
गुमाय जिह्वया मधु ॥ ५ ॥

स्यादुष्टे अस्तु संसुदे मधुमान् तन्वे तव ।  
सोमः शर्मस्तु ते हृदे ॥ ६ ॥

अयसु त्या विचर्पणे जनीरिवाभि संबृतः ।  
प्र सोम इन्द्र सर्पतु ॥ ७ ॥

सुविप्रीवो धपोदरः सुयादुरग्नसो मदे ।  
इन्द्रो वृषाणि जिघ्रते ॥ ८ ॥

इन्द्र प्रेहि पुरस्त्वं विश्वस्येशान् ओजसा ।  
वृषाणि वृषहजहि ॥ ९ ॥

दीर्घस्ते अस्त्वङ्कुशो येना वसु प्रयच्छसि ।  
यजमानाय सुन्यते ॥ १० ॥

अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अर्घि धर्हिर्पि ।  
पदीमस्य द्रवा पिप ॥ ११ ॥

शार्चिगो शार्चिपूजना—ऽयं रणांय ते सुतः ।  
आर्गण्डल प्र ह्वयेसे ॥ १२ ॥

यसं दृष्टव्यो नपात् प्रणपात् कुण्डपात्यः ।  
न्यसिन् दध्वा या मनः ॥ १३ ॥

याम्नां पते ध्रुवा म्यूषां—ऽसंभ्रं सोम्यानाम् ।  
द्रुप्सो भेत्ता पुरां शर्भतीनां ॥ १४ ॥

इन्द्रो मुनीनां गगां पृदापुसानुर्यजतो गयेर्पण एकः सप्रमि भूयसा  
भूणिमर्ध्व नयत् तुजा पुरो गुभा ॥ १५ ॥

इन्द्रं सोमस्य पीतये ॥ १६ ॥

॥ १७ ॥ (ऋ० ८।११।१-१६)

[ सोमरिः काण्वः ] । प्रगाथः = ( विषमा इड, सता  
सतोवृहती ) ।

वयम् त्वामपूर्य स्थुरं न कश्चिद् भरन्तोऽवस्यः ।  
धार्जे चित्रं हवामहे ॥ १ ॥

उप त्या कर्मधूतये स नो युयो—प्रक्षकाम यो धृपद ।  
त्वामिद्वयधितारं वयमहे सपाय इन्द्र सानसिम् ।

आ याहीम इन्द्रयोऽर्भ्यपते गोपत उर्वरापते ।  
सोमं सोमपते पिप ॥ २ ॥

वयं हि त्या यन्धुमन्तमवधयो विप्रास इन्द्र येमि ।  
या ते धामानि वृषभ तेभिरा गहि ॥ ३ ॥

विश्वेभिः सोमपीतये सीदन्तस्ते वयो यया गोधीते मधो मद्विरे विवसन्ते ।  
अभि त्वामिन्द्र नोनुमः ॥ ४ ॥

अच्छा च त्वेना नर्मसा वदामसि किं मुहश्चिद् वि दीधयः ।  
सन्ति कामासो हरिवो दद्विद्वं ॥ ५ ॥

सो वयं सन्ति नो धियः नूला इदिन्द्र ते वयमूती अंभूम नहि नू ते अद्रिक् ।  
विद्या पुरा परीणसः ॥ ६ ॥

विद्या ससित्वमुत शूर भोज्य—मा ते वा वज्रिघ्नोमहे ।  
उतो संमस्मिन्ना शिशीहि नो वसो ॥ ७ ॥

वार्जे सुदिप्र गोमंति ॥ ८ ॥

(४१६)

यो न इदमिदं पुरा  
प्र वस्य आनिनाय तमु वः स्तुये ।  
सखाय इन्द्रमुतये ॥ ९ ॥  
हर्यश्च सत्यति चरणीसहं स हि प्मा यो अमन्दत ।  
आ तु नः स चयति गव्यमद्वयं  
स्तोतृभ्यो मधवा शतम् ॥ १० ॥  
त्वया ह खिद् युजा वयं  
प्रति भवसन्तं वयम ध्रुवीमहि ।  
संस्ये जनस्य गोमंतः ॥ ११ ॥  
जयेम कारे पुंरुह्यत कारिणो ऽभि तिष्ठेम इन्द्रः ।  
नृमिष्युषं हव्यामं शशुयाम च  
अवैरिन्द्र प्र णो धियः ॥ १२ ॥  
अभ्रातृभ्यो अना त्व—मनापिरिन्द्र जुनुषा सनादंति ।  
युधेदापित्वमिच्छसे ॥ १३ ॥  
नकी रेवन्तं सत्पायं विन्दसे पीर्यन्ति ते सुगुग्धः ।  
यदा कृणोषि नदनुं समुहस्य  
आदिस् पितेव ह्यसे ॥ १४ ॥  
मा ते अमाजुते यथा मुरासं इन्द्र सत्ये त्वार्यतः ।  
नि पदाम सचा सुते ॥ १५ ॥  
मा ते गोदनु निरराम राधस इन्द्र मा ते गृहामहि ।  
हृद्धा चिद्वयः ॥ मृशाम्या मरु  
न ते दामानं आदमे ॥ १६ ॥

॥ २५ ॥ ( अ० ८३४१-१८ )

[ नौशातिय. काव्य., १६-१८ सहस्रं वसुगोविशोऽहिरव. ]  
अनुष्टुप्, १६-१८ गायत्री ।

एन्द्र याहि हरिभि—रुप कण्वस्य सुपुतिम् ।  
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ १ ॥  
आ त्वा प्रावा वदंतिह सोमी घोषेण यच्छतु ।  
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ २ ॥  
अग्रा वि नेमिरेण—सुरां न धनुते वृकः ।  
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ३ ॥

आ त्वा कणां दृहावसे हवन्ते वाजसातये ।  
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ४ ॥  
दधामि ते सुतानां वृष्णे न पूर्वपाप्यम् ।  
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ५ ॥  
सत्पुंरुग्धिर्न आ गहि विभवतोर्धनि ऊनये ।  
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ६ ॥  
आ नो याहि महेमने सहस्रोने शतामघ ।  
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ७ ॥  
आ त्वा होता मनुहितो देवत्रा वधुदीर्घ्यः ।  
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ८ ॥  
आ त्वा मदच्युता हरी श्येनं पक्षेव यक्षतः ।  
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ९ ॥  
आ याह्यं आ परि स्वाहा सोमस्य पीतये ।  
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ १० ॥  
आ नो याह्यपशु—त्युन्धेषु रणया इह ।  
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ११ ॥  
सहस्रैरा सु नो गहि संभृतैः संभृताभ्यः ।  
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ १२ ॥  
आ याहि पवतेभ्यः समुद्रस्याधि विष्टपः ।  
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ १३ ॥  
आ नो गव्यान्वद्व्या सहस्रां शूर ददति ।  
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ १४ ॥  
आ मः सहस्रशो मणु—ऽयुतानि शानानि च ।  
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ १५ ॥  
आ यदिन्द्रश्च ददते सहस्रं वसुरोचिषः ।  
ओजिष्ठमद्वयं पशुम् ॥ १६ ॥  
य ऋजा वार्तरदसो ऽरुणानो रघुपदः ।  
आजन्ते सूर्या इव ॥ १७ ॥  
पार्यवनस्य रातिषु वृषधंकेष्यानुषु ।  
तिष्ठं वनस्य मध्य आ ॥ १८ ॥

॥ २६ ॥ ( श्रु ८४५।१-४२ )

[ त्रिशोकः काव्यः ] । [ १ अश्रोन्द्रः ] । गायत्री ।

आ घा ये अश्रिमिन्धुते स्तुणान्ति बर्हिर्नानुपक् ।  
 येयामिन्द्रो युवा सखा ॥ १ ॥  
 बृहन्निदिध्म एषां भूरि शस्तं पृथुः स्वरुः ।  
 येयामिन्द्रो युवा सखा ॥ २ ॥  
 अयुद्ध इद् युधा वृतं शर आजति सत्वाभिः ।  
 येयामिन्द्रो युवा सखा ॥ ३ ॥  
 आ युद्धं वृत्रहा वदे जातः पृच्छद् वि मातरम् ।  
 क उवाचः के ह शूण्यरे ॥ ४ ॥  
 प्रति त्वा शशसी वदद् गिरावन्तो न योधियत् ।  
 यस्तै शनुत्वमाचुके ॥ ५ ॥  
 उत त्वं मघवज्यूषु यस्ते पाष्टे वयसि तत् ।  
 यद् वीळ्यासि वीळु तत् ॥ ६ ॥  
 यद्वाजिं यात्याजिरु—दिन्द्रः स्वभयुर्य ।  
 रथीतमो रथीनाम् ॥ ७ ॥  
 वि पु विभो अभियुजो यजिन् विष्वग्यथा बृह ।  
 भया नः सुधर्वस्तमः ॥ ८ ॥  
 अस्माकं सु रथे पुर इन्द्रः कृणोतु सातये ।  
 न य धूर्धन्ति धूर्तयः ॥ ९ ॥  
 पुज्याम ते परि द्वियो इरं ते शक दावने ।  
 गुमेमेदिन्द्र गोमंतः ॥ १० ॥  
 शनैश्चिद् यन्तौ अद्रियो इभ्यावन्तः शतग्विनः ।  
 धियक्षणा अनेहसः ॥ ११ ॥  
 ऊर्वा हि तं द्वियेद्विषे सहसा सुनृतां शता ।  
 जगिरुष्यां विमर्हते ॥ १२ ॥  
 रिना हि त्वा धनंजय—मिन्द्रं हृद्धा विदारुजम् ।  
 आदारिणं यथा गर्गम् ॥ १३ ॥  
 वरुदं चित् त्वा कये मन्दन्तु धृष्णविन्दवः ।  
 आ र्यां एणि यदीमहे ॥ १४ ॥  
 यस्ने रेयो अदाशुभिः प्रममये मघर्षये ।  
 तम्यं नो येद् आ र्भर ॥ १५ ॥

इम उ त्वा वि चक्षते सखाय इन्द्र सोमिनः ।  
 पुष्टार्धन्तो यथा पुष्टम् ॥ १६ ॥  
 उत त्वावधिरं वयं धुत्कर्णे सन्तमृतये ।  
 दूरादिह हवामहे ॥ १७ ॥  
 यच्छुध्या इमं हवै दुर्मपं चक्रिया उत ।  
 भवेरापिनो अन्तमः ॥ १८ ॥  
 यच्चिदि ते अपि व्यथि—जगन्वांसो अममहि ।  
 गोदा इदिन्द्र योधि नः ॥ १९ ॥  
 आ त्वा रम्भं न जिघ्रयो ररम्भा शवसस्पते ।  
 उदमसि त्वा सधस्थ आ ॥ २० ॥  
 स्तोत्रमिन्द्राय गायत पुरनृम्णाय सत्वाते ।  
 नक्रियं वृण्वते युधि ॥ २१ ॥  
 अभि त्वा वृषभा सुते सुतं वंजामि पीतये ।  
 तुम्पा ध्वंशुही मर्दम् ॥ २२ ॥  
 मा त्वा मुरा अविव्यवो मोपहस्वान आ वमद् ।  
 मार्की ब्रह्मद्विषो वनः ॥ २३ ॥  
 इह त्वा गोपरीणसा महे मन्दन्तु राधसे ।  
 सरे गौरो यथा पिय ॥ २४ ॥  
 या वृत्रहा परावति सना नया च सुच्युवे ।  
 ता संसत्सु ॥ २५ ॥  
 अपिबत् कद्रुचः सुत—मिन्द्रः सहस्रयाहे ।  
 अत्रादेदिष्ट पौंस्यम् ॥ २६ ॥  
 सत्यं तत् तुवैशे यदौ विद्वानो अहवाप्यम् ।  
 ध्यानत् तुवैण शर्मि ॥ २७ ॥  
 तरणि वो जनानां शुद्धं वाजस्य गोमंतः ।  
 समानमु प्र शंसिपम् ॥ २८ ॥  
 श्रुमक्षणं न वर्तय उर्येषु तुष्टावृधम् ।  
 इन्द्रं सोमे सखां सुते ॥ २९ ॥  
 यः कृन्तदिद् वि योन्यं त्रिशोकाय गिरि पुष्टम् ।  
 गोम्यो गानुं निरैतये ॥ ३० ॥  
 यद् द्विषे मन्त्र्यासि मन्दानः प्रेदियक्षसि ।  
 मा तत् कारिन्द्र मूर्ख्य ॥ ३१ ॥ (४३१)

दध्रे चिद्धि त्वावतः कृतं दृष्टवे अधि अमि ।  
जिगातिवन्द्र ते मनः ॥ ३२ ॥  
तवेदु ताः सुकीर्तयो ऽसंभृत प्रदास्तयः ।  
यदिन्द्र मृळयासि नः ॥ ३३ ॥  
मा न एकस्मिन्नागसि मा हयोस्त त्रिषु ।  
वधर्मा शर भूरिषु ॥ ३४ ॥  
विभया हि त्वावत उग्रादभिप्रमङ्गिनः ।  
वृसादुहर्षतीपहः ॥ ३५ ॥  
मा सत्युः शूनमा विदे मा पुत्रस्य प्रभूचसो ।  
आवृत्तवद् भूतु ते मनः ॥ ३६ ॥  
को नु मर्या अमिथितः सखा सखायमप्रवीष ।  
जहा को अस्मदीपते ॥ ३७ ॥  
एवारं वृषमा सुते ऽसिन्धुन् भूर्यावयः ।  
श्वमीव निवता चरन् ॥ ३८ ॥  
आ त एता वंचोयुजा हरी गृष्णे सुमर्द्रया ।  
दीं प्रक्षम्य इहदः ॥ ३९ ॥  
मेन्धि विश्वा अप द्विषः परि धार्यो जही मृधः ।  
सुं स्याहं तदा भर ॥ ४० ॥  
ह्रीन्नाविन्दु यत् स्थिरे यत् पर्शानि पराभृतम् ।  
सुं स्याहं तदा भर ॥ ४१ ॥  
स्य ते विश्वमनुषो भूरिदं च स्य वेदति ।  
सुं स्याहं तदा भर ॥ ४२ ॥

॥ ३७ ॥ ( ऋ० ८/४९१-१० )

[ प्रक्षम्य काण्व ] । प्रगाथ = ( विषमा बृहती, समा सतोबृहती ) ।

अभि प्र वः सुरार्धसु—मिन्द्रमर्चं यया निदे ।  
गे जीरिवृष्यो मज्जा पुरुषसुः  
उहर्षेणैव शिक्षति ॥ १ ॥  
ततानीकेषु प्र जिगाति घृष्णया  
न्ति वृत्राणि दाशुषे ।

गिरेरेव ॥ रेसा अस्य पिन्विरे  
दत्राणि पुरुमोजसः ॥ २ ॥  
आ त्वा सुतासु इन्द्रवो मदा य इन्द्र गिर्वणः ।  
आपो न वमिन्नन्वोक्त्यं सरः  
पुण्णति शर राधसे ॥ ३ ॥  
अनेहसं प्रतरणं विवर्षणं मध्वः स्वादिष्टमी पिय ।  
आ यया मन्दसानः किरासि नः  
प्र क्षुत्रेव त्मना घृपत् ॥ ४ ॥  
आ नः स्तोममुप द्रव—दिद्यानो अश्वो न सोऽमि ।  
यं ते स्वधावन्त्स्वदयान्ति धेनव  
इन्द्र कर्षेपु रातर्यः ॥ ५ ॥  
उग्रं न वीर नमसोर्ष सेदिम विभूतिमक्षितावसुम् ।  
उद्गीर्षं वज्रिभ्रतो न सिञ्जते  
हरन्तीन्द्र धीतर्यः ॥ ६ ॥  
यद्धं नूनं यद्वा यद्धे यद्वा पृथिव्यामधि ।  
अतो नो यजमनाशुभिर्महेमत  
उग्र उप्रेभिरा गहि ॥ ७ ॥  
अजिरासो हरयो ये त आशवो वाता इव प्रसक्षिणः ।  
वेभिरपत्यं मनुषः परीर्यस वेभिरिष्वं स्वर्हो ॥ ८ ॥  
एतावतस्त ईमह इन्द्रं सुन्नस्य गोमतः ।  
यथा प्रावो मधवन् मेध्यातिथिं  
यथा नीपातिथिं धने ॥ ९ ॥  
यथा कर्षे मघवन् वसदस्यधि  
यया पश्ये दशवजे ।  
यथा गोशर्ये वसन्तेऽरुजिभ्यनि  
इन्द्र गोमदिरण्यवत् ॥ १० ॥

॥ २८ ॥ ( ऋ० ८/१०१-१० )

[ पृष्ठिगु काण्व ] । प्रगाथ = ( विषमा बृहती, समा सतोबृहती ) ।

प्र सु भुते सुरार्धसु—मर्चो शक्रमभिष्टये ।  
यः सुन्वते स्तुचते काम्यं वसुं  
सहर्षेणैव मंहते ॥ १ ॥

शतानीका हेतयोः अस्य दुष्टरा

इन्द्रस्य समिपो महीः ।

गिरिर्न मुन्मा मघवन्तु पिन्वते

यदा सुता अमन्दिपुः

॥ २ ॥

यदा सुतास इन्द्रो ऽमि प्रियममन्दिपुः ।

आपो न थापि सर्वेन म आ वंसो

दुर्या इवोप दाशये

॥ ३ ॥

अनेत्रनै वो हव्यमानमुतये मध्यः क्षरन्ति धीतर्यः ।

आ न्वा यमो हव्यमानास इन्द्रव

उप स्तोत्रेषु दधिरे

॥ ४ ॥

आ नः सोमै स्वध्वर इयानो अत्यो न तोशते ।

यं नै सदायन्त्यर्द्रगति गृतर्यः

पौरे उन्मयसे हव्यम्

॥ ५ ॥

प्र धीरमुपै निर्विचि धनस्पृन् विभूर्ति राधसो महः ।

उद्रीर्ध पञ्चिप्रतो रंमुन्वना

मदा पीपेथ दाशये

॥ ६ ॥

यद नून पंगवति यद् वा पृथिव्यां दिवि ।

युजान इन्द्र हरिभिर्महेमत

भुज्य भुज्येमिरा गति

॥ ७ ॥

रथिरामो हव्यो ये नै भुक्तिध

धो नो पारम्य प्रिरति ।

येभिर्नि दस्यं मनुषो निघोरयो

येनि ह्यं पुरीयमे

॥ ८ ॥

पुतायन्तमे यमो पिचामे दूर नघ्यंसः ।

यथा प्राय पतन् दाशये पने

यथा यन् दाशये

॥ ९ ॥

यथा यन् मपयन् मंथे भण्यते

दृष्टिर्निधि दृष्टिर्निधि ।

यथा यन् दृष्टिर्निधि भद्रिषः

यथा यन् दृष्टिर्निधि

॥ १० ॥

॥ २९ ॥ ( ३० ८५११-१० )

पृथिगु काण्वः । प्रगाव - ( विवमा वृहतीः

समा सतोवृहतीः ) ।

यथा मनौ सांवरणौ सोममिन्द्रापिबः सुतम् ।

नीपातिथौ मघवन् मेघ्यातिथौ

पुष्टिगौ शुष्टिगौ सचा

॥ ११ ॥

पार्पद्वाणः प्रस्कण्यं समसादयत्

शर्यान् जित्रिमुद्धितम् ।

सहस्राण्यसिपासद् गद्यामृपिस्त्वोतो दस्यवे वृकः ॥

य उन्मथेभिर्न विन्धते चिकिच क्रुपिचोदनः ।

इन्द्रं तमच्छा वद् नव्यस्या मती

अरिप्यन्तं न भोजसे

॥ १२ ॥

यसां अकं सप्तशीर्षणमानुषु क्षिघातुमुत्तमे पुरे ।

स त्विमा विश्वा भुवनानि चिकवद्

आदिर्जनिए पोस्यम्

॥ १३ ॥

यो नो दाता वसन्ता-मिन्द्रं त इमहे वपम् ।

विश्रा हस्य सुमति नवीयसां

गमेम गोमति वजे

॥ १४ ॥

यस्मै त्वं वंसो दानाय शिखसि

स रायस्पोपमधुते ।

तं त्वां ययं मघवन्मिन्द्र गिवणः

॥ १५ ॥

सुतायन्तो हवामहे

कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र मद्यसि दाशुर्नै ।

उपोपेभु मघवन् भूय इष्ट ते

दानं देवस्य पृच्यते

॥ १६ ॥

प्र यो ननक्षे अभ्योजसा क्रियं

ययैः गुणै निघोरयन् ।

यदेवमर्गमात्त ग्रथयन्मं दिवं

आदिर्जनिए पार्थियः

॥ १७ ॥

यस्याय विश्व आयो दासः दोषयिता मति ।

निरधिदुयै यदांम पर्वात्पि

मुपेय् नो भज्यते दयिः

॥ १८ ॥

( ११ )



तुरण्ययो मधुमन्तं घृतञ्चतुनं विप्रांसो अर्कमानृचुः ।  
अस्मे रयिः पप्रथे वृण्यं शवो  
अस्मे सुवानास इन्द्रवः ॥ १० ॥

॥ ३० ॥ (ऋ० ८।५२।१-१०)

आयुः काण्वः । प्रगायः = (विषमा बृहती,  
यमा सतोबृहती) ।

यथा मनो विवस्वति सोमं शक्रार्पिवः सुतम् ।  
यथा त्रिते रुद्र इन्द्र जुजोपसि  
आयो मादियसे सचा ॥ १ ॥  
पृथे मेधे मातरिष्वनीन्द्रं सुवाने अमन्दयाः ।  
यथा सोमं दशशिप्रे दशोण्ये स्युर्मरस्मावृजूनसि ॥ २ ॥  
य उक्था केवला वृथे यः सोमं धृषितापिवत् ।  
यस्मि विष्णुह्रीणि पदा विचक्रमे  
उप मिमस्य धर्ममिः ॥ ३ ॥

यस्य त्वमिन्द्र स्तोमेषु चाकनो वाजे वाजिन्धतकतो ।  
तं त्वा वयं सुदुर्वामिव गोदुहो  
जुहुमसि श्रवस्पर्बः ॥ ४ ॥

यो नो दाता स नः पिता महौ उप ईशानवृत् ।  
अयोमनुषो मधवा पुरुवसु गौरवस्य प्र दातु नः ॥ ५ ॥  
यस्मि त्वं वंसो दानाय मंहसे स रायस्पोषमिन्वाति ।  
यस्य यो वसुपति शतक्रतुं स्तोमैरिन्द्रं हवामहे ॥ ६ ॥  
कदा चन प्र युञ्जस्यु मे नि पांसि जग्मेवी ।  
तुर्पयादित्य हयनं त इन्द्रियं

आ तस्यायमूर्तं त्रियि ॥ ७ ॥  
यस्मि त्वं मधवाग्निन्द्रं निर्घणः  
शिष्टो शिष्टसि दाशुपे ।

अस्माकं गिरं उत सुपुति वंसो  
कण्ववचवृणुषी हवम् ॥ ८ ॥  
अस्तायि मन्मं पुन्यं ब्रह्मेन्द्राय वोचत ।  
पूर्वोर्भुतस्य वृहतीरूपत स्तोतुमेषा अस्तुत ॥ ९ ॥  
समिन्द्रो रायो वृहतीर्युत सं शोणी समु स्यम् ।

सं शक्रासुः शर्चयः सं गवाशिरः  
सोमा इन्द्रममन्दिपुः ॥ १० ॥

॥ ३१ ॥ (ऋ० ८।५३।१-८)

मेघः कण्वः । प्रगायः = (विषमा बृहती,  
यमा सतोबृहती) ।

उपमं त्वा मधोना ज्येष्ठं च वृषभार्णाम् ।  
पुमिस्तमं मधवाग्निन्द्र गोविद्र मीशानं राय ईमहे ॥ १ ॥  
य आयुं कुत्समतिधिम्बमर्दयो वावृघ्नानो दिवेद्विबे ।  
तं त्वा वयं हयैष्वं शतक्रतुं वाजयन्तो हवामहे ॥ २ ॥  
आ नो विश्वेषां रसं मध्वः सिञ्चन्वद्वयः ।  
ये पप्रथति सुन्विरे जनेष्वा ये अर्वावतीन्द्रवः ॥ ३ ॥  
विष्वा ह्येषांसि जहि चाव चा रुधि  
विश्वे सन्वन्वा वसु ।

शीर्षेषु चित् ते मदिरासो अंशवो  
यथा सोमस्य तुमसि ॥ ४ ॥

इन्द्र नेदीय पद्विहि मितमेषाभिरुतिभिः ।  
आ शतम शतमाभिरुभिष्टिभिः  
आ स्वापे स्वापिभिः ॥ ५ ॥

आजितुरं सत्यति विश्वचर्षणि कृधि प्रजास्वार्भगम् ।  
प्र सृ तिरा शर्चभिष्यं तं उन्धिनः  
क्रतुं पुनत आनुषक् ॥ ६ ॥

यस्ते साधिष्ठोऽर्बसे ते स्याम भर्यु ते ।  
यं होत्राभिरुत देवहतिभिः ससुवांसो मनामहे ॥ ७ ॥  
अहं हि ते हरिवो ब्रह्म वाजयुः

आजि यामि सदातिभिः ।  
त्वामिदेव तममे समश्चयु—गन्धुरर्षे मयीनाम् ॥ ८ ॥

॥ ३२ ॥ (ऋ० ८।५४।१-७; ५-८)

मातरिषा काण्वः । प्रगायः = (विषमा  
बृहती, यमा सतोबृहती) ।

एतत् तं इन्द्र वीर्यं गीर्मिगुणन्ति कारयः ।

ते स्तोमन्त ऊर्जमावन् घृतञ्चत  
पौरासो नक्षन् धीतिभिः ॥ १ ॥

नक्षन्तु इन्द्रमयसे सुकृत्यया येषां सुतेषु मन्दसे ।  
 यथा संवते अमदो यथा कृदा  
 एवास्मे इन्द्र मत्स्व ॥ २ ॥  
 यदिन्द्र राधो अस्ति ते माघानं मघवत्तम ।  
 तेन नो बोधि सुधमाद्यो वृधे  
 भगो दानाय वृद्धन् ॥ ५ ॥  
 आजिपते नृपते त्वमिदं नो वाज आ वांक्षे सुक्रतो ।  
 धीनी होत्राभिरुत देयधीतिभिः  
 समन्तांसो वि दृष्टिजरे ॥ ६ ॥  
 सन्ति द्युयं आशिष इन्द्र आयुर्जनानाम् ।  
 अस्मान् नक्षस्व मय्युपपावसे  
 घुक्षस्व पित्र्युषीमिरम् ॥ ७ ॥  
 घृयं त इन्द्र स्तोमैर्भिविधेम त्वमस्माकं शतक्रतो ।  
 महिं स्युरं शशयं राधो अह्वयं  
 प्रस्वण्याय नि तौशाय ॥ ८ ॥

॥ ३३ ॥ ( अ० ८।५७।१-५ )

इयं वाप्य । ( प्र० ३३३ ) । गायत्री ३, ५ अनुष्टुप ।

मूरीदिन्द्रम्य धीर्यं व्यन्यमन्यायति ।  
 राधस्ते दस्यवे वृकः ॥ १ ॥  
 नानं द्येतामं उक्षणां निधि तारो न रौचने ।  
 मद्रा दिपं न तंसमः ॥ २ ॥  
 नानं येणुगन्तं नूनः नानं यमाणि म्रानानि ।  
 नानं मे वत्यजस्तुवा अगंणीणां वतुः शतम् ॥ ३ ॥  
 सुदेवाः शर्म बाणपायना येषां ययो विचरन्तः ।  
 अर्थागां न वंष्टुमन ॥ ४ ॥  
 धादिन् गानागं यर्विर—धान्ननम्य मति धवः ।  
 द्याधीगतिभ्यस्तन् पुण्य—धार्ष्ट्या घनं गनदो ॥ ५ ॥

॥ ३४ ॥ ( अ० ८।५६।१-४ )

पुण्यं ३३३ । गायत्री ।

प्रति ते दस्यवे वृकः राधो अह्वयं द्येयम् ।  
 शानं प्रभुना नायः

॥ १ ॥

दश मर्त्यो पौतकृतः सहस्रा दस्यवे वृकः ।  
 नित्याद्वायो अमंहत ॥ २ ॥  
 शतं मे गर्दमानां शतमूर्णावतीनाम् ।  
 शतं दासां अति स्रजः ॥ ३ ॥  
 तत्रो अपि प्राणीयत पूतकृतये व्यका ।  
 अश्वानामिन्न युध्याम् ॥ ४ ॥

॥ ३५ ॥ ( अ० ८।६१।१-६८ )

मर्त्यः प्राणाय । प्रणाय = ( विषमा वृहती,  
 वषमा वृहती ) । १७ शंकुमती ।

उमयं शृण्वंश्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः ।  
 सन्नाच्यां मघवा सोमपीतये  
 धिया शर्विष्ठ आ गमत् ॥ १ ॥  
 तं हि स्वराजं वृषभं तमोजसे धिपते निष्टतर्हः ।  
 उतोपमानां प्रथमो नि पीदसि  
 सोमकामं हि ते मनः ॥ २ ॥

आ घृपस्व पुरुवसो सुतस्येन्द्रान्यसः ।  
 विद्या हि त्वा हरिवः पूतु सांस्रिदि ॥ ३ ॥  
 अर्घ्यं चिद् दधुष्वणिम्  
 अग्रामिसत्य मघवन् तथेदं सत्  
 इन्द्र क्रत्या यथा वशः ।  
 सनेम वाजं तथे शिमिन्नवसा  
 मक्ष चिचन्तो अद्रिवः ॥ ४ ॥  
 शृण्व्युषु दीचीपत इन्द्र विध्याभिरुतिभिः ।  
 भगं न हि त्वा यशसं यमुयिन्  
 अनु दार चरामसि ॥ ५ ॥  
 पीरो अर्धस्य पुरुदृद गपामसि  
 उत्तो देय हिरण्ययः ।

नविदिं दानं परिमार्पयन् त्वे  
 यद्यधामि तदा भैर ॥ ६ ॥  
 त्वं रोदि चोरये विदा भगं यमुतये ।  
 उतोवृषस्य मघवन् नविद्यम् उदिन्द्राधमिदे ॥ ७ ॥

( ८८ )

त्वं पुरुसहस्राणि शतानि च युथा दानाय महेसे ।  
 आ पुंरंदरं चंद्रम विप्रवचसु ॥ ८ ॥  
 इन्द्रं गायन्तोऽवसे  
 अविप्रो वा यदविप्र—द्विप्रो वेन्द्र ते वचः ।  
 स प्र मेमन्दत् त्याया शतकृतो  
 प्राचांमन्यो अहंसन ॥ ९ ॥  
 उप्रयाहुर्ध्रुवकृत्यां पुंरंदरो यदि मे शृण्वद्वचम् ।  
 वसुयधो वसुपति शतकृतु स्तोमैरिन्द्रं हवामहे १०  
 न पापासो मनामहे नारायासो न जलद्वयः ।  
 यद्विन्विन्द्रं धृपणं सचां सुते  
 सपायं कृणवामहे ॥ ११ ॥  
 उग्रं युयुज्मपृतनाम् सासुहि—मृणकांतिमदांम्यम् ।  
 वेदां भूमं चित् सनिता रथीतमः  
 अजिनं यमिदु नश्वत् ॥ १२ ॥  
 तं इन्द्र भवामहे ततो नो अभयं कृधि ।  
 अर्चयन्लुग्धि तपु तन्नं कुतिभिः  
 वे द्विपो यि मृधो जाहि ॥ १३ ॥  
 वं हि राधस्वते राधसो महः क्षयस्यासि विभूतः ।  
 त्वां ध्रुवं मयवप्रिन्द्र गिर्यणः  
 नृतायन्तो हवामहे ॥ १४ ॥  
 इन्द्रः स्पृष्टुत वृत्रहा परस्पा नो वरेण्यः ।  
 त नो रक्षिषण्वरं स मय्यमं  
 न पृश्वात् पानु नः पुरः ॥ १५ ॥  
 यं नः पृश्वादधुरादुत्तरात् पुर  
 इन्द्र नि पाहि विभ्वतः ।  
 आरे वसव कृणुहि दैव्यं मयं  
 प्रारे हेतीरदेयीः ॥ १६ ॥  
 अघाघा भ्यःभ्य इन्द्र प्रास्यं परे च नः ।  
 विभ्यां च नो जरितन्मत्पते अहा  
 दिवा नमते च रक्षिषः ॥ १७ ॥

प्रमद्री शूरो मयया तुवीमयः संमिच्छो वीर्यीय कम् ।  
 उमा ते वाह कृपणा शतकृतो  
 नि या वज्रं मिमिक्षतुः ॥ १८ ॥  
 ॥ ३६ ॥ ( क्र. ८६१.१-१९ )  
 प्रगायो घोः काण्वः । पङ्क्तिः, ७-९ वृत्तो ।  
 प्रो वस्मा उपस्तुतिं भरता यजुजोपति ।  
 उन्मैरिन्द्रस्य माहिं न वयो वर्धन्ति सोमिनो  
 मद्रा इन्द्रस्य रातर्यः ॥ १ ॥  
 अयजो असमो नृमि—रेकः कृष्टीर्यास्यः ।  
 पुर्वोरति प्र वावृधे विभ्यां जाताम्योजसा  
 मद्रा इन्द्रस्य रातर्यः ॥ २ ॥  
 अहितेन चिद्वैता जीरदानुः सियासति ।  
 प्रवाच्यमिन्द्र तत् तव वीर्याणि करिष्यतो  
 मद्रा इन्द्रस्य रातर्यः ॥ ३ ॥  
 आ पाहि कृणवाम त इन्द्र प्रहाणि वर्धना ।  
 येभिः शविष्ठ चाकर्नो मद्रमिह ध्रयस्यते  
 मद्रा इन्द्रस्य रातर्यः ॥ ४ ॥  
 धूपतश्चिद् धूपन्मनः कृणोर्गिन्द्र यत् त्वम् ।  
 तीर्यः सोमैः सपर्यतो नमोभिः प्रतिभूर्यतो  
 मद्रा इन्द्रस्य रातर्यः ॥ ५ ॥  
 अयं चपु ऋचीपमो ऽवतां इव मानुषः ।  
 जुष्टी दक्षस्य सोमिनः सगायं कृणुते युजं  
 मद्रा इन्द्रस्य रातर्यः ॥ ६ ॥  
 विभ्यं त इन्द्र वीर्यं देवा अनु कर्तुं ददुः ।  
 भुघो विभ्यस्य गोपतिः पुरुषुत  
 मद्रा इन्द्रस्य रातर्यः ॥ ७ ॥  
 गुणे तदिन्द्र ते शयं उपमं देवतातये ।  
 यद्वसिं वृत्रमौजसा शचीपते  
 मद्रा इन्द्रस्य रातर्यः ॥ ८ ॥  
 समनेव वपुष्यतः कृणवमानुषा युगा ।  
 विदे तदिन्द्रश्चेतनमयं ध्रुतो  
 मद्रा इन्द्रस्य रातर्यः ॥ ९ ॥

उज्जातमिन्द्र ते शय उक्त्वा मुत् तव कर्तुम् ।  
 भूरिगो भूरि वाक्धु—मर्धवन् तव शर्मणि  
 भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ० ॥  
 अहं च त्वं च वृत्रहन् त्वं युज्याव सनिभ्य आ ।  
 अरातीवा चिद्विषो ऽनु नौ शूर मंसते  
 भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ११ ॥  
 सत्यमिद् वा उ तं वय—मिन्द्र स्तवाम नानृतम् ।  
 मुह्यो अलुन्वतो वधो भूरि ज्योतीषि सुन्वतो  
 भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ १२ ॥

॥ १३ ॥ ( अ० ८।६३।२-११ )

प्राग्य क० १५ । गायत्री; १, ४-५, ८ अनुष्टुप् ।

स पृथ्वीं महानां वेनः कर्तुमिषानजे ।  
 यस्य द्वाप मनुष्पिता देवेषु धियं आनुजे ॥ १ ॥  
 दिवो मानं नोत्सदन् त्सोमपृष्ठासो अद्रयः ।  
 उन्मथा प्रष्टु च शंस्या ॥ २ ॥  
 स विहो अङ्गिरोभ्य इन्द्रो गा अंवृणोदप ।  
 स्तुपे तदस्य पौंस्यम् ॥ ३ ॥  
 स प्रतया कविवृध इन्द्रो वाकस्य वृक्षणिः ।  
 शियो अर्कस्य होम—न्यस्मन्ना गन्त्ववसे ॥ ४ ॥  
 बाधु नु ते अनु क्रन्त्याहा घरस्य यज्यवः ।  
 भ्याग्रमर्का अन्वृते—न्द्र गोत्रस्य दावने ॥ ५ ॥  
 इन्द्रे विभ्यानि क्षीर्यो हृतानि कर्त्यानि च ।  
 यमकां अर्धरं विदुः ॥ ६ ॥  
 यत् पार्श्वजन्मया विरो—न्द्रे घोषा असृक्षत ।  
 अमृणादह्नां विषो ऽयो मानस्य स क्षयः ॥ ७ ॥  
 इयमुं ते मनुषुति—धरूपे तानि पौंस्या ।  
 प्रायश्चमस्य यन्निम् ॥ ८ ॥  
 धरूप पृष्ठा प्योदन उग्र प्रमिष्ट जीवसे ।  
 ययं न पृथ आ ददे ॥ ९ ॥  
 मर्याना भयम्ययो युष्मानिर्दक्षितरः ।  
 श्याम मर्याता युध ॥ १० ॥

वल्गुत्वियाय घाम्न शुकमिः शूर नोनुमः ।  
 जेगमेन्द्र त्वया युजा ॥ ११ ॥  
 ॥ ३८ ॥ ( अ० ८।६४।१-११ ) गायत्री ।  
 उक्त्वा मन्दन्तु स्तोमाः कृणुय राधो ब्रह्मिः ।  
 अयं ब्रह्महिर्यो जहि ॥ १ ॥  
 पदा पूर्णारंघसो नि याधस्व महां असि ।  
 नहि त्वा कश्चन प्रति ॥ २ ॥  
 त्वर्माशिषे सुताना—मिन्द्र त्वमसुतानाम् ।  
 त्वं राजा जनानाम् ॥ ३ ॥  
 एहि प्रेहि क्षयौ दि—व्याधु घोषश्चरणीनाम् ।  
 ओमे पृष्ठासि रोदसी ॥ ४ ॥  
 त्वं चित् पर्वतं गिरि शतवन्तं सहस्रिणम् ।  
 वि स्तोतृभ्यो रुरोजिध ॥ ५ ॥  
 वयमुं त्वा दिवा सुते वयं ननर्त हवामहे ।  
 अस्माकं काममा वृण ॥ ६ ॥  
 कः स्प वृषभो युवां तुषिप्रीवो अनानतः ।  
 ग्रहा कस्तं संपर्यति ॥ ७ ॥  
 कस्य स्थित् सर्वनं वृषा जुजुष्यां अयं गच्छति ।  
 इन्द्रं क उं स्विदा चके ॥ ८ ॥  
 कं ते दाना असक्षत वृत्रहन् कं सुवीर्यी ।  
 उक्थे क उं स्विदन्तमः ॥ ९ ॥  
 अयं ते मारुपे जने सोमः पुरुषं स्वते ।  
 तस्येहि प्र द्रवा पिब ॥ १० ॥  
 अयं ते शर्यणावति सुयोमायामधि प्रियः ।  
 आर्जोकीर्ये मद्विन्तमः ॥ ११ ॥  
 तमय राधसे महे चारुं मदाय धृष्यये ।  
 एहीमिन्द्र द्रवा पिब ॥ १२ ॥  
 ॥ ३९ ॥ ( अ० ८।६५।१-११ )  
 यदिन्द्र प्रागपानुदु न्यग्या हुयसे नृभिः ।  
 ना याहि न्यमाशुभिः ॥ १३ ॥  
 यदां प्रध्वरणे दिवो मादयामि स्वर्णरे ।  
 यदां समुद्रे अन्धसः ॥ १४ ॥

आ त्वा गीर्मिर्महामुक्ं हुवे गामिव भोजसे ।  
 इन्द्र सोमस्य पीतये ॥ ३ ॥  
 आ तं इन्द्र महिमानं हरयो देव ते महः ।  
 रथे वहन्तु विभ्रतः ॥ ४ ॥  
 इन्द्रं गृणीप उं स्तुपे महौ उग्र ईशानकृत् ।  
 पहि नः सुतं पियं ॥ ५ ॥  
 सुतावन्तस्तथा वयं प्रयस्थन्तो हवामहे ।  
 इदं नो वहिरासदे ॥ ६ ॥  
 यच्चिद्वि शश्वतामसी -न्द्र साधारणस्त्यम् ।  
 तं त्वा वयं हवामहे ॥ ७ ॥  
 इदं ते सोम्यं मध्व-धुश्रुत्रिमिनरः ।  
 जुयाण इन्द्र तत् पियं ॥ ८ ॥  
 विभ्वो अयो विपश्चितो ऽति ख्यस्तूयमा गहि ।  
 अस्मे धेहि ध्रुवो बृहत् ॥ ९ ॥  
 दाता मे पृथ्वीनां राजा हिरण्यवीनाम् ।  
 मा देवा मघवा रिपत् ॥ १० ॥  
 सहस्रे पृथ्वीना-मधि अन्द्रं बृहत् पृथु ।  
 शुक्रं हिरण्यमा ददे ॥ ११ ॥  
 नपातो दुर्गहस्य मे सहस्रेण सुरार्धसः ।  
 ध्रुवो देवेर्ध्वकृत ॥ १२ ॥

॥ ४० ॥ ( अ० ८।६६।१-१५ )

कलिः प्रागायः । प्रागायः = ( विप्रमा बृहती, समा सतोवृहती ),  
 १५ अनुष्टुप् ।

ततोमिवो विदहंसु-मिन्द्रं स्वार्धे ऊतये ।  
 बृहद्धार्यन्तः सुतसौमे अघ्यरे  
 हुवे भरं न कारिणम् ॥ १ ॥  
 न यं दध्वा वरन्ते न स्थिरा सुरो मदं सुशिप्रमन्धसः ।  
 य आदत्या शशामानार्यं सुन्यते  
 दाता जरित्र उफर्ध्वम् ॥ २ ॥  
 यः शक्रो मुखो मद्व्यो यो वा कीर्जो हिरण्ययः ।

स ऊर्वस्यं रेजयत्यपावृतिं  
 इन्द्रो गव्यस्य वृत्रहा ॥ ३ ॥  
 निष्ठातं विचिः पुंसंसृतं वस्-दिद्वपति दाशुये ।  
 वज्री सुशिप्रो हयंश्च इत् करत्  
 इन्द्रः क्रत्वा यथा वशत् ॥ ४ ॥  
 यद् धावन्थं पुरुषुत पुरा विच्छर नृणाम् ।  
 वयं तत् तं इन्द्र स मरामसि यन्मुन्यं तुरं वचः ॥ ५ ॥  
 सत्त्वा सोमेषु पुरुहूत वज्रिबो मदार्यं युक्ष सोमपाः ।  
 त्वमिद्वि ब्रह्महृते काम्यं वसु देष्टः सुन्यते भुवः ॥ ६ ॥  
 ध्यमेनमिदा ह्यो ऽपिपेमेह वज्रिणम् ।  
 तस्मा उ अद्य संमना सुतं मर  
 आ नूनं भूयत ध्रुते ॥ ७ ॥  
 वृकश्चिदस्य वारुण उग्रमथि-रा वयनेषु भूयति ।  
 सेमं नः स्तोमं जुजुयाण आ गहि  
 इन्द्र प्र चित्रया धिया ॥ ८ ॥  
 कद् न्व-स्याहृत-मिन्द्रस्यास्ति पांस्यम् ।  
 केनो नु कं भोमतेन न शुश्रुवे  
 जुनुपः परि वृत्रहा ॥ ९ ॥  
 कद् महीरघृष्टा अस्य तविपीः  
 कद् वृत्रघ्नो अस्तुतम् ।  
 इन्द्रो विभ्वान् येकनादौ अहर्हदा  
 उत क्रत्वा पूर्णारमि ॥ १० ॥  
 वयं धा ते अपव्ये-न्द्र ब्रह्माणि वृत्रहन् ।  
 पुरुतमांसः पुरुहूत वज्रिबो  
 भूति न म मरामसि ॥ ११ ॥  
 पुर्वोश्चिद्वि त्वे तुंविर्कर्मिप्राशतो हवन्त इन्द्रोतयः ।  
 तिरश्चिद्व्यः सवना वंसो गहि  
 शविष्ठ ध्रुधि मे हवम् ॥ १२ ॥  
 वयं धा ते त्वे इ-न्द्रि विप्रा अपि प्मसि ।  
 नहि त्वदन्यः पुरुहूत कश्चन  
 मयवग्रस्ति मडिता ॥ १३ ॥

त्वं नो अस्या अमतेरुत क्षुधोः  
अभिशास्तेरयं स्पृधि ।

त्वं न ऊती तयं चित्रया धिया

शिक्षा शचिष्ठ मातुचित् ॥ १४ ॥

सोम इहः सुतो अस्तु कलयो मा विभीतन ।

अपेदेप ध्वस्मायति स्वयं धैपो अपायति ॥ १५ ॥

॥ ४१ ॥ ( ऋ० ८।७६।१-१२ )

कुरुति वायु गायत्री ।

इमं नु मायिर्न ह्य इन्द्रमीशानमोजसा ।

मरुत्यन्त न वृजसे ॥ १ ॥

अयमिन्द्रो मरुत्सखा वि वृत्रस्याभिनिच्छिरः ।

यज्ञेण शतर्षणा ॥ २ ॥

यावृथानो मरुत्सखे-न्द्रो वि वृत्रमैरयत् ।

सुजन्तसमुद्रिया अपः ॥ ३ ॥

अप ह येन वा इदं श्यमैरुत्यता जितम् ।

इन्द्रेण सोमपीतये ॥ ४ ॥

मरुत्यन्तमृजीपिणमोजस्वन्तं विरिञ्चानम् ।

इन्द्रं गीर्भिर्हवामहे ॥ ५ ॥

इन्द्रं भ्रूणेन भग्मना मरुत्यन्तं हवामहे ।

अस्य सोमस्य पीतये ॥ ६ ॥

मरुत्यां इन्द्र मीढुः पित्रा सोमं शतक्रतो ।

अस्मिन् यज्ञे पुरुषुत ॥ ७ ॥

तुभ्येदिन्द्र मरुत्यंते सुताः सोमांसो अद्रिवः ।

इदा हयन्त उक्थिनः ॥ ८ ॥

पिपेदिन्द्र मरुत्सखा सुतं सोमं दिर्विष्टिषु ।

यज्ञं शिक्षान् ओजसा ॥ ९ ॥

उत्तिष्ठभोजमा सह पीत्वी शिषे अवेपयः ।

सोममिन्द्र यमु सुतम् ॥ १० ॥

अनु त्वा रोदमी उमे कर्षमाणमरुपेताम् ।

इन्द्र यद् दस्युधामयः ॥ ११ ॥

पाचमशपदीमहं नयमशक्तिमृतसृष्टाम् ।

इन्द्रात् परि तन्वं ममे ॥ १२ ॥

॥ ४१ ॥ ( ऋ० ८।७७।१-११ )

[ गायत्री, १०-११ प्रगाथाः ( वृहती, सतीवृहती ) ]

जज्ञानो नु शतक्रतुर्वि पृच्छदिति मातरम् ।

क उग्राः के ह शृण्वरे ॥ १ ॥

आदौ शवस्वप्रवी-दीर्णवाममहीशुयम् ।

ते पुत्र सन्तु निपुर्नः ॥ २ ॥

समिध तान् धृत्रहाविद्वत् ते अरौ इष खेदया ।

प्रवृद्धो दस्युधामयत् ॥ ३ ॥

एकया प्रतिधार्पित्व साकं मरौसि विंशतम् ।

इन्द्रः सोमस्य काणुका ॥ ४ ॥

अभि गन्धर्वमृतृण-दद्युधेषु रजःस्वा ।

इन्द्रो ब्रह्मभ्य इद् बुधे ॥ ५ ॥

निराविष्यद् गिरिभ्य आ धारयत् एकमैव नम् ।

इन्द्रो बुधं स्वाततम् ॥ ६ ॥

शतघ्नं इपुस्तव्यं सहस्रपर्णं एक इत् ।

यमिन्द्र चक्रुपे युजम् ॥ ७ ॥

तेन स्तोतृभ्य आ भर नृभ्यो नारिभ्यो अर्चवे ।

सुयो जात ऋभुष्ठिर ॥ ८ ॥

एता ज्यौत्मानि ते कृता यर्षिष्ठानि परीणसा ।

इदा वीर्यधारयः ॥ ९ ॥

विभेत् ता विष्णुरामर-वुरुक्रमस्त्वेषितः ।

शतं मदिपान क्षीरपाकमौदनं ॥ १० ॥

वसुहमिन्द्र पमुपम्

तुविशं ते सुकृतं सुमय धनुः साधुबुन्दो हिरण्यं ।

उमा तं याह रण्या सुसंस्कृत ॥ ११ ॥

ऋदुपे चिहदुवृधा

॥ ४२ ॥ ( ऋ० ८।७८।१-१० )

[ गायत्री, १० वृहती । ]

पुरोज्ञासं नो अर्चस इन्द्र सहस्रमा भर ।

शता च शर गोनाम् ॥ १ ॥

आ नो भर व्यजनं गामभ्यमभ्यजनम् ।

सर्वा मना हिरण्यया ॥ २ ॥

उत नः कर्णशोभना पुरुणि धृष्णवा मर ।  
 त्वं हि शृण्विषे वसो ॥ ३ ॥  
 नकीं वृथीक इन्द्र ते न सुपा न सुदा उत ।  
 नान्यस्त्वच्छ्रेय वाघतः ॥ ४ ॥  
 नकीमिन्द्रो निकर्तवे न शक्रः परिरक्षकवे ।  
 विश्वे शृणोति पश्यति ॥ ५ ॥  
 स मन्थुं मर्त्यानां—मर्दधो नि चिकीपते ।  
 पुरा निदक्षिकीपते ॥ ६ ॥  
 क्रत्य इत् पुर्णमुदरं तुरस्यास्ति विधतः ।  
 घृष्टघ्नः सौमपानः ॥ ७ ॥  
 त्वे यस्नि संगता विश्वा च सोम सौमगा ।  
 सुदात्वपरिहृता ॥ ८ ॥  
 त्वामिधं वयुर्मम कामो गन्धुर्हिरण्ययुः ।  
 त्वामश्वयुरेपते ॥ ९ ॥  
 तवेर्विन्द्राहमाशसा हस्ते वायं घ्ना ददे ।  
 दिनस्य वा मघवन्तसंभृतस्य वा  
 पृथि ययस्य काशिनां ॥ १० ॥  
 ॥ ४४ ॥ ( ऋ० ८।८०।१-९ )  
 एकचूनीवसः । गायत्री ।  
 नहाभ्यं युद्धाकरं मर्दितारं शतक्रतो ।  
 त्वं न इन्द्र मृळय ॥ १ ॥  
 यो नः शभेत् पुराणिथा—ऽमृधो वाजसातये ।  
 स त्वं न इन्द्र मृळय ॥ २ ॥  
 किमहं रथचोदनः सुन्वानस्यावितेदसि ।  
 कुत्रिह स्थिन्द्र णः शक्रः ॥ ३ ॥  
 इन्द्र प्र णो रथमय पृथ्याचित् सन्तमद्विषः ।  
 पुरस्तादेन मे रुधि ॥ ४ ॥  
 हन्तो नु किमांससे प्रयमं नो रथं रुधि ।  
 उपमं वाज्यु ध्रुवः ॥ ५ ॥  
 अयां नो याज्युं रथं सुकरं ते किमिह पार्थ ।  
 अस्मानसु जिग्युषंस्त्रुधि ॥ ६ ॥

इन्द्र दहस्य पूर्पसि भद्रा तं एति निष्कृतम् ।  
 इयं धीर्भुत्वियावती ॥ ७ ॥  
 मा सीमवद्य आ भागु—वीं वाष्ठा हितं धनम् ।  
 अपावृत्ता अरुतयः ॥ ८ ॥  
 तुरीयं नाम यशिर्यं यदा कस्तदुश्मसि ।  
 आदित् पतिर्न ओहमे ॥ ९ ॥  
 ॥ ४५ ॥ ( ऋ० ८।८१।१-९ )  
 कुसीदो वाय ।  
 आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं प्रामं सं वृमाप ।  
 मद्राहस्ती दक्षिणेन ॥ १ ॥  
 विद्या हि त्वां तुषिकुर्मि तुषिदेष्णं तुषीमघम् ।  
 तुषिमात्रमवौभिः ॥ २ ॥  
 नहि त्वां शूर देवा न मतीसो दिवस्तन्म ।  
 भीमं न गां वारयन्ते ॥ ३ ॥  
 एतो न्विन्द्रं स्तगामे—शानं यस्यः स्युराजम् ।  
 न राधसा मर्धिपद्यः ॥ ४ ॥  
 प्र सौपुदुषं गासिप—बहुवत् सामं गीयमानम् ।  
 अभि राधसा जुगुपत् ॥ ५ ॥  
 आ नो भर दक्षिणेना—ऽमि सुन्येन प्र मृग ।  
 इन्द्र मा नो वसोनिर्मीक् ॥ ६ ॥  
 उयं क्रमस्वा मरं दृष्टवा वृष्णे वनानाम् ।  
 अदाश्रुपरस्य वेदः ॥ ७ ॥  
 इन्द्र य उ तु ते अग्निं याहं चिन्निः सन्निव ।  
 अस्माभिः सु न संनुहि ॥ ८ ॥  
 सद्योजुषन्ते याता इन्द्रं विभ्यधन्ता ।  
 वरीश्व मश्रु ईन्द्रे ॥ ९ ॥

इषा भन्तस्यादु ते ऽन् यरोय मृग्यये ।  
 भुवंत् त इन्द्रं नो हृदे ॥ ३ ॥  
 आ त्वंशत्रया गतिं म्युक्थानि च हयते ।  
 उपमे रौचने दिवः ॥ ४ ॥  
 तुभ्यायमद्रिभिः सुतो गोभिः धीनो मदाय कम् ।  
 प्र सोम इन्द्र हयते ॥ ५ ॥  
 इन्द्रं धुधि सु मे हय—मस्मे सुतस्य गोमंतः ।  
 वि प्रीतिं तुमिमंशुहि ॥ ६ ॥  
 य इन्द्र चमसेष्या सोमंश्चमृषुं ते सुतः ।  
 पिबेदस्य त्वमीशिपे ॥ ७ ॥  
 यो धन्सु चन्द्रमा इव सोमंश्चमृषु दहरी ।  
 पिबेदस्य त्वमीशिपे ॥ ८ ॥  
 यं ते ह्येनः पदामरत् तिरौ रजांस्यस्पृष्टम् ।  
 पिबेदस्य त्वमीशिपे ॥ ९ ॥

॥ ४७ ॥ ( अ० ११८१-१८ )

आओगतिः शुनातोयः ॥ कृत्रिमो वैश्वामित्रो

देवायः । अनुपुषः ।

यत्र प्रावा पृथुपुंश्च ऊर्ध्वो भयति सोतये ।  
 उल्लपलसुताना—मयेद्विन्द्र जलगुलः ॥ १ ॥  
 यत्र द्वाविंश जुघना—धिपगुण्या कृता ।  
 उल्लपलसुताना—मयेद्विन्द्र जलगुलः ॥ २ ॥  
 यत्र नार्यपच्यव—मुपच्यव च शिक्षते ।  
 उल्लपलसुताना—मयेद्विन्द्र जलगुलः ॥ ३ ॥  
 यत्र मर्था विपुधते रश्मिन् यमित्वा इव ।  
 उल्लपलसुताना—मयेद्विन्द्र जलगुलः ॥ ४ ॥

॥ ४८ ॥ ( अ० ११९१-७ ) पाकः ।

यच्चिद्धि संत्य सोमपा अनाशस्ता इव स्मसि ।  
 आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वध्वेषु शुधिरुं ॥ १ ॥  
 सुहर्षेषु तुयीमघ शर्षीवस्तव दंसना ।  
 आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वध्वेषु शुधिरुं ॥ २ ॥  
 सुहर्षेषु तुयीमघ

नि प्यायया मिथुदनां सुगतामध्वेषुमाने ।  
 आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वध्वेषु शुधिरुं ॥ ३ ॥  
 सुहर्षेषु तुयीमघ ॥ ४ ॥  
 सुगन्तु त्या धर्गतयो योधन्तु शूर गतयः ।  
 आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वध्वेषु शुधिरुं ॥ ५ ॥  
 सुहर्षेषु तुयीमघ ॥ ६ ॥  
 समिन्द्र गर्भं मृण नृपन्तं पापयामुषा ।  
 आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वध्वेषु शुधिरुं ॥ ७ ॥  
 सुहर्षेषु तुयीमघ ॥ ८ ॥  
 पताति कुण्डणाच्या दूरं यातो यनादधि ।  
 आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वध्वेषु शुधिरुं ॥ ९ ॥  
 सुहर्षेषु तुयीमघ ॥ १० ॥  
 सर्वे परिक्रोशं जहि जन्मया कुरुद्रादम् ।  
 आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वध्वेषु शुधिरुं ॥ ११ ॥  
 सुहर्षेषु तुयीमघ ॥ १२ ॥

॥ ४९ ॥ ( अ० ११९१-१९ )

१-१०, ११-१५ गायत्री, ११ वाहनिवृद्धावशी, ११ शिर ।  
 आ य इन्द्रं निर्वि यथा याज्यन्तः शतनृपम् ।  
 महिष्ठं सिञ्च इन्दुभिः ॥ १ ॥  
 शतं वा यः शुर्ध्वानां सुहर्षं वा समाशितम् ।  
 पदं निजं न रीयते ॥ २ ॥  
 सं यन्मदाय शुमिर्ण एना हस्योदरे ।  
 समुद्रो न व्यचो दधे ॥ ३ ॥  
 अयमुं ते समंतसि कपोत इव गर्भधिम ।  
 वयस्ताचिञ्च ओहसे ॥ ४ ॥  
 स्तोत्रं राधानां पते गिर्याहो वीर यस्य ते ।  
 विमूतिरस्तु सुनता ॥ ५ ॥  
 ऊर्ध्वसिंघा न ऊतये ऽस्मिन् वाजे शतव्रतो ।  
 समन्येषु ब्रवावहे ॥ ६ ॥  
 योगैयोगे त्वस्तं वाजेवाजे हवामहे ।  
 सखाय इन्द्रमूतये ॥ ७ ॥



। वा गमयद्दि श्रवेत् । सहस्रिणीभिः ।

जिभिर्ष नो हवम् ॥ ८ ॥

तु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रति नरम् ।

ते पूर्वं पिता हुवे ॥ ९ ॥

त्वा वयं विश्ववारा—ऽऽ शांसहे पुष्टत ।

खे वसो जरितुभ्यः ॥ १० ॥

स्साकं शिप्रिणीनां सोमपाः सोमपात्राम् ।

खे वज्रिन्सखीनाम् ॥ ११ ॥

था तदस्तु सोमपाः सखे वज्रिन् तथा कृणु ।

था त उद्गमसीष्टये ॥ १२ ॥

यतीनिः सधमाद् इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः ।

मन्तो यामिर्मेदेम ॥ १३ ॥

। घ त्वावान् तमनासः स्तोतृभ्यो धृष्णवियानः ।

इणोरक्षं न चक्रवोः ॥ १४ ॥

। यद् दुयः शतक्रतु—था कामे जरितुणाम् ।

इणोरक्षं न शचीभिः ॥ १५ ॥

। श्वदिन्द्रः पोमुथद्विर्जिगाय

। तन्दद्विः शाश्वसद्विर्धनानि ।

। नो हिरण्यरयं वसनावान्

स नः सनिता सनये स नोऽदात् ॥ १६ ॥

॥ ५० ॥ ( श्रु १३११-१५ )

हिरण्यरूप आश्रितः । शिष्टम् ।

। इन्द्रस्य तु वीर्याणि प्र वीचं

पानिं चकार प्रथमानि वज्री ।

। अहन्नहिमन्यपस्ततर्दं

प्र वक्षणां अभिनत् पर्वतानाम् ॥ १ ॥

। अहन्नहिं पर्वते शिथियाणं त्वष्टास्मै वज्रं स्वयं ततश्च ।

। शश्चा इव धेनवः स्यन्दमाना

। मज्जः समुद्रमयं जम्भरापः ॥ २ ॥

। श्वायमाणोऽवृणीत् सोमं त्रिकं द्रुकेष्वपि वत् कृतस्य ।

। मा सार्यकं मघवांस्तु यज्ञं

। महघेनं प्रथमजामहीनाम् ॥ ३ ॥

यदिन्द्राहं प्रथमजामहीनां

आन्मायिनामहिनाः प्रोत मायाः ।

। आत् सूर्यं जनयन् धामपासं

। तादीन्ता गधं न किला विविस्ते ॥ ४ ॥

। अहं वृत्रं वृत्रतरं व्यसं

। इन्द्रो वज्रेण महता वधेन ।

। स्कन्धासीष कुलिशेना विवृण्व

। अहिः शयत उपधृक् पृथिव्याः ॥ ५ ॥

। अयोदेवं दुर्मद् आ हि जुह्वे

। महावीरं तुविवाधर्मजीपम् ।

। नातापीदस्य सन्मृतिं धुधानां

। सं रुजानां पिपिप इन्द्रशत्रुः ॥ ६ ॥

। अपाद्वहस्नो अपृतन्यादिन्द्रं

। आस्य यज्ञमधि सानौ जघान ।

। धृष्णो वधिः प्रतिमानं धुर्मपन्

। पुत्रा वृत्रो अशयद् व्यस्तः ॥ ७ ॥

। नदं न मित्रममुषा जयानं

। मनोरुहाणा अतिं यन्त्यापः ।

। याश्चिद् वृत्रो मंहिना पर्यतिष्ठत्

। तास्वामहिः पस्तुतः शीर्षेभूव ॥ ८ ॥

। नीचादया अभवद् वृत्रपुत्रा

। इन्द्रो अस्या अयं वधर्जमार ।

। उत्तरा सूरधरः पुत्र आसीद्

। दानुः शये सहर्षत्सा न धेनुः ॥ ९ ॥

। अतिष्ठन्तीनामनियेक्षनानां

। काष्ठानां गव्ये निहितं शरीरम् ।

। वृत्रस्य निष्यं चि चरन्त्यापो

। दीर्घं वन आदायदिन्द्रशत्रुः ॥ १० ॥

। शत्तपन्तीरहिगोपा अतिष्ठन्

। निर्मत्ता आपः पृथिवीं गतः ।

। अपां विलनपिहितं यजसीद्

। वृत्रं जघन्यां दप तद् वधार ॥ ११ ॥ ( ७९ )

अद्वयो वागे अभयस्तविन्द्र  
सुके यत् त्वा प्रत्यदन् देव एकः ।  
अर्जयो गा अर्जयः शूर सोमं  
अवाचुजः सतैवे सुत सिन्धून्  
नास्मै विद्युन्न तन्यतुः सिंसेध  
न यो मिहमकिरद् भ्रातुर्नि च ।

इन्द्रश्च यद् युयुधाते अहिंश्च  
उतापरीम्यो मधुघा वि जिग्ये  
अर्हयितारं कर्मपश्य इन्द्र  
हृदि यत् ते जनुषो भीरगच्छत् ।  
नर्व च यक्षवति च स्रवन्तीः  
श्येनो न भीतो अतपो रजांसि  
इन्द्रो पातोऽवसितस्य राजा  
शर्मस्य च द्राक्षिणो वज्रयाहुः ।  
सेदु राजा क्षयति चरणीनां  
अपान न नेमिः परि ता र्भूव

॥ ५१ ॥ ( अ. ११३११-१५ )

पतायामोर्प गव्यन्त इन्द्र  
अस्माकं सु प्रमर्ति वावृधाति ।  
अनामृणः कुविदादस्य रापो  
गयां केतुं परमावर्जते नः  
उपेदहं धनदामप्रतीतं  
जुष्टां न श्येनो वसति पतामि ।  
इन्द्रं नमस्यध्रुपमेभिरकैः  
यः स्तोतृभ्यो हव्यो अस्ति यामन्  
नि सर्वसेन इपुधोरसक  
समयो गा अजति यस्य वष्टि ।  
चोष्कृतमाण इन्द्र मूर्ति वामं  
मा पुणिर्भूस्मदधि प्रवृद्ध  
यधीर्हि दस्युं धनिर्न घनेन  
एकध्वरप्रपदाकेभिस्त्रिन्द्र ।

धनोरधि विपुणक् ते व्यायन्  
अयज्वानः सनकाः प्रेतिमीयुः ॥ ४ ॥

परं चिच्छीर्षा र्ययुजस्त इन्द्र  
अयज्वानो यज्यभिः मयधमानाः ।  
अ यद् दिवो हरिवः म्यातग्र  
निर्गमतां अधमो रोदस्योः ॥ ५ ॥

अयुगुत्सप्रनयस्य सेनां  
अयातयन्त क्षितयो नयग्याः ।  
यूयायुषो न यययो निरंशः  
प्रवक्षिर्दिन्द्राश्चितयन्त आयन् ॥ ६ ॥

त्यमेतान् रुदतो जक्षतश्च  
अयोधयो रजस इन्द्र पारे ।  
अवादहो दिव आ दस्युमुघा  
अ सुन्यतः स्तुवतः शंसमाधः ॥ ७ ॥

चक्राणासः परीणहं पृथिव्या  
हिरण्येन मणिना शुष्ममानाः ।  
न दिव्यानासंस्तितिरुस्त इन्द्रं  
परि स्पर्शो अदधात् सुयेण ॥ ८ ॥

परि यद्विन्दु रोदसी उमे  
अबुभोजीर्महिना विभवतः सीम् ।  
अमन्यमानौ अभि मन्यमानैः  
निर्घृष्टाभिरधमो दस्युमिन्द्र ॥ ९ ॥

न ये दिवः पृथिव्या अन्तमापुः  
न मायामेधेनुदां पुर्यभूवन् ।  
युजं वज्रं वृषमश्नुक् इन्द्रो  
निज्योतिषा तमसो गा अंदुक्षत् ॥ १० ॥

अनु स्वधार्मक्षरत्रापो अस्य  
अवर्धत मध्य आ नाव्यानाम् ।  
सघ्नीचीर्नेन मर्नसा तमिन्द्र  
ओजिष्ठेन हर्मनाहध्रुभि द्युन् ॥ ११ ॥

न्याविष्यदिलीविशस्य दृढहा  
वि शृङ्गिणमभिनच्छुष्मिन्द्रः ।  
यावत्तरो मघवन् यावदोजो  
वज्रेण शत्रुमवधीः पृतन्युम् ॥ १२ ॥  
अभि सिध्मो अजिगादस्य शत्रुन्  
वि तिग्मेन वृषमेणा पुरोऽमेत् ।  
सं वज्रेणासृजद् वृषमिन्द्रः  
प्र स्वां मतिर्मतिरच्छाशदानः ॥ १३ ॥  
आयः कुत्समिन्द्र यस्मिञ्चाकन्  
प्रावो युध्यन्तं वृषमं दशधुम् ।  
शफच्युतो रेणुनक्षत धां  
वच्युधयो नृपाहाय तस्यौ ॥ १४ ॥  
आयः शर्म वृषमं तुभ्यासु  
क्षेत्रजेपे मघवन्ध्रियं गाम् ।  
ज्योक् चिदधं तस्यिवांसौ अरुञ्  
च्छत्रयतामघरा वेदनाकः ॥ १५ ॥

॥ ५२ ॥ ( अ० १।५।११-१५ )

स्य बाहिरः । अगदी, १४-१५ त्रिष्टुप् ।

अभि त्वं मेपं पुरुहुतमृगियं  
इन्द्रं गीर्भिर्मदता वस्वो अर्णयम् ।  
यस्य धावो न विचरन्ति मानुषा  
मुजे मंहिष्ठमभि विप्रमर्चत  
अभीर्मवन्त्यत्समिष्टिमुतयो  
ऽन्तरिक्षप्रां तर्षियोमिरावृतम् ।  
इन्द्रं दशाय अमयो मधुच्युतं  
शतक्रतुं जयनी सुनुतारुहत्  
त्वं गोत्रमङ्गिरोभ्योऽवृणोस्व  
उताग्रये शतदुरेषु गातुवित् ।  
ससेनं चिद् विमदायावहो वसुं  
आजायद्रिं यावसानस्यं नतर्षन्  
त्यमपामपिधानावृणोस्व  
अघारयः पयते दानुमद् वसुं ।

वृत्रं यदिन्द्र शवसावधीरति  
आदित् सूर्यं दिव्यारोहयो दृशे  
त्वं मायामिरपं मायिनोऽधमः  
स्वधामिर्ये अधि शुप्तावजुह्वत ।  
त्वं पिप्रोर्नृमणः प्रारुजः पुरः  
प्र श्रुजिभ्वानं दस्युहर्त्येवाविथ ॥ ५ ॥  
त्वं कुत्सं शुष्महर्त्येवाविथ  
अरुन्धयोऽतिथिग्वाय शर्म्यम् ।  
महान्तं चिद्वयुदं नि क्रमीः पदा  
सनादेव दस्युहर्त्याय जशिपे ॥ ६ ॥  
त्वे विश्वा तर्विषी सन्ध्यग्निता  
तद्य राधः सोमणीयाय हर्षते ।  
तद्य यज्ञश्चिकिते ब्राह्मेर्हितो  
वृक्षा शशोरव विश्वानि वृण्यो ॥ ७ ॥  
वि जानीह्यार्योन् ये च दस्यवो  
वर्हिष्मते रन्धया शार्सदमृतान् ।  
शार्की भव यजमानस्य चोदिता  
विभ्वेत् ता तै सधमादेपु चाकन ॥ ८ ॥  
अनुव्रताय रन्धयधर्षव्रतान्  
आभूमिरिन्द्रः श्रययन्नानामुषः ।  
वृद्धस्य चिद् यधेता धामिनक्षतः  
स्तवानो वृत्रो वि जयान संदिहः ॥ ९ ॥  
तक्षद् यत् त उशाना सहसा सहो  
वि रोदसी मज्जनां बाधने शर्षः ।  
आ त्या चार्तस्य नृमणो मनोयुज  
आ पूर्वमाणमवहृष्टमि अघः ॥ १० ॥  
मन्दिष्ट यदुशनं वाच्ये सञ्चौ  
इन्द्रो वृद्धं वंहुतरार्धं तिष्ठति ।  
उग्रो ययि निरुपः स्रोतसारजुद्  
वि शुर्णस्य दंदिता र्णयत् पुरः ॥ ११ ॥

॥ ११ ॥

( ७५५ )

अदभ्यो वारो अभवस्तदिन्द्र  
सुके यत् त्वां प्रत्यहं देव एकः ।  
अजंयो गा वज्रयः शर सोमं  
अवाञ्छन् सतैव सप्त सिन्धून्  
नास्मै विद्युन्न तन्यतुः सिन्धेय  
न यो मिहमार्कैरद् धादुर्नि च ।  
इन्द्रश्च यद् युयुधाते अहिंश्च  
उतापरीम्यो मघवा वि जिग्ये  
अहेर्यातारं कर्मपदय इन्द्र  
द्विद्वि यत् तं जुञ्चुषो भीरुञ्छत् ।  
नव च यज्ञवति च खवन्तीः  
श्येनो न भीतो अतरो रजांसि  
इन्द्रो यातोऽवसितस्य राजा  
शमस्य च द्राक्षिणो वज्रबाहुः ।  
सेदु राजा क्षयति चर्पणीनां  
अरान् न नेमिः परि ता धूमव

॥ ५१ ॥ ( अ. १:३:१-१५ )

पतायामोर्प गव्यन्त इन्द्रं  
अस्मान् सु प्रमतिं वावृधाति ।  
अनामृणः कुविदादस्य रायो  
गवां केतुं परमावर्जते नः  
उपेदहं धेनुदामप्रतीतं  
जुष्टां न श्येनो वसतिं पतामि ।  
इन्द्रं नमस्यद्रुपमेभिरकैः  
यः स्तोतृभ्यो हव्यो अस्ति यामन्  
नि सर्वसेन इषुधीरसक्त  
समयो गा वज्रति यस्य याष्टे ।  
शोणूयमाण इन्द्र मूर्ध्नि यामं  
मा पणिमैरस्मदधि प्रवृद्ध  
पथीदि दम्यु धनिर्न धनेन  
एवधरप्रपदाकेभिस्त्रिन्द्र ।

धनोरधि विपुणक् ते व्यायन्  
अयज्वानः सनकाः प्रेतिमीयुः ॥ ४ ॥  
परं चिच्छीर्षा वयं जुस्त इन्द्र  
अयज्वानो यज्वभिः स्पर्धमानाः । ॥ १२ ॥  
प्र यद् दिवो हरिवः स्यातग्र  
निरग्रतो अंधमो रोदस्योः ॥ ५ ॥  
अयुत्सन्नवनवधस्य सेनां  
अयातयन्त क्षितयो नवगवाः । ॥ १३ ॥  
घृणायुधो न वज्रयो निरष्टाः  
प्रवद्विरिन्द्राश्चित्तयन्त आपन् ॥ ६ ॥  
स्वमेतान् रदतो जक्षतश्च  
अयोधयो रजस इन्द्र पारे । ॥ १४ ॥  
अवां दहो दिव आ दस्युमुध्या  
प्र सुन्वतः स्तुवतः शंसमावः ॥ ७ ॥  
चक्राणासः परीणहं पृथिव्या  
हिरण्येन मणिना शुभ्रमानाः । ॥ १५ ॥  
न हिंस्वानासस्तिविरुस्त इन्द्रं  
परि स्पर्शो अदधात् सूर्येण ॥ ८ ॥  
परि यदिन्द्र रोदसी उभे  
अर्बुमोजीर्महिना विभ्रतः सीम् । ॥ १ ॥  
अमन्यमानां अभि मन्यमानैः  
निर्ग्रहामिरधमो दस्युमिन्द्र ॥ ९ ॥  
न ये दिवः पृथिव्या अन्तमापुः  
न मायामिधेनदां पर्यमूचन् । ॥ २ ॥  
युजं वज्रं वृषभश्चरु इन्द्रो  
निज्योतिषा तमसो गा अदुक्षत् ॥ १० ॥  
अर्जु स्वधामक्षरघ्राणो अस्य  
अवधेत् मघ्वा आ नाच्यानाम् । ॥ ३ ॥  
सघ्नीचीर्नेन मनसा तमिन्द्र  
ओजिधेन हन्मनाहधमि घ्न ॥ ११ ॥

न्याविध्यदिलीविशस्य हृद्धा

वि शृङ्गिणममिनच्छुष्णमिन्द्रः ।

यावत्तरो मघवन् यावदोजो

यज्रेण शत्रुमवधीः पृतन्युम्

अभि सिध्मो अजिगादस्य गवुन्

वि तिग्मेन घृपमेणा पुरोऽमेव ।

सं यज्रेणासृजद् घृत्रमिन्द्रः

प्र स्वां मतिमतिरच्छाशदानः

आयः कुन्मीमिन्द्र यस्मिञ्चाकन्

प्रायो युध्यन्तं घृपमं दशद्युम् ।

शफच्युतो रेणुर्नक्षत चां

उच्चैर्ध्रियो नृपाद्याय तस्यौ

आयः शर्म घृपमं तुःयाद्यु

क्षेत्रजेये मघवन्निष्ठुयं गाम् ।

ज्योक् चिदत्र तस्त्रिषांसा अकम्

च्छत्र्यतामर्धता वेदनाकः

॥ ५२ ॥ ( अ० १५११-१५ )

सव्य आश्रितः । अमरी, १४-१५ विष्टम् ।

अभि त्वं मेपं पुचहुतमृगिभ्यं

इन्द्रं गीर्भिर्मैदता यस्यो अर्णयम् ।

यस्य घायो न विचरन्ति मानुषा

भुजे मंहिष्ठमभि विप्रमर्चत

अमीमंथन्यन्त्स्वमिष्टिमुतयौ

ऽन्तरिक्षमां तपिरीमिरावृत्नम् ।

इन्द्रं दक्षाग्न अमयो मदच्युतं

शानक्रतुं जयनी सन्तारहव

त्वं गोप्रमङ्गिरोभ्योऽवृणोरप

उताप्रये नतदुरेषु गातुविष ।

सुसेनं चिद् विमदायायतो यष्टु

आजायाद्रि धायमानस्यं नतयन्

रथमपामं पिधानावृणोरप

अघोरयः पयंते दानुमद् यष्टु ।

युत्रं यदिन्द्र शत्रुसावधीरहि

आदित् सूर्यं दिव्यारोहयो हृदो

त्वं मायाभिरप्यं मायिनोऽधमः

स्वयामिष्ये अधि दुप्तावहुक्षत ।

त्वं पिप्रोर्नमणः प्रारब्जः पुरः

प्र ऋजिभ्वानं दस्युहृत्स्यैष्याविथ

त्वं कुत्सं दुष्णहृत्स्यैष्याविथ

अरन्धयोऽतिथिगवाय शम्यरम् ।

महान्तं चिदयुं न किं क्रीमाः पदा

सनादेव दस्युहृत्साय जमिषे

त्वे विश्वा तपिरी सन्ध्यागिता

तय राधः सोमपीथार्यं हृपते ।

तय यज्रश्चिकिते याहोर्हितो

वृद्धा शत्रोरप्य विश्वानि वृण्व्या

वि जानीह्यार्यान् ये च दस्ययो

यहिर्भते रन्ध्रया शसदमृतान् ।

शार्की मय यजमानस्य चोदिता

विभ्येत् ता तै सधमादेपु चाकन

अनुयताय रन्ध्रयप्रर्षमृतान्

आभृमिरिन्द्रः श्रययप्रनाभुयः ।

यूद्धस्यं चिद् यर्षेता घामिनक्षतः

स्त्वानो युप्रो वि जघान संदिदः

तध्रद् यत् तं उशना सहसा सद्यो

वि रोदसो मृमनां याधेत् शयः ।

आ त्वा यातस्य नृमणो मनोयुज

आ पूयमाणमवहयमि अयः

मन्दिष्टं यदुदाने काये सचां

इन्द्रो यद् यदुतरार्थं निष्ठति ।

उप्रो ययि निरुपः श्रोतमागृजद्

ति गुण्णम्य दहिता र्णयय पुरः

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १० ॥

॥ ११ ॥

( ३५ )

आ स्मा रथं वृषपाणेपु तिष्ठसि  
 शार्यातस्य प्रभृता येपु मन्दसे ।  
 इन्द्र यथा सुतसोमेषु चावन  
 अनर्वाण श्लोकमा रोहसे दिवि  
 अर्द्धा अमो महते वचस्यवै  
 कक्षीवते वचयामिन्द्र सुन्यते ।  
 मेनामवो वृषणभ्यस्य सुक्रतो  
 विभेत् ता ते सर्वेनेपु प्रवाच्या  
 इन्द्रो अग्रायि सुध्यो निरेके  
 पञ्चेपु स्तोमो दुर्यो न यूपः ।  
 अभ्युर्गान्यू रथयुर्वसुयुः  
 इन्द्र इन्द्रायः क्षयति प्रयन्ता  
 इव नमो वृषभाय स्वराजै  
 सुत्वष्ट्युप्माय तवसेऽवाचि ।  
 अस्तिभिन्द्र वृजने सर्ववीरा  
 सत् सुरिभित्तव शर्मन्स्याम  
 ॥ ५३ ॥ ( अ० १।५०।१-१५ ) जगती, १३, १५ त्रिष्टुप् ।  
 एवं सु मेपं महया स्थर्विदै  
 शतं यस्य सुभ्यः साकमीरते ।  
 अत्यं न वाजं हवनस्यद् रथं  
 पन्त्रं ववृत्त्यामवसे सुनृत्तिभिः  
 स पर्यतो न घरणेष्वच्युत-  
 सहस्रमृत्तिस्तविषीषु बावृधे ।  
 इन्द्रो यद् वृत्रमवधीन्नदीर्तुत  
 उज्जघ्नीसि जर्हपाणो अर्घसा  
 स हि हरो हरिषु वय ऊर्ध्वनि  
 चन्द्रवृज्जो मर्दवृद्धो मनीषिभिः ।  
 इन्द्र तमहे स्वपस्यया धिया  
 मर्हिष्ठराति स हि परिगर्धस-  
 आ य पृणन्ति दिवि सन्नवर्हिपः  
 समुद्रं न समुद्रः म्या अभिष्टयः ।

तं वृत्रहत्ये अनु तस्थुस्तयः  
 ॥ ४ ॥  
 शुष्मा इन्द्रमवाता अदृतस्यवः  
 अभि स्वर्वादि मदै अस्य युध्यतो  
 ॥ १२ ॥  
 रन्वीरिव प्रवणे संमृत्नयः ।  
 इन्द्रो यद् वृज्जी धूपमाणो अर्घसा  
 भिनद् वृलस्य परिधीरिव त्रितः  
 ॥ ५ ॥  
 परी घृणा चरति तितिये शवः  
 अपो वृत्वी रजसो युध्नमादीपत् ।  
 वृत्रस्य यत् प्रवणे दुर्यभिभनो  
 निजघन्य हर्षोरिन्द्र तन्यतुम्  
 ॥ ६ ॥  
 हृदं न हि त्वा न्युपन्युर्मयो  
 प्रज्ञाणीन्द्र तय यानि वर्धना ।  
 त्वष्टा चित् ते युज्यं वावृधे शयः  
 ततस्त वज्रमभिभूत्योजसम्  
 ॥ ७ ॥  
 जघन्वो उ हरिभिः संभृतवतो  
 इन्द्रं वृत्रं मनुषे गातुयज्ञपः ।  
 अयच्छया याहोर्वज्रमायस  
 अधारयो दिव्या सूर्ये हशे  
 ॥ ८ ॥  
 वृहत् स्थर्धन्द्रममवद् यदुष्यं  
 अकृण्वत भियसा रोहणं दिवः ।  
 ॥ १ ॥  
 यन्मानुषप्रधना इन्द्रमृतयः  
 स्वर्नृपाचो मरुतोऽमर्दशतु  
 ॥ ९ ॥  
 द्यौश्चिदस्यामवो अहैः स्वनाद्  
 अर्योयवीद् भियसा वज्रं इन्द्र ते ।  
 ॥ २ ॥  
 वृत्रस्य यद् वद्वधानस्य रोदसी  
 मदै सुतस्य शवसाभिनिच्छरः  
 ॥ १० ॥  
 यदिन्निन्द्र पृथिवी दर्शभुजिः  
 यदानी विभ्वा ततर्नन्त कृपयः ।  
 ॥ ३ ॥  
 अग्राह ते मघवन् विश्रुतं सहो  
 चामनु शर्वसा वृहणां भुवत्  
 ॥ ११ ॥  
 ( ७७० )

त्वमस्य पारे रजसो व्योमनः ।  
 स्वभृत्योज्ञा अर्धसे धृपन्मनः ।  
 चरुणे भूमिं प्रतिमानमोजसः ।  
 अपः स्वः परिभूरेष्या दिवम् ॥ १२ ॥  
 त्वं भुवः प्रतिमानं पृथिव्या  
 श्रुष्ववीरस्य बृहतः पतिर्भूः ।  
 विश्वमाप्नो अन्तरिक्षं महित्वा  
 सत्यमसा नक्तिन्यस्तथायान् ॥ १३ ॥  
 न यस्य द्यावापृथिवी अनु व्यचो  
 न सिन्धवो रजसो अन्तर्मानशुः ।  
 नोत स्वर्वादि मदै अस्य युध्यत  
 एको अन्यश्चरुणे विश्वमानुषक ॥ १४ ॥  
 आर्च्यन्नं मृतः ससिप्राजो  
 विधे देवासो अमदधनु त्वा ।  
 वृषस्य यद् वृष्टिमता वधेन  
 नि त्वमिन्द्र प्रत्यानं जयन् ॥ १५ ॥  
 ॥ ५४ ॥ ( अ० १५३।१-११ ) जगती १०-११ अष्टपु ।  
 न्युः पु चाव प्र महे भरामहे  
 गिर इन्द्राय सदेने विवस्वतः ।  
 न चिदि रजं ससतामिवाविदत्  
 न दुष्टतिर्द्विषणोदेषु शस्यत ॥ १ ॥  
 दुरो अर्धस्य दुर इन्द्र गौरसि  
 दुरो ययस्य वसुन इनस्पतिः ।  
 शिमानरः प्रविद्यो अकामकरानः  
 सद्या ससिन्धुस्तमिदं वृणीमसि ॥ २ ॥  
 शचीय इन्द्र पुररुद् पुमत्तम  
 तयेदिदमभितक्षेकिते वसु ।  
 भतः संगृह्याभिभूत आ भैर  
 मा त्वापतो जैरितुः काममूनयीः ॥ ३ ॥  
 एभिर्गुभिः सुमना एभिरिन्द्रभिः  
 निरुध्यानो अमति गोभिरुभ्यतो ।

इन्द्रेण वस्युं वरयन्त इन्द्रभिः  
 युतर्ह्येसः समिषा ऐमहि ॥ ४ ॥  
 समिन्द्र यया समिषा ऐमहि  
 सं वार्जेभिः पुरुश्चन्दैरमिष्टुभिः ।  
 सं देव्या प्रमत्या वीरदाभ्या  
 गोमप्रयाभ्वावत्या ऐमहि ॥ ५ ॥  
 ते त्वा मदा अमदन् तानि वृष्ण्या  
 ते सौमासो बृहद्वलेषु सत्पते ।  
 यत् कावे दश वृषाण्यप्रति  
 यर्हिभते नि सहस्राणि यद्वयः ॥ ६ ॥  
 युधा युधमुप घेदैपि धृष्ण्या  
 पुरा पुरं समिदं हंस्योजसा ।  
 नम्या यदिन्द्र सत्या परावति  
 निर्यह्यो नर्मुचि नार्म मायिनम् ॥ ७ ॥  
 त्वं करञ्जमुत पूर्णयं वषीः  
 तेजिष्ठयातिथिग्वस्य वतनी ।  
 त्वं शता बह्वस्याभिनुत् पुरो  
 अनानुदः परिपूताः श्रुजिभ्वना ॥ ८ ॥  
 त्वमेताञ्जनरागो दिवरा  
 अयन्धुना सुधयंसोपजुमुपः ।  
 यधि सहस्रा नवति नव्य भूतो  
 नि चक्रेण रथ्या दुष्पदावृणक् ॥ ९ ॥  
 त्वमाधिय सुधयंसं तयोतिमिः  
 तव ग्रामभिरिन्द्र त्वय्याणम् ।  
 त्वमस्मै कुत्समतिथिग्वमायुं  
 महे राने यूने अरन्धनायः ॥ १० ॥  
 य उच्चिन्द्र देवगोपाः  
 सग्रायस्ते दिवर्तमा अस्ताम ।  
 त्वां स्तोषाम त्वया सुवीर्य  
 द्राघीय आयुः प्रनरं दधानाः ॥ ११ ॥

॥ ५५ ॥ अ० १।५।१-११ अगती, ६, ८-९, ११

विष्णु ।

मा नो असिन् मधयन् पुत्स्वहंसि  
 नहि ते अन्तः शर्वसः परीणनै ।  
 अकन्दयो नृपो रोहवद् घना  
 कथा न क्षोणीर्मयसा समारत  
 अर्चो शक्राय शक्तिने शर्चावते  
 शृण्वन्तमिन्द्रं महयन्मि पुंदि ।  
 यो धृष्णुना शर्वसा रोदसी उमे  
 वृषा वृषत्वा वृषमो न्युज्जते  
 अर्चो विवे बृहते शृण्वः यच्च  
 स्वक्षत्रं यस्य घृपतो धृषन्मनः ।  
 बृहच्छ्रवा अस्तुरो बृहन्ना कृतः  
 पुरो हविर्भ्या वृषमो रथो हि यः  
 त्वं द्वियो बृहतः सानु कोपयो  
 अब त्मना घृपता शर्वरं भिनत् ।  
 यन्मायिनो मन्दिनो मन्दिना घृपत्  
 शितां गमस्तिमशानि पृतन्यासि  
 नि यद् वृणक्षि भवसुनस्य मूर्धनि  
 शृण्वस्य चिद् मन्दिनो रोहवद् घना  
 प्राचीर्निन मनसा बृहन्नायता  
 यद्वा चिद् कुण्डः कस्त्या परि  
 रयमायिषु नयं तुर्धशं यदुं  
 त्वं तुर्यीति तुर्यं शतक्रतो ।  
 त्वं रयमेतदा शत्ये धने  
 त्वं पुरो नगतिं दग्मयो नव  
 स या राजा सत्यनिः शशयुज्जर्नो  
 शतहयः प्रति यः शाममिन्वति ।  
 उक्था या यो धमिगुणाति राधसा  
 शानुस्मा उपरा पिन्वते दिवः  
 धर्मं क्षयमर्गमा मनीया  
 म गोमया धर्ममा सन्तु नेम ।

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

ये ते इन्द्र वृषो यधयन्ति  
 महि क्षत्रं स्थविर् वृष्यं च  
 तुम्येदेते बृहता अद्रिदुग्धाः  
 चमूदधमसा इन्द्रपानाः ।  
 व्यसुहि तर्पया काममेयां  
 अथा मनो वसुदेयाय कृष्य  
 अपामतिप्रसृष्टण्डरं तमो  
 अन्तर्वृषस्य जउरेवु पर्वतः ।  
 अमीमिन्द्रो नृपो घमिणा हिता  
 विभ्वा अनुष्टाः प्रवृणोषु जिघ्रते  
 स शर्वधमधि धा घृषमसे  
 महि क्षत्रं जनापाळिन्द्र तर्प्यम् ।  
 रक्षां च नो मयोनः पाहि सुरीन्  
 राये च नः स्पपसा इपे धाः  
 ॥ ५६ ॥ (अ० १।५।१-८) अगती ।  
 दिव्यधिवस्य हरिमा वि पप्रथ  
 इन्द्रं न मुहा पृथिवी चन प्रति ।  
 भीमस्तुर्विष्मा अर्यणिम्य आतपः  
 शिशिती यजं तेजसे न वलंगः  
 सो अर्णवो न नृधः समुद्रियः  
 प्रति शृण्णाति विधिंता परीमभिः ।  
 इन्द्रः सोमस्य पीतयं वृषायते  
 सुनाद् स युष्म कोजसा पनस्यते  
 त्वं तमिन्द्र पर्वतं न भोजसे  
 महो नृगणस्य धर्मेणामिरज्यसि ।  
 प्र पीयेण देवतार्तिं चेकिते  
 विश्वसा उग्रः कर्मणे पुरोहितः  
 स इद् धने नमस्युर्भिवेचस्यते  
 चाद् जनैषु प्रयुगाण इन्द्रियम् ।  
 वृषा छन्दुर्मयति हयतो वृषा  
 क्षेमण धेनो मधया यदिन्वति

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १० ॥

॥ ११ ॥

॥ १२ ॥

॥ १३ ॥

॥ १४ ॥

॥ १५ ॥

॥ १६ ॥



स इन्द्रहानि समिधानि मज्जना  
 कृणोति युष्म ओजसा जनैभ्यः ।  
 अर्धा चन भद्र दधति त्विषामित  
 इन्द्राय वज्रं निघनिप्रते वधम्  
 स हि अयस्यः सदनानि कुत्रिमा ।  
 ह्यया वृथान ओजसा विनाशयन् ।  
 ज्योतीषि कृण्वन्वृकाणि यज्यवे  
 अयं सुक्रतुः सतेवा अपः सजत्  
 वानाय मनः सोमपावन्नस्तु ते  
 अवाञ्छा हरी घन्दनधुदा कृधि ।  
 यमिष्ठासुः सारययो य इन्द्र ते  
 न त्वा केता आ वन्नुबन्ति भूण्यः  
 अप्रक्षितं वलु विमर्षि हस्तयोः  
 अपाळं सहस्तवि धृतो वधे ।  
 आवृतासोऽयतासो न कर्तुमिः  
 तनूषु ते कतथ इन्द्र भूरयः  
 ॥ १७ ॥ ( ऋ० १५७।१-६ )  
 एव प्र पूर्णरु तस्य चत्रिपो  
 अत्यो न योषामुदयस्त भुवणिः ।  
 वक्षं महे पाययते हिरण्ययं  
 रयमावृत्वा हरियोगमृभ्वसम्  
 तं गुतयो नेमश्चिपः परीणसः  
 समुद्रं न संचरणे सनिष्यवः ।  
 पति वक्षस्य विदधस्य नू सहो  
 गिरि न वेना अर्थि रोह तेजसा  
 स तुवर्गिर्महो अरेणु पाँस्यै  
 गिरेर्मृष्टिने भ्राजते तुजा शवः ।  
 येन शुण्णं मायिनमायसो मदै  
 दुध आमर्षु रामयन्नि दामनि  
 देवी यति तविषी त्वावृधोतय  
 इन्द्र सिपस्युपसं न स्यैः ।

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

यो घृष्णना शयसा बाधते तम्  
 इयति रेणु बृहदहस्तिपणिः  
 वि यत् तिरो घृणमच्युतं रजो  
 अतिष्ठिपो दिव आतासु यर्हणा ।  
 स्वमीळ्हे यन्मदं इन्द्र हर्ष्याहन्  
 धुत्रं निरुपामौजो अण्वम्  
 त्वं विषो घृणं धिय ओजसा  
 पृथिव्या इन्द्र सदनेषु माहिनः ।  
 त्वं सुतस्य मदै अरिणा अपो  
 वि वृत्स्य समया पाप्याहजः

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ५८ ॥ ( ऋ० १५७।१-६ )

प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये  
 सत्यशुष्माय तवसे मति मेरे ।  
 अपामिष प्रयणे यस्य वुधंरं  
 तयो विभ्वायु शवसे अपावृतम्  
 अयं ते विद्वमनुं हासतिष्ठय  
 आपो निमेव सर्वना हविष्मताः ।  
 यत् पर्वते न समशीत हर्यत  
 इन्द्रस्य वज्रः अर्धिता हिरण्ययं  
 अस्मै भीमाय नमसा समध्वर  
 उपो न शुभ्र आ भरा परीयसे ।  
 यस्य धाम भवसे नमैन्निधं  
 ज्योतिरकारि हरितो नार्यसे  
 इमे त इन्द्र ते वयं पुंरुपुत  
 ये त्वारम्य चरामसि प्रमूयसो ।  
 नहि त्वदन्यो निर्वणो गिरः सधत्  
 क्षोणीरिव प्रति नो हर्य तद् वचः  
 मूर्ति त इन्द्र वीर्यं तव स्मसि  
 अस्य स्तोतुर्मधवन् काममा पृण ।  
 अनु ते सौर्वृहती वीर्यं मम  
 इयं च ते पृथिवी नैम ओजसे

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

( ८६५ )

त्य तमिन्द्र पर्वत महामुख ।  
वज्रेण वज्रिन् पर्वशस्त्रकतिथ ।  
अरासुजो निवृत्ता सतत्वा अप  
सुजा विभवं दधिपे केवल सह

॥ ५९ ॥ श्रु० ११०११२-११ )

कुस आ॥३॥१॥ ( १ गमलविष्णुप नेषद् ) । जगताः  
८ ११ । नष्ट १ ।

प्र मुनिने पितुमदचेता यवो  
य कुण्ठागर्भा निरहंजिभ्वना ।  
अवस्यवो वृषेण वज्रवक्षिण  
मृत्त्वन्त सूर्यार्य हवामहे  
यो व्यस जाहयाणेन मन्थुना  
य शम्बर यो अहन् पिप्पुमवतम् ।  
इन्द्रो य शुष्णमशुष न्यावृण्ड  
मृत्त्वन्त सूर्यार्य हवामहे  
यस्य चावापुयिषी पौंस्यं महद्  
यस्य व्रते वरुणो यस्य सूर्ये ।  
यस्येन्द्रस्य सिन्धव्य सधति व्रत  
मृत्त्वन्त सूर्यार्य हवामहे  
यो अम्भाना यो गन्ता गोपतिर्वशी  
य आरित कर्मणिकर्मणि स्थिर ।  
यौञ्जोश्चिदिन्द्रो यो असुन्वतो वृधो  
मृत्त्वन्त सूर्यार्य हवामहे  
यो विभ्वस्य जगत प्राणतस्पति  
यो व्रह्मणं प्रथमो गा अविन्दत् ।  
इन्द्रो यो दम्युत्तरां अगतिरज  
मृत्त्वन्त सूर्यार्य हवामहे  
य नरैर्मिद्व्यो यथ मीरभि  
यो धार्याङ्गद्वये यथ निम्बुभि ।  
इन्द्र य पिभ्या मुयनाभि सन्धु  
मृत्त्वन्त सूर्यार्य हवामहे

रुद्राणामिति प्रदिशा विचभृणो  
रुद्रेभिर्गोपा तनुते पृथु जय ।  
इन्द्रं मनीषा अभ्यर्चति श्रुतं  
॥ ६ ॥ मृत्त्वन्त सूर्यार्य हवामहे

॥ ७ ॥

यद् वां मरुत्व एमे सुधरये  
यद् वां वमे वृजने मादयासे ।  
अत आ याहाध्वर नो अच्छा  
त्वाया हविर्अहमा सत्यराध

॥ ८ ॥

त्वायेन्द्र सोमं सुपुमा सुदक्ष  
त्वाया हविर्अहमा ब्रह्मवाह ।  
॥ १ ॥ अथा नियुत्व सर्गणो मरुद्भि  
अस्मिन् युधे वर्हिर्पि मादयस्व

॥ ९ ॥

मादयस्व हरिभिर्ये त इन्द्र  
वि र्थस्व शिमे वि सृजस्व धेने ।  
॥ २ ॥ आ त्वा सुशिप्र हरयो बहुन्तु  
उशन् हव्याति प्रति नो जुषस्व

॥ १० ॥

मृत्त्वन्तस्य वृजनेस्य गोपा  
व्यमिन्द्रेण सनुयाम वाजम् ।  
॥ ३ ॥ तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ता  
अदिति सिन्धु पृथिवी उत घी

॥ ११ ॥

॥ ६० ॥ ( श्रु० ११०११२-११ )

१-१० जगती ११ मिथुन ।

॥ ४ ॥

हमां ते धिय प्र भेर महो महो  
अस्य स्तोत्रे धिपणा यत् त आनजे ।  
तमुत्सवे च प्रसवे च सासाहि  
॥ ५ ॥ इन्द्र देवास शर्वसामदधनु

॥ १ ॥

अस्य ध्रुवो नृप सप्त विभ्रति  
यावाहामा पृथिवी दर्शत वपु ।  
असे सूर्याचन्द्रमसामिचक्षे

॥ ६ ॥

धदे कर्मिन्द्र चरनो वितर्तुर्म

॥ २ ॥

( ८९९ )

तं स्मा रथं मघवन् प्रावं सातये ।

जैत्रं यं तं अनुमदाम संगमे ।

आजा न इन्द्र मर्नसा पुष्टुत ।

त्वायद्रथो मघवञ्जमे यच्छ नः ।

वयं जयेम त्वया युजा वृत्तं ।

अस्माकमनुदया भरेभरे ।

अस्मभ्यमिन्द्र धरिवः सुगं कृधि ।

प्र शर्षणां मघवन् धृण्यां रुज ।

नाना हि त्वा हवमाना जना इमे ।

धनानां धर्तरवस्ता विपन्यवः ।

अस्माकं स्मा रथमा तिष्ठ सातये ।

जैत्रं हीन्द्र निभृत मनस्तव ।

गोजिता बाह्व अमितकतुः सिमः ।

कर्मन्कर्मन्धृतमृतिः सजंकुरः ।

अकल्प इन्द्रः प्रतिमानमौजसा ।

अथा जना वि ह्यन्ते सिपासवः ।

उत् तं शतान्मघवन्नृष्य भूर्यसु ।

उत् सहस्राद् परिचे कृष्टिषु श्रवः ।

अमानं त्वा धिपणां तित्विषे महि ।

अघां वृत्राणि जिप्रसे पुरंदर ।

त्रिविष्टिधातु प्रतिमानमौजसः ।

तिष्ठो भूर्मीर्नृपते श्रीणि रोचना ।

अतीदं विश्वं भुवर्नं ववक्षिथ ।

अशत्रुरिन्द्र जुनुपां सनादसि ।

त्वां देवेषु प्रथमं हवामहे ।

त्व वभूय पृतनासु सासहिः ।

सेमं नः कारमुपमन्युमुद्भिदं ।

इन्द्रः कृणोतु प्रसवे रथं पुरः ।

त्वं जिगेथ न धनां रथोधिथ ।

अभेष्वाजा मघवन् महत्सु च ।

त्वामुग्रमवसे सं शिदीमासि ।

अयां न इन्द्र हवनेषु चोदय ।

विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नो अस्तु ।

अपरिहृताः सनुयाम वाजम् ।

तत्रो मित्रो वर्णो मामहन्तां ।

अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ।

॥ ६१ ॥ ( ऋ० १।१०३।१-८ ) त्रिष्टुप ।

तत् तं इन्द्रियं परमं पराचैः ।

अधारयन्त कुवयः पुरेदम् ।

क्षमेदमन्यद् दिव्यन्यदेस्य ।

समीं पृथ्यते समनेवं केतुः ।

स धारयत् पृथिवीं प्रप्रयश्च ।

वज्रेण हुत्वा निरपः संसर्ज ।

अहन्नाहिमर्मिनद्राहिणं ।

व्यहन् व्यसं मघवा शचीभिः ।

स जातमर्मा अहघान ओजः ।

पुरो विभिन्दर्षचरद् वि दासी ।

विहान वज्रिन् दस्यवे हेतिमस्य ।

आर्यं सहो वधया युष्ममिन्द्र ।

तद्वचुषे मानुषेमा युगानि ।

कीर्तेन्यं मघवा नाम विभ्रत ।

उपप्रयन् दस्युहत्यां वज्री ।

यदं सुनुः श्रवसे नाम दधे ।

तदस्येदं पश्यता भूरि पुष्टं ।

अदिन्द्रस्य घत्तन वीर्याय ।

स गा अविन्दत् सो अविन्दद्भान् ।

स ओपशी सो अपः स वनानि ।

भूरिकर्मणे धृपमाय वृष्णे ।

सत्यशुष्माय सुनवाम सोमम् ।

य आहत्यां परिपन्यीव शूरो ।

अयज्यनो विमज्जतेति वेदः ।

तदिन्द्रं प्रेवं वीर्यं चकथ ।

यत् ससन् वज्रेणोवोधयोऽहिम् ।

अनु त्वा पतीर्हपित वयश्च ।

विश्वं देवासो अमदधन् त्वा ।

॥ ७ ॥ ( ८४५ )

शुण्णं पिप्पुं कुर्यवं वृत्रमिन्द्र ।  
यदावधीर्वि पुरः शम्बरस्य ।  
तत्रो मित्रो वरुणो मामहन्तां  
अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत चोः  
॥ ६९ ॥ ( ऋ० १।१०४।१-२ )

योनिष्ठ इन्द्र निययै अकारि ।  
तमा नि पीव स्थानो नावी ।  
बिमुच्या वयोऽवसायाभ्यान्  
दोषा भस्तोर्ध्वैर्यसः प्रपित्थे  
ओ त्वे नर इन्द्रमुतयै गु.  
नू चित् तान्स्तयो अर्धनो जगम्यात् ।

देवासो मनुं दासस्य अमन्त्र  
ते न आ वक्षन्स्तुविताय वर्णम्  
अव त्मना भरते केतवेदा  
अव त्मना भरते केतमुद्ग ।  
क्षीरेण स्नात् कुर्यवस्तु योयै  
हते ते स्यातां प्रवणे शिफायाः  
युयोप नाभिर्परस्यायो.  
प्र पूर्वमिस्तिरते राप्ति शूरः ।  
अज्जसी कुलिशी वीरपत्नी  
पयो दिव्याना उदमिर्मरते  
प्रति यत् स्या नीयार्दशि दस्योः  
ओत्रो नाच्छ सदन जानती गात् ।  
अर्ध स्मा नो मघवञ्चकृतादित्  
मा नो मयेय निष्पी परा दाः  
न त्वं न इन्द्र स्ये सो अप्सु  
अनागास्त्य या भज जीवशंसि ।  
मान्तरां भुजमा रीरिपो नः  
अदिते ते मद्गत इन्द्रियार्थ  
अथा मये अत् नै अस्मा अपायि  
यूनां घोदस्य मद्गते धर्माय ।

मा नो अर्हते पुरुहूत योनी  
इन्द्र क्षुर्ध्वजो वय आसुति दाः ॥ ७ ॥  
मा नो वधीरिन्द्र मा परा दा  
मा नः प्रिया भोजनानि प्र मोषीः ।  
आण्डा मा नो मघवच्छक्र निमैत्  
मा नः पाशां मेत् सहजातुपाणि ॥ ८ ॥  
अर्वाडेहि सोमकाम त्वाहुः  
अयं सुतस्तस्य प्रिया मदाय ।  
उरध्यचा जडर आ वृपस्य  
पितेय नः शृणुहि ह्यमानः ॥ ९ ॥  
॥ ६३ ॥ ( ऋ० १।६१।१-१६ )  
मोषा गौतम ।  
॥ २ ॥ अस्मा इदु प्र तयसै नुराय  
प्रयो न हिमि स्तोमं माहिनाय ।  
अधीपमायाधिगव ओह  
इन्द्राय अक्षणि राततमा ॥ १ ॥  
॥ ३ ॥ अस्मा इदु प्रय इव प्र यंसि  
भराभ्याङ्गयं यार्थे सुवृक्ति ।  
इन्द्राय हुदा मनसा मनीपा  
प्रत्ताय पत्ये धियो मजयन्त ॥ २ ॥  
॥ ४ ॥ अस्मा इदु त्वमपमं स्वर्गं भराभ्याङ्गयमास्वैन ।  
महिष्ठमच्छोकिमिर्मतीनां  
सुवृक्तिर्मि. सुरि वावृधर्च्यै ॥ ३ ॥  
॥ ५ ॥ अस्मा इदु स्तोमं सं हिनोमि  
रथं न तर्ह्य तत्तिनाय ।  
गिरश्च गिर्वाहसे सुवृक्ति  
इन्द्राय विभ्रमिन्यं मेधिराय ॥ ४ ॥  
॥ ६ ॥ अस्मा इदु ससिमिव ध्रुवस्य  
इन्द्रायार्क जुहातु समञ्जे ।  
धीरं दानौकसं यन्धर्च्यै पुरां गृतेध्रयसं दुर्माणम् ॥ ५ ॥

अस्मा इदु त्वष्टा तक्षद् वंशं  
 स्वर्पस्तमं स्वयं रणाय ।  
 वृत्रस्य चिद् विदद् येन भर्मे  
 तुजघ्नीशानस्तुजता क्रियेधाः  
 अस्येदु मातुः सर्वनेषु सद्यो  
 महः पितुं पपियाञ्चावर्षा ।  
 मुयायद् विष्णुः पचतं सहीयान्  
 विष्णुद् घराहं तिरौ अट्टिमस्ता  
 अस्मा इदु त्राक्षिद् देवपत्नीः  
 इन्द्रायाकर्महिहस्य ऊयुः ।  
 परि घावापुयिषी जंघ उर्वी  
 नास्य ते महिमानं परि एः  
 अस्येदेव प्र तिरिचे महित्वं  
 दिवस्यधियाः पर्यन्तरिक्षात् ।  
 स्वराळिन्द्रो दम आ विश्वगूर्तः  
 स्वरिरमग्नौ ययञ्जे रणाय  
 अस्येदेव शर्वसा श्वपन्तं  
 वि वृश्चद् वज्रेण वृत्रमिन्द्रः ।  
 गा न द्राणा अवनीरमुञ्चद्  
 अग्नि अर्धौ दायने सचैताः  
 अस्येदु त्वेपसा रन्त सिन्धवः  
 परि यद् वज्रेण सीमर्यच्छत् ।  
 ईशानरुद् दाशुपै दशस्यन्  
 तुर्यतेये गाधं तुर्यणिः कः  
 अस्मा इदु प्र मय तूतुजानो  
 वृत्राय वज्रमीशानः क्रियेधाः ।  
 गोर्न पर्न वि रदा तिरश्चा  
 इष्यभर्णाभ्यपां चरयं  
 अस्येदु म ग्रहि पुन्याणि  
 तुरस्य कर्माणि नव्य उक्थैः ।  
 युधे यदिष्णान् आयुधानि  
 ऋचायमाणो निरिणाति शत्रुन्

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १० ॥

॥ ११ ॥

॥ १२ ॥

॥ १३ ॥

अस्येदु मिया गिर्यश्च दृक्छा  
 घावां च भूमां जनुपस्तुजेते ।  
 उषो वेनस्य जोगुवान ओणि  
 सद्यो मुवद् धीर्यय नोघाः  
 अस्मा इदु त्यदनु दाय्येया  
 एको यद् वृक्षे भूरेयीशानः ।  
 प्रैतशं सूर्ये पस्पृधानं सौर्वश्ये सुध्विमावदिन्द्रः १५  
 पथा तं हारियोजना सुवृकि  
 इन्द्र ब्रह्माणि गोतमासो अक्रन् ।  
 पेपु विश्वर्षशंसं धिर्य धाः  
 प्रातर्मक्ष धियार्वसुजगम्यात्  
 ॥ १६ ॥  
 ॥ १७ ॥ ( अ० ११०१-११ )  
 प्र मन्महे शवसानाय श्वपं  
 आङ्गयं गिर्वणसे अङ्गिरस्वत् ।  
 सुवृकिर्मिः स्तुवत ऋग्मियाय  
 अर्चामार्कं नरे विश्रुताय  
 प्र यो महे महि नमो भरध्वं  
 आङ्गुर्यं शवसानाय सामं ।  
 येना नः पूर्वे पितरः पदशा  
 अर्चन्तो अङ्गिरसो गा अविन्दन्  
 इन्द्रस्यांगिरसां चेष्टौ  
 विद्वत् सारमा तनयाय घासिम ।  
 वृहस्पतिर्मिनदग्निं विद्वद् गाः  
 समुक्षियाभिर्वाचशन्त नरः  
 स सुष्टुमा स स्तुमा सप्त जिप्रैः  
 स्वरेणाग्निं स्वयौ नव्यैः ।  
 सरण्युमिः फलिगर्मिन्द्र शक्र  
 वलं रवेण दरयो दशगवैः  
 गुणानो अङ्गिरोमिदस्म वि यः  
 उपसा सूर्येण गोमिन्धः ।  
 वि भूम्या अग्रथय इन्द्र मानु  
 द्वियो ग्ग उर्यगमगनायः  
 ॥ १८ ॥

तद् प्रयक्षतममस्य कर्म  
 दस्मस्य चारुनममस्ति वंसः ।  
 उपहरे यदुपरा अपिन्यन्  
 मधर्णसो नचध्वस्तः ॥ ६ ॥  
 हिता वि बंधे सनजा सनीळे  
 अयास्य स्तवमानेभिरकैः ।  
 भगो न मेने परमे व्योमन्  
 अथारयद् रोदसी सुदंसाः ॥ ७ ॥  
 सुनाद् दिवं परी भूमा विरूपे  
 पुनर्भुवा युवती स्वभिर्यैः ।  
 कुण्ठेभिरुक्तोपा कशद्भिः  
 वर्षमिरा चरतो अन्यान्वा ॥ ८ ॥  
 सनेमि सुख्यं स्वपस्यमानः  
 सुनुदीधार शर्वसा सुदंसाः ।  
 आमाहु चिद् दधिरे पृथग्मन्तः  
 पर्यः कृष्णासु कशद् रोहिणीषु ॥ ९ ॥  
 सुनाद् सनीळा अवनीरवाता  
 प्रता रक्षन्ते अमृताः सहोभिः ।  
 पुरु सहजा जर्नयो न पत्नीः  
 वृषस्यन्ति स्वसारोऽर्हयाणम् ॥ १० ॥  
 सनायुयो नर्मसा नव्यो अर्कः  
 वसुयवो मृतयो दस्य वदुः ।  
 पति न पत्नीरुदाती कशन्ते  
 स्पृशन्ति त्वा शयसावन् मनीषाः ॥ ११ ॥  
 सुनादेव तय रायो गर्भस्तौ  
 न क्षीयन्ते नेप दस्यन्ति दस्य ।  
 घृमां असि प्रतुमां इन्द्र धीरः  
 दिक्षा शचीयस्तव नः शचीभिः ॥ १२ ॥  
 सनायते गोतम इन्द्र नयं  
 अर्तश्चद् प्रष्टं हरियोजनाय ।  
 सुनीधाय नः शयसान नोधाः  
 शतमंश्च धियावसुजंगम्यात् ॥ १३ ॥

॥ ६५ ॥ ( ऋ० १६३१-९ )

त्वं महो इन्द्र यो ह शुभैः  
 धावा जज्ञानः पृथिवी अमे धाः ।  
 यद्ध ते विष्वा गिर्यश्चिदभ्या  
 भिया हव्हासः किरणा नैजन् ॥ १ ॥  
 आ यद्धरी इन्द्र विव्रता धेः  
 आ ते यमं जरिता याहोर्धात् ।  
 येनाविहर्यतक्रतो अमित्रान्  
 पुरे इष्णासि पुरहृत पूर्वाः ॥ २ ॥  
 त्वं सत्य इन्द्र धृषणुरेतान्  
 त्वमभुक्ता नर्यस्त्वं पाद् ।  
 त्वं शुणं वृजनें पूष आणौ  
 यूने कुत्साय दृमते सचाहन ॥ ३ ॥  
 त्वं ह त्वदिन्द्र चोदीः सखा  
 वृषं यद् वज्रिन् वृषकर्मभृन्नाः ।  
 यद्ध शर वृषमणः पराचैः  
 वि दस्युर्योनावर्कतो वृषापाद् ॥ ४ ॥  
 त्वं ह त्वदिन्द्रारिपण्यन्  
 हव्हस्य विमर्ताजामज्ञौ ।  
 व्यसृदा काष्ठा अर्वते वः  
 घनेव वज्रिन् धिष्णुमित्रान् ॥ ५ ॥  
 त्वां ह त्वदिन्द्राणीसातौ  
 स्वर्मीळे नरे आजा हवन्ते ।  
 तव स्वधाव इयमा संमयं  
 अतिर्याजेष्वतसाय्या भूत् ॥ ६ ॥  
 त्वं ह त्वदिन्द्र सप्त युध्यन्  
 पुरो वज्रिन् पुरुकुत्साय ददः ।  
 बर्हिर्न यत् सुदासे वृथा वर्क  
 अहो रजन् वरिवः पुरेव कः ॥ ७ ॥  
 त्वं त्वां न इन्द्र देव विश्वां  
 इयमापो न पीपयः परिरमन् ।  
 यया शर प्रत्यस्म्यं यंसि  
 त्वमभुजं न विभव्य शरयै ॥ ८ ॥ (८९९)

अकारि त इन्द्र गोतमेभिः

ब्रह्माण्योक्ता नमस्ता हरिभ्याम् ।

सुपेशसं वाजमा भरा नः

प्रातर्मधू धियावसुर्जगम्यात् ॥ ९ ॥

॥ ६६ ॥ ( क्र० ८१८११-६ )

[ प्रणयः = ( विषमा बृहती, समा सतोबृहती ) । ]

तं यो वसुमृतीपहं वसोमन्वानमन्धसः ।

अभि धत्से न स्वस्तेषु धेनव

इन्द्र गीभिर्नयामहे ॥ १ ॥

द्युधं सुदानं तविषामिरावृतं गिरि न पुंसोर्जसम् ।

क्षुमन्तं वाजं शतैर्न सहस्रिणै

मधू गोर्मन्तमीमहे ॥ २ ॥

न त्वा बृहन्तो अद्रयो वरन्त इन्द्र धीन्द्रवः ।

यद् वित्तसि स्तुवते मार्यते धसु

नक्षिष्टदा मिनाति ते ॥ ३ ॥

योद्धासि कृत्वा शर्वसोत वसना

विभ्वा जाताभि मृगमना ।

आ त्वायमर्क ऊतये धवर्तति

यं गोतमा अर्जीजनन् ॥ ४ ॥

प्र हि रिंश्चि ओर्जसा द्विषो अन्तम्यस्परि ।

न त्वा विष्याच रज इन्द्र पार्थिवं

अनु स्वयां ववक्षिथ ॥ ५ ॥

नकिः परिष्टिमधवन मधस्य ते

यद् दाशुपे दशस्पसि ।

अस्माकं वोभ्युचर्यस्य चोदिता

महिष्ठो वाजसातये ॥ ६ ॥

॥ ६७ ॥ ( क्र० १८०११-१६ )

गोतमो राहुगणः । ( अयर्क, मनुः, दध्यङ् च ) । पंक्तिः ।

इत्या हि सोम इन्मदे ब्रह्मा चकार वर्धनम् ।

शर्विष्ठ वज्रिभोर्जसा पृथिव्या निः शशा अहि

अर्वन्ननु स्वराज्यम् ॥ १ ॥

स त्वामिदं वृषा मद्रः सोमः श्येनामृतः सुतः ।

येना वृषं निरुद्रयो जयन्थ वज्रिभोर्जसा

अर्वन्ननु स्वराज्यम् ॥ २ ॥

मेहमीहि धृषुहि न ते वज्रो नि र्यसते ।

इन्द्र नृष्णं हि ते शयो हनो वृषं जया अपो

अर्वन्ननु स्वराज्यम् ॥ ३ ॥

निरिन्द्र भूम्या अर्धे वृषं जयन्थ निर्विवः ।

सृजा मरुन्वतीरयं जिवधन्या इमा दपो

अर्वन्ननु स्वराज्यम् ॥ ४ ॥

इन्द्रो वृषस्य दोधतः सानुं यजेण हीज्जिनः ।

अभिरुम्याव जिघ्रते अपः समीय चोदयन्

अर्वन्ननु स्वराज्यम् ॥ ५ ॥

अधि सानौ नि जिघ्रते यजेण शतपर्वणा ।

मन्वान इन्द्रो अन्धसः सविभ्यो गातुमिच्छति

अर्वन्ननु स्वराज्यम् ॥ ६ ॥

इन्द्र तुभ्यमिदं द्विषो ऽनुत्तं वज्रिन् धीर्यम् ।

यद् त्वं मायिनं मृगं तमु त्वं माययावधीः

अर्वन्ननु स्वराज्यम् ॥ ७ ॥

वि ते घञासो अस्थिरन् नयति नाभ्या अनु ।

महत् तं इन्द्र वीर्यं शक्नोस्ते बलं हितं

अर्वन्ननु स्वराज्यम् ॥ ८ ॥

सहस्रं साकर्मचतु परि द्रोभत विभ्रतिः ।

शतैनमन्वनोनवुः इन्द्राय ब्रह्मोद्यतं

अर्वन्ननु स्वराज्यम् ॥ ९ ॥

इन्द्रो वृषस्य तविषां निरुहन्तसहसा सहः ।

महत् तदस्य पांस्य वृषं जयन्थो अर्जुन्

अर्वन्ननु स्वराज्यम् ॥ १० ॥

इमे चित् तव मन्यवे वेपेते मियसा मही ।

यदिन्द्र वज्रिभोर्जसा वृषं मरुवां अर्वाधीः

अर्वन्ननु स्वराज्यम् ॥ ११ ॥

न वेपसा न तन्यत इन्द्रं वृत्रो वि वीभयत् ।  
 अभ्येतं वज्रं आयुसः  
 सहस्रमष्टिरायता ऽर्चन्तु स्वराज्यम् ॥ १२ ॥  
 यद् वृत्रं तव चाशनिं वज्रेण समयोधयः ।  
 अहिमिन्द्र जिघांसतो  
 द्विवि ते वदधे शवो ऽर्चन्तु स्वराज्यम् ॥ १३ ॥  
 अभिघ्ने ते अद्रिवो यत् स्या जगद्य रेजते ।  
 त्वष्टां चित् तथ मन्यये  
 इन्द्रं वेधिज्यते भिया—ऽर्चन्तु स्वराज्यम् ॥ १४ ॥  
 नहि नु पार्वधीमसी—न्द्रं को धीर्यो परः ।  
 तस्मिन्मृग्यमुत कर्तुं  
 देवा ओजांसि सं दधु—रवेभ्यं स्वराज्यम् ॥ १५ ॥  
 यामथवा मनुष्यिता वृष्यङ् धियमलत ।  
 तस्मिन् ब्रह्माणि पृथधा  
 इन्द्र उन्था समन्ता—ऽर्चन्तु स्वराज्यम् ॥ १६ ॥  
 ॥ ६८ ॥ ( अ० १८११-९ )  
 इन्द्रो मदाय धावृधे शर्वसे वृत्रहा नृभिः ।  
 तमिन्महस्याजिपु—तेममै हवामहे  
 स वाजेषु प्र नोऽपियत् ॥ १ ॥  
 असि हि वीर सेन्यो ऽसि भूरि पराददिः ।  
 असि दुधस्य चिद् वृधो यजमानाय शिक्षसि  
 सुन्यते भूरि ते वसु ॥ २ ॥  
 यदुदीरत आजयो धृण्वे धीयते धना ।  
 युषया मदच्युता हरी कं हनः कं वसो दधो  
 अम्मो इन्द्र वसो दधः ॥ ३ ॥  
 प्रत्या मुहो अनुष्यध भीम आ वावृधे शर्वः ।  
 श्रिय भुष्य उपाकयो—नि शिमी हरिवान् दधे  
 हर्म्योयंजमापसम् ॥ ४ ॥  
 आ पशो पार्षप रजो वदधे रंजना द्विवि ।  
 न त्वाप्यो इन्द्र कश्चन न जातो न जनिष्यते  
 धति विष्यं वयशिय ॥ ५ ॥

यो अयों मर्तमोजनं पराददाति वानुपे ।  
 इन्द्रो अस्मभ्यं शिक्षतु वि भञ्जा मूरि ते वसु  
 मशीय तव राधसः ॥ ६ ॥  
 मदैमदे हि नो ददि—यथा गवामृजुक्तः ।  
 सं गृभाय पुरु शतो—भयाहस्या वसु  
 शिशीहि राय आ भर ॥ ७ ॥  
 मादयस्व सुते सचा शर्वसे शर राधसे ।  
 विद्या हि त्वां पुरुवसु—मुप कामान्तसृग्महे  
 अथा नोऽविता भव ॥ ८ ॥  
 एते तं इन्द्र जन्तयो विश्वं पुष्यन्ति वार्यम् ।  
 अन्तर्हि ल्यो जनाना—मयो वेदो अदाशुपां  
 तेषां नो वेद आ भर ॥ ९ ॥  
 ॥ ६९ ॥ ( अ० १८११-९ ) पंक्तिः ६ जगती ।  
 उषो पु शृणुही गितो मघवन् मातया इव ।  
 यदा नः सुनुतावतः कर आदर्ययास इदं  
 योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ १ ॥  
 अश्वघ्नमीमदन्त हा—व प्रिया अघूपत ।  
 अस्तोपत स्वभानवो विप्रानविष्टया मती  
 योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ २ ॥  
 सुसंहरी त्वा वयं मघवन् वन्दिषीमहि ।  
 प्र नूनं पूर्णवन्धुरः स्तुतो याहि वशां अनु  
 योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ ३ ॥  
 स या तं वृषणं रथ—मधि तिष्ठाति गोविदम् ।  
 यः पात्रं हरियोजनं पूर्णमिन्द्र चिकेतति  
 योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ ४ ॥  
 युक्तस्ते अस्तु दक्षिण उत सव्यः शतक्रतो ।  
 तेन जायामुषं प्रिया मन्दाजो याह्यन्धसो  
 योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ ५ ॥  
 युनक्ति ते ब्रह्मणा केशिना हरी  
 उप प्र याहि दधिये गर्भस्थोः ।  
 उस् त्वा सुतासो रमसा अमन्दिषुः  
 पूषण्यन् वन्दिन्तसमु पत्न्यामदः ॥ ६ ॥



॥ ७० ॥ ( ऋ० १।८।१-६ ) जगती ।

अर्थावति प्रथमो गोपुं गच्छति  
सुप्रावीरिन्द्र मर्त्यस्तथोतिभिः ।  
तमित् पृणक्षि वसुना मर्वायसा  
सिन्धुमापो यथाभितो विचैतसः  
आपो न देवारूपे यन्ति होत्रियै  
अवः पश्यन्ति चित्तं यथा रजः ।  
प्राचेदेवासः प्र णयन्ति देव्युं  
ग्रहप्रियं जोषयन्ते घुरा इव  
अधि द्वयोरदधा उक्थ्यं वचो  
यत्सुखा मिथुना या संपूर्यते ।  
असंयतो व्रते तै क्षेति पुष्यति  
भद्रा शक्तिर्यजमानाय सुन्वते  
आदहिराः प्रथमं दधिरे धर्मं  
इन्द्राग्रयः शम्या ये मुकुत्यया ।  
सर्वे पुणेः समविन्दन्त भोजनं  
अर्थावन्तं गोमन्तमा पशुं नरः  
यक्षैर्यथा प्रथमः पृथस्तै  
ततः सूर्यो व्रतपा धेन आर्जनि ।  
आ गा आर्जदुशर्ना काव्यः सत्वा  
यमस्य जातममृतं यजामहे  
बर्हिषा यत् स्वपत्याय वृज्यते  
अको वा श्लोकमायोपते दिवि ।  
प्रावा यत्र वर्धते कारुण्यः  
तस्येदिन्द्रो अभिपित्वेषु रण्यति

॥ ७१ ॥ ( ऋ० १।८।१-७० )

[ १-६ अष्टुष्टुपः ७-९ उगिह, १०-१२ पंक्तिः १३-१५  
गायत्री, १६-१८ त्रिष्टुपः ( प्रगायः १९ बृहती, २०  
सतीबृहती । ) ]

असावि सोम इन्द्र ते शर्विष्ठ धृष्णवा गीहि ।  
आ त्वां पृणक्तिवन्दिष्यं रजः सूर्यो न रुदिमभिः ॥१॥

इन्द्रमिदरीं बहुतो ऽप्रतिधृष्टशवसम् ।  
ऋषीणां च स्तुतीर्यं यक्षं च मानुषाणाम् ॥२॥  
आ तिष्ठ वृत्रहन् रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरी ।  
अर्वाचीनं सु ते मनो आर्वा कृणोतु वग्नूनां ॥३॥  
॥ १ ॥ इममिन्द्र सुतं पितृ ज्येष्ठममर्त्यं मर्दम् ।  
शुक्रस्य त्वाम्यक्षरन् धारां क्रुतस्य सार्दने ॥४॥  
इन्द्राय नूनमर्चतो-क्यानि च प्रधीतन ।  
सुता अमत्सुरिन्द्रो ज्येष्ठं नमस्यता सहः ॥५॥  
॥ २ ॥ नकिष्ट्व रथीतरो हरी यदिन्द्र यच्छसे ।  
नकिष्ठातुं मजमना नकिः स्वर्भ्य आनशे ॥ ६ ॥  
य एक इद् विदयते वसु मर्तीय दाशुपे ।  
ईशानो अर्पतिष्कृत इन्द्रो अह ॥ ७ ॥  
॥ ३ ॥ कदा मर्तमराधसं पदा ह्युष्ममिव स्फुरत् ।  
कदा नः शुश्रुवद् गिर इन्द्रो अह ॥ ८ ॥  
यश्चिद्धि त्वां बहुभ्य आ सुतावीं आविर्वासति ।  
उग्रं तत् पत्यते शश इन्द्रो अह ॥ ९ ॥  
॥ ४ ॥ स्वादोरित्या विपवतो मर्चः पिबन्ति गौर्यैः ।  
या इन्द्रेण स्यावर्षी-वृष्णा मर्दन्ति शोभसे  
वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ १० ॥  
ता अस्य पृशन्तायुवः सोमं श्रीणन्ति पृक्षयः ।  
प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्रं हिन्यन्ति सार्यकं  
वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ ११ ॥  
ता अस्य नर्मसा सहः सपर्यन्ति प्रचैतसः ।  
व्रतान्यस्य सध्विरे पुरुणि पूर्वचित्तये  
वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ १२ ॥  
इन्द्रो दधीचो अस्यानि-वृत्राण्यप्रतिष्कृतः ।  
जुधानं नवतीर्नव ॥ १३ ॥  
इच्छन्नर्भ्वस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपश्रितम् ।  
तद् विदच्छ्र्यणावति ॥ १४ ॥  
अग्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् ।  
इत्या चन्द्रमसो गृहे ॥ १५ ॥

को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य  
शिमीयतो भामिनो दुर्हणयून् ।  
आसन्नपून् हृत्स्यसो मयोभून्  
य पपां भूत्यामृणधत् स जीयात्  
क ईपते तुज्यते को विभाय  
को मंसते सन्तमिन्द्र को अन्ति ।

॥ १६ ॥

कस्तोकाय क इभायोत राये  
अधि द्रयत् तन्वे को जनाय  
को अग्निमीदृ हृविपा घृतेन  
कुचा यजाता ऋतुभिर्ध्रुवेभिः ।  
कस्य देवा आ वद्वानाशु होम  
को मंसते वीतिहोत्रः सुदेवः  
त्वमङ्ग प्र शंसिपो देवः शशिष्ठ मर्त्यम् ।

॥ १७ ॥

न त्वदन्यो मधवन्नस्ति मर्दिता  
इन्द्र ग्रथीमि ते घवः  
मा ते राधौसि मा तं ऊतयो वसो  
अस्मान् कदा चना दभन् ।  
विश्वो च न उपमिमीहि मानुष  
यत्ने चर्षणिभ्य आ

॥ १८ ॥

॥ १९ ॥

॥ २० ॥

॥ ७९ ॥ ( ऋ० १.१००१-१९ )

वार्यागिराः ऋत्रावाऽग्नीष-सहदेव-मयमान-सुराग्रसः ।  
त्रिष्टुप् ।

स यो वृषा वृष्यैभिः समोका  
महो दिवः पृथिव्याश्च सुभ्राद् ।  
मनीनसत्था दृष्यो मरेषु  
मरुत्यान् नो भवत्विन्द्र ऊती  
यस्यानामः गृय्येयेषु यामो  
मर्मरे वृष्टा शप्पो अस्ति ।  
वृषन्तमः सगिभिः स्येमिरेव्यः  
मरुत्यान् नो भवत्विन्द्र ऊती  
दियो न यम्य रेतसो दुर्धानाः  
पर्णान् यन्ति शयसापरीताः ।

॥ १ ॥

॥ २ ॥

तरुवृषाः सासदिः पौंस्येभिः  
मरुत्यान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ३ ॥  
सो अङ्गिरोमिरङ्गिरस्तमो भूद्  
वृषा वृषभिः सगिभिः सग्रा सन् ।  
ऋग्निमिर्ऋग्मी गातुभिर्ज्येष्ठो  
मरुत्यान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ४ ॥  
स सुनाभिर्न रुद्रेमिर्ऋग्म्या  
नृपाहो सासद्वा अमिवान् ।  
सनीळैभिः श्वस्यानि त्वेन  
मरुत्यान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ५ ॥  
स मन्पुभीः समर्दनस्य कर्ता  
अस्माकैर्भिर्नुभिः सूर्य सनत् ।  
अस्मिन्नहन्सत्पतिः पुरदुतो  
मरुत्यान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ६ ॥  
तमृतयो रणपृच्छुरसातौ  
तं क्षेमस्य क्षितयः कृण्वत वाम् ।  
स विश्वस्य कृण्वत्येषा एको  
मरुत्यान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ७ ॥  
तमप्सस्त शर्वस उत्सवेषु नरो नरमवसे तं धर्नाय ।  
सो अन्धे चित् तमसि ज्योतिर्विदन्  
मरुत्यान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ८ ॥  
स सुव्येन यमति वार्धतश्चित्  
स दक्षिणे संगृमीता कृतानि ।  
स कीरिणा चित् सनिता धनानि  
मरुत्यान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ९ ॥  
स ग्रामेभिः सनिता स रथेभिः  
विदे विश्वाभिः कृष्टिभिर्व्युद्य ।  
स पौंस्येभिरभिभूरशस्तीः  
मरुत्यान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १० ॥  
स जामिभिर्यत् समजाति मीळे  
अजामिभिर्वा पुरदुत पयैः ।  
अपां लोकस्य तनयस्य जेपे  
मरुत्यान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ११ ॥

स वज्रमृद् दस्युहा भीम उग्रः  
सहस्रचेताः शतनीथ ऋभ्या ।  
चञ्च्रीपो न शर्वसा पार्श्वजयो  
मृत्त्वान्न नो भवत्विन्द्र ऊती  
तस्य वज्रः क्रन्दति सत् स्वर्पा  
दिवो न त्वेपो रवथः शिर्मीवान् ।  
तं संचन्ते सनयस्तं धनानि  
मृत्त्वान्न नो भवत्विन्द्र ऊती  
यस्याजं शर्वसा मानमुपथं  
परिभुजद् रोदसी विभ्रतः सीम् ।  
स पारिपत् क्रतुभिर्मन्दसानो  
मृत्त्वान्न नो भवत्विन्द्र ऊती  
न यस्य देवा देवता न मर्ता  
आपञ्चन शर्वसो अन्तमापुः ।  
स प्ररिप्त्वा त्वक्षसा इमो दिवश्च  
मृत्त्वान्न नो भवत्विन्द्र ऊती  
रोहिच्छणावा सुमर्दशुर्ललाभीः  
युक्षा राय ऋजाभ्यस्य ।  
वृषणवन्तं विभ्रती धूप्य रथं  
मन्द्रा चिकेत नाहुपीपु विशु  
पूतत् त्वत् तं इन्द्र वृष्णं उपथं  
वार्पागिरा अभि गृणन्ति राघः ।  
ऋजाभ्यः प्रष्टिमिरन्तरीषः  
सहदेवो भयमानः सुराधाः  
दस्युञ्छम्यैश्च पुरहूत पयैः  
हत्वा पृथिव्यां शर्या नि बर्होत् ।  
सन्त् क्षेत्रं सारिभिः प्रित्येभिः  
सन्त् सूर्यं सनदपः सुवज्रः  
विभ्राहेन्द्रो अधिवक्ता नो अन्तु  
अपरिहृताः सनुयाम् वार्जम् ।  
तन्नो मित्रो परेणो मामहन्तां  
अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत घीः

॥ १२ ॥

॥ १३ ॥

॥ १४ ॥

॥ १५ ॥

॥ १६ ॥

॥ १७ ॥

॥ १८ ॥

॥ १९ ॥

॥ ७३ ॥ ( ऋ० ८।१७।१-१५ )

रैमः कादयः । वृद्धो, १०. १३ अतिजगती, ११-१२  
उपरिशाद्वृद्धो, १४ प्रिष्टप्, १५ जगती ।

या इन्द्र भुज आभरः स्वर्वा असुरेभ्यः ।

स्तोतापुभिर्मवधम्य वर्धय  
ये च त्वे वृस्तवर्हिपः ॥ १ ॥

यमिन्द्र दधिपे त्व-मश्वं गां भागमश्वयम् ।

यजमाने सुन्यति दर्शिणावति  
तस्मिन् तं धेहि मा पुनौ ॥ २ ॥

य इन्द्र सस्त्यव्रतोऽनुष्यापमदेवयुः ।  
स्यैः प पूर्वैर्मुमुत् पोष्यं रयिं संनुतर्धेहि तं ततः ३

यच्छक्रासि पयवति यदर्धावति वृषहन् ।  
अतस्त्वा गीमिर्द्युगदिन्द्र केशिभिः ॥ ४ ॥

सुतायां आ विवासनि  
यडासि रोचने दिवः संमुद्रस्याधि विष्टपि ।

यत् पार्थिवे सदनं वृषहन्तम्  
यदन्तारिक्ष आ गंहि ॥ ५ ॥

स नः सोमेषु सोमपाः सुतेषु शयसस्यने ।  
मादयस्व राघसा सनुतावते

इन्द्र राया परीणसा ॥ ६ ॥

मा न इन्द्र परा वृणक् भवा नः सधुमार्घः ।  
त्वं न ऊनी त्वमिह आप्यं

मा न इन्द्र परा वृणक् ॥ ७ ॥

असे इन्द्र सर्वा सुते नि पदा गीतये मधु ।  
रूची जतिरे मयवन्नवो महद्

असे इन्द्र सर्वा सुते ॥ ८ ॥

न त्वदिवास आशान् न मयौगो अद्रिषः ।  
विभ्यां जातानि शर्यागामिभ्याम्

न त्वां देवान् आगान् ॥ ९ ॥

विभ्याः पृतना अगिभ्यः न मयः  
तंतसुविन्द्रं अमृदं मृदं ।  
अन्या यतिष्ठं यं अमृदं मयः  
उग्रमोक्षं ददमं ददमं मयः

समी रेभासो अस्वरन् इन्द्रं सोमस्य पीतये ।

स्वर्पति यदीं वृधे  
धतयतो होजसा समतिमि ॥ ११ ॥

नेमि नमन्ति चक्षसा मेपं विप्रो अभिस्वरो ।

सुदीतयो वो अद्रुह  
अपि कर्णे तरस्विनः समकृभिः ॥ १२ ॥

तमिन्द्रं जोहवीमि मघवानमुग्रं  
सुप्रा दधानमप्रतिपुतं शशंसि ।

महिष्ठो गीर्भिरा च युधिष्ठौ  
वयतैद् राये नो विष्वा सुपयां ऋणोतु वजी ॥ १३ ॥

त्वं पुर इन्द्र विकिर्देना व्योजसा  
शविष्ठ शक नाशयथ्ये ।

त्यद् विष्वाणि भुवनानि वज्रिन्  
द्यावां रजेते पृथिवी च भीषा ॥ १४ ॥

तन्म ऋतमिन्द्र शर चित्र पातु  
अपो न वज्रिन् दुरितातिं पपिं भूरि ।

कदा न इन्द्र राय आ देशस्ये  
विभ्यस्स्यस्य स्पृहाय्यस्य राजन् ॥ १५ ॥

॥ ७४ ॥ ( ऋ ८।१००।१-९ )

नेमो मार्गव, ४-५ इन्द्र, ९ वज्रो वा ।

त्रिष्टुप्, ९ अमरी, ७, ९ अनुष्टुप् ।

अयं न पमि तुन्यां पुरस्ताद्  
विभ्ये देवा अमि मा यन्ति पश्चात् ।

यदा महो दीर्घरो भागमिन्द्र  
आदिन्मयां वृणरो वीर्योणि ॥ १ ॥

दधानि ते मरुतो मशमत्रे  
हितानि भागं भूतो यस्तु सोम ।

अयं ह्य त्व दीक्षणात् सगा मे  
अयां पुराणि अङ्गनाय भूरि ॥ २ ॥

प्र सु सोमं मरुत पाजयन्तु  
इन्द्राय सत्य यदि सत्यममि ।

नेन्द्रो भस्मीति नेमं उ त्व आह  
च द ददन् वममि दयाम ॥ ३ ॥

अयमसि जरितः पश्य मेह

विष्वा जातान्यभ्यस्मि मद्वा ।

ऋतस्य मा प्रविशो वधयन्ति  
आदर्दिरो भुवना दर्दरीमि ॥ ४ ॥

आ यन्मा वेना अरुहधृतस्य

एकमासीन हयतस्यं पृष्ठे ।  
मनश्चिन्मे हृद् आ प्रत्यवोचद् ॥ ५ ॥

अचिक्रद्विष्ठिशुमन्तः सयायः

विश्वेत् ता ते सयनेषु प्रयाच्या  
या चक्रथं मघवशिन्द्र सुनुते ।

पारावत् यत् पुंसंभृत वसु

अपावणोः शरभाय ऋषिधन्धये ॥ ६ ॥  
प्र नूनं धावता पृथङ् नेह यो धो अर्षावरीत् ।

नि पीं वृषस्य मर्मेणि वज्रमिन्द्रो अपीपतत् ॥ ७ ॥  
समुद्रे अन्तः शयत उद्रा वज्रो अभीर्धृतः ।

मरन्त्यस्मे संयतं पुर प्रलवणा वलिम् ॥ ८ ॥  
सर्वे विष्णो वितुरं वि क्रमस्य

चौर्देहि लोकं वजाय विष्कमे ।  
हनीव वृषं त्रिणचाव सिन्धून् ॥ ९ ॥

इन्द्रस्य यन्तु प्रसूये विस्वपाः ॥ १० ॥

॥ ७५ ॥ ( ऋ १।११९।१-११ )

पञ्चषो देवोदादिः । अयष्टि, ८-९ अतिशक्त्यौ, ११ अष्टि ।

यं त्वं रथमिन्द्र मेघसातये

अपाका सन्तमिपिर प्रणयसि प्रानं वसु नयसि ।  
सचश्चित् तमभिष्टये करो वशश्च याजिनम् ।

सास्माकमनवद्य तूतजान वेधसां  
इमां वाचं न वेधसाम् ॥ १ ॥

स श्रुधि यः स्मा पृतनासु कास्तु चिद्  
दक्षार्य इन्द्र मरुतये नमि-रसि प्रतये नमि ।

यः शरैः स्वः सन्तिता यो विप्रैर्वाजे तरता ।  
तमीदानीनां इरधन्त याजिनं ॥ २ ॥

पक्षमत्यं न याजिनम् ॥ ३ ॥ १००८ )

दस्मो हि प्मा धृपणं पिन्वसि त्वचं  
 कं चिद् यावीररहं शूर मर्यं परिवृणक्षि मर्यम् ।  
 इन्द्रोत तुभ्यं तद् दिवे तद् रुद्राय स्वयंशसे ।  
 मित्राय वोचं वरुणाय सप्रयः  
 सुमृष्टीकार्य सप्रयः ॥ ३ ॥  
 अस्माकं व इन्द्रमुदमसीष्टये  
 सखायं विश्वायुं प्रासहं युजं वाजेषु प्रासहं युजम् ।  
 अस्माकं ब्रह्मोतये ऽवां पृत्युषु कासु चित् ।  
 नहि त्वा शत्रुः स्तरते स्तृणोपि यं  
 विश्वं शत्रुं स्तृणोपि यम् ॥ ४ ॥  
 नि पू नमार्तिमर्ति कयस्य चित्  
 तेजिष्ठाभिरणिभिर्नोतिभिर्—रुग्राभिर्ब्रह्मोतिभिः ।  
 नेपि णो यथा पुरा ऽनेनाः शूर मन्यसे ।  
 विश्वानि पुरोरप्यं पयिं धहिः  
 आसा धहिर्नो अचछ ॥ ५ ॥  
 प्र तद् वोच्यं भव्यायेत्ये  
 हव्यो न य इपवान् मग्म रेजति ।  
 रक्षोहा मग्म रेजति ।  
 स्युयं सो अस्मदा निदो धर्धरेजेत दुर्मतीम् ।  
 मयं स्रवेदयशसोऽचतर—मयं क्षुद्रमिव श्रयेत् ॥ ६ ॥  
 पुनेम तद्धोत्रया चितन्त्यां  
 पुनेम रयि रयिवः सुवीर्यं रुणं सन्तं सुवीर्यम् ।  
 दुर्मन्मानं सुमन्तुभि—रेमिया पृचीमहि ।  
 आ सत्याभिरिन्द्रं घृक्षहतिभिः  
 यजेतं घृक्षहतिभिः ॥ ७ ॥  
 प्रभां यो असे स्वयंदोमिकृती  
 परिवर्ग इन्द्रो दुर्मतीनां दरीमन् दुर्मतीनाम् ।  
 स्युयं सा रिपयष्टे या न उपेये अयः ।  
 इतेर्मस्रप वक्षति अिता जुर्णिनं वक्षति ॥ ८ ॥  
 त्वं न इन्द्र राया परीणसा  
 याहि पृषो मनेहसा पुरो याद्यक्षमा ।

सर्वस्व नः पराक आ सर्वस्वास्तमीक आ ।  
 पाहि नो दुरादारादभिष्टिभिः  
 सदा पाहामिष्टिभिः ॥ ९ ॥  
 त्वं न इन्द्र राया तरुपसा  
 उग्रं चित् त्वा महिमा संश्रुदवसे महे मित्रं नावसे ।  
 ओजिष्ठं घातारविता रयं कं चिदमर्य ।  
 अन्यमसद् रिंरियेः कं चिदद्रिवो  
 रिंरिश्नन्तं चिदद्रिवः ॥ १० ॥  
 पाहि न इन्द्र सुपुत स्त्रियो  
 अवयाता सद्मिद् दुर्मतीनां देवः सन् दुर्मतीनाम् ।  
 हुत्ता पापस्य रुक्षम्—खाता विप्रस्य मार्यतः ।  
 अथा हि त्वां जनिता जीर्जनद् यसो  
 रक्षोहणं त्वा जीर्जनद् यसो ॥ ११ ॥  
 ॥ ७३ ॥ ( ऋ० १।१३०।१-१० ) अथाष्टिः १० त्रिष्टुप् ।  
 एन्द्रं याहुर्प नः परायतो  
 नायमच्छा विदधानीय सत्पतिः  
 अस्तं राजेय सत्पतिः ।  
 हव्यामहे त्वा युयं प्रयस्यन्तः सुते सत्वा ।  
 पुत्रासो न पितरं यार्जसातये  
 मंहिष्ठं यार्जसातये ॥ १ ॥  
 पिथा सोममिन्द्र सुयानमाद्रिभिः  
 कोशेन मिकमपुनं न वंसंगः  
 तात्प्राणो न वंसंगः ।  
 मदाय हयंनार्य ते नृदिदमाय धार्यसे ।  
 आ त्वां यच्छन्तु हरिदो न स्युयं  
 अथा रिष्यन् मृच्छन्  
 अयिन्द्रं हिना निर्दिनं गृही निधि  
 येनं गन्ने दर्विदमग्म—न्यनन्ते  
 इन्द्रं इन्द्रं ग्यामिच मिशान्ति  
 इन्द्रं इन्द्रं इन्द्रः परीयन्  
 इन्द्रः इन्द्रः परीयन्ताः

दाह्वाणो वज्रमिन्द्रो गर्भस्त्योः  
 क्षत्रेव तिग्ममर्चनाय सं द्ये—दहिहत्याय सं द्येत ।  
 संविन्यान ओजसा शत्रोभिरिन्द्र मुञ्जना ।  
 तप्येव वृक्षं वनितो नि वृक्षसि  
 परभवेव नि वृक्षसि ॥ ४ ॥  
 त्वं वृक्षा नृप इन्द्र सतये  
 अच्छा समुद्रमण्डजो रथो इय वाजयतो रथो इय ।  
 इत कुतीर्युजत समानमर्थक्षितम् ।  
 धेनूरिव मनये विश्वदोहसो  
 जनाय विश्वदोहसः ॥ ५ ॥  
 इमां ते वाचं यस्यन्त आयवो  
 रथं न धीरः स्वर्पो अतक्षिपुः सुस्त्राय त्वामंतक्षिपुः ।  
 शुम्भन्तो जेयं यथा वाजेषु विप्र घाजिन्म ।  
 अत्यमिय शर्वसे सातये धना  
 विश्वा धनानि सातये ॥ ६ ॥  
 मिनव् पुरो नयतिमिन्द्र पुरवे  
 विद्योदासाय महि दाशुपे नृतो यजेण दाशुपे नृतो ।  
 अतिथिगवाय शर्मरं गिरेरग्नो अर्वाभरत् ।  
 महो घनानि दयमान ओजसा  
 विश्वा धनान्योजसा ॥ ७ ॥  
 इन्द्रः समस्तु यजमानमार्धं  
 प्रायद् विश्वेषु शतमृतिप्राजिषु स्वमीळद्व्याजिषु ।  
 मनये शान्तदमृतात् त्वचं कृष्णामरन्धयत् ।  
 दक्षप्र विश्वं तत्प्राणमौपति र्व्यशंसानमौपति ॥ ८ ॥  
 गृहद्वयं प्र रूढजात ओजसा  
 प्रपित्ये वार्यमरुणो मुपायती—ज्ञान आ मुपायति ।  
 उशान्ता यत् पंगयतो ऽजंगप्रतये कवे ।  
 मुपाति विश्वा मनुष्येय नृपंणिः  
 यद्वा विधेय नृपंणिः ॥ ९ ॥  
 न नो नर्व्यमिष्यकर्मप्रययैः  
 पुर्गं दर्तः पापुभिः पाहि द्रामैः ।

दिवोदासेभिरिन्द्र स्ववानो  
 वावृधीथा अहोभिरिव धीः ॥ १० ॥  
 ॥ ७७ ॥ (अ० ११३१।१-७) अर्थाष्टः ।  
 इन्द्राय हि चौरसुरो अर्नमृत  
 इन्द्राय मही पृथिवी वरीममिः  
 युससाता वरीममिः ।  
 इन्द्रं विश्वे सजोषसो देवासो दधिरे पुरः ।  
 इन्द्राय विश्वा सर्वनानि मानुषा  
 रातानि सन्तु मानुषा ॥ १ ॥  
 विश्वेषु हि त्वा सर्वनेपु तुजते  
 समानमेकं वृषमण्यवः पृथक् स्वः सनिष्यवः पृथक् ।  
 तं त्वा नाथं न पूर्णणिं शूपस्य धुरि धीमहि ।  
 इन्द्रं न यज्ञैश्चितर्यन्त आयवः  
 स्तोमैभिरिन्द्रमायवः ॥ २ ॥  
 वि त्वा ततत्रे मियुना अयस्यवो  
 वृजस्य साता गव्यस्य निःसृजः  
 ससन्त इन्द्र निःसृजः ।  
 यद् गव्यन्ता द्वा जना स्वयन्ता समूहसि ।  
 आविष्कारिन्द्र वृषणं सचाभुयं  
 वज्रमिन्द्र सचाभुवम् ॥ ३ ॥  
 विदुषे अस्य दीर्यस्य पुरयः  
 पुरे यद्विन्द्र शारदीर्यातिरः  
 सासहानो अपातिरः ।  
 शासस्तमिन्द्र मर्त्य—मर्यज्यु शवसस्पते ।  
 महीममुष्णाः पृथिवीमिमा अपो  
 मन्दसान इमा अपः ॥ ४ ॥  
 आदित्वं ते अस्य दीर्यस्य चर्किरन्  
 मर्देषु वृषप्रशिजो यदाविथ सरीयुतो यदाविथ ।  
 चर्क्यै कार्मेभ्यः पृतनासु प्रवन्तये ।  
 ते अन्यामन्यां नर्घं सनिष्णत  
 अयस्यन्तः सनिष्णत ॥ ५ ॥

उतो नो अस्या उपसो जुपेन हि ।

अकस्य योधि हविषो हवीममिः ।

स्वर्पाता हवीममिः ।

यदिन्द्र हन्तेव मृधो वृषा यजिञ्चितसि ।

आ मे अस्य वेद्यसो नवीयसो

मम्यं भुधि नवीयसः

॥ ६ ॥

त्वं तामेन्द्र वायुधानो अस्मयुः

अमिन्नयन्तं तुविजात मय्यं वज्रेण शूर मय्यम् ।

जहि यो नो अघायति शूण्य सुभवंस्तमः ।

रिष्टं न यामन्नप भूत दुर्मतिः

विश्वाप भूत दुर्मतिः

॥ ७ ॥

॥ ७८ ॥ ( ऋ० १।१३१।१-६ )

[ ६ ( अर्धचम्य ) इन्द्रापवर्तो ] ।

त्थया ध्रुयं मघयन् पूर्व्यं धन

इन्द्रत्योताः सासह्याम पृतन्यतो वनुयामं वनुष्यतः ।

नेदिष्टे असिन्नह—न्यधि वोच्चा नु सुन्वते ।

असिन् यज्ञे वि चयेमा भरे कृतं

याजयन्तो भरे कृतम्

॥ १ ॥

स्यजोपे भरे आप्रस्य धर्मनि

उपवृधः स्वस्मिन्नज्ञसि क्राणस्य स्वस्मिन्नज्ञसि ।

अहभिन्द्रो यया विदे शीर्णाशीर्णापवाच्यः ।

अस्मन्ना ते सध्र्यक् सन्तु सतयो

भद्रा भद्रस्य सतयः

॥ २ ॥

तत् तु प्रयः प्रलथा ते शुशुक्चनं

यसिन् यज्ञे वारमरुण्यत क्षयं

श्रुतस्य वारसि क्षयम् ।

वि तद् वोचेरधं हिता—ऽन्तः पश्यन्ति रुदिमभिः ।

स या विदे अन्विन्द्रो गवेपणो

यन्धुक्षिन्नयो गवेपणः

॥ ३ ॥

नू इत्या ते पुर्यथा च प्रयाच्यं

यददिगतेभ्योऽवृणोरपं द्रजं

इन्द्र शिश्रुवपं द्रजम् ।

पेभ्यः समान्या दिशा ऽस्मभ्यं जेपि योत्सि च ।

सुन्वद्वयो रन्धया कं चिद्व्रतं

हृणायन्तं चिद्व्रतम्

॥ ४ ॥

सं यजन्तान् कर्तुमिः शूर ईक्षयद्

धने हिते तरुणन्तं धवस्यवः प्र यक्षन्तं धवस्यवः ।

तस्मा आयुः प्रजायदिद् यार्धं अर्चन्त्योजेता ।

इन्द्र ओस्यं दिधिपन्त धीतर्यो

देवो अच्छा न धीतर्यः

॥ ५ ॥

युचं तमिन्द्रापर्वता पुरोयुश्चा

यो नः पृतन्यादप तंतमिद्धतं वज्रेण तंतमिद्धतम् ।

दूरे चत्तार्यं च्छन्सुद् गहनं यदिर्नक्षत् ।

अस्माकं शत्रून् परि शूर विश्वतो

दर्मा दर्पाष्ट विश्वतः

॥ ६ ॥

॥ ७९ ॥ ( ऋ० १।१३३।१-७ )

१ त्रिष्टुप्, २-४ अनुष्टुप्, ५ गायत्री, ६ धृतिः, ७ अग्निः ।

उमे पुनामि रोदसी श्रुतेन

द्रुहो दहामि सं महीरेनिन्द्राः ।

अभिल्लग्य यत्र हता अभिन्ना

वैलस्थानं परि तुच्छा अशेरन्

॥ १ ॥

अभिल्लग्या चिद्विचः शीर्षा यातुमतीनाम् ।

छिन्धि वंदुरिणां पदा महावन्दुरिणा पदा ॥ २ ॥

अवासां मघवज्जहि शार्धो यातुमतीनाम् ।

वैलस्थानके अर्भके महावैलस्थं अर्भके ॥ ३ ॥

यासां तिस्रः पञ्चाशतो ऽभिल्लहैरपाधपः ।

तत् सु ते मनायति तक्वत् सु ते मनायति ॥ ४ ॥

पिशाङ्गमृष्टिमम्भुणं पिशाचिमिन्द्र सं मृण ।

सर्वे रजो नि र्हय

॥ ५ ॥

अवर्मह इन्द्र वाहृदि भुधी नः

शुशोच हि द्यौः क्षा न भीषां अद्रिचो

घृणात्र भीषां अद्रिचः ।

शुष्मिन्तो हि शुष्मिभिः—वंधेऽग्रेभिरायसे ।

अपूरुयन्नो अपतीत शूर सत्त्वभिः

त्रिस्रैः शूर सत्त्वभिः

॥ ६ ॥

( १०३६ )

वनोति हि सुन्वन क्षयं परीणसः  
 सुन्वानो हि प्मा यजस्व द्विषो देवानामव द्विषः ।  
 सुन्वान इव सिपासति सहस्रा वाज्यवृतः ।  
 सुन्वानायेन्द्रो ददात्यामुर्वं रयिं ददात्यामुर्वम् ॥७॥

॥ ८० ॥ ( अ० १।१३।६ ) अलष्टिः ।

वृषन्निन्द्र वृषपाणोऽसु इन्द्रं  
 इमे सुता अद्रिपुतास उद्भिदः  
 तुभ्यं सुतासं उद्भिदः ।  
 ते त्वा मन्दन्तु दावनें मुहे विषाय राघसे ।  
 गीमिगीयाहः स्तवमान आ गहि  
 सुमन्त्रीको न आ गहि ॥ ६ ॥

॥ ८१ ॥ ( अ० १।१६।१ )

अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । त्रिष्टुप् ।

सहस्रं त इन्द्रोतयो नः  
 सहस्रमियो हृत्विो गुर्वतमा ।  
 सहस्रं रायो मादयय्य  
 सहस्रिण उप नो यन्तु वाजाः ॥ १ ॥

॥ ८२ ॥ ( अ० १।१६।१-८ )

त्रिष्टुप्, १ अतुप्परा विराट् ।

महश्चि त्वमिन्द्र यत् पतान्  
 महश्चिदसि त्यजसो यकृता ।  
 य नो वेधो मरुतो चिक्षित्वान्  
 मुक्ता र्यनुष्य तपु हि प्रेष्ठा  
 अयुजन्त इन्द्र विभ्यर्हृष्टीः  
 पिदानासो निषिधो मर्यत्रा ।  
 मरुतो पृत्नुतिर्हर्ममाना  
 र्यमोद्धस्य प्रधनस्य मारता  
 अम्यक् मा त इन्द्र भुष्टिरुस्मे  
 र्यनेम्यर्यं मरुतो लुनन्ति ।  
 अग्निध्रिदि प्मात्रसे दुग्धवान्  
 धापो न ह्यपि दधति प्रयांसि

त्व तू न इन्द्र तं रयिं दा  
 ओजिष्ठ्या दक्षिणयेव रातिम् ।  
 स्तुतश्च यास्ते चकनन्त वायोः  
 स्तनं न मर्ध्वः पीपयन्त वाजैः ॥ ४ ॥

त्ये रायं इन्द्र तोशतमाः प्रणेताः  
 कस्यं चिद्वतायोः ।

ते पु णो मरुतो मृळयन्तु  
 ये स्मा पुरा गातुयन्तींश्च देवाः ॥ ५ ॥

प्रति प्र यादीन्द्र मीळ्ळपो नृन्  
 मुहः पार्थिवे सवने यतस्व ।

अथ यदेपां पृथुवृध्रासु पर्ताः  
 तीर्थे नार्यः पौल्यानि तस्युः ॥ ६ ॥

प्रति घोराणामेतानामयासां  
 मरुतां शृण्व आयतामुपदिः ।

ये मर्यं पृतनायन्तमर्मैः  
 ऋणावानं न पृतयन्त सौः ॥ ७ ॥

त्वं मानेभ्य इन्द्र विभ्यर्जन्त्या  
 रदा मरुत्रिः शुरुयो गोर्मप्राः ।

स्तयोनिभिः स्तवसे देव देवैः  
 विद्यामेपं यूजनं जीरदानुम् ॥ ८ ॥

॥ ८३ ॥ ( अ० १।१७।१-५ )

[ इन्द्र, ( ४ अगस्त्यो वा ) १, ५ अगस्त्यो मैत्रावरुणिः ] ।

१ बृहती, २-४ अनुष्टुप्, ५ त्रिष्टुप् ।  
 न नूनमस्ति नो भवः फस्तद् वेदं यदङ्गुतम् ।

अन्यस्यं चित्तमभि सैचरेण्यं  
 उतार्थीतं वि नंदयति ॥ १ ॥

किं न इन्द्र जिघांससि भ्रातरो मरुतस्त्वं ।  
 तेभिः कल्पस्य साधुया मा नः समरणे यधीः ॥ २ ॥

किं नो भ्रातरगस्त्य सप्रा सप्रति मन्यसे ।  
 विद्या हि ते यथा मनो ऽसभ्यमिन्द्र दित्ससि ॥ ३ ॥

अरं शृण्वन्तु वेदिं सममिर्मिन्धतां पुरः ।  
 तन्नामृतस्य धेतनं यं तं तनयायदै ॥ ४ ॥



त्यमीशिपे वसुपते चरुतां  
 त्वं मित्राणां मित्रपते धेष्टः ।  
 इन्द्र त्वं मरुद्भिः सं वदस्व  
 अथ प्राशानं ऋतुधा हवीर्षि  
 ॥ ८४ ॥ (अ० १।१७३।१-१३)  
 विष्टुप, ४ विराट्स्थाना विषमपदा वा ।  
 गायत् सामं नमस्यं । यथा येः  
 अर्चाम् तद् वावृथानं स्ववेत् ।  
 गावो धेनवो बर्हिष्यदग्धा  
 आ यत् सुप्रानं दिव्यं विद्यासान्  
 अर्चद् घृषा वृषमिः स्वेदुहव्यैः  
 मृगो नाशो अति यजुर्गुर्यात् ।  
 अ मन्द्युर्मनां गृते होता  
 भरते मर्यो मिथुना यज्ञत्रः  
 नक्षत्रोत्ता परि सप्त मिता यन्  
 मरुद् गर्भमा श्रुदः पृथिव्याः ।  
 क्रन्ददभ्यो नर्यमानो रुषद् गौः  
 अन्तर्दुतो न रोदसी चरुद् धाक्  
 ॥ १ ॥ ता कर्मापतरास्मं अ व्यौत्तानि देवयन्तो भरन्ते ।  
 जुजोषदिन्द्रो दस्यर्चा  
 नासत्येव सुगम्यो रयेष्टाः  
 ॥ २ ॥ तमुं पुहीन्द्रं यो ह सत्या  
 यः शरीं मृधवा यो रयेष्टाः ।  
 प्रतीचक्षिद् योधीयान् वृषणान्  
 पयनपक्षिद् तमसो विहन्ता  
 ॥ ३ ॥ अ यदित्या मंहिता नृभ्यो अस्ति  
 अरं रोदसी कस्येकु नार्सं ।  
 सं विव्य इन्द्रो वृजन् न भूमा  
 भर्ति स्वधायो ओपशर्मिव धाम्  
 समस्तु त्वा शूर सतामृणं  
 प्रपथिन्तमं परिनसपथ्यं ।

सजोपस इन्द्रं मर्दे क्षोणीः  
 सुरिं चिद् ये मनुमर्दन्ति वाजैः  
 ॥ ७ ॥ एवा हि ते शं सर्वना समुद्र  
 आपो यत् तं आसु मर्दन्ति देवीः ।  
 विभ्वा ते अनु जोष्यां मूद् गौः  
 सुरीक्षिद् यदि धिपा वेति जनान्  
 ॥ ८ ॥ असाम् यथा सुपसार्य एन  
 स्वमिष्टयो नरां न शंसैः ।  
 असद् यथा न इन्द्रो बन्दतेष्टाः  
 ॥ ९ ॥ तुरो न कर्म नर्यमान इयथा  
 विपर्धसो नरां न शंसैः  
 अस्माकांसदिन्द्रो यज्ञहस्तः ।  
 मित्रायुवो न पूर्पति सुशिष्टौ  
 ॥ १० ॥ मध्यायुव उर्ष शिशन्ति यष्टैः  
 यष्टो हि प्मेन्द्रं कक्षिद्वन्धन्  
 जुहुणक्षिन्मनसा परियन् ।  
 तीर्थे नाकडां तावृषण्यमोको  
 ॥ ११ ॥ दीर्घो न सिधमा कृणोत्यर्चा  
 मो पू ण इन्द्रार्थं पृस्तु देवैः  
 अस्ति हि प्मा ते शुष्मिन्नव्याः ।  
 ॥ १२ ॥ महक्षिद् यस्यं श्रीब्बहुपो यव्या  
 इधिर्मतो मरुतो यन्दते गीः  
 एष स्तोम इन्द्र तुभ्यमसे  
 पुतेन गातुं हरिवो विदो नः ।  
 ॥ १३ ॥ आ नो ववृत्याः सुयितायं देव  
 विद्यामेयं वृजन् जीरद्वानुम्  
 ॥ ८५ ॥ (अ० १।१७३।१-१०) विष्टुप ।  
 त्वं राजेन्द्र ये च देवा  
 ॥ ६ ॥ रक्षा नूनं पार्श्वसुर त्वमस्मान् ।  
 त्वं सत्यतिमैवर्वा नस्तदग्रः  
 त्वं मृत्यो वसवानः सहोदाः  
 ॥ १ ॥ (१०६९)

दनो विश इन्द्र मध्रवाचः  
 सप्त यत् पुर शर्म शारदीर्दत् ।  
 ऋणोरपो अन्नव्यापार्ण  
 यूने वृत्रं पुंसुहृत्साय रन्धीः  
 अजा वृत् इन्द्र शूरपत्नीः ।  
 धां च येभिः पुरहृत् नूनम् ।  
 रक्षो अग्निमुद्युपं तूर्धयाणं  
 सिहो न वमे अपांसि वस्तोः ।  
 शेषन् तु त इन्द्र सस्मिन् योनौ  
 भ्रातृस्तये पर्वीत्वस्य मूढा ।  
 सजदणोस्यव यद् युधा गाः  
 तिष्ठद्वरी धृपता मृष्ट धाजान्  
 वह वृत्समिन्द्र यस्मिन्धाकन्  
 स्यूमन्यू अजा वातस्याभा ।  
 प्र सूरध्वजं वृहतादुभीके  
 अभि स्पृधो यासिपद् वज्रयाहुः  
 जघन्या इन्द्र मिनेरन्  
 चोदमन्त्रो हरियो अवाशन् ।  
 प्र ये पश्यन्धर्मणं सत्वायोः  
 त्वया शर्ता वर्हमाना अपत्यम्  
 रपन् कथिरिन्द्रार्कसातौ क्षां द्वासायोपवर्हणौ कः ।  
 कर्तुं तिम्रो मधगा दानुधिगा  
 नि दुय्योणे कुर्याच मूधि ध्रेत्  
 मना ता त इन्द्र नग्ना वामुः  
 सरो नमोऽविरणाय पूर्वाः ।  
 गिनत् पुरो न भिदो अदेवीः  
 नूनमो यमुरदेयस्य प्रियोः  
 न्यं पुनिगिन्द्र पुनिमती ।  
 ऋणोरप्य भौरा न म्रपन्तीः ।  
 प्र यन् संमुद्रमोत शूर पार्थ  
 पारयां तुष्यन् पटुं म्युक्ति

त्वमसारकमिन्द्र विभ्वर्ध स्या  
 अवृकर्तमो नरा नृपाता ।  
 स नो विभ्वासां स्पृधां संहोदा  
 ॥ २ ॥ विद्यामेपं वृजनं जीरदानुम् ॥ १० ॥  
 ॥ ८६ ॥ ( ऋ० १।१७।१-६ )  
 रक्त्वोमोवी वृहती, २-५ अनुष्टुप्, ६ त्रिष्टुप् ।  
 मत्स्यपायि ते महः पात्रस्येव हरिवो मत्सरो मदः ।  
 धृपां ते वृष्ण इन्दु—यांजी संहस्तसातमः ॥ १ ॥  
 आ नस्ते गन्तु मत्सरो वृषा मदो वरेण्यः ।  
 सहावां इन्द्र सानसिः पृतनापाळमर्त्यः ॥ २ ॥  
 त्व हि शूरः सनिता चोदयो मनुषो रथम् ।  
 ॥ ४ ॥ सहावान् दस्युमन्त—मोपः पात्रं न शोचिर्य ॥ ३ ॥  
 मुपाय सूर्यं कथे चक्रमीशान् ओजसा ।  
 वह शुण्पाय वृध कुत्सं वातस्याभैः ॥ ४ ॥  
 शुष्मिन्तमो हि ते मदौ युष्मिन्तम उत क्रतुः ।  
 ॥ ५ ॥ वृत्रघ्ना धरिवोविदां मंतीष्ठा अभ्वसातमः ॥ ५ ॥  
 यया पूर्वभ्यो जरितुम्य इन्द्र  
 मयं इवापो न तृप्यते वभूथ ।  
 तामनु त्वा निधिदै जोहवीमि  
 विद्यामेपं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥  
 ॥ ८७ ॥ ( ऋ० १।१७।१-६ ) अनुष्टुप्, ६ त्रिष्टुप् ।  
 मत्सि नो वस्येदृष्य इन्द्रमिन्द्रो वृषा विश ।  
 ॥ ७ ॥ ऋघायमाण इन्वासि शत्रुमन्ति न बिन्दसि ॥ १ ॥  
 तस्मिन्ना वैशया गिरो य एकध्वर्षणीनाम् ।  
 अनु स्वधा यमुप्यते यवं न चक्रेपद् धृषा ॥ २ ॥  
 यस्य विभ्वानि हस्तयोः पञ्च क्षितीनां वसु ।  
 ॥ ८ ॥ स्वाशयस्व यो अस्मद्भृग् द्विष्येवाशनिर्जहि ॥ ३ ॥  
 अस्तुन्यन्तं समं जहि दुणाशं यो न ते मयः ।  
 धसभ्यमस्य वेदं न ददि सुरिध्रिदोदते ॥ ४ ॥  
 याषो यस्य द्वियदसो ऽकैषु सानुपगसत् ।  
 ॥ ९ ॥ अजाविन्द्रस्येन्द्रो प्रायो पाजेषु धाजिनम् ॥ ५ ॥

यथा पूर्वम्यो जरितृभ्य इन्द्र  
मयं इवापो न तृप्यते वभूथ ।  
तामनु त्वा निविदं जोहवीमि  
विद्यामेपं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥  
॥ ८८ ॥ ( ऋ० १।१७७।१-६ ) ऋग्वेद ।  
आ चर्षणिप्रा वृषमो जनानां  
राजा रुष्टीनां पुंरुहूत इन्द्रः ।  
स्तुतः श्रवस्यन्नवसोपं मद्विग्  
युक्त्वा हरी वृषणा याह्यर्वाङ्  
ये ते वृषणो वृषभासं इन्द्र  
प्रक्षयजो वृषरथासो अत्याः ।  
तां आतिष्ठ तेमिरा याह्यर्वाङ्  
हवामहे त्वा सुत इन्द्र सोमं  
आ तिष्ठ रथं वृषणं वृषां ते  
सुतः सोमः परिपिका मधूनि ।  
युक्त्वा वृषभ्यां वृषभ क्षितीनां  
हरिभ्यां याहि प्रवतोपं मद्विक्  
अयं यदो दैवया अयं मियेधं  
इमा ब्रह्माण्ययमिन्द्र सोमः ।  
स्तीर्णं यद्विरा तु शक्र प्र याहि  
पियां निपद्य वि मुञ्चा हरीं इह  
ओ सुष्टुत इन्द्र याह्यर्वाङ्  
उप ब्रह्माणि मान्यस्य कारोः ।  
विद्याम वस्तोरवसा गुणन्तो  
विद्यामेपं वृजनं जीरदानुम्  
॥ ८९ ॥ ( ऋ० १।१७८।१-५ )  
यदु स्या तं इन्द्र धुष्टिरिस्त  
यया वभूथ जरितृभ्य ऊती ।  
मा नः कामं महयन्तमा धम्  
विभ्यां ते अद्यां पर्याप आयोः  
न या राजेन्द्र आ दभन्नो  
या नु स्वसारा कृण्वन्त योनीं ।

आपश्चिदस्मै सुतुका अवेपन्  
गमद्य इन्द्रः सत्या वयश्च ॥ २ ॥  
जेता नृमिरिन्द्रः पुस्तु शूरः  
श्रोता हवं नार्धमानस्य कारोः ।  
प्रमर्ता रथं दाशप उपाक  
उर्धन्ता गिरो यदि च तन्मा भूत्  
एवा नृमिरिन्द्रः सुधवस्या  
प्रखादः पृक्षो अभि मित्रिणो भूत् ।  
समर्थ इयः स्तवते विवाचि  
सत्राकरो यजमानस्य शंसः ॥ ४ ॥  
त्वया वयं मयवन्निष्ठ शत्रून्  
अभि ध्याम महतो मन्यमानान् ।  
त्वं ज्ञाता त्वमु नो वृधे भूः  
विद्यामेपं वृजनं जीरदानुम् ॥ ५ ॥  
॥ ९० ॥ ( ऋ० १।११।१-२१ )  
गुल्मनः ( आगिरस शौनहोन. पश्चाद् ) भार्गव. शौनकः ।  
विराटस्थानाः २१ ऋग्वेद ।  
धुधी हवमिन्द्र मा रिपण्यः  
स्यामं ते दावने वसूनाम् ।  
इमा हि त्वामृजो वर्धयन्ति  
वसूयः सिन्धवो न क्षरन्तः ॥ १ ॥  
सृजो महीरिन्द्र या अपिन्वः  
परिष्ठिता अहिना शूर पूनीः ।  
अमर्त्यं चिद् दासं मन्यमानं  
अवाभिनुदुर्वैर्वावृधानः ॥ २ ॥  
उभ्येष्विन्नु शूर येषु चाकन  
स्तोमेष्विन्द्र रुद्रियेषु च ।  
तुभ्येदेता यासु मन्दसानः  
प्र वायवै सिस्त्रते न शुभाः ॥ ३ ॥  
शुभ्रं नु ते शुभं वर्धयन्तः  
शुभ्रं वज्रं ग्राहोर्दधानाः ।  
शुभ्रस्तमिन्द्र वावृधानो असे  
दासीर्विदः सूर्येण सहाः ॥ ४ ॥

गुहां हितं गुह्यं गृह्णमन्तु अपीवृतं मायिनं क्षियन्तम् । उतो अपो द्यां तस्तम्बांसं बह्वर्हिं शूर धीर्येण स्तथा नु तं इन्द्र पुत्र्यां महानि उत स्तयाम नूतना हृतानि । स्तथा यज्ञे बाहोरुशन्तं स्तथा हरी सूर्यस्य केतु हरी नु तं इन्द्र बाजयन्ता घृतदधुतं स्वारमस्वाद्याम् । वि समना भूमिर्पृथिष्ट अरस्तु पयैतश्चित् सतिष्यन् नि पयैतः साधप्रयुच्छन् सं मातृभिर्वावशानो अक्रान् । दुरे पारे पाणीं वधैर्यन्तु इन्द्रैषितां धमनिं पमयन् नि इन्द्रो मुहां निगुमाशयानं मायायिनं धूम्रमंकुतिभिः । अरैजेतां रोदसी मियाने कनिप्रदतो घृष्णो अस्य यज्ञात् अतोरपीद् घृष्णो अस्य यज्ञो अमानुषं यन्मानुषो निगूयात् । नि मायिनो दानयस्य माया अपादयत् पणियान्तुनन्त्यं पिषाणिषेदिन्द्र शूर सोमं मन्दन्तु त्या मन्दिनः सुतामैः । पुनन्तस्ने वृक्षी यंपयन्तु इत्या सुतः पूर इन्द्रमाष रथे इन्द्रायभूमं पित्रा धियं यनेम अतया वर्यामः । अपुम्ययो धामहि प्रसक्ति एवमनं रापो हायनं इयाम	॥ ५ ॥ ॥ ६ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ ८ ॥ ॥ ९ ॥ ॥ १० ॥ ॥ ११ ॥ ॥ १२ ॥	स्याम ते तं इन्द्र ये तं उती अथस्यव ऊर्जे वधैर्यन्तः । शुधिमन्तं यं चाकनाम देव असे रयि रांसि वीरयन्तम् रासि क्षयं रासि मित्रमस्मे रासि शयं इन्द्र मारुतं नः । सुजोपसो ये च मन्दसानाः प्र वायवः पान्त्यप्रणीतिम् ज्यन्त्यिष्टु येपु मन्दसानः तुपत् सोमं पाहि ब्रह्मदिन्द्र । अस्मान्तु पुत्स्या तद्वध अवधेयो द्यां बृहद्भिरुक्तेः बृहन्त इष्टु ये तं तव उक्थेभिर्वा सुक्षमाविवासान् । स्तृणानासो बर्हिः पुत्स्यावत् त्वोता इदिन्द्र बाजमग्मन् उग्रेष्विष्टु शूर मन्दसानः त्रिकंद्रुकेषु पाहि सोममिन्द्र । मुदोर्ध्ववृक्षेषु प्रीणानो याहि हरिभ्यां सुतस्य प्रीतिम् धिष्या शयः शूर येन वृषं अवाभिन्द दानुमौर्णयामम् । अपावृणोज्योतिरायय नि संव्यतः सादि दस्युरिन्द्र सनेम ये तं उतिमिस्तरन्तो धिष्याः स्पृघ आयैण दस्युन् । असम्यं तत् त्वाष्टं विभरुपं अरन्धयः सास्यस्यं प्रितार्य अस्य मुद्यानस्यं मन्दिनस्त्रितस्य न्ययुदं धायुधानो अस्तः । अयतंयत् गृयो न धूमः मिन्द यलमिन्द्रो अङ्गिरस्यान्	॥ १३ ॥ ॥ १४ ॥ ॥ १५ ॥ ॥ १६ ॥ ॥ १७ ॥ ॥ १८ ॥ ॥ १९ ॥ ॥ २० ॥ (११२०)
---	---	--	--

नूनं सा ते प्रति वरं जरिमे  
दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मयेनी ।  
शिखां स्नातृभ्यो मारिं धूम्रगो नो  
गृहद् वंदेम विदये सुवीराः

॥ २१ ॥

॥ ११ ॥ ( अ० १।२१।१-१५ ) त्रिष्टुप् ।

यो जात एष प्रथमो मनस्वान् •  
देवो देवान् कर्तुना पर्यभूयत् ।  
यस्य शुष्माद् रोदसी अम्यसेतां  
नृम्यस्य मृहा स जनास इन्द्रः  
यः पृथिवी व्यर्थमानामहंहद्  
यः पर्यतान् प्रकुपितो अरुणात् ।  
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो  
यो घामर्त्तन्नात् स जनास इन्द्रः  
यो हृत्वाहिमरिणात् सप्त सिन्धून्  
यो गा उदाजदपथा बलस्य ।  
यो अहर्मनोरन्तरि जजान  
संवृक् समस्तु स जनास इन्द्रः  
येनेमा विभ्या व्यवेना एतानि  
यो वासं वर्णमधरं गुहाकः ।  
भ्रग्रीव यो जिगीषो लज्जमादद्  
अयः पुष्टानि स जनास इन्द्रः  
यं सा पृच्छन्ति कुहु सेति घोरं  
उतेमाहुर्नपो अस्तीत्यनम् ।  
सो अयः पुष्टीर्विज इवा मिनाति  
भद्रसै धत्त स जनास इन्द्रः  
यो रघस्य चोदिता यः कृशस्य  
यो द्रक्ष्णो नार्धमानस्य कीरेः ।  
युक्तप्राणो योऽविता सुशिप्रः  
सुतसौमस्य स जनास इन्द्रः  
यस्याभ्यासः प्रदिशि यस्य गावो  
यस्य ग्रामा यस्य विभ्ये रयासः ।

यः सूर्यं य उपसै जजान  
यो अयां नेता स जनास इन्द्रः  
यं क्रन्दसी संयती विद्वयैते  
परेऽवर उमया अमित्राः ।  
समानं चिद् रयमातस्थिवासा  
नाना हवेते स जनास इन्द्रः  
यस्मान्न क्रुते विजयन्ते जनासो  
यं युध्यमाना अवसे हवन्ते ।  
यो विश्वस्य प्रतिमानं वभूव  
यो अच्युतच्युत् स जनास इन्द्रः  
यः शर्वतो महोनो वर्धनान्  
अमन्यमानाञ्छर्वो जधान ।  
यः शर्यते नानुददाति शूच्यां  
यो वस्योहस्ता स जनास इन्द्रः  
यः शर्भरं पर्वतेषु श्रियन्तं  
चत्वारिंश्यां शरघन्वविन्दत् ।  
ओजायमानं यो अहिं जघान  
दानुं शयानं स जनास इन्द्रः  
यः सुतरश्मिर्बृषभस्तुर्विष्मान्  
अयास्जव सतीषे सप्त सिन्धून् ।  
यो रौहिणमस्फुरद् वज्रयाहुः  
घामापोहन्तं स जनास इन्द्रः  
घावां चिदस्मै पृथिवी नमेते  
शुष्माधिदस्य पर्वता मयन्ते ।  
यः सौमणा निचितो वज्रयाहुः  
यो वज्रहस्तः स जनास इन्द्रः  
यः सुन्वन्तमवाति यः पर्वन्तं  
यः शंसन्तं यः शंसमानमृती ।  
यस्य घ्रा वधेन यस्य सोमो  
यस्येदं राघः स जनास इन्द्रः

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ १ ॥

॥ ९ ॥

॥ २ ॥

॥ १० ॥

॥ ३ ॥

॥ ११ ॥

॥ ४ ॥

॥ १२ ॥

॥ ५ ॥

॥ १३ ॥

॥ ६ ॥

॥ १४ ॥

( ११३५ )

यः सुन्वते पचते दुध आ चिद्  
घाजे ददौपि स किलासि सत्यः ।

ययं तं इन्द्र विभ्वहं प्रियासः  
सुवीरसो विदयमा वंदेम

॥ १५ ॥

॥ १० ॥ ( अ० २।१३।१-१३ ) अथती, १३ त्रिष्टुप् ।

अनुजनेत्री तस्या अपस्परि  
मभू जात आदिदाद् यासु यथैते ।

तदाहना अभवत् पिप्पुरी पयः

अंशोः पीयूषं प्रथमं तदुपकथ्यम्

॥ १ ॥

सध्रीमा यन्ति परि विभ्रतीः पयो  
यिभ्वप्स्याप्य प्र भरन्त भोजनम् ।

समानो अर्वा प्रयतामनुष्यदे

यस्ताहणोः प्रथमं सास्युकथ्यः

॥ २ ॥

अन्वेकौ वदति यद् वदति तद्

रूपा मिनन्तर्दपा एकं ईयते ।

यिभ्या एकस्य विनुदस्तितिक्षते

यस्ताहणोः प्रथमं सास्युकथ्यः

॥ ३ ॥

प्रजाभ्यः पुष्टिं विमज्जत आसते

रूपिमिय पुष्टं प्रमज्जन्तमायते ।

अमिन्यन् ददौः पितुरसि भोजनं

यस्ताहणोः प्रथमं सास्युकथ्यः

॥ ४ ॥

अथाहणोः पुष्टिर्मा सुंदरै दिवे

यो धीनिनामदितुप्रारिणः पुथः ।

तं त्या स्तोमैभिग्दमिनं याजिनं

क्षेयं देवा अजन्तस्याम्युकथ्यः

यो भोजनं नु दयमे च यथेन

आद्रांदा शुष्कं मयुमद् कुदोदित्य ।

न दौवधि नि दधिरे पियम्वति

विभ्वप्स्यैव ईदिरे सास्युकथ्यः

यः पुष्टिर्मा प्रम्यंश्च धमणा

अधि दाने प्यपनीरधारयः ।

यश्चासमा अजनो दिद्युतो दिद्य

उदरुर्वा अमितः सास्युकथ्यः

॥ ७ ॥

यो नमिरं सहर्षसु निहन्तये

पुष्यार्थं च दासवैशाय चावहः ।

ऊर्जर्यन्त्या अपरिविष्टमास्यं

उतैवाद्य पुकृत्त सास्युकथ्यः

॥ ८ ॥

शतं वा यस्य दशं साकमाद्य

एकस्य शृष्टौ यजं चोदमार्विय ।

अरजौ दस्युन्तसुनवृभीतये

सुप्राव्यो अभवः सास्युकथ्यः

॥ ९ ॥

विभ्वेदनु रोधुना अस्य पौंस्यं

वदुरस्मै दधिरे कृतवे धनम् ।

पल्लस्तन्ना विष्टिरे पञ्च सुंदशः

परि परो अभवः सास्युकथ्यः

॥ १० ॥

सुप्रयाचनं तयं वीर वीर्यं

यदेकैव क्रतुना विन्दसे वसु ।

जातृष्टिरस्य प्र ययः सहस्वतो

या वृकथं सेन्द्र विभ्वास्युकथ्यः

॥ ११ ॥

अरमयः सरपसुस्तराय कं

तुर्वीतये च वृष्याय च क्षुतिम् ।

नीचा सन्तमुदतयः पराघृजं

प्राग्धं श्रोणं ध्रुवयन्तसास्युकथ्यः

॥ १२ ॥

अस्मभ्यं तद् वसो दानाय राघः

समर्धयस्व वदु तं वसत्यम् ।

इन्द्र यशित्रं श्रेयस्था अनु घ्नू

बृहद् वंदेम विदधे सुवीराः

॥ १३ ॥

॥ ११ ॥ ( अ० २।१४।१-१२ ) त्रिष्टुप् ।

अपर्ययो अरुन्ध्राप्य सोमं

आमन्त्रेभिः सिञ्चता मघमन्धः ।

वामी हि धीरः सर्वमस्य पीति

जहोत पुण्ये तदिदेष यंष्टि

॥ १ ॥

(११५०)

अर्घ्यवो यो अपो वनिवांसै  
 वृत्रं जघानाशन्यैव वृक्षम् ।  
 तस्मा एतं भरत तद्वशायै  
 प्रप इन्द्रो ब्रह्मति पीतिर्मस्य  
 अर्घ्यवो यो दधीक जघान  
 यो गा उदाजदप हि बलं व ।  
 तस्मा एतमन्तरिक्षे न चातं  
 इन्द्रं सोमैरोषुतं जूर्नं धत्तः  
 अर्घ्यवो य उरणं जघान  
 नव चत्वारसं नयति च वाहन् ।  
 योऽर्घ्वदमव नीचा वराधे  
 तमिन्द्रं सोमस्य भूये हिनेत  
 अर्घ्यवो य स्वर्गं जघान  
 यः शुष्णमशुप यो व्यसम् ।  
 यः पिप्पुं नसुचि यो रुचिकां  
 तस्मा इन्द्रायानर्घसो जुहोत ।  
 अर्घ्यवो यः शतं शन्यरस्य  
 पुरो विभेदादमनेय पूर्वीः ॥ ८ ॥  
 यो यचिनः शतमिन्द्रः सहस्रं  
 अपावपद् भरता सोममस्मै  
 अर्घ्यवो यः शतमा सहस्रं  
 भूम्या उपस्येऽवपजघन्यान् ।  
 कुरुक्ष्णायोरतिविग्वस्यं वीरान्  
 न्यावृणाम् भरता सोममस्मै  
 अर्घ्यवो यध्वरं कामयाधे  
 धृष्टी यदन्तो नशया तदिन्द्रं ।  
 गर्मस्तिपूत भरत धृताय  
 इन्द्राय सोमं यज्यवो जुहोत  
 अर्घ्यवो कर्तना धृष्टिमस्मै  
 घने निपूतं घन उग्रपथम् ।  
 जुषाणो हस्त्यमभि यानशे च  
 इन्द्राय सोमं मदिरं जुहोत

अर्घ्यवः पयसोर्ध्वया गोः  
 सोमैमिरीं पृणता भोजमिन्द्रम् ।  
 वेदाहमस्य निभूतं म एतद्  
 ॥ २ ॥ दित्सन्तं भूयो यजतश्चिकेत ॥ १० ॥  
 अर्घ्यवो यो दिव्यस्य वस्वो  
 यः पार्यवस्य क्षम्यस्य राजा ।  
 तमूर्ध्वं न पृणता यवेन  
 ॥ ३ ॥ इन्द्रं सोमैमिस्तदेषो वो-अस्तु- ॥ ११ ॥  
 अस्मभ्यं तद् वसो दानाय राघु  
 समर्धयस्व बहु तै वसग्यम् ।  
 इन्द्र यश्चित्रं श्रवस्या अनु धून्  
 ॥ ४ ॥ बृहद् वदेम विदधे सुवीराः ॥ १२ ॥  
 ॥ १४ ॥ ( २० ॥ १५१-१० )  
 प्र घा न्वस्य महतो महानि ।  
 सत्या सत्यस्य करणानि वोचम् ।  
 त्रिकद्रुकेष्वपि च सुतस्य  
 ॥ ५ ॥ अस्य मदे अहिमिन्द्रो जघान- ॥ १ ॥  
 अवशे घामस्तमायद् बृहन्त  
 आ रोदसी अपृणन्तर्दिक्षम् ।  
 स धारयत् पृथिवीं पप्रयश्च  
 ॥ ६ ॥ सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ २ ॥  
 सधेय प्राचो वि मिमाय मानैः  
 धजेण सान्यतृणधृदीनाम् ।  
 वृषांसजत् पृथिर्मिर्दध्यायैः  
 ॥ ७ ॥ सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ ३ ॥  
 स प्रवेब्धन् परिगत्या दमीतेः  
 विध्वमघागायुधमिधे अग्नौ ।  
 सं गोमिरर्ध्वरसज्जद् रयमि-  
 ॥ ८ ॥ सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ ४ ॥  
 स ई महो धुनिमेतोररम्णात्  
 सो अस्नातृनपारयत् स्वस्ति ।  
 त उक्ताय रयिमभि प्र तस्यु-  
 ॥ ९ ॥ सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ ५ ॥

सोदञ्जं सिन्धुमरिणान्मद्वित्वा  
 वज्रेणानं उपसुः सं विपेय ।  
 अजवसो अविनीभिर्विवृश्चन्  
 सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार  
 स विद्धा अपगोहं कनीनां  
 आचिर्मवृद्धदतिष्ठत् परावृक् ।  
 प्रति श्रोणः स्याद् व्युनगेचष्ट  
 सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार  
 भिनद् बलभङ्गिरोभिर्गृणानो  
 वि पर्येतस्य दंष्ट्रितान्यैरत् ।  
 रिणप्रोद्योसि कृत्रिमाण्वेषां  
 सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार  
 स्वर्गनाभ्युप्या जुसुरिं धुनिं च  
 जघन्य दस्युं प्र वृमीर्तिमाधः ।  
 रस्मी चिदने चिविदे हिरण्यं  
 सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार  
 नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे  
 दुहीयदिन्द्र दाक्षिणा मघोनी ।  
 शिक्षां स्तोतृभ्यो मार्ति धम्मगौ नो  
 बृहद् वदेम विदधे सुवीराः  
 ॥ १० ॥ ( अ० २।१६।१-९ ) अगती, ९ त्रिष्टुप् ।  
 प्र वः सुतो ज्येष्ठतमाय सुपुति  
 अग्राविंश शमिघाने हविर्भरे ।  
 इन्द्रमनुयै जरयन्तमुक्षितं  
 मनाद् युषानमरंसे हवामहे  
 यस्मादिन्द्राद् बृहतः किं चनेमृते  
 विष्णोभ्यग्मिन्ससमताधि वीर्या ।  
 अत्रे गोमं तन्वीकुं सद्यो मद्यो  
 हस्ते यज्ञं भरति दीर्घेण वतुम्  
 न धोणीभ्यो परिभ्यं त इन्द्रियं  
 न ममुद्रैः पर्यैरिन्द्र ते रथः ।

न ते यज्ञमन्यभोति कश्चन  
 यदाशुभिः पतसि योजना पुर  
 विभ्ये हासै यज्ञतायं धृण्वे  
 ॥ ६ ॥ कर्तुं भरन्ति वृषभाय सध्वते ।  
 वृषा यजस्व हविषा विदुष्टः  
 पिबेन्द्र सोमं वृषमेण भानुना  
 ॥ ४ ॥ वृष्णः कोशः पवते मर्ध्व ऊर्मिः  
 वृषमात्राय वृषभाय पतये ।  
 वृषणाचर्य वृषमालो अर्धयो  
 वृषणं सोमं वृषभाय सुप्यति  
 ॥ ५ ॥ वृषां ते यज्ञ उत ते वृषा रथो  
 ॥ ८ ॥ वृषणा हरी वृषभाण्यायुधा ।  
 वृष्णो मदस्य वृषम त्वमीशिपे  
 इन्द्र सोमस्य वृषमस्य तृण्यदि  
 ॥ ६ ॥ प्र ते नाधं न सर्मने वचस्युवं  
 ॥ ९ ॥ प्रक्षणा यामि सर्वनेषु वाधूपिः ।  
 कुविधौ अस्य वचसो नियोधिपव्  
 इन्द्रमुत्तं न वसुतः सिचामहे  
 ॥ ७ ॥ पुरा संवाषादुभ्या बवृत्स्व नो  
 धेनुर्न वत्सं ययत्सस्य पिप्युमी ।  
 स्रुत्सु ते सुमतिभिः शतक्रतो  
 खे पत्नीभिर्न वृषणो नसीमहि  
 ॥ ८ ॥ नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे  
 दुहीयदिन्द्र दाक्षिणा मघोनी ।  
 शिक्षां स्तोतृभ्यो मार्ति धम्मगौ नो  
 ॥ १ ॥ बृहद् वदेम विदधे सुवीराः  
 ॥ ९ ॥ ( अ० २।१७।१-९ ) अगती, ८-९ त्रिष्टुप् ।  
 तदस्मै नव्यमङ्गिरस्वदर्चत  
 ॥ २ ॥ दुष्पा यदस्य मन्त्रयोदीरते ।  
 विष्वा यक् गोत्रा सहसा परीवृता  
 महे सोमस्य दंष्ट्रितान्यैरयत्  
 ॥ १ ॥



स भूतु यो ह प्रथमाय चार्यसे  
 ओजो मिमानो महिमानमातिरत् ।  
 शरो यो युत्सु तन्वं परिष्यत  
 शीर्षणि चां मंदिना प्रत्यमुञ्जत  
 अर्धाकृणोः प्रथमं वीर्यं महद्  
 यदस्याग्रे ब्रह्मणा शुष्ममैरयः ।  
 रथेष्टेन हयैश्चेन विचर्युताः  
 प्र जीरयः सिञ्चते स्रग्भ्यः पृथक्  
 अथा यो विश्वा भुवनाभि मग्मना  
 ईशानकृद् प्रवया अभ्यवर्धत ।  
 आद् रोदसी ज्योतिषा बहिरातनोत्  
 सीव्यन् तमालि दुर्धिता समव्ययत्  
 स प्राचीनान् पर्वतान् दृढदोजसा  
 अधराचीनमकृणोदपामपः ।  
 अधारयत् पृथिवीं विश्वार्थाय  
 अस्तङ्गान्मायया चामबलसः  
 सास्मा अरं बाहुभ्यां यं पिताकृणोद्  
 विश्वस्मादा जनयो वेदसुस्परि ।  
 येनां पृथिव्यां नि किपिं शयध्वै  
 पञ्चैण हृत्यवृणक् तुविष्यणिः  
 अमाजूरिष पित्रोः सचां सुती  
 समानादा सर्वसुस्वामिये भगम् ।  
 रुधि प्रकृतमुपं मास्या नर  
 रुधि भागं तन्वोः । येनं मामहः  
 ओजं त्वामिन्द्र पयं हुवेम  
 वदिष्वमिन्द्रापांसि पाजान् ।  
 अविष्टीन्द्र चित्रया न ऊनी  
 रुधि वृषभिन्द्र पस्यसो नः  
 नूनं सा ते प्रति यरं जरिदे  
 रूहीपादिन्द्र वक्षिणा मयोनी ।  
 शिखां स्तोतृभ्यो मातिं घग्मगो नो  
 युहद् धेदेम विदधे सुपीतोः

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १० ॥ अ० १०।१-९) दिग्दृ।

प्राता रथो नवो योनि सस्तिः

चतुर्युगभिकृदाः सुतरदिमः ।

दशारित्रो मनुष्यः स्वर्पाः

स इष्टिर्मिर्मतिमी रथो भूत्

सास्मा अरं प्रथमं स द्वितीयं

उतो तृतीयं मनुष्यः स होता ।

अन्यस्या गर्भमन्य ऊं जनन्त

सो अन्येभिः सचते जेभ्यो वृषा

इति जु कं रथ इन्द्रस्य योजं

आयै सुकेन वचसा नयेन ।

मो पु त्वामग्रं युहयो हि विप्रा

नि रीरम्न यजमानासो अन्ये

आ द्वाभ्यां हरिभ्यामिन्द्र याहि

आ चतुर्भिष पद्भिर्हृयमानः ।

आष्टाभिर्दशभिः सोमपेयं

अयं सुतः सुमन्न मा मृचस्कः

आ विशत्या त्रिदाता याह्यर्वाद्

आ चत्वारिदाता हरिभिर्बुजानः ।

आ पञ्चादाता सुरधेभिरिन्द्र

आ पृष्टया संतत्या सोमपेयम्

आशीत्या नवत्या याह्यर्वाद्

आ शतेन हरिभिर्हयमानः ।

अयं हि ते शनहोत्रिषु सोम

इन्द्रं त्याया परिपिको मदाय

मम ब्रह्मेन्द्र याह्यञ्ज

विभ्या हरीं घुरि धिष्या रथम्य ।

पुरुषा हि विहव्यो वमृष

असिमूर्त सरेन मादयस्य

न म इन्द्रेण सख्यं वि योपद्

असम्यमस्य वक्षिणा दुदीत ।

उप ज्येष्ठे पर्ये गर्भस्त्री

शयेमाये जिगीषांसं स्याम

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

(११९०)

नूनं सा ते प्रति वरं जरिरे  
 दुह्यदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।  
 शिक्षां स्तोतृभ्यो मातिं घग्मर्गो नो  
 बृहद् वंदेम विदधे सुवीरोः

॥ ९८ ॥ ( ऋ० १।११।१-९ )

अपांयस्यान्धसो मदीय  
 मनीषिणः सुवानस्य प्रयसः ।  
 यस्मिन्निन्द्रः प्रदिधि वाधृधान  
 ओको वधे ब्रह्मण्यन्तश्च नरः  
 अस्य मन्वानो मघो वज्रहस्तो  
 अहिमिन्द्रो अणोवृतं वि वृक्षत् ।

प्र यद् वयो न स्वसराण्यञ्जु  
 प्रयांसि च नवीनां चरुमन्त  
 स माहिन् इन्द्रो अणो अपां  
 प्रैयदहिहाञ्जु समुद्रम् ।  
 अज्रनयत् सूर्यं विदध गा  
 धनुनाह्वां वयुनामि साधत्  
 सो अग्रतीनि मनधे पुरुणि  
 इन्द्रो दाशद् दाशुपे हर्ति वृषम् ।

सुपो यो नृभ्यो बतसाप्यो भूत्  
 पस्प्यानेभ्यः सूर्यस्य स्रुतो  
 स सुन्यत इन्द्रः सूर्य  
 आ देवो रिण्डमर्त्याय स्तवान् ।  
 आ यद् सूर्यं गुह्यदयधमस्मै  
 भरद्वा नैतशो वशास्पन्  
 म रन्धयन् मदिय सारण्ये  
 शुष्णमशुपु कुर्ये कृत्साय ।  
 दियोदामाव ननुति च नव  
 इन्द्रः पुरो ध्यैत्पृष्ठम्बरस्य  
 प्या तं इन्द्रोचपमहेम  
 धयम्या न तमनो याज्यन्तः ।

अश्याम तत् सासमाशुयाणा  
 ननमो वधद्वैवस्य पीयोः

॥ ७ ॥

एवा तं गृत्समदाः शूर मग्ने

॥ ९ ॥ अवस्यो न वयुनानि तथुः ।

ब्रह्मण्यन्तं इन्द्र ते नवीय

इपमूर्जे सुक्षिति सुसमश्रुः

॥ ८ ॥

नूनं सा ते प्रति वरं जरिरे

दुह्यदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।

॥ १ ॥ शिक्षां स्तोतृभ्यो मातिं घग्मर्गो नो

बृहद् वंदेम विदधे सुवीरोः

॥ ९ ॥

॥ ९९ ॥ ( ऋ० १।०।१-९ ) त्रिदृषः, १ विराड्भूषः ।

वयं ते वयं इन्द्र विदि पु णः

॥ २ ॥ प्र मरामहे याज्युर्न रयम् ।

विपन्यवो दीर्घ्यतो मनीषा

सुसमिष्यक्षन्तस्त्वावर्ततो नृन्

॥ १ ॥

त्वं न इन्द्र त्वाभिह्वती

॥ ३ ॥ त्वायतो अमिष्टिपांसि जनान् ।

त्यमिनो दाशुर्वा बहूता

इथाधीरमि यो नक्षति त्वा

॥ २ ॥

सं नो युवेन्द्रो ओहन्नः संखा

॥ ४ ॥ शिवो नृपमस्तु पाता ।

यः शंसन्तं यः शंशमान्मृती

पचन्तं च स्तुवन्तं च प्रणेपत्

॥ ३ ॥

तमु स्तुप इन्द्रं ते वृणीषे

॥ ५ ॥ यस्मिन् पुरा वावृषुः शशुदेध ।

स वस्यः कामं पीपदधियोनो

ब्रह्मण्यतो नृतनस्यायोः

॥ ४ ॥

सो अङ्गिरसायचया जुजुष्यान्

प्रकां ततोदिन्द्रो गानुमिष्णन् ।

मुष्णन्नयसः सूर्येण स्तवान्

अभ्रस्य चिच्छिन्नयत् पुर्याणि

॥ ५ ॥

( १२१६ )

स ह श्रुत इन्द्रो नाम देव  
 ऊर्ध्वो मुच्यन्मनुष्ये दुस्सतमः ।  
 अथ प्रियमर्शसानस्य साहान्  
 शिरो भरद् दासस्य स्वधावान्  
 स वृत्रहेन्द्रः कृष्णयोनिः  
 पुरंदरो दासीरैर्यद् वि ।  
 अजनयन् मनये क्षामपथं  
 सत्रा शंसं यजमानस्य ततोत्  
 तसं तद्यस्य मनु दायि सत्रा  
 इन्द्राय देवेभिरर्णसातौ ।  
 प्रति यदस्य यज्ञं ब्राह्मोऽयुः  
 हृत्वी दस्युन् पुर आयसीनि तारीत्  
 नूनं सा ते प्रति यदं जरिरे  
 दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मुघोनी ।  
 शिक्षां स्तोत्रभ्यो मर्ति धूम्रगो नो  
 बृहद् वंदेम विदधे सुवीराः  
 ॥ १०० ॥ ( अ० १२११-२ ) अगनीः ६-त्रिष्टु ।  
 विभ्यजितं धनजितं स्वजितं  
 सत्राजितं नृजितं उर्धराजितं ।  
 अभ्यजितं गोजितं अजितं भर  
 इन्द्राय सोमं यजतार्य हर्यतम्  
 अभिमुर्वेऽभिमहायं यन्ते  
 अर्पाळ्हाय सदेमानाय वेधंसे ।  
 त्रियमे यदये दुष्टीतये  
 सत्रासाहे नम इन्द्राय घोचत  
 सत्रासाहो जनमशो जनंसुहः  
 च्यवन्तो युध्मो अनु जोर्यमुक्षितः ।  
 घृतंययः सधृरिर्विस्वारि  
 इन्द्रस्य घोचं प्र कृतानि धीर्या  
 भनानुदो धृमो दोधंतो यधो  
 गम्भीरः श्रुष्यो असमोष्टकाव्यः ।

रघ्वोदः श्रयनो वीक्षितस्पृधुः  
 इन्द्रः सुयद्य उपसः स्वर्जनत् ॥ ४ ॥  
 यधेनं गातुमप्तुर्यो विविदिरे  
 धियो हिन्वाना उशिर्जो मनीषिणः ।  
 अभिस्वरा निपद्रा गा अयस्य  
 इन्द्रे हिन्वाना द्रविणान्याशत ॥ ५ ॥  
 इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि  
 चित्तिं दक्षस्य सुमगत्वमसे ।  
 पोर्वं रयीणामरिष्टिं तनूनां  
 स्वाधानं वाचः सुदिनत्यमहाम् ॥ ६ ॥

॥ १०१ ॥ ( अ० १२०१-४ )

१ अष्टिः, २-३ अतिशङ्करी, ४ अष्टि अनिशङ्करी वा ।

त्रिकटुकेषु महिषो यवाशिरे त्रिनुष्पः  
 तृपत् सोममपिबद् विष्णुना सुतं यथापदात् ।  
 स ह ममात्र महि कर्म कर्तये मद्रामुवं  
 सेनं सद्यद् देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥ १ ॥  
 अथ त्विषीमो अभ्योजसा किं धिं युधामवद्  
 आ रोदसी अपृणदस्य मन्मना ॥ यावृथे ।  
 अर्धस्तान्यं जडरे प्रेमरिच्यत्  
 ॥ १ ॥ सेनं सद्यद् देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥ २ ॥  
 साकं जातः क्रतुना साकमोजसा ययक्षिय  
 साकं बृद्धो धीर्यः सासुद्विभृधो विचरेणि ।  
 दाता राघं स्तुयते काम्यं यम्  
 ॥ २ ॥ सेनं सद्यद् देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥ ३ ॥  
 तय त्ययं नूतोऽयं इन्द्र प्रथमं पुष्यं  
 द्विषि प्रयाच्य कृतम् ।  
 ॥ ३ ॥ यद् देवस्य दार्यमा प्रारिणा अर्जु रिणप्रपः ।  
 भुयद् विभ्रम्यादैवभोजसा  
 विदाहं ज्ञातमनुविदादिपम् ॥ ४ ॥  
 ( १०१६ )

॥ १०० ॥ ( ऋ० ३।३०।१-१ ७-८ १० )

[ ८ पूर्वोऽर्चयेत् सरस्वती । त्रिष्टुप् ।

ऋतं देवाय कृण्वते सवित्र  
 इन्द्रोयाहिध्रे न रमन्त आर्षः ।  
 अहंरह्यात्युत्तरां  
 क्रियात्या प्रथमः सर्ग आसाम्  
 यो वृत्राय सितमग्रामरिष्यत्  
 प्र तं जनित्री विदुर्ग उवाच ।  
 पयो रदन्तीरन् जोषमस्मै  
 विधेदिधे धुन्यो यन्त्ययम्  
 ऊर्ध्वो ह्यस्यादध्यन्तरिक्षे  
 अघो वृत्राय प्र घृघं जमार ।  
 मिह धसान् उप हीमवुद्रोत्  
 त्रिगमार्युधो धजयच्छनुमिन्द्रः  
 पृहस्पते तपुषाभैव विष्णु  
 युक्तरसो अस्तुरस्य धीरान् ।  
 यपो जयन्त्य धृपता पुरा चिद्  
 पया जेहि शत्रुमसाकमिन्द्र  
 अवे क्षिप दिवो अदमानमुषा  
 येन शत्रु मन्दसानो निज्योः ।  
 तोषन्त्ये स्मार्तो तनयस्य भूरैः  
 अस्मां अघं वृशुतादिन्द्र गोर्नाम्  
 न मां तमग्र धमग्रोत तन्दन्  
 न यौगाम मा सुनोतेति सोमम् ।  
 यो मे पूणाद् यो ददद् यो त्रियोधाद्  
 यो मां सुन्यन्मुप गोमिरार्यन्  
 शरैर्यन्ति त्वमसां येषिद्धि  
 मन्त्यन्ती धृपती जेहि शत्रुन् ।  
 त्व त्रिच्छर्षणं तपिनीयमोजं  
 शत्रो हन्ति कृण्वं शर्षिष्ठानाम्  
 सुगार्भमि गार्भभिः नृत् नृत्  
 दीपौ हधि यानि मे वय्योनि ।

ज्योग्भूयधनुषूपितासो

हृत्वी तेयामा भरा नो वसन्ति ॥ १० ॥

॥ १०१ ॥ ऋ० २।४१।१०-११ गायत्री ।

इन्द्रो अक्र मृहद् भय-ममी पदप चुच्यवत् ।

स हि स्थिरो विचर्षणिः ॥ १० ॥

इन्द्रश्च मृळ्याति नो न नः पृश्नादघं नशत् ।

भद्रं भवाति नः पुरः ॥ ११ ॥

इन्द्र आशोम्यस्परि सर्वोभ्यो अमयं करत् ।

जेता शत्रुन् विचर्षणिः ॥ १२ ॥

॥ १०४ ॥ ( ऋ० ३।३०।१-२१ )

गायिनो विश्वामिन । त्रिष्टुप् ।

इच्छन्ति त्वा सोम्यासुः सखायः

सुन्वन्ति सोमं दधति प्रयांसि ।

तितिक्षन्ते अभिशस्ति जनानां

इन्द्र त्वदा कञ्चन हि प्रकृतः ॥ १ ॥

न ते दूरे परमा विद् रजांसि

आ तु प्र याहि हरिवो हरिण्याम् ।

स्थिराय धृष्णे सर्वना कृतेमा

युक्ता प्राधोणः समिधाने अमौ

इन्द्रः सुशिरो मधया तर्कमौ

महामातस्तुधिकुर्मिर्ऋषावान् ।

यदुमो धा योषितो मर्त्येषु

कः स्या ते धृपम धीर्योणि

त्वं हि ध्वा च्याययन्नच्युतानि

एवौ वृत्रा चरसि जिघ्रमानः ।

तय धार्याण्यिषी पर्यन्तासो

अनु वृताय निमित्तेय तस्युः

उतामये पुरहृत् धर्योभिः

एवौ वृद्धमयसो वृत्रहा सन् ।

इमे विदिन्द्र चोर्वसी अयारे

यन् संगृभ्णा मघयन् वानिरित् तं

(११४२)

प्र सू तं इन्द्र प्रवता हरिभ्यां प्र ते घञः प्रमृणेत्रे तु शत्रून् । जहि प्रतीचो अनूचः पराचो विश्वं सत्त्वं रुणुहि विष्टमस्तु यस्मै धायुर्वधा मर्त्याय अमर्त्तं चिद् भजते गेहं सः । अद्रा तं इन्द्र सुमतिर्धृताचीं सहस्रदाना पुरुहूत रतिः सहस्रांशुं पुरुहूत क्षियन्तं अहस्तामिन्द्र सं पिणक् कुणारुम् । अमि वृत्रं वधैमानं पिराहं अपारमिन्द्र तयसा जघन्थ नि सामनारिपिरामिन्द्र भूमिं महीमण्णरां सर्वान् ससत्थ । अस्तमनाद् द्यां धृपमो अन्तरिक्षं अर्पन्त्यापस्त्वपेह प्रसूताः अलातुणो घल इन्द्र प्रजो गोः पुरा हन्तोभैर्यमानो व्यार । सुगान् पथो अरुणोऽग्निरजे गाः प्राप्नुव घाणीः पुरुहूत धर्मन्तीः एको हे घर्तुमती समीचो इन्द्र आ परमौ वृथियीमुत धाम् । उतान्तरिक्षावमि नः समीक इपो इथीः सयुजः शूर याजान् विशः सूर्यो न मिनाति प्रदिष्टा द्विषेर्द्वे हयैभ्यप्रसूताः । सं यदानलघ्वेन आदिदधैः विमोचनं रुणुते सत् त्वस्य दिदक्षन्त उपसो यामप्रकोः विपस्यत्या माहि चित्रमनीकम् ।	॥ ६ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ ८ ॥ ॥ ९ ॥ ॥ १० ॥ ॥ ११ ॥ ॥ १२ ॥	विश्वे जानन्ति मदिना यदागाद् इन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरुषि महि ज्योतिर्निहितं वक्षणांसु आमा पक् चरति विष्टती गौः । विश्वं स्वाश्र संभृतमुक्षिरायां यत् सीमिन्द्रो अर्द्धाद् भोजनाय इन्द्र दद्यां यामकोशा अभूवन् यशाय शिक्ष गृणते सपिभ्यः । दुर्मयवो दुरेवा मर्यासो निपदिणो रिपवो हन्त्यांसः सं घोषः शृण्वेऽवमैरुमिरैः जही न्येषशानि तपिष्ठाम् । वृक्षेमघस्ताद् वि रंजा सहस्य जहि रथो मघवन् रुन्धरस्य उक् वृह रक्षः सहस्रलमिन्द्र युष्मा मय्यं प्रत्यग्रं शृणीहि । आ कीर्यतः सलदूर्कं चकथ ब्रह्मडिपे तपुपि हेतिर्मस्य स्वस्त्यै याजिभिश्च प्रणेतः सं यन्महीरिपे आसत्सि पुर्याः । रायो वन्तारो वृहतः स्याम असे अस्तु भग इन्द्र प्रजावान् आ नो भर भगमिन्द्र घुमन्तं नि तं देण्यस्य धीमहि प्रोक्ते । ऊर्य इव पप्रये कामो असे तमा वृण वसुपते यस्वनाम् इमं कर्म मन्दया गोमिर्ध्वः चन्द्रवता राधसा पुप्रयम् । स्वयं वी मतिमिस्तुभ्यं चित्रा इन्द्राय यार्दः कुशिकासो अग्रन्	॥ १३ ॥ ॥ १४ ॥ ॥ १५ ॥ ॥ १६ ॥ ॥ १७ ॥ ॥ १८ ॥ ॥ १९ ॥ ॥ २० ॥
---	--	--	--

आ नो गोत्रा ददंदि गोपते गाः  
समसम्यं सुनयो यन्तु वाजाः ।  
दिवशां वसि वृषम सत्यशुभो  
वसम्यं सु मधवन् घोषि गोदाः ॥ २१ ॥  
शुन हुवेम मधवान्मिन्द्रं  
अस्मिन् भरे नृतेमं वाजसातौ ।  
शुण्यन्तमुग्रमृतये समत्सु  
ग्रन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥ २२ ॥  
॥ १०९ ॥ ( २० ॥ १११२-२२ )  
इति ऋषिः, गान्धर्वो विश्वामित्रो वा ।

शामद् यद्विदुर्हितुर्नृप्यं गाद्  
विद्वान् श्रुतस्य वीर्यं सपर्यन् ।  
पिता यत्र दुहितुः सेकमुज्ज्व  
सं शम्येन मनसा दधन्ये  
न जामये तान्यो रिप्यमारैक्  
वृक्षार गमै सनितुर्निधानम् ।  
यदी मानरो जनयन्तु यद्वि  
धन्यः कृता सुन्तौन्य श्रुण्वन्  
अग्निर्जने जुहोतु रेजमानो  
मृदस्पृशो अग्नस्य प्रपञ्चे ।  
मृदान् गमो मद्या जातमेषां  
मृदी प्रवृज्येभ्यस्य यवेः  
अग्निं जप्यैरमचन्त सृष्टानं  
मति ज्योतिस्मर्मसो निरंजानम् ।  
न जानतीः प्रयुदायप्रपास  
पतिर्गोपामनयदेव इन्द्रः  
षोडशो वृत्ताग्निं धीरां अमृदन्  
प्राचाद्विष्यन् मनसा सा विप्राः ।  
विश्वामयिन्दन् पृथ्वाभुनक्तं  
प्रज्ञानप्रिया नमसा विवेका  
विद्वद् वरी शम्यो गृज्जमन्तः  
मृदु पापेः पूष्यं गृह्यन्तः ।

अग्रं नयत् सुपद्यक्षराणां ।  
अच्छा रवं प्रथमा जानती गात् ॥ ६ ॥ २  
अगच्छद् विप्रतमः सखीयन्  
असृदयत् सुकृते गर्भमद्रिः ।  
ससान मयो युवभिर्मलस्यन्  
अयोमवदक्षिणः सद्यो अर्चन् ॥ ७ ॥  
सुतः संतः प्रतिमानं पुरोभूः  
विश्वो वेदं जनिमा हन्ति शुण्णम् ।  
प्र णो दिवः पदवीर्गयुरर्चन्  
सखा सखीरमुञ्जिरेवघात् ॥ ८ ॥  
नि गन्धता मनसा सेदुरकैः  
कृण्वानासौ अमृतत्वाय गातुम् ।  
इदं चिन्तु सदनं भूयेषां ।  
येन मासो अस्तिपासघृतेन ॥ ९ ॥ २  
संपश्यमाना अमदन्नमि स्वं  
पर्यः प्रक्षस्य रेतसो दुर्धाना ।  
वि रोदसी अतपद् घोषं एषां  
जाते निष्ठा मर्दधुगोषु धीपन् ॥ १० ॥ २  
स जातेर्भिवृद्धा सेदु हन्यैः  
उदक्षिणा अस्त्रजिह्वो अकैः ।  
उरुच्यसै घृतयद् भरन्ती  
मधु स्यात्तं दुदुहे जेज्या गौः ॥ ११ ॥ २  
पित्रे विंशद् सदनं समस्मै  
मदि त्विरीमत् सुरतो वि हि एयन् ।  
विष्मन्तः स्वर्म्मनेना जनिश्री  
आसीना ऊर्ष्यं रममं वि मिण्यन् ॥ १२ ॥ २  
मृदी यदि पिपणां शिष्ये घात्  
संघोष्यं विष्यं रोदस्यो ।  
गिरो यस्मिन्ननपृषाः संमीची  
विश्या इन्द्राय तविषीरनुत्ताः ॥ १३ ॥ २  
( ११०० )

महा ते सूर्यं यद्विम शक्तीः  
आ वृत्रघ्ने नियतो यन्ति पूर्वाः ।

महिं स्तोत्रमय आगन्म सुरैः  
अस्माकं सु मघवन् योधि गोपाः

महिं श्वेनं पुरुषं च विविधान्  
आदित् सविभ्यश्चरथं सैमैरत् ।

इन्द्रो नृभिर्जनं दीद्यानः  
साकं सूर्यमुपसं गातुमग्निम्

अपाश्चिदेप विभ्योऽर्द्धमनाः  
प्र सन्धीर्चीरसृजद् विश्वश्चेन्द्राः ।

मध्वः पुनानाः कविभिः पवित्रैः  
धुमिहिन्वत्युक्तमिधेनुनीः

अनुं कृष्णे धसुं धीता जिहाते  
उमे सूर्यस्य मंहना यजेत्र ।

परि यत् ते महिमानं धृजध्वै  
सर्पाय इन्द्र काम्या ऋजिप्याः

पतिर्भव वृत्रहन्स्तुतानां  
गिरां विश्वार्यवृषमो धयोधाः ।

आ नो गहि सप्येभिः शिवेभिः  
मृहान् मृहीभिर्भुतिभिः सरण्यन्

तमङ्गिरस्वन्नमसा सपर्यन्  
नव्यै कृणोमि सन्यसे पुराजाम् ।

इहो वि वाहि बहुला अर्देवीः  
स्वैश्च नो मघवन्सातये धाः

मिहः पावकाः प्रतता अभूवन्  
स्यस्ति नः पिपृहि पारमासाम् ।

इन्द्र त्वं रथिरः पाहि नो रिपो  
मध्वमक्ष कृणुहि गोजितो नः

अर्देदिष्ट वृत्रहा गोपविर्गा  
अन्तः कृष्णा अदुर्योधमभिर्गात् ।

॥ १४ ॥

॥ १५ ॥

॥ १६ ॥

॥ १७ ॥

॥ १८ ॥

॥ १९ ॥

॥ २० ॥

प्र सुनृता दिशमानं ऋतेन  
दुरश्च विभ्वा अवृणोदप स्वाः

शुनं हुवेम मघवानामिन्द्र  
अस्मिन् मरे नृतमं वाजसातौ ।

शृण्वन्तमुग्रमृतये समस्तु  
मन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम्

॥ २०६ ॥ ( ऋ० ३।१।१-१७ )

इन्द्र सोमं सोमपते पिबेमं  
मार्घ्यदिनें सर्वनं चारु यत् ते ।

प्रमुष्या शिर्षे मघवन्नृजीपिन्  
विमुष्या हरी इह मादयस्व

गवांशिरं मग्निमिन्द्र शुक्रं  
पिवा सोमं ररिमा ते मदाप ।

प्रहृता मारुतेना गणेन  
सजोषा रुद्रेस्तृपदा वृषस्व

ये ते शुष्मं ये तविषीमवर्धन्  
अर्धन्त इन्द्र मरुतस्त ओजः ।

मार्घ्यदिनें सर्वनं वज्रहस्त  
पिवा रुद्रेभिः सर्गणः सुदिप्र

त इन्वस्य मधुमद् विविप्र  
इन्द्रस्य शर्धो मरुतो य आसन् ।

येभिर्वृत्रस्येपितो विवेदं  
अमर्मणो मन्यमानस्य मर्म

मनुष्यादिन्द्र सर्वनं जृणुणः  
पिवा सोमं शश्वते धीर्योय ।

स आ वषूत्स्व हर्यश्च यज्ञैः  
सरण्युमिपो अणीं सिसरि

त्वमपो यदं वृत्रं जघन्यौ  
असौ इव प्रार्वजः सतेवाजौ ।

॥ २१ ॥

॥ २२ ॥

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

( १९८७ )

यजाम इक्ष्मसा वृद्धमिन्द्रं  
 वृहन्तमुष्वमजरं युवानम् ।  
 यस्थं प्रिये ममर्तुर्यक्षियस्य  
 न रोदसी महिमानं ममाते  
 इन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरुषि  
 प्रतानि देवा न मिनन्ति विभ्वै ।  
 दाधार यः पृथिवीं घामुतेमां  
 जजान सूर्यमुपसै सुदंसाः  
 अद्रोघ सत्यं तव तन्महित्वं  
 सुघो यज्जातो अपियो ह सौमम् ।  
 न चाव इन्द्र तवसेस्त ओजो  
 नाहा न माताः शरदौ धरन्त  
 त्वं सुघो अपियो जात इन्द्र  
 मदाय सौमं परमे व्योमन् ।  
 यद्वा चारापृथिगी आविषेदीः  
 अयामनः पुर्यः कारुघायाः  
 अहन्नाहिं परिदारानमर्षं  
 ओजायमानं तुयिजात तव्यान् ।  
 न ते महित्यमनु मुदघ धीः  
 यदग्नया स्क्रुण्या क्षामयस्याः  
 यज्ञो हि ते इन्द्र यधेनो भूद्  
 उत प्रियः सुतस्तोमो मियेधेः ।  
 यज्ञेन यज्ञमय यक्षियः गन्  
 यज्ञेन यज्ञमहिहव्यं आपत्  
 यज्ञेनेन्द्रमयसा ध्यमे अयाक्  
 एनं सुताय नम्यमे ययुरयाम् ।  
 यः स्तोममिषायधे पृथ्वेभिः  
 यो मण्यमेनेन नूतनेभिः  
 विषेय यन्मो प्रियणो जजान  
 त्वयं पुन पायादिन्द्रमहः ।

अहंसो यत्र पीपस्व यथा नो  
 नावेव यातमुभये हवन्ते ॥ १४ ॥  
 आपूर्णो अस्य कलशः स्वाहा  
 सेकेव कोशे सिसिचे पिवध्वै ।  
 समु प्रिया आववृषन् मदाय  
 प्रदक्षिणदभि सोमांस इन्द्रम् ॥ १५ ॥  
 न त्वा गमीरः पुंरुहूत सिन्धुः  
 नाद्रयः परि पन्तौ वरन्त ।  
 इत्या सखिभ्य इपितो यदिन्द्र  
 आहृच्छं चिदरुजो गर्गमुर्धम् ॥ १६ ॥  
 शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रं  
 अस्मिन् भरे नूतमं धार्जसातौ ।  
 इण्वन्तमुप्रमूतये समस्तु  
 भन्तं वृषाणि संजितं धनानाम् ॥ १७ ॥  
 ॥ १०७ ॥ ( अ० ३।३।१६-७ )  
 इन्द्रो असां अरवद् वज्रयाहुः  
 अपाहन् वृत्रं परिधिं नदीनाम् ।  
 देवोऽनयत् सविता सुपाणिः  
 तस्य वयं प्रसूचे याम उर्वीः ॥ १८ ॥  
 प्रवाच्यं शश्वचा धीर्यै तत्  
 इन्द्रस्य कर्म यदहिं विवृक्षत् ।  
 वि वज्रेण परिपदौ जघान  
 आयन्नापोऽयनमिच्छमानाः ॥ १९ ॥  
 ॥ १०८ ॥ ( अ० ३।३।१७-१९ )  
 इन्द्रः पुमिदार्तिरद् दासंमर्कः  
 विदद् वसुदंयमानो वि शार्त्तन् ।  
 ग्रहज्जतस्तन्या वायुधानो  
 भूरिवाय आपृणद् रोदसी उमे ॥ २० ॥  
 मसस्य ते तयियस्य प्र जुति  
 इयमिं यार्चममृताय भूयन् ।  
 इन्द्रं क्षितीनामसि मानुषीणां  
 विनां दीयीनामुत पूषं पाया ॥ २१ ॥  
 ( १०९ )



इन्द्रो वृत्रमवृणोच्छर्षणीतिः  
प्र मायिनाममिनाद् वर्षणीतिः ।

अहन् व्यंसमुशध्वन्नेषु  
आविधेनां अरुणोद् रम्याणाम्

इन्द्रः स्वर्पा जनयन्नहानि  
जिगायोशिग्मिः पृतना अग्निष्टिः ।

प्रारोचयन्मनवे केतुमद्वा  
अधिन्द्रज्योतिर्धृते रणांय

इन्द्रस्तुजो धर्हणा आ विवेश  
नुवद् दधानो नयो पुरुणि ।

अचैतयद् धियं इमा जेदिवे  
मेमं वर्णमतिरक्तुक्रमासाम्

महो महानि पनयन्त्यस्य  
इन्द्रस्य कर्म सुहृता पुरुणि ।

पूजनैर्न वृजिनामन्तं विषेप  
मायामिदंस्वैरिमिभूत्योजाः

युधेन्द्रो मद्वा धरैर्यश्चकार  
देवेभ्यः सत्पतिश्चरणिप्राः ।

वियस्वतः सदेने अस्य तानि  
धिप्रा उपयेभिः क्वयसौ शृण्वन्ति

सप्रासाहं धरैर्यं सहोदां  
संसवांसं स्वरुपञ्च देवाः ।

ससान यः पृथिवीं धामुतेमां  
इन्द्रं मवन्त्यनु धीरेणासः

ससानात्पां उत स्यै ससान  
इन्द्रः ससान पुष्टमोजसं गाम् ।

हिरण्ययमुत मोगं ससान  
हृत्वी दस्युन् प्रायं धर्णमावत्

इन्द्र ओषधीरसनोदहानि  
घनस्पतीरसनोदन्तरिभ्रम् ।

विमेधं धूलं जुनुवे विवाचो  
अथामवद् दमितामिकतूनाम्

शुनं हुवेम मधवानमिन्द्रं  
असिन् अरे नृत्तं वाजसातौ ।

शृण्वन्तमुग्रमूतयै समस्तु  
घ्नन्तै वृत्राणि संजितं घनानाम्

॥ १० ॥

तिष्ठा हरी रय आ युज्यमाना  
याहि धायुर्न नियुतौ नो अरुड ।

पिषात्यन्धो अभिर्हृष्टो असे  
इन्द्र स्वाहा हरिमा ते मदाय

उपाजिरा पुंरहुताय सती  
हरी रयस्य धुर्गो युनजि ।

द्रवद् यया संधृतं विश्वतश्चित्  
उपेमं युक्ता वहात इन्द्रम्

उपो नयस्व वृषणा तपुष्पा  
उतेमव त्वं वृषम स्वधापः ।

प्रसेतामभ्या वि मुचेह शोणा  
दिचेदिवे सहशीरादि घानाः

ग्रहाणा ते ब्रह्मयुजां युनजि  
हरी सखाया सघमाद आश ।

स्थिरं रयं सुखमिन्द्राधितिष्ठन्  
प्रजानन् विद्रो उप याहि सोमम्

मा ते हरी वृषणा क्षीतपृष्ठा  
नि रीरमन् यजमानासो अन्ये ।

अत्यायाहि शम्बतो वयं ते  
अरं सुतेभिः वृणवाम सोमैः

तवायं सोमस्त्वमेह्यर्थाद्  
शम्भुत्तमं सुमनो अस्य पादि ।

असिन् यस्मै वदिष्या निपया  
दधिष्येम जठर इन्दुमिन्द्र

स्त्रीणं तैर्बहिः सुत इन्द्र सोमः  
 कृता धाना अर्चये ते हरिभ्याम् ।  
 तदौकसे पुरुशाकाय वृणो  
 मृत्त्वते तुभ्यं यता हविर्वापि  
 इमं नरः पर्वतास्तुभ्यमापः  
 समिन्द्र गोमिर्मधुमन्तमक्रन् ।  
 तस्यागत्या सुमनो ऋष्य पाहि  
 प्रजानन् विद्वान् पृथ्याः अनु स्वाः  
 यो आर्मजो मृत्त इन्द्र सोमे  
 ये त्वामर्चधर्ममयन् गुणस्ते ।  
 तेमिरेतं सजोषा वावशानोः  
 अग्नेः पिब जिह्वा सोममिन्द्र  
 इन्द्र पिब स्वधया चित् सुतस्य  
 अग्नेर्गो पाहि जिह्वा यजत्र ।  
 भव्ययोर्वा प्रयतं शक्र हस्तात्  
 होतुर्या यश्च हविषो जुषस्व  
 शूनं हवेम मघवानिमिन्द्र  
 असिन् अरे नृतमं वाजसातो ।  
 दृष्टान्तमुप्रमृतयै समस्तु  
 प्रग्नं पुत्राणि सजित धनानाम्  
 ॥ ११० ॥ ( अ० ३।३।१-३१ ) [ १० ओ० आह्निरः । ]  
 इमाम् पु प्रभृति स्तान्यै ध्याः  
 शर्म्यच्छभ्यदुतिमिर्वायमानः ।  
 सृनेसुते वापृधे वषंतेभिः  
 यः बर्मेभिर्मदद्भिः सुभ्रुनो भूत्  
 इन्द्राण सोमोः प्रदिपो विद्वाना  
 अमुषेमिर्गुणेषां पिदायाः ।  
 प्रयम्यमानान् प्रति पू वृमाय  
 इन्द्र पिब पृषधृतस्य वृष्णः  
 पिपा वषंसु तपं पा सृताम्  
 इन्द्र सोमाताः प्रथमा उतमे ।

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १० ॥

॥ ११ ॥

॥ १ ॥

॥ २ ॥

यथापिबः पूर्व्या इन्द्र सोमा  
 एवा पाहि पन्थो अद्या नवीयान्  
 महो अमत्रो वृजनै विरण्शीः  
 उग्रं शवः पत्यते धृष्णवोर्जः ।  
 नाह विव्याच पृथिवी चनैनं  
 यत् सोमालो हयैश्वममन्दन्  
 महो उग्रो वावृधे धीर्याय  
 समाचके वृषमः काव्येन ।  
 इन्द्रो भर्गो वाजदा अस्य गावः  
 प्र जायन्ते दक्षिणा अस्य पूर्वीः  
 प्र यत् सिन्धवः प्रसवं यथायन्  
 आपः समुद्रं रथ्येव जग्मुः ।  
 अतश्चिदिन्द्रः सदैसो वरीयान्  
 यवी सोमः पुनति वृग्धो अंशुः  
 समुद्रेण सिन्धवो यादमानाः ।  
 इन्द्राय सोमं सुपुत भरेन्तः ।  
 अंशुं वृहन्ति हस्तिनो मरिचैः  
 मर्धः पुनन्ति धारया पवित्रैः  
 इदा इय कृक्षयः सोमधानाः  
 समी विव्याच सवना पुनर्णि ।  
 अग्रा यादिन्द्रः प्रथमा व्याश  
 वृषं जघ्न्यो अवृणीत सोमम्  
 आ तू मर माकिरेतत् परि छाद्  
 पिपा दि त्वा यमुपति यस्नम् ।  
 इन्द्र यत् ते मादिन दग्म  
 अस्त्यसम्य तदयंभ्य प्र यन्धि  
 अस्मे प्र यन्धि मघयद्रुजीपिन्  
 इन्द्र रायो विभ्यपोरस्य भूतः ।  
 अस्मे शत शरदो जीरमे घा  
 अस्मे धीराच्छभ्येन इन्द्र दिमिन्

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १० ॥

(१३१०)

शुनं हुवेम मघधानमिन्द्रं  
अस्मिन् भरे नृतमं धाजसातौ ।  
शुण्वन्तमुग्रमृतये समस्तु  
घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥ ११ ॥  
॥ १११ ॥ ( क्र० ३।३७१-११ ) गायत्री, ११ अणुष्टुप ।  
मार्घहत्याय शर्वसे पृतनापाह्याय च ।  
इन्द्र त्वा वर्तयामसि ॥ १ ॥  
अर्वाचीनं सु ते मन उत चक्षुः शतक्रतो ।  
इन्द्रं कृण्वन्तु वाघतः ॥ २ ॥  
नामानि ते शतक्रतो विश्वाभिर्गीर्भिरीमहे ।  
इन्द्राभिमातिपाहो ॥ ३ ॥  
पुरुपुतस्य धार्मभिः ॥ शतेन महयामसि ।  
इन्द्रस्य चरणीधृतः ॥ ४ ॥  
इन्द्रं वृत्राय हन्तवे ॥ पुरुहुतमुपं ह्रुवे ।  
भरैषु धाजसातये ॥ ५ ॥  
धाजेषु सासहिर्भेषु त्वार्मीमहे शतक्रतो ।  
इन्द्रं वृत्राय हन्तवे ॥ ६ ॥  
द्युक्षेपं पृतनाज्ये पृस्तुतुर्धु अर्वासु च ।  
इन्द्र साध्याभिमातिपु ॥ ७ ॥  
शुष्मिन्तमं न ऊतये द्युक्षिर्न पाहि जागृयिम् ।  
इन्द्र सोमं शतक्रतो ॥ ८ ॥  
इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चसु ।  
इन्द्र तानि तु आ वृणे ॥ ९ ॥  
अगस्मिन्द्र ध्रुवो वृहद् द्युक्षं दधिपु दुष्टरम् ।  
उत् ते शुष्मं तिरामसि ॥ ११ ॥  
अर्वावर्तो न आ गु-हायो शक्र परावतः ।  
उ लोमो यस्ते अद्रिच इन्द्रेह तत आ गहि ॥ ११ ॥  
॥ १६० ॥ ( क्र० ३।३८१-१० )  
[ प्रकाशमिर्धमिन्ध, धञ्जपतिर्वाच्यो वा, तापुमावपि वा  
गायत्री विश्वामिशो वा । ] त्रिष्टुप ।  
अभि तप्रेय दीधया मनीषां  
अथो न याजी सुधुरो जिहानः ।

अभि प्रियाणि मर्मशत पराणि  
कर्वीरिञ्जामि सुहरो सुमेधाः ॥ १ ॥  
इनोत पृच्छ जनमा कवीनां  
मनोधृतः सुरतस्तक्षत याम् ।  
इमा उ ते प्रण्योः वर्धमाना  
मनोवाता अध नु धर्मीणि गम् ॥ २ ॥  
नि श्रीमिदन्न गुहा दधाना  
उत अनाय रोदसी समञ्जम् ।  
सं मात्राभिर्ममिरे येमूर्वा  
अन्तर्मही समृते धायमे धुः ॥ ३ ॥  
आतिष्ठन्तं परि विश्वे अभूपन्  
धियो वसानश्चरति स्वरोचिः ।  
महत् तद् वृणो असुरस्य नाम  
आ विश्वरूपो अमृतानि तस्यौ ॥ ४ ॥  
अस्तु पूर्वं वृषभो ज्यायान्  
इमा अस्य शुद्धयः सन्ति पूर्वाः ।  
दिवो नपाता निदधस्य श्रीभिः  
धन राजाना प्रदिवो दधाय ॥ ५ ॥  
श्रीणि राजाना विदये पुरुणि  
परि विश्वानि भूपयः सदांसि ।  
अपश्यमन् मनसा जगन्वान्  
वृते गन्धर्वा अपि वायुर्केदाम् ॥ ६ ॥  
तदिन्द्रस्य वृषभस्य धेनोः  
आ नामभिर्ममिरे सक्म्यं गोः ।  
अन्यदन्यदसुर्यं वसाना  
नि मायिनो ममिरे रूपमस्मिन्  
तदिन्द्रस्य सवितुर्नर्विमं  
हिरण्यर्षीममति यामातेधेत् ।  
आ सुपुती रोदसी विश्वमिन्वे  
अपीव योपा जनिमानि घवे ॥ ८ ॥

युवं प्रतस्य साधयो महो यद्  
देवी स्वस्तिः परं णः स्यातम् ।

गोपार्जिहस्य तस्युपो विरूपा

विश्वे पश्यन्ति मायिनः कृतानि

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रं

अस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।

द्रुणवन्तमुग्रमृतये समत्सु

म्रन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम्

॥ ११३ ॥ ( ऋ० ३।१९।१-९ )

इन्द्रं मतिर्हृद् आ वृच्यमाना

अच्छा पतिं स्तोमं तथा जिगाति ।

या जागृविर्विदधे शस्यमान

इन्द्र यत् ते जायते विद्धि तस्य

द्विषद्धिदा पुण्यां जायमाना

यि जागृविर्विदधे शस्यमाना ।

भडा यत्राप्यजुना घसाना

मेयमस्मे सनजा पित्रा धीः

यमा चिदत्र यमसूरत

जिह्वाया भग्नं पतदा ह्यस्यात् ।

यर्वि जाता मिथुना संचेते

तमोहना तपुषो वृध पता

नर्विरेणां निन्दिता मर्त्यैः

ये अश्माकं पितरो गोपु योधाः ।

इन्द्रं यथां दंष्टिता माहिनायान्

उद् गोत्राणि मरुते संसर्गयान्

मर्गा ह यत् नागिभिर्नरैर्गवैः

अमिश्रया मर्त्यनिगां धनुमन् ।

मर्त्यं तदिन्द्रो दृशामिर्दशैः

मर्त्यं विपेदु तमैवि मिपयन्तम्

इन्द्रो मधु गंधूतमुष्णिपापां

पण्ड विपेद नृगवृधमो गोः ।

॥ ९ ॥

॥ १० ॥

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

गुहा हितं गुह्यं गुल्हमप्यु

हस्तै दधे दक्षिणे दक्षिणावान्

ज्योतिर्वृणीत तमसो विजानन्

आरे स्याम दुरितादभीकै ।

इमा गिरः सोमपाः सोमवृद्ध

जुषस्वेन्द्र पुरुतमस्य कारोः

ज्योतिर्यथाय रोदसी अनु प्याद्

आरे स्याम दुरितस्य भूरैः ।

भूरि चिद्धि तुजतो मर्यस्य

सुपारासौ वसवो वर्हणावत्

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रं

अस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।

द्रुणवन्तमुग्रमृतये समत्सु

म्रन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम्

॥ ११४ ॥ ( ऋ० ३।४०।१-९ ) गायत्री ।

इन्द्रं त्वा वृषभं ययं सुतो सोमं हवामहे ।

स पाहि मध्वो अग्नयः

इन्द्रं क्रतुविदं सुतं सोमं हर्यं पुरुष्टुत ।

पिबा वृषस्य तादृषिम्

इन्द्रं प्र गो धितायानं यथं विश्वेभिर्देवेभिः ।

तिर स्तवान विश्यते

इन्द्रं सोमाः सुता इमे तव प्र यन्ति सरपते ।

क्षयं चन्द्रास इन्दयः

दधिप्या जुडेरं सुतं सोममिन्द्र परेण्यम् ।

तयं घृहास इन्दयः

गिर्वेणः पाहि नः सुतं मधोर्धाराभिरज्यसे ।

इन्द्रं त्यादातमिद् यशः

अमि घृष्टानि यनिन् इन्द्रं सचन्ते अक्षिता ।

श्रीत्वी सोमस्य यावृधे

यवायतौ न आ गहि पण्यतं पृष्टदन् ।

इमा जुषस्य नो गिरः

( ११०१ )

यदन्तरा परायते—मर्षायते च ह्यसौ ।

इन्द्रेह तत् आ गहि ॥ ९ ॥

॥ ११५ ॥ ( ऋ० ३।४।१-९ )

आ तू न इन्द्र मर्ष्य—ग्युवानः सोमपीतये ।

हरिभ्यां याहाद्वयः ॥ १ ॥

सत्तो होता न श्रुतिवयं—स्तिस्तरे यद्विराजुपक् ।

अयुजन् प्रातरद्वयः ॥ २ ॥

इमा ब्रह्म ब्रह्मवाहः क्रियन्त आ यहिः सीद ।

वीहि शूर पुरोक्काराम् ॥ ३ ॥

राग्वि सवनेषु ण एषु स्तोमेषु पृचहन् ।

उपयेष्विन्द्र गिर्वणः ॥ ४ ॥

मृतयः सोमयामुहं रिहन्ति शर्वसुस्पतिम् ।

इन्द्रं घत्सं न मातरः ॥ ५ ॥

स मन्दस्या ह्यन्धतो राधसे तुन्यां महे ।

न स्तोतारं निदे करः ॥ ६ ॥

ययामिन्द्र त्वाययौ हविर्मन्तो जरामहे ।

उत त्वमस्मयुषसो ॥ ७ ॥

मारे अस्मद् वि मुमुजो हरिप्रियायाङ् यहि ।

इन्द्रं स्वयायो मत्सेह ॥ ८ ॥

अर्षाञ्च त्वा सुषे रये यदतामिन्द्र केशिना ।

घृतस्नू यद्विरासद्वै ॥ ९ ॥

॥ ११६ ॥ ( ऋ० ३।४।१-९ )

उपं नः सुतमा गहि सोममिन्द्र गवांशिरम् ।

हरिभ्यां यस्तै अस्मयुः ॥ १ ॥

तमिन्द्र मवमा गहि यद्विःष्ठां प्रार्वमिः सुतम् ।

कुविन्द्यस्य तुष्पार्यः ॥ २ ॥

इन्द्रमित्या गिरे ममा—ऽच्छांगुरिषिता इतः ।

आपूते सोमपीतये ॥ ३ ॥

इन्द्रं सोमस्य पीतये स्तोमैरिह हवामहे ।

उपयेभिः कृषिनागमत् ॥ ४ ॥

इन्द्र सोमाः सुता इमे तान् दधिष्य शतक्रतो ।

अउरै याजिनोयसो ॥ ५ ॥

विना हि त्वा धनंजयं यजिषु दधुपं कवे ।

अर्षां ते सुव्रतमीमहे ॥ ६ ॥

इमामिन्द्र गवांशिरं यवांशिरं च नः पिय ।

आगत्या वृषभिः सुतम् ॥ ७ ॥

तुभ्येदिन्द्र स्व ओस्ये सोमं चोदामि पीतये ।

एष रान्तु ते हृदि ॥ ८ ॥

त्वां सुतस्य पीतये प्रवामिन्द्र हवामहे ।

कुशिकासौ अवस्यवः ॥ ९ ॥

॥ ११७ ॥ ( ऋ० ३।४।१-८ ) ऋषिः

आ याहायाङ्प वन्धुरेष्ठाः

तवेदनुं प्रदिवः सोमपेयम् ।

प्रिया सखाया वि मुचोर्षं यद्विः

त्वामिमे ह्य्यवाहौ हवन्ते ॥ १ ॥

आ याहि पूर्वायति चर्षणीरौ

अयं आशिष उषं नो हरिभ्याम् ।

इमा हि त्वां मृतयः स्तोमंतष्टा

इन्द्र हवन्ते सुखं जुषाणाः ॥ २ ॥

आ नौ यत् नमोवृषं सुजोषा

इन्द्रं देव हरिभिराहि त्वयम् ।

अहं हि त्वां मतिभिर्जोहवीमि

घृतप्रयाः सधमादे मधूनाम् ॥ ३ ॥

आ च त्वामेता वृषणा यहातो

हरी सखाया सुधुषं न्वर्जा ।

धानावादिन्द्रः सर्वेन जुषाणाः

सखा सत्युः नृण्युद् यन्दनानि ॥ ४ ॥

कुविन्मा गोपां करसे जनेस्य

कुविद् राजानं मघयप्रजीपिन् ।

कुविन्म अर्षं पविषातै सुतस्य

कुविन्मे यत्सो अमृतस्य दिक्षाः ॥ ५ ॥

आ त्वां यदन्तो हरयो युजाना

अर्षाणिन्द्र सधमादौ यदन्तु ।

प्र ये दिता दिष्य अन्नयानाः

मर्षमृष्टासो वृषमस्य मुराः ॥ ६ ॥

( ११९६ )

इन्द्र पिय वृषधृतस्य वृष्णा  
आ यं तं द्येन उद्गते जभार ।

यस्य मदे च्यावयसि प्र कृष्टीः

यस्य मदे अप गोत्रा वधयै

॥ ७ ॥

शूनं हुवेम मधवानमिन्द्रं

अस्मिन् मरे नृतमं वार्जसातो ।

शृण्वन्तमग्रमुतये समत्सु

ग्रन्तं बुत्राणि संजितं धनानाम्

॥ ८ ॥

॥ ११८ ॥ ( अ० ३।४।१-५ ) बृहती ।

अयं तं अस्तु हयतः सोम आ हरिभिः सुतः ।

जुवाण इन्द्र हरिभिर्न आ गृहि

आ तिष्ठ हरितं रथम्

॥ १ ॥

हयंभुपसमर्चयः सूर्यं हयंभरोचयः ।

विद्वांश्चिकित्वा न हयंभ्य वधसु

इन्द्र विष्वा अग्नि श्रियः

॥ २ ॥

धामिन्द्रो हरिधायसं पृथिवीं हरिर्वपसम् ।

अघारयद्धरितोर्मिर्न भोजनं ययोरन्तर्हरिश्चरत् ३

जमानो हरितो घृषा विष्वा माति रोचनम् ।

हयंभ्यो हरितं धत्त आयुध—मा धर्जं याद्वोहरिम् ४

इन्द्रो हयंभुमर्जुनं वधं शुकैरभीवृतम् ।

अपावृणोद्धरिभिर्पट्रिभिः सुतम्

उद् गा हरिभिराजत

॥ ५ ॥

॥ ११९ ॥ ( अ० ३।४।१-५ )

आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभि—र्याहि मयूररोमभिः ।

मा त्या के चित्रि यमन्वि न पादिनो

अति धन्वेत् तां र्हि

॥ १ ॥

धृप्रगादो घलेगजः पुरां दमो अपामजः ।

स्याता रथस्य हयोर्मिस्युर

इन्द्रो दृष्टा चिदागज

॥ २ ॥

गम्भीरो उदधीरिष्य मर्तुं पुष्यसि गा इव ।

॥ सुगोपा ययमं धेनवो यथा

दृदं वृत्त्या रपाशत

॥ ३ ॥

आ नस्तुजं रयिं भुरां—उशं न प्रतिजानते ।

वृक्षं पक्वं फलमर्ध्वं धनुही—न्द्रं संपारणं वसु ॥४॥

स्वयुरिन्द्र स्वराजसि सार्दिष्टिः स्वयंशस्तरः ।

स वावृधान ओर्जसा पुरुष्टुत

मवां नः सुधर्वस्तमः

॥ ५ ॥

॥ १२० ॥ ( अ० ३।४।१-५ ) त्रिष्टुप् ।

युध्मस्य ते वृषमस्य स्वराजं

उग्रस्य यूतः स्यार्विरस्य वृष्यैः ।

अर्जयतो वृजिर्गो धीर्याङ्गि

इन्द्रं धृतस्य महतो महानि

॥ १ ॥

महौं अंसि महिष वृष्यैभिः

धनुस्पृष्टं संहमानो अन्यान् ।

एको विश्वस्य भुवनस्य राजा

स योधया च क्षयया च जनान्

॥ २ ॥

प्र मात्रामी रिरिचे रोचमानः

प्र देवेभिर्विद्वतो अमरीतः ।

प्र मन्मनो निव इन्द्रः पृथिव्याः

प्रोरोमहो अन्तर्गोहजीपी

उर्यं गम्भीरं जनुषाम्युग्रं

विद्वद्व्यचसमवतं मतीनाम् ।

इन्द्रं सोमांसः प्रदिवि सुतासः

समुद्रं न स्रवत् आ विशन्ति

यं सोममिन्द्र पृथिवीपाया

गर्भं न माता विमृतस्त्वाया ।

ते तं हिन्वन्ति तमु ते सृजन्ति

अध्वर्यवो वृषम पातुचा उं

॥ ५ ॥

॥ १२१ ॥ ( अ० ३।४।१-५ )

मृत्वा इन्द्र वृषमो रणांय

पिना सोममनुष्यं मदाय ।

आ सिञ्चस्व जज्रे मध्वं ऊर्मि

त्वं राजासि प्रदिवः सुतानाम्

॥ १ ॥

( १४१४ )

सुजोषा इन्द्र सगणो मरुद्भिः-

सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान् ।

जहि शत्रुरपृ मृधो नुदस्व

अथामयं कृणुहि विश्वतो नः

उत ऋतुभिर्ऋतुपाः पाहि सोमं

इन्द्र देवेभिः सखिभिः सुतं नः ।

यो वामजो मरुतो ये त्या

अन्नहन् धुनमर्धुस्तुभ्यमोजः

ये त्वाहि हस्ये मयध्वध्वध्वन्

ये शान्यरे हरिवो ये गर्विष्ठौ ।

ये त्वा नूनमनुमर्दन्ति विप्राः

पियेन्द्र सोमं सगणो मरुद्भिः

मरुत्वंतं धूपमं वायुधानं

अकवारि दिव्यं शासमिन्द्रम् ।

विश्वासाहमर्से नूतनायु

उग्रं संहोदामिह ते हुवेम

॥ २१ ॥ ( ऋ० ३।४।१-५ )

सुधो ह जातो वृषभः कुनीनः

प्रमर्तुमाधुदन्धसः सुतस्य ।

साधोः पियं प्रतिकामं यथा ते

रसाशिरः प्रयमं सोम्यस्य

यज्जार्थास्तद्वरस्य कामे

अंशोः पीयूषमपिबो गिरिष्ठाम् ।

त तै माता परि योषा जनिनी

महः पितुर्दम आसिञ्जद्रे

उपस्याय मातरमथमैह

तिग्ममपश्यन्मि सोममूर्धः ।

प्रयावयन्नचरद् गृत्तो अन्यान्

महानि चक्रो पुरुषप्रतीकः

उग्रस्तुण्णालमिभृत्योऽज

यथावशं तन्वं चक्रः पृषः ।

त्वष्टारमिन्द्रो जुनुषामिभूय

आमुष्या सोममपिबन्मूर्धु

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्र

अस्मिन् भरे नृतमं वार्जसातौ ।

शृण्वन्तमुग्रमृतये समत्सु

घ्नन्तं वृत्राणि संजितं घनानाम्

॥ २२ ॥ ( ऋ० ३।४।१७-५ )

शंसा महामिन्द्र यस्मिन् विश्वा

आ हृष्टयः सोमपाः काममन्यन् ।

यं सुकृत्तुं धियर्णे विभ्वतुष्टं

घ्नन् वृत्राणां जनयन्त देवाः

यं नु नाकिः पृतनासु स्वराजै

द्विता तरति नृतमं हरिष्ठाम् ।

इनतमः सत्त्वमियो ह शूषैः

पृथुञ्जया अभिनादापुर्वस्योः

सदावा पृत्सु तरुणिर्नवी

व्यानशी रोर्वसी मेहर्नावान् ।

भगो न कारे हव्यो मतीनां

पितेव चारुः सुहयो वयोधाः

धृता दिवो रजसस्पृष्ट ऊर्ध्वो

रथो न वायुर्वलुभिर्निपुत्यान् ।

क्षपां वस्ता जनिता सूर्यस्य

विमंका भागं धियर्णेव वार्जम्

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्र

अस्मिन् भरे नृतमं वार्जसातौ ।

शृण्वन्तमुग्रमृतये समत्सु

घ्नन्तं वृत्राणि संजितं घनानाम्

॥ २३ ॥ ( ऋ० ३।५।१-५ )

इन्द्रः स्वाहा पित्रु यस्य सोमं

आगत्या तुष्टो वृषभो मरुत्वांन् ।

ओरुत्यचाः पृणतामेभिरुः

आस्य हविस्तन्वः काममृष्याः

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ १ ॥

आ ते सपर्यु ज्वसे युनग्नि  
ययोरनु प्रदिवः ध्रुष्टिमावः ।  
इह त्वा धेयुर्हरयः सुदिप्र  
पिया त्वस्य सुपुतस्य चारोः  
गोमिमिमिशुं दधिरे सुपारं  
इन्द्रं ज्यैष्ठ्याय धार्यसे गृणानाः ।  
मन्दानः सोमं पयिषो ऋजीयिन्  
समसस्यं पुरुधा गा इपण्य  
इमं कामं मन्दया गोभिरभैवः  
चन्द्रवता राधेसा प्रयवध ।  
स्यर्षवो मतिमिस्तुभ्यं विप्रा  
इन्द्राय वाहः कुशिकासो अरुन्  
शुनं हुवेम मधयानुमिन्द्रं  
अस्मिन् भरे नूतमं वाजसातौ ।  
शृण्वन्तमुप्रमुतेयं समस्तु  
भन्तं वृनाणि संजितं धनानाम्

॥ १६५ ॥ ( ऋ० ३।१।१-१२ )

त्रिष्टुप्, १-३ जगती, १०-१२ गायत्री ।

चरुणीधृतं मधयानमुक्थ्यं  
इन्द्रं गिरौ गृह्णीष्यन्पत ।  
यायुधानं पुरुहूतं सुवृकिमिः  
अमर्त्यं जतमाणं दिवेदिवे  
शतमृतमर्ण्यं शाकिनं नरं  
गिरौ म इन्द्रमुप यन्ति विश्वतः ।  
प्राजगमिं पृमिन्दं तृणिमन्तुरं  
धामसार्चममिगार्चं स्वर्विदम्  
आक्रे यसोर्जिता पनस्यते  
अनेदम् स्तुम इन्द्रो दुवस्यति ।  
त्रिस्थतः सदनं आ हि पिप्रिये  
संश्रासादममिमातिद्वनं स्तुहि  
नृणामुं त्वा नूतमं गीमिर्द्वयः  
अमि प्र धीरमर्चता स्यार्धः ।

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

सं सहसे पुरुमायो जिहीते  
नमो अस्य प्रदिव एकं इदो  
पृथीरस्य निष्पिषो मर्त्येषु  
पुरु वसन्ति पृथिवी विमर्ति ।  
इन्द्राय धाव ओपधीरुतापो  
रयिं रक्षन्ति जीरयो धनानि  
तुभ्यं ब्रह्माणि गिरं इन्द्र तुभ्यं  
सना दधिरे हरियो जुगस्यं ।  
योध्याः पिरयसो नूतनस्य  
सरो वसो अरितुभ्यो ययौ धाः  
इन्द्रं मरुत्व इह पाहि सोमं  
यया शार्याते अपियः सुतस्यं ।  
तव प्रणीती तव शर शर्मन्  
आ विधासन्ति कवयः सुयथाः  
स वावशान इह पाहि सोमं  
मरुद्गिरिन् सखिभिः सुतं नः ।  
जातं यत् त्वा परि वेधा अमूपन्न  
महे भरणं पुरुहूत विश्वे  
अमर्त्यं मरुत आपिरेपो  
अमन्दाधिन्द्रमनु वार्तिधाराः ।  
तेभिः साकं पिबतु वृत्रह्लादः  
सुतं सोमं दातुपः स्ये सुधस्यं  
इदं हान्योर्जसा सुतं राधानां पते ।  
पिना त्वस्य निर्वेणः  
यस्ते अनु स्यधामसत् सुते नि यच्छ तन्वम् ।  
स त्वा ममनु सोम्यम्  
प्र ते अमोत कुह्योः प्रेन्द्र ब्रह्मणा शिरः ।  
प्र याह शर राधसे  
॥ १० ॥  
॥ ११ ॥  
॥ १२ ॥  
॥ १३ ॥  
॥ १४ ॥  
॥ १५ ॥  
॥ १६ ॥  
॥ १७ ॥  
॥ १८ ॥  
॥ १९ ॥  
॥ २० ॥  
॥ २१ ॥  
॥ २२ ॥  
॥ २३ ॥  
॥ २४ ॥  
॥ २५ ॥  
॥ २६ ॥  
॥ २७ ॥  
॥ २८ ॥  
॥ २९ ॥  
॥ ३० ॥  
॥ ३१ ॥  
॥ ३२ ॥  
॥ ३३ ॥  
॥ ३४ ॥  
॥ ३५ ॥  
॥ ३६ ॥  
॥ ३७ ॥  
॥ ३८ ॥  
॥ ३९ ॥  
॥ ४० ॥  
॥ ४१ ॥  
॥ ४२ ॥  
॥ ४३ ॥  
॥ ४४ ॥  
॥ ४५ ॥  
॥ ४६ ॥  
॥ ४७ ॥  
॥ ४८ ॥  
॥ ४९ ॥  
॥ ५० ॥  
॥ ५१ ॥  
॥ ५२ ॥  
॥ ५३ ॥  
॥ ५४ ॥  
॥ ५५ ॥  
॥ ५६ ॥  
॥ ५७ ॥  
॥ ५८ ॥  
॥ ५९ ॥  
॥ ६० ॥  
॥ ६१ ॥  
॥ ६२ ॥  
॥ ६३ ॥  
॥ ६४ ॥  
॥ ६५ ॥  
॥ ६६ ॥  
॥ ६७ ॥  
॥ ६८ ॥  
॥ ६९ ॥  
॥ ७० ॥  
॥ ७१ ॥  
॥ ७२ ॥  
॥ ७३ ॥  
॥ ७४ ॥  
॥ ७५ ॥  
॥ ७६ ॥  
॥ ७७ ॥  
॥ ७८ ॥  
॥ ७९ ॥  
॥ ८० ॥  
॥ ८१ ॥  
॥ ८२ ॥  
॥ ८३ ॥  
॥ ८४ ॥  
॥ ८५ ॥  
॥ ८६ ॥  
॥ ८७ ॥  
॥ ८८ ॥  
॥ ८९ ॥  
॥ ९० ॥  
॥ ९१ ॥  
॥ ९२ ॥  
॥ ९३ ॥  
॥ ९४ ॥  
॥ ९५ ॥  
॥ ९६ ॥  
॥ ९७ ॥  
॥ ९८ ॥  
॥ ९९ ॥  
॥ १०० ॥

॥ १०६ ॥ ( ऋ० ३।१०।१-८ )

त्रिष्टुप्, १-४ गायत्री, ६ जगती ।

धानावन्तं करुमिणं अपुपवन्तमुक्थियनम् ।

इन्द्रं प्रातर्जुगस्व नः



पुरोळाशं पचस्य जुपस्वेन्द्रा गुरस्व च ।

तुभ्यं हव्यानि सिद्धते ॥ २ ॥

पुरोळाशं च नो घसो ज्ञोपयासे गिरश्च नः ।

वधूयुरिव योषणाम् ॥ ३ ॥

पुरोळाशं सनश्चत प्रातःसाधे जुपस्व नः ।

इन्द्रं कतुहिं तं बृहन् ॥ ४ ॥

मार्घ्यं दिनस्य सर्वनस्य धानाः

पुरोळाशमिन्द्रं कृष्वेह चारुम् ।

प्र यत् स्तोता जरिता तृण्यैषो

धृपायमाणं उषं गीमिरीद्वे ॥ ५ ॥

तृतीयं धानाः सर्वेने पुरुषुत

पुरोळाशमाहुतं मामहस्व नः ।

श्रुमुमन्तं धाजवन्तं त्वा कवे

प्रयस्वन्तु उषं शिक्षेम धीतिभिः ॥ ६ ॥

पुष्यवते ते चरुमा करुमं

हरिचते हव्यं ध्यानाः ।

अपुषमग्निं सगणो मरुद्भिः

सोमं पिब वृन्हा शूर बिद्वान् ॥ ७ ॥

प्रति धाना मरुत तूर्यमसौ

पुरोळाशं धीरतमाय नृणाम् ।

त्रिवेदिवे स्रहशीरिन्द्रं तुभ्यं

वर्धन्तु त्वा सोमपेयाय धृष्णो ॥ ८ ॥

॥ १०७ ॥ ( अ० ३।५३।०-१३ )

त्रिषु, १० अगती, १० अनुष्टुप्, १३ गायत्री ।

तिष्ठा सु कै मघवन् मा परा गाः

सोमस्य जु त्वा सुपुतस्य यक्षि ।

पितुर्न पुत्रः सिचुमा रभे त

इन्द्रं स्वादिष्टया गिरा शचीवः ॥ ९ ॥

शंसावाप्ययौ प्रति मे गृणीहि

इन्द्राय वाहः रुणवाव जुष्टम् ।

एदं यद्विर्यजमानस्य सौद

अथा च नूहुष्यमिन्द्राय शस्तम् ॥ १० ॥

ज्ञायदस्तं मघवन्सेदु योनिः

तदित् त्वा युक्ता हरयो बहन्तु ।

यदा कदा च सुनवां सोमं

अग्निर्वा दूतो घन्वात्यच्छ ॥ ४ ॥

परां याहि मघवन्ना च याहि

इन्द्रं भ्रातरुमययां ते अर्थम् ।

यज्ञा रथस्य बृहतो निधानं

विमोचनं वाजिनो रासंभस्य ॥ ५ ॥

अपाः सोममस्तमिन्द्र प्र याहि

कल्याणीर्जाया सुरणं गृहे तं ।

यज्ञा रथस्य बृहतो निधानं

विमोचनं वाजिनो दक्षिणावत् ॥ ६ ॥

इमे भोजा अक्षिरसो विरूपा

दिवस्पुत्रासो असुरस्य धीराः ।

विश्वामित्राय वदतो मयानि

सहस्रसाधे प्र तिरन्तु आयुः ॥ ७ ॥

रूपं रूपं मघवा योमवीति

मायाः कृष्वानस्तन्यं परे स्वाम् ।

त्रिर्यद् दिवः परे मुहुर्तमाणात्

स्वर्मन्त्रैरर्जुतुपा क्रुताया ॥ ८ ॥

मुहो अर्पिदैवजा देवजुतो

अस्तम्यात् सिन्धुमर्ण्यं नृचक्षाः ।

विश्वामित्रो यदवहत् सुदासं

अग्निं यायत कुशिकेमिरिन्द्रः ॥ ९ ॥

हंसा इव रुण्यं श्लोकमद्रिभिः

मदन्तो गीमिरिधरे सुते सचा ।

देवेभिर्विभ्रा ऋषयो नृचक्षसो

वि पिबध्वं कुशिका सोम्यं मधु ॥ १० ॥

उप प्रेतं कुशिकाश्चेतयध्वं

अथ राधे प्र मुञ्जता सुदासः ।

राजा वृत्रं जङ्घनत् प्रागपागुदम्

अथा यजाते यत् आ पृथिव्याः ॥ ११ ॥

( १४६३ )

म इमे रोदसी उभे अहमिन्द्रमतुण्वम् ।  
 विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेद भारतु जर्नम् ॥१२॥  
 विश्वामित्रा अरासतु ब्रह्मेन्द्राय वृज्जिणे ।  
 करदिने सुरार्धस ॥१३॥  
 किं ते वृण्वन्ति कीकटेपु गावो  
 नाशिर दुहे न तपन्ति धर्मम् ।  
 आ नो भू प्रमगन्दस्य वेदो  
 नचाशाख मधवन् रन्धया न ॥१४॥  
 ॥१२८॥ ( २० ४।१६।१-११ )  
 वामना गौतम । विष्णुप ।  
 आ सत्यो यातु मधवां ऋजोपी  
 द्रवन्त्वस्य हरय उपे न ।  
 तस्मा इदमर्थं सुपुमा सुदक्षं  
 इहामिपित्व करते वृणान  
 अवं स्य दुरार्धवो नान्ते  
 अस्मिन् नो अद्य सर्वने मन्दभ्यै ।  
 शसात्युपयमुशनैव वेधा  
 चिकित्तेपे असुरीय मग्म ॥१५॥  
 क्विन् निण्य विप्रधानि साधुन्  
 पूया यत् सेकं विपिपानो अर्चात् ।  
 द्विय इत्या जीजनत् सप्त कारुन्  
 अहो चिचमनुयुना गुणन्तं ॥१६॥  
 स्वयं वेदं सुदशीकम्क  
 महि ज्योतीं हरसुर्यं वस्तो ।  
 अग्न्या तमांसि दुर्धिता विचक्षे  
 नृभ्यश्चकार नृतमो अभिद्यौ ॥१७॥  
 पुनश्च इन्द्रो अमितमृजीपी  
 उभे आ पौरो रोदसी महित्वा ।  
 अर्थादधम्य महिमा वि मेचि  
 अभि यो विश्वा भुयना धूम्य  
 विभानि श्रुयो नयोणि विद्वान्  
 अपो रित्रे सपिभिर्निर्वामै ।

अश्मानं चिद् ये विभिर्दुर्वचोभि  
 धेज गोर्मन्तमुशिशो धि वंशु ॥१८॥  
 अपो वृथ वज्रिवांस परादन्  
 प्रावत् ते वज्रं पृथिवी सर्वता ।  
 प्राणोसि समदियाण्येनो  
 पतिर्मवन्धवसा शूर धृष्णो ॥१९॥  
 अपो यदद्रिं पुरहत् वदं  
 आविर्भूवत् सुरमां पुष्यं ते ।  
 स नो नेता वाजमा दपि भूरि  
 गोना रजनङ्गिरोभिर्गृणान ॥२०॥  
 अच्छां कविं नृमणो मा अभिणे  
 स्वर्पाता मधवनाधमानम् ।  
 ऊतिमिस्तमिपणो वृज्जितौ  
 नि मायावानब्रह्मा दस्युरतं ॥२१॥  
 आ दस्युग्रा मनसा याह्यस्त  
 भुवत् ते कुत्से सुरये निकाम ।  
 स्वे योतौ नि पदत् सरूपा  
 वि वां चिकित्सदतुचिज्जु नारी ॥२२॥  
 यासि कुत्सेन सुरथमवस्य  
 तोदो वार्तस्य हयोरीशान ।  
 ऋजा वाज न गथ्य युयूपन्  
 कवियेददन् परायं भूयात् ॥२३॥  
 कुत्साय शृण्णामशुप नि बर्ही  
 प्रपित्व अहं कुर्यं सहस्रा ।  
 सद्यो दस्युन् प्र मृण कुत्सेन  
 प्र सूरदक्षं वृहतादभीके ॥२४॥  
 त्व पिमु मृगं शशुवात्सं  
 ऋजिभ्येन वेदयिनाय रन्धीः ।  
 पञ्चाशत् वृष्णा नि वंशः सहस्र  
 अत्क न पुरो जरिमा वि र्दं ॥२५॥

सूर उपाके तन्वं । दधानो  
 वि यत् ते चेत्यमृतस्य वर्षैः ।  
 मगो न हस्ती तविषीमुषाणः  
 सिद्धो न भीम आयुधानि विभ्रत्  
 इन्द्रं कामा वसुयन्तो अगन्  
 स्वर्मीलहे न सर्वने चकानाः ।  
 ध्रुवस्यर्षः शशमानासं उक्थैः  
 ओको न रण्या सुदर्शाय पुष्टिः  
 तमिद् व इन्द्रं सहर्षं हुवेम  
 यस्तां चकार नयो पुरुषि ।  
 यो मार्वते जरिषे गर्भ्यं चिन्  
 मधू वाजं भरति स्पार्हर्वाघाः  
 तिग्मा यदन्तराशिः पताति  
 कसिञ्चिच्छूर मुहुके जनानाम् ।  
 घोरा यदयं समृतिर्मवाति  
 अथ सा नस्तन्वो बोधि गोपाः  
 भुवोऽविता यामदैवस्य धीनां  
 भुवः सखायको वाजसातौ ।  
 त्वामनु प्रमतिमा जगन्म  
 उरशसौ जरिषे विश्वेभ्यः स्याः  
 पमिर्नमिरिन्द्र त्वायमिष्टा  
 मघधन्निर्मघयन् विश्वं आजौ ।  
 दायो न दुस्तरमि सन्तो अयः  
 क्षपो मदेम श्रुदश्च पूर्वाः  
 पवेदिन्द्राय वृषमाय वृष्णे  
 ब्रह्माकर्म भृगवो न रथम् ।  
 नू चिद् यथा नः सत्त्वा वियोपत्  
 असंघ उग्रोऽविता रतनुपाः  
 नू पुत इन्द्र नू गृणान  
 'हयं जरिषे नद्योऽनु न पीयेः ।

॥ १४ ॥

॥ १५ ॥

॥ १६ ॥

॥ १७ ॥

॥ १८ ॥

॥ १९ ॥

॥ २० ॥

अकारि ते हरिवो ब्रह्म नख्यं  
 धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥ २१ ॥  
 ॥ १२१ ॥ ( ऋ० ४१७१-२१ )  
 मिष्टुः, १५ एकशदा विराट् ।  
 त्वं महो इन्द्र तुभ्यं हृ क्षा  
 अजुं क्षत्रं मेहना मन्यत द्यौः ।  
 त्वं वृषं शर्वसा जघन्वान्  
 सृजः सिन्धुराहिना जग्रस्रानान् ॥ २ ॥  
 तव त्विपो जनिमन् रेजत द्यौ  
 रेजद् भूमिर्मियसा स्वस्य मन्योः ।  
 ऋचायन्तं सुभ्यः पर्वतासु  
 आर्दन् घन्वानि सरयन्त आपः ॥ २ ॥  
 मिनद् गिरि शर्वसा वज्रमिष्णन्  
 आविष्कृण्वानः सहसान ओजः ।  
 यधीद् वृषं वज्रेण मन्दसानः  
 सन्नापो जर्वसा हतवृष्णीः ॥ ३ ॥  
 सुवीरस्ते जनिता मन्यत द्यौः  
 इन्द्रस्य कर्ता स्वर्पस्तमो भूत् ।  
 य ई जजान स्वयं सुवज्रं  
 अनपच्युतं सदैसो न भूम ॥ ४ ॥  
 य एक इच्छ्याधर्यति प्र भूमा  
 राजा रुष्टीनां पुंरुहुत इन्द्रः ।  
 सत्यमेनमनु विश्वं मदन्ति  
 राति देवस्य गृणतो मघोनः ॥ ५ ॥  
 सत्रा सोमा अमवन्नस्य विश्वं  
 सत्रा मत्रासो बृहतो मर्दिष्टाः ।  
 सत्रामघो वसुपतिर्वसुनां  
 द्यौ विश्वा अधिया इन्द्र रुष्टीः ॥ ६ ॥  
 त्वमथ प्रथमं जायमानो  
 अमे विश्वा अधिया इन्द्र रुष्टीः ।  
 त्वं प्रति प्रवत आशर्यान्  
 अहिं वज्रेण मघवन् वि वृक्षः ॥ ७ ॥

सनाहणं दार्ष्ट्यं तुष्टमिन्द्रं  
महामारं वृषभं सुवर्जम् ।  
हन्ता यो वृषं सन्तोत वाजं  
दाता मवानि मघवा सुराधोः  
अयं घृतध्यातयते समीचीः  
य आजियु मघवा दृण्य एकः ।  
अयं वाजं भरति यं सनोति  
अस्य प्रियासः सत्ये स्याम  
अयं दृण्ये अत्र जयंस्तु घ्नन्  
अयमुत प्र हृणुते युधा गाः ।  
यदा सत्यं हृणुते मनुमिन्द्रो  
विभ्वं वृद्धं भयत एजदस्मात्  
समिन्द्रो गा अजयत् सं हिरण्या  
समभिया मघवा यो हं पुष्यः ।  
एभिर्नृभिर्नृत्तमो अस्य शाकैः  
एषो विमुक्ता संमरश्च घव्यः  
क्रियत् स्वदिन्द्रो अर्घ्येति मातुः  
क्रियत् पितुर्जनितुषो जजान् ।  
यो अस्य नृपं मुहुर्करियति  
यातो न जुतः स्तनयद्विरधैः  
अियन्तं त्यमक्षियन्तु हृणोति  
इयति रेणुं मघवा समोहम् ।  
विमज्जनुरधार्निर्मां इव द्यौः  
उत स्तोतारं मघवा घसां धात्  
अयं अग्रमियन्त् सूर्यस्य  
म्येतेन रीरमत् सगुमाणम् ।  
था हृण्य ईं जुष्टाणो जिवन्ति  
त्युचो पुषे रजसो यस्य योनौ  
अतिक्न्यां यजमानो न होतां  
गन्त्यन्त इन्द्रं मग्याय विभ्रां  
अभ्यापन्तो वृषं याजयन्तः ।

जनीयन्तो जनिदामक्षितोति  
वा च्यावयामोऽवृते न कोदाम् ॥ १६ ॥  
घाता नो वोधि दददान अपिः  
अभित्याता मर्दिता सोम्यानाम् । ॥ ८ ॥  
सखा पिता पितृतमः पितृणां  
कर्तुमु लोकमुशते वयोधाः ॥ १७ ॥  
सखीयतामविता योधि सखा  
गृणान इन्द्र स्तुवते ययो धाः । ॥ ९ ॥  
ययं ह्य तं चक्रुः सवाघं  
आभिः शर्माभिर्महयन्त इन्द्र ॥ १८ ॥  
स्तुत इन्द्रो मघवा यजं वृत्रा  
भूरुण्येको अप्रतीनि हन्ति । ॥ १० ॥  
अस्य प्रियो जरिता यस्य शर्मन्  
नर्किर्वेवा वार्यन्ते न मर्ताः ॥ १९ ॥  
एवा न इन्द्रो मघवा विरुण्णी  
करत् सत्वा चर्षणीधृदनुवा । ॥ ११ ॥  
त्वं राजा अनुपौ धेह्यसे  
अधि ध्रुवो माहिर्न यजद्विरे ॥ २० ॥  
नृ पुत इन्द्र नृ गृणान  
इयं जरित्रे नचोऽनृ न पीपेः । ॥ १२ ॥  
अकारि ते हरिषो ब्रह्म नर्व्यं  
धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥ २१ ॥  
॥ १३० ॥ ( अ० ८।१८।१-१३ )  
[ १३ वामदेवो गातम , १ इन्द्र ,  
४ ( उतारार्धस्य ) , ५-७ अदिदि . ] ।  
[ १,४ उतारार्धस्य , ५ १,७ व मदेव ; २,३,६ पूर्वाधेस्य ,  
८-१३ इन्द्रः । ] त्रिष्टुप् ।  
अयं पण्या अनुविक्तः पुराणो  
यतो देवा उदजायन्त विभ्वे । ॥ १४ ॥  
अनक्षिदा जनिषोष्ट प्रवृद्धो  
मा मातरममया पत्तये कः ॥ १५ ॥  
॥ १ ॥  
( १५०९ )

नाहमतो निरया दुर्गहेतव  
तिरश्चता पार्श्वान्निर्गमाणि ।  
बहुनि मे अरुता कर्तव्यं  
युध्यं त्वेन सं त्वेन पृच्छे  
परायती मातरमन्वचष्ट  
न नातुं गान्यन् नू रगमानि ।  
त्वष्टुर्गृहे अपियस् सोममिन्द्रः  
शतधन्व्यं धन्व्योः सुतस्य  
किं स ऋधक् कृणवद् यं सुहस्रं  
मासो जमारं शरदश्च पूर्वीः ।  
नही न्वस्य प्रतिमानमस्ति  
अन्तर्जातेपुत्र ये जनिन्वाः  
अवयमिव मन्यमाना गुहाकः  
इन्द्रं माता वीर्येणा न्यृष्टम् ।  
अथोर्वस्यात् स्वयमत्कं वसान्  
आ रोदसी अपृणाज्जायमानः  
पुता अपेन्त्यललाभयन्तीः  
श्रुतायपीरिष संक्रोशमानाः ।  
पुता वि पृच्छ किमिदं मनन्ति  
कमापो अद्रिं परिधिं कजन्ति  
किमुं त्विदस्य निविदो भनन्त  
इन्द्रस्यावयं विधिपन्त आपः ।  
ममेतान् पुत्रो मंहता वधेन  
वृत्रं जघन्या अरुजद् वि सिन्धून्  
ममश्चन त्वां युवतिः परास  
ममश्चन त्वां कुपयां जगारं ।  
ममश्चिदापः शिशवे ममृडपुः  
ममश्चिदिन्द्रः सहस्रोदतिष्ठत्  
ममश्चन तं मघयन् ध्यंसो  
निविधिष्यां अप हनू जघान ।

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

अथा निर्विद्ध उत्तरो वभुवान्  
शिरो दासस्य सं पिणग्वधेन ॥ ९ ॥

गुधिः संस्रव स्थविरं तवागां  
अनाध्व्यं वृषमं तुष्टमिन्द्रम् ।  
अरीळहं वत्सं चरयाय माता  
स्वयं गातुं तन्व इच्छमानम् ॥ १० ॥

उत माता महिषमन्वधेनत्  
अमी त्वां जहति पुत्र देवाः ।  
अथाग्रवीद् वृत्रमिन्द्रो हनियन्  
सखे विष्णो वितरं वि क्रमस्व ॥ ११ ॥

कर्त्ते मातरं विधवाभचक्रत्  
शयुं कस्त्यार्मजिघांसुर्बन्तम् ।  
कर्त्ते देवो अधि माडीक आसीद्  
यत् प्राक्षिणाः पितरं पानुगृह्य ॥ १२ ॥

अवर्त्या शुनं आग्राणि पेक्षे  
न देवेषु विविदे मर्दितारम् ।  
अपश्यं जायाममहीयमानां  
अथा मे श्येनो मघा जमार ॥ १३ ॥

॥ १३१ ॥ ( ऋ० ४।१९।१-११ )

पुत्रा त्वामिन्द्र यज्ञिभ्रत  
विश्वे देवासः सुहवांस ऊमाः ।  
महामुभे रोदसी बृद्धमन्वं  
निरेकमिद् वृणते वृत्रहर्त्ते ॥ १४ ॥

अवांसृजन्तु जिघ्रयो न देवा  
भुवंः सप्रालिन्द्र सत्ययोनिः ।  
अहन्नहिं परिशयानमणः  
प्र वर्तनीररदो विश्वधेनाः ॥ १५ ॥

अर्तुष्णवन्तं वियतमबुध्यं  
अर्तुष्यमानं सुयुषाणमिन्द्र ।  
सप्त प्रति प्रयत् आशयानं  
अहिं वज्रेण वि रिणा अपरिन् ॥ १६ ॥

अक्षोदयच्छत्रं सा क्षामं युधं  
 वार्धं वातस्तविषीभिरिन्द्रः ।  
 दृष्ट्वा न्यायं द्वादशमानं ओजो  
 अर्वाभिनत् कुरुमः पर्वतानाम्  
 अभि प्र ददुर्जनयो न गर्भे  
 रया इव प्र ययुः साकमद्रयः ।  
 अतर्पयो विसृत्तं उज्जं ऊर्मीन्  
 त्वं वृत्तां वरिणा इन्द्र सिन्धून्  
 त्वं महीमयानं विभ्रघेनां  
 तुर्वीतये वृष्याय क्षरन्तीम् ।  
 अरमयो नमसंजुषीः  
 सुतरुणां अरुणोरिन्द्र सिन्धून्  
 प्राप्नुवौ नमन्वोऽं न वक्तां  
 ध्वन्ना अपिन्वद् युवतीः श्रुतज्ञाः ।  
 घन्यान्वज्रां अपृणक् तृषाणां  
 अघोगिन्द्रः स्तयोऽं दंष्टुपत्नीः  
 पूर्वोरुपसः शरदश्च गुतां  
 पुत्रं जघन्यां अंसजुद् वि सिन्धून् ।  
 परिष्ठिता अवृणद् वदधानाः  
 मीपा इन्द्रः अर्विनवे पृथिव्या  
 पुत्रीभिः पुत्रमपृषौ अदानं  
 निरेक्षानादरिषु आ जमयं ।  
 ध्युग्धो अंष्यदहिमाददानो  
 निर्भुदग्गच्छिउत् समरन्त् पर्वे  
 प्र ते पूर्वोणि करणानि विश्र  
 अरिषां आद विदुषं वरामि ।  
 यमोयया वृष्यानां म्यगुतां  
 धर्माणि राजन् नपांविरेषीः  
 न पुन इन्द्र न गृणान  
 इषं अरिषे नपोऽं न पीषिः ।

अकारि ते हरिवो द्रव्यं नय्यं  
 धिया स्याम रय्यः सदासाः ॥ ११ ॥  
 ॥ १३० ॥ ( ऋ० ४।२०।१-११ )  
 ॥ ४ ॥ आ न इन्द्रो दुरादा न आसाद्  
 अमिष्टिदर्वसे यासदुग्रः ।  
 ओजिष्टेभिर्नृपतिर्वज्रवाहुः  
 संगे समत्सु तुर्वणिः पृतन्यून ॥ १ ॥  
 ॥ ५ ॥ आ न इन्द्रो हरिर्भिर्यात्वच्छा  
 अर्वाचीनोऽवसे राधसे व ।  
 तिष्ठति वज्री मघवां विरप्ति  
 इहं यष्टमनु नो वार्जसातौ ॥ २ ॥  
 ॥ ६ ॥ इमं युधं त्वमस्माकमिन्द्र  
 पुरो वधत् सनिष्यसि कर्तुं नः ।  
 श्वघ्नीच वञ्चिन्त्सनये धनानां  
 त्वया वयमये आर्जि जयेम ॥ ३ ॥  
 ॥ ७ ॥ उशधु पु णः सुमना उपके  
 सोमस्य तु सुपुतस्य स्वधावः ।  
 पा इन्द्र प्रतिभृतस्यः मध्वः  
 समर्घसा ममदः पृष्ठेयैव ॥ ४ ॥  
 ॥ ८ ॥ वि यो ररुश ऋषिभिर्नैवेभिः  
 वृक्षो न पृक्ः सृण्यो न जेता ।  
 मयौ न योषामभि मन्यमानो  
 अच्छा विवन्मि पुरुदुतमिन्द्रम् ॥ ५ ॥  
 ॥ ९ ॥ गिरिर्न यः स्वतर्वां ऋष्य इन्द्रः  
 सनादेव सहसे जात उग्रः ।  
 वार्दता वज्रं स्थर्विरं न भीम  
 उद्रेव कोशं वधुता न्यृष्टम् ॥ ६ ॥  
 ॥ १० ॥ न यस्य यतां अनुषा न्वस्ति  
 न राधेम आमरीता मघस्य ।  
 उद्वावृषाणस्त्रिषीय उग्र  
 असम्य ददि पुरहृत रायः ॥ ७ ॥

इक्षे रायः क्षयस्य चर्षणीनां  
उत म्रजमपवर्तासि गोनाम् ।  
शिक्षानरः समिथेषु प्रहावान्  
वस्वो राशिमभिनेतासि भूरिम्  
कया तच्छृण्वे शच्या शचिष्ठो  
यया कृणोति मुहु का चिद्व्यः ।  
पुरु दाशुपे चिचयिष्ठो अंहो  
अथा दधाति द्रविणं जरित्रे  
मा नो मूर्ध्ना भरा इदि तन्नः  
प्र दाशुपे दातवे भूरि यत् ते ।  
नव्ये देष्णे शस्ते अस्मिन् त उन्धे  
प्र प्रवाम ध्यमिन्द्र स्तुवन्तः  
नू धुत इन्द्र नू गृणान्  
इपै जरित्रे नद्योऽ न पीपेः ।  
अकारि ते हरियो ब्रह्म नव्यं  
धिया स्याम रव्यः सदासाः  
॥ १३३ ॥ ( अ० ४।११।१-११ )  
आ यात्विन्द्रोऽवस उर्ष न  
इह स्तुतः सध्रमादस्तु शूरः ।  
शाधृधानस्तविपीर्यस्य पूर्वाः  
धौनं ध्रुवमभिभूति पुण्यात्  
तस्येदिह त्वय्य वृण्वानि  
तुविधुमस्य तुविराधसो नृन् ।  
यस्य कर्तुर्विद्वयोऽ न सप्राद्  
साहान् तरत्रो अम्यस्ति कृष्टीः  
आ यात्विन्द्रो दिव आ पृथिव्या  
मह्य संमुद्रादुत वा पुरीपात् ।  
स्वर्णरादवसे नो मक्त्यान्  
परावतो वा सदर्नाहृतस्य  
स्पर्शस्य रायो बृहतो य ईशे  
तमु प्रवाम विदयेध्विन्द्रम् ।

यो वायुना जयति गोमतीपु  
प्र धृण्वया नयति वस्यो अच्छं ॥ ४ ॥  
उप यो नमो नर्मसि स्तमायन्  
इर्यति वाचं जनयन् यजध्वै ।  
॥ ८ ॥  
ऋजुसानः पुरवार उन्धैः  
एन्द्रं कृण्वीत सदर्नेषु होता ॥ ५ ॥  
धिपा यदे धिपण्यन्तः सरण्यान्  
सदर्न्तो अद्रिमौशजस्य गोहे ।  
आ दुरोर्पाः पास्त्यस्य होता  
यो नो महात्मसर्वरणेषु वक्तिः ॥ ६ ॥  
सत्रा यदी भार्वरस्य वृष्णः  
सिर्पक्ति शुभः स्तुवते मर्तय ।  
गुहा यदीमौशजस्य गोहे  
प्र यद् धिये प्रायसे मर्तय ॥ ७ ॥  
वि यद् वरीसि पर्वतस्य ध्रुवे  
पर्योमिज्जिन्वे अपां जयसि ।  
विदद् गौरस्य गव्यस्य गोहे  
यदी वाजाय सुध्योऽ बहन्ति ॥ ८ ॥  
अत्रा ते हस्ता सुकृतोत पाणी  
प्रयन्तारां स्तुवते राव्य इन्द्र ।  
॥ १ ॥  
का ते निर्यसिः किमु नो ममस्ति  
किं नोदुदु हर्षसे दातवा उ ॥ ९ ॥  
एवा वस्य इन्द्रः सत्यः सप्राद्  
हन्ता वृत्रं वरिवः पुरवै कः ।  
॥ २ ॥  
पुरेष्टुत त्वया नः शग्धि रायो  
मंशीय तेऽवसो दैव्यस्य  
॥ १० ॥  
नू धुत इन्द्र नू गृणान्  
इपै जरित्रे नद्योऽ न पीपेः ।  
॥ ३ ॥  
अकारि ते हरियो ब्रह्म नव्यं  
धिया स्याम रव्यः सदासाः ॥ ११ ॥

॥ १३४ ॥ (अ० ४।१०।१-११)

यप्र इन्द्रो जुजुषे यच्च वष्टि  
 तन्नो महान् करति शुष्मया चित् ।  
 अह्य स्तोमं मयवा सोममुत्था  
 यो अस्मान् शर्वसा विश्वेदेति  
 वृषा वृषन्धि वतुर्धिमस्यन्  
 उग्रो बाहुभ्यां नृत्तमः शर्वावान् ।  
 ध्रिये परेष्णीमुपमान् ऊर्णा  
 यस्याः परीणि सत्पराय विज्ये  
 यो देवो देवतमो जायमानो  
 महो वार्जेभिर्महद्विष्ट दुर्मैः  
 दर्धानो यज्ञं बाह्वोरुशन्तं  
 घाममेन रजयत् प्र भूमं  
 रिभ्या रोघांसि प्रवर्तश्च पूर्वीः  
 धौर्मुष्याज्जर्तिमन् रेजत क्षाः ।  
 आ मातयु भरति शुष्मया गोः  
 नृवत् परिजमन् नोनुधन्तु वार्ताः  
 ता तू तं इन्द्र मदतो महानि  
 विश्वेष्टिस्त्वं सन्नेषु प्रवाच्या ।  
 यच्छूर घृण्णो धृपता दधृष्यान्  
 यद्वि यज्ञेन दायसाविषेयीः  
 ता तू ते नृम्या तुविदुष्ण विश्वा  
 प्र धेनवैः सिधन्ते वृष्ण ऊर्ध्वः ।  
 धर्षा ह त्वद् धृपमजो मिथानाः  
 प्र निग्वेष्यो जयसा चक्रमन्त  
 अत्रादं ते हरिपुम्या उ देवीः  
 सर्वोमिगिन्द्र स्तयन्तु स्वमारः ।  
 यन् मोमनु प्र मुषो यद्वधाना  
 हापामनु प्रविनि स्यन्त्यर्ष्यै  
 विरिटे भ्रान्तयो न विन्युः  
 आ त्वा शमी शशमानस्ये ज्ञातिः ।

अस्मद्भक् शुशुचानस्य यम्या  
 आशुनं रदिमं तुष्योजसं गोः ॥ ८ ॥  
 असे वरिष्ठा रुणहि ज्येष्ठा  
 नृम्यानि सत्रा संहरे सहसि ।  
 ॥ १ ॥ अस्मभ्यं वृत्रा सुहर्नानि रन्धि  
 जहि वधर्वनुपो मर्त्यस्य ॥ ९ ॥  
 अस्माकमित् सु शृणुहि त्वमिन्द्र  
 अस्मभ्यं चित्रां उप माहि वार्जान् ।  
 ॥ २ ॥ अस्मभ्यं विश्वा इपणः पुर्दधीः  
 अस्माकं सु मधवन् वोधि गोदाः ॥ १० ॥  
 नू पुत इन्द्र नू गृणान  
 इपं जरित्रे नयोः न पियेः ।  
 ॥ ३ ॥ अकारि ते हरिवो अह्य नर्ष्य  
 धिया स्याम त्व्यः सदासाः ॥ ११ ॥

॥ ११५ ॥ (अ० ४।११।१-११) ८-१० अतं वा १

कृया महामवृषत् कस्य होतुः  
 ॥ ४ ॥ यज्ञं जुषाणो अभि सोममूर्धः ।  
 पिवन्नुदानो जुषमाणो अग्नौ  
 यवश्च अश्वः शुचते धनाय ॥ १ ॥  
 को अस्य धीरः संप्रमार्दमाप्  
 ॥ ५ ॥ समानंश समितिभिः को अस्य ।  
 कर्दस्य चित्रं चिकिते कदती  
 वृधे भुवच्छशमानस्य यज्योः ॥ २ ॥  
 कृया नृणोति हुयमानमिन्द्रः  
 ॥ ६ ॥ कृया द्रुण्यश्रवसास्य वेद ।  
 का अस्य पूर्वीरपमातयो ह  
 कुर्येनमादुः पर्युरि जरित्रे ॥ ३ ॥  
 कृया मवार्धः शशमानो अस्य  
 ॥ ७ ॥ नरांभि द्विषिणं दीप्यान् ।  
 देवो मुपप्रयेदा म श्रुतानां  
 नमो जगृभ्यां धमि यजुर्गोपत् ॥ ४ ॥



कथा कदस्या उपलो व्युष्टो  
 देवो मर्तस्य सत्यं जुजोष ।  
 कथा कदस्य सत्यं सविभ्यो  
 ये अस्मिन् कामं सुयुजं तत्तु  
 किमादमत्रं सत्यं सविभ्यः  
 कदा नु ते भ्रात्रं प्र प्रयाम ।  
 धिये सुदृशो वपुर्गस्य सर्गाः  
 स्वर्गं चित्रतममिष आ गोः  
 शुद्धं जियांसन् ध्वरत्नमनिन्द्रां  
 तैत्तिके त्रिगमा तुजसे धनीका ।  
 ऋणा चिद् यत्र ऋणया न उग्रो  
 दुरे अभाता उपलो वधाधे  
 ऋतस्य हि शुरुषः सन्ति पूर्वीः  
 ऋतस्य धीतिर्वृजिनानि हन्ति ।  
 ऋतस्य श्लोकौ बधिरा ततर्ह  
 कर्णौ बुधानः शुचिमान् आयोः  
 ऋतस्य दृढहा धृष्टानि सन्ति  
 पुरुषि चन्द्रा वपुषे वपुषि ।  
 ऋतेन वीर्यमिपणन्त पृथक्  
 ऋतेन गावः ऋतमा विवेदाः  
 ऋतं यैमान् ऋतामेद् वनोति  
 ऋतस्य शुष्मस्तुरया उ गव्युः ।  
 ऋताय पृथ्वी बहुले गर्भारे  
 ऋताय धेनू परमे दुहाते  
 नू पुत इन्द्र नू गृणान  
 इयं जरित्रे नद्योः न पीयेः ।  
 अकारि ते हरिषो ब्रह्म नव्यं  
 धिया स्याम रथ्यः सदासाः  
 ॥ १३६ ॥ ( अ० ४।१४।१-११ ) विष्टुप, १० अष्टुप ।  
 का सुष्टुतिः शवसः सुष्टुमिन्द्र  
 अर्वाचीनं राधस आ ववर्तत् ।

ददिहि वीरो गृणते वसन्ति  
 स गोपतिर्निषिधा नो जनासः ॥ १ ॥  
 स वृत्रहृते हव्यः स ईड्यः  
 स सुष्टुत इन्द्रः सत्यराधाः । ॥ ५ ॥  
 स यामन्ना मधवा मर्याय  
 ब्रह्मण्यते सुर्वये वरिवो धात् ॥ २ ॥  
 तमिन्नरो वि ह्वयन्ते समीके  
 रिंरिकांसस्तन्वः कृणवत् वाम् । ॥ ६ ॥  
 मिथो यत् त्यागमुभयासौ अगमन्  
 नरस्तोकस्य तनयस्य सातौ ॥ ३ ॥  
 क्रतुयन्ति क्षितयो योग उग्र  
 आशुपाणासौ मिथो अर्णसातौ । ॥ ७ ॥  
 सं यद् विशोऽववृत्रन्त युष्मा  
 आदिधेम इन्द्रयन्ते अमीके ॥ ४ ॥  
 आदिङ् नेम इन्द्रियं यजन्त  
 आदिक् पक्तिः पुरोन्नाशं रिंरिच्यात् । ॥ ८ ॥  
 आदिक् सोमो वि पृथ्यादसुष्वीन्  
 आदिजुजोष वृषभं यजेष्यै ॥ ५ ॥  
 कृणोष्वस्मै वरिवो य इत्य  
 इन्द्राप् सोममुशते सुनोति । ॥ ९ ॥  
 सधीचीनेन मनसाविनेन  
 तमिक् सखायं कृणुते सुमत्सु ॥ ६ ॥  
 य इन्द्राय सुनवत् सोममद्य  
 पचात् पक्कीकृत भुज्जति धानाः । ॥ १० ॥  
 प्रति मनायोश्चथानि हर्यन्  
 तस्मिन् दधद् वृषणं शुष्ममिन्द्रः ॥ ७ ॥  
 यदा समर्थं व्यचेदधावा  
 दीर्यं यदाजिमभ्यर्प्यदूर्यः । ॥ ११ ॥  
 अचिक्रद् वृषणं पत्न्यच्छा  
 दुरोण आ निशीतं सोमसुद्धिः ॥ ८ ॥

भूयसा वस्त्रमचरत् कनीयो  
अर्विक्रीतो अकानिपुं पुनर्यन् ।  
स भूयसा कनीयो नारिरेचीद्  
दीना दक्षा वि दुहन्ति प्र बाणम् ॥ ९ ॥  
क इमं दशमिर्मम इन्द्र क्रीणाति धेनुभिः ।  
यदा घृणाणि जह्नुनत् अयं मे पुनर्ददत् ॥ १० ॥  
नू पुत इन्द्र नू गृणान  
इयं जरिबे नद्योऽ न पीये ।  
अकारि ते हरिबो ब्रह्म नव्यं  
धिया स्वां रूय्यः सदासाः ॥ ११ ॥

॥ १३७ ॥ ( ऋ० ४।१५।१-८ ) त्रिष्टुप् ।

को अद्य नयौ देवकाम  
उशनिन्द्रस्य सूर्यं जुजोष ।  
को वा महेऽवसे पायीय  
समिद्धे अग्नौ सुतसौम ईद्रे  
को नानाम चर्चसा सोम्यायं  
मनायुर्वी भवति घस्ते उद्या ।  
क इन्द्रस्य युज्य कः खलित्व  
को ध्नाये चष्टि कृचये क ऊती  
को देवानामर्षो अद्या वृणीते  
क आदित्यौ अदितिं ज्योतिरीद्रे ।  
कस्याग्निनाविन्द्रो अग्निं सुतस्य  
अंशोः पिबन्ति मनसाविषेनम्  
तस्मा अग्निमोर्तुः शर्म यंसुत्  
उपोक् पदयात् सूर्यमुच्चरन्तम् ।  
य इन्द्राय सुनयामेव्याह  
नरे नयीय नृत्तमाय नृणाम्  
न ते जिनन्ति यदयो न दक्षा  
उर्वेग्मा अदितिः शर्म यसत् ।  
म्रिय. गुरत् म्रिय इन्द्रं मनायुः  
म्रिय. सुमायीः म्रियो धस्य सोमी

सुप्रान्यः प्रादुषाण्ये धीरः  
सुर्यैः पक्तिं कृणुते केचलेन्द्रः ।  
नासुष्येरापिर्न सखा न जामिः  
तुष्णाव्योऽवहन्तेदवाचः ॥ ६ ॥  
न रेवता पणिनां सख्यमिन्द्रो  
असुन्वता सुतपाः स गृणीते ।  
आस्य वेदः सिदति हस्ति नय  
वि सुख्ये प्रकये केचलो भूत् ॥ ७ ॥  
इन्द्रं परेऽवरे मध्यमास  
इन्द्रं यान्तोऽवसितास इन्द्रम् ।  
इन्द्रं श्रियन्ते उत युध्यमाना  
इन्द्रं नरो वाजयन्तो हवन्ते ॥ ८ ॥

॥ १३८ ॥ ( ऋ० ४।१६।१-३ )

[ १-३ इन्द्रो वा ] । [ १-३ आत्मा वा ] ।

॥ १ ॥ अहं मरुतभवं सूर्यश्च  
अहं कक्षीवां ऋषिरस्मि विप्रः ।  
अहं कुत्सेमार्जुनेयं न्यूञ्जे  
अहं कविरुशना पश्यता मा ॥ १ ॥  
॥ २ ॥ अहं भूमिं मवामायीय  
अहं वृष्टिं वाशुपे मवीय ।  
अहमपो अनयं वायुशाना  
मम देवासो अनु केतमायन् ॥ २ ॥  
॥ ३ ॥ अहं पुरो मन्दसानो व्यैरं  
नयं साके नवतीः शर्मरस्य ।  
शततमं वेदयं सर्वताता  
दिवोदासमतिथिग्व यदार्चम् ॥ ३ ॥

॥ १३९ ॥ ( ऋ० ४।१८।१-५ ) [ इन्द्रायो वा । ]

॥ ४ ॥ त्वा युजा तव तत् सोम सुख्य  
इन्द्रो अपो मनवे सुसुतस्कः ।  
अहमहिमरिणात् सप्त सिन्धुन्  
अपावृणोदार्पदितेयं यानि ॥ १ ॥

त्वा युजा नि विदत् सूर्यस्य  
इन्द्रश्चक्रं सहसा सद्य इन्दो ।  
अधि ण्णना बृहता वर्तमानं  
महो ब्रुहो अपं विभ्वायुं धायि  
अद्विन्दो अर्द्धद्विन्दो  
पुरा दस्युन् मर्यदिनादुमीकं ।  
दुर्गे दुरोणे कत्या न यातां  
पुरु सुदसा शर्या नि यहीव  
विभ्वसात् सोमधमो इन्द्र दस्युन्  
विशो दासीरुणोरप्रस्ताः ।  
अवाधेयाममृणतं नि शत्रुन्  
अविन्देयामपचितिं धधत्रैः  
एवा सत्यं मघवाना युवं तत्  
इन्द्रश्च सोमोर्धमद्वयं गोः ।  
अर्द्धैतमपिहितान्यथा  
रिचिच्युः क्षात्रिषु तद्दाना  
॥ १४० ॥ ( ऋ० ४।१९।१-५ )

आ नः स्तुत उप वाजेभिस्तुती  
इन्द्रं याहि हरिभिर्मन्दसानः ।  
तिरश्चिद्वयः सधना पुरुषि  
आङ्गुपेर्मिर्गुणानः सत्यराधाः  
आ हि म्ना याति नर्यश्चिकित्वा  
दुयमानः सोरुमिदपं पक्षम् ।  
स्वबो यो अमीधुमेन्यमानः  
सुप्ताणेभिर्मदति सं ह वीरैः  
आवयेदस्य कर्णो वाजयचै  
सुष्टामनु प्र दिशं मन्द्यथ्यं ।  
उद्वावृणाणो राधसे तुविष्मान्  
करं इन्द्रः सुतीर्थीर्मयं च  
अच्छा यो गन्ता नार्धमानमुती  
इत्या विप्रं हवमानं गृणन्तम् ।

उप त्मनि दधानो धुर्याश्नु  
सहस्राणि शतानि वर्जयाहुः ॥ ४ ॥  
त्वोतांसो मघवचिन्द्र विप्रा  
वयं ते स्याम सुरयो गृणन्तः ।  
भेजानासो बृहर्दिवस राय  
आकाशस्य दावर्णे पुरुषोः ॥ ५ ॥  
॥ १४१ ॥ ( ऋ० ४।२०।१-८; १२-२४ )  
गायत्रोः ८, २४ अनुष्टुप् ।

नकिरेन्द्र त्वदुत्तरे न ज्यायो अस्ति वृत्रहन् ।  
नकिरेवा यथा त्वम् ॥ १ ॥  
सत्रा ते अर्जु कृप्यो विभ्वा चक्रव चाधुतः ।  
सत्रा महो अस्ति श्रुतः ॥ २ ॥  
विभ्वे चनेदना त्वा देवास इन्द्र युयुधुः ।  
यदहा नकुमातिरः ॥ ३ ॥  
यत्रोत याधितेन्य—इचक्रं कुत्साय युष्यते ।  
मुपाय इन्द्र सूर्यम् ॥ ४ ॥  
यत्र देवो ऋचायतो विभ्वा अयुष्य एक इत् ।  
त्वमिन्द्र वनूदहन् ॥ ५ ॥  
यत्रोत मर्याय क—मरिणा इन्द्र सूर्यम् ।  
प्रावः शचीमिरेतशम् ॥ ६ ॥  
किमादुतासि वृत्रहन् मघवन् मनुमसमः ।  
अत्राह दानुमातिरः ॥ ७ ॥  
एतद् घेदुत वीर्यं—मिन्द्र चक्रय पांस्यम् ।  
स्त्रियं यद् बृहणायुवं अर्धद्विन्दुतरं दिवः ॥ ८ ॥  
उत सिन्धु विवाह्यं वितस्थानामधि क्षमि ।  
परि एा इन्द्र मायया ॥ १२ ॥  
उत शुष्णस्य घृष्ण्या ॥ मृशो अमि वेदनम् ।  
पुरे यदस्य संपिणक् ॥ १३ ॥  
उत दासं कौलितरं बृहतः पर्वतादधि ।  
अवाहचिन्द्र शर्मरम् ॥ १४ ॥  
उत दासस्य वचिनः सहस्राणि प्रागर्षणीः ।  
अधि पञ्च प्रधीरिव ॥ १५ ॥

उत त्वं पुत्रमप्रुवः परावृत्तं शतक्रतुः ।  
 उरुयेधिन्द्र आर्मजत् ॥ १६ ॥  
 उत त्या त्वेवशायद् अस्ताताय शचीपतिः ।  
 इन्द्रो विष्टो अपारयत् ॥ १७ ॥  
 उत त्या सुद्य आयीं सुरयोरिन्द्र पारतः ।  
 यणीचित्ररथायधीः ॥ १८ ॥  
 अनु द्वा जंहिता नयो ऽन्यं श्रेणं च धुवहन् ।  
 न तत् तं सुस्रमष्टये ॥ १९ ॥  
 शानमश्मन्मयीनां पुरामिन्द्रो व्यास्यत् ।  
 दिवोदासाय द्वागुपे ॥ २० ॥  
 अस्यापयद् इमीतये सहस्रां त्रिशतं हथैः ।  
 द्वागानामिन्द्रो मायया ॥ २१ ॥  
 न चेदुतालिं वृत्रहन् रसमान इन्द्र गोपतिः ।  
 यस्ता विश्वानि चिच्युषे ॥ २२ ॥  
 उत नूनं यदिन्द्रियं करिष्या इन्द्र पौंस्यम् ।  
 अथा नकिष्टदा मिनत् ॥ २३ ॥  
 ग्रामं वामं त आदुरे देवो वृदात्वयमा ।  
 ग्रामं पूया ग्रामं भगौ ग्रामं देवः कर्कळती ॥ २४ ॥  
 ॥ १८० ॥ ( ऋ० ४:३१:१-१५ )  
 गायत्री, ३ प दमिचुत् ।  
 यपो नद्विष्र आ भुय—दृती सदावृषः सगो ।  
 यया शानिष्टया घृता ॥ १ ॥  
 यन्यां सन्यो मदानो मंहिष्टो मत्सुदग्धमः ।  
 इज्या मिदाकृते यारु ॥ २ ॥  
 धनी पु लाः सगीना—मयिता जगित्नुनाम् ।  
 शानं नैयान्यतिभिः ॥ ३ ॥  
 धनी न धा र्पयन्त्य यत्रं न युत्तमयैतः ।  
 निषां धर्गलनाम् ॥ ४ ॥  
 प्रयता दि यन्या—मा हां पुदेय गच्छति ।  
 यनीधि गये ययो ॥ ५ ॥  
 यं यन न इन्द्र मययः यं ययानि यययिरे ।  
 धयु त्वं धयु गये ॥ ६ ॥

उत स्मा हि त्वामाहुरि—न्मघवानं शचीपते ।  
 दातारमविदीधयुम् ॥ ७ ॥  
 उत स्मां सुद्य इत् परिं शशमानाय सुन्वते ।  
 पुरु चिन्महसे वरु ॥ ८ ॥  
 नहि प्मां ते शतं चन राधो वरन्त आमुतः ।  
 न ज्यौनानि करिष्यतः ॥ ९ ॥  
 अस्मां अवन्तु ते शत—मस्मान्सहस्रमूतयः ।  
 अस्मान् विश्वा अभिष्टयः ॥ १० ॥  
 अस्मां इहा वृणीष्व सुरव्याय स्वस्तये ।  
 महो राये दिवित्तमे ॥ ११ ॥  
 अस्मां अविष्टि विश्वहे—न्द्र राया परीणसा ।  
 अस्मान् विश्वाभिरुतिभिः ॥ १२ ॥  
 असभ्यं तां अपां वृधि भुजो अल्लेव गोमंतः ।  
 नवाभिरिन्द्रोतिभिः ॥ १३ ॥  
 अस्माकं धृणुया रयो घृमां इन्द्रानपच्युतः ।  
 गच्छुर्ध्वयुरीयते ॥ १४ ॥  
 अस्माकमुत्तमं वृधि अयो वेधेषु सूर्ये ।  
 यपिष्ठं ग्रामिकोपरि ॥ १५ ॥  
 ॥ १४३ ॥ ( ऋ० ४:३२:१-२१ ) गायत्री ।  
 आ त् न इन्द्र वृषट—प्रस्माकमर्धमा गदि ।  
 मदान् महीभिर्भुतिभिः ॥ १ ॥  
 भूमिध्विद् घालि तृत्त्रि—रा चित्र चिप्रिणीष्या ।  
 चित्रं वृणोष्युतये ॥ २ ॥  
 दध्मेभिश्चिच्छरीयांसं हंसि यार्धन्तमोजसा ।  
 नगिभियं रये सगो ॥ ३ ॥  
 ययमिन्द्र त्मे सगो ययं त्याभि नोनुमः ।  
 अस्मां अस्मां इदुदय ॥ ४ ॥  
 न जधिनाभिरदियो ऽजयघाभिर्भुतिभिः ।  
 भनां घृष्टाभिरा गदि ॥ ५ ॥  
 भूयामो पु र्यापतः सन्याय इन्द्र गोमंतः ।  
 भुजो यात्राय धूर्यये ॥ ६ ॥

त्वं होक् ईशिष्य इन्द्र वाजस्य गोमंतः ।  
 स नो यन्धि महीमिषम् ॥ ७ ॥  
 न त्वा वरन्ते अन्यथा यद् दित्संसि स्तुनो मधम् ।  
 स्तोत्रम्य इन्द्र गिर्घणः ॥ ८ ॥  
 अभि त्वा गोतमा गिरा ऽनूपत प्र दावने ।  
 इन्द्र वाजाय घृण्ये ॥ ९ ॥  
 प्र ते वोचाम धीर्याः या मन्दसान आरुजः ।  
 पुरो दासीरमीत्य ॥ १० ॥  
 ता ते घृणन्ति वेधलो यानि चकथ पौस्या ।  
 सुतेष्विन्द्र गिर्घणः ॥ ११ ॥  
 अवीवृधन्त गोतमा इन्द्र त्वे स्तोमवाहसः ।  
 पेपुं धा वीरवद् यशः ॥ १२ ॥  
 यश्चिद्धि शम्भतामसीन्द्र साधारणस्त्यम् ।  
 तं त्वा वयं हवामहे ॥ १३ ॥  
 अर्वाचीनो वंसो मवा—ऽसे सु मत्स्वान्धसः ।  
 सोमनामिन्द्र सोमपाः ॥ १४ ॥  
 अस्माकं त्वा मतीना—मा स्तोम इन्द्र पच्छतु ।  
 अर्वागा वर्तया हरी ॥ १५ ॥  
 पुष्येलाशं च नो वसो ज्ञोपयासे गिरश्च नः ।  
 वधुयुरिव योपणाम् ॥ १६ ॥  
 सहस्रं व्यतीनां युक्तानामिन्द्रमीमहे ।  
 शतं सोमस्य आर्यैः ॥ १७ ॥  
 सहस्रा ते शता वयं गगमा च्यावयामसि ।  
 अस्मन्ना राधे एतु ते ॥ १८ ॥  
 दश ते कलशानां हिरण्यानामधीमहि ।  
 भूरिदा असि वृत्रहन् ॥ १९ ॥  
 भूरिदा भूरि देहि नो मा दुष्मं भूर्यो मर ।  
 भूरि वेदिन्द्र दित्संसि ॥ २० ॥  
 भूरिदा द्यासे ध्रुतः पुंरुना शूर वृत्रहन् ।  
 मा नो भजस्व राधसि ॥ २१ ॥  
 प्र ते भू विचक्षणं शंसामि गोपणो नपात् ।  
 माम्नां गा अनु शिधयः ॥ २२ ॥

॥ १४४ ॥ ( ऋ० पृ० १२, १-१५ )

गौरिवीति शाक्यः ।

[ ९ ( प्रथमपादस्य ) उशना वा ] । निष्पृ ।

अर्यमा मनुषो देवताता  
 वी रौचना दिव्या धारयन्त ।  
 अर्चन्ति त्वा मरुतः पुतर्दसाः  
 त्वमेपासृपिरिन्द्रासि धीरः ॥ १ ॥  
 अनु यवी मरुनो मन्दसानं  
 आर्चन्ति पणियांसं सुतस्य ।  
 आर्क्षत वज्रमभि यदहि हन्  
 अपो यहीरसृजत् सतवा उ ॥ २ ॥  
 उत ग्रहाणो मरुतो मे अस्य  
 इन्द्रः सोमस्य सुपुतस्य पेयाः ।  
 तद्धि हव्यं मनुषे गा अविन्दुत्  
 अहधहि पणियां इन्द्रो अस्य ॥ ३ ॥  
 आद् रोदसी वितरं वि ऋभायत्  
 संघिव्यानाश्चिद् मियसे मृगं कः ।  
 जिगर्तिमिन्द्रो अपजगुताणः  
 प्रति भवसन्तमव दानव हन् ॥ ४ ॥  
 अघ क्रत्वा मघवन् तुभ्यं देवा  
 अनु विश्वे अद्दुः सोमपेयम् ।  
 यत् सूर्यस्य हरितः पतन्तीः  
 पुरः सतीरुपरा एतशे कः ॥ ५ ॥  
 नन् यदस्य नवति च भोगान्  
 साकं वज्रेण मघवा विवृश्चत् ।  
 अर्चन्तीन्द्र मरुतः सधस्थे  
 त्रैष्टुभेन वचसा वाधत घाम् ॥ ६ ॥  
 सखा सत्ये अपचत् तूर्यमग्निः  
 अस्य क्रत्वा महिषा वी शतानि ।  
 वी साकमिन्द्रो मनुषः सतीसि  
 सुते पिबद् वृत्रहत्यायु सोमम् ॥ ७ ॥

श्री यच्छ्रुता महिषाणामघो माः  
 श्री सर्वसि मध्या सोम्यापाः ।  
 कुरं न विभ्ये अहन्त देवा  
 भगमिन्द्राय यदहिं जुषानं  
 उदाना यत् मद्रस्यैरुयाते  
 गृहमिन्द्र जूजयानेमिखैः ।  
 धन्यानां अरं सूर्यं ययाय  
 कुन्नेन देवैरपनोहं शुष्मा  
 ग्रान्यधनममृहः सूर्यस्य  
 कुन्मायान्यद् यरिषो यातयेऽकः ।  
 अनामो दस्यैरुणो युधेन  
 नि द्रुयौण आयुणद् मूधयाचः ।  
 सोमामगम्या गारिधीतेरवधेन  
 अरन्धयो यदधिनाय पिप्रम् ।  
 आ त्यामृतिभ्यां सत्याय चक्रे  
 पचन् पुकीरपियः सोममस्य  
 नपय्यामः सूनसोमाम् इन्द्रं  
 दशग्यामो अम्यैरग्यैः ।  
 गर्गं चिदुधमपिधानयन्  
 मं विप्ररः दशमाना अर्षं प्रन्  
 कृणो नु मे परि चराणि विहान्  
 दीयो मयपन् वा चरये ।  
 वा सो नु नप्यां कृण्वः शविष्ठ  
 मेदु ता मे विदमं नु प्रयाम  
 एता विभ्यां चरुषां इन्द्र भूरि  
 अरिगतां जनुना धीयेत ।  
 वा विष्ट यजिन् कृण्वो दधुण्यान्  
 म मे वृतां तपिप्या अग्निं तप्याः  
 इन्द्र अरि विप्रमाणा कृण्व  
 वा मे तपिप्या तप्या अरिभ्यः ।

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १० ॥

॥ ११ ॥

॥ १२ ॥

॥ १३ ॥

॥ १४ ॥

वल्लेव भद्रा सुकृता वसूय  
 रथं न धीरः स्वपां अतक्षम् ॥ १५ ॥

॥ १४५ ॥ (अ० ५।३०।१-११) भुरात्रेयः ।

कस्य वीरः को नपश्यदिद्रं  
 सुखरथमीर्यमानं हरिभ्याम् ।  
 यो यया वज्री सुतसोममिच्छन्  
 तदोको गन्तां पुरुहुत ऊती ॥ १ ॥

अवाचचक्रं पदमस्य सस्यः  
 उग्रं निधातुरन्वायमिच्छन् ।  
 मर्षच्छम्यां उत ते म आहुः  
 इन्द्रं नरो वुध्याना अंशम ॥ २ ॥

प्र नु वयं सुते या ते कृतानि  
 इन्द्र प्रवाम् यानि नो जुजोयः ।  
 वेदविद्वान्मृण्यैश्च विद्वान्  
 वहतेऽयं मयया सर्वसेनः ॥ ३ ॥

स्थिरं मनश्चरुपे जात इन्द्र  
 वेपीदेको युधये भूयसश्चित् ।  
 अदमानं चिच्छयसा दिष्टतो वि  
 विद्रो गर्वामुर्वमुद्रियाणाम् ॥ ४ ॥

पुरो यत् त्वं परम आजर्निष्ठाः  
 पणयति ध्रुवं नाम विधत् ।  
 अतश्चिदिन्द्रोदमयन्त देवा  
 विभ्यां अपो अजयद् दासपंतीः ॥ ५ ॥

नुस्येदेते मरुतः सुदोषा  
 अच्यन्त्यैः सुन्यन्त्यग्नैः ।  
 अहिमोहानमप आशयान्  
 प्र मायामिमोपिन् सधदिन्द्रः ॥ ६ ॥

वि पू मृधो जनुपा दानमिन्यन्  
 अहन् गवां मययग्नं चरानः ।  
 अत्रा दामय्य नमुधेः शितो यत्  
 अर्यतेयो मनेधे गानुमिच्छम् ॥ ७ ॥

युजं हि मामकृया आदिदिन्द्र  
शिरो दासस्य नमुचेर्मयायन् ।  
अदमानं चित् स्वयै । वर्तमानं  
प्र चक्रियैव रोदसी मरुद्भयः  
॥ ८ ॥  
स्त्रियो हि दास आयुधानि चके  
किं मा करन्नयला अस्य सेनाः ।  
अन्तर्हस्यदुभे अस्य धेने  
अथोप धैद् युधये दस्युमिन्द्रः  
॥ ९ ॥  
समत्र गावोऽभितोऽनयन्त  
इहेह वृत्तैर्वियुता यदासन् ।  
सं ता इन्द्रो मञ्जदस्य शकैः  
यदी सोमासः सुपुता अमन्वन्  
यदी सोमा वधुधूता अमन्वन्  
अरौरधीद् वृषभः सादनेषु ।  
पुरंदरः पपिषा इन्द्रो अस्य  
पुनर्गवामददादुक्रियाणाम्  
॥ ११ ॥

॥ १४६ ॥ ( झ० ५।३।१-८; १०-१३ )

अवस्युगनेयः, ( ८ तृतीयशदस्य  
कुत्सो वा, चतुर्थपादस्य वचना वा ) ।

इन्द्रो रथाय प्रवर्तं कृणोति  
यमृष्यस्यान्मयवा वाजयन्तम् ।  
युधेयं पृथ्वो व्युनोति गोपा  
अरिंघो याति प्रथमः सिपांसन्  
॥ १ ॥  
आ प्र द्रव हरिवो मा वि वेनः  
पिशङ्गपाते अभि नः सचस्व ।  
नहि त्वदिन्द्र वस्यो अन्यदस्ति  
अमेनाश्चिज्जनिवतश्चकर्थ  
॥ २ ॥  
उद्यत् सहः सहस्र आजनिष्ट  
देदिष्ट इन्द्र इन्द्रियाणि विश्वा ।  
प्राचोदयत् सुदुघा वृषे भन्तः  
वि ज्योतिषा संववृत्यत् तमोऽवः  
॥ ३ ॥

अमन्वस्ते रथमधाय तक्षन्  
त्वष्टा वज्रं पुरुहूत युमन्तम् ।  
ब्रह्माण इन्द्रं महयन्तो अकैः  
अवर्धयन्नर्धये हन्तवा उ  
॥ ४ ॥  
वृष्णे यत् ते वृषणो अकर्मर्चान्  
इन्द्र आवाणो अदितिः सजोषाः ।  
अनभ्वालो ये पचयौऽरथा  
॥ ५ ॥  
इन्द्रैपिता अभ्यवर्तन्त दस्यून्  
प्र ते पूर्वाणि करणानि वोचं  
प्र नूतना मयचन् या चकर्थ ।  
शक्तीवो यद् विभ्रा रोदसी उमे  
जयन्तो मनवे दाजुचिन्नाः  
॥ ६ ॥  
तदिष्टु ते करणं दस्य विप्र  
अहि यद् भ्रजोजो अत्रामिमीथाः ।  
शुष्णस्य चित् परि माया अयुष्माः  
प्रपित्वं यन्नप दस्यूरसेधः  
॥ ७ ॥  
त्वमपो यदवे तुवशाय  
अरमयः सुदुघाः पार इन्द्र ।  
उग्रमयातमवहो ह कुत्सं  
सं ह यद् वामुशनारन्त देवाः  
॥ ८ ॥  
वातस्य युक्तान्सुयुजश्चिदभ्वान्  
कृविधिंद्यो अजगन्नवस्युः ।  
विश्वे ते अन्नं मरुतः सखाय  
॥ ९ ॥  
इन्द्र ब्रह्माणि तविषामवर्धन्  
सुरश्चिद् रथं परितस्त्रयायां  
पूर्वं करदुपरं जजुवांसम् ।  
अरंभक्रमेतशः सं रिणाति  
॥ १० ॥  
पुरो दधत् सनिप्यति क्रतुं नः  
आयं जना अभिचक्षे जगाम  
इन्द्रः सखायं सुतसौममिच्छन् ।  
वदन् आवाच धेदिं ध्रियाते  
॥ ११ ॥  
यस्य जीरमं च्यव्यवश्चरन्ति  
॥ १२ ॥

ये चाकनन्त चाकनन्त नू ते  
मती अमृत मो ते अहं आरन् ।  
घावन्धि यज्युस्त तेपु धेहि  
ओजो जनेपु येपु ते स्याम

॥ १३ ॥

॥ १८७ ॥ ( अ० पा३२।१-१० ) गानुरात्रेयः ।

अद्वंद्वस्तुमयुजो वि सानि  
त्यमर्णयान् यद्वधानां अरम्भाः ।  
महान्तमिन्द्र पर्यंतं वि यद् घः  
सुजो वि घाय अव दानघं हन्  
रमुन्तां श्रुतुर्भिर्घद्वधानां

॥ १ ॥

अद्व ऊधुः पर्यंतस्य यस्मिन् ।  
अहिं चिदुग्र प्रयुतं शयानं

॥ २ ॥

जग्न्या इन्द्र तविपीमघस्थाः  
त्यस्य चिन्महतो निर्मगस्य

॥ ३ ॥

घर्धजघान तविपीमिरिन्द्रः ।  
य एक इदं प्रतिमन्यमान

॥ ४ ॥

आदन्मादुन्यो अजनिष्ट तज्यान्  
त्वं चिदेपां स्यधया मदन्तं

मिहो नपातं सुवृष्टं तमोगाम् ।  
पृथग्प्रभर्मा दानयस्य भासं

यज्रेण यज्ञा नि जघान शुष्णम्  
त्वं चिदस्य क्रतुमिनिर्पत्तं

धमर्मणो विददिदस्य मम ।  
यदी मुधत्र प्रभृता मदस्य

पुष्ट्यग्नन्तं तममि ह्यस्य घाः  
त्वं चिदिष्टया बन्त्यं शयानं

मग्न्यं तममि पापुषानम् ।  
तं निग्मष्टानो पृथग्ः सुतस्य

उद्विग्नो अयुग्यो जघान  
उद् घदिग्नो मदते दानघाय

बध्नेर्मिष्ट गदो अर्धनीलम् ।

यदी वज्रस्य प्रभृतौ ददाम्

विश्वस्य जन्तोरधमं चकार

॥ ७ ॥

त्वं चिदणं मधुपं शयानं

असिन्धं वज्रं महाददुग्रः ।  
अपादमत्रं महता वधेन

नि दुयोण आवृणद् मूधवाचम्

॥ ८ ॥

को अस्य शुष्मं तविपीं वरातु

एको घना भरते अप्रतीतः ।  
इमे चिदस्य अयसो नु द्वेधी

इन्द्रस्यौजसो भियसा जिहाते

॥ ९ ॥

न्यसौ द्वेधी स्वधितिर्जिहीतु

इन्द्राय गातुर्हृताव येमे ।  
सं यदोजो युवते विश्वमामिः

अनु स्यघात्रे क्षितयो नमन्त

॥ १० ॥

एकं नु त्वा सत्यं पाञ्चजन्यं

ज्ञातं शृणोमि यदासं जनेपु ।  
तं मे जगृध आशतो नविष्टं

दोषा वस्तोर्हयमानास इन्द्रम्

॥ ११ ॥

एवा हि त्यामृतुया यातपन्तं

मुघा विप्रैभ्यो ददते शृणोमि ।  
किं ते ब्रह्माणो गृहते सखायो

ये त्वाया निदधुः काममिन्द्र

॥ १२ ॥

॥ १८८ ॥ ( अ० पा३३।१-१० ) प्राजापत्यः संवरणः ।

अहिं महे तयसे दीप्ये नृन्

इन्द्रायेत्या तयसे अमन्यान् ।  
यो अमं सुमतिं याजसातो

स्तुतो जने समर्थेक्षिते

॥ १३ ॥

स त्वं न इन्द्र धियमानो अर्कः

दृतीयां वृष्टन् योक्त्रमधोः ।  
या इत्या मयपुत्रन् जोषं

वशो अभि प्रार्यः संक्षि जनान्

॥ १४ ॥

( १७१८ )



न ते तं इन्द्राभ्युसहृष्य  
अयुकासो अग्रहता यदसंजु ।  
तिष्ठा रथमधि तं वज्रहस्त  
आ रुमि देव यमसे स्वश्वः  
पुरु यत् तं इन्द्र सन्पुन्या  
गर्वे चक्रयैविरासु सुप्यन ।  
ततश्चे सूर्याय विद्रोकांसि स्वे  
वृषा समस्तु दासस्य नाम चित्  
घयं ते तं इन्द्र ये च नरः  
शार्धो जज्ञाना याताश्च रथाः ।  
आस्त्राङ्गम्यादद्विशुभं सत्वा  
मगो न हव्यः प्रमयेषु चारुः  
पुपुक्षेर्णमिन्द्र त्वे होजो  
नृम्यानि च नूतमानो अमर्तः ।  
स न पर्णो वसवानो रुमि दाः  
प्रार्यः स्तुपे तुविमघस्य दानम्  
एवा न इन्द्रोतिमिष्य  
प्राहि शृणतः शर क्रारु ।  
उत त्वचं ददतो वाजसातौ  
पिप्रीहि मघ्यः सुपुतस्य चारोः  
उत त्वे मा पौरकुतस्यस्य सुरेः  
असदस्योर्हिरणिनो रराणाः ।  
बहन्तु मा दश श्येतासो अस्य  
गैरिक्षितस्य कर्तुमिनु संश्वे  
उत त्वे मा मास्ताश्वस्य शोणाः  
कर्त्तामयासो विदथस्य रातौ ।  
सहस्रो मे न्यवतानो दवान्  
आनुकमर्यो वपुषे नार्चत्  
उत त्वे मा धन्यस्य जुष्टा  
लश्मण्यस्य सुदुचो यतानाः ।  
महा रायः संवरणस्य ऋषेः  
व्रजं न गावः प्रयता अपि गमन्

॥ १४१ ॥ / क्र० ५।३४।१-९ )

जगती, ९ त्रिष्टुप् ।

॥ ३ ॥

अजातशत्रुमजरा स्वर्वति  
अनु स्वधार्मिता दसमीयते ।  
सुनोर्तन पर्वत ब्रह्मवाहसे  
पुरुपुताय प्रतरं दधातन

॥ १ ॥

॥ ४ ॥

आ यः सोमिन जठरमपिप्रता  
अमन्दत मघवा मघो अन्धसः ।  
यदी मृगाय हन्तवे महाबधः  
सहस्रमृष्टिमुशना व्यथं यमत्

॥ २ ॥

॥ ५ ॥

यो अस्मै धंस उत वा य ऊर्ध्वनि  
सोम सुनोति भवति घुमो अह ।  
अपाप शक्रस्तनुष्टिब्रह्मति  
तनुष्टुमं मघवा यः कवासुखः

॥ ३ ॥

॥ ६ ॥

यस्यावधीत् पितरं यस्य मातरं  
यस्य शक्रो भ्रातरं नात ईपते ।  
वेतीदस्य प्रयता यतक्रो  
न किरियपादीपते वस्य आक्रः

॥ ४ ॥

॥ ७ ॥

न पञ्चमिर्दशमिर्वैष्ट्यारुमं  
नानुन्वता सचते पुण्यात् चन ।  
जिनाति वेदमुया हन्ति वा धुनिः  
आ देवयुं भजति गोमति घृजे

॥ ५ ॥

॥ ८ ॥

वित्वक्षणः समृती चक्रमासजः  
असुन्वतो विपुणः सुच्यते वृधः ।  
इन्द्रो विश्वस्य दमिता विमीरणो  
यथावशं नयति दासमार्यः

॥ ६ ॥

॥ ९ ॥

समीं पुणेरजति भोजनं मुपे  
वि दाशुपै भजति सुनरं वसु ।  
दुर्गे चन त्रियते विश्व आ पुर  
जजो यो अस्य तवियमिचक्रुघत्

॥ ७ ॥

॥ १० ॥

सं यज्जनौ सुघनौ विभ्वर्धसौ  
अनेदिन्द्रो मघवा गोपुं शुभ्रिपुं ।

युजं ह्यन्यमरुत प्रवेपुन्

युर्दो गयै सृजते सत्वमिधुनिः

सहस्रसामाग्निर्वेदि गृणीपे

शत्रिमग्न उपमां केतुमर्यः ।

तस्मा आपः संयतः पीपयन्त

तस्मिन् क्षत्रममघत् त्वेपमस्तु

॥ १५० ॥ ( ऋ० ५।३५।१-८ )

प्रभृष्टुराग्निरस । अत्रुष्टु, ८ पङ्क्ति ।

यस्ते साधिष्ठोऽयं स इन्द्र क्रतुष्टमा मर ।

अस्मभ्यं चर्षणीसहं सस्मि वाजेषु दुष्टरम् ॥ १ ॥

यदिन्द्र ते चतस्रो यच्छूर सन्ति तिस्रः ।

यद् वा पञ्च क्षितीनामवस्तत् सु न आ मर ॥ २ ॥

आ तेऽवो वरेण्यं वृषन्तमस्य हमहे ।

वृषन्तिहि जज्ञिष आभूमिन्द्र तुर्घणिः ॥ ३ ॥

वृषा हसि राधसे जज्ञिषे वृष्णि ते शयः ।

स्वशत्रं ते ध्रुवमनः सनाहमिन्द्र पौस्यम् ॥ ४ ॥

तं तमिन्द्र मर्त्यममिन्त्यन्तमद्रिषः ।

सुरथा शतक्रतो नि योहि शयसस्पते ॥ ५ ॥

त्यामिद् वृषहन्तम् अनासो वृक्वर्हिपः ।

उग्रं पृथीपुं पृथ्व्यं हवन्ते याजसातये ॥ ६ ॥

अस्माकमिन्द्र दुष्टरं पुत्रेयावानम्राजिपुं ।

मयावानं धनेघने याजयन्तमवा रथम् ॥ ७ ॥

अस्माकमिन्द्रेहि नो रथमवा पुरंध्या ।

ययं शविष्ठु वार्ये

दिवि श्रवो दधामहि दिवि स्तोमं मनामहे ॥ ८ ॥

॥ १५१ ॥ ( ऋ० ५।३५।१-६ ) त्रिष्टुप्, अगतौ ।

म आ गमदिन्द्रो यो धर्मनां

चिक्वत् दातुं दार्मनो रथिणाम् ।

धन्वन्तो न धर्मगन्तृगणः

ध्वमानः पिबन्तु दग्धमंशम्

॥ १ ॥

आ ते हनू हरियः शूर शिमे

रुहत् सोमो न पर्येतस्य पृष्ठे ।

अनु त्वा राजन्नर्यतो न हिन्यन्

॥ ८ ॥

गीर्मिर्देम पुच्छत् विभ्वे

॥ २ ॥

चक्रं न वृत्त पुंश्छत् वेपते

मनो मिया मे अमतेरिदद्रिवः ।

रथादधि त्वा जरिता संदावृष

॥ ९ ॥

कुविष्ठु स्तोपम्मघवन् पुरुवसुः

॥ ३ ॥

एष प्राचैव जरिता तं इन्द्र

इयति वाचं बृहदाशुपाणः ।

प्र सव्येन मघवन् यंसि रायः

प्र दक्षिणिर्दरिवो मा वि वेनः

॥ ४ ॥

वृषां त्वा वृषणं वर्धतु यौः

वृषा वृषम्यां बहसे हरिम्याम् ।

स नो वृषा वृपरयः सुशिप्र

वृषक्रतो वृषा वज्रिन् मरं धाः

॥ ५ ॥

यो रोहितौ वाजिनो वाजिनीवान्

त्रिभिः शतैः सचमानावदिष्ट ।

यूने समस्मै क्षितयो नमस्तां

धृतरथाय मरतो दुषोया

॥ ६ ॥

॥ १५२ ॥ ऋ० ५।३७।१-५ ।

भौमोऽत्र । त्रिष्टुप् ।

सं भानुना यतते सूर्यस्य

आजुह्वानो घृतपृष्ठः स्वज्ञाः ।

तस्मा अमृधा उपसो व्यृचज्जन्

य इन्द्राय सुनवामेत्याह

॥ १ ॥

समिद्धाग्निर्वनवत् स्तीर्णवर्हिः

युक्तग्रावा सुतसोमो जराते ।

ग्रावाणो यस्वैपिरं वदन्ति

अयं दध्ययुर्द्विषाव सिन्धुम्

॥ २ ॥

( १७५१ )

वधूरियं पतिमिच्छन्त्येति  
य ई वहति महिषीमिषिराम् ।  
आस्यं ध्रुवस्याद् रथ आ च घोषात्  
पुरु सुहृन्ना परि वर्तयाते ॥ ३ ॥  
न स राजा व्ययते यस्मिन्निन्द्रः  
तीव्रं सोमं पिबति गोसंखायम् ।  
आ संत्यन्नेरजति हन्ति वृधं  
क्षेति श्रितीः सुमगो नाम पुष्यन् ॥ ४ ॥  
पुष्यात् क्षेमं अमि योगे भयाति  
उमे वृत्तौ संयती सं जयाति ।  
म्रियः सूर्ये म्रियो अग्रा भवाति  
य इन्द्राय सुतसोमो ददांशात् ॥ ५ ॥  
॥ १५३ ॥ ( ऋ० ५।३।१-५ ) अनुष्टुप् ।  
उरोष्ठे इन्द्र राधसो विभ्वी श्रुतिः शतक्रतो ।  
अथा नो विभ्वचरणे युष्मा सुभ्रत मंहय ॥ १ ॥  
यदीमिन्द्र अवाप्य-मिषं शविष्ठ दधिषे ।  
पुम्ये दीधुधुसंमं हिरण्यवर्णं दुष्टरम् ॥ २ ॥  
शुष्मास्तो ये तं अद्रियो मेहना केतुसापः ।  
उमा देवावमिष्टये दिवश्च गम्यं राजथः ॥ ३ ॥  
उतो नो अस्य कस्य विद् दक्षस्य तर्ष वृत्रहन् ।  
असम्यं नृगणमा मरु-ऽसम्यं नृमणस्यसे ॥ ४ ॥  
नू तं आभिरभिष्टिभि-स्तव शर्मन्धतक्रतो ।  
इन्द्र स्याम सुगोपाः शर स्याम सुगोपाः ॥ ५ ॥  
॥ १५४ ॥ ( ऋ० ५।३।१-५ ) अनुष्टुप्, ५ पङ्क्तिः ।  
यदिन्द्र चित्र मेहना ऽस्ति त्यादातमद्रिचः ।  
राधस्तत्रो विदद्वस उभयाहस्त्या मर ॥ १ ॥  
यन्मन्यसे वरेण्य-मिन्द्रं शुश्रं तदा मर ।  
विद्याम तस्य ते वय-मकूपारस्य क्षावने ॥ २ ॥  
यत् तं दित्सु प्रराप्यं मनो अस्ति श्रुतं बृहत् ।  
तेन हृह्वा चिदद्रिच आ वाजं दधि सातय ॥ ३ ॥  
महिष्ठे वो मघोनां राजानं चरणीनाम् ।  
इन्द्रमुप प्रशस्तये पूर्वोभिर्जुजुपे गिरः ॥ ४ ॥

अस्मा इत् काव्यं वच उन्मयमिन्द्राय शंस्यम् ।  
तस्मा उ ग्रहवाहसे  
गिरं वर्धन्त्यत्रयो गिरः शुम्भन्त्यत्रयः ॥ ५ ॥  
॥ १५५ ॥ ( ऋ० ५।४।१-४ ) त्रिष्टुप्, ४ त्रिष्टुप् ।  
आ याहाद्रिभिः सुतं सोमं सोमपते पिय ।  
वृषन्निन्द्र वृषमिर्वृत्रहन्तम् ॥ १ ॥  
वृषा प्रावा वृषा मद्रो वृषा सोमो अयं सुतः ।  
वृषन्निन्द्र वृषमिर्वृत्रहन्तम् ॥ २ ॥  
वृषा त्वा वृषणं हुवे वज्रिजिन्नामिरुतिभिः ।  
वृषन्निन्द्र वृषमिर्वृत्रहन्तम् ॥ ३ ॥  
ऋजीपी वृषी वृषमस्तुतुपाद्  
शुष्मी राजा वृत्रहा सोमपावा ।  
युक्त्वा हरिभ्यामुप यासदुर्वाङ्  
माध्यदिने सर्वने मत्सुदिन्द्रः ॥ ४ ॥

॥ १५६ ॥ ( ऋ० ८।३।१-७ )

इयावाच आत्रेयः । शकरी, ७ महापङ्क्तिः ।

अघितासि सुन्वतो वृक्षयर्हिषः पिवा सोमं  
मदाय कं शतक्रतो ।  
यं तं आगमधारयन् विभ्वाः सेहानः पृतनाः  
उरु जयः समंस्तुजि-न्मरुत्वा इन्द्र सत्पते ॥ १ ॥  
प्राव स्तोतारं मघव-अय त्वां पिवा सोमं  
मदाय कं शतक्रतो ।  
यं तं आगमधारयन् विभ्वाः सेहानः पृतनाः  
उरु जयः समंस्तुजि-न्मरुत्वा इन्द्र सत्पते ॥ २ ॥  
ऊर्जा देवां अयस्यो-जसा त्वां पिवा सोमं  
मदाय कं शतक्रतो ।  
यं तं आगमधारयन् विभ्वाः सेहानः पृतनाः  
उरु जयः समंस्तुजि-न्मरुत्वा इन्द्र सत्पते ॥ ३ ॥  
जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः पिवा सोमं  
मदाय कं शतक्रतो ।  
यं तं आगमधारयन् विभ्वाः सेहानः पृतनाः  
उरु जयः समंस्तुजि-न्मरुत्वा इन्द्र सत्पते ॥ ४ ॥

जनिताभ्यानां जनिता गयोमसि पिशा सोमं  
मदाय कं शतक्रतो ।  
यं तै भागमधारयन् विश्वाः सेहानः पृतनाः  
उरु जयः समंस्तुजि-न्मरत्वो इन्द्र सत्पते ॥ ५ ॥  
अत्राणिं स्तोममद्रियो मद्रस्त्रुधि पिशा सोमं  
मदाय कं शतक्रतो ।  
यं तै भागमधारयन् विश्वाः सेहानः पृतनाः  
उरु जयः समंस्तुजि-न्मरत्वो इन्द्र सत्पते ॥ ६ ॥  
श्यावाश्वस्य सुन्यत-स्तथा शृणु यथाशृणोः  
अत्रेः कर्माणि कृण्वतः ।  
प्र वसदस्सुमाविथ त्वमेक इष्टुपाह  
इन्द्र ब्रह्माणि वर्धयन् ॥ ७ ॥

॥ १५७ ॥ ( ऋ० ८।३।१-७ )

महापर्वः, १ अतिश्रुतिः ।

प्रेदं ब्रह्म वृत्रतृपैष्वाविथ प्र सुन्यतः शचीपत  
इन्द्र विश्वामिरुतिभिः ।  
मार्घ्येदिनस्य सर्वनस्य वृत्रहनेछ  
अनेछ पिशा सोमस्य वज्रिवः ॥ १ ॥  
सेहान उग्र पृतना अभि द्रुहः शचीपते  
इन्द्र विश्वामिरुतिभिः ।  
मार्घ्येदिनस्य सर्वनस्य वृत्रहनेछ  
पिशा सोमस्य वज्रिवः ॥ २ ॥  
एकुरास्य भुवनस्य राजसि शचीपते  
इन्द्र विश्वामिरुतिभिः ।  
मार्घ्येदिनस्य सर्वनस्य वृत्रहनेछ  
पिशा सोमस्य वज्रिवः ॥ ३ ॥  
सुम्याराना ययसि त्वमेक इच्छचीपते  
इन्द्र विश्वामिरुतिभिः ।  
मार्घ्येदिनस्य सर्वनस्य वृत्रहनेछ  
पिशा सोमस्य वज्रिवः ॥ ४ ॥

क्षेमस्य च प्रयुज्ज्वा त्वमीदृशे शचीपते  
इन्द्र विश्वामिरुतिभिः ।  
मार्घ्येदिनस्य सर्वनस्य वृत्रहनेछ  
पिशा सोमस्य वज्रिवः ॥ ५ ॥  
श्यावाश्वस्य रेमत-स्तथा शृणु यथाशृणोः  
अत्रेः कर्माणि कृण्वतः ।  
प्र वसदस्सुमाविथ त्वमेक इष्टुपाह  
इन्द्र ब्रह्माणि वर्धयन् ॥ ७ ॥

॥ १५८ ॥ ( ऋ० ८।१।१-७ )

आत्रेया अपाला । अनुष्टुप्, १-२ पद्विः ।

कन्याः वारवायती सोममपि सुताविदव ।  
अस्ते भरन्त्यग्रवी-विन्द्राय सुनैव त्या  
शकार्य सुनवै त्या ॥ १ ॥  
असौ य परि वारको गृहगृहं विचाकशात् ।  
इमं जम्भसुतं पिब धानाबन्तं करम्भिर्ण  
अपुयवन्तमुक्थिनम् ॥ २ ॥  
आ नून त्या चिकित्सामो ऽधि नून त्या नेमसि ।  
शनीरिव शनकैरिवेन्द्रियेभ्यो परि जय ॥ ३ ॥  
कुविच्छकैस् कुवित्र करत् कुविभो वस्यसुस्करत् ।  
कुवित्र पतिद्विषो यती-रिन्द्रेण संगमामहै ॥ ४ ॥  
इमानि त्रीणि विष्ण्या तानीन्द्र वि रोहय ।  
शिरस्ततस्योर्वरा-मादिदं म उपोदरे ॥ ५ ॥  
असौ च या न उर्वरा-दिमां तन्वं मम ।  
अथो ततस्य यच्छिरः सर्वा ता रोमशा हृदि ॥ ६ ॥  
हे रयस्य खेऽनसुः ये युगस्य शतक्रतो ।  
अपालामिन्द्र त्रिष्णु-त्वकृणोः सूर्यत्वधम् ॥ ७ ॥

॥ १५ ॥ (अ० ८।१४।१-१७)

विद्यमाना वैयस्यः । सगिहः ।

सखाय आ दिशामहि ग्रहोन्द्राय वज्रिणे ।  
 स्तुप ऊ पु वो नृत्तमाय धृष्णवे ॥ १ ॥  
 शर्वसा हस्ति श्रुतो वृत्रहत्येन वृन्दा ।  
 मयैर्मयोनो अति शूर दाशसि ॥ २ ॥  
 स नः स्तवान् आ भेर रयि चिन्धवस्तमम् ।  
 निरेके चिद् यो हरिवो वसुदेदिः ॥ ३ ॥  
 आ निरेकमुत म्रिय—मिन्द्र क्षिं जनानाम् ।  
 घृपता घृष्णो स्तवमान् आ भेर ॥ ४ ॥  
 न ते सुध्यं न वक्षिणं हस्तं वरन्त आसुरः ।  
 न परिवार्यो हरिवो गर्वयिषु ॥ ५ ॥  
 आ त्वा गोमिरिष प्रजं गीर्मिर्ऋणोम्यद्रिवः ।  
 आ स्मा कामं जरितुरा मनः पूण ॥ ६ ॥  
 विश्वानि विश्वमनसो धिया नो वृत्रहन्तम् ।  
 उग्रं प्रणेत्तपिषू पू वसो गहि ॥ ७ ॥  
 घयं ते अस्य वृन्हन् विषामं शूर नव्यसः ।  
 वसोः स्पर्हस्यं पुरुहन्त राधसः ॥ ८ ॥  
 इन्द्र यथा शस्ति ते उपरीतं नृतो शर्वः ।  
 अमृक्ता रातिः पुरुहन्त वाशुयै ॥ ९ ॥  
 आ धृपम्ब महामह महे नृत्तम् राधसे ।  
 हृह्वहश्चिद् दहा मघधन् मघस्ये ॥ १० ॥  
 नू अन्यत्रा चिदद्रिव—स्त्वर्गो जन्मुपरासः ।  
 मघधन्मृगिष तघ तघं कुतिभिः ॥ ११ ॥  
 नृह्यङ्ग नृतो त्व—द्वयं विन्दामि राधसे ।  
 राये घृष्णाय शर्वसे च गिर्वणः ॥ १२ ॥  
 पन्मुमिन्द्राय सिञ्चत पिवाति सोम्यं मधु ।  
 प्र राधसा चोदपाते महित्वना ॥ १३ ॥  
 उपो हरीणां पतिं दक्षं पुञ्चन्तमव्रवम् ।  
 नूनं भुधि स्तुवतो व्यस्यस्य ॥ १४ ॥  
 नृह्यङ्ग पूरा च न जज्ञे वीरतंस्तुवत् ।  
 नकी राया नैवया न मन्दना ॥ १५ ॥

पद्म मध्वो मदन्तरं सिञ्च वाग्धव्यो अन्यसः ।  
 एवा हि वीरः स्तवते सदावृधः ॥ १६ ॥  
 इन्द्रं स्यातहरीणां नकिष्टे पृथ्वस्तुतिम् ।  
 उदानंश शर्वसा न मन्दना ॥ १७ ॥  
 तं वो वाजानां पति—महमहि श्रवस्ययः ।  
 अग्रायुमिर्गोभिर्वावृधेन्यम् ॥ १८ ॥  
 एतो निवृद्धं स्तवामं सखायः स्तोम्यं नरम् ।  
 कृष्टीयो विश्वा अभ्यस्त्येक इत् ॥ १९ ॥  
 अगौरुधाय गविषं घृष्णाय दस्यं वधः ।  
 घृताव स्वादीयो मधुनश्च वोचत ॥ २० ॥  
 यस्यार्मितानि वीर्यां न राधः पर्येतये ।  
 ज्योतिर्न विश्वमभ्यस्ति वक्षिणा ॥ २१ ॥  
 स्तुहीन्द्रं व्यश्वच—दन्ममं वाजिनं यमम् ।  
 अयो गयं महमानं चि दाशयै ॥ २२ ॥  
 एवा नूनमुपं स्तुहि वैयंश्च दशमं नवम् ।  
 सुयिदांसं वृहत्यै वरणीनाम् ॥ २३ ॥  
 वेत्या हि निश्चैतीनां वरहस्त परिपूजम् ।  
 अहरहः शुन्युः परिपदांमिव ॥ २४ ॥  
 तदिन्द्राव आ भेर येनां दंसिष्ट कृत्येन ।  
 द्विता कुरताय शिक्षयो नि चौदय ॥ २५ ॥  
 तमु त्वा नूनमीमहे नव्यं दंसिष्ट सन्यसे ।  
 स त्वं नो विश्वा अमितातीः सुक्षणिः ॥ २६ ॥  
 य ऋक्षाद्वंशो मुचद् यो धार्यात् सप्त सिन्धुषु ।  
 वर्धदासस्यं नुविनृम्ण नीनमः ॥ २७ ॥  
 ॥ १६० ॥ (अ० ८।१४।१-२०; २१-३१, ३३)  
 वयोऽदम्यः । गायत्री, १ पादोनेवृत्; ५ षड्वृ, ७ वृहती,  
 ८ अष्टवृ, ९ सप्तवृहती, ११-१२ विपरीतोत्तरः प्रगायः  
 (वृहती, विपरीता), १३ द्विपदा अगती, १४ वृहती  
 पिपीलिक्रम्या, १५ कष्टम्यकुशिरा, १६ विराट्, १७ अगती,  
 १८ उपरीष्टाद् वृहती, १९ वृहती, २० विपमपदा वृहती,  
 ३० द्विपदा विराट्, ३१ सगिहः ।  
 त्वावतः पुरुवसो व्यमिन्द्र प्रणेताः ।  
 सति स्यातहरीणाम् ॥ १ ॥  
 (१८१७)

त्वां हि सत्यमद्रिचो विप्र दातारमिषाम् ।  
 विप्र दातारं रयीणाम् ॥ २ ॥  
 वा यस्य ते महिमानं शतमृते शतक्रतो ।  
 गीर्मिर्गुणान्ति कारयः ॥ ३ ॥  
 सुनीयो वा स मय्यो यं मरतो यमयमा ।  
 मित्रः पान्त्यद्रुहः ॥ ४ ॥  
 दधानो गोमदभ्ययन् सुवीर्यमादित्यजुत एधते ।  
 सदा राया पुरस्पृहा ॥ ५ ॥  
 तमिन्द्रं दानमीमहे शयसानमभीधम् ।  
 ईशानं राय ईमहे ॥ ६ ॥  
 तस्मिन् हि सन्त्युतयो विश्वा अभीरवः सचा ।  
 तमा यदहन् सप्तयः पुरुषसुं ॥ ७ ॥  
 मदाय हरयः सुतम् यस्ते मदो वरेण्यो य ईन्द्र धृत्रहन्तमः ।  
 य आददिः स्वर्गुनिमिः यः पृतनासु दुष्टरः ॥ ८ ॥  
 यो दुष्टरो विश्ववार ध्रुवाय्यो वाजेप्यस्ति तदृता ।  
 स नः शशिष्ठ सज्जना यतो गदि ॥ ९ ॥  
 गुमेम गोमति मजे गुन्यो पु णो यथा पुरा ऽभ्यपोत रथया ।  
 परिपुस्य महामद ॥ १० ॥  
 मुदि ते शर वधुतो अन्तं विन्दामि सत्रा ।  
 इन्द्राभ्या नो मघयम् विदद्रिचो ॥ ११ ॥  
 धियो वाजैभिराविश य ऋष्यः धावयत्नरा ॥ १२ ॥  
 पिश्वे न र्वदं जनिमा पुनपुतः ।  
 ते पिश्वे मारुणा युगा ॥ १३ ॥  
 इन्द्रं हपन्ते तपिरं वृत्ररुषः ॥ १४ ॥  
 स नो वाजैप्यविता पुरुषसुः पुरःश्रुता मयवा वृत्रदा भुषम् ॥ १५ ॥  
 अग्निं वो वीर्यमर्धतो मर्देषु गाय गिरा मृदा विनैकतम ।  
 इन्द्रं माम् धुव्यं शक्तिने यथा यथा ॥ १६ ॥

ददी रेक्णस्तन्यै ददिवसुं  
 ददिवजैषु पुरुहूत वाजिनम् । नूनमर्थ ॥ १५ ॥  
 विश्वेणामिष्यन्तं वसुनां  
 सासहान्तं चिदस्य वर्षसः ।  
 रूपयतो नूनमत्यर्थ ॥ १६ ॥  
 मृदः सु वो अरमिषे स्तवामहे  
 मीळहुषे अरगमाय जग्मये ।  
 यज्ञेर्मिर्गीर्मिष्वमर्जुनां मरुतां  
 इयशसि गायै त्वा नमसा गिरा ॥ १७ ॥  
 ये पातयन्ते अजमभिः गिरीणां स्तुमिरेषाम् ।  
 युञ्जं मृद्विष्वणीनां सुञ्जं तुविष्वणीनां प्राश्चरे ॥ १८ ॥  
 प्रमङ्गं दुर्मतीनां - मिन्द्रं शशिष्ठा भर ।  
 रयिमसभ्यं युज्यं चोदयन्मते  
 ज्येष्ठं चोदयन्मते ॥ १९ ॥  
 सनिनः सुसनिनद्यत्र चित्र चेतिष्ठ सूरुत ।  
 प्रासहो सत्राद् सहृदि सहन्तं  
 मुज्यं वाजेषु पूर्वम् ॥ २० ॥  
 अर्धं प्रियमिषिराय पृष्टिं सहस्रासनम् ।  
 अभ्यानामित्र वृष्णाम् ॥ २१ ॥  
 गायो न युधमुप यन्ति यधय  
 उप मा यन्ति यधयः ॥ २२ ॥  
 मघ यशरथे गुणे इतमुष्टं अचिक्रदह ।  
 अध भिद्येषु यिषति श्रुता ॥ २३ ॥  
 अध स्या योपेणा मृदी प्रतीची यशमस्यम् ।  
 अर्धदन्ता वि नीयते ॥ २४ ॥

॥ १६१ ॥ ( अ० ६।१०।१-१५ )

बाह्यस्थो मरदात्र । शिष्टपुः १५ शिषरा शिष्टपु ।

पिपा सोममग्नि यमुम तद्वै  
 ऊर्यं गव्यं मर्दि शृणान ईन्द्र ।  
 वि यो वृष्णो वधिरोग यजदस्त  
 विश्वा वृत्रममित्रिया शवोमिः ॥ १ ॥

स ई पाहि य ऋजीपी तरुणे  
यः शिप्रवान् वृषभो यो मर्तानाम् ।  
यो गौत्रमिद् वज्रभृद् यो हरिष्ठाः  
स इन्द्र वित्रो अमि रुचिश्च वाजान् ॥ २ ॥  
एवा पाहि प्रलया मन्दतु त्वा  
भुधि ब्रह्म वायुधस्योत गीभिः ।  
आधिः सूर्यं कृणुहि पीपिहीपौ  
जहि शर्वरमि गा इन्द्र रुचिश्च ॥ ३ ॥  
ते त्वा मवा बृहदिन्द्र स्वधाव  
इमे पीता उक्षयन्त घुमन्तम् ।  
महामर्ननं तपसं विभूति-  
मत्सरासौ जह्वन्त प्रसाहम् ॥ ४ ॥  
येभिः सूर्यमुपसं मन्दसानो  
अवास्योऽपं हळहानि वद्वत् ।  
महामर्दि परि गा इन्द्र सन्त  
नृत्या अच्युतं स्रद्धसुखि स्यात् ॥ ५ ॥  
तव क्रत्या तप तद् दैतनाभिः  
आमासु पुनर्व शच्या नि दीधः ।  
आणोर्दुर उभियाभ्यो वि हळह  
उदुर्वाद् गा अचजो अङ्गिरस्यान् ॥ ६ ॥  
पुमाय क्षां महि दंसो व्युर्धो  
उप धामुषो बृहदिन्द्र स्तमायः ।  
अधोरयो रोदसी देवपुत्रे  
प्रले मातरा यक्षी ऋतस्य ॥ ७ ॥  
अध त्वा विध्वं पुर इन्द्र देवाः  
एकं तवसं दधिरे भराय ।  
अर्देयो यदभ्योर्हिष्ट देवान्  
स्वर्पाता वृणत इन्द्रमत्र ॥ ८ ॥  
अथ द्यौधित् ते अप सा नु वज्राद्  
द्वितानमद् नियसा स्वस्य मन्योः ।  
अहि यदिन्द्रो अभ्योर्हसानं  
नि सिद् विश्वापुः शयथे जघान ॥ ९ ॥

अथ त्वष्टा ते मह उग्र वज्रं  
सहस्रभृष्टं ववृतच्छताश्रिम् ।  
निकाममरमणसं येन  
नवन्तमहि सं पिणगृजीपिन् ॥ १० ॥  
वर्धन् यं विध्वं मरुतः सजोपाः  
पर्वच्छतं मष्टिपां इन्द्र तुभ्यम् ।  
पुषा विष्णुस्त्रीणि सरांसि धावन्  
वृत्रहर्णं मद्रिमंशमस्मै ॥ ११ ॥  
आ क्षोद्रो महि वृतं नदीनां  
परिष्ठितमचज अमिमपाम् ।  
तासामनु प्रवत इन्द्र पन्थो  
मार्दयो नीचीरपसं समुद्रम् ॥ १२ ॥  
एवा ता विभ्वा चक्रुर्वासमिन्द्र  
महामुग्रमजुर्यं सहोदाम् ।  
सुवीरं त्वा स्वायुधं सुवज्रं  
आ ब्रह्म नव्यमवसे ववृत्यात् ॥ १३ ॥  
स नो वाजय्य ध्रुवस इये च  
राये धेहि घुमन्त इन्द्र विप्रान् ।  
मृच्छाजि नवत इन्द्र सूरान्  
दिवि च स्नेधि पापे न इन्द्र ॥ १४ ॥  
अया वाजं देवहितं सनेम  
मर्देम शतहिमाः सुवीराः ॥ १५ ॥  
॥ १६० ॥ (अ० ६।१८।१-१८)  
तसु पुहि यो अभिमृत्योज  
वृत्रधवातः पुह्रुत इन्द्रः ।  
अपाळदमं सईमाननिः  
गीर्मिर्धं वृषमं वदमन् ॥ ११ ॥  
स घुमः सन्वा मरुतु मुमडा  
नुविज्जो मन्दनो ऋईपी ।  
बृहद्विष्टवर्धनो नानुपापां  
पक्षः कृशानमवन् महावा

त्वं ह तु त्वदमायो दस्युः  
 परः कृष्टीरवनेरायीष ।  
 अस्ति स्विषु वीर्यं । तत् तं इन्द्र  
 न स्विदस्ति तद्वदुया च वीर्यः ॥ ३ ॥  
 सदिदि तं तुविजातस्य मन्ये  
 सहः सहिष्ठ तुरतस्तुरस्य ।  
 उग्रमुग्रस्य तुरस्तस्तुरयो  
 अग्रस्य रघुतुरो यभूव ॥ ४ ॥  
 तन्नः प्रसं सुत्यमस्तु युष्मे  
 इत्या यद्विचिंलमहिरोभिः ।  
 ह्यग्रच्युतच्युद् दस्मेपर्यन्तं  
 श्रुणोः पुणे नि दुरो अस्य विर्वाः ॥ ५ ॥  
 स हि धीमिहव्यो अस्त्युग्र  
 ईशानरुग्मद्वति घृष्टतयै ।  
 स लोकसाता तनये स यजी  
 रितन्तुसाव्यो अमयत् समस्तु ॥ ६ ॥  
 स मुग्मना जनिम् मातृपाणां  
 अमत्येन नास्नाति प्र संश्रै ।  
 स पुष्टेन स शर्मासोत राया  
 स वीर्येण नृतेमः समौवाः ॥ ७ ॥  
 स यो न मुहं न मिथु जतो भूत्  
 सुमर्तनामा सुमर्ति घुर्नि च ।  
 पूणक् पिष्टुं शर्मरं शृण्णमिष्टः  
 पुंश्च च्यासाय शयसाय नृ चित् ॥ ८ ॥  
 उदायता त्वक्षमा पर्यसा च  
 यत्रदत्याय रयमिन्द्र तिष्ठ ।  
 पिप्य पञ्च दस्तु भा दक्षिणवा  
 धमि प्र मेन्द्र पुष्टदत्र माया ॥ ९ ॥  
 धमिने शृण्वं यनमिन्द्र देही  
 रसो नि धायदनिनं भीमा ।

गम्भीर्यं ऋष्वया यो दुरोज  
 अध्वानयद् दुरिता दम्भयच्च ॥ १० ॥  
 आ सहस्रं पथिमिन्द्र राया  
 तुविद्युम्न तुविवाजैर्मर्याक् । ॥ ३ ॥  
 याहि सूनो सहसो यस्य नू चित्  
 अदेव ईशे पुरुहूत योतीः ॥ ११ ॥  
 प्र तुविद्युम्नस्य स्थविरस्य घृण्वैः  
 विवो ररणो महिमा पृथिव्याः । ॥ ४ ॥  
 नास्य शत्रुर्न प्रतिमानमस्ति  
 न प्रतिष्ठिः पुरुमायस्य सहीः ॥ १२ ॥  
 प्र तत् तं अघा करणं कृतं भूत्  
 कुत्सं यदायुर्मतिथिग्वमसौ ।  
 पुरु सहस्रा नि शिंशा अभि सां  
 उत् त्वैषाणं घृपता निनेथ ॥ १३ ॥  
 अनु त्वाहिजे अथ देव देवा  
 मनु विवै कवितमं कवीनाम् ।  
 करो यत्र यरिषो वाधितार्य  
 दिव्ये जनाय तन्वै शृणानः ॥ १४ ॥  
 अनु चापोपृथिवी तत् त्वो जो  
 अमत्या जिहत् इन्द्र देवाः ।  
 कृष्या रूतनो अरुतं यत् ते अस्ति  
 उक्थं नवीयो जनयस्य यशैः ॥ १५ ॥  
 ॥ १६ ॥ ( अ० १।१९।१-१९ )  
 महौ इन्द्रो नृयदा र्वयमिषा  
 उन द्विर्हो अमिनः सहोमिः ।  
 अस्मदांवायुधे वीर्याय  
 उदः पूयुः सुरुतः वरुमिभूत् ॥ १ ॥  
 इन्द्रमेव धियणां सातये धात्  
 बृहर्तृमृष्यमजरं युवानम् ।  
 अर्वाब्देन शर्यसा दाशुयांसं  
 स्रष्टमिद् यो योयुधे अस्तामि ॥ २ ॥



पृथु करस्त्रा बहुला गर्भस्तीः ।  
 अस्मभ्युक् स मिमीहि श्रवांसि ।  
 युयेवं पृथ्वः पशुया दम्नना  
 अस्मां इन्द्राभ्या धृतस्त्राजो ॥ ३ ॥  
 त च इन्द्रं चतिर्नमस्य शार्कैः  
 इह नूनं वाज्रयन्तो हुवेम ।  
 यथा चित् पूर्वं जरितारं आसुः  
 अनेद्या अनघद्या आरंष्टाः ॥ ४ ॥  
 धृतमती धनदाः सोमयुद्धः  
 स हि ग्रामस्य घर्तुन पुरुषु ।  
 स जग्मिरे पृथ्वा रायौ असिन्  
 समुद्रे न सिन्धुवो यादमानाः ॥ ५ ॥  
 शर्विष्ठ न आ भर शूर शवः  
 भोजिष्टमोजो अमिभूत उग्रम् ।  
 विश्वा युक्ता वृण्णा मातृपाणां  
 अस्मभ्यं दा हरिवो माद्रयर्ध्वं ॥ ६ ॥  
 यस्तै मर्दः पृतनापादमृष्ट  
 इन्द्र तं न आ भर शशुवांसम् ।  
 येन लोकस्य तनयस्य सातौ  
 मैलीमहि जिगीवांसुस्त्योताः ॥ ७ ॥  
 आ नो भर वृषणं शुष्ममिन्द्र  
 धनस्पृष्टं शशुवांसं सुदक्षम् ।  
 येन वंसाम पृतनासु शत्रून्  
 तपोतिमिरुत जामीरजामीन् ॥ ८ ॥  
 आ ते शुष्मो वृषम रतु पश्चात्  
 उत्तरादधरादा पुरस्तात् ।  
 आ विद्यतो अमि समेत्यवाङ्  
 इन्द्रं युञ्जं स्वर्गदेहासे ॥ ९ ॥  
 नृघत् त इन्द्र नृत्तमामिहूती  
 वंसीमहि ग्राम श्रोमतेभिः ।

इष्टे हि चरुं उमयस्य राजन्  
 घा रत्नं महि स्थर बृहन्तम् ॥ १० ॥  
 मरुत्वंतं वृषमं वावृधानं  
 अर्कवारि दिव्यं शासामिन्द्रम् ।  
 विश्वासाहमवसे नूतनाय  
 उग्रं संहोदामिह तं हुवेम ॥ ११ ॥  
 जनं यजिन् महि चिन्मन्त्र्यमानं  
 प्रभ्यो नृभ्यो रन्धया येष्वसि ।  
 अथा हि त्वा पृथिव्यां शूरसातौ  
 हवीमहे तनये गोष्वप्सु ॥ १२ ॥  
 घयं तं पमि पुरुहूत स्रष्टैः  
 शत्रोः शत्रोरुत्तर इव स्याम ।  
 प्रन्तो वृत्राण्युमर्यानि शूर  
 शया मदेम बृहता त्योता ॥ १३ ॥  
 ॥ १४ ॥ ( अ० १।०।१-१३ ) त्रिष्टुप्, ७ त्रिराट् ।  
 यौर्न य इन्द्रमि भूमार्यः  
 तस्यौ रयि शर्वसा पुरुषु जनान् ।  
 तं नः सहस्रमरमुर्वपासां  
 वृद्धि र्वनो सहस्रो वृत्रतुरम् ॥ १ ॥  
 द्विवो न तुभ्यमन्विन्द्र स्रत्रा  
 असुर्यं देवेर्मिर्घायि विद्वम् ।  
 अहि यद् वृत्रमपो धंष्टिघांसं  
 हृज्जोषिन् विष्णुना सञ्चान ॥ २ ॥  
 त्वंभोजीयान् तवसुस्तवीयान्  
 वृत्रहोन्द्रो वृत्रमहा ।  
 राजामघमर्चुनः सोम्यस्य  
 विद्वासां यत् पुरां दत्तुमावत् ॥ ३ ॥  
 शतैरपद्रन् पण्यं इन्द्रान्  
 दशौणये कवयेऽर्कसातौ ।  
 वृचैः शुष्मस्याशुर्पस्य मायाः  
 पित्वो नारिरेवीत् किं चान म ॥ ४ ॥

महो बृहो अपे विदमारु धायि  
 वज्रस्य यत् पतने पादि शुष्णः ।  
 उरु ॥ सरस्य सारथये कः  
 इन्द्र. कुत्साय सूर्यस्य सार्ता  
 प्र द्येनो न मंदिरमनुमस्मै  
 शिरो दासस्य नमुचेमथायन ।  
 प्रायजमो साप्य ससन्त  
 पुणध्राया समिया सं स्वस्ति  
 वि पिप्रोर्वाहिमायस्य इच्छाः  
 पुरो वज्रिन्म न ददः ।  
 सुदामन् तद् रेणो अभ्रमुष्यं  
 ऋजिदने दात्रं दाशपै दाः  
 स घेतुस दशमाय दशोमि  
 नृतुजिमिन्द्रः स्वमिष्टिसुन्न ।  
 आ तुप्रं दादुदिम चोतनाय  
 मातुर्न सीमुप वृजा इयधै  
 स ई स्पृधो घनेतु अप्रतीतो  
 विभ्रद् यज्ञं वृषहण गर्मस्तौ ।  
 तिप्रदरो अभ्यन्तैव गते  
 यचोयुजो घहत् इन्द्रमूषम्  
 मुनेम तेऽयमा नर्य इन्द्र  
 प्र पुर्यं स्तान्त एना यज्ञः ।  
 एत यत् पुरः शर्म शारदीदत्  
 दत्त दामी. पुत्रकृपाय शिर्धन  
 ग्य वृष इन्द्र पुष्यो भू.  
 वरिष्यद्वर्धनं वाप्याय ।  
 परा नर्योम्यमनदेयं  
 मदे त्रिरे ददायु म्यं नपांगम्  
 त्व धुनिग्दु धुनिमती.  
 अजोप मरा न र्यर्ग्याः ।

प्र यत् समुद्रमार्ति शूर पापि  
 पारया तुवंशं यदु स्वस्ति  
 तर्ज ह स्वादिन्द्र विष्वमाजौ  
 ॥ ५ ॥ सस्तो धुनीचुमुपि या ह सिध्वप ।  
 दीदयदित तुभ्यं सोमैभिः सुन्वन्  
 दूमीर्तिरिष्मभृतिः पुन्ययुक्तः  
 ॥ १३ ॥  
 ॥ १६५ ॥ ( अ० ६।११।१-८, १०, ११ )  
 ॥ ६ ॥ इमा उं त्वा पुरुतमस्य कातोः  
 हय्यं धीर हय्या हवन्ते ।  
 धियो रथेष्मामजरं नवीयो  
 रथिर्विभृतिरीयते वक्षस्या  
 ॥ ११ ॥  
 ॥ ७ ॥ तमु स्तुप इन्द्रं यो विदानी  
 गिर्वाहसं गीर्भिर्यद्वृद्धम् ।  
 यस्य दिवमार्ति मन्ना पृथिन्या.  
 पुंरुमायस्य रिदिचे मद्रित्वम्  
 ॥ २ ॥  
 ॥ ८ ॥ स इत् तमोऽवयुन ततन्वत्  
 सूर्येण वयुर्नवचकार ।  
 कदा ते मतीं अमृतस्य धाम  
 इयक्षन्तो न मिनन्ति स्वधावः  
 ॥ ३ ॥  
 ॥ ९ ॥ यस्ता वकार स इह स्वदिन्द्रः  
 कमा जने चरति कामु विभु ।  
 कस्ते यज्ञो मनसे शं यरोय  
 को अर्ज इन्द्र वतमः स होतो  
 ॥ ४ ॥  
 ॥ १० ॥ इदा हि ते वेरिपतः पुराजाः  
 प्रजासं आसुः पुंरुत् सखायः ।  
 ये मध्यमासं उत नृतनास  
 उतायमस्यं पुरुषत बोधि  
 ॥ ५ ॥  
 ॥ ११ ॥ ते पृच्छन्तोऽयरासः पराणि  
 प्रजा तं इन्द्र धृत्यानु येमुः ।  
 अर्चोमसि योर प्रप्रयाहो  
 यादेय विप्र तात् स्यां मदान्मम्  
 ॥ ६ ॥

अभि त्वा पाजो रक्षसो वि तस्थे  
महि जज्ञानमभि तव सु तिष्ठ ।

तव प्रलेन युज्येन सख्या  
वज्रेण धृणो अप ता नुदस्व

स तु ध्रुधीन्द्र नूतनस्य  
ब्रह्मण्यतो वीर कारुघायः ।

त्वं ह्याङ्गुपिः प्रदिवि पितृणां  
शश्वद् वभूय सुहृष पटौ

इम उ त्वा पुरुषाक प्रयज्यो  
जरितारो अभ्यर्चन्त्यकैः ।

ध्रुधी हवमा हुवतो हुयानो  
न त्वावी अन्यो अमृत त्वदस्ति

स नो योधि पुरपता सुगेषु  
उत दुर्गेषु पथिरुद् विद्वानः ।

ये अग्रमास उरयो वहिष्ठाः  
तेभिर्न इन्द्राभि वक्षि वाजम्

॥ १६६ ॥ ( अ० ६।१०।१-११ )

य एक इन्द्रव्यर्चपणीनां  
इन्द्रं तं गीर्मिर्भ्यर्थ आभिः ।

यः पत्यते वृषमो धृण्यावान्  
सत्यः सत्वा पुरुषायः सहस्रान्

तमु नः पूर्वं पितरो नवगवाः  
सुत विमोसो अभि वाजयन्तः ।

नक्षत्रां ततुर्नि पथेष्टां  
अद्रोववाचं मतिभिः शर्विष्ठम्

तमीमह इन्द्रमस्य रायः  
पुरुवीरस्य नूततः पुरुक्षोः ।

यो अस्फुधोयुरजरः स्वर्वान्  
तमा भर हरियो माद्रयर्थं

तत्रो वि वीचो यदि ते पुरा चित्  
जरितार आनशुः सुम्नामिन्द्र ।

कस्ते भागः किं वयौ दुध खिहः  
पुरहृत पुरुषसोऽसुरघ्नः

तं पृच्छन्ती वज्रहस्तं रथेष्टां  
इन्द्र वेपी वसवरी यस्य नू गीः ।

तुविग्रामं तुविकुर्मि रमोदां  
गातुमिरे नक्षेने तुघ्नमच्छ

अया ह त्वं मायया वावृधानं  
मनोजुवां स्वतवः पर्वतेन ।

अच्युता चिद् यीळिता स्वौजो  
रुजो वि हळहा धृपता विरादिन्

तं वो धिया नव्यस्या शर्विष्ठं  
प्रत्न प्रत्नवत् परितस्यभ्यै ।

स नो वक्षदनिमानः सुवह्य  
इन्द्रो विभ्रान्यति दुर्गहाणि

आ जनाय दुहृणे पार्थिवानि  
दिव्यानि दीपयौऽतरिक्षा ।

तपो वृषन् विभ्रतः शोचिषा तान्  
प्रह्लादिये शोचय क्षामपर्व

भुवो जनस्य दिव्यस्य राज्ञा  
पार्थिवस्य जगतस्त्वेपसंहक ।

धिष्य वज्रं वक्षिण इन्द्र हस्ते  
विभ्रो अजुयं दयसे वि मायाः

आ संयतमिन्द्र णः स्वास्ति  
शत्रुतूयाय बृहतीममृधाम् ।

यया दासान्यायाणि वृत्रा  
करो वज्रिन् सुतका नाहुपाणि

स नो नियुजिः पुरुहृत वेधो  
विभ्रवाराभिरा गहि प्रयज्यो ।

न या अद्रोवो वरते न देव  
आमिर्याहि नृयमा मद्रयाद्रिक्

॥ ४ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ १० ॥

॥ १२ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १० ॥

॥ ११ ॥

(१९१७)

॥ १६७ ॥ (अ० ६।१३।१-१०)

सुते इत् त्वं निर्मिश्र इन्द्र सोमे  
स्तोमे ब्रह्मणि शस्यमानं उच्यते ।

यद् वा युक्ताभ्यां मघवन् हरिभ्यां  
विभुद् वज्रं बाह्वोरिन्द्र यासि ॥ १ ॥

यद् वा द्विवि पायं सुधिमिन्द्र  
बृत्रहन्त्येऽर्वांसि शूरसाता ।

यद् वा दक्षस्य विभ्रयुषो अर्धेभ्युद्  
अरन्धयः शर्धत इन्द्र दस्यून् ॥ २ ॥

पातां सुतमिन्द्रो अस्तु सोमै  
प्रणेनीदृशो जितितारमुती ।

कर्ता वीरपु सुध्वय उ लोकं  
दाता वसु स्तुयते कीरये चित् ॥ ३ ॥

गन्तेयान्ति सर्वान् हरिभ्यां  
वृत्रिर्वज्रं पृषिः सोमं ददिर्गाः ।

कर्ता वीर नयं सर्ववीरं  
धोता हव्यं गृणतः स्तोमवाहाः ॥ ४ ॥

असौ वयं यद् वायान तद् विविष्म  
इन्द्राय यो नः प्रदिवो अपस्कः ।

सुते सोमै स्तुमसि दांसदुक्थ  
इन्द्राय प्रह्य वर्धनं ययासव् ॥ ५ ॥

ब्रह्मणि हि चक्षुषे यथैतानि  
तापव् त इन्द्र मतिमिर्विविष्मः ।

सुते सोमै सुतपाः शंतेमानि  
रात्र्यां प्रियास्म यक्ष्णानि यद्वैः ॥ ६ ॥

स नो योषि पुषेऽब्दांशं रराणः  
पिषा तु सोमं गोर्ध्रजीकमिन्द्र ।

पदं वृद्धिर्यजमानस्य सीद  
उरं हृषि त्वापत उं ग्लोत्रम् ॥ ७ ॥

म मन्दस्या ह्यनु जोर्यमुग्र  
म त्वां यज्ञासं इमे अंशुपन्तु ।

प्रेमे हवांसः पुण्ड्रतमस्ते

आ त्वेयं धीरवंस इन्द्र यभ्याः ॥ ८ ॥

तं वः सपायः सं यथा सुतेषु  
सोमैभिरीं पृणता भोजमिन्द्रम् ।

कुवित् तस्मा असति नो भराय  
न सुधिमिन्द्रोऽर्वांसि मृधाति ॥ ९ ॥

पवेदिन्द्रः सुते अस्तावि सोमै  
मृच्छजिषु क्षयदिग्मघोनः ।

असद् यथा जरित्र उत सूरिः  
इन्द्रो सुयो विश्ववोरस्य दाता ॥ १० ॥

॥ १६८ ॥ (अ० ६।१४।१-१०)

वृषा मद इन्द्रे श्लोकं उन्ध्या  
सच्चा सोमेषु सुतपा ऋजोषी ।

अर्वांस्यो मघवा नृभ्य उन्धैः  
शुक्षो राजा गिरामक्षितोतिः ॥ १ ॥

ततुरिर्वीर्ये नयो विचैताः  
धोता हव्यं गृणत उन्धैः ।

वसुः शंसो नरां कुरुधाया  
वाजी स्तुतो विदधे दाति याजम् ॥ २ ॥

अक्षो न चक्रयोः शर वृहन्  
प्र ते मद्वा रिरिखे रोदस्योः ।

वृक्षस्य तु ते पुरहृत् वया  
व्युत्सवो रुरुहृदि पूर्वीः ॥ ३ ॥

शचीवतस्ते पुरशाक शक्ता  
गवांमिव क्षुतयः सुचरणीः ।

वत्सानां न ततयस्त इन्द्र  
दामन्वन्तो अदामानः सुदामन् ॥ ४ ॥

अन्यदृच कर्वरमन्यदु भ्यो  
असंघ सन्मुहुंराचमिन्द्रः ।

मिश्रो नो अग्र घरेणश्च पूषा  
अयो वशस्य पयैतास्ति ॥ ५ ॥

धि त्वदापो न पर्वतस्य पृष्ठाद्  
उपयेमिर्निष्ठानयन्त यज्ञैः ।  
तं त्वामिः सुप्रतिभिर्वाजयंत  
आजि न जम्मुर्निर्वाहो अग्नाः  
न यं जरति शरदो न मासा  
न घ्राव इन्द्रमवकुर्वयति ।  
बृहस्पतिं चिद् धर्षतामस्य तनूः  
स्तोमैर्मिहृदयैश्च शन्यमाना  
न वीर्ये नर्मते न स्थिराय  
न शर्धते दस्युज्जाय स्तुवान् ।  
अज्ञा इन्द्रस्य गिरयश्चिदृषा  
गम्भीरे चिद् भजति गाधर्मसै  
गम्भीरेण न उरुणा मद्रिन्  
प्रेपो रन्धि सुतपात्रन् वाजान् ।  
स्या ऊ पु ऊर्जं कुती अरिपण्यन्  
अकोर्युष्टौ परितस्मयायाम्  
सचस्य नायमर्षे अमीकै  
इतो वा तमिन्द्र पाहि रिपेः ।  
अमा चैनमर्षये पाहि रिपो  
मदैम शतहिमाः सुग्रीवाः

॥ १६९ ॥ ( अ० ६।१०।१-९ )

या तं कुतिरवमा या परमा  
या मध्यमेन्द्र शुम्भिनास्ति ।  
तामिरु पु वृन्हर्त्येऽधीर्न  
पमिश्च वाजैर्महान् न उग्र  
आमिः स्पृष्टो मिथतीतरिपण्यन्  
अमित्रस्य व्यथया मन्युमिन्द्र ।  
आमिर्विश्वा अभियुजो निर्वृचीः  
आयीय विशोऽर्चं तारीर्दसीः  
इन्द्रं जामयं उत येऽजामयो  
अवासीनासो वनुषो युयुजे ।

त्वमेपां त्रियुरा शर्वांसि  
जहि वृष्ण्यानि रुष्णाही परावचः  
शरौ वा शरै वनते शरीरैः  
तनुरुचा तरुणि यत् वृष्यते ।  
तोके वा गोषु तर्नये यदन्तु  
पि नन्दसी उर्वरासु व्रते  
नहि त्या शरो न तुरो न घृष्णुः  
न त्वा योथो मर्यमानो युयोधं ।  
इन्द्र नरिष्टा प्रत्यस्तये  
विश्वा ज्ञातान्यभ्यसि तानि  
स पत्यत उभयौर्नृणामयोः  
यदी वेचसः समिये हवन्ते ।  
वृत्रे वा महो नृचति अये वा  
यचस्वन्ता यदि वितन्तुसैतं  
अघे सा ते चर्पणयो यवेजान्  
इन्द्रं नातोत मवा वहुता ।  
असाकासो ये नृतमासो अयं  
इन्द्रं सुरयो दधिरे पुरो नः  
अनु ते दायि मह इन्द्रियार्य  
सत्रा ते विश्वमनु वृन्हर्त्ये ।  
अनु क्षनमनु सहो यजत्र  
इन्द्रं देवेभिरनु ते नृपहो  
एवा नः स्पृन् सर्मजा समस्तु  
इन्द्रं शस्त्रि मिथतीरदेवीः ।  
विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तौ  
मरुद्वाजा उत तं इन्द्रं नुनम्

॥ १७० ॥ ( अ० ६।१०।१-८ )

शुची न इन्द्रं हयामसि त्वा  
महो वाजस्य सातौ वावृणायाः ।  
सं यद् विशोऽर्चन्तु शरसाता  
उग्रं नोऽवः पार्ये अहन् दा

आ यस्मिन् हस्ते नयीं मिमिक्षुः ॥ १ ॥  
 आ रथे हिरण्यये रथेष्ठाः ॥ २ ॥  
 आ रथमयो गर्भस्थोः स्वरयोः ॥ ३ ॥  
 आद्यन्त्रभासो वृषणो युजानां ॥ ४ ॥  
 श्रिये ते पादा दुव आ मिमिक्षुः ॥ ५ ॥  
 धृष्णुर्वज्रो शर्वसा दक्षिणावान् ॥ ६ ॥  
 यसानो अर्कं सुरभि दशे कं ॥ ७ ॥  
 स्वर्णं नृतविपरो बभूव ॥ ८ ॥  
 स सोम आर्मिश्रतमः सुतो भूद् ॥ ९ ॥  
 यस्मिन् पकिः पच्यते सन्ति धानाः ॥ १० ॥  
 इन्द्रं नरोः स्तुवन्तो ब्रह्मकायः ॥ ११ ॥  
 उन्मथा शंसन्तो देवर्षाततमाः ॥ १२ ॥  
 न ते अन्तः शर्वसो धाव्यस्य ॥ १३ ॥  
 वि तु र्वायधे रोदसी महित्वा ॥ १४ ॥  
 आ ता सूरिः पूषति तृतुजानो ॥ १५ ॥  
 पुयेवाप्सु समीजमान ऊती ॥ १६ ॥  
 एवेदिन्द्रः सुहव ऊष्यो अस्तु ॥ १७ ॥  
 ऊती अनृती हिरिदिप्रः सत्या ॥ १८ ॥  
 एवा हि जातो अस्मात्प्राजाः ॥ १९ ॥  
 पुरु च वृत्रा हनति नि दस्युन् ॥ २० ॥

॥ १७३ ॥ ( अ० ६।३०।१-५ )

भूय इद् वावृथे वीर्याय ॥ १ ॥  
 एकौ, अजुयो वयते वसन्ति ।  
 प्र रिरिखे दिव इन्द्रः पृथिव्या  
 अर्धमिदस्य प्रति रोदसी उमे ॥ १ ॥  
 अथा मन्ये बृहदसुर्यमस्य  
 यानि दाधार नकिरा मिनाति ।  
 दिवेदिवे सूर्यो दर्शतो भूद्  
 वि सप्तान्युर्विया सुकतुधौत् ॥ २ ॥  
 अथा चित्र चित् तदपो, नदीनां  
 यदाभ्यो अरदो गातुमिन्द्र ।

नि पर्वता अद्यसदो न सेंटुः  
 त्वया इच्छानि सुकतो रजांसि ॥ ३ ॥  
 सत्यमित् तन्न त्वायां अन्यो अस्ति  
 इन्द्र देवो न मत्स्यो ज्यायान् ।  
 अहन्नहिं परिशर्यानमणो  
 अवांसुजो अपो अच्छा समुद्रम् ॥ ४ ॥  
 त्वमपो वि दुरो विपूचीः  
 इन्द्र इच्छमरुजः पर्वतस्य ।  
 राजामघो जगत्शर्याणानां  
 साकं सूर्ये जनयन् धामुपासम् ॥ ५ ॥  
 ॥ १७४ ॥ ( अ० ६।३७।१-५ )

अर्वाप्रयं विश्ववारं त उग्र  
 इन्द्र युक्तासो हरयो वहन्तु ।  
 कीरिश्चिदि त्वा हवते स्वर्धान् ॥ १ ॥  
 ऋशीमहिं सधमार्दस्ते अथ  
 प्रो द्रोणे हरयः कर्माग्नन्  
 पुतानासु ऋज्यन्तो अभूवन् ।  
 इन्द्रो नो अस्य पुन्यः पपीयाद्  
 वृक्षो मरुदस्य सोम्यस्य राजा ॥ २ ॥  
 आसन्नाणासः शवसानमच्छ  
 इन्द्र सुचक्रे रथ्यासो अथाः ।  
 अमि अथ ऋज्यन्तो वहेयुः  
 न विभु वायोरमृतं वि वस्येद् ॥ ३ ॥  
 वरिष्ठो अस्य दक्षिणामित्यति  
 इन्द्रो मघोर्ना तुविकुर्मितमः ।  
 यया वज्रिवः परियास्यंहो  
 मघा च धृष्णो दयसे वि सुरीन् ॥ ४ ॥  
 इन्द्रो वाजस्य स्वविरस्य दाता  
 इन्द्रो गीर्मिर्वर्षता वृद्धमहाः ।  
 इन्द्रो वृन् हनिष्ठो अस्तु सत्या  
 आ ता सूरिः पूषति तृतुजानः ॥ ५ ॥

॥ १७५ ॥ ( ऋ० ६।३८।१-५ )  
अर्पादित उडु नश्चिप्रतमो  
मर्हो मर्पद् घुमतीमिन्द्रहतिम् ।  
पन्थमो धीनि दैत्यस्य यामन्  
जर्नम्य रातिं वनते सुदातुः  
दृष्टादिदा वमतो अस्य कर्णा  
घोषादिन्द्रस्य तन्यति मृगाणः ।  
पयमेनं देवहतिवृत्त्याव  
मृग्युगिन्द्रमियमृच्यमाना  
ते यो धिया परमया पुपुजां  
अत्रमिन्द्रमभ्यनृप्यदः ।  
अर्पा च गिरौ दधिरे समस्मिन्  
मर्होश्च न्नामो अर्धि वधेदिन्द्रै  
पर्षाद् यं युज उत सोम इन्द्र  
पर्षाद् अत्र गिर उक्था च मर्म ।  
पर्षादेनमुपगो यामेन्नोः  
पर्षान् माताः द्वातो धाव इन्द्रम्  
पृथा ज्ञान मर्हमे अतामि  
वायुधानं राधने च धुताय ।  
महामुपमर्षमे विप्र नूनं  
आ विपानेम वृत्रनरैषु  
॥ १७६ ॥ ( ऋ० ६।१९।१-५ )  
मृद्रस्य वधेदिन्द्रस्य पट्टः  
विप्रममनो वरुनस्य मर्ष ।  
अर्पा नृमर्षं वरुनस्य देव  
इयो वृषस्य गृणो गोमर्षोः  
धपमृत्तान पर्वेदिन्द्रस्य  
अनर्धीनिनिश्रुतमुपज्ञान ।  
इन्द्रस्य वि वृणस्य वार्त्तु  
पुनर्वधोनिश्रुतिं दैविन्द्रः  
अव दैवदत्तमो व्युक्नु  
दुष्टा वाने दानु इन्द्रस्य ।

इमं केतुमदधुनू चिद्विद्वां  
शुचिजन्मन उपसंश्चकार ॥ ३ ॥  
अयं रौचयद्रुचौ रुचानोऽ  
अयं वांसयद् व्युत्तेन पूर्वीः ।  
॥ १ ॥ अयमीयत ऋतुयुगिन्द्रैः ।  
स्वविदा नाभिना चर्पणिप्राः ॥ ४ ॥  
नू शृणानो शृणते प्रल राजन्  
इपः पिन्व वसुदेयाय पूर्वीः ।  
॥ २ ॥ अप ओषधीरविषा यनानि  
गा अर्वतो नृनुचले रिरीदि ॥ ५ ॥  
॥ १७७ ॥ ( ऋ० ६।१०।१-५ )  
इन्द्र पित्र तुभ्य सुतो मन्वाय  
॥ ३ ॥ अर्व स्य हरी वि मुचा सर्पाया ।  
उत प्र गाय गृण आ निपद्य  
अथा यहायं गृणते वयो धाः ॥ १ ॥  
अस्य पित्र यस्य ज्ञान इन्द्र  
मन्वाय प्रत्ये अर्पियो विरणिन् ।  
तमु ते गावो नर आपो अग्निः  
इन्दुं समहान पीतये समसै ॥ २ ॥  
समिजे अहो सुत इन्द्र सोम  
॥ ५ ॥ आ त्वा वहन्तु हरयो वरिष्ठाः ।  
स्यायता मनेसा जोहयीमि  
इन्द्रा यादि सुवितार्य महे नः ॥ ३ ॥  
आ यादि शर्भदुज्ञाता रवाय  
॥ १ ॥ इन्द्र महा मनसा गोमर्षेयम् ।  
उप प्रह्माणि दृणय इमा नः  
अथा मे यज्जस्येऽ वयो धात्  
॥ ४ ॥ वदिन्द्र शिष पापे यरधुम्  
॥ २ ॥ यद् वा स्वे मर्षे यत्र वामि ।  
अर्पो नो यज्जमर्षे त्रिपुषान्  
मृजोयोः पादि गिर्वनो मृग्निः ॥ ५ ॥

॥ १७८ ॥ ( अ० ६।११-५ )

अहैल्लमान उष याहि युञ्ज  
तुभ्यै पवन्त इन्द्रवः सुतासः ।  
गाथो न वञ्जिन्स्वमोको अच्छ  
इन्द्रा गहि प्रथमो युधियांनाम् ॥ १ ॥  
या तै काकुत् सुहता या वरिष्ठा  
यया शश्वत् पिबसि मय्य ऊर्मिम् ।  
तया पाहि प्र तै अघ्यरुरस्थात्  
सं ते वज्रो वर्ततामिन्द्र गुण्युः ॥ २ ॥  
एष द्रुप्तो वृषभो विश्वरूप  
इन्द्राय वृष्णे समकृति सोमः ।  
एतं पिब हरिवः स्यात्तदम्  
यस्येदिपि प्रविचि यस्ते अघ्नम् ॥ ३ ॥  
सुतः सोमो असुतादिन्द्र वस्यान्  
अयं धेयाञ्चिकितुषे रणाय ।  
एतं तितिवि उष याहि युञ्ज  
तेन विश्वास्तविपीरा पूणस्व ॥ ४ ॥  
ह्यपांसि त्येन्द्र याह्यर्वाह  
अदं ते सोमस्तन्यं भयाति ।  
शतक्रतो मादयस्वा सुतेषु  
मासाँ अय घृतनासु प्र विश्व ॥ ५ ॥

॥ १७९ ॥ ( अ० ६।११-४ ) अनुष्टुप्, ४ गृही ।

प्रलस्मि पिपीपते विश्वानि सिदुषे भर ।  
अरामाय जगम्ये उपधाह्यने नरे ॥ १ ॥  
एमेनं प्रत्येतन सोमेभिः सोमपातमम् ।  
अमशेमश्रुजीविणमिन्द्रं सुतेमिरिन्दुमिः ॥ २ ॥  
यदी सुतेमिरिन्दुमिः सोमेभिः प्रतिमूरय ।  
येदा विश्वस्य मेपितो घृपत् तत्तमिदेपते ॥ ३ ॥  
असाभस्मा इन्द्रसो अघ्यो अ मय सुतम् ।  
कृषित संमस्य जग्यस्य शर्पतो  
अभिदास्तेत्यस्पर्त् ॥ ४ ॥

॥ १८० ॥ ( अ० ६।११-४ ) रागम् ।

यस्य त्यन्तम्यरं मदे दिवोदासाय रन्धयः ।  
अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ १ ॥  
यस्य तीव्रसुतं मदं मध्यमन्तं च रक्षसे ।  
अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ २ ॥  
यस्य गा अन्तरदमनो मदे हल्हा अगार्जजः ।  
अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ ३ ॥  
यस्य मन्दानो अगर्धसो मार्चानं दधिपे शरः ।  
अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ ४ ॥

॥ १८१ ॥ ( अ० ६।११-५ )

सुहोत्रो भारद्वाज । विण्डुप्, ४ शकरी ।

अमुरेको रयिपते रयीणां  
आ हस्तयोरधिथा इन्द्र कृषीः ।  
वि तोके अप्सु तनये च सुरे  
अयोचन्त चर्पणयो विवाचः ॥ १ ॥  
त्वद्भियेन्द्र पार्थिवानि विश्वा  
अच्युता चिच्छयाययन्ते रजसि ।  
यायाक्षामा पर्यतासो वनानि  
विभ्यं हल्हं मयते अमृन्ना तं ॥ २ ॥  
त्वं कुत्सेनामि शार्णामिन्द्र  
अशुषं युज्य कुर्यवं गाविष्ठा ।  
ददो प्रपित्वे अप्सु सूर्यस्य  
मुपायक्षप्रमविद्ये रपांसि ॥ ३ ॥  
त्वं शतान्यव शार्ग्यरस्य  
पुते जघन्याप्रतीति दस्योः ।  
अशिसो यत्र शार्ग्या शचीवो  
दिवोदामाय सुन्वते सुतये  
अरदाजाय गृणते वर्मनि ॥ ४ ॥  
स मत्यसत्त्वन् महते रणाप  
रथमा तितं तुविन्दुम्ण भीमम् ।  
याहि प्रपयिन्नलोपं मद्रिक्  
प्र च धृत आयय चर्पणिम्यः ॥ ५ ॥



॥ १८१ ॥ (श्रु० ६।३।१-१)

अपूर्व्या पुस्तमान्यस्यै  
 मदे वीराय तवसे तुराय ।  
 विरिञ्चिने वञ्जिणे शतमानि  
 वञ्चास्यासा स्थविराय तक्षम्  
 स मातरा सूर्येणा कवीनां  
 अवांसयद् रुजदग्निं गृणानः ।  
 स्वाधीभिर्ऋकभिर्वायशान  
 उडुस्त्रियाणामसृजन्निदानम्  
 स बह्विभिर्ऋकभिर्वाय शश्वन्  
 मितह्वभिः पुरुकृत्वा जिगाय ।  
 पुरः पुरोहा सखिभिः सखीयन्  
 हृल्लाहा ररोज कृधिभिः कृविः सन्  
 स नीग्याभिर्जितारमचञ्जो  
 महो वाजैर्भिर्महर्द्धिश्च शुभैः ।  
 पुरवीराभिर्वृषभ क्षितीनां  
 आ गिर्यणः सुविताय प्र याहि  
 स सर्गेण शयसा तक्तो अर्यैः  
 अप इन्द्रो दक्षिणतस्तुरायाद् ।  
 इत्या सृजाना अनेपायुदर्थे  
 दिवेदिवे विविपुष्टमृष्यम्

॥ १८२ ॥ (श्रु० ६।३।२-५)

छनहोत्रो माद्राजः । निष्पृ ।

य योजिष्ठ इन्द्र तं सु नौ द्रा  
 मदै वृषगस्त्वमिष्टिदास्यान् ।  
 सौधदस्य यो वनयत् स्वध्वो  
 वृथा समत्सु सामहदमिजान्  
 त्वां होन्द्रावसे विवाञ्चो  
 हर्षन्ते चरणयः शारसानौ ।  
 त्वं विप्रैर्मिषिं पृणीरंशायः  
 त्वोत् इत् मरिता याजमवी  
 त्व नौ इन्द्रोमयीं अभिज्ञान्  
 दाता वृथाण्यायी च शूर ।

यधीर्यनेय सुधितेभिरक्तैः

आ पुस्तु दीपि नृणां नृतम ॥ ३ ॥  
 स त्वं न इन्द्राक्याभिरुतो  
 सन्ना विश्वायुरविता वृधे भूः ।  
 ॥ १ ॥ स्वर्पाता यदध्ययामसि त्वा  
 युध्यन्तो नेमधिता, पुस्तु शूर  
 नूनं न इन्द्रापरय, स्व स्वा  
 भवा मृलीक उते नौ अभिष्टौ ।  
 ॥ २ ॥ इत्या गुणन्तो महिनस्य शर्मन्  
 दिवि प्याम् पायै गोपतमाः ॥ ५ ॥

॥ १८३ ॥ (श्रु० ६।३।२-५)

॥ ३ ॥ सं च त्वे जग्मुर्गिर इन्द्र पूर्वीः  
 वि च त्वद् यन्ति विन्धो मनीषाः ।  
 पुरा नूनं च स्तुतय ऋषीणां  
 पस्पृध इन्द्रे अध्ययामकां ॥ १ ॥  
 ॥ ४ ॥ पुरुहूतो यः पुङ्गुर्त ऋध्वौ  
 एकः पुरुप्रशस्तो अस्ति युधौ  
 श्यो न महे शर्वसे यजानो  
 अस्माभिरिन्द्रो अनुमायो भूत् ॥ २ ॥  
 ॥ ५ ॥ न ये हिंसन्ति धीतयो न वाणीः  
 इन्द्रं न हन्तान्द्वि वर्धयन्तीः ।  
 यदि स्तोतारः शतं यत् सुहर्षं  
 गुणन्ति गिर्यणसं शः तदसौ  
 अस्मा पतद् दिव्यैर्ध्व मासा  
 मिमिक्ष इन्द्रे न्ययामि सोमः ।  
 ॥ १ ॥ जने न घन्वन्नभि सं यदापः  
 सत्रा वावृधुर्ध्वनानि युधैः ॥ ४ ॥  
 अस्मा पतन्महाङ्गुपमस्मा  
 ॥ २ ॥ इन्द्राय स्तोत्रं मतिभिरवाचि ।  
 असद् यथा मदति वृष्टय  
 इन्द्रो विश्वायुरविता वृधश्च ॥ ५ ॥

ऋतस्य पथि वेधा अपायि  
 धिये मनीसि देवासो अरुन् ।  
 दधानो नाम महो यचोभिः  
 वपुर्दृष्टये वेन्यो व्यावः  
 धुमस्तमं दक्षं धेहसे  
 सेधा जनानां पृथीररातीः ।  
 वर्षीयो वयः कृणुहि शचीभिः  
 धनस्य सातावसां अविहि  
 इन्द्र तुभ्यस्मिन्ववन्नम  
 वयं दात्रे हरियो मा वि धेनः ।  
 नर्किरापिर्दृष्टो मर्त्यत्रा  
 किमुह रघुचोदेन त्वाहुः  
 मा जस्वने वृषम नो ररीथा  
 मा ते रेततः सृप्ये रिपाम ।  
 पूर्वीष्ट इन्द्र निषिधो जनैषु  
 जहासुष्यीन् प्र वृहापुणतः  
 उदध्राणीय स्तनयभियतिं  
 इन्द्रो राधांस्यध्वानि गज्यां ।  
 त्यमनि प्रदिवः कारुधाया  
 मा त्वाद्वामान आ दमन् मुघोनः  
 अर्षयो धीर प्र महे सुतानां  
 इन्द्राय मरु स हस्य राजां ।  
 यः पृथ्यामिगत नृतनाभिः  
 गीर्मिपीपुधे गृणतामृषीणाम्  
 अस्य मेदै पुन वर्षीभि पिदान्  
 इन्द्रो पुत्रार्ण्यप्रती जघान ।  
 तमु प्र हौषि मधुमन्तमम्भे  
 गोमै धीराय शिप्रिणे पिपयै  
 पातां नृतमिन्द्रो अरुन् सोमं  
 इन्द्रो वृत्र यज्ञेण मग्दमानः ।  
 गन्तां पुनं पंगवर्गद्विदृष्टा  
 वराधीनामपिता कारुधायाः

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १० ॥

॥ ११ ॥

॥ १२ ॥

॥ १३ ॥

॥ १४ ॥

॥ १५ ॥

इद त्यत् पात्रमिन्द्रपानं  
 इन्द्रस्य प्रियममृतमपायि ।  
 मत्सद् यथा सौमनसाय देवं  
 व्यसद् द्वेषो युयवद् व्यहः  
 एना मैदानो जहि शूर शत्रून्  
 जामिमजामि मघवन्नमित्रान् ।  
 अभिपेणो अभ्यादेर्दिशानान्  
 पराच इन्द्र प्र मृणा जही च  
 आसु प्मा णो मघवन्निद्र पृत्सु  
 अस्मभ्यं महि वरिवः सुगं कः ।  
 अपां तोकस्य तनयस्य जेष  
 इन्द्रं सुरीन् कृणुहि सां नो अधम्  
 आ त्वा हरयो वृषणो युजानां  
 वृषरथासो वृषरश्मयोऽत्याः ।  
 अस्मन्नाजो वृषणो वज्रयाहो  
 वृष्णे मदाय सुयुजो बहन्तु  
 आ ते वृषन् वृषणो द्रोणमस्थुः  
 घृतमुपो नोर्मयो मदन्तः ।  
 इन्द्र प्र तुभ्यं वृषभिः सुतानां  
 वृष्णे भरन्ति वृषभाय सोमम्  
 वृषासि दिवो वृषमः पृथिव्या  
 वृषा सिन्धूनां वृषभः स्तिर्यानाम् ।  
 वृष्णे त इन्द्रवृषम पीपाय  
 स्वाद् रसो मधुपेयो वराय  
 अयं देव सहसा जार्यमान  
 इन्द्रेण युजा पुणिमस्तमायत् ।  
 अयं स्वस्य पितुरार्युधानि  
 इन्द्रमुष्णादशीयस्य मायाः  
 अयमकृणोदुपसं सुपतीः  
 अयं सूर्ये अदधाज्योतिर्नृतः ।  
 अयं त्रिधानुं दिवि रौचनेषु  
 त्रितेषु विन्द्वमृतं निर्गच्छम्

॥ १६ ॥

॥ १७ ॥

॥ १८ ॥

॥ १९ ॥

॥ २० ॥

॥ २१ ॥

॥ २२ ॥

॥ २३ ॥

(१०५८)

अयं चावापृथिवी विष्कमायत्  
अयं रथमयुनक् समरंदिमम् ।  
अयं गोपु शच्यां पृक्मन्तः  
सोमो दाधार दशयन्त्रमुत्तम् ॥ २४ ॥  
॥ १८८ ॥ ( ऋ० ६।४५।१-३० ) गायत्रो, २९ अंतिमिच्छुः ।  
य आनेयत् परावत्तः सुनीती तुर्यंशं यदुम् ।  
इन्द्रः स नो युवा सखा ॥ १ ॥  
अविमे चिद्वयं दधे—दनाशुनां चिद्वयं ।  
इन्द्रो जेता हितं धनम् ॥ २ ॥  
महीरस्य प्रणीतयः पूर्वोक्त प्रशस्तयः ।  
नास्य क्षीयन्त क्रतयः ॥ ३ ॥  
सखायो ब्रह्मवाहसे ऽर्चत प्र च गायत ।  
स हि नः प्रमर्तिर्मही ॥ ४ ॥  
त्वमेकस्य धृप्रह—प्रविता द्वयोरसि ।  
उतेददो यथा वयम् ॥ ५ ॥  
नयसीद्वति द्विपः कुणोप्युक्थशांसिनः ।  
मृमिः सुवीर उच्चसे ॥ ६ ॥  
ब्रह्माणं ब्रह्मवाहसे गीमिः सखायमृमियम् ।  
गां न दोहसे ह्वे ॥ ७ ॥  
यस्य विश्वानि हस्तयो—रुचुर्वसुनि नि हिता ।  
वीरस्य पृतनापहः ॥ ८ ॥  
वि इच्छानि चिद्विद्वो जनानां शवीपते ।  
बुध माया अनानत ॥ ९ ॥  
तमुं त्वा सत्य सोमया इन्द्रं वाजानां पते ।  
अहमहि श्रवत्यवः ॥ १० ॥  
तमुं त्वा यः पुरासिय यो वां नूनं हिते धने ।  
हव्यः स श्रुधी हवम् ॥ ११ ॥  
धीमिरर्वेद्विरयतो वाजो इन्द्र अवाय्यान् ।  
त्वया जेष्म हितं धनम् ॥ १२ ॥  
अमूक वीर गिर्वणो महा इन्द्र धने हिते ।  
भरे दितन्तसाय्यः ॥ १३ ॥

या तं क्रतिरभिब्रह्म मसूजवस्तमासति ।  
तया नो हिनुही रथम् ॥ १४ ॥  
स रथेन रथीतमो ऽस्माकैनाभियुग्वना ।  
जेपि जिष्णो हितं धनम् ॥ १५ ॥  
य एक इत् तमुं पुहि कृषीनां विचर्षणिः ।  
पतिर्जहे वृषक्रतुः ॥ १६ ॥  
यो गृणतामिदासिंथा—ऽऽपि कृती शिवः सखा ।  
स त्वं न इन्द्र मृळय ॥ १७ ॥  
धिष्व यज्ञं गमेस्त्यो रभोहत्याय वज्रिवः ।  
सासहीष्ठा अभि स्पृथः ॥ १८ ॥  
प्रलं रयीणां युजं सखायं कीरिचोदनम् ।  
ब्रह्मवाहस्तमं ह्वे ॥ १९ ॥  
स हि विश्वानि पार्थिवा एको वर्सनि पत्यते ।  
गिर्वणस्तमो आग्निगुः ॥ २० ॥  
स नो नियुजिरा पूण कामं वार्जेभिरुश्वभिः ।  
गोमर्द्भिर्गोपते ध्रुवत् ॥ २१ ॥  
तद् वो गाय सुते सखा पुरुहुताय सवने ।  
शं यद् गवे न शाकिनै ॥ २२ ॥  
न या वसुनि यमते वानं वार्जस्य गोमंतः ।  
यत् सोमपु भवद् गिरः ॥ २३ ॥  
कुवित्तस्य प्र हि मजं गोमन्तं वस्युहा गमेत् ।  
शर्वाभिरप नो वरत् ॥ २४ ॥  
इमा उं त्वा शतक्रतो ऽभि प्र णोलुधुगिरः ।  
इन्द्र वत्सं न मातरः ॥ २५ ॥  
दुणाशं सत्यं तव गौरसि वीर गव्यते ।  
अश्वो अश्वायते भव ॥ २६ ॥  
स मन्दस्वा हान्यलो राधसे तन्वां महे ।  
न स्तोतारं निदे करः ॥ २७ ॥  
इमा उं त्वा सुतेसुते नक्षन्ते गिर्वणो गिरः  
वत्सं गावो न धेनवः ॥ २८ ॥

पुरुषं पुरुषां स्तोत्रिणां विवाचि ।

वाजैर्भिर्वाजयताम् ॥ २९ ॥

अस्माकमिन्द्र भूत ते स्तोमो वाहिष्ठो अन्तमः ।

अस्मान् राये महे हिनु ॥ ३० ॥

॥ १८९ ॥ (ऋ० ६।४६।१-१४)

प्रणय (= विषया वृद्धी, सभा सतीवृद्धी) ।

त्यामिद्विद्वद्वाग्देहा साता वाजस्य कारवः ।

त्यां वृधेधिन्द्र सत्पति नरः

त्यां काष्ठास्वयतः ॥ १ ॥

स त्वं नक्षिन्न वज्रहस्त धृष्ण्या

महः स्तवानो अद्रिव ।

गामभ्य रथ्यमिन्द्र सं किं

सना वाजं न जिग्युषे ॥ २ ॥

य सन्नाहा धिर्वर्षणि इन्द्र तं हूमहे वयम् ।

सहस्रमुष्कं तुर्विन्नुष्णं सत्पते

मया समस्तं नो वृधे ॥ ३ ॥

वाधसे जनान् वृषमेजं मनुना

वृषां मीळह ऋचीपम ।

अस्माकं योध्यविता महाघने तनूष्वप्सु सूर्ये ॥ ४ ॥

इन्द्र ज्येष्ठं न आ मरं ओजिष्ठं पपुर्णि अर्य ।

येनेमे चित्र वज्रहस्त रोदसी

ओमे तुदिप्र प्रा ॥ ५ ॥

रामुप्रमर्षये चर्षणीमहं राजन् देवेषु हूमहे ।

त्रिभ्या सु नो त्रिभ्या पिद्विना वसो

अभिप्रान्सुपदान् रुधि ॥ ६ ॥

पदिन्द्र नाहुषिष्ठां ओजो नृष्णं च वृष्टिषु ।

यद् वा पञ्च शितीनां घृष्टमा मर

सन्ना विभ्यानि याम्या ॥ ७ ॥

यद् वा तृप्ता मघयन् दृष्टाया जने

यत् पुरा वध पुष्पयम् ।

अमग्ध नद् रिगिति सं नृपाते

अभिप्रान् पुरा तुर्षणे ॥ ८ ॥

इन्द्र विधातुं शरणं त्रिवर्क्यं स्वस्तिमत् । १ ।

छुदिर्येच्छ मघवद्गवश्च महो च । २ ।

यावयां दिद्युर्मयः । ३ ।

ये गव्यता मनसा शत्रुमादभुः । ४ ।

अभिप्रान्ति धृष्ण्या । ५ ।

अथ स्मा नो मघवन्निन्द्र गिर्वण । ६ ।

तनुपा अन्तमो भव । ७ ।

अथ स्मा नो वृधे भव इन्द्र नायमवा वृधि । ८ ।

यदन्तरिक्षे पृथग्यन्ति पर्णिनो । ९ ।

विधर्वस्तिममूर्धानः । १० ।

यत्र शूरसस्तुर्वो वितन्वते । ११ ।

प्रिया शर्म पितृणाम् । १२ ।

अथ स्मा यच्छ तन्वे तने च छुदिः । १३ ।

अचित्तं यावय द्वेप । १४ ।

यदिन्द्र सगं अर्यतः चोदयासे महाघने । १५ ।

असमने अर्ष्वणि वृजिने पृथि । १६ ।

इयेनो इय भवस्यतः । १७ ।

सिन्धूरिव प्रवण आशुया यतो । १८ ।

यदि होशमनु प्वणि । १९ ।

आ ये वयो न वर्यतुत्यामिपि । २० ।

गृभीता बाहोर्गवि । २१ ।

॥ १९० ॥ (ऋ० ६।४७।१-१९, २१)

गणो भारद्वाजः । त्रिष्टुः १९ वृद्धी । २१

धूपत् पिब कलशे सोममिन्द्र

वृष्ट्वा शूर समरे वर्यनाम् ।

माथ्यदिने सर्वन् आ वपस्व । १ ।

रयिम्यानो रयिमस्मान् धेदि । २ ।

इन्द्र प्र णः पुरप्तेव पश्य । ३ ।

प्र नो नय प्रतरं वस्यो अच्छे । ४ ।

मवां सुपाते अतिपात्यो नो । ५ ।

अया सुनीतिद्यन् वामनीतिः । ६ ।

(११०१)

उरं नो लोकमनु नेपि विद्वान्  
स्वर्विज्योतिरमयं स्वस्ति ।  
ऋष्या त इन्द्र सविरेस्य ब्राह्म  
उप स्वेयाम दारणा बृहन्ता  
वशिष्ठे न इन्द्र यन्तुरे घा  
यहिष्ठयोः शतावन्नभ्ययोरा ।  
इयमा वंशीपां वरिष्ठान्  
मा नस्तारीन्मयश्च रायौ अयः  
इन्द्रं मुञ्च महीं जेवातुमिच्छ  
ओदय धियमयस्तो न घातम् ।  
यत् किं ब्राह्म त्वापुरिदं वदामि  
तज्जुपस्य कृधि मा देवयन्तम्  
ज्ञातामिन्द्रमवितारामिन्द्रं  
हर्षेहवे सुहृदं शरमिन्द्रम् ।  
इयामि शकं पुरुषदुतमिन्द्रं  
स्वस्ति नो मयवां ध्याविन्द्रः  
इन्द्रः सुग्रामा स्वर्वा अवैभिः  
सुसुखीको मयवतु विश्वैवदाः ।  
वाघतां देपो अमयं कृणोतु  
सुवीर्यस्य पतयः स्याम  
तस्य वयं सुमनसौ यन्त्रियस्य  
अपि मन्त्रे सौमनसे स्याम ।  
स सुग्रामा स्वर्वा इन्द्रो ब्रह्मे  
आराचिद् देपः सनुतयुयोतु  
अथ त्वे इन्द्र प्रवतो नोमिः  
गिरो वर्याणि नियुतो घवन्ते ।  
उरु न राघ्नः सर्वना पुरुणि  
अपो गा वंजिन् युवसे समिन्द्रम्  
क ई स्तवत् कः पूणात् को यजाते  
यदुग्रमिन्मयवां विश्वद्वैवत् ।  
पादायिष प्रहरश्चन्यमन्यं  
कृणोति पूर्वमपरं शचीभिः

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १० ॥

॥ ११ ॥

॥ १२ ॥

॥ १३ ॥

॥ १४ ॥

॥ १५ ॥

शुण्वे वीर उग्रमुग्रं दमायन्  
अन्यमन्यमतिनेनीयमानः ।  
एधमानद्विलुमयस्य राजा  
चोष्क्यते विश इन्द्रो मनुष्यान् ॥ १६ ॥  
एष पूर्वेषां सप्त्या वृणक्ति  
वितर्तुराणो अपरेमरेति ।  
अनानुभूतीरवधून्वानः  
पूर्वगिन्द्रः शरदस्तर्तरीति ॥ १७ ॥  
रूपं रूपं प्रतिचक्षणाय ।  
तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय ।  
इन्द्रो मायामिः पुरुषं ईयते  
युक्ता हांस्य हरयः शता दृश ॥ १८ ॥  
युजानो हरिता रथे मुरि त्वष्ट्रे राजति ।  
को विश्वाहा डिपुतः पक्ष आस्त  
उतासीनेषु सुरिषु ॥ १९ ॥  
विचेदिदे सहस्रीन्यमर्षं  
कृष्णा मेलघदप सवर्नो जाः ।  
अहन् दासा वृषमो वंस्त्यन्त  
उदग्रजे वृत्तिं शम्बरं च ॥ २१ ॥  
॥ १११ ॥ ( अ० ७।१८।१-२१ ) विभावराणवमिष्टः । मिष्टपू ।  
त्वे ह यत् पितरश्चिन् इन्द्र  
विभ्रा ग्रामा जरितारो अस्तन्व ।  
त्वे गावः सुदुयास्तवे ह्यग्वाः  
॥ १ ॥  
त्वं वसु देवयते वरिष्ठः  
राजेष हि जर्निमिः क्षेप्येय  
अथ युग्मिन्मि विदुष्कविः सन् ।  
पिशा गिरो मयवन् गोमिरवैः  
त्वायतः दिदीहि राये अस्मान् ॥ २ ॥  
इमा उं त्वा पस्पृद्यानामो अयं  
मन्त्रा गिरो देवयन्तीर्य स्युः ।  
अर्धाचीं ते पृथ्या राय वन्  
स्याम ते सुमनार्विन्द्र शमीन्

धेनु न त्वां सुयवसे दुर्दक्षन्  
 उप ब्रह्माणि सख्यजे वसिष्ठः ।  
 त्वामिन्मे गोपतिं विश्वे आह  
 आ न इन्द्रोः सुमतिं गन्धर्वैः  
 वर्णासि चित् पप्रधाना सुदास  
 इन्द्रो गाधान्यरुणोत् सुपास ।  
 शार्धेन्तं शिष्यमुचयस्य नयः  
 शापं सिन्धूनामरणोदशस्तीः  
 पुरोडा इत् तुष्यशो यन्तुरासीद्  
 शये मत्स्यामो निदिता अपीन ।  
 धुष्टिं चन्द्रमूर्धनो दुरावञ्च  
 मत्ता मन्त्रायमतर्द्द चिपूयोः  
 आ पुन्यालो मलयनसो मनन्त  
 अर्तिनामो निगणिनः शिवास्तः ।  
 आ योऽनयन् मधुमा धार्यस्य  
 गज्या वल्गुम्यो अजगन् युधा नृन्  
 दुरगृह्योऽर्द्धिदिति श्रेयवन्तो  
 अनेनमो नि जगृध्रे परंणीम् ।  
 मुद्राविष्यक् पृथिवीं पत्यमानः  
 पुनुर्गिरिशयधायमान  
 इयुर्गं न यर्धं परंणी  
 आनुद्यनेर्दमिषिष्य जंगाम ।  
 सुदास इन्द्रं सुतुषीं अमिश्रान्  
 अरुणयग्नानुर्ध्वं परिक्षयाच,  
 इयुर्गो न यर्धमादगोपा  
 यगावृतमभि मित्र चित्तारः ।  
 पृक्षिगाव् पृक्षिनिर्द्रिताम्  
 धुष्टिं चन्द्रनिपुनो गन्धर्वश्च  
 पर्वं च यो विज्ञाति च धयुष्मा  
 धैर्दुर्ध्मोऽजनात् राजा ग्यह्ने ।  
 दृग्गो न गृह्णन् नि विज्ञाति धुष्टिः  
 १११ गग्गोमहर्षोदिन्द्रं पयाम

अध धृतं कवर्षं वृद्धमप्सु  
 अनुं दुह्यं नि वृण्वज्रवाहुः ।  
 वृणाना अत्रं सरयार्थं सख्यं  
 त्वान्यन्तो ये अमदन्तु त्वा ॥ १२ ॥  
 वि सद्यो विश्वां दंहितान्येषां  
 इन्द्रः पुरः सहसा सप्त ददः ।  
 व्यानवस्य तत्सर्वं गयं भागं  
 जेषां पुरुं विदये मधुवाचम् ॥ १३ ॥  
 नि गज्यवोऽनवो हुहवश्च  
 पृष्टिः शता सुपुपुः पद् सुहस्रो ।  
 पृष्टिर्वीरासो अधि पद् हुवोयु  
 विश्वेदिन्द्रस्य धीर्षी कृतानि ॥ १४ ॥  
 इन्द्रेणैते तत्सर्वो वेदेषाणा  
 आपो न सृष्टा अधवन्तु नीचीः ।  
 दुर्मिनासः प्रकलविस्मिमाना  
 अदुर्विश्वाति भोजना सुदासे ॥ १५ ॥  
 अर्धे धीरस्य शूतपामनिन्द्रं  
 पय शार्धेन्तं ननुदे अभि क्षाम् ।  
 इन्द्रो मन्युं मन्युम्यो मिमाय  
 भेजे पयो वर्तन्ति पत्यमानः ॥ १६ ॥  
 आधेर्ण चित् तद्वेकं चकार  
 सिहो चित् पेत्येना जघान ।  
 अर्धं स्रक्तीवेदयावृद्धविन्द्रः  
 प्रार्थयन् विश्वा भोजना सुदासे ॥ १७ ॥  
 शार्धेन्तो हि शार्धपो रात्रुष्टं  
 अेदम्यं चिच्छर्धेतो विन्तु सन्धिम् ।  
 भर्ता पतः स्तुपतो यः वृणोति  
 निगम तस्मिन् नि जहि पत्रमिन्द्र ॥ १८ ॥  
 भावदिन्द्रं यमुना तत्सर्वद्य  
 शार्धं अेदं सर्वतोना सुपायम् ।  
 यजामद्य शिर्षयो यर्धयद्य  
 धौतं दीर्घोनि जधुरस्यानि ॥ १९ ॥

न ते इन्द्र सुमतयो न रायः  
संचक्षे पूर्वा उपसो न नृत्ताः ।

देवकं चिन्मान्यमानं जघन्था  
अव त्मना बृहत्तः शम्भरं भेत् ॥ २० ॥  
प्र ये गृहादर्ममदुस्त्याया  
पराशरः शतयातुर्वसिष्ठः ।  
न ते भोजस्य सप्यं सृपन्त  
अथा सुरिभ्यः सुदिना व्युच्छान् ॥ २१ ॥  
॥ १९९ ॥ ( अ० ७।१९।१-११ )

यस्तिग्मशृङ्गो वृषभो न भीमः  
एकः कृप्रीद्व्यावपति प्र चिम्बाः ।  
यः शम्भतो अशुशो गयस्य  
प्रयन्तासि सुधितराय वेदः  
त्वं ॥ त्यदिन्द्र कुत्समावः  
शुश्रूषमाणस्तन्वा समये ।  
दासं यच्छृणुं कुर्येवं न्यस्मा  
अर्चन्धय आर्जुनेयाय शिर्षेन्  
त्वं ॥ ण्णो धृपता धीतहव्यं \*  
प्राबो दिग्भामिद्रुतिभिः सुदासम् ।  
प्र पौरकुर्तिष्व अक्षदस्युमावः  
क्षेत्रसाता वृद्धस्येष्टु पुरम्  
त्वं नृमिर्नृमणो देववीतो  
भूरीणि वृत्रा हर्षश्च हंसि ।  
त्वं नि दस्युं जुसुरि धुनि च  
अस्वापयो हभीतये सुहन्तु  
तयं ज्योत्तानि वज्रहस्त तानि  
नव यत् पुरो नयति च सद्यः ।  
निषेदनि शततमाविषेयोः  
अहञ्च वृत्रं नमुचिमुताहन्  
सना ता ते इन्द्र भोजनानि  
सतहव्याय दाशुपे सुदासे ।

वृष्णे ते हरी वृषणा युनज्मि  
व्यन्तु ब्रह्माणि पुरुशाक् धार्जम् ॥ ६ ॥  
मा ते अस्यां सहसावन् परिष्टौ  
अधार्य भूम हरिवः परादै ।  
त्रायस्व नोऽवृकेभिर्वरुथैः  
तवं प्रियासः सुरिषु स्याम ॥ ७ ॥  
प्रियास इत् ते मघवन्नभिष्टौ  
नरो मदेम शरणे सखायः ।  
नि तुर्वशं नि याद्वं शिशोहि  
अतिथिवाय शंस्यं करिष्यन् ॥ ८ ॥  
सद्यश्चिन्तु ते मघवन्नभिष्टौ  
नरः शंसन्त्युक्थशास उक्थया ।  
ये ते हवैर्भिर्वि पूर्णोऽरदाशन् ॥ ९ ॥  
अस्मान् वृणीष्व युज्याय तसं  
पूते स्तोमां नरां नृतम् तुभ्यं  
अस्मद्यञ्जो दवतो मुधानि ।  
तेर्षामिन्द्र वृत्रहव्यं शिवो भूः  
सखा च शर्रोऽविता च नृणाम् ॥ १० ॥  
न इन्द्र शूर स्तवमान ऊती  
ब्रह्मजतस्तन्वा यावृधस्य ।  
उप नो वाजान् मिमीह्यस्व स्तान् ॥ ११ ॥  
युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः  
॥ १९३ ॥ ( अ० ७।१०।१-१० )  
उग्रो जंघे वीर्याय स्वधावान्  
चक्रिणो नयो यत् करिष्यन् ।  
जग्मिषुवा नृपदन्मघोभिः  
त्राता न इन्द्र परसो महश्चित् ॥ १ ॥  
हन्ता वृत्रमिन्द्रः शशुवान्  
प्रावीन्नु वीरो जरितारंमवी ।  
कर्ता सुदासे अह वा उ लोकं  
दाता वसु मुद्गर दाशुपे भूत् ॥ २ ॥

युष्मो अन्तर्या खञ्जकृत समद्वि  
 शूरः सत्रापाद् अनुपेम्पाब्धः ।  
 व्याम् इन्द्रः पृतनाः स्त्रोत्रा  
 अत्रा विश्वे शत्रुयन्तं जयान  
 उमे विदिन्द्रो रोदसी महित्वा  
 आ पंप्राथ तविपीमिस्तुविष्मः ।  
 नि यञ्जमिन्द्रो हरिवान् मिमिक्षन्  
 समन्धमा मदैपु वा उचोच  
 वृषा जज्ञान वृषणं रणाथ  
 तमु विप्रायी नयै ससूच ।  
 प्र यः मैत्रानीरथ नृभ्यो अस्ति  
 इनः सन्धा गुणेषणः स धृष्णुः  
 नू चिन् स धैर्यते जने न रैपन्  
 मनो यो अस्य पौरमाविर्वासात् ।  
 यमय इन्द्रे दधने दुर्वासि  
 क्षयत् स राय ऋतुपा ऋतेजाः  
 यदिन्द्र पूयो अर्पराय शिधुन्  
 अयग्यायान् वनीयसो देण्णम् ।  
 भृगुन् इन् पर्यासीन दूधं  
 आ यिन् चिर्यं भय रयि नः  
 यम्न इन्द्र प्रियो जने ददाद्वा  
 धर्मश्रितेः अद्रियः सन्धा ते ।  
 पूयं ते धर्म्या तुमुता चर्निष्टाः  
 म्याम् वरुणे धर्मो नृपाती  
 एव स्तोमी धर्षिहृद्दृष्टा ते  
 उत स्तामुमेषयन्नपिष्ट ।  
 रायशामी जगिताम् न आगन्  
 रवमत्र शत्रु वर्य धा दांशं नः  
 स ज इन्द्र त्वर्पणाया इमे ध्याः  
 रमतां च ये मपरांशं जगन्मि ।

वस्वी पु ते जहिरे अस्तु शक्तिः  
 युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ १० ॥  
 ॥ १९४ ॥ ( ऋ० ७।२१।१-१० )

॥ ३ ॥ असावि देवं गोर्ध्वजीकमन्धो  
 न्यस्मिन्नित्त्रो अनुपैमुवाच ।  
 योवामसि त्वा हर्यभ्व यज्ञैः  
 योधा नः स्तोममन्धसो मदैपु ॥ १ ॥  
 ॥ ४ ॥ प्र यन्ति यज्ञं विपर्यन्ति यर्हिः  
 सौममादौ विदये दुधवाचः ।  
 न्यु भ्रियन्ते युदासो गृभादा  
 दुरउपन्द्रो वृषणो नृपाचः ॥ २ ॥  
 ॥ ५ ॥ त्वमिन्द्र अर्चित्वा अपस्कः  
 परिष्ठिता महिना शूर पूर्वाः ।  
 त्वद् यावक्के रथ्यो न धेना  
 रेजन्ते विश्वा हृत्रिर्माणि भीपा ॥ ३ ॥  
 ॥ ६ ॥ भीमो विवेपार्यधेभिरयां  
 अपांसि यिभ्या नर्याणि विद्वान् ।  
 इन्द्रः पुरो जहपाणो वि दूधोत्  
 वि यमहस्तो महिना जयान ॥ ४ ॥  
 ॥ ७ ॥ न यातव इन्द्र जञ्जुवर्तो  
 न यंदेना शयिष्ठ वेद्याभिः ।  
 स दाधेदयो धियुणस्य जन्तोः  
 मा शिधदेवा अपि शुभ्रतं नः ॥ ५ ॥  
 ॥ ८ ॥ अभि मत्वेन्द्र मूरध जम्न  
 न ते विष्यद् महिमाने रजांसि ।  
 स्येना हि युथं दार्यमा जयन्  
 न शत्रुगन्ते विविद् युधा ते ॥ ६ ॥  
 ॥ ९ ॥ देवाधित्ते अग्नयोप पूयं  
 अनु धत्राय मांसे सदांसि ।  
 इन्द्रो मृषानि दधते विपरा  
 इन्द्रं याजस्य जोदयन्त मतां ॥ ७ ॥  
 (०१६०)



कीरिश्चिडि त्वामर्षसे जुहाव  
ईशानमिन्द्र सौमर्गस्य भूरैः ।  
अर्धो यमूय शतमृते असे  
अभिधत्तुस्त्वावर्तो वरुता  
सखायस्त इन्द्र विश्वह स्याम  
नमोवृधासो महिना तरुत्र ।  
वन्वन्तु स्मा तेऽधस्ता समीकेऽ  
अभीतिमयो वनुषां शर्वासि  
स न इन्द्र त्वयताया ह्ये धाः  
त्मना च ये मघर्वा नो जुनन्ति ।  
वस्त्री पु ते जरित्रे अस्तु शक्तिः  
युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः  
॥ १२५ ॥ ( ऋ० ७।११।१-९ ) विराट्, ९ मिष्टुप ।  
पिपा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा  
य ते सुपाव हर्षश्वाद्रिः ।  
सोतुर्षाहृम्यां सुयतो नाधौ  
यस्ते मदी युज्यश्वाहुरस्ति  
येन वृत्राणि हर्षश्च हंसि ।  
स त्वामिन्द्र प्रभूवसो ममस्तु  
योधा सु मे मघवन् वाचुमेमां  
यां ते वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिम् ।  
इमा ब्रह्म सध्रमादे जुषस्व  
धुयी हवै विपिपानस्याद्रेः  
योधा विप्रस्यार्चतो मनीषाम् ।  
शुष्या दुर्वास्यन्तमा सवेमा  
न ते गिते अपि मृष्ये तुरस्य  
न सुष्टुतिर्ममुर्यस्य विद्वान् ।  
सदा ते नामं स्वयशो विवन्मि  
मरि दि ते सर्वना मातुपेपु  
मरि मनीषी हवते त्वामित् ।  
मारे असन्मघप्रज्योक् कः

तुभ्येदिमा सर्वना शूर विश्वा  
तुभ्यं ब्रह्माणि वधैना कृणोमि ।  
त्वं नृभिर्हव्यो विश्वर्धासि ॥ ७ ॥  
नू विन्न ते मन्यमानस्य दस  
उदश्रुवन्ति महिमानमुग्र ।  
न वीर्यमिन्द्र ते न राधः ॥ ८ ॥  
ये च पूर्व ऋषयो ये च नृना  
इन्द्र ब्रह्माणि जनयन्त विप्राः ।  
असे ते सन्तु सप्त्या शिवानि  
युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ९ ॥  
॥ ११६ ॥ ( ऋ० ७।१३।१-६ )  
उदु ब्रह्माण्वरत श्रवस्य  
इन्द्र समये महया वसिष्ठ ।  
आ यो विश्वानि शर्वसा तुतान  
उपश्रोता म ईर्यतो वचांसि ॥ १ ॥  
अयामि घोष इन्द्र देवजामिः  
इरज्यन्त यच्छुरुयो विवाचि ।  
नहि स्वमार्यधिकिते जनेषु  
तानीदंहांस्यति पर्ष्यसान् ॥ २ ॥  
युजे रथं गृधेपणं हरिभ्यां  
उप ब्रह्माणि जुजुषामस्युः ।  
वि वाधिपु स्य रोदसी महित्वा  
इन्द्रो वृत्राण्वप्रती जघन्यान् ॥ ३ ॥  
आपश्चित् पिप्युः स्तयोऽ न गायो  
नक्षत्रतं जरितारस्त इन्द्र ।  
यादि वायुर्न नियतो नो अञ्ज  
त्वं हि धीमिर्दयसे वि वाजान् ॥ ४ ॥  
ते त्वा मदी इन्द्र मादयन्तु  
शुष्मिर्ण तुविराधसं जरित्रे ।  
पको देवया दयसे हि मनान्  
असिभृष्टं सर्वने मादयस्व ॥ ५ ॥

एवेदिन्द्रं धृपणं चक्रवाहुं  
वासिष्ठासो अर्धचन्त्यकः ।

स नः स्तुतो वीरवद् धातु गोमद्  
युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः

॥ १९७ ॥ ( अ० ७।२४।१-६ )

योनिष्ट इन्द्र सदेने अकारि  
तमा नृभिः पुरुहत् प्र याहि ।  
अतो यथा नोऽप्रिता वृधे च  
वदो वसुभि ममर्द्ध सोमः  
गुनीत ते मन इन्द्र द्विपदाः  
सुतः सोमः परिपिक्ता मधूनि ।  
विश्वप्रथेना भरते सुयुक्तिः  
इयमिन्द्र जोहृयती मनीषा  
आ नो दिव आ पृथिव्या ऋजीपिन्  
इदं यदिः सोमपेयाय याहि ।

यदेन्तु त्या दरयो मर्याञ्चं  
आहूयमज्जा तुयसं मदाय  
आ नो विभ्यामिहितिभिः सजोषा  
प्रसं जुषाणो हयंभ याहि ।  
परीपृजन् स्वयिरेभिः सुदिम  
धामे वपुद् वृषणं दुष्मभिन्द्र  
एव मोमो मृद उमाय पादं  
धृष्टुपायो न पाजयेन्नपायि ।

इन्द्र त्यायमर्धं इहे वसुनां  
दिधीयं चामधि नः धोमनं थाः  
एवा न इन्द्र पार्यस्य पृथि  
प्र मे मदीं सुमानं वैविदाम ।  
इयं पिन्व मपयंरुधः सुधीर्न  
युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः

॥ १९८ ॥ ( अ० ७।२५।१-६ )

आ नो मृद इन्द्रोत्तमं  
सामंभ्यो वन् समारणं वतना ।

पताति दिद्युन्नयस्य वाहोः

मा ते मनो विष्वद्युग्वि चारीत् ॥ १ ॥

नि दुर्ग इन्द्र अथिहामित्रान्

अभि ये नो मतीसो अमन्ति ।

आरे तं शंसं कणुहि निनित्सोः

आ नो भर संभरणं वसुनाम् ॥ २ ॥

शतं मे शिमिन्नतयः सुदासं

सहस्रं शंसा उत रातिरस्तु ।

जहि वर्धवनुपो मर्त्यस्य

असे युष्ममाधि रत्नं च धेहि ॥ ३ ॥

त्वावर्तो हीन्द्र क्रत्वे अस्मि

त्वावर्तोऽवितुः शूर रातो ।

विभ्वेदहानि तविपीव उग्रं

ओकः कणुष्व हरिषो न मर्षोः ॥ ४ ॥

कुत्सा एते हयंभ्याय शुपं

इन्द्रे सदा देवर्जतमियानाः ।

सुत्रा कृधि सुहनां शूर वृना

युयं तदशः सनुयाम वाजम् ॥ ५ ॥

एवा न इन्द्र पार्यस्य पृथि

प्र ते मदीं सुमानं वैविदाम ।

इयं पिन्व मपयंरुधः सुधीर्न

युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

॥ १९९ ॥ ( अ० ७।२६।१-५ )

न मोम इन्द्रमस्तुतो ममाद्

नाप्रह्माणो मपयानं सुतासः ।

तस्मा उक्थं जनये यजुर्नोपन्

नृपप्रधीयः दृणपद् यथा नः ॥ १ ॥

उक्थउक्थे सोम इन्द्र ममाद्

नीयेनीये मपयानं सुतासः ।

यदीं सुषार्पः पितरं न पुत्राः

समानमृक्षा धयंते हयंभे ॥ २ ॥

चकार ता कृण्वन्नमन्या  
यानि द्रुचन्ति वेधसः सुतेषु ।  
जनीरिव पतिरेकः समानो  
नि मामृजे पुर इन्द्रः सु सर्वोः  
एवा तमाहुरत शृण्व इन्द्र  
एका विमका तरणिर्मयानाम् ।  
मिथस्तुर ऊतयो यस्य पुर्योः  
असे भद्राणि सञ्चत प्रियाणि  
एवा वसिष्ठ इन्द्रमृतये नृन्  
कृष्टीनां वृषमं सुते शृणाति ।  
सहस्रिण उष नो माहि वार्जान्  
युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः

॥ २०० ॥ ( ऋ० ७।१७।१-२ )

इन्द्रं नरो नेमार्धता हवन्ते  
यत् पायी युनर्जते धियुस्ताः ।  
शूरो नृपाता शर्षसञ्चकान  
आ गोमति भृजे भञ्जा त्वं नः  
य इन्द्र शुष्मो मघयन् ते अस्ति  
शिखा सखिभ्यः पुरुहूत नृम्यः ।  
स्य हि हृब्हा मघयन् विचेता  
अपां वृधि परिवृतं न राघः  
इन्द्रो राजा जगत्क्षपणीनां  
अधि क्षमि विपुरुषं यदस्ति ।  
ततो ददाति द्वागुपे वसन्ति  
चोदद् राघ उपस्तुतश्चिद्व्याक्  
नू चिन्न इन्द्रो मघवा सहती  
दानो याजं नि र्यमते न ऊनी ।  
अनूना यस्य दक्षिणा पीपायं  
ग्रामं नृम्यो अभिधीता सखिभ्यः  
नू इन्द्र राघे परिवस्रुधी न  
आ ते मनो यवृत्याम मघायं ।

गोमदग्वाविद् रथवद् व्यन्तो  
युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः

॥ ५ ॥

॥ २०१ ॥ ( ऋ० ७।१८।१-५ )

॥ ३ ॥

ग्रह्या ण इन्द्रोप यादि विद्वान्  
अर्धोऽस्ते हरयः सन्तु युकाः ।  
विश्यं चिदि त्वा विहवन्त मर्ता  
अस्माकमिच्छृणुहि चिद्वामिन्य  
हयं त इन्द्र महिमा ग्यान्ड  
ग्रह्य यत् पालि शयसिधृषणाम् ।  
आ यद् वज्रं दधिपे हस्तं उग्र  
घोरः सन् क्रत्वा जनिष्टा अपाब्धः  
तव प्रणीतीन्द्र जोहुवानान्  
सं यध्नन् न रोदसी निनेर्य ।  
महे क्षत्राय शर्वसे हि जने  
अर्तुजि चित् तर्तुजिरिशभत्  
एभिर्न इन्द्राहमिदं शस्य  
तुर्मिग्रासो हि क्षितयः पर्यन्ते ।  
प्रति यष्टे अनृतमनेना  
अवे द्विता वरुणो मायी नः सात्  
योचेमेदिन्द्रं मघवानमेनं  
महो रायो राघसो यद् ददन्नः ।  
यो अर्चतो ग्रह्यरुतिमविष्टो  
युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः

॥ १ ॥

॥ ४ ॥

॥ २ ॥

॥ ५ ॥

॥ ३ ॥

॥ १ ॥

॥ ४ ॥

॥ २ ॥

॥ ५ ॥

॥ २०२ ॥ ( ऋ० ७।१९।१-५ )

॥ ३ ॥

अयं सोम इन्द्र तुम्यं सुम्य  
आ तु प्र यादि हरिस्तदोकाः ।  
पिवा त्वस्य सुपुतस्य चारोः  
ददो मघानि मघवप्रियानः  
ग्रह्यन् वार ग्रह्यरुति जुवाणो  
अर्धोऽनीनो हविर्भियादि त्वयम् ।  
असिन्नु पु सर्वेन मादयम्य  
उष ग्रह्याणि शृण्व इमा नः

॥ १ ॥

॥ ४ ॥

॥ २ ॥

( २०१८ )

का ते अस्त्यरकृतिः सुक्तैः  
 कदा नूनं ते मघवन् दासोम ।  
 विद्वां मतीरा तंतने त्वाया  
 अघां म इन्द्र शृणुयो ह्वेमा  
 उतो घा ते पुंरुप्या इदासुन्  
 येयां पूर्वेषामशृणोः शृणीणाम् ।  
 अधाहं त्वां मघवजोहवीमि  
 त्वं न इन्द्रासि प्रमतिः पितेर्ष  
 योचमेदिन्द्रं मघवानमेनं  
 महो रायो राधसो यद् ददधः ।  
 यो अचैतो ब्रह्मरुतिमविष्टो  
 युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः  
 ॥ २०३ ॥ ( ऋ० ७।३०।१-५ )

आ नो देव शर्वसा याहि शुष्मिन्  
 मघा धूध इन्द्र रायो अस्य ।  
 महे नृणां नृपते सुयज्ञ  
 महि क्षत्राय पाँस्याय शर  
 हयन्त उ त्वा हव्यं विधाधि  
 तनूषु शूयः सूर्यस्य सातौ ।  
 तं विभ्येषु सेन्यो जनेषु  
 त्वं वृत्राणि रन्धया सुहन्तुं  
 मदा यदिन्द्र सुदिनां ध्युच्छान्  
 दयो यत् वेनुमुपमं समस्तु ।  
 न्युग्मिः सीददसुते न होता  
 दुष्टानो अत्र सुमगाय देवान्  
 युयं ते तं इन्द्र ये च देव  
 स्तयन्त दार ददतो मुत्रानि ।  
 यच्छां गुरिभ्य उपमं यद्वं  
 श्याभुषां जराणामभयन्त  
 योचमेदिन्द्रं मघवानमेनं  
 महो रायो राधसो यद् ददधः ।

यो अचैतो ब्रह्मरुतिमविष्टो  
 युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥  
 ॥ २०४ ॥ ( ऋ० ७।३१।१-१२ ) गायत्री, १०-१२ विराट् ।  
 प्र च इन्द्राय मार्दनं हर्यश्वाय गायत ।  
 सतायः सोमपात्रं ॥ १ ॥  
 शशेदुक्यं सुदानव उत युक्षं यथा नरः ।  
 चक्रमा सत्यराधसे ॥ २ ॥  
 त्वं न इन्द्र वाज्यु-स्त्वं गग्युः शतक्रतो ।  
 त्वं हिरण्ययुर्वसो ॥ ३ ॥  
 ध्यामिन्द्र त्वायवो ऽमि प्र गौत्रमो धृपन् ।  
 विद्वी त्वस्य नो यसो ॥ ४ ॥  
 मा नो निदे च यक्त्वे ऽयों रन्धीरराग्ने ।  
 त्वे अपि क्रतुर्मम ॥ ५ ॥  
 त्वं वमोसि सुप्रयः पुरोयोधश्च वृत्रहन् ।  
 त्वया प्रति ध्रुवे युजा ॥ ६ ॥  
 महो उतासि यस्य ते ऽतुं स्वधावरी सहः ।  
 मन्त्राते इन्द्र रोदसी ॥ ७ ॥  
 त त्वां मकत्वती परि भुवद् वाणीं स्यावरी ।  
 नक्षमाणा सह धुभिः ॥ ८ ॥  
 कुर्यात्सत्यान्विन्द्वो भुयन् वस्समुप धवि ।  
 सं ते नमन्ता कृष्टयः ॥ ९ ॥  
 प्र वो महे महिवृधे भरध्वं  
 प्रचेतसे प्र सुमतिं रुणुध्वम् ।  
 विराः पृथीः प्र चरा चरपणिप्राः ॥ १० ॥  
 उरुव्यचसे मदिने सुवृकि  
 इन्द्राय ब्रह्म जनयन्त विप्राः ।  
 तस्य व्रतानि न मिनन्ति धीराः ॥ ११ ॥  
 इन्द्रं वाणीरुत्तमन्युमेव  
 मन्त्रा राजानं दधिरे सहर्ष्य ।  
 हर्यश्वाय बर्हया सम्रापीन् ॥ १२ ॥  
 ( १११४ )

॥ २०५ ॥ ( अ० ७।११।१-१७ )

२६ पूर्वाष्वस्य षाक्विषिष्ठो वा ( वाच्यायने ब्राह्मणे );

२६-२७ षाक्विषिष्ठो वा ( ताण्डके ब्राह्मणे ) । प्रणयः-

( बृहती, घटोतृहती ), २ द्विपदा विपट् ।

मो पु त्वां याघतश्चन आरे अस्मन्नि रीरमन् ।

आराचाधिव सधमादं न आ गेहि

इह वा सधुपं धुधि

इमे हि तै ब्रह्मकृतः सुते सचा

मधौ न मध्न आसते ।

इन्द्रे कामं जरितारो वसुयधो

रथे न पादमा दधुः

वयस्कामो यज्ञहस्तं सुदक्षिणं

पुत्रो न पितरं हुये

इम इन्द्राय सुन्विरे सोमस्रो दध्याशिरः ।

तौ आ मदाय यज्ञहस्त पीतये

हरिर्म्यां याहोक् आ

अयच्छुक्लर्कं ईयते घर्षनां

नू बिभ्रो मर्धियद् गिरः ।

सुघश्चिद् यः सुहृद्वाणि शला ददन्

नकिर्दित्सन्तुमा मिनत्

स धीरो अग्रतिष्ठत इन्द्रेण शूराये नृभिः ।

यस्ते गभीरा सघनानि धृत्रहन्

सुनोत्या च धार्यति

मवा घर्ष्यं मघवन् मघोनां

यत् सुमजासि शर्धेतः ।

यि त्वाहृतस्य वेदेन भजेमहि

आ दुणाशो मरा गर्भम्

सुनोतो सोमपात्रे सोममिन्द्राय वृजिणे ।

पर्वता पत्नीरवसे छणुष्यमित्

पृणयित् पृणते मयः

मा स्त्रैषत सोमिनो दक्षता महे

रुणुष्यं राय आनुजे ।

तरणिरिजयति क्षेति पुष्यति

न देवासः कषत्तवै

नर्किः सुदासो रथं पर्याप्त न रीरमत् ।

इन्द्रो यस्याविता यस्य मरुतो

गमत् स गोमति वृजे

गमद् वाजै वाजयन्निन्द्र मत्तो

यस्य त्वमविता भुवः ।

अस्माकं बोध्यविता रथानां

अस्माकं शूर नृणाम्

उदिर्न्यस्य रिच्यते अशो धनं न जिगृष्यः ।

य इन्द्रो हरियान् न दमन्ति तं रिपो

द्रक्षं दधाति सोमिनि

मन्त्रमखर्वं सुधितं सुपेशं दधात यज्ञिषेया ।

पूर्वाश्चन प्रसितयस्तारन्ति तं

य इन्द्रे कर्मणा भुवत्

कस्तमिन्द्र त्वावसु—मा मत्तो दधर्गनि ।

श्रद्धा इत् तं मघवन् पायं द्विपि

वाजी वाजै सिपासति

मघोनः स वृत्रहर्त्येषु चोदय

ये ददति मिया वसु ।

तय प्रणीती हर्षभ्य सुरिभिः

विभ्वां तरेम इतिता

तयेदिन्द्रायम वसु त्वं पुष्यसि मध्यमम् ।

सुत्रा विभ्वस्य परमस्य राजसि

नार्कैष्या गोपु वृष्वते

त्वं विभ्वस्य धनदा असि ध्रुतो

य ई मयन्त्याजयः ।

तवायं विप्रवः पुष्कत पार्थिवो

अवस्युनीम मिश्रते

यदिन्द्र यावतम्वं एतावद्दहमीदाय ।

स्त्रोतारमिद् दिधिषेय रदायसो

न पापुत्वार्य रासीय

॥ १८ ॥

(००००)

शिक्षेयमिन्महयुते द्विचैर्विचै

राय आ कुहचिद्विदे ।

नहि त्वदन्यन्मघयन् न आप्यं

वस्यो अस्ति पिता चन

॥ १९ ॥

नरणिस्ति सिषामति चाजं पुरेष्वा युजा ।

आ व इन्द्रं पुरदुतं नमे गिरा

नेमि तपेय सुष्टम्

॥ २० ॥

न कुपुती मल्यो विन्दते यसु

न धेयन्तं रयिर्नैश्व ।

मशकिरिन्मघयन् तुभ्यं मायते

द्वेषो यत् पार्ये दिवि

॥ २१ ॥

अभि त्या शूर नोनुमो अदुग्धा इव धेनयः ।

ईशानमन्य जगतः स्वर्हंशं

ईशानमिन्द्र तत्सुधुः

॥ २२ ॥

न त्यापो अग्न्यो दिव्यो न पार्थिवो

न ज्ञानो न जनिष्यते ।

अदयायनी मघयन्मिन्द्र पाजिनो

गुन्यतन्मया हयामदे

॥ २३ ॥

शरी वतस्तदा मर इन्द्र ज्यायः कनीयसः ।

परुषगर्हि मघयन्तनादमि

भर्तरे न दृश्यः

॥ २४ ॥

परां गुदम्य मघयन्मित्रान्

सुपेदां नो परं शधि ।

अस्माकं बाणयिमा मदाधुने

गवां पृषः परीनाम्

॥ २५ ॥

इन्द्र वर्तु न आ मर गिरा पुत्रेभ्यो यथा ।

मिश्रां णे अस्मिन् पुंरुहन् पार्मनि

जीवा उषोर्नैश्वीमदि

॥ २६ ॥

मा नो धाश्रीना वृजनी दुराध्याः

मार्तवागो मघं वामुः ।

त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपो

अति शूर तरामसि

॥ २७ ॥

॥ २०६ ॥ ( अ० ७।३३।१-९ )

१-९ वसिष्ठपुत्राः इन्द्रो वा । त्रिष्टुप् ।

दिव्यज्ञौ मा दक्षिणतस्कर्पदा

धियजिन्वासौ अमि हि प्रमन्दुः ।

उत्तिष्ठन् वोचे परं वहिषो नृन्

न मे दुराद्वितथे वसिष्ठाः

॥ १ ॥

दुरादिन्द्रमनयज्ञा सुतेर्न

तिरो वैशान्तमति पान्तमुग्रम् ।

पार्श्वस्य वायतस्य सोमात्

सुतादिन्द्रोऽवृणीता वसिष्ठान्

॥ २ ॥

एवेषु कं सिन्धुमेभिस्ततार

एवेषु कं भेदमेभिर्जघान ।

एवेषु कं वाशराणे सुवासं

प्रावदिन्द्रो ब्रह्मणा वो वसिष्ठाः

॥ ३ ॥

जुष्टीं नरो ब्रह्मणा वः पितॄणां

अक्षमव्ययं न किला रिपाय ।

यच्छुक्ररीपु बृहता रथेण

इन्द्रे शुष्ममर्दधाता वसिष्ठाः

॥ ४ ॥

उद् घामिषेत् तूष्णज्ञो नाधितासो

अदीधियुर्दाशरणे घृतासः ।

वसिष्ठस्य स्तुषुत इन्द्रो अभ्रोत्

उरं तृत्सुभ्यो अरुणेदु लोकम्

॥ ५ ॥

दृष्ट्वा इषेद् गोभजनास आसन्

परीच्छिन्ना भरुना अमेकासाः ।

अमयव पुरप्ता वसिष्ठ

आदित् तृत्सुनां पिशो अग्रथन्त

॥ ६ ॥

त्रयः कृण्वन्ति मृषेनेषु रेतः

तिष्ठः प्रजा भार्यां ज्योतीरप्राः ।

त्रयो घमांसं उषसं मयन्ते

नर्या इन् तां अनु विदुर्वसिष्ठाः

॥ ७ ॥

( १०६८ )

सूर्यस्येव वृक्षयो ज्योतिरेषां  
समुद्रस्येव महिमा गभीरः ।  
वातस्येव प्रजयो नान्येन  
स्तोमो वसिष्ठा अन्यैतवे चः ॥ ८ ॥  
त इक्षिण्य हृदयस्य प्रकैतैः  
सहस्रयत्नमभि सं चरन्ति ।  
यमेन तत् परिधिं धरन्तो  
अप्सरस उप सेदुर्धसिष्ठाः ॥ ९ ॥  
॥ १०७ ॥ ( अ० ७।१।१२-८ )  
( प्रसापिनी उपनिषद् ) १-४ उपरिष्ठादुद्गृहीतो, ५ अनुवृत्तः ।  
यदुर्जुन सारमेय वतः पिंशङ्ग यच्छसे ।  
धीय भ्राजन्त श्रुष्टयः  
उप स्रक्तेषु यन्मत्तो नि पु स्वयं ॥ २ ॥  
स्तेन सारमेय तस्करं वा पुनःसर ।  
स्तोतुनिन्द्रस्य रायसि  
किमस्मान् दुच्छुनायसे नि पु स्वयं ॥ ३ ॥  
त्वं स्रकरस्य वदहि तव वदतु स्रकरः ।  
स्तोतुनिन्द्रस्य रायसि  
किमस्मान् दुच्छुनायसे नि पु स्वयं ॥ ४ ॥  
सस्तु माता सस्तु पिता  
सस्तु ध्या सस्तु विद्रपतिः ।  
सस्तु सर्वे ज्ञातयः संस्तुयमभितो जनः ॥ ५ ॥  
य आस्ते यश्च चरति यश्च पश्यति नो जनः ।  
तेषां सं ह्यमो ब्रह्मणि यदेदं दृश्यं तथा ॥ ६ ॥  
सहस्रगच्छो वृषभो यः समुद्रादुवाचरत् ।  
तेना सहस्येना धर्यं नि जनान्स्वापयामसि ॥ ७ ॥  
गोप्रेक्षया ध्येयनाया नारीर्यास्तनूपादीवरीः ।  
क्षियो याः पुण्यगन्धास्ताः सर्वाः स्वापयामसि ॥ ८ ॥  
॥ १०८ ॥ ( अ० ७।१।१३ ) विष्टुः ।  
यदे दिवो नृपदने पृथिव्या  
नरो यत्र दयययो मदन्ति ।  
इन्द्राय यत्र सर्वनानि सुन्वे  
गामन्मदाय प्रथमं धर्यथ ॥ १ ॥

॥ १०९ ॥ ( अ० ७।१।१४-६ )  
अर्ध्वर्यवोऽरुणं दुग्धमंशुं  
जुहोतन वृषभार्य क्षितीनाम् ।  
गौराद् वेदीर्यो अवपानमिन्द्रो  
विश्वाहेद् याति सुतसोममिच्छन् ॥ १ ॥  
यद् दधिपे प्रदिवि चार्वर्चं  
दिवेदिवे पीतिमिदं स्य वाक्षि ।  
उत हृदोत मनसा जुषाण  
उत्तार्त्तन् प्रस्थितान् पाहि सोमान् ॥ २ ॥  
जज्ञानः सोमं सहसे पपाध  
प्र ते माता महिमानमुवाच ।  
पन्द्र प्रथोर्वोऽन्तरिक्षं  
युधा देवेभ्यो धारिवश्चकर्थ ॥ ३ ॥  
यद् योधया महतो मर्यमानान्  
साक्षाम् तान् वाहमिः शारदादानान् ।  
यद् वा नृमिर्वर्च इन्द्राभियुष्याः  
तं त्यजासि सोम्यवसं जयेम ॥ ४ ॥  
प्रेन्द्रस्य वोचं प्रथमा कृतानि  
प्र नृतेना मघवा या चकार ।  
यदेदं वीरसंहिष्ट माया  
अथामवत् केवलः सोमो अस्य ॥ ५ ॥  
तवेदं विश्वमभितः पशव्यं  
यत् पदर्यासि चक्षमा सूर्यस्य ।  
गवामसि गोपतिरेके इन्द्र  
मक्षीमहि ते प्रयतम्य वर्यः ॥ ६ ॥  
॥ ११० ॥ ( अ० ७।१।१५, १६, १९-२० )  
विष्टुः २१ अवली ।  
यो मा पार्त्तन मनसा चरंतं  
अभिचपे अनृतेभिर्नृचोभिः ।  
आपं ह्य वादिना संश्रुमीता  
असंभ्रुत्वास्त इन्द्र यन्ता ॥ ८ ॥  
( १०८५ )

यो मार्यातुं यातुं धनेत्याह  
 यो वा रक्षाः शुचिरसीत्याह ।  
 इन्द्रस्तं हंतुं महता वधेन  
 विश्वस्य जलनोरधमस्पर्दीष्ट ॥ १६ ॥  
 प्र वंतय द्विचो अद्मानमिन्द्र  
 मोर्मशित मघगन्तं शिशाधि ।  
 प्राचादपाकादधरादुदकाद्  
 धमि जहि रक्षसः पर्यतेन  
 एत उ त्वे पंतयन्ति भव्यातव  
 इन्द्र दिप्सन्ति दिप्सरोऽर्दाम्यम् ।  
 शिशीते शनः पिशुनेभ्यो घृधं  
 नूनं खजदधानिं यातुमद्रघः  
 इन्द्रां यातुनाममवत् पराशरो  
 दनिर्मधीनामभ्याधुपियासताम् ।  
 धमीरुं शमः परद्रापया यनं  
 पात्रेय मिन्द्रन्मत एति रक्षसः  
 उलूक्यातुं शुगलूकपातुं  
 अदि दग्धातुमुत कौक्यातुम् ।  
 गुपणपातुमुत गृध्रपातुं  
 ह्यवेयं प्र गृण रथे इन्द्र

अभिष्टेये सदावृधं स्वर्माळहेपु यं नरः ।  
 नाना हवन्त ऊतये ॥ ५ ॥  
 परोमात्रमृचीपम—मिन्द्रमुग्रं सुरार्धसम् ।  
 ईशानं चिद्वसुनाम् ॥ ६ ॥  
 तन्तमिद्रार्धसे मह इन्द्र चोदामि पीतये ।  
 यः पूर्व्यामनुपुति—मीशै कृष्टीनां नृतुः ॥ ७ ॥  
 न यस्य ते शवसान सप्यमानंश मर्त्यैः ।  
 नकिः शवांसि ते नशत् ॥ ८ ॥  
 त्वोतासुस्था युजा ऽप्सु सूर्ये महजनम् ।  
 जयेम पुत्सु वज्रिवः ॥ ९ ॥  
 तं रषां युहोर्भेरीमहे तं गीर्मिर्गिर्वणस्तम ।  
 इन्द्र यथा चिदार्थेय वाजेषु पुरुमाव्यम् ॥ १० ॥  
 यस्य ते स्वादु सख्यं स्वाद्री प्रणीतिरद्विषः ।  
 युहो र्वितन्तुसार्यः ॥ ११ ॥  
 उरु णस्तन्वेऽतनं उरु क्षयाय नस्कृधि ।  
 उरु णो यन्धि जीवसे ॥ १२ ॥  
 उरुं नृभ्य उरुं गर्व उरुं रथाय पश्याम् ।  
 द्वेवधीति मनामहे ॥ १३ ॥  
 ॥ १११ ॥ ( ऋ० ८।६९।१-१०, [ ११ पूर्वाधः ] १३-१८ )  
 अत्रष्टुप्, २ वशिष्ठः, ४-६ गायत्री, १६ पञ्चमिः,

॥ २२ ॥



इन्द्राय गावं आशिरं दुदुहे वज्रिणे मधु ।

यत् सीमुपहरे विदत् ॥ ६ ॥

उद्यद्व्रभस्य विष्टपं गृहमिन्द्रंश्च गन्वहि ।

मध्वः पीत्वा संचेवहि त्रिः सप्त सख्युः पदे ॥ ७ ॥

अर्चेत प्राचेत प्रियमेधासो अर्चेत ।

अर्चेन्तु पुत्रका उत पुरं न धूर्णवर्चेत ॥ ८ ॥

अयं स्वरति गर्गरो गोधा परिं सनिष्वणत् ।

पिङ्गा परिं चनिष्कद्-दिन्द्राय ब्रह्मोद्यतम् ॥ ९ ॥

आ यत् पतन्त्येन्यः सुदुघा अनपस्फुरः ।

अपस्फुरं गृमायत् सोममिन्द्राय पातवे ॥ १० ॥

अपादिन्द्रो अपादिभि-विश्वे देवा अमत्सत ।

( पूर्वांशः ) ॥ ११ ॥

यो ह्यतीरफाणयत् सुयुंस्तो उपं दाशुपे ।

तुको नेता तदिष्टपु-रुपमा यो अमुच्यत ॥ १३ ॥

अतीरुं शक्र ओहत् इन्द्रो विश्वा अति द्विपः ।

भिनत् कृतीन् ओदन् पच्यमानं पुरो गिरा ॥ १४ ॥

अर्मेको न कुमारको ऽधि तिष्ठन् नवं रथम् ।

स पक्ष्ममद्विपं मृग पित्रे मात्रे विमुक्तुम् ॥ १५ ॥

आ तू सुशिप्र दैपते रथं तिष्ठा हिरण्ययम् ।

अधे पुक्षं संचेवहि सुदक्षपादमरुयं ॥ १६ ॥

स्वस्तिगार्मनेहसम् ॥ १६ ॥

तं घेमिष्या नमस्विन् उपं स्यराजमासते ।

अथे चिदस्य सुधितं यदेतव ॥ १७ ॥

आवर्तेर्यन्ति दावर्ते ॥ १७ ॥

अनुं प्रनस्यौकसः प्रियमेधास पपाम् ।

पूर्वामनु प्रवर्ति वृत्तवर्दिपो ॥ १८ ॥

द्वितप्रयस आशत ॥ १८ ॥

॥ ११३ ॥ ( अ० ८।७।१-१५ )

पुहन्मा आशिरसः । बृहती, १-६ अगाध = ( विपमा बृहती,

धमा घटीश्रुती ), १२ शकुमती, १३ उष्णिह्,

१४ अनुष्टुप्, १५ पुरउष्णिह् ।

यो राजा चर्पणीनां याता रथेमिरध्रिगुः ।

विश्वासां तरुता पृतनानां

ज्योष्टो यो वृत्रहा गुणे ॥ १ ॥

इन्द्रं तं शुभम् पुरहन्मघवसे

यस्य द्विता विधुर्तरिं । ॥ २ ॥

हस्ताय वज्रः प्रति धायि दर्शतो

महो दिवे न सूर्यः ॥ २ ॥

नकिष्टं कर्मणा नरा-घञ्चकारं सुदावृधम् ।

इन्द्रं न यज्ञैर्विद्वग्मूर्तमृवसं ॥ ३ ॥

अधुष्टं धुष्ट्वोजसम् ॥ ३ ॥

अपाच्छदमुग्रं पृतनासु सासहि

यसिन् महीरुद्वयः । ॥ ४ ॥

सं धेनवो जायमाने अनोनवुः

घावः क्षामो अनोनवुः ॥ ४ ॥

यद्वयव इन्द्र ते शत शतं भूर्मीरुत स्युः ।

न त्वां वज्रिन्सहस्रं सूर्या अनु ॥ ५ ॥

न जातमष्ट रोदसी ॥ ५ ॥

आ पंप्राय महिना वृष्या वृषन्

विश्वां शविष्ट शवसा । ॥ ६ ॥

असां अयं मघवन् गोमति भुजे

वज्रिजिनामिरुतिभिः ॥ ६ ॥

न सीमदैव आप-दिपं दीर्घायो मर्त्यः ।

यतस्त्वा विष्ट यतस्त श्रुयोर्जते ॥ ७ ॥

हरी इन्द्रो युयोर्जते ॥ ७ ॥

तं यो महो मुदाय्यं इन्द्रं दानायं क्षुणिम् ।

यो गाघेषु य आरणेषु हव्यो ॥ ८ ॥

वाजेष्वस्ति हव्यः ॥ ८ ॥

उदु पु णो घसो महे मुदाय्यं शर राघसे ।

उदु पु मही मघवन् मयर्चय ॥ ९ ॥

उदिन्द्र श्रसे महे ॥ ९ ॥

त्वं न इन्द्र श्रुतयु-स्त्वानिद्रो नि रुम्पमि ।

मर्त्ये वसिष्य तुयिनुष्णोः ॥ १० ॥

नि दास दिशयो हयः ॥ १० ॥

अन्यन्तमर्मानुप-मयज्वानमदैवयुम् ।

अव स्वः सखा दुधुवीत पर्वतः

सुप्राय दस्युं पर्वतः

॥ ११ ॥

त्वं न इन्द्रासां हस्ते शविष्ठ दावने ।

घानानां न सं गृभायास्मयुः

द्वि सं गृभायास्मयुः

॥ १२ ॥

सखायः प्रतुमिच्छन् कथा राधाम शरस्य ।

उपस्तुतिं भोजः सूरियो अक्षयः

॥ १३ ॥

भूरिभिः समह भूरिभि-र्बहिष्मद्भिः स्तविष्यसे ।

यदित्यमेकमेकमि-च्छन् घृत्सान् पण्डदः ॥ १४ ॥

कर्णगुहां मुचर्वा शौरदेव्यो

घृत्तं नैत्रिम्य आनयत् ।

अजां सूरिर्न धातेवे

॥ १५ ॥

इन्द्रं शुद्धो हि नो स्ये शुद्धो रत्नानि दाशुपे ।

शुद्धो वृत्राणि जिघ्रसे शुद्धो वाजं सिपाससि ॥९॥

॥ ११५ ॥ ( ऋ० ८।९६।१-१३, १६-२१ )

[ युवानो वा मासतः । त्रिष्टुप्, \* विराट्, २१ पुरस्ताज्जयोति ]

अस्मा उपास आतिरन्त यामं

इन्द्राय नक्तमृम्याः सुवाचः ।

अस्मा आपो मातरः सुप्त तस्युः

नृम्यस्तराय सिन्धवः सुपाराः

॥ ११॥

अतिविद्धा विद्युरेणां चिदस्मा

त्रिः सुप्त सानु संहिता गिरिणान् ।

न तद्देवो न मर्त्यस्तुतुर्यात्

यानि प्रवृद्धो वृषभश्चकार

॥ २ ॥

इन्द्रस्य वज्रं आयुतो निर्मिद्ल

इन्द्रस्य यादोभूरिपिष्टभोजः ।

त्रिः पृष्टिस्त्वा मरुतो वावृश्राना  
उत्सा इव राशयो यक्षियासः ।  
उप त्वेमः कृधि नो भागधेयं  
शुभं त एना हृदिपां विधेम  
तिग्ममार्युधं मरुतामनीकं  
कस्ते इन्द्र प्रति वज्रं दधर्ष ।  
अनायुधासो असुरा अदेवाः  
क्षेपेण तां अप वप ऋजीपिन्  
मह उग्राय त्वसे सुयुक्ति  
प्रेरय शिवतमाय पथः ।  
गिर्वाहसे गिर इन्द्राय पूर्वाः  
धेहि त्वयं कुविद्वद् वेदत्  
उक्थवाहसे विभ्वं मनीषां  
द्रुणा न पात्मीरया नदीनाम् ।  
नि स्पृश धिया तन्धि धृतस्य  
जुष्टतस्य कुविद्वद् वेदत्  
तद्विधिद्वि यत् त इन्द्रो जुजोषत्  
स्तुहि सुपुति नमसा विवास ।  
उप भूय जरितुर्मा रुवण्यः  
ध्रुवया वाचं कुविद्वद् वेदत्  
अयं द्रुत्सो अशुमतीमतिष्ठत्  
इयानः कृष्णो वृशभिः सहसैः ।  
आयत् तमिन्द्रः शच्या धर्मेन्तं  
अप ओर्हितीर्नमणा अधत्  
त्वं ह त्वत् सप्तभ्यो जार्यमानो  
अशुभभ्यो अमवः शशुर्निन्द्र ।  
गुल्हे द्यावापृथिवी अर्वाविन्दो  
विभुमद्रयो भुवनेभ्यो रणं धाः  
त्वं ह त्वदप्रतिमानमोजो  
यज्ञेण यजिन् घृपितो जघन्य ।

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १० ॥

॥ ११ ॥

॥ १२ ॥

॥ १३ ॥

॥ १४ ॥

त्वं शुष्णस्यार्वातिरो वधधैः  
त्वं गा इन्द्र शक्येदविन्द्रः ॥ १७ ॥  
त्वं ह त्यहृषभ चर्षणीनां  
घनो वृत्राणां तविपो वभूय ।  
त्वं सिन्धूरसृजस्तस्तमानान्  
त्वमपो अजयो दासपत्नीः ॥ १८ ॥  
स सुकतु रणिता यः सुतेपु  
अनुत्तमन्युर्यो अहव रेवान् ।  
य एक इन्नर्यपांसि कर्ता  
स वृत्रहा प्रतीदन्यमाहुः ॥ १९ ॥  
स वृत्रहेन्द्रश्चर्षणीधृत् तं सुपुत्या हव्यं हुवेम ।  
स प्रायिता मयवा नोऽधिवक्ता  
स वार्जस्य श्रवस्वस्य दाता ॥ २० ॥  
स वृत्रहेन्द्रं ऋभुक्षाः सद्यो जज्ञानो हव्यो वभूव ।  
कृष्णन्नपांसि नर्या पुरुणि  
सोमो न पीतो हव्यः सत्यिभ्यः ॥ २१ ॥  
॥ २१६ ॥ ( अ० ८।१८।१-१९ )  
नृमेष आत्रिरसः । सणिह् ।  
७, १०-११ वक्रपु; ९, १९ पुररणिह् ।  
इन्द्राय सामं गायत् विप्राय वृहते वृहत् ।  
धर्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥ १ ॥  
त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वं सूर्यमरोचयः ।  
विश्वकर्मा विश्वेदेवो महो अंसि ॥ २ ॥  
विभ्राज्ज्योतिषा स्वः—रगच्छो रोचनं विद्यः ।  
देवास्तं इन्द्र सप्त्यार्यं येमिरे ॥ ३ ॥  
एन्द्रं नो गधि प्रियः संत्राजिदगोषः ।  
गिरिर्न विश्वतस्पृयुः पतिर्दिवः ॥ ४ ॥  
अभि हि सत्य सोमपा उमे वभूय रोदसी ।  
इन्द्रांसि सुन्वतो वृधः पतिर्दिवः ॥ ५ ॥  
त्वं हि शदर्पतीना—मित्रं वतां पुरामभिः ।  
हंता दम्योर्मेनोवृधः पतिर्दिवः ॥ ६ ॥

अथा हीन्द्र गिर्वण उर्प त्वा कामान् महः संसृजमहे ।

उदेव यन्ते उदभिः ॥ ७ ॥

वार्य त्वा यदयामि—वर्धन्ति शूर ब्रह्माणि ।

वावृष्णांसं चिदद्रिचो द्विवेदेवे ॥ ८ ॥

युञ्जन्ति हरी इरिरस्य गार्थयो—रौ रथं उरुयुगे ।

इन्द्राहा चचोयुजा ॥ ९ ॥

त्वं न इन्द्रा भरे ओजो नृमणं शतक्रतो विचर्यणे ।

आ धीरं पृतनायहम् ॥ १० ॥

त्वं हि नः पिता धरो

त्वं माता शतक्रतो यभूर्विष ।

अथा ते सुहृमीमहे ॥ ११ ॥

त्वां शुभिन् पुरहूत याजयन्त—मुपं ध्रुवे शतक्रतो ।

स नो राख सुवीर्यम् ॥ १२ ॥

॥ १३ ॥ (अ० ८।११।१-८)

प्रगाय = ( विषमा बृहती, समा सतोबृहती ) ।

त्वामिदा हो नरो ऽपीप्यन् यजिन् भूयः ।

स इन्द्र स्तोमवाहसामिह शुधि

उप स्वसंत्मा गदि ॥ १ ॥

मात्वा सुशिप्र हनियस्तदीमहे

त्ये आ भूयन्ति धेघसः ।

तप ध्यायस्युपमान्युप्य्या सुतेष्विन्द्र गिर्वणः ॥ २ ॥

धायन्त इय रयं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत ।

पर्युनि ज्ञाने जनेमान् ओजस्मा

प्रति मागं न दीधिम् ॥ ३ ॥

भनेदांगति यस्पदामुपं स्तुदि

भद्रा रण्टेभ्य सुतयः ।

गो धेभ्य वामे यिष्ठनो न नोपति

मनो नानार्य धोदर्यन् ॥ ४ ॥

त्यमिन्द्र प्रवेनिष्य—नि विश्वा यमि स्पृधः ।

यन्निगता अत्रिता विध्वंस्यन्ति

त्य नपं ताप्यन् ॥ ५ ॥

अनु ते शुष्मं तुर्यन्तमीयतुः

क्षोणी शिशुं न मातरां ।

विश्वास्ते स्पृधः श्रथयन्त मन्यवे

वृत्रं यद्विन्द्र त्वैषि ॥ ६ ॥

इत ऊती चो अजरं प्रहेतारमप्रहितम् ।

आशु जेतारं हेतारं रथीतम्

अतूर्तं तुग्न्यावृधम् ॥ ७ ॥

इत्कर्तारमनिष्कृतं सहस्रकृतं

शतमूर्ति शतक्रतुम् ।

समानमिन्द्रमवसे हवामहे

वसंवानं यस्तुज्वम् ॥ ८ ॥

॥ २१८ ॥ (अ० ८।८१।१-७)

नृमेघ-पुष्पेवावाहिरसौ । १-४ प्रगाय = ( विषमा बृहती,

समा सतोबृहती ), ५-६ अनुवृप्, ७ बृहती ।

यूहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम् ।

येन ज्योतिरर्जनयधृतावृधो

देवं देवाय जायुधि ॥ १ ॥

अपाधमदमिशस्तीरशस्तिहा

अथेन्द्रो धूम्यामवत् ।

देवास्त इन्द्र सुख्याय धेमिरे

बृहद्भानो मरुद्वण ॥ २ ॥

प्र वृ इन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्माक्षत ।

वृत्रं हनति वृत्रहा शतक्रतु—धर्मेण शतपर्यणा ॥ ३ ॥

अभि ॥ भर धृपता धृपमनः

धर्वाधित्व ते असद्रहत् ।

अग्न्यापो जयसा वि मातरो

हनो वृत्रं जया स्वः ॥ ४ ॥

यज्ञायया अपुष्यं मर्ययन् वृत्रहत्याय ।

तन् पृथिवीमप्रयय—स्तदस्तधा उत धाम् ॥ ५ ॥

तत् ते यज्ञो अजायन् तदकं उत ददृतिः ।

तद्विभ्रमभिभूयति यज्ञानं यण अग्न्यम् ॥ ६ ॥

आमासु पक्कमैर्य आ सूर्य रोहयो दिवि ।  
वर्म न सामन् तपता सुवृकिभिः  
जुष्टं गिर्वेणसे बृहत् ॥ ७ ॥

॥ २१९ ॥ ( ऋ० ८.२०।१-६ )

प्रगायः= ( विपगा बृहती, समा गतो बृहती ) ।

आ नो विश्वासु हव्य इन्द्रः समत्सु भूपतु ।  
उप ब्रह्माणि सर्चनानि धृत्रहा  
परमज्या ऋचीपमः ॥ १ ॥  
त्वं दाता प्रथमो राधसाम—स्यसि सत्य ईशानकृत् ।  
तुविद्युन्नस्य युज्या वृणीमहे  
पुत्रस्य शर्वसो मुहः ॥ २ ॥  
प्रह्मा त इन्द्र गिर्वेणः क्रियन्ते अनतिहृता ।  
इमा जुषस्व हव्यद्वय योजना  
इन्द्र या ते अगममहि ॥ ३ ॥  
त्वं हि सत्यो मघवन्नानतो धृत्रा भूरि न्युजसे ।  
स त्वं शविष्ठ यज्ञहस्त दाद्युषे  
अवाञ्छं रयिमा कृधि ॥ ४ ॥  
त्वमिन्द्र, यशा अस्पृ—जीषी शयसस्पते ।  
त्वं वृत्राणि हंस्यप्रतीत्येक इत्  
अनुत्ता चर्पणीधृता ॥ ५ ॥  
तसु त्वा नूनमसुर प्रचेतसु राधो आगमिधेमहे ।  
महीव हसिः शरणा त इन्द्र  
प्र ते मुञ्जा नो अश्वन् ॥ ६ ॥

॥ २२० ॥ ( ऋ० ८.१९।१-२३ )

धृत्रक्षः सुक्षो वा आशिरसः । गायत्री, १ अनुष्टुप् ।

पान्तुमा यो अर्धस इन्द्रमभि प्र गांयत ।  
विश्वासाहं शतक्रतुं महिष्ठं चर्पणीनाम् ॥ १ ॥  
पुरुद्वतं पुरुद्वतं गांयान्यं सनधुतम् ।  
इन्द्र इति प्रवीतन ॥ २ ॥  
इन्द्र इत्यो महर्ना दाता पाजानां नृतुः ।  
मदां अभिषया यमत् ॥ ३ ॥

अपादु शिष्यन्त्रसः सुदक्षस्य प्रहोपिणः ।  
इन्द्रो रिन्द्रो यवांशिरः ॥ ४ ॥  
तन्मभि प्रार्चते—न्द्रं सोमस्य पीतये ।  
तदिद्वयस्य वर्धनम् ॥ ५ ॥  
अस्य पीत्वा मदानां देवो देवस्यौजसा ।  
विश्वाभि भुवना भुवत् ॥ ६ ॥  
त्यमुं चः सत्रासाहं विश्वासु गीर्णायतम् ।  
आ च्यावयस्युतये ॥ ७ ॥  
युध्मं मन्तमनर्थाणं सोमपासनपठ्युतम् ।  
नरमवार्यकतुम् ॥ ८ ॥  
शिर्मा ण इन्द्र राय आ पुरु विद्रां ऋचीपम ।  
अवां नः पायें धने ॥ ९ ॥  
अतश्चिदिन्द्र ण उपा ऽऽयाहि शतवाजया ।  
इषा सहर्षवाजया ॥ १० ॥  
अयाम् धीयतो धियो ऽवीजिः शक्र गोदरे ।  
जयैम पृत्सु रजिषः ॥ ११ ॥  
वयमुं त्वा शतक्रतो गावो न यवसेष्या ।  
उर्येषु रणयामसि ॥ १२ ॥  
विश्वा हि मर्त्यत्पुना ऽनुकामा शतक्रनो ।  
अगन्म वज्रिद्राशसः ॥ १३ ॥  
त्वे सु पुत्र शवसो ऽष्ट्वन् कामकातयः ।  
न त्वामिन्द्राति रिच्यते ॥ १४ ॥  
स नो वृषन्सनिष्ठया सं घोरया द्रवित्या ।  
धियाविद्रि पुरेया ॥ १५ ॥  
यस्ते नूनं शतक्रतु—चिन्द्रं सुस्मितमो मर्दः ।  
तेन नूनं मर्दे मदेः ॥ १६ ॥  
यस्ते चित्रध्रुवस्तमो य इन्द्र वृषद्वन्तमः ।  
य ओजोदातमो मर्दः ॥ १७ ॥  
विद्रा हि यस्ते अद्रिष—स्वादेसः सत्य सोमपाः ।  
विश्वासु दस कृष्टिषु ॥ १८ ॥

द द्राय मर्दने सुते परि एोमन्तु नो गिरः ।  
 धर्ममर्चन्तु कारयः ॥ १९ ॥  
 यस्मिन् विद्या अधि धियो रणन्ति सप्त संसर्दः ।  
 इन्द्रं सुते हवामहे ॥ २० ॥  
 त्रिकटुकेषु चेतनं देवासो यश्मत्तत ।  
 तमिदं धेनु नो गिरः ॥ २१ ॥  
 आ त्वा विशन्मियन्दवः समुद्रमिध सिधवः ।  
 न त्वामिन्द्राति रिच्यते ॥ २२ ॥  
 विषयनय महिना धृपन् भृशं सोमस्य जागृये ।  
 य इन्द्र जडरेपु ते ॥ २३ ॥  
 अरं त इन्द्र कुक्षये सोमो भवतु वृत्रहन् ।  
 अरं धामभ्य इन्द्रयः ॥ २४ ॥  
 अमृचाय गायति धृतकक्षो अरं गर्भे ।  
 अमिन्द्रस्य धात्रे ॥ २५ ॥  
 अरं हि प्मा सुतेपु णः सोमैध्विद्र भूपांसि ।  
 अरं ते शक्र द्वाचने ॥ २६ ॥  
 एतान्ताभिदद्रिध—स्त्वां नक्षन्त नो गिरः ।  
 अरं गमाम ते वयम् ॥ २७ ॥  
 एवा एमि वीर्यु—देवा शूर उत स्थिरः ।  
 एवा ते राघ्यं मनः ॥ २८ ॥  
 एवा गतिस्तुवीमघ विदेवेभिर्धानि धानुभिः ।  
 धर्वा चिदिद्र मे सचां ॥ २९ ॥  
 मो पु प्रद्वेयं तन्द्र्यु—भुवो याजानां पते ।  
 मन्त्रो सुतस्य गोमंतः ॥ ३० ॥  
 मा न इन्द्राभ्यां दुदिनाः सूर्यो अस्तुष्व यमन् ।  
 त्या पूजा यनेम् तत् ॥ ३१ ॥  
 न्ययेदिन्द्र पूजा घृणं प्रति सुवीमहि स्पृधः ।  
 न्यमन्मात्रं तयं भासि ॥ ३२ ॥  
 न्यामिनि न्याययोः अनुनोनुयतश्चरान् ।  
 गगाय इन्द्र वारयः ॥ ३३ ॥

॥ ३१ ॥ । क्र० ८१३। (—३३)  
 सुक्थ अहिगरथ । गायत्री ।

उदेदमि धृतामर्घं वृषमं नर्यापसम् ।  
 अस्तारमेपि सूर्य ॥ १ ॥  
 नव यो नवति पुरो विभेदं वाहो जसा ।  
 अहिं च वृत्रहावधीत् ॥ २ ॥  
 स न इन्द्रः शिवः सखा ऽध्वावद्रोमुद्यधमत् ।  
 उरुधारेव दोहते ॥ ३ ॥  
 यद्वच कर्षं वृत्रह—नुदगां अमि सूर्य ।  
 सर्वं तदिन्द्र ते वशे ॥ ४ ॥  
 यद्वा प्रवृद्ध सत्पते न मरा इति मन्यसे ।  
 उतो तत् सत्यमित् तव ॥ ५ ॥  
 ये सोमांसः परायति ये अर्वावति सुन्विरे ।  
 सर्वांस्तो इन्द्र गच्छसि ॥ ६ ॥  
 तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे ।  
 स वृषा वृषमो भुवत् ॥ ७ ॥  
 इन्द्रः स दामने हूत ओजिष्ठः स मये हितः ।  
 दुसी श्लोकी स सोम्यः ॥ ८ ॥  
 गिरा वज्रो न संभृतः सर्वलो अनपच्युतः ।  
 वृक्ष श्रुष्यो अस्तुतः ॥ ९ ॥  
 दुर्गे विघ्नः सुगं रुधि गृणान इन्द्र गिर्वेणः ।  
 त्वं च मघवन् वशः ॥ १० ॥  
 यस्य ते नू चिदादिशं न मिनन्ति स्थराज्यम् ।  
 न देवो नाग्निगुर्जनः ॥ ११ ॥  
 अथां ते अग्रतिष्ठुतं देवी शुष्मं सपर्यतः ।  
 उमे सुदिशं रोदसी ॥ १२ ॥  
 त्वमेतदधारयः घृणासु रोहिणीषु च ।  
 परंणीयु रुशत् पर्यः ॥ १३ ॥  
 वि यदहेरुषं त्वियो धिभ्यं देवासो अक्रामुः ।  
 विद्रुमगस्य तां अमः ॥ १४ ॥  
 आहुं मे निवपे भुवद् घृत्वादिष्ट पौर्यम् ।  
 भजातशायुस्तुतः ॥ १५ ॥

श्रुतं वो वृत्रहन्तम् प्र शर्थे चर्षणीनाम् ।  
 आ शुभे राधसे मूढे ॥ १६ ॥  
 अया धिया च गध्यया पुर्णामन् पुर्णत ।  
 यत् सोमिसोम आर्मवः ॥ १७ ॥  
 योधिर्मना इवस्तु नो वृत्रहा भूयांसुतिः ।  
 शृणोतु शक्र आशिर्षम् ॥ १८ ॥  
 कया त्वं न ऊत्सा ऽभि प्र मन्दसे वृषन् ।  
 कया स्तोतृभ्य आ भर ॥ १९ ॥  
 कस्य वृषां सुते सचां नियुतांश्च वृषमो रणन् ।  
 वृत्रहा सोमपीतये ॥ २० ॥  
 अमी पु णस्त्वं रयि मन्दसानः सहस्रिणम् ।  
 प्रयन्ता योधि दाशुर्वे ॥ २१ ॥  
 पत्नीयन्तः सुता इम उशन्तो यन्ति पीतये ।  
 अपां जर्मिनिषुष्पणः ॥ २२ ॥  
 इषा होत्रा अयुध्वते-न्द्र वृषासो अयुरे ।  
 अच्छापभृथमोजसा ॥ २३ ॥  
 इह त्या संघमाद्या हरी हिरण्यकेश्या ।  
 योद्धामभि प्रयो हितम् ॥ २४ ॥  
 तुभ्यं सोमाः सुता इमे स्तीर्णं युर्द्विर्मायसो ।  
 स्तोतृभ्य इन्द्रमा र्ह ॥ २५ ॥  
 आ ते वक्षे वि रौचना दधद्रत्ना वि दाशुर्वे ।  
 स्तोतृभ्य इन्द्रमघत ॥ २६ ॥  
 आ ते दधामीन्द्रिय-मुक्था विभ्यां शतक्रतो ।  
 स्तोतृभ्य इन्द्र मृळय ॥ २७ ॥  
 मद्रंमद्रं न आ भुरे-गमूर्जे शतक्रतो ।  
 यदिन्द्र मृळयांसि नः ॥ २८ ॥  
 स नो विभ्रान्या भर मुषितानि शतक्रतो ।  
 यदिन्द्र मृळयांसि नः ॥ २९ ॥  
 त्वामिदं वृत्रहन्तम् सुतायन्तो हवामहे ।  
 यदिन्द्र मृळयांसि नः ॥ ३० ॥  
 उप नो हरिभिः सुतं याहि मंदानां पते ।  
 उप नो हरिभिः सुतम् ॥ ३१ ॥

हिता यो वृत्रहन्तमो विद इन्द्रः शतक्रतुः ।  
 उप नो हरिभिः सुतम् ॥ ३२ ॥  
 त्वं हि वृत्रहधेयां पाता सोमानामसि ।  
 उप नो हरिभिः सुतम् ॥ ३३ ॥  
 ॥ २२२ ॥ ( अ० १०।८।७-९ )  
 विभिरासताः । विष्टुप ।  
 अस्य व्रितः कर्तुना यत्र अन्तः  
 इच्छन् पीति पितुरेवै परस्य ।  
 सचस्यमानः पित्रोऽप्यस्य  
 जामि प्रुवाण आयुधानि वेति ॥ ७ ॥  
 स पित्र्याण्यायुधानि विद्वान्  
 इन्द्रेऽपि आप्या अभ्ययुष्यत् ।  
 विशीर्षाणि सतरदिम जघन्यान्  
 त्वाप्स्यं विभिः मरुजे नितो गाः ॥ ८ ॥  
 भूरीन्द्रि उदिनक्षन्तमोजो  
 अर्वाभिनत् सत्यतिमन्यमानम् ।  
 त्वाप्स्यं विद् विभ्वरूपस्य गोतां  
 आचक्राणस्तीर्णं शीर्षां परां यक् ॥ ९ ॥  
 ॥ ३०३ ॥ ( अ० १०।११।१-१५ )  
 ऐन्द्रो विमरः प्राजापलो वा, यागुरो वसुहृता । उग्रादुत्तरो,  
 ५, ७, ९ अश्वत्थ, १५ विष्टुप ।  
 कुहं धृत इन्द्रः कस्मिन्नघ जनं मित्रो न धयते ।  
 क्षीर्षाणां वा यः क्षये गुदो वा चक्षुषे गिरा ॥ १॥  
 इह धृत इन्द्रो असे अघ नर्षं पुन्यपृथीपमः ।  
 मित्रो न यो जनेष्व्या यशस्वये असाभ्या ॥ २ ॥  
 मद्रो यस्पतिः शर्वमो असाभ्या  
 मद्रो नृष्णस्य नृत्तजः ।  
 भतां यक्षस्य धृष्णाः पिता प्रथमिव मिथम ॥ ३॥  
 युजानो अश्व्या वानस्य धुनीं देवो देवस्य पञ्जिवः ।  
 स्यन्तां पृथा विभ्रमता मृजानः स्तोत्राऽनः ॥ ४॥  
 स्यं स्याचिद् यातभ्याभ्यामां क्रुमा ताना यदर्थः ।  
 यवैर्वो न मसौ युता नर्विन्द्रियार्थः ॥ ५ ॥  
 ( १८२० )

अथ गमन्तोदानां पृच्छते चां

कर्दधा न आ गृहम् ।

आ जंगमथुः पराकाद् दिवश्च गमश्च मर्त्यम् ॥ ६ ॥

आ न इन्द्र पृक्षसे ऽस्माकं ब्रह्मोच्यतम् ।

तत् त्वां याचामहेऽयः शुष्णं यद्धन्मानुषम् ॥ ७ ॥

अकर्मा दस्युरभि नो अमन्तु—रन्यमेतो अमानुषः ।

त्वं तस्यामित्रहन् धर्धर्दासस्य दम्भय ॥ ८ ॥

त्वं न इन्द्र शूर शूरै—रुत त्वातांसो बृहणा ।

पुरा ते वि पुतयो नवन्त क्षोणयो यथा ॥ ९ ॥

त्वं तान् धृवहृत्वं चोदयो नून

कार्पाणे शूर वज्रिवः ।

गुहा यदी कथीनां विशां नक्षत्रशवसाम् ॥ १० ॥

मक्षू ता त इन्द्र दानामस आक्षणे शूर वज्रिवः ।

यद्ध शुष्णस्य दम्भयो जातं विद्वं सुयार्यभिः ॥ ११ ॥

माकुर्वन्निन्द्र शूर वक्षी—रसे भूवन्नभिष्टयः ।

व्ययवयं त आसां सुम्ने स्याम वज्रिवः ॥ १२ ॥

असे ता त इन्द्र सन्तु सुत्या ऽहिं सन्तीरुपस्पृशः ।

विद्याम यासां भुजो धेनुनां न वज्रिवः ॥ १३ ॥

अहस्ता यदपदी धर्धत क्षाः शर्वाभिर्वेद्यानाम् ।

शुष्णं परिं प्रदक्षिणिद्

विदनायधे नि क्षिश्चयः ॥ १४ ॥

पियापियेदिन्द्र शूर सोमं

मा रिण्यो यतयान् वसुः सन् ।

उत श्रायस्य गृणतो मुघोनीं

महर्धं रायो रेतम्रुघी नः ॥ १५ ॥

॥ १०४ ॥ ( अ० १०१३१-३ )

अ० १, ७ मिष्ट०, ५ अमिगारिणी ।

यजामाह इन्द्रं यजदक्षिणं

हरीणां इष्यं विमंतानाम् ।

॥ दम्भु दार्पुयदृष्यं मां मूद्

वि वेनामिदं यमानो वि शर्धन्वा

॥ १ ॥

हरी न्वस्य या वने विदे वसु

इन्द्रो मधैर्मघवा वृत्रहा भुवत् ।

ऋभुर्वाजं ऋभुक्षाः पत्यते शवो

अवं क्षणौमि दासस्य नाम चित्

॥ २ ॥

यदा वज्रं हिरण्यमिदथा रथं

हरी यमस्य वहतो वि सुरभिः ।

आ तिष्ठति मघवा सनश्नुत

इन्द्रो वाजस्य दार्धयवसस्पतिः

॥ ३ ॥

सो चिन्नु वृष्टिर्युथ्याः स्वा सचां

इन्द्रः दमर्थणि हरिनामि मुण्णुते ।

अथ वेति सुक्षर्यं सुते मधुत्

इङ्गनोति वातो यथा वनम्

॥ ४ ॥

यो वाचा विवाचो मधुवाचः

पुरु सहस्राशिवा जघानं ।

तत्तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसि

पितेव यस्तविषीं वावृधे शवः

॥ ५ ॥

स्तोमं त इन्द्र विमदा अजीजनन्

अपूर्य्य पुरुतमं सुदानेव ।

विद्या होस्य भोजनमितस्य यत्

आ पशुं न गोपाः करामहे

॥ ६ ॥

मार्किन् एना सुख्या वि यौपुः

तव चेन्द्र विमदस्यं च ऋषेः ।

विद्या हि ते प्रमतिं देय जामिवत्

असे तं सन्तु सख्या शिवानि

॥ ७ ॥

॥ १०५ ॥ ( अ० १०१३१-३ ) आरसारपङ्क्तिः ।

इन्द्र सोममिमं पिब मधुमन्तं चम सुतम् ।

असे रयि नि घोरय वि यो मदे

सहस्रिणं पुरुचसो विवशसे

॥ १ ॥

त्वां यशेर्मिदं यथै—र्यं हव्येभिरीमहे ।

शर्यापते शचीनां वि यो मदे

धेष्टं नो धेहि पार्य विवशसे

॥ २ ॥

( २४८९ )



यस्पतिर्वायौणा—मसि रश्मयं चोदिता ।  
इन्द्रं स्तोतुणामविता चि चो मदे  
हिपो नः पादाहंसो विवक्षसे

॥ ७७६ ॥ ( ऋ० १०।६७।१-२४ )

ऐन्द्रो वस्रकः । शिष्टपृ० ।

अमत् सु मे जरितः सामिवेगो  
यत् सुन्वते यजमानाय शिक्षम् ।  
बनाशीर्दामहमसि प्रहृन्ता  
सत्यधृतं वृजिनायन्तमामुम्  
यदीदृहं युधये संनयानि  
अदेययून् तन्यां शशुजानान् ।  
अमा ते तुष्टं धूपमं पंचानि  
तानं सुतं पञ्चदशं नि पिञ्चम्  
नाहं तं वैद य इति ब्रवीति  
अदेययून्समरणे जघन्वान् ।  
यदावाप्यत् समरणमृषावत्  
आदिद्धं मे वृषभा म ध्रुवन्ति  
यदज्ञातेषु वृजनेष्वालं  
विधे सतो मयवानो म आसन् ।  
जिनामि धेत् क्षेम आ सन्तमामुं  
प्र तं क्षिणां पर्वते पादगृहं  
न धा उ मां वृजने वारयन्ते  
न पर्वतासो यदहं मनस्ये ।  
मम स्थनात् ह्यधुक्पर्णो भयात्  
पवेदनु ह्य किरणः समंजात्  
दशान्वयं द्रातपां अनिन्द्रान्  
षाहृद्दः शरये पश्यमानान् ।  
पृष्ठं धा ये नैनिदुः समायं  
अप न्येषु पचयो यवृत्युः  
अमृवांभीर्युः आयुरानुद्  
दप्यं पृषो अर्पते तु दैवत् ।

॥ ३ ॥

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

दे पवस्ते परि तं न मृते  
यो अस्य पारे रजसो विवेप  
गावो यवं प्रयुता अयो अंशुन्  
ता अपदयं सुहर्गोपाश्चरन्तीः ।  
हवा इदयो अभितः समायन्  
कियंदासु स्वर्पतिदृष्टयाते  
सं यद्वयं यवसादो जनानां  
अहं यवाद् उर्वेजं अन्तः ।  
अत्रा युक्तोऽवसातारमिच्छात्  
अयो अयुक्तं युनजद्वन्वान्  
अत्रेदु मे मंससे सत्यमुक्तं  
हिपाद्य यश्चतुष्पात् संसृजानि ।  
क्षीमियो अत्र वृषणं पृतन्यात्  
अयुद्धो अस्य वि मंजानि वेदः  
यस्यानक्षा दुहिता जात्वास्त  
कस्तां विद्वां अभि मंयते अग्राम् ।  
कतरो मेनि प्रति तं मुंचाते  
य ई वहति व ई धा यरेयात्  
कियंती योषां मयतो यंधुयोः  
परिप्रीता पन्यसा धार्येण ।  
अद्रा वधर्मवति यत् सुपेशाः  
स्यं सा मित्रं वनुते जने चित्  
पुत्तो जंगार प्रत्यञ्जमसि  
शीर्ष्णां शिरः शर्ति द्यौं वरूथम् ।  
आसीन ऊर्ध्वामपसि क्षिणाति  
न्यदुत्तानामन्वैति भूमिम्  
यदृष्टच्छायो अपलाशो अवा  
तस्थो माता विर्यितो अति गर्भः ।  
अन्यस्था यत्सं रिद्धती मिमाय  
कयो भुवा नि दधे धेनुरूधः

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १० ॥

॥ ११ ॥

॥ १२ ॥

॥ १३ ॥

॥ १४ ॥

( १०४ )

सुत वीरासौ अधरादुदायन्  
 अष्टोत्तराक्षात् समजगिरन्ते ।  
 नच पश्चात्तात् स्थिविमन्त आयन्  
 दश प्राक् सानु वि तिरन्त्यश्नः  
 दशानामेकै कपिलं समानं  
 तं हिन्वन्ति क्रतवे पायीय ।  
 गर्भे माता सुधितं वक्षणासु  
 अर्चयन्तं तुपर्यन्ती विमर्ति  
 पीवानं मेपमपचन्त वीरा  
 न्युक्ता अक्षा अनु दीव आसन् ।  
 द्वा धनुं बृहतीमप्स्वन्तः  
 पवित्रवन्ता चरतः पुनस्तां  
 वि क्रौशनासो विष्वञ्च आयन्  
 पचाति नेमो नहि पक्षदधः ।  
 अयं मे देवः सविता तदाह  
 द्दुष्ट इदंनचत् सर्पिरक्षः  
 अपश्यं भ्रामं बहमानमारात्  
 अचक्रया स्थधया वर्तमानम् ।  
 स्तिरन्त्ययः प्र युगा जनानां  
 मयः शिक्षा प्रमिनानो नवीयान्  
 पूतौ मे गावौ प्रमरस्य युक्तौ  
 मो पु प्र सैधीमुहुरिन्ममन्धि ।  
 आपश्चिदस्य वि नशन्त्यर्थ  
 सूर्यश्च मर्क उपरो यमुयान्  
 अयं यो यज्ञः पुरुषा विवृत्तो  
 अयः सूर्यस्य बृहत्तः पुरीषात् ।  
 धप इदेना परो अग्यदास्ति  
 नदग्यधी जरिमाणस्तरन्ति  
 युरेपृष्ठे निर्यता मीमयत्रीः  
 तनी वयः प्र पतान् पूरुपादः ।

॥ १५ ॥

॥ १६ ॥

॥ १७ ॥

॥ १८ ॥

॥ १९ ॥

॥ २० ॥

॥ २१ ॥

अथेदं विश्वं भुवर्धनं भयात्  
 इन्द्राय सुन्वदपये च शिश्वत्  
 देवानां मानं प्रथमा अतिष्ठन्  
 कृन्तत्रादेपामुपरा उदायन् ।  
 त्रयस्तपन्ति पृथिवीमनृपा  
 द्वा वृक्कं बहत्तः पुरीषम्  
 सा तं जीवातुस्त तस्य विद्धि  
 मा सैतादृगर्प गृहः समये ।  
 आविः स्वः कृणुते गृहते युसं  
 स पादुरस्य निर्णिजो न मुच्यते

॥ २२ ॥

॥ २३ ॥

॥ २४ ॥

॥ २२७ ॥ ( अ० १०।२९।१-८ )

वने न वा यो न्यधायि चाकन्  
 शुचिर्गो स्तोमो भुरणावजीगः ।  
 यस्येदिन्द्रः पुरुदिनेपु होता  
 नृणां नर्यो नृतमः क्षपायान्  
 प्र ते अस्या उपसः प्रापरस्या  
 नृतौ स्याम नृतमस्य नृणाम् ।  
 अनुं विशोकः शतमावहृष्टन्  
 कुत्सेन रथो यो असत् ससुवान्  
 कस्ते मद इन्द्र रत्नो भूद्  
 दुरो गिरौ अभ्युग्रो वि धाय ।  
 कदाहो अर्धागुप मा मनीषा  
 आ त्वा शन्यामुपमं राधो अरैः  
 कर्तुं युस्मिन्द्र त्वावर्तो नृन्  
 कया धिया करसे कय आगन् ।  
 मित्रो न सत्य उरुगाय मृत्या  
 अर्धे समस्य यदसन् मनीषाः  
 प्रेरय स्रो अर्थे न पारं  
 ये अस्य कामं जनिधा इय गमन् ।  
 गिरश्च ये ते तुविजात पूर्वाः  
 नर इन्द्र प्रतिशिक्षन्त्यर्थः

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

( १५१९ )

मात्रे नु ते सुमिमे इन्द्र पुर्वी  
घौर्मज्जनो पृथिवी कार्थ्येन ।  
वराय ते घृतचन्तः सुतासः  
स्वाध्वन् भवन्तु पीतये मधूनि  
आ मध्वो अस्मा अमिचुप्रमत्रं  
इन्द्राय पूर्णं स हि सत्यराधाः ।  
स वावृधे वरिमन्ना पृथिव्या  
अभि क्रत्वा मयेः पौंस्यश्च  
व्यानल्लिङ्गः पृतनाः स्वोज्ञा  
आसीं यतन्ते सख्यायं पुर्वीः ।  
आ स्मा रथं न पृतनासु तिष्ठ  
यं मद्रयो सुमत्या चोदयासे

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ २०८ ॥ ( ऋ० १०।१८।१, ३-५, ७, ९, ११ )  
[ १ इन्द्रसुधा वसुकराशौ ऋषिः ३-५, ७, ९, ११  
ऐन्द्रो वसुक ऋषिः । ]

विश्वो द्युन्यो अरितजगाम  
ममेदह् भवद्गो ना जगाम ।  
जक्षीपाञ्चाना उत सोमं पपीयात्  
स्थाशितः पुनरस्मै जगायात्  
अद्रिणा ते मन्दिनं इन्द्र त्यान  
सुन्यन्ति सोमान् पिरसि त्वमेयाम् ।  
पचन्ति ते घृतमां अस्मि तेषां  
पुक्षेण यन्मघयन् हयर्मानः  
इदं सु मे जरितरा चिकिदि  
प्रतीपं शार्पं नृषीं वहन्ति ।  
लोपाशः सिद्धं प्रत्यज्ञमत्साः  
ओष्ठा घटादं निरतनुः कक्षात्  
कृया तं पतद्दमा विवेतं  
शून्यस्य पार्कस्तयसो मनीषाम् ।  
त्यं नो विद्वो ऋतुषा विषोचो  
यमपे ते मघयन् क्षम्या धूः

॥ १ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

पवा हि मां तवसे जगुरुग्रं  
कर्मन्कर्मन् घृषणमिन्द्र देवाः ।  
वर्धो वृत्रं वज्रेण मन्दसानो  
अपं वृजे महिना दाशुषे यम्  
शशः क्षुरं प्रत्यज्ञं जगार  
अद्रिं लोमेन व्यमेदमापत् ।  
बृहते चिदहते रंधयानि  
वर्यद्विस्तो वृषमं शश्वानः  
तेभ्यो गोधा अयथं कपदेतत्  
ये ब्रह्मणः प्रतिपीयन्त्यग्नेः ।  
सिम उस्णोऽवसृष्टा अदन्ति  
स्वयं घलानि तन्यः शृणानाः

॥ ७ ॥

॥ ९ ॥

॥ ११ ॥

॥ २०९ ॥ ( ऋ० १०।१०।१-९ )  
वृष वेद्यः । अगती, ६-९ त्रिष्टुप् ।

अ सु गमन्तां धियस्तानस्य सुक्षणि  
वरेभिर्वरां अभि पु प्रसीदतः ।  
अस्माकमिन्द्र उभयं जुजोषति  
यत् सोम्यस्यागन्मो वुर्योषति  
वीन्द्र यासि दिव्यानि रोचना  
वि पार्थिवानि रजसा पुरुषुत ।  
ये त्वा बहन्ति मुहुर्धृष्टो उप  
ते सु वन्यन्तु वग्युनो अराधमः  
तदिन्मे छन्सद्वपुषो वपुष्टं  
पुत्रो यजानं पित्रोर्धीयति ।  
जाया पतिं वहति वग्युनो मुमत्  
पुंस इन्द्रो वहतुः परिपृतः  
तदिह सधर्म्यमभि चारुं दीपय  
गात्रो यच्छासन् वहतुं न धेनवः ।  
माता यन्मनुष्यं यम्यं पूज्यां  
अभि याजस्य समर्धातरिजन्तः

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

त्वां जनां ममसत्येर्विन्द्र  
 संतस्थाना चि ह्वयन्ते समीके ।  
 अत्रा युजं कृणुते यो हविष्मान्  
 नासुन्वता सत्यं वष्टि शूरः  
 धनं न स्पन्दं बहूलं यो भस्मै  
 तीमान्सोमो आसुनोति प्रयस्यान् ।  
 तस्मै शश्वन्सुतुकान् प्रातरहो  
 नि स्वर्गान् युयति हस्ति घृत्रम्  
 यस्मिन् वयं दधिमा शंसमिन्द्रे  
 यः शिश्रायं मधवा कर्ममस्मे ।  
 आराधितु सन् भयतामस्य शत्रुः  
 न्यस्मै घृष्टा जन्वा नमन्ताम्  
 आराच्छुभमप वाधस्य दूरं  
 उग्रो यः शम्यः पुरुहत् तेन ।  
 अस्मे धेहि यषमद्रोमेदिन्द्र  
 कृधी धियं जतिरे याजर्त्ताम्  
 प्र यमन्तवृषसयासो अगमन्  
 तीमाः सोमा बहूलान्तासु इन्द्रम् ।  
 नाहं दामानं मधवा नि यंसन्  
 नि सुन्वते बहति भूरि यामम्  
 उत प्रहामतिदीर्घा जयाति  
 कृतं यच्छुग्री विचिनोति काले ।  
 यो देवकामो न धनां कण्डि  
 समित् तं राया रज्जति स्वधावान्  
 गोभिष्टरेमार्मति दुरेवां  
 यवेन क्षुधं पुरुहत् विश्वाम् ।  
 ययं राजभिः प्रथमा धनानि  
 अस्तोकेन युजनेना जयेम  
 बृहस्पतिनेः परि पातु पृथ्वात्  
 उतोत्तरस्मादधरादधवायोः ।

इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः  
 सखा सविभ्यो वरिवः कृणोतु ॥ ११ ॥  
 ॥ १३३ ॥ ( क्र० १०१३३।१-११ )  
 अथवा, १०-११ निष्टुप ।  
 अच्छा म इन्द्रं मृतयः स्वविदः  
 सघीचीर्विभ्या उशतीरनूपत ।  
 परि ष्वजन्ते जनयो यथा पति  
 मर्यं न शुन्यं मधवानमृतये ॥ १ ॥  
 न यो त्यद्विगर्ष वेति मे मनः  
 त्वे इत् कामं पुरुहत् शिश्रय ।  
 राजेव वस्म नि पदोऽधि वृद्धिपि  
 अस्मिन्सु सोमोऽवपार्नमस्तु ते ॥ २ ॥  
 विपुबुदिन्द्रो अमतेकृत क्षुधः  
 स इन्द्रायो मधवा वस्य ईशते ।  
 तस्येदिमे प्रवणे सप्त सिधयो  
 वयो वर्धन्ति वृषमस्य शृष्टिर्मणः ॥ ३ ॥  
 ययो न वृक्षं सुपलाशमार्सदन्  
 सोमासु इन्द्रं मंदिनश्चमुपदः ।  
 त्रैयामनीकं शर्वसा दविद्युतत्  
 विदत् स्वर्गमर्नये ज्योतिरायम् ॥ ४ ॥  
 कृतं न भवामी वि चिनोति देयने  
 संवर्गं यन्मधवा सूर्यं जयेत् ।  
 न तत् ते अन्यो अनु वीर्यं शक्य  
 न पुराणो मधयन् नोत नूतनः ॥ ५ ॥  
 विशीयिशं मधवा पर्यशापत्  
 जनानां धेना अवचारकदादृष्टा ।  
 यस्याहं शक्रः सर्वनेषु रण्यति  
 स तीर्थः सोमैः सहते पृतन्यतः ॥ ६ ॥  
 आपो न सिधुममि यत् समक्षरन्  
 सोमासु इन्द्रं कुन्या इव हृदम् ।  
 यधेन्ति विप्रा महो अम्य सार्दने  
 ययं न वृष्टिर्द्विभ्येन शानुना ॥ ७ ॥

वृषा न क्रुद्धः पतयद्रजः स्वा  
 यो अर्थपत्नीरुक्णोदिमा अपः ।  
 स सुन्यते मघवा जीरदानवे  
 अविन्दुज्योतिर्मनवे हविष्मते  
 उजायतां परद्रुज्योतिषा सह  
 भुया क्रुतस्य सुदुघा पुराणवत् ।  
 वि रौचतामरुणे भानुना शुचिः  
 स्वर्णं शुक्रं शुद्धाचीत सत्पतिः  
 गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां  
 यवेन शुधं पुण्हत विभ्वाम् ।  
 वयं राजभिः प्रथमा धनानि  
 अस्माकेन वृजनेना जयेम  
 वृहस्पतिर्नः परि पात पश्चात्  
 उत्तोत्तरस्मादधरादद्यायोः ।  
 इन्द्रः पुरस्तादुत मण्यतो नः  
 सखा सवित्र्यो धरिणः रुणोतु

॥ १३४ ॥ ( ऋ० १०।४४।१-११ )

अगतीः १-३, १०-११ त्रिष्टुप् ।

था यातिवद्रः स्वर्पतिर्मदाय  
 यो धर्मणा नृगुजानस्तुविष्मान् ।  
 प्रत्यश्रुणो अति विभ्या सहोसि  
 अश्रुणो महता वृष्ण्येन  
 गृष्टामा ग्यः सुयमा हर्षी ते  
 मिम्यश्च यजो नृपते गभस्ता ।  
 श्रीमै राजन्तुपया याह्याह  
 पथीम ने पुपुयो वृष्ण्यानि  
 पण्डुपाटो नृपति पञ्चयाहं  
 उग्रमुद्रामेस्तविगामं पञ्चम् ।  
 प्रायशायं प्रभुं गत्युगुप्तं  
 पमन्त्रया मधुमादो पटन्तु

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १० ॥

॥ ११ ॥

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

एवा पतिं द्रोणसाचं सचैतसं  
 ऊर्जः स्कम्भं धरुण आ वृषायसे ।  
 ओजः रुक्म सं गृभाय त्वे अपि  
 असौ यथा केनिपानामिनो वृधे  
 गमन्नसो वसुग्या हि शंसिप  
 स्वाशिपं भरमा याहि सोमिनः ।  
 त्वमीशिपे सास्त्रिणा संसि वृहिपि  
 अनाधुष्या तव पात्राणि धर्मणा  
 पृथक् प्रायन् प्रथमा देवहृतयो  
 अकृण्वत अवस्थानि दुष्टरा ।  
 न ये शेकुर्येभियां नावमावह  
 ईमैव ते न्यविशन्त केपयः  
 एवैवापागपरे संतु वृद्धयो  
 अश्वा येषां दुर्यज आयुयुजे ।  
 इत्या ये प्राशुपरे संति वाचने  
 पुरुणि यत्र वयुनानि भोजना  
 गिरिरुद्रान् रेजमानो अवारयद्  
 योः क्रन्ददन्तोरैक्षानि कोपयत् ।  
 समीचीने धिपणे वि ष्कभायति  
 वृष्णः वीत्वा मदं उन्धानि शंसति  
 इमं विभमिं सुकृतं ते अद्रुशं  
 येनारुजासि मघवच्छफारजः ।  
 अस्मिन्सु ते सर्वने अस्त्योपयं  
 सुत इष्टो मघवन् घोष्याभगः  
 गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां  
 यवेन शुधं पुण्हत विभ्वाम् ।  
 वयं राजभिः प्रथमा धनानि  
 अस्माकेन वृजनेना जयेम  
 वृहस्पतिर्नः परि पात पश्चात्  
 उत्तोत्तरस्मादधरादद्यायोः ।  
 इन्द्रः पुरस्तादुत मण्यतो नः  
 सखा सवित्र्यो धरिणः रुणोतु

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १० ॥

॥ ११ ॥

( १५७८ )

॥ २३५ ॥ ( अ० १०।४८।१-११ )

वेङ्कट इन्द्रः । जगतीः ७, १०-११ त्रिष्टुप् ।

अहं भुवं वसुनः पुर्यस्पतिः  
अहं धनानि सं जयामि शश्वतः ।  
मां हवन्ते पितरं न जेतवो  
अहं वायुपे धि भजामि भोजनम्  
अहमिन्द्रो रोचो यक्षो अर्थघणः  
त्रिताय गा अजनयमहेरथि ।  
अहं दस्युभ्यः पारि नृगमा ददे  
गोघ्रा शिर्षेन दधीचे मातरिभवे  
महां त्वष्टा वज्रमतक्षदायसे  
मयि देवासोऽवृजघपि क्रतुम् ।  
ममानीकं सूर्यस्येव दुष्टरं  
मामार्थेन्ति कृतेन कर्त्तव्यं च  
अहमेतं गव्ययमर्घ्यं पशुं  
पुत्रीपिणं सार्यकेना हिरण्ययम् ।  
पुरू सुहृन्ना नि शिंशामि वायुपे  
यन्मा सोमांस उन्निधनो अमन्दिषुः  
अहमिन्द्रो न परा जिग्य इक्षन्  
न मृत्यवेऽचं तस्ये कदा चन ।  
भोममिन्मा सुन्यन्तो याचता वसु  
न मे पूरयः सुत्ये रिगाधन  
अहमेतान्छाभ्यमतो छात्रा  
इन्द्रं ये वज्रं युधयेऽर्हण्यत ।  
आह्वयमानो अथ हर्मनाहनं  
हृत्वा वदधनमस्युनमस्विनः  
अमीकुदमेकमेको अस्मि निष्पाट्  
अमी ह्य किम् प्रयः कर्त्तन्ति ।  
गले न पुर्गान् प्रति हन्मि भूरि  
किं मां निदग्नि दग्धवोऽनिद्राः  
अहं गृह्ण्यां अतिथिन्मामेकं  
इयं न यज्ञतुरं विभु धारयम् ।

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

यत् पर्णयम्न उत वां कर्त्तुहे  
प्राहं महे वृत्रहृते अशुश्रुवि  
प्र मे नमी साप्य इपे भुजे भुद्  
गवामेपे सत्या कृणुत द्विता ।  
दियुं यदस्य समिधेषु मंहयं  
आदिदेवं शंस्यमुक्थ्यं करम्  
प्र नेमस्मिन् ददशो सोमो अन्तः  
गोपा नेममाविरस्या कृणोति ।  
स तिममर्द्धं वृषमं सूर्यस्तन्  
मुहस्तस्यो बहुले यदो अन्तः  
आदित्यानां वसनां रुद्रियाणां  
देवो देवानां न मिनामि धाम ।  
ते मां भद्राय शयसे ततश्चुः  
अपराजितमस्त्वत्तमयाब्जम्  
॥ ३६ ॥ ( अ० १०।४९।१-११ ) जगतिः ७, ११ त्रिष्टुप् ।  
अहं दौ गृणते पुर्यं वसु  
अहं व्रद्धो कृण्वं महां वधेनम् ।  
अहं भुवं यजमानस्य चोदिता  
अयन्वनः नाक्षि विश्वस्मिन् भरे  
मां धुरिन्द्रं नाम देवतां  
दियश्च भमश्चापां च जन्तवः ।  
अहं हरी वृषणा विनता रघू  
अहं वज्रं शयसे धृण्वा ददे  
अहमर्कं कवये शिशये हथः  
अहं कुत्समायमाभिरुतिभः ।  
अहं दुर्णास्य अथिता यर्षयम्  
न यो रर आपे नाम दस्यये  
अहं पिनेव येनसूरमिण्ये  
नुमं कुन्साय स्पर्दिमं च गन्धयम् ।  
अहं भुवं यजमानस्य गजति  
प्र यज्ञरे नुजये न श्रियाध्वं

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १० ॥

॥ ११ ॥

॥ १२ ॥

॥ १३ ॥

॥ १४ ॥

॥ १५ ॥

अहं रैधयं मृगयं धृतवर्णे  
यन्माजिहीत वयनां चनानुपक् ।

अहं वेशं नम्रमायवैऽकरं

अहं सव्याय पट्टमिमरन्धयम्

अहं स यो नवयास्त्यं बृहद्रथं  
सं वृत्रेय दासं वृत्रहारजम् ।

यद्वर्धयन्तं प्रथयन्तमानुपम्

दूरे पारे रजसो रोचनाकरम्

अहं सूर्यस्य परिं याम्याशुभिः

प्रनुशोभिर्हमान् ओजसा ।

यन्मा सावो मनुप आह निर्णिज्ज

ऋधक् रुपे दासं कृत्यं हयैः

अहं संमहा नहुषो नहुषरः

प्राधाययं शवसा तुर्वश यदुर्म ।

अहं न्यून्यं सहसा सहस्करं

ननु धार्यतो नधति च वक्षयम्

अहं मस स्रयतो धारयं वृषां

द्रवित्यः पृथिव्यां सीरा अधि ।

अहमर्णोसि यि तिरामि सुक्रतुः

पृथा विदं मनये गातुमिष्टयं

अहं तदाम धारयं यदासु न

देवभ्यः तदप्राधाययदुशतः ।

स्वाहं गयामृधःसु वृशणास्वा

मपामधु भ्यायं सोममातिरम्

पृथा देवा इन्द्रो पियं ननु

प्र प्यालेन मयया सत्यसंघाः ।

पिभ्ये ता ते हरिषः शचीयो

धनि नृगर्गः न्ययशो वृणन्ति

॥ १७ ॥ ( अ० १०१०१-७ )

अर्णो, १, ४ अर्णो, ५ त्रिष्टुप् ।

प्र यो महे मर्दमानां पामधुनां

अयो विभानं राय विभामुर्वे ।

इन्द्रस्य यस्य सुमंखं सद्यो महि

अयो नृमणं च रोदसी सपर्यतः

सो विदु सख्या नयं इनः स्तुतः

चरित्य इन्द्रो मावते नरे ।

विभवासु धूपं वाजहृत्येषु सपते

वृत्रे वाप्स्वभि शूर मंदसे

के ते नर इन्द्र ये तं इपे

ये ते सुजं संधन्यमिषक्षान् ।

के ते वाजायासुर्याय हिमिरे

के अप्सु स्वासुरेवासु पौंस्यै ।

मुयस्वमिन्द्र ब्रह्मणा महान्

मुवो विभ्वेषु सर्वनेषु यक्षियः ।

मुवो नृद्व्योक्तो विभ्वस्मिन् भरे

ज्येष्ठश्च मन्त्रो विभ्वचर्षणे

अवा नु कं ज्यायान् यक्षर्वनसो

मही त ओमांशं कृष्ट्यो विदुः ।

असो नु कंमजरो यथोश्च

विभ्वेदेता सर्वना तनुमा रुपे

एता विभ्वा सर्वना तनुमा रुपे

स्वयं सूनो सहसो यानि दधिपे ।

यराय ते पात्रं धर्मणे तनां

यसो मश्रो ब्रह्मरुतं यवः

ये ते विप्र ब्रह्मरुतः सुते सचा

वर्तुनां च वर्तुनश्च दावने ।

प्र ते सुमनस्य मनसा पृथा भुंयन्

मदे सुतस्य सोम्यस्याग्रसः

॥ १८ ॥ ( अ० १०१११-६ )

बृहदुक्थो वामोदेव्याः । त्रिष्टुप् ।

तां सु ते कीर्ति मंघयन् महित्या

यत् त्वां भोते रोदसी अर्धयेताम् ।

प्रायो देवां आतिरो दानमोजः

प्रजायै त्वस्य यदतिष्ठ इन्द्र

॥ १ ॥

॥ ५ ॥

॥ २ ॥

॥ ६ ॥

॥ ३ ॥

॥ ७ ॥

॥ ४ ॥

॥ ८ ॥

॥ ५ ॥

॥ ९ ॥

॥ ६ ॥

॥ १० ॥

॥ ७ ॥

॥ ११ ॥

॥ १ ॥

( ६६०८ )

यदचरस्तन्वा वावृधानो  
 बलानीन्द्र प्रप्रवाणो जनेषु ।  
 मायेत् सा ते यानि युद्धान्याहुः  
 नाद्य शर्वं ननु पुरा विवित्से  
 क उ नु ते महिमनः समस्य  
 अस्मत् पूर्वं ऋपयोऽन्तमापुः ।  
 यन्मातरं च पितरं च साकं  
 अजनयथास्तन्वः स्वायाः  
 चत्वारि ते असुर्याणि नाम  
 अदाभ्यानि महिषस्य सन्ति ।  
 त्वमहं तानि विभ्यानि वित्से  
 येभिः कर्माणि मधवञ्चकथं  
 त्वं विभ्या दधिपे केवलानि  
 यान्याविष्या च गुहा वसनि ।  
 काममिन्मे मधवन् मा धि तारीः  
 त्वमाज्ञाता त्वमिन्द्रासि दाता  
 यो अर्द्धाज्योर्तिपि ज्योतिरन्तः  
 यो अर्द्धजन्मधुना सं मधूनि ।  
 अधं प्रियं शूपमिन्द्राय यन्म  
 ब्रह्मरुतो बृहदुक्थादवाचि  
 ॥ २३९ ॥ ( ऋ० १०।१५।१-८ )

दूरे तन्नाम गुह्यं पराचैः  
 यत् त्वां भीते अहयेतां वयोर्धे ।  
 उर्द्धस्तन्नाः पृथिवीं धामभीके  
 भ्रातुः पुत्रान् मधवन् तित्विपाणः  
 महत् तन्नाम गुह्यं पुरस्वृग्  
 येन भूतं जनयो येन मय्यम् ।  
 प्रजं ज्ञात ज्योतिर्यर्द्धस्य  
 प्रियं प्रियाः समविशन्त पञ्च  
 आ रोर्दसी अपृणादोत मथ्यं  
 पञ्च देवोः ऋतुशः सतसंत ।

चतुर्विंशता पुरुषा वि चष्टे  
 सरूपेण ज्योतिषा विप्रतेन ॥ ३ ॥  
 यदुप औच्छः प्रथमा विभानां  
 अजनयो येन पुष्टस्य पुष्टम् ।  
 यत् ते जामित्वमवर्ं परस्या  
 महन्महत्या असुरत्वमेकम् ॥ ४ ॥  
 विधुं दृष्ट्वाणं सर्मने बहूनां  
 युवानं सन्तं पलितो जंगार ।  
 देवस्य पश्य कार्त्तं महित्वा  
 अद्या ममार स ह्यः समान ॥ ५ ॥  
 शान्मना शाको अरुणः सुपर्ण  
 आ यो महः शूरः सनादनीलः ।  
 यश्चिकेत सत्यमिह तन्न मोघं  
 वस्तु स्फार्हमुत जेतोत दाता ॥ ६ ॥  
 येभिर्ददे वृण्ण्या पांस्यानि  
 येभिरौक्षेद् वृन्हत्याय वञ्चरी ।  
 ये कर्मणः क्रियमाणस्य मुह  
 ऋतेकर्ममुदजायन्त देवाः ॥ ७ ॥  
 युजा कर्माणि जनयन् विभ्वौजा  
 अशस्तिहा विभ्यमनास्तुरपाद ।  
 पीत्वी सोमस्य त्रिव आ वृधानः  
 शरो निर्यधाचमद् वस्यन् ॥ ८ ॥  
 ॥ २४० ॥ ( ऋ० १०।६०।५ )  
 बन्धु श्रुतबन्धुर्बिप्रबन्धुर्गोपायना गायत्री ।  
 इन्द्रं सनासेमातिषु रथप्रोष्ठेषु धारय ।  
 दिवीध सूर्यं दृशे ॥ ५ ॥  
 ॥ २४१ ॥ ( ऋ० १०।७१।१-११ )  
 गोरिवान्ति शाक्य । त्रिष्टुप् ।  
 जनिष्ठा उग्रः सहसे तुरायं  
 मन्द्र ओजिष्ठो बहुलाभिमानः ।  
 अर्धर्धभिन्द्रं मरुतश्चिदर्थ  
 माता यद्वीरं दधनदनिष्ठा ॥ १ ॥  
 ( २६०३ )



ब्रुहो निर्वृत्ता पृथानी चिदेवैः  
 पुरु शंसैन वावृधुष्ट इन्द्रम् ।  
 अभीवृतेव ता महापदेन  
 ध्वान्तात् प्रपित्यादुदरेन्त गर्माः  
 ॥ २ ॥  
 ऋष्या ते पादा प्र यजिगासि  
 अवर्धन् वाजा उत ये चिदत्र ।  
 तमिन्द्र सालाबृकाग्नसहस्रै  
 आसन् दधिपे भविना ववृत्त्याः  
 ॥ ३ ॥  
 समना वृणिरपे यासि यज्ञं  
 आ नासत्या स्रत्यार्य वक्षि ।  
 वसान्यामिन्द्र धारयः सहस्र  
 अभिना शूर ददतुर्मघानि  
 ॥ ४ ॥  
 मन्दमान ऋतादधि प्रजायं  
 सपिमिरिन्द्र इपिरेमिरथम् ।  
 आमिहि माया उप दस्युमागात्  
 मिदः प्र तत्रा अघपत् तमोसि  
 ॥ ५ ॥  
 सनामाना चिद् घ्यसयो न्यस्मा  
 अयादृभिन्द्र उपसो यथानः ।  
 ऋष्यैरगच्छुः सखिमिनिकामैः  
 साकं प्रनिष्ठा ह्यद्य जघन्थ  
 ॥ ६ ॥  
 त्वं जघन्थ नमुचि मयस्सुं  
 दार्यं वृणान ऋषये विनायम् ।  
 त्वं चकथ मनये स्योनान्  
 पथो देवभ्रात्रसु यानान्  
 ॥ ७ ॥  
 त्वेमनानि पमिपे वि नाम  
 रंजान इन्द्र दधिपे गर्मस्ता ।  
 धनु र्या देवाः दार्यमा मदन्ति  
 उपरिष्णान् पुनिरंशकथं  
 ॥ ८ ॥  
 घकं यदग्याप्या निर्वक्तं  
 उतो तदगमं मथिर्घच्छपान् ।

पृथिव्यामतिपितं यदधः  
 पयो गोष्वदेधा ओषधीषु  
 ॥ ९ ॥  
 अभ्यादियायेति यद्वदन्ति  
 ओजसो जातमुत मन्य एनम् ।  
 मन्योरियाय हर्म्येषु तस्थौ  
 यतः प्रज्ज इन्द्रो अस्य वेद  
 ॥ १० ॥  
 वयः सुपर्णा उप सेदुरिन्द्रं  
 प्रियमेधा ऋषयो नाधमानाः ।  
 अप ध्वान्तमूर्णुहि पृथि चक्षुः  
 सुमुख्यस्मान् निधयेव वदाम्  
 ॥ ११ ॥  
 ॥ १४१ ॥ ( अ० १०।७।१-६ )  
 घर्षनां वा चर्कप इयक्षन्  
 धिया वा यद्यैवा रोदस्योः ।  
 अयन्तो वा ये रयिमन्तः सातौ  
 वज्रं वा ये सुधुणं सुधुतो धुः  
 ॥ १ ॥  
 हव एषामसुरो नक्षत चां  
 ॥ ५ ॥  
 अथस्थता मनसा निसत् क्षाम् ।  
 चक्षाणा यत्र सुधितार्य देवा  
 दानं वारिभिः कृण्वन्त स्यैः  
 ॥ २ ॥  
 इयमेवाममृतानां गीः  
 ॥ ६ ॥  
 सर्वतां ये कृण्वन्त रत्नम् ।  
 धियं च यद्यं च सार्धन्तः  
 ते नो धान्तु वसव्यस्मसांमि  
 ॥ ३ ॥  
 आ तत् तं इन्द्रायवः पनन्तु  
 ॥ ७ ॥  
 अभि य ऊर्ध्व गोमन्तं तिवृत्सान् ।  
 गुरुस्त्वं ये पुरुषां मदीं  
 सहस्रंधारां वृतां दुर्दक्षन्  
 ॥ ४ ॥  
 शचीव इन्द्रमर्धसे वृणुष्वं  
 ॥ ८ ॥  
 अनानतं द्रमयन्तं पृतन्यूनं ।  
 ऋभुक्षणं मघवानं सुवृत्तं  
 अता यो यजं नयं पुरुषः  
 ॥ ५ ॥

यद्वायानं पुरुतमं पुरापद्

आ वृत्रहेन्द्रो नामान्यथाः ।

अर्चति प्रासहस्पतिस्तुविमान्

यदीमुदमसि कर्तये कर्त्तु तत्

॥ ६ ॥

॥ १४३ ॥ ( ऋ० १०।८६।१-२३ )

इन्द्रः, ७, १३, २३ ऐन्द्रो वृषाकपिः;

२-६, ९-१०, १५-१८ इन्द्राणां । पङ्क्तिः ।

यि हि सौतोर्मुखतः नेन्द्रं देवममंसत ।

यन्नामदद् वृषाकपि-र्यः पुष्टेषु मत्संया

विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः

॥ १ ॥

परा हीन्द्र धार्यसि वृषाकपेरति व्यर्थः ।

नो अह्म म विन्द-स्यन्यन्न सोमपीतये

विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः

॥ २ ॥

किमुयं त्वां वृषाकपि-श्चकार हरितो मृगः ।

यसां इदस्यसीदु न्वयौ वा पुष्टिमदसु

विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः

॥ ३ ॥

यमिमं त्वं वृषाकपि प्रियमिन्द्राभिरक्षसि ।

श्वा न्यस्य जन्मिप-दपि कर्णे यराहयुः

विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः

॥ ४ ॥

प्रिया तृष्टानि मे कपि-र्घ्यन्ता व्यदूदपत् ।

शिशो न्यस्य राविपं न सुगं दृष्टते भुवं

विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः

॥ ५ ॥

न मत् स्त्री सुभसत्तु न सुयागुतरा भुवत् ।

न मत् प्रतिच्यवीयसी न सन्ध्युर्धमायसी

विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः

॥ ६ ॥

उवे अम्य सुलाभिके यथेवाद्ग भविष्यति ।

मसन्ने अम्य सार्ज्य मे शिरौ मे वीव हृष्यति

विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः

॥ ७ ॥

किं सुयाहो स्वहृते पृथुष्टो पृथुजाघने ।

किं शूरपति नस्त्व-मर्भ्यमीपि वृषाकपि

विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः

॥ ८ ॥

अवीराभिव मामयं शयकंभि मन्यते ।

उताहमसि वीरिणी-न्द्रपत्नी मरुत्सन्वा

विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः

॥ ९ ॥

संहोत्रं स्मं पुरा नारी समनं वाचं गच्छति ।

वेधा ऋतस्य वीरिणी-न्द्रपत्नी महीयते

विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः

॥ १० ॥

इन्द्राणीमासु नारिषु सुभगांमहमश्चयम् ।

नहास्या अपरं वन जरसा मरते पतिः

विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः

॥ ११ ॥

नाहमिन्द्राणि रात्रण सत्यधुपाकपेभ्रुते ।

यस्येदमप्यं हृदि प्रियं देवेषु गच्छति

विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः

॥ १२ ॥

वृषाकपायि रेवति सुपुत्र आदु सुस्तुये ।

यसत् त इन्द्र उक्षणः प्रियं काचित्करं हृदिः

विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः

॥ १३ ॥

उक्षो हि मे पञ्चदश साकं पचंगि विशतिम् ।

उताहमभि पीव इ-दुभा कुक्षी पृणन्ति मे

विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः

॥ १४ ॥

वृषभो न तिग्मदंष्ट्रो ऽन्तर्यथेषु रोहयत् ।

मथस्त इन्द्र शो हृदे यं ते सुनोति भावयुः

विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः

॥ १५ ॥

न सेशे यस्य रम्यते ऽन्तरा सन्ध्याः कपृत् ।

सेदीशे यस्य रोमशं निपेदुयो विजृम्भते

विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः

॥ १६ ॥

न सेशे यस्य रोमशं निपेदुयो विजृम्भते ।

सेदीशे यस्य रम्यते ऽन्तरा सन्ध्याः कपृद्

विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः

॥ १७ ॥

अयमिन्द्र वृषाकपिः परस्वन्तं हृतं विदत् ।

असि सुनां नवं चरु-मादेघस्यान आर्चितं

विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः

॥ १८ ॥

अयमेमि विचाकशद् विचिन्वन् दासमार्यम् ।  
 पिवांमि पाकसुत्वंनो ऽमि धीरमचाकशं ॥ १९ ॥  
 विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः  
 धन्वं च यत् कृतं च  
 कर्तिं स्वित् ता वि योजेना ।  
 नेदीयसो वृषाकपे ऽस्तमेहि गृहो उप  
 विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ २० ॥  
 पुनरेहि वृषाकपे सुविता कल्पयावहे ।  
 य एष स्वन्ननंशानो ऽस्तमेपि पृथा पुनः  
 विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ २१ ॥  
 यदुदञ्चो वृषाकपे गृहमिन्द्राजगन्तन ।  
 कः स्य पुत्स्यो मृगः कमगजनयोपनो  
 विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ २२ ॥  
 पशुहि नाम मानधी साकं संसृय विशतिम् ।  
 मद्रं मलं त्यस्यो अभुद् यस्यो उदरमार्मयद्  
 विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ २३ ॥

॥ ४४४ ॥ ( ऋ० १०।८९।१-४, ६-१८ )

रेवुर्नधाभिर । त्रिभुव ।

इन्द्रं स्तया नृतेमं यस्य मृदा  
 विषयाधे रंघुना वि ज्मो अन्तान् ।  
 आ यः पुरी चर्षणीधृदरंभिः  
 ॥ सिन्धुभ्यो रिरिचानो मंहित्वा ॥ १ ॥  
 न गृयः पर्युक्त यरुस्य  
 इन्द्रो यव्याद्रर्यय च्मया ।  
 अतिष्ठन्तमपर्युक्तं न रते  
 वृष्णा नर्माभि रिरिप्या जघान ॥ २ ॥  
 गमानमग्मा अर्नपायुदयं  
 स्मया दिपो अरतं प्रष्टु नर्ययम् ।  
 वि यः पुष्टेयं जनिमान्ययं  
 इन्द्रं धिक्वाय न सग्रायमीये ॥ ३ ॥

इन्द्राय गिरो अनिशितसर्गा  
 अपः प्रेरयं सगरस्य बुध्नात् ।  
 यो अक्षेणव चक्रिया शचीभिः  
 विर्वक् तस्मत् पृथिवीमुत धाम् ॥ ४ ॥  
 न यस्य द्यावापृथिवी न धन्व  
 नान्तरिक्षं नाद्रयः सोमो अक्षाः ।  
 यदस्य मन्थुरधिनीयमानः  
 शृणाति बोलु हजति स्थिराणि ॥ ६ ॥  
 जघान वृत्रं स्वधितिर्धनेव  
 सरोजं पुरो अर्दय सिन्धुम् ।  
 विभेदं गिरिं नवमित्रं कुम्भं  
 आ गा इन्द्रो अरुणुत स्वयुग्भिः ॥ ७ ॥  
 त्वं ह त्यर्हण्या इन्द्र धीरो  
 असिर्न पर्व वृजिना शृणासि ।  
 प्र ये मित्रस्य वरुणस्य धाम  
 युजं न जनां मिनन्ति मित्रम् ॥ ८ ॥  
 प्र ये मित्रं प्रार्यमणं तुरेवाः  
 प्र संगिरः ॥ वरुणं मिनन्ति ।  
 न्युमित्रेषु वधमिन्द्र तुष्टं  
 वृषन् वृषाणमरुपं शिशिहि ॥ ९ ॥  
 इन्द्रो दिव इन्द्र ईशे पृथिव्या  
 इन्द्रो अपामिन्द्र इत् पर्वतानाम् ।  
 इन्द्रो वृषामिन्द्र इन्मेधिराणां  
 इन्द्रः क्षेमे योगे हव्य इन्द्रः ॥ १० ॥  
 प्राक्तुभ्य इन्द्रः प्र वृधो अर्हभ्यः  
 प्रान्तरिक्षात् प्र संमुद्रस्य धासेः ।  
 प्र यातस्य प्रयंसः प्र ज्मो अन्तात्  
 प्र सिन्धुभ्यो रिरिचे प्र श्रितिभ्यः ॥ ११ ॥  
 प्र शोशुचत्या उपसो न केतुः  
 अस्मिन्वा तं यततामिन्द्र हेतिः ।  
 अदमेय विष्य दिव आ र्वजानः  
 तर्पिष्टेन देयमा द्रोघमित्रान् ॥ १२ ॥

अन्वह मासा अन्विह्नानि  
अन्वोपधीरनु पर्वतासः ।  
अन्विन्तु रोदसी वायुशाने  
अन्वापो अजिहत् जार्यमानम्  
कहिं स्वित् सा तं इन्द्र खेत्यासत्  
अघस्य यद् भिनदो रक्ष एषत् ।  
मित्रक्रुवो यच्छसन्ते न गार्धः  
पृथिव्या आपर्गमुया शर्यन्ते  
शुभ्रयन्तो अमि ये नस्तत्तु  
महि वार्धन्त ओगणार्स इन्द्र ।  
अन्धेनामित्रास्तर्मसा सचन्तां  
सुज्योतिषो अकवस्ताँ अमि प्युः  
पुरुणि हि त्वा सर्पना जनानां  
प्रह्माणि मर्दन् गृणतामृषीणाम् ।  
इमामाघोपधर्यसा सद्भितिं  
तिरो विश्वाँ अर्चतो याह्यर्वाङ्  
एया तं युयमिन्द्र भुज्जतीनां  
विषाम सुमतीनां नर्यानाम् ।  
विषाम वस्तोरवसा गृणन्तो  
विश्यामिन्ना उत तं इन्द्र नूनम्  
शुनं हुवेम मघयान्मिन्द्र  
अस्मिन् भरे नृतम् याजसातो ।  
शृण्वन्तमुग्रमृतयै समस्तु  
प्रन्तै वृत्राणि संजितं धर्नानाम्  
॥ १४५ ॥ ( अ० १०।२९।१-१२ ) ब्रह्मो वेदान्तः ।  
कं नक्षिप्रमिपण्यसि चिकित्वा  
पृथुमानै घाश्रं घायुघर्यै ।  
कत् तस्य दातु शर्यसो व्युष्टौ  
तश्चरजं पृथतुमपिण्यत्  
स हि घृता विघृता वेति सार्म  
पृथुं योर्नमसुत्वा संसाद ।

स सनीलिभिः प्रसद्धानो वंस्य  
आतुर्न ऋते सतयस्य मायाः  
॥ २ ॥  
स वाजं यातार्पदुष्पदा यन्  
स्वर्पाता परं पदत् सनिष्यन् ।  
॥ १३ ॥  
अनर्वा यच्छतर्दुरस्य वेदो  
प्रश्चिभ्रदैवाँ अमि वर्षसा भूत्  
॥ ३ ॥  
स युद्धयोः ऽधनीगोप्यर्वा  
आ जुहोति प्रघ्न्यासु सन्निः ।  
॥ १४ ॥  
अपादो यत्र युज्यासोऽप्या  
द्रोण्यभास ईरते घृतं वाः  
॥ ४ ॥  
स रुद्रेमिरदास्तवार ऋम्या  
हित्वा गर्वमारययद्य आगात् ।  
यधस्य मन्ये मियुना चिवेयी  
अग्रमभीत्यारोदयन्मुपायन्  
॥ ५ ॥  
स इद् दासं तुवीरयं पतिर्दन्  
पञ्चक्षं त्रिशीर्षाणं दमन्यत् ।  
अस्य धितो न्योजसा घृधानो  
विषा वरुहमयौअप्रया हन्  
॥ ६ ॥  
स द्रुहणे मनुप ऊर्ध्वस्तान  
आ साविपदर्शस्तानाप शर्यम् ।  
स नृतमो नहुषोऽसत् सुजातः  
पुरोऽभिनर्दहन् दस्युहत्तै  
॥ ७ ॥  
सो अग्निषो न ययस उदन्यन्  
क्षयाय गातुं विदग्धो अस्मे ।  
उप यत् सीददिन्दुं शरिः  
श्येनोऽयोपादिदन्ति दस्युन्  
॥ ८ ॥  
स वार्धन्तः शवमानेमिरम्य  
कुन्ताय द्रुष्णं रुपणे परादात् ।  
अयं कविर्मनयच्छम्यमानं  
अत्कं यो वंस्य सन्निता नृणाम्  
॥ ९ ॥

अयं दशस्यन् नर्यभिरस्य  
 वसो वेवेभिर्वंशो न मयी ।  
 अयं कनीनं क्रतुपा अवेदि  
 अमिमीतारुं यश्चतुष्पात् ॥ १० ॥  
 अम्य स्तोमभिरौशिज क्रुजिर्वा  
 नृज दैरयद् वृषमेण पिश्रोः ।  
 सुत्या यद् यज्ञतो दीदयत्रीः  
 पुर इयानो अभि यर्षसा भूव ॥ ११ ॥  
 एग महो असुर वृक्षयाय  
 यज्ञकः पृष्टिर्ष्य सपदिन्द्रम् ।  
 न इयानः करति स्वस्तिमेस्मा  
 इपृमृज सुशिति विष्वमाभाः ॥ १२ ॥

॥ १० ॥

॥ ११ ॥

॥ १२ ॥

गोत्रभिर्द गोविद् वज्रयाहुं  
 जयन्तमजम् प्रमृणन्तमोजसा ।  
 इमं संजाता अनु वीरयध्वं  
 इन्द्रं सखायो अनु सं रमध्वम् ॥ ६ ॥  
 अभि गोत्राणि सहसा गार्हमानो  
 अदयो वीरः शतमन्युरिन्द्रः ।  
 दुश्च्यवनः पृतनापाल्युध्योः  
 अस्माकं सेना अवतु प्र युत्सु ॥ ७ ॥  
 इन्द्रं आसां नेता बृहस्पतिः  
 दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः ।  
 देवसेनानामभिभज्जतीनां  
 जयन्तीनां मुक्तो युन्वग्रम् ॥ ८ ॥  
 इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ  
 आदित्यानो मुक्तां शर्ध उग्रम् ।  
 महामनसां भुवनच्यवानां

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ६८६ ॥ ( ऋ० १०।१०३।१-३, ५-११, १३ )

देशोऽश्विष्य । [ १३ मन्त्रो वा ] । त्रिष्टुप्, १३ अनुष्टुप् ।

अप्सु धृतस्य हरिवः पिबेह  
 नृभिः सुतस्य जठरं पृणस्व ।  
 मिमिक्षुर्यमद्रय इन्द्र तुभ्यं  
 तेभिर्वैधस्व मदमुक्यवाहः  
 प्रोत्रां पीति वृष्ण इयमिं सत्यां  
 प्रयै सुतस्य हर्यश्च तुभ्यम् ।  
 इन्द्र धेनामिह मावयस्व  
 धीभिर्विध्वामिः शच्यां गृणानः  
 ऊती शचीवस्तव वीर्येण  
 ययो वधाना उशिजं ऋतुहाः ।  
 प्रजावदिन्द्र मनुषो हुरोणे  
 तस्थुर्गुणन्त सधमाद्यासः  
 प्रणीतिमिष्टे हर्यश्च सुष्टोः  
 सुपुत्रस्य पुरुषो जनासः ।  
 महिष्ठाभुतिं वित्तिरे दधानाः  
 स्तोतारं इन्द्र तव सुनुताभिः  
 उप ब्रह्माणि हरियो हरिभ्यां  
 सोमस्य याहि प्रेतये सुतस्य ।  
 इन्द्र त्वा यक्षः क्षममाणमानङ्  
 दाभ्यां अस्यध्यस्व प्रक्रेतः  
 सहस्रवाजमभिमातिपाहं  
 सुतेरणं मघवानं सुवृक्मिम् ।  
 उप भूपति गिरो अग्रतीतं  
 इन्द्रं नमस्या जैरितुः पन्नन्त  
 सताप्यो देवीः सुरणा अमृता  
 याभिः सिन्धुमतर इन्द्र पुमिन् ।  
 नवतिं श्रोत्या नवं च क्षयन्तीः  
 देवेभ्यो गातुं मनुषे च विन्दः  
 अपो महीपमिशस्तेरमुञ्चो  
 अजागरस्वधिं देय पक्कः ।  
 इन्द्र यास्त्वं वृषतुर्ये चकथ  
 तामिर्विदवार्युस्तन्यं पुपुष्याः

वीरेण्यः क्रतुरिन्द्रः सुशस्तिः  
 उतापि धेनो पुरुहूतमीष्टे ।  
 आदयद् वृत्रमर्कणोदु लोकं  
 संसाहे शकः पृतना अभिष्टिः ॥ १० ॥  
 शूनं हुवेम मघवानमिन्द्रं  
 असिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।  
 शृण्वन्तमुग्रमृतये समस्तु  
 मन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥ ११ ॥  
 ॥ २४८ ॥ ( ऋ० १०।१०।१-११ )  
 वीर्यो दुर्मिनः सुमित्रो वा । उष्णिक् । १ गायत्री य,  
 २, ७ पिपीलिहण्या, ११ दिङ् ।  
 कदा वंसो स्तोत्रं हयैत आष दमशा दधद्वाः ।  
 दीर्यं सुतं वाताप्याय ॥ १ ॥  
 हरी यस्य सुयुजा चिन्ता वे-र्यन्तानु शेषा ।  
 उभा रजी न केशिना पतिर्दन् ॥ २ ॥  
 अप योरिन्द्रः पापंज भा मतो  
 न शंभमाणो विभीषान् ।  
 शूमे ययुजै तविवीवान् ॥ ३ ॥  
 सचायोरिन्द्रश्चैष यो उपानसः सपर्यन् ।  
 नदयोरिव्रतयोः शूर इन्द्रः ॥ ४ ॥  
 अधि यस्तस्थौ केशवन्ता ग्यचस्वन्ता न पुष्टयै ।  
 वनोति शिप्राभ्यां शिप्रिणीवान् ॥ ५ ॥  
 प्रास्ताह्वयौजा ऋणेभि-स्तुतक्ष शूरः शयसा ।  
 ऋभुनं क्रतुभिर्मततरिषवा ॥ ६ ॥  
 यज्ञं यश्चके सुहर्नाय वस्यये हिरीमशो हिरीमान् ।  
 अन्तहनुर्दुतं न रजः ॥ ७ ॥  
 अवं नो वृजिना शिशी-हृचा वनेमामृचः ।  
 नावद्वा यक्ष अध्वजोपतिं त्वे ॥ ८ ॥  
 ऊर्ष्या यत् तै वेतिनी भूद् यक्षस्य धुर्यु सगन् ।  
 सजूर्नाधं स्वयंशसं सचायोः ॥ ९ ॥  
 श्रिये ते पृश्निषसेचनी भू-चिद्वये दविररेपाः ।  
 यया स्ये पात्रे सिञ्चस उत् ॥ १० ॥  
 ( १७१२ )

शतं वा यदसुर्यं प्रति त्वा  
सुमित्र इत्यास्तौद् दुर्मित्र इत्यास्तौत् ।  
आयो यदस्युहृत्यै कुत्सपुत्रं  
प्रायो यदस्युहृत्यै कुत्सपुत्रम् ॥ ११ ॥

॥ १४९ ॥ ( ऋ० १०।११।१-१० )  
वैष्णोऽष्टादशः । त्रिष्टुप् ।

मनीषिणः प्र भरष्यं मनीषां  
यथायथा मतयः सन्ति नृणाम् ।  
इन्द्रं सत्यैरेरयामा कृतेभिः  
स हि वीरो गिर्वणस्युर्विदानः  
श्रुतस्य हि सद्रसो धीतिर्यौत्  
सं गाष्ट्रियो वृषभो गोमिरानद् ।  
उदनिष्ठन् तयिषेणा रवेण  
महान्ति चित्रं सं विव्याचा रजांसि

इन्द्रः किल धृत्या ब्रह्म वेद  
न हि मिथुः पथिष्ठत् सूर्योय ।  
आग्नेर्नो कृण्वन्नच्युतो भुयद्भोः  
पतिर्दिवः सनृजा अप्रतीतः  
इन्द्रो मद्रा मद्रतो धर्णवस्यं  
मृतार्मिनादक्षिणेभिर्गुणानः ।  
पुरुषं विप्रि तंताना रजांसि  
हापार यो धृणं मृत्यनाता

इन्द्रो दिवः प्रतिमानं ऋषिष्या  
विदया वेदु गर्वता हन्ति नृणाम् ।  
मदीं विद् घामातनोन् मूर्धेण  
आग्नेर्नो विन् वमनेन वषभीयान्  
यजंति हि वृत्रदा पृत्रमन्तः  
भर्दवस्य शनोवानस्य मायाः ।  
वि भृष्टो भवं गृह्णात जपन्थ  
धर्मानसो मघवन् वार्हतांजा ।

॥ १२ ॥  
॥ १३ ॥  
॥ १४ ॥  
॥ १५ ॥  
॥ १६ ॥

सर्वन्तु यदुपसुः सूर्येण  
चित्रामस्य केतवो रामविन्दन् ।  
आ यन्नक्षत्रं ददृशे दिवो न  
पुनर्यतो नकिरद्धा नु वेद ॥ ७ ॥

दुरं किल प्रथमा जंगमुरासां  
इन्द्रस्य याः प्रसवे सलुरापः ।  
कं स्विदग्रं कं युध्न आसां  
आपो मध्यं कं वो नूनमन्तः  
सृजः सिन्धुरहिना जग्रसानां  
आदिदेताः प्र विविजे जवेनं ।

मुमुक्षमाणा उत या मुमुञ्चे  
जघेदेता न रमन्ते नितिताः  
सुग्रीवीः सिन्धुमुशतीरिवायन्  
सुनाञ्जार आरितः पुर्मिदासाम् ।  
अस्तमा ते पार्थिवा वसन्ति  
असे जंगुः सुनृता इन्द्र पुर्वीः

॥ १५० ॥ ( ऋ० १०।११।१-१० )  
वैष्णो नमःप्रभेदनः ।

इन्द्र पितृ प्रतिकामं सुतस्य  
प्रातःसावस्तय हि पुर्वपीतिः ।  
हर्षस्य हन्तवे दारु दार्द्र्य  
उपयेभिष्टे धीर्यां प्र प्रयाम

यस्ते रथो मनसो जर्षीयान्  
पुष्ट तेन मोमपेयाय याहि ।  
तपमा ते हरयः प्र प्रपन्तु  
येभिर्यासि वृषभिमन्दमानः

हर्षिग्याता यचैता मूर्धस्य  
धेष्टं हृष्यन्तर्भ्य स्पदावस्य ।  
भग्मानिरिन्द्र सगिभिर्हृयानः  
ग्रीष्मार्चानो मोक्षय्या निपद्य

॥ ३ ॥  
( १०१० )

यस्य त्यत् ते महिमानं मदैपु  
इमे मही रोदसी नार्चविक्राम ।

तदोक्त आ हरिभिरिन्द्र युक्तैः  
प्रियेभिर्याहि प्रियमम्रमच्छ

यस्य शश्वत् पपिवाँ इन्द्र शर्वन्  
अनानुकृत्या रण्यो चकथे ।

स ते पुरंधि तर्धिपीमियति  
स ते मदाय सुत इन्द्र सोमः

इदं ते पात्रं सर्नविचमिन्द्र  
पिषा सोममेना शतक्रतो ।

पूर्ण आह्रावो मविरस्य मध्वो  
यं विश्व इदंभिद्वर्यन्ति देवाः

वि हि त्वामिन्द्र पुरुषा जनांसो  
द्वितप्रयसो वृषभ ह्वयन्ते ।

अस्माकं ते मधुमत्तभार्ना  
आ भुवन्त्सर्चना तेषु हर्थ

प्र तं इन्द्र पूर्व्याणि प्र नूनं  
धीर्षो वोचं प्रथमा कृतानि ।

सतीनर्मन्युरभ्रयायो अद्रिं  
सुषेदनामरुणोर्ब्रह्मणे गाम्

नि पु सीद गणपते गुणेषु  
त्वामाहुर्विप्रतमं कवीनाम् ।

न ऋते त्यत् क्रियते किं चनारे  
महामर्कं मघवञ्जिघ्रमर्च

अभिल्या नो मघवन् नार्धमानान्  
सर्पे वोधि वंसुपते सर्षीनाम् ।

रणं कृधि रणरुत् सत्यशुष्मा  
अभक्ते चिदा भजा राये अस्मान्

॥ १५१ ॥ (ऋ० १०।११।१-२०)

वैष्णवः शतशमेदन । जगदी, १० मिन्द्रप ।

तमस्य चावापृथिवी सचैतसा  
विश्वेभिर्देवैरनु शुष्ममावताम् ।

यदैत् कृष्णानो महिमानमिन्द्रियं  
पीत्वी सोमस्य ऋतुमो अवर्धत

॥ १ ॥

तमस्य विष्णुमहिमानमोजसा  
अंशुं दधन्वान मधुनो वि रण्यते ।

॥ ४ ॥

देवेभिरिन्द्रो मघवां सुयावभिः  
वृत्रं जघन्वाँ अमघद् वरेण्यः

॥ २ ॥

वृत्रेण यदहिना विभ्रदारुंधा  
सुमस्थिया युधये शंसमाविदे ।

॥ ५ ॥

विश्वे ते अत्र मरुतः सुह त्मना  
अवर्धन्नुग्र महिमानमिन्द्रियम्

॥ ३ ॥

॥ ६ ॥

जज्ञान पृथ ब्र्याघत स्पृधः  
प्रापदयद् वीरो अभि पौंस्यं रणम् ।

अवृक्षदद्रिमर्धं सुस्यदः सज्जत्  
अस्तंभान्नाकं स्वपस्यया पृथुम्

॥ ४ ॥

॥ ७ ॥

आदिन्द्रः सना तर्विपीरपत्यत्  
वरीयो द्यावापृथिवी अयाधत ।

अवाभरद्वृपितो यज्ञमायसं  
शेवं मिनाय वरेणाय शशुये

॥ ५ ॥

॥ ८ ॥

इन्द्रस्यान् तर्विपीभ्यो विरिदिनं  
ऋचायतो अरंहयन्त मन्यवे ।

धृत्रं यदुग्रो व्यर्षुक्षदोर्जसा  
अपो विश्रतं तमसा परीवृतम्

॥ ६ ॥

॥ ९ ॥

या वीर्याणि प्रथमानि कर्त्तव्यं  
महित्वेभिर्यतमानो समीयतुः ।

ध्वान्तं तमोऽव दध्यसे हत  
इन्द्रो मन्ना पुनर्हतावपत्यत

॥ ७ ॥

॥ १० ॥

विश्वे देवासो अघ वृष्णानि ते  
अवर्धयन्त्सोमवत्या घञस्यया ।

रुद्धं वृत्रमहिमिन्द्रस्य हन्मना  
अग्निर्न जम्भैस्तृप्यन्नमानयत्

॥ ८ ॥



भूरि दक्षेभिर्वचनेभिर्कृकैभिः  
सृष्ट्येभिः सृष्ट्यानि प्र वौचत ।  
इन्द्रो धुनिं च चुमुर्णि च दम्भयन्  
श्रद्धामनस्या शृणुते दभीतये  
त्वं पुरुषया भंग स्वद्वया  
येभिर्मसै निवर्चनानि शंसन् ।  
सुगेभिर्विभ्यो दुरिता तरेम  
विदो पु न उर्विया गाधमद्य

॥ २५१ ॥ ( ऋ० १०।११६।१-३ )

सौराडमिधुत सौराडमिधुते वा । त्रिष्टुप् ।

पिया सोमं महत इन्द्रियाय  
पिया वृत्राय हन्तवे शविष्ठ ।  
पिय राये शर्वसे ह्युयमानः  
पिय मर्षस्तुपदिन्द्रा वृषस्व  
अस्य पिय भ्रमतः प्रस्थितस्य  
इन्द्र सोमस्य वरमा सुतस्य ।  
स्यस्तिदा मनसा मादयस्व  
अयाचीनो रयेते सौमगाय  
ममत्तु त्या दिव्यः सोम इन्द्र  
ममत्तु यः सृयते पार्थिवेषु ।  
ममत्तु येन वरिषश्चकर्थ  
ममत्तु येन निरिणासि शर्वन्  
आ दिव्यहो अमिनो यात्यिन्द्रो  
पृषा हरिभ्यां पारिपित्तमग्धः ।  
गव्या सुतस्य प्रभृतस्य मर्षः  
सुत्रा योदामरुद्रा वृषस्व  
नि तिग्मानि आशयन् आशयानि  
अयं स्थिरा तनुदि यातुजनाम् ।  
उप्राप्य ते महो वर्य ददामि  
प्रनीत्या शर्वन् पिण्डेषु वृध  
व्ययं इन्द्र तनुदि धर्यासि  
भोजः स्थिरेषु धन्यन्तेऽभिर्मातीः ।

अस्मद्वावृधानः सहोभिः

अनिमृष्टस्तन्व वायुधस्य

॥ ६ ॥

इदं हविर्मधवन् तुभ्यं रातं

॥ ९ ॥

प्रति सम्राजहणानो गृभाय ।

तुभ्यं सुतो मधवन् तुभ्यं पत्न्योऽ

अदीन्द्र पिवं च प्रस्थितस्य

॥ ७ ॥

अदीन्द्र प्रस्थितेमा हवींषि

चनो दधिष्व पचतोत सोमम् ।

॥ १० ॥

प्रयस्वन्तः प्रति ह्यर्यामसि त्वा

सत्याः संतु यजमानस्य कामाः

॥ ८ ॥

प्रेन्द्राग्निभ्यां सुवचस्यामियमिं

सिधाविष प्रेरयं नार्यमकैः ।

अया इव परि चरन्ति देवा

॥ १ ॥

ये अस्मर्यं धनदा उद्भिदश्च

॥ ९ ॥

॥ २५३ ॥ ( ऋ० १०।१२०।१-९ )

आवर्णेनो वृद्धिर्व ।

तदिदासु भुर्वनेषु ज्येष्ठं

॥ २ ॥

यतो जज्ञ उग्रस्त्वैपनृणः ।

सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रुन्

अनु यं विश्वे मदन्त्यूमाः

॥ १ ॥

वावृधानः शर्वसा भूयोजाः

शर्वुर्वासाय भियसं दधाति ।

॥ ३ ॥

अव्यनश्च ध्यनश्च सस्ति

सं ते नवन्त प्रभृता मर्देषु

॥ २ ॥

त्वे क्रतुमर्षि वृजन्ति विश्वे

द्विर्यदेते निर्भवन्त्यूमाः

॥ ४ ॥

स्वादोः स्वादीयः स्वादुनां यज्ञा सं

अदः सु मधु मधुनामि योधीः

॥ ३ ॥

इति चिदि त्वा धना जयन्तं

मर्दमदे अनुमर्दन्ति विप्राः ।

॥ ५ ॥

ओर्जीयो धृणो स्थिरमा तनुष्य

मा त्वां दमन् यातृधानां दुर्योः

॥ ४ ॥

(२७६७)

त्वया वयं शाश्वतहे रणेषु  
प्रपश्यन्तो युधेन्यानि भूरि ।  
चोदयामि ॥ आरुधा वचोभिः  
सं ते शिशामि ब्रह्मणा वयांसि  
स्तुपेय्यं पुरुषैस्समृद्धं  
इतममाप्स्यमाप्स्यानाम् ।  
आ दर्पते शर्वसा सत दानुन्  
प्र साक्षते प्रतिमानानि भूरि  
नि तदधिपेऽवरे परं च  
यस्मिन्नाविधारसा दुरोणे ।  
आ मातरां स्थापयसे जिगत्नु  
अत इनोपि कर्षता पुरुषि  
इमा ब्रह्म बृहद्दिव्यो विवृक्तिः  
इन्द्राय श्रुपमप्रियः स्वर्षाः ।  
महो गोब्रह्म शयति स्वराजो  
दुरंश्च विभ्वा अमृणोदप स्वाः  
एषा महान् बृहद्दिव्यो अधुर्वा  
अवोचत् स्वां तन्वमिन्द्रमेव ।  
म्वसारी मातारिभ्यरीरुप्रा  
ह्रिगन्ति च शर्वसा वृधयन्ति च  
॥ १५४ ॥ ( अ० १०।१३।१-१; ६-७ )  
ब्रह्मर्षिः काशं वनः ।  
अप प्राचं इन्द्र विभ्वा अमिमान्  
अपापाचो अभिभूते नुदस्व ।  
अपोर्दीचो अपं शराधराचं  
उरो यथा तव दार्मन् मर्दम्  
कुविद्वद् ययमन्तो ययं चिद्  
यथा दान्त्यनुपुषं वियुयं ।  
इदेर्देषां रुणुहि भोजनानि  
ये र्हिणो नमोवृक्तिः न जग्मुः  
नदि स्युर्पुतया यातमस्ति  
नोत अयो विविदे संगमेषु ।

गम्यन्त इन्द्रं सत्याय विप्रा  
अव्यायन्तो वृषणे वाजयन्तः ॥ ३ ॥  
इन्द्रः सुत्रामा स्वर्वा अवोभिः  
सुमृच्छीको भवतु विश्ववेदाः ।  
॥ ५ ॥  
वाधेतां द्वेपो अभयं रुणोतु  
सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥ ६ ॥  
तस्य वयं सुमता यमियस्य  
अपि भुद्रे सौमन्तसे स्याम ।  
॥ ६ ॥  
स सुत्रामा स्वर्वा इन्द्रो अस्ते  
आराधिद् द्वेपः सनुतर्युयोतु ॥ ७ ॥  
॥ ७ ॥ ॥ १५५ ॥ ( अ० १०।१३।१-७ )  
सुदाः पैत्रवतः । शक्रा, ४-६ महापृक्तिः, ७ त्रिष्टुप् ।  
प्रो र्वासै पुरोत्य-मिन्द्राय श्रुपमर्चत ।  
अभीकै चिद् लोककृत् संगे समत्सु वृद्धा  
॥ ८ ॥  
अस्माकं बोधि चोदिता  
नमन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्यसु ॥ १ ॥  
त्वं सिधुर्त्वासुजो ऽधराचो अहमर्दम् ।  
अन्नाग्रिन्द्र जग्निपे विभ्वं पुष्यसि वार्य  
॥ ९ ॥  
तं त्या परि प्यजामहे  
नमन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्यसु ॥ २ ॥  
वि पु विभ्या अरातयो ऽयो नंशन्त नो धिर्षः ।  
अस्तांसि शर्ववे वृधे यो न इन्द्र जिघांसति  
या ते रातिर्दिर्वसु  
॥ १ ॥  
नमन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्यसु ॥ ३ ॥  
यो न इन्द्राभिने जर्नो घृकायुरादिदेशति ।  
अधस्पदं तमी' रुधि विषाधो असि सासुदिः  
नमन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्यसु ॥ ४ ॥  
॥ २ ॥  
यो न इन्द्राभिदासति मनोमिपंश्च निष्पवः ।  
अय तस्य वन्दे तिर मदीयं चाग्यं रमना  
नमन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्यसु ॥ ५ ॥

अयमस्मासु काव्यं ऋभुर्वज्रो दास्वते ।  
 अयं विमर्त्युर्ध्वरुशनं मदं  
 ॥ २ ॥  
 ऋभुर्न कृत्यं मदम्  
 पृथुः श्येनाय कृत्यंन आसु स्वासु वंसंगः ।  
 अयं दीधेदहीशुयः  
 ॥ ३ ॥  
 यं सुपूर्णः पतावतः श्येनस्य पुत्र आभरत् ।  
 शतचक्रं योऽहो वर्तनिः  
 ॥ ४ ॥  
 यं ते श्येनश्चार्द्धमवुकं पदार्भरत्  
 अरुणं मानमर्घवसः ।  
 पुना ययो वि तार्यायुर्जीयसं  
 पुना जांगार धंधुता  
 ॥ ५ ॥  
 एवा तदिन्द्र इन्दुना  
 देवेषु चिद्धारयाते महि त्यजः ।  
 कत्वा ययो वि तार्यायुः सुक्रतो  
 कत्वायमसदा सुतः  
 ॥ २५९ ॥ ( अ० १०।१४।१-५ )  
 इवेदाः शैरीषिः । अगता, ५ त्रिष्टुप् ।  
 अथ ते दधामि प्रयुमार्यं मन्यये  
 अहन्यद् धुत्रं नयै विधेरपः ।  
 उमे यत् त्वा भयतो रोदसी अनु  
 रेजते शुष्मात् पृथिषी चिद्रद्रियः  
 त्वं मायामिन्नवध मायिनै  
 अयस्यता मनसा धुत्रमर्दयः ।  
 त्वामिन्नरौ धृणते गर्विष्ठिषु  
 त्वां विश्वांसु हव्यास्विष्टिषु  
 ॥ २ ॥  
 येषु चाकन्धि पुरहूत सुरिषु  
 यथासौ ये मयवन्नानुशर्मयम् ।  
 अर्धन्ति तोके तनये परिष्टिषु  
 मेघसाता गाजिनमद्रये धने  
 ॥ ३ ॥  
 स इन्द्र रायः सुभृतस्य चाकनत्  
 मद्रं यो अस्पर्शं चिर्वेतनि ।

त्वावृधो मघवन् दार्ध्वधरो  
 मधू स वाजं भरते घना नृभिः  
 ॥ ४ ॥  
 त्वं शर्धाय महिना गृणान  
 उरु कृधि मघवञ्छुधि रायः ।  
 त्वं नो मित्रो वरुणो न मायी  
 पित्वो न दंस दयसे विभक्ता  
 ॥ ५ ॥  
 ॥ २६० ॥ ( अ० १०।१४।१-५ ) पृथुर्धमः । त्रिष्टुप् ।  
 सुष्वाणासं इन्द्र स्तुमसि त्वा  
 ससर्वासंश्च तुविनृष्ण वाजम् ।  
 वा नो भर सुवितं यस्य चाकन्  
 त्मना तनो सनुयाम त्वाताः  
 ॥ १ ॥  
 कृष्यस्त्वमिन्द्र शूर जातो  
 दासीर्षिनाः सूर्येण सहाः ।  
 गुहां हितं गुह्यं गूढमप्यु  
 विभ्रमसि प्रलवणे न सोमम्  
 ॥ २ ॥  
 अयो वा गिरौ अय्यं च विठान्  
 ऋषीणां विप्रः सुमतिं चक्रानः ।  
 ते स्याम ये रणयन्त सोमैः  
 एनोत तुर्यं रथोद्ध भुक्षैः  
 ॥ ३ ॥  
 इमा ग्रहोन्द्र तुर्यं शंसि  
 दा नृभ्यो नृणां शूर शयः ।  
 तेभिर्भय सकृत्तुर्येषु चाकन्  
 ॥ १ ॥  
 उत त्रायस्व गृणत उत स्तीन्  
 धुषी हर्वमिन्द्र शूर पृथ्यां  
 ॥ ४ ॥  
 उत स्तवसे वेन्यस्याकैः ।  
 वा यस्ते योनिं धुनयन्तमभ्याः  
 उर्मिन निक्षैर्देवयन्त यषाः  
 ॥ ५ ॥  
 ॥ २६१ ॥ ( अ० १०।१४।१-५ )  
 वायो भारद्वाजः । अनुष्टुप् ।  
 शास्व इत्या महां शैव्य-मित्रम्याशं शर्मनः ।  
 न यस्य हव्यं गव्या न त्रायं कर्ता नून १२

स्वस्तिदा विशस्पति—वृत्रहा विमृधो यशी ।  
 वृषेन्द्रः पुर पंतु नः सोमपा अमयंकुरः ॥ २ ॥  
 वि रथो वि मृधो जहि वि वृत्रस्य हनू रुज ।  
 वि मन्युमिन्द्र वृत्रह—ध्रुमित्रस्याभिदासतः ॥ ३ ॥  
 वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।  
 यो अस्मै अभिदास—त्यर्धरं गमया तमः ॥ ४ ॥  
 अपेन्द्र द्विपतो मनो ऽप जिज्यासतो वधम् ।  
 वि मन्योः शर्म यच्छ घरीयो यवया वधम् ॥ ५ ॥

॥ २६० ॥ ( ऋ० १०।१५।१-५ )

देवजामय इन्द्रमानसः । गायत्री ।

इन्द्रयन्तीरपस्पृय इन्द्रं जातमुपासते ।  
 मेजानासः सुवीर्यम् ॥ १ ॥  
 त्वमिन्द्र यलादधि सहस्रो जात ओजसः ।  
 त्वं वृषन् वृषेर्वसि ॥ २ ॥  
 त्वमिन्द्रासि वृत्रहा व्युन्तरिक्षमतिरः ।  
 उव द्यामस्तम्ना ओजसा ॥ ३ ॥  
 त्वमिन्द्र सुजोर्पस—मूर्कं विमर्षि पाहोः ।  
 यज्ञं दिशान् ओजसा ॥ ४ ॥  
 त्वमिन्द्रामिभूरसि विश्वा जातान्योजसा ।  
 ॥ विश्वा मुय आमवः ॥ ५ ॥

॥ २६३ ॥ ( ऋ० १०।१६०।१-५ )

पुरणो वैश्वामित्रः । दिन्द्रः ।

तीमभ्याभिर्यपसो अस्य पाहि  
 सपर्याया वि हरी इह मुञ्च ।  
 इन्द्र मा त्या यजमानासो अये  
 नि रीरमन् तुभ्यमिमे सुतासः ॥ १ ॥  
 तुभ्यं सुतास्तुभ्यमु सोतासः  
 त्यां गिरः श्यात्या आ हयन्ति ।  
 इन्द्रेदमप सपर्यं तृणाणा  
 विभ्यस्य विष्टा इह पाहि सोमम्  
 य उदाता मनसा सोममस्मै  
 सरहदा देयकामः सुनोति ।

न गा इन्द्रस्तस्य परा ददाति  
 प्रशस्तमिचारमसौ रुणोति ॥ ३ ॥  
 अनुस्पद्यो भवत्येषो अस्य  
 यो अस्मै रेवान् न सुनोति सोमम् ।  
 निररुहौ मधवा तं दधाति  
 ब्रह्मद्विषो हन्यन्तानुदिष्टः ॥ ४ ॥  
 अभ्यायन्तो गन्धन्तो याजयन्तो  
 हवामहे त्वोर्पगन्त्वा उ ।  
 आभूर्पन्तस्ते सुमतौ नवायां  
 वृषमिन्द्र त्वा शुनं हुवेम ॥ ५ ॥

॥ २६४ ॥ ( ऋ० १०।१६७।१-१, ४ )

विश्वामित्र—जमदग्नी । अंगनी ।

तुभ्येदमिन्द्र परि पिच्यते मधु  
 त्वं सुतस्य कलशस्य राजसि ।  
 त्वं रयिं पुरुवीरामु नच्छधि  
 त्वं तपः परितर्प्याजयः स्वः ॥ १ ॥  
 स्वर्जितं महि मन्वानमन्धसो  
 हवामहे परि शुक्रं सुता उर्प ।  
 इमं नो यक्षमिह बोध्या गहि  
 स्पृधो जयन्तं मुघवानमीमहे ॥ २ ॥  
 प्रसृतो भूक्षमकरं चरावपि  
 स्तोमं वेमं प्रथमः सूरिरुमृजे ।  
 सुते सातेन यद्यागमं धां  
 प्रति विश्वामित्रजमदग्नी दमे ॥ ३ ॥

॥ २६५ ॥ ( ऋ० १०।१७।१-४ )

इदो मायवः । गायत्री ।

त्वं त्वमिद्रतो रथ—मिन्द्र प्रावः सुतायतः ।  
 अदृणोः सोमिनो हवम् ॥ १ ॥  
 त्वं मयस्य दोधतः शिरोऽयं त्वचो भरः ।  
 अगच्छः सोमिनो गृहम् ॥ २ ॥  
 त्वं त्वमिन्द्र मर्त्य—माखपुत्राय वेन्यम् ।  
 मुहुः अग्रा मनस्यवे ॥ ३ ॥

त्वं त्वमिन्द्र सूर्ये पश्चा सन्तं पुरस्ठाधि ।

देवानां चित् तिरो यशम् ॥ ४ ॥

॥ २६६ ॥ ( ऋ० १०।१७।१-३ )

क्रमेण शिबिरोमीनरः, काशिराजः प्रतर्दनः,  
रोहिदशो वसुमनाः । शिष्टप्, १ अनुष्टप् ।

उत् तिट्टताय पदयते—न्द्रस्य भागमृत्विर्यम् ।

यदि धातो जुहोतन् यद्यधातो ममत्तन ॥ १ ॥

धातं ह्यिरो प्यिन्द्र प्र याहि

जगाम स्रो अर्घ्वनो विप्रच्यम् ।

परिं त्यासते निधिमिः सखायः

कुलपा न द्वाजपतिं चरंतम् ॥ २ ॥

धातं मन्य ऊर्ध्वनि धातमग्नौ

सुधातं मन्ये तदृतं नवीयः ।

मार्घ्येदिनस्य सर्वनस्य दुधः

पियेन्द्र यज्ञिन पुरुकञ्जुपाणः ॥ ३ ॥

॥ २६७ ॥ ( ऋ० १०।१८०।१-३ ) अय ऐन्द्रः । शिष्टुप् ।

प्र संसादिये पुरुहत्त शशून्

ज्येष्ठस्ते शुष्मं इह सतिरेस्तु ।

इन्द्रा भरु दक्षिणेना यस्मिन्

पतिः सिन्धूनामसि रेषतीनाम् ॥ १ ॥

मृगो न भीमः कुंचरो गिरिष्ठाः

परावत् आ जगन्था परस्वाः ।

सुकं संशार्य पयिमिन्द्र तिग्मं

यि शत्रून् ताहि वि मृधो नुदस्व ॥ २ ॥

इन्द्रं क्षत्रमग्नि वाममोजो

अजायथा वृषम चरणीनाम् ।

अपानुदो जर्नमभिप्रयन्तं

उरुं देवेभ्यो अरुणोर लोकम् ॥ ३ ॥

॥ २६८ ॥ ( ऋ० १०।४७।१-८ )

अगुरीगिरयः । [ वेङ्कट इन्द्रः ] ।

जगम्मा ते दक्षिणमिन्द्र हस्तं

यस्ययो यसुपते यस्मिन्नाम् ।

विशा हि त्वा गोपतिं शूर गोनां

अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥ १ ॥

स्वायुधं स्वर्चसं सुनीधं

चतुःसमुद्रं धरुणं रयिणाम् ।

चरुच्यं शंस्यं भूरिवारं

अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥ २ ॥

सुग्रहाणं देवयन्तं बृहन्तं

उरुं गभीरं पृथुलघ्नमिन्द्र ।

धृतश्रुपिमुग्रमभिमातिपाहं

अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥ ३ ॥

सुनद्धाजं विप्रवीरं तर्धं

धनुस्पतं शशुवांसं सुदक्षम् ।

दस्युहन् पार्मिदमिन्द्र सत्यं

अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥ ४ ॥

अर्धावन्तं रथिनं वीरयन्तं

सहस्रिणं क्षातिनं यार्जमिन्द्र ।

भद्रमातं विप्रवीरं स्वर्णं

अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥ ५ ॥

प्र सतगुमृतधीतिं सुमेधां

बृहस्पतिं मतिरच्छी जिगाति ।

य आक्षिरतो नर्मसोपसद्यो

अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥ ६ ॥

यनीवानो मम दृतासु इन्द्रं

स्तोमाश्चरन्ति मुमतीरयानाः ।

हृदिस्पृशो मनसा वृच्यमाना

अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥ ७ ॥

यत् त्वा यामि दृदि तत्र इन्द्र

बृहन्तं क्षयमसमं जनानाम् ।

अभि तद् दायोपधिषी गृणातं

अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥ ८ ॥

॥ १६९ ॥ ( अ० १०११९।१-१२ ,  
 ऐन्द्रो लभ । [ आत्मा ( इन्द्र ) ] । गायत्री ।  
 इति वा इति मे मनो गामर्ध्वं सनुयामिति ।  
 कुवित् सोमस्यापामिति ॥ १ ॥  
 प्र चातो इव दोर्धत उन्मा पीता अयसत ।  
 कुवित् सोमस्यापामिति ॥ २ ॥  
 उन्मा पीता अयसत रथमश्वा इयाशवः ।  
 कुवित् सोमस्यापामिति ॥ ३ ॥  
 उप मा मतिरस्थित वाश्वा पुत्रमिव प्रियम् ।  
 कुवित् सोमस्यापामिति ॥ ४ ॥  
 अह तष्टेव वृधुरं पर्यचामि हृदा मतिम् ।  
 कुवित् सोमस्यापामिति ॥ ५ ॥  
 नहि मे अक्षिपश्चना-ऽऽच्छान्तु पञ्च कृष्टयः ।  
 कुवित् सोमस्यापामिति ॥ ६ ॥  
 नहि मे रोदसी उमे अन्यं पक्ष च न प्रति ।  
 कुवित् सोमस्यापामिति ॥ ७ ॥  
 अभि धां महिना भुज-मभीक्ष्मां पृथिवीं महीम् ।  
 कुवित् सोमस्यापामिति ॥ ८ ॥  
 हन्ताहं पृथिवीमिमां नि दधानीह वेह वा ।  
 कुवित् सोमस्यापामिति ॥ ९ ॥  
 ओषमित् पृथिवीमहं जुहुनानीह वेह वा ।  
 कुवित् सोमस्यापामिति ॥ १० ॥  
 दिवि मे अन्यः पशोः ऽधो अन्यमचीहपम् ।  
 कुवित् सोमस्यापामिति ॥ ११ ॥  
 अहमस्मि महामहो ऽभिनभ्यमुदीपितः ।  
 कुवित् सोमस्यापामिति ॥ १२ ॥  
 गृहो यान्यररतो देवेभ्यो दध्यवाहनः ।  
 कुवित् सोमस्यापामिति ॥ १३ ॥

॥ १७० ॥ ( अथर्व० १।५१-४ )

गुणापवेन । १ दग्निहोत्रिन्द्रवृद्धी, २ अग्निहोत्र  
 वि० १६१६, ३ वि० १७५५।५ वृद्धी, ४ अग्नी पुत्रो वि० १७५५ ।  
 इन्द्रं जुपम्य प्र वृद्धा याति नृर हरिम्याम् ।  
 पिबां गुनस्य मनेति मर्धोद्यवानध्यामर्धाय ॥ १ ॥

इन्द्रं जुहुरं नद्यो न पूणस्य मर्धोद्वयो न ।  
 अस्य सुतस्य स्वर्णोप  
 त्वा मदाः सुवाचो अगुः ॥ २ ॥  
 इन्द्रं स्तुरापामित्रो वृत्रं यो जघान यतीनं ।  
 विभेदं वलं भृगुर्न संसहे शत्रुमदे सोमस्य ॥ ३ ॥  
 आ त्वा विशान्तु सुतासं इन्द्र पूणस्व  
 कुक्षी विद्धि शक्र धियेहा नः ।  
 शुधी हव गिरं मे जुपस्वेन्द्रं  
 स्वयुग्भिर्मत्स्वेह महे रणाय ॥ ४ ॥

॥ १७१ ॥ ( अथर्व० ४।१५।१-७ )

गुणार । त्रिष्टुप्, १ शाकरीमर्मा पुर शकरी ।

इन्द्रस्य मन्महे शश्वदिदस्य मन्महे  
 वृत्रघ्न स्तोमा उप मेम आगुः ।  
 यो दाशुपः सुकृतो हवमेति स नो मुञ्जत्वंहसः ॥ १ ॥  
 य उप्रीणां मुम्रयां हृष्टयुः  
 यो दानवानो बलमाहरोजं ।  
 येन जिताः सिन्धवो येन गायः  
 स नो मुञ्जत्वंहसः ॥ २ ॥  
 यश्चरणिप्रो वृषमः स्वर्षिद्  
 यस्मै श्रावोणः प्रवदन्ति नृमणम् ।  
 यस्याध्वरः सप्तहोता मदिष्टः  
 स नो मुञ्जत्वंहसः ॥ ३ ॥  
 यस्य वृशासं ऋषभासं उक्षणो  
 यस्य मीयन्ते स्वर्षः स्वर्षिदं ।  
 यस्य शूक्रः पवते ब्रह्मशुम्भितः  
 स नो मुञ्जत्वंहसः ॥ ४ ॥  
 यस्य दुष्टिं सोमिनः कामयन्ते  
 य दयन्त इषुमन्तं गवेष्यौ ।  
 यस्मिन्नेवः दिक्षिये यस्मिन्नेव  
 स नो मुञ्जत्वंहसः ॥ ५ ॥

यः प्रथमः कर्मकृत्याय ज्ञो  
 यस्य वीर्यं प्रथमस्यानुबुद्धम् ।  
 येनोद्यतो वज्रोऽभ्याप्यताहि  
 स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ ६ ॥  
 यः संप्रामात्रयति सं युधे वशी  
 यः पुष्टानि संसृजति हृयानि ।  
 सौमिन्द्रं नायितो जौहवीमि  
 स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ ७ ॥  
 ॥ २७० ॥ ( अथर्व० ५।१३।१-१३ )  
 कथः । अनुष्टुप, १३ विराट् ।  
 ओतं मे घावापृथिवी ओतां देवी सरस्वती ।  
 ओतौ म इन्द्रश्चाग्निश्च किमि जम्भयतामिति ॥ १ ॥  
 अस्मेन्द्र कुमारस्य किमीन्धनपते जहि ।  
 हता विश्वा अरतय उप्रेण चर्चसा मम ॥ २ ॥  
 यो अश्वौ परिसर्पति यो नासे परिसर्पति ।  
 दतां यो मय्य गच्छति तं किमि जम्भयामसि ॥ ३ ॥  
 सरूपौ द्वौ विरूपा द्वौ कृष्णौ द्वौ रोहितौ द्वौ ।  
 वभ्रुश्च वभ्रुकर्णश्च गृध्रः कोकश्च ते हताः ॥ ४ ॥  
 ये किमपः शितिकक्षा ये कृष्णाः शितिवाहवः ।  
 ये के च विश्वरूपा—स्तान्किमीन्जम्भयामसि ॥ ५ ॥  
 उत्पुस्तान्त्वयं पति विश्वहृष्टो अट्टहा ।  
 हृष्टाश्च वभ्रुहृष्टाश्च सर्वाश्च प्रमृणन्किमीन् ॥ ६ ॥  
 येषापासः कर्कपास एजृत्काः शिपवितुकाः ।  
 हृष्टश्च हन्यतां किमि—हताहृष्टश्च हन्यताम् ॥ ७ ॥  
 हतो येषापः किमीणां हतो नन्दनिमोत ।  
 सर्वाग्नि मप्सपाकरं हृष्टा खल्वी इव ॥ ८ ॥  
 त्रिशिर्षाणं त्रिकुदं किमि सारङ्गमर्जुनम् ।  
 शृणाम्यस्य पृष्टीरपि वृधामि यच्छिरः ॥ ९ ॥  
 अत्रिवहः किमयो हन्मि कण्ववज्जमदक्षिवत् ।  
 अगस्त्यस्य व्रक्षणा सं पिनप्स्यहं किमीन् ॥ १० ॥  
 हतो राजा किमीणा—मुतेषां स्थपितंहतः ।  
 हतो हतमाता किमि—हतभ्राता हतस्वसा ॥ ११ ॥

हताग्नी अस्य वेदासौ हनासुः परिवेदासः ।  
 अयो ये शृङ्गका इव सर्वे ते किमयो हताः ॥ १२ ॥  
 सर्वेषां च किमीणां सर्वाणां च किमीणाम् ।  
 भिनन्नयश्मना गिरो दहाम्यग्निना मुषम् ॥ १३ ॥  
 ॥ २७३ ॥ ( अथर्व० ६।३६।१-३ )  
 जाटिकायनः । गायत्री २ अनुष्टुप ।  
 यस्येदमा रजो युजं—स्तुजे जना वनं स्वः ।  
 इन्द्रस्य रत्नं बृहत् ॥ १ ॥  
 नाष्टुप वा दष्टुपते शृषाणो धृषितः शर्वः ।  
 पुषा यथा व्यधिः श्रव इन्द्रस्य नाष्टुपे शर्वः ॥ २ ॥  
 स नो ददातु तां रयि—मुदं पिशङ्गसंदशम् ।  
 इन्द्रः पतिस्तुविष्टमो जनेष्वा ॥ ३ ॥  
 ॥ २७५ ॥ ( अथर्व० ६।३६।१-३ )  
 अथवा । अनुष्टुप, १ त्रिष्टुप ।  
 निहस्तः शत्रुरभिदासं वस्तु ये  
 सेनाभिर्युधं मायन्त्यसान् ।  
 समर्पयेन्द्र महता युधेन  
 द्राव्यैषामघद्वारो विविधः ॥ १ ॥  
 आतन्याना आयच्छन्तो ऽस्यन्तो ये च धायंथ ।  
 निहस्ताः शत्रवः स्थने—न्द्रो योऽद्य पराशरीत् ॥ २ ॥  
 निहस्ताः सन्तु शत्रवो ऽङ्गैर्वा म्लापयामसि ।  
 अर्थयामिन्द्र वेदांसि शतशो वि मंजामहे ॥ ३ ॥  
 ॥ २७५ ॥ ( अथर्व० ६।३७।१-३ ) अनुष्टुप ।  
 परि वर्त्मानि सर्वत इन्द्रः पुषा च सन्नतुः ।  
 मुदन्त्वयामूः सेना अभिर्वाणां परस्तुराम् ॥ १ ॥  
 मुदा अभिर्वाश्चरता—शीर्षाणं ह्वाहवः ।  
 तेषां यो अग्रिमृदाना—मिन्द्रो हन्तु वरवरम् ॥ २ ॥  
 पेयं नह वृषाजिनं हरिणस्या मियं रुधि ।  
 पराडमित्र परं—स्वर्वाञ्च गौरुपयतु ॥ ३ ॥  
 ॥ २७६ ॥ ( अथर्व० ६।३७।१-३ )  
 कथः । अनुष्टुप, ३ वृष्टपा जयती ।  
 निरमुं नुदं ओकंसः सपतनो यः पृतन्यति ।  
 नैराध्येन हविषे—न्द्र एनं पराशरीत् ॥ १ ॥

परमां ते परायत मिन्द्रो नुदत वृत्रहा ।  
यतो न पुनरायति शश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ २ ॥

एतु तिस्रः परायत एतु पञ्च जनां अति ।  
एतु तिस्रोऽति रोचना यतो न पुनरायति  
शश्वतीभ्यः समाभ्यो यावत्स्यो असेद्विचि ॥ ३ ॥

॥ ७७ ॥ ( अथर्व ३१८२।१-३ ) मगः । अनुष्टुप् ।

आगच्छत आगतस्य नाम गृह्णाम्यायतः ।  
इन्द्रस्य वृत्रघ्नो वन्द्ये वासवस्य शतक्रतोः ॥ १ ॥

येन सूर्यो सावित्री—मन्विनोऽहं तुः पृथा ।  
तेन मामप्रवीक्ष्णो जायामा बहतादिति ॥ २ ॥

यस्तेऽङ्गुशो वंसुदानो बृहन्निन्द्र हिरण्यरथः ।  
तेनां जनीयते जायां मह्यं धेहि शचीपते ॥ ३ ॥

॥ ७८ ॥ ( अथर्व ३१८२।१-३ )

अथर्व । अष्टुप्, २ बृहती।गमोऽनारवच्छिः ।

इन्द्रो जयाति न परं जयाता  
अधिपुजो राजसु राजयातै ।

वृकृत्य इत्यो वन्द्यश्च  
उपसर्षो नमस्यो मवेह ॥ १ ॥

स्वमिन्द्राधिपुजः ध्रुवस्युः  
स्यं भूरभिर्भूतिर्जनानाम् ।

स्यं देवीर्विशं इमा वि राजा  
आयुष्मन्नाग्रमर्जरं ते अस्तु ॥ २ ॥

प्राच्यां विशस्वमिन्द्राणि राजा  
उतोदीच्यां दिशो वृत्रहन्नुबुधोऽसि ।

ययं यानि श्रोत्यास्तज्जितं ते  
दक्षिणतो वृत्रमप्ये हव्यः ॥ ३ ॥

॥ ७९ ॥ ( अथर्व ७।३१।१ )

मृगशिराः । भुवि अष्टुप् ।

इन्द्रोतिमिषं हुताग्निं यय  
यावच्छेष्टाग्निमयन्दार जिह्व ।

यो नो हेष्टयधरः सस्पदीष्टु  
यमुं विष्मस्तमुं प्राणो जहातु ॥ १ ॥

॥ २८० ॥ ( अथर्व ७।५०।१-३, ५, ८-९ )

अष्टिगः ( कितववषट्कामः ) । अनुष्टुप्, ३ अष्टुप् ।

ययां वृक्षमुशनि—विश्वाहा हन्त्यप्रति ।  
पृवाहमय कितवा—नर्क्षर्वध्यासमप्रति ॥ १ ॥

सुराणामनुराणां विशामर्वजुर्पीणाम् ।  
समेतुं विश्वतो भगौ अन्तर्हस्तं कृतं मम ॥ २ ॥

इडे अग्निं स्वायसुं नमोभिः  
इह प्रसक्तो वि चपत्युत नः ।

रथैरिव प्र भरे वाजयन्त्रिः  
प्रदक्षिणं मृतां स्तोमं सृच्याम् ॥ ३ ॥

अजैषं त्वा संलिखित—मजैषमुत संरुधम् ।  
अवि वृको यथा मय—देवा मध्यामि ते कृतम् ५

कृतं मे दक्षिणे हस्ते ज्यो मे सव्य आहितः ।  
गोजिद्र्यासमभजि—द्वेनजयो हिरण्यजित् ॥ ८ ॥

अश्वाः फलेयतां युव वृत्तं गां क्षीरिणीमिव ।  
सं मां कृतस्य धारया धनुः क्षात्रेव नह्यत ॥ ९ ॥

॥ २८१ ॥ ( अथर्व ७।५५।१ )

युगः । विराट् परोष्णिक् ।

ये ते पन्यानोऽर्धं द्विवो येभिर्विभ्यमैरयः ।  
तेभिः सुमन्या धेहि नो वसो ॥ १ ॥

॥ २८२ ॥ ( अथर्व ७।९३।१ )

युगच्छिगः । पाथरी ।

इन्द्रेण मन्युनां वय—मभि प्याम पृतन्यतः ।  
ग्रन्तो वृत्रायप्रति ॥ १ ॥

॥ २८३ ॥ ( अथर्व १९।१३।१ ) अपतिगः । अष्टुप् ।  
इन्द्रस्य बाहू स्याविरौ वृषाणो

वित्रा इमा वृषमौ पारयिष्णु ।  
तो योक्ष प्रथमो योग आगते

याम्यां जितमनुराणां स्वर्धत् ॥ १ ॥  
( २९१४ )



॥ १८३ ॥ ( अथर्व० १९।१-११-३ )

अथर्व । त्रिष्टुप् . ३ पय्यापहृजिः ।

इन्द्रं वयमनूपां हवामहे

अनु राध्यास्व द्विपदा चतुष्पदा ।

मा नः सेना अरुणोरुपं गुः

विपुचोरिन्द्र द्रुहो धि नोशय ॥ २ ॥

इन्द्रं स्नातोत धृवहा परस्फानो वरेण्यः ।

स रक्षिता चरमतः स मध्यतः

स पञ्चात्स पुरस्ताप्नो अस्तु ॥ ३ ॥

॥ १८४ ॥ ( अथर्व० २०।१।३ )

गृत्समशो मेधातिषिर्वा । आर्च्युष्मिक् ।

इन्द्रो ब्रह्मा ब्राह्मणात्सुष्टुमः

स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु ॥ ३ ॥

॥ १८५ ॥ ( वा० य० १।३ )

सा विश्वायुः सा विश्वकर्मा सा विश्वधायाः ।

इन्द्रस्य त्या भागर सोमेनातनन्ति

धिष्णो हव्यं रक्ष ॥ ४ ॥

॥ १८७ ॥ ( वा० य० ३।४९-५० )

पूर्णां दधिं पतं पत सुपूर्णां पुनरापत ।

पुस्तेव विक्रीणायहा ऽऽपमूर्जं शतकतो ॥ ४९ ॥

देहि मे ददामि ते नि मे धेहि नि ते दधे ।

निहारं च हरांसि मे

निहारं निर्हणानि ते स्वाहा ॥ ५० ॥

॥ १८८ ॥ ( वा० य० ५।१८, ३० )

धुयांसि धुवोऽयं यजमानो

असिन्नायतेने प्रजयां पशुभिर्मूयात् ।

धृतेन दायापृथिवी पूयं

इन्द्रस्य छेदिरसि विश्वजनस्यं ज्ञाया ॥ २८ ॥

इन्द्रस्य सूरसीन्द्रस्य धुवोऽसि ।

पेन्द्रमसि वैश्वदेवमसि ॥ ३० ॥

॥ २८९ ॥ ( वा० य० ७।४, १४-१५, २५ )

उपयामर्हदोऽस्यन्तयेच्छ भयवन् पाहि सोमम् ।

उरुष्य राय ऽ एषो यजस्व ॥ ४ ॥

आर्चिन्द्रस्य ते देव सोम

सुवीर्यस्य रायस्पोर्यस्य ददितारः स्याम ।

सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा

स प्रथमो वरुणो मित्रो ऽ अग्निः ॥ १४ ॥

स प्रथमो बृहस्पतिश्चिकित्वान्

तस्मा ऽ इन्द्राय सुतमाहुर्होत स्वाहा ।

तृष्पन्तु होत्रा मध्यो याः स्विष्टा

याः सुप्रीताः सुहृता यत्स्याहायाडग्नीत् ॥ १५ ॥

ध्रुवं ध्रुवेण मनसा वाचा सोममवनेयामि ।

अथा न ऽ इन्द्र इक्षिषी

असपत्नाः समनसुस्करत् ॥ २५ ॥

॥ २९० ॥ ( वा० य० ८।३२, ३६ )

मही द्यौः पृथिवी च न इमं यजं मिमिक्षताम् ।

पिपृतां नो भरीममिः ॥ ३२ ॥

यस्मात्प्र जातः परो ऽ अन्यो ऽ अस्ति

य ऽ आविवेश भुवनानि विश्वा ।

प्रजापतिः प्रजयां सररराणः

श्रीणि ज्योतींश्चि सचते स वोड्डी ॥ ३६ ॥

॥ २९१ ॥ ( वा० य० १९।६६ )

निवेशनः संगमनो वसुतां

विश्वं रूपाभिर्यष्टे शर्वीभिः ।

देव ऽ इव सधिता सत्यधर्म

इन्द्रो न तस्यौ समरे पश्यानाम् ॥ ६६ ॥

॥ २९२ ॥ ( वा० य० १३।१४ )

अग्निमूर्धा दिवः ककुत् पतिः पृथिव्या ऽ अयम् ।

अपारं रेतारसि जिन्यति ॥ १४ ॥

॥ २९३ ॥ ( वा० १७।२३, ३६, ४४-४५, ५१, ६३ )

वाचस्पतिं विद्वर्कमाणमुतयं

मनोजुवं वार्जे ऽ अद्या हुयेम ।

स नो विद्वान्नि हव्यनानि जोषद्

विद्वशं मरुवसे साधुकर्मा ॥ २३ ॥

( २९३१ )

गृहस्पते परिदीया स्थेन  
 रक्षोहामित्रौ २ऽअपवाधमानः ।  
 प्रभञ्जत्सेनाः प्रभूणो युधा जयन्  
 अस्माकमेध्यधिता रथानाम् ॥ ३६ ॥  
 अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती  
 गृहाणाद्गान्धर्व्ये परेहि ।  
 अभि प्रेहि निर्देह हन्तु शोकैः  
 अन्धेनामिश्रान्तर्मत्ता मचन्ताम् ॥ ४४ ॥  
 अयस्त्रुषा परापत् शरव्ये प्रहसन्शिते ।  
 गच्छामिश्रान्प्रपयस्व मामीषां कञ्जनोच्छिषः ॥ ४५ ॥  
 इन्द्रेमं प्रतरां नय सजातानामसङ्गशी ।  
 मर्मन् वचमा खज देवानां भागदाऽअसत् ॥ ५१ ॥  
 याज्ञस्य मा प्रसूय उद्गामेणोदग्रमीत् ।  
 अथां मयनानिन्द्रो मे निद्रामेणाधरौ २ अकः ॥ ६३ ॥

॥ ३७४ ॥ ( पा० य० १९।३९, ८०-९५ )

सुगायन्तं वहिपदं ९ सुवीरं  
 यश्च ६ दिग्यन्ति महिषा नमोभिः ।  
 दधानाः सोमं द्विषि देवतासु  
 मदेमेन्द्रं यजमानाः स्युकाः ॥ ३२ ॥  
 मीमेतु तन्त्रं मनसा मनीषिणं  
 उजासुप्रेण कययो ययन्ति ।  
 अभिनो यश्च ६ सविता नरस्युती  
 इन्द्रस्य रूपं यरणो भिपयन्  
 नदस्य रूपममृतं ९ शचीभिः ॥ ८० ॥  
 त्रिषो दधुद्वताः नरराणाः ।  
 सोमोनि शर्षादधुपा न तोषमभिः  
 स्वगस्य माः स्वगस्युष्य गजाः ॥ ८१ ॥  
 नदभिजां निपजां रुद्रधर्मती  
 नरस्यती ययति पेदो ८ अन्तस्य ।  
 अर्धं सुप्रानं भार्गवः  
 वातोरोष्ण दधेभो गर्वां स्वनि ॥ ८२ ॥

सरस्वती मनसा पेशलं वसु  
 नासत्याभ्यां वयति दर्शतं वपुः ।  
 रसं परिस्रुता न रोहितं  
 नद्रहुर्धोरस्तसरं न वेमं ॥ ८३ ॥  
 पर्यसा शुक्रममृतं जनित्रं  
 सुरया मृत्राजनयन्त रतः ।  
 अपामतिं दुर्मतिं वाधमाना  
 ऊयधं यातं ९ सुव्यं तदारात् ॥ ८४ ॥  
 इन्द्रः सुत्रामा हृदयेन सत्यं  
 पुरोडाशेन सविता जजान ।  
 यहुत् क्लोमानं वरणो भिपयन्  
 मतस्ने वायव्येन मिनाति पित्तम् ॥ ८५ ॥  
 आन्त्राणि स्थालीर्मधु पिब्यमाना  
 गुदाः पात्राणि सुदुधा न धेनुः ।  
 द्येनस्य पत्रं न प्लीहा शचीभिः  
 आसन्दी नाभिददरं न माता ॥ ८६ ॥  
 कुम्भो बनिष्ठुर्जनिता शचीभिः  
 यस्मिन्मध्ये योन्यां गर्भो ८ अन्तः ।  
 प्लाशिर्व्यक्तः शतधारं ८ उत्सो  
 दुहे न कुम्भी स्यधां पितृभ्यः ॥ ८७ ॥  
 मुरा ६ सवस्य शिर ८ इत् सतेन  
 जिह्वा पवित्रमभिनासगस्तरस्यती ।  
 चव्यं न पायुभिपगस्य धातौ  
 यस्तिर्न दोषो हरस्ता तस्यी ॥ ८८ ॥  
 अभिष्यां चक्षुरमृतं प्रहोभ्यां  
 छागेन तेजो हविषा दूतेन ।  
 परमाणि गोधूमैः कुर्वदेदुतानि  
 पेदो न द्रुपमसितं यमाते ॥ ८९ ॥  
 यविर्न मेरो नमि वीर्याय  
 प्राणस्य पण्यां ८ अमृतो प्रहास्याम् ।  
 नरस्यस्युषावर्ध्यां  
 नम्यानि शर्दिबर्धे जजान ॥ ९० ॥

इन्द्रस्य रूपमृगमो यत्नोय  
कर्णोभ्यां श्रोत्रममृतं ग्रहोभ्याम् ।

यथा न बहिर्भुवि केसराणि  
कर्कशेषु जम्बे मधु सारघं मुखात्  
आत्मघुपस्थे न वृकस्य लोम  
मुने श्मश्रूणि न व्याघ्रलोम ।

केद्रा न शीपन्यशमे धियं शिर्गा  
सिरहस्य लोम स्थिरैरिन्द्रियाणि

अङ्गान्यात्मन् भिज्जा तदग्निना  
आत्मानमहैः समधात् सरस्वती ।

इन्द्रस्य रूपं शतमानमार्युः

चन्द्रेण ज्योतिरमृतं दधानाः

सरस्वती योन्यां गर्भमन्तः

अग्निभ्यां पत्नी सुकृतं विभर्ति ।

अपां रमेन परेणो न साक्षा

इन्द्रं धियं जनवर्षस्य राजा

तेजः पशुनां हविरिन्द्रियापवत्

परिभुता पर्यसा सारघं मधु ।

अग्निभ्यां दुग्धं भिज्जा सरस्वत्या

सुतासुताभ्याममृतः सोमः ॥ इन्द्रः

॥ २१ ॥ ( वा० य० २०३१, ७१-७७, ८०, ९० )

अर्घ्योऽअद्रिभिः सुतं सोमं पवित्रं ॥ आर्नय ।

पुनाहीन्द्राय पार्तये ॥ ३१ ॥

सविता परेणो दधद् यजमानाय दाधुर्यै ।

भार्दत्त नमुच्येधुं सुशामा यलमिन्द्रियम् ॥ ७१ ॥

परेणः श्वभर्मिन्द्रियं मर्गेन सविता धियम् ।

सुशामा यदासा यलं दधाना यग्रमाशत ॥ ७२ ॥

अग्निना गोभिरिन्द्रियं-मदयेमिधुं यलम् ।

हविरेन्द्रं सरस्वती यजमानमर्घयन् ॥ ७३ ॥

ता नामेत्या सुपेदासा दिरेण्यतनी नरा ।

सरस्वती हविष्मती-न्द्र कर्मसु नोऽयत ॥ ७४ ॥

ता भिज्जां मुकर्मणा सा सुदुधा सरस्वती ।

स वृत्रहा शनकतु-रिन्द्राय दधुरिन्द्रियम् ॥ ७५ ॥

युवः सुराममदिवना नमुचायासुरे सन्ता ।

विषियानाः सरस्वती-न्द्र कर्मम्यावत ॥ ७६ ॥

पुत्रमिव पितरावदिवना

उमेन्द्राययुः कार्यैर्दं सनाभिः ।

यत्सुरामं व्यपियः शर्वाभिः

सरस्वती त्वा मघवभमिष्णक् ॥ ७७ ॥

अदिवना तेजसा चक्षुः प्राणेन सरस्वती धीर्यम् ।

याचेन्द्रो यलेने-न्द्राय दधुरिन्द्रियम् ॥ ८० ॥

अदिवना पियतां मधु सरस्वत्या मुजोर्पमा ।

इन्द्रः सुनामा वृत्रहा जुयन्तां १ सोम्यं मधु ॥ ९० ॥

॥ २१६ ॥ ( वा० य० २६३-१, २० )

इन्द्र गोमहिहा याहि पिवा सोमं शतक्रतो ।

विचद्विप्रायंभिः सुतम् ॥ ४ ॥

इन्द्रा याहि वृत्रहन् पिवा सोमं शतक्रतो ।

गोमद्विप्रायंभिः सुतम् ॥ ५ ॥

महो२ इन्द्रो यजहस्तः योऽदशी शर्म यच्छतु ।

हन्तुं पाप्मानं योऽस्मान् ऋषिं ॥ १० ॥

॥ २१७ ॥ वा० य० २१५७ )

आमूर्ज प्रत्यावर्तयमाः केतुमर्दन्तुभिर्वायदीनि ।

समभ्येषणाधरन्ति नो नरो ॥ ५७ ॥

॥ २१८ ॥ ( वा० य० २१२७, ७८-७९, ९० )

कुतस्तस्मिन्द्र मादिनः समेको यावि सन्पते

किं नऽ इत्या ।

सं पृच्छमे समगणः दुर्माधेष्टोचेन्नरो

हरिषो यनेऽ अस्मे ॥ २७ ॥

ग्रहाणि मे मृतयः शरं सुनामः

दुष्पं इत्यने प्रमृतो मेऽ अद्रिः ।

आ शान्ते प्रानि हयन्युपयेमा

हर्षा यदतन्मा नोऽ अल्लं ॥ ७८ ॥

अनुत्तमा ते मघवन्नकिर्तुं न  
त्वावोर ऽ अस्ति देवता विद्वानः ।

न जायमानो नशते न जातो  
यानि करिष्या कृणुहि प्रवृद्ध ॥ ७२ ॥

चन्द्रमा ऽ अप्स्यन्तरा सुपणो धावते दिवि ।  
रयि पिशङ्गं बहुलं पुस्त्युह २  
हरिरेति कर्त्तिरुदत् ॥ ९० ॥

॥ ७९ ॥ ( या० य० ३५।८ )

परीमे गामनेयत् पर्यन्निर्महत्पत ।  
देवेष्व्यक्तं श्रयः क ऽ इमोर ऽ आर्दधर्षति १८

॥ ९० ॥ ( या० य० ३६।८ )

इन्द्रो विधेस्य यजति ।  
शं नो ऽ अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ ८ ॥

॥ ९० ॥ ( या० य० ३८।७ )

यार्त्तौ धार्यापृथिवी यार्थश्च सुत सिन्धयो  
मिन्मिथुरं ।

नार्यन्तमिन्द्र ते प्रहं  
ऊर्ता गृह्णाम्यशितं मयि गृह्णाम्यशितम् ॥ २६ ॥

॥ ९० ॥ ( साम० १९० )

क इमं नाहुषीष्या इन्द्रं सोमस्य तर्पयान् ।

न नो यमुष्या भयात् ॥ १९० ॥

॥ ९० ॥ ( साम० १९६ )

गदा य इन्द्रधरुपदा उपो नु न मपयन् ।

न दपो यतः नार इन्द्रः ॥ १९६ ॥

॥ ९० ॥ ( साम० २०९, १९६ )

शरं न इन्द्र धरयः गमेम शरं त्यायतः ।

धरं शरं परमणि ॥ २०९ ॥

इमे न इन्द्र शोभाः शुतागो ये च शोभाः ।

नेपो मयव प्रभूयसो ॥ २१२ ॥

॥ २०५ ॥ ( साम० २०६, २३१ )

इन्द्र उक्थेभिर्मिन्द्रिष्ठो वाजानां च धाजपतिः ।

हरिवान्सुतानां सखा ॥ २२६ ॥

एन्द्र पृथु कासु चिन्मृष्णं तनूषु धेहि नः ।

सत्राजिदुग्र पौंस्यम् ॥ २३१ ॥

॥ २०६ ॥ ( साम० २९४, २९८ )

इम इन्द्र मदाय ते सोमाश्विकिन्न उन्विनः ।

मघोः पपान उप नो गिरः शृणु राख

स्तोत्राय निर्घणः ॥ २९४ ॥

यदिन्द्र शासो अमृतं च्यावया सदसस्पति ।

अस्माकमशुं मघयन् पुरस्पृहं वसव्ये

अधि यर्हय ॥ २९८ ॥

॥ ३०७ ॥ ( साम० ३२७ )

मैडि न त्वा वज्रिणं भृष्टिमन्तं

पुरुषस्मानं वृषमं स्थिरप्सुनुम् ।

करोष्व्यस्तगरीर्दुयस्युः

इन्द्रं पुंसं वृषहणं गृणीये ॥ ३२७ ॥

॥ ३०८ ॥ ( साम० ३३६, ३३७ )

यो नो यनुष्यप्रभिदाति मर्तं

उगणा धो मन्वमानस्तुरो या ।

क्षिपी युधा शयसा या तमिन्द्र

अभी ध्याम यूपमणस्तयोताः ॥ ३३६ ॥

यं यूपेषु क्षितियं स्पधेमाना

यं यूपेषु तुरयन्तो हयस्ते ।

यं शरमाना यमपामुपजम्

यं यिशागो याजयन्ते न इन्द्रः ॥ ३३७ ॥

॥ ३०९ ॥ (साम० ४३८, १७६८, ४४४-४६४, १११३-१५)

३ १ ३ १ ३ ३ ३  
पप ग्रहा य ऋत्विष्य

२ ३ १ २ ३ ३ ३  
इन्द्रो नाम धृतो गृणे

॥ ४३८ ॥

१ २ ३ १ २ ३ ३ ३  
उप प्रक्षे मधुमति क्षियन्तः

१ २ ३ ३ १ २  
पुण्ये म रयि धीमहे त इन्द्र

॥ ४४४ ॥

१ २ ३ ३ ३ १ २ ३ ३  
अर्चन्त्यर्को मरुतः स्वर्को आ

१ २ ३ ३ ३ ३ ३ ३ २ २  
स्तोमति धृतो युवा स इन्द्रः

॥ ४४५ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३  
प्र य इन्द्राय वृत्रहन्तमाय

१ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २  
विप्राय गाथं गायत यं जुजोषते

॥ ४४६ ॥

॥ ३१० ॥ (साम० ४४९; ४५३, ४५६, १७७०)

१ ३ १ ३ ३ ३ ३  
भगो प्र चित्रो अग्निः

३ ३ ३ १ २ ३ १ २  
महोनां दधाति रत्नम्

॥ ४४९ ॥

३ ३ ३ ३ १ २ ३ १ २  
वि श्रुतयो यथा पथा

३ १ २ ३ १ २  
इन्द्र त्वघन्तु रातयः

॥ ४५३ ॥

१ ३ १ २  
इन्द्रो विभ्यस्य राजति

॥ ४५६ ॥

॥ ३११ ॥ (साम० १८८)

१ ३ ३ ३ २ ३ १ २ ३ ३ ३ २ २ २  
यस्येदमा रजोयुज-स्तुजे जने धनं स्वः ।

१ २ ३ १ २ ३ ३  
इन्द्रस्य रण्यं वृहत्

॥ ५८८ ॥

॥ ३१२ ॥ (साम० ६९३-६९५)

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ ३ ३ १ २  
हरी त इन्द्र इमं धू-ण्युतो ते हरितौ हरी ।

१ २ ३ १ २  
ते त्वा स्तुवन्ति कवयः

३ १ २ ३ १ २  
पुरुपासो वनर्गवः

॥ ६२३ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ ३ २ ३ १ २ ३ २  
यद्वर्चो हिरण्यस्य यद्वा वर्चो गवामुत ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २  
सत्यस्य ब्रह्मणो वर्चः

१ २ ३ १ २  
तेन मा संरुजामसि

॥ ६२४ ॥

२ ३ १ २ ३ १ ३ २  
सहस्तन्न इन्द्र दक्षयाज

३ २ २ ३ १ २  
ईशो ह्यस्य महतो विरग्निन् ।

२ ३ १ ३ १ २ २ ३ १ २  
कर्तुं न नृम्यं स्थविरं च वाजं

३ २ ३ १ २ ३ १ २  
वृत्रेषु शत्रून्सहना रुधी नः

॥ ६२५ ॥

॥ ३१३ ॥ (साम० ९५१-९५४)

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २  
इन्द्र जुपस्व प्र वहा याहि शूर हरिह ।

१ २ ३ १ २ ३ १  
पिवा सुतस्य मतिर्न

१ २ ३ १ २ ३ १  
मधोश्चकानश्चास्मदाय

॥ ९५२ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २  
इन्द्र जठरं नम्यं न

३ २ ३ १ २ ३ २  
पुणस्व मधोर्दियो न ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २  
अस्य सुतस्य स्वाश्नीय

३ १ २ ३ १ २  
त्वा मदाः सुवाचो अस्युः

॥ ९५३ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २  
इन्द्रस्तुरापाणिमग्नौ न

३ १ २ ३ १ २ ३ २  
जघान वृत्रं यतिर्न ।

३ १ २ ३ १ २  
विमेद वलं भृगुर्न

२ ३ २ ३ २ ३ १ २  
ससाहे शत्रून्मदे सोमस्य

॥ ९५४ ॥

॥ ३१४ ॥ (साम० १८६९)

१ २ ३ १ २ २ ३ १ २  
इन्द्रस्य बाहू स्थविरौ युवानौ

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३  
अनाधृष्यौ सुप्रतीकावसह्यौ ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३  
तौ युजीत प्रथमो योग आगते

१ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ २  
याम्यां जितमसुराणां सहो महत् ॥ १८६९ ॥

॥ ३१५ ॥ (साम० १८७१)

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
अन्धा अमित्रा भवता-शीपाणोऽहय इव ।

१ २ ३ १ २ ३  
तेषां वो अग्निनुद्यानौ

१ २ ३ १ २  
इन्द्रो हन्तु वरवरम्

॥ १८७१ ॥

(३००१)

इन्द्रसहचारी-देवगणः ।

## ( १ ) इन्द्राग्नी ।

॥ ३१६ ॥ ( ऋ० ११६११-६ )

मेधातिथिः वा० ३१ । गायत्री ।

इहेन्द्राग्नी उप ह्वये तयोरित् स्तोममुद्गमसि ।  
 ता सोमं सोमपातेमा ॥ १ ॥  
 ता यज्ञेषु प्र शंसते-न्द्राग्नी शुम्भता नरः ।  
 ता गायत्रेषु गायत ॥ २ ॥  
 ता मित्रस्य प्रशस्तय इन्द्राग्नी ता हवामहे ।  
 सोमपा सोमपीतये ॥ ३ ॥  
 उग्रा सन्ता हवामह उपेदं सर्वनं सुतम् ।  
 इन्द्राग्नी एह गच्छताम् ॥ ४ ॥  
 ता महान्ता सवस्पती इन्द्राग्नी रक्ष उज्जतम् ।  
 अग्रजाः सन्त्वग्निः ॥ ५ ॥  
 तेन सत्येन जागृत-मधि प्रचेतुर्न पदे ।  
 इन्द्राग्नी शर्म यच्छतम् ॥ ६ ॥

॥ ३१७ ॥ ( ऋ० ११०८११-१३ )

इस्र आगिरसः । त्रिष्टुप् ।

य इन्द्राग्नी चित्रतमो रथो वां  
 धमि विश्वानि भुवनानि चष्टे ।  
 तेना यात मरुतं तस्थिवांसा  
 अथा सोमस्य पिवतं सुतस्य ॥ १ ॥  
 यार्यदिदं भुवन् विश्वमस्ति  
 उरुद्वयो वरिमता गभीरम् ।  
 तार्यो अयं पातये सोमो अस्तु  
 अरमिन्द्राग्नी मर्नसे युधभ्याम् ॥ २ ॥  
 चमामहे हि सुध्युद्नामं भद्रं  
 मर्माग्निना धृष्टह्णा उत स्थः ।  
 तार्यिन्द्राग्नी सुष्यञ्जा निषया  
 गृष्णाः सोमस्य वृषणा धृष्टेभ्याम् ॥ ३ ॥

समिद्धेष्वग्निष्वानजाना

यतस्तुंवा धर्हिरे तिस्तिराणा ।  
 तीव्रैः सोमैः परिपिकेमिर्वाग्  
 इन्द्राग्नी सोमनसाय यातम् ॥ ४ ॥  
 यानीन्द्राग्नी चक्रयुर्वीर्याणि  
 यानि रूपाण्युत वृष्ण्यानि ।  
 या धौ प्रजानि सख्या शिवानि  
 तेभिः सोमस्य पिवतं सुतस्य ॥ ५ ॥  
 यदग्रवं प्रथमं वा वृष्णानो  
 अयं सोमो असुरैर्नो विद्वयः ।  
 तां सत्यां श्रद्धामभ्या हि यातं  
 अथा सोमस्य पिवतं सुतस्य ॥ ६ ॥  
 यदिन्द्राग्नी मर्दयः स्वे दुरोणे  
 यद् ब्रह्मणि राजनि वा यजत्रा ।  
 अतः परि वृषणावा हि यातं  
 अथा सोमस्य पिवतं सुतस्य ॥ ७ ॥  
 यदिन्द्राग्नी यदुषु त्वयिषु  
 यद् द्रुह्युष्वनुषु पुरुषु स्थः ।  
 अतः परि वृषणावा हि यातं  
 अथा सोमस्य पिवतं सुतस्य ॥ ८ ॥  
 यदिन्द्राग्नी अवमस्यां पृथिव्यां  
 मध्यमस्यां परमस्यामुत स्थः ।  
 अतः परि वृषणावा हि यातं  
 अथा सोमस्य पिवतं सुतस्य ॥ ९ ॥  
 यदिन्द्राग्नी परमस्यां पृथिव्यां  
 मध्यमस्यामवमस्यामुत स्थः ।  
 अतः परि वृषणावा हि यातं  
 अथा सोमस्य पिवतं सुतस्य ॥ १० ॥  
 यदिन्द्राग्नी दिवि द्यो यत् पृथिव्यां  
 यत् पर्वतेष्वोपधीष्वनु ।  
 अतः परि वृषणावा हि यातं  
 अथा सोमस्य पिवतं सुतस्य ॥ ११ ॥

( ३०१८ )

योर्दिन्द्राग्नी उर्दिता सूर्यस्य  
मर्धे दिवः स्वधया मादयेथे ।  
ऋतः परि धृपणाया हि यातं  
अथा सोमस्य पितृतं सुतस्य  
॥ १२ ॥ एवेन्द्राग्नी पपिवांसां सुतस्य  
विश्वास्त्रभ्यं मे र्जयतं धनानि ।  
तद्यो मित्रो वरुणो मामहन्तां  
अर्दितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः  
॥ १३ ॥ ॥ ३१८ ॥ ( ऋ० १।१०९।१-८ )

वि ह्यस्य मनसा यस्य इच्छन्  
इन्द्राग्नी घ्रास उत वा सज्जाताम् ।  
नान्या युवत् प्रमतिरस्ति मह्यं  
स वां धियै वाजयन्तीमतक्षम्  
अथर्वं हि भूरिदायत्तरा वां  
विजामातुस्त वां घा स्यालात् ।  
अथा सोमस्य प्रयती युवभ्यां  
इन्द्राग्नी स्तोमं जनयामि नव्यम्  
मा च्छेन्न रुद्राग्निरिति नार्धमानाः  
पितॄणां शक्तीरनुयच्छमानाः ।  
इन्द्राग्निभ्यां कं पुराणो मदन्ति  
ता ह्यग्नी धिपणाया उपस्ये  
युवाम्यौ देवी धिपणा मदाय  
इन्द्राग्नी सोममुशती स्तनोति ।  
तावन्निना भद्रहस्ता सुपाणी  
आ धावतं मर्धुना पृङ्गमप्सु  
युवामिन्द्राग्नी वसुनो विभागे  
तवस्तमा शुश्रव वृत्रहस्ये ।  
तावासद्यां वर्हिषि यज्ञे अस्मिन्  
॥ चरुणी मादयेयां सुतस्य  
प्र चरुणिभ्यः पतनाहवेषु  
प्र पृथिव्या रिरिचाथे दिवश्च ।

प्र सिन्धुभ्यः ॥ गिरिभ्यो महित्वा  
इन्द्राग्नी विश्वा भुवनात्यन्या ॥ ६ ॥  
आ भरतं दिक्षतं वज्रवाह  
असां इन्द्राग्नी अवतं शचीभिः ।  
इमे तु ते रुद्रभ्यः सूर्यस्य  
येभिः सपितृव पितरो न आसन् ॥ ७ ॥  
पुरंदरं दिक्षतं वज्रहस्ता  
असां इन्द्राग्नी अवतं भरतु ।  
तद्यो मित्रो वरुणो मामहन्तां  
अर्दितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ८ ॥  
॥ ३१९ ॥ ( ऋ० १।१३९।१ )  
परुष्टेयो देवेदासिः । अयष्टिः ।  
दध्यङ् ह मे अनुपं पूर्वा अङ्गिराः  
॥ १ ॥ प्रियमैधः कण्वो अग्निर्मनुर्विदुः  
ते मे पूर्वे मनुर्विदुः ।  
तेषां देवेभ्यार्यति रसाकं तेषु नामभ्यः ।  
तेषां पदेन मह्या नमे गिरा  
॥ २ ॥ इन्द्राग्नी आ नमे गिरा ॥ ९ ॥  
॥ ३२० ॥ ( ऋ० ३।१२।१-९ )  
गाविनो विश्वामित्रः । गायत्री ।  
इन्द्राग्नी आ गतं सुतं गीर्भिमनो वरेण्यम् ।  
॥ ३ ॥ अस्य पतं धियेपिता ॥ १ ॥  
इन्द्राग्नी जरितुः सचां यज्ञो जिगाति चेतनः ।  
अथा पातमिमं सुतम् ॥ २ ॥  
इन्द्रमग्निं कविच्छदा यज्ञस्य जुत्या वृणे ।  
॥ ४ ॥ ता सोमस्येह लम्पताम् ॥ ३ ॥  
तोशा वृत्रहणा इवे सजितवानापराजिता ।  
इन्द्राग्नी वाजसातमा ॥ ४ ॥  
प्र वामर्चन्त्यग्निभ्यो नीथाविदो जरितारः ।  
॥ ५ ॥ इन्द्राग्नी इप आ वृणे ॥ ५ ॥  
इन्द्राग्नी नवति पुरो दासपत्नीरधुनतम् ।  
साकमेकैर्न कर्मणा ॥ ६ ॥

इन्द्राग्नी अप्ससस्पृष्टुं—प प्र यन्ति धीतयः ।

ऋतस्य पय्याः अर्तु ॥ ७ ॥

इन्द्राग्नी तविपाणिं वां सधस्यानि प्रयांसि च ।

युवोरप्स्यै हितम् ॥ ८ ॥

इन्द्राग्नी रोचना दिवः परि वाजेषु भूयथः ।

तद् वां चेति प्र धीर्यम् ॥ ९ ॥

॥ ३०८ ॥ ( अ० ५।३७-६ )

श्रेष्ठस्त्वय्यरा, वोहस्तस्त्वय्यरा, मरतोऽध्वमेध राजान् ।

( आग्निर्भौम इति केचित् ) । अनुष्टुप् ।

इन्द्राग्नी शतदान्य—ध्वमेधे सुधीर्यम् ।

क्षत्रं धारयतं बृहद् दिवि सूर्यमिवाजर्तम् ॥ ६ ॥

॥ ३०९ ॥ ( अ० ५।८।१-६ )

भौमोऽग्निः । अनुष्टुप्, ६ विराट्पूर्वा ।

इन्द्राग्नी यमयथ उभा वाजेषु मर्यम् ।

हृद्धा चित् स प्र भेदति युष्मा वाणीरिव नितः १

या वृत्तानसु दृष्टा या वाजेषु ध्याय्या ।

या पञ्च चर्षणीरग्नी—न्द्राग्नी ता हवामहे ॥ २ ॥

तयोरिदमरुच्छब्—स्मिन्मा दिद्युन्मघोनोः ।

प्रति दृणा गर्भस्यो—गंधां धृनुम एषते ॥ ३ ॥

ता घामेरे रथाना—मिन्द्राग्नी हवामहे ।

पतीं तुरस्य राधसो रिडांस्तु गिर्वेणस्तमा ॥ ४ ॥

ता घृघन्तायन घृन् मतीय देवावदभा ।

धर्मेना चित् पुरो द्रुधे—ऽक्षौय देवावर्षते ॥ ५ ॥

प्रेवेन्द्राग्निभ्यामदावि हव्यं

शूर्यं पूतं न पूतमद्रिभिः ।

ता नृगिण्य धवो बृहद्

रयि गुणस्तु दिद्युन्—मिर्व गुणस्तुं दिद्युतम् ॥ ६ ॥

॥ ३१० ॥ ( अ० ६।१७।१-३० )

वाङ्मनो भादाः । बृहती, ७-१० अनुष्टुप् ।

प्र नु धांया गुनेर्षु वां धीर्णां यानि चमस्तुः ।

हताणां वां विनरां देयदीव्य

इन्द्राग्नी जीर्षयो युवम्

॥ १ ॥

वदित्या महिमा वां इन्द्राग्नी पर्निष्ट आ ।

समानो वां जनिता आर्तरा युवं

यमाविहेहमातरा ॥ २ ॥

ओकिवांसां सुते सवां अश्वा सतीं ह्वादने ।

इन्द्रा न्वग्नी अवसेह वज्रिणां

वयं देवा हवामहे ॥ ३ ॥

य इन्द्राग्नी सुतेषु वां स्तयत् तेष्यतावृधा ।

जोषवाकं वदतः पञ्चहोपिणा

न देवा मस्यश्चन ॥ ४ ॥

इन्द्राग्नी को अस्य वां देवौ मर्तेश्चिकेतति ।

विर्पूचो अश्वां युयुजान ईयत्

एकः समान आ रथे ॥ ५ ॥

इन्द्राग्नी अपादियं पूर्वांगात् पृहतीभ्यः ।

द्विती शिरो जिह्वया वार्यदधरत्

त्रिंशत् पदा न्यङ्गमीत् ॥ ६ ॥

इन्द्राग्नी आ हि तन्वते नरो धन्वांनि धाहोः ।

मा नो अस्मिन् महाधने परां वक्तुं गर्धित्यु ॥ ७ ॥

इन्द्राग्नी तर्पन्ति मा—ऽद्या अयों अरातयः ।

अप ह्रेणस्या कृतं युयुतं सूर्यादधि ॥ ८ ॥

इन्द्राग्नी युवोरपि वसुं दिव्यानि पार्थिया ।

आ न हह प्र यच्छतं रयिं दिभ्यायुपोपसम् ॥ ९ ॥

इन्द्राग्नी उक्थवाहसा स्तोमेमिदघनधुता ।

विभ्वाभिर्मीभिरा गत—मस्य सोमस्य पीतये १०

॥ ३१४ ॥ ( अ० ६।६०।१-१५ )

गायत्री, १-३, १३ त्रिष्टुप्, १४ बृहती, १५ अनुष्टुप् ।

अयंद् युयुमत संनोति याजं

इन्द्रा यो अग्नी नहरी सपयान् ।

इत्ययन्तां यमर्षस्य भूरेः

नर्दन्मा नर्दन्मा पात्रयन्तां

॥ १ ॥

( १८५१ )



ता योधिष्टमभि गा इन्द्र नुनं  
अपः स्वरूपसौ अग्न ऊज्जहाः ।  
दिशः स्वरूपस इन्द्र चित्रा  
अपो गा अग्ने युवसे नियुत्वान् ॥ २ ॥  
आ वृत्रहणा वृत्रहमिः शुभैः  
इन्द्र यातं नमोभिरग्ने अर्वाक ।  
युवं राधोभिरकयेभिरिन्द्रा-ऽग्ने  
असे भवतमुत्तमोभिः ॥ ३ ॥  
ता हुवे ययोरिदं पुरे विभ्यं पुरा कृतम् ।  
इन्द्राग्नी न मर्धतः ॥ ४ ॥  
उग्रा विघनिना मृधं इन्द्राग्नी हवामहे ।  
ता नो मृच्छत ईदृशं ॥ ५ ॥  
हतो वृत्राण्यायौ हतो दासानि सत्पती ।  
हतो विश्वा अप द्विपः ॥ ६ ॥  
इन्द्राग्नी युवामिमं ऽभि स्तोमां अनूपत ।  
पियंतं शंभुवा सुतम् ॥ ७ ॥  
या वां सन्ति पुरुस्पृहौ नियुतौ दाशुषे नरा ।  
इन्द्राग्नी तामिरा गतम् ॥ ८ ॥  
तामिरा गच्छतं नरो-पेदं सर्वनं सुतम् ।  
इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥ ९ ॥  
तमीळिष्व यो अक्षिणा वना विश्वा परिप्यजत् ।  
कृष्णा कृणोति जिह्वा ॥ १० ॥  
य इह आविवांसति सुन्नमिन्द्रस्य मर्त्यैः ।  
धुन्नाय सुतरा अपः ॥ ११ ॥  
ता नो वाजवतीरिषं आशून् पिपृतमर्धतः ।  
इन्द्रमग्निं च वोब्धहे ॥ १२ ॥  
उमा वामिन्द्राग्नी आहुवध्यां  
उमा राधंसः सुह माद्वयध्वं ।  
उमा दातारविषां रथीणां  
उमा वाजस्य सातर्यं हुवे वाम् ॥ १३ ॥  
आ नो गव्येभिरकथ्यैः वसव्यैरुप गच्छतम् ।

सखायौ देवौ सखायं शंभुवं  
इन्द्राग्नी ता हवामहे ॥ १४ ॥  
इन्द्राग्नी शृणुतं हवं यजमानस्य सुन्वतः ।  
वीतं हव्यान्या गतं पियंतं सोम्यं मधु ॥ १५ ॥  
॥ ३२५ ॥ ( मृ० ७।९३।१-८ )  
मद्रावरुणिवसिष्ठः । त्रिष्टुप् ।  
शुविं नु स्तोमं नर्धजातमद्य  
इन्द्राग्नी वृत्रहणा जुपेथाम् ।  
उमा हि वां सुहृष्टा ओहवीमि  
ता वाजं सुच उश्नते धेष्ठा ॥ १ ॥  
ता सानसी शंवसाना हि भूतं  
सांकुव्या शवसा शशुवांसा ।  
क्षयन्तां रायो यवसस्य भूरैः  
पूङ्गं वाजस्य स्वधिरस्य धृष्टैः ॥ २ ॥  
उपौ ह यद् विदथं वाजिनो गुः  
धीभिर्विप्राः प्रमंतिमिच्छमानाः ।  
अवन्तो न काष्ठां नक्षमाणा  
इन्द्राग्नी जोहुवतो नरस्ते ॥ ३ ॥  
गीर्भेर्विप्रः प्रमंतिमिच्छमानं  
ईदं रयिं यशसं पूर्वभाजम् ।  
इन्द्राग्नी वृत्रहणा सुवज्रा  
प्र नो नव्यैमिस्तिरतं वेष्णैः ॥ ४ ॥  
सं यन्मही मिथती स्वधैमाने  
तनुक्या शरसाता यतैत ।  
अद्वयं विदथं देवयुभिः  
सत्रा हंत सोमसुता जनेन ॥ ५ ॥  
इमामु नु सोमसुतिमपं न  
पन्द्राग्नी सोमनमार्थं यातम् ।  
नू चिद्धि परिमन्त्रार्थं भ्रमान्  
आ वां दार्थद्विष्यतीत्यु याजैः

सो अंग्र एना नमसा समिद्धो  
अच्छा मित्रं वरुणमिन्द्रं वोचः ।  
यत् सोमार्गधरुमा तत् सु मल्ल  
तदयमादितिः शिश्नयन्तु

॥ ७ ॥

एना अंग्र आशयाणासं इष्टी  
युधोः सचाभ्यदयाम वाजान् ।  
मेन्द्रो नो विष्णुमरुतः परं रयन्  
ययं पात स्यस्तिभिः सदा नः

॥ ८ ॥

॥ १०६ ॥ ( ऋ० ७१४.१-१० )

गायत्री, १२ अनुष्टुप् ।

इयं घामस्य मग्मन् इन्द्राग्नी पुन्यस्तुतिः ।

अध्नाद् वृष्टिर्गयाजनि ॥ १ ॥

दृणुनं अरितुर्हव्य-मिन्द्राग्नी घनन्तु गिरः ।

इशाना पिप्यन्तु धियः ॥ २ ॥

मा पोप्याय नो नरे-न्द्राग्नी मामिदोस्तये ।

मा नो रीरधन्तु निदे ॥ ३ ॥

इन्द्रं अग्रा नमो वृहत् सुमुक्तिमेरयामहे ।

धिया धेना अध्वन्यः ॥ ४ ॥

ता हि दाम्यन्तु इलन् इथा त्रिप्रोस ऊनये ।

सुवाधो याजन्मातये ॥ ५ ॥

ता र्था गोभिर्पिप्यन्त्यः प्रयन्त्यन्तो हवामहे ।

मेधमाता सन्निधयः ॥ ६ ॥

इन्द्राग्नी धनुसा गन्त-मग्मभ्यं चरणीमहा ।

मा नो वृद्धोमे इशान ॥ ७ ॥

मा वर्य नो धाम्यो धुनिः प्रणह्मस्यम् ।

इन्द्राग्नी शमं यच्छतम् ॥ ८ ॥

गोमर्दिरेष्यद् वपु यद् वामभ्यामुदीमहे ।

इन्द्राग्नी तद् यमेमहि ॥ ९ ॥

यम् सोम भा सुने नर इन्द्राग्नी अजोहवः ।

सर्वीयन्ता सपुनः ॥ १० ॥

उक्थेमिर्वृत्रहन्तमा या मन्दाना चिदा गिरा ।

आहुगैराविवांसतः ॥ ११ ॥

ताविद् दुःशंसं मर्त्यं दुर्विहंसं रक्षस्विनम् ।

आमोगं हन्मना हत-मुद्धि हन्मना हतम् ॥ १२ ॥

॥ ३२७ ॥ ( ऋ० ८१८.१-१० )

स्यावाश्व आश्वेय । गायत्री ।

यज्ञस्य हि स्य ऋत्विजा सस्नी वाजेषु कर्मसु ।

इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥ १ ॥

तोशासां रथयावाना वृत्रहणापराजिता ।

इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥ २ ॥

इदं वा मदिरं मध्व-धुक्षन्नद्रिभिर्नरः ।

इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥ ३ ॥

जुषेथां यज्ञमिष्टये सुतं सोमं सधस्तुती ।

इन्द्राग्नी आ गतं नरा ॥ ४ ॥

इमा जुषेथां सर्वना येभिर्हव्यान्पृह्युः ।

इन्द्राग्नी आ गतं नरा ॥ ५ ॥

इमां गायत्रयैर्तनि जुषेथां सुपुतिं मम ।

इन्द्राग्नी आ गतं नरा ॥ ६ ॥

प्रातर्यापमिरा गतं देवेभिर्जैन्यायस् ।

इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥ ७ ॥

स्यावाभ्यस्य सन्वतो ऽग्नीणां दृणुतं हव्यम् ।

इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥ ८ ॥

एवा यामह ऊनये यथाहुयन्त मेधिराः ।

इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥ ९ ॥

आदं सत्यनीयतो-रिन्द्राभ्योरथो वृणे ।

याभ्यां गायत्रमुच्यते ॥ १० ॥

॥ ३०८ ॥ ( ऋ० ८१८.१-१९ )

नामाका वापय । महापति, २ गायत्री, १२ त्रिष्टुप् ।

इन्द्राग्नी युवं सु नः सहेन्ता दाम्यो रयिम् ।

येनं वृहता मग्मया योतु यिम् साहिषामहि

अग्निर्धेनव यात इ-प्रमोन्तामग्नये सोमं ॥ १ ॥

( ३१०१ )

नहि वा वृष्यामहे ऽयेन्द्रमिदं यजामहे  
 शर्विष्ठं नृणां नरम् ।  
 स नः कदा चिदप्येता गमदा वाजसातये  
 गमदा मेघसातये नमन्तामन्यके संमे ॥ २ ॥  
 ता हि मध्यं भराणा—मिन्द्राग्नी अधिक्षितः ।  
 ता उं कवित्वना कवी पृच्छधर्माना सखीयते  
 सं धीतमश्नुतं नरा नमन्तामन्यके संमे ॥ ३ ॥  
 अभ्यर्चं नमाकृष—दिन्द्राग्नी यजसां गिरा ।  
 ययोर्विभ्रमिदं जगं—दियं द्यौः पृथिवी मृहि  
 उ॒पस्थं धिभूतो वसु नमन्तामन्यके संमे ॥ ४ ॥  
 प्र ब्रह्माणि नमाकृष—दिन्द्राग्निभ्यामिरज्यत ।  
 या सप्तयुधमर्णधं जिह्वयारमपोर्णत  
 इन्द्र ईशान ओजसा नमन्तामन्यके संमे ॥ ५ ॥  
 अपि वृक्ष पुराणघटं मृततैरिव शुण्ठितं  
 ओजो वासस्यं दम्भय ।  
 वयं तदस्य संभृतं वस्विन्द्रेण वि भजेमहि  
 नमन्तामन्यके संमे ॥ ६ ॥  
 यदिन्द्राग्नी जना इमे विह्वयन्ते तना गिरा ।  
 अस्माकैभिर्बुभिर्वयं सांसहाम पृतम्यतो  
 वनुयाम वनुष्यतो नमन्तामन्यके संमे ॥ ७ ॥  
 वा नु श्वेतावयो दिव उच्चरत उ॒प युभिः ।  
 इन्द्राग्न्योरुं मृत—मुहाना यन्ति सिन्धयो  
 यान्तीं यथादमुञ्चतां नमन्तामन्यके संमे ॥ ८ ॥  
 पूर्वाष्टं इन्द्रोपमातयः पूर्वाहृत प्रशस्तयः  
 स्र्गो हिन्वस्य हरिवः ।  
 वस्रो वीरस्यापृचो या नु साधन्त नो धियो  
 नमन्तामन्यके संमे ॥ ९ ॥  
 तं शिशीता सुवृक्तिभि—स्त्वेयं सत्वानमृगियम् ।  
 उतो नु चिद् य ओजसा शुष्णस्याण्डानि भेदति  
 जेष्व स्वयंतीरपो नमन्तामन्यके संमे ॥ १० ॥

तं शिशीता स्वचूरं सुत्यं सत्वानमृगियम् ।  
 उतो नु चिद् य ओहृत आण्डा शुष्णस्य भेदति  
 अजैः स्वयंतीरपो नमन्तामन्यके संमे ॥ ११ ॥  
 एवेन्द्राग्निभ्यां पितृवज्रवीयो  
 मन्धातुवदङ्गिरस्वर्दवाचि ।  
 त्रिधातुना शर्मणा पातमुसान्  
 वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ १२ ॥  
 ॥ ३०९ ॥ ( ऋ० १०।१६।१-५ )  
 प्राजापत्यो यश्मनाशनः, राजयश्मर्गं वा । त्रिदु०, ५ असुदु० ।  
 मुञ्चामि त्वा हविषा जीर्णनाय कं  
 अशातयस्मादुत राजयस्मात् ।  
 प्राहिजेमह यदि वैतर्देन  
 तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम् ॥ १ ॥  
 यदि क्षितायुर्यदि वा परैतो  
 यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव ।  
 तमा हरामि निर्धृतेरुपस्थाद्  
 अस्यायमेनं शतशारदाय ॥ २ ॥  
 सहस्राक्षेण शतशारदेन  
 शतायुषा हविषाहायमेनम् ।  
 शतं ययेमं शरदो नयाति  
 इन्द्रो विभ्वस्य दुरितस्य पारम् ॥ ३ ॥  
 शतं जीव शरदो वर्षमानः  
 शतं हेमं तान्द्रुतमुं वसंतान् ।  
 शतमिन्द्राग्नी संविता बहुस्पतिः  
 शतायुषा हविषेण पुनर्दुः ॥ ४ ॥  
 आहारं त्वार्विदं त्वा पुनरागाः पुनर्नव ।  
 सर्वान् सर्वे ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेऽविदम् ॥ ५ ॥  
 ॥ ३३० ॥ ( वा० य० १३।११ )  
 इन्द्राग्नी अययमाना—मिष्टकां हरहन्तं युयम् ।  
 पृष्ठेन चावापृथिवी अंतरिक्षं च विवाचमे ॥ ११ ॥

॥ ३३१ ॥ ( या० य० १७।६४ )

उद्गमं च निग्राभं च ब्रह्म देवा अवीवृधन् ।

अर्धा सुपत्नानिद्राग्नी मे विपुचीनान्यस्यताम् ६४

॥ ३३२ ॥ ( अथर्व० ७।१७।१-८ )

अथर्व । त्रिष्टुप्, ५ त्रिपदायी भुरिग्गायत्री, ६ त्रिपदा

प्राजापत्या बृहती, ७ त्रिपदा साधो भुरिग्गायत्री,

८ उपरिष्ठाद्बृहती ।

यदुच त्वा प्रयति यशे अस्मिन्

होतृश्चिकित्वध्वृणीमहीह ।

ध्रुवमयो ध्रुवमुता शविष्ठ

प्रविद्वान् यक्षमुप याहि सौमम्

समिन्द्र नो मनसा नेप गोभिः

सं सूरिर्महंरिवृत्सं स्वस्था ।

सं ब्रह्मणा देवहितं यदस्ति

सं देवानां सुमती यज्ञिणानाम्

यानावह उशतो देव देवान्

तान् प्रेरय स्वे अग्ने सुधस्यै ।

जुष्टिर्वांसः पपिर्वांसो मधूनि

असौ धंस वसवो वर्सनि

सृणा वो देवाः सवना अकर्म

य आजुग्म सवने मा जुगुणाः ।

यहमाना भरमानाः स्वा वर्सनि

घर्तु धर्मं दिष्टमा रेतृहातुं

यस्य युवं गच्छ यक्षपति गच्छ ।

स्वां योनिं गच्छ स्वाहा

एष ते यशो यक्षपते सहस्रकवाकः ।

सुवीर्यः स्यादा

यपदुतेभ्यो यपदुतेभ्यः ।

देवां गातुविदो गातुं वित्वा गातुर्मित ॥ ७ ॥

मनसम्पत् इमं नो द्विधि देवेषु यज्ञम् ।

म्यादां द्विधि म्यादां पृथिव्यां

स्यादन्तरिक्षे स्यादा पातं धां स्यादा ॥ ८ ॥

॥ ३३३ ॥ ( अथर्व० ६।१०४।१-२ )

प्रणोचनः । ३ सोम इन्द्रध । अनुष्टुप् ।

आदानेन संदानेना-ऽमित्राना घामामि ।

अपाना ये चैषां प्राणा असुनासुन्समच्छिदन् १

इदमादानमकरं तपमेन्द्रेण संशितम् ।

अमित्रा येऽत्र नः सन्ति तानेन आद्या त्वम् २

ऐनान्यतामिन्द्राग्नी सोमो राजा च मेदिनी ।

इन्द्रे मन्त्यानादानं-ममित्रेभ्यः कृणोतु नः ३

॥ ३३४ ॥ ( अथर्व० ७।१०।१-३ )

सुयुः । १ गायत्री, २ त्रिष्टुप्, ३ अनुष्टुप् ।

॥ १ ॥ मग्न इन्द्रश्च दाशुषं हतो घृत्रार्ण्यमिति ।

उमा हि य्वहन्तमा ॥ १ ॥

याभ्यामजयन्स्वः पृथ

यावांतस्थतुर्भुवनानि विश्वा ।

॥ २ ॥ प्रचर्पणी घृषणा वज्रबाहू

अग्निमिन्द्रं घृषहणा हुवेऽहम् ॥ २ ॥

उप त्वा देवो अग्रमी-अमसेन बृहस्पतिः ।

इन्द्रं गोभिर्न आ विश यजमानाय सुवृते ॥ ३ ॥

॥ ३ ॥

( २ ) इन्द्रावरुणौ !

॥ ३३५ ॥ ( अ० १।१७।१-९ )

नेधातिथिः काण्वः । गायत्री, ४-५ पादनिचृत् ।

( ५ हसिषधी वा ) गायत्री ।

॥ ४ ॥ इन्द्रावरुणयोरहं सुभ्राजोरव आ वृणे ।

ता नो मृळात ईदशे ॥ १ ॥

॥ ५ ॥ गन्तारु हि स्योऽवसे हवं विप्रस्य मायतः ।

धर्तारो चर्पणीनाम् ॥ २ ॥

॥ ६ ॥ अनुकामं तपयेथा-मिन्द्रावरुण राय आ ।

ता वां नेदिष्ठमीमहे ॥ ३ ॥

युवाकु हि शचीनां युवाकुं सुमतीनाम् ।

मुयाम वाजदासाम् ॥ ४ ॥

इन्द्रः सहस्रदात्रां वरुणः शंस्यानाम् ।

ऋतुर्भयत्युपथ्यः ॥ ५ ॥

( ३३६ )

तयोर्दिदंसा वयं स्तेनम् नि च धीमहि ।

स्यादुत प्रेर्यन्तम् ॥ ६ ॥

इन्द्रावरुण वामदं हुवे चित्राय राधसे ।

अस्मान्सु जिग्युषस्कृतम् ॥ ७ ॥

इन्द्रावरुण नू नु वां सिषामन्तीषु धीष्या ।

अस्मभ्यं शर्म यच्छतम् ॥ ८ ॥

प्र वामध्रोतु सुष्टुति-रिन्द्रावरुण वां हुवे ।

यामुधायै स्रधस्तुतिम् ॥ ९ ॥

॥ ३३६ ॥ ( ऋ० ३।६।१-३ )

मामिने विष्णुधेयः । १-२ विष्णुधेयः ।

इमा उ वां भूमयो नम्यमाना

युवाचने न तुज्या अभूयन् ।

कः स्यादिन्द्रावरुणा यशो वां

येन स्मा सिनं मरयः सल्लिभ्यः

अयम् वां पुरुतमो रयीयन् ॥ १ ॥

शभ्यस्तममचसे जोहवीति ।

सुजोषाधिन्द्रावरुणा मरुद्धिः

द्विया पृथिव्या शृणुत हव्यं मे

अस्मे तदिन्द्रावरुणा वस्तु प्यात्

अस्मे रयिर्मरुतः सर्ववीरः ।

अस्मान् धरुयीः शरुणैरवन्तु

अस्मान् द्वौवा भारती दक्षिणामिः ॥ २ ॥

॥ ३३७ ॥ ( ऋ० ३।७।१-११ )

वामदेवो गीतमः । त्रिष्टुप् ।

इन्द्रा को वां वरुणा सुस्त्रमाप

स्तोमो हविष्मो अमृतो न दोता ।

यो वां हृदि कर्तुमां अस्मदुक्तः

परुषादिन्द्रावरुणा नर्मस्यान्

इन्द्रो ह यो वरुणा नृक आपो

देवो मर्तः स्रक्याय प्रयस्यान् ।

स हन्ति युग्रा संमिथेपु शत्रुन्

अवोभिवां मरुतिः स प्र शृण्वे

इन्द्रो ह रत्नं वरुणा धेष्टु

इत्या नृभ्यः शशमानेभ्यस्ता ।

यदी सखाया स्रक्याय सोमैः

सुतेभिः सुप्रयसां मादयंते ॥ ३ ॥

इन्द्रा युवं वरुणा द्विद्युमस्मिन्

ओजिष्ठमुग्रा नि वंधिष्टं वज्रम् ।

यो नो दुरेवो वृकतिर्दमीतिः

तस्मिन् मिमाथाममिमुख्योजः ॥ ४ ॥

इन्द्रा युवं वरुणा मृतमस्या

धियः प्रेतारं वृषभवं धेनोः ।

सा नो दुहीयद् यवंसेव गृत्वी

सहस्रधारा पर्यसा मही गौः ॥ ५ ॥

तोके हिते तनय उर्वरासु

सुरो दक्षीके वृषणश्च पाँत्ये ।

इन्द्रा नो अय वरुणा स्यातां

अवोभिदंसा परितस्म्यायाम् ॥ ६ ॥

युयामिद्वयवंसे पूष्याय

परि प्रभृती गविषः स्वापी ।

वृणीमहे स्रक्याय त्रियाय

द्वारा मंहिष्ठा पितरेव शंभू ॥ ७ ॥

ता वां धियोऽधसे याजयन्तीः

आजि न जंग्मयुवयूः सुदान् ।

ध्रिये न गाध उप सोममस्तुः

इन्द्रं गिरो वरुणं मे मनीषाः ॥ ८ ॥

इमा इन्द्रं वरुणं मे मनीषा

अग्न्युष्ट्रं द्रविणमिच्छमानाः ।

उपमस्त्युज्जोशरं इव चर्मो

रुच्योरिव धर्मो मिश्रमाणः ॥ ९ ॥

अद्वयस्य तमना रथस्य पुष्टः

नित्यस्य गायः पतयः स्याम ।

ता रथगाणा ऊनिमिनंरथानीनिः

॥ १० ॥ धम्मग्रा यथो नियुताः मचन्ताम्

या नो बृहन्ता बृहतीभिर्बृती  
इन्द्रं यातं वरुणं वाजसातौ ।  
यद् द्विचक्रः पृथनासु प्रकीळान्  
तस्यै वां स्याम सन्तितारं आजेः

॥ ३१८ ॥ ( ऋ० ४।३१।७-१० )

अमरस्युः पारुत्रस्यः । त्रिष्टुप् ।

विदुष्टे विभ्या भुव्नानि तस्य  
ता प्र ग्रवीयि वरुणाय वेधः ।  
त्वं घृताणि दृष्टिरपे जघन्यान्  
त्वं घृतां धरिणा इन्द्र सिन्धून्  
अस्माकमरं पितरस्त आसन्  
मन ऋषयो दार्गहे वध्यमानि ।  
त आर्यजन्त ब्रह्मस्युमस्या  
इन्द्रं न घृनुतुर्मर्धदेवम्  
पुण्ड्रुमानि दि घामदाशत्  
हव्येभिर्निन्द्रावरुणा नमोभिः ।  
यथा राजानं ब्रह्मस्युमस्या  
घृप्रहर्षं ददधुरधदेवम्  
राया एयं मन्वांसौ मदेम  
हव्येन देवा ययसिन् गार्यः ।  
तां धेनुभिर्निन्द्रावरुणा युवं नो  
पिभादा धनुमनेपस्फुरन्तीम्

॥ ११ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १० ॥

ता गृणीहि नमस्यैभिः श्रुपैः  
सुप्तेभिरिन्द्रावरुणा चक्राना ।  
वज्रेणान्यः शर्वसा हन्ति वृत्रं  
सिर्पन्त्यन्यो वृजनेषु विप्रः

॥ ३ ॥

आश्च यन्नरश्च वावृधन्तु  
विश्वे देवासौ नरां स्वर्गताः ।  
प्रैभ्य इन्द्रावरुणा महित्वा  
द्यौश्च पृथिवि भूतमूर्ध्वी

॥ ४ ॥

स इत् सुदानुः स्वयौ ऋताया  
इन्द्रा यो वा वरुण दाशति तमन् ।

इषा स द्विपस्तरिद् दास्वान्  
वसद् रयि रयिवतश्च जनान्

॥ ५ ॥

यं युवं दाम्भ्यवराय देवा  
रयि घृत्यो वसुमन्तं पुरुक्षुम् ।

अस्मे स इन्द्रावरुणावपि प्यात्  
प्र यो भनाक्ति वनुषामशस्तीः

॥ ६ ॥

उत नः सुश्रोत्रो देवर्गोपाः  
सुरित्य इन्द्रावरुणा रयिः प्यात् ।

येयो श्रुप्सः पृथनासु साप्तान्  
प्र सृघो घृष्ठा तिरिते तनुरिः

॥ ७ ॥

नू न इन्द्रावरुणा गुणाना  
पृङ्ग रयि सौभ्यवसाय देवा ।

इन्द्रावरुणा मधुमत्तमस्य  
वृष्णः सोमस्य वृष्णा वृषेथाम् ।

इदं वामन्ध्रः परिरिक्तमस्त्रे  
आसद्यासिन् बर्हिर्हि मान्येथाम् ॥ ११ ॥  
॥ ३४० ॥ ( ऋ० ७।८३।१-२० )  
मेघावरुणिवेमिश्रः । जगती ।

इन्द्रावरुणा युधमध्वराय नो  
विशे जनाय महि शर्म यच्छतम् ।  
दीर्घप्रयज्युमति यो वनुष्यति  
ययं जयेम पृतनासु वृष्टयः ॥ १ ॥

सुभ्राह्मण्यः स्वराह्मण्य उच्यते चां  
महान्ताविन्द्रावरुणा महावस् ।  
विश्वे देवास्तः परमे व्योमनि  
सं वामोजो वृष्णा सं वलं दधुः ॥ २ ॥

अन्यपां खान्यदन्तमोजसा  
सूर्यैर्नयते द्विधि प्रभुम् ।

इन्द्रावरुणा मदै अस्य मायिनो  
अपिन्वतमपितः पिन्वतं धियः ॥ ३ ॥

युधामिद् युस्तु पृतनासु बह्व्यो  
युधां क्षेमस्य प्रसवे मितक्ष्वेवः ।

इक्षाना वस्व उभयस्य कारय  
इन्द्रावरुणा सुहयो हवामहे ॥ ४ ॥

इन्द्रावरुणा यद्रिमनि चक्रयुः  
विश्र्वा ज्ञातानि भुवनस्य मग्मना ।

क्षेमैण मित्रो वरुणं दुषम्यति  
मरुद्भिर्गमः शुभमन्य ईयते ॥ ५ ॥

महे शुल्काय वरुणस्य नु त्विष  
ओजो मिमाते ध्रुवमस्य यत् स्वम् ।

अजामिमन्यः श्रययन्तमातिरद्  
दध्मेभिरन्यः प्र वृणोति भूयमः ॥ ६ ॥

न तमहो न दुःरितानि मर्य  
इन्द्रावरुणा न तपः कृतक्षन ।

यस्य देवा गच्छन्त्यो वीथो अघ्वरं  
न तं मर्तस्य नशते परिहृतिः ॥ ७ ॥

अर्वाङ्गना दैव्येनावसा गतं  
शृणुतं हवं यदि मे जुजोषथः ।

युवोहिं सुरयमुत वा यदार्प्यं  
मार्डीकमिन्द्रावरुणा नि यच्छतम् ॥ ८ ॥

अस्मार्कमिन्द्रावरुणा भरेभरे  
पुरोयोधा भवतं कृष्योजसा ।

यद् वां हवन्त उभये अर्धं स्पृधि  
नरस्तोकस्य तनयस्य सातिषु ॥ ९ ॥

अस्मे इन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा  
द्युम्नं यच्छन्तु महि शर्म सुप्रथः ।

अवधं ज्योतिरदितेऋतायुधौ  
देवस्य श्लोकं सवितुर्मैनामहे ॥ १० ॥

॥ ३४१ ॥ ( ऋ० ७।८३।१-२० )

युवां नरा पश्यमानासु आर्यं  
प्राचा गव्यन्तः पृथुपदीवो ययुः ।

दासां च वृत्रा हृतभार्याणि च  
सुदासेमिन्द्रावरुणावसावतम् ॥ १ ॥

यत्रा नरः सुमयन्ते कृतध्वजो  
यसिप्राजा भवति किं खन प्रियम् ।

यत्रा भयन्ते भुवनं स्युर्हृद्वाः  
तत्रो न इन्द्रावरुणार्धि वोचतम् ॥ २ ॥

सं भूम्या अन्तां ध्वसिरा अहहृत  
इन्द्रावरुणा द्विधि योष आरुहत् ।

अस्थुजनांनामुप मामरातयो  
अवांगवसा हवनधृता गतम् ॥ ३ ॥

इन्द्रावरुणा यधनार्भिरप्रति  
भेदं वृन्वन्ता प्र सुदासेमावतम् ।

अर्वाण्येषां शृणुतं हवीमनि  
मत्या वत्सनाममपन् पुरोहिनिः ॥ ४ ॥

इन्द्रावरुणावभ्या तपन्ति  
माधान्ययो वनपामरातयः ।  
युवं हि वस्व उभयस्य राजथो  
अथ स्मा नोऽयत्तं पायै दिवि  
युवां हवन्त उभयांस आजिषु  
इन्द्रं च वस्यो वरुणं च सातये ।

यत्र राजभिर्दशभिर्निर्वाधितं  
प्र सुदासमार्वतं तृत्तुभिः सह  
दश राजानः समिता अयज्यवः  
सुदासमिन्द्रावरुणा न युयुधुः ।  
सत्या नृणामस्रसशमुपस्तुतिः  
देवा पपामभवन् देवहूतिषु  
वाशराहे परियत्ताय विश्वतः  
सुदास इन्द्रावरुणावशिक्षतम् ।  
भित्त्यञ्जो यत्र नमसा कपर्दिनौ  
धिया धीवन्तो असपन्तु तृत्तवः  
युत्राण्यन्यः समिषेषु जिप्रते  
व्रतान्यन्यो अभि रक्षते सदा ।  
हवामहे वां वृषणा सुवृत्तिभिः  
असे इन्द्रावरुणा शर्म यच्छतम्  
असे इन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा  
द्युस्रं यच्छन्तु महि शर्म सुप्रथः ।  
अयध्रं ज्योतिरदितैर्ऋतावृधौ  
देवस्य शोर्क सवितुर्मैनामहे ।

॥ ३४० ॥ ( ऋ० ७।८।१-५ ) त्रिष्टुप् ।

आ धौ राजानावप्चरे वचूत्यां  
हव्येभिरिन्द्रावरुणा नमोभिः ।  
प्र वां व्रतार्च्यो यादोर्दधाना  
परि त्मना विपुरुषा जिगाति  
युधो राष्ट्रं यूहद्विन्वति धौः  
यौ सतृभिररज्जुभिः सिनीधः ।

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १० ॥

॥ १ ॥

परि नो हेन्द्रो वरुणस्य वृज्या  
उरुं न इन्द्रः वृणयदु गोकम्  
कृतं नो यधं विदधेपु चारं  
कृतं व्रताणि सुगिषु प्रदास्ता ।  
उपो रयिदैवर्जतो न णतु  
प्र णः स्याद्दार्मिर्ऋतिभिस्तिरेनम्  
असे इन्द्रावरुणा विश्ववारं  
रयि धेत्तं वसुमन्तं पुरश्चम् ।  
प्र य आदित्यो अनृता मिनाति  
अमिता शरो दयते वरुणि  
हयमिन्द्रं वरुणमप मे गीः  
प्रावत् तोके तनये तृत्तुजाना ।  
सुरक्षास्तो देवधीति गमेम  
युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः

॥ ३४३ ॥ ( ऋ० ७।८।१-५ )

पूनीये वामरक्षसं मनीषां  
सोममिन्द्राय वरुणाय जुह्वत् ।  
युतप्रतीकामुपसं न देवी  
ता नो यामेष्टुरुष्यतामभीर्के  
स्पर्धन्ते वा उ देवहूये अत्र  
येषु ध्वजेषु दिद्युः पतन्ति ।  
युवं तां इन्द्रावरुणावमित्रान्  
हते पराचः शर्वा विपूचः  
आपश्चिद्धि स्वयंशसः सदाःसु  
देवीरिन्द्रं वरुणं देवता धुः ।  
रुष्टीरन्यो धारयति प्रविक्ता  
वृत्राण्यन्यो अमृतीर्न हन्ति  
स सुकृत्तुर्ऋताचिदस्तु होता  
य आदित्य शर्वसा वां नमस्वान् ।  
आववर्तदवसे वां हविष्मान्  
असवित् स सुविताय प्रयस्वान्

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

( ३१०० )



इयमिन्द्रं वरुणमष्ट मे गीः  
 प्रार्यत् तोकं तनये तृतुजाना ।  
 सुरक्षांसो देवर्थाति गमेम  
 युयं पाति स्वस्तिभिः सदा नः  
 ॥ ३४४ ॥ ( अ० ८।१९।१-७ )  
 उपर्णः कृष्णः । जगती ।

इमानि वां भागधेयानि सिञ्चत  
 इन्द्रावरुणा ॥ महे सुतेषु वाम् ।  
 यज्ञेयहे ह सर्वना भुरण्यथो  
 यत् सुन्वते यजमानाय शिक्षथः  
 निष्पिष्वरीरोपधीराप आस्तां  
 इन्द्रावरुणा महिमानमाशत ।  
 या सिञ्चतु रजसः पारे अध्वनो  
 ययोः शमुर्नकिरादैव ओहते  
 सत्यं तदिन्द्रावरुणा रुद्रास्यं वां  
 मध्ये जुर्मि दुहते सुत घाणीः ।  
 तामिर्धाभ्यांसमवतं शुमस्पती  
 यो घामर्धधो अभि पाति चित्तिभिः  
 घृतप्रुयः सौम्या जीरदानवः  
 सुत स्वत्वारः सदन क्रुतस्य ।  
 या ह वामिन्द्रावरुणा घृतश्रुतः  
 तामिर्धसं यजमानाय शिक्षतम्  
 अर्वाचाम महते सौमगाय  
 सत्यं त्वेषाभ्यां महिमानमिन्द्रियम् ।  
 अस्मान् त्विन्द्रावरुणा घृतश्रुतः  
 त्रिभिः सातेभिरेवतं शुमस्पती  
 इन्द्रावरुणा यदपिभ्यां मनीषां  
 याचो मति धृतमदत्तमग्ने ।  
 यानि म्यानांन्यसृजन्त धीरां  
 युनं तन्यानास्तर्पसाभ्यर्पयम्  
 इन्द्रावरुणा सौमनसमदत्तं  
 एयस्पोयं यजमानेषु धत्तम् ।

प्रजां पुष्टि भूतिमस्मात् घत्तं  
 दीर्घायुत्याय प्र तिरतं न आयुः ॥ ७ ॥  
 ॥ ३४५ ॥ ( वा० य० ८।३७ ) त्रिष्टुप् यजुन्ता ।

॥ ५ ॥ इन्द्रश्च सम्राड् वरुणश्च राजा  
 तौ ते मध्ये चक्रतुरग्रंस्पतम् ।  
 तयोर्हमनुं मक्षं मन्त्रयामि वाग्देवी  
 जुषाणा सोमस्य वृष्यतु सह प्राणेन स्याहा ॥ ३४७ ॥

( ३ ) इन्द्र-वायू ।

॥ १ ॥ ॥ ३४६ ॥ ( अ० १।१४-६ )  
 मधुच्छन्दा देवामिन्द्रः । वायवी ।  
 इन्द्रायू इमे सुता उप प्रयोभिरा गतम् ।  
 ॥ २ ॥ इन्द्रयो वामुशन्ति हि ॥ ४ ॥  
 वायविन्द्रश्च चेतथः सुतानां वाजिनीयस् ।  
 तावा यातुमुपं द्रुयत् ॥ ५ ॥  
 वायविन्द्रश्च सुन्वत आ यातुमुपं निष्कृतम् ।  
 ॥ ३ ॥ मास्वैवस्था धिया नरा ॥ ६ ॥  
 ॥ ३४७ ॥ ( अ० १।३१।१-३ )  
 मेधातिथिः कृष्णः । वायवी ।

उभा देवा दिविस्पृशेन्द्रायू हवामहे ।  
 ॥ ४ ॥ अस्य सोमस्य धीतये ॥ २ ॥  
 इन्द्रायू मनोजुवा विप्रा हवन्त जुतये ।  
 सहस्राक्षा धियस्पती ॥ ३ ॥  
 ॥ ३४८ ॥ ( अ० १।३१।४-८ )  
 परस्तेगे देवोदाधि । अर्वाष्टिः, ७-८ अष्टिः ।

॥ ५ ॥ आ वां रथो नियुत्वान् यक्षदर्यसे  
 अभि प्रयामि सुर्धितानि धीतये  
 यारो हव्यानि धीतये ।  
 ॥ ६ ॥ पियं मण्यो अन्धसः पूर्वपेयं दि वां हितम् ।  
 वायवा चन्द्रेण राघसा गतं  
 इन्द्रश्च राघसा गतम् ॥ ४ ॥  
 ३०१५)

आ वां धियो वचन्युरध्वरो उ॒प  
 इममिन्दुं मर्त्यजन्त वाजिनै  
 आशुमत्यं न वाजिनम् ।  
 तेषां पितृवतस्मयू आ नो गन्तमिहोत्या ।  
 इन्द्रवायू सुतानामद्रिभिर्युवं  
 मदीय वाजदा युधम् ॥ ५ ॥  
 इमे वां सोमा अस्वा सुता इह  
 अध्वर्युभिर्भरमाणा अयंसत  
 वार्यो हुक्का अयंसत ।  
 एते वामभ्यस्तक्षत तिरः पवित्रमाशवः ।  
 युवायवोऽति रोमाण्यव्यया  
 सोमांसो अत्यव्यया ॥ ६ ॥  
 अति वायो ससुतो याहि शश्वतो  
 यत्र प्राया वदति तत्र गच्छतं  
 गृहमिन्द्रश्च गच्छतम् ।  
 वि सूनृता ददृशे रीर्यते घृतम्  
 आ पुण्यो नियुता याथो अध्वरं  
 इन्द्रश्च याथो अध्वरम् ॥ ७ ॥  
 अत्राह तद् वहेथे मध्व आहुतिं  
 यमभ्वत्थमुपतिष्ठन्त जायवो  
 अस्मे ते सन्तु जायवः ।  
 साकं गायः सुर्वेते पच्यन्ते यवो  
 न ते वायु उप दस्यन्ति धेनयो  
 नारप दस्यन्ति धेनवः ॥ ८ ॥  
 ॥ ३४९ ॥ ( ऋ० १।४१।३ )  
 एतस्यदः शौनकः । गायत्री ।  
 नृकस्याघ गर्वाशिर इन्द्रवायू नियुत्वन्तः ।  
 आ यातं पियन्तं नरा ॥ ३ ॥  
 ॥ ६५० ॥ ( ऋ० ४।४६।१-७ )  
 वामदेवो गतमः । गायत्री ।  
 गतेना नो अभिर्षिभिर्नियुत्वो इन्द्रसारथिः ।  
 वार्यो सुतस्य नृपतम् ॥ २ ॥

आ वां सुदृष्टं दरेय इन्द्रवायू अमि प्रयः ।  
 वहन्तु सोमपीतये ॥ ३ ॥  
 रथं हिरण्यवन्धुर—मिन्द्रवायू स्यध्वरम् ।  
 आ हि म्याथो दिविस्पर्शम् ॥ ४ ॥  
 रथेन पृथुपाजसा दाश्वांसुमुप गच्छतम् ।  
 इन्द्रवायू इहा गतम् ॥ ५ ॥  
 इन्द्रवायू अयं सुत—स्तं देवेभिः सुजोषसा ।  
 पियन्तं दाशुर्यो गृहे ॥ ६ ॥  
 इह प्रयाणस्तु वा—मिन्द्रवायू विमोचनम् ।  
 इह वां सोमपीतये ॥ ७ ॥

॥ ३५१ ॥ ( ऋ० ४।४७।१-४ ) अत्रष्टुप् ।

इन्द्रश्च वायवेयां सोमानां पीतिर्मह्यः ।  
 युवां हि युन्तीन्द्रवो निस्त्रमापो न सुध्वर्यक् ॥ २ ॥  
 वायुविन्द्रश्च शुभिर्णा सुरथं शवसस्पती ।  
 नियुत्वन्ता न ऊतय आ यातं सोमपीतये ॥ ३ ॥  
 वा वां सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुर्ये नरा ।  
 अस्मे ता यज्ञवाहसे—न्द्रवायू नि यच्छतम् ॥ ४ ॥

॥ ३५२ ॥ ( ऋ० ५।११।४, ६-७ )

स्वस्त्याश्रेयः । गायत्री, ( ६, ७ ) वणिक् ।

अयं सोमश्च सुतो ऽमत्रे परि पिच्यते ।  
 प्रिय इन्द्राय वायवे ॥ ४ ॥  
 इन्द्रश्च वायवेयां सुतानां पीतिर्मह्यः ।  
 ताजुपेधामरेपसावमि प्रयः ॥ ६ ॥  
 सुता इन्द्राय वायवे सोमांसो दध्याशिरः ।  
 निस्त्रं न यन्ति सिन्धवोऽमि प्रयः ॥ ७ ॥

॥ ३५३ ॥ ( ऋ० ७।९०।१-७ )

मैत्रावणिवैशिष्टः । त्रिष्टुप् ।

ते सत्येन मनसा दीर्घानाः  
 स्येन युकासः कर्तुना वहन्ति ।  
 इन्द्रवायू वीरवाहं रथं वां  
 ईशानयोरमि पृक्षः सचन्ते ॥ ५ ॥

इक्षानासो ये दधते स्वर्णो  
गोभिरध्वैर्मिर्वसुभिर्हिरण्यैः ।

इन्द्रवायू सूरयो विश्वमायुः

अर्धेद्भिर्वारैः पृतनासु सद्युः

अर्धन्तो न अर्धसो भिक्षमाणा

इन्द्रवायू सुष्टुतिमिर्वसिष्ठाः ।

घाजयन्तः स्वर्षसे हवेम

ययं पात स्वस्तिभिः सदा नः

॥ ३५४ ॥ ( ऋ० ७।९।१२, ४-७ )

उक्षन्तां दृता न दमाय गोपा

मासद्य पाथः शार्दश्च पृषीः ।

इन्द्रवायू सुष्टुतिर्वीमियाना

माडीकमीद्रे सुवितं च नर्व्यम्

यायत् तरस्तन्योऽयं याचदोजो

यावन्नरश्चक्षसा दीर्घ्यानाः ।

शुचिं सोमं शुचिपा पातमस्मे

इन्द्रवायु सदैतं धर्हिरेदम्

नियुवाना नियतः स्फार्हवीरा

इन्द्रवायू सूरयं यातमर्वाक् ।

इदं हि यो प्रभृतं मघो अग्रं

अधे प्रीणाना वि सुमुक्तमस्मे

या यो शतं नियतो याः सहस्रं

इन्द्रवायू विश्वर्वासाः सवन्ते ।

आभिर्यातं सुविदत्रामिर्वाक्

पातं नरा प्रतिभृतस्य मघ्यः

अर्धन्तो न अर्धसो भिक्षमाणा

इन्द्रवायू सुष्टुतिमिर्वसिष्ठाः ।

घाजयन्तः स्वर्षसे हवेम

ययं पात स्वस्तिभिः सदा नः

॥ ३५५ ॥ ( ऋ० ७।९।१२, ४ )

प्र सोतां जीरो अण्यरेष्वग्नात्

सोममिन्द्राय घायवे विर्यर्ष्य ।

प्र यद् वां मघो अग्रियं भरन्ति

अघ्वर्यवो देवयन्तः शचीभिः

॥ २ ॥

ये वायवे इन्द्रमार्दनासु

॥ ६ ॥

अर्देवासो नितोर्शनासो अर्यः ।

घन्तो वृत्राणि सूरिभिः प्याम

सासद्वासां युधा नृभिर्गमिर्वान्

॥ ४ ॥

॥ ३५६ ॥ ( वा० य० ३।८६ )

॥ ७ ॥

इन्द्रवायू सुसुन्दशा सुहवेह हवामहे ।

यथा नः सर्व इज्जनोऽनमीवः

सङ्गमे सुमनाऽमसत्

॥ ८६ ॥

॥ ३५७ ॥ ( अथर्व० ३।१०।६ ) वसिष्ठः । पयसाऽग्निः ।

॥ २ ॥

इन्द्रवायू उभाविह सुहवेह हवामहे ।

यथा नः सर्व इज्जनः संगत्यां सुमना असद्

दानकामश्च नो भुवंत्

॥ ६ ॥

( ४ ) इन्द्र-मरुतश्च ।

॥ ४ ॥

॥ ३५८ ॥ ( ऋ० १।६।५, ७ )

मघुच्छन्दा वैद्यामित्रः । गायत्री ।

वीळु चिदायजन्तुमि-गुंदां चिदिन्द्र यद्विभिः ।

अविन्द उक्षिया अनु

॥ ५ ॥

॥ ५ ॥

इन्द्रेण सं हि दक्षसे संजग्मानो अविभ्युपा ।

मन्दू संमानवर्चसा

॥ ७ ॥

( ५ ) मरुत्वानिन्द्रः ।

॥ ६ ॥

॥ ३५९ ॥ ( ऋ० १।६।७-९ )

मेघालेपिः काशः । गायत्री ।

मरुत्वन्तं हवामहे इन्द्रमा सोमपीतये ।

सज्जगणेन वृष्णतु

॥ ७ ॥

॥ ७ ॥

इन्द्रज्येष्ठा मर्द्रेणा देवांसः पूषरातयः ।

विभ्ये मम धृता हव्यम्

॥ ८ ॥

इत वृत्रं सुदानय इन्द्रेण सहसा युजा ।

मा नो दुःसांस इक्षान

॥ ९ ॥

॥ ३६० ॥ ( ऋ० १।१६५।१-१५ )

इन्द्रः, ३, ५, ७, ९ मरुतः, १३-१५ अगस्त्यो  
मैत्रावरुणिः । त्रिष्टुप् ।

कया शुभा सर्वयसः सनीळाः  
समान्या मरुतः सं मिमिक्षुः ।  
कया मती कुत एतास एते  
अर्चन्ति शुष्मं वृषणो वसुया  
कस्य ब्रह्माणि जुजुषुर्युवानः  
को अघ्वरे मरुत आ वधते ।  
इयेनां इव धजतो अन्तरिक्षे  
केन महा मनसा रीरमाम  
कुतस्त्वमिन्द्र माहिन्ः सन्  
एको यासि सपते किं त इत्या ।  
सं पृच्छसे समराणः शुभानैः  
घोचेस्तत्रो हरिषो यत् तं असे  
ब्रह्माणि मे मृतयः शं सुतासुः  
शुष्मं इयति प्रभृतो मे अद्रिः ।  
या शासते प्रति हयन्त्युक्था  
इमा हरी यहतस्ता नो अच्छं  
धतो घयमन्तमेभिर्युजानाः  
स्वक्षेत्रेभिस्तन्युः शुभमानाः ।  
महोभिरैतां उप युग्महे नु  
इन्द्रं स्वधामनु दि नो धृभ्यं  
क। न्या यो मरुतः स्वधासीद्  
यन्मामेकं समधत्तादित्ये ।  
अहं हु। प्रम्विपस्तुर्विष्मान्  
विभ्यस्य दात्रोर्नमं यधमनः  
भूरि चकधं युज्यैमित्ते  
ममानेभिर्युग्म पीस्वैभिः ।  
भूर्गणि दि कृणयामा शविष्ठ  
इन्द्रं प्रत्या मन्तो यद् यशाम

वर्षीं युत्रं मरुत इन्द्रियेण  
स्वेन भाभेन तविपो वभुयान् ।  
अहमेता मनवे विश्वश्चन्द्राः  
सुगा अपश्चकर वज्रयाहुः  
अनुत्तमा तै मधवचकिनुं  
न त्वावो अस्ति देवता विदानः ।  
न जायमानो नशते न जातो  
यानि करिष्या रुणहि प्रवृद्ध  
एकस्य चिन्मे विभ्वस्त्वोजो  
या नु दधृष्वान् कृण्वै मनीषा ।  
अहं हु। प्रो मरुतो विदानो  
यानि ज्यवमिन्द्र इदीश एयाम्  
अमन्दन्मा मरुतः स्तोमो अत्र  
यन्मै नरः धृत्यं ब्रह्म चक्र ।  
इन्द्राय वृष्णे सुमन्त्राय मह्यं  
सत्ये सपायस्तन्वै तनूभिः  
पुवेदेते प्रति मा रोचमाना  
अनेष्टः अथ एषो वर्धनाः ।  
संज्ञस्या मरुतश्चन्द्रवर्णा  
अच्छान्त मे छदयोधा च नूनम्  
को न्वत्र मरुतो मामहे यः  
प्र यातन सखीरच्छा सपायः ।  
मन्मानि चित्रा अपियातयन्त  
एषां भूत नवेदा म ऋतानाम्  
आ यद् दुवस्याद् दुवसे न काः  
अस्माञ्चक्रे मान्यस्य मेधा ।  
ओ पु वर्चं मरुतो विप्रमच्छ  
इमा ब्रह्माणि जरिता यो अर्चत्  
एष यः स्तोमो मरुत इयं गीः  
मान्द्वार्यस्य मान्यस्य कातोः ।  
एषा यासीष्ट तन्वै एषां  
विद्यामेघं यजनं जीरदाम्

॥ ८ ॥

॥ १ ॥

॥ ९ ॥

॥ २ ॥

॥ १० ॥

॥ ३ ॥

॥ ११ ॥

॥ ४ ॥

॥ १२ ॥

॥ ५ ॥

॥ १३ ॥

॥ ६ ॥

॥ १४ ॥

॥ ७ ॥

॥ १५ ॥

( ११६४ )

॥ ३२१ ॥ ( अ० १।१७।३-६ )

अगस्त्यो मेत्रावहणिः । त्रिष्टुप् ।

स्तुतासौ नो मरुतो मृळयन्तु  
उत स्तुतो मधवा शंभविष्टः ।  
ऊर्ध्वा नः सन्तु कोम्या वनानि  
अहानि विभ्वा मरुतो जिगीषा  
असादहं तंविषादीपमाण  
इन्द्राद् भिया मरुतो रेजमानः ।  
युष्मभ्यं हव्या निश्चिंतान्यासन्  
तान्यारे चक्रमा मृळता नः  
येन मानासश्चितयंगत उन्ना  
व्युष्टिषु शर्षसा शर्ष्यतीनाम् ।  
स नो मरुद्भिर्वृषम् श्रयो धा  
उग्र उप्रेभिः स्यधिरः सहोदाः  
त्वं पाहीन्द्र सहोयसो नृन्  
भवो मरुद्भिरवयातहेळाः ।  
सुप्रकेतेभिः सासुदिर्धानो  
विद्यामेवं पूजनं जीरदानम्

( ६ ) इन्द्रामरुतौ ।

॥ ३६२ ॥ ( अ० ८।९६।१४ )

मिथीराह्विरसौ, वृत्तानो वा मारुतः । त्रिष्टुप् ।

द्रुप्तमपदयं विपुणे चरन्तं  
उपहरे नद्यौ अंशुमत्याः ।  
नमो न कृष्णमयतस्त्रिधांसं  
इष्यामि धो वृषणो युष्यताजौ

( ७ ) इन्द्रामोमौ ।

॥ ३६३ ॥ ( अ० ९।३०।६ )

गृध्रमदः शौनकाः । त्रिष्टुप् ।

प्र हि कर्तुं पृष्टयो यं यनुथो  
रुप्रस्यं स्प्यो यजमानस्य चोदी ।

इन्द्रासोमा युवमसौ अविष्टं  
असिन् भयस्यं कृणुतमु लोक्म

॥ ६ ॥

॥ ३६४ ॥ ( अ० ६।७२।१-५ )

बाहस्पत्यो मरदाजः । त्रिष्टुप् ।

इन्द्रासोमा महि तद् वा महित्वं  
युवं मृहानि प्रथमानि चक्रयुः ।  
युवं सूर्यं विविदशुयुवं स्वः  
विभ्वा तमास्यहतं निदध

॥ १ ॥

इन्द्रासोमा वासयय उपासं  
उत् सूर्यं नययो ज्योतिषा सुह ।  
उप धां स्कम्भयुः स्कम्भनेन  
अप्रथतं पृथिवीं मातरं वि

॥ २ ॥

इन्द्रासोमावहिमपः परिष्टां  
हयो वृत्रमनुं वां धौरमन्यत ।  
प्राणीस्त्यैरयतं नदीनां  
आ संमुद्राणि पप्रयुः पुरुणि

॥ ३ ॥

इन्द्रासोमा पृक्मामास्वन्तः  
नि गवामिद् दधयुर्वक्षणासु ।  
अगुमयुरनपिनद्धमासु  
रुशेषिप्रासु जगतीष्यन्तः

॥ ४ ॥

इन्द्रासोमा युवमङ्ग तदयं  
अपत्यसाचं धृत्वं रराधे ।  
युवं शुष्यं नयं चयंणिम्यः  
सं विव्ययुः पृतनापार्हमुप्रा

॥ ५ ॥

॥ ३६५ ॥ ( अ० १०।८९।५ )

रेणुवैशामेजः । त्रिष्टुप् ।

आषान्तमन्युस्तूपलंभमां  
धुनिः शिमीवाचल्लभमां श्रुजीपी ।  
सोमो विभ्वाण्यतमा वनानि  
नार्वोगिन्द्रं प्रतिमानानि देसुः

॥ ५ ॥

॥ ३६६ ॥ ( ऋ० १०।१२४।९ )

धर्मः ( ओमेन्द्रो ) । त्रिष्टुप् ।

वीमत्सूनां सुयज्ञं हंसमाहुः

अपां दिव्यानां सुत्ये चरन्तम् ।

अनुष्टुभमनु चर्चुर्यमाणं

इन्द्रं नि चिन्त्युः कथयौ मनीषा

॥ ९ ॥

॥ ३६७ ॥ ( अथर्व० ८।४।१-२५ )

वातनः । अगती, ८-१४, १६-१७, १९, २२, २४ त्रिष्टुप्,

२०, २३ भुरिक्; २५ अनुष्टुप् ।

इन्द्रासोमा तपतं रक्षं उज्जतं

न्यर्पयतं घृषणा तमोवृधः ।

परां शूणीतमचितो न्योषितं

हृतं नुदेयां नि शिशीतमत्विर्णः

॥ १ ॥

इन्द्रासोमा समघर्शसमभ्युद्यं

तपुर्गयस्तु चक्रप्रिमां इव ।

प्रह्लादिपे क्रव्यादे घोरचक्षसे

द्वेषो धत्तमनयाय किमीदिने

॥ २ ॥

इन्द्रासोमा दुष्कृतौ घये अन्तः

अनारम्भणे तमसि ॥ विध्यतम् ।

यतो नैषां पुनरेकैश्चनोदयत्

तजामन्तु सहसे मन्युमच्छयः

॥ ३ ॥

इन्द्रासोमा घर्तयतं द्वयो घधे

मं पृथिन्या अघर्शनाय तर्हणम् ।

उत्तक्षतं स्ययि पर्वतेभ्यो

येन रक्षो वायुघानं निजूर्वधः

॥ ४ ॥

इन्द्रासोमा घर्तयतं द्वियस्पर्ति

अश्रितमेभिर्गुणमदमदन्मभिः ।

तपुर्गधेमिरजरेभिस्त्रिणो

नि पशानि विष्यते यन्तु निस्सुरम्

॥ ५ ॥

इन्द्रासोमा पारि पां भूतु विभ्यतं

इयं मतिः कुर्याधेय याजिनः ।

गां पां दोर्शा परिहिनोमि मेधया

इमा प्रह्लाणि नृपती इय जिन्यतम्

॥ ६ ॥

प्रति स्मरेयां तुजयद्विरेवैः

हृतं द्रुहो रक्षसो मङ्गरावतः ।

इन्द्रासोमा दुष्कृते मा सुगं भुयो

मा कदा चिदभिदासति द्रुहः

॥ ७ ॥

यो मा पाकेन मनसा चरन्तं

अभिचपे अर्नतेभिर्वचोभिः ।

आप इव काशिना संगृभीता

असंघस्वासत इन्द्र वृका

॥ ८ ॥

ये पाकशंसं विहरन्त एवैः

ये वा भद्रं दुपयन्ति स्वधार्मिः ।

अर्हये वा तान्प्रददातु सोम

आ वा दधातु निष्कृतेरुपस्थे

॥ ९ ॥

यो नो रसं दिप्सति पित्यो अग्ने

अश्वानां गवां यस्तनूनाम् ।

रिपु स्तेन स्तैरुहभ्रमेतु

नि प हीयतां तन्वाकु तनां च

॥ १० ॥

परः सो अस्तु तन्वाकु तनां च

तिन्नः पृथिवीरघो अस्तु विभ्वाः ।

प्रति शुप्यतु यदो अय्य देवा

यो मा दिवा दिप्सति यश्च नक्तम्

॥ ११ ॥

सुविमानं चिंकितुपे जनाय

सञ्चासञ्च यचसी पस्पृधाते ।

तयोर्यत्सत्यं यतरदजीयः

तदित्सोमोऽवति हन्यासत

॥ १२ ॥

न वा उ सोमो वृजिनं हिनोति

न क्षत्रियं मिथुया धारयन्तम् ।

हन्ति रक्षो हन्यासुददन्तं

उमाविन्दस्व प्रसिंतां ज्ञायाते

॥ १३ ॥

यदि वाहमनृतदेवो अस्मि

मोघं या देवा अयूहे अग्ने ।

विमस्मभ्यं जातयेदो एणीपे

द्रोण्याचस्ते निष्क्रुयं संचन्ताम्

॥ १४ ॥

( २९६६ )

अथा मुनीय यदि यातुधानो अस्मि  
यदि वायुस्तप पूरुषस्य ।  
अथा स धीरैर्दशमिर्वि यूया यो  
मा मोघं यातुधानेत्याह  
यो मार्यातु यातुधानेत्याह  
यो वा रुक्षाः शुचिरस्मीत्याह ।  
इन्द्रस्तं हन्तु महता धेनु  
विश्वस्य जन्तोर्धमस्पर्दीष्ट  
प्र या जिगाति खर्गलेध नक्तं  
अपं द्रुहुस्तन्यं । गृहमाणा ।  
धमर्मन्तमव सा पदीष्ट  
प्रायाणो प्रन्तु रक्षस उपदैः  
वि तिष्ठध्वं मरुतो विश्वीच्छतं  
गृभायत रक्षसः सं पिनष्टन ।  
धयो ये भूत्या पतर्यन्ति नक्तमिः  
ये वा रिपो दधिरे देवे अष्टरे  
प्र धर्तय दिवोऽदमानमिन्द्र  
सोमशितं मघवन्त्सं शिशाधि ।  
प्राक्तो अपाक्तो अधराहुदक्तो  
अभि जहि रक्षसः पर्येतन  
एत उ ह्ये पतर्यन्ति श्वयातव  
इन्द्रं दिप्सन्ति दिप्सवोऽदाभ्यम् ।  
शिशीति शक्रः पिशुनेभ्यो वधं  
नूनं खजदशनि यातुमदभ्यः  
इन्द्रो यातुनामभवत्परारो  
हविर्मर्थीनामभ्याहुविवासताम् ।  
अमीहु शक्रः परदार्यया वनं  
पार्थिव मिन्द्रन्स्तप एतु रक्षसः  
उल्लूकयातुं शुशुलूकयातुं  
जहि श्वयातुमुत कोकयातुम् ।  
सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं  
हृपदैव प्र मृण रक्ष इन्द्र

॥ १५ ॥

॥ १६ ॥

॥ १७ ॥

॥ १८ ॥

॥ १९ ॥

॥ २० ॥

॥ २१ ॥

॥ २२ ॥

मा नो रक्षो अभि नञ्जातुमावत्  
अपोच्छन्तु मिथुना ये किमोदिनः ।

पृथिवी नः पार्थिवात्पात्वंहसो

अन्तरिक्षं दिव्यात्पात्वस्मान्

इन्द्रं जहि पुमानं यातुधानं

उत स्त्रियं मायया शशदानाम् ।

विश्रीवासो मूर्देवा ऋदन्तु

मा ते इशान्मुख्यमृचरन्तम्

प्रति चव्य वि चव्येन्द्र-अ सोम जायतम् ।

रक्षोभ्यो वधमस्यत-मशानि यातुमदभ्यः ॥ २५ ॥

( ८ ) इन्द्राविष्णू ।

॥ ३६८ ॥ ( अ० १।१५।१-३ )

दीर्घमा औचव्य-अगती ।

प्र वः पान्तमन्धसो धियायते

महे शूराय विष्णवे चार्चत ।

या सानुनि पर्येतानामदाभ्या

महस्तस्यतुर्वतेव साधुना

त्वेपमित्था समरणं शिर्मायतोः

इन्द्राविष्णु सुतपा वामुदयति ।

या मत्याय प्रतिधीयमानमिव

कृद्गानोरस्तुरसनामुदयथः

ता ई वधन्ति महस्य पांस्यं

नि मातरा नयति रेतने भुजे ।

दधाति पृथोऽवरं परं पितुः

नाम नृतीयमधि रोचने दिवः

॥ ३६९ ॥ ( अ० ६।६९।१-८ )

बाहिरपलो भरदाभः । प्रियम् ।

सं वां कर्मणा समिग हिनोमि

इन्द्राविष्णु अपसस्पारे अस्य ।

जुषेयां यदं द्रविणं च धत्ते

अरिर्धनः पथिभिः पारयन्ता

॥ १ ॥

( ३३०६ )

या विश्वासां जनितारा मतीनां  
 इन्द्राविष्णू कलशा सोमधाना ।  
 प्र वां गिरः शस्यमाना अवन्तु  
 ॥ २ ॥ स्तोमासो गीयमानासो अकैः  
 इन्द्राविष्णू मदपती मदानां  
 आ सोमै यातं द्रविणो दधाना ।  
 सं वामञ्जस्वकुभिर्मतीनां  
 सं स्तोमासः शस्यमानास उषधैः  
 आ वामभ्वासो अभिमातिपाह  
 इन्द्राविष्णू सधमादौ वहन्तु ।  
 जुपेथां विश्वा हवना मतीनां  
 उप ब्रह्माणि शृणुतं गिरौ मे  
 इन्द्राविष्णू तव पनपाय्यं वां  
 सोमस्य मदं उरु चक्रमाथे ।  
 अकृणुतमन्तरिक्षं वरीयो  
 अम्रथतं जीवसे नो रजांसि  
 इन्द्राविष्णू हविषा वावृधाना  
 अम्राधाना नमसा रातहव्या ।  
 घृतासुतीं द्रविणं घत्तमस्मे  
 संमुद्रः स्यः कलशः सोमधानः  
 इन्द्राविष्णू पियतं मध्वो अस्य  
 सोमस्य दद्या जुडरं पृणेश्याम् ।  
 आ वामन्योसि मदिराण्यग्मन्  
 उप ब्रह्माणि शृणुतं हव्यं मे  
 उमा जिग्ययुर्न परा जयेथे  
 न परा जिग्ये कतरश्चनैर्नोः ।  
 इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृशेथां  
 त्रेधा सहस्रं वि तदैर्येश्याम्

॥ ३७० ॥ ( अ० ७ १९१४-६ )

मैत्रायण्यश्विष्ठः । त्रिष्टुप् ।

उरं युशार्यं चक्रधुक् लोकं  
 जनयन्ता मय्यमपासंमिषिम् ।

दामस्य चिद् वृषाशिप्रस्य माया  
 जुम्रथुर्नरा पृतनार्ज्येषु  
 इन्द्राविष्णू दंहिताः शम्भरस्य  
 ॥ २ ॥ नव पुरौ नवति च श्रथिष्टम् ।  
 शतं वचिनः सहस्रं च साकं  
 हयो अप्रत्यसुरस्य घोरान्  
 ॥ ५ ॥ इयं मनीषा वृहती वृहन्तं  
 उरुक्रमा त्वया वधयन्ती ।  
 ररे वां स्तोमै विदयेषु विष्णो  
 पिबन्तमिषो वृजनैरिवन्द्र

(९) इन्द्रावृहस्पती ।

॥ ३७१ ॥ ( अ० ४ ४२१-६ )

वामदेवो गौतमः । गायत्री ।

इदं वामास्यं हविः प्रियमिन्द्रावृहस्पती ।  
 ॥ १ ॥ उपयं मदश्च शस्यते  
 अयं वां परि पिच्यते सोम इन्द्रावृहस्पती ।  
 ॥ २ ॥ चार्मदाय पीतये  
 आ न इन्द्रावृहस्पती गृहमिन्द्रश्च गच्छतम् ।  
 ॥ ३ ॥ सोमपा सोमपीतये  
 अस्मे इन्द्रावृहस्पती रयि घत्तं शतग्विनम् ।  
 ॥ ४ ॥ अश्वायन्तं सहस्रिणम्  
 इन्द्रावृहस्पती वयं सुते गीर्भिर्हवामहे ।  
 ॥ ५ ॥ अस्य सोमस्य पीतये  
 सोममिन्द्रावृहस्पती पिबन्तं दाशुषो गृहे ।  
 ॥ ६ ॥ मादयेथां तदोक्ता

॥ ३७२ ॥ ( अ० ४ १५०१०-१६ )

त्रिष्टुप्, १० अगती ।

इन्द्रश्च सोमं पियतं वृहस्पते  
 अस्मिन् यज्ञे मन्दसाना वृषण्यत् ।  
 आ वां विशन्तिवन्दवः स्यामुषो  
 अस्मे रयि सर्वयोरं नि यच्छतम्

॥ १० ॥

(३२१९)



वृहस्पत इन्द्र वर्धत नः

सच्चा सा वा सुमतिर्भूत्वस्मे ।

अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीः

जजस्तमयो वज्रपा मरातोः

॥ ३७३ ॥ ( ऋ० ७.९७-९८.१०, २ )

मेवावरुणिर्बसिष्ठः । त्रिष्टुप् ।

वृहस्पते युवमिन्द्रश्च यस्वो

दिव्यस्येदाथे उत पार्थिवस्य ।

धत्तं एयं स्तुयते कीर्ये चिद्

युयं पात स्वास्तिभिः सदा नः

॥ ३७४ ॥ ( ऋ० ८.९६.१५ )

तिरश्वाणिगरवो, वृत्तानो वा मास्तः । त्रिष्टुप् ।

अथ द्रष्टो धैरुमह्यो उपस्थे

अधारयत् तन्व तित्थिपाणः ।

विशो अर्धधीरभ्याश्चरन्तीः

वृहस्पतिना युजेन्द्रः ससाहे

॥ १५ ॥

(१०) देव-भूमि-वृहस्पतीन्द्राः ।

॥ ३७५ ॥ ( ऋ० ६.१७.२० ) गर्भो भारद्वाजः । त्रिष्टुप् ।

अगव्युति क्षेत्रमार्गन्म देवा

उर्वी सती भूमिरह्वरणाभूत् ।

वृहस्पते प्र चिकित्सा गर्विष्टा

इत्या सते जतिव इन्द्र पय्याम्

॥ २० ॥

॥ ३६६ ॥ ( अथर्व० ७.५.११ ) अत्रिः । त्रिष्टुप् ।

वृहस्पतिर्नः परो पातु पृथाव्

उतोत्तरस्मादधरादघापोः ।

इन्द्रः पुरस्तादुत मण्यनो नः

सग्ना सर्गिभ्यो परीयः कृणोतु

॥ १ ॥

॥ ३७७ ॥ ( अथर्व० १०.१.३.११ ) अर्चना ।

इन्द्रश्च सोमं पियतं वृहस्पते

असिन्यरो मन्दसाना वृषण्यम् ।

वा यो विशान्तिन्दवः स्यामुयोऽस्मे

रपि सर्ववीरं नि र्यच्छतम्

॥ ३३ ॥

(११) इन्द्रापूर्वणो ।

॥ ३७८ ॥ ( ऋ० ६.९७.१-६ )

वार्हस्पत्यो भारद्वाजः । गायत्री ।

इन्द्रा नु पूर्णो वयं सखायं स्वस्तये ।

हुधेम वार्जसातये

॥ १ ॥

सोममभ्य उपासद्वत् पातये चम्याः सुतम् ।

करम्मभ्य ईच्छति

॥ २ ॥

अजा अन्यस्य बह्व्यो हरी अन्यस्य संभृता ।

ताभ्यां वृत्राणि जिघ्रते

॥ ३ ॥

यदिन्द्रो अनयद्रितो महीरूपो वृषन्तमः ।

तत्र पूषामयत् सचा

॥ ४ ॥

तां पूषः सुमतिं वयं वृक्षस्य प्र वृषामिव ।

इन्द्रस्य चा रमाभदे

॥ ५ ॥

उत् पूषर्ण युवामहे ऽमीर्दूरिव सारथिः ।

महा इन्द्रं स्वस्तये

॥ ६ ॥

॥ ३७९ ॥ ( अथर्व० ६.३.११ )

अथवा । पथ्या वृहती ।

पात न इन्द्रापूर्वणा-ऽदितिः पान्तु मदनः ।

अपौ नपात्तिन्धवः सप्त पान्तु

पान्तु नो विष्णुर्न द्यौः

॥ १ ॥

(१२) ऋणंचयेन्द्रा ।

॥ ३८० ॥ ( ऋ० ५.१३.१०-१५ )

इन्द्रादेवः । त्रिष्टुप् ।

अद्रमिदे स्यामी अत्रे अद्रन्

गर्वा चम्या इदं नः मद्र्या ।

ऋणंचयन् मद्र्या नयानि

मद्र्याचयन् मद्र्या नयानि

मुनेर्न नः मद्र्याचयन्

गर्वा मद्र्या मद्र्याचयन्

मद्र्याचयन् मद्र्याचयन्

मद्र्याचयन् मद्र्याचयन्

मद्र्याचयन् मद्र्याचयन्

औच्छत् सा राज्ञी परितम्भ्या याँ  
 ऋणंचये राजेनि रुशमानाम् ।  
 अत्यो न याजी रघुरज्यमानो  
 वभ्रुश्चत्वार्यसनत् सहस्रा  
 चतुः सहस्रं गव्यस्य पृथः  
 प्रत्यग्रभीष्म रुशमेवमे ।

॥ १४ ॥

धर्मश्चित्त ततः प्रवृत्ते य आसीत्  
 अयस्यस्तम्भादाम् धिप्राः

॥ १५ ॥

(१३) इन्द्र ऋभवश्च ।

॥ ३८१ ॥ ( ऋ० ३।६०।५-७ )  
 विश्वामित्रो गाविन । जगती ।

इन्द्रं ऋभुमिर्वाजयाद्विः समुक्षितं  
 सुतं सोममा वृषस्त्वा गमस्त्योः ।  
 धियोपितो मधयन् दाशुषो गृहे  
 सौधन्वनेभिः सह मत्स्या नृभिः  
 इन्द्रं ऋभुमान् वाजयात् मत्स्येह नो  
 अस्मिन् त्वर्धने शक्या पुरुषुत ।  
 इमानि तुभ्यं स्वसंराणि येभिरे  
 धृता देवानां मनुष्यश्च धर्मेभिः  
 इन्द्रं ऋभुमिर्वाजिमिर्वाजयन्निह  
 स्तोमं जरितुरुपं याहि यश्चिरम् ।  
 शतं केतैभिरिपिरेभिर्वायवं  
 सहस्राणीयो अयस्य होमनि

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ १८२ ॥ ( ऋ० ८।९३।३४ )

गृध्र आशिगरसः । गायत्री ।

इन्द्रं इपे ददातु न ऋभुशर्णामुम् रयिम् ।  
 याजी ददातु याजिनम्

॥ ३४ ॥

(१४) इन्द्रोपसौ ।

॥ ३८३ ॥ ( ऋ० ४।३०।९-११ )

वामदेवो गातमः । गायत्री ।

द्विषधिद् या दुहितरं मुदान् महीयमानाम् ।  
 उपागीमिन्द्रं तं पिणञ्

॥ ९ ॥

अपोषा अनसः सरत् मंषिप्रादह विभ्युपी ।  
 नि यत् सीं शिशयद् वृषा ॥ १० ॥  
 एतर्दस्या अनः शये सुसंषिष्टं विषादया ।  
 ससारं सीं पणवतः ॥ ११ ॥

(१५) इन्द्राश्वौ ।

॥ ३८४ ॥ ( ऋ० ४।३१।२३-२४ )

वामदेवो गातमः । गायत्री ।

कनीनकेवं विद्रुधे नये द्रुपदे अर्मके ।  
 वभ्रु यामेषु शोमेते ॥ २३ ॥  
 अरं म उग्रयाम्णे ऽरमनुक्षयाम्णे ।  
 वभ्रु यामेष्विधिर्वा ॥ २४ ॥

(१६) इन्द्रस्त्वष्टा ।

॥ ३८५ ॥ ( ऋ० ९।३१।१-३ )

गृत्समदः शौनकः । जगती ।

मा नो गुह्या रिपं आयोरहन् दमन्  
 मा न आभ्यो रीरथो वुच्छुनाभ्यः ।  
 मा नो वि यौः सत्या विद्धि तस्य नः  
 सुसायता मनसा तत् त्वमहे ॥ २ ॥  
 अहेळता मनसा धृष्टिमा वह्  
 दुहानां धेनुं पिप्युपीमस्रध्वतम् ।  
 पद्याभिरुशुं वचंसा च वाजिनं  
 त्वां हिनोमि पुरुहूत विभ्वहा ॥ ३ ॥

(१७) इन्द्रो गावश्च ।

॥ ३८६ ॥ ( ऋ० ६।१८।१, ८ )

मरदाशो बाहस्पलाः । जगती, ८ अनुष्टुप् ।

इन्द्रो यज्वने पृणते च शिखति  
 उपेद् ददाति न स्वं मुपायति ।  
 भूयौभ्यो रयिमिदं स्य वर्धयन्  
 अग्निरे पित्ये नि दधाति देवयुम् ॥ २ ॥  
 उपेदमुपपर्वेन-मासु गोपूषं पृच्यताम् ।  
 उपं ऋषमस्य रेत-स्युपेन्द्र तव धीर्ये ॥ ८ ॥

(३३५३)

## (१८) इन्द्राकुत्सौ ।

॥ ३८७ ॥ ( ऋ० १३१।९ )

अथस्युरात्रेयः । त्रिष्टुप् ।

इन्द्राकुत्सा वहमाना रथेन  
आ घामत्या अपि कर्णे वहन्तु ।  
निः पीमद्भ्यो धर्मयो निः पृथस्यात्  
मृगोर्नो हृदो वरथस्तमोसि

॥ ९ ॥

## (१९) इन्द्रयावापृथिव्यः ।

॥ ३८८ ॥ ( ऋ० १०।५९।१० )

बन्धुः धृतवः धुर्विप्रबन्धुर्गोपायनाः । त्रिष्टुप् (पंक्त्युत्तरा) ।

समिन्द्रेय गार्मन्द्वाहं  
य आर्वहदुशीनराण्या अनः ।  
भरतामप यद्रपो द्यौः पृथिवि क्षमा रपो  
भो पु ते किं चनाममत्

॥ १० ॥

## (२०) इन्द्रापर्वतौ ।

॥ ३८९ ॥ ( ऋ० ३।५३।१ )

गायिनो विष्वाभिन्नः । त्रिष्टुप् ।

इन्द्रापर्वता वृहता रथेन  
घामीरिप आ वहतं सुवीराः ।  
घातं हव्यान्वयरेषु देया  
वर्धेथां गीर्भिरिळ्या मर्दन्ता

॥ ११ ॥

## (२१) इन्द्रः, सोमो, ब्रह्मणस्पतिर्दक्षिणा च ।

॥ ३९० ॥ ( ऋ० १।१८।४-५ )

मेधातिथिः काशः । गायत्री ।

स घां धीरो न रिप्यति यमिन्द्रो ब्रह्मणस्पतिः ।  
सोमो हि नोति मर्त्यम् ॥ ४ ॥  
त्यं तं ब्रह्मणस्पते सोम इन्द्रश्च मर्त्यम् ।  
दक्षिणा पाचंष्टसः ॥ ५ ॥

## (२२) इन्द्राब्रह्मणस्पती ।

॥ ३९१ ॥ ( ऋ० २।९४।१२ )

गुरुमदः शौनकः । त्रिष्टुप् ।

विश्वं सत्यं मधवाना युवोत्दि  
आर्पश्चन प्र मिनन्ति व्रतं घाम् ।  
अच्छेन्द्राब्रह्मणस्पती द्विर्नो  
अश्वं युजैव घाजिनां जिगातम्

॥ १२ ॥

॥ ३९२ ॥ ( ऋ० ७।९७।३, ९ )

मेधावर्णवापिष्ठः । त्रिष्टुप् ।

तमु ज्येष्ठं नमसा हविर्भिः  
सुशोचं ब्रह्मणस्पतिं गृणीषे ।  
इन्द्रं श्लोको महि देव्यः सिपकु  
यो ब्रह्मणो देवकृतस्य राजा ॥ ३ ॥  
इयं वा ब्रह्मणस्पते सुयुक्तिः  
ब्रह्मेन्द्राय घृज्जिर्णे अकारि ।  
अविष्टं धियो जिगातं पुरंधीः  
जजस्तमयो वलुपामर्यतीः ॥ ९ ॥

## (२३) दुन्दुभीन्द्रौ ।

॥ ३९३ ॥ ( ऋ० ६।४७।३१ ) गणो मायकाः । त्रिष्टुप् ।

आमूर्तज प्रत्यावर्तयेमाः

कैतुमद् दुन्दुभिर्वायदीति ।

समभ्यपर्णाश्चरन्ति नो नरो

असार्कमिन्द्र रुधिनो जयन्तु

॥ ३१ ॥

## (२४) इन्द्रसूर्यादयः ।

॥ ३९४ ॥ ( अथर्व० १९।७०।१ ) मन्त्रा । गायत्री ।

इन्द्र जीव सूर्य जीव देया जीवां जीव्यास्तमहम् ।  
सर्वमार्युर्जीव्यासम् ॥ १ ॥

## (२५) शत्रुसेनामोहनम् ।

॥ १ ॥ ( अथर्व० ३१।१५ )

अथर्वः । इन्द्रः । विराट् पुर दमिन् ।

इन्द्र सेनां मोहयामिर्गोपायम् ।

अग्नेर्वीरस्य ध्राज्या तान् धिर्पन्नो वि नादाय ॥ ५ ॥

॥ २ ॥ ( अथर्व० ३।१।४ ) अनुष्टुप् ।

व्याकृत्य पपामिताथो चित्तानि मुह्यत ।

अथो यदृचैषां हृदि तदैषां परि निर्जहि ॥ ४ ॥

( २६ ) मायाभेदः ।

॥ १ ॥ ( ऋ० १०।१७७।१-३ )

पतङ्गः, प्राजापत्यः । त्रिष्टुप् ; १ जगती ।

पतङ्गमकमसुरस्य मायया

हृदा पश्यन्ति मनसा विपश्चितः ।

समुद्रे अन्तः क्वयो वि चक्षते

मरीचीनां पवर्मिच्छन्ति वेधसः ॥ १ ॥

पतङ्गो वाचं मनसा विभतिं

तां गन्धर्वोऽवद्वभे अन्तः ।

तां द्योतमानां स्वयं मनीषां

ऋतस्य पदे क्वयो नि पान्ति

अपश्यं गोपामनिपद्यमानं

आ च परां च पथिमिध्वरन्तम् ।

स सुधीचीः स विपचीर्वसान्

आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः ॥ ३ ॥

( २७ ) शत्रुनाशनम् ।

॥ १ ॥ ( अथर्व० १।१३।१-५ )

आपः । ( एकावसानम् ) १-४ त्रिष्टुप्मा गायत्री,  
५ भुविदिधमा ।

आपो यद्वस्तपस्तेन तं प्रति तपत्

योऽस्मान् ठेष्टि यं वयं द्विष्मः

आपो यद्वो हस्तेन तं प्रति हस्त

योऽस्मान् ठेष्टि यं वयं द्विष्मः

आपो यद्वोऽर्चिस्तेन तं प्रत्यर्चत

योऽस्मान् ठेष्टि यं वयं द्विष्मः

आपो यद्वो शोचिस्तेन तं प्रति शोचत

योऽस्मान् ठेष्टि यं वयं द्विष्मः

आपो यद्वोऽस्तेन तमतेजसं कृणुत

योऽस्मान् ठेष्टि यं वयं द्विष्मः

॥ १ ॥ ( अथर्व० ६।६।१-३ )

( चन्द्रमाः ), इन्द्रा, पराशरा । अनुष्टुप्, १ पथ्यापशक्तिः ।

अथ मन्युरवायताव याह मनोयुजा ।

पराशर त्वं तेषां पराञ्च शुष्ममर्दय

अथा नो रुयिमा रुधि ॥ १ ॥

निर्हस्तेभ्यो नैर्हस्तं यं देवाः शरुमस्यथ ।

वृश्चामि शत्रूणां याहूननेन हविषाऽहम् ॥ २ ॥

इन्द्रश्चकार प्रथमं नैर्हस्तमसुरेभ्यः ।

जयन्तु सत्यानो मम स्थिरेणेन्द्रेण मेदिना ॥ ३ ॥

॥ ३ ॥ ( अथर्व० ५।१।११ )

बृहदिषोऽवर्षा । इन्द्रः ( विजयाय प्रार्थना ) । त्रिष्टुप् ।

अर्वाञ्जमिन्द्रममृतो हवामहे

यो गोजिर्धनजिर्ध्वजिघः ।

हमं नो युष्मं विह्वे शृणोतु

अस्माकमभूद्वैर्यश्च मेदी ॥ १ ॥

॥ ४ ॥ ( अथर्व० १।१८।१-५ )

चातनः । अग्निः । ( द्वेपदम् ) शस्त्री ब्रह्मी ।

आतव्यक्षर्यणमसि आतव्यचातनं मे दाः स्वाहा ॥ १ ॥

सपलक्षर्यणमसि सपलचातनं मे दाः स्वाहा ॥ २ ॥

अरायक्षर्यणमस्यरायचातनं मे दाः स्वाहा ॥ ३ ॥

पिशाचक्षर्यणमसि पिशाचचातनं मे दाः स्वाहा ४

सदान्वाक्षर्यणमसि सदान्वाचातनं मे दाः स्वाहा ५

॥ ५ ॥ ( अथर्व० ८।१।१५ )

अग्निः । पञ्चपदा ब्रह्मीगर्भा जगती ।

ये ते शूक्ष्मे अजरो जातवेदस्तिग्महेती ब्रह्मशंसिते ।

ताभ्यां दुहादैमग्निदासन्तं किमीदिनं

प्रत्यञ्जमर्चिषा जातवेदो वि निश्च ॥ २५ ॥

॥ ६ ॥ ( अथर्व० १।१८।१-८ )

ब्रह्मा । ( आयुष्यम् ) । पशुकिः ।

शेरंमक शेरंम पुनयो यन्तु

यातवः पुनर्हतिः किमीदिनः ।

यस्य स्थ तमस्तु यो वः

प्राद्विस्त तमस्तु स्वा मांसान्यस्त ॥ १ ॥

शेवृधक् शेवृध पुनर्वो यन्तु  
यातवः पुनर्हतिः किमीदिनः ।

यस्य स्थ तमस्तु यो वः०

॥ २ ॥

भोकारुंभोक् पुनर्वो यन्तु

यातवः पुनर्हतिः किमीदिनः ।

यस्य स्थ तमस्तु यो वः०

॥ ३ ॥

सर्पांस्तुसर्पं पुनर्वो यन्तु यातवः

पुनर्हतिः किमीदिनः ।

यस्य स्थ तमस्तु यो वः प्राहैत्व०

॥ ४ ॥

जूर्णि पुनर्वो यन्तु यातवः

पुनर्हतिः किमीदिनीः ।

यस्य स्थ तमस्तु यो वः प्राहैत्व०

॥ ५ ॥

उपध्वे पुनर्वो यन्तु यातवः

पुनर्हतिः किमीदिनीः ।

यस्य स्थ तमस्तु यो वः प्राहैत्व०

॥ ६ ॥

अर्जुनि पुनर्वो यन्तु यातवः

पुनर्हतिः किमीदिनीः ।

यस्य स्थ तमस्तु यो वः प्राहैत्व०

॥ ७ ॥

भरुजि पुनर्वो यन्तु यातवः

पुनर्हतिः किमीदिनीः ।

यस्य स्थ तमस्तु यो वः प्राहैत्व०

॥ ८ ॥

॥ ७ ॥ ( अथर्व० १०।५। [ ६-७ ] ३६-५० )

ब्रह्मा । मरीचः । ३६ मारुः पञ्चपदातिशाङ्गरामिनागत-

गर्मादिः । ३७ विराट् पुरस्ताद्वहतीः । ३८ पुर वणिङ् ।

३९, ४१ आयो गायत्रीः । ४० विराट्विषमा गायत्री ।

विह्वयः । प्राजापत्या । प्राजापत्या अनुष्टुप् ।

४४ त्रिपदा गायत्रीगर्माऽनुष्टुप् । ५० त्रिष्टुप् ।

जितमसाकमुद्रिन्नमसाकं

अभ्युष्टां चिन्वाः पृतना अरतीः ।

इदमहमांमुप्यायणस्यामुप्याः पुत्रस्य

चर्वेस्तेजः प्राणमायुनि

वेष्टयामिर्देमनमधुरार्थं पादयामि

॥ ३६ ॥

सूर्यस्यावृतमन्वावर्तते दक्षिणामन्वावृतम् ।

सा मे द्रविणं यच्छतु सा मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥ ३७ ॥

दिशो ज्योतिर्पतीभ्यावर्तते ।

ता मे द्रविणं यच्छन्तु ता मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥ ३८ ॥

सप्तकुपीनभ्यावर्तते ।

ते मे द्रविणं यच्छन्तु ते मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥ ३९ ॥

ब्रह्माभ्यावर्तते ।

तन्मे द्रविणं यच्छतु तन्मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥ ४० ॥

ब्राह्मणो अभ्यावर्तते ।

ते मे द्रविणं यच्छन्तु ते मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥ ४१ ॥

यं वयं मृगयामहे तं वधै स्तृणवामहे ।

व्यात्तं परमेष्ठिनो ब्रह्मणापीपदाम् तम् ॥ ४२ ॥

वैश्वानरस्य दंष्ट्राभ्यां हेतिस्तं समधादामि ।

इयं तं प्लात्वाहतिः समिहेवी सहोयसी ॥ ४३ ॥

राक्षो वर्णस्य वन्धोऽसि ।

सोऽमुमांमुप्यायणमुप्याः

पुत्रममै प्राणे यंधान ॥ ४४ ॥

यत् ते अमै भुवस्पत आक्षिपति पृथिवीमनु ।

तस्य नस्त्वं भुवस्पते संप्रयच्छ प्रजापते ॥ ४५ ॥

अपो दिव्या अंचायिपं रसेन समप्रहमहि ।

पर्यस्वानम् आगमं ते मा सं खज वचंसा ॥ ४६ ॥

सं मोक्षे वचंसा खज सं प्रजया समायुषा ।

विद्युर्मै अस्य देवा इन्द्रो विद्यात् सद्य ऋषिभिः ॥ ४७ ॥

यदग्ने अद्य मिथुना क्षापातो

यद्वाचस्तृष्टं जनयन्त रेमाः ।

मन्योर्मनसः शरण्यां जायते या

तया विष्य हृदये यातुधानान् ॥ ४८ ॥

परं दृणीहि तपसा यातुधानान्

पराग्ने रक्षो हरंसा दृणीहि ।

पराचिंया मूर्देचां दृणीहि

परामुष्टपः सोऽनुचतः दृणीहि ॥ ४९ ॥

( ३४०५ )

अपामस्मै वज्रं ॥ हराभि  
चतुर्भुजं शीर्षमिवाय विठान् ।  
सो अस्याहानि प्र दृष्टान्तु सर्वा  
तन्मे देवा अनु जानन्तु विश्वे ॥ ५० ॥

॥ ८ ॥ (अथर्व० २।२७।१-७)

वज्रजलः । १-५ वनस्पति, ६ रुद्रः, ७ इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

नेच्छन्तुः प्राशं जयाति सहमानाभिभूरसि ।  
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ॥ १ ॥  
सुपूर्णस्त्वान्वयिन्दत् सूकुरस्स्यापनघ्नसा ।  
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ॥ २ ॥  
इन्द्रो ह चने त्वा थाहावसुरेभ्य स्तरीतव ।  
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ॥ ३ ॥  
पाटामिन्द्रो व्याश्वावसुरेभ्य स्तरीतवे ।  
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ॥ ४ ॥  
तयाऽहं शर्नून्साक्ष इन्द्रः सालावृका इव ।  
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ॥ ५ ॥  
रद्र जलापमेपज्ज नीलशिखण्डु कर्मकृत् ।  
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ॥ ६ ॥  
तस्य प्राशं त्वं जहि यो न इन्द्राभिदासति ।  
अधि नो ब्रूहि शक्तिभिः प्राशि मामुत्तरं रुधि ॥ ७ ॥

॥ ९ ॥ (अथर्व० ७।९५।१-३)

गृध्रा । अनुष्टुप्, २-३ गुरि ।

उदस्य व्यापौ विथुरौ गृध्रौ धार्मिव पेततुः ।  
उच्छ्रोचन्प्रशोचनावस्योच्छोचर्त्तौ हृदः ॥ १ ॥  
बृहमेनावुदतिष्ठिपं गावो आन्तसदाविव ।  
कूर्कराधिप कृजन्तायुदयन्तौ वृकाधिप ॥ २ ॥  
आतोदिनो नितोदिनाययो संतोदिनावुत ।  
अपि नहाम्यस्य मेढ्रं य इतः स्त्री पुमान् जभारं ॥ ३ ॥

॥ १० ॥ (अथर्व० ७।९६।१) वयः । अनुष्टुप् ।

असेदन् गावः सद्नेऽपसहस्रति वयः ।  
आभ्याने पर्यता अग्न्युः स्यासि वृकावतिष्ठिपम् ॥ १ ॥

॥ ११ ॥ (अथर्व० ३।६।१-८)

अग्नौ च पुराः । वानस्पत्योऽथर्वः । अनुष्टुप् ।

पुमान् पुंसः परिजातोऽथर्वः गदिरादधि ।  
स हन्तु शर्नून् मामकान् ॥ १ ॥  
यानहं द्वेप्सि ये च माम् ॥ १ ॥  
तान्थ्वत्थ निः शृणीहि शर्नून् वैयाधदोषतः ।  
इन्द्रेण वृत्रघ्ना मेदी मित्रेण वरुणेन च ॥ २ ॥  
यथाऽथ्वत्थ निरर्भनोऽन्तर्महत्स्य णिवे ।  
एवा तान्सर्धान् निर्मङ्गि ॥ ३ ॥  
यानहं द्वेप्सि ये च माम् ॥ ३ ॥  
यः सहमानश्चरसि सासहान इव ऋपुमः ।  
तेनाथ्वत्थ त्वया वयं सुपत्नान्सहिपीमहि ॥ ४ ॥  
सिनात्वेनान् निर्ऋतिर्मृत्योः पादौरमोनयैः ।  
अथ्वत्थ शर्नून् मामकान् ॥ ५ ॥  
यानहं द्वेप्सि ये च माम् ॥ ५ ॥  
यथाऽथ्वत्थ वानस्पत्यानारोहन् कृण्वेऽधरान् ।  
एवा मे शत्रोर्मूर्धानं विन्वतिभन्धि सहस्व च ॥ ६ ॥  
तेऽध्वराञ्चः प्र ध्रुवन्तां छिन्ना नौरिव बन्धनात् ।  
न वैयाधप्रणुत्तानो पुनरस्ति निवर्तनम् ॥ ७ ॥  
प्रेणान् नुदे मर्नसा प्र चित्तेनोत ब्रह्मणा ।  
प्रेणान् वृक्षस्य शाखयाऽथ्वत्थस्व नुदामहे ॥ ८ ॥

॥ १२ ॥ (अथर्व० ४।४०।२, ४, ७-८)

शुक्रः । २ वयः, ४ वीर्यः, ७ सूर्यः, ८ दिवा । २ अगती;  
४, ७ त्रिष्टुप्, ८ पुरोहितशक्ती पादयुग्मगतौ ।

ये दक्षिणतो जुह्वति जातवेदो  
दक्षिणाया दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।  
यममृता ते पराञ्चो व्ययन्तां  
प्रत्यर्गनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥ २ ॥  
य उत्तरतो जुह्वति जातवेद  
उदीच्या दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।  
सोममृता ते पराञ्चो ॥ ४ ॥

य उपरिष्ठाञ्जुहति जातवेद  
 ऊर्ध्वायां दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।  
 सूर्यमन्वा ते पराञ्जो ॥ ७ ॥  
 ये दिशामन्तर्देशेभ्यो जुहति जातवेदः  
 सर्वोभ्यो दिग्भ्योऽभिदासन्त्यस्मान् । ब्रह्मन्वा ते ॥ ८ ॥  
 ॥ १३ ॥ ( अथर्व० ६।१३४।१-३ )  
 वज्रः । १ परानुष्टुप् त्रिष्टुप्, २ अनुष्टुप्, ३ सुबिक् त्रिपदा गायत्री  
 अयं वज्रस्तर्पयतामृतस्य  
 अर्वास्य राष्ट्रमर्प हन्तु जीवितम् ।  
 शृणानुं ग्रीवाः प्र शृणानुत्पिण्हा  
 वृषस्त्वेष शचीपतिः ॥ १ ॥  
 अर्धरोऽधर उत्तरेभ्यो गृहः पृथिव्या मोत्स्वपत् ।  
 धञ्जेणार्यहतः शयाम् ॥ २ ॥  
 यो जिनाति तमन्विच्छु यो जिनाति तमिज्जहि ।  
 जिनतो वज्र त्वं सीमन्तमन्वञ्चमनुं पातय ॥ ३ ॥  
 ॥ १४ ॥ ( अथर्व० ७।९०।१-३ )  
 अत्रिराः । मन्त्रोवाः । १ गायत्री, २ विराट् पुरस्ताद्वृहती,  
 ३ अथर्वाना पदपदा सुबिज्जगती ।  
 अपि वृक्ष पुराणवद्भूतैरिव गुणितम् ।  
 औजो दास्यस्य दम्भय ॥ १ ॥  
 ययं तदस्य संभृतं वस्विन्द्रेण वि मंजामहे ।  
 म्हापयामि भ्रजः शिञ्चं वरुणस्य प्रतेन ते ॥ २ ॥  
 यथा शेषो अपायति स्त्रीषु चासुदनावयाः ।  
 अवस्थस्य पनुदीवतः शाङ्कुरस्य नितोदिनः ।  
 यदाततमय तत् तनुं यदुत्तनुं नि तत् तनु ॥ ३ ॥  
 ॥ १५ ॥ ( अथर्व० ८।८।१-३४ )  
 मूत्रवृण्णिः । इन्द्रः, वनस्पतिः, परमेनाहननं च । अनुष्टुप् ;  
 २, ८-१०, २१ उपरिष्ठाद्वृहती, ३ विराट्पुहती, ४ वृहती  
 पुरस्ताद्वृहती, ५ आस्ताद्वृहती, ६ विपरीत  
 पादलक्ष्मा चतुर्भुजातिप्रगती, ११ पथ्यावृहती, १२ सुबिक् ;  
 १९ पुरस्ताद्विराट्पुहती, २० पुरस्ताद्विष्टुहती, २१ त्रिष्टुप् ;  
 २२ चतुष्पदा शक्ती, २४ अथर्वाना त्रिष्टुप्णिगर्भा  
 पाशक्ती पदपदा जगती ।  
 इन्द्रो मन्यतु मन्थिता शक्रः शूरः पुन्दरः ।  
 यथा हर्नामि सेनां अमिर्नाणां सहस्रशः ॥ १ ॥

पुतिरञ्जुर्गृध्मानो पूर्ति मेनो कृणोत्वमूम् ।  
 धूममग्निं परादृश्यामिर्नां हृत्वा दधतां भयम् ॥ २ ॥  
 अमूनभ्वत्थ निः शृणोहि खादामून् गेदिराजिरम् ।  
 ताजङ्ग इव मज्यन्तां  
 हन्तेनान् वधको वधैः ॥ ३ ॥  
 पर्याणमून् पर्याहः कृणोतु  
 हन्तेनान् वधको वधैः ।  
 क्षिप्रं शूर इव मज्यन्तां  
 वृहज्जालेन संदिताः ॥ ४ ॥  
 अन्तरिक्षं जालमासीजालदण्डा दिशो महीः ।  
 तेनाभिधाय दस्यूनां शक्रः सेनामपायपत् ॥ ५ ॥  
 वृहदि जालं वृहतः शक्रस्य याजिर्नयितः ।  
 तेन शर्वानमि सर्वान् न्युञ्ज  
 यथा न मुच्यति कर्ममञ्चनैर्नाम् ॥ ६ ॥  
 वृहत् ते जालं वृहत इन्द्र शूर  
 सहस्राधेस्य शतवीर्यस्य ।  
 तेन शतं सहस्रमयुतं न्युञ्ज  
 ज्ञानं शक्रो दस्यूनामभिधाय सेनया ॥ ७ ॥  
 अयं लोको जालमासीच्छक्रस्य महतो मुहान् ।  
 तेनाहमिन्द्रजालेन  
 अमृत्तमस्माभि रंधामि सर्वान् ॥ ८ ॥  
 सेदिरग्रा व्युज्जिपतिश्चानपवाचना ।  
 धर्मस्तुन्द्रीश्च मोदंश्च तेरमुनभि रंधामि सर्वान् ॥ ९ ॥  
 मृत्यवेऽमून् प्र यच्छामि मृत्युपाशोन्मी सिताः ।  
 मृत्योर्ये अंघला दृताः  
 तेभ्यं पनान् प्राति नयामि वृद्धा ॥ १० ॥  
 नयतामून् मृत्युदृता यमदृता अपोभत ।  
 परःसहस्रा इत्यन्तां  
 तूणेद्वेनान् मृत्युं भवस्य ॥ ११ ॥  
 माध्या एकं जालदण्डमधर्यं यन्त्योजना ।  
 यद्वा एकं वस्य एकमादित्यैरेक उद्यतः ॥ १२ ॥  
 ( ३४४७ )

विभवे देवा उपरिष्टादुज्जन्तो यन्वोजंसा ।

मर्धेन प्रन्तो यन्तु सेनामहिरसो महीम् ॥ १३ ॥

वनस्पतीन् वानस्पत्यानोपधीरुत वीरुधं ।

द्विपाचतुष्पादिष्णामि यथा सेनाममृं हनन् ॥ १४ ॥

गन्धर्वोप्सरसः सर्पान् देवान् पुण्यजनान् पितॄन् ।

हृष्टानहृष्टानिष्णामि यथा सेनाममृं हनन् ॥ १५ ॥

इम उसा मृत्युपाशा यानाममृं न मुच्यसे ।

अमुष्या हन्तु सेनाया इदं कूर्तं सहस्रशः ॥ १६ ॥

धर्मं समिद्धो अग्निनाऽय होमं सहस्रहः ।

अवश्च पृश्निराहश्च शर्वं सेनाममृं हतम् ॥ १७ ॥

मृत्योरापमा पंचन्तां क्षुधं सेदिं वधं भयम् ।

इन्द्रश्चाक्षुजालाभ्या शर्वं सेनाममृं हतम् ॥ १८ ॥

परजिताः प्र व्रसतामित्रा नृता धावत ब्रह्मणा ।

गृहस्पतिप्रणुत्तानां माऽमीषीं मोचि कश्चन ॥ १९ ॥

अथ पचन्तामेनामायुधानि मा शकन प्रतिधामिषुम् ।

अथैषां बह्वि विभयं तामिषं प्रन्तु मर्मणि ॥ २० ॥

स क्रौशतामेनान् घावापृथिवी

समुन्तरिक्षं सह देवताभिः ।

मा ज्ञातारं मा प्रतिष्ठां विदन्त

मियो विघ्नाना उप यन्तु मृत्युम् ॥ २१ ॥

विश्वतस्त्रोऽश्वतस्यो देववत्स्यं

पुरोडाशाः शफा अन्तरिक्षमुद्दिः ।

घावापृथिवी पश्चसी ऋतवोऽमीशवः

अन्तर्देशाः किं कुरा वाक् परिरच्यम् ॥ २२ ॥

संवत्सरो रथः परिवत्सरो रथोपस्थः

विराडीपाद्री रथमुच्यम् ।

इन्द्रः सध्यष्टाश्चन्द्रमा सारंयि ॥ २३ ॥

इतो जयेतो वि जय सं जय जय स्वाहा ।

इमे जयन्तु परामी जयन्तां स्वाहैभ्यो दुराहामीभ्यम् ।

नीललोहितेनामनभ्यवतनोमि ॥ २४ ॥

॥ १६ ॥ (अथर्वं ११।१०।१-२७)

त्रिपथि १ अत्रुष्टुप, १ विराट् पद्यावृद्धा, १ त्र्यवसाना  
पट्पदा त्रिष्टुप्पमार्तिजगती, ३ विराटास्तारपट्कि, ४ विराट्  
८ विराट् त्रिष्टुप्, १ पुराविशट् पुरस्ताज्जगतीतिष्टुप्  
१२ पचपदा पायापकि, १३ पट्पदा जगती, १६ त्र्यवसाना  
पट्पदा कड्ममलनुष्टुप्त्रिष्टुप्पमार्ति शङ्करी, १७ पद्यापकि,  
२१ त्रिपदा गायत्री, २२ विराट्पुरस्ताद्वृद्धा, २५ कड्पु,  
२६ प्रस्तापकिः ।

उत्तिष्ठत्वं सं नहाय्यमुदाराः केतुभिः सह ।

सर्पा इतरजना रक्षीत्यमिघ्नाननु धायत ॥ १ ॥

ईशां वो वेद राज्ञं

त्रिपथे अरुणैः केतुभिः सह ।

ये अन्तरिक्षे ये द्विधि पृथिव्यां ये च मानवाः ।

त्रिपथेस्ते चेतांसि दुर्णामान् उपासताम् ॥ २ ॥

अयोमुखाः सूचीमुखा अथो विकङ्कतीमुखाः ।

क्रूयादो वारतरहस

आ संजन्तस्वमिनान् वज्रेण त्रिपथिना ॥ ३ ॥

अन्तर्धेहि जातवेद आदित्यं कुणपं बह्व ।

त्रिपथेरियं सेना सुहितास्तु मे वदो ॥ ४ ॥

उत्तिष्ठ त्वं देवजनायुदे सेनया सह ।

अयं वृद्धिर्वा आहुतस्त्रिपथेराहुतिः प्रिया ॥ ५ ॥

शितिपदी सं धनु शरव्येभ्यं चतुष्पदी ।

रुत्येऽमित्रेभ्यो भय त्रिपथेः सह सेनया ॥ ६ ॥

धृमाक्षी सं पततु रुधुकर्णी च क्रौशतु ।

त्रिपथेः सेनया जिते अरुणाः संन्तु केतवः ॥ ७ ॥

अवायन्तां पक्षिणो ये वयांसि

अन्तरिक्षे द्विधि ये चरन्ति ।

श्वापदो मक्षिकाः सं रमन्तां

आमादो गृध्राः कुणपे रदन्ताम् ॥ ८ ॥

यामिन्द्रेण संघां समर्धत्वा

ब्रह्मणा च बृहस्पते ।

तयाऽहमिन्द्रसधया

सर्पान् देवानिह इव इतो जयत मामुतः ॥ ९ ॥



बृहस्पतिराहित्सो ऋषयो ब्रह्मसंशिताः ।  
 असुरक्षयणं वधं निर्वधि दिव्याश्रयन् ॥ १० ॥  
 येनासौ गुप्त आदित्य उमाविन्दश्च तिष्ठतः ।  
 निर्वधि देवा अमज्जतोजसे च बलाय च ॥ ११ ॥  
 सर्वाँल्लोकान्समजयन् देवा आहृत्या नया ।  
 बृहस्पतिराहित्सो यज्ञं  
 यमसिञ्चतासुरक्षयणं वधम् ॥ १२ ॥  
 बृहस्पतिराहित्सो यज्ञं  
 यमसिञ्चतासुरक्षयणं वधम् ।  
 तेनाहममं सेनां नि लिङ्गामि  
 बृहस्पतेऽमित्रान् हन्यो जसा ॥ १३ ॥  
 सर्वे देवा अत्यार्यन्ति ये अश्रन्ति वषट् कृतम् ।  
 इमां जुषध्वमाहुतिमितो जयत मामुतः ॥ १४ ॥  
 सर्वे देवा अत्यार्यन्तु निर्वधेराहुतिः प्रिया ।  
 रुधां महतीं रक्षत ययाप्रे असुरा जिताः ॥ १५ ॥  
 प्रायुरमित्राणां मिथुप्राण्याञ्जतु ।  
 इन्द्र पर्यां शाहन् प्रति भनक्तु मा शकन् प्रतिधामिषुम् ।  
 आदित्य पर्यामलं वि नोशयतु  
 चन्द्रमा युतामगतस्य पन्थाम् ॥ १६ ॥  
 यदि प्रेषुर्दधपुरा ब्रह्म धर्मीणि चक्रिरे ।  
 तनुपानं परिपाणं कृष्णाना  
 यदुपोचिरे सर्वे तदरुसं कृधि ॥ १७ ॥  
 क्रत्यादानुवर्तयन्मृत्युना च पुरोर्हृतम् ।  
 निर्वधे प्रेति सेनया जयामिश्रान् प्र पथस्य ॥ १८ ॥  
 निर्वधे तमसा त्यममिश्रान् पौरं वारय ।  
 पृषदाज्यप्रेयुत्तानां माऽमीयां मोचि कश्चन ॥ १९ ॥  
 शितिपदी सं पतत्यमित्राणाममः सिचः ।  
 मुरान्वेषामः सेनां अमित्राणां न्यवुदे ॥ २० ॥  
 मुदा अमित्रां न्यवुदे ज्योतिषां वरैरयम् ।  
 अनयो जहि सेनया ॥ २१ ॥

यश्च कचची यश्चाकचोऽमित्रो यश्चाजमि ।  
 ज्यायाशैः कचचपाशैरुत्तमाऽमिहतः शयाम् ॥ २२ ॥  
 ये धर्मिणो येऽधर्माणां अमित्रा ये च धर्मिणः ।  
 सर्वास्तौ अवुदे हताध्वानोऽवन्तु भूम्याम् ॥ २३ ॥  
 ये रथिनो ये अरया असादा ये च सादिनः ।  
 सर्वानदन्तु तान् हतान्  
 गृध्राः श्येनाः पतत्रिणः ॥ २४ ॥  
 सुहृद्वरुणपा शेतामामिनी सेनां समरे वधानाम् ।  
 विविद्धा ककुजाहता ॥ २५ ॥  
 मर्माविधं रोधतं सुपुण्ड्रन्तु  
 दुश्चितं मुदित शर्यान्म् ।  
 य इमां प्रतीचीमाहुतिममित्रो नो युर्वत्सति ॥ २६ ॥  
 यां देवा अनुतिष्ठन्ति यस्या नास्ति निरार्थनम् ।  
 तथेन्द्रो हन्तु वृत्रहा यज्ञेन निर्वधिना ॥ २७ ॥  
 ॥ १७ ॥ ( ऋ० ७।१३।१-० )  
 भागव । वृष्टिका । १ विराडनुष्टुप् । २ छन्दमती । वृष्टिपदा  
 मुरिगुणिक ।  
 वृष्टिके वृष्टयन्दन उदमं छिन्धि वृष्टिके ।  
 यथा कृतद्विष्टासोऽमुष्मं शेव्यारते ॥ १ ॥  
 वृष्टासि वृष्टिका त्रिपा निरातम्यसि ।  
 परिवृक्ता यथासंस्पृष्टमस्य वृष्टोर्न ॥ २ ॥  
 ॥ १८ ॥ ( आ० ११।१।१-२६ )  
 काशायन । अवुदि । अनुष्टुप्, १ छन्दमती विराट् छन्दो  
 न्यवधाना, २ पुरोहिक् ; ४ ववधाना । अमिहृदोमर्मा  
 पराजिष्टुप् पृषदातिश्रवणी, १, ११, १४, २३, २६ पृषदा-  
 पाठः १५, २२, २४-२५ ववधाना छन्दसा शकरी,  
 १६ न्यवधाना पृषदा विराट्पुनरिष्टाज्योति-  
 त्रिष्टुप् ; १७ त्रिपदा गायत्री ।  
 ये शादयो या इषवो धन्यनां वीयांणि च ।  
 अमां पृषदापुर्थं निचाकृतं च यदुदि ।  
 सर्वे तदवुदे त्यममित्रेभ्यो  
 हशे वृन्दासांश्च प्र दर्शय ॥ १ ॥  
 ( १४८९ )

तेषां सर्वेषामीशाना उत्तिष्ठत  
सं नहाध्वं मित्रा देवजना युयम् ।  
इमं संप्रामं स्तुजित्य यथा लोकं वि तिष्ठध्वम् ॥२६॥

॥ १९ ॥ ( अथर्व० १०।५।१-१४ )

सिन्धुद्रावः । आपः, चन्द्रमाः ( विजयप्राप्तिः ) अनुष्टुप् ।  
१-५ त्रिपदा पुरोभिहृतिक्कुम्भमतिर्गमा पङ्क्तिः, ६ चतुष्पदा  
अगतीर्गमा अगतीः, ७-१४ इयवसाना पञ्चपदा विपरीतपाद-  
लक्ष्मा बृहती ( ११, १४ पञ्चापङ्क्तिः ); १५-२१ चतुर्वसाना  
दशपदा त्रैष्टुभ्गमातिष्ठतिः ( १९, २० इति, २४ त्रिपदा  
विराड् गायत्री )

इन्द्रस्यौज स्वेन्द्रस्य सह स्वेन्द्रस्य बलं स्य  
इन्द्रस्य वीर्यं स्वेन्द्रस्य नृगणं स्य ।  
जिष्णवे योगाय ब्रह्मयोगैर्वीं युनजिम ॥ १ ॥  
इन्द्रस्यौज स्वेन्द्रस्य सह स्वेन्द्रस्य० ।  
जिष्णवे योगाय क्षत्रयोगैर्वीं युनजिम ॥ २ ॥  
इन्द्रस्यौज स्वेन्द्रस्य सह स्वेन्द्रस्य० ।  
जिष्णवे योगायेन्द्रयोगैर्वीं युनजिम ॥ ३ ॥  
इन्द्रस्यौज स्वेन्द्रस्य सह स्वेन्द्रस्य० ।  
जिष्णवे योगाय सौमयोगैर्वीं युनजिम ॥ ४ ॥  
इन्द्रस्यौज स्वेन्द्रस्य सह स्वेन्द्रस्य० ।  
जिष्णवे योगायाप्नुयोगैर्वीं युनजिम ॥ ५ ॥  
इन्द्रस्यौज स्वेन्द्रस्य सह स्वेन्द्रस्य बलं स्य  
इन्द्रस्य वीर्यं स्वेन्द्रस्य नृगणं स्य ।  
जिष्णवे योगाय विभ्यानि  
मा भूतान्युप तिष्ठन्तु युक्ता म आप स्य ॥ ६ ॥  
अग्नेर्भाग स्य ।  
अपां शुक्रमापो देवीर्वचो अस्मासु घत्त ।  
प्रजापतेर्वो धाम्नासै लोकार्य सादये ॥ ७ ॥  
इन्द्रस्य भाग स्य । अपां शुक्रमापो देवीर्वचो ।  
प्रजापतेर्वो धाम्नासै लोकार्य सादये ॥ ८ ॥  
सोमस्य भाग स्य । अपां शुक्रमापो देवीर्वचो ।  
प्रजापतेर्वो धाम्नासै लोकार्य सादये ॥ ९ ॥

वरुणस्य भाग स्य । अपां शुक्रमापो देवीर्वचो ।  
प्रजापतेर्वो धाम्नासै लोकार्य सादये ॥ १० ॥  
मित्रावरुणयोर्भाग स्य ।  
अपां शुक्रमापो देवीर्वचो ।  
प्रजापतेर्वो धाम्नासै लोकार्य० ॥ ११ ॥  
यमस्य भाग स्य । अपां शुक्रमापो देवीर्वचो ।  
प्रजापतेर्वो धाम्नासै लोकार्य सादये ॥ १२ ॥  
पितृणां भाग स्य । अपां शुक्रमापो देवीर्वचो ।  
प्रजापतेर्वो धाम्नासै लोकार्य सादये ॥ १३ ॥  
देवस्य सवितुर्भाग स्य ।  
अपां शुक्रमापो देवीर्वचो ।  
प्रजापतेर्वो धाम्नासै लोकार्य० ॥ १४ ॥  
यो य आपोऽपां भागो  
अप्यन्तर्यजुष्यो देवयजनः ।  
इदं तमतिं वृजामि तं माभ्यर्चयनिक्षि ।  
तेन तमभ्यर्चितवृजामो  
योऽस्मान् द्वेष्टि यं घयं क्षिप्रः ।  
तं वधेयं तं स्तुर्गीयानेन  
ब्रह्मणाऽनेन कर्मणाऽनया मेन्या ॥ १५ ॥  
यो य आपोऽपामूर्मिप्यन्तर्यजुष्यो देवयजनः ।  
इदं० । तेन० । तं वधेयं तं स्तुर्गी० ॥ १६ ॥  
यो य आपोऽपां वृत्तमो  
अप्यन्तर्यजुष्यो देवयजनः ।  
इदं० । तेन० । तं वधेयं तं० ॥ १७ ॥  
यो य आपोऽपां घृणमो  
अप्यन्तर्यजुष्यो देवयजनः ।  
इदं० । तेन० । तं वधेयं तं० ॥ १८ ॥  
यो य आपोऽपां हिरण्यगमो  
अप्यन्तर्यजुष्यो देवयजनः ।  
इदं० । तेन० । तं वधेयं० ॥ १९ ॥

यो व आपोऽपामश्मा पृथिदिज्योऽ  
 अश्वऽन्तर्यज्योऽदेवयजनाः ।  
 इदं० । तेन० । तं वधेयं० ॥ २० ॥  
 ये व आपोऽपामश्मयोऽपस्वऽन्तर्यज्योऽदेवयजनाः ।  
 इदं तानति सृजामि तान्माभ्यवनिक्षि ।  
 तैस्तमभ्यवति सृजामो० ।  
 तं वधेयं तं स्तृपीयानेन ग्रहणाऽनेन  
 कर्मणाऽनया मेन्या० ॥ २१ ॥  
 यद्व्याचीनं प्रहायणादचतं किं चोद्विम ।  
 आपो मा तस्मान् सर्वसाहरितात् पान्त्यहंसः २२  
 समुद्रं यः प्र हिणोमि स्यां योनिमपीतन ।  
 अरिष्टाः सर्वदायसो मा च नः किं चानाममत् २३  
 अग्निं आपो अप रिप्रमुसत् ।  
 प्रासदेनो दुरितं सुप्रतीकाः  
 प्र दृष्यन्त्य प्र मलं यदन्तु ॥ २४ ॥

### (२८) श्रेयःप्राप्तिः ।

॥ १ ॥ ( अथर्व० ३।१।१-५ )

८८ । इत्याह्वयम् । १ अश्वदा विशाद् गायत्री,  
 २-५ विशा परोलिङ्, ४ पित्राभिधमया निवृत् ।

दृष्ट्वा दृविगमि हेत्या हेतिरेमि मेन्या मेनिगसि ।  
 धान्नुदि धेयागमति समं ब्राम ॥ १ ॥  
 अश्वयोऽग्निं प्रतिपरोऽग्निं प्रत्यभिचरणोऽसि ।  
 धान्नुदि धेयागमति समं ब्राम ॥ २ ॥  
 प्रति तमग्निं यरु योऽस्मान् देष्टि यं ययं द्विप्यः ।  
 धान्नुदि धेयागमति समं ब्राम ॥ ३ ॥  
 एतिरेमि ययौषा धमि मनुषानोऽग्नि ।  
 धान्नुदि धेयागमति समं ब्राम ॥ ४ ॥  
 दृष्टोऽग्निं धाम्रोऽग्निं वृष्टिं ज्योतिर्यति ।  
 धान्नुदि धेयागमति समं ब्राम ॥ ५ ॥

### (२९) बलप्राप्तिः ।

॥ १ ॥ ( अथर्व० ६।१३।१-३ )

वज्रः । अनुष्टुप् ।

यदशामि बलं कुर्व इत्यं वज्रमा ददे ।  
 स्कन्धानमुष्यं शातयन् वृत्रस्यैव शचीपतिः ॥ १ ॥  
 यत् पिबामि सं पिबामि समुद्र इव संप्रियः ।  
 प्राणानमुष्यं संपाय सं पिबामो अमुं ध्रुयम् ॥ २ ॥  
 यद्विपामि सं गिरामि समुद्र इव संगिरः ।  
 प्राणानमुष्यं संगीर्य सं गिरामो अमुं ध्रुयम् ॥ ३ ॥

### (३०) वर्चःप्राप्तिः ।

॥ १ ॥ ( अथर्व० ६।५।१-३ )

अथर्वः । १ अमि, २ इन्द्रः, ३ अमि, धेमा, मङ्गणस्पतिः ।  
 अनुष्टुप्, २ भुरिक् ।

उदेनमुत्तरं नयाग्रे धृतेनाद्भुत ।  
 समेतं वर्चसा सृज प्रजया च धुं रुधि ॥ १ ॥  
 इन्द्रेमं प्रतरं रुधि सज्जानानामसद्भुश्री ।  
 शयस्पोषेण सं र्वज जीयातये जरते नय ॥ २ ॥  
 यस्य कृष्णो हृदिगुदे तमग्रे वर्धया त्वम् ।  
 तस्मै सोमो अग्निं प्रदद्वयं नृ ग्रहणस्पतिः ॥ ३ ॥

### (३१) उर्जःप्राप्तिः ।

॥ १ ॥ ( अथर्व० ६।७९।१-३ )

अथर्वः । गायत्री, २ त्रिवृदा प्राभायत्वा गायत्रा ।

अयं नो नमस्वस्पतिः संस्पतानो अग्निं रक्षतु ।  
 यस्तमार्तिं गृहेषु नः ॥ १ ॥  
 त्वं नो नमस्वस्पत ऊर्जे गृहेषु धारय ।  
 आ पुष्टमेन्या यरु ॥ २ ॥  
 देवं संस्पतान सप्तप्राणोपम्येतिथि ।  
 तस्य नो तस्य तस्य नो धेदि  
 तस्य ते अग्निर्धामः नयाम ॥ ३ ॥

### ( ३२ ) विश्वजित् ।

॥ १ ॥ ( अथर्व० ६।१०७।१-४ )

घनतामिन् । अन्तर्गप ।

विश्वजित् त्रायमाणायै मा परि देहि ।

त्रायमाणे द्विपाद्य सर्वे नो रक्ष

चतुष्पाद्यश्च नः स्वम्

॥ १ ॥

त्रायमाणे विश्वजिते मा परि देहि ।

विश्वजित् द्विपाद्य सर्वे नो रक्ष

चतुष्पाद्यश्च नः स्वम्

॥ २ ॥

विश्वजित् कल्याण्यै मा परि देहि ।

कल्याणि द्विपाद्य सर्वे नो रक्ष

चतुष्पाद्यश्च नः स्वम्

॥ ३ ॥

कल्याणि सर्वविदे मा परि देहि ।

सर्वविद् द्विपाद्य सर्वे नो रक्ष

चतुष्पाद्यश्च नः स्वम्

॥ ४ ॥

### ( ३३ ) राष्ट्रसभा ।

॥ १ ॥ ( अथर्व० ७।११।१-३ )

शौनकः । १-२ सभा, पितरः, ३ इन्द्र । अनुष्टुप् ।

१ भुरिक् निष्टुप् ।

सभा च मा समितिश्चावतां

प्रजापतेर्बुधितरौ संविदाने ।

येनां संगच्छा उर्ष मा स शिक्षात्

चारु वदानि पितरः संगतेषु

॥ १ ॥

यिष ते सभे नाम नरिषा नाम वा असि ।

ये ते के च सभासदस्ते मे सन्तु सर्वाचसः ॥ २ ॥

एषामहं सभासीनानां वर्चो विज्ञानमा ददे ।

अस्याः सर्वस्याः संसदो मामिन्द्र मगिनं कृणु ३

### ( ३४ ) अश्वः ।

॥ १ ॥ ( अ० १।१६।१-२१ )

शौनकाः । शौच्यः । निष्टुप्, ३-६ जगती ।

मा नो मित्रो वरुणो अर्यमाऽऽयुः

इन्द्रं ऋमुक्षा मरुतः परि रयन् ।

यद्वाजिनो देवजातस्य सतेः

प्रवक्ष्यामो विदेयै वीर्याणि

॥ १ ॥

यत्रिणिजा रेक्णासा प्रवृतस्य

रतिं गृमीतां मुद्यतो नयन्ति ।

सुप्राङ्जो मेर्म्यद्विभ्वरूप

इन्द्रापुष्णोः प्रियमप्येति पार्थः

॥ २ ॥

एष छागः पुरो अश्वेन वाजिनो

पुष्णो भागो नीयते विश्वदेव्यः ।

अमिमियं यत् पुण्येव्यशमर्यता

त्वष्टेदेनं सौध्रवसायं जिन्यति

॥ ३ ॥

यद्विष्यमृतुशो देवयानं

निर्मानुपाः पर्यभ्यं नयन्ति ।

अत्रा पुष्णः प्रथमो भाग पति

यसं देवेभ्यः प्रतिवेदयन्नजः

॥ ४ ॥

होताऽश्वर्युरार्थया अग्निमिन्धो

ग्रावग्राम उत शंस्ता सुविप्रः ।

तेन युधेन स्वरंकृतेन

स्विष्टेन वक्षणा वा पृणध्वम्

॥ ५ ॥

युपजस्का उत ये यूपवाहाः

क्षपालं ये अश्वयुपाय तक्षति ।

ये चार्धते पर्वनं सुमरन्ति

उतो तेषामभिगृतिर्न हन्यतु

॥ ६ ॥

उप प्रागात् सुमन्मेऽधायि मन्म

देवानामाशा उर्ष वीतपृष्ठः ।

अश्वेनं विप्रा ऋषयो मदन्ति

देवानां पुष्टे चरुमा सुवधुम्

॥ ७ ॥

यद्वाजिनो दामं संदानमर्चतो

या शीर्षण्यां रक्षना रज्जुरस्य ।

यद्वा शस्य प्रभृतमास्येऽतृणं

सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु

॥ ८ ॥

यदध्वस्य क्रविषो मक्षिकाऽऽश  
 यद्वा स्वरो स्वधितौ रिप्तमस्ति ।  
 यद्वस्तयोः शमितुयं प्रवेष्टु  
 सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु  
 यदूर्ध्वमुदरस्यापवाति  
 य आमस्य क्रविषो गन्धो अस्ति ।  
 सुकृता तच्छ्रमितारः कृण्वन्तु  
 उत मेधं शृतपाकं पचन्तु  
 यत् ते गात्रादग्निना पच्यमानाद्  
 अग्निं शलं निहतस्यावधारयति ।  
 मा तद्व्यामा श्रिपन्मा तृणेषु  
 देवेभ्यस्तदुशङ्ग्यो रातमस्तु  
 ये वाजिनं परिपश्यन्ति पृकं  
 य ईमाहुः सुतमिनिहरेति ।  
 ये चार्धतो मांसमिक्षामुपासत  
 उतो तेषामभिर्गतिर्न इव्यतु  
 यन्नीक्षणे मांस्पचन्त्या उखाया  
 या पात्राणि यूष्ण आसेचनानि ।  
 ऊष्मण्याऽपिधानां चरुणां  
 अङ्गाः सुनाः परि भूपन्त्यध्वम् ॥ १३ ॥  
 निकर्मण निपदनं विवर्तनं यच्च पङ्क्तिं शमवैतः ।  
 यच्च पृषो यच्च घासि जुघास  
 सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ १४ ॥  
 मा त्याऽग्निर्ध्वनयीद् धूमगन्धिः  
 मोक्षा भ्राजन्त्यग्निं विक्लं जग्धिः ।  
 इष्टं धीतमभिर्गतं चरपदकृतं  
 तं देवासुः प्रति शृण्वन्त्यध्वम् ॥ १५ ॥  
 यदध्यापु चास उपस्तृणन्ति  
 अधीवानं या हिरण्यान्यस्मै ।  
 संदानमर्धन्तं पदधीशं  
 म्रिया देवेष्वा यामयन्ति ॥ १६ ॥

यत् ते स्नादे मदसा शरितम्  
 पाण्ण्यां वा कशया वा तुतोद ।  
 शुचेय ता हविषो अच्यरेष्टु  
 सर्वा ता ते ग्रहणां रुदयामि ॥ १७ ॥  
 चतुस्त्रिंशद् वाजिनो देववर्गयोः  
 यद्वृक्षीरध्वस्य स्वधितिः समेति ।  
 अर्चिच्छा गात्रां युयुनां कृणोत  
 पदं पदं रुनुयुष्या वि शंस्त ॥ १८ ॥  
 एकस्त्यपुरध्वस्या विशस्ता  
 द्वा यन्तारां भवतस्तथं श्रुतः ।  
 या ते गात्राणामृतुया कृणोमि  
 ताता पिण्डानां प्र जुहोम्यग्नौ ॥ १९ ॥  
 मा त्वां तपत् प्रिय आत्माऽपियन्तं  
 मा स्वधितिस्तन्वः आ तिष्ठिपत् ते ।  
 मा ते गृधुरविशस्ताऽतिहार्यं  
 छिद्रा गात्राण्यसिना मिथुं कः ॥ २० ॥  
 न वा उ एतन्म्रियसे न रिप्यसि  
 देवो इदं पि पृथिभिः सुगेभिः ।  
 हरी ते युजा पूर्पती अभूतां  
 उपास्थाद् वाजी धुरि रासंभस्य ॥ २१ ॥  
 सुगव्यं नो वाजी स्वदव्यं पुंसः  
 पुत्रां उत विश्वापुषं रयिम् ।  
 अनागास्त्वं नो अर्दितिः कृणोतु  
 क्षत्रं नो अद्वयो वनतां हविष्मान् ॥ २२ ॥  
 ॥ २ ॥ ( अ० ११६३१-१३ ) त्रिष्टुप् ।  
 यदक्नन्दः प्रथमं जायमान  
 उच्यन्समुद्रादुत वा पुरीषात् ।  
 श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू  
 उपस्तृत्यं महि जातं तं अयन् ॥ २३ ॥

यमेन दत्ते त्रित पञ्चमायुनक्  
 इन्द्रं पणं प्रथमो अर्घ्यतिष्ठत् ।  
 गन्धर्वो अस्य रक्षनामगृष्णात्  
 सृग्दद्वं वसवो निरतष्ट  
 अस्मि यमो अस्यादित्यो अर्वन्  
 अस्मि त्रितो गुह्येन यतेन ।  
 अस्मि सोमैः समया धिपृक्  
 आहुस्ते व्रीणि दिधि यन्धनानि  
 व्रीणि त आहुर्दिवि यन्धनानि  
 व्रीण्यप्सु व्रीण्यन्तः संमुद्रे ।  
 उतेर्व मे वरुणदृष्टस्त्वन्  
 यत्रा त आहुः परमं जनित्रम्  
 इमा ते वाजिन्नवमार्जनानी  
 इमा शफानां सनितुर्निधाना ।  
 अत्रा ते भद्रा रक्षना अपदं  
 ऋतस्य या अमिरक्षन्ति गोपाः  
 आत्मानै ते मनसाऽऽराद्वजानां  
 अघो दिवा पतर्यन्त पतङ्गम् ।  
 शितो अपदं पथिभिः सुगोभिः  
 अरेणुमिजैर्हमानं पतन्ति  
 अत्रा ते रूपमुत्तममपदं  
 जिगीषमाणमिष आ पदे गोः ।  
 यदा ते मतो अनु भोगमानद्  
 आदिक् प्रसिष्ट ओषधीरजीगः  
 अनु त्वा रथो अनु मयो अर्वन्  
 अनु गावोऽनु मगः कनीनाम् ।  
 अनु द्रातासुसत्त्व सत्यमौयुः  
 अनु देवा ममिरे धीर्ये ते  
 हिरण्यशृङ्गोऽयो अस्य पादा  
 मनोजवा अरं इन्द्र आसीत् ।  
 देवा इदं स हविरर्घमायन्  
 यो अर्वन्त प्रथमो अर्घ्यतिष्ठत्

ईमान्तासः सिलिकमध्यमासः  
 सं शरणासो दिव्यासो अत्याः ।  
 हंसा इव श्रेणिशो यन्ते  
 ॥ २ ॥ यदाक्षिपुर्दिव्यमज्मभवाः ॥ १० ॥  
 तव शरीरं पतयिष्येन्  
 तव चित्तं वारं इव धर्जमान् ।  
 तव शृङ्गाणि विष्टिता पुद्गा  
 ॥ ३ ॥ अरण्येषु जम्बूराणा चरन्ति ॥ ११ ॥  
 उप प्रागाच्छसनं वाज्यर्वा  
 देवद्राक्षा मनसा दीर्घानः ।  
 अजः पुरो नीयते नाभिरस्य  
 ॥ ४ ॥ अनु पश्चात् क्वयौ यन्ति रेभाः ॥ १२ ॥  
 उप प्रागात् परमं यत् सुधस्यं  
 अर्घ्यं अन्त्रां पितरं मातरं च ।  
 अद्या देवान्नुष्टमो हि गम्या  
 ॥ ५ ॥ अथा शास्ते दाशुपे वार्योणि ॥ १३ ॥  
 ॥ ३ ॥ ( अ० ७।३८।७-८ )  
 मेत्रावकणिर्वेष्टिष्ठ । वाजिन । त्रिष्टुप् ।  
 शं नो भवन्तु वाजिनो हव्येषु  
 ॥ ६ ॥ देवताता मितद्रवः स्वर्काः ।  
 जम्भयन्तोऽहिं वृकं रक्षांसि  
 सनेम्यस्सर्पयवन्नमीवाः ॥ ७ ॥  
 वाजैवाजेऽवत वाजिनो नो  
 ॥ ७ ॥ धनेषु विप्रा अमृता ऋतज्ञाः ।  
 अस्य मर्ध्वः पिबत प्रादयध्वं  
 तसा यात पथिभिर्देवयानैः ॥ ८ ॥  
 ॥ ४ ॥ ( वा० य० ७।४७ )  
 यमार्य त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्तमंशीय  
 ॥ ८ ॥ हव्यो दात्र पथि वयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे ॥ ४७ ॥  
 ॥ ५ ॥ ( वा० य० ८।१० )  
 यस्ते अव्यसनिर्भक्षो यो गोसनिः  
 तस्य त इष्ट्यंनुप स्तुतस्तोमस्य  
 ॥ ९ ॥ शस्तोक्यस्योपहृतस्योपहृतो भक्षयामि ॥ १२ ॥

॥ ६ ॥ ( घा० य० १५-१.१३ । वक्तव्यार्थः ), -१५, १९ )

अप्सुन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत  
प्रदास्तिष्वश्वं भवत वाजिनः ।

देवोरापो यो व ऊर्मिः प्रवर्तितः

ककुन्मान् वाजसास्तेनायं वाज५ सेत् ॥ ६ ॥

घातौ वा मनौ या गन्धर्वाः सतर्षिधुदातिः ।

ते अग्नेऽध्वमयुञ्जस्ते अस्मिञ्जयमा दधुः ॥ ७ ॥

वातरथहा भव वाजिन् युज्यमान्

इन्द्रस्येव दक्षिणः प्रियैधि ।

युञ्जन्तु त्वा मृतौ विश्ययेदस

आ ते त्वष्टा पत्सु ज्वं दधातु ॥ ८ ॥

जघो यस्तै वाजिभिर्हितो गृहा

यः श्येने परीक्षो अवरश्च घातौ ।

तेन नो वाजिन् यलवान् यलैन

वाजजिञ्च भव समने च पारयिष्णुः ।

वाजिनो वाजजितो वाज५ सरिष्यन्तो

वृहस्पतैर्भागमवजिघ्रत ॥ ९ ॥

वाजिनो वाजजितोऽध्वन स्कध्वयन्तो

योजन्ता मिमानाः काष्ठौ गच्छत

एष स्य वाजी क्षिपुर्णि तुरण्यति

प्रीवार्या वृद्धो अपिक्वक्ष आसनि ।

कतुं दधिका अनु सु५सर्निष्यदत्

पुथामङ्गा५स्यन्यापनीफणत् स्वाहा

उत सास्य द्रवतस्तुरण्यतः

पूर्णं न वेरनुवाति प्रगर्धिनः ।

श्येनस्यैव ध्रजतो अ५सं परि

दधिकार्याः सुदोर्जा तरिन्नतः स्वाहा

आ मा वाजस्य प्रसयो जंगम्याद्

एमे पायापृथिनी विद्वरूपे ।

आ मा गन्तां पितरां मातरा च

आ मा सोमो अमुतत्वेन गम्यात् ।

वाजिनो वाजजितो वाज५ मग्नयाश्नो

वृहस्पतैर्भागमवजिघ्रत निमृजानाः ॥ १० ॥

॥ ७ ॥ ( घा० य० ११, १२, १५, १८-२२, २४, २६ )

प्रवर्तत वाजिग्रा द्रव्यं वरिष्ठामनु संवतम् ।

दिवि ते जन्म परममन्तरिक्षे

तय नार्भिः पृथिव्यामधि योनिरित् ॥ ११ ॥

प्रतुर्वधेर्वायकामप्रशस्ती

रुद्रस्य गार्णपत्यं मयोभूरेहि ।

उर्वन्तरिक्षं वीहि स्वस्तिगन्त्युतिः

अभयानि कुण्वन् पुष्पा सयुजां सह ॥ १५ ॥

आगत्य वाज्यध्वान्थं सर्वा मूधो वि धृनुते ।

अग्नि५सधस्यै महति चक्षुषा नि चिकीपते ॥ १८ ॥

आक्रम्य वाजिन् पृथिवीमग्निर्मिच्छ ह्या त्वम् ।

भूम्या वृत्वायं नो ब्रूहि यतः धनेन तं वयम् १९

द्यौस्तै पृष्ठं पृथिवी सधस्यै

आत्माऽन्तरिक्षंथं समुद्रो योनिः ।

विख्याय चक्षुषा त्वमग्निं तिष्ठ पृतन्यतः ॥ २० ॥

उत्क्राम महते सौमगाय

अस्मादास्थानाद् द्रविणोदा वाजिन् ।

वयंथं स्याम सुमतौ पृथिव्या

अग्निं खनन्त उपस्यै अस्याः ॥ २१ ॥

उदक्रमीद् द्रविणोदा वाज्यर्वाकः

सुलोकंथं सुकृतं पृथिव्याम् ।

ततः खनेम सुप्रतीकमग्निं

स्वो गृहाणा अधि नाकमुत्तमम् ॥ २२ ॥

स्थिरो भव वीडवङ्ग आशुर्भव वाज्यध्वनः ।

पृथुर्भव सुपदस्त्वमग्नेः पुरीषवाहणः ॥ २४ ॥

प्रेतुं वाजी कर्निरुद्रानन्दद्रासम् पत्वा ।

मरुद्वाग्निं पुरीष्युं मा पाद्यायुपः पुरा ।

वृषाऽग्निं वृषणं मरुद्वापां गर्भंथं समुद्रियम् ।

अग्न आ वीहि वीतये ॥ ४६ ॥

( ३६१५ )

॥ ८ ॥ ( वा० य० २३३-४.१९ )

अमिथा असि भुवनमसि यन्ताऽसि धृता ।  
 स त्वमग्निं वैश्वानरं सप्रयसं गच्छ स्वाहाकृतः ३  
 स्वगा त्वा देवेभ्यः प्रजापतये  
 ब्रह्मन्नभ्यं भुन्त्स्यामि देवेभ्यः प्रजापतये  
 तेन राध्यासम् ।  
 तं यधान देवेभ्यः प्रजापतये तेन राधुहि ॥ ४ ॥  
 विभूमांश्च प्रभूः पित्राऽभ्योऽसि ह्योऽस्यत्योऽसि  
 मयोऽस्यर्थाऽसि सतिरसि वाज्यसि  
 वृषाऽसि नमणा असि ।  
 ययुर्नामाऽसि शिशुर्नामाऽसि  
 आदित्यानां पत्याऽन्विहि ।  
 देवा आशापाला पुतं देवेभ्योऽश्वं मेघाय  
 प्रोक्षितं रजत इह रतिरिह रमता—  
 मिह धृतिरिह स्वधृतिः स्वाहा ॥ १९ ॥  
 ॥ ९ ॥ ( वा० य० २३३-१७, १४-१७, २०-२१, ३४-३७  
 ३९-४४ )  
 युजन्ति यधमरुतं चरन्तं पारं तस्युषः ।  
 रोचन्ते रोचना दिवि ॥ ५ ॥  
 युजन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे ।  
 शोणा धृष्ण नृवाहसा ॥ ६ ॥  
 यथातो अपो अगनीगन् प्रियामिन्द्रस्य तन्तुम् ।  
 एतं स्तौतृत्वेन पथा पुनरश्वमारवर्तयासि नः ७  
 संधिर्दितो रुदिमना रथः संधिर्दितो रुदिमना हर्यः ॥  
 संधिर्दितो अस्वसृजा ब्रह्मा सोमपुत्रेणः ॥ १४ ॥  
 स्युषं वाजिस्तन्व कल्पयस्व  
 स्युषं यजस्व स्युषं जुषस्व ।  
 महिमा तेऽन्येन न सघ्नो ॥ १५ ॥  
 न वा उ एतन्निपसे न रिप्यसि  
 देवा इदं पि पथिभिः सुगोभिः ।  
 यथासंते सुहृतो ययु ते ययुः  
 तत्र त्वा देवः सविता दधातु ॥ १६ ॥

अग्निः पशुरासीत् तेनायजन्त  
 स एतल्लोकमजयद्यस्मिन्नग्निः  
 स ते लोको भविष्यति  
 तं जैष्यसि पित्रैता अपः ।  
 वायुः पशुरासीत् तेनायजन्त  
 स एतल्लोकमजयद्यस्मिन् वायुः  
 स ते लोको भविष्यति  
 तं जैष्यसि पित्रैता अपः ।  
 सूर्यः पशुरासीत् तेनायजन्त  
 स एतल्लोकमजयद्यस्मिन्सूर्यः  
 स ते लोको भविष्यति  
 तं जैष्यसि पित्रैता अपः ॥ १७ ॥  
 ता उमौ चतुरः पदः संप्रसारयाथ  
 स्युर्गे लोके प्रोर्णवायां  
 वृषां वाजी रेतोधा रेतो दधातु ॥ २० ॥  
 उत्संख्या अथ गुदं धेहि समज्ज चारया वृषन् ।  
 य क्षीणां जीवमोजनः ॥ २१ ॥  
 द्विपंदा याश्चतुष्पदास्त्रिपंदा याश्च पदपंदाः ।  
 विच्छन्दा याश्च सच्छन्दाः  
 सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ३४ ॥  
 महानाम्यो रेवत्यो विद्या आशाः प्रमूर्यरीः ।  
 मैथीर्विद्युतो वाचः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ३५ ॥  
 नार्यस्ते पत्यो लोम विचिन्वन्तु मनीषया ।  
 देवानां पत्यो दिशः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ३६ ॥  
 रजता हरिणीः सोसा युजो युज्यन्ते कर्मभिः ।  
 अश्वस्य वाजिनस्त्वचि  
 सिमाः शम्यन्तु शम्यन्तीः ॥ ३७ ॥  
 कस्त्वा छर्यति कस्त्वा विशास्ति  
 कस्ते गात्राणि शम्यति ।  
 क उ ते शमिता कविः ॥ ३९ ॥  
 ( ३६५९ )



श्रुतवस्तु श्रुतुथा पथं शमितान्ते वि शोसतु ।

संवत्सरस्य तेजसा शमीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ४० ॥

अर्धमासाः परं छिपि ते मान्ना

आ च्छयन्तु शम्यन्तः ।

अहोरात्राणि मरुतो विरिष्टं सुदयन्तु ते ॥ ४१ ॥

दैव्या अप्वर्यवस्था च्छयन्तु वि चं शासतु ।

गात्राणि पर्यशस्ते सिमाः कृण्वन्तु शम्यन्तीः ४२

धौत्ते पृथिव्यन्तरिक्षं वायुश्छिद्रं पृणातु ते ।

सूर्यस्ते नक्षत्रैः सह लोकं कृणोतु साधुया ॥ ४३ ॥

शो भो परेभ्यो गात्रेभ्यः शमस्त्वपरिभ्यः ।

शमस्त्वयौ मज्जभ्यः शम्यन्तु तन्वै तय ॥ ४४ ॥

॥ १० ॥ ( घा० घ० १९।४४ )

तीमान् घोषान् कृण्वते वृषपाणयः

अश्वा रथेभिः सह याजयन्तः ।

अवक्रामन्तः प्रपदैरमित्रान्

शिणन्ति शत्रून् ररनपव्ययन्तः ॥ ४५ ॥

॥ ११ ॥ ( अथर्व० ६।९।१३ )

अथर्वोऽत्रिष्टुप् ।

तनूद्यै वाजिन् तन्वं नयन्ती

वाममसभ्यं धारवतु शर्म तुभ्यम् ।

अहुतो महो धरुणाय देवो

दिवीष्ट ज्योतिः स्वमा मिमीयात् ॥ ३ ॥

॥ १२ ॥ ( अथर्व० १९।२५।१ )

गोपयः । अनुष्टुप् ।

अथान्तस्य त्वा मनसा युनक्ति प्रथमस्य च ।

उत्कूलमुद्रहो मयोदुह्य प्रति धावतात् ॥ १ ॥

॥ १३ ॥ ( सा० ४३५ )

ऋण-अथदस्यू । पुर लणिक ।

आयिमयो आ वाज वाजिनो

अगं देवस्य सवितुः सयम् ।

स्वर्गो अयन्तो जयत

॥ ९ ॥

(३५) दधिका ।

॥ १ ॥ ( अ० ४।१।१-१० )

वाग्देवा गोतयः । त्रिष्टुप् ।

उन वाजिनं पुनरिष्टिर्ध्यां

दधिकामु दधुर्विष्टिर्ध्याम् ।

श्रुतियं द्येनं प्रुगिनपुमान्

चरुत्समयो नृपतिं न शर्म

यं सीमानु प्रयनेय द्रपन्

विभ्यः पुनर्मदति हर्षमाणः ।

पुनर्मिष्टिर्ध्यान्तं मेधयुं न शर्म

रथतुर् धातमिष्ट धजन्तम्

यः स्मार्कधानो गध्या समस्तु

सनुतरक्षरति गोपु गच्छन् ।

अविष्टिर्जीको विदया निचिफ्यत्

तिरो अरति पर्याप आयोः

उत सैनं यल्लमधि न तायुं

अनु क्रोशन्ति क्षितयो भरेणु ।

नीचार्यमानं जलुर्दि न द्येनं

श्रवश्चाच्छा पशुमघं युधम्

उत स्मासु प्रथमः संरिप्यन्

नि वैधेति श्रेण्भी रथानाम् ।

स्त्रजं कृण्वानो जन्वो न शुभ्वा

रेणुं रेरेदित् किरणं दधुभान्

उत स्य वाजी सहुरिष्टतावा

शुश्रूपमाणस्तन्वा समये ।

तुर् यतीपु तुरयवृजिप्यो

अधि भुवोः किरते रेणुमज्जन्

उत स्मास्य तन्यतोर्दि घोः

ऋघायतो अभियुजो भयन्ते ।

यदा सहस्रमभि पीमयौधीद्

दुर्वर्तुः सा भवति भीम ऋजन्

॥ ८ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

(३६४८)

उत सांस्य पनयन्ति जनां  
जुतिं कृष्टिप्रो अभिभूतिमाशोः ।

उतैर्नमाहुः समिधे विपन्तः  
परां दधिना अंसरत् सहस्रैः

॥ ९ ॥

आ दधिनाः शर्वसा पञ्च कृष्टीः  
सूर्ये इव ज्योतिषाऽपस्ततान् ।

सहस्रसाः शतसा धाज्यर्षा  
पूणक्तु मध्या समिमा वर्षांसि

॥ १० ॥

॥ १० ॥ / क्र० ४।१९।(६) त्रिष्टुप्, ६ अष्टुष्टुप् ।

आद्युं दधिनां तमु नु एवाम  
द्विस्वयिष्या उत चर्किराम ।

उच्चन्तीर्मासुपसः स्वयन्तु  
अति विश्वानि दुरितानि पर्यन्

॥ १ ॥

महर्ष्यैर्मर्षयतः क्रतुमा

दधिनाः पुन्यारस्य वृष्णः ।

यं पृथ्व्यो दीदृषांस्तं नाग्निं

द्वदर्थमिवावरुणा ततुर्मि

॥ २ ॥

यो अदरस्य दधिनाः अकारिष्व

समिधे अग्रा उपसो ध्युष्टौ ।

अनागस्तं तमदितिः कृणोतु

स मित्रेण वरुणेना सजोषाः

॥ ३ ॥

दधिकाः इव ऊजो महो यत्

अमन्मदि मयतां नाम भुद्रम् ।

स्वस्तये वरुणं मित्रमग्निं

हवामह इन्द्रं वज्रवाहुम्

॥ ४ ॥

इन्द्रमिवेदुमये वि हयन्त

उदीराणा यशमुपप्रयन्तः ।

दधिकामु सुदंनं मर्त्याय

द्वदर्थमिवावरुणा नो अश्वम्

॥ ५ ॥

दधिकाः अकारिष्व

जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।

सुरभि नो मुखां करद्

प्र ण आर्युषि तारिपत्

॥ ६ ॥

॥ ६ ॥ ( क्र० ४।२०।१-४ ) १ त्रिष्टुप्, २-४ अगती ।

दधिकाः इदु नु चर्किराम

विश्वे इन्मामुपसः स्वयन्तु ।

अपामग्रेऽपसः सूर्यस्य

वृहस्पतेराङ्गिरसस्य जिष्णोः

॥ १ ॥

सत्वा भरिषो गर्विषो दुधम्यसत्

श्रवस्यादिष उपसस्तुरण्यसत् ।

सत्यो द्रवो द्रवरः पतङ्गरो

दधिनावेपमूर्जं स्वर्जनत्

॥ २ ॥

उत सांस्य द्रवतस्तुरण्यतः

पूर्णं न धेरन्तु वासि प्रगार्धिनः ।

द्येनस्यैव धजतो अद्भुसं परि

दधिकाः सहोर्जा तरिषतः

॥ ३ ॥

उत स्व वाजी क्षिपुर्णि तुरण्यति

श्रीवायां यज्ञो अपिकृश आसनि ।

कर्तुं दधिका अलु संतवीत्यत्

पयामङ्गस्यन्वापनीफणत्

॥ ४ ॥

॥ ४ ॥ ( क्र० ४।२१।१-५ )

मेघावरुणैर्विश्वः । दधिना, १ दधिनाः नुवोऽग्निमगेन्द्र-

विष्णुर्दधमन्मदि मयतां नाम भुद्रम् ।

१ इन्द्रं, २ अश्वं, ३ मित्रं ।

दधिक्रावाणं वुधधानो अग्निं  
उपं धुव उपसं सूर्यं गाम् ।  
ग्रधं मंश्चतर्विरेणस्य वधु  
ते विध्यासद्विरिता याधियन्तु  
दधिक्रावां प्रथमो वान्यवर्वा  
ऽग्ने रथानां भवति प्रज्ञानम् ।  
संविदान उपसा सूर्येण  
आदित्येभिर्वसुभिः राक्षिरोभिः  
आ नौ दधिक्राः पथ्यामनक्तु  
ऋतस्य पथ्यामन्वेतवा उं ।  
शृणोतु नो वैव्यं शार्धो अग्निः  
शृण्वन्तु विश्वे महिषा अमृशः  
॥ ५ ॥ ( पा० य० ३४।३९ )

समध्यायोपसौ नमन्त  
दधिक्रावेषु शुचये पदार्थ ।  
अर्वाजीने वसुविदे मगं नो  
रथमिवाश्वा घ्राजिन आ वंहन्तु

( ३६ ) हरिः ।

॥ १ ॥ ( ऋ० १०।९६।१-१३ )

॥ १ ॥ ( ऋ० १०।९६।१-१३ )  
॥ १ ॥ ( ऋ० १०।९६।१-१३ )  
प्र ते महे विदथे शंसिषं हरी  
प्र ते धन्ये वसुयो हर्षतं मर्दम् ।  
धृतं न यो हरिर्मिश्राह सेवत  
आ त्वा विशन्तु हरिर्वपसं गिरः  
हरिं हि योनिर्मभि ये सुमस्वरन्  
दिन्यन्तो हरी दिव्यं यया सद्गः ।  
आ यं पुणन्ति हरिर्मिने धेनव  
इन्द्राय शृणु हरिर्वन्तमन्वत  
सो धेस्य वज्रो हरितो य आयसो  
हरिर्निकामो हरिः गमस्स्योः ।  
पुष्टी मुष्टिप्रो हरिमन्युसायक  
इन्द्रे नि रूपा हरिता मिमिक्षिरे

दिवि न केतुरधि घायि हर्षतो  
विव्यच्छजो हरितो न रथा ।  
तुददं हि हरिश्शिप्रो य आयसः  
सहस्रशोका अमवद्धरिर्मरः  
॥ ३ ॥  
त्वंत्वंमहर्षथा उपस्तुतः  
पूर्वैभिरिन्द्र हरिकेशु यज्वभिः ।  
त्वं हर्षसि तव विश्वमुफ्यम् ।  
असामि राधो हरिजात हर्षतम्  
॥ ४ ॥  
ता वज्रिणं मन्दनं स्तोम्यं मद  
इन्द्रं रथे यहतो हर्षता हरी ।  
पुरुष्यस्मै सर्वनानि हर्षत  
इन्द्राय सोमा हरयो दधन्विरे  
॥ ५ ॥  
अरं कामाय हरयो दधन्विरे  
स्थिराय हिन्वन् हरयो हरी तुरा ।  
अर्वद्विषो हरिर्मिर्वाजिनीवसुः  
सो अस्य कामं हरिर्वन्तमानशे  
॥ ६ ॥  
हरिश्मशारुहर्षिकेश आयसः  
तुरस्तेये यो हरिषा अर्धधत ।  
अर्वद्विषो हरिर्मिर्वाजिनीवसुः  
अति विद्वां दुरिता पार्ष्णिर्दरी  
॥ ७ ॥  
सुवैष यस्य हरिणी चिपेततुः  
शिप्रो वाजाय हरिणी दधिष्वतः ।  
प्र यत् कृते चमसे मर्षेजद्धरी  
पीत्वा मर्दस्य हर्षतस्यान्धसः  
॥ ८ ॥  
उत स्म सद्गं हर्षतस्य पृस्त्योः  
अत्यो न वाजं हरियो अचिक्रदत् ।  
मही चिद्धि धिपणाऽहर्षदोजसा  
बृहद्वयो दधिषे हर्षतश्चिदा  
॥ ९ ॥  
आ रोदंसी हर्षमाणो महित्वा  
नयनव्यं हर्षसि मन्म जु प्रियम् ।  
प्र पृस्त्यमसुर हर्षतं गोः  
आविष्कृधि हर्षे सूर्याय  
॥ १० ॥  
॥ ११ ॥

आ त्वा ह॒र्यन्तं प्रयुजो जना॑नां  
रथे॑ वहन्तु ह॒रि॑शिप्रमिन्द्र ।

पि॒वा यथा॑ प्रतिभृतस्य॒ मध्वो॑  
ह॒र्यन् यज्ञं॑ संध॒मादे॑ दशौणिम्

॥ १२ ॥

अपाः॑ पूर्वे॒षां हरि॑वः सु॒तानां॑  
अथो॑ इदं स॒र्वेन॑ के॒चलं॑ ते ।

म॒मद्वि॑ सोमं म॒धुम॑न्तमिन्द्र  
स॒त्रा वृ॑ष॒ज्जद॑रं आ वृ॒षस्य॑

॥ १३ ॥

॥ २ ॥ ( चा० य० ८।११ )

उ॒पयाम॑गृहीतोऽसि ह॒रि॑रसि  
हा॒रियो॒ज॒नो ह॒रि॑भ्यां त्वा ।

ह॒यो॒घा॒ना स्य॑ स॒हसो॑मा इन्द्रा॒य

॥ ११ ॥

( ३७ ) रथः ।

॥ १ ॥ ( अ० ६।४।१६-१८ )

गर्गो भारद्वाजः । २६ त्रिष्टुप्, २७ जगतां ।

व॒नस्प॑ते वी॒ड्वहो॑ हि भु॒या

अ॒स॒त्स॒खा प्र॑तरणः सु॒धीरः॑ ।

गो॒भिः स॒र्ध॒जो अ॒सि वी॒ज्य॑स्व

आ॒स्था॒ता ते॑ ज॒यतु॑ जे॒त्वा॒नि

॥ ६ ॥

दि॒वस्त्पृ॑थि॒व्याः प॒र्यो॒ज उ॒द्धृतं॑

व॒नस्प॑तिभ्यः प॒र्यो॒धृतं॑ स॒हः ।

अ॒पा॒मो॒ज॒मानं॑ प॒रि गो॒भिरा॑वृतं

इन्द्र॑स्य॒ वज्रं॑ ह॒विषा॑ रथं॒ यज॑

॥ २७ ॥

इन्द्र॑स्य॒ वज्रं॑ म॒रुता॑मनीकं

मि॒त्रस्य॑ ग॒र्भो व॑रुणस्य॒ नाभिः॑ ।

से॒मां नो॑ ह॒व्यदा॑ति जु॒षाणो॑

दे॒वं रथ॑ प्रति ह॒व्या वृ॑माय

॥ २६ ॥

॥ २ ॥ ( ४-५ ) ( चा० य० ९।५ )

इन्द्र॑स्य॒ वज्रो॑ऽसि वा॒जसा॑स्त्वया॒यं वा॒ज॑र॒ सेत् ५

॥ ३ ॥ ( चा० य० १०।११ )

इन्द्र॑स्य॒ वज्रो॑ऽसि

मि॒त्राव॑रुणयोस्त्वा प्र॒ज्ञा॒धोः प्र॒क्षिपा॑ यु॒नजि॑म ।

अ॒व्यथा॑यै त्वा स्व॒धायै॑ त्वा  
अ॒रि॒ष्टो अ॒र्ज॒नो म॒रुता॑ प्र॒सवे॑न जु॒या  
अ॒पा॒म॒ मन॑सा॒ समि॑न्द्रि॒येण॑

॥ २१ ॥

( ३८ ) रथाङ्गानि ।

॥ १ ॥ ( अ० ३।५३।१७-२० )

विद्याभिज्ञो गा॒यिनः॑ । त्रि॒ष्टुप्, १८ वृ॒हती, २० अ॒नुष्टुप् ।

स्थि॒रौ गा॒वौ भ॒वतां॑ वी॒ज्य॑श्चो

मे॒वा वि॑ वी॒हि मा॒ युगं॑ वि॒शारि॑ ।

इन्द्रः॑ पा॒तल्यै॑ द॒दतां॑ श॒रितोः॑

अ॒रि॒ष्टने॑मे॒ अभि॑ नः॒ सच॑स्व ॥ १७ ॥

व॒लं धेहि॑ त॒नूषु॑ नो॒ वल॑मिन्द्रा॒न॒कुत्सु॑ नः ।

व॒लं तो॒काय॑ त॒र्नया॑य जी॒वसे॑

त्वं हि॑ व॒लदा॑ अ॒सि ॥ १८ ॥

अ॒भि व्यै॑यस्व ख॒दिर॑स्य॒ सारं॑

अ॒जो धेहि॑ स्प॒न्दने॑ शि॒शपा॑याम् ।

अ॒क्षं वी॒ज्यो वी॒ज्यित॑ वी॒ज्यस्व॑

मा॒ या॒मा॒द॒साद॑र्धं जी॒हिपो॑ नः ॥ १९ ॥

अ॒यम॑सान् व॒नस्प॑तिः

मा॒ च॒ हा॒ मा॒ च॒ री॒रिप॑त् ।

स्व॒त्सा गृ॒हेभ्य॑ आ॒श्वसा॑ आ॒ वि॒मोच॑नात् ॥ २० ॥

( ३९ ) दुन्दुभिः ।

॥ १ ॥ ( अ० ६।४।१९-३१ )

गर्गो भारद्वाजः । ( ३९ दुन्दुभिः ) । त्रि॒ष्टुप् ।

उ॒प॒ श्वास॑य पृथि॒वीमु॑त चां

पु॒त्रा ते॑ म॒नुतां॑ वि॒ष्टितं॑ जगत् ।

स दु॑न्दु॒मे स॒ज्ज॒रि॒त्रेण॑ दे॒वैः

दु॒राद् द॒र्वीयो॑ अ॒र्प से॒ध शत्रू॑न् ॥ २९ ॥

आ॒ म॒न्द॒य व॒लमो॑र्जो न॒ आ॒ धा

निः॑ र॒निहि॑ दु॒रिता॑ वा॒ध॒मानः॑ ।

अ॒र्प प्रो॑य दु॒न्दुमे॑ दु॒च्छुना॑ इ॒त

इन्द्र॑स्य॒ मुष्टि॑र॒सि वी॒ज्यस्व॑ ॥ ३० ॥

( ३६९६ )

आमूर्ज प्रत्यावर्तयेमाः

केतुमद् दुन्दुभिर्वावदीति ।

समभ्रवर्णाश्चरन्ति नो नरो

अस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु

॥ ३१ ॥

॥ ३० ॥ [४-५] (या० य० १।११-१२)

वृहस्पते वाजं जय वृहस्पतये वाचं वदत

वृहस्पतिं वाजं जापयत ।

इन्द्र वाजं जयेन्द्राय वाचं वदत

इन्द्रं वाजं जापयत

॥ ३२ ॥

एषा वः सा सत्या संवार्गमूद्

यया वृहस्पतिं याजुर्मजीजपत

धजीजपत वृहस्पतिं वाजं

घनस्पतयो विमुच्यध्वम् ।

एषा घः सा सत्या संवार्गमूद्

ययेन्द्रं याजुर्मजीजपत

धजीजपतेन्द्रं वाजं घनस्पतयो विमुच्यध्वम् ॥ ३२ ॥

॥ ३१ ॥ (अथर्व० ५।१०।१-१२)

ब्रह्मा । वनस्पतिः, दुन्दुभिः । मिण्डप्, १ जगती ।

उद्यौषो दुन्दुभिः सत्यनायन्

वानस्पत्यः संवृत उन्मियाभिः ।

वाचं क्षणुद्यानो दमर्यन्सपत्नान्

सिंह ईष जेष्यभूमि तैस्तनीहि

॥ १ ॥

मिह ईयास्तानीद् द्रुघयो विर्वदः

अभिग्रन्दधृमो वासितार्मिव ।

वृषा त्वं यध्वस्ते सपत्नां

ऐन्द्रस्ते शुभो अभिमातिपाहः

॥ २ ॥

वृषेय युधे महसा विद्यानो

गुयभूमि गैव संघनाजित् ।

शुचा विध्य हृदयं परेपां

हित्या ग्रामान् प्रच्युता यन्तु शत्रवः

॥ ३ ॥

संजयन् पृतेना ऊर्ध्वमायुः

गृह्णा गृह्णानो गृह्णधा वि चध्व ।

दैवो वाचं दुन्दुम् आ गुरम्भ

वेधाः शत्रूणामुषं भरस्व वेदः

॥ ४ ॥

दुन्दुभेर्वाचं प्रयतां वदन्ती

आशृण्वती नाथिता घोषयुद्धा ।

नारी पुत्रं धावतु हस्तगृहा

अभिग्री भीता समरे वधानाम्

॥ ५ ॥

पूर्वो दुन्दुमे प्र वदसि वाचं

भूम्याः पृष्ठे वद रोचमानः ।

अभिप्रसेनामभिजज्ञमानो

द्युमद् वद दुन्दुमे सूनृतावत्

॥ ६ ॥

अन्तरेमे नर्मसी घोषो अस्तु

पृथक् ते ध्वनयो यन्तु शोभम् ।

अभि क्रन्द स्तनयोत्तिपानः

श्लोकहन्मित्रतृतीय स्वधी

॥ ७ ॥

धीभिः कृतः प्र वदति वाचं

उद्धर्षय सत्वंनामायुधानि ।

इन्द्रमेदी सत्यनो नि ह्वयस्व

मिदैरभिग्री अव जङ्घनीहि

॥ ८ ॥

संक्रन्दनः प्रवदो घृणुषेणः

प्रवेदकृद् गृह्णधा ग्रामघोषो ।

श्रेयो वन्वानो व्युनानि विद्वाक्

कीर्ति बहुभ्यो वि हर हिराजे

॥ ९ ॥

श्रेयःकेतो वसुजित् सहोयान्

संग्रामजित् संशिनो ब्रह्मणाऽसि ।

अंशान्वि आवाऽधिपवणे

अद्विगव्यन् दुन्दुमेऽधि नृत्य वेदः

॥ १० ॥

शत्रुपाणीपाडभिमातिपाहो

गवेपणः सहमान उद्भित् ।

वाग्वीध भन्त्रं प्र भरस्व वाचं

सांग्रामजित्पायेपमुद् वदेह

॥ ११ ॥

(३७०५)

अच्युतच्युत् समदो गर्भिष्ठो  
मृधो जेता पुरस्ताऽयोधः ।

इन्द्रेण गुप्तो विदधा निचिस्यद्  
हृद्योतेनो ह्रिपतां याहि शीमम् ॥ १२ ॥

॥ ४ ॥ ( अथर्व० ५।२१।१-२ )

अनुष्टुप्, १, ४-५ पद्यापङ्क्तिः १६ जगती ।

विहृदयं यमनस्यं वदामित्रेषु दुन्दुमे ।

विद्रेयं कदमशं मयममित्रेषु

नि दध्यस्ययैनात् दुन्दुमे जहि ॥ १ ॥

उद्धेपमाना मनसा चक्षुषा हृदयेन च ।

धार्वन्तु विव्यतोऽमित्राः प्रश्रसेनाज्ये हृते ॥ २ ॥

धानस्पत्याः संवृत उग्रियाभिर्विभ्वगोऽज्यः ।

प्रश्रानममित्रेभ्यो वृदाज्यैनाभिघोरितः ॥ ३ ॥

यथा मृगाः संविजन्त आरण्याः पुरेयादधि ।

पृथा त्वं दुन्दुमेऽमित्रानभि क्रन्द

प्र ज्ञासयाथो चित्तानि मोहय ॥ ४ ॥

यथा वृकादजावयो धावन्ति बहु विव्यतीः ।

पृथा त्वं दुन्दुमेऽमित्रानभि क्रन्द प्र० ॥ ५ ॥

यथा श्येनात् पतत्रिणः संविजन्ते

अहर्दिवि सिंहस्य स्तनयोऽयथा ।

पृथा त्वं दुन्दुमे० ॥ ६ ॥

पपुऽमित्रान् दुन्दुभिना हृदिणस्याजिनेन च ।

सर्वे देवा अतिवसन् वे संप्रामस्येदते ॥ ७ ॥

यैरिन्द्रः प्रकीडते पदेपैदृष्टायया सह ।

तैरमित्रास्त्रसन्तो नोऽमी ये यन्त्यनीकदाः ॥ ८ ॥

ज्यायोपा दुन्दुभ्योऽभि क्रौशन्तु या दिशः ।

सेनाः पराजिता यतीरुमित्राणामनीकदाः ॥ ९ ॥

( ४० ) द्रुघण, इन्द्रो वा ।

॥ १ ॥ ( ऋ० १०।१०२।१-२२ )

मुन्लो मार्वधः । मिष्टुप्; १, २, १२ वृहती ।

प्र ते रथं मियुहत् - मिन्द्रोऽवतु घृणुया ।

अस्मिन्नाजौ पुरहृत् श्रवाण्यं घनमुखेषु नोऽव ॥ १ ॥

उत् स्म वातो वहति वासो अस्या

अधिरथं यदजयत् सहस्रम् ।

रथीरभून्मुद्रलानी गविष्ठौ

भरे कृतं व्यचिदिन्द्रसेना ॥ २ ॥

अन्तर्यच्छ जिघांसतो वज्रमिन्द्रामिदासतः ।

दासस्य वा मघवन्नार्यस्य वा

सनुतर्येषया वधम् ॥ ३ ॥

उद्रो हृदमपियज्रहपाणः

कूटं स तृहदुभिमितिमेति ।

प्र मुष्कमारः श्रवं इच्छमानो

अजिरं याह भमरत् सिपासन् ॥ ४ ॥

न्यक्रन्दयधुपयन्तं पतं

अमेहयन् वृपमं मर्ष्य आज्ञेः ।

तेन सूर्भवं शतवत् सहस्रं

गवां मुद्रलः प्रघने जिगाय ॥ ५ ॥

ककर्दवे वृपमो युक्त आसीद्

अवावसीत् सारथिरस्य केरी ।

दुधैर्युक्तस्य द्रवतः सहानस

श्रुच्छन्ति प्या निष्पदौ मुद्रलानीम् ॥ ६ ॥

उत प्रधिसुदहस्य विहान्

उपायुनग्वंसगमन् शिशेन् ।

इन्द्र उदावत् पतिमर्ष्यानां ॥ ७ ॥

अरहत पद्याभिः क्रुशान्

शुनर्मृगान्यचरत् कपर्दी

धरत्रायां दार्वानहमानः ।

नृणां कृण्वन् बहवे जनाय

गाः पंस्यशानस्ताविपरिधत् ॥ ८ ॥

इमे तं पश्य वृपमस्य युजं

काष्ठाया मर्ष्ये द्रुघणं शयानम् ।

येन जिगाय शतवत् सहस्रं

गवां मुद्रलः पृतनाज्येषु ॥ ९ ॥

आरे अथा को न्विदुःस्था दंदशे

यं युञ्जन्ति तम्वा स्थापयन्ति ।

नास्मै तृणं नोदकमा भन्ति

उत्तरो धुरो बहति प्रदेदिशत्

॥ १० ॥

परिवृस्तेव पतिविद्यमानन्

पीप्याना कृचक्रेणेव सिञ्चन् ।

एप्यप्या चिद्रथ्या जयेम

सुमङ्गलं सिनवदस्तु सातम्

॥ ११ ॥

त्यं विश्वस्य जगत—अक्षुरिन्द्रासि चक्षुषः ।

धृपा यद्वर्जि वृषणा सिपाससि

चोदयन् वधिणा युजा

॥ २० ॥

( ४१ ) सङ्ग्रामाशिपः ।

॥ १ ॥ ( प्र० ६।७।११-१२ )

पादुमरिद्राजः । १ वर्म, २ धनुः, ३ उषा, ४ आरती,

५ इषुधिः, ६ ( वृषधंस ) साविः, ७ ( उतशर्धस्य ) रश्मयः,

८ अद्याः, ९ रथः, १० रथगोपा, १० प्राहण-पितृ-सोम-

पाशवृषिर्ध-पृषागः, ११-१२ १५-१६ इषवः, १३ प्रतोदः,

१४ हन्म, १५ मुदभूमि-व्यव-प्रहणरवत्यादयः,

१८ वर्म-धोम-वर्णाः, १९ देवमन्त्राणि । त्रिष्टुप्,

६-१० अगती, १२, १३ १५, १६, १९ अनुष्टुप्, १७ पण्डिः

जीमूतस्येव भयति प्रतीकं

यद्वर्मा याति सुमदासुपथ्ये ।

अनायिष्या तन्या जय त्यं

न त्या यमेणो महिमा विपत्तु

॥ १ ॥

धन्यना गा धन्यनाजि अयम्

धन्यना तीमाः सुमदो जयेम ।

धनुः शर्योत्पत्तमं कृणोति

धन्यना तपोः प्रदिशो जयेम

॥ २ ॥

एष्यन्तीयेदा र्गनीगन्ति कर्णे

नियं र्गनीयं पण्यम्यज्जना ।

योपेव शिष्टे वितृतापि धन्यन्

उषा इयं संमते पार्यन्ती

॥ ३ ॥

ते आचरन्ती समनेव योषा

मातेव पुत्रं विभृतामुपस्थे ।

अप शत्रून् विध्यतां संविदाने

आर्त्ता इमे विष्णुरन्ती अमित्रान्

॥ ४ ॥

वृद्धीनां पिता बहुरस्य पुत्रः

चिश्वा कृणोति समनावगस्य ।

इषुधिः सङ्गाः पृतनाश्च सर्वाः

पृष्ठे निनद्धो जयति प्रसृतः

॥ ५ ॥

रथे तिष्ठन् नयति वाजिनः पुरो

यत्रयत्र कामयते सुपायिः ।

अभीशूनां महिमानं पनायत

मनः पश्चादनु यच्छन्ति रश्मयः

॥ ६ ॥

तीमान् योषान् कृण्वते वृषपाणयो

अभ्या रथेभिः सह वाजयन्तः ।

अवकामन्तः प्रपदैरमित्रान्

क्षिणन्ति शत्रूरनेपथ्ययन्तः

॥ ७ ॥

रथवाहनं हविरस्य नाम

यत्रायुधं निर्हितमस्य यमे ।

तत्रा रथमुप श्रमं संदेम

विश्वाहा वयं सुमनस्यमानाः

॥ ८ ॥

स्यादुपसदः पितरो वयोधाः

कृच्छ्रेधितः शक्तीयन्तो गभीराः ।

चित्रसैना इषुयला अमृधाः

सतोर्वीरा उरवो धातसाहाः

॥ ९ ॥

प्राह्मणासः पितरः सोम्यासः

दिवे नो धावापृथिवी अनेदसा ।

पुषा नः पातु दुरितार्हतायुधो

रथा मार्किनो अघर्शन ईशत

॥ १० ॥

सुपर्ण यस्ते मुगो अम्या दन्तो

गोभिः संनद्धा पतन्ति प्रमृता ।

यत्रा नरः सं य वि य द्रयन्ति

तत्रासायमिष्यः शर्म यमन्

॥ ११ ॥

( ३७८ )

ऋजीते परि वृष्टि नो ऽदमा भवतु नस्तनूः ।  
 सोमो अर्थि ब्रवीतु नो ऽदितिः शर्म यच्छतु ॥१२॥  
 आ जटयन्ति सान्वेपां जघनां उप जिघ्रते ।  
 अर्धाजनि प्रचेत्सो ऽर्धास्तुमस्तु चोदय ॥१३॥  
 अर्हिरिव भोगैः पर्वति बाहुं  
 ज्यायां हेति परिधायमानः ।  
 हस्तभ्रो विश्वा व्युनांति विद्वान्  
 पुमान् पुमांसं परि पातु विश्वतः ॥१४॥  
 आलाक्षा या रुद्रीर्णां  
 अयो यस्या अयो सुखम् ।  
 इदं पर्जन्यरेतसु इष्यं देव्यै बृहन्नमः ॥१५॥  
 अयस्वप्ना परा पतु शरव्ये ब्रह्मसंशिते ।  
 गच्छामिग्रान् म पयस्व  
 माऽमीपां कं वनोच्छिद्यः ॥१६॥  
 यत्र बाणाः संपतन्ति कुमार विंशिसा इव ।  
 तत्रा नो ब्रह्मणस्पति—रविंतिः शर्म यच्छतु  
 विश्वाहा शर्म यच्छतु ॥१७॥  
 मर्माणि ते वर्मणा छादयामि  
 सोमस्त्वा राजावृतेनानुं यस्ताम् ।  
 उचोर्धरीयो वरुणस्ते कृणोतु  
 जयन्तं त्वाऽनुं देवा मंदन्तु ॥१८॥  
 यो नः स्यो अरणो यश्च निष्ठयो जिर्वासति ।  
 देवास्तं सर्वे धूयन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरम् ॥१९॥  
 ॥ २ ॥ ( सा० १८५४-६५, १८७१ ) त्रिष्टुप् ।  
 ३ १ २ ३ १ २ ३  
 कङ्काः सुपर्णा अनु यन्त्वेनान्  
 १ २ ३ १ २ ३ १ २  
 गृध्राणामभ्रमसावस्तु सना ।  
 १ २ ३ १ २ ३  
 मैपां मोच्यवहारश्च नेन्द्र  
 १ २ ३ १ २ ३ १ २  
 वयांस्त्वेनाननुसंयन्तु सर्वान् ॥१॥  
 ३ १ २ ३ १ २ ३ ३ ३  
 अमित्रसेनां मघवन्नसां छत्रुयतीमभि ।  
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
 उमो तामिन्द्र वृहन्नमिश्च दहतं प्रति ॥२॥

अन्या अमित्रा भवतादीपाणोऽहय इव ।  
 तेषां वो अग्निनुन्नानामिन्द्रो हन्तु वरवरम् ॥ ३ ॥

## ( ४२ ) राजा ।

॥ १ ॥ ( ऋ० १०१७३१-६ )

ध्रुव आहिरसः । अनुष्टुप् ।

आ त्वाऽहार्पमन्तरैधि ध्रुवस्तिष्ठार्विचाचलिः ।  
 विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु  
 मा त्वन्नाष्टमर्थि भ्रशत् ॥१॥  
 इहैवधि मापं ज्योष्टाः पर्वत इवाविचाचलिः ।  
 इन्द्र इवेह ध्रुवस्तिष्ठे—ह राष्टमु धारय ॥२॥  
 इममिन्द्रो अदीधरद् ध्रुवं ध्रुवेण हविषा ।  
 तस्मै सोमो अर्थि ब्रवत् तस्मा उ ब्रह्मणस्पतिः ३  
 ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवासः पर्वता इमे ।  
 ध्रुवं विश्वमिदं जगद् ध्रुवो राजा विशामयम् ४  
 ध्रुवं ते राजा वरुणो ध्रुवं देवो बृहस्पतिः ।  
 ध्रुवं त इन्द्रश्चाग्निश्च राष्ट्रं धारयतां ध्रुवम् ॥५॥  
 ध्रुवं ध्रुवेण हविषा ऽभि सोमं मृशामसि ।  
 अथो त इन्द्रः केवल्य—विशो बलिहृतस्करत् ॥६॥

॥ २ ॥ ( ऋ० १०१७३१-५ )

अमीवर्ते आहिरसः । अनुष्टुप् ।

अमीवर्तेन हविषा येनेन्द्रो अभिवाचते ।  
 तेनास्मान् ब्रह्मणस्पते ऽभि राष्ट्रार्थं वर्तय ॥१॥  
 अमिष्टवृत् सपत्नी—नाभि या नो अरातयः ।  
 अभि पृतन्यन्तं तिष्ठा—मि यो न इरस्यति ॥२॥  
 अभि त्वा देवः संविता ऽभि सोमो अविवृतत् ।  
 अभि त्वा विश्वा भूतानि अमीवर्तो यथाऽसंसि ॥३॥  
 येनेन्द्रो हविषा कृत्य—मघद् घुम्युत्तमः ।  
 इदं तदकि देवा असपत्नः किलाभुवम् ॥४॥



असपत्नः सपत्नहा ऽभिराष्ट्रो विपासुहिः ।  
यथाऽहमेपां भुतानां विराजानि जनस्य च ॥५॥

॥ ३ ॥ ( ऋ० ६।१७।८ )

भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । चावमानो राजा । त्रिष्टुप् ।

द्वयौ अग्रे रुधिनो विंशति गा  
घधूमतो मधया महौ स्रग्धाद् ।  
अभ्यावर्ती चायमानो ददाति  
दुणाशेयं दक्षिणा पार्थिवानाम् ॥ ८ ॥

॥ ४ ॥ ( अथर्व० ३।११।१-७ )

वशिष्ठ, अथर्व ॥ । क्षत्रियो राजा, इन्द्रश्च । त्रिष्टुप् ।

इममिन्द्र वर्धय क्षत्रियं म इमं  
विशामेकवृष कृणु त्वम् ।  
निरभिर्भानश्नुह्यस्य सर्वास्तान्  
रन्धयास्मा अहमुत्तरेषु ॥ १ ॥

एवं भञ्ज प्राप्ते अश्वेषु गोषु  
निष्टं भञ्ज यो अमित्रो अस्य ।  
घर्भे क्षत्राणामयमस्तु राजेन्द्र  
शत्रु रन्धय सर्वमस्मै  
अयमस्तु धनेपतिर्धनानां  
अय विशां विदपतिरस्तु राजा ।  
अस्मिन्निन्द्र महि वचोसि धेहि  
अयर्चसै कृणुहि शत्रुमस्य  
अस्मै द्वावापृथिवी भूरि वामं  
दुंदायां घर्मदुर्घे इव धेनु ।

अय राजा प्रिय इन्द्रम्य भूयात्  
प्रियो गवामोर्यधानां पशूनाम् ॥ ४ ॥

युनक्ति त उत्तरायन्मिन्द्रं  
येन जयन्ति न पराजयन्ते ।  
यस्त्वा करदेकवृषं जनानां  
उत राशामुत्तमं मानवानाम् ॥ ५ ॥

उत्तरस्यमधरे ते सपत्ना  
ये के च राजान् प्रतिशत्रयस्ते ।  
एकवृष इन्द्रसपा जिगीवान्  
शत्रूतामा भरा भोजनानि ॥ ६ ॥

सिद्धप्रतीको विशां अहि सर्वा  
व्याघ्रप्रतीकोऽयं धाघस्य शत्रून् ।  
एकवृष इन्द्रसपा जिगीवा  
शत्रूतामा रिदा भोजनानि ॥ ७ ॥

॥ ५ ॥ ( अथर्व० ६।८८।३ )

अथर्व । त्रिष्टुप् ।

ध्रुवोऽच्युतः प्र मृणीहि शत्रून्  
शत्रूतोऽध्वरान् पादयस्व ।  
सर्वा दिशः समनसः सुधीचीः  
ध्रुवाय ते समितिः कल्पतामिह ॥ ३ ॥

॥ ६ ॥ ( अथर्व० ७।९४।१ )

सोम ( राजा ) । अनुष्टुप् ।

ध्रुव ध्रुवेण हविषाऽव सोमं नयामसि ।  
यथा न इन्द्रः केवलीर्विशः समनसस्करत् ॥ १ ॥

( १७७० )

# विष्णुः (उपेन्द्रः)

॥ १ ॥ (अ० १।११।१६-२१)

मेधातिथिः काण्डः । विष्णुः । गायत्री ।

अतो देवा अयन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे ।

पृथिव्याः सप्त धामनिः ॥ १६ ॥

इदं विष्णुर्वि चक्रमे मेघा निदधे पदम् ।

समूहलभस्य पांसुरे ॥ १७ ॥

श्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः ।

अतो धर्माणि धारयन् ॥ १८ ॥

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो ब्रूतानि पश्यथे ।

इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ १९ ॥

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ।

दिवीय चक्षुराततम् ॥ २० ॥

तद्विप्रांसो विपन्ययो जागृवांसुः समिन्धते ।

विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥ २१ ॥

॥ २ ॥ (अ० १।१५।१-६)

दीप्यतामो बभूव । विष्णुः । त्रिष्टुप् ।

विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वीचं

यः पार्थिवानि वि ममे रजांसि ।

यो अस्कमायदुत्तरं सघस्यं

विचक्रमाणस्त्रेधोदगायः

॥ १ ॥

प्र तद् विष्णुः स्ववते वीर्येण  
मुगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः ।

यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेषु

अचिक्षिपन्ति भुवनानि विभ्वा

॥ २ ॥

प्र विष्णवे शूयमेतु मन्म

गिरिक्षितं उरगायाय वृष्णे ।

य इदं दीर्घं प्रयतं सघस्यं

एकौ विममे त्रिमिरित् पदेभिः

॥ ३ ॥

यस्य श्री पूर्णा मधुना पदानि

अक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति ।

य उं त्रिधातुं पृथिवीमुत चां

एकौ दाधार भुवनानि विभ्वा

॥ ४ ॥

तदस्य त्रियमभि पाथो अस्यां

नरो यत्र देवयवो मदन्ति ।

उरुक्रमस्य स हि वधुर्गिरिष्या

विष्णोः पदे परमे मघ्न उत्सवः

॥ ५ ॥

ता चां वास्तान्युश्मसि गरम्यं

यत्र गाधो मूरिदृंगा अयासः ।

अत्राह तदुरगायस्य वृष्णाः ।

परमं पदमयं भाति मूरि

॥ ६ ॥

॥ ३ ॥ ( अ० १।१५।१-६ )

दीर्घनमा ओचयः । विष्णुः, १-३ इन्द्राविष्णू । जगती ।

प्र वः पातमन्धसो धियायते

महे शूराय विष्णवे चार्चत ।

या सानुनि पर्वतानामदाभ्या

महस्तस्यतुरर्धतेव साधुना

त्येपमित्या समरणं शिमीधतोः

इन्द्राविष्णू सुतपा वासुरूप्यति ।

या मर्त्यीय प्रतिधीयमानमित्

हृदानोरस्तुरस्तानामुरुप्यथः

ता ई वर्धन्ति महास्य पौंस्यं

नि मातरा नयति रेतसे भुजे ।

दधाति पुत्रोऽर्धं परं पितुः

नाम तृतीयमर्धं रोचने दिवः

तत्तदिवस्य पौंस्यं गृणीमसि

इनस्य त्रातुर्युकस्य मीळद्वयः ।

यः पार्थिवानि त्रिमिदि विगामाभिः

उद क्रमिद्योगायाय जीयसे

मे इदस्य क्रमणे स्युर्दशौ

गमिष्याय मर्त्यो भुरूप्यति ।

तृतीयमस्य नकिरा दधर्गति

पर्यङ्गन पतयन्तः पतत्रिणः

शत्रुभिः स्तोकं नयति च नार्धभिः

शुभं न पुच्छं ध्यतीरपीयिषत् ।

षट्चतुरीरो विमिमान् अर्धकभिः

पुणार्धमारः प्रत्येत्पाह्वम्

॥ ४ ॥ ( अ० १।१५।१-५ )

दीर्घनमा ओचयः । विष्णुः । जगती ।

भयां मित्रो न शेष्यो घृतासुनिः

विभ्रुतपुम्न पयसा उं सुप्रधाः ।

धपा मे विष्णो पिदुषां चिदर्थ्यः

भेतां यद्वा राप्यो दधिर्पता

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ १ ॥

यः पुर्वीयं वेधसे नवीयसे

सुमज्जानये विष्णवे ददाशति ।

यो जातमस्य महतो महि प्रवत्

सेदु श्रवोभिर्युज्यं चिदर्थ्यसत्

तमुं स्तोतारः पुर्व्ये यथा विदः

अतस्य यमं जनुषां पिपरीत ।

आस्यं आनन्तो नाभं चिद् विवक्तन

महस्ते विष्णो सुमतिं भंजामहे

तमस्य राजा वरुणस्तमश्चिना

कलुं सचन्तु मारुतस्य वेधसः ।

दाधार वक्षमुत्तममहर्विदं

व्रजं च विष्णुः सखिवां अपोर्णते

आ यो विवार्य सचथाय दैव्य

इन्द्राय विष्णुः सुकृते सुकृत्तरः ।

वेधा अजिन्वत् त्रिपधस्य आर्ये

अतस्य भागे यजमानमार्भजत्

॥ ५ ॥ ( अ० ५।१।३ )

श्रुतिः-वसुधत आत्रेयः । मरुद्भद्रविष्णवः । त्रिष्टुप् ।

तयं धिये मरुतो मर्जयन्तु

रुद्र यत्ते जनिम चारं चिप्रम् ।

पदं यद्विष्णोरुपमं निधायि

तेन पासि गुह्यं नाम गोनाम्

॥ ६ ॥ ( अ० ६।१५।१-८ )

महस्यलो अरहाजः । इन्द्राविष्णू । त्रिष्टुप् ।

सं वां कर्मणा स्वमिया हिनोमि

इन्द्राविष्णू अपसस्पादे अस्य ।

जुपेयां यमं द्रविणं च धत्तं

अरिरेनः पथिमिः पारयन्ता

या विश्वासां जनितासां मतीनां

इन्द्राविष्णू कलशां सोमधानां ।

प्र यां गिरः शस्यमाना अवन्तु

प्र स्तोमासो गीयमानासो अर्कः

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ३ ॥

॥ १ ॥

॥ २ ॥

(३०९९)

इन्द्राविष्णु मदपती मदालां  
आ सोमं यातुं द्रविणो दधाना ।  
सं वामञ्जत्वपुत्रमिर्मतीनां  
सं स्तोमासः शस्यमानास उन्मयैः

॥ ३ ॥

आ वामभ्यासो अभिमातिपाह  
इन्द्राविष्णु सधमादौ वहन्तु ।

जुपेयां विध्वा हर्षना मतीनां  
उप ब्रह्माणि शृणुतं गिरौ मे

॥ ४ ॥

इन्द्राविष्णु तत् पन्याय्यं वां  
सोमस्य मदं उरु चक्रमाये ।

अर्हणुतमन्तरिक्षं वरीयो  
अप्रथतं जीवसे नो रजोसि

॥ ५ ॥

इन्द्राविष्णु हुविर्वा वावृधाना  
अप्राद्रान्ता नमसा रातहव्या ।

घृतासुती द्रविणं धत्तमसे  
संमुद्रः श्वः कुलशः सोमधानः

॥ ६ ॥

इन्द्राविष्णु पिवतं मर्षो अस्य  
सोमस्य दक्षा जुडरं पूणेत्याम् ।

आ वामभ्यासि मदिराण्यग्मन्  
उप ब्रह्माणि शृणुतं हर्व मे

॥ ७ ॥

उभा जिग्यधुर्न परा जयेथे  
न परा जिग्ये कतुरक्षनैतौ ।

इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथां  
त्रेधा सहस्रं वि तदैर्येत्याम्

॥ ८ ॥

॥ ७ ॥ ( अ० ७।९।१-७ )

मैत्रावरुणैर्विशिष्टः । विष्णुः, ४-६ इन्द्राविष्णु । त्रिष्टुप् ।

परो मात्रया तन्वां वृधान  
न ते महित्वमन्वश्नुवन्ति ।

उमे ते विद्म रजसी पृथिव्या  
विष्णो देव त्वं परमस्य वित्से

॥ १ ॥

न ते विष्णो जार्यमानो न जातो  
देवं महिम्नः परमन्तमाप ।

उदस्तम्ना नाकमृष्यं बृहन्तं  
दाघर्यं प्राचीं ककुर्मं पृथिव्याः

॥ २ ॥

इरावती धेनुमती हि भूतं  
स्यवसिनीं मनुषे दशस्था ।

व्यस्तम्ना रोदसी विष्णवेते  
दाघर्यं पृथिवीमभितो मयूखैः

॥ ३ ॥

उरुं यज्ञाय चक्रयुग लोकं  
जनयन्ता सूर्यमुपासमग्निम् ।

दासस्य चिद् वृषशिप्रस्य माया  
जृघ्नयुर्नरा पृतनाज्येषु

॥ ४ ॥

इन्द्राविष्णु दंष्टिताः शम्बरस्य  
नव पुरो नयति च आधिष्टम् ।

शतं वचिनः सहस्रं च साकं  
हयो अग्रत्यसुरस्य वीरान्

॥ ५ ॥

इयं मनीषा बृहती बृहन्ता  
उरुकृमा तवसा वर्धयेन्ती ।

ररे वां स्तोमं विदर्येषु विष्णो  
पिन्वतमिषो वृजनेष्विन्द्र

॥ ६ ॥

वर्षत् ते विष्णुघ्नास आ कृणोमि  
तन्मे जुपस्व शिपिविष्ट हव्यम् ।

वर्धन्तु त्वा सुपुतयो गिरौ मे  
युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥ ( अ० ७।१०।१-६ )

मैत्रावरुणैर्विशिष्टः । विष्णुः । त्रिष्टुप् ।

नू मतो दयते सन्निप्यन्  
यो विष्णव उरुगायाय दाशत् ।

प्र यः सुत्राचा मनसा यज्ञात  
एतावन्तं नयमाविवासात्

॥ १ ॥

( ३८१० )

त्वं विष्णो सुमतिं विभ्वर्जन्त्यां  
अप्रयुतामेवयाधो मतिं दाः ।  
पचो यथा नः सुवितस्य भूरेः  
अभ्वायतः पुरुषन्द्रस्य रायः

॥ २ ॥

विदेवः पृथिवीमेव पुतां  
वि चक्रमे शतर्चसं महित्या ।  
प्र विष्णुरस्तु त्वसस्तधीयान्  
त्वेषं ह्यस्य स्थयिरस्य नाम

॥ ३ ॥

वि चक्रमे पृथिवीमेव पुतां  
क्षेत्राय विष्णुर्मनुषे दशस्यन् ।  
ध्रुवालो अस्य कौरयो जनांस  
उरुक्षितिं सु जनिमा चकार

॥ ४ ॥

प्र तत् ते अद्य शिपिविष्ट नाम  
अर्यः शैलामि वयुनानि विद्वान् ।  
तं त्वां मृणामि त्वसस्तमव्यान्  
क्षयन्तमस्य रजसः पराके

॥ ५ ॥

किमित् ते विष्णो परिचर्यं भुक्  
प्र यद् धवक्षे शिपिविष्टो अंसि ।  
मा वषो असदप गूह एतद्  
यदन्यरूपः समिधे यभूर्य

॥ ६ ॥

धर्पद् ते विष्णवांस आ कृणोमि  
तन्मे जुपस्व शिपिविष्ट हव्यम् ।  
यधैन्तु त्वा सुपुतयो गिरो मे  
युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः

॥ ७ ॥

॥ ९ ॥ ( अ० १०।१८४।१ )

त्वष्टा, गर्भकर्ता, विष्णुर्वा प्राजापत्य । १ विष्णु-त्वष्ट-  
प्रजापति-धातारः, २ मिनीवालो सरस्वत्यिना,  
३ अश्विनौ । अनुष्टुप् ।

विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टां रूपाणि पिशतु ।

आ सिञ्चतु प्रजापति-र्याता गर्भं दधातु ते ॥ १ ॥

॥ १० ॥ ( अथर्व० ३।१०।४.७ )

वशिष्ठः । ४ सोमा, अग्निः, आदित्यः, विष्णुः, ब्रह्मा, बृहस्पतिः,  
७ अर्यमा, बृहस्पतिः इन्द्रः, वाता, विष्णुः, गरुडो, रुद्रिना,  
वायोः । अनुष्टुप् ।

सोमं राजानमर्चसेऽग्निं गीर्मादयामदे ।

आदित्यं विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम् ॥ ४ ॥

अर्यमणं बृहस्पतिमिन्द्रं दानाय चोदय ।

वातं विष्णुं सरस्वतीं सवितारं च याजिनम् ॥ ७ ॥

॥ ११ ॥ ( अथर्व० ३।१७।५ )

अथर्वः । विष्णुः, रुद्रमाप्रीयो, वीर्यः । भूरिक् ।

ध्रुवा दिनविष्णुरर्धपतिः

कुत्माप्रीयो रक्षिता वीर्य इयवः ।

तेभ्यो नमोऽर्धपतिभ्यो नमो ,

रक्षितभ्यो नम इयुभ्यो नम परभ्यो अस्तु ।

योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः

तं यो जम्मे दध्मः ॥ ५ ॥

॥ १२ ॥ ( अथर्व० ५।२६।७ )

ब्रह्मा । विष्णुः । द्विषदा प्राजापत्या बृहती ।

विष्णुं येनक्तु बहुधा तपोऽस्यस्मिन्ने सुयुजः स्वाहा ७

॥ १३ ॥ ( अथर्व० ६।३।१ )

अथर्वः । इन्द्रावृषो, अदितिः, मरुतः, अपा नपात्, शिन्धवा,  
विष्णुः, योः । यध्वावृहती ।

पातं न इन्द्रावृषणादितिः पान्तु मरुतः ।

अपो नपात्सिन्धवः सप्त पातन्

पान्तु नो विष्णुस्त योः ॥ १ ॥

॥ १४ ॥ ( अथर्व० ७।१७।४ )

मृग्यः । अग्निः, त्वष्टा, विष्णुः । त्रिष्टुप् ।

धाता रतिः संवितेदं जुपन्तां

प्रजापतिर्निधिपतिर्नो अग्निः ।

त्वष्टा विष्णुः प्रजया संरराणो

यजमानाय द्रविणं दधातु ॥ ४ ॥

( ३८९३ )

॥ १५ ( अथर्व० ७।१५।१-२ )

मेधातिथिः । विष्णुः, बह्वनः । त्रिष्टुप् ।

ययोरोजसा स्कमिता रजसि

यो धीर्युधीरर्तमा शविष्ठा ।

यो पत्यते अप्रतीतौ सद्दोभिः

विष्णुमगन्धर्वेण पुर्वहतिः

यस्येदं प्रादिशि यद्विरोचते

प्र चानेति वि च चष्टे शचीभिः ।

पुरा द्वेषस्य धर्मेणा सद्दोभिः

विष्णुमगन्धर्वेण पुर्वहतिः

॥ १६ ( अथर्व० ७।१६।१-८ )

मेधातिथिः । विष्णुः । १ त्रिष्टुप्, २ त्रिवदा विराट्पापयो

१ अथर्वाना वदुपदा विराट् षष्ठी ।

विष्णोर्नुं कुं प्रा योचं धीर्याणि

यः पार्थिवानि विममे रजसि ।

यो अस्त्रमायुदुत्तरं सुधस्यं

विचक्रामाणश्चेधोदगायः

॥ तद्विष्णु स्तपने धीर्याणि

मृगो न भीमः कुचुरो गिरिष्ठाः ।

पुण्यत मा जंगम्यात्परस्याः

यस्योग्रं त्रिषु विमर्मण्यु

अधिश्रियन्ति भुग्नानि विभ्या

उग्र विष्णो पि क्रमस्य उग्र शर्याय नरुधि ।

भुतं धृतयोनि विषु प्रप्रं युमर्पनि तिर ॥ ३ ॥

इदं विष्णुर्ध्वं चक्रमे त्रेधा नि दधे पदा ।

समूदमग्य पांगुरे

त्रीणि पदा वि चक्रमे

इतो धर्माणि धारयन्

विष्णोः कर्माणि पश्यत

इन्द्रस्य युज्यः सर्गा

तद्विष्णोः परमं पुदं

दिवीच चभुरार्ततम्

दिवो विष्ण उत वा पृथिव्याः

महो विष्ण उपोऽन्तर्हितात् ।

दस्तां वृणस्य वृद्धमिदं मर्त्यः

आप्रयच्छन् दक्षिणादौत सत्यान्

॥ १ ॥

॥ १७ ( अथर्व० ७।१७।१, २ )

मेधातिथिः । अमविष्णु । विष्णु ।

अमविष्णु मति तद्वं महित्यं

पापो धृतस्य गुहास्य नाम ।

दमैदमे सम रत्ना वर्धनी

प्रति यां जिह्वा धृतमा वरुण्यान्

अमविष्णु मति धामं त्रिषं वां

धीयो धृतस्य गुहां जुगुप्सां ।

दमैदमे सुपुत्या पापधानां

प्रति यां जिह्वा धृतमुचरण्यान्

॥ १ ॥

॥ १८ ( अथर्व० ७।१८।१ )

मर्त्यस्यः । इन्द्रस्य । शुभे त्रिष्टुप् ।

उमा त्रिगुणं परा जगधे

न परा त्रिगुणे बहुरक्षन्तेनयोः ।

इन्द्रं विष्णो यदप्यगुधेनां

त्रेधा महस्ये पि मर्त्यस्येनाम

॥ १ ॥

## रुद्रदेवता ।

॥ १ ॥ ( अ० १।४३।१-२, ४-६ )

अथो घोरः । गायत्री ।

कद् रुद्राय प्रचेतसे मीळदुष्टमाय तव्यसे ।

येचेम शंतमं दृदे ॥ १ ॥

यथा नो अर्दितिः कृत् पथे नृभ्यो यथा गव्ये ।

यथा तोकाय रुद्रियम् ॥ २ ॥

गायपति मेघपति रुद्रं जलापभेषजम् ।

तच्छुयोः सुस्रमीमहे ॥ ४ ॥

यः शुक्र ईय स्यो हिरण्यमिव रोचते ।

धेष्टो देवानां धनुः ॥ ५ ॥

शं नः कृत्वयेते सुगं मेपार्य मेप्ये ।

नृभ्यो नारिभ्यो गव्ये ॥ ६ ॥

॥ २ ॥ ( अ० १।११४।१-११ )

उत्प अग्निरथ । गायत्री, १०-११ त्रिष्टुप् ।

इमा रुद्राय नृपते कपदिने

क्षयहीराय प्र मरामहे मतीः ।

यथा शमतेद् विपदे चतुष्पदे

विभ्यै पुष्टं प्राप्ते अस्त्रिप्रनातुरम् ॥ १ ॥

मृदा नो रक्षोत नो मयस्त्रिध

क्षयहीराय नर्मता पिपेम ते ।

यच्छं च योद्ध गनुरायेजे विना

तदस्याम् तपं रुद्र प्रणीतिषु ॥ २ ॥

अश्याम ते सुमतिं देवयज्यया

क्षयहीरस्य तव रुद्र मीद्वः ।

सुस्रायभिद् विशो अस्माकमा चर

अरिष्टवीरा जुहवाम ते हविः ॥ ३ ॥

त्वेपं वयं रुद्रं यज्ञसार्धं

धुं कृविमयेति नि दयामहे ।

आरे अस्मद् दैव्यं हेळो अस्यतु

सुमतिमिद् वयमस्या वृणीमहे ॥ ४ ॥

द्विषो यंराहमरुपं कपादिनै

त्वेपं रूपं नर्मता नि दयामहे ।

हस्ते विभ्रद् मेपजा वार्यणि

शमं यमं च्छुदिरसभ्यं यंसत् ॥ ५ ॥

इदं पिपे मयतामुच्यते वचः

स्यावोः स्वादीयो रुद्राय यधेनम् ।

रास्वा च नो अमृत मतेमोजनं

रमते तोकाय तनयाय मृज ॥ ६ ॥

मा नो मदान्तमुत मा नो अशंकं

मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम् ।

मा नो यधीः पितरं मोत मातरं

मा नः प्रियास्तुभ्यो रुद्र रीरियः ॥ ७ ॥

<p>मा नस्तोके तनये मा न आयौ  मा नो गोपु मा नो अश्वेषु रीरिषः ।  वीरान् मा नो रुद्र भासितो बंधीः  हविष्मन्तः सद्मिन् त्वा हवामहे  उप ते स्तोमान् पशुपा इवाकर्  रास्वा पितर्मरुतां सुन्नमसे ।  भद्रा हि ते सुमतिर्मल्लयत्तम  अथा वयमव इत् ते वृणीमहे  आरे ते गोघ्नमुत पूरुषं  क्षयंक्षीर सुन्नमसे ते अस्तु ।  मूळा च नो अधि च ब्रहि देव  अथा च नः शर्म यच्छ द्विषद्वाः  अर्षोचाम नमो अस्मा अवस्यवः  शृणोतु नो हवै रुद्रो मरुत्वान् ।  तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तां  अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत घौः</p>	॥ ८ ॥	<p>मा त्वा रुद्र चुक्रुधामा नमोमिः  मा दुर्दुती वृषम् मा सहती ।  उन्नो वीरौ अर्षय भेषजेभिः  मियक्तं त्वा मियजौ शृणोमि  हवीमभिर्हवते यो हविर्भिः  अव स्तोमेमी रुद्रं दिषीय ।  ऋदुदरः सुहवो मा नो अस्वै  बभ्रुः सुशिप्रौ रीरघन्मनायै  उन्मा ममन्द वृषभो मरुत्वान्  त्वक्षीयसा वयसा नाधमानम् ।  वृणीव च्छायामरुपा अशीय  आ विवासेयं रुद्रस्य सुन्नम्  कः स्य ते रुद्र मूळयाकुः  हस्तो यो अस्ति भेषजो जलावः ।  अपभ्रतो रपसो दैव्यस्य  अमी तु मा वृषभ चक्षमीथाः  प्र बभ्रवै वृषभार्य भितीचे  महो महीं सुप्रतिमीरयामि ।  नमस्या कल्मलीकिनं नमोमिः  शृणीमसि त्वेप रुद्रस्य नाम  स्थिरेभिरङ्गैः पुरुरूप उग्रो  बभ्रुः शुक्रेभिः पिपिशे हिरण्यैः ।  ईशानादस्य भुवनस्य भूरेः  न वा उ योपद् रुद्रादसुर्यम्  अहैन विमर्य सार्यकानि धन्य  अहैन निष्कं यजतं विश्वरूपम् ।  अहंभिदं दयसे विश्वमभं  न वा ओजीयो रुद्र त्वदस्ति  स्तुहि ध्रुतं गतिसदं युवानं  यगं न भीममुपहृतमुग्रम् ।  मूळा जरित्रे रुद्र स्तवानो  अन्यं ते अस्मभि वयन्तु सेनाः</p>	॥ ५ ॥	॥ ५ ॥	॥ ६ ॥	॥ ७ ॥	॥ ८ ॥	॥ ९ ॥	॥ १० ॥	॥ ११ ॥
<p>॥ ३ ॥ ( ऋ० २।३।१-१५ )  एतस्मद् ( आङ्गिरसः शौनहोत्रः पञ्चात् ) मार्गशः शौनकः ।  त्रिष्टुप् ।  आ ते पितर्मरुतां सुन्नमेतु  मा नः सूर्यस्य संदशौ युयोथाः ।  अभि नो वीरो अर्येति क्षमेतु  प्र जायेमहि रुद्र प्रजामिः  त्वादत्तेमी रुद्र शंतमेभिः  शतं हिमा अशीय भेषजेभिः ।  व्यःस्मद् द्वेवो वितरं व्यंहो  व्यमीवाश्चातयस्वा विपूचीः  श्रेष्ठो जातस्य रुद्र श्रियासि  तयस्तमस्तवसां वज्रबाहो ।  परि पाः पारमर्हसः स्वस्ति  विभ्रा अमीती रपसो युयोधि</p>	॥ ११ ॥	॥ १२ ॥	॥ १३ ॥	॥ १४ ॥	॥ १५ ॥	॥ १६ ॥	॥ १७ ॥	॥ १८ ॥	॥ १९ ॥	



कुमारश्चित् पितरं चन्दमानं  
प्रति नानाम रुद्रोपयन्तम् ।  
भूरूर्वातारं सत्पतिं गृणीये  
स्तुतस्त्वं भेषजा रास्यस्यो  
या वो भेषजा मरुतः शुचीनि  
या शतमा वृषणो या मयोभु ।  
यानि मनुर्वृणीता पिता नः  
ता शं च योश्च रुद्रस्य वदिम  
परि णो हेती रुद्रस्य वृष्याः  
परि त्वेषस्य दुर्मतिमेही गाव् ।  
अथ स्थिरा मघवंद्गवस्तनुष्य  
मिहृस्तोकाय तनयाय मूल  
एवा र्षभो वृषभ चेतितान्  
यथा वेव न हृणीये न हंसि ।  
हवनशुभ्रो रुद्रेह बौधि  
युहद् वदेम विदधे सुवीराः  
॥ ४ ॥ ( अ० ७।४६।१-४ )  
मैत्रावरुणिवंसिष्ठः । अगती, ४ त्रिष्टुप् ।  
इमा रुद्राय स्थिरधन्वने गिरः ।  
क्षिप्रैर्ये देवाय स्यधाते ।  
अपाळहाय सहमानाय वेधसे  
तिग्मायुधाय भरता वृणोतु नः  
स हि क्षयेण क्षम्यस्य जन्मनः  
साम्राज्येन दिव्यस्य चेतति ।  
अवग्रयन्तीरुप नो दुरध्वरा  
अनमीयो रुद्र जासु नो भव  
या ते दिद्युदयस्य दिवस्परि  
क्षमया चरति परि सा वृणक्तु नः ।  
सहर्षं ते स्वपिवात भेषजा  
मा नस्तोकेषु तनयेषु रीरिषः  
मा नो यधी रुद्र मा परां दा  
मा ते भूम प्रसितौ दीक्षितस्य ।

आ नो भज यद्विधिं जीयंते  
युयं पात स्पृस्तिभिः सदा नः ॥ ४ ॥

॥ ५ ॥ ( अ० ७।५१।११ )

॥ १२ ॥ मैत्रावरुणिवंसिष्ठः रुद्रः ( यम्यका ) ( गृध्रविमोचनी ऋद् ) ।  
अनुष्टुप् ।

व्यम्यकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।  
उर्वारुकमिव बन्धनात् मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥ १२ ॥

॥ १३ ॥ ॥ ६ ॥ ( वा० य० १।५७-६१ )

एष ते रुद्र भागः सह स्वस्वाम्यिकया तं जुषस्य  
स्याद्वैप ते रुद्र भाग आपस्ते पशुः ॥ ५७ ॥

॥ १४ ॥ अथ रुद्रमदीमहाय देवं व्यम्यकम् ।  
यथा नो यस्यसुस्करद् यथा नः श्रेयसुस्करद्  
यथा नो व्यवसाययात् ॥ ५८ ॥

भेषजमसि भेषजं गवेऽध्वाय पुरुषाय भेषजम् ।  
सुखं भेषाय मेवै ॥ ५९ ॥

॥ १५ ॥ व्यम्यकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनं ।  
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ।

व्यम्यकं यजामहे सुगन्धिं पतिवर्धनं ।  
उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामृतेः ॥ ६० ॥  
एतत् ते रुद्रावसं तेन परो भूर्जवतोऽतीहि ।

॥ १ ॥ अवततधन्वा पिनाकावसुः  
कृत्तिवासा अहिंश्रुसन्नः शिवोऽतीहि ॥ ६१ ॥

ध्यायुषं जमर्षमेः कृद्वपस्य ध्यायुषम् ।  
यद् देवेषु ध्यायुषं तन्नो अस्तु ध्यायुषम् ॥ ६२ ॥

॥ २ ॥ शिवो नामासि स्वर्धितिस्ते पिता  
नमस्ते अस्तु मा मां हिंसीः ।

निर्वर्त्तयाम्यायुषेऽघ्राद्याय प्रजननाय  
रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय ॥ ६३ ॥

॥ ३ ॥ ॥ ७ ॥ ( वा० य० १०।१० )

रुद्र यत् ते क्विपि परं नाम  
तस्मिन् हुतमस्यमेष्टमसि स्वाहा ॥ २० ॥  
( ३८८० )

॥ ८ ॥ ( वा० य० ११।५४ )

रुद्राः सध्रुस्रज्यं पृथिवीं बृहज्ज्योतिः समीधरे ।  
तेषां मानुरजंश्च १-च्छुक्रो देवेषु रोचते ॥ ५४ ॥

॥ ९ ॥ ( वा० य० १६।१-६६ )

नमस्ते रुद्र मन्यवं उतो त इपवे नमः ।  
शाहुभ्यामुत ते नमः ॥ १ ॥

या ते रुद्र शिवा तनूर-घोरार्पापकाशिनी ।  
तया नस्तन्या शन्तमया

गिरिशन्ताभिचाकशीहि ॥ २ ॥  
यामिषु गिरिशन्त हस्ते विमर्षस्तवे ।

शिवा गिरिष तां कुरु मा  
हिंसीः पुरुषं जगत् ॥ ३ ॥

शिवेन वर्चसा त्या गिरिशाच्छां वदामसि ।  
यथा नः सर्वमिज्जगद-यश्मधु सुमना असेत् ॥ ४ ॥

अर्घ्यवोचदधिष्ठा प्रथमो दैव्यो निपक् ।  
अहीञ्च सर्वोऽज्जम्भन्तसर्वोञ्च

यातुष्यान्तोऽधराचीः परासुव ॥ ५ ॥  
असौ यस्ताम्रो अरुण उत यधुः सुमङ्गलः ।

ये चैनं रुद्रा अमितो दिक्षु श्रिताः  
सहस्रयोऽवैपाधु हेड ईमहे ॥ ६ ॥

असौ योऽवसर्पति नीलप्रीवो विलोहितः ।  
उतैनं गोपा अहध्रज्रह्रभ्रुदहायुः

स हृष्टो मृडयति नः ॥ ७ ॥  
नमोऽस्तु नीलप्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे ।

अथो ये अस्य सत्त्वानो-ऽहं तेभ्योऽकरं नमः ॥ ८ ॥  
प्रमुञ्च धन्वंनस्त्वमु-मयोरात्योर्न्याम् ।

याध्वं ते हस्त इपवः परा ता भगवो वप ॥ ९ ॥  
विज्यं धनुः कपर्दिनो विशाल्यो वारणवो २ उत ।

अनेश्वरस्य या इपव मानुरस्य निपङ्गभिः ॥ १० ॥  
या ते हेतिमीदुष्टम् हस्ते यभूव ते धनुः ।

नयासान् विभवत्स्त्वर्म-यश्मया परिभुज ॥ ११ ॥

परि ते धन्वनो हेतिर-स्मान् वृणक्तु विभवतः ।

अथो य इपुधिस्तवारे अस्मन्निर्घेहि तम् ॥ १२ ॥

अवतत्य धनुष्वधु सहस्राक्ष शतैपुधे ।

निशीर्य शल्यानां मुखा शियो नः सुमनो भव १३

नमस्तु आर्यध्याया-नतताय धृण्वे ।

उमाभ्यामुत ते नमो शाहुभ्यां तव धन्वने ॥ १४ ॥

मा नो महान्तमुत मा नो अर्मकं

मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम् ।

मा नो वधीः पितरं मोत मातरं

मा नः म्रियास्तन्यो रुद्र रीरिपः ॥ १५ ॥

मा नस्तोके तनये मा न आर्यपि

मा नो गोपु मा नो अर्धेषु रीरिपः ।

मा नो वीरान् रुद्र सामिनो वधीः

हविष्मन्तः सन्मिन् त्वां हवामहे ॥ १६ ॥

नमो हिरण्यवाहवे सेनान्ये दिशां च पतये नमो

नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः पशूनां पतये नमो

नमः क्षपिर्जराय त्विषीमते पयिनां पतये नमो

नमो हरिकेशायोपवीतिने पुष्टानां पतये नमः १७

नमो बभ्रुशाय व्याधिनेऽक्षानां पतये नमो

नमो भवस्य हेर्ये जगतां पतये नमो

नमो रुद्रायततायिने क्षेत्राणां पतये नमो

नमः सुतायाहन्त्ये वनानां पतये नमः ॥ १८ ॥

नमो रोहिताय स्थपतये वृक्षाणां पतये नमो

नमो भुवन्तये वारिस्वकृतायौषधीनां पतये नमो

नमो मन्त्रिणे वाणिजाय कक्षाणां पतये नमो

नम उच्चैर्धौपायाक्रन्दयते पत्नीनां पतये नमः ॥ १९ ॥

नमः कृत्स्नायतया धावते सत्त्वानां पतये नमो

नमः सहमानाय निव्याधिर्न आध्याधिर्नानां पतये नमो

नमो निपङ्गिणे ककुभाय स्तेनानां पतये नमो

नमो निचेरवे परिचरायारण्यानां पतये नमः २०

नमो वञ्चते परिवञ्चते स्तायुनां पतये नमो  
 नमो निपक्षिण इषुधिमते तस्कराणां पतये नमो  
 नमः सुकायिभ्यो जिघांशुसङ्ग्रहो मुष्णतां पतये नमो  
 नमोऽस्त्रिमङ्ग्रहो नक्तञ्चरङ्ग्रहो विकृन्तानां पतये  
 नमः ॥ २१ ॥  
 नम उष्णीषिणे गिरिचरार्य कुलुञ्जानां पतये नमो  
 नम इषुमङ्ग्रहो धन्वायिभ्यश्च वो नमो  
 नम आतम्वानेभ्यः प्रतिदधानेभ्यश्च वो नमो  
 नम आयच्छुङ्ग्रहोऽस्वर्गप्रश्च वो नमः ॥ २२ ॥  
 नमो विसृजङ्ग्रहो विष्वङ्ग्रहश्च वो नमो  
 नमः स्वपङ्ग्रहो जाग्रपङ्ग्रहश्च वो नमो  
 नमः शयानेभ्य आसीनेभ्यश्च वो नमो  
 नमस्तिष्ठङ्ग्रहो धावङ्ग्रहश्च वो नमः ॥ २३ ॥  
 नमः सुभाभ्यः सुभापतिभ्यश्च वो नमो  
 नमोऽद्वयेभ्योऽद्वयपतिभ्यश्च वो नमो  
 नम आव्याधिनीभ्यो विविध्वन्तीभ्यश्च वो नमो  
 नम उर्गणाभ्यस्तृङ्ग्रहतीभ्यश्च वो नमः ॥ २४ ॥  
 नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो  
 नमो द्रातेभ्यो द्रातपतिभ्यश्च वो नमो  
 नमो गृत्सेभ्यो गृत्सेपतिभ्यश्च वो नमो  
 नमो विरूपेभ्यो विष्वरूपेभ्यश्च वो नमः ॥ २५ ॥  
 नमः सेनाभ्यः सेनानिभ्यश्च वो नमो  
 नमो रुधिभ्यो भरणेभ्यश्च वो नमो  
 नमः शतृभ्यः संप्रहृतीभ्यश्च वो नमो  
 नमो मुहङ्ग्रहो भर्मेकभ्यश्च वो नमः ॥ २६ ॥  
 नमस्तर्क्षभ्यो रथकारेभ्यश्च वो नमो  
 नमः कुलालेभ्यः कर्मरैभ्यश्च वो नमो  
 नमो निपादेभ्यः पुञ्जिष्ठेभ्यश्च वो नमो  
 नमः द्यनिभ्यो मृगपुण्ड्रश्च वो नमः ॥ २७ ॥  
 नमः द्यभ्यः द्यपतिभ्यश्च वो नमो  
 नमो भुवार्य च रुद्रार्य च

नमः शर्वार्य च पशुपतये च  
 नमो नीलग्रीवाय च शितिकण्ठाय च ॥ २८ ॥  
 नमः कर्पदिने च व्युत्तकेशाय च  
 नमः सहस्राक्षाय च शतधन्वने च  
 नमो गिरिशाय्य च शिपिविष्टाय च  
 नमो मीढुष्टमाय चेषुमते च ॥ २९ ॥  
 नमो ह्रस्वार्य च वामनार्य च  
 नमो बृहते च वर्षीयसे च  
 नमो वृद्धार्य च सुवृधे च  
 नमोऽन्यार्य च प्रथमार्य च ॥ ३० ॥  
 नम आशवे चाजिरार्य च  
 नमः शीघ्रार्य च शीघ्रार्य च  
 नम ऊर्म्यार्य चावस्वन्याय च  
 नमो नादेयार्य च द्वीप्यार्य च ॥ ३१ ॥  
 नमो ज्येष्ठार्य च कनिष्ठार्य च  
 नमः ध्रुवजाय चापराजाय च  
 नमो मध्यमार्य चापगन्धार्य च  
 नमो जघन्याय च बुध्न्याय च ॥ ३२ ॥  
 नमः सोभ्यार्य च प्रतिसूर्यार्य च  
 नमो याम्यार्य च क्षेम्यार्य च  
 नमः श्लोक्यार्य चावस्तान्याय च  
 नम उर्वर्यार्य च खल्यार्य च ॥ ३३ ॥  
 नमो वन्यार्य च कक्ष्यार्य च  
 नमः भ्रवार्य च प्रतिभ्रवार्य च  
 नम आशुपेणाय चाशुरंधाय च  
 नमः शूराय चावमेदिने च ॥ ३४ ॥  
 नमो विल्मिने च कषचिने च  
 नमो घर्मिणे च घरुचिने च  
 नमः ध्रुतार्य च ध्रुतसेनार्य च  
 नमो दुन्दुभ्याय चाहनन्याय च ॥ ३५ ॥

नमो ध्रुव्याय च प्रमृश्याय च  
 नमो निषङ्गिणे चेषुधिमते च  
 नमस्तीक्ष्णोपवे चायुधिने च  
 नमः स्वायुधाय च सुधन्वने च ॥ ३६ ॥  
 नमः स्तुत्याय च पथ्याय च  
 नमः काट्याय च नीप्याय च  
 नमः कुल्याय च सरस्याय च  
 नमो नादेयाय च वैशन्तार्य च ॥ ३७ ॥  
 नमः कृप्याय चावदृषाय च  
 नमो वीष्ण्याय चातृप्याय च  
 नमो मेघ्याय च विधुत्याय च  
 नमो वप्याय चावप्याय च ॥ ३८ ॥  
 नमो घात्याय च रेप्याय च  
 नमो वास्तव्याय च वास्तुपार्य च  
 नमः सोमाय च रुद्राय च  
 नमस्ताम्राय चारुणाय च ॥ ३९ ॥  
 नमः शुक्लवे च पशुपतये च  
 नम उग्राय च भीमाय च  
 नमोऽग्रेष्वधाय च दुरेवधाय च  
 नमो हृन्ने च हनीयसे च  
 नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यो नमस्ताराय ॥ ४० ॥  
 नमः शम्भवाय च मयोमवाय च  
 नमः शङ्कराय च मयस्कराय च  
 नमः शिवाय च शिवतराय च ॥ ४१ ॥  
 नमः पार्याय चावाप्याय च  
 नमः प्रतरणाय चोत्तरणाय च  
 नमस्तीर्थ्याय च कुल्याय च  
 नमः शण्याय च फेन्याय च ॥ ४२ ॥  
 नमः सिकत्याय च प्रवाहाय च  
 नमः किंशिलाय च क्षयणाय च

नमः कपर्दिने च पुलस्तये च  
 नम इरिण्याय च प्रमृश्याय च ॥ ४३ ॥  
 नमो वज्र्याय च गोष्ठ्याय च  
 नमस्तल्याय च गेहाय च  
 नमो हृदय्याय च निवेप्याय च  
 नमः काट्याय च गह्वरेष्ठाय च ॥ ४४ ॥  
 नमः शुष्क्याय च हरित्याय च  
 नमः पांशुसव्याय च रजस्याय च  
 नमो लोप्याय चोलप्याय च  
 नम ऊर्ध्वाय च सूर्याय च ॥ ४५ ॥  
 नमः पूर्णाय च पर्णशर्दाय च  
 नम उदुर्माणाय चामिध्नते च  
 नम आसिधते च प्रसिधते च  
 नम इषुकुद्रयो धनुष्कृत्रयश्च वो नमो  
 नमो वः किरिकेभ्यो देवानां हृदयेभ्यो  
 नमो विचिन्वत्केभ्यो ॥ ४६ ॥  
 नमो विक्षिप्तकेभ्यो नम आनिर्हृतेभ्यः ॥ ४७ ॥  
 द्रापे धन्वंसस्पते द्रविद्र नीललोहित ।  
 आस्तां प्रजानामिषां पशूनां  
 मा मेमां रोङ्मो च नः किञ्चिनाममव ॥ ४८ ॥  
 इमा रुद्राय तयसे कपर्दिने  
 अयदीराय प्रमतामहे मतीः  
 यथा शमसद्व द्विपदे चतुष्पदे  
 विभ्वै पुष्टं प्रामे असिधनातुरम् ॥ ४९ ॥  
 या ते रुद्र शिवा तनूः शिवा विश्वाहा मेयजी ।  
 शिवा स्तस्य मेयजी तया नो मृड जीवसे ॥ ५० ॥  
 परि नो रुद्रस्य हेतिर्वृणस्तु  
 परि त्वेपस्य दुर्मतिरघापोः ।  
 अव स्थिरा मघवंद्रयस्तनुष्व  
 मीद्वस्तोकाय तनयाय मृड ॥ ५० ॥

॥ १३ ॥ ( अथर्व ० २१७७६ )

कविज्ञानः । अनुष्टुप् ।

रुद्र जलापमेपज् नीलशिखण्ड कर्मकृत् ।  
प्राशं प्रतिप्राशो जह्य—रुसन् कृण्वोपधे ॥ ६ ॥

॥ १४ ॥ ( अथर्व ० ७८७१ )

अथर्व । जगती ।

यो अशौ रुद्रो यो अस्त्वन्तः  
य ओषधीर्वीरुधे आविवेश ।  
य इमा विश्वा भुर्वनानि चास्तुये  
तस्मै रुद्राय नमो अस्त्युभयै ॥ १ ॥

॥ १५ ॥ ( अथर्व ० १५५१-१६ )

१ त्रिपदा समविषमा गायत्री; २ त्रिपदा भुरिगात्रा त्रिष्टुप्;  
३, ६, ९, १२, १५, १८, २१ त्रिपदा प्राजापत्याऽनुष्टुप्;  
४ त्रिपदा खराद् प्राजापत्या पङ्क्तिः; ५, ८, ११, १४  
त्रिपदा ब्राह्मी गायत्री; ७, १०, १६ त्रिपदा रुक्; १३, १९  
भुरिगु त्रिपदा गायत्री, १४ निवृट्ब्राह्मी  
गायत्री; २० विशदः;

तस्मै प्राच्यां दिशो अन्तर्देशाद्  
भयमिष्वासमनुष्टातारमकुर्वन् ॥ १ ॥  
भूध एनमिष्वासः प्राच्यां दिशो  
अन्तर्देशादनुष्टातानुं तिष्ठति  
नैनं शर्वो न भवो नेशानः ॥ २ ॥

नास्यं पशून् समानान् हिंनस्ति य एवं वेद ॥ ३ ॥

तस्मै दक्षिणाया दिशो अन्तर्देशाद्  
शर्वमिष्वासमनुष्टातारमकुर्वन् ॥ ४ ॥

शर्व एनमिष्वासो दक्षिणाया दिशो  
अन्तर्देशादनुष्टातानुं तिष्ठति  
नैनं शर्वो न भवो नेशानः ।

नास्यं पशून् समानान् हिंनस्ति य एवं वेद ॥ ५ ॥

तस्मै प्रतीच्यां दिशो अन्तर्देशाद्  
पशुपतिमिष्वासमनुष्टातारमकुर्वन् ॥ ६ ॥

पशुपतिरेनमिष्वासः प्रतीच्यां दिशो  
अन्तर्देशादनुष्टातानुं तिष्ठति ।

नैनं शर्वो न भवो नेशानः ।

नास्यं पशून् समानान् हिंनस्ति य एवं वेद ॥ ७ ॥

तस्मा उर्ध्वाच्या दिशो अन्तर्देशाद्  
उग्रं देवमिष्वासमनुष्टातारमकुर्वन् ॥ ८ ॥

उग्र एनं देव इष्वास उर्ध्वाच्या दिशो  
अन्तर्देशादनुष्टातानुं तिष्ठति ।

नैनं शर्वो न भवो नेशानः ।

नास्यं पशून् समानान् हिंनस्ति य एवं वेद ॥ ९ ॥

तस्मै ध्रुवायां दिशो अन्तर्देशाद्  
रुद्रमिष्वासमनुष्टातारमकुर्वन् ॥ १० ॥

रुद्र एनमिष्वासो ध्रुवायां दिशो  
अन्तर्देशादनुष्टातानुं तिष्ठति ।

नैनं शर्वो न भवो नेशानः ।

नास्यं पशून् समानान् हिंनस्ति य एवं वेद ॥ ११ ॥

तस्मा ऊर्ध्वायां दिशो अन्तर्देशाद्  
महादेवमिष्वासमनुष्टातारमकुर्वन् ॥ १२ ॥

महादेव एनमिष्वास ऊर्ध्वायां दिशो  
अन्तर्देशादनुष्टातानुं तिष्ठति ।

नैनं शर्वो न भवो नेशानः ।

नास्यं पशून् समानान् हिंनस्ति य एवं वेद ॥ १३ ॥

तस्मै सर्वेभ्यो अन्तर्देशेभ्य  
ईशानमिष्वासमनुष्टातारमकुर्वन् ॥ १४ ॥

ईशान एनमिष्वासः सर्वेभ्यो  
अन्तर्देशेभ्योऽनुष्टातानुं तिष्ठति

नैनं शर्वो न भवो नेशानः ॥ १५ ॥

नास्यं पशून् न समानान् हिंनस्ति य एवं वेद ॥ १६ ॥

॥ १६ ॥ ( अथर्व ० १२१८३ ) आर्च्यनुष्टुप् ।

सोमं ते रुद्रवन्तमृच्छन्तु ।

ये माधायवो दक्षिणाया दिशोऽभिदासात् ॥ ३ ॥

रुद्र-सहचारी देवगणः ।

( १ ) रुद्रः मित्रावरुणौ च ।

॥ १७ ॥ ( ऋ० १।४१।३ )

कण्वो घोरः । पायत्री ।

यथा नो मित्रो यरुणो यथा रुद्रश्चिकेतति ।

यथा विभ्वं सजोपसः ॥ ३ ॥

( २ ) रुद्रः, दिशः ।

॥ १८ ॥ ( अथर्व० ३।१६।१-६ )

अथर्वी । दिशः, रुद्रः, १ सामयो हेतयः, २ सकामा अविष्यन्,

३ वेराजः, ४ सवाताः प्रविध्यन्तः, ५ सौषधिका निलम्बाः,

६ बृहस्पतिमुता अवसन्तः । त्रिष्टुप्, २, ५-६ अगती;

१-४ मुरिक्; १-६ पञ्चपदा विपरीतपादलक्ष्मा ।

येकुऽस्यां स्थ प्राच्यां दिशि

हेतयो नाम देवास्तेषां वो अग्निरिष्यः ।

ते नो मृडत ते नोऽधि द्रुत

तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो यः स्वाहा ॥ १ ॥

येकुऽस्यां स्थ दक्षिणायां दिशि

अविष्ययो नाम देवास्तेषां यः काम इष्यः ।

ते नो मृडत ते नोऽधि द्रुत

तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो यः स्वाहा ॥ २ ॥

येकुऽस्यां स्थ प्रतीच्यां दिशि

वैराजा नाम देवास्तेषां यः आप इष्यः ।

ते नो मृडत ते नोऽधि द्रुत

तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो यः स्वाहा ॥ ३ ॥

येकुऽस्यां स्थोदीच्यां दिशि

प्रविष्यन्तो नाम देवास्तेषां यो घात इष्यः ।

ते नो मृडत ते नोऽधि द्रुत

तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो यः स्वाहा ॥ ४ ॥

येकुऽस्यां स्थ ध्रुवार्पां दिशि

निलम्बा नाम देवास्तेषां यः ओषधीरिष्यः ।

ते नो मृडत ते नोऽधि द्रुत

तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो यः स्वाहा ॥ ५ ॥

येकुऽस्यां स्थोर्ध्वार्पां दिशि

अर्घ्यस्वन्तो नाम देवास्तेषां यो वृहस्पतिरिष्यः ।

ते नो मृडत ते नोऽधि द्रुत

तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो यः स्वाहा ॥ ६ ॥

॥ १९ ॥ ( अथर्व० ३।२७।१-६ )

दिशः, रुद्रः, १ अग्निः अतित, आदिश्याः, २ इन्द्रः, तिरश्ची-

राजी, पितरः, ३ वरुणः, पुदाकुः, अन्नः, ४ सोमः, इष्यः,

अश्विनः, ५ विष्णुः, कल्पापप्रोवो घोरघः, ६ बृहस्पतिः,

शिवः, वर्षम्, १-६ पञ्चपदा कङ्कमर्तागमाऽष्टि,

( २ अत्यष्टिः, ५ मुरिक् )

प्राची दिग्ग्निरधिपतिरसितो

रक्षितादित्या इष्यः ।

तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो

रक्षितृभ्यो नम इष्युभ्यो नम पश्यो अस्तु ।

योकुऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः

तं वो जम्मे दध्मः ॥ १ ॥

दक्षिणा दिग्गन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी

रक्षिता पितर इष्यः ।

तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो

रक्षितृभ्यो नम इष्युभ्यो नम पश्यो अस्तु ।

योकुऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः

तं वो जम्मे दध्मः ॥ २ ॥

प्रतीची दिग् वरुणोऽधिपतिः

पुदाकु रक्षितालमिष्यः ।

तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो

रक्षितृभ्यो नम इष्युभ्यो नम पश्यो अस्तु ।

योकुऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः

तं वो जम्मे दध्मः ॥ ३ ॥

इन्द्रस्य शर्मांसि । तं त्वा प्र पद्ये तं  
 त्वा प्र विशामि सर्वगुः सर्वपूरुषः  
 सर्वात्मा सर्वतनूः सह यन्मेऽस्ति तेन ॥ १२ ॥  
 इन्द्रस्य वर्मांसि । तं त्वा प्र पद्ये तं  
 त्वा प्र विशामि सर्वगुः सर्वपूरुषः  
 सर्वात्मा सर्वतनूः सह यन्मेऽस्ति तेन ॥ १३ ॥  
 इन्द्रस्य वरूथमसि । तं त्वा प्र पद्ये तं  
 त्वा प्र विशामि सर्वगुः सर्वपूरुषः  
 सर्वात्मा सर्वतनूः सह यन्मेऽस्ति तेन ॥ १४ ॥

### (५) भव-शर्व-रुद्राः ।

॥ २२ ॥ ( अथर्व० ११।२।१-३१ )

त्रिष्टुप् ; १ पराऽतिजागता विराड्जागती ; २ अनुष्टुप्गर्मा  
 पृथ्वपदा पथ्याजगती, ३ चतुष्टुप्दा खराङ्गिक् ।  
 ४-५, ७, १३, १५-१६, २१ अनुष्टुप्, ६ आर्यो गायत्री ;  
 ८ महाबृहता, ९ आर्यो, १० पुरोक्लि त्रिपदा विराट् ;  
 ११ पृथ्वपदा विराड्जगतीगर्मा शकरी, १२ भुक्लि,  
 १४, १७-१९, २३, २६-२७ विराड्गायत्री ; २० भुरिग्गायत्री,  
 २२ विपमपादलक्ष्मा त्रिपदा महाबृहती ; २४, २९ अगती,  
 २५ पृथ्वपदाऽतिशकरी, ३० चतुष्टुप्दा भुक्लि ;  
 ३१ उभयध्वाना विपरीतपादलक्ष्मा पृथ्वपदा ( अगती ? ) ।

भयोशर्या मृडतं भाभि यातं  
 भूतपती पशुपती नमो वाम् ।  
 प्रतिहितामार्यतां मा वि स्नाष्टं  
 मा नो हिंसिष्टं द्विपदो मा चतुष्टुपदः ॥ १ ॥  
 शुनै श्रोष्ट्रे मा शरीराणि कर्तमलित्वेभ्यो गृध्रेभ्यो  
 शै च कृष्णा अविष्यथः ।  
 शक्षिक्वास्ते पशुपते यर्यांसि  
 शै विपुसे मा विदन्त ॥ २ ॥  
 इन्द्राय ते प्राणाय याध्वं ते भय रोपयः ।  
 नमस्ते रुद्र एणमः सहस्राक्षार्यामर्त्यं ॥ ३ ॥  
 गुरुनात् ते नमः एणमः उत्तरादधरादुत ।  
 अमीयगांद् द्विपमपर्यन्तरिक्षाय ते नमः ॥ ४ ॥

मुपाय ते पशुपते यानि चक्षुषि ते भय ।  
 त्वचे रूपाय संदशे प्रतीचीनाय ते नमः ॥ ५ ॥  
 अङ्गेभ्यस्त उदराय जिह्वाया आस्याय ते ।  
 दङ्गयो गन्धाय ते नमः ॥ ६ ॥  
 अस्त्रा नीलशिखण्डेन सहस्राक्षेण वाजिना ।  
 रुद्रेणार्धकघातिना तेन मा समरामहि ॥ ७ ॥  
 स नो भवः परि वृणक्तु विश्वतु  
 आप इषामिः परि वृणक्तु नो भवः ।  
 मा नोऽभि मौस्त नमो अस्तवसै ॥ ८ ॥  
 चतुर्नमो अष्टकृत्वो भवाय  
 दश कृत्वः पशुपते नमस्ते ।  
 तवेमे पञ्च पशवो विमक्ता  
 गावो अश्वाः पुरुषा अजावयः ॥ ९ ॥  
 तव चतर्कः प्रदिशस्तव द्यौः  
 तव पृथिवी तवेदमुग्रोवन्तरिक्षम् ।  
 तवेदं सर्वमात्मन्वय यत् प्राणत् पृथिवीमनु  
 उरुः कोशो वसुधानस्तवाय  
 यस्मिन्निमा विश्वा भुवनान्यन्तः ।  
 स नो मृड पशुपते नमस्ते  
 परः क्रोष्टारो अभिभाः भवानः  
 पुरो यन्त्वग्रुदो विकेश्यः ॥ ११ ॥  
 धनुर्विभर्षि हरितं हिरण्यं  
 सहस्रमि शतवर्षं शिखण्डिनम् ।  
 रुद्रस्येपुश्चरति देवदेतिः  
 तस्यै नमो यतमस्यां दिशीकुतः ॥ १२ ॥  
 योऽभिर्मातो निलयते त्वां रुद्र निचिकीर्षति ।  
 पश्चादनुग्रयुङ्क्षे तं विदस्यं पदनीरिव ॥ १३ ॥  
 भवारुद्रौ सयुजा संविदानौ  
 उमापुत्री चरतो वीर्याय ।  
 ताम्यां नमो यतमस्यां दिशीकुतः ॥ १४ ॥

नमस्तेऽस्त्वायते नमो अस्तु परायते ।  
 नमस्ते रुद्र तिष्ठन् आसीनायोत ते नमः ॥ १५ ॥  
 नमः सायं नमः प्रातः नमो रात्र्या नमो दिवा ।  
 मयार्य च शरार्य चो भाभ्यामकरं नमः ॥ १६ ॥  
 सहस्राक्षमतिपद्मं पुरस्ताद्  
 रुद्रमस्यन्तं बहुधा विपश्चितम् ।  
 मोषाराम जिह्वयेयमानम् ॥ १७ ॥  
 द्यावाभ्यं कृष्णमसितं मृणन्तं  
 भीमं रथं केशिनः पादयन्तम् ।  
 पूर्वे प्रतीमो नमो अस्त्वस्मै ॥ १८ ॥  
 मा नोऽमि स्ना मृत्युं देवहेति  
 मा नः क्रुधः पशुपते नमस्ते ।  
 अन्यत्रासद् दिव्यां शाखां वि धृजु  
 मा नो हिंसीरथि नो ग्रहि  
 परि णो वृद्धिर्मा क्रुधः ।  
 मा त्वया समरामहि ॥ २० ॥  
 मा नो गोपु पुरुषेषु मा गृधो अजाविषु ।  
 अन्यत्रोम वि वर्तय पियारुणां प्रजां जहि ॥ २१ ॥  
 यस्य तस्मा कालिका हेतिरेकं  
 अर्धस्येष वृषणः क्रद् पति ।  
 अभिपुषं निर्णयते नमो अस्त्वस्मै ॥ २२ ॥  
 योऽन्तरिक्षे तिष्ठति विप्रभितो  
 अयज्वनः प्रमृणन् देवपीयून् ।  
 तस्मै नमो दशभिः शकरीभिः ॥ २३ ॥  
 तुभ्यमारुण्याः पशवो मृगा वनै  
 हिता हंसा सुपर्णाः शकुना वयसि ।  
 तव यक्षे पशुपते अस्त्वन्तः  
 तुभ्यं क्षरन्ति दिव्या आपो वृधे ॥ २४ ॥  
 शिदामारां भजगताः पुरीकया  
 जया मत्स्यां रजसा येभ्यो अस्यसि ।  
 न ते दुरं न परिप्राप्ति ते

भव सुद्यः सर्वान् परि पश्यसि  
 भूमिं पूर्वसाङ्गस्युत्तरस्मिन्तस्मिन् ॥ २५ ॥  
 मा नो रुद्र तस्मन्मा विपेण  
 मा नः संस्त्रा दिव्येनाग्निना ।  
 अन्यत्रासद् विद्युतं पातयेताम् ॥ २६ ॥  
 भवो दिवो भव ईशे पृथिव्या  
 भव आ पत्र उर्वेऽन्तरिक्षम् ।  
 तस्मै नमो यतमस्यां दिशीतः ॥ २७ ॥  
 भव राजन् यजमानाय मृड  
 पशुनां हि पशुपतिर्वभूय ।  
 यः श्रद्धाति सन्ति देवा इति  
 चतुष्पदे द्विपदेऽस्य मृड ॥ २८ ॥  
 मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं  
 मा नो वहन्तमुत मा नो वक्ष्यतः ।  
 मा नो हिंसीः पितरं मातरं च  
 स्वां तन्युं रुद्र मा रीरियो नः ॥ २९ ॥  
 रुद्रस्यैलवशुरेभ्यो—ऽसंखलगिलेभ्यः ।  
 इदं महास्येभ्यः श्वरेभ्यो अकरं नमः ॥ ३० ॥  
 नमस्ते घोषिणीभ्यो नमस्ते केशिनीभ्यः ।  
 नमो नमस्कृताभ्यो नमः संभुजतीभ्यः ।  
 नमस्ते देव सेनाभ्यः  
 स्वस्ति नो अर्भयं च नः ॥ ३१ ॥  
 ॥ ३३ ॥ ( अथर्व० ६।३१-२ )  
 शन्तातिः । द्र १ योमृत्पुः, शर्वः, २ मरा, शर्वः । शिष्टपृ ।  
 यमो मृत्युरंघमात्रो निर्वृथो  
 वधुः शर्वोऽस्ता नीलशिरण्डः ।  
 देवजनाः सेनयोत्तस्थिवांसः  
 ते अस्माकं परि वृजन्तु वीरान् ॥ १ ॥  
 मजंसा होमहंरसा घृतेन  
 शर्वायास्त उत रात्रे मयार्य ।  
 नमस्योभ्यो नमः पश्यः  
 कृणोम्यन्यत्रास्वदुर्गविषा नयन् ॥ २ ॥



## ( ६ ) रुद्रः, व्याघ्रः ।

॥ २४ ॥ ( अथर्व० ४।३।१-७ )

अथर्वा । अनुष्टुप्, १ पञ्चापहृत्ति, ३ गायत्री

७ बहुव्रीह्यागर्भोपरिष्टादुद्बुद्धी ।

उदितस्त्रयो अक्रमन् व्याघ्रः पुरुषो वृकः ।

हिरण्यं यन्ति सिन्धवे

हिरण्यं देवो घनस्पतिर्हिरण्यमन्तु शत्रवः ॥ १ ॥

परैणैतु पथा वृकः परमेणोत तस्करः ।

परैण वृत्तती रज्जुः परैणाघायुरर्पेत् ॥ २ ॥

अथ्यौ च ते सुयै च ते व्याघ्र जम्भयामसि ।

आत् सर्वान् विंशतिं नृपान् ॥ ३ ॥

व्याघ्रं दत्ततां घृयं प्रथमं जम्भयामसि ।

आहुं ऐनमथो अहिं यातुधानमथो वृकम् ॥ ४ ॥

यो अद्य स्तेन आर्यति स संविष्टो अपायति ।

पथामपुंसेनैति न्द्रो धर्मेण हन्तु तम् ॥ ५ ॥

मूर्णां मृगस्य दन्ता अपिशीर्णा उ पृष्टयः ।

निष्ठुरैर्गोधा भवतु नीचायच्छायुर्मृगः ॥ ६ ॥

यत् संयमो न वि यमो वि यमो यन्न संयमः ।

इन्द्रजाः सौमजा आधर्वणमसि व्याघ्रजम्भेनम् ॥ ७ ॥

## ( ७ ) रुद्रः ( अग्निः ) ।

॥ २५ ॥ ( ऋ० ४।३।१ )

आमदेवो गौतमः । रुद्रः । शिष्टम् ।

आ षो राजानमध्वरस्य रुद्रं

होतारं सत्ययज्ञं रोदस्योः ।

अग्निं पुरा तनयितनोरुचिसात्

हिरण्यरूपमर्पसे ऋण्यम्

॥ २६ ॥ ( अ० १०।१।८।१-४ )

६३ प्रथमो यामायनः । मृगुः । शिष्टम् ।

परं मृत्यो अनु परं हि पन्थां

गम्ने स्व हर्तरो देवपानात् ।

वधुष्मने दृष्टते तै प्रवीप्ति

मा नः प्रज्ञां रीणि मोत धीरान्

मृत्योः पदं योपयन्तो यदैतु  
द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ।

आप्यार्यमानाः प्रजया धर्मेन

शुद्धाः पुता भवत यज्ञियासः

॥ २ ॥

इमे जीवा वि मृतैरायवृत्रन्

अभूद् भद्रा देवहतिनो अद्य ।

प्राज्ञो अगाम नूतये हसाय

द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः

॥ ३ ॥

इमं जीवेभ्यः परिधि दधामि

मैपां नु गादपरो अर्थमेतम् ।

शतं जीवन्तु शरदः पुरुषाः

अन्तर्मुत्स्य दधतां पर्वतेन

॥ ४ ॥

॥ २७ ॥ ( अथर्व० ६।१३।१-३ )

अथर्वा ( सत्ययजनकामः ) । मृगुः । अनुष्टुप् ।

नमो देववधेभ्यो नमो राजवधेभ्यः ।

अथो ये विद्यानां वधाः

तेभ्यो मृत्यो नमोऽस्तु ते

॥ १ ॥

नमस्ते अधिवाकाय परावाकाय ते नमः ।

सुमत्यै मृत्यो ते नमो दुर्मत्यै ते हृदं नमः ॥ २ ॥

नमस्ते यातुधानेभ्यो नमस्ते भेषजेभ्यः ।

नमस्ते मृत्यो मूलेभ्यो ब्राह्मणेभ्य हृदं नमः ॥ ३ ॥

॥ २८ ॥ ( अथर्व० ४।३।१-७ )

प्रजापति । अतिमृगुः । शिष्टम्, ३ भुरिजगती ।

यमोदनं प्रथमजा श्रुतस्य

प्रजापतिस्तर्पसा ब्राह्मणेऽर्पयत् ।

यो लोकानां विघृतिर्नामिरेणात्

तेनादनेनार्ति तराणि मृत्युम्

॥ १ ॥

येनातरेन भूतकृतोऽति मृत्युं

यमन्यधिन्दन् तर्पसा धर्मेण ।

यं पपाच ब्राह्मणे ब्रह्म पूर्वं

तेनादनेनार्ति तराणि मृत्युम्

॥ २ ॥

( ४०४९ )

यो द्वाधारं पृथिवीं विश्वमोजसं  
 यो अन्तरिक्षमापृणाद् रसेन ।  
 यो अस्तंभान् दिवमूर्ध्वं महिम्ना  
 तेनैदनेनार्तिं तराणि मृत्युम्  
 यस्मान्मासा निर्मितास्त्रिंशदराः ।  
 संवत्सरो यस्मान्निर्मितो द्वादशारः ।  
 अहोरात्रा यं परियन्तो नापुः  
 तेनैदनेनार्तिं तराणि मृत्युम्  
 यः प्राणदः प्राणदवान् यभूष  
 यस्मै लोका वृत्तवन्तः क्षरन्ति ।  
 ज्योतिष्मतीः प्रदिशो यस्य सर्वाः  
 तेनैदनेनार्तिं तराणि मृत्युम्  
 यस्मात् पकाद्भुतं संवभूष  
 यो गायत्र्या अर्घिपतिर्यभूष ।  
 यस्मिन् वेदा निर्हिता विश्वरूपाः  
 तेनैदनेनार्तिं तराणि मृत्युम्  
 अथ याधे द्विपन्तं देवप्रीयं  
 सपत्ना ये मेऽपु ते भवन्तु ।

ब्रह्मैदं विंशजितं पचामि  
 शृण्वन्तु मे अर्धानस्य देवाः

॥ ७ ॥

॥ २९ ॥ ( अथर्व० ७।२०।१ )

यात्रापृथिवी, अन्तरिक्षम्, मृत्युः । विराट् पुरस्ताद्ब्रह्म ।

नमस्कृत्य चावापृथिवीभ्याम् अन्तरिक्षाय मृत्यवे ।  
 मेभ्याम्युर्ध्वंस्तिष्ठन्मा मां हिसिपुरीश्वराः ॥ १ ॥

॥ ३० ॥ ( अथर्व० ६।३।२-३ )

ब्रह्मणः । २ यमः, ३ मृत्युः । २ अतिजगतांभ्यां, ३ जगती ।

नमोऽस्तु ते निर्ऋते तिग्मतेजो  
 अयस्यान् वि वृता बन्धपाशान् ।  
 यमो मह्यं पुनरित् त्वां ददाति  
 तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे

॥ २ ॥

अयस्मर्यं द्रुपदे वैधिप इह  
 अभिहितो मृत्युमिदं सहस्रम् ।  
 यमेन त्वं पितृभिः संविद्वान्  
 उत्तमं नाकमर्धं रोहयेमम्

॥ ३ ॥

( २०५७ )

## सेना विभागः ।

## मरुदेवता

॥ १ ॥ ( ऋ० १।१४,६,८,९ )

मधुरच्छन्दा वैश्वामित्र । गायत्री ।

आवहं स्वधामनु पुनर्गमैत्वमैरिरे ।

दधाना नाम यक्षिणम् ॥ ४ ॥

देवयन्तो यथा मतिमच्छा विद्वत्सु गिरः ।

महामनूयत ध्रुवम् ॥ ६ ॥

धनवधैरभिपुङ्गभिर्मखः सहस्वदर्चति ।

गुणैरिन्द्रस्य कान्यैः ॥ ८ ॥

अतः परिरमुन्ना गहि दिवो वा रोचनादधि ।

रसमस्मिन्नजते गिरः ॥ ९ ॥

॥ २ ॥ ( ऋ० १।१५,१२ )

मेवातिभिः वाण्व । गायत्री ।

मरुत विषत ऋतुना पोत्राद् यक्षं पुनीतन ।

युयं हि द्वा सुदानवः ॥ २ ॥

॥ ३ ॥ ( ऋ० १।३७।१-१५ )

कण्वा वीरः । गायत्री ।

प्रीळं युः शर्षो मारुतमनर्वाणं रथेजुर्मम् ।

कण्वा भूमिं प्र गायत ॥ १ ॥

ये पृथ्वीमिन्द्रादिभिः साकं वाशीभिपुङ्गभिः ।

अजायन्त स्वमानयः ॥ २ ॥

इदेषं दृण्य पपां वज्रा हस्तेषु यद् यदान् ।

नि यामश्चिर्मृजते ॥ ३ ॥

प्र वः शर्षीय चृष्वये त्वेपद्युज्ञाय शुष्मिणे ।

देवसं ब्रह्म गायत ॥ ४ ॥

प्र शैला गोष्वर्ण्यं क्रीळं यच्छर्षो मारुतम् ।

जम्भे रसस्य वावधे ॥ ५ ॥

को वो वरिष्ठ आ नरो दिवश्च गमश्च धृतयः ।

यत् सीमन्तं न धूनुय ॥ ६ ॥

नि यो यामाय मानुषो वध्र उत्राय मन्यवे ।

जिहीतुं पर्वतो गिरिः ॥ ७ ॥

येयामर्ज्मेपु पृथिवी जुर्जुवा इव विशपतिः ।

मिया यामेषु रेजते ॥ ८ ॥

स्थिरं हि जानेमपां ययो मातुर्निरेतवे ।

यत् सीमन्तु द्विता शवः ॥ ९ ॥

उतु त्वे सुनवो गिरः काष्ठा अर्ज्मेव्यजत ।

वाथा अभिष्ठ यातये ॥ १० ॥

त्यं चिद् वा दीर्घं पूयुं मिहो नपातममृधम् ।

प्र च्यावयन्ति यामभिः ॥ ११ ॥

मरुतो यदे वो वलं जनों अचुच्यधीतन ।

गिरिरचुच्यधीतन ॥ १२ ॥

यस्य यान्ति मरुतः गं हं घुघतेऽधुना ।

शृणोति कश्चिदेवाम् ॥ १३ ॥

(४०७५)

॥ यात शीर्षमाशुभिः सन्ति कण्वेषु वो दुर्वः ।  
तत्रो पु मादयाध्वै ॥ १४ ॥  
अस्ति हि प्मा मदाय वः ससिं प्मा वयमेयाम् ।  
विश्वं चिदायुर्जिवसे ॥ १५ ॥

॥ ४ ॥ ( ऋ० १।३८।१-१५ )

कञ्च नूनं कंधाप्रियः पिता पुत्रं न हस्तयोः ।  
दुधिक्ष्वे वृक्षयर्हिषः ॥ १ ॥  
कं नूनं कद् वो धर्थं गन्तां दिवो न पृथिव्याः ।  
कं वो गावो न रण्यन्ति ॥ २ ॥  
कं यः सुम्ना नव्यांसि मरुतः कं सुचिता ।  
कवोऽपु विश्वानि सौमगा ॥ ३ ॥  
यद् युयं पृथिमातरो मर्तांसः स्यातन ।  
स्तोता वो अमृतः स्यात् । ॥ ४ ॥  
मा वो मुगो न यवसे जरिता भूदजोऽप्यः ।  
पथा यमस्य गावुर्ष ॥ ५ ॥  
मो पु णः परापरा निर्द्वेतिर्दुर्हणा वधीत् ।  
पृथीष्ट कृष्ण्या सह ॥ ६ ॥  
सत्यं त्वेया अमवन्तो धर्म्यश्चिदा रुद्रियांसः ।  
मिहै कृण्वन्त्यवाताम् ॥ ७ ॥  
वाध्रेर्व विद्युन्मिमाति धासं न माता लिपकि ।  
यदेपां वृष्टिरसर्जि ॥ ८ ॥  
दियां चित् तमः कृण्वन्ति पर्जन्येनोदवाहेन ।  
यत् पृथिवीं ध्युन्दन्ति ॥ ९ ॥  
अथै स्तनान्मरुतां विश्वमा सद्य पाधिषम् ।  
अरेजन्त प्र मानुपाः ॥ १० ॥  
मरुतो वोळ्पणणिभि—क्षिप्रा रोधस्वतीरुन् ।  
यातेमर्षिद्रयामभिः ॥ ११ ॥  
स्थिरा वः सन्तु नेमयो रथा अभ्वास पयाम् ।  
सुसैस्त्रता अमीशवः ॥ १२ ॥  
अच्छो यद्वा तनां गिरा जरायै प्रहणस्पतिम् ।  
अग्नि मित्रं न दर्शतम् ॥ १३ ॥

मिमीहि श्लोकमास्ये पर्जन्य इव ततनः ।  
गार्य गायत्रमुक्थ्यम् ॥ १४ ॥  
वन्दस्व मरुतं गणं त्वेयं पनस्युमर्किणम् ।  
असे वृद्धा मसाग्निह ॥ १५ ॥

॥ ५ ॥ ( ऋ० १।३९।१-१० )

( प्रणयः = ( विपया ) वृद्धा, ( समा ) सतो वृद्धा । )

प्र यदित्या परावतः शोचिर्न मानस्यथ ।  
कस्य कत्वा मरुतः कस्य यर्षसा  
कं याय कं ह धृतयः ॥ १ ॥  
स्थिरा वः सन्त्वार्यथा परागुर्दे  
वीळ् उत प्रतिष्कर्मे ।  
युष्माकमस्तु तर्विपी पनीयसी  
मा मर्त्यस्य मायिनः ॥ २ ॥  
परा ह यत् स्थिरं हय नरो वर्तयथा गृह ।  
वि यायन धनिर्नः पृथिव्या  
व्याशाः पर्यतानाम् ॥ ३ ॥  
नहि वः शत्रुर्विदिदे अधि घवि  
न भूम्यां रिशादसः ।  
युष्माकमस्तु तर्विपी तनां युजा  
वृद्धासो न चिदाधुर्षे ॥ ४ ॥  
प्र वेपयन्ति पर्यतान् वि विञ्चन्ति धनुस्पर्तान् ।  
प्रो आरुत मरुतो दुर्मदा इध  
देवांसः सर्वथा विशा ॥ ५ ॥  
उपो रथेषु पृथतीत्युग्धं प्रष्टिर्वहति रोहितः ।  
आ वो यामाय पृथिवी चिदध्रोत्  
अवीमयन्त मानुपाः ॥ ६ ॥  
आ वो मधु तनाय कं रुद्रा अवो वृणीमहे ।  
गन्तां नूनं नोऽवसा यया पुरा  
इत्या कण्वाय विभ्युर्षे ॥ ७ ॥  
युष्मेपितो मरुतो मर्त्यपित  
आ यो नो अम्य ईपते ।  
वि तं युयोत शर्वसा व्योजसा  
वि युष्माकामिरुतिभिः ॥ ८ ॥

असामिभिर्मरुत आ न ऊतिभिः	॥ ९ ॥	आ नो रयि मंदच्युतं पुरुषं विश्वधायनम् ।	
गन्ता वृष्टि न विद्युतः		इयतां मरुतो दिवः	॥ १३ ॥
असाम्योजो विभृथा सुदानवो		अधीय यद् गिरीणां यामं शुभ्रा अविध्वम् ।	
असामि धृतयः शर्वः ।		सुयानैर्मैन्दध्य इन्दुमिः	॥ १४ ॥
ऋषिद्विपै मरुतः परिमृन्वव		पृतावतश्चिदेपां सुमं मिक्षेत मर्त्यः ।	
इपं न रूजत द्विपम्	॥ १० ॥	अदाभ्यस्य मन्मभिः	॥ १५ ॥
॥ ६ ॥ ( अ० ८।७।१-३६ )		ये वृप्ता इय रोदसी धमन्त्यनु पृष्टिभिः ।	
पुनर्वरः बाणः । वायवी ।		उत्सं दुहन्तो अक्षितम्	॥ १६ ॥
प्र यद् वस्त्रिपुभमिपं मरुतो विप्रो अक्षरत् ।		उहुं स्वानैमिरीरत् उद् रयैरुं वायुभिः ।	
वि पर्वतेषु राजथ	॥ १ ॥	उत् स्तोमैः पृश्निमातरः	॥ १७ ॥
यद्ग त्विपीयवो यामं शुभ्रा अविध्वम् ।		येनाय तुर्वशं यदुं येन कर्षं धनस्पृतम् ।	
नि पर्वता अहास्तत	॥ २ ॥	राये सु तस्य धीमहि	॥ १८ ॥
उदीरयन्त वायुभिर्वीध्रासुः पृश्निमातरः ।		इमा उ वः सुदानवो घृतं न पिप्यपीरिपः ।	
धुक्षन्त पिप्यपीमिषम्	॥ ३ ॥	यधीन् काण्वस्य मन्मभिः	॥ १९ ॥
वपन्ति मरुतो मिहं प्र वैपयन्ति पर्वतान् ।		कं नूनं सुदानवो मदथा वृक्तयर्हिपः ।	
यद् यामं यान्ति वायुभिः	॥ ४ ॥	ग्रहा को वः सपर्यति	॥ २० ॥
नि यद् यामाय यो गिरि-नि सिन्धयो विधर्मणे ।		नहि भ यदं वः पुरा स्तोमैर्मिर्वृक्तयर्हिपः ।	
महे शुष्माय येमिरे	॥ ५ ॥	शर्धो ऋतस्य जिन्वथ	॥ २१ ॥
युष्मां उ नक्तमृतये युष्मान् दिवा हवामहे ।		समु ह्ये मंहतीरुपः सं क्षोणी समु सूर्यम् ।	
युष्मान् प्रयत्स्यवरे	॥ ६ ॥	सं वज्रं पर्वशो दधुः	॥ २२ ॥
उद् ह्ये अरुणस्त्व-श्चिप्रा यामैमिरीरते ।		वि वृत्रं पर्वशोर्ययुर्वि पर्वतां अराजिनः ।	
धाध्रा अधि ण्णुना दिवः	॥ ७ ॥	सक्राणा वृष्णि पौत्यम्	॥ २३ ॥
सृजन्ति रुदिमोजला पन्थां सूर्याय यातवे ।		अनुं त्रितस्य युध्यतः शुर्ममावश्रुत क्रतुम् ।	
ते भानुमिर्वि तस्यिरे	॥ ८ ॥	अन्विन्द्रं वृत्रतूर्ये	॥ २४ ॥
इमां मै मरुतो गिरि-मिमं स्तोमंमृमुक्षणः ।		विद्युदस्ता अभिर्चवः शिप्रोः शीर्षन् हिरण्ययीः ।	
इमं मै घनता हवम्	॥ ९ ॥	शुभ्रा व्यञ्जत ध्रिये	॥ २५ ॥
त्रीणि सारसि पृश्नयो दुदहे वज्रिणे मरुं ।		उशना यत् पंरावतं उक्ष्णो रन्ध्रमयातन ।	
उत्सं कर्षन्धमुद्रिणम्	॥ १० ॥	घौरं चक्रदद् मिया	॥ २६ ॥
मरुतो यदं यो दिवः सुम्नायन्तो हवामहे ।		आ नो मखस्यं दावने ऽश्वैर्हिरण्यपाणिभिः ।	
आ तू न उर्यं गन्तन	॥ ११ ॥	देवासु उर्यं गन्तन	॥ २७ ॥
ययं हि एा सुदानवो यदां ऋभुक्ष्णो दमै ।		यदेपां पृपती रये प्रष्टिर्वहति रोहितः ।	
उत प्रचेतसो मदं	॥ १२ ॥	यान्ति शुभ्रा रिणद्रुपः	॥ २८ ॥

सुपोमं शयणाव-त्यार्जिके पुस्त्यावति ।

ययुर्निचक्रया नरः ॥ २९ ॥

कदा गच्छाय मरुत इत्या विप्रं हवमानम् ।

माङ्गिकेभिर्नाथमानम् ॥ ३० ॥

कजं नुनं कंधप्रियो यदिन्द्रमजहातन ।

को वः सखित्व औहते ॥ ३१ ॥

सहो पु णो यजहस्वैः कण्वासो अग्निं मरुद्भिः ।

स्तुपे हिरण्यवाशीभिः ॥ ३२ ॥

ओ पु घृणः प्रयज्यु-ना नव्यसे सुवितार्य ।

वधुत्यां विप्रवाजान् ॥ ३३ ॥

गिर्यश्चिन्नि जिहते पर्शानासो मन्यमानाः ।

पर्यताश्चिन्नि येमिरे ॥ ३४ ॥

आक्ष्णयाधानो वह-न्त्यन्तरिक्षेण पततः ।

धातारः स्तुवते चयः ॥ ३५ ॥

अग्निर्हि जानि पृथ्वी-दृष्टन्तो न सूर्ये अचिपा ।

ते भानुमिषि तस्थिरे ॥ ३६ ॥

॥ ७ ॥ ( क्र० ८१०१-१६ )

ओमरिः कण्वः । प्रगायः= ( विषमा कृष्ण, समा सतोबृहती ) ;  
१४ सतो विराट् ।

आ गन्ता मा रिपपयत्

प्रस्थोधानो मापं स्याता समन्यवः ।

स्थिरा विंशमयिष्णवः ॥ १ ॥

धीळुपाविर्मिमरुत ऋभुक्षण

आ रद्रासः सुदीतिभिः ।

इया नो अघा गता पुरस्वृहो

युहमा सोमपिषवः ॥ २ ॥

विष्मा हि रुद्रिपाणां

शुष्ममुग्रं मरुतां शिमीवताम् ।

विष्मोऽपिषव मीळुपांम् ॥ ३ ॥

वि द्रोपानि पारपतन् तिष्ठद् दुच्छुना

उमे युजन्त रोदसी ।

प्र घन्वान्यैरत शुभ्रखादयो

यदेजथ स्वमानवः ॥ ४ ॥

अच्युता चिद् वो अजमन्ना

नानंदति पर्यतासो वनस्पतिः ।

भूमिर्यामेषु रेजते ॥ ५ ॥

अमाय वो मरुतो यातवे द्यौः

जिहति उत्तरा बृहत् ।

यज्ञा नरो देदिशते तनूपु

आ त्वग्नांसि धाङ्गोजसः ॥ ६ ॥

स्वधामनु धियं नरो

महिं त्वेषा अमयन्तो घृषप्तयः ।

वहन्ते अहुतप्लवः ॥ ७ ॥

गोभिर्वाणो अज्यते सोमरीणां

रथे कोशे हिरण्यये ।

गोयन्धवः सुजातास इपे भुजे

महान्तो नः स्पर्से नु ॥ ८ ॥

प्रति वो घृषदज्यो घृष्णे

शर्षाय मास्ताय भरच्यम् ।

हव्या घृषप्रयाणे ॥ ९ ॥

घृषणध्वेन मरुतो घृषन्सुना रथेन घृषनामिना ।

आ ध्येनासो न पक्षिणो घृथा नरो

हव्या नो पीतये गत ॥ १० ॥

समानमन्त्येपां

वि भ्राजन्ते रुक्मासो अधि बानुपु ।

दर्विद्युतस्युर्ध्वः ॥ ११ ॥

त उग्रसो घृषण उग्रबाहयो

नर्किष्टनूपु येतिरे ।

स्थिरा घन्वान्यारुंधा रथेषु वो

अनीकेष्वधि धियः ॥ १२ ॥

येषामणो न समग्रो

नारम त्वेयं शर्षतामेकमिद् भुजे ।

ययो न पित्र्यं सद्दः ॥ १३ ॥

( २३५२ )

तान् वन्दस्व मरुतस्तौ उप स्तुहि  
तेषां हि धुनीनाम् ।

अराणां च चरमस्तदैषां

दाना मूढा तदैषाम्

॥ १४ ॥

सुभगः स व ऊतिपु

आसु पूर्वसु मरुतो व्युष्टिषु ।

यो वा नूनमुतासति

॥ १५ ॥

यस्य वा युयं प्रति शान्तिर्न नर

आ हव्या धीतये गथ

अभि य शुद्धैरुत वाजसातिभिः

सुज्ञा वा धूतयो नशत्

॥ १६ ॥

यथा रुद्रस्य सूनवौ

विधो वशन्त्यसुरस्य वेधसः ।

शुधानस्तथेदस्त

॥ १७ ॥

ये चाहन्ति मरुतः सुदानवः

स्मग्मीळुपश्चरन्ति ये ।

अतश्चिदा न उप वस्यसा हृदा

शुवान् आ यवुध्वम्

॥ १८ ॥

यून् ऊ पु नविष्टया

वृष्णाः पावकां अभि सौभरे गिरा ।

गाय गा इव चक्रेपत्

॥ १९ ॥

साहा ये सन्ति मुष्टिहेव हव्यो

धिर्भासु पृस्तु होतृषु ।

वृष्णाश्चन्द्राश्च सुध्रवस्तमान् गिरा

वन्दस्व मरुतो अह

॥ २० ॥

गार्वाक्षिद् घा समन्यवः

सज्जाल्येन मरुतः सर्वध्वजः ।

रिद्धते ककुभौ मिथः

॥ २१ ॥

मर्तेधिद् यो नृतयो रुक्मवक्षस

उप भ्रातृत्वमार्यति ।

अर्थि नो गात मरुतः सदा हि व

भापित्यमस्ति निधुयि

॥ २२ ॥

मरुतो मरुतस्य न

आ भैपजस्य वहता सुदानवः ।

युयं संपातयः सतयः

॥ २३ ॥

यामिः सिन्धुमर्वथ यामिस्तूर्ध्वथ

यामिर्दशस्यथा क्रिविम् ।

मर्यो नो भूतोतिभिर्मर्योभुवः

शिवामिरसचद्विषः

॥ २४ ॥

यत् सिन्धौ यवसिक्कयां

यत् संमुद्रेषु मरुतः सुवर्हिपः ।

यत् पर्वतेषु भैपजम्

॥ २५ ॥

विभ्वं पश्यन्तो विमृथा तनूष्वा

तेनां नो अर्थि योचत ।

क्षमा रयो मरुत आतुरस्य न

इष्कर्ता विहृतं पुनः

॥ २६ ॥

॥ ८ ॥ ( श्रौ १।६४ १-१५ )

नोधा योतमः । अगती, १५ त्रिष्टुप् ।

वृष्णे शर्षाय सुर्मखाय वेधसे

नोधः सुवृत्तिं प्र भरा मरुद्वपः ।

अयो न धीरो मनसा सुहृद्व्यो

गिरः समजे विदधेष्वाभुवः

॥ १ ॥

ते जज्ञिरे दिव श्रुत्वांस उक्ष्णौ

रुद्रस्य मर्या अस्तुरा अरेपसः ।

पावकासु शुचयः सूर्या इव

सत्त्वानो न द्रप्तिनौ धोरवर्षसः

॥ २ ॥

युवानो रुद्रा अजरा अभोग्धनौ

ववक्षुरभिगायः पर्वता इव ।

हृब्धा चिद् विभ्वा भुवनाति पार्थिवा

प्र च्यावयन्ति दिव्यानि मृजमना

॥ ३ ॥

चित्रैरञ्जिमिर्वपुषे व्यञ्जते

यक्षःसु रुक्मां अर्थि येतिरे शुभे ।

गंसैष्वेषां नि मिमृक्षुर्गृह्यः

साकं जज्ञिरे स्वधर्या दिधो नरः

॥ ४ ॥

( ४१६८ )

इशानकृतो धुनयो विशादसो  
 वातान् विद्युतस्तर्विपीभिरकृत ।  
 दुहन्त्यूर्ध्वदिव्यानि धृतयो  
 भूमि पिबन्ति पर्यस्ता परित्यज्यः  
 पिबन्त्यपो मरुतः सुदानवः  
 पर्यो घृतवद् विदधेयामुवः ।  
 अत्यं न मिहे वि नयन्ति याजिनं  
 उत्तं दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितम्  
 महिषासौ मायिनश्चित्रमानयो  
 गिरयो न स्वतवसो रघुप्यदः ।  
 मृगा इव हस्तिनः खादथा घना  
 यदारुणीषु तविपीरयुग्म्यम्  
 सिंहा इव नानदति प्रचैतसः  
 पिशा इव सुपिशा विभ्यवेदसः ।  
 क्षपो जिन्वन्तः पृपतीभिर्मुष्टिभिः  
 समिक् स्याधः शयसाहिमन्यवः  
 रोदसी आ वदता गणधियो  
 नृपाचः शूराः शयसाहिमन्यवः ।  
 आ घन्धुरेण्यमतिर्न दंशता  
 विद्युन्न तस्यौ मरुतो रधेय वः  
 विभ्यवेदसो रयिभिः समौकसः  
 समिन्नासुस्तर्विपीभिर्विशानः ।  
 अस्तारु इषु दधिरे गर्मस्त्रयोः  
 अनन्तशुष्मा घृपद्यादयो नरः  
 हिरण्ययैभिः पविभिः पयोऽध  
 उज्जिग्रन्त आपण्योऽं न पर्यतान् ।  
 मृगा मयासः स्युर्हृतो धुवन्त्युतो  
 दुधरुतो मरुतो भाजरेष्टयः  
 घृषु पायकं घनिनं पित्र्यर्षणि  
 रुद्रस्य सुनुं दयसा गृणीमसि ।  
 रुज्जुतरं तपसं मारुतं गणं  
 ऋजीपिणं घृपणं मद्यत ध्रिये

प्र नू स मरुतः शर्वसा जना अति  
 तस्यौ वं ऊती मरुतो यमावत ।  
 अर्वाङ्गिर्वाजं भरते घना नृभिः  
 आपृच्छयं कतुमा शैति पुष्यति  
 चरुत्वं मरुतः पुस्तु दुष्टं  
 घुमन्तं शुष्मं मघवंस्तु घत्तन ।  
 धनस्पृतमुत्थं विभ्वर्चर्षणि  
 तोकं पुष्येमु तर्नयं शतं हिमाः  
 नू शिरं मरुतो शीरधन्तं  
 श्रुतीपाहं रयिमस्मात्तु घत्त ।  
 सहस्रिणं शक्तिनं शशुयालं  
 प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात्

॥ ५ ॥

॥ १३ ॥

॥ ६ ॥

॥ १४ ॥

॥ ७ ॥

॥ १५ ॥

॥ ९ ॥ ( ऋ० १८५१-१० )

गोतमो राहुवणः । जयतीः ५, १२ त्रिष्टुप् ।

॥ ८ ॥

प्र ये शुम्भन्ते जनयो न सतयो  
 यामन् रुद्रस्य सुनवः सुदंसनः ।  
 रोदसी हि मरुतद्यकिरे घृधे  
 मरुन्ति शीरा विदधेयु घृष्ययः

॥ ९ ॥

॥ १ ॥

॥ १० ॥

त उज्जितासौ महिमानमाशत  
 द्विवि रुद्रासौ अधि चकिरे सदैः ।  
 अचैन्तो अकं जूनयन्त इन्द्रियं  
 अधि धियो दधिरे पृश्निमातरः

॥ २ ॥

॥ ११ ॥

गोमातरो यच्छुमयन्ते अश्रिभिः  
 तनूपं शुष्मा दधिरे विरुम्भतः ।  
 बाधन्ते विभ्वमभिमातिनमप  
 घर्मान्येपामनु रीयते घनम्

॥ ३ ॥

॥ १२ ॥

वि ये भाजन्ते सुमपाय श्रुष्टिभिः  
 प्रच्यापयन्तो अच्युता विदोर्जमा ।  
 मनोनुयो यन्मरुतो रघेया  
 घृपयातासुः पृपतीर्युग्म्यम्

॥ ४ ॥

( ५१८३ )



प्र यद् रथेषु पृथ्वीर्युग्ध्वं  
 याजे अद्रि मरुतो रंहयन्तः ।  
 उतारुपस्य वि स्थान्ति धाराः  
 चर्मैवोदभिव्यन्दन्ति भूमं  
 आ वो वहन्तु सप्तयो रघुप्यदो  
 रघुपत्वानः प्र जिगात बाहुभिः ।  
 सीदता वर्धिरुव यः सदस्कृतं  
 मादयेष्वं मरुतो मघो अग्नेसः  
 तैऽवर्धन्त स्वतवसो महित्वना  
 नाकं तस्थुरुव चकिरे सवः ।  
 विष्णुर्यज्ञावद् वृषणं मद्भ्युतं  
 यथो न सीदन्नाधि वर्धिरपि मिथे  
 शरा इवेद् युयुधयो न जग्मयः  
 अवस्यथो न पूतनासु येतिरे ।  
 मयन्ते विश्वा भुवना मरुद्गणो  
 राजान इव त्वेपसदशो नरः  
 त्वष्टा यद् यज्ञं सुकृतं हिरण्यथं  
 सहस्रश्रुष्टिं स्वप्ना अवर्तयत् ।  
 धत्त इन्द्रो नर्यपांसि कर्तुये  
 अर्हन् धृत्रं निरुपामौग्जवर्णयम्  
 ऊर्ध्वं तुनुद्रेऽधत्त त ओजसा  
 दाहृष्टाणं चिद् विभिदुर्वि पर्वतम् ।  
 धमन्तो घाणं मरुतः सुदानयो  
 मदे सोमस्य रण्यानि चकिरे  
 सिक्कं तुनुद्रेऽधत्त तया दिवा  
 धमिञ्जुप्रत्सं गोतमाय तृष्णजे ।  
 आ गच्छन्तीमवसा चित्रमानघः  
 कामं विप्रस्य तर्पयन्त धामभिः  
 या यः शर्म दानमानाय सन्ति  
 शिषातुनि दानुपै यच्छ्रुताधि ।  
 अगम्यं नानि मरुतो पि यन्त  
 रयि नो धत्त धृपणः सुपीरम्

॥ १० ॥ (ऋ० १।८६।१-१०) गावता ।  
 मरुतो यस्य हि क्षये प्राया दिवो विमहसः ।  
 स सुगोपातमो जनः ॥ १ ॥  
 यज्ञैवो यज्ञवाहसो विप्रस्य वा मतीनाम् ।  
 मरुतः शृणुता इवम् ॥ २ ॥  
 उत वा यस्य वाजिनो ऽनु विप्रमर्तक्षत ।  
 स गन्ता गोमति व्रजे ॥ ३ ॥  
 अस्य वीरस्य वर्धिरपि सुतः सोमो दिविष्टिपु ।  
 उप्यं मर्दञ्च शस्यते ॥ ४ ॥  
 अस्य औपन्त्वा भुगो विश्वा यज्ञर्षणीरुभिः ।  
 सूरं चित् सक्तुपीरिवः ॥ ५ ॥  
 पूर्वभिर्हि वृदाशिम शरद्विर्मरुतो वयम् ।  
 अबोभिश्चर्षणीनाम् ॥ ६ ॥  
 सुभगः स प्रयज्यवो मरुतो अस्तु मर्त्यैः ।  
 यस्य प्रयांसि पर्पथ ॥ ७ ॥  
 शशमानस्य वा नरः स्वेदस्य संत्यशवसः ।  
 विदा कामस्य वेनतः ॥ ८ ॥  
 यूयं तत् संत्यशवस आविष्कृतं महित्वना ।  
 विध्यता विद्युता रक्षः ॥ ९ ॥  
 गृहता गृह्यं तमो वि यात विश्वमन्निर्गम् ।  
 ज्योतिष्कर्ता यदुद्गमसि ॥ १० ॥  
 ॥ ११ ॥ (ऋ० १।८७।१-६) जगती ।  
 प्रत्यक्षसुः प्रतवसो विरिञ्चिनो  
 अनानता अविथुरा अजीपिणः ।  
 जुष्टमासो नृत्तमासो अजिभिः  
 व्यानजे के चिदुक्षा इव स्तुभिः ॥ १ ॥  
 उपहरेषु यदर्विष्वं ययि  
 यय इव मरुतः केन चित् पथा ।  
 द्योतन्ति कोशा उप यो रयेप्या  
 घृतमुक्षता मधुवर्णमर्चते ॥ २ ॥

प्रेयामर्जमेपु विद्युत्वे रजते  
भूमिर्यामेपु यद्ध युजते शुभे ।  
ते क्रीळयो धुनयो भ्राजदप्रयः  
स्वयं महित्वं पनयन्त घृतयः  
स हि स्वसृत् पृषदभ्यो युवा गणोऽ  
अथा ईशानस्तविपीमिरावृतः ।  
असि सत्य श्रृणयावानेद्यो  
अस्या धियः प्राविताथा वृषा गणः  
पितुः प्रलस्य जन्मना वदामसि  
सोमस्य जिह्वा प्र जिगाति चक्षसा ।  
यक्षीमिन्द्रं शम्भृकाण आशत  
आदिश्रामानि युशियानि दधिरे  
धियस्ते कं भानुभिः सं निमिक्षिरे  
ते रक्षिमिस्त श्रुकभिः सुजादयः ।  
ते वाशीमन्त इप्सिणो अमीरयो  
विदे म्रियस्य मरुतस्य धाक्षः

॥ १२ ॥ ( ऋ० १।८।१-६ )

( शिष्टपु. १, ६ प्रक्षारपङ्क्तिः, ५ विराद्धृषा ) ।

आ विद्युन्मर्द्धिमवतः स्युर्कैः  
रथैर्भिर्यात ऋष्टिमद्भिरवपणैः ।  
आ वरिष्ठया न हृषा  
ययो न पतता सुमायाः  
तेऽरुणेभिर्वरमा पिशङ्गैः  
शुभे कं यान्ति रथवृभिर्गवैः ।  
रुस्मो न चित्रः स्वधितवान्  
पुण्या रथस्य जङ्घनन्त भूर्म  
ध्रिये कं यो अथि तनूपु वाशीः  
मेधा वना न कृण्वन्त ऊर्ध्वा ।  
युष्मभ्यं कं मरुतः सुजाताः  
तुविद्युन्नासां घनयन्ते अद्रिम्

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

अहानि गृध्राः पर्या व आगुः  
इमां धियं वाकांर्या च देवीम् ।  
ब्रह्म कृण्वन्तो गोतमासो अकैः  
ऊर्ध्वं तुन्द्र उत्साधि पिवञ्चै  
पतत् त्यन्न योजनमचेति  
सुस्वहं यन्मरुतो गोतमो वः ।  
पश्यन् हिरण्यचक्रानयोदंष्ट्रान्  
विधावतो वराहान्  
एषा स्या वो मरुतोऽनुमर्त्री  
प्रति प्रोमति वाधतो न धाणी ।  
अस्तोमयद् वृथासा मनु स्वधां गर्भस्थोः ॥ ६ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ८ ॥

॥ १३ ॥ ( ऋ० १।२३।८ )  
परच्छेरो देवोदाधिः । अत्यष्टिः ।  
मो पु वो असदुभि तानि पौस्या  
सना भूयन् युजानि मोत जारिपुः  
असत् पुरोत जारिपुः ।  
यद् वक्षिन्नं युगेयुगे नव्यं घोषादमत्यम् ।  
असासु तन्मरुतो यद् वदुर्द  
विधूता यद् वदुर्दम्

॥ १४ ॥ ( ऋ० १।२६।१-१५ )

अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । अगतो, १४-१५ विष्टुः ।

तद्यु घोचाम रभसाय जन्मते  
पूर्वं महित्वं धूपभस्य केतवै ।  
प्रेषेव यामन मरुतस्तुविष्यणो  
युञ्जेय शक्रास्तविपाणि कर्तन  
नित्यं न सुनुं मधु विध्रत उप  
क्रीळन्ति क्रीळा विदथेपु घृष्ययः ।  
नक्षन्ति रुद्रा अवसा नमस्विनं  
न मधन्ति स्वतघसो हविष्ठुर्तम्  
यस्मा ऊमासो अमृता अरासत  
रायस्पोषं च हविषां दवाशुषं ।  
उक्षन्त्यस्मै मरुतो हिता ईष  
पुरु रजांसि पर्यसा मयोमुवः

॥ १ ॥

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ३ ॥

आ ये रजोसि तवैपीभिरव्यत  
 प्र व पवासुः स्वयतासो अघ्नजनः ।  
 भयन्ते विश्वा भुवनानि हर्म्या  
 चित्रो वो यामः प्रयतास्वृष्टिषु  
 यत् त्वेपर्यामा नदयन्त पर्वतान्  
 द्वियो यो पृष्ठं नर्या अर्च्यवुः ।  
 विश्वो वो अजमन् भयते वनस्पती  
 रथीयन्तीषु प्र जिहीत ओषधिः  
 युर्यं न उग्रा मरुतः सुचेतुना  
 अरिष्टप्रामाः सुमतिं पिपतन ।  
 यमा यो द्विद्व रदति किर्विदती  
 रिणानि पृथ्वः सुधिंतेव वर्हणा  
 प्र स्कम्भदेणा अनयश्चराधसो  
 अलातुणासो विदधेपु सुपुताः ।  
 अर्च्यकं मंदिरस्य पीतये  
 विद्वर्धिरस्य प्रथमानि पौस्या  
 शतमुजिभिस्तमभिर्हृतेर्यात्  
 पूर्मी रक्षता मरुतो यमायत ।  
 जन् यमुप्रास्तयसो विरग्निनः  
 प्रायना शंसात् तनयस्य पुष्टिषु  
 विश्वानि मुद्रा मरुतो रथेषु यो  
 मिधुस्वृष्ट्यै तथिपाण्याहिता ।  
 धंतेप्या यः प्रपेषु सुदयो  
 धक्षो पद्मप्रा समया वि पावृते  
 भूरीणि मुद्रा नयेषु शाष्टु  
 पक्षः सु यमा रमसासो वज्रयः ।  
 धंतेप्येताः पविषु क्षुरा अग्नि  
 पयो न पशान् एव धियो धिरे  
 मुद्राग्नो मुद्रा विष्णो विभृतयो  
 हरेणो ये दिव्या रपि मृगिः ।  
 मुद्राः संजिह्वाः स्वरिगार धामभिः  
 नमिन्ना रद्रे मृगः पशुभिः

तद् वः सुजाता मरुतो महित्वनं  
 दीर्घं वो दात्रमदितेरिव वृतम् ।  
 इन्द्रश्चन त्यजसा वि हृणाति तत्  
 जनाय यस्यै सुकृते अराध्वम् ॥ ४ ॥  
 तद् वो जामित्वं मरुतः परं युगे  
 पुरु यच्छंसममृतासु आवत ।  
 अया धिया मनवे श्रुष्टिमाव्या  
 साकं नरो हंसनेरा चिकित्रिरे ॥ ५ ॥  
 येन दीर्घं मरुतः शूशवांम  
 युष्माकैन् परीणसा तुयसः ।  
 आ यत् ततनन् वृजने जनास  
 एभिर्यज्ञेभिस्तदमीष्टिमश्याम् ॥ ६ ॥  
 एष वः स्तोमो मरुत इयं गीः  
 मान्वार्यस्य मान्यस्य कारोः ।  
 एषा यासीष्ट तन्वै वयां  
 विद्यामेपं वृजन् जीवदानुम् ॥ ७ ॥  
 ॥ १५ ॥ ( ऋ० १।१६७।१-११ )  
 शिष्टः ( १० पुरस्ताज्ज्योतिः ) ।  
 आ नोऽर्वाभिर्मरुतो यान्ववच्छा  
 ज्येष्ठैर्भिर्वा बृहद्विषैः सुमायाः ।  
 अध यदैषां नियुतः परमाः  
 समुद्रस्य चिद् धनयेन्त पारे ॥ ८ ॥  
 मिथ्यक्ष येषु सुधिता घृताक्षी  
 हिरण्यनिर्णिगुपेण न श्रुष्टिः ।  
 शुद्धा चरन्ती मनुषो न योषां  
 सभावती विद्व्येय संघाक् ॥ ९ ॥  
 परा शुद्धा अयासो यव्या  
 साधारण्येय मरुतो मिमिक्षुः ।  
 न रौक्ष्णी अप नुदन्त घोरा  
 जृणन् वृषं सुसयार्य देवाः ॥ १० ॥  
 ॥ ११ ॥

जोष्व यदीमसुर्यां सूचये  
विपितस्तुका रोदसी नमणाः ।  
आ सूर्येव विधृतो रथे गात्  
त्वेपप्रतीका नमसो नेत्या  
आस्थापयन्त युवति युवानः  
शुभे निर्मिश्रां विदयेषु पञ्चाम् ।  
अको यद् वो मरुतो हविष्मान्  
गायद् गाथं सुतसोमो दुवस्यन्  
प्र तं विवक्षिन् वक्ष्यो य एषां  
मरुता महिमा सत्यो अस्ति ।  
सचा यदीं वृषमणा अह्युः  
स्थिरा चिजनीवहते सुभागाः  
पान्ति मिश्रावरणावध्यात्  
चर्यत ईमर्यमो अप्रशस्तान् ।  
उत चर्यन्ते अच्युता ध्रुवाणि  
वाबुध ई मरुतो दार्तिवारः  
नही नु वो मरुतो अत्यसे  
आरात्ताश्चिच्छरसो अन्तमापुः ।  
ते धृष्णुना शर्यसा दशश्रवांसो  
अणो न हेपो धृपता परि ऋः  
धृषमधेन्द्रस्य प्रेष्टा धृयं श्वो वोचिमहि समर्थे ।  
धृयं पुरा महिं च नो अनु धृन्  
तन्न ऋभुक्षा नरामनु प्यात्  
एष वः स्तोमो मरुत इयं गीः  
मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।  
एषा यासीष्ट तन्वे वयां -  
विद्यामेघं वृजर्न जीरदानुम्

॥ १६ ॥ ( अ० ११६८, १-१० )

अमर्ता; ८-१० निष्टुप् ।

यथायंशा वः समना तुतुर्वणिः  
धियं धियं वो देव्या उं दधिचे ।

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १० ॥

॥ ११ ॥

आ वोऽर्वाचः सुविताय रोदस्योः

महे ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः

॥ १ ॥

वृत्रासो न ये स्वजाः स्वतवसु

इपं स्वरमिजार्थन्त धृतयः ।

सहस्रियासो अपां नोमर्य

आसा गावो वन्द्यासो नोक्षणः

॥ २ ॥

सोमासो न ये सुतास्तृतांशवो

हुत्सु पीतासो दुवसो नासते ।

पेषामसेषु रम्भिणीव रारमे

हस्तेषु ज्ञादिश्च कृतिश्च सं दधे

॥ ३ ॥

अथ स्वयुक्ता दिव आ वृथा ययुः

अमर्त्याः कशया चोदत् रमना ।

अरेणवस्तुविजृता अचुच्यवुः

हळहानि चिगमरुतो भ्राजदप्रयः

॥ ४ ॥

को योऽन्तर्मरुत ऋष्टिविद्युतो

रेजति रमना हन्वेव जिह्वाय ।

धन्वच्युत इषां न यामनि

पुरुषैर्षा अह्न्यो नैतशः

॥ ५ ॥

कं स्विदस्य रजसो महस्परं

कावरं मरुतो यस्मिन्नायय ।

यच्छयावयय धियुरेव संहितं

व्यादिष्ठा पतथ त्वेगमर्णयम्

॥ ६ ॥

सातिर्न वोऽमयती स्वर्वती

त्वेषा विपाका मरुतः पितृप्यती ।

मद्रा वो रातिः पृणतो न दक्षिणा

पृथुजयी असुर्येव जज्ञती

॥ ७ ॥

प्रति द्योमन्ति सिन्धवः पृथिव्यो

यदभियां वाचमुदीरयन्ति ।

अयं सयन्त विद्युतः पृथिव्यां

यदीं घृतं मरुतः प्रुणयन्ति

॥ ८ ॥

असत् पृथ्वीर्मते रणाय

त्वेपमयासां मरुतामनीकम् ।

ते संप्रसारसोऽजनयन्ताब्धे

आदित् स्वधामिपिरां पर्यपश्यन्

एष वः स्तोमो मरुत इयं गीः

मान्द्वार्यस्य मान्यस्य कारोः ।

एषा यासीष्ट तन्वै वयां

यिद्यामेपं वृजनें जीरदानुम्

॥ १७ ॥ ( ऋ० १।१७।१-२ ) त्रिष्टुप् ।

प्रति व पुना नर्मसाहमेमि

सूक्तेन भिक्षे सुमतिं तुराणाम् ।

रराणतां मरुतो वेद्याभिः

नि देहो धत्त वि मुचध्यमभ्वान्

एष वः स्तोमो मरुतो नर्मस्वान्

दृदा तद्यो मनसा धायि देवाः ।

उपेमा यात मनसा जुषाणा

युयं हि द्या नर्मस् इदं वृक्षासः

॥ १८ ॥ ( ऋ० १।१७।१-३ ) गायत्री ।

यिप्रो वोऽस्तु यामे—क्षिप्रं कृती सुदानवः ।

मरुतो अर्दिमानयः

आरे सा यः सुदानयो मरुत ऋजृती शरः ।

आरे अहमा यमस्यद्य

मृणस्कन्दस्य तु यिद्राः परि वृक्त सुदानवः ।

ऊर्ष्यान् नः कने जीवमे

॥ १९ ॥ ( ऋ० १।३०।११ )

गृहमदः ( आत्रिः शोभोऽत्रः पथाद् भार्गवः )

धोमकः । जपती ।

तं पः शर्ये मार्गते सुमन्युर्गिरा

उपं द्रुये नर्मसा दैर्यं जर्नम् ।

यया रयि रयैर्दितं नशांमदा

अपय्यागं धुर्यं दिपेदिधे

॥ ११ ॥

॥ २० ॥ ( ऋ० १।३४।१-१५ )

जपती; १५ त्रिष्टुप् ।

धारावरा मरुतो धृण्वोऽजसो

मृगा न भीमास्तविषीभिरुचिनः ।

अग्रयो न शूराक्षाना ऋजीपिणो

भूमि धमन्तो अप गा अवृण्वत

द्यावो न स्तुर्मिक्षितयन्त द्यादिनो

व्यदुभ्रिया न द्युतयन्त वृष्टयः ।

रुद्रो यद् वो मरुतो रुक्मवक्षसो

वृषार्जनि पृथ्व्याः शुक्र ऊर्धनि

उक्षन्ते अश्वो अर्यो इवाजिषु

नदस्य कर्णस्तुरयन्त आशुभिः ।

हिरण्यशिप्रा मरुतो दधिध्वतः

पृक्षं योध पृपतीभिः समन्यवः

पृक्षे ता विश्वा भुवना यवक्षिरे

मिश्राय वा सद्मा जीरदानवः ।

पृपदश्यासो अनवधराधस

ऋजिप्यासो न वृयनेषु ध्रुपदः

इन्धन्वभिधेनुमी रण्वाद्धभिः

अभ्युसभिः पृथिभिर्भोजदृष्टयः ।

आ हंसासो न स्वर्साणि गन्तन

मधोर्मदाय मरुतः समन्यवः

आ नो ब्रह्माणि मरुतः समन्ययो

नरां न शंसः सर्वनानि गन्तन ।

अभ्यामिव पिप्यत धेनुमूर्धनि

कर्ता धिर्यं जरिरे वाजनेपासम्

तं नो दात मरुतो घाजिनं रधं

आपानं मद्रं चितर्यद् द्विपेदिधे ।

इयं स्तोत्रभ्यो वृजनेषु कारयै

मनि मेधामरिरे द्रुष्टं सटः

॥ ७ ॥

( ४६६९ )

यद् युजते मरुतो रुमवक्षसो  
अश्वान् रथेषु भग आ सुदानवः ।  
धेनुर्न शिष्वे स्वसरेषु पिन्वते  
जनाय रातहविषे महीभिर्षम्  
यो नो मरुतो वृकताति मर्या  
रिपुर्दधे वंसवो रक्षता रिपः ।  
वर्तयत तर्पणा चक्रियाभि तं  
अयं रुद्रा अशसो हन्तना वर्षः  
चित्रं तद् वो मरुतो यामं चेकिते  
पूक्ष्या यद्वधरभ्यापयो दुहुः ।  
यद् वा निदे नवमानस्य रुद्रियाः  
विते जराय जुरतामदाभ्याः  
तान् वो महो मरुते पृथुयाज्ञो  
विष्णोरेपस्यं प्रभुषे हवामहे ।  
हिरण्यवर्णान् ककुहान् यतस्तुल्यो  
प्रभृण्यन्तः शंस्यं राध ईमहे  
ते दशान्वाः प्रथमा युष्मद्दिदे  
ते नो हिन्वन्तुपसो व्युष्टिषु ।  
उषा न समीररुणैरपेणुते  
महो ज्योतिषा शुचता गोवर्णसा  
ते क्षोणीभिररुणेभिर्नाजिमी  
रुद्रा ऋतस्य सर्वनेषु बाधुधुः ।  
निमेघमाना अत्येन पाजसा  
सुख्यन्द्रं वषी दधिरे सुपेदांसम्  
तो ईयानो महि वरुणमुतय  
उप घेदेना नमसा गृणीमसि ।  
त्रितो न यान् पञ्च होतृनभिर्षय  
आवयतेदर्वराचक्रियावसे  
यया रधं पादयथात्यंष्टो  
यया निदो मुख्यं यन्त्रितारम् ।  
अर्वाची सा मरुतो या व ऊतिः  
ओ पु बाधेयं सुमतिर्जिगातु

॥ २१ ॥ ( ऋ० ३।२६।४-६ )

गायिनो विद्यामित्रा । जगती ।

॥ ८ ॥

प्र यन्तु वाजास्तर्विपीभिर्भयः

शुभे संमिक्ताः पूर्णतीरयुक्षत ।

बृहदुक्षो मरुतो विश्ववन्दसः

प्र वैपयन्ति पर्वता अर्दाम्याः

॥ ४ ॥

॥ ९ ॥

अग्निश्चिर्यो मरुतो विश्ववृष्टयः

आ त्वेपमुग्रमव ईमहे वयम् ।

ते स्यानिनो रुद्रियो वृषनिर्णिजः

सिंहा न द्वेपकृतवः सुदानवः

॥ ५ ॥

॥ १० ॥

घातंघातं गुणंगणं सुशस्तिभिः

अग्नेमामं मरुतामोज ईमहे ।

पूर्वदश्वासो अनवध्वरधसो

गन्तारो युष्ठं विदधेयु धीराः

॥ ६ ॥

॥ २२ ॥ ( ऋ० ५।११।१-१७ )

इयावाश् आग्नेयः । अवयुषः ६, १६, १७ पङ्क्तिः ।

प्र इयावाश्च धृष्ण्या उर्वा मरुद्भिर्भूमिभिः ।

ये अक्षोघर्मनुष्यधं श्रवो मरुन्ति यक्षियाः ॥ १ ॥

॥ १२ ॥

ते हि त्विरस्य शर्वसः सखायः सन्ति धृष्ण्या ।

ते यामन्ना धृषद्विनुः तमना पान्ति शर्वतः ॥ २ ॥

ते स्पन्दासो नोक्षणो ऽति प्कन्दन्ति शर्वरीः ।

मरुतामन्ना महो द्विवि क्षमा च ममहे ॥ ३ ॥

॥ १३ ॥

मरुत्सु वो दधीमहि स्तोमं युष्ठं च धृष्ण्या ।

विष्वे ये मानुषा युगा पान्ति मर्यै रिपः ॥ ४ ॥

अहन्तो ये सुदानवो नरो असांमिशयसः ।

प्र युष्ठं यक्षियम्यो द्विवो अर्वा मरुद्वयः ॥ ५ ॥

॥ १४ ॥

आ रुक्मैरा युधा नरं ऋध्या ऋष्टीररुक्षत ।

अन्वेनां अहं विष्टतो मरुतो जग्मतीरिव

मानुरतं तमना द्विवः

॥ ६ ॥

ये वावधन्त पार्थिवा य उरावन्तरिह मा ।

॥ १५ ॥

वृजने वा नदीनां सप्तस्य वा महो द्वियः ॥ ७ ॥

शत्रो मारुतमुच्छेत्स सत्यशंससमृद्धसम् ।  
 उत स्म ते शुभे नरः प्र स्पन्दा युजत त्मना ८  
 उत स्म ते परेण्यमृणो वसत शुन्ध्यवः ।  
 उत पृथ्वा रथानामग्निं भिन्दन्त्योजसा ॥ ९ ॥  
 आपयथो विपश्यथो जन्तस्त्वया अनुपयाः ।  
 एतेभिर्मह्यं नामभिर्धुं विष्टार ओहते ॥ १० ॥  
 अथा नरो न्योहते ऽथा नियुत ओहते ।  
 अथा पारोवता इति चित्रा रूपाणि दृश्यी ॥ ११ ॥  
 शुन्दःस्तुर्मः कुम्भन्यथ उत्समा कीरिणो नृतुः ।  
 ते मे के चित्र तावथः  
 ऊमा आसन् दुशि त्विषे ॥ १२ ॥  
 य ऋष्या ऋष्टिर्विद्युतः कथयः सन्ति वेधसः ।  
 तमृषे मारुतं गुणं नमस्या रम्या गिरा ॥ १३ ॥  
 अच्छे ऋषे मारुतं गुणं दाना मित्रं न योषणा ।  
 द्वियो वा धृण्व ओजसा  
 स्तुता धीभिरिषण्यत ॥ १४ ॥  
 नू मन्थान एषां द्वेयां अच्छा न वृक्षणा ।  
 दाना संयेत सुरभिर्धामधुतेभिरञ्जिभिः ॥ १५ ॥  
 प्र ये मे धन्यये गानं योचन्त सुरयः  
 पृथि योचन्त मातरम् ।  
 अथा पितरिमिषिर्णं युद्धं योचन्त शिफसः ॥ १६ ॥  
 मत्त मे मत्त श्राविन्त एकमेका शला वंदुः ।  
 यमुनाशमाधि धृतमुद् राधो गव्यं मृजे  
 नि राधो गव्यं मृजे ॥ १७ ॥

॥ १६ ॥ ( ऋ० ५१५३१-१६ )

१३१: १ वदती, ३ अश्व३१, ४ पुरवणि३,  
 ६, ७, ९, ११, १४, १६ एगोवृहती; ८, १२ गायत्री ) ।

को पेट जानमेयं  
 को वा पुर सुप्रेषांश मृगताम् ।  
 यद् धृपुजं विग्राह्यः

॥ १ ॥

पेतान् रथेषु तस्युपः कः शुश्राव कथा ययुः ।  
 कसौ सस्रुः सुदासे अन्वापय  
 इक्षुभिर्वृष्टयः सह ॥ २ ॥  
 ते म आहुर्य आययु रूप युभिविभिर्मदे ।  
 नरो मया ओपस इमान् पश्यन्निति पुहि ॥ ३ ॥  
 ये अक्षिपु ये वाशीपु स्वमानवः  
 स्रक्षु रुम्हेषु खादिषु ।  
 आया रथेषु धन्वंसु ॥ ४ ॥  
 युष्माकं स्मा रथो अनु  
 मुदे दधे मरुतो जीरदानवः ।  
 वृष्टी धावो यतीरिव ॥ ५ ॥  
 आ यं नरः सुदानवो दवाशुर्वे  
 दिवः कोशमच्युच्युः ।  
 वि पर्जन्यं सृजन्ति रोदसी अनु  
 धन्वंना यन्ति वृष्टयः ॥ ६ ॥  
 ततृदानाः सिन्धवः शोदसा रजः  
 प्र स्रुधेनवो यथा ।  
 स्यमा अर्था इवाध्वनो विमोचने  
 वि यद् धर्तन्त एन्त्यः ॥ ७ ॥  
 आ यात मरुतो दिव आन्तरिक्षादमादुत ।  
 माव स्यात परावतः ॥ ८ ॥  
 मा धौ रसानितभा कुमा क्रुमुः  
 मा धुः सिन्धुनि रीरमत् ।  
 मा धुः परि छात सरयुः पुरीपिणि  
 अस्मे इत् सुस्रमस्तु यः ॥ ९ ॥  
 तं धुः दधे रथानां  
 त्वेषं गुणं मारुतं नव्यंसीनाम् ।  
 अनु प्र यन्ति वृष्टयः ॥ १० ॥  
 दधेदार्थं य एषां दानैमातं गुणगणं मुनास्तिभिः ।  
 अनु त्रामेम धीतिभिः ॥ ११ ॥

( ४३०१ )

कस्मा अथ सुजाताय रातहव्याय प्र ययुः ।

एना यामेन मरुतः ॥ १२ ॥

येन तोकाय तनयाय धान्यं ।

बीजं वदह्ये अक्षितम् ।

अस्मभ्यं तद् घञ्चन यद् घ ईमहे

राघो विश्वायु सौम्यम् ॥ १३ ॥

अतीयाम निदस्तिरः स्थस्तिभिः

हित्वावधमरातीः ।

वृद्धी शं योराप उन्नि मैपजं

स्याम मरुतः सह ॥ १४ ॥

सुदेयः समहासति सुवीरौ नरो मरुतः स मर्त्यः ।

ये आरघ्ये स्याम ते ॥ १५ ॥

स्तुहि भोजान्स्तुवतो अस्य यामनि

रणन् गावो न यवसे ।

पुतः पूर्वा इव सञ्जीवन् द्वय

गिरा गृणीहि कामिनः ॥ १६ ॥

॥ १४ ॥ (ऋ० ५।५४।१-१५) अगती, १४ निष्पृ ।

प्र शर्षाय मार्कताय स्वमानय

इमां वार्चमनजा पर्वतच्युतैः ।

धर्मस्तुभे दिव आ पृष्टयज्वने

धुन्नभयसे महि नृष्णमर्चत

॥ १ ॥

प्र वो मरुतस्तविया उदन्वयो

वयोवृधौ अश्वयुज परिजयः ।

सं विद्युता वर्धति वारंति त्रितः

स्वरन्त्यापोऽघना परिजयः

विद्युन्महसो नरो अरमदिघवो

वार्तत्विपो मरुतः पर्वतच्युतः ।

अभृया चिन्मुहुरा हादुनीवृतः

स्तनपदमा रभसा उदौजसः

व्यक्तून् रुद्रा व्यहानि चिकसो

व्यन्तरिक्षं वि रजोसि धृतयः ।

वि यदज्ञा अजंथ नावं ई यथा

वि दुर्गाणि मरुतो नाहं रिप्यथ ॥ ४ ॥

तद् वीर्यं वो मरुतो महित्वनं

द्वीधे ततान सूर्यो न योजनम् ।

पता न यामे अर्गमीतशोचिपो

अनश्वदां यक्ष्ययातना गिरिम् ॥ ५ ॥

अभ्राजि शर्षो मरुतो यदूर्णसं

मोपथा वृक्षं कपनेर्ष घेघसः ।

अघं स्मा नो अरमतिं सजोपसूः

चक्षुषिषु यन्तमनु नेपथा सुगम् ॥ ६ ॥

न स जीयते मरुतो न हंस्यते

न र्क्षधति न व्ययते न रिप्याति ।

नास्य राय उप दस्यन्ति नोतय

श्रुपि वा यं राजानं वा सुपूदय ॥ ७ ॥

नियुत्वन्तो ग्रामजितो यथा नरो

अयेमणो न मरुतः कवन्धिनः ।

पिम्बन्त्युत्सं यदिनालो अस्वरन्

व्युन्दन्ति पृथिवी मघ्नो अन्धसा

॥ ८ ॥

प्रवत्स्वतीयं पृथिवी मरुद्गर्धः

प्रयत्स्वती पौर्मवति प्रयद्गर्धः ।

प्रवत्स्वतीः पृथ्या अन्तरिक्ष्याः

प्रवत्स्वन्तः पर्वता जीरदानवः

॥ ९ ॥

यन्मरुतः समरसः स्वर्णः

सूर्य उर्दिते मर्दथा दिघो नरः ।

न वोऽश्वोः श्रययन्ताह सिस्त्रतः

सद्यो असावर्चनः पारमश्रुय

असेषु व ऋण्यः पत्सु सादयो

वर्क्षःसु कस्मा मरुतो रथे शुभः ।

अग्निभ्राजसो विद्युतो गर्मस्योः

शिषाः दीर्घसु वितता हिरण्यपीः ॥ ११ ॥



तं नाकमयौ अमृतीतशोचिपं  
रश्मि पित्तलं मरुतो वि धूनुथ ।

समच्यन्त वृजनातिविपन्त यत्  
स्वरन्ति घोपं विततमृतायधः

युष्मादत्तस्य मरुतो विचेतसो  
रायः स्याम रथ्योऽु चयस्वतः ।

न यो युच्छति तिष्योऽु यथा दिवोऽु  
असे ररन्त मरुतः सहस्त्रिणम्

युयं रयि मरुतः स्पाह्वीरं  
युयमृषिमवध सारमिप्रम् ।

युयमर्वन्त भरताय वार्जं  
युयं धत्थ राजानं ध्रुष्टिमन्तम्

तद् वो यामि द्रविणं सधज्जतयो  
येना स्वर्णं तुतनाम नैरुमि ।

इदं सु मे मरुतो ह्यता यचो  
यस्य तरैम तरसा शतं हिमाः

॥ २५ ॥ ( ऋ० ५।५५।१-१० ) अगतां, १० त्रिष्टुप् ।

प्रयज्ययो मरुतो भ्राजद्वयो  
युहद् ययो वधिरे रुन्मवक्षसः ।

इयन्ते अश्वैः सुयमेभिपशुभिः  
शुमै यातामनु रथा अवृत्सत

स्युयं वधिष्ये तविषीं यथा विद  
युहन्मदान्त उरिया वि राजय ।

उतान्तरिक्षं ममिरे द्योजसा  
शुमै यातामनु रथा अवृत्सत

माकं जाताः सुभ्यः साकमुक्षिताः  
धिये चिदा भैतरं पापृधुनैरः ।

विगेविणः सूर्यस्येव रुमयः  
शुमै यातामनु रथा अवृत्सत

धामरेण्यं यो मरुतो मदित्युनं  
दिहरोण्यं गुर्येस्येव चक्षेणम् ।

॥ १२ ॥

॥ १३ ॥

॥ १४ ॥

॥ १५ ॥

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

उतो अस्माँ अमृतत्वे दधातन  
शुमै यातामनु रथा अवृत्सत

उदीरयथा मरुतः समुद्रतो  
युयं वृष्टिं वर्षयथा पुरीषिणः ।

न वो दक्षा उप दस्यन्ति धेनुवः  
शुमै यातामनु रथा अवृत्सत

यदश्वान् ध्रुव्यं पूर्णतीरयुग्मं  
हिरण्ययान् प्रत्यक्षाँ अमुग्धम् ।

विश्या इव स्पृधौ मरुतो व्यस्यथ  
शुमै यातामनु रथा अवृत्सत

न पर्वता न नद्यो वरन्त वो  
यत्राचिष्वं मरुतो गच्छयन्तु तत् ।

उत धावापृथिवी यायना परि  
शुमै यातामनु रथा अवृत्सत

यत् पूर्व्यं मरुतो यच्च नूतनं  
यदुद्यते वसवो यच्च शस्यते ।

विश्वस्य तस्य भवया नवैदक्षः  
शुमै यातामनु रथा अवृत्सत

मूलतं नो मरुतो मा वधिष्ठना  
असभ्यं शर्म बहुलं वि रन्तन ।

अधि स्तोत्रस्य सख्यस्य गातन  
शुमै यातामनु रथा अवृत्सत

युयमस्मान् नयत वस्यो अच्छा  
निरहृतिभ्यो मरुतो गृणानाः ।

जुषध्वं नो हव्यदाति यजत्रा  
ध्वं स्याम पतयो रयीणाम्

॥ १६ ॥ ( ऋ० ५।५६।१-९ )  
यदतो, १; ७ यतोयदतो ।

अतोः शर्धन्तमा गणं रिष्टं रुममेभिर्जिभिः ।  
विदो अघ मरुतामव द्ये

दियधित् रोचनादधि  
॥ १ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १० ॥

( ४२३१ )

यथा विन्मन्यसे हृदा तदिन्मे जम्मुपशसः ।  
 ये ते नेदिष्ठं हर्षनान्यागमन्  
 तान् वधे भीमसंहशः ॥ २ ॥  
 मीळहुप्तीव पृथिवी पराहता मदन्त्येत्यसदा ।  
 श्वश्रो न वो मरुतः शिमीवाँ अमो  
 बुध्रो गौरिव भीमयुः ॥ ३ ॥  
 नि ये रिणन्योर्जसा वृथा गावो न दुर्धुरः ।  
 अदमानं चित् स्वयं पर्वतं गिरि  
 प्र च्यावयन्ति याममिः ॥ ४ ॥  
 उत् तिष्ठ नूनमेवां स्तोमैः समुक्षितानाम् ।  
 मरुतां पुरुतममपूर्व्यं गवां सर्गमिव ह्वये ॥ ५ ॥  
 युङ्ग्वं ह्यरेश रथे युङ्ग्वं रथेषु रोहितः ।  
 युङ्ग्वं हरी अनिरा धुरि बोळहवे  
 बहिष्ठा धुरि बोळहवे ॥ ६ ॥  
 उत स्य धाज्यरूपस्तुषिर्धनिः  
 हृह स्म धायि दशतः ।  
 मा वो यामेषु मरुतश्चिरं कर्तु  
 प्र तं रथेषु चोदत ॥ ७ ॥  
 रथं नु मारुतं वपं श्रवस्युमा हुवामहे ।  
 आ यस्मिन् तस्यै सुरणानि विभ्रती  
 सचा मरुतसु रोदसी ॥ ८ ॥  
 तं धः शपे रथेशर्म त्वेयं पनस्युमा हुवे ।  
 यस्मिन्सुजाता सुमगा महीयते  
 सचा मरुतसु मीळहुयी ॥ ९ ॥

स्वधाः स्य सुरयाः पृश्निमातरः  
 स्वायुधा मरुतो याथना शुर्मम् ॥ २ ॥  
 धुनय चां पर्वतान् दाशुपे वसु  
 नि वो घनां जिहते यामनो निया ।  
 कोपयय पृथिवी पृश्निमातरः  
 शुमे यदुग्राः पूर्वातीर्युग्धम् ॥ ३ ॥  
 धातत्विषो मरुतो वर्पनिर्णिजो  
 यमा इव सुसंहशः सुपेशसः ।  
 पिशङ्गाश्वा अरुणाश्वा अरेपसः  
 प्रत्यक्षसो महिना द्यौरिवोर्यः ॥ ४ ॥  
 पुरुदस्ता अङ्गिमन्तः सुदानवः  
 त्वेपसंहशो अनवधराधसः ।  
 सुजातासो जनुषां रुमवक्षसो  
 दिवो अर्का अमृतं नाम मेजिरे ॥ ५ ॥  
 अग्रयो धो मरुतो अंसयोपधि  
 सह ओजो याहोवो यलं हितम् ।  
 नृम्या दीर्पस्वार्युधा रथेषु वो  
 यिश्वा यः धीरथि तनूपु पिपिशे ॥ ६ ॥  
 गोमदश्वावद् रथवत् सुवीरं  
 चन्द्रवद् राघो मरुतो वदा नः ।  
 प्रशस्ति नः रुणुत रुद्रियासो  
 मञ्जीय वोड्यसो दैव्यस्य ॥ ७ ॥  
 ह्वये नरो मरुतो मृक्षना नः  
 तुषीमघासो अमृता अतृष्णाः ।  
 सत्यश्रुतः कवयो युवानो  
 बृहद्विरयो बृहदुक्षमाणाः ॥ ८ ॥

॥ २८ ॥ ( अ० ५।५८।१-८ ) त्रिष्टुप् ।

॥ १७ ॥ ( अ० ५।५७।१-८ अगती, ७-८ त्रिष्टुप् )  
 आ रूद्रास इन्द्रयन्तः सजोपसो  
 हिरण्यरथाः सुधितार्य गन्तन ।  
 इयं धां अस्मत् प्रति ह्यते मतिः  
 तूणजे न दिव उत्सा उदन्ये  
 पाशीमन्त अग्निमन्तो मनीषिणः  
 सुधन्यान् इयुमन्तो निपक्षिणः ।

॥ १ ॥

तमुं नूनं तविषीमन्तमेपां  
 स्तुपे गणं मारुतं नयसीनाम् ।  
 य आभ्यश्वा यमवद् बहन्त  
 उतेतिरे अमृतस्य स्वराजः ॥ १ ॥

त्वेपं गणं तवसं खादिहस्तं  
धुनिग्रतं मायिनं दातिवारम् ।  
मयोभुवो ये अमिता महित्वा  
चन्दस्व धिप्र तुविरार्थसो नून  
आ वो यन्तुद्वादासो अद्य  
वृष्टि ये विश्वे मरुतो जुनन्ति ।  
अयं यो अग्निर्मरुतः समिद्धः  
एतं जुषस्व कवयो युवानः  
युयं राजानुमियं जनाय  
विश्वतष्टं जनयथा यजथाः ।  
युष्मदेति मुष्टिहा वाहुजुतो  
युष्मत् सद्यो मरुतः सुवीरः  
अरा इवेदचरमा अहेव  
प्रम जायन्ते अकथा महोभिः ।  
पृश्नेः पुत्रा उपमासो रमिष्ठाः  
स्वया मृत्वा मरुतः सं मिमिक्षुः  
यत् प्रायासिष्ट पृपतीमिरथैः  
धीलुपविर्मिर्मद्यतो रथैभिः ।  
क्षोदन्त आपो रिणते घनानि  
अघोस्त्रियो ययमः क्रन्दतु यौः  
प्रधिष्ट यामन पृथिवी चिदेष्टां  
भर्तय गमं स्वमिच्छयो धुः ।  
पातान् एभ्यान् धुर्यायुयुजे  
युयं स्वेदं चक्रिरे रुद्रियासः  
हये नरो मरुतो मृत्ता नः  
तुयीमपागो अमृता ऋतगाः ।  
नार्यधुतः नार्ययो युयानो  
गृह्णिरयो गृह्णदुश्मणाः

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ १९ ॥ ( अ० ५१९११-८ ) अगती, ८ मिष्टम् ।

प्र यः गण्डमन्सुप्रितार्थं दायने  
भार्यो दिष्टे प्र पृथिव्या अतं अरे ।

उक्षन्ते अश्वान् तरुयन्त आ रजो  
अनु स्वं मानुं अथयन्ते अर्णवैः

॥ १ ॥

अमादिषां भियसा भूमिरेजति  
नौनं पूर्णा क्षरति व्यथिर्धेती ।  
वुरेदशो ये चितर्यन्त एमभिः  
अन्तर्महे विदथे येतिरे नरः

॥ २ ॥

गवांमिव भियसे गृह्णमुत्तमं  
सूर्यो न चक्षु रजसो विसर्जने ।  
अस्या इव सुभ्युश्चरवः स्थान  
मर्या इव श्रियसे चेतथा नरः

॥ ३ ॥

को वो महान्ति महतामुदभ्रवत्  
कस्काव्या मरुतः को ह पौस्या ।  
युयं ह भूमिं किरणं न रेचथ  
प्र यद् भरष्वे सुविताय दायने

॥ ४ ॥

अश्वो इवेदरुपासः सर्वन्धवः  
शरा इव प्रयुधः प्रोत युयुधुः ।  
मर्या इव सुवृधौ वावृधुनरः  
सूर्यस्य चक्षुः ॥ मिनान्ति वृष्टिभिः

॥ ५ ॥

ते अज्येष्टा अकनिष्ठास उद्भिदो  
अमध्यमासो महसा वि वायुधुः ।  
सुजातासो जुनुया पृश्निमातरो  
दिवो मर्या आ नो अच्छा जिगातन

॥ ६ ॥

ययो न ये श्रेणीः पन्तरोजसा  
अन्तान् दिवो बृहतः सानुनस्परि ।  
अश्वोस एयामुमये यया विदुः  
प्र पर्यतस्य नभनूरैरुच्ययुः

॥ ७ ॥

मिमातु दौरदतिवीतयं नः  
सं दानुचिप्रा उपसो यतन्ताम् ।  
आनुच्ययुर्दिव्यं कोशमेत  
अप्ये रुद्रस्य मरुतो गृणाताः

॥ ८ ॥

(४१६९)

॥ १० ॥ ( ऋ० ५।६।१।१-४।११-१६ ) गायत्री, ३ निवृत्त  
के घ्रां नरुः श्रेष्ठतमा य परंपरक आयय ।  
परमस्याः परावतः ॥ १ ॥  
कृ० योऽभ्याः क्वा० भीशयः  
कथं शोक कथा यय ।  
पृष्ठे सद्रौ नसोर्यमः ॥ २ ॥  
जघने चोद पयां वि सन्धानि नरो यमुः ।  
पुत्ररुये न जनयः ॥ ३ ॥  
परा धीरास एतन् मर्यासो मर्दजानयः ।  
अस्मिन्पो यथासंय ॥ ४ ॥  
य ईं घहन्त आशुमिः पिवन्तो मदिरं मधु ।  
अत्र श्रवींसि दधिरे ॥ ११ ॥  
येषां धियाधि रोदसी विभ्राजन्ते रथेष्वा ।  
दिवि रुक्म ईशोपरि ॥ १२ ॥  
युवा स मरुतो गुणस्त्वेपर्यो जनयः ।  
शुर्मयाधाम्रतिष्कृतः ॥ १३ ॥  
को घेद नूनमैरां यश मर्दन्ति धूनयः ।  
श्रुतजाता अरेपसः ॥ १४ ॥  
युयं मते विपन्ययः प्रणेतारे इत्या धिया ।  
ओताये पामरुतिषु ॥ १५ ॥  
ते नो पर्वनि काम्या पुष्ट्रान्द्रा रिंशादसः ।  
आ रंशिपासो यवृत्तन ॥ १६ ॥

॥ ११ ॥ ( ऋ० ५।६।१-९ )

एवमामरुद्रादेयः । अतिश्रमनी

प्र पो मदे मतपो यन्तु विष्णवे  
मरुन्वते गिरिजा एवयामरुत् ।  
॥ दार्घीय प्रपंजये सुष्मादयं  
त्वमे मन्दरिदये धुनिप्रताय शर्वमे ॥ १ ॥  
प्र ये जाना मदिना ये च नु स्यं  
प्र विचनो म्रयन्त एवयामरुत् ।

कत्या तद् वौ मरुतो नाभूये शर्वो  
ज्ञाना मदा तदेया मर्दृष्टासो नार्द्रयः ॥ २ ॥  
प्र ये दिवो बृहतः शृण्विरे गिरि  
सुशुक्रानः सुभ्य एवयामरुत् ।  
न येषामिरी स्रघस्थ ईष्ट आं  
अग्रयो न स्वविद्युतः प्र स्पन्द्रासो धुनीनाम् ३  
स चक्रमे मरुतो निर्दृष्टक्रमः  
ममानस्मात् सदर्स एवयामरुत् ।  
यदायुक्त त्मना स्वादधि णुभिः  
विष्ण्वंसे विमहसो जिगांति शर्वधो नृभिः ॥ ४ ॥  
स्यनो न योऽर्मयान् रेजयद् वृषां  
त्वेपो ययिस्तयि एवयामरुत् ।  
येना सहन्त श्रुज्जन् स्वरोचिषः  
स्वारदमानो हिरण्यपाः न्यायुधास हृष्मिणः ५  
अपारो वौ महिमा बृहदारसः  
त्वेयं शर्वोऽयत्वेवयामरुत् ।  
स्यातारो हि प्रसिंती मंदशि व्यन  
ते न उरुप्यता निदः शुशुक्रांसो नार्द्रयः ॥ ६ ॥  
ते रुद्रामः सुर्मया अग्रयो यथा  
तुविद्युसा अवन्त्वेयामरुत् ।  
दीर्घे पृषु पंश्रे सन्न पतिर्ध्वं  
येषामग्नेष्वा मृदः शर्धास्वहृन्तेननाम् ॥ ७ ॥  
अग्नेपो नो मरुतो गातुमेतन्  
ओना हर्व जनिनुरेवयामरुत् ।  
विष्णोर्महः ममन्यगे युपोतन्  
स्मद् रथ्यो न हृमना ऽप हेषांमि मनुतः ८  
मन्ता नो यं रंशिपाः सुदामि  
ओना हर्वमरुत् एवयामरुत् ।  
ज्येष्ठांसो न पतीतांसो र्योमनि  
युयं तस्यं प्रचेतमः स्यान्तं दुर्धनेपो निदः ॥ ९ ॥

॥ ३२ ॥ ( अ० ६।४८।११-१५, २०-२१ )

शंभुर्वाहस्वयः ( तृणपाणिः ) [ १३-१५ लिङ्गोक्ता वा ] ।

११ ककुप, १२ सतो बृहती, १३ पुरनणिक, १४ बृहती,

१५ अतिजगती, २० बृहती, २१ महाबृहती यवमध्या ।

आ संस्नायः सर्वदुर्धां

धेनुर्मजध्वमुप नव्यस्ता वचैः ।

सृजध्वमर्नपस्फुराम्

॥ ११ ॥

या शार्धाय मारुताय स्वभानये

अयोऽमृत्यु धुक्षत ।

या मृच्छीके मरुतां तुराणां या सुक्षैरेव्यावरी १२

भरुजायाय धुक्षत द्विता ।

धेनुं च विश्वदोहस्त्वमिषं च विश्वभोजसम् १३

तं व इन्द्रं न सुक्रतुं वरुणमिव मायिनम् ।

अर्यमणं न मन्द्रं सुप्रभोजसं

विष्णुं न स्तुप आदिशे

॥ १४ ॥

त्वेपं शर्धो न मारुतं तुविष्वाणि

अनृषाणि पुपुणं सं यथा श्रुता ।

सं सहस्रा कारिपम्वर्णिभ्य आं

आयिगुल्हा वसुं करत् सुवेदां नो वसुं करत् १५

ग्रामी धामस्य धृतयः प्रणीतिरस्तु सुनृता ।

देवस्य वा मरुतो मर्त्यस्य वा

रंजानस्य प्रयज्ययः

॥ २० ॥

सुपक्षिद् यस्यं चरुतिः

परि धां देवो नैति सूर्यः ।

त्वेपं शर्धो दधिरे नाम यन्निर्यं

मरुतो वृत्रदं शपो ज्येष्ठं वृत्रदं शवः ॥ २१ ॥

॥ ३३ ॥ ( अ० ६।५६।१-११ )

भारिपक्षो महाजः । त्रिष्टुप् ।

यपुर्न तथैकितुपे चिदस्तु

वमानं नाम धेनु पत्यमानम् ।

मर्त्येण्यद् रोदने पीपायं

मरुत्पुत्रः दुन्दुहे पृथिरुपः

॥ १ ॥

ये अग्नयो न शोशुचिभिधाना

द्विर्यत् मिर्मस्तो चावृधन्त ।

अरेणवो हिरण्ययांस एषां

साकं नृण्यैः पौंस्यैर्भिश्च भूवन्

॥ २ ॥

रुद्रस्य ये मीळहुपः सन्ति पुत्रा

यांश्चो नु दार्धुविर्मरैध्वै ।

विदे हि माता महो मही पा

सेत् पृश्निः सुभ्वे गभ्रमाधात्

॥ ३ ॥

न य ईपन्ते जनुपोऽया नु

अन्त सन्तोऽव्यानि पुतानाः ।

निर्यद् दुहे शुक्लयोऽनु जोयं

अनु श्रिया तन्वमुक्षमाणाः

॥ ४ ॥

मक्ष न येष्टु वोहसे चिद्वया

आ नाम धृष्ण मारुतं दधानाः ।

न ये स्तौना अयासो महा

न चित् सुदानुरव यासदुमान्

॥ ५ ॥

त इदुमाः शवसा धृष्णपैणा

उमे युजन्त रोदसी सुमेके ।

अध स्मैपु रोदसी स्वशोविः

आमवस्तु तस्यो न रोकेः

॥ ६ ॥

अनेनो वो मरुतो यामो अस्तु

अनभ्वश्चिद् यमजत्परंथीः ।

अनवसो अनभीश रंजस्तुः

वि रोदसी पृथ्या याति सार्धन्

॥ ७ ॥

नास्यं धृतां न तंरुता न्वेस्ति

मरुतो यमव्यध वाजंसातौ ।

तोके धा गोपु तनये यमपु

स यजं दतो पायं अघ घोः

॥ ८ ॥

प्र चित्रमर्कं गृणते तुराय

मारुताय स्वर्तयसे भरध्वम् ।

ये सदांसि सदांसा सदांते

रेजते वागे पृथिवी मृगेभ्यः

॥ ९ ॥

त्विपीमन्तो अप्परस्यैव दिद्युत्  
रुपुच्यवसो जुहोतु नग्नेः ।

अचैत्रयो धुनयो न वीरा  
भार्जजन्मानो मरुतो अधृष्टाः

तं घृधन्तं मारुतं भार्जदृष्टिं  
रुद्रस्य सुतुं हवसा विवासे ।

दिवः शर्धाय शुचयो मनीषा  
गिरयो नाप उग्रा अस्पृधन्

॥ ३४ ॥ ( ऋ० ७/५३:१-२५ )

मैत्रावरुणर्वसिष्ठः । त्रिष्टुप्, १-११ द्विपदा विराट् ।

क इ व्यङ्का नरः सर्नीळा

रुद्रस्य मर्या अथा स्वधाः

नक्षिणीयां जुनृषि वेद ते

अह विद्रे मिथो जुनिर्धम्

अभि स्वपूमिर्मिथो वपन्त

वातस्वनसः श्वेना अस्पृधन्

पुतानि धीरो निष्पा चिकेत

पृथिव्यद्वयो मही जुमारं

सा विद् सुवीरां मरुद्भिरेस्तु

सुनात् संहन्ती पुष्यन्ती नृमणम्

यामं येष्टाः शुभा शोभिष्ठाः

धिया संमित्रा भोजोभिरुग्राः

उग्रं च भोजः क्षिरा दद्यांसि

अर्षा मरुद्भिर्गुणस्तुविष्मान्

शुभ्रो वः शुष्मः कुम्भी मर्तासि

शुनिर्मुनिरिय शर्धस्य घृष्णोः

सर्नम्यसद् युयोतं दिद्युं

मा यो दुर्मतिरिदं प्रणदन्ः

मिया वो नामं हुये तुराणां

आ यत् तपन्मरुतो पावशानाः

स्यापुषाम् इभिर्जः सुनिष्ठा

इत स्वयं तन्यः शुम्भमानाः

शुचीं वो हव्या मरुतः शुचीनां

शुचिं दिनोम्यध्वरं शुचिभ्यः ।

श्रुतेन सत्यमृतसारं मायन्

शुचिजन्मानः शुचयः पावकाः

असेष्वा मरुतः घादयो वो

चक्षःसु रुक्मा उपशिथ्रियाणाः ।

वि विद्युतो न घृष्टिर्भी रुचाना

अर्तुं स्वधामार्यधैर्यच्छमानाः

प्र घृष्ट्यां च ईरते मर्दासि

प्र नामानि प्रयज्यवस्तिरच्यम् ।

सहस्रियं दम्यं भागमेतं

रुहमेधीयं मरुतो जुषध्वम्

यदि स्तुतस्य मरुतो अधीय

इथा विप्रस्य याजिनो हवीमन् ।

मधू रायः सुवीर्यस्य वात

नृं विद् यमन्य आदमदराया

अत्यसो न ये मरुतः स्वज्ञां

यक्षदृष्टो न शुमपन्त मर्याः ।

ते हर्म्येष्टाः शिर्षयो न शुभा

घत्तासो न प्रक्षीळिनः पयोघाः

दशस्यन्तो नो मरुतो मृज्जन्तु

घरियस्यन्तो रोदसी सुमेरं ।

आरे गोदा नदा यपो यो अस्तु

सुप्तेभिरुस्मे यंसयो नमण्यम्

आ यो द्रोता जोदयीति स्रसः

सञ्चार्यो एति मरुतो गृणानः ।

य ईरतो घृणो अस्ति गोपाः

सो अश्यायी हयते च उक्थः

इमे तुरं मरुतो रामयन्ति

इमे मद्दः मर्दम् आ नमन्ति ।

इमे शंसं वनुष्यन्तो नि पान्ति

गुरु द्वेयो अरगये दधन्ति

॥ ३९ ॥

इमे र॒धं चिन्म॒रुतो॑ जुनन्ति  
भूमिं चिद् यथा घस्यो जुनन्त ।  
अप॑ वाधध्वं वृषणस्तर्मांसि  
धत्त विध्वं तनयं लोकमस्मे  
मा वो॑ क्षात्रान्मरुतो॑ निरराम  
मा पश्चाद् द॒ध्म रथो॑ वि॒भागे ।  
आ नः॑ स्पाहँ भ॒जतना॑ घस्येकु  
यदी॑ सुजातं वृषणो वो अस्ति  
सं यद्धनन्त॑ म॒न्युभिर्जना॑सुः  
शूरा॑ यक्षीष्वाप॑धीषु वि॒भु ।  
अध॑ स्मा नो मरुतो रुद्रियासः  
श्रुतारो॑ भूत॒ पृतना॑स्वर्यः  
भूरि॑ चक्र मरुतः पि॒त्र्याणि  
उफ॑थानि या वः शस्यन्ते पुरा चित् ।  
म॒रुद्भिरु॒ग्रः पृत॑नासु सा॒ढ्ढा  
म॒रुद्भिरित् स॒निता॑ वा॒जमयी॑  
अ॒से वी॒रो म॒रुतः॑ शु॒ष्प्यस्तु  
जना॑नां यो अ॒सुरो॑ वि॒धृता॑ ।  
अ॒पो येन॑ सु॒क्षितये॑ तरे॒म  
अध॑ स्वमोको॑ अ॒भि वः॑ स्याम  
त॒द्य इन्द्रो॑ वरु॒णो मि॒त्रो अ॒ग्निः  
आप॑ ओषधीर्वनिनो॑ जु॒नन्त ।  
शर्म॑न्स्याम म॒रुता॑मुप॒स्ये  
युयं॑ पात स्व॒स्तिभिः॑ सदा॑ नः

॥ ३५ ॥ ( ऋ० ७।५७।१-७ ) त्रिष्टुप् ।

म॒र्धो वो॑ नाम॒ मरुतं॑ यजत्राः  
प्र य॒ज्ञेषु॑ शर्वसा॒ मद॑न्ति ।  
ये रेज॑र्यन्ति रोद॑सी चिदु॒र्धो  
पि॒ब्यन्त्यु॒त्सं यद॑पासु॒रुग्राः॑  
नि॒चेता॑रो द्वि॒मरुतो॑ गृ॒णन्त  
प्र॒णेता॑रो यज॑मानस्य॒ मन्म॑ ।

॥ २० ॥

॥ २१ ॥

॥ २२ ॥

॥ २३ ॥

॥ २४ ॥

॥ २५ ॥

॥ १ ॥

अ॒साव॑म॒घ वि॒दथे॑षु॒ यदिः॑  
आ घी॒तये॑ मद॒त पि॒त्रिया॑णाः  
मैता॑र्य॒दन्ये म॒रुतो॑ य॒द्येमे  
भ्राज॑न्ते॒ रुक्मै॑रायु॒धस्तु॑न॒भिः ।  
आ रोद॑सी वि॒ष्वपि॑राः पि॒शानाः॑  
स॒मान॑म॒न्य॒जते॑ शु॒भे क॒म्  
ऋ॒ध्रु सा॑ वो॒ मरुतो॑ वि॒द्युद॑स्तु  
यद् य॒ आगं॑ पु॒रुष॑ता॒ कराम॑ ।  
मा य॒स्तस्या॑म॒पि भू॒मा यज॑त्रा  
अ॒स्मे वो॑ अस्तु सु॒मति॑ध्वनि॒ष्टा  
य॒ते चिद॑त्र॒ मरुतो॑ रण॒न्त  
अ॒नव॑द्यासः शुच॑र्यः पाव॒काः ।  
प्र णो॑ऽव॒त सु॒मति॑र्मि॒र्यज॑त्राः  
प्र याजै॑मि॒स्तिर॒त पु॒ष्यसै॑ नः  
उ॒त स्तु॑तासो॒ मरुतो॑ व्यन्तु  
वि॒श्वेभि॑र्ना॒मभि॑र्नरो॒ हवी॑र्षि ।  
ददा॑त नो अ॒मृत॑स्य॒ प्रजा॑र्यै  
जि॒गृत॑ रा॒यः सु॒नुता॑ म॒थानि॑  
आ स्तु॑तासो॒ मरुतो॑ वि॒श्वे ऊ॒ती  
अ॒च्छा सु॑रीन्सर्व॒ताता॑ जिगात ।  
ये न॒स्मना॑ श॒तिनो॑ ध॒र्यन्ति॑  
युयं॑ पात स्व॒स्तिभिः॑ सदा॑ नः

॥ ३६ ॥ ( ऋ० ७।५८।१-६ )

प्र सा॑कमु॒क्षे अ॒र्चता॑ ग॒णाय॑  
यो दै॒व्यस्य॑ धाम्नस्तुवि॒ष्मान् ।  
उ॒त क्षो॑दन्ति रोद॑सी म॒हित्वा  
नक्ष॑न्ते॒ नाकं॑ नि॒र्द्धते॑र॒वशात्  
ज॒न॒ध्विद् वो॑ मरुतस्त्वे॒र्येण॑  
भी॒मास्तु॑विम॒न्यवो॑ऽयासः ।  
प्र ये म॒हो॒मिरो॑ज॒सोत॑ सन्ति  
वि॒श्वो वो॑ या॒मन् म॒यते॑ स्व॒र्दक्

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ १ ॥

॥ २ ॥

बुद्ध्व घयो मधुघ्नयो दधातु  
 जुजोपघ्निरुतः सुपुति नः ।  
 गतो नाध्या वि तिराति जुनु  
 प्र णः स्पार्हाभिरुतिभिस्तिरत ॥ ३ ॥  
 युष्मोतो धियो मरुतः शतस्त्री  
 युष्मोतो अर्वा सहुरिः सहस्त्री ।  
 युष्मोतः सन्नाहृत हन्ति युत्रं  
 प्र तद् यौ अस्तु धृतयो देष्णम् ॥ ४ ॥  
 तां आ रुद्रस्य मीळुप्यो वियासे  
 कुयिभंसन्ते मरुतः पुनर्नः ।  
 यत् सस्वती जिह्वीह्निरे यदायिः  
 अथ तदेन ईमदे तुराणाम् ॥ ५ ॥  
 प्र सा घाचि सुपुतिर्मघोनां  
 इदं सुकं मरुतो जुपन्त ।  
 आराध्व देवो वृषणो युयोत  
 युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥  
 ॥ १७ ॥ ( अ० ७।५९।१-११ )  
 ( प्रगाथा- ( विषया बृहती, समा सतोबृहती ), ७-८ शिष्टम्,  
 १-११ गावत्री । )  
 यं त्रायंभ इदमिदं देवांसो यं च नयंथ ।  
 तस्मा अग्रे धरुण मिश्रार्थमन्  
 मरुतः शर्म यच्छत ॥ १ ॥  
 युष्माकं देवा अयसाहनि प्रिय  
 ईजानस्तरति ध्रिपः ।  
 प्र स क्षयं तिरते वि महीरियो  
 यो वो घराय दारशति ॥ २ ॥  
 नहि यंश्चरमं चन यस्मिष्ठः परिमंसते ।  
 अस्माकंमथ मरुतः सुते सखा  
 विश्वे पिबत कामिनः ॥ ३ ॥  
 नहि वं ऊतिः पुतनासु मर्धति  
 यस्मा मराध्वं नरः ।

अभि च आर्वते सुमतिर्नवीयसी  
 त्वयं यात पिपीपयः ॥ ४ ॥  
 ओ पु घृष्विराघसो यातनान्ध्रांसि पीतये ।  
 इमा घो हव्या मरुतो ररे हि कं  
 मो प्युन्यत्र गन्तन ॥ ५ ॥  
 आ चं नो घाहः सदेताविता चं नः  
 स्पार्हाणि वारधे वसु ।  
 अर्क्षघन्तो मरुतः सोम्ये मधौ  
 स्वादेह मादयाध्वै ॥ ६ ॥  
 सस्वमिहि तन्यः शुभ्रमाना  
 आ हुंसासो नीलपृष्ठा अपतन् ।  
 विश्वं शर्धो अभितो मा नि पेद  
 नरो न रुष्याः सर्वने मर्दन्तः ॥ ७ ॥  
 यो नो मरुतो अभि वृहणायुः  
 तिरश्चित्तानि वसयो जिघांसति ।  
 वृद्धः पाशान् प्रति स सुचीष्ट  
 तपिष्ठेन हर्मना हन्तना तम् ॥ ८ ॥  
 सान्तपना इदं हवि मरुतस्तज्जुष्टन ।  
 युष्माकोती रिशादसः ॥ ९ ॥  
 गृहमेधासु आ गत मरुतो मापं भूतन ।  
 युष्माकोती सुदानवः ॥ १० ॥  
 इहेह वः स्वतवसुः कर्षयः सूर्यत्यवः ।  
 युष्मं मरुत आ वृणे ॥ ११ ॥  
 ॥ १८ ॥ ( अ० ७।१०४।१८ ) जगती ।  
 वि तिष्ठध्वं मरुतो विश्विचुच्छत  
 गृमायतं रक्षसुः सं पिनष्टन ।  
 वयो ये मृत्वी पुतर्यन्ति नक्षभिः  
 ये वा रिपो दधिरे देवे अप्वरे ॥ १८ ॥  
 ॥ १९ ॥ ( अ० ८।९४।१-१२ )  
 बिन्दुः पुतदक्षो वा आविगरघः । गावत्री ।  
 गौर्धयति मरुतां अवस्युर्माता मघोनाम् ।  
 युक्ता वक्षी रथानाम् ॥ १९ ॥  
 ( ५५११ )



यस्यां देवा उपस्थे मृता विश्वे धारयन्ते ।  
 सूर्यामासां दृशे कम ॥ २ ॥  
 तत् सु नो विश्वे अयं आ सदां गृणन्ति कारयः ।  
 मरुतः सोमपीतये ॥ ३ ॥  
 अस्ति सोमो अयं सुतः पिबन्त्यस्य मरुतः ।  
 उत स्वराजो अभिना ॥ ४ ॥  
 पिबन्ति मित्रो अयंमा तनां पुतस्य वरुणः ।  
 त्रिपथस्यस्य जायतः ॥ ५ ॥  
 उतो न्वस्य जोषमा इन्द्रः सुतस्य गोमंतः ।  
 प्रातर्होतैव मत्सति ॥ ६ ॥  
 कदत्विपन्त सूरयस्तिर आप इव क्षिधः ।  
 अपैन्ति पुतदक्षसः ॥ ७ ॥  
 कक्षो अद्य महानो देवानामघो वृणे ।  
 रमनां च वृस्मयर्चसाम् ॥ ८ ॥  
 आ ये विश्वा पार्थिवानि पुप्रथन् रोचना दिवः ।  
 मरुतः सोमपीतये ॥ ९ ॥  
 स्यान् नु पुतदक्षसो दिवो वो मरुतो हुवे ।  
 अस्य सोमस्य पीतये ॥ १० ॥  
 स्यान् नु ये वि रोदसी तस्तभुर्मरुतो हुवे ।  
 अस्य सोमस्य पीतये ॥ ११ ॥  
 स्यं नु मरुतं गुणं गिरिष्ठां वृषणं हुवे ।  
 अस्य सोमस्य पीतये ॥ १२ ॥  
 ॥ ४० ॥ ( ऋ० १०।७।१-८ )  
 स्वमरुदिमर्गवः । त्रिष्टुप्, ५ अगती ।  
 धम्रमुपो न वाचा प्रुपा वसु  
 द्यिष्मन्तो न यक्षा विज्ञानुपः ।  
 सुमारुतं न ब्रह्माणमर्हसं  
 गुणमस्तोषयेपां न शोमसे ॥ १ ॥  
 धिये मर्यासो अक्षीरुरुण्यत  
 सुमारुतं न पृथीरति क्षपः ।  
 दिवस्प्रास पता न यैतिर  
 आदित्यामस्ते भवत न वावृधुः ॥ २ ॥

प्र ये दिवाः पृथिव्या न वृहणा  
 तमनां विरिञ्चे अभध्न सूर्यः ।  
 पाजस्वन्तो न धीराः पनस्यो  
 रिशार्दसो न मर्यां अभिर्चवः ॥ ३ ॥  
 युष्माकं वृधे अपां न यामनि  
 विथुर्यति न मही ग्रंथुर्यति ।  
 विश्वप्सुर्यश्चो अर्योगयं सु वः  
 प्रयस्वन्तो न सप्राच आ गत ॥ ४ ॥  
 युयं ध्रुवं प्रयुजो न रश्मिभिः  
 ज्योतिष्मन्तो न भासा व्युष्टिषु ।  
 द्येनासो न स्वयंशसो रिशार्दसः  
 प्रवासो न प्रसितासः पतिप्रुपः ॥ ५ ॥  
 प्र यद् वृहद्भवे मरुतः पराकाद्  
 युयं मुहः सुवरणस्य वस्वः ।  
 विदानासो वसयो राष्यस्य  
 आराक्षिद् द्वेपः सनुतयुयोत ॥ ६ ॥  
 य उदत्ति यक्षे अश्वरेष्ठा  
 मरुद्गणे न मानुषो वदांशत् ।  
 रेवत् स ययो दधते सुवीरं  
 स देवानामपि गोपीथे अस्तु ॥ ७ ॥  
 ते हि यक्षेणु यक्षियासु जमा  
 आदित्येन नाम्ना शंभविष्ठाः ।  
 ते नोऽवन्तु रथवर्मेनीपां  
 महश्च यामध्वरे चक्रानाः ॥ ८ ॥  
 ॥ ४१ ॥ ( ऋ० १०।७।१-८ ) त्रिष्टुप्, २, ५-७ अगती ।  
 विप्रासो न मर्मभिः स्वाध्वो  
 देवाव्योक्तु न यक्षैः स्वप्नसः ।  
 राजानो न चित्राः सुसुदशः  
 क्षितीनां न मर्या अरेपसः ॥ १ ॥



॥ ४८ ॥ ( अथर्व० ५।१६।५ ) द्विपक्षीं उष्णिक् ।  
 छन्दोसि युगे मरुतः स्वाहा  
 मातेव पुत्रं पिपृतेह युक्ताः ॥ ५ ॥  
 ॥ ४९ ॥ ( अथर्व० १३।१।३ ) अगती ।  
 युयमुग्रा मरुतः पृथ्निमातरः  
 इन्द्रेण युजा प्र मृणीत शत्रून् ।  
 आ घो रोहितः शृणवत् सुदानवः  
 त्रिपत्नासो मरुतः स्वादुसमुदः ॥ ३ ॥  
 ॥ ५० ॥ ( अथर्व० ३।१।९ )  
 अथर्वी । विराहगर्भा भुरिक् ।  
 युयमुग्रा मरुत ईहरो  
 स्वाभि प्रेत मृणत् सहस्रवम् ।  
 अमीमृणन् वंसवो नायिता इमे  
 अक्षिहोपां वृतः प्रत्येतु विद्वान् ॥ २ ॥  
 ॥ ५१ ॥ ( अथर्व० ३।२।६ ) त्रिष्टुप् ।  
 असौ या सेना मरुतः परेषां  
 अस्मानेत्यभ्योर्जसा स्पर्धमाना ।  
 तां विध्यत् तमसार्पयतेन्  
 यथैषामन्यो अन्यं न जानात् ॥ ६ ॥  
 ॥ ५२ ॥ ( अथर्व० ५।१४।६ ) वज्रपदातिगकरी ।  
 मरुतः पर्येतानामधिपतयस्ते मायन्तु ।  
 अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां  
 पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां  
 चित्यामस्यामाकृत्यामस्यामाशिष्यस्यां  
 वेद्यहृत्यां स्वाहा ॥ ६ ॥  
 ॥ ५३ ॥ ( अथर्व० ४।१३।४ )  
 संतातिः । अनुष्टुप् ।  
 प्रायन्तामिमं देयां खायन्तां मरुतो गणाः ।  
 प्रायन्तां विध्वा भूतानि यथायमरपा असेत् ॥ ४ ॥  
 ॥ ५४ ॥ ( अथर्व० ६।१३।१-३ )  
 वज्रपदा भुरिगगती, ३ त्रिष्टुप् ।  
 पर्यस्वतीः कृणुथाप ओर्षधीः शिवा  
 पदेजया मरुतो रफमवक्षसः ।

ऊर्जे च तत्र सुमति च पितृत्  
 यत्रा नरो मरुतः सिञ्चथा मर्षु ॥ २ ॥  
 उदग्रतो मरुतस्ता ईर्यते  
 वृष्टियां चिदया नियतस्फुणाति ।  
 पर्जाति ग्लहा कन्येयतुग्रा  
 परं तुन्दाना पर्येव आया ॥ ३ ॥  
 ॥ ५५ ॥ ( अथर्व० ४।१७।१-७ )  
 मृगारः । त्रिष्टुप् ।  
 मरुता मन्वे अर्धे मे द्रुघन्तु  
 प्रेमं धाजं धाजसाते भवन्तु ।  
 आशूनिष सुयमानह ऊतये  
 ते नो मुञ्चन्त्वहंसः ॥ १ ॥  
 उत्समक्षितं व्यचन्ति ये सदा  
 य आसिञ्चन्ति रसमोर्षधीषु ।  
 पुरो दधे मरुतः पृथ्निमातृन्  
 ते नो मुञ्चन्त्वहंसः ॥ २ ॥  
 पयो धेनुनां रसमोर्षधीनां  
 जवमर्थतां कवयो य इन्वध ।  
 शग्मा मधन्तु मरुतो नः स्योनाः  
 ते नो मुञ्चन्त्वहंसः ॥ ३ ॥  
 अपः समुद्राद् दिवमुब्रह्मन्ति  
 दिवस्पृथिवीमभि ये सृजन्ति ।  
 ये अद्भिरीशाना मरुतध्वरन्ति  
 ते नो मुञ्चन्त्वहंसः ॥ ४ ॥  
 ये कीलालेन तर्पयन्ति ये धृतेन  
 ये वा वयो मेदसा संसृजन्ति ।  
 ये अद्भिरीशाना मरुतो वर्पयन्ति  
 ते नो मुञ्चन्त्वहंसः ॥ ५ ॥  
 यदीदिदं मरुतो मार्क्षतेन  
 यदि देवा दैव्येनेदगारं ।  
 युयमीशिष्ये वसवस्तस्य निष्कृतेः  
 ते नो मुञ्चन्त्वहंसः ॥ ६ ॥

तिग्ममनीके विदितं सहस्रम्

मारुतं शर्यः पृथनासुग्रम् ।

स्तौमि मरुतो नाथितो जौहवीमि

ते नो मुञ्चन्वेहंसः

॥ ७ ॥

॥ ५६ ॥ ( अथर्व० ७।७७ [ ८२ ] १३ )

अविगराः । जगती ।

संवत्सरीणां मरुतः स्वर्का

उरुक्षपाः सर्गणा मानुपासः ।

ते अस्वत् पाशान् प्र मुञ्चन्त्येनसः

सांतपुना मत्सरा मोदयिष्यन्वः

॥ ३ ॥

मरुतसहचारी देवगणः ।

( १ ) मरुद्रुद्रविष्णवः ।

॥ ५७ ॥ ( ऋ० ५।३।३ )

वसुधत् आग्नेयः । त्रिष्टुप् ।

तव श्रिये मरुतो मर्जयन्तु

रुद्र यत् ते जनिम चारु चित्रम् ।

पदं यद् विष्णोरुपमं निधायि

तेन पासि शुभ्रं नाम गोनाम्

॥ ३ ॥

( २ ) मरुतोऽभामरुतौ वा ।

॥ ५८ ॥ ( ऋ० ५।३।१-८ )

शवाश्व आग्नेयः । त्रिष्टुप्, ७-८ जगती ।

इत्ते अग्निं स्वर्वसं नमोमिः

इह प्रसूतो वि चयत् कृतं नः ।

रथैरिव प्र मरे वाज्रपाङ्गिः

प्रदक्षिणिन्मरुतां स्तोममृष्याम्

॥ १ ॥

आ ये तस्युः पृथंतीषु श्रुतास्तुं

सुखेपुं रुद्रा मरुतो रथेषु ।

वनां चिदुग्रा जिह्वते नि वीं मिया

पृथिवी चिद् रेजते पर्वतश्चित्

॥ २ ॥

पर्वतश्चिन्महिं वृक्षो विभाय

दिवश्चित् सानुं रेजत स्वने वः ।

यत् क्रीळय मरुत ऋष्टिमन्तु

आप इव स्रष्ट्यञ्जो धवश्वे

॥ ३ ॥

धरा इवेद् रैवतासो हिरण्यैः

अग्निं स्वधार्मिस्तन्वः पिपिधे ।

श्रिये धेयांसस्तवसो रथेषु

स्रष्टा महांसि चक्रिरे तनूषु

॥ ४ ॥

अज्येष्टासो अर्कनिष्ठास एते

सं भ्रातरौ वावृधुः सौमगाय ।

युषां पिता स्वपां रुद्र पपां

सुदुघा पृश्निः सुदिनां मरुद्रयः

॥ ५ ॥

यदुत्तमे मरुतो मघ्यमे वा

यद् वाघमे सुमगासो विविष्ट ।

अतो नो रुद्रा उत वा न्वत्स्य

अग्नें वित्ताद्विषो यद् यजाम

॥ ६ ॥

अग्निश्च यन्मरुतो विश्ववेदसो

द्वियो वहश्च उत्तगदधि ण्यभिः ।

ते मन्दसाना धुनयो रिशादसो

वामं धन्त यजमानाय सुन्वते

॥ ७ ॥

अग्नें मरुद्भिः शुभयन्त्रिर्भ्रंक्षतिः

सोमं पिब मन्दसानो गणश्चिभिः ।

पावकेभिर्विश्वमिन्वेभिरायुभिः

वैश्वानर प्रदियां केतुनां सृजः

॥ ८ ॥

( ३ ) सोमः मरुतः ।

॥ ५९ ॥ ( अथर्व० १।१०।१ ) अथर्व । त्रिष्टुप् ।

अदोरुहद् भवतु देव सोम

अस्मिन् यज्ञे मरुतो मृडतां नः ।

मा नो विदद्भिमा मो अशस्तिः

मा नो विदद् वृजिना द्रेष्या या

॥ १ ॥

( २५३ )

## ( ४ ) मरुत्पर्जन्यौ ।

॥ ६० ॥ ( अथर्घं ४।१।५-४ ) विराट्पुरस्ताद्वर्णः ।

गुणास्तथोप गायन्तु मार्कताः

पर्जन्य योषिणः पर्यक् ।

सर्गां वर्षस्य वर्षतो यर्थन्तु पृथिवीमनु ॥ ४ ॥

## ( ५ ) मरुत आपः ।

॥ ६१ ॥ ( अथर्घं ४।१।५-१० )

( ५ विराट् अगती, ७ अनुष्टुप्, ९, ८ त्रिष्टुप्, ९ पञ्चा  
र्यक्, १० भुरिक् । )

उदीरयत मरुतः समुद्रतः

त्वेषो अकौ नम उत्पातयाथ ।

महश्चपमस्य नर्दतो नर्मस्वतो

वाधा आपः पृथिवीं तर्पयन्तु

॥ ५ ॥

अभि क्रन्द स्तनयार्दयोवृधि

मुग्धि पर्जन्य पर्यसा समग्नि ।

त्वया सुष्टं बह्वलमैतु वर्षे

आशास्वैषी कुशगुरेत्वस्तम्

॥ ६ ॥

सं वोऽवन्तु सुदानव उत्सां अजगरा उत ।

मरुद्भिः प्रच्युता मेघा वर्षन्तु पृथिवीमनु ॥ ७ ॥

आशामाशां वि द्यौततां वातां यान्तु दिद्रोदिशः ।

मरुद्भिः प्रच्युता मेघाः सं यन्तु पृथिवीमनु ॥ ८ ॥

आपो विष्णुवभ्रं वर्षे

सं वोऽवन्तु सुदानव उत्सां अजगरा उत ।

मरुद्भिः प्रच्युता मेघाः प्रावन्तु पृथिवीमनु ॥ ९ ॥

अपामग्निस्तनूभिः संविदानो

य ओषधीनामधिपा बभूव ।

स नो वर्षे वन्तुतां ज्ञातवैदाः

प्राणं प्रजाभ्यो अमृतं विवस्पर्ति

॥ १० ॥

( ४५१० )



## आरोग्य-मंत्रौ

# अश्विनौ-देवता ।

॥ १ ॥ ( ऋ० १।३।१-२ )

मधुप्लन्दा वैशमित्रः । गायत्री ।

अश्विना यज्यसीरिषो द्रवत्पाणौ शुर्मस्पती ।

पुर्वभुजा चनस्यतम् ॥ १ ॥

अश्विना पुर्वदंसला नरा शर्वीरया धिया ।

धिण्या चनंतं गिरः ॥ २ ॥

दक्षा युवार्कषः सुता नार्सत्या पृक्कर्वाहिपः ।

आ यातं रुद्रवर्तेनी ॥ ३ ॥

॥ २ ॥ ( ऋ० १।३।५।११ )

मेघातिथिः काल्यः । ( ऋद्रवहिता ) । गायत्री ।

अश्विना पिवंतं मधु दीधम्नी शुचिप्रता ।

ऋतुना यज्ञवाहसा ॥ १ ॥

॥ ३ ॥ ( १।२१।१-४ )

प्रातर्युजा वि बोधया अश्विनावेह गच्छताम् ।

अस्य सोमस्य पीतये ॥ १ ॥

या सुरया रथीतमो मा देवा दिविस्पृशा ।

अश्विना ता हवामहे ॥ २ ॥

या वां कशा मधुमत्य अश्विना सुनुतावती ।

तया यज्ञं मिमिक्षतम् ॥ ३ ॥

नदि वामस्ति दूरके यत्रा रथेन गच्छेयः ।

अश्विना सोमिनो गृहम् ॥ ४ ॥

॥ ४ ॥ ( ऋ० १।३।१७-१९ )

शुन.रोप आजीर्णतिः स कुत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः ।

आश्विनावभवावत्ये पा यातं शर्वीरया ।

गोमव् दक्षा हिरण्ययत् ॥ १७ ॥

समानयोजनो हि वां रथो दक्षावर्मत्यः ।

समुद्रे अश्विनेयते ॥ १८ ॥

न्याय्यस्य मुधेनि खक्रं रथस्य देमधुः ।

एहि धामन्यवीयते ॥ १९ ॥

॥ ५ ॥ ( ऋ० १।३।११-१२ )

हिरण्यस्तप आङ्गिरसः । अयतीः ९, १२ त्रिष्टुप् ।

प्रिश्चिन् नो अया मवतं नवेदसा

विमुवां याम उत रातिरश्विना ।

युवोहि युजं हिम्येव वासतो

अभ्यायसेन्यां भवतं मनीषिभिः ॥ १ ॥

त्रयः पवयो मधुवाहने रथे

सोमस्य घेनामनु विष्ट इव विदुः ।

त्रयः स्कम्मासः स्कमितासं आरभे

त्रिनक्तं यायसिर्वैश्विना दिवा ॥ २ ॥

समाने अहन् त्रिरचयगोहना  
त्रिरच यज्ञं मधुना मिमिक्षतम् ।  
त्रिर्वाजयतीरियो अश्विना युव  
द्वोषा असर्ग्यमुपसंश्च पिन्वतम्  
त्रिर्धर्तिर्यौत त्रिरनुव्रते जने  
त्रिः सुप्राग्ये त्रेधेवं शिक्षतम् ।  
त्रिर्नान्यं बहत्तमश्विना युवं  
त्रिः पक्षो असे अक्षरैष पिन्वतम्  
त्रिर्नो रयि बहत्तमश्विना युव  
त्रिर्देवताता त्रिरुतावत् धिर्यः ।  
त्रिः सौमगत्यं त्रिरुत धर्वांसि नः  
त्रिष्ठं यां सूरं दुहिता वृहद् रथम्  
त्रिर्नो अश्विना दिव्यानि भेषजा  
त्रिः पार्थिवानि त्रिर्दक्षमज्जयः ।  
भोमानं शंयोर्ममकाय सुनयै  
त्रिघातु शर्म बहत्तं शुमस्पती  
त्रिर्नो अश्विना यजता द्विवेदिधे  
पतिं त्रिघातु पृथिवीमशायतम् ।  
तिष्ठो नासत्या रथ्या परावतं  
आत्मेयं घातुः स्वसंराणि गच्छतम्  
त्रिरश्विना सिन्धुमिः सुतमातृभिः  
त्रयं आद्यायाग्नेया हविष्कृतम् ।  
तिष्ठः पृथिवीरुपरि प्रया द्वियो  
नार्कः रक्षेधे पुमिरनुमिर्हितम्  
॥ ३ ॥ त्री चमा त्रियुतो रथस्य  
॥ ४ ॥ त्रयो यन्धुरो ये सतीळाः ।  
वृद्धा योगो याजिनो राक्षसस्य  
येन युवं नामस्योपयायः  
॥ ५ ॥ आ नामस्या गच्छतं दृषते हवि-  
मर्ष्यः पिबतं मधुपेर्मितामभिः ।  
युवोर्हि पूर्वं गविनोपग्नो रथं  
सुतायं चित्रं धनवंतमिष्यभि

आ नासत्या त्रिभिरेकादशैरिह  
वेवेमिर्यातं मधुपेयमश्विना ।  
प्रायुस्तारिष्टं नी रपांसि मृक्षतं  
॥ ३ ॥ सेधतं द्वेयो भवतं सत्तामुवां ॥ ११ ॥  
आ नो अश्विना त्रिवृता रथेन  
अवाञ्चं रयि बहत्तं सुवीरम् ।  
शृण्वन्तां वामर्यसे जोहवीमि  
॥ ४ ॥ वृधे च नो भयत वाजंसातौ ॥ १२ ॥  
॥ ६ ॥ ( ऋ० १।४६।१-१५ )  
प्रहृष्टव्यं काण्व । गायत्री ।  
एषो उषा अपूर्व्यां ह्युच्छति प्रिया विष ।  
॥ ५ ॥ स्तुपे धामश्विना बृहत् ॥ १ ॥  
या वृक्षा सिन्धुमातरा मनोतरा रयीणाम् ।  
धिया देवा यंसुविदां ॥ २ ॥  
वृन्त्यन्ते यां ककुहासौ जुर्णायामधि विष्टपि ।  
॥ ६ ॥ यत् थां रथो विमिष्यतात् ॥ ३ ॥  
हविषा जाते अपां पिपतिं पयुरिर्नरा ।  
पिता कुटस्थ चर्पणिः ॥ ४ ॥  
आदारो वां मतीनां नासत्या मतवचसा ।  
॥ ७ ॥ पातं सोमस्य धृष्ण्या ॥ ५ ॥  
या नः पीपरदभिवना ज्योतिर्भमती तमस्तिरः ।  
तामसे रत्तायामिषम् ॥ ६ ॥  
आ नो नावा मतीनां यातं पाराय गन्तवे ।  
॥ ८ ॥ युजाथामभिवना रथम् ॥ ७ ॥  
अरिष्यं थां दिवस्पूय शीथे सिन्धूनां रथः ।  
धिया युयुज इन्द्रयः ॥ ८ ॥  
दिवस्फणास इन्द्रयो यसु सिन्धूनां पदे ।  
॥ ९ ॥ स्व यमि कुहं धितसयः ॥ ९ ॥  
अर्भुदुःमा उं भंशये हिरण्यं प्रति सूर्यः ।  
व्यव्यज्जिहयासितः ॥ १० ॥  
अर्भुदुःपात्मेतये पण्यां ऋतस्यं साधुया ।  
॥ १० ॥ अर्दति यि धृतिरिव ॥ ११ ॥

तत् तद्विद्वद्विनोर्यो जरिता प्रति भूपति ।  
मदे सोमस्य पिप्रतोः ॥ १२ ॥  
वावसाना विवस्वति सोमस्य पीत्या गिरा ।  
मुनुष्यच्छम् आ गतम् ॥ १३ ॥  
युवोरुया अनु धियं परिरुमनोरुपार्चरत् ।  
ऋता र्वनयो अकुभिः ॥ १४ ॥  
उमा विवतमद्विनो मा नः शर्म यच्छतम् ।  
अविद्वियार्मिरुतिभिः ॥ १५ ॥

॥ ७ ॥ ( ऋ० १।४७।१-१० )

प्रगाथा = ( विपमा ) बृहती, ( समा ) सती बृहती ।

अयं वां मधुमत्तमः सुतः सोमं ऋतावृधा ।  
तमद्विना पियतं तिरोमह्यं  
धत्तं रत्नानि दाशुये ॥ १ ॥  
त्रिघ्नधुरेण शिवृता सुपेशसा  
रयेना यातमद्विना ।  
कण्वालो वां ग्रहं कृण्वन्त्यध्वरे  
तेपां सु-ऋणुतं हवम् ॥ २ ॥  
अद्विना मधुमत्तमं पातं सोममृतावृधा ।  
अथाद्य दक्षा वसु विभ्रता रये  
दाद्व्यासमुप गच्छतम् ॥ ३ ॥  
त्रिपध्वसे वहिर्पि विश्ववेदसा  
मध्या यद्वं भिमिशतम् ।  
कण्वालो वां सुतसोमा अभिद्यधो  
युवां हवन्ते अद्विना ॥ ४ ॥  
यामिः कण्वमभिष्टिभिः प्रावतं युवमद्विना ।  
तामिः च्वस्मीं अवतं शुमस्पती  
पातं सोममृतावृधा ॥ ५ ॥  
सुदासे दक्षा वसु विभ्रता रये  
पृक्षो बहतमद्विना ।  
रपि संमुद्रादुत वां दिवस्पति  
अस्मे धेवं पुरुस्पृहम् ॥ ६ ॥

यर्वासत्या पयवति यद् वा स्यो अधि तुर्वशे ।  
अतो रयेन सुवृता न आ गतं  
साकं सूर्यस्य रुदिभिः ॥ ७ ॥  
अर्वाञ्चा वां सतयोऽध्वरुधियो  
वहन्तु सवनेदुप ।  
इयं पृञ्चन्तां सुकृते सुदानव  
आ वहिः सीदतं नरा ॥ ८ ॥  
तेनं नासत्या गतं रयेन सूर्यत्वचा ।  
येन शश्वद्वह्युर्दोशुपे वसु  
मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ९ ॥  
उकथेभिर्दुर्गागवसे पुरुवस्  
अकंश्च नि हयामहे ।  
शश्वत् कण्वानां सवसि म्रिये हि कं  
सोमं पुपयुरद्विना ॥ १० ॥

॥ ८ ॥ ( ऋ० १।११।१६-१८ )

गोतमो राहुगणः । उष्णिक् ।

अद्विना वर्तिरुमदा गोमव् दक्षा हिरण्यवत् ।  
अर्याग्रथं समनसा नि यच्छतम् ॥ १६ ॥  
यावित्या श्लोकमा दिवो ज्योतिर्जनाय चक्रयुः ।  
आ न उजै बहतमद्विना युवम् ॥ १७ ॥  
पह देवा मयोभुवा दक्षा हिरण्यवर्तनी ।  
उपर्युधो बहन्तु सोमपीतये ॥ १८ ॥

॥ ९ ॥ ( ऋ० १।११।१-२५ )

इत्स आश्विनः । १ ( आश्वपादस्य ) धावापुष्यौ,  
१ ( द्वितीयपादस्य ) अमिः, १ ( उत्तरार्धस्य ) अश्विनौ,  
२-२५ अश्विनौ । जगतोः २४-२५ त्रिष्टुप् ।

ईळे धावापृथिवी पुर्वचिन्त्ये  
अग्निं धम सुवृत्तं यामिष्टिये ।  
यामिर्मरं कारमंशाय जित्वंथः  
तामिरु पु ऊतिभिर्द्विना गतम् ॥ १९ ॥



युवोर्दानाय सुभरा अस्रद्यतो  
 रथमा तस्थुर्वचस न मन्तवे ।  
 याभिर्विधयोऽवथः कर्मनिष्ठये  
 तामिरु पु क्रुतिमिरद्विना गतम् ॥ २ ॥  
 युव तासां दिव्यस्य प्रशासने  
 विशां क्षयथो अमृतस्य मृज्मना ।  
 यामिर्धेनुमस्वं । पिन्वथो नरा  
 तामिरु पु क्रुतिमिरद्विना गतम् ॥ ३ ॥  
 यामिः परिष्मा तनेयस्य मृज्मना  
 हिमाता तपु तरणैर्विभूयति ।  
 यामिस्त्रिमन्तरमेवद विचक्षणः  
 तामिरु पु क्रुतिमिरद्विना गतम् ॥ ४ ॥  
 यामी रेमे निवृत्तं स्तितमद्रव्यः  
 उद् धन्वनमैरयत् स्वर्देशे ।  
 यामिः कण्वं प्र सिपासन्तुमावर्तं  
 तामिरु पु क्रुतिमिरद्विना गतम् ॥ ५ ॥  
 यामिरन्तकं जलमानमारणे  
 मृज्यु यामिरव्यथिभिर्जिज्ञिष्यथुः ।  
 यामिः कर्कशं घृयं च जिग्यथुः  
 तामिरु पु क्रुतिमिरद्विना गतम् ॥ ६ ॥  
 यामिः शुचन्ति धनसां सुपंसदं  
 न्तं घर्ममोक्षार्यन्तुमप्रये ।  
 यामिः पृथ्निगुं पुरकृत्स्नमावर्तं  
 तामिरु पु क्रुतिमिरद्विना गतम् ॥ ७ ॥  
 यामिः शन्यमिष्यपणा परायुजं  
 ग्रान्धं धोणं चरुणं वनये कृयः ।  
 यामिर्वर्तिनां प्रतिताममुञ्चतं  
 तामिरु पु क्रुतिमिरद्विना गतम् ॥ ८ ॥  
 यामिः गिन्धुं मर्पमन्ममयक्षतं  
 यतिगुं यामिरुपयार्जिष्यन्म ।

यामिः कुत्सं श्रुतयं नयमावर्तं  
 तामिरु पु क्रुतिमिरद्विना गतम् ॥ ९ ॥  
 यामिर्विषण्णां धनसामग्र्यं  
 सहस्रमील्लह आजवाजिन्धतम् ।  
 यामिर्वशमद्वयं प्रेणिमावर्तं  
 तामिरु पु क्रुतिमिरद्विना गतम् ॥ १० ॥  
 यामिः सुदानू औशिजाय वृणिजे  
 दीर्घश्रवसे मधु कोशो अक्षरत् ।  
 कक्षीवन्तं स्तोतारं यामिरावर्तं  
 तामिरु पु क्रुतिमिरद्विना गतम् ॥ ११ ॥  
 यामी रसां श्लोदसोद्रः पिपिन्वथुः  
 अनश्वं यामी रथमावर्तं जिपे ।  
 यामिस्त्रिशोकं उस्त्रियां उदाजतं  
 तामिरु पु क्रुतिमिरद्विना गतम् ॥ १२ ॥  
 यामिः सूर्यं परियाथः परावति  
 मन्धातारं क्षेप्रपत्येष्वावर्तम् ।  
 यामिर्विप्रं प्र भरुजामावर्तं  
 तामिरु पु क्रुतिमिरद्विना गतम् ॥ १३ ॥  
 यामिर्महामतिथिग्वं कशोजुयं  
 दिवोदासं शम्बरद्वत्य आवर्तम् ।  
 यामिः पुमिर्धे वसदस्युमावर्तं  
 तामिरु पु क्रुतिमिरद्विना गतम् ॥ १४ ॥  
 यामिर्वेधं विपिणनमुपस्तुत  
 कलि यामिर्विस्तजानि दुवस्यथः ।  
 यामिर्व्यंश्चमुत पृथिमावर्तं  
 तामिरु पु क्रुतिमिरद्विना गतम् ॥ १५ ॥  
 यामिनरा शायये यामिरत्रये  
 यामिः पुरा मनये गातुसीपथुः ।  
 यामिः शारीराजतं स्युर्मरदमये  
 तामिरु पु क्रुतिमिरद्विना गतम् ॥ १६ ॥

यामिः पठर्वा जठरस्य मृज्मना अश्विनोर्दीदिद्युत इन्द्रो अज्मना । यामिः शर्यातमर्बथो महाधने तामिरु पु कृतिमिरश्विना गतम् यामिरक्षिते मर्नसा निरण्यथः अग्रं गच्छथो विधरे गोर्णसः । यामिर्मुनं शूरमिपा समर्बतं तामिरु पु कृतिमिरश्विना गतम् यामिः पत्नीधिमदाय न्युहयुः आ घं वा यामिरक्षणीरशिक्षतम् । यामिः सुवास ऊहयुः सुवेय्यं तामिरु पु कृतिमिरश्विना गतम् यामिः शंताती भर्बथो द्वाशुयै मुज्यं यामिरर्बथो यामिरभिगुम् । ओम्यावर्ती सुमरामृतस्तुमं तामिरु पु कृतिमिरश्विना गतम् यामिः कृशानुमर्सने दुवस्यथो जुषे यामिर्युनो अर्बतमावर्तम् । मधुं प्रियं भरथो यत् सरङ्भ्यः तामिरु पु कृतिमिरश्विना गतम् यामिर्नरै गोपुयुधं नृपाद्ये क्षेत्रस्य साता तर्नयस्य जिन्वथः । यामी र्यां अर्बथो यामिरयैतः तामिरु पु कृतिमिरश्विना गतम् यामिः कुत्समाजुनेयं शतकतु प्र तुर्वीति प्र च दृमीतिमावर्तम् । यामिर्ध्वसन्ति पुरुषन्तिमावर्तं तामिरु पु कृतिमिरश्विना गतम् अमस्वतीमश्विना वाचमसे कृतं नो दक्षा वृषणा मनीषाम् । अद्युत्येऽवसे नि ह्ये वां युधे च नो भयतं वाजसातौ	युमिरक्तुमिः परि पातमसान् अरिष्टमिरश्विना सौमगेभिः । तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तां अद्वैतिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ १७ ॥ ॥ १० ॥ ( ऋ० १।१२६।१-२५ ) कृशोवा न देवतमस ओमिशमः । मिष्टुप । नासत्याभ्यां युहिरिव प्र वृजे स्तोमो इयम्यभ्रियैव वार्तः । यावर्मगाय विमदाय जायां सैनानुवा न्युहतु रथेन ॥ १८ ॥ ॥ १९ ॥ वीळपरमभिराशुहेमभिर्वा देवानां वा जुतिभिः शाशदाना । तद् रासमो नासत्या सुह्रै आजा यमस्य प्रघने जिगाय ॥ २० ॥ तुग्रो ह मुज्यमश्विनोदमेधे रथि न कश्चिन्ममूवां अवाहाः । तमृहयुनोमिरात्मन्वतीभिः अन्तरिक्षप्रुद्रिरपोदकाभिः ॥ २१ ॥ तिन्नः क्षपश्चिरहोतिमर्जजिः नासत्या मुज्युर्महयुः पतङ्गैः । समुद्रस्य धन्वन्तर्यस्य गुरे त्रिमी रथैः शतपङ्क्तिः पळ्भैः ॥ २२ ॥ अनारम्भणे तदधीरयेयां अनास्थाने अग्रमणे समुद्रे । यदश्विना ऊहयुर्मज्युमस्तं शतारित्रां नावमातस्त्रिवांसम् ॥ २३ ॥ यमश्विना द्दयुः श्वेतमर्धं अघाश्वाय शद्वदित् स्यति । तद् वां दाघं महि क्षीतेन्यं भूत् पेदो वाजी सदभिद्वयो अयः ॥ २४ ॥	॥ २५ ॥ ॥ १ ॥ ॥ २ ॥ ॥ ३ ॥ ॥ ४ ॥ ॥ ५ ॥ ॥ ६ ॥
--	---	--

युवं नरा स्तुवते पञ्जियाय  
 कक्षीयते अरदत्तं पुरंधिम् ।  
 कारोतराच्छफादश्वस्य वृष्णः  
 शतं कुम्भौ अंसिञ्चतं सुरायाः ॥ ७ ॥  
 हिमेनाग्निं घ्नं समवारयेथां  
 पितुर्महीमूर्जैर्मस्मा अघस्तम् ।  
 श्रुधीसे अग्निमदियनार्चनीतं  
 उन्निन्यथुः सर्वेगणं स्वस्ति ॥ ८ ॥  
 परावृतं नासत्यानुदेथां  
 उच्चार्यध्वं चक्रयुजिंक्षयारम् ।  
 क्षरन्नापो न प्रायनाय राये  
 सहस्राय सृप्यते गोतमस्य ॥ ९ ॥  
 जुजुरपौ नासत्योत धुमि  
 प्रामुञ्चतं द्वापिमिष्य च्यथानात् ।  
 प्रातिरेतं जहितस्यापुर्वेक्षाद्  
 इत् पतिमरुणुतं कुनीनाम् ॥ १० ॥  
 तद् यौ नरा शंस्यं राध्वं च  
 अभिष्टिमन्नासत्या वरुधम् ।  
 यद् विठांसा निधिमिषार्पगूळ्हे  
 उद् दंशतादुपधुर्वन्दनाय ॥ ११ ॥  
 तद् यौ नरा सूनये दंसं उग्रं  
 अशिरुहंगोमि तस्युतुनं वृष्टिम् ।  
 वृध्यद् न यन्मर्षार्धवणो धां  
 धुम्यस्य शीर्ष्णां प्र यदीमुयात्वं ॥ १२ ॥  
 अज्ञोदयीप्राप्तया वरा यौ  
 गदे यामन् पुग्मुजा पुरंधिः ।  
 धुते मरुतासुरिय यन्निमत्या  
 हिरण्यदग्नमग्निनापदक्षम् ॥ १३ ॥  
 धुस्तो वृषस्य पतिं कामगीर्षे  
 युवं नरा नागव्यामुगुलम् ।

उतो कवि पुंरुमुजा युवं ह  
 रूपमाणमरुणुतं विचक्षे ॥ १४ ॥  
 चरित्रं हि वेरिवाच्छेदि पर्णं  
 आज्ञा खेलस्य परितक्मयायाम् ।  
 सद्यो जडघामार्यसां विक्षलायै  
 धनै हिते सतैवे प्रत्यघस्तम् ॥ १५ ॥  
 शतं मेपान् वृक्ष्ये चक्षदानं  
 श्रुजाश्वं ते पितान्धं चकार ।  
 तस्मा मक्षी नासत्या विचक्ष  
 आर्चतं दक्षा भिपजावनर्वन् ॥ १६ ॥  
 आ वां रथे दुहिता सूर्यस्य  
 कार्ष्णैवातिष्ठदर्थेता जयन्ती ।  
 विश्वे देवा बन्ध्वमन्यन्त दृष्टिः  
 समु श्रिया नासत्या सचेधे ॥ १७ ॥  
 यदयातं विचौदासाय यतिः  
 भरद्वाजायाश्विना हयन्ता ।  
 रेवतुवाह सच्चनो रथौ थां  
 धूपभक्ष शिशुमारदश्च युक्ता ॥ १८ ॥  
 रयि सुक्षत्रं स्वपत्यमार्युः  
 सुवीर्यं नासत्या वहन्ता ।  
 आ जुद्धार्यौ समनसोप वाजैः  
 विरद्धौ भागं दधतीमयातम् ॥ १९ ॥  
 परिविष्टं जाह्नपं विदधतः सीं  
 सुगेभिर्निकम्हथु रजोभिः ।  
 विभिन्दुना नासत्या रथेन  
 धि पर्येतां अजर्यु अयातम् ॥ २० ॥  
 परकस्या यस्तोपयतं रणाय  
 यशमदियना सूनये सहस्रां ।  
 निरहतं दुष्टदुना इन्द्रयन्ता  
 पूयधर्यसो वृषणापरांतीः ॥ २१ ॥

शस्त्रं चिदार्चकस्यावतादा  
नीचादुद्धा चक्रयुः पार्तये वाः ।

शयवे चिन्नासत्या शचीभिः  
जस्तुरये स्तयै पिप्यथुर्गाम्  
अवस्यते स्तुवते कृष्णिपार्य  
ऋजयते नासत्या शचीभिः ।

पशुं न नष्टमिधु दर्शनाय  
विष्णापर्वं वदयुर्विधकाय  
वरा रात्रीरशिवेना नव घ्न  
अर्चनद्धं अयितमपस्वन्तः ।

विप्रुतं रेभमुदनि प्रवृत्तं  
उक्षिण्यथुः सोममिधु भुवेषां  
म वां देलांस्यशिवनावयोचं  
अस्य पतिः स्यां सुगवः सुवीरः ।

उत पश्यन्नश्ववन् दौर्घमायुः  
अस्तमिवेज्जिमाणं जगम्याम्

॥ ११ ॥ ( ऋ० १।११।१-१५ )

मध्वः सोमस्याश्विना मदाय  
प्रज्ञो होता विचासते वाम् ।  
यहिर्पमती रातिर्विश्रिता गीः  
इषा यातं नासत्योप वाजैः  
यो धामाश्विना मर्नसो जयीयान्  
रथः स्थश्चो विशा आजिगाति ।  
येन गच्छथः सुकृतीं दुरोणं  
तेन नप वतिरस्मभ्यं यातम्  
ऋषिं नरावहंसः पाञ्चजन्यं  
ऋषीसादन्नि मुञ्चथो गणेन ।  
मिनन्ता दस्योरशिवस्य माया  
अनुपुर्वं वृषणा चौदर्यन्ता  
अश्वं न गृह्णमश्विना दुरेवैः  
ऋषिं नरा वृषणा रेभमपसु ।

॥ २२ ॥

॥ २३ ॥

॥ २४ ॥

॥ २५ ॥

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

सं तं रिणीथो विप्रुतं दंसोभिः  
न वां जूर्यन्ति पुर्व्यां कृतानि

॥ ४ ॥

सुपुष्पांसं न निर्हृतेरुपस्थे  
सूर्यं न दद्या तमसि क्षियन्तम् ।

शुमे रुमं न दर्शतं निखातं  
उदूपयुराश्विना वन्दनाय

॥ ५ ॥

तद् वां नरा शंस्यं पत्रियेणं  
कशीर्चता नासत्या परिजम् ।

शफादश्वस्य वाजिनो जनाय  
शतं कुम्भां अंसिञ्जतं मथूनाम्

॥ ६ ॥

युधं नरा स्तुवते कृष्णिपार्य  
विष्णापर्वं वदयुर्विधकाय ।

योपायि चित् पितृपदे दुरोणे  
पतिं जूर्यन्त्या अश्विनावदत्तम्

॥ ७ ॥

युवं श्वावायं रुशतीमदत्तं  
महः क्षोणस्याश्विना कर्वाय ।

प्रवाच्यं तद् वृषणा कृतं वां  
यन्नापदाय अवीं अच्यधत्तम्

॥ ८ ॥

एकं अपीत्यश्विना दधाना  
नि पेदवं ऊहयुपशुमश्वम् ।

सहस्रसां वाजिनमप्रतीतं  
अहिहर्नै श्रवस्यं तुतरयम्

॥ ९ ॥

एतानि वां श्रवस्यां सुदानू  
ग्रहाद्रूपं सदेनं रोदस्योः ।

यद् वां पञ्चासौ अश्विना हयन्ते  
यातमिया च विदुपे च वाजम्

॥ १० ॥

सुनोर्मानेनाश्विना गृणाना  
वाजं विप्राय भुरणा रदन्ता ।

अगस्त्ये ग्रहाणा वावृधाना  
सं विश्पलां नासत्यारिणीतम्

॥ ११ ॥

( ११५ )

कुह यान्ता सुप्रति काव्यस्य  
 दिवो नपाता वृषणा शयुञ्चा ।  
 हिरण्यस्येव कलशं निखातं  
 उदूपथुर्दशमे अश्विनाह्न  
 युधं च्यवानमश्विना जरन्तं  
 पुनर्युवाने चक्रधुः शचीभिः ।  
 युवो रथं दुहिता सूर्यस्य  
 सह श्रिया नास्त्यावृणीत ।  
 युधं तुप्राय पुष्यैरिरेवैः  
 पुनर्मग्यावभवतं युवाना ।  
 युवं भुज्युमर्णसो निः समुद्राद्  
 विभिरुहयुर्दशैरिरेवैः  
 अजोहवीदश्विना तौग्यो वां  
 प्रोब्धः समुद्रमन्यथिर्जगन्वान् ।  
 निष्टमूहधुः सुयुजा रथेन  
 मनोजवसा वृषणा स्युस्ति  
 अजोहवीदश्विना वर्तिका वां  
 आसो यत् सीममुञ्जतं वृकस्य ।  
 वि जुषुषा ययधुः साम्बेद्रेः  
 जातं विष्वाचो अहतं विप्रेण  
 शतं मेयान् वृष्ये मामहानं  
 तमः प्रणीतमश्विनेन पित्रा ।  
 आक्षी म्रुञ्जादथे अश्विनयायधत्तं  
 ज्योतिरुपाय चक्रयुर्विचक्षे  
 शनमन्थाय मरमदयत् सा  
 पुकीरश्विना वृषणा नरेति ।  
 जारः कुनीन इय चक्षदान  
 म्रुञ्जादथेः शतमेकं च मेयान्  
 मही पामृतिरश्विना मयोभूः  
 इत ग्रामं पिप्प्रा सं रिणीथः ।

अथा युवामिदं दयत् पुरैभिः  
 आगच्छतं सौ वृषणाववोभिः ॥ १९ ॥  
 अर्धेन दक्षा स्तयः विपक्तां  
 अपेन्वतं शयवे अश्विना गाम् ।  
 युवं शचीभिर्विमदाय जायां  
 न्यूहयुः पुरुमित्रस्य योषाम् ॥ २० ॥  
 यवं वृकेणाश्विना वपन्त  
 इपं दुहन्ता मनुपाय दक्षा ।  
 अभि दस्युं यकुरेणा धमेन्त  
 ऊरु ज्योतिश्चक्रयुरायीय ॥ २१ ॥  
 आयर्वणायाश्विना दधीचे  
 अरुणं शिरः प्रत्यैरयतम् ।  
 स वां मधु प्र वोचहतायन्  
 त्वाष्टं यद् वस्त्रावपिकस्यै वाम् ॥ २२ ॥  
 सदा कवी सुमतिमा चके वां  
 विश्वा धियो अश्विना प्रारतं मे ।  
 अस्मे रुयि नास्त्या बृहन्तं  
 अपत्यसावं ध्रुवं रराशाम् ॥ २३ ॥  
 हिरण्यहस्तमश्विना रराणा  
 पुत्रं नरा वभ्रिमत्या अदत्तम् ।  
 त्रिधा ह श्यावमश्विना विकस्तं  
 उज्जीवसे पेरयतं सुदान् ॥ २४ ॥  
 एतानि धामश्विना वीर्यौणि  
 प्र पृथ्याण्यायवोऽवोचन् ।  
 ग्रहा कृष्णन्तो वृषणा युवभ्यां  
 सुवीरसो विदथमा वेदेम ॥ २५ ॥  
 ॥ १९ ॥ ( ऋ० १।११।१-११ )  
 आ वां रथौ अश्विना श्वेनपत्वा  
 सुमृत्नीकः स्वयं यात्ववोह् ।  
 यो मर्त्यस्य मनसो जवीयान्  
 त्रियन्युरो वृषणा धातंरहाः ॥ १ ॥  
 ( १२७ )

त्रिवन्धुरेण त्रिवृता रथेन  
त्रिचक्रेण सुवृता यातमर्वाक् ।  
पिन्वतं गा जिन्वतमर्धतो नो  
वर्धयतमश्विना धारमसे ॥ २ ॥

प्रवर्धामना सुवृता रथेन  
दद्यामिं दृणुतं श्लोकमद्रः ।  
किमङ्ग वां प्रत्यर्चति गर्मिष्ठा  
आहुर्विप्रासो अश्विना पुराजाः ॥ ३ ॥

आ वां श्येनासौ अश्विना वहन्तु  
रथे युक्तास् आश्वयः पतङ्गाः ।  
ये अन्तुरो दिव्यासो न गृध्रा  
अभि प्रयो नासत्या वहन्ति ॥ ४ ॥

आ वां रथं युवतिस्तिष्ठद्वं  
जुष्टी नरा दुहिता सूर्यस्य ।  
परि धामद्व्या वपुषः पतङ्गा  
धयो वहन्त्वह्ना अमीके ॥ ५ ॥

उद् वन्दनमैरतं वंसनाभिः  
उद्वेमे दंजा वृषणा शर्चीभिः ।  
निष्टौग्यं पारयथः समुद्रात्  
पुनश्च्यवानं चक्रयुर्यवानम् ॥ ६ ॥

युवमभ्रयेऽधनीताय तप्तं  
ऊर्जमोमानमश्विनावधसम् ।  
युवं कण्वायापिरिताय चक्षुः  
प्रत्यधत्तं सुपुति जुहुषाणा ॥ ७ ॥

युवं धेनुं शायवे नाधिताय  
अपिन्वतमश्विना पुर्वार्य ।  
अमुञ्चतं वर्तिकामहंसो निः  
प्रति जह्वा विदपलाया अधस्तम् ॥ ८ ॥

युवं श्वेतं पेद्व इन्द्रजुतं  
अहिहर्नमश्विनादत्तमभ्यम् ।

जोह्वमयौ अभिभूतिमुग्रं  
सहस्रसां वृषणं वीरुहम् ॥ ९ ॥

ता वां नरा स्वर्षसे सुजाता  
हवामहे अश्विना नार्धमानाः ।  
आ न उप वसुमता रथेन  
गिरो जुषाणा सुविताय यातम् ॥ १० ॥

आ श्येनस्य जर्वसा नूतनेन  
असे यातं नासत्या सुजोपाः ।  
हवे हि वामश्विना रातहव्यः  
शभ्वत्तमाया उपसो व्युष्टौ ॥ ११ ॥

॥ १३ ॥ ( ऋ० १।११९।१-१० ) अगती ।

आ वां रथं पुरुमायं मनोजुर्व  
जीराद्यै यश्रियै जीयसे हवे ।  
सहस्रकेतुं वनिनं शतहंसुं  
धृष्टीवानं वरिसोधामभि प्रयः ॥ १ ॥

ऊर्ध्वा धीतिः प्रत्यस्य प्रवामनि  
अधायि शस्मन्तसमयन्त आ विशः ।  
स्वदामि धर्मं प्रति यन्त्युतय  
आ वामुजोनी रथमश्विनारुहत् ॥ २ ॥

सं यन्मिथः पस्पृधानासो अमृत  
दुमे मखा अमिता जायवो रणे ।  
युवोरहं प्रवणे वैकिंते रथो  
यदश्विना वहथः सुरिमा धरम् ॥ ३ ॥

युवं मुज्युं भुरमाणं विभिर्गतं  
स्वर्यकिभिर्निवहन्ता पितृष्य आ ।  
यासिष्टं वर्तिवृषणा विजेन्यं ।  
दिवोदासाय माहिं चेति वामयः ॥ ४ ॥

युवोरश्विना वपुषे युवायुजं  
रथं वाणीं येमतुरस्य शश्वम् ।  
आ वां पतित्वं सख्यायै जग्मुयी  
योपावृणीत जेन्या युवां पती ॥ ५ ॥

युधं रेभं परिपूतेरुप्यथो  
हिमेन धूमं परितप्तमग्नेये ।  
युधं शयोर्यसं पिप्ययुग्मं वि  
प्रदीर्घेण चन्दनस्तार्यायुषा  
युधं चन्दनं निश्चैतं जरूपय्या  
रथं न दस्त्रा करुणा समिन्वथः ।  
क्षेत्राद्वा विप्रं जनथो विपन्यया  
प्र धामत्रं विधत्ते दंसना भुवत्  
अगच्छतं कृपमाणं परावति  
पितुः स्वस्य त्यजसा निवाधितम् ।  
स्वधैतीरित ऊतीर्युधोरहं  
चित्रा अभीकै अभयप्रमिष्टयः  
उत स्या वां मधुमन्मक्षिकारपुन  
मदे सोमस्यौशिजो हुवम्यति ।  
युधं दधीचो मन आ विवास्तथो  
अथा शिरः प्रति धामध्वयं पदत्  
युधं पेदवै पुद्वारमश्विना  
रूपधां इवेतं तदुतारं दुषस्यथः ।  
शरैरभिघुं पृतनासु दुष्टरं  
चकृत्यमिन्द्रमिव चरणीसहम्

॥ १४ ॥ ( ऋ० १।१२०।१-१२ )

( १२ दुःखप्रनाशनम् ) । १ गावत्रा, २ कङ्कप, ३ का-विराट्,  
४ नक्षत्रा, ५ तद्विशिरा, ६ उष्णिक्, ७ विष्टार-बृहती,  
८ कृतिः, ९ विराट्, १०-१२ गायत्री ।

का राधस्त्रीर्वाश्विना वां को वां जोषं उभयोः ।

कथा विधात्यप्रचेताः ॥ १ ॥

विद्यांसाविद् दुरः पृच्छेद्  
अविद्वान्निर्थापरो अचेताः ।

नू चिद्म मते अक्रौ ॥ २ ॥

ता विद्यांसा हवामहे वां  
ता नो विद्यांसा मन्म वोचेतमथ ।

प्राथेद् दयमानो युवाकुः ॥ ३ ॥

यि पृच्छामि पाप्मना न देवान्  
पर्यस्तुतस्यास्तुतस्य दद्या ।

पातं च सर्वांसो युधं च रभ्यसो नः ॥ ४ ॥

प्र या घोपे भृगवाणे न शोभे

ययां वाचा यजति पश्रियो याम् ।

प्रैयुनं विद्वान् ॥ ५ ॥

धृतं गाग्रं तर्कयानस्य

अहं चिद्धि रिरेमाश्विना याम् ।

आक्षी शुभस्पती इन् ॥ ६ ॥

युधं ह्यास्तं मूढो रन् युधं या यश्रिततंसतम् ।

ता नो वस्स सुगोपा स्यातं

पातं नो दृकादयायोः ॥ ७ ॥

मा कसै धातमभ्यमिध्रिणे नो

माकुत्रा नो गृहेभ्यो धेनवो शुः ।

स्तनाभुजो अशिद्वीः ॥ ८ ॥

दुहीयन् मिप्रधितये युवाकुं

राये च नो मिमीतं याजवत्यै ।

इपे च नो मिमीतं धेनुमलै ॥ ९ ॥

अश्विनोरसनं रथं—मनश्च वाजिनीयतोः ।

तेनाहं भूरि चाकन ॥ १० ॥

अयं समह मा तनु—ह्याते जनौ जनु ।

सोमपेयं सुखो रथः ॥ ११ ॥

अथ स्वप्नस्य निर्विदे उभुजतश्च रेवतः ।

उभा ता बक्षि नश्यतः ॥ १२ ॥

॥ १५ ॥ ( ऋ० १।१३१।३-५ )

पृच्छेयो दैवोदासिः । अश्विनि, ५ बृहती ।

युवां सोमैभिदैच्यन्तो अश्विना

आध्रावयन्त इव श्लोकमायवो

युवां हुव्याभ्याङ्गुयवः ।

युवोर्विद्वा अधि श्रियः पृक्षश्च विद्ववेदसा ।

पुपायन्ते वां पवयो हिरण्यये

रथे दसा हिरण्यये ॥ ३ ॥

अवेति दक्षा व्युनाकमृण्ययो  
युजते वां रथयुजो दिविष्टिपु  
अध्वसानो दिविष्टिपु ।  
अधि वां स्याम वृणुते रथे दक्षा हिरण्यये ।  
पृथेव यन्तावनुशासता रजो  
अर्क्षसा शासता रजः ॥ ४ ॥  
शचीभिर्नः शचीवसु दिया नक्तं दशस्यतम् ।  
मा वां रातिरपं दस्तत् कदा चन  
असद् रातिः कदा चन ॥ ५ ॥

॥ १६ ॥ ( ऋ० १।१५।७।१-६ )

दीर्घतमा औबध्यः । जगती, ५-६ त्रिष्टुप् ।

अयोभ्यग्निर्जम् उदेति सूर्यो  
व्युपाश्चन्द्रा मृगाधो अर्चिषा ।  
आयुस्तातामश्विना यातये रथं  
प्रासापीद् देवः संविता जगत् पृथक् ॥ १ ॥  
यद् युजाये वृषणमश्विना रथं  
घृतेन नो मधुना अयमृक्षतम् ।  
असाकं ब्रह्म पूतनासु जिव्यतं  
ययं घना शूरसाता भजेमहि ॥ २ ॥  
अर्थाद् अश्विनो मधुघाह्नो रथो  
जीराभ्यो अश्विनोयातु सुष्टुतः ।  
त्रियन्धुरो मयथा विश्यसौमगः  
शं न आ रक्षद् द्विपदे चतुष्पदे  
आ न ऊर्जे बहत्तमाश्विना युयं  
मधुमत्या नः कदाया मिमिक्षतम् ।  
प्रायुस्तारिष्टुं नी रपांसि मृक्षतं  
सेधतं द्वेयो मयतं सचाभयो  
युयं ॥ गर्भे जगतीषु धृत्यो  
युयं विश्वेषु भुवनेष्वन्तः ।  
युयमग्निं यं वृषणाग्रपद्म  
वनस्पतीरश्विनायेरपेयाम् ॥ ३ ॥

युघ इ स्यो मिपजा मेपजेभिः  
अयो ह स्यो रथ्याः राथ्येभिः ।  
अयो ह शत्रमधि धृत्य उग्रा  
यो वां हविष्मान् मनसा द्वादश ॥ ६ ॥  
॥ १७ ॥ ( ऋ० १।१५।८।१-६ ) त्रिष्टुप्, ६ अनुष्टुप् ।  
वसु रुद्रा पुरुमन्तु वृषन्तो  
दशस्यतं नो वृषणावभिष्टां ।  
दक्षा ह यद् रेफणं औबध्यो वां  
प्र यद् सन्नाय अकवामिरुती ॥ १ ॥  
को वां दाशत् सुमतये चिद्वस्यै  
वसु यद् धेधे नर्मसा पदे गोः ।  
जिगृतमस्मे देवतोः पुरंधीः  
कामप्रेणैव मनसा चरन्ता ॥ २ ॥  
युक्तो ह यद् वां तौन्याय पेहः  
वि मृत्ये अर्णसो धारि पृजः ।  
उपं धामवः शरणं गमेयं  
शरो नाजम् पतयद्भिरेवैः ॥ ३ ॥  
उपस्तुतिरौच्यमुच्येव  
मा मामिमे पतुभिणी वि दुग्धाम् ।  
मा मामेधो दशतयश्चितो धारु ॥ ४ ॥  
प्र यद् वां वृद्धस्मनि धादति क्षाम्  
न मां गरन् नयो मातृतमा  
दासा यदीं सुसमुन्धमवारुः ।  
दितो यदस्य प्रतनो वितस्तत्  
स्वयं दास उरो अंसाचारिं ग्य ॥ ५ ॥  
दीर्घतमा मामतेयो जुजुवान् ददामे युगे ।  
अपामये यतीनां ब्रह्मा मयति सारथिः ॥ ६ ॥  
॥ १८ ॥ ( ऋ० १।१८।१-२० )  
अणस्तो मैत्रावरुणिः । त्रिष्टुप् ।  
युयो रजांसि सुयमांसो भक्ष्ता  
रथो यद् वां पर्यणांसि दीर्यत् ।  
हिरण्यपां वां पवयः प्रुगायन्  
मयः पियन्ता उपमः सचेधे ॥ १ ॥



युवमत्यस्याव नक्षत्रो  
 यद् विपत्तमनो नर्यस्य प्रयज्योः ।  
 स्वसा यद् वां विद्वग्गृही भराति  
 वाजायेहे मधुपायिपे च ॥ २ ॥  
 युवं पर्य उस्त्रियायामघत्तं  
 पक्कमायामव पूर्ण गोः ।  
 अन्तर्यद् धनिनो वामृतप्सु  
 ह्यारो न शुचियजते हविष्मान्  
 युवं ह धर्मं मधुमन्तमब्रूये  
 अपो न क्षोदोऽवृणीतमेपे ।  
 तद् वां नरावदिधना पश्वद्दृष्टी  
 रथ्येव चक्रा प्रति यन्ति मध्वः  
 आ वां दानाय वधृतीय दक्षा  
 गोरोहेण तौग्यो न जिम्विः ।  
 अपः क्षोणी संचते माहिना वां  
 जुर्णो वामभ्रुरंहसो यजत्रा  
 नि यद् युवेधे नियुतः सुदानू  
 उपे स्वधाभिः सुजयः पुरंधिम् ।  
 प्रेपद् वेपद् वातो न सूरिः  
 आ महे ददे सुमतो न वाजम्  
 धयं चिद्धि वां जरितारः सुत्या  
 विपन्यामहे वि पणिहितावात्र ।  
 अघां चिद्धि प्मादिवनावनिन्धा  
 पाथो हि प्मा वृण्णावन्तिदेवम्  
 युयां चिद्धि प्मादिवनावनु धून्  
 विर्यद्रस्य प्रध्वणस्य सातो ।  
 अगस्त्यो नरां न्यु प्रशस्तः  
 काराधुनीव चितयत् सुदत्रैः  
 प्र यद् पदेधे मदिना रयस्य  
 प्र सगन्दा याथो मनुपो न दोता ।

धत्तं सुरिभ्य उत या स्वद्व्यं  
 नासत्या रयिपाचः स्याम ॥ १ ॥  
 तं वां रथं वयमद्या हुधेम  
 स्तोमैरदिवना सुविताय नव्यम् ।  
 अरिष्टनेमि परि धामियानं  
 विद्यामेपं वृजर्न जीरदात्रुम् ॥ १० ॥  
 ॥ १९ ॥ ( अ० १।१८।१-९ )  
 कदु प्रेष्ठाविपां रयीणां  
 अश्वर्यन्ता यदुभिनीयो अपाम् ।  
 अयं वां यक्षो अरुत प्रशस्ति  
 वसुधितिं अर्वितारा जनानाम् ॥ १ ॥  
 आ वामश्वास्तः शुचयः पयस्पा  
 वातरंहसो दिव्यास्तो अस्याः ।  
 मनोजुधो वृषणो धीतपृष्ठा  
 पद् स्वराजो अदिवना वदन्तु ॥ २ ॥  
 आ वां रथोऽवनिर्न प्रवत्वात्र  
 सप्रवन्धुरः सुवितार्य गम्याः ।  
 वृष्णः स्थाताप मनसो जवीयान्  
 अहंपूर्वो यजतो चिन्त्या यः ॥ ३ ॥  
 इदेह जाता समवावशीतां  
 अरेपसा तन्वाद् नामभिः स्यैः ।  
 जिष्णुर्वामन्याः सुर्मखस्य सूरिः  
 दिवो अन्यः सुभगः पुत्र ऊहे ॥ ४ ॥  
 प्र वां निचेयः ककुहो वशो अनु  
 पिशङ्गरूपः सर्वनानि गम्याः ।  
 हरी अन्यस्य पीपर्यन्त वाजैः  
 मद्या रजोऽस्यदिवना वि घोर्षैः ॥ ५ ॥  
 प्र वां शरदात्र वृषभो न निष्पाद्  
 पूर्वोरिपश्चरति मध्व इष्णन् ।  
 पर्यैरन्यस्य पीपर्यन्त वाजैः  
 वेपन्तीरुध्वा नद्यो न आगुः ॥ ६ ॥  
 ( १९० )

युवां गोतमः पुरुमीळो अत्रिः

दक्षा हचतेऽयंसे हविष्मान् ।

दिशं न दिशामृजयेय यन्ता

मे हवै नासत्योप यातम्

अतारिष्म तमसस्पापमस्य

प्रतिं वां स्तोमो अभिनावधायि ।

एह यातं पथिभिर्देवयानैः

विद्यामेपं वृजनं जीरदानुम्

॥ २२ ॥ ( ऋ० १।१८४।१-२ )

ता वामघ तावपरं हुवेम्

उच्छ्रयामुपसि वह्निरुक्थैः ।

नासत्या कुहं चित् सस्ताव्यो

दिवो नपाता सुदास्तराय

अस्मे ऊ पु वृषणा मादयेथां

उत् पूर्णहृतमूर्स्या मवन्ता ।

धृतं मे अच्छोक्तिभिर्मतीनां

पष्टा नरा निचेतारा च कर्णैः

श्रिये पूषन्निपुष्टतैव देवा

नासत्या वहतुं सूर्यायोः ।

वृच्यन्ते यां ककुहा अण्डु जाता

युगा जुणेष वरुणस्य भूरैः

अस्मे सा वा माध्वी यातिरस्तु

स्तोमं हिनोतं मान्यस्य कारोः ।

अनु यद् वां श्रवस्यां सुदानू

सुवीर्याय चरणयो मदन्ति

पूष यां स्तोमो अभिनावकारि

मानेभिर्मघयाना सुवृक्ति ।

यातं प्रतिस्तनपाय तमेन च

धगस्यै नासत्या मवन्ता

यतारिष्म तमसस्पापमस्य

प्रतिं वां स्तोमो अभिनावधायि ।

एह यातं पथिभिर्देवयानैः

विद्यामेपं वृजनं जीरदानुम्

॥ ६ ॥

॥ २३ ॥ ( ऋ० २।३७।१ )

शूषधः ( अजिरघः शौनहोत्रः पथाद् ) भार्गवः शौनकः ।

( ऋग्वहिलौ ) । अगती ।

अर्वाञ्चमघ यय्यै नृवाहणं

रथं युजायामिह वां विमोचनम् ।

पृष्टुतं हवींषि मधुना हि कै गतं

अथा सोमं पियतं वाजिनीयस्

॥ ५ ॥

॥ २४ ॥ ( ऋ० २।३९।१-८ ) त्रिष्टुप् ।

प्रावाणेषु तदिदथै जरेथे

शूर्ध्वे वृक्षं निधिमन्तुमच्छ ।

ब्रह्माणेव विदथे उक्थशासां

वृतेय हव्या जग्या पुत्रा

प्रातर्वावाणा रथ्येव वीरा

अजेय यमा वरमा संचेथे ।

मेने इय तन्याहु शुर्ममाने

वर्षतीव क्रतुविधा जनेपु

शृङ्गेव नः प्रथमा गन्तमर्षाक्

शफारिव जभुराणा तरोभिः ।

चक्रवाकेव प्रति यस्तोरुक्षा

अर्वाञ्चा यातं रथ्येव शक्ता

नावेव नः पारयतं युमेव

नभ्येव न उपधीव प्रधीव ।

श्वानेव नो अरिपण्या तनूनां

खगलेव विस्त्रसः पातमसान्

यातंवाजुर्या नचेव रीतिः

अक्षी इय चक्षुषा यातमर्षाक् ।

हस्ताविव तन्वे शर्मयिष्टा

पादेव नो नयतं यस्यो अच्छ

॥ ५ ॥

( ११९ )

ओष्ठाविव मध्याक्षे वदन्ता  
स्तनाविव पिप्यतं जीवसे नः ।

नासेव नस्तन्वो रक्षितार  
कर्णाविव सुश्रुता भूतमसे  
हस्तेव शक्तिमभि सैददी नः  
क्षामैव नः समजतं रजांसि ।

इमा गिरौ अभिना युष्मयन्तीः  
श्नोत्रेणैव स्वर्धिति सं शिशीतम्  
एतानि धामाभिना वर्धनानि  
प्रह्म स्तोमं गृत्समदातो अक्रुन् ।

तानि नरा जुहुवाणोप यातं  
पृहद् वदेम विदये सुवीराः

॥ १५ ॥ ( अ० १।४१।७-९ ) गायत्री

गोमदू पु नासत्या ऽश्वापद् यातमश्विना ।

वृती चेद्वा नृपाप्यम् ॥ ७ ॥

न यत् परे नान्तर आदुर्घपद् वृषण्यसु ।

दुःशंसो मर्त्यो रिपुः ॥ ८ ॥

ता न आ वोळ्ढमश्विना रुधे पिशङ्गसंहारम् ।

धिष्ण्या धरियोविदम् ॥ ९ ॥

॥ १६ ॥ ( अ० १।५।१-९ )

गाधिने विद्याभिः । शिष्टम् ।

धेनुः प्रतनस्य काम्यं दुर्दाना

अन्तः पुत्रधरति दक्षिणायाः ।

आ घीतनि वंदति शुभ्रयाम्

उपसः स्तोमो अश्विनावजीगः

सुयुग् वदन्ति प्रति वामूतेन

ऊर्ध्वा भवन्ति पितरैव मेघाः ।

जरधामसद् वि पुणेर्मनीयां

युपोरप्यध्वमा यातमर्वाक्

सुयुग्मिरदयैः सुयुता रथेन

दक्षायिमं नृपुणं शोकमर्देः ।

किमद्वा वां प्रत्यवर्ति गमिष्ठा

आहुर्विप्रासो अश्विना पुराजाः

आ मन्येयामा गतं कश्चिदेवैः

विद्वेः जनासो अश्विना हवन्ते ।

इमा हि त्वां गोक्रुजीका मधूनि

प्र मित्रासो न दृढुरुजो अत्रे

तिरः पुरु चिदाश्विना रजांसि

आहूषो वां मघवाना जनेषु ।

एह यातं पृथिभिर्देवयानैः

दक्षायिमे वां निधयो मधूनाम्

पुरुणमोकः सूर्य्यं शिवं वां

युयोनैरु द्रविणं जुहाव्याम् ।

पुनः कृण्वानाः सूर्या शिवाणि

मघ्वा मदेम सह नू संमानाः

अश्विना वायुना युवं सुदक्षा

नियुद्भिश्च सुजोषसा युवाना ।

नासत्या तिरोर्बह्वं जुषाणा

स्तोमं पियतमस्त्रिषा सुदानू

अश्विना परि धामिपः पुरुचीः

इयुर्गोभिर्पतमाना अमृध्राः ।

रथो ह वामूतजा अद्रिजुतः

परि धावापृथिवी याति मयः

अश्विना मधुपुत्तमो युवाकुः

शोमस्तं पातमा गतं दुरोणे ।

रथो ह वां मूरि यपः कार्दकन्

मुनावतो निष्कृतमार्गमिष्टः

॥ १७ ॥ ( अ० ४।१।२-१० )

वाग्देवो मे गवः । गायत्री ।

एष यां देवावश्विना कुमारः साहदेव्यः ।

नीर्वापुर्भन्तु शोमकः ॥ १ ॥

नं युवं देवावश्विना कुमारः साहदेव्यम् ।

दीर्घायुपं कृणोतन ॥ १० ॥

॥ २८ ॥ ( क्र० ४१४५१-७ ) अगती, त्रिष्टुप् ।

एष स्य मानुर्देयति युज्यते  
 रथः परिउमा दिवो अस्य सानवि ।  
 पृक्षामो अस्मिन् मियुना अधि त्रयो  
 इतिस्तुरीयो मधुनो वि रप्ताते  
 उद् वां पृक्षासो मधुमन्त ईरते  
 रथा अद्यास उपसो व्युष्टिषु ।  
 अयोण्यन्तस्तम आ परीवृतं  
 स्वर्णे इमं तन्वन्त आ रजः  
 मर्ष्यः पिपत मधुपेर्मरासभिः  
 उत म्रियं मधुने युजायां न्यम् ।  
 आ परंनि मधुना जिन्यथस्पृशो  
 इति यदेधे मधुमन्तमादिवना  
 हंसानो ये वां मधुमन्तो अक्षिधो  
 हिरण्यपर्णा उह्यं उपरुधः ।  
 उद्मन्तो मन्दिनो मन्दिनिस्पृशो  
 मण्यो न मधुः सधनानि गच्छथः  
 स्वयरागो मधमन्तो अग्नयं

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

कस्येमां देवीममृतैषु प्रेष्ठां  
 हृदि श्रेयाम सुष्टुतिं सुहृव्याम्  
 को मृळाति कतम आगमिष्ठो  
 देवानामु कतमः शंभविष्ठः ।  
 रथं कमाहुर्द्रवदश्वमाशुं  
 यं सूर्यस्य दुहितावृणीत  
 मक्ष् हि प्मा गच्छथ ईवतो धून्  
 इन्द्रो न शक्ति परितस्म्यायाम् ।  
 दिव आजाता दिव्या सुपर्णा  
 कया शचीनां भवथः शचिष्ठा  
 का वां भूदुर्पमातिः कया न  
 मादिधना गमथो ह्ययमाना ।  
 को वां महश्चित् त्यजसो अभीकं  
 उरुप्यत माष्यी दक्षा न ऊती  
 उद् वां रथः परि नक्षति वां  
 आ यत् समुद्रादग्नि यतीते याम् ।  
 मर्ष्या माष्यी मधुं वां मुपायन्

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

युधं श्रियमश्विना देवता तां  
दिवो नपाता वनथः शचीभिः ।

युवोर्बपुर्मि पृक्षः सचन्ते  
वहन्ति यत् ककुहासो रथे वाम्

को वामद्या करते रतहव्य  
ऊतये वा सुतपेयाय वार्कः ।

ऋतस्य वा वनुपे पुर्व्याय  
नमो येमानो अश्विना वर्धतत्

हिंरण्ययेन पुरुष रथेन  
इमं युधं नास्त्योप यातम् ।

पिषाथ इन्मधुनः सोम्यस्य  
दधयो रक्षे विद्यते जनाय

आ नो यातं दिवो अच्छा पृथिव्या  
हिंरण्ययेन सुवृता रथेन ।

मा वामन्वे नि यमन् देवयन्तः  
सं यद् द्वे नाभिः पुर्व्या वाम्

न नो रथे पुरुवीरं वृहन्तं  
दद्या मिमांथामुभयेष्वस्मे ।

नरो यद् वामश्विना स्तोममार्यम्  
सधस्तुतिमाजमीलहासो अग्मन्

इहेह यद् वा समना पंपृक्षे  
सेषमस्मे सुमतिर्वीजरत्ना ।

उरुष्यतं जरितारं युधं ह  
धितः कामो नास्त्या युवद्रिक्

॥ ११ ॥ ( ऋ० ५।७।१-१० )

गौर आनेयः । अनुष्टुप् ।

यद्वा स्यः पुरावति यद्वर्वावत्यश्विना ।  
यद् वा पुरु पुरुमुजा यदन्तरिक्ष आ गंतम् १

इह त्या पुरुभूतमा पुरु दंसांसि विभ्रता ।  
वस्या याम्यधिगु हुवे तुविष्टमा भुजे ॥ २ ॥

ईमान्यद् वपुषे वपुश्चकं रथस्य येमयुः ।  
पर्यन्या नाहुया युगा मद्वा रजांसि दीवयः ॥ ३ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

तद् पु वामेना कृतं विद्या यद् वामन् पृथे ।  
नानां ज्ञातावरेपसा समस्मे वन्धुमेययुः ॥ ४ ॥

आ यद् वा सूर्या रथं तिष्ठद् रघुप्यद् सदा ।  
परि वामरुपा वर्यो घृणा वरन्त आतपः ॥ ५ ॥

युवोरत्रैश्विकेतति नरां सुप्तेन चेतसा ।  
धर्मं यद् वामरेपसं नास्तत्यान्ना भूरुण्यति ॥ ६ ॥

उग्रो वा ककुहो ययिः दृष्ट्वे वामेपु संतनिः ।  
यद् वा दंसांसि रथिना अत्रिर्नरावर्तति ॥ ७ ॥

मध्वं ऊपु मध्वयुवा रुद्रा सिपकि पिप्युषी ।  
यत् संमुद्राति पर्यथः पृक्षाः पृक्षो भरन्त वाम् ८

सत्यमिद् वा उ अश्विना युवामाहुर्मयोभुवा ।  
ता यामन् यामहृतमा यामन्ना मृल्यसमा ॥ ९ ॥

इमा ब्रह्माणि वर्धना अश्विन्यां सन्तु शंतमा ।  
या तक्षाम रथो इवा—वौचाम वृहन्नमः ॥ १० ॥

॥ ११ ॥ ( ऋ० ५।७।१-१० ) अनुष्टुप्, ८ मित्र्य ।

कृषो देवावश्विना उद्या दिवो मनावसु ।  
तच्छ्रयथो वृषण्वसु अत्रिषोमा विद्यासति ॥ १ ॥

कुह त्या कुह उ ध्रुता दिवि देवा नास्त्या ।  
कस्मिन्ना यतथो जने को वा नदीनां सचा ॥ २ ॥

कं यायः कं ह गच्छथः कमच्छा युजाथे रथम् ।  
कस्य ब्रह्माणि रण्यथो वयं वामुदमसीष्टये ॥ ३ ॥

पौरं चिद्वपुदमुतं पौरं पौराय जिन्यथः ।  
यदी गृहीततातये सिंहमिय द्रुहस्पदे ॥ ४ ॥

प्र ऋषानाजुजुषो वविमत्कं न मुञ्चथः ।  
युवा यदी कृत्यः पुनरा काममृष्ये वध्वः ॥ ५ ॥

अस्ति हि वामिह स्तोता स्मांसं वा संदादि श्रिये ।  
न श्रुतं म आ गंत—मवोभिर्वाजिनीवसु ॥ ६ ॥

को वाम्य पुरुणा—मा वंशे मत्योनाम् ।  
को विप्रो विप्रवाहसा को युधैर्वाजिनीवसु ॥ ७ ॥

आ वां रथो रथानां येष्टो यात्वश्विना ।  
पुरु चिदस्मयुस्तिर माङ्गो मत्येया ॥ ८ ॥

शमं पु वां मधुयुवा ऽसाकमस्तु चकृतिः ।  
 अवाचीना विचेतसा विभिः श्येनेव दीयतम् ॥९॥  
 अश्विना यद्द कर्हि चिच्छुश्रुयातमिमं हवम् ।  
 यस्वीरु पु वां भुजः पृञ्चन्ति सु वां पृचः ॥१०॥

॥ ३३ ॥ ( अ० ५।७।१-२ )

अवस्युराश्रेयः । पङ्क्तिः ।

प्रति प्रियतमं रथं वृषणं घसुवाहनम् ।  
 स्तोता वामश्विनावृषिः स्तोमेन प्रति भूपति  
 माघ्वी मम धृतं हवम् ॥ १ ॥

धृत्यायातमश्विना तिरो विश्वा अहं सना ।  
 दक्षा हिरण्यवर्तनी सुपुम्ना सिन्धुवाहसा  
 माघ्वी मम धृतं हवम् ॥ २ ॥

आ नो रत्नानि विभ्रता-वश्विना गच्छतं युवम् ।  
 रुद्रा हिरण्यवर्तनी जुषाणा वाजिनीवसु  
 माघ्वी मम धृतं हवम् ॥ ३ ॥

सुपुमो वां वृषण्वसु रथं वाणीच्याहिता ।  
 उत वां ककुद्वा मृगः पृक्षः कृणोति वापृषो  
 माघ्वी मम धृतं हवम् ॥ ४ ॥

योधिर्नमसा रथ्यै-पिरा हवन्धता ।  
 विमिद्व्यवानमश्विना नि याथो अहंयाविनं  
 माघ्वी मम धृतं हवम् ॥ ५ ॥

आ वां नरा मनोयजो ऽभ्यासः प्रुपितस्सवः ।  
 यवां यदन्तु पीतर्ये सद्द सुसेमिरश्विना  
 माघ्वी मम धृतं हवम् ॥ ६ ॥

अश्विनापेद गच्छन् नासत्या मा वि धेनतम् ।  
 तिरिद्विदयंया परि पतिर्यातमदाभ्या  
 माघ्वी मम धृतं हवम् ॥ ७ ॥

असिन् यसे मीदाभ्या अहिरारै नृमस्पती ।  
 अयस्युर्मश्विना युधं गृणन्तमुप भूपथो  
 माघ्वी मम धृतं हवम् ॥ ८ ॥

अमृदुया रशत् पशु-राग्निरघाय्यत्वियः ।  
 अयोजि वां वृषण्वसु रथो दक्षावमर्यां  
 माघ्वी मम धृतं हवम् ॥ ९ ॥

॥ ३४ ॥ ( अ० ५।७।१-५ )

मौषोऽग्निः । त्रिष्टुप् ।

आ भात्याग्निरुपसामनीकं  
 उद् विप्रानां देव्या वाचो अस्थुः ।  
 अवाञ्छा नूनं रथ्येह यातं  
 पीपिवांसमश्विना धर्ममच्छ ॥ १ ॥

न सैस्कृतं प्र मिमीतो गमिषा  
 अन्ति नूनमश्विनोपस्तुतेह ।  
 दिवाभिपित्वेऽवसानमिषा  
 प्रत्यवर्ति वाशुपे शंसमिषा ॥ २ ॥

उता यातं संगवे प्रातरहो  
 मध्यदिन उर्विता सूर्यस्य ।  
 दिवा नक्तमवसा शतमेन  
 नेदानीं पीतिरश्विना ततान ॥ ३ ॥

इदं हि वां प्रदिवि स्थानमोकं  
 इमे गृहा अदियनेदं दुरोणम् ।  
 आ नो विवो बृहदः पर्वतादा  
 अद्भयो यातमिपमूर्जं यहन्ता ॥ ४ ॥

समश्विनोरवसा नूतनेन  
 मयोमुवां सुप्रणीती गमेम ।  
 आ नो रथ्यं बृहदतमोत धीरान्  
 आ विद्वान्यमृता सौमगानि ॥ ५ ॥

॥ ३५ ॥ ( अ० ५।७।१-५ )

प्रातर्वावाणा प्रथमा रयज्यं  
 पुरा गृधादररुणः पिबातः ।  
 प्रातर्दि यक्षमदियना दधाते  
 प्र शसन्ति कवयः पूर्वं भार्जः ॥ १ ॥

प्रातर्यज्ञध्वमश्विनां हिनोत्  
न सायमस्ति देव्या अजुष्टम् ।  
उतान्यो अस्मद् यजते वि चावः  
पूर्वः पूर्वो यजमानो वर्नीयान्  
हिरण्यत्यङ्गाधुवणो घृतस्तुनः  
पृक्षो बहुला रथो वर्तते धाम् ।  
मनोजवा अश्विना वार्तरंहा  
येनातियायो उरितानि विश्वा  
यो भूर्यष्टं नास्त्यान्यां विवेप  
चनिष्ठं पित्वो ररते धिमागे ।  
स लोकमस्य पीपरच्छमीभिः  
अनूर्ध्वमासुः सदमिव तुतुर्यात्  
समश्विनोरर्ध्वसा नूतनेन  
मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।  
आ नो रथे बहत्तमोत धौरान्  
आ विद्वान्यस्तुता सौमगानि

॥ ३६ ॥ ( ऋ० ५।७८।१-९ )

वसवःप्रिधयेयः । ( ५-९ गर्भवाविष्णुपनिषद् ) । अजुष्टम्,  
१-३ वणिक्, ४ शिष्टम् ।

अश्विनायेह गच्छतं नास्त्या मा वि वैनतम् ।  
हंसाधियं पततमा सुताँ उपं ॥ १ ॥  
अश्विना हरिणाविधं गौराधिवानु ययसम् ।  
हंसाधियं पततमा सुताँ उपं ॥ २ ॥  
अश्विना धाजिनीवसु जुपेयाँ यज्ञमिष्टये ।  
हंसाधियं पततमा सुताँ उपं ॥ ३ ॥  
अत्रियेद् वामघरोहभ्रुवीसं  
अजोहृदीन्नाथमानेय योपा ।  
इयेनस्यं चिज्वसं नूतनेन  
आगच्छतमश्विना शंतेमेन ॥ ४ ॥  
वि जिहीष्य वनस्पते योजिः सूर्यन्त्या इव ।  
भुतं मे अश्विना हयं सप्तवधि च मुञ्चतम् ॥ ५ ॥

भीताय नार्धमानाय ऋषये-सप्तवधये ।  
मायामिरश्विना युवं वृक्षं सं च वि चाचयः ॥ ६ ॥  
यथा वार्तः पुष्करिणीं समिह्यति स्वयंतः ।  
एवा ते गर्भे एजतु निरैतु दशमास्यः ॥ ७ ॥  
यथा वातो यथा वनं यथा समुद्र एजति ।  
एवा त्वं दशमास्य सुहावेहि जरायुणा ॥ ८ ॥  
दश मासांश्चशयानः कुमारे अधि मातरि ।  
निरैतु जीवो अक्षतो जीवो जीवन्त्या अधि ॥ ९ ॥

॥ ३७ ॥ ( ऋ० ९।६१।१-११ )

बाईस्पत्यो मरहाजः । शिष्टम् ।

स्तुपे नरो द्विवो अस्य प्रसन्ता  
अश्विना हुवे जरमाणो अकैः ।  
या सद्य उक्ता व्युपि ज्मो अन्तान्  
युयूतः पर्युक् वरांसि ॥ १ ॥  
ता यज्ञमा शुचिभिस्त्रकमाणा  
रथस्य भानुं रवचू रजोभिः ।  
पुरु वयंस्यमिता मिमाता  
अपो धन्यान्त्यति याथो अजान् ॥ २ ॥  
ता ह त्यद् वर्तियेदरंभमुग्रा  
इत्या धियं ऊहयुः शश्वदभ्यैः ।  
मनोजवोभिरिपरैः शयथै  
परि व्यर्थिद्राणो मर्यस्य ॥ ३ ॥  
ता नय्यसो जरमाणस्य मन्म  
उपं भूपतो युयुजानसती ।  
शुभं पृथमिपमृजं वहन्ता  
होता यक्षत् प्रजो अग्रम् युयाना ॥ ४ ॥  
ता वल्गु दक्षा पुंशुशार्कतमा  
प्रता नय्यसा वयसा विवासे ।  
या शंसते स्तुयते शर्मविष्ठा  
वभवतुर्गृणते चित्रराती ॥ ५ ॥

ता भुज्यं विभिरुद्रयः समुद्रात्  
तुग्रस्य सुनुर्महधु रजोभिः ।

अरेणभिर्योजनेभिर्मुजन्ता  
पतत्रिभिरर्णसो निरुपस्थात्

वि ज्युपा रथ्या यातमर्द्धि  
श्रुतं हवै वृषणा घग्निमत्याः ।

वृशस्यन्ता श्रयवै पिप्यधुर्गो  
इति च्यवाना सुमति सुरण्य

यद् रोदसी प्रदियो अस्ति भूमा  
हेळो वैवानामुत मर्त्यवा ।

तदावित्या घसयो रुद्रियासो  
रक्षोयजे तपुद्यं दधात

य ई राजानावृतुथा विवधद्  
रजसो मित्रो वरुणश्चिकेतत् ।

गम्भीराय रक्षसे हेतिमस्य  
द्रोघाय चिद् घसेस आनवाय

अन्तरैश्चकैस्तनयाय धृतिः  
धृमता यातं नृयता रथेन ।

सनुत्येन स्यजसा मर्त्यस्य  
यनुप्यतामपि शीर्षा धवृक्कम्

आ परमार्मिदुत मय्यमाभिः  
नियुद्रिर्यातमय्यमाभिर्याक् ।

दृढस्य चिद् गोमतो वि यजस्य  
दुचे पतं गृणते चित्रराती

॥ १८ ॥ ( प्र० ६।६३।१-११ )

पिपुषु, १ शि१२, ११ एकपदा त्रिपुषु ।

प. १ त्या वल्गु पुंरुद्रताघ  
दुतो न न्नोमोऽपिनुन्नमस्यान् ।

था यो धर्षाद् नाम्नाया वयतं  
प्रेष्टा धारयो मय्य मग्मन्

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १० ॥

॥ ११ ॥

॥ १ ॥

अरं मे गन्तं हवैनायासै  
गृणाना यथा पिवायो अन्धः ।

परि ह त्यद् वर्तिर्याथो रिपो  
न यत् परो नान्तरस्तुतुर्यात्

अकारि वामन्धसो वरीमन्  
अस्तारि बर्हिः सुप्रायणतमम् ।

उत्तानहस्तो युवयुर्वेवन्द  
आ वां नक्षन्तो अद्रय आजन्

ऊर्ध्वो वामभिररुधरेर्वस्थात्  
प्र रातिरैति जर्णिनी घृताची

प्र होता गुर्तमना उराणो  
अयुक्त यो नासत्या हवीमन्

अधि भिये दुहिता सूर्यस्य  
रथ तस्यौ पुरुमुजा श्रुनोतिम् ।

प्र मायाभिर्मायिना भूतमत्र  
नरो नृतु जनिमन् यक्षिणानाम्

युवं श्रीभिर्वशेताभिराभिः  
शुभे पुष्टिमूहयुः सूर्यायाः ।

प्र वां वयो वपुषेऽनु पतन्  
नक्षद् वाणी सुपुता धिषण्या वाम्

आ वां वयोऽभ्वांसो वहिष्ठा  
अभि प्रयो नासत्या वहन्तु ।

प्र वां रथो मनोजवा असर्जि  
इयः पृक्ष इपिधो अनु पुर्वोः

पुरु हि वा पुरुमुजा देष्णं  
धेनुं न इपि पिन्वतमसक्राम् ।

स्तुतश्च वां माघी सुपुतिश्च  
रसाश्च ये वामनु रातिमग्मन्

उत मं ऋजे पुरयस्य रथी  
सुमीळ्हे शतं पैरुके च पथा ।

शाण्डो वांसिरणिनः स्मर्दिष्टान्  
दश वशासो अभिपार्च ऋष्यान्

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

( ११४ )



सं वां शता नासत्या सद्भ्या  
अश्वानां पुरुषर्था गिरे दात् ।  
मृच्छाजाय वीर नू गिरे दात्  
हता रक्षांसि पुरुषंससा स्युः  
आ वां सुस्रे वरिमन्सुरभिः प्याम्

॥ १९ ॥ ( अ० ७।५।१-१० )

मैत्रावरुणिवंसिष्ठः । त्रिष्टुप् ।

प्रति वां रथं नृपती जुरभ्यै  
हविष्मता मनसा यश्चिरेन ।  
यो वां हृतो न धिष्ण्यावर्जीगुः  
अच्छां सुनुर्न पितरां विवस्मि  
अशौच्यग्निः संमिधानो अस्मे  
उपो अहधन् तमसश्चिदन्ताः ।  
अचेति केतुरूपसः पुरस्तात्  
धिये विचो दुहितुर्जायमानः  
अभि वां नूनमश्विना सुहोता  
स्तोमैः सिपकि नासत्या विवक्वान् ।  
पूर्वाभिर्यातं पय्याभिरर्वाक्  
स्वर्विदा वसुमता रथेन  
अवोवां नूनमश्विना युवाकुः  
हुवे यद् वां सुते मांघी वसुयुः ।  
आ वां बहन्तु स्याविरासो अश्वः  
पिराथो अस्मे सुपुता मधुभि  
प्रार्थीसु देवादिपना धियं मे  
अमृधां सातर्यै कृतं वसुयुम् ।  
विश्वं अविष्टं धाज आ पुरेधीः  
ता नः शकं शचीपती शचीभिः  
अविष्टं धीर्ष्वदिपना न आसु  
प्रजावद् रेतो अहयं नो अस्तु ।  
आ वां तोके तनये तूर्तुजानाः  
सुरक्षासो देवर्षीति गमेम

॥ १० ॥

॥ ११ ॥

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

एष स्य वां पूर्वगत्वेव सख्ये  
निधिर्हितो मांघी रातो अस्मे ।  
अहंलता मनसा र्यातमर्वाग्  
अश्वन्ता हव्यं मानुषीषु विभु  
एकस्मिन् योगे मुरणा समाने  
परि वां सुत स्रवतो रथो गात् ।  
न वायन्ति सुख्यो देवयुक्ता  
ये वां ध्रुपु तरणयो वहन्ति  
अस्रवता मघवद्भ्यो हि भूतं  
ये राया मघदेयं जुनन्ति ।  
प्र ये वर्युं सुनृतामिस्तिरन्ते  
गव्यां पुञ्चन्ता अरुयां मघानि  
नू मे हवमा र्येणुतं युवाना  
यासिष्टं वृत्तिरश्वनाविरावत् ।  
धृत्तं रत्नानि जरतं च सरीर  
युयं पोत स्वस्तिभिः सदा नः  
॥ ४० ॥ ( अ० ७।५।१-९ ) विराट् ८-९ त्रिष्टुप् ।  
आ शुभ्रा यातमश्विना स्वभ्रा  
गिरो द्रक्षा जुहुपाणा युवाकौः ।  
हव्यानि च प्रतिभूता वीतं नः  
प्र वामन्वांसि मघाभ्यस्थुः  
अरं गन्तं हविषो वीतये मे ।  
तिरो अयो हवसानि धृतं नः  
प्र वां रथो मनोजवा इयति  
तिरो रजास्यश्विना शतोतिः ।  
अस्मभ्यं स्याविसु इयानः  
अयं ह यद् वां देवया उ अद्रिः  
ऊर्वो विर्वकि सोमसुद् युवभ्याम् ।  
आ वल्गू विप्रो बवृतीत हव्यैः  
चित्रं ह यद् वां भोजनं न्वस्ति  
न्यत्रये महीष्वन्तं युयोतम् ।  
यो वामोमानं दधते प्रियः सन्

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १० ॥

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

( १४१ )

उत त्यद् वां जुते अश्विना भूव  
च्यवानाय प्रतीत्यै हविर्दे ।

अधि यद् वर्ष इत ऊति घृत्यः  
उत त्वं भुज्युमश्विना सखो यो  
मघ्ये जहुर्दुरवासः समुद्रे ।  
निरीं पर्पदरात्रा यो युवाकुः  
वृकाय चिज्जसमानाय शक्तं  
उत श्रुतं शयवे ह्युयमाना ।

याध्वन्यामपिन्वतमूपो न  
स्तथै चिच्छक्त्यश्विना शचीभिः  
एव स्य कारुजैरते सुक्तैः  
अग्ने वृधान उपसां सुमग्ना ।  
इपा तं वर्धवृज्या पयोभिः  
युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः

॥ ४१ ॥ ( ऋ० ७।६९।१-८ ) त्रिष्टुप् ।

आ वां रथो रोदसी वद्वधानो  
हिरण्ययो वृषभिर्यात्वद्वैः ।  
घृतघर्तनिः पविर्भी रुजान  
इपां वोढ्वा नृपतिर्वाजिनीषान्  
स पप्रथानो अभि पञ्च भूमा  
त्रिक्वधुरो मनसा यातु युक्तः ।  
विशो येन गच्छधो देययन्तीः  
कुनां विद् याममश्विना दधाना  
न्यदवा यशसा यातमवाग्  
दग्ना निधि मधुमन्तं पिपाथः ।  
वि वां रथो वृध्यायार्दमानो  
अन्तान् दिवो याधते वर्तनिभ्याम्  
युयोः ध्रियं परि योर्गवृणीत  
गुरो वृद्धिता परितक्मयायाम् ।  
यद् देययन्तमर्धथः शचीभिः  
परि ध्रुममोमनो वां पयो गात्

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

यो ह स्य वां रथिरा वस्त उन्ना  
रथो युजानः परियार्ति वृतिः ।

तेन नः शं योरुपसो ध्युष्टौ  
न्यश्विना वदतं यशे असिन्

॥ ५ ॥

नरो गौरवे विद्युतं तपाणा  
अस्माकमद्य सवनोप यातम् ।

पुरुषा हि वां मतिभिर्हवन्ते  
मा वामन्ये नि यमन् देवयन्तः

॥ ६ ॥

युयं भुज्युमवविद्धं समुद्र  
उदूहधुरणसो अग्निधानैः ।

पतत्रिभिरध्रमैरेव्यथिभिः  
दंसनोभिरश्विना पारयन्ता

॥ ७ ॥

नू मे हवमा ऋणुतं युवाना  
यासिष्टं वृतिरश्विना विरावत् ।

धस्तं रत्नानि जरतं च सुरीन्  
युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः

॥ ८ ॥

॥ ४२ ॥ ( ऋ० ७।७०।१-७ )

आ विश्वधाराश्विना गतं नः  
प्र तत् स्थानमवाचि वां पृथिव्याम् ।

अश्वो न वाजी शुनपृष्ठो अश्वाद्  
आ यत् सेदथुर्धुवसे न योनिम्

॥ १ ॥

सिपन्ति सा वां सुमतिश्चनिष्ठा  
अतापि घर्मो मनुष्यो दुरोणे ।

यो वां समुद्रान्त्सारितः पिपतिं  
पतम्वा चित्र सुयुजां युजानः

॥ २ ॥

यानि स्थानान्यश्विना वृधाथे  
दिवो यद्वीप्योर्पधीषु विधुः ।

नि पर्वतस्य मुर्धनि सदन्ता  
इयं जनाय दाशुरे वदन्ता

॥ ३ ॥

( २७६ )

चानिष्टं देवा ओषधीष्वप्यु  
यद् योग्या अश्विनो ऋषीणाम् ।  
पुरुणि रत्ना दधती न्यसे  
अनु पूर्वाणि चरयथुगानि  
शुश्रुवासां चिदश्विना पुरुणि  
अभि ब्रह्माणि चक्षथे ऋषीणाम् ।  
प्रति प्र यातं वरुमा जनाय  
असे वामस्तु सुमतिश्चनिष्ठा  
यो धौ युशो नासत्या हविष्मान्  
कृतब्रह्मा समयोक्तु भवति ।  
उप प्र यातं वरुमा वसिष्ठं  
हमा ब्रह्माण्युच्यन्ते युवभ्याम्  
इयं मेनीपा इयमश्विना गीः  
हमां सुवृक्ति वृषणा जुषेथाम् ।  
हमा ब्रह्माणि युवयूयर्मन्  
युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः  
॥ ४३ ॥ ( ऋ० ७।७।१-६ )

अप स्वसुखसो नजिह्वीते  
रिणक्ति कृष्णीरुपाय पन्थाम् ।  
अश्वामद्या गोमद्या धां हुवेम  
दिवा नन्तं शरुमसद् युयोतम्  
उपायातं दादुषे मर्त्याय  
रथेन चाममश्विना बहेन्ता ।  
युयुतमसदनिरामर्त्यां  
दिवा नक्तं माध्वी आसीथां नः  
आ धां रथमयमस्यां व्युष्टौ  
सुम्नायवो वृषणो वर्तयन्तु ।  
स्युर्मगमस्मिस्तुयुग्मिरद्वैः  
आश्विना वसुमन्तं बहेथाम्  
यो धां रथो नृपती अस्ति योद्धा  
त्रिवन्धुरो वसुमो उज्रयामा ।

आ न पना नास्त्योष यात  
अभि यद् वां विस्वप्स्यो जिगाति ॥ ४ ॥  
युयं च्यवानं जरुमोऽमुमुस्तं  
॥ ४ ॥ नि पेदव ऊदथुपाशुमभ्यम् ।  
निरहंसस्तमंसः स्पर्तमात्रि  
नि जाहुपं शिथिरे घातमन्तः ॥ ५ ॥  
इयं मेनीपा इयमश्विना गीः  
॥ ५ ॥ हमां सुवृक्ति वृषणा जुषेथाम् ।  
हमा ब्रह्माणि युवयूयर्मन्  
युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥  
॥ ४४ ॥ ( ऋ० ७।७।१-५ )  
॥ ६ ॥ आ गोमेता नासत्या रथेन  
अश्ववता पुरुश्चन्द्रेण यातम् ।  
अभि धां विभ्वां नियतः सचन्ते  
स्याहेया श्रिया तन्वा शुभाना ॥ १ ॥  
आ नो देवेभिरुप यातमर्वाक्  
॥ ७ ॥ सजोपसा नासत्या रथेन ।  
युषोर्हि नः सख्या पित्र्याणि  
समानो वन्धुदत्त तस्य वित्तम् ॥ २ ॥  
उदू स्तोमासो अश्विनोरेजुघ्न  
॥ १ ॥ जामि ब्रह्माण्युपसंश्च देवीः ।  
आविशासन् रोदसी धिष्णुमे  
अच्छा विप्रो नासत्या विधक्ति ॥ ३ ॥  
वि चेदुच्छन्त्याश्विना उपासुः  
॥ २ ॥ प्र धां ब्रह्माणि कारयो भरन्ते ।  
ऊर्ध्व भानुं मविता देवो अश्वेद्  
॥ ४ ॥ बृहद्ग्रयः समिधां जरन्ते  
आ पश्चार्ताद्यासत्या पुरस्ताद्  
॥ ३ ॥ आश्विना यातमध्वरादुदक्तात् ।  
आ विद्वतः पाञ्चजन्येन राया  
युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

॥ ४५ ॥ ( ऋ० ७।७।१-५ )

अतारिष्म तमसस्पातरमस्य  
प्रति स्तोमं देवयन्तो दधानाः ।

पुरुदंसा पुरुतमा पुराजा  
अमर्त्या हवते अश्विना गीः  
न्यु प्रियो मनुषः सदि होता  
नासत्या यो यजते वन्दते च ।

अश्रीतं मर्षो अश्विना उपाके  
आ वा वोचे विदधेपु प्रयस्वान्  
अहम युष्मं पयामुसुणा  
इमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम् ।

क्षुष्टीवेष्टु प्रेषितो वामयोधि  
प्रति स्तोमैर्जरमाणो वसिष्ठः  
उप ह्या बर्ही गमतो विशौ नो  
रक्षोहणा संमृता वीळुपाणी ।  
समन्धास्वगमत मत्सुराणि  
मा नो मधिष्टुमा गतं शिवेन  
आ पश्चातांभालत्या पुरस्ताद्  
आश्विना यातमधुरादुदक्तात् ।  
आ विदधतः पाञ्चजन्येन शया  
युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः

॥ ४६ ॥ ( ऋ० ७।७।१-६ )

प्रगाथ. = ( विषमा बृहती, समा सतोबृहती )

इमा उ वां दिविष्टय उस्मा हवन्ते अश्विना ।

अयं धामद्वेऽवसे शचीवसू  
विश्विंविश्वं हि गच्छथः

युयं चित्रं ददधुमोजनं नरा चोदैथां सुनृतावते ।

अवाग्नं रथं समनसा नि यच्छतं

पियतं स्तोम्यं मधु

आ यातमुप भूपतं मर्षः पियतमश्विना ।

दुग्धं पयो वृषणा जेन्वायसू

मा नो मधिष्टुमा गतम्

अश्वासो ये यामुप दाशुपौ गृहं

युवां दीर्यन्ति विधृतः ।

अश्वपुभिर्नरा हयैर्भिरश्विना

आदेवा यातमस्मयू

॥ १ ॥ अथां ह यन्तो अश्विना पृक्षः सचन्त सूर्यः ।

ता यंसतो मध्ववद्गधो ध्रुवं यशः

छर्दिस्मभ्यं नासत्या

॥ ५ ॥ प्र ये युयुर्युक्तासो रथा इव नृपातारो जनानाम् ।

उत स्येन शर्वसा शशुधुर्नर

उत क्षियन्ति सुधितिम्

॥ ६ ॥

॥ ४७ ॥ ( ऋ० ८।५।१-१७ )

अङ्गातिभिः काण्वः । ( १७ पूर्वार्धः ) । गायत्री; १७ बृहती ।

दुरादिदेष्टु यत् स—त्यङ्गणप्सुरशिञ्चितत् ।

वि भानुं विभ्रघातनत्

॥ १ ॥ नृवद् दक्षा मनोयुजा रथेन पृथुपाजसा ।

सर्वैथ अश्विनोपसम्

॥ २ ॥ युधान्यां वाजिनीवसु प्रति स्तोमां भदक्षत ।

वाचै द्रुतो यथोहिषे

॥ ३ ॥ पुरुमिया णं ऊतये पुरुमन्द्रा पुरुवस् ।

स्तुपे कण्वांसो अश्विना

॥ ४ ॥ मंहिष्ठा वाजसातमे—पर्यन्ता शुभस्पती ।

गन्तारा दाशुपौ गृहम्

॥ ५ ॥ ता सुदेवाय दाशुपे सुमेधामवितारिणीम् ।

धृतैर्गैज्युतिमुक्षतम्

॥ ६ ॥ आ नः स्तोममुप द्रवत् त्र्यं श्येनेभिराशुभिः ।

शातमश्वैर्भिरश्विना

॥ ७ ॥ योमैस्त्रिघ्नः परावतो द्वियो विद्वानि रोचना ।

त्रीरफत्न परिदीर्यथः

॥ ८ ॥ उत नो गोमतीरिप उत सातीरहविदा ।

वि पथः सातये सितम्

॥ ९ ॥

आ नो गोमन्तमश्विना सुधीरं सुरथं रयिम् ।  
 योऽहमदयावतीरियः ॥ १० ॥  
 वायुधाना शुभस्पती दक्षा हिरण्यवर्तनी ।  
 पिवतं सोम्यं मधु ॥ ११ ॥  
 अस्मभ्यं वाजिनीवसु मधवद्भघश्च सप्रथः ।  
 छर्दिर्यन्तमदाम्यम् ॥ १२ ॥  
 नि पु ब्रह्म जनानां धारिष्टं त्वयमा गतम् ।  
 मो ष्वर्यान् उपास्तम् ॥ १३ ॥  
 अस्य पिषतमश्विना युधं मदस्य चारुणः ।  
 मधो रातस्य धिण्या ॥ १४ ॥  
 असे आ बहते रयिं शतवन्तं सहस्रिणम् ।  
 पुष्टुं विप्रधायसम् ॥ १५ ॥  
 पुष्टुवा चिद्धि वां नरा विह्वयन्ते मनीषिणः ।  
 धाघर्द्धिरश्विना गतम् ॥ १६ ॥  
 जनासो वृकयर्द्धिपो हविष्मन्तो अरुहतः ।  
 युवां हवन्ते अश्विना ॥ १७ ॥  
 अस्माकमथ धामयं स्तोमो वादिष्टो अन्तमः ।  
 युवाभ्यां भूत्वाश्विना ॥ १८ ॥  
 यो ह धां मधुनो हति—राहितो रघुचर्षेण ।  
 ततः पिषतमश्विना ॥ १९ ॥  
 तेन नो वाजिनीवसु पश्यं लोकाय शं गर्वं ।  
 बहंतं पीवरीरियः ॥ २० ॥  
 उत नो दिव्या इप उत सिन्धूरहर्विदा ।  
 अप द्वारेव धर्षयः ॥ २१ ॥  
 कदा वां तौद्यो विधत् समुद्रे जंहितो नरा ।  
 यद् वां रयो विमिषताव ॥ २२ ॥  
 युयं कण्वाय नासत्या ऽपिरिषाय हर्म्ये ।  
 शश्वद्वृतीर्दशस्यधः ॥ २३ ॥  
 तामिरा यातमुतिमि—नैव्यसीमिः सुशस्तिमिः ।  
 यद् वां वृषण्वसु हुवे ॥ २४ ॥

यथा चित् कण्वमावतं प्रियमैधमुपस्तुतम् ।  
 अत्रिं शिक्षारमश्विना ॥ २५ ॥  
 यथोत कृत्व्ये धने—ऽशु गोप्यगस्त्यम् ।  
 यथा वाजेषु सोमरिम् ॥ २६ ॥  
 पतावद् वां वृषण्वसु अतो वा भूयो अश्विना ।  
 गुणन्तः सुमनर्माहे ॥ २७ ॥  
 रयं हिरण्यवन्धुरं हिरण्यामीशुमश्विना ।  
 आ हि स्यायो दिविस्पृशम् ॥ २८ ॥  
 हिरण्ययीं वां रभि—रीपा अश्वो हिरण्ययः ।  
 उभा चक्रा हिरण्यया ॥ २९ ॥  
 तेन नो वाजिनीवसु परायतंश्चिदा गतम् ।  
 उपेमां सुष्टुतिं मम ॥ ३० ॥  
 आ बहेथे पराकात् पूर्वोरक्षन्तावश्विना ।  
 इयो दासीरमत्या ॥ ३१ ॥  
 आ नो घुमनैरा अवांमि—रा राया यातमश्विना ।  
 पुष्टश्चन्द्रा नासत्या ॥ ३२ ॥  
 पद् वां प्रुपितप्सवो वयो बहन्तु पर्णिनः ।  
 अच्छां स्वध्वरं जनम् ॥ ३३ ॥  
 रयं धामलुगायसं य इपा धर्तते सह ।  
 न चक्रममि धाधते ॥ ३४ ॥  
 हिरण्ययै न रयै न द्रुघत्पाणिभिरश्वैः ।  
 धीर्जघना नासत्या ॥ ३५ ॥  
 युयं मृगं जागृषांसु स्वर्दयो वा वृषण्वसु ।  
 ता नः वृद्धमिषा रयिम् ॥ ३६ ॥  
 ता मे अश्विना सनीनां  
 विद्यातं नवानाम् । ( पूर्वाधः ) ॥ ३७ ॥  
 ॥ ४८ ॥ ( ऋ० ८।८।१-२३ )  
 सर्वसः काण्वः । अयुष्टम् ।  
 आ नो विभ्वामिकृतिभिः  
 अश्विना गच्छतं युवम् ।  
 दक्षा हिरण्यवर्तनी पिवतं सोम्यं मधु ॥ १ ॥  
 ( ४९० )

आ नूनं यातमश्विना रथेन सूर्यत्वचा ।  
 भुजि हिरण्यपेक्षा कवी गम्भीरचेतसा ॥ २ ॥  
 आ यातं नहुपस्पर्शा ऽऽन्तरिक्षात् सुवृक्तिभिः ।  
 पिवाथो अश्विना मधु कर्षणानां सर्वेने सुतम् ॥ ३ ॥  
 आ नो यातं दिवस्पर्शा ऽन्तरिक्षादधप्रिया ।  
 पुत्रः कर्षस्य वामिह सुपायं सोम्यं मधु ॥ ४ ॥  
 आ नो यातमपशु—त्यश्विना सोमपीतये ।  
 स्वा ह स्तोमस्य वर्धना प्रकवी धीतिभिर्नरा ॥ ५ ॥  
 यश्चिदि वां पुर श्रुपयो जुहुरेऽयंसे नरा ।  
 आ यातमश्विना गत—सुपेमां सुद्युतिं मम ॥ ६ ॥  
 दिवश्चिद् रोचनाद—ध्या नो गन्तं स्वयिदा ।  
 धीमिर्वत्सप्रचेतसा स्तोमैर्भिर्हृद्यनधुता ॥ ७ ॥  
 किमन्ये पर्यासते ऽस्मत् स्तोमैर्भिरश्विना ।  
 पुत्रः कर्षस्यः वामिर्वि—गीमिर्वत्सो अवीवृधत् ॥ ८ ॥  
 आ वां विप्र इहावसे ऽहत् स्तोमैर्भिरश्विना ।  
 अरिप्रा वृत्रहन्तमा ता नो भूतं मयोभवा ॥ ९ ॥  
 आ यद् वां योपेणा रथ—मर्तिष्ठद् वाजिनीयस् ।  
 विद्वान्यश्विना युधं प्र धीतान्यगच्छतम् ॥ १० ॥  
 अतः सहस्रनिर्णिजा रथेना यातमश्विना ।  
 पुत्सो वां मधुमद् वचो ऽशीसीत् काव्यः कविः ११  
 पुहमन्द्रा पुरुवस् मनोतरा रथिणाम् ।  
 स्तोमै मे अश्विनाविम—मभि वही अनुपाताम् १२  
 आ नो विद्वान्यश्विना धत्तं राश्यांस्वहया ।  
 कृतं न श्रुत्वियावतो मा नो रीरघत्ति निदे ॥ १३ ॥  
 यन्नासत्या परावति यद् वा स्थो अथम्यरे ।  
 अतः सहस्रनिर्णिजा रथेना यातमश्विना ॥ १४ ॥  
 यो वां नासत्यावृषि—गीमिर्वत्सो अवीवृधत् ।  
 तस्मै सहस्रनिर्णिज—मिप धत्तं घृतदुत्तम् ॥ १५ ॥  
 प्रास्मा ऊजै घृतदुत्त—मर्दिना यच्छतं युवम् ।  
 यो वां सुमन्यां तुष्यद् वसुयाद् दानुनस्पती १६

आ नो गन्तं रिदादसे—मं स्तोमै पुहमुजा ।  
 कृतं नः सुश्रियो नरे—मा दातममिर्पये ॥ १७ ॥  
 आ वां दिग्वाभिरुतिभिः प्रियमैधा अहपत ।  
 राजन्तावध्याणा—मर्दिना यामहृतिपु ॥ १८ ॥  
 आ नो गन्तं मयोभवा ऽश्विना शंभुवा युवम् ।  
 यो वां विपन्यू धीतिभि—गीमिर्वत्सो अवीवृधत् १९  
 यामिः कर्षं मेधातिभि यामिर्वशं दशप्रजम् ।  
 यामिर्गोर्शयमार्यतं तामिर्नोऽवतं नरा ॥ २० ॥  
 यामिर्नरा नृसर्दस्यु—मार्यतं कृत्ये धनै ।  
 तामिः प्वस्मां अश्विना प्रायतं पाजसातये २१  
 प्र वां स्तोमाः सुवृक्तयो गितै वर्धन्त्वश्विना ।  
 पुरुत्रा वृत्रहन्तमा ता नो भूतं पुहस्पृहा ॥ २२ ॥  
 ग्रीणि पदान्यश्विनो—राविः सान्ति गुहा पुरः ।  
 कवी श्रुतस्य पत्तमि—र्याग जीवेभ्यस्परि ॥ २३ ॥

॥ ४९ ॥ (क्र० ८१३-१-२१)

वाचस्पति काण्वः । अनुष्टुप् । १, ४, १४-१५, वृहती ।  
 २-३, २०-२१ गायत्री, ५ कटुप् । १० त्रिष्टुप् ।  
 ११ विराट् । १२ अगती ।

आ नूनमश्विना युवं वत्सस्य गन्तमर्थसे ।  
 प्रास्मै यच्छतमवृक् पुथु च्छर्दिः ॥ १ ॥  
 युयुतं या अरातयः ॥ २ ॥  
 यदन्तरिक्षे यद् दिवि यत् पञ्च मानुषां अनु ।  
 नृमणं तद् धत्तमश्विना ॥ ३ ॥  
 ये वां दंसांस्वश्विना विप्रांसः परिमामूशुः ।  
 एवेत् काण्वस्यं वोधतम् ॥ ४ ॥  
 अयं वां घमो अश्विना स्तोमेन परि पिच्यते ।  
 अयं सोमो मधुमान् वाजिनीयसु ॥ ५ ॥  
 येन वृत्रं चिकेतयः ॥ ६ ॥  
 यदप्सु यद् वनस्पतौ ॥ ७ ॥  
 यदोषधीपु पुहदंससा कृतम् ।  
 तेन मायिष्टमश्विना ॥ ८ ॥

यन्नासत्या भुरण्ययो यद् वा देव मिपुज्यर्थः ।  
 अयं वा वत्सो मतिभिर्न विन्धते  
 हविर्मन्तं हि गच्छथः ॥ ६ ॥  
 आ नूनमद्विनोऽद्विः स्तोमं चिकेत वामया ।  
 आ सोमं मधुमत्तमं धुमं सिञ्चादधर्वणि ॥ ७ ॥  
 आ नूनं रघुवर्तनि रथं तिप्रायो अद्विना ।  
 आ वा स्तोमा इमे मम नमो न चुच्यवीरत ॥ ८ ॥  
 यद्वा वा नासत्या कथैराचुच्युवीमहि ।  
 यद् वा वाणीमिदद्विना  
 इवेत् काण्वस्य बोधतम् ॥ ९ ॥  
 यद् वा कक्षीवा उत यद् व्यम्ब  
 ऋषियद् वा दीर्घतमा जुदाव ।  
 पृथी यद् वा वैन्यः सादनेषु  
 अवेदतो अश्विना चेतयेथाम् ॥ १० ॥  
 यातं छर्दिष्पा उत नः परस्पा  
 भुतं जगत्पा उत नस्तनुपा ।  
 धृतिस्तोकाय तनयाय यातम् ॥ ११ ॥  
 यदिन्द्रेण सूर्यं यायो अश्विना  
 यद् वा वायुना भवथः समौकसा ।  
 यदादित्येभिर्ऋभुभिः सजोपसा  
 यद् वा विष्णोर्विकर्मणेषु तिष्ठथः ॥ १२ ॥  
 यद्वा अश्विनायद् इयेय वाजसातये ।  
 यत् पृत्सु तुवर्णे सङ्गस्तच्छ्रेष्ठमद्विनोरवः ॥ १३ ॥  
 आ नूनं यातमद्विने मा हव्यानि वा ह्रिता ।  
 इमे सोमासो मधि तुवर्णे यदौ  
 इमे कर्णेषु वामथ ॥ १४ ॥  
 यन्नासत्या पृष्टके अर्वाके अस्ति मेपजम् ।  
 तेन नूनं विमदाय प्रचेतसा  
 छर्दिषस्ताय यच्छतम् ॥ १५ ॥  
 अमुत्स्य प्र देव्या साकं वाचाहमद्विनोः ।  
 र्पावर्देव्या मतिं वि श्रुतिं मर्त्येभ्यः ॥ १६ ॥

प्र बोधयोपो अद्विना प्र देवि सूनृते महि ।  
 प्र यवहोतरानुपक् प्र मदाय ध्रुवो वृद्धत् ॥ १७ ॥  
 यदुपो यासि भानुना सं सूर्येण रोचसे ।  
 आ द्वायमाद्विनो रथो वतिर्याति नृपाय्यम् ॥ १८ ॥  
 यदापीतासो अंशको गावो न दुह ऊर्धभिः ।  
 यद् वा वाणीरनूपत प्र देव्यन्तो अद्विना ॥ १९ ॥  
 प्र धुम्नाय प्र शर्वसे प्र नृपायाय शर्मणे ।  
 प्र दक्षाय प्रचेतसा ॥ २० ॥  
 यन्नूनं धीमिदद्विना पितृयोना निपीदथः ।  
 यद् वा सुम्नेभिदस्स्या ॥ २१ ॥  
 ॥ ५० ॥ ( अ० ८।१०।१-६ )  
 प्रगावो ( वीरः ) कण्वः १ वृहती, २ मधेयवोतिः,  
 ३ अतुष्टुप, ( विगमतेन-शङ्कमती ) ४ आन्वा-  
 रपक्षिः, ५-६ प्रगायः = ( ५ वृहती +  
 ६ सतोवृहती )  
 यत् रथो दीर्घप्रसन्ननि  
 यद् वादो वैचने दिवः ।  
 यद् वा समुद्रे अभ्याहते गृहे  
 अत आ यातमद्विना ॥ १ ॥  
 यद् वा यज्ञं मनये संमिमिश्रुः  
 एवेत् काण्वस्य बोधनम् ।  
 बृहस्पतिं विद्वान् देवां अहं हुवे  
 इन्द्राविष्णुं अद्विनोवासागुदेयसा ॥ २ ॥  
 त्याम्बुद्विना हुवे सुदंससा गुमे हृता ।  
 ययोरस्ति प्र णः सूर्यं देवेष्वभ्याप्यम् ॥ ३ ॥  
 ययोरधि ॥ यन्ना असुरे सन्ति सूर्यः ।  
 ता यज्ञस्याध्वरस्य प्रचेतसा  
 स्वधामियां पिबतः सोम्यं मधु ॥ ४ ॥  
 यद्वा अद्विनायपाम् यत् प्राक् रथो वाजिनीवत् ।  
 यद् द्रुह्यन्निव तुवर्णे यदौ  
 हुवे वामथ मा गतम् ॥ ५ ॥

यदन्तरिक्षे पतयः पुरुमुजा

यद् वेमे रोदसी अनु ।

यद् वा स्वधाभिरधितिष्ठयो रथं

अत आ यातमग्निना

॥ ६ ॥

॥ ५१ ॥ (ऋ० ८।१८।८)

हरिश्चिदि काण्व । उणिक् ।

उत त्या दैव्या भिपजा श नः करतो अग्निना ।

युयुयातामितो रपो अप स्त्रिधः

॥ ८ ॥

॥ ५२ ॥ (ऋ० ८।२१।१-१८)

सोमिः काण्व । १-६ प्रगाथ = (विषमा बृहती+समा  
सोबृहती), ७ बृहती, ८ अनुष्टुप्, ११ ककुप्, १२

मधेऽयति, प्रगाथ = (९, १३, १५, १७,  
ककुप्, १०, १४, १६, १८ सतोबृहती)

ओ स्वमह आ रथे—मृधा दंसिष्ठमुतये ।

यर्मदिनना सुहवा रुद्रवर्तनी

आ सूर्यायै तस्थुः

॥ १ ॥

पूर्वापुर्व सुहवै पुरुस्पृहं मुज्युं वाजेषु पूर्व्यम् ।

सुचनावन्तं सुमतिभिः सोमरे

विद्वैपसमनेहसम्

॥ २ ॥

इह त्या पुरुभूतमा देवा नमोभिरुद्विना ।

अर्याचीना स्ववंसे करामहे

गन्तारा दाशुषो गृहम्

॥ ३ ॥

युयो रथस्य परि चक्रमीयत

इमान्यद् यामिपण्यति ।

अस्मौ अच्छा सुमतिर्यो शुमस्पती

आ धेनुरिय धायतु

॥ ४ ॥

रपो यो यो प्रियन्धुरो हिरण्यामीशुरद्विना ।

परि धार्यापृथिव्या भूयति धृतः

तेन नामत्या गतम्

॥ ५ ॥

दशम्यन्ता मनेये पूर्व्यं द्विधि यद्यं धृक्केण कर्षयः ।

ता यामिष सुमतिभिः शुमस्पती

अर्धिता प्र स्नुयीमहि

॥ ६ ॥

उप नो वाजिनीयस् यातमृतस्य पृथिभिः ।

येभिस्तृक्षि वृषणा त्रासदस्यव

महे क्षत्राय जिव्वेधः

॥ ७ ॥

अयं वामद्विभिः सुतः सोमो नरा वृषण्यस् ।

आ यातं सोमपीतये पियंतं दाशुषो गृहे ॥ ८ ॥

आ हि रुहतेमद्विना

रथे कोदो हिरण्यये वृषण्यस् ।

युजाथां पीवरीरिपः

॥ ९ ॥

यामिः एकयमवयो यामिरिभिर्गुं

यामिर्वेधं विजोपसम् ।

तामिनो मक्ष्म तयमद्विना गतं

मिपज्यतं यदातुर्म

॥ १० ॥

यदधिगायो अधिगू

इवा चिदहो अद्विना हयामहे ।

अयं गीर्भिर्विपन्यवः

॥ ११ ॥

तामिरा यात वृषणोप मे हव्यं

विद्वन्तु विद्वधवर्धम् ।

इवा मंहिष्ठा पुरुभूतमा नरा

यामिः क्रियं वायुधुस्तामिरा गतम्

॥ १२ ॥

ताविदा चिदहानां

तावद्विना चन्दमान उप्रुवे ।

ता ऊ नमोभिरामहे

॥ १३ ॥

ताविद वोपा ता उपसि शुमस्पती

ता यामेन रुद्रवर्तनी ।

मा नो मर्ताय रिपवे वाजिनीयस्

परो रुद्रायति व्यतम्

॥ १४ ॥

आ सुग्म्याय सुग्म्यं

ग्राता रथेनाद्विना वा सुक्षणी ।

इये पितेय सोमरी

॥ १५ ॥

(४८५)



मनोजवसा वृषणा मदच्युता  
मधुंगमार्मिरुतिभिः ।  
आरात्ताधिद् भूतमस्मे अवसे  
पूर्वाभिः पुरुमोजसा ॥ १६ ॥  
आ नो अर्थावददिवना  
वर्तियीसिधे मधुपातमा नरा ।  
गोमद् दक्षा हिरण्यवत् ॥ १७ ॥  
सुप्रवर्गं सुवीर्यं सुष्ठु धार्य—मनाधृष्टं रक्षस्विना ।  
अस्मिन्ना धामायाने वाजिनीवसू  
विश्वा धामानि धीमहि ॥ १८ ॥

॥ ५३ ॥ ( ऋ० ८।१६।१-१९ )

विश्वमशा वयसः, अश्वो माहिराः । उष्णिक्, १६-१९ गायत्री ।  
युवोद् पूर्यं हुये सुधस्तुत्याय सुरिपु ।  
अर्तदक्षा वृषणा वृषण्वसू ॥ १ ॥  
युवं वरो सुपाय्मो महे तने नासत्या ।  
अवोभियाथो वृषणा वृषण्वसू ॥ २ ॥  
ता वामुध हवामहे हृष्येभिर्वाजिनीवसू ।  
पूर्वारिप हृष्यन्तावर्ति भ्रपः ॥ ३ ॥  
आ वां चाहिष्ठो अदिवना रथो यातु श्रुतो नरा ।  
उप स्तोमात्र तुरस्यं दर्शयः श्रिये ॥ ४ ॥  
जुहुराणा चिददिवना ऽऽमन्येयां वृषण्वसू ।  
युवं हि कंठा पर्ययो अति द्विपः ॥ ५ ॥  
दक्षा हि विश्वमानुषह् मधूमिः परिदीर्यथः ।  
धियजिन्या मधुवर्णा शुमस्पती ॥ ६ ॥  
उप नो यातमदिवना राया विश्वपुषा सह ।  
मधवांना सुवीरावर्नपच्युता ॥ ७ ॥  
आ मे अस्य प्रतीव्यु—मिन्द्रनासत्या गतम् ।  
देवा देवैभिर्य सचनस्तमा ॥ ८ ॥  
ययं हि वां हवामहे उक्षण्यन्तो व्यद्ववत् ।  
सुमतिभिरप विप्राविद्धा गतम् ॥ ९ ॥

अदिवना स्वूपे स्तुहि कुविद् ते भवतो हवम् ।  
नेदीयसः कृत्वातः पूर्णोदित ॥ १० ॥  
वैयद्वस्यं श्रुतं नरो—तो मे अस्य वेदयः ।  
सजोपसा वरुणो मित्रो अर्यमा ॥ ११ ॥  
युवाद्तस्य धिण्या युवानीतस्य सुरिभिः ।  
अहंरहृष्या मह्यं शिक्षतम् ॥ १२ ॥  
यो वां यक्षेभिरावृतो ऽधिक्ता वधुरिक् ।  
सुपर्यन्ता शुभे चक्राते अदिवना ॥ १३ ॥  
यो वामुख्यवस्तमं चिकेतति नृपाय्यम् ।  
वर्तिरदिवना परि यातमस्मयू ॥ १४ ॥  
अस्मभ्यं सु वृषण्वसू यातं वर्तिनृपाय्यम् ।  
विपुद्रुह्य यममूहयुगिता ॥ १५ ॥  
वाहिष्ठो वां हवानां स्तोमो वृतो हुवन्नरा ।  
युवाभ्यां मृत्यदिवना ॥ १६ ॥  
यददो दिवो अणव इपो वा मर्दथो गृहे ।  
श्रुतमिन्ने अमर्त्या ॥ १७ ॥  
उत स्या श्वेतपावरी वाहिष्ठो वां नदीनाम् ।  
सिन्धुहिरण्यवर्तनिः ॥ १८ ॥  
सदेतया सुकीर्त्या ऽदिवना श्वेतया धिया ।  
वर्हेथे शुभ्रयावाना ॥ १९ ॥

॥ ५४ ॥ ( ऋ० ८।३५।१-४४ )

रावाद्य आत्रेयः । उपरिशाग्न्याते ( त्रिष्टु ), २३  
२४ पङ्क्तिः, २३ महे वृद्धी ।

अग्निनेत्रेण वरुणेन धिष्णुना  
आदित्ये रुद्रैर्वसुभिः सचामुवा ।  
सजोपसा उपसा सूर्येण च  
सोमं पिबतमदिवना ॥ १ ॥  
विश्वाभिर्धामिमुर्वनेन वाजिना  
दिवा ध्रुविष्याद्विभिः सचामुवा ।  
सजोपसा उपसा सूर्येण च  
सोमं पिबतमदिवना ॥ २ ॥

विश्वैर्वैश्विभिरेकादशैरिह अद्रिर्महद्भिर्धृगुभिः सचाभुवा । सुजोर्पसा उपसा सूर्येण च सोमं पिबतमश्विना	॥ ३ ॥	जयंत च प्र स्तुतं च प्र चावतं प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तम् । सुजोर्पसा उपसा सूर्येण च ऊर्जै नो धत्तमश्विना	॥ ११ ॥
जुपेयां युक्थं यथंतं हवस्य मे विश्वेह देवौ सयनाय गच्छतम् । सुजोर्पसा उपसा सूर्येण च हयं नो वोळ्हमश्विना	॥ ४ ॥	हृतं च शत्रुन् यतंतं च मित्रिणः प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तम् । सुजोर्पसा उपसा सूर्येण च ऊर्जै नो धत्तमश्विना	॥ १२ ॥
स्तोमं जुपेयां युक्थं कन्यनां विश्वेह देवौ सयनाय गच्छतम् । सुजोर्पसा उपसा सूर्येण च हयं नो वोळ्हमश्विना	॥ ५ ॥	मित्रावरुणयन्ता उत धर्मयन्ता मरुत्वन्ता जरितुर्गच्छथो हवम् । सुजोर्पसा उपसा सूर्येण च आदित्यैर्यतमश्विना	॥ १३ ॥
गिरौ जुपेयामध्वरं जुपेयां विश्वेह देवौ सयनाय गच्छतम् । सुजोर्पसा उपसा सूर्येण च हयं नो वोळ्हमश्विना	॥ ६ ॥	अङ्गिरस्वन्ता उत विष्णुवन्ता मरुत्वन्ता जरितुर्गच्छथो हवम् । सुजोर्पसा उपसा सूर्येण च आदित्यैर्यतमश्विना	॥ १४ ॥
हारिद्रवेयं पतथो यनेदुप सोमं सुतं महिषेयार्यं गच्छथः । सुजोर्पसा उपसा सूर्येण च त्रियंतिर्यतमश्विना	॥ ७ ॥	ऋभुमन्ता वृषणा वार्जवन्ता मरुत्वन्ता जरितुर्गच्छथो हवम् । सुजोर्पसा उपसा सूर्येण च आदित्यैर्यतमश्विना	॥ १५ ॥
हंसाविष पतथो अध्वगारिष सोमं सुतं महिषेयार्यं गच्छथः । सुजोर्पसा उपसा सूर्येण च त्रियंतिर्यतमश्विना	॥ ८ ॥	ब्रह्मं जिन्यतमुत जिन्यतं धियो हृतं रक्षांसि सेधतममीयाः । सुजोर्पसा उपसा सूर्येण च सोमं सुन्यतो अश्विना	॥ १६ ॥
इयेनारिष पतथो ह्यध्वदातये सोमं सुतं महिषेयार्यं गच्छथः । सुजोर्पसा उपसा सूर्येण च त्रियंतिर्यतमश्विना	॥ ९ ॥	क्षत्रं जिन्यतमुत जिन्यतं नृन् हृतं रक्षांसि सेधतममीयाः । सुजोर्पसा उपसा सूर्येण च सोमं सुन्यतो अश्विना	॥ १७ ॥
पियंतं च नृप्यतं चा चं गच्छत प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तम् । सुजोर्पसा उपसा सूर्येण च ऊर्जै नो धत्तमश्विना	॥ १० ॥	धेनूजिन्यतमुत जिन्यतं विशौ हृतं रक्षांसि सेधतममीयाः । सुजोर्पसा उपसा सूर्येण च सोमं सुन्यतो अश्विना	॥ १८ ॥

मन्त्रैरिव ऋणतं पुण्यस्तुतिं  
 द्यावाद्देवस्य सुन्वतो मंदच्युता ।  
 सजोपसा उपसा सूर्येण च  
 अर्धिवना त्रिरोमहपम् ॥ १९ ॥

सर्गा इव सृजतं सुपुतीर्य  
 द्यावाद्देवस्य सुन्वतो मंदच्युता ।  
 सजोपसा उपसा सूर्येण च  
 अर्धिवना त्रिरोमहपम् ॥ २० ॥

रुर्मीरिव यच्छतमधुरौ उप  
 द्यावाद्देवस्य सुन्वतो मंदच्युता ।  
 सजोपसा उपसा सूर्येण च  
 अर्धिवना त्रिरोमहपम् ॥ २१ ॥

अर्वाग् रथं नि यच्छतं  
 पिबतं सौम्यं मधुं ।  
 आ यातमर्धिवना गतं मयस्युधीमहं हुवे  
 धत्तं रत्नानि दाशुपे ॥ २२ ॥

नमोवाके प्रस्थिते अश्वरे नरा  
 विवर्क्षणस्य पीतये ।  
 आ यातमर्धिवना गतं मयस्युधीमहं हुवे  
 धत्तं रत्नानि दाशुपे ॥ २३ ॥

स्वाहाकृतस्य तुम्पतं  
 सुतस्य देवावर्धसः ।  
 आ यातमर्धिवना गतं मयस्युधीमहं हुवे  
 धत्तं रत्नानि दाशुपे ॥ २४ ॥

॥ ५१ ॥ (श्रु० ८।४।४-६)

नामाकः काण्डः, अर्धनामा आश्रयो वा । अनुष्टुप् ।  
 आ वां आर्वाणी अभिवना  
 धीभिर्विप्रां अनुच्युतुः ।  
 नासत्या सोमपीतये नमन्तामन्यके संमे ॥ ४ ॥  
 यथा वामत्रैराभिवना ग्रीभिर्विप्रा अजोहवीत् ।  
 नासत्या सोमपीतये नमन्तामन्यके संमे ॥ ५ ॥

एवा वामह ऊनये यथाहुवन्त मेधिराः ।  
 नासत्या सोमपीतये नमन्तामन्यके संमे ॥ ६ ॥

॥ ५६ ॥ (श्रु० ८।५।७ [ ९ बाल० ] १-४)

मेधयः काण्डः । त्रिष्टुप् ।  
 युधं दैवा ऋतुना पुष्ट्येण  
 युक्ता रथेन तविपं यजत्रा ।  
 आगच्छतं नासत्या शर्षीभिः  
 इदं तृतीयं सर्वनं पिपायः ॥ १ ॥

युवां देवास्त्रयं एकादशसः  
 सत्याः सत्यस्ये ददधो पुरस्तात् ।  
 अस्माकं यक्षं सर्वनं जुषाणा  
 पातं सोममभिवना दीर्घशी ॥ २ ॥

पुनाय्यं तदभिवना कुतं वा  
 धृपमो दिवो रजसः पुण्ड्र्याः ।  
 सहस्रं शंसा उत ये गर्विष्ठा  
 सर्वा इव तां उप याता पिबन्मै ॥ ३ ॥

अयं वां आगो निहितो यजत्रा  
 इमा गिरौ नासत्योप यातम् ।  
 पिबतं सोमं मधुमन्तमस्मे  
 प्र दादयांसमवतं शर्षीभिः ॥ ४ ॥

॥ ५७ ॥ (श्रु० ८।७।३।१-१८)

गोपवन आश्रयः सप्तविधः । गायत्री ।  
 उर्वीराधाम्नायते युञ्जाधामभिवना रथम् ।  
 अन्ति पद्भूत वामवः ॥ १ ॥

निमिर्पाश्र्वज्जयैयसा रथेना यातमभिवना ।  
 अन्ति पद्भूत वामवः ॥ २ ॥

उपं स्तृणीतमत्रये हिमेन धर्ममभिवना ।  
 अन्ति पद्भूत वामवः ॥ ३ ॥

कुहं स्यः कुहं जग्मयुः कुहं श्येनेव पेतयुः ।  
 अन्ति पद्भूत वामवः ॥ ४ ॥

(५४९)

यद्य कर्हि कर्हि चिच्छ्रुयात्तमिमं हवम् ।  
 अन्ति पद्भृत वामवः ॥ ५ ॥  
 अश्विना यामहृतमा नेदिष्ठं याम्याप्यम् ।  
 अन्ति पद्भृत वामवः ॥ ६ ॥  
 अवन्तमत्रये गृहे कृणुतं युधमदिवना ।  
 अन्ति पद्भृत वामवः ॥ ७ ॥  
 घरेथे अग्रिमातपो वदते घृत्नघत्रये ।  
 अन्ति पद्भृत वामवः ॥ ८ ॥  
 प्र सप्तर्षिभिराशसा धारामग्रेरशायत ।  
 अन्ति पद्भृत वामवः ॥ ९ ॥  
 इहा गतं वृषण्वसु शृणुतं ॥ इमं हवम् ।  
 अन्ति पद्भृत वामवः ॥ १० ॥  
 किमिवं वी पुराणव-उज्जरत्तोरिव शस्यते ।  
 अन्ति पद्भृत वामवः ॥ ११ ॥  
 समानं वी सजात्यं समानो बन्धुरदिवना ।  
 अन्ति पद्भृत वामवः ॥ १२ ॥  
 यो वां रजोऽस्यदिवना रथो विधाति रोदसी ।  
 अन्ति पद्भृत वामवः ॥ १३ ॥  
 आ नो गव्यैर्मिरद्वयैः सहस्रैरुप गच्छतम् ।  
 अन्ति पद्भृत वामवः ॥ १४ ॥  
 मा नो गव्यैर्मिरद्वयैः सहस्रैर्मिरति वयतम् ।  
 अन्ति पद्भृत वामवः ॥ १५ ॥  
 अरण्यत्तरुपा भम्-दक्ष्योतिर्ऋतावरी ।  
 अन्ति पद्भृत वामवः ॥ १६ ॥  
 अदिवना सु विचाकशद् वृक्षं परशुमो ईव ।  
 अन्ति पद्भृत वामवः ॥ १७ ॥  
 पुरं न घृण्णावा रुज कृष्णया याधितो विशा ।  
 अन्ति पद्भृत वामवः ॥ १८ ॥  
 ॥ ५८ ॥ ( अ० ८।८५।१-९ )  
 कृष्ण आश्रितः । नाथी ।  
 धा मे हयं नास्त्या ऽश्विना गच्छतं युधम् ।  
 मध्यः सोमस्य पीतये ॥ १ ॥

इमं मे स्तोममदिवने-मं मे शृणुतं हवम् ।  
 मध्यः सोमस्य पीतये ॥ २ ॥  
 अयं वां कृष्णो अदिवना हयते वाजिनीपम् ।  
 मध्यः सोमस्य पीतये ॥ ३ ॥  
 शृणुतं जेरितुर्हयं कृष्णस्य स्तुघतो नरा ।  
 मध्यः सोमस्य पीतये ॥ ४ ॥  
 छुर्दियन्तमदाभ्यं विप्राय स्तुघते नरा ।  
 मध्यः सोमस्य पीतये ॥ ५ ॥  
 गच्छतं वाशुयो गृह-मित्रा स्तुघतो अदिवना ।  
 मध्यः सोमस्य पीतये ॥ ६ ॥  
 युजाथां रासमं रथे वीङ्गै वृषण्वसु ।  
 मध्यः सोमस्य पीतये ॥ ७ ॥  
 त्रिविष्टुरेण त्रिवृता रथेना यातमश्विना ।  
 मध्यः सोमस्य पीतये ॥ ८ ॥  
 नू मे गिरो नास्त्या ऽश्विना प्रावतं युधम् ।  
 मध्यः सोमस्य पीतये ॥ ९ ॥  
 ॥ ५९ ॥ ( अ० ८।८६।१-५ )  
 कृष्ण आश्रितः, विश्वको वा कार्णि । जगती ।  
 उभा हि दक्षा सिपजा मयोभवा  
 उभा दक्षस्य धवसो बभूवथुः ।  
 ता वां विश्वको हयते तनूकृये  
 मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतम् ॥ १ ॥  
 कथा नूनं वां विमन्ता उप सप्तद्  
 युवं धियं ददधुर्वस्यैरप्ये ।  
 ता वां विश्वको हयते तनूकृये  
 मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतम् ॥ २ ॥  
 युवं हि ध्या पुरुमुज्जममेषुतुं  
 विष्णोर्वै ददधुर्वस्यैरप्ये ।  
 ता वां विश्वको हयते तनूकृये  
 मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतम् ॥ ३ ॥

उत त्वं वीरं धनसाधुजीपिणं  
दूरे चित् सन्तमर्षस हवामहे ।  
यस्य स्वादिष्टा सुमतिः पितुर्यथा  
मा नो वि यौष्टं सत्या मुमोर्चतम् ॥ ४ ॥  
श्रुतेन देवः संविता शमायत  
श्रुतस्य शृङ्गमुर्विया वि पप्रथे ।  
श्रुतं सासाह महिं चित् वृतन्यतो  
मा नो वि यौष्टं सत्या मुमोर्चतम् ॥ ५ ॥  
॥ ६० ॥ ( ऋ० ८।८७।१-६ )

कृष्ण आश्रितो वाविष्टो वा वुश्रीकः, प्रियमेव आश्रितो  
वा । प्रणयः = ( विषमा बृहती-४मा वृत्तबृहती )

शुश्री वां स्तोमो अश्विना  
क्रिषिर्न लेक आ गंतम् ।  
मर्षः सुतस्य स विवि प्रियो नरा  
पातं गौराविधेरिणे ॥ १ ॥  
पिबंतं धर्मं मधुमन्तमश्विना  
आ बर्हिः सीदतं नरा ।  
ता मन्दसाना मनुषो उरुणे आ  
नि पातं वेदसा वयः ॥ २ ॥  
आ वां विद्वामिहूतिभिः प्रियमेषा अहूयत ।  
ता वृतिर्यातमुपं वृन्तवर्हिषो  
जुष्टं यजं दिविष्टियु ॥ ३ ॥  
पिबंतं सोमं मधुमन्तमश्विना  
आ बर्हिः सीदतं सुमत् ।  
ता वावृधाना उरुं सुप्रति दिवो  
गन्तं गौराविधेरिणम् ॥ ४ ॥  
आ नूनं यातमश्विना ऽश्वेभिः श्रुपितप्सुभिः ।  
दक्षा हिरण्यवर्तनी शुभस्पती  
पातं सोममृतावृधा ॥ ५ ॥  
वयं हि वां हवामहे विपन्यवो  
विमसो वाजसातये ।

ता वल्गु दृष्ट्वा पुंसदंसेसा प्रिया  
अश्विना श्रुष्ट्या गंतम् ॥ ६ ॥

॥ ६१ ॥ ( ऋ० ८।१०।७-८ )

जमदग्निर्गर्भवः । प्रणयः = ( विषमा बृहती, ४मा  
वृत्तबृहती ) ।

आ मे वचांस्युद्यता धूमर्त्तमानि कर्त्तव्या ।  
उमा यातं नासत्या सजोर्पसा  
प्रतिं हव्यानि वीतये ॥ ७ ॥  
रातिं यद् वामरक्षसं हवामहे  
युवाम्यां वाजिनीवसु ।  
प्राचीं होत्रां प्रतिरन्तायितं नरा  
शृणाना जमदग्निना ॥ ८ ॥

॥ ६२ ॥ ( ऋ० १०।१४।४-६ )

ऐन्द्रो विमदः, प्राजापत्यो वा, वासुको वसुहृदा । अनुष्टुप् ।

युयं शक्रा मायायिनां समीची निरमन्यतम् ।  
विमदेन यदीष्टिता नासत्या निरमन्यतम् ॥ ४ ॥  
विश्वे देवा अरुणन्त समीच्योर्निष्पतन्त्योः ।  
नासत्यायमुयन् देवाः पुनरा बहतादिति ॥ ५ ॥  
मधुमन्मे पुरार्यणं मधुमत् पुनरायनम् ।  
ता नो देवा देवतया युवं मधुमतस्कृतम् ॥ ६ ॥

॥ ६३ ॥ ( ऋ० १०।३९।१-१४ )

वासीवती घोषा । जगती, १४ श्रिष्टुप् ।

यो वां परिष्मा सुवृद्धश्विना रथो  
दोषामुपासो हव्यो हविर्पता ।  
शश्वत्समासस्तम् वामिदं वयं  
पितुर्न नाम सुहव्यं हवामहे ॥ १ ॥  
चोदयतं सूनताः पिन्वतं धिय  
उत् पुरंधीररयतं तर्दुद्रमसि ।  
यशसं आगं कृणुतं नो अश्विना  
सोमं न शार्दं मधवत्सु नस्कृतम् ॥ २ ॥

अमाजुराक्षिद् भवभो युधं भगो  
 अनाशोश्चिद्वितारापमस्य चित् ।  
 अन्धस्य चिन्नासत्या कृदास्य चिद्  
 युवामिदाहुर्मिपजा रुतस्य चित् ॥ ३ ॥  
 युवं च्यवानं सनयं यथा रथं  
 पुनर्युवानं चरथाय तक्षयुः ।  
 निष्प्रैश्यमृहधुरूप्यस्पर्ति  
 विस्वेत् ता वां सर्वानेषु प्रयाच्या  
 पुराणा वां धीर्यां प्र ग्रावा जने  
 अथो हासथुर्मिपजा मयोभुया ।  
 ता वां जु नव्यावर्से करागहे  
 अयं नासत्या अवरिर्यथा दधत्  
 इयं वामहे दृणुत मे अश्विना  
 पुत्रायैव पितरा मर्षा शिस्तम् ।  
 अनापिष्ठा असज्जास्यामतिः  
 पुरा तस्या अभिशस्तेर्य स्पृतम्  
 युव रथेन विमदाय शुग्धयुवं  
 स्यूहयुः पुरुमित्रस्य योषणाम् ।  
 युवं हवै वधिमत्या अगच्छतं  
 युवं सुपुतिं चक्रयुः पुरंधये  
 युय विप्रस्य जरणामपेयुषः  
 पुनः कलेरुणुतं युवद् वयः ।  
 युवं घन्दनमृश्यदादुदूपथुः  
 युवं सद्यो विशपलामेतेवे कथः  
 युवं ह रेभ वृण्णा गुहां हितं  
 उदैरयतं ममृशांसमश्विना ।  
 युयम्वीसंमुत तप्तमत्रय  
 ओमन्वन्तं चक्रयुः सप्तवधये  
 युवं श्वेत पेदवैऽश्विनापवै  
 नवमिर्धाजैनेवती च वाजिनम् ।

पुर्तुल्यं ददधुद्रावयारमेल  
 भगं न नभ्यो हय्यं मथोभुयम् ॥ १० ॥  
 न त गजानाषदिते कुनश्चन  
 नाहो अधोनि दुरितं नार्वाभयम् ।  
 यमदिवना सुहया यश्चतर्नी  
 पुरोरथं कृणुथः पत्न्या सह ॥ ११ ॥  
 आ तेन यातं मन्मो जधीयसा  
 रथं यं यामभयश्चपुरदिवना ।  
 यस्य योगे दुरिता जायते द्विय  
 उमे अहनी सुदिने विषस्यतः ॥ १२ ॥  
 ता पतिर्यातं जयुषा वि पर्यतं  
 अपिन्यतं शयवे धेनुमदिवना ।  
 युक्तस्य चिद् वार्तिकामन्तरास्याद्  
 युवं शचीमिर्प्रसिताममुञ्जतम् ॥ १३ ॥  
 एतं वां स्तोममदिवनायकर्म  
 अतश्चाम भृगवो न रथम् ।  
 न्यमृक्षाम योषणां न मये  
 नित्यं न सुतुं तनयं वधानाः ॥ १४ ॥

॥ १४ ॥ (आ० १०।८०।१-१४) ।

रथं यान्तं कुह को ह वां नरा  
 प्रति शुमन्तं सुवितार्य भूपति ।  
 प्रातर्यावाणं विग्वं विशेषे  
 वस्तोर्वस्तोर्वहमानं धिया शर्मि ॥ १ ॥  
 कुहं स्विद् दोषा कुह वस्तोरुदिवना  
 कुहामिपित्वं करतः कुहोपतुः ।  
 को वां शयुत्रा विधवेव देवरं  
 मयं न योषां कृणुते सधस्थ आ ॥ २ ॥  
 प्रातर्जैरथे जरणेव कार्या  
 वस्तोर्वस्तोर्यजता गच्छथो गृहम् ।  
 कस्य च्छ्वा भवयः कस्य वा नरा  
 राजपुत्रैव सवुनाव गच्छथः ॥ ३ ॥

युषां मूनेर्य वारणा मृत्युण्यवो  
 दोषा वस्तोर्द्विषा नि हयामहे ।  
 युवं होत्रामृत्या जुह्वते नरा  
 इयं जनाय वह्नयः शुभस्पती  
 युषां ह घोषा पर्यदिवना यती  
 राक्ष ऊचे दुहिता पृच्छे वो नरा ।  
 मृतं मे अहं उत भूतमकचे  
 अद्र्यायिते रयिने शक्तमर्थेते  
 युषं कृषी धृः पर्यदिवना रयं  
 यिशो न कुत्सो अरिनुर्नदाययः ।  
 युषोर्ह मक्षा पर्यदिवना मधु  
 आसा भरत निष्कृतं न योषणा  
 युषं ह भुज्यं युषमदिवना यशो  
 युषं दिक्षारमृशानामुपारयुः ।  
 युषो रराषा परी सख्यमासते  
 युषोरुद्धमयसा सुह्रमा चके  
 युषं ह रुद्रां युषमदिवना शयुं  
 युषं विघ्नन्ति विधवाभिरुष्ययः ।  
 युषं सनिभ्यः स्तनयन्तमदिवना  
 अप मजमृणुधः सतास्यम्  
 जनिष्ट योषा पतयत् कनीनको  
 यि चारुदन् पीरुघो वंसना अनु ।  
 आरुमै रीपन्ते नियनेयु सिन्धुघो  
 अस्मा अर्धे भयति तत् पनित्युनम्  
 जीवं वदन्ति यि मयन्ते अच्युरे  
 दीर्घामनु प्रमिति दीधिपुनरः ।  
 यामं पिब्य्यो य इदं संमरिरे  
 मयः पतिभ्यो जनयः पतिष्यजे  
 न तस्य विषु तद् पु म् वोजत्  
 युषा ॥ यद् युषत्याः क्षेति योनिषु ।  
 प्रियोऽप्रियस्य वृषमस्य रेतिनो  
 गृहं गमेमादिवना तर्दुदमसि

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १० ॥

॥ ११ ॥

आ वामगन्तुमतिर्वाजिनीवसु  
 न्यदिवना हस्तु कामा अयंसत ।  
 अमृतं गोषा मिथुना शुभस्पती  
 प्रिया अयंग्णो दुष्यां अशीमहि  
 ता मन्दसाना मनुषो दुरोण आ  
 धत्ते रयिं सहर्षीरं वचस्वये ।  
 कृतं तीर्थं सुप्रमाणं शुभस्पती  
 स्थाणुं पयेष्टामपं दुर्मतिं हतम्  
 कं स्विद्व्य कंतमास्यदिवना  
 विश्व दक्षा मादयेते शुभस्पती ।  
 क ई नि यैमे कतमस्य जगत्तुः

॥ १२ ॥

॥ १३ ॥

॥ १४ ॥

॥ ६५ ॥ ( अ० १०।४१।१-३ )

सुहस्त्वो योषेयः । जगती ।

समनमु त्वं पुरद्वृतमुक्थ्यं ।  
 रथं विचक्रं सर्वना गार्नगमत्तम् ।  
 परिज्मानं विद्व्यं सुयुक्तिभिः  
 वयं स्पृष्टा उपसो हयामहे  
 प्रातयुजं नासुत्याधि तिम्रयः  
 प्रातयोषाणं मधुवाहनं रथम् ।  
 यिशो येन गच्छेथो यज्वरीनरा  
 कीरोक्षेद् यमं होतुमन्तमदिवना  
 अच्युयं वा मधुपाणिं सुहस्त्वं  
 अग्निधं या धृतदक्षं दमूनसम् ।

॥ १ ॥

॥ २ ॥

विप्रस्य या यत् सर्वनानि गच्छथो  
 अत आ यातं मधुपेयमदिवना

॥ ३ ॥

॥ ६६ ॥ ( अ० १०।१०२।१-२१ )

भृगोषा कस्तः । विद्वत् ।

उमा उ नूनं तदिदंयेये  
 यि तन्वाधे धियो वक्रापमैय ।  
 मधीचीना पार्नये प्रेमजीगः  
 सुदिनैय गृह आ तसयेधे

॥ १ ॥

( ६१५ )

उष्टारैव फर्वरेषु श्रयेथे  
 प्रायोगेव श्वाय्या शासुरेथः ।  
 द्रुतेव हि द्यो यशसा जनेषु  
 मार्प स्यात् महिषेवावपानात् ॥ २ ॥

सकंदुजा शकुनस्यैव पक्षा  
 पम्बेव चित्रा यजुरा गमिष्टम् ।  
 अग्निरिव देवयोर्दिव्यांसा  
 परिज्मानेव यजथः पुरुषा ॥ ३ ॥

आपी वो अस्मे पितरेव पुत्रः  
 अग्नेव रुचा नृपतीव तुष्ये ।  
 इयैव पुष्ट्यै किरणैव भुज्यै  
 श्रुष्टीवानेव हवमा गमिष्टम् ॥ ४ ॥

वंसंगेव पूषयी शिन्वाता  
 मित्रेव श्रुता शतरा शार्तपन्ता ।  
 वाजेषोष्ठा वयसा घम्येष्टा  
 मेर्वेवेवा संपूयां कुं पुरीषा ॥ ५ ॥

सृण्वैव जम्भेरी तुर्फरीत्  
 नैतोशेव तुर्फरी पर्फरीका ।  
 उद्वन्यजेव जेमना मदेक  
 ता मे जराव्यजरै मरायु ॥ ६ ॥

पञ्जेव चर्चरं जारै मरायु  
 क्षत्रेवार्येषु तर्तरीथ उत्रा ।  
 श्रुभू नापत् परमज्जा खरज्जुः  
 धायुर्न पर्फरत् क्षयद् रयीणाम् ॥ ७ ॥

घम्येव मधु जठरै सुनेरु  
 भनेविता तुर्फरी फारिवारम् ।  
 पतरेव चक्षुरा चन्द्रनिर्णिङ्  
 मनश्चक्षा मनन्या कुं न जग्मी ॥ ८ ॥

बृहन्तैव गम्भरेषु प्रतिष्ठां  
 पादेव गाधं तर्तरे विदाथः ।

कणैव शासुरन् हि स्मराथः  
 अंशैव नो मजत् चित्रपार्पः ॥ ९ ॥

भारङ्गरेव मध्येरयेथे  
 सारधेव गर्वि नीनीनवारै ।  
 कीनारैव म्येदमामिषिदाना  
 क्षामेयोर्जा स्ययसात् संचिथे ॥ १० ॥

श्रुष्याम् स्तोमं सनुयाम् पाजं  
 आं नो मन्त्रं स्रष्टेदोर्प यातम् ।  
 यशो न पुषं मधु गोप्यन्तः  
 आ भूतांशो अभिनोः कार्ममप्राः ॥ ११ ॥

॥ ६७ ॥ (अ० १०।१३।४-५)

शुकीर्तिः काक्षीयतः । ४ अनुष्टुप्, ५ त्रिष्टुप् ।

युयं सुराममभिनो नमुचायासुरे सचा ।  
 विपिपाना शुभस्पती इन्मं कर्मस्वायतम् ॥ ४ ॥

पुत्रामेव पितरावभिनोभा  
 इन्द्रावयुः काव्यैर्दंसनाभिः ।  
 यत् सुरामं व्यपिबः शचीभिः  
 सरस्वती त्वा मघवन्नभिण्यक् ॥ ५ ॥

॥ ६८ ॥ (अ० १०।१४।१-६)

अग्निः सांख्यः । अनुष्टुप् ।

स्यं चिदग्निस्तुज्जरमर्थमभ्वं न यातये ।  
 कक्षीवेन्तं यदी पुना रथे न कृणुथो नयेम् ॥ १ ॥

स्यं चिदभ्वं न वाजिनमरेणवो यमत्नत ।  
 हळहं श्रान्थं न वि ध्यतमत्रि यार्विष्टमा रजः ॥ २ ॥

नरा वंसिष्ठावर्चये शुभ्रा सिपांसतं धिर्यः ।  
 अया हि वां दिवो नरा पुनः स्तोमो न विशलै ॥ ३ ॥

चिते तद् वां सुराघसा रातिः सुमतिरश्विना ।  
 आ यन्नः सर्वने पृथौ समने पर्यथो नरा ॥ ४ ॥

युयं भुज्यं समुद्र आ रजसः पारः ईद्विखतम् ।  
 यातमच्छा पतत्रिमि नोसत्या सातये कृतम् ॥ ५ ॥



आ वाँ सुस्नेः शंयु ईय मंहिष्ठा विश्ववेदसा ।  
समस्मे भूपतं नरोत्सं न पिप्युपीरिपः ॥ ६ ॥

॥ ६९ ॥ ( क्र० १०११८४३ )

त्वष्टा गर्भकर्ता, विष्णुर्वा प्राजापत्यः । अनुष्टुप् ।

हिरण्ययी अरणी यं निर्मग्न्यतो अश्विनो ।  
तं ते गर्भे हवामहे दशमं मासि स्रुत्वे ॥ ३ ॥

॥ ७० ॥ ( वा० य० १४।१-५ )

ध्रुवक्षितिर्ध्रुवयोनिर्ध्रुवास्ति  
ध्रुवं योनिमासीद् साधुया ।  
उष्यस्य केतुं प्रथमं जुषाण  
अश्विनोऽध्वर्युं सादयतामिह त्वां ॥ १ ॥

कुलायिनी घृतवती पुरन्धिः  
स्योने सीद सद्ने पृथिव्याः ।  
अमि त्वां रुद्रा वसयो गृणन्तु  
इमा ब्रह्म पीपिहि सौमगाय  
अश्विनोऽध्वर्युं सादयतामिह त्वां ॥ २ ॥

स्वैर्दधैर्दक्षपितेह सीद  
देवानां सुस्ने घृहते रणाय ।  
पितेर्वधि सूनवोऽआ सुशेवा  
स्वाघेशा तुन्या संविदास्व  
अश्विनोऽध्वर्युं सादयतामिह त्वां ॥ ३ ॥

पृथिव्याः पुरीषमस्यस्तो नाम  
तां त्वां विश्वेऽअभिगृणन्तु देवाः ।  
स्तोमपृष्ठा घृतवतीह सीद  
प्रजावदस्मे द्रविणार्यजस्व  
अश्विनोऽध्वर्युं सादयतामिह त्वां ॥ ४ ॥

अदित्यास्त्या पृष्ठे सादयाम्यन्तरिक्षस्य  
धुर्यं विष्टम्मर्मा दिशामधिपतीं मुर्वनानाम् ।  
ऊर्मिर्दृप्तोऽअपामसि विश्वर्गमं  
तुऽश्वपिरश्विनोऽध्वर्युं सादयतामिह त्वां ॥ ५ ॥

॥ ७१ ॥ ( वा० य० ३८।१०, १३ )

विश्वोऽआशां दक्षिणसद् विश्वान् देवानयाहिह ।  
स्वाहाकृतस्य धर्मस्य मर्धोः पियतमश्विना ॥ १० ॥  
अपातामश्विनो धर्ममनु यावापृथिवीऽवमस्ताताम् ।  
इहैव रातर्यः सन्तु ॥ १३ ॥

॥ ७२ ॥ ( साम० ३०५ )

अश्विनो देवस्वतो । बृहती ।

कुष्ठः को वामश्विना सपानो देवा मर्त्यः ।  
प्रता वामश्वमया क्षयमाणोऽशुनेत्यमु आह्वयथा ३

॥ ७३ ॥ ( अथर्व २।१९।६ ) अथर्व । त्रिष्टुप् ।

शिवामिष्टे हृदयं तर्पयामि  
अनमोवो मोदिपीष्ठाः सुवर्चाः ।  
सुवासिनो पियतां मग्न्यमेतं  
अश्विनो रूपं परिधाय मायाम् ॥ ६ ॥

॥ ७४ ॥ ( अथर्व ६।५०।१-३ )

अथर्व ( अथर्वकामः ) । १ विराट् जगती,

२-३ पध्यापहृतिः ।

हृतं तर्दं संमद्रमाक्षुमश्विना  
छिन्तं शिरो अर्पि पृष्ठाः शृणीतम् ।  
यथात्रेददानरिं नहतं मुखं  
अथार्मयं कृणुतं धान्याय ॥ १ ॥

तर्दं है पतङ्गं है जम्भं हा उपकस ।  
ब्रह्मेवासंस्थितं हविरर्नदन्त  
इमान्ययानर्हिंसन्तो अपोर्दित ॥ २ ॥  
तर्दोपते यथापते तृष्टंजम्भा आ शृणोत मे ।

य आत्प्या ध्यहिहा ये के च म्य  
व्यहिह्रास्तान्सयीन् जम्भयामसि ॥ ३ ॥

॥ ७५ ॥ ( अथर्व २।३०।१ ) प्रजापतिः । अनुष्टुप् ।

सं चैत्रयाथो अश्विना  
कामिना सं च वक्ष्यथः ।  
सं वां भगांसो अग्नतु  
सं चित्तानि समु प्रता ॥ २ ॥

॥ ७६ ॥ ( अथर्व० ६।१०२।१-३ )

जमदग्निः । अनुष्टुप्

यथायं ब्राह्मो अश्विना समैति सं च वर्तते ।  
 एवा मामभि ते मनः समैतु सं च वर्तताम् १  
 आहं सिदामि ते मनो राजाश्वः पृथगामिव ।  
 रेप्मच्छिन्नं यथा तृणं मयि ते वेष्टतां मनः ॥ २ ॥  
 आर्जनस्य मधुघस्य कुष्ठस्य नलदस्य च ।  
 तुरो भगस्य हस्ताभ्यामनुरोधेनमुद्गरे ॥ ३ ॥  
 ॥ ७७ ॥ ( अथर्व० ६।१४१।१-३ ) विष्णुमित्रः । अनुष्टुप् ।  
 वायुरेनाः समारकृतं त्वष्टा पोषाय ध्रियताम् ।  
 इन्द्र आभ्यो आधि ब्रवद् रुद्रो मुने चिकित्सतु १  
 लोहितेन स्वधितिना मिथुनं कर्णयोः कृधि ।  
 अकर्तामश्विना लक्ष्म तदस्तु प्रजयां शुद्ध ॥ २ ॥  
 यथा चक्रुर्देवासुरा यथा मनुष्या उत ।  
 एवा संहस्रपोषायं कृणुतं लक्ष्माश्विना ॥ ३ ॥

अश्विसहचारी-देवगणः ।

( १ ) अश्विसरस्वतीन्द्राः ।

॥ ७८ ॥ ( वा० य० ११।३३-३५ )

यस्ते रसः सम्भृतऽओषधीषु  
 सोमस्य शुष्मः सुरेया सुतस्य ।  
 तेन जिन्य यजमानं मदेन  
 सरस्वतीमश्विनाविन्द्रमभिम् ॥ ३३ ॥  
 यमश्विना नमुचेरासुरादधि  
 सरस्वत्यसुनोदिन्द्रियार्य ।  
 इमं त५ शुक्रं मधुमन्तमिन्दु५  
 सोम५ राजानमिदं भक्षयामि ॥ ३४ ॥  
 यदत्र रित५ रसिनः सुतस्य  
 यदिन्द्रोऽथर्विचक्षीभिः ।  
 अहं तदस्य मनस्ता शिवेन  
 सोम५ राजानमिदं भक्षयामि ॥ ३५ ॥

॥ ७९ ॥ ( वा० य० १०।६७-६९ )

अश्विना हविरिन्द्रियं नमुचेर्धिया सरस्वती ।  
 आ शुक्रमासुरादसु मघमिन्द्राय जघ्निरे ॥ ६७ ॥  
 यमश्विना सरस्वती हविषेन्द्रमवर्धयन् ।  
 स बिभेद घृतं मघं नमुचावासुरे सचा ॥ ६८ ॥  
 तमिन्द्रं पशवः सचाश्विनोभा सरस्वती ।  
 दधानाऽअभ्यनूपत हविषा यष्टऽइन्द्रियैः ॥ ६९ ॥

॥ ८० ॥ ( वा० य० ११।४८-५८ )

देवं धृहिं सरस्वती सुदेवमिन्द्रंऽअश्विना ।  
 तेजो न चक्षुरस्योर्यर्हिषा दधुरिन्द्रियं ॥ ४८ ॥  
 वसुधने वसुधेर्यस्य व्यन्तु यजं ॥ ४९ ॥  
 देवीर्हाराऽअश्विना भिषजेन्द्रे सरस्वती ।  
 प्राणं न वीर्यं नसि द्वारौ दधुरिन्द्रियं ॥ ५० ॥  
 वसुधने वसुधेर्यस्य व्यन्तु यजं ॥ ५१ ॥  
 देवीऽउपासाश्विना सुत्रामेन्द्रे सरस्वती ।  
 बलं न वार्चमास्यऽउपाभ्यां दधुरिन्द्रियं ॥ ५२ ॥  
 वसुधने वसुधेर्यस्य व्यन्तु यजं ॥ ५३ ॥  
 देवी जोषी सरस्वत्यश्विनेन्द्रमवर्धयन् ।  
 श्रोत्रं न कर्णयोर्यशो जोषीभ्यां दधुरिन्द्रियं ॥ ५४ ॥  
 वसुधने वसुधेर्यस्य व्यन्तु यजं ॥ ५५ ॥  
 देवीऽकुर्जाहुती दुर्घे सुदुधेन्द्रे  
 सरस्वत्यश्विना भिषजावतः ।  
 शुक्रं न ज्योति स्तनयोराहुती धत्तऽइन्द्रियं ॥ ५६ ॥  
 वसुधने वसुधेर्यस्य व्यन्तु यजं ॥ ५७ ॥  
 देवा देवानां भिषजा होताराविन्द्रमभिना ।  
 घपटकारैः सरस्वती त्विषिं न ॥ ५८ ॥  
 हृदये मति५ होतृभ्यां दधुरिन्द्रियं ॥ ५९ ॥  
 वसुधने वसुधेर्यस्य व्यन्तु यजं ॥ ६० ॥  
 देवीस्तिष्ठस्तिष्ठो देवीरश्विनेडा सरस्वती ।  
 दायं न मघ्ये नाभ्यामिन्द्राय दधुरिन्द्रियं ॥ ६१ ॥  
 वसुधने वसुधेर्यस्य व्यन्तु यजं ॥ ६२ ॥

देवेऽइन्द्रो नराशरसन्निविरूथः

सरस्वत्यश्चिदभ्यामीयते रथः ।

रेतो न रूपममृतं जनित्रमिन्द्राय

त्वष्टा दधंदिन्द्रियाणि

यसुवनें यसुधेयस्य व्यन्तु यजं

॥ ५५ ॥

देवो देवैर्वनस्पतिर्द्विरण्यपर्णो ऽ अश्विभ्यां

सरस्वत्या सुपिप्पलऽइन्द्राय पच्यते मधु ।

भोजो न जतिर्ऋषमो न भामं

यनस्पतिर्नो दधंदिन्द्रियाणि

यसुवनें यसुधेयस्य व्यन्तु यजं

॥ ५६ ॥

देवं बर्हिर्धारीतीनामश्वरे स्तीर्णमश्विभ्यामूर्णम्रदाः

सरस्वत्या स्योनमिन्द्र ते सदेः ।

ईशायै मन्युर राजानं बर्हिषां दधुरिन्द्रियं

यसुवनें यसुधेयस्य व्यन्तु यजं

॥ ५७ ॥

देवोऽअग्निः स्विष्टकृद् देवान् यक्षद् यथायुथः

होताऽअग्निर्दमदिवनां प्राचा वाचुर सरस्वती

अग्निः सोमं स्विष्टकृत् स्विष्टऽइन्द्रः

सुवामां सविता वरुणो

मिपगिष्टो देवो वनस्पतिः स्विष्टा देवाऽआज्यपाः

स्विष्टोऽअग्निरग्निना होता होत्रे स्विष्टकृद्

यज्ञो न दधंदिन्द्रियमूर्जमपचितिः स्वर्गां

वसुवनें यसुधेयस्य व्यन्तु यजं

॥ ५८ ॥

( २ ) अश्विसूयादयः ।

॥ ८१ ॥ ( वा० य० ३८।११ )

अश्विना घृमे पातुर हादीनमहर्द्विषाभिर्ऋतिभिः ।

तन्त्रायिणे नमो प्राचापृथिवीभ्याम्

॥ १२ ॥

( ३ ) अश्विनौ, बृहस्पतिः ।

॥ ८२ ॥ ( अथर्व० ५।२६।१० )

मद्रा । परातिशक्ती चतुष्पदा गायत्री ।

अश्विना ब्रह्मणा यातमर्वाञ्जौ

यपत्कारेण यमं वर्धयन्तौ ।

बृहस्पते ब्रह्मणा याह्यर्वाङ्

यज्ञो अयं स्वर्गिदं यजेमानाय स्यादा

॥ १२ ॥

( ६७० )

## ( ४ ) इयेनः, अश्विनौ ।

॥ ८३ ॥ ( अथर्व० ३।३।४ ) अथर्वौ । त्रिष्टुप् ।

इयेनो हव्यं नयत्वा परंसाद्  
अन्यक्षेत्रे अपरुद्धं चरन्तम् ।  
अश्विना पन्थां कण्ठतां सुगं तं  
इमं संजाता अभिसंविशध्वम् ॥ ४ ॥

## ( ५ ) अश्विनौ, द्यौष्पिता ।

॥ ८४ ॥ ( अथर्व० ६।४।३ ) त्रिपदा विराड् षायत्री ।

द्यौये समदिवना प्रार्वतं न  
उरुण्या ण उरुज्मघप्रयुच्छन् ।  
द्यौष्पितर्याययं दुच्छन्ना या ॥ ५ ॥

## ( ६ ) बृहस्पतिः, अश्विनौ ।

॥ ८५ ॥ ( अथर्व० ६।६९।१-३ ) अतुष्टुप् ।

गिरावर्गताटेपु हिरण्ये गोपु यद्यशः ।

सुरायां सिच्यमानायां कीलाले मधु तन्मयि १  
अदिवना सारधेण मा मधुनाङ्गं शुभस्पती ।  
यथा भर्गस्वर्ती वाचं मावदानि जना अलु ॥ २ ॥  
मयि वर्चो अथो यशोऽथो यशस्य यत् पर्यः ।  
तन्मयि प्रजापतिर्दिवि द्यामिव दहत् ॥ ३ ॥

## ( ७ ) सांमनस्यं, अश्विनौ ।

॥ ८६ ॥ ( अथर्व० ७।५१।१-२ )

ककुम्भसुतुष्टुप्, २ जगती ।

संज्ञानं नः स्वेभिः संज्ञानमरणेभिः ।  
संज्ञानमश्विना युवमिहास्मासु नि यच्छतम् ॥ १ ॥  
सं जानामहं मनसा सं चिक्त्वा  
मा युष्महि मनसा दैव्येन ।  
मा घोषा उत्स्युर्बहुले विनिर्हृते  
मेघुः पतद्विन्द्रस्याहन्त्यागते ॥ २ ॥

( ६७७ )

( ८ ) धर्मः, अश्विनौ ।

॥ ८७ ॥ ( अथर्व० ७।७३।१-५।८ )

अगती, २ पद्यावृहतां, ३, ५, ८ त्रिष्टुप् ।

समिद्धो अग्निर्वृषणा रथो दिवः  
ततो धर्मो दुहते वामिपे मधु ।  
यये हि यो पुरुदमासो अदिवना  
हयामहे सधमादेषु कारधः  
समिद्धो अग्निरदिवना ततो  
यो धर्म आ गतम् ।  
दुहन्ते नूनं वृषणेह धेनवो  
दत्ता मदन्ति वेधसः  
स्वाहाकृतः शुचिर्देवेषु यज्ञो  
यो अश्विनोश्चमसो देवपानः ।  
तम् विध्वे अमृतासो जुषाणा  
गन्धर्वस्य प्रत्यास्ता रिहन्ति  
यदुक्षियास्याहुतं घृतं पयोऽयं  
स वामश्विना माग आ गतम् ।  
मार्घी धर्तारा विदधस्य सत्पती  
तत्तं धर्मं पिबतं रोचने दिवः  
ततो यो धर्मो नक्षतु स्यहीता  
प्र वामश्वयुश्चरतु पर्यस्यान् ।  
मघोर्दुग्धस्यादिवना तनाया

वीते पातं पर्यस उक्षियायाः ॥ ५ ॥

दिदृक्ष्वती वसुपत्नी यस्नां  
यत्समिच्छन्ती मर्नसा न्यागन् ।  
दुहामदिवम्यां पयो अप्पेयं  
सा वर्धतां महुते सौमगाय ॥ ८ ॥

( ९ ) मधु, अश्विनौ ।

॥ ८८ ॥ ( अथर्व० ९।१।११, १६-१७, १९ )

अउष्टुप्, १७ वणीष्टादिपाद् वृहती ।

॥ १ ॥

यथा सोमः प्रातःसवने अश्विनोर्मर्षति प्रियः ।  
एवा मे अश्विना यच्च आत्मनि प्रियताम् ॥ ११ ॥  
यथा मधु मधुहृतः संमरन्ति मद्यावधि ।  
॥ २ ॥  
एवा मे अश्विना यच्च आत्मनि प्रियताम् ॥ १६ ॥  
यथा मघा इदं मधु न्यजन्ति मद्यावधि ।  
एवा मे अश्विना यच्च  
॥ ३ ॥  
तेजो यलमोज्ञाय प्रियताम् ॥ १७ ॥  
अश्विना साधेणं मा मर्धनाकं शुमस्पती ।  
यथा यच्चैस्वतीं यार्च—मायदानि जनां अनु ॥ १९ ॥

॥ ४ ॥

( १० ) सिनीवालीसरस्वत्वाश्विनः ।

॥ ८९ ॥ ( ऋ० १०।१८४।९ )

वृहती, यमकतां, विष्णुतां प्राजापत्यः । अउष्टुप् ।

गमै धेहि सिनीवालि गमै धेहि सरस्वति ।  
गमै ते अश्विनौ देवा—या घन्तां पुष्करज्जा ॥ २ ॥

( ६८८ )



# आयुर्वेद-प्रकरणम्

## दीर्घायुष्यम् ।

॥ १ ॥ ( अथर्वे ७१.८।१-५ )

शम्भुः । १, ३ जरिमा, आयुः २ मित्रावरुणौ; ३-५ यावा-  
वृथिभ्यादयो देवाः । त्रिष्टुप्, १ जगती, ५ भुरिक् ।

तुभ्यमेव जरिमन् वर्धतामयं  
मेममन्ये मृत्यवौ हिसिपुः शतं ये ।

मातेर्यं पुत्रं प्रमेना उपस्थे

मित्रं पत्नं मित्रियात् पात्वंहसः

मित्रं पत्नं वर्धणे वा रिशदां

जुरामृत्युं कृणुतां संविदानौ ।

तद्गमिहोतां घृणानि विहाव

विश्वो देवानां जनिमा विवाकि

त्वमीक्षिषे पशूनां पार्थिवानां

ये ज्ञाता उत वा ये जनिश्राः ।

मेमं प्राणो हस्तीन्मो अपानो

मेमं मित्रा रंधिपुमो भूमित्राः

चौष्टां पिता पृथिवी माता

जुरामृत्युं कृणुतां संविदाने ।

यथा जीवा अदितेरुपस्थे

प्राणापानाभ्यां गुपितः शतं हिमाः

इममंश्च आयुषे वर्धने नय

मियं रेतो वरुण मित्रराजन् ।

मातेर्यास्मा अदिते शर्म यच्छु

विदधे देवा जुरदधियथासत्

॥ २ ॥ ( अथर्वे ७१.११-२१ )

मग्ना । आयुः । त्रिष्टुप्; १ पुरोवृहती त्रिष्टुप्;

२-३, १७-२१ अनुष्टुप्; ४, १, १५-१६ प्रसारपङ्क्तिः;

७ त्रिपदा विराड्वायरी; ८ विराट्पञ्चवृहती; १२ त्र्यसृष्टानां

पञ्चपदा जगती; १३ त्रिषद्वसुरिह्मवृहती; १४ एकवसानां

त्रिपदा साम्री गुरिरवृहती

॥ १ ॥ अन्तर्काय मृत्यवे नमः

प्राणा अपाना इह ते समन्ताम् ।

इहायमेस्तु पुरुषः सहासुता

सूर्यस्य भागे अमृतस्य लोके

॥ १ ॥

॥ २ ॥ उदेनं भर्गो अभर्मादुदेनं सोमो अंशुमान् ।

उदेनं मरुतो देवा उदिस्त्रास्री स्रस्तये

॥ २ ॥

इह तेऽसुरिह प्राण इहापुंरिह ते मनः ।

उत् त्वा निष्क्रेत्याः पार्श्वेभ्यो

दैव्या धात्रा भर्गमसि

॥ ३ ॥

उत् क्रामतेः पुरुष मायं पत्या

मृत्योः पङ्क्तिमवमृञ्चमानः ।

मा विञ्ज्या अस्माहोकादग्नेः सूर्यस्य संदराः ॥ ४ ॥

तुभ्यं वार्ताः पयतां मातुरिदया

तुभ्यं वर्धन्त्वमृताभ्यापः ।

सूर्यस्ते तन्येऽंशं तपाति

त्यां मृत्युर्दयतां मा प्र मेष्टाः

॥ ५ ॥

उद्यानं ते पुरुष नाव्यानं  
 जीवातुं ते दक्षतातिं कृणोमि ।  
 आ हि रोहेमममृतं सुखं रथं  
 अथ जिर्विर्विदथमा वंदासि ॥ ६ ॥  
 मा ते मनस्तत्र गान्मा तिरो भूत्  
 मा जीवेभ्यः प्र मंदो मातुं गाः पितृन् ।  
 विश्वे देवा अभि रक्षन्तु त्वेह ॥ ७ ॥  
 मा गतानामा दीधीथा ये नयन्ति परावर्तम् ।  
 आ रोह तमसो ज्योति  
 पद्मा ते हस्तौ रभामहे ॥ ८ ॥  
 इयामश्च त्वा मा श्वलक्ष प्रेषितौ  
 यमस्य यौ पथिरक्षी इवानौ ।  
 अर्वाङ्गेहि मा वि दीध्यो  
 मात्रं तिष्ठः पराङ्मनाः ॥ ९ ॥  
 मैतं पन्थामनु गा भीम पृथ  
 येन पूर्वं नेयथ तं ब्रवीमि ।  
 तमे पतत् पुरुष मा प्र पन्था  
 भयं परस्तादभयं ते अर्वाक् ॥ १० ॥  
 रक्षन्तु त्वाग्रयो ये अप्सवन्ता  
 रक्षन्तु त्वा मनुष्याः यमिन्धर्ते ।  
 धैश्वानरो रक्षन्तु जातवेदा  
 दिव्यस्था मा प्र धाग् यियुता सह ॥ ११ ॥  
 मा त्वा क्रव्यादभि मस्तारात् संकसुकाचर ।  
 रक्षन्तु त्वा घौ रक्षन्तु पृथिवी  
 सूर्यश्च त्वा रक्षतां चन्द्रमार्क्ष ।  
 अन्तरिक्षं रक्षन्तु देवदेव्याः ॥ १२ ॥  
 योधश्च त्वा प्रतीयोधश्च रक्षतां  
 अस्त्रमश्च त्वानयद्राणश्च रक्षताम् ।  
 गोपायश्च त्वा जार्गुविश्च रक्षताम् ॥ १३ ॥  
 ने त्वा रक्षन्तु ते त्वा गोपायन्तु  
 तेभ्यो नमस्तेभ्यः स्वाहा ॥ १४ ॥

जीवेभ्यस्त्वा समुदे वायुरिन्द्रो  
 धाता दधातु सविता धार्यमाणः ।  
 मा त्वा प्राणो यलं दासीदनुं तेऽनुं दयामसि ॥ १५ ॥  
 मा त्वा जम्भः संहेनुर्मा तमो विव्रत्  
 मा जिह्वा वह्निः प्रमयुः कथा स्याः ।  
 उत् त्वादित्या वसवो भरतुर्दिन्द्राग्नी स्वस्तये ॥ १६ ॥  
 उत् त्वा घौरुत् पृथिव्यु—त् प्रजापतिरग्रमीत् ।  
 उत् त्वा मृत्योरपधयः सोमराक्षीरपीपरन् ॥ १७ ॥  
 अयं देवा इहैवास्त्वयं मामुग्र गावितः ।  
 इमे सहस्रवीर्येण मृत्योरुत् पारयामसि ॥ १८ ॥  
 उत् त्वा मृत्योरपीपरं सं धमन्तु ययोधसः ।  
 मा त्वा व्यस्तकेश्योः मा त्वाघ्नदो रुदन् ॥ १९ ॥  
 आहर्षिमर्विदं त्वा पुनरागाः पुनर्णवः ।  
 सर्वोङ्ग सर्वै ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेऽविदम् ॥ २० ॥  
 व्यवात् ते ज्योतिरभुव—प त्वत् तमो अक्रमीत् ।  
 अप त्वन्मृत्युं निष्कृतिम्—प यक्षं नि दधमसि ॥ २१ ॥  
 ॥ ३ ॥ ( अथर्व० ८।१।१-१८ )  
 ब्रह्मा । आयुः । धिष्टृप्, १-२, ७ अरिक् ; १, २१ आस्तार-  
 पक्षिः, ४ प्रत्तारपक्षिः, ६, १५ पश्वापक्षिः, ८ पुरस्ता-  
 ज्योतिष्मती जगती ; ९ पश्चपदा जगती ; ११ विष्टारपक्षिः,  
 १२, २२, २८ पुरस्ताद्बृहती ; १४ व्यवसाना वदपदा जगती ;  
 १९ उपरिष्टाद्बृहती ; २१ सतः पक्षिः, ५, १०, १६-१८, २०,  
 २३-२५, २७ अनुष्टुप् ( १० त्रिषाद् ) ।  
 आ रभस्वेमाममृतस्य अग्निं  
 अर्चिद्यमाना अरदप्रिस्तु ते ।  
 असुं त आयुः पुनरा मरामि  
 रजस्तमो मोषं मा मा प्र मेष्टाः ॥ १ ॥  
 जीवतां ज्योतिरभ्येहार्वाङ्  
 आ त्वा हरामि शतशरदाय ।  
 अवमुञ्चन् मृत्युपाशानशस्ति  
 दार्घीय आयुः प्रतुरं ते दधामि ॥ २ ॥



वातात् ते प्राणमविदं सूर्याचक्षुरहं तव ।  
यत् ते मनस्त्वयि तद् धारयामि  
सं चित्स्वाह्वैर्देदं जिह्वयालं पन् ॥ ३ ॥  
प्राणेन त्वा द्विपदां चतुष्पदां  
अशिमिव ज्ञातमभि स धमामि ।  
नमस्ते मृत्यो चक्षुषे नमः प्राणाय तेऽकरम् ॥ ४ ॥  
अयं जीयतु मा मृतेमं समीरयामसि ।  
कृणोम्यस्मै भेयजं मृत्यो मा पुरेपं वधीः ॥ ५ ॥  
जीवलां नधारिणं जीविन्तीमोषधीमहम् ।  
त्रायमाणं सहमानां सहस्वतीं  
इह हृवेऽस्मा अरिप्रतातये ॥ ६ ॥  
अधि ब्रूहि मा रमथाः सुजेमं  
तयैव सन्तस्वैहाया इहास्तु ।  
मघाशर्वां मुडतं शर्म यच्छतं  
अपसिष्यं दुरितं धन्तुमार्युः ॥ ७ ॥  
अस्मै मृत्यो अधि ब्रूहीमं दयस्वोदितोऽयमेतु ।  
अरिप्रः सर्वोङ्गः सुधुञ्जरसां  
शतहायन आत्मना भुजंमधुताम् ॥ ८ ॥  
देवानां हेतिः परिं त्वा घृणकु  
पारयामि त्वा रजस उव त्वा मृत्योरपीपरम् ।  
आरात्रिमं क्रव्यादं निरुहं  
जीवातवे ते परिधिं र्धमामि ॥ ९ ॥  
यत् ते नियानं रजसं मृत्यो अनवधुर्धम् ।  
पथ इमं तस्माद् रक्षन्तो ब्रह्मास्मै वरमं कृण्मासि १०  
कृणोमि ते प्राणापानौ  
जरां मृत्युं दीर्घमार्युः स्वस्ति ।  
वैवस्वतेन प्रहितान् यमदुत्तान्  
चरतोऽपं सेधामि सर्वान् ॥ ११ ॥  
आरादरातिं निश्चैति परो  
ग्राहिं क्रव्यादः पिशाचान् ।  
रक्षो यत् सर्वं दुर्भुतं तत् तमं इवापं हन्मसि १२ ।

अग्नेष्टे प्राणममृतादारुण्यमतो वन्द्ये ज्ञातवेदसः ।  
यथा न रिप्यां अमृतः सजूरसः  
तत् ते कृणोमि तदुं ते समृध्यताम् ॥ १३ ॥  
शिवे ते स्तां चावापयिषी अंसतापे अमिधिर्यो ।  
शं ने सूर्य आ तपतु शं वातो वातु ते हृदे ।  
शिवा अमि क्षरन्तु त्वापो दिव्याः पर्यस्वतीः १४  
शिवास्तै सन्त्वोषधय उत  
त्वाहार्यमर्धरस्या उत्तरां पृथिवीमभि ।  
तत्र त्वादित्या रक्षतां सूर्याचन्द्रमसावुमा ॥ १५ ॥  
यत् ते वासः परिधानं यां नीवि कृणुषे त्वम् ।  
शिवं ते तन्वेऽतु तद् कृण्मः  
सस्पृशेऽद्रक्ष्णमस्तु ते ॥ १६ ॥  
यत् क्षुरेणं मर्वयता सुतेजसा  
वसा वर्षसि केशश्मधु ।  
शुभं मुपं मा न आयुः प्र मोषीः ॥ १७ ॥  
शिवो ते स्तां ब्रीहियवा—वयलासावदोमधौ ।  
पतौ यक्षं वि याधेते पतौ मुञ्चतो अर्हसः ॥ १८ ॥  
यदश्नासि यत् पियंसि धान्यं कृष्याः पर्यः ।  
यदाद्यं यदनाद्यं सर्वं ते अन्नमयिषं कृणोमि १९  
अहं च त्वा रात्रये चोमाभ्यां परि दक्षसि ।  
आरात्र्यो जिघत्सुर्भ्यं इमं मे परि रक्षत ॥ २० ॥  
शतं तेऽयुतं हायनान् डे युगे  
ग्रीणि चत्वारि कृण्मः ।  
इन्द्राग्री विभ्वे देवास्तेऽनु  
मन्यन्तामहंणीयमानाः ॥ २१ ॥  
शरदे त्वा हेमन्तार्य यस्तनार्य  
ग्रीष्माय परि दक्षसि ।  
वर्षाणि तुभ्यं स्योनानि येन वर्षेण शोषं हिः १२२  
मृत्युरीति द्विपदां मृत्युरीति अमृतमिदम् ।  
तस्मात् त्वां मृत्योर्गोपयेन्ममैव न न ॥ २३ ॥

सोऽरिष्टं न मरिष्यसि न मरिष्यसि मा विभेः ।

न वै तत्र म्रियन्ते नो रन्त्यधमं तमः ॥ २४ ॥

सर्वो वै तत्र जीयति गौरभ्यः पुरुषः पशुः ।

यत्रेदं ब्रह्म क्रियते परिधिर्जीवनाय कम् ॥ २५ ॥

परि त्वा पातु समानेभ्योऽभिचारत् सर्वपशुभ्यः ।

अमन्त्रिर्भवामृतोऽतिजीवो

मा तै हासिपुरस्वयः शरीरम् ॥ २६ ॥

ये मृत्युय एकदातु या नापू अतिलायाः ।

मुञ्चन्तु तस्मात् त्वां देवा अग्नेयैश्चानरादधि ॥ २७ ॥

अग्नेः शरीरमसि पारयिष्णु रक्षोहासि सपत्नहा ।

अथो अमीषुचातनः पुतुर्नाम भेषजम् ॥ २८ ॥

॥ ४ ॥ ( अथर्व १.१०१-४ )

अथर्वा ( आनुष्काः ) । विधे देवाः । ( १ वसवः, आदित्याः,

१-४ देवाः ) । त्रिष्टुप्, ३ आवरगर्भा विराड्गति ।

विधे देवा वसवो रक्षतेमं

उतावित्वा जागृत युयमसिन् ।

मेमं सनामिहृत वान्यनाभिः

मेमं प्रापत् पौरुषेयो वृधो यः ॥ १ ॥

ये वो देवाः पितरो ये च पुत्राः

सचेतसो मे भृणुतेदमुक्कम् ।

सर्वेभ्यो वृः परि दवाभ्येतं

स्वस्त्येनं जरसे बहाथ ॥ २ ॥

ये देवा दिवि ए ये पृथिव्यां

ये अन्तरिक्ष ओपधीषु पशुप्यप्स्वन्तः ।

ते कृणुत जरसामयुस्मै

शतमन्यान् परि कृणुक्तु मृत्यून् ॥ ३ ॥

येषां प्रयाजा उत वानुयाजा

हुतमागा अहुधादथ देवाः ।

येषां यः पञ्च प्रदिशो विभक्तः

तान् वो अस्मं सत्रसदः कृणोमि ॥ ४ ॥

॥ ५ ॥ ( अथर्व १.१५१-३ )

अथर्वा ( आनुष्काः ) शिरवम्, इन्द्राणी, विधे देवा ।

जगता, ४ अनुष्टुप्गर्भा वसुपदा त्रिष्टुप् ।

यदार्धधन दाक्षायणा हिरण्यं

शतानीकाय सुमनस्यमानाः ।

तत् ते यधाम्नायुषे यन्नेसु घलाय

दीर्घायुत्वार्य शतशारदाय ॥ १ ॥

नैनं रक्षांसि न पिंशाचाः संहन्ते

देवानामोजः प्रथमजं ह्युतत् ।

यो विमर्ति दाक्षायणं हिरण्यं

स जीवेषु कृणुते दीर्घमायुः ॥ २ ॥

अपां तेजो ज्योतिरोजो यलं न

घनस्पतीनामुत धीर्याणि ।

इन्द्र इवेन्द्रियाण्यधि धारयामो

असिन् तद् दक्षमाणो विभरुद्धिरण्यम् ॥ ३ ॥

समानां मासामृतमिष्या घृयं

संवत्सरस्य परसा पिपमि ।

इन्द्राग्नी विधे देवास्तेऽनु

मन्यन्तामहणीयमानाः ॥ ४ ॥

॥ ५ ॥ ( अथर्व ६.४११-३ )

महा । चन्द्रमाः, २ सरस्वती, ३ देवा ऋषयः । अनुष्टुप्,

१ श्रिक, ३ भिष्टुप् ।

ममसे चेतसे धिय आकृतय उत चित्तये ।

मृत्ये धृताय चक्षसे विधेम हविषा वयम् ॥ १ ॥

अपानाय व्यानाय प्राणाय भूरिधायसे ।

सरस्वत्या उरुयचे विधेम हविषा वयम् ॥ २ ॥

मा नो हासिपुर्कपयो दैव्या ये

तनुषा ये नस्तन्वस्तनुजाः ।

अमर्त्या मर्त्या अभि नः सचध्वं

आरुधच्च प्रतर जीवसे नः ॥ ३ ॥

॥ ७ ॥ ( अथर्व ० २११-८ )

अथर्वा । ( चन्द्रमा । ) अङ्गिगडः । अनुष्टुप्, १ विराट्  
प्रस्तावपङ्क्तिः ।

दीर्घायुत्वाय बृहते रणाय

अरिप्यन्तो द्रक्षमाणाः सद्यैव ।

मणिं विष्कन्धदूर्पणं जङ्गिडं विमृमो व्ययम् ॥ १ ॥

जङ्गिडो जम्माद् विशराद्

विष्कन्धादभिरोचनात् ।

मणिः सहस्रवीर्यः परि णः पातु विश्वतः ॥ २ ॥

अयं विष्कन्धं सहते ऽयं याचते अतिरिणः ।

अयं नो विश्वमेवजो जङ्गिगडः पातवर्हसः ॥ ३ ॥

देवैर्दत्तेन मणिना जङ्गिगडेन मयोभुवा ।

विष्कन्धं सर्वो रक्षांसि व्यायामे संहामहे ॥ ४ ॥

शणञ्च मा जङ्गिगडञ्च विष्कन्धादभि रक्षताम् ।

अरण्याद्वय आभूतः कृप्या अन्यो रक्षेभ्यः ॥ ५ ॥

कृत्वादूर्पित्यं मणिरथो अरतिदूर्पिः ।

अथो सहस्वान् जङ्गिगडः प्रण आयूणि तारियत् ६

॥ ८ ॥ ( अथर्व ० २११-८ )

मन्त्रा, मृगशिराश्च । इन्द्राग्नी, आयुष्यं, यक्षमाशनम् । त्रिष्टुप्,

४ शक्तीरगर्मा जगती, ५-६ अनुष्टुप्, ७ अङ्गिगडहतीगर्मा  
पथ्यापङ्क्तिः, ८ च्यवसाना पद्पदा बृहतीगर्मा जगती ।

मुञ्जामि त्या हविषा जीवनाय कं

अज्ञातयश्मादुत रजयश्मात् ।

मार्हिज्जग्राह यद्येतदेनं

तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम् ॥ १ ॥

यदि श्रितायुर्यदि वा परितो

यदि मूलोरन्तिकं नीत एव ।

तमा हरामि निश्चुतेरुपम्यात्

अस्पादमेनं शतदारदाय ॥ २ ॥

सहस्राक्षेण शतवीर्येण

शतायुषा हविषाहार्पमेनम् ।

इन्द्रो ययैनं शस्त्रो नयाति

अग्निं विश्वस्य दुरितस्य पारम् ॥ ३ ॥

शत जीव शस्त्रो वर्धमानः

शनं हैमन्तान् हतमुं वसन्तान् ।

शनं त इन्द्रो अग्निः संविता बृहस्पतिः

शतायुषा हविषाहार्पमेनम् ॥ ४ ॥

प्र विशतं प्राणापाना चन्द्राहार्पिव मजम् ।

व्युन्ये यन्तु मृत्यवो यानादुरितरान् हतम् ॥ ५ ॥

इहैव स्तं प्राणापानां मापं गातमिनो युधम् ।

शरीरमस्याङ्गानि जरते बहते पुनः ॥ ६ ॥

जरायै त्या परि व्रदामि जरायै नि धुवामि त्या ।

जरा त्वा मद्रा नैष्ट व्युन्ये यन्तु

मृत्यवो यानादुरितरान् हतम् ॥ ७ ॥

अग्निं त्या अग्निमार्हितं गामुक्षणमिय रज्या ।

यस्त्वा मृत्युर्प्ययं जायमानं सुपाशया ।

तं ते सत्यस्य हस्ताभ्यामुदमुञ्जद् बृहस्पतिः ॥ ८ ॥

॥ ९ ॥ ( अथर्व ० २११-९ )

उभश्रिताः । वनस्पतिः, यक्षमाशनम् । अनुष्टुप् १ विराट्

प्रस्तावपङ्क्तिः ।

दशवृक्ष मुञ्जेन रक्षतो प्राणा

अग्निं येन जग्राह पर्यन्तु ।

अथो एनं यनस्पते जीवानां लोकमुत्तय ॥ १ ॥

आणादुदगादयं जीवानां शानुमर्त्यगान् ।

अमृदं पृथार्णां रिता नृनां च अगवत्तमः ॥ २ ॥

अर्थीनिर्गर्भयादयनं धिं जीवपुत्र श्रगन् ।

ननं हंस्य निररुः मुदधर्मन् शीमर्यः ॥ ३ ॥

देवार्थं कुन्देनैविद्रन् प्रार्थानं इत ईरुः ।

नृनि दे निर्वै देवा अर्थितन् मुन्यन्ते ॥ ४ ॥

यश्चक्षुः स निर्धर्मः स एव निरर्थः ।

स एव दूर्य भेषजार्नि कृषन्ति ॥ ५ ॥

॥ १० ॥ ( अथर्व० ६।११०।१-३ )

अथवा । अग्निः । अष्टद्वयं, १ पशुः ।

प्रभो हि कमीड्यो अष्टद्वये  
सनाष्ट होता नव्यश्च सरित् ।

स्यां चाग्ने तन्यं पिप्रार्यस्य  
अस्मभ्यं च सौभगमा यजस्व  
ज्येष्ठज्यां जातो विचृतोर्यमस्य  
मूल्यवर्हणात् परं पाहेनम् ।

अत्येनं नेपद् दुरितानि विभ्रा  
दीर्घायुत्वाय शतशारदाय  
व्याघ्रेऽह्वजनिष्ट धीरो  
नक्षत्रजा जार्यमानः सुवीरः ।

स मा धधीत् पितरं वधमानो  
मा मातरं ॥ मिनीजनित्रीम्

॥ ११ ॥ ( अथर्व० ६।११०।१-३ )

अग्निराः प्रचेताः । १ अग्नि, २ विधे देवाः, ३ सुवन्वा ।  
अष्टद्वयं ।

अग्निः प्रातःसवने पात्वस्मान्  
वैश्वानरो विंध्यकृद् विंध्यवर्धभूः ।

स नः पायको द्रविणे वधातु  
आयुष्मन्तः सहर्मक्षाः स्याम  
विंध्यं देवा मरुत इन्द्रो अस्मान्  
अस्मिन् द्वितीये सर्वने न जंहुः ।

आयुष्मन्तः प्रियमेषां वर्दन्तो  
पयं देवानो सुमतौ स्याम  
इदं तृतीयं सर्वनं कवीनां  
श्रुतेन ये चमसमैरयन्त ।

ते सौधन्यनाः स्वराजानशानाः  
स्विति नो अग्नि पत्यो नयन्तु

॥ १२ ॥ ( अथर्व० ६।११०।१-३ )

अथवा । १ अग्निः, सूर्यः, बृहस्पतिः, २ आतवेदः द्रविणः,  
३ इन्द्रः, ४-५ चावापृथिवी, विधे देवाः, मरुतः, आतः,  
६ अश्विनो, ७ इन्द्रः । अष्टद्वयं, १ अनुष्टुप्, ४ पराबृहती  
निकृपमाहवर्णः ।

पार्थिवस्य रसे देवा भगस्य तन्यो घृतं ।

॥ १ ॥ आयुष्यमस्मा अग्निः सूर्यो

घृतं वा धाद् बृहस्पतिः

॥ १ ॥

भार्यस्मै धेहि जातयेदः

प्रजां त्वष्टरधिनिधेष्टस्मै ।

॥ २ ॥ रायस्पोर्यं सवितरा सुवासी

शतं जीवाति शारदस्तयायम्

॥ २ ॥

आशीर्ण ऊर्जमुत सौप्रजास्त्यं

दक्षं धत्तं द्रविणं सचेतसौ ।

॥ ३ ॥ जयं क्षेत्राणि सहसायमिन्द्र

कृष्णानो अन्यानधरास्तुपदान्

॥ ३ ॥

इन्द्रेण वृत्तो वर्धणेन शिष्टो

मरुद्भिर्ह्रस्वः प्रहितो न आगन् ।

एष धौ चावापृथिवी उपस्थे

मा क्षुधन्मा तपत्

॥ ४ ॥

ऊर्जमस्मा ऊर्जस्वती धत्तं

पर्यो अस्मै पयस्वती धत्तम् ।

॥ १ ॥ ऊर्जमस्मै चावापृथिवी अंधातां

विंध्यं देवा मरुत ऊर्जमापः

॥ ५ ॥

शिवामिष्टे हृदयं तर्पयामि

अनमीवो मौर्विपीष्ठाः सुवर्चीः ।

॥ २ ॥ सवासिनौ पिबतां मन्थमेतं

अश्विनौ रूपं परिधाय मायाम्

॥ ६ ॥

इन्द्र एतां संसृजे विद्धो अग्रं

ऊर्जां स्वधामजरां सा तं एषा ।

॥ ३ ॥ तथा त्वं जीव शरदः सुवर्चा

मा त आ क्षुधोद् भिषजस्ते अक्रन्

॥ ७ ॥

( ७८५ )

॥ १३ ॥ ( अथर्व० ५।३०।१-१७ )

उन्मोचनः ( आध्यात्मः ) । आयुधम् । अनुष्ठम् ।

१ पृष्ठापक्षि, १ भुरिद, १२ चतुष्पदा विराट्चपती,  
१४ विराट्चरवारपक्षिः, १७ श्ववसाना घटपदा अगती ।

आयतस्त आयतः परायतस्त आयतः ।

इहैव मव मा नु गा मा पूर्वाननु गाः

पितृनसुं यधामि ते इदम् ॥ १ ॥

यत् त्वामिच्छेः पुरुषः स्वां यदरणो जनः ।

उन्मोचनप्रमोचने उमे याचा वंदामि ते ॥ २ ॥

यद् बुद्धोर्हि य शेषिरे स्त्रियं पुंस अचिन्त्या ।

उन्मोचनप्रमोचने उमे याचा वंदामि ते ॥ ३ ॥

यदेतसो मातृकृता ऋषेः पितृकृताश्च यत् ।

उन्मोचनप्रमोचने उमे याचा वंदामि ते ॥ ४ ॥

यत् ते माता यत् ते पिता जामिधार्ता च सजैतः ।

प्रत्यक् सैवस्व भेषजं जरदंष्टि कृणोमि त्वा ॥ ५ ॥

इहैधि पुरुष सर्वेण मनसा सह ।

दुतौ यमस्य मातुं गा अर्थि जीयपुरा इहि ॥ ६ ॥

अनुव्रतः पुनरेहि विद्वानुदयनं पृथः ।

आरोहणमाक्रमणं जीवतो जीवतोऽयनम् ॥ ७ ॥

मा धिमेने मरिष्यसि जरदंष्टि कृणोमि त्वा ।

निरधोचमहं यस्मिन् हेम्यो अङ्गज्वरं तथ ॥ ८ ॥

अङ्गमेदो अङ्गज्वरो यथ ते हृदयामयः ।

यश्मः श्वेन इव प्रार्पतद् याचा सादः परस्तराम् ९

ऋषी बोधप्रतीयोधार्थं - स्वप्नो यश्च जार्थविः ।

तौ ते प्राणस्यं गीतारुं दिवा नक्तं च जायताम् १०

अयमग्निर्गमयं इह स्यं उदैतु ते ।

उदेहि मृत्योर्गम्भीरात् कृष्णाश्वित् तमसस्पर्श ११

नमो यमाय नमो अस्तु मृत्यवे

नमः पितृभ्य उत ये नरंन्ति ।

उत् पारंणस्य यो वेदु तमग्नि

पुरो दधेऽस्मा अरिष्टतानये ॥ १२ ॥

पेतुं प्राणं पेतु मन पेतु चक्षुरयो बलम् ।

शरीरमस्य सं विदां तत् पृष्ठपां प्रति तिष्ठतु १३

प्राणेनान्ने चक्षुषा सं संज्ञेमं

सर्मारय तन्वां सं घलेन ।

वेत्यामृतस्य मा नु गा - न्मा नु भूमिगृहो भुयत् १४

मा ते प्राण उप दस - न्मो अणानोऽपि घायि ते ।

सर्वस्वाधिपतिर्मृत्यो - हृदयच्छतु रुदिमभिः ॥ १५ ॥

इयमन्वर्षदति जिह्वा यद्वा पनिष्पदा ।

त्वया यस्मं निरधोचं शतं रोषीश्च तुमनः ॥ १६ ॥

अयं लोकः प्रियतमो देवानामपराजितः ।

यस्मै त्वमिह मृत्यवे दिष्टः पुरुष जग्निपे

न च त्वानुं दयामसि मा पुरा जुरसौ मृषाः १७

॥ १४ ॥ ( अथर्व० १९।६४।१-४ )

अथ । अग्निः ( दीपंश्वरम् ) । अनुष्ठम् ।

अग्ने समिधमाहर्षं ब्रूते जातवेदसे ।

स मे भद्रां च मेधां च जातवेदाः प्र यच्छतु ॥ १ ॥

इमेने त्वा जातवेदः समिधा यधयामसि ।

तथा त्वमस्मान् यधय प्रजया च घनेन च ॥ २ ॥

यदग्ने याति कानि चि - दा ते दारुणि क्ष्मसि ।

सर्वं तदस्तु मे शिरं तज्जुषस्व यधिष्ठय ॥ ३ ॥

पृतास्ते अग्ने समिध - स्यमिदः समिद्धं ।

आयूरस्मासुं घेद्य - मृत्यममां चार्थाय ॥ ४ ॥

॥ १५ ॥ ( अथर्व० १९।६३।१-८ )

अथा । सूर्यः ( दीर्घानुवम् ) । अजायसा गायत्री ।

पश्येम शरदः शतम् ॥ १ ॥

जीवेम शरदः शतम् ॥ २ ॥

बुध्येम शरदः शतम् ॥ ३ ॥

रोहेम शरदः शतम् ॥ ४ ॥

पूर्वेम शरदः शतम् ॥ ५ ॥

अवेम शरदः शतम् ॥ ६ ॥

भूयेम शरदः शतम् ॥ ७ ॥

भूर्यसीः शरदः शतम् ॥ ८ ॥

॥ १६ ॥ ( अथर्व० ५।१८।१-१४ )

अथर्वा । त्रिदत्त, अग्न्यादयः ( दीर्घायुः ) । त्रिष्टुप् ,  
६ पञ्चपदातिशयोक्तीः ७, ९, १०, १२ कङ्कमलानुष्टुप् ।

१३ पुरलणिकः ।

नयं प्राणान् नयमिः सं मिमीते  
दीर्घायुत्वाय शतशोरदाय ।

हरिते श्रीणि रजते श्रीणि

अयसि श्रीणि तपसाविष्टितानि

अग्निः सूर्यश्चन्द्रमा भूमिरापो

चौरन्तरिक्षं प्रविशो विशश्च ।

आर्तया ऋतुभिः संधिदाना

अनेन मा त्रिवृता पारयन्तु

नयः पोषास्त्रिवृतिं श्रयन्तां

अनक्तं पूषा पर्यसा घृतेन ।

अन्नस्य भूमा पुरुषस्य भूमा

भूमा पशूनां त इह श्रयन्ताम्

इममादित्या वसुना समुक्षत

इममग्ने वर्षय वावृधानः ।

इममिन्द्र सं सृज दीर्घेण

अस्मिन् त्रिवृच्छ्रयतां पोषयिष्णु

भूमिर्वा पातु हरितेन विश्वभृत्

अग्निः पिपत्स्वयंसा सजोषोः ।

धीराङ्गिष्टे अर्जुनं संविदानं

दक्षं दधातु सुमनस्यमानम्

श्रेया जातं जन्मनेदं हिरण्यं

अग्नेरेकं प्रियतमं बभूव

सोमस्यैकं हिसितस्य परापतत् ।

अपामेकं वेधसां रेत आहुः

तत् ते हिरण्यं त्रिवृदस्त्वायुषे

त्र्यायुषं जमदग्नेः कृदप्यस्य त्र्यायुषम् ।

श्रेयामृतस्य चक्षुणं श्रीण्यायूषि तैऽकरम्

अयः सुपूर्णास्त्रिवृता यदायन्

एकाक्षरमग्निसंभूयं श्रमाः ।

प्रत्योदन् मृत्युममूर्तेन मातः

मन्तर्वधाना दुरितानि विभ्यां

॥ ८ ॥

द्विघस्त्वा पातु हरितं मर्षात् त्वा पात्वर्जुनम् ।

भूम्या अयस्मयं पातु प्रागाद् देवपुरा अयम् ९

इमास्तिस्रो देवपुरा—स्तास्त्या रक्षन्तु सुपतः ।

तास्यं विश्वं यत्नं—स्युस्तेरो ठिपतां मय ॥ १० ॥

पुरं देवानाममृतं हिरण्यं

य अविधे प्रथमो देवा अग्ने ।

तस्मै नमो दहा प्राचीः कृणोमि

अनु मन्यतां त्रिवृदायधे मे

॥ ११ ॥

आ त्वा वृत्तवर्षमा पूषा बृहस्पतिः ।

अर्हर्जतस्य यन्नाम तेन त्वार्तिं वृतामसि ॥ १२ ॥

ऋतुभिर्घृतवैरायुषे यवसे त्वा ।

संवत्सरस्य तेजस्ता तेन संहतु कृणमसि ॥ १३ ॥

घृतादुल्लुप्तं मधुना समेकं

भूमिर्हृदमच्युतं पारयिष्णु ।

भिन्दत् सुपत्नानधरांश्च कृण्वत्

आ मा रोह महते सौमगाय

॥ १४ ॥

॥ १७ ॥ ( अथर्व० ७।१।१ )

महा । आयुः । अनुष्टुप् ।

उपं प्रियं पतिप्रतं युवानमाहुतीवृधम् ।

अगन्म विश्रतो नमो दीर्घमायुः कृणोतु मे ॥ १ ॥

॥ १८ ॥ ( अथर्व ७।३।१ )

महा । मरुतः, पूषा, बृहस्पतिः, अग्निः, ( दीर्घायुः ) ।

पञ्चापङ्क्तिः ।

स मा सिञ्चन्तु मरुतः सं पूषा सं बृहस्पतिः ।

सं मायमग्निः सिञ्चतु प्रजया च धनेन च

दीर्घमायुः कृणोतु मे

॥ २ ॥

( ८३० )

॥ १९ ॥ ( अथर्व० ७.५३।१-७ )

ब्रह्मा । आयुः, वृहस्पतिः अश्विनौ च । निष्पृष्ट, ३ सुरित  
४ उत्थितमर्माधी पञ्चिकाः, ५-७ अनुष्टुप् ।

अमुत्रभूयादधि यद् यमस्य

वृहस्पतेरभिज्ञस्तेरमुञ्चः ।

प्रत्याहतामश्विनो मृत्युमस्मद्

देवानामग्ने मिपजा शर्चीभिः

सं क्रामतं मा जंहीतं शरीरं

प्राणापानौ ते सुयुजाधिह स्ताम् ।

शतं जीव शारदो वर्धमानो

अग्निष्टे गोपा अधिपा घर्षिष्ठः

आयुर्यत् ते अतिहितं पराचैः

अपानः प्राणः पुनरा तार्थिताम् ।

अग्निष्टदाहानिर्ऋतेरुपस्थात्

तदात्मनि पुनरा यैश्यामि ते

मेमं प्राणो ह्यसिन्मोऽब्रह्म परो गात् ।

सुतयिष्ये एनं परि ददामि

त एनं स्वस्ति जरते वहन्तु

प्र विंशतं प्राणापाना—धनङ्गाह्यधि यजम् ।

अये जरिष्णः शैश्वधि—ररिष्ट इह वर्धताम् ॥ ५ ॥

आ ते प्राणं सुवामसि परा यस्मै सुवामि ते ।

आयुर्नो विभक्तो दध—द्वयमग्निर्वरेण्यः ॥ ६ ॥

उद्वयं तमसस्पति रोहन्तो नाकमुत्तमम् ।

देव देवरा सूर्य—मगम् ज्योतिरुत्तमम् ॥ ७ ॥

॥ २० ॥ ( अथर्व० ६।७६।१-४ )

कवन्धः । सान्तपनाभिः ( आयुष्यम् ) । अनुष्टुप्,  
३ कटुम्मती ।

य एनं परिपीदन्ति समादधति चक्षसे ।

संप्रेक्षो अग्निजिह्वामि—रदंतु हृदयादधि ॥ १ ॥

अग्नेः सान्तपनस्याह—मार्युषे यदमा रमे ।

अज्ञातिर्यस्य पदयति धूममुचन्तमास्यत ॥ २ ॥

यो अस्य समिधं वेदं क्षत्रियेण समाहिताम् ।

नाभिहारे पदं नि दधाति स मृत्यये ॥ ३ ॥

नैनं प्रन्ति पर्यायिणो न सुत्रां अर्धं गच्छति ।

अग्नेर्यः क्षत्रियो विद्वान् नाम गृह्णात्यायुषे ॥ ४ ॥

॥ २१ ॥ ( अथर्व० १९।६३।१ )

ब्रह्मा । ब्रह्मणस्पतिः ( आयुर्वर्धनम् ) । विराड्वरिष्टा वृहती ।

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान् यजेन योधय ।

आयुः प्राण प्रजां पशुत् कीर्ति यजमानं च वर्धय ॥ १ ॥

॥ २२ ॥ ( अथर्व० १९।६३।१ )

ब्रह्मा । ब्रह्मणस्पतिः ( सर्वमायुः ) । विराड्वरिष्टा वृहती ।

तनूस्त्वान्मा मे सहे वृतः सर्वमायुर्दीप्य ।

स्योनं मे सीद पुरुः पूणस्व पर्यमानः स्वर्गे ॥ २ ॥

॥ २३ ॥ ( अथर्व० १२।७०।१ )

ब्रह्मा । इन्द्रपूर्वाध्वः ( सर्वमायुः ) गायत्री ।

इन्द्र जीव सूर्य जीव देवा जीवा जीव्यासमहम् ।

सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥ १ ॥

अरिष्टानि अज्ञान ।

॥ २४ ॥ ( अथर्व० १९।६०।१-२ )

ब्रह्मा । वाक्, अज्ञानि च । १ पथ्यावृहती, २ कटुम्मती  
पुरवणिक ।

वाङ् मे आसन्नसोः प्राणश्चक्षुराणो ओष्ठं कर्णयोः ।

अपलिताः केदा अशोणा दन्ता धृद् द्यौर्धर्मम् ॥ १ ॥

ऊर्वोरोजो जङ्घयोर्जवः पादयोः ।

प्रतिष्ठा अरिष्टानि मे सर्वात्मानिष्टुष्टः ॥ २ ॥

सुमङ्गलो दन्तो ।

॥ २५ ॥ ( अथर्व० ६।१४०।१-२ )

अथर्वा । ब्रह्मणस्पतिः, दन्ताः । ( अनुष्टुप् ? ) १ उरोत्तरां,  
२ उपरिष्टाज्ज्योतिष्मती निष्पृष्ट, ३ आस्तारपञ्चिकाः ।

यौ व्याघ्रावर्चकौ जिघत्सतः पितरं मातरं च ।

यौ दन्तौ ब्रह्मणस्पते शिवौ कृणु जातयेदः ॥ १ ॥

द्वीहिमत्तं यवमत्तमथो मापमथो तिलम् ।

एष वा भागो निहितो रत्नधेयाय

दन्तौ मा हिंसिष्ट पितरं मातरं च

॥ २ ॥

उपहतौ सयुजौ स्थोनौ दन्तौ सुमङ्गलौ ।

अन्यत्र धां घोर तन्मः परैतु

दन्तौ मा हिंसिष्ट पितरं मातरं च

॥ ३ ॥

यक्षम-नाशनम् ।

॥ २६ ॥ ( अ० १०१६३।१-६ )

विद्वद्वा काश्यपः । यक्षमनाशनम् । अनुष्टुप् ।

अक्षीभ्यां ते नालिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुवकादधि ।

यक्षमं शीर्षण्यै मस्तिष्कात्

जिह्वाया वि घृहामि ते

॥ १ ॥

प्रीवाभ्यस्त उणिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनुक्यात् ।

यक्षमं दोषण्यमंसाभ्यां

याहभ्यां वि घृहामि ते

॥ २ ॥

आन्नेभ्यन्ते गुदाभ्यो यनिष्ठोर्द्धयादधि ।

यक्षमं मत्तस्नाभ्यां यक्षनः

प्लाशिभ्यो वि घृहामि ते

॥ ३ ॥

ऊरुभ्यां ते अष्टीयद्रपां पाणिभ्यां प्रपदाभ्याम् ।

यक्षमं श्रोणिभ्यां भार्गवाद्

भंसलो वि घृहामि ते

॥ ४ ॥

मेहनाशनकरणा ह्योर्मभ्यस्ते नृचेभ्यः ।

यक्षमं गर्भस्मादात्मनस्तमिदं वि घृहामि ते ॥५॥

अर्धादङ्गाद्योद्योत्योद्यो जानं पर्वणिपर्वणि ।

यक्षमं सपैस्मादात्मनस्तमिदं वि घृहामि ते ॥६॥

॥ २७ ॥ ( अथर्व० ३।२१।१-२ )

अङ्गा । पापमहाः १ अग्निः, २ शक्रः, ३ पञ्चवा, ४ चावा-  
पुद्री, ५ रथः, अग्निः, इन्द्रा, ७ देवा, ८-१० आया,  
११ पञ्च ( यक्षमनाशनम् ) । अनुष्टुप्, ४ शुरुः,  
५ विराट् प्राक् एतन्वि ।

पि देवा अग्नापृत्तन् वि स्वर्गं अर्धात्वा ।

एषुहं सर्वेण पाप्मना वि यक्षमेण समायुषा ॥१॥

व्यात्यां पर्वमानो वि शक्रः पापकृत्या ।

व्युहं सर्वेण पाप्मना वि यक्षमेण समायुषा ॥२॥

वि आभ्याः पशव आरुण्यै व्यां प्रस्तृष्ण्यासरन् ।

व्युहं सर्वेण पाप्मना वि यक्षमेण समायुषा ॥३॥

वीक्षुमे चावापृथिवी इतो वि पन्थानो दिशदिशम् ।

व्युहं सर्वेण पाप्मना वि यक्षमेण समायुषा ॥४॥

त्वष्टा दुहित्रे बहुतुं युनक्ति

इतीदं विश्वं भुवन् वि याति ।

व्युहं सर्वेण पाप्मना वि यक्षमेण समायुषा ॥५॥

अग्निः प्राणान्स दधाति चन्द्रः प्राणेन संहितः ।

व्युहं सर्वेण पाप्मना वि यक्षमेण समायुषा ॥ ६ ॥

प्राणेन विश्वतोवीर्यं देवाः सूर्यं समैरयन् ।

व्युहं सर्वेण पाप्मना वि यक्षमेण समायुषा ॥७॥

आयुष्मतामायुऋतौ प्राणेन जीव मा मृधाः ।

व्युहं सर्वेण पाप्मना वि यक्षमेण समायुषा ॥८॥

प्राणेन प्राणतां प्राणे हव मध मा मृधाः ।

व्युहं सर्वेण पाप्मना वि यक्षमेण समायुषा ॥९॥

उदायुषा समायुषो दोषधीनां रसेन ।

व्युहं सर्वेण पाप्मना वि यक्षमेण समायुषा ॥१०॥

आ पुर्जन्यस्य वृष्टयो रस्यामामृता वयम् ।

व्युहं सर्वेण पाप्मना वि यक्षमेण समायुषा ॥११॥

॥ २८ ॥ ( अथर्व० ६।२०।१-२ )

युवात्रिणः । यक्षमनाशनम् । १ अगती, २ ककुम्भतीपश्ता-  
रवणिकि, ३ रातः पणिकि ।

अग्नेरिवास्य दहत पति शुष्मिणं

उतेयं मत्तो विलपप्रपायति ।

अन्यमस्मदिच्छतु कं चिदमृतः

तपुयंघाय नमो अस्तु त्वमने

॥ १ ॥

नमो अत्राय नमो अस्तु त्वमने

नमो रात्रे चरेणाय त्विरीमने ।

नमो दिवे नमः पृथिव्यै नम ओषधीभ्यः ॥ २ ॥

( ८६८ )



अयं यो अभिशोचयिष्युः

विभ्वा रूपाणि हरिता कृणोषि ।

तस्मै तेऽरुणाय यध्वे नमः

कृणोमि वन्याय तस्मै

॥ ३ ॥

॥ २९ ॥ ( अथर्व० ६।८।१-३ )

अथर्वा । वनस्पतिः ( यक्षनाशनम् ) । अनुष्टुप् ।

घरणो वारयाता अयं देवो वनस्पतिः ।

यश्मो यो अस्मिन्नाविष्टुस्तु देवा अवीचरन् ॥ १ ॥

इन्द्रस्य चर्चसा वयं मित्रस्य चरुणस्य च ।

देवानां सर्वेषां वाचा यस्मै ते वारयामहे ॥ २ ॥

यया वृत्र इमा आपस्तस्तस्मै विश्वधा युतीः ।

एवा ते अग्निना यस्मै धैवानरेण वारये ॥ ३ ॥

॥ ३० ॥ ( अथर्व० ६।१२०।१-३ )

मृगशिराः । यक्षनाशनम्, वनस्पतिः । अनुष्टुप्,

३ ऋषिज्ञाना यष्टुदा जगती ।

विद्वधस्य यलासस्य लोहितस्य वनस्पते ।

विसर्त्यकस्योपध्रे मोर्च्छपः पिशितं चन ॥ १ ॥

यौ ते यलासु तिष्ठतः कर्क्षे मुष्कावपधितौ ।

वेदाहं तस्य भेषजं क्षीपुर्दुग्धमिचक्षणम् ॥ २ ॥

यो बह्व्यो यः कर्ण्यो यो अक्ष्योर्विसर्त्यकः ।

वि वृहामो विसर्त्यकं विद्वधं हृदयामयम् ।

पण तमर्वातं यस्मै-मध्वराज्ञं सुवामसि ॥ ३ ॥

॥ ३१ ॥ ( अथर्व० १।१२।१-३ )

मृगशिराः । यक्षनाशनम् । जगती ( विष्टुः ? ), ४ अनुष्टुप् ।

जरापुजः प्रथम उखियो वृवा

घातध्रजा स्तनयशेति वृष्ट्या ।

स नो मृडाति तन्यः ऋजुगो रुजन्

य एकमोज्ञेया विचक्रमे ॥ १ ॥

अङ्गअङ्गे शोचिषा शिश्रियाणं

नमस्पन्तस्तथा हविषा विधेम ।

अङ्गान्तस्मङ्गान् हविषा विधेम

यो अमर्भीत पयोस्या प्रभीता

॥ २ ॥

मुञ्च शीपिन्त्या उत कास एनं

परुष्पहराविवेशा यो अंस्य ।

यो अध्रजा वातजा यध्व शुभो

वनस्पतीन्तचत्तां पर्वताश्च

॥ ३ ॥

शं मे परस्मै गात्राय शमस्त्ववराय मे ।

शं मे चतुभ्यो अङ्गैभ्यः शमस्तु तन्वेऽङ्ग मम ॥ ४ ॥

॥ ३२ ॥ ( अथर्व० १।७।१-७ )

मृगशिराः । १-३ हरिणः, ४ तारके, ५ आपः,

६-७ यक्षनाशनम् । अनुष्टुप्, ६ भुरिष्ट ।

हरिणस्य रघुप्यदो-ऽर्थि शीपेण भेषजम् ।

स क्षेत्रियं विषाणया विपचीनमनीनशत् ॥ १ ॥

अनु त्वा हरिणो वृषा पृच्छिस्तुर्भिरक्रमीत् ।

विषाणे वि प्यं गुपितं यदस्य क्षेत्रियं हृदि ॥ २ ॥

अदो यद्वरोचते चतुष्पक्षमिव छुदिः ।

तेनां ते सर्वे क्षेत्रिय-मङ्गैभ्यो नाशयामसि ॥ ३ ॥

अमू ये द्विवि सुमर्गे विचर्ता नाम तारके ।

वि क्षेत्रियस्य मुञ्चता-मधमं पाशानुसुमम् ॥ ४ ॥

आप इद् वा उं भेषजी-रापो अमीवृचातनीः ।

आपो विभ्वस्य भेषजीः

तास्वा मुञ्चन्तु क्षेत्रियात् ॥ ५ ॥

यदासुते क्रियमाणायाः क्षेत्रियं त्या व्यानरो ।

वेदाहं तस्य भेषजं क्षेत्रियं नाशयामि त्वत् ॥ ६ ॥

अथवामे नक्षत्राणा-मपयाम उपमासुत ।

अपास्मन् सर्वे दुर्मत-मप क्षेत्रियमुञ्चन्तु ॥ ७ ॥

॥ ३३ ॥ ( अथर्व० ६।९।१-३ )

मृगशिराः । यक्षनाशनम्, ३ आपः । अनुष्टुप् ।

इमं यवमप्रायोगैः पंडयोगैर्भिरचरुषुः ।

तेनां ते तन्योऽङ्ग रपो-ऽपाचीनमपं व्यये ॥ १ ॥

न्यङ्ग घातौ घानि न्यक् तपति सूर्यः ।

नीचीनमप्या उहे न्यङ्ग भवतु ने रपोः ॥ २ ॥

आप इद् वा उं भेषजी-रापो अमीवृचातनीः ।

आपो विभ्वस्य भेषजी-स्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम् ३

( ८८९ )

॥ ३४ ॥ (अथर्व० १९।१८।१-३)

अथर्वा । गुल्गुलः (यक्षमनाशनम्) । अनुष्टुप् । २ चतुष्पदा  
चण्डिका, ३ एकावसाना प्राजापलानुष्टुप् ।

न ते यक्षमा अरुन्धते नैनं शपथो अदनुते ।  
यं भेषजस्य गुल्गुलोः सुरभिर्गन्धो अंशुते ॥ १ ॥  
विष्वञ्जस्तस्माद् यक्षमा मुगा अर्वा इवेरते ।  
यद् गुल्गुलु सैन्धवं यद् वाप्यासि समुद्रियम् २  
उभयोरग्रं नामा—स्मा अरिष्टतांतये ॥ ३ ॥

॥ ३५ ॥ (अथर्व० १०।१६।६-१०)

यक्षमनाशनः । यक्षमनाशनम् । शिष्टुप् । १० अनुष्टुप् ।  
मुञ्जामि त्वा हविषा जीवनाय कं  
अशतयक्षमादुत राजयक्षमात् ।  
प्राहिर्जप्राह यद्येतदेनं  
तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुकमेनम् । ॥ ६ ॥  
यदि क्षितायुर्दि वा परेतो  
यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव ।  
तमा हवामि निर्धृतेरुपस्थात्  
अस्याशमेने शतशारदाय ॥ ७ ॥

सदश्राक्षेण शतधीर्वेण  
शतायुषा हविषाहोपमेनम् ।  
इन्द्रो यथैनं शरदो नयाति  
अति विभ्रंय दुरितस्य पारम् ॥ ८ ॥  
शतं जीय शरदो धर्ममानः  
शतं दैमन्तान् छनमु यमन्तान् ।  
शतं तु इन्द्रो अग्निः संविता वृहस्पतिः  
शतायुषा हविषाहोपमेनम् ॥ ९ ॥  
आहोपमविदं स्या पुनरागाः पुनर्णयः ।  
सर्वाह सपे ते चक्षुः सर्वमायुध तेऽप्यिदम् ॥ १० ॥

॥ ३६ ॥ (अथर्व० १०।१६।१३-१३)

विशालः । यक्षमनाशनम् । अनुष्टुप् ।  
अश्विभ्यां मे नातिवाभ्यां कर्णोभ्यां सुसुक्तादधि ।  
यश्च शोषेयं मग्निर्वात्  
शिष्टाया वि यदामि ते ॥ १७ ॥

श्रीवाभ्यस्त उणिहोभ्यः कीकसाभ्यो अनुक्यात् ।  
यश्च दोषण्यं मंसाभ्यां  
बाहुभ्यां वि वृहामि ते ॥ १८ ॥  
हृदयात् ते परि क्लोहो हलीक्ष्णात् पार्श्वोभ्याम् ।  
यश्च मत्तस्त्राभ्यां प्लीहो यक्नस्ते वि वृहामसि १९  
आन्त्रोभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठोदरादधि ।  
यश्च कृक्षिभ्यां प्लाशे—नोभ्यां वि वृहामि ते ॥ २० ॥  
ऊरुभ्यां ते अश्रिवद्भ्यां पार्श्वोभ्यां प्रपदाभ्याम् ।  
यश्च मस्यं श्रोणिभ्यां  
भासदं मंसो वि वृहामि ते ॥ २१ ॥  
अश्विभ्यस्ते मज्जभ्यः स्नावभ्यो धूमनिभ्यः ।  
यश्च पाणिभ्यामङ्गुलिभ्यो  
नखेभ्यो वि वृहामि ते ॥ २२ ॥  
अङ्गेअङ्गे लोसिलोमि यस्ते पर्वणिपर्वणि ।  
यश्च त्वचस्यं ते ययं  
कदयपस्य धीवर्हेण विष्वञ्जं वि वृहामसि ॥ २३ ॥  
॥ ३७ ॥ (अथर्व० ११।१।१-५५)

ययः । अमिः सन्त्रोकाः २१-३३ मृगः (यक्षमनाशन-  
नम्) । शिष्टुप् । २, ५, १२-२०, ३४-३६, ३८-४१, ४३, ५१,  
५४ अनुष्टुप् (१६ ककुम्भती परावृहती, १८ मिचुत, ४०  
पुरस्ताद्वृहती) ; ३ आस्तारपञ्चिक, ६ भुरिगाधी पञ्चिकः,  
७, ४५ जगती, ८, ४८-४९ भुगिग, ९ अनुष्टुप् नामा विपरीत-  
पादलक्ष्मा पञ्चिकः ३७ पुरस्ताद्वृहती ; ४२ त्रिपञ्चिका  
भुरिगाधी गायत्री ; ४४ एकाङ्क द्विपञ्चिका आची वृहती ; ४६ एका-  
द्विपञ्चिका शिष्टुप् ; ४७ पञ्चपदा भार्गवैराजगमी जगती ;  
५० उपरिष्ठाद्विष्टा वृहती, ५२ पुरस्ताद्विष्टा वृहती ;  
५५ वृहती गमी ।

नहमा रोह न ते अत्र श्लोके  
इदं सीमं मागधेयं तु पति ।  
यो गोषु यश्चः पुरेयेषु यश्चः  
तेन त्वं शापमधराह परेदि ॥ १ ॥  
अपञ्चमनुताभ्यां कृष्णानुक्तेण य ।  
यश्च य सत्यं तेनेनो मयं य निरजामसि ॥ २ ॥

निरितो मृत्युं निर्मृतिं निररातिमजामसि ।

यो नो द्वेष्टि तमद्वयमे

अकृत्यायमुं द्विप्मस्तमुं ते ॥ सुवामसि ॥ ३ ॥

यद्यग्निः क्रुष्याद् यदि वा व्याघ्र

इमं गोष्ठं प्रविवेशान्योकाः ।

तं मायाज्यं कृत्वा प्र हिणोमि

दुरं स गच्छन्वत्सुपदोऽप्यग्निं ॥ ४ ॥

यत् त्वा क्रुद्धाः प्रचक्षुः-मन्युना पुण्ये मृते ।

सुकल्पमग्ने तत् त्वया पुनस्त्वोर्दीपयामसि ॥ ५ ॥

पुनस्त्वोर्दीपयामसि ॥ ५ ॥

पुनर्ब्रह्मा वसुनीतिरग्ने ।

पुनस्त्वा प्रक्षणस्पतिराधाद्

दीर्घायुत्थार्य शतशारदाय

यो अग्निः क्रुष्यात् प्रविवेशो नो गृहं

इमं पश्यन्नितरं जातवैदसम् ।

तं हरामि पितृव्याय दूरं

स धर्ममिन्धां परमे सुख्ये

क्रुष्यादमग्निं प्र हिणोमि दुरं

यमराक्षो गच्छतु रिपवाहः ।

इहायमितरो जातवैदा

देवो देवेभ्यो हव्यं बहव प्रजानन्

क्रुष्यादमग्निमिपितो हरामि

जनान् दहन्तं यज्ञेन मृत्युम् ।

नि तं शोस्मि गार्हपत्येन विद्वान्

पितृणां लोकेऽपि भागो अस्तु

क्रुष्यादमग्निं शशमानमुपय्यं

॥ हिणोमि पृथिविः पितृयार्णः ।

मा देवयानैः पुनरा गा अत्र

पर्वधि पितृपुं जागृदि त्वम्

समिन्धने संकसुके स्वस्त्ये

शुद्धा भवन्तः शुचयः पायकाः ।

जहाति विप्रमत्येनं पति

समिद्धो अग्निः सुपुनां पुनाति ॥ ११ ॥

देवो अग्निः संकसुको द्विवस्पृष्टान्यारहत् ।

मुच्यमानो निरेणसो-ऽमोर्गस्मां अरास्त्याः ॥ १२ ॥

अस्मिन् वयं संकसुके अग्नौ रिपार्णि मृज्महे ।

अमूम यमियाः शुद्धाः प्र ण आयुषि तारिपत् ॥ १३ ॥

संकसुको विकसुको निर्धुयो यज्ञं निस्वरः ।

ते ते यमं सर्वेदसो दूराद् दुरमनीनशन् ॥ १४ ॥

यो नो अर्धेषु वारेषु यो नो गोर्ध्वजाविषु ।

क्रुष्याद् निर्णदाममि यो अग्निर्जनयोपनः ॥ १५ ॥

अन्येभ्यस्त्वा पुर्वेभ्यो गोभ्यो अर्धेभ्यस्त्वा ।

निः क्रुष्याद् सुदामसि यो अग्निर्जीविनयोपनः ॥ १६ ॥

यस्मिन् देवा अमृजन् यस्मिन् मनुष्या उत ।

तस्मिन् वृत्स्तावो मृदा त्वमग्ने दिवं रुह ॥ १७ ॥

समिद्धो अग्न आहुत स नो माम्यपनमीः ।

अत्रैव दीदिहि यवि ज्योक् च सूर्ये हरो ॥ १८ ॥

मीने मृद्द्वं नडे मृद्द्वं

अग्नौ संकसुके च यत् ।

अयो अयां शुमार्या जीर्णक्तिमुपग्रहे ॥ १९ ॥

सीसे मर्ले सावयित्या शीर्णक्तिमुपग्रहे ।

अवगमसिन्ध्यां मृदा शुद्धा भवत यमियाः ॥ २० ॥

परं मृत्यो अनु परेहि पण्यां

यस्तं एष इतरो देवयानात् ।

चक्षुष्मते शृणुने तं ब्रवीमि

इदमे वीरा यद्वयो भवन्तु ॥ २१ ॥

इमे जीवा वि मूर्तराव्यवृन्

अमृद् मृदा देयहतिर्नो अथ ।

प्राज्ञो अगाम नृतये हसाय

सुवीर्यतो विदधमा यदेम ॥ २२ ॥

इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि  
 मैत्रं नु गादपरो अर्थमेतम् ।  
 शतं जीवन्तः शरदः पुरुचीः  
 तिरौ मृत्युं दधतां पर्वतेन  
 आ रोहतायुर्जरसं घृणाना  
 अनुपुषं यत्तमाना यति स्था ।  
 तान्यस्वघां सृजनिमा सृजोपाः  
 सर्वमार्युर्नयतु जीवनाय  
 यथाहान्यनुपुषं भवन्ति  
 यथर्तयं श्रुतुमिर्यान्ति साकम् ।  
 यथा न पूर्वमपरो जहाति  
 एवा धातरायैपि कल्पयैवाम्  
 अदमन्वती रीयते सं रमधं  
 धीर्ययं प्र तरता सखायः ।  
 अत्रो जहीत ये असन्दुरेवा  
 अनमीवानुसरेमाभि वाजान्  
 उत्तिष्ठता प्र तरता सखाय  
 अदमन्वती नदी स्यन्दत इयम् ।  
 अत्रो जहीत ये असन्नादिवाः  
 शिवाग्नस्योनानुसरेमाभि वाजान्  
 एष्यदेयी यचीत आ रमधं  
 श्रुता भवन्तः श्रुचयः पायकाः ।  
 अनिग्रामन्तो बुरिता पुद्गानि  
 ज्ञानं हिमाः सर्ववीरा मदेम  
 उदीचीनैः पशिनैर्यायुमद्भिः  
 अनिग्रामन्तोऽयंरान् परेभिः ।  
 त्रिः सान एव श्रुचयः परेता  
 मय्यं प्रयादन् पदपानेन  
 मय्योः पुदं योपयन् वन  
 प्राणीषु भार्यः प्रतरं दर्शनाः ।  
 धार्मीना मय्यं नुदता श्रुचये  
 धपं जीवागो विदग्धा धंदेम

॥ २३ ॥

॥ २४ ॥

॥ २५ ॥

॥ २६ ॥

॥ २७ ॥

॥ २८ ॥

॥ २९ ॥

॥ ३० ॥

इमा नारीरविधवाः सुपत्नीः  
 आज्ञेन सपिपा सं स्पृशन्ताम् ।  
 अनश्रवीं अनमीवाः सुरत्ना  
 आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे ॥ ३१ ॥  
 व्याकरोमि हविषाहमेतौ  
 तौ ब्रह्मेण व्यृहं कल्पयामि ।  
 स्वधां पितृभ्यो मजरां कृणोमि  
 दीर्घेणार्युपा समिमान्त्सुजामि ॥ ३२ ॥  
 यो नो अग्निः पितरो हृत्सु  
 अन्तराविवेशामृतो मर्त्येषु ।  
 मय्यहं तं परि शुक्लामि देवं  
 मा सो अस्मान् हिंसेत मा वयं तम् ॥ ३३ ॥  
 अपावृत्त्य गार्हपत्यात् क्रव्यादा प्रेतं दक्षिणा ।  
 म्रियं पितृभ्य आत्मनै ब्रह्मभ्यः कृणुता म्रियम् ३४  
 द्विभागधनमादाय प्र क्षिणात्यर्च्यतां ।  
 अग्निः पुत्रस्य ज्येष्ठस्य यः क्रव्यादनिराहितः ३५  
 यत् कृपते यद् धनुते यच्च घृक्षेन विन्दते ।  
 सर्वं मर्त्यस्य तन्नास्ति क्रव्याद्येदनिराहितः ॥ ३६ ॥  
 अयस्रियो हतवर्चा भयति नैनैर्न हविरस्तवे ।  
 छिनत्ति कृप्या गोर्धनाद्यं क्रव्यादनुयते ॥ ३७ ॥  
 सुहृदृष्यैः प्र यद्वत्यान्ति मर्त्यो नीत्ये ।  
 क्रव्याधानग्निर्भस्तिकादनुविद्वान् यितार्यति ॥ ३८ ॥  
 प्राहो गृहाः सं शेज्यन्ते क्रिया यन्म्रियते पतिः ।  
 प्रक्षेप विद्वानेप्योऽयः क्रव्यादं निराधत् ॥ ३९ ॥  
 यद् रिपं शर्मलं वरुम यच्च दुष्कृतम् ।  
 आपो मा तस्माच्छुभ्रमन्यतोः संकाशुकाश्च यत् ४०  
 ना अघरादुदीचीराधंयुवन्  
 प्रजान्तीः पृथिग्मिदेष्यार्नः ।  
 पयस्य वृषभस्यापि पृष्ठे  
 जवाभरति शरितः पुराणीः ॥ ४१ ॥

अग्ने अक्रव्यान्निः क्रव्यादं नृदा देवयजनं वह ॥४२॥  
 इमं क्रव्यादा विवेक्षा—यं क्रव्यादमन्वगात् ।  
 व्याघ्रौ कृत्वा नानानं ते हरामि शिवापरम् ॥४३॥  
 अन्तर्धिदेवानो परिधिर्मनुष्याणां  
 अग्निर्गाहपत्य उभयानन्तरा धितः ॥ ४४ ॥  
 जीवानामायुः प्र तिर स्थमग्ने  
 पितृणां लोकमपि गच्छन्तु ये मृताः ।  
 सुगार्हपत्यो वितपन्नरातिमुपासुषां श्रेयसीं धेहस्यै ४५  
 सर्वानग्ने सहमानः सपत्नान्  
 पयामूर्जे यमिस्त्वामु धेहि ॥ ४६ ॥  
 इममिन्द्रं धदिं परिमन्वारमध्वं  
 स वो निर्वैश्वद् दुरिताद्वधात् ।  
 तेनाप हतु शकमापतन्तु  
 तेन रुद्रस्य परि पातास्ताम् ॥ ४७ ॥  
 अनुद्वाहं प्लवमन्वारमध्वं  
 स वो निर्वैश्वद् दुरिताद्वधात् ।  
 आ रौहत सधितुर्नार्वमेतां  
 पडमिरुर्वीमिराति तरेम ॥ ४८ ॥  
 अहोपत्रे अन्येपि विश्रव  
 क्षेम्यस्तिष्ठन् प्रतरणः सुवीरः ।  
 अनानुरात्सुमनसस्तत्प विश्रव  
 ज्योगेय नः पुर्वपगन्धिरेधि ॥ ४९ ॥  
 ते द्वेषेभ्य आ वृक्षन्ते प्राप जीवन्ति सर्वदा ।  
 क्रव्याद्यानां क्षरन्ति कादभ्य इवानुवर्षते नडम् ॥५०॥  
 येऽश्रद्धा धनकाम्या क्रव्यादां समासते ।  
 ते वा अन्यथा कुर्मो पर्यादधति सर्वदा ॥५१॥  
 प्रेयं पिपतिपति मनसा मुहुरा वर्तते पुनः ।  
 क्रव्याद्यानां क्षरन्ति काद—नुविद्वान् वितारति ॥५२॥  
 अविः कृष्णा भागधेयं पशूनां  
 सीसं क्रव्यादपि चन्द्रं त आहुः ।

मापाः पिष्टा भागधेयं ते हव्यं  
 अरण्यान्या गह्वरं सचस्व ॥ ५३ ॥  
 इषीकां जरतीमिष्टा तिलिपञ्चं दण्डनं नडम् ।  
 तमिन्द्र इमं कृत्वा यमस्याग्निं निरादधी ॥ ५४ ॥  
 प्रत्यञ्चमर्कं प्रत्यर्पयित्वा  
 प्रविद्वान् पण्यां च ह्या विवेश ।  
 परामीषामसुर् दिदेश  
 दीधेणायुषा समिमान्सृजामि ॥ ५५ ॥

॥ ३८ ॥ (अथर्व १८।१-३२)

सुवस्त्रिणः । सर्वशोषामयावकाशम् (यक्षनिवारणम्) ।  
 अनुष्टुप् ; १२ अनुष्टुप्गर्भा कङ्कमती अनुष्टुप्दोष्णिक् ;  
 १५ विराडनुष्टुप् ; २१ विराट् पद्यवृद्धी ;  
 २२ पद्यापवृत्तिः ।

शीर्षिकं शीर्षामयं कर्णशूलं विलोहितम् ।  
 सर्वं शीर्षण्यंते रोगं यद्विनिर्मन्त्रयामहे ॥ १ ॥  
 कर्णाभ्यां ते कङ्कूपेभ्यः कर्णशूलं विसर्पकम् ।  
 सर्वं शीर्षण्यंते रोगं यद्विनिर्मन्त्रयामहे ॥ २ ॥  
 यस्य हेतोः प्रच्यवते यश्मः कर्णत आस्यतः ।  
 सर्वं शीर्षण्यंते रोगं यद्विनिर्मन्त्रयामहे ॥ ३ ॥  
 यः कृणोति प्रमोत—मन्धं कृणोति पूरयम् ।  
 सर्वं शीर्षण्यंते रोगं यद्विनिर्मन्त्रयामहे ॥ ४ ॥  
 अहमेदमङ्गन्यरं विभ्याह्वयं विसर्पकम् ।  
 सर्वं शीर्षण्यंते रोगं यद्विनिर्मन्त्रयामहे ॥ ५ ॥  
 यस्य म्रिमः प्रतीकाश उद्वेपयति पूरयम् ।  
 तपमानं विभ्यशारदं यद्विनिर्मन्त्रयामहे ॥ ६ ॥  
 य ऊरु र्वनुसर्पत्य—यो एति गयीर्निके ।  
 यश्म ते अन्तरङ्गभ्यो यद्विनिर्मन्त्रयामहे ॥ ७ ॥  
 यदि कामादपकामा—दृढयाज्जायते परि ।  
 हृदो यत्तासमङ्गभ्यो यद्विनिर्मन्त्रयामहे ॥ ८ ॥

अथत्ये वो निपदनं पुणं वो वसतिःकृता ।  
 गोमात्र इत् किलासय यत् सनवय पूरयम् ॥५॥  
 यत्रोपधीः समर्गत् राजानः समिताविव ।  
 विप्रः स उच्यते मियग् रेशोहामीवचातनः ॥६॥  
 अथावर्ती सौमावती—मूर्जर्यन्तीमुदौजसम् ।  
 अविस्ति सर्वा ओपधी—स्मा अष्टिर्तातये ॥७॥  
 उच्छुप्ता ओपधीनां गाधो गोष्टादिचरते ।  
 धनं सनिष्यन्तीनामात्मानं तथं पूरय ॥८॥  
 इच्छतिर्नाम वो माता ऽथो ययं स्य निष्कृतीः ।  
 सीराः पंतत्रिणीः स्यन् यदामयति निष्कृय ॥९॥  
 अति विभोः पट्टिः स्तेन इव व्रजमक्रमुः ।  
 ओपधीः प्राचुच्ययु—यत् किं च तन्धोऽु रपः १०  
 यद्विमा वाजयद्गह—मोपधीर्हस्तं आनुधे ।  
 आत्मा यस्मस्य नदयति पुरा जीवशृमो यथा ११  
 यस्वीपधीः प्रसर्पया—इमहं परेष्वरः ।  
 ततो यस्मं वि बाधय उग्रो मध्यमदीरिव ॥१२॥  
 साकं यस्मं प्र पंत चापेण किकिदीविना ।  
 साकं वातस्य धाज्या साकं नदय निहाकया १३  
 अन्या वो अन्यामव—त्यन्याम्यस्या उपावत ।  
 ताः सर्वाः संधिदाना इदं मे प्रायता वचः १४  
 याः फलिनीयां अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः ।  
 बृहस्पतिप्रसृता—स्ता नो मुञ्चन्त्यहंसः ॥१५॥  
 मुञ्चन्तु मा शपथ्या—दयो वरुण्यादुत ।  
 अयो यमस्य पदवीशात्  
 सर्वसाद् देवकिल्बिषात् ॥१६॥  
 अथपतन्तीरयदन् द्विध ओपधयस्परि ।  
 ये जीवमश्रवामहे न स रिप्याति पूरयः ॥१७॥  
 या ओपधीः सोमराक्षी—वृद्धीः दातविचक्षणाः ।  
 तासां त्वमस्युत्तमा—रं कामाय शो हृदे ॥१८॥

या ओपधीः सोमराक्षी—विष्टिनाः पृथिवीमनु ।  
 बृहस्पतिप्रसृता अस्य सं दंत वीर्यम् ॥१९॥  
 मा वो रिपत् क्षनिता यस्मं चाहं गनामि यः ।  
 द्विपचतुष्पदस्माकं सर्वमस्त्वनातुरम् ॥२०॥  
 याश्चेदमुषदृण्यन्ति याश्च दूरं परांगताः ।  
 सर्वाः संगत्य वीरुघो ऽस्य सं दंत वीर्यम् २१  
 ओपधयः सं वदन्ते सोमैर्न सह रात्रा ।  
 यस्मं कुणोति ब्राह्मण—स्तं राज्ञ् पारयामसि २२  
 त्वमुत्तमास्योग्रे तथं वृश्ना उपस्तयः ।  
 उपस्तिरस्तु सोऽुऽस्माकं  
 यो अस्मां अमिदासति ॥२३॥

॥४१॥ ( अथर्वे ८।७।१-०८ )

अथर्वी । १ अथर्व, आयुष्यं, ओपधयः । २ अथर्वदृग् ; ३ उपरिष्ठा-  
 क्रुरिगृह्णी ; ४ पुर अथर्वदृग् ; ५ पथयदा पराश्रुद्विजगती ;  
 ५-६, १०, २५ पथ्यापथ्यः ( ६ विराहगर्मा भुरिद् ) ;  
 ९ द्विपदार्थं भुरिगृह्णी ; १२ पथयदा विराहतिशक्ती ;  
 १४ उपरिष्ठाक्रिगृह्णी ; २६ निवृत्त ; २८ भुरिद् ।

या वृध्वो याश्च शुक्रा  
 रोहिणीकृत पृथ्वयः ।  
 असिक्तीः कृष्णा ओपधीः  
 सर्वा अच्छावदामसि ॥१॥  
 श्रार्यन्तामिमं पुरं  
 यस्माद् देयेयितादधि ।  
 यासां दौषित्वा पृथिवी माता  
 संमुद्रो मूलं वीरुघां वमूय ॥२॥  
 आपो अग्रं दिव्या ओपधयः  
 तास्ते यस्ममस्य मुमहादहादनीनशन ॥३॥  
 प्रस्तृणती न्मिन्निरेकंशुङ्गाः  
 प्रतन्वनीरोपधीरा यदामि ।  
 अंशुमतीः काण्डिनीयो विराग्या  
 हयामि ते वीरुघो यंभवेवीरुघाः पुण्डरीनीः ॥४॥

हृदिमाणं ते अङ्गेभ्यो—ऽध्वामन्तरोदरात् ।  
 यक्ष्मोधामन्तरात्मनो बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥ ९ ॥  
 आसौ बलासो भवतु मूर्ध्न भवत्वामर्यत् ।  
 यक्ष्माणं सर्वेषां विपं निरवोचमहं त्वत् ॥ १० ॥  
 बहिर्विलं निद्रैवतु काहाबाहं तवोदरात् ।  
 यक्ष्माणं सर्वेषां विपं निरवोचमहं त्वत् ॥ ११ ॥  
 उदरात् ते फलोक्षो नाभ्या हृदयादधि ।  
 यक्ष्माणं सर्वेषां विपं निरवोचमहं त्वत् ॥ १२ ॥  
 याः सीमानं विरुजन्ति मूर्धानं प्रत्यर्पणीः ।  
 अहिंसन्तीरनामया निद्रैवन्तु बहिर्विलम् ॥ १३ ॥  
 या हृदयमुपपन्त्य—नुतन्वन्ति कर्कसाः ।  
 अहिंसन्तीरनामया निद्रैवन्तु बहिर्विलम् ॥ १४ ॥  
 याः पार्श्वे उपपन्त्य—नुनिक्षन्ति पृष्ठीः ।  
 अहिंसन्तीरनामया निद्रैवन्तु बहिर्विलम् ॥ १५ ॥  
 यास्तिरश्चर्यरुपपन्त्य—वर्णविक्षणास्तु ते ।  
 अहिंसन्तीरनामया निद्रैवन्तु बहिर्विलम् ॥ १६ ॥  
 या गुदां अनुसर्पन्त्या—न्त्राणि मोहयन्ति च ।  
 अहिंसन्तीरनामया निद्रैवन्तु बहिर्विलम् ॥ १७ ॥  
 या मूत्रो निर्धर्यन्ति परैपि विरुजन्ति च ।  
 अहिंसन्तीरनामया निद्रैवन्तु बहिर्विलम् ॥ १८ ॥  
 ये अङ्गानि मृदयन्ति यक्ष्मांसो रोपणास्तवे ।  
 यक्ष्माणं सर्वेषां विपं निरवोचमहं त्वत् ॥ १९ ॥  
 विसल्पस्य विद्रुधस्य धातीकारस्य बालजेः ।  
 यक्ष्माणं सर्वेषां विपं निरवोचमहं त्वत् ॥ २० ॥  
 पादाभ्यां ते जानुभ्यां श्रोणिभ्यां परि भंसंसः ।  
 अनूकादर्पणीरुणिहाभ्यः शीष्णो रोगमनीनशम् २१  
 सं तं शीर्ष्णः कपालानि हृदयस्य च यो विधुः ।  
 उद्यम्रादित्य रश्मिभिः  
 शीष्णो रोगमनीनशोऽङ्गभेदमशिशमः ॥ २२ ॥

॥ १९ ॥ (अथ ये ० ११३१-७)  
 मदा । यक्ष्मविषहण, चन्द्रमा, आनुष्मन् । अनुष्टुप्, ३  
 बहुव्रीह्या, ४ बहुव्रीह्या भुरिगुणिङ्, ५ परीष्टादि  
 राद्वृहती, ६ लणिगमर्गं निचुदनुष्टुप्,  
 ७ पञ्चापलितः ।  
 अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुदुंशदधि ।  
 यक्ष्मं शीर्षण्यंमस्तिष्का—जिह्वाया वि बृहामि ते ।  
 ग्रीवाभ्यस्तु जणिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनुक्यात् ।  
 यक्ष्मं दोषण्यंमस्ताभ्यां यादुभ्यां वि बृहामि ते ॥ २ ॥  
 हृदयात् ते परि ह्योक्षो हलीक्षणात् पार्श्वभ्याम् ।  
 यक्ष्मं मत्स्नाभ्यां प्लीहो यक्ष्मस्ते वि बृहामासि ॥ ३ ॥  
 आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो चनिष्ठोरुदरादधि ।  
 यक्ष्मं कुक्षिभ्यां प्लाशो—नाभ्या वि बृहामि ते ॥ ४ ॥  
 ऊरुभ्यां अग्नीवज्रयां पार्णिभ्यां प्रपदाभ्याम् ।  
 यक्ष्मं मस्त्यं श्रोणिभ्यां  
 भास्तं भंसंसो वि बृहामि ते ॥ ५ ॥  
 अस्थिभ्यस्ते मूत्रजभ्यः स्नायभ्यो धमनिभ्यः ।  
 यक्ष्मं पाणिभ्यामङ्गुलिभ्यो नखेभ्यो वि बृहामि ते ६  
 अङ्गभ्यो लोमिलोमिन् यस्ते पर्वणिपणि ।  
 यक्ष्मं त्वचस्यं ते वयं  
 कदयपस्य वीचहेण विष्वञ्चं वि बृहामासि ॥ ७ ॥  
 ओषधिवनस्पतयः ।  
 ॥ ४० ॥ (अ० १०१७१-२३)  
 आथर्वणो भिषक् । ओषधय । अनुष्टुप् ।  
 या ओषधीः पूर्वा ज्ञाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा ।  
 मने नु वभ्रूणांमहं शतं धामानि सप्त ॥ १ ॥  
 शतं वो अयं धामानि सहस्रंमृतं द्यौः सहः ।  
 अधो शतक्रत्वो युय—मिमं मे अगद कृतं ॥ २ ॥  
 ओषधीः प्रति मोदध्वं पुष्यवतीः प्रस्यं ही ।  
 अथो इव सजित्वरी—वीरुधः पारयिष्वं ॥ ३ ॥  
 ओषधीरिति मातर—स्तद् द्यौं देवीरुपं भुव ॥ ४ ॥  
 सनेयमभ्यं गां वारं आत्मानं तव पूरय ॥ ४ ॥

अथत्ये वो निपदनं पुणं वो वसतिष्कृता ।  
 गोमाज इत् किलासय यत् सनवय पूरुपम् ॥ ५ ॥  
 यत्रोपधीः समग्मत राजानः समिताविव ।  
 विप्रः स उच्यते मियग् रक्षोहामीवचातनः ॥ ६ ॥  
 अथायती सौमायती-मूर्जयन्तीमुदौजसम् ।  
 अविस्ति सर्वा ओपधी-रस्मा अरिष्टातये ॥ ७ ॥  
 उच्छुप्ता ओपधीनां गावो गोष्ठादिधरते ।  
 धनं सनिप्यन्तीनामात्मानं तव पूरुप ॥ ८ ॥  
 इच्छतिर्नाम धो माता ऽथो ययं स्य निष्कृतीः ।  
 सीराः पंतत्रिणीः स्यन् यदामयति निष्कृय ॥ ९ ॥  
 अति विध्वाः परिष्ठाः स्तेन इव भ्रजमक्रमुः ।  
 ओपधीः प्राधुच्यवु-यत् कि च तन्धोऽु रपः १०  
 यद्विमा वाजयग्रह-मोपधीर्हस्त आनुधे ।  
 आत्मा यस्मस्य नद्यति पुरा जीवगृमो यथा ११  
 यस्यापधीः प्रसर्पया-इमङ्क परेष्वरुः ।  
 ततो यस्मं वि बाधध्व उग्रो मध्यमदीरिव ॥ १२ ॥  
 साकं यस्म ॥ पंत चापेण किकिदीविना ।  
 साकं वातस्य धाज्या साकं नद्य निहाकया १३  
 अन्या धो अन्यामय-त्यन्यान्यस्या उपावत ।  
 ताः सर्वाः संविदाना इदं मे प्रायता वचः १४  
 याः फलिनीयां अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः ।  
 बृहस्पतिप्रसृता-स्ता नो भुञ्जन्त्यहंसः ॥ १५ ॥  
 भुञ्जन्तु मा शपथ्या-दयो वरुण्यादुत ।  
 अयो यमस्य पडवीशात्  
 सर्वस्माद् देवकिल्लियात् ॥ १६ ॥  
 अयुपतन्तीरयदन् दिव ओपधयस्परि ।  
 यं जीयमन्नवाग्महे न स रिप्याति पूरुपः ॥ १७ ॥  
 या ओपधीः सोमराक्षी-शुद्धीः दातविचक्षणाः ।  
 तासां त्वयस्युत्तमा-रं कामाय शो हृदे ॥ १८ ॥

या ओपधीः सोमराक्षी-विष्टिनाः पृथिवीमनु ।  
 बृहस्पतिप्रसृता अस्य सं दंस धीर्यम् ॥ १९ ॥  
 मा वो रिपत् क्षनिता यस्मं चाहं गनामि यः ।  
 द्विपद्यतुष्यदस्माकं सर्वमस्त्वनातुरम् ॥ २० ॥  
 याश्चेदमुपगृण्यन्ति याश्च दुरं परागताः ।  
 सर्वाः संगत्य धीरुधो ऽस्य सं दंस धीर्यम् २१  
 ओपधयः सं वदन्ते सोमेन सह राक्षी ।  
 यस्मं कुणोति ब्राह्मण-स्तं राजन् पारयामसि २२  
 त्वमुत्तमास्योग्रये तव युष्मा उपस्तयः ।  
 उपस्तिरस्तु सोऽस्माकं  
 यो अस्मां अमिदासति ॥ २३ ॥

॥ ४१ ॥ ( अथर्वं ८।७।१-०८ )

अथवा । १ ययं, आयुष्यं, ओपधयः । २ उपरिष्ठा-  
 द्भुरिगृह्णी, ३ पुर अधिगृह्णी, ४ पयपदा पराशुद्धातिमगती,  
 ५-६, १०, २५ पय्यापुष्पिणीः ( ६ विराहगर्मा भुरिद् ),  
 ९ द्विपदार्थी भुरिगृह्णी, १२ पयपदा विराहतिशङ्करी,  
 १४ उपरिष्ठाभिजुद्बहनी, २६ निवृत्, २८ भुरिह् ।

या शुद्धयो याश्च शुक्रा  
 रोहिणीरुत पृथ्वयः ।  
 अस्तिनीः कृष्णा ओपधीः  
 सर्वा अच्छावदामसि ॥ १ ॥  
 शर्यन्तामिमं पुरं  
 यस्माद् देवेयितादधि ।  
 यासां दौषिता पृथिवी माता  
 संमुद्रो मूलं धीरुधो यभूय ॥ २ ॥  
 आपो अयं दिव्या ओपधयः  
 तास्ते यस्ममेनस्य मङ्गादङ्गादनीनशन ॥ ३ ॥  
 प्रस्नृणती न्तम्यिनीरेकशुङ्गाः  
 प्रतन्वनीरोपधीरा यदामि ।  
 अंशुमतीः काण्डिनीयो यिताम्ना  
 हयामि ते धीरुधो यभ्यदेधीरुधः पुण्यजीरनीः ॥ ४ ॥



यद् वः सहः सहमाना धीर्यं । यच्च वो बलम् ।

तेनेमस्माद् यस्मात् पुरुषं मुञ्चत

ओपधीरथो कृणोमि भेषजम्

॥ ५ ॥

जीवलां नधारिणं

जीविन्तीमोपधीमहम् ।

अरुधतीमुन्नयन्ती पुण्यां

मधुमतीमिह हुवेऽस्मा अरिष्टांतये

॥ ६ ॥

इहा यन्तु प्रचेतसो, मेदिनीर्वचसो मम ।

यथेमं पार्यामसि पुरुषं दुरितादधि

॥ ७ ॥

अग्नेर्घासो अवां गमो या रोहन्ति पुनर्जवाः ।

ध्रुवाः सहस्रनाक्षी—भेषजीः सुन्वाभृताः

॥ ८ ॥

अयकौल्या उदकात्मान ओपंधयः ।

वृष्टुं दुरितं तीक्ष्णशृङ्ग्यः

॥ ९ ॥

उन्मुञ्चन्तीर्विवरणा उग्रा या विपदूर्पणीः ।

अथो बलासुनाशनीः कृत्यादूर्पणीश्च

यास्ता इहा युन्वोपंधीः

॥ १० ॥

अपकीताः सहोयसी—वीरुधो या अभिष्टुताः ।

प्रायन्तामस्मिन् प्राप्ते गामध्वं पुरुषं पुनम्

मधुमन्मूलं मधुमदग्रमासां

मधुमन्मर्ष्य वीरुधो यभूय ।

मधुमत् पूर्णं मधुमत् पुष्पमासां मधोः संभक्ता

अमृतस्य भक्षो घृतमर्धं दुहतां गोपुंरोगवम्

यावतीः किर्यतीधेमाः पृथिव्यामध्वोपंधीः ।

ता मां सहस्रपुण्यां मृत्योर्मुञ्चन्वर्हसः

पैयाग्रे मणिर्वीरुधां प्रायमाणोऽभिदास्तिपाः ।

अमीयाः सर्वा रक्षांस्य—पं हन्वधि दूरमस्मत्

विद्वेष्य स्तनयोः सं विजन्ते

अग्रेरिय विजन्त आभृताभ्यः ।

गयां यधुः पुर्गपाणां वीरुधिः

अग्निगुप्ता नाप्याप्नु रक्षायाः

॥ १५ ॥

मुमुक्षाना ओपंधयो—ऽभ्यैश्वानरादधि ।

भूमिं संतन्वतीरिति यासां राजा वनस्पतिः

या रोहन्त्याङ्गिरसीः पर्वतेषु समेषु च ।

ता नः पर्यस्वतीः शिवा

ओपंधीः सन्तुः शं हृदे

॥ १७ ॥

याश्चाहं वेदं वीरुधो याश्च पश्यामि चक्षुषा ।

अज्ञाता जानीमश्च या यास्तु विद्म च संभृतम्

सर्वाः समग्रा ओपंधी—योधन्तु वचसो मम ।

यथेमं पार्यामसि पुरुषं दुरितादधि

अभ्येत्यो वभो वीरुधां सोमो राजामृतं इयिः ।

व्रीहिर्येवश्च भेषजी दिवस्पुत्रावर्मत्यौ

उज्जिहीष्वे स्तनर्यत्य—भिकन्दस्योपंधीः ।

यदा र्वः पुष्पिमातरः पर्जन्यो रेतसावति

तस्यामृतस्येमं बलं पुरुषं पापयामसि ।

अथो कृणोमि भेषजं यथासंछतहायनः

धराहो वेदं वीरुधं नकुलो वेद भेषजीम् ।

सर्पा गन्धर्वा या विदु—स्ता अस्मा अवसे हुवे

याः सुपर्णा आङ्गिरसी—दिव्या या रघवो विदुः ।

वयांसि इंसा या विदु—र्याश्च सर्वे पतत्रिणिः ।

मृगा या विदुरोपंधी—ता अस्मा अवसे हुवे

यावतीनामोपंधीनां गावः

प्राश्नन्त्यध्या यावतीनामजावयः ।

तावतीस्तुभ्यमोपंधीः शर्मं यच्छन्वाभृताः

यावतीषु मनुष्या भेषजं भिषजो विदुः ।

तावतीर्विभ्यभेषजी—रा भंगमि त्याममि

पुष्पवतीः प्रसूयतीः फलिनीरफला उत ।

संमातरं इव दुहाम—स्या अरिष्टांतये

उत् त्वाहाय पञ्चरत्नाद—यो दशरत्नादुत ।

अथो यमस्य पट्टीणाद्

विभ्वस्माद् देयकिद्विपात्

॥ २८ ॥

॥ ८१ ॥ ( अथ व० ६।३६।१-३ )

मृगशिराः । वनस्पतिः ( चिकित्सा ), ३ सोमः । अनुष्टुप्,  
३ त्रिपदा विरागम गायत्री ।

या ओर्षधयः सारमराशी - र्वहीः शतर्विचक्षणाः ।  
यदृस्पतिप्रसूना - स्ता नो मुञ्जन्वहंसः ॥ १ ॥

मुञ्जन्तु या शपथ्यादुद - यो वरुण्यादुद ।  
मथो यमस्य पद्मिनाद्  
विभ्वस्माद् देवकिलियगात् ॥ २ ॥

यद्यश्रुया मनेसा यद्य वाचा  
उपारिम जाग्रतो यत् स्वपन्तः ।  
सोमस्तानि स्युधयो नः पुनातु ॥ ३ ॥

॥ ८१ ॥ ( या० य० ४।१; ५।४१; ६।१५ )  
( ओषधयः । )

ओर्षधे वायम्य स्वधिते मैनेर हिंसीः ॥ १ ॥  
॥ ८४ ॥ ( या० य० १।१३७-४८ )  
( ओषधयः । )

ओर्षधयः प्रतिमोदध्वमाग्निमेत  
शिवमायन्तमभ्यर्च युष्माः ॥ ४७ ॥  
ओर्षधयः प्रतिमृष्णीत पुष्पयतीः सुषिपुलाः ।  
अप्यं यो गर्भे ऽ क्रुत्विर्यः  
प्रत्नः सधस्थमासदत् ॥ ४८ ॥

॥ ८५ ॥ ( या० य० १।१३१; ३।५४ )  
( ओषधयः । )

अभ्यत्ये यो निपदनं पुणे यो यमतिष्ठता ।  
गोमाज् ऽ इतिकलासथ यत् सनपथ पूरयम् ७२  
॥ ८६ ॥ ( या० य० १।८।१०-१४ )  
( अश्वम् । )

पाजो नः सत प्रदिश - धनयो वा पययतः ।  
पाजो नो विभ्वेर्देव - धनमाताविदायतु ॥ ३२ ॥  
पाजो नो ऽ अप्यं प्रमुपाति दानं  
पाजो देवोऽऽ क्रुनुभिः कल्पयानि ।  
पाजो हि मा सर्वधीरं जुजानु  
विभ्या ऽ आता वाजपतिर्जपयम् ॥ ३३ ॥

वाजः पुरस्तादुत मण्यतो नो  
वाजो देवान् हवियां वर्धयति ।  
वाजो हि मा सर्वधीरं वृकार  
सर्वा ऽ आता वाजपतिर्जपयम् ॥ ३४ ॥

॥ ८७ ॥ ( अ० १।१०।६ )

गोतमो राहुपणः । विधेदेवाः ( वातकिन्वोयधवः ) । गायत्री ।  
मधु वातां क्रुतायने मधुं श्रान्ति सिन्धयः ।  
माध्वीर्नः सन्धोर्षधीः ॥ ६ ॥

॥ ८८ ॥ ( अ० १।५।३ )

गाधिनो विश्वमित्रः । विधे देवाः ( ओषधयः सूर्यमरीचयो वा ) ।  
त्रिष्टुप् ।

या जामयो वृष्णं इच्छन्ति शक्ति  
नमस्यन्तीर्जानते गर्भमस्मिन् ।  
अच्छां पुत्रं धेनुवो वायसना  
महश्चरन्ति विभ्रन्ते यर्षयि ॥ ३ ॥

॥ ८९ ॥ ( अथ व० १।१८।१-६ )

अवर्षा । वनस्पतिः । अनुष्टुप्, ४ अनुष्टुप्गमां वनुधरा  
उपेक्ष, ६ उपेक्षगमां पथ्याभूतिः ।  
इमां वनान्योर्षधिं यीरुयां वनयत्तमाम् ।  
यया सपत्नीं यार्धने यया संविन्दते पतिम् ॥ १ ॥  
उत्तानपणे सुमते देवजुने महस्यति ।  
सपत्नीं मे परां णुद पतिं मे केयलं रुषि ॥ २ ॥  
नदि ते नामं जुग्राह नो अस्मिन् रमसे पती ।  
परामिव परावर्त सपत्नीं गमयाममि ॥ ३ ॥  
उत्तराहमुत्तर उत्तरेदुत्तराभ्यः ।  
अथः सपत्नीं या ममा - र्धम् सार्धगाभ्यः ॥ ४ ॥  
अहमस्मि सहमाना - यो त्यममि मामतिः ।  
उमे महस्यती भुक्त्वा सपत्नीं मे मदावर्त ॥ ५ ॥  
अमि नैऽयां सहमाना - मुपे नैऽयां महोपयमीम् ।  
मामनु प्र मे मनो वृषं गौरिव धायतु  
पया वारिय धायतु ॥ ६ ॥

॥ ५० ॥ ( चा० य० ५४२-४२ )

( वनस्पतिः । )

अत्यन्योऽऽ अगां नान्योऽऽ उपागां  
अर्वाक् त्वा परेभ्योऽपिदं परोऽधरेभ्यः ।

तं त्वा जुपामहे देव वनस्पते देवयज्यायै  
देवास्त्वा देवयज्यायै जुपन्तां विष्णवे त्वा ।

ओषधे प्रायस्य स्वधिते मेनः हिरसीः ॥ ४२ ॥

घां मा लेखीरन्तरिक्षं

मा हिरसीः पृथिव्या सम्मय ।

अयं हि त्वा स्वधितिस्तोतृजानः

प्रणिनाय महते सौमगाय ।

अतस्त्य देव वनस्पते शतवक्षो विरोह  
सहस्रवक्षो वि वयं रुहम ॥ ४३ ॥

॥ ५१ ॥ ( चा० य० २०४५ )

( वनस्पतिः । )

वनस्पतिर्यस्यो न पशौः

त्मन्या समञ्जस्मिता न देवः ।

इन्द्रस्य हव्यैर्जठरैः पूषानः

स्वदाति यज्ञं मधुना घृतेन ॥ ४५ ॥

॥ ५२ ॥ ( चा० य० २१५१ )

( वनस्पतिः । )

शमिता नो वनस्पतिः सविता प्रष्टुवन् भगम् ।

कृषु छन्दऽ इहेन्द्रियं

यशा घेहद् ययो दधुः ॥ २१ ॥

॥ ५३ ॥ ( चा० य० २७११ )

( वनस्पतिः । )

वनस्पतेऽयं गृजा रतणस्तमनो द्वेयेषु ।

अग्निर्देव्यऽ शमिता संदयाति ॥ २१ ॥

॥ ५४ ॥ ( चा० य० २८११०, २१, ४२ )

( वनस्पतिः । )

होता यक्षद् वनस्पतिं शमितारं

शतक्रतुं धियो जोषारमिन्द्रियम् ।

मध्वा समञ्जन् पृथिभिः सुगेभिः स्वदाति

यज्ञं मधुना घृतेन वेत्वाज्यस्य होतर्यजं ॥ १० ॥

होता यक्षद् वनस्पतिं शमितारं शतक्रतुं

हिरण्यपर्णमुधिनं रश्नां विभ्रतं

घां भगमिन्द्रं ययोधमम् ।

ककुम् छन्दऽ इहेन्द्रियं यशा घेहते गो

ययो दधद् वेत्वाज्यस्य होतर्यजं ॥ ३३ ॥

देवो वनस्पतिर्देवमिन्द्रं

ययोधसं देवा देवमवर्धयत् ।

द्विपर्वा छन्दसेन्द्रिय भगमिन्द्रे

ययो दधद् वसुवर्ने वसुधेर्यस्य वेतु यजं ॥ ४३ ॥

॥ ५५ ॥ ( चा० य० २९११०, ३५ )

( वनस्पतिः । )

अग्नीं घृतेन त्मन्या समकृत

अ उप देवांऽ ऋतुशः पायं ऽ पतु ।

वनस्पतिर्देवलोकं प्रजानश्शुभ्रिनां

हव्या स्वधितानि यक्षत् ॥ १० ॥

उपावसृज्य त्मन्या समञ्जन्

देवानां पायं ऽ ऋतुया हवीरपि ।

वनस्पतिः शमिता देवो अग्निः

स्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन ॥ ३५ ॥

॥ ५६ ॥ ( अथर्व० ४१७१-८ )

शुक्र । अपामागो वनस्पतिः । अशुद्रम् ।

ईशानां त्वा भेषजानामु-र्जोप आ रभामहे ।

चक्रे सहस्रवीर्यं सयैस्मा ओषधे त्वा ॥ १ ॥

( ४६८ )

सत्यजितं शपथयार्थं सहमानां पुनःसुराम् ।  
 सर्वाः समद्वयोर्षी-रितो नः पार्यादिति ॥ २ ॥  
 या शशाप शपनेन याधं मूरमादधे ।  
 या रसस्य दृष्टेणाय ज्ञानमारेभे लोकमस्तु सा ३  
 यां ते चक्रुरामे पात्रे यां चक्रुर्नीललोहिते ।  
 आमे मांसे कृत्वा यां चक्रुः  
 तया कृत्याकृतो जहि ॥ ४ ॥  
 दौर्षप्यं दौर्जीवित्यं रक्षो अभ्यमराय्यः ।  
 दुर्णाक्षीः सर्वा दुर्धन्य-स्ता अस्मन्नाशयामसि ॥ ५ ॥  
 क्षुचामारं वृष्णामारम्-गोतामनपत्यताम् ।  
 अपामार्गं त्वया धृतं सर्वं तदपं मृज्महे ॥ ६ ॥  
 तूष्णामारं क्षुचामारम्-धौ अक्षपराज्यम् ।  
 अपामार्गं त्वया धृतं सर्वं तदपं मृज्महे ॥ ७ ॥  
 अपामार्गं ओषधीनां सर्वास्त्रामेक इदं वशी ।  
 तेन ते मृज्म आस्थितम्-थ त्वमगदक्षर ॥ ८ ॥

॥ ५७ ॥ ( अथर्व० ४१।८।१-८ )

शुक्रः । अपामार्गो वनस्पतिः । अनुष्टुप्, बृहतीगर्भः ।

समं ज्योतिः सृष्टेण-ह्य रात्रीं समार्यती ।  
 हृणोमि सत्यमृतये-ऽरसाः संस्तु कर्णरीः ॥ १ ॥  
 यो देवाः कृत्वा कृत्वा दरादविदुषो गृहम् ।  
 पृत्तो धारयिष मातरं तं प्रत्यगुपं पयताम् ॥ २ ॥  
 अमा कृत्वा पाप्मानं यस्तन्नान्यं जिघांसति ।  
 अदमनिस्तस्यां दुग्धायां  
 यद्वलाः फट् कर्गमति ॥ ३ ॥  
 सहस्रधामान् विंशतिमान् विप्रिंषां छायेण त्यम् ।  
 प्रति स्म चक्रुरे कृत्यां म्रियां म्रियायते हर ॥ ४ ॥  
 अनयादमोर्षया सर्वाः कृत्या अदुष्टयम् ।  
 यां क्षेत्रे चक्रुर्यो गोपु यां चां ते पुर्णेषु ॥ ५ ॥  
 यक्षकारं न शशाकः कर्तुं श्रेष्ठे पादमदुर्गम् ।  
 यक्षारं भद्रमस्मभ्यमा-स्मने तर्पनं तु सः ॥ ६ ॥

अपामार्गोऽपं मार्तुं क्षेत्रियं शपथश्च यः ।  
 अपाहं यातुधानीर-प सर्वा अराय्यः ॥ ७ ॥  
 अपमृज्यं यातुधानान-प सर्वा अराय्यः ।  
 अपामार्गं त्वया धृतं सर्वं तदपं मृज्महे ॥ ८ ॥  
 ॥ ५८ ॥ ( अथर्व० ४१।९।१-८ )

शुक्रः । अपामार्गो वनस्पतिः । अनुष्टुप्, २ पद्यावृत्तिः ।

उतो अस्येवंधुरुदु-तो अक्षि नु जामिहत् ।  
 उतो कृत्याकृतः प्रजां  
 नडमिवा दिग्धि वार्षिकम् ॥ १ ॥  
 श्रावणेन पर्युक्तानि कर्णैर्न नार्पदेन ।  
 सेनेवैपि त्विषामिनी न तत्र  
 भयमस्ति यत्र प्राप्नोष्योपधे ॥ २ ॥  
 अग्नेम्योर्षधानां ज्योतिषेऽभिदीपयन् ।  
 उत प्रातासि पाकस्या-धौ दस्तासि रससः ॥ ३ ॥  
 यद्दो देवा अमुंरा-स्त्रयाग्ने निरकुंज ।  
 ततस्त्वमर्घ्योपधे-ऽपामार्गो ब्रजायथाः ॥ ४ ॥  
 तिमिन्दुती शतशान्ता  
 विमिन्दु नार्यं ते विना ।  
 प्रत्यग् वि मिन्ति त्रं तं  
 यो अस्मां अभिदामति ॥ ५ ॥  
 अमद् भूम्याः सममनु  
 तद् यामेति मुहद् ध्यवः ।  
 तद् वै ततो विधुपार्यन् प्रत्यक् कुतारंमृच्छतु ६  
 प्रत्यङ् दि मनुमविध प्रनीचोर्नफट्स्थयम् ।  
 सर्गान् मच्छपयो अपि सर्गियो यावया धुधम् ७  
 शनेन मा परं पादि मद्रधेणामि रेश मा ।  
 इन्द्रस्ते वीरुधां पत उग्र ओमानमा दधन् ८

॥ ५९ ॥ ( अथर्व० ७३।१।१-३ )

शुक्रः । अत्र मार्गशीर्ष ( दुर्गिज्जाननम् ) । अनुष्टुप् ।

प्रनीचोर्नफलो दि नम-पामार्गं हरोदिध ।  
 सर्गान् मच्छपयो अपि सर्गियो यावया इतः ॥ १ ॥  
 ( ५९९ )

यद् दुष्कृतं यच्छर्मले यद् वा चेति पापया  
त्वया तद् विश्वतोमुखा—पामार्गापं मृज्महे ॥ २ ॥  
इयावदेता कुन्धिना वण्डेन यत् सहासिम ।  
अपामार्गं त्वया ध्रुवं सर्वं तदपं मृज्महे ॥ ३ ॥

॥ ६० ॥ ( अथर्व० ६।५९।१-३ )

अथर्वः । रुद्रः, अरुन्धती औषधिः । अनुष्टुप् ।

अनुदुद्रयस्त्वं प्रथमं धेनुभ्यस्त्वमरुन्धति ।  
अर्धेनये धर्यसे शर्मं यच्छु चतुष्पदे ॥ १ ॥  
शर्मं यच्छुत्वोषधिः सह देवीररुन्धति ।  
करत् पर्यस्थन्तं गोष्ठमं—यश्मौ उत पूरयान् ॥ २ ॥  
विश्वरूपां सुभगाम्—च्छावेदामि जीविलाम् ।  
सा नो रुद्रस्यास्तां हेति दूरं नयतु गोभ्यः ॥ ३ ॥

॥ ६१ ॥ ( अथर्व० ६।५९।१-३ )

भृगुविज्ञाः । वनस्पतिः ( कुशोषधिः ) । अनुष्टुप् ।

अभ्यस्यो देवसर्वज—स्तुतीर्यस्यामितो दिवि ।  
तन्नामृतस्य चक्षुषं देवाः कुष्ठमवन्धत ॥ १ ॥  
द्विरण्ययी नौरचरु—द्विरण्यवन्धना दिवि ।  
तन्नामृतस्य पुण्यं देवाः कुष्ठमवन्धत ॥ २ ॥  
गर्भो अस्योषधीनां गर्भो हिमघतामुत ।  
गर्भो विश्वस्य भूतस्ये—मं मे अगदं रुधि ॥ ३ ॥

॥ ६२ ॥ ( अथर्व० ६।६०।१-३ )

अथर्वः । पिपली-भेषजं, आयुः । अनुष्टुप् ।

विष्णुनी क्षिप्तभेषज्यु—तातिविज्रभेषजी ।  
तां देवाः समकल्पय—त्रिणं जीवितया अलम् ॥ १ ॥  
विष्णुन्युः समवदन्ता—यतीर्जनानादधि ।  
यं जीवमक्षवामदे न स रिप्याति पूरयः ॥ २ ॥  
अमृतमन्यान्मृगान् देवास्त्योदयपुन पुनः ।  
पानीरुन्मय भेषजी—मयो क्षिप्तस्य भेषजीम् ॥ ३ ॥

॥ ६३ ॥ ( अथर्व० १।६५।१-५ )

आमनः । पूतिरणी वनस्पतिः । अनुष्टुप्, ४ भुवि ।

सो नो देवी पृश्निपण्यं—सो निष्पृत्वा अकः ।  
उषा दि वण्युजगमनी ताममहि नदस्यतीम् ॥ १ ॥

सहमानेयं प्रथमा पृश्निपण्यजायत ।  
तयाहं दुर्णास्त्रां शिरो वृश्चामि शकुनेरिव ॥ २ ॥  
अरायमसूक् पावानं यश्च स्फाति जिह्वीपति ।  
गर्भादं कण्वं नाशय पृश्निपणिं सहस्व च ॥ ३ ॥  
गिरिमेनां आ वैशय कण्वान् जीवितयोपनान् ।  
तांस्त्वं देवि पृश्निपण्यं—शिरिवानुदहन्निहि ॥ ४ ॥  
परांच एनान् प्र णुद् कण्वान् जीवितयोपनान् ।  
तमांसि यत्र गच्छन्ति तत् कृत्वादौ अजीगमम् ५

॥ ६४ ॥ ( अथर्व० ४।११।१-७ )

ऋगुः । रोहणी वनस्पतिः । अनुष्टुप्, १ त्रिपदा गायत्री,  
त्रिपदा दक्कमधा भुरिगमायत्री, ७ बृहती ।

रोहण्यसि रोहण्यस्त्रिद्विघ्नस्य रोहणी ।  
रोहयेदमरुन्धति ॥ १ ॥

यत् ते रिष्टं यत् ते द्युत्त—मस्ति पेष्टं त आत्मनि ।  
धाता तद् भद्रया पुनः सं दधत् परया परः २  
सं ते मज्जा मज्जा भवतु समु ते परया परः ।  
सं ते मांसस्य विष्टं—स्ते समस्थपि रोहतु ॥ ३ ॥  
मज्जा मज्जा सं धीयतां चर्मणा चर्म रोहतु ।  
अष्टक् ते अस्थि रोहतु मांसं मांसनं रोहतु ४

लोम लोम्ना सं कल्पया  
त्वचा सं कल्पया त्वचम् ।  
अष्टक् ते अस्थि रोहतु च्छिन्नं सं धेहोपधे ५  
स उक् तीष्ठ प्रेति प्र द्रव्य  
रथः सुचक्रः सुपथिः सुनाभिः ।  
प्रति तिस्रोर्ध्वः ॥ ६ ॥

यदि कर्त्तं पतित्या संश्ले  
यदि याप्ता प्रहेतो जपानं ।  
भृगु रथस्येपाह्वानि सं दधत् परया परः ॥ ७ ॥

॥ ६५ ॥ ( अथर्वं ५५:१-९ )

अथर्वी । लाक्षा । अनुष्टुप् ।

रात्री माता नमः पिता—यमा ते पितामहः ।  
सिलाची नाम वा असि  
सा देवानामसि स्वसा ॥ १ ॥  
यस्त्वा पैर्वति जीर्वति आयसे पुरुषं त्वम् ।  
भर्त्री हि शश्वतामसि जनानां च न्यञ्जनी ॥ २ ॥  
वृक्षं वृक्षमा रोद्धसि वृष्यन्तीव कुम्वला ।  
जयन्ती प्रत्यातिष्ठन्ती स्पर्णी नाम वा असि ३  
यद् वृद्धेन यद्विद्या यद् चारुहर्षसा कुतम् ।  
तस्य त्वमसि निष्कृतिः सेमं निष्कृधि पूरुषम् ४  
भद्रात् प्लक्षान्निस्तिष्ठस्य—श्वथात् खदिराञ्जवात् ।  
भद्राङ्ग्यमोर्धात् पूर्णात् सा न परारुण्यति ॥ ५ ॥  
हिरण्यवर्णे सुमगे सूर्यवर्णे वपुष्टमे ।  
रुतं गच्छासि निष्कृते निष्कृतिनाम् वा असि ६  
हिरण्यवर्णे सुमगे शुष्मे लोमशयक्षणे ।  
अपामसि स्वसा लाक्षे घातो ह्यत्मा पम्व ते ७  
सिलाची नाम कानीनो—ऽजयश्च पिता तव ।  
अभ्यो यमस्य या द्याय—स्तस्य ह्यज्ञास्युद्रिता ८  
अभ्यस्यान्नः संपतित्ता सा वृक्षां अभि सिष्यदे ।  
सुरा पतत्रिणी भुत्वा सा न परारुण्यति ॥ ९ ॥

॥ ६६ ॥ ( अथर्वं ५५:१-१० )

सुराजिह्वा । कुष्ठे, यश्मनाशनम् ( कुष्ठतस्मनाशनम् ) ।  
अनुष्टुप्, ५ गुरेह, ९ गायत्री, १० उज्ज्वलगमा निबृत् ।  
यो गिरिष्वजायया धीरुधां चलत्तमः ।  
कुष्ठेहि तस्मनाशन तस्मान्न नाशयन्त्रितः ॥ १ ॥  
सुपुणंसुवर्ने गिरौ जातं हिमवतस्परि ।  
धनैरुभि धुत्वा यन्ति विदुर्हि तस्मनाशनम् २  
अथत्यो दैवमर्दन—मन्तरीयस्यामितो दिवि ।  
तन्नामृतस्य चक्षणे देवाः कुष्ठमवन्वत ॥ ३ ॥

हिरण्ययी नौरचर—हिरण्यवन्वता दिवि ।  
तन्नामृतस्य पुष्पं देवाः कुष्ठमवन्वत ॥ ४ ॥  
हिरण्ययाः पन्यान् आसु—अरित्राणि हिरण्यया ।  
नावो हिरण्ययीरासन् यामिः कुष्ठं निरावहन् ५  
इमं मे कुष्ठं पूरुषं तमा वद्ध तं निष्कुरु ।  
तमु मे अगदं कृधि ॥ ६ ॥  
देवेभ्यो अर्घि जातोऽसि  
सोमस्यासि मया हितः ।  
स प्राणाय व्यानाय चक्षुषे मे अस्मै सृज ॥ ७ ॥  
उद्धृज् जातो हिमवतः स प्राच्यां नीयसे जनम् ।  
तत्र कुष्ठस्य नामा—न्युत्तमानि वि भेजिरे ॥ ८ ॥  
उत्तमो नाम कुष्ठा—स्युत्तमो नाम ते पिता ।  
यस्मै च सर्वे नाशय तस्मान्न चारुसं कृधि ॥ ९ ॥  
शीर्षामयमुपहृत्वा—मस्योस्तन्यां रु रपः ।  
कुष्ठस्तत् सर्वं निष्कृत् दैवं समह वृण्यम् १०

॥ ६७ ॥ ( अथर्वं १९:१६:१-१० )

शुक्लविष्णुः । कुष्ठः ( कुष्ठनाशनम् ) । अनुष्टुप्, २, ३ उज्ज्व-  
लाना पद्यापारुकाः । ४ पद्वदा जगतोः । ५ पतपदा शक्तिः ।  
६-८ आष्टिः ( ५-८ अनुष्टुपमानाः ।

पेतुं देवस्त्रायमाणः कुष्ठो हिमवतस्परि ।  
तस्मान्न सर्वे नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ १ ॥  
श्रीणि ते कुष्ठं नामानि नद्यमारो नद्यारिणः ।  
नद्यां पुरुषो रिपत् ।  
यस्मै परिग्रवीमि त्वा मायंप्रातरयो दिवा ॥ २ ॥  
जीवला नाम ते माता जीयन्तो नाम ते पिता ।  
नद्यां पुरुषो रिपत् ।  
यस्मै परिग्रवीमि त्वा मायंप्रातरयो दिवा ॥ ३ ॥  
उत्तमो अस्पोर्धनीनामनुद्धान्  
जगतामेव व्याघ्रः श्वपदामेव ।  
नद्यां पुरुषो रिपत् ।  
यस्मै परिग्रवीमि त्वा मायंप्रातरयो दिवा ॥ ४ ॥

त्रिः शाम्बुभ्यो अङ्गिरेभ्य—खिरादित्येभ्यस्परि ।

त्रिजातो विभ्वभैषजः ।

स कुष्ठो विभ्वभैषजः साकं सोमेन तिष्ठति ।

तन्मानं सर्वं नाशय सर्वोश्च यातुधान्यः ॥५॥

अद्वयत्यो दैवसर्दन—स्तृतीयस्यामितो द्विवि ।

तन्नामृतस्य चक्षुषं ततः कुष्ठो अजायत ।

स कुष्ठो विभ्वभैषजः साकं सोमेन तिष्ठति ।

तन्मानं सर्वं नाशय सर्वोश्च यातुधान्यः ॥६॥

हिरण्ययी नौरवर्—खिरण्यवधना द्विवि ।

तन्नामृतस्य चक्षुषं ततः कुष्ठो अजायत ।

स कुष्ठो विभ्वभैषजः साकं सोमेन तिष्ठति ।

तन्मानं सर्वं नाशय सर्वोश्च यातुधान्यः ॥७॥

यय नार्यप्रधदानं यय हिमवतः शिरः ।

तन्नामृतस्य चक्षुषं ततः कुष्ठो अजायत ।

स कुष्ठो विभ्वभैषजः साकं सोमेन तिष्ठति ।

तन्मानं सर्वं नाशय सर्वोश्च यातुधान्यः ॥८॥

यं त्या येदं पूर्वं इक्ष्वाको यं यां त्या कुष्ठ काम्यः ।

यं या यतो यमात्म्य—स्तेनासि विद्वभैषजः ॥९॥

नीपलांको नृतीयकं सदग्निर्दग्धं दायनः ।

गुणमानं पिच्यधायायां—धृताङ्गं परां सुव ॥१०॥

॥ ६८ ॥ ( अथर्वं ६।११।१-३ )

शानतिः । अग्निः । अग्निः । ( अथर्वं ६।११।१-३ ) । अनुष्टुप् ।

इमा यागिनः पृथिवी—स्वामां ह मर्मिस्तमा ।

मागमभि ग्वां दृष्टं भैषजं तन्म अग्रमम् ॥१॥

धेष्टमभि भैषजां परिभुं धर्मधानाम् ।

तोमो मगं इव गामेषु देवेषु परेणो यया ॥ २ ॥

रेष्टीगनां धृतां गिरासः गिरासः ।

उत स्य वेष्टादंली—र्यां ह वेष्टावर्धनीः ॥ ३ ॥

॥ ६९ ॥ ( अथर्वं ६।१३।१-३ )

वातह्वयः । नितली वनस्पतिः ( केशदंष्ट्रम् ) । अनुष्टुप् ,  
२ पञ्चवसाना द्विपदा सान्नी नृदती ।

देवी देव्यामधि जाता पृथिव्यामस्योपधे ।

तां त्वां नितलिं केशेभ्यो दंष्ट्रणाय खनामसि १

दंष्ट्रं प्रतान् जनयार्जातान्

जातान् वर्षीयसस्त्रुधि ॥ २ ॥

यस्ते केशोऽव्यपद्यते समूलो यश्च वृध्यते ।

इदं तं विद्वभैषज्या—भि विञ्जामि वीरुधां ॥ ३ ॥

॥ ७० ॥ ( अथर्वं ६।१३।१-३ )

वीतह्वयः । वनस्पतिः ( केशवर्धनम् ) । अनुष्टुप् ।

यां जमदग्निखनद् दुहित्रे केशवर्धनीम् ।

तां वीतह्वय आमर—दक्षितस्य गृहेभ्यः ॥ १ ॥

अमीशुना मेयां आसन् व्यमेनांनुमेयाः ।

केशा नृडा इव यधन्तां

शीर्ष्णस्ते असिताः परि ॥ २ ॥

दंष्ट्र मूलमात्रं यच्छ वि मयं यामयौपधे ।

केशा नृडा इव यधन्तां

शीर्ष्णस्ते असिताः परि ॥ ३ ॥

॥ ७१ ॥ ( अथर्वं ६।१३।१-५ )

शोनकः । अग्निः । अग्निः । ( अथर्वं ६।१३।१-५ ) । अनुष्टुप् ,

१ निचुरिष्यता गावरीः २ वृष्टीगामां वृष्टीगामां

वृष्टुप् , ४ द्विपदा प्रतिप्रा ।

आययो अनाययो रस्तस्त उग्र आययो ।

या ते वरममर्षति ॥ १ ॥

विदहो नाम ते पिता मन्त्रार्थी नाम ते माता ।

न दिनं त्यमंति य—स्यमात्मानमायया ॥ २ ॥

नीर्विलिङ्केऽर्थेनया—वायवीत्यर्थेनया ।

वृष्टुप् वृष्टुर्वर्धनीति निरुद्ध ॥ ३ ॥

अलगात्तानि नृप्यां निरुद्धात्तान्युत्तानि ।

नीरुद्धात्तानि ॥ ४ ॥

॥ ७१ ॥ ( अथर्व० ६।३०।१-३ )

उपरिवध्रवः । शमी ( पापशानम् ) । जगती, २ त्रिष्टुप्,  
३ चतुष्पाच्छंकुमत्तपुष्टुप् ।

देवा इमं मधुना संयुतं यधं  
सरस्वत्यामधि मणार्चचर्हुषः ।  
इन्द्रं आसीत् सौरपतिः शतक्रतुः  
क्रीनाशा आसन् मरुतः सुदानवः ॥ १ ॥  
यस्ते मर्दोऽचकेशो विकेशो  
येनाभिहस्यं पुरुषं कृणोषि ।  
आराव त्वदन्या वनानि वृक्षि  
त्वं शमि शतवल्गुं वि रौह ॥ २ ॥  
पृष्टपलाशो सुमंगे धर्पवृद्ध कृतावरि ।  
मातेर्व पुत्रेभ्यो नृड केशेभ्यः शमि ॥ ३ ॥  
॥ ७३ ॥ ( अ० १।१०।८ )  
गोतमो राहुगणः । विधे देवाः । ( वनस्पतिस्वर्गावः ) । गायत्री ।  
मधुमाद्यो वनस्पतिर्मधुमा अस्तु सूर्यः ।  
माघीर्गावो भवन्तु नः ॥ ८ ॥

॥ ७४ ॥ ( अ० १।०८।५-८ )

वाविश्री सूर्या ऋषिः । सोमः । अनुष्टुप् ।

सोमेनादित्या बलिनः सोमेन पृथिवी मही ।  
अयो नक्षत्राणामेषा सुपस्थे सोम आर्हितः ॥ २ ॥  
सोमं मन्यते पविमान् यत् संपिपन्त्योपधिम् ।  
सोमं यं प्रक्षणाणीं विदुर्न तस्याश्नाति कश्चन ॥ ३ ॥  
आच्छद्विधानैर्गुपितो यर्हितः सोम रक्षितः ।  
प्राणामिच्छन्वन्तिष्ठति न तैश्चास्ति पार्थिवः ॥ ४ ॥

॥ ७५ ॥ ( अ० १।१०।६ )

गोतमो राहुगणः । सोमवनस्पतिः । गायत्री ।

त्वं च सोम नो यदो जीवातुं न मत्तमहे ।  
प्रियस्तोत्रो वनस्पतिः ॥ ६ ॥

॥ ७६ ॥ ( अथर्व० १।३४।१-५ )

अथर्वा । मधुवनस्पतिः ( मधुविषा ) । अनुष्टुप् ।

इयं वीरन्मधुजाता मधुना त्वा यनामसि ।  
मयोऽधि प्रजातासि सा नो मधुमत्तकृधि ॥ १ ॥

जिह्वाया अग्रे मधु मे जिह्वामुले मधूलकम् ।  
ममेदह कृतावलो ममं चित्तमुपायसि ॥ २ ॥  
मधुमन्मे निकर्मणं मधुमन्मे परार्यणम् ।  
वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधुसंदशः ॥ ३ ॥  
मधौरस्मि मधुतरो मधुधाममधुमत्तरः ।  
मामिह किल त्वं वनाः शाखां मधुमतीमिव ॥ ४ ॥  
परि त्वा परित्वनुने क्षुणागामविद्विषे ।  
यथा मां कामिन्यलो यथा मन्त्रार्पणा अस्तः ॥ ५ ॥

योगचिकित्सा ।

॥ ७७ ॥ ( अथर्व० ६।१४।१-३ )

बभ्रुविह्वलः । बलासः ( बलासनाशनम् ) । अनुष्टुप् ।

अस्थिहंसं परुहंसं मार्थितं हृदयामयम् ।  
बलासं सर्वं नादाया हृष्टा यश्च पर्यसु ॥ १ ॥  
निर्वलासं बलासिनः क्षिणोमि मुक्तरं यथा ।  
छिनद्ध्यस्य धन्यं मूलमुर्वाया इय ॥ २ ॥  
निर्वलासेतः प्र पता-शुंगः शिशुको यथा ।  
अयो इह इय हाय-नोपं द्राक्षपरिहृ ॥ ३ ॥

॥ ७८ ॥ ( अथर्व० ६।१०।५।१-३ )

उन्मोचनः । वासा ( वासवमनम् ) । अनुष्टुप् ।

यथा मनो मनस्केतैः पतुपतत्याशुमत् ।  
एवा त्वं काले प्र पत मनसोऽनु प्रवात्यम् ॥ १ ॥  
यथा वाणः सुसंशितः पतुपतत्याशुमत् ।  
एवा त्वं काले प्र पत पृथिव्या अनु संयतम् ॥ २ ॥  
यथा सूर्यस्य रुद्रमयः पतुपतत्याशुमत् ।  
एवा त्वं काले प्र पत समुद्रस्यानु विश्वरम् ॥ ३ ॥

॥ ७९ ॥ ( अथर्व० १।१०।१-४ )

ब्रह्मा । सूर्यो, हरिमा ह्रदोगय ( ह्रदोग-कामिला-नाशनम् ) ।  
अनुष्टुप् ।

अनु सूर्यमुदयतां हृदयोतो हरिमा च ते ।  
गो रोहितस्य वर्षेन तेन त्वा परि धमसि ॥ १ ॥  
परि त्वा रोहितैर्धेनैर्दीर्घायुत्वायं धमसि ।  
यथायमेषा अस्त-द्यो अदरितो सुवत् ॥ २ ॥



या रोहिणीदेवत्या ॥ गायो या उत रोहिणीः ।  
 रूपं रूपं वयो वयं स्ताभिष्ट्या परि दध्मसि ॥ ३ ॥  
 शुकेषु ते हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि ।  
 अयो हारिद्रवेषु ते हरिमाणं नि दध्मसि ॥ ४ ॥

॥ ८० ॥ ( अथर्व० १।८।१-५ )

हरिद्रव्याः । वनस्पतिः, यक्ष्मनाशनम् ( क्षेत्रियरोगनाशनम् ) ।  
 अनुष्टुप्, ३ पद्यापङ्क्तिः, ४ विराट्, ५ मित्रस्यधापङ्क्तिः ।  
 उदगाता भगवती विचृतौ नाम तारके ।  
 वि क्षेत्रियस्य मञ्जता-मध्मं पार्श्वमुत्तमम् ॥ १ ॥  
 अपेयं रात्र्युच्छ्रित्व-पौच्छ्रित्वभिरुत्तरीः ।

वीरत् क्षेत्रियनाश-न्यप क्षेत्रियमुच्छ्रतु ॥ २ ॥

धमोरुनकाण्डस्य यवस्य

ते पलाय्या तिलस्य तिलपिञ्ज्या ।

वीरत् क्षेत्रियनाश-न्यप क्षेत्रियमुच्छ्रतु ॥ ३ ॥

नर्मस्ते लाङ्गलेभ्यो नर्म ईपायुगेभ्यः ।

वीरत् क्षेत्रियनाश-न्यप क्षेत्रियमुच्छ्रतु ॥ ४ ॥

नर्मः सनिष्ठाक्षेभ्यो नर्मः सदैश्येभ्यः ।

नर्मः क्षेत्रस्य पतये वीरत्

क्षेत्रियनाशन्यप क्षेत्रियमुच्छ्रतु ॥ ५ ॥

॥ ८१ ॥ ( अथर्व० ६।१३।१-५ )

अथर्वा । वनस्पतिः ( क्षीरत्वम् ) । अनुष्टुप्, ३ पद्यापङ्क्तिः ।

त्यं वीर्यां श्रेष्ठतमा-मिश्रुतास्योपधे ।

हमं मे अद्य पूर्णं ह्रीवमोपशिर्नं रुधि ॥ १ ॥

ह्रीवं कृष्योपशिर्न-मथो कुरीरिणं रुधि ।

अयास्येन्द्रो प्रार्थभ्या-मुमे भिनत्याण्डवौ ॥ २ ॥

ह्रीवं ह्रीवं त्वाकरं यध्रे वधिं त्वाकरं

अरसात्सं त्वाकरम् ।

कुरीरमस्य शीर्षणि कुम्भं चाधिनिदध्मसि ॥ ३ ॥

ये ते नाज्यौ देघरुते ययोस्तिष्ठति वृष्ण्यम् ।

ते ते भिनन्ति शर्म्यया-मुप्या अर्थे मुष्कयोः ॥ ४ ॥

यथा नडं कुशिपुने श्रियो भिन्दन्त्यश्मना ।

प्या भिनन्ति ते शेषो-ऽमुप्या अर्थे मुष्कयोः ॥ ५ ॥

॥ ८१ ॥ ( अथर्व० ७।७४।१-४ )

अथर्वाः । मन्त्रोक्ताः, ४ जातवेदः ( गण्डमाला-  
 विचित्रा ) । अनुष्टुप् ।

अपचितं लोहिनीनां कृष्णा मातेति शुधुम ।

मुनेर्देवस्य मूर्तेन सर्वा विध्यामि ता अहम् ॥ १ ॥

विध्याभ्यासां प्रथमां विध्याभ्युत मध्यमाम् ।

इदं जघन्यामासामा छिन्नानि स्तुकांमिष ॥ २ ॥

त्याष्टेणाहं घर्चसा वि तं ह्यर्धममीमदम् ।

अयो यो मन्युर्पते तमुं ते शमयामसि ॥ ३ ॥

प्रतेन त्वं प्रतपते समक्तो

विश्वाहा सुमना दीदिहीह ।

तं त्वा वयं जातवेदः समिद्धं

प्रजायन्त उर्पं सदेम सर्वे ॥ ४ ॥

॥ ८३ ॥ ( अथर्व० ७।७६।१-६ )

अथर्वा । १, २ अपविद्मैष्यं, ३-६ जायान्यः, इन्द्रः,  
 ( गण्डमालाविचित्रा ) । अनुष्टुप्, १ विराट्, २  
 परोष्णिक्, ४ त्रिष्टुप्, ५ भुरिगनुष्टुप् ।

आ सुस्रसः सुस्रसो असंतीभ्यो असंत्तराः ।

सेहोरसतरा लवणाद् विह्वदीयसीः ॥ १ ॥

या त्रैव्या अपचितो-ऽथो या उर्पपक्ष्याः ।

विजान्ति या अपचितः स्वयंस्रसः ॥ २ ॥

यः कीकसाः प्रशूनाति तलीद्यमभतिष्ठति ।

निर्हास्तं सर्वं जायान्यं यः कथं ककुद्दि ध्रितः ॥ ३ ॥

पक्षी जायान्यः पतति स आ विंशति पूर्णम् ।

तदक्षितस्य भेषज-मुभयोः सुक्षतस्य च ॥ ४ ॥

विप्र वै ते जायान्यं जानं यतो जायान्यं जायसे ।

कथं ह तत्र त्वं हनो यस्य कृष्णो हविर्गृहे ॥ ५ ॥

धूपत् पिब कलशे सोममिन्द्र

यूत्रहा शूर समरे वसन्ताम् ।

मार्यन्दिने सर्वत आ वृषस्य

रयिष्ठानो रयिमसासु धेदि ॥ ६ ॥

॥ ८४ ॥ ( अथर्व० ६।८२।१-४ )

मगः । १ सूर्यः चन्द्रमाः, २ रोहिणी, ३ रामायणी  
( मेघज्यम् ) । अनुष्टुप्, ४ एकवसाना द्विपदा  
निचृदाचर्षुवृष्टु ।

अपंचितः प्र पंतत सुपणो वंसतेरिव ।  
सूर्यः कृणोतु मेपजं चन्द्रमा वोऽपॉच्छतु ॥ १ ॥  
एन्येका श्येन्येका कृष्णैका रोहिणी द्वे ।  
सर्वीसामग्रमं नामा—वीरप्नीरपेतन ॥ २ ॥

असृत्तिका रामाय—प्यपचित् प्र पतिप्यति ।  
ग्लौरितः प्र पतिप्यति स गलुन्तो नशिप्यति ॥ ३ ॥  
घीहि स्वामाहुति जुपाणो  
मनसा स्वाहा मनसा यदिदं जुहोमि ॥ ४ ॥

॥ ८५ ॥ ( अथर्व० १।१३।१-४ )

अथर्वा । वनस्पतिः [ आधितिः ] ( श्वेतकुष्ठनाशनम् ) ।  
अनुष्टुप् ।

नृक्षजातास्योपथे रामे कृष्णे अंसिक्वि च ।  
इदं रजनि रजय किलासं पलितं च यत् ॥ १ ॥  
किलासं च पलितं च निरितो नाशया पृषत् ।  
आ त्या स्यो विंशतां वर्णः परां शुद्धानि पातय ॥ २ ॥  
असितं ते प्रलप्यन—मास्थानमसितं तव ।  
असिक्वन्यस्योपथे निरितो नाशया पृषत् ॥ ३ ॥  
अस्थिजस्य किलासस्य तनुजस्य च यत् त्वचि ।  
दृष्यां कृतस्य प्रक्षणां लक्ष्मं श्वेतमनीनशम् ॥ ४ ॥

॥ ८६ ॥ ( अथर्व० १।१४।१-४ )

प्रक्षा । आधुरी वनस्पतिः ( श्वेतकुष्ठनाशनम् ) । अनुष्टुप्,  
२ निचृदध्यापवृष्टिः ।

सुपणो जातः प्रथम—स्तस्य त्वं पित्तमांसिय ।  
तदांसुरी युधा जिता रूपं चक्रे वनस्पतीन् ॥ १ ॥  
आसुरी चक्रे प्रथमेदं  
किलासमेपजमिदं किलासुनाशनम् ।  
अनीनदात् किलासं सरूपामकरत् त्वचम् ॥ २ ॥

सरूपा नाम ते माता सरूपो नाम ते पिता ।  
सरूपकृत् त्वमोपथे सा सरूपमिदं कृधि ॥ ३ ॥  
श्यामा सरूपंकरणी श्रुयिष्या अघुद्धृता ।  
इदमु पु ॥ साधय पुनां रूपानि कल्पय ॥ ४ ॥

॥ ८७ ॥ ( अथर्व० १।१५।१-४ )

श्रुयिष्याः । यस्मिनाशनोऽग्निः ( तन्म—नाशनम् ) । त्रिष्टुप्,  
२-३ विराड्गर्मा, ४ पुरोऽनुष्टुप् ।

यदग्निरापो अददत् प्रविश्य  
यत्राकृष्वन् धर्मधृतो नमोसि ।  
तत्र त आहुः परमं जनित्रं  
स नः संविद्वान् परं वृङ्गिध तन्मन् ॥ १ ॥  
यद्यचिर्विदि वासिं शोचिः  
शकल्येपि यदि वा ते जनित्रम् ।  
हृदुर्नामासि हरितस्य देव  
स नः संविद्वान् परं वृङ्गिध तन्मन् ॥ २ ॥  
यदि शोको यदि वाभिशोको  
यदि वा रानो वरुणस्यासि पुत्रः ।  
हृदुर्नामासि हरितस्य देव  
स नः संविद्वान् परं वृङ्गिध तन्मन् ॥ ३ ॥  
नमः शीतार्यं त्वमने नमो  
रुरार्यं शोचिर्वै रुणोमि ।  
यो अन्येषुर्दमयपुर्भ्येति  
तृतीयकायं नमो अस्तु तन्मने ॥ ४ ॥

॥ ८८ ॥ ( अथर्व० ७।११६।१-२ )

अथर्वाहिताः । चन्द्रमाः ( वरु—नाशनम् ) । १ पुरोणिह्,  
२ एकवसाना द्विपदा आत्मेतुष्टु ।

नमो रुराय ज्यवनाय नोदनाय धृष्णवे ।  
नमः शीतार्यं पूर्वकामहृत्त्यने ॥ १ ॥  
या अन्येषुर्दमयपुर्भ्येतीमं मण्डूकमभ्येत्यमतः २  
( ६१८ )

॥ ८३ ॥ ( अथर्व० ५।१६।२-६४ )

भृगुविमराः । तत्तमनाशनः । अनुष्टुप्, १ भुरिक्, २ भिष्टप्,  
५ विराट् पञ्चमिहती ।

अग्निस्तत्तमानमप याधतामित्रः

सोमो प्राया वरुणः पुतदक्षाः ।

घेदिर्वहिः समिधः शोशुचाना

अप द्वेपांस्यमुया भवन्तु

॥ १ ॥

अयं यो विश्वान् हरितान् कृणोषि

उच्छ्रोचयन्नग्निरिवामिदुष्यन् ।

अधा हि तत्तमन्नसो हि भुया

अधा न्यङ्धराड् वा परेहि

॥ २ ॥

यः पुरुषः पारुपेयोऽघध्वस ईवारुणः ।

तत्तमानं विश्वधावीर्या—धराञ्च परां सुव ॥ ३ ॥

अधराञ्च प्र हिणोमि नमः कृत्वा तत्तमने ।

शकुम्भरस्य मुष्टिहा पुनरेतु महावृषान् ॥ ४ ॥

ओको अस्य मूर्जवन्तु ओको अस्य महावृषाः ।

यार्जजातस्तन्मन्स्तावा—नसि बलिहकेषु न्योचुरः ५

तत्तमन् व्यालं वि गेदु व्यङ्क भूरि यावय ।

दासीं निष्टकरीमिच्छ ता यज्ञेन समर्पय ॥ ६ ॥

तत्तमन् मूर्जवतो गच्छ बलिहकान् वा परस्तराम् ।

शुद्रामिच्छ प्रकुर्व्य तां तत्तमन्धीव धूनुहि ७

महावृषान् मूर्जवतो यन्ध्वान्नि प्रेत्य ।

प्रेतानि तत्तमने द्रुमो अन्यक्षेत्राणि वा इमा ॥ ८ ॥

अन्यक्षेत्रे न रमसे वृशी सन्मृडयासि नः ।

अमृदु प्रायैस्तत्तमा स गमिष्यति बलिहकान् ९

यत् त्वं शीतोऽथो रुरः सह कासावैषयः ।

भीमास्ते तत्तमन् द्वेतयः

ताभिः स्म परि वृद्धिभ नः

॥ १० ॥

मा स्मेतान्सर्पान् कुरथा बलासं कासमुद्युगम् ।

मा स्मातोऽवाडेः पुन—स्तत्त्वा तत्तमन्प्रपुवे ११

तत्तमन् धारा यन्तास्तेन स्वप्रा कारिकाया मद् ।

गाम्ना धातृव्येण मद् गच्छामुमरणं जनम् १२

तृतीयकं विहृतीयं संदन्दिमुत शारदम् ।

तत्तमानं शीतं कुरं धैर्यं नादाय पार्षिकम् १३

गन्धारिभ्यो मूर्जवद्भयो—ऽङ्गेभ्यो मगधेभ्यः ।

मैष्यन् जनमिव शेषाधि तत्तमानं परि दक्षसि १४

॥ १० ॥ ( अ० १।५०।११-१३ )

प्रक्षरः काण्वः । सूर्यः ( रोगघ्न्य सविपदा, १३ अन्त्योऽर्धर्षः

द्विपदप्रथ ) । अनुष्टुप् ।

उद्यद्य मित्रमद् आरोहद्रुचरां दिवम् ।

हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय ॥ ११ ॥

शुकेषु मे हरिमाणं रोपणाकासु दग्मसि ।

अथो हारिद्रिषेपु मे हरिमाणं नि दग्मसि ॥ १२ ॥

उदगादयमादिस्यो विद्वेन सहसा सह ।

द्विपन्तं ममै रुन्धयन् मो अहं द्विपन्ते रथम् १३

॥ ११ ॥ ( अथर्व० ४।१३।१-७ )

श-तातिः । चन्द्रवाः, विधे देवाः, १ देवा, २-३ वातः,

४ मरुताः, ६-७ हस्ताः, ( रोगनिवारणम् ) । अनुष्टुप् ।

उत देवा अयंहितं देवा उर्जयथा पुनः ।

उतागञ्चरुर्प देवा देवा जीवयथा पुनः ॥ १ ॥

द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः ।

दक्षं ते अन्य आवातु व्युन्यो वातु यद् रपः २

आ वात वाहि भेपजं वि वात वाहि यद् रपः ।

त्वं हि विश्वमेपज देवानां द्रुत ईयसे ॥ ३ ॥

त्रायन्तामिमं देवा—त्रायन्तां मरुतां गुणाः ।

त्रायन्तां विश्वां भूतानि यथायमरुपा असेत् ४

आ त्वागमं शंतातिभि—रथो अरिष्टतातिभिः ।

दक्षं त उग्रमामारिषं पर यक्षं सुवामि ते ॥ ५ ॥

अयं मे हस्तो भगवा—नयं मे भगवत्तरः ।

अयं मे विश्वमेपजो—ऽयं शिवाभिर्मर्शनः ॥ ६ ॥

( ३४१ )

हस्ताभ्यां दशशाखाभ्यां जिह्वा वाचः पुरोगमी ।  
अनामयितुभ्यां हस्ताभ्यां  
ताभ्यां त्वाभि मृशामसि ॥ ७ ॥

॥ ९२ ॥ (अथर्व ११७१-४)

ब्रह्मा । योषितः घमन्यथ (हरिरक्षाभिवृत्तये घमनीबन्धनम्) ।  
अनुष्टुप्, १ भुरिगनुष्टुप्, ४ त्रिषदाथी गायत्री ।  
अमूर्यां यन्ति योषितौ हिरा लोहितवाससः ।  
अभातर इव जामय-स्तिष्ठन्तु हतवर्चसः ॥ १ ॥  
तिष्ठाधरे तिष्ठ पर उत त्वं तिष्ठ मध्यमे ।  
कनिष्ठिका च तिष्ठति तिष्ठादिजुमर्निर्मही ॥ २ ॥  
शतस्य धमनीनां सहस्रस्य हिराणां ।  
अस्थरिन्मध्यमा इमाः साकमन्ता अरंसत ॥ ३ ॥  
परि यः सिकतावती धनूश्हेत्यक्रमीत् ।  
तिष्ठतेल्यता सु कम् ॥ ४ ॥

॥ ९३ ॥ (अथर्व ६४४१-३)

विश्वामित्रः । वनस्थसिः (रोगनाशनम्) । अनुष्टुप्, ३ त्रिषदा  
महावृत्ती ।  
अस्याद् द्यौरस्यात् पृथिवी  
अस्याद् विश्वमिदं जगत् ।  
अस्यवृक्षा ऊर्ध्वस्वप्ना-स्तिष्ठाद् रोगो अयं तव १  
शतं या भैपजानि ते सहस्रं संगतानि च ।  
श्रेष्ठमास्त्रावभैपजं यस्तिष्ठे रोगनाशनम् ॥ २ ॥  
रुद्रस्य मूर्धमस्यमूर्तस्य नाभिः ।  
विपाणका नाम वा असि  
पितृणां मूलाद्द्विषता वातीकृतनाशनी ॥ ३ ॥  
॥ ९४ ॥ (अथर्व ६१९१-३)

भागलिः । १ सूर्यः, २ गात्रः, ३ भैपत्रम् । अनुष्टुप् ।  
उत् सूर्यो दिव एति पुरो रक्षांसि निजूर्ध्व ।  
आदित्यः पर्वतेभ्यो विश्वहृष्टो बहृष्टहा ॥ १ ॥  
नि गावो गोष्ठे असदन् नि मृगासो अविक्षत ।  
न्युर्ध्वमयो नदीनां न्यहृष्टा अलिप्सत ॥ २ ॥

आयुर्वेदं विपश्चितं धृतां कर्णस्य वीर्यम् ।  
आमारिषं विश्वभैपजीम-स्याहृष्टान् नि शमयत् ३

॥ ९५ ॥ (अथर्व २१३१-६)

अत्रिराः । भैपत्रं, आयुः, घनन्तरिः, (आश्रावस्य भैपत्रम्) ।  
अनुष्टुप्, ६ त्रिषदा स्वराद्वारिष्ठान्महावृत्ती ।  
अदो यद्वधाव-त्यवत्कमाधि पर्वतात् ।  
तत् ते कृणोमि भैपजं सुभैपजं यथासंसि ॥ १ ॥  
आदृक्षा कुविदृक्षा शतं या भैपजानि ते ।  
तेर्षामसि त्वमुत्तम-मर्नास्त्रावभरौगणम् ॥ २ ॥  
नीचैः घनन्त्यसुरा अदृक्षार्णमिदं महत् ।  
तदास्त्रावस्य भैपजं तदु रोगमनीनशत् ॥ ३ ॥  
उपजीका उद् मरन्ति समुद्रादधि भैपजम् ।  
तदास्त्रावस्य भैपजं तदु रोगमशीशमत् ॥ ४ ॥  
अदृक्षार्णमिदं महत् पृथिव्या अयुर्वृतम् ।  
तदास्त्रावस्य भैपजं तदु रोगमनीनशत् ॥ ५ ॥  
शं नो भयन्त्युप ओषधयः शिवाः ।  
इन्द्रस्य वज्रो अप हन्तु रक्षसं  
आराद् विरुष्टा इषवः पतन्तु रक्षसां ॥ ६ ॥

॥ ९६ ॥ (अथर्व ११३१-९)

अथर्वी । १ पत्रन्याः, २ मित्रः, ३ वरुणः, ४ बन्द्रः, ५ सूर्यः,  
(मृगभेषजम्) । अनुष्टुप्, १-५ पद्यापठिकाः ।  
विद्या शरस्य पितरं पुर्जग्यं शतवृण्यम् ।  
तेना ते तन्वेऽं शं करं  
पृथिव्यां ते निपेचनं बहिष्टे अस्तु यालिति ॥ १ ॥  
विद्या शरस्य पितरं मित्रं शतवृण्यम् ।  
तेना ते तन्वेऽं शं करं  
पृथिव्यां ते निपेचनं बहिष्टे अस्तु यालिति ॥ २ ॥  
विद्या शरस्य पितरं वरुणं शतवृण्यम् ।  
तेना ते तन्वेऽं शं करं  
पृथिव्यां ते निपेचनं बहिष्टे अस्तु यालिति ॥ ३ ॥

विद्या शस्त्रस्य पितरं चन्द्रं शतवृण्यम् ।  
 तेनां ते तन्वेऽं शं करं  
 पृथिव्यां तं निपेचनं वहिष्ठं अस्तु बालितं ॥ ४ ॥  
 विद्या शस्त्रस्य पितरं सूर्यं शतवृण्यम् ।  
 तेनां ते तन्वेऽं शं करं  
 पृथिव्यां तं निपेचनं वहिष्ठं अस्तु बालितं ॥ ५ ॥  
 यदन्वेष्टुं गवीन्योर्य—द्वस्तायधि संश्रुतम् ।  
 एषा ते सूर्यं मुच्यतां वहिर्वालितं सर्वकम् ॥ ६ ॥  
 प्र तं भिनद्धि मेहं नं ध्वं घेज्ञान्ता इव ।  
 एषा ते सूर्यं मुच्यतां वहिर्वालितं सर्वकम् ॥ ७ ॥  
 धिपितं ते घस्तिविलं समुद्रस्थोदधेरिव ।  
 एषा ते सूर्यं मुच्यतां वहिर्वालितं सर्वकम् ॥ ८ ॥  
 यथैपुका पुरापत—दवंसष्टाधि धन्वनः ।  
 एषा ते सूर्यं मुच्यतां वहिर्वालितं सर्वकम् ॥ ९ ॥  
 ॥ ९७ ॥ ( अथर्वं ४१९१-१० )  
 मृगः । त्रैलोक्यप्रचनम् । अनुष्टुप्, २ कवुमती,  
 १ पद्यावृत्तिः ।  
 पतिं जीवं प्रायमाणं पयंतस्यास्यक्ष्यम् ।  
 पिथैभिर्वैदं पतिभिर्जीवनाय कम् ॥ १ ॥  
 परिपाणं पुरं पाणां परिपाणं गन्तमसि ।  
 अयानामयनां परिपाणाय तस्थिवे ॥ २ ॥  
 उतायि परिपाणं यातुज्जमनमाञ्जन ।  
 उतामृतम्य त्वं पेशार्थो अलि  
 जीपगोजनमयो हरितभेषजम् ॥ ३ ॥  
 यस्याञ्जनं प्रत्यं—स्यङ्गमङ्गं परं परः ।  
 नतो यस्मिं वि पाधम्य उषो गंयमदीरिय ॥ ४ ॥  
 जैनं प्राप्नोति ह्यगो न हृत्वा नाभिज्ञाचनम् ।  
 जैनं विष्णुचमयन् यन्वा विमर्त्याञ्जन ॥ ५ ॥  
 ह्यगम्यत्वाद् दुःपय्याद् दुष्टनाष्टमलादुन ।  
 हृदाद्वैद्ययोगो योगम् तस्मात् पाद्याञ्जन ॥ ६ ॥

इदं विद्वानाञ्जनं सत्यं वक्ष्यामि नानृतम् ।  
 सुनेयमश्वं गामह—मात्मानं तव पूरुष ॥ ७ ॥  
 त्रयो दासा आञ्जनस्य त्वमा वलास आदहिः ।  
 वर्षिष्ठः पर्वतानां त्रिकुक्त्राम ते पिता ॥ ८ ॥  
 यदाञ्जनं त्रैकुकुदं जातं हिमवतस्परि ।  
 यातुश्च सर्वोऽज्जमयत् सर्वोश्च यातुधान्यः ॥ ९ ॥  
 यदि वालिं त्रैकुकुदं यदि यामुनमुच्यसे ।  
 उभे तं भद्रे नास्ती ताभ्यां नः पाद्याञ्जन ॥ १० ॥  
 ॥ ९८ ॥ ( अथर्वं ७३०१ )  
 मृगशिराः । शालावृत्तिः, मित्रः, ब्रह्मणस्पतिः, सविता च  
 ( अञ्जनम् ) । वृहती ।  
 स्वाक्तं मे घावापृथिवी स्वाक्तं मित्रो अकरयम् ।  
 स्वाक्तं मे ब्रह्मणस्पतिः स्वाक्तं सविता करत् ॥ ११ ॥  
 ॥ ९९ ॥ ( अथर्वं ७३०१ )  
 अथर्वः । अक्षि, मनः ( अञ्जनम् ) । अनुष्टुप् ।  
 अश्वौ नौ मधुसंकाशे अनिकं नौ समज्जनम् ।  
 अन्तः कृणुष्व मां हृदि मन इदौ सुहासेति ॥ १२ ॥  
 ॥ १०० ॥ ( अथर्वं १९४५१-१० )  
 मृगः । आञ्जनम्, मन्त्रोक्तदेवताः । १-२ अनुष्टुप् ; १,  
 ५ त्रिष्टुप् ; ६-१० एकावसाना महावृहती ( ६ विराट्,  
 ७-१० मिष्टृत् ) ।  
 श्रुणाहणमियं संनयन् हृत्वा हृत्वाहृतौ गृहम् ।  
 चक्षुर्मन्त्रस्य हृदाद्वैः पृथीरयि शृणाञ्जन ॥ १ ॥  
 यदस्मात् दुःप्यप्यं यद् गोपु यद्यं नो गृहे ।  
 अनामगसं च दुर्दोदः प्रियः प्रति मुञ्चताम् ॥ २ ॥  
 अपामूर्जं योजयौ वापृधानं  
 अग्रेऽज्ञतमधि जातयद्विद्वन् ।  
 यन्तुपीरं पयंतीं यदाञ्जनं  
 विद्वान् प्रविष्टोः वरुद्विष्टुयास्तं ॥ ३ ॥

चतुर्वीरं यध्यत् आञ्जनं ते  
सर्वा दिशो अर्भयास्ते भवन्तु ।  
ध्रुवस्तिष्ठासि सवितेय चायै  
इमा दिशो अभि ह्रन्तु ते वलिम् ॥ ४ ॥  
आध्वैकं मणिमेकं कृणुष्व  
स्ताद्येकेना पिवैकमेपाम् ।  
चतुर्वीरं नैर्ऋतेभ्यश्चतुर्भ्यो  
प्राह्यां यन्धेभ्यः परिर पात्वस्मान् ॥ ५ ॥  
अग्निर्माग्निनावतु प्राणार्यापानायार्युपे  
वर्चसे ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥ ६ ॥  
इन्द्रो मेन्द्रियेनावतु प्राणार्यापानायार्युपे  
वर्चसे ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥ ७ ॥  
सोमो मा सौम्येनावतु प्राणार्यापानायार्युपे  
वर्चसे ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥ ८ ॥  
भर्गो मा भर्गेनावतु प्राणार्यापानायार्युपे  
वर्चसे ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥ ९ ॥  
मरुतो मा गणैरवन्तु प्राणार्यापानायार्युपे  
वर्चसे ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥ १० ॥  
॥ १०१ ॥ ( अथर्व १९१४१-१० )  
मृगः । आञ्जनम्, ८-९ वरुणः ( भैषज्यम् ) । अग्न्युपः  
४ वज्रपदा शङ्खमतां वणिक्, ५ निचुद्विपमा त्रिपदा  
गायत्री ।

आयुषोऽसि प्रतरणं विप्रं मेपजमुच्यसे ।  
तदाञ्जनं त्वं शैताते शमापो अर्भयं कृतम् ॥ १ ॥  
यो हरिमा जायान्यो ह्रमेदो विसर्पकः ।  
सर्वे ते यश्ममैर्ऋतो वहिर्निर्हन्वाञ्जनम् ॥ २ ॥  
आञ्जनं पृथिव्यां जातं मद्रं पुंश्चजीवनम् ।  
कृणोत्वप्रमायुकं रथंजतिमनांसम् ॥ ३ ॥  
प्राणं प्राणं त्रायस्वा सो अलवे मृद ।  
निर्ऋते निर्ऋत्या नः पारोभ्यो मुञ्च ॥ ४ ॥

सिन्धोर्गमोऽसि विद्युतां पुष्पम् ।  
वातः प्राणः सूर्यश्चक्षुर्दिवस्पयः ॥ ५ ॥  
देवाञ्जनं वैककुब्धं परिर मा पाहि विश्वतः ।  
न त्वा तरन्त्योर्पथयो वाह्याः पर्वतीया उत ॥ ६ ॥  
वीरुदं मध्यमवाचपद् रक्षोहार्मीवचातनः ।  
अर्मीवाः सर्वाश्चातयन् नाशयदभिमा इतः ॥ ७ ॥  
यद्वाीरुदं राजन् वरुणा नृतमाह पूरयः ।  
तस्मात् सहस्रधीर्यं मुञ्च नः पर्यहंसः ॥ ८ ॥  
यदापो मध्या इति वरुणेति यद्विभिम ।  
तस्मात् सहस्रधीर्यं मुञ्च नः पर्यहंसः ॥ ९ ॥  
मित्रश्च त्वा वरुण आनुप्रेयं तुराजन ।  
तां त्वानुगत्य दूरं मागाय पुनरोहतुः ॥ १० ॥  
॥ १०० ॥ ( वा० य० ४।३ )  
( अथनम् । )  
घृष्टस्यासि कनीनकश्चक्षुर्दाऽ असि चक्षुर्मे देहि ३  
॥ १०१ ॥ ( अथर्व ४।५।१-७ )  
ब्रह्मा । रथानं, वृषभः । अग्न्युपः, २ भुरिह्,  
७ पुस्तान्योतिस्तिष्ठिपु ।  
सहस्रं वृषभो यः समुद्रादुदाचरत् ।  
तेना सहस्येना वयं नि जनांस्त्वापयामसि १  
न भूमिं वातो अति धाति नाति पश्यति कश्चन ।  
स्त्रियश्च सर्वाः स्वापय शुनश्चेन्द्रसखा चरेत् २  
प्रोष्ठेश्यास्तल्पेशया नारीर्या धंशुशीर्षरीः ।  
स्त्रियो याः पुण्यगन्धयस्ताः सर्वाः स्वापयामसि ३  
पर्जदेजदजग्रमं चक्षुः प्राणमजग्रमम् ।  
अज्ञान्यजग्रमं सर्वा रारीणामतिशयरे ॥ ४ ॥  
य आस्ते यश्चरति यश्च तिष्ठन् विपश्यति ।  
तेषां सं दम्भो अक्षीणि यथेदं हस्यं तया ॥ ५ ॥  
स्वप्तुं माता स्वप्तुं पिता स्वप्तुं भ्वा स्वप्तुं विप्रपतिः ।  
स्वर्पन्त्वस्ये ज्ञातयः स्वप्त्वयमभितो जनः ॥ ६ ॥  
( ७०६ )

विद्या शरस्य पितरं चन्द्रं शतवृष्ण्यम् ।  
 तेनां ते तन्वेकुं शं करं  
 पृथिव्यां ते निषेचनं वहिष्ठं अस्तु बालिति ॥ ४ ॥  
 विद्या शरस्य पितरं सूर्यं शतवृष्ण्यम् ।  
 तेनां ते तन्वेकुं शं करं  
 पृथिव्यां ते निषेचनं वहिष्ठं अस्तु बालिति ॥ ५ ॥  
 यद्वान्नेपु गवीन्योर्यं—द्रस्तावधि संश्रुतम् ।  
 एषा ते मूर्धं मुच्यतां वहिर्वालिति सर्वकम् ॥ ६ ॥  
 प्र ते भिनन्नि मेहेनं यत्रं वेशन्त्या इव ।  
 एषा ते मूर्धं मुच्यतां वहिर्वालिति सर्वकम् ॥ ७ ॥  
 विपितं ते वस्तिविलं समुद्रस्योदधेरिव ।  
 एषा ते मूर्धं मुच्यतां वहिर्वालिति सर्वकम् ॥ ८ ॥  
 यथेपुका परापत—दर्वस्तुप्राधि धन्वनः ।  
 एषा ते मूर्धं मुच्यतां वहिर्वालिति सर्वकम् ॥ ९ ॥

॥ ९७ ॥ ( अथर्वं ४।९।१-१० )

युगः । श्रेष्ठाद्वाचनम् । अनुष्टुप्, २ कटुमती,  
 ३ पद्यापङ्क्तिः ।

पदि जीवं श्रार्यमाणं पर्यतस्यास्यह्यम् ।  
 यिर्ध्वभिर्द्वैदत्तं पतिधिजीर्वनाय कम् ॥ १ ॥  
 परिपाणं पुरपाणां परिपाणं गवाम्नि ।  
 अर्धानामर्धतां परिपाणाय तस्थिवे ॥ २ ॥  
 उतामि परिपाणं यातुजर्मनमाञ्जन ।  
 उतामृतेस्य त्वं येत्थार्थो भवि  
 जीवमोर्जनमयी हरितमेपुत्रम् ॥ ३ ॥  
 यस्याञ्जन प्रमर्षं—स्यङ्गमङ्गं परणयः ।  
 गतो यमं वि वापस्य उमो मध्यमदीरिव ॥ ४ ॥  
 जैनं प्राप्नोति ह्यग्रे न ह्यया नाभिरोचनम् ।  
 जैनं विष्वग्धमङ्गं यस्या विमर्त्याञ्जन ॥ ५ ॥  
 धृतमन्त्राद् दुःस्वप्नाद् दुष्टात्पुष्टमलादुत ।  
 दृढाद्भयार्थो योगाद् तस्याग्निः पाप्माञ्जन ॥ ६ ॥

इदं विद्वानाञ्जन सत्यं वक्ष्यामि नानृतम् ।  
 सनेयमभ्यं गामह—मात्मानं तव पूरुष ॥ ७ ॥  
 त्रयो दासा आञ्जनस्य त्वमा बलास आदहिः ।  
 वर्षिष्ठः पर्वतानां त्रिकुक्षारं ते पिता ॥ ८ ॥  
 यदाञ्जनं त्रैकुदं जातं हिमवतस्परि ।  
 यातुश्च सर्वाञ्जमयत् सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ ९ ॥  
 यदि वासि त्रैकुदं यदि यामुनमुच्यसे ।  
 उमे ते भद्रे नास्ती ताम्यी नः पाह्याञ्जन ॥ १० ॥

॥ ९८ ॥ ( अथर्वं ७।३०।१ )

सुवज्रिराः । वावापृथिवी, मित्रा, ब्रह्मणस्पतिः, सविता च  
 ( अञ्जनम् ) । गृहीत ।

स्वार्कं मे चावापृथिवी स्वार्कं मित्रो अकरयम् ।  
 स्वार्कं मे ब्रह्मणस्पतिः स्वार्कं सविता कर्तृ ॥ १ ॥

॥ ९९ ॥ ( अथर्वं ७।३१।१ )

अथर्वा । अक्षि, मनः ( अञ्जनम् ) । अनुष्टुप् ।  
 अक्ष्यौ नौ मधुसंकाशे अनीकं नौ समञ्जनम् ।  
 अन्तः कृणुष्व मां हृदि मन् इतो सदासति ॥ १ ॥

॥ १०० ॥ ( अथर्वं १९।४५।१-१० )

युगः । आञ्जनम्, मन्त्रोक्तदेवता । १-२ अनुष्टुप् ; ३,  
 ५ त्रिष्टुप् ; ६-१० एकावसाना महावृहतां ( ६ विराट्,  
 ७-१० त्रिष्टुप् ) ।

श्रुणाहृणमिध संनयन् हृत्वां कृत्याकृतौ गृहम् ।  
 चक्षुर्मन्त्रस्य दृष्टिः पृष्टिरपि श्रुणाञ्जन ॥ १ ॥  
 यदस्मात्तु दुःस्वप्नं यद् गोषु यद्यं नो गृहे ।  
 अनामगमं च दृष्टादं प्रियः प्रति गुञ्जताम् ॥ २ ॥  
 अपामृजं भोजनो यायृधानं  
 अग्नेर्जातमपि जातयेदसः ।  
 यन्तुधीरं पर्यतीयं यदाञ्जनं  
 दिदां प्रदिदां करदिच्छिपारतं ॥ ३ ॥

( ६८९ )

चतुर्वीरं वध्यत आज्ञनं ते  
 सर्वा दिशो अमयास्ते भवन्तु ।  
 ध्रुवस्तिष्ठासि सवितेव चार्यं  
 इमा दिशो अमि हरन्तु ते वल्लिम् ॥ ४ ॥  
 आहवैकं मणिमेकं कृणुष्व  
 स्नाह्येकेना पियैकमेवाम् ।  
 चतुर्वीरं नैर्ऋतेभ्यश्चतुर्भ्यो  
 ग्राह्यां वन्देभ्यः परिरं पात्वसान् ॥ ५ ॥  
 अग्निर्माग्निर्नावतु प्राणार्यापानायार्युषे  
 वचसे ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभृतये स्वाहा ॥ ६ ॥  
 इन्द्रो मेन्द्रियेणावतु प्राणार्यापानायार्युषे  
 वचसे ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभृतये स्वाहा ॥ ७ ॥  
 सोमो मा सौम्येनावतु प्राणार्यापानायार्युषे  
 वचसे ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभृतये स्वाहा ॥ ८ ॥  
 भगो मा भगेनावतु प्राणार्यापानायार्युषे  
 वचसे ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभृतये स्वाहा ॥ ९ ॥  
 मरुतो मा गुणैरवन्तु प्राणार्यापानायार्युषे  
 वचसे ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभृतये स्वाहा ॥ १० ॥  
 ॥ १०१ ॥ ( अथर्व० १९।४४।१-१० )  
 सूत्रः । आञ्जनम्, ८-९ वरुणः ( मेघज्यम् ) । अनुष्टुप् ।  
 ४ वदुषदः शङ्कमती वरिष्कः ५ निचुद्विषमा त्रिपदा  
 गायत्री ।  
 आयुषोऽसि प्रतरणं विप्रै मेपजमुच्यसे ।  
 तदाञ्जनं त्वं शीतते शमापो अमयं कृतम् ॥ १ ॥  
 यो हस्तिमा जायान्यो हस्ते दो विसर्पकः ।  
 सयै ते यस्ममहैभ्यो वह्निर्निहन्त्याञ्जनम् ॥ २ ॥  
 आज्ञनं पृथिव्यां जातं भद्रं पुण्यजीवनम् ।  
 कृणोत्वप्रमायुकं रयंजतिमनागसम् ॥ ३ ॥  
 प्राणं प्राणं प्रायस्वा सो अस्वे मृद ।  
 निर्वृते निर्वृत्या नः पादोभ्यो मुञ्च ॥ ४ ॥

सिन्धोर्गमोऽसि विद्युतां पुष्पम् ।  
 घातः प्राणः सूर्यश्चक्षुर्विषयः ॥ ५ ॥  
 देवाञ्जनं वैककुद्दं परिरं मा पाहि विभर्तः ।  
 न त्वां तरुण्योर्यधयो वाह्याः पर्वतीया उत ॥ ६ ॥  
 वोऽदं मध्यमवांसपद् रश्मोहार्मीवचातनः ।  
 अमीवाः सर्वाश्चातयन् नाशयदभिमा इतः ॥ ७ ॥  
 यद्वाऽदं राजन् वरुणा नृतमाह पूरयः ।  
 तस्मात् सहस्रवीर्यं मुञ्च नः पर्यहंसः ॥ ८ ॥  
 यदापो अचन्या इति वरुणेति यद्वचिम ।  
 तस्मात् सहस्रवीर्यं मुञ्च नः पर्यहंसः ॥ ९ ॥  
 मित्रश्च त्वा वरुणश्चानुप्रेयसुराञ्जन ।  
 तां त्वानुगत्य दूरं भोगाय पुनरोदतुः ॥ १० ॥  
 ॥ १०१ ॥ ( वा० य० ४।३ )  
 ( अञ्जनम् । )  
 युप्रस्थासि कर्नानकश्चक्षुर्दाऽ अस्ति चक्षुर्मे देहि ३  
 ॥ १०३ ॥ ( अथर्व० ४।५।१-७ )  
 मन्त्राः । स्वापनं, वृषभः । अनुष्टुप्, २ मुरिह्, ७ पुस्तागयेति विष्टुप ।  
 सहस्रगृहो वृषभो यः समुद्रादुदारचरत् ।  
 तेना सहस्येना वयं नि जनान्स्वापयामसि १  
 न भूमिं घातो अति वाति नाति पश्यति कश्चन ।  
 स्त्रियश्च सर्वाः स्वापय शुनश्चेन्द्रसखा चरन् २  
 ग्रेष्ठेश्यास्तल्पेशया नारीर्यं वहाशीर्धरीः ।  
 स्त्रियो याः पुण्यगन्धय स्वाः सर्वाः स्वापयामसि ३  
 पर्जदेजदजग्रमं चक्षुः प्राणमंजग्रमम् ।  
 अज्ञान्यजग्रमं सर्वा रात्रीणामतिशयरे ॥ ४ ॥  
 य आस्ते यश्चरति यश्च तिष्ठन् विपश्यति ।  
 तेषां सं दध्मो अक्षीणि ययेदं हृम्य तया ॥ ५ ॥  
 स्वम्भुं माता स्वम्भुं पिता स्वम्भुं भ्रा स्वम्भुं विदपतिः ।  
 स्वपन्त्यस्यै ज्ञातयः स्वपन्त्यमभितो जनः ॥ ६ ॥



यथा कलां यथा शकं यथार्थं संनयन्ति ।  
एवा दुःष्वप्न्यं सर्वं द्विपते सं नयामसि ॥ ३ ॥

॥ ११० ॥ (अथर्व० ७।१००।१)

यमः । दुःष्वप्ननाशनम् । अनुष्टुप् ।

पर्यावर्ते दुःष्वप्न्यात् पापात् स्वप्न्यादभूत्याः ।  
ब्रह्माहमन्तरं कृष्वे परा स्वप्नमुक्ताः शुचैः ॥ ११ ॥

॥ १११ ॥ (अथर्व० ७।१०१।१)

यमः । दुःष्वप्ननाशनम् । अनुष्टुप् ।

तत् स्थप्ने अर्धमश्रामि न प्रातरधिगम्यते ।  
सर्वं तदस्तु मे शिष्यं नहि तद् दृश्यते दिवा ॥ ११ ॥

॥ ११२ ॥ (अथर्व० ७।१११।१)

श्रुतातिः । सुक्तम् । पथ्यापवृत्तिः ।

शं नो यार्तो घातु शं नस्तपतु सूर्यः ।  
अहानि शं भवन्तु नः शं रात्री प्रति धीयतां  
शमपा नो व्युच्छतु ॥ १ ॥

॥ ११३ ॥ (अथर्व० ६।११३।१-३)

भुवन्निराः ( परस्परचित्तैकीकरणकामः ) । मनुशमनम् ।  
अनुष्टुप् ।

अयं वर्मो विर्मन्मुकः स्वाय चारणाय च ।  
मन्योर्विर्मन्मुकस्यायं मन्युशर्मन उच्यते ॥ १ ॥  
अयं यो भूरिर्मूलः समुद्रमवतिष्ठति ।  
वर्मः पृथिव्या उद्विधितो मन्युशर्मन उच्यते ॥ २ ॥  
वि ते हनव्यां शरणं वि ते मुप्यां नयामसि ।  
यथायतो न वार्दिपो मर्म चित्तमुपायसि ॥ ३ ॥

॥ ११४ ॥ (अथर्व० ५।११४।१-११)

विश्वामित्रः । एकवचनः ( शरीरपथमनम् ) । एकावसानं  
द्वैपदम् । १, ४, ५, ७-१० साम्यां लणिकः । २, ३,  
६ आधुरी अनुष्टुप् । ११ आधुरी गायत्री ।

यद्येकवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ १ ॥

यदि द्विवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ २ ॥

यदि त्रिवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ ३ ॥

यदि चतुर्वृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ ४ ॥

यदि पञ्चवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ ५ ॥

यदि षड्वृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ ६ ॥

यदि सप्तवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ ७ ॥

यद्यष्टवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ ८ ॥

यदि नववृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ ९ ॥

यदि दशवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ १० ॥

यद्येकादशोऽसि सृजारसोऽसि ॥ ११ ॥

॥ ११५ ॥ (अथर्व० ५।१५।१-११)

विश्वामित्रः । मधुला वनस्पतिः ( रोगोपशमनम् ) । अनुष्टुप्,  
४ प्रस्ताद्वृत्तः । ५, ७-९ मुक्तिः ।

एकां च मे दशं च मेऽपयकारं ओपधे ।

श्रुतजातं श्रुतावरि मधुं मे मधुला करः ॥ १ ॥

द्वे च मे विंशतिर्ध मेऽपयकारं ओपधे ।

श्रुतजातं श्रुतावरि मधुं मे मधुला करः ॥ २ ॥

त्रिंशच्च मे त्रिंशच्च मेऽपयकारं ओपधे ।

श्रुतजातं श्रुतावरि मधुं मे मधुला करः ॥ ३ ॥

चतस्रश्च मे चत्वारिंशच्च मेऽपयकारं ओपधे ।

श्रुतजातं श्रुतावरि मधुं मे मधुला करः ॥ ४ ॥

पञ्च च मे पञ्चाशच्च मेऽपयकारं ओपधे ।

श्रुतजातं श्रुतावरि मधुं मे मधुला करः ॥ ५ ॥

षट् च मे षष्टिश्च मेऽपयकारं ओपधे ।

श्रुतजातं श्रुतावरि मधुं मे मधुला करः ॥ ६ ॥

सप्त च मे सप्ततिश्च मेऽपयकारं ओपधे ।

श्रुतजातं श्रुतावरि मधुं मे मधुला करः ॥ ७ ॥

अष्ट च मेऽशीतिश्च मेऽपयकारं ओपधे ।

श्रुतजातं श्रुतावरि मधुं मे मधुला करः ॥ ८ ॥

नव च मे नवतिश्च मेऽपयकारं ओपधे ।

श्रुतजातं श्रुतावरि मधुं मे मधुला करः ॥ ९ ॥

स्वप्नं स्वप्नाभिकरणेन सर्वं नि त्वापया जनम् ।  
 ओत्सुर्यमन्यान्स्वापयाव्युप  
 जागृतादृष्टमिन्द्र इयारिष्टो अक्षितः ॥ ७ ॥

॥ १०४ ॥ ( अथर्व ० ६।१०।१-३ )

अथर्व । २८ : ( इयुनिष्ठावनम् ) । अनुष्टुप्, ३ अक्षी  
 भुरिगुणिक ।

यां ते रुद्र इयुमास्य—इक्ष्म्यो हृदयाय च ।  
 इदं तामुद्य त्वद् वृषं विपूर्वा वि वृहामासि ॥ १ ॥

यास्ते शतं धमन्यो—इहान्यनु विष्टिताः ।

तासां ते सयासां वृषं निर्दिपाणि ह्वयामासि ॥ २ ॥

नमस्ते रुद्रास्यते नमः प्रतेहितायै ।

नमो विसृज्यमानायै नमो निर्पातितायै ॥ ३ ॥

॥ १०५ ॥ ( ऋग १।११०।११ )

रुद्रावाद् देवतमश् ओष्ठिभः । अक्षिनी ( दुःस्वप्ननाशनम् ) ।  
 गतयी ।

अथ स्वप्नस्य निर्दिष्टे ऽमुञ्जतश्च रेयतः ।

उमा ता यद्वि नदयतः ॥ १२ ॥

॥ १०६ ॥ ( ऋग १।१०।१० )

वृषो गार्हमहे। वृषमहे। वा । वरुणः ( दुःस्वप्ननाशिनी ) ।  
 त्रिष्टुप् ।

यो मे राजन् युग्वो या मया या

व्यप्ये भयं भीम्ये मरुमाह ।

रुनेनो या यो दिप्यति नो वृषो या

र्य तस्माद् वरुण पात्रमात्र ॥ १० ॥

॥ १०७ ॥ ( ऋग १।०।१६।१-२ )

अथैव आग्निना । दुःस्वप्ननाशनम् । अनुष्टुप्, ३ त्रिष्टुप्,  
 ५ वृष्टिः ।

धर्ति मनस्यते ऽप्यं काम पुष्टार ।

पुगे निष्ठाया आ चरथ वरुणा जीर्णो मनः ॥ १ ॥

अत्र ये वरि वृषते अत्र वृष्टिन् दक्षिणम् ।

अत्र वैवस्वते वरु—वरुणा जीर्णो मनः ॥ २ ॥

यदाशसां निःशसां निःशसो  
 पात्रि जाग्रतो यत् स्वपन्तः ।

अग्निर्विभ्रान्यर्प दुष्कृतानि

अजुष्टान्यारे अस्मद् दधातु ॥ ३ ॥

यदिन्द्र ग्रहणस्पते—ऽभिद्रोहं चरामासि ।

प्रचेता न आहिरसो द्विपतां पात्वंहसः ॥ ४ ॥

अजैष्ठायासनाम् चा—ऽमुमानांसो वृषम् ।

जाग्रत्स्वप्नः संकल्पः

पापो यं द्विपस्तं स ऋच्छतु

यो नो द्वेष्टि तमुच्छतु ॥ ५ ॥

॥ १०८ ॥ ( अथर्व ० ६।४५।१-३ )

अहिरः प्रचेता यमथ । दुःस्वप्ननाशनम् । १ पथ्यापष्टिः,  
 २ अरिक त्रिष्टुप्, ३ अनुष्टुप् ।

परोऽपेहि मनस्याप किमशस्तानि शंससि ।

परेहि न त्वा कामये वृक्षां घनानि

सं चर गृहेषु गोषु मे मनः ॥ १ ॥

अथशसां निःशसा यत् पराशसां

उपात्रि जाग्रतो यत् स्वपन्तः ।

अग्निर्विभ्रान्यर्प दुष्कृतानि

अजुष्टान्यारे अस्मद् दधातु ॥ २ ॥

यदिन्द्र ग्रहणस्पते—ऽपि मया चरामासि ।

प्रचेता न आहिरसो द्विपतां पात्वंहसः ॥ ३ ॥

॥ १०९ ॥ ( अथर्व ० ६।४६।१-३ )

अहिरः प्रचेता यमथ । दुःस्वप्ननाशनम् । १ भिष्टापष्टिः,  
 २ पथ्यापष्टिः, ३ अहिरः ।

यो न जीवोऽसि न मृतो

वृषानाममृतगर्भोऽसि स्पन् ।

वरुणा नी तं माता यमः वितारुनां मासि ॥ १ ॥

विष्टा तं स्पन् अनिर्य देवजामीनां

पृत्रोऽसि यमस्य करणः ।

अग्नेर्वाऽसि मृग्युरति ।

मं त्वां स्पन् तस्मा सं विष्टा

व नः स्पन् दृष्ट्यापष्टि पादि ॥ २ ॥

यथा कलां यथा शकं यथर्ण संनयन्ति ।  
पुत्रा दुःष्वप्यं सर्वं द्विपते सं नयामसि ॥ ३ ॥

॥ ११० ॥ (अथर्व० ७।१००।१)

यमः । दुःष्वप्यनाशनम् । अनुष्टुप् ।

पर्यावर्ते दुःष्वप्यात् पापात् स्वप्यादभूत्याः ।  
ब्रह्माहमन्तरं कृष्वे परा स्वप्यमुखाः शुचः ॥ १ ॥

॥ १११ ॥ (अथर्व० ७।१०१।१)

यमः । दुःष्वप्यनाशनम् । अनुष्टुप् ।

तत् स्वप्ने अक्षमश्चामि न प्रातरधिगम्यते ।  
सर्वं तदस्तु मे शिवं नहि तद् हृदये दिवा ॥ २ ॥

॥ ११२ ॥ (अथर्व० ७।१०२।१)

यन्तातिः । सुखम् । पद्यापवृत्तिः ।

शं नो यार्तो वातु शं नस्तपतु सूर्यः ।  
अहनि शं मधन्तु नः शं रात्री प्रति धीयतां  
शमुपा नो ह्युच्छतु ॥ १ ॥

॥ ११३ ॥ (अथर्व० ६।४३।१-३)

भृगवज्जिह्वाः । परस्परविस्तीर्णकामः । मनुशमनम् ।  
अनुष्टुप् ।

अयं दुर्मो विमन्युकः स्वाय चारणाय च ।  
मन्योर्विमन्युकस्यायं मनुशमन उच्यते ॥ १ ॥  
अयं यो भूरिमूलः समुद्रमवतिष्ठति ।  
दुर्मोः पृथिव्या उत्थितो मनुशमन उच्यते ॥ २ ॥  
वि ते हनव्यां शरणं वि ते मुच्यं नयामसि ।  
यथापशो न यादिपो मम वित्तमुपायसि ॥ ३ ॥

॥ ११४ ॥ (अथर्व० ५।१६।१-११)

विश्वामित्रः । पृच्छपः । (पृष्टपणमनम्) । एकावसानं  
द्वैपदम् । १, ४, ५, ७-१० सामां उच्यते । २, ३,  
६ आह्वी । अनुष्टुप् । ११ आह्वी । गायत्री ।

यदि कवृपोऽसि सृजारसोऽसि ॥ १ ॥  
यदि द्विपुपोऽसि सृजारसोऽसि ॥ २ ॥  
यदि त्रिपुपोऽसि सृजारसोऽसि ॥ ३ ॥

४२ अ

यदि चतुर्वृपोऽसि सृजारसोऽसि ॥ ४ ॥  
यदि पञ्चवृपोऽसि सृजारसोऽसि ॥ ५ ॥  
यदि षड्वृपोऽसि सृजारसोऽसि ॥ ६ ॥  
यदि सप्तवृपोऽसि सृजारसोऽसि ॥ ७ ॥  
यद्यष्टवृपोऽसि सृजारसोऽसि ॥ ८ ॥  
यदि नववृपोऽसि सृजारसोऽसि ॥ ९ ॥  
यदि दशवृपोऽसि सृजारसोऽसि ॥ १० ॥  
यद्येकादशोऽसि सोऽर्षोदकोऽसि ॥ ११ ॥

॥ ११५ ॥ (अथर्व० ५।१५।१-११)

विश्वामित्रः । मधुला वनरसतिः । (रोगोपशमनम्) । अनुष्टुप्,  
४ पुरस्ताद्वृत्तीः ५, ७-९ मृतिह ।

एका च मे दशं च मेऽपयकारं ओषधे ।  
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥ १ ॥  
द्वे च मे विशतिश्च मेऽपयकारं ओषधे ।  
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥ २ ॥  
त्रिश्च मे त्रिदशं मेऽपयकारं ओषधे ।  
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥ ३ ॥  
चतस्रश्च मे चत्वारिंशश्च मेऽपयकारं ओषधे ।  
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥ ४ ॥  
पञ्च च मे पञ्चाशश्च मेऽपयकारं ओषधे ।  
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥ ५ ॥  
षट् च मे षष्टिश्च मेऽपयकारं ओषधे ।  
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥ ६ ॥  
सप्त च मे सप्ततिश्च मेऽपयकारं ओषधे ।  
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥ ७ ॥  
अष्ट च मेऽशीतिश्च मेऽपयकारं ओषधे ।  
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥ ८ ॥  
नव च मे नवतिश्च मेऽपयकारं ओषधे ।  
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥ ९ ॥

(३८९)

दशं च मे शतं च मे—ऽपचकारं ओपधे ।

ऋतजात ऋतावरि मधुं मे मधुला करः ॥१०॥

शतं च मे सहस्रं चाप्यकारं ओपधे ।

ऋतजात ऋतावरि मधुं मे मधुला करः ॥११॥

॥ ११६ ॥ ( अथर्व० १।१।१-४ )

अथर्वी । पर्जन्यः, ( १, ४ पृथिवी, ३ इन्द्र, [ चन्द्रमाद्य ] )  
( रोगोपशमनम् ) । अनुष्टुप्, ३ त्रिपदा विराजमाना गायत्री ।

विद्या शारस्यं पितरं पर्जन्यं भूरिधायसम् ।

विद्यो ष्वस्य मातरं पृथिवीं भूरिवर्षसम् ॥ १ ॥

ज्याके परिरं णो नृमा—इमानं त्वर्धं रुधि ।

वीडुर्वरीयोऽराती—रप द्वेपांस्या रुधि ॥ २ ॥

धृक्षं यद् गावः परिपस्वजाना

अनुस्फुरं शरमर्चन्त्युभुम् ।

शरमस्सद्योवय दिधुमिन्द्र ॥ ३ ॥

यथा धां च पृथिवीं चान्तास्तिष्ठति तेजन्म ।

एवा रोगं चास्त्राय चान्तास्तिष्ठतु मुख इत् ॥ ४ ॥

॥ ११७ ॥ ( अथर्व० १।१।१-५ )

अथर्वी । भैषज्यं, आयुः, वनस्पतिः ( शापमोक्षणम् ) ।

अनुष्टुप्, १ मुरिक, ४ विराडुपरिष्ठाद् बृहती ।

अथदिष्टा देवजाता वीरच्छपथयोपनी ।

आपो मलमिव प्राणैश्चातु

सर्गान् मच्छपथो अधि ॥ १ ॥

यथै सापत्नः शपथो जाग्याः शपथश्च यः ।

प्रज्ञा यमन्युतः शपात् सर्वे तन्नो अघस्पदम् २ ।

द्वियो मूलमर्धततं पृथिन्या अध्युत्ततम् ।

तेन सहस्रंकापटेन परिरं णः पाहि विभ्वतः ॥ ३ ॥

परि मां परि मे प्रजां परिरं णः पाहि यदन्नम् ।

अरातिनो मा तारिन्मा नेस्तारिपुरमिमांताय ॥ ४ ॥

नामारमेतु शपथो यः सदात् तेन नः सह ।

चभुमंग्रस्य दुर्दादः पृष्टारपि शृणीमसि ॥ ५ ॥

॥ ११८ ॥ ( अथर्व० १।१।१-४ )

द्रविणोदा । १ विनायकः, ( २ सविता, वरुणः, मित्रा,  
अर्यमा, देवाः, ३ सविता ) ( अलक्ष्मीनाशनम् )

१ विराडुपरिष्ठाद् बृहती, २ निचृज्गती,

३ विराडास्तारपट्टिकभिष्टुप्, ४ अनुष्टुप् ।

निर्लक्ष्यं ललास्यं निररतिं सुयामसि ।

अथ या मद्रा तानि नः

प्रजाया अरतिं नयामसि ॥ १ ॥

निररणिं सविता साविपक्

पदोर्निर्हस्तयोर्वरुणो मित्रो अर्यमा ।

निरस्सभ्यमनुमती रराणा

प्रेमां देवा असाविपुः सौभगाय ॥ २ ॥

यत् त आत्मनि त्वर्वा घोरमस्ति

यद् वा केशेषु प्रतिचक्षणे वा ।

सर्वं तद्वाचापं हन्मो वयं ॥ ३ ॥

देवस्था सविता सुदयतु

रिदयपदीं वृषदती गोपेधा विधमामुत ।

विलीक्यं ललास्यं ता असन्नाशयामसि ॥ ४ ॥

॥ ११९ ॥ ( अथर्व० १।१।१-५ )

अथर्वी वनस्पतिः ( धौमायवर्धनम् ) । अनुष्टुप्, १ वयवधाना  
षट्पदा विराड् जगती ।

न्यास्तिका करोहिथ सुमगंकरणी मम ।

शतं तव प्रताना स्वर्यस्त्रिशक्तितानाः ।

तयो सहस्रपुष्पा हृदयं शोपयामि ते ॥ १ ॥

शुष्यंतु मयि ते हृदयं मयो शुष्यत्वास्याम् ।

अथो नि शुष्य मां कामेनाथो शुष्कास्या चर २

सुवननी समुष्पला वध्रु कल्याणि सं जुद ।

अथं च मां च सं जुद समानं हृदयं रुधि ॥ ३ ॥

यथोदकमपपुणोऽपशुष्यत्वास्याम् ।

एवा नि शुष्य मां कामेनाथो शुष्कास्या चर ४

यथो नकुलो विच्छिद्यं सुदध्रात्यहि पुनः ।

एवा कामस्य विच्छिद्यं सं धेदि धीर्यावति ॥ ५ ॥

॥ ११० ॥ ( अथर्व० ६।१८।१-३ )

अथर्वा । ईर्ष्याविनाशनम् । अनुष्टुप् ।

ईर्ष्याया धाजि प्रथमां प्रथमस्या उतापरायम् ।  
अग्निं हृदयं शोकं तं ते निर्वापयामसि ॥ १ ॥

यथा भूमिर्भूतमना मृतामृतमनस्तथा ।  
यथोत मम्रयो मनः पवेर्ष्याभूतं मनः ॥ २ ॥

अदो यत् ते हृदि धितं मनस्कं पतयिष्णुकम् ।  
ततस्त ईर्ष्या मुञ्चामि निरुप्पाणं दत्तेरिव ॥ ३ ॥

॥ १११ ॥ ( अथर्व० ७।४७।१-२ )

प्रह्वणः, २ अथर्वा । ईर्ष्यामननं, भेषजम् । अनुष्टुप् ।

जनाद् विभजनीनात् सिन्धुतस्पर्शभृतम् ।  
दूरात् त्यां मन्य उद्धृत मीर्ष्याया नाम भेषजम् १

अग्नेरैवास्य दहतो दावस्य दहतः पृथक् ।  
पुतामेतस्येर्ष्या मुद्राग्निमिव शमय ॥ २ ॥

॥ ११२ ॥ ( अथर्व० ६।११।१-४ )

अथर्वा । अग्निः ( वग्मत्तगोचनम् ) । अनुष्टुप् ।

१ पदाष्टुप् त्रिष्टुप् ।

हमं मे अग्ने पुर्यं मुमुविध  
अयं यो यद्धः सुयतो लालपीति ।

अतोऽधि ते रुणयद् भागधेयं  
यदानुग्मदितोऽसंति ॥ १ ॥

अग्निष्टे नि शमयतु यदि ते मन उद्युतम् ।  
रुणोमि विद्वान् भेषजं यदानुग्मदितोऽसंसि २

देवैन्सादुग्मदितुं मुग्मं रत्नं रत्नस्पर्शः ।  
रुणोमि विद्वान् भेषजं यदानुग्मदितोऽसंसि ॥ ३ ॥

पुनस्त्वा दुरस्तरसः पुनरिन्द्रः पुनर्मगः ।  
पुनस्त्वा दुर्विर्भे देवा यदानुग्मदितोऽसंसि ४

किमिनाशनम् ।

॥ ११३ ॥ ( अथर्व० २।३१।१-५ )

काण्वः । मही, चन्द्रमाः ( किमिन्मनम् ) । अनुष्टुप् ;

२, ४ उपदिष्टादिराद् वृत्तौ, ३, ५ आषां त्रिष्टुप् ।

इन्द्रस्य या मही ह्यपत् किमेर्विर्भस्य तर्हणी ।  
तया पिनप्ति सं किमीन् ह्यपदा खल्वौ इव १

हृष्टमहृष्टमतह मयो कुरुहमतहम् ।

अल्गण्डुन्तसर्वान् अलुनान् किमीन्  
वचसा जम्भयामसि ॥ २ ॥

अल्गण्डुन् हन्मि महुता वधेन  
दुना अदुना अरसा रभूयन् ।

शिष्टानशिष्टान् नि तिरामि वाचा  
यया किमीणां नर्किच्छिपाते ॥ ३ ॥

अन्यान्त्यं शीर्षण्य मयो पाष्टयं किमीन् ।  
अवस्कृवं व्यध्वरं किमीन् वचसा जम्भयामसि ४

ये किमयः पर्वतेषु वनेषु  
ओर्षधीषु पदुष्वन्तः ।

ये असाकं तन्ध माविशुः  
सर्वं तदग्निं जनिम किमीणाम् ॥ ५ ॥

॥ ११४ ॥ ( अथर्व० ५।१३।१-१४ )

काण्वः । इन्द्रः ( किमिन्द्रम् ) । अनुष्टुप्, १३ विराद् ।

ओते मे चार्यापृथिवी ओता देवी सरस्वती ।  
ओतो म इन्द्रश्चाग्निश्च किमि जम्भयतामिति १

अस्येन्द्रं कुमारस्य किमीन् धनपते जहि ।  
हुता विभ्वा अरातय उग्रेण वचसा मम ॥ २ ॥

यो अस्यौ परितपति यो नासे परितपति ।  
दतां यो मध्यं गच्छति तं किमि जम्भयामसि ३

सर्वेषां द्वौ विरेषौ द्वौ रुणौ द्वौ रोहितौ द्वौ ।  
यध्वश्च यध्वर्कणश्च यध्वः कौकश्च ते हुताः ॥ ४ ॥

ये किमयः शितिकक्षा ये रुणाः शितियाहवः ।  
ये के च विभ्वरूपास्तान् किमीन् जम्भयामसि ५

उत् पुरस्तात् सूर्यं पति विभ्वर्ह्यो अहृष्टा ।  
हृष्टाश्च अन्नहृष्टाश्च सर्वोश्च प्रमुणन् किमीन् ६

येवापासः कर्कयास एज्जकाः शिपयितुकाः ।  
हृष्टश्च हन्यतां किमि रूताहृष्टश्च हन्यताम् ॥ ७ ॥

हुतो येवापः किमीणां हुतो नदनिमोत ।  
सर्वान् नि मंभयाकरं ह्यपदा खल्वौ इव ॥ ८ ॥

त्रिशोपां त्रिकुण्डं किमिं सारङ्गमर्जुनम् ।  
 शृणाम्यस्य पृथी—रपि वृधामि यच्छिरः ॥ ९ ॥  
 अत्रिवद् वः किमयो हन्मि कण्ववज्जमदशिवत् ।  
 अगस्त्यस्य ब्रह्मणा सं पिनम्पयहं किमीन ॥ १० ॥  
 हतो राजा किमीणा—मुतैषां स्थपतिर्हृतः ।  
 हतो हतमाता किमि—हृतभ्राता हतस्वसा ॥ ११ ॥  
 हतासौ अस्य वेशसौ हतासुः परिवेशसः ।  
 अथो ये क्षुल्लका इय सव्ये ते किमयो हताः ॥ १२ ॥  
 सर्वेषां च किमीणां सर्वासां च किमीणाम् ।  
 भिनज्यध्वना शिरो दहाम्यग्निना मुखम् ॥ १३ ॥

॥ ११५ ॥ (अथर्वे २।३१।१।६)

काण्वः । आदित्यः (किमिनाशनम्) । अनुष्टुप, १ त्रिपदा  
 भुरिगायत्री, ६ चतुष्पदा त्रिचुडुणिङ् ।

उद्यन्नादित्यः किमीन हन्तु  
 निम्रोचन हन्तु रक्षिमभिः ।  
 ये अन्तः किमयो गवि ॥ १ ॥  
 विभ्वरूपं चतुरक्षं किमिं सारङ्गमर्जुनम् ।  
 शृणाम्यस्य पृथी—रपि वृधामि यच्छिरः ॥ २ ॥  
 अत्रिवद् वः किमयो हन्मि कण्ववज्जमदशिवत् ।  
 अगस्त्यस्य ब्रह्मणा सं पिनम्पयहं किमीन ॥ ३ ॥  
 हतो राजा किमीणा—मुतैषां स्थपतिर्हृतः ।  
 हतो हतमाता किमि—हृतभ्राता हतस्वसा ॥ ४ ॥  
 हतासौ अस्य वेशसौ हतासुः परिवेशसः ।  
 अथो ये क्षुल्लका इय सव्ये ते किमयो हताः ॥ ५ ॥  
 प्र ते शृणामि शृङ्गे याम्यां वितुदायसि ।  
 भिनर्शि ते कुपुम्भं यस्तं विप्रधानः ॥ ६ ॥

॥ ११५ ॥ (अथर्वे ८।१७।६—१२)

बादरायणिः । अत्रशृङ्गो, १ अप्सरसः, १-२, ६, १० औपवी  
 अत्रशृङ्गो, ३-५ अप्सरसः, ७-१२ गन्धर्वोऽप्सरसः (हमि-  
 नाशनम्) । अनुष्टुप, ३ त्रयस्त्रयानां पदपदा त्रिष्टुप, ५  
 प्रश्नापञ्चिका, ७ परोणिङ्, ११ चतुष्पदा अगती, १२ त्रिचुडु ।

त्यया पूर्वमर्थव्यापणो जप्नु रक्षांस्योपधे ।  
 त्यया जधान क्रुदप—स्त्यया कण्वो अगस्त्यः ॥

त्यया ययमप्सरसो गन्धर्वोऽध्यातयामहे ।  
 अत्रशृङ्गयज रक्षः सर्वान् गन्धेन नाशय ॥ २ ॥  
 नदीं यन्वप्सरसो—ऽपां तारमवश्यसम् ।  
 गुल्गुलूः पीला नल्लौ—क्षगन्धिः प्रमन्नी ।  
 तत् परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥ ३ ॥  
 यत्राश्वत्था न्यग्रोधा महावृक्षाः शिपुण्डिनः ।  
 तत् परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥ ४ ॥  
 यत्र वः प्रेङ्ग्या हरिता वसुना  
 उत यत्रावादाः कर्कयः संयदन्ति ।

तत् परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥ ५ ॥  
 पयमग्नोपधीनां वीर्यं वीर्यावती ।  
 अत्रशृङ्गयजराट्की तीक्ष्णशृङ्गी व्युपतु ॥ ६ ॥  
 आनृत्यतः शिखण्डिनो गन्धर्वस्याप्सरपतेः ।  
 भिनर्शि मुष्कावपि यामि शेषः ॥ ७ ॥

मीमा इन्द्रस्य हेतयः शतमृषीरप्यस्यीः ।  
 तामिहैविरदान् गन्धर्वा—नवकादान् व्युपतु ८ ॥  
 मीमा इन्द्रस्य हेतयः शतमृषीर्हिरण्ययीः ।  
 तामिहैविरदान् गन्धर्वा—नवकादान् व्युपतु ९ ॥  
 अयकादानभिश्चोचा—नृप्सु ज्योतय मामकान् ।  
 पिशाचान्सर्वानोपधे प्र मृणीहि सहस्र च १० ॥  
 श्वेदैकः कृषिरिदैकः कुमारः सर्वैकेशकः ।  
 प्रियो हृश इव भुत्वा गन्धर्वः संचते स्त्रियः  
 तमितो नाशयामसि ब्रह्मणा वीर्यावता ॥ ११ ॥  
 जाया इद् वो अप्सरसो गन्धर्वाः पतयो युयम् ।  
 अपे धावतामत्या मत्यान् मा संचध्वम् ॥ १२ ॥

॥ ११७ ॥ (अथर्वे १।८।१-४)

चातनः । १-२ मृदस्पति, अमीषोमौ च; ३-४ अमिः [जात-  
 वेदाः] (यातुपाननाशनम्) । १-३ अनुष्टुप, ४ बार्हतागर्मा  
 त्रिष्टुप ।

इदं हविर्यातुधानान् नदी फेनमिधा बद्धत् ।  
 य इदं स्त्री पुमानर्क—रिद्ध स र्तुपतां जनः ॥ ११ ॥

अयं स्तुवान् आगमं—दिमं स्म प्रति हयत ।  
 दृहस्पते चरो लब्ध्या—शीपोमा वि विध्यतम् ॥२॥  
 यातुधानस्य सोमप जहि प्रजां नयस्व च ।  
 नि स्तुवानस्य पातय परमस्युतावरम् ॥ ३ ॥  
 यत्रैषामग्रे जनिमति वेत्य  
 गुहां सुतामत्विर्णां जातवेदः ।  
 तांस्त्यं ग्रहाणा वायुधानो जुहोपां शततर्हमग्रे ४

॥ १२८ ॥ (अथर्व० ६।३०।१-३)

चातनः, ३ अथर्वी, १ अग्निः, २ रुद्रः, ३ मित्रावरुणौ  
 (यातुधानक्षयणम्) । त्रिष्टुप्, २ प्रस्तारपङ्क्तिः ।

अन्तर्द्वे जुहुता स्वेतुद  
 यातुधानक्षयणं धृतेन ।  
 आराद् रक्षांसि प्रति दह त्वमग्रे  
 न नो गृह्णानुपं तीतपासि ॥ १ ॥  
 रुद्रो वो श्रीवा अशरैत् पिशाचाः  
 पृथीर्वोऽपि शृणातु यातुधानाः ।  
 क्षीरद्वो विश्वतोर्वीर्या यमेन समजीगमत् ॥ २ ॥  
 अमयं मित्रावरुणाधिहास्तु  
 नोऽर्चिपातित्रिणो जुदतं प्रतीर्चः ।  
 मा ज्ञातारं मा प्रतिष्ठां विदन्त  
 मियो विज्ज्ञाना उप यन्तु मृत्युम् ॥ ३ ॥

॥ १२९ ॥ (अथर्व० १।१८।१-४)

चातनः । १-२ अग्निः, ३-४ यातुधानाः (रक्षोत्रम्) ।  
 अनुष्टुप्, ३ विराट्पद्यावृहती, ४ पद्यापङ्क्तिः ।

उप प्रागाद् देवो अग्नी रक्षोहार्मीवचातनः ।  
 दहन्नपं द्रवायिनो यातुधानान् किमीदिनः ॥१॥  
 प्रति दह यातुधानान् प्रति देव किमीदिनः ।  
 प्रतीर्चाः कृणवर्तने सं दह यातुधान्यः ॥ २ ॥  
 या ज्ञाताप शपनेन याधे मूर्मादधे ।  
 या रसस्य दरेणाय जातमरिमे लोकमृत्यु सा ३

पुत्रमृत्यु यातुधानाः स्वसारमृत नृप्यमि ।  
 अघां मियो विक्केद्योः  
 वि प्रतां यातुधान्योः वि वृहन्तामराय्यः ॥ ४ ॥  
 ॥ १३० ॥ (अथर्व० ५।१९।१-१५)  
 चातनः । जातवेदाः, मन्त्रोष्ठाः (रक्षोत्रम्) । त्रिष्टुप्, ३  
 त्रिपदा विराट्पद्या गायत्री, ५ पुरोऽतिजगती विराट्जगती;  
 १२-१५ अनुष्टुप् (१२ भुरिः, १४ चतुष्पदा परावृहती  
 बहुममती) ।

पुरस्ताद् युक्तो बह जातवेदो  
 अग्रे विद्धि क्रियमाणं यथेदम् ।  
 त्वं मियग् मैपजस्यांसि कृतां  
 त्वया गामभ्यं पुरुषं सनेम ॥ १ ॥  
 तथा तदग्रे कृणु जातवेदो  
 विश्वैर्मिद्वैः सह सविद्वानः ।  
 यो नो दिदेव यतमो जुधासु  
 यया सो अस्य परिधिष्यताति ॥ २ ॥  
 यया सो अस्य परिधिष्यताति  
 यया तदग्रे कृणु जातवेदः ।  
 विश्वैर्मिद्वैः सह सविद्वानः ॥ ३ ॥  
 अक्ष्योः नि विच्य हृदयं नि विध्य  
 जिह्वां नि वृन्धि प्र वतो मृणीहि ।  
 पिशाचो अस्य यतमो जुधास  
 अग्रे यविष्ठ प्रति तं शृणीहि ॥ ४ ॥  
 यदस्य हृतं विहृतं यद् पराभृतं  
 आत्मनो जुधे यतमत् पिशाचैः ।  
 तदग्रे विद्वान् पुनर्य मरं त्वं  
 शरीरे मांसममुमेरयामः ॥ ५ ॥  
 आमे सुपके शयले विपन्त्ये  
 यो मा पिशाचो अशने ददम्भं ।  
 तदात्मना प्रजया पिशाचा  
 वि यातयन्तामग्नां यमस्तु ॥ ६ ॥  
 (८२१)

क्षीरे मा मन्थे यत्तमो ददम्भ  
अङ्गप्रपञ्चे अशने धान्ये यः ।

तदात्मना प्रजया पिशाचा  
वि यातयन्तामगदोक्ष्यमस्तु  
अपां मा पाने यत्तमो ददम्भं  
क्रव्याद् यातुनां शयने शयानम् ।

तदात्मना प्रजया पिशाचा  
वि यातयन्तामगदोक्ष्यमस्तु  
दिवा मा नक्तं यत्तमो ददम्भं  
क्रव्याद् यातुनां शयने शयानम् ।

तदात्मना प्रजया पिशाचा  
वि यातयन्तामगदोक्ष्यमस्तु  
क्रव्यादमग्रे रुधिरं पिशाचं  
मनोहनं जहि जातवेदः ।

तमिन्द्रो धाजी वज्रेण हन्तु  
च्छिन्नस्तु सोमः शिरो अस्य धृष्णुः  
सुनादग्ने मृणसि यातुधानान्  
न त्वा रक्षोसि पृतनान् जुग्युः ।

सहभूपाननु दह क्रव्यादो  
मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः

सुमाहर जातवेदो यद्धृतं यत् पराभृतम् ।  
गात्राण्यस्य वर्धन्ता—मंशुरिया प्यायतामयम् १२  
सोमस्येव जातवेदो अंशुरा प्यायतामयम् ।

अग्ने विराग्निं मेध्यं—मयक्ष्मं हं जु जीवतु ॥१३॥  
एतास्ते अग्रे समिधः पिशाचजम्भेनोः ।  
तास्त्वं जुषस्य प्रति चैना गृहाण जातवेदः ॥१४॥  
तार्पाधीरग्ने समिधः प्रति गृह्णाह्विषां ।  
जहातु क्रव्याद् रूपं यो अस्य मोस जिह्वीपति १५

॥ १३१ ॥ ( या० य० ५।१२ )

( रक्षोमयम् । )

इदमुदरं रक्षसां ग्रीया ऽ अपिहन्तामि ॥ २२ ॥

॥ १३१ ॥ ( अथर्व० ४।१०।१-९ )

मातृनामा । मातृनामा ( पिशाचक्षयणम् ) । अनुष्टुप् ।  
१ खराट्, १ भुरिक् ।

॥ ७ ॥ आ पश्यति प्रति पश्यति परा पश्यति पश्यति ।  
दिवमन्तरिक्षमाद् भूमिं सर्वं तद् देवि पश्यति १  
तिस्रो दिवस्तिष्ठः पृथिवीः  
पट् चेमाः प्रदिशः पृथक् ।

॥ ८ ॥ त्वयाहं सर्वा भूतानि पद्यानि देवयोगधे ॥ २ ॥  
दिव्यस्य सुपर्णस्य तस्य हासि कुनीतिका ।  
सा भूमिमा ररोहिथ वृक्ष भ्रान्ता वधूरिष ॥ ३ ॥  
तां मे सहस्राक्षो देवो दक्षिणे हस्त आ दधत् ।

॥ ९ ॥ तयाहं सर्वं पश्यामि यक्षं शुभ्र उतार्यः ॥ ४ ॥  
आविर्कृण्व्य रूपाणि मात्मानमप गूहया ।  
अथो सहस्रचक्षो त्व प्रति पद्याः किमीदिनः ५  
दर्शये मा यातुधानान् दर्शये यातुधान्यः ।

॥ १० ॥ पिशाचान्सर्वान् दर्शये—ति त्वा र्त्न ओपधे ॥ ६ ॥  
कश्यपस्य चक्षुरसि शून्याश्च चतुरह्याः ।  
वीधे सूर्यमिव सर्पन्त मा पिशाचं तिरस्करः ७  
उदग्रम परिपाणाद् यातुधानं किमीदिनम् ।

॥ ११ ॥ तेनाहं सर्वं पद्या—स्युत शुभ्रमुतार्यम् ॥ ८ ॥  
यो अन्तरिक्षेण पतति दिवे यक्षातिसर्पति ।  
भूमिं यो मन्यते नाथं तं पिशाच प्र दर्शय ॥ ९ ॥

॥ १३३ ॥ ( अथर्व० ६।७।१-३ )

अथर्व । सोम, अदिति, २ देवा ( अष्टरक्षयणम् ) । गायत्री,  
१ निचृत् ।

येन सोमादितिः पथा मित्रा वा यन्त्यद्गृहः ।  
तेना नोऽवसा गंहि ॥ १ ॥

येन सोम साहन्त्या—सुरान् रुन्धयांसि नः ।  
तेना नो बधि वोचत ॥ २ ॥

येन देवा असुराणां—मोक्षांस्यवृणाध्वम् ।  
तेना नः शर्म यच्छत ॥ ३ ॥

( ८५१ )



॥ १३४ ॥ (अथर्व० १९।३६।१)

महा । जातवेदाः स्यो वज्रथ (असुरक्षयणम्) । अतिजगती ।  
अयोजात्वा असुरा मायिनो  
अयस्यैः पादौरङ्गिनो ये चरन्ति ।  
तांस्तै रन्धयामि हरसा जातवेदः  
सहस्रश्लिष्टिः सपत्नान् प्रमृणन् पाहि वज्रः ॥ १ ॥

॥ १३५ ॥ (अथर्व० १।७।१-७)

जातनः । अग्निः (जातवेदाः), ३ अग्नीन्द्रो (यातुधाननाश-  
नम्) । अनुष्टुप्, ५ त्रिष्टुप् ।

स्तुधानमग्ने आ वह यातुधानं किमीदिनेम् ।  
त्यं हि देव वन्तितो हुन्ता दस्योर्वभूविथ ॥ १ ॥  
आज्यस्य परमेष्ठिन् जातयेदस्तनूवशिन् ।  
अग्ने तौलस्य प्राशान यातुधानान् वि लापय २  
वि लपन्तु यातुधाना अग्निगो ये किमीदिनः ।  
अथेदमग्ने नो हुवि रिन्द्रश्च प्रति हर्यतम् ॥ ३ ॥  
अग्निः पूर्वे आ रमतां मेन्द्रो नुदत बाहुमान् ।  
प्रवीतु सर्वो यातुमानपमसीत्येत् ॥ ४ ॥  
पदयाम ते वीर्यं जातवेदः  
॥ नो ब्रूहि यातुधानान् नृचक्षः ।  
त्वया सर्वे परितप्ताः पुरस्तात्  
त आ रन्तु प्रमुवाणा उपेदम् ॥ ५ ॥  
आ रमस्व जातवेदोऽस्माकार्योय जज्ञिषे ।  
दूतो नो अग्ने भूत्या यातुधानान् वि लापय ६  
त्वमग्ने यातुधाना नृपयद्वा इहा वह ।  
अथैषामिन्द्रो वज्रेणा-पि शीर्षाणि वृश्चतु ॥ ७ ॥  
विपनाशनम् ।

॥ १३६ ॥ (श्र० १।१९।१२-१६)

अगरसो मैत्रावरुणिः । अप्त्नमूर्याः (विपन्नोपनिषद्) ।  
अनुष्टुप् ; १०-१२ महावृत्तिः, १३ महावृत्तौ ।

कद्रतो न कद्रतो ऽथो सतीनकद्रतः ।  
हावेति प्लुषी इति न्युष्टा अलिप्तत ॥ १ ॥

अदृष्टान् हन्त्याय-त्यथो हन्ति परायती ।  
अथो अवघ्नती ह-न्त्यथो पिनष्टि पिपृती ॥ २ ॥  
श्रापसः कुशरासो दुर्मासः सैर्या उत ।  
मौञ्जा गदष्टा वैरिणाः सर्वे साकं न्यलिप्तत ३  
नि गावो गोष्ठे असदन् नि मृगासो अविक्षत ।  
नि केतवो जनानां न्युष्टा अलिप्तत ॥ ४ ॥  
पत उ त्वे प्रत्यदभन् प्रदोपं तस्करा इव ।  
अदृष्टा विभ्वदृष्टाः प्रतियुद्धा अभूतन ॥ ५ ॥  
द्यौर्वैः पिता पृथिवी माता  
सोमो भ्रातादितिः स्वसा ।  
अदृष्टा विभ्वदृष्टा-स्तिष्ठतेत्यता सु कम् ॥ ६ ॥  
ये अस्य ये अङ्गयाः सुचीका ये प्रकद्रताः ।  
अदृष्टाः किं चुनेह धः सर्वे साकं नि जस्यत ७  
उत् पुरस्तात् सूर्यं पति विभ्वदृष्टो अदृष्टहा ।  
अदृष्टान्तसर्वाङ्गमय-न्तसर्वाश्च यातुधान्यः ॥ ८ ॥  
उदपतदसौ सूर्यः पुर विभ्वानि ज्येन् ।  
आदित्यः पर्यतेभ्यो विभ्वदृष्टो अदृष्टहा ॥ ९ ॥  
सूर्यं विपमा संजामि इति सुरावतो गृहे ।  
सो चिन् न मरति नो ध्यं मरामाऽऽरे अस्य ।  
योजनं हरिष्टा मधुं त्वा मधुला चकार ॥ १० ॥  
इयत्तिका शकुन्तिका सूका जघात ते विपम् ।  
सो चिन् न मरति नो ध्यं मरामाऽऽरे अस्य ।  
योजनं हरिष्टा मधुं त्वा मधुला चकार ॥ ११ ॥  
त्रिः सप्त विंशुलिङ्गका विपस्य पुष्पमक्षन् ।  
ताश्चिन् न मरन्ति नो ध्यं मरामाऽऽरे अस्य ।  
योजनं हरिष्टा मधुं त्वा मधुला चकार ॥ १२ ॥  
नयानां नवतीनां विपस्य रोपुषीणाम् ।  
सर्वोसामग्रमं नामा-ऽऽरे अस्य योजनं  
हरिष्टा मधुं त्वा मधुला चकार ॥ १३ ॥  
त्रिः सप्त मयूरैः सप्त स्वसारो अग्रयः ।  
तास्तै विपं वि जंघिर उदकं कुम्भनीरिय १४

इयत्तकः कुपुम्भक—स्तकं भिनन्नयश्मना ।  
 ततो विपं प्र वाधते पराचिरन् संवतः ॥ १५ ॥  
 कुपुम्भकस्तद्वधीद् गिरेः प्रवर्तमानकः ।  
 वृश्चिकस्यारसं विप—मरुसं वृश्चिक ते विपम् ॥ १६ ॥  
 ॥ १३७ ॥ ( अथर्व० ४।६।१-८ )

गणमान् । तक्षकः, १ ब्राह्मणः, २ वातापृथिवी, सप्तसिन्धवः,  
 ३ सुपर्णः, ४-८ विपम् ( विषमम् ) । अनुष्टुप् ।

ब्राह्मणो जज्ञे प्रथमो दशशीरो दशास्यः ।  
 न सोमं प्रथमः पणौ स चकारारसं विपम् ॥ १ ॥

यार्धती चार्वापृथिवी र्वरिम्णा  
 यार्वत् सप्त सिन्धवो वितष्टिरे ।

यार्च विपस्य दूर्पणां तामितो निरवादिपम् ॥ २ ॥  
 सुपर्णस्त्वा गृहत्मान् विपं प्रथममावयत् ।

नार्मीमदो नारुण उतासां भवः पितुः ॥ ३ ॥  
 यस्त आस्यत् पञ्चाङ्गुरि—यकाशिदधि धन्वनः ।

अपस्कम्भस्य शल्या—भिरयोचमहं विपम् ॥ ४ ॥  
 शल्याद् विपं निरयोचं—प्राञ्जनादुत पर्णधेः ।

अप्राञ्जनादुत श्रुमला—भिरयोचमहं विपम् ॥ ५ ॥  
 अरस्तस्य इपो शल्यो—ऽथो ते अरुसं विपम् ।

उतारुसस्य वृक्षस्य धनुष्टे अरसारसम् ॥ ६ ॥  
 ये अपीपन् ये अर्दिहन् य आस्यन् ये अवावृजन् ।

नये ते धर्मयः कृता यध्रिर्विपगिरिः कृतः ॥ ७ ॥  
 धर्मयस्ते यनितारो यध्रिस्त्यमरयोपधे ।

यध्रिः स पर्वता गिरि—यतो जातमिदं विपम् ॥ ८ ॥  
 ॥ १३८ ॥ ( अथर्व० ४।७।१-७ )

गणमान् । यक्षगर्गः ( विषनामयम् ) । अनुष्टुप्, ४ मराट् ।  
 पारिं पार्याते परणार्यत्यामधि ।

भ्रामृतस्यागितः तेनां ते पारये विपम् ॥ १ ॥  
 अरुसं प्राप्यं विप—मरुसं यद्वृदीच्यम् ।

अधर्मप्रपार्यं पारुमेण वि र्वल्यते ॥ २ ॥

करम्भं कृत्वा तिर्यं पीयस्पाकमुदारथिम् ।  
 क्षुधा किल त्वा दुष्टनो जक्षिवान्स न रूढः ३

वि ते मदं मदावति शरमिव पातयामसि ।  
 प्र त्वां चरुमिव येपन्तं वचंसा स्थापयामसि ॥ ४ ॥

परि आममिवाचितं वचंसा स्थापयामसि ।  
 तिष्ठां वृक्ष इव स्थाम्य—अत्रिखाते न रूढः ॥ ५ ॥

पृथस्तस्त्वा पर्यकीणन् दुर्शोभिरजिनैरुत ।  
 प्रकीरसि त्वमोपधे—अत्रिखाते न रूढः ॥ ६ ॥

अनास्र ये वः प्रथमा यानि कर्माणि चक्रिरे ।  
 वीरान् नो अत्र मा र्वमन्

तद् वं एतत् पुरो दधे ॥ ७ ॥  
 ॥ १३९ ॥ ( अथर्व० ६।१०।१-३ )

गणमान् । वनस्पतिः ( विषद्वयम् ) । अनुष्टुप् ।  
 देवा अदुः सूर्यो अदाद् द्यौरदात् पृथिव्यदात् ।

तिष्ठः सरस्वतीरदुः सविता विपदूर्पणम् ॥ १ ॥  
 यद् वो देवा उपजीका आसिञ्चन् धन्यं शुद्धकम् ।

तेन देवप्रसूतेने—दं दूपयता विपम् ॥ २ ॥  
 असुराणां दुहितसि देवानामसि स्वसा ।

द्विचस्पृथिव्याः संभूता सा चर्करासं विपम् ३  
 ॥ १४० ॥ ( अथर्व० १०।४।१-२६ )

गणमान् । तक्षक ( सर्वविषकुराकरणम् ) । अनुष्टुप्, १ पद्या-  
 वल्लि, २ त्रिपदा यमपद्या गायत्री, ३-४ पद्यावृद्धी, ८

अणिगर्गो परा त्रिष्टुप्, १२ भुरिगगायत्री, १६ त्रिपदा प्रतिष्ठा  
 गायत्री, २१ ऋतुमती, २२ त्रिष्टुप्, २६ यमपद्या पदपदा  
 वृहतागर्गो ऋतुमती भुरिक् त्रिष्टुप् ।

इन्द्रस्य प्रथमो रथो देवानामपरो रथो  
 यरुणस्य तृतीय इत् ।

अहीनामपमा रथं स्थाणुमारुदधार्पत् ॥ १ ॥  
 वृभः द्योचिस्तरुणक—मर्दयस्य पारः पदस्य पारः ।

रथस्य धनुर्म ॥ २ ॥  
 अयं द्येत पदा जति पूर्येण चार्परेण च ।  
 उद्वल्लतमिव दार्यहीना—मरुसं विपं पादग्रम् ॥ ३ ॥

अंशुषो निमज्यो न्मज्य पुनरवधीत् ।  
उदप्लुतमिध दावर्हीना मरसं विपं वारुग्रम् ॥४॥  
पैदो हन्ति कसणीलं पैदः श्वित्रमृतसितम् ।  
पैदो रथर्व्याः शिरः सं विमेद पृदाकाः ॥५॥  
पैदः प्रेहि प्रथमोऽर्जु त्वा वयमेमसि ।  
अहीन व्यस्पतात् पुयो येन सा वयमेमसि ६  
इवं पैदो अजायते इमस्य परायणम् ।  
इमायवैतः पृदा-हिच्यो धाजिनीवतः ॥७॥  
संयतं न वि परद् व्याप्तं न सं यमत् ।  
अस्मिन् क्षेत्रे द्वावहो  
स्त्री च पुमाश्च तावुभावरसा ॥८॥  
अरसास इहाहयो ये अन्ति ये च दूरके ।  
घनेन हस्मि वृश्चिक-महिं दण्डेनागतम् ॥९॥  
अद्याभ्यस्वेदं भेषज-मुमयोः स्वजस्य च ।  
इन्द्रो मेऽहिमरुधयन्त-महिं पैदो अरुधयत् १०  
पैदस्य मग्नेह वयं स्थिरस्य स्थिरघातः ।  
इमे पुष्पा पृदाकवः प्रदीप्यत आसते ॥११॥  
नृष्टास्योऽनृष्टेर्विषा-हता इन्द्रेण वज्रिणा ।  
जघानेन्द्रो जघ्निमा ध्रुयम् ॥१२॥  
हतास्तिरश्चिराजयो निपिष्टासः पृदाकवः ।  
दर्वि करिगतं श्वित्रं इमेष्यसितं जहि ॥१३॥  
कैरातिका कुमारिका सुका स्रनति भेषजम् ।  
हिरण्यपीमिरभिमि-गिण्यामुप सानुषु ॥१४॥  
आयमंगन युवा भिषक् पृश्निहापरजितः ।  
स वै स्वजस्य जग्मन उमयोर्वृश्चिकस्य च १५  
इन्द्रो मेऽहिमरुधय-ग्मिप्रश्च वरुणश्च ।  
धातापुत्रेन्योऽु मा ॥१६॥  
इन्द्रो मेऽहिमरुधयत् पृदां च पृदाकम् ।  
स्वजं तिरश्चिराजि कसणीलं दशोनसिम् ॥१७॥

इन्द्रो जघान प्रथमं जनितामहे तव ।  
तेषामु तृहमाणां  
कः स्वित्र तेषामसद् रसः ॥१८॥  
सं हि शीर्षाण्यग्रमं पौञ्जिष्ठ इव कर्षेगम् ।  
सिन्धोमर्घ्यं परेत्य व्यजिजमहेविपम् ॥१९॥  
अहीनां सर्वेषां विपं परा वहन्तु सिन्धयः ।  
हतास्तिरश्चिराजयो निपिष्टासः पृदाकवः ॥२०॥  
ओषधीनामहं वृण उर्वरीरिष साधुया ।  
नयाम्यवैतीरिया-हे निरैतुं ते विपम् ॥२१॥  
यद्गौ सूर्ये विपं पृथिव्यामोषधीषु यत् ।  
कान्दाविपं कनककं निरैतुं ते विपम् ॥२२॥  
ये अग्निजा ओषधिजा अहीनां  
ये अप्सुजा विद्युतं आयुधुः ।  
येषां जातानि बहुधा मृद्वान्ति  
तेभ्यः सुपेभ्यो नमसा विधेम ॥२३॥  
तौद्री नामासि कन्या धृताची नाम वा अंसि ।  
अधस्पदेन ते पृद-मा वदे विपदूषणम् ॥२४॥  
अह्नादह्नात् प्र व्याघ्रप हृदयं प्ररि वज्रय ।  
अर्धा विपस्य यत् तेजो-ऽवाचीनं तदेतु ते २५  
आरे अमृद् विपमरौद् विपे विपममागपि ।  
अग्निविपमहेनिरघात् सोमो निरणयौत् ।  
दंष्टारम्वगाद् विपमहिरमृत ॥२६॥  
॥१८१॥ ( अथर्व ५।१३१-११ )  
गङ्गाम् । तस्य ( सर्पविषनाशनम् ) । जगती, २ आस्ता ( ५-  
वृत्तिः, ४, ७-८ अनुष्टुप्, ५ त्रिष्टुप्, ६ पद्यापवृत्तिः,  
९ मुरिक्, १०-११ त्रिष्टुप् ) ।  
इदिहिं महं वरुणो दिवः कविः  
वचोभिर्गन्ति रिणामि ते विपम् ।  
ग्यातमग्यातमुत् सुकमम्रम्  
इरेव धन्यं नि जजास ने विपम् ॥१॥  
( ९८८ )

यत् ते अपौदकं विपं तत् तं पताख्यग्रमम् ।

गृह्णामि ते मध्यममुत्तमं रसं  
उतावमं मियसां नेशदाहुं ते ॥ २ ॥

वृषां मे रवो नभसा न तन्त्यतुः  
उग्रेण ते वचसा वाध आहुं ते ।  
अहं तमस्य नृभिरेग्रमं रसं  
तमस इव ज्योतिरुदेतु सूर्यः ॥ ३ ॥

चक्षुषा ते चक्षुर्हन्मि विपेण हन्मि ते विपम् ।  
अहं क्षियस्व मा, जीवीः प्रत्यगभ्येतु त्वा विपम् ४  
कैरात पृश्न उर्पत्पण्य यक्ष  
आ मे शृणुतासिता अलीकाः ।

मा मे सख्युः स्तामानमपि  
घाताध्वावयन्तो नि विपे रमध्यम् ॥ ५ ॥

अक्षितस्य तैमातस्य वधोरपौदकस्य च ।  
साम्राज्ञाहस्याहं मन्वोरव ज्यामिध धन्वंतो  
वि मुञ्चामि रथौ इव ॥ ६ ॥

आलिगी च विलिगी च पिता च माता च ।  
विप्र यः सर्वतो यन्ध्व-रसाः किं करिष्यथ ॥ ७ ॥

उदगुर्गुलाया दुहिता जाता दास्यसि कन्या ।  
प्रतपे द्रुपदीनां सर्वोत्तमरसं विपम् ॥ ८ ॥

कृष्णं भ्यायितु तदग्रवीद् गिरेर्यचरन्तिका ।  
याः काश्रेमाः गेनित्रिमा-स्तासामरसतमं विपम् ९

तावुयं न तावुयं न घेत् त्यमसि तावुयम् ।  
तावुर्वेनारसं विपम् ॥ १० ॥

तन्त्युयं न तन्त्युयं न घेत् त्यमसि तन्त्युयम् ।  
तन्त्युर्वेनारसं विपम् ॥ ११ ॥

॥ १११ ॥ (अधर्घ ० ७।८८।१)

गणमान् । तक्षकः (सर्पविषनिवारणम्) । अयुष्टुप् ।  
अपेष्टारिरम्यरिषो अस्ति ।

विपे विपमपृक्था विपमिद् या अपृक्थाः ।  
अदिमेपावपेदि नं जदि ॥ १ ॥

॥ ११३ ॥ (अधर्घ ० ६।११।१-३)

गणमान् । तक्षकः (सर्पविषनिवारणम्) । अयुष्टुप् ।

परि चामिब सूर्यो-ऽहीनां जनिमागमम् ।

रात्री जगदिवान्यदसात् तेनां ते वारये विपम् १  
यद् ब्रह्ममिर्यदपिभि-र्यद् देवैर्विदितं पुरा ।

यद् भुतं मर्त्यमास्त्वत् तेनां ते वारये विपम् २  
मर्त्वा पृश्ने नचः पर्वता गिरयो मधु ।

मधु पर्वणी शीपोला शमास्ने अस्तु शं ह्रुवे ३  
॥ ११४ ॥ (अधर्घ ० ६।१६।१-३)

शान्तातिः । १ विश्वे देवाः, २-३ वृक्षः (सर्वभ्यो रक्षणम्) ।  
१ लष्णिगमर्गो पद्मावर्कितः, २ अयुष्टुप्, ३ निचूत

मा नो देवा अदिर्वधीत् सतोकास्त्वहपूरुषान् ।  
संयतं न वि परद् व्याप्तं

न सं यमममो देवजनेभ्यः ॥ १ ॥  
नमोऽस्तवसिताय नमस्तिरश्चिराजये ।

स्वजाय वधवे नमो नमो देवजनेभ्यः ॥ २ ॥  
सं तं हन्मि वृता वृतः समु ते हन्वा हनूं ।

सं तं जिह्या जिह्वां सम्याक्ताह आस्यम् ॥ ३ ॥  
॥ ११५ ॥ (अधर्घ ० ७।१६।१-८)

अथवा । वृद्धिदास्वा, २ वनस्पतिः, ४ ब्रह्मणस्पतिः (विपमे-  
यज्यम्) । अयुष्टुप्, ४ विराट्प्रस्तारवर्कितः

तिरश्चिराजेरुसितात् पृदाकोः परि संभृतम् ।  
तत् कृपर्वणो विप-मिषं वीरुदनीनशत् ॥ १ ॥

इयं वीरुन्मधुजाता मधुक्षुन्मधुला मधुः ।  
सा विहृतस्य भेष-ज्यथो मशकजर्मनी ॥ २ ॥

यतो दृष्टं यतो धीतं ततस्ते निर्द्वयामसि ।  
अर्मस्य वृषदंदिनो मशकस्यारुसं विपम् ॥ ३ ॥

अयं यो यमो विपंरुयंज्ञो  
मुखाति यत्रा पूजिता कृणोति ।

तानि त्वं ब्रह्माण्ड्यन इपीकामिष्य त्वं नमः ॥ ४ ॥  
अरमस्य दाकोरस्य नीचीनम्योपसर्पतः ।  
विषं हास्यादिप्यथो एनमजीजमम् ॥ ५ ॥

न ते याद्वोर्ध्वलमस्ति न क्षीपे नोत मथ्यतः ।  
अथ किं पापयामुया पुच्छे विमर्ष्यमकम् ॥ ६ ॥  
अदन्ति त्या पिपीलिका वि वृञ्चन्ति मयुर्यः ।  
सर्वे भल ब्रवाथ शाकौदमर्स् विषम् ॥ ७ ॥  
य उभाभ्यां प्रहरति पुच्छेन चास्येन च ।  
आस्येन न ते विपं किमु ते पुच्छघावसत् ॥ ८ ॥

### जलचिकित्सा ।

॥ १४६ ॥ ( अथर्व० ६।५७।१-३ )

शन्तातिः । रुद्रः । १-२ अनुष्टुप्, ३ पद्यावृहती ।

इदमिद् वा उ मेपज—मिदं रुद्रस्य मेपजम् ।  
येनेपुमेकतेजनां शतशल्यामपघवत् ॥ १ ॥  
जालापेणामि पिञ्चत जालापेणोप सिञ्चत ।  
जालापमुग्रं मेपजं तेन नो मृड जीवसे ॥ २ ॥  
शं च नो मयश्च नो मा च नः किं चनाममत् ।  
क्षमा रपो विश्वं नो अस्तु मेपजं  
सर्वं नो अस्तु मेपजम् ॥ ३ ॥

॥ १४७ ॥ ( अ० १।३१।१६-२१ )

मेपातिभिः कान्तः आपः, २३ आपः अग्निश्च । १६-१८ गायत्री,  
१९ पुर वणिक्, २१ प्रतिष्ठा । २०, २०—  
२१ अनुष्टुप् ।

अन्वयो यन्त्यर्ध्वमि—जामयो अघ्वरीयताम् ।  
पृञ्चतीर्मधुना पर्यः ॥ १६ ॥  
अमूर्पा उप सूर्ये यामिर्वा सूर्ये सह ।  
ता नो हिन्यन्त्वघ्वरम् ॥ १७ ॥  
अपो देवीरुपं हये यत्र गावः पियन्ति नः ।  
सिन्धुम्योः कर्तव्यं हविः ॥ १८ ॥  
अप्स्वन्तरमृतमस्तु मेपज—मयामृत प्रशस्तये ।  
देवा भवत वाजिनः ॥ १९ ॥  
अप्सु मे सोमो अघ्वी—दन्तविभ्रानि मेपजा ।  
अग्निं च विभ्रवांभुव—मार्पश्च विभ्रमैपजीः ॥ २० ॥

आपः पृणीत मेपजं वर्यं तन्वेन मम ।  
ज्योक् च सूर्ये इदो ॥ २१ ॥  
इदमापः प्र वंहतु यत् किं च दुरितं मयि ।  
यद् बाहममिदुद्रोहं यद् वा शेष उतानृतम् ॥ २२ ॥  
आपो अद्यान्वचारिणं रसेन समगस्माहि ।  
पर्यस्वानग्न आ गहि तं मा सं शृज वरिषा ॥ २३ ॥

॥ १४८ ॥ ( अ० ७।२७।१-४ )

वशिष्ठो मैत्रावरुणिः । आपः । त्रिष्टुप् ।

आपो यं वः प्रथमं दैवयन्तं  
इन्द्रपानमृमिमहृणवतेलः ।  
तं वो सूर्यं शुचिमतिप्रमथ  
घृतप्रुं मधुमन्तं वनेम ॥ १ ॥  
तमुर्मिमापो मधुमन्तं वो  
अपां नपादवत्वाशुहेमां ।  
यस्मिन्निन्द्रो वसुमिर्मादयाते  
तमश्याम देवयन्तो वो अघ ॥ २ ॥  
शतपथिनाः स्वधया मर्दन्तीः  
देवीदेवानामपि यन्ति पार्थः ।  
ता इन्द्रस्य न मिनन्ति मृतानि  
सिन्धुम्यो हव्यं घृतवग्नुहोत ॥ ३ ॥  
याः सूर्यो रुक्षिभिरातुतान  
याभ्य इन्द्रो अरदद् गातुमिर्म ।  
ते मिन्धवो वरियो घातना नो  
युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ४ ॥

॥ १४९ ॥ ( अ० ७।२७।१-४ )

वशिष्ठो मैत्रावरुणिः । आपः । त्रिष्टुप् ।

समुद्रज्येष्ठाः सलिलस्य मध्याव  
पुनाना यन्त्यनिविशमानाः ।  
इन्द्रो या वजी वृषभो रगाद्  
ता आपो देवीरिदं मार्मयन्तु ॥ १ ॥

( १६१ )

यज्ञियानं न्ययनं संज्ञानं यत् परायणम् ।  
 आवर्तनं निवर्तनं यो गोपा अपि तं ह्रुवे ॥ ४ ॥  
 य उदानं दध्ययनं न उदानं परायणम् ।  
 आवर्तनं निवर्तनं मपि गोपा नि वर्तताम् ॥ ५ ॥  
 आ निवर्त नि वर्तय पुनर्न इन्द्र गा देहि ।  
 जीवामिर्मनजामहे ॥ ६ ॥  
 परि धो विभ्वतो दध ऊर्जा घृतेन पर्यसा ।  
 ये देवाः के च यज्ञियास्ते रय्या सं सृजन्तु नः ७ ।  
 आ निवर्तनं वर्तय नि निवर्तनं वर्तय ।  
 भूम्याश्चतस्रः प्रविशंस्ताम्य पना नि वर्तय ॥ ८ ॥

॥ १५३ ॥ ( ऋ० १०।३०।१-१५ )

कवय ऐलपः । आपः, अपो नपात् वा । मिष्टुप ।

प्र देवजा ब्रह्मणे गातुरेत  
 अपो अच्छा मनसो न प्रयुक्ति ।  
 महीं मित्रस्य वरुणस्य धासि  
 पृथुजयसे रीरधा सुयुक्तिम् ॥ १ ॥  
 अर्धयधो हविर्मन्तो हि भूत  
 अच्छाप इतोऽशतीशान्तः ।  
 अय याश्चष्टे अरुणः सुपूर्णः  
 तमास्ययधमिर्मया सुहस्ताः ॥ २ ॥  
 अर्धयधोऽप इता समुद्र  
 अपां नपातं हविषा यजध्वम् ।  
 स यो दददुमिमया सपूर्ण  
 तस्मै सोमं मधुमन्तं सुनोत ॥ ३ ॥  
 यो अनिष्पो दीर्घदुप्स्वन्तः  
 यं विप्रांसु ईक्षते अघुरेषु ।  
 अपां नपान्मधुमतीरपो दा  
 यामिरिन्द्रो यावधे वीर्याय ॥ ४ ॥  
 यामिः सोमो मोक्षते हर्षते च  
 कल्याणीभिर्युवतिभिर्न मयैः ।

ता अघ्वयो अपो अच्छा परेहि  
 यदासिञ्चा औपधीभिः पुनीतात् ॥ ५ ॥  
 एवेधूने युवतयो नमन्त  
 यदमिशानुशतीरेत्यच्छ ।  
 सं जानते मनसा सं चिकित्ते  
 अघ्वयवो धिपणापश्च देवीः ॥ ६ ॥  
 यो यो वृताभ्यो अरुणोऽङ्ग लोकं  
 यो यो मृष्टा अभिशस्तेरमुञ्जात् ।  
 तस्मा इन्द्राय मधुमन्तमुमि  
 देवमादन् प्र हिणोतनापः ॥ ७ ॥  
 प्रास्मै हिनोत मधुमन्तमुमि  
 गर्मो यो वः सिन्धयो मध्व उत्सः ।  
 घृतपृष्टमीर्धमघ्वरेषु  
 आपो रेवतीः शृणुता हय मे ॥ ८ ॥  
 तं सिन्धयो मत्सरमिन्द्रपानं  
 ऊमि प्र ह्वेत य उमे इयति ।  
 मद्रच्युतमैशानं नमोजां  
 परि नितन्तु विचरन्तमुत्सम् ॥ ९ ॥  
 आवर्ततीरध नु द्विघारा  
 गोपुयधो न नियवं चरन्तीः ।  
 ऋषे जनिर्गोभुर्वनस्य पक्षीः  
 अपो वन्दस्व सवधः सयोनीः ॥ १० ॥  
 हिनोता नो अघुरं देवयज्या  
 हिनोत ब्रह्म सनये धनानाम् ।  
 ऋतस्य योगे वि ध्वम्बमूधः  
 शुष्टीवरीर्भूतनास्मम्यमापः ॥ ११ ॥  
 आपो रेवतीः शयया हि वस्यः  
 कर्तुं च भद्रं विमृशामनं च ।  
 रायश्च स्य स्वपत्यस्य पत्नीः  
 सरस्वती तद् गृणते ययो धाव ॥ १२ ॥

॥ १५७ ॥ ( अथर्व० १९।१।१-५ )

चिन्त्यदीपः । आपः । अनुष्टुप् ।

शं त आपो हैमवतीः शम्भु ते सन्तुत्याः ।  
 शं तै सनिष्यदा आपः शम्भु ते सन्तु वर्णाः ॥ १ ॥  
 शं त आपो धन्वत्याः शं तै सन्तुनप्याः ।  
 शं तै खनित्रिमा आपः शं याः कुम्भेमिराभृताः ॥ २ ॥  
 अनुभयः खनमाना विप्रा गम्भीरे अपसः ।  
 मिपगभ्यो मिपक्तप आपो अच्छा वशामसि ॥ ३ ॥  
 अपामहं दिव्याना—मुपां स्रोतस्यानाम् ।  
 अपामहं प्रणैजने—ऽभ्वा भवथ घाजिनः ॥ ४ ॥  
 ता अपः शिवा अपो—ऽयंश्मंकरणीरपः ।  
 यथैव सृज्यते मयस्ता—स्त आ दत्त मेपजीः ॥ ५ ॥

॥ १५८ ॥ ( अथर्व० १९।६१।१-४ )

महा । आपः । १ आनुयनुष्टुप् । २ साम्बनुष्टुप् । ३ आगुरी  
 गायत्री । ४ साम्बनुष्टुप् ।

जीवा स्थ जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥ १ ॥  
 उपजीवा स्थोप जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥ २ ॥  
 संजीवा स्थ सं जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥ ३ ॥  
 जीवला स्थ जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥ ४ ॥

॥ १५९ ॥ ( घा० य० १।११-१३, २१, ३१ )

( आपः । )

सवितुर्वैः प्रसव उत्पुनामि  
 अच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रदिमभिः ।  
 देवीरापो अग्नेगुयो अग्नेपुवोऽर्धं  
 इममथ यत् नयतां यत्पतिः  
 सुधातुं यत्पतिं देवयुर्वम् ॥ १२ ॥  
 युष्मा इन्द्रोऽवृणीत वृत्रतुये  
 युष्मिन्द्रमवृणीत वृत्रतुये प्रोक्षिता स्थ ॥ १३ ॥  
 समाप भोर्पधीभिः समोर्पधयो रसेन ।

सररेवतीर्जगतीभिः पृच्यन्ताः  
 सं मधुमतीर्मधुमतीभिः पृच्यन्ताम् ॥ २१ ॥

सवितुर्वैः प्रसव उत्पुनामि  
 अच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रदिमभिः ॥ ३१ ॥

॥ १६० ॥ ( घा० य० २।१, ३४ )

( आपः । )

अदित्यै व्युन्दनमसि ॥ २ ॥  
 ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पर्यः कीलालं परितुतम् ।  
 स्वधा स्थ तर्पयत मे पितृन् ॥ ३४ ॥

॥ १६१ ॥ ( घा० य० ४।१, ११ )

( आपः । )

इमा आपः शम्भु मे सन्तु देवीः ॥ १ ॥  
 भ्वाप्राः पीता भवत युयमापो  
 अस्मार्कमन्तरुदरे सुशेवाः ।  
 ता असभ्यमयश्मा अनमीया अनागसः  
 स्वदन्तु देवीरमृता ऋतावर्धः ॥ १२ ॥

॥ १६२ ॥ ( घा० य० ५।११ )

( आपः । )

इदमहं तप्तं वार्यदिर्धा यज्ञाग्निः सृजामि ॥ ११ ॥

॥ १६३ ॥ ( घा० य० ६।१०, १३, ३०-३१ )

( आपः । )

आपो देवीः स्वदन्तु स्यात्तं चित्सद् देवहृदिः ॥ १० ॥  
 देवीरापः शुद्धा यौदवः सुपरिविष्टा  
 देवेषु सुपरिविष्टा धुयं परिवेष्टारो भूयास ॥ १३ ॥  
 निग्राभ्या स्थ देवधृतस्तर्पयत मा ॥ ३० ॥  
 मनो मे तर्पयत वार्य मे तर्पयत प्राणं मे तर्पयत  
 चक्षुं मे तर्पयत श्रोत्रं मे तर्पयतानामनं मे तर्पयत  
 प्रजां मे तर्पयत पुनः मे तर्पयत  
 गुणान् मे तर्पयत गुणा मे मा विपुन ॥ ३१ ॥

॥ १६३ ॥ ( य० य० ६।१७, २९, २४, २७-२८ )

( आप । )

इदमापः प्रवहता—वृचं च मलं च यत् ।  
 यच्चाभिदुद्रोहानृतं यच्च शोषे अमीरणम् ।  
 आपो मा तस्मादेनसः—पर्वमानश्च मुञ्चतु ॥ १७ ॥  
 आपो मोर्षधीहिंसीः ।  
 सुमित्रिया न आप ओर्षधयः सन्तु ।  
 योऽस्मान् छेष्टि यं चं ययं द्विष्यः ॥ २२ ॥  
 अग्नेर्गोऽर्षघृहस्य सदैसि सादयामि  
 इन्द्राग्न्योर्भागधेयीं स्य मित्रावरुणयोर्भागधेयीं स्य  
 रिभ्योर्वा देवानां भागधेयीं स्य ।  
 अमूर्या उप सूर्ये यार्भिर्जा सूर्यैः सह ।  
 ता नो दिव्यम्यध्वरम् ॥ २४ ॥  
 देवीरापो अर्षा नपाद्यो यं ऊर्मिः  
 दंष्ट्रिष्य इन्द्रियायान् मद्विन्तमः ।  
 न देवेभ्यो देवया दंष्ट्र  
 नृकपेभ्यो वेर्षा माग स्य स्वादा ॥ २७ ॥  
 समुद्रस्य त्वा क्षिया उर्ध्वयामि ।  
 समार्षो अग्निरमत् समोर्षधीमितोर्षधीः ॥ २८ ॥

॥ १६५ ॥ ( या० य० ८।१६ )

यदि वृक्षादभ्यर्षस्तत् फलं तद्  
 यद्यन्तरिक्षात् स उ वायुरेव ।  
 यत्रास्पृशत् तन्त्रोऽत्र यच्च वासस  
 आपो जुदन्तु निश्कृतिं परावैः ॥ २ ॥  
 अभ्यर्जनं सुरभि सा समृद्धिः  
 हिरण्यं अर्चस्तर्ह्यं पुत्रिममेव ।  
 सर्वा पवित्रा वितताध्यस्त  
 तन्मा तारिषिर्धृतिर्मा अरतिः ॥ ३ ॥

॥ १६ ॥ ( अथर्व० ७।३।९।१-४ )

सिन्धुर्वापः । अभिः ( दिव्या आपः ) । अनुष्टुप् । ४ त्रिपदा  
 त्रिचतु परोणिक् ।

अपो दिव्या अचापिपं रसेन समपृक्षमहि ।  
 पयस्वान्न आगमं तं मा सं सृज यच्चैसा ॥ १ ॥  
 सं माग्ने यच्चैसा सृज सं प्रजया समायुष्या ।  
 विद्युमे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात् सह ऋषिभिः २  
 इदमापः प्र वहता—वृचं च मलं च यत् ।  
 यच्चाभिदुद्रोहानृतं यच्च शोषे अमीरणम् ॥ ३ ॥  
 एषोऽस्येधिषीय सुमिर्दसि समधिषीय ।  
 तेजोऽसि तेजो मयि धेति ॥ ४ ॥



॥ १७० ॥ ( अथर्व० ६।७०।१-३ )

शन्तातिः । १ आदित्यारविः । २-३ मरुतः ( भैषज्यम् ) ।  
त्रिष्टुप्, २ चतुष्टुप् भुविजयतो ।

रुष्णं नियानं हरयः सुपर्णा  
अपो वसाना दिवमुत् पतन्ति ।

त आर्यवृन्तसर्दनादृतस्य  
आदिद् घृतेन पृथिवी व्युद्भुः  
पर्यस्वतोः रुष्णयाप ओषधीः  
शिवा यदेजया मरुतो रुमवक्षसः ।

ऊर्जं च तत्र सुमतिं च पिब्यतु  
यत्रा नरो मरुतः सिञ्चथा मधुं  
उदमुतो मरुतस्तो इयत  
घृष्टिया विभ्या विघर्तस्पृणाति ।  
यजाति ग्लहा कन्येय तुष्टा  
परं तुन्दाना पत्येय जाया

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ १७१ ॥ ( अथर्व० ६।११।१-३ )

शन्तातिः । आप ( अथ भैषज्यम् ) । १ अत्रुष्टुप्,  
२ त्रिष्टुप् गायत्री, ३ परोष्णिक् ।

सुस्रुषीस्तदुपसो दिवा नक्तं च सुस्रुषीः ।

घरेण्यनतुष्टु-मपो देवीरुप द्वये ॥ १ ॥

ओता आपः कर्मण्या मुञ्चन्त्यतः प्रणीतये ।

सद्यः रुष्णन्त्येतवे ॥ २ ॥

देवस्य सवितुः सवे कर्म रुष्णन्तु मानुषाः ।

शो नो भयन्त्यप ओषधीः शिवाः ॥ ३ ॥

॥ १७२ ॥ ( अथर्व० ६।७४।१-३ )

शन्तातिः । आप ( अथ भैषज्यम् ) । अनुष्टुप् ।

हिमघतः प्र स्यन्ति सिन्धौ समह संगमः ।

आपो ह मां तद् देवीः दर्दन हृदयोतमपजम् १

यन्मे अहोरादिघो-त पाण्योः प्रपदोष्टु यन् ।

आपस्तन् सर्वं निष्करन् सिपजां सुभिषजमाः २

मिन्धुपत्नीः सिन्धुपत्नीः सर्वा या नद्यः स्थन ।

इत् नस्तस्य भैषजं तेना यो भुनजामहे ॥ ३ ॥

॥ १७३ ॥ ( ऋ० ५।८२।१-१० )

मौगोऽत्रि । पञ्चनयः । त्रिष्टुप्, २-४ जगती, १ अनुष्टुप् ।

अच्छां चद तवसं गीर्भिसाभिः

स्तुद्धि पञ्चन्यं नमसा विवास ।

कर्त्तिकदद् वृषभो जीरदान्

रेतो दद्यात्योषधीषु गर्भम् ॥ १ ॥

वि घृक्षान् हन्यत हग्नि रुक्षसं

विभ्वं विभाय भुवनं मरार्यघात् ।

उतानां गा ईपते वृण्यावतो

यत् पञ्चन्यः स्तनयन् हस्ति दुहन्तः ॥ २ ॥

रुधीष कदायाभौ अभिश्रिपन्

आविर्दुतान् रुणुते घृष्ट्यां अहं ।

दूरात् सिहस्य स्तनया उदीरते

यत् पञ्चन्यः रुणुते घृष्ट्यां नमः ॥ ३ ॥

प्र याता यान्ति पतर्यन्ति त्रिष्टुत्

उदोषधीर्जिह्वते पिब्यते स्वं ।

इरा विभ्वस्मै भुवनाय जायते

यत् पञ्चन्यः पृथिवीं रेतुसारवति ॥ ४ ॥

यस्य मृते पृथिवी ननमीति

यस्य मृते शफपञ्चभुरीति ।

यस्य मृत ओषधीर्विभ्वरूपाः

स नः पञ्चन्य मदि शर्म यच्छ ॥ ५ ॥

द्विघो नो घृष्टि मरुतो ररीचं

प्र पिब्यत वृष्णो भव्यस्य धाराः ।

अराडितेन स्तनयितुनेदि

अपो निविञ्चसुतः पिता नः ॥ ६ ॥

अभि मन्द स्तनय गर्भमा घां

उद्व्यता परि दीया रथेन ।

दति सु फं विरितं न्यञ्जं

समा मयन्तुदतो निपादाः ॥ ७ ॥

महान्तं कोशमुदचा नि पिञ्च  
स्यन्दन्तां कृत्या विविताः पुरस्तात् ।

यूतेन द्यावापृथिवी व्युन्धि  
सुप्रपाणं भवत्वध्याभ्यः

॥ ८ ॥

यत् पर्जन्य कर्त्तिकदत्  
स्तनयम् हंसि दुष्कृतः ।

प्रतीदं विध्वं मोदते

यत् किं वं पृथिव्यामधि

॥ ९ ॥

अवर्षीर्वर्षमुदु पू गृभाय  
अकृधन्वान्यत्यैतवा उ ।

अजीजन ओषधीर्भोजनाय

कमुत प्रजाभ्योऽधिदो मनीषां

॥ १० ॥

॥ १७४ ॥ ( अ० १०।१७।१६ )

ऐन्द्रो वधुक । इन्द्रः ( पर्जन्यः ) । त्रिष्टुप् ।

दक्षानामेकं कपिलं समानं

तं हिन्वन्ति क्रतवे पार्याय ।

गर्भे माता सुधितं पक्षणास्तु

अर्चनन्त नृपयन्ती विभर्ति

॥ १६ ॥

॥ १७५ ॥ ( अ० ७।१०।१-६ )

मेत्रावरुणैर्वसिष्ठः ( वृष्टिकामः ), कुमार आग्नेयो वा ।

पर्जन्यः । त्रिष्टुप् ।

तिष्ठो याच्यः प्र यद् ज्योतिरग्रा

या एतद् दृष्टे मधुवोचमुषः ।

न यत्सं कृण्वन् गर्भमोषधीनां

सृष्टो जातो गृध्रमो रौरवीति

॥ १ ॥

यो पथेन ओषधीनां यो अर्षां

यो विश्वेभ्य जगतो देय ईदौ ।

न त्रिधानं दारुणं दमै यंसत्

त्रिपत् उयोतिः म्यगिष्ट्युसे

॥ २ ॥

स्तरीयं त्वद् भवति सूर्य उ त्वद्  
यथावशं त्वयं चक्र एवः ।

पितुः पयः प्रति गृभ्णाति माता

तेन पिता वर्धते तेन पुत्रः

॥ ३ ॥

यस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थुः

तिष्ठो द्यावेच्छेधा ससुरापेः ।

अयः कोशास उपसेचनान्तो

मध्वः ओतन्यभितो विरप्ताम्

॥ ४ ॥

इदं वचः पर्जन्याय स्वराजै

हृदो अस्त्वन्तरं तज्जुजोपत् ।

मयोभुवो वृष्टयः सन्त्वसे

सुपिप्पला ओषधीर्देवर्गोपाः

॥ ५ ॥

स रेतोधा वृषभः शश्वतीनां

तस्मिन्नात्मा जगतस्तस्थुर्पञ्च ।

तन्मं श्रुतं पातु शतशरदाय

युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः

॥ ६ ॥

॥ १७६ ॥ ( अ० ७।१०।१-३ )

मेत्रावरुणैर्वसिष्ठः ( वृष्टिकामः ), कुमार आग्नेयो वा । पर्जन्यः ।

गायत्री, २ पादत्रिष्टुप् ।

पर्जन्याय प्र गांयत दिक्स्वपुत्राय मीळुष्ये ।

स नो यवसमिच्छतु ॥ १ ॥

यो गर्भमोषधीनां यवां कृणोत्यर्थताम् ।

पर्जन्यः पुरुषीणाम् ॥ २ ॥

तस्मा इदास्ये हविर्जहोता मधुमत्तमम् ।

इत्तो नः सययै करत् ॥ ३ ॥

॥ १७७ ॥ ( अ० ७।१०।३।१-१० )

मेत्रावरुणैर्वसिष्ठः । मण्डूकाः ( पर्जन्यः ) । त्रिष्टुप्, १

अनुष्टुप् ।

मन्वत्सरं दशायानां प्राद्वणा यत्चारिणः ।

यान्यै पर्जन्यजिन्वितां प्र मण्डूकां अवादिपुः ॥ १ ॥

( १०८९ )

दिव्या आपो अमि यदेनमायन्  
 हति न शुष्कं सरसी शयानम् ।  
 गवामह न मायुर्वृत्तिर्नानां  
 मण्डूकानां वृश्चरजा समेति  
 यदीमेनो उशतो अम्यवर्णात्  
 तृप्यावतः प्रावृष्यागतायाम् ।  
 अमृत्प्लीहस्यां पितरं न पुत्रो  
 अन्यो अन्यमुप यदन्तमेति  
 अन्यो अन्यमनु गृष्णात्येतोः  
 अपां प्रसृगो यदमृत्प्रपाताम् ।  
 मण्डूको यदमिर्दृष्टः कर्तिष्कन्  
 पृश्निः संपृष्टकै हरितैर्न वार्चम्  
 यदेपामन्यो अन्यस्य वार्चं  
 शाक्तस्यैव यदति शिक्षमाणः ।  
 सः तदेपां समृधैव परं  
 यत् सुधाचो यदधुनाप्यन्तु  
 गोमापुरेको अजमापुरेकः  
 पृश्निरेको हरितं परं एषाम् ।  
 समानं नाम विश्रतो विरूपाः  
 पुरुषा वार्चं पिपिशुर्दन्तः  
 प्राक्षणासो अतिरात्रे न मोमे  
 सरो न पूर्णममितो यदन्तः ।  
 संयत्सुरस्य तदहः परितः ह  
 यन्मण्डूकाः प्रावृषीणं यमूर्तं  
 प्राक्षणासः सोमिनो वार्चमजत  
 प्रदो हृष्यन्तः पत्विस्तरिणम् ।  
 अभ्युपवीं घामिणः सिध्निदाना  
 अपिमैरन्ति गुहा न के चिन्  
 देवदिति ह्युपुर्णदत्तस्य  
 फ्रुतुं नरो न प्र मिनन्त्येतै ।

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

संवन्सरे प्रावृष्यागतायां  
 तप्ता घृमा अंशुयते त्रिसर्गम्  
 गोमापुर्दादजमापुर्दात्  
 पृश्निरेका हरितो नो वसन्ति ।  
 गवां मण्डूका ददन्तः शतानि  
 सहस्रसावे म तिरन्त आयुः

॥ ९ ॥

॥ १० ॥

॥ १७८ ॥ ( अथर्वे ४।१५।१-१६ )

अथर्वः । १ दिश, २-३ वीहवा, ४ मध्यपर्वन्वी, ५-१०  
 मरुतः आपः, ११ प्रजापति स्तनधितु, १२ वरुण,  
 १३-१५ मण्डूकाः पितरश्च, १६ वायुः ( वृष्टिः ) । त्रिष्टुप् ;  
 १-२, ५ विराट् जगती, ४ शिवाट् पुरस्ताद्बृहती, ७-१३  
 अनुष्टुप्, ९ पथ्यापराक्षि, १० भुरिह्, ११ पथ्यपदानुष्टुप्मर्मा  
 भगिह्, १५ शुक्लमलानुष्टुप् ।

समुत्पतन्तु प्रदिशो नर्मस्यतीः  
 समुन्नाणि यार्तजूतानि यन्तु ।  
 महभ्रुपमस्य नर्दतो नर्मस्यतो  
 वाधा आपः पृथिवीं तर्पयन्तु  
 समीक्षयन्तु तत्रियाः सुदानवः  
 अपां रसा ओषधीभिः सचन्ताम् ।  
 धर्षस्य सर्गा मध्यन्तु भूमिं  
 पृथग् जायन्तामोषधयो विश्वरूपाः  
 समीक्षयस्य गायतो नर्माणि  
 अपां वेगांसः पृथगुद् विजन्ताम् ।  
 धर्षस्य सर्गा मध्यन्तु भूमिं  
 पृथग् जायन्तां वीर्यां विद्वरूपाः  
 गुणास्त्वोषं गायन्तु मार्गताः  
 पर्वन्व घोषिणः पृथक् ।  
 सर्गा धर्षस्य धर्षतो धर्षन्तु पृथि शमन्तु  
 उदीरयत मरुतः समुद्रतः  
 त्वेवो रुक्मो नम उम् पातयाथ ।  
 महभ्रुपमस्य नर्दतो नर्मस्यतो  
 वाधा आपः पृथिवीं तर्पयन्तु

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

अभि कन्द स्तनयार्दयोर्दधि  
भूमिं पर्जन्यं पर्यसा समदग्धि ।  
त्वया सृष्टं बहुलमैतु वर्ष  
आशारैषी कृशगुरेत्यस्तम् ॥ ६ ॥

सं षोऽवन्तु सुदानव उत्सा अजगरा उत ।  
मरुद्भिः प्रच्युता मेघा वर्षन्तु पृथिवीमनु ॥ ७ ॥

आशामाशां वि द्यौततां चाता वान्तु दिशोर्विशः ।  
मरुद्भिः प्रच्युता मेघाः सं यन्तु पृथिवीमनु ॥ ८ ॥

आपो विद्युदध्नं वर्ष सं षोऽवन्तु  
सुदानव उत्सा अजगरा उत ।  
मरुद्भिः प्रच्युता मेघाः प्रावन्तु पृथिवीमनु ॥ ९ ॥

अपामग्निस्तनूभिः संविदानो  
य ओषधीनामधिपा बभूव ।  
स नो वर्ष वन्तुतां जातवेदाः  
प्राणं प्रजाभ्यो अमृतं दिवस्पतिं ॥ १० ॥

प्रजार्पतिः सलिलादा संमुद्राद्  
आपं ईरयन्नदधिमर्दयाति ।  
प्र प्यायता वृष्णो अदर्वस्य रेतः  
अर्वाङ्ङितेन स्तनयित्नुनेहि ॥ ११ ॥

अपो निपिञ्चन्नसुरः पिता नः द्यसन्तु  
गर्गरा अपां घर्ण्णाव नीवीरपः खंज ।  
वर्षन्तु पृथिव्याहयो मण्डूका हरिणानु ॥ १२ ॥

संवत्सरं दशयाना ग्राह्याणा मंतचारिणः ।  
पाचं पर्जन्यंजित्वितां म मण्डूकां अवादिषुः ॥ १३ ॥

उपप्रयद मण्डूकिः धर्ममा चंद तादुरि ।  
मर्त्ये द्दम्यं प्रयस्य विगृह्यं चतुरः पदः ॥ १४ ॥

मण्यग्याऽऽ नैमग्याऽऽ मर्त्ये तदुरि ।  
वर्षं यन्तुं पितरो मरुतां मनं हच्छत ॥ १५ ॥

मदान् कोशमुदच्यामि पिञ्च  
मपिपुतं मपत पातु पातः ।

तन्वतां युधं यद्दुघा विसृष्टा  
आनन्दिनीरोषधयो भवन्तु ॥ १६ ॥

॥ १७ ॥ ( अथर्व ७।१८।१-९ )  
अथवा । पृथिवी, परंज्यः ( वृष्टिः ) । १ चतुष्पदा भूरिगुणिह,  
२ त्रिष्टुप् ।

प्र नमस्य पृथिवि भिन्दीदुदं दिव्यं नमः ।  
उद्रो दिव्यस्य नो धातु—रीशानो वि प्या दृतिम् १  
न व्रंस्तताप न हिमो जंघान  
प्र नमतां पृथिवी जीरदानुः ।  
आपश्चिदसौ घृतमित् क्षरन्ति  
यत्र सोमः सद्रमित् तत्र भद्रम् ॥ २ ॥

॥ १८० ॥ ( श्रु ३।३३।१-१३ )  
गायितो विश्वामित्रः ४, ६, ८, १० नयाः ऋषिर्वा १ नयाः,  
४, ८, १० विश्वामित्रः ६, ७ इन्द्र । त्रिष्टुप्, १२ अनुष्टुप् ।

प्र पर्यतानामुशती उपस्थाद्  
अश्वे इव विपिते हासमाने ।  
गार्वेय शुश्रे मातरां रिङ्गणे  
विपाद्छुतुद्री पर्यसा जवेते ॥ १ ॥

इन्द्रेपिते प्रसुवं भिर्हमाणे  
अच्छा समुद्रे रथर्वे याथः ।  
समारणे ऊर्मिभिः पिन्वमाने  
अन्या वामन्यामप्येति शुश्रे ॥ २ ॥

अच्छा सिन्धुं मातृत्तमामयासं  
विपादामुयौ सुभगांमगम्य ।  
वत्समिव मातरां संरिद्धाणे  
समानं योनिमनु संचरन्ती ॥ ३ ॥

एना वयं पर्यसा पिन्वमाना  
अनु योनिं देवकृत् चरन्तीः ।  
न वर्तये प्रसवः सर्गतक्तः  
क्रियुषिमां नपो जोहवीति ॥ ४ ॥

रम्यं मे वचसे सोम्याय  
 ऋतावरीरुपं मुहुर्तेमवैः ।  
 प्र सिन्धुमच्छो बृहती मनोपा  
 अवस्युरहे कुशिकसं सुनुः  
 ॥ ५ ॥ इन्द्रो अस्मौ अरदुद् वज्रवाहुः  
 अपाहन् वृत्रं परिधिं नदीनाम् ।  
 देवोऽनयत् सविता सुपाणिः  
 तस्य ध्रुवं प्रसवे याम उर्वीः  
 प्रवाच्यं शश्वधा धीर्यं तद्  
 इन्द्रस्य कर्म यदहिं विवृक्षत् ।  
 वि वज्रेण परिपदो जघान  
 आयन्नापोऽयनमिच्छमानाः  
 एतद् वचो जरितमोपि मृष्टा  
 आ यत् ते धोपानुसरा युगानि ।  
 उपयेयुं कारो प्रति नो जुपस्व  
 मा नो नि कः पुरुषा नमस्ते  
 ओ पु स्वसारः कार्वे शृणोत  
 ययौ यो दुरादनसा रथेन ।  
 नि पू नमध्वं भवता सुपारा  
 अधोऽक्षाः सिन्धवः स्रोत्याभिः  
 आ ते कारो दृणवाम् वचांसि  
 ययार्थं दुरादनसा रथेन ।  
 नि ते नंसि पीप्यानेव योया  
 मयीयेव कृन्वा शश्वदे ते  
 यदङ्ग त्वां मत्ताः संतरैयुः  
 गन्धन् प्रार्म इपित इन्द्रजूनः ।  
 अपादहं प्रसवः सर्गतक  
 आ धो वृणे सुमतिं युगिर्यानाम्  
 अतारिपुर्भूता गन्धवः सं  
 अभंक्त विप्रः सुमतिं नदीनाम् ।

प्र पिन्वध्वमिषयन्तीः सुराभ्रा  
 आ वक्षणाः पृणध्वं यात शीर्भम् ॥ १२ ॥

॥ ५ ॥

उद् व ऊर्मिः शम्यां हन्तु  
 आपो योन्त्राणि मुञ्चत ।  
 मादुष्कृतौ ध्येनसाऽध्यौ शनमारताम् ॥ १३ ॥

॥ १८१ ॥ ( अ० ७/१०/४ )

मैत्रावरुणैर्वशिष्टः । नद्यः । अतिव्रतौ वाहरो वा ।

॥ ६ ॥

याः प्रवतो निवर्त उद्वर्त  
 उद्वयतीरनुदकाश्च याः ।  
 ता अस्मभ्यं पयसा पिन्वमानाः  
 शिवा देवीरशिपदा भवन्तु  
 ॥ ७ ॥ सर्वो नद्यो अशिमिदा भवन्तु ॥ ४ ॥

॥ १८२ ॥ ( अ० १०/७/१-९ )

सिन्धुक्षितं त्रैयमेव । नद्यः । जगती ।

॥ ८ ॥

प्र सु र्ध आपो महिमानमुत्तमं  
 कार्वीचाति सर्वेने विवस्वतः ।  
 प्र सप्तसतं त्रेधा हि चक्रुः  
 प्र सृत्वंरीणामति सिन्धुरोजसा ॥ १ ॥

॥ ९ ॥

प्र तेऽरदुद् वरुणो यातवे पृथः  
 सिन्धो यद् वाजो अभ्यद्रवस्त्वम् ।  
 भूम्या अधि प्रवतो पाप्सि साहुना  
 यदेयामग्रं जगतामिज्यासि ॥ २ ॥

॥ १० ॥

दिवि स्यनो रथते भूम्योपरि  
 अनन्तं शुष्ममुर्दिशति मानुना ।  
 अधादिह प्र स्तनयन्ति वृष्टयः  
 सिन्धुर्यदेति वृषमो न रोहयत् ॥ ३ ॥

॥ ११ ॥

अभि त्वां सिन्धो शिदामिभ्र मातरौ  
 वाभ्रा अर्पन्ति पयसेव धेनवः ।  
 राजेव युधां नयसि त्वमित् सिन्धौ  
 यदासामग्रं प्रवतामिर्नक्षसि ॥ ४ ॥

( २००७ )

इमं ॥ गङ्गे यमुने सरस्वति  
 शुतुद्रि स्तोमं सचता पशुण्या ।  
 अस्मिन्या मरुद्वृधे वितस्तया  
 आर्जिकीये शृणुह्या सुयोमया  
 तृष्टामया प्रथमं यातवे सज्जः  
 सुमर्त्या रसया श्वेत्या स्या ।  
 त्वं सिन्धो कुमया गोमतीं कुमु  
 मेहन्त्या सूर्य याभिरीयसे  
 श्रुज्जीत्येनी दशती महित्या  
 परि जयांसि मरुते रजांसि ।  
 अर्द्धा सिन्धुरपसांमपस्तम  
 अश्या न चित्रा वपुपीय दशता  
 स्यश्या सिन्धुः सूर्या सुयासां  
 हिरण्ययी शुकेता याजिनीयती ।  
 ऊर्णायती युयतिः सीलमायति  
 उताधि वस्ते सुमगा मधुवर्धम्  
 सुगं रथं युयजे सिन्धुरभिनं  
 तेन याजं तनिपदसिप्राजी ।  
 मदान् हस्य महिमा पनुस्यते  
 अर्द्धधस्य स्वयंदासो पिरुष्टानः

॥ १८३ ॥ ( अ० ७।१५।३ )

मेत्रावरुणिर्षिष्टः । सरस्वती । त्रिष्टुप् ।

न वापृधे नयौ वापृणाम्  
 पृथा शिर्षुर्गुणो युधिर्षासु ।  
 न याजिनं मयर्षज्ञयो दधाति  
 पि गानयं तृग्यं मागृजिन

॥ १८४ ॥ ( अ० ७।१६।४-६ )

मेत्रावरुणिर्षिष्टः । सरस्वती । वापृधे ।

ज्जीयग्नो मयर्षयः पुर्वीयग्नः सुदानयः ।  
 सार्वधनं दद्यामहे

॥ ४ ॥

ये ते सरस्व ऊर्मयो मधुमन्तो घृतश्रुतः ।  
 तेभिर्नोऽविता भव ॥ ५ ॥  
 पीपिधांसं सरस्वतः स्तनं यो विश्वदर्शतः ।  
 भक्षीमहि प्रजामिपम् ॥ ६ ॥

॥ १८५ ॥ ( अ० ७।१७।१-२ )

प्रष्टुण्वः । सरस्वती । १ भुरिक, २ त्रिष्टुप् ।

॥ ६ ॥ यस्य व्रतं पशवो यन्ति सद्यं  
 यस्य व्रत उपतिष्ठन्त आपः ।  
 यस्य व्रते पुष्टपतिर्निर्विष्टः  
 तं सरस्वन्तमवसे हवामहे ॥ १ ॥  
 ॥ ७ ॥ आ प्रत्यञ्च दाशुषे दाश्वंसं  
 सरस्वन्तं पुष्टपतिं रयिष्ठाम् ।  
 रायस्पोषं श्रवस्युं वसाना  
 इह हुवेम सदेन रयोनाम् ॥ २ ॥

॥ १८६ ॥ ( अ० १।३।१०-१२ )

मधुःकन्दावैश्वामित्रः । सरस्वती । गायत्री ।

॥ ९ ॥ पावका नः सरस्वती याजेभिर्याजिनीयती ।  
 यज्ञं यष्टु धियावसः ॥ १० ॥  
 योदयित्री सनुतानां चेतन्ती सुमतीनाम् ।  
 यज्ञं यष्टे सरस्वती ॥ ११ ॥  
 मद्रो अणः सरस्वती प्र चेतयति केतुना ।  
 धियो विश्वा वि राजति ॥ १२ ॥

॥ १८७ ॥ ( अ० १।१६।४९ )

शीघ्रतया ओषध्य । सरस्वती । त्रिष्टुप् ।

यस्ते स्तनः शान्तो यो मयोमः  
 येन विद्या पुष्टिं यायीणि ।  
 यो रानुधा रानुविद् यः सुदुः  
 सरस्वति तमिद् धामने वा ॥ ४९ ॥

(१०४९)

॥ १८८ ॥ ( ऋ० २।२०।८ [ पूर्वाभिः ] )

गृहसमदः ( आग्निरसः शौनहोत्रः पथाद् मार्गवः ) शौनकः ।  
सरस्वती । त्रिष्टुप् ।

सरस्वति त्वमस्माँ अविड्ढि  
मरुत्यती धृपती जेपि शर्यन् ॥ ८ ॥

॥ १८९ ॥ ( ऋ० २।४१।१६-१८ )

गृहसमदः ( आग्निरसः शौनहोत्रः पथाद् मार्गवः ) शौनकः ।  
सरस्वती । अनुष्टुप्, १८ बृहती ।

अभ्यितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति ।  
अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिमग्न नस्कृधि १६  
त्ये धिष्वाँ सरस्वति धितायूपि देव्याम् ।  
शुनहोत्रेषु मत्स्व प्रजाँ देवि दिदिड्ढि नः १७  
इमा ब्रह्म सरस्वति जुपस्व वाजिनीवति ।  
या ते मर्म गृहसमदा ऋताधरि  
प्रिया देवेषु जुह्वति ॥ १८ ॥

॥ १९० ॥ ( ऋ० ६।६१।१-१४ )

बाईस्वत्यो मरद्वाजः । सरस्वती । गायत्री, १-१, १२ जगती,  
१४ त्रिष्टुप् ।

इयमददाद् रभसमृणच्युतं  
दिवोदासं घण्यध्वार्य द्राघुपं ।  
या शश्वन्तमाघ्यादावसं पूर्णि  
ता तै द्वात्राणि तयिषा सरस्वति ॥ १ ॥  
इयं शुभेभिर्विसृपा इयारुजत्  
सानुं गिरिणां तयिपेभिर्भूमिभिः ।  
पारावतप्रोमवसे सुवृक्तिभिः  
सरस्वतीमा धिवासेम धीतिभिः ॥ २ ॥  
सरस्वति देवनिद्रो नि वर्हय  
प्रजाँ विश्वस्य गृहस्यस्य मायिनः ।  
उत क्षितिभ्योऽवनीरविन्दो  
विपर्मभ्यो अन्नवो वाजिनीवति ॥ ३ ॥

प्र णो देवी सरस्वती वार्जिभिर्याजिनीवती ।

धीनामविज्यवतु ॥ ४ ॥

यस्याँ देवि सरस्वत्युपगृते धने हिते ।

इन्द्रं न वृत्तयै ॥ ५ ॥

त्वं देवि सरस्वत्या वाजेषु याजिनि ।

रदा पुषेवं नः सनिम् ॥ ६ ॥

उत स्या नः सरस्वती घोरा हिरण्यवर्तनिः ।

वृत्रघ्नी वष्टि सुष्टुतिम् ॥ ७ ॥

यस्याँ अनन्तो अहुतस्त्वेवञ्छरिणुरर्णवः ।

अमश्चरति रोह्यत् ॥ ८ ॥

सा नो विश्वा अति द्विपः स्यसृग्म्या ऋतावरी ।

अतर्ह्यैव सूर्यः ॥ ९ ॥

उत नः प्रिया प्रियासु सप्तस्वसा सुहृता ।

सरस्वती स्तोम्याँ भूत् ॥ १० ॥

आपग्री पार्थिवा न्युद रजो अन्तरिक्षम् ।

सरस्वती निदस्पातु ॥ ११ ॥

त्रिपथस्याँ सप्तधातुः पञ्च जाता वर्धयन्ती ।

वार्जिवाजे हव्याँ भूत् ॥ १२ ॥

प्र या मदिह्ना मदिनासु चेकिते

चुस्तेभिर्ग्न्या अपसामुपस्तमा ।

रय इव बृहती विभ्वनै कृता

उपस्तुत्याँ चिकित्वा सरस्वती ॥ १३ ॥

सरस्वत्यभि नो नेपि वस्यो

मार्प स्फुरीः पर्यसा मा न आ धक् ।

जुपस्व नः सप्त्या वेदयाँ च

मा त्वत् क्षेत्राण्यरण्यानि गन्म ॥ १४ ॥

॥ १९१ ॥ ( ऋ० ७।९५।१-२, ४-६ )

मैत्रावरुणिर्वैश्वः । सरस्वती । त्रिष्टुप् ।

प्र शोदसा धार्यसा सन्न एषा

सरस्वती घृणमार्पसा पृः ।

प्रवार्वधाना रथ्यैव याति

विष्वाँ अपो मदिह्ना मिन्धुर्ग्न्याः ॥ १ ॥

एकाचित्तत् सरस्वती नदीनां  
नुचिरेती गिरिभ्य आ संमुद्रात् ।  
रायधेतन्ती भुवनस्य भूरेः  
घृतं पयो दुदुष्टे नाहुपाय

॥ २ ॥

उत स्या नः सरस्वती जुषाणा  
उपे श्रवत् सुभगा यशे अस्मिन् ।  
मितह्नुभिर्नमस्यैरियाना  
राया युजा चिदुत्तरा सपिभ्यः

॥ ४ ॥

इमा जुह्वाना युष्मदा नमोभिः  
प्रति स्तोमै सरस्वति जुषस्व ।  
तप शर्मन् प्रियतमे दधाना  
उपे स्थेयाम शरणं न वृक्षम्

॥ ५ ॥

अयमुं ते सरस्वति वसिष्ठो  
द्वारावृतस्य सुभगे व्यावाः ।  
पर्धे शुभ्रे स्तुषते रासि वाजान्  
युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः

॥ ६ ॥

॥ १९९ ॥ ( ऋ० ७।९६।१-१ )

मैत्रावरुणसंहिता । सरस्वती । १-२ प्रगाथा- ( १ बृहती,  
२ पतो बृहती ), ३ प्रसारवह्निः ।

वृहदुं गायिषे वचोऽसुर्या नदीनाम् ।  
सरस्वतीमिगमहया सुवृकिभिः  
स्तोमैर्वसिष्ठ रोदसी

॥ १ ॥

उमे यत् तं महिना शुभ्रे अर्घसी  
अधिक्षियन्ति पूरवः ।

सा नो वोष्यवित्री मत्संस्था  
चोद राधो मृगोनाम्

॥ २ ॥

अद्रमिद् मुद्रा कृण्वत् सरस्वति  
अकवारो चेतति वाजिनीवती ।

गृणाना जेमदग्निवत् स्तुवाना च वसिष्ठवत् ३

॥ १९१ ॥ ( ऋ० १०।१७।१-१, ७-९ )

देवप्रवा वागावनः । १-२ गङ्गा, ७-९ सरस्वती । त्रिष्टुप् ।

न्यष्टा दुहित्रे यदृतुं कृणोति  
इतीदं विभ्यं भुवनं समेति ।

यमस्य माता पर्युष्टमाना

महो जाया विधस्यतो ननाश

॥ १ ॥

अपांगहृत्तृतां मर्त्येभ्यः

कृत्यो सर्वर्णामददुविद्यंम्यते ।

उतादिवर्णायमर्द् यत् तदानीद्

अजहादु ह्य मिथुना संरूयूः

॥ २ ॥

सरस्वतीं देवयन्तो दयन्ते

सरस्वतीमध्यरे तायमाने ।

सरस्वतीं सुवृतां अहयन्त

सरस्वतीं साशुषे धार्य दात्

॥ ७ ॥

सरस्वति या सरथं ययार्थं

स्वधाभिर्देवि पितृमिमर्दन्ती ।

आसद्यास्मिन् वहिर्पि मादयस्व

अनमीया इप आ धेह्यस्मे

॥ ८ ॥

सरस्वतीं यां पितरो हवन्ते

दक्षिणा यक्षमभिनक्षमाणाः ।

सहस्रार्घमिलो अन्नं भागं

रायस्पोपं यजमानेषु चेहि

॥ ९ ॥

॥ १९४ ॥ ( अथर्व० ७।१०।१ )

शौनकः । सरस्वती । त्रिष्टुप् ।

यस्ते स्तनः शशयुषो मयोभूः

यः सुस्रयुः सुहवो यः सुदन्त्रः ।

येन विश्वा पुण्यसि धार्याणि

सरस्वति तमिह धातवः कः

॥ १ ॥

॥ १९५ ॥ ( अथर्व० ७।११।१ )

शौनकः । सरस्वती । त्रिष्टुप् ।

यस्तं पूथु स्तनयित्तुर्य ऋध्वो

दैवः केतुर्विभ्रमामृपतीदम् ।

मा नो वधीर्विद्युता देव सस्यं

मोत वधी रश्मिभिः सूर्यस्य

॥ १ ॥



॥ १९६ ॥ ( अथर्व ७।१७।१-२ )

वामदेवः । सरस्वती । जयती ।

यदादासा बर्दतो मे विचक्षुमे

यद् यार्चमानस्य चरतो जनां अनु ।

यदात्मनि तन्योमे विरिष्टं

सरस्वती तदा पूर्णद् घृतेन

सप्त क्षरन्ति दिशो मे मरुतयेते

पित्रे पुत्रास्तो अप्यर्चयुतस्तुतानि ।

उमे इवस्योमे अस्य राजत

उमे यतेते उमे अस्य पुष्यतः

॥ १ ॥

॥ १९७ ॥ ( अथर्व ७।६८।१-३ )

शन्तासिः । सरस्वती । १ अनुष्टुप्, २ त्रिष्टुप्, ३ गायत्री ।

सरस्वति वृतेषु ते द्वित्र्येषु देवि धामसु ।

जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि ररास्य नः ॥ १ ॥

इदं ते हव्यं घृतयत् सरस्वति

इदं पितॄणां हविरास्यं यत् ।

इमानि त उदिता शतमानि

तेभिर्धेयं मधुमन्तः स्याम

॥ २ ॥

शिवा नः शतमा भव सुसृष्टीका सरस्वति ।

मा ते युयोम संदधः

॥ ३ ॥

॥ १९८ ॥ ( वा ० य ० १०।१-४, १९ )

( आषा । )

अपो देवा मधुमतीरष्टमून्

ऊर्जस्वती राजम्बुध्वितानाः ।

यामिर्मित्रावरुणावम्पिञ्चन्

यामिरिन्द्रमनयन्त्यरातीः

॥ १ ॥

वृष्ण ऊर्मिरसि राष्टदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा

वृष्ण ऊर्मिरसि राष्टदा राष्ट्रमुष्मै देहि

वृषसेनोऽसि राष्टदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा

वृषसेनोऽसि राष्टदा राष्ट्रमुष्मै देहि

॥ २ ॥

अपेतं स्व राष्टदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा

अपेतं स्व राष्टदा राष्ट्रमुष्मै दत्त

ओजस्वती स्व राष्टदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा

ओजस्वती स्व राष्टदा राष्ट्रमुष्मै दत्त

आपः परिवाहिणी स्व राष्टदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा

आपः परिवाहिणी स्व राष्टदा राष्ट्रमुष्मै दत्त

अपां पतिरसि राष्टदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा

अपां पतिरसि राष्टदा राष्ट्रमुष्मै देहि

अपां गर्भोऽसि राष्टदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा

अपां गर्भोऽसि राष्टदा राष्ट्रमुष्मै देहि ॥ ३ ॥

सूर्यत्वचस स्व राष्टदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा

सूर्यत्वचस स्व राष्टदा राष्ट्रमुष्मै दत्त

सूर्यवचस स्व राष्टदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा

सूर्यवचस स्व राष्टदा राष्ट्रमुष्मै दत्त

मान्दा स्व राष्टदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा

मान्दा स्व राष्टदा राष्ट्रमुष्मै दत्त

यजक्षित स्व राष्टदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा

यजक्षित स्व राष्टदा राष्ट्रमुष्मै दत्त

वाशा स्व राष्टदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा

वाशा स्व राष्टदा राष्ट्रमुष्मै दत्त

शर्विष्ठा स्व राष्टदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा

शर्विष्ठा स्व राष्टदा राष्ट्रमुष्मै दत्त

शन्वरी स्व राष्टदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा

शन्वरी स्व राष्टदा राष्ट्रमुष्मै दत्त

जनमृत स्व राष्टदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा

जनमृत स्व राष्टदा राष्ट्रमुष्मै दत्त

विश्वमृत स्व राष्टदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा

विश्वमृत स्व राष्टदा राष्ट्रमुष्मै दत्त

आपः स्वरज स्व राष्टदा राष्ट्रमुष्मै दत्त ।

मधुमतीर्मधुमतीभिः पृथ्यन्तां

महि ह्रत्र क्षत्रियाय वन्याना

अनाघृष्टाः सीदत सहजसो

महि ह्रत्र क्षत्रियाय दधतीः

॥ ४ ॥

( २०८८ )

सन्निविः प्रसव उपनुमि  
अन्निद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रुदिमभिः ।

अनिभृष्टमसि याचो बन्धुस्तपोजाः

सोमस्य दाप्रमसि स्वाहा राजस्वः

॥ ६ ॥

प्र पर्वतस्य वृषभस्य पृष्ठात्

नावञ्चरन्ति स्वसिचं इयानाः ।

ता आर्यवृद्धधरागुदका

अहिं बुध्युमनु रीर्यमाणाः

॥ १९ ॥

॥ १९९ ॥ (या० य० ११।३८)

(आप ।)

अपो देवीरुपंस्त्रज मधुमतीर्यहमायं प्रजाभ्यः ।

तासांमाप्यानादुजिहता-मोर्षधयः सुपिप्पलाः ३८

॥ २०० ॥ (या० य० ११।३५, ५५)

(आप ।)

आपो देवीः प्रतिपृग्भीत मस्मेतत्

स्योने कृष्णर सुरमा उ लोके ।

तस्मै नमन्तां जनयः सुपत्नीः

मानेयं पुत्रं विभृताप्स्येनत्

॥ ३५ ॥

ता अस्य सुददोदसः सोमैर धीणन्ति पृथ्वयः ।

जन्मन् देवानां पिता-मित्र्या रोजने द्वियः ॥५५॥

॥ २०१ ॥ (या० य० १४।८)

(आप ।)

ध्रुवः विन्यार्षीतिन्य त्रिपार्दय

पतुष्णात् पादि द्वियो धृष्टिर्मेर्य

॥ ८ ॥

॥ २०२ ॥ (या० य० २०।१८-२०, २१-२३)

(आप ।)

यदापो ध्रुव्या इति पतुषेति

शशीमहे ततो यज्ञ नो मुञ्च ।

धर्वभूय निवृत्तुण निवेदरेषि निवृत्तुणः ।

अयं देवदेवर्षीतमोऽप्यवय

मर्षिर्मेर्यन पुराणो देव त्रिपार्दय ॥ १८ ॥

राग्रे ते हर्षयन्वृत्तुणः

न र्वा विन्यार्षीतिन्यापः ।

सुमित्रिया न आप ओर्षधयः सन्तु

दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु

योऽस्मान् देष्टि यं च वयं द्विष्मः

॥ १९ ॥

दुपुदादिब मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव ।

पुतं पवित्रेणवाज्य-मापः शुन्धन्तु मैनेसः ॥ २० ॥

अपो अद्यान्वचारिप- रसेन समसृक्षमहि ।

पर्यस्वानग्न आगमं ते मा सः सृज

वर्षसा प्रजया च धनेन च

॥ २२ ॥

पथोऽस्येधिपीमहि समिदंसि

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि

॥ २३ ॥

अघ्रादिकम् ।

॥ २०३ ॥ (अ० १।१८७।१-११)

अगस्त्यो वैश्वरुणिः । अघ । १ अनुष्टुप्मां वणिक् ।

३, ५-५, ११ अनुष्टुप् ; ( ११ वृद्धिः ॥ ) । २, ५, ८-१०

वापरी ।

पितुं तु स्तोत्रं महो धर्माणं तथिपीम् ।

यस्य त्रितो र्योजसा धृत्रं विपर्वमर्दयत् ॥ १ ॥

स्वादेो पितो मर्षो पितो वयं र्वा वयमहे ।

अस्माकमविता भय

॥ २ ॥

उपं नः पितृया चर शिवः शिवाभिरुतिभिः ।

मयोभूरुतिपेण्यः सखा सुतोयो अर्घ्याः ॥ ३ ॥

तप र्वे पितो र्मा रजांस्यनु विष्टिताः ।

दिवि याता इय धिताः

॥ ४ ॥

तप र्वे पितो र्ददन्त-स्तव स्यादिष्ट ते पितो ।

प्र स्यान्नातो र्मानो तुविदीयो इयेरते ॥ ५ ॥

र्ये पितो महानो देवानां मनो हितम् ।

अर्चारे चार्द केतुना मयाभिमर्षमावधीत् ॥ ६ ॥

यद्वदो पितो अर्जगन् विषरव पर्वतानाम् ।

अर्वा विष्मो मयो पितो र्दभृशायं गम्याः ॥ ७ ॥

यद्वामोर्षीनां वरिदामादिशामहे ।

यातापु वीव इत् भय

॥ ८ ॥

(१९०१)

यत् तं सोमं गवांशिरो यवांशिरो मजामहे ।  
 वातापे पीव इद् भव ॥ ९ ॥  
 कस्मिन् औपधे भव पीवो वृक्ष उदारयिः ।  
 वातापे पीव इद् भव ॥ १० ॥  
 ते त्वा व्यं पितो वचोभिः  
 गावो न हव्या सुप्रदिम ।  
 देवेभ्यस्त्वा सधमार्दं  
 अस्मभ्यं त्वा सधमार्दम् ॥ ११ ॥  
 ॥ १०४ ॥ ( अथर्व० ६।७१।१-३ )  
 प्रज्ञा । अग्निः, १ वैश्वानरः, देवाः ( अन्नम् ) । जपती,  
 ३ त्रिष्टुप् ।

यदन्नमग्निं बहुधा विरूपे  
 हिरण्यमश्वमुत गामजामविम् ।  
 यदेव किं च प्रतिजप्रह्राहं  
 अग्निप्रहोता सुहृतं रुणोतु ॥ १ ॥  
 यन्मा हुतमहुतमाजगामं  
 हसं पितृभिरुतमंतं मनुष्यैः ।  
 यस्माग्ने मन उदिव रारंजीति  
 अग्निप्रहोता सुहृतं रुणोतु ॥ २ ॥  
 यदन्नमदस्यनृतेन देवा  
 दास्यन्नदास्यश्रुतं सैगुणामि ।  
 वैश्वानरस्यं महतो मदिक्का  
 शिवं महं मधुमदस्त्वन्नम् ॥ ३ ॥  
 ॥ १०५ ॥ ( अथर्व० ७।१८।१-२ )

होशयिः । इन्द्रावरुणी ( अन्नम् ) । १ जपती, २ त्रिष्टुप् ।  
 इन्द्रावरुणा सुतपाविमं सुतं  
 सोमं पियतं मयं धृतमती ।  
 युवो रथो अप्वरा देववीतये  
 प्रति स्वसंरमुपं यातु पीतये ॥ १ ॥  
 इन्द्रावरुणा मधुमसमस्य वृष्णः  
 सोमस्य वृष्णा वृषेयाम् ।  
 इदं यामन्यः परिपितृमासद्य  
 अस्मिन् यद्विधिं मादयेयाम् ॥ २ ॥

॥ १०६ ॥ ( अथर्व० ६।१४।१-३ )  
 विधामित्रः । वातुः ( अन्नसमादिः ) । अनुष्टुप् ।  
 उच्छ्रयस्व वृद्धमेव स्वेन महता यव ।  
 मूणीहि विद्वान् पात्राणि  
 मा त्वा दिव्याशनर्वधीत् ॥ १ ॥  
 आद्राष्वन्तं यवं देवं यत्र त्वाच्छावदामसि ।  
 तदुच्छ्रयस्व चौरिव समुद्र ईवैध्यक्षिनः ॥ २ ॥  
 अक्षितास्त उपसदोऽक्षिताः सन्तु राशयः ।  
 पूणन्तो अक्षिताः सन्त्य चारः सन्वक्षिताः ॥ ३ ॥

॥ १०७ ॥ ( अथर्व० ११।१।१-५६ )  
 [ प्रथमः पद्याः । १-३१ ]  
 अथवा । ओदनः ( भाईस्त्रसौदनः ) ।  
 १, १४ आग्री गायत्री, २ त्रिपदा समविषमा गायत्री, ३,  
 ६, १० आग्री पक्षिः, ४, ८ साम्यनुष्टुप्, ५, १३, १५, २५  
 साम्युष्णिहः, ७, १९-२२ प्राजापत्याऽनुष्टुप्, ९, १७-१८  
 आश्वयनुष्टुप्, ११ भुरिगार्ग्यनुष्टुप्, १२ याजुषी जगदी,  
 १६, २३ आग्री वृहती; २४ त्रिपदा प्राजापत्या वृहती,  
 २६ आर्ग्योष्णिहः, २७-२९ सामी वृहती ( २८-२९  
 भुरिहः ); ३० याजुषी त्रिष्टुप्, ३१ अत्यः  
 पक्षिस्त याजुषी ।

तस्योद्भूतस्य वृहस्पतिः शिरो ब्रह्म मुत्तम् ॥ १ ॥  
 यावापृथिवी धोत्रे सूर्याचन्द्रमलावक्षिणी  
 सप्तऋषयः प्राणापानाः ॥ २ ॥  
 चक्षुर्मेसलं कामं उल्लूखलम् ॥ ३ ॥  
 दितिः शर्पेमदितिः शर्पेभ्राह्मी वातोऽपायिनक् ॥ ४ ॥  
 अम्वाः कणा गार्वस्तण्डुला मृशकास्तुपाः ॥ ५ ॥  
 कर्तुं फलीकरणाः शर्पेऽश्वम् ॥ ६ ॥  
 श्याममर्योऽस्य मांसानि लोहितमस्य लोहितम् ॥ ७ ॥  
 त्रपु मसम् हरितं घणः पुष्करमस्य गन्धः ॥ ८ ॥  
 खलः पात्रं स्फयावंसावीपे अनुक्ये ॥ ९ ॥  
 आन्त्राणि जत्रयो गुदा वरत्राः ॥ १० ॥  
 इयमेव पृथिवी कुम्भी भवति  
 सार्वमानस्योद्भूतस्य चौरपिधानम् ॥ ११ ॥

सीताः पशैवः सिकता ऊर्यध्यम् ॥ १२ ॥  
 ऋतं हस्तापनेर्जनं कुलयोऽपसेचनम् ॥ १३ ॥  
 ऋचा कुम्भ्यर्धित्वा विज्यं प्रेषिता ॥ १४ ॥  
 ब्रह्मणा परिगृहीता साक्षा पर्युद्धा ॥ १५ ॥  
 बृहदायर्वनं रथन्तरं दधिः ॥ १६ ॥  
 ऋतवः पत्कारं आर्तवाः समिन्धते ॥ १७ ॥  
 चरं पञ्चविलमुखं धर्मोर्भीन्धे ॥ १८ ॥  
 ओदनेनं यज्ञवचः सर्वं लोकाः समाप्याः ॥ १९ ॥  
 यस्मिन्समुद्रो धौर्भूमिस्त्वयौऽघरपरं धिताः ॥ २० ॥  
 यस्य देवा अकल्पन्तोच्छिष्टे पडंशीतयः ॥ २१ ॥  
 तं त्वौदनस्य पृच्छामि यो अस्य महिमा मुहान् ॥ २२ ॥  
 स य औदनस्य महिमानं विधात् ॥ २३ ॥  
 नाल्प इति श्रूयान्नुपसेचन ॥ २४ ॥  
 इति नेदं च किं चेति ॥ २५ ॥  
 यावद् द्वाताभिमनस्येत तन्नातिं वदेत् ॥ २६ ॥  
 ब्रह्मवादिनो वदन्ति पराञ्चमोदनं ॥ २७ ॥  
 प्राशीः प्रत्यञ्चाभिमिति ॥ २८ ॥  
 त्वमोदनं प्राशीःस्त्वामोदना इति ॥ २९ ॥  
 पराञ्चं चैनं प्राशीः प्राणास्त्वा ॥ ३० ॥  
 हास्यन्तीत्येनमाह ॥ ३१ ॥  
 प्रत्यञ्चं चैनं प्राशीरपानास्त्वा ॥ ३२ ॥  
 हास्यन्तीत्येनमाह ॥ ३३ ॥  
 नैवाहमोदनं न मामोदनः ॥ ३४ ॥  
 ओदन एवोदनं प्राशीत् ॥ ३५ ॥

[ द्वितीयः पर्वायः । ३१-४९ ]

मन्त्रोक्ताः । ३१, ३८, ४१ ( प्रथमा ), ३२-४९ ( वधमी )  
 यात्री त्रिष्टुप् ; ३२, ३५, ४२ ( द्वितीया ), ३३-४९ ( तृतीया ),  
 ३१-३४, ४८-४८ ( वधमी ) एकपदाऽऽगुरी गायत्री ; ३२,  
 ४१, ४३, ४८ देवी अगती ; ३८, ४४, ४६ ( द्वि० ) ३२, ३५-  
 ४३, ४९ ( वधमी ) एकपदाऽऽगुरी त्रिष्टुप् ; ३२-४९ ( वधमी )  
 साम्बवृष्टुप् ; ३१-४९ ( प्र० ) आर्च्येनुष्टुप् ; ३७ ( प्र० )  
 साम्नी पञ्क्तिः ; ३१, ३६, ४०, ४४-४८ ( द्वि० ) आगुरी

अगताः ३४, ३७, ४१, ४३, ४५ ( द्वि० ) आगुरी पञ्क्तिः ; ३४  
 ( चतुर्थी ) आगुरी त्रिष्टुप् ; ३५, ४६, ४८ ( व० ) यात्री  
 गायत्री ; ३६-३७-४० ( व० ) देवी पञ्क्तिः ; ३८-३९  
 ( व० ) प्रात्रापत्या गायत्री ; ३९ ( द्वि० ) आगुरी त्रिष्टुप् ; ४२,  
 ४५, ४९ ( चतुर्थी ) देवी त्रिष्टुप् ; ४९ ( द्वि० ) एकपदा

भुरिक्साग्नी बृहती ।

ततश्चैनमन्येनं शीर्ष्णां प्राशीर्येनं ॥ १ ॥  
 चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन् ॥ २ ॥  
 ज्येष्ठतस्तं प्रजा मरिष्यतीत्येनमाह ॥ ३ ॥  
 तं या अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥ ४ ॥  
 गृहस्पतिना शीर्ष्णां ॥ ५ ॥  
 तेनैनं प्राशिपुं तेनैनमजीगमम् ॥ ६ ॥  
 एष वा औदनः सर्वोङ्गः सर्वपदः सर्वतनूः ॥ ७ ॥  
 सर्वोङ्ग एष सर्वपदः सर्वतनूः ॥ ८ ॥  
 सं भवति ऋ एवं वेद ॥ ९ ॥  
 ततश्चैनमन्याभ्यां श्रोत्राभ्यां प्राशीर्याभ्यां ॥ १० ॥  
 चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन् ॥ ११ ॥  
 बुधिरौ मरिष्यसीत्येनमाह ॥ १२ ॥  
 तं या अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥ १३ ॥  
 चावाग्बुधिवीभ्यां श्रोत्राभ्याम् ॥ १४ ॥  
 ताभ्यामेनं प्राशिपुं ताभ्यामेनमजीगमम् ॥ १५ ॥  
 एष वा औदनः सर्वोङ्गः सर्वपदः सर्वतनूः ॥ १६ ॥  
 सर्वोङ्ग एष सर्वपदः सर्वतनूः ॥ १७ ॥  
 सं भवति य एवं वेद ॥ १८ ॥  
 ततश्चैनमन्याभ्यामक्षीभ्यां प्राशीर्याभ्यां ॥ १९ ॥  
 चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन् ॥ २० ॥  
 अन्धो मरिष्यसीत्येनमाह ॥ २१ ॥  
 तं या अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥ २२ ॥  
 सूर्याचन्द्रमसाभ्यामक्षीभ्याम् ॥ २३ ॥  
 ताभ्यामेनं प्राशिपुं ताभ्यामेनमजीगमम् ॥ २४ ॥  
 एष वा औदनः सर्वोङ्गः सर्वपदः सर्वतनूः ॥ २५ ॥

सर्वाङ्ग एव सर्वपदः सर्वतनुः		प्राणापानास्त्वा हास्यन्तीत्येनमाह	॥ २ ॥
सं भवति य एवं वेद	॥ ७ ॥ ३४	तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्	॥ ३ ॥
ततश्चैनमन्येन मुखेन प्राशीर्येन		मत्परिभिः प्राणापानैः	॥ ४ ॥
चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन्	॥ १ ॥	तेरेन प्राशिपं तेरेनमजीगमम्	॥ ५ ॥
मुखतस्ते प्रजा मरिष्यतीत्येनमाह	॥ २ ॥	एव वा औदनः सर्वाङ्गः सर्वपदः सर्वतनुः	॥ ६ ॥
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्	॥ ३ ॥	सर्वाङ्ग एव सर्वपदः सर्वतनुः	
प्रह्मणा मुखेन	॥ ४ ॥	सं भवति य एवं वेद	॥ ७ ॥ ३८
तेरेन प्राशिपं तेरेनमजीगमम्	॥ ५ ॥	ततश्चैनमन्येन व्यर्चसा प्राशीर्येन	
एव वा औदनः सर्वाङ्गः सर्वपदः सर्वतनुः	॥ ६ ॥	चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन्	॥ १ ॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपदः सर्वतनुः		राज्यस्मस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह	॥ २ ॥
सं भवति य एवं वेद	॥ ७ ॥ ३५	तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्	॥ ३ ॥
ततश्चैनमन्यया जिहया प्राशीर्यया		अन्तरिक्षेण व्यर्चसा	॥ ४ ॥
चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन्	॥ १ ॥	तेरेन प्राशिपं तेरेनमजीगमम्	॥ ५ ॥
जिह्वा तै मरिष्यतीत्येनमाह	॥ २ ॥	एव वा औदनः सर्वाङ्गः सर्वपदः सर्वतनुः	॥ ६ ॥
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्	॥ ३ ॥	सर्वाङ्ग एव सर्वपदः सर्वतनुः	
अग्नेजिहया	॥ ४ ॥	सं भवति य एवं वेद	॥ ७ ॥ ३९
तरेन प्राशिपं तरेनमजीगमम्	॥ ५ ॥	ततश्चैनमन्येन पृष्ठेन प्राशीर्येन	
एव वा औदनः सर्वाङ्गः सर्वपदः सर्वतनुः	॥ ६ ॥	चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन्	॥ १ ॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपदः सर्वतनुः		विद्युत् त्वा हनिष्यतीत्येनमाह	॥ २ ॥
सं भवति य एवं वेद	॥ ७ ॥ ३६	तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्	॥ ३ ॥
ततश्चैनमन्यैर्दन्तैः प्राशीर्यैश्चैतं		दिवा पृष्ठेन	॥ ४ ॥
पूर्वं ऋषयः प्राश्नन्	॥ १ ॥	तेरेन प्राशिपं तेरेनमजीगमम्	॥ ५ ॥
दन्तास्ते शास्यन्तीत्येनमाह	॥ २ ॥	एव वा औदनः सर्वाङ्गः सर्वपदः सर्वतनुः	॥ ६ ॥
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्	॥ ३ ॥	सर्वाङ्ग एव सर्वपदः सर्वतनुः	
ऋतुभिर्दन्तैः	॥ ४ ॥	सं भवति य एवं वेद	॥ ७ ॥ ४०
तेरेन प्राशिपं तेरेनमजीगमम्	॥ ५ ॥	ततश्चैनमन्येनोरसा प्राशीर्येन	
एव वा औदनः सर्वाङ्गः सर्वपदः सर्वतनुः	॥ ६ ॥	चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन्	॥ १ ॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपदः सर्वतनुः		कृप्या न रास्यसीत्येनमाह	॥ २ ॥
सं भवति य एवं वेद	॥ ७ ॥ ३७	तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्	॥ ३ ॥
ततश्चैनमन्यैः प्राणापानैः प्राशीर्यैश्चैतं		पृथिव्योरसा	॥ ४ ॥
पूर्वं ऋषयः प्राश्नन्	॥ १ ॥	तेरेन प्राशिपं तेरेनमजीगमम्	॥ ५ ॥

एष वा औदनः सर्वाङ्गः सर्वपङ्कः सर्वतनूः ॥ ६ ॥	ततश्चैनमन्याभ्यामष्टौवद्भ्यां प्राशीर्याभ्यां
सर्वाङ्ग एव सर्वपङ्कः सर्वतनूः	चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥
सं भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥ ४१	क्षामो भविष्यसीत्येनमाह ॥ २ ॥
ततश्चैनमन्येनोदरेण प्राशीर्येन	तं वा अहं नार्वाञ्च न पराञ्च न प्रत्यञ्चम् ॥ ३ ॥
चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥	त्वष्टुरष्टौवद्भ्याम् ॥ ४ ॥
उदरदारस्त्या हनिष्यतीत्येनमाह ॥ २ ॥	ताभ्यामेनं प्राशिपं ताभ्यामेनजीगमम् ॥ ५ ॥
त वा अहं नार्वाञ्च न पराञ्च न प्रत्यञ्चम् ॥ ३ ॥	एष वा औदनः सर्वाङ्गः सर्वपङ्कः सर्वतनूः ॥ ६ ॥
सुत्येनोदरेण ॥ ४ ॥	सर्वाङ्ग एव सर्वपङ्कः सर्वतनूः
तेनैनं प्राशिपं तेनैनमजीगमम् ॥ ५ ॥	सं भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥ ४५
एष वा औदनः सर्वाङ्गः सर्वपङ्कः सर्वतनूः ॥ ६ ॥	ततश्चैनमन्याभ्यां पादाभ्यां प्राशीर्याभ्यां
सर्वाङ्ग एव सर्वपङ्कः सर्वतनूः	चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥
सं भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥ ४२	यहुचारी भविष्यसीत्येनमाह ॥ २ ॥
ततश्चैनमन्येन वृस्तिना प्राशीर्येन	तं वा अहं नार्वाञ्च न पराञ्च न प्रत्यञ्चम् ॥ ३ ॥
चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥	अश्विनोः पादाभ्याम् ॥ ४ ॥
अप्नु मरिष्यसीत्येनमाह ॥ २ ॥	ताभ्यामेनं प्राशिपं ताभ्यामेनमजीगमम् ॥ ५ ॥
तं वा अहं नार्वाञ्च न पराञ्च न प्रत्यञ्चम् ॥ ३ ॥	एष वा औदनः सर्वाङ्गः सर्वपङ्कः सर्वतनूः ॥ ६ ॥
समुद्रेण वृस्तिना ॥ ४ ॥	सर्वाङ्ग एव सर्वपङ्कः सर्वतनूः
तेनैनं प्राशिपं तेनैनमजीगमम् ॥ ५ ॥	सं भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥ ४६
एष वा औदनः सर्वाङ्गः सर्वपङ्कः सर्वतनूः ॥ ६ ॥	ततश्चैनमन्याभ्यां प्रपदाभ्यां प्राशीर्याभ्यां
सर्वाङ्ग एव सर्वपङ्कः सर्वतनूः	चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥
सं भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥ ४३	सुपस्त्या हनिष्यतीत्येनमाह ॥ २ ॥
ततश्चैनमन्याभ्यामुरुभ्यां प्राशीर्याभ्यां	त वा अहं नार्वाञ्च न पराञ्च न प्रत्यञ्चम् ॥ ३ ॥
चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥	सवितुः प्रपदाभ्याम् ॥ ४ ॥
ऊरु ते मरिष्यत इत्येनमाह ॥ २ ॥	ताभ्यामेनं प्राशिपं ताभ्यामेनमजीगमम् ॥ ५ ॥
तं वा अहं नार्वाञ्च न पराञ्च न प्रत्यञ्चम् ॥ ३ ॥	एष वा औदनः सर्वाङ्गः सर्वपङ्कः सर्वतनूः ॥ ६ ॥
मिश्रायर्गणयोरुरुभ्याम् ॥ ४ ॥	सर्वाङ्ग एव सर्वपङ्कः सर्वतनूः
ताभ्यामेनं प्राशिपं ताभ्यामेनमजीगमम् ॥ ५ ॥	सं भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥ ४७
एष वा औदनः सर्वाङ्गः सर्वपङ्कः सर्वतनूः ॥ ६ ॥	ततश्चैनमन्याभ्यां दस्ताभ्यां प्राशीर्याभ्यां
सर्वाङ्ग एव सर्वपङ्कः सर्वतनूः	चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥
सं भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥ ४४	

ब्राह्मणं हनिष्यसीत्येनमाह ॥ २ ॥

तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥ ३ ॥

ऋतस्य हस्ताभ्याम् ॥ ४ ॥

ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् ॥ ५ ॥

एष वा औदुनः सर्वोङ्गः सर्वपदः सर्वतनुः ॥ ६ ॥

सर्वोङ्ग एष सर्वपदः सर्वतनुः

सं भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥ ४८

ततश्चैनमन्यया प्रतिष्ठया प्राशीर्यया

चैतं पूर्वं ऋपयः प्राध्नन् ॥ १ ॥

अप्रतिष्ठानोऽनायतनो मरिष्यसीत्येनमाह ॥ २ ॥

तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥ ३ ॥

सत्ये प्रतिष्ठाय ॥ ४ ॥

तयैनं प्राशिषं तयैनमजीगमम् ॥ ५ ॥

एष वा औदुनः सर्वोङ्गः सर्वपदः सर्वतनुः ॥ ६ ॥

सर्वोङ्ग एष सर्वपदः सर्वतनुः

सं भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥ ४९

[ तृतीया पर्यायः । ५०-५६ ]

मन्त्रोक्ताः । ५० आयुर्वेदपुष्टः ५१ आर्युष्णिक् ५२ त्रिपदा

भुरिक् साम्नी त्रिष्टुप् ५३ आह्वरी बृहती ५४ द्विपदा भुरिक्

साम्नी बृहती ५५ साम्युष्णिक् ५६ प्राज्ञापला बृहती ।

एतद् वै ब्रह्मस्य विष्टपं यदौदुनः ॥ ५० ॥

ब्रह्मलौको भवति ब्रह्मस्य विष्टपि श्रयते

य एवं वेद ॥ ५१ ॥

एतस्माद् वा औदुनात् त्र्ययस्त्रिंशत्

लोकान् निर्दिशति प्रजापतिः ॥ ५२ ॥

तेषां प्रज्ञानाय यश्चमञ्जत ॥ ५३ ॥

स य एवं विदुषं उपद्रष्टा भवति प्राणं रुणद्धि ५४

न च प्राणं रुणद्धि सर्वज्यानि जीयते ॥ ५५ ॥

न च सर्वज्यानि जीयते

पुरैर्न जरसः प्राणो जहाति ॥ ५६ ॥

॥ २०८ ॥ (अथर्वे ११११-३८)

मृगुः । पद्योदोऽजः मन्त्रोक्ताः । त्रिष्टुप् ३ चतुष्पदा पुरोऽ-

तिशकरी जगती ४, १० जगती १४, १७, २७-३० अनुष्टुप्

(३० ककुम्भती) १६ त्रिपदाऽनुष्टुप् १८, ३७ त्रिपदा

विपदा गायत्री २३ पुर लणिकः २४ पञ्चपदाऽनुष्टुप्

मौपरीष्टाद्विपदा जगती २०-२२, २६ पञ्चपदाऽनुष्टुप्

मौपरीष्टाद्विपदा भुरिक् ३१ सप्तपदाऽष्टिः ३२-३५ दशपदा

प्रकृतिः ३६ दशपदाऽऽकृतिः ३८ एकावधाना द्विपदा साम्नी

त्रिष्टुप् ।

आ नयैतमा रमस्व सुकृतां

लोकमपि गच्छतु प्रज्ञानम् ।

तीर्त्वा तर्मांसि बहुधा महान्ति

अजो नाकमा क्रमतां तृतीयम् ॥ १ ॥

इन्द्राय आगं परित्वा नयामि

अहिमन् युधे यजमानाय सुरिम् ।

ये नो ह्यिन्त्यन्तु तान् रमस्व

अनागसो यजमानस्य धीराः ॥ २ ॥

प्र पदोऽव नेनिग्धि दुश्चरितं यश्चवारं

शुद्धैः शुफैरा क्रमतां प्रज्ञानम् ।

तीर्त्वा तर्मांसि बहुधा विपश्यन्

अजो नाकमा क्रमतां तृतीयम् ॥ ३ ॥

अनुं छद्य इयामेन त्वचमेतां

विशस्तयेथापूर्वसिना मामि संस्थाः ।

मामि द्रुहः पशुः कल्पयन्

तृतीये नाके अधि वि श्रयेनम् ॥ ४ ॥

श्रुत्वा कुम्भीमध्यग्नौ श्रयाभ्या

सिञ्चोदकमर्च धेहेनम् ।

पूर्यधत्ताग्निनां शमितारः

शूतो गच्छतु सुकृतां ययं लोकः ॥ ५ ॥

उत् क्रामातः परित् चेदतसः

तप्ताहरोरधि नाकं तृतीयम् ।

अग्नेरग्निरधि सं यभूयिध

ज्योतिष्मन्तमभि लोकं जयेतम् ॥ ६ ॥

अजो अग्निरजमु ज्योतिराहुः  
 अजं जीवता ब्रह्मणे देयमाहुः ।  
 अजस्तमांस्यप हन्ति दुरं  
 अस्मिहोके अर्धधानेन दत्तः  
 पञ्चौदनः पञ्चधा वि क्रमतां  
 आक्रंस्यमानस्त्रीणि ज्योतींषि ।  
 ईजानानां सुकृतां प्रेहि मध्यं  
 तृतीये नाके अधि वि श्रेयस्व  
 अजा ऐह सुकृतां यत्र लोकः  
 शरभो न चक्षोऽति दुर्गोष्येयः ।  
 पञ्चौदनो ब्रह्मणे दीयमानः  
 स वातारं तुप्त्या तर्पयति  
 अजस्मिनाके त्रिविधे त्रिपृष्ठे  
 नाकस्य पृष्ठे ददियांसं दधाति ।  
 पञ्चौदनो ब्रह्मणे दीयमानो  
 विश्वरूपा धेनुः कामदुघास्येका  
 एतद् वो ज्योतिः पितरस्तृतीयं  
 पञ्चौदनं ब्रह्मणेऽजं ददाति ।  
 अजस्तमांस्यप हन्ति दुरं  
 अस्मिहोके अर्धधानेन दत्तः  
 ईजानानां सुकृतां लोकमीप्सन्  
 पञ्चौदनं ब्रह्मणेऽजं ददाति ।  
 स व्याप्तिमभि लोकं जयंतं  
 शियोऽसुमभ्यं प्रतिगृहीतो अस्तु  
 अजो राक्षसैर्जनिष्ट शोकाद्  
 विप्रो विप्रस्य सहस्रो विपश्चित् ।  
 इष्टं पृतममिपूर्तं यपट्कृतं  
 तद् देवा ऋतुशः कल्पयन्तु  
 अमोनं पातो दद्याद्दिरण्यमपि दक्षिणाम् ।  
 तथा लोकान्तसमाप्नोति  
 ये दिव्या ये च पार्थियाः

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १० ॥

॥ ११ ॥

॥ १२ ॥

॥ १३ ॥

॥ १४ ॥

एतास्वाजोप यन्तु धाराः  
 सोम्या देवीर्घृतपृष्ठा मधुधृतः ।  
 स्तमान पृथिवीमुत द्यां  
 नाकस्य पृष्ठेऽधि सप्तर्दमौ  
 अजोऽस्यजं स्वर्गोऽसि त्वया  
 लोकमङ्गिरसः प्राजानन् ।  
 तं लोकं पुण्यं प्र ह्येपम्  
 येना सहस्रं वहसि येनाग्ने सर्ववेदसम् ।  
 तेनेमं यज्ञं नो वह स्वर्गदेवेषु गन्तये  
 अजः एकः स्वर्गे लोके दधाति  
 पञ्चौदनो निर्व्रति धार्धमानः ।  
 तेन लोकान्त्सूर्यवतो जयेम  
 यं ब्राह्मणे निदधे यं च विश्व  
 या विप्रपं ओदनानामजस्यं ।  
 सर्वं तदग्ने सुकृतस्य लोके  
 जानीतान्नः संगमने पथीनाम्  
 अजो वा इदमग्ने व्यक्रमत  
 तस्योर इयममवद् यौः पृष्ठम् ।  
 अन्तरिक्षं मध्यं दिशः प्राञ्चं संमृशौ कुशी ॥ २० ॥  
 सत्यं चतं च चक्षुषी विश्वं  
 सत्यं अद्धा प्राणो विराद् शिरः ।  
 पूष वा अपरिमितो यज्ञो यदजः पञ्चौदनः ॥ २१ ॥  
 अपरिमितमेव यज्ञमाप्तोत्यपरिमितं लोकमयं हन्ये ।  
 योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिपं ददाति ॥ २२ ॥  
 नास्यास्थीनि भिन्यान्न मज्जो निर्धयेत् ।  
 सर्वमेनं समादायेदमिदं प्र वैशयेत् ॥ २३ ॥  
 इदमिदमेवास्य रूपं भवति तेनैनं सं गमयति ।  
 इयं मह ऊर्जमसौ हृदे  
 योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिपं ददाति ॥ २४ ॥  
 पञ्चं रुक्मा पञ्च नवानि यत्रा  
 पञ्चास्मै धेनवः कामदुघा मयन्ति ।  
 योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिपं ददाति ॥ २५ ॥



पञ्च रुक्मा ज्योतिरस्मै भवन्ति  
धर्मं वासांसि तन्वे भवन्ति ।

स्वर्गं लोकमश्नुते

योऽंजं पञ्चोदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ २६ ॥

या पूर्वे पतिं वित्वा यान्यं विन्दतेऽपरम् ।

पञ्चोदनं च तावजं ददातो न पि योषतः २७

समानलौको भवति पुनर्भुवापरः पतिः ।

योऽंजं पञ्चोदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति २८

अनुपूर्ववत्सां धेनुमनुद्गार्हमुपवर्हणम् ।

वासां हिरण्यं कृत्वा ते यन्ति दिवंमुत्तमाम् २९

आत्मानं पितरं पुत्रं पौत्रं पितामहम् ।

जायां जनित्रां मातरं ये प्रियास्तानुप ह्वये ॥३०॥

यो वै नैदाद्यं नामतु वेदं ।

एष वै नैदाघो नामतुर्यद्वजः पञ्चोदनः ।

निरेवाप्रियस्य आर्तव्यस्य

धियं दहति भवत्यात्मना ।

योऽंजं पञ्चोदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ ३१ ॥

यो वै कुर्यान्तं नामतु वेदं ।

कुर्यात्तोकुर्यात्मीमांसाप्रियस्य आर्तव्यस्य धियमा दत्ते ।

एष वै कुर्यान्मर्तुर्यद्वजः पञ्चोदनः ।

निरेवाप्रियस्य आर्तव्यस्य

धियं दहति भवत्यात्मना ।

योऽंजं पञ्चोदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ ३२ ॥

यो वै संयन्तं नामतु वेदं ।

संयन्तसंयतीमेवाप्रियस्य आर्तव्यस्य धियमा दत्ते ।

एष वै संयन्मर्तुर्यद्वजः पञ्चोदनः ।

निरेवाप्रियस्य आर्तव्यस्य

धियं दहति भवत्यात्मना ।

योऽंजं पञ्चोदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ ३३ ॥

यो वै पिबन्तं नामतु वेदं ।

पिबन्तीपिबन्तीमेवाप्रियस्य

आर्तव्यस्य धियमा दत्ते ।

एष वै पिबन्मर्तुर्यद्वजः पञ्चोदनः ।

निरेवाप्रियस्य आर्तव्यस्य

धियं दहति भवत्यात्मना ।

योऽंजं पञ्चोदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ ३४ ॥

यो वा उद्यन्तं नामतु वेदं ।

उद्यन्तीमुद्यन्तीमेवाप्रियस्य आर्तव्यस्य धियमा दत्ते ।

एष वा उद्यन्मर्तुर्यद्वजः पञ्चोदनः ।

निरेवाप्रियस्य आर्तव्यस्य

धियं दहति भवत्यात्मना ।

योऽंजं पञ्चोदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ ३५ ॥

यो वा अभिभुवं नामतु वेदं ।

अभिभवन्तीमभिवन्तीमेवाप्रियस्य

आर्तव्यस्य धियमा दत्ते ।

एष वा अभिभून्मर्तुर्यद्वजः पञ्चोदनः ।

निरेवाप्रियस्य आर्तव्यस्य

धियं दहति भवत्यात्मना ।

योऽंजं पञ्चोदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ ३६ ॥

अजं च पचत पञ्च चौदनाम् ॥

सर्वा दिशः संमनसः सधीचीः

सार्न्तर्दशः प्रति गृह्णतु त एतम् ॥ ३७ ॥

तास्तै रक्षन्तु तव तुभ्यमेतं

ताभ्य आज्यं हविरेऽं जुहोमि ॥ ३८ ॥

॥ २०९ ॥ (अथर्वे ४।३४।१-८)

अथर्वः । अज्ञोदनम् । विष्टुप्, ४ वतमा मुरिक्, ५ इयव-

साना अतपदा इतिः; ६ पञ्चपदातिशक्ती, ७ मुरिक्

शक्ती, ८ जयती ।

ब्रह्मास्य दीर्घं बृहदस्य पुष्टं

वामदेव्यमुदरमोदनस्य

छन्दसि पक्षौ मुख्यमस्य सत्यं

विष्टासी जातस्तपसोऽधि यज्ञः

॥ १ ॥

(२३१७)



अग्ने सहस्वानभिभूरभीर्दक्षि  
नीचो न्युञ्जति पतः सप्तनाम् ।  
इयं मात्रा मीयमाना मिता च  
सजातांस्ते बलिहृतः कृणोतु  
साकं संजातैः पर्यसा सहैधि  
उर्दुञ्जैर्ना महते घोर्याऽय ।  
ऊर्ध्वो नाकस्याधि रोह विष्टपै  
स्युर्गो लोक इति यं वदन्ति  
इयं मही प्रति गृहातु चर्म  
पृथिवी देवी सुमनस्यमाना ।  
अथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम्  
प्राणौ स्रुजं युद्धि चर्मणि  
निर्मिण्ड्यंश्च यजमानाय साधु ।  
अवज्जती नि जहि य इमां पृतन्यध  
ऊर्ध्वं प्रजामुन्युदूह  
गृहाण प्राणौ सुकृतौ वीर हस्त  
आ ते देवा यक्षिया युधर्मशुः ।  
अयो वरं यतमांश्च वृणीषे  
तास्ते समृन्नीहि राधयामि  
इयं ते धीतिरिदमु ते जनित्रं  
गृहातु त्वामर्दितिः शरपुत्रा ।  
परा पुनीहि य इमां पृतन्यधो  
अस्यै रयि सर्वधीरं नि यच्छ  
उपश्वसे ध्रुव्ये सीदता युयं  
वि विच्यध्वं यक्षियास्तुपैः ।  
क्षिया संमाननति सर्वान्स्थाम  
अधस्पदं द्विपतस्पादयामि  
परं हि नारि पुनरोहिं क्षिप्रं  
अपां त्वां गोष्ठोऽध्यक्षद् मर्याय ।  
तासां गृहीताद् यतमा यक्षिया अर्सेन  
विभाज्य धीरीतप जहीतात्

एमा अयुषोपितः शुभ्रमात्रा  
उत्तिष्ठ नारि तवसे रमस्य ।  
सुपत्नी पत्यां प्रजयां प्रजावत्या  
॥ ६ ॥ त्वांगन् युक्तः प्रति कुम्भं गृभाय ॥ १४ ॥  
ऊर्जो भागो निर्हितो यः पुरा वः  
ऋषिप्राशिष्टाप आ मरिताः ।  
अयं यज्ञो गानुविद्यायवित्  
॥ ७ ॥ प्रजाविदुषः पशुविद् वीरविद् वो अस्तु ॥ १५ ॥  
अग्ने चर्यक्षियस्वाध्वश्च  
शुचिस्तर्पिष्ठस्तर्पसा तपैन्म ।  
॥ ८ ॥ आप्रिया देवा अभिसंगत्य भागं  
इमं तर्पिष्टा ऋतुभिस्तपन्तु ॥ १६ ॥  
शुद्धाः पूता योपितो यक्षिया इमा  
आपश्चक्रमयं सपन्तु शुभ्राः ।  
अर्धुः प्रजां बहुलान् पशून् नः  
॥ ९ ॥ पक्षीदुनस्य सुकृतमितु लोकम् ॥ १७ ॥  
ब्रह्मणा शुद्धा उत पूता धृतेन  
सोमस्याशर्वस्तण्डुला यक्षिया इमे ।  
अपः प्र विशतु प्रति गृहातु यदधरः  
॥ १० ॥ इमं पक्त्वा सुकृतमितु लोकम् ॥ १८ ॥  
उरुः प्रथस्य महता मंहिना  
सहस्रपृष्ठः सुकृतस्य लोके ।  
पितामहाः पितरः प्रजोपजाहं  
॥ ११ ॥ पुक्ता पञ्चदशस्तै अस्मि ॥ १९ ॥  
सहस्रपृष्ठः शतधारी अक्षितो  
ब्रह्मोदो देवयानः स्वर्गः ।  
अमृन्स्त आ दधामि प्रजयां रेपयैनाम्  
॥ १२ ॥ बलिहाराय मृदतान्महामेव ॥ २० ॥  
उदेहि वेदिं प्रजयां वर्धयेनां  
नुदस्य रक्षः प्रतरं धेहेनाम् ।  
क्षिया संमाननति सर्वान्स्थाम  
॥ १३ ॥ अधस्पदं द्विपतस्पादयामि ॥ २१ ॥

अभ्यावर्तस्य पुशभिः सहैनां  
प्रत्यङ्गेनां देवताभिः सहैधि ।

मा त्वा प्रापच्छपथो माभिचारः  
स्वे क्षेत्रे अनमीवा यि राज

॥ २२ ॥

श्रुतेन तदा मनसा द्वितैषा  
ब्रह्मौदनस्य विहिता येदिरत्रे ।

अंसद्री शुद्धामुप धेहि नारि  
तत्रावन सादय वैवानाम्

॥ २३ ॥

अदितेर्हस्तां स्रुचमेतां द्वितीयौ  
सप्तश्रुपयो भूतश्रुतो यामकृण्वन् ।

सा गात्राणि विदुष्यौदनस्य  
दर्विषेद्यामर्धेन चिनोतु

॥ २४ ॥

शूते त्वा हव्यमुप सीदन्तु वैवा  
निःस्रुप्याग्नेः पुनरेतान् प्र सीद ।

सोमैर्न पूतो जठरे सीद  
ब्रह्मणामापेयास्ते मा रिपन् प्राशितारः

॥ २५ ॥

सोमं राजन्संज्ञानमा वपैभ्यः  
सुब्राह्मणा यत्मे त्वोपसीदन् ।

श्रुपीनापेयांस्तपसोऽधि जातान्  
ब्रह्मौदने सुहर्षा जोहवीमि

॥ २६ ॥

शुद्धाः पूता योयितो यज्ञिया इमा  
ब्रह्मणो हस्तेषु प्रपृथक् सादयामि ।

यत्काम इदमभिषिञ्चामि धोऽहं  
इन्द्रो मरत्वान्स ददादिवं मे

॥ २७ ॥

इदं मे ज्योतिरमुतं हिरण्यं  
एकं क्षेत्रात् कामदुर्वा म पूषा ।

इदं धने नि दधे ब्राह्मणेषु  
कृण्वे पन्थां पितृषु यः स्वर्गः

॥ २८ ॥

अग्नौ तुषाना वप जातवेदसि  
एतः कम्बुर्वा अप मृड्ढि दुरम् ।

पूतं शुश्रुम गृहराजस्य भागं  
अथो विद्म निश्रुतेर्भागधेयम् ॥ २९ ॥

श्राम्यतः पचतो विदि सुनृतः  
पन्थां स्वर्गमधि रोहयन्म् ।

येन रोहात् परमापद्य यद् धर्यः  
उत्तमं नार्कं पत्नं द्योमि ॥ ३० ॥

यश्चेरप्ययो मुरमेतद् वि मृड्ढि  
आज्याय लोकं कृणुहि प्रविष्टान् ।

श्रुतेन गात्रानु सर्वा यि मृड्ढि  
कृण्वे पन्थां पितृषु यः स्वर्गः ॥ ३१ ॥

यश्चे रक्षः समद्रमा वपैभ्यो  
अग्राहणा यत्मे त्वोपसीदन् ।

पुरीषिणः प्रथमानाः पुरस्ताद्  
आपेयास्ते मा रिपन् प्राशितारः ॥ ३२ ॥

आपेयेषु नि दध ओदनं त्वा  
नानापेयाणामप्यस्त्यत्र ।

अग्निर्मे गोप्ता मरुतश्च सर्वे  
यिभ्यै देवा अभि रक्षन्तु पन्थम् ॥ ३३ ॥

यक्षं दुहानं सवमित् प्रपीनं  
पुमौसं धेनुं सदनं रयीणाम् ।

प्रजामृतत्वमुत दीर्घमार्यं  
रायश्च पौवैरुप त्वा सदेम ॥ ३४ ॥

वृषभोऽसि स्वर्गं श्रुपीनापेयान् गच्छ ।  
सुकृतां लोके सीद तत्र नौ सस्कृतम् ॥ ३५ ॥

समाचिनुष्वानुसप्रयाह्यो  
पथः कल्पय देवयानान् ।

पूतैः सुकृतैरनु गच्छेम यक्षं  
नाके तिष्ठन्तमधि सप्तर्षिभ्यो ॥ ३६ ॥

येन देवा ज्योतिषा चामुद्रायन्  
ब्रह्मौदनं पक्त्वा सुकृतस्य लोकम् ।

तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं  
स्वरापोहन्तो अभि नार्कमुत्तमम् ॥ ३७ ॥

॥ २८१ ॥ (अथर्व० ६।११६।१-३)

आटिकायनः । विदस्वान् (मधुमदक्षम्) । जगती, २ त्रिष्टुप्

यद् यामं चक्षुर्निखनन्तो अग्रे  
कार्पावणा अन्नविदो न विद्यया ।

वैवस्यते राजनि तज्जुहोमि  
अथ यक्षियं मधुमदस्तु नोऽक्षम्

॥ १ ॥

वैवस्यतः कृणवद् भागधेयं  
मधुभागो मधुन्ता सं खजति ।

मातुर्यदेनं शपितं न आगन्  
यद् वां पितापराद्धो जिहीडे

॥ २ ॥

यदीदं मातुर्यदि वा पितुर्नः  
परि भ्रातुः पुत्राश्चेतस् एन आगन् ।

यार्वन्तो अस्मान् पितरः सर्वन्ते  
तेषां सर्वेषां शिवो अस्तु मनुष्यः

॥ ३ ॥

॥ २८२ ॥ (अथर्व० ७।३७।१)

अथर्वः । वास । अनुष्टुप् ।

अभि त्वा मनुजातेन दधामि मम वाससा ।

यथासो मम केवलो नान्यासौ कीर्तयाश्चन ॥१॥

॥ २८३ ॥ (घा० य० ४।२, १०)

(वा० ।)

वीक्षातपसोस्तनूरसि तां त्वा शिवाः

शर्मां परिदधे भद्रं यणं पुष्यन् ॥ २ ॥

धिष्णोः शर्मासि शर्म यजमानस्येन्द्रस्य

योर्निरसि सुसत्याः कृपीरूढि ॥ १० ॥

॥ २८४ ॥ (अथर्व० ११।३।१-६०)

यमः । स्वर्गः, ओदनः, आग्निः (स्वर्गोदनः) । त्रिष्टुप् । १,

४२-४३, ४७ मुरिक् ; ८, १२, २१-२२, २४ जगती ; १३, १७

स्वराडायां पणिकः ; ३४ विराड्गमः ; ३९ अनुष्टुप्गमः, ४४

परानुद्वीतिः ; ५५-६० व्यवसाना सप्तपदा शल्कुमलतिजागतशा-

हरातिषाक्वरवाल्लगमातिष्ठतिः (५५, ५७-६० कृतिः, ५६

विराट् कृतिः) ।

पुमान् पुंसोऽधि तिष्ठ चर्मैहि

तत्र ह्यस्य यतमा प्रिया तं ।

यार्वन्तावग्रे प्रथमं संमेयधुः

तद् वां चर्यो यमराज्ये समानम्

॥ १ ॥

तावद् वां चक्षुस्तति वीर्याणि

तावत् तेजस्ततिधा वार्जिनानि ।

अग्निः शरीरं सचते यदैधो

अथा पुकान्मिथुना स भवाथः

॥ २ ॥

सर्मासिलोके समुं देव्यान्ते

सं सां समेतं यमराज्येषु ।

पुतौ पवित्रैरुप तर्ज्वयेथां

यद्यद् रेतो अधि वां संयभूव

॥ ३ ॥

आपस्पुत्रासो अभि सं विशध्वं

हमं जीवं जीवधन्याः समेत्यं ।

तासां भजध्वमृतं यमाहुः

यमोदनं पर्वति वां जनित्री

॥ ४ ॥

यं वां पिता पर्वति यं च माता

रिप्राप्तिमुक्त्यै शर्मलाब्ध वावः ।

स औदनः शतधारः स्वर्गं

उमे व्यापु नर्मसी महित्वा

॥ ५ ॥

उमे नर्मसी उमयाश्च लोकान्

ये यज्वनामभिर्जिताः स्वर्गाः ।

तेषां ज्योतिष्मान् मधुमान् यो अग्रे

तस्मिन् पुष्टैरिति सं श्रयेथाम्

॥ ६ ॥

प्राचीप्राचीं प्रदिशामि नर्मयां

एतं लोकं श्रद्धार्जनाः सचन्ते ।

यद् वां एकं परिविष्टमशौ

तस्य गुप्तये दंपती सं श्रयेथाम्

॥ ७ ॥

दक्षिणां दिशमभि नर्ममाणौ

पूर्यावर्तयामभि पात्रमेतत् ।

तस्मिन् वां यमः पितृभिः संविदानः

एकाय शर्म बहुलं नि यञ्छाव

॥ ८ ॥

प्रतीचीं दिशामियमिद् वरं  
 यस्यां सोमो अधिपा मंडिता च ।  
 तस्यां श्रेयां सुकृतः सचेथां  
 अथा पक्कान्मिथुना सं मवाधः  
 उत्तरं राष्ट्रं प्रजयौत्तरावद्  
 दिशामुदीची कृण्वन्नो अग्रम् ।  
 पादंक्तं लब्धः पुरुषो बभूव  
 विश्वैर्विश्वार्कैः सह सं भवेम  
 ध्रुवेयं विराजन्मौ अस्त्यस्यै  
 शिवा पुष्टेभ्य उत मह्यमस्तु ।  
 सा नो देव्यदिते विश्ववार  
 इयं इव गोपा अभि रक्ष एकम्  
 पितेयं पुशानमि सं स्वजस्व नः  
 शिवा नो धाता इव धांतु भूमौ ।  
 यमोदने पचतो देवते इह  
 तं नस्तप उत सत्यं च धेसु  
 यद्यत् कृष्णः शकुन पद् गत्वा  
 तसन् विपेक्तं विलं आसुसादे ।  
 यद् वा दास्याद्भ्रष्टहस्ता समङ्क  
 उदरालं मुसलं शुम्भतापः  
 अपं प्रायां पृथुवृद्धो वयोधाः  
 पुतः पृथिवैरप्य दन्तु रक्षः ।  
 आ रोह चर्म महि शर्म यच्छु  
 मा र्पती पीत्रमयं नि गाताम्  
 धनस्पतिः सह देयं आगन्  
 रक्षः पितायां भयार्धमानः ।  
 स उच्छ्रयां प्र र्पदति याचं  
 तेन लोचो अभि सवीन् जयेम  
 एत मेधां पुराणः पश्यंश्च  
 य र्पतां ज्योतिषां उत यश्चरती ।

॥ ९ ॥

॥ १० ॥

॥ ११ ॥

॥ १२ ॥

॥ १३ ॥

॥ १४ ॥

॥ १५ ॥

त्रयस्त्रिंशद् देवतास्तान्संचन्ते  
 स नः स्वर्गमभि नैप लोकम् ॥ १६ ॥  
 स्वर्गं लोकमभि नो नयासि  
 सं ज्ञायया सह पुत्रैः स्याम ।  
 गृह्णामि हस्तमनु मैत्वत्र  
 मा नस्तापीन्निर्द्धृतिमो अरातिः ॥ १७ ॥  
 ग्राहं पाप्मानमति तां अयाम्  
 तमो व्यस्य प्र वदासि धृगु ।  
 धानस्पत्य उद्यतो मा जिहिहीः  
 मा तण्डुलं वि शरीदैवयन्तम् ॥ १८ ॥  
 विश्वव्यं चा घृतपृष्ठां भविष्यन्  
 सयोनिलोकमुप याह्येतम् ।  
 वर्पवृक्षमुप यच्छु शूर्पं  
 तुपं पलायानप तद् विनक्तु ॥ १९ ॥  
 त्रयो लोकाः संमिता ब्राह्मणेन  
 शौरेयासौ पृथिव्यान्तारिक्षम् ।  
 अंशन् शमीत्वान्यारभेथां  
 आ प्यायन्तां पुनरा यन्तु शूर्पम् ॥ २० ॥  
 पृथग् रूपाणि बहुधा पशुनां  
 एकरूपो भवसि सं समुदया ।  
 एतां त्यजं लोहिनीं तां तुदस्य  
 प्रायां शुम्भमिति मलग् इव वस्त्रां ॥ २१ ॥  
 पृथिवीं त्वां पृथिव्यामा र्पेदायामि  
 तनूः संमानी विरुता त एषा ।  
 यद्यद् घृष्टं लिखितमर्पणेन  
 तेन मा सुश्रोत्रेणैवापि तद् रपाभि ॥ २२ ॥  
 जनित्रीव प्रति दयांसि तनुं  
 सं त्वां दधामि पृथिवीं पृथिव्या ।  
 उता शुभी येषां मा र्पयिष्या  
 यथायुधराज्येनातिपता ॥ २३ ॥

अग्निः पचन् रक्षतु त्वा पुरस्ताद्  
इन्द्रो रक्षतु दक्षिणतो मरुत्वाय ।  
वरुणस्त्वा दंढाद्धरणे प्रतीच्या  
उत्तरात् त्वा सोमः सं ददातै ॥ २४ ॥  
पूताः पवित्रैः पचन्ते अध्राद्  
दिव्यं च यन्ति पृथिवीं च लोकान् ।  
ता जीवन्ता जीवधन्याः प्रतिष्ठाः  
पात्र आसिन्स्ताः पर्यग्निरिन्धाम् ॥ २५ ॥  
आ यन्ति दिवः पृथिवीं संचन्ते  
भूम्याः सचन्ते अध्यन्तरिक्षम् ।  
शुद्धाः सतीस्ता उ शुभ्रमन्त एव  
ता नैः स्वर्गममि लोकं नयन्तु ॥ २६ ॥  
उतेव प्रवीरुत संमितास  
उत शुक्राः शुचपश्चाच्चतासः ।  
ता ओदन् वपतिभ्यां प्राक्षिष्टा  
आपः शिक्षन्ताः पचता सुनाथाः ॥ २७ ॥  
संत्पाता स्तोकाः पृथिवीं संचन्ते  
प्राणापानैः संमिता ओपधीभिः ।  
असत्पाता ओप्यमानाः सुवर्णाः  
सर्वे ह्यापुः शुचयः शुचित्वम् ॥ २८ ॥  
उद्योधन्त्यमि वलान्ति तप्ताः  
फेनमस्यन्ति बहुलाश्च विन्दून् ।  
योपैव हृष्ट्वा पतिमृत्विषयाय  
एतैस्तण्डुलैर्मैवता समापः ॥ २९ ॥  
उत्थापय सीदतो युध्र पनान्  
अद्रिपुतमानममि सं स्पृशन्ताम् ।  
अमासि पात्रैस्तृकं यवेतत्  
मितास्तण्डुलाः प्रविशो यदीमाः ॥ ३० ॥  
प्र यच्छ पशुं त्वरया हरेयं  
आदसन्त ओपधीदान्तु पर्यैव ।

॥ २४ ॥

॥ २५ ॥

॥ २६ ॥

॥ २७ ॥

॥ २८ ॥

॥ २९ ॥

॥ ३० ॥

यासां सोमः परि रात्र्यं वभूव  
अमन्युता नो वीर्यो भवन्तु ॥ ३१ ॥  
नवै वहिरोदनाय स्तृणीत  
प्रियं हृदश्चक्षुषो बलवस्तु ।  
तस्मिन् देवाः सह देवाविशन्तु  
इमं प्राश्नन्वृतुमिनिपद्य ॥ ३२ ॥  
वनस्पते स्तीर्णमा सीद वहिः  
अग्निष्टोमैः संमितो देवताभिः ।  
त्वष्ट्रं रूपं सुकृतं स्वर्धित्या  
एना पहाः परि पायं ददशाम् ॥ ३३ ॥  
पृष्ट्यां शरत्सु निधिषा नमीच्छात्  
स्वः पन्वेनाम्यश्रवातै ।  
उपेन जीवान् पितरश्च पुत्रा  
एतं स्वर्गं यमयान्तमग्नेः ॥ ३४ ॥  
धृतां प्रियस्व धरणे पृथिव्या  
अच्युतं त्वा देवतादध्याययन्तु ।  
तं त्वा वपन्ती जीवन्तौ जीवपुत्रौ  
उद् वांसपातः पर्यग्निधानात् ॥ ३५ ॥  
सर्वान्त्सुमार्गा अभितित्व लोकान्  
यार्धन्तः कामाः समतीतृपत्ताव् ।  
वि गाहियामायर्वनं च दयिः  
एकस्मिन् पात्रे मध्युर्दैनम् ॥ ३६ ॥  
उप स्तृणीहि प्रययं पुरस्ताद्  
धृतेन पात्रममि धारयैतत् ।  
वाग्नेवोक्षा तर्हण स्तनस्यं  
इमं देवासो अभिदिङ्करोत ॥ ३७ ॥  
उपास्तपीरकरो लोकमेतं  
उरुः प्रयतामसमः स्वर्गः ।  
तस्मिन् देवातै महिषः सुपुण्यो  
देवा एनं देवताम्यः प्र यच्छान् ॥ ३८ ॥

( ३८०५ )

यद्यज्जाया पचति त्वत् पृथुःपृथुः  
पतिर्या जाये त्वत् तिरः ।

सं तत् खजेथां सह थां तदस्तु  
संपादयन्तो सह लोकमेकम्

॥ ३९ ॥

याचन्तो अस्याः पृथिवीं सचन्ते  
असत् पुत्राः परि ये सैवभूवुः ।

सर्वास्ता उप पात्रे ह्वयेथां

नाभिं जानानाः शिर्शवः सुमायां

॥ ४० ॥

वसोर्या धारा मधुना प्रपीना

घृतेन मिथा अमृतस्य नामयः ।

सर्वास्ता अयं रुधे स्वर्गः

पृष्ठां शरत्तु निधिपा अभीच्छात्

॥ ४१ ॥

निधि निधिपा अभ्ये नमिच्छाद्

अनीध्वरा अभितः सन्तु येदुन्ये ।

अस्ताभिर्दत्तो निहितः स्वर्गः

प्रिमिः काण्डैस्त्रैनस्यगानरुक्षत्

॥ ४२ ॥

अभी रक्षस्तपतु यद् विदेवं

श्रुत्यात् पिशाच इह मा प्र पास्त ।

नुदाम् एनमपं रुमो अस्मद्

अदित्या एनमङ्गिरसः सचन्ताम्

॥ ४३ ॥

आदित्येभ्यो अङ्गिरोभ्यो मघ्यिदं

घृतेन मिधं प्रति घेदयामि ।

शुद्धहस्ती प्राह्वणस्यानिहत्य

एतं स्वर्गं सुहतापपीतम्

॥ ४४ ॥

इदं प्रापमुत्तमं वाण्टमस्य

यस्माद्विषात् परमेष्ठी सुमार्य ।

मा मिधं सर्पिर्घृतयत् गरुडमिधं

एव भागो अङ्गिरतो नो अयं

॥ ४५ ॥

एवमार्यं तर्पये देवताभ्यो

निधि दीपाधि परि दध एतम् ।

मा नो घृतेऽयं गान्मा समित्यां

मा स्मान्यस्मा उत् खजता पुरा मत् ॥ ४६ ॥

अहं पंचाम्यहं ददामि

ममेदु कर्मन् कुरुणेऽधि जाया ।

कौमारो लोको अजनिष्ट पुत्रोऽ

अन्वारभेथां वयं उत्तरावत् ॥ ४७ ॥

न किंत्विषमत्र नाधारे अस्ति

न यन्मित्रैः समममान एति ।

अनूनं पात्रं निहितं न एतत्

पुकारं पक्वः पुनरा विंशाति ॥ ४८ ॥

प्रियं प्रियाणां कृणवाम

तमस्ते यन्तु यतमे द्विपन्ति ।

धेनुर्नृह्वान् वयोवय आयद्

एव पौरुषेयमयं मृत्युं जुदन्तु ॥ ४९ ॥

समग्रयो विदुरन्यो अन्यं

य ओषधीः सचते यक्ष सिन्धून् ।

याचन्तो देवा दिव्यास्तपन्ति

हिरण्यं ज्योतिः पचतो यभूय ॥ ५० ॥

एषा त्वचां पुरे सं वभूव

अनेष्ठाः सर्वे पशवो ये अन्ये ।

क्षत्रेणात्मनं परि धापयाथो

अमोतं वासो मुपमोदनस्य ॥ ५१ ॥

यदक्षेषु यदा यत् समित्यां

यद् वा यदा अनृतं यिष्काम्या ।

समानं तन्तुमभि संवसानां

तस्मिन्सर्वे शर्मन् सादयायः ॥ ५२ ॥

युषं यन्नुष्यापि गच्छ देवान्

रयचो धूमं पयत् पातयामि ।

विभ्यर्ष्या घृतपृष्ठो भविष्यन्

सर्वोनिर्लोचमुप यातोतम् ॥ ५३ ॥



तन्वां स्वर्गो बहूधा वि चक्रे  
यथा विद आत्मघ्न्यवर्णाम् ।  
अपजैत् कृष्णां रुदतीं पुनानो  
या लोहिनी तां तं अश्रो जुहोमि ॥ ५४ ॥

प्राच्यं त्वा दिशोऽध्वयेऽधिपतये  
असितार्यं रक्षित्रं आदित्यायेपुमते ।  
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकुमैतोः ।  
दिष्टं नो अन्नं जरसे नि नैपज्जरा मृत्यवे  
परि णो ददात्यर्थं पुकेनं सह सं भवेम ॥ ५५ ॥

दक्षिणायै त्वा दिश इन्द्रायधिपतये  
तिरश्चिराजये रक्षित्रे यमायेपुमते ।  
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकुमैतोः ।  
दिष्टं नो अन्नं जरसे नि नैपज्जरा मृत्यवे  
परि णो ददात्यर्थं पुकेनं सह सं भवेम ॥ ५६ ॥

प्रतीच्यं त्वा दिशो वरेणापाधिपतये  
पृदाकये रक्षित्रेऽध्वयेपुमते ।  
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकुमैतोः ।  
दिष्टं नो अन्नं जरसे नि नैपज्जरा मृत्यवे  
परि णो ददात्यर्थं पुकेनं सह सं भवेम ॥ ५७ ॥

उदीच्यं त्वा दिशो सोमायाधिपतये  
स्वजायै रक्षित्रेऽध्वन्या इपुमत्यै ।  
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकुमैतोः ।  
दिष्टं नो अन्नं जरसे नि नैपज्जरा मृत्यवे  
परि णो ददात्यर्थं पुकेनं सह सं भवेम ॥ ५८ ॥

ध्रुवार्यं त्वा दिशो विष्णवेऽधिपतये  
कल्माषमीपाय रक्षित्र ओषधीभ्य इपुमतीभ्यः ।  
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकुमैतोः ।  
दिष्टं नो अन्नं जरसे नि नैपज्जरा मृत्यवे  
परि णो ददात्यर्थं पुकेनं सह सं भवेम ॥ ५९ ॥

ऊर्णार्यं त्वा दिशो बृहस्पतयेऽधिपतये  
शिवार्यं रक्षित्रे एषायेपुमते ।

एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकुमैतोः ।  
दिष्टं नो अन्नं जरसे नि नैपज्जरा मृत्यवे  
परि णो ददात्यर्थं पुकेनं सह सं भवेम ॥ ६० ॥

वाजीकरणम् ।  
॥ २१५ ॥ (अथर्वे ८।३।१-८)  
अथर्वः । वनस्पतिः १-२ सूर्यः, प्रभायनिः, ४ इन्द्रः,  
५ आपः, यामः, ६ अग्निः सरस्वती, वज्रग्नस्पतिः  
(वाजीकरणम्) । अनुष्टुप्, ४ पुर वणिक्,  
६-७ भुरिह ।  
यां त्वां गन्धर्वा अरानन्द वरेणाय मृतभञ्जे ।  
तां त्वां ययं रानाम्-स्योयधिं दोषदुर्पणीम् ॥ १ ॥  
उदुपा उदु सूर्य उदिदं मामकं वचः ।  
उद्वैजतु प्रजापति-वृषा शुभेण याजिनां ॥ २ ॥  
यथा स ते विरोहते-ऽमिततमिधानंति ।  
ततस्ते शुभेयस्तर-मियं कृणोत्योषधिः ॥ ३ ॥  
उच्छुष्मीषधीनां सारं कृपमाणाम् ।  
सं पुंसामिन्द्र वृष्ण्यं-मस्मिन् धेदि तनूयदिन ॥ ४ ॥  
अपां रसः प्रथमजो-ऽथो यनस्पतीनाम् ।  
उत सोमस्य आता-स्युताशमनि वृष्ण्यम् ॥ ५ ॥  
अधाम्नं अथ संवित-रथ देवि सरस्वति ।  
अधास्य ब्रह्मणस्पते चतुरिया तानया पसः ॥ ६ ॥  
आहं तनोमि ते पसो अधि ज्यामिप घर्गनि ।  
क्रमस्वरी इय रोहित-मनपग्लायता सदा ॥ ७ ॥  
अध्वस्याभ्यतरस्या-न्जस्य पेयस्य च ।  
अयं कृपमस्य ये याजाः  
तानस्मिन् धेदि तनूयदिन ॥ ८ ॥  
॥ २१६ ॥ (अथर्वे ८।३।१-३)  
अथर्वः । शेषोऽष्टः (वाजीकरणम्) । १ अग्निः,  
२ अनुष्टुप्, ३ भुरिह ।  
यथाग्निः प्रथयते यज्ञो अनु  
वर्षि कृण्वन्नसुरस्य मायया ।  
एवा ते दायः सष्टमायमूर्तो  
अह्नेनाहं संसमकं कृणोतु ॥ १ ॥

यथा पसेस्तायादरं चार्तेन स्थूलं कृतम् ।  
यावत् परस्वतः पस्—स्तार्वत् ते वर्धतां पसः ॥२॥  
यावदङ्गीनं पारस्वतं द्वास्तिनं गार्दैभं च यत् ।  
यावदभ्यस्य चाजिन—स्तार्वत् ते वर्धतां पसः ॥३॥

॥ २१७ ॥ ( अथर्व० ६।१०।१-३ )

अथर्वाङ्गिराः । प्रक्षालयतिः ( वाजोहरणम् ) । अनुष्टुप् ।

आ धुपायस्व भवसिहि वर्धस्व प्रथयस्व च ।  
यथाङ्गं वर्धतां दोष—स्तेनं योषितमिज्जहि ॥ १ ॥  
येनं क्रुशं वाजयन्ति येनं हिन्यस्यातुरम् ।  
तेनास्य प्रक्षालयस्वते धनुर्विद्या तानया पसः ॥ २ ॥  
आहं तनोमि ते पसो अधि ज्यामिंय धन्वनि ।  
क्रमस्वरी इव रोहित—मनवग्लायता सदा ॥ ३ ॥

गर्माधानम् ।

॥ २१८ ॥ ( अथर्व० ५।१५।१-३ )

प्रक्षालयति । योनिगर्मा, पृथिव्यादयो देवताः । अनुष्टुप्,

११ विराट्पुरस्ताद्बृहती ।

पर्वताद् द्वियो योने—रङ्गादङ्गात् सुमामृतम् ।  
दोषो गर्भस्य रेतोधाः सरौ पुर्णमिषा र्वधत् ॥ १ ॥  
यथेयं पृथिवी मदी भूतानां गर्भमादधे ।  
पृथा र्वधामि ते गर्भं तस्मै त्वामर्पसे हवे ॥ २ ॥  
गर्भं धेहि मिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति ।  
गर्भं ते अग्निनेमा धत्तां पुष्करञ्जजा ॥ ३ ॥  
गर्भं ते मित्रायदेजौ गर्भं देवो वृहस्पतिः ।  
गर्भं त्वाग्देव्यामिध्व गर्भं धाता र्वधातु ते ॥ ४ ॥  
पिप्पुषोर्नि कल्पयतु त्वर्धां रूपाणि पिशतु ।  
आ पिशतु प्रजापति—धाता गर्भं र्वधातु ते ॥ ५ ॥  
यद् येन राजा परंजो यद् पां देवी सरस्वती ।  
यदिन्द्रो वृत्रा येंदु नद् गर्भं करणं पिष ॥ ६ ॥  
गर्भो वृत्रयोर्धनां गर्भो वनस्पतीनाम् ।  
गर्भो विषयस्य भूतस्य सो योते गर्भमेह धां ॥ ७ ॥

अधि स्कन्द वीर्यस्य गर्भमा धेहि योन्वाम् ।  
वृषांसि वृष्यावन् प्रजायै त्वा नयामसि ॥ ८ ॥  
वि जिहोष्य बर्हत्सामे गर्भस्ते योनिमा शयाम् ।  
अदुष्टे देवाः पुत्रं सौमपा उभयविनम् ॥ ९ ॥  
धातुः श्रेष्ठेन रूपेणा—स्या नार्यो गवीन्योः ।  
पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूर्तवे ॥ १० ॥  
त्वष्टः श्रेष्ठेन रूपेणा—स्या नार्यो गवीन्योः ।  
पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूर्तवे ॥ ११ ॥  
सर्वितुः श्रेष्ठेन रूपेणा—स्या नार्यो गवीन्योः ।  
पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूर्तवे ॥ १२ ॥  
प्रजापते श्रेष्ठेन रूपेणा—स्या नार्यो गवीन्योः ।  
पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूर्तवे ॥ १३ ॥

॥ २१९ ॥ ( अथर्व० ६।८१।१-३ )

अथर्वा । आदित्यः, ३ त्वष्टा ( गर्माधानम् ) । अनुष्टुप् ।

यन्तासि यच्छस्ते हस्ता—वप रक्षोसि सैधसि ।  
प्रजां धनं च गृह्णानः परिरुस्तो अभूदयम् ॥ १ ॥  
परिरुस्तु वि धारय योनिं गर्भीय धातवे ।  
मर्यादे पुत्रमा धेहि तं त्वमा गर्भयागमे ॥ २ ॥  
यं परिरुस्तमविम—रदितिः पुत्रकाम्या ।  
त्वष्टा तमस्या आ र्वध्नाद् यथा पुत्रं जनादिति ३

॥ २२० ॥ ( अथर्व० ६।१७।१-४ )

अथर्वा । गर्भं हणम्, पृथिवी । अनुष्टुप् ।

यथेयं पृथिवी मदी भूतानां गर्भमादधे ।  
पृथा तं म्रियतां गर्भो अनु सूर्तुं सर्वितवे ॥ १ ॥  
यथेयं पृथिवी मदी दाधारेमान वनस्पतीन् ।  
पृथा तं म्रियतां गर्भो अनु सूर्तुं सर्वितवे ॥ २ ॥  
यथेयं पृथिवी मदी दाधार पर्वतान् गिरीन् ।  
पृथा तं म्रियतां गर्भो अनु सूर्तुं सर्वितवे ॥ ३ ॥  
यथेयं पृथिवी मदी दाधार पिठितं जगत् ।  
पृथा तं म्रियतां गर्भो अनु सूर्तुं सर्वितवे ॥ ४ ॥

॥ २२१ ॥ (अथर्व० ७।११११)

ब्रह्म।। १५५५ : (आत्मा) । परावृत्तौ विष्टु ।

इन्द्रस्य कुक्षिरसि सोमघानं

आत्मा देवानामुत मानुषाणाम् ।

इह प्रजा जनय यास्त आसु

या अन्यत्रेह तास्तै रमन्ताम्

॥ १ ॥

॥ २२२ ॥ (अथर्व० ८।११-२६)

मातृनामा । मन्त्रोक्ताः, मातृनामा, १५ ब्रह्मणस्त्विति : (गर्भ-  
दोषनिवारणम्) । अनुष्टुप् । २ पुरस्ताद्बृहती; १० ज्य-  
साना बृहदा जगती; ११-१२, १४, १६, पद्म-  
वृत्तिः; १५ ज्यवसाना सप्तपदा सक्ती; १७  
ज्यवसाना सप्तपदा जगती ।

यौ ते मातोन्मार्जं जातायाः पतिषेदनौ ।

दुर्णामा तत्र मा वृध-दलिश उत घृत्सर्पः ॥ १ ॥

पलालानुपलालौ शकृ कौकै मलिम्लुचं पलाजकम् ।

आध्रेयं पथियास्तसृमृक्षमीवं प्रमोलिनम् ॥ २ ॥

मा सं धृतो मोषं स्रप ऊरु मायं स्रपोऽन्तरा ।

कृणोम्यस्यै मेपजं वृजं दुर्णामचातनम् ॥ ३ ॥

दुर्णामा च सुनामा चो-मा संवृतमिच्छतः ।

अरायानपं हन्मः सुनामा खौणिमिच्छताम् ॥ ४ ॥

यः कृणः केदयसुर स्तम्यज उत तुण्डिकः ।

अरायानस्या मृष्काभ्यां मंससोपं हन्मसि ॥ ५ ॥

अनुजिघ्रं प्रमृदन्तं क्रुश्यादमुत येरिहम् ।

अरायांशुकिफिणौ वृजः पिहो जनीनशव् ॥ ६ ॥

यस्त्या स्वये निपद्यते आतां मृत्वा पितेव च ।

वृजस्तामस्तहतामितः ह्यिरूपास्तिरीटिनः ॥ ७ ॥

यस्त्या स्वपन्ती त्सरति यस्त्या दिशंसि जाग्रतीम् ।

छायामिव ॥ तात्स्यैः परिकामन्ननोनाशव् ॥ ८ ॥

यः कृणोति मृतवत्सा-मवतोकासिमां खियम् ।

तमोपधे त्वं नाशया-स्याः कमलमखियम् ॥ ९ ॥

ये शालाः परिनुत्यन्ति सायं गेदमनादिनः ।

कुसुला ये च कुक्षिलाः ककुमाः ककुमाः खिमाः ।

तानोपधे त्वं गन्धेन विपुचीनान् वि नाशय ॥ १० ॥

ये कुकुन्धाः ककुमाः कृतीर्दृशानि विभ्रति ।

क्रीया इव प्रनुत्यन्तो

घने ये कुर्वते धोयं तानितो नाशयामसि ॥ ११ ॥

ये सूर्यं न तितिक्षन्त आतपन्तममुं दिवः ।

अरायान वस्तवासिनौ

दुर्गन्धिलोहितास्यान् मर्ककान् नाशयामसि ॥ १२ ॥

य आत्मानमतिमात्र-मंसं आघाय विभ्रति ।

खीणां श्रौणिप्रतोदेन इन्द्र रक्षांसि नाशय ॥ १३ ॥

ये पूर्वं बध्योऽु यन्ति हस्ते शृङ्गाणि पिभ्रतः ।

आपाक्रेष्ठाः प्रहासिनं

स्तन्ये ये कुर्वते ज्योतिस्तानितो नाशयामसि ॥ १४ ॥

येषां पञ्चात् प्रपदानि पुरः पाणीः पुरो मुखः ।

खलजाः शकधूमजा उर्वण्डा ये च मद्मद्राः

कुम्भमुष्का अयाशर्यः ।

तानस्या ब्रह्मणस्पते प्रतीयोर्धेन नाशय ॥ १५ ॥

पर्यस्नाक्षा अग्रचन्द्रा मल्लैणाः संन्तु पण्डगाः ।

अथ मेपज पाद्य य इमां

संविर्वृत्सत्यपतिः स्वपतिं खियम् ॥ १६ ॥

उद्धर्षिणं मुनिकेशं जम्भयन्तं मरीमृशम् ।

उपेपन्तमुदुम्बलं तण्डेलमुत शालुडम्

पदा प्र विष्य पाण्यौ स्थालीं गौरिव स्वन्ना ॥ १७ ॥

यस्ते गर्भं प्रतिमृशात् जातं वां मारयाति ते ।

पिहस्तमुग्रधन्वा कृणोतु हृदयाविधम् ॥ १८ ॥

ये अक्षौ ज्ञातान् मारयन्ति स्तिका अनुदोरते ।

खीमांगान् पिहो गन्ध्यान् वातो अश्रमिवाजतु ॥ १९ ॥

परिसृष्टं धारयतु यद्वितं मायं पादि तत् ।

गर्भं त उग्रं रक्षतां मेपजौ नीविमायां ॥ २० ॥

पवीनसात् तद्व्याधु-च्छायकादुत नम्रकात् ।

प्रजायं पत्यै त्वा पिहः परि पातु किमीदिनः ॥ २१ ॥

द्यास्याचतुरक्षात् पञ्चपादादनहुरे ।

वृन्तादिमि प्रसर्पतः परि पादि घरीवृतात् ॥ २२ ॥

य आमं मांसमदन्ति पौरुषेयं च ये ऋविः ।  
 गर्भान् सार्दन्ति केशया—स्तानितो नाशयामसि २३  
 ये सूर्यात् परिसर्पन्ति स्नुषेयं श्वशुरादधि ।  
 वज्रश्च तेषां पिङ्गश्च हृदयेऽधि नि विध्यताम् ॥२४॥  
 पिङ्गं रक्ष जायमानं मा पुमांसं स्त्रियं कन ।

आण्डादो गर्भान् मा दंभन्  
 वार्धस्वेतः किमीदिनः ॥२५॥

अप्रजास्त्वं मार्तवस्तुमा—द् रोदमघमावयम् ।  
 वृक्षादिव अजं कृत्वा—प्रिये प्रति मुञ्च तत् ॥२६॥

॥ २२३ ॥ ( अथर्वं २०।२६।११-१६ )  
 रक्षोहा । गर्भसंज्ञावः । अनुष्टुप् ।

ब्रह्मणाग्निः सैविदानो रक्षोहा वाधतामितः ।  
 अमीवा यस्ते गर्भं दुर्णामा योनिमाशये ॥११॥  
 यस्ते गर्भममीवा दुर्णामा योनिमाशये ।  
 अग्निं ब्रह्मणा सह निष्कृष्यादमनीनशत् ॥१२॥  
 यस्ते हन्ति पुत्रयुतं निपत्सुं यः संरीसुपम् ।  
 जातं यस्ते जिघांसति तमिहो नाशयामसि ॥१३॥  
 यस्तं ऊरु विहरत्य—न्तरा दस्पती शये ।  
 योनिं यो अन्तराद्विहति तमिहो नाशयामसि ॥१४॥  
 यस्या भ्राता पतिर्मृत्या जारो मृत्वा निपद्यते ।  
 प्रजां यस्ते जिघांसति तमिहो नाशयामसि ॥१५॥  
 यस्या स्पर्धेन तमसा मोहयित्वा निपद्यते ।  
 प्रजां यस्ते जिघांसति तमिहो नाशयामसि ॥१६॥

॥ २२४ ॥ ( अथर्वं ५।७८।१-९ )

यस्यप्रियेयः । अग्निः ( गर्भदाविष्णुप्रियेयः ) । अनुष्टुप् ।  
 वि जिहीष्य घनस्पते योनिः सूर्यस्या इय ।  
 धुते मे अभियन्ता दयं समर्पयि च मुञ्चतम् ॥५॥  
 मीताय नार्धमानाय श्रुतये सप्तवर्षये ।  
 मायागिरिभियना पुयं पुशं सं च वि चानयः ॥६॥  
 यथा यानः पुष्करिणीं समिधयति नृपतः ।  
 एषा ते गर्भं पञ्चतु निरतु दशमारयः ॥ ७ ॥

यथा वातो यथा वनं तथा समुद्र एजति ।  
 एषा त्वं दशमास्य सहावेहि जरायुणा ॥ ८ ॥  
 दश मासाञ्छशयानः कुमारो अर्धं मातरि ।  
 निरैत जीवो अर्हतो जीवो जीवन्त्या अर्धं ॥९॥

॥ २२५ ॥ ( अथर्वं २०।७८।५ )

कक्षीवान् दैवतमसः । पवमानः सोमः ( अदितेर्गर्भः ) ।  
 अगती ।

अरावीदंशुः सचमान ऊर्मिणा  
 देवाव्यं मनुषे पिबन्ति त्वचम् ।  
 दद्याति गर्भमर्दितेरुपस्थ आ  
 येन तोकं च तनयं च धामहे ॥ ५ ॥

॥ २२६ ॥ ( अथर्वं २।११।१-६ )

अयमा । पूषा, अयमा, देवाः, दिवाः, देवाः ( नारि-  
 मुक्षप्रतिः ) । १ पक्षिः, २ अनुष्टुप्, ३ चतुष्पदो-  
 भिरयमा ककुम्भसनुष्टुप्, ४-६ पद्मापक्षिः ।

वर्षट् ते पूषन्नसिन्सूतौ  
 अयमा होता कृणोतु वेधाः ।  
 सिन्धतां नार्यतप्रजाता  
 वि पर्वीणि जिहतां सूतवा उं ॥ १ ॥  
 चतस्रो दिवः प्रदिश—अतस्रो भूम्या उत ।  
 देवा गर्भं समैरयन् तं व्यूर्णयन्तु सूतवे ॥ २ ॥  
 सूपा व्यूर्णोतु वि योनिं हापयामसि ।  
 ध्रुवया सूपणे इय—मय त्वं पिप्कले खज ॥ ३ ॥  
 नेयं मांसे न पीयसि नेयं मृज्जस्याहृतम् ।  
 अयैतु पृथि शेषलं नृने

जराय्वस्येयं जरायु पद्यताम् ॥ ४ ॥  
 वि ते भिनन्ति मेहनं वि योनिं वि गयीनिके ।  
 वि मातरं च पुत्रं च  
 वि कुमारं जरायुणाय जरायु पद्यताम् ॥ ५ ॥  
 यथा वातो यथा मनो यथा पतन्ति पक्षिणः ।  
 एषा त्वं दशमास्य साकं  
 जरायुणा पनायं जरायु पद्यताम् ॥ ६ ॥

॥ २०७ ॥ ( अथर्वे १९।१०।१-४ )

मन्त्रा । बृहस्पति, विधेरेवाश्च (मेधा) । १ पराजुष्टुप्  
त्रिष्टुप्, २ पुर ऋक्मन्त्रपुरिष्टाद्वृत्ता, ३ बृहतीगमा,  
४ त्रिपदाऽऽयी गायत्री ।

यन्मे त्रिष्टं मन्त्रसो यच्च वाच  
सरस्वती मन्त्रमन्तं जुगाम् ।  
विध्वैस्तद् देवः सह संविदानः  
सं दधातु बृहस्पतिः ॥ १ ॥  
मा न आपो मेधां मा ऋह प्र मयिष्टन ।  
सुष्यद्वा युयं स्पन्धुं  
उपहृतोऽहं सुमेधां घञ्चस्यो ॥ २ ॥  
मा नो मेधां मा नो दीक्षां  
मा नो हिंसिष्टं यत् तपः ।  
शिवा नः शं सुन्त्यायुषे शिवा मंगन्तु मातरः ३  
या नः पीपरदग्निना ज्योतिष्मता तमस्तिरः ।  
तामुस्मे रसतामिर्मय् ॥ ४ ॥

॥ २०८ ॥ ( अथर्वे १।१।१-४ )

अथर्व । वाचस्पति, (मेधाप्रवर्धनम्) । अनुष्टुप्, ४ चतुर्गदा  
शिष्टाद्वृत्ता ।

ये त्रिष्टा, परिपन्ति त्रिभ्यां रूपाणि त्रिभ्रतः ।  
वाचस्पतिर्षला तेषां तन्वोऽद्य दधातु मे ॥ १ ॥  
पुनरेहि वाचस्पते देवेन मन्त्रसा सह ।  
यसोऽप्यते नि रमय मय्येवास्तु मयि धृतम् ॥ २ ॥  
इहैवामि वि तनूमे आत्मा इय ज्यया ।  
वाचस्पतिर्नि यच्छतु मय्येवास्तु मयि धृतम् ३  
उपहृतो वाचस्पति-रूपस्मात् वाचस्पतिर्हयताम् ।  
सं धृतेन गमेमहि मा धृतेन वि रधिषि ॥ ४ ॥

॥ २०९ ॥ ( अथर्वे ६।१०८।१-५ )

शान्त । मेधा, ४ अग्नि (मेधावर्धनम्) । अनुष्टुप्,  
२ उरीष्टा, ३ पश्य बृहती ।

त्व नो मेधे प्रथमा गोमिर्ध्वमिरा गति ।  
त्वं सूर्यस्य रुदिमभि-स्त्वं नो असि यत्रिया ॥ १ ॥

मेधामहं प्रथमा ऋक्षप्रती ऋक्षजलासृषिदुताम् ।  
प्रपीतां ऋक्षचारिभि-र्देवानामरसे हुये ॥ २ ॥  
यां मेधाममृगो विदु-र्या मेधामसुरा विदुः ।  
ऋषयो मन्त्रां मेधां यां विदुः

तां मन्या वैश्यामसि ॥ ३ ॥

यासूर्ययो भूतकृतां मेधां मेधाग्निने विदुः ।  
तथा मामद्य मेध-याग्ने मेधाग्निं ऋषु ॥ ४ ॥

मेधां सूर्यं मेधां प्रात-मेधां मय्यर्द्धिनुं परि ।  
मेधां सूर्यस्य रुदिमभि-र्वचसा वैश्यामहे ॥ ५ ॥

मणिधारणम् ।

॥ २१० ॥ ( अथर्वे ४।१०।१-७ )

अथर्व । शब्दमपि, इत्यतः । अनुष्टुप्, ६ पद्यावन्ति,  
७ पञ्चगदा पराजुष्टुपञ्चरी ।

यार्ताज्ञावो अन्तरिक्षाद् विद्युतो ज्योतिष्स्पति ।  
स नो हिरण्यजाः शूद्रश्च कर्शनः पात्यर्हसः १  
यो अग्रतो रौचनानां समुद्रादधि जग्निरे ।  
शूद्र्येन हत्वा रसा-स्पतिप्रणो नि र्हामहे ॥ २ ॥

शूद्र्येनार्मीषाममर्ति शूद्र्येनोत सुगन्धाः ।  
शूद्रो नो विभ्वर्भयजः कर्शनः पात्यर्हसः ॥ ३ ॥

दिनि जातः संमुद्रज सिन्धुतस्पर्शमृतः ।  
स नो हिरण्यजाः शूद्रश्च आपुष्पनरणो मणिः ४

समुद्राज्ञानो मणि-धृशज्ञातो दिवाकरः ।  
सो अस्मान्सुरीनं पातु ह्येत्या देवासुरेभ्यः ॥ ५ ॥

हिरण्यानामेकौऽग्नि सोमात् त्वमधि जग्निरे ।  
रये त्वमसि दशत ह्युधौ रौचनस्यं

प्र ण आयूषि तारिषत् ॥ ६ ॥  
देवानामस्य कर्शनं यमू  
तदात्मन्वर्धत्यस्त्वन्तः ।

तत् ते याम्नायुषे यन्मे उदाय  
दीर्घायुत्वाय ज्ञानशौरदाय कान्तस्त्रामि रसतु ७

॥ २३१ ॥ ( अथर्घो ८५।१-२ )

शुक । कृत्वा दधण, मन्त्रोक्ताः ( प्रतिघरो मणि ) । अनुष्टुप् ;  
१,६ उपरिष्ठाद्बृहता, २ त्रिपदा विराड् गायत्री, ३ चतुष्पदा  
मुरिगजगती, ५ मुरिफसस्तारपङ्क्तिः, ७-८ पञ्चमती, ९  
पुरस्कृतिर्जगता, १० त्रिष्टुप्, ११ पञ्चापङ्क्तिः १४ च्यव  
साना षट्पदा जगती, १५ पुरस्ताद्बृहती, १६ जगतीगर्भा  
त्रिष्टुप्, २० विराड्गर्भा प्रस्तारपङ्क्तिः, २१ विराट् त्रिष्टुप्,  
२२ च्यवसाना सप्तपदा विराड्गर्भा मुरिकशकरी ।

अयं प्रतिस्वरो मणि—धीरो धीरायं चयते ।

धीर्यध्वान्तसपत्नहा शूरवीरः परिपूर्णः सुमङ्गलः १

अय मणिः सपत्नहा सुवीरः

सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः ।

प्रत्यक् कृत्वा दूषयन्नेति धीरः ॥ २ ॥

अनेनेन्द्रो मणिना युवमहन्

अनेनासुरान् परामाघयन्मनीषी ।

अनेनाजयद् धावापृथिवी उभे इमे

अनेनाजयत् प्रविशश्चतस्रः ॥ ३ ॥

अयं भ्रान्त्यो मणिः प्रतीवर्तः प्रतिस्वरः ।

ओजस्वान् विमृषो वृशी

सो अस्मान् पातु सर्वतः ॥ ४ ॥

तदग्निराह तदु सोम आह

यद्वरुणः सविता तदिन्द्रः ।

ते मे देवाः पुरोहिताः प्रतीचीः

कृत्वाः प्रतिस्वरैर्जन्तु ॥ ५ ॥

अन्तर्द्धे धावापृथिवी उताहृत्य सूर्यम् ।

ते मे देवाः पुरोहिताः

प्रतीचीः कृत्वाः प्रतिस्वरैर्जन्तु ॥ ६ ॥

ये ग्राफत्यं मणिं जना यमोणिं कृण्वते ।

स्यं इष्ट दिव्यमाराय वि कृत्वा बाधते वृशी ॥ ७ ॥

ग्राफयेन मणिन् अविण्य मनीषिणां ।

धर्मे सयाः हतना वि मृषो दन्मि रक्षस्तः ॥ ८ ॥

याः कृत्वा आहिरसीर्याः कृत्वा आसुरीः

याः कृत्वाः स्वयं कृता या उ चान्येभिराभृताः ।

उभयौस्ताः परा यन्तु

परायतो नवर्ति नाध्याः अति ॥ ९ ॥

अस्मै मणिं यमं चधन्तु देवा

इन्द्रो विष्णुः सविता रुद्रो अग्निः ।

प्रजापतिः परमेष्ठा विराड्

वैश्वानर ऋषयश्च सर्वे ॥ १० ॥

उत्तमो अस्त्योर्पधीनामनङ्घ्रान्

जगतामिव व्याघ्रः श्वपदामिव ।

यमैच्छामाविदाम् तं प्रतिस्पर्शनमन्तितम् ॥ ११ ॥

स इद् व्याघ्रो भव—त्यथो सिंहो अथो वृषा ।

अथो सपत्नकर्शिनो यो विभर्तीमं मणिम् ॥ १२ ॥

नैनं धन्यस्त्वस्त्यो न गन्धर्वा न मर्याः ।

सर्वा विशो वि राजति यो विभर्तीमं मणिम् ॥ १३ ॥

कश्यपस्त्वामसृजत कश्यपस्त्वा समैरयत् ।

अविमस्त्वेन्द्रो मातुषे विभ्रत सन्नेविणेऽजयत् ।

मणिं सहस्रवीर्यं यमं वेधा अकृण्वत् ॥ १४ ॥

यस्त्वा कृत्वाभिर्यस्त्वा वीक्षाभि

यन्नेयस्त्वा जिघांसति ।

प्रत्यक् त्वमिन्द्र तं जहि वज्रेण शतपर्वणा ॥ १५ ॥

अयमिद् वै प्रतीवर्त ओजस्वान् संजयो मणिः ।

प्रजां धनं च रक्षतु परिपूर्णः सुमङ्गलः ॥ १६ ॥

असपत्नं नो अघरा—दसपत्नं न उत्तरात् ।

इन्द्रासपत्नं नं पश्चा—ज्योतिः शूर पुरस्कृतिः १७

यमं मे धावापृथिवी यमोहवर्म सूर्यः ।

यमं मे इन्द्रश्चाग्निश्च यमं धाता दधातु मे ॥ १८ ॥

पेन्द्राग्नं यमं बहुल यदुग्रं

विश्वे देवा नाति विध्वान्ति सर्वे ।

तन्मे तन्यं प्रायतां सर्वतो पृहद्

आर्युष्मां जूरद्विष्यथासानि ॥ १९ ॥

आ मारुक्षद् देवमणिं मन्त्रा अरिष्टतांतये ।

इमं मेथिमंभिसंविंशध्वं

तनुपानं त्रिवर्ण्यमोजसे

॥ २० ॥

अस्मिन्निन्द्रो नि दधातु नृणां

इमं देवासो अभिसंविंशध्वम् ।

दीर्घायुत्वाय शतशारदाय

आयुष्मान् जरद्विष्यथासत्

॥ २१ ॥

स्यस्तिदा विशां पतिं—वृषहा विमृधो वृशी ।

इन्द्रो यघ्रातु ते मणिं

जिगीषां अपराजितः सोमपा अमयंकरो वृषां ।

स त्पा रक्षतु सर्वतो दिवा नक्तं च विभ्रतः ॥ २२ ॥

॥ २३२ ॥ ( अथर्वं १।३।१-२५ )

अथर्वः । ( सप्तसप्तशतानां, वरुणमणिः, वनस्पतिः, चन्द्रमाः ।

अनुष्टुप् ; २-३, ६ अरिष्टं त्रिष्टुप् ; ८, १३-१४

पञ्चाष्टुप् ; ११, १६ अरिष्टः १५, १७-२५

पटुपदा अगती ।

अयं मे वरुणो मणिः सप्तसप्तशतानां वृषां ।

तेना रमस्य त्वं शत्रून् प्र मृणीहि दुरस्यतः ॥ २१ ॥

प्रेतान्मृणीहि प्र मृणा रमस्य

मणिस्ते अस्तु पुरस्ता पुरस्तात् ।

अवारयन्त वरुणेन देवा

अभ्याचारमसुराणां ॥ २० ॥

अयं मणिर्वरुणो विश्वमेवजः

सहस्राक्षो हरितो हिरण्ययः ।

स ते शत्रुनर्घयन् पादपाति

पूर्वस्तान् दंष्ट्रिं ये त्वां द्विपन्ति

॥ ३ ॥

अयं ते हृत्वां धिततां पौरुषेयादयं भयात् ।

अयं त्वा सर्वसात् प्रापाद् वरुणो वारयिष्यते ॥ ४ ॥

वरुणो वारयता अयं देवो वनस्पतिः ।

यश्मो यो अस्मिन्नाविष्ट—स्तमुं देवा अवीचरन् ॥ ५ ॥

स्वमे सुप्त्वा यदि पदयासि पापं

मृगः स्मृतिं यतिं धायादक्षुष्टाम् ।

परिक्षवाच्छुनैः पापयादाद्

अयं मणिर्वरुणो वारयिष्यते

॥ ६ ॥

अरात्यास्त्वा निर्वृत्त्या अभिचारादयो भयात् ।

मृत्योरोजीयसो वधाद् वरुणो वारयिष्यते ॥ ७ ॥

यन्मे माता यन्मे पिता भ्रातरौ

यत्त्व मे स्वा यदेनश्चक्रमा ध्रुवम् ।

ततो नो वारयिष्यते—इयं देवो वनस्पतिः ॥ ८ ॥

वरुणेन प्रव्ययिता भ्रातृभ्या मे सर्वधवः ।

असूतं रजो अयंगु—स्ते यन्मधुमं तमः ॥ ९ ॥

अरिष्टोऽहमरिष्टु—रायुष्मान्त्वसर्वपूरुषः ।

तं मायं वरुणो मणिः पारं पातु दिशोर्विशः ॥ १० ॥

अयं मे वरुण उरसि राजा देवो वनस्पतिः

स मे शत्रून् वि बाधता—मिन्द्रो दस्युनिघासुरान् ॥ ११ ॥

इमं विममि वरुण—मायुष्मान्शतशारदः ।

स मे राष्ट्रं च क्षत्रं च पशुजोर्जघ मे दधत् ॥ १२ ॥

यथा वातो वनस्पतीन् वृक्षान् भूतस्योजसा ।

एवा सप्ततान् मे भङ्गिष्य

पूर्वान् जातो उतार्परान् वरुणस्याभि रक्षतु ॥ १३ ॥

यथा वातैश्चाग्निश्च वृक्षान् प्लातो वनस्पतीन् ।

एवा सप्ततान् मे प्लाहि

पूर्वान् जातो उतार्परान् वरुणस्याभि रक्षतु ॥ १४ ॥

यथा वातैर्न प्रक्षीणा वृक्षाः शोरे न्युपिताः ।

एवा सप्ततान्मे मम ॥ क्षिणीहिन्युपय

पूर्वान् जातो उतार्परान् वरुणस्याभि रक्षतु ॥ १५ ॥

तांस्त्वं प्र ङिळिन्दि वरुण पुरा दिष्टात् पुरार्धुपः ।

य एवं पशुषु दिप्सन्ति ये चास्य राष्ट्रदिष्ययः ॥ १६ ॥

यथा सूर्यो अतिमाति यथाभिन्नु तेज आर्हितम् ।

एवा मे वरुणो मणिः कीर्तिं मूर्तिं नि यच्छतु

तेजसा मा समुक्षतु यदांता समनक्तु मा ॥ १७ ॥

( २५६५ )

यथा यशश्चन्द्रम—स्यादित्यं च नृचक्षसि ।  
 एवा मे वरुणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु  
 तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥ १८ ॥  
 यथा यशः पृथिव्यां यथास्मिन् ज्ञातवैदसि ।  
 एवा मे वरुणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु  
 तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥ १९ ॥  
 यथा यशः कन्यायां यथास्मिन्संभृते रथे ।  
 एवा मे वरुणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु  
 तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥ २० ॥  
 यथा यशः सोमपथे मधुपर्के यथा यशः ।  
 एवा मे वरुणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु  
 तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥ २१ ॥  
 यथा यशोऽग्निहोत्रे धेनुद्वारे यथा यशः ।  
 एवा मे वरुणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु  
 तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥ २२ ॥  
 यथा यशो यज्ञमाने यथास्मिन् युद्धादहितम् ।  
 एवा मे वरुणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु  
 तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥ २३ ॥  
 यथा यशः प्रजापतौ यथास्मिन् परमेष्ठिनि ।  
 एवा मे वरुणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु  
 तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥ २४ ॥  
 यथा देवेष्वमृतं यथैषु सत्यमाहितम् ।  
 एवा मे वरुणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु  
 तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥ २५ ॥  
 ॥ २३३ ॥ ( अथर्वं १०।६।१-३५ )  
 बृहस्पतिः १ । पालमणिः, वनस्पतिः, ३ आपः ( मणिघनघनम् ) ।  
 अनुष्टुप्, १, ४, २१ गायत्री; ५ पदपदा अगती; ६ सप्तपदा  
 विराट् गायत्री; ७-१० त्र्यवसाना अष्टपदाऽष्टिः ( १० नवपदा  
 षडि ), ११, २०, २३-२७ पद्यापङ्क्तिः, १२-१७ त्र्यव-  
 साना पदपदा अगती, २१ त्र्यवसाना पदपदा अगती, २५ पद्य-  
 पदा त्र्यनुष्टुप् अगती ।  
 धरातीपोर्धातृण्यस्य दुर्दानो द्विपतः शिरः ।  
 धरिं घृह्णाम्योजसा ॥ १ ॥

धर्मं महामयं मणिः फालोऽज्ञातः करिष्यति ।  
 पूर्णो मन्वेन मार्गमद् रस्तेन सह वर्चसा ॥ २ ॥  
 यत् त्वां शिफः परावधीत् तथा दस्तेन वास्या ।  
 आपस्त्वा तसाञ्जीविलाः पुनस्तु शुचयः शुचिम् ३  
 हिरण्यस्रगयं मणिः श्रद्धां यथं महो दधेत् ।  
 गृहे धंसतु नीतिरियः ॥ ४ ॥  
 तस्मै घृतं सुरां मध्यमममं क्षदामहे ।  
 स नः पितेव पुत्रेभ्यः श्रेयः श्रेयाश्चिकित्सतु  
 भूयोभ्यः श्वः श्वो देवेभ्यो मणिरत्य ॥ ५ ॥  
 यमवध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं  
 फालं घृतधृतमुग्रं खदिरमोजसे ।  
 तमग्निः प्रत्यमुञ्चत सो अस्मै दुह आज्य  
 भूयोभ्यः श्वः श्वस्तेन त्वं द्विपतो जहि ॥ ६ ॥  
 यमवध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं  
 फालं घृतधृतमुग्रं खदिरमोजसे ।  
 तमिन्द्रः प्रत्यमुञ्चतौजसे धीर्योऽयं कम् ।  
 सो अस्मै बलमिद् दुहे  
 भूयोभ्यः श्वः श्वस्तेन त्वं द्विपतो जहि ॥ ७ ॥  
 यमवध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं  
 फालं घृतधृतमुग्रं खदिरमोजसे ।  
 तं सोमः प्रत्यमुञ्चत महे श्रोत्राय चक्षसे ।  
 सो अस्मै वर्च इद् दुहे  
 भूयोभ्यः श्वः श्वस्तेन त्वं द्विपतो जहि ॥ ८ ॥  
 यमवध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं  
 फालं घृतधृतमुग्रं खदिरमोजसे ।  
 तं सूर्यः प्रत्यमुञ्चत तेनेमा अजयद् दिशः ।  
 सो अस्मै भूतिमिद् दुहे  
 भूयोभ्यः श्वः श्वस्तेन त्वं द्विपतो जहि ॥ ९ ॥



यमवध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं  
फालं घृतञ्चतुमुग्रं खदिरमोजसे ।  
तं विभ्रच्चन्द्रमा मणिमसुराणां पुरोऽजयद्  
दानवानां हिरण्ययाः ।  
सो अस्मै श्रियमिद् दुहे  
भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विपतो जहि ॥ १० ॥  
यमवध्नाद् बृहस्पति—र्वाताय मणिमाशये ।  
सो अस्मै वाजिनं दुहे  
भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विपतो जहि ॥ ११ ॥  
यमवध्नाद् बृहस्पति—र्वाताय मणिमाशये ।  
तेनेमा मणिना कृपि—मथिनावभि रक्षतः ।  
स मिपग्भ्यां महौ दुहे  
भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विपतो जहि ॥ १२ ॥  
यमवध्नाद् बृहस्पति—र्वाताय मणिमाशये ।  
तं विभ्रत् सविता मणिं तेनेदमजयत् स्वः ।  
सो अस्मै सुवृतां दुहे  
भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विपतो जहि ॥ १३ ॥  
यमवध्नाद् बृहस्पति—र्वाताय मणिमाशये ।  
तमापो विभ्रतीर्मणिं सदा धावन्त्यक्षिताः ।  
स आभ्योऽमृतमिद् दुहे  
भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विपतो जहि ॥ १४ ॥  
यमवध्नाद् बृहस्पति—र्वाताय मणिमाशये ।  
तं राजा वरुणो मणिं प्रत्यमुञ्चत शंभुवर्म ।  
सो अस्मै सत्यमिद् दुहे  
भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विपतो जहि ॥ १५ ॥  
यमवध्नाद् बृहस्पति—र्वाताय मणिमाशये ।  
तं देवा विभ्रतो मणिं सर्वोल्लोकान् युषाजयन् ।  
स परभ्यो जितिमिद् दुहे  
भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विपतो जहि ॥ १६ ॥  
यमवध्नाद् बृहस्पति—र्वाताय मणिमाशये ।  
तमिमं देवतां मणिं प्रत्यमुञ्चन्त शंभुवर्म ।

स आभ्यो विभ्वमिद् दुहे  
भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विपतो जहि ॥ १७ ॥  
श्रुतवस्तमवधत्ता—तवास्तमवधत्ता ।  
संवत्सरस्तं वद्ध्वा सर्वं भूतं वि रक्षति ॥ १८ ॥  
अन्तर्देशा अवधत्ता प्रदिशस्तमवधत्ता ।  
प्रजापतिस्सृष्टो मणिद्विपतो मेऽधरां अकः ॥ १९ ॥  
अथर्वाणो अवधत्ताथर्वणा अवधत्ता ।  
तैमोदिनो अद्विरसो दस्यूनां  
विभिदुः पुरस्तेन त्वं द्विपतो जहि ॥ २० ॥  
तं घाता प्रत्यमुञ्चत स भूतं व्यकल्पयत् ।  
तेन त्वं द्विपतो जहि ॥ २१ ॥  
यमवध्नाद् बृहस्पति—द्वेभ्यो असुरक्षितिम् ।  
स मायं मणिरागमद् रत्नं सह वर्चसा ॥ २२ ॥  
यमवध्नाद् बृहस्पति—द्वेभ्यो असुरक्षितिम् ।  
स मायं मणिरागमत्  
सह गोभिरजाविभिरत्रेन प्रजयां सह ॥ २३ ॥  
यमवध्नाद् बृहस्पति—द्वेभ्यो असुरक्षितिम् ।  
स मायं मणिरागमत्  
सह ग्रीहियवाभ्यां महसा भूयां सह ॥ २४ ॥  
यमवध्नाद् बृहस्पति—द्वेभ्यो असुरक्षितिम् ।  
स मायं मणिरागमत्  
मर्षोऽमृतस्य धारया कीलालेन मणिः सह ॥ २५ ॥  
यमवध्नाद् बृहस्पति—द्वेभ्यो असुरक्षितिम् ।  
स मायं मणिरागमद्  
ऊर्जया पर्यसा सह द्रविणेन श्रिया सह ॥ २६ ॥  
यमवध्नाद् बृहस्पति—द्वेभ्यो असुरक्षितिम् ।  
स मायं मणिरागमत्  
तेजसा त्रिप्यां सह यशसा कीर्त्या सह ॥ २७ ॥  
यमवध्नाद् बृहस्पति—द्वेभ्यो असुरक्षितिम् ।  
स मायं मणिरागमन् सर्वोभिर्मूर्तिभिः सह ॥ २८ ॥

तस्मिन् देवता मणिं मह्यं ददतु पुष्टये ।  
 अमिभुं क्षत्रवर्धनं सपत्नदम्भनं मणिम् ॥ २९ ॥  
 ब्रह्मणा तेजसा सह प्रति मुञ्चामि मे शिवम् ।  
 असपत्नः सपत्नहा सपत्नान् मेऽर्धरां अकः ३०  
 उत्तरं द्विपतो मामयं मणिः कृणोतु देवजाः ।  
 यस्य लोका इमे त्रयः पर्यां दुग्धमुपासते ।  
 स मायमर्थि रोहतु मणिः श्रेष्ठपाय मूर्धतः ३१  
 यं देवाः पितरौ मनुष्या उपजीवन्ति सर्वदा ।  
 स मायमर्थि रोहतु मणिः श्रेष्ठपाय मूर्धतः ३२  
 यथा धीर्जमुर्धरायां कृष्टे फालेन रोहति ।  
 एवा मयि प्रजा पशवोऽभ्रमस्तु वि रोहतु ३३  
 यस्यै त्वा यक्षवर्धन मणे प्रत्यमुचं शिवम् ।  
 तं त्वं शतदक्षिण मणे श्रेष्ठपाय जिन्वतात् ३४  
 एतस्मिन् सुमहितं  
 जुषाणो अग्ने प्रति हयं होमैः ।  
 तस्मिन् विदेम सुमतिं स्वस्ति प्रजां चक्षुः  
 पशुस्त्वमिदं जातयेदसि ब्रह्मणा ॥ ३५ ॥

॥ २३४ ॥ (अधर्प० १९।१८।१-१०)

ब्रह्मा (सपत्नदम्भनः) । दर्भमणिः मन्त्रोपाध । अष्टपदम् ।

इमं यन्नामि ते मणिं दीर्घायुत्वाय तेजसे ।  
 इमं सपत्नदम्भनं द्विपतस्तर्पनं दृढः ॥ १ ॥  
 द्विपतस्तापयन् दृढः दारुणां तापयन् मनः ।  
 दुर्दाहः सर्वोन्मथं दर्भं धूमं रूपाग्निस्ततापयन् २  
 धूमं रूपाग्निर्पन् दर्भं द्विपतो नितर्पन् मणे ।  
 दृढः सपत्नानां गिन्धी—मर्द इय विरुजं बलम् ३  
 गिन्धि दर्भं सपत्नानां हर्दयं द्विपतां मणे ।  
 उद्यन् स्वयमिय भूम्याः निरं एषां वि पातय ४  
 गिन्धि दर्भं सपत्नान् मे गिन्धि मे पृतनायतः ।  
 गिन्धि मे सर्वान् दुर्दाहो  
 गिन्धि मे द्विपतो मणे ॥ ५ ॥

छिन्धि दर्भं सपत्नान् मे छिन्धि मे पृतनायतः ।  
 छिन्धि मे सर्वान् दुर्दाहो  
 छिन्धि मे द्विपतो मणे ॥ ६ ॥  
 वृक्ष दर्भं सपत्नान् मे वृक्ष मे पृतनायतः ।  
 वृक्ष मे सर्वान् दुर्दाहो वृक्ष मे द्विपतो मणे ७  
 कृन्त दर्भं सपत्नान् मे कृन्त मे पृतनायतः ।  
 कृन्त मे सर्वान् दुर्दाहो कृन्त मे द्विपतो मणे ८  
 पिश दर्भं सपत्नान् मे पिश मे पृतनायतः ।  
 पिश मे सर्वान् दुर्दाहो पिश मे द्विपतो मणे ९  
 विष्य दर्भं सपत्नान् मे विष्य मे पृतनायतः ।  
 विष्य मे सर्वान् दुर्दाहो  
 विष्य मे द्विपतो मणे ॥ १० ॥

॥ २३५ ॥ (अधर्प० १९।१९।१-९)

ब्रह्मा । दर्भमणिः । अष्टपदम् ।

निक्षं दर्भं सपत्नान् मे निक्षं मे पृतनायतः ।  
 निक्षं मे सर्वान् दुर्दाहो निक्षं मे द्विपतो मणे १  
 तुन्धि दर्भं सपत्नान् मे तुन्धि मे पृतनायतः ।  
 तुन्धि मे सर्वान् दुर्दाहो तुन्धि मे द्विपतो मणे २  
 रुन्धि दर्भं सपत्नान् मे रुन्धि मे पृतनायतः ।  
 रुन्धि मे सर्वान् दुर्दाहो  
 रुन्धि मे द्विपतो मणे ॥ ३ ॥  
 मूण दर्भं सपत्नान् मे मूण मे पृतनायतः ।  
 मूण मे सर्वान् दुर्दाहो मूण मे द्विपतो मणे ४  
 मर्ध दर्भं सपत्नान् मे मर्ध मे पृतनायतः ।  
 मर्ध मे सर्वान् दुर्दाहो मर्ध मे द्विपतो मणे ५  
 पिण्डि दर्भं सपत्नान् मे पिण्डि मे पृतनायतः ।  
 पिण्डि मे सर्वान् दुर्दाहो  
 पिण्डि मे द्विपतो मणे ॥ ६ ॥  
 शोर्प दर्भं सपत्नान् मे शोर्प मे पृतनायतः ।  
 शोर्प मे सर्वान् दुर्दाहो शोर्प मे द्विपतो मणे ७  
 वट दर्भं सपत्नान् मे वट मे पृतनायतः ।  
 वट मे सर्वान् दुर्दाहो वट मे द्विपतो मणे ८

जहिर्दमं सपत्नान् मे जहि मे पृतनायतः ।  
जहि मे सर्वान् दुर्हार्दो जहि मे द्विपतो मणे ९

॥ १३६ ॥ ( अथर्वं ११।१०।१-५ )

प्रज्ञा । दर्शनाग्निः । अनुष्टुप् ।

यत् ते दमं जराभृत्युः शतं वरमसु वरम ते ।  
तेनेमं वरमिणं कृत्वा सपत्नान् जहि वीर्यैः ॥ १ ॥  
शतं ते दमं वरमणिं सहस्रं वीर्याणि ते ।  
तमस्यै विभ्वे त्वां देवा जरसे भतेवा अद्भुः ॥ २ ॥

त्वामाहुर्देववर्म त्वां दमं प्रक्षालयस्वामिम् ।

त्वामिन्द्रस्याहुर्वर्म त्वं राष्ट्राणि रक्षसि ॥ ३ ॥

सपत्नक्षयणं दमं द्विपतस्तपनं हृदः ।

मणिं क्षत्रस्य वर्धनं तनुपानं कृणोमि ते ॥ ४ ॥

यत् समुद्रो अम्यकन्दत् पर्जन्यो विद्युता सह ।

सतो हिप्ययौ विन्दुस्ततो दमो अजायत ॥ ५ ॥

॥ १३७ ॥ ( अथर्वं ११।३१।१-१४ )

सविता ( पुष्टिकाशः ) । औदुम्बरमणिः । अनुष्टुप् ; ५, १२  
त्रिष्टुप् ; ६ विराट् प्रस्तावकः ; ११, १३ पञ्चमहा शक्तीः,  
१४ विराट्प्रस्तावकः ।

औदुम्बरेण मणिना पुष्टिकामाय वेधसां

पशूनां सर्वेषां स्फूर्तिं गोष्ठे मे सविता करत् १

यो नो अग्निर्गर्हपत्यः पशूनामधिपा अस्तत् ।

औदुम्बरो वृषा मणिः स मां सृजतु पुष्ट्या २

कृतीपिणो फलवर्ता स्वधामिरो च नो गृहे ।

औदुम्बरस्य तेजसा धाता पुष्टिं दधातु मे ॥ ३ ॥

यद् द्विपाश्च चतुर्पाश्च धाम्यग्रानि ये रसाः ।

गृहेषु हं त्वेषां भुमानं विश्वदौदुम्बरं मणिम् ॥ ४ ॥

पुष्टिं पशूनां परि जग्रमाहं

चतुर्पदां द्विपदां यद्य धान्यम् ।

पर्यः पशूनां रसमोषधीनां

गृहस्पतिः सविता मे नि यच्छात् ॥ ५ ॥

अहं पशूनामधिपा अंसानि

मरियं पुष्टं पुष्टपतिं दधातु ।

महामौदुम्बरो मणिर्द्रविणानि नि यच्छतु ॥ ६ ॥

उप मौदुम्बरो मणिः प्रजया च धनेन च ।

इन्द्रेण जिन्वितो मणिरा मागन्तुह वर्चसा ७

देवो मणिः सपत्नहा धनसा धनसातये ।

पशोरग्रस्य भुमानं गवां स्फूर्तिं नि यच्छतु ८

ययाग्रे त्वं वनस्पते पुष्ट्या सह जमिपे ।

एवा धनस्य मे स्फूर्तिमा दधातु सरस्वती ९

मा मे धनं सरस्वती पर्यस्फूर्तिं च धान्यम् ।

सिनीवाल्मुकिं बहा—द्वयं चौदुम्बरो मणिः ॥ १० ॥

त्वं मणिनामधिपा वृषांसि

त्वयि पुष्टं पुष्टपतिर्जजान ।

त्वयिमे वाञ्छां द्रविणानि सर्वौदुम्बरः

स त्वमुसत् सहस्रारादरातिममतिं क्षुधं च ॥ ११ ॥

ग्रामणीरसि ग्रामणीस्तथाय

अभिपिण्डोऽमि मां सिञ्च वर्चसा ।

तेजोऽसि तेजो मरियं धारय

अधि रायिरसि रायि मे धेहि ॥ १२ ॥

पुष्टिरसि पुष्ट्या मां समंशुग्धि

गृहमेधी गृहपतिं मा कृणु ।

औदुम्बरः स त्वमुस्मात्तु धेहि

रायि च नः सर्वेश्वरं नि यच्छ ।

रायस्पोषाय प्रति भुञ्जे अहं त्वाम् ॥ १३ ॥

अयमौदुम्बरो मणिर्वीरो वीराय वक्ष्यते ।

सः नः सुनि मधुमतीं कृणोतु

रायि च नः सर्वेश्वरं नि यच्छात् ॥ १४ ॥

॥ १३८ ॥ ( अथर्वं ११।३४।१-१० )

अत्रिराः । वनस्पतिः, शिपोष्ठाः ( अग्निदमणिः ) । अनुष्टुप् ।

जङ्घिडोऽसि जङ्घिडो राक्षतासि जङ्घिडः ।

द्विपाश्चतुर्पादस्माकं सर्वे रक्षतु जाटिगडः ॥ १ ॥

या गृहस्थसिपञ्चादीः शतं कृत्याकृतं ये ।

सर्वान् यिनक्तु तेजसोऽरसां जङ्घिडस्करत् ॥ २ ॥

अस्सं कृत्रिमं नाद—मरसाः सप्त विस्ससः ।  
 अपेतो जङ्घिडामति—मिपुमस्सैव शातय ॥ ३ ॥  
 कृत्यादूर्पण एवाय—मयो अरातिदूर्पणः ।  
 अयो सहस्वान् जङ्घिडः प्र ण आयुपि तारिपत् ४  
 स जङ्घिडस्य महिमा परि णः पातु विस्वतः ।  
 विष्कन्धं येन सासह संस्कन्धमोज्ज ओजसा ॥ ५ ॥  
 त्रिपूर्वा देवा अजनयन् निष्ठितं भूम्यामधि ।  
 तमु त्वाङ्गिरा इति ब्राह्मणाः पुर्या विंदुः ॥ ६ ॥  
 न न्या पूर्वा ओर्षधयो न त्वा तरन्ति या नवाः ।  
 वियाध उग्रो जङ्घिडः परिपाणः सुमङ्गलः ॥ ७ ॥  
 अयोपदान भगवो जङ्घिडामितवीर्य ।  
 पुरा तं उग्रा प्रसत् उपेन्द्रो वीर्यं ददौ ॥ ८ ॥  
 उग्र इत् तं घनस्पत् इन्द्र ओजमानमा दधौ ।  
 अमीयाः सर्वाध्यातयं जहि रक्षीस्योपधे ॥ ९ ॥  
 आशीरुं विशरीकं पलासं पृष्ट्यामयम् ।  
 तस्मान्नं विश्वशारद—मरसां जङ्घिडिस्करत् ॥ १० ॥

॥ ३९ ॥ (अथर्व० १९।३।१-५)

अङ्घिः । वनस्पति (जङ्घिडः) । अनुष्टुप् । ३ पद्यपञ्चिकः ;  
 ४ निष्टुप् त्रिष्टुप् ।

इन्द्रस्य नामं गृह्णन् ऋषयो जङ्घिडं दंडुः ।  
 देवा यं चक्रुर्भोज—मत्रे विष्कन्धदूर्पणम् ॥ १ ॥  
 न नो रक्षत् जङ्घिडो धनपातो धनेय ।  
 देवा यं चक्रुर्ग्राहणाः परिपाणमरान्निदम् ॥ २ ॥  
 दुर्हादो मंगेरं चतुः पावृहत्यान्मार्गमम् ।  
 तांस्त्यं मंदग्रशो प्रनीयोधेनं नाशय  
 परिपाणोऽपि जङ्घिडः ॥ ३ ॥  
 परि मा त्रियः परि मा पृथिव्याः  
 पयंनारिहाम् परि मा धीमन्त्रयः ।  
 परि मा भूतान् परि मोन अग्यान्  
 द्वितोर्दितो जङ्घिडः पौरुषमान् ॥ ४ ॥

य ऋष्णवो देवहृता य उतो वयतेऽन्यः ।  
 सर्वास्तान् विश्वभोजो—ऽरसां जङ्घिडस्करत् ॥ ५ ॥

॥ १४० ॥ (अथर्व० १९।३।१-६)

ब्रह्मा । शतवारो मणिः । अनुष्टुप् ।

शतवारो अनीनशद् यश्मान् रक्षीसि तेजसा ।  
 आरोहन् वर्षसा सह मणिर्दुर्णाम्चातनः ॥ १ ॥  
 शृङ्गाभ्यां रक्षो रुदते मूलैर्न यातुधान्यः ।  
 मध्येन यश्मं वाधते नैनं पाप्मातिं तत्रति ॥ २ ॥  
 ये यश्मांसो अर्भका महान्तो ये च शश्विनः ।  
 सर्वा दुर्णामहा मणिः शतवारो अनीनशत् ॥ ३ ॥  
 शतं वीरानजनयच्छतं यश्मानपावपत् ।  
 दुर्णास्रः सर्वांस्त्रुह्त्वा—च रक्षीसि धूनुते ॥ ४ ॥  
 हिरण्यशङ्क ऋषभः शतवारो अयं मणिः ।  
 दुर्णास्रः सर्वांस्त्रुह्त्वा—च रक्षीस्यकमीत् ॥ ५ ॥  
 शतमहं दुर्णास्रिनां गन्धर्वाप्सरसां शतम् ।  
 शतं शश्वन्वर्तीनां शतवारेण वारये ॥ ६ ॥

॥ २४१ ॥ (अथर्व० १९।४।१-७)

प्रजापतिः । अस्तुतमणिः । त्रिष्टुप् । १ पद्यपदा ज्योतिष्मती  
 त्रिष्टुप् ; २ पद्यपदा भुरिषाकरी ; ३, ७ पद्यपदा पद्या-  
 पञ्चिकः ; ४ चतुष्टुपदा ; ५ पद्यपदा अतिशङ्करी ; ६  
 पद्यपदाश्लिष्टमर्भा विराड्जगती ।

प्रजापतिर्देवा वचनात् प्रथममस्तुतं धीर्याप्य कम् ।  
 तत् तं वचनाभ्यायुप धर्चसे ओजसे च ॥ १ ॥  
 यलाय चास्तुतस्त्वाभि रक्षतु ॥ २ ॥  
 उर्ध्वोस्तिष्ठतु रक्षन्नप्रमादमस्तुतेमं  
 मा त्वा दमन् एणयो यातुधानाः ।  
 इन्द्र इय दस्यूनव धूनुष्य पृतन्यतः  
 सर्वाद्यून वि दंस्वास्तुतस्त्वाभि रक्षतु ॥ २ ॥  
 शतं च न प्रहरन्तो निगन्तो न तस्मिन् ।  
 तस्मिन्निगन्तुः पथं दत्तं चतुः  
 प्राणमथो बलमन्यतस्याभि रक्षतु ॥ ३ ॥

इन्द्रस्य त्वा वर्मणा परि धापयामो  
यो देवानामधि राजो यभूय ।  
पुनस्त्वा देवाः प्र णयन्तु सर्वे  
अस्तृतस्त्वामि रक्षतु ॥ ४ ॥

अस्मिन् मणायैकशतं वीर्याणि  
सहस्रं प्राणा अस्मिन् चरते ।  
व्याघ्रः शत्रून्भि तिष्ठ सर्वान्  
यस्त्वा पृतन्यादधरः सो अस्त्यस्तृतस्त्वामि रक्षतु ५  
घृतादुहो मधुमान पर्यस्वान्  
सहस्रप्राणः शतयोनिर्घोषाः ।  
शम्भो मयोभ्योजैस्वांश्च  
पर्यस्वांश्चास्तृतस्त्वामि रक्षतु ॥ ६ ॥

यथा त्वमुत्तरोऽसौ असपत्नः सपत्नहा ।  
सज्जातानामसद् वशी  
तथा त्वा सविता कर्द्वस्तृतस्त्वामि रक्षतु ॥ ७ ॥

अरिष्टनाशनम् ।

॥ २४१ ॥ ( अथर्व० ६।१७।१-३ )

मृगुः । यमः, निर्ऋतिः ( अरिष्टक्षयणम् ) । अगती, त्रिष्टुप् ।

देवाः कपोत इषितो यदिच्छन्  
दूतो निर्ऋत्या इदमाजगाम ।  
तस्मा अर्चाम कृण्वाम निष्कृतिं  
शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे  
शिवः कपोत इषितो नो अस्तु  
अनागा देवाः शकुनो गृहं नः ।  
अशिर्हि विप्रो जुपतां हविर्नः  
परि हेतिः पक्षिणी नो वृणक्तु  
हेतिः पक्षिणी न दभ्यात्स्मान्  
आप्ती पदं कृणुते अशिधर्ते ।  
शिवो गोभ्य उत पुरेभ्यो नो अस्तु  
मा नो देवा इह हिंसीत् कपोतः

॥ ४ ॥

॥ ६ ॥

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ २४२ ॥ ( अथर्व० ६।१८।१-३ )

मृगुः । यमः, निर्ऋतिः ( अरिष्टक्षयणम् ) । १ त्रिष्टुप्,  
२ अनुष्टुप्, ३ अगती ।

श्रुचा कपोतै रुदत मृणोदं  
इपं मर्दन्तः परि गां नयामः ।  
संलोभयन्तो दुरिता पदानि  
हित्वा न ऊर्जे म पदान् पथिष्ठः ॥ १ ॥  
परिमेऽग्निर्मपत् परिमे गार्मनेपत ।  
देवेष्वक्त अयः क इमो आ दधरति ॥ २ ॥  
यः प्रथमः प्रवर्तमानुसादं  
यदुभ्यः पन्थामनुपस्पृशानः ।  
योऽस्येदं द्विपदो यश्चतुष्पदः  
तस्मै यमाय नमो अस्तु मूल्ये ॥ ३ ॥

॥ २४३ ॥ ( अथर्व० ६।१९।१-३ )

मृगुः । यमः, निर्ऋतिः ( अरिष्टक्षयणम् ) । ( वृहती ) १-२  
विराट्पाम पायती, ३ ऋक्पाना सतपदा विराडष्टिः ।

अमृन् हेतिः पतत्रिणी व्येतु  
यदुल्लंको वदति मोघमेतत् ।  
यद् वा कपोतः पदमग्नौ कपोतिं ॥ १ ॥  
यौ ते दूतौ निर्ऋत इदमेतो  
अग्रहितौ ग्रहितौ वा गृहं नः ।  
कपोतोलुकाभ्यामपदं तदस्तु ॥ २ ॥  
अवैरहत्यायेदमा रपत्यात्  
सुवीरताया इदमा संसचात् ।  
पराङ्मुख परा वद् पराचीमनु संवर्तम् ।  
यथा यमस्य त्वा गृहेऽरसं प्रतिचाकेशान्  
आमर्कं प्रतिचाकेशान् ॥ ३ ॥

॥ २४५ ॥ ( अथर्व० ६।२०।१-३ )

अथर्वः । चन्द्रमाः ( अरिष्टक्षयणम् ) । १ मुरिक्, २ अनुष्टुप्,  
३ प्रसारपङ्क्तिः ।

अन्तरिक्षेण पतति विभ्रां भुतावचाकेशात् ।  
शुनो दिव्यस्य यन्महस्तेनो ते हविषा विधेम १

अरसं कृत्रिमं नाद-मरसाः सप्त विंशसः ।  
 अपेतो जङ्घिडामिति-मिषुमस्तैव शातय ॥ ३ ॥  
 कृत्यादूर्पण एवाय-मर्थो अरतिदूर्पणः ।  
 अथो सहस्रान् जङ्घिडः प्र ण आयूँपि तारिपत् ४  
 स जङ्घिडस्य महिमा परि णः पातु विश्वतः ।  
 धिष्कन्धं येन सासह संस्कन्धमोज्ज् ओजसा ॥ ५ ॥  
 त्रिष्टया देवा अजनयन् निष्ठितं भूम्यामधि ।  
 तमु स्वाङ्गिण इति ब्राह्मणाः पुष्ट्या विदुः ॥ ६ ॥  
 न त्वा पूर्वा ओषधयो न त्वा तरन्ति या नयाः ।  
 विद्याध उग्रो जङ्घिडः परिपाणः सुमङ्गलः ॥ ७ ॥  
 अथौपदान भगवो जङ्घिडामितवीर्य ।  
 पुरा त उग्रा प्रसत् उपेन्द्रो वीर्यं ददौ ॥ ८ ॥  
 उग्र इत् तं वनस्पत् इन्द्र ओजमान्मा दधौ ।  
 अमीवाः सर्वोद्भातयै जहिर रक्षांस्योपधे ॥ ९ ॥  
 आशरीकं विशरीकं बलासं पृष्ठ्यामयम् ।  
 तन्मानं विश्वशारद-मरसां जङ्घिडस्करत् ॥ १० ॥

॥ ३३९ ॥ (अथर्व० १९।३।१-४)

अङ्गिराः । वनस्पति (जङ्घिडः) । अनुष्टुप् । ३ पञ्चपक्षिः ;  
 ४ निचुर त्रिष्टुप् ।

इन्द्रस्य नाम गृहस्तु ऋषयो जङ्घिडं ददुः ।  
 देवा यं चक्रुर्मपज-मर्थे धिष्कन्धदूर्पणम् ॥ १ ॥  
 स नो रक्षतु जङ्घिडो धनपालो धनेव ।  
 देवा यं चक्रुर्ब्राह्मणाः परिपाणमरातिहम् ॥ २ ॥  
 हुताहुः संयोर् चक्षुः पापृष्ट्यान्मार्गमम् ।  
 तांस्त्वं संदधन्वशो प्रतीयाधेन नाशय  
 परिपाणोऽसि जङ्घिडः ॥ ३ ॥  
 परि मा द्विपः परि मा पृथिन्याः  
 पर्यन्तारिधात् परि मा धीरुद्रयः ।  
 परि मा भूतान् परि मोन भव्याद्  
 द्वितोदिशो जङ्घिडः पातयस्मान् ॥ ४ ॥

य ऋण्यो देवकृता य उतो वयुतेऽन्यः ।  
 सर्वास्तान् विश्वभैषजो-ऽरसां जङ्घिडस्करत् ॥ ५ ॥

॥ १४० ॥ (अथर्व० १९।३६।१-६)

प्रज्ञा । शातवारो मणिः । अनुष्टुप् ।

शातवारो अनीनशद् यस्मान् रक्षांसि तेजसा ।  
 आरोहन् वर्चसा सह मणिर्दुर्णामिवातनः ॥ १ ॥  
 शृङ्गाभ्यां रक्षां नुदते मूलैर्न यातुधान्यः ।  
 मर्च्येन यस्मै याधते नैनं पाप्मातिं तत्रति ॥ २ ॥  
 ये यस्मासो अर्भका महान्तो ये च शब्धिना ।  
 सर्वा दुर्णामहा मणिः शातवारो अनीनशत् ॥ ३ ॥  
 शतं वीरानजनय-च्छतं यस्मान्पावपत् ।  
 दुर्णांसि सर्वांन् हत्वा-व रक्षांसि धूनुते ॥ ४ ॥  
 हिरण्यशृङ्ग ऋषभः शातवारो अयं मणिः ।  
 दुर्णांसि सर्वांस्तुङ्ध्वा-व रक्षांस्यक्रीम् ॥ ५ ॥  
 शतमहं दुर्णासीनां गन्धर्वाप्सरसां शतम् ।  
 शतं शम्भ्यन्तीनां शतवारेण वारये ॥ ६ ॥

॥ २४१ ॥ (अथर्व० १९।४६।१-७)

प्रजापतिः । अस्तुतमणिः । त्रिष्टुप् । १ पञ्चपदा ज्योतिष्मती  
 त्रिष्टुप् ; २ पदपदा मुरिकशकरी ; ३, ४ पञ्चपदा पञ्चा-  
 पक्षिः ; ४ चतुष्टुपदा ; ५ पञ्चपदा अतिशकरी ; ६  
 पञ्चपदोष्णिगमयी विराड् जगती ।

प्रजापतिर्देवा यन्मात् प्रथममस्तुतं वीर्याय कम् ।  
 तत् तं बभ्नाम्यायुषे वर्चसे ओजसे च  
 बलाय चास्तुतस्त्वाभि रक्षतु ॥ १ ॥  
 ऊर्ध्वस्तिष्ठतु रक्षन्नप्रमादमस्तुतं  
 मा त्वा दमन् पुण्यो यातुधानाः ।  
 इन्द्र इव दस्युनर्वा धूनुष्व पृतन्यतः  
 सर्वांश्चक्रुन् वि पदस्वास्तुतस्त्वाभि रक्षतु ॥ २ ॥  
 शतं च न प्रहरन्तो निमन्तो न तस्तिरे ।  
 तस्मिन्निन्द्रः पर्यदत्त चक्षुः  
 प्राणमथो बलमस्तुतस्त्वाभि रक्षतु ॥ ३ ॥

इन्द्रस्य त्वा चर्मणा परि धापयामो  
यो देवानामधिपः ज्ञो यभूय ।

पुनस्तथा देवाः प्र णयन्तु सर्वे  
अस्तृतस्त्याभि रक्षतु

॥ ४ ॥

अस्मिन् मृणायेकशतं वीर्याणि  
सहस्रं प्राणा अस्मिन्नस्तृतं ।

व्याघ्रः शत्रूनाभि तिष्ठ सखां

यस्त्या पृतन्यादधरः सो अस्त्यस्तृतस्त्याभि रक्षतु ५

घृतादुल्लसो मधुमान् पर्यस्वान्

सहस्रप्राणः शतयोनिर्यथोधाः ।

शम्भुश्च मयोभूश्चोर्जस्वाश्च

पर्यस्वाश्चास्तृतस्त्याभि रक्षतु

॥ ६ ॥

यथा त्यमुत्तरोऽसौ असपन्नः सपत्नहा ।

सज्जातानामसद् घृही

तथा त्वा सविता कर्तवस्तृतस्त्याभि रक्षतु ॥ ७ ॥

अरिष्टनाशनम् ।

॥ २४१ ॥ ( अथर्व० ६।१७।१-३ )

मृगः । यमः, निश्चितः ( अरिष्टक्षयणम् ) । जगती, त्रिष्टुप् ।

देवाः कपोत इपितो यदिच्छन्

दुतो निश्कृत्या इदमाज्जगाम ।

तस्मा अर्चाम कुण्वाम निष्कृतिं

शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे

॥ १ ॥

शिवः कपोत इपितो नो अस्तु

अनागा देवाः शक्रुनो गृहं नः ।

अग्निर्हि विप्रो जुपतां हविर्नः

परि हेतिः पक्षिणी नो वृणक्तु

॥ २ ॥

हेतिः पक्षिणी न दमात्पस्मान्

आग्नी पदं रुणुते अग्निधाने ।

शिवो गोभ्य उत पुरुषेभ्यो नो अस्तु

मा नो देवा इदं हिंसीत् कपोतः

॥ ३ ॥

॥ २४२ ॥ ( अथर्व० ६।१८।१-३ )

मृगः । यमः, निश्चितः ( अरिष्टक्षयणम् ) । १ त्रिष्टुप्,  
२ अनुष्टुप्, ३ जगती ।

ऋचा कपोतं जुदत प्रणोदं

इपं मदन्तः परि गां नयामः ।

संलोमयन्तो दुरिता पदानि

हित्वा न ऊर्जे प्र पश्यात् परिधुः

॥ १ ॥

परिमेदुग्निर्मपत् परिमे गार्मनेपत ।

देवेष्वेकत श्रवः क इमां आ दधयति

॥ २ ॥

यः प्रयमः प्रवर्तमात्ससादं

यदुभ्यः पर्यामनुपस्पशानः ।

योऽस्येदो द्विपदो यश्चतुष्पदः

तस्मै यमाय नमो अस्तु मूल्यवे

॥ ३ ॥

॥ २४३ ॥ ( अथर्व० ६।१९।१-३ )

मृगः । यमः, निश्चितः ( अरिष्टक्षयणम् ) । ( वृहती ) १-२  
विराट्पाम वायशी, ३ श्ववधाना सप्तपदा विराट्पक्षिः ।

अमुन् हेतिः पतत्रिणी न्येत्तु

यदुल्लको वदति मोचमेतत् ।

यद् वा कपोतः पदमग्नौ कुणोति

॥ १ ॥

यो ते दुतो निश्कृत इदमेतो

अप्रहितौ प्रहितौ वा गृहं नः ।

कपोतोऽलुकाभ्यामपदं तदस्तु

॥ २ ॥

अथैहत्यायेदमा रपत्यात्

सुवीरताया इदमा संसधात् ।

पराहेव परा वद् पराचीमनु संवतम् ।

यथा यमस्य त्वा गृहेऽसं प्रतिचारकशान्

आमूकं प्रतिचारकशान्

॥ ३ ॥

॥ २४४ ॥ ( अथर्व० ६।२०।१-३ )

अथवा । चन्दमाः ( अरिष्टक्षयणम् ) । १ मृगिक्, २ अनुष्टुप्,  
३ प्रत्यापरुषिः ।

अन्तरिक्षेण पतति विश्वा मृताय्चाकशत् ।

जुनो दिव्यस्य यन्महस्तेना ते हविषा विधेम १

( २६८३ )

ये त्रयः कालकाञ्जा दिवि देवा इव श्रिताः ।  
 तान्त्सर्वानिह कृतयेऽस्मा अरिष्टतातये ॥ २ ॥  
 अप्सु ते जन्म दिवि ते सधस्थं  
 समुद्रे जन्तर्महिमा ते पृथिव्याम् ।  
 शुनो दिव्यस्य यन्महस्तेना ते हविषा विधेम ३  
 कृत्याद्वपणम् ।

॥ २४६ ॥ ( अथर्व० ५।१४।१-१३ )

शुक्रः । वनस्पतिः, कृत्वापरिहरणम् । अनुष्टुप् ३, ५, १२ मुरिक् ;  
 ८ निपदा विराट् । १० निचुद्वहती, ११ निपदा सात्री त्रिष्टुप् ;  
 १३ खराट् ।

सुपूर्णस्त्वान्विन्दत् सुकरस्त्वालनप्रसा ।  
 दिवसोपधे त्वं दिवसन्तमव कृत्याकृतं जहि ॥ १ ॥  
 अव जहि यातुधाना नव कृत्याकृतं जहि ।  
 अथो यो अस्मान् दिवसति तमु त्वं जहोपधे २  
 रिद्वयस्येव परीशालं परिकृत्य परि त्वचः ।  
 कृत्यां कृत्याकृतं देवा निष्कर्मिषु प्रति मुञ्चत ३  
 पुनः कृत्यां कृत्याकृतं हस्तगृह्य परा णय ।  
 समक्षमस्मा आ वैहि यथा कृत्याकृतं हनन् ४  
 कृत्याः सन्तु कृत्याकृतं शपथः शपथीयते ।  
 सुद्यो रथ इव वर्तता कृत्या कृत्याकृतं पुनः ॥ ५ ॥  
 यदि स्त्री यदि वा पुमान् कृत्यां चकाराण्मने ।  
 तामु तस्यै नयामस्य श्रमिवाश्रमिधान्या ॥ ६ ॥  
 यदि वासि वैचकृता यदि वा पुरुषैः कृता ।  
 तां त्वा पुनर्णयामसीन्द्रेण सयुजा वयम् ॥ ७ ॥  
 अग्रे पृतनाप्राट् पृतनाः सहस्र ।  
 पुनः कृत्यां कृत्याकृतं प्रतिहरणेन हरामसि ॥ ८ ॥  
 कृत्यप्यधनि विप्य तं यश्चकार तमिजहि ।  
 न त्यामर्चक्रुषे धुयं यथाय सं शिशीमहि ॥ ९ ॥  
 पुत्र इय पितरं गच्छ स्यज इयामिष्टितो दश ।  
 युष्मर्मियापत्रामी गच्छ कृत्यै कृत्याकृतं पुनः १०  
 उद्रेणीयं यारुण्यमिस्कन्दं मृगीयं ।  
 कृत्या कृत्याकृतं च ॥ ११ ॥

इष्ट्या ऋजीयः पततु धार्यापृथिवी तं प्रति ।  
 सा तं मृगमिव गृह्णातु कृत्या कृत्याकृतं पुनः १२  
 अग्निरिवेतु प्रतिकूलं मनुकूलमियोदकम् ।  
 सुद्यो रथ इव वर्तता कृत्या कृत्याकृतं पुनः १३  
 ॥ १४७ ॥ ( अथर्व० ५।३।१-१९ )

शुक्र । कृत्याद्वपणम् ( कृत्यापरिहरणम् ) । अनुष्टुप् ;

११ पृथ्वीवर्माऽनुष्टुप् ; १२ पृथ्यावृहती ।

यां ते चक्रुरामे पात्रे यां चक्रुर्मिभ्रधान्ये ।

आमे मासि कृत्यां यां चक्रुः

पुनः प्रति हरामि ताम् ॥ १ ॥

यां ते चक्रुः कृकृवाकां यजे वा यां कुरीरिणि ।

अव्यां ते कृत्यां यां चक्रुः

पुनः प्रति हरामि ताम् ॥ २ ॥

यां ते चक्रुरेकशफे पशूनामुभयादिति ।

गर्भमे कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ३

यां ते चक्रुरमूलार्या बलंगं वा नराच्याम् ।

क्षेत्रे ते कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ४

यां ते चक्रुर्गाहपत्ये पूर्वाभ्रावुत कुञ्चितः ।

शालार्यां कृत्यां यां चक्रुः

पुनः प्रति हरामि ताम् ॥ ५ ॥

यां ते चक्रुः सुभायां यां चक्रुरधिदेवने ।

अक्षेपु कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ६

यां ते चक्रुः सेनार्यां यां चक्रुरिष्यायुधे ।

दुन्दुभी कृत्यां यां चक्रुः

पुनः प्रति हरामि ताम् ॥ ७ ॥

यां ते कृत्यां कूपेऽवदधुः शमशाने यां निचरन्तुः ।

सन्ननि कृत्यां यां चक्रुः

पुनः प्रति हरामि ताम् ॥ ८ ॥

यां ते चक्रुः पुरुषास्थे अग्नौ संकलुके च याम् ।

भ्रोकं निर्दाहं क्रव्यादं पुनः प्रति हरामि ताम् ९

अपथेना जमारेणां तां पथेतः प्र हिणमसि ।

अधीरो मयाधीरेभ्यः सं जमाराचिस्था ॥ १० ॥



यश्चकार न शशाकं कर्तुं शश्रे पादमङ्गुरिम् ।  
चकार भद्रमस्मभ्य—ममगो मगवद्भयः ॥ ११ ॥  
कृत्याकृतं चलगिनं मुलिनं शपयेयम् ।  
इन्द्रस्तं हन्तु महता वधेनाग्निर्वैध्यत्वस्तया ॥ १२ ॥  
॥ १४८ ॥ (अथर्व० १०।१।१-३२)

प्रत्यक्षिरसः । कृत्वा दण्डम् । अनुष्टुप् । १ महावृद्धीति; २ विरा-  
णाम गायत्री; ९ पथ्यापङ्क्तिः; १३ उरोवृद्धीति; १५ चतुष्पदा  
विराज्जगती; १७, २०, २४ प्रत्यारपङ्क्तिः (२० विराट्);  
१९, १८ त्रिष्टुप्; १९ चतुष्पदा जगती; २२ एकावसाना  
त्रिपदाऽर्थाऽङ्गिष्ठ, २३ त्रिपदा भुरिभिवमा गायत्री,  
२८ त्रिपदा गायत्री; २९ मध्ये ज्योतिष्मती जगती;  
३२ द्वयपद्वृत्तगमाः पञ्चपदाऽतिजगती ।

यां कल्पयन्ति बह्वीं वधुर्निव  
विभ्वरूपां हस्तकृतां चिकित्सयः ।  
सारादेवर्ष जुदाम एनाम् ॥ १ ॥  
शीर्षण्वतीं नस्वतीं कुर्णिनीं  
कृत्याकृता संभृता विभ्वरूपा ।  
सारादेवर्ष जुदाम एनाम् ॥ २ ॥  
शूद्रकृता राजकृता स्त्रीकृता ब्रह्मर्षिः कृता ।  
जाया पत्या नुतेय कर्तारं बन्धुच्छत ॥ ३ ॥  
मनयाहमोपग्या सवीः कृत्या भद्रदुपम् ।  
यां क्षेत्रे चक्रुर्वा गोषु यां वा ते पुरुषेषु ॥ ४ ॥  
अधर्मस्त्वयकृते शपयः शपथीयते ।  
प्रत्यक् प्रतिप्रदिग्मो यथा कृत्याकृतं हन्त ॥ ५ ॥  
प्रतीचीनं भास्त्रिस्तो—ऽप्यक्षो नः पुरोहितः ।  
प्रतीचीः कृत्या आकृत्या—मून कृत्याकृतो जहि ६  
यस्तुवाच परेदीति प्रतिकूलमुदाय्यम् ।  
तं हृत्वेऽग्निनिवर्तस्व मासानिच्छो अनामसः ७  
यस्ते परैषि संदधौ रयस्तेयमुर्धिया ।  
तं गच्छ तत्र तेऽयन्—महातस्तेऽयं जनः ॥ ८ ॥  
ये त्वां कृत्यालैभिरे विद्वन्ना भभिचारिणः ।

शम्भीदं कृत्यादूर्पणं प्रतिवर्त्म  
पुनःसुरे तेन त्वा स्नपयामसि ॥ ९ ॥  
यद् दुर्मगां प्रस्नपितां मृतवत्सामुपेयिम ।  
अपैतु सर्वं मत् पापं द्रविणं मोषं तिष्ठतु ॥ १० ॥  
यत् ते पितृभ्यो ददतो यज्ञे वा नाम जगुहः ।  
सदेव्यादुत् सर्वेसात् प्रापात्  
इमा मुञ्चन्तु त्वोपधीः ॥ ११ ॥  
देवैनसात् पित्र्यान्नामग्राहात्  
सदेव्यादग्निनिष्कृतात् ।  
मुञ्चन्तु त्वा वीर्यो वीर्येण  
ब्रह्मण क्रुमिः पर्यस्य कृपीणाम् ॥ १२ ॥  
यथा वार्तःश्चयावयति भूम्यां  
रेणुमन्तरिक्षाद्याध्रम् ।  
एवा मत् सर्वं दुर्मृतं ब्रह्मदुत्तमपायति ॥ १३ ॥  
अपं कामं नानन्दती चिन्दडा गर्दभीर्व ।  
कर्तृन् नक्षस्वेतो नुत्ता ब्रह्मणा वीर्याऽजिता १४  
अयं पण्याः कृत्येति त्वा नयामो  
अभिप्रदितां प्रति त्वा प्र हिणमः ।  
तेनाभि याहि भञ्जत्यनस्वतीव  
वाहिनीं विभ्वरूपां कुरुदिनीं ॥ १५ ॥  
पराक् ते ज्योतिरपयं ते अर्वाक्  
अन्यत्रासदर्यना कृणुष्व ।  
परिणेहि नवति नाव्यादु अति  
दुर्गाः स्त्रोत्या मा क्षणिद्याः परिहि ॥ १६ ॥  
वार्त इव वृक्षान् नि मृणीहि पादय  
मा गामभ्यं पुरुषमुच्छिद्य पयाम् ।  
कर्तृन् निवृत्त्येतः हृत्वे—ऽप्रजास्वार्थ बोधय १७  
यां ते बहिषि यां दमशाने  
क्षेत्रे कृत्यां वल्लमं वा निचच्छुः ।  
अग्नौ वा त्वा गार्हपत्येऽभिचेदः  
पाक् सन्तं धीरतरा अनामसम् ॥ १८ ॥

उपाहृतमर्तुवृद्धं निपातं  
 वैरं स्वार्यन्विदाम् कर्मम् ।  
 तदेतु यत् आर्भुतं तत्रार्थं इव  
 वि वर्तनां हन्तुं कृत्याकृतः प्रजाम् ॥ १९ ॥  
 स्वायसा असयः सन्ति नो गृहे  
 विद्या तै कृत्ये यतिधा परं वि ।  
 उत्तिष्ठैव परेहीतोऽर्हाते किमिदं चेत्सि ॥ २० ॥  
 प्रीचास्ते कृत्ये पादौ चार्पि कस्त्यामि निर्द्वेष ।  
 इन्द्राग्नी अस्मान् रक्षतां यौ प्रजानां प्रजावर्ती २१  
 सोमो राजाधिपा भृङ्गिता च  
 भूतस्य नः पतयो मृडयन्तु ॥ २२ ॥  
 भवाश्चार्वाकस्यतां पापकृते कृत्याकृते ।  
 दुष्कृते विद्युतं देवहेतिम् ॥ २३ ॥  
 यद्येयं द्विपद्मं चतुष्पदी  
 कृत्याकृता संभृता विश्वरूपा ।  
 सेतोऽष्टापर्दी भूत्या पुनः परेहि दुच्छुने ॥ २४ ॥  
 अभ्युक्ताका स्वर्कृता सर्वे भरन्ती दुरितं परेहि ।  
 जानीहि कृत्ये कर्तारं दुहितेव पितरं स्वम् ॥ २५ ॥  
 परेहि कृत्ये मा तिष्ठो विद्वत्स्येव पदं नय ।  
 मृगः स मृगयुस्तयं न त्वा निर्कर्तुमर्हति ॥ २६ ॥  
 उत हन्ति पूर्वासिनं प्रत्यादायापरं इष्वां ।  
 उत पूर्वस्य निघ्नतो नि हृत्यपरः प्रति ॥ २७ ॥  
 पुतादि द्रुणु मे वचोऽर्थेहि यत् पुयर्थ ।  
 यस्तर्था चकार तं प्रति ॥ २८ ॥  
 शनागोद्वया ये भीमा कृत्ये  
 मा नो गामभ्यं पुरं वधीः ।  
 यत्रयत्रासि निर्दिता तनुस्त्वा  
 उत्थापयामसि पूर्णाहर्षिपसी मय ॥ २९ ॥  
 यदि स्थ तमसावृता जातैनाभिर्दिता इय ।  
 सयोः संतुष्टैः कृत्याः  
 पुनः वयं म दिग्मसि ॥ ३० ॥

कृत्याकृतो बलगिनोऽभिनिष्कारिणः प्रजाम् ।  
 मृणीहि कृत्ये मोक्षिणः  
 अमून कृत्याकृतो जहि ॥ ३१ ॥  
 यथा सूर्यो मुच्यते तमस्तस्परि  
 रात्रिं जहात्युपसंश्रु केतून् ।  
 एवाहं सर्वं दुर्मृतं कर्त्रे कृत्याकृतां  
 कृतं हस्तीव रजो दुरितं जहामि ॥ ३२ ॥  
 दस्युनाशनम् ।  
 ॥ १४९ ॥ ( अथर्व० २।१४।१-६ )  
 चातनः । शान्तामिदेवत्यं ( दस्युनाशनम् ) । अत्रुद्वपु, १  
 भुरिक्, ४ उपरिष्ठाद्विराद्वृहती ।  
 निःसालां धूष्णं धिपणं—मेकयाद्यां जिघत्स्वम् ।  
 सर्वाश्चण्डस्य नदयो नाशायामः सुदान्वाः ॥ १ ॥  
 निर्वो गोष्ठावजामसि निरक्षाभिरुपानसात् ।  
 निर्वो मयुन्वा दुहितरो गृहेभ्यश्चातयामहे ॥ २ ॥  
 असौ यो अधराद् गृहस्तत्र सन्वराय्यः ।  
 तत्र सेदिन्युच्यतु सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ ३ ॥  
 भूतपतिर्निर्ज—त्विन्द्रश्चेतः सुदान्वाः ।  
 गृहस्य युष्म मासीनास्ता इन्द्रो वक्षेणाधि तिष्ठतु ४  
 यदि स्थ क्षेत्रियाणां यदि वा पुरुषेपिताः ।  
 यदि स्थ दस्युभ्यो जाता नश्यतेतः सुदान्वाः ॥ ५ ॥  
 परि धामान्यासा—माशुर्गोष्ठाभिवासरत्न ।  
 अजैर्षं सर्वानाजीन्वो नश्यतेतः सुदान्वाः ॥ ६ ॥  
 पापादिनाशनम् ।  
 ॥ १५० ॥ ( अथर्व० १।१०।१-४ )  
 अथर्वो । अशुरो वरुणः ( वाश-विमोचनम् ) त्रिष्टुप् ।  
 ३ ककुम्भत्यनुष्टुप्, ४ अनुष्टुप् ।  
 अयं देवानामसुरो वि राजति  
 यज्ञा हि सत्या वरुणस्य राज्ञः ।  
 ततस्परि यज्ञाणां शाश्वदान  
 उग्रस्य मन्योददिमं नयामि ॥ १ ॥

नमस्ते राजन् घटनास्तु मन्यवे  
विभ्वं ह्युप्र निचिकीर्ये द्रुग्धम् ।

सहस्रमन्यान् प्र सुवामि साकं  
शते जीवाति शरदस्तवायम् ॥ २ ॥

यदुवकपानृतं जिह्वां वृजिनं बहु ।  
रात्रंस्त्वा सत्यर्षमणो मुञ्चामि वरुणादृहम् ॥ ३ ॥

मुञ्चामि त्वा वैश्वानरादर्णवान्महतस्परि ।  
सज्जातानुग्रहा यद्व ब्रह्म चाप्ये चिकीहि नः ॥ ४ ॥

॥ २५१ ॥ ( अथर्वं १।३१।१-४ )

महा । आशापालाः, [ बाकोपातिः ] ( पाद्यमोचनम् ) ।

अवधुप, १ विरट् त्रिष्टुप् । ४ पराऽनुष्टुप् त्रिष्टुप् ।

आशानामाशापालेभ्यश्चतुर्भ्यो अमृतैभ्यः ।  
इदं भूतस्याभ्यक्षेभ्यो विधेम हविषा वयम् ॥ १ ॥

य आशानामाशापालाश्चत्वार स्थनं देवाः ।  
ते नो निश्चिन्त्याः पार्श्वेभ्यो मुञ्चतांहंसोमहसः ॥ २ ॥

अर्न्नामस्त्या हविषा यजामि  
अर्न्तौणस्त्या घृतेन जुहोमि ।

य आशानामाशापालस्तुरीयो  
देवः स नः सुभूतमेह यक्षत् ॥ ३ ॥

स्यस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु  
स्यस्ति गोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः ।

विभ्वं सुभूतं सुविद्वं नो अस्तु  
ज्योगेय ईशेभ्यः सूर्यम् ॥ ४ ॥

॥ २५१ ॥ ( अथर्वं १।३१।१-८ )

मृगशिराः । १-८ आशापृथिवी, महा, १ अमि, आपः ।

कोपयः, शोमः, ३ वातः, दिवः, ४-८ वातपत्नीः,

सूर्यः, वरुणः, निश्चिन्तिः ( पाद्यमोचनम् ) । १ त्रिष्टुप् ।

१ सप्तपञ्चाङ्गिः, १-५, ७-८ सप्तपदा वृतिः ।

१ सप्तपञ्चाङ्गिः, ८ ( १-१ ) द्वौ पादौ

उपगच्छे ।

क्षेत्रियात् त्वा निश्चिन्त्या जामिदांसाद्  
द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशात् ।

अनागस्तं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि  
शिवे ते पापापृथिवी उभे स्ताम् ॥ १ ॥

शं तै अग्निः सहोद्विरेस्तु

शं सोमः सहोपयोमिः ।

एवाहं त्वां क्षेत्रियाभिर्ऋत्या जामिदांसाद्  
द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशात् । अना० ॥ २ ॥

शं तै वाता अन्तरिक्षे वयो धात्  
शं तै भवन्तु प्रदिशश्चतस्रः । एवाहं० । अना० ॥ ३ ॥

इमा या देवीः प्रदिशश्चतस्रो  
वातपत्नीरुभि सूर्यो विचष्टे । एवाहं० । अना० ॥ ४ ॥

तासु त्वान्तर्जरस्या दधामि  
प्र यस्म एतु निर्ऋतिः पराचैः । एवाहं० । अना० ५

अमेकया यस्माद् दुरितादयुधाद्  
द्रुहः पाशाद् ब्राह्मणोदमेकया । एवाहं० । अना० ६

अहो अरातिमविदः स्थोनमप्ये  
अभूर्मेदे सुहृतस्य लोके । एवाहं० । अना० ॥ ७ ॥

सूर्यमृतं तमसो ब्राह्मणं अग्निं  
देवा मुञ्चन्तौ अमृजन्निरेणसः ।

एवाहं त्वां क्षेत्रियाभिर्ऋत्या जामिदांसाद्  
द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशात् ।

अनागस्तं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि  
शिवे ते पापापृथिवी उभे स्ताम् ॥ ८ ॥

॥ २५१ ॥ ( अथर्वं १।३१।१-१ )

अथर्वः । अग्निः ( पाद्यमोचनम् ) त्रिष्टुप् ।

मा ज्येष्ठं यधीदयमग्न एषां  
मूलबर्हणात् परि पाद्येनम् ।

स ब्राह्मणः पाशान् वि चूतं प्रजानन्  
तुभ्य देवा अनु जानन्तु विभ्ये ॥ १ ॥

उन्मुञ्च पाशांस्त्वमग्न एषां  
त्रयस्त्रिभिर्दत्तित्वा येमिरासन् ।

स ब्राह्मणः पाशान् वि चूतं प्रजानन्  
पितापुत्रौ मातरौ मुञ्च सूर्यान् ॥ २ ॥

येभिः पाशैः परिविचो विमुक्तो  
अङ्गैरङ्गु अपि तु उत्तितस्थ ।  
वि ते मुच्यन्तां विमुक्तो हि सन्ति  
भूणमि पूषन् दुरितानि मृश्व

॥ ३ ॥

॥ २५४ ॥ (अथर्व० ६।११९।१-३)

कौशिकः । वेधान्तोऽभिः [ आनुष्म ] (पाशमोचनम्) ।  
त्रिष्टुप् ।

यददीन्यन्नमहं कृणोमि  
अदास्यन्नम उत सैगुणामि ।  
वैश्वानरो नो अधिपा वसिष्ठ  
उविश्याति सुकृतस्य लोकम्  
वैश्वानराय प्रति वेदयामि  
यद्युणं सैगरो देवतासु ।  
स एताम् पाशान् विचृतं वेद सव्यान्  
अथ पुकेनं सृष्ट सं भवेम  
वैश्वानरः पविता मां पुनातु  
यत् सैगरमभिधायान्पाशाम् ।  
अनाजानुन् मनसा पार्चमानो  
यत् तत्रैवो अप तत् सुवामि

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ २५५ ॥ (अथर्व० ७।८१।१-४)

शुनःशेषः । वरुणः (पाशमोचनम्) । १ अत्रुष्टुप् २ पध्यापृक्किः  
३ त्रिष्टुप्, ४ वृद्धीगर्मा त्रिष्टुप् ।

अप्सु ते राजन् वरुण गृहो हिरण्ययो मिथः ।  
ततो धृतमृतो राजा सर्वा धामानि मुञ्चतु ॥ १ ॥  
धाम्नो धाम्नो राजा प्रितो वरुण मुञ्च नः ।  
यदापो अग्न्या इति यरुणेति  
यद्विचिम ततो वरुण मुञ्च नः ॥ २ ॥  
उदुत्तमं वरुण पाशमस्मद्  
अवापुमं वि मय्यमं श्रयाय ।  
अर्धा पुयमादित्य मते  
तयानागतो अर्धितये स्नाम

॥ ३ ॥

मासत् पाशान् वरुण मुञ्च सव्यान्  
य उन्मता अधमा पाशान् य ।  
दुष्यन्त्यै दुरितं नि ध्यासद्  
अथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम्

॥ ४ ॥

॥ २५६ ॥ (अथर्व० ७।७८।१-९)

अथर्वा । अभिः (वन्धमोचनम्) । १ परोष्णिक्, २ त्रिष्टुप् ।

वि ते मुञ्चामि रथानां वि योषन् वि नियोजनम् ।  
इहैव त्वमर्जस एष्यसे ॥ १ ॥  
अस्मै क्षत्राणि धारयन्तमसे  
युनर्जिम् त्वा प्रक्षणां दैत्येन ।  
दीदृक्षुः सभ्यं द्रविणेह भद्रं  
प्रेमं वोचो हयिर्दी देवतासु

॥ २ ॥

॥ २५७ ॥ (अथर्व० ६।१५।१-३)

शुनःशेषः । मन्वादिनाक्षनम् । अत्रुष्टुप् ।

पञ्च च याः पञ्चाशच्च संयन्ति मन्या अभि ।  
इतस्ताः सर्वा नश्यन्तु शाका अपचितामिव ॥ १ ॥  
सप्त च याः सप्ततिश्च संयन्ति त्रैव्या अभि ।  
इतस्ताः सर्वा नश्यन्तु शाका अपचितामिव ॥ २ ॥  
नव च या नवतिश्च संयन्ति स्कन्ध्या अभि ।  
इतस्ताः सर्वा नश्यन्तु शाका अपचितामिव ॥ ३ ॥

॥ २५८ ॥ (अथर्व० ४।१३।१-७)

शुगारः । प्रवेता अभिः (पाप-मोचनम्) । त्रिष्टुप्, ३ इरुता-  
उज्योतिःश्रुती, ४ अत्रुष्टुप्, ६ प्रस्तारपृक्किः ।

अग्नेर्मन्ये प्रथमस्य प्रवेतसः  
पाञ्चजन्यस्य बहुधा यमिन्प्रते ।  
विशोविशः प्रविशिवोसमीमहे  
स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ १ ॥  
यथा हव्यं वहसि जातवेदो  
यथा यक्षं कल्पयसि प्रजानम् ।  
एवा देवेभ्यः सुमति न मा वह  
स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ २ ॥

(१७८१)

यामन्यामन्नपयुक्तं वहिष्ठं

कर्मन्कर्मभोगम् ।

अग्निमीडि रक्षोहर्षं यश्चवर्षं घृताहुतं

स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ ३ ॥

सुजातं जातवेदस—मग्निं वैश्वानरं विशुम् ।

हव्यवाहं हवामहे स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ ४ ॥

येन ऋषयो धृलमर्थोनयन् युजा

येनासुराणामयुवन्त मायाः ।

येनाग्निना पूर्णानिन्द्रो जिगाय

स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ ५ ॥

येन देवा अमृतमन्वाविन्दन्

येनौपधीर्मधुमतीरकृण्वन् ।

येन देवाः स्वराभरन्तस नो मुञ्चत्वंहसः ॥ ६ ॥

यस्येदं प्रतिशि यद् विरोचते

यज्जातं जनिदस्यं च केवलम् ।

स्तौम्यमि नायितो जौहवीमि

स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ ७ ॥

॥ २५९ ॥ ( अथर्व० ४:१४:१-७ )

मृगारः । इन्द्रः ( वापमोचनम् ) । शिष्टपू, १ साकरी-  
रमां पुरःशक्ती ।

इन्द्रस्य मन्महे द्वाध्वदिदस्य मन्महे

वृष्टं स्तोमा उप मेम आगुः ।

यो द्राघुर्षः सुरतो हवमेति स नो मुञ्चत्वंहसः १

म उग्नीणामुद्रवाहुष्युः

यो दानवानां यलमारुगेज ।

येन जिताः सिन्धयो येन गावः

स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ २ ॥

यश्चपणिप्रो वृषमः स्वयिद्

यस्मै प्रावाणः प्रवदन्ति नृणाम् ।

यस्याभूरः सुतदोता मोदेषुः

स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ ३ ॥

यस्य वशास ऋपमास उक्ष्णो

यस्मै मीयन्ते स्वरवः स्वयिदे ।

यस्मै शुक्रः पर्वते ब्रह्मशुम्भितः

स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ ४ ॥

यस्य जुष्टि सोमिनः कामयन्ते

यं हवन्त इयुमन्तं गर्विष्यौ ।

यस्मिन्नर्कः शिश्रिये यस्मिन्नोजः

स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ ५ ॥

यः प्रथमः कर्मरुत्याय ज्ञो

यस्य धीर्यं प्रथमस्यानुबुद्धम् ।

येनोद्यतो वज्रोऽभ्यायताहि

स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ ६ ॥

यः संप्रामात्रयति सं युधे वशी

यः पुष्टानि संसृजति द्वयानि ।

स्तौमीन्द्रं नायितो जौहवीमि

स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ ७ ॥

॥ २६० ॥ ( अथर्व० ४:१५:१-७ )

मृगारः । शक्विता, वायुः ( वापमोचनम् ) । शिष्टपू, १ अति-  
शक्ती, ७ पथ्यावृहती ।

वायोः संवितुर्विदयानि मन्महे

यावात्मन्वद् विदायो यौ च रक्षधः ।

यौ विश्वस्य परिभू र्वमवधुः

तौ नो मुञ्चत्वंहसः ॥ १ ॥

ययोः संख्याता वरिमा पार्थिवानि

याम्यां रजो युपितमन्तरिक्षे ।

ययोः प्रायं नान्यानशे कश्चन

तौ नो मुञ्चत्वंहसः ॥ २ ॥

तयं ग्रते नि धिरान्ते जनासः

त्वय्युदिते प्रेरिते चित्रमानो ।

युवं यायो सक्विता च भुवनानि रक्षयः

तौ नो मुञ्चत्वंहसः ॥ ३ ॥

अपेतो यातो सविता च दुष्कृतं  
अप रक्षांसि शिर्मिदां च सेधतम् ।

सं ह्युर्जयां सृजयः सं बलेन  
तौ नो मुञ्चतमर्हसः ॥ ४ ॥

रयि मे पोयं सवितोत प्रायः  
तनू दक्षमा सुयतां सुशेवम् ।

अयश्मतांति मह इह घंसे  
तौ नो मुञ्चतमर्हसः ॥ ५ ॥

प्र सुमतिं संधितर्याय ऊतये  
मर्हस्यन्तं मत्सुरं मादयाथा ।

अर्याग् धामस्य प्रयतो नि यञ्छतं  
तौ नो मुञ्चतमर्हसः ॥ ६ ॥

उप धेष्टां न आशिषो देवयोर्धामप्रस्थिरम् ।

स्नामि देयं संधितारं च प्रायं  
तौ नो मुञ्चतमर्हसः ॥ ७ ॥

॥ १६१ ॥ ( अथर्थ० ४:२६:१-७ )

मृगाः । पावापृथिवी ( पापमोचनम् ) । त्रिष्टुप्, १ अष्टि,  
१-१ जगती, ७ द्वाष्टरगमांतिमथ्येऽवोतिः ।

पावापृथिवी भवतं मे स्योने  
ते नो मुञ्चतमर्हसः ॥ ४ ॥

ये उचिर्यां विभूयो ये वनस्पतीन्  
ययोर्वा विभ्वा भुवनान्यन्तः ।

पावापृथिवी भवतं मे स्योने  
ते नो मुञ्चतमर्हसः ॥ ५ ॥

ये कीलालैन त्पर्यधो ये धृतेन  
याभ्यामृते न किं खन शक्नुवन्ति ।

पावापृथिवी भवतं मे स्योने  
ते नो मुञ्चतमर्हसः ॥ ६ ॥

यन्मेदमभिदोचति येनयेन  
या कृतं पौर्दयेयाश्च वैवात् ।

स्तौमि पावापृथिवी नाथितो जोह्वीमि  
ते नो मुञ्चतमर्हसः ॥ ७ ॥

॥ १६१ ॥ ( अथर्थ० ४:२८:१-७ )

मृगारोऽयवां वा । जराधवौ इशो वा । ( पापमोचनम् ) ।  
त्रिष्टुप्, १ अतिजायतगमां मुरिह् ।

ययोर्विधात्मापपद्यते कश्चनान्तर्देवेपुत मानुषेषु ।

यावत्स्वेषाथे० ।

यः कृत्याकर्मलघुद् यातुधानो

नि तस्मिन् धत्ते वज्रमग्नौ ।

यावत्स्वेषाथे० ।

॥ ६ ॥

अधि नो द्यूतं पृतनासुधौ

सं यज्ञेण सृजतं यः किमिदी ।

स्तौमि भवाश्वौ नायितो जौहवीमि

तौ नौ मुञ्चतमहंसः

॥ ७ ॥

॥ २६७ ॥ ( अथर्व० ४।१९।१-७ )

मृगः । मित्रावरुणौ ( पापमोचनम् ) । त्रिष्टुप्, ७  
पङ्कतीगर्माऽतिव्रती ।

मुन्वे धौ मित्रावरुणावृतावृधौ

सर्वेतसौ द्रुहणो यौ नुदेथे ।

॥ सत्यावानिमर्वयो मेरेषु

तौ नौ मुञ्चतमहंसः

॥ १ ॥

सर्वेतसौ द्रुहणो यौ नुदेथे

प्र सत्यावानिमर्वयो मेरेषु ।

यौ गच्छथो नृचक्षसौ वधुणां सृतं

तौ नौ मुञ्चतमहंसः

॥ २ ॥

यावत्किरलमथो यावत्गस्ति

मित्रावरुणा जमदग्निमित्रम् ।

यौ कृदपमर्वयो यौ वसिष्ठं

तौ नौ मुञ्चतमहंसः

॥ ३ ॥

यौ द्यावाभ्यमर्वयो वधूयश्च

मित्रावरुणा पुरुमीढमित्रम् ।

यौ विमदमर्वयो सप्तर्षिं

तौ नौ मुञ्चतमहंसः

॥ ४ ॥

यौ मरुदाजमर्वयो यौ गविष्ठिरं

विभ्यामैत्रं वरुण मित्रं कुत्सम् ।

यौ कक्षीयन्तमर्वयोः प्रोत कण्वं

तौ नौ मुञ्चतमहंसः

॥ ५ ॥

यौ मेधातिथिमर्वयो यौ त्रिशोकं

मित्रावरुणावृदानौ काव्यं यौ ।

यौ गोतममर्वयोः प्रोत मुहंलं

तौ नौ मुञ्चतमहंसः

॥ ६ ॥

ययो रथः सत्यवर्तमर्जुनदिमः

मिथुया चरन्तमभियार्ति दूषयन् ।

स्तौमि मित्रावरुणौ नायितो जौहवीमि

तौ नौ मुञ्चतमहंसः

॥ ७ ॥

॥ २६५ ॥ ( अथर्व० ६।११।१-३ )

मृगा । विधेदेवाः ( पापमोचनम् ) । अष्टाष्टुप् ।

यद् विद्वांसो यदविद्वांसं पनांसि चक्रमा ध्रुवम् ।

युयं नस्तत्सामुञ्चत विधे देवाः सजोपसः ॥१॥

यदि जाग्रद् यदि स्वप्ने न एतस्योऽकरम् ।

भुतं मा तस्माद् मन्यं च द्रुपदादिच मुञ्चताम् २

द्रुपदादिच मुमुक्षानः स्थिरः स्नात्वा मलादिव ।

पूतं पवित्रेणैवायं विधे शुभमस्तु मेनेसः ॥ ३ ॥

॥ २६६ ॥ ( अथर्व० ७।४१।१-२ )

प्रह्वः । सोमाह्वी ( पापमोचनम् ) । त्रिष्टुप् ।

सोमार्हद्रा वि बृहत् विपूर्वां

अमीषा या नो गर्यमायिषेत् ।

यार्धेयां दूरं निश्चीतिं पराचैः

कृतं चिदेनः प्र मुमुक्षमम्यन्

॥ १ ॥

सोमार्हद्रा युवमेतान्यम्यद्

विधो तनूर्ध्वं मेवजानि धनम् ।

अयं स्यतं मुञ्चन् यशो अर्धम्

तनूर्ध्वं यत्नं कृतमेनं अन्त्यम्

॥ २ ॥

॥ २६७ ॥ ( अथर्व० ७।६३।१-२ )

यमः । अयः, अयः, अयः ( पापमोचनम् ) । १ मुनिः  
२ अयः, अयः, अयः, अयः ।

इदं यद् कृणुः कृणुनि यमिनिपयन्तु यमः  
कानी ना यमः यमः

इति यद् कृणुः

इदं यत् कृष्णः शकुनि-र्यामृक्षभिर्भुते ते मूर्गेन ।  
अग्निर्मा तस्मादेनसो गार्हपत्यः ॥ मुञ्चतु ॥२॥

॥ १६८ ॥ ( अथर्वं ११३।१-१३ )

शान्तातिः । अग्निः । ( पापघ्नः ) । अगुष्टुः  
२३ बृहतीधर्मः ।

अग्निं द्रुमो यन्स्पृशे-नोपधीकृत् धीरुधः ।  
इन्द्रं वृहस्पतिं सूर्यं ते नो मुञ्चन्त्यहंसः ॥ १ ॥  
द्रुमो राजानं वरुणं मित्रं विष्णुमथो भर्गम् ।  
अंशं विवस्वन्तं द्रुम-स्ते नो मुञ्चन्त्यहंसः ॥ २ ॥  
द्रुमो वेयं सवितारं धातारमुत पूषणम् ।  
त्वष्टारमप्रियं द्रुम-स्ते नो मुञ्चन्त्यहंसः ॥ ३ ॥  
गन्धर्वाप्सरसो द्रुमो अश्विना ब्रह्मणस्पतिम् ।  
अर्यमा नाम यो देव-स्ते नो मुञ्चन्त्यहंसः ॥ ४ ॥  
अहोरात्रे इदं द्रुमः सूर्याचन्द्रमसां वृषा ।  
विश्वानादित्यान् द्रुम-स्ते नो मुञ्चन्त्यहंसः ॥ ५ ॥  
पतिं द्रुमः पूजन्य-मन्तरिक्षमथो दिशः ।  
आशाश्च सर्वा द्रुम-स्ते नो मुञ्चन्त्यहंसः ॥ ६ ॥  
मुञ्चन्तु मा शपथ्या-दहोरात्रे अथो उषाः ।  
सोमो मा देवो मुञ्चतु यमाहुश्चन्द्रमा इति ॥ ७ ॥  
पार्थिवा दिव्याः पशव आरण्या उत ये मृगाः ।  
शकुन्तान् पक्षिणो द्रुम-स्ते नो मुञ्चन्त्यहंसः ८  
मवाशवाविदं द्रुमो रद्रं पशुपतिश्च यः ।  
इष्यां रपां संविद्य ता नः सन्तु सदा शिवाः ९  
दिवं द्रुमो नक्षत्राणि भूमिं युक्षाणि पर्वतान् ।  
समुद्रा नद्यो वेशन्ता-स्ते नो मुञ्चन्त्यहंसः १०  
सुतर्वा न वा इदं द्रुमो-ऽपो देवीः प्रजापतिम् ।  
पितृन् यमर्षेष्टान् द्रुम-स्ते नो मुञ्चन्त्यहंसः ११  
ये देवा दिविपदो अन्तरिक्षसदश्च ये ।  
पृथिव्यां शका ये शिता-स्ते नो मुञ्चन्त्यहंसः १२  
आदित्या रुद्रा वसयो दिवि देवा अर्धर्वाणः ।  
आक्षिरसो मनीषिण-स्ते नो मुञ्चन्त्यहंसः ॥ १३ ॥

यद्यं द्रुमो यजमान-गृध्रः शर्मानि भेज्या ।  
यजुषि होत्रा द्रुम-स्ते नो मुञ्चन्त्यहंसः ॥ १४ ॥  
पञ्च राज्यानि धीरुधो गोमर्षेष्टानि द्रुमः ।  
वृषो भृक्षो ययः सह-स्ते नो मुञ्चन्त्यहंसः ॥ १५ ॥  
अरायान् द्रुमो रक्षामि  
सर्पान् पुण्यजनान् पितृन् ।  
मृत्यूनेकांशं द्रुम-स्ते नो मुञ्चन्त्यहंसः ॥ १६ ॥  
अतन् द्रुम अतुपती-नातयानुत होपनान् ।  
ममाः संवत्सरान् मामां-स्ते नो मुञ्चन्त्यहंसः १७  
एतं देवा दक्षिणतः पश्चात् प्राञ्च उदेत ।  
पुरस्तादुत्तराच्छ्रुता विभ्ये देवाः समेत्य  
ते नो मुञ्चन्त्यहंसः ॥ १८ ॥  
विभ्यान् देवानिदं द्रुमः सत्यसंधानृतावृधः ।  
विभ्यामिः पत्नीभिः सह ते नो मुञ्चन्त्यहंसः १९  
सर्वान् देवानिदं द्रुमः सत्यसंधानृतावृधः ।  
सर्वाभिः पत्नीभिः सह ते नो मुञ्चन्त्यहंसः २० ॥  
भूतं द्रुमो भूतपतिं भूतानां भूत यो वृक्षी ।  
भूतानि सर्वा संगत्य ते नो मुञ्चन्त्यहंसः २१ ॥  
या देवीः पञ्च प्रदिशो ये देवा द्वादशतैः ।  
संवत्सरस्य ये वृषा-स्ते नः सन्तु सदा शिवाः २२  
यन्मातली रथक्रीत-ममृतं वेदं भेजाम् ।  
तविन्द्रो अप्सु प्रावेक्ष्यत् तदापो वक्ष भेजाम् २३  
॥ १६९ ॥ ( अथर्वं ४३३।१-८; ऋ० १।९७।१-८ )

अग्निः

ब्रह्मा । पाप्मनाशनोऽग्निः ( पाप-नाशनम् ) । गार्हपत्यः ।

अपं नः शोशुचदधम्-मर्षे शशुगध्या रयिम् ।  
अपं नः शोशुचदधम् ॥ १ ॥  
सुक्षेत्रिया सुगातुया वंसुया च यजामहे ।  
अपं नः शोशुचदधम् ॥ २ ॥  
प्र यद् भदिष्ठ एषां प्रास्माकांसश्च सूरयः ।  
अपं नः शोशुचदधम् ॥ ३ ॥  
( १९५४ )



प्र यत् ते अग्ने सुरयो जायेमहि प्र ते वयम् ।

अप नः शोशुचदधम् ॥ ४ ॥

प्र यदग्नेः सहस्यतो विश्वतो यन्ति भानवः ।

अप नः शोशुचदधम् ॥ ५ ॥

त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि ।

अप नः शोशुचदधम् ॥ ६ ॥

द्विषो नो विश्वतोमुखा—ति नृवेवं पारय ।

अप नः शोशुचदधम् ॥ ७ ॥

स नः सिन्धुमिष नावा—ति पर्पा स्वस्तये ।

अप नः शोशुचदधम् ॥ ८ ॥

॥ १७० ॥ ( अथर्व० ६।११३।१-३ )

अथर्व । पृषा ( पापनाशनम् ) । त्रिष्टुप्, ३ पङ्क्तिः ।

श्रिते देवा अमृजतैतदेनः

श्रित पनमनुष्येषु ममृजे ।

ततो यदि त्वा आहिरानुशे

तां तं देवा ब्रह्मणा नाशयन्तु ॥ १ ॥

मरीचीधुमान् प्र विशानु पाप्मन्

उदारान् गच्छोत या नीहारान् ।

नदीनां केनो अनु तान् धि नदय

भूणभि पूषन् दुरितानि मृक्ष ॥ २ ॥

द्वादशाधा निहितं श्रितस्या—पमृष्टं मनुष्यैर्नसानि ।

ततो यदि त्वा आहिरानुशे

तां तं देवा ब्रह्मणा नाशयन्तु ॥ ३ ॥

॥ १७१ ॥ ( अथर्व० ७।१११।१-२ )

वरणः । आपा, वरणश्च ( पापनाशनम् ) । १ मुक्तिः,  
२ अनुष्टुप् ।

शुस्मन्ती घावापृथिवी अन्तिसुक्ष्मे महिषते ।

अपः सुत सुसुधुर्देवी—स्ता नो मुञ्चन्वहंसः ॥ १ ॥

मुञ्चन्तु मा शपथ्याः—दयो वरुण्यादुत ।

अथो यमस्य पड्वीशाद्

विश्वंसाद् देवकिलिपात् ॥ २ ॥

( पापलक्षणनाशनम् )

॥ २७२ ॥ ( अथर्व० ७।१११।१-३ )

॥ २७३ ॥ ( अथर्व० ६।१६।१-३ )

ब्रह्मा । पाप्मा ( पाप्मनाशनम् ) । अनुष्टुप् ।

अथ मा पाप्मन्सृज वशी सन् मृडयासि नः ।

आ मा मद्रस्य लोके पाप्मन् घेहाविहुतम् ॥ १ ॥

यो नः पाप्मन् न जहासि

तसु त्वा जहिमो वयम् ।

पथामन् व्यावर्तते—न्य पाप्मानु पद्यताम् ॥ २ ॥

अन्यत्रासन्युच्यत सहस्राक्षो अर्मस्यः ।

यं द्वेषाम तर्मुच्छतु यम् द्विप्मस्तमिजहि ॥ ३ ॥

॥ २७३ ॥ ( अथर्व० ६।१७।१-३ )

अथर्व । ( स्वस्ववयनकामः ) । चन्द्रमाः ( वापनाशनम् )

अनुष्टुप् ।

उप प्रागात् सहस्राक्षो युक्त्या शपथो रथम् ।

शतारमन्विच्छन् मम वृक्ष इयारिमतो गृहम् ॥ १ ॥

परि णो वृक्षि शपथ हृदमग्निरेवा दहनम् ।

शतारमन् नो जहि द्विषो वृक्षमिवाशानिः ॥ २ ॥

यो नः शपादशपतः शपतो यश्च नः शपात् ।

शुने पेष्टमिवावशामं तं प्रत्यस्यामि मृत्यये ॥ ३ ॥

॥ २७४ ॥ ( अथर्व० ७।५१।१ )

वादरायणिः । अरिनाशनम् ( शप-मोचनम् ) । अनुष्टुप् ।

यो नः शपादशपतः शपतो यश्च नः शपात् ।

वृक्ष ईष विद्युता इत आ मृलादन्तु शुष्यन्तु ॥ १ ॥

॥ २७५ ॥ ( अथर्व० ५।७।१-१० )

अथर्व । बहुदेवलयः १-३, ६-१० अरातयः ४-५ सरलतो

( अरातिनाशनम् ) । अनुष्टुप् ; १ विराट्गर्मा प्रस्तारपङ्क्तिः ;

४ पथ्यावृहती ; ६ प्रस्तारपङ्क्तिः ।

आ नो मर मा परि धा अराते

मा नो रक्षीर्दक्षिणां नीयमानाम् ।

नमो वीर्ताया असमृद्धये नमो अन्तवरातये १

( १९१२ )

यमराते पुरोधस्ते पुरुषं परिचायिणम् ।  
 नमस्ते तस्मै कृष्णे मा धनिं व्यथयामि ॥ २ ॥  
 प्र णो धनिर्वैवकुता दिवा नक्तं च कल्पताम् ।  
 अरातिमनुप्रेमो ययं नमो अस्त्वरारतये ॥ ३ ॥  
 सरस्वतीमनुमतिं अगं यन्तो हवामहे ।  
 याचं जुष्टां मधुमतीमवादिषं देवानां देवहूतिषु ४  
 यं याचोम्यहं वाचा सरस्वत्या मनोयुजा ।  
 श्रद्धा तमय विन्दतु दत्ता सोमैर्न यक्षुणा ॥ ५ ॥  
 मा धनि मा याचं नो धीर्त्सीः  
 उमाविन्दन्नामि मा भस्तां नो यक्षुनि ।  
 सर्वे नो अघ दित्सन्तोऽरातिं प्रति हयत ॥ ६ ॥  
 पुरोऽप्येवसमृद्धे वि तं हेति नयामसि ।  
 येदं त्याहं निमीर्यन्तो नितुदन्तीमराते ॥ ७ ॥  
 उत नृणा योभुयती स्वप्नया संचले जर्नम् ।  
 अराति चिचं धीर्त्सं—न्याकृतिं पुरेपस्य च ॥ ८ ॥  
 या मंदुती मूहोन्माना विभ्या आशां व्यानशो ।  
 तस्यं हिरण्यकेदये निर्भृत्त्या अकरं नमः ॥ ९ ॥  
 हिरण्ययणां सुमगा हिरण्यकदिपुर्मदी ।  
 तस्यै हिरण्यद्रापये—ऽरात्या अकरं नमः ॥ १० ॥  
 ॥ १७७ ॥ (अथर्वं ६।५।१-३)  
 ऋतातिः । आपः, १ वरुणः (एनोनाशनम्) । १ गावत्री,  
 १ त्रिष्टुप्, १ जगती ।  
 वायोः पुनः पयिरेण प्रत्यङ् स्तोमो अतिं द्रुतः ।  
 इन्द्रं य पुन्यः सतां ॥ १ ॥  
 आपां अरातान् मातरः सूरयन्तु  
 पुनेर्न नो धनव्यः पुनन्तु ।  
 विभ्ये दि रिप्रं प्रवर्तन्ति देवीः  
 अदिदाग्यः दुषिषा पुन र्यमि ॥ २ ॥  
 यन् किं वेदं वरुण देव्ये जर्नं  
 अनिद्रादं मनुष्याः धरति ।  
 अकिरावा वन्तु मधु धर्मा पुषाग्निम  
 मा नृणां मादेनरा देव रीगिषः ॥ ३ ॥

॥ १७८ ॥ (अथर्वं ६।८।१-४)

अगः । निर्भृतिः (निर्भृतिमोचनम्) । १ भुरिभ्रजती,  
 २ त्रिपदायां बृहतीः, ३ जगतीः, ४ भुरिक् त्रिष्टुप् (जगती) ।  
 यस्यास्त आसनि घोरे जुहोमि  
 एषां वक्षानामवसर्जनाय कम् ।  
 भूमिरिति त्वामिप्रमन्वते जना  
 निर्भृतिरिति त्वाहं परि वेद सर्वतः ॥ १ ॥  
 भूतं हविर्भृती भवे—प तं भागो यो असाह ।  
 मुञ्चेमानमूनेनसः स्वाहा ॥ २ ॥  
 एवो ष्वस्मिर्भ्रतेऽनेहा त्वं  
 अयस्मयान् वि चृता यन्प्राशान् ।  
 यमो मह्यं पुनरित् त्वां वंदाति  
 तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यये ॥ ३ ॥  
 अयस्मये द्रुपदे वैधिष इह  
 अभिहितो मृत्युभिये सहस्रम् ।  
 यमेन त्वं पितृभिः सांविदानः  
 उक्तं न नाकमधि रोहयेमम् ॥ ४ ॥

॥ १७९ ॥ (अथर्वं ६।११।१-३)

महा । विश्वेदेवाः (वन्मोचनम्) । अतुष्टु ।  
 यद् देवा देषुदेहं देवासक्षरुमा ययम् ।  
 आदित्यास्तस्मांशो यूय—मृतस्यतेनं मुञ्चत ॥ १ ॥  
 अतस्यतेनोदित्या यजत्रा मुञ्चतेद नः ।  
 यक्षं यद् यक्षयाहसः शिखन्तो नोपदेशिमि ॥ २ ॥  
 मेरुस्यता यजमानाः सुचाग्यानि जुह्वता ।  
 अवामा विभ्ये यो देवाः शिखन्तो नोपदेशिमि ३  
 सुरितनाशनम् ।

॥ १८१ ॥ (अथर्वं १।१२।१-५)

वायदेवा । वायदेवी, देवाः (वायनाशनम्) । अतुष्टु ।  
 ४ अतुष्टु निवृत्तवती, १ भुरिक् ।  
 इन्द्राय विनाशाय योः पिता पृथिवी माता ।  
 यथाभिषक्त देवा—नयथा कृणुता पुनः ॥ १ ॥  
 (१९१९)

अध्रेष्माणो अधारयन् तथा तन्मर्तुना कृतम् ।  
 कृणोमि वध्नि विष्कन्धं मुक्तावहो गवामिव २  
 पिशाङ्गे सृजे खगलं तदा वध्नन्ति वेधसः ।  
 भ्रवस्युं शुष्मं काव्यं वध्नि कृण्वन्तु घन्धुरः ॥३॥  
 येनां भ्रवस्यवध्नरथ देवा ईवासुरमायया ।  
 शुनां कपिरिव दूषणो घन्धुरा काव्यवस्यं च ४  
 दुष्टे हि त्वां भुत्स्यामि दूषयिष्यामि काव्यम् ।  
 उदाशयो रथा इव शूषयेमिः सरिष्यथ ॥ ५ ॥  
 परकशतं विष्कन्धानि विधित्ता पृथिधीमर्तु ।  
 तेषां त्वामग्र उज्जह-रुर्गणि विष्कन्धदूषणम् ॥६॥

प्रथमः पर्यायः ।

॥ २८१ ॥ (अथर्व० १६।१।१-१३)

अथवा । प्रजापतिः ( दुःखमोचनम् ) । १,१ द्विपदा सात्री  
 वृहती; २,१० वाजुषी त्रिष्टुप्; \* आमुरी गायत्री; ५,० सात्री  
 पङ्क्तिः ( ५ द्विपदा ); १ सात्री अनुष्टुप्; ७ निवृद्ध विराट्  
 गायत्री; ९ आमुरी पङ्क्तिः; ११ साम्नुष्णिहः १२-१३  
 आर्धनुष्टुप् ।

अतिरुष्टो अर्पां वृषमो-ऽतिरुष्टा अग्नयो दिव्याः १  
 रुजन् परिरुजन् मूणन् प्रमूणन् ॥ २ ॥  
 ओको मनोहा क्षुनो निर्दाह आत्मदूषिस्तनुदूषिः ३  
 इदं तमर्ति रुजामि तं माभ्यर्चानिषि ॥ ४ ॥  
 तेन तमभ्यर्तितरुजामो ॥  
 योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥ ५ ॥  
 अपामग्रमसि समुद्रं योऽभ्यवर्षजामि ॥ ६ ॥  
 योऽप्यग्निरति तं रूजामि ॥  
 ओकं यमि तनुदूषिम् ॥ ७ ॥  
 यो यं आपोऽग्निराविशे ॥  
 स एष यद् वो घोरं तदेतत् ॥ ८ ॥  
 इन्द्रस्य य इन्द्रियेणामि पिन्वेत् ॥ ९ ॥  
 अरिषा आपो अयं रिप्रमरुत ॥ १० ॥  
 प्रास्मदेनो वहन्तु प्र दुष्यन्त्यं वहन्तु ॥ ११ ॥

शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः  
 शिवया तन्योपे सृशत त्वचं मे ॥ १२ ॥  
 शिवानुशीनं सुपदो हवामहे  
 मयि क्षत्रं वचं आ धंस देवीः ॥ १३ ॥

द्वितीयः पर्यायः ।

॥ २८३ ॥ (अथर्व० १६।१।१-६)

अथवा । वाक् १ आसुर्वनुष्टुप्; २ आमुर्गुणिहः; ३ साम्नु-  
 ष्णिहः; ४ द्विपदा सात्री वृहती; ५ आसुर्वनुष्टुप्; ६ निवृद्ध  
 विराट्गायत्री ।

निर्दुरमण्य ऊर्जा मधुमती वाक् ॥ १ ॥  
 मधुमती स्य मधुमती वाचमुदेधम् ॥ २ ॥  
 उपहृतो मे गोपा उपहृतो गोपीयः ॥ ३ ॥  
 सुधुतो कर्णो मद्रधुतो कर्णौ  
 मद्रं श्लोकं ध्यासम् ॥ ४ ॥  
 सुधुतिश्च मोर्षधुतिश्च मा हांसिष्टां  
 शौर्षणं चक्षुरज्जं ज्योतिः ॥ ५ ॥  
 ऋषीणां प्रस्तवोऽसि यमोऽस्तु  
 दीर्घाय प्रस्तारय ॥ ६ ॥

तृतीयः पर्यायः ।

॥ २८४ ॥ (अथर्व० १६।१।१-६)

महा । आदित्यः । १ आमुरी गायत्री; २-३ आसुर्वनुष्टुप्;  
 \* प्राजापत्या त्रिष्टुप्; ५ साम्नुष्णिहः; ६ द्विपदा  
 साम्नी त्रिष्टुप् ।

मूर्धाहं रयीणां मूर्धा संमानानां भूयासम् ॥ १ ॥  
 रुजश्च मा वेनश्च मा हांसिष्टां  
 मूर्धा च मा विधेमां च मा हांसिष्टाम् ॥ २ ॥  
 उर्वश्च मा चमसश्च मा हांसिष्टां  
 घतां च मा घर्षणश्च मा हांसिष्टाम् ॥ ३ ॥  
 विमोक्षश्च माद्रपयिश्च मा हांसिष्टां  
 माद्रदानुश्च मा मातरिश्वा च मा हांसिष्टाम् ॥ ४ ॥  
 वृद्धस्पर्तिर्मा आत्मा नमणा नाम ह्यः ॥ ५ ॥  
 असंतापं मे हृदयमुर्वो गच्छतिः  
 समुद्रो मस्मि विधेमणा ॥ ६ ॥

(३०२०)

धर्नागमिष्यतो वरानविंशतिः

संक्लृपानमुच्यते ब्रुहः पाशान्

॥ १० ॥

तदमुष्मा अग्ने देवाः परां वहन्तु

षधिर्यथासुद् धिथुरो न साधुः

॥ ११ ॥

सप्तमः पर्यायः ।

॥ १८८ ॥ ( अथर्व० १६।७।१-१३ )

यमः । १ धृष्यनाशनम्, २ यः । १ पक्षिः, २ साम्यजुष्टुपः

३ आसुर्युष्णिक्, ४ प्राजापत्या गायत्री, ५ आच्युष्णिक् ।

६, ७, ११ साम्नी बृहती, ८ आसुरी गायत्री, ९ प्राजा-

पत्या बृहती, १० साम्नी गायत्री, ११ सुरिक् प्राजा

पत्याजुष्टुपः, १२ आसुरी त्रिष्टुप् ।

तेनैन विष्याम्यमृत्यैन विष्यामि

निर्मृत्यैन विष्यामि

परामृत्यैन विष्यामि

भ्रातृनैन विष्यामि तमसैन विष्यामि ॥ १ ॥

देवानाभेन घोरैः क्रूरैः प्रैरैरिभेप्यामि ॥ २ ॥

वैभानरत्स्यैनं क्षप्र्योरपि दधामि ॥ ३ ॥

एवानेयाय सा गेहत् ॥ ४ ॥

योऽस्मान् द्वेष्टि तस्मात्मा द्वेष्टु

मं धृपं द्विष्मः स आत्मानं द्वेष्टु ॥ ५ ॥

निर्विपत्तं द्वियो निः पृथिव्या

निरन्तरिक्षाद् भजाम ॥ ६ ॥

सुयामिन्नाधुय ॥ ७ ॥

इदमदमामप्यायणेऽमुष्याः पुत्रे दुष्यन्त्यं मृजे ॥ ८ ॥

यददोर्बदो अभ्यागच्छन्

पद् दोषा यत् पूर्णा रात्रिम् ॥ ९ ॥

यजामद् यत् सुतो यद् दिवा यन्नक्तम् ॥ १० ॥

यदहर्दरमिगच्छामि तस्मादेनमयं दये ॥ ११ ॥

तं जंष्टि तेन मन्दस्य तस्यं पृथीरपि ऋषीदि ॥ १२ ॥

स मा जीवीत् तं प्राणो जंदातु ॥ १३ ॥

अष्टमः पर्यायः ।

॥ १८९ ॥ ( अथर्व० १६।८।१-२७ )

यमः । दुःष्यनाशनम् । १-२७ ( प्रथमा ) एकपदा यजुर्माहम्प-

तुष्टुपः, १-२७ ( द्वितीया ) त्रिपदा निचुद्रामरी, १ ( तृतीया )

प्राजापत्या गायत्री, १-२७ ( चतुर्थी ) त्रिपदा प्राजापत्या

त्रिष्टुप्, २-४, ९, १७, १९, २४ ( तृतीया ) आसुरी जगती,

५, ७-८, १०-११, १३, १८ ( तृतीया ) आसुरी त्रिष्टुप्,

६, १२, १४-१६, २०-२३, २७ ( तृतीया ) आसुरी पक्षिः,

२५-२६ ( तृतीया ) आसुरी बृहती ।

जितमस्माकमुर्द्धनमस्माकमृतमस्माकं

तेजोऽस्माकं धृष्टास्माकं स्वऽस्माकं

यतोऽस्माकं पशवोऽस्माकं

प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥ १ ॥

॥ १ ॥

तस्मावुमुं निर्भजामोऽमुमामप्यायणं

अमुष्याः पुत्रमसौ यः ॥ २ ॥

॥ २ ॥

स प्राह्याः पाशान्मा मौचि ॥ ३ ॥

॥ ३ ॥

तस्येदं वधस्तेजः प्राणमायुर्नि वैष्ट्यामि

इदमनमधुराञ्च पादयामि ॥ ४ ॥

॥ ४ ॥

जितम् । स निर्भेत्याः पाशान्मा मौचि ।

तस्येदं ॥ १-४ ॥ २ ।

॥ ५ ॥

जितम् । सोऽभृत्याः पाशान्मा मौचि ।

तस्येदं ॥ १-४ ॥ ३ ।

॥ ६ ॥

जितम् । स निर्भेत्याः पाशान्मा मौचि ।

तस्येदं ॥ १-४ ॥ ४ ।

॥ ७ ॥

जितम् । स परामृत्याः पाशान्मा मौचि ।

तस्येदं ॥ १-४ ॥ ५ ।

॥ ८ ॥

जितम् । स देवजामीनां पाशान्मा मौचि ।

तस्येदं ॥ १-४ ॥ ६ ।

॥ ९ ॥

जितम् । स बृहस्पतेः पाशान्मा मौचि ।

तस्येदं ॥ १-४ ॥ ७ ।

॥ १० ॥

जितम् । स प्रजापतेः पाशान्मा मौचि ।

तस्येदं ॥ १-४ ॥ ८ ।

॥ ११ ॥

चतुर्थी पर्यायाः ।

॥ २८५ ॥ (अथर्व० १६।४।१-७)

महा । आदित्यः । १, ३ साम्न्यनुष्टुप् ; २ साम्न्यनुष्टुप् ;

४ श्रिपदाऽनुष्टुप् ; ५ आसुरी गायत्री ; ६ आर्च्युणिक् ;

७ श्रिपदा विराट्गर्भाऽनुष्टुप् ।

नाभिर्द्वं रयीणां नाभिः समानानौ मयासम् ॥ १ ॥

स्यासदसि सुपा अमृतो मर्त्येष्व ॥ २ ॥

मा मां प्राणो हासीत् ॥ ३ ॥

मो अयानोऽवहाय परां गात् ॥ ४ ॥

सूर्यो माहः पात्यग्निः पृथिव्या यायुरन्तरिक्षाद् ॥ ५ ॥

यमो मनुष्येभ्यः सरस्वती पार्थिवेभ्यः ॥ ६ ॥

प्राणापानौ मा मां हासिष्टुं मा जने प्र मोष ॥ ७ ॥

स्वस्त्युद्योपसौ वीपसंश्च सर्वे ॥ ८ ॥

आपः सर्वेगणो अशीय ॥ ९ ॥

शर्करा स्य पुराणो मोषं स्थेषुः ॥ १० ॥

मित्रावरुणौ मे प्राणापानायुग्निर्मे दक्षं दधातु ॥ ११ ॥

पञ्चमः पर्यायाः ।

॥ २८६ ॥ (अथर्व० १६।५।१-१०)

यमः । दुःस्वप्ननाशनम् । १-६ (प्रथमा) विराट् गायत्री

[५ (प्रथमा) भुरिक् ; ६ (प्रथमा) स्वरान् । १-६

(द्वितीया) प्राजापरया गायत्री ; १-६ (द्वितीया)

प्राजापरया गायत्री ; १-६ (तृतीया) श्रिपदा

छान्दी बृहती ।

विद्य तै स्वप्न जनित्रं प्राणाः

पुत्रोऽसि यमस्य करणः ॥ १ ॥

अन्तर्कोऽसि मृत्युरसि ॥ २ ॥

तं त्वां स्वप्न तथा सं विद्म ॥ ३ ॥

स नः स्वप्न दुष्यन्पात् पाहि ॥ ४ ॥

विद्य तै स्वप्न जनित्रं निर्मल्यः

पुत्रोऽसि यमस्य करणः ॥ १ ॥

अन्तर्कोऽसि मृत्युरसि ॥ २ ॥

विद्य तै स्वप्न जनित्रमभूत्याः

पुत्रोऽसि यमस्य करणः ॥ १ ॥

अन्तर्कोऽसि मृत्युरसि ॥ २ ॥

विद्य तै स्वप्न जनित्रं निर्मल्यः

पुत्रोऽसि यमस्य करणः ॥ १ ॥

अन्तर्कोऽसि मृत्युरसि ॥ २ ॥

विद्य तै स्वप्न जनित्रं परामृत्यः

पुत्रोऽसि यमस्य करणः ॥ १ ॥

अन्तर्कोऽसि मृत्युरसि ॥ २ ॥

विद्य तै स्वप्न जनित्रं देवजामीनां

पुत्रोऽसि यमस्य करणः ॥ १ ॥

अन्तर्कोऽसि मृत्युरसि ॥ २ ॥

तं त्वां स्वप्न तथा सं विद्म

स नः स्वप्न दुष्यन्पात् पाहि ॥ १० ॥

षष्ठः पर्यायाः ।

॥ २८७ ॥ (अथर्व० १६।६।१-११)

यमः । दुःस्वप्ननाशनम्, स्या । १-४ आत्रापत्याऽनुष्टुप् ; ५

छान्दा पञ्चिकः ; ६ निचुरायां बृहती ; ७ श्रिपदा छान्दी

बृहती ; ८ आसुरी जगती ; ९ आसुरी बृहती ; १०

आर्च्युणिक् ; ११ श्रिपदा यमपत्या गायत्री वा

आर्च्युनुष्टुप् ।

अजैष्माघासनामाद्या भूमानागसो वयम् ॥ १ ॥

उपो यसाद् दुष्यन्पात् दजैष्माप तदुच्छतु ॥ २ ॥

द्विपते तत् परां बहू शपेते तत् परां बहू ॥ ३ ॥

यं द्विपो यच्च नो द्वेष्टि

तस्मा एनद् गमयामः ॥ ४ ॥

उपा देवी वाचा संविदाना

वाग् देव्युपसां संविदाना ॥ ५ ॥

उपस्पतिर्वाचस्पतिना संविदानो

वाचस्पतिरुपस्पतिना संविदानः ॥ ६ ॥

तेऽमुष्मै परां बहन्त्वायानं दुर्णासः सदान्ताः ॥ ७ ॥

कुम्भीकां दुषीकाः पीयकाञ्च ॥ ८ ॥

जाग्रदुष्यन्त्यं स्वप्नेदुष्यन्त्यम् ॥ ९ ॥

अनागमिष्यतो वरानविंशतेः

संकल्पानमुंच्या द्रुहः पार्शान्

॥ १० ॥

तद्मुष्मां अग्ने देवाः परां बहन्तु

वधिर्यथासुद विर्युरो न साधुः

॥ ११ ॥

सप्तमः पर्यायः ।

॥ १८८ ॥ ( अथर्व० १६।७।१-१३ )

यमः । दुःस्वप्ननाशनम् । १ पक्षाक्षः; २ साम्यद्रुष्टुः;  
३ आधुर्युष्णिक्; ४ प्राजापत्या गायत्री; ५ आधुर्युष्णिक्;  
६, ९, ११ साम्नी बृहती; ७ याजुषी गायत्री; ८ प्राजा-  
पत्या बृहती; १० साम्नी गायत्री; १२ सुरिक् प्राजा  
परयावुष्टुः; १३ आसुरी त्रिष्टुप् ।

तेनैनं विष्णाम्यमृत्यैनं विष्यामि

निभृत्यैनं विष्यामि

परमृत्यैनं विष्यामि

प्राहौनं विष्यामि तमसैनं विष्यामि

॥ १ ॥

देवानाग्नेन घोरेः क्रूरैः प्रैवैरभिप्रेष्यामि

॥ २ ॥

पैश्चानृत्यैनं दंष्ट्रैरपि दधामि

॥ ३ ॥

एषानेयाव सा गंरत्

॥ ४ ॥

योऽस्मात् द्वेष्टि तमात्मा द्वेष्टु

यं वयं द्विष्मः स आत्मानं द्वेष्टु

॥ ५ ॥

निर्व्विण्तं द्वियो निः पृथिव्या

निस्तारिषाद् मज्जाम

॥ ६ ॥

सुयामंश्चाभुय

॥ ७ ॥

इदमदमामुष्यायणेऽमुष्याः पुत्रे दृष्यन्त्यै मृष्टे ॥८॥

यद्दोर्बदो अभ्यगच्छन्

पद् लोपा यत् पूर्वां रात्रिम्

॥ ९ ॥

यज्जाभद् यत् सुतो यद् दिष्ठा यश्चक्रम् ॥ १० ॥

यद्दरदरमिगच्छामि तस्मादेनुमवं दये ॥ ११ ॥

तं जेष्टि तेन मन्दस्य तस्यं पृथीरपि ऋणीहि ॥ १२ ॥

स मा जीधीत् तं प्राणो जहातु ॥ १३ ॥

अष्टमः पर्यायः ।

॥ १८९ ॥ ( अथर्व० १६।८।१-२७ )

यमः । दुःस्वप्ननाशनम् । १-२७ ( प्रथमा ) एकपदा यजुर्गोह्य-  
त्रिष्टुप्; १-२७ ( द्वितीया ) त्रिपदा निचृङ्गायत्री; १ ( तृतीया )  
प्राजापत्या गायत्री; १-२७ ( चतुर्थी ) त्रिपदा प्राजापत्या  
त्रिष्टुप्; २-४, ९, १७, १९, २४ ( तृतीया ) आसुरी बृहती;  
५-७-८, १०-११, १३, १८ ( तृतीया ) आसुरी त्रिष्टुप्;  
६, १२, १४-१६, २०-२३, २७ ( तृतीया ) आसुरी पक्षिः;  
२५-२६ ( तृतीया ) आसुरी बृहती ।

जितमस्माकमुद्रिन्नमस्माकंमृतमस्माकं

तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वर्ऋसाकं

यमोऽस्माकं पृथावोऽस्माकं

प्रजा अस्माकं धीरा अस्माकम् ॥ १ ॥

॥ १ ॥

तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायुणं

अमुष्याः पुत्रमसौ यः ॥ २ ॥

॥ २ ॥

स प्राह्याः पाशान्मा मौचि ॥ ३ ॥

॥ ३ ॥

तस्येदं वर्षस्तेजः प्राणमायुर्नि वैष्ट्यामि

इदमेनमधुराञ्च पादयामि ॥ ४ ॥ १ ।

॥ ४ ॥

जितम० । स निर्भेत्याः पाशान्मा मौचि ।

तस्येदं ॥ १-४ ॥ २ ।

॥ ५ ॥

जितम० । सोऽमृत्याः पाशान्मा मौचि ।

तस्येदं ॥ १-४ ॥ ३ ।

॥ ६ ॥

जितम० । स निर्भेत्याः पाशान्मा मौचि ।

तस्येदं ॥ १-४ ॥ ४ ।

॥ ७ ॥

जितम० । स परामृत्याः पाशान्मा मौचि ।

तस्येदं ॥ १-४ ॥ ५ ।

॥ ८ ॥

जितम० । स देवजामीनां पाशान्मा मौचि ।

तस्येदं ॥ १-४ ॥ ६ ।

॥ ९ ॥

जितम० । स बृहस्पतेः पाशान्मा मौचि ।

तस्येदं ॥ १-४ ॥ ७ ।

॥ १० ॥

जितम० । स प्रजापतेः पाशान्मा मौचि ।

तस्येदं ॥ १-४ ॥ ८ ।

॥ ११ ॥

जितम् । स ऋषीणां पाशाङ्गा मोचि ।

तस्येदं ॥१-४॥ ९ ।

॥ १२ ॥

जितम् । स आर्येयाणां पाशाङ्गा मोचि ।

तस्येदं ॥१-४॥ १० ।

॥ १३ ॥

जितम् । सोऽङ्गिरसां पाशाङ्गा मोचि ।

तस्येदं ॥१-४॥ ११ ।

॥ १४ ॥

जितम् । स आङ्गिरसानां पाशाङ्गा मोचि ।

तस्येदं ॥१-४॥ १२ ।

॥ १५ ॥

जितम् । सोऽर्धयणां पाशाङ्गा मोचि ।

तस्येदं ॥१-४॥ १४ ।

॥ १६ ॥

जितम् । स आर्धयणानां पाशाङ्गा मोचि ।

तस्येदं ॥१-४॥ १४ ।

॥ १७ ॥

जितम् । स घनस्पतीनां पाशाङ्गा मोचि ।

तस्येदं ॥१-४॥ १५ ।

॥ १८ ॥

जितम् । स घानस्पत्यानां पाशाङ्गा मोचि ।

तस्येदं ॥१-४॥ १६ ।

॥ १९ ॥

जितम् । स ऋतुनां पाशाङ्गा मोचि ।

तस्येदं ॥१-४॥ १७ ।

॥ २० ॥

जितम् । स अर्तिधानां पाशाङ्गा मोचि ।

तस्येदं ॥१-४॥ १८ ।

॥ २१ ॥

जितम् । स मासानां पाशाङ्गा मोचि ।

तस्येदं ॥१-४॥ १९ ।

॥ २२ ॥

जितम् । सोऽर्धमासानां पाशाङ्गा मोचि ।

तस्येदं ॥१-४॥ २० ।

॥ २३ ॥

जितम् । सोऽहोरात्रयोः पाशाङ्गा मोचि ।

तस्येदं ॥१-४॥ २१ ।

॥ २४ ॥

जितम् । सोऽहोः संयतोः पाशाङ्गा मोचि ।

तस्येदं ॥१-४॥ २२ ।

॥ २५ ॥

जितम् । स धावापृथिव्योः पाशाङ्गा मोचि ।

तस्येदं ॥१-४॥ २३ ।

॥ २६ ॥

जितम् । स इन्द्राग्नयोः पाशाङ्गा मोचि ।

तस्येदं ॥१-४॥ २४ ।

॥ २७ ॥

जितम् । स मित्रापर्यणयोः पाशाङ्गा मोचि ।

तस्येदं ॥१-४॥ २५ ।

॥ २८ ॥

जितम् । स राक्षो घर्षणस्य पाशाङ्गा मोचि ।

तस्येदं ॥१-४॥ २६ ।

॥ २९ ॥

जितमस्माकमुद्दिश्रमस्माकं मृतमस्माकं

तेजोऽस्माकं प्रह्लादमाकं स्वर्गस्माकं

यज्ञोऽस्माकं पुत्रयोऽस्माकं

भ्राजा अस्माकं धीरा अस्माकम् ॥१॥

॥ ३० ॥

तस्मादमुं निर्भजामोऽमुर्मांमुष्याणं

अमुष्याः पुत्रमसौ यः ॥२॥

॥ ३१ ॥

स मृतयोः पदवीशाव पाशाङ्गा मोचि ॥३॥ ॥३२॥

तस्येदं यच्चस्तेजः प्राणमायुर्निर्देष्टयामि

इदमेतमधराच्च पादयामि ॥४॥ २७ ॥ ॥ ३३ ॥

नवमः पर्यायः ।

॥ २९० ॥ (अथर्वं १६।१।१-४)

यमः । १ प्राजापति, २ अग्निः, घोरः, पुषा, १-४ हव्य ।

१ प्राजापत्या आर्यनुष्टुप्, २ आर्यनुष्टुप्, १ घान्ती

पञ्चि, ४ परोष्णिक् ।

जितमस्माकमुद्दिश्रमस्माकं

अभ्युष्टां बिभ्वाः पृतना अरतीः

॥ १ ॥

तदग्निराह तदु सोम आह

पुषा मां धाव सुहृत्सर्व लोके

॥ २ ॥

अग्नम् स्वः स्वर्गम् सं

सूर्यस्य ज्योतिषाग्नम्

॥ ३ ॥

वस्योभूयाय वसुमान् यज्ञो वसु

वंशिपीय वसुमान् भूयासं वसु मर्यि घेहि ॥ ४ ॥

॥ २९१ ॥ (अथर्वं ७।१३।१)

यमः । दुष्पन्नवासनम् । अनुष्टुप् ।

दौर्ध्वज्यं दौर्जीवित्यं रक्षो अभ्युमराय्यः ।

दुर्णाक्षीः सर्वो दुर्वाचस्ता अस्मन्नाशयामसि ॥ १ ॥

(३१०१)

॥ १९२ ॥ ( अथर्व० १९।५६।१-५ )

यमः । दुःखज्जनान्नम् । त्रिष्टुप् ।

यमस्य लोकादध्या यभूविद्य  
प्रमदा मत्यान् प्र युनक्षि धीरः ।

एकाकिनां सुरथं यासि विद्वान्  
स्वप्नं मिमानो अर्सुरस्य योनौ  
यन्धस्त्वात्रै विश्वचया अपदयत्  
पुरा रात्र्या जनितीरेके अह्नि ।

ततः स्वप्नेदमाया यभूविद्य  
मिपग्न्यो रूपमपगृहमानः  
बृहद्वाधासुरेभ्योऽधि देवान्  
उपाधतत महिमानमिच्छन् ।

तस्मै स्वप्नाय दधुरार्धिपत्यं  
अर्पाक्षशासः स्वपानशानाः  
नैतां विदुः पितये नोत देवा  
येषां जल्पिध्वरत्यन्तरेदम् ।

प्रिते स्वप्नमधुराप्तये नर  
आर्दित्यासो वर्धणेनार्जुशिष्टाः  
यस्य क्रूरमर्मजन्त कुक्कृतो  
अस्वप्नेन सुकृतः पुण्यमारुः ।

स्वप्नेदसि परमेणं यन्धुना  
तप्यमानस्य मनसोऽधि जशिषे  
विप्र ते सर्वाः परिजाः पुरस्ताद्  
विप्र स्वप्न यो अंधिपा इहा तै ।  
यशस्विनो नो यदीसिह पाहि  
आराद् द्विपेमिर्षं पाहि दुरम्

॥ १९३ ॥ ( अथर्व० १९।५७।१-५ )

यमः । दुःखज्जनान्नम् । १ अनुष्टुप् ; २-३ त्रिष्टुप्,  
( अथवसाना ) ; ४ वृद्धा सपिण्डभूतीयर्मा विराद्  
शक्ती ; ५ अथवसानापमयदा परशाकरातिजगती ।

यथा कलां यथा शफं यथुणं संनयन्ति ।

एवा दुष्यन्त्यं सर्वं ममियं सं नयामसि ॥ १ ॥

सं राजानो अगुः समुणार्थगुः

सं कुषा अगुः सं कला अगुः ।

समस्मासु यद् दुष्यन्त्यं

निर्दिपते दुष्यन्त्यं सुवाम

॥ २ ॥

देवानां पत्नीनां गर्भं यमस्य कर् यो भद्रः स्वप्न ।

स मम यः प्रापस्तद् द्विपते प्र हिंमः ।

मा तृष्टानामसि कृष्णशकुनेर्मुखम्

॥ ३ ॥

तं त्वां स्वप्न तथा सं विप्र

स त्वं स्वप्नाभ्वं इव कायमभ्वं इव नीनाहम् ।

अनास्माकं दैवपीयं पियारं

॥ २ ॥

यप यद्स्मासु दुष्यन्त्यं यद् गोपु यद्यं नो गृहे ॥ ४

अनास्माकस्तद् दैवपीयुः पियारः

निष्कर्मिष्व प्रतै मुञ्चताम् ।

नवारत्नीनर्पमया अस्माकं ततः परि ।

दुष्यन्त्यं सर्वं द्विपते निर्दयामसि

॥ ५ ॥

यथादिकम् ।

॥ १९५ ॥ ( अथर्व० ७।७३।६-७, ११ )

अथर्व । यमः, अथिनो । ६ जगती ; ७, ११ त्रिष्टुप् ।

उपं द्रव पर्यसा गोधुगोपमा

धर्मं सिञ्च पर्य उञ्चिपायाः ।

धि नार्कमवयत् सविता वरेण्यो

अनुप्रयाणमुपसो धि राजति

॥ ६ ॥

उपं ह्ये सुदुर्घां धेनुमेतां

सुहृस्तो गोधुगुत दोहदेनाम् ।

धेष्टं सुवं सविता साविपजो

अमीशो धर्मस्तद् पु प्र यौचत्

॥ ७ ॥

सुयवसाद् भगवती दि मूया

अर्घो वृषं भगवन्तः स्याम ।

अदि तृणमघ्ये विश्वदार्ता

पिपं शुद्धमुदकमाचरन्ती

॥ ११ ॥

( १११५ )



॥ २९६ ॥ ( अथर्व० ७।६।१-१ )

अथर्वा । अग्निः ( तपः ) । अजुष्टुप् ।

यदग्ने तर्पसा तर्प उपतप्यामहे तर्पः ।

प्रियाः भूतस्य भूयास्मायुष्मन्तः सुमेधसः ॥ १ ॥

अग्ने तर्पस्तप्यामहे उप तप्यामहे तर्पः ।

भूतानि शुण्वन्तो वयं-मायुष्मन्तः सुमेधसः ॥ २ ॥

॥ २९७ ॥ ( अथर्व० ११।३२।१-१० )

भृगुः ( आयुष्कामः ) । दर्मः । अजुष्टुप्, ८ पुरस्ताद्बृहती;

१ त्रिष्टुप्; १० जगती ।

शतकाण्डो दुश्चयधनः सहस्रपणं उत्तिरः ।

दुर्मो य उग्र ओर्षधिस्तं ते वध्नाभ्यायुषे ॥ १ ॥

नास्य केहान् प्र वषन्ति नोरसि ताडमा व्रते ।

यस्मा अस्त्रिषण्णेन दुर्भेण शर्म यच्छति ॥ २ ॥

द्विषि ते तूल्मोपधे पृथिव्यार्मसि निष्ठितः ।

त्वया सहस्रकाण्डेनायुः प्र वर्धयामहे ॥ ३ ॥

तिक्तो द्विषो अत्यतृणत् तिक्त इमाः पृथिवीरुत ।

त्ययाह दुर्हादौ जिह्वा नि तृणसि घर्षासि ॥ ४ ॥

रथमसि सहमानोऽहमस्मि सहस्रान् ।

उर्मो सहस्रवन्तौ भूत्वा सपत्नान्सहिषीवहि ॥ ५ ॥

सहस्रं नो अभिमाति सहस्रं पृतनायतः ।

सहस्रं सर्वान् दुर्हादौ सुहादौ मे गृह्णन् कृधि ॥ ६ ॥

दुर्भेण देवजातेन द्विषि पुष्मेन शश्वदिव ।

तेनाहं शश्वतो जनां अर्सेन सनेयानि च ॥ ७ ॥

प्रियं मां दर्मे कृणु

प्रभराज्याभ्यां शूद्राय चार्याय च ।

यस्मै च कामपायते सर्वस्मै च विपदयते ॥ ८ ॥

यो जायमानः पृथिवीमर्हद्

यो अस्तभ्रातृन्तरिक्षं विष्ये च ।

यं विभ्रतं ननु प्राप्ता विवेह

स नोऽयं दुर्मो परेणो दिया कः ॥ ९ ॥

सप्तगुहा शतकाण्डः सहस्रान्

ओर्षधीनां प्रथमः सं संभू ।

स नोऽयं दुर्मो परि पातु विभवतः

तेन साक्षीय पृतनाः पृतन्यतः ॥ १० ॥

॥ २९९ ॥ ( अथर्व० ११।३३।१-५ )

भृगुः । दर्मः । १ जगती; २, ५ त्रिष्टुप्; ३ आर्षो

पञ्क्तिः; ४ आस्तारपञ्क्तिः ।

सहस्रार्घः शतकाण्डः पर्यस्वान्

अपामग्निर्वीर्यो राजसूयम् ।

स नोऽयं दुर्मो परि पातु विभवतो

देवो मणिरायुषा सं खजाति नः ॥ १ ॥

घृतादुहस्रो मधुमान् पर्यस्वान्

भूमिर्होऽयुतश्चयावयिष्णुः ।

नुदन्सपत्नानघरांश्च कुण्वन्

दुर्मो रोहं महतामिन्द्रियेण ॥ २ ॥

त्वं भूमित्येष्योर्जसा

त्वं वेद्यो सीदसि चारुर्गव्यरे ।

त्वां पवित्रमृषयोऽभरन्त

त्वं पुनीहि दुरितान्यस्रत् ॥ ३ ॥

तीक्ष्णो राजां विपासही रक्षोहा विभवर्चपणिः ।

ओर्जो देवानां बलमुग्रमेतत्

तं ते वध्नामि जरसे स्वस्तये ॥ ४ ॥

दुर्भेण त्वं कृणवद् वीर्योऽग्नि

दुर्मो विभ्रदारमन्ता मा व्यथिष्ठाः ।

अतिष्ठाया घर्षेसाधान्यान्

सूर्ये इया भादि प्रदिशश्चतस्रः ॥ ५ ॥

॥ २९९ ॥ ( अथर्व० ५।२६।१-४, ६-९, ११ )

महा । वास्तोष्पतिः, २ यजिता, ३, ११ इन्द्रः, ४ निविदः, ५

अदितिः, ७ विष्णुः, ८ स्वष्टा, ९ भृगुः, ( नवशास्त्रां पृत-

दोमः ) । ३, ४, ६-८, ११ द्विपदा प्राजापत्या बृहती; ३ त्रिपदा

विराट् गायत्री, ९ त्रिपदा विपलिङ्गमभ्या पुर गणिद् । ( दर्श

एकपञ्चागाः ) ।

युनक्तु देवः संविता प्रजानन्

असिन् युक्ते अद्विषः स्वाहा ॥ २ ॥

इन्द्र उक्थामदान्यस्मिन् युधे  
प्रविद्वान् युनक्तु सुयुजः स्वाहा ॥ ३ ॥  
प्रेषा युधे निविदः स्वाहा  
शिष्टाः पत्नीभिर्वहतेह युक्ताः ॥ ४ ॥  
एयमगन् वर्हिषा प्रोक्षणीभिः  
युधं तन्वानादितिः स्वाहा ॥ ५ ॥  
विष्णुयुनक्तु बहुधा तर्पांसि  
अस्मिन् युधे सुयुजः स्वाहा ॥ ७ ॥  
त्वष्टा युनक्तु बहुधा न रुपा  
अस्मिन् युधे सुयुजः स्वाहा ॥ ८ ॥  
भगो युनक्तवाशिषो न्वः सा अस्मिन् युधे  
प्रविद्वान् युनक्तु सुयुजः स्वाहा ॥ ९ ॥  
इन्द्रो युनक्तु बहुधा वीर्याणि  
अस्मिन् युधे सुयुजः स्वाहा ॥ ११ ॥

॥ ३०० ॥ (ऋ० १०।१८७-१८)

शङ्खमुक्थो वामावनः । ७-१४ पितृमेघः १४ प्रजापतिर्वा ।  
त्रिष्टुप्, ११ प्रस्तापशुक्लः, १३ जगती, १४ अनुष्टुप् ।

हमा नारीरविध्याः सुपत्नीः  
आजनेन सर्पिषा सं विशन्तु ।  
अनध्र्योऽनमीषाः सुरक्षा  
आ रोहन्तु जर्णयो योनिमग्रे ॥ ७ ॥  
उदीर्ष्य नार्यमि जीवलोके  
गतासुमेतमुप रोप्य पहि ।  
हस्तप्रामस्य दिधिपोस्त्येदं  
पत्युर्जनित्वमभि सं बन्धुध  
धनुर्हस्तादादशानो मृतस्य  
अस्मे भ्रात्राय वर्चसे पलाय ।  
भर्त्रे त्वमिदं वयं सुवीर्य  
विध्याः स्पृधोः भूमिमातीर्जयेम  
वर्षं सर्वं मातरं भूमिमेताम्  
उद्व्यवसं पृथिवीं सुरोयाम् ।

ऊर्णप्रदा युवतिर्दक्षिणावत  
एषा त्वां पातु निश्चिंतेरुपस्थात् ॥ १० ॥  
उच्छृङ्खस्व पृथिवि मा नि बाधथाः  
सूपायनास्मै भव सुपवञ्जना ।  
माता पुत्रं यथा सिचा  
अग्न्येन मम ऊर्णहि ॥ ११ ॥  
उच्छृङ्खमाना पृथिवी सु तिष्ठतु  
सहस्रं मितु उप हि श्रयन्ताम् ।  
ते गृहासो घृतक्षुतो भवन्तु  
विश्वाहास्मै शरणाः सन्त्यय ॥ १२ ॥  
उत् तं स्तभामि पृथिवी त्वत् परि  
इमं लोके निदधन्मो अहं रिपम् ।  
एतां स्थूणां पितरो धारयन्तु  
तेऽत्रा यमः सार्धना ते मिनातु ॥ १३ ॥

प्रतीचीने मामहनीर्ष्याः पूर्णमिया दधुः ।  
प्रतीचीं जप्रमा वाचमर्ष रक्षनर्या यथा ॥ १४ ॥

॥ ३०१ ॥ (ऋ० १०।१०।१-१८)

नवमीवर्णानामयुग्मा पञ्चपाथ वैवस्वतो यमो ऋषिः । यमः ।  
वष्टीवर्णानां युग्मा नवम्याथ वैवस्वतो यमः ऋषिः । यमी ।  
त्रिष्टुप्, १३ विरादस्याना ।

ओ चित् सखायं सत्या बन्धृत्यां  
तिरः पूरु चिद्वर्णं जगन्त्यान् ।  
पितुर्नपातमा कधीत वेधा  
अधि क्षमि प्रतुरं दीर्घानः ॥ १ ॥  
न ते सखा सत्यं बध्नेतत्  
सलक्ष्मा यद् विपुरुषा मवाति ।  
मदस्पृशासो असुरस्य घोर  
द्विषो घृतारं उर्विया पोरं स्यन् ॥ २ ॥  
उशन्ति घा ते अमृतास एतत्  
एकस्य चित् त्यजसं मत्यस्य ।  
नि ते मनो मर्नमि घाय्यसे  
जन्युः पतिस्त्वन्मा विविदयाः ॥ ३ ॥

(३१५१)

न यत् पुरा चेहमा कदे नूनम्  
 श्रुता वदन्तो अर्नुते रपेम् ।  
 गन्धर्वो अश्वप्या च योषा  
 सा नो नार्मिः परमं जामि तर्धौ  
 गभे नु नौ जनिता दंपती कः  
 देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः ।  
 नकिरस्य प्र मिनन्ति मतानि  
 पेदे नावस्य पृथिवी उत द्यौः  
 को अस्य पेदे प्रथमस्याहः  
 क ई ददर्श क इह प्र वौचत् ।  
 बृहन्मिथस्य वरुणस्य धाम  
 कहुं प्रय आह्नो धीक्या नृन्  
 यमस्य मा यम्य काम आगन्  
 समाने योनौ सहशेय्याय ।  
 जायेष पत्ये तन्व रिचिष्यां  
 पि चिद् बृहेष रथ्येष चक्रा  
 न विष्टन्ति न नि मिपन्त्येते  
 देवानां स्पर्श इह ये चरन्ति ।  
 अन्येन मदाह्नो याहि त्वं  
 तेन पि बृह रथ्येष चक्रा  
 रात्रीभिरस्मा अहमिर्दशस्येत्  
 सूर्यस्य चक्षुर्मुहुर्गमिमायात् ।  
 दिवा पृथिन्या मिथुना सव्यं  
 धर्मार्यमस्य विभृयादजामि  
 मा धा ता गच्छानुत्तरा युगानि  
 यत्र जामयः पृणयत्रजामि ।  
 उप बर्हिदि पृणमार्य षाट्  
 मन्यमिच्छस्व सुमो पति मत्  
 दि आतामद् पर्दनाय भर्माति  
 विमु स्वरा यत्रिर्मातिर्निगच्छात् ।

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १० ॥

काममृता बृहेतुतद् रपामि  
 तन्वा मे तन्वं सं पिपृग्धि ॥ ११ ॥

न वा उ ते तन्वा तन्वं सं पिपृच्यां  
 पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात् ।

अन्येन मत् प्रमुदः कल्पयस्व  
 न ते आतां सुभगे वष्ट्येतत् ॥ १२ ॥

धतो धतासि यम नैव ते  
 मनो हृदयं चाविदाम ।

अन्या किल त्वां कश्येय युक्तं  
 परि ष्वजाते लिबुजेव वृक्षम् ॥ १३ ॥

अन्यम् पु त्वं यम्यन्य उ त्वां  
 परि ष्वजाते लिबुजेव वृक्षम् ।

तस्यां वा स्व मन इच्छा स या तव  
 अधां कृणुष्व संविदं सुभद्राम् ॥ १४ ॥

॥ १०९ ॥ (अ० १०।१४।१-५, ७-९, १३-१६)

देवस्वतो यमः । यमः, ७-९, लिङ्गोका, वितरो ॥ । मिथु१,  
 ११-१४, १६ अनुष्टुप, १५ बृहती ।

परेयिवांसं प्रवर्तौ महीरनुं  
 बृहभ्यः पन्थामनुपस्पशानम् ।

वैवस्वतं संगमनं जनानां  
 यमं राजानं द्विषां दुषस्य ॥ १ ॥

यमो नौ गातुं प्रथमो विचेद  
 नैवा गव्यतिरपमतेवा उ ।

यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुः  
 पना जज्ञानोः पृथ्या अनु स्वाः ॥ २ ॥

मातेली वच्यैयमो अहिरोमिः  
 बृहस्पतिर्ऋषिर्भावधानः ।

योष्य देवा वायुयुयं च देवान्  
 स्वाहान्ये स्यधयान्ये मङ्गति ॥ ३ ॥  
 (१११५)

इमे यम प्रस्तरमा हि सीद  
अङ्गिरोमिः पितृभिः संविदानः ।

आ त्या मन्त्राः कविमुस्ता बहन्तु

एना राजन् हविषा मादयस्व

अङ्गिरोमिरा गहि यन्त्रियेभिः

यमै वैरुपैरिह मादयस्व ।

विषस्वन्तं हुये यः पिता ते

अस्मिन् यज्ञे यद्दिप्या निषर्घं

मेहि मेहि पृथिभिः पृथ्व्येभिः

यथा नः पूर्वे पितरः परेयुः ।

उभा राजाना स्वधया मदेन्ता

यमं पद्यासि वरुणं च देवम्

सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेन

इष्टापुतेन परमे स्वोमन् ।

द्विवायावधं पुनरस्तमेहि

सं गच्छस्व तन्वा सुवर्चाः

अपेतं वीतं वि चं सर्पतातो

अस्मा पतं पितरौ लोकमकन् ।

अहोमिरिदिरकुमिर्व्यकं

यमो ददात्ययसानमस्मै

यमाय सोमं सुनुत यमार्य जुहता हविः ।

यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निर्दत्तो अरुहतः ॥ १३ ॥

यमार्य धृतवद्भविर्जुहोत प्र चं तिष्ठत ।

स नो देवेष्वा यमद् दीर्घमायुः प्र जीवसे ॥ १४ ॥

यमाय मधुमत्तमं राक्षे हव्यं जुहोतन ।

इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः

पूर्वेभ्यः पथिरुन्नयः ॥ १५ ॥

त्रिकटुकैभिः पतति पल्लवैरेकमिदं पृहत् ।

त्रिष्टुप् गायत्री छन्दांसि

सर्पा ता यम आदित्ता ॥ १६ ॥

॥ १०३ ॥ (ऋ० १०।१३।१-७)

ऊमारो यागायनः । यमः । अनुष्टुप् ।

यस्मिन् यज्ञे सुपलाशे देवैः संपिर्वते यमः ।

॥ ४ ॥ अथा नो विद्वतिः पिता पुराणां अनु वेनति ॥ १ ॥

पुराणां अनुवेनन्तं चरन्तं पापयामुया ।

अस्यधर्म्यचाकशं तस्मा अस्पृह्यं पुनः ॥ २ ॥

यं कुमारं नवं रथं मन्त्रं मनसाशुणोः ।

॥ ५ ॥ एकैपं विभक्तः प्राज्ञ मर्षयन्नाधि तिष्ठसि ॥ ३ ॥

यं कुमारं प्रार्थते यो रथं विप्रैर्भ्यस्पर्ति ।

सं सामानु प्रार्थते समितो नाध्याहितम् ॥ ४ ॥

कः कुमारमंजनयद् रथं को निरवर्तयत् ।

कः स्वित् तदथ नो ध्या वनुदेयी यथामवत् ॥ ५ ॥

यथामवदनुदेयी ततो अग्रमजायत ।

पुरस्ताद् बुध आततः पश्चाद्विरयं कृतम् ॥ ६ ॥

इदं यमस्य सार्धं देयमानं यदुच्यते ।

इयमस्य धर्म्यते न्नाढीः

अयं गीर्भिः परिकृतः ॥ ७ ॥

॥ १०४ ॥ (ऋ० १०।१५।१-१४)

ऊमारो यागायनः । पितरः । त्रिष्टुप्, ११ जगती ।

उदीरतामयं उत परासं

उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः ।

असुं य इयुर्यका ऋतुहाः

ते नोऽवन्तु पितरो हव्येयु ॥ १ ॥

इदं पितृभ्यो नमो अस्वघ

ये पूर्वोक्ते य उपरास इयुः ।

ये पार्थिवे रजस्या निपत्ता

ये धा नूनं सुवृजनासु विभु ॥ २ ॥

आहं पितृन्सुविदत्रो अपित्सि

नपातं च विक्रमणं च विष्णोः ।

यद्दिपदो ये स्वधया सुतस्य

भर्जन्त पितृस्व इदार्गमिष्टाः ॥ ३ ॥

(३१८४)

बर्हिपदः पितरं कुल्युर्ध्वम्  
 इमा घो हव्या चक्रमा जुपस्यम् ।  
 त आ गतावसा शंतेमेन  
 अथा नः शं योररपो दधात  
 उपहृताः पितरः सोम्यासः  
 बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु ।  
 त आ गमन्तु त इह ध्रुवन्तु  
 अधि ध्रुवन्तु तैऽधन्वन्सान्  
 आच्या जालु दक्षिणतो निपद्य  
 इमं युवमभि गृणीतु विश्वे ।  
 मा हिंसिष्ट पितरः केन चित्रो  
 यद् व आगः पुरुषता कराम  
 आसीनासो अद्विणीनामुपस्थे  
 रयि धंस द्वाशुपे मर्त्याम् ।  
 पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः  
 प्र यच्छत त इहो जै दधात  
 ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासो  
 अनृद्धिरे सौमपीधं वसिष्ठाः ।  
 तेभिर्विमः संरपाणो हवींषि  
 उशशुदाङ्गिः प्रतिकाममनु  
 ये तातुपुर्देवना जेहमाना  
 होत्राविदः स्तोमंतयासो अकैः ।  
 आग्ने यादि सुविदत्रेभिर्वाह  
 सत्यैः कन्यैः पितृभिर्ममसाङ्गिः  
 ये सत्यासौ हविरदौ हविष्या  
 इन्द्रेण देवैः सरयं दधानाः ।  
 आग्ने यादि सद्यस्यै देवद्वन्द्वैः  
 परैः पूर्वेः पितृभिर्ममसाङ्गिः  
 अग्निप्यासाः पितरं यद् गच्छत  
 सद्यःसद्यः सद्यं सुप्रणीतयः ।

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १० ॥

अत्ता हवींषि प्रयतानि बर्हिषि  
 अथा रयि सर्वधीरं दधातन ॥ ११ ॥  
 त्वमग्न ईक्षितो जातवेदो  
 अवाङ्मह्यानि सुरभीणि कृत्वी ।  
 प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्  
 अद्धि त्वं देव प्रयता हवींषि ॥ १२ ॥  
 ये वेह पितरो ये च नेह  
 याँश्च विषा याँ उ च न प्रविषा ।  
 त्वं वैत्य यति ते जातवेदः  
 स्वधामिर्धुषं सुहृतं जुपस्व ॥ १३ ॥  
 ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा  
 मर्ष्ये दिवः स्वधया प्रादर्यन्ते ।  
 तेभिः स्वराळसुनीतिमेतां  
 यथावशं तन्वै कल्पयस्व ॥ १४ ॥  
 ॥ ३०५ ॥ ( नयवे० १८।१।१५, १३-१४, १७, ३९-४९, ५३-  
 ५४, ५७-६१ )  
 अथवा । यमः, मन्त्रोक्ताः, ४० वरः, ४१-४३ वरसती, ४४-  
 ४६, ५१-५२ पितरः ( विष्णुः १। ३४, ४९, ५०, ५१, ५२, ५३, ५४, ५५, ५६, ५७, ५८, ५९, ६०, ६१, ६२, ६३, ६४, ६५, ६६, ६७, ६८, ६९, ७०, ७१, ७२, ७३, ७४, ७५, ७६, ७७, ७८, ७९, ८०, ८१, ८२, ८३, ८४, ८५, ८६, ८७, ८८, ८९, ९०, ९१, ९२, ९३, ९४, ९५, ९६, ९७, ९८, ९९, १०० )  
 को अथ युद्धके धुरि गा क्रुतस्य  
 शिर्मावतो आभिर्नो दुर्हणायून् ।  
 आसन्नियून् इस्वसो मयोभून्  
 य एषो भृत्यामणधत् स जीवात् ॥ १५ ॥  
 न ते नाथं यम्यन्नाहमस्मि  
 न ते तन् तन्वाकु सं पपृच्याम् ।  
 अन्येन मत् प्रमुदः कल्पयस्व  
 न ते आता सुमगे वष्टेत्तत् ॥ १६ ॥  
 न वा उ ते तन् तन्वाकु सं पपृच्यां  
 पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात् ।  
 असंयतेतन्मनसो हृदो मे  
 आता स्वसुः शयने यच्छयीय ॥ १७ ॥  
 ( ३१९८ )

श्रीणि चण्डर्दासि कवयो वि येतिरे  
 पुरुषं दर्शतं विभवंक्षणम् ।  
 आपो वाता ओषधयस्तानि  
 पकस्मिन् भुवं आपितानि  
 स्तेगो न क्षामत्येयं पृथिवीं  
 मही नो वाता इह वान्तु भूमौ ।  
 मित्रो नो अत्र चरुणो युज्यमानो  
 अश्विर्वेन न व्यसृष्ट शोकम्  
 स्तुहि श्रुतं गतंसदं जनानां  
 राजानं भीममुपहृतमुग्रम् ।  
 मूढा जरीत्रे रुद्र स्तवानो  
 क्षन्यमस्तु ते नि वपन्तु सैन्यम्  
 सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते  
 सरस्वतीमध्वरे लायमाने ।  
 सरस्वतीं सुहृतो हवन्ते  
 सरस्वतीं वाशुपे वार्यं दातु  
 सरस्वतीं पितरौ हवन्ते  
 दक्षिणा युष्मन्मिनर्हमाणाः ।  
 आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वं  
 अनमीया इष आ घेहस्मे  
 सरस्वति या सरयं ययाय  
 उषधैः स्वधामिर्देवि पितुर्मिर्दन्ती ।  
 स्रद्धाधर्मिणो अत्र भागं  
 शयस्पोषं यजमानाय वेदि  
 उदीरतामवर उत परास  
 उन्मथ्यमाः पितरः सोम्यासः ।  
 असुं य इयुर्वृका ऋतुशः  
 ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु  
 आहं पितृन्सुविदशां अयिरि  
 नपातं च विक्रमं च विष्णोः ।

॥ १७ ॥

॥ ३९ ॥

॥ ४० ॥

॥ ४१ ॥

॥ ४२ ॥

॥ ४३ ॥

॥ ४४ ॥

बर्हिपदो ये स्वधयां सुतस्य  
 भर्जन्त पित्वस्त इहार्गमिष्टाः  
 इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य  
 ये पूर्वोसो ये अपरास इयुः ।  
 ये पार्थिव रत्नस्या निपत्ता  
 ये वा नूनं सुवृजनासु दिक्षु  
 मातली कर्ष्यैर्यमो अङ्गिरोमिः  
 बृहस्पतिर्भूकर्मिर्वावृधानः ।  
 यांश्च देवा वावृधुयं च देवां  
 ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु  
 स्वादुष्किलायं मधुमां उतायं  
 तीव्रः किलायं रसंवां उतायम् ।  
 उतो न्वस्य पण्डितानिन्तुं  
 न कञ्चन संहत आधेयुं  
 परेयिवांसं प्रवतो महीरिति  
 यदुभ्यः पर्यामनुपस्पशानम् ।  
 यैवस्थतं संगमनं जनानां  
 यमं राजानं हविषा सपर्यत  
 बर्हिपदः पितर ऊत्युर्वाग्  
 इमा वो हव्या चक्रमा जुषध्वम् ।  
 न आ गतावसा शतमेन  
 अघा नः शो योररूपो दधात  
 आक्या जानुं दक्षिणतो निपद्य  
 इदं नो हविरमि गृणन्तु विभ्वे ।  
 मा हिंसिष्ट पितरः केन चिद्रो  
 यद् य आगः पुरुयता कराम  
 त्वष्टा दुहित्रे वंहन्तु कृणोति  
 तेनेदं विभ्यं मुषन् समेति ।  
 यमस्व माता पर्युहमाना  
 महो जाया विषयस्यतो ननाश

॥ ४५ ॥

॥ ४६ ॥

॥ ४७ ॥

॥ ४८ ॥

॥ ४९ ॥

॥ ५१ ॥

॥ ५२ ॥

॥ ५३ ॥

(११११)

प्रेक्षि प्रेक्षि पथिभिः पुराणैः  
 येनां ते पूर्वं पितरः परेताः ।  
 उभा राजानौ स्वधया मर्वन्तौ  
 यमं पदयासि चरणं च देवम् ॥ ५४ ॥  
 धुमन्तस्त्वेधीमहि धुमन्तः समिधीमहि ।  
 धुमान् धुमन्त आ बर्ह पितृन् हविषे अर्त्तये ५७  
 अङ्गिरसो नः पितरो नवग्या  
 अर्धर्वाणो भृगवः सोम्यासः ।  
 तेषां धुयं सुमन्तौ युधिर्गानां  
 अपि भद्रे सौमन्तसे स्याम ॥ ५८ ॥  
 अङ्गिरोभिर्व्यक्षिचैरा गङ्गाह  
 यमं चैरूपैरिह मादयस्व ।  
 विर्वस्वन्तं हुवे यः पिता  
 तेऽस्मिन् युद्धिष्या निपद्य ॥ ५९ ॥  
 इमं यम प्रस्तरमा हि रोह  
 अङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः ।  
 आ स्या मन्त्राः कविशस्ता र्हन्तु  
 पुना राजन् हविषो मादयस्व ॥ ६० ॥  
 इत एत उदाकहन् दिवस्पृष्टान्याकहन् ।  
 म भूर्जयो यथा पुथा घामङ्गिरसो ययुः ॥ ६१ ॥

॥ ३०६ ॥ ( अथर्व० १८।१।१-६० )

अथर्वाः । यमः, मन्त्रीकाः ४, १४ अग्निः ५ जातवेदाः २९  
 पितरः ( पितृमेधाः ) । त्रिष्टुप् १-३, ६, १४-१८, २०, २२-  
 २३, २५, ३०, ३४, ३६, ४६, ४८, ५०-५२, ५६ अजष्टुप् ।  
 ४, ७, ९, १३ अगतीः ५, २६, ४९, ५७ मुनिक् १९ त्रिप-  
 दाऽऽर्षी गायत्रीः २४ त्रिपदा सवविषमाऽऽर्षी गायत्री, ३७  
 विराड् अगतीः ३८-४४ आर्षी गायत्रीः ( ४०, ४२-४४  
 मुनिक् ) ४५ ककुम्भती अनुष्टुप् ।

यमाय सोमः पयते यमार्य क्रियते हविः ।  
 यमं ह यशो गच्छत्य-सिद्धतो अर्कतः ॥ १ ॥  
 यमाय मर्षमच्चमं जुहोता म च तिष्ठत ।

इदं नम ऋषिभ्यः पुर्यजेभ्यः  
 पुर्यभ्यः पथिष्टुद्रपः ॥ २ ॥  
 यमार्य धृतधृत पयो रासे हविर्होतन ।  
 स नो जीवेष्वा यमेद् श्रीर्गमायुः प्र जीयते ॥ ३ ॥  
 मेनमग्रे यि र्हो माभि नानुतो  
 मास्य त्वचं चिक्षिषो मा शरीरम् ।  
 शृतं यदा करसि जातयेदो  
 अयेमेनं प्र दिणुतात् पितृर्दप ॥ ४ ॥  
 यदा शृतं कृण्वो जातयेदो  
 अयेमेनं परि दृक्षात् पितृभ्यः ।  
 यदो गच्छत्यसुनीतिमेतां  
 अर्थ देवानां यशनीर्भयाति ॥ ५ ॥  
 त्रिकद्रुकेभिः पयते पडुर्गारेकमिद् गृहत् ।  
 त्रिष्टुप् गायत्री छन्दांसि  
 सर्वा ता यम आर्पिता ॥ ६ ॥  
 सूर्यं चक्षुषा गच्छ यातमात्मना  
 दिवं च गच्छ पृथिवीं च धर्मभिः ।  
 अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितं  
 ओषधीषु प्रति तिष्ठा शरीरैः ॥ ७ ॥  
 अजो भागस्तर्पस्तं तपस्य  
 तं ते शोचिस्तर्पतु तं ते अर्चिः ।  
 यास्ते शिवास्तन्वो जातवेदः  
 तान्निर्वेदेन सुकृतांस्तु लोकम् ॥ ८ ॥  
 यास्ते शोचयो र्हयो जातवेदो  
 याभिरापुणासि दिवंमन्तारिक्षम् ।  
 अजं यन्तमनु ताः समृण्वतां  
 अयेतराभिः शिवतमाभिः शृतं कृधि ॥ ९ ॥  
 अयं खज पुनरहो पितृभ्यो  
 यस्तु आहुतश्चरति स्वधावान् ।  
 आयुर्वसान् उषं यातु शेषः  
 सं गच्छतां तन्वा सुवर्चाः ॥ १० ॥  
 ( १२९९ )

अतिं द्रव भवानौ सारमेयौ  
चतुरशौ शयलौ साधुना पथा ।  
अर्धा पितृगुणविद्वज्जं अर्पयि  
यमेन ये संधमादं मदन्ति ॥ ११ ॥  
यौ ते भवानौ यम रक्षितारौ  
चतुरशौ पथिपदी नृचक्षसा ।  
ताभ्यां राजन् परि धेहो न  
स्वस्त्यस्मा अनमीवं च धेहि ॥ १२ ॥  
उरुणसार्यसुतृपाबुदुम्वलौ  
यमस्य दूतो चरतो जनां अनु ।  
तावत्सम्यं दृष्टये सूर्याय  
पुनर्दातामस्तुमपेह मद्रम् ॥ १३ ॥  
सोम एकैभ्यः पयते धूममेक उपासते ।  
येभ्यो मधु प्रधावन्ति तांश्चिदेवापि गच्छतात् १४  
ये चित् पूर्वं श्रुतसार्ता श्रुतर्जाता श्रुतावृथः ।  
श्रुपीन् तपस्यतो यम तपोजौ अपि गच्छतात् १५  
तपसा ये अनाधुप्यास्तपसा ये स्वर्ग्ययुः ।  
तपो ये चक्रिरे महस्तांश्चिदेवापि गच्छतात् १६  
ये युष्यन्ते प्रधनेषु शरसां ये तनुत्यजः ।  
ये वा सुहृन्नृधिणास्तांश्चिदेवापि गच्छतात् १७  
सुहृन्नृधिनाः कययो ये गोपायन्ति स्वयम् ।  
श्रुपीन् तपस्यतो यम  
तपोजौ अपि गच्छतात् ॥ १८ ॥  
स्योनासौ भव पृथिव्यनृक्षरा निवेदनी ।  
यच्छास्मै शर्म सुप्रधाः ॥ १९ ॥  
संत्याधे पृथिव्या उरौ लोके नि धीयस्य ।  
स्वधा याधकृपे जीवन् तास्ते सन्तु मधुश्रुतः २०  
दयामि ते मनसा मन इहेमान्  
गृहो उर्प जुह्वण पदि ।  
सं गच्छस्य पितृभिः सं यमेन  
स्योनास्वया पाता उर्प यान्तु श्रमाः ॥ २१ ॥

उत् त्वां वहन्तु मृतं उदवाहा उदुप्रतः ।  
अजेन कृष्वन्तः शीतं वरेणोक्षन्तु बालिति ॥ २२ ॥  
उदहमायुरायुषे कृत्वे दक्षाय जीवसे ।  
स्वान् गच्छन्तु ते मनो अर्धा पितृगुणं द्रव ॥ २३ ॥  
मा ते मनो मासो मार्कानां मा रसस्य ते ।  
मा ते हास्न तन्वः किं चनेह ॥ २४ ॥  
मा त्वां वृक्षः सं वाधिष्ट मा देवी पृथिवी मही ।  
लोकं पितृषु विस्वैधस्य यमराजसु ॥ २५ ॥  
यत् ते अहमतिहितं पयचैः  
अपानः प्राणो य उ वा ते परेतः ।  
तत् तं संगत्य पितरः सर्वादा  
घासाद् घासं पुनरा वैशयन्तु ॥ २६ ॥  
अपेमं जीवा अरुचन् गृहेभ्यः  
तं निर्वहन् परि श्रमादितः ।  
मृत्युर्यमस्यासीद् दूतः प्रचेता  
असन् पितृभ्यो गमयां चकार ॥ २७ ॥  
ये दस्यवः पितृषु प्रविष्टा  
हातिमुखा महुतादुश्चरन्ति ।  
पयपुरो निपुरो ये भरन्ति  
अग्निष्टानस्मात् प्र धमाति यमात् ॥ २८ ॥  
सं विदशन्ति च पितरः स्वा नः  
स्योनं कृष्वन्तः प्रतिरन्त आयुः ।  
तेभ्यः शकेम हुविषा नक्षमाणा  
ज्योग जीर्यन्तः शरदः पुरुचीः ॥ २९ ॥  
यां तं धेनं निष्णामि यमुं ते शीर ओदुनम् ।  
तेना जनस्यासो मतां योऽत्रासुदजीधनः ॥ ३० ॥  
अभ्यावर्ता प्र तर या सुरोय  
अक्षार्कः वा प्रनरं नर्षयः ।  
यस्त्या जघान ययः सो असन्  
मा सो अयद् विद्वत् मागधेयम् ॥ ३१ ॥



यमः परोऽधरो विष्वान्  
 ततः परं नाति पदयामि किं चन ।  
 यमे भष्वरो अधि मे निर्विघ्नो  
 भुवो विष्वान्नुवाततान ॥ ३२ ॥  
 अपांगूहभृतां मर्येभ्यः  
 कृत्वा सर्वर्णामदधुर्विष्वते ।  
 उताभिनोचभरद् यत् तदासीद्  
 भजद्वाहु द्वा मिथुना संस्पृष्टः ॥ ३३ ॥  
 ये निस्त्रोता ये परीता ये दग्धा ये क्षोद्विताः ।  
 सर्वास्तान्मम आ बह पितृन् हविषे अस्ते ॥ ३४ ॥  
 ये भग्निदग्धा ये भग्निदग्धा  
 मर्ये विषः स्वधया माव्यन्ते ।  
 त्वं तान् वेत्थ यदि ते जातवेदः  
 स्वधया यज्ञं स्वर्धिति जुषन्ताम् ॥ ३५ ॥  
 शं तप माति तपो अग्ने मा तुन्वं तपः ।  
 वनेषु शुष्मो अस्तु ते पृथिव्यामस्तु यजदः ॥ ३६ ॥  
 इवाम्यस्मा भवसानमेतद्  
 य एष आगन् मम चेदमृदिह ।  
 यमश्चिक्त्वान् प्रत्येतदाद्  
 ममैष राय उप तिष्ठतामिह ॥ ३७ ॥  
 द्रुमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासाति ।  
 शते शरत्सु नो पुरा ॥ ३८ ॥  
 त्रेमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासाति ।  
 शते शरत्सु नो पुरा ॥ ३९ ॥  
 अपेमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासाति ।  
 शते शरत्सु नो पुरा ॥ ४० ॥  
 षोड्मां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासाति ।  
 शते शरत्सु नो पुरा ॥ ४१ ॥  
 निरिमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासाति ।  
 शते शरत्सु नो पुरा ॥ ४२ ॥  
 उदिमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासाति ।

शते शरत्सु नो पुरा ॥ ४३ ॥  
 सप्तिमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासाति ।  
 शते शरत्सु नो पुरा ॥ ४४ ॥  
 अमासि मात्रां स्वर्णा—मायुमान् भूयासम् ।  
 यथापरं न मासाति शते शरत्सु नो पुरा ॥ ४५ ॥  
 प्राणो अपानो ध्यान आयु—श्रुष्टं दायं सूर्योप ।  
 अवरिपरेण पृथा यमराज्ञः पितृन् गच्छ ॥ ४६ ॥  
 ये भग्नवः शशमानाः परेषुः  
 हित्वा द्वेषांस्वनपत्यवन्तः ।  
 ते घामुदित्वा विदन्त लोकं  
 नाकस्य पृष्ठे अधि दीर्घानाः ॥ ४७ ॥  
 उदन्वती चौर्यमा पीलुमतीति मयमा ।  
 तृतीया ह प्रचौरिति यस्यां पितर आसते ॥ ४८ ॥  
 ये नः पितुः पितरो ये पितामहा  
 य आविशिर्गुर्वन्तरिक्षम् ।  
 य आभियान्ति पृथिवीमुत चां  
 तेभ्यः पितृभ्यो नमसा विधेम ॥ ४९ ॥  
 इवमिद् वा उ नापरं विवि पदपसि स्वर्गम् ।  
 माता पुत्रं यथा सिचाभ्ये न भूम ऊर्णहि ॥ ५० ॥  
 इवमिद् वा उ नापरं अरस्यन्यवितोऽपरम् ।  
 जाया पतिमिद् वाससाभ्ये न भूम ऊर्णहि ५१  
 अभि त्वोर्णोमि पृथिव्या मातुर्वस्वेण भद्रया ।  
 जीवेषु भद्रं तन्मर्ये स्थधा पितृषु सा त्वयि ॥ ५२ ॥  
 अग्नीषोमा पथिहता स्योनं  
 देवेभ्यो रत्नं दधयुर्वि लोकम् ।  
 उप प्रेष्यन्तं पुष्यं यो वहाति  
 अजोयानैः पथिभिस्तत्र गच्छतम् ॥ ५३ ॥  
 पुषा त्वेतद्गन्धावयतु प्र विद्वान्  
 अनेष्टपशुर्भुवनस्य गोपाः ।  
 स त्वैतेभ्यः परं ददत् पितृभ्यो  
 अग्निदेवेभ्यः सुविदत्रियेभ्यः ॥ ५४ ॥  
 (३९३)

आयुर्विध्वायुः परि पातु त्वा  
पुपा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात् ।  
यत्रासते सुकृतो यत्र त इयुः  
तत्र त्वा देवः संविता दधातु ॥ ५५ ॥  
इमौ युनजिम ते वद्वी असुनीताय वोढेव ।  
ताम्यां यमस्य सादनं समितीश्चाव गच्छतात् ५६  
एतत् त्वा वासः प्रथमं न्वागन्  
अपैतद्देहं यद्विहायिमः पुरा ।  
इष्टापूर्तमनुसंक्राम विद्वान्  
यत्र ते वृत्तं बहुधा धियन्धुषु ॥ ५७ ॥  
अग्नेर्वमं परि गोभिर्वयस्य  
सं प्रोणुष्व मेदसा पार्वसा च ।  
नेत् त्वा ध्रुणुर्हरसा जह्नुपाणो  
वृधुग् विधुक्षन् परीरुज्याति ॥ ५८ ॥  
वृण्डं हस्ताद्वाददानो गतासौः  
सह श्रोत्रेण धर्चसा बलेन ।  
अग्नेव त्वमिह पयं सुवीरु  
विभ्रा मूर्धो अमिमातीर्जयेम ॥ ५९ ॥  
धनुर्हस्ताद्वाददानो मृतस्य  
सह शूत्रेण धर्चसा बलेन ।  
सुमार्यमाय वसु भूरि पुष्टं  
अर्वाङ् त्वमेहुप जीवलोकम् ॥ ६० ॥

॥ ३०७ ॥ ( अथर्व० १८।१।३-४९, ५२, ५४, ५६,  
५८-६६, ६८-७३ )

अथवा । वमः, ४४, ४६ मन्त्रोक्ताः, ५-६ अमिः, ५४ इन्द्रः,  
५६ आपः ( विभ्रमेधः ) । शिशुप्, ४, ८, ११, २३ घता  
पक्षिः, ५ शिदपा मित्रद्रावत्रः, ६, ५६, ६८, ७०-७२ अजु-  
दृप् ( ५६ आर्वा ) ; १८ ; ३५-२९, ४४, ४६ जगती ( १८  
अरिष्ट, २९ विशदृ ; ३०- वषपदाऽतिप्रगती ; ३१ विशदृ  
शक्ती ; ३२-३५, ४७, ४९, ५२ शुरिष्ट ; ३६ एकावशानाऽऽ-  
मुनेनुष्टुप् ; ३७ एकावशानाऽऽमुनां गावती ; ३९ परा शिशुप्  
पक्षिः, ५४ पुरोऽनुष्टुप्, ५८ विशदृ ; ६० त्र्यवशाना वषपदा  
जगती ; ६४ अरिष्ट पश्चापक्षिः ; ६९, ७१ उपरिष्टाद् वृहती ।

इयं नारी पतिलोकं वृणाना  
नि पद्यत उप त्वा मर्त्ये प्रेतम् ।  
धर्मे पुराणमनुपालयन्ती  
तस्यै प्रजां द्रविणं चेह धेहि ॥ १ ॥  
अपश्य युवति नीयमानां  
जीवां मृतेभ्यः परिणीयमानाम् ।  
अन्धेन यत् तमसा प्रावृतासीत्  
प्राक्तो अपाचीमनयं तदनाम् ॥ ३ ॥  
प्रज्ञानत्यज्ये जीवलोकं  
देवानां पर्यामनुसंचरन्ती ।  
अयं ते गोपतिस्तं जुपस्व  
स्वर्ग लोकमधि रोहयेनम् ॥ ४ ॥  
उप धामुप वेतस-मवचरो नदीनाम् ।  
अग्ने पितृमपारमसि ॥ ५ ॥  
यं त्वमग्ने सुमर्दह-स्तम् निर्वापया पुनः ।  
क्याम्बुरत्र रोहतु शाण्डदूर्वा व्यल्कशा ॥ ६ ॥  
इदं त एकं पुर ऊं त एकं  
तृतीयं न ज्योतिषा सं विशस्व ।  
सुवेशने तन्वाङ् चारुरोधि  
प्रियो देवानां परमे सुधस्ये ॥ ७ ॥  
उत् तिष्ठ मेहि प्र द्रवीकः  
कृणुष्व सलिले सुधस्ये ।  
तत्र त्वं पितृभिः संविद्वानः  
सं सोमेन मदस्य सं स्वधार्मिः ॥ ८ ॥  
प्र क्यवस्व तन्वं सं मेरस्य  
मा ते गात्रा वि हायि मो शरीरम् ।  
मनो निर्विष्टमनुसंविशस्व  
यत्र मूर्मेजुपसे तत्र गच्छ ॥ ९ ॥  
वर्चसा मां पितरः सोम्यासो  
मर्जन्तु देवा मर्धना घृतेन ।  
चक्षुषे मा प्रतरं तारयन्तो  
अरसे मा अरदधि वर्धन्तु ॥ १० ॥

यच्चैसा मां समनकत्वाभिः  
 मेधां मे विष्णुर्न्यनकत्वासन् ।  
 रयि मे विश्वे नि यच्छन्तु देवाः  
 स्योना मापः पथेनैः पुनन्तु ॥ ११ ॥  
 मित्रावरुणा परि मामंधातां  
 आदित्या मा स्वरयो धर्धयन्तु ।  
 षर्धो म इन्द्रो न्यनक्तु हस्तयोः  
 जरदधि मा सयिता रुणेतु ॥ १२ ॥  
 यो ममारं प्रथमो मर्त्यानां  
 यः प्रेयार्यं प्रथमो लोकमेतम् ।  
 वैवस्वतं संगमनं जनानां  
 यमं राजानं हविषो सपर्यंत  
 परां यात पितर आ च यात  
 अयं वो एहो मधुना समक्तः ।  
 दक्षो असभ्यं द्रविणैह भद्रं  
 रयि च नः सर्ववीरं दधात ॥ १३ ॥  
 कण्वः कक्षीवान् पुरुमीढो अगस्त्यः  
 इयावाभ्यः सोमयज्ञानाः ।  
 विश्वामित्रोऽयं जमदग्निरग्निः  
 अयन्तु नः कश्यपो धामदेवः  
 विश्वामित्र जमदग्ने षसिष्ठ  
 भरद्वाज गोतम धामदेव ।  
 शार्दिनो अत्रिरप्रमीक्षमौमिः  
 सुसंशासुः पितरो मृदतां नः ॥ १४ ॥  
 क्रुष्ये मृजाना अति यन्ति सिं  
 आयुर्दधानाः प्रतरं नवीयः ।  
 आप्यार्यमानाः प्रजया धनेन  
 अयं स्याम सुरभयो गृध्रेषु  
 अज्रते स्यजते समज्रते  
 क्रतुं रिदन्ति मधुनाभ्यज्रते ।

सिन्धोमच्छयासे पतर्यन्तमुक्षर्ण  
 दिरण्यपायाः पुनामां सु गृहते ॥ १८ ॥  
 यद् वो मुद्रं पितरः सोम्यं च  
 तेजो सचर्ष्य स्वयंशासु दि भूत ।  
 ते अर्वाणः कवय आ दृणीत  
 सुयिदत्रा विदधे हूयमानाः ॥ १९ ॥  
 ये अग्रयो अङ्गिरसो नयग्या  
 इष्टार्यन्तो रातिपाचो दधानाः ।  
 दक्षिणावन्तः सुकृतो य उ स्थ  
 आसद्यास्मिन् परिधिं मादयधम् ॥ २० ॥  
 अधा यथा नः पितरः परांसः  
 प्रजासो अग्र ऋतमांशशानाः ।  
 शुचीदयन् दीर्घत उक्थशासुः  
 क्षामा भिन्दन्तो अरुणीरप्य मन् ॥ २१ ॥  
 सुकर्माणः सुकृतो देवयन्तो  
 अयो न देवा जनिमा धमन्तः ।  
 शुचन्तो अग्निं वायुधन्त इन्द्रं  
 उवी गव्यां परिपदे नो अक्रन् ॥ २२ ॥  
 आ युधेय क्षुमति पश्यो  
 अक्षयद् देवानां जनिमान्पुप्रः ।  
 मतीसभिदुर्वशरिक्प्रन्  
 वृधे चिदयं उपरस्यायोः ॥ २३ ॥  
 अकर्म ते स्वपंसो अभूम  
 ऋतमवस्रजुषसो विभातीः ।  
 विश्वं तद् भद्रं यदधन्ति देवा  
 बृहद् वदेम विदधे सुवीराः ॥ २४ ॥  
 इन्द्रो मा मरुत्यान् प्राच्यां दिशः  
 पातु बाहुच्युता पृथिवी धामिबोपरि ।  
 लोककृतः पथिकृतो यजामहे  
 ये देवानां हुतमांशा इह स्थ ॥ २५ ॥

धाता मा निर्देह्या दक्षिणाया विशः पातु  
बाहुच्युता पृथिवी धामिबोपरि ।  
लोककृतः पथिकृतो यजामहे  
ये देवानां हुतमांगा इह स्थ ॥ २६ ॥

अदितिर्मादित्यैः प्रतीच्यां विशः पातु  
बाहुच्युता पृथिवी धामिबोपरि ।  
लोककृतः पथिकृतो यजामहे  
ये देवानां हुतमांगा इह स्थ ॥ २७ ॥

सोमो मा विभ्वैर्देवैरुदीच्या विशः पातु  
बाहुच्युता पृथिवी धामिबोपरि ।  
लोककृतः पथिकृतो यजामहे  
ये देवानां हुतमांगा इह स्थ ॥ २८ ॥

धृता इ त्वा धरुणो धारयाता  
ऊर्ध्वं भानुं संविता धामिबोपरि ।  
लोककृतः पथिकृतो यजामहे  
ये देवानां हुतमांगा इह स्थ ॥ २९ ॥

प्राच्यां त्वा विशि पुरा संवृतः  
स्वधायामा दधामि  
बाहुच्युता पृथिवी धामिबोपरि ।  
लोककृतः पथिकृतो यजामहे  
ये देवानां हुतमांगा इह स्थ ॥ ३० ॥

दक्षिणायां त्वा विशि पुरा संवृतः  
स्वधायामा दधामि  
बाहुच्युता पृथिवी धामिबोपरि ।  
लोककृतः पथिकृतो यजामहे  
ये देवानां हुतमांगा इह स्थ ॥ ३१ ॥

प्रतीच्यां त्वा विशि पुरा संवृतः  
स्वधायामा दधामि  
बाहुच्युता पृथिवी धामिबोपरि ।

लोककृतः पथिकृतो यजामहे  
ये देवानां हुतमांगा इह स्थ ॥ ३२ ॥

उदीच्यां त्वा विशि पुरा संवृतः  
स्वधायामा दधामि  
बाहुच्युता पृथिवी धामिबोपरि ।  
लोककृतः पथिकृतो यजामहे  
ये देवानां हुतमांगा इह स्थ ॥ ३३ ॥

ध्रुवायां त्वा विशि पुरा संवृतः  
स्वधायामा दधामि  
बाहुच्युता पृथिवी धामिबोपरि ।  
लोककृतः पथिकृतो यजामहे  
ये देवानां हुतमांगा इह स्थ ॥ ३४ ॥

ऊर्ध्वायां त्वा विशि पुरा संवृतः  
स्वधायामा दधामि  
बाहुच्युता पृथिवी धामिबोपरि ।  
लोककृतः पथिकृतो यजामहे  
ये देवानां हुतमांगा इह स्थ ॥ ३५ ॥

धृतसि धरुणोऽसि धंसगोऽसि  
उदपूर्सि मधुपूर्सि यातपूर्सि ॥ ३६ ॥

इतश्च मासुतधायतां युमे इव यत्तमाने यद्वेतम् ।  
प्र धां भरन् मानुषा देवयन्तो  
आ सीदतां स्वर्गं लोकं विद्वान् ॥ ३७ ॥

स्वास्त्ये भवतमिन्द्ये नो युजे  
धां ग्रहां पूर्य नमोभिः ।  
वि श्लोकं पति पृथ्ये च सुरिः  
शृण्वन्तु विभ्वैः अमृतांस पतत् ॥ ३८ ॥

श्रीर्णि पदानि रूपो अन्वरोहत्  
चतुष्पदीमन्वैतद् धत्तेन ।  
अक्षरेण प्रति मिमीते अक्षं  
श्रुतस्य नामावमि सं पुनाति ॥ ४० ॥

देवेभ्यः कामं घृणीत मृगं  
 प्रजाये किममृतं नाघृणीत ।  
 बृहस्पतिर्येन मृतं तु त्रुपिः  
 प्रियां यमस्तन्यमा रिरैच  
 ॥ ४१ ॥  
 त्वमग्न ईडितो जातयेदो  
 अयां दृढव्यानि सुरभीणि कृष्या ।  
 प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्  
 अग्नि त्वं देव प्रयता हवींषि  
 ॥ ४२ ॥  
 आसीनासो अघृणीनामुपस्थे  
 रयि धत्त दाशुपे मत्वाय ।  
 पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य धस्यः  
 प्र यच्छत त इहो जै दधात  
 ॥ ४३ ॥  
 अग्निष्वासाः पितर एह गच्छतु  
 सदांसदः स दत्त सुप्रणीतयः ।  
 असौ हवींषि प्रयतानि बर्हिषि  
 रयि च नः सर्वधीरं दधात  
 ॥ ४४ ॥  
 उपहृता नः पितरः सोम्यासौ  
 बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु ।  
 त आ गमन्तु त इह भुवन्तु  
 अधि भुवन्तु तेऽघन्त्यस्मान्  
 ॥ ४५ ॥  
 ये नः पितुः पितरो ये पितामहा  
 अन्नजहिरे सौमपीथ वसिष्ठाः ।  
 तेभिर्यमः सैरराजो हवींषि  
 उशन्नशग्निः प्रतिकाममन्तु  
 ॥ ४६ ॥  
 ये तातृपुद्वेवत्रा जेहमाना  
 होत्राविदः स्तोमं तप्रासो अकैः ।  
 अग्ने याहि सहस्रं देववन्दैः  
 सत्यैः कविभिर्ऋषिभिर्धर्मसज्जिः  
 ॥ ४७ ॥  
 ये सत्यासौ हविरदौ हविष्पा  
 इन्द्रेण देवैः सरथं तुरेण ।

धार्मं याहि सुविद्वंभिर्धर्माद्  
 परं पूर्वभ्रंषिभिर्धर्मनाग्निः  
 ॥ ४८ ॥  
 उप परं मानं भूमिमेता  
 उर्य्यचंसं पृथिवीं सुरेषाम् ।  
 ऊर्णघदाः पृथिवीं दक्षिणापत  
 एषा त्यां पातु प्रपथे पुरस्तात्  
 ॥ ४९ ॥  
 उत् ते स्तभ्रामि पृथिवीं त्वत् परीमं  
 श्लोमं निदधन्मो अहं रिवम् ।  
 एतां स्थूणीं पितरौ धारयन्ति  
 ते तत्र यमः सादना ते कृणोतु  
 ॥ ५० ॥  
 अर्घयां पूर्णं चमसं यमिन्द्राय  
 अविमर्षाजिनीयते ।  
 तस्मिन् कृणोति सुकृतस्य भक्षं  
 तस्मिन्निदुः पथते विभ्यदानीम्  
 ॥ ५१ ॥  
 पर्यस्वतीरोपधयः पर्यस्वन्मामकं पर्यः ।  
 अपां पर्यसो यत् पयस्तेन मा सह शुम्भतु ५२  
 सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेन  
 ईष्टापुतेन परमे व्योमिन् ।  
 हित्वायत् पुनरस्तमेहि  
 ॥ ५३ ॥  
 सं गच्छतां तन्वा सुयचीः  
 ये नः पितुः पितरो ये पितामहा  
 य आविबिशुर्व्युन्त रिक्षम् ।  
 तेभ्यः स्वराडसुनीतिनो अद्य  
 यथावशं तन्वाः कल्पयाति  
 ॥ ५४ ॥  
 शं ते नीहरो भवतु शं ते मुष्वाव शीयताम् ।  
 शीतिके शीतिकावति हार्दिके हार्दिकावति ।  
 मण्डुक्यप्लु शं सुव इमं स्वमुग्निं शमय ॥ ५५ ॥  
 विवस्वानो नो अभयं कृणोतु  
 यः सुश्रामा जीरदातुः सुदातुः ।  
 इहेमे धीरा बहवो भवन्तु  
 गोमदध्वन्मय्यस्तु पृष्टम्  
 ॥ ५६ ॥  
 ( ३३१४ )

विवस्वान् नो अमृतत्वे दधातु  
परंतु मृत्युमृतं न पेतु ।

इमान् रक्षतु पुंरूपाना जरिम्णो  
मो प्येषामसंयो यमं गुः

यो दधे अन्तरिक्षे न मन्ना  
पितृणां कविः प्रमर्तिमर्तानाम् ।

तर्मर्चत विश्वमित्रा हविर्मिः  
स नो यमः प्रतरं जीवसे धातु

आ रोहत दिग्मुत्तमां  
श्रुपयो मा विभीतन ।

सोमपाः सोमपायिन इदं वः  
क्रियते हविराग्नम् ज्योतिरुत्तमम्

प्र केतुना बृहता मात्यग्निः  
आ रोदसी वृषभो रौरवीति ।

द्विवश्विदन्तादुपमासुर्दानद्  
अपामुपस्ये महियो ववर्ध

नाके सुपूर्णमुप यत् पतन्तं  
हुवा घेनन्तो अभ्यर्चक्षत त्वा ।

हिरण्यपक्षं घर्हणस्य द्रुतं  
यमस्य योनौ शकुनं मुरण्युम्

अपूपारिहितान् कुम्भान् यांस्तै देवा अधारयन् ।  
ते तै सन्तु स्वधार्यन्तो मधुमन्तो घृतधृतः ६८

यास्तै धाना अंजुकिरामे  
तिलमित्राः स्वधार्यन्तीः ।

तास्तै सन्तु विन्धीः प्रन्धीः  
तास्तै यमो राजानु मन्यताम्

पुनर्देहि वनस्पते य एष निहितस्त्वयि ।  
यथा यमस्य सार्दन आसातै विद्या वर्दन ७०

आ रमस्य जातपेदस्तेजस्यदरो अस्तु ते ।  
शरीरमस्य सं दृष्टायै न धेहि सुकृतानु लोके ७१

॥ ६२ ॥

॥ ६३ ॥

॥ ६४ ॥

॥ ६५ ॥

॥ ६६ ॥

॥ ६७ ॥

॥ ६८ ॥

॥ ६९ ॥

ये ते पूर्वे परागता अपरे पितरश्च ये ।  
तेभ्यो घृतस्य कल्पयितु शतधारा व्युन्दती ७२

पतदा रोह वयं उन्मृजानः  
स्वा इह बृहदु दीदयन्ते ।

अमि मेहि मध्यतो मार्ष हास्याः  
पितृणां लोकं प्रथमो यो अथ ॥ ७३ ॥

॥ ३०८ ॥ ( अथर्व १८।४।१-८९ )

अथर्व । यमः, यन्त्रोक्ताः, ८१ पितराः, ८८ अमिः, ८९  
चन्द्रमा । त्रिष्टुप्, १,४,७,१४,२६,६० मुरिक्, २,५,११  
२९,५०-५१,५८ अगती, ३ पञ्चपदा मुरिगतिजगती, ६,९,  
१३ पञ्चपदा षड्वती ( ९ मुरिक्, १३ त्र्यवसाना ) ; ८  
पञ्चपदाऽतिशङ्करी, १२ महाबृहती ; १६-२४ त्रिपदा मुरि-  
कमहाबृहती ; २६,३३,४३ चरिष्टाद्बृहती ( २६ विराट् ) ;  
२७ याजुषी गायत्री ; २५, ३१-३२,३८,४१-४२,५५-५७,  
५९, ६१ अनुष्टुप् ( ५६ ककुम्भती ) ; ३९,६२-६३ आस्ता-  
रपङ्क्तिः ( ३९ पुरोविराट्, ६२ मुरिक्, ६३ खराट् ) ; ४९  
अनुष्टुप्गमा त्रिष्टुप् ; ५३ पुरोविराट् षडः पङ्क्तिः ; ६६ त्रिपदा  
स्वराट् गायत्री ; ६७ द्विपदाऽऽर्च्यनुष्टुप् ; ६८,७१ आर्च्यनुष्टुप् ;  
७२-७४,७९ आसुरी पङ्क्तिः ; ७५ आसुरी गायत्री, ७६  
आनुषेणिकः ७७ वैवी अगती ; ७८ आसुरी त्रिष्टुप्, ८०  
आसुरी अगती ; ८१ प्राञ्चपदाऽनुष्टुप्, ८२ साम्नी बृहती ;  
८३-८४ साम्नी त्रिष्टुप्, ८५ आसुरी बृहती ; ( ६७-६८-  
७१-८६ एकावसाना ) ; ८९-८७ अनुष्टुप् षडः पङ्क्तिः ; ( ८६  
ककुम्भती, ८७ ककुम्भती ) ; ८८ त्र्यवसाना पञ्चापङ्क्तिः ; ८९  
पञ्चपदा पञ्चापङ्क्तिः ।

आ रोहतः जनित्रो जातयेदसः  
पितृयानैः सं य आ रोहयामि ।

अयाद्दन्व्येपितो हव्यवाह  
इजान युक्ताः सुकृतो घत्त लोके ॥ १ ॥

देवा यन्मृतयः कल्पयन्ति  
हविः पुरीडाशं सुचो यंसायुधानि ।

तेमिषां हि पथिभिर्देवयानैः  
यैरीजानाः स्वर्गं यन्ति लोकम् ॥ २ ॥

( ११४७ )

धृतस्य पन्थामनु पश्य साधु  
 अङ्गिरसः सुकृतो येन यन्ति ।  
 तेभिर्वाहि पृथिविः स्वर्गं यत्रादित्या  
 मधुं भक्षयन्ति तृतीये नाकं अधि वि धयस्य ॥३॥  
 अयः सुपूर्णा उपरस्य सायू  
 नाकस्य पृष्ठे अधि विष्टपि श्रिताः ।  
 स्वर्गा लोका अमृतैर्न पिष्टा  
 इपमूर्जं यजमानाय दुहाम् ॥ ४ ॥  
 जुह्वीधार घामुपभृदन्तरिक्षं  
 ध्रुवा दाधार पृथिवीं प्रतिष्ठाम् ।  
 प्रतीमां लोका घृतपृष्ठाः स्वर्गोः  
 कामैकामं यजमानाय दुहाम् ॥ ५ ॥  
 ध्रुव आ रोह पृथिवीं विश्वमोजसं  
 अन्तरिक्षमुपभूदा क्रमस्य ।  
 जुहु द्यां गच्छ यजमानेन साकं  
 क्षुवेण घत्सेन विशः प्रपीनाः  
 सप्तौ ध्रुवाहणीयमानः ॥ ६ ॥  
 सीधैस्तेरन्ति प्रवतो महीरिति  
 यल्लुकतः सुकृतो येन यन्ति ।  
 अम्रादधुर्यजमानाय लोकं  
 दिशो भूतानि यदकल्पयन्त ॥ ७ ॥  
 अङ्गिरस्तामर्यनं पूर्वो अमिरादित्यानामर्यनं गार्हपत्यो  
 दक्षिणानामर्यनं दक्षिणाग्निः ।  
 महिमानमग्नेर्विद्वितस्य ब्रह्मणा  
 समेहः सयं उर्य याहि शग्मः ॥ ८ ॥  
 पूर्वो अग्निर्वा तपतु शं पुस्त्यात्  
 शं पश्चात् तपतु गार्हपत्यः ।  
 दक्षिणाग्निर्वा तपतु शमं धर्मोत्तरतो  
 मधुयतो अन्तरिक्षाद् विशोर्दिशो  
 अग्ने परिर पाहि घोरात् ॥ ९ ॥

ययमग्ने शन्तमामिस्तनूभिः  
 ईजानमभि लोकं स्वर्गम् ।  
 अम्रा भूत्या पृष्टिवाहो यदाय  
 यत्र येयैः सधमादं मरुन्ति ॥ १० ॥  
 शमग्ने पश्चात् तप शं पुस्त्यात्  
 शमुत्तराच्छर्मधरात् तर्पनम् ।  
 एकलेधा विहितो जातयेदः  
 सम्पयेनं धेहि सुकृतांमु लोकः ॥ ११ ॥  
 शममयः समिद्धा आ रभन्तां  
 माजापत्यं मेधं जातवेदसः ।  
 शूतं कृण्वन्त इह मार्च चिक्षिपन् ॥ १२ ॥  
 यन्न पति विवृतः कल्पमानः  
 ईजानमभि लोकं स्वर्गम् ।  
 तममयः सर्वहुतं जुपन्तां  
 माजापत्यं मेधं जातवेदसः ।  
 शूतं कृण्वन्त इह मार्च चिक्षिपन् ॥ १३ ॥  
 ईजानश्चित्तमार्क्षवर्भि  
 नाकस्य पृष्ठाद् दिवमुत् पतिष्यन् ।  
 तस्मै प्र भाति नभसो ज्योतिर्पीमान्  
 स्वर्गः पन्थाः सुकृते देवयानः ॥ १४ ॥  
 अग्निर्होताभ्वर्युष्टे बृहस्पतिः  
 इन्द्रो ब्रह्मा दक्षिणतस्ते अस्तु ।  
 हुतोऽयं संस्थितो यन्न पति  
 यत्र पूर्वमर्यनं हुतानाम् ॥ १५ ॥  
 अपूपवान् क्षीरवांश्चकरेह सीदतु ।  
 लोककृतः पथिकृतो यजामहे  
 ये देवानां हुतभागा इह स्य ॥ १६ ॥  
 अपूपवान् दधिवांश्चकरेह सीदतु ।  
 लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये० ॥ १७ ॥  
 अपूपवान् प्रप्सवांश्चकरेह सीदतु ।  
 लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये० ॥ १८ ॥

अपुपवान् घृतवांश्चरुह सीदतु ।  
 लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये० ॥ १९ ॥  
 अपुपवान् मांसवांश्चरुह सीदतु ।  
 लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये० ॥ २० ॥  
 अपुपवान् प्रवांश्चरुह सीदतु ।  
 लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये० ॥ २१ ॥  
 अपुपवान् मधुमांश्चरुह सीदतु ।  
 लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये० ॥ २२ ॥  
 अपुपवान् रत्नवांश्चरुह सीदतु ।  
 लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये० ॥ २३ ॥  
 अपुपवान् पर्वांश्चरुह सीदतु ।  
 लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये० ॥ २४ ॥  
 अपुपापिहितान् कुम्भान् यांस्तै देवा अधारयन् ।  
 ते तै सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतक्षुतः ॥ २५ ॥  
 यास्तै धाना अनुकिरामि  
 तिलमिश्राः स्वधावतीः ।  
 तास्तै सन्तुदम्बीः प्रग्धीस्ताः  
 तै यमो राजानु मन्थताम् ॥ २६ ॥  
 अक्षिति भूर्यसीम् ॥ २७ ॥  
 द्रुप्तसर्वस्कन्द पृथिवीमनु धां  
 इमं च योनिमनु यक्ष पूर्वः ।  
 सन्मानं योनिमनु संचरन्तं  
 द्रुप्तं जुहोम्यनु सप्त दोषाः ॥ २८ ॥  
 शतधारं वायुमर्कं स्वर्चिर्द  
 नचक्षुस्ते अभि चक्षते रायिम् ।  
 ये पूषन्ति प्र य चक्षन्ति सर्वदा  
 ते दुहते दक्षिणां सप्तमातरम्  
 कोशं दुहन्ति कुलशं चतुर्विहं  
 इडां धेनुं मधुमतीं स्पृक्षन्ते ।  
 ऊर्जं मर्दन्तीमादति जनेषु  
 अतो मा हिंसीः परमे योमन् ॥ २९ ॥

एतत् तै देवः संयिता वासो ददाति मर्तये ।  
 तत् त्वं यमस्य राज्ये वासानस्ताप्यं चर ॥ ३१ ॥  
 धाना धेनुरमवद् वत्सो अस्यास्तिलोऽभवत् ।  
 तां वै यमस्य राज्ये अक्षितामुप जीवति ॥ ३२ ॥  
 एतास्तै असौ धेनवः कामदुर्घा भवन्तु ।  
 एनीः श्येनीः सरूपा विरूपाः  
 तिलवत्सा उप तिष्ठन्तु त्वात्र ॥ ३३ ॥  
 पर्नीर्धाना हरिणिः श्येनीरस्य  
 कृष्णा धाना रोहिणीर्धेनवस्ते ।  
 तिलवत्सा ऊर्जमस्मं दुहाना  
 विम्बाहा सन्त्यनपस्फुरन्तीः ॥ ३४ ॥  
 वैभानरे हविरेवं जुहोमि साहस्रं शतधारमुत्सम् ।  
 स विमर्ति पितरं पितामहान्  
 प्रपितामहान् विमर्ति पित्र्यमानः ॥ ३५ ॥  
 सहस्रधारं शतधारमुत्समक्षिणं  
 व्यच्यमानं सलिलस्य पूष्टे ।  
 ऊर्जं दुर्दानमनपस्फुरन्तं  
 उपासते पितरः स्वधाभिः ॥ ३६ ॥  
 इदं कसाम्यु चयनेन क्षितं  
 तत् संजाता अव पश्यतेत ।  
 मर्त्याऽयममृतत्वमेति तस्मै  
 गृहान् कृणुत यावत्सर्वेषु ॥ ३७ ॥  
 इद्वैधे धनसनि रिद्विषि इहमेतुः ।  
 इद्वैधि वीर्यघत्तरो वयोधा शरपहतः ॥ ३८ ॥  
 पुत्रं पौत्रमभितपयन्ती यपो मधुमतीग्निमा ।  
 स्वधां पियुष्यो अमृतं दुहाना  
 आपो देवीरगमयाम्भयन्तु ॥ ३९ ॥  
 आपो अग्निं प्र हिंषन्ति विद्वन्  
 इमं यज्ञं पित्रो मे दुग्मान् ।  
 आग्नीतामृदं य मर्दन्ते  
 ते नो गृधि मर्दन्ति विद्वान् ॥ ४० ॥



समिन्धते अमर्त्ये हव्यवाहं घृतप्रियम् ।  
 स वैद निहिताग्निधीन् पितॄन् वरावर्तो गतान् ४१  
 यं ते मन्थं यमोदनं यन्मांसं निपुणामि ते ।  
 ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्रुतः ॥४२॥  
 यास्ते धाना अंनुकिरामि  
 तिलमिथाः स्वधावनीः ।  
 तास्ते सन्तुद्भवीः प्रभवीः  
 तास्ते यमो राजानु मन्थताम् ॥ ४३ ॥  
 इदं पूर्वमपरं नियानु  
 येनां ते पूर्वं पितरः परेताः ।  
 पुरोगवा ये अमिशाचो अस्य  
 ते त्वां वहन्ति सृकतामु लोकम् ॥ ४४ ॥  
 सरस्वती देवयन्तो हवन्ते  
 सरस्वतीमध्वरे त्रायमानि ।  
 सरस्वती सृकतो हवन्ते  
 सरस्वती वाशुपे वार्ये दातु ॥ ४५ ॥  
 सरस्वती पितरो हवन्ते  
 दक्षिणा यक्षमभिनक्षमाणाः ।  
 आसत्यासिन् वह्निमि मादयन्त्यं  
 धनमीवा इप आ चैत्यसे ॥ ४६ ॥  
 सरस्वति या सरथं ययाध  
 उष्यैः स्वधामिदैवि पितृभिर्देव्यो ।  
 सृष्ट्यार्धमिदो अन्नं भागं  
 रायस्पोषं यजमानाय धेदि ॥ ४७ ॥  
 पृथिवीं त्वां पृथिव्यामा चैश्यामि  
 देवो नो धाता प्र तिसृत्वार्युः ।  
 परापरंता यमुदिद् यो अस्तु  
 अर्षा मृताः पितृषु स मपन्तु  
 आ प्र ऋषयेषामप तन्मृजेषां  
 पद् पांमभिमा भक्षोषुः ।

अस्मादेतमभ्युतो तद् वशीयो  
 दातुः पितृष्विदमोजनो मम ॥ ४९ ॥  
 पयमगन् दक्षिणा मद्रतो नो  
 अनेन दत्ता सुदुर्घा वयोधाः ।  
 यौवने जीवानुपपृञ्चती जरा  
 पितृभ्य उषसंपराण्यादिमान् ॥ ५० ॥  
 इदं पितृभ्यः प्र संराभि वह्निः  
 जीवं देवेभ्य उत्तरं स्तृणामि ।  
 तदा रोह पुरुष मेघ्यो मघन्  
 प्रति त्वा जानन्तु पितरः परेतम् ॥ ५१ ॥  
 पदं वह्निरसदो मेघ्योऽभुः  
 प्रति त्वा जानन्तु पितरः परेतम् ।  
 ययापस तन्वं स भरस्व  
 गात्राणि ते ब्रह्मणा कल्पयामि ॥ ५२ ॥  
 पूर्णो राजाविधानं चरुणं  
 ऊजो बलं सह भोजो न आगन् ।  
 आयुर्जीवेभ्यो विदधद्  
 दीर्घायुस्वार्यं शतशोखाय ॥ ५३ ॥  
 ऊजो भागो य इमं जजान  
 अश्माधानामाधिपत्यं जगाम ।  
 तमर्चेत विश्वमिथा हविभिः  
 स नो यमः प्रेतारं जीवसे धातु ॥ ५४ ॥  
 यथा यमार्थं हव्यं—मघपन् पञ्च मानवाः ।  
 यया वपामि हव्यं यथा मे भूरयोऽस्त ॥ ५५ ॥  
 इदं हिरण्यं विश्वं यत् ते पिताविभः पुरा ।  
 स्वर्गं यतः पितुर्दस्तं निर्मृष्टि दक्षिणम् ॥ ५६ ॥  
 ये च जीवा ये च मृता  
 ये ज्ञाता ये च युधिषाः ।  
 तेभ्यो घृतस्य वृज्यैस्तु मधुधारा धुम्वती ५७  
 (१९०१)

वृषा मतीनां पयते विचक्षणः  
सुरो अर्हो प्रतरितोपसां दिवः ।  
प्राणः सिन्धूनां कुलशो अचिक्रद्  
इन्द्रस्य हार्दिमाविशन् मनीषया ॥ ५८ ॥  
त्वेषस्ते धुम ऊर्णोतु दिवि पञ्चलुक आततः ।  
सुरो न हि घृता त्वं रूपा पापक रोचसे ॥ ५९ ॥  
प्र घा पुतीन्दुरिन्द्रस्य निर्फलिं  
सखा सत्युन प्र रिताति संगिरः ।  
मर्यै इष योषाः समर्पले  
सोमः कुलशे शतरामना पृथा ॥ ६० ॥  
अश्वधर्मीमदन्तु ह्यर्घ्यं प्रियां अधूपत ।  
अस्तोपत स्वमानयो विप्रा यवैष्टा ईमहे ॥ ६१ ॥  
आ यात पितरः सोम्यासौ  
गम्भीरैः पृथिभिः पितृपार्णः ।  
आयुरस्मभ्यं दधतः प्रजां च  
रायञ्च पोषैरुमि नः सचभ्यम् ॥ ६२ ॥  
परा यात पितरः सोम्यासौ  
गम्भीरैः पृथिभिः पुर्पाणैः ।  
अथा मासि पुनरा यात नो गृहान्  
हविरसु सुप्रजसः सुवीराः ॥ ६३ ॥  
यद् यो अश्विरजहादेकमर्हं  
पितृलोकं गमय जातवेदाः ।  
तद् यं पुनर पुनरा प्याययामि  
साङ्गाः स्वर्गे पितरो मादयध्वम् ॥ ६४ ॥  
अभूद् द्रुतः प्रहितो जातवेदाः  
स्रायं न्यद्वं उपवन्त्यो नृभिः ।  
प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अश्वान्  
अदि त्वं देव प्रयता हवीर्धि ॥ ६५ ॥  
असौ द्वा इह ते मनः कर्कुत्सलमिव जामर्यः ।  
अग्नयेन भूम ऊर्णदि ॥ ६६ ॥

शुम्भन्तां लोकाः पितृपदेना  
पितृपदेन त्वा लोक आ सादयामि ॥ ६७ ॥  
येऽस्माकं पितरस्तेषां यद्विरसि ॥ ६८ ॥  
उदुत्तमं वरुण ॥ ६९ ॥  
प्रासत् पाशान् वरुण मुञ्च सधान्  
यैः संमामे वृष्यते येव्यामे ।  
अथा जीवेम श्रुदं शतानि  
त्वया राजन् गुणिता रक्षमाणाः ॥ ७० ॥  
अश्वेयं कथ्यवाहनाय सृधा नमः ॥ ७१ ॥  
सोमाय पितृमते स्वधा नमः ॥ ७२ ॥  
पितृभ्यः सोमवद्भ्यः सृधा नमः ॥ ७३ ॥  
युमार्य पितृमते स्वधा नमः ॥ ७४ ॥  
पुतत् तं प्रततामह स्वधा ये च त्वामनु ॥ ७५ ॥  
पुतत् तं ततामह स्वधा ये च त्वामनु ॥ ७६ ॥  
पुतत् तं तत स्वधा ॥ ७७ ॥  
स्वधा पितृभ्यः पृथिविपद्भ्यः ॥ ७८ ॥  
स्वधा पितृभ्यो अन्तरिक्षसद्भ्यः ॥ ७९ ॥  
स्वधा पितृभ्यो दिविपद्भ्यः ॥ ८० ॥  
नमो वः पितर ऊर्जे नमो वः पितरो रसाय ॥ ८१ ॥  
नमो वः पितरो भार्माय ॥ ८२ ॥  
नमो वः पितरो मन्थर्व ॥ ८३ ॥  
नमो वः पितरो यद् घोरं तस्मै  
नमो वः पितरो यत् कुरं तस्मै ॥ ८४ ॥  
नमो वः पितरो यच्चिद्यं तस्मै  
नमो वः पितरो यत् स्योने तस्मै ॥ ८५ ॥  
नमो वः पितरः स्वधा वः पितरः ॥ ८६ ॥  
येऽत्र पितरः पितरो येऽत्र युयं स्य  
युष्मांस्तेऽत्र युयं तेषां श्रेष्ठा भूयास्य ॥ ८७ ॥  
य इह पितरो जीवा इह युयं सः ।  
अस्मांस्तेऽत्र वयं तेषां श्रेष्ठा भूयास्य ॥ ८८ ॥

या त्वांश्च इधीमहि धूमन्तं देवाजर्म् ।  
 यद् घ सा ते पर्नीयसी समिद् दीदर्यति धर्यि ।  
 इपं स्तोतुभ्य आ भर् ॥ ८८ ॥  
 चन्द्रमा अस्त्वन्तरा सुपणो धावते द्विवि ।  
 न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो  
 वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ८९ ॥

॥ १०९ ॥ ( अ० ८।११।१-४ )

मनुर्वेदस्तः । यज्ञः, यज्ञमानश्च । गायत्री ।

यो यजाति यजातु इत् सुनयश्च पचाति च ।  
 प्रहोदिन्द्रस्य चाकनत् ॥ १ ॥  
 पुरोळाशो यो अस्मै सोम ररत आशिरम् ।  
 पादित् तं शक्रो अंहसः ॥ २ ॥  
 तस्य धूमो अस्तु रथो देवजुतः स शशुवत् ।  
 विभ्वा धन्वन्तमित्रिया ॥ ३ ॥  
 अस्य प्रजावती गृहे ऽसंश्रयती विवेदिवे ।  
 इलो धेनुमती बुधे ॥ ४ ॥

॥ ११० ॥ ( अ० १०।१८।१-२ )

प्रजावान् प्रजापत्यः । १ यज्ञमानः । २ यज्ञमानपत्नी । ३ शिशुः ।

अपश्यं त्या मर्नसा चैकितां  
 तपसो जातं तपसो विभ्रतम् ।  
 इह प्रजामिह रुपि रराणः  
 म जायस्व प्रजया पुत्रकाम ॥ १ ॥  
 अपश्यं त्या मर्नसा दीर्घानां  
 स्वायां तनू अल्पे नार्धमानाम् ।  
 उप मामुच्चा युवतिर्वभूयाः  
 म जायस्व प्रजया पुत्रकामे ॥ २ ॥

॥ १११ ॥ ( अथर्व० ७।९।१-८ ) [ यज्ञः ]

॥ ११२ ॥ ( अथर्व० १९।१।१-३ )

मदा । यज्ञः । चन्द्रमा । १-२ यथावृहती, ३ पशुः ।

तं नं श्रेयस्तु नष्टः सं पाताः सं पतत्रिणः ।  
 यज्ञमिमं वर्धयता गिरः  
 संस्त्राव्येण हविषा जुहोमि ॥ १ ॥

इम होमा यज्ञमय-तेमं संस्त्रायणा उत ।

यज्ञमिमं वर्धयता गिरः  
 संस्त्राव्येण हविषा जुहोमि ॥ २ ॥  
 रूपंरूपं वर्धययः संस्त्रयं नं परि यजे ।  
 यज्ञमिमं चतस्रः प्रदिशो वर्धयन्तु  
 संस्त्राव्येण हविषा जुहोमि ॥ ३ ॥  
 ॥ ११३ ॥ ( अथर्व० १९।५।१-६ )

मदा । यज्ञः, वृहदेवत्यम् । त्रिष्टुप्, २ पुरोऽनुष्टुप् । १ यज्ञ  
 भवाऽतिशक्ती, ५ भुरिह ।

घृतस्य जुतिः समन्ता सदेवा  
 संयत्सरं हविषा वर्धयन्ती ।  
 श्रोत्रं चक्षुः प्राणोच्छिद्यो नो  
 अस्त्वच्छिद्यो वयमायुषो यच्चैतः ॥ १ ॥  
 उपासान् प्राणो ह्ययता-मुपं ययं प्राणं हवामहे ।  
 यच्चै जग्राह पृथिव्यन्तरिक्षं  
 यच्चै सोमो वृहस्पतिर्विभ्रता ॥ २ ॥  
 यच्चैतो धावापृथिवी संग्रहणी वभूवधुः  
 यच्चै गृहीत्वा पृथिवीमनु स चरेत् ।  
 यज्ञसं गावो गोपतिमुपं तिष्ठन्त्यायतीः  
 यज्ञो गृहीत्वा पृथिवीमनु सं चरेत् ॥ ३ ॥  
 यज्ञं कृणुध्वं स हि वो नृपाणो  
 यमो सीव्यध्वं बहुला पृथूनि ।  
 पुरः कृणुध्वमार्यसीरधृष्टा  
 मा यः सुखोद्यमसो बहता तम् ॥ ४ ॥  
 यज्ञस्य चक्षुः प्रभृतिर्मुखं च  
 यात्रा श्रोत्रेण मर्नसा जुहोमि ।  
 इमं यज्ञं विततं विश्वकर्मणा  
 देवा यन्तु सुमनस्यमानाः ॥ ५ ॥  
 ये देवानामृत्विजो ये च यज्ञिया  
 येभ्यो हव्यं क्रियते भागधेयम् ।  
 इमं यज्ञं सह पक्षीभिरेत्य  
 यावन्तो देवास्तविषा मादयन्ताम् ॥ ६ ॥

॥ ३१४ ॥ ( अथर्व० १९।५९।१ )

मग्नाः अग्निः ( यज्ञः ) । त्रिष्टुप् ।

यद् वो वृषं प्रमिनामं वृतानि

विदुषां देवा अविदुष्टरासः ।

अग्निष्टद् विश्वादा पृणातु धिद्वान्

सोमस्य यो ब्राह्मणा आविवेशं

॥ २ ॥

॥ ३१५ ॥ ( अथर्व० ७।१९।१ )

अयथा । वेदो । मुरिक् त्रिष्टुप् ।

परिं स्तृणीहि परिं धेहि चंद्रि

मा जामि मौपीरमुया शयानाम् ।

होतृपदेनं हरितं हिरण्यं

निष्का एते यजमानस्य लोके

॥ १ ॥

॥ ३१६ ॥ ( ऋ० १।३६।१३-१४ )

कण्वो घोराः । ( अग्निः ) वृषः । प्रगायः [ त्रिषमा बृहती-  
समा सतीबृहति ] ( १३ उपरिष्टाबृहती । ऐ. मा. १।१  
वरणच्छेदः ) ।

ऊर्च ऊ पु ण ऊतये तिष्ठां देवो न संविता ।

ऊर्चो घाजस्य सन्तिता

यद्वज्रिर्मिर्षाघर्द्धिर्धिव्यामहे

॥ १३ ॥

ऊर्चो नः पार्श्वहंसो नि केतुना

विश्वं समग्रिणं बृह ।

कृषी न ऊर्वाश्चरथाय जीवसे

धिदा देवेषु नो दुर्वः

॥ १४ ॥

॥ ३१७ ॥ ( ऋ० १।८।१-१० )

गायिनो विश्वामित्रः । वृषः, ६-१० वृषाः, ८ विश्वे देवा  
वा । त्रिष्टुप् ; १, ५ अनुष्टुप् ।

अञ्जान्ति त्वामध्वरे देवयन्तो

वनस्पते मधुना देव्येन ।

यदुर्ध्वेतिष्ठा द्रविणेह धंसाद्

यद् वा क्षयो मातुरस्या उपस्थे

॥ १ ॥

सर्मिदस्य धर्ममाणः पुरस्ताद्

ब्रह्म वयानो अजरं सुवीरम् ।

आरे असदमिति वार्धमान

उच्छ्रयस्व मद्भते सोमगाय

॥ २ ॥

उच्छ्रयस्व वनस्पते धर्मेन पृथिव्या अग्नि ।

सुमिती मीयमानो वचो धा यज्ञवाहसे ॥ ३ ॥

युवां सुवासाः परिवीत आगात्

स उ श्रेयान् भवति जायमानः ।

तं धीरांसः क्वय उन्नयन्ति

स्याग्योऽं मनसा देवयन्तः

॥ ४ ॥

जातो जायते सुदिनत्ये अह्ना

समर्थ आ विद्ये वर्धमानः ।

पुनन्ति धीरा अपसौ मनीषा

देव्या विप्र उद्विपतिं घाचम्

॥ ५ ॥

यान् वो नरो देवयन्तो निमिष्युः

वनस्पते स्वर्धितिर्वा ततश्च ।

ते देवासः स्वरवस्तस्थिवांसः

प्रजायदसे दिधिगन्तु रतम्

॥ ६ ॥

ये वृष्णासो अग्नि क्षमि निर्मितासो यतन्तुवः ।

ते नो व्यन्तु वार्यं देवभ्रा क्षेप्रसाधसः ॥ ७ ॥

आदित्या रुद्रा वसवः सुनीथा

धावाक्षामा पृथिवी अन्तरिक्षम् ।

सजोषसो यज्ञमवन्तु देवा

ऊर्ध्वं कृण्वन्वभ्युरस्य केतुम्

॥ ८ ॥

हंसा इव श्रेणिशो यतानाः

शुक्रा वसानाः स्वरवो न आगुः ।

उन्नीयमानाः कविभिः पुरस्ताद्

देवा देवानामपि यान्ति पायः

॥ ९ ॥

शृङ्गाणीवेच्छुर्हिणां सं ददथे

चपालवन्तः स्वरवः पृथिव्याम् ।

वाघर्द्धिर्वा विह्वे श्रोत्रमाणा

असौ भवन्तु पृतनाज्येषु

॥ १० ॥

( १४६३ )

॥ ३१८ ॥ (वा० य० ६।१-३, ६)  
(यू० ।)

अग्नेरिंसि स्वाधेश उञ्जेतुणां  
पुतस्य चित्तादधि त्वा स्थास्यति  
देवस्त्वा सविता मध्वानकतु  
सुपिप्पलाभ्यस्त्वौषधीभ्यः ।

द्यामग्नेणास्पृक्ष आन्तरिक्षं  
मर्त्येनाप्राः पृथिवीमुपरेणादृहीः  
या ते धामान्युद्मसि गर्भध्वे  
यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः ।  
अत्राह तदुक्तायस्य विष्णोः  
पुनर्म पदमवमामि भूरि ।

प्रह्वयनि त्वा क्षत्रवनि रायस्वोपयनि पर्यूहामि ।  
प्रह्वं हृह क्षत्रं हृह्वायुर्हृह प्रजां हृह ॥ २ ॥  
परिधीरसि परि त्वा दैवीर्विशो व्ययन्तां  
पृथिमीं यजमानं रायीं मनुष्याणाम् ।  
द्विषः सुतुरस्वेष ते पृथिव्यांल्लोक  
आरण्यस्ते पशुः ॥ ३ ॥

॥ ३१९ ॥ (वा० य० ११।४६)  
(यू० ।)

होता यद् यन्स्पतिमभि हि  
विहर्तमया रमिष्ठया रक्षनयार्धित ।  
यत्राभिनोदउगस्य हविर्षः प्रिया धामानि  
यत्र परम्यस्या मेपम्य हविर्षः प्रिया धामानि  
यत्रेन्द्रस्य ऋपमस्य हविर्षः प्रिया धामानि  
यत्राग्नेः प्रिया धामानि यत्र सोमस्य प्रिया धामानि  
यत्रेन्द्रस्य सुत्राग्नेः प्रिया धामानि  
यत्रं तद्वितुः प्रिया धामानि  
यत्र परम्यस्य प्रिया धामानि  
यत्र यन्स्पतिः प्रिया पाषाणमि  
यत्रं देवानामाग्न्यानां प्रिया धामानि

यत्राग्नेर्होतुः प्रिया धामानि  
तत्रैतान् प्रस्तुत्यैवोपस्तुत्यैवोपावस्यद्  
रमोयस इव कृत्वी करद्  
एवं देवो यन्स्पतिर्जुपतां हविर्होतयजं ॥ ४६ ॥

॥ ३२० ॥ (वा० य० १८।१०)  
(यू० ।)

देवो देवैर्वनस्पतिर्हिरण्यपणो मधुशायः  
सुपिप्पलो देवमिन्द्रमवर्धयत् ।  
दिवमग्नेणास्पृक्षदन्तरिक्षं पृथिवीमदृहीद्  
वसुवने वसुधेयस्य वेतु यजं ॥ २० ॥

॥ ३२१ ॥ (अथर्व० ७।१८।१)

अथर्वा । इन्द्रः, विश्वे देवाः (हविः) । विराद् शिष्टम् ।

सं बर्हिरक्तं हविषा घृतेन  
समिन्द्रेण वसुना सं मरुद्भिः ।  
सं देवैर्विश्वदैवेभिरक्तं  
इन्द्रं गच्छतु हविः स्वाहा ॥ १ ॥

॥ ३२२ ॥ (श्र० १०।१३।१-५)

आहिदेविर्धानः विदस्नानादित्यो वा । हविर्धाने । त्रिष्टुप्,  
५ जगती ।

युजे वां ग्रहां पूष्यं नमोभिः  
वि श्लोकं पतु पूष्यं सुरैः ।  
शुण्वन्तु विभ्ये अमृतस्य पुत्रा  
आ ये धामानि दिव्यार्नि तस्थुः ॥ १ ॥  
यमे इय यतमाने यद्वतं  
म यौ भवन् मानुषा देयवन्तः ।  
आ सीदते स्वमु लोके चिदाने  
स्वामध्ये मयतामिन्द्रे नः ॥ २ ॥  
पञ्च पदानि रूपो अन्यरोहं  
यनुण्वामन्येभि घृतेन ।  
अक्षरेण प्रति मिम पतां  
भूतस्य नाम्नापि सं पुनामि ॥ ३ ॥

देवेभ्यः कर्मवृणीत मृत्युं  
प्रजापे कर्ममृतं नावृणीत ।  
वृद्धस्पातिं युष्मन्कृण्वत ऋषिं  
मियां यमस्तन्वं । प्रारिरेचीत् ॥ ४ ॥  
सप्त क्षरन्ति शिशवे मरुत्यते  
पित्रे पुत्रास्तौ अर्धवीर्यतद्भृतम् ।  
उमे इदस्योमर्यस्य राजत  
उमे र्यतेते उमर्यस्य पुप्यतः ॥ ५ ॥

॥ ३०३ ॥ ( अ० १।१०।१-८ )

आशीर्गतिः शुनःशेषः स द्वित्रो वैद्यामित्रो देवराजः । ५-  
६ उद्वलं, ७-८ उद्वलतमुपले । ५-६ अत्रुपु, ७-  
८ गायत्री ।

यश्चिद्धि त्वं गृहेगृह उद्वलक युज्यसे ।  
इह धुमत्तमं यद् जयतामिव हुन्दुभिः ॥ ५ ॥  
उत स्तं ते वनस्पते यातो वि यात्यप्रमित् ।  
अथो इन्द्राय पातधे सुतु सोममुद्वल ॥ ६ ॥  
आयुजी याजुसातमा ता ह्युष्वा विजर्मतः ।  
हरीं ह्याग्रांसि यस्तना ॥ ७ ॥  
ता नो अथ वनस्पती ऋष्यायुष्येभिः सोतभिः ।  
इन्द्राय मधुमत् सुतम् ॥ ८ ॥

॥ ३०४ ॥ ( अ० ७।१०८।१७ )

मैत्रावरुणैर्विष्टः । आशानः । मिष्टम् ।

प्र या जिगीति युगलेय नन्तं  
अपं दृष्टा तन्वं । गृहमाना ।  
यत्रां अन्नन्तां अथ सा पदीष्टु  
प्रायोणो प्रन्तु रश्मन् उपदैः ॥ १७ ॥

॥ ३०५ ॥ ( अ० १०।७६।१-८ )

सर्पैराशनी जलहरीः । प्रायः, जः । अगती ।

आ ये अजस ऊर्जा व्युष्टिषु  
इन्द्रं मरुतो रोदसी अनक्तन ।  
उमे यथा नो बहनी सवामुवा  
सदःसदो वरिवृत्पात उद्विदा ॥ १ ॥  
तदु ध्रेष्टु सर्वनं सुनोतन  
अथो न हस्तपतो अद्रिः सोतर्हि ।

विद्वद्युयो अभिमृति पौंस्यं  
महो राये चित् तस्ते यद्वर्धतः ॥ २ ॥  
तदिद्वयस्य सर्वनं विवेरपो  
यथा पुरा मनवे गातुमर्थेत् ।  
गोअर्णसि त्वाष्ट्रे अश्वनिर्णिजि  
प्रेमप्यरेष्वप्युरो अक्षिप्रयुः ॥ ३ ॥  
अपं हत रश्मो मङ्गुपर्वतः  
स्कमायत् निर्झति सेधतामतिम् ।  
आ नो रयिं सर्ववीरं सुनोतन  
देवायै भरत श्लोकमद्रयः ॥ ४ ॥  
दिविद्धिदा योऽमवत्तरेभ्यो  
विभ्वनां चिन्नाभ्वत्तरेभ्यः ।  
वायोद्धिदा सोमरमत्तरेभ्यो  
अग्नेद्धिद्वं पितृरुत्तरेभ्यः ॥ ५ ॥  
सृष्टुं नो युशसः सौत्वर्धलो  
प्रायोणो याचा दिवितां दिविर्मता ।  
नरो यत्र दुहते काम्यं मधुं  
आघोपयन्तो अभितो मिथस्तुरः ॥ ६ ॥  
सुन्यन्ति सोमं रथिरासो अद्रयो  
निरस्य रसं गविषो दुहन्ति ते ।  
दुहन्त्यूर्ध्वपसेचनाय कं  
नरो हव्या न मर्जयन्त आसर्भिः ॥ ७ ॥  
एते नरः स्वपसां अमून  
य इन्द्राय सुनथ सोममद्रयः ।  
यामर्वांम यो दिव्याय धात्रे  
वर्धयसु धः पार्ययाय सुन्यते ॥ ८ ॥

॥ ३०६ ॥ ( अ० १०।१०।१-१४ )

अर्जुनः कद्रवः यथा । आशानः । अगतीः ५, ७, १८ त्रिपुत्र ।  
प्रेते यदन्तु प्र वयं यदाम  
प्रावर्ध्यो वार्यं वदता वदन्नयः ।  
यदद्रयः पर्वताः साकमादावः  
श्लोकं घोषं मरुथेन्द्राय मोमिनः ॥ १ ॥

पते वदन्ति शतवत्स शहस्रवद्  
अभि क्रन्दन्ति हर्षितेभिः सभिः ।  
विष्ट्वा प्रावाणः सुकृतः सुकृत्या  
होतुं श्रित् पूर्वं हविरद्यमाशत  
पते वदन्त्यविदधना मधु  
न्यूदखयन्ते अधि पक्व आमिपि ।  
धुक्षस्य शाखामरुणस्य वपुतः  
ते सूर्वा वृषभाः प्रेमराविषुः  
बुद्धं वदन्ति मद्विरेण मन्दिना  
इन्द्रं प्रोक्षन्तोऽविदधना मधु ।  
संरभ्या धीराः स्वस्वभिरनतिषुः  
आद्योपयन्तः पृथिवीमुपनिदिभिः  
सुपर्णा चार्चमक्रतोष चाधि  
आपरे कृष्णा इषिरा अनतिषुः ।  
न्युङ्गन्ति यन्त्युपरस्य निष्कृतं  
पुरु रेतौ दधिरे सूर्यभित्तः  
उग्रा ईव प्रवहन्तः समार्यमुः  
साकं युक्ता वृषणो विभ्रतो धुरः ।  
यच्छृण्वन्तो जगत्सना अराविषुः  
गुण्य पयां प्रोथथो अर्चतामिष  
दशाचनिभ्यो दशकश्येभ्यो  
दशायोक्त्रेभ्यो दशायोजनेभ्यः ।  
दशानीशुभ्यो अर्चताजरेभ्यो  
दश धुरो दश युक्ता वर्दज्यः  
ते अर्द्रयो दशपन्नास आराधुः  
मेवांमाधानं पयैति हयन्तम् ।  
न उः सुतम्य मोम्यस्यान्धमः  
धन्ताः पीतृपं प्रममर्य भेजिरे  
ने मोमादां हरी रम्द्रम्य निमतः  
धन्तु दुहन्तो अर्चामने मावि ।  
मेनिदुग्धं पयिषाम्मोमं मधु  
रम्द्रं पयंते प्रभंते पृथक्पर्व

वृषा वो अंशुर्न किला रिपाथन  
इलावन्तः सदमित् स्थनार्शिताः ।  
रैवत्येव महसा चारवः स्थन  
॥ २ ॥ यस्य प्रावाणो अजुषध्वमध्वरम् ॥ १० ॥  
तुविला अर्तदिलासो अर्द्रयो  
अध्वमणा अश्रुथिता अमृत्यवः ।  
अनातुरा अजराः स्वामिदिणवः  
॥ ३ ॥ सुपीवसो अर्तपिता अतृणजः ॥ ११ ॥  
ध्रुवा एव यः पितरो युगेयुगे  
क्षेमकामासुः सदसो न युञ्जते ।  
अजुर्यासौ हरिपाचो हरिद्रव  
॥ ४ ॥ आ चां रवेण पृथिवीमशुभ्रजुः ॥ १२ ॥  
तदिद् वदन्त्यर्द्रयो विमोचने  
यामम्रञ्जस्पा ईव चेदुपनिदिभिः ।  
वपन्तो बीजमिष धान्याकृतः  
पृञ्चन्ति सोमं न मिनन्ति वपन्तः  
॥ ५ ॥ ॥ १३ ॥  
सुते अध्वरे अधि चार्चमक्रत  
आ श्रीळ्यो न मातरं तुदन्तः ।  
॥ ६ ॥ वि पू मुञ्चा सुपुषुषो मनीषां  
वि वर्तन्तामर्द्रयध्वार्यमानाः ॥ १४ ॥

॥ ३३७ ॥ ( अ० १०।१७।१-४ )

ऊर्ध्वप्रावा सप आश्रितः । प्रावाणः । गायत्री ।

॥ ७ ॥ प्र यो प्रावाणः सविता देवः सुवतु धर्मेणा ।  
धुषु युज्यस्व सुनुत ॥ १ ॥  
प्रावाणो अर्ष दुच्छुना—मर्षं तेभ्यस्त दुर्मतिम् ।  
॥ ८ ॥ उग्राः कर्तन भेषजम् ॥ २ ॥  
प्रावाण उपरेष्ट्या मदीयन्ते सजोपसः ।  
वृष्णे वपन्तो वृष्ण्यम् ॥ ३ ॥  
प्रावाणः सविता तु यो देवः सुवतु धर्मेणा ।  
॥ ९ ॥ यज्ञमानाय सुगुणे ॥ ४ ॥

॥ ३२८ ॥ (क्र० १०११७१-९)

मिथ्याग्निरथः । घनाह्नदानम् । मिथुः, १-२ जगती ।

न वा उ देवाः क्षुधमिद्वधं वदुः  
उताशितमुप गच्छन्ति मृत्ययः ।  
उतो रयिः पृणतो नोप दस्यति  
उतापृणन् मडितारं न विन्दते  
य आधाय चकमानाय पित्वो  
अर्धवान्सन् रफितायोपज्ञमुपे ।  
स्थिरं मनः कृणुते सेयते पुरा  
उतो चित् स मडितारं न विन्दते  
स इन्द्रो जो यो गृह्वे ददाति  
अर्धकामाय चरेत कुशाय ।  
अरमसै भवति यामहता  
उतापरीपु कृणुते सखायम्  
न स सखा यो न ददाति सख्ये  
सचाभुये सर्वमानाय पित्वः ।  
अपास्मात् प्रेयान्न तदोक्तौ अस्ति  
पुणन्तमन्यमरणं विविच्छेत्  
पूणीयादिभार्धमानाय तव्यान्  
द्राघीयांसुमनु पश्येत पन्थाम् ।  
ओ हि यतस्ते रथ्येय चक्रा  
अन्यमन्यमुप तिष्ठन्त रायः  
मोघमसै विन्दते अग्रचेताः  
सुत्यं द्रव्यमि वध इत् स तस्य ।  
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं  
केयलाधो भवति केयलादी  
कृपभित् फाल आशितं कृणोति  
यन्नर्धानुमप वृद्धे चरित्रः ।  
वर्दन् प्रक्षार्यदतो वर्नीयान्  
पृणन्नापिरपृणन्तमि प्यात्  
पर्कपाद् भूयो द्विपदो वि चक्रमे  
द्विपात् त्रिपादमभ्येति पद्यात् ।

चतुष्पादेति द्विपदाममिस्वरे

संपदयन् पङ्क्तीरुपतिष्टमानः

॥ ८ ॥

समौ चिद्वस्तौ न समं विविष्टः

संमातरं चित्र समं दुहते ।

यमयोश्चित्र समा धीर्योणि

॥ १ ॥ श्रुती चित् सन्तौ न समं पृणीतः

॥ ९ ॥

॥ ३२९ ॥ (अथर्व० ३१४१-६)

महा । गोष्ठः, अहः, २ अर्यमा, पूषा, वृःस्पतिः, इन्द्रः,  
१-६ गावः, ५ गोष्ठय । अनुष्टुप्, ६ आर्या मिष्टुप् ।

सं यो गोष्ठेन सुपदा सं रय्या सं सुर्मत्या ।

॥ २ ॥ महर्जोतस्य यन्नाम् तेनां वः सं रजामसि ॥ १ ॥

सं यः सृजत्वयमा सं पूषा सं वृहस्पतिः ।

समिन्द्रो यो धनंजयो मयि पुष्यत् यद् वसु ॥ २ ॥

संजमाना अविभ्युषी रस्मिन् गोष्ठे करिषिणीः ।

॥ ३ ॥ विध्रतीः सोम्यं मध्वं नमीषा उपेतन ॥ ३ ॥

इहैव गावः पतन्ते हो शकैव पुष्यत ।

इहैवोत प्र जायध्वं मयि संज्ञानमस्तु वः ॥ ४ ॥

शियो यो गोष्ठो भवतु शारिशाकैव पुष्यत ।

॥ ५ ॥ इहैवोत प्र जायध्वं मयां वः सं रजामसि ॥ ५ ॥

मया गावो गोपतिना सचयं

अयं यो गोष्ठ इह पौषपिण्डः ।

रायस्योपेण बहुला भवन्तीः

॥ ५ ॥ जीवा जीयन्तीरुपे वः सदेम ॥ ६ ॥

॥ ३३० ॥ (अथर्व० ६।४९।३)

गार्ग्यः । अग्निः (अग्निरथः) । विराट् जगती ।

सुपर्णा चार्चमरुतोप चयि

आपरे कृष्णा इषिष भनर्तिपुः ।

॥ ६ ॥ नि यधियन्त्युपरस्य निष्कृति

पुरू रेतो दधिरे सूर्यधितः

॥ ३ ॥

इत्येकोनविंशति (१९) मन्त्राः तत्तद्विषये संप्रामाः ।

॥ ३३१ ॥ (चा० य० १२।१००)

दांशुपुष्यम् ।

दीर्घायुस्त ओपधे यनिता यस्मै च त्वा यनाम्यदम् ।

अथो त्वं दीर्घायुर्भूत्वा शतयवदश विरहिततात् ॥ १००

(१५१२)



॥ ३३२ ॥ ( या० य० ३४।५०-५१ ) दीर्घाण्यम् ।

आयुष्यं वर्चस्वम् सयस्योपमौर्द्ध्वम् ।

इदं हिरण्यं वर्चस्वम् जैत्रायाविशतादु माम् ५०

न तद् रक्षांसि न विंशचास्तरन्ति

देवानामोजः प्रथमजम् ह्येतत् ।

यो विभीतिं दाक्षायणम् हिरण्यम्

स देवेषु कृणुते दीर्घमायुः

स मनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः

॥ ५१ ॥

यदार्चधन् दाक्षायणा हिरण्यम्

शुतानीकाय सुमनस्यमानाः ।

तन्म आ वधामि शुतशारदाय

आयुष्माञ्जरद्विप्र्यथासम्

॥ ५२ ॥

॥ ३३३ ॥ ( अथर्व० २।३३।१-५ )

अथवा । अमि, १-३ बृहस्पति, ४-५ विश्वे देवा (दीर्घाण्युः

मार्तिः) । त्रिष्टुप्, ४ अनुष्टुप्, ६ विराद्वज्रगती ।

आयुर्वा अग्ने जरसं कृणुनो

घृतमेतीको घृतपृष्ठो अग्ने ।

घृतं पीत्वा मधु चारु गव्यं

पितेर्षं पुत्रानामि रक्षताविमम्

॥ १ ॥

परि धत्त धत्त नो वर्चसेमं

जरामृत्युं कृणुत दीर्घमायुः ।

बृहस्पतिः प्रार्यच्छद् वासं एतत्

सोमोऽपि रात्रौ परिधातुवा उ

परीदं वासी अधिथाः स्यस्तये

अमर्त्युष्टीनामभिदास्तिषा उ ।

शतं च जीवं शरदः पुरुची

रायश्च पोषमुपसंययस्व

॥ ३ ॥

पहादमानमा तिष्ठादमा भवतु ते तनूः ।

कृण्वन्तु विश्वे देवा आयुष्टे शरदः शतम्

॥ ४ ॥

यस्य ते वासः प्रथमयास्यः ।

होमस्ते त्वा विश्वेऽयन्तु देवाः ।

तं त्वा धातरः सुवृद्धा वर्धमानं

अनु जायतां वदयुः सुजातम्

॥ ५ ॥

॥ ३३४ ॥ ( ऋ० १०।८५।३१ )

सावित्री सूर्या ऋषिः । दम्पत्योर्वैश्वनाशनम् । अनुष्टुप् ।

ये धर्ष्यश्चन्द्रं वहतुं यक्ष्मा यन्ति जनादनु ।

पुनस्तान् युषिर्या देवा नयन्तु यत् आगताः ॥ ३१ ॥

॥ ३३५ ॥ ( ऋ० १०।१५५।१, ४ )

शिरीषिष्ठो मारदाग्रः । अलक्ष्मोऽग्रम् । अनुष्टुप् ।

अरायि काणे विकटे गिरि गच्छ सदान्वे ।

शिरीषिष्ठस्य सत्वमि—स्तेभिर्वा चातयामसि ॥ १ ॥

यद्वा प्राचीरजगन्तो—रं मण्डूरभाणिकीः ।

हुता इन्द्रस्य शर्मवः सर्वे शुद्धदयाशवः ॥ ४ ॥

॥ ३३६ ॥ ( ऋ० १०।१४५।४, ६ )

इन्द्राणी । सपरनीषावनम् ( उपनिषत् ) । ४ अनुष्टुप्, ६ पञ्चभिः ।

महस्या नामं गुणामि नो अस्मिन् रमते जने ।

परमेव परावर्तं सपत्नीं गमयामसि ॥ ४ ॥

उप तेऽध्वां सहमाना—ममि त्वाध्वां सह्ययसा ।

मामनु प्र ते मनो वृत्सं गौरिव धावतु

पथा वारिव धावतु ॥ ६ ॥

॥ ३३७ ॥ ( ऋ० १०।१६६।१-५ )

ऋषयो वैराज, ऋषयः शाकरो वा । सपत्न्यम् ।

अनुष्टुप्, ५ महापञ्चभिः ।

ऋषयं मा समानानां सपत्नानां विप्रासुहिम् ।

हन्तारं शर्मणां रुधि विराजं गोपतिं गवाम् ॥ १ ॥

अहमसि सपत्न्ये—न्द्र इवारिष्टो अहंतः ।

अथः सपत्नी मे पदो—रिमे सर्वे अभिष्टिताः ॥ २ ॥

अत्रैव वोऽपि नहा—भ्युभे आत्नी इव जयता ।

वाचस्पते नि पथेमान् यथा मदधरं वदान् ॥ ३ ॥

असिमरुहमामं विभ्वकमेण धात्रा ।

आ वर्धश्चिन्मा यो वृत्—मा वोऽहं समिति ददे ४

योगक्षेमं य आदाया—ऽहं भूयासमुत्तम

आ यो मूर्धानमकमीम् ।

अथस्पदान्म उद्वदत मण्डूका इयोदकान्

मण्डूका उद्वदति

॥ ५ ॥

( ३४० )



## औपधीनां राजा

# सोमः ।

॥ १ ॥ ( ऋ० ९।१।१-१० )

मनुजंश वैश्वामित्रः । पायनी ।

स्वादिष्टया मदिष्टया पर्वस्व सोम चारया ।

हन्द्राय पातवे सुतः ॥ १ ॥

रक्षोहा विश्वचरपणि रभि योनिमर्योहतम् ।

द्रुणां सुयस्युमासदत् ॥ २ ॥

घरिवोधातमो भव मंहिष्ठो वृत्रहन्तमः ।

परि राधो मुघोनाम् ॥ ३ ॥

अभ्यर्ष महानां देवानां योतिमन्वसा ।

अभि वाजेमुत अर्थः ॥ ४ ॥

त्वामच्छा चरामसि तदिदर्थं द्विवेदे ।

इन्द्रो त्वे न आशसः ॥ ५ ॥

पुनार्तिं ते परिस्रुतं सोमं सूर्यस्य दुहिता ।

वारिण शश्वता तना ॥ ६ ॥

तमीमण्वीः समर्यं वा गृणन्ति योषणो दश ।

स्वसाः पार्ये द्विधि ॥ ७ ॥

तमीं द्विगन्त्यप्रुवो धमन्ति वाकुरं दतिम् ।

त्रिधातुं वारुणं मधु ॥ ८ ॥

अमींममज्या उत श्रीणन्ति घेनसः शिशुम् ।

सोममिन्द्राय पातवे ॥ ९ ॥

अस्येदिन्द्रो मदेष्वा विश्वा वृत्राणि जिघ्रते ।

शूरो मया च मंहते ॥ १० ॥

॥ २ ॥ ( ऋ० ९।१।१-१० )

भेषातिथिः काण्डः ।

पर्वस्व देववीरते पवित्रं सोम रक्षा ।

इन्द्रमिन्द्रो वृषा विश ॥ १ ॥

आ वच्यस्व महि प्सरो धृपेन्द्रो घृन्नयत्तमः ।

आ योनिं धर्णसिः सदः ॥ २ ॥

अधुस्त प्रियं मधु चारं सुतस्य वेषसः ।

अपो वसिष्ठ सुक्रतुः ॥ ३ ॥

महान्तं त्वा मुहीरन्वापो अर्पन्ति सिन्धवः ।

यद्रोभिर्वासिप्यसे ॥ ४ ॥

समुद्रो अप्सु मांमृजे विष्टम्भो धरुणो दिवः ।

सोमः पवित्रं अस्मयुः ॥ ५ ॥

अचिक्रद्व वृषा हरिर्महान् मित्रो न दंशतः ।

सं सूर्येण रोचते ॥ ६ ॥

गिरस्त इन्द्र ओजसा मर्मज्यन्ते अप्सयुवः ।

याभिर्मदाय शुर्मसे ॥ ७ ॥

तं त्वा मदाय घृष्यथ उ लोककृतुमीमहे ।  
 तव प्रशस्तयो महीः ॥ ८ ॥  
 असभ्यमिन्द्रविन्दयु—मर्ध्वः पवस्व धारया ।  
 पर्जन्यो घृष्टिमाँ इव ॥ ९ ॥  
 गोपा इन्दो नृपा अ—स्यभ्यसा वाजसा उत ।  
 आत्मा युक्षस्य पुष्यः ॥ १० ॥  
 ॥ ३ ॥ ( ऋ० ९।३।१-१० )  
 आनीपतिः शुन.रोपः, वृथिमो वैशामित्रो देवरातः ।  
 एष देवो अमर्त्यः पर्णधारिव दीयति ।  
 अमि द्रोणान्यासदम् ॥ १ ॥  
 एष देवो विपा कृतो ऽति हरोसि धावति ।  
 पर्वमानो अदाभ्यः ॥ २ ॥  
 एष देवो विपुन्युभिः पर्वमान ऋतायुभिः ।  
 हरियाजाय मृज्यते ॥ ३ ॥  
 एष विभ्यानि धार्या शूरो यमिव सत्त्वभिः ।  
 पर्वमानः सिपासति ॥ ४ ॥  
 एष देवो रथर्यति पर्वमानो दशस्यति ।  
 आविष्टणोति वग्नुम् ॥ ५ ॥  
 एष धिर्मभिर्दुतो ऽपो देवो वि ग्राहते ।  
 दधद् रत्नानि दाशुषे ॥ ६ ॥  
 एष दिष्टं वि धायति तिरो रजांसि धारया ।  
 पर्वमानः कर्त्तृकदत् ॥ ७ ॥  
 एष दिष्टं व्यासेरत् तिरो रजांस्यस्पृष्टः ।  
 पर्वमानः न्यग्रुरः ॥ ८ ॥  
 एष प्रलेन जर्मना देवो देवेभ्यः सुतः ।  
 हरिः पयिर्न अर्पति ॥ ९ ॥  
 एष वृ स्य पुंरुग्रतो जम्रानो जनयतिर्यः ।  
 भारया पयने सुतः ॥ १० ॥  
 ॥ ४ ॥ ( ऋ० ९।४।१-१० )  
 शिखरपुत्र आत्रिणः ।  
 लनां च सोम जेयि न पर्वमान महि धर्यः ।  
 अथा नो वस्यसररधि ॥ १ ॥

सना ज्योतिः सना स्व—विभ्या च सोम सौमगा ।  
 अथा नो वस्यसररधि ॥ २ ॥  
 सना दक्षमुत क्रतु—मर्ष सोम मृधो जहि ।  
 अथा नो वस्यसररधि ॥ ३ ॥  
 पर्वातारः पुनीतन सोममिन्द्राय पातये ।  
 अथा नो वस्यसररधि ॥ ४ ॥  
 त्वं सूर्ये न आ भञ्ज तव क्रत्वा तवोतिभिः ।  
 अथा नो वस्यसररधि ॥ ५ ॥  
 तव क्रत्वा तवोतिभि—ज्योक् पश्येम सूर्यम् ।  
 अथा नो वस्यसररधि ॥ ६ ॥  
 अभ्यर्ष स्वायुध सोम द्वियहंसं रयिम् ।  
 अथा नो वस्यसररधि ॥ ७ ॥  
 अभ्यर्पणपच्युतो रयिं समस्तु सासहिः ।  
 अथा नो वस्यसररधि ॥ ८ ॥  
 त्वां यक्षैर्वीवृधन् पर्वमान विधर्मणि ।  
 अथा नो वस्यसररधि ॥ ९ ॥  
 रयिं नक्षत्रमभ्यन—मिन्दो विभ्यायुमा भंर ।  
 अथा नो वस्यसररधि ॥ १० ॥  
 ॥ ५ ॥ ( ऋ० ९।५।१-९ )  
 अशितः काश्यपो देवलो वा ।  
 मन्द्रया सोम धारया धृषा पवस्य देवयुः ।  
 अभ्यो धारैर्यस्मयुः ॥ १ ॥  
 अमि त्वं मद्यं मद—मिन्द्रविन्द्र इति क्षर ।  
 अमि पाजिनो अर्यतः ॥ २ ॥  
 अमि त्वं पुष्यं मर्दं सुयानो अर्प पयिश्च आ ।  
 अमि पाजमुत अर्यः ॥ ३ ॥  
 अर्जुं द्रुप्तासं इन्द्रं आपो न प्रयतासरत् ।  
 पुनाना इन्द्रमाशत ॥ ४ ॥  
 यमर्त्यमिव पाजिर्न मृजन्ति योर्यजां दश ।  
 यने मीळन्तुमर्त्ययिम् ॥ ५ ॥  
 तं गोमिर्वृषणं रवं मदाय वेपथीतये ।  
 सुनं मदाय सं रञ्ज ॥ ६ ॥

देवो देवाय धारयेन्द्राय पवते सुतः ।  
 पयो यदस्य पीपयत् ॥ ७ ॥  
 आत्मा यत्तस्य रंहा सुष्वाणः पवते सुतः ।  
 प्रहं नि पाति काव्यम् ॥ ८ ॥  
 पया पुनान इन्द्रयु-मदै मदिष्ठ वीतर्यै ।  
 शुहो चिद् दधिये गिरः ॥ ९ ॥  
 ॥ ६ ॥ ( ऋ० १।७।१-९ )

असुप्रमिन्दवः पथा धर्मैश्चतस्य सुधियः ।  
 विद्वाना अस्य योजनम् ॥ १ ॥  
 प्र धारा मध्वो अग्रियो महीरपो वि गाहते ।  
 हविर्हविष्यु घन्धः ॥ २ ॥  
 प्र युजो धावो अग्रियो वृषाव चक्रवद् घनै ।  
 सप्रामि स्रयो अश्वरः ॥ ३ ॥  
 परि यत् काव्या कवि-नुम्णा वसानो अपैति ।  
 स्वर्वाजी सिपासति ॥ ४ ॥  
 परमानो अमि स्पृधो विशो राजैष सीदति ।  
 यद्विमृशन्ति वेधसः ॥ ५ ॥  
 अग्नो वारे परि प्रियो हरिर्वनेषु सीदति ।  
 रेभो बनुष्यते मती ॥ ६ ॥  
 स वायुमिन्द्रमश्विनां साकं मदेन गच्छति ।  
 रणा यो अस्य धर्मभिः ॥ ७ ॥  
 आ मिश्रावर्णो मगं मध्वः पवन्त ऊर्मयः ।  
 विद्वाना अस्य शर्मभिः ॥ ८ ॥  
 असम्य रोदसी रयि मध्वो वार्जस्य सातर्यै ।  
 अयो वसन्ति सं जितम् ॥ ९ ॥

॥ ७ ॥ ( ऋ० १।८।१-९ )

पूते सोमा अमि प्रिय-मिन्द्रस्य काममक्षरम् ।  
 यधन्तो अस्य धीर्यम् ॥ १ ॥  
 पुनानासंधमुपदो गच्छन्तो वायुमश्विनां ।  
 ते नो धान्तु सुधीर्यम् ॥ २ ॥

इन्द्रस्य सोम राधसे पुनानो हार्दि चोदय ।  
 ऋतस्य योनिमासदम् ॥ ३ ॥  
 मृजन्ति त्वा दश क्षिपो द्विन्वन्ति सप्त धीतर्यः ।  
 अनु विप्रा अमादिपुः ॥ ४ ॥  
 देवेभ्यस्त्वा मदाय कं सज्जानमति मेप्यः ।  
 सं गोभिर्वासियामसि ॥ ५ ॥  
 पुनानः कलशेष्वा वस्त्राण्यरुनो हरिः ।  
 परि गव्यान्वव्यत ॥ ६ ॥  
 मघोन आ पवस्व नो जहि विश्वा अप द्विपः ।  
 इन्द्रो सखायमा विंश ॥ ७ ॥  
 वृष्टिं दिवः परि स्रय युग्मं पृथिव्या अधि ।  
 सहो नः सोम पृत्तु धाः ॥ ८ ॥  
 नृचक्षंसं त्वा वय-मिन्द्रपीतं स्वर्विदम् ।  
 भूमीमहि प्रजामिपम् ॥ ९ ॥

॥ ८ ॥ ( ऋ० १।९।१-९ )

परि प्रिया दिवः कवि-र्ययसि नृप्योहितः ।  
 सुधानो पाति कधिकतुः ॥ १ ॥  
 प्रम स्याय पन्यसे जनाय जुष्टो अद्रुहै ।  
 वीत्यर्प चर्निष्ठया ॥ २ ॥  
 स सुनुर्मतय शुचि-जातो जाते अरोचयत् ।  
 महान् मही ऋतावृषा ॥ ३ ॥  
 स सप्त धीतिभिर्हितो नृपो अजिन्यद्वुहः ।  
 वा एकमक्षि वायुपुः ॥ ४ ॥  
 ता अमि सन्तमस्त्वतं महे युयानमा दधुः ।  
 इन्दुमिन्द्र तव्यं यते ॥ ५ ॥  
 अमि वहिर्मर्त्याः सप्त पदयति वार्यदिः ।  
 किर्विद्वीरतपयत् ॥ ६ ॥  
 अग्न कल्पेषु नः पुम-स्तमांसि सोम योध्या ।  
 तानि पुनान जहघनः ॥ ७ ॥  
 नृ नव्यसे नवीयसे सुकायं साधया पृथः ।  
 प्रतनवद् राचया रचः ॥ ८ ॥

पर्वमान महि श्रवो गामश्वं रासि वीस्वत् ।  
सना मेधां सना स्वः ॥ ९ ॥

॥ ९ ॥ (अ० ९।१०।१-९)

॥ स्वानासो रथा इवा—ऽर्वन्तो न श्रवस्वयः ।  
सोमासो राये अंकमुः ॥ १ ॥  
हिन्वानासो रथा इव दधन्विरे गर्भस्त्योः ।  
भरांसः कारिणामिव ॥ २ ॥  
राजानो न प्रशस्तिभिः सोमासो गोभिर्रज्जते ।  
यज्ञो न सत धातुभिः ॥ ३ ॥  
परि सुवानास इन्धवो मदाय वर्हणां गिरा ।  
सुता अर्पन्ति धारया ॥ ४ ॥  
आपानासो विवस्वतो अनन्त उपसो भगम् ।  
सुरा अण्वं वि तन्वते ॥ ५ ॥  
अप ठागं मतीनां प्रत्ना ऋण्यन्ति कारयः ।  
घृष्णो हरस आयवः ॥ ६ ॥  
समीचीनास आसते होतारः सतजामयः ।  
पुद्मेकस्य पिप्रतः ॥ ७ ॥  
नामा नाभि न आ ददे चक्षुश्चित् सयें सचा ।  
फ्येत्पत्यमा दुहे ॥ ८ ॥  
अभि प्रिया दिवस्पदा—मंश्रुमिशुंदाहितम् ।  
सूरः पश्यति चक्षसा ॥ ९ ॥

॥ १० ॥ (अ० ९।११।१-९)

उपास्मै गायता नरः पर्वमानायेन्धवे ।  
अभि देवा इयंस्तते ॥ १ ॥  
अभि ते मर्षना पयो ऽर्धवाणो अशिथयुः ।  
देपं देवार्यं देवयु ॥ २ ॥  
न नः पश्य सं गये सं जनाय शमयेत ।  
न गन्तव्योर्धन्यः ॥ ३ ॥  
पृथ्वे नु ग्यमंयसे ऽरुणाय दिवस्पदा ।  
सोमाय गायमंयत ॥ ४ ॥

हस्तच्युतेभिरद्रिभिः सुतं सोमं पुनीतन ।  
मघावा धावता मर्षु ॥ ५ ॥  
नमसेदुर्प सीदत दध्नेदभि श्रीणीतन ।  
इन्दुमिन्द्रे दधातन ॥ ६ ॥  
अमित्रहा विचर्षणिः पर्वस्व सोमं शं गवे ।  
देवेभ्यो अनुकामकृत् ॥ ७ ॥  
इन्द्राय सोमं पार्तवे मदाय परि पिच्यसे ।  
मनुश्चिन्मनस्स्पतिः ॥ ८ ॥  
पर्वमान सुवीर्यं रयि सोमं रिरीहि नः ।  
इन्दुविन्द्रेण नो युजा ॥ ९ ॥

॥ ११ ॥ (अ० ९।१२।१-९)

सोमां असृष्टमिन्द्रवः सुता ऋतस्य सार्दने ।  
इन्द्राय मर्षुमत्तमाः ॥ १ ॥  
अभि विप्रा अनूपत गार्धो वृत्सं न मातरः ।  
इन्द्रं सोमस्य पीतये ॥ २ ॥  
मदच्युत क्षेति सार्दने सिन्धोरुर्मा विपश्चित् ।  
सोमो गौरी अर्धे धितः ॥ ३ ॥  
दियो नामा विचक्षणो ऽव्यो धारं महीयते ।  
सोमो यः सृकतुः कृचिः ॥ ४ ॥  
यः सोमः कुलशेष्यो अन्तः पविश आदितः ।  
तमिन्द्रः परि पश्यजे ॥ ५ ॥  
प्र याचमिन्दुरिष्यति समुद्रस्याधि विष्टिं ।  
जिन्यन् कोर्षं मघुर्हृतम् ॥ ६ ॥  
नित्यस्तोत्रो वनस्पति—र्धनामन्तः संपदुर्धः ।  
हिन्वानो मानुषा युगा ॥ ७ ॥  
अभि प्रिया दिवस्पदा सोमो हिन्वानो अर्पति ।  
विप्रस्य धारया कृचिः ॥ ८ ॥  
आ पर्वमान धारय रयि सृष्ट्यर्चयसम् ।  
असो इन्दो स्याभ्यर्षम् ॥ ९ ॥

(॥ १९ ॥ अ० ९।११।१-९)

सोमः पुनानो अर्पति सहस्रपातो अत्यविः ।  
 वायोरिन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ १ ॥  
 पर्वमानमवस्यथो विप्रमभि प्र गायत ।  
 सुध्याणं देववीतये ॥ २ ॥  
 पर्वन्ते वाजसातये सोमाः सहस्रपाजसः ।  
 गुणाना देववीतये ॥ ३ ॥  
 उत नो वाजसातये पर्वस्य बृहतीरियः ।  
 धुमर्दिन्द्रो सुवीर्यम् ॥ ४ ॥  
 ते नः सहस्रिणो रयि पर्वन्तामा सुवीर्यम् ।  
 सुवाना देवास इन्द्रवः ॥ ५ ॥  
 अथा हियाना न हेतुमि रस्यं वाजसातये ।  
 वि वारमर्धमाशवः ॥ ६ ॥  
 याधा अर्पन्तीन्द्रो ऽभि घत्सं न धेनवः ।  
 दधन्विरे गर्भस्त्योः ॥ ७ ॥  
 हृष्ट इन्द्राय मत्सरः पर्वमान कर्निकदव ।  
 विश्वा अप द्विपो जहि ॥ ८ ॥  
 अपमन्तो अरावणः पर्वमानाः स्वर्देशः ।  
 योनावृतस्य सीदत ॥ ९ ॥

(॥ १३ ॥ (अ० ९।१४।१-८)

परि प्रालिप्यदत् कुविः सिन्ध्वैरुर्मावधि श्रितः ।  
 कारं विभ्रव पुरुषपृष्ठम् ॥ १ ॥  
 गिरा यदी सयन्धवः पञ्च वाता अपस्यवः ।  
 परिष्कृण्वन्ति धर्णसिम् ॥ २ ॥  
 आदस्य शुष्मिणो रसे विश्वे देवा अमत्सत ।  
 यदी गोमिधसायते ॥ ३ ॥  
 निरिणानो वि धावति जहृच्छयीणि तान्वा ।  
 अत्रा सं जिघ्रते युजा ॥ ४ ॥  
 नतीभिर्यो विपस्वतः शुश्रो न मांमृजे युवा ।  
 गाः कृण्वानो न निर्णिजम् ॥ ५ ॥

अति द्विती तिरुध्वता गन्धा जिगात्यन्ध्या ।  
 वग्नुमियति यं विदे ॥ ६ ॥  
 अभि क्षिपः समम्मत मर्जयन्तीरिपस्पतिम् ।  
 पुष्टा गणत वाजिनः ॥ ७ ॥  
 परि विव्यानि मर्मुशद विश्वानि सोम पाथिवा ।  
 वसुनि याहास्मयुः ॥ ८ ॥

(॥ १४ ॥ (अ० ९।१५।१-८)

एष धिया यात्यन्ध्या शरो रथमिणशुभिः ।  
 गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ १ ॥  
 एष पुरु धियायते बृहते देवतातये ।  
 यथा मृतासु आसते ॥ २ ॥  
 एष हितो वि नीयते ऽन्तः शुभ्राचता पथा ।  
 यदी तुजजस्ति भूणयः ॥ ३ ॥  
 एष शृङ्गाणि दोषव च्छिदीति युध्योः वृषा ।  
 नृम्णा दधान ओजसा ॥ ४ ॥  
 एष शुन्मिर्मिरीयते याजी शुभ्रेर्मिरुग्भिः ।  
 पतिः सिन्ध्वानां भवन् ॥ ५ ॥  
 एष वसुनि पिबुना पर्वपा ययिवा अति ।  
 अथ शार्दियु गच्छति ॥ ६ ॥

एतं मृजन्ति मर्ज्यमुप द्रोणेष्वायवः ।  
 प्रचक्राणं महीरियः ॥ ७ ॥  
 एतमु त्वं दश क्षिपो मृजन्ति सप्त धीतर्यः ।  
 स्वायुधं मदिर्नामम् ॥ ८ ॥

(॥ १५ ॥ (अ० ९।१६।१-८)

प्र ते सोतारं ओण्योः रसं मदाय धृष्ये ।  
 सगो न तस्म्येतदशः ॥ १ ॥  
 कृत्वा दक्षस्य रथ्यं मपो वसानमन्धसा ।  
 गोपामर्षेषु सन्धिम ॥ २ ॥  
 अनसमप्स दुष्टं सोमं पवित्र आ रज ।  
 पुनीहीन्द्राय पार्तवे ॥ ३ ॥

प्र पुनानस्य चेतसा सोमः पवित्रे अर्पति ।  
 क्रत्वा सुधस्यमासदत् ॥ ४ ॥  
 प्र त्या नमोमिरिन्दव इन्द्र सोमां असृक्षत ।  
 महे भराय कारिणः ॥ ५ ॥  
 पुनानो रूपे अव्यये विश्वा अर्पन्नामि धियः ।  
 शरो न गोषु तिष्ठति ॥ ६ ॥  
 दिवो न सातु पिप्युषी धारा सुतस्य वेधसः ।  
 वृषा पवित्रे अर्पति ॥ ७ ॥  
 त्वं सोम विपश्चितं तना पुनान आयुषु ।  
 अव्यो वारं वि धावसि ॥ ८ ॥

॥ १६ ॥ (ऋ० १।१७।१-८)

म निस्तेनैव सिन्धवो प्रन्तो वृक्षाणि भूर्णयः ।  
 सोमो अग्रमाशयः ॥ १ ॥  
 धमि सुयानास इन्द्रो वृष्टयः पृथिवीमिव ।  
 इन्द्रं सोमासो अक्षरन् ॥ २ ॥  
 धत्तुर्मिर्मस्तरो मद्रः सोमः पवित्रे अर्पति ।  
 विघ्नन् रक्षांसि देवयुः ॥ ३ ॥  
 आ कुलशेषु धावति पवित्रे परि पिच्यते ।  
 उक्थयंसेषु यधते ॥ ४ ॥  
 अति श्री सोम रोचना रोद्रन् न भ्राजसे दिवम् ।  
 इष्णमर्युं न चोदयः ॥ ५ ॥  
 अमि विम्रा धनूपत मूधन् यज्ञस्य कारवः ।  
 दधानाश्चक्षुसि प्रियम् ॥ ६ ॥  
 तमुं त्या याजिनं नरो धीमिर्विम्रा अयस्यवः ।  
 मुज्जति देयतातये ॥ ७ ॥  
 मयोर्धारागन्तु क्षर तोमः सधस्यमासदः ।  
 पारभ्रंताय वीतये ॥ ८ ॥

॥ १७ ॥ (ऋ० १।१८।१-७)

परि सुयानो गिरिष्ठाः पवित्रे मोमो अक्षाः ।  
 मदैषु सर्वधा अंसि ॥ १ ॥

त्वं विप्रस्त्वं कविर्मधु प्र जातमन्वसः ।  
 मदैषु सर्वधा अंसि ॥ २ ॥  
 तव विश्वे सुजोपसो देवासः पातिमाशत ।  
 मदैषु सर्वधा अंसि ॥ ३ ॥  
 आ यो विश्वानि वार्या वसन्ति हस्तयोर्द्वे ।  
 मदैषु सर्वधा अंसि ॥ ४ ॥  
 य इमे रोदसी मही सं मातरैव दोहते ।  
 मदैषु सर्वधा अंसि ॥ ५ ॥  
 परि यो रोदसी उभे सुयो वाजैभिरर्पति ।  
 मदैषु सर्वधा अंसि ॥ ६ ॥  
 स शुष्मी कुलशेष्वा पुनानो अचिक्रवत् ।  
 मदैषु सर्वधा अंसि ॥ ७ ॥

॥ १८ ॥ (ऋ० १।१९।१-७)

यत् सोम चित्रमुत्थं विव्यं पार्थिवं वसु ।  
 तन्नः पुनान आ भर ॥ १ ॥  
 युयं हि स्वः स्वर्पती इन्द्रश्च सोम गोपती ।  
 ईशाना पिप्यतं धियः ॥ २ ॥  
 वृषा पुनान आयुषु स्तनयक्षधि बर्हिषि ।  
 हरिः सन् योनिमासदत् ॥ ३ ॥  
 अवार्यशान्त धीतयो वृषभस्याधि रेतसि ।  
 सुनोर्वत्सस्य मातरः ॥ ४ ॥  
 कुविद्र वृषण्यन्तर्भ्यः पुनानो गर्भमादधत् ।  
 याः शुक्रं दुहते पर्यः ॥ ५ ॥  
 उपे शिक्षापतस्त्रयो मियसुमा धेहि शत्रुषु ।  
 पवमान विदा रुयम् ॥ ६ ॥  
 नि शत्रोः सोम वृष्ण्यं नि शुक्रं नि ययस्तिर ।  
 दूरे वा सतो अन्ति वा ॥ ७ ॥

॥ १९ ॥ (ऋ० १।२०।१-७)

प्र कविर्देवर्षीतये ऽव्यो पारैभिरर्पति ।  
 सादान् विश्वा अमि सृष्टः ॥ १ ॥

स हि सोमो जरितुभ्य आ वाजं गोमन्तमिन्वति ।  
 पर्वमानः सहस्रिणम् ॥ २ ॥  
 परि विश्वानि चेतसा मुशसे पर्वसे मती ।  
 स नः सोम श्रवो विदः ॥ ३ ॥  
 अम्यपं बृहद् यशो मध्वद्भयो ध्रुवं रयिम् ।  
 इयं स्तोतुभ्य आ मेर ॥ ४ ॥  
 त्वं राजेव सुप्रतो गिरः सोमा विवेदिष्य ।  
 पुनानो वंदे अद्भुत ॥ ५ ॥  
 स वहिरप्सु वृष्टो मृत्यमानो गर्भस्थोः ।  
 सोमश्चमृतुं सीदति ॥ ६ ॥  
 क्रीळुर्मधो न मेदयुः पवित्रं सोम गच्छसि ।  
 वधत् स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ ७ ॥

॥ २० ॥ ( क्र० ९।२१।१-७ )

पुते धावन्तीन्दवः सोमा इन्द्राय घृष्वयः ।  
 मत्सुरासः स्वविदः ॥ १ ॥  
 प्रवृष्वन्तो अभियुजः सुष्वये चरिवोविदः ।  
 स्वयं स्तोत्रे वयस्सहतेः ॥ २ ॥  
 वृष्या क्रीळन्त इन्दवः सुधस्यमभ्येकमिम् ।  
 सिन्धोर्होर्मा व्यस्रन् ॥ ३ ॥  
 पुते विश्वानि धार्या पर्वमानास आशत ।  
 हिता न सप्तयो रये ॥ ४ ॥  
 आस्मिन् पिशङ्गमिन्दवो वधाता येनमादिशे ।  
 यो असम्यमराया ॥ ५ ॥  
 क्रमुर्न रय्यं नवं वधाता केतमादिशे ।  
 शुक्राः पवस्वमर्षसा ॥ ६ ॥  
 पुत उ त्पे अवीयशन् काष्ठां घाजिनो अकत ।  
 सतः प्रासाविपुर्मैतिम् ॥ ७ ॥

॥ २१ ॥ ( क्र० ९।२१।१-७ )

पुते सोमास आशवो रथा इव प्र घाजिनः ।  
 सर्गाः सृष्टा अहेपत ॥ १ ॥

पुते वार्ता इवोरवः पुर्जन्यस्येव वृष्टयः ।  
 अग्नेरैव अमा वृथा ॥ २ ॥  
 पुते पुता विपश्चितः सोमासो दध्याशिरः ।  
 विपा व्यानशुर्धियः ॥ ३ ॥  
 पुते मृष्टा अमर्त्याः ससृवांसो न शोधुमः ।  
 इयंसन्तः पथो रजः ॥ ४ ॥  
 पुते पृष्ठानि रोदंसो विप्रयन्तो व्यानशुः ।  
 उतेदमुत्तमं रजः ॥ ५ ॥  
 तन्तुं तन्वानमुत्तमं मनु प्रवत आशत ।  
 उतेदमुत्तमार्थम् ॥ ६ ॥  
 त्वं सोम पुणिभ्य आ यसु गध्यानि धारय ।  
 ततं तन्तुमचिक्रदः ॥ ७ ॥

॥ २२ ॥ ( क्र० ९।२१।१-७ )

सोमा असुप्रमाशवो मधोर्मेदस्य धारया ।  
 अभि विश्वानि काव्या ॥ १ ॥  
 अतुं प्रत्तास आयवः पवं नवीयो अक्रमुः ।  
 रुचे जनन्त सुयैम् ॥ २ ॥  
 आ पर्वमान नो भय—ऽयो अवाशुपो गर्भम् ।  
 कृधि प्रजावर्तोरिपः ॥ ३ ॥  
 अभि सोमास आयवः पर्वन्ते मद्यं सर्वम् ।  
 अभि कोशं मधुक्षुतेम् ॥ ४ ॥  
 सोमो अर्पति धर्णसि—र्धर्धान इन्द्रियं रसम् ।  
 सुवीरो अभिशस्तिपाः ॥ ५ ॥  
 इन्द्राय सोम पवसे देवेभ्यः सधुमार्धः ।  
 इन्द्रो वाजं सिपाससि ॥ ६ ॥  
 अस्य पीत्वा मदाना—मिन्द्रो वृत्राप्यप्रति ।  
 जघान जघनं च तु ॥ ७ ॥

॥ २३ ॥ ( क्र० ९।२१।१-७ )

प्र सोमासो अयन्विपुः पर्वमानास इन्दवः ।  
 भीषाना अप्सु मृजव ॥ १ ॥



अभि गावो अधन्यपु—रापो न प्रयता यतीः ।

पुनाना इन्द्रमाशत ॥ २ ॥

प्र पवमान धन्यसि सोमेन्द्राय पारतवे ।

नृमिर्यतो वि नीयसे ॥ ३ ॥

त्वं सोम नमार्दनः पर्यस्य चपणोसदे ।

सस्त्रियो अनुमार्द्यः ॥ ४ ॥

इन्द्रो यदद्रिभिः सुतः पवित्रं परिधायसि ।

अमिन्द्रस्य धात्रे ॥ ५ ॥

पर्वस्य धृत्रहन्तमो—क्येभिरनुमार्द्यः ।

शुचिः पावको अद्भुतः ॥ ६ ॥

शुचिः पावक उच्यते सोमं सुतस्य मर्धः ।

देवावीर्यशंसुहा ॥ ७ ॥

( ॥ २४ ॥ ऋ० १।१५।१-६ )

दृढश्च्युत आगस्त्य ।

पर्वस्य दक्षसाधनो देवेभ्यः पीतये हरे ।

मरुद्गयो वायवे मर्दः ॥ १ ॥

पर्वमान धिया हितोऽभि योनिं कनिक्कदत् ।

धर्मेणा वायुमा विश ॥ २ ॥

सं देवैः शोभते वृषा कथियोनावधि प्रियाः ।

धृत्रहा देववीर्तमः ॥ ३ ॥

विश्वा रूपाण्याविशन् पुनानो याति हयतः ।

यत्रामृतास आसते ॥ ४ ॥

अह्यो जनयन् गिरः सोमः पयत आयुष्क ।

इन्द्रं गच्छन् कविकर्तुः ॥ ५ ॥

आ पवस्य मदिन्तम पवित्रं धारया कवे ।

अकस्य योनिमासदम् ॥ ६ ॥

॥ २६ ॥ ( ऋ० १।२६।१-६ )

इष्यवाहो दाढश्च्युत ।

तमेमृशन्त घाजिनं—मुपस्थे अदितेरधि ।

विप्रोसो अण्व्या धिया ॥ १ ॥

त गावो अम्यनूपत सहस्रपारमक्षितम् ।

इन्दुं प्रतीरमा विषः ॥ २ ॥

तं घेधां मेघयागुन् पर्यमानमधि धयि ।

धूर्णसि भूरिधायसम् ॥ ३ ॥

तमैरान् भुरिर्जोर्धिया संपसन् विपस्वतः ।

पतिं याचो अदाभ्यम् ॥ ४ ॥

तं सानावधि जामयो हरिं हिन्वत्यद्रिभिः ।

हयतं भूरिचक्षसम् ॥ ५ ॥

तं त्वां हिन्वन्ति वेधसः पर्यमान गिरावृधम् ।

इन्द्रविन्द्राय मत्सुरम् ॥ ६ ॥

॥ २६ ॥ ( ऋ० १।२७।१-६ )

श्रमेण आगिरस ।

एष कविरभिष्टुतः पवित्रे अधि तोशते ।

पुनानो म्रशपु सिधः ॥ १ ॥

एष इन्द्राय वायवे स्वर्जित् परि पिच्यते ।

पवित्रे दक्षसाधनः ॥ २ ॥

एष नृमिर्वि नीयते विप्रो मुर्धा वृषा सुत ।

सोमो वनेषु विश्वयित् ॥ ३ ॥

एष गुन्युरचिकदत् पर्यमानो हिरण्ययुः ।

इन्दुं सत्राजिदस्वतः ॥ ४ ॥

एष सूर्येण हासते पर्वमानो अधि धयि ।

पवित्रे मत्सुरो मर्द ॥ ५ ॥

एष शुष्पसिष्यद—दन्तरिक्षे वृषा हरिः ।

पुनान इन्दुरिन्द्रमा ॥ ६ ॥

॥ २७ ॥ ( ऋ० १।२८।१-६ )

श्रियमेध आगिरस ।

एष वाजी हितो नृभि—र्विश्वचिन्मनसस्पतिः ।

अन्यो वार वि धावति ॥ १ ॥

एष पवित्रे अक्षरत् सोमो देवेभ्यः सुतः ।

विश्या धामान्याविशन् ॥ २ ॥

एष देवः शुभायते—ऽधि योनावमर्त्यः ।

धृत्रहा देववीर्तमः ॥ ३ ॥

एष वृषा कनिक्कदत् दशभिर्जामिर्निर्यतः ।

अभि द्रोणानि धावति ॥ ४ ॥

एष सूर्यमरोचयत् पर्वमानो विचर्षणिः ।  
 विश्वा धामानि विश्ववित् ॥ ५ ॥  
 एष शुष्यदाभ्यः सोमः पुनानो अर्पति ।  
 देवावीर्यशंसहा ॥ ६ ॥  
 ॥ १८ ॥ ( अ० १।१९।१-६ )  
 वृषेय आजिषः ।  
 प्रास्य धारा अक्षरन् वृष्णः सुतस्याजसा ।  
 देवां अनु प्रभूयतः ॥ १ ॥  
 ससिं मृजन्ति वेधसो गृणन्तः कारवो गिरा ।  
 ज्योतिर्जज्ञानमुनश्चर्यम् ॥ २ ॥  
 सुपहा सोम तानि ते पुनानाय प्रभूयो ।  
 यथा समुद्रमुदथ्यम् ॥ ३ ॥  
 विश्वा वसन्ति संजयन् पर्वस्य सोम धारया ।  
 इव देवांसि स्रथ्यक् ॥ ४ ॥  
 रक्षा सु नो अरुणः स्युनात् संमस्य कस्य चित् ।  
 निदो यत्र मुमुक्षहे ॥ ५ ॥  
 एन्द्रो पार्थिवं रयि दिव्यं पयस्य धारया ।  
 घुमन्तं शुष्ममा भर ॥ ६ ॥  
 ॥ १९ ॥ ( अ० १।३०।१-६ )  
 विन्दुराङ्गिरसः ।  
 प्र धारा अस्य शुष्मिणो घृथा पवित्रे अक्षरन् ।  
 पुनानो चार्चमिष्यति ॥ १ ॥  
 इन्दुर्दियानः सोतुर्मि मृज्यमानः कर्तिकदत् ।  
 इयति घुमर्मिन्द्रियम् ॥ २ ॥  
 आ नः शुष्मं नृपाय वीरयन्तं पुरस्पृहम् ।  
 पर्वस्य सोम धारया ॥ ३ ॥  
 प्र सोमो यति धारया पर्वमानो असिष्यदत् ।  
 अग्नि द्रोणांन्यासदम् ॥ ४ ॥  
 सन्तु त्या मधुमत्तमं हारिं हिन्वन्त्यद्रिभिः ।  
 इन्दुमिन्द्राय वीनये ॥ ५ ॥  
 सुनोता मधुमत्तमं सोममिन्द्राय शुञ्जिषे ।  
 चारुं शशीय मत्सरम् ॥ ६ ॥

॥ ३० ॥ ( अ० १।३१।१-६ )  
 गोतमो राहुगणः ।  
 प्र सोमांसः स्वाध्यः पर्वमानासो अक्रमुः ।  
 रयि हृण्वन्ति चेतनम् ॥ १ ॥  
 दिवस्पृथिव्या अधि भवेन्दो घुम्वधनः ।  
 भवा यार्जानां पतिः ॥ २ ॥  
 तुभ्यं वार्ता अभिप्रिय-स्तुभ्यमर्पन्ति सिन्धवः ।  
 सोमं वर्धन्ति ते मर्हः ॥ ३ ॥  
 आ प्यायस्य समेतु ते विश्वतः सोम घृण्यम् ।  
 भवा यार्जस्य संगये ॥ ४ ॥  
 तुभ्यं गावो घृतं पयो यन्त्रो दुदुहे अक्षितम् ।  
 ययिष्ठे अधि सान्वि ॥ ५ ॥  
 स्वायुधस्य ते सुतो भुवर्नस्य पते ध्यम् ।  
 इन्द्रो सणित्वमुद्रमसि ॥ ६ ॥  
 ॥ ३१ ॥ ( अ० १।३२।१-६ )  
 दशवाथ आश्वेयः ।  
 प्र सोमांसो मदच्युतः अयंस नो मुघोर्नः ।  
 सुता विदधे अक्रमुः ॥ १ ॥  
 आदौ त्रितस्य योषणो हारिं हिन्वन्त्यद्रिभिः ।  
 इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥ २ ॥  
 आदौ हंसो यथा गुणं विश्वस्यायीषशमृतिम् ।  
 अत्यो न गोभिरज्यते ॥ ३ ॥  
 उमे सोमायचाकशनं मृगो न तुक्तो भ्रंषति ।  
 सौर्द्ध्रतस्य योनिमा ॥ ४ ॥  
 अग्नि गावो अनूपत योषां जारमिष प्रियम् ।  
 अग्राजि यथा हितम् ॥ ५ ॥  
 असे धेहि घुमद् यशो मृषपर्द्धपथ मर्यं च ।  
 सनि मेघामुत अयः ॥ ६ ॥  
 ॥ ३२ ॥ ( अ० १।३३।१-६ )  
 त्रित आत्य ।  
 प्र सोमामो विष्विन्नो ऽपां न यन्मृमर्गः ।  
 यनानि महिषा इव ॥ १ ॥  
 ( ३०८६ )

अभि द्रोणानि यध्वः शुक्रा ऋतस्य धारया ।

याजं गोमन्तमक्षरन् ॥ २ ॥

सुता इन्द्राय धायथे यरुणाय मरुद्गर्धः ।

सोमो अर्पन्ति विष्णवे ॥ ३ ॥

तिष्ठो धाच उदीरते गार्धो मिमन्ति धेनवः ।

हरिरेति कर्निकदत् ॥ ४ ॥

अभि ब्रह्मीरनूपत यद्दीर्घतस्य मातरः ।

मर्मज्यन्ते विवः शिशुम् ॥ ५ ॥

रायः संमुद्रांश्चतुरो ऽसभ्यं सोम विश्वतः ।

धा पयस्व सहस्रिणः ॥ ६ ॥

॥ ३१ ॥ ( अ० ९।३४।१-६ )

प्र सुवानो धारया तने—न्दुहिन्वानो अर्पति ।

रुजद् बृहदा व्योजसा ॥ १ ॥

सुत इन्द्राय धायथे यरुणाय मरुद्गर्धः ।

सोमो अर्पति विष्णवे ॥ २ ॥

वृषाणं वृषभिर्यतं सुन्वन्ति सोममग्निभिः ।

बृहन्ति शक्मना पयः ॥ ३ ॥

भुवत् त्रितस्य मज्यो भुवदिन्द्राय मत्सरः ।

सं रूपैरज्यते हरिः ॥ ४ ॥

अभीमृतस्य विप्रपं दुहते पृश्निमातरः ।

चारं प्रियतमं द्विः ॥ ५ ॥

समेनमहुता इमा गिरौ अर्पन्ति स्रज्जुतः ।

धेनुर्घाओ बंधीयशत् ॥ ६ ॥

॥ ३४ ॥ ( अ० ९।३५।१-६ )

प्रभुवधराजिरस ।

आ नः पयस्व धारया पर्वमान रयि पृथुम् ।

यया ज्योतिर्विदांसि नः ॥ १ ॥

इन्द्रो समुद्रमीहय पर्वस्व विश्वमेजय ।

रायो धृतो न ओजसा ॥ २ ॥

त्वया वीरेण वीर्यो ऽभि प्याम पृतन्यतः ।

शरा णो अभि धार्यम् ॥ ३ ॥

प्र याजमिन्दुरिष्यति सिपांसन् याजसा ऋषिः ।

मृता विद्वान् आयुधा ॥ ४ ॥

तं गीर्भिर्वाचमीहयं पुनानं वासयामसि ।

सोमं जनस्य गोपतिम् ॥ ५ ॥

विश्वो यस्य मृते जनो वाधार् धर्मणस्पतेः ।

पुनानस्य प्रभूयसोः ॥ ६ ॥

॥ ३५ ॥ ( अ० ९।३६।१-६ )

असर्जि रर्यो यथा पवित्रे सभ्योः सुतः ।

कार्प्यन् याजी न्यक्रमीत् ॥ १ ॥

स पद्विः सोम आग्निः पयस्व देवपीरति ।

अभि कोशं मधुश्चुतम् ॥ २ ॥

स नो ज्योतींषि पूर्य पर्वमानं वि रौचय ।

क्रत्ये वक्षाय नो हिनु ॥ ३ ॥

शुम्भमानं ऋतायुभिर्मृज्यमानो गर्भस्त्योः ।

पर्वते वारो अग्नये ॥ ४ ॥

स विश्वा वृषुषे वसु सोमो दिव्यानि पार्थिवा ।

पर्वतामान्तरिक्ष्या ॥ ५ ॥

आ दिवस्पृष्टमभ्यु—र्गैर्ययुः सोम रोहसि ।

वीरयुः शवसस्पते ॥ ६ ॥

॥ ३६ ॥ ( अ० ९।३७।१-६ )

राहवण आगिरस ।

स सुतः पीतये वृषा सोमः पवित्रे अर्पति ।

विभ्रन् रक्षोसि देवयुः ॥ १ ॥

स पवित्रे विचक्षणो हरिरर्पति धर्णसि ।

अभि योनिं कर्निकदत् ॥ २ ॥

स याजी रौचना दिवः पर्वमानो वि धावति ।

रक्षोहा वारमग्नयम् ॥ ३ ॥

स त्रितस्याधि सान्वि पर्वमानो अरोचयत् ।

जामिभिः सूर्ये सह ॥ ४ ॥

स वृत्रहा वृषा सुतो वरिष्ठोविददाभ्यः ।

सोमो वाजमिवासरत् ॥ ५ ॥

( ३८१० )

स देवः कृविर्नैपितोऽमि द्रोणानि धावति ।  
 इन्द्रिन्द्राय मंहना ॥ ६ ॥  
 ॥ ३७ ॥ ( ऋ० १।३।१-६ )  
 एष उ स्य वृषा रथो ऽव्यो धारैर्भिरपति ।  
 गच्छन् वाजं सहस्रिणम् ॥ १ ॥  
 पुनं त्रितस्य योषणो हारिं हिन्त्यन्त्याद्रिमिः ।  
 इन्द्रुमिन्द्राय पीतये ॥ २ ॥  
 पतं स्यं हरितो दशं मर्मज्यन्तं अपस्युयः ।  
 यामिर्मर्दाय शुभ्रमते ॥ ३ ॥  
 एष स्य मानुषोपा द्येनो न विभु सीदति ।  
 गच्छन्नारो न योषितम् ॥ ४ ॥  
 एष स्य मद्यो रसो ऽयं चष्टे द्वियः शिशुः ।  
 य इन्द्रुर्धारुमाविशत् ॥ ५ ॥  
 एष स्य पीतये सुतो हरिरपति घर्णसिः ।  
 क्रन्दन् योनिममि प्रियम् ॥ ६ ॥  
 ॥ ३८ ॥ ( ऋ० १।३।१-६ )  
 बृहन्मतिराद्रिसः ।  
 आशुरपं बृहन्मते परि प्रियेण धासा ।  
 यत्र देवा इति श्रयन् ॥ १ ॥  
 परिष्कृण्वन्नैष्ठतं जनाय यातयन्निषः ।  
 घृष्टि द्वियः परि स्रप ॥ २ ॥  
 सुत पति पवित्र आ त्रियि दधानं ओजसा ।  
 विचक्ष्णो विरोचयन् ॥ ३ ॥  
 अयं स यो द्विषस्परि रघुयामा पवित्र आ ।  
 सिन्धोर्कुमा व्यक्षरत् ॥ ४ ॥  
 आविर्वासन् परायतो अयो अवाचतः सुतः ।  
 इन्द्राय सिच्यते मधु ॥ ५ ॥  
 समीचीना भनूपत हारिं हिन्त्यन्त्याद्रिमिः ।  
 योनापृतस्य सीदत ॥ ६ ॥  
 ॥ ३९ ॥ ( ऋ० १।४।१-६ )  
 पुनानो भर्गमीदमि विश्वा मृधो विचर्षणिः ।  
 शुभ्रमन्ति विप्रं धीतिभिः ॥ १ ॥

आ योनिमरुणो बृहद् गमदिन्द्रं वृषा सुतः ।  
 ध्रुवे सदांसि सीदति ॥ २ ॥  
 न नो रथं मृहामिन्द्रो ऽस्रभ्यं सोम विभ्रतः ।  
 आ पवस्व सहस्रिणम् ॥ ३ ॥  
 विश्वा सोम पवमानं शुम्भानांन्दवा भर ।  
 विदाः सहस्रिणीरिपः ॥ ४ ॥  
 स नः पुनान आ भर रथं स्तोमे सुवीर्यम् ।  
 जस्तिर्वैधया गिरः ॥ ५ ॥  
 पुनान इन्दवा भर सोमं द्वियहंसं रुयम् ।  
 वृषन्निन्द्रो न उन्त्यम् ॥ ६ ॥  
 ॥ ४० ॥ ( ऋ० १।४।१-६ )  
 मर्यातिभिः काशः ।  
 प्र ये गावो न भूर्णयस्त्वेया अपासो अमसुः ।  
 श्रन्तः कृष्णामप त्वचम् ॥ १ ॥  
 सुवित्रस्य मनमृहे जति सेतुं दुष्टच्यम् ।  
 साक्षांसो दस्युमजतम् ॥ २ ॥  
 दुष्टे वृष्टेरिय स्यनः पवमानस्य शुष्मिणः ।  
 चरन्ति विद्युतो द्विवि ॥ ३ ॥  
 आ पवस्व महीमिषं गोमदिन्द्रो द्विरण्यवत् ।  
 अर्थावद् वाजयत् सुतः ॥ ४ ॥  
 स पवस्व विचरण आ मही रोदसी वृण ।  
 उपाः स्यो न रुदिमभिः ॥ ५ ॥  
 पारि णः शर्मयस्या धारया सोम विभ्रतः ।  
 सरां रमेयं विष्टपम् ॥ ६ ॥  
 ॥ ४१ ॥ ( ऋ० १।४।१-६ )  
 जनयन् रोचना द्वियो जनयद्रप्सु स्यम् ।  
 यसानो गा अपो हारिः ॥ १ ॥  
 एष प्रजेन मर्गना देवो देवेभ्यस्परि ।  
 धारया पवते सुतः ॥ २ ॥  
 शवृधानाय त्वेयं पजन्ते याज्रमातये ।  
 सोमाः सदृक्षपाजसः ॥ ३ ॥

दुहानः प्रक्षामित् पर्यः पवित्रे परि विच्यते ।  
 क्रन्दन् देवाँ अजीजनत् ॥ ४ ॥  
 अग्नि विश्वाति वार्या अग्नि देवाँ अस्तावृधः ।  
 सोमः पुनानो अर्पति ॥ ५ ॥  
 गोमघ्नः सोम धारय दध्यावद् वाजयत् सुतः ।  
 पयस्व बृहतीरियः ॥ ६ ॥

॥ ४१ ॥ (ऋ० १।४३।१-६)

यो अत्य इव मृज्यते गोभिर्मदाय हृतः ।  
 तं गीर्भिर्वासयामसि ॥ १ ॥  
 तं नो विश्वा अवस्युयो गिरः शुभमन्ति पूर्वथा ।  
 इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥ २ ॥  
 पुनानो याति हृतः सोमो गीर्भिः परिष्कृतः ।  
 विप्रस्य मेध्यातिथेः ॥ ३ ॥  
 पर्वमान विदा इयि मस्यै सोम सुभिर्यम् ।  
 इन्दो सुहस्रवर्चसम् ॥ ४ ॥  
 इन्दुरत्यो न वाजसुत् कर्निकन्ति पवित्र आ ।  
 यदक्षारति देवयुः ॥ ५ ॥  
 पर्वस्य वाजसातये विप्रस्य गृणतो वृधे ।  
 सोम रास्व सुधीर्यम् ॥ ६ ॥

( ॥ ४३ ॥ ऋ० १।४४।१-६ )

अयास्य आङ्गिरसः ।

प्र ण इन्दो महे तनं ऊर्मि न विश्रद्वर्षसि ।  
 अग्नि देवाँ अयास्यः ॥ १ ॥  
 मती जुष्टो धिया हितः सोमो हिन्वे परावति ।  
 विप्रस्य धारया कविः ॥ २ ॥  
 अयं देवेपु जायुविः सुत एति पवित्र आ ।  
 सोमो याति विचर्षणिः ॥ ३ ॥  
 स नः पयस्व वाजयु-श्चक्राणश्चार्कमध्वरम् ।  
 वृदिष्ठा आ दैवासति ॥ ४ ॥  
 स नो भगाय धायये विप्रवीरः सुदावृधः ।  
 सोमो देवेभ्य र्यमत् ॥ ५ ॥

स नो अद्य घसुचये क्रतुविद् गातुविश्रमः ।  
 वाजं जेयि श्रयो बृहत् ॥ ६ ॥

॥ ४४ ॥ (ऋ० १।४५।१-६)

स पयस्व मदाय कं नृचक्षा देवधीतये ।  
 इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥ १ ॥  
 स नो अर्णामि द्रुत्यं त्वमिन्द्राय तोशसे ।  
 देवान्सपिष्य आ यरम् ॥ २ ॥  
 उत त्वामरुणं वयं गोभिरजमो मदाय कम ।  
 वि नो राये दुरो वृधि ॥ ३ ॥  
 अत्य पवित्रमकमीद् वाजी धुरं न यामनि ।  
 इन्दुदेवेषु पत्यते ॥ ४ ॥  
 समी सखायो अस्वरन् वने श्रील्लन्तमत्यधिम् ।  
 इन्दुं नावा अनूपत ॥ ५ ॥  
 तया पयस्व धारया यया पीतो विचक्षते ।  
 इन्दो स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ ६ ॥

॥ ४५ ॥ (ऋ० १।४६।१-६)

अर्चग्रन् देवधीतये अत्यासुः कृत्या इव ।  
 क्षरन्तः पर्वतावृधः ॥ १ ॥  
 परिष्कृतासु इन्दो योषेव पित्र्यायती ।  
 वायुं सोमा अचक्षत ॥ २ ॥  
 एते सोमासु इन्दवः प्रयस्वन्तश्च सुताः ।  
 इन्द्रं वर्धन्ति कर्मभिः ॥ ३ ॥  
 आ धावता सुहस्यः शुक्रा गृणीत मन्थिता ।  
 गोभिः श्रीणीत मत्सरम् ॥ ४ ॥  
 स पयस्व धनंजय प्रयन्ता राधसो महः ।  
 असाय्यै सोम गातुविद् ॥ ५ ॥  
 एतं गृजन्ति मज्यै पर्वमानं दश क्षिपः ।  
 इन्द्राय मत्सरं मदम् ॥ ६ ॥

॥ ४६ ॥ (ऋ० १।४७।१-५)

कविर्मावेवः ।

अया, सोमः सुहृत्यया महाश्चिदभ्यवर्धत ।  
 मत्स्वान उद् धृपायते ॥ १ ॥

कृतानीदस्य कर्त्तुं चेतन्ते दस्युतर्हणा ।

ऋणा च धृगुश्चयते ॥ २ ॥

आत् सोम इन्द्रियो रसो यज्ञः सहस्रसा भुवत् ।

उपयं यदस्य जायते ॥ ३ ॥

स्यं कृषिर्विघर्तरि विप्राय रत्नमिच्छति ।

यदी मर्मन्त्यते धियः ॥ ४ ॥

सिपासन रयीणां याज्ञेयवेतामिव ।

मरेषु जिग्युषामसि ॥ ५ ॥

॥ ४७ ॥ ( ऋ० १।४८।१-५ )

तं त्वा नृम्यानि विघ्नतं सुधस्येषु मुहो दिवः ।

चाहं सुकृत्ययेमहे ॥ १ ॥

संवृक्तधृष्यमुपयं मुहामहियतं मदम् ।

शतं पुतौ रुक्षणिम् ॥ २ ॥

मत्स्वा रुयिमुभि राजानं सुकृतो दिवः ।

सुपणो अन्वधिर्मैरत् ॥ ३ ॥

विभ्वहमा इत् स्वहंशे साधारणं रजस्तुरम् ।

गोपामृतस्य धिर्मैरत् ॥ ४ ॥

अघा हिन्वान इन्द्रियं ज्यायो महित्वमानशे ।

अभिष्टिक्त्विचर्षणिः ॥ ५ ॥

॥ ४८ ॥ ( ऋ० १।४९।१-५ )

पर्वस्व वृष्टिमा सु नो ऽपामूर्मि दिवस्परि ।

अयहमा वृहतीरिपः ॥ १ ॥

तयो पवस्व धारया यया गाव इहागमन् ।

जन्वास उप नो गृहम् ॥ २ ॥

घृतं पवस्व धारया यक्षेपु देववीतमः ।

असभ्यं वृष्टिमा पव ॥ ३ ॥

स न ऊजं व्यव्ययं पवित्रं घाव धारया ।

देवासः शृणवन् हि कम् ॥ ४ ॥

पर्वमानो अस्मिन्पवद् रक्षांस्यपजङ्घनत् ।

प्रजवद् रोचयन् रचः ॥ ५ ॥

॥ ४९ ॥ ( ऋ० १।५०।१-५ )

उच्य आत्रिसः ।

उत् ते शुष्मास ईरते सिन्धोर्मुमेरिव स्यनः ।

वाणस्य चोदया पविम् ॥ १ ॥

प्रसवे त उदीरते तिस्रो वाचो मलस्युवः ।

यदव्य पपि सानवि ॥ २ ॥

अघ्यो वारे पारे प्रियं हरिं हिन्वन्त्याद्रिमिः ।

पर्वमानं मधुश्चुतम् ॥ ३ ॥

आ पवस्व मदित्तम पवित्रं धारया कथे ।

अकस्य योनिमासदम् ॥ ४ ॥

स पवस्व मदित्तम गोर्मिरज्ञानो अस्तुभिः ।

इन्द्रविन्द्राय पीतये ॥ ५ ॥

॥ ५० ॥ ( ऋ० १।५१।१-५ )

अर्धयो अद्रिमिः सुतं सोमं पवित्रं वा खंज ।

पुनोहीन्द्राय पारवे ॥ १ ॥

दिवः पीयूषमुत्तमं सोममिन्द्राय वृजिने ।

सुनोता मधुमत्तमम् ॥ २ ॥

तव त्य इन्द्रो अन्धलो देया मधोव्यक्षते ।

पर्वमानस्य मरुतः ॥ ३ ॥

त्वं हि सोम वर्धयन्स्तुतो मदाय भूर्णये ।

वृषन्स्तुतोतारमूतये ॥ ४ ॥

अभ्यर्ष्य विचक्षण पवित्रं धारया सुतः ।

अभि वाजमुत श्रवः ॥ ५ ॥

॥ ५१ ॥ ( ऋ० १।५१।१-५ )

पारे वृक्षः सनद्रयिर्मदार्जं नो अन्धला ।

सुवानो अयं पवित्रं वा ॥ १ ॥

तव प्रतेमिरध्वमि-रव्यो वारे पारे प्रियः ।

सहस्रधारो याव तना ॥ २ ॥

चरुं यस्तमीडस्तयेन्द्रो न दानमीह्य ।

वधैर्वधस्तवीडस्तये ॥ ३ ॥

नि शुष्ममिन्दवेपां पुरहृत जनानाम् ।

यो अस्मां आदिदेशति ॥ ४ ॥

( ३८९३ )

शतं न इन्द्र ऊतिभिः सहस्रं वा शुचीनाम् ।

पर्वस्य महद्यद्रियः ॥ ५ ॥

॥ ५२ ॥ ( अ० ९।५३।१-४ )

अवस्वारः कश्यपः ।

उत् ते शुष्मांसो अस्थु रक्षो भिन्दन्तो अद्रिवः ।

नुदस्य याः परिरुधुधः ॥ १ ॥

अया निजग्निरोजसा रथसङ्गे धर्मे हिते ।

स्तया अविभ्रुया हुदा ॥ २ ॥

अस्य व्रतानि नाधुपे पर्वमानस्य दुह्या ।

रुज यस्त्यो पृतन्यति ॥ ३ ॥

तं हिंयन्ति मद्रुच्युतं हरिं नदीपुं याजिनम् ।

इन्दुमिन्द्राय मत्सरम् ॥ ४ ॥

॥ ५३ ॥ ( अ० ९।५४।१-४ )

अस्य प्रतामनु द्युतं शुक्रं उदुष्टे अहयः ।

पर्यः सहस्रसामुर्विम् ॥ १ ॥

अयं सूर्य इवोपहृग्यं सरांसि धावति ।

सुप्त प्रवत् आ दिवंम् ॥ २ ॥

अयं विश्वानि तिष्ठति पुनानो भुवंनोपरि ।

सोमो वैद्यो न सूर्यः ॥ ३ ॥

परि णो वैद्यधीतये वाजो अर्पसि गोमंतः ।

पुनान इन्द्रयिन्द्रयः ॥ ४ ॥

॥ ५४ ॥ ( अ० ९।५५।१-४ )

ययंपरं नो अग्नंसा पुष्टपुष्टं परि स्रव ।

सोम विश्वा च सोमगा ॥ १ ॥

इन्द्रो यथा तव स्तयो यथा ते जातमग्नसः ।

नि पृदिभि म्रिये संदः ॥ २ ॥

उत नो गोविर्दभ्यवित् पयंस्य सोमग्नंसा ।

मधुर्तममिर्हणि ॥ ३ ॥

यो जिनानि न जीयन्ते दग्नि शत्रुमुभीत्यं ।

स पयस्य सहप्रजित् ॥ ४ ॥

॥ ५५ ॥ ( अ० ९।५६।१-४ )

परि सोमं श्रुतं बृहद्वाशुः पवित्रे अर्पति ।

विघ्नन् रक्षांसि देवयः ॥ १ ॥

यत् सोमो वाजमर्पति शतं धारा अपसुव्यः ।

इन्द्रस्य सख्यमाविशन् ॥ २ ॥

अभि त्वा योपणो दर्श जारं न कन्यानूपत ।

मृज्यसे सोम सातर्ये ॥ ३ ॥

त्वमिन्द्राय विष्णवे स्वादुरिन्द्रो परि स्रव ।

नृन्स्तोतृन् पाहंसः ॥ ४ ॥

॥ ५६ ॥ ( अ० ९।५७।१-४ )

अ ते धारा अस्रक्षतो विद्यो न रन्ति वृष्टयः ।

अच्छा वाजं सहस्रिणम् ॥ १ ॥

अभि प्रियाणि काव्या विश्वा चक्षाणो अर्पति ।

हरिस्तुजान आयुधा ॥ २ ॥

स मर्मज्ञान आयुभि रिमो राजेय सुमृतः ।

श्येनो न वंसु पीदति ॥ ३ ॥

स नो विश्वा दियो वसुतो पृथिव्या अधि ।

पुनान इन्द्रवा भर ॥ ४ ॥

॥ ५७ ॥ ( अ० ९।५८।१-४ )

तत् स मन्दी धावति धारा सुतस्याग्नसः ।

तत् स मन्दी धावति ॥ १ ॥

उक्षा वेद वसुतो मर्तस्य देवयंसः ।

तत् स मन्दी धावति ॥ २ ॥

ध्वस्योः पुरुषन्त्यो रा सदस्याणि दग्धे ।

तत् स मन्दी धावति ॥ ३ ॥

आ ययोरिंशतं तना सदस्याणि च दग्धे ।

तत् स मन्दी धावति ॥ ४ ॥

॥ ५८ ॥ ( अ० ९।५९।१-४ )

पर्वस्य गोजिर्दभ्यजिद् विभ्यजित् सोम ह्यपजित् ।

प्रजावद् रत्नमा भर ॥ १ ॥

पर्वस्वाग्नयो अदाभ्यः पयन्वीर्यधीभ्यः ।

पर्वस्य विष्णोभ्यः ॥ २ ॥

त्वं सोम पर्वमानो विश्वानि दुरिता तर ।  
 कृधिः सीद नि वहिषि ॥ ३ ॥  
 पर्वमान स्वर्गिणो जायमानोऽमवो मुहान् ।  
 इन्द्रो विश्वो अमीदसि ॥ ४ ॥  
 ॥ ५१ ॥ (ऋ० १०१-४)  
 गायत्री, ३ पुराणिद् ।  
 प्र गायत्रेण गायत पर्वमानं विचर्पणिम् ।  
 इन्द्रं सहस्रं चक्षसम् ॥ १ ॥  
 तं त्वा सहस्रं चक्षसं मयो सहस्रं मर्णसम् ।  
 अति वारमपाविषुः ॥ २ ॥  
 अति धारान् पर्वमानो असिष्यदत्  
 कलशौ अभि धावति ।  
 इन्द्रस्य हार्घ्याविशान् ॥ ३ ॥  
 इन्द्रस्य सोम राधले शं पर्वस्व विचर्पणे ।  
 प्रजावद् रेत आ भर ॥ ४ ॥  
 ॥ ६० ॥ (ऋ० १०१-१०)  
 अमर्ह्युक्तिः ।  
 अया वीती परिं स्रग् यस्तं इन्द्रो मदेष्वा ।  
 सहस्रान् नवतीर्नव ॥ १ ॥  
 पुरः स्रग् इत्थाधिपे द्विर्वासाय शम्बरम् ।  
 अघ्रं त्वं तूर्वांशं यदुम् ॥ २ ॥  
 परिं णो अश्वमश्वविद् गोमदिन्द्रो हिरण्यवत् ।  
 क्षरां सहस्रिणीरिपः ॥ ३ ॥  
 पर्वमानस्य ते वयं पवित्रमभ्युद्भुतः ।  
 सप्तित्वमा वृणीमहे ॥ ४ ॥  
 ये ते पवित्रमभ्युद्भुतः ऽमिक्षरन्ति धारया ।  
 तेभिर्नः सोम मृज्य ॥ ५ ॥  
 स नः पुनान् आ भर रयिं वीरवतीमिषम् ।  
 ईशानः सोम विश्वतः ॥ ६ ॥  
 एतमु त्वं दश क्षिपो मृजन्ति सिन्धुमातरम् ।  
 समादित्येभिरेष्यत ॥ ७ ॥

समिन्द्रेणोत वायुना सुत पति पवित्र आ ।  
 सं सूर्यस्य रुदिमभिः ॥ ८ ॥  
 स नो भर्गाय वायवे पुष्णे पर्वस्व मधुमान् ।  
 चरुमित्रे वरुणे च ॥ ९ ॥  
 उवा तं ज्ञातमन्वसो दिवि पदूम्या ददे ।  
 उग्रं शर्म महि ध्रुवः ॥ १० ॥  
 एना विश्वान्यर्य आ धुम्रानि मातुपाणाम् ।  
 सिपासन्तो वनामहे ॥ ११ ॥  
 स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्गवः ।  
 वरिवोवित् परिं स्रग् ॥ १२ ॥  
 उषो पु ज्ञातमनुतं गोभिर्मङ्गं परिं कृतम् ।  
 इन्द्रं देवा अयासिषुः ॥ १३ ॥  
 तमिद् वधन्तु नो गिरां वृत्तं सुंशिश्नरीरिव ।  
 य इन्द्रस्य हृदंसनिः ॥ १४ ॥  
 अर्षो णः सोम शं गवै धुक्षस्व पिप्यपीमिषम् ।  
 वधीं समुद्रमुत्थपम् ॥ १५ ॥  
 पर्वमानो अजीजनद् दिवाध्वं न तन्पुतम् ।  
 ज्योतिर्वैश्वानरं वृहत् ॥ १६ ॥  
 पर्वमानस्य ते रसो मर्दो राजन्नदुक्तुनः ।  
 वि धारमर्घ्यमर्पति ॥ १७ ॥  
 पर्वमान रसस्तव दक्षो वि राजति धुमान् ।  
 ज्योतिर्विष्यं स्वर्दृशे ॥ १८ ॥  
 यस्ते मद्रो वरेण्यस्तेनो पवस्वान्वसता ।  
 देवावीर्यशंसहा ॥ १९ ॥  
 जग्निर्वैश्वानरमिषियं सस्तिर्वाजं दिधेदिधे ।  
 गोषा उ अश्वसा अंसि ॥ २० ॥  
 समिंश्चो अरुषो भव सपस्याभिर्न धेनुभिः ।  
 सीदंश्च्येनो न योजिमा ॥ २१ ॥  
 स पर्वस्व य आविधेन्द्रं वृत्राय हन्तये ।  
 वधिवान् महीरपः ॥ २२ ॥  
 (३९४)



सुवीर्यसो वयं धना जयैम सोम मीद्वः ।  
 पुनानो वधं नो गिरः ॥ २३ ॥  
 त्वेतासुस्तवाधसा स्वामं वचन्त आमुः ।  
 सोमं व्रतेषु जागृहि ॥ २४ ॥  
 अपघ्नन् पयते मृधो ऽप सोमो अरावणः ।  
 गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ २५ ॥  
 मूहो नो राय आ भर पयमान जही मृधः ।  
 रास्वेन्दो वीरयद् यशः ॥ २६ ॥  
 न त्वा शते चन हुतो राधो दिस्सन्तमा भिनन् ।  
 यत् पुनानो मखस्वसे ॥ २७ ॥  
 पर्वस्वेन्दो वृषा सुतः कृधी नो यशसो जने ।  
 विश्वा अप द्विषो जहि ॥ २८ ॥  
 अस्य ते सुवपे वयं तयैन्दो युज उचमे ।  
 सासुहामं पृतन्यतः ॥ २९ ॥  
 या तं भीमान्यायुधा तिममानि सन्ति धूर्षणे ।  
 रक्षा समस्य नो निदः ॥ ३० ॥  
 ॥ ६१ ॥ ( ऋ० १।६१।१-३० )  
 जमदग्निर्भागवः ।  
 पुते अस्त्रमिन्दव-स्तिरः पवित्रमाशयः ।  
 विश्वान्यभि सौभगा ॥ १ ॥  
 विमन्तो दुग्ता पुव सुगा तोकाय वाजिनः ।  
 तनां कृण्वन्तो अर्धते ॥ २ ॥  
 कृण्वन्तो वरिखो गवे ऽभ्यर्षन्ति सुपुतिम् ।  
 इलांस्रभ्यं संयतम् ॥ ३ ॥  
 असाव्यं शुर्मदाया-ऽप्सु दक्षो गिरिष्ठाः ।  
 श्वेनो न योनिमासदत् ॥ ४ ॥  
 शुभ्रमन्धो देववात-मासु धृतो नृभिः सुतः ।  
 स्वदन्ति गावः पयोभिः ॥ ५ ॥  
 आदीमभं न हेतारो ऽर्धशुभ्रमृताय ।  
 मण्यो रनै सधमादे ॥ ६ ॥  
 यास्ते धारा मधुधुतो ऽर्धममिन्द ऊतय ।  
 तामिः पवित्रमासदः ॥ ७ ॥

सो अपेन्द्राय पीतये तिमो रोमाण्ययया ।  
 सीदन् योनाघनेष्वा ॥ ८ ॥  
 त्वामेन्दो पारं स्रव स्वादिष्ठो अङ्गिरोभ्यः ।  
 धरिखोविद् घृतं पयः ॥ ९ ॥  
 अयं विचर्षणिहितः पयमानः स वेतति ।  
 हिन्वान आयं बृहत् ॥ १० ॥  
 एष वृषा वृषयतः पयमानो अशस्तिहा ।  
 कर्द्द यस्येति दाशुपे ॥ ११ ॥  
 आ पयस्व सहस्रिणं रयि गोमन्तमभिनम् ।  
 पुरुश्चन्द्रं पुरुस्पृहम् ॥ १२ ॥  
 एष स्य पारं पिच्यते मर्मज्यमानं आपुभिः ।  
 उद्यगायः कृषिक्तुः ॥ १३ ॥  
 सहस्रोतिः शतामघो विमानो रजसः कृषिः ।  
 इन्द्राय पवते मदः ॥ १४ ॥  
 गिरा जात इह स्तुत इन्दुरिन्द्राय धीयते ।  
 वियोनो वसुताविब ॥ १५ ॥  
 पयमानः सुतो नृभिः सोमो वाजमिवासरत् ।  
 स्रमपु शफर्मनासदम् ॥ १६ ॥  
 तं त्रिपृष्ठे त्रिवन्धुरे रथे युजन्ति यातये ।  
 ऋषीणां सप्त धीतिभिः ॥ १७ ॥  
 तं सौतारो घनस्पृतं-माशुं वाजाय यातये ।  
 हरिं हिनोत वाजिनम् ॥ १८ ॥  
 आविशन् कुलशं सुतो विश्वा अर्षन्ति धियः ।  
 शरो न गोषु तिष्ठति ॥ १९ ॥  
 आ तं इन्दो मदाय कं पयो दुहन्त्यायवः ।  
 देवा देवेभ्यो मधु ॥ २० ॥  
 आ नः सोमं पवित्र आ सृजता मधुमत्तमम् ।  
 देवेभ्यो देवधुत्तमम् ॥ २१ ॥  
 पुते सोमा अस्त्रक्षत गृणानाः शर्वसे मदे ।  
 मदिन्तमस्य धारया ॥ २२ ॥

अभि गव्यानि वीतये नृणा पुनानो अर्पसि ।  
 सनद्वाजः परिर स्रव ॥ २३ ॥  
 उत नो गोमतीरियो विश्वा अयं परिपुमः ।  
 गुणानो जमदग्निना ॥ २४ ॥  
 पर्वस्य वाचो अग्रियः सोमं चिद्यार्थिरुतिभिः ।  
 अभि विश्वानि काव्या ॥ २५ ॥  
 त्वं समुद्रिया अयोऽग्रियो वाच ईर्यन् ।  
 पर्वस्य विश्वमेजय ॥ २६ ॥  
 तुभ्येमा भुयना कवे महिसे सोमं तस्यिरे ।  
 तुभ्यमर्पन्ति सिन्धवः ॥ २७ ॥  
 प्र ते दिवो न वृष्टयो धारां यन्त्यसुध्रतः ।  
 अभि शुक्रामुपस्तिरम् ॥ २८ ॥  
 इन्द्रायेग्वं पुनीतनोऽग्रं दक्षां सार्धनम् ।  
 ईशानं वीतिरधसम् ॥ २९ ॥  
 पर्वमान ऋतः कविः सोमः पवित्रमासदत् ।  
 दधत् स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ ३० ॥  
 ॥ ६१ ॥ ( ऋ० ९।६।१-३० )  
 निधुविः काव्यः ।  
 आ पर्वस्य सहस्रिणं रयिं सोमं सुवीर्यम् ।  
 अस्ते भवन्ति धारय ॥ १ ॥  
 इपमूजै च पिन्वसु इन्द्राय मत्सरिन्तमः ।  
 चमूच्या नि पीदसि ॥ २ ॥  
 सुत इन्द्राय विष्णवे सोमः कलशे अक्षरत् ।  
 मधुमौ अस्तु वायवे ॥ ३ ॥  
 एते अंशुप्रमाशयोऽति दरांसि वध्रवः ।  
 सोमां ऋतस्य धारया ॥ ४ ॥  
 इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः शृण्वन्तो विश्वमार्यम् ।  
 अप्रव्रन्तो अराव्याः ॥ ५ ॥  
 सुता मनु स्यमा रजोऽभ्यर्पन्ति वध्रवः ।  
 इन्द्रं गच्छन्तु इन्द्रयः ॥ ६ ॥  
 अया पर्वस्य धारया यया सूर्यमरौचयः ।  
 द्विन्यानो मानुषीपः ॥ ७ ॥

अयुक्तं सूर पतशं पर्वमानो मुनावधि ।  
 अन्तरिक्षेण यातवे ॥ ८ ॥  
 उत त्या हरितो दश सूरौ अयुक्तं यातवे ।  
 इन्दुरिन्द्र इति ब्रुवन् ॥ ९ ॥  
 परीतो वायवे सुतं गिर इन्द्राय मत्सरम् ।  
 अग्न्यो वारेषु सिञ्चत ॥ १० ॥  
 पर्वमानं विदा रयि-मसभ्यं सोमं दुष्टरम् ।  
 यो दूणाशो वनुष्यता ॥ ११ ॥  
 अर्यस्य सहस्रिणं रयिं गोमन्तमग्निनम् ।  
 अभि वाजमुत ध्रुवः ॥ १२ ॥  
 सोमो देवो न सूर्योऽद्विभिः पयते सुतः ।  
 दधानः कलशे रसम् ॥ १३ ॥  
 एते घामान्यायौ शुक्रा ऋतस्य धारया ।  
 वाजं गोमन्तमक्षरन् ॥ १४ ॥  
 सुता इन्द्राय धञ्जिणे सोमास्तो दध्याशिरः ।  
 पवित्रमत्स्ररन् ॥ १५ ॥  
 प्र सोमं मधुमत्तमो रये अयं पवित्र आ ।  
 मद्रो यो देववीर्यतमः ॥ १६ ॥  
 तमीं मृजन्त्याययो हरिं नदीषु घाजिनम् ।  
 इन्दुमिन्द्राय मत्सरम् ॥ १७ ॥  
 आ पर्वस्य हिरण्यव-दध्यायत् सोमं धीरयत् ।  
 वाजं गोमन्तमा मर ॥ १८ ॥  
 परि वाजे न वाज्यु-मग्न्यो वारेषु सिञ्चत ।  
 इन्द्राय मधुमत्तमम् ॥ १९ ॥  
 कवि मृजन्ति मज्यं धीमिर्विप्रो अरुस्यवः ।  
 वृषा कर्त्तिकदधति ॥ २० ॥  
 वृषणं धीमिपुत्रं सोममृतस्य धारया ।  
 मती विप्राः समन्वयन् ॥ २१ ॥  
 पर्वस्य देवायुष-गिन्द्रं गच्छतु ते मरुः ।  
 वायुमा रौद्र धर्मणा ॥ २२ ॥

पयमानं नि तौशसे रयिं सोमं ध्याय्यम् ।  
 प्रियः समुद्रमा विश ॥ २३ ॥  
 अपघ्नन् पयसे मृधः प्रतुवित् सोमं मन्त्राः ।  
 नुदस्वाद्वयं जनम् ॥ २४ ॥  
 पयमाना अरुक्षत सोमाः शुक्रास इन्द्रयः ।  
 अभि विभ्वाणि काव्या ॥ २५ ॥  
 पयमानास आशयः शुक्रा अरुप्रमिन्द्रयः ।  
 घ्नन्तो विभ्वा अप द्विपः ॥ २६ ॥  
 पयमाना दिवस्प—यन्तरिक्षादरुक्षत ।  
 दुधिक्षा अभि सान्निवि ॥ २७ ॥  
 पुनानः सोमं धारये—न्तो विभ्वा अप स्त्रिपः ।  
 जहि रक्षांसि सुक्रतो ॥ २८ ॥  
 अपघ्नन्सोमं रक्षसो ऽभ्यर्प कनिक्रदत् ।  
 घुमन्तं शुष्मसुप्तम् ॥ २९ ॥  
 असे वसूनि धारय सोमं दिव्यानि पार्थिवा ।  
 हन्वो विभ्वाणि धार्या ॥ ३० ॥

॥ ६३ ॥ ( ऋ० ९।६४।१-३० )

॥ ६४ ॥ मारोच ।

घृषां सोमं घृषां अलि घृषां देव घृषयतः ।  
 घृषा धर्माणि दधिपे ॥ १ ॥  
 घृषास्ते घृषयं शवो घृषा धनं घृषा मर्दः ।  
 सत्यं घृषन् घृषेदसि ॥ २ ॥  
 अभ्यो न चक्रदो घृषा सं गा इन्द्रो समवेतः ।  
 धि नो राये दुस्ते वृधि ॥ ३ ॥  
 अरुक्षत प्र वाजिनो गव्या सोमांसो अथ्वया ।  
 शुक्रासो वीर्याशयः ॥ ४ ॥  
 शुष्ममाना ऋतायुभि—मृज्यमाना गर्भस्थोः ।  
 पर्यन्ते धारं अथ्वये ॥ ५ ॥  
 ते विभ्वा दाशुपे वसु सोमां दिव्यानि पार्थिवा ।  
 पर्वन्तामान्तरिक्षया ॥ ६ ॥

पयमानस्य विभ्वयित् प्र ते रगो धारुक्षत ।  
 सूर्यस्येयं न रदमयः ॥ ७ ॥  
 केतुं कृषन् दिवस्पति विभ्वा कृषाभ्यर्षति ।  
 समुद्राः सोमं पिब्यसे ॥ ८ ॥  
 दिव्यानां पार्थमिप्यमि पयमानं विधर्मणि ।  
 अक्रान् देवो न मूर्यः ॥ ९ ॥  
 इन्द्रः पविष्ट चेतनः प्रियः कधीनां मृती ।  
 सृजदस्य रधीरिय ॥ १० ॥  
 कुर्मिपस्ते पवित्र आ देवाधीः पर्यक्षत् ।  
 सीदन्नतस्य योनिमा ॥ ११ ॥  
 स नो अर्प पवित्र आ मदो यो देववीतमः ।  
 इन्द्रविन्द्राय वीतये ॥ १२ ॥  
 इपे पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभिः ।  
 इन्द्रो रुचाभि गा इहि ॥ १३ ॥  
 पुनानो वरिवस्कुषू—जं जनाय गिर्वेणः ।  
 हरे रुजान आशिरम् ॥ १४ ॥  
 पुनानो देववीतप इन्द्रस्य याहि निष्कृतम् ।  
 घुतानो वाजिर्मिथेतः ॥ १५ ॥  
 प्र दिव्यानास इन्द्रवो ऽच्छा समुद्रमाशयः ।  
 धिया जुता अरुक्षत ॥ १६ ॥  
 मर्मजानास आयवो वृथा समुद्रमिन्द्रयः ।  
 अगमन्नतस्य योनिमा ॥ १७ ॥  
 परिणो याह्यस्मयु—विश्वा घसुन्योजसा ।  
 पाहि नः शर्म वीरवत् ॥ १८ ॥  
 मिमाति वहिरेतशः पदं युजान ऋकभिः ।  
 प्र यत् समुद्र आहितः ॥ १९ ॥  
 आ यद् योनिं हिरण्यं—माशुर्कृतस्य सीदति ।  
 जहात्यमचेतसः ॥ २० ॥  
 अभि वेना अनूपते—यक्षन्ति प्रचेतसः ।  
 मज्जन्यविचेतसः ॥ २१ ॥

इन्द्रायेन्द्रो महत्वंते पर्वस्व मधुमत्तमः ।  
 ऋतस्य योनिमासदम् ॥ २२ ॥  
 तं त्या विप्रा वचोविदः परिप्लुण्वन्ति वेधसः ।  
 सं त्या मृजन्त्यायवः ॥ २३ ॥  
 रसं ते मित्रो अयमा पिबन्ति वरुणः कवे ।  
 पर्वमानस्य मरुतः ॥ २४ ॥  
 त्वं सोम विपश्चितं पुनानो वार्चमिप्यसि ।  
 इन्द्रो सहस्रमर्णसम् ॥ २५ ॥  
 उतो सहस्रमर्णसं वार्चं सोम मत्स्वयुर्वम् ।  
 पुनान इन्द्रया भर ॥ २६ ॥  
 पुनान इन्द्रयेणं पुरुहूत जनानाम् ।  
 मित्रः संमुद्रमा विश ॥ २७ ॥  
 दर्विद्युतत्या रुचा परिघ्रोमन्त्या रुपा ।  
 सोमाः शुक्ता गवांशिरः ॥ २८ ॥  
 हिन्वानो हेवमिर्यत आ वार्जं घ्राज्यंक्रमीत् ।  
 सीदन्तो घृणुषो यथा ॥ २९ ॥  
 ऋधक् सोम स्वस्तये संजग्मानो दिवः कविः ।  
 पर्वस्व स्योर् दशे ॥ ३० ॥  
 ॥ ६४ ॥ ( ऋ० १।६५।१-१० )  
 सृगुर्वावगिर्जमदमिर्गर्गो वा ।  
 हिन्वन्ति सूरमुर्ध्वः स्वसारो जामपुस्पतिम् ।  
 महामिन्दुं महीयुयः ॥ १ ॥  
 पर्वमान रुचारुचा देवो देवेभ्युस्परि ।  
 विश्वा वसुन्त्या विश ॥ २ ॥  
 आ पर्वमान सुष्टुतिं वृष्टिं देवेभ्यो दुषः ।  
 इये पर्वस्व संयतम् ॥ ३ ॥  
 घृणा द्यसिं भानुनां घुमन्तं त्वा दद्यामहे ।  
 पर्वमान स्वाय्यः ॥ ४ ॥  
 आ पर्वस्व सुवीर्यं मर्दमानः स्वायुध ।  
 इदो पिन्द्या गीदि ॥ ५ ॥

यदग्निः परिपिच्यसे मृज्यमानो गर्मस्त्योः ।  
 दुष्णां सुधस्यमश्रुपे ॥ ६ ॥  
 प्र सोमाय व्यश्नवत् पर्वमानाय गायत ।  
 महे सहस्रं वक्षसे ॥ ७ ॥  
 यस्य वर्णं मधुश्रुतं हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः ।  
 इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥ ८ ॥  
 तस्य ते वाजिनो वयं विश्वा धनानि जिग्युषः ।  
 सुखित्वमा घृणीमहे ॥ ९ ॥  
 घृणा पवस्व धारया मरुन्वते च मत्सरः ।  
 विश्वा दधानं ओजसा ॥ १० ॥  
 तं त्वा घृतार्तमोण्योऽः पर्वमान स्वर्दशम् ।  
 हिन्वे वार्जेषु घ्राजिनम् ॥ ११ ॥  
 अया चित्तो विपानया हरिः पवस्व धारया ।  
 युजं वार्जेषु चोदय ॥ १२ ॥  
 आ न इन्द्रो महीमिपं पर्वस्व विश्वदर्शतः ।  
 असभ्यं सोम गातुषि ॥ १३ ॥  
 आ कलशां अनुपतेन्द्रो धारामिरोजसा ।  
 पन्द्रस्य पीतये विश ॥ १४ ॥  
 यस्य ते मघं रसं तीमं दुहन्त्यद्रिभिः ।  
 स पर्वस्वामिमातिहा ॥ १५ ॥  
 राजां मेघाभिरीयते पर्वमानो मनायधि ।  
 अन्तरिक्षेण यातवे ॥ १६ ॥  
 आ न इन्द्रो शतृग्विभं गवां पोषं स्वर्धम् ।  
 यदा भर्गसिमुतये ॥ १७ ॥  
 आ नः सोम सद्गो जुवो रूपं न वर्यसे भर ।  
 सृष्वाणो देववीतये ॥ १८ ॥  
 अपीं सोम घुमर्तमो ऽमि द्रोणानि रोर्धवत् ।  
 सीदन्च्छेनो न योनिमा ॥ १९ ॥  
 अप्सा इन्द्राय धायवे वरुणाय मरुद्भयः ।  
 सोमो अर्यति विष्यवे ॥ २० ॥

इयं तोकार्यं नो दधे—दसभ्यं सोम विध्वतः ।

आ पवस्व सहस्रिणाम् ॥ २१ ॥

ये सोमांसः परावति ये अर्वावति सुनिवरे ।

ये वादः शर्यणावति ॥ २२ ॥

य ओजोकेपु कृत्वसु ये मध्ये पस्त्यानाम् ।

ये वा जनैषु पञ्चसु ॥ २३ ॥

ते नो वृष्टि दिवस्पति पर्यन्तामा सुधीर्यम् ।

सुधाना देवास इन्दवः ॥ २४ ॥

पवते ह्यतो हारि—रुणानो जमदग्निना ।

हिन्वानो गोरधि त्वधि ॥ २५ ॥

प्र शुक्लासौ घयोद्धवो हिन्वानासो न सतयः ।

श्रीणाना अप्सु सृजत ॥ २६ ॥

तं त्वा सुतेष्वाभुवो हिमिरे देवतातये ।

स पवस्वानया हवा ॥ २७ ॥

आ ते दक्षं मयोभुवं धर्मिमा वृणीमहे ।

पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥ २८ ॥

आ मन्द्रमा घरेण्य—मा धिप्रमा मनीषिणाम् ।

पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥ २९ ॥

आ रयिमा सुचेतुन—मा सुकतो तनूष्या ।

पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥ ३० ॥

॥ ६५ ॥ ( ऋ० ९।६६।१-३० )

एतं वैधानसाः । १९-२१ अभि. पवमानः । गायत्री, १८

अनुष्टुप् ।

पर्यस्य विश्वचर्पणे ऽभि विश्वानि कार्त्वा ।

सखा सखिभ्य इज्यः ॥ १ ॥

ताभ्यां विदयस्य राजसि ये पवमान धामेनी ।

प्रतीची सौम तस्यतुः ॥ २ ॥

परि धामानि यानि ते त्वं सौमासि विद्वतः ।

पवमान भ्रतुभिः कवे ॥ ३ ॥

परस्य जनयत्रिणे ऽभि विद्वानि चार्या ।

सप्ता सखिभ्य ऊतये ॥ ४ ॥

तव्यं शुक्रासौ अर्चयो द्वियस्पृष्टे वि तन्वते ।

पवित्रं सोम धामेभिः ॥ ५ ॥

तवमे सप्त सिन्धवः शुशिपं सोम निघते ।

तुभ्यं धावन्ति धेनवः ॥ ६ ॥

प्र सौम याहि धारया सुत इन्द्राय मत्तरः ।

दधानो अक्षिति श्रवः ॥ ७ ॥

समु त्वा धीभिर्स्वरन् हिन्वतीः सप्त जामयः ।

धिप्रमाजा विवस्वतः ॥ ८ ॥

मृजन्ति त्वा समग्रवो ऽर्च्ये जीरावधि प्वणि ।

रेभो यदज्यसे वने ॥ ९ ॥

पवमानस्य ते कवे वाजिन्तसर्गा अश्वक्षत ।

अवैन्तो न श्रवस्यवः ॥ १० ॥

अच्छा कोशं मधुक्षुत—मर्चधं वारे अश्यये ।

अवावशान्त धीतर्यः ॥ ११ ॥

अच्छा समुद्रमिन्द्वो ऽस्तं गावो न धेनवः ।

अग्मक्षतस्य योनिमा ॥ १२ ॥

प्र ण इन्दो महे रण आपो अर्पन्ति सिन्धवः ।

यद् गोभिर्वासयिष्यसे ॥ १३ ॥

अस्य ते सुख्ये युय—मिषक्षन्तुस्त्योतयः ।

इन्दो सखित्वमुद्रमसि ॥ १४ ॥

आ पवस्व गविष्टये महे सौम नृचक्षसे ।

पन्द्रस्य जठरं विषा ॥ १५ ॥

महो अंसि सोम ज्येष्ठे उग्रार्णामिन्द्व ओजिष्ठः ।

युच्चा सन्ध्र्यजिगेथ ॥ १६ ॥

य उग्रभ्यश्चिदोजीया—श्चूरैर्यश्चिच्छूरतरः ।

भुरिदाभ्यश्चिन्महीयान् ॥ १७ ॥

त्वं सौम सूर पर्य—स्तोकस्य साता तनूनाम् ।

वृणीमहे सत्याय वृणीमहे युज्याय ॥ १८ ॥

अग्र आर्यैषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः ।

आरे वाधस्य दुच्छुनाम् ॥ १९ ॥

( ४०९६ )

अग्निर्ऋषिः पर्वमानः पार्श्वजन्यः पुरोहितः ।  
तमीमहे महागयम् ॥ २० ॥  
अग्ने पर्वस्व स्वपा असे वचैः सुवीर्यम् ।  
दर्धत् रयि मयि पोषम् ॥ २१ ॥  
पर्वमानो अति चिधो ऽभ्यर्पति सुष्टुतिम् ।  
सुरो न विश्वदर्शतः ॥ २२ ॥  
स मर्मज्ञान आयुभिः प्रयस्वान् प्रयसे हितः ।  
इन्दुरत्यो विचक्षणः ॥ २३ ॥  
पर्वमान ऋतं बृह-ऋतं उयोतिरजीजनत् ।  
कृष्णा तमांसि जह्वनत् ॥ २४ ॥  
पर्वमानस्य जङ्घतो हरिश्चन्द्रा अरुक्षत ।  
जीरा अजिरशोचिषः ॥ २५ ॥  
पर्वमानो रथीतमः शुभ्रेभिः शुभ्रशस्तमः ।  
हरिश्चन्द्रो मृधद्वजः ॥ २६ ॥  
पर्वमानो व्यक्षवद् रुदिमभिर्वाजस्तातमः ।  
दर्धत् स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ २७ ॥  
प्र सुवान इन्दुर्दत्ताः पवित्रमत्यव्ययम् ।  
पुनान इन्दुरिन्द्रमा ॥ २८ ॥  
एष सोमो अधि त्वधि गवां क्रीडत्यद्रिमिः ।  
इन्द्रं मदाय जोहुषत् ॥ २९ ॥  
यस्य ते घृक्षन्त पयः पर्वमानामृतं दिवः ।  
तेन नो मृळ जीवसे ॥ ३० ॥  
॥ ६६ ॥ ( श्लो १६७१-२२ )  
१-३ अरक्षो बार्हस्पत्यः, ४-६ बृहस्पतेः भारीषः, ७-९ गोतमी राहृगणः, १०-१२ अग्निर्मामः, १३-१५ विश्वामित्रो गायित्रिः, १६-१८ अमरमिर्माग्विः, १९-२१ वशिष्ठो मेधा-  
वद्विः, २२-२४ पवित्र आहिरक्षो वा वशिष्ठो वा उमो वा । पर्वमानः  
सोमः १०-१२ पर्वमानः पूषा वा, २३-२७ पर्वमानोऽग्निः, २५  
पर्वमानः वशिष्ठा वा, २६ पर्वमानामिषवित्तारः, २७ विषे देवा  
वा, २१-२२ वावमान्यभेता । गायत्री, १६-१८ निषाद्विपदा  
गायत्री, ३० पुरउतिगह, २७, ३१, ३२, अनुष्टुप् ।  
त्वं सोमासि धारयु-र्मन्द्र ओजिष्ठो अचरे ।  
पर्वस्व मधुद्रयिः ॥ १ ॥

त्वं सुतो नृमार्दनो दधन्वान् मंसुरित्तमः ।  
इन्द्राय सुरिरर्घसा ॥ २ ॥  
त्वं सुधाणो अद्रिमि-र्ययं कनिष्कदत् ।  
धुमन्तं धुपर्मासुत्तमम् ॥ ३ ॥  
इन्दुर्दिन्यानो अर्पति तिरो वाराण्यव्यया ।  
हरिर्वाजमचिक्रदत् ॥ ४ ॥  
इन्द्रो व्ययमर्पसि वि श्रवांसि वि सौमगा ।  
वि वाजान्तसोम गोमतः ॥ ५ ॥  
आ न इन्द्रो शतग्विर्न रयि गोमन्तमभिवर्तम् ।  
मरा सोम सहस्रिणम् ॥ ६ ॥  
पर्वमानासु इन्द्रव-स्तिरः पवित्रमाशयः ।  
इन्द्रं यामिभिराशत ॥ ७ ॥  
ककुद्ः सोम्यो रस इन्दुरिन्द्राय पूर्यः ।  
आयुः पवत आयवे ॥ ८ ॥  
द्विग्यन्ति सृमुक्षयः पर्वमानं मधुश्रुतम् ।  
अमि गिरा समस्वरन् ॥ ९ ॥  
अविता नो अजायः पूषा यामनि यामनि ।  
आ भक्षत् कन्यासु नः ॥ १० ॥  
अयं सोमः कपर्दिनं घृतं न पयते मधु ।  
आ भक्षत् कन्यासु नः ॥ ११ ॥  
अयं तं आघृणे सुतो घृतं न पयते शुधि ।  
आ भक्षत् कन्यासु नः ॥ १२ ॥  
घाचो जन्तुः कपीनां पर्वस्व सोम धारया ।  
देवेषु रत्नधा अंसि ॥ १३ ॥  
आ कुलशेषा धावति श्वेनो यमं वि गादते ।  
अमि द्रोणा कनिष्कदत् ॥ १४ ॥  
परि प्र सोम ते रसो ऽसंजि कन्दो सुतः ।  
श्वेनो न तज्जो अर्पति ॥ १५ ॥  
पर्वस्व सोम मन्द्य-श्रिन्द्राय मधुमत्तमः ॥ १६ ॥  
अरुघ्नन् देववीतये वाजयन्तो रथा इय ॥ १७ ॥  
ते सुतासो मुदिर्त्तमाः शुक्ता धायुर्मरुक्षत ॥ १८ ॥

द्रावणां तुहो अभिपुतः पवित्रं सोम गच्छसि ।  
 दधत् स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ १९ ॥  
 एष तुहो अभिपुतः पवित्रमतिं गाहते ।  
 रक्षोहा वारमन्ययम् ॥ २० ॥  
 यदन्ति यच्च दूरके भयं विन्दति मामिह ।  
 परमानु वि तर्जहि ॥ २१ ॥  
 परमानुः सो अद्य तः पवित्रेण विचर्षणिः ।  
 यः पोता स पुनातु नः ॥ २२ ॥  
 यत् तं पवित्रमचिन्त्य-ग्रे चित्ततमन्तरा ।  
 ब्रह्म तेन पुनीहि नः ॥ २३ ॥  
 यत् तं पवित्रमचिन्त्य-दशे तेन पुनीहि नः ।  
 ब्रह्मसवैः पुनीहि नः ॥ २४ ॥  
 उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च ।  
 मां पुनीहि विश्वसः ॥ २५ ॥  
 त्रिभिष्टु दैव सवित-वर्षिष्ठैः सोम धामभिः ।  
 अग्रे दक्षैः पुनीहि नः ॥ २६ ॥  
 पुनन्तु मां दैवजनाः पुनन्तु घसवो घिया ।  
 विश्वे देवाः पुनीत मा जातवेदः पुनीहि मां २७  
 म व्यावस्य म स्यन्दस्य सोम विश्वेभिरंशुभिः ।  
 देवेभ्य उत्तमं हविः ॥ २८ ॥  
 उप मिषं पतिमत्तं युवानमाहुतीवृधम् ।  
 अगन्म विधेतो नमः ॥ २९ ॥  
 अलाव्यस्य परशुर्ननाश त-मा पवस्व देव सोम ।  
 क्षातुं विदेव दैव सोम ॥ ३० ॥  
 यः पावमानिरप्ये-त्यृषिभिः संभृतं रसम् ।  
 सयुं स पुतमश्नाति ग्वदितं मातरिभ्यना ॥ ३१ ॥  
 पावमानिषो अये-त्यृषिभिः संभृतं रसम् ।  
 तस्मै सर्वस्यता दुष्टे धीरं सर्षिर्मपृदकम् ॥ ३२ ॥

॥ ६७ ॥ ( अ० १, ६८, १-१० )

वाग्विर्मातृदत्तः । अगती, १० त्रिष्टुप् ।

म देवमप्या मधुमन्त इन्द्रो  
 अतिप्यदन्त गाव आ न धेनवः ।

वहिषदो वचनावन्त ऊर्धभिः  
 परिस्रुतमुक्षियां निर्णिजं धिरे ॥ १ ॥  
 स रोहवदभि पूर्वा अचिक्रदद्  
 उपाकृहः श्रययन्त्वादते हरिः ।  
 तिरः पवित्रं परियन्तु जयो  
 नि शर्योणि दधते द्वेय आ वरम् ॥ २ ॥  
 वि यो ममे यस्यां संयती मदः  
 साकुवृथा पर्यसा पिन्वदक्षिता ।  
 मही अपारे रजसी विजेर्विदद्  
 अभिब्रज्जाक्षितं पाज आ ददे ॥ ३ ॥  
 स मातरां विचरन् वाजयन्पुः  
 प्र मेधिरः स्वधया पिन्वते प्रदम् ।  
 अंशुर्यधेन पिपिशे यतो नृभिः  
 सं जामिभिर्नसते रक्षते शिरः ॥ ४ ॥  
 सं दक्षेण मनसा जायते कविः  
 श्रुतस्य गर्भो निर्हितो यमा परः ।  
 यूना ह सन्तां प्रथमं वि जह्मतुः  
 शुद्धा हितं जनिम नेममुद्यतम् ॥ ५ ॥  
 मन्द्रस्य रूपं विविदुर्मनीषिणः  
 इयेनो यदन्धो अमरत् परावतः ।  
 तं मर्जयन्त सुवृधं नदीष्वौ  
 उशन्तंमंशुं पक्षिणन्तमृगिमयम् ॥ ६ ॥  
 त्वां मृजन्ति दश योषणः सुतं  
 सोम ऋषिभिर्मतिभिर्मतीतिभिर्हितम् ।  
 अव्यो वारंभिद्यत देवहतिभिः  
 नृभिर्द्यतो वाजुमा दीपिं सातयै ॥ ७ ॥  
 पत्नियन्तं घृष्यं तुपसदं  
 सोमं मनीषा धर्मव्यापत स्तुताः ।  
 यो धारया मधुमौ ऊर्गिणा द्विष  
 इयंति धार्यं गयिपाळमर्त्यः ॥ ८ ॥

अये दिव इयति विश्वमा रजः  
सोमः पुनानः कलशेषु सौदति ।  
अग्निगोभिर्मृज्यते अद्रिभिः सुतः  
पुनान इन्दुर्योरो यो विदत् प्रियम्  
एषा नः सोम पतिपिच्यमानो  
ययो दधन्निप्रतमं पयस्य ।  
अहेये घायापृथिवी हुवेम्  
देवा घृत्त इयिमेसे सुयोरम्

( ॥ ६८ ॥ अ० १५११-१० )

हिरण्यस्य आशिरवः । अगती, १-१० शिष्टम् ।

इषुर्न धन्वन् प्रति धीयते मतिः  
पत्नो न मातुर्यं सुन्यूर्ध्वनि ।  
उरुधारेय हुहे अम आयति  
अस्य मतेप्यपि सोम इष्यते  
उपो मतिः पृथ्वते निच्यते मधु  
मन्द्रार्जनी चोदते अन्तरासनि ।  
पर्यमानः संतनिः प्रप्लुतामिष  
मधुमान् ह्रस्वः परि पारमरति  
अर्ज्यं यधुयुः पयते परि त्यावि  
धंप्नोते नभीरदितेभुनं यते ।  
हरिरक्रान् यजतः संपुतो मदी  
नृणा दिशानो मदिषो न शोमते  
उक्षा मिमानि प्रति पति धनयो  
देयस्य देवीर्षा यति निष्पुनम् ।  
अत्यप्रमीदुर्तेन पारमप्यव  
अनं न निगः परि शोमो अयत  
अमृगान् कर्ता पामा हृदिः  
अमृत्यो निषिज्जानः परि व्यन ।  
दिपपुष्टं पदंता निषिजे वन  
उपानरं नृगं निभुमयम्  
मृषंभ्येय हृन्मयो द्रावपितवो  
ममृतामः प्रतुषः ह्यनमीरते ।

॥ ९ ॥

॥ १० ॥

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

तनुं ततं परि सर्गाम आरायो  
नेन्द्राहेते पयते धाम किं चन  
मिन्धोरिव प्रवृणे निम्न आरागे  
धृष्यच्युता मरामो गातुमासत ।  
शं नो निवेदो द्विपदे चतुष्पदे  
अस्मे याजाः सोम तिष्ठन्तु कृष्यः  
आ नः पयस्य यस्तुमदिरण्ययद्  
अध्यावद् गोमद् ययमत् सुयोयम् ।  
युयं हि सोम पित्रो मम स्यनं  
दिवो मृधानः प्रमिता ययमृगः  
एते सोमाः परमानाम् इन्दुं  
रथा इय प्र ययुः मातिमच्छं ।  
सुताः पयिप्रमतिं यन्त्यर्गं  
द्विती यति हृतिना पृथिमच्छं  
इन्द्रयिन्द्रां पृथ्वते पयस्य  
सुमृतीको अनवृषो रिशार्दाः ।  
मरां चन्द्राणि गृणते यमृनि  
देययोपावृथिषी प्रार्थते नः

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १० ॥

( ॥ ६९ ॥ अ० १५११-१० )

देवोवाभिः । अगती, १० शिष्टम् ।

त्रिरम् सन धेनवो दुदुते  
सुग्यामादिरं पूज्ये व्योमनि ।  
सुग्यायस्या भुयनानि निषिजे  
चारुणि यद्ये यद्वररयधेन  
न निशमापो समृन्म्य चारुण  
उमे द्यावा चारुयता पि दीधये ।  
भोजिष्ठा यपो मंहना परि व्यन  
यदां देयस्य अयं ग्रा मदी विदुः  
ते अम्य गन्तु वेनरोऽमृगयो  
अदांम्यापो जनुगी उमे धनुं ।  
वेनिर्मन्ता यं देव्यां य पुनन  
मादिद् राजाने मननां अमृग्यन

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥



स मूज्यमानो दशभिः सुकर्मभिः  
 प्र मध्यमासु मातृषु प्रमे सत्वा ।  
 वृत्तानि पानो अमृतस्य चारुण  
 उमे नृचक्षा अनु पश्यते विशौ ॥ ४ ॥  
 स मर्मज्ञान इन्द्रियाय धार्यसु  
 ओमे अन्ता रोदसी हृषेते हितः ।  
 वृषा शुष्मेण धाधते वि दुर्मतीः  
 आदेदिशानः शयहेयं शूरयः ॥ ५ ॥  
 स मातरा न दर्शान उच्रियो  
 नानन्ददेति मुक्तामिह स्यनः ।  
 ज्ञानवृत्तं प्रथमं यत् स्थणेर  
 प्रशस्तये कर्मवृणीत सुकलुः  
 ह्यति भीमो वृषभस्तविष्यया  
 शृङ्गे शिशानो हरिणी चिचक्षुणः ।  
 आ योनि सोमः सुकृतं नि पीदति  
 गव्ययी त्वग् मधति निर्णिगव्ययी  
 शुचिः पुनानस्तुग्वमरेपसं  
 अध्ये हरिर्म्यधाविष्ट सानवि ।  
 जुष्टो मित्राय परुणाप प्रायये  
 विधातु मधु क्रियते सुकर्मभिः  
 पयस्य सोम द्वेयीतये वृषा  
 शृङ्गस्य दादि सोमधानमा पिदा ।  
 गुरा नो बाधाद् दुरिताति पारय  
 क्षेत्रपिठि दिदा आहा विष्टृष्टने  
 हिमो न सतिमि याजमर्ग  
 शृङ्गस्येन्दो जुष्टमा पयस्य ।  
 नापा न तिष्ठमति पणि विह्वान्  
 रागे न पुष्पप्रय नो निदः रूपः ॥ १० ॥

॥ १० ॥ ( ४४९ ॥ १० ॥ )

अथो देवा मिता । अग्नौ, १ । प्रष्टु ।

धा ददिना शृग्यमे दाप्यादुगद  
 पति हृष्टो दशभिः पानि जायविः ।

हरिरोपशं कृणुते नभस्पय  
 उपस्तिरे चम्बोद्रेहा निर्णिजे ॥ १ ॥  
 प्र कृष्टिहेव शृष पति रोदवद्  
 असुर्यः वर्ण नि रिणीते अस्य तम् ।  
 जहाति वधि पितुरेति निष्कृतं  
 उपप्रुतं कृणुते निर्णिजं तना ॥ २ ॥  
 अद्रिभिः सुतः पवते गभस्तयोः  
 वृषायते नमसा वेपते मती ।  
 स मोदते नसते साधते गिरा  
 नैनिके अस्तु यजेते परीमणि ॥ ३ ॥  
 परि वृक्षं सहस्रं पर्वतावृधं  
 मध्वः सिञ्जति हर्म्यस्य सक्षणिम् ।  
 आ यस्मिन् गावः सुहुताद् ऊधनि  
 मूर्धच्छीणर्यग्नियं वरीमभिः ॥ ४ ॥  
 समी रथं न भुरिजोरहेपत  
 दश स्वसाये अर्धितेरुपस्थ आ ।  
 जिगादुपं जयति गोरेपीचयं  
 पदं यदस्य मतुथा अजीजनन् ॥ ५ ॥  
 ह्येनो न योनि सदनं धिया वृत्तं  
 हिरेण्यमासदं वेध प्रपति ।  
 ए रिणस्ति यद्विधिं प्रियं गिरा  
 अथो न देवो अप्येति यद्वियः ॥ ६ ॥  
 परा व्यक्तो अरुपे द्वियः कविः  
 वृषा त्रिपुष्टो अनधिष्ट गा अभि ।  
 सहस्रणीतिर्यतिः परायती  
 रेभो न पूर्णकृतो वि राजति ॥ ७ ॥  
 रथेयं रूपं कृणुते यणो अस्य स  
 यत्रादीयत् समता रोधति त्रिषा ।  
 अन्ता याति स्थप्या दैव्यं जगं  
 नं सुष्टुती नमते स गोभ्रमया ॥ ८ ॥

उक्षेयं युथा परियर्त्तवावीद्  
अधि त्विपरिधित् सूर्यस्य ।  
दिव्यः सुपणोऽयं चक्षत क्षां  
सोमः परि क्रतुना पश्यते जाः

॥ ७१ ॥ ( ऋ० ९।७२।१-९ )

हरिमन्त आत्रिरसः । जगती ।

हरिं मृजन्त्यरुयो न पुज्यते  
सं धेनुभिः कलशे सोमो अज्यते ।

उद् वाचमीर्यति हिन्यते मती  
पुरुषुतस्य कति चित् परिप्रियः

साकं पदन्ति वृहयो मनीषिण  
इन्द्रस्य सोमं जडरे यदावुहुः ।

यदा मृजन्ति सुगमस्तयो नरः  
सर्नीकामिदंशभिः काम्यं मधुं

अरममाणो अत्येति गा अमि  
सूर्यस्य प्रियं दुहितुस्तिरो र्वम् ।

अम्वस्मै जोषमभरद् विनंगुसः  
सं हृयीमिः स्वष्टभिः क्षेति जामिभिः

नृधृतो अद्रिपुतो ग्रहिर्पि प्रियः  
पतिर्गवां प्रदिष इन्दुं क्रुत्विष्यः ।

पुरंधियान् मनुष्यो यद्वासाधनः  
शुचिंधिया पयते सोमं इन्द्र ते

नृपाहुभ्यां चोदितो धारया सुतो  
अनुष्वधं पयते सोमं इन्द्र ते ।

आप्राः क्रतुर्गसमजैरप्युरे मतीः  
वेनं द्रुपच्यम्योऽरासद्वारिः

अंशुं उदन्ति स्तनयन्तमक्षितं  
कपि कययोऽपसो मनीषिणः ।

समी गावो मृतयो यन्ति सुयतं  
श्रुतस्य योना सदाने पुनर्भुवः

॥ १ ॥

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

नामां पृथिव्या धरुणो महो दिवोः  
अपामूर्मां सिन्धुष्वन्तर्हतिः ।

इन्द्रस्य वज्रो वृषभो विभूवसुः  
सोमो हृदे पयते चारुं मत्सरः

स त् पवस्व परि पार्थिवं रजः  
स्तोत्रे शिक्षन्नाधून्वते च सुक्रतो ।

मा नो निर्माणं वंसुनः सादनस्पृशो  
रुयं पिशङ्गं बहुलं वंसीमहि

आ त् न इन्द्रो शतशायक्यं  
सहस्रदातु पशुमक्षिरण्यवत् ।

उषं मास्य वृहती रेवतीरिपो  
अर्थिं स्तोत्रस्य पयमान नो गहि

॥ ७१ ॥ ( ऋ० ९।७३।१-९ )

पविन आत्रिरसः ।

अस्वै द्रप्सस्य धर्मतः समस्वरज्  
श्रुतस्य योना समरन्त नाभयः ।

त्रीन्स मूर्ध्नो असुरश्चक्र आरभे  
सत्यस्य नावः सुहृतमपीपरज्

सम्यक् सम्यज्जो महिषा बहेपत्  
सिन्धोरूर्मावधि वेना अवीविपन् ।

मघोषारोमिर्जनयन्तो अर्कमित्  
प्रियामिन्द्रस्य तन्वमपीवृधन्

पवित्रवन्तः परि वाचमासते  
पितैर्षां प्रतो अमि रक्षति वृत्तम् ।

महः संमुद्रं चरुणस्तिरो दधे  
धीरा इच्छेकुर्धरणेष्वारमम्

सहस्रधारेऽय ते समस्वरज्  
दिवो नाके मधुजिह्वा असध्वतः ।

अस्य स्पशो न नि म्रियन्ति भूर्णयः  
पदेपदे पादिनः सन्ति सेतवः

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

पितुर्मातुरध्या ये समस्वरन्  
श्रुत्वा शोचन्तः संदहन्तो अमृतान् ।

इन्द्रद्रिष्टामपे धमन्ति मायया  
त्वचमसैर्नी भूमनो द्विघर्यारै  
प्रत्नान्मानादध्या ये समस्वरन्  
श्लोक्यन्मासो रभसस्य मन्तवः ।

अपानक्षासो घघिरा अहासत  
श्रुतस्य पन्थां न तरन्ति दुष्कृतः  
सहस्रधारे चितते पवित्र आ  
वाचं पुनन्ति कययो मनीषिणः ।

रुद्रासं पपामिपिरासो अद्रुहः  
स्पशः स्वर्जः सुदृशो नृचक्षसः  
श्रुतस्य गोपा न वभाय सुकृतुः  
ग्री प पवित्रा हृद्यभूतरा दधे ।

विद्वान्स विभ्रा भुवनाभि पश्यति  
अवाञ्जुष्टान् विध्यति कर्ते अमृतान्  
श्रुतस्य तन्तुर्धिततः पवित्र आ  
लिङ्गाया अग्ने वर्णस्य मायया ।

धीरोश्चित् तत् सुमिनक्षन्त आश्रत  
अत्रा कर्तमघं पद्मास्यप्रभुः

॥ ७३ ॥ ( ऋ० ९।७४।१-९ )

कक्षीवान् दैवतमस । जगती, ८ त्रिष्टुप् ।

दिशूर्न जातोऽघं स्रक्तद् वने  
स्युर्घद् वाज्यरुपः सिपासति ।

द्वियो रेतसा सचते पयोवृधा  
तमीमदे सुमती शर्म सुप्रथः

द्वियो यः स्कम्भो धरुणः स्वातित  
आपूर्णो अंशुः पर्येति विश्वतः ।

सेमे मदी रोदसी यक्षद्रावृता  
समीचीने दाधार समिपः कविः

मदि पसरः सुर्गतं सोम्यं मधु  
उर्या गम्यतिरदितेभ्रुतं यते ।

ईशो यो वृष्टेति अघियो घृया

अपां नेता य इतर्कतिश्रुमिग्यः

आत्मन्वध्रमो दुष्टते घृतं पयः

श्रुतस्य नाभिर्मृतं वि जायते ।

समीचीनाः सुदानयः प्रीणन्ति तं

नरो हितमघं मेदन्ति परेयः

अरवीदंशुः सचमान कुर्मिणा

देवाय्यं मनुषे पित्यति त्यर्चम् ।

दधाति गर्भमदितेरुपस्य आ

येन लोकं च तनयं च धामदे

सहस्रधारेऽव ता असधतः

तृतीयं सन्तु रजसि प्रजार्धतीः ।

चतस्रो नामो निहिता अघो द्वियो

हविर्भैरत्येभ्रुतं घृतधृतः

भ्वेतं रूपं कणुते यत् सिपासति

सोमो मीद्वो असुरो वेव भूमनः ।

धिया शर्मो सचते सेममि प्रवद्

दिवस्कवन्धमव दर्पद्विर्णम्

अघं भ्वेतं कुलशं गोभिरुक्तं

कार्मेना वाज्यक्रमीत् ससवान् ।

आ हिंस्विरे मनसा देव्यन्तः

कक्षीर्वते शतहिमाय गोनाम्

अङ्गिः सौम पयवानस्य ते रसो

अघ्यो वारं वि पयमान धावति ।

स मूज्यमानः कविभिर्मदित्तम

स्वदस्वेन्द्राय पवमान पीतये

॥ ७४ ॥ ( ऋ० ९।७५।१-५ )

कविर्मांय । जगती ।

अभि प्रियाणि पवते चनोदितो

नामानि युद्धो अघि येपु चधेत ।

आ सूर्यस्य बृहतो बृहधधि

रयं विष्वञ्जमरुद् विचक्षणः

॥ ३ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ १ ॥

॥ ९ ॥

॥ २ ॥

॥ १ ॥

(४९०६)

इन्द्राय सोमं परि पिच्यसे नृभिः  
नृचक्षा ऊर्मिः कृषिरज्यसे धने ।  
पुर्धाहि ते ह्युतयः सन्ति यातये  
सहस्रमभ्या हरयश्चमूपर्वः

॥ २ ॥

समुद्रिया अप्सरसो मनीषिणं  
आसीना अन्तरभिः सोममक्षरन् ।  
ता हि हिन्यन्ति हर्ग्यस्य सक्षणि  
पाचन्ते सुन्नं पवमानमक्षितम्

॥ ३ ॥

गोजिह्वः सोमो रथजिह्विरज्यजित्  
स्वर्जिह्वश्चित् पवते सहस्रजित् ।  
यं देवासश्चक्रिरे पीतये मधं  
स्वादिष्टं द्रुप्तमरुणं मयोभुवंम्

॥ ४ ॥

एतानि सोमं पवमानो अस्मयुः  
सुत्यानि कृण्वन् प्रविणान्यर्पसि ।  
जहि शत्रुमन्त्रिके वूरके च य  
उर्वी गव्यूतिमभयं च नस्कृधि

॥ ५ ॥

। ७८ ॥ ( अ० ९।७९।१-५ )

अचोदसो नो धन्वन्निवन्देषः  
प्र ह्युवानासो बृहर्हिषेषु हरयः ।  
वि च नशन् न इषो अरातयो  
अयो नशन्त सनिपन्त नो धियः

॥ १ ॥

प्र णी धन्वन्निवन्द्वो मदच्युतो  
धना वा येमिरयतो ह्यनीमसि ।  
तिरो मर्तस्य कस्य चित् परिद्वति  
ययं धनानि बिभ्वर्धा भरेमहि

॥ २ ॥

उत स्वस्या अरोत्या अरिहिं यः  
उतान्यस्या अरोत्या यूको हि यः ।  
धन्यन् न ह्यणा समरीत तां अभि  
सोमं जहि पवमान दुरार्यः

॥ ३ ॥

मिषि ते नामा परमो य धाददे  
पृथिव्यास्ते रगहः सानमि क्षिपः  
अद्रपसथा यप्सति गोरधि त्युचि  
अप्सु त्या हस्तेर्दुदुहर्मेनोणिः

॥ ४ ॥

पया तं इन्दो सुभ्यं सुपेरांसं  
रसं तुजन्ति प्रयमा धमिधियः ।  
निर्दनिदं पयमान नि तारिप  
आधिस्ते शुष्मीं मयतु प्रियो मधः

॥ ५ ॥

॥ ७९ ॥ ( अ० ९।८०।१-५ )

वसुमार्गद्वयः ।

सोमस्य धारा पवते नृचक्षसः  
श्रुतेन देवान् हयते दिवस्पति ।  
यूहस्पते र्वययेना वि दिष्टुते  
समुद्रासो न सर्वनानि विव्यचुः  
यं त्वा वाजिह्वन्या अभ्यनूयत  
अयोदहतं योनिमा रोहसि सुमान् ।

॥ ६ ॥

मघोनामयुः प्रतिरन् महि अघः  
इन्द्राय सोमं पवसे वृषा मधः

॥ ७ ॥

एन्द्रस्य कुक्षा पवते मदिन्तम्  
ऊर्जे वसानः अवंसे सुमङ्गलः ।  
प्रत्यङ् स बिभ्वा भुवंनाभि पंप्रये  
क्रीलन् हरिरत्यः स्यन्दते वृषा

॥ ८ ॥

तं त्वा देवेभ्यो मधुमत्तमं नरः  
सहस्रधारं दुहते दश क्षिपः ।  
नृभिः सोमं प्रच्युतो आर्वाभिः सुतो  
बिभ्वान् देवो आ पवस्वा सहस्रजित्

॥ ९ ॥

तं त्वा हस्तिनो मधुमन्तमाद्रिभिः  
दुहन्त्यप्सु वृषमं दश क्षिपः ।  
इन्द्रं सोमं मादयन् दैव्यं जनं  
सिन्धोरिहोर्मिः पवमानो अर्पसि

॥ १० ॥

( ४२३५ )

॥ ८० ॥ ( क्र० ९।८१।१-५ )

जगती, ५ त्रिष्टुप् ।

प्र सोमस्य पर्वमानस्योर्मयः  
इन्द्रस्य यन्ति जुठरं सुपेशसः ।  
वृष्णा यदीमुर्ग्रीता यशसा गर्वा  
वानाय शरमुदमन्दिपुः सुताः  
अच्छा हि सोमः कलशा असिप्यद्व  
अत्यो न धोळ्हा रघुवर्तनिर्धृपा ।  
अथा देवानामुभयस्य जन्मनो  
विद्धां भ्रमोत्पुमुत इतश्च यत्  
आ नः सोम पर्वमानः किरा वसु  
इन्द्रो भवं मघवा राधसो मूहः ।  
शिक्षा वयोधो वसवे सु चेतुना  
मा नो गर्गमारे अस्सत् परा सिचः  
आ नः पूषा पर्वमानः सुरातयो  
मिश्रो गच्छन्तु घर्षणः सजोर्पसः ।  
इहस्पतिर्मरुतो धापुरभिन  
त्वष्टा सविता सुयमा सरस्वती  
उमे धावापृथिवी विभ्वमिन्वे  
अर्थमा देवो अदितिर्विधाता ।  
भगो नृशंस उर्वरुन्तरिक्षं  
विभ्वे देवाः पर्वमान जुपन्त

॥ ८१ ॥ ( क्र० ९।८१।१-५ )

जगती ।

असावि सोमो अरुणो वृषा हरी  
राजैव वरुमो अमि गा अचिरुदत् ।  
पुनानो वारं पर्येत्यव्ययं  
इयेनो न योनं घृतवन्तमासदम्  
कविर्वेधस्या पर्येपि माहिर्न  
अत्यो न मृष्टो अमि वाजमर्पसि ।  
अपसेधन् दुरिता सोम मूल्य  
घृतं वसानः परि यासि निर्णिजम्

पुर्जन्यः पिता मंहिपस्य पुर्णिनो  
नामा पृथिव्या गिरिषु क्षयं दधे ।  
स्वसार आपो अमि गा उतासरन्  
सं त्रावमिर्नसते वीते अंधरे  
जायेव पत्यावधि शर्वे मंहसे  
पजाया गर्भं शृणुहि धर्मीमि ते ।  
अन्तर्वाणीषु प्र चरा सु जीवसे  
अनिन्यो धृजने सोम आगृहि  
यया पूर्वैभ्यः शतसा अमृधः  
सहस्रसाः पुंर्या वाजमिन्द्रो ।  
पुवा पवस्व सुविताय नग्यसे  
तव मृतमन्वापः सचन्ते

॥ ३ ॥

॥ १ ॥

॥ ४ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ८१ ॥ ( क्र० ९।८१।१-५ )

पर्वत्र आत्रिस्तः ।

पृथिवी ते विततं ब्रह्मणस्पते  
प्रभुर्गात्राणि पर्येपि विभ्वतः ।  
अतस्तनूनं तद्रामो अमृते  
शूतास् इदं घर्हन्तस्तत् समाशत  
तपोष्पविभ्रं विततं दिवस्पदे  
शोचन्तो अस्य तन्तवो व्यस्थिरन् ।  
अर्धग्यस्य पक्षीतारमाशवो  
दिवस्पुष्टमधि तिष्ठन्ति चेतसा  
अरुदचदुपसः पृथिर्विप्रियः  
उक्षा विमर्ति मुर्वनानि वाजपुः ।  
मायाविनो ममिरे अस्य मायया  
नृचक्षसः पितरो गर्भमा वधुः  
गन्धर्व इत्या पदमस्य रक्षति  
पाति देवानां जानिमाग्यद्रुतः ।  
गृष्णाति रिपुं निधया निधायतिः  
सुकुर्त्तमा मधुनो मक्षमाशत

॥ ५ ॥

॥ ४ ॥

॥ १ ॥

॥ ५ ॥

॥ २ ॥

॥ १ ॥

॥ ३ ॥

॥ २ ॥

॥ ४ ॥

(४११९)

हविर्हविष्मो महि सदा देव्यं  
नमो वसानः परि यास्यध्वरम् ।  
राजा पुवित्ररथो घाज्जामरुहः  
सहस्रभृष्टिर्जयसि ध्रुवो घृहत्  
॥ ८३ ॥ ( अ० १८४।१-५ )  
वाच्यः प्रजापतिः ।

पर्वस्व देवमार्दनो विचर्षणिः  
अप्सा इन्द्राय चरुणाय घायधे ।  
कृषी नो अद्य धरिषः स्वस्तिमद्  
वैरुक्षितौ गृणीहि देव्यं जन्मम्  
आ यस्तस्थौ भुधनान्मर्मरथो  
विभ्यानि सोमः परि तान्यर्पयति ।  
कृष्णसंजृते विचूर्तमभिष्टय  
इन्दुः सिपकयुपलं न सूर्यः  
आ यो गोभिः सृज्यत ओर्षधीषा  
देवानां सुम्न इपयन्नुपावसुः ।  
आ विद्युता पवते धारया सुतः  
इन्द्रं सोमो मावपन् देव्यं जन्मम्  
एष स्य सोमः पवते सहस्रजिद्  
हिम्बानो घाक्षमिदिरामुर्बुधम् ।  
इन्दुः समुद्रमुद्विषति वायुभिः  
एन्द्रस्य हार्दि कलशेषु सीदति  
अभि त्वं गावः पर्यसा पयोवृधं  
सोमं श्रीणन्ति मतिभिः स्वविर्दम् ।  
धनंजयः पवते कृत्यो रसो  
धिप्रः कृषिः काव्येना स्वचनाः

॥ ८४ ॥ ( अ० १८४।१-११ )

बेनो आगवः । अगती, ११-१२ त्रिष्टुप् ।

इन्द्राय सोमं सुपुतः परि स्रव  
अपार्मीवा भवतु रक्षसा सह ।  
मा ते रक्षस्य मत्सत ह्यपाविनो  
द्रधिणम्यन्त इह सन्तिवन्दयः

अस्मान्तस्मयै पर्यमान ओदय  
वक्षो देवानामसि हि प्रियो मर्दः ।  
अदि शत्रूरभ्या मन्दनायतः  
॥ ५ ॥ पिबेन्द्र सोममर्ष नो मूर्धो अदि ॥ २ ॥  
मर्दस्य इन्दो पयसे मदिन्तम  
आत्मेन्दस्य भवसि घासिरेतम ।  
अभि स्वरन्ति पदयो मनीषिणो  
राजानमस्य भुधनस्य निसते ॥ ३ ॥  
सहस्रणीयः शतधारो अन्नतः  
॥ १ ॥ इन्द्रायेन्दुः पवते काम्यं मधु ।  
जयन् क्षेत्रमभ्यर्षा जयन्त्रप  
जयं नो गातुं कृणु सोम मीदयः ॥ ४ ॥  
कर्निमदत् कलशे गोभिरज्यसे  
॥ २ ॥ व्युध्ययै सुमया धारमर्पसि ।  
मर्मजयमानो अत्यो न सानसिः  
इन्द्रस्य सोमं जठरे समक्षरः ॥ ५ ॥  
स्वादुः पर्वस्व दिव्याय जन्मने  
॥ ३ ॥ स्वादुरिन्द्राय सहवीतुनाग्ने ।  
स्वादुर्मित्राय चरुणाय घायधे  
॥ ६ ॥ वृद्धस्पतेयं मधुमां अवाभ्यः  
अत्यै मृजन्ति कलशे वश क्षिपः  
प्र विप्राणां मृतयो वाच ईरते ।  
पर्वमाना अभ्यर्पन्ति सुपुति  
॥ ७ ॥ एन्द्रं विशन्ति मदिरास इन्दवः  
पर्वमानो अभ्यर्षा सुवीर्यं  
उर्वी गव्युतिं महि शर्म सप्रयः ।  
॥ ५ ॥ मार्किनो अस्य परिपूतिरीशतं  
इन्दो जयेम स्वया धनं धनम् ॥ ८ ॥  
अधि घामस्वाद् वृषभो विचक्षुणो  
अरुक्षद् वि दिवो रोचना कृषिः ।  
राजा पुवित्रमत्येति रोक्षद्  
॥ १ ॥ दिवः पीयूषं वुहते नृचक्षसः ॥ ९ ॥

दिवो नाके मधुजिह्वा असद्यतो  
 वेना वृहन्पुश्रणं गिरिग्राम् ।  
 अप्सु द्रप्सं वावृधानं संमुद्र आ  
 सिन्धोरुर्मा मधुमन्तं पवित्र आ ॥ १० ॥  
 नाकं सुपर्णमुपपत्तिवांसं  
 गितो वेनानामरुपन्त पुष्पाः ।  
 शिशुं रिहन्ति मतयः पनिप्लतं  
 हिरण्यपै शकुनं क्षामणि स्याम् ॥ ११ ॥  
 ऊर्ध्वो गन्धर्वो अधि नाकं अस्थाद्  
 विश्वा रूपा प्रतिचक्षाणो अस्य ।  
 मानुः शुक्रेण शोचिषा व्यष्टौ  
 मारुचद् रोदसी मातरा शुचिः ॥ १२ ॥

॥ ८५ ॥ ( अ० १।८३।१-४८ )

१-१० अष्टमा मापाः, ११-२० क्षिता निवावरी, २१-  
 २० शुश्रिषोऽत्राः, २१-४० अष्टदश पादयज्ञयः, ४१-  
 ४५ भौमोऽग्निः, ४६-४८ गृहमदः, द्यौनकः ।  
 अगती ।

प्र ते आशवः पवमान धीजघ्नो  
 मदा अर्पन्ति रघुजा इध रमना ।  
 दिव्याः सुपर्णा मधुमन्त इन्द्रो  
 मादित्तमासुः परि कोशमासते ॥ १ ॥  
 प्र ते मदासो मदिरास आशघो  
 अर्क्षत रर्यासो यया पूर्वक् ।  
 धेनुर्न घृत्सं पर्यसाभि वृज्जिणं  
 इन्द्रमिन्द्रो मधुमन्त ऊर्मयः ॥ २ ॥  
 अत्यो न द्विपानो अमि वाज्रमयं  
 स्थर्वित् कोशं दिवो अद्रिमातरम् ।  
 वृषा पवित्रे अधि सानो अय्यये  
 सोमः पुनान इन्द्रियाय धार्यसे ॥ ३ ॥  
 प्र त आश्विनीः पवमान धीजघ्नो  
 दिव्या अर्क्षन् पर्यसा घर्तमाणि ।

प्रान्तर्गृह्यः स्यार्विरीरसुसुत  
 ये त्वा मृजन्त्यृषिपाण वेधसः ॥ ४ ॥  
 विश्वा धामानि विश्वचक्ष ऋभ्वंसः  
 प्रमोर्त्से सतः परि यन्ति केतवः ।  
 व्यानशिः पवसे सोम धर्ममिः  
 पतिर्विश्वस्य भुवनस राजसि ॥ ५ ॥  
 उमयतः पवमानस्य रश्मयो  
 ध्रुवस्य सतः परि यन्ति केतवः ।  
 यदा पवित्रे अधि मृज्यते हरिः  
 सत्ता नि योनां कुलशेषु सीदति ॥ ६ ॥  
 यक्षस्य केतुः पवने स्वध्वरः  
 सोमो देवानामुप याति निष्कृतम् ।  
 सहस्रधारः परि कोशमर्पति  
 वृषा पवित्रमर्पेति रोक्षवत् ॥ ७ ॥  
 राजा समुद्रं नद्योऽ वि गाहते  
 अपामुमि संचते सिन्धुपु श्रिनः ।  
 अर्घ्यस्यात् सानु पवमानो अय्यये  
 नामा पृथिव्या धरणो महो दिवः ॥ ८ ॥  
 दिवो न सानुं स्तनयन्नचिकवद्  
 यौक्ष यस्य पृथिवी च धर्ममिः ।  
 इन्द्रस्य सूर्यं पवते विधेर्वदत्  
 सोमः पुनानः कुलशेषु सीदति ॥ ९ ॥  
 ज्योतिर्यज्ञस्य पयते मधु मियं  
 पिता देवानां जनिता विभुर्वसुः ।  
 दधाति रत्नं स्वधर्योत्पीर्यं  
 मदिन्तमो मत्सर इन्द्रियो रसः ॥ १० ॥  
 अभिकन्दं कुलशं वाज्यपति  
 पतिर्दिवः शतधारो विचक्षणः ।  
 हविर्मित्रस्य सवनेषु सीदति  
 मधुज्ञानोऽर्विमिः सिन्धुमिर्दृषा ॥ ११ ॥

अग्ने सिन्धुनां पर्वमानो भवति  
 अग्ने वाचो अग्निरो गोधुं गच्छति ।  
 अग्ने वाजस्य भजते महाधनं  
 स्वायुधः सोमभिः पूयते वृषां  
 अयं मृतवाञ्छकुनो यथा हितो  
 अयं समार पर्वमान ऊर्मिणा ।  
 तय क्रत्या रोदसी अन्तरा कवे  
 शुचिर्धिया पयते सोम इन्द्र ते  
 आपि यमानो यजतो दिविस्पृशं  
 अन्तरिक्षमा भुवनेष्वर्षितः ।  
 स्वर्जमानो नमस्तस्म्यक्रमीन्  
 प्रलमस्य पितरमा धियामति  
 सो अम्य पिशे महि शर्म यच्छति  
 यो अम्य धाम प्रथमं ध्यानदे ।  
 पुद यदस्य परमे ध्यामन्  
 यतो विभ्यां धामि नं याति संयतः  
 प्रो ध्यामीदिन्द्रुतिन्द्रस्य निष्कृतं

॥ १२ ॥

॥ १३ ॥

॥ १४ ॥

॥ १५ ॥

क्राणा सिन्धुनां कलशौ अवीवशद्  
 इन्द्रस्य हायीविशन् मनीषिभिः  
 मनीषिभिः पवते पुर्व्यः कविः  
 नृमिर्यतः परि कोशौ अचिक्रदत् ।  
 धितस्य नाम जनयन् मधु क्षरद्  
 इन्द्रस्य चायोः सुख्याय कर्तवे  
 अयं पुनान उपसो वि रौचयद्  
 अयं सिन्धुर्म्यो अभवदु लोककृत् ।  
 अयं त्रिः सप्त दुदुहान आशिरे  
 सोमो हृदे पयते चारु मत्सरः  
 पर्वस्य सोम दिव्येषु धामसु  
 खजान इन्द्रो कलशौ पवित्र आ ।  
 सीदुभिन्द्रस्य जुठरे कर्तिप्रवद्  
 नृमिर्यतः सूर्यमारौहयो विधि  
 अग्निभिः सुतः पयसे पृथिव्यं मां  
 इन्द्रपिन्द्रस्य जुठरेप्पायिशन् ।  
 त्वं नृचक्षां अभयो विचक्षण

॥ १९ ॥

॥ २० ॥

॥ २१ ॥

॥ २२ ॥



असृष्टतः शतधारा अमिथियो  
हरिं नवन्तेऽव ता उदन्त्यः ।  
क्षिपौ मृजन्ति परि गोभिरावृतं  
तृतीयं पृष्ठे अधि रोचने दिवः  
तवेमाः प्रजा दिव्यस्य रेतसः  
त्वं बिभ्वस्य भुवनस्य राजसि ।  
अयेदं बिभ्वं पवमान ते यशो  
त्वमिन्द्रो प्रथमो धामघा असि  
त्वं समृद्धो असि बिभ्वसि कवे  
तवेमाः पञ्च प्रदिशो विधर्मणि ।  
त्वं धां च पृथिवीं चाति जम्भिये  
तव ज्योतीषि पवमान सूर्यः  
त्वं पृथिव्ये रजसो विधर्मणि  
वेद्यम्यः सोम पवमान पूयसे ।  
त्वामुशिजः प्रथमा अगृणत्  
तुभ्येमा बिभ्वा भुवनानि येमिरे  
प्र रेम पत्यति वारमुभ्यं  
वृषा वनेष्वव चक्रुर्हरिः ।  
सं धीतर्यो वावशाना अनूपत  
शिष्टं रिहन्ति मृतयुः पर्निमतम्  
स सूर्यस्य यस्मिन्निः परं व्यत  
तन्तुं तन्मानलिब्रुतं यथा विदे ।  
नर्यधृतस्य प्रदिपो नर्धायसीः  
पतिर्जनीनामुप याति निष्कृतम्  
राजा सिन्धूनां पथते पतिर्दिव  
श्रुतस्य याति पथिभिः कर्निकवत् ।  
सहस्रधारः परं पिच्यते हरिः  
पुनानो वाचं जनयप्रपायसुः  
पवमान महर्णो वि धावसि  
स्ये न चित्रो अन्ययानि पर्याया ।

॥ २७ ॥

॥ २८ ॥

॥ २९ ॥

॥ ३० ॥

॥ ३१ ॥

॥ ३२ ॥

॥ ३३ ॥

गमस्तिपूतो नमिरात्रिभिः सुतो  
महे वाजाय धन्वाय धन्वासि ॥ ३४ ॥  
इषमूर्जे पवमानाभ्यर्षसि  
श्येनो न वंसु कलशेषु सीदसि ।  
इन्द्राय मद्रा मद्यो मद्रः सुतो  
दिवो विष्टम्म उपमो विचक्षणः ॥ ३५ ॥  
सस स्वसारो अमि मातरः शिशुं  
नयं जमानं जेग्यं विपश्चितम् ।  
अपां गन्धर्व दिव्यं नृचक्षुं  
सोमं बिभ्वस्य भुवनस्य राजसे ॥ ३६ ॥  
ईशान इमा भुवनानि वीयसे  
युजान इन्द्रो हरितः सुपुण्यः ।  
तास्ते शरन्तु मधुमद् घृत पयः  
तव व्रते सोम तिष्ठन्तु रुद्रयः ॥ ३७ ॥  
त्वं नृचक्षा असि सोम बिभ्वतः  
पवमान वृषसु ता वि धावसि ।  
स नः पवस्व वसुमद्विरण्यवद्  
वयं स्याम भुवनेषु जीवसे ॥ ३८ ॥  
गोविद् पवस्व वसुविद्विरण्यविद्  
रेतोधा इन्द्रो भुवनेष्वर्षितः ।  
त्वं सुवीरो असि सोम बिभ्वसि  
तं त्वा विभ्रा उर्य गिरेम आसते ॥ ३९ ॥  
उगमर्ष ऊर्मिर्भनना अतिष्ठिपद्  
अपो वसानो महिपो वि गाहते ।  
राजा पवित्ररयो वाजुमारुहत्  
सहस्रमृष्टिर्जयति श्रवां वृहत् ॥ ४० ॥  
स मन्दना उदियति प्रजावतीः  
बिभ्वायुविभ्वाः सुमरा अहर्दिवि ।  
ब्रह्मं प्रजावद् रयिमभ्यर्षस्यं  
पित इन्द्रविष्टमसम्यं याचतात् ॥ ४१ ॥

( ४३०८ )

सो अग्ने ब्रह्मां हरिर्हर्यतो मनुः  
 प्र चेतसा चेतयते अनु द्युभिः ।  
 द्वा जनां यातर्यप्रन्तरिपते  
 नरां च शंसं दैव्यं च धर्तारि  
 भञ्जते व्यञ्जने समञ्जने  
 ऋतुं रिदन्ति मधुनाभ्यञ्जते ।  
 सिन्धोर्दृच्छन्तसे पुनर्यन्तमुक्षणे  
 हिरण्यपायाः पशुमांसु गृभ्णते  
 विपश्चिने पर्यमानाय गायत  
 मही न धारात्यन्धो अरति ।  
 अद्दिनं जुषामति सर्पति त्वचं  
 अन्यो न मीळिप्रसरद् घृणा हरिः  
 सन्धेगो राजाप्यस्तपिप्यते  
 यिमानो ब्रह्मां भुयन्तेऽर्षितः ।  
 हरिर्पुनस्तुः सुददीको अर्णयो  
 ज्योतीत्यः पणने राय ओज्यः  
 अतर्जि स्वग्मो दिप उद्यतो मनुः  
 गरिं त्रिषातुर्भुवनान्वरति ।  
 भंशुं रिदन्ति मनुष्यः पत्रिजनं

॥ ४२ ॥

॥ ४३ ॥

॥ ४४ ॥

॥ ४५ ॥

अश्वं न त्वां वाजिनं मर्जयन्तो  
 अच्छां बर्हो रश्नानभिर्नयन्ति  
 स्वायुधः पवते देव इन्दुः  
 अशस्तिहा वृज्जं रक्षमाणः ।  
 पिता देवानां जनिता सुदक्षो  
 विष्टम्भो द्विवो ध्रुवणः पृथिव्याः  
 ऋषिर्धर्मः पुरस्ता जनां  
 ऋमूर्धार उशना कार्वेन ।  
 स चिद् विवेद निहितं यदासां  
 अपीव्यं गुह्यं नाम गोनाम्  
 पुष्यस्य ते मधुमो इन्द्र सोमो  
 घृणा घृणे परि पवित्रे अक्षाः ।  
 सहस्रसाः शतसा भूरिदाया  
 शम्भुसमं वहिरा वाज्यस्यात्  
 एते सोमा अभि गव्या सहस्रा  
 मृदे याजायामृताय धर्षासि ।  
 पवित्रेभिः पर्यमाना भरुमन्  
 अयस्यो न पृतनाजो अत्याः

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

उत स्म साशि परि यासि गोनां  
इन्द्रेण सोम सुरर्थ पुनानः ।

पूर्वोरियो बृहतीर्जांरदानो

शिक्षो शचीवस्तव ता उपपुत्

॥ ८७ ॥ ( ऋ० १।८८।१-८ )

अयं सोम इन्द्र तुभ्यं सुन्वे

तुभ्यं पवते त्वमस्य पाहि ।

त्वं ह यं चक्षुषे त्वं बंधुप

इन्द्रं मदाय युज्याय सोमम्

स ह रथो न भुरियाळ्योजि

महः पुराणि सातये वर्धनि ।

आदीं विश्वा नहुव्याणि ज्ञाता

स्वर्पाता धन ऊर्षा नवन्त

शायुने यो नियुत्वा इष्टयामा

नारत्येष हव आ शंभविष्टः ।

विश्ववारी व्रथिणोद्वा इव त्वन्

पुषेव जीजर्वनोऽसि सोम

इन्द्रो न यो महा कर्मणि चर्किः

हन्ता वृत्राणामसि सोम पुमिन् ।

पैत्रो न हि त्वमहिनाम्नां हन्ता

विश्वस्यासि सोम दस्योः

अग्निर्न यो वन आ सृज्यमानो

वृथा पाजांसि कृणुते नदीपु ।

जानो न युष्वा महत उपन्दिः

इयति सोमः पर्वमान ऊर्मिम्

एते सोमा अति वाराण्यव्या

विष्या न कोशासो अभ्रवर्षाः ।

वृथा समुद्रं सिन्ध्वेयो न नीवीः

सुतासो अमि कुलशौ असुन्न

शुष्मी शघो न मारुतं पवस्व

अनमिशस्ता विष्या यथा विट् ।

आपो न मक्षु सुमतिर्मेवा नः

सहस्राप्ताः पृतनापाणन युक्ताः

॥ ७ ॥

राक्षो नु ते वरुणस्य द्रुतानि

बृहद्भीरं तव सोम धाम ।

युचिद्रुमसि प्रियो न मित्रो

दक्षार्यो अयमेवांसि सोम

॥ ८ ॥

॥ ८८ ॥ ( ऋ० १।८९।१-७ )

ग्रो स्य वर्किः पृथ्याभिरस्यान्

द्विषो न वृष्टिः पर्वमानो मक्षाः ।

सहस्रधारो असद्वन्धुसे

मातुरुपस्थे वन आ च सोमः

॥ १ ॥

राजा सिन्धूनामवसिष्ट वास

ऋतस्य नावमारुहव रजिष्ठाम् ।

अप्सु द्रुप्तो वावृषे श्येनजतो

बुध ई पिता बुध ई पितुर्जाम्

॥ २ ॥

सिंहं नसन्त मर्षो अयासं

हरिमरुपं द्विषो अस्य पतिम् ।

शूरो युस्तु प्रथमः पृच्छते गाः

अस्य चक्षसा परि पात्युक्षा

॥ ३ ॥

मधुपृष्ठं घोरमयासुमध्वं

रथे युज्यत्युदक्क श्रुष्वम् ।

स्वसार ई जामयो मर्जयन्ति

सनोमयो धाजिनमूर्जयन्ति

॥ ४ ॥

चतस ई घृतदुहः सचन्ते

समाने अमर्धरणे निरपताः ।

ता ईमर्पन्ति नमसा पुनानाः

ता ई विष्टवतः परि यन्ति पुर्वोः

॥ ५ ॥

विष्टम्भो द्विषो घृणः पृथिव्या

विष्टवा उत क्षितयो हस्तं अस्य ।

असत् त उस्तौ गृणते नियुत्वा

मर्षो अंशुः पवत इन्द्रियाय

॥ ६ ॥

चन्वन्नवातो अभि देववीति  
इन्द्राय सोम वृत्रहा पवस्य ।  
शुग्धि महः पुरुश्चन्द्रस्य रायः  
सुवीर्यस्य पतयः स्याम

॥ ८९ ॥ ( अ० १।९।१-६ )

वसिष्ठो मंत्रावरणिः ।

प्र हिं॒वानो जनि॒ता रोद॑स्यो  
रथो न वाजै॑ सनि॒प्यन्नयासीत् ।  
इन्द्रं गच्छन्नायु॑धा संशि॒शानो  
विश्वा वसू॑ हस्तयोरा॒दधानः  
अ॒भि त्रि॑पू॒ष्ठं वृ॒षणं वयो॑धां  
आ॒हुयाण॑मिवाव॒शन्त॑ वाणीः ।  
यना॑ वस॒नो धर॑णो न सिन्धु॒न्  
वि रत्न॑धा द॒यते॑ धार्याणि  
शर॑प्रा॒मः सर्व॑वीरः सहा॒वान्  
जेता॑ पय॒स्य स॒र्जिता॑ घनानि ।  
ति॒ग्मायु॑धः क्षिप्र॑र्धन्या स॒मस्तु  
अपा॑ब्धः सा॒हान् प॒र्वता॑स शत्रून्  
उ॒रुता॑प्यु॒तिर॒म्यानि॑ कृ॒षन्  
र॒जमी॒क्षानि॑ आ प॒यस्या॑ पु॒रैषी॑ ।  
अ॒पः सि॒पास॒द्रुप॑यः स्व॒र्गुगाः  
सं चि॑त्र॒दो म॒दो अ॒स्मभ्य॑ याजान्  
म॒रि॒त॒सोम॑ धर॑णं म॒रि॒त॒सि मि॒त्रं  
म॒रुती॑न्द्र॒मिन्द्रो॑ पय॒मान॑ वि॒ष्णुम् ।  
म॒रि॒त॒शार्प॑ मा॒रुत॑ म॒रि॒त॒से॒वान्  
म॒रि॒त॒मु॒हामि॑न्द्र॒मिन्द्रो॑ म॒रु॒तय॑  
प॒षा रा॒ज॑वृ॒षा म॒रु॒त॒मो॒ अ॒ग्ने॒न्  
यि॒श्वा घ॒र्निम॑द् द॒रिता॑ प॒वस्य॑ ।  
द॒ग्दो॑ तु॒क्ताय॑ व॒र्च॑से॒ पयो॑ धा  
पु॒यं गां॑ वृ॒क्षि॒ति॒भिः सदा॑ नः

॥ ७ ॥

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ९० ॥ ( अ० १।९।१-६ )

वृत्रघ्नो मारीचः ।

अ॒स॒र्जिं व॒क्त्रा र॒थ्ये यथा॑जौ  
धि॒या म॒नोता॑ प्रथ॒मो म॒नीषी॑ ।  
द॒श स्व॒सा॒रो अ॒धि सा॒नो अ॒व्ये  
अ॒र्जन्ति॑ वह्नि॒ स॒र्दना॑न्यच्छ  
वी॒ती ज॒न॒स्य दि॒व्यस्य॑ क॒व्यैः  
अ॒धि सु॒वानो॑ न॒हु॒प्येभि॑रिन्द्रः ।  
प्र यो नृ॒भि॒र॒मृतो॑ म॒र्यैभिः  
म॒र्म॒ज्ञानो॑ऽवि॒भि॒र्गोभि॑र॒ग्निः  
वृ॒षा वृ॒ष्णे रो॒क्षव॑द॒शर॑स्मै  
प॒र्वमा॒नो र॒शदी॑ते॒ पयो॑ गोः ।  
स॒हस्र॑मृ॒क्ता प॒थिभि॑र्व॒चोवि॑द्  
अ॒ध्व॒स॒भिः स॒रो अ॒ण्वं वि॑ याति  
र॒ज॒जा वृ॒क्ष्वा वि॑द् र॒क्ष॒सः सदा॑स्ति  
पु॒नान॑ इ॒न्द्र ऊ॒र्णुहि॑ वि वाजान् ।  
वृ॒क्षोप॑रि॒ष्टात् तु॒ज॒ता व॒धेन॑  
ये अ॒न्ति दू॒रादु॑प॒नाय॑मेषाम्  
स म॒न्त्रव॑न्न॒वसे॑ वि॒भवा॑र  
सू॒काय॑ प॒थः कृ॒णुहि॑ प्राचः ।  
ये दु॒ष्यहा॑सो वृ॒नुया॑ वृ॒हन्तः  
ताँस्ते॑ अ॒दयाम॑ पुरु॒हत् पुरु॑क्षो  
प॒षा पु॒नानो॑ अ॒पः स्व॒र्गुगां॑  
अ॒स्मभ्य॑ लो॒का त॑न॒यानि॑ भूरि॑ ।  
शं नः॑ क्षे॒त्रमु॑द्य ज्योती॒रपि॑ सोम॒  
ज्यो॒क्षन्तः॑ सूर्ये॒ दृढा॑र्ये॒ रिरि॑दि  
परि॑ सु॒वानो॑ द॒रि॒रं॒गुः प॒यि॒त्रे  
रथो॑ न स॒र्जि सु॒नये॑ दि॒यानः॑ ।  
आ॒प॒च्छो॒र्कमि॑न्द्रि॒यं पू॒यमा॑नः  
प्रति॑ दे॒वो अ॒भ्यु॒पत् प्रयो॑भिः

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ १ ॥

( ४१५९ )

अच्छा नृचक्षा असत् पवित्रे नाम दर्शनः कविरस्य योनी । सीदन् होतृय सदेने चमूयु उपेममन्त्रययः सप्त विप्राः प्र सुमेधा गार्तुविद् विश्वदेवः सोमः पुनानः सदे पति नित्यम् । मुवद् विश्वेषु काव्येषु रता अनु जनान् यतते पञ्च धीरः तद्य एवे सोम पवमान निष्ये विश्वे देवास्त्रय एकादशासः । दश स्वधामिरधि सानां अध्ये मृजन्ति त्वा नृपः सप्त यद्वीः तल्लु सत्यं पवमानस्यास्तु यद्य विश्वे कारवः संनसन्त । ज्योतिर्यद्वे अरुणोदु लोकं प्राधन्मनुं दस्यवे करुमीकम् परि सधैव पशुमन्ति होता राजा न सत्यः समितीरियानः । सोमः पुनानः कुलशौ अपामीत् सीदन् मृगो न मंहिषो वनेषु ॥ १२ ॥ ( ऋ० १०३१-५ ) नोषा गोम. । साक्रमुक्षौ मजंयन्त स्वसाये दश धीरस्य धीनयो धनुषीः । हरिः पर्यद्वज्जाः सूर्यस्य द्रोणं ननजे अत्यो न चाजी सं मातृभिर्न शिशुर्वापशानो वृषा दधन्वे पुह्यारो वज्रिः । मयो न योषामि निष्टुन यन् सं गच्छते कुलश उस्त्रियामिः	उत प्र पिप्य ऊधरण्याया इन्दुर्धाराभिः सचते सुमेधाः । मूर्धानं गावः पर्यसा चमूयु अभि श्रीणन्ति वलुभिर्न निकैः ॥ २ ॥ स नो देवोभिः पवमान रुद इन्द्रो रयिमृश्विनं वावशानः । रयिरयतामुशतो पुरंधिः ॥ ३ ॥ अस्मद्युगा दावने वसन्ताम् नू नो रयिमपं मास्व नृवन्तं पुनानो वाताप्यं विश्वश्चन्द्रम् । प्र वग्दितुरिन्द्रो तार्यायुः ॥ ४ ॥ प्रातर्मक्ष धियावसुर्जगम्यात् ॥ ५ ॥ ॥ १३ ॥ ( ऋ० १०३१-१ ) वशा वीरः । अधि यदस्मिन् वाजिनींश्च शुभः ॥ ५ ॥ स्पर्धन्ते धियः सूर्ये न विशाः । अपो वृणानः पवते कवीयन् मजं न पशुयधेनाय मर्म ॥ १ ॥ द्विता व्युष्वेन्नमृतस्य धामं ॥ ६ ॥ स्वर्विदे भुवनानि प्रयन्त । धियः पिन्वानाः स्वसरे न गावः ऋतायन्तीषुभि वावद्य इन्दुम् ॥ २ ॥ परि यत् कविः काव्या भरते दरो न रयो भुजंनानि विश्वा । देवेषु यदो मर्तोय भूयन् ॥ १ ॥ दक्षाय रायः पुहमूयु नव्यः ॥ ३ ॥ श्रिये जातः श्रिय आ निरियाय श्रियं वयो जित्म्यो दधाति । धियं वसाना अमृतत्वमायन् ॥ २ ॥ भवन्ति सत्या समिया मितर्द्रां	॥ ३ ॥ ॥ ४ ॥ ॥ ५ ॥ ॥ ६ ॥ ॥ १ ॥ ॥ २ ॥ ॥ ३ ॥ ॥ ४ ॥
---	---	--

इपमूर्जेमभ्यर्पाम्भं गां  
उरु ज्योतिः कृणुहि मत्सि देवान् ।  
विश्वानि हि सुपद्मा तानि तुभ्यं  
पर्वमानं वार्धसे सोम शश्रून्

॥ १४ ॥ ( ऋ० १.९५।१-५ )

प्र० ऋषयः काण्वः ।

कानिप्रमत्ति हरिरा सृज्यमानः  
मीदन् धनस्य जडेर पुनानः ।  
नृभिर्यतः कृणुते निर्णिजं गा  
धर्ता मृतीर्जनयत स्वधार्मिः  
हरिः खजानः पृथ्यामृतस्य  
इयतिं पार्चमरितेषु नार्चम् ।  
देवो देवानां गुह्यानि नाम  
धापिष्टुणोति शुद्धिर्वि प्रयाचै  
क्षपामियेदुर्मयस्तर्तुराणाः  
प्र मनीषा ईरते सोममच्छे ।  
नमस्यन्तीरप्य च यन्ति सं च  
आ च पिदाग्युदातीयदान्तम्  
तं मर्मज्ञानं महियं न वानां  
भुङ्क्ते बुद्धमपुक्ष्णं गिरिष्ठाम् ।

॥ ५ ॥

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

समस्य हरिं हरयो मृजन्ति  
अश्वहृयैरर्निशितं नमोभिः ।  
आ तिष्ठति रथमिन्द्रस्य सखा  
विद्वां र्पना सुमतिं यात्यच्छे  
स नो देव देवताति पवस्व  
महे सोम प्सरस इन्द्रपानः ।  
कृण्वध्रपो वर्षयन् दामुतेमां  
उरोरा नो वरिवस्था पुनानः  
अर्जितयेऽहृतये पयस्य  
स्वस्त्यै सुर्वतातये गृहते ।  
तदुदान्ति विश्वं इमे सखायः  
तदुहं वंदिम पवमान सोम  
सोमः पवते जनिता मतीनां  
जनिता दिद्यो जनिता पृथिव्याः ।  
जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य  
जनितेन्द्रस्य जनितात विष्णोः  
प्रह्मा देवानां पदधीः कधीनां  
श्रुषिर्विप्राणां महिषो भृगाणाम् ।  
इयेनो गृध्राणां स्वधितिर्धनानां  
सोमः पविप्रमत्येति रेभेन्

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

स पु॒ष्यो वंसुविजा॑र्यमानो  
मृ॒जानो अ॒प्सु दु॒दुहानो अ॒द्रो ।  
अ॒मिश॑स्ति॒पा भु॒वन्स्य॑ राजा  
वि॒दद् गा॒तुं ब्र॒ह्मणे॑ पु॒यमानः॑  
॥ १० ॥  
त्वया हि नः पि॒तरः सोम॑ पु॒ष्ये  
क॒र्माणि च॒क्रुः प॑वमान॒ धीराः ।  
ध॒म्वन्न॑वा॒तः परि॑र्धिरि॒पोषु॑  
वी॒रेभि॒र॒धैर्म॑यवा॒ भवा॑ नः  
॥ ११ ॥  
यथाप॑व॒था म॑न॒वे ध॑यो॒घा  
भ॒मिन्न॑द्वा व॒रिबो॑विज॒विष्मान् ।  
प॒वा प॑वस्व॒ ब्र॒ह्मिणं॑ द॒धानं  
इ॒द्रे सं ति॑ष्ठ॒ जन॑पायु॒धानि  
॥ १२ ॥  
प॒वस्व सोम॑ म॒धुमो॑ ऋ॒तावा  
अ॒पो व॑सानो॒ अधि॑ सानो॒ अ॒व्ये ।  
अ॒ध द्रो॑णानि घृ॒तवा॑न्ति सी॒द  
म॒दिन्त॑मो म॒त्सर॑ इ॒न्द्रपा॑नः  
॥ १३ ॥  
वृ॒ष्टिं वि॒वः श॑तधा॒रः प॑वस्व  
सह॑स्र॒सा वा॑ज॒युर्द॑वर्षी॒तौ ।  
सं सि॒न्धुभिः॑ क॒लशै॑ वा॒वशानः॑  
समु॑क्षि॒याभिः॑ म॒तिर॑न् न आ॒युः  
॥ १४ ॥  
प॒प स्य॑ सोमो॒ म॒तिभिः॑ पु॒नानो॑  
अ॒त्यो न॑ वा॒जी त॑रती॒दरा॑तीः ।  
प॒पो न॑ दु॒ग्धम॑र्दि॒तेरि॒पिर्दं  
उ॒र्विष॑ गा॒तुः सु॒यमो॑ न वो॒ल्लहो॑  
॥ १५ ॥  
स्वा॒युधः॑ सो॒तृभिः॑ पु॒यमानो॑  
अ॒न्यपे॑ गु॒ह्यं चा॒रु नाम॑ ।  
अ॒मि वा॑जं स॒तिरि॒व श्र॑व॒स्या  
अ॒मि वा॒युम॑मि गा॒ दे॒व सोम॑  
॥ १६ ॥  
शि॒शुं ज॒ज्ञानं॑ ह॒यंतं॑ मृ॒जन्ति  
शु॒म्भन्ति॑ व॒र्हिं म॒हतो॑ गु॒णेन॑ ।

क॒विर्गी॒भिः का॒व्येना॑ क॒विः सन्  
सोमः प॒वित्र॑म॒त्येति॑ रे॒मन् ॥ १७ ॥  
ऋ॒षि॒मना॑ य ऋ॒षि॒कृत् स्व॒र्पाः  
स॒हस्र॑णी॒धः प॒दवीः क॑वी॒नाम् ।  
तृ॒तीयं॑ धा॒र्मं म॒हिषः॑ सि॒पांसन्  
सोमो॑ वि॒राज॑मन् राज॒ति पु॒प्  
॥ १८ ॥  
च॒म्पुच॑छये॒नः श॑कु॒नो वि॒भृत्वा  
गो॒विन्दु॑र्द॒प्स आ॒यु॒धानि॑ वि॒भ्रत् ।  
अ॒पामु॑मि स॒च॒मानः॑ स॒मुद्रं  
तु॒रीयं॑ धा॒र्मं म॒हिषो॑ वि॒षकि॑  
॥ १९ ॥  
म॒यो न॑ शु॒श्र॑स्त॒न्वै मृ॒जानो॑  
अ॒त्यो न॑ सृ॒त्वा सु॒नये॑ ध॒नाना॑म् ।  
घ॒र्षेव॑ यू॒था परि॑ कौश॒मर्प॑न्  
क॒र्तिक॑द॒क्चन्द्रो॑रु॒रा वि॑वेश  
॥ २० ॥  
प॒वस्वेन्द्रो॑ प॒वमानो॑ म॒होभिः॑  
क॒र्तिक॑कृ॒त् परि॑ वारा॒ण्यपे॑ ।  
क्री॒ल॒ञ्जम्बो॑रु॒रा वि॑श पु॒यमानं॑  
इ॒न्द्रं ते॑ र॒क्षो म॒दिरो॑ म॒मत्सु॑  
॥ २१ ॥  
प्रा॒स्य धा॑रा॒ वृ॒हती॑र॒सृग्र॑न्  
अ॒वतो॑ गो॒भिः क॒लशौ॑ वा वि॒वेश ।  
सा॒मं कृ॒ण्वन्सा॑म॒न्यो वि॒पृश्नि॑त्  
क॒न्द॒धेत्य॑मि स॒व्युर्न जा॑मिम्  
॥ २२ ॥  
अ॒प॒घ्नत्रै॑पि प॒वमान॑ श॒त्रून्  
प्रि॒यां न जा॑रो अ॒मिगी॑त इ॒न्दुः ।  
सी॒दन् व॑र्ने॒पु श॑कु॒नो न॑ प॒त्वा  
सोमः पु॒नानः॑ क॒लशै॑षु स॒त्ता  
॥ २३ ॥  
आ ते॑ रु॒खः प॑व॒मानस्य॑ सोम॒  
यो॒र्षेव॑ य॒न्ति सु॒दुघाः॑ सु॒धाराः॑ ।  
ह॒रि॒रानी॑तः पु॒रुवा॑रो अ॒प्सु  
अ॒क्षि॒कद॑व॒ क॒लशै॑ दे॒वयु॑नाम्  
॥ २४ ॥

॥ १५ ॥ ( अ० ११७:१-५८ )

१-३ मैत्रावरुणर्वसिष्ठ, ४-६ वासिष्ठ इन्द्रप्रमति, ७-९ वासिष्ठो वृषगण, १०-१२ वासिष्ठो मनुष्य, १३-१५ वासिष्ठ उषमन्तु, १६-१८ वासिष्ठो व्याघ्रपाद, १९-२१ वासिष्ठ शक्ति, २२-२४ वासिष्ठो र्णधृद्, २५-२७ वासिष्ठो मूलोक्त, २८-३० वासिष्ठो वसुध, ३१-४४ पराशरः आश्विन्य ४५-५८ वृत्त आश्विनः ।

अस्य प्रेया हेमनां पुयमानो  
देवो देवभिः सर्वपुस्त रस्म ।  
सुतः पवित्र पयैति रेभन  
भितेयु मय पशुमान्ति होता  
मद्रा यखा समन्याः यसानो  
मृदान् क्विर्निवर्चनानि शसन् ।  
वा वचयस्व चम्बोः पयमानो  
विचक्षणो जागृधैर्देवधौतौ  
समु द्रियो मृज्यते सानो अये  
यशस्तेरो यशसां क्षेतो अस्मे ।  
अनि स्वर धन्या पुयमानो  
युयं पात रुन्तिभिः मदा नः  
॥ गायताभ्यर्चाम देवान्  
मोमं दिनोत मरुते धनाय ।  
म्यादुः पयाते अति धारमन्यं  
आ गीक्षानि कन्दो देवयुग्मः  
इन्द्रो गानामुप संग्रमायन  
मृत्त्र्यधायः पयते मदाय ।  
गुनः स्तरानो अनु धाम पुयं  
नमस्तिन्द्रे महेन मोमगाय  
मोमे राये तस्मिन् पुनान  
इन्द्रे मदां मच्छतु मे भगाय ।  
देवयोदि मृत्त्र्यं रापो अरुणो  
युयं पात रुन्तिभिः मदा नः

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

प्र काव्यमुशनैव ब्रुवाणो  
देवो देवानां जनिमा विवाकि ।  
महिषतः शुचिर्वन्धुः पावकः  
पदा वराहो अयैति रेभन  
प्र हसासस्तुपलं मनुमच्छ  
अमादस्ते वृषगणा अयासुः ।  
आङ्गुप्यं पयमानं सखायो  
दुर्मयं साकं प्र वदन्ति वाणम्  
स रहत उरगायस्य जति  
पुथा क्रीलन्तं मिमते न गावः ।  
परीणसं कणुते तिग्मशृङ्गो  
दिया हरिर्दृष्टो नक्तमुज्रः  
इन्दुर्वाजी पयते गोव्योधा  
इन्द्रे सोमः सह इग्नं मदाय ।  
हन्ति रक्षो वाधते पर्यरातीः  
यस्मिन् कृष्णवत् पूजनस्य राजा  
अथ धारया मर्वा पुनानः  
तिरो रोमं पयते अद्रिदुग्धः ।  
इन्द्रिन्द्रस्य सुतयं जुवाणो  
देवो देवस्य मत्सरो मदाय  
अभि मियाणि पयते पुनानो  
देवो देवान्स्वेन रसेन पूञ्चन् ।  
इन्द्रधर्मीण्युतथा यसानो  
दक्ष क्षिपो अयत सानो अर्वे  
पुथा दोषो अभिवर्तिगन्द्वा गा  
नदयतेति पृथिवीमुत चाम् ।  
इन्द्रस्येव यमुरा शृण्व जाजौ  
प्रंचतयत्रपति घाचमेमाम्  
रुमाय्यः पर्यसा विरमानः  
इत्यंशेति मधुमन्तमंशुम् ।  
पयमानः संतनिमैपि कृष्णन्  
इन्द्राय मोमं पयिच्यमानः

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १० ॥

॥ ११ ॥

॥ १२ ॥

॥ १३ ॥

॥ १४ ॥

(४४१०)



एवा पवस्व मद्विरो मद्राय  
उदग्रामस्य नमयेन् वधकैः ।  
परि वर्णे मरमाणो दशन्तं  
गन्धुर्नो अर्पे परि सोम मित्तः  
जुष्ट्वी न इन्द्रो सुपयां सुगानि  
उरौ पवस्व वरिषामि कृष्यन्  
घनेच विष्यन् दुरितानि विघ्नन्  
अधि ण्णुनां घन्व सानो अय्ये  
वृष्टि नो अर्पे दिव्यां जिगन्तुं  
इच्छावतीं शंगयीं जीरदांनुम् ।  
स्तुकेय वीता घन्या दिचिन्विन्  
घन्धुरिमां अर्धरां इन्द्रो वायून्  
म्रीन्धि न वि ष्य ग्रथितं पुनान  
श्रुञ्ज च गातुं वृजिनं च सोम ।  
अत्यो न ऋदो हरिण रज्जानो  
मयीं देव घन्व पुस्त्यावान्  
जुष्टो मद्राय देवतात इन्द्रो  
परि ण्णुनां घन्व सानो अय्ये ।  
सहस्रधारः सुरभिरदग्धः  
परि अत्र वाजसातौ नृपह्ये  
अरदमानो यैररा अयुक्ता  
अत्यासो न संखजानास आजौ ।  
एते शुक्लास्तौ घन्वन्ति सोमा  
देवासस्तौ उप याता पिबत्यै  
एवा न इन्द्रो अग्नि देवर्षीति  
परि अत्र नमो अर्णश्चमूषु ।  
सोमो अस्मभ्यं काम्यं बृहन्तं  
रयिं ददातु वीरवन्तमुग्रम्  
तक्षद् यदी मनसो वेनतो वाग्  
ज्येष्ठस्य वा धर्माणि क्षोरनीके ।

आदीमायन् वरमा वावशाना  
जुष्टं पतिं कलशे गाव इन्द्रम् ॥ २२ ॥  
प्र दानुदो दिव्यो दानिपिन्व  
श्रुनमृताय पवते सुमेधाः ।  
धर्मा भुवद् वृजन्त्यस्य राजा  
प्र रदिमभिर्दशभिर्भाति भूमं ॥ २३ ॥  
पवित्रैभिः पवमानो नृचक्षा  
राजा देवानामुत मत्वीनाम् ।  
हिना भुवद् रयिपती रयीणां  
श्रुतं भरत् सुभृतं चाविन्दुः ॥ २४ ॥  
अर्वा इव श्रवसे स्नातिमच्छ  
इन्द्रस्य वायोरग्नि वीतिमर्षे ।  
स नः सहस्रा बृहतीरियो दा  
भवां सोम द्रविणोवित् पुनानः ॥ २५ ॥  
देवाव्यो नः परिपिच्यमानाः  
क्षयं सुवीरं घन्वन्तु मोमाः ।  
आयज्ययः सुमतिं विभ्यवारा  
होतारो न दिविपजौ मन्द्रतमाः ॥ २६ ॥  
एवा देव देवताते पवस्व  
महे सोम प्सरसे देवपानः ।  
महश्चिद्धिं अस्मि हिताः संमये  
कृधि सुष्टाने रोदसी पुनानः ॥ २७ ॥  
अधो न ऋदो वृषभिर्युजानः  
सिंहो न भीमो मनसो जर्वायान् ।  
अर्वाचीनैः पथिमियं राजिष्ट्रा  
आ पवस्व सोमनसं न इन्द्रो ॥ २८ ॥  
शतं धारां देवजाता असृगन्  
महर्चमेनाः कवयो मृजन्ति ।  
इन्द्रो सनित्रं दिव आ पवस्व  
पुरयतासि महतो घनस्य ॥ २९ ॥

द्विद्यो न सर्गो असत्प्रमदां  
 राजा न मित्रं प्र मिनाति धीरः ।  
 पितुर्न पुत्रः कर्तुमिर्यतान्  
 आ पयस्व विशो अस्या अजीतिम् ॥ ३० ॥  
 प्र ते धारा मधुमतीरसृग्मन्  
 वारान् यत् पुतो अत्येभ्यग्यान् ।  
 पर्यमान पर्यसे धाम गोर्नो  
 जहानः सूर्यमपिष्यो अर्कः ॥ ३१ ॥  
 कर्तिकृदनु पन्थामृतस्य  
 शुक्रो वि सास्यमृतस्य धाम ।  
 स इन्द्राय पयसे मत्सरयान्  
 दिश्वानो वार्ष मृतिभिः कधीनाम् ॥ ३२ ॥  
 दिव्यः सुपणोऽव चक्षि सोम  
 पिबन् धाराः कर्मणा देवधीतौ ।  
 पन्धो विश कलशं सोमधानं  
 क्रन्दमिहि सूर्यस्योप रश्मिम् ॥ ३३ ॥  
 तिष्ठो वाच ईरयति प्र वहिः  
 श्रुतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम् ।  
 गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः  
 सोमं यन्ति मृतयो वायशानाः ॥ ३४ ॥  
 सोमं गावो धेनवो वायशानाः  
 सोमं विप्रा मृतिभिः पृच्छमानाः ।  
 सोमः सुतः पूयते अज्यमानः  
 सोमं अर्कास्त्रिष्टुमः सं नयन्ते ॥ ३५ ॥  
 एषा नः सोम परिपिच्यमान  
 आ पयस्व पूयमानः स्युस्ति ।  
 इन्द्रमा विश बृहता रयेण  
 यर्धया वार्ष जनया पुरंधिम् ॥ ३६ ॥  
 आ जारुपिर्म श्रुता मंतीनां  
 गोमः पुनानो मंसदश्चमूय ।

सर्पन्ति यं मिथुनास्तो निकामा  
 अप्यर्यवो रथिरासः सुहस्ताः ॥ ३७ ॥  
 स पुनान उप सुरे न धाता  
 उमे अग्रा रोर्वसी वि प आयः ।  
 प्रिया चिद् यस्य प्रियसासं ऊती  
 स तू धनं कारिणे न प्र यंसत् ॥ ३८ ॥  
 स र्धिता र्धनः पूयमानः  
 सोमो मीद्वो अभि नो ज्योतिषाधीत् ।  
 येनां नः पूर्वं पितरः पदहाः  
 स्वर्धिवो अभि ना अद्रिमुष्णन् ॥ ३९ ॥  
 अर्कान्समुद्रः प्रपमे विधर्मन्  
 जनयन् प्रजा भुवनस्य राजा ।  
 वृषा पवित्रे अधि सानो अर्ये  
 बृहत् सोमो वावृषे सुवान इन्दुः ॥ ४० ॥  
 मुहत् तत् सोमो महिषश्चकार  
 अपां यद् गर्भोऽवृणीत वेवान् ।  
 अर्धधादिन्द्रे पर्यमान ओजो  
 अजेनयत् सूर्ये ज्योतिरिन्दुः ॥ ४१ ॥  
 मत्सि वायुमिष्टये रार्धसं च  
 मत्सि मित्रावरुणा पूयमानः ।  
 मत्सि शशो मारुतं मत्सि देवान्  
 मत्सि वावापृथिवी देवं सोम ॥ ४२ ॥  
 ऋजुः पयस्व वृजिनस्य हुन्ता  
 अपामीवां वार्धमानो मृधश्च ।  
 अमिध्रीणन् पयः पर्यसाभि गोनां  
 इन्द्रस्य त्वं तव ध्यं सन्नायः ॥ ४३ ॥  
 मध्यः सूर्ध पयस्व वस्य उरसं  
 वीरं च न ना पयस्वा भर्गं च ।  
 स्ववस्वेन्द्राय पर्यमान इन्दो  
 शयि च न ना पयस्वा समुद्रात् ॥ ४४ ॥

सोमः सुतो धार्यात्यो न हित्वा  
सिन्धुर्न निम्नमभि वाज्यक्षाः  
आ योनिं चर्ममसदत् पुनानः  
समिन्द्रागोभिर्त्सरत् समग्निः  
॥ ४५ ॥  
एष स्य ते पवत इन्द्र सोमः  
चम्पु घोरं उशते तवस्वान् ।  
स्वर्वाक्षा रयिरः सत्यशुम्भः  
कामो न यो देवयतामसर्जि  
॥ ४६ ॥  
पुप प्रजेन चर्यसा पुनानः  
तिरो वर्षीसि उहितुर्दधानः ।  
यस्तानः शर्म त्रिवरुणमप्सु  
होतैव याति समनेषु रेभन्  
नू नृस्त्वं रयिरो देव सोम  
परि स्रव चर्मवोः पुयमानः ।  
अप्सु स्वादिष्टो मरुतो अतावा  
देवो न यः संविता सत्यमग्ना  
अभि वायुं वीर्यर्षा गृणानोऽ  
अभि मित्रावरुणा पुयमानः ।  
अभी नरं धीजयनं रथेष्ठां  
अमीन्द्रं वृषणं वज्रबाहुम्  
अभि वक्त्रो सुवसुनान्यर्ष  
अभि धेनुः सुदुर्गाः पुयमानः ।  
अभि चान्द्रा भर्तैव नो हिरण्य  
अभ्यर्थां रथिर्नो देव सोम  
अभी नो अर्ष दिव्या वसूनि  
अभि विश्वा पार्थिवा पुयमानः  
अभि येन द्रविणमश्वाम्  
अभ्यर्षेण जमदग्निवर्जः  
अया पवा पवस्वैनो वसूनि  
मौक्ष्यत्व इन्द्रो सरसि प्र धन्व ।

॥ ४५ ॥

॥ ४६ ॥

॥ ४७ ॥

॥ ४८ ॥

॥ ४९ ॥

॥ ५० ॥

॥ ५१ ॥

अग्नाश्चिदत्र वातो न जुतः  
पुरुमेधाश्चित् तक्वे नरं दात्  
॥ ५२ ॥  
उत न पुना पवया पवस्व  
अधि भुते अवाच्यस्य तीर्थे ।  
पदि सहस्रा नैगुतो वसूनि  
वृक्षं न पक्वं घ्नन्वद् रणाय  
॥ ५३ ॥  
महीमे अस्य वृषनाम शूरे  
मौक्षन्वे वा पृथनि वा वर्धने ।  
अस्वापयन्निगुतः सेहयुश्च  
अणामिन्द्रो अणचितो अज्ञैतः  
॥ ५४ ॥  
सं व्री पवित्रा विततान्येपि  
अन्वेकं धावसि पुयमानः ।  
असि भगो असि वाग्रस्य दाता  
असि मधवा मधवर्द्धय इन्द्रो  
॥ ५५ ॥  
एष विश्वचित् पवते मनीषी  
सोमो विश्वस्य भुवन्स्य राजा ।  
॥ ५६ ॥  
द्रुप्ता इत्यन् विश्वेष्टेष्टिदुः  
वि वात्सम्यं सुमयाति याति  
॥ ५७ ॥  
इन्दुं रिहन्ति महिया अर्धधाः  
पदे रेभन्ति कचयो न गृध्राः ।  
हिन्वन्ति घोरं दशभिः क्षिपाभिः  
समजते रूपमपां रत्न  
॥ ५८ ॥  
त्वया वृषं पर्वमानेन सोम  
भरं कृतं वि चिनुयाम शश्वत् ।  
तत्रो मिश्रो वरुणो मामहन्तां  
अर्वितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः  
॥ ५९ ॥

॥ ५० ॥ ( अ० ११८८१-१२० )

अम्बरान्ते वाष्पारिः, ऋजिया भारद्वाज्य ।

अनुष्टुप्, ११ वृत्ति ।

अभि नो वाजसतमं रयिमर्षं पुरुस्पृहम् ।  
इन्द्रो सहस्रमणसं लुविघुलं विभ्यासहम् ॥ १ ॥

परि प्य सुवानो अव्ययं रथे न घर्माव्यत ।  
 इन्द्रोऽपि द्रुप्रां हितो ह्रियानो धाराभिरक्षाः २  
 परि प्य सुवानो अक्षा इन्द्रव्ये मदच्युतः ।  
 धारा य ऊर्ध्वो अच्यरे आजा नैति गव्ययुः ३  
 स हि त्वं देव शश्वते यसु मर्तीय दाशुपे ।  
 इन्द्रो सहस्रिणं रथि शतात्मानं विवाससि ॥४॥  
 वयं ते अस्य वृत्रहन् वसो वरुः पुरुस्पृहः ।  
 नि नेदिष्ठतमा इपः स्याम सुस्रस्याभिर्गो ॥५॥  
 द्वियं पञ्च स्वयंशसं स्वसारो अद्रिंसंहतम् ।  
 प्रियमिन्द्रस्य काम्यं प्रस्तापयन्त्युमिणम् ॥६॥  
 परि त्वं हयंतं हरिं वृधुं पुनन्ति वारेण ।  
 यो देवान् विध्या इत् परि मर्देन सह गच्छति ७  
 अस्य यो हयस्ता पातो दक्षसाधनम् ।  
 यः सुरिषु श्रवो गृहव् दधे स्वर्गुणं हयंतः ॥८॥  
 स यो यक्षेभ्य मानयो इन्द्रुर्जेनिष्ट रोदसी ।  
 देवो देवी गिरिष्ठा अक्षेधन् तं तुविष्वणि ॥९॥  
 इन्द्राय सोम पार्तये वृत्रमे परि विच्यसे ।  
 नरे च दक्षिणायते देवाय सदनासदे ॥१०॥  
 ते प्रजासो व्युष्टिषु सोमाः पवित्रे अक्षरन् ।  
 अममोयन्तः सनुतर्हुरधितः  
 मातस्तां अमचेतसः ॥११॥  
 तं सन्वायः पुष्टेयं ययं ययं च सुरयः ।  
 अदयाम् वाजगन्धं सनेम वाजपस्त्यम् ॥१२॥

॥९८॥ (श्र० ९।९।१-८)

रैमस्य कारयथी । अनुष्टुप्, १ इदती ।

आ हयंताय धृष्णये धनुस्तन्यन्ति पौस्त्यम् ।  
 नृपां संपन्त्यसुसय निर्भिजं विपामर्मे मदीयुषः १  
 मर्धे हाया परिष्ठतो वाजो अभि प्र गाहते ।  
 यदी विपस्यतो पिषो हरिं हिम्यन्ति पार्तये २  
 तमस्य मर्जपामति मडो य इन्द्रपार्तमः ।  
 यं गाव आतमिर्भुषः पुरा नूनं च सुरयः ॥३॥

तं गार्थया पुराण्या पुनानमभ्यनूत ।  
 उतो कृपन्त धीतयो देवानां नाम विभ्रतीः ४  
 तमुक्षमाणमव्यये वारो पुनन्ति धर्णसिम् ।  
 दूतं न पूर्वचित्तय आ शासते मनीषिणः ॥५॥  
 स पुनानो मदिन्तमः सोमश्चमूयुं सीदति ।  
 पशौ न रेत आदधत् पतिर्वचस्यते धियः ॥६॥  
 स मृज्यते सुकर्मभिर्वैवो देवेभ्यः सुतः ।  
 विदे यदासु संवदिर्महीरपो वि गाहते ॥७॥  
 सुत इन्द्रो पवित्र आ नृभिर्यतो वि नीयसे ।  
 इन्द्राय मत्सरिन्तमश्चमूश्वा नि वीदसि ॥८॥

॥ ९९ ॥ (श्र० ९।१००।१-९)

रैमस्य कारयथी । अनुष्टुप् ।

अमी नवन्ते अद्रुहः प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।  
 वत्सं न पूर्व आयुनि जातं रिदन्ति मातरः ॥१॥  
 पुनान इन्वा भर सोमं द्वियर्हसं रथिम् ।  
 त्वं वसूनि पुष्यसि विभ्वानि दाशुपे गृहे ॥२॥  
 त्वं धियं मनोयुजं सृजा वृष्टिं न तन्यतुः ।  
 त्वं वसूनि पाथिवा विव्या च सोम पुष्यसि ३  
 परि ते जिग्युषो यथा धारा सुतस्य धावति ।  
 रंहमाणा व्युष्ययं वारं प्राजीव खानसिः ॥४॥  
 क्रत्ये दक्षाय नः कवे पर्यस्य सोम धारया ।  
 इन्द्राय पार्तये सुतो मिश्राय वरुणाय च ॥५॥  
 पर्यस्य वाजसातमः पवित्रे धारया सुतः ।  
 इन्द्राय सोम विष्णवे देवेभ्यो मधुमत्तमः ॥६॥  
 त्वां रिदन्ति मातरो हरिं पवित्रे अद्रुहः ।  
 यत्वं जातं न धेनयः पर्यमान विधर्मणि ॥७॥  
 पर्यमान महि धर्यश्चिजेर्वाति रुदिमभिः ।  
 दार्धेन तर्मावि जिग्रसे विभ्वानि दाशुपे गृहे ८  
 त्वं पां च महिमत पृथिवीं व्याति जधिरे ।  
 प्रति प्रापिममुश्रयाः पर्यमान महिदयना ॥९॥

॥ १०० ॥ ( ऋ० ९।१०।१-१६ )

अन्वीगुः श्यावाधिः, ४-६ यथातिर्नाहुय, ७-९ नहुयो मानवः,  
१०-१२ मनुः सारणः, १३-१६ वैश्वामित्रो वाच्यो वा  
प्रजापतिः । अनुष्टुप्, २-३ गायत्री ।

पुरोजिती वो अन्धसः सुताय मादयित्वे ।  
अप भ्वानं श्रियेन सखायो दीर्घजिह्वयम् ॥ १ ॥  
यो धारया पाचक्या परिप्रस्यन्दते सुतः ।

इन्दुरभ्यो न कृत्यः ॥ २ ॥

तं दुरोपममी नरः सोमं शिवाचया धिया ।

यहं हिम्वन्त्याद्रिभिः ॥ ३ ॥

सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः ।

पविर्भवन्तो अश्वरन् देवान् गच्छन्तु वो मदाः ४

इन्दुरिन्द्राय पवत इति देवासो अनुचर ।

वाचस्पतिर्मखस्यते विश्वस्येशान ओजसा ॥ ५ ॥

सहस्रधारः पयते समुद्रो वाचमोदुखयः ।

सोमः पती रयीणां सखेन्द्रस्य द्विवेद्विधे ॥ ६ ॥

अयं पूवा रयिर्मगः सोमः पुनानो अर्पति ।

पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यत्यद् रोदसी उभे ॥ ७ ॥

सन्तु म्रिया अनूपत गाधो मदाय धृष्ययः ।

सोमासः कृण्वते पथः पर्वमानासु इन्द्वयः ॥ ८ ॥

य ओजिष्ठस्तमा भर पर्वमान ध्रुवाय्यम् ।

यः पञ्च चर्पणीरमि रयि येन यनामहै ॥ ९ ॥

सोमाः पवन्त इन्द्वी उस्सर्भ्य गातुयिस्तमाः ।

मित्राः सुयाना अरेपसः स्वाध्व्यः स्वयिर्दः १०

सुष्वाष्णासो व्याद्रिमि श्विताना गौरधि त्वधि ।

इयंमसर्भ्यमभितः समस्वरन् वसुविर्दः ॥ ११ ॥

एते पूता विपश्चितः सोमानो दध्याशिरः ।

सूर्यासो न दर्शितासो जिगत्रवो ध्रुवा वृन्दे १२

प्र सुन्वानस्यान्यसो मतो न वृन् वृद वरः १

अप भ्वानमसुधसं हृता मयं न वृन्दः १ १३ १

आ जामिरत्के अयन मुत्रे न वृन्दः १ १४ १

सरज्जरो न योयणां वयं न वृन्दः १ १५ १

स वीरो दंससार्धनो वि यस्तस्तम् रोदसी ।  
हरिः पवित्रे अव्यत वेधा न योनिमासर्दम् १५  
अव्यो वारैमिः पवते सोमो गव्ये अर्धे श्वधि ।  
कनिक्कद् वृषा हरि रिन्द्रस्याभ्येति निष्कृतम्

॥ १०१ ॥ ( ऋ० ९।१०।१-८ )

त्रित आप्तः । वणिक् ।

क्राणा शिशुर्महीनां हिन्वधृतस्य दीर्घितम् ।

विश्व परि म्रिया मुवदर्थ द्विता ॥ १ ॥

उप त्रितस्य पाण्योऽर्भक्त यद् गुहा पदम् ।

यक्षस्य सुत धामभिरर्ध म्रियम् ॥ २ ॥

वीणि त्रितस्य धारया पृष्ठेचरेया रयिम् ।

मिमीते अस्य योजना वि सुकृतः ॥ ३ ॥

जमानं सुत मातरौ वेधामशासत ध्रिये ।

अयं ध्रुवो रयीणां चिकेत यत् ॥ ४ ॥

अस्य व्रते सजोपसो विश्वे देवासो अनुहः ।

स्पर्धा भवन्ति रत्तयो जयन्त यत् ॥ ५ ॥

यमी गर्भमृतावृधौ दृशे चारुमर्जीजनम् ।

कृषि मंहिष्ठमभ्यरे पुंसपृहम् ॥ ६ ॥

समीचीने अभि त्मना यही श्रुतस्य मातरौ ।

तुम्बाना यक्षमानुपग यद्व्रते ॥ ७ ॥

कृत्वा शक्रेर्मर्जनि श्रुतस्य वृन्दं द्विधः ।

हिन्वधृतस्य दीर्घेति वृन्दे ॥ ८ ॥

॥ १०२ ॥ ( ऋ० ९।१०।१-६ )

द्वि वृन्दः ।

प्र वृन्दे देवते सोमान वृन्द वृन्दम् ।

वृन्दे न वृन्द वृन्दे न वृन्दे १ १

वृन्दे न वृन्द वृन्दे न वृन्दे १ १

वृन्दे न वृन्द वृन्दे न वृन्दे १ १

वृन्दे न वृन्द वृन्दे न वृन्दे १ १

वृन्दे न वृन्द वृन्दे न वृन्दे १ १

वृन्दे न वृन्द वृन्दे न वृन्दे १ १

वृन्दे न वृन्द वृन्दे न वृन्दे १ १

परि देवीरनु स्वधा इन्द्रेण याहि सरथम् ।

पुनानो वाघद् वाघद्विरमर्त्यः ॥ ५ ॥

परि सतिर्न बाजयु—द्वेयो देवेभ्यः सुतः ।

व्यानुशिः पर्वमानो वि धावति ॥ ६ ॥

॥ १०३ ॥ ( अ० ९।१०४।१-६ )

पर्वतनारदौ बाघौ, कश्चिदपि विचित्रिण्यान्तरासौ वा ।

सर्वाय आ नि पीदत पुनानाय म गावत ।

शिष्टं न यष्टैः परि भूपत ध्रिये ॥ १ ॥

समी वृत्सं न मावृमिः सुजता गयसाधनम् ।

देवाण्यं मर्दममि द्विशेषसम् ॥ २ ॥

पुनाता दक्षसाधन यथा शर्षीय धीतये ।

यथा मित्राय परेणाय शीतम् ॥ ३ ॥

अस्मभ्यं त्वा वसुधिवे—ममि धाणीरनूपत ।

गोमिष्टे पर्णममि धासयामसि ॥ ४ ॥

न नो मदानां पत् इन्द्रो देवस्तरा असि ।

सर्वेषु सत्ये गातुयित्तमो भव ॥ ५ ॥

सर्तमि हृष्यसदा रक्षसं कं विवृमिर्णम् ।

अपार्देयं ह्युमंहो ययोधि नः ॥ ६ ॥

॥ १०४ ॥ ( अ० ९।१०५।१-६ )

तं यः सपायो मदाय पुनानममि गावत ।

शिष्टं न यष्टैः स्वदयन्त गतिभिः ॥ १ ॥

मं वृत्सं रय मावृमि—रिन्दुहिन्द्यानो अज्यते ।

देवायामर्दो मतिमि परिपृतः ॥ २ ॥

अयं दक्षाय साधनो ऽयं शर्षीय धीतये ।

अयं देवेभ्यो मर्धुमस्तमः सुतः ॥ ३ ॥

गोमत्र इन्द्रो अर्धयत् सुतः सुदक्ष धन्य ।

गुर्वि ते पर्णमपि गोपु दीधरम् ॥ ४ ॥

न नो दद्यातां पत् इन्द्रो देवस्तरस्तमः ।

सर्वेषु सत्ये नयो ह्येष भव ॥ ५ ॥

सर्तमि स्वममदां अर्देयं कं विवृमिर्णम् ।

गार्हो इन्द्रो परि वाघो अर्ध ह्युम् ॥ ६ ॥

॥ १०५ ॥ ( अ० ९।१०६।१-१४ )

१-३, १०-१४ अमिथास्तु, ४-६ वसुमानतः ७-९  
मनुराष्टवः ।

इन्द्रमच्छं सुता इमे वृषणं यस्तु हरयः ।

श्रुष्टी जातासु इन्द्रवः स्वर्विदः ॥ १ ॥

अयं मराय सानसि—रिन्द्राय पयते सुतः ।

सोमो जैत्रस्य चेतति यथा विदे ॥ २ ॥

अस्येदिन्द्रो मदेष्वा भ्रामं गृभीत सानसिम् ।

वर्षं च वृषणं भूत् समस्तुजित् ॥ ३ ॥

म धन्या सोम जागृवि—रिन्द्रायेन्द्रो परि ऋष ।

द्युमन्तं शुष्ममा मरा स्वर्विदम् ॥ ४ ॥

इन्द्राय वृषणं मदं पर्वस्य विश्वदर्शतः ।

सुहसयामा पथिरुद् विचक्षणः ॥ ५ ॥

अस्मभ्यं गातुयित्तमो देवेभ्यो मर्धुमस्तमः ।

सुदक्षं याहि पृथिमिः कर्त्तिकदत् ॥ ६ ॥

पर्वस्य देवधीतय इन्द्रो धाराभिरोजसा ।

आ कुलशो मर्धुमान्सोम नः सवः ॥ ७ ॥

तयं वृप्ता उदमृत इन्द्रं मदाय घाघृषुः ।

त्वा देवासो अमृताय कं पंपुः ॥ ८ ॥

आ नः सुतास इन्द्रवः पुनाना धावता रुमि ।

वृष्टिघातो रीत्यापः स्वर्विदः ॥ ९ ॥

सोमः पुनान ऊर्मिणा ऽह्यो पारं वि धावति ।

अर्धं वाचः पर्वमानः कर्त्तिकदत् ॥ १० ॥

धीमिहिन्द्यान्ति धाजिनं यने श्रील्लन्तमययिम् ।

अमि त्रिपृष्ठं मतयः समस्वरत् ॥ ११ ॥

असंजि कुलशो अमि मीज्जदे सप्तिनं पाजयु ।

पुनानो पार्थ जनयप्रसिष्यदत् ॥ १२ ॥

पर्वते ह्ययतो हरि—रति ह्यराति रंता ।

अययैमस्तोहृष्यो धीरयद् यदा ॥ १३ ॥

अया पर्वस्य देवयु—मंधोधारां अगृक्षत ।

देमन् पयित्रं पयैवि विभवतः ॥ १४ ॥

॥ १०६ ॥ ( ऋग १०७१-१६ )

सप्तर्षयः ( १ मरुताजो बार्हस्पत्यः, २ वदयो मारीचः, ३ गोतमो राहुगणः, ४ मौमोऽग्निः, ५ विद्यामित्रो यागिनः, ६ जमदग्निर्मातृगवः, ७ मैत्रावदग्निर्वसिष्ठः ) । प्रगाथः = ( १, ४, ६, ८-१०, १२, १४, १७ बृहती; २, ५, ७, ११, १३, १५, १८ सतीबृहती ); ३, १६ द्विपदा विराट्; १९-२६ प्रगाथः = ( विपदा बृहता, समा सतीबृहती ) ।

परितो पिञ्चता सुतं सोमो य उत्तमं हविः ।

वधन्वाँ यो नयौ अप्सवन्तरा

सुपाव सोममग्निमिः

॥ १ ॥

नूनं पुनानोऽविमिः परि ज्ञय

अर्धधः सुमतिरः ।

सुते चित् त्वाप्सु मंदामो अर्धसा

धीणस्तो गोमिर्हस्तम्

॥ २ ॥

परि सुवानक्षसे देवमादनुः

क्रतुरिदुर्विचक्षणः

॥ ३ ॥

पुनानः सोम धारया ऽपो वसानो अर्धमि ।

आ रक्षया योनिमृतस्य सीदसि

॥ ४ ॥

उत्सो देव हिरण्ययः

बुहान ऊर्ध्वद्विष्यं मधु म्रियं

प्रक्षं सुधस्यमासदव ।

आपृच्छयं धरुणं वाज्ययपति

वृमिधृतो विचक्षणः

॥ ५ ॥

पुनानः सोम जागृषि-रत्यो वारे परि म्रियः ।

त्वं विप्रो अमवोऽङ्गिरस्तामो

मध्वा युष्टं मिमिक्ष नः

॥ ६ ॥

सोमो मीढ्वान् पवते गातुविस्तम्

श्रुपिधिप्रो विचक्षणः ।

त्वं कविर्भवो देववीर्यम्

आ सूर्ये रोहयो द्विवि

॥ ७ ॥

सोमं उ पुवाणः सोतृमि-रधि णुमिरवीनाम् ।

अर्धयेव हरिता याति धारया

मन्द्रया याति धारया

॥ ८ ॥

अनुपे गोमान् गोरिरक्षाः सोमो दुग्धामिरक्षाः ।

समुद्रं न संवरणान्यग्मन्

॥ ९ ॥

आ सोम सुधानो मद्विमि-स्तिरो वाराण्यव्यया ।

जलो न, पुरि चम्योर्विशदरिः

सदो वर्णेषु दधिपे

॥ १० ॥

स मांमृजे तिरो अण्वानि मेप्यौ

मीढ्वे सपित्तिर्न वाज्ययुः ।

अनुमाद्यः पर्वमानो मनीषिमिः

सोमो विप्रैर्विष्टकमिः

॥ ११ ॥

प्र सोम देववीर्ये सिन्धुर्न पिप्ये अर्णसा ।

अंशोः पर्यसा मद्विरो न जागृषिः

अच्छा कोशं मधुक्षुतम्

॥ १२ ॥

आ हर्षतो अर्जुने अर्क्ते अव्यत

म्रियः सुनुर्न मज्यः ।

तमो हिन्वन्त्यपसो यथा रयं

नक्षीध्वा गर्भस्तयोः

॥ १३ ॥

अभि सोमास आयवः पर्वन्ते मद्यं मर्दम् ।

समुद्रस्याधि विष्टपि मनीषिणो

मत्सरासः स्वविदः

॥ १४ ॥

तरत् समुद्रं पर्वमान ऊर्मिणा

राजा देवं श्रुतं बृहत् ।

अर्धन्मिग्रस्य वरुणस्य धर्मणा

प्र हिन्वान् श्रुतं बृहत्

॥ १५ ॥

नर्मियेमानो हर्षतो विचक्षणो

राजा देवः संयुद्रियः

॥ १६ ॥

इन्द्राय पवते मद्रः सोमो मरुवते सुतः ।

सहस्रधाये अत्यव्यमपति

तमो मृजन्त्यायवः

॥ १७ ॥

पुनानश्चम् जनयन् मति क्विः

सोमो देवेषु रण्यति ।

अपो वसानः परि गोमिर्हस्तः

सीदन् वर्णेष्वव्यत

॥ १८ ॥

तवाहं सोम रारण सख्य इन्दो दिवेदिधे ।

पुरुणि वञ्चो नि चरन्ति मामयं  
परिधीरति तां ईहि

॥ १९ ॥

उताहं नक्तमुत सोम ते दिवा  
सख्यार्यं वञ्च ऊर्धनि ।

घृणा तपन्तमति सूर्यं परः  
शकुना इव पक्षिम्

॥ २० ॥

मुञ्चमानः सुहृत्स्य समुद्रे घाचमिन्धसि ।

रयि पिशङ्गं बहूलं पृथुस्पृहं पर्वमानाम्यर्पसि ॥ २१ ॥

मूजानो धारे पर्वमानो अह्यये  
वृषाव चक्रवो धने ।

देवानां सोम पर्वमान निष्कृतं  
गोभिरञ्जानो अर्पसि

॥ २२ ॥

पर्वस्य वाजसातये ऽभि विश्वानि काव्या ।

त्वं संमुद्रं प्रधूमो वि धारयो

देवेभ्यः सोम मत्सुरः

॥ २३ ॥

स तू पर्वस्य परि पार्थिवं रजो

दिव्या च सोम धर्मभिः ।

त्वां विप्रासो मृतिभिर्विचक्षण

शुभ्रं हिम्यन्ति धीतिभिः

॥ २४ ॥

पर्वमाना अरुक्षत पविश्रमति धारया ।

मरुत्यन्तो मत्सुरा इन्द्रिया दया

मेधाममि प्रयांसि च

॥ २५ ॥

अपो पसानः परि कोशमर्पुनि

रगुर्हिषानः सोरुभिः ।

जनपञ्चपोर्तिर्मन्दना सपीयशाद्

गाः कृष्णानो न निर्निजम्

॥ २६ ॥

॥ १०७ ॥ ( ऋ० १०८।१-१६ )

१-२ गौरिवांतिः शाकत्यः, ३, १४-१६ शक्तिवांतिष्ठ, ४-५

ऊरुवांतिष्ठ, ६-७ ऋजिष्वा भारद्वाज, ८-९ ऊर्ध्वसद्वा भाति-

रसः, १०-११ कृतयक्षा भातिरसः, १२-१३ ऋणं वयो रात्रिभिः

काकुभः प्रगाथः = ( विपमा ककुपू, समा सतोबुद्धी ), १३

यवमप्या गावरी ।

पर्वस्य मधुमत्तम् इन्द्राय सोम मत्तुविर्त्तमो मर्दः ।

महिं घृक्षर्तमो मर्दः

॥ १ ॥

यस्य ते पीत्वा वृषमो वृषायते

अस्य पीता स्वर्धिदः ।

स सुप्रकतो अभ्यक्रमीदियो

अच्छा वाजं नैतंशः

॥ २ ॥

त्वं ह्यङ्ग देव्या पर्वमानं जनिमानि शुमत्तमः ।

अमृतत्वार्यं घोषयः

॥ ३ ॥

येना नयंग्वो दृश्यङ्गुर्धोर्णते

येन विप्रांस आपिरे ।

देवानां सुभ्रे अमृतस्य चारुणो

येन श्वोस्त्यानशुः

॥ ४ ॥

एष स्य धारया सुतो

अव्यो धारैभिः पवते मदिन्तमः ।

कीळञ्जुर्मिरपार्मिव

॥ ५ ॥

य उन्निया अप्या अन्तरदमनो

निर्गा अरुन्तदोजसा ।

अभि व्रजं तक्षिणे गव्यमद्वयं

वर्माव घृष्णावा रजं

॥ ६ ॥

आ सोता परि पिञ्जता

अध्वं न स्तोममन्तुरं रजस्तुरम् ।

धनकक्षमुदप्रुतम्

॥ ७ ॥

सहस्रधारं घृषमं पयोवृधं

प्रियं देयाय जन्मने ।

श्रुतेन य श्रुतजातो धियायुधे

राजा देय श्रुतं वृहत्

॥ ८ ॥

( ४७१ )



अभि सुस्रं बृहद् यश इपस्पते दिवीहि देव देवयुः । वि कोशं मध्यमं युय ॥ ९ ॥ आ वंच्यस्व सुदक्ष चर्षोः सुतो विशं वद्विर्न विदपतिः । घृष्टं दिवः पवस्व रीतिमुषां जिन्वा गार्विष्ट्ये धियः ॥ १० ॥ एतमु त्वं मंदच्युतं सहस्रधारं वृषमं दिवो दुडुः । विश्वं घसन्ति विभ्रतम् ॥ ११ ॥ वृषा वि जज्ञे जनयन्नमर्त्यः प्रतपञ्ज्योतिषा तमः । स सुष्टुतः कविर्मिर्निर्जिज्ञं दधे त्रिधात्वस्य दंससा ॥ १२ ॥ स सुन्वे यो घसन्तं यो ययामानेता य इळानाम् । सोमो यः सुक्षितीनाम् ॥ १३ ॥ यस्य न इन्द्रः पिबाद् यस्यं मरुतो यस्यं वार्यमणा भगः । आ येन मित्रावरुणा करामह पन्द्रमर्षसे महे ॥ १४ ॥ इन्द्राय सोम पातये नृमिर्यतः स्वायुधो मुदिग्नतमः । पवस्व मधुमत्तमः ॥ १५ ॥ इन्द्रस्य हार्दिं सोमधानुमा विश समुद्रमिय सिन्धवः । जुष्टो मित्राय वरुणाय वायवे त्रियो विष्टुम्भ उत्तमः ॥ १६ ॥	एवामृताय महे क्षयाय स शुक्रो अर्ष दिव्यः पीयूषः ॥ ३ ॥ पवस्व सोम महान्समुद्रः पिता देवानां विश्वाभि धाम ॥ ४ ॥ शुक्रः पवस्व देवेभ्यः सोम दिवे पृथिव्यै शं चं प्रजायै ॥ ५ ॥ दिवो धर्तासि शुक्रः पीयूषः सत्ये विधर्मन् वाजी पवस्व ॥ ६ ॥ पवस्व सोम शुक्ली सुधारो महामर्षीनामनु पृथ्वः ॥ ७ ॥ नृमिर्यमानो जज्ञानः पुतः शरद् विश्वानि मन्द्रः स्वर्वित् ॥ ८ ॥ इन्दुः पुनानः प्रजामुत्पणः करद् विश्वानि दत्विणानि नः ॥ ९ ॥ पवस्व सोम क्रत्ये दक्षाय अश्वो न निकतो वाजी घनाय ॥ १० ॥ तं तं सोतारो रसं मदीय पुनन्ति सोमं महे पुस्ताय ॥ ११ ॥ शिर्शु जज्ञानं हर्षि मृज्जित पवित्रे सोमं देवेभ्य इन्दुम् ॥ १२ ॥ इन्दुः पविष्ट आरुमदीय अपामुपस्थे कविर्मगाय ॥ १३ ॥ विमर्ति चार्विन्द्रस्य नाम येन विश्वानि वृषा जघान ॥ १४ ॥ पिर्वन्त्यस्य विश्वं देवासो गोभिः धीतस्य नृभिः सुतस्य ॥ १५ ॥ प्र सुवानो अश्वः सहस्रधारः तिरः पवित्रं वि वारमव्यम् ॥ १६ ॥ स वार्यवशः सहस्ररेता अङ्गिर्मज्ञानो गोभिः धीणानः ॥ १७ ॥
---	---

॥ १०८ ॥ ( स्रः ९:१०९:१-१९ )

समयो विष्वा ऐश्वर्यः । त्रिपदा विष्टुः ।

परि प्र धन्वेन्द्राय सोम  
स्यादुमित्राय पूष्णे भगाय ॥ १ ॥  
इन्द्रस्ते सोम सुतस्य पेयाः  
क्रत्ये दक्षाय विश्वे च देवाः ॥ २ ॥

पूर्वामनु प्रदिशं याति चेकितत्  
सं रदिमर्मियतते दर्शतो रथो

दैव्यो दर्शतो रथः ।

अमधुम्यानि पौंस्ये—न्द् जैत्राय हर्षयन् ।

यज्जंश्च यद् मधयो अनपच्युता

समत्स्वनपच्युता

॥ ३ ॥

॥ १११ ॥ ( अ० १।१११।१-३ )

विश्वरात्रिः । पृथ्विः ।

नानानं वा उ नो धियो

धि मृतानि जनानाम् ।

तक्षा रिष्टं कृतं मियम्

ब्रह्मा सुन्यन्तमिच्छतीन्द्रायेन्द्रो परि ऋष ॥ १ ॥

जरतीमिरोपधीमिः पूर्णेभिः शकुनानाम् ।

कामापो अममिर्षुमि—हिरण्यवन्तमिच्छति

इन्द्रायेन्द्रो परि ऋष

॥ २ ॥

कारुहं ततो मिय—गुणलप्रक्षिणी नना ।

नानाधियो वसुययो

अनु गा इव तस्यिमेन्द्रायेन्द्रो परि ऋष ॥ ३ ॥

अभ्यो घोडा सुखं रथं हसनामुपमन्त्रिणः ।

शेषो रोमण्वन्तौ भेदैः

वारिण्मण्डकं इच्छतीन्द्रायेन्द्रो परि ऋष ॥ ४ ॥

॥ ११२ ॥ ( अ० १।११२।१-११ )

कश्यपो मारीच ।

शर्यणावति सोम—मिन्द्रः पियते वृत्रहा ।

यलं दधान आत्मनि

करिष्यन् धीर्यं मूह—दिन्द्रायेन्द्रो परि ऋष ॥ १ ॥

आ पवस्व दिशां पत आर्जिकात् सोम मीद्वः ।

श्रुतवाकेन सत्येन ध्रुवया तपसा मुनः

इन्द्रायेन्द्रो परि ऋष

॥ २ ॥

पर्जन्यवृक्षं महिषं तं सूर्यस्य इतिवार्धम् ।

तं गर्धर्वाः प्रत्यगृह्णन्

तं सोमे रसमादधु—मिन्द्रायेन्द्रो परि ऋष ॥ ३ ॥

श्रुतं वदन्नृतद्युम्न सत्यं वदन्तसत्यकर्मन् ।

श्रद्धां वदन्तोम राजन्

धात्रा सोम परिष्कृत इन्द्रायेन्द्रो परि ऋष ॥ ४ ॥

सत्यमुग्रस्य बृहतः सं ऋवन्ति संनृवाः ।

सं यन्ति रसिनो रसाः

पुनाजो ब्रह्मणा हर इन्द्रायेन्द्रो परि ऋष ॥ ५ ॥

यत्र ब्रह्मा पवमान छन्दस्यां वाचं वदन् ।

ग्राह्या सोमे महीयते

सोमेनानन्दं जनय—मिन्द्रायेन्द्रो परि ऋष ॥ ६ ॥

यत्र ज्योतिरजस्रं यस्मिन् लोके स्थितम् ।

तस्मिन् मां धेहि पवमान

अमृतं लोके अक्षित इन्द्रायेन्द्रो परि ऋष ॥ ७ ॥

यत्र राजा वैवस्वतो यत्रावरोधनं दिवः ।

यत्रामूर्यहतीतपः

तत्र माममृतं कुधीन्द्रायेन्द्रो परि ऋष ॥ ८ ॥

यत्रानुकामं चरणं भिनाके त्रिदिवे दिवः ।

लोका यत्र ज्योतिष्मन्तः

तत्र माममृतं कुधीन्द्रायेन्द्रो परि ऋष ॥ ९ ॥

यत्र कामा निकामाश्च यत्र ब्रह्मस्य विष्टपम् ।

स्वधा च यत्र वृनिष्ठ

तत्र माममृतं कुधीन्द्रायेन्द्रो परि ऋष ॥ १० ॥

यत्रानिन्द्राश्च नोदाश्च नुदः सुनुद आसने ।

कामस्य वदन्तः कान्तः

तत्र माममृतं कुधीन्द्रायेन्द्रो परि ऋष ॥ ११ ॥

॥ ११३ ॥ ( अ० १।११३।१-३ )

य इन्द्रोऽवदान्तस्या—ऽनु धामान्मन्त्रे

मन्त्रेऽनुदा इति

मन्त्रेऽनुदा इति

मन्त्रेऽनुदा इति

मन्त्रेऽनुदा इति

मन्त्रेऽनुदा इति

मन्त्रेऽनुदा इति

सप्त दिशो नानासूर्याः सप्त होतार ऋत्विजः ।  
 देवा आदित्या ये सप्त  
 तेभिः सोमामि रक्ष न इन्द्रायेन्द्रो परि स्रव ॥ ३ ॥  
 यत् ते राजऋते हविस्तेन सोमामि रक्ष नः ।  
 अरातीवा मा नेस्तारीत्  
 मो चे नः किंचनामेम दिन्द्रोमेन्द्रो परि स्रव ॥ ४ ॥  
 ॥ ११४ ॥ ( अ० १।४३।७-९ )  
 इण्डो घौरः । गायत्री, ९ अष्टपदम् ।  
 अस्मे सोमं धियमधि नि धेहि शतस्य नृणाम् ।  
 महि श्रवस्तुयिनुग्णम् ॥ ७ ॥  
 मा नः सोमपरियाधो मारांतयो जुहुवन्त ।  
 आ न इन्द्रो पात्रे भज ॥ ८ ॥  
 यास्ते प्रजा अमृतस्य परस्मिन् धामंभृतस्य ।  
 मूर्धो नामा सोम वेन आभूयन्तीः सोम वेदः ॥ ९ ॥  
 ॥ ११५ ॥ ( अ० १।९।१-२३ )  
 गौतमो राष्ट्रगणः । त्रिष्टुप्, ५-१६ गायत्री, १७ छण्डिक ।  
 त्वं सोम प्र चिकितो मनीषा  
 त्वं रजिष्ठमहुं नेषि पन्थाम् ।  
 तय प्रणीति पितरो न इन्द्रो  
 देवेषु रत्नममजन्त धीराः ॥ १ ॥  
 त्वं सोम क्रतुभिः सुक्रतुर्भूः  
 त्वं दक्षैः सुदक्षो विभवेन्द्राः ।  
 त्वं घृषा घृष्येभिर्महिरा  
 घृष्मेभिर्गुम्यमयो मूचक्षाः ॥ २ ॥  
 राज्ञो नु ते परंरस्य प्रतानि  
 घृष्टद् गंभीरं तय सोम धाम ।  
 नुचिष्ट्यमसि म्रियो न मित्रो  
 दक्षार्यो भयमेवांसि सोम ॥ ३ ॥  
 पा ते धामानि द्विषि या पृथिव्यां  
 या पर्येत्योर्घीष्यप्सु ।  
 तेभिर्नो विभ्यैः सुमना भर्हेल्ल  
 राजममोम प्रति दृष्या ममाय ॥ ४ ॥

त्वं सोमसि सत्यति—सत्यं राजोत वृत्रहा ।  
 त्वं भद्रो अंसि क्रतुः ॥ ५ ॥  
 त्वं च सोम नो वशो जीघातुं न मरामहे ।  
 म्रियस्तोत्रो वनस्पतिः ॥ ६ ॥  
 त्वं सोम महे भगं त्वं यूने ऋतायते ।  
 दक्षै दधासि जीवसे ॥ ७ ॥  
 त्वं नः सोम विभ्वतो रक्षा राजन्नघायतः ।  
 न रिष्येत् त्वार्हतः सखा ॥ ८ ॥  
 सोम यास्ते मयोमुष ऊतयः सन्ति दाशुष्यैः ।  
 तामिर्नोऽविता मव ॥ ९ ॥  
 इमं यज्ञमिदं वचो जुजुषाण उपागहि ।  
 सोम त्वं नो वृधे मव ॥ १० ॥  
 सोमं गीर्भिष्या वयं वर्धयामो वचोविदः ।  
 सुमूलीको न आ विश ॥ ११ ॥  
 गयस्तानो अमीवहा वसुवित् पुष्टिवर्धनः ।  
 सुमित्रः सोम नो भय ॥ १२ ॥  
 सोमं राखन्धि नो हवि गाधो न यवलेष्वा ।  
 मर्य इव स्व ओक्ये ॥ १३ ॥  
 यः सोम सुख्ये तयं राखन्द् देव मर्यैः ।  
 तं दक्षैः सचते कविः ॥ १४ ॥  
 उरुष्या णो अभिशस्तेः सोम नि पाग्रहंसः ।  
 सखा सुशेष पथि नः ॥ १५ ॥  
 आ प्यायस्य समेतु ते विभ्वतः सोम वृष्यम् ।  
 भवा पाजस्य संगये ॥ १६ ॥  
 आ प्यायस्य मदन्तम् सोम विभ्यैर्भिराभिः ।  
 भवा नः सुधर्यस्तम् सखा वृधे ॥ १७ ॥  
 सं ते पर्यासि समु यन्तु याजाः  
 सं वृष्यान्यभिमात्रिपाहः ।  
 आप्यायमानो भमृताय सोम  
 द्विषि अयांस्युत्तमानि धिय ॥ १८ ॥  
 ( ४१५८ )

या ते घामानि हविषा यजन्ति  
ता ते विभ्वा परिमूरस्तु यज्ञम् ।

गयस्फानः प्रतरणः सुर्वाये  
अर्धिरहा प्र चरा सोम दुर्वाय

सोमो धेनुं सोमो अर्धन्तमाशुं  
सोमो वीरं कर्मण्य ददाति ।

सादस्यं विदस्यं सुमेयं

पितृश्रवणं यो ददाश्वस्त्रे  
अर्पाळहं युस्तु पृतनासु पतिं  
स्वर्गामप्तां वृजनस्य गोपाम् ।

मरेयुजां सुक्षितं सुश्रवसुं  
जयन्तं त्वामनु मदेम सोम  
त्वमिमा ओपधीः सोम विभ्वाः

त्यमपो अजनयस्त्यं गाः ।

त्वमा ततन्योर्वं न्तारिहं  
त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्ध

देवेन नो मनसा देव सोम  
रापो आगं सहसावधमि युध्य ।

मा त्वा तनूदीर्गिणे वीर्यस्य  
उमयैम्यः प्र विकित्ला गर्विष्टौ

॥ ११६ ॥ ( क्र० ३१६१/१३-१५ )

गायिनी विधामित्रः । गायत्री ।

सोमो जिगाति गातुविद् देवानामेति निष्कृतम् ।

श्रुतस्य योनिमासदम् ॥ १३ ॥

सोमो अस्मभ्यं द्विपदे चतुष्पदे च पशवे ।

अनमीवा इपरस्करत् ॥ १४ ॥

अस्माकमार्युर्वर्धय श्रमिमांतीः सहमानः ।

सोमः सुधस्यमासदत् ॥ १५ ॥

॥ ११७ ॥ ( क्र० ६१७१/१-५ )

गर्गो मारद्वाजा । मिथुप ।

स्वादुफिलायं मधुमौ उतायं

सौवः किलायं रसवां उतायम् ।

उतो न्वःस्य पपिवांसमिन्द्रं  
न कञ्चन सहत आहवेयुं

॥ १ ॥

अयं स्वादुरिह मर्दिष्ठ वास  
यस्येन्द्रो वृत्रहर्त्यं ममाद ।

पुरुणि यद्व्योता शम्बरस्य  
वि नवति नवं च वेद्यो हन्

॥ २ ॥

अयं मे पीत उर्दियति वाचं  
अयं मनीषामनुशतीर्मजागः ।

अयं पल्लवीरमिमीत धीरो  
न याभ्यो भुवनं कञ्चनारे

॥ ३ ॥

अयं स यो वर्हिमाणं पृथिव्या  
वर्हिमाणं विद्यो अरुणोदयं सः ।

अयं पीयूषं तिस्र्युं प्रवत्सु  
सोमो दाघायेव न्तारिधम्

॥ ४ ॥

अयं विदधिब्रह्मशीक्रमणः  
शुक्लसंघनामुपसामनीके ।

अयं मृद्वान् मृद्वता स्कर्मन्तेन  
उद् घामस्तन्नाद् वृषमो भवत्वान्

॥ ५ ॥

॥ ११८ ॥ ( क्र० ७१०८/१२, १२-१३ )

मैत्रावृणोर्वविष्टः ।

ये पाकशंसं विहरन्त एवैः

ये वा भुद्रं दुपयन्ति स्वधार्मिः ।

अह्ये वा तान् प्रददातु सोम

॥ ९ ॥

आ वा दधातु निर्वैतेरुषस्यं

सुविज्ञानं विकितुये जनाय

सञ्चासञ्च वचसी परपृघाते ।

तयोर्वत् सत्यं यतरदजीयः

तदित् सोमोऽवति हन्यासत्

॥ १२ ॥

न वा उ सोमो वृजिनं हिंनोति

न क्षत्रियं मियुया घारयन्तम् ।

हन्ति रक्षो हन्यासद् वदन्तं

उमाविन्द्रस्य प्रसितौ शपाते

॥ १४ ॥

( ४६५४ )

॥ ११९ ॥ ( ऋ० ८।४८।१-१५ )

प्रगाथो घोरः काव्यः । त्रिष्टुप्, ५ अगता ।

म्यादोरमस्त्रि वयसः सुमेधा  
 स्वाध्यायं चरित्रोविर्त्तरस्य ।  
 विश्वे यं देवा उत मर्त्यासो  
 भर्तुं धुयन्तो अग्निं संचरन्ति  
 श्रन्तश्च प्राणा अर्द्धिर्भवांसि  
 अययाता हरसो देव्यन्म्य ।  
 इन्द्रविन्द्रम्य सुख्यं जुषाणः  
 श्रीष्टीव धुमन्तु राय ऋष्याः  
 अपामं सोमममृतं अमम  
 अगन्म ज्योतिरविदाम देवान् ।  
 किं नूनमस्मान् एणषदरातिः  
 किमु धूर्तिरमृत मर्त्यस्य  
 दा नो भय हृद् आ पीत इन्द्रो  
 पिनेयं सोम वृनये सुशेषः ।

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

अर्द्धिर्दक्ष उत मन्युर्दिन्द्रो  
 मा नो अयों अनुकामं परा दाः  
 त्वं हि नस्तन्वः सोम गोपा  
 गात्रैगात्रे निपुसर्था नृचक्षाः ।  
 यत् ते वयं प्रमिनाम व्रतानि  
 स नो मृच्छ सुपत्वा देव वस्यः

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

अवृद्धरेण सख्या सचेय  
 यो मा न रिष्येद्वयंश्च पीतः ।  
 अयं यः सोमो न्वधाव्यस्मे  
 तस्मा इन्द्रं प्रतिरेम्यार्युः  
 अप त्वा अस्त्युरनिरा अमीवा  
 निरत्रसन् तमिपीचीरमैयुः ।  
 आ सोमो अस्मा अगृह्ण विहाया  
 अगन्म यत्र प्रतिरन्त आर्युः  
 यो न इन्द्रः पितरो हन्त पीतो

॥ १० ॥

॥ ११ ॥

॥ ११० ॥ ( ऋ० ८।७९।१-९ )

कृतुर्मागवः । गायत्री, ९ अनुष्टुप् ।

अयं कृतुररुमीतो विभ्वजिदुद्भिदित् सोमः ।  
 ऋषिर्विमः कार्व्येन ॥ १ ॥  
 अमृष्योति यक्ष्मं मिपक्ति विभ्वं यत् तुरम् ।  
 प्रेमन्धः ख्यन्ति धोणो भूत् ॥ २ ॥  
 त्वं सोम तनूकृद्भ्यो द्वेपोभ्योऽन्यकृतेभ्यः ।  
 उरु यन्तासि वरुधम् ॥ ३ ॥  
 त्वं चित्ती तव वक्षैर्दिव आ पृथिव्या ऋजीपिन् ।  
 याधीरयस्य चिद् द्वेपः ॥ ४ ॥  
 अर्थिनो यन्ति चेदर्थं गच्छानिद् ददुपो रातिम् ।  
 धवृज्युस्तृप्यतः कर्मम् ॥ ५ ॥  
 विदद् यत् पुष्यं नष्ट—मुदीमृतायुमीरयत् ।  
 प्रेमायुस्तारिदतीर्णम् ॥ ६ ॥  
 सुशेषो नो मृडयाकु—रहत्तफ्रतुरयातः ।  
 अर्वा नः सोम शो हृदे ॥ ७ ॥  
 मा नः सोम सं धीविजो मा वि धीमिपथा राजन् ।  
 मा नो ह्यदि विपा वधीः ॥ ८ ॥  
 अयं यत् स्वे सुधस्थे वृषानां दुर्मतीरीक्षे ।  
 राजन्नप द्विपः सेध मीद्वो अप क्षिपः सेध ॥ ९ ॥

॥ १११ ॥ ( ऋ० ८।१०१।१४ )

अमदभिर्मागवः । शिष्टुप् ।

प्रजा हं तिष्ठो अत्यार्यमीयुः  
 न्यून्या अर्कमभितो विधिरे ।  
 धृद्वर्द्ध तस्थौ भुर्यनेप्यन्तः  
 पर्वमानो हस्ति आ विवेश ॥ १ ॥  
 ॥ १२१ ॥ ( ऋ० १०।१५।१-११ )  
 ऐन्द्रो विगदा, प्राजापत्यो वा, वायुको वसुकृदा ।  
 आस्तारपक्षिः ।  
 मद्रं नो अपि चातय मनो दर्शमुत्त क्रतुम् ।  
 अर्धा ते सुख्ये अर्धसो वि धो मदे  
 रणन् गावो न यवसे विवक्षसे ॥ १ ॥

हृदिस्पृशस्त आसते विभ्वेषु सोम धामसु ।  
 अथा कामा इमे मम वि धो मदे  
 वि तिष्ठन्ते वस्यवो विवक्षसे ॥ २ ॥  
 उत वृताणि सोम ते प्राहं मिनामि पाक्या ।  
 अर्धा पितेवं सुनवे वि धो मदे  
 मृळा नो अमि चिद् वधाद् विवक्षसे ॥ ३ ॥  
 समु ॥ यन्ति धीतयः सर्गासोऽवृतां इव ।  
 क्रतुं नः सोम जीवसे वि धो मदे  
 धारया चमसां इव विवक्षसे ॥ ४ ॥  
 तव त्वे सोम शक्तिमि—निर्कामासो व्यूषिधरे ।  
 गृत्सस्य धीरास्तवसो वि धो मदे  
 वृजं गोर्मन्तमश्विनं विवक्षसे ॥ ५ ॥  
 पशुं नः सोम रक्षसि पुरुषा विष्टितं जगत् ।  
 समारुणोपि जीवसे वि धो मदे  
 विभ्यां संपश्यन् भुवना विवक्षसे ॥ ६ ॥  
 त्वं नः सोम विभ्वतो गोपा अदाभ्यो भय ।  
 सेध राजन्नप क्षियो वि धो मदे  
 मा नो दुःशंसं ईशता विवक्षसे ॥ ७ ॥  
 त्वं नः सोम सुक्रतु—वयोधेपाय जागृहि ।  
 श्रेणविस्त्रो मनुषो वि धो मदे  
 द्रुहो नः पाहंसो विवक्षसे ॥ ८ ॥  
 त्वं नो वृत्रहन्तमे—न्द्रस्येन्द्रो शिषः सखा ।  
 यत् सीं हवन्ते समिधे वि धो मदे  
 युष्यमानास्तोकसातो विवक्षसे ॥ ९ ॥  
 अयं घ स तुरो मद् इन्द्रस्य वर्धत म्रियः ।  
 अयं कक्षीर्वतो मद्रो वि धो मदे  
 मति विमस्य वर्धयद् विवक्षसे ॥ १० ॥  
 अयं विप्राय दाशुपे वाजो इयति गोमतः ।  
 अयं सुतभ्य आ घरे वि धो मदे  
 ग्रान्धं श्रेणं च तारिपद् विवक्षसे ॥ ११ ॥

॥ १३० ॥ ( वा० य० ६।८१।१ )

अथर्वा । अनुष्टुप् ।

इदं यत् प्रेष्यः शिरो दत्तं सोमेन वृष्ण्यम् ।  
ततः परि प्रजातेन हार्दि ते शोचयामसि ॥ १ ॥

॥ १३१ ॥ ( वा० य० ४।१६ उत्तरार्धः, २४, २७ )

रास्येयत् सोमा भूयो भर देवो  
नः सविता वसोर्दाता वस्यदात् ॥ १६ ॥

एव ते गायत्रो माग इति मे सोमाय द्यात्  
एव ते वैश्वदेवो माग इति मे सोमाय द्यात्  
एव ते जागतो माग इति मे सोमाय द्यात्  
छन्दोनामानां साभ्राज्यं गच्छेति मे सोमाय द्यात्  
अस्माकोऽसि शुकस्ते ग्रहो विचित्रस्तथा  
विचित्रमनु ॥ २४ ॥

मित्रो न एहि सुमित्र इन्द्रस्योऽरुमाविश  
वक्षिणमुद्राशान्तं स्थोनः स्थोनम् ।  
स्वान् भ्राजार्हारे वरमारे हस्तु शुद्धस्तु  
हृशानयेते यः सोमकर्यणस्तान् ।  
रक्षायं मा यो दमन् ॥ २७ ॥

॥ १३२ ॥ ( वा० य० ५।७ )

अथंशुर्देव सोमाप्यायतामिन्द्रायेकधनविदे  
मा तुभ्यमिन्द्रः प्यायतामा त्वमिन्द्राय व्यायस्य ।  
आप्याययासान्स्तवीन्स्तम्या  
मेधया स्थस्ति ते देव सोम सुत्यामरीय ।  
पष्टा रायः प्रेये मगाय  
श्रुतमृतयादिभ्यो नमो घायांपृथिवीभ्याम् ॥ ७ ॥

॥ १३३ ॥ ( वा० य० ६।१५-२६, ३२-३३, ३५-३६ )

हृदे त्या मर्नसे त्या द्विye त्या सूर्याय त्या ।  
ऊर्ध्वमिममेष्वरं द्विye देवेषु होत्रां यच्छ ॥ २५ ॥  
सोम राजन् विभ्यास्त्वं प्रजा  
उपायरोह विभ्यास्त्वं प्रजा उपायरोहन्तु ।

शृणोत्वग्निः समिधा हव्यं मे  
शृण्वन्वापो विपणाश्च देवीः ।  
श्रोतां प्रावाणो विदुषो न यश्च  
शृणोतु देवः संविता हव्यं मे स्वाहा ॥ २६ ॥

इन्द्राय त्वा यस्तुमते रुद्रवत इन्द्राय  
त्वादित्यवत इन्द्राय त्वाभिमातिमे ।  
श्येनाय त्वा सोमभृतेऽग्नये त्वा रायस्पोषदे ॥ ३२ ॥

यत् ते सोम द्विवि ज्योतिः  
यत् पृथिव्यां यदुरावन्तरिक्षे ।  
तेनास्मै यजमानायोरु राये  
रुच्यधि दात्रे वीचः ॥ ३३ ॥

मा मेर्मा संर्विकथा ऊर्जे धत्स्व  
धिपणे वीह्यी सती वीडयेयामूर्जे दधायाम् ।  
पाप्मा हतो न सोमः ॥ ३५ ॥

प्रागपागुर्दगधरात् सर्वतस्तथा दिश आधापन्तु ।  
अम्य निरपरं समरीविद्राम् ॥ ३६ ॥

॥ १३४ ॥ ( वा० य० ७।१४ )

अर्चिउग्रस्य ते देव सोम सुवीर्यस्य  
रायस्पोषस्य इदितारः स्याम ।  
सा प्रथमा सैरुहतिविभ्यारा  
स प्रथमो वरुणो मित्रो अग्निः ॥ १४ ॥

॥ १३५ ॥ ( वा० य० ८।१, २, २५-२६, ४८-५० )

उपयामर्होतोऽस्यादित्येभ्यस्तथा ।  
विष्णो उरुगायं ते सोमस्तथ  
रक्षस्व मा त्वा दमन् ॥ १ ॥

उपयामर्होतोऽसि बृहस्पतिस्तुतम्य देव सोम ।  
इन्द्रोऽग्निर्द्विगार्हतः पत्नीयितो ग्रहोऽरुद्रास्यम् ।

अहं परस्तादहमयस्तान्  
यदन्तरिक्षं तर्ह्य मे पिताभूत् ।  
अहं सूर्यमुमपतो ददन्  
अहं देवानो परमं गुहा यम् ॥ २ ॥

समुद्रे ते हृदयमप्स्युतः ।  
 सं त्वा विशन्गोर्षधीः ।  
 यदास्य त्वा यमपते सुकोतो  
 नमोवाके विधेम यत् स्वाहा

॥ २५ ॥

देवीराप पप यो गर्भस्तथ  
 सुप्रीतथ सुभूते विभूत ।  
 देव सोमैव ते लोकस्तस्मिन्  
 सं च वक्ष्य परि च वक्ष्य

॥ २६ ॥

प्रेक्षीनां त्वा पद्मपार्धनोमि  
 कुकुनानां त्वा पद्मपार्धनोमि  
 भृश्वनानां त्वा पद्मपार्धनोमि  
 मदिस्तमानां त्वा पद्मपार्धनोमि  
 मधुन्तमानां त्वा पद्मपार्धनोमि  
 शुक्रं त्वा शुक्र आर्धनोमि  
 अहो रूपे सूर्यस्य रुदिमयु

॥ ४८ ॥

ककुभथ रूपं वृषमस्य रोचते  
 बृहच्छुक्रः शुक्रस्य पुरोगाः सोमः सोमस्य पुरोगाः ।  
 यत् ते सोमादोभ्यं नाम जागृवि तस्मै त्वा गृह्णामि  
 तस्मै ते सोम सोमाय स्वाहा

॥ ४९ ॥

उशिक्ष त्वं देव सोमाम्नेः प्रियं पाथोऽपीहि  
 वृशी त्वं देव सोमेन्द्रस्य प्रियं पाथोऽपीहि  
 अस्तस्त्वा त्वं देव सोम विश्वेपां  
 देवानां प्रियं पाथोऽपीहि

॥ ५० ॥

॥ १३६ ॥ (वा० य० १९।७९)

सोमो राजामृतं सुत ऋजोपेणाजहान्मृत्युम् ।  
 ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपारंथं शुक्रमन्धस  
 इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु

॥ ७२ ॥

॥ १३७ ॥ (वा० य० २०।१९)

समुद्रे ते हृदयमप्स्युतः  
 सं त्वा विशन्गोर्षधीः ।

सुमित्रिया नु आपु शोर्षधयः समु  
 सुमित्रियागर्भं समु  
 योऽस्मान् छेष्टि यं च ययं द्विषाः

॥ १९ ॥

॥ १३८ ॥ (साम० ११००-११०१)

पायमानाः स्वस्ययनीः  
 सुदुषा हि पृतदयुतः ।  
 ऋषिभिः संभूतो रसो

प्राक्षणेप्यमृतं हितम् ॥ ३ ॥ ॥ १३०० ॥

पायमानादधन्तु न  
 इमं लोकमर्थो भुम् ।

पातमान्समर्धयन्तु नो  
 देवीदेवैः समाहताः ॥ ४ ॥ ॥ १३०१ ॥

येन देवाः पवित्रेण  
 आत्मानं पुनते सदा ।

तेन सहस्रधारेण  
 पावमानाः पुनन्तु नः ॥ ५ ॥ ॥ १३०२ ॥

पावमाना स्वस्वयनीः  
 ताभिर्गच्छति नान्दनम् ।

पुण्याश्च भक्षान् भक्षयति  
 अमृतत्वं च गच्छति ॥ ६ ॥ ॥ १३०३ ॥

॥ १३९ ॥ (श्रु० १०।२९४।६)

अग्नि-वरुण-सोमाः । शिष्टम् ।

इदं स्वर्दिदिमांस वामं  
 अयं प्रकाश उर्व्यन्तरिक्षम् ।  
 हनोष वृषं निरोहि सोम  
 हविष्या सन्तं हविषा यज्ञाम

॥ ६ ॥

(४७५५)



सोमसहचारी देवगणः ।

(१) सूर्यरोदसीमित्रवरुणरुद्रद्राग्न्ययममगसोमाः ।

॥ १४० ॥ ( ऋ० १।१३६।६ )

पदच्छेदो देवोदासिः । अग्नयिः ।

नमो दिवे बृहते रोदसीभ्यां

मित्राय योचं वरुणाय मीळहुयै

सुमृळीकार्य मीळहुयै ।

इन्द्रमग्निमुप स्तुहि युक्षमयमणं अगम् ।

ज्योत् जीवन्तः प्रजया सचेमहि

सोमस्योती संचेमहि

॥ ६ ॥

(२) सोमापूषणौ, ६ ( अन्त्योऽर्धर्चस्य ) अदितिः ।

॥ १४१ ॥ ( ऋ० २।३०।१-६ )

गुरुमद ( आङ्गिरसः सोमहोत्रः पश्चाद् ) आगवः

शोनकः । त्रिष्टुप् ।

सोमापूषणा जर्नना रयीणां

जर्नना द्वियो जर्नना पृथिव्याः ।

जातौ विश्वस्य भुवनस्य गोपौ

देवा अकृण्वन्नमृतस्य नाभिम्

इमौ देवौ आर्यमानौ जुपन्त

इमौ तमोसि गृहतामजुष्टा ।

आग्न्यामिन्द्रः एकमामास्थन्तः

सोमापूषण्यौ जनदुक्षियासु

सोमापूषणा रजसो विमाने

सप्तर्चक्रं रथमर्विभ्वानिन्वम् ।

विपूवृतं मनसा युज्यमानं

तं जिन्वथो वृषणा पञ्चरदिमम्

दिव्यान्यः सर्वेनं चक्र उरुचा

पृथिव्यामन्यो अप्यन्तरिक्षे ।

तावत्सम्यं पुरुवारं पुरुश्रुं

रायस्पोषं वि प्र्यतां नाभिमस्ये

विश्वान्यन्यो भुवनं जुजान

विश्वमन्यो अभिचक्षाण पति ।

६१

सोमापूषणावर्तन् धियै मे

युवाभ्यां विश्वाः पृतना जयेम

॥ ५ ॥

धियै पुषा जिन्वतु विश्वमिन्वो

रयि सोमो रयिपतिर्दधातु ।

अवतु देव्यवितिरनवा

बृहद् वंदेम विदयै सुवीराः

॥ ६ ॥

( ३ ) सोमारुद्रौ ।

॥ १४२ ॥ ( ऋ० ६।३४।१-४ )

मारुद्रौ वाहेस्पत्यः । त्रिष्टुप् ।

सोमारुद्रा धारयैयामसुर्यै

प्र वामिद्वयोऽरमद्भवन्तु ।

इमेदमे सप्त रत्ना दधाना

शं नो भूतं क्षिपदे शं चतुष्पदे

॥ १ ॥

सोमारुद्रा वि बृहत् विपूषा

अर्माया या नो गर्यमाधिदेश ।

आरे वाधेयां निश्कृतिं पयचैः

अस्ये मद्रा सौधवसानि सन्तु

॥ २ ॥

सोमारुद्रा युयमेतान्यस्ये

विश्वो तनूषु मेयजानि धत्तम् ।

अव स्यतं मुञ्चतं यद्गो आसी

तनूषु बृद्धं कृतमेनो अस्मत्

॥ ३ ॥

तिग्मायुधौ तिग्महंती सुदोषौ

सोमारुद्राविह सु मृञ्चतं नः ।

प्र नो मुञ्चतं वरुणस्य पाशाद्

गोपायतं नः सुमनस्यमाना

॥ ४ ॥

( ४ ) ब्राह्मण-पितृ-सोम-द्यायापृथिवी-पूषाणः ।

॥ १४३ ॥ ( ऋ० ६।३५।१० )

पायुषोदाग्नः । अगती ।

ब्राह्मणासः पितरः सोम्यासः

शिवे नो द्यावापृथिवी अनेहसा ।

पुषा नः पातु दुरिताहतावृधो

रक्षा मार्किनो अघशंस इशत

॥ १० ॥

( ४७६७ )

(५) धर्म-सोम-धरणाः ।

॥ १४४ ॥ ( अ० ६।७५।१८ )

पापुर्मांरदात्रः । त्रिष्टुप् ।

मर्माणि ते धर्माणां छादयामि  
सोमस्त्वा राजामृतेनानुं वस्ताम् ।  
उरोर्वरीयो वरुणस्ते रुणोतु  
जयन्तं त्वानुं देवा मदन्तु ॥ १८ ॥

(६) अग्नीध्रमिन्द्रावहणाश्विभगपूषद्व्रक्षणस्पतिसोम-  
क्रदाः ।

॥ १४५ ॥ ( अ० ७।४१।१ )

मैत्रावरुणवेदिव्रः । जगती ।

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे  
प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विनां ।  
प्रातर्भगं पूषणं व्रक्षणस्पतिं  
प्रातः सोममुत रुद्रं हुवेम ॥ १ ॥

(७) अङ्गिरापित्रथर्वभृगुसोमाः ।

॥ १४६ ॥ ( अ० १०।१४।६ )

वैवस्वतो यमः । त्रिष्टुप् ।

अङ्गिरसो नः पितरो नर्धन्वा  
अथर्षाणो भृगवः सोम्यासः ।  
तेषां ध्रुवं सुमती युधियानां  
अपि मूद्रे सौमनसे स्वायम् ॥ २ ॥

(८) आपः सोमो वा ।

॥ १४७ ॥ ( अ० १०।१७।१-१३ )

देवप्रवा यामावनः । त्रिष्टुप्, १३ अनुष्टुप्, पुरस्ताद्वृहती वा ।

द्रव्यस्यैस्कन्द प्रथमां अनु हून्  
इमं च योनिमनु यद्य्ध्रुवैः ।  
समानं योनिमनु संचरन्तं  
द्रव्यं जुहोम्यनु मत्त होत्राः ॥ ११ ॥  
यस्तं द्रव्यः स्कन्दति यस्तं अंशुः  
पादृच्यतो शिपिणाया उपम्यात् ।

अध्वर्योर्धा परि ध्या यः पयिनात्  
तं ते जुहोमि मनसा धर्षद्भुतम् ॥ १२ ॥  
यस्तं द्रव्यः स्कन्दो यस्तं अंशुः  
अध्वश्च यः परः सुखा ।  
अयं देवो यद्भुवस्पतिः सं तं सिञ्चतु राधसे ॥ १३ ॥

(९) अग्नीषोमौ ।

॥ १४८ ॥ ( अ० १०।१९।१ उत्तरार्धः )

मयितो यामावनः, भृगुर्वाङ्मनेर्वा, भार्गवस्त्वपवने वा । अनुष्टुप् ।  
अग्नीषोमा पुनर्वसू अस्मे धारयन्तं द्रुयिम् ॥ १ ॥

॥ १४९ ॥ ( अथर्व० २।३६।६ )

पतिवदनः । त्रिष्टुप् ।

इयमग्ने नारी पतिं विदेष्टु  
सोमो हि राजा सुभगां कृणोति ।  
सुवार्ता पुत्रान् महिषी भवाति  
गत्वा पतिं सुभगा वि राजतु ॥ २ ॥

(१०) निर्धृतिः सोमौ ।

॥ १५० ॥ ( अ० १०।५९।४ )

बन्धुः धृतबन्धुर्वैवबन्धुर्गौपायनाः । त्रिष्टुप् ।

मो पु नः सोम मृत्यवे परा द्वाः  
पश्येयं नु सूर्यमुच्चरन्तम् ।  
सुभिर्हितो जैरिमा च नो अस्तु  
परातरं सु निर्धृतिर्जिहीताम् ॥ ३ ॥

(११) पृथिवीद्वयन्तरिक्षसोमपूषपथ्यास्वस्तयः ।

॥ १५१ ॥ ( अ० १०।५९।७ )

बन्धुः धृतबन्धुर्वैवबन्धुर्गौपायनाः । त्रिष्टुप् ।

पुनर्नो अस्तु पृथिवी वंदातु  
पुनर्नो वैधी पुनरन्तरिक्षम् ।  
पुनर्नः सोमस्तुन्यं ददातु  
पुनः पूषा पथ्यांस्तु या स्वस्तिः ॥ ७ ॥  
(४७७७)

( १२ ) सोमाकौ ।

॥ १५३ ॥ ( ऋ० १०८११८ )

सुगो घावित्री अविक्ता । जगती ।

पूर्वापरं चरतो माययैतौ

शिदु श्रीलन्तौ परि यातो अघ्वरम् ।

विश्वान्यन्यो भुवनामिचष्टे

अतूरन्यो विदर्धजायते पुनः ॥ १८ ॥

( १३ ) सोम-चरण-बृहस्पति-अनुमति-मघवत्-धातु-  
विधातारः ।

॥ १५३ ॥ ( ऋ० १०१६७३ )

विश्वामित्र-जमदग्नी । जगती ।

सोमस्य राज्ञो वरेणस्य धर्मणि

बृहस्पतेरनुमत्या उ शर्मणि ।

तवाहमथ मघवद्वर्पस्तुतौ

भतुर्विधातः कुलशौ अभक्षयम् ॥ ३ ॥

( १४ ) बृहस्पतिः, अग्नीषोमौ च ।

॥ १५४ ॥ ( अथर्व० १८१-२ )

वातनः । अनुष्टुप् ।

इदं हृषीर्षीतुधानान् नदी केनमिषा बहत् ।

य इव ह्री पुमानक-रिह स स्तुवतां जनः ॥ १ ॥

अयं स्तुवान् आगम-दिमं स्म प्रति हयत ।

बृहस्पते वरो ह्यन्या ऽग्नीषोमा वि विध्यतम् ॥ २ ॥

( १५ ) अग्निः, आपः, ओषधयः, सोमः ।

॥ १५५ ॥ ( अथर्व० ११०१२ )

भृगुजिह्वाः । वसवदाष्टिः ।

शं ते अग्निः सुदान्निरस्तु शं सोमः सुदौर्ध्वीभिः ।

एवाहं त्वां क्षेप्रियात्

निर्धृत्या जामिशासाद् द्रुहो

मुञ्चामि वरेणस्य पाशात् ।

अनागस्तं ब्रह्मणा त्वा रुणोमि

शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ॥ २ ॥

( १६ ) सोमः, अर्यमा, धाता ।

॥ १५६ ॥ ( अथर्व० ११३६१ )

पतिवेदनः । अनुष्टुप् ।

सोमजुष्टं ब्रह्मजुष्टं-मर्यम्णा संभृतं भगम् ।

धातुर्वैवस्य सत्येनं रुणोमि पतिवेदनम् ॥ २ ॥

( १७ ) वरुणः, सोमः, इन्द्रः ।

॥ १५७ ॥ ( अथर्व० ११३१३ )

अथर्वः । वसुपदा भुरिक्पृष्टिः ।

अद्भ्यस्त्वा राजा वरेणो ह्यतु

सोमस्त्वा ह्यतु पर्वतेभ्यः ।

इन्द्रस्त्वा ह्यतु विद्भ्य आभ्यः

द्येनो भुत्वा विश आ पतेमाः ॥ ३ ॥

( १८ ) सोमः, सविता, आदित्यः, अग्निः ।

॥ १५८ ॥ ( अथर्व० १८१३ )

त्रिष्टुप् ।

हुवे सोमं सवितारं नमोमिः

विश्वानादित्यौ बृहमुत्तरे ।

अयमग्निर्दौदायव वीर्धमेव

संजातैरिहोऽप्रतिबुवाजिः ॥ ३ ॥

( १९ ) सोमः, स्वजाः, अश्विनः ।

॥ १५९ ॥ ( अथर्व० ११९७४ )

पथपदा कडुमनोपगमाऽष्टिः ।

उदीची दिक् सोमोऽधिपतिः

स्वजो रक्षिताशनिरिषवः ।

तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो

रक्षितभ्यो नम इषुभ्यो नम पथ्यो अस्तु ।

योऽस्मान् देष्टि यं वयं द्विपस्तं यो जस्मै दध्मः ॥

( २० ) आपः, सोमः ।

॥ १६० ॥ ( अथर्व० १८११५ ) अनुष्टुप् ।

अपां रसः प्रथमजो ऽयो पनस्पतीनाम् ।

उत सोमस्य भ्राता ऽस्युतारामसि वृष्णम् ॥ ५ ॥

(२१) सोमः, धनस्पतिः ।

॥ १६१ ॥ (अथर्व० ६।२।१-१) परेणिष् ।

इन्द्राय सोममृत्विजः सुनोता च धायत ।  
स्तोतुर्यो यचः शृणुयद्दधे च मे ॥ १ ॥

आ यं विशन्तीन्दधो ययो न वृक्षमन्धसः ।  
विरिप्तिन् वि मृधो जदि रक्षस्मिनीः ॥ २ ॥

(२२) द्यावापृथिवी, प्राधा, सोमः, सरस्वती, अग्निः ।  
॥ १६२ ॥ (अथर्व० ६।३।१) अगती ।

प्रातां नो द्यावापृथिवी अभिष्टये  
पातु प्राधा पातु सोमो नो अंहसः ।

पातु नो देवी सुभगा सरस्वती  
पात्वग्निः शिवा ये अस्य प्रायवः ॥ २ ॥

(२३) सोमः, अदितिः ।

॥ १६३ ॥ (अथर्व० ६।७।१-१) १ त्रिवृत्, २ गायत्री ।  
येन सोमादितिः पथा मित्रा वा यन्त्यद्बुधः ।  
तेना नोऽवसा गहि ॥ १ ॥

येन सोम साहन्त्या सुरान् रुन्धयासि नः ।  
तेना नो अर्धं वोचत ॥ २ ॥

(२४) द्यावापृथिवी, सोमः, सविता, अन्तरिक्षं,  
सप्तश्रुपयः ।

॥ १६४ ॥ (अथर्व० ६।४०।१) अगती ।  
अभयं द्यावापृथिवी ह्वास्तु नो  
अभयं सोमः सविता नः कृणोत ।

अभयं नोऽस्तुर्वृन्तरिक्षं  
सप्तश्रुपीनां च द्विपार्भयं नो अस्तु ॥ १ ॥

(२५) अग्निः, इन्द्रः, सोमः ।

॥ १६५ ॥ (अथर्व० ६।५८।३) अनुष्टुप् ।  
यशा इन्द्रो यशा अग्नि-यशाः सोमो अजायत ।  
यशा विश्वस्य भूतस्या-दमसि यशस्तमः ॥ ३ ॥

(२६) सविता, सोमः, वरुणः ।

॥ १६६ ॥ (अथर्व० ६।६८।३) अतिअगतांगमां त्रिष्टुप् ।  
येनावपत् सविता क्षुरेण  
सोमंभ्य राक्षो वरेणस्य विद्वान् ।

तेन प्रह्मणो यपतेदमस्य

गोमान्भयवानयमस्तु प्रजापान् ॥ ३ ॥

(२७) सामनस्यम्, यमणमोमोऽग्निपृहस्पतिवत् ।

॥ १६७ ॥ (अथर्व० ६।७१।१-१)

१ अग्निः २ त्रिष्टुप् ।

यद् यातु वरेणः सोमो अग्निः  
वृहस्पतिर्वसुभिरेह यातु ।

अस्य धियमुपसयात् सर्वं  
उग्रस्य चेत्तुः समनसः सजाताः ॥ १ ॥

यो यः शुभो हृदयेष्वन्तः  
आकृतिर्यो वो मनसि प्रविष्टा ।

तान्सीधयामि हविषा घृतेन  
मयि सजाता रमतिवो अस्तु ॥ २ ॥

(२८) इन्द्रः, सोमः, सविता च ।

॥ १६८ ॥ (अथर्व० ६।९९।१-१)

अनुष्टुप्, २ अग्निपृहती ।

अग्नि त्वेन्द्र चरिमतः पुरा त्वाहृणादुधे ।  
द्वयाभ्युप चेतारं पुरुणांमानमेकजम् ॥ १ ॥

यो अद्य सेन्यो यधो जिघांसन्न उदीरते ।  
इन्द्रस्य तत्र ग्राह संमन्तं परि वसः ॥ २ ॥

परि वस इन्द्रस्य ग्राह संमन्तं ज्ञातुस्त्रायतां नः ।  
देव सवितुः सोमं राजन्

समनसं मा कृणु स्वस्तये ॥ ३ ॥

(२९) द्यौः, पृथिवी, शुक्रः, सोमः, अग्निः, वायुः,  
सविता ।

॥ १६९ ॥ (अथर्व० ६।११।१)

बृहच्छुक्रः । अगती ।

द्यौश्च म इदं पृथिवी च प्रचेतसौ  
शुक्रो बृहन् दक्षिणया विपतुं ।  
अनु स्वधा त्विफितां सोमो अग्निः  
वायुर्नः पातु सविता अगध्व ॥ १ ॥



## अन्नम् ।

॥ १ ॥ (बा० य० १८११-१४)

पाजो नः सत प्रदिश—अनन्तो वा पतयतः ।  
पाजो नो विश्वेदेव—धर्ममाताविहावतु ॥ ३२ ॥

पाजो नो ऽ अद्य प्रसुयाति दानं  
पाजो वेयाँऽ ऋतुभिः कल्पयाति ।  
पाजो हि मा सर्वधीरं ज्ञानं  
धिम्वा ऽ आशा वाजपतिर्जयेयम् ॥ ३३ ॥

वाजः पुरस्तावुत मंष्टुतो नो  
पाजो देवान् दृष्टिषां वर्धयाति ।  
पाजो हि मा सर्वधीरं चकार  
सर्वा ऽ आशा वाजपतिर्भवेयम् ॥ ३४ ॥

॥ २ ॥ (अ० ११८७१-११)

अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । अक्षं । १ अनुद्वन्द्वमार्गं लभितम् ।  
१, ५-७, ११ अनुद्वन्द्वः ( ११ बृहती वा ) २, ४, ८-१०  
गायत्री ।

पितुं नु स्तोत्रं महो घर्माणं तथिपीम् ।  
यस्य जितो घ्योर्जसा पुत्रं विपर्वमर्दयत् ॥ १ ॥  
स्वादी पितो मर्धो पितो धयं त्वां यधुमहे ।  
अस्माकमपिता भय ॥ २ ॥

उप नः पितृवा चर शिष्यः शिष्यामिरुतिभिः ।

मयोभुरद्विपेण्यः सन्ना सुशयो अद्वयाः ॥ ३ ॥

तव त्वे पितो रसा रजांस्पनु विष्टिताः ।

निधि वार्ता इय श्रिताः ॥ ४ ॥

तव त्वे पितो ददतु स्तथ स्वादिष्ट ते पितो ।

प्र स्वाद्यानो रत्नानां तुविप्रीया इयेरते ॥ ५ ॥

त्वे पितो महानां देवानां मनो हितम् ।

अकारि चारं केतुना तवाहिमर्षसायधीत् ॥ ६ ॥

यद्वदो पितो यजगन् विषस्य पर्यनानाम् ।

अर्था विशो मघो पितो ऽर्दं भक्षाय गम्याः ॥ ७ ॥

यद्वपामोपधीनां परिशमंरिशामहे ।

वातापि पीव इद् भव ॥ ८ ॥

यत् नै सोम गवांशिरो यवांशिरो भजामहे ।

वातापि पीव इद् भव ॥ ९ ॥

कुरुम औपधे भव पीयो युवः उद्धारुधिः ।

वातापि पीव इद् भव ॥ १० ॥

तं त्वां वयं पितो वचोभिः

गावो न हृष्या सुवृदिम ।

देवेभ्यस्या सधुमादं

अस्मभ्यं त्वा सधुमादम् ॥ ११ ॥

॥ ३ ॥ ( अथर्व० ६।७।१-३ )

मद्वा । अग्नि, ३ वैश्वानरः, देवाः ( अन्नम् ) । जगती,  
३ त्रिष्टुप् ।यदन्नमग्निं बहुधा विरूपं  
हिरण्यमभ्यमुत गामजामर्विम् ।

यदेव किं च प्रतिजग्रद्वाहं

अग्निष्टोता सुहृते कृणोतु

यन्मां हुतमहुतमाज्जगाम

दत्तं पितृभिरनुमतं मनुष्यैः ।

यस्मान्मे मन उदिव रारंजीति

अग्निष्टोता सुहृते कृणोतु

यदन्नमदभ्यनृतेन देवा

दास्यन्नदास्यश्रुत सैगुणामि ।

पैश्वानरस्य महतो महिम्ना

शिषं मह्यं मधुमदस्त्वक्षम्

॥ ४ ॥ ( अथर्व० ७।५।१-२ )

औषधिः । इन्द्रावरुणौ ( अन्नम् ) । १ जगती, २ त्रिष्टुप् ।

इन्द्रावरुणा रुतपायिमं सुतं

सोमं पियतं मघं धृतप्रती ।

युयो रथो अघ्नरो वैधवीतये

प्रति स्वमरमुप यातु पीतये

इन्द्रावरुणा मधुमत्तमस्य घृष्णाः

सोमस्य घृष्णा धृवेधाम् ।

इदं ग्रामग्न्यः परिविक्तमासद्य

अग्निम् परिर्वि मादयेधाम्

॥ ५ ॥ ( अथर्व० ६।६।१-३ )

विशमित्रः । वायुः ( अन्नघृष्टिः ) । अनुष्टुप् ।

उच्छ्रयस्य घृष्टमेष स्येन महत्मा यय ।

मूणीदि विदवा पात्राणि

मा रथां विप्यादानिर्धधीन्

आदाणपत्नं पथं द्वेयं यत्र त्वाच्छायादीमामि ।

तदुच्छ्रायस्य पार्श्वे गमद् इष्टपाक्षितः ॥ २ ॥

अक्षितास्त उपसदोऽक्षिताः सन्तु राशयः ।

पुणन्तो अक्षिताः सन्त्वसारः सन्त्वक्षिताः ॥ ३ ॥

॥ ६ ॥ ( अथर्व० १।१।१-२६ )

[ प्रथमः पर्यायः । १-३१ ]

अथर्वी । ओदनः ( बाह्वेषायौदनः ) ।

१, १४ आसुरी गायत्री, २ त्रिपदा समविषमा गायत्री; ३,

६, १० आसुरी पक्षिः; ४, ८ साम्न्यनुष्टुप्; ५, १३, १५, २५

साम्न्युष्णिक्; ७, १९-२२ प्राजापत्याऽनुष्टुप्; ९, १७-१८

आसुर्यनुष्टुप्; ११ अरिगार्धनुष्टुप्; १२ याजुषी जगती,

१६, २३ आसुरी बृहती; २४ त्रिपदा प्राजापत्या बृहती;

२६ आसुर्युष्णिक्; २७-२९ साम्नी बृहती ( २८-२९

अुरिक् ); ३० याजुषी त्रिष्टुप्; ३१ अक्षिताः

पञ्क्तिरुत याजुषी ।

तस्यौदनस्य बृहस्पतिः शिरो ब्रह्म मुखम् ॥ १ ॥

चावापृथिवी थोत्रे सूर्याचन्द्रमसौवक्षिणी ॥ २ ॥

सप्तश्रुपयः प्राणापानाः ॥ ३ ॥

चक्षुर्मुखं कामं उल्लूखलम् ॥ ४ ॥

दितिः शर्पमदितिः शर्पमाही खातोऽपाविनक् ॥ ५ ॥

अभ्याः कणा गार्वस्तपडुला मशकास्तुपाः ॥ ६ ॥

कम्पु फलीकरणाः शरोऽभ्रम् ॥ ७ ॥

श्याममयौऽस्य मांसानि लोहितमस्य लोहितम् ॥ ८ ॥

अपु भ्रम हरितं वर्णः पुष्करमस्य गन्धः ॥ ९ ॥

गलः पात्रं स्फवायंसाधिवे अनुकथे ॥ १० ॥

आन्त्राणि जग्रयो शुद्धा वरत्राः ॥ ११ ॥

इयमेव पृथिवी कुम्भी भवति ॥ १२ ॥

राश्वमानस्यौदनस्य धौरपिधानम् ॥ १३ ॥

सीताः पशवः सिकता ऊर्यभयम् ॥ १४ ॥

श्रुते हस्तापनेर्जनं कुल्योपसेचनम् ॥ १५ ॥

श्रुचा कुम्भ्यधित्तिर्यज्येन प्रेषिता ॥ १६ ॥

ग्रहणां परिग्रहीता साक्षा पर्युदा ॥ १७ ॥

बृहदाययनं रथन्तरं दयिः ॥ १८ ॥

श्रुतयः पुनार आतेषाः सन्निभते ॥ १९ ॥

शयं पञ्चविलमुगं प्रमोर्भाधे ॥ २० ॥

ओद्नेन यद्भवः सर्वे लोकाः समाप्याः ॥ १९ ॥  
 यस्मिन्समुद्रो द्यौर्भूमिर्योऽवस्पर्शिताः ॥ २० ॥  
 यस्य देवा अकल्पन्तोच्छिष्टे पडंशीतयः ॥ २१ ॥  
 तं त्वोद्नेनस्य पृच्छामि यो अस्य महिमा महान् २२  
 स य ओद्नेनस्य महिमानं विधात् ॥ २३ ॥  
 नाल् इति ब्रूयाननुपसेचन  
 इति नेदं च किं चेति ॥ २४ ॥  
 यावद् द्वातायिमनस्येत तन्नार्तिं यदेत् ॥ २५ ॥  
 ब्रह्मवादिनो वदन्ति पराञ्चमोद्नेन  
 प्राशीः प्रत्यञ्चाश्मिति ॥ २६ ॥  
 त्वमोद्नेन प्राशीः स्वामोद्नाः इति  
 पराञ्चं चैनं प्राशीः प्राणास्त्या  
 ह्यास्यन्तीत्येनमाह ॥ २८ ॥  
 प्रत्यञ्चं चैनं प्राशीरपानास्त्या  
 ह्यास्यन्तीत्येनमाह ॥ २९ ॥  
 नैवाहमोद्नेन न मामोद्नेनः ॥ ३० ॥  
 ओद्नेन एवोद्नेन प्राशीत् ॥ ३१ ॥

[ द्वितीयः पर्वायः । ३२-४९ ]

मन्त्रोक्ताः । ३२, ३८, ४१ (प्रथमा), ३२-४९ (सप्तमी)  
 वात्री त्रिष्टुप् । ३२, ३५, ४२ (द्वितीया), ३२-४९ (तृतीया),  
 ३३-३४, ४४-४८ (पञ्चमी) एकपदाऽऽसुरी गायत्री, ३२,  
 ४१, ४३, ४७ देवी जगती, ३८, ४४, ४६ (दि०) ३२, ३५-  
 ४३, ४९ (पञ्चमी) एकपदाऽऽसुर्यनुष्टुप्, ३२-४९ (वशी)  
 साम्यद्विष्टुप्, ३३-४९ (प्र०) आर्च्यनुष्टुप् । ३७ (प्र०)  
 छान्नी पङ्क्तिः, ३३, ३६, ४०, ४७-४८ (दि०) आपुरी  
 जगती, ३४, ३७, ४१, ४३, ४५ (दि०) आपुरी पङ्क्तिः, ३४  
 (चतुर्थी) आपुरी त्रिष्टुप्, ३५, ४६, ४८ (च०) बाजुयी  
 गायत्री, ३६-३७-४० (च०) देवी पङ्क्तिः, ३८-३९  
 (च०) प्राजापत्या गायत्री, ३९ (दि०) आसुर्यपङ्क्तिः, ४२  
 ४५, ४९ (चतुर्थी) देवी त्रिष्टुप्, ४९ (दि०) एकपदा  
 सुरिकछान्नी वृद्धी ।

ततश्चैनमन्येन शीर्ष्णा प्राशीर्येन  
 चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥  
 ज्येष्ठतस्तं प्रजा मरिष्यतीत्येनमाह ॥ २ ॥

तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥ ३ ॥  
 बृहस्पतिना शीर्ष्णा ॥ ४ ॥  
 तेनेनं प्राशिपं तेनेनमजीगमम् ॥ ५ ॥  
 एष वा ओद्नेनः सर्वाङ्गः सर्वपङ्कः सर्वतनूः ॥ ६ ॥  
 सर्वाङ्ग एव सर्वपङ्कः सर्वतनूः  
 सं भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥ ३२  
 ततश्चैनमन्याभ्यां श्रोत्राभ्यां प्राशीर्यभ्यां  
 चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥  
 यद्विशो मविष्यतीत्येनमाह ॥ २ ॥  
 तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥ ३ ॥  
 द्वावापुषिवीभ्यां श्रोत्राभ्याम् ॥ ४ ॥  
 ताभ्यामेनं प्राशिपं ताभ्यामेनमजीगमम् ॥ ५ ॥  
 एष वा ओद्नेनः सर्वाङ्गः सर्वपङ्कः सर्वतनूः ॥ ६ ॥  
 सर्वाङ्ग एव सर्वपङ्कः सर्वतनूः  
 सं भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥ ३३  
 ततश्चैनमन्याभ्यामक्षीभ्यां प्राशीर्यभ्यां  
 चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥  
 अन्यो मविष्यतीत्येनमाह ॥ २ ॥  
 तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥ ३ ॥  
 सुर्याचन्द्रमसाभ्यामक्षीभ्याम् ॥ ४ ॥  
 ताभ्यामेनं प्राशिपं ताभ्यामेनमजीगमम् ॥ ५ ॥  
 एष वा ओद्नेनः सर्वाङ्गः सर्वपङ्कः सर्वतनूः ॥ ६ ॥  
 सर्वाङ्ग एव सर्वपङ्कः सर्वतनूः  
 सं भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥ ३४  
 ततश्चैनमन्येन मुखेन प्राशीर्येन  
 चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥  
 मुखतस्तं प्रजा मरिष्यतीत्येनमाह ॥ २ ॥  
 तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥ ३ ॥  
 ब्रह्मणा मुखेन ॥ ४ ॥  
 तेनेनं प्राशिपं तेनेनमजीगमम् ॥ ५ ॥  
 एष वा ओद्नेनः सर्वाङ्गः सर्वपङ्कः सर्वतनूः ॥ ६ ॥

सर्वाङ्ग एव सर्वपदः सर्वतनुः		सुजयश्मस्त्या हनिष्यतीत्येनमाह	॥ २ ॥
स भवति य एवं वेद	॥ ७ ॥ ३५	तं वा अहं नार्वाञ्च न पराञ्च न प्रत्यञ्चम्	॥ ३ ॥
ततश्चैनमन्यया जिह्वा प्राशीर्यया		अन्तरिक्षेण व्यचसा	॥ ४ ॥
चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन्	॥ १ ॥	तेनैनं प्राशिपुं तेनैनमजीगमम्	॥ ५ ॥
जिह्वा तं मरिष्यतीत्येनमाह	॥ २ ॥	एष वा ओद्भूतः सर्वाङ्गः सर्वपदः सर्वतनुः	॥ ६ ॥
तं वा अहं नार्वाञ्च न पराञ्च न प्रत्यञ्चम्	॥ ३ ॥	सर्वाङ्ग एव सर्वपदः सर्वतनुः	
अग्नेजिह्वया	॥ ४ ॥	सं भवति य एवं वेद	॥ ७ ॥ ३६
तयैने प्राशिपुं तयैनमजीगमम्	॥ ५ ॥	ततश्चैनमन्येन पृष्ठेन प्राशीयेन	
एष वा ओद्भूतः सर्वाङ्गः सर्वपदः सर्वतनुः	॥ ६ ॥	चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन्	॥ १ ॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपदः सर्वतनुः		विद्युत् त्वा हनिष्यतीत्येनमाह	॥ २ ॥
सं भवति य एवं वेद	॥ ७ ॥ ३६	तं वा अहं नार्वाञ्च न पराञ्च न प्रत्यञ्चम्	॥ ३ ॥
ततश्चैनमन्येर्वन्तेः प्राशीयेञ्चैतं		द्विवा पृष्ठेन	॥ ४ ॥
पूर्वं ऋषयः प्राश्नन्	॥ १ ॥	तेनैनं प्राशिपुं तेनैनमजीगमम्	॥ ५ ॥
वन्तास्ते शतस्यन्तीत्येनमाह	॥ २ ॥	एष वा ओद्भूतः सर्वाङ्गः सर्वपदः सर्वतनुः	॥ ६ ॥
तं वा अहं नार्वाञ्च न पराञ्च न प्रत्यञ्चम्	॥ ३ ॥	सर्वाङ्ग एव सर्वपदः सर्वतनुः	
ऋतुभिर्वन्तैः	॥ ४ ॥	सं भवति य एवं वेद	॥ ७ ॥ ४०
तैरेनं प्राशिपुं तैरेनमजीगमम्	॥ ५ ॥	ततश्चैनमन्येनोदरेण प्राशीयेन	
एष वा ओद्भूतः सर्वाङ्गः सर्वपदः सर्वतनुः	॥ ६ ॥	चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन्	॥ १ ॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपदः सर्वतनुः		हृष्या न रतस्यसीत्येनमाह	॥ २ ॥
सं भवति य एवं वेद	॥ ७ ॥ ३७	तं वा अहं नार्वाञ्च न पराञ्च न प्रत्यञ्चम्	॥ ३ ॥
ततश्चैनमन्यैः प्राणापानैः प्राशीयेञ्चैतं		पृथिव्योरेसा	॥ ४ ॥
पूर्वं ऋषयः प्राश्नन्	॥ १ ॥	तेनैनं प्राशिपुं तेनैनमजीगमम्	॥ ५ ॥
प्राणापानास्त्या हास्यन्तीत्येनमाह	॥ २ ॥	एष वा ओद्भूतः सर्वाङ्गः सर्वपदः सर्वतनुः	॥ ६ ॥
तं वा अहं नार्वाञ्च न पराञ्च न प्रत्यञ्चम्	॥ ३ ॥	सर्वाङ्ग एव सर्वपदः सर्वतनुः	
सप्तर्षिभिः प्राणापानैः	॥ ४ ॥	सं भवति य एवं वेद	॥ ७ ॥ ४१
तैरेनं प्राशिपुं तैरेनमजीगमम्	॥ ५ ॥	ततश्चैनमन्येनोदरेण प्राशीयेन	
एष वा ओद्भूतः सर्वाङ्गः सर्वपदः सर्वतनुः	॥ ६ ॥	चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन्	॥ १ ॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपदः सर्वतनुः		उदरदारस्त्या हनिष्यतीत्येनमाह	॥ २ ॥
सं भवति य एवं वेद	॥ ७ ॥ ३८	तं वा अहं नार्वाञ्च न पराञ्च न प्रत्यञ्चम्	॥ ३ ॥
ततश्चैनमन्येन व्यचसा प्राशीयेन		सत्येनोदरेण	॥ ४ ॥
चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन्	॥ १ ॥	तेनैनं प्राशिपुं तेनैनमजीगमम्	॥ ५ ॥



एष वा औदनः सर्वाङ्गः सर्वपदः सर्वतनुः ॥ ६ ॥	ततश्चैनमुन्याभ्यां पादाभ्यां प्राशीर्याभ्यां
सर्वाङ्ग एव सर्वपदः सर्वतनुः	चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥
सं भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥ ४२	बहुचारी भविष्यतीत्येनमाह ॥ २ ॥
ततश्चैनमुन्येन वस्तिना प्राशीर्येन	तं वा अहं नार्वाञ्च न पराञ्च न प्रत्यञ्चम् ॥ ३ ॥
चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥	अभिनोः पादाभ्याम् ॥ ४ ॥
अप्सु मरिष्यतीत्येनमाह ॥ २ ॥	ताभ्यामेनं प्रादिपं ताभ्यामेनमजीगमम् ॥ ५ ॥
तं वा अहं नार्वाञ्च न पराञ्च न प्रत्यञ्चम् ॥ ३ ॥	एष वा औदनः सर्वाङ्गः सर्वपदः सर्वतनुः ॥ ६ ॥
समुद्रेण वस्तिना ॥ ४ ॥	सर्वाङ्ग एव सर्वपदः सर्वतनुः
तेनैनं प्रादिपं तेनैनमजीगमम् ॥ ५ ॥	सं भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥ ४६
एष वा औदनः सर्वाङ्गः सर्वपदः सर्वतनुः ॥ ६ ॥	ततश्चैनमुन्याभ्यां प्रपदाभ्यां प्राशीर्याभ्यां
सर्वाङ्ग एव सर्वपदः सर्वतनुः	चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥
सं भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥ ४३	सर्पस्थां हनिष्यतीत्येनमाह ॥ २ ॥
ततश्चैनमुन्याभ्यामुदभ्यां प्राशीर्याभ्यां	तं वा अहं नार्वाञ्च न प्रत्यञ्चम् ॥ ३ ॥
चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥	सवितुः प्रपदाभ्याम् ॥ ४ ॥
ऊरु तं मरिष्यत इत्येनमाह ॥ २ ॥	ताभ्यामेनं प्रादिपं ताभ्यामेनमजीगमम् ॥ ५ ॥
तं वा अहं नार्वाञ्च न पराञ्च न प्रत्यञ्चम् ॥ ३ ॥	एष वा औदनः सर्वाङ्गः सर्वपदः सर्वतनुः ॥ ६ ॥
मित्रावरुणयोरुदभ्याम् ॥ ४ ॥	सर्वाङ्ग एव सर्वपदः सर्वतनुः
ताभ्यामेनं प्रादिपं ताभ्यामेनमजीगमम् ॥ ५ ॥	सं भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥ ४७
एष वा औदनः सर्वाङ्गः सर्वपदः सर्वतनुः ॥ ६ ॥	ततश्चैनमुन्याभ्यां हस्ताभ्यां प्राशीर्याभ्यां
सर्वाङ्ग एव सर्वपदः सर्वतनुः	चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥
सं भवति य एवं वेदः ॥ ७ ॥ ४४	ग्राहणं हनिष्यतीत्येनमाह ॥ २ ॥
ततश्चैनमुन्याभ्यामिष्टीघट्टायां प्राशीर्याभ्यां	तं वा अहं नार्वाञ्च न पराञ्च न प्रत्यञ्चम् ॥ ३ ॥
चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥	श्रुतस्य हस्ताभ्याम् ॥ ४ ॥
आमो भविष्यतीत्येनमाह ॥ २ ॥	ताभ्यामेनं प्रादिपं ताभ्यामेनमजीगमम् ॥ ५ ॥
तं वा अहं नार्वाञ्च न पराञ्च न प्रत्यञ्चम् ॥ ३ ॥	एष वा औदनः सर्वाङ्गः सर्वपदः सर्वतनुः ॥ ६ ॥
त्वष्टुर्घृष्टीघट्टायाम् ॥ ४ ॥	सर्वाङ्ग एव सर्वपदः सर्वतनुः
ताभ्यामेनं प्रादिपं ताभ्यामेनमजीगमम् ॥ ५ ॥	सं भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥ ४८
एष वा औदनः सर्वाङ्गः सर्वपदः सर्वतनुः ॥ ६ ॥	चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपदः सर्वतनुः	अग्निदानोऽनायतनो मरिष्यतीत्येनमाह ॥ २ ॥
सं भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥ ४५	तं वा अहं नार्वाञ्च न पराञ्च न प्रत्यञ्चम् ॥ ३ ॥
	मुन्ये प्रतिप्राप्य

तथैनं प्राशिपं तथैनमजीगमम् ॥ ५ ॥  
 एव वा औदनः सर्वोद्गः सर्वपदः सर्वतनः ॥ ६ ॥  
 सर्वोद्ग एव सर्वपदः सर्वतनः  
 सं भवति य एयं वेदं ॥ ७ ॥ ४९

[ तृतीयः पर्यायः । ५०-५६ ]

मन्त्रोक्ताः । ५० आद्युपनिषद् ५१ आच्युपनिषद् ५२ त्रिपदा  
 भुरिक् साम्नी त्रिपदः ५३ आसरी बृहती ५४ द्विपदा भुरिक्  
 साम्नी बृहती ५५ साम्नुपनिषद् ५६ प्राजापत्या बृहती ।  
 एतद् वै ब्रह्मस्य विष्टपं यदौदनः ॥ ५० ॥  
 ब्रह्मलोको भवति ब्रह्मस्य विष्टपि श्रयते  
 य एवं वेदं ॥ ५१ ॥  
 एतस्माद् वा औदनात् त्र्यसिंशतं  
 लोकान् निरमिमीत प्रजापतिः ॥ ५२ ॥  
 तेषां प्रजानां य एवमसृजत ॥ ५३ ॥  
 स य एवं विष्टपं उपवृष्टा भवति प्राणं रुणादि ५४  
 न च प्राणं रुणादि सर्वज्यानि जीयते ॥ ५५ ॥  
 न च सर्वज्यानि जीयते  
 पुरैर्न जुरसः प्राणो जहाति ॥ ५६ ॥

॥ ७ ॥ ( अथर्व ९।५।१-३८ )

भृगुः । पञ्चौदनोऽजः मन्त्रोक्ताः । त्रिपदः ३ चतुष्पदा पुरोऽ  
 तिथकरी अगती ४, १४ अगती, १४, १७, २७-३० अनुष्टुप्  
 ( ३० ककुम्भती ) । १९ त्रिपदाऽनुष्टुप् १८, २७ त्रिपदा  
 विराद् गायत्री २३ पुर उणिक् २४ पञ्चपदाऽनुष्टुप् उणिक्  
 भौपरिष्ठाद्विराद् अगती २०-२२, २६ पञ्चपदाऽनुष्टुप् उणिक्  
 भौपरिष्ठाद्विराद् भुरिक् २१ अतपदाऽष्टिः, २२-२५ दशपदा  
 ऋक्, २६ दशपदाऽऽकृतिः, २८ एकावसाना द्विपदा साम्नी  
 त्रिपदः ।

आ नयैतमा रभस्व सुरुतां  
 लोकमपि गच्छतु प्रजानन् ।  
 तीर्त्वा तर्मांसि बहुधा मृद्धान्ति  
 अजो नाकमा क्रमतां तृतीयम् ॥ १ ॥  
 इन्द्राय भागं परि त्या नयामि  
 अस्मिन् यत्ने यजमानाय सूरिम् ।

ये नो द्विपन्त्यनु तान् रभस्व  
 अनागसो यजमानस्य धीराः ॥ २ ॥  
 प्र पदोऽर्थ नेनिगिध दुर्धरितुं यश्चार्  
 शुद्धैः शफेरा क्रमतां प्रजानन् ।  
 तीर्त्वा तर्मांसि बहुधा विपश्यन्  
 अजो नाकमा क्रमतां तृतीयम् ॥ ३ ॥  
 अनु चक्ष्य इयामेन त्वचमेतां  
 विशस्तर्यथापर्वसिना मामि मस्याः ।  
 मामि दृढः पशुशः कल्पयेनं  
 तृतीये नाके अधि वि श्रयैतम् ॥ ४ ॥  
 श्रुचा कुम्भीमध्यग्रां श्रयाम्या  
 सिञ्चोदकमर्ध धेहोतम् ।  
 पर्यायं चाग्निनां शमितारः  
 शूतो गच्छतु सुरुतां यत्र लोकः ॥ ५ ॥  
 उक् क्रमातः परि चेदत्तप्तः  
 तप्ताश्चरोरधि नाकं तृतीयम् ।  
 अग्नेरग्निरधि सं बभूविथ  
 ज्योतिष्मन्तमभि लोकं जयैतम् ॥ ६ ॥  
 अजो अग्निरजमु ज्योतिराहुः  
 अजं जीवता ब्रह्मणे देयमाहुः ।  
 अजस्तर्मांस्यर्प हस्ति दूरं  
 अस्मिन्लोके अर्धधानेन दत्तः ॥ ७ ॥  
 पञ्चौदनः पञ्चधा वि क्रमतां  
 आरुस्यमानस्त्रीणि ज्योतींषि ।  
 ईजानानां सुरुतां प्रेहि मध्यं  
 तृतीये नाके अधि वि श्रयैतम् ॥ ८ ॥  
 अजो रोह सुरुतां यत्र लोकः  
 शर्मो न चत्तोऽति दुर्गागयेषः ।  
 पञ्चौदनो ब्रह्मणे दीयमानः  
 स दातारं तृप्या तर्पयति ॥ ९ ॥

अजस्त्रिनाके त्रिदिवे त्रिपृष्ठे  
नाकस्य पृष्ठे ददिवान्सं दधाति ।

पञ्चौदनो ब्रह्मणे वीर्यमानो

विश्वरूपा धेनुः कामदुघास्येका

एतद् वो ज्योतिः पितरस्तूतीयं

पञ्चौदनं ब्रह्मणेऽजं ददाति ।

अजस्तमांस्यप हन्ति वरं

असिलोके अदधानेन वृत्तः

इजानानां सुकृता लोकमीप्सन्

पञ्चौदनं ब्रह्मणेऽजं ददाति ।

स व्याप्तिममि लोकं जयैतं

शियोऽस्यप्रतिगृहीतो अस्तु

अजो ह्यग्नेरजनिपु शोकाद्

विप्रो विप्रस्य सहस्रो विपश्चिक् ।

इष्टं पूर्तमभिपूर्तं वर्षदकृतं

तद् देवा ऋतुशः कल्पयन्तु

अमोतं वासां दत्त्वा—द्विरण्यमपि दक्षिणाम् ।

तथा लोकान्समाप्नोति

ये दिव्या ये च पार्थिवाः

एतास्त्वाजोप यन्तु धाराः

लोभ्या देवीर्युतपृष्ठा मधुश्रुतः ।

स्तमान पृथिवीमुत घां

नाकस्य पृष्ठेऽर्धे सतरदमौ

अजोऽस्यजं स्वर्गोऽसि त्वया

लोकमश्निरसः प्राजानन् ।

तं लोकं पुण्यं प्र ह्येपम्

येनां सृष्टं बर्हसि येनाग्ने सर्ववेदमम् ।

तेनेमं यष्टं नो बहु स्वर्देवेषु गन्तवे

अजः एकः स्वर्गे लोके दधाति

पञ्चौदनो निर्ऋतिं धार्धमानः ।

तेन लोकान्सर्ववतो जयेम

॥ १० ॥

॥ ११ ॥

॥ १२ ॥

॥ १३ ॥

॥ १४ ॥

॥ १५ ॥

॥ १६ ॥

॥ १७ ॥

॥ १८ ॥

यं ब्राह्मणे निदधे यं च विभु

या विप्रं ओदनानामजस्य ।

सर्वं तदग्ने सुकृतस्य लोके

जानीतार्धः संगमने पथिनाम्

अजो वा इदमग्रे व्यक्रमत

तस्योर इपरममवुद् द्यौः पृष्ठम् ।

अन्तरिक्षं मध्यं दिशः पार्श्वं समुद्रौ कुक्षी ॥ २० ॥

सत्यं चतं च चक्षुषी विश्वं

सत्यं धृष्टा माणो विराद् शिरः ।

एष वा अपरिमितो यज्ञो यदजः पञ्चौदनः ॥ २१ ॥

अपरिमितमेव यज्ञमाप्त्यपरिमितं लोकमव हन्धे ।

योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ २२ ॥

नास्यास्यीति मिन्धा—अ मज्जो निर्धयेत् ।

सर्वमेतं समावाये—दमिदं प्र वेशयेत् ॥ २३ ॥

इदमिदमेवास्यं रूपं भवति तेनैतं सं गमयति ।

इपं मह ऊर्जैरस्मै वुष्टे

योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ २४ ॥

पञ्चं रुक्मा पञ्च नवानि वत्सा

पञ्चास्मै धेनुवः कामदुघा भवन्ति ।

योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ २५ ॥

पञ्चं रुक्मा ज्योतिरस्मै भवन्ति

वर्म वासांसि तुन्वे भवन्ति ।

स्वर्गं लोकमश्नुते

योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ २६ ॥

या पूर्वं पतिं विस्वा—धान्यं विन्दतेऽपरम् ।

पञ्चौदनं च तावजं ददातो न वि योपतः २७

समानलोकौ भवति पुनर्मुवापरः पतिः ।

योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति २८

अनुपूर्ववत्सां धेनु—मनुद्वाहमुपयवैषम् ।

वासां द्विरण्यं दत्त्वा ते यन्ति दिवमुत्तमाम् २९

(५०११)

आत्मानं पितरं पुत्रं पौत्रं पितामहम् ।  
 जायां जनितं मातरं ये प्रियास्तानुप ऋते ॥ ३० ॥  
 यो वै नैदाघं नामर्तुं वेद ।  
 एष वै नैदाघो नामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः ।  
 निरेवाप्रियस्य आर्तव्यस्य  
 धियं दहति भवत्यात्मना ।  
 योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ ३१ ॥  
 यो वै कुर्वन्तं नामर्तुं वेद ।  
 कुर्वन्तं कुर्वन्तीमेवाप्रियस्य आर्तव्यस्य धियमा दत्ते ।  
 एष वै कुर्वन्नामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः ।  
 निरेवाप्रियस्य आर्तव्यस्य  
 धियं दहति भवत्यात्मना ।  
 योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ ३२ ॥  
 यो वै संयन्तं नामर्तुं वेद ।  
 संयन्तं संयन्तीमेवाप्रियस्य आर्तव्यस्य धियमा दत्ते ।  
 एष वै संयन्नामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः ।  
 निरेवाप्रियस्य आर्तव्यस्य  
 धियं दहति भवत्यात्मना ।  
 योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ ३३ ॥  
 यो वै विन्वन्तं नामर्तुं वेद ।  
 विन्वन्तं विन्वन्तीमेवाप्रियस्य आर्तव्यस्य धियमा दत्ते ।  
 एष वै विन्वन्नामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः ।  
 निरेवाप्रियस्य आर्तव्यस्य  
 धियं दहति भवत्यात्मना ।  
 योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ ३४ ॥  
 यो पा उघन्तं नामर्तुं वेद ।  
 उघन्तं उघन्तीमेवाप्रियस्य आर्तव्यस्य धियमा दत्ते ।  
 एष पा उघन्नामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः ।  
 निरेवाप्रियस्य आर्तव्यस्य

धियं दहति भवत्यात्मना ।  
 योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ ३५ ॥  
 यो पा अभिभुवं नामर्तुं वेद ।  
 अभिभवन्तीमभिभवन्तीमेवाप्रियस्य  
 आर्तव्यस्य धियमा दत्ते ।  
 एष पा अभिभूनामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः ।  
 निरेवाप्रियस्य आर्तव्यस्य  
 धियं दहति भवत्यात्मना ।  
 योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ ३६ ॥  
 अजं च पचन्तं पचन् चौदनाम् ॥  
 सर्वा दिवाः संप्रनसः सन्धीचीः  
 सान्तर्देशाः प्रति गृहन्तु त एतम् ॥ ३७ ॥  
 तास्ते रक्षन्तु तद्य तुभ्यमेतं  
 ताम्य आर्ज्यं वृद्धिरिदं जुहोमि ॥ ३८ ॥  
 ॥ ८ ॥ ( अथर्व० ४।१४।१-८ )

अथर्वः । अथर्वानम् । त्रिष्टुप्, ४ उतमा मुरिक्, ५ ऋक्-  
 सामा सप्तपदा कृतिः, ६ ऋक्पदातिशक्ती, ७ मुरिक्  
 शक्ती, ८ अणती ।

ब्रह्मास्य शीर्षं बृहदस्य पृष्ठं  
 धामदेव्यमुदरमोदनस्य  
 छन्दसि पृष्ठौ मुखमस्य सत्यं  
 विष्टारी जातस्तपसोऽधि यज्ञः ॥ १ ॥  
 अनस्थाः पुताः पर्यनेन शुद्धाः  
 शुच्यः शुचिमापि यन्ति लोकम् ।  
 नैर्षां शिशं प्र दहति जातवेदाः ॥ २ ॥  
 स्वर्गे लोके पृथु खैर्णमेयाम् ॥ ३ ॥  
 विष्टारिणमोदनं ये पचन्ति  
 नैर्णानवतिः सचते कदा चन ।  
 आस्ते यम उर्षं याति वेद्यान्  
 सं गन्धर्वमिदंते सोम्येभिः ॥ ३ ॥

इयं मही प्रति गृह्णातु चर्म  
 पृथिवी देवी सुमनस्योना ।  
 अथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम् ॥ ८ ॥  
 एतौ प्राधानौ सयुजा युङ्ग्धि चर्मणि  
 निर्मिन्ध्यंश्न यजमानाय साधु ।  
 अवचन्ती नि जहि य इमां पृतन्यव  
 ऊर्ध्वं प्रजामुद्गरन्त्युद्दह ॥ ९ ॥  
 गृह्णाण प्राधानौ सुकृतौ धीर हस्त  
 आ तै देवा यक्षिया यक्षमसुः ।  
 त्रयो धरा यतमांस्त्यं वृणीये  
 तास्ते समृद्धीरिह राधयामि ॥ १० ॥  
 इयं तै धीतिरिदमु ते जनित्रं  
 गृह्णातु स्वामर्दिनिः शरपुत्रा ।  
 परां पुनीहि य इमां पृतन्यघो  
 अस्यै रयि सर्वधारं नि यच्छ ॥ ११ ॥  
 उपभ्यसे दुष्यै सीदता युयं  
 पि विच्यभ्यं यक्षियासुस्तपैः ।  
 धिया समानानति सर्वोन्त्स्याम  
 अधम्यदं द्विपतस्पादयामि ॥ १२ ॥  
 परेदि नारि पुनरेदि क्षिप्रं  
 अपां त्यां गोष्ठोऽर्घ्यगृह्णद् भराय ।  
 तासां गृह्णीताद् यतमा यक्षिया असेन  
 विमाज्यं धीरीतरा जहीतात् ॥ १३ ॥  
 एमा अंगुयोपितुः शुर्ममाना  
 उर्निष्ठ नारि तपसं रभस्य ।  
 सुपत्नी पत्यां प्रजयां प्रजापत्या  
 त्यागन् पशुः प्रति वृत्तं गृमाय ॥ १४ ॥  
 उज्जो भागो निहितो यः पुरा यः  
 अर्धप्रतिप्राय आ मरुताः ।  
 अपं युजो मातृपितामहम्  
 मज्जाविदुमः पञ्चाविद् वीरुविद् धौ अरु ॥ १५ ॥

अत्र चरुयक्षियस्त्वाध्यरुक्षत्  
 शुचिस्तापिष्ठस्तपसा तपैनम् ।  
 आप्रिया देवा अमिसंगत्य भागं ॥ १६ ॥  
 इमं तपिष्ठा ऋतुमिस्तपन्तु  
 शुद्धाः पुता योपितो यक्षिया इमा  
 आपश्चरुमव सर्पन्तु शुभाः ।  
 अदुः प्रजां बहुलान् पशून् नः ॥ १७ ॥  
 पकौदनस्यं सुकृतमितु लोकम्  
 प्रहणा शुद्धा उत पुता घृतेन  
 सोमस्यांशवस्तण्डुला यक्षिया इमे ।  
 अपः प्र विशत प्रति गृह्णातु वक्षरः ॥ १८ ॥  
 इमं पक्त्वा सुकृतमितु लोकम्  
 उरुः प्रथस्व महता मंहिजा  
 सहस्रपृष्ठः सुकृतस्य लोके ।  
 पितामहाः पितरः प्रजोपजाहं  
 पक्ता पञ्चदशस्तै अस्मि ॥ १९ ॥  
 सहस्रपृष्ठः शतधारो अक्षितो  
 ब्रह्मोदनो देवयानः स्वर्गः ।  
 अमुंस्तु आ दधामि प्रजयां रेपयैनाम्  
 बलिहाराय मृदतान्महामेध ॥ २० ॥  
 उदेहि वेदिं प्रजयां वर्धयैनां  
 नुदस्य रक्षः प्रतरं धेद्वानाम् ।  
 धिया समानानति सर्वोन्त्स्याम  
 अधम्यदं द्विपतस्पादयामि ॥ २१ ॥  
 अन्यापतस्य पशुभिः सदैर्नां  
 प्रत्यर्देनां देवताभिः सदैर्धि ।  
 मा त्या प्रापच्छपयो माभिर्जाराः  
 स्ये क्षेत्रे अनमीया पि राज ॥ २२ ॥  
 ऋतेन तृष्टा मर्नमा द्वितीया  
 ब्रह्मोदनस्य विदिता येदिरुते ।  
 अंगर्मा दृशामर्पं धेदि नारि  
 तत्रोदनं मादय देवानाम् ॥ २३ ॥

अदितेर्हस्तां सुचमेतां द्वितीयां  
सप्तश्रृण्वो मृतहता यामरुणवन् ।

सा गात्राणि विदुष्योदनस्य  
दर्विवैद्यामर्धेन चिनोतु

॥ २४ ॥

शृतं त्वां हव्यमुप सीदन्तु देवा  
निःस्रप्याग्नेः पुनरेतान् ॥ सीद ।

सोमं पुतो जडरं सीद

ब्रह्मणामर्पयास्ते मा रिपन् प्राशितारः

॥ २५ ॥

सोमं राजन्संज्ञानमा वपैभ्यः

सुग्राहणा यतमे त्वोपसीदान् ।

श्रुर्पीनापैयास्तपसोऽधि जातान्

ब्रह्मौदने सुहवा जोहवीमि

॥ २६ ॥

शुद्धाः पुता योपितो यद्धिया इमा  
ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक् सादयामि ।

यत्काम इदमभिपिञ्चामि घोऽहं

इन्द्रो मत्त्वान्तस्र ददादिवं मे

॥ २७ ॥

इदं मे ज्योतिरमृतं हिरण्यं

पुङ्कं क्षेप्रात् कामदुर्घा म एषा ।

इदं धनं नि दधे ब्राह्मणेषु

रुण्ये पन्यां पितृषु यः स्वर्गः

॥ २८ ॥

अग्नौ तुषाना धप जातवेदसि

परः कम्बूकां अप मृड्ढि दुरम् ।

पतं शुश्रुम गृहराजस्य आगं

अथो विप्र निश्रुतेर्मागधेयम्

॥ २९ ॥

भ्राम्यतः पचतो विद्धि सुन्वतः

पन्यां स्वर्गमधि रोहयैनम् ।

येन रोहात् परमापद्य यद् वर्यः

उत्तमं नार्क परमं व्योम

॥ ३० ॥

यधेरण्ययो मुरामेतद् वि मृड्ढि

भाज्याय लोकं रुणुति प्रविष्टान् ।

धृतेन गात्रानु सर्वा वि मृड्ढि

रुण्ये पन्यां पितृषु यः स्वर्गः

॥ ३१ ॥

यधे रक्षः समदमा वपैभ्यो

अग्राहणा यतमे त्वोपसीदान् ।

पुरीषिणः प्रयमानाः पुरस्ताद्

आपेयास्ते मा रिपन् प्राशितारः

॥ ३२ ॥

आपेयेषु नि दधे ओदनं त्वा

नानावेयाणामप्यस्वयं ।

अग्निमे गोता मरुतश्च सधे

विध्वे देवा अमि रक्षन्तु पद्मम्

॥ ३३ ॥

यहं दुर्हानं सदमित् प्रपिन्

पुरांस धेनुं सदनं रयीणाम् ।

प्रजामृतत्वमुत वीर्यमार्य

रायश्च पोषैरुप त्या सदेम

॥ ३४ ॥

वृषभोऽसि स्वर्गं श्रुर्पीनापैयान् गच्छ ।

सुरुतां लोके सीद तत्र नौ संस्कृतम्

॥ ३५ ॥

समाचिनुष्वानुसंप्रयाह्यग्रे

पथः कल्पय देवयानान् ।

एतैः सुकृतैरनु गच्छेम यशं

नाके तिष्ठन्तमधि सुप्तरदमौ

॥ ३६ ॥

येन देवा ज्योतिषा घामुदार्यन्

ब्रह्मौदने पस्त्वा सुकृतस्य लोकम् ।

तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं

स्वराशरोहन्तो अमि नार्कमुत्तमम्

॥ ३७ ॥

॥ १० ॥ ( अथर्वे ६।११६।१-३ )

भाटिकायन । विश्वान् ( मधुमदम् ) । अग्री, २ शिष्टम् ।

यद् यामं चक्रुर्निग्नन्तो अग्रे

कार्येषा अग्रविदो न विधया ।

वैषस्यते राजनि तज्जुहोमि

अयं यमियं मधुमदस्तु नोऽन्नम्

॥ १ ॥

( ५०३१ )

वैवस्वतः कृणवद् भागधेयं  
मधुभागो मधुना सं सृजाति ।  
मातुर्यदेन इपितं न आगन्  
यद् वा पितापराद्धो जिहीडे ॥ २ ॥

यदीदं मातुर्यदे वा पितुर्नः  
परि भ्रातुः पुत्राद्येतेषु पत्न आगन् ।  
यार्थन्तो अस्मान् पितरः सचन्ते  
तेषां सर्वेषां शिषो अस्तु मृत्युः ॥ ३ ॥

॥ ११ ॥ (अथर्व० ११।१।१-६०)

यमः । स्वर्गः, ओदनः, अग्निः, (स्वर्गादेन) । त्रिष्टुप्, १,  
४२-४३, ४७ अरिक, ८, १२, २१-२२, २४ अगती; १३, १७  
स्वराध्यायी, पङ्क्तिः, ३४ विराड्गमोः ३९ अगुष्टुगमोः ४४  
पराब्रह्मी; ५५-५० श्रमवसाना सप्तपदा सक्कुमल्यतिजागत्तया-  
कारतिशायकपरधाल्यमोतिपक्षिः ( ५५, ५७-६० कृतिः, ५९  
विराट् कृतिः ) ।

पुमान् पुंसोऽधि तिष्ठ चर्महि  
तत्र ह्यस्व यतमा प्रिया तै ।  
यार्थन्तावधे प्रथमं समेयधुः  
तद् वां ययो यमराज्ये समानम्  
तावद् वां चक्षुस्तति धीर्याग्नि  
तावद् तेजस्ततिधा पार्जिनानि ।  
अग्निः शरीरं सचते यदैवो  
अथा पृकाग्निधुना सं संवाधः  
सर्मसिल्लोके समु देवयाने  
सं सां समेतं यमराज्येषु ।  
पुतौ पवित्रैश्च तद्भवयेथां  
यद्यद् रेतो अधि वां संयम्य  
आपस्पुत्रासो अग्नि सं विशिष्यं  
इमं जीयं जीयघन्याः समेत्यं ।  
तासां भज्यममृतं यमाहुः  
यमोदनं पचति पां जनित्री ॥ ४ ॥

यं वां पिता पचति यं च माता  
रिप्राग्निर्मुक्त्यै शर्मलाघ घात्रः ।  
स ओदनः शतधारः स्वर्ग  
उमे व्याधि नर्मसी महित्वा ॥ ५ ॥  
उमे नर्मसी उमयांश्च लोकान्  
ये यज्यन्तस्मभिर्जिताः स्वर्गाः ।  
तेषां ज्योतिष्मान् मधुमान् यो अग्ने  
तस्मिन् पुत्रैर्जस्ति सं श्रयेथाम् ॥ ६ ॥  
प्राचीप्राचीं प्रदिशमा रभेथां  
पूतं लोकं श्रद्धांताः सचन्ते ।  
यद् वां पृक्तं परिविष्टमग्नौ  
तस्य गुप्त्यै वपती सं श्रयेथाम् ॥ ७ ॥  
दक्षिणां विशमभि नक्षमाणौ  
पुर्यावर्तेशामभि पार्श्वमेतत् ।  
तस्मिन् वां यमः पितृभिः संविद्वानः  
पृकाय शर्म बहुलं नि यच्छात् ॥ ८ ॥  
प्रतीचीं विशामियमिद् वरं  
यस्यां सोमो अधिपा मृडिता च ।  
तस्यां श्रवेयां सुकृतः सचेथां  
अथा पृकाग्निधुना सं संवाधः ॥ ९ ॥  
उत्तरं राष्ट्रं प्रजयौत्तरावद्  
दिशामुदीचीं कृणवन्नो अग्रम् ।  
पाङ्क्तं छन्दः पुरुषो यम्य  
विश्वैर्विश्वाङ्गैः सह सं भवेम  
ध्रुवेयं विराण्णमो अस्त्वस्यै  
शिवा पुत्रेभ्य उत मर्त्यमस्तु ।  
सा नो देव्यदिते विश्ववार  
इयं इव गोपा अग्नि रक्ष पृक्तम् ॥ ११ ॥  
पितेर्व पुत्रानभि सं स्वजस्य नः  
शिवा नो वाता इव वान्तु भूमौ ।  
यमोदनं पचतो देवते इह  
तं नस्तप उत सत्यं च वेत्त ॥ १२ ॥

यद्यत् कृष्णः शकुनः पृथुः गत्वा  
त्सरन् विपस्नं बिलं आसृसाद ।  
यद् वा द्वास्याः ब्रह्मेस्ता समृक्ता  
उत्प्लविलं मुसलं शुभ्रमतापः  
अयं प्रावा पृथुर्गन्धो घयोघाः  
पुतः पवित्रैरपं हन्तु रक्षः ।  
आ रोह चर्म महि शर्म यच्छ  
मा दंपती पोथमुघं नि गाताम्  
यनस्पतिः सह देवैर्न आगन्  
रक्षः पिशाचां अपवार्यमानः ।  
स उच्छ्रयातै प्र र्धदाति वानं  
तेन लोकौ अभि सर्वान् जयेम  
सन्त मेधान् पशवः पर्यगृह्णन्  
य र्पां ज्योतिष्मां उत यक्षकरी ।  
अग्निश्चिदद् देवतास्तामसंचन्ते  
स नः स्वर्गमभि नेप लोकम्  
स्वर्गं लोकमभि नो नयासि  
सं जायया सह पुत्रैः स्याम ।  
गृहामि हस्तमनु मैत्र्यत्र  
मा नस्तापीमिभ्रतिमो अरातिः  
प्रादिं पाप्मानमति तौ अयाम्  
तमो व्यस्य प्र र्धदाति वल्लु ।  
धानस्पत्य उर्धतो मा निर्दिशीः  
मा तंण्डुलं वि शरीदैपयन्तम्  
विभर्ग्यचा घृतपृष्ठो भविष्यन्  
सर्वोन्निलोकमुप याद्येतम् ।  
पर्यवृत्तमुप यच्छ शूर्प  
तुपं पलायानप तद् धिनक्तु  
अयो लोकाः संमिता प्राहणैर्न  
पीरेयासी पृथिव्यन्तरिक्षम् ।

अंशन् गृहीत्वान्वारंभेथां  
आ प्यायन्तां पुनरा यन्तु शर्पम् ॥ २० ॥  
पृथग् रूपाणि बहुधा पशूनां  
पर्करूपो भवसि सं समृद्धया ।  
एतां त्वचं लोहिर्नीं तां नुदस्य  
प्रावा शुभ्माति मलग इव वल्गा ॥ २१ ॥  
पृथिवीं त्वा पृथिव्यामा घेशयामि  
तनुः संमानी विहृता त पुषा ।  
यद्यद् द्युत्तं लिखितमर्पणेन  
तेन मा सुलोभ्रह्मणापि तद् र्धयामि ॥ २२ ॥  
जनित्रीव प्रति हर्षासि स्रुतं  
सं त्वा वधामि पृथिवीं पृथिव्या ।  
उत्था कुम्भी घेषां मा व्यधिष्टा  
यद्यपृथैतान्येनातिपक्ता ॥ २३ ॥  
अग्निः पचन् रक्षतु त्वा पुरस्ताद्  
इन्द्रो रक्षतु दक्षिणतो मध्वर्यान् ।  
वरुणस्त्या दंहाद्वरणे प्रतीच्या  
उत्तरात् त्वा सोमः सं र्धदाते ॥ २४ ॥  
पुताः पवित्रैः पयन्ते अघ्राद्  
दिव्यं च यन्ति पृथिवीं च लोकान् ।  
ता जीविला जीवर्धन्याः प्रतिष्ठाः  
पात्र आसिक्ताः पर्यगिरिधाम् ॥ २५ ॥  
आ यन्ति त्रिवः पृथिवीं संचन्ते  
भूम्याः सचन्ते अप्यन्तरिक्षम् ।  
शुद्धाः सुतीस्ता उ शुभ्रमन्त पुष  
ता नः स्वर्गमभि लोकं नयन्तु ॥ २६ ॥  
उतेषं प्रम्येष्टु संमितास  
उत शुक्ताः शुच्ययज्ञामृतांसः ।  
ता अदिनं र्धपतिभ्यां प्रदिष्टा  
यापः शिर्षनीः पचता मुनायाः ॥ २७ ॥



संख्याता स्तोकाः पृथिवीं संचन्ते  
 प्राणापानैः संमिता ओषधीभिः ।  
 असंख्याता ओष्यमानाः सुवर्णाः  
 सर्वे व्यापुः शुचयः शुचित्वम् ॥ २८ ॥  
 उद्योद्यन्त्यभि वल्गन्ति तृप्ताः  
 फेनमस्यान्ति बहुलांश्च विन्दन् ।  
 योषेव हृष्टा पतिमृत्विषाय  
 एतैस्तण्डुलैर्मयता समापः ॥ २९ ॥  
 उत्थापय सीदतो वृषन् पनान्  
 अङ्गिरात्मानमभि सं स्पृशन्ताम् ।  
 अमासि पात्रैरुदकं यवेतत्  
 मितास्तण्डुलाः प्रदिशो यक्षीमाः ॥ ३० ॥  
 प्र यच्छ पशुं त्वरया हृष्टैपं  
 अर्हिसन्त ओषधीर्दातु पर्वन् ।  
 यासां सोमः परि राज्यं ध्रुम्व  
 अमन्युता नो धीरुधौ भवन्तु ॥ ३१ ॥  
 नयं ग्रहीतैवनायं स्तृणीत  
 म्रियं हृदयधृपो वलवस्तु ।  
 तस्मिन् देवाः सुह वैवीर्यशान्तु  
 इमं प्राशन्त्युतुभिर्निपद्यं ॥ ३२ ॥  
 यनस्पते स्तीर्णमा सीद ग्रहिः  
 अग्निष्टोमैः संमितो देवताभिः ।  
 त्वष्ट्रेव रूपं सुहृते स्थधित्या  
 पना एदाः परि पात्रे वृद्धाम् ॥ ३३ ॥  
 पृषपां शरत्तु निधिषा अमीच्छात्  
 म्युः पुन्येनाम्युश्चयातै ।  
 उपेनं जीषान् पितरंश्च पुत्रा  
 एनं स्पर्गं गेमयान्तमग्नेः ॥ ३४ ॥  
 पुतां प्रियम्य धरुणं पृथिव्या  
 अध्वरुणं रया देवतादध्याययन्तु ।

तं त्वा दंपती जीवन्ती जीवपुत्री  
 उद् वासयातः पर्यश्रिधानात् ॥ ३५ ॥  
 सर्वान्तसुमागा अभिजित्यं लोकान्  
 यावन्तः कामाः समतीतपुस्तान् ।  
 वि गीह्यामायवर्नं च दधिः  
 एकस्मिन् पात्रे अध्युद्धरैनम् ॥ ३६ ॥  
 उपं स्तृणीहि प्रथयं पुरस्ताद्  
 धृतेन पात्रमभि धारयैतत् ।  
 वाश्रेवोस्त्रा तरुणं स्तनस्युं  
 इमं देवास्तो अभिहिङ्गुणोत ॥ ३७ ॥  
 उपास्तरीरकरो लोकमेतं  
 उरुः प्रथतामसमः स्वर्गः ।  
 तस्मिन्नायै महिषः सुपर्णो  
 देवाः पनं देवताभ्यः प्र यच्छान् ॥ ३८ ॥  
 यद्यञ्जाया पर्वति त्वत् पुरःपरः  
 पतिर्या जाये त्वत् तिरः ।  
 सं तत् सृजेथां सुह वां तद्वस्तु  
 संपादयन्तो सुह लोकमेकम् ॥ ३९ ॥  
 यावन्तो अस्याः पृथिवीं सचन्ते  
 अस्मत् पुत्राः परि ये सैवभूषुः ।  
 सर्वास्तां उप पात्रे हयेथां  
 नाभिं जानानाः शिदायः सुमायान् ॥ ४० ॥  
 वसोर्यो धारा मधुना प्रपीना  
 धृतेन मिथ्या अमृतस्य नामयः ।  
 सर्वास्ता मयं रुन्धे स्वर्गः  
 पृषपां शरत्तु निधिषा अमीच्छात् ॥ ४१ ॥  
 निधि निधिषा अग्येनमिच्छाद्  
 अनीभ्यरा अभितः सन्तु येन्ये ।  
 अस्मार्निर्दत्तो निर्दितः स्वर्गः  
 त्रिभिः काण्डेस्तीन्स्वर्गानंरुदात् ॥ ४२ ॥

अग्नी रक्षस्तपतु यद् विदेवं  
कृत्वात् पिशाच इह मा प्र पास्त ।

नुदामं पनमपं रुष्मो असद्  
आदित्या पनमङ्गिरसः सचन्ताम्

आदित्येभ्यो अङ्गिरोभ्यो मध्यिदं  
घृतेन मिश्रे प्रति चेदयामि ।

शुद्धहंसौ ब्राह्मणस्यानिहत्य  
एतं स्वर्गं सुकृतावपीतम्

इदं प्रापमुत्तमं काण्डमस्य  
यस्माद्धोकात् परमेष्ठी समपं ।

आ सिञ्च सपिण्डवत् समेदग्निं  
एष भागो अङ्गिरसो नो अत्र

सत्याय च तपसे देवताभ्यो  
निधिं शेषधिं परि दत्त एतम् ।

मा नो घृतेऽयं गात्रा समिग्यां  
मा स्मान्यस्मा उत सृजता पुरा मत्

अहं पंचाम्यहं वदामि  
ममेदु कर्मन् कृष्णेऽधि जाया ।

कौमारो लोको भजनिष्ट पुत्रो  
भन्वारमेधां ययं उत्तरावत्

न किञ्चिदमत्र नायारो अस्ति  
न यन्मित्रैः समर्ममान एति ।

अनूतं पात्रं निहितं न एतत्  
एतार्तं पुण्यः पुनरा विंशति

प्रियं प्रियाणां वृणयाम्  
तमस्ते यन्तु यतमे द्विरन्ति ।

धेनुर्नृङ्गान् घषोवय आयद्  
एष पौरुषेयमपं मृत्युं नुदन्तु

ममप्रपौ विदुरन्या अन्यं  
य भोपर्षीः मन्ति यश्च सिन्धू ।

यावन्तो देवा दिव्यादुतर्पन्ति  
हिरण्यं ज्योतिः पर्वतो बभूव

एषा त्वचां पुरुषे सं बभूव  
अनग्नाः सर्वे पदावो ये मन्ये ।

अग्नेणात्मानं परि धापयाथो  
अमोतं वासो मुपमोदनस्य

यदक्षेपु वदा यत् समित्यां  
यद् वा वदा अनृतं वित्तकाम्या ।

समानं तर्तुममि संवसानौ  
तस्मिन्तस्य शर्मलं सादयाथः

वयं वनुष्यामि गच्छ देवान्  
त्वचो धूमं पयुं पतयामि ।

धिभ्वर्चचा घृतपृष्ठो भविष्यन्  
सयोनिलोकमुप याहोतम्

तन्यं स्वर्गो बहूषा वि वने  
यथा विद् आत्मवृन्वर्धनाम् ।

अपजित् कृष्णां दशर्वो पुनानो  
या लोहिनी तां ते अग्नी जुहोमि

प्राच्यं त्या द्विदुमयेऽधिपतये  
असितार्य रत्नित्र आदित्यायेपुमने ।

एतं परि दत्तस्त्वं नो गोपायतास्माकमेतौ ।  
द्विष्टं नो अत्र जुरसे नि नैषज्जरा मृत्यये

परि नो ददात्यर्थं पृथेनं मृदं मं मयेम ॥ ५५ ॥

दक्षिणायै त्वा द्विषा इन्द्रायाधिपतये  
तिर्ध्रिगाजये रत्नित्रे यमायेपुमने ।

एतं परि दत्तस्त्वं नो गोपायतास्माकमेतौ ।  
द्विष्टं नो अत्र जुरसे नि नैषज्जरा मृत्यये

परि नो ददात्यर्थं पृथेनं मृदं मं मयेम ॥ ५६ ॥

प्रतीच्यै त्वा दिशे वरुणायाधिपतये  
पृदाकवे रक्षित्रेऽघ्नायेर्षुमते ।

एतं परिं दक्षस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।

दिष्टं नो अन्नं जरसे नि नैपज्जरा मृत्यवे  
परिं नो ददात्वर्थं पकेन सह सं भवेम ॥ ५७ ॥

उदीच्यै त्वा दिशे सोमायाधिपतये  
स्वजाय रक्षित्रेऽशन्या इषुमत्यै ।

एतं परिं दक्षस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।

दिष्टं नो अन्नं जरसे नि नैपज्जरा मृत्यवे  
परिं नो ददात्वर्थं पकेन सह सं भवेम ॥ ५८ ॥

ध्रुवार्यै त्वा दिशे विष्णवेऽधिपतये  
कृत्मार्षग्रीवाय रक्षित्र ओषधीभ्य इषुमतीभ्यः ।

एतं परिं दक्षस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।

दिष्टं नो अन्नं जरसे नि नैपज्जरा मृत्यवे  
परिं नो ददात्वर्थं पकेन सह सं भवेम ॥ ५९ ॥

ऊर्ध्वार्यै त्वा दिशे बृहस्पतयेऽधिपतये  
श्वित्राय रक्षित्रे वर्षायेर्षुमते ।

एतं परिं दक्षस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।

दिष्टं नो अन्नं जरसे नि नैपज्जरा मृत्यवे  
परिं नो ददात्वर्थं पकेन सह सं भवेम ॥ ६० ॥

(५१३)



# गौः ।

॥ १ ॥ ( अ० २।१८।१-८ )

मरद्वात्रो बार्हस्पत्यः । गावः २, ८ इन्द्रो गावो वा । त्रिष्टुप्,  
२-४ जगती, ८ अनुष्टुप् ।

आ गावो अगमन्तु भद्रमक्रन्  
सीदन्तु गोष्ठे रण्यन्त्वस्मे ।  
प्रजार्घतीः पुरुषा इह स्युः  
इन्द्राय पूर्वाण्यसो दुहानाः  
इन्द्रो यज्वने पृणते च शिश्रुति  
उपेह्वति न स्वं मुपायति ।  
भूयोभूयो रयिमिदस्य वर्धयन्  
अभिन्ने खिल्ये नि र्धधाति देवयुम्  
न ता नशन्ति न र्धमाति तस्करो  
नासामामित्रो व्यधिरा र्धधर्षति ।  
देवाँश्च यामिर्यजते ददाति च  
ज्योगित् तामिः सचते गोर्षतिः सह  
न ता अर्वा रेणुककाटो अश्रुते  
न सैरुतत्रमुपं यन्ति ता अभि ।  
उरगायममयं तस्य ता अनु  
गावो मतेस्य वि चरन्ति यज्वनः

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

गावो भगो गाव इन्द्रो मे अच्छान्

गावः सोमस्य प्रथमस्य भक्षः ।

इमा वा गावः स र्जनासु इन्द्र

इच्छामीदृवा मर्नसा चिदिन्द्रम्

युयं गावो मेदयथा कुशं चित्

अश्वीरं चित् रुणुया सुमतीकम् ।

भद्रं गृहं रुणुय भद्रवाचो

बृहद्वो वयं उच्यते सुभार्तु

प्रजार्घतीः सुयवसं रिशन्तीः

शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः ।

मा र्यः स्तेन र्दशत माघशंसः

परिं वो ह्वेती रुद्रस्य वृज्याः

उपेदमुपयचैन मासु गोवृषं पृच्यताम् ।

उपं ऋपमस्य रेत स्युर्पेन्द्र तव दीपे

॥ १ ॥ ( अ० ८।१०।१।१५-१६ )

जमदग्निर्मानवः । त्रिष्टुप् ।

माता रुद्राणां दुहिता यवन्तां

स्वसाऽऽदित्यानाममृतस्य नामिः ।

प्र जु सौचं चिकितुषे जनाय

मा गामनागामदिति वधिष्ट

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ १५ ॥

(५१२९)

यच्चोपिदं चाचमुदीरयन्मीं  
विश्वामिर्षीमिहपतिष्टमानाम् ।  
देवीं देवेभ्यः पर्ययुगीं मां  
आ मांऽपृक्तु मत्प्यो दधचैताः

॥ ३ ॥ (आ० १०।१६९।१-४)

दाशः काक्षीवतः । त्रिष्टुप् ।

मयोभूषातो अभि पातुक्षा  
ऊर्जस्वतीरोपधीरा रिशन्ताम् ।  
पीधस्वतीजीवधेन्याः पियन्तु  
अवसायं पृक्षते वद मृल  
याः सरूपा विरूपा एकरूपा  
यासांममिरिष्टया नामानि धेदं ।  
या अङ्गिरसस्तपसेह चक्रुः  
ताभ्यः पर्जन्य महि शर्म यच्छ  
या देवेषु तन्वमैर्यन्त  
यासां सोमो विश्वा रूपाणि धेदं ।  
ना असभ्यं पर्यसा पित्र्यमानाः  
प्रजावतीरिन्द्र गोष्ठे रिरीहि  
प्रजापतिर्महामेता रराणो  
विश्वैर्देवैः पितृभिः संधिदानः ।  
शिवाः सुतीरप नो गोष्ठमाकः  
तासां वयं प्रजया सं संदेम

॥ ४ ॥ (वा० य० १।४)

सा विश्वायुः सा विश्वकर्मा सा विश्वधायाः ।  
इन्द्रस्य त्वा मागं सोमेनार्तनञ्जि  
यिष्णो हव्यं रक्ष

॥ ५ ॥ (वा० य० ३।१०-११, १७)

अन्य स्थान्धो वो भक्षाय महं स्थ  
महो वो भक्षाय  
ऊर्जं स्थोजं वो भक्षाय रायस्पोषं स्थ  
रायस्पोषं वो भक्षाय

॥ २० ॥

रेवतीं रमणममिन् योनियमिन्  
गोष्ठेऽस्मिंशोकेऽमिन् शर्य ।

इदं स्तु माऽपं गात

॥ २१ ॥

मध्द्विंताऽसि विश्वरूप्युजां

मा ऽऽ रियं गापत्येनं ।

उपं त्वाऽग्ने दिवेदिंये शोपायस्तद्विया युगम् ।

नमो भरन्तु र्गमसि

॥ २२ ॥

इष्ट पृष्टदितु पटि काम्या पतं ।

मयि यः कामधरणं भूयात्

॥ २७ ॥

॥ ६ ॥ (वा० य० ४।१९-२१)

अनु त्वा माता मन्यतामनु पिता

अनु भ्राता सगम्योऽनु सगा सत्ययः ।

सा देवि देवमच्छेद्दीन्द्राय सोमं

इदं स्त्वा ऽऽ र्यतयतु स्वस्ति सोमं सत्ता पुनरेदि २०

वस्यस्यादेतिरस्यादित्याऽसि

इन्द्राऽसि चन्द्राऽसि ।

इदं स्तुतिं प्रा सुप्ते रम्णातु इन्द्रो वस्तुमिरा वके २१

॥ ७ ॥ (वा० य० ७।४७)

इन्द्राय त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्वमशीय

प्राणो दात्र पथि धयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे ॥ ४७ ॥

॥ ८ ॥ (वा० य० ८।४९-४९, ५१ [पूर्वार्धः])

आ जिघ्र कलशं मह्या त्वा विशन्निवन्धः ।

पुनरूर्जा नि वतस्व सा नः सुहर्षं धुष्व

उरुधारा पर्यस्वती पुनर्मा विशताद्रयिः ॥ ४२ ॥

इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे

ज्योतेऽदिते सरस्वति महि विधुति ।

एता ते अघ्ये नामानि

देवेभ्यो मा सुकृतं व्रतात्

इह रतिरिह रमध्वमिह

धृतिरिह स्वधृतिः स्वाहा

॥ ४३ ॥

॥ ५१ ॥

(५६५८)

॥ ९ ॥ ( अथर्व० ६।७।१-३ )

काङ्क्षयनः । अघ्न्या । जगती ।

यथा मांसं यथा सुरा यथाऽक्ष्णा ब्रह्मिदेवने ।  
 यथा पुंसो वृषण्यत स्त्रियां निहन्यते मनः ॥  
 एषा तै अघ्न्ये मनोऽधि वृत्से नि हन्यताम् ॥ १ ॥  
 यथा हस्ती हस्तिन्याः पुदेन पदमुद्युजे ।  
 यथा पुंसो वृषण्यत स्त्रियां निहन्यते मनः ॥  
 एषा तै अघ्न्ये मनोऽधि वृत्से नि हन्यताम् ॥ २ ॥  
 यथा प्रधिर्ययोपधिर्यथा नभ्यै प्रधावधि ।  
 यथा पुंसो वृषण्यत स्त्रियां निहन्यते मनः ॥  
 एषा तै अघ्न्ये मनोऽधि वृत्से नि हन्यताम् ॥ ३ ॥

॥ १० ॥ ( अथर्व० ७।७।१२ )

चण्डिब्रह्मः । ( अघ्न्या ) । त्र्यवसाना मुरिक् पय्यापवृत्तिः ।

पद्मश्चा स्थ रमतयः संहिता विश्वनाम्नी ।

उप मा देवीदेविमिरेत ॥

इमं गोष्ठमिदं सदैव धृतेनासान्त्वयमुक्षत ॥ २ ॥

॥ ११ ॥ ( अथर्व० ९।७।१-१६ )

प्रज्ञा ( एकः पर्यायः ) । १ आर्षावृहती; २ आर्ष्युष्णिक्; ३, ५  
 आर्ष्युत्तुष्टु; ४, १४-१६ साम्नी वृहती; ६, ८ आसुरी  
 गायत्री; ७ त्रिपदा विगलिकमय्या निचृदायत्री; ९, १३ साम्नी  
 गायत्री; १० पुर चणिक; ११-१२, १७, २५ साम्नुष्णिक्;  
 १८, २२ एकपदाऽऽसुरी जगती; १९ एकपदाऽऽसुरी पंक्तिः;  
 २० याजुषी जगती; २१ आसुर्युत्तुष्टु; २३ एकपदाऽऽसुरी  
 वृहती; २४ साम्नी मुरिगृहती; २६ साम्नी त्रिष्टुप्; ( ७,  
 १८-१९; २१-२३ आभ्योऽतिरिक्ता दिपदा ) ।

प्रजापतिश्च परमेष्ठी च शूक्ते

इन्द्रः शिवो अग्निर्लार्ह यमः रुकायम् ॥ १ ॥

सोमो राजा मस्तिष्को द्यौः

उत्तरहनुः पृथिव्यधरहनुः ॥ २ ॥

विद्युजिह्वा मुखो दन्ता रेवतीर्भावाः

हस्तिंका स्कन्धा घर्मो वर्हः ॥ ३ ॥

विश्वं धायुः स्वर्गो लोकः

रुण्ड्रं विधरणी निषेयः ॥ ४ ॥

इयेनः क्रोडोऽन्तरिक्षं पाजस्वम् ।

वृहस्पतिः ककुद्दहतीः कीकसाः ॥ ५ ॥

देवानां पत्नीः पूष्य उपसदः पर्शवः ॥ ६ ॥

मित्रश्च वरुणश्चासौ त्वष्टा च

अर्यमा च दोषणी महादेवो वाह ॥ ७ ॥

इन्द्राणी भसद्वायुः पुच्छं पर्वमानो बालाः ॥ ८ ॥

ब्रह्म च ह्यत्र च श्रोणी बलमूक ॥ ९ ॥

धाता च सविता चाग्निवन्तौ जरुधा गन्धर्वा

अप्सरसः कुष्ठिका अदितिः शुफाः ॥ १० ॥

चेतो हृदयं यकृमेधा मृतं पुंसितत् ॥ ११ ॥

ध्रुव कुक्षिरा वनिष्ठुः पर्वताः प्लाशयः ॥ १२ ॥

क्रोधो वृकौ मनुयुण्डौ प्रजा शेषः ॥ १३ ॥

नदी सुग्री वर्यस्य पतय स्तना स्तनयितुनर्धः १४

विदग्धव्यचाश्चर्मोपधयो लोमानि

नक्षत्राणि रूपम् ॥ १५ ॥

देवजना गुदा मनुष्या आन्त्राण्युग्रा उदरम् ॥ १६ ॥

रससि लोहितमितरजना ऊर्ध्वम् ॥ १७ ॥

अध्रं पीयो मृज्जा तिघ्नम् ॥ १८ ॥

अग्निरासीन् उत्थितोऽभिनो ॥ १९ ॥

इन्द्रः शङ् तिष्ठन् दक्षिणा तिष्ठन् वृमः ॥ २० ॥

प्रसङ् तिष्ठन् धातोद् तिष्ठन्सविता ॥ २१ ॥

वर्णानि प्रातः सोमो राजा ॥ २२ ॥

मित्र ईक्षमाण आवृत्त आनन्दः ॥ २३ ॥

युज्यमानो वैश्वदेवो युक्तः

प्रजापतिर्विमुक्तः सर्वम् ॥ २४ ॥

एतद्वै विश्वरूपं सर्वरूपं गोरूपम् ॥ २५ ॥

उपेनं विश्वरूपाः सर्वरूपाः

पदार्थस्तस्मिन् य एवं वेद ॥ २६ ॥

॥ ११ ॥ ( अथर्व १०।१।१-१७ )

अथर्वा । ( शतौदना गौः ) । अनुष्टुप् ; १ त्रिष्टुप्, १२  
पद्यापङ्क्तिः ; २५ द्वयनुष्टुप्गर्भाऽनुष्टुप्, २६ पञ्चपदा  
नृहलनुष्टुपुणिगर्भा जगती ; २७ पञ्चपदतिजाग-  
तानुष्टुप्गर्भा शकरी ।

अथायतामपि नह्या मुखानि  
सपत्नेषु वज्रमर्पयैतम् ।

इन्द्रेण वृत्ता प्रथमा शतौदना

आतृष्यग्री यजमानस्य गातुः

॥ १ ॥

वेदिष्टे चर्म भवतु यदिलोमानि यानि ते ।

पृथा त्वा रशनाऽग्रभीद्

प्रावां त्वैपोऽधि नृत्यतु

॥ २ ॥

पालास्ते प्रोक्षणीः सन्तु जिह्वा सं मर्द्विच्ये ।

शुद्धा त्वं यक्षियां भूत्वा दिवं प्रेहि शतौदने ॥ ३ ॥

यः शतौदनां पंचति कामप्रेण स कल्पते ।

प्रीता ह्युत्पत्तिजः सर्वे यन्ति यथायथम् ॥ ४ ॥

स स्वर्गमा रौहति यन्नादस्त्रिविधं दिवः ।

अपुपनामि कृत्वा यो ददाति शतौदनाम् ॥ ५ ॥

स तांस्तोकान्समाप्नोति

ये दिव्या ये च पार्थिवाः ।

दिरण्यज्योतिषं कृत्वा यो ददाति शतौदनाम् ॥ ६ ॥

ये ते देवि शमितारः पुनारो ये च ते जनाः ।

ते त्वा सर्वे गोक्ष्यन्ति मेघ्यो मैषीः शतौदने ॥ ७ ॥

यस्यस्तथा दक्षिणत उच्चरन्मृतस्तथा ।

आदित्याः पृथ्वाग्रोक्ष्यन्ति

साऽग्निष्टोममतिं द्रय

॥ ८ ॥

देवाः पितरौ मनुष्या गन्धर्वाप्सरसश्च ये ।

ते त्वा सर्वे गोक्ष्यन्ति साऽतिरात्रमतिं द्रय ॥ ९ ॥

अग्निरिक्षं दिवं भूमिमादित्यान् मरुतो दिशः ।

लोकांश्च गयीनाप्नोति

यो ददाति शतौदनाम्

॥ १० ॥

घृतं प्रोक्षन्तीं सुमगां देवीं देवान् गमिष्यति ।

पुनारमच्ये मा हिंसीदिवं प्रेहि शतौदने ॥ ११ ॥

ये देवा दिविपदो अन्तरिक्षसदश्च ये

ये चेमे भूम्यामधि ।

तेभ्यस्त्वं शुश्रूष सर्वदा क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १२ ॥

यत् ते शिरो यत् ते मुखं यौ कर्णौ ये च ते हनु ।

अमिक्षां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १३ ॥

यौ ॥ ओष्ठी ये नासिके ये शृङ्गे ये च तेऽक्षिणी ।

अमिक्षां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १४ ॥

यत् ते क्लोमा यदुदयं पुरीतसहकण्ठिका ।

अमिक्षां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १५ ॥

यत् ते यकृद्ये मर्तस्ते यदान्धं याध्वं ते गुदाः ।

अमिक्षां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १६ ॥

यस्ते प्लाशियो वनिष्ठुर्यौ कुक्षी यश्च चर्म ते ।

अमिक्षां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १७ ॥

यत् ते मज्जा यदस्थि यन्मांसं यश्च लोहितम् ।

अमिक्षां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १८ ॥

यौ ते ग्राह्ये ये दोषणी यावंसौ या च ते कुक्षु ।

अमिक्षां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १९ ॥

यास्ते ग्रीवा ये स्कन्धा याः पृष्ठीर्याश्च पश्याः ।

अमिक्षां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ २० ॥

यौ तं ऊरू बंष्टीवन्तौ ये श्रोणी या च ते भ्रुवः ।

अमिक्षां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ २१ ॥

यत् ते पुच्छं ये ते बाला यद्वक्षो ये च ते स्तनाः ।

अमिक्षां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ २२ ॥

यास्ते जङ्घा याः कुट्टिका श्रुच्छरा ये च ते शफाः ।

अमिक्षां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ २३ ॥

यत् ते चर्म शतौदने यानि लोमान्यच्ये ।

अमिक्षां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ २४ ॥

श्रोष्टी ते त्वां पुरोडाश्यायर्जुनाभिघातिनी ।

तां पृष्टी देवि कृत्वा सा पुनारु दिवं यद् ॥ २५ ॥

( ५०५ )

उत्खले मुसले यश्च चर्मणि  
यो वा शूर्पे तण्डुलः कर्णः ।  
यं वा घातो मातुरिवा पर्यमानो  
ममायाग्रिप्रजोता सुहृते कणोतु ॥ २६ ॥  
अपो देवीर्मधुमतीर्धृतञ्जुतो  
प्रक्षणां हस्तेषु प्रपृथक् सादयामि ।  
यत् काम इदमभिपिञ्चामि योऽहं  
तन्मे सर्वं संपद्यतां  
ययं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ २७ ॥

॥ २३ ॥ ( अथर्व १०।१०।१-२४ )

वदयः । ( वद्या गौः ) । अत्रुपुः १ कुम्भमती ५ पञ्चवदा-  
रुच्योमीवी वृहती १, ८, १० वि॥ २३ वृहती २४ उप-  
रिष्टाद्वृहती २५ अस्तारवृहती २७ गङ्गमती २९ विवदा  
विराट्गयात्री ३१ सग्निरमती ३२ विरट्गयात्री ३३ ।

नर्मस्ते जार्यमानायै जातार्या उत ते नर्मः ।  
यल्लिभ्यः शुकेभ्यो रूपायाभ्ये ते नर्मः ॥ १ ॥

यो विद्यात् सप्त प्रवतः सप्त विद्यात् परावतः ।  
शिरौ यद्वस्य यो विद्यात्  
स यदां प्रति गृहीयात् ॥ २ ॥

येदाहं सप्त प्रवतः सप्त वेदं परावतः ।  
शिरौ यद्वस्यहं वेदं सोमं चास्यां विचक्षणम् ॥ ३ ॥

यया दीर्यया पृथिवी ययाऽप्यो गुपिता इमाः ।  
यदां सहस्रांशं प्रक्षणाऽच्छादयदामसि ॥ ४ ॥

शतं कंसाः शतं शोण्णः  
शतं गोसातो अथि पृष्ठे अस्याः ।

ये देवास्तस्यां प्राणन्ति ते यदां विदुरेकृषा ॥ ५ ॥  
यमपदीरक्षांशं स्यधाप्राणा मदीर्लुका ।

यदा पञ्चन्यपत्नी देवो अय्यति प्रक्षणा ॥ ६ ॥  
अनु त्वाऽग्निः प्राविशदनु सोमो यदो त्वा ।

ऊर्ध्वे भद्रे पञ्चन्यो विपुर्तस्ते स्तनां यदो ॥ ७ ॥

अपस्त्वं पुंसि प्रयमा उर्वरा अपरा यदो ।  
तृतीयं यष्टं पुंसिऽन्नं क्षीरं वदो त्वम् ॥ ८ ॥

यदादित्यैर्द्वयमानोपातिष्ठ श्रुतावरे ।  
इन्द्रः सहस्रं पाशान्सोमं त्वापाययदो ॥ ९ ॥

यदनुचीन्द्रमरात्वं श्रुपमोऽहं यत् ।  
तस्मात् ते वृत्रहा पर्यः क्षीरं कुक्षोऽहं यदो ॥ १० ॥

यत् ते कुक्षो घनपतिरा क्षीरमहं यदो ।  
इदं तनुच नार्कस्त्रिषु पार्श्वेषु रक्षति ॥ ११ ॥

त्रिषु पार्श्वेषु तं सोममा देव्युहं यदो ।  
अथर्वो यत्र दीक्षितो यद्विष्णोस्तं हिरण्यये ॥ १२ ॥

सं हि सोमेनागत् समु सर्वेण पृथता ।  
यदा संमुद्रमर्ष्यमग्न्यध्वं कलिभिः सह ॥ १३ ॥

सं हि वातेनागत् समु सर्वैः पनुभिः ।  
यदा संमुद्रे प्रान्त्यद्वयः सामानि विध्वनी ॥ १४ ॥

सं हि सूर्येणागत् समु सर्वेण चक्षुषा ।  
यदा संमुद्रमर्ष्यमग्न्यध्वं ज्योतींषि विध्वनी ॥ १५ ॥

अमीर्वृता हिरण्येन यदतिष्ठ श्रुतावरे ।  
अथः समुद्रो मृत्याऽप्यस्करद्वदो त्वा ॥ १६ ॥

तद्वदोः समगच्छन्त यदा देवपथो स्या ।  
अथर्वो यत्र दीक्षितो यद्विष्णोस्तं हिरण्यये ॥ १७ ॥

यदा माता राजन्यस्य यदा माता स्यधे तथे ।  
यदाया यद्व आयुधं तर्तश्चिचर्मजायत ॥ १८ ॥

ऊर्ध्वो विन्दुस्तं चरद्वदोः कर्तुं दादधि ।  
ततस्त्वं जग्निषे यदो ततो होताऽजायत ॥ १९ ॥

आहस्ते गार्था अमचभृष्णिदाभ्यो यल्ले यदो ।  
पात्रस्याऽग्ने यद्व स्तन्यो रदमयुत्तय ॥ २० ॥

ईमाम्यामयनं ज्ञातं सार्कियम्यां च यदो तयं ।  
आग्नेभ्यो जग्निरे भन्ना उदरादधि दीर्यः ॥ २१ ॥

यदुदरं यद्वेनस्यानुप्राविशाय यदो ।  
ततस्या प्रहोर्द्वयत् न हि नेत्रमयेत् नयं ॥ २२ ॥



सर्वे गर्भादवेपन्त जायमानादसुस्यः ।  
 सुसुव हि ताम्राहुर्वशेति  
 ब्रह्मभिः फलतः स ह्यस्या यन्तुः ॥ २३ ॥  
 युध एकः स रजति यो अस्या एक इदृशी ।  
 तरांसि यथा भवन्तरंसां चक्षुरभयदृशा ॥ २४ ॥  
 वशा यक्ष प्रत्यङ्गदृशा स्वयंमधारयत् ।  
 वशायांमन्तरविशदोदनो ब्रह्मणा सह ॥ २५ ॥  
 वशावेवामृतमाहुर्वशां मृत्युमुपासते ।  
 वशेदं सर्वमभवत्  
 देवा मनुष्याश्च असुराः पितर ऋषयः ॥ २६ ॥  
 य एवं विद्यात् स वशां प्रति गृह्णीयात् ।  
 तथा हि यक्षः सर्वपादुहे दात्रेऽनपस्फुरन् ॥ २७ ॥  
 तिन्नो जिह्वा धर्षणस्यान्तर्दोषस्यासनि ।  
 तासां या मध्ये राजति सा वशा दुष्प्रतिग्रहा ॥ २८ ॥  
 चतुर्धा रेतो भववदृशायाः ।  
 आपस्तुरीयममृतं तुरीयं  
 यष्टस्तुरीयं पशवस्तुरीयम् ॥ २९ ॥  
 वशा चौक्षशा पृथिवी वशा विष्णुः प्रजापतिः ।  
 वशायां दुग्धमपिबन्त्साध्या वसवश्च ये ॥ ३० ॥  
 वशायां दुग्धं पीत्वा साध्या वसवश्च ये ।  
 ते वै ब्रह्मस्य विष्टपि पर्यो अस्या उपासते ॥ ३१ ॥  
 सोममेनामेकं दुहे घृतमेकं उपासते ।  
 य एवं विदुर्वे वशां दुदुस्ते गतास्त्रिदिवं दिवः ३२  
 ब्राह्मणेभ्यो वशां दृश्या सर्वास्त्रोक्तान्समश्नुते ।  
 श्रुतं ह्यस्यामर्पितमपि ब्रह्मणो तपः ॥ ३३ ॥  
 वशां देवा उर्प जीवन्ति वशां मनुष्या उत ।  
 वशेदं सर्वमवधावत् सूर्यो विपश्यति ॥ ३४ ॥  
 ॥ १३ ॥ ( अथर्व ११।३।१-५३ )  
 अत्र १५ ; ७ सुरिहः २० विराट् ३२ वणिगबृहतीगर्भा,  
 ५२ बृहतीगर्भा ।  
 ददामीत्येव दद्यादनु चैनाममृतस्ततः ।  
 वशां ब्रह्मण्यो याचन्मस्तुत् प्रजावदपत्ययत् ॥ १ ॥

प्रजया स वि श्रीणीते पशुमिधोप दस्यति ।  
 य आर्वेभ्यो याचद्भयो देवानां गां न दित्सति २  
 कृत्यास्य मं श्रीयन्ते त्रशेणया कादमर्दति ।  
 यण्डयां ब्रह्मन्ते गृहाः काणया दीयते स्वम् ॥ ३ ॥  
 विलोहितो अधिष्ठानाच्छक्नो विन्दति गोपतिम् ।  
 तथा वशायाः संविधं दुरदधा तुल्यसे ॥ ४ ॥  
 पदोरस्या अधिष्ठानाद्विन्दुनामं विन्दति ।  
 अनामनात् सं श्रीयन्ते या मुरेनोपजिघ्रति ॥ ५ ॥  
 यो अस्याः कर्णोवास्कुनोत्या स देवेषु वृक्षते ।  
 तस्मै कुर्य इति मन्यते कर्णीयः कृणुते स्वम् ६  
 यदस्याः कर्णं चिद्गोपाय  
 बालान् कश्चित् प्रकृन्तति ।  
 ततः किशोरा प्रियन्ते यत्सांश्च घातुको वृकः ७  
 यदस्या गोपतौ सत्या लोम ध्वाङ्क्षो अजीहिद्व ।  
 ततः कुमार प्रियन्ते यस्मै विन्दत्यनामनात् ८  
 यदस्याः पत्न्यूलनं शकृद् दासी समस्यति ।  
 ततोऽपरूपं जायते तस्मादव्यैष्यदेनसः ॥ ९ ॥  
 जायमानाभि जायते देवान्सब्राह्मणान् वशा ।  
 तसाद् ब्रह्मण्यो देवैपा तदाहुः स्वस्य गोपनम् १०  
 य र्पनां वनिमायन्ति तेषां देवकृता वशा ।  
 ब्रह्मज्येयं तदब्रुवन् य र्पनां निमियायते ॥ ११ ॥  
 य आर्वेभ्यो याचद्भयो देवानां गां न दित्सति ।  
 आ स देवेषु वृक्षते ब्राह्मणानां च मन्यवे ॥ १२ ॥  
 यो अस्य स्याद्भशभोगो अन्यामिच्छेत तर्हि सः ।  
 हित्ते भदत्ता पुरुषं याचितान् च न दित्सति ॥ १३ ॥  
 यथा शेषधिनिर्हितो ब्राह्मणानां तथा वशा ।  
 तामेतदच्छायन्ति यस्मिन् कस्मिंश्च जायते ॥ १४ ॥  
 स्वमेतदच्छायन्ति यदृशां ब्राह्मणा अभि ।  
 यथैनानन्यस्मिन् जिनीयादेवास्या निरोधनम् १५  
 चरेदेवा त्रैहायणादविष्वातगदा सती ।  
 वशां च विद्याचारद ब्राह्मणास्तर्ह्येषाः ॥ १६ ॥

य एनामर्षशामाह देवानां निहितं निधिम् ।  
 उमौ तस्मै भवाश्चो परिक्रम्येपुमस्यतः ॥ १७ ॥  
 यो अस्या ऊधो न वेदार्यो अस्या स्तनानुत ।  
 उभयेनैवासौ दुहे दातुं चेदशरूढशाम् ॥ १८ ॥  
 दुरदुधैनमा शये याचितां च न दिस्सति ।  
 नास्मै कामाः सष्टृष्यन्ते यामर्दत्त्वा चिकीर्षति १९  
 देवा वृशामयाचन् मुग्धं कृत्वा ब्राह्मणम् ।  
 तेषां सर्वेषामर्ददुहेडं न्येति मानुषः ॥ २० ॥  
 हेडं पशूनां न्येति ब्राह्मणेभ्योऽर्ददुहशाम् ।  
 देवानां निहितं भागं मर्ष्येधेक्षिप्रियायते ॥ २१ ॥  
 यदन्ये शतं याच्युग्राहणा गोपतिं वृशाम् ।  
 अर्थेनां देवा अमृषन्नेवं हं विदुषो वृशा ॥ २२ ॥  
 य एवं विदुषेऽदत्त्वाथान्येभ्यो दर्ददुहशाम् ।  
 दुग्धां तस्मां अधिष्ठाने पृथिवी सहदेवता ॥ २३ ॥  
 देवा वृशामयाचन् यस्मिन्नेव बजायत ।  
 तामेतां विद्याभारदः सह देवैरुदाजत ॥ २४ ॥  
 अनुपत्यमल्पपशुं वृशा कृणोति पूरुषम् ।  
 ब्राह्मणैश्च याचितामर्थेनां निप्रियायते ॥ २५ ॥  
 अग्नीपोमाभ्यां कामाय मित्राय वरेणाय च ।  
 तेभ्यो याचन्ति ब्राह्मणास्तेषा वृक्षतेऽर्ददत् ॥ २६ ॥  
 यावदस्या गोपतिर्नोपशृणुयाहवः स्वयम् ।  
 चरैदस्य तावद् गोषु नास्य धृत्या गृहे वसेत् २७  
 यो अस्या ऋचं उपश्रुत्याथ गोप्यर्चाचरत् ।  
 आयुश्च तस्य मूर्तिं च देवा वृक्षन्ति ईडिताः २८  
 वृशा चरन्ती बहुधा देवानां निहितो निधिः ।  
 आविष्कृणुष्व रूपाणि यदा स्थाम जिघांसति ॥ २९ ॥  
 आविरात्मनं कृणुते यदा स्थाम जिघांसति ।  
 अथो ह ब्रह्मभ्यो वृशा याच्याय कृणुते मनः ३०  
 मनसा सं कलयति तदेवां अपि गच्छति ।  
 ततो ह ब्रह्मणो वृशामुपप्रयन्ति याचन्तुम् ॥ ३१ ॥

स्वधाकारेण पितृभ्यो यजेत देवताभ्यः ।  
 दानेन राजन्वो वृशार्या  
 मातुर्ददं न गच्छति ॥ ३२ ॥  
 वृशा माता राजन्वोऽस्य तथा संमतमग्रशः ।  
 तस्या आहुरनर्पणं यद् ब्रह्मभ्यः प्रदीयते ॥ ३३ ॥  
 यथाऽऽज्यं प्रवृद्धीतमालुमेत् सुचो अर्धं ।  
 एषा ह ब्रह्मभ्यो वृशामग्र्य आ वृक्षतेऽर्ददत् ३४  
 पुरोडाशवत्सा सुदुर्वा लोकेऽस्मा उप तिष्ठति ।  
 साऽस्मै सर्वान् कामान् वृशा प्रदुष्ये दुहे ॥ ३५ ॥  
 सर्वान् कामान् यमराज्ये वृशा प्रदुष्ये दुहे ।  
 मयाहुर्नारकं लोकं निरुद्धानस्य याचिताम् ॥ ३६ ॥  
 प्रश्रीयमाना चरति कुत्रा गोपतये वृशा ।  
 वेहतं मा मर्ष्यमानो मृत्योः पार्श्वेषु वप्यताम् ॥ ३७ ॥  
 यो वेहतं मर्ष्यमानोऽमा च पचेत वृशाम् ।  
 अप्यस्य पुत्रान् पौत्राश्च याचयेत् वृहस्पतिः ॥ ३८ ॥  
 महदेवार्यं तपति चरन्ती गोषु गौरिर्प ।  
 अथो ह गोपतये वृशावदुषे विषं दुहे ॥ ३९ ॥  
 प्रियं पशूनां मयति यद् ब्रह्मभ्यः प्रदीयते ।  
 अथो वृशायास्तत् प्रियं यदेवमा हविः स्यात् ॥ ४० ॥  
 या वृशा उदकल्पयन् देवा युद्धानुदेत्य ।  
 तासां विलिप्य श्रीमामुशकुलन नारदः ॥ ४१ ॥  
 तां देवा अमीमांसन्त वृशोयाश्मवृशेति ।  
 ताम्रवीभारद एषा वृशानां वृशतमेति ॥ ४२ ॥  
 कति तु वृशा नरद यास्त्वं वेत्य मनुष्यजाः ।  
 तास्त्वां पृच्छामि विद्वांसं  
 कस्या नाश्रीयाद्ब्राह्मणः ॥ ४३ ॥  
 विलिप्या वृहस्पते या चं सुतवंशा वृशा ।  
 तस्या नाश्रीयाद्ब्राह्मणो य आशंसित भूत्याम् ४४  
 नमस्ते अस्तु नारदानुष्टु विदुषे वृशा ।  
 कृतमासां भीमर्तमा यामर्दत्त्वा परामर्षत् ॥ ४५ ॥

विलिप्ती या वृद्धस्पतेऽर्थो सूतर्षशा वृशा ।  
 तस्या नाश्रीयाद्ब्राह्मणो य आशंसैत भूत्याम् ॥४६॥  
 व्रीणि वै वंशाज्जातानि विलिप्ती सूतर्षशा वृशा ।  
 ताः प्र यच्छेद् ब्रह्मभ्यः  
 सोऽनाग्रस्कः प्रजापतेर् ॥ ४७ ॥  
 एतद्वो ब्राह्मणा हविरिति मन्वीत याचितः ।  
 वृशां चेदेनं याच्युयां भीमाददुषो गृहे ॥ ४८ ॥  
 देवा वृशां पर्यवदन् न नोऽवादिति हीद्विताः ।  
 एताभिर्भृग्भिर्भेदे तस्माद्वै स पराऽभवत् ॥ ४९ ॥  
 उत्तैर्ना भेदो नाददाद् वृशामिन्द्रेण याचितः ।  
 तस्मात् तं देवा आगसोऽवृक्षन्नहमुत्तरे ॥ ५० ॥  
 ये वृशाया अदानाय वदन्ति परिराणिः ।  
 इन्द्रस्य मन्यवे जाहमा आ वृक्षन्ते अचिस्या ॥ ५१ ॥  
 ये गोपति पराणीयाथाहुर्मा वदा इति ।  
 रुद्रस्यास्तां ते हेति परि यन्त्याचिस्या ॥ ५२ ॥  
 यदि हुतां यद्यहुताममा च पचते वृशाम् ।  
 देवान्सब्राह्मणान्त्वा  
 जिह्वो लोकाभिर्भृग्छति ॥ ५३ ॥

॥ १५ ॥ ( अथर्व ५।१८।१-१५ )

मयोभूः । ब्रह्मणो । अनुष्टुप् ; ४ भुक्ति त्रिष्टुप् ; ५, ८-९,  
 १३ त्रिष्टुप् ।

नैतां ते देवा अददुस्तुभ्यं नृपते अर्चवे ।  
 मा ब्राह्मणस्य राजन्यं गां जिघत्सो अनाधाम् ॥ १ ॥  
 अधर्दुग्धो राजन्यः पाप आत्मपराजितः ।  
 स ब्राह्मणस्य गामघादय जीवानि मा श्वः ॥ २ ॥  
 आर्विष्टिताऽयर्विषा पृदाकूरिव चर्मणा ।  
 सा ब्राह्मणस्य राजन्यं तृष्टेया गौरिनाथा ॥ ३ ॥  
 निर्वं शत्रं नरति हन्ति वरुः  
 अग्निरिचारिणो वि दुनोति सर्वम् ।  
 यो ब्राह्मणं मन्यते अन्नमेव  
 स विपस्यं पिपति तैमानस्यं ॥ ४ ॥

य र्पेन हन्ति मृतुं मन्यमानो  
 देवपीयुर्धनकामो न चित्तात् ।  
 सं तस्येन्द्रो हृदयेऽग्निमिन्ध  
 उमे र्पेन द्विष्टो नमसी चरन्तम् ॥ ५ ॥  
 न ब्राह्मणो हिंसितव्योऽग्निः प्रियतनोरिय ।  
 सोमो ह्यस्य दायाद् इन्द्रो अस्याभिदास्तिपाः ॥ १ ॥  
 शतापांश्च नि गिरति तां न शक्नोति निःपिदन् ।  
 अन्नं यो ब्रह्मणां मयः स्याद्वृक्षीति मन्यते ॥ ७ ॥  
 जिह्वा ज्या भवति कुर्मलं वाक्  
 नाडीका दन्तास्तपसाभिर्दिग्धाः ।  
 तेभिर्दिग्धा विध्यति देवपीयून्  
 इन्द्रैर्धनुर्भिर्देवजुतैः ॥ ८ ॥  
 तीक्ष्णेपवो ब्राह्मणा हेतिमन्तां  
 यामस्यन्ति शरव्यां न सा मृपा ।  
 अनुहाय तपसा मन्युनां च  
 उत वुरादयं भिन्दन्त्येनम् ॥ ९ ॥  
 ये सहस्रमराजन्नासन् दशशता उत ।  
 ते ब्राह्मणस्य गां जुग्धा वैतहव्याः पराऽभवन् ॥  
 गौरैव तान् हन्यमाना वैतहव्यां अवातिरत् ।  
 ये केसरमावधायान्धरमाजामपेचिरन् ॥ ११ ॥  
 एकशतं ता ज्वन्ता या भूमिर्धुधनुत ।  
 प्रजां हिंसित्वा ब्राह्मणीमसंभयं पराऽभवन् ॥ १२ ॥  
 देवपीयुश्चरति मर्त्येषु गरगीणो भवत्यस्यभूयान् ।  
 यो ब्राह्मणं देवयन्धुं दिनस्ति  
 न स र्पितृयाणमप्येति लोकम् ॥ १३ ॥  
 अग्निर्वै नः पदवायः सोमो दायाद् उच्यते ।  
 दन्ताऽमिश्रस्तेन्द्रस्तया तद्वेधसो विदुः ॥ १४ ॥  
 इषुरिव दिग्धा नृपते पृदाकूरिव गोपते ।  
 सा ब्राह्मणस्येयुर्धोरा तया विध्यति पीर्यतः ॥ १५ ॥  
 (५११७)

॥ १६ ॥ ( अथर्व ० ५।१९।१-११ )

अनुष्टुप्; १ विराट्पुरस्ताद्वृहती; २ उपरिष्टाद्वृहती ।

यतिमात्रमवर्धन्त नोर्दिव दिवमस्पृशन् ।

भृगुं हिसित्वा खर्जया चैतद्व्याः पराऽभवन् ॥ १ ॥

ये युहत्सामानमाहिरसमार्षेयन् ब्राह्मणं जनाः ।

पेत्यस्तेषामुभयाद्भवित्तोकान्यावयत् ॥ २ ॥

ये ब्राह्मणं प्रत्यर्पित्वन् ये वाऽसिन्धुत्कर्मपिरे ।

अश्लते मध्ये कुल्यायाः केशान् खादन्त आसते ३

ब्रह्मगवी पुच्यमाना यावत्साऽभि विजह्नेह ।

तेजो राष्ट्रस्य निर्हन्ति न वीरो जायते वृषा ॥ ४ ॥

क्रूरमस्या आशसनं तृष्टं पिशितमस्यते ।

धीरं यदस्याः पीयते तद्वै पितृषु किल्बिषम् ॥ ५ ॥

उभो राजा मर्गमानो ब्राह्मणं यो जिघत्सति ।

पयु तत् सिच्यते राष्ट्रं ब्राह्मणो यत्र जीयते ॥ ६ ॥

अष्टापदी चतुरक्षी चतुःश्रोत्रा चतुर्हनुः ।

व्यास्या द्विजिह्वा भुत्वा सा

राष्ट्रमव धृनुते ब्रह्मण्यस्य ॥ ७ ॥

तद्वै राष्ट्रमा क्षयति नार्धं भिक्षार्मिषोदकम् ।

ब्रह्माणं यत्र हिसन्ति तद् राष्ट्रं हन्ति दुच्छुना ॥ ८ ॥

तं युक्ता अपं सेधन्ति छायां नो मोषणा इति ।

यो ब्राह्मणस्य सङ्गनमभि नारद् मर्गते ॥ ९ ॥

विपमेतद् देवर्हन्तं राजा वर्णोऽप्रवीत् ।

न ब्राह्मणस्य गां जग्वा राष्ट्रे जागार कश्चन ॥ १० ॥

नयैव ता नवतपो या भूमिर्च्यधृनुत ।

प्रजां हिसित्वा ब्राह्मणीमसेमर्थं पराऽभवन् ॥ ११ ॥

यां मृतायानुयमन्ति कुद्यं पदयोपनीम् ।

तद्वै ब्रह्मज्य ते देवा र्षस्तरणमब्रुवन् ॥ १२ ॥

अर्थणि रूपमाणस्य यानि जीतस्य धावतुः ।

तं वै ब्रह्मज्य ते देवा अपां भागमधारयन् ॥ १३ ॥

येन मृतं स्तुपयन्ति इमर्थाणि येनोन्दते ।

तं वै ब्रह्मज्य ते देवा अपां भागमधारयन् ॥ १४ ॥

न वर्षं मैत्रावरुणं ब्रह्मज्यमभि वर्षति ।

नास्मै समितिः कल्पते न मित्रं नयते वशम् ॥ १५ ॥

॥ १७ ॥ ( अथर्व ० ११।५।१-७३ )

प्रथम पर्यायः ॥ १ ॥

( कवचः ) अथर्वच यः । [ सप्तार्यायाः ] १ प्रामात्राऽ

उष्टुप्; १६ सुरिकाम्युष्टुप्; १ चतुष्टुप्; १ स्वराड-

ग्निक; ४ आयुर्व्युष्टुप्; ५ साम्नापतिः ।

अग्नें तर्पसा सृष्टा ब्रह्मणा वित्तं भिता ॥ १ ॥

सत्येनावृता श्रिया प्रावृता यशसा परिवृता ॥ २ ॥

स्वधया परिहता धनया पर्युदा वीक्षया गुता

युधे प्रतिष्ठिता लोको निधनम् ॥ ३ ॥

ब्रह्म पदवायं ब्राह्मणोऽधिपतिः ॥ ४ ॥

तामावदानस्य ब्रह्मगवी

जिनतो ब्राह्मणं क्षत्रियस्य ॥ ५ ॥

अपं कामति सूनृता वीर्यं पुण्या लक्ष्मीः ॥ ६ ॥

द्वितीयः पर्यायः ॥ १ ॥

आथर्व्युष्टुप् ( ७ सुरिक ); १० व.ग्निक;

( ७-१० एकपदा ); ११ आर्षो निवृत्त्युक्तिः ।

भोजश्च तेजश्च सहश्च धर्मश्च

वाक् चैन्द्रियं च धीश्च धर्मश्च ॥ ७ ॥

ब्रह्म च क्षत्रं च राष्ट्रं च विदश्च

त्विषिश्च यशश्च वचश्च द्रविणं च ॥ ८ ॥

आयुश्च रूपं च नामं च कीर्तिश्च

प्राणव्यापानश्च चक्षुश्च श्रोत्रं च ॥ ९ ॥

पर्यश्च रसव्याघ्रं चाधार्द्यं चतुर्धं

सत्यं चेष्टं च पुत्रं च प्रजा च पशवश्च ॥ १० ॥

तानि सर्वाण्यपं कामानि

ब्रह्मगवीमावदानस्य जिनतो ब्राह्मणं क्षत्रियस्य ॥ ११ ॥

( ५१४३ )

तृतीयः पर्वायः ॥ ३ ॥

विराट् विषमा गायत्रीः १३ आसुर्यनुष्टुप् १४, २६ साम्नी  
 वणिक् १५ गायत्रीः १६-१७, १९-२० ब्राह्मणस्यानुष्टुप्  
 १८ याज्ञुषी गायत्रीः २१, २५ साम्नीनुष्टुप् २२ साम्नी  
 बृहती, २३ याज्ञुषी त्रिष्टुप् २४ आसुरी गायत्रीः २७  
 आर्युणिक् ।

सैषा भीमा ब्रह्मगव्यधर्वाया  
 साक्षात् कृत्या कृत्वज्जमावृता ॥ १२ ॥  
 सर्वाण्यस्यां घोरानि सर्वे च मृत्यवः ॥ १३ ॥  
 सर्वाण्यस्यां क्रूराणि सर्वे पुरुषवधाः ॥ १४ ॥  
 सा ब्रह्मज्यं देवपीयुं

ब्रह्मगव्याऽवीयमाना मृत्योः पर्वीश आ रति १५  
 मेनिः शतवंधा हि सा

ब्रह्मज्यस्य क्षितिर्हि सा ॥ १६ ॥

तस्माद्वै ब्राह्मणानां गौर्दुराधर्षा विजानता ॥ १७ ॥

घञो धारवन्ती वैश्वानर उर्वीता ॥ १८ ॥

देतिः शफानुस्त्रिदन्ती महादेवोऽपेक्षमाणा १९

क्षुरपविरीक्षमाणा वाश्यमानाभि स्फूर्जति ॥ २० ॥

मृत्युर्द्विदुःकृण्वत्युग्रो देवः पुच्छं पर्यस्यन्ती ॥ २१ ॥

सर्वज्यानिः कर्षां वरीवर्जयन्ती

राजयक्ष्मो मेहन्ती ॥ २२ ॥

मेनिर्दुष्टमाना शीपेक्तिर्गुग्धा ॥ २३ ॥

सेदिरूपतिष्ठन्ती भिषोथोयोधः परामृष्टा ॥ २४ ॥

शरव्याऽमुलैऽपिनहमान् श्रुतिर्ह्यन्यमाना ॥ २५ ॥

अर्धावगा निपतन्ती तमो निपतिता ॥ २६ ॥

अनुगच्छन्ती प्राणानुप दासयति

ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यस्य ॥ २७ ॥

चतुर्थः पर्वायः ॥ ३ ॥

२८ आसुरी गायत्रीः २९, ३७ आसुर्यनुष्टुप् ३० साम्नीनुष्टुप्

३१ याज्ञुषी त्रिष्टुप् ३२ साम्नी गायत्रीः ३३-३४

साम्नी बृहतीः ३५ मुरिकसाम्नीनुष्टुप् ३६

साम्नीनुष्टुप् ३८ प्रतिष्ठा गायत्री ।

पैरं विहृत्यमाना पीशाघं विम्राज्यमाना ॥ २८ ॥

देवदेतिर्ह्ययमाणा धृष्टिर्हता ॥ २९ ॥

पाप्माऽधिधीयमाना पारुष्यमधीयमाना ॥ ३० ॥

विपं प्रयस्यन्ती तयमा प्रयस्ता ॥ ३१ ॥

अघं पच्यमाना दुष्वर्ज्यं पूषा ॥ ३२ ॥

मूल्यहर्षी पर्याक्रियमाणा क्षितिः पर्याहता ॥ ३३ ॥

असंज्ञा गन्धेन शुगुंक्षियमाणाशीविष उद्धृता ३४

अभूतिरुपद्वियमाणा पराभूतिरुपहता ॥ ३५ ॥

शर्वः क्रुद्धः पिश्यमाना शिर्मिदा पिशिता ॥ ३६ ॥

अर्वातिरद्वयमाना निर्गर्वातिरशिता ॥ ३७ ॥

अशिता लोकार्च्छिनन्ति

ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यमसाद्यामुष्मांश्च ॥ ३८ ॥

पञ्चमः पर्वायः ॥ ५ ॥

३९ साम्नी वंकिः ४० याज्ञुष्यनुष्टुप् ४१, ४६ मुरिक साम्नी

नुष्टुप् ४२ आसुरी बृहतीः ४३ साम्नी बृहतीः ४४

विपीलिकमभ्याऽनुष्टुप् ४५ आर्वा बृहती ।

तस्या आहर्जनं कृत्या

मेनिराशसनं वलग ऊर्ध्वयम् ॥ ३९ ॥

अस्वगता परिहृता ॥ ४० ॥

अग्निः क्रव्याद्भुत्वा

ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यं प्रविश्यान्ति ॥ ४१ ॥

सर्वास्याङ्गा पर्वी मूलानि वृश्चति ॥ ४२ ॥

छिनत्त्यस्य पितृवशु परा भावयति मातृवशु ४३

विवाहां ज्ञातीन्स्तर्वांनपि क्षापयति

ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यस्य श्रित्रियेणापुनर्दीयमाना ॥ ४४ ॥

अवास्तुर्मेनमस्वंगमप्रजसं करोति

अपरापरणो भवति क्षीयते ॥ ४५ ॥

य एवं विदुषो ब्राह्मणस्य क्षत्रियो गामावस्ते ॥ ४६ ॥

षष्ठः पर्वायः ॥ ६ ॥

ब्राह्मणस्याऽनुष्टुप् ४८ आर्यनुष्टुप् ५० साम्नी बृहतीः

५४-५५ ब्राह्मणयोणिक् ५६ आसुरी गायत्रीः ६० गायत्री ।

क्षिप्रं वै तस्याहर्जने मृष्टाः कुर्वन्त येल्लयम् ॥ ४७ ॥

क्षिप्रं वै तस्यादहनं परि नृत्यन्ति केशिनीः  
 आघ्नानाः पाणिनोरसि कुवाणाः पापमैलवम् ४८  
 क्षिप्रं वै तस्य चास्तुपु वृकाः कुर्यत पेल्लयम् ४९  
 क्षिप्रं वै तस्य पृच्छन्ति  
 यत् तदासींश्चिद्वं जु ताश्चिदिति ॥ ५० ॥  
 छिन्वा चिच्छिन्धि प्र चिच्छिन्धिषि क्षापय क्षापय ५१  
 आददानमाहिरसि ब्रह्मज्यमुप दामय ॥ ५२ ॥  
 धैवदेवी ह्युच्यसे ह्युत्था कृत्यज्जमायता ॥ ५३ ॥  
 मोपन्ती समोपन्ती ब्रह्मणो वज्रः ॥ ५४ ॥  
 शूरपयिर्मृत्युर्मृत्वा वि भावु त्वम् ॥ ५५ ॥  
 आ दत्से जित्तां यच्च इष्टं पुते चाशिर्यः ॥ ५६ ॥  
 आदाय जीतं जीताय  
 लोकेऽमुष्मिन् प्र यच्छसि ॥ ५७ ॥  
 अच्ये पदवीर्मेव ब्राह्मणस्याभिशस्त्या ॥ ५८ ॥  
 मेनिः शस्त्र्या भवाद्याद्यविषा भय ॥ ५९ ॥  
 अच्ये प्र शिरो जहि ब्रह्मज्यस्य  
 कृतागसो देवपीयोरेराधसः ॥ ६० ॥  
 त्वया प्रमूर्णं मुदितमग्निर्वहत दुश्चितम् ॥ ६१ ॥

सप्तमः पद्याः ॥ ७ ॥

प्राभापयाऽनुष्टुप् ; ६५ गायत्री ; ६७ प्राभापया गायत्री ;  
 ७१ आहुति वंकि ; ७२ प्राभापया त्रिष्टुप् ; ७३  
 आधुपुषिक ।

वृद्ध प्र वृद्ध सं वृद्ध दह प्र दह सं दह ॥ ६२ ॥  
 ब्रह्मज्यं देव्यप्य आ मूलादनुसंदह ॥ ६३ ॥  
 यथाऽयाधमसादनात् पापलोकान् पंथायतः ॥ ६४ ॥  
 एषा त्वं देव्यप्ये प्रह्मज्यस्य  
 कृतागसो देवपीयोरेराधसः ॥ ६५ ॥  
 यजेण शतपर्वणा तीरणेन शूरमृष्टिना ॥ ६६ ॥  
 प्र स्कृण्वान् प्र शिरो जहि ॥ ६७ ॥  
 लोमान्यस्य सं छिन्धि त्यर्चमस्य वि येष्ट्य ॥ ६८ ॥

मांसान्यस्य शतयु आवांन्यस्य सं वृह ॥ ६९ ॥  
 अस्थान्यस्य पीडय भुजानमस्य निर्जहि ॥ ७० ॥  
 सर्वास्याह्ना पर्वाणि वि श्रथय ॥ ७१ ॥  
 अक्षिरेन क्रव्यात् पृथिव्या रुदतां  
 उदोपतु वायुरन्तरिक्षान्महतो वरिष्णः ॥ ७२ ॥  
 सूर्य एनं दिवः प्र रुदतां न्योपतु ॥ ७३ ॥

॥ १८ ॥ ( अथर्व ० ४।३८।१-७ )

वादायणिः । १-४ अष्टराः, ५-७ ऋषयः । ( वाजिनीयान्  
 ऋषयः ) । अनुष्टुप्, ३ पदपदा द्वयवसाना अगती, ५ भुरि-  
 गचष्टिः, ६ मिष्टुप्, ७ पदवसाना पद्यपदानुष्टुप्गमं  
 पुरउपरिष्टाउउपोतिपती अगती ।

उद्भिन्वतां संजयन्तीमप्सरां साधुदेविनीम् ।  
 ग्लहे कृतानि कृष्णानामप्सरां तामिह हुये ॥ १ ॥  
 विनिन्वतीमांकिरन्तीमप्सरां साधुदेविनीम् ।  
 ग्लहे कृतानि कृष्णानामप्सरां तामिह हुये ॥ २ ॥  
 यार्यः परिवृत्यत्याददाना कृतं ग्लहात् ।  
 सा नः कृतानि संपत्ता प्रहामामोतु मायया ।  
 सा नः पर्यस्यत्येतु मा नो जैपुरिदं धनम् ॥ ३ ॥  
 या अक्षेपु प्रमोदन्ते शुचं क्रोधं नु विभ्रती ।  
 आनन्दिनी प्रमोदिनीमप्सरां तामिह हुये ॥ ४ ॥  
 सूर्यस्य रश्मीननु याः संचरन्ति  
 मतीवीर्या या अनुसंचरन्ति ।  
 यासामृषमो दूरतो वाजिनीयान्  
 सद्यः सर्वाहोकां पुर्यति रश्मिन् ।  
 स न पेनु होममिमं जुषाणः  
 अन्तरिक्षेण सह वाजिनीयान् ॥ ५ ॥  
 अन्तरिक्षेण सह वाजिनीयान्  
 कर्का वृन्सामिह रश्मि वाजिन् ।  
 इमे ते स्तोत्रा बहूना एषांवाद्  
 इयं ते कर्फीह ते मनोऽम्नु ॥ ६ ॥

अन्तरिक्षेण सह वाजिनीयन्  
कफी वत्सामिह रक्ष वाजिन् ।  
अयं घासो अयं यज इह घत्सां नि यधीमः ।  
यथानाम य ईदमहे स्वाहा ॥ ७ ॥

॥ १९ ॥ (अथर्व० १।४।१-२४)

ब्रह्मा । ऋषभः । त्रिष्टुप् । ८ भुक्तेः । ६, १०, २४ अथर्वी;  
११-१७, १९-२०, २३ अनुष्टुप् । १८ उपरिष्टाद्  
बृहती; २१ आस्तारपंक्तिः ।

साहस्रस्त्येष ऋषभः पर्यस्यान्  
विश्वो रूपाणि वक्षणांसु विशन्त ।  
भद्रं दात्रे यजमानाय शिक्षन्  
यार्हस्पत्य उन्नियस्तन्तुमास्तान्  
अपां यो अग्ने प्रतिमा बभूध  
प्रभूः सर्वस्वै पृथिवीयं देवी ।  
पिता वत्सानां पतिरुप्यानां  
साहस्रे पोपे अपि नः कृणोतु  
पुमानन्तर्धानस्यर्विरः पर्यस्यान्  
वस्रोः कर्षन्धमृपमो विमर्ति ।  
तमिन्द्राय पृथिभिर्द्वयानैः  
हुतमग्निर्वैहतु जातवैदाः  
पिता वत्सानां पतिरुप्यानां  
अथो पिता महतां गर्गराणाम् ।  
वस्तो जरायुं प्रतिधुक शीयूषं  
आमिक्षां घृतं तदस्य रेतः  
देवानां माग उपनाह एषः  
अपां रस ओपधीनां घृतस्य ।  
सोमस्य भक्षमघृणीत शक्रो  
बृहन्नद्रिरमपघच्छतीरम्  
सोमेन पूर्णं कुलदं विमर्ति  
त्यष्टां रूपाणां जनिता पशूनाम् ।  
शिवास्ते सन्तु प्रज्यन् इह या इमा  
न्युसाभ्यं स्वयिते यच्छ या अभुः

आज्यं विमर्ति घृतमस्य रेतः  
साहस्रः पोपस्तु यद्यमाहुः ।  
इन्द्रस्य रूपमृपमो यसानः  
सो भस्मान् देवाः शिव येतुं दत्तः ॥ ७ ॥  
इन्द्रस्यैजो वरुणस्य याद्व  
अभिनोरंसां मृतामियं ककुत् ।  
बृहस्पतिं संभृतमेतमाहुः  
ये धीरांसः कवयो ये मनीषिणः ॥ ८ ॥  
देवीर्विद्वाः पर्यस्याना तनोषि  
त्वामिन्द्रं त्वां सरस्वन्तमाहुः ।  
सहस्रं स एकमुया ददाति  
यो ब्राह्मण ऋषभमाजुहोति ॥ ९ ॥  
बृहस्पतिः सविता ते वयो दधौ  
त्वपुर्वायोः पर्यात्मा त आभृतः ।  
अन्तरिक्षे मनसा त्वा जुहोमि  
यर्हिष्टे धावापृथिवी उमे त्वाम् ॥ १० ॥  
य इन्द्र इष देवेषु गोवृतेति शिवावदत् ।  
तस्य ऋषभस्याङ्गानि ब्रह्मा सं स्तीतु भद्रया ११  
॥ ३ ॥  
प्राथ्वे आस्तामनुमत्या भगस्यात्तामनूवृजौ ।  
अग्नीवन्तावमधीन्मित्रो ममैतौ केवल्लविर्ति ॥ १२ ॥  
भसदासीवादित्यानां भ्राणी आस्तां बृहस्पते ।  
पुच्छं धातस्य देवस्य तेन धूनेत्योपधीः ॥ १३ ॥  
गुदा आसन्तिसनीवाल्पाः सूर्यायास्त्वचमब्रुवन् ।  
उत्थातुरब्रुवन् एद ऋषभं यदकल्पयन् ॥ १४ ॥  
क्रोह आसीजामिशंसस्य सोमस्य कुलशो धृतः ।  
देवाः संगत्य यत् सर्वं ऋषभं व्यकल्पयन् ॥ १५ ॥  
ते कुष्ठिकाः सुरमां ये कुमेभ्यो अदधुः शफान् ।  
ऊर्ध्वमस्य कीटेभ्यः श्वयुतेभ्यो अधारयन् ॥ १६ ॥  
शूक्राभ्यां रक्षं ऋषत्यवर्ति हन्ति चक्षुषा ।  
शृणोति भद्रं कर्णाभ्यां गवां यः पतिरुप्यः ॥ १७ ॥

शतपाजं स रजते नैनं दुन्वन्त्यग्रयः ।

जिन्वन्ति विभ्ये तं देवा

यो ब्राह्मण ऋषममाजुहोति ॥ १८ ॥

ब्राह्मणेभ्य ऋषमं दत्त्वा घरीयः कृणुते मनः ।

पुष्टिं सो अघ्न्याजं स्वे गोष्ठेऽयं पश्यते ॥ १९ ॥

गार्ग्यः सन्तु प्रजाः सन्त्ययौ अस्तु तनूयलम् ।

तत् सर्वमनु मन्यन्तां देवा ऋषमदायिनं ॥ २० ॥

अयं पिपां इन्द्र इन्द्रियं दधातु चेतनीम् ।

अयं धेनुं सुदुधां नित्यवत्सां

यशं बुध्नां विपश्चितं परो दिवः ॥ २१ ॥

पिशङ्गरूपो नमसो ययोधा

पेन्द्रः शुभ्रो विभ्वरूपो न आऽगन् ।

आयुरसम्यं दधत् प्रजां च

रायश्च पोष्यमि नः सचताम् ॥ २२ ॥

उपेक्षोर्पवर्चनासिन् गोष्ठे उपं पूञ्च नः ।

उपं ऋषमस्य यदेत उर्षेन्द्र तपं धीर्यम् ॥ २३ ॥

एतं यो युषानं प्रति दध्मो अत्र

तेन श्रीहन्तीध्वरत् यशं अनु ।

मा नो दासिष्ट जुन्यां सुभागा

रायश्च पोष्यमि नः सचध्यम् ॥ २४ ॥

॥ २० ॥ (अथर्व ० ६।८६।१-१)

अथर्व । एषः १ [ १ वषावः ] । अत्रुष्टम् ।

वृषेन्द्रस्य वृषां द्वयो वृषां पृथिव्या अयम् ।

युषा विभ्वस्य भूतस्य त्वमेकयुषो मय ॥ १ ॥

समुद्र ईदो ह्ययतामभिः पृथिव्या वृदी ।

चन्द्रमा नक्षत्राणामीदो त्वमेकयुषो मय ॥ २ ॥

सम्राट्स्यसुराणां ककुर्मनुष्याणाम् ।

देवानामयमागसि त्वमेकयुषो मय ॥ ३ ॥

॥ ११ ॥ ( साम ० ५२६ )

वामदेवो गोतमः । त्रिष्टम् ।

सहर्षमाः सहर्षसा उदैत

विभ्या रूपानि पिधन्तीद्रुग्नीः ।

उरुः पृथुरयं यो अस्तु लोक

इमा आपः सुप्रपाणा इह स्त

॥ १२ ॥

॥ १२ ॥ (अथर्व ० १।१०।१-५)

सविता । पशवः [ पशुवंशधनः ] । त्रिष्टम्, १ वषावः-  
दिवाह्वरी, ४ भुविगनुष्टम्, ५ अत्रुष्टम् ।

पह र्यन्तु पशवो ये परियुः

यायुर्येषां सदचारं जुजोषं ।

त्येषां येषां रूपधेयानि वेद

असिन् तान गोष्ठे संयिता नि र्यच्छतु ॥ १ ॥

इमं गोष्ठं पशवः सं र्ववन्तु

वृहस्पतिरा नयतु प्रजानम् ।

सिनीयाली नयत्वाम्रमेणं

आजग्मुषो अनुमते नि र्यच्छ ॥ २ ॥

सं सं र्ववन्तु पशवः समभ्याः समु पूर्वयाः ।

सं धान्यस्य या स्फुतिः

रक्षाम्येषां द्विषो जुहोमि ॥ ३ ॥

सं सिञ्चामि गवां क्षीरं समाग्येन घलं रसम् ।

संसिक्ता अस्माकं धीरा

धृषा गावो मयि गोपती ॥ ४ ॥

आ इरामि गवां क्षीरमादाय धान्यं रसम् ।

आहता अस्माकं धीरा आ पन्नीरिदमस्तकम् ॥ ५ ॥

॥ १३ ॥ (अथर्व ० १।१८।१-६)

प्रजा । यमिनो [ वसुतोषः ] । अत्रुष्टम्, १ अतिवृत्ति-  
गवां अत्रुष्टम्, ४ वषावः । १०।१८।१-६ । ५ विष्टम्,  
६ अत्रुष्टम्, ५ त्रिष्टम्, ६ विष्टम्, ५ अत्रुष्टम् ।

एकैकयैषा वृष्ट्या सं र्वभूय

यत्र गा बलजन्त भूवृत्तो विभ्वरूपाः ।

यत्र यिजायते यमिन्ययतुः

सा पशून् सिंघानि रिक्तानि वदन्ती ॥ १ ॥

युषा पशुन्तं सिंघाति कृष्याङ्गया प्यदरी ।

उतेनां प्रक्षेपं दद्यात् तथा स्थोना द्वाया र्व्यात् २



शिवा भव पुर्वेभ्यो गोभ्यो अर्धेभ्यः शिवा ।  
 शिवाऽसौ सर्वस्मै क्षेत्राय शिवा न हृदये ॥ ३ ॥  
 इह पुष्टिरिह रस इह सहस्रसातमा भव ।  
 पशून् यमिनि पोषय ॥ ४ ॥  
 यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति  
 विहाय रोगं तन्वः स्वायाः ।  
 तं लोकं यमिन्यभिसर्वभूव  
 सा नो मा हिंसीत् पुर्वपान् पशून् ॥ ५ ॥  
 यत्रा सुहार्दो सुकृतमग्निहोत्रदुतां यत्र लोकः ।  
 तं लोकं यमिन्यभिसर्वभूव  
 सा नो मा हिंसीत् पुर्वपान् पशून् ॥ ६ ॥  
 ॥ २४ ॥ [ ३१९-२१ ] (वा० य० ४।३३)  
 उक्तावेतं धूर्वाहौ युज्येयामनुभू  
 अवीरहणौ ब्रह्मचोर्दनौ ।  
 स्वस्ति यजमानस्य गृहान् गच्छतम् ॥ ३३ ॥  
 ॥ २५ ॥ (वा० य० १२।७३)  
 वि मुच्यभ्यमज्या देवयाना  
 अगन्तु तमसस्पारमस्य ।  
 उयोतिरापाम ॥ ७३ ॥  
 ॥ २६ ॥ (वा० य० ३५।१३)  
 अनुद्वाहमन्वारभामहे सौरभेयश्च्यस्तये ।  
 स न इन्द्र इव देवेभ्यो  
 यद्विः सन्तारणो भव ॥ १३ ॥  
 ॥ २७ ॥ (अथर्व० ४।११।१-१२)  
 अथर्विः । अनृवान्, इन्द्रः । अिष्टपुः, १, ४ जगती, २  
 शुरिक्, ७ अथर्वाना पटपदानुष्टुप्गमोपरिष्ठाज्जागतानि-  
 चृच्छती, ८-१२ अनुष्टुप् ।  
 अनुद्वाह दाधार पृथिवीमुत पां  
 अनुद्वाह दाधारोयं नृतरिक्षम् ।  
 अनुद्वाह दाधार प्रविद्राः पशुर्वाः  
 अनुद्वाह विभ्यं भुयंनमा विवेश  
 अनुद्वाहिनद्रः स पशुभ्यो वि चरे  
 त्रयां एभो वि मिमीते धर्षयन् ।

भुतं भविष्यदुर्वना दुहान्  
 सर्वा देवानां चरति मृतानि ॥ २ ॥  
 इन्द्रो जातो भुव्येष्वन्तः  
 धर्मस्ततश्चरति शोशुचानः ।  
 सुप्रजाः सन्तस् उदारे न सर्पत्  
 यो नाश्रीयार्दनदुहो विज्ञानम् ॥ ३ ॥  
 अनुद्वाह दुहे सुकृतस्य लोके  
 पेनं व्याययति पर्वमानः पुरस्तात् ।  
 पर्जन्यो धारां मरुत ऊधो अस्य  
 यज्ञः पयो दक्षिणा वोहो अस्य ॥ ४ ॥  
 यस्य नेत्रो यज्ञपतिर्न यज्ञो  
 नास्य दातेशे न प्रतिमहीता ।  
 यो विश्वजिह्विष्वधृदिष्वकर्म  
 धर्मं नो मृत यतमश्नुष्यात् ॥ ५ ॥  
 येन देवाः स्वराच्युहुः  
 हित्वा शरीरममृतस्य नाभिम् ।  
 तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं  
 धर्मस्य मृतेन तर्पसा यज्ञस्यवः ॥ ६ ॥  
 इन्द्रो रूपेणाग्निर्वहेन प्रजापतिः परमेष्ठी विराट् ।  
 विश्वानरे अक्रमत वैश्वानरे अक्रमतानुद्वाहकमत ।  
 सोऽहं हयत् सोऽधारयत ॥ ७ ॥  
 मध्यमेतर्दनदुहो यत्रैव वह आहितः ।  
 एतार्कदस्य प्राचीनं यावान् प्रत्यङ् समाहितः ॥ ८ ॥  
 यो वेदानुद्वाहो दोहान्सप्तानुपदस्वतः ।  
 प्रजां च लोकं चाप्नोति तथा सप्तश्रुपयो विदुः ९  
 पद्भिः सेदिमवक्रामभिरां जङ्घामिच्छिदन् ।  
 अग्नेणानुद्वाहं कीलालं कीनार्शश्चामि गच्छतः १०  
 द्वादश वा एता रात्रीर्धत्वा आहुः प्रजापतेः ।  
 तत्रोप ब्रह्म यो वेद तत्रा अनुद्वाहो मृतम् ॥ ११ ॥  
 दुहे सायं दुहे प्रातर्दुहे मध्यंदिनं परि ।  
 दोहा ये अस्य संयन्ति तान् विज्ञानुपदस्वतः १२  
 (५४६६)



पौषण-विभागः  
पौषणमंत्री अन्नमंत्री च

पूषा

॥ १ ॥ ( ऋ० १।२३।१३-१५ )

मेघातिथि कण्वः । गायत्री ।

आ पूषञ्चित्रवर्हिपुमाधृणे ध्रुवर्णे दिवः ।

आजां नष्टं यथा पृथुम् ॥ १३ ॥

पुषा राजानमाधृणिरपगूळहं गुहां हितम् ।

अविन्दश्चित्रवर्हिपम् ॥ १४ ॥

उतो स मद्यामिर्दुमिः पङ् युक्तां अनुसेपिषत् ।

गोमिर्येषं न चर्क्रेपत् ॥ १५ ॥

॥ २ ॥ ( ऋ० १।४२।१-१० )

कण्वो घौरः । गायत्री ।

सं पूषन्नर्घ्यनस्तिर व्यहो विमुचो नपात् ।

सद्वा देव ॥ णस्फुरः ॥ १ ॥

यो नः पूषन्नघो वृको दुःशेवं आदिदेवसि ।

अप स्म तं पुयो र्जहि ॥ २ ॥

अप त्वं परिपन्थिनं सुपीषाणं हुरक्षितम् ।

दुरमर्थिं सुतेरज ॥ ३ ॥

त्वं तस्य द्रवायिनोऽर्घशंसस्य कस्यचित् ।

पदामि तैष्ठ तपुपिम् ॥ ४ ॥

आ तत् तं दन्न मन्तुमः पूषन्नघो वृणीमहे ।

येन पितृनर्चोदयः ॥ ५ ॥

अघा नो विश्वसौमग हिरण्यवाशीमत्तम ।

धनानि सुपर्णां कृधि ॥ ६ ॥

अति नः सुध्रुवो नय सुगा नः सुपर्णां कृणु ।

पूषन्निह कर्तुं विदः ॥ ७ ॥

अभि सुयवसं नय न नैवज्जारो अर्घवे ।

पूषन्निह कर्तुं विदः ॥ ८ ॥

शन्धिं पुधि प्रयसि च शिशीहि प्रास्युर्दरम् ।

पूषन्निह कर्तुं विदः ॥ ९ ॥

न पुर्षणं मेयामसि सुकैरभि वृणीमसि ।

वसूनि दस्ममीमहे ॥ १० ॥

॥ ३ ॥ ( ऋ० १।८९।५ )

गोतमो राहुण्यः । जगती ।

तमीशानं जगतस्तस्युपस्पतिं

धियंजिन्वमर्षसे ह्रमहे वयम् ।

पुषा नो यथा वेदं सामसं हृषे

रभिता प्रायुरदग्धः स्वस्त्यै ॥ ५ ॥

(५४८०)

॥ ४ ॥ ( अ० १।१०६।४ )

कुम्भ आभिषेकः । जयती ।

नराशंसं वाजिनं वाजयन्निह  
क्षयहीरं पूषणं सुमैरिमहे ।  
रथं न दुर्गाद् वसन्तः सु दानवो  
विश्वस्माधो अहंसो निष्पिपर्तन

॥ ५ ॥ ( अ० १।११८।१-४ )

परच्छेदो देवादाधिः । अत्याधिः ।

प्रमं पूषणस्तुयिजातस्य शस्यते  
महिष्वमस्य त्वत्सो न तन्दते  
स्ताम्रमस्य न तन्दते ।  
अर्चामि सुमनयन्नहमत्यति मयोभुवम् ।  
विश्वस्य यो मन आयुयुषे मन्त्रो  
देव आयुयुषे मन्त्रः  
प्र हि त्वा पूषन्निजिर् न यामनि  
स्तोमैभिः कृष्य ऋणवो यथा मृधः  
उष्ट्रो न पीपरो मृधः ।  
हुये यत् त्वा मयोभुवं देवं सुष्याय मर्त्यैः ।  
अस्माकमांगुषान् घृन्मिनस्त्तुधि  
पाजेषु घृन्मिनस्त्तुधि  
यस्य ते पूषन् सुष्ये विपुम्ययः  
प्ररथा वित्तगतोऽयंसा घुमुजिरे  
इति कर्त्वा घुमुजिरे ।  
तामनु त्वा नवीपती नियुतं राय ईमहे ।  
अर्दलमान उरशंस सरी मय  
पाजेषाजे सरी मय  
सम्या ऊ पु ण उषं तातयं भूयो  
अर्दलमानो रतिवां अजादय  
धयस्यतामजादय ।  
धो पु रवां यदृतीमहि  
स्तोमैर्मिदंसा ताधुमिः ।  
नदि र्वा पूषन्निमग्यं धापूजे  
न नै रायवमेपहृये

॥ ६ ॥ ( अ० १।११७-९ )

गाथिनो विश्वामित्रः । गायत्री ।

इयं ते पूषन्नाघृणे सुपुतिर्देव नव्यसी  
अस्मामिस्तुभ्यं शस्यते ॥ ७ ॥  
तां जुषस्व गिरं मम वाजयन्तीमवा धियम् ।  
वधूयुरिषं योर्यणाम् ॥ ८ ॥  
यो विश्वामि विपश्यति भुवना सं पश्यति ।  
स नः पूषाविता भुवत् ॥ ९ ॥  
॥ ७ ॥ ( अ० १।१८।१६-१९ )  
संयुर्वाहस्परयः ( तुणवाभिः ) । १६ ककुपः १७ उतोवृहती ।  
१८ पर वणिक् १९ वृहती ।

आ मां पूषन्नुप द्रव  
शंसिपं तु ते अपिकुर्ण आघृणे ।  
अघा भयो अरांतयः ॥ ११ ॥  
मा काकम्भीरुम्द वृहो वनस्पति  
अशस्तीर्वि हि नीनशः ।  
मोत सरो अहं एवा चन  
ग्रीवा आदधते वैः ॥ १७ ॥  
इतैरिव तेऽयूकमस्तु सुष्यम् ।  
अन्तिउद्रस्य वधून्वतः सुपूर्णस्य वधून्वतः ॥ १८ ॥  
परो हि मर्त्येयसि समो वेधेदत धिता ।  
अभिष्यः पूषन् घृत्तनासु नृस्यं  
अर्वा नूनं यथा पुरा ॥ १९ ॥

॥ ८ ॥ ( अ० १।१९।८ )

आभिषा भारद्वाजः । त्रिष्टुप् ।

॥ ३ ॥ पथस्पथः परिपति यच्चस्या  
कार्मेन कृतो अभ्यान्तुर्वम् ।  
स नो रासच्छुष्यंश्चन्द्राग्रा  
धिर्यधियं सीपधाति ॥ पूषा ॥ ८ ॥  
॥ ९ ॥ अ० १।१९।१-१० )  
वाहंरवो भारद्वाजः । गायत्री; ८ अनुष्टुप् ।  
ययमुं त्वा पथस्पते रथं न याजंतातये ।  
॥ ४ ॥ धिये पूषन्नुजमदि ॥ १ ॥  
( ५४९४ )

अमि नो नयं वसु वीरं प्रयतदक्षिणम् ।  
 वामं गृह्यति नय ॥ २ ॥  
 अदित्सन्तं चिदाघृणे पून दानाय चोदय ।  
 पुणेक्षिद् वि घ्नता मनः ॥ ३ ॥  
 वि पथो वाजसातये चिनुहि वि मृधो जहि ।  
 सार्धन्तामुग्र नो धियः ॥ ४ ॥  
 परि नृन्धि पणीनामारया हृदया कवे ।  
 अयमस्मभ्यं रघय ॥ ५ ॥  
 वि पूषन्नारया तुद पुणेरेच्छ हृदि प्रियम् ।  
 अयमस्मभ्यं रघय ॥ ६ ॥  
 आ रिल किकिरा कृणु पणीनां हृदया कवे ।  
 अयमस्मभ्यं रघय ॥ ७ ॥  
 यां पूषन् ब्रह्मचोदनी मायं विमर्ष्याघृणे ।  
 तया समस्य हृदय मा रिल किकिरा कृणु ॥ ८ ॥  
 या ते अष्टा गोमोपदा ऽऽघृणे पशुसार्धनी ।  
 तस्यास्ते सुम्नमीमहे ॥ ९ ॥  
 उत नो गोपणि विर्यमद्वसां वाजसामुत ।  
 नृषत् कृणुहि वीतये ॥ १० ॥  
 ॥ १० ॥ (श्र० ६।५।१-१०)  
 बार्हस्पत्यो भारद्वाजः । गायत्री ।  
 सं पूषन् विदुषां नय यो अंजसानुशासति ।  
 य एवेदमिति ध्रुवत् ॥ १ ॥  
 ससु पूष्णा गमेमहि यो गृहो अमिदासति ।  
 इम एवेति च प्रयत् ॥ २ ॥  
 पूष्णाभ्यं न रिप्यति न कोशोऽयं पयते  
 नो अस्य व्ययते पयिः ॥ ३ ॥  
 यो असं हविषाविघ्नं तं पूषार्थि मृष्यते ।  
 प्रयमो विन्वते घृत् ॥ ४ ॥  
 पूषा गा अन्वेतु नः पूषा रक्षत्वर्थतः ।  
 पूषा धार्जं सनोतु नः ॥ ५ ॥

पूषन्नु प्र गा र्हि यजेमानस्य सुन्यतः ।  
 अस्माकं स्तुवतामुत ॥ ६ ॥  
 मार्किंश्शुन्मार्की रिपुन्मार्की सं शारि केवरे ।  
 अयारिष्टामिरा गंहि ॥ ७ ॥  
 दूषन्तं पूषणं वयमिष्यमनंवेदसम् ।  
 ईशानं राय ईमहे ॥ ८ ॥  
 पूषन् तव वृते वयं न रिप्येम कदा घ्नत ।  
 स्तोतारस्त इह संसि ॥ ९ ॥  
 परि पूषा पुरस्तादस्तं दधातु दक्षिणम् ।  
 पुनर्नो नष्टमार्जतु ॥ १० ॥  
 ॥ ११ ॥ (श्र० ६।५।१-६)  
 बार्हस्पत्यो भारद्वाजः । गायत्री ।  
 एहि वां विमृचो नया दाघृणे सं संचावहे ।  
 रयीर्भुतस्य नो मय ॥ १ ॥  
 रयीर्भुतं कुपदिन् मीशानं राधसो मुहः ।  
 रायः सखायमीमहे ॥ २ ॥  
 रायो धारास्याघृणे वसो राशिरजाश्व ।  
 धीवतोधीवतः सखा ॥ ३ ॥  
 पूषणं न्वृजाद्यमुप स्तोषाम धाजिनम् ।  
 स्वसुर्यो जार उच्यते ॥ ४ ॥  
 मातुर्दिधिपुमंश्वं स्वसुर्जोरः शृणोतु नः ।  
 भ्रातेर्द्रस्य सखा मम ॥ ५ ॥  
 आज्ञासः पूषणं रथं निशुम्नास्ते जन्धिरयम् ।  
 देवं बहन्तु पिघ्नतः ॥ ६ ॥  
 ॥ ११ ॥ (श्र० ६।५।१-६)  
 बार्हस्पत्यो भारद्वाजः । गायत्री । अनुष्टुप् ।  
 य धनमादिदेवति करम्मादिति पूषणम् ।  
 न तेन देव आदिर्न ॥ १ ॥  
 उत या स रयीर्भुतः सग्या सरपतिर्युजा ।  
 रथो यूपार्णि जिघ्नते ॥ २ ॥

उतादः पश्ये गवि सूरध्वक् हिंरण्यम् ।

न्यैरयद् रथीतमः

॥ ३ ॥

यद्य त्वा पुरुषुत प्रयाम दक्ष मन्तुमः ।

तत् सु नो नमः साधय

॥ ४ ॥

इमं च नो गवेपणं सातये सीपघो गणम् ।

आरारूपन्नसि भुतः

॥ ५ ॥

आ ते स्वस्तिमीमह आरे अघामुपांचसुम् ।

अघा च सर्वतोतये श्वश्रे सर्वतोतये

॥ ६ ॥

॥ ११ ॥ ( ऋ० ६।५८।१-४ )

बाह्वरयो भरद्वाजः । त्रिष्टुप् ; २ जगती ।

शुक्लं ते अन्यत् यजतं ते अन्यत्

विपुरुषे बह्वेनौ शौरिवांसि ।

विश्व्या हि माया अघसि स्वधायो

भद्रा ते पृथग्निह रतिरस्तु

॥ १ ॥

अजाश्वः पशूपा वाजस्वत्यो

धियजिन्वो भुवने विश्वे अर्धितः ।

भर्गो पूषा शिथिरामुदरीधृजत्

संचक्षाणो भुवना देव ईषते

यास्तं पूषाघो अन्तः संमुद्रे

हिंरण्ययोरुत्तरिक्षे चरन्ति ।

ताभिर्षोसि दुत्यां सूर्यस्य

कामेन कृतं श्रयं इच्छमानः

पूषा सुयन्धुर्दिव आ पृथिव्या

इच्छस्पतिर्मघया हस्मर्वाचः ।

ये देवासो अर्द्धुः सूर्यायै

कामेन कृतं नृपसं स्वधम्

॥ १४ ॥ ( ऋ० १०।१७।३-५ )

देवधवा सामाग्नः । त्रिष्टुप् ।

पूषा स्येतद्रूपोपयत् प्र विष्टान्

अनेष्टपनुर्भुवनस्य गोपाः ।

न संपेत्यः परिर ददन् पितृभ्यो

भित्तुचर्यः सुविद्विचर्यभ्यः

आयुर्विश्वायुः परि वासति त्वा

पूषा त्वा यातु प्रपथे पुरस्तात् ।

यत्रासते सुकृतो यत्र ते ययुः

तत्र त्वा देवः संविता दधातु

पुषेमा आशा अमुं वेद सर्वाः

सो अस्मां अमयतमेन नेपत् ।

स्वस्तिवा आर्धणिः सर्ववीरो

अम्रयुच्छन् पुर पंतु प्रजानन्

प्रपथे पृथामजनिष्ट पूषा

प्रपथे त्रिवः प्रपथे पृथिव्याः ।

उमे अमि प्रियतमे सुधस्ये

आ च परा च चरति प्रजानन्

॥ १५ ॥ ( ऋ० १०।१६।१-९ )

ऐन्द्रो विमदः, प्राजापत्यो वा, वासुको वसुहवा ।

अनुष्टुप् ; १, ४ जगिह् ।

प्र हाच्छा मनीषाः स्वाहा यस्मि नियुतः ।

प्र वृक्षा नियुदयः पूषा अविष्टु माहिनः

यस्य स्वमंहित्वं वाताप्यमयं जनः ।

विप्र आ वंसदीतिमि—अधकैत सुष्टुतीनाम् ॥ २ ॥

स वेद सुष्टुतीना—मिन्दुर्न पूषा कृपा ।

अमि प्सरः प्रपायति मजं न आ प्रपायति ॥ ३ ॥

मंसीमहि त्वा ध्यमस्माकं देव पूषन् ।

मतीनां च सार्धेन विर्माणां चाध्वयम्

प्रत्यधियज्ञानां—मभवह्यो रथानाम् ।

अग्निः स यो मनुहितो विमस्य पाययस्तुलः ॥ ५ ॥

आधीर्पमाणायाः पतिः शुचायाश्च शुचस्य च ।

यास्तोपायोऽधीना—मा यासांसि ममैजत् ॥ ६ ॥

इनो यार्जानां पतिः—दिनः पुष्टिनां सखा ।

प्र इमं हयतो ईधोय वि वृथा यो अदाभ्यः ॥ ७ ॥

आ ते रयस्य पूष—मृजा भुरं पश्यतुः ।

विश्वस्याधिनाः सखा सनोजा अनपष्टपुतः ॥ ८ ॥

अस्माकमुजा रयं पूया अविष्टुः माहिनः ।  
 मुखद्वार्जानां वृध इमं नः शृण्वद्भवम् ॥ ९ ॥  
 ॥ १६ ॥ (यजु० १०३२)  
 पूया पंचाक्षरेण पंच दिश उर्वजयन्ता उर्जयम् ३२  
 ॥ १७ ॥ (यजु० १०११)  
 पूयो स्वाहा ॥ ५ ॥  
 ॥ १८ ॥ (यजु० १११०)  
 पूयो नरं धियाय स्वाहा ॥ २० ॥  
 ॥ १९ ॥ (यजु० २५५, ७)  
 पूयो नवमी ॥ ५ ॥  
 पूयणं वनिष्ठुना ॥ ७ ॥  
 ॥ २० ॥ (यजु० १११०)  
 ब्राह्मणासः पितरः सोम्यासः  
 शिवे नो धार्यापृथिवी अनेहसा ।  
 पूया नः पातु दुरिताहतापृथो  
 रक्षा मार्किनो अघराष्टस ईशत ॥ ४७ ॥  
 ॥ २१ ॥ (यजु० १४४१, ४२)  
 पूयन् तव्यं व्रते ध्यं न रिष्येम् कदाचन ।  
 स्तोतारस्त इह संसि ॥ ४१ ॥  
 पूयस्वपुः परिपाति यच्चस्या  
 कामेन श्रुतो अभ्यानङ्कम् ।  
 स नो रासच्छुष्यश्चन्द्राग्रा  
 धिर्यधियश्च सीपधाति प्र पूया ॥ ४२ ॥  
 ॥ २२ ॥ (यजु० १८३, १५)  
 पूयाऽसि धर्मार्यं दीप्य ॥ ३ ॥  
 स्वाहा पूयो शरसे ॥ १५ ॥  
 ॥ २३ ॥ (अथर्व० ५।११३।१-३)  
 अथर्व। त्रिष्टुप्ः १ वंशिः ।  
 विते देया अमृततैतदेनः  
 वित पंनमनुष्येषु ममृजे ।  
 ततो यदि त्या ग्राहिरानशे  
 तां ते देया ब्रह्मणा नाशयन्तु ॥ १ ॥

मरीचीर्धुमान् प्र विशानु पाप्मन्  
 उदारान् गच्छेत वा नीहारान् ।  
 नदीनां फेनां अनु तान्वि नश्य  
 भूणमि पूपनुरितानि मृश्य ॥ २ ॥  
 द्वादशधा निर्हितं त्रितस्य  
 अर्पमृष्टं मनुष्यैरुसानि ।  
 ततो यदि त्या ग्राहिरानशे  
 तां ते देया ब्रह्मणा नाशयन्तु ॥ ३ ॥  
 ॥ ४४ ॥ (अथर्व० ७।१।१-४)  
 तवरेष्वप्रवः । त्रिष्टुप्ः ३ त्रिपदा आर्षो गाथरी, ४ अनुष्टुप्  
 प्रपथे पथार्थमजनिष्ट पूया  
 प्रपथे दिवः प्रपथे पृथिव्याः ।  
 उमे अमि प्रियतमे सुधस्ये  
 आ च परा च चरति प्रज्ञानम् ॥ १ ॥  
 पूयेमा आशा अनु वेद सग्याः  
 सो अस्मां अमयतमेन नेपत् ।  
 स्यस्तिदा आर्घ्याणिः सर्ववीरः  
 अमपुच्छन् पुर पतु प्रज्ञानम् ॥ २ ॥  
 पूयन्तव्यं व्रते ध्यं न रिष्येम् कदाचन ।  
 स्तोतारस्त इह संसि ॥ ३ ॥  
 परि पूया पुरस्तादस्तं दधातु दक्षिणम् ।  
 पुनर्नो नष्टमाजतु सं नष्टेन गमेमहि ॥ ४ ॥  
 ॥ २५ ॥ (अथर्व० १४।१।३९)  
 सर्वासावित्री । त्रिष्टुप् ।  
 आस्यं ब्राह्मणाः स्नपनीर्हन्तु  
 अवीरजीवदञ्जन्त्यापः ।  
 अर्यम्णो अग्निं पर्येतु पूयन्  
 प्रतीक्षन्ते श्वदुरो देयरथ ॥ ३९ ॥  
 ॥ २६ ॥ (अथर्व० १४।१।३८)  
 तां पृषञ्जितयतेमामेरयस्य  
 यस्यां बीजं मनुष्याः वर्पन्ति ।  
 या न ऊरु उदाती विध्रपानि  
 यस्यामुशन्तेः प्रहरेम शेषः ॥ ३८ ॥  
 (५१९)

## सहचारी-देवगणः

(१) इन्द्रायुधहस्पतिमिश्राग्निपूषन्मगादित्यमरुतः ।

॥ १७ ॥ ( ऋ० १।१४।३ )

मेधातिथिः काण्वः । यागश्री ।

इन्द्रायुध हृहस्पतिं मिश्राग्निं पूषणं अगम् ।

आदित्यान् मरुतं गुणम् ॥ ३ ॥

( २ ) इन्द्रमरुतपूषन्मगाः

॥ २८ ॥ ( ऋ० १।२०।४-५ )

वि नः पथः सुविताय चियन्निधन्ना मरुतः ।

पूषा भगो वरुणासः ॥ ४ ॥

( ३ ) पूषन्विष्णु

उत नो धियो गोर्धमाः पूषन् विष्णवेवयावः ।

कर्ता नः स्वस्तिमरुतः ॥ ५ ॥

( ४ ) त्वष्ट्रीलामगवृहद्दिश्वरोदसीपूषन्नभिनाः ।

॥ २९ ॥ ( ऋ० २।३१।४ )

गृध्रमदः ( आगिरसः शौनहोत्रः पश्चात् ) आर्गवः शौनकः ।  
जगती ।

उत स्य वेधो भुवन्स्य सक्षणिः

त्वष्टामाभिः सजोपा जज्ञुवद् रथम् ।

इल्ल भगौ वृहद्दिशोत रोदसी

पूषा पुरंधिर्भिवनायथा पती ॥ ४ ॥

( ५ ) ब्राह्मणपितृसोमघायापृथिवीपूषाणः ।

॥ ३० ॥ ( ऋ० ६।७।१० )

पायुर्माहात्रः । जगती ।

ब्राह्मणासुः पितरः सोम्यासः

शिथे नो घायापृथिवी अनेहसा ।

पूषा नः पात दुरितादृतावृधे

रक्षा मार्किनो अघशंस ईशत ॥ १० ॥

( ६ ) पृथिवीदण्यन्तरिक्षसोमपूषपथ्यास्वस्तयः ।

॥ ३१ ॥ ( ऋ० १०।१९।७ )

वयुः प्रुतवयुर्ब्रह्मवयुर्गोपायनः । अश्विपू ।

पुनर्नो मरुतं पृथिवी वंदातु

पुनर्पृथिवी पुनर्गतरिक्षम् ।

पुनर्नः सोमस्तन्मै वंदातु

पुनः पूषा पृथ्यां वा स्वस्तिः ॥ ७ ॥

( ७ ) अर्यमा पूषा वृहस्पतिः ।

॥ ३१ ॥ ( वा० य० ९।१९ )

प्र नो यच्छत्वर्यमा प्र पूषा प्र वृहस्पतिः ।

प्र वाग्देवी वंदातु नः स्वाहा ॥ २९ ॥

( ८ ) मित्रवरुणोद्गपूषन्मजोपधयः ।

॥ ३१ ॥ ( वा० य० १२।७१ )

कामं कामदुधे धुस्व मित्राय वरुणाय च ।

इन्द्रायाम्बिभ्यां पूषणे प्रजाभ्य ओषधीभ्यः ॥ ७२ ॥

( ९ ) उषावायुपूषाणः ।

॥ ३३ ॥ ( वा० य० ३३।४४, ४८, ४९ )

प्र वाग्देवे सुप्रया वहिरेपां

आ विश्वतीं ब्रुवतीं ह्यते ।

विशामकोरुपसः पुर्वहृतौ

वायुः पूषा स्वस्तये नियुत्वान् ॥ ४४ ॥

( १० ) अग्नीन्द्रवरुणमित्रमरुतविष्णुर्गृध्रपूषावभग-

सरस्वत्यः ।

अह्न इन्द्र वरुण मित्र देवाः

शर्धेः प्र यन्त मरुतोत विष्णो ।

उभा नासत्या रुद्रो बंधे माः

पूषा भगः सरस्वती जुपन्त ॥ ४८ ॥

( ११ ) इन्द्राग्निपूषादयः ।

इन्द्राग्नी मित्रावरुणादिति ॐ स्यः

पृथिवीं धां मरुतः पृथितोर् अयः ।

हुवे विष्णुं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं

मगं जु शर्धेसं सवितामृतये ॥ ४९ ॥

(५५७१)

(१२) अस्मिन्द्रूपयन्वरुणमिभ्राग्न्यादित्यविश्वेदेवाः ।

॥ ३१ ॥ (अथर्व० १।१०।१)  
अथर्वः । त्रिष्टुप् ।

अस्मिन्वसु वसंतो धारयन्तु  
इन्द्रः पूपा वरुणो मित्रो अग्निः ।  
इममादित्या उत विश्वे च देवाः  
उत्तरस्मिन्ज्योतिर्वि धारयन्तु ॥ १ ॥

(१३) पूपा, अर्यमा, वेधाः  
॥ ३७ ॥ (अथर्व० १।११।१)  
अथर्वः । वंकिः ।

वर्षट् से पूषन्नस्मिन्सूतौ  
अर्यमा होता रुणोतु वेधाः ।  
सिर्षतां नार्यतप्रजाता  
यि पर्षाणि जिहतां सूतवा उ ॥ १ ॥

(१४) अर्यमा, पूपा, बृहस्पतिः, इन्द्रः ।  
॥ ३८ ॥ (अथर्व० १।१४।१)  
महा । अनुष्टुप् ।

सं वेः वृजत्वर्षमा सं पूपा सं बृहस्पतिः ।  
समिन्द्रो यो धनंजयो मरियं पुष्यतु तद्रसं ॥ २ ॥

(१५) अर्यमपूषण्वृहस्पतयः ।  
॥ ३९ ॥ (अथर्व० ५।१८।११)  
अथर्वः । कृष्णमन्त्रः ।

आ त्वा वृजत्वर्षमा पूपा बृहस्पतिः ।  
अर्हर्जातस्य यन्नाम तेन त्वारि वृतामसि ॥ १२ ॥

(१६) इन्द्रापूषणौ, अदितिः, मरुतः, अपानपाष्, सिन्धधः, विष्णुः, धौः ।  
॥ ४० ॥ (अथर्व० ६।३।१)  
अथर्वः । पञ्चाङ्गुली ।

पातं न इन्द्रापूषणादितिः पातुं मरुतः ।  
अपानं नपात्सिन्धधः सुत पातन  
पातुं नो विष्णुं धौः ॥ १ ॥

(१७) सवितृघातपूषन्वष्टारः ।

॥ ४१ ॥ (अथर्व० १।१६।३)  
बान्तातिः । अनुष्टुप् ।

ग्रमो देवं सवितारं घातारमुत पूषणम् ।  
त्वष्टारमभ्रियं ग्रमस्ते नो मुञ्चन्वहंसः ॥ ३ ॥

(१८) पूषन्मरुदातुसवितारः ।  
॥ ४२ ॥ (अथर्व० १।१७।३)  
सूर्या वा देवी । त्रिष्टुप् ।

इमं गावः प्रजया सं विंशाय  
अयं देवानां न मिनति भागम् ।  
अस्मै वः पूपा मरुतश्च सर्वे  
अस्मै वो घाता सविता सुपाति ॥ ३३ ॥

(१९) अग्निसोमपूषाणः ।  
॥ ४३ ॥ (अथर्व० १।१९।२)  
वयः । आर्वा उक्थिक् ।

तत्रमिदां तद् सोमं आह  
पूपा मां घात सुकृतस्य लोके ॥ २ ॥

(२०) अदितिमरुद्विष्णुपूपावाययः ।  
॥ ४४ ॥ (अथर्व० १।२०।१)  
विश्वः । त्रिष्टुप् ।

शं नो अदितिर्मपतु मृतेभिः  
शं नो मयन्तु मरुतः स्वकाः ।  
शं नो विष्णुः शम्पु पूपा नो मस्तु  
शं नो आधिश्च शम्पस्तु यायुः ॥ ९ ॥

(२१) पूपा इन्द्राग्नी इति जानावेधताः ।  
॥ ४५ ॥ (अथर्व० १।२१।१)  
अथर्वः । त्रिष्टुप् ।

अपू न्यधुः पौरवेयं वृधं यं  
इन्द्राग्नी घाता सविता बृहस्पतिः ।  
सोमो राजा वरुणो अभिना  
यमः पूपास्त्राण्वरिपातु मृत्योः ॥ १ ॥





अर्थ-विभाग

अर्थमंत्री

भगः ।

॥ १ ॥ (अ० १।२४।४, ५)

आर्जुनः। धुनः। रोपः। सः। कृत्रिमो वैद्यमित्रो देवरातः।  
गायत्री ।

यश्चिच्छि तं हृत्था भगः। शशमानः। पुरा निदः ।

अद्वेपो हस्तयोर्वधे ॥ ४ ॥

भगमक्तस्य ते ध्यसुर्वशे। तवायंसा ।

मूर्धनं राय आरमे ॥ ५ ॥

॥ १ ॥ (अ० ७।४१।२-६)

मैत्रावरुणवंसिष्ठः । त्रिष्टुप् ।

प्रातर्जितं भगमुग्रं हृथेम

धुयं पुत्रमदितेयो विधुता ।

आधश्चिद् यं मर्त्यमानस्तुरक्षिद्

राजा चिद् यं भगं भक्षीत्याहं ॥ २ ॥

भगः प्रजेतभगं सत्यराधो

भगेमां धियमुर्ध्वा ददन्नः ।

भग प्र जो जनय गोमिरथैः

भग प्र नृमिर्नृवर्तः स्याम

उतेदानीं भगवन्तः स्याम

उत प्रपित्य उत मध्ये अह्नाम् ।

उतोदिता मघयग्वर्षस्य

धुयं देवानां नुमती स्याम

भग एव भगवाँ अस्तु देवाः

तेन धुयं भगवन्तः स्याम ।

तं त्वां भग सर्व इजोहवीति

स नो भग पुर पृता भवेद् ॥ ५ ॥

समंश्चरायोपसौ नमन्त

दधिकारैश्च सुचयं पृदाय ।

अर्वाचीनं वंसुविवं भगं नो

रथमिवाधो धाजिन आ यदहन्तु ॥ ६ ॥

॥ ३ ॥ (चा० य० १०।५)

भगाय स्वाहा

॥ ५ ॥

॥ ४ ॥ (अथर्व० २।३६।७)

पतिवेदमः । अनुष्टुप् ।

इदं हिरण्यं गुलुल्ययमौक्षो अथो भगः ।

पते पतिभ्यस्त्यामदुः प्रतिकामाय धेस्तये ॥ ७ ॥

॥ ५ ॥ (अथर्व० ५।१६।९)

महा । त्रिपदा विपीलिक मय्या पुर वणिक् ।

भगो युनक्त्याशियो न्व।स्मा

अस्मिन्यधे प्रविद्वान्युनक्तु सुपुजः स्वाहा ॥ ९ ॥

॥ ६ ॥ (अथर्व० ६।१२९।१-३)

अथवाजिरः । अनुष्टुप् ।

भगेन मा शांशयेनं साकमिन्द्रेण मेदिना ।

॥ ४ ॥  
छणोर्मि भगिनं मायं द्रान्यरातयः ॥ १ ॥  
(५५९।)

येन वृक्षां अभ्यर्च्यो भगेन वर्चसा सह  
तेन मा भगिर्न कृण्वपे द्रान्ववर्तयः ॥ २ ॥  
यो अग्नो यः पुनः सरो भगो वृक्षेऽप्यार्हितः ।  
तेन मा भगिर्न कृण्वपे द्रान्ववर्तयः ॥ ३ ॥

॥ ७ ॥ ( अथर्व० १९/४५/१ )

यष्टा । एकावसाना महावृहती ( निवृद्ध ) ।

भगो मा भगेनावतु प्राणायानायायुषे  
वर्चसु ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभृतये स्वाहा ॥ ९ ॥

### सहचारी-देवगणः

( १ ) सविता- उपसु- अभिद्र- भग- अन्नयः ।

॥ ८ ॥ ( ऋ० १/४५/८ )

प्रदन्वः दान्वः । प्राणः=विषमा बृहत्या, धमा धतोवृहत्याः ।

सविताऽमुपसुमभिना भगं

अग्निं व्युष्टिषु क्षपेः ।

कण्वांसस्वा सुतलोमास इन्धते

दृष्यवाहं स्वध्वर

॥ ८ ॥

( २ ) भगमिश्रादित्यर्मन्वरुणलोमाभिनादयः ।

॥ ९ ॥ ( ऋ० १/८९/९ )

गेतमो दाहृणः । अगती ।

तान् पूर्वया निधिदा ह्रमहे धयं

भगं मित्रमर्दिति वक्षेममिधमम् ।

अर्यमणं वरुणं सोममभिना

सरस्वती नः सुभगा मर्यस्करत्

॥ ३ ॥

( ३ ) मित्रार्यमन्मगाः ।

॥ १० ॥ ( ऋ० १/२७/१ )

कुमो गार्धमदो राधमदो वा । त्रिष्टुप् ।

इमा गिरि आदित्येभ्यो घृतस्नुः

सनाद् राजभ्यो जुडां जुहोमि ।

दुणोतु मित्रो अर्यमा भगो नः

सुयिज्ञातो वरुणो दक्षो अंशः

॥ १ ॥

( ४ ) मित्रार्यमन्सवितृभगाः ।

॥ ११ ॥ ( चा० य० ३३/१० )

यदद्य सूर उवितेऽनांगा मित्रो अर्यमा ।

सुवार्ति सविता भगः

॥ २० ॥

( ५ ) चावापृथिवी, इन्द्रावृहस्पती, भगः ।

॥ १२ ॥ ( साम. पूर्वार्चिकः ६/३/१० )

शामदेवो गौतमः । महापंक्तिः ।

यशो मा चावापृथिवी यशो मेन्द्रावृहस्पती ।

यशो भगस्य विन्वतु यशो मा प्रतिमुच्यताम् ।

यदासां स्याः सः सदाऽहं प्रवदिता स्याम् ॥ १० ॥

( ६ ) इन्द्रः, भगः, सविता ।

॥ १३ ॥ ( अथर्व० १/१६/१ )

यष्टा । त्रिपदा एकावसाना शम्नी त्रिष्टुप् ।

सखासावस्मभ्यमस्तु पातिः ।

सखेन्द्रो भगः सविता चित्ररायाः

॥ २ ॥

( ७ ) अर्यमा, भगः, वृहस्पतिः, देवीः ।

॥ १४ ॥ ( अथर्व० ३/१०/१ )

वशिष्ठः । अत्रुष्टुप् ।

प्र णी यदुत्थयेमा प्र भगः प्र वृहस्पतिः ।

प्र देवीः प्रोत सुनुतां रुयि देवी दधातु मे ॥ ३ ॥

( ८ ) अंशभगवरुणमित्रार्यमन्नदितिमरुतः ।

॥ १५ ॥ ( अथर्व० ६/४/१ )

अथर्वः । प्रत्यारपंक्तिः ।

अंशो भगो वरुणो मित्रो

अर्यमार्दितिः पालुं मरुतः

अप तस्य देवो गमेदमिद्रुतो

यापयच्छुभमर्नितम्

॥ २ ॥

( ५१०४ )

( ९ ) ब्रह्मणस्पतिर्मगः ।

॥ १६ ॥ ( अथर्व० ६।७४।१ )

अथर्वा । अनुष्टुप् ।

सं वः पूज्यन्तां तन्वतुः सं मनोसि सप्तु मृता ।

सं धोऽयं ब्रह्मणस्पतिर्मगः सं वो अजीगमत् ॥ १॥

( १० ) बृहस्पतिसचितुमिश्रार्यमन्मगाश्विनाः ।

॥ १७ ॥ ( अथर्व० ६।१०३।१ )

वृद्धोचनः । अनुष्टुप् ।

सुदानं धो बृहस्पतिः सुदानं सविताकरत् ।

सुदानं मित्रो अर्यमा सुदानं भगो अश्विना ॥ १ ॥

( ११ ) भगसोममरुदिन्द्राग्नयः ।

॥ १८ ॥ ( अथर्व० ८।१।१ )

भग्नः । अनुष्टुप् ।

उदेनं भगो अग्रमीदुदेनं सोमो अंशुमान् ।

उदेनं मरुतो देवा उदिन्द्राग्नी स्वस्तये ॥ २ ॥

( १२ ) वरुणमित्रविष्णुभगाः ।

॥ १९ ॥ ( अथर्व० ११।६।२ )

वाग्नातिः । अनष्टुप् ।

द्रुमो राजानं वरुणं मित्रं विष्णुमथो भगम् ।

अंशं विषस्वन्तं द्रुमस्ते नो मुचस्वयंहसः ॥ २ ॥

( १३ ) भगाश्विनः ।

॥ २० ॥ ( अथर्व० १४।१।१०, १४, ५०, ५१, ५३-५४, ५९-६० )

सूर्यावावित्री । २०, ५०, ५३, ५९ त्रिष्टुप्, ३४ प्रस्तारपंक्तिः,

५१ अनुष्टुप्, ५४ मुगिकृ त्रिष्टुप्, ६० परानुष्टुप् ।

भगस्त्येतो नयतु हस्तगृह्य

षादियनो ह्या प्रपंहतां रथेन ।

गृहान् गच्छ गृहपती यथास्तौ

पदिनी त्वं विवधमा वदसि ॥ २० ॥

( १४ ) अर्यमा धाता भगः ।

अनुक्षरा ऋजयः सन्तु पथान् ।

येभिः सखायो यन्ति नो वरेयम् ।

सं भगेन समर्यम्णा सं धाता रजतु वर्यसा ॥ ३४ ॥

( १५ ) भगार्यमन्सवितृदेवाः ।

गृहामि ते सौभगत्वाय हस्तं

मया पत्न्या जरद्विष्टिर्यथासः ।

भगो अर्यमा सविता पुरेग्निः

मह्यं त्वादुर्गाहपत्याय देवाः ॥ ५० ॥

( १६ ) भगसवितारौ ।

भगस्ते हस्तमग्रहीत् सविता हस्तमग्रहीत् ।

पत्नी त्वमसि धर्मणाहं गृहपतिस्तव ॥ ५१ ॥

( १७ ) त्वष्टृबृहस्पतिभगसवितारः ।

त्वष्टा वासो व्यदधाच्छुभे कं

पृहस्पतेः प्रशिषां कवीनाम् ।

तेनेमां नारीं सविता भगश्च

सूर्योमिव परिधत्तां प्रजयां ॥ ५३ ॥

( १८ ) इन्द्राग्निद्यावापृथिविमातरिभ्यभगादयः ।

इन्द्राग्नी द्यावापृथिवी मातरिभ्यां

मित्रावरुणा भगो अदिवनोमा ।

बृहस्पतिर्मरुतो ब्रह्मा सोमं

इमां नारीं प्रजयां वर्धयन्तु ॥ ५४ ॥

( १९ ) धाता भगः ।

उपच्छिन्नमप रक्षो हनाथ

इमां नारीं सुहृते दधात ।

धाता विपश्चित्पतिमस्य विधेत्

भगो राजा पुर पंतु प्रज्ञानम् ॥ ५९ ॥

( ५९१५ )

(२०) त्वष्टृमगौ ।

भर्गस्ततश्च चतुरः पादान्  
भर्गस्ततश्च चत्वार्युर्ध्वलानि ।  
त्यष्टा विपेदा मध्यतोऽनु यध्वान्  
सा नो भस्तु सुमंगली

॥ ६० ॥

(२१) अर्यमन्मगादिष्वग्मजापतयः ।

॥ ११ ॥ (अथर्व० १४।२।११) त्रिष्टुप् ।

शिवा नारीयमस्तुमार्गध्रिम्  
धाता लोकमस्य दिदेद्य ।

तामर्यमा भर्गो अश्विनोभा  
प्रजापतिः प्रजया यर्धयन्तु

॥ १३ ॥

(२२) अर्यमन्मगौ ।

॥ ११ ॥ (अथर्व० १२।१०।१)

वशिष्ठः । त्रिष्टुप् ।

शं नो भगः शर्मु नः शंसो भस्तु  
शं नः पुरन्धिः शर्मु सन्तु रायः ।  
शं नः सत्वस्य सुयमस्य शंसुः  
शं नो अर्यमा पुरजातो भस्तु

॥ २ ॥

## पणयः

॥ १ ॥ (आ० १०।१०।१,४,६,८,१०-११)

वामा देवदुनी ऋषिः । त्रिष्टुप् ।

इन्द्रस्य दुतीरिपिता चरामि  
मह इच्छन्ती पणयो निधीन् धः ।  
अतिष्करो मियसा तत्र बाधत्  
तथा रसाया अतर् ययौसि  
नाहं तं येदं दम्यं दमत् स  
यस्येदं दुतीरसरं पयकात् ।  
न तं गृह्णति अयतो गमीरा  
दृता इन्द्रेण पणयः शयध्वे  
असेन्या धः पणयो ययौसि  
अनिपयास्तन्यः सन्तु पापी ।

॥ २ ॥

॥ ४ ॥

अर्धुष्टो य एतया भस्तु पणयो  
बृहस्पतिर्य उभया न मृजात्  
एह गमधृपयः सोमशिता  
अयास्यो अक्षिरतो नयधाः ।  
त एतमुषे वि मज्जन्त गोनाम्  
अथेतद्वचः पणयो यमश्रित्  
नाहं येदं आतत्यं न स्वसृत्यं  
इन्द्रो विदुरंगिरसश्च घोराः ।  
गोकामा मे अच्छदयन्  
यदायमपार्त इत पणयो यरीयः  
दुरमित पणयो यरीय  
उत्रायो यन्तु मिनवीर्भतेन ।  
बृहस्पतिर्या अविन्दुभिर्गच्छाः  
सोमो प्रावाण ऋषयश्च विप्रः

॥ ६ ॥

॥ ८ ॥

॥ १० ॥

॥ ११ ॥

(५१६)



## उद्योग-मंत्री

# विश्वकर्मा

॥ १ ॥ ( ऋ० १०।८।१-७ )

विश्वकर्मा भोवनः । त्रिष्टुप्, २ विराट्कृपा ।

य इमा विश्वा भुवनानि जुष्टत्  
 ऋषिर्होता न्यसीदत् पिता नः ।  
 स आशिषा द्रविणमिच्छमानः  
 प्रथमच्छदधरौ आ विवेदा  
 किं स्विदासीदधिष्ठानमारमर्षणं  
 कतमत् स्वित् कथासीत् ।  
 यतो भूमिं जनयन् विश्वकर्मा  
 वि धामौर्णोन्महिना विश्वचक्षाः  
 विश्वतश्चक्षुरत विश्वतोमुषो  
 विश्वतोयाष्टुरत विश्वतस्पात् ।  
 सं बाहुभ्यां धर्मति सं पतत्रैः  
 धापाभूमी जनयन् देव एकः  
 किं स्थिद्रन् क उ स युक्ष आस  
 यतो धार्यापृथिवी निष्टतुष्टुः ।  
 मनीषिणो मर्नसा पूच्छतेदु तत्  
 यदुप्यतिष्ठत् सुव्रतानि धारयन्

या ते धामानि परमाणि यावमा  
 या मध्यमा विश्वकर्मेष्टुतेमा ।  
 शिक्षा सखिभ्यो हविषि स्वाधावः  
 स्वयं यज्ञस्व तन्वै वृधानः

॥ ५ ॥

॥ १ ॥

विश्वकर्मन् हविषा वावृधानः  
 स्वयं यज्ञस्व पृथिवीमुत धाम् ।  
 मुष्टान्त्वान्ये अभितो जनांसः  
 इहासाकं मघवां सुरिरस्तु

॥ ६ ॥

॥ २ ॥

वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतयै  
 मनोजुवं वाजै अथा हुवेम ।  
 स नो विश्वानि हर्षनानि जोषद्  
 विश्वशम्भुर्वसे साधुकर्मा

॥ ७ ॥

॥ ३ ॥

॥ २ ॥ ( ऋ० १०।८।१-७ ) तिष्ठत् ।

चक्षुषः पिता मर्नसा हि धीरो  
 धृतमैने भजनप्रसमाने ।  
 यदेदन्ता अर्द्धद्वन्त पूर्वं  
 आविद् धार्यापृथिवी मप्रचेताम्

॥ १ ॥

(५१११)

विश्वकर्मा विर्मना आदिहाया  
धाता विधाता परमोत्तमं संहृक् ।  
तेषामिष्टानि समिधा मन्दन्ति  
यत्रा सतश्चरन्ति पर एकमाहुः  
॥ २ ॥  
यो नः पिता जनिता यो विधाता  
धामानि वेदं मुचनानि विश्वा ।  
यो देवानां नामधा एकं पृथ  
तं संप्रभं मुचनानि यन्त्युन्या  
॥ ३ ॥  
त आर्यजन्तु ब्रह्मिणं समस्मा  
ऋषयः पूर्यै जरितारो न भूना ।  
असूतै सूतै रजसि निपुते  
ये भूतानि समकृण्यसिमानि  
॥ ४ ॥  
पुरो द्विधा पर एना पृथिव्या  
पुरो द्वेवेमिरसुरैर्यदस्ति ।  
कं स्विष्टमै प्रथमं बध्न आपो  
यत्र देवाः समपदयन्त विश्वे  
तमिष्टमै प्रथमं बध्न आपो  
यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे ।  
अजस्य नामायप्येकमपितं  
यस्मिन् विश्वानि मुचनानि तस्युः  
॥ ५ ॥  
न तं विदाद्य य इमा जजान  
अन्यद्युष्माकमन्तरं यभूय ।  
नीहारेण प्रावृता जलन्या च  
असुहृष उक्थशासंश्चरन्ति  
॥ ६ ॥  
॥ ३ ॥ ( वा० य० ५।११ )  
विश्वकर्मा त्वाऽऽदित्यैष्ठ्यतः पातु  
॥ ७ ॥  
॥ ४ ॥ ( वा० य० ८।४३, ५४ )  
विश्वकर्मान् दृषिष्या यधेनेन  
ज्ञातारमिन्द्रमरुणोरप्यभ्यम् ।  
तस्मै पिशाः समनमन्त पूर्वीः  
अयमुग्रो विदव्यो यगामत् ॥

उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा विश्वकर्माण  
एष ते योनिरिन्द्राय त्वा विश्वकर्माणे ॥ ४६ ॥  
विश्वकर्मा दीक्षायां ॥ ५३ ॥  
॥ १ ॥ ( वा० य० १।१४३ )  
विश्वकर्माणे स्वाहा ॥ ४३ ॥  
॥ ६ ॥ ( वा० य० १४।९, १०, १४ )  
विश्वकर्मा वर्यः परमेष्ठी छन्दः ॥ ९ ॥  
विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे  
अन्यस्वतोऽग्र्यस्वतोऽन्तरिक्षं  
यच्छान्तरिक्षं दृष्ट्वान्तरिक्षं मा हिंसीः ॥ १२ ॥  
विश्वकर्मा त्वा सादयतु  
॥ ४ ॥  
अन्तरिक्षस्य पृष्ठे ज्योतिष्मतीम् ॥ १४ ॥  
॥ ७ ॥ ( वा० य० १।७।११ )  
विश्वकर्मा शर्जनिष्ठ देव  
आदिद् गन्धर्वो भमयद् द्वितीयः ।  
तृतीयः पिता जनितापधीनां  
अपां गर्भं स्यदधात् पुरुषा ॥ ३५ ॥  
॥ ८ ॥ ( अथर्व० १।३।५।१-५ )  
अथर्व० । मिष्टप, १ बृहतीगर्मा, ४-५ भुरिष्ट ।  
ये भुक्षयन्तो न यस्न्यानुधुः  
यानुग्रयो अन्यतप्यन्त धिण्याः ।  
या तेषामयया कुरिष्टिः  
स्विष्टिर्भुक्तां कृण्वद् विश्वकर्मा ॥ १ ॥  
यद्वपतिमृषय एनसाहुः  
निर्मफते प्रजा अनुत्यमानम् ।  
मृषयाऽन्त्योऽनानप यान् रराध  
सं नृपेभिः सृजतु विश्वकर्मा ॥ २ ॥  
अदान्यान्तस्तीमपान् मयमानो  
यदस्य पिदान्त्समये न धीरः ।  
यदेनश्चरुयान् बद्ध एष  
तं विदयकर्म प्र मुञ्जा म्यत्नये ॥ ३ ॥  
( ५६७ )



गृह-मंत्रा

# वास्तोष्पतिः

॥ १ ॥ ( अ० ७।५।१-३ )  
मैत्रावरुणोर्विश्वः । त्रिष्टुप् ।

वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान्  
स्वायेशो अर्नमीषो भया नः ।  
यत्सेमहे प्रति तन्नो जुषस्व  
शं नो भव द्विषदे शं चतुष्पदे  
वास्तोष्पते प्रतरणो न पथि  
गयस्कानो गोमिरदर्वैमिरन्दो ।  
अजरांसस्ते स्रग्ये स्याम  
पितेयं पुत्रान् प्रति नो जुषस्व  
वास्तोष्पते श्रमया संसदा ते  
सक्षीमहि दृण्यया गातुमत्या ।  
प्राहि क्षेम उत योगे यद नो  
युयं पात स्वस्तिमिः सदा नः

॥ १ ॥ ( अ० ७।५।१ ) गायत्री ।

अमीगृहा वास्तोष्पते यिदया रूपाण्याविशन् ।  
सर्वा सुरोयं पथि नः

॥ ३ ॥ ( अ० ८।१।१४ )

शिमिष्ठः कायः । ( ईशो वा ) । बृहती ।

वास्तोष्पते ध्रुवा सृणां—सर्वं सोम्यानाम् ।  
द्रुप्सो भेत्ता पुरां शरपतीनां  
राश्रो मुनीनां सर्गा

६७

॥ ४ ॥ ( या० य० ३।४१-४३ )

गृहा मा विमीत मा वैपश्चर्मज्ञं विधत् एमांसि ।

ऊर्जं विध्रंढः सुमनाः सुमेधा

गृहानैमि मर्नसा मोदमानः

॥ ४१ ॥

येषामुप्येति प्रयसन् येषु सौमनसो बृहः ।

॥ १ ॥

गृहायुषं ह्यामहे ते नो जानन्तु जानतः ॥ ४२ ॥

उपंहता इह गाव्य उपंहता अजावयः ।

अयो अग्रस्य वीलाल उपंहतो गृहेषु नः ।

क्षेमाय वः शान्त्यै प्रपद्ये

॥ २ ॥

शियंश्च श्रमंश्च श्रयोः श्रयोः

॥ ४३ ॥

॥ ५ ॥ ( अथर्व० ३।१२।१-३ )

मद्गा । गाता, वास्तोष्पते । त्रिष्टुप्, २ शिगाड जगती, ३

बृहती, ४ वाङ्गिण्यमां जगती, ७ आप्या अगुष्ट, ८

सुगिह, ९ अनुष्टुप् ।

इदं ध्रुवां नि मिनोमि शालां

क्षेमं तिष्ठति घृतमुक्षमाणा ।

तां त्वां शाले सर्वेषां सुवीराः

अरिष्टवीरा उष सं चरेम

॥ १ ॥

इदं ध्रुवा प्रति तिष्ठ शाले

अदवायनी गोमती सुवृतायनी ।

ऊर्जस्वती पुनर्वनी पर्यस्वनी

उच्छ्रयस्य महते मीर्मगाय

॥ १४ ॥

॥ २ ॥

(५६३८)

धृक्पुण्यं सि शाले वृहच्छन्दाः पूतिधान्या ।

आ त्वा वृत्सो गमेदा कुमार

आ धेनवः सायमास्पन्दमानाः

इमां शालां सविता घायुरिन्द्रो

वृहस्पतिर्नि मिनोतु प्रजानन् ।

उक्षन्तूद्रा मरुतो घृतेन

भगो नो राजा नि कृषि तनोतु

मानस्य पति शरणा स्थेना

वेयी देवेभिर्निमितास्यत्रे ।

तृणं वसाना सुमना असस्त्वं

अथास्मभ्यं सुहवीरं रयि दाः

ऋतेन स्थूणामधि रोह घंश

उग्रो विराजन्नप घृक्ष्ण शत्रून् ।

मा ते रिपुपुत्रस्यारो गृहाणां

शाले शतं जीवेम शरवः सर्ववीराः

एमां कुमारस्तर्षण आ वृत्सो जगता सह ।

एमां परिक्षितः कुम्भ आ दुध्नः कलशैरगुः

पूर्णं नारि प्र भर कुम्भमेतं

घृतस्य धाराममृतेन संभृताम् ।

इमां पातूनमृतेन समङ्गिध

दृष्टापूतमभि रक्षालेनाम्

इमा आपः प्र भराभ्ययश्मा यश्मनाशनीः ।

गृहाणुप प्र सीदाम्यमृतेन सहस्रिनां

॥ ६ ॥ ( अथर्व० ५।९।१-८ )

पास्तोष्पतिः, आराम । १,५ देवी वृहती; २,६ देवी त्रिष्टुप्;

३,४ देवी जगती; ॥ विराडुष्णिग्वृहतीगर्भा पञ्चपदा जगती,

८ पुरश्चरित्रिष्टुक्वृहतीगर्भा, चतुष्पदा व्यवसाना जगती ।

दिवे स्यादां

पृथिव्यै स्यादां

अन्तरिक्षाय स्यादां

अन्तरिक्षाय स्यादां

दिवे स्यादां

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

पृथिव्यै स्यादां

रुर्यो मे चक्षुर्धातः प्राणोऽ

अन्तरिक्षमात्मा पृथिवी शरीरम् ।

अस्तुतो नामाहमयमस्मि स आत्मानं नि वधे

घावापृथिवीभ्यां गोपीधायं ॥ ७ ॥

उदायुरुदलमुत्तमुत्कृत्यामुर्मनीषामुर्विन्द्रियम् ।

आयुष्कृदार्युष्पत्नी स्वधाघन्तौ

गोपा मे स्तं गोपायतं मा ।

आत्मसदो मे स्तं मा मा द्विष्टिष्टम् ॥ ८ ॥

॥ ७ ॥ ( अथर्व० ५।९।१-८ )

यवमघ्या त्रिपदा गायत्री; ७ यवमघ्या ऋक्; ८ पुरोहितमनु-

ष्टुङ्गर्भा पराष्टिष्टयवसाना चतुष्पदातिजगती ।

अहमवर्म मेऽसि

यो मा प्राच्या विशोऽघायुरभिदासात् ।

एतत् स ऋच्छात् ॥ १ ॥

अहमवर्म मेऽसि

यो मा दक्षिणाय विशोऽघायुरभिदासात् ।

एतत् स ऋच्छात् ॥ २ ॥

अहमवर्म मेऽसि

यो मा प्रतीच्या विशोऽघायुरभिदासात् ।

एतत् स ऋच्छात् ॥ ३ ॥

अहमवर्म मेऽसि

यो मोदीच्या विशोऽघायुरभिदासात् ।

एतत् स ऋच्छात् ॥ ४ ॥

अहमवर्म मेऽसि

यो मा ध्रुवाय विशोऽघायुरभिदासात् ।

एतत् स ऋच्छात् ॥ ५ ॥

अहमवर्म मेऽसि

यो मोर्ध्वाय विशोऽघायुरभिदासात् ।

एतत् स ऋच्छात् ॥ ६ ॥



अदम्यमर्मेऽसि  
यो मां दिशामन्तर्देशेभ्योऽयानुरभिदासां ।  
एतत् स ऋच्छात् ॥ ७ ॥  
बृहता मन उप द्वये मातरिर्भवा प्राणापानौ ।  
सूर्याच्चक्षुरन्तर्दिशाच्छ्रोत्रं पृथिव्याः शरीरम् ।  
नरस्त्वया वाचमुप ह्यामहे मनोयुजां ॥ ८ ॥

॥ ८ ॥ ( अथर्व० ५।२६।१-१२ )

वास्तोष्पतिः, १ आत्मः, २ अविता, ३, ११ इन्द्रः, ४ मित्रिदः,  
५ मरुतः, ६ अविदिः, ७ विष्णुः, ८ त्वष्टा, ९ सप्तः, १०  
सोमः, १२ अश्विनौ, वरस्वतिः । १, ५ द्विपदायां उजिह्वः  
२, ४, ६, ७, ८, १०, ११ द्विपदा प्राजापत्या बृहती; ३ द्विपदा  
विष्टा गायत्री; ९ त्रिपदा विषीलिहमप्या पुरवन्निह्वः ( १-  
११ एकविष्टायाः ) १२ परादिशक्वरो, अनुपदा गायत्री ।

यज्ञेपि यज्ञे समिधः स्वाहा  
अग्निः प्रविद्वानिह यो युनक्तु ॥ १ ॥  
युनक्तु देवः संयिता प्रजानन्  
अस्मिन् यज्ञे मंहिपः स्वाहा ॥ २ ॥  
इन्द्र उक्थामदान्यस्मिन् यज्ञे  
प्रविद्वान युनक्तु सुयुजः स्वाहा ॥ ३ ॥  
प्रेषा यज्ञे निधिदुः स्वाहा  
शिष्टाः पत्नीभिर्घृहतेह युक्ताः ॥ ४ ॥  
छन्दांसि यज्ञे मन्तुः स्वाहा  
मानेयं पुत्रं पिपुनंह युक्ताः ॥ ५ ॥  
प्रथमंगन् शर्दिगा प्रोक्षणीभिः  
यमं तन्यानादितिः स्वाहा ॥ ६ ॥  
विष्णुयुनक्तु बहुधा तपांसि  
अस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥ ७ ॥  
त्वष्टा युनक्तु बहुधा नु रूपा  
अस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥ ८ ॥  
मर्गा युनक्त्याशिषो न्वः स्वा  
अस्मिन् यज्ञे प्रविद्वान युनक्तुः सुयुजः स्वाहा ॥ ९ ॥

सोमो युनक्तु बहुधा तपांसि  
अस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥ १० ॥  
इन्द्रो युनक्तु बहुधा तपांसि  
अस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥ ११ ॥  
अग्निना ब्रह्मणा यातमर्वाञ्चौ  
वयस्करेण यमं वर्धयन्ता ।

बृहस्पते ब्रह्मणा यातावाह  
यमो अयं स्व रिदं यजमानाय स्वाहा ॥ १२ ॥

॥ ९ ॥ ( अथर्व० ७।६०।१-९ )

इन्द्रा, वास्तोष्पतिः । अनुपद, १ पदाऽनुपदु द्विष्टम् ।

ऊजं विभ्रदसुवर्गिः सुमेधा  
अवारेण चक्षुषा मित्रियेण ।  
गृहानैर्मि सुमना चन्दमानो  
रमधं मा विमीन मत् ॥ १ ॥  
इमे गृहा मयोमुव ऊजस्वन्तः परस्यन्तः ।  
पूर्णा वामेन विष्टन्स्ते नो जानन्त्यायतः ॥ २ ॥  
वेपामप्येति प्रवसन् येपु सामनसो बृहः ।  
गृहानुप ह्यामहे ते नो जानन्त्यायतः ॥ ३ ॥  
उपहृता भूरिघनाः सर्गायः स्वादुर्ममुदः ।  
अन्नप्या अन्नप्या स्त गृहा माऽसदिमीनन ॥ ४ ॥  
उपहृता इह गाय उपहृता अजावयः ।  
अग्रे अग्रस्य क्रीडाल उपहृतो गृहेपु नः ॥ ५ ॥  
सुनृतायन्तः सुमगा इरायन्तो हसामुदाः ।  
अन्नप्या अन्नप्या स्त गृहा माऽसदिमीनन ॥ ६ ॥  
इदय स्त माऽनु गात विमर्वा रूपाणि पुष्यन् ।  
वेप्यामि अद्रेणा सह भूयांसो मयता मपा ॥ ७ ॥

॥ १० ॥ ( अथर्व० ६।१३।३ )

अयता । मुदि ।

इदय स्त मापं यानाभ्यस्तन्  
पूषा परस्तादयं यः कपोतः ।  
वास्तोष्पतिरनु यो जोहवीतु  
मायं सजाता रमतिषो अस्तु ॥ ३ ॥



अश्मवर्म मैऽसि

यो मां दिशामन्तदेशेभ्योऽद्यायुरभिदासात् ।

एतत् स ऋच्छात् ॥ ७ ॥

बृहता मन उप ह्वये मातरिर्ध्वना प्राणापानौ ।

सूर्याच्चक्षुरन्तरिक्षाच्छेजं पृथिव्याः शरीरम् ।

सरस्वत्या वाचमुप ह्वयामहे मनोयुजां ॥ ८ ॥

॥ ८ ॥ ( अथर्व० ५।१६।१-१२ )

वास्तोष्पतिः, १ अग्नि, २ अविता, ३, ११ इन्द्रा, ४ विविदः,

५ मरुतः, ६ अदितिः, ७ विष्णुः, ८ स्वष्टा, ९ मगः, १०

घोमः, १२ अश्विनौ, बृहस्पतिः । १, ५ द्विपदार्था उष्णिक्;

२, ४, ६, ७, ८, १०, ११ द्विपदा प्राजापत्या बृहती; ३ त्रिपदा

विंशद् गायत्री; ९ त्रिपदा विपरीलिकमप्या पुरउष्णिक्; ( १-

११ एकावसानाः ) १२ परातिशयकरी, बहुपदा गायत्री ।

यजैपि यज्ञे सुमिधः स्वाहा

अग्निः प्रविद्वानिह यो युनक्तु ॥ १ ॥

युनक्तु देवः सविता प्रजानन्

अस्मिन् यज्ञे मंहिपः स्वाहा ॥ २ ॥

इन्द्र उफयामदान्यस्मिन् यज्ञे

प्रविद्वान् युनक्तु सुयुजः स्वाहा ॥ ३ ॥

प्रेषा यज्ञे निविदः स्वाहा

शिष्टाः पत्नीभिर्वहतेह युक्ताः ॥ ४ ॥

छन्दांसि यज्ञे मरुतः स्वाहा

मातेर्य पुत्रं पिपृतेह युक्ताः ॥ ५ ॥

प्रथमगन्त यद्विषा प्रोक्षणीभिः

यज्ञं तन्यानादितिः स्वाहा ॥ ६ ॥

विष्णुं युनक्तु बहुधा तर्पांसि

अस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥ ७ ॥

त्यष्टा युनक्तु बहुधा नु रुपा

अस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥ ८ ॥

भगो युनक्त्यादिषो न्वस्रा

अस्मिन् यज्ञे प्रविद्वान् युनक्तुः सुयुजः स्वाहा ॥ ९ ॥

सोमो युनक्तु बहुधा तर्पांसि

अस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥ १० ॥

इन्द्रो युनक्तु बहुधा वीर्याणि

अस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥ ११ ॥

अश्विना ब्रह्मणा यातमर्वाञ्चौ

वपत्क्वारेण यज्ञं वर्धयन्तौ ।

वृहस्पते ब्रह्मणा यातुर्वाङ्

यज्ञो अयं स्वर्गिदं यजमानाय स्वाहा ॥ १२ ॥

॥ ९ ॥ ( अथर्व० ७।६०।१-७ )

गृहाः, वात्साधति । अनुष्टुप्, १ पराऽनुष्टुप् त्रिष्टुप् ।

ऊञ्जं विभ्रदसुयविः सुमेधा

अघोरिणं चक्षुषा मित्रियैण ।

गृहानैर्मि सुमना बन्दमानो

रमचं मा विमीतु मत् ॥ १ ॥

इमे गृहा मयोमुष ऊञ्जस्वन्तः पर्यस्वन्तः ।

पूर्णा यामेन तिष्ठन्तस्ते नो जानन्त्यापतः ॥ २ ॥

येषामभ्येतं प्रवसन् येपुं सोमनसो गृहः ।

गृहानुपं ह्वयामहे ते नो जानन्त्यापतः ॥ ३ ॥

उपहृता भूरिघनाः सखायः स्वादुसैमुदः ।

अक्षुष्या अंतुष्या स्तु गृहा माऽऽसद्विमीतन ॥ ४ ॥

उपहृता इह गाय उपहृता अजावर्यः ।

अयो अग्रस्य कीलाल उपहृतो गृहेषु नः ॥ ५ ॥

सूनुतावन्तः सुमगा इरावन्तो हसामुद्राः ।

अतुष्या अक्षुष्या स्तु गृहा माऽऽसद्विमीतन ॥ ६ ॥

इदं स्तु माऽञ्जुं गातु धिर्वा रुपाणि पुष्यत ।

येष्यामि अद्रेणा सह भूयांसो भवता मयो ॥ ७ ॥

॥ १० ॥ ( अथर्व० ६।१३।३ )

अथर्वो । भुरिह ।

इदं स्तु मापं याताप्यस्तु

पुषा पुरस्तादर्पथं यः हणोतु ।

वास्तोष्पतिर्युं यो जोहवीतु

मर्यं सजाता रमतिर्यो अस्तु ॥ ३ ॥

॥ ११ ॥ ( अथर्व० ६।१०५।१-३ )

प्रमोचनः । दुर्वाशावा । अतुष्टुपृ ।

आयने ते परायणे दूरीं रोहतु पुष्पिणीः ।

उत्सो वा तत्र जायतां ह्रदो वा पुण्डरीकवान् ॥ १ ॥

अपामिदं न्ययनं समुद्रस्य निवेशनम् ।

मध्यं ह्रदस्य नो गृहाः पराचीना मुखा रुधि ॥ २ ॥

हिमस्य त्वा जरायुणा शाले परि व्ययामसि ।

शीतहृदा हि नो भुवोऽग्निर्हृणोतु भेषजम् ॥ ३ ॥

॥ १२ ॥ ( अथर्व० ९।३।१-३२ )

मृगशिराः । शाला । अतुष्टुपृ । ६ पथ्यापक्वः; ७ परोष्णिक्;

१५ श्रवणानां पञ्चदातिशक्तीः; १७ प्रसारपक्वः; २३

आस्तारपक्वः; २५, ३१ त्रिपदा प्राजापला वृहती; २६

साम्नी त्रिष्टुपृ; २७-३० प्रतिष्ठानाम गायत्री; ( २५-३१

एकावसानां त्रिपदा ) ।

उपमितां प्रतिमितामयो परिमितामृत ।

शालाया विभ्वाराया नृक्षानि वि चृतामसि ॥ १ ॥

यत् ते नृक्षं विभ्वारे पार्श्वे ग्रन्थिश्च यः कृतः ।

वृहत्पतिरिवाहं घलं वाचा वि रक्षसयामि तत् ॥ २ ॥

आ ययाम सं ययहं ग्रन्थीश्चकार ते वृहान् ।

परमि पित्रांछस्तेवेन्द्रेण वि चृतामसि ॥ ३ ॥

पुंशानां ते नहनानां प्राणाहस्य तृणस्य च ।

पुक्ष्णानां विभ्वारे ते नृक्षानि वि चृतामसि ॥ ४ ॥

संदशानां पल्लवानां परिप्वजस्यस्य च ।

इदं मानस्य पत्न्यां नृक्षानि वि चृतामसि ॥ ५ ॥

यानि तेऽन्तः शिफया न्यायेधू रण्याय कम् ।

प्र ते तानि चृतामसि

शिया मानस्य पत्नीं न उद्वेता त्वये भव ॥ ६ ॥

द्विधानंमिश्रालं पत्नीनां सर्वं सर्वम् ।

सर्वो वेयानामसि देधि शाले ॥ ७ ॥

अधुमोपशं पितरं सहस्राक्षं विपुयति ।

अर्धनक्षमिदितं ब्रह्मणा वि चृतामसि ॥ ८ ॥

यस्यां शाले प्रतिगृह्णाति येन चासि मिता त्वम् ।

उभौ मानस्य पत्नि तौ जीयतां जरदृष्टी ॥ ९ ॥

अमुत्रैना गच्छताद् दृढा नृक्षा परिहृता ।

यस्यास्ते विचृतामस्यभ्रमङ्ग परंणयः ॥ १० ॥

यस्यां शाले निमिमायं संजभार घनस्पतीन् ।

प्रजायै चक्रे त्वा शाले परमेष्ठी प्रजापतिः ॥ ११ ॥

नमस्तस्मै नामो वात्रे शालापतये च कृष्णः ।

नमोऽग्नये प्रचरते पुरुषाय च ते नमः ॥ १२ ॥

गोभ्यो अश्वेभ्यो नमो यच्छालायां विजायते ।

विजायति प्रजायति वि ते पार्श्वश्रुतामसि ॥ १३ ॥

अग्निमन्तदृष्टादयसि पुरुषान् पशुभिः सह ।

विजायति प्रजायति वि ते पार्श्वश्रुतामसि ॥ १४ ॥

अन्तरा घां च पृथिवीं च यद् व्यचः

तेन शालां प्रति गृह्णामि त इमाम् ।

यदन्तरिक्षं रजसो विमानं

तत् कृण्वेऽहमुदरं शेषधिम्यः ।

तेन शालां प्रति गृह्णामि तस्मै ॥ १५ ॥

ऊर्जस्वती पर्यस्वती पृथिव्यां निमिता मिता ।

विभ्वान् विभ्रती शाले मा हिंसीः प्रतिगृह्णतः ॥ १६ ॥

तृणैरावृता पल्लवान् वसाना

रात्रीव शाला जगतो निवेशनी ।

मिता पृथिव्यां तिष्ठसि हस्तिनीं च पृथ्वी ॥ १७ ॥

इदं स्य ते वि चृताम्यपिनक्षमपोर्णुयन् ।

वरुणेन समुच्चितां मित्रः प्रातर्व्युः ऽजतु ॥ १८ ॥

ब्रह्मणा शालां निमितां कविभिर्निमितां मिताम् ।

इन्द्राग्नी रक्षतां शालाममृतौ सौम्यं सदेः ॥ १९ ॥

कुलायेऽधि कुलायं कोशे कोशः समुञ्जितः ।

तत्र मतो वि जायते यस्माद्विभ्यं प्रजायते ॥ २० ॥

या ठिपक्षा चतुष्पक्षा पट्पक्षा या निमीयते ।

अष्टापक्षां दशपक्षां शालां

मानस्य पत्नीमग्निर्गमे दृवा दये ॥ २१ ॥

प्रतीचीं त्वा प्रतीचीनः शाले प्रैम्यहिंसतीम् ।	प्रतीच्यां दिशः शालायां नमो	
अग्निहोत्रं न्तरापश्चर्तस्य प्रथमा द्वाः ॥ २२ ॥	महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाहोभ्यः	॥ २७ ॥
हूमा आपः प्र भराम्ययश्मा यश्मनाशनीः ।	उदीच्यां दिशः शालायां नमो	
गृहानुप प्र सीदाम्यमृतेन सहस्रिना ॥ २३ ॥	महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाहोभ्यः	॥ २८ ॥
मा नः पाशं प्रति मुचो गुरुमोरो लघुर्भय ।	ध्रुवायां दिशः शालायां नमो	
धधूमिंश्च द्वा शाले यप्रकामं भरामसि ॥ २४ ॥	महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाहोभ्यः	॥ २९ ॥
प्राच्यां दिशः शालायां नमो	ऊर्ध्वायां दिशः शालायां नमो	
महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाहोभ्यः ॥ २५ ॥	महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाहोभ्यः	॥ ३० ॥
दक्षिणायां दिशः शालायां नमो	दिशोर्दिशः शालायां नमो	
महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाहोभ्यः ॥ २६ ॥	महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाहोभ्यः	॥ ३१ ॥



## शस्त्रास्त्र निर्माण-मंत्री

# त्वष्टा

॥ १ ॥ ( अ० १।१३।१० )

मेधातिथिः काण्व । गायत्री ।

इह त्वष्टारमप्रियं विश्वरूपं कथ्ये ।

अस्माकमस्तु केवलः

॥ १० ॥

॥ २ ॥ ( अ० १।१५।३ )

अभि युष्मं गृणीहि त्रै माधो नेष्टुः पियं अस्तुना ।

रथं हि रत्नधा अस्ति

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥ ( अ० १।१८।१० )

दीपितमा औचध्य । अनुष्टुप् ।

तत्रस्तुरीपमदभुतं पुर धारं पुर त्मना ।

त्वष्टा पोषाय विष्येतु राये नामा नो अस्मयुः १०

॥ ४ ॥ ( अ० १।१८।१ पूर्वाध्वं )

अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । त्रिष्टुप् ।

उत न इ त्वष्टा गन्तव्यस्तु

एतन् सुमिर्मिर्मिप्रिये स्वजोषाः

॥ १ ॥

॥ ५ ॥ ( अ० १।१८।१९ ) गायत्री ।

त्वष्टा रुपाणि हि प्रभु पदान् विभ्रामयमानजे ।

तेषां नः वृत्तातिमा रथज

॥ ९ ॥

॥ ६ ॥ ( अ० १।३।९ )

शस्त्रमद ( आगिरस शौनहोत्र पश्चाद् ) मार्गवः शौनहः ।  
त्रिष्टुप् ।

विशङ्करूपः सुमरो वयोधाः

अष्टी धीरो जायते देवकामः ।

प्रजां त्वष्टा वि प्येतु नाभिमुस्मे

अथा देवानामप्येतु पार्थः

॥ ९ ॥

॥ ७ ॥ ( अ० १।३।३ ) अगती ।

अमेयं नः सुहृदा आ हि गन्तुं

नि युधिषि सदतना रणिष्टन ।

अथा मन्दस्व जुष्टपाणो अग्नेष्टः

त्वष्टदेवेभिर्जनेभिः सुमर्षणः

॥ ३ ॥

॥ ८ ॥ ( अ० १।४।९ )

गायिनो विश्वामित्रः । त्रिष्टुप् ।

तत्रस्तुरीपमधं पोषयितु

देयं त्वष्टरि रंराणः स्वस्य ।

यतो धीराः कर्मण्यः सुवरो

युवम्राया जायते देवकामः

॥ ९ ॥

( ५७५१ )

॥ ९ ॥ ( अ० ३।५।१९ )

प्रजापतिर्वैश्वामित्रः, प्रजापतिर्वाच्यो वा । त्रिशुप् ।

देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः

पुषोर्प प्रजाः पुंरुधा जंजान ।

इमा च विश्वा भुवर्नान्यस्य

महद्देवानामसुरत्वमेकम्

॥ १९ ॥

॥ १० ॥ ( अ० ५।५।९ )

वसुधुत आश्रयः । गावशो ।

शिवस्त्वष्टरिहाणादि विमुः पोर्ष उत मनो ।

यक्षेयं न उद्व

॥ ९ ॥

॥ ११ ॥ ( अ० ७।३४।१०-११ )

मैत्रावरुणोर्विश्वः । द्विषदा विराट् ।

आ यज्ञः पत्नीर्गमन्त्यच्छा

त्वष्टा सुपाणिर्वधातु वीरान्

॥ २० ॥

प्रति नः स्तोमं त्वष्टा जुपेत्

स्यावस्मे अरमतिर्वसुयः

॥ २१ ॥

॥ १२ ॥ ( अ० १०।१८।६ )

वङ्गुसुहो माभावनः । मिष्टम् ।

आ रोहितायुर्जस्वै वृणाना

अनुपूर्ध्व यतमाना यति छ ।

इह त्वष्टा सुजनिमा सुजोषा

वीर्यमायुः करति जीवसे वः

॥ ६ ॥

॥ १३ ॥ ( अ० १०।७०।९ )

सुमित्रो वाष्पयः । मिष्टम् ।

देव त्वष्ट्यर्धं चारुत्यमानद्

यदंगिरस्त्राममवः सचाभूः ।

स देवानां पाय उप प्र विद्वान्

उशान् यक्षि द्रविणोदः सुरतलः

॥ ९ ॥

॥ १४ ॥ ( अथर्वं १०।११०।९ )

अमदमिर्मागंवा, कामदग्न्यो रामो वा । त्रिशुप् ।

य इमे चावापृथिवी जनित्री

रूपैरपिशङ्क्यनानि विश्वा ।

तमय हौतरिपितो यर्जीयान्

देवं त्वष्टारमिह यक्षि विद्वान्

॥ ९ ॥

॥ १५ ॥ ( वा० य० २।१४ )

सं वर्चसा पर्यसा सं तनुभिः

अगन्महि मनसा सद्यः शिवेन ।

त्वष्टा सुदद्यो विदधातु रायः

अनुमायुं तन्यो यद्विलिप्तम्

॥ २४ ॥

॥ १६ ॥ ( वा० य० ६।७, २० )

उपवीरस्युर्ष देवान्देवीर्विशः

प्राशुलीशजो वदितमान् ।

देवं त्वष्ट्यर्धं रम हव्या तं स्वदन्ताम्

॥ ७ ॥

देवं त्वष्ट्यर्धं ते सद्यः संमेतु

सलक्ष्मा यद्विपुर्षं भवाति ।

देवश्चा यन्तमवसे सद्यायः

अनुं त्वा माता पितरौ मदन्तु

॥ २० ॥

॥ १७ ॥ ( वा० य० २०।३४ )

त्वष्टा द्यच्छुद्धममिन्द्राय वृष्णे

अपाको विष्ट्यर्धं सै पुरुणि ।

वृषा यजन्त्यर्धं अरिरेता

मूर्धन्य यद्वस्य समनन्तु देवान्

॥ ४४ ॥

॥ १८ ॥ ( वा० य० २०।१० )

त्वष्टे स्वाहा त्वष्टे तुरीयाय स्वाहा

त्वष्टे पुरुषाय स्वाहा

॥ २० ॥

॥ १९ ॥ ( वा० य० २४।४, २४ )

ज्वाहाकर्णः शुष्णाकर्णोऽप्यालोहकर्णस्ते त्याघाः ४

त्वष्टे कौलीकान्गोत्रादीः

॥ २४ ॥

॥ २० ॥ ( वा० य० २।५ )

त्वष्ट्यर्धं शमी

॥ ५ ॥

॥ २१ ॥ ( घा० य० २६।२४ )

अमेवं नः सुहृवा आ द्वि गन्तुं  
नि वर्हिषि सदतना राणेष्टन ।  
अथा मदस्व जुजुपाणो अन्धमः  
त्वष्ट्रदेवेभिर्जनिभिः सुमङ्गलः

॥ २४ ॥

॥ २२ ॥ ( घा० य० २७।२० )

तन्नस्तुरीपमङ्गलं पुरुषु त्वष्टा सुवीर्यम् ।  
रायस्वोपं विध्यतु नाभिर्मस्मे

॥ २० ॥

॥ २३ ॥ ( घा० य० ३९।१, ३४ )

त्वष्टा धीरं देवकार्म जजान्  
त्वष्टुर्वी जायत आशुर्भ्यः ।  
त्वष्ट्रं विभ्वं भुवनं जजान्  
यदोः कर्तारमिह यक्षि होतः  
य इमे पावापृथिवी जनित्री  
रूपैरपिशङ्कयेतानि विभ्वा  
तमय होतरिपितो यर्जयान्  
देवं त्वष्टारमिह यक्षि विद्वान्

॥ ९ ॥

॥ ३४ ॥

॥ २४ ॥ ( अथर्व० ३।११।५ )

महा । विशद प्रस्तावति ।

त्वष्टा दुहित्रे यद्वतुं युनक्ति  
इतीदं विभ्वं भुवनं वि याति ।  
व्यष्टं सर्वेण प्राप्मना वि यश्मेण समारुपा ॥ ५ ॥

॥ २५ ॥ ( अथर्व० ५।१५।११ )

महा । अनुष्टुप् ।

त्वष्टः भेष्टेन रूपेणास्या नार्यो गवीन्योः ।  
पुमोतं पुत्रमा धेहि दन्ने मासि स्तने ॥ ११ ॥

॥ २६ ॥ ( अथर्व० ५।२६।८ )

महा । त्रिपदा प्राभाष्यः बहती ।

त्वष्टा पुनश्च यदुघा नु रूप  
अग्निर्यज्ञं सुपुत्रः स्वार्ता

॥ ८ ॥

॥ २७ ॥ ( अथर्व० ६।७८।३ )

अथर्व । अनुष्टुप् ।

त्वष्टा जायामर्जनयस्त्वष्टास्यै त्वां पतिम् ।  
त्वष्टा सहस्रमार्यं पि दीर्घमार्युः कृणोतु वाम ॥ ३१ ॥

॥ २८ ॥ ( अथर्व० ६।८१।३ )

अथर्व । अनुष्टुप् ।

यं पदिस्तमविमरदितिः पुत्रकाम्या ।  
त्वष्टा तमस्या आ बध्नाद्यथा पुत्रं जनादिति ॥ ३१ ॥

॥ २९ ॥ ( अथर्व० १८।१।५३ )

अथर्व । त्रिष्टुप् ।

त्वष्टा दुहित्रे बहन्तुं कृणोति  
तेनेदं विश्वं भुवनं समैति ।  
यमस्य माता पर्युह्यमाना  
महो जाया विवस्वतो ननाश ॥ ५३ ॥

## सहचारी--देवगणः

( १ ) विष्णुत्वष्ट्रप्रजापतिधाताः ।

॥ ३० ॥ ( ऋ० १०।१८४।१ )

विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिशतु ।  
आ सिंचतु प्रजापतिर्धाता गमै दधातु ते ॥ १ ॥

( २ ) धातुसवितुप्रजापत्यग्नित्वष्ट्रविष्णवः ।

॥ ३१ ॥ ( घा० य० ८।१७ )

धाता सतिः सवितेदं जुषन्तां  
प्रजापतिर्निधिपा देवो अग्निः ।  
त्वष्टा विष्णुः प्रजया सधंरराणा  
यजमानाय द्रविणं दधातु स्याहा ॥ १७ ॥

( ३ ) सवितृत्वष्ट्रपूषादयः ।

॥ ३२ ॥ ( घा० य० १०।३० )

सवित्रा प्रसवित्रा सरस्वत्या धात्रा  
त्वष्टा रूपैः पूष्णा पुनर्मिरिद्रेणास्मे  
बृहस्पतिना प्रह्मणा वरुणेनाजला  
अग्निना तेजसा सोमं राजा विष्णुना वशाया  
देवतया प्रारुः ॥ संपोमि ॥ ३० ॥

( ५०८१ )







## लघु उद्योग-मंत्री

# ऋभवः

॥ १ ॥ ( अ० १।१०।१-८ )

मेधातिथि काव्यः । गायत्री ।

अयं देवाय जन्मने स्तोमो विप्रैर्मिरासया ।

अकारि रत्नधातमः

य इन्द्राय ध्वजोयुजा ततक्षुर्मनसा हरी ।

शमीभिर्यज्ञमाशत

तक्षन् नासत्याभ्यां परिजमानं सुगं रथम् ।

नक्षन् धेनुं संवर्षणम्

युजाना पितरा पुनः सत्यमैत्रा ऋजुयवः ।

ऋमयो विप्र्यमत

ये यो मद्रासो अमृतेन्द्रेण च मद्रवता ।

आदित्येभिश्च राजभिः

उत त्वं चमसं नयं त्वष्टुर्देवस्य निर्णतम् ।

अर्कतं घृतुरः पुनः

मे त्रि रानानि घत्तन् त्रिरा सातानि सुन्यते ।

गर्भमंघ्रं सुनुस्विभिः

अपारयन्त यगृपोऽभजन्त सुहृत्पया ।

भाग देवेभ्यं यजिष्यम

॥ १ ॥ ( अ० १।१०।१-९ )

द्वय आदि ( १ ) चण्डी, ५.९ विष्टुः

मनं मे अपुनर्धुं नापते पुनः

स्वादिष्टा धीनिदुष्यथाय शक्यते ।

अयं समुद्र इह विश्वदेव्यः

स्वाहाकृतस्य समुं नृप्युत ऋभवः

आमोगयं प्र यद्विच्छन्त पेतन

अपाकाः प्राञ्जो मम के विदापर्यः ।

सौधन्वनासञ्जरितस्य भूमता

अगच्छत सवितुर्वायुयो गृहम्

तत् सविता वोऽमृतत्वमाऽसृषत्

अगोहं यच्छ्रव्यन्ते पेतन ।

त्वं सिधमसमसृरस्य भक्षणं

एकं सन्तमकृषुता चतुर्षपम्

विष्टी शमी तरणित्वेन घाघतो

मर्तासुः सन्तो अमृतत्वमानसाः ।

सौधन्वना ऋमयः सूरचक्षसः

संवत्सरे समपृच्यन्त धीतिभिः

क्षेत्रमिषं पि ममस्तेजनेन

एकं पार्श्वमयो जेहमानम् ।

उपस्तुता उपमं नार्धमाना

अमर्त्येषु धर्ष इच्छमानाः

आ मनीषामन्तरिक्षस्य नृमयः

सूचेयं घृतं जुहवाम विघना ।

तरणित्वा ये पितुरस्य सक्षिर

ऋमयो वार्जमग्दन् द्वियो रजः

॥ १ ॥

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

( ५८०५ )

अमुनं इन्द्रः शर्वसा नवीयान्  
अमुर्वाजोमिर्वसुमिर्वसुदधिः ।

युष्मार्कं देवा अवसाऽहनि प्रियेऽ  
अभि तिष्ठेम पृत्तुनीरसुन्वताम्

॥ ७ ॥

निधर्मण अमयो गार्मपिशत  
सं वन्तेनासृजता मातरं पुनः ।

सौधन्वनासः स्वपस्यया नरो  
जिनी युवांना पितराऽरुणोतन

वाजैभिर्नो वाजसातावपिष्टि  
अमुमो इन्द्र बिभ्रमा दीपि राधः ।

तद्यो मिथो वरुणो मामहन्तां  
अदिनिः सिन्धुः पृथिवी उत यौः

॥ १ ॥ (अ० १।१११।१-५)

अगती ५ विष्टु १ ।

तक्षन् रथं सुवृत्तं विप्रनाऽपसः  
तक्षन् हरीं इन्द्रयाज्ञा वृण्वसु ।

तक्षन् पितृभ्याममवो युवद्वयः  
तक्षन् वत्सार्थं मातरं सवाभुर्वम्

आ नो युवायं तक्षत अमुमद्वयः  
क्रत्ये दक्षाय सुप्रजायतीमिर्यम् ।

यथा क्षयाम सर्ववीरया विशा  
तक्षः शर्षाय धासया स्विन्द्रियम्

आ तक्षत सातिमस्त्रयमृमयः  
साति रथाय सातिमर्वते नरः ।

साति नो जैशो सं महेत विभ्वहो  
जामिमजामि पृतनासु सदाजिम्

अमुक्षणमिन्द्रमा हुय ऊनयं  
अभून् वाजान् मृतः सोमपीतये ।

उमा मित्रावरुणा नूनमभिनो  
ते नो दिग्यन्तु सातर्ये धिये जिपे

अमुर्मर्षयं सं दिशशतु साति  
संमर्षजिज्ञाजो असाँ अविष्टु ।

तद्यो मिथो वरुणो मामहन्तां  
अदिनिः सिन्धुः पृथिवी उत यौः

॥ ५ ॥

॥ २ ॥ (अ० १।१३१।१-१३)

दीपयमा औचप्यः । १-१३ अगती, १४ विष्टु १ ।

किमु ध्रेष्टुः किं यविष्टो न आऽजंग्  
किमीयते इत्थं कचद्विम् ।

न निन्दिम चमसं यो मंहाकुलो  
अमं भ्रातृद्वेण इन्द्रतिमृदिम

॥ १ ॥

एकं चमसं चतुरः रुणोतन  
तद्यो देवा अमुवन् तद्व आऽगमम् ।

सौधन्वना यद्येवा करिष्यथ  
साकं देवैर्यक्षियांसो भविष्यथ

॥ २ ॥

अग्निं द्रुतं प्रति यदग्रंयातन  
अध्वः कर्त्वा रथं उतेह कर्त्थः ।

धेनुः कर्त्वा युवशा कर्त्वा ह्य  
तानि भ्रातरन् वः कृत्वयेमसि

॥ ३ ॥

चरुयांसं अमुमयस्तद्वृच्छत  
केदमुघः स्य द्रुतो न आऽजंग् ।

यदाऽवात्ययमसाञ्चतुरः कृतान्  
आदित् त्वष्टा मास्यन्तम्योनजे

॥ ४ ॥

हनामिनाँ इति त्वष्टा यदग्रंवीद्व  
चमसं ये देवपानमानिन्द्रिपुः ।

अन्या नामानि कृण्वते सुते सचाँ  
अन्यैरेनान् कन्याः नामभिः स्पर्त्

॥ ५ ॥

इन्द्रो हरीं युयुजे अभिना रथं  
यद्वस्पातिर्विभ्वरुपानुपाजत ।

अमुर्विभ्वा वाजो देवाँ अंगच्छन्  
स्वर्पमो यशिर्यं भागमनन

॥ ६ ॥

निधर्मणो गामरिणति धीतिभिः  
 या जरन्ता युवशा ताऽरुणोतन ।  
 सौधन्यना अन्धादभ्यन्तक्षत  
 युक्त्वा रथमुप देवौ अयातन  
 इदमुदकं पिबतेत्यग्रवीतन  
 इदं धौ घा पिबता मुञ्जनेजन्मम् ।  
 सौधन्यना यदि तत्रेव हर्षय  
 तृतीयं घा स्वर्गने मादयाचै  
 आपो भूर्यिष्टा इत्येको अग्रवीत्  
 अग्निर्मूर्यिष्ट इत्यन्यो अग्रवीत् ।  
 घृधर्यन्तो गृध्रभ्यः प्रैको अग्रवीत्  
 श्रुता यदन्तश्चमसां प्रपिदात  
 धोणामेकं उदकं गामर्षाजति  
 मांसमेकं पिदाति मनयाऽऽभृतम् ।  
 आ निघ्नचः शङ्खदेको अपांमरत्  
 किं स्त्रित् पुत्रेभ्यः पितरा उपायतुः  
 उद्वग्ल्वा अरुणोतना एणं  
 निघारयुपः स्वपुस्पर्षा नरः ।  
 भर्गोद्यस्य यदमन्तना गृहे  
 नदयेदमृमयो नानु गच्छथ  
 संमील्य यद्वर्षना पुष्यसंपन्न  
 बं मित् नान्या पितरां य आगनुः ।  
 भद्रापत् यः शरन्नं य आउदे  
 यः शार्मर्षी प्रो तरमा अग्रवीतन  
 सुवृष्पातं श्रुमवामर्षृच्छत  
 भर्गोद्य य इदं नो अद्वयम् ।  
 भवान् ब्रह्मा बंधिदिगारमग्रवीत्  
 संवासा इदमुपा स्ववपन  
 दिवा यामि मृत्तो भूषणऽग्निः  
 ज्वरं बानो अग्निरिति याति ।

अद्विर्यीति वरुणः समुद्रैः

युष्मो इच्छन्तः शवसो नपातः

॥ १४ ॥

॥ ५ ॥ ( अ० ३।६।१-४ )

विश्वामित्रो गायिनः । जगती ।

॥ ७ ॥

इदेहं घो मनसा यन्धुतां नर

उशिजौ जग्मुर्भिति तानि वेदसा ।

याभिर्मायाभिः प्रतिजुतिवर्षसुः

॥ ८ ॥

सौधन्यना यक्षिर्वं मागमान्श

॥ १ ॥

याभिः शर्चामिधमसां अपिंशत

यया धिया गामरिणीत चर्मणः ।

येन हरी मनसा निरतक्षत

॥ ९ ॥

तेन वेद्यत्यमृमयः समानश

॥ २ ॥

इन्द्रस्य सुव्यममृमयः समानशुः

मनोर्नपातो अपसो दधन्विरे ।

सौधन्यनासो अमृतयमेदिरे

॥ १० ॥

विधौ शर्माभिः सुकृतः सुकृत्यया

॥ ३ ॥

इन्द्रेण याथ सूर्यं सुते सचां

अथो यशानां भवया सह धिया ।

न यः प्रतिमे सुकृतानि यापतः

॥ ११ ॥

सौधन्यना श्रमयो दीर्याणि य

॥ ४ ॥

॥ ६ ॥ ( अ० ४।१।१-११ )

वाग्वेदे नीतमः । त्रिष्टुप् ।

॥ १२ ॥

प्र श्रुगुभ्यो दुतमिषं वाचमिषं

उपस्तिरे भवैर्नरी धेनुमीडि ।

ये वार्तजुतास्तर्पिभिरेवेः

परि यां राघो अपसो बभूवुः

॥ १ ॥

॥ १३ ॥

यदात्मकप्रमयः पितृणां

पारिविही धेयनां वृगजाभिः ।

आदिदेवानामुपं शक्यमायन

धीराणां पुष्टिमवहन् श्रुमार्थे

॥ ५ ॥

( ५८१ )

पुनर्ये चक्रुः पितरा युवाना  
सना यूयैव जरणा शयाना ।  
ते बाजो विभ्यां ऋमुरिन्द्रवन्तो  
मधुपर्तरमो नोऽयन्तु यत्नम्  
यत् संवत्समभवो गामरक्षन्  
यत् संवत्समभवो मा अपिदान् ।  
यत् संवत्सममरन् भालो अस्याः  
तामिः शमीमिरमृतत्वमाशुः  
ज्येष्ठ आह चमसा द्वा कुरेति  
कनीयान् व्रीन् कृण्वामेत्याह ।  
कलिष्ठ आह चतुरस्करेति  
त्यष्टे ऋभयस्तत् पनयद्वचो वः  
सत्यमूर्चुनरं एषा हि चक्रुः  
अनु स्वधामभवो जग्मुरेताम् ।  
विभ्राजमानाश्चमसां अहेव  
अवेनुत् त्यष्टो चतुरो ददृश्वान्  
छादश घ्नन् यदगोशस्य  
आतिथ्ये रणद्रुमवः ससन्तः ।  
सुक्षेत्राकृण्वन्ननयन्तु सिन्धुन्  
धन्वाऽतिष्ठन्नोयधीनिम्नमार्यः  
रथे ये चक्रुः सुवृत्तं नरेष्ठां  
ये धेनुं विभ्यजुर्वै विभ्यरूपाम् ।  
त आ तक्षन्वमवो रयि नः  
स्वर्षसः स्वर्षसः सुदस्ताः  
अपो ह्येषामर्जुपन्त देवा  
अभि प्रत्वा मनसा वीर्यानाः ।  
बाजो देवानाममवत् सुकर्मा  
इन्द्रस्य ऋमुक्षा परेणस्य विभ्यां  
ये हरी मेधयोपया मरन्त  
इन्द्राय चक्रुः सुयुजा ये अर्वा ।

ते रायस्योयं द्रविणान्यसे  
धत्त ऋमवः क्षेमयन्तो न मित्रम् ॥ १० ॥  
इदाहः पीतिमुत्तुवो मदै धुः  
न ऋते धान्तस्य सख्याय देवाः । ॥ ३ ॥  
ते नूनमसे ऋमवो वसूनि  
नृतीयं आसिन्सर्वने दधात ॥ ११ ॥  
॥ ७ ॥ (अ० ४।३४।१-११)  
॥ ४ ॥ ऋभुर्विभ्या बाज इन्द्रो नो अच्छा  
इमं यष्टं रत्नधेयोप यात ।  
इदा हि वो धिपणा देव्यद्वा  
अर्धात् पीति सं मदा अमता वः ॥ १ ॥  
॥ ५ ॥ विद्वानासो जग्मनो बाजरत्ना  
उत ऋतुमिर्ऋमवो मादयन्तम् ।  
सं वो मदा अमृतं सं पुरंधिः  
सुवीरामस्मे रयिमेरयन्वम् ॥ २ ॥  
॥ ६ ॥ अयं वो यष्ट ऋमवोऽकारि  
यमा मनुष्यत् प्रदियो दधिष्वे ।  
प्र वोऽरुडा जुजुषाणास्तो अस्थुः  
अमृतं विभ्वे अम्रियोत बाजाः ॥ ३ ॥  
अमृदु वो विप्रते रत्नधेयं  
इदा नरो दाशुरे मर्त्याय । ॥ ७ ॥  
यिर्वत् बाजा ऋमवो दुवे धो  
महिं तृतीयं सवर्णं मदाय ॥ ४ ॥  
आ बाजा यातोपं न ऋमुक्षा  
महो नरो द्रविणसो गृणाणाः ।  
आ वः पीतयोऽमिषित्वे अर्द्धा  
इमा अस्तै नवर्षा इय ग्मन् ॥ ५ ॥  
आ नपातः शयसो यातनोप  
इमं यष्ट नमसा द्रुयमानाः । ॥ ९ ॥  
मजोपसः सूरयो यस्य च प्य  
मर्ष्यः पात रत्नधा इन्द्रयन्तः ॥ ६ ॥

सुजोषा इन्द्र परमेष्ठे सोम  
 सुजोषाः पाणि गिर्यणो मरुद्भिः ।  
 अग्नेपाभिर्ऋतुपाभिः सुजोषा  
 मास्पृक्षीभी रत्नधाभिः सुजोषाः  
 सुजोषस आदित्येर्मादयध्वं  
 सुजोषस ऋभवः पर्यतेभिः ।  
 सुजोषसो दैत्येना सवित्रा  
 सुजोषसः सिन्धुभी रत्नधेभिः  
 ये अभिना ये पितरा य ऊती  
 धेनुं ततश्चुर्भयो ये अर्धा ।  
 ये अंसत्रा य क्रध्वप्रोक्षी ये  
 विभो नरा स्वपत्यानि चक्रुः  
 ये गोमन्तं वाजवन्तं सुवीरं  
 रयि धृथ पशुमन्तं पुरुक्षुम् ।  
 ने अग्नेपा क्रभयो मन्दसाना  
 असे धंस ये च राति गृणन्ति  
 नापाभूत न योऽसीतृषाम  
 अनिःशस्ता क्रभयो यहे अस्मिन् ।  
 समिन्त्रेण मर्दथ सं मरुद्भिः  
 सं राजभी रत्नधेयाय देवाः

॥ ८ ॥ (अ० ४।३५।१-९)

इहोप यात शवलो नपातः  
 सौधन्वना क्रभवो माऽप्य भूत ।  
 अस्मिन् हि वः सर्वने रत्नधेयं  
 गमन्त्यन्द्रमनु वो मर्दासः  
 आऽग्नमृणामिह रत्नधेयं  
 अभूत् सोमस्य सपुतस्य पीतिः ।  
 सुकृत्या यत् स्वपस्यया च  
 पक्वं धिचक्रुः चमसं चतुर्धा  
 व्यरुणोत चमसं चतुर्धा  
 सप्रे वि दिक्षेत्यमपीत ।

अग्नेय वाजा धमृतेभ्य पर्या  
 गुणं देवानामृभयः सुहृन्ताः  
 किमयः स्थिरमम एष थास  
 यं कार्येन धृतरौ धिचक्रुः ।  
 अथा सुनुष्यं सयनं मर्दाय  
 पात क्रभवो मधुनः सोमपस्य  
 शच्याकर्त पितरा युवाना  
 शच्याकर्त चमसं देवपानम् ।  
 शच्या हरी धनुतरायतष्ट  
 इन्द्रपादावृभयो वाजरत्नाः  
 यो वः सुनोत्यभिपित्ये अर्द्रौ  
 तीमं योजासः सयनं मर्दाय ।  
 तस्मै रयिमृभयः सयवीरं  
 आ तक्षत धृणो मन्दसानाः  
 प्रातः सुतमपियो हयभ्य  
 माध्यादिनं सयनं केवलं ते ।  
 समनुभिः पियस्य रत्नधेभिः  
 सखीयां इन्द्र चक्रुषे सुकृत्या  
 ये देवासो अमयता सुकृत्या  
 द्येना इवेदधि दिवि निवेद ।  
 ते रत्नं धात शवसो नपातः  
 सौधन्वना अमयतामृतांसः  
 यत् तृतीयं सयनं रत्नधेयं  
 अरुणध्वं स्वपस्या सुहस्ताः ।  
 तद्वभयः परिपिक्तं ॥ एतत्  
 सं मर्दमिरिन्द्रियेभिः पियध्वम्  
 ॥ ९ ॥ (अ० ४।३६।१-९)  
 जगती ९ त्रिष्टुप् ।  
 अनभवो जातो अनभीशुस्त्रयो  
 रयश्चिचक्रुः परि वर्तते रजः ।  
 महत् तद्वो देवस्य प्रवाचनं  
 चामृभयः पृथिवी यश्च पुष्यथ

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १० ॥

॥ ११ ॥

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १ ॥

(५८६९)

रयं ये चक्रः सुवृत्तं सुचतस्रो  
अर्धद्वन्तं मर्नसुस्थि ध्याया ।  
तां ऊ न्वस्य सर्वनस्य पीनय  
आ वो वाजा क्रमघो वेदयामसि  
तद्वो वाजा क्रमघः सुप्रवाचनं  
देवेषु विश्वो अमघमहित्वनम् ।  
जिजी यत् सन्ता पितरां सनाजुरा  
पुनर्युवाना चरथाय तक्षय  
एके वि चक्र चमसं चतुर्वयं  
निष्क्रमणो गामरिणीत धीनिभिः ।  
अथा देवेष्वमृतत्वमानश  
भुष्टा वाजा क्रमवस्तुष्ट उक्थ्यम्  
क्रमुतो रयिः प्रथमप्रवस्तमो  
वाजश्चुतालो यमजीजनन् नरः ।  
विभ्वतष्टो विदयेयु प्रवाच्यो  
यं देवालोऽर्धया स विचर्पणिः  
स वाज्यर्धो स क्रपर्विचस्यया  
स शप्ते अस्ता पृथनासु दुष्टरः ।  
स रायस्पोयं स सुवीर्यं दधे  
यं वाजो विम्वो क्रमघो यमाविषुः  
श्रेष्ठं यः पेदो अर्थि धायि द्वातं  
स्तोमो वाजा क्रमवस्तं जुजुष्टन ।  
धीरालो हि षा कुवयो विपश्चितः  
तान् यं पुना प्रभुणा वेदयामसि  
युयमसम्यै धिपर्णाभ्यस्पर्ति  
विद्वांसो विभ्या नर्याणि भोजना ।  
युमन्तं वाजं वृषं शुभमुत्तमं  
आ नो रयिममवस्तभृता ययः  
इह प्रजामिह रयि रराणा  
इह ध्रुवो धीरयत् तक्षता नः ।  
येन युयं चितयेमात्युन्यान्  
नं वाजं यिप्रमृमघो ददा नः

॥ १० ॥ ( ऋ० ४।३७।१-८ )

प्रिष्टुः ५-८ अनुष्टुप ।

उपं नो वाजा अच्वरमृमुत्ता  
॥ २ ॥ देवां यात पयिर्मिदैवयानैः ।  
यथा यन्नं मनुषो विश्वाभुमु  
दधिष्वे रण्याः सुदिनेष्वद्वाम् ॥ १ ॥  
ते वो हृदे मर्नसे सन्तु यथा  
॥ ३ ॥ जुष्टाभो अथ घृतनिर्णिजो गुः ।  
प्र यः सुतासो हरयन्त पुर्णोः  
क्रमुः दक्षाय हर्षयन्त पीनाः ॥ २ ॥  
व्युष्टाय देवहित यथा वः  
॥ ४ ॥ स्तोमो वाजा क्रमभ्रणो ददे यः ।  
जुष्टे मनुष्वदुर्परासु विभु  
यप्ते सचा गृहर्हिषेणु सोमम् ॥ ३ ॥  
पौर्वोद्यथाः शुचद्रया हि भूत  
॥ ५ ॥ अयः शिप्रा वाजिनः सुनिष्काः ।  
इन्द्रस्य सुनो शयसो नपातो  
अनु वक्षेत्प्रियं मदाय ॥ ४ ॥  
क्रमुमृमृक्षणो रयि वाजं याजितं युजम् ।  
॥ ६ ॥ इन्द्रस्त्वन्तं हवामहे सदासातममभिनम् ॥ ५ ॥  
सेहमयो यमवथ युयमिन्द्रश्च मर्षम् ।  
स धीमिरस्तु मर्निता मेघसाता सो अर्धता ६  
यि नो वाजा क्रमुक्षणः पयश्चित्तं यष्टवे ।  
॥ ७ ॥ असम्यै सुरयः स्तुता विभ्या आशास्तरिपणि ७  
न नो वाजा क्रमुभ्रण इन्द्र नामत्या रयिम् ।  
समर्ध्वं चर्पणिभ्य आ पुरु शंस मघर्तये ॥ ८ ॥  
॥ ११ ॥ ( ऋ० ७।४८।१-४ )  
॥ ८ ॥ मेवावर्षे विष्टिष्ठ [ ५ विष्टे देवा वा ] । प्रिष्टुः ।  
क्रमुक्षणो वाजा मादयध्वं  
अस्मे नरो मघवानः सुतस्यं ।  
आ योऽर्ध्याचः क्रनयो न यातां  
॥ ९ ॥ विभ्यो रयं नर्यं यनयन्तु ॥ १ ॥

ऋमुर्ध्वमुर्मिरभि वः स्याम्  
विभ्यो विभुभिः शर्वसा शर्वांसि ।

वाजो अस्मा अंबतु वाजसातो  
इन्द्रेण युजा तैरपेम वृत्रम्  
ते चिद्धि पूर्वोरभि सन्ति शासा  
विभ्यो अर्य उपरताति चन्वन् ।

इन्द्रो विभ्यो ऋभुसा वाजो अर्यः  
शर्वांसिष्टया कृण्वन् वि नृग्नम्  
नू देवासो वरिषः कर्तना नो  
भूत नो विभ्येऽवसे सजोषाः ।

समस्मे इयं यस्यो ददीरन्  
युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः

॥ १२ ॥ ( अ० १०।१७६।१ )

सुरारिषा । अनुष्टुप् ।

प्र सूनयं ऋभूणां वृद्धर्षयन्त वृजना ।

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

क्षामा ये विश्वधायसो ऽश्रन् धेतुं न मातरम् ॥१॥

॥ १३ ॥ ( वा० य० १४।१६ )

ऋभूणां भागोऽसि

॥ २६ ॥

॥ १४ ॥ ( वा० य० ११।१६ )

शारवेन ऋतुना देवा एकविंश ऋभवं स्तुताः ।

वैराजेन श्रिया श्रियं हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥२६॥

॥ १५ ॥ ( वा० य० १०।१५ )

ऋभुभ्योऽजिनसन्धम् ।

॥ १५ ॥

॥ १६ ॥ ( वा० य० १८।८ )

सवित्रे त्वं ऋभुमते विभुमते वाजवते स्वाहा ॥८॥

॥ १७ ॥ ( अथर्व० ९।१।११ )

अथर्व । अनुष्टुप् ।

यथा सोमस्तुतोये सर्वेन ऋभूणां भवति प्रियः ।

एषा मे ऋभवो वर्च आत्मनि प्रियताम् ॥१३॥

## ताक्ष्यः

॥ १ ॥ ( अ० १०।१७६।१-१ )

अरिष्टनेमिसाक्षः । छिन्दत् ।

त्यम् पु याजिनं देवजुतं

सहापानं सक्तारं रथानाम् ।

अरिष्टनेमिं पूतनाजमादां

स्वल्पे तार्यमिहा ह्रिये

इन्द्रस्येव शक्तिमाजोर्दधानाः

स्वल्पे तार्यमिया ईदम् ।

उर्वी न पृथ्वी चर्तते गर्भीति

मा कामेतां मा परेतां शियाम

सुदधियः शर्वसा पर्वहृष्टाः

एवं इव उपोतिवाऽपश्यन्तान् ।

॥ १ ॥

॥ २ ॥

सहस्रसाः शतसा संस्य रंदिः

न सां परन्ते युयति न शयीम्

॥ ३ ॥

सहचारी-देवगणः

( १ ) इन्द्रपूयन्तार्यवृद्धस्पतयः ।

॥ २ ॥ ( अ० १।८९।५ )

गोतमो सहचरः । विराट् स्यात् ।

स्यन्ति न इन्द्रो युयर्धवाः

स्यन्ति नः पूषा विश्वयेराः ।

स्यन्ति जलाश्वो अरिष्टनेमिः

स्यन्ति नो बृहस्पतिर्दधातु

॥ १ ॥

( ५८९ )





सागर-विभाग

सागरमंत्री

वरुणः

॥ १ ॥ ( अ० १।१४।६-१५ )

गुनाद्येप आसीदतिः सः कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवराताः ।  
प्रिष्टम् ।

नहि ते क्षत्रं न सहो न मय्युं  
धर्यक्षनामी पतयन्त आपः ।  
नेमा आपो अनिमित्तं चरन्तीः  
न ये घातस्य प्रमिनन्त्यभ्यम्  
अपुष्ने राजा वरुणो घनस्य  
ऊर्ध्वे स्तूर्पं ददते पुतवक्षः ।  
नीचीनाः स्युरुपरि युध्न पेषां  
अस्मे अन्तर्निहिताः केतवः स्युः  
उरं हि राजा वरुणश्चकार  
सूर्यो पन्यामन्येतया उ ।  
अपदे पादा प्रति घातयेऽकः  
उतापयुक्ता हृदयाविधेक्षित्  
ज्ञातं ते राजन् मियजः सहस्रै  
उयो गमीरा सुमतिरे अस्तु ।

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

यार्धस्व दुरे निष्कृतिं पराचैः  
कृतं चिदेनः प्र सुमुण्यस्वत्  
अभो य श्रद्धा निहितास उचचा  
नक्तं दहन्ने कुहं विदिवैयुः ।  
अर्द्धस्थानि घर्णस्य द्रुतानि  
यिचारकशच्चन्द्रमा नक्तमेति  
तत्त्वा यामि ग्रहणा सन्दमानः  
तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः ।  
अर्द्धलमानो वरुणेद योधि  
उरंदांस मा न आयुः प्र मोषीः  
तदिष्टक्तं तद् दिवा महामाहुः  
तदयं केतो हृद आ वि चरे ।  
शुनःशेषो हामहंद् गृहीतः  
सो अस्मान् राजा वरुणो सुमोक्तु  
शुनःशेषो हामहंद् गृहीतः  
त्रिपर्थादित्यं द्रुपदेयं यदः ।  
अयं राजा वरुणः सस्रज्याद्  
यिदो अर्द्धो वि सुमोक्तु पाशान्

॥ ९ ॥

॥ १० ॥

॥ ११ ॥

॥ १२ ॥

॥ १३ ॥

(५३०१)

अवन्ते हेळौ वरुण नमोभिः

अवं यज्ञेभिरीमहे हविर्भिः ।

क्षयन्नस्मभ्यमसुर प्रचेता

राजन्नेनोसि शिश्रथः कृतानि

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मत्

अवाधमं वि मध्यमं अथाय ।

अथा घयमादित्य वृते तव

अनागसो अदितये स्याम

॥ १ ॥ ( ऋ० १।१५।१-११ ) गायत्री ।

यच्चिखि ते विशो यथा प्र दैव वरुण व्रतम् ।

मिनीमसि यर्विद्यधि

मा नो वधाय ह्यनये जिहील्लानस्य रीरधः ।

मा हृणानस्य मग्यये

वि मृळीकार्य ते मनो रधीरधं न संदितम् ।

गीर्भिरवर्ण सीमाहि

पय हि मे विमग्ययः पतन्ति वस्यदृष्टये ।

ययो न वसतीरप

कदा क्षत्रधियं नरमा वरुण करामहे ।

मृळीकार्योवचक्षसम्

तदिव समानमाशाते येनन्ता न प्र युच्छतः ।

धूतप्रताय दानुये

येना यो यानां पदमन्तरिक्षेण पतताम् ।

येद नायः समुद्रियः

येद माम्ना धूतप्रतो द्वादश प्रजावतः ।

येना य उपजायते

येद पातस्य पतन्तिमुतेर्धृष्यस्य वृहतः ।

येना ये अप्यासते

नि रसाद धूतप्रतो वरुणः पुरयाकुस्था ।

माप्राज्याय सुप्रतः

धनो विभ्यापद्रुता विविद्यां अभि पश्यति ।

एतानि या न वार्या

स नो विभवाहा सुप्रतु—रादित्यः सुप्रया करत् ।

प्र ण आयूषि तारिपत्

विचन्द्र द्रापि हिरेण्ययं वरुणो वस्त निर्णिजम् ।

परि स्पश्ये नि पैदिरे

न यं दिप्सन्ति दिप्सवो न द्रुहणो जनानाम् ।

न देवमभिमातयः

उत यो मानुषेष्वा यशश्चके असाभ्या ।

अस्माकमुदरेष्वा

परा मे यन्ति धीतयो गावो न गव्यूतीरनु ।

इच्छन्तीरुचक्षसम्

सं नु वौचावहै पुनर्यतो मे मग्वाभृतम् ।

होतेव शर्दसे ग्रियम्

वशं नु विभ्वदर्शतं वशं रथमधि क्षमि ।

पुता जुपत मे गिरः

इमं मे वरुण भुषी हवमघा च मृळय ।

त्वामवस्युरा चके

स्वं विवर्षस्य मेधिर विवक्ष्य गमक्षं राजसि ।

स यामनि प्रति भुधि

उदुत्तमं मुमुग्धि नो वि पाशं मध्यम वृत ।

अवाधमानि जीवसे

॥ ३ ॥ ( ऋ० २।९८।१-११ )

कूभो गारुधमवो, वृत्तमवो वा । ( १० दुःस्वप्ननाशिनी ) ।

विद्युप् ।

इद कवेरादित्यस्य स्वराजो

विभ्वानि सान्त्वयस्यस्तु मद्रा ।

अति यो मन्द्रो यजुषाय देवः

मुवीर्ति मिधे परुणस्य भूरः

तय वृते सुमगासः स्याम

स्याप्यो वरुण तुष्ट्यांस ।

उपायन उपसां गोमतीनां

अग्रयो न जरमाणा अनु च्छ

॥ २ ॥

( ५१११ )

तव स्याम पुनर्वीरस्य शर्मन्  
उरुशंसस्य वरुण प्रणेताः ।  
युयं नः पुत्रा अदितेरदब्धाः  
अभि क्षेमघ्नं युज्याय देवाः  
प्र सीमादित्यो अंसुजद् विधत्तां  
ऋतं सिन्धवो वरुणस्य यन्ति ।  
न भ्राभ्यन्ति न चि मुच्यन्त्येते  
वयो न पप्नू रघुया परेज्मन्  
वि मच्छ्रुथाय रक्षानामिचारं  
ऋभ्याम ते वरुण क्षामृतस्य ।  
मा तर्तुदधेदि वर्पतो धिर्य मे  
मा मात्रा शार्यपलः पुर ऋतोः  
अपो सु ग्यक्ष वरुण नियलं  
मत् सज्जुतावोऽनु मा गृमाय ।  
दामेव वत्साद् वि सुमुग्यहो  
नहि त्वद्वारे निमिषञ्चनेहो  
मा नो वधैर्यरुण ये तं इष्टौ  
पनः कृण्वन्तमसुर श्रीणन्ति ।  
मा ज्योतिषः प्रवसुथानि गम्  
वि पू नृधः शिभयो जीवसे नः  
नमः पुरा ते वरुणोत नुनं  
उतापरं तुविजात प्रवाम ।  
त्वे हि कं पर्वते न ध्रितानि  
अप्रच्युतानि दूळम व्रतानि  
परं श्रुणा सावीरध मर्कतानि  
माऽहं राजश्रन्त्यर्हतेन भोजम् ।  
अव्युष्टा इह मयसीरुयात्  
आ नो जीधान् वरुण तासु शाधि  
यो मे राजन् युज्यो या सखा या  
स्वप्ने भयं भीरवे मह्यमाद ।

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

स्तेनो वा यो दिप्सति नो वृको वा  
त्वं तस्माद्वरुण पाह्यसान् ॥ १० ॥  
माऽहं मघोर्नो वरुण प्रियस्य  
भूदिदम् आ विदं शर्ममापेः ।  
मा रायो राजन्सुयमादव स्थां  
बृहद्वदेम विदये सुवीराः ॥ ११ ॥  
॥ ४ ॥ (श्रु० ५।८५।१-८)  
अग्निमोमः । त्रिष्टुप् ।  
प्र सज्जते बृहद्वचां गमीरं  
प्रहा प्रियं वरुणाय धुताय ।  
वि यो जुधानं शमितेव चर्म  
उपस्तिरे पृथिवी सूर्यो ॥ १ ॥  
चनेषु व्युन्तारिस्तं ततान्  
वाजमयंस्तु परं उक्षिपात् ।  
वृत्सु क्रतुं वरुणो मृत्स्व । मि  
त्रिवि सूर्यमदधात् सोममद्रौ ॥ २ ॥  
नीचीनवारं वरुणः कव्यं  
प्र संसज्जे रोदसी अन्तरिक्षम् ।  
तेन विभ्वस्य भुवनस्य राजा  
यवं न वृष्टिर्व्यनसि भूमं ॥ ३ ॥  
उनसि भूमि पृथिवीमुत धां  
यदा दुग्धं वरुणो यष्टपादित् ।  
समध्रेणे वसत पर्यतासः  
तविषीयन्तः अथयन्त वीराः ॥ ४ ॥  
इमाम् प्यासुरस्य श्रुतस्य  
मही मायां वरुणस्य प्र यौचम् ।  
मानेनेव तस्थिवा अन्तरिक्षे  
वि यो ममे पृथिवीं सूर्येण ॥ ५ ॥  
इमाम् नु कवितमस्य मायां  
मही देवस्य नक्रिा दधर्ष ।  
एकं यदुहा न पणन्येनीः  
आसिञ्चन्तारिवनयः समुद्रम् ॥ ६ ॥

अर्थस्य वरण मिश्र्य वा  
सखायं वा सदमिद् भ्रातरं वा ।  
वेशं वा नित्यं वरुणारणं वा  
यत् सीमार्गश्चक्रमा शिथिलस्तत्  
कितवासो यद्विरिपुर्न द्विवि  
यद् वा वा सत्यमुत यच्च विश्व ।  
सर्वा ता वि ध्यं शिथिलेवं वेष  
अर्धा ते स्याम वरण प्रियासः

॥ ५ ॥ ( अ० ७८६।१-८ )

मैनावरुणर्वासष्ठ । शिथिलम् ।

धीरा त्वस्य महिना जून्ये  
वि यस्तस्तम्भ रोदसी चिदुधीं ।  
प्र नाकमृष्वं जुनुदे दृहन्तं  
हिता नक्षत्रं प्रमथञ्च भूमं  
उत स्वयां तन्वां सं वंशे तत्  
कुदा न्युत्तर्वरणे भुवनि ।  
किं मे हृद्यमहणानो जुपेत  
कुदा मृलीकं सुमनां अमि क्यम्  
पृच्छे तदेनो वरण दिदृक्षु  
उपो पमि चिकितुषो विपृच्छम् ।  
सुमानमिमै कचयश्चिदाहुः  
अयं ह तुभ्यं वरणो हृणीते  
किमार्ग आस वरण ज्येष्ठं  
यत् स्तोतारं जिघांससि सखायम् ।  
प्र तर्मे योचो दृढम स्वधायो  
अयं त्वानेना नमसा तुर इयाम्  
अयं दृग्धानि पित्र्यां राज्ञा नो  
अयं या स्य चरुमा तनुमिः ।  
अयं राजन् पशुतुपं न तापुं  
सुजा यत्सं न दासो यस्मिन्  
न न स्यो दक्षो वरण धृतिः सा  
सुजा मनुष्यिनीदक्षो अयिचिः ।

अस्ति ज्यायान् कनीयस उपारे

स्वप्नश्चनेदन्तस्य प्रयोता

॥ ६ ॥

अरं दासो न मीळुष्ये कराणि

॥ ७ ॥

अहं वेयाय भूर्णेयेऽनागाः ।

अर्चेतयदचितो देवो अयों

गृत्सं राये कवितरो जुनाति

॥ ७ ॥

अयं सु तुभ्यं वरण स्वधापो

॥ ८ ॥

हृदि स्तोम उपश्रितश्चिदस्तु ।

शं नः क्षेमं शमु योगे नो अस्तु

युयं पात स्यास्तिभिः सदा नः

॥ ८ ॥

॥ ६ ॥ ( अ० ७८७।१-७ )

रदत् पृथो वरणः सूर्योय

प्राणींसि समुद्रियां नदीनाम् ।

॥ १ ॥

सगो न सृष्टो अर्षेतीर्हतायन्

चकार महीरवनीरदभ्यः

॥ १ ॥

आत्मा ते पातो रज आ नवीनोत्

पशुर्न भूर्णिर्यवसे ससुवान् ।

॥ २ ॥

अन्तर्मही रूहसी रोदसीमे

विभ्वा ते धाम वरण प्रियाणि

॥ २ ॥

परि स्पशो वरणस्य सादिष्टा

उमे पश्यन्ति रोदसी सुमेके ।

॥ ३ ॥

श्रुतावानः कथयो यष्टर्धाराः

प्रचेतसो य इपर्यन्त मन्म

॥ ३ ॥

उवाच मे वरणो मेधिराय

त्रिः सप्त नामाज्यां विभर्ति ।

॥ ४ ॥

विद्वान् पदस्य गुह्या न योचत्

युगाय विप्र उपराय शिक्षन्

॥ ४ ॥

तिष्ठो धावो निहिता अन्तरस्मिन्

तिष्ठो भूमिरुपरुः पार्क्षिधानाः ।

गृत्सो राजा वरणश्चक्र एतं

॥ ५ ॥

विधि मेष्टं द्विरण्ययं श्रुमे कम्

(५५५)

अयं सिन्धुं वरुणो घौरिव स्याद्  
द्रुप्सो न श्वेतो मृगस्तुर्धिमन् ।  
गम्भीरदांसो रजसो विमानः  
सुपाक्षत्रः सतो अस्प राजा  
यो मृळ्याति चक्रपे विदागो  
वयं स्याम वरुणे अनागाः ।  
अनु प्रतान्यदितेऽर्धन्तो  
ययं पात स्वस्तिभिः सदा नः

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ७ ॥ (श्र० ७।८८।१-७) [पाणिनिश्रुति]

प्र शुभ्युर्ध्वं वरुणाय प्रेष्यं  
मतिं वसिष्ठ मीळुर्ध्वं भरस्व ।  
य ईमर्धांशं कर्तुं यजत्र  
सहस्रामधं वृषणं युहन्तम्  
अथा न्वस्य संदशं जगन्यान्  
अग्नेरनीकं वरुणस्य मंसि ।  
स्वयं ददमन्नधिपा उ अन्धो  
अभि मा वपुर्दशये निर्नीयात्  
आ यद्वृद्धाय वरुणश्च नावं  
प्र यत् संमुद्रमीरयाय मध्यम् ।  
अपि यदृषां स्तुमिश्चराय  
प्र प्रेह ईदृशयावै शुभे कम्  
वसिष्ठं ह वरुणो नाव्याधात्  
ऋषे चकार स्यपा महोभिः ।  
स्तोतारं धिप्रः सुदिनरये अदां  
याम् प्रावस्ततनन् यादुपासः  
वृत्त्यानि नौ सुषया रम्यम्  
सर्वावहे यद्वृषकं पुरा दित् ।  
युहन्तं मार्तं ययण स्वधावः  
सदृशं जगमा गदं ते

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

य आपिनिर्त्यो वरुण मियः सन्  
त्वामागांसि कृणवत् सन्धा ते ।  
मा त एनस्वन्तो योक्षन् भुजेम  
यन्धि प्मा विप्रः स्तुवते वरुधम्  
ध्रुवास्तु त्वास्तु क्षितिर्धु क्षियन्तो  
व्यसत् पाशं वरुणो मुमोचत् ।  
अथो वन्याना अर्दितेरुपस्थाद्  
ययं पात स्वस्तिभिः सदा नः

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥ (श्र० ७।८९।१-५)

वयं नो, ५ वयं नो ।

मो यु वरुण मुग्धयै गृहं राजश्रद्ध गमम् ।  
मृळा सुक्षत्र मृळ्यं  
यदेमि प्रस्फुरन्नेव इतिने भ्मातो भद्रियः ।  
मृळा सुक्षत्र मृळ्यं  
मर्यः समद वीनतां प्रतीपं जंगमा शुचे ।  
मृळा सुक्षत्र मृळ्यं  
अपां मय्ये तस्मिन्वांसं वृष्णाविदग्जदितारम् ।  
मृळा सुक्षत्र मृळ्यं  
यत् किं चेदं यदण दैव्ये जने  
अभिद्रोह मनुष्याश्चरामसि ।  
अर्विस्ती यत् तय धर्मा युपोपिम  
मा नस्तस्मादेनसो देय रीरियः

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ९ ॥ (श्र० ८।११।१-१०)

नामाकः काव्य । महारण्यः ।

असा ऊ पु प्रभृतये वरुणाय मृग्यो  
अर्चो विदुष्टेरयः ।  
यो धीता मार्तुपाणां वृष्यो गार्धय रसति  
नर्मन्तामन्यके संमे  
तम् पु संमना गिरा पितृणां च मर्माभिः ।  
नामाकस्य प्रदीप्तिभिर्ध्वं सिग्धनामुपेदये  
सप्तस्वसा स मर्माभो नर्मन्तामन्यके संमे

॥ १ ॥

॥ २ ॥

स क्षपः परि पत्यजे न्युत्तो मायया ध्वे  
स विध्वं परि दशतः ।

तस्य वेनीरनु द्रत—मुपस्तित्तो अवर्धयन्  
नर्मन्तामन्यके संमे ॥ ३ ॥

यः ककुभो निधारयः पृथिव्यामधि दशतः ।

स माता पुष्यं पुष्यं तद्वरणस्य सप्त्यं

स हि गोपाह्वेयो नर्मन्तामन्यके संमे ॥ ४ ॥

यो धर्ता भुयनानां य उन्नाणामपीच्या ३

वेद नामानि गुह्या ।

स कविः काव्या पुर रूपं चौरिव पुष्यति

नर्मन्तामन्यके संमे ॥ ५ ॥

यस्मिन् विध्वानि काव्या चक्रे नाभिरिव श्रिता ।

श्रितं जुवी संपर्यत मजे गावो न संयुजे

युजे अर्ध्वं अयुक्षत नर्मन्तामन्यके संमे ॥ ६ ॥

य आस्वत्क आशये विध्वो जातार्थेयाम् ।

परि धामानि मर्षुशद् वरणस्य पुरो गये

विध्वे देवा अनु द्रतं नर्मन्तामन्यके संमे ॥ ७ ॥

स संमुद्रो अपीच्य—स्तुरो धामिव रोहति

नि यदासु यजुर्दधे ।

स माया अर्चिना पदा ऽस्तंणात्राकमारुहत्

नर्मन्तामन्यके संमे ॥ ८ ॥

यस्य श्वेता विचक्षणता तिस्रो भूमीरधिहितः ।

त्रिरुत्तराणि प्रप्रतु—वरुणस्य ध्रुवं सद्

स संप्तानामिरज्यति नर्मन्तामन्यके संमे ॥ ९ ॥

यः श्वेतो अर्धेनिणिज—श्वके कृष्णो अनु द्रता ।

स धाम पुष्यं ममे यः स्कम्भेन वि रोदसी

अजो न धामधारय—नर्मन्तामन्यके संमे ॥ १० ॥

॥ १० ॥ ( अ० ८।४९।१-३ )

नामाः काव्या, अर्चनाना आश्रये वा । त्रिष्टुप् ।

अस्तंन्नाद् धामस्तुरो विध्ववेदा

अभिमीत परिमाणं पृथिव्याः ।

आसीदद् विध्वो भुयनानि सुघ्राद्

विध्वेत् तानि वरणस्य मृतानि ॥ १ ॥

एवा चन्दस्य वरणं यद्वर्त

नमस्या धीरमृतस्य गोपाम् ।

स नः शर्म शिवरूपं वि र्यसत्

पातं नो धावापृथिवी उपस्थे ॥ २ ॥

इमां धियं दिक्षमाणस्य देव

कृतुं दक्षं वरणं सं दिक्षाधि ।

ययाति विध्वो दुरिता तरेम

सुतर्माणमधि नायं गहेम ॥ ३ ॥

॥ ११ ॥ ( अ० ८।५९।११ उत्तरार्धस्य १२ )

शिवमेव आश्रितः । पंक्तिः ।

वरुण इविह क्षयत् तमापो अर्धयनूपत

वत्सं संशिवरीरिव ( उत्तरार्ध. ) ॥ ११ ॥

सुदेवो असि वरुण यस्य ते सप्त सिन्धवः ।

अनुक्षरन्ति काकुर्द सुर्म्य सुपिरामिव ॥ १२ ॥

॥ १२ ॥ ( अ० १०।११४।५,७-८ )

अभि-वरुण-वोमा । त्रिष्टुप्, ७ अगती ।

निर्माया उ त्वे असुरा अभूयन्

त्वं च मा वरुण कामयासि ।

श्रुतेन राजघ्नन्तं विविधन्न

मम राष्ट्रस्याधिपत्यमेहि ॥ ५ ॥

कविः कवित्वा दिधि रूपमासजत्

अप्रभूती वरणो निरपः सृजत् ।

क्षेमं कृष्णाना जनयो न सिन्धवः

ता अस्य वर्णं शुचयो भरिभ्रति ॥ ७ ॥

ता अस्य ज्येष्ठमिन्द्रियं संचन्ते

ता ईमा क्षेति स्वधया मर्दन्तीः ।

ता इ विशो न राजानं वृणाना

धीमस्तुवो अप धृषादतिघ्न ॥ ८ ॥

॥ १३ ॥ ( यः० य० छान्द )

वरुणस्योत्तममनासि वरुणस्य स्कम्भसर्जनी स्यो  
 वरुणस्य ऋतसदन्यसि  
 वरुणस्य ऋतसदनमसि  
 वरुणस्य ऋतसदनमा सीद ॥ ३६ ॥

॥ १४ ॥ ( छा० य० टी० ३ [तृ. व.] । )

नमो वरुणायाभिष्टितो वरुणस्य पार्श्वः ॥ २३ ॥

॥ १५ ॥ ( घा० य० १०।७ )

सुधमादौ पुद्गिनीत्प एका  
 भनीधृष्टा अपस्यो यतानाः ।  
 पस्त्यासु वक्त्रे वरुणः सुधस्यै  
 अपांश्च शिरसां वर्तमानस्यन्तः ॥ ७ ॥

॥ १६ ॥ (घा० य० १०।७१-७१)

सखिता यरणो बध्मघर्जमानाय दास्युर्पे ।  
 आर्द्रत नमुचैर्यस्तु सुत्रामा यलमिन्द्रियम् ॥ ७१ ॥  
 यरणः भ्रममिन्द्रियं भगेन सखिता भ्रियम् ।  
 सुत्रामा यदास्ता यलं दधाना युक्तामाशत ॥ ७२ ॥  
 विद्या शरस्य पितरं यरणं ज्ञातवृण्यम् ।  
 तेनां ते तन्वेडे शं करं पृथिव्यां तं निपेचनं  
 बहिर्दं अस्तु यालितं ॥ ३ ॥

॥ १८ ॥ ( अथर्व० १।१०।१-३ )

૧.૨ ત્રિદ્યુપ્, ૩ કુમ્મતી અનુદ્યુપ્, ૪ અનુદ્યુપ્.

अयं देवानामसुरो वि राजति  
यज्ञा हि सत्या वरुणस्य राज्ञः ।  
तत्स्परि ब्रह्मणा शार्शदान  
उप्रस्य मन्योरुदिमं नयामि ॥ १ ॥  
नर्मस्ते राजन् वरुणास्तु मन्यये  
विभ्यं ह्यप्र निचिकेपि दुग्धम् ।  
सहस्रमन्यान् प्र सुवामि साकं  
शतं जीयाति शरदस्नयायम् ॥ २ ॥

यदुच्यथानृतं जिह्या वृजिनं यदु ।  
 रात्रिस्था सत्यधर्मणो मुञ्चामि वरेणादहम् ॥ ३ ॥  
 मुञ्चामि त्वा वैश्वानरादर्षेणार्वाग्महत्स्परि ।  
 सजातानुप्रेथा वंद ब्रह्म चापं चिकीहि नः ॥ ४ ॥

॥ ६९ ॥ ( अथर्व० १।८।३ ) अनुष्टुप् ।

इतश्च यदमुतश्च यद्धं वरुण यावय ।  
वि मृदच्छर्मं यच्छु वरीयो यावया वृधम् ॥ ३ ॥

॥ १० ॥ ( मथर्घ ० ४।१५।१० )

पञ्चवद।नुष्टुब्गार्मा भुरिक् ।

अपो निविञ्चसुरः पिना नः भवसन्तु  
गर्गा अपां धरणाव नोर्चीरपः खज ।  
चर्वन्त पश्चिमाहवो मण्डूका हरिणानु ॥ १२ ॥

॥ २१ ॥ ( मथुर्यं ५।११।१-११ )

(प्रद्योतारम्) । त्रिदुष्, १ भुरिक्, ३ पङ्क्ति, ६ पञ्चपदा  
आतिशक्वरी, ११ त्र्यवसाना पट्टपदा अत्यष्टिः ।

कथं महे असुरायाश्चवीरिह  
 कथं पित्रे हार्ये त्वेपनृनः ।  
 पृश्नि वरुण दक्षिणां दद्यावान्  
 पुनर्मघं त्वं मनसाचिकित्सीः  
 न कामेन पुनर्मयो भयामि  
 तं चक्षे कं पश्निमेतामुपाजे ।

केन नु त्वमर्थयन् काव्येन  
केन जातेनासि जातयेदाः ॥ २ ॥

सत्यमहं गंभीरः कार्येन  
सत्यं ज्ञातेनास्मि ज्ञातव्यदाः ।  
न मे दासो नाप्यो मदित्वा  
मृतं मीमाय यदहं धीरप्ये  
न त्वदन्यः कवितरो न मेघपा  
धीरतरो यरुण म्वायन् ।

त्वं ता विभ्वा भुयंनानि येत्थ  
 स निग्र त्यज्जनो मायी विमाय ॥ ४ ॥

त्वं ह्यङ्ग वरुण स्वधायन्  
विश्वं चेत्य जनिमा सुप्रणीते ।  
किं रजस एना परो अन्यदेस्ति  
एना किं परेणावरमसुर  
एकं रजस एना परो अन्यदेस्ति  
एना पर एकेन दुर्गशी चिदुवाक् ।  
तत् तं विद्वान् वरुण प्र ब्रवीमि  
अधोवचसः पुण्यो भयन्तु  
नीचैर्हासा उप संपन्तु भूमिम्  
त्वं ह्यङ्ग वरुण ब्रवीषि  
पुनर्मधेध्ववृषानि भूरि ।  
मो पु पुणीरुम्येकृतावतो भुव  
मा त्वा बोचन्नराधसं जनासः  
मा मा बोचन्नराधसं जनासः  
पुनस्ते पृथिं जरितर्वदाभि ।  
स्तोत्रं मे विश्वमा याहि शचीभिः  
अन्तर्दिग्धासु मानुषीषु दिक्षु  
आ तं स्तोत्राण्युपगतानि यन्तु  
अन्तर्दिग्धासु मानुषीषु दिक्षु ।  
वेदि नु मे यन्मे अर्दत्तो  
असि युज्यो मे सप्तर्षवः सर्वाऽसि  
सुमा नौ यन्धुर्वरुण सुमा जा  
वेदाहं तद्यन्त्राविषा सुमा जा ।  
वदामि तद्यत्ते अर्दत्तो  
अस्मि युज्यस्ते सप्तर्षवः सर्वाऽसि  
देवो देवाय गृणते ययोधा  
यिप्रो यिप्राय स्तुपते सुमेधाः ।  
मजीजनो हि वरुण स्वधायन्  
अयथाणं पितरं देववधुम् ।  
तस्मा उ राधेः कृणुहि सुप्रशस्तं  
तस्मा नो भानि परमं च वरुणः

॥ २१ ॥ ( अथर्व० ५।१४।४ )

चतुष्पदाऽतिशयवरी ।

॥ ५ ॥

वरुणोऽपामधिपतिः स मावतु ।

अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां

पुरोधार्यामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां

वितर्यामस्यामाकृत्यां

अस्यामाशिष्यस्यां देवहृत्यां स्यादां ॥ ४ ॥

॥ ६ ॥

॥ २२ ॥ ( अथर्व० ५।१।१-२ )

वृद्धिदोऽवर्षा । त्रिष्टुप्, ५ परावृहती त्रिष्टुप्, ७ विराट्,

१ अथर्वाना वट्पदा अत्यष्टिः ।

॥ ७ ॥

अध्वरुमन्त्रो योनिं य आध्वभूय

अमृतोसुवैधमानः सुजन्मा ।

अदग्धासुर्भ्राजमानोऽहैव

त्रितो धृता दाधार त्रीणि ॥ १ ॥

॥ ८ ॥

आ यो धर्मीणि प्रथमः सुसाह

ततो वपूषि कृणुषे पुरुणि ।

धास्युर्योनिं प्रथम आ विवेशा

यो वाचमनुदितो विकेत ॥ २ ॥

॥ ९ ॥

यस्ते शोकाय तन्व रिरेच

क्षरक्षिरण्यं शुचयोऽनु स्वाः ।

अत्रो दधेते अमृतानि नाम

असौ वस्त्राणि विश परयन्ताम् ॥ ३ ॥

॥ १० ॥

प्र यदेते प्रतरं पुर्यं गुः

सर्वः सवः आतिष्ठन्तो अजुष्यम् ।

कविः शुपस्यं मातरां रिहाणे

जान्यै धुर्यं पतिमेरयेयाम् ॥ ४ ॥

॥ ११ ॥

तव पु तं महत् पृथुजमन्नमः

कविः काव्येना कृणोमि ।

यत् सम्यञ्जायमियन्तायमि क्षां

अत्रो मदी रोधन्मके वायुधेर्न ॥ ५ ॥

(१०।१०)



सप्त मर्यादाः कथयस्ततश्चुः  
तासामिदेकामभ्यं हुरो गांव ।  
आयोद्धे स्कन्म उपमस्य नीडे  
पथां विसर्गे घृणेषु तस्थौ  
उतामृतासुर्वेत एमि कृण्वन्  
असुगुत्मा तन्व्यस्तसुमद्रुः ।  
उत वा शक्रो रत्नं दधाति  
ऊर्जया वा यत् सचते हविर्दाः  
उत पुत्रः पितरं क्षत्रमीडे  
ज्येष्ठं मर्यादमद्वयन्स्वस्तये ।  
वर्द्धास्तु ता वरुण यास्ते विद्या  
आधर्मततः कृण्वो वर्षयि  
अधर्मधेनं पर्यसा पृणक्षि  
अधेनं शुम्भ धर्षते अमुर ।  
अधि वृधाम शुभिमयं सखायं  
वरुणं पुत्रमदित्या इषिष्टम् ।  
कविशस्तान्यस्मै वर्षयि  
अयोचाम रोदसी सत्यपात्रा

॥ ७४ ॥ (अथर्व० ५।१।१-९)

त्रिष्टुप्, ९ मुरिक्वरातिग्रायता त्रिष्टुप् ।

तद्विवांस भुर्वनेषु ज्येष्ठं  
यतो जुह उग्रस्त्वेषुनम्नः ।  
सुषो जज्ञानो नि रिणाति शत्रून्  
अनु यदेनं मदेन्ति विश्व ऊर्माः  
धावुधानः शर्वसा मर्योजाः  
शत्रुर्द्रासाय भिषसं दधाति ।  
अव्यनद्य ध्यनच्य सस्ति  
सं ते नयन्त प्रमृता मदेषु  
त्ये क्रतुमपि पृच्छन्ति मरि  
द्विर्यदेते त्रिमवन्त्युमाः ।

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १ ॥

॥ २ ॥

स्वादोः स्वादीयः स्वादुर्ना खजा  
समदः सु मधु मधुनामि योषोः ॥ ३ ॥  
यदि चितु त्वा घना जयन्तं  
रणेरणे अनुमदन्ति विप्राः ।  
ओजीयः शुष्मिन्स्तिष्ठरमा तनुष्य  
मा त्वा दमन् दुरेवासः कशोकाः ॥ ४ ॥  
त्वया वयं शाशवाहे रणेपु  
प्रपश्यन्तो युधेन्पानि मरि ।  
चोदयामि त आरुधा वचोभिः  
सं ते शिशामि व्रक्षणा वयोसि ॥ ५ ॥  
नि तद्दधिपेऽवरे परे च  
यस्मिन्नाविवावसा दुरोणे ।  
आ स्वापयत मातरं जिगत्तुं  
अत इन्वत कर्वराणि मरि ॥ ६ ॥  
स्तुष्य वप्यन् पुत्रवर्मान्  
समृभ्याणमिनतममासमाप्त्यानाम् ।  
आ दर्शति शर्वसा मर्योजाः  
प्र संश्रति प्रतिमानं पृथिव्याः ॥ ७ ॥  
इमा व्रक्ष वृहर्दियः कृण्वन्  
इन्द्राय दापमश्रियः स्वर्योः ।  
महो गोप्रस्य क्षयति स्वराजा  
तुरीक्षिर्भ्यमण्यन् तपस्वान् ॥ ८ ॥  
पृथा महान् वृहर्दियो अथर्वा  
अवोचरक्षां तन्व्यमिन्द्रमेघ ।  
स्वसारो मातरिर्मरि अग्नि  
दिन्यन्ति चेने शर्वसा धर्षयन्ति च ॥ ९ ॥

॥ १५ ॥ (अथर्व० १।१।१-४)

मृगवहिराः । यमो (वा) । अनुष्टुप्, १ षड्मयी अनुष्टुप्,  
१ वदुष्यादिगाट् ।

मगमस्या वर्च आदिप्यार्धं यज्ञादिषु चर्जम् ।  
महायुध इय पर्थतो ज्योक् पिठ्यास्ताम् ॥ १ ॥

पूषा तै राजन् कन्याऽधूनि धूयतां यम ।  
 सा मातुर्वैध्यतां गृहेऽथो भ्रातुरथो पितुः ॥ २ ॥  
 पूषा तै कुलपा राजन्तामु ते परि दद्यासि ।  
 ज्योक् पितृष्वासाता आ शीर्ष्णः समोप्यात् ॥ ३ ॥  
 अस्ति तस्य ते ब्रह्मणा कदयपस्य गर्गस्य च ।  
 अन्तःक्रोशमिव जामयोऽपि नह्यामि ते भगम् ॥ ४ ॥

॥ २६ ॥ ( अथर्व० ४।१६।१-२ )

ब्रह्मा । वरुणः, सत्यावृताम्बीकणम् । विष्णुः, १ अङ्गुष्ठम्,  
 ५ मुरिक्, ७ जपती, ८ त्रिपान्महापृङ्गु, ९ विराणाम  
 त्रिपाद्गावयो ।

पृहन्नैषामधिष्ठाता अन्तिकादिव पश्यति ।  
 य स्तायन्मन्यते चरन्तसर्वे देवा इदं विदुः ॥ १ ॥

यस्तिष्ठति चरति यश्च वञ्चति  
 यो निलायं चरति याः भूतङ्गम् ।

ह्यौ सैन्निपद्यन्मन्त्रयेते  
 राजा तद्वैदु वरुणस्तृतीयः ॥ २ ॥

उतेयं भूमिर्वरुणस्य राक्षः  
 उतासौ घौर्युद्धती दुरेभन्ता ।

उतो संमुद्रौ वरुणस्य कुक्षी  
 उतासिन्नल्प उदके निलीनः ॥ ३ ॥

उत यो धार्मतिः सपीत पुरस्तात्  
 न स मुच्यति वरुणस्य राक्षः ।

द्विपस्पशः प्र चरन्तीदर्मस्य  
 सहस्राक्ष्वा अति पश्यन्ति भूमिम् ॥ ४ ॥

सर्वे तद्राजा वरुणो वि चष्टे  
 यदन्तरा रोदसी यत् पुरस्तात् ।

संख्याता अस्य निमिषो जनानां  
 स्रष्टानिष भृशो नि मिनोति तानि ॥ ५ ॥

ये ते पादा वरुण सप्तसप्त  
 त्रेधा निमन्ति पिपिता रुन्ताः ।

छिनन्तु सर्वे अनृतं वदन्तं  
 यः संत्यवाचति ते रजन्तु ॥ ६ ॥

शूतेन पाशैरपि धेहि वरुणैः  
 मा तै मोच्यन्तु तवाह नृचक्षः ।

आस्तां जाल्म उदरै शंसयिवा  
 कोश इवायुधः परिकृत्यमानः ॥ ७ ॥

यः संभ्राम्योक्तु वरुणो यो व्याम्योक्तु  
 यः सैवेद्योक्तु वरुणो यो विवेद्योक्तुः ।

यो वैवो वरुणो यश्च मानुषः  
 तैस्त्वा सर्वैरपि प्यामि पाशैः ॥ ८ ॥

असावामुप्यायणामुप्याः पुत्र ।  
 तातुं ते सर्वाननुसंविशामि ॥ ९ ॥

॥ २७ ॥ ( अथर्व० ४।४०।१ )

शुक्रा । त्रिष्टुप् ।

ये पृश्नाज्जुह्वेति जातवेदः  
 प्रतीच्यां दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।

वरुणमुत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां  
 प्रत्यर्गेनान् प्रतिसुरेण हन्मि ॥ ३ ॥

॥ २८ ॥ ( अथर्व० १०।५।१० )

सिन्धुदीपः । नक्षत्रानां पञ्चपदा विपरीतपादलक्ष्मा बृहती ।  
 वरुणस्य भ्राता सूर्यः ।

अपां शुक्रमापो देवीर्ववां असासुं धत्त ।  
 प्रजापतेवो धाम्नास्मै लोकार्य सादये ॥ १० ॥

वरुण-सहचारी-देवगणः

( १ ) इन्द्राणीवरुणान्यमाप्यः ।

॥ २९ ॥ ( अ. १।२९।१२ )

मेधातिथिः काण्डः । गायत्री ।

इन्द्राणीसुप द्वये वरुणानीं स्युस्तये ।  
 भगार्थो सोमपीतये ॥ १२ ॥

( १०४९ )

( २ ) वरुणमित्रार्यमणः ।

॥ ३० ॥ ( ऋ० १।१।१-३, ७-९ )

काण्डो घोराः । गायत्री ।

यं रक्षन्ति प्रचेतसो वरुणो मित्रो अर्यमा ।

नू चित् स दभ्यते जनः ॥ १ ॥

यं बाहुर्तेषु पिप्रति पान्ति मर्त्ये रिषः ।

अरिष्टः सर्वे पघते ॥ २ ॥

वि दुर्गो वि द्विषः पुरो भ्रन्ति राजान पयाम् ।

नयन्ति दुरिता तिरः ॥ ३ ॥

कथा राघाम सखायः स्तोमं मित्रस्यार्यमणः ।

महि प्सरो वरुणस्य ॥ ७ ॥

मा घो भ्रन्तं मा शपन्तं प्रति घोचे देवयन्तम् ।

सुमैरिद् व आ विवासे ॥ ८ ॥

चतुरश्रिद् दर्दमानाद् विभीषादा निघातोः ।

न दुर्मुकाय स्पृहयेत् ॥ ९ ॥

## मनः

॥ १ ॥ ( चा० य० ३।५३-५५ )

मनो न्वाह्वामहे नाराशंसेन स्तोमेन ।

पितृणां च मग्मभिः ॥ ५३ ॥

आ न एतु मनः पुनः क्वावे दक्षांय जीवसे ।

ज्योक् च स्वये द्यौ ॥ ५४ ॥

पुनर्नः पितरो मनो ददातु दैव्यो जनः ।

जीयं ब्रातंससचेमहि ॥ ५५ ॥

॥ २ ॥ ( चा० य० ३।४।१-६ )

यजाप्रतो दुरुमुदैति दैव्यं

तद् सुतस्य तथैवेति ।

दुरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं

तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो

यष्टे कृण्वन्ति विदधेपु धीराः ।

यदपूर्वं यस्तमन्तः प्रजानां

तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ २ ॥

यत् प्रज्ञानमुत चेतो घृतिक्ष

यज्योतिरन्तरवृत्तं प्रजासु ।

यस्मात् प्रभुते किञ्चन कर्म क्रियते

तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ ३ ॥

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्

परिगृहीतममृतेन सर्वम् ।

येन यष्टस्यायते सुतदोता

तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ ४ ॥

यस्मिन्नुचः साम यजुश्च

यस्मिन्प्रतिष्ठिता रथनाभार्विवाः ।

यस्मिन्निचर सर्वमोते प्रजानां

तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ ५ ॥

सुपारथिरभ्वानिव यन्मनुष्यान्  
नेनीयतेऽभीशुभिर्विजिनं हव ।

दृष्ट् प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं  
तन्मे मनः शिवसैकतपमस्तु

॥ ३ ॥ (अथर्व० १।१०।१)

प्रजापतिः । पद्यापंक्तिः ।

यथेदं भूस्या अघि तृणं घातौ मथायति ।

एषा मथनामि ते मनो यथा मां कामिन्यसो

यथा मन्नापणा अस्तः

॥ ६ ॥

॥ ४ ॥ (अथर्व० ७।११।४)

शौनकः । अनुष्टुप् ।

यक्षो मनः परागतं यद्वसमिह वेद वा ।

यद्व आ वर्तयामसि मयि घो रमतां मनः ॥ ४ ॥

॥ ५ ॥ (अथर्व० ७।१६।१)

अथर्वः । अक्षि, मनः । अनुष्टुप् ।

मस्यौ नौ मधुसंकाशे अनिकं नौ समंजनम् ।

अन्तः कृणुष्व मां हृदि मन इशौ सदासति ॥ १ ॥

## मन आवर्तनम्

॥ १ ॥ (श्रु० १०।५८।१-११)

अधुः श्रुतमधुर्विप्रमधुर्गोपायनः । अनुष्टुप् ।

यत् ते युमं वैषस्वतं मनो जगाम दूरकम् ।

तत् त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ १ ॥

यत् ते दिवं यत् पृथिवीं मनो जगाम दूरकम् ।

तत् त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ २ ॥

यत् ते भूमिं चतुर्दृष्टिं मनो जगाम दूरकम् ।

तत् त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ ३ ॥

यत् ते चतस्रः प्रदिनो मनो जगाम दूरकम् ।

तत् त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ ४ ॥

यत् ते सप्तम्रमर्णयं मनो जगाम दूरकम् ।

तत् त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ ५ ॥

यत् ते मर्त्यीषाः प्रपतो मनो जगाम दूरकम् ।

तत् त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ ६ ॥

यत् ते अपो यदोर्षधीः मनो जगाम दूरकम् ।

तत् त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ ७ ॥

यत् ते सूर्यं यदुपसं मनो जगाम दूरकम् ।

तत् त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ ८ ॥

यत् ते पर्वतान् बृहतो मनो जगाम दूरकम् ।

तत् त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ ९ ॥

यत् ते विध्वंसिदं जगन्मनो जगाम दूरकम् ।

तत् त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ १० ॥

यत् ते पराः परावतो मनो जगाम दूरकम् ।

तत् त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ ११ ॥

यत् ते भूतं च मर्त्यं च मनो जगाम दूरकम् ।

तत् त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ १२ ॥

(६०३१)



कृषि-मंत्री

## पर्जन्यः

॥ १ ॥ ( ऋ० ५।४१।१९-१४ )

मौमोऽग्निः । त्रिष्टुप् ।

प्र स्र महे सुधारणाय मेधां  
गिरं भरे नवर्षसां जार्यमानाम् ।

य आहुना बुद्धितुर्वक्षणांस्तु  
रूपा मिनानो अरुणोदिवं नः

॥ १३ ॥

प्र सुपुतिः स्तनयन्तं रुयन्तं  
इलस्पतिं जरितनूनमदयाः ।

यो भध्निमाँ उदमिमाँ इर्यति  
प्र विद्युता रोदसी उक्षर्माणः

॥ १४ ॥

॥ २ ॥ ( ऋ० ५।८१।१-१० )

मौमोऽग्निः । त्रिष्टुप् ; २-४ अगती ; ९ अनुष्टुप् ।

अच्छां वद त्वयसं ग्रीमिरामिः  
स्तुदि पर्जन्यं नमसा विधास ।

कार्त्तिकदद् वृषमो जीरदान्  
रेतो दद्यात्पोषधीषु गर्भम्

॥ १ ॥

यि पुक्षान् हन्त्युत हन्ति रक्षसो  
यिभ्यं यिमाय भुवनं मदायधात् ।

उतानागा ईपते वृष्ण्यावतो

यत् पर्जन्यः स्तनयन् हन्ति वृष्टतः

॥ २ ॥

रपीव कक्षाणादवीं अभिभिपन्  
आयिर्वुतान् कृणुते यथ्यैर् नमः ।

दूरात् सिंहस्य स्तनया उदीरते  
यत् पर्जन्यः कृणुते यथ्यैर् नमः

॥ ३ ॥

प्र घाता यान्ति पतयन्ति विद्युतः  
उदोपधीर्जिह्वेते पिबन्ते स्यः ।

इरा पिबन्त्यस्मै मुचनाय जायते  
यत् पर्जन्यः पृथिवीं रेतसायति

॥ ४ ॥

यस्य मते पृथिवी ननंमीति

यस्य मते शफ्वज्जमुँरोति ।

यस्य मते ओषधीर्विभ्रक्याः

स नः पर्जन्य मदि शर्म यच्छ

॥ ५ ॥

दिवो नो वृष्टिं मरुतो रसीध्वं

प्र पिबन्त वृष्णो अर्धस्य धाराः ।

अर्षादितेन स्तनयितुनेदि

अपो निषिचग्रसुरः पिता नः

॥ ६ ॥

अभि क्रन्द स्तनय गर्गमा धाः  
 उक्थ्यता परि क्षीया रथेन  
 दति तु कर्पं धिपितं म्यञ्जं  
 समा भयन्तुद्रतो निपादाः  
 महान्तं कोशमुदचा नि पिञ्च  
 स्यन्दन्तां कुल्या धिपिताः पुरस्तात् ।  
 घृतेन चाघापुधिवी व्युन्धि  
 सुप्रपाणं भयत्यन्त्याभ्यः  
 यत् पर्जन्य कनिक्कदत्  
 स्तनयन् दंसिं दुहृतः ।  
 प्रतीवं विश्वं मोदते  
 यत् किं च पृथिव्यामधि  
 गर्धर्षीर्धर्ममु पू गृभाय  
 अकृधन्वान्यत्येत्तथा उ ।  
 अजीजन ओर्षधीर्भोजनाय  
 कमुत प्रजाभ्योऽविदो मनीषां

॥ ३ ॥ ( श्ल० ७।१०।१-६ )

मेत्रावरुणिर्षसिष्ठः, ( इष्टिकामः ) कुमारः आभियो वा ।  
 शिष्टपू ।

तिष्ठो धात्रः प्र धव ज्योतिरम्रा  
 या एतद् बुद्धे मधुवोद्यमूर्धः ।  
 स वत्सं कृण्वन् गर्भमोर्षधीनां  
 सुपो जातो बृधभो रौरवीति  
 यो वर्धेन ओर्षधीनां यो अपां  
 यो विश्वस्य जगतो देव ईश ।  
 स त्रिधातु शरणं शर्म यंसत्  
 त्रिवर्तु ज्योतिः स्वमिष्ट्यस्मे  
 स्तुरीरं त्वद् भवति सूतं उ त्वद्  
 यथायशं तन्वं चक्र एषः ।  
 पितुः पयः प्रतिगृह्णाति माता  
 तेन पिता धर्धते तेन पुत्रः

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १० ॥

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

यस्मिन्निर्भानि भुषणानि तृणुः  
 तिष्ठो चापमेध्या सुपरायः ।

त्रयः कोशास उपतेर्चनामो  
 मर्ष्यः द्योतम्यमिती विरुद्राम्

॥ ४ ॥

इदं वचः पर्जन्याय स्मृतार्जं  
 दूदो अस्त्यन्तरं तज्जुजोयत् ।

मयोमयो पृथ्व्यः सन्त्यस्मे  
 सुपिप्पला ओर्षधीर्धर्मोपाः

॥ ५ ॥

स रेतोधा पृथुमः शर्मतीनां  
 तस्मिन्नात्मा जगतस्तस्मिन्पथः ।

तन्मं क्रतुं पातु शतशारदाय  
 पूयं पात स्युस्तिमिः सदा नः

॥ ६ ॥

॥ ४ ॥ ( श्ल० ७।१०।१-३ )

मेत्रावरुणिर्षसिष्ठः, ( इष्टिकामः ) कुमारः आभियो वा । गायत्रीः  
 २ पादमिच्छत् ।

पर्जन्याय प्रगायत दिवस्पृथ्व्यं मीळुर्ध्वं ।  
 स नो यवसमिच्छतु

॥ १ ॥

यो गर्भमोर्षधीनां गर्वा कृणोत्यवर्षताम् ।  
 पर्जन्यः पुरुषीणाम्

॥ २ ॥

तस्मा इदास्यै हविर्जुहोता मधुमत्तमम् ।  
 इळी नः संयतं करत्

॥ ३ ॥

॥ ५ ॥ ( अथर्व० १।१।१ )

अथर्व । अनुष्टुप् ।

विद्या शरस्य पितरं पर्जन्यं भूरिधायसम् ।  
 विष्णो ध्वंस्य मातरं पृथिवीं भरिषर्षसम्

॥ १ ॥

॥ ६ ॥ ( अथर्व० १।३।१ )

अथर्व । पद्यापाफि ।

विद्या शरस्य पितरं पर्जन्यं शतवृण्यम् ।  
 तेनां ते त्वयेकुं शं करं पृथिव्यां तं निवेचनं

वदिष्टं अस्तु शालिति

॥ १ ॥

( ६०९९ )

॥ ७ ॥ (अथर्व० ३।११।११)

ब्रह्मा । अनुष्टुप् ।

आ पर्जन्यस्य वृष्टयोर्दस्यामामृता वयम् ।  
व्युद्ध सर्वेण पाप्मना वि यध्वेण समार्युषा ॥११॥

## सहचारी देवगणः

(१) मण्डूकाः (पर्जन्यः)

॥ ८ ॥ (अ० ७।१०३।१-१०)

मैत्रावरुणैश्चिष्टः । मिष्टुप् ; १ अनुष्टुप् ।

संवत्सर शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः ।  
वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्र मण्डूकां अवादिषु ॥१॥

दिव्या आपो अभि यदैनमायुन्  
दति न शुष्कं सरसी शयानम् ।

गवामह न मायुर्धस्तिनीनां

मण्डूकानां वरुणश्चा समैति

यदीमेनां उशतो अभ्यर्धर्षीत्

तृष्यार्धतः प्रावृष्यागतायाम् ।

अम्वलीकृत्या पितरं न पुत्रो

अन्यो अन्यमुप वदन्तमेति

अन्यो अन्यमनु गृभ्णात्येनोः

अपां प्रसूगं यदमन्दिपाताम् ।

मण्डूको यदमिष्टुः कर्त्तिक्व

पृक्षिः संपूक्ते हरितेन वाचम्

यदपामन्यो अन्यस्य वाचं

शाकस्यैव यदति शिर्क्षमाणः ।

सर्वे तदैषां समर्धेव पर्व

यत् सुवाचो यदयनाध्यस्तु

गोमायुरेको अजमायुरेकः

पृक्षिरेको हरित एक एषाम् ।

समानं नाम पिध्नो विरूपाः

पुरा वाचं पिपिशुर्वदन्तः

॥१॥

॥ २ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

ब्राह्मणासौ अतिरात्रे न सोमै

सरो न पुर्णममितो वदन्तः ।

संवत्सरस्य तदहः पारिषु

यन्मण्डूकाः प्रावृषीणं वभूर्व

ब्राह्मणासः सोमिनो वाचमकत

ब्रह्म कृण्वन्तः परिवत्सरीणम् ।

अध्वर्यवो धर्मिणः सिन्धिदानाः

आविर्भवन्ति गुह्या न केचित्

देवर्हितं जुगुपुर्द्वादशस्य

श्रुतुं नरो न प्र भिनन्त्येते ।

संवत्सरे प्रावृष्यागतायां

तप्ता धर्मा अदनुवते विसर्गम्

गोमायुरदाजमायुरदात्

पृक्षिरदाक्षरितो नो वरुणि ।

गवां मण्डूका ददन्तः शतानि

सहस्रसत्वे प्र तिरन्तु आयुः

(२) वातसूर्यपर्जन्याः

॥ ९ ॥ (वा० य० ३।१।१०)

॥ ३ ॥

शं नो वातः पयतांश्च शं नस्तपेत्तु सूर्यः ।

शं नः कर्त्तिक्रदद्देवः पर्जन्यो अभि वरपेत्तु ॥१०॥

(३) पर्यतवातपर्जन्याम्रयः

॥ १० ॥ (अथर्व० ३।११।१०)

चिष्टः । अनुष्टुप् ।

ये पर्वताः सोमपृष्ठा आप उच्चानदीर्यरीः ।

यातः पर्जन्य आदभिसते क्रुज्यादमरीशामन् ॥१०॥

(४) मरुपर्जन्यौ

॥ ११ ॥ (अथर्व० ४।१५।३)

अयवौ । विराट् पुरस्ताद्भरणी ।

गणास्त्वोप गायन्तु मारुताः

पर्जन्य योपिणः पृथक् ।

मर्गा वरप्य वर्यतो वर्यन्तु पृथिमीमनुं

॥ ४ ॥

(६१११)

(५) विश्वेदेवाः मरुतः अग्नीषोमौ वरुणः घातापर्जन्यौ ।

॥ १२ ॥ ( अथर्व० ६।९३।३ )

शन्तातिः । त्रिष्टुप् ।

प्रार्थयन् नो अघाविषाभ्यो वधात्

विश्वेदेवा मरुतो विश्वेदेवसः ।

अग्नीषोमा वरुणः पूतदर्शा

घातापर्जन्ययोः सुमते स्याम

॥ ३ ॥

( ६ ) पृथिवी पर्जन्यः

॥ १३ ॥ ( अथर्व० ७।१८।१-२ )

अथर्वः । चतुष्पाद भुरिगुणिकः २ त्रिष्टुप् ।

प्र नमस्य पृथिवि सिन्धुर्द्वं दिव्यं नमः ।

उद्गो दिव्यस्य नो धातुरीशानो वि प्या दतिम् ॥१॥

न ग्रस्ततापु न हिमो जघान

प्र नमतां पृथिवी जीरदानुः ।

आपधिवदस्मै घृतमित्स्वरन्ति

यत्र सोमः सवमित्स्व भद्रम्

॥ २ ॥

( ७ ) घातापर्जन्यान्तरिक्षादिशः

॥ १४ ॥ ( अथर्व० ११।६।६ )

शन्तातिः । अनुष्टुप् ।

आतं ब्रूमः पर्जन्यमन्तरिक्षमथो दिशः ।

आशांश्च सर्वा ब्रूमस्ते नो मुच्यन्वर्हसः

॥ ६ ॥

( ८ ) सविष्ट-उपः-पर्जन्याः

॥ १५ ॥ ( अथर्व० १९।१०।१० )

वशिष्ठः । त्रिष्टुप् ।

सं नो देवः सविता प्रार्थमाणः

सं नो भयन्तु परतो विमातीः ।

सं नो पर्जन्यो भयतु प्रजाप्यः

सं नः शेरस्य पतिरेभुः शुभः

॥ १० ॥

कृषिः ।

॥ १ ॥ ( श्रु० १०।३४।१२ )

कवच ऐश्वर्य, अक्षो मौजवान् वा । त्रिष्टुप् ।

अक्षौर्मौ दीव्यः कृषिमित् कृपस्व

वित्ते रमस्व बहु मर्त्यमानः ।

तत्र गावः कितवः तत्र जाया

तन्मे विचष्टे सवितायमर्गः

॥ १३ ॥

शुनः, शुनासीरो ।

॥ १ ॥ ( श्रु० ५।५७।४-५,८ )

वामदेवो गोतमः । ४ अनुष्टुप्, ५ पुर तण्डिक्, ८ त्रिष्टुप् ।

शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृपतु लाङ्गलम् ।

शुनं वरुणा वध्यन्तां शुनमष्टासुदिक्रय ॥ ४ ॥

शुनासीराविमां वाचं जुषेथां यद्विचि चक्रयुः पर्यः ।

तेनेमासुपं सिञ्चतम् ॥ ५ ॥

शुनं नः फाला वि कृपन्तु भूमिं

शुनं कीनाशा भूमि यन्तु वाहैः ।

शुनं पर्जन्यो मधुना पर्योभिः

शुनासीरा शुनमसासु धत्तम्

॥ ८ ॥

॥ २ ॥ ( वा० य० ११।६९ )

शुनं नः फाला वि कृपन्तु भूमिं

शुनं कीनाशा भूमि यन्तु वाहैः ।

शुनासीरा हविषा तोशमाना

सुषिप्पला ओषधीः कर्तन्तास्मै

॥ ६९ ॥

स्तिष्ठः ।

॥ १ ॥ ( श्रु० ४।५७।६-७ )

वामदेवो गोतमः । अनुष्टुप् ।

अयोर्वा सुमगे भय स्तीते यन्तामदे त्वा ।

ययो नः सुमगाऽस्तसि ययो नः सुफलाऽस्तसि

( ६१।४४ )



इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु तां पुपाऽनु यच्छतु ।

सा नः पर्यस्वती दुहा मुचरा मुचरां समाम् ॥ ७॥

॥ १ ॥ ( य० य० ११।६७,६८,७०-७१ )

सीता युजान्ति कुवयो युगा वि तन्वते पृथक् ।

धीरा देवेषु सुम्नया ॥ ६७ ॥

युनक्तु सीता वि युगा तन्वथे

कृते योनौ यपतेह पीजम् ।

गिरा च श्रुतिः समरा असंशो

नेदीय इत्सुण्यः पक्रमेयात् ॥ ६८ ॥

घृतेन सीता मर्धना समज्यतां

विभ्वैर्देवैरनुमता मुहद्भिः ।

ऊर्जस्वती पर्यसा पितृमाना

असान्त्सीति पर्यसाऽभ्या ववृत्स्व ॥ ७० ॥

लाङ्गलं पर्वीरवत्सुशेवं, सोमपितृसह ।

तदुद्रपति गामर्वि प्रफुर्य च पीर्वी

प्रस्यावदशुवाहणम् ॥ ७१ ॥

कामं कामदुघे पुश्व मित्राय वरुणाय च ।

इन्द्रायाभिव्या पुष्णे प्रजाम्य ओषधीभ्यः ॥ ७२ ॥

(६११०)





## नद्यः

॥ १ ॥ ( ऋ० ३/३११-५, ९, ११-१३ )  
गाथिनो विश्वामित्र । त्रिष्टुप् १३ अनुष्टुप् ।

प्र पर्वतानामुद्गती उपस्थात्  
अश्वे इष विपिते हासमाने ।  
गावेष शुभ्रे मातरां रिहाणे  
विपाद् छतुर्द्री पर्यसा जवेते  
इन्द्रैपिते प्रसुधं भिक्षमाणे  
अच्छा समुद्रं रथ्येव याधः ।  
समापणे ऊर्मिमिः पिन्वमाने  
अन्या वामन्यामप्येति शुभ्रे  
अच्छा सिन्धुं मावर्तमामयासं  
विपाशमुदीं सुभगांमगन्म ।  
प्रसमिष मातरां संरिहाणे  
समानं योनिमधुं संचरन्ती  
धुना वृथं पर्यसा पिन्वमानाः  
अनु योनिं देवहंतं चरन्तीः ।  
न यतैवे प्रसुधः सर्गैकः  
क्रियुधिप्रो नृपो ओहवीति  
रम्यं मे यचते सोम्याय  
अतापरीरप मुहूर्तेभ्यैः ।  
प्र सिन्धुमच्छा वृहती मंत्रीषा  
अपस्परदे वृशिषस्य सनुः

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

ओ पु स्वसारः कारवे शृणोत  
ययौ वौ वृषावन्सा रथेन ।  
नि पू नमध्वं भवता सुपारा  
अथो अक्षाः सिन्धवः ओत्याभिः  
यवङ्ग त्वा भरताः संतरेयुः  
गव्यन् ग्रामं इधित इन्द्रजुतः ।  
अर्षोवह प्रसुधः सर्गैकः  
आ वौ वृणे सुमतिं यशियानाम्  
अतारिषुर्भरता गव्यवः सं  
अमंक्त विप्रः सुमतिं नदीनाम् ।  
प्र पिन्वन्धमिप्येन्ती सुराधा  
आ वक्षणाः पृणध्वं यात शीमम्  
उक् व ऊर्मिः शम्या हन्तापो योक्त्राणि मुंचत ।  
माकुष्कृतो व्येनसाऽज्यौ शनमारताम्

॥ ९ ॥

॥ ११ ॥

॥ १२ ॥

॥ १३ ॥

॥ १ ॥ ( ऋ० ५/४११ )

ओमोऽत्रिः । त्रिष्टुप् ।

आ धेनवः पर्यसा तूर्ययोः  
अमर्धन्तीरप नो यन्तु मघ्या ।  
महो राये वृहतीः सप्तयिप्रो  
मपोभुयो अरिता ओहवीति

॥ ११ ॥

(११०)

॥ ३ ॥ (अ० ७।५०।४)

मैत्रावरुणर्वसिष्ठः । अतिप्रगती शक्यते वा ।

याः प्रवर्तो निवर्त उद्वर्त  
उद्वर्तोरनुदकाश्च याः ।  
ता असभ्यं पर्यसा पिबन्मानाः  
शिया देवीरशिपदा भवन्तु  
सर्वा नयो अशिमिदा भवन्तु

॥ ४ ॥ (अ० १०।७५।१-९)

सिन्धुसिद्ध प्रेयमेधः । अगती ।

प्र सु धं आपो महिमानमुत्तमं  
कारवोचाति सदेने विवस्वतः ।  
प्र सुप्तसंत प्रेधा हि चक्रुः  
प्र स्वर्त्यरीणामति सिन्धुरोजसा  
प्र तेऽरद्वर्णो यातवे पथः  
सिन्धो यद्वाजो अग्न्यद्रवस्त्वम् ।  
भूम्या अधि प्रवता यासि सानुना  
यदेपाममं जगतामिरज्यासे  
दिवि स्वनो यतते भूम्योपरि  
भनन्तं शुष्ममिदियति भानुना ।  
अभ्रादिषु प्र स्तनयन्ति वृष्टयः  
सिन्धुर्यदेति वृष्टमो न रोदवत्  
अग्नि त्वा सिन्धो सिन्धुमिध मृकरो  
प्राध्रा भवन्ति पर्यतेषु धेनवः ।  
राजेषु युष्या नयसि त्वमिह सिञ्च  
यदासाममं प्रवतामिनक्षसि

॥ ४ ॥

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति  
शुतुद्रि स्तोमं सचता पशुण्या ।  
असिफन्या मेरुद्वृषे वितस्तया  
वाजीकीये शृणुह्या सुपोर्मया  
तृष्टामया प्रथमं यातवे सञ्चः  
सुसत्तर्षा रसरा श्वेत्या त्या ।  
त्वं सिन्धो कुर्मया गोमर्ता कुर्मु  
मेहत्वा सरयं यामिरीयसे  
ऋजीत्येनो रुशती महित्वा  
परि जयांसि भरते रजांसि ।  
अदग्ना सिन्धुरपसामपस्तमा  
अभ्वा न चित्रा वपुषीव दर्शता  
स्वभ्वा सिन्धुः सुरया सुवासा  
हिरण्ययी सुहंता वाजिनीयती ।  
ऊर्णोवती युषतिः सीलमावती  
उतापि वस्ते सुभगा मधुवर्धम्  
सुखं रथं युषजे सिन्धुरभिनं  
तेन वाजं सनिपदस्मिन्नाजौ ।  
मृद्वान् हांस्य महिमा पनस्यते  
अदग्घस्य स्वयंशसो विरुद्धानः

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

( १ ) पुनश्चममिपर्वतसमुद्रनद्यः ।

४५॥ ( अथर्व० ११।६।१० )

गन्तासि । अनुद्वृ ।

दिवं भूमो नक्षत्राणि भूमं यज्ञाणि पर्वतान् ।

समुद्रा नद्यो वेदान्तास्ते नो मुञ्चत्यर्द्धसः ॥ १० ॥

(६१।११)



# सरस्वती

॥ १ ॥ ( ऋ० १।३।१०-१२ )

मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । गायत्री ।

पायका नः सरस्वती याज्ञेभिर्वाजिनीवती ।

युष्मं वष्टु धियावसुः ॥ १० ॥

चोदयित्री सुनुतानां चेतन्ती सुमतीनाम् ।

युष्मं दधे सरस्वती ॥ ११ ॥

महो अर्णः सरस्वती प्रचेतयति केतुनां ।

धियो विभ्या विराजति ॥ १२ ॥

॥ १३ ॥ ( ऋ० १।६।४९ )

दीर्घतमा औषध्यः । त्रिष्टुप् ।

यस्ते स्तनः दानायो यो मयोमः

येन विभ्या पुष्यति पार्वीणि ।

यो रत्नधा रसुविद् यः सुदधः

सरस्वति तमिह धातये कः ॥ ४९ ॥

॥ १४ ॥ ( ऋ० १।१०८ पुरांशः )

एत्यमदः आगिरवः चीनहोत्रः पद्याद् आर्गवः चीनवः । त्रिष्टुप् ।

सरस्वति रयमसौं भविहि

मृगयती धूपतां जैपि शार्ङ्गम् ॥ ८ ॥

॥ ४४ ॥ ( ऋ० १।४१।१६-१८ )

एत्यमदः ( आगिरवः चीनहोत्रः पद्याद् आर्गवः चीनवः ।

१६-१८ ० त्रिष्टुप् । १८ वृहती ।

भरिवतमे नदीतमे दीर्घतमे सरस्वति ।

भृगुदाता रव रमति प्रताप्तिमश्च नसृधि ॥ १६ ॥

त्वे विश्वा सरस्वति श्रितार्युपि देव्याम् ।

शुनहोत्रेषु मत्स्व प्रजां देवि दिदिङ्मि नः ॥ १७ ॥

इमा ब्रह्म सरस्वति जुषस्व वाजिनीवति ।

या ते मग्मं गृहसमदा ऋतावरी ॥ १८ ॥

प्रिया देवेषु जुहति

॥ १९ ॥ ( ऋ० ५।४३।११ )

मीमांसविः । त्रिष्टुप् ।

आ नो दिवो पृहतः पर्यतादा

सरस्वती यजता गन्तु युक्षम् ।

हव्यं देवी जुहुपाणा घृताधी

शग्मां नो वाचमुशती दृणोतु ॥ ११ ॥

॥ ६ ॥ ( ऋ० ६।४२।७ )

ऋग्विद्या आग्राह्यः । त्रिष्टुप् ।

पाथीरयि कन्या चित्रायुः

सरस्वती धीरपत्नी धिर्यं धातु ।

आभिरच्छिन्नं शरणं सुजोषां

पुराधर्यं गृणते दाम्यं यंसत् ॥ ७ ॥

॥ ७७ ॥ ( ऋ० ६।११।१-१४ )

बाह्वरूप्यो मरदाजः । गायत्री । १-३, ११ जगती ।

१४ त्रिष्टुप् ।

इयमेवदात् रभस्वमृण्ययुते

दियोवांसं पद्म्यभ्याथ दानुये ।

या दाम्यंतमाधुखादायुतं पाणि

ता ते दानाणि तविषा सरस्वति

॥ ११ ॥

( ११११ )

इयं शुष्मेभिर्विसृष्टा इषारुजत्  
 सानु गिरिणां तद्विषेभिस्तमिभिः ।  
 पारावतज्जीमवसे सुवृत्तिभिः  
 सरस्वतीमा विंवासेम धीतिभिः ॥ २ ॥  
 सरस्वति देवनिद्रो निर्वह्य  
 प्रजां विभ्वस्य वृत्तयस्य मायिनः ।  
 उत क्षितिभ्योऽवनीरविन्दो  
 विपमैभ्यो अस्त्रयो वाजिनीयति ॥ ३ ॥  
 प्र णो देवी सरस्वती वार्जैमिर्वाजिनीयती ।  
 धीनामविज्यवतु ॥ ४ ॥  
 यस्त्वा देवि सरस्वत्युपग्रते धने हिते ।  
 इन्द्रं न वृत्रतये ॥ ५ ॥  
 तयं देवि सरस्वत्यवा वार्जेषु वाजिनि ।  
 रदा पुषेव नः सनिम् ॥ ६ ॥  
 उत स्य नः सरस्वती धोरा हिरण्यवर्तनिः ।  
 घृत्रग्री वष्टि सुष्ठुतिम् ॥ ७ ॥  
 यस्यां अनन्तो अहृतस्त्वेषश्चरिण्युर्णवाः ।  
 धमश्चरति रोहयत् ॥ ८ ॥  
 सा नो विभ्वा अति द्विषाः स्वसृष्ट्या ऋतावरी ।  
 अतश्चैह्य सूर्यः ॥ ९ ॥  
 उत नः प्रिया प्रियासु सप्तस्यसा सुजुष्टा ।  
 सरस्वती स्तोम्या भूत् ॥ १० ॥  
 आपप्रपी पार्यवान्युह रजो अन्तरिक्षम् ।  
 सरस्वती निदरपातु ॥ ११ ॥  
 त्रिपधस्यां सप्तधातुः पंच ज्ञाता धर्धयन्ती ।  
 वार्जैवाजे हन्या भूत् ॥ १२ ॥  
 प्र या मंहिम्ना मुहिनासु चेकिते  
 घुम्नेमिरन्या अपसामपस्तमा ।  
 तयं इय गृहती विभ्वने हता  
 उपस्तुत्यां चिकितुषा सरस्वती ॥ १३ ॥

सरस्वत्यभि नो नेपि वस्यो  
 मापं स्फुरीः पर्यसा मा न आ धक् ।  
 जुयस्व नः सत्या वेश्यां च  
 मा त्वत्क्षेत्राण्यरणाणि गन्म ॥ १४ ॥  
 ॥ ८ ॥ ( ऋ० ७।१५।१-२, ४-६ )  
 मैत्रावरुणवसिष्ठः । त्रिष्टुप् ।  
 प्र क्षोदसा धार्यसा सन्न एषा  
 सरस्वती घृणमायसी पूः ।  
 प्रवार्यधाना रथ्येव याति  
 विभ्वा अपो मंहिना सिन्धुरन्याः ॥ १ ॥  
 एकाचेतत् सरस्वती नदीनां  
 शुचिर्यती गिरिभ्य आ समुद्रात् ।  
 रायक्षेत्रन्ती भुवनस्य भूरेः  
 घृतं पर्यो दुदुहे नार्हुपाय ॥ २ ॥  
 उत स्या नः सरस्वती जुषाणा  
 उपं श्रयत् सुमगां यक्षे अस्मिन् ।  
 मितशुभिर्मन्मस्यैरियाणा  
 राया युजा विदुत्तप सखिभ्यः ॥ ३ ॥  
 इमा जुह्वाना युष्मदा नमोभिः  
 प्रति स्तोमं सरस्वति जुपस्व ।  
 तय शर्मेन् प्रियतेमै धधानाः  
 उपं स्थेयाम शरणं न वृक्षम् ॥ ५ ॥  
 अयम् ते सरस्वति वसिष्ठो  
 द्वारवृतस्य सुभगे व्याचः ।  
 वधं दुष्टे स्तुवते रासि वाजान्  
 युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥  
 ॥ ८ ॥ ( ऋ० ७।१६।१-३ )  
 मैत्रावरुणवसिष्ठः । १-२ प्रगायः ( १ गृहती, २ गतो  
 गृहती ), ३ प्रसार पंक्तिः ।  
 गृहदु गायिणे घचोऽसुषी नदीनाम् ।  
 सरस्वतीमिग्नहया सुवृत्तिभिः  
 स्तोमैर्वसिष्ठ रोदसी ॥ १ ॥  
 ( ६१८१ )

उभे यत्तै महिना शुभ्रे अर्धसी  
अधिक्षियन्ति पुरवः ।

सा नो वोष्यवित्री मरुत्संस्था  
चोद राधो मधोनोम्

मद्रमिद् भद्रा कृण्वत् सरस्वती  
अकंचारी चेतति याजिनीवती ।

गुणाना जमदग्निवत्  
स्तुवाना च वसिष्ठवत्

॥ ९ ॥ ( ऋ० १०।१७।७-२ )  
देवश्रवा यामायनः । त्रिष्टुप् ।

सरस्वती देवयन्तो हवन्ते  
सरस्वतीमध्वरे तायमाने ।

सरस्वती सुहृतो अक्षयन्त  
सरस्वती द्वाहुषे वार्ये दातु

मरन्वति या सूर्यं ययार्थ  
स्वधार्भिर्देवि पितृभिर्मदन्ति ।

आसद्यास्मिन्विर्द्विपि मादयस्व  
अनमीवा इव आ घेहस्मे

सरस्वती यां पितरो हवन्ते  
दक्षिणा युष्मन्नि नक्षमाणाः ।

मद्व्यार्धमिजो अत्र मागं  
ययम्पोयं यजमानेषु धेहि

॥ १० ॥ ( वा० य० १।२० )

सरस्वत्यै यशोभगिन्यै स्वाहा  
॥ ११ ॥ ( वा० य० १०।५, ३० )

सरस्वत्यै स्वाहा  
सरस्वत्या याचा देवतया प्रसृतः प्र संपांमि

॥ १२ ॥ ( वा० य० १२।१० )

अपिनि मेधो नासि वीर्याय  
प्राणायु पण्या अमृतो महारूपाम् ।

सरस्वत्युपपार्यध्वानं  
नग्नानि बहिर्बर्हजंजान

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ २० ॥

॥ ५ ॥

॥ ३० ॥

॥ ९० ॥

॥ १३ ॥ ( वा० य० ११।२० )

सरस्वत्यै स्वाहा सरस्वत्यै पावकायै स्वाहा  
सरस्वत्यै बृहत्यै स्वाहा

॥ २० ॥

॥ १४ ॥ ( वा० य० १४।४ )

ताः सारस्वत्यः प्लीहाकर्णः

शुष्ठाकर्णोऽध्यालोहकर्णः

॥ ४ ॥

॥ १५ ॥ ( वा० य० १४।११ )

पंचं ननुः सरस्वतीमपि यन्ति सन्नोतसः ।

सरस्वती तु पंचधा सो देवोऽर्भवत्सरि ॥ ११ ॥

॥ १६ ॥ ( अथर्व० ५।७।४-५ )

अयर्वा । ४ पथ्यावृहती ; अनुष्टुप् ।

सरस्वतीमनुमतिं भगं यन्तो हवामहे ।

यार्चै जुष्टां मधुमतीमवादिपं देवानां देवहृतिषु ४

यं यार्चाम्यहं याचा सरस्वत्या मनोयुजा ।

धृष्टा तमद्य विन्दतु वृत्ता सोमेन बभ्रुणा ॥ ५ ॥

॥ १७ ॥ ( अथर्व० ६।४।१२ )

महा । अनुष्टुप् ।

अपानार्य ध्यानार्य प्राणाय भूरिधायसे ।

सरस्वत्या उरुव्यर्चं विधेम हविषा युयम् ॥ २ ॥

॥ १८ ॥ ( अथर्व० ६।८।४।१-१ )

अयर्वाहिरा । अनुष्टुप् । २ विराट् जगती ।

सं घो मनोसि सं प्रता समाकृतीर्नमामसि ।

अमी ये विद्यता स्थन तान्युः सं नमयामसि ॥ ११ ॥

अहं गृणामि मनसा मनोसि

मम चित्तमनु चित्तेभिरेत ।

मम यदोष हृदयोनि यः कृणोमि

मम यातमनुयत्मानं परं

॥ २ ॥

॥ १९ ॥ ( अथर्व० ७।११।१ )

गोनः । सरस्वती । त्रिष्टुप् ।

यस्तै पृथु स्तनयितनुर्यं स्रप्यो

देवः वेनुयिष्यमाभूपसीदम् ।

मा नो यधीर्विद्यता देव नम्यं

गोन यधी रुदिमभिः सूर्यस्य

॥ १ ॥

(११११)

॥ २० ॥ ( अथर्व ७।१।७।१-२ )

वामदेवः । अगती ।

यदाशसा वदतो मे विबुधुमे  
यद्यार्चमानस्य चरतो जनां अनु ।

यदात्मनि तन्वो मे विरिष्टं  
सरस्वती तदा पृणद्यूतेन

सप्त क्षरन्ति शिदधि महत्वंते  
पिबे पुत्रासो अप्यधीवृतग्नूतानि ।

उमे इदस्योमे अस्य राजत  
उमे यतेते उमे अस्य पुष्यतः

॥ २१ ॥ ( अथर्व ७।६।८।१-३ )

शमतातिः । १ अनुष्टुप् ; २ त्रिष्टुप् ; ३ गायत्री ।

सरस्वति मतेषु ते दिव्येषु देवि धामसु ।

जुषस्व हव्यमाहुतं भूजां देवि ररास्य नः ॥ १ ॥

इदं ते हव्यं धृतवत्सरस्वति

इदं पितृणां हविष्यं यत् ।

इमानि त उदिता शतमानि

तेभिर्वयं मधुमन्तः स्याम ॥ २ ॥

शिवा नः शतमा भव सुनृङ्गीका सरस्वति ।

मा ते युयोम सुहृदाः ॥ ३ ॥

॥ २२ ॥ ( अथर्व १४।१।१५ )

सर्वा वावित्री । शुरिह् ।

प्रति तिष्ठ पिराडसि विष्णुरियेह सरस्वति ।

सिनीवालि प्रजायतां भगस्य सुमतावसत् ॥ १५ ॥

सहचारी देवगणः

(१) सिनीवाली-राकेन्द्राणीवरुणानीसरस्वत्यः ।

॥ २३ ॥ ( ऋ २।३।१।८ )

राष्टमदः ( भागिरथः शान्दोषः पथाव ) भागवः शौनवः ।  
अनुष्टुप् ।

या गुंगूयां सिनीवाली या शुका या सरस्वती ।

इन्द्राणीमह ऊतये वरुणानीं स्वस्तये ॥ ८ ॥

( २ ) सिनीवाली-सरस्वत्यश्विनः ।

॥ २४ ॥ ( ऋ १०।१।८४।१ )

तथा गर्भकृतां विष्णुतां शान्दोषः । अनुष्टुप् ।

गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति ।

गर्भं ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करज्जा ॥ २ ॥

॥ १ ॥ (३) अर्यमवृहस्पतीन्द्रवाग्विष्णुसरस्वतिसवित्र-  
चाजिनः ।

॥ २५ ॥ ( वा ० य ० १।२७ )

अर्यमणं वृहस्पतिमिन्द्रं दानाय वोदय ।

वाचं विष्णुं सरस्वतीं

सवितारं च वाजिनं, स्याहा ॥ २७ ॥

( ४ ) सरस्वत्यश्विनेन्द्राग्रयः ।

॥ २६ ॥ ( वा ० य ० १।१।३३, ३३, ८०, ८१-८३, ८८, ९३ )

यस्तु रसुः सम्भृत ओषधीषु

सोमस्य शुष्मः सुरया सुतस्य ।

तेन जिन्य यजमानं मदेन

सरस्वतीमश्विनाविन्द्रमग्निम् ॥ ३३ ॥

( ५ ) सरस्वत्यश्विनः ।

यमश्विना नमुचेपसुरादधि

सरस्वत्यसुनोदिन्द्रियाय ।

इमे ते शूक्रं मधुमन्तमिन्द्रं

सोमं, राजानमिह मक्षयामि ॥ ३४ ॥

( ६ ) सवितृसरस्वत्यादयः ।

सोसेन तंश मनसा मनीषिणः

ऊर्णासुत्रेण कृययां धयन्ति ।

अश्विनौ यमं संविता सरस्वती

इन्द्रस्य रूपं वर्हणो मिषज्यन् ॥ ८० ॥

( ७ ) सरस्वत्यश्विनः ।

तदश्विना मिषजां रुद्रवर्तनौ

सरस्वती वयति पेन्नो अन्तरम् ।

असिः मज्जानं मार्मरः

वारोतरेण दर्धनो गर्वां त्युचि ॥ ८२ ॥

( ६११७ )

सरस्वती मनसा पेशलं वसु  
नासत्याभ्यां वयति दर्शतं वपुः ।

रसं परिक्रुता न रोहितं

नृगनुर्ध्वीरस्तसरं न वेमं

॥ ८३ ॥

मुखं सदैव शिर इत् सतेन

जिह्वा पथिग्रंभ्विनासन्सरस्वती ।

चप्यं न पायुर्मिपगस्य बालो

वस्तिर्न शेषो हरसा तरस्थो

॥ ८८ ॥

(८) सरस्वतिवरुणेन्द्राश्विनः ।

॥ ९७ ॥ (चा० य० १९।९४)

सरस्वती योग्यां गर्भमन्तः

अश्विभ्यां पत्नी सुकृतं विभर्ति ।

अपां रसेन वरुणो न साम्ना

इन्द्रं श्रियै जनयन्नसु राजा

॥ ९४ ॥

(९) सरस्वत्यश्विभिन्द्राः ।

॥ ९८ ॥ (चा० य० १०।१५)

अश्विनकृतस्य ते सरस्वति कृतस्य

इन्द्रेण सुभ्राग्ना कृतस्य ।

उपहृत उपहृतस्य भक्षयामि

॥ ३५ ॥

(१०) आदित्यमारतिसरस्वतिरुद्राः ।

॥ ९९ ॥ (चा० य० १९।८)

आदित्यैर्नो भारती यष्टु यष्टु

सरस्वती सुह इन्द्रेण आयीत् ।

इदोपहृता यस्तुभिः सुजोषा

यष्टं नो देवीमृतेषु धत्त

॥ ८ ॥

(११) सरस्वतीज्जादितयः ।

॥ १० ॥ (चा० य० १८।१०)

इह पदार्दितु पदि सरस्वत्येहि ।

भगवतावेतावेति

॥ २ ॥

(१२) अश्विसरस्वतीन्द्राः ।

अश्विभ्यां पिन्वस्य सरस्वत्यै पिन्वस्व

इन्द्राय पिन्वस्व ।

स्वाहेन्द्रवत् स्वाहेन्द्रवत् स्वाहेन्द्रवत्

॥ ४ ॥

(१३) अर्यमन्बृहस्पतीन्द्रवातविष्णुसरस्वतिसवितु-

वाजिनः ।

॥ ११ ॥ (अथर्व० ३।१०।७)

वसिष्ठः । अनुष्टुप् ।

अर्यमण बृहस्पतिमिन्द्रं वानाय चोदय ।

वातं विष्णुं सरस्वतीं सवितारं च वाजिनम् ॥ ७ ॥

(१४) अश्विसरस्वतिब्रह्मणस्पतयः ।

॥ ३२ ॥ (अथर्व० ४।४।६)

अथर्वः । श्रुतिः ।

अद्यात्ते अद्य संवितरय देवि सरस्वति ।

अद्यास्य ब्रह्मणस्पते धनुर्दिवा तानया पसः ॥ १ ॥

(१५) चावापृथिवी सरस्वती इन्द्राग्नी ।

॥ ३३ ॥ (अथर्व० ५।११।१)

कण्वः । अनुष्टुप् ।

ओते मे चावापृथिवी ओता देवी सरस्वती ।

ओता मे इन्द्रश्चाग्निश्च किमि जम्भयतामिति ॥ १ ॥

(१६) वरुणसरस्वतीन्द्राः ।

॥ ३४ ॥ (अथर्व० ५।११।६)

प्रसाः । अनुष्टुप् ।

यदेव राजा वरुणो यदा देवी सरस्वती ।

यदिन्द्रो वृत्रहा येद तद्रर्मकरणं पिय ॥ ६ ॥

(१७) चावापृथिवीप्राव्यसोमसरस्वत्यग्नयः ।

॥ ३५ ॥ (अथर्व० ६।१।१)

पातां नो चावापृथिवी अमिष्टये

पातु प्राया पातु सोमो नो अंहसः ।

पातु नो देवी सुभगा सरस्वती

पात्यग्निः शिषा ये अस्य प्राययः

॥ २ ॥

(५९१४)



(१८) धावापृथिवीसरस्वतन्द्राग्नयः ।

॥ ३६ ॥ (अथर्व० ६।९४।३)

अथवागिताः । अनुष्टुप् ।

ओते मे धावापृथिवी ओता देवी सरस्वती ।

ओता मे इन्द्राग्निश्चर्यास्मेदे सरस्वति ॥ ३ ॥

(१९) सरस्वतिविश्वेदेवाः ।

॥ ३७ ॥ (अथर्व० १९।१।१९)

शं नो देवा विश्वेदेवा भवन्तु

शं सरस्वती सह धीमिरेस्तु ।

शममियाचः शम् रातिपाचः

शं नो दिव्याः पार्थिवाः शं नो अप्याः ॥ २ ॥

## सरस्वान

॥ १ ॥ (अ० ७।९५।३)

मैत्रावरुणर्वशिष्ठः । त्रिष्टुप् ।

स वावृधे नयो योयणासु

धृया शिशुर्वृषभो यधियासु

स वाजिनं मघवन्नयो दधाति

यि स्नातये तन्वं मामुजीत ॥ ३ ॥

॥ १ ॥ (अ० ७।९५।४-६)

मैत्रावरुणर्वशिष्ठः । गायत्री ।

जनीयन्तो न्यग्रयः पुत्रीयन्तः सुदानयः ।

सरस्वन्तं हयामहे ॥ ४ ॥

ये ते सरस्व ऊर्मयो मर्धुमन्तो धृतदधुतः ।

तेभिर्नोऽयिता भय ॥ ५ ॥

पीपिवांसं सरस्वतः स्तनं यो विश्वदर्शतः ।

मन्त्रीमहि प्रजाभिर्धम् ॥ ६ ॥

॥ ३ ॥ (अथर्व० ७।४०।१-२)

प्रकृष्वः । १ मु० २, २ त्रिष्टुप् ।

यस्य धृतं पशयो यन्ति सन्ते

यस्य धृतं उपतिष्ठन्तु आपः ।

यस्य धृते पुष्टपतिर्निर्विष्टः

तं सरस्वन्तमयसे हयामहे ॥ १ ॥

आ प्रत्येवं दाशुपे दाम्भवं

सरस्वन्तं पुष्टपाते रयिग्राम् ।

रायस्पोयं ध्रुवस्तु वसताना

इह हवेम सर्वनं रयीणाम् ॥ २ ॥

(५११९)



जीवन-विभागः

जीवनमंत्रः

वायुः

॥ १ ॥ ( ऋ० १।१।१-३ )

मनुच्छन्दा वैश्वामित्र । गायत्री ।

वायुया याहि वरुते—मे सोमा अरुहताः ।

तेषां पाहि ध्रुवां हवाम् ॥ १ ॥

पापं उक्थेमिर्जरन्ते त्वामरुहं जरितारः ।

मृतसोमा अहर्षिदः ॥ २ ॥

पायो तयं प्रपृञ्चती धेनो जिगाति दादुपे ।

उरुची सोमपीतये ॥ ३ ॥

॥ १ ॥ ( ऋ० १।१।१ )

मेपातिभिः वायुः । गायत्री ।

मीमाः सोमोसु आ गच्छा—दीर्यन्तः सुता इमे ।

पायो तान् प्रान्थितान् पिब ॥ १ ॥

॥ २ ॥ ( ऋ० १।१।४।१-६ )

वरुणो वैवोदाधिः । अत्यधि, १ अग्निः ।

आ स्वा जुषो वारुणा अग्निं प्रयो

पायो वरुणित्वेदं पूषपीतये

सोमस्य पूषपीतये ।

उष्यां मे भनुं वरुणा मर्जन्तिष्ठन् जाननी ।

जिगुर्वता रणेना याहि वायने

गायो मवर्ग्यं वायने ॥ १ ॥

मन्दन्तु त्वा मन्दिनो वायुविन्द्वो

असत् क्रानासुः सुकृता अभिर्ध्वो

गोमिः क्राना अभिर्ध्वः ।

यजं क्राना इरुध्वे वृद्धं सचन्त ऊतये ।

सध्रीचीना नियुतो वायने धिय

उपं भुवत इ धियः ॥ २ ॥

वायुर्ध्वे रोहिता वायुररुणा

वायू रथे अजिरा धुरि योळ्ढये

वाहिष्ठा धुरि योळ्ढये ।

प्र वोधया पुरीधि जार आ संसृतीर्मिष ।

प्र वरुण्य रोदसी वासयोपसुः

अवसे वासयोपसुः ॥ ३ ॥

तुभ्यमुपासुः द्रुचया पशुपतिं

मम्रा यस्मा तन्यते वंरुं रुदिमपुं

चित्रा नर्येषु रुदिमपुं ।

तुभ्यं धेनुः संवर्धया विष्ठा वरुंति रोहते ।

अजिनयो मरुतो वरुणाभ्यो

रिव आ वरुणाभ्यः

॥ ४ ॥

( ११४० )

तुभ्यं शुक्रासुः शुच्यस्तुरण्यवो  
मर्त्येषु प्रा इयणन्त भुवण्य-पार्मिवन्त भुवर्णि ।  
त्वां त्सारि दसमानो मगमीद्रे तफ्ववीर्ये ।  
त्वं विश्वस्मान्नुवनात् पालि धर्मेणा  
असुर्यात् पालि धर्मेणा ॥ ५ ॥  
त्वं नो धायवेयामर्प्यः  
सोमार्नां प्रथमः पीतिर्महसि सुतार्नां पीतिर्महसि ।  
उतो विद्वत्सतीनां विशां चंचुपीणाम् ।  
विभ्रा इत् तै धेनवो दुह आशिरै  
धृतं ब्रूत आशिरैम् ॥ ६ ॥

॥ ४ ॥ ( ऋ० १।१५।१-३, ९ ) अत्यष्टिः ।

स्त्रीणां बहिरूपं नो याहि धीतये  
सहस्रेण नियुता नियुत्वते शतिर्नामिनियुत्वते ।  
तुभ्यं हि पृथ्वीतये देवा देवाय येमिरे ।  
॥ तै सुतासो मधुमन्तो अस्थिरन्  
मदाय कर्तव्ये अस्थिरन् ॥ १ ॥  
तुभ्याय सोमः परिपूतो अत्रिभिः  
स्याहो वसानः परि कोशमर्पति  
शुक्रा वसानो अर्पति ।  
तथायं भाग आयुषु सोमो देवेषु ह्यते ।  
यह धायो नियुतो याहास्मयु-जुषाणो याहास्मयुः २  
आ नो नियुजिः शतिर्नामिरध्वर  
सहस्रिणीभिरुप याहि धीतये  
यायो हव्यानि धीतये ।  
तथायं भाग श्रुत्वियः सरदिमः सूर्ये सखा ।  
अध्वर्याभिर्भरमाणा अयंसत्  
यायो शुक्रा अयंसत् ॥ ३ ॥  
धन्यञ्जिचे वनादावो जीराध्विर्गिरौकसः ।  
सूर्यस्येय रश्मवो दुर्नियन्तयो  
हस्तयोर्दुर्नियन्तयः ॥ ५ ॥

॥ ५ ॥ ( ऋ० १।४१।१-२ )  
शुक्रमहः ( आगिरसः शोनशेनः पथद् ) मार्गः शोनकः ।  
गायत्री ।

वायो ये तै सहस्रिणो रथासुस्तेमिरा गाहि ।  
नियुत्वान्सोमपीतये ॥ १ ॥  
नियुत्वान् वायवा गह्व-यं शुक्रो अयामि ते ।  
गन्तासि सुन्वतो गृहम् ॥ २ ॥

॥ ६ ॥ ( ऋ० ४।४६।१ )

वामदेशो गौतमः । गायत्री ।

अग्रं पिषा मधूनां सुतं वायो दिविष्टिपु ।  
त्वं हि पूर्वेषा असि ॥ १ ॥

॥ ७ ॥ ( ऋ० ४।४७।१ ) अगृह्य ।

वायो शुक्रो अयामि ते मध्वो अग्रं दिविष्टिपु ।  
आ याहि सोमपीतये स्याहो देय नियुत्वता ॥ १ ॥

॥ ८ ॥ ( ऋ० ४।४८।१-५ ) अगृह्य ।

विहि होत्रा अर्वाता विषो न रायो अर्यः ।  
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥ १ ॥  
नियुवाणो अशस्ती-नियुत्वा इन्द्रसारथिः ।  
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥ २ ॥  
अनु कृष्णे वसुधितो येमाते विभवपेशसा ।  
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥ ३ ॥  
यहन्तु त्या मनोयुजो शुक्रासो नयतिर्नय ।  
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥ ४ ॥  
यायो शतं हरीणां युवस्य पोष्याणाम् ।  
उत वा ते सहस्रिणो रथ आ यातु पाजंसा ॥ ५ ॥

॥ ९ ॥ ( ऋ० ५।११।५ )

स्वस्वप्रेयः । उभेयक ।

वायवा याहि धीतये जुषाणो हव्यदातये ।  
पिषा सुतस्यान्धसो अमि प्रयः ॥ ५ ॥

॥ १० ॥ ( श्रु० ७।९।१-४ )

मैत्रावरुणैर्वसिष्ठः । विष्णुः ।

प्र वीर्या शुचयो दक्षिरे वां  
अध्वर्युभिर्मधुमन्तः सुतासः ।  
वह वायो नियुतो याह्यच्छ  
पिवा सुतस्यान्धसो मदाय  
ईशानाय प्रहतिं यस्त आनद्  
शुचिं सोमं शुचिपास्तुभ्यं वायो ।  
कृणोपि तं मर्त्येषु प्रशस्तं  
जातोजातो जायते वाज्यस्य  
राये तु यं जहत् रोदसीमे  
राये देवी धिपणा धाति देवम् ।  
अधे वायुं नियुतः सञ्जत स्वा  
उत द्येते वसुधितिं निरेके  
उच्छ्रुपसः सुदिना अत्रि  
उर ज्योतिर्विबिदुर्दीप्त्यानाः ।  
गर्भं चिद्वर्धमुशिजो वि वंशुः  
तेपामनु प्रविधः सञ्जुराधः

॥ ११ ॥ ( श्रु० ७।९।१२, ६ )

कुषिद्वङ्ग नर्मसा ये पूषासः  
पुरा देवा अनयपास आसन् ।  
ते वायये मनवे याधिताय  
अयासयधुपसं सूर्येण  
पीयोमर्षो रयिवृषः सुमेधाः  
द्येतः सिपत्तिः नियुतामभिधीः ।  
ते वायये सर्मनसो वि तंर्युः  
विभ्यन्नरः स्यपत्यानि धनुः

॥ १२ ॥ ( श्रु० ७।९।१३, १, ५ )

ना वायो भूय नृनिपा उर्यं नः  
सुदन्तं ते नियुतो विभ्यवार ।

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ १ ॥

॥ ३ ॥

उपो ते अन्धो मर्धमयामि  
यस्य देव दधिपे पूर्वपेयम् ॥ १ ॥

प्र यामिर्यासि दाश्वानुमच्छा  
नियुद्धिर्वायविष्टयं दुरोणे ।

नि नो रयि सुमोजसं युवस्य  
नि वीरं गव्यमद्वयं च राधः ॥ ३ ॥

आ नो नियुद्धिः शतिनीमिरध्वरं  
सहस्रिणीमिरुप याहि युवम् ।

वार्यो असिन्सर्वने मादयस्व  
युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

॥ १३ ॥ ( श्रु० ८।१६।२०-२५ )

विश्वमना वैयश्वः, अथो वाञ्छिरवः । तणिह, २० अङ्गुलः  
२१, २५ गायत्री ।

युश्वा हि त्वं रथासदा युवस्व पोष्या वसो ।  
आश्रो वायो मधु पिषासाकं सवना गहि ॥ २० ॥

तवं वायवृतस्पते त्वष्टुर्जामातरुद्धत ।  
अवांस्या वृणीमहे ॥ २१ ॥

त्यष्टुर्जामातरं वयमीशानं राय ईमहे ।  
सुतावन्तो वायं पुत्रा जनासः ॥ २२ ॥

वायो याहि शिवा दिवो वहस्वा सु स्वस्वयम् ।  
वहस्य महः पृथुपक्षेता रथे ॥ २३ ॥

त्वां हि सुषरस्तमं नृपदनेषु हूमहे ।  
प्रावाणं नाभ्यपृष्ठं मंहना ॥ २४ ॥

स त्वं नो देव मनसा वायो मन्वानो अभियः ।  
कृधि वाजो मपो धियः ॥ २५ ॥

॥ १४ ॥ ( श्रु० ८।१६।२५-२८, १२ )

वपोऽद्वयः । २५-२८ प्रगाथाः । वृहती + एतो वृहती ।  
१२ पक्षिः ।

आ नो वायो मदे तर्ने याहि मन्वाय पाजसे ।  
ययं हि तं चक्रमा भूरि वायने

सद्यमिन्महि वायने

॥ २५ ॥

(६९३)

यो अर्धेर्विर्वहते घस्ते उच्चाः

त्रिः सत सततीनाम् ।

पुमिः सोमैभिः सोमसुद्धिः सोमपा

दानाय शुक्रपूतपाः

॥ २६ ॥

यो मे इमे चिदु त्मना मन्दच्छिन्नं दावने ।

अरुद्वे अक्षे नहुपे सुकृत्वनि

सुकृत्तराय सुकृतुः

॥ २७ ॥

उच्ये वपुषि यः स्वरा लुत वायो घृतज्ञाः ।

अर्धेयितं रजैयितं शुनैयितं

प्राग्म तदिदं नु तत्

॥ २८ ॥

शतं दासे र्यल्लुधे विप्रस्तर्क्ष आ ददे ।

ते ते वायविमे जना मवन्तीन्द्रगोपा

मदन्ति देवगोपाः

॥ ३२ ॥

॥ १५ ॥ ( ऋ० ८।१०।१९-१० )

अमदमिर्नार्गः । प्रगायः - ( विपमा बृहती+समा धतो बृहती ) ।

आ नो यद्दं विविस्पर्शं

वायो याहि सुमन्मभिः ।

अन्तः पृथिन् उपरि श्रीणानो

अयं शुक्रो अयामि ते

॥ ९ ॥

वेत्यर्ध्वर्युः पृथिमी रजिष्ठैः

प्रति हृष्यानि धीतर्यै ।

अर्धा नियुत्व उभयस्य नः पिय

शुचिं सोमं गवाशिरम्

॥ १० ॥

॥ १६ ॥ ( ऋ० १०।१६।८।१-४ )

अनिलो वातायन । त्रिष्टुप् ।

पार्तस्य नु महिमानं रथस्य

रुज्रैरिति स्तनयग्रस्य घोषः ।

शिविस्पर्श्यात्यरुणानि कृण्वन्

उतो रति पृथिव्या रेणुमस्यन्

॥ १ ॥

सं प्रेरते अनु पार्तस्य विष्टा

पेनं गच्छन्ति समन्तं न योषाः ।

तामिः सयुक् सरथं देव ईयते

अस्य विभ्वस्य भुवनस्य राजा

॥ २ ॥

अन्तरिक्षे पृथिविरीर्यमानो

न नि विशते कतमच्चनाहः ।

अपां सखां प्रथमजा ऋतावा

कं स्विज्जातः कुत आ र्वभूय

॥ ३ ॥

आत्मा देवानां भुवनस्य गर्भो

यथावशं चरति देव एयः ।

घोषा इदस्य शृण्वरे न रूपं

तस्मै वाताय हविषा विधेम

॥ ४ ॥

॥ १७ ॥ ( ऋ० १०।१८।१-३ )

उलो वातायन । गायत्री ।

वात आ वातु मेपजं शमु मयोम नो हृदे ।

प्र ण आर्यैष तारिपत्

॥ १ ॥

उत वात पिताऽसि न उत भ्रातोत नः सखा ।

स नो जीवातये रुधि

॥ २ ॥

यददो वात ते गृहेऽमृतस्य निधिर्हितः ।

ततो नो देहि जीवसे

॥ ३ ॥

॥ १८ ॥ ( वा० य० ५।१ [ पूर्वार्धः ] )

आपतये त्या परिपतये गृहामि

तनुनर्षं शास्वराय शस्वन् ओजिष्टाय

॥ ५ ॥

॥ १९ ॥ ( वा० य० ६।१६ )

वायो ये स्तोकानाम्

॥ १६ ॥

॥ २० ॥ ( वा० य० ११।३९ )

सं ते वायुमीतरिष्वा दधातु

उत्तानाया हृदये यद्विकस्तम् ।

यो देवानां चरसि प्राणयेन

कस्मै देव वर्णइस्तु नुम्यम्

॥ ३९ ॥

॥ २१ ॥ ( वा० य० १४।८, १९, १४ )

प्राणं मे पाहाणं मे पादि व्यानं मे पादि

( ६९८९ )

विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे  
व्यचस्वतीं प्रथस्वतीमन्तरिक्षं  
यच्छान्तरिक्षं दृष्ट्वान्तरिक्षं मा हिंशसीः ।

विश्वस्मै प्राणायानाय  
व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय ।

वायुष्ट्वाभि पातु मृगा स्वस्त्या छुर्विषा शन्तमेन  
तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ १२ ॥

विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य  
पृष्ठे ज्योतिष्मतीम् ।

विश्वस्मै प्राणायानाय व्यानाय  
विश्वं ज्योतिर्यच्छ ।

वायुष्ट्वाधिपतिस्तया देवतया  
अङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ १४ ॥

॥ १२ ॥ (वा० य० १५।६४)

परमेष्ठी त्वा सादयतु विचस्पृष्टे  
व्यचस्वतीं प्रथस्वतीं  
दिव्यं यच्छु दिव्यं दृष्ट्वु दिव्यं मा हिंशसीः ।

विश्वस्मै प्राणायानाय  
व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय ।

स्वस्त्याऽभि पातु मृगा स्वस्त्या छुर्विषा शन्तमेन  
तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥ ६४ ॥

॥ ११ ॥ (वा० य० १८।४५)

ममुद्रोऽसि नमस्त्वान्द्रव्यातुः  
शम्भूर्मयोभूरमि मां याहि स्यादां  
माप्नोऽसि मरुतां गणः ।

शम्भूर्मयोभूरमि मां याहि स्यादां  
भयस्यूरमि दुर्गस्यान्लभूर्मयोभूरमि  
मां याहि स्यादां ॥ ४५ ॥

॥ १४ ॥ (वा० य० १९।४९)

शोमधराणी वायुः ।

पर्यमानः सोऽद्य नः पयिर्ब्रह्म पिर्यपणिः ।

वा पोता स पुनातु मां ॥ ४२ ॥

॥ १५ ॥ (वा० य० २०।१५)

यदि दिवा यदि नक्तमेनांशसि चक्रमा वयम् ।  
वायुर्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वश्रुतः ॥ १५ ॥

॥ १६ ॥ (वा० य० २७।३१, ३२)

वायुरभेगा यज्ञमीः साकं गन्मनसा युञ्जम् ।  
शिवो नियुक्तिः शिवामिः ॥ ३१ ॥

पर्कया च दशमिश्च स्वभूते  
द्राग्यामिष्टये विंशशती च ।

तिसृमिश्च बहसं त्रिंशता च  
नियुक्तिर्वायविह ता वि मुञ्च ॥ ३३ ॥

॥ १७ ॥ (वा० य० ३३।५५)

प्र वायुमच्छां गृह्णीती मनीषा  
गृह्णीत्यि विद्वद्वारथं रथग्राम् ।

द्युतर्धामा नियुतः पत्यमानः  
कविः कविर्मियक्षसि प्रयज्यो ॥ ५५ ॥

॥ १८ ॥ (अथर्व० २।१५।१-६)

ब्रह्मा । प्राणः, अपानः, आयुः । त्रिप्राणवर्गः ।

यथा द्यौश्च पृथिवी च न विंभीतो न रिप्यतः ।  
एवा मे प्राण मा विंभेः ॥ १ ॥

यथाऽहश्च रात्री च न विंभीतो न रिप्यतः ।  
एवा मे प्राण मा विंभेः ॥ २ ॥

यथा सूर्यश्च चन्द्रश्च न विंभीतो न रिप्यतः ।  
एवा मे प्राण मा विंभेः ॥ ३ ॥

यथा ब्रह्म च क्षयं च न विंभीतो न रिप्यतः ।  
एवा मे प्राण मा विंभेः ॥ ४ ॥

यथा सत्यं चानृतं च न विंभीतो न रिप्यतः ।  
एवा मे प्राण मा विंभेः ॥ ५ ॥

यथा भूतं च भव्यं च न विंभीतो न रिप्यतः ।  
एवा मे प्राण मा विंभेः ॥ ६ ॥

॥ १९ ॥ (अथर्व० २।१६।१-५)

प्राणः । १. ३ एकादशगुणी त्रिष्टुप्, २ द्वादशगुणी  
अणिच्, ४-५ त्रिषदागुणी गायत्री ।

प्राणापानौ मुख्यामौ पातं स्यादां ॥ १ ॥  
(१३०५)

द्यावापृथिवी उर्ध्वतया मा पातं स्वाहा ॥ २ ॥  
सूर्यं चक्षुषा मा पाहि स्वाहा ॥ ३ ॥  
अग्ने वैश्वानरं विश्वैर्मामा देवैः पाहि स्वाहा ॥ ४ ॥  
विश्वंमरु विश्वेन मा मरुता पाहि स्वाहा ॥ ५ ॥

॥ ३० ॥ (अथर्व० ११७।१-७)

प्राणः । १-६ एकपादासुवि द्विष्टुप्, ७ आसुवि अण्डिक् ।

भोजोऽस्योजो मे दाः स्वाहा ॥ १ ॥  
सहोऽसि सहो मे दाः स्वाहा ॥ २ ॥  
बलमसि बलं मे दाः स्वाहा ॥ ३ ॥  
आयुरस्यायुर्मे दाः स्वाहा ॥ ४ ॥  
श्रोत्रमसि श्रोत्रं मे दाः स्वाहा ॥ ५ ॥  
चक्षुषसि चक्षुर्मे दाः स्वाहा ॥ ६ ॥  
परिपारमसि परिपारं मे दाः स्वाहा ॥ ७ ॥

॥ ३१ ॥ (अथर्व० १३।३।११)

प्राजापजासुष्टुप् ।

स वै द्यायोरजायत तस्माद्द्वायुरजायत ॥ ३२ ॥

॥ ३१ ॥ (अथर्व० १।२०।१-५)

अथर्वः । १-४ त्रिवृद्धिषमा पायत्रि, ५ मुसिग्विषमा ।

पायो यत् ते तपस्तेन तं प्रति तप  
योऽस्मान् देष्टि यं वयं द्विष्मः ॥ १ ॥  
पायो यत् ते हस्तेन तं प्रति हस्  
योऽस्मान् देष्टि यं वयं द्विष्मः ॥ २ ॥  
पायो यत् तेऽर्चिस्तेन तं प्रत्यर्च्य  
योऽस्मान् देष्टि यं वयं द्विष्मः ॥ ३ ॥  
पायो यत् ते शोचिस्तेन तं प्रति शोच्य  
योऽस्मान् देष्टि यं वयं द्विष्मः ॥ ४ ॥  
पायो यत् ते तैजस्तेन तमतेजसं कृणु  
योऽस्मान् देष्टि यं वयं द्विष्मः ॥ ५ ॥

॥ ३१ ॥ (अथर्व० ५।१८।८)

बहुपदाति शक्वरी ।

द्यायुस्तारिभ्रसाधिपतिः स मायतु ।  
अस्मिन् प्रहण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुंरोधायाम्भ्यां

प्रतिष्ठायांभ्यां चित्यांभ्यामाकृत्याम्भ्यां  
आदिष्यस्यां देवहृत्यां स्वाहा ॥ ८ ॥

॥ ३३ ॥ (अथर्व० ६।८९।१)

अथर्वः । (वातः) । अनुष्टुप् ।

शोचर्यामसि ते हार्दि शोचर्यामसि ते मनः ।  
वातं धुम ईध सध्व्यङ्क मामेवाव्येतु ते मनः ॥ २ ॥

॥ ३५ ॥ (अथर्व० ८।३०।६)

शुकः । त्रिष्टुप् ।

येऽन्तारिक्षाज्जुहति जातयेदो  
व्यध्यायां दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।  
द्यायुमृत्वा ते पराञ्जो व्ययन्तां  
प्रत्यर्गेनान् प्रतिसुरेणं हग्मि ॥ ६ ॥

॥ ३६ ॥ (अथर्व० ११।८।१-२६)

मार्गवो वैश्विः । (प्राणः) । अनुष्टुप् ; १ छङ्कमती, ८  
पद्यापङ्क्तिः ; १४ त्रिष्टुप् ; १५ मुक्तिः ; २० अनुष्टु-  
ज्जर्मा त्रिष्टुप् ; २१ मध्ये ज्वेतिर्भगती ; २२ त्रिष्टुप् ;  
२६ बहुतीर्गमा ।

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं यदौ ।  
यो भुतः सर्वस्येभ्यरो यस्मिन्सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ १ ॥  
नमस्ते प्राणं कन्दाय नमस्ते स्तनयितरौ ।  
नमस्ते प्राणं विद्युते नमस्ते प्राणं वर्षते ॥ २ ॥  
यत् प्राणं स्तनयित्नुनामिकन्दत्योर्षधीः ।  
प्र वीयन्ते गर्मान् दधतेऽर्षो वृहीर्षि जायते ॥ ३ ॥  
यत् प्राणं श्रुतावागनेऽभिकन्दत्योर्षधीः ।  
सर्वे तदा ॥ मोदन्ते यत् किं च मय्यामधि ॥ ४ ॥  
यदा प्राणो अभ्यवर्षाद्वेणे पृथिवीं मृदाम् ।  
पशुपत्स्व प्र मोदन्ते महे धै नो मधिष्यति ॥ ५ ॥  
अभिवृष्टा ओषधयः प्राणेन समेषादिरन् ।  
आयुर्वै नः प्रातीतरः सर्वो नः सुतमीरकः ॥ ६ ॥  
नमस्ते अस्यायते नमो वस्तु परायते ।  
नमस्ते प्राणं तिष्ठन् आर्मानायोत ते नमः ॥ ७ ॥

(६११०)

नमस्ते प्राण प्राणते नमो अस्त्यपानते ।  
 पराचीनाय ते नमः प्रतीचीनाय ते नमः  
 सर्वस्मै त इदं नमः ॥ ८ ॥  
 या तै प्राण प्रिया तनूयौ तै प्राण प्रेयसी ।  
 अथो यद्भेजं तव तस्य नो चेहि जीवसे ॥ ९ ॥  
 प्राणः प्रजा अजु वस्ते पिता पुत्रमिव प्रियम् ।  
 प्राणो ह सर्वस्येश्वरो यद्य प्राणति यच्च न ॥ १० ॥  
 प्राणो मृत्युः प्राणस्तस्मात् प्राणं देवा उपासते ।  
 प्राणो ह सत्यवादिनमुत्तमे लोक आ दधत् ॥ ११ ॥  
 प्राणो विराट् देही प्राणं सर्व उपासते ।  
 प्राणो ह सूर्यश्चन्द्रमाः प्राणमाहुः प्रजापतिम् ॥ १२ ॥  
 प्राणापानौ ग्रीहिषवावर्नङ्गान् प्राण उच्यते ।  
 यद्ये ह प्राण आहितोऽपानो ग्रीहिरुच्यते ॥ १३ ॥  
 अपानति प्राणति पुरुषो गर्भे अन्तरा ।  
 यदा त्वं प्राणं जिन्वस्यथ स जायते पुनः ॥ १४ ॥  
 प्राणमाहुर्मातरिभ्यान् वातो ह प्राण उच्यते ।  
 प्राणे ह भूतं भव्यं च प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ १५ ॥  
 आधर्यणीराक्षिरसीर्द्वीर्धर्मनुष्यजा उत ।  
 ओषधयः प्र जायन्ते यदा त्वं प्राणं जिन्वसि ॥ १६ ॥  
 यदा प्राणो अभ्यर्चयद्भेषं पृथिवीं महीम् ।  
 ओषधयः प्र जायन्तेऽथो याः काक्ष्यं वीरुषः ॥ १७ ॥  
 यस्मै प्राणेदं चेद् यस्मिन्वाति प्रतिष्ठितः ।  
 सद्ये तस्मै वृष्टिं हरेरानुमिह्लोक उत्तमे ॥ १८ ॥  
 यथा प्राणं वदितुस्तुभ्यं सयौः प्रजा इमाः ।  
 पूया तस्मै वृष्टिं हरेरानु यस्यां क्षुण्णयस् सुधयः १९  
 अन्तर्गर्भश्चरति देयतासु  
 भार्गवो भूतः ॥ उ जायते पुनः ।  
 न भूतो भव्यं भविष्यत्  
 पिता पुत्रं न पिपेया दार्चीभिः ॥ २० ॥  
 पशुः पादं नोतिरदति सलिलाश्लेस उच्यते ।  
 यद्वृक्षः न तर्मुगिर्देनेवाच न श्वः श्याम्  
 न शक्नी नादः श्याम एषु चोत्तमं कदा न ॥ २१ ॥

अष्टार्चकं वर्तत एकनेमि  
 सहस्राक्षं प्र पुरो नि पश्चा ।  
 अर्धेन विश्वं भुवनं ज्ञान  
 यदस्यार्धे कृतमः स केतुः ॥ २२ ॥  
 यो अस्य विश्वजन्मन ईशे विश्वस्य चेष्टतः ।  
 अन्येषु क्षिप्रधन्वने तस्मै प्राण नमोऽस्तु ते ॥ २३ ॥  
 यो अस्य सर्वजन्मन ईशे सर्वस्य चेष्टतः ।  
 अतन्द्रो ग्रहाणा घोरः प्राणो मानु तिष्ठतु ॥ २४ ॥  
 ऊर्ध्वः सुतेयु जागार ननु तिर्यङ् नि पद्यते ।  
 न सुप्तमस्य सुतेष्वनु शुधाव कश्चन ॥ २५ ॥  
 प्राण मा मन्त पर्यावृतो न मदन्यो भविष्यति ।  
 अपां गर्भमिव जीवसे प्राणं वृधामि त्वा मयि ॥ २६ ॥

## वायु-सहचारी देवगणः

( १ ) वायुस्त्वष्टा ।

॥ ३१ ॥ ( अथर्वं ३।१०।१० )

वशिष्ठः । अनुष्टुप् ।

गोसतिं वार्चमुदेयं वर्चसा माभ्युर्विदि ।  
 आ र्गधां सर्वतो वायुस्त्वष्टा पोषं दधातु मे ॥ १० ॥

( २ ) वाय्वन्तरिक्षे ।

॥ ३८ ॥ ( अथर्वं ४।३९।१-४ )

अत्रिः । २, ४ संस्कारयंका, ३ त्रिषदा महावृक्षी ।

पृथिवी धेनुस्तस्यां अग्निर्यत्सः ।  
 सा मेऽग्निना यत्सेनेपमूर्जं कामं दुहाम् ।  
 आर्युः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वादां ॥ २ ॥  
 अन्तरिक्षे प्रायये समनमन्तस् आग्नेय ।  
 यथाऽन्तरिक्षे प्रायये समनमन्त्रेया  
 मही स्तनमः ॥ नमन्तु ॥ ३ ॥  
 अन्तरिक्षं धेनुस्तस्यां प्राययत्सः ।  
 सा मे प्रायुना यत्सेनेपमूर्जं कामं दुहाम् ।  
 आर्युः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वादां ॥ ४ ॥



## असुनीतिः ।

॥ १ ॥ ( अ० १०१५५-६ )

बन्धुः भुतबन्धुर्वैभवः पुण्योपायनाः । त्रिष्टुप् ।

असुनीते मनो अस्मासु धारय  
जीवाते सु प्र तिरा न आयुः ।  
एरन्धि नः सूर्यस्य संदधि  
धृतेन त्वं तन्वं यथेयस्व

॥ ५ ॥

असुनीते पुनरस्मासु चक्षुः  
पुनः प्राणमिह नो धेहि भोगम् ।  
ज्योक् पश्येम् सूर्यमुच्चरन्तं  
अनुमते मूढया नः स्वस्ति

॥ ६ ॥

॥ २ ॥ ( वा० घ० ११६० )

ये अग्निष्वात्ता ये अग्निष्वात्ता  
मर्त्ये विधः स्वधया मादयन्ते ।  
तेभ्यः स्वराडसुनीतिमेतां  
यथावशं तन्वं कल्पयाति

॥ ६० ॥

॥ ३ ॥ ( अथर्व० १८११११ )

अपवा । त्रिष्टुप् ।

अर्चोमि वां यथायापो घृतस्तु  
घावाभूमी शृणुत रोदसी मे ।  
महा यदेया असुनीतिमायत्र  
मर्था नो अत्र पितरां शिशीताम्

॥ ३१ ॥

॥ ४ ॥ ( अथर्व० १८११५ )

( आतवेदः ) । मुनिक् ।

यदा शतं कृण्वो जातयेदो  
अथेमर्त्येनं परि दत्तात् पितृभ्यः ।  
यदो गच्छात्पसुनीतिमेतां  
मर्त्यं देवानां यदानीर्भवाति

॥ ५ ॥

॥ ५ ॥ ( अथर्व० १८११५८ ) त्रिष्टुप् ।

ये नः पितुः पितरो ये पितामहा  
य आधिपतिशुर्वन्तरिक्षम् ।  
तेभ्यः स्वराडसुनीतिनां अद्य  
यथावशं तन्वं कल्पयाति

॥ ५८ ॥

## मधुकुक्षिः ।

॥ १ ॥ ( अथर्व० ११११-१४ )

मधु, अधिनो । त्रिष्टुप्, २ त्रिष्टुङ्गमां पञ्क्तिः, ३ परातुः-  
पुट्ट, ६ अतिशक्तीगर्मा महाबृहती, ७ अतिजागतगर्मा महा-  
बृहती, ८ बृहतीगर्मा संस्तारपञ्क्तिः, ९ पराबृहती प्रस्तारपञ्क्तिः,  
१० पराणिक्पञ्क्तिः, ११-१३, १५-१६, १८-१९ अनुष्टुप्  
१४ पुर षण्णिकः, १७ उपरिष्ठाद्विराट् बृहती, २० मुरिर्वि-  
ष्टारपञ्क्तिः, २१ द्वावसाना द्विपदार्थ्यनुष्टुप्, २२ त्रिपदा  
मार्ता पुर षण्णिकः, २३ द्विपदा आर्षो पञ्क्तिः, २४ वयवसाना  
वृत्पदाष्टिः ।

द्विपदार्थ्यद्विष्या अन्तरिक्षात् समुद्राद्  
अग्नेर्वोतांमधुकुक्षिं हि जग्मे ।

तां चायित्वामृतं यत्नानां  
हृदिः प्रजाः प्रति नन्दन्ति सूर्याः

॥ १ ॥

महत् पयो विश्वरूपमस्याः  
समुद्रस्य स्रोत रेत आहुः ।

यत् वेति मधुकुक्षि रत्नाणां  
तत् प्राणस्तदमृतं निर्विद्यम्

॥ २ ॥

पदार्थ्यस्याध्वरितं पृथिव्यां  
पृथङ्मृतं बहुधा मीमांसमानाः ।

अग्नेर्वोतांमधुकुक्षिं हि जग्मे मुक्तामुप्रा नन्तिः ॥ ३ ॥

माताऽऽदित्यानां दुहिता यत्नानां  
प्राणः प्रजानांममृतस्य नामिः ।

द्विरण्यवर्णा मधुकुक्षि घृताचीं  
महान् भर्गश्चरति मर्त्येषु

॥ ४ ॥

नर्मस्ते प्राण प्राणते नर्मो अस्त्वपानते ।  
 पृथ्वीनाय ते नर्मः प्रतीचीनाय ते नमः  
 सर्वस्मै त इदं नर्मः ॥ ८ ॥  
 या ते प्राण प्रिया तनूयो ते प्राण प्रेयसी ।  
 अथो यद्वैपजं तव तस्य नो चेहि जीवसे ॥ ९ ॥  
 प्राणः प्रजा अनु वस्ते पिता पुत्रमिव प्रियम् ।  
 प्राणो ह सर्वस्येश्वरो यच्च प्राणति यच्च न ॥ १० ॥  
 प्राणो मृत्युः प्राणस्तस्मा प्राणं देवा उपासते ।  
 प्राणो ह सत्यवादिनमुत्तमे लोक आ दधत् ॥ ११ ॥  
 प्राणो विराट् देवीं प्राणं सर्वं उपासते ।  
 प्राणो ह सूर्यश्चन्द्रमाः प्राणमाहुः प्रजापतिम् ॥ १२ ॥  
 प्राणापानौ ब्रीहियुवाचनङ्गान् प्राण उच्यते ।  
 यवै ह प्राण आदितोऽपानो ब्रीहिरुच्यते ॥ १३ ॥  
 अपानति प्राणति पुरुषो गर्भे अन्तरा ।  
 यदा त्वं प्राण जिम्यस्यथ स जायते पुनः ॥ १४ ॥  
 प्राणमाहुर्मातरिभ्यान् वातो ह प्राण उच्यते ।  
 प्राणे ह भूतं भव्यं च प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ १५ ॥  
 आधर्यणीरादिरसीर्दवीर्मनुष्यजा उत ।  
 ओर्यधयः प्र जायन्ते यदा त्वं प्राणं जिम्वसि ॥ १६ ॥  
 यदा प्राणो अभ्यर्षर्षाह्रिषेणं पृथिवीं मदीम् ।  
 ओर्यधयः प्र जायन्तेऽथो याः कार्धं धीरुधः ॥ १७ ॥  
 यस्ते प्राणेदं येदं यस्मिन्धासि प्रतिष्ठितः ।  
 नये तस्मै यतिं हरानमुर्मिहोक्त उच्यते ॥ १८ ॥  
 यथा प्राण यलिहस्तुभ्यं सवीः प्रजा इमाः ।  
 प्रया तस्मै यतिं हरान् यस्यां दूणपत् सुधयः १९  
 अगतगमंधरति देयतासु  
 भार्मो भूतः ॥ उ जायते पुनः ।  
 न भूतो भव्यं मधिप्यत्  
 पिता पुत्रं प्र पिबेत्तु दार्दीगिः ॥ २० ॥  
 एषः पादं नोतिनदति सलिलासुस उच्यते ।  
 यदहं ॥ तस्मिन्निर्देनवाप न भ्यः स्यात्  
 न शस्त्री नार्दः स्यात्त द्यु च्छेत्तुं नृणां जन ॥ २१ ॥

अष्टाचक्रं वर्तत एकनेमि  
 सहस्राक्षं प्र पुरो नि पश्चा ।  
 अर्धेन विश्वं भुवनं जजान  
 यदस्यार्धं कृतमः स केतुः ॥ २२ ॥  
 यो अस्य विश्वजग्मन् ईशे विश्वस्य चेष्टतः ।  
 अन्येषु क्षिप्रधन्वने तस्मै प्राण नमोऽस्तु ते ॥ २३ ॥  
 यो अस्य सर्वजग्मन् ईशे सर्वस्य चेष्टतः ।  
 अतन्द्रो ब्रह्मणा धीरः प्राणो मानु तिष्ठतु ॥ २४ ॥  
 ऊर्ध्वः सुतेषु जागार ननु तिर्यङ् नि पद्यते ।  
 न सुतमस्य सुतेष्वनु शुधाव कश्चन ॥ २५ ॥  
 प्राण मा मत् पर्पावृतो न मदन्यो भविष्यति ।  
 अपा गर्भमिव जीवसे प्राण घृभामि त्वा मयि ॥ २६ ॥

## वायु-सहचारी देवगणः

( १ ) वायुस्त्वष्टा ।

॥ ३९ ॥ ( अथर्व० १।२०।१० )

वशिष्ठः । अनुष्टुप् ।

गोसनिं वाचमुदेयं चर्वसा माग्नुदिहि ।  
 आ रुन्धां सर्वतो वायुस्त्वष्टा पोर्व दधातु ॥

( २ ) वाय्वन्तरिक्षे ।

॥ १८ ॥ ( अथर्व० ४।१८ )

अत्रिराः । १, ४ धेत्वार्यकः, १

पृथिवी धेनुस्तस्या अमिषं  
 सा मेऽग्निना वृत्तेनेपम  
 वायुः प्रथमं प्रजां पे  
 अन्तरिक्षे वायवे  
 ययान्तरिक्षे  
 मर्त्यं संन  
 अन्तरिक्षे  
 सा



प्रकाश-विभागः

## विद्युत्

॥ १ ॥ ( बा० य० १।२४ )

इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणः सहस्रं वृष्टिः ।  
शततेजा वायुरसि तिग्मतेजा द्विपतो वृषः ॥ २४ ॥

॥ २ ॥ ( बा० य० ४।१९-२३ )

चिदसि मनासि धीरसि दक्षिणासि क्षत्रियासि  
यज्ञियास्यदितिरस्युभयतः क्षीर्णा ।  
सा नः सुप्रार्थी सुप्रतीक्ष्येधि  
मित्रस्त्वां पृदिषन्तीतां  
पुषाऽर्जनस्यातिन्द्रायाऽपक्षाय ॥ १९ ॥

अनु त्वा माता मन्यतामनु पिताऽनु  
आता सगर्भ्योऽनु सखा सयूष्यः ।  
सा देवि देवमच्छेदीन्द्राय सोमं  
इन्द्रस्तवा यक्षयतु  
स्वस्ति सोमसखा पुनरेदि ॥ २० ॥

यस्यस्यदितिरसि  
आदित्यसि इन्द्रसि चन्द्रासि ।  
शूहस्पतिर्ष्वा सुम्ने रमणातु  
उद्रो पत्नमिरा चके ॥ २१ ॥

अदित्यास्त्वा मुदञ्जाजिघमि देवयजने पृथिव्या  
इडायास्पदमसि घृतवत् स्वाहा ।  
अस्मे रमस्वास्मे ते दग्धुस्त्वे रापो मे रापो  
मा धयं, रायस्पोपेण  
विर्योप्स तोतो रायः ॥ २२ ॥  
समस्ये देव्या धिया सं दक्षिणयोदक्षस्ता  
मा म आयुः प्रमोषीमो अहं तय  
वीरं विदेय तव देवि सुवृष्टि ॥ २३ ॥

॥ ३ ॥ ( बा० य० ५।५ )

अनाघृष्टमस्यनाघृष्यं देयानामोजः  
अर्नमिशस्यमिशस्तिपा  
अर्नमिशस्तेन्यमर्जस्ता  
सत्यमुर्गणेपं, स्विते मां धाः ॥ ५ ॥

॥ ४ ॥ ( अथर्व० १।१३।१-४ )

मूर्धनिराः । अनुद्रुः, ३ चतुष्पाद् विराट् जगती, ४ त्रिष्टु  
प्परा इहतीगमां पञ्च ।

नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयितनयं ।  
नमस्ते अस्त्वदर्मने येना दृढाद्ये अस्यासि ॥ १ ॥

(६३९३)

मधोः कशामजनयन्त देवाः  
 तस्या गमो अभवद्विश्वरूपः ।  
 तं ज्ञातं तरुणं पिपतिं माता  
 स ज्ञातो विश्वा भुवना वि चरे ॥ ५ ॥  
 कस्तं प्र वेद क उ तं चिकेत  
 यो अस्या हृदः कुलशः सोमधानो अक्षितः ।  
 ब्रह्मा सुमेधाः सो अस्मिन् मदेत ॥ ६ ॥  
 स तौ प्र वेद उ तौ चिकेत  
 यार्धस्याः स्तनौ सहस्रधापुवक्षितौ ।  
 ऊर्जे दुहाते अर्नपस्फुरन्तौ ॥ ७ ॥  
 हिद्वरिक्ती धृती वयोधा  
 उच्येयोषाम्येति या मृतम् ।  
 श्रीन् घर्माननि पायशाना  
 मिमाति माधुं पर्यते पर्योभिः ॥ ८ ॥  
 यामार्पिनामुपसीदन्त्याः  
 दाक्ष्यरा धृपमा ये स्यराजः ।  
 ते पर्यन्ति ते पर्ययन्ति  
 तद्विदे काममूर्जमार्पः ॥ ९ ॥  
 स्तनयितुस्ते वाक् प्रजापते  
 वृषा दुष्म क्षिपति भूम्यामधि ।  
 अग्नेर्वातामधुनदा हि येषे मृक्तामुप्रा नृप्तिः १०  
 यया सोमः प्रातः सपने अभिनोर्भवति म्रियः ।  
 एवा मे अभिना वर्यं आत्मनि धियताम् ॥ ११ ॥  
 यया सोमो द्वितीये सपने इन्द्राग्न्योर्भवति म्रियः ।  
 एवा मे इन्द्राग्नी पर्यं आत्मनि धियताम् ॥ १२ ॥  
 यया सोमस्मृतीये सपने अग्निग्नौ भवति म्रियः ।  
 एवा मे अग्निग्नौ पर्यं आत्मनि धियताम् ॥ १३ ॥  
 मधुं जनिपीष मधुं वशिणीय ।  
 पर्येजाना धार्गम मं मा स र्वं वर्यं ॥ १४ ॥

सं माहे वर्यं सा सृज सं प्रजया समायुषा ।  
 विद्युर्मे अस्य देवा  
 इन्द्रो विधात् सृष्ट ऋषिभिः ॥ १५ ॥  
 यथा मधुं मधुकृतः संभरन्ति मधावधि ।  
 एवा मे अभिना वर्यं आत्मनि धियताम् ॥ १६ ॥  
 यथा मक्षा इदं मधुं न्यजन्ति मधावधि ।  
 एवा मे अभिना वर्यः  
 तेजो यलमोज्ञश्च धियताम् ॥ १७ ॥  
 यद्रिपि पर्वतेषु गोष्वध्वेषु यन्मधु ।  
 सुरायां सिच्यमानायां  
 यत् तन्न मधु तन्मयि ॥ १८ ॥  
 अभिना सार्षेण मा मधुनाऽइत्तं शुभस्पती ।  
 यथा वर्यं स्वर्ता वाचमावदानि जनां अनु ॥ १९ ॥  
 स्तनयितुस्ते वाक् प्रजापते  
 वृषा दुष्म क्षिपति भूम्यां विधि ।  
 तां पशव उर्प जीवन्ति  
 सये तेनो सेपमूर्जे पिपति ॥ २० ॥  
 पृथिवी वृणोऽन्तरिक्षं गमो  
 योः कशा विपुत् प्रकशो हिरेण्ययो बिम्बुः ॥ २१ ॥  
 यो वै कशायाः सप्त मधूनि वेद मधुमान् भवति ।  
 ब्राह्मणश्च राजा च धेनुभ्यान्द्वांश्च  
 ग्रीहिश्च पर्यश्च मधुं सप्तमम् ॥ २२ ॥  
 मधुमान् भवति मधुमदस्याद्वायं भवति ।  
 मधुमतो लोकान् जयति न एयं वेद ॥ २३ ॥  
 यद्ग्रीधे स्तनयति प्रजापतिरेष  
 तत् प्रजाग्न्यः प्रादुर्भवति ।  
 तस्मात् प्राचीनोपपीताहेनो  
 प्रजापतेऽनु मा पुष्पस्येति ।  
 अग्नेन प्रजा ननु प्रजापतिर्दुष्यते य एवं वेद ॥ २४ ॥



प्रकाश-विभागः

# विद्युत्

॥ १ ॥ ( धा० य० १।१४ )

इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणः सुहृत्समृष्टिः ।  
शततेजा वायुरसि तिग्मतेजा क्षिप्तो वृषः ॥ २४ ॥

॥ २ ॥ ( धा० य० ४।११-१३ )

चिद्वीर्यं मनासि धीरसि दक्षिणसि ह्यभियासि  
यज्ञियास्यदितिरस्यमयतः शीर्ष्णी ।  
सा नः सुप्रोची सुप्रतीच्येधि  
मित्रस्त्वा पविष्मन्तीतां

पूषाऽर्धनस्यात्विन्द्रायाऽर्धक्षाय  
अनु त्वा माता मन्यतामनु पिताऽनु  
भ्राता सगम्योऽनु सखा सवृध्यः ।  
सा देवि देवमच्छेद्दीन्द्राय सोमं  
रुद्रस्तया यच्छेयतु

स्वस्ति सोमसखा पुनरेदं

पस्यस्यदितिरसि  
आदित्यसि रुद्रासि घन्द्रासि ।

शूद्रस्पतिष्टया सुम्ने रम्णातु  
रुद्रो पत्सुमिरा चके

॥ १९ ॥

॥ २० ॥

॥ २१ ॥

आदित्यास्तवा मूर्ध्वभाजिधर्मि देवयजने पृथिव्या  
इडायास्पदमसि घृतवत् स्वाहा ।

अस्मे रमस्वास्मे ते बन्धुस्त्ये रापो मे रापो  
मा वयं रायस्पोषेण  
विर्याम् तोता रायः

॥ २२ ॥

समस्ये देव्या धिया सं दक्षिणयोर्वचक्षसा  
मा म आयुः प्रमोषीमो ब्रह्म तयं  
वीरं विदेय तव देवि सन्वृशि

॥ २३ ॥

॥ ३ ॥ ( धा० य० ५।५ )

अनाष्टमस्यनाष्ट्र्यं देवानामोजः  
अनभिशस्यभिशस्तिषा  
अनभिशस्तेन्यमंजसा  
सत्यमुपगेषं स्थिते मा धाः

॥ ५ ॥

॥ ४ ॥ ( अथर्व० १.११.१-४ )

मूर्धनिराः । अनुष्टुप्, २ यनुष्वाद् विशाद् जगती, ४ त्रिष्टुप्  
परा वृहतीगमां पंक्तिः ।

नर्मस्ते अस्तु विद्युते नर्मस्ते स्तनयितनयं ।

नर्मस्ते अस्वदमने येना दूरादो मर्यासि ॥ १ ॥

(६३९३)

नमस्ते प्रवते नपाद्यतस्तर्पः समूहसि ।

मृडया नस्तनूभ्यो मयस्तोकेभ्यस्त्रुधि

प्रवतो नपाभ्रम एवास्तु तुभ्यं

नमस्ते द्वेतये तर्पणे च कृष्णः ।

विप्र ते धाम परमं गुहा यत्

समुद्रे अन्तर्निहितासि नाभिः

पां त्वा देवा अर्चुजन्त विश्वे

इष्टं कृष्णाना अर्चनाय धूप्यम् ।

॥ २ ॥

सा नो मृड विदधे गृणाना

तस्यै ते नमो अस्तु देवि

॥ १ ॥

तारके

॥ १ ॥ ( अथर्व० ६।१२।३ )

॥ ३ ॥

वैशिकः । ( सुकृतलोक प्राप्तिः ) । अगुष्टम् ।

उदगातां भगवती विचृतौ नाम तारके ।

प्रेहामृतस्य यच्छतां प्रेतं दत्तं मोचनम् ॥ ३ ॥

६।१७।



स्त्री-विभागः

बालिका- स्त्री-संरक्षणमंत्रिणी

उषा

॥ १ ॥ ( अ. ११०/२०-११ )

शुक्लेश्वर आशीर्वादः । गायत्री ।

कस्त उषः कधमिये भुजे मर्तो अमर्त्ये ।

कं नक्षसे विभावरी ॥ २० ॥

धृपं हि ते अमर्त्यह्याऽऽन्तादा पणकात् ।

अध्वे न चित्रे अरुपि ॥ २१ ॥

त्वं त्येमिरा गहि धार्जिभिर्दुहितर्दिवः ।

अस्मे द्युयि नि धारय ॥ २२ ॥

॥ १ ॥ ( अ. ११०/१-१६ )

प्रश्नः कथः । प्रगाथः = ( विषया बृहती + समा  
वर्तोयहती । )

सह धामेन न उषो व्युच्छा दुहितर्दिवः ।

सह धुम्नेन पृहता विभावरी

राया दैवि दास्यती ॥ १ ॥

मध्वार्धतीर्गोमतीर्धिव्यसुविशे

भूरि चयन्त वस्ये ।

उदीर्य प्रनि मा सुनता उषः

योद् राघो मृधोनाम् ॥ २ ॥

उषासोषा उच्छाश्च तु वेधी जीरा रघोनाम् ।

ये अस्या आचरणेषु दध्निरे

समुद्रे न ध्रुवस्यवः ॥ ३ ॥

उषो ये ते प्र यामेषु युजते

मनो दानाय सूरयः ।

अशाह तत् कर्ण्य एषां कर्णवतमो

नाम गृणाति नृणाम् ॥ ४ ॥

आ घा योर्येव सुनर्यु—या याति प्रमुहती ।

उरर्यन्ती वृज्जनं पृहदीयत

उत्पातयति पक्षिणः ॥ ५ ॥

वि या सृजति समनं व्युयिनः

पदं न वेत्योदती ।

वयो नर्किए पक्षिवांस आसते

व्युद्यो धाजिनीयति ॥ ६ ॥

एषायुक्त एषयतः सूर्यस्योदयनादधि ।

नतं रघेभिः सुमगोषा इयं

वि पात्यमि मातृपान् ॥ ७ ॥

विश्वमस्या नानाम चक्षसे जगत्  
ज्योतिष्कणोति सूनरी ।

अप देवो मधोनी दुहिता दिव

उपा उच्छ्रुदप् त्रिधः

॥ ८ ॥

उप आ माहि भानुना चन्द्रेण दुहितर्दिवः ।

आवहन्ती भूर्यसभ्यं सौमगं

व्युच्छन्ती दिविष्टियु

॥ ९ ॥

विश्वस्य हि प्राणनं जीवन् त्वे

पि यदुच्छसि सूनरि ।

सा नो रथेन ब्रूहता विभापरि

धुधि चिन्नामधे हव्यम्

॥ १० ॥

उपो धाजं हि वंस्य यक्षिभो मानुषे जने ।

तेना बह सुहृता अघुरा उप

ये त्वा गृणन्ति वद्वयः

॥ ११ ॥

विश्वान् देवो आ बह सोमपीतये

अन्तरिक्षादुपस्यम् ।

सासातु धा गोमदभ्यावदुक्थ्यं

उपो धाजं सुवीर्यम्

॥ १२ ॥

यस्या दशान्तो अर्चयः प्रति भद्रा अदक्षत ।

सा नो रथि विश्ववारं सुपेदासं

उपा ब्रूहता सुम्यम्

॥ १३ ॥

ये चिन्ति त्याभ्ययः पूर्वं उतये

शुद्धैर्यने मदि ।

सा नः स्तोमां अग्नि गृणीहि राघना

अग्निः शुभेण शोचिषा

॥ १४ ॥

उपो यद्य भानुना पि ऋतपूषयो त्रिधः ।

म नो यच्छतादयुक् पृषु च्छर्दिः

म देवि गोमतीरिषेः

॥ १५ ॥

म नो राधा ब्रूहता विश्वर्षतामा

निमिषा समिच्छागिरा ।

सं द्युमेन विश्वतुर्यो महि

सं वाजैर्वाजिनीवति

॥ १६ ॥

॥ ३ ॥ (अ० १४९।१-४) अतुष्टम् ।

उपो भद्रेभिर गहि दिविक्षिद् रोचनादधि ।

बहन्त्वरुणस्त्व उप त्वा सोमिनो गृहम् ॥ १ ॥

सुपेदासं सुखं रथं यमध्यस्था उपस्त्वम् ।

तेना सुश्रवसं जनं प्रावाच दुहितर्दिवः ॥ २ ॥

वर्यश्चित् ते पतत्रिणो द्विपञ्चतुप्पदक्षिणि ।

उपः प्रारंभतुर्नु दिवो अन्तेभ्यस्परि ॥ ३ ॥

व्युच्छन्ती हि रश्मिभिर्विश्वमाभासि रोचन्तम् ।

तां त्वामुपर्वसुयवो गीमिः कर्णा बह्वत ॥ ४ ॥

॥ ४ ॥ (अ० १४९।१-१५)

गोतमो राहुण्यः । १-४ अगती, ५-१२ त्रिष्टम् ।

१३-१५ सणिक ।

पूता उ त्या उपसः केतुमक्रत

पूर्वे अर्धे रजसो मानुमजते ।

निष्कृण्वाना आयुधानीय धूण्यः

प्रति गावोऽर्धवीर्यन्ति मातरः ॥ १ ॥

उर्वपतत्ररुणा भानयो वृथा

स्यायुजो अर्धवीणां अयुक्षत ।

अकम्पयासो युयुनानि पुध्या दशान्तं

भानुमर्दरीरशिधयुः ॥ २ ॥

अर्चन्ति नारीरूपसो न पिष्टिभिः

समानेन योजनेना पतुपतः ।

इयं यदहन्तीः सुहृते सुदानये

विश्वेदद् यजमानाय सुन्यते ॥ ३ ॥

अधि पेदासि यपते नृत्तिय

अर्पोग्ने परं उद्येय यजाम् ।

ज्योतिर्विश्वरमे भुर्पनाय रुण्यती

गावो न मजं व्युपा आवर्तमः

॥ ४ ॥

(१४९)



प्रत्युचीं रुद्रादस्या अर्द्धिं  
 वि तिष्ठते याधते कृष्णमश्वम् ।  
 स्वहं न पेशो विदयेष्वञ्जन्  
 चित्रं दियो दुहिता भानुमधेव ॥ ५ ॥  
 अतारिप्सु तमसस्वारमस्य  
 उपा उच्छन्ती ध्युना कृणोति ।  
 धिये हन्वो न स्मयते विभाती  
 सुप्रतीका सौमनसायाजीगः ॥ ६ ॥  
 भास्वती नेत्री सन्तुतानां  
 दिवः स्तवे दुहिता गोतमेभिः ।  
 प्रजावतो नृवतो अश्वेषुषान्  
 उपो गोर्ध्रान् उर्ष मासि वाजान् ॥ ७ ॥  
 उपस्तमस्यां यशसं सुधीरं  
 हासप्रवर्गं रयिमश्वयुष्यम् ।  
 सुदंल्ला अर्षला या विभासि  
 वाजप्रसूता सुमगे वृहन्तम् ॥ ८ ॥  
 विश्वानि देवी भुवनामिचक्ष्वा  
 प्रतीची चक्षुर्विया वि भाति ।  
 विश्वं जीधं चरसे धोषयन्ती  
 विश्वस्य पार्चमविदग्मनायोः ॥ ९ ॥  
 पुनः पुनर्जायमाना पुराणी  
 संमानं वर्णमभि शुष्ममाना ।  
 भवप्रीयं कृतुर्विजं आमिनाना  
 मर्तस्य देवी जरयन्त्यायुः ॥ १० ॥  
 ध्युर्ण्वती दियो अन्तां अश्रोधि  
 अप स्वसारं सनुतयुषोति ।  
 प्रमिनती भन्नुष्यां युगानि  
 योषां जारस्य चक्षेला वि भाति ॥ ११ ॥  
 पद्मं चित्रा सुमगां प्रयाना  
 सिन्धुनं क्षोदं उर्विया स्यभैव ।

अमिनती दैव्यानि व्रतानि  
 सूर्यस्य चेति रुद्रिमर्दिशाना ॥ १२ ॥  
 उपस्ताधिप्रमा मंगु-सम्यं वाजिनीयति ।  
 येन लोकं च तनयं च धामदे ॥ १३ ॥  
 उपो अवेह गोम-ल्यश्वावति विभाषरि ।  
 रेवदस्ते व्युच्छ सन्तुतायति ॥ १४ ॥  
 युस्या हि वाजिनीय-त्यर्धौ अघारुणौ उषः ।  
 अथा नो विश्वा सौमगाण्या वह ॥ १५ ॥  
 ॥ ५ ॥ (अ० १।१।३।१-२०)  
 कृत्स् आङ्गिरसः । १ (उत्तरार्धस्य) रामिध । शिष्टम् ।  
 इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात्  
 चित्रः प्रकृतेो अजनिष्ट विश्वा ।  
 यया प्रसूता सवितुः सुवार्यं  
 एवा राज्यपसे योनिमारैक् ॥ १ ॥  
 रुद्रावृत्ता रुद्राती भवेत्यागात्  
 आरंगु कृष्णा सदनान्यस्याः ।  
 समानवन्धू अमृते अनुची  
 चाया वर्णं चरत आमिनाने ॥ २ ॥  
 समानो अष्वा स्वस्मैरनन्तः  
 तमन्यान्वा चरतो देवर्दिष्टे ।  
 न मैधेते न तस्यतुः सुमेहे  
 नकोपासा समनसा समनला चिरुपे ॥ ३ ॥  
 भास्वती नेत्री सन्तुतानां  
 अर्चैति चित्रा वि दुरो न गायः ।  
 प्रार्प्या जगद्रूपं नो रायो अक्यत्  
 उपा अजीगर्भुयनानि विश्वा ॥ ४ ॥  
 जित्वायेकुं चरितये मघोनी  
 आमोगयं इष्टये राय उं त्वम् ।  
 दशं पदयद्रथ उर्विया विचक्षं  
 उपा अजीगर्भुयनानि विश्वा ॥ ५ ॥

अत्रायं त्वं भवसे त्वं महीया  
 इष्टये त्वमर्थमिव त्वमित्यै ।  
 विसदृशा जीविताभिप्रचक्ष  
 उपा अजीगर्भुर्वनानि विश्वा  
 ॥ ६ ॥  
 एषा द्विषो दुहिता प्रत्यदर्शि  
 व्युच्छन्ती युवतिः शुक्रयासाः ।  
 विश्वस्येशाना पार्थिवस्य चस्थ  
 उपो अघेह सुभगे व्युच्छ  
 ॥ ७ ॥  
 परायतानामन्वेति पार्थ  
 आयतीनां प्रथमा शश्वतीनाम् ।  
 व्युच्छन्ती जीवमुदीरयन्ति  
 उपा मृत कं चन योधयन्ती  
 उपो यदग्निं समिधे चकथं  
 वि यदावधक्षसा सूर्यस्य ।  
 यन्मानुषान् यस्यमाणौ अजीगः  
 तद् देवेषु चरुपे भद्रमन्त्रः  
 ॥ ९ ॥  
 कियत्या यत् समया मर्वाति  
 या व्युपुष्यां नूनं व्युच्छान् ।  
 अनु पूर्वाः रूपते वायशाना  
 मदीर्घ्याना जोषमन्यामिरेति  
 ॥ १० ॥  
 ईपुष्टे ये पूर्वतरामपदयन्  
 व्युच्छन्तीमुपसं मर्त्यसः ।  
 अस्माभिरु नु प्रतिचक्षामूत्  
 भो ते यन्ति ये अर्परीपु पश्यान्  
 ॥ ११ ॥  
 यावयद् देवा ऋतुपा ऋतेजाः  
 सुह्रायरी सुनृता ईर्यन्ती ।  
 सुमङ्गलीर्यन्ती देवर्षीति  
 इहाद्योप धेष्टतमा व्युच्छ  
 ॥ १२ ॥  
 नभ्वत् पूतोपा र्पुषास देवी  
 भर्गो अर्पदं व्यापो मृगोनी ।

अथो व्युच्छादुत्तरं अनु द्यु  
 अजराभृता चरति स्थधामिः ॥ १३ ॥  
 व्युच्छिभिर्दिव आतास्थद्यौत्  
 अपं कृष्णां निर्णिजं देव्यावः ।  
 प्रयोधयन्त्यरुणेमिरवैः  
 ओषा याति सुयुजा रथेन ॥ १४ ॥  
 आवहन्ती पोष्या वार्याणि  
 चित्रं केतुं कृणुते चैकिताना ।  
 ईयुपीणामुपमा शश्वतीनां  
 विभातीनां प्रथमोपा व्युच्चैत् ॥ १५ ॥  
 उदीर्चं जीवा असुर्न आगात्  
 ॥ ८ ॥  
 अप प्रागात् तम आ ज्योतिरेति ।  
 आरैक् पन्थां यातेवे सूर्याय  
 अगन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः ॥ १६ ॥  
 स्युमना वाच उदियति वहिः  
 स्तवानो रेभ उपसो विभातीः ।  
 अद्या तदुच्छ गृणते म्रघोनी  
 अस्मे आयुर्नि दिदीहि प्रजावत् ॥ १७ ॥  
 या गोमतीरुपसः सध्वीरा  
 व्युच्छन्ति द्वाशुपे मर्त्यस्य ।  
 वायोरीय सुनृतानामुदकं  
 ता अभवदा अभवत् सोमसुत्पा ॥ १८ ॥  
 माता देवानामर्दितेरनीकं  
 यज्ञस्य केतुर्गृह्णीति माहि ।  
 प्रशस्तिरुद् ग्रहणे नो व्युच्छा  
 नो जने जनय विश्वघारे ॥ १९ ॥  
 यश्चित्रमग्रे उपसो वहन्ति  
 ॥ १२ ॥  
 ईजानार्यं दाशमानार्यं मद्रम् ।  
 तयो मित्रो परणो मामहन्तां  
 भविषिः मित्रुः पृथिवी उत द्यौः ॥ २० ॥  
 (१४५५)

॥ ६ ॥ (अ० १।१२३।१-१३)

कसोवान देवतमय अशिव । त्रिदुष ।

पृथु रयो दक्षिणाया अयोजि  
ऐनं देवासो अमृतासो अस्युः ।

कृष्णादुदस्यादयोः विहायाः  
चिकित्सन्ती मार्त्तुपाय शर्पाय  
पूर्वा विभ्वस्माद् भुवनदयोषि  
जयन्ती वाजं बृहती सनुत्री ।

उच्चा व्यरयद् युधतिः पुनर्भूः  
भोपा अगम् प्रथमा पृथ्वी  
यद्य भागं विभजालि नृभ्यः  
उयो देवि मर्त्यत्रा सुजाते ।

देवो नो अन्नं सधिता दम्ना  
अनागसो योचति सूर्याय  
गृहं गृहमदना यात्यच्छा  
द्विषेद्विषे अधि नामा दधाना ।

सिपांसन्ती योतुना शश्वदागात्  
अग्रमग्रमिद् भजते वसूनाम्  
भगस्य स्वस्ता वरेणस्य जाभिः  
उपः सृष्टं प्रथमा जरस्व ।

पश्चा स दद्या यो अग्रस्य धाता  
जयेम तं दक्षिणाया रयेन  
उदीरतां सृष्टता उत् पुरन्धीः  
उदग्रयः शशुचानासो अस्युः ।

एषाहा वसन्ति तमसापगच्छन्  
आविष्कण्यन्त्युपसो विमातीः  
अपान्यदेत्यभ्युन्यदेति  
विपुरुषे अहनी सं चरेते ।

परिक्षितोस्तमो अग्न्या गुहाकः  
अयोः दुपाः शोशुचता रयेन  
सदशीर्य सदशीरिदु इवो  
वीर्यं संचन्ते वरेणस्य धाम ।

अनवद्यास्त्रिशतं योजनानि

एकैका क्रतुं परि यन्ति सद्यः

जानत्यहः प्रथमस्य नामं

शुक्रा कृष्णार्दजनिष्ठ दिवतीची ।

श्रुतस्य योपा न मिनाति धाम

अहर्हनिष्कृतमाचरन्ती

कन्येव तन्वाः शार्दादानां

परि देवि देवमियक्षमाणम् ।

संस्वर्यमाना युधतिः पुरस्तात्

आविर्भूनांसि कृणुपे विमाती

सुसंक्राता मातृमृष्टे योपा

आविस्तुर्न्य कृणुपे इवो कम् ।

भद्रा त्वमुपो धितरं व्युच्छ्र

न तत् ते अन्या उपसो नशन्त

अदवावतीगोमतीर्दिदवरा

यतमाना रुदिमभिः सूर्यस्य ।

परां च यन्ति पुनरा च यन्ति

भद्रा नाम वदमाना उपासः

श्रुतस्य रुदिममनुयच्छमाना

मद्रमद्रं क्रतुमस्मात् धेहि ।

उपो नो अद्य सुदद्या व्युच्छ्र

मस्मात् रायो मध्वस्तु च स्युः

उपा उच्छ्रन्ती समिधाने भद्रा

उद्यन्त्यस्य उर्विया ज्योतिरश्नेत् ।

देवो नो अन्नं सधिता न्वर्ये

प्रासावीद् द्विपत् प्र चतुष्पदित्यै

अमिनतां देवानि यतानि

प्रमिनती मनुष्या युगानि ।

ईयुषीणामुपमा शश्वतीनां

आयतीनां प्रथमोपा व्यघात्

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १० ॥

॥ ११ ॥

॥ १२ ॥

॥ १३ ॥

॥ ७ ॥ (अ० १।१२३।१-१३)

॥ २ ॥

एषा दिवो दुहिता प्रत्यर्दशि  
 ज्योतिर्वसाना समना पुरस्तात् ।  
 ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु  
 प्रजानतीषु न दिशो मिनाति  
 उपो अर्दशि शुन्ध्युवो न वक्षो  
 नोधा इवाविरुक्त प्रियाणि ।  
 अग्रसन्न संसृतो योधयन्ती  
 शश्वत्समागात् पुनरेयुषीणाम्  
 पूर्वे अर्धे रजसो अप्यस्य  
 गवां जनिष्यकृत प्र केतुम् ।  
 व्यु प्रयते धितरं वरीष आ  
 उभा पुणन्ती पित्रोरुपस्था  
 एवेवेपा पुरुतमा ह्यो कं  
 नाजामि न परि वृणक्ति जामिम् ।  
 अरेपसा तन्वाधु शाशवाना  
 नामादीपते न महो विमाती  
 अघ्रातेयं पुंस एति प्रतीची  
 गर्तावर्गिय सनये धनानाम् ।  
 जायेय पत्य उशती सुवासा  
 उपा हृद्येष नि रिणीते अजसः  
 स्वसा स्वद्ये ज्यायस्यै योनिमारैक  
 अपत्यस्याः प्रतिचक्ष्येय ।  
 व्युच्छन्ती रदिममि सूर्यस्य  
 अन्त्यर्द्धके समनगा इष माः  
 आसां पूर्वास्तामर्दसु स्वसृणां  
 अपरा पूर्वामभ्येति पश्चात् ।  
 ताः प्रतपन्नप्येसीर्निनमस्मे  
 रेपदुच्छन्तु सुदिना उपार्मः  
 ॥ योषयोषः पृणतो मघोनि  
 धर्दुष्यमाना एनयः सतन्तु ।

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

रेवदुच्छ मघयद्भयो मघोनि  
 रेवत् स्तोत्रे सूनते जारयन्ती ॥ १० ॥  
 अवेयमभ्वेद् युवतिः पुरस्ताद्  
 युङ्क्ते गवामश्णानामनीकम् ।  
 वि नूनमुच्छदसंति प्र केतुः  
 गृध्रगृध्रमुप तिष्ठाते अग्निः ॥ ११ ॥  
 उव ते वयश्चिद् घसतेरपत्न  
 नरश्च ये पितृभाजो व्युष्टौ ।  
 अमा सते वदसि भूरि वामं  
 उपो देवि दाशुने मर्त्याय ॥ १२ ॥  
 अस्तोर्द्वं स्तोम्या ब्रह्मणा मे  
 अवीष्टधध्वमुशतीरपासः ।  
 युष्माकं देवीरवसा सनेम  
 सहस्रिणं च क्षातिनं च वाजम् ॥ १३ ॥  
 ॥ ८ ॥ (अ० १।६।१-७)  
 णाधिनो विश्वामित्र । त्रिभुव् ।  
 उपो वाजेन वाजिनि प्रचेताः  
 स्तोमं जुपस्य गृणतो मघोनि ।  
 पुराणी दैवि युवतिः पुरंधि.  
 अतु मृतं चरसि विश्वधारे ॥ १४ ॥  
 उपो वेद्यमर्त्या वि माहि  
 चन्द्ररेधा सूनता ईरयन्ती ।  
 आ त्वां वदन्तु सुयमांसो अभ्या  
 हिरण्यवर्णा पृथुपाजसो ये ॥ १५ ॥  
 उर्यः प्रतीची भुवनानि विष्टा  
 ऊर्ध्वा तिष्ठस्यमृतस्य केतुः ।  
 समानमर्थं चरणीयमाना  
 चममिय नव्यस्या वधृत्सव ॥ १६ ॥  
 अथ स्यूमेय चिन्त्यती मघोनी  
 उपा याति स्वसंरस्य पदी ।  
 स्वर्जनन्ती सुमगा सुवस्र  
 आन्ताद् विष रंमघ आ पृथिव्याः ॥ १७ ॥  
 (१४८५)

अच्छा यो देवीमुपसं विमाती  
प्र वो भरष्वं नमसा सुवृकिम् ।  
ऊर्ध्वं मधुघा दिवि पाजो अश्वे  
प्र रौचना रुचवे रण्यसंहक्  
श्रुतावरी दिवो अर्कैरयोधि  
आ रेवती रोदसी चित्रमस्यात् ।  
आयतीमग्न उपसं विमाती  
ग्राममैपि द्रविणं भिक्षमाणः  
श्रुतस्य पुत्र उपसामिप्यन  
वृषा मही रोदसी आ विवेश ।  
मही मित्रस्य वरणस्य माया  
अग्नेयं मातुं वि दधे पुरुषा

॥ ९ ॥ ( ऋ० ८।५।१-११ )

वामदेवो गौतमः । त्रिष्टुप् ।

इवमु स्यत् पुरुतमं पुरस्तात्  
ज्योतिस्तमसो वयुनपिदस्यात् ।  
नूनं दिवो दुहितरो विमातीः  
गातुं कृणवधुपसो जनाय  
अस्त्युक् विभ्रा उपसः पुरस्तात्  
मिता इय स्वरयोऽप्यरेषु ।  
य्यं मजस्य तमसो द्राय  
उच्छन्तीरमम्युच्यैः पायकाः  
उच्छन्तीर्य दितयन्त भोजान्  
राधोदेयापोपसो मथोनीः ।  
अवित्रे अन्तः पण्यैः ससन्तु  
अयुभ्यमानास्तमसो विमथ्ये  
कुवित् स देवीः सुनयो नवो धा  
यामो वमुयादुपसो यो मय ।  
येता नयग्ये अङ्गिरे दशग्ये  
सतास्यै रेपती रेयद्रुप

युयं हि देवीर्ऋतयुग्मिभ्यः  
परिप्रयाथ मुर्वनाभि सयः ।  
प्रबोधयन्तीरयसः ससन्तं  
द्रिपाच्चतुंप्पाच्चरयाय जीवम्  
कं स्विदासां कतमा पुराणी  
यया विधानो विदधुर्ऋमुणाम् ।  
शुभं यच्छुभ्रा उपसश्चरन्ति  
न वि शायन्ते सदृशीरजुयाः  
ता धा ता मद्रा उपसः पुरासुः  
अभिष्टिष्ठन्ना श्रुतजातसत्याः ।  
यास्यैजानः शशमान उर्यैः  
स्तुयच्छंसन् द्रविणं मय आप  
ता आ चरन्ति समना पुरस्तात्  
समानतः समना पययानाः ।  
श्रुतस्य देवीः सर्वसो बुधाना  
गयां न सर्गो उपसो जरन्ते  
ता इन्वेदुष संमना संमानीः  
अर्मातयर्णा उपसश्चरन्ति ।  
गूहन्तीरभ्यमसितं रुशङ्गिः  
शुकास्तनूभिः शुच्यो रुचानाः  
रयि दिवो दुहितरो विमातीः  
प्रजावन्तं यच्छतास्मात् देवीः ।  
स्योनादा वः प्रतिशुष्यमानाः  
सृवीर्यस्य पतयः स्याम  
तद् वो दिवो दुहितरो विमातीः  
उपं ब्रुव उपसो ययकैतुः ।  
ययं स्याम यशसो जनैषु  
तद् यौषं प्रतां श्रयिषी च देवी

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १० ॥

॥ ११ ॥

॥ १० ॥ ( ऋ० ८।५।१-७ ) वायवी ।

प्रति प्या सुनरी जनी व्युच्छन्तो परि स्यसुः ।

दियो अदशि दुहिता ॥ १ ॥

(६५००)

अद्वैतं चित्रादपि माता गवाम्मतावरी ।

सखाभूदश्विनोऽरुवाः

॥ २ ॥

उत सखास्यश्विनोऽरुत माता गवामसि ।

उतोपो चस्व ईशिपे

॥ ३ ॥

याचयद् द्वैपसं त्या चिकित्वित् सुनुतावरि ।

प्रति स्तोमैरभुत्सहि

॥ ४ ॥

प्रति भद्रा अदक्षतु गवां सर्गा न रुद्रमयः ।

ओपा अग्रा उरु जयः

॥ ५ ॥

आपमुषीं विभावहि व्याज्योतिषा तमः ।

उयो अनु स्वधामव

॥ ६ ॥

आ यां तनोषि रुद्रिमभि रान्तारिक्षमुह प्रियम् ।

उयः शुक्रेण शोचिषा

॥ ७ ॥

॥ ११ ॥ ( ऋ० ५।७९।१-१० )

सत्यश्रवा आश्रये । पृक् कः ।

महे नो अद्य वोधयो-पो राये दिविरमती ।

यथा विशो अयोधयः सत्यश्रवसि वाच्ये

सुजाते अश्वसूनुते

॥ १ ॥

या सुनीधे शौचद्वये व्यौच्छो दुहितर्दिवः ।

सा व्युच्छ सदीपसि सत्यश्रवसि वाच्ये

सुजाते अश्वसूनुते

॥ २ ॥

सा नो अद्यामरदसु-व्युच्छा दुहितर्दिवः ।

यो व्यौच्छः सदीपसि सत्यश्रवसि वाच्ये

सुजाते अश्वसूनुते

॥ ३ ॥

अभि ये त्वां विभावहि स्तोमैर्गुणति पक्षयः ।

मर्धमैघोनि सुश्रियो दामन्वन्तः सुरातयः

सुजाते अश्वसूनुते

॥ ४ ॥

यच्चिजि तं गुणा इमे हृदयमि मघस्ये ।

परि त्रिद पश्यो दधु-ददतो राधो अहयं

सुजाते अश्वसूनुते

॥ ५ ॥

येषु धा दीरयद् यद्वा उपो मघोनि सुरिषु ।

ये नो राधास्यहया मघयांनो अरातत

सुजाते अश्वसूनुते

॥ ६ ॥

तेभ्यो सुसं बृहद् यश उपो मघोन्या बह ।

ये नो राधास्यहया गव्या भर्जन्त सुरयः

सुजाते अश्वसूनुते

॥ ७ ॥

उत नो गोमतीरिष आ बह्वा दुहितर्दिवः ।

साकं सूर्यस्य रुद्रिमभिः शुक्रैः शोचन्निर्धिमिः

सुजाते अश्वसूनुते

॥ ८ ॥

व्युच्छा दुहितर्दिवो मा चिरं तनुथा अपः ।

नेत् त्वां स्तोनें यथा रिपुं तपाति सूरौ अर्चिषा

सुजाते अश्वसूनुते

॥ ९ ॥

एतावद् वेदुपस्वभं भूयो वा दातुमर्हसि ।

या स्तोतृभ्यो विभावर्यु-च्छन्ती न प्रमीयते

सुजाते अश्वसूनुते

॥ १० ॥

॥ ११ ॥ ( ऋ० ५।८०।१-६ ) त्रिष्टुप् ।

सुतर्चामानं बृहतीमूतेन

सुतावरीमरुणसु विमतीम् ।

देवीमुपसं स्वरावहन्ती

प्रति विप्रासो मतिभिर्जरन्ते

॥ १ ॥

एषा जनं दर्शता वोधयन्ती

सुगान् पृथः कृण्वती यात्यग्रं ।

बृहद्रथा बृहती विद्वमिष्य

उपा ज्योतिर्यच्छत्यग्रे अहाम्

॥ २ ॥

एषा गोभिर्रुणेभिर्वृजाना

अर्धेधन्ती रुधिमप्रायु चक्रे ।

पृथो रदन्ती सुविताय देवी

पुरुषुता विद्ववारा वि माति

॥ ३ ॥

एषा व्येनी भवति द्विषर्हा

आविष्कृण्वाना तन्यं पुरस्तात् ।

श्रुतस्य पन्थामर्धेति साधु

मंजानतीषु न दिशो मिनाति

॥ ५ ॥

(६५९०)

एषा शुभ्रा न तन्वो विद्वाना  
ऊर्ध्वं स्नाती दशये नो अस्यात् ।

अप द्वेपो बाधमाना तमांसि  
उपा दिवो दुहित्वा ज्योतिषाणात्

॥ ५ ॥

एषा प्रतीचा दुहित्वा दिवो नन्  
योर्वेष भद्रा नि रिणीते अप्सः ।

ह्युप्वेती दाशुपे चार्याणि  
पुनज्योतिर्युवतिः पृथथाकः

॥ ६ ॥

॥ ६३ ॥ ( ऋ० ६।६५।१-६ )

भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । त्रिष्टुप् ।

उदु भ्रिय उपसो रोचमाना  
अस्युरपां नोर्मयो दशन्तः ।

कृणोति विष्वा सुपथा सुगानि  
अभूदु वस्वी दक्षिणा मघोर्नी

॥ १ ॥

भद्रा वृक्ष उर्विया वि भानि  
उत् तं शोचिर्मानधो धामपसन् ।

आविर्वक्षः कृणुपे शुभमाना  
उपो देवि रोचमाना महोमिः

॥ २ ॥

यद्वन्ति सीमरुणालो दशन्तो  
भायः सुभगासुर्विया प्रथानाम् ।

अवेजने दारो अस्तेव दशन्  
बाधते तमो अजिरो न योळ्ढा

॥ ३ ॥

सुगोत तं सुपथा पर्वतेषु  
अयाते अपस्तपसि स्वमानो ।

सा न आ वद पृथुयामन्नप्ये  
रुपि दिवो दुहितरिपयस्यै

॥ ४ ॥

सा यद योक्षमित्याता  
उपो यद वदसि जोपमनु ।

त्वं दिवो दुहितपां दृ देषी  
पूयद्वती मंदनां वशता भूः

॥ ५ ॥

उत् ते ययश्चिद् वसतेरपसन्  
नरश्च ये पितृमाजो व्युष्टौ ।

अमा सते वदसि मूर्ति वामं  
उपो देवि दाशुपे मर्त्याय

॥ ६ ॥

॥ ६४ ॥ ( ऋ० ६।६५।१-६ )

एषा स्या नो दुहित्वा दिवोजाः  
क्षितीरुच्छन्ता मानुपीरजागः ।

या मानुना दशता राम्यासु  
अजापि तिरस्तमसश्चिदपसन्

॥ १ ॥

वि तद् ययुररुणयुग्मिरद्वैः  
चित्रं मान्युपसक्ष्मद्रंथाः ।

अग्रं ययस्यं बृहतो नयन्तीः  
वि ता बाधन्ते तम ऊर्म्यायाः

॥ २ ॥

श्रवो बाजमिपमूर्त्तौ बहन्तीः  
नि दाशुपे उपसो मर्त्याय ।

मघोर्नीवीरवत् पत्यमाना  
अवो धात विघ्नते रत्नमघ

॥ ३ ॥

इदा हि वो विघ्नते रत्नमस्ति  
इदा वीराय दशपं उपासः ।

इदा विप्राय जते यदुक्था  
नि प्म भावते बहथा पुरा चित्

॥ ४ ॥

इदा हि तं उपो अद्रिसानो  
गोत्रा गवामर्द्धिरसो गुणान्ति ।

व्युक्तेण विमिदुर्द्राणा च  
सत्या नृणाममवद् देवर्द्धतिः

॥ ५ ॥

उच्छा दिवो दुहितः प्रत्नवज्रो  
भरद्वाजवद् विघ्नते मघोनि ।

सुवीरं रुपि वृणते रिरिदि  
उरुगायमधि वेदि अयो नः

॥ ६ ॥

॥ १५ ॥ ( अ० ७।५।१७ )

मैत्रावरुणिर्वाधेष्टः । त्रिष्टुप् ।

अद्यावत्तृगोमंतीर्न उपासो  
धीरपंतीः सर्वमुच्छन्तु भद्राः ।  
घृतं दुहाना विदधतः प्रपीता  
युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः

॥ १६ ॥ ( अ० ७।७।१-८ )

इयुषा आधो विविजा ऋतेन  
आविष्कृत्याना महिमानमागात् ।  
अप मृदुस्तम आयरजुष्टं  
अङ्गिरस्तमा पृथ्वा अजीगः  
महे नो अद्य सुविताय धोधि  
उषो महे सौमगाय प्र यन्धि ।  
चित्रं रुयि पृथसं धेह्यस्मे  
देहि मर्तेषु मानुषि भवस्युम्  
एते त्वे भानवो दर्शतायाः  
चित्रा उपसो अमृतास आगुः ।  
जनयन्तो दैव्यानि व्रतानि  
आपूणन्तो अन्तरिक्षा व्यस्थुः  
पृथा स्या युजाना पराकात्  
पञ्च क्षितीः परि सुधो जिगाति ।  
अभिपश्यन्ती वपुना जनानां  
दिवो दुहित्वा भुवनस्य पत्नी  
धाजिनीवती सूर्यस्य योषा  
चित्रामंघा राय ईशे वसूनाम् ।  
ऋषिपुता जरयन्ती मघोनि  
उपा उच्छति वह्निभिर्गुणाना  
प्रति घुतानामरुपासो अश्वः  
चित्रा अदध्रुपसं वहन्तः ।  
याति शुभ्रा विश्वपिशा रथेन  
वधाति रतै पिघते जनाय

सत्या सत्येर्ममंती महङ्गिः  
देवी देवोर्मियंता यज्ञैः ।  
रुजद् रुज्जहानि यदुदधियाणां  
प्रति गाय उपसं थापशम्

॥ ७ ॥

॥ ७ ॥

न नो गोमद् धीरयद् धेहि रत्नं  
उपो अश्वायत् पुरभोजो अस्मे ।  
मा नो धर्तिः पृथ्वता निरे कः  
युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः

॥ ८ ॥

॥ १७ ॥ ( अ० ७।७।१-७ )

॥ १ ॥

उदु ज्योतिरमृतं विश्वजन्यं  
विश्वानरः सयिता देवो अग्नेव ।  
कृत्वा देवानामजनिष्ट चक्षुः  
आधिरकुर्वन् विश्वमुपाः

॥ १ ॥

॥ २ ॥

प्र मे पृथ्वा देययाना अहध्न  
अमर्धन्तो वसुमिरिकृतासः ।  
अभ्रदु केतुरुपसः पुरस्तात्  
प्रतीच्यागादधि ह्यस्यैव्यः

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

तानीदहानि बहुलान्यासन्  
या प्राचीनमुदिता सूर्यस्य ।  
यतः परि जार इवाचरन्ती  
उषो दक्षे न पुनर्यतीव

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

त इद् देवानां सधमार्द आसन्  
ऋतावानः कचयः पृथ्वासः ।  
गुल्हं ज्योतिः पितरो अन्वविन्दन्  
सत्यमन्वा अजनयन्नुपासम्

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

समान ऊर्वे अधि संगतासः  
सं जानते न यतन्ते मिथस्ते ।  
ते देवानां न मिनन्ति व्रतानि  
अमर्धन्तो वसुमिर्योदमानाः

॥ ५ ॥

( ६५४८ )



प्रति त्वा स्तोमैरीच्छते वसिष्ठा  
उपबुधः सुभगे तुष्टुवांसः ।

गवां नेत्री चाजपक्षी न उच्छ  
उपः सुजाते प्रथमा जरस्व

॥ ६ ॥

एषा नेत्री राधसः सुनुतानां  
उपा उच्छन्ती रिभ्यते वसिष्ठः ।

दीर्घध्रुवै रयिमस्मे वधाना  
युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः

॥ ७ ॥

॥ १८ ॥ (ऋ० ७।७७।१-६)

उपो रुच्ये युषतिर्न योषा  
धिर्ब जीधं प्रसुवन्ती चरायै ।

अभूदग्निः समिधे मानुषाणां  
अकज्योतिर्यार्धमाना तमांसि

॥ १ ॥

विर्ब प्रतीची सप्रथा उदस्याद्  
रुशद् वासो धिर्ब्रती शुक्रमभ्वैत् ।

हिरण्यवर्णा सुदशीकसदृग्  
गवां माता नेत्र्यहामरोधि

॥ २ ॥

देवानां चक्षुः सुमगा बहन्ती  
भ्वैत नयन्ती सुदशीकमभ्वम् ।

उपा अदशि रुदिमभिर्व्येका  
चित्रामया धिभ्वननु प्रभूता

॥ ३ ॥

अन्तिवामा दुरे अमित्रमुच्छ  
उर्वा गव्यतिममये कृधी नः ।

यावय द्वेप आ मरा वसुनि  
चोदय राधो गृणते मघोनि

॥ ४ ॥

अस्मे श्रेष्ठमिमानुभिर्वि माहि  
उपो देवि प्रतिरन्ती न आयुः ।

रपै च नो दधती विभवादे  
गोमदभ्यायद् रथयश्च राधः

॥ ५ ॥

यां त्वा दिवो दुहितवर्धयन्ति  
उपः सुजाते मतिभिर्वसिष्ठाः ।

सास्मासु धा रयिमृषं बृहन्तं  
युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः

॥ ६ ॥

॥ १९ ॥ (ऋ० ७।७८।१-५)

प्रति केतवः प्रथमा अदथन्  
ऊर्वा अस्या अक्षयो वि ध्रयन्ते ।

उपो अर्वाचा बृहता रथेन  
ज्योतिर्भ्रता वाममस्यर्धं वक्षि

॥ १ ॥

प्रति पीमग्निर्जरते सामेदुः  
प्रति विर्मासो मतिभिर्गुणन्तः ।

उपा याति ज्योतिषा वार्धमाना  
विद्वद्वा तमांसि दुरिताप देवी

॥ २ ॥

एता उ त्वाः प्रत्यदथन् पुरस्ताद्  
ज्योतिर्यच्छन्तीरुपसो विमातीः ।

अजीजनन्त्युयै यक्षमाग्निं  
अपाचीनं तमो अगादजुष्टम्

॥ ३ ॥

अचैति द्विवो दुहिता मघोनी  
विद्वै पश्यन्त्युपसं विमातीम् ।

आस्याद् रथं स्वधया युज्यमानं  
आ यमदवांसः सुयुजो बहन्ति

॥ ४ ॥

प्रति त्वाद्य सुमनसो युषन्तु  
अस्माकांसो मघधानो वयं च ।

तिब्विलायध्वमयसो विमातीः  
युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः

॥ ५ ॥

॥ २० ॥ (ऋ० ७।७९।१-५)

व्युपा आंवः पथ्याः जनानां  
पञ्च क्षितीमानुपीयोधयन्ती ।

सुसंहरिमरुक्षमिमानुमधेद्  
धि स्यो रोदसी चक्षसावः

॥ १ ॥

व्यञ्जते दिवो अन्तेष्वस्तु  
विशो न युक्ता उपसौ यतन्ते ।  
सं ते गावस्तम आ वर्तयन्ति  
ज्योतिर्यच्छन्ति सवितेवं वाह

॥ २ ॥

अभूदुपा इन्द्रतमा मघोनि  
अजीजनत् सुविताय श्रवांसि ।  
यि दिवो देवी दुहिता दध्नाति  
अङ्गिरस्तमा सुकृते घवनि  
तावदुपो राधो अस्मभ्यं रास्य  
यावत् स्तोत्रभ्यो अरदो गृणाना ।  
यां त्वा जगृवृषभस्या स्वेण  
यि हृल्लहस्य दुरो अद्रेरौषोः

॥ ३ ॥

वेयं देवं राधंसे चोदयन्ति  
अस्मभ्यं सुवृता इर्यन्ती ।  
स्युच्छन्ती नः सुनये धियो धा  
यूयं पात स्युस्तिभिः सदा नः

॥ ४ ॥

॥ २१ ॥ ( अ० ७।८०।१-३ )

प्रति स्तोमैभिर्गुपसु वासैष्ठा  
गीर्मेर्दिप्रासः प्रथमा अंशुधन् ।  
विपुतयन्ती रजसी समन्ते  
आधिपत्युनी भुयंनानि विभ्यो

एषा ह्या नम्यमायुर्दधाना  
गृह्णा तमो ज्योतिर्याया अंशोधि ।  
ममं एति सुयनिरहपाणा  
प्रादियिषत्तु सूर्यं पुनर्ममिम्

अभ्यायतीगोमर्तानं उपासो  
दीर्घेतीः सदगुच्छन्तु भद्राः ।  
पुनं दुर्दाना विभन्तुः प्रपीत  
यूयं पात स्युस्तिभिः सदा नः

॥ २ ॥

॥ २१ ॥ ( अ० ७।८१।१-६ )

प्रगाथः = ( विषमा वृद्धी + समा षतोवृद्धी ) ।

प्रत्यु अदश्यायत्यु—च्छन्ती दुहिता दिवः ।

अपो माहि व्ययति चक्षंसे तमो

ज्योतिष्कृणोति सुनरी

॥ १ ॥

उदुक्षियाः सृजते सूर्यः सचां

उद्यन्नक्षत्रमर्चिवत् ।

तवेदुपो व्युपि सूर्यस्य च

सं भुक्तेन गमेमहि

॥ २ ॥

प्रति त्वा दुहितर्दिष उयो जीरा अभुत्समहि ।

या वहंसि पुर रुपाहं धनग्वति

रत्नं न दाशुपे मयः

॥ ३ ॥

उच्छन्ती या कृणोति मंहना महि

प्रयै देवि स्वर्हरे ।

तस्यास्ते रत्नभाज इमहे वयं

स्याम मातुर्न सुनयः

॥ ४ ॥

तयिषं राध आ भुजे—यो यद् दीर्घधुत्तमम् ।

यत् तं दिवो दुहितर्मतेभोजनं

तद् रास्य भुनजामहे

॥ ५ ॥

अयः सुरिभ्यो अमृतं वसुत्यनं

वाजो अस्मभ्यं गोमतः ।

चोदयित्री मघोनेः सुनृतायती

उपा उच्छदप क्षिपः

॥ ६ ॥

॥ २१ ॥ ( अ० ८।१०१।११ )

अमर्दिममिषं । एषा सूर्यप्रभा ॥ । वृहती ।

इयं या नीच्यकिणी रूपा रोहिण्या कृता ।

विज्रेष प्रत्यदश्यायत्यु—गर्दनाहं यादुप ॥ ११ ॥

॥ २ ॥

॥ २४ ॥ ( अ० १८।१०१।१-४ )

हंसं आहिरयः । शिषा विराट् ।

आ पाहि धनंसा राट

गार्यः सपयत्त वनेनि यमृधनिः

॥ १ ॥

॥ ३ ॥

(१०१)

आ याहि चर्या धिया  
महिष्ठो जारयन्मन्त्रः सुदानुमिः ॥ २ ॥  
पितृभृतो न तन्तुमित्  
सुदानवः प्रति दम्भो यजामसि ॥ ३ ॥  
उपा अप स्वसुस्तमः  
सं वर्तयति वर्तनि सुजातता ॥ ४ ॥

॥ २५ ॥ (चा० य० ११।४६)

संज्ञानमसि कामधरणीं मयि ते कामधरणं भूयात् ।  
अग्नेर्भस्मास्यग्नेः पुरीषमसि  
चितं स्य परिचितं ऊर्ध्वचितं श्रयश्चम् ॥ ४६ ॥  
॥ २६ ॥ (साम० ३०३, ७५१)

महिष्ठो मैत्रावरुणः । बृहती ।

प्रत्यु अदधर्पायत्यू३-च्छन्ती दुहिता दिवः ।

अपो मही वृणुते चक्षुषा तमो

ज्योतिष्कणोति स्नरी ॥ २०३ ॥

॥ २७ ॥ (अथर्व० १२।१२।१)

महिष्ठः । मिष्टुः ।

उपा अप स्वसुस्तमः  
सं वर्तयति वर्तनि सुजातता ।

अया याजं देवहितं स्नेमः

मदेम शतहिमाः सुवीर्याः ॥ १ ॥

उपा-सहचारी-देवगणः

(१) आदित्योपसः । (दुःष्वन्नप्रम्)

॥ २८ ॥ (ऋ० ८।४७।१४-१८)

त्रित आप्तः । महापुरुषः ।

यच्च गोपुं दुःष्वन्नं यच्च आस्मे दुहितर्दिवः ।

त्रिताय तद् विभावया प्याय परां यद्

अनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ १४ ॥

निष्कं वा वा कृण्वते अजं वा दुहितर्दिवः ।

त्रिते दुःष्वन्नं सर्वं माप्स्ये परि दधसि

अनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ १५ ॥

तदन्नाय तदपसे तं भागमुपसेदुये ।

त्रिताय च द्विताय चो-यो दुःष्वन्नं यद्

अनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ १६ ॥

यया क्लां यया शकं ययं ऋणं संनयामसि ।

एषा दुःष्वन्नं सर्वं माप्स्ये सं नयामसि

अनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ १७ ॥

अजं भायासनाम चा-भुमानागसो धयम् ।

उपो यसाद् दुःष्वन्त्या-दमैष्माप तदुच्छतु

अनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ १८ ॥

(२) उपासानका ।

॥ २९ ॥ (चा० य० २०।४१)

उपासानका बृहती बृहन्तं

पर्यस्वती सुनुये शरमिन्द्रम् ।

तन्तुं ततं पेदासा संवर्पन्ती

देवानां देवं यजतः सुदुस्मे ॥ ४१ ॥

॥ ३० ॥ (चा० य० २८।१४, ३७)

देवी उपासानकेन्द्रं यद्ये प्रयत्यहेताम् ।

देवीर्बिद्वा प्रापासिष्टा सुमीति

सुधिते वसुवर्ने वसुधेयस्य वीतां यजं ॥ १४ ॥

देवी उपासानका देवमिन्द्रं

वयोधसं देवी देवमवर्धताम् ।

अनुष्टुभा छन्दसेन्द्रियं वलमिन्द्रे वयो दधद्

वसुवर्ने वसुधेयस्य वीतां यजं ॥ ३७ ॥

(३१९१)

# ब्रह्मजाया

॥ १ ॥ ( अथर्व ५।१७।१-१८ )

मयोभूः । अमुष्टपः १-६ विष्टपः ।

तेऽवदन् प्रथमा ब्रह्मकिलिये  
अकूपारः सलिलो मातरिभ्यां ।  
धीदुर्हस्तप उग्रं मयोभूः  
आपो देवीः प्रथमजा भ्रुतस्य  
सोमो राजा प्रथमो ब्रह्मजायां  
पुनः प्रारब्धदृष्टणीयमानः ।  
अन्यतिता घर्षणो मित्र आसीत्  
अग्निहोता हस्तगृह्या निनाय  
हस्तैर्नैव ब्राह्म्यं बाधिरस्या  
ब्रह्मजायेति चेदयोचत् ।  
न दृतार्यं प्रदेयां तस्य पृषा  
तथा राष्ट्रं शुचितं क्षत्रियस्य  
यामाहुतार्वेया विदेशीति  
दुष्टदुतां धर्ममपघर्षमानाम् ।  
सा ब्रह्मजाया यि दुनोति राष्ट्रं  
यत्र आपादि शूरा उल्लुपीमान्  
ब्रह्मचारी चरति येष्विष्टिषः  
न देवानां मणयेष्वमङ्गम् ।  
तेन जायामर्ष्यविन्दुः बृहस्पतिः  
गोमन नीता जुष्टः न देवाः  
देवा वा एतस्यामयदन्त पूर्वे  
नाभ्रुपयस्तरपता ये निषेधः ।  
भीमा जाया ब्राह्मण्यपनीता  
१०० देवाति परमे देवोऽमर

ये गर्भा अवपद्यन्ते जगद्यज्ञां पलुप्यते ।  
वीरा ये तृह्यन्ते मिथो ब्रह्मजाया हि नस्ति तान् ॥ १ ॥  
उत यत् पतयो दश स्त्रियाः पूर्वे अग्राक्षणाः ।  
ब्रह्मा चेद्वस्तुमग्रहीत् स एव पतिरेकधा ॥ ८ ॥  
ब्राह्मण एव पतिर्न राजन्योऽपि न वैश्यः ।  
तत् सूर्यः प्रब्रुवन्नैति पञ्चभ्यो मानवेभ्यः ॥ ९ ॥  
पुनर्वै देवा अददुः पुनर्मनुष्याऽददुः ।  
राजानः सत्यं गृह्णाना ब्रह्मजायां पुनर्वदुः ॥ १० ॥  
पुनर्दायं ब्रह्मजायां कृत्वा देवैर्निकलियन्म ।  
ऊर्जे पृथिव्या अफ्योर्दगायमुपासते ॥ ११ ॥  
नास्य जाया शतघाही कल्याणी तत्पुमा शयि ।  
यस्मिन् राष्ट्रे निरुप्यते ब्रह्मजायाऽचित्या ॥ १२ ॥  
न विकर्णः पुथुर्दिरास्तस्मिन् वेदमनि जायते ।  
यस्मिन् राष्ट्रे निरुप्यते ब्रह्मजायाऽचित्या ॥ १३ ॥  
नास्य क्षत्रा निष्कर्मिणः क्षुनानामित्यप्रतः ।  
यस्मिन् राष्ट्रे निरुप्यते ब्रह्मजायाऽचित्या ॥ १४ ॥  
नास्य श्वेतः कृष्णवर्णो भुरि युक्तो मदीयते ।  
यस्मिन् राष्ट्रे निरुप्यते ब्रह्मजायाऽचित्या ॥ १५ ॥  
नास्य क्षेत्रे पुष्करिणी नाण्डीक जायते विसम् ।  
यस्मिन् राष्ट्रे निरुप्यते ब्रह्मजायाऽचित्या ॥ १६ ॥  
नास्मै पृथिवि वि बुद्धिः योऽस्या दोहमुपासीते ।  
यस्मिन् राष्ट्रे निरुप्यते ब्रह्मजायाऽचित्या ॥ १७ ॥  
नास्य धेनुः कल्याणी नान्द्रागसोदते पुरम् ।  
यिजानिर्वन्न ब्राह्मणो रात्रि यस्मिन् वाप्या ॥ १८ ॥

# विवाह-प्रकरणम्

॥ १ ॥ (अथर्व० १४।१-६४)

सूर्यां सवित्री । आत्मा; १-५ सोमः, ६ खविवाहः, २३ सोमार्च, २४ चन्द्रमाः, २५ सुगो विवाहमन्याशिषः; २५-२७ वधूवासः सस्पष्टमोचनम् । अनुष्टुप्; १४ विराट्प्रस्तारपञ्चकः; १५ आस्तारपञ्चकः; १९-२०, २३-२४, २१-२३, २७, ३९-४०, ४५, ४७, ४९-५०, ५३, ५६-५९, ६१ त्रिष्टुप् (२३, २१, ४५ वृहतीगर्मा); २१, ४६, ५४, ६८ जगती (५४, ६४ भुरिक् त्रिष्टुप्); २९, ५५ पुरस्ताद्वृहती; ३४ प्रस्तारपञ्चकः; ३८ पुरावृहती त्रिपदा परीणिक्; (४८ पञ्चापञ्चकः) ६० पराऽनुष्टुप् ।

सुत्येनोर्त्तमिता भूमिः सुयैणोर्त्तमिता यौः ।  
 ऋतेनादित्यास्तित्प्रन्ति द्विवि सोमो अधि क्षितः ॥१॥  
 सोमेनादित्या वलिनः सोमेन पृथिवी मही ।  
 अयो नक्षत्राणामेवामुपस्थे सोम आर्हितः ॥ २ ॥  
 सोमं मन्यते पप्रियान् यत् संप्रियन्त्योपधिम् ।  
 सोमं यं ब्रह्माणौ विदुर्न तस्याश्नाति पार्थिवः ॥३॥  
 यत् त्वां सोम प्रपिबन्ति तत्तु आ प्यायेत् पुनः ।  
 धातुः सोमस्य रक्षिता सर्मानां मासु आकृतिः ॥४॥  
 आच्छद्विधानैर्गुपितो यार्हैतैः सोम रक्षितः ।  
 प्राणामिच्छन्पवनं तैष्ठसि न तै अश्नाति पार्थिवः ५  
 चित्तिरा उपवर्हणं चक्षुरा अभ्यर्जनम् ।  
 धौर्भूमिः कोश आसीद् यदयात् सूर्या पतिम् ॥६॥  
 रैभ्यासीदनुदेयी नाराशंसी न्योचनी ।  
 सूर्यायां भद्रमिद् वासो गार्ग्येति परिष्कृता ॥७॥  
 सोमा आसन् प्रतिधर्यः कुरीरं छन्दं ओपशः ।  
 सूर्यायां अभिना वराग्निरासीत् पुरोग्वः ॥ ८ ॥

सोमो वधूयुरमवदभिनस्तामुभा वरा ।  
 सूर्या यत् पत्ये शंसन्तो मनसा सवितार्ददात् ॥९॥  
 मनो अस्या अन आसीद् यौर्त्तसीदुत छदिः ।  
 शुक्रार्पणं ह्रावास्तां यदयात् सूर्या पतिम् ॥ १० ॥  
 ऋक्ताभ्यामभ्यामिदितौ गार्ग्यौ ते सामनायैताम् ।  
 ओत्रे ते चक्रे आस्तां दिवि पन्थाश्चराचरः ॥११॥  
 शुचीं ते चक्रे यात्या श्यानो अह्न आर्हतः ।  
 अनो मनस्वर्य सूर्यारोहत् प्रयती पतिम् ॥१२॥  
 सूर्यायां बहत्तुः प्रागात् सविता यमवास्तज्जद ।  
 म्यास्तु ह्यन्यन्ते गावः फल्गुनीषु व्युद्यते ॥ १३ ॥  
 यदभिना पृच्छमानावयातं  
 त्रिचक्रेण बहत्तुं सूर्यायाः ।  
 क्यैकं चक्रं धामासीत् क्वदेष्टार्य तस्यधुः ॥ १४ ॥  
 यदयात् शुमरूपती वर्यं सूर्यामुप ।  
 विश्वं देवा अनु तद् धामजानन्  
 पुत्रः पितरं वृणीत पुत्रा ॥ १५ ॥  
 दे तै चक्रे सूर्ये ब्रह्माणे ऋतुधा विदुः ।  
 अयैकं चक्रं यद् गुहा तदद्भुतय इद् विदुः ॥१६॥  
 अयमर्ण यजामहे सुवन्धुं पतिषेदनेम् ।  
 उर्वारकर्मिन् वर्धनात् प्रेतो मुञ्जामि नामुतः ॥१७॥  
 प्रेतो मुञ्जामि नामुतः सुवद्भामुवर्त्करम् ।  
 ययेयामैन्द्र मीढवः सुपुत्रा सुमगांसति ॥ १८ ॥  
 प्र त्वां मुञ्जामि वर्धणस्य पाशाद्  
 येन त्वावध्नात् सविता सुवोधाः ।  
 ऋतस्य योनौ सुहृत्स्य लोके  
 स्योनं तं अस्तु सदसंमलायै ॥ १९ ॥

(६६९०)

# ब्रह्मजाया

॥ १ ॥ ( अथर्व० ५।१७।१-१८ )

मयोभूः । अतुष्टपुः । १-१ त्रिष्टुप् ।

तेऽवदन् प्रथमा ब्रह्माकिलिये  
अकूपारः सलिलो मातृरिभवा ।  
धीदुहृदास्तप उग्रं मयोभूः  
आपो देवीः प्रथमजा भूतस्य  
सोमो राजा प्रथमो ब्रह्मजायां  
पुनः प्रार्यच्छुद्धणीयमानः ।  
अन्यर्तिता यरणो मित्र आसीत्  
अग्निहोता हस्तगृष्टा निनाय  
हस्तैर्नैव ग्राह्य आधिरस्या  
ब्रह्मजायेति चेदयोचत् ।  
न कृतार्यं प्रदेयां तस्य एषा  
तथा राष्ट्रे गुपितं क्षत्रियस्य  
यामाहुतारकपा विदेशीति  
दुष्कृतानां प्रार्थम्यपारमानाम् ।  
स्तु ब्रह्मजाया यि दुर्नोति राष्ट्रे  
यत्र प्रापादि शत्रा उद्वुषीमान्  
प्रह्लाचारी ररति येषिपक्षिषुः  
र देवानां भयपेक्षमर्हम् ।  
नेन जायामर्ग्यपिन्नुद् वृहस्पतिः  
गोमैन नीतां जुष्टं न देवाः  
देवा वा एतस्यामपदम् भूयै  
गात्रापयस्नपत्वा ये निषेदुः ।  
भीमा जाया ब्राह्मणस्यापनीता  
१।०।० धन्वति परमे ष्योमन्

॥ १ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

ये गर्भो अवपद्यन्ते जगद्यच्चापलुप्यते ।  
धीरा ये तृक्षन्ते मिथो ब्रह्मजाया हिंनस्ति तान् ॥७॥  
उत यत् पतयो दश स्त्रियाः पूर्वे अग्राहणाः ।  
ब्रह्मा चेदस्तमग्रेहीत् स एव पतिरेकृषा ॥८॥  
ब्राह्मण एव पतिर्न राजन्योऽपि न वैश्यः ।  
तत् सूर्यः प्रभुवर्त्तेति पञ्चभ्यो मानयेभ्यः ॥९॥  
पुनर्धे देवा अददुः पुनर्मनुष्या अददुः ।  
राजानः सत्यं गृह्णाना ब्रह्मजायां पुनर्वदुः ॥१०॥  
पुनर्दाय ब्रह्मजायां कृत्वा देवैर्नैकिलियम् ।  
ऊर्जे पृथिव्या भस्वोर्दगायमुपासते ॥११॥  
नास्य जाया शतपाही कल्प्याणी तत्पुमा शये ।  
यस्मिन् राष्ट्रे निरुप्यते ब्रह्मजायाऽचित्वा ॥१२॥  
न विकर्णः पृथुर्दिरास्तस्मिन् वेदमनि जायते ।  
यस्मिन् राष्ट्रे निरुप्यते ब्रह्मजायाऽचित्वा ॥१३॥  
नास्य क्षत्रा निष्कर्षीयः सुनानमित्यप्रतः ।  
यस्मिन् राष्ट्रे निरुप्यते ब्रह्मजायाऽचित्वा ॥१४॥  
नास्य श्वेतः कृष्णकर्णो धुरि युक्तो मदीयते ।  
यस्मिन् राष्ट्रे निरुप्यते ब्रह्मजायाऽचित्वा ॥१५॥  
नास्य श्वेते पुष्करिणी नाण्डीकं जायते बित्तम् ।  
यस्मिन् राष्ट्रे निरुप्यते ब्रह्मजायाऽचित्वा ॥१६॥  
नास्मै पृथिवि युदन्ति येऽस्या दोहमुपासते ।  
यस्मिन् राष्ट्रे निरुप्यते ब्रह्मजायाऽचित्वा ॥१७॥  
नास्य धेनुः कल्प्याणी नानुङ्गायतहते पुरम् ।  
विजानिषन्त्रं ब्राह्मणो रात्रि यन्ति पापमा ॥१८॥

शं ते हिरण्यं शम्भुं सन्त्वापः  
 शं मेधिमैवतु शं युगस्य तर्षा ।  
 शं त आर्पः शनर्पवित्रा भवन्तु  
 शम्भु पत्यां तन्वं । सं स्पृशस्व ॥ ४० ॥  
 खे रयस्य खेऽनसः खे युगस्य शतक्रनो ।  
 अपालामिन्द्र त्रिपुत्वारुणोः सूर्यत्वचम् ॥ ४१ ॥  
 आशासना सौमनसं प्रजां सौभाग्यं रयिम् ।  
 पत्युरनुव्रता भुग्या सं नक्षत्रानृताय कम् ॥ ४२ ॥  
 यया सिन्धुर्नदीनां साम्राज्यं सुपुत्रे वृषा ।  
 पया त्वं स्रष्टार्यैधि पत्युरस्तं प्रेत्य ॥ ४३ ॥  
 स्रष्टार्यैधि द्वदारेषु स्रष्टार्युत देवेषु ।  
 ननान्दुः स्रष्टार्यैधि स्रष्टार्युत श्वद्व्याः ॥ ४४ ॥  
 या अरुन्तुभवयन् याश्च तस्मिन्ने  
 या देवीरुतां अभितोऽद्वन्त ।  
 तास्त्यां जुरसे सं व्ययन्तु  
 आयुष्मतीदं परि धत्स्व वासः ॥ ४५ ॥  
 जीयं कन्दन्ति वि नयन्त्यध्वरं  
 दीर्घामनु प्रसिन्ति दीर्घ्युर्नरः ।  
 धामं पिबन्त्यो य इदं संमीरिरे  
 मयः पतिभ्यो जनये परिष्वजं ॥ ४६ ॥  
 स्योनं ध्रुवं प्रजायै धारयामि  
 तेऽश्मानं देव्याः पृथिव्या उपर्यै ।  
 तमा तिष्ठानुभायां सुवर्चा  
 दीर्घं त आयुः सविता रुणोतु ॥ ४७ ॥  
 येनाग्निस्स्या भूम्या हस्तं जग्राह दक्षिणम् ।  
 तेन गृहामि ते हस्तं मा व्यधिष्टा  
 मया सह प्रजयां च धनेन च ॥ ४८ ॥  
 देवस्ते सविता हस्तं गृह्णातु  
 सोमो राजा सुप्रजसं रुणोतु ।  
 अग्निः सुमर्गा ज्ञातवेदाः  
 पत्ये पत्नीं जुरदधिं रुणोतु ॥ ४९ ॥

गृहामि ते सौमगत्वाय हस्तं  
 मया पत्यां जुरदधिर्यथासः ।  
 भर्गो अर्यमा सविता पुरधिः  
 मह्यं त्वादुर्गाहपत्याय देवाः ॥ ५० ॥  
 मगस्ते हस्तमग्रहीत् सविता हस्तमग्रहीत् ।  
 पत्नी त्वमसि धर्मेणाहं गृहपतिस्तव्यं ॥ ५१ ॥  
 ममेयमस्तु पोष्या मह्यं त्वादाद् बृहस्पतिः ।  
 मया पत्यां प्रजावति सं जीवं शरदः शतम् ॥ ५२ ॥  
 त्वष्टा वासो व्युदघाच्छुभे कं  
 बृहस्पतेः प्रशिषां कवीनाम् ।  
 तेनेमां नार्यं सविता मगश्च  
 सूर्यामिव परि धत्तां प्रजयां ॥ ५३ ॥  
 इन्द्राग्नी चाचापृथिवी मातरिभ्यो  
 मित्रावरुणा भर्गो अग्निर्नोमा ।  
 बृहस्पतिर्मन्तो ब्रह्म सोम  
 इमां नार्यं प्रजयां वर्धयन्तु ॥ ५४ ॥  
 बृहस्पतिः प्रथमः सूर्यायाः  
 शीर्ये केशोऽकल्पयत् ।  
 तेनेमामग्निना नार्यं पत्ये सं शौमयामसि ॥ ५५ ॥  
 इदं तद् रूपं यदयस्तु योषां  
 जायां जिह्वासे मनसा चरन्तीम् ।  
 तामन्वतिष्ठे सखिमिनेवध्वैः  
 क इमान् विद्वान् वि चर्चते पाशान् ॥ ५६ ॥  
 बहं वि प्यामि मर्ये रूपमस्या  
 वेददित् पश्यन् मनसः कुलार्यम् ।  
 न स्तेर्यमग्निं मनसोर्दमुच्ये  
 स्वयं ग्रन्थानो वर्धस्य पाशान् ॥ ५७ ॥  
 प्र त्वां मुञ्चामि वर्धस्य पाशाद्  
 येन त्वावग्रात् सविता सुशोयाः ।  
 उदं लोकं सुगमम् पत्न्यां  
 रुणोमि तुभ्यं सहपत्यै वधु ॥ ५८ ॥

भगस्त्वेतो नयतु हस्तगृह्य  
अभिना त्वा प्र वदतां रथेन ।

गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासौ  
वशिनी त्वं विदधमा वदासि

॥ २० ॥

इह प्रियं प्रजायै ते समृध्यतां  
अस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि ।

एना पत्या तन्वं सं स्पृशस्व  
अथ जिर्विदधमा वदासि

॥ २१ ॥

इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुष्यं श्रुतम् ।

क्रीडन्तौ पुत्रैर्नमृभिर्मोदमानौ स्वस्तकौ

॥ २२ ॥

पूर्वापरं चरतो माययैतौ

शिशु क्रीडन्तौ परि यातोऽर्णवम् ।

विश्वान्यो भुयना विचष्ट

ऋतूरन्यो विदधज्जायसे नवः

॥ २३ ॥

नवोनवो भवसि जायमानो

अह्नां केतुरूपसामेध्यप्रम् ।

भागं वेवेभ्यो वि वधास्यायन्

प्र चन्द्रमास्तिरसे दीर्घमायुः

॥ २४ ॥

परां वेदि शामुख्यं ब्रह्मभ्यो वि भञ्जा वष्टु ।

कृत्यैवा पदती भूत्या जाया विशते पतिम् ॥ २५ ॥

नीललोहितं भवति कृत्यासक्तिर्व्यज्यते ।

एधन्ते अस्या ज्ञातयः पतिर्वन्धेषु वध्यते ॥ २६ ॥

अदलीला तनूभैवति रुशंती पापयामुया ।

पतिर्यद् वधो वासंसुः स्वमङ्गमभ्युपैते ॥ २७ ॥

आशसनं विशसनमर्थो अधिविकर्तनम् ।

सूर्यायाः पदय रूपाणि तानि ब्रह्मोत शुम्भति ॥ २८ ॥

तृष्टमेतत् फट्टकमपाष्टवद् विपद्यैतदसवे ।

सूर्यो यो ब्रह्मा घेद् स इद् बाधूयमर्हति ॥ २९ ॥

स इत् तत् स्योनं हरति प्रह्मा पासाः समुद्रलेम् ।

प्रायश्चित्ति यो अध्येति येन जाया न रिप्यति ३०

पुषं भगं सं भरतं समृद्धमृतं वदन्तायुतोऽपि ।

प्रह्मणस्पते पतिमस्यै रौचय

चारुं समूलो वदतु वार्चमेताम् ॥ ३१ ॥

इहेदसाय न पुरो रमाथ

इमं गांधः प्रजयां वधयाथ ।

शुभं यतीरुचियाः सोमवर्चलो

विश्वे देवाः क्रष्टिह यो मनीसि ॥ ३२ ॥

इमं गांधः प्रजया सं विशाय

अयं देवानां न मिनाति भागम् ।

अस्मै वः पूषा मरुतश्च सर्वे

अस्मै वो धाता संविता सुवाति ॥ ३३ ॥

अनृक्षरा ऋजवः सन्तु पन्थानो

येभिः सखायो यन्ति नो वरेयम् ।

सं भगेन समर्थमणा सं धाता सृजतु वर्षसा ॥ ३४ ॥

यच्च वर्चो अक्षेपु सुरायां च यदाहितम् ।

यद् गोष्विधना वर्चस्तेनेमां वर्चसावतम् ॥ ३५ ॥

येन महानृच्या जघनमश्विना येन वा सुरा ।

येनाक्षा अभ्यविच्यन्त तेनेमां वर्चसावतम् ॥ ३६ ॥

यो अग्निभ्यो दीदयदप्स्यंस्तः

यं यिप्रांस ईडेते अध्वरेषु ।

अपां नपान्मधुमतीरपो दा

यामिरिन्द्रो वावुधे धीर्यावाच ॥ ३७ ॥

इदमहं रुशन्तं ग्रामं तनूद्विमर्षोहामि ।

यो भद्रो रौचनस्तमुदचाभि ॥ ३८ ॥

आस्यै ब्राह्मणाः रूपनीहरन्तु

अवीरघ्नीरुदंजन्त्यापः ।

अर्थम्यो अग्निं पर्येतु पूयन्

प्रतीक्षन्ते श्वशुरां देवरश्च

॥ ३९ ॥

(६६७)



शं ते हिरण्यं शम्भुं सुनवापः  
 शं मेधिमैवतु शं युगस्य तर्षं ।  
 शं त आर्षः शतपवित्रा भवन्तु  
 शम्भु पत्या तन्वः सं स्पृशस्व ॥ ४० ॥  
 मे रथस्य मेऽर्नसः मे युगस्य शतकनो ।  
 अपालामिन्द्र त्रिपुत्वारुणोः सूर्यत्वचम् ॥ ४१ ॥  
 आशासाना सौमनसं प्रजां सौमन्यं रयिम् ।  
 पत्युरुव्रता मृत्या सं नशस्यानुताय कम् ॥ ४२ ॥  
 यथा सिन्धुर्नदीनां साम्राज्यं सुपुत्रे वृषा ।  
 एषा त्वं सम्राज्येधि पत्युरस्तं प्रेत्यं ॥ ४३ ॥  
 सम्राज्येधि द्यशुरेषु सम्राश्युत देवपुं ।  
 ननान्दुः सम्राज्येधि सम्राश्युत श्वदन्त्याः ॥ ४४ ॥  
 या अहन्ततन्धयन् याञ्च तनितरे  
 या देवीरन्तां अभितोऽर्दन्त ।  
 यास्त्यां जरले सं व्ययन्तु  
 आयुष्मतीर्षं परि धत्स्व वासः ॥ ४५ ॥  
 जीवं वदन्ति वि नयन्त्यध्वरं  
 दीर्घामनु प्रसिंति दीप्युर्नरः ।  
 यामं पिबन्त्यो य इदं संमीरिते  
 मयः पतिभ्यो जनये परिपञ्जं ॥ ४६ ॥  
 स्योनं ध्रुवं प्रजायं चारयामि  
 तेऽदमानं देव्याः पृथिव्या उपस्थे ।  
 तमा तिष्ठानुमाद्या सुवर्चो  
 दीर्घं त आयुः सयिता रुणोतु ॥ ४७ ॥  
 येनाग्निरस्या मय्या हस्तं जयाद् दक्षिणम् ।  
 तेन गृहामि ते हस्तं मा व्यथिष्ठा  
 मया सह प्रजयां च धनैर्न च ॥ ४८ ॥  
 देवस्ते सयिता हस्तं गृहातु  
 सोमो राजा सुप्रजसं रुणोतु ।  
 अग्निः सुमगां जानयेद्वाः  
 पत्ये पत्नीं जरदृष्टि रुणोतु ॥ ४९ ॥

गृहामि ते सौमगन्वाय हस्तं  
 मया पत्यां जरदृष्टिर्यथासः ।  
 भगौ अयमा सयिता पुरंधिः  
 मह्यं त्वादुर्गाहपत्याय देवाः ॥ ५० ॥  
 भगस्ते हस्तमग्रहीतु सयिता हस्तमग्रहीतु ।  
 पत्नी त्वमांसि धर्मेणाहं गृहपतिस्तथं ॥ ५१ ॥  
 ममेयमस्तु पोष्या मह्यं त्वाद्वाद् बृहस्पतिः ।  
 मया पत्यां प्रजायति सं जीय शरदः शतम् ॥ ५२ ॥  
 त्वष्टा बासो व्यदघाचुमे कं  
 बृहस्पतेः प्रशिषां कवीनाम् ।  
 तेनेमां नार्यं सयिता भगश्च  
 सूर्यामिव परि धत्तां प्रजयां ॥ ५३ ॥  
 इन्द्राग्नी धावापृथिवी मातरिभ्यो  
 मित्रावरुणा भगौ भविन्नोमा ।  
 बृहस्पतिर्मरुतो ब्रह्म सोमं  
 इमां नार्यं प्रजयां धर्धयन्तु ॥ ५४ ॥  
 बृहस्पतिः प्रथमः सूर्यायाः  
 शीर्षं केशो अकल्पयत् ।  
 तेनेमामग्निना नार्यं पत्ये सं शौमयामसि ॥ ५५ ॥  
 इदं तद् रूपं यदचस्तु योषां  
 ज्ञायां जिज्ञासे मनसा चरन्तीम् ।  
 तामन्वर्तिष्ये सयिमिनैधम्यैः  
 क इमान् निष्ठान् वि चञ्चते पाशान् ॥ ५६ ॥  
 अहं वि ध्यामि मार्यं रूपमस्या  
 वेददित् पदयन् मनसः कुलायम् ।  
 न स्तेर्यमासि मनसोर्दमुच्ये  
 स्वयं ध्रेयानो वरुणस्य पाशान् ॥ ५७ ॥  
 प्र त्वां मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद्  
 येन त्वाध्मात् सयिता सुशोयाः ।  
 उरं लोकं सुगमप्र पन्यां  
 रुणोमि तुम्यं सहयत्यं यधु ॥ ५८ ॥

उद्यच्छध्वमप रक्षो हनाथ  
 इमां नारीं सुकृते दधात ।  
 धाता विपश्चित् पतिमस्यै विधेद  
 भगो राजा पुर पंतु प्रजानन् ॥ ५९ ॥  
 भगस्ततश्च चतुरः पादान्  
 भगस्ततश्च चत्वार्युपलानि ।  
 त्वष्टा पिपेश मध्यतोऽनु वर्धान्  
 सा नो अस्तु सुमङ्गली ॥ ६० ॥  
 सुकिंशुकं बहुतुं विभ्वरूपं  
 हिरण्यवर्णं सुवृत्तं सुचक्रम् ।  
 आ रोह सूर्ये अमृतस्य लोकं  
 स्योनं पतिभ्यो बहुतुं कृणु त्वम् ॥ ६१ ॥  
 अम्रातुर्मी वरुणापशुमी बृहस्पते ।  
 इन्द्रापतिर्मी पुत्रिणीमात्मभ्यं सवितर्वह ॥ ६२ ॥  
 मा हिंसिष्टं कुमायै, स्थणे देवकृते पायि ।  
 शालाया देव्या द्वारं स्योनं कृणो वधूपथम् ॥ ६३ ॥  
 ब्रह्मापरं युज्यतां ब्रह्म पूर्वं  
 ब्रह्मान्ततो मध्यतो ब्रह्म सर्वतः ।  
 अनाव्याधां देवपुरां प्रपद्य  
 शिवा स्योना पतिलोके वि राज ॥ ६४ ॥

॥ २ ॥ ( अथर्व० १४।१।१-७५ )

आत्मा, १० यक्षमनाशनी, ११ दम्पत्योः परिपन्थिनाशनी, २६ देवाः । अनुष्टुप् । ५-६, १२, ३१, ३७, ३९-४० जगती ( ३७, ३९ मुरिक् शिष्टम् ) ; ९ त्र्यवधाना वटपदा विराड्छाष्टिः ; १३-१४, १७-१९, ३४, ३६, ३८, ४१-४२, ४९, ६१, ७०, ७४-७५ त्रिष्टुप् ; १५, ५१ मुरिक् ; २० पुरस्ताद्बृहती ; १३, २४-२५, ३२-३३ पुरोबृहती ( २६ त्रिपदा विराट्नाम गायत्रीः ) ; ३३ विराड्छाष्ट्यपञ्चिकः, ३५ पुरोबृहती त्रिष्टुप् ; ४३ त्रिष्टुङ्गमो पञ्चिकः ; ४४ प्रस्तरपञ्चिकः ; ४७ पथ्याबृहती ; ४८ छतः पञ्चिकः ; ५० उपरिष्टाद्बृहती निष्टुप् ; ५२ विराट् पुर त्रिष्टुप् ; ५९-६०, ६२ पथ्यापञ्चिकः ; ६८ पुर त्रिष्टुप् ; ६९ त्र्यवधाना वटपदाऽतिछाष्टी, ७१ बृहती ।

तुभ्यमग्ने पर्यषदन्सूर्यां यद्वतुना सह ।

म नः पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह ॥ १ ॥

पुनः पत्नीमग्निरेवादायुपा सह पचैसा ।  
 दीर्घायुरस्या यः पतिर्जीयाति शरदः शतम् ॥ २ ॥  
 सोमस्य जाया प्रथमं गन्धर्वस्तेऽपरः पतिः ।  
 तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ॥ ३ ॥  
 सोमो ददद् गन्धर्वाय गन्धर्वो ददद्भयै ।  
 रयिं च पुत्रांश्चादाद्भिर्मह्यमयो इमाम् ॥ ४ ॥  
 आ वामगन्धुमतिर्वाजिनीयसु  
 न्युभिवना हस्तु कामा अरस्त ।  
 अभूतं गोपा मियुना शुभस्पती  
 प्रिया अर्यग्णो दुयौ अशामहि ॥ ५ ॥  
 सा मन्दसाना मनसा शिवेन  
 रयिं धेहि सर्ववीरं वचस्वम् ।  
 सुगं तीर्थं सुप्रपाणं शुभस्पती  
 स्थाणुं पथिग्रामपं दुर्मतिं हतम् ॥ ६ ॥  
 या ओपधयो या नयोऽयानि क्षेत्राणि या वना ।  
 तास्त्वा वधु प्रजावर्ती पत्ये रक्षन्तु रक्षतः ॥ ७ ॥  
 पमं पथ्यामवक्षाम सुगं स्वस्तिवाहनम् ।  
 यस्मिन् वीरो न रिच्यत्यन्येषां विन्दते वधु ॥ ८ ॥

इदं सु मे नरः शृणुत

ययाशिषा दंपती धाममक्षुतः ।

ये गन्धर्वा अस्तुरस्तश्च देवीः

पृथु वानस्पत्येपु येऽपि तस्थुः ।

स्योनास्ते अस्यै वध्वै भवन्तु

मा हिंसिषुर्वहतुमुह्यमानम् ॥ ९ ॥

ये वध्वश्चन्द्रं बहुतुं यक्षमा यन्ति जनां भुव ।

पुनस्तान् यक्षिया देवा नयन्तु यत् आगताः ॥ १० ॥

मा विदन् परिपन्थिनो य आनीदन्ति दंपती ।

सुगेनं दुर्गमतीतामपं द्रान्त्वरतायः ॥ ११ ॥

सं काशयामि बहुतुं ब्रह्मणा गृहीः

अघोरिणं चक्षुषा मित्रियेण ।

पर्याणदं विभ्वरूपं यदस्ति

स्योनं पतिभ्यः सविता तत् एणोतु ॥ १२ ॥

( ६९८७ )

शिवा नारीयमस्तमान्  
इमं धाता लोकमस्यै दिदेश ।  
तामर्यमा मगो अभिनोमा  
प्रजापतिः प्रजया वर्धयन्तु ॥ १३ ॥  
आत्मन्वत्युर्वरा नारीयमागन्  
तस्यां नरो वपत् धाजमस्याम् ।  
सा वः प्रजां जनयद् वक्षणाभ्यो  
विभ्रती दुग्धमृगमस्य रेतः ॥ १४ ॥  
प्रति तिष्ठ विराडसि विष्णुरिषेह संरस्वति ।  
सिनीवाल्लि म जायतां भगस्य सुमतावसत् ॥ १५ ॥  
उद् वं जुमिः शम्भो हन्वापो योनत्राणि मुञ्चत ।  
माहुष्कृतौ ध्ये नसावृज्यावर्शुनमारताम् ॥ १६ ॥  
अर्धोत्तक्षुरपतिम्री स्योना  
शम्भो सुशोवा सुयमा गृहेभ्यः ।  
वीरसुदेयकांमा सं त्वया  
पथिपीमहि सुमनस्यमाना ॥ १७ ॥  
अर्धवृज्यपतिघ्नीहैधि  
शिवा पशुभ्यः सुयमा सुवर्षाः ।  
प्रजावर्ती वीरसुदेयकांमा  
स्योनेममग्नि गाहपत्यं सपर्य ॥ १८ ॥  
उत् तिष्ठेतः किमिच्छन्तीदमार्गा  
अहं त्वेडे अभिभूः स्वाद् गृहात् ।  
शून्यैपी निरुते याजगन्धा  
उत्तिष्ठारते प्र पत मेह रसाः ॥ १९ ॥  
यदा गाहपत्यमसपर्यत् पूर्वमग्नि वधूरियम् ।  
अथा संरस्वत्यै नारि पितृम्यक्ष नमस्कुरु ॥ २० ॥  
शर्म धर्मतदा हेपुस्यै नार्या उपस्तरै ।  
सिनीवाल्लि म जायतां भगस्य सुमतावसत् ॥ २१ ॥  
यं वल्यजं न्यस्यय चर्म चोपस्त्रणीधनं ।  
तदा रोहत् सुप्रजा या कन्या विन्वते पतिम् ॥ २२ ॥

उप स्तृणीहि वल्यजमधि चर्मणि रोहिते ।  
तत्रोपविश्य सुप्रजा इममग्निं सपर्यतु ॥ २३ ॥  
आ रोह चर्मोपं सीताग्निं  
एव देवो हन्ति रक्षांसि सर्वा ।  
इह प्रजां जनय पत्यै अस्मै  
संज्यैष्ठ्यो भवत् पुत्रस्त एवः ॥ २४ ॥  
वि निष्ठन्तां मातुरस्या उपस्थात्  
नानारूपाः पशवो जायमानाः ।  
सुमङ्गल्युपं सीदेममग्निं  
संपत्नीं प्रति भूपेह देवान् ॥ २५ ॥  
सुमङ्गली प्रतरणी गुहाणां  
सुशोवा पत्यै भवदुराय शम्भुः ।  
स्योना भवन्वै म गृहान् विंशोमान् ॥ २६ ॥  
स्योना भव भवदुर्यः स्योना पत्यै गृहेभ्यः ।  
स्योनास्यै सर्वस्यै विदे स्योना पुष्टायैषां भव २७  
सुमङ्गलीरियं वधूरिमां सुमेत पश्यत ।  
सौभाग्यमस्यै वत्सा दौर्भाग्यैर्विपरैतन ॥ २८ ॥  
या दुर्हादौ युवतयो याश्चेह जरतीरपि ।  
वर्षो न्यस्यै सं दत्तायास्तं विपरैतन ॥ २९ ॥  
ह्रस्वप्रस्तरणं येष विभ्वा रूपाणि विभ्रतम् ।  
आरोहत् सूर्या सावित्री बृहते सौभाग्याय कम् ३०  
आ रोह तल्पं सुमनस्यमाना  
इह प्रजां जनय पत्यै अस्मै ।  
हन्वाणीवं सुबुधा बुध्यमाना  
ज्योतिरप्रा उपसः प्रति जागरसि ॥ ३१ ॥  
देवा अग्ने न्युपचन्त पत्नीः  
समस्पृशन्त तन्वस्तनूभिः ।  
सूर्येवं नारि विभ्वरूपा महित्वा  
प्रजापतीं पत्या सं भेदे ॥ ३२ ॥

उत् तिष्ठतो विंभावलो नमसिद्धामहे त्वा ।

जामिमिच्छ पितृपदं न्यक्तं

स ते भागो जनुया तस्य विद्धि

अप्सरसः सधमाद मदन्ति

द्विर्धानमन्तरा सूर्यं च ।

तास्ते जनित्रमभि ताः परेहि

नमस्ते गन्धर्वतुनां कृणोमि

नमो गन्धर्वस्य नमस्ते

नमो भामाय चक्षुषे च कृणमः ।

विंभावलो ब्रह्मेणा ते नमो

अभि जाया अप्सरसः परेहि

राया वय सुमनसः स्याम

उदितो गन्धर्वमावीवृताम ।

अगन्त देवः परमं सुधस्थं

अगन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः

सं पितरावृत्तिष्ये खजेधां

माता पिता च रेतसो भवाथः ।

मर्थ इव योषामधिरोहयैनां

प्रजां कृणवाथामिह पुष्पतं रयिम्

तां पूर्णवर्तमानैरयस्व

यस्यां वीजं मनुष्याः वपन्ति ।

या न ऊरु उशती विश्रयाति

यस्यामुशान्तः प्रहरेम शेषः

आ रोहोरुमुप धत्स्व हस्त

परि प्वजस्व जायां सुमनस्यमानः ।

प्रजां कृणवाथामिह मोदमानौ

दीर्घं ग्रामायुः सविता कृणोतु

आ वो प्रजां जनयतु प्रजापतिः

अहोरात्राभ्यां समनस्त्वयमा ।

अर्दुर्मङ्गली पतिलोकमा विशेमं

शं नो भव द्विपदं शं चतुष्पदे

॥ ३३ ॥

॥ ३४ ॥

॥ ३५ ॥

॥ ३६ ॥

॥ ३७ ॥

॥ ३८ ॥

॥ ३९ ॥

॥ ४० ॥

देवैर्दत्तं मनुना सापमेतद्

वाधुयं वासो यच्च ध्वं धराम् ।

यो ब्रह्मणे चिकित्से ददाति

स इद्रक्षीति तर्पानि दन्ति

॥ ४१ ॥

यं मे दत्तो ब्रह्ममागं वधूयोः

वाधुयं वासो यच्च ध्वं धराम् ।

युवं ब्रह्मणेऽनुमन्यमानौ

युहस्पते साकमिन्द्रश्च दत्तम्

॥ ४२ ॥

स्योनाघोनेरधि बुध्यमानौ

हसामुदौ मर्दसा मोदमानौ ।

सुगू सुपुत्रौ सुगृहौ तराथो

जीवायुपसो विभातीः

॥ ४३ ॥

नवं धसानः सुरभिः सुवासां

उदागां जीव उपसो विभातीः ।

आण्डात्पतन्नीवांमुशि विभ्वस्मादेनसुस्परि ॥ ४४ ॥

शुग्मने जावापुयवी अन्तिसुग्मे महिमते ।

आपः सुप्त सुसुबुर्वीस्ता नो मुञ्चन्त्यहसः ॥ ४५ ॥

सूर्यायै देवेभ्यो मित्राय वरुणाय च ।

ये भूतस्य प्रचेतसस्तेभ्य इदमकरं नमः ॥ ४६ ॥

य ऋते विदभिश्चिपः पुरा जनुभ्य आतृव ।

संधाता संधि मघवां पुरुवतुः

निष्कर्ता विहंतं पुनः

॥ ४७ ॥

अपासत्तम उच्छतु नीलं

पिशङ्गमुत लोहितं यत् ।

निर्वहनी या पृषातक्यसिन्

तां स्थाणावध्या संजामि

॥ ४८ ॥

यार्वतीः कृत्या उपवासने

यार्वन्तो रात्रौ वरुणस्य पाशोः ।

व्यद्भयो या अर्धमृदयो या

असिन्ता स्थाणावाधि सादयामि

॥ ४९ ॥

(६७२१)

या मे प्रियतमा तनूः सा मे विमाय चासंसः ।  
 तस्यामे त्वं धनस्पते नृषि  
 छण्डुष्य मा ध्वये रिषाम ॥ ५० ॥  
 ये अन्ता यावतीः सिञ्चो य ओतयो ये च तन्तवः ।  
 वासो यत् परनीमिकृतं तन्नः स्योनमुप स्पृशात् ५१  
 उशतीः कन्यला इमाः पितृलोकात् पतिं युतीः ।  
 अथ दीक्षामखक्षत स्वाहा ॥ ५२ ॥  
 बृहस्पतिनार्यच्छृणुं विश्वे देवा अधारयन् ।  
 यज्ञो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५३ ॥  
 बृहस्पतिनार्यच्छृणुं विश्वे देवा अधारयन् ।  
 तेजो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५४ ॥  
 बृहस्पतिनार्यच्छृणुं विश्वे देवा अधारयन् ।  
 मगो गोषु प्रविष्टो यस्तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५५ ॥  
 बृहस्पतिनार्यच्छृणुं विश्वे देवा अधारयन् ।  
 यशो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५६ ॥  
 बृहस्पतिनार्यच्छृणुं विश्वे देवा अधारयन् ।  
 पयो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५७ ॥  
 बृहस्पतिनार्यच्छृणुं विश्वे देवा अधारयन् ।  
 रसो गोषु प्रविष्टो यस्तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५८ ॥  
 यद्रीमे केशिनो जना  
 गृहे तं समनर्तिषु रोदेन छण्यन्तोऽधमः ।  
 अग्निष्ट्या तस्मादेनसः सयिता च प्र मुञ्चताम् ५९  
 यदीयं दुहिता तथं विकेशि  
 अर्धवद् गृहे रोदेन छण्यन्तोऽधमः ।  
 अग्निष्ट्या तस्मादेनसः सयिता च प्र मुञ्चताम् ६०  
 यजामयो यद् संयतयो  
 गृहे तं समनर्तिषु रोदेन छण्यन्तोऽधमः ।  
 अग्निष्ट्या तस्मादेनसः सयिता च प्र मुञ्चताम् ६१  
 यत् तं प्रजायां पशुषु यद् यां गृहेषु  
 निष्ठितमप्रकारेण हृतम् ।  
 अग्निष्ट्या तस्मादेनसः सयिता च प्र मुञ्चताम् ६२

इयं नार्युपं प्रते पूल्यान्यावपन्तिका ।  
 वीर्धायुरस्तु मे पतिर्जीवाति शरदः शतम् ॥ ६३ ॥  
 इहेमाविन्द स जुद चक्रवाकेव दर्पती ।  
 प्रजयैनी स्वस्तकौ विश्वमायुर्व्यंश्रुताम् ॥ ६४ ॥  
 यदासन्धामुपधाने यद् वीपवासने कृतम् ।  
 विधादे कृत्यां यां चक्रुराजानं तां नि दध्मासि ॥ ६५ ॥  
 यद् दुष्कृतं यच्छर्मल विधादे बहती च यत् ।  
 तत् संमलस्य कश्यले मृज्महे दुर्गितं ध्रुयम् ॥ ६६ ॥  
 संमले मलं सादयित्वा कश्यले दुर्गितं ध्रुयम् ।  
 अर्मम युष्टियाः शुद्धाः प्र ण आयुषि तारिपत् ६७  
 छुमिमः कण्टकः शतद्वन् य पयः ।  
 अपास्याः केय्यं मलमपः शीर्षण्य लिखात् ॥ ६८ ॥  
 अङ्गादङ्गाद् ध्रुयमस्या अप यश्मं नि दध्मासि ।  
 तन्मा प्रापत् प्रिययां मोत देवान्  
 दिवं मा प्रापद्व्यं न्तारिक्त्वा ।  
 अपो मा प्राप्नमलेमेतदधमं  
 यमं मा प्रापत् पितृभ्यः सर्वान् ॥ ६९ ॥  
 सं त्वा नहामि पर्यसा प्रिययाः  
 सं त्वा नहामि पयसौपधीनाम् ।  
 सं त्वा नहामि प्रजया धनेन  
 सा संनदा सनुहि याजमेमम् ॥ ७० ॥  
 अमोऽहमस्मि सा त्वं  
 सामाहमस्युक् त्वं धौरं प्रियिषी त्वम् ।  
 ताविह सं मयाय प्रजामा जनयायहे ॥ ७१ ॥  
 जानियन्ति नावप्रयः पुत्रियन्ति सुदानवः ।  
 अरिष्टासु स धेयहि यद्वते याजसातये ॥ ७२ ॥  
 ये पितरौ यद्दृशां इमं बहनुमार्गमन् ।  
 ते अस्यै ध्रुयं संपत्यं प्रजायन्तमं यच्छन्तु ॥ ७३ ॥  
 येदं पूर्वागन् रक्षनायमाना  
 प्रजामस्यै ध्रुविणं चेह दुत्या ।  
 तां बहन्त्यगन्तस्यान पन्था  
 विरादियं सुप्रजा अत्यजैरिव ॥ ७४ ॥

प्र बुध्यस्व सुबुधा बुध्यमाना  
दीर्घायुत्वार्य शतशारदाय ।  
गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासौ  
दीर्घं त आर्युः सविता कृणोत

॥ ७५ ॥

॥ ३ ॥ ( सा० य० २१।३३ )

गायत्री त्रिष्टुभ्जगत्यनुष्टुप्कृत्या सुह ।  
बृहत्युष्णिहा कुरुसुचीभिः शम्पन्तु त्वा ॥ ३३ ॥

॥ ४ ॥ ( अथर्व० १९।२१।१ )

महा । छन्दांसि । एकवचना द्विपदा सामी बृहती ।

गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्बृहती  
पङ्क्तिस्त्रिष्टुभ्जगत्यै

॥ १ ॥

॥ ५ ॥ ( अथर्व० १९।४१।१ )

तप [ राष्ट्रं बलमोजश्च ] । त्रिष्टुप् ।

भद्रमिच्छन्त भर्षयः स्वविद्वः  
तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे ।  
ततो राष्ट्रं बलमोजश्च ज्ञातं  
तदस्मै देवा उपसंनमन्तु

॥ १ ॥

॥ ६ ॥ ( अथर्व० १।६।८।१ )

कर्म ( देवाकं ) । अनुष्टुप् ।

अथ्यसश्च व्यवसश्च बिलं वि ध्यामि मायया ।  
ताभ्यामुदृत्य वेदमथ कर्माणि कृण्महे

॥ १ ॥

॥ ७ ॥ ( अथर्व० १९।२६।१-४ )

अथर्वा । अग्निः । क्षिरण्यं च [ क्षिरण्यपातनम् ] ।

त्रिष्टुप् ; ३ अनुष्टुप् ; ४ पञ्चापङ्क्तिः ।

अग्नेः प्रजातं परि यक्षिरण्यं  
अमृतं दधे अधि मर्येषु ।  
य पञ्चदेव स इदं नमर्हति  
जराभृत्युर्भवति यो विमर्ति  
यक्षिरण्यं सूर्येण सुवर्णं  
प्रजार्पन्तो मर्नयः पूर्वं ईषिरे ।  
तत्पां चन्द्रं घर्चसा सं संजति  
आर्युध्मान् भवति यो विमर्ति

॥ १ ॥

॥ २ ॥

आर्युधे त्वा घर्चसे त्वीजसे च घटाप च ।  
यथा क्षिरण्यतेजसा विमर्सासि जनां धनुं ॥ ३ ॥  
येदेव राजा घर्षणो घेर्घे वेयो बृहस्पतिः ।  
इन्द्रो यर्धन्नादा वेदं तर्ष  
आर्युध्यं भुषत् तसे घर्चस्यं भुषत् ॥ ४ ॥  
॥ ८ ॥ ( अथर्व० २०।३४।१२, १३-१७ )  
श्रुतमहः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

यः शम्बरं पर्यतस्त्वं कर्त्तामिः  
योऽचायकास्नापिषत् सुतस्य ।  
अन्तर्गिरौ यजमानं बहू जने  
यस्मिन्नामूर्च्छत् जनास इन्द्रः ॥ १२ ॥  
ज्ञातो व्युत्पत् पित्रोदपस्ये  
भुयो न वैद जनितुः परस्य ।  
स्तविष्यमाणो नो यो असत्  
मता वेदानां स जनास इन्द्रः ॥ १६ ॥  
यः सोमकामो हर्षश्चः सूरिः  
यस्माद् रेजन्ते भुवनानि विश्वा ।  
यो जघान शम्बरं यश्च शुष्णं  
य एकवीरः स जनास इन्द्रः ॥ १७ ॥  
॥ ९ ॥ ( अथर्व० २०।१०७।१३ )  
बृहद्विष । इन्द्रः । गायत्री ।

चित्रं देवानां केतुरनीकं  
ज्योतिष्मान् प्रदिशः सूर्य उद्यन् ।  
दिवाकरोऽति धृष्टेस्तर्मांसि ॥ १३ ॥  
विश्वातारीदुरितानि शुक्रः  
॥ १० ॥ ( सा० १०, ६३, ८१, ९०, ६१५-६१६ )  
२३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १  
अथ विवस्वदा भरासभ्यसूतये महे ।  
३ १ ३ २ ३ १ ३ २ ३ १  
देवो ह्यसि नो ह्यथे ॥ १० ॥  
१ २ ३ १ २ ३ १  
आ जुहोता हविषा मर्जयध्वं  
१ २ ३ १ २ ३ १  
नि होतारं बृहपतिं दधिध्वम् ।  
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १  
इहस्पदे नमसा रातहव्यं  
३ १ २ ३ १ २ ३ १  
सपयता यजते पस्त्यानाम् ॥ ११ ॥  
( ६०६१ )

यदि धीरो अनु प्यादग्निमिन्धीत मर्त्यः ।  
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
 भाद्रहृद्व्यमानुपक् शमे भक्तात दैव्यम् ॥ २ ॥  
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
 जातः परेण धर्मेणा यत्सवृद्धिः सद्धामुवः ।  
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
 पिता यत् कश्यपस्याग्निः  
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
 धन्वा माता मनुः कविः ॥ १० ॥  
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
 आजन्त्यग्रे समिधान कीद्विषो  
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
 जिह्वा चरत्यन्तरासनि ।  
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
 स त्वं नो अग्ने ययसा  
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
 वसुविद्रयि वचो हरोऽदा ॥ १ ॥  
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
 वसन्त इधु रन्त्यो ग्रीष्म इधु रन्त्यः ।  
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
 वर्षाण्यनु शरदो हेमन्तः शिशिर इधु रन्त्यः ॥ २ ॥  
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
 ॥ ११ ॥ (सा० ९९)  
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
 इत एत उदारहन् दिवः पृष्ठान्या रुहन् ।  
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
 म भूर्जयो यथा पयोद्यामश्नितो ययुः ॥ २ ॥  
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
 ॥ १२ ॥ (सा० १५४, २२४, १८८, ३५३, ३६१, ४३७,  
 ४४१, ४५०, ६०८)  
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
 सोमः पूषा च चेततुर्विभ्यासां सुक्षितीनाम् ।  
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
 दैवत्रा रथ्योहिता ॥ १० ॥  
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
 कडु प्रचेतसे महे वचो देवाय शस्यते ।  
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
 तदिक्षपस्य वर्धनम् । ॥ २ ॥  
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
 यदा कदा च मीढुपे स्तोता जरेत मर्त्यः ।  
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
 भादिहन्वेत वरुणं विषा  
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
 गिरा धर्तरि विपतानाम् ॥ ६ ॥  
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
 मा नो ययो ययःदायं  
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
 महान्तं गह्वरेष्ठां पूर्व्येणेषाम् ।  
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
 उमं वचो अपायधीः ॥ २ ॥

कश्यपस्य स्वर्विदा यावाहुः सयुजाविति ।  
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
 ययोर्विभ्वमपि व्रतं यद्धं धीरा निचाय्य ॥ २ ॥  
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
 विभ्वतोवायन् विभ्वतो न  
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
 आ भर यं त्वा शयिष्ममीमहे ॥ १ ॥  
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
 शं पदं मयं रयीषिणो न  
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
 कामममतो हिनोति न स्पृशद्रयिम् ॥ ५ ॥  
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
 विभ्वस्य म स्तोम पुरो वा सन्पदि वेह नूनम् ४  
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
 आ प्रागाद्भद्रा युवातिरङ्गः केतुस्समीत्सति ।  
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
 अभूद्भद्रा विवेदानी विभ्वस्य जगतो रात्री ॥ ७ ॥  
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
 ॥ १३ ॥ (सा० ५१७)  
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
 अहमसि प्रथमजा ऋतस्य  
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
 पूर्व देवेभ्यो अमृतस्य नाम ।  
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
 यो मा वृदाति स इदं यमायत्  
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
 अहमभ्रमभ्रमदन्तमपि ॥ ९ ॥  
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
 ॥ १४ ॥ (सा० १६५४-१६५६)  
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
 सुमन्मा वस्वी रन्ती सूनरी  
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
 सरुप वृषणा गह्वीमो मदीं धुर्यायमि ।  
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
 ताविमा उप सर्यतः ॥ २ ॥  
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
 नीध शीर्षणि सृद्धं मय्य आपस्य तिष्ठति ।  
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
 शुक्रेमिदंशमिदंशान् ॥ ३ ॥  
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
 ॥ १५ ॥ (सा० १७६९, १८२५, १७९८-११,  
 १८४३-४५)  
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
 त्वामिच्छस्यते यन्ति गिरो न संयतः ॥ २ ॥  
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
 अग्निरिन्द्राय पयते दिवि शुक्रो वि राजति ।  
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
 महिषीय वि जायते ॥ १ ॥  
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
नमः सखिभ्यः पूर्वसद्गयो नमः साकंनियेभ्यः ।

३ १ २ ३ १ २  
युञ्जे वाचं शतपदीम् ॥ १ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
युञ्जे वाचं शतपदीं गाये सहस्रवर्तनि ।

३ १ २ ३ १ २  
गायत्रं त्रैपुभं जगत् ॥ २ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
गायत्रं त्रैपुभं जगद्विधा रूपाणि सम्भृता ।

३ १ २ ३ १ २  
देवा ओकांसि चक्षिरे ॥ ३ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
अग्निज्योतिर्ज्योतिरग्निरेन्द्रो जातिज्योतिरिन्द्रः ।

३ १ २ ३ १ २  
सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः ॥ १ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
अग्निं वाजो विश्वरूपो जनित्रं

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
हिरण्यं विश्वदत्तं सुपर्णः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
सूर्यस्य भानुमृतथा वसानः

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
परि स्वयं मेधमृज्जा अजान ॥ १ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
अप्सु रेतः शिथिये विश्वरूपं

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
तेजः पृथिव्यामाधि यत् सयभूष ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
अन्तरिक्षे स्वं महिमानं मिमानः

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
कानिमान्ति वृष्णो अथस्य रेतः

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
अयं सहस्रा परि युक्ता वसानः

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
सूर्यस्य भानुं यज्ञो दाधार ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
सहस्रदाः शतदा भूरिदाया

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
पतां दिपो भुवनस्य विस्पतिः ॥ ३ ॥

दम्पत्यः ।

॥ १ ॥ ( अ० ८१३११-९ )

मनुर्वचसतः । गायत्री, ९ अष्टपद ।

या दर्शनी समेतया मुनत आ च धार्यतः ।

दर्शानो नित्यपादितः ॥ ५ ॥

प्रति प्राशुर्व्यो इतः सम्यञ्चा बहिर्दिशते ।

न ता वाजेषु वायतः ॥ १ ॥

न देवानामपि द्रुतः सुमति न जुगुक्षतः ।

अर्चो बृहद् विवासतः ॥ ७ ॥

पुत्रिणा ता कुमारिणा विश्वमायुर्व्यभुतः ।

उमा हिरण्यपेशसा ॥ ८ ॥

वीतिहोत्रा कृतव्रत्स वृशस्यन्तामृताय कम् ।

समूर्धो रोमशं हतो देवेषु कण्ठतो दुवः ॥ ९ ॥

॥ १ ॥ ( अथर्व० २१०५ )

प्रजापतिः । अष्टपद ।

परमगन् पतिकांमा जनिकांमाऽहमार्गमम् ।

अथः कनिक्वधया भगैनाहं सहागमम् ॥ ५ ॥

॥ १ ॥ ( अथर्व० १४११९, १४ )

सूर्यां चावित्री । ९ अथर्वनामा पदपदा विराजत्यङ्गः ।

१४ अष्टपद ।

इदं सु मे नरः शृणुत

अयाशिषा दम्पती वाममभुतः ।

ये गन्धर्वा अप्सरसश्च वेधीः

पयु वानस्पत्येषु येऽधितस्थुः ।

स्योनास्ते अस्य धृष्यै भवन्तु

मा हिंसिष्येद्वतुमुद्यमानम् ॥ ९ ॥

इहेमार्चिन्नु सं नुद चक्रचाकेषु दम्पती ।

प्रजयैतौ स्वस्त्यौ विश्वमायुर्व्यभुताम् ॥ १४ ॥

दम्पत्यः शिषः ।

॥ १ ॥ ( अ० ८१३११-१८ )

मनुर्वचसतः । गायत्री, १० पादविपुल, १४ अष्टपद ।

१५-१८ पदितः ।

आ शर्म पर्येतानां वृणीमहे नृदीनाम् ।

आ विष्णोः सत्ताभुयः ॥ १० ॥

पेतुं पुषा रयिर्मगः स्वस्ति सर्वधातमः ।

उदरयोः स्वस्तये ॥ ११ ॥

१११



अरमतिरनर्बणो विभ्रो देवस्य मर्त्तसा ।  
 आदित्यानर्मानेह इत् ॥ १२ ॥  
 यथा नो मित्रो अर्थमा वरुणः सन्ति गोपाः ।  
 सुगाः श्रुतस्य पन्थाः ॥ १३ ॥  
 अग्निं धः पुष्यं गिरा देवमाल्ले चरुनाम् ।  
 सपयन्तः पुरुमियं मित्रं न क्षेत्रसाधंसम् ॥ १४ ॥  
 मधुः देवघतो रयः शरो वा पुस्तु कासुं चित् ।  
 देवानां य इन्मनो यजमान ॥ १५ ॥  
 इयक्षत्यमीदर्यज्वनो भुवत्  
 न यजमान रिण्यसि न सुन्वान न देवयो ।  
 देवानां य इन्मनो यजमान ॥ १६ ॥  
 इयक्षत्यमीदर्यज्वनो भुवत्  
 नकिष्टं कर्मणा नशुभं प्र योपक्ष योपति ।  
 देवानां य इन्मनो यजमान ॥ १७ ॥  
 इयक्षत्यमीदर्यज्वनो भुवत्  
 असद्वर्त्तं सुवीर्यमुत त्वदाभ्यर्ष्यम् ।  
 देवानां य इन्मनो यजमान ॥ १८ ॥  
 इयक्षत्यमीदर्यज्वनो भुवत्

### कक्षुकासः-संस्पर्शनिन्दा ।

॥ १ ॥ ( श्र० १०।८५।२९-३० )

स्यो अवित्री । अनुष्टुप् ।

परां देहि शामुल्यं प्रक्षभ्यो विर्मजा वस्तु ।  
 हृत्यैषा पृथ्वीं भुत्वा जाया विंशते पतिम् ॥ २९ ॥  
 अधीरा तुन्मवति रुशती प्रापयामुया ।  
 पतिर्यद्रव्योक्तुं याससा स्वमङ्गमभिधत्सते ॥ ३० ॥

### कामः ।

॥ १ ॥ ( वा० य० ७।४८ )

कौऽदात् कसां अदात् कामोऽदात् कामायादात् ।  
 कामोऽदात् कामः प्रतिमहीता कामैतत् तै ॥ ४८ ॥

॥ १ ॥ ( वा० य० १८।८ )  
 कामश्च मे सौमनसश्च मे ॥ ८ ॥  
 ॥ ३ ॥ ( वा० य० २४।३१ )  
 कामाय पिकः ॥ ३९ ॥  
 ॥ ४ ॥ ( वा० य० ३०।५ )  
 कामाय पुँक्षुल्म् ॥ ५ ॥  
 ॥ ५ ॥ ( अथर्व० ३।२९।७ )  
 वहालकः । ७ ववसाना पदपदा उपरिष्ठादेवो बृहती  
 ककुम्भतीगर्भा विराजगती ।  
 क इदं कस्मा अदात् कामः कामायादात् ।  
 कामोऽदात् कामः प्रतिमहीता  
 कामः समुद्रमा विवेश ।  
 कामेन त्वा प्रति गृहामि कामैतत् तै ॥ ७ ॥  
 ॥ ६ ॥ ( अथर्व० ६।८।१-३ )  
 अमरमिः । १ ( कामात्मा ), २ सुपर्णः, ३ वावापुषिषी,  
 सूर्यः । पद्यापङ्क्तिः ।

यथा वृक्षं लिप्युजा समन्तं परिपस्वजे ।  
 एवा परि प्वजस्य मां यथा मां कामिन्यस्तो  
 यथा मन्नापेणा असः ॥ १ ॥  
 यथा सुपर्णः प्रपतन् पक्षौ निहति भूम्याम् ।  
 एवा नि हन्मि ते मनो यथा मां कामिन्यस्तो  
 यथा मन्नापेणा असः ॥ २ ॥  
 यथेमे वावापुषिषी स्यः पर्येति सूर्यः ।  
 एवा पर्येमि ते मनो यथा मां कामिन्यस्तो  
 यथा मन्नापेणा असः ॥ ३ ॥

॥ ७ ॥ ( अथर्व० ६।१।१-३ )

( कामात्मा ), ३ वावः । अनुष्टुप् ।

वाञ्छं मे त्वन्तं पादौ वाञ्छास्यौक्तुं वाञ्छं सफयौ ।  
 अस्थौ घृण्यन्त्याः केशा मां ते कामेन शुष्यन्तु ॥ १ ॥  
 मम त्वा दोषणिधिपं कृणोमि हृदयधिरम् ।  
 यथा मम कृतायासो मम चित्तमुपायासि ॥ २ ॥  
 यासां नाभिर्योरेहणं हृदि संयननं हृतम् ।  
 गायो घृतस्य मातरोऽयं सं योनयन्तु मे ॥ ३ ॥

( ६८१७ )

॥ ८ ॥ ( अथर्व ० ९।१।१-१५ )

अथर्वा । शिष्टपृ. ५ अतिजगती; ७, १४-१५, १७-१८,  
२१-२२ जगती; ८ द्विपदा आर्षा पंक्तिः; ११, २०,  
२३ श्रुतिः; १२ अनुष्टुप्; १३ द्विपदाऽऽर्षा अनु-  
ष्टुप्; १६ चतुष्पदा शकरीगमो परा जगती ।

सपत्नहर्नमृपभं धृतेन  
कामं शिक्षामि हविषाऽऽज्येन ।  
नीचैः सपत्नान् मम पादय त्वं  
अभिप्लुतो महता धीर्येण  
यन्मे मनसो न प्रियं न चक्षुषो  
यन्मे यस्मिन् नमिन् नन्दति ।  
तदुष्यन्त्यं प्रति मुञ्चामि सपत्ने  
कामं स्तुत्वोदहं भिदेयम्  
दुष्यन्त्यं कामं दुरितं च काम  
अमृजस्तामस्यगतामवर्तिम् ।  
उग्र ईशानः प्रति मुञ्च तस्मिन्  
यो अस्यभ्येमहृणा चिकित्सात्  
नुदस्य कामं म नुदस्य काम  
अवर्ति यन्तु मम ये सपत्नाः ।  
तेषां नृत्तानामधमा तमांसि  
अग्ने वास्तूनि निर्देह त्वम्  
सा तं कामं दुहिता धेनुर्दक्षते  
यामाहुषाच कययो विराजम् ।  
तया सपत्नान् पारं पृष्टुग्धि ये मम  
पर्येनान् प्राणः पशयो जीवनं वृणक्तु  
कामस्येन्द्रस्य धरुणस्य रामो  
पिप्प्लोर्षलेन सवितुः स्येन ।  
अग्नेहोत्रेण म नुदे सपत्नान्  
शम्बाप नार्यमुदकेषु धीरः  
यत्पक्षो प्राजी मम कामं उग्रः  
हृणेत मह्यमसपत्नमेव ।

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

विश्वे देवा मम नाथं भवन्तु  
सर्वे देवा हवन्मा यन्तु म हवम् ॥ ७ ॥  
इदमाज्यं धृतवक्षुषाणाः  
कामज्येष्ठा इह मादयध्वम् ।  
हृण्वन्तो मह्यमसपत्नमेव ॥ ८ ॥  
इन्द्राग्नी कामं सुरथं हि भुत्वा  
नीचैः सपत्नान् मम पादयाथः ।  
तेषां पञ्चानामधमा तमांसि  
अग्ने वास्तूग्यनुनिर्देह त्वम् ॥ ९ ॥  
जहि त्वं कामं मम ये सपत्ना  
अन्धा तमांस्येव पादयैतान् ।  
निरिन्द्रिया अरसाः संस्तु सर्वे  
मा ते जीविषुः कतमश्नुनाहः ॥ १० ॥  
अवधीत् कामो मम ये सपत्ना  
उरुं लोकममरन्मह्यमेधुतम् ।  
मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रो  
मह्यं पदुर्वीर्धतमा वहन्तु ॥ ११ ॥  
तेऽध्वराञ्चः प्र हवन्तां छिन्ना नौरिव घग्घनाह ।  
न सार्यकप्रणुत्तानां पुनरस्ति निवर्तनम् ॥ १२ ॥  
अग्निर्येष इन्द्रो ययः सोमो ययः ।  
यययावानो देवा याययन्त्वेनम् ॥ १३ ॥  
असर्ववीरश्चरतु प्रणुत्तो  
हेष्यो मित्राणां परियुग्यः स्वानाम् ।  
उत पृथिव्यामयं स्यन्ति पिपुतं  
उग्रो यो देवः प्र मृणत् सपत्नान् ॥ १४ ॥  
च्युता चेयं पृष्टस्यच्युता च  
पिपुतमिति स्तनयिन्ध सयान् ।  
उच्यन्तित्यो प्रयिजेन तेजसा  
नीचैः सपत्नान् नुदतो मे सहस्वान् ॥ १५ ॥  
(६८१)

यत् ते कामं शर्म विचरूयं  
 उद्धु ब्रह्म वर्म विरतमनतिव्याध्यं कुतम् ।  
 तेन सपत्नान् परि वृद्धि ये मम  
 पर्येनान् प्राणः पशवो जीवने वृणक्तु ॥ १६ ॥  
 येन देवा असुरान् प्राणुदन्त  
 येनेन्द्रो दस्यूनघ्नं तमो निनाय ।  
 तेन एवं कामं मम ये सपत्नाः  
 तानसाहोकात् अ पुंस्व दुरम् ॥ १७ ॥  
 ययो देवा असुरान् प्राणुदन्त  
 ययेन्द्रो दस्यूनघ्नं तमो यथाधे ।  
 तथा त्वं कामं मम ये सपत्नाः  
 तानसाहोकात् अ पुंस्व दुरम् ॥ १८ ॥  
 कामो जघे प्रथमो  
 नैनं देवा आपुः पितरो न मर्त्याः ।  
 ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहो मृद्वान्  
 तस्मै ते काम इव रुणोमि ॥ १९ ॥  
 यावती यावापृथिवी धरिण्या  
 यावदापः सिन्धुदुर्वावदग्निः ।  
 ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहो मृद्वान्  
 तस्मै ते कामं नम इव रुणोमि ॥ २० ॥  
 यावतीर्दिशः प्रदिशो विपंचीः  
 यावतीराशो अग्निर्धर्षणा द्वियः ।  
 ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहो मृद्वान्  
 तस्मै ते कामं नम इव रुणोमि ॥ २१ ॥  
 यावतीर्महा जत्वाः कुरूवो  
 यावतीर्वेधा वृक्षस्रज्या वसुवुः ।  
 ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहो मृद्वान्  
 तस्मै ते कामं नम इव रुणोमि ॥ २२ ॥  
 ज्यायान् निमिप्रतोऽसि तिष्ठतो  
 ज्यायान्समुद्रादीसि काम मन्यो ।

ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहो मृद्वान्  
 तस्मै ते कामं नम इव रुणोमि ॥ २३ ॥  
 न वै वार्तश्चन काममानोति  
 नाग्निः सूर्यो नोत चन्द्रमाः ।  
 ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहो मृद्वान्  
 तस्मै ते कामं नम इव रुणोमि ॥ २४ ॥  
 यास्ते शिवास्तन्वाः काम मद्रा  
 याभिः सत्यं भवति यदृणीये ।  
 तामिष्टमसौ अमिसर्विशस्य  
 अन्यत्र पापीरप वेश्या धियः ॥ २५ ॥

॥ ९ ॥ (अथर्व० ६।१३०।१-४)

अथर्ववेदाः । सः । अथर्व०, १ विराट् पुरस्ताद्ब्रह्म ।  
 द्याजितो रायजितेयीर्नामस्वरसामपं स्मरः ।  
 देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥ १ ॥  
 असौ मे स्मरतादिति प्रियो मे स्मरतादिति ।  
 देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥ २ ॥  
 यथा मम स्मरतासौ नामप्याहं कदा चन ।  
 देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥ ३ ॥  
 उन्मादयत मरुत उद्वन्तरिक्ष मादय ।  
 अग्न उन्मादया त्वमसौ मामनु शोचतु ॥ ४ ॥

॥ १० ॥ (अथर्व० ६।१३१।१-३) अथर्व० ।

नि दीर्घतो नि पल्लव आभ्यां नि तिरामि ते ।  
 देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥ १ ॥  
 अनेमतेऽन्विदं मन्यस्वाकृते सन्निदं नमः ।  
 देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥ २ ॥  
 यद्वावांसि प्रियोऽजने पञ्चयोऽजनेमाभ्यनम् ।  
 ततस्त्वं पुनरप्यसि पुत्राणां नो असः पिता ॥ ३ ॥  
 ॥ ११ ॥ (अथर्व० ६।१३२।१-५)

१ अथर्व०, (विश्वानुष्टुप्) २, ४, ५ ब्रह्म, ३ मरिह ।

यं देवाः स्मरमसिञ्चन  
 अस्वन्तः शोशुचानं सहाभ्या ।  
 तं ते तपामि धरन्त्य धर्मेणा ॥ १ ॥  
 (६८५०)

यं विश्वे देवाः स्मरमसिञ्चन्  
अप्स्वुन्तः शोशुचानं सुहाभ्या ।  
तं ते तपामि वर्धणस्य धर्मेणा ॥ २ ॥

यमिन्द्राणी स्मरमसिञ्चन्  
अप्स्वुन्तः शोशुचानं सुहाभ्या ।  
तं ते तपामि वर्धणस्य धर्मेणा ॥ ३ ॥

यमिन्द्राद्री स्मरमसिञ्चन्  
अप्स्वुन्तः शोशुचानं सुहाभ्या ।  
तं ते तपामि वर्धणस्य धर्मेणा ॥ ४ ॥

यं मित्रावरुणौ स्मरमसिञ्चन्  
अप्स्वुन्तः शोशुचानं सुहाभ्या ।  
तं ते तपामि वर्धणस्य धर्मेणा ॥ ५ ॥

॥ १२ ॥ ( अथर्व० १९।१२।१-५ )

प्रज्ञा । त्रिष्टुप्, ३ अक्षुष्वाहुभिक्, ५ उपरिष्ठाद् ब्रह्मी ।

कामस्तदग्रे समवर्तत  
मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ।  
स कामं कामेन बृहता सयौनीं  
रायस्पोयं यजमानाय धेहि ॥ १ ॥

रथं कामं सदैसाऽसि प्रतिष्ठितो  
विमुर्विमावा सख आ सखीयते ।  
त्वमुग्रः पृतनासु सासहिः  
सह ओजो यजमानाय धेहि ॥ २ ॥

दुराशंकमानाय प्रतिपाणायाह्वये ।  
आऽसां अदृण्वद्वाशाः कामेनाजनयन्स्वः ॥ ३ ॥

कामेन मा काम आऽगन् हृदयाहृदयं परि ।  
यदमीषामवो मनस्तदैतत्प मामिह ॥ ४ ॥

यत् कामं कामयमाना हृदं कृण्वसि ते हविः ।  
तन्नः सत्यं समृष्यतां ॥ ५ ॥

अपेतस्य हविषो वीहि स्वाहा ॥ ५ ॥

रत्तिः ।

॥ १ ॥ ( आ० १।१७।१-६ )

१-२ खोषामुद्राः ३-४ अग्रस्तो मैत्रावरुणौ ५-६ अग्रज  
शिव्यो ब्रह्मवारी । त्रिष्टुप्, ५ ब्रह्मी ।

पूर्वीरुहं शरवः शश्रमाणा  
शोषा वस्तोरुपसौ जरयन्तीः ।

मिनाति धिर्यं जरिमा तनूनां  
अप्य नु पत्नीर्वृषणो जगम्युः ॥ १ ॥

ये सिद्धि पूर्वं श्रुतसाए आसन्  
साकं देवेभिरवदन्तृतानि ।

ये सिद्धासुर्नष्टान्तमापुः

सम् नु पत्नीर्वृषमिर्जगम्युः ॥ २ ॥

न मृषां भ्रान्तं यदवन्ति देवा  
विश्वा इत् स्पृधौ अभ्यभयाय ।

जयावेदं शतनीधमाजि  
यत् सम्यंचा मिथुनावभ्यजाय ॥ ३ ॥

नदस्य मा रुधतः काम आऽगन्  
इत् आजतो अमुतः कुतः चित् ।

लोषामुद्रा वृषणं नी रिणाति  
धीरमर्धारा धयति श्वसन्तम् ॥ ४ ॥

इमं नु सोममन्तितो हृत्सु पीतमुपं ब्रुवे ।  
यत् सीमार्गश्चक्रमा तत् स मृच्छतु

पुलुकामो हि मर्यैः  
अगस्त्यः खनेमानः खनित्रैः ॥ ५ ॥

प्रज्ञामर्षस्यं धर्लमिच्छमानः ।  
उमौ वर्णावृषिद्वयः पुषोप

सत्या देवेभ्योऽशिषो जगाम ॥ ६ ॥

## रेतः ।

॥ १ ॥ (वा० य० १९/७६)

रेतो मूत्रं वि जहाति योनिं प्रविशति विन्दियम् ।

गमो जरायुणावृतं उर्वं जहाति जन्मना ॥

श्रुतेन सत्यमिन्द्रियं विपानं,

शुकमग्न्यसः इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधुं ७६

॥ २ ॥ (वा० य० ३९/१०)

रेतसे स्वाहा

॥ १० ॥

॥ ३ ॥ (अथर्व० ६/१११-१)

प्रजापतिः । अनुष्टुप् ।

शमीमथ्वत्य आरुहस्तर्षं पुंसर्वणं कृतम् ।

तद्वै पुत्रस्य वेदं तत् स्त्रीष्वामंरामसि ॥ १ ॥

पुंसि वै रेतो भवति तत् स्त्रियामनु विच्यते ।

तद्वै पुत्रस्य वेदं तत् प्रजापतिरप्यवीत् ॥ २ ॥

## कामिनीमन्त्रोऽभिसुखी-

## करणम् ।

॥ १ ॥ (अथर्व० १/३०/१-४)

प्रजापतिः । औपनिः । ३ भुक्ति, ४ अनुष्टुप् ।

यत् सुपर्णा विषक्षवो अनम्रीवा विषक्षयः ।

तत्र मे गच्छतादयं शल्य इष कुर्मलं यथा ॥ ३ ॥

यदन्तरं तद्वाहं यद्वाहं तदन्तरम् ।

कन्याऽनां विष्यक्षणां मनो गुमायौषधे ॥ ४ ॥

## केवलः फलिः ।

॥ १ ॥ (अथर्व० ७/३८/१-५)

बनस्पतिः । अनुष्टुप्, ३ चतुष्पाद लज्जिक् ।

इदं खनामि मेघं मां पदयमभिरुदम् ।

परायतो निषर्तनमायतः प्रतिनन्दनम् ॥ १ ॥

येनां निचक्र आसुसीन्द्रं देवेभ्यस्परि ।

तेनां नि कुपे त्वामहं यथा तेऽसोनि सुमिया ॥ २ ॥

प्रतीची सोममसि प्रतीच्युत सूर्यम् ।

प्रतीची विभान् वेपान् तां त्वाऽच्छायदामसि ॥ ३ ॥

अहं वेदामि नेत्वं सुभायामह त्वं चर्द ।

ममेदसस्त्वं केचलो नान्यासां कीर्तयाश्चन ॥ ४ ॥

यदि वाऽसि तिरोज्जनं यदि वा नद्यस्तिरः ।

इयं ह मह्यं त्वामोपधिर्वज्रवे न्यानयत् ॥ ५ ॥

## अतिथिस्तकारः ।

॥ १ ॥ (अथर्व० ९/६/१-३९)

प्रथमः पर्यायः ॥ १ ॥

(षट्पद्याः) १-१७ प्रथा । अतिथिः विद्या । १ नार्गो नाम  
त्रिपदा गायत्री; २ त्रिपदाऽर्धो गायत्री; ३, ७ साम्नी त्रिष्टुप्;  
४, ९ आच्यनुष्टुप्; ५ आहूरी गायत्री; ६ त्रिपदा साम्नी  
अपती, ८ याजुषी त्रिष्टुप्; १० साम्नी भुरिष्टुहती; ११, १४-  
१६ साम्ण्यनुष्टुप्; १२ विराट् गायत्री; १३ साम्नी त्रिष्टु-  
पङ्क्तिः, १७ त्रिपदा विराट् भुरिगायत्री ।

यो विद्याव्रक्ष प्रत्यक्षं

परं वि यस्य संभारा श्रुचो यस्यानुक्यम् ॥ १ ॥

सामानि यस्य लोमानि

यजुर्हृदयमुच्यते परिस्तरणमिद्विधः ॥ २ ॥

यद्वा अतिथिपतिरतिथीन्

प्रतिपदयति देवयजनं प्रेक्षते ॥ ३ ॥

यदभिवर्दति दीक्षामुपति

यदुदकं याचत्यपः ॥ नयति ॥ ४ ॥

या एव यज्ज आपः प्रणीयन्ते ता एव ताः ॥ ५ ॥

यत् तर्पणमाहरन्ति य एवासीषोमीयः

पशुर्यच्यते स एव सः ॥ ६ ॥

यदावसुभान् कल्पयन्ति

सदोहविद्यानान्येव तत् कल्पयन्ति ॥ ७ ॥

यदुपस्तुणन्ति यद्विरेव तत्

यदुपरिदयनमाहरन्ति ॥ ८ ॥

स्वर्गमेव तेन लोकमयं रुन्दे

यत् कशिपूपयर्धनमाहरन्ति परिषय एव ते ॥ ९ ॥

यदाऽजनाभ्यञ्जनमाहरन्त्याज्यमेव तत् ॥ १० ॥

यत् पुत्र परिप्रेषात् रादमाहरन्ति

पुरोडाशायैव तौ ॥ ११ ॥

यद्वदनपुतं क्षयन्ति दृष्टिपुतमेव तद् ध्वयन्ति ॥ १३ ॥  
 ये प्रीहयो यवां निरुप्यन्तेऽन्तर्य एव मे ॥ १४ ॥  
 याव्युत्पलमुत्पलानि प्रावाण एव मे ॥ १५ ॥  
 द्रप्यं पथिष्ठं तुयां प्रज्जीपाभिपथणीरापः ॥ १६ ॥  
 गुग्मर्पिर्नैक्षेणमाययन् म्रोणकल्लताः कुम्भयोऽ  
 पायध्यानि पात्राणीयमेव कृष्णाजिनम् ॥ १७ ॥

द्वितीयः पर्यायः ॥ १ ॥

(१-१३) = १ विराट् पुरस्ताद्बृहती; २; ११ साम्नी त्रिष्टुप्;  
 ३ आह्वरी अनुष्टुप्; ४ साम्नी उणिक्; ५, ११ साम्नी  
 बृहती (११ भुरिक्); ६ आर्यवृष्टुप्; ७ त्रिपदा स्यात्तनुष्टुप्;  
 ८ आह्वरी गायत्री; ९ साम्नी अनुष्टुप्; १० त्रिपदाऽऽधी  
 त्रिष्टुप्; १३ त्रिपदाऽऽधी कृष्णिः (७ पथपदा विराट् पुरस्ताद्  
 बृहती; ८ साम्नीनुष्टुप् वा) ।

यजमानप्राह्मणं वा एतदतिथिपतिः

कुर्वते यदाह्वार्याणि प्रेक्षते  
 हवं भूयाश्च हवाश्मेति ॥ १ ॥  
 यदाह्वं भूय उज्ज्वरेति प्राणमेव  
 तेन वर्षीयांसं कुर्वते ॥ २ ॥  
 उपहरति हवींश्या सादयति ॥ ३ ॥  
 तेषामासंनानामतिथिरात्मन् जुहोति ॥ ४ ॥  
 कुचा हस्तेन प्राणे यूपं सुक्कारेण यपट्कारेण ॥ ५ ॥  
 एते वै प्रियाध्वप्रियाध्वत्विजः  
 स्वर्गं लोकं गमयन्ति यदतिथयः ॥ ६ ॥  
 स य एवं विद्वान् द्विपन्  
 अश्वीयाश्च द्विपतोऽर्धमश्वीयाश्च  
 मीमांसितस्य न मीमांसमानस्य ॥ ७ ॥  
 सर्वो वा एव जग्धपाप्मा यस्यार्धमश्नन्ति ॥ ८ ॥  
 सर्वो वा एवोऽजग्धपाप्मा यस्यार्धं नाश्नन्ति ॥ ९ ॥  
 सर्वदा वा एव युक्ताप्राचाद्रपथिष्ठो  
 वितंताश्चर आहृतयश्चतुर्थ्यं उपहरति ॥ १० ॥  
 प्राजापत्यो वा एतस्य  
 यशो वितंतो य उपहरति ॥ ११ ॥

प्रजापतेयां एव विजमान  
 भन्नुपिर्जमते य उपहरति ॥ १२ ॥  
 योऽतिथीनां वा आह्वनीयां यो वेदमेति  
 स गार्हपत्यो यस्मिन् पर्वणि न रक्षिणाभिः ॥ १३ ॥  
 सतीयाः पर्यायः ॥ १ ॥

(१-११) = १-६, ९ त्रिपदा विरिभिर्धमपदा गायत्री;  
 ७ साम्नी बृहती; ८ विरिभिर्धमपदा गायत्री

इदं च वा एव पूर्वं च  
 गृह्णामीमश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥ १ ॥  
 पर्यह्य वा एव रयं च  
 गृह्णामीमश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥ २ ॥  
 ऊर्जा च वा एव रश्नाति च  
 गृह्णामीमश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥ ३ ॥  
 मूर्जा च वा एव पृश्न्यं  
 गृह्णामीमश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥ ४ ॥  
 कीर्तिं च वा एव यशश्च  
 गृह्णामीमश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥ ५ ॥  
 धिर्यं च वा एव सुविदं च  
 गृह्णामीमश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥ ६ ॥  
 एव वा अतिथिर्यच्छोत्रियः  
 तस्मात् पूर्वो नार्शीयात् ॥ ७ ॥  
 अशितावत्यतिथावश्रीयाद्यहस्यं  
 सात्तम्यार्थं यज्ञस्याविच्छेदाय तद् मृतम् ॥ ८ ॥  
 एतद्वा उ स्वादीयो  
 यदधिगन्धं क्षीरं वा मांसं वा तदेव नार्शीयात् ॥ ९ ॥

चतुर्थः पर्यायः ॥ १४ ॥

१-४ प्राजापत्यानुष्टुप्; २-५ त्रिपदा गायत्री; ९ भुरिक्।  
 १० चतुष्टुपा प्रस्तारवीकः ।

स य एवं विद्वान् क्षीरमुपसिच्योपहरति ॥ १ ॥  
 यावदग्निरोभेनेष्टा सुसंमृद्धेनावरुन्धे ॥ २ ॥  
 तावदेनेनावरुन्धे ॥ ३ ॥  
 स य एवं विद्वान्सर्पिरुपसिच्योपहरति ॥ ४ ॥  
 (६११)

यावदतिरात्रेणैष्ट्वा सुसमृद्धेनावरुन्धे  
तावदेनेनाव रुन्धे ॥ ४ ॥  
स य एवं विद्वान् मधूपसिच्योपहरति ॥ ५ ॥  
यावत् सत्त्वसद्येनेष्ट्वा सुसमृद्धेनावरुन्धे  
तावदेनेनाव रुन्धे ॥ ६ ॥  
स य एवं विद्वान् मांसमुपसिच्योपहरति ॥ ७ ॥  
यावद् द्वादशाहेनेष्ट्वा सुसमृद्धेनावरुन्धे  
तावदेनेनाव रुन्धे ॥ ८ ॥  
स य एवं विद्वानुदकमुपसिच्योपहरति ॥ ९ ॥  
प्रजानां प्रजननाय गच्छति  
प्रतिष्ठां प्रियः प्रजानां भवति  
य एवं विद्वानुदकमुपसिच्योपहरति ॥ १० ॥  
पञ्चमः पर्यायः ॥ ५ ॥  
१ साम्नी उगिह् २ पुर उगिह् ३, १० साम्नी भुरि-  
हृती ४, ९, ९ साम्नी अनुष्टुप् ५ त्रिपदा निचृदि-  
पमा नाम गायत्री ७ त्रिपदा विराहविषमा नाम  
गायत्री ८ त्रिपदा विराहनुष्टुप् ।  
तस्मां उपा हिङ्गुणोति सविता प्र स्तौति ॥ १ ॥  
शुद्धस्पर्तिरुजैयोद्गायति त्वष्टा  
पुष्ट्या प्रति हरति विश्वे देवा निधनम् ॥ २ ॥  
निधनं भूत्याः प्रजायाः  
पशूनां भवति य एवं वेद ॥ ३ ॥  
तस्मां उच्यन्त्यो हिङ्गुणोति  
संगवः प्र स्तौति  
मध्यन्दिन उन्नायत्यपराहः  
प्रति हरत्यस्तयन् निधनम् ।  
निधनं भूत्याः प्रजायाः  
पशूनां भवति य एवं वेद  
तस्मां अघ्नो भवन् हिङ्गुणोति  
स्तनयन् प्र स्तौति  
वियोतमानः प्रति हरति ययन्  
उन्नायत्युद्रहन् निधनम् ।  
निधनं भूत्याः प्रजायाः  
पशूनां भवति य एवं वेद

अतिथीन् प्रति पश्यति हिङ्गुणोति  
अभि वदति प्र स्तौत्युदकं याचत्युद्गायति ॥ ८ ॥  
उप हरति प्रति हरत्युर्दिष्टं निधनम् ॥ ९ ॥  
निधनं भूत्याः प्रजायाः  
पशूनां भवति ॥ एवं वेद ॥ १० ॥  
षष्ठः पर्यायः ॥ ६ ॥  
१ आसुरी गायत्री २ साम्नी अनुष्टुप् ३-५ त्रिपदाऽऽर्चो  
पङ्क्तिः ४ एकपदा प्राजापत्या ६-११ आर्चो बृहती १२  
एकपदाऽऽसुरी जगती १३ याजुषी त्रिष्टुप् १४ एक-  
पदाऽऽसुरी उगिह् ।  
यत् अक्षरं ह्यत्या आचयत्येव तत् ॥ १ ॥  
यत् प्रतिशृणोति प्रत्याश्चाचयत्येव तत् ॥ २ ॥  
यत् परिवेष्टारः पार्श्वहस्ताः पूर्वे चापरे च  
प्रपद्यन्ते चमसाऽध्वर्यव एव ते ॥ ३ ॥  
तेषां न कञ्चनाद्दौता ॥ ४ ॥  
यद्वा अतिथिपतिरतिथीन् परिधिष्य  
गृहानुषोदैत्यवभृथमेव तदुपायति ॥ ५ ॥  
यत् संभागयति दक्षिणाः संभागयति  
यदनुतिष्ठत उदवस्यत्येव तत् ॥ ६ ॥  
स उपहृतः पृथिव्यां भक्षयति  
उपहृतस्तस्मिन् यत् पृथिव्यां विभ्वरूपम् ॥ ७ ॥  
स उपहृतोऽन्तरिक्षे भक्षयति  
उपहृतस्तस्मिन् यदन्तरिक्षे विभ्वरूपम् ॥ ८ ॥  
स उपहृतो दिवि भक्षयति  
उपहृतस्तस्मिन् यदिवि विभ्वरूपम् ॥ ९ ॥  
स उपहृतो देवेषु भक्षयति  
उपहृतस्तस्मिन् यदेवेषु विभ्वरूपम् ॥ १० ॥  
स उपहृतो लोकेषु भक्षयति  
उपहृतस्तस्मिन् यालोकेषु विभ्वरूपम् ॥ ११ ॥  
स उपहृत उपहृतः ॥ १२ ॥  
आप्नोतीमं लोकमाप्नोत्यमुम् ॥ १३ ॥  
ज्योतिष्मतो लोकान् जयति य एवं वेद ॥ १४ ॥



बाल-विभागः

बाल-संरक्षणमंत्री

वेनः

॥ १ ॥ ( क्र० १०१२३११-८ )

वेनो भार्यवः । त्रिष्टुप् ।

अयं वेनश्चोदयत् पृश्निगर्भा  
ज्योतिर्जरायु रजसो विमाने ।  
इममपां सैगमे सूर्यस्य  
शिशुं न विप्रां मृतिभीं रिहन्ति  
सुमुद्राद्भूमिमुर्वियति वेनो  
नेमोजाः पूष्टं हृद्यतस्य दर्शि ।  
श्रुतस्य सान्नावधि विष्टपि भ्रातृ  
समानं योनिमभ्यनूपत् माः  
समानं पुर्वीरभि बावशानाः  
तिष्ठन् वत्सस्य मातरः सनीलाः ।  
श्रुतस्य सान्नावधि चक्रमाणा  
रिहन्ति मघ्वां अमृतस्य वाणीः  
जानन्तो रूपमरुपन्त विप्रां  
मृगस्य घोषं मदपस्य हि गमन् ।  
श्रुतेन यन्तो अधि सिन्धुमरुधुः  
विदग्धस्यो अमृतानि नाम

अप्सरा आरमुपसिन्धियाणा  
योपां विभर्ति परमे ज्योमन् ।  
वरत्प्रियस्य योनिषु प्रियः सन्  
सीदत् पक्षे हिरण्यये स वेनः  
नाकं सुपर्णमुप यत् परतस्तं  
दृष्ट्वा वेनन्तो अभ्यचक्षत तथा ।  
हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं  
यमस्य योनौ शकुनं मरुणमुम्  
कुञ्चो गन्धर्वो अधि नाकं अस्थात्  
प्रत्यङ् चित्रा विभ्रदस्यायुधानि ।  
वसानो अत्कं सुरभि दृशे कं  
स्वर्णं नाम जनत प्रियाणि  
दृप्सः संमुद्रमभि यजिजगति  
पश्यन् शृङ्गस्य चक्षस्ता विधर्मन् ।  
भ्रातुः शुकेण शोचिपां चक्रानः  
तृतीयं चक्रे रजसि प्रियाणि  
॥ १ ॥ ( बा० य० १३१११ )  
तं प्रत्ययाडयं वेनः

॥ ५ ॥

॥ १ ॥

॥ ६ ॥

॥ २ ॥

॥ ७ ॥

॥ ३ ॥

॥ ८ ॥

॥ ४ ॥

॥ ९ ॥

(६९५८)



# मेखलाकण्ठकनसू ॥

॥ १ ॥ ( अथर्व० ६।१३१।१-५ )

अथस्थः । मेखला । १ मुरिक् ; २, ५ अनुष्टुप् ; ३ त्रिष्टुप् ;  
४ जगती ।

य इमां देवो मेखलामाययन्ध  
यः सैननाह य उ नो युयोजे ।  
यस्य देवस्य प्रदिपा चरामः  
स पारमिच्छात्स उ नो विमुञ्चात्  
आहुतास्यमिहुत ऋषीणामस्यायुधम् ।  
पूर्वा मृतस्य प्राश्नती  
वीरप्नी मंव मेखले

॥ १ ॥

॥ २ ॥

मृत्योरहं प्रह्वारी यदसि  
निर्याचन् भूतात् पुरुषं यमार्य ।  
तमहं ब्रह्मणा तर्पसा धर्मेण  
आनयैनं मेखलया सिनामि

॥ ३ ॥

अन्धार्या दुहिता तपसोऽधि जाता  
स्वस ऋषीणां भूतकृता वमर्च ।  
सा नो मेखले मतिमा धेहि मेधां  
मर्यो नो धेहि तर्प इन्द्रियं च  
यां स्वा पूर्वं भूतकृत ऋषयः परिवेधिरे ।  
सा त्वं परि श्वजस्व मां

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

६९६१)



गुप्त-संरक्षण-विभाग

गुप्त-संरक्षण-मंत्री

कः [प्रजापतिः]

॥ १ ॥ (अ० १।१४।१)

शुभः शेष आशीर्गतिः कृत्रिमो देवरातो वैश्वामित्रो वा । त्रिष्टुप् ।

कस्य नूनं कृतमस्यामृतानां

मर्नामहे चार्य देवस्य नाम ।

को नो मृह्या अदितये पुनर्दातु

पितरं च दृष्टोयं मातरं च

॥ १ ॥

॥ २ ॥ (अ० १०।१८।१४)

संकुष्टको वामायनः । अनुष्टुप् ।

प्रतीचीने मामहनी—प्याः पूर्णमिवा वधुः ।

प्रतीचीं जप्रमा घाच—मर्ध्वं रश्मनया यथा ॥ १४ ॥

॥ ३ ॥ (अ० १०।११।१-१०)

हिरण्यगर्भः प्राजापत्यः । त्रिष्टुप् ।

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे

भुतस्य जातः पतिरेकः आसीत् ।

स दोधार पृथिवीं चामुतेमां

कस्मै देवाय हविषा विधेम

य आत्मदा रलदा यस्य विध्वं

उपासते प्रशिष्यं यस्य देवाः ।

यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः

कस्मै देवाय हविषा विधेम

॥ १ ॥

॥ २ ॥

यः प्राणतो निमिपतो महित्वा

एक इन्द्राजा जगतो यम्व ।

य ईशो अस्य द्विपदभृतुष्यदः

कस्मै देवाय हविषा विधेम

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा

यस्य समुद्रं रक्षया सह्यदुः ।

यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू

कस्मै देवाय हविषा विधेम

येन द्यौरग्रा पृथिवी च हल्ला

येन स्वः स्तभितं येन नाकः ।

यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः

कस्मै देवाय हविषा विधेम

यं क्रन्दसी अवसा तस्तमाने

अभ्यैक्षेतां मर्नसा रेजमाने ।

यत्राधि सूर उदितो विभाति

कस्मै देवाय हविषा विधेम

आपो ह यद्वृद्धतीर्विश्वमायन

गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम् ।

ततो देवानां समवर्ततासुरेकः

कस्मै देवाय हविषा विधेम

॥ १ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

(६९७)

यश्चिदापौ महिना पर्यपश्यद्  
दक्षं दधाना जनयन्तीर्यक्षम् ।  
यो देवेभ्यश्चिदेव एक आसीत्  
कस्मै देवाय हविषा विधेम  
मा नो हिंसीज्जनिता यः पृथिव्या  
यो वा दिवं सत्यधर्मा ज्ञानं ।  
यश्चापश्चन्द्रा बृहतीर्जज्ञान  
कस्मै देवाय हविषा विधेम  
प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो  
विश्वा ज्ञातानि परि ता यम्भ्यः ।  
यत् कामास्ते जुहुमस्तत्रो अस्तु  
वयं स्याम पतयो रयीणाम्

॥ ४ ॥ (वा० य० १।६)

कस्त्वा युनक्ति स त्वा युनक्ति  
कस्मै त्वा युनक्ति तस्मै त्वा युनक्ति ।  
कर्मणे वा वेपाय धाम्

॥ ५ ॥ (वा० य० २।१३)

कस्त्वा विमुञ्चति स त्वा विमुञ्चति  
कस्मै त्वा विमुञ्चति तस्मै त्वा विमुञ्चति ।  
पोषाय रक्षसां भागोऽसि

॥ ६ ॥ (वा० य० ७।१९)

कोऽसि कतमोऽसि कस्यासि को नामोसि ।  
यस्य ते नामामन्गहि यं त्वा सोमेनातीक्ष्णाम् २९

॥ ७ ॥ (वा० य० ८।१०, ३६)

प्रजापतिर्वृषाऽसि रेतोघा रेतो भविं धेहि  
प्रजापतेस्ते वृष्णो रेतोघसो रेतोघामदीय ॥ १० ॥  
यस्मान्न जातः परो अन्यो अस्ति  
य आधिपेश भुवनानि विश्वा ।  
प्रजापतिः प्रजया सरस्वतः  
प्रीणि ज्योतीरपि सचते स पौंडरी ॥ ३६ ॥

॥ ८ ॥ (वा० य० ९।१९, २१, २३-२५)

आ मा वाजस्य प्रसवो जगम्यात्  
एमे द्यावापृथिवी विश्वरूपे ।  
आ मा गन्तां पितरां मातरा वा  
मा सोमो अमृतत्वेन गम्यात् ॥ १९ ॥  
प्रजापतेः प्रजा अभूम ॥ २१ ॥  
वाजस्येमं प्रसवः सुपुत्रेभ्यः  
सोमं, राजानमोपधीष्यन्तु ।  
ता अस्मभ्यं मधुमतीर्भयन्तु  
वयं, शत्रुं जागृयाम पुरोहिताः स्वाहा ॥ २३ ॥  
वाजस्येमां प्रसवः शिथिये दिवं  
इमा च विश्वा भुवनानि सम्राट् ।  
अदितस्तन्तं दापयति प्रजानम्  
स नो रयिर् सर्ववीरं नि यच्छतु स्वाहा ॥ २४ ॥  
वाजस्य नु प्रसव आ यम्भ्यः  
इमा च विश्वा भुवनानि सर्वतः ।  
सर्नेमि राजा परि याति विद्वान्  
प्रजां पुष्टिं धर्धयमानो असे स्वाहा ॥ २५ ॥

॥ ९ ॥ (वा० य० १०।१०)

अवेष्टा दम्भशकाः  
प्राचीमा रोह गायत्री त्याऽयतु ।  
रथन्तरं सारं त्रिवृत्सोमो  
यसन्त श्रुतुमेषां त्रिविणम् ॥ १० ॥

॥ १० ॥ (वा० य० ११।६६)

प्रजापतये भर्गवे स्वाहा ॥ ६६ ॥

॥ ११ ॥ (वा० य० १२।६१)

मातेय पुत्रं पृथिवी पुरीषं  
अग्निं स्वे योर्नावमारुता ।  
तां विश्वैर्वैश्वतुभिः संविद्वानः  
प्रजापतिर्विश्वकर्मा वि मुञ्चतु ॥ ६१ ॥

(६१८८)

॥ १२ ॥ ( घा० य० १३।१७, १४, ५४-५८ )  
 प्रजापतिष्वा सादयत्स्वपां पृष्ठे समुद्रस्येर्मन् ।  
 व्यचरन्स्वर्तां प्रथस्वर्तां प्रथस्व पृथिव्यसि ॥ १७ ॥  
 प्रजापतिष्वा सादयत्  
 पृष्ठे पृथिव्या ज्योतिष्मतीम् ॥ २४ ॥  
 प्रजापतिगृहीतया त्वया  
 ग्राणं गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ५४ ॥  
 प्रजापतिगृहीतया त्वया  
 मनो गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ५५ ॥  
 प्रजापतिगृहीतया त्वया  
 चक्षुर्गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ५६ ॥  
 प्रजापतिगृहीतया त्वया  
 भोत्रं गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ५७ ॥  
 प्रजापतिगृहीतया त्वया  
 वाचं गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ५८ ॥

॥ १३ ॥ ( घा० य० १८।१८-१९, ४३-४४ )  
 प्रजापतये स्वाहा ॥ २८ ॥  
 प्रजापतेः प्रजा अमम वेद् स्वाहा ॥ २९ ॥  
 प्रजापतिर्विभ्वकर्मा मनो गन्धर्वः  
 तस्य ऋषत्तामान्यन्तरस पर्ययो नाम् ।  
 स न इदं ब्रह्म क्षुत्रं पातु  
 तस्मै स्वाहा वाद् ताम्यः स्वाहा ॥ ४३ ॥  
 स नो भुवनस्य पते प्रजापते  
 यस्य त उपरि गृहा यस्य वेह ।  
 अस्मै ब्रह्मणेऽसौ क्षत्राय  
 महि शर्म यच्छ स्वाहा ॥ ४४ ॥

॥ १४ ॥ ( घा० य० २०।४ )  
 कोऽसि कतमोऽसि कस्मै त्या कार्य त्या ।  
 गुह्योक्तः सुमहल्ल सत्यराजन् ॥ ४ ॥

॥ १५ ॥ ( घा० य० १३।१४, ६४ )  
 उपयामगृहीतोऽसि प्रजापतये त्या जुष्टं गृह्णामि ।  
 प्रजापतये स्वाहा वेयेभ्यः ॥ २ ॥  
 होता यक्षत् प्रजापतिं सोमस्य महिम्नः ।  
 जुषतां पियत्तु सोमं होतर्यर्ज ॥ ६४ ॥  
 ॥ १६ ॥ ( घा० य० ११।१९ )  
 प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तः  
 अजायमानो बहुधा वि जायते ।  
 तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीराः  
 तस्मिन् ह तस्युर्मुर्वनानि चिन्मा ॥ १० ॥  
 ॥ १७ ॥ ( घा० य ३।५६ )  
 प्रजापतौ स्वा वेवतायामुपोदके  
 लोके नि दधाम्यसौ ।  
 अर्प नः शोशुचदधम् ॥ ६ ॥

॥ १८ ॥ ( अथर्व० १।१०।१३ )  
 अथर्वा । अनुष्टुप् ।  
 इन्द्रपुत्रे सोमपुत्रे बुद्धिताऽसि प्रजापतेः ।  
 कामान्स्साकं पूरय प्रति गृह्णाहि नो हविः ॥ १३ ॥  
 ॥ १९ ॥ ( अथर्व० १।१।२४ )  
 श्वस्राना पदपदाऽष्टिः ।

यद्भीधे स्तुनयति प्रजापतिः  
 एव तत् प्रजाभ्यः प्रादुर्भवति ।  
 तस्मात् प्राचीनोपवीतस्तिष्ठे  
 प्रजापतेऽनु मा बुध्यस्वेति ।  
 अन्वेनं प्रजा अनु प्रजापतिर्बुध्यते य एवं वेद २४  
 ॥ २० ॥ ( अथर्व० ७।१९।१ )  
 ब्रह्मा । जगती ।

प्रजापतिर्जनयति प्रजा इमा  
 धाता दधातु सुमनस्यमानः ।  
 संजानानाः संमनसः सयोनयो  
 मार्ये पुष्टं पुष्टपतिर्दधातु

॥ २१ ॥ ( अथर्व० १६।१।१ )

यमः । प्रजापत्या आर्च्यन्तुष्टुम् ।

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं

अभ्यष्टां विश्वाः पृतेना अरातीः

॥ १ ॥

॥ २२ ॥ ( साम० ६०२ )

वामदेवो गीतयः । अनुष्टुप् ।

मयि वर्चो अथो यशोऽथो यज्ञस्य यत्पथः ।

परमेष्ठी प्रजापतिर्दिवि धामिष दंहतु

॥ १ ॥

प्रजापति-सहचारी-देवगणः

(१) प्रजापतिः हरिश्चन्द्रः चर्म सोमो वा ।

॥ २३ ॥ ( ऋ० १।१८।९ )

शुभः शोभ आशीर्गतिः । गायत्री ।

उच्छिष्टं चर्म्योमेरु सोमं पुषिश्च आ सृज ।

नि धेहि गोरधि त्वचि

॥ २ ॥

(२) प्रजापत्यादयः ।

॥ २४ ॥ ( धा० य० ३९।१९ )

प्रजापतिः समिध्रयमाणः सुभ्राट् सम्भृन्नो

यैश्वदेवः संहस्रन्नो धर्मः प्रवृक्तः

तेज उद्यत आग्निनः पर्यस्यानीयमाने

प्राणो विध्यन्मनि मारुनः ह्यथन ।

मैत्रः शरसि सन्ताप्यमाने चापव्यो हियमाण

आग्नेयो ह्ययमानो वाग्बुतः

॥ ५ ॥

( ३ ) धनस्पतिः, प्रजापतिः ।

॥ २५ ॥ ( अथर्व० ३।१४।१-७ )

मयुः । अनुष्टुप्, २ भिवृष्यापक्षिः ।

पर्यस्वतीरोपघयः पर्यस्वन्मामकं वर्चः ।

अथो पर्यस्वतीनामा भरेऽहं संहस्रदाः

॥ १ ॥

वेदाहं पर्यस्वन्तं चकार धान्यं यहु ।

संभृत्वा नाम यो देयस्तं क्यं हवामहे

यो यो अयन्वतो गृहे

॥ २ ॥

इमा याः पंच प्रदिशो मानयीः पंच कृष्यः ।

बुधे शार्प नदीरिवेह स्फूर्ति समार्यदान्

॥ ३ ॥

उदुत्सं शतघोरं सहस्रघोरमाक्षितम् ।

पथास्माकंदं धान्यं सहस्रघोरमाक्षितम्

॥ ४ ॥

शतहस्तं समाहर सहस्रहस्तं सं किर ।

कृतस्य कार्यस्य चेह स्फूर्ति समार्यह

॥ ५ ॥

तिष्ठो मात्रो गन्धर्वाणां चतस्रो गृहपत्याः ।

तासां या स्फूर्तिमर्त्तमा

तया त्वाऽमि मृशामसि

॥ ६ ॥

उपोदस्य समुहस्य क्षचारौ ते प्रजापते ।

ताविहा बहतां स्फूर्ति

यद् मुमानमक्षितम्

॥ ७ ॥

(७०३८)



वाहन-विभागः

वाहन-मंत्री

अश्वः

॥ १ ॥ ( अ० ११४११-१२ )

दीर्घतमा औषधः । त्रिष्टुप्, १-६ अगती ।

मा नो मित्रो वर्कणो अर्यमा  
आयुरिन्द्रं ऋमुक्षा मरुतः परि ण्यन् ।

यद्वाजिनो देवजातस्य सत्वेः  
प्रवक्ष्यामो विदधे धीर्योणि

यन्निर्णिजा रेवणसा प्रावृतस्य  
राति गृमीता मुखतो नयन्ति ।

सुप्रांडजो मेर्यद्विध्वरूप

इन्द्रापूष्णोः प्रियमर्ज्येति पाथः

पुप छागं, पुरो अश्वेन वाजिनां  
पुष्णो भागो नीयते विश्वदेव्यः ।

अमिप्रियं यत् पुरोलाशमर्धता  
त्यदेवने सौश्रवसाय जिन्वति

यज्जिह्वमृतशो देवयानं  
त्रिमानुपाः पर्यभ्यं नयन्ति ।

अत्रा पुष्णः प्रथमो भाग र्यति  
यज्ज देवभ्यः प्रतिधेययज्ञः

होताऽध्ययुरावया अग्निमिन्धो  
प्रावभाम उत शंस्ता सुविप्रः ।

तेन यश्चेन स्वर्रुतेन  
स्विष्टेन वक्षणा आ पूषध्वम्

यूपवस्का उत ये यूपवाहाः  
क्षपालं ये अश्वयुपाय तक्षति ।

ये चार्धेते पचने संभरन्ति  
उतो तेषामभिगूर्तिने इश्वतु

उप प्रागात् सुमन्येऽधायि मग्मं  
देवानामाशा उर्प क्षीतपृष्ठः ।

अश्वेनं धिमा ऋययो मदन्ति  
देवानो पुष्टे चक्रमा सुयधुम्

यद्वाजिनो वामं सुदानमर्धतो  
या शीर्षिण्या रशना रज्जुरस्य ।

यद्वा घास्य प्रभृतमास्येऽनु वृणं  
सर्षा ता ते अर्षि देवेष्वस्तु

यदश्वस्य ऋविषो मक्षिकाऽऽश  
यद्वा स्वरो स्वर्धितौ रितमस्ति ।

यज्जस्तयोः शमितुर्यज्ञलेपु  
सर्षा ता ते अर्षि देवेष्वस्तु

॥ ५ ॥

॥ १ ॥

॥ ६ ॥

॥ २ ॥

॥ ७ ॥

॥ ३ ॥

॥ ८ ॥

॥ ४ ॥

॥ ९ ॥

(५०१५)

यद्वर्धयमुदरस्यापवाति  
 य आमस्यं क्रवियौ गन्धो अस्ति ।  
 सुकृता तच्छमितीरः कृण्वन्तु  
 उत मेघं शृतपाकं पचन्तु  
 यत् ते गात्रादग्निना पच्यमानात्  
 अग्निं शूलं निहतस्यावधारयति ।  
 मा तद्रूप्यामा श्रियन्मा सुणेषु  
 देवेभ्यस्तदुशन्नयो रातमस्तु  
 ये वाजिनं परिपश्यन्ति एकं  
 य ईमाहुः सुतमिनिहरेति ।  
 ये चार्धतो मांसमिक्षामुपासत  
 उतो तेषामभिगूर्तिर्न हन्वतु  
 यक्षीक्ष्णं मांसपचन्या उज्जाया  
 या पात्राणि युष्मन् आलेचनानि ।  
 ऊष्मण्याऽपिधानां चरुणां  
 ब्रह्माः सुनाः परि मृत्यवर्धम्  
 निक्रमणं निपद्येनं धियतेनं यच्च पञ्चैशमर्षतः ।  
 यच्च पौषो यच्च घ्रासि जघास  
 सयां ता ते अर्पि देवेभ्यस्तु  
 मा त्वाऽग्निर्धनयीद् धूमगन्धिः  
 मोक्षा अर्जन्यमि विंक्तु जाग्रिः ।  
 इष्टं धीतमभिगूर्तिं चपदहृतं  
 तं देवासुः प्रति गृह्णात्यथर्वम्  
 यदभ्याय घासं उपस्तुणन्ति  
 अघीयासं या हिरण्यान्यस्मै ।  
 संदानमर्प्यन्तं पद्वीशं  
 प्रिया देवेभ्यो यामयन्ति  
 यत् ते सादे मईसा शरुतस्य  
 पाण्यो या कदाया या तुतोर्द ।  
 सुचेय ता हविषो अभ्यरेषु  
 सयां ता ते प्रक्रणा सुदयामि

॥ १० ॥

॥ ११ ॥

॥ १२ ॥

॥ १३ ॥

॥ १४ ॥

॥ १५ ॥

॥ १६ ॥

॥ १७ ॥

चतुर्विंशद् वाजिनो देवर्षयोः  
 वक्षीरव्यस्य स्वर्षितिः समेति ।  
 अर्चिष्ठद्रा गात्रां ध्युनां कृणोत  
 परं पचन्नुघ्र्या वि शस्त ॥ १८ ॥  
 एकस्त्वष्टुरव्यस्या विशस्ता  
 ह्य यन्तारां भवतस्तर्षं श्रुतुः ।  
 या ते गात्राणामृतुया कृणोमि  
 ताता पिण्डानां प्र जुहोम्यग्नौ ॥ १९ ॥  
 मा त्वां तपत् म्रिय आत्माऽपियन्तं  
 मा स्वर्धितिस्तन्वः आ तिष्ठिपत् ते ।  
 मा तं गृध्रविशस्ताऽतिहार्यं  
 छिद्रा गात्राण्यसिना मिषं कः ॥ २० ॥  
 न वा उं पतन्म्रियसे न रिप्यसि  
 देवो इदैषि पृथिमिः सुगोमिः ।  
 हरीं ते शुक्लां पृथ्वीं अमृतं  
 उपास्याद् वाजी धुरि रासमस्य ॥ २१ ॥  
 सुगर्ष्यं नो वाजी स्वर्ष्यं पुंसः  
 पुत्रां उत विश्वापुषं रयिम् ।  
 अनागास्त्यं नो अर्धितिः कृणोतु  
 क्षत्रं नो अर्धो वनतां हविष्मान् ॥ २२ ॥  
 ॥ २३ ॥ (अ० १।१६।१-१३) निवृत् ।  
 यदक्रन्दः प्रथमं जार्यमान  
 उद्यन्तमुद्रादुत वा पुरीषात् ।  
 श्येनस्य पक्षा इरिणस्य वाह  
 उं पस्तुत्यं मर्दि जातं ते अर्धम् ॥ २४ ॥  
 यमेनं दक्षं त्रित पनमायुनक्  
 इन्द्रं एणं प्रथमो अभ्यतिष्ठत् ।  
 गन्धर्वो अस्य रत्नानामगृह्णात्  
 सुपदर्थं यस्यो निर्गतष्ट ॥ २५ ॥

(७०८१)

असि यमो अस्यादित्यो अर्धेन  
 असि त्रितो गृहो न प्रतेन ।  
 असि सोमै न समया विपुक्त  
 आहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धनानि  
 त्रीणि त आहुर्दिवि बन्धनानि  
 त्रीण्यप्सु त्रीण्यन्तः समुद्रे ।  
 उतेव मे वरुणश्छन्दस्यर्धेन  
 यत्रा त आहुः परमं जनित्रम्  
 इमा ते वाजिघ्नमाजैनानां  
 आ शफानां सनितुर्निधानां ।  
 अत्रा ते भद्रा रक्षणा अषड्यं  
 ऋतस्य या अभिरक्षन्ति गोपाः  
 आत्मानं ते मनसाऽऽरादजानां  
 भवो दिवा पतर्यन्तं पतङ्गम् ।  
 शिरो अपश्यं पृथिविः सुगोभिः  
 अरेणुभिर्जहमान पतत्रि  
 अत्रा ते रूपमुत्तममपश्यं  
 जिगीषमाणमिप आ पुदे गोः ।  
 यदा ते मर्तो अनु भोगमानट्  
 आदिद् प्रसिष्टु ओषधीरजीगः  
 अतु त्वा रथो अनु मर्यो अर्धेन  
 अनु गावोऽनु भर्गः कृनीनाम् ।  
 अनु वातासुस्तव सुययमर्षिषुः  
 अतु देवा ममिरे धीर्यं ते  
 हिरण्यशृङ्गोऽयो अस्य पादा  
 मनोजया अवर इन्द्र आसीत् ।  
 देवा इदस्य हविरधमायन्  
 यो अर्पन्तं प्रथमो अथतिष्ठत्  
 ईर्मान्तासः सिलिकमथ्यमासुः  
 सं दूरणासो दिव्यास्तो अत्याः ।

हंसा इय ध्रेणिशो यतन्ते  
 यदाक्षिपुर्दिव्यमग्ममर्धाः ॥ १० ॥  
 तय शरीरं पतयिष्यध्वं  
 तय चित्तं घात इय धर्जीमान् । ॥ ३ ॥  
 तय शृङ्गाणि विष्टिता पुरुषा  
 अरण्येषु जर्भुराणा चरन्ति ॥ ११ ॥  
 उप प्रागाच्छसनं वाज्यर्या  
 देवद्रीचा मनसा दीध्यानः । ॥ ४ ॥  
 अजः पुरो नीयते नार्भिरस्य  
 अतु पश्चात् कुर्वो यन्ति देवाः ॥ १२ ॥  
 उप प्रागात् परमं यत् सुधस्यं  
 अर्यो अच्छा पितरं मातर च । ॥ ५ ॥  
 अद्या देवान्नुष्टमो हि गम्या  
 अथा शास्ते वाशुये वार्याणि ॥ १३ ॥  
 ॥ ३ ॥ ( ऋ० ७।३८।७-८ ;  
 मेधावर्णनसिद्धः । वाजिन. । त्रिष्टुप् ।  
 शं नो भवन्तु वाजिनो हवेषु  
 देवताता मितद्रवः स्वर्काः ।  
 जम्भयन्तोऽहिं वृक्षं रक्षोसि  
 सनेभ्यस्सद्युपयन्मीवाः ॥ ७ ॥  
 वाजैवाजेऽयत वाजिनो नो  
 धनेषु विप्रा अभुता ऋतज्ञाः ।  
 अस्य मध्यः पियत मादयंश्च  
 तुसा पात पृथिभिर्देवयानैः ॥ ८ ॥  
 ॥ ४ ॥ ( वा० य० ७।४७ )  
 यमार्य त्वा महो वरुणो ददातु  
 सोऽमृतत्वमशीय हयो दात्र पृथि  
 वयो महो प्रतिप्रद्वीत्रे ॥ ४७ ॥  
 ॥ ५ ॥ ( वा० य० ८।१९ )  
 यस्ते अभ्यसनिर्मक्षो यो गोसजि  
 तस्यं त इष्टयंजुष स्तुतस्तोमस्य  
 शास्तोफ्यस्योपहृतस्योपहृतो भक्षयामि ॥ १२ ॥  
 ( ७०५३ )



॥ ६ ॥ (वा० य० १६-१, १३ [उत्तरार्धः] - १५, १९)

अप्स्वन्तरमृतमप्लु भैषजमपामुत

प्रदास्तिष्वभ्या भवत वाजिनः

देवीरापो यो यं ऊर्मिः प्रतृतिः

कुकुन्मान् वाजसास्तेनायं वाजं सत् ॥ ६ ॥

यातो वा मनो वा गन्धर्वाः सप्तविंशतिः ।

ते अग्रेऽर्धमयुज्जस्ते अस्मिन्नुयमा दधुः ॥ ७ ॥

चातरंश्चा मघ वाजिन् युज्यमानं

इन्द्रस्येव दक्षिणः ध्रियैधि ।

युज्जन्तु त्या मरुतो विदधयेदसु

आ ते त्वष्टा प्लसु ज्वं दधातु

जयो यस्ते वाजिभिर्दितो शुद्धा यः

इयेने परीतो अचरन् पाते ।

तेन नो वाजिन् यलवान् यलेन

वाजजिघ्र भव समने च पायुषिणुः ।

वाजिनो वाजजितो वाजं स्रष्टिष्यन्तो

वृद्धस्पतेर्मागमवजिघ्रत

वाजिनो वाजजितोऽर्ध्वन रुक्नुयन्तो

योजना मिर्मानाः काष्ठा गच्छत

एव स्य वाजी क्षिपाणि नुरण्यति

प्रीयायौ वृद्धो अपिक्व आसनि ।

प्रतुं दधिका अनु स्रसनिष्यदत्

पथामइकारस्यन्यापनीफणन् स्वाहा

उत सांस्य ध्रुपतस्तुरण्यतः

पुणं न वेरन्त्याति प्रगधिनेः ।

इयेनस्येय ध्रजतो अदुसं पारि

दधिकाणः सुहोजा तरिप्रतः स्वाहा

आ मा वाजस्य प्रसयो जगम्यात्

एमे चावापृथिवी विभ्वरूपे ।

आ मा गन्तां पितरां मानरा च

आ मा सोमो अमृतत्वेन गम्यात् ।

वाजिनो वाजजितो वाजं ससृषासो

वृद्धस्पतेर्मागमवजिघ्रत निमृजानाः ॥ १९ ॥

॥ ७ ॥ (वा० य० १११०, १५, १८-२०, ४४, ४६)

प्रतृत्तं वाजिघ्रा द्रवं वरिष्ठाभनुं संवतम् ।

द्विवि ते जन्म परममन्तरिक्षे

तव नामिः पृथिव्यामग्निं योनिरित् ॥ १२ ॥

प्रतृत्तं वरिष्ठाभनुं वरिष्ठाभनी

रुद्रस्य गाणपत्यं मयोभूरेहि ।

उर्वन्तरिक्षं योहि स्यस्तिगन्तुतिः

अमयानि कृण्वन् पृष्णा सयुजा सुह ॥ १५ ॥

आगत्य वाज्यर्चान्ध सया मृगो वि धूनुते ।

अग्निं सुधस्ये महति चक्षुषा नि धिक्कीपते ॥ १८ ॥

आक्रम्य वाजिन् पृथिवीमग्निमिच्छ रुचा त्वम् ।

भूम्यां वृत्वार्य नो ब्रूहि यतः खनेन तं ययम् ॥ १९ ॥

घोस्ते पृष्ठं पृथिवी सधस्य

आत्माऽन्तरिक्षं समुद्रो योनिः ।

॥ ९ ॥ विख्याय चक्षुषा स्वमग्निं तिष्ठ पृतन्यतः ॥ २० ॥

उत्क्राम ब्रूते सौमगाय

॥ १३ ॥ अस्मानुस्थानाद् द्रविणोदा वाजिन् ।

धयं स्थां समुतौ पृथिव्या

अग्निं खनेन उपस्ये अस्याः ॥ २१ ॥

उदंक्रमीद् द्रविणोदा वाज्यर्चाः

॥ १४ ॥ सुलोकं सुहृतं पृथिव्याम् ।

ततः खनेन सुप्रतीकमग्निं

स्यो रुद्राणां अग्निं नार्कमुत्तमम् ॥ २२ ॥

स्थितो मय वीद्वद्वा आशुमर्ग वाज्यर्चन् ।

पृथुर्मेव सुप्रदस्वमग्नेः पुंरीप्यार्हणः ॥ ४४ ॥

प्रेतुं वाजी कर्निकद्रुप्रानन्दद्राममः पर्या ।

अर्यग्निं पुंरीप्यं मा पाषाण्युगः पुरा ।

वृषाऽग्निं वृषेण अर्यग्न्यां गग्नें समुद्रिष्यम् ।

अग्ने आ वादि धीतये ॥ ४६ ॥

॥ ८ ॥ ( वा० य० २१।३-४, १९ )

अभिधा अस्ति भुवनमसि युन्ताऽसि धृता ।

स त्वमग्निं वैभ्यानरथं सप्रथसं गच्छ स्वाहाकृतः ३

स्वगा त्वां देवेभ्यः प्रजापतये

ब्रह्मन्मभ्यं भन्स्यामि देवेभ्यः

प्रजापतये तेनं राच्यासम् ।

तं वधान देवेभ्यः प्रजापतये तेनं राक्षुहि ॥ ४ ॥

विभूर्माषा प्रभुः विघ्नाऽभ्योऽसि हयोऽस्यत्वाऽसि

मयोऽस्यर्वाऽसि सतिरसि

वाज्यसि वृषाऽसि नृमणा असि ।

ययुर्नामाऽसि शिशुर्नामाऽसि

आदित्यानां पत्वाऽग्निविहि ।

देवा आशापाला एतं देवेभ्योऽभ्यं मेधाय प्रोक्षितं

रक्षते—ह रक्षितं—दिह रमतां

इह धृतिं—दिह स्वधृतिः स्वाहा ॥ १९ ॥

॥ ९ ॥ ( वा० य० २३।५-७, १४-१७, २०-२१, २४-३७, ३९-४४ )

युजन्ति ब्रह्ममरुपं चरन्तं परि तस्थुपः ।

रोचन्ते रोचना विधि ॥ ५ ॥

युजन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे ।

शोणा धूणू नृघाहसा ॥ ६ ॥

यथातो ब्रूयो अगनीगन् प्रियामिन्द्रस्य तन्वम् ।

एतथं स्तोत्रनेनं पृथा पुनरथ्यमार्धतयासि नः ॥ ७ ॥

सधंदितां रुदिमना रथः सधंदितां रुदिमना हयः ।

सधंदितां अत्स्यत्सुजा ब्रह्मा सोमपुरोगवः ॥ १४ ॥

स्ययं वाजिंस्तम्यं कल्पयम्य

स्ययं यजम्य स्ययं जुपस्य ।

महिमा तेऽग्नये न सुप्रदो

न पा उ एतमिप्रयते न रिप्यसि

देवां२ रदपि पथिभिः सुगेभिः ।

यत्रासते सुहृतो यत्र ते पुयुः

तत्र ऽपा देवः संविता दधातु

॥ १५ ॥

॥ १६ ॥

अग्निः पशुरासीत् तेनायजन्त स एतल्लोकमजयत्

यस्मिन् अग्निः स तं लोको भविष्यति

तं जैष्यसि पिबेता अपः ।

वायुः पशुरासीत् तेनायजन्त स एतल्लोकमजयत्

यस्मिन् वायुः स तं लोको भविष्यति

तं जैष्यसि पिबेता अपः ।

सूर्यः पशुरासीत् तेनायजन्त स एतल्लोकमजयत्

यस्मिन् सूर्यः स तं लोको भविष्यति

तं जैष्यसि पिबेता अपः ॥ १७ ॥

ता उमौ चतुरः पदः संप्रसारयाव

स्वर्गे लोके प्रोर्णवाथां

वृषां वाजी रेतोघा रेतो दधातु ॥ २० ॥

उत्सकथ्या अव गुदं धेहि समर्द्धि चारया वृषन् ।

य स्त्रीणां जीविमोर्जनः ॥ २१ ॥

त्रिपदा या अतृप्पदास्त्रिपदायाश्च पदपदाः ।

विच्छन्वा याश्च सच्छन्दाः

सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ३४ ॥

महानाम्यो रेवत्यो विभ्वा आशाः प्रभुर्वरीः ।

मैधीर्विद्युतो वाचः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ३५ ॥

नार्यस्ते पत्न्यो लोम विचिन्वन्तु मनीषया ।

देवानां पत्न्यो दिशः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ३६ ॥

रजता हरिणीः सीसा युजो युज्यन्ते कर्मभिः ।

अभ्यस्य घाजिनस्त्याचि सिमाः शम्यन्तु शर्म्यन्तीः ३७

कस्त्या छर्पति कस्त्या विशास्ति

कस्ते गात्राणि शम्यति ।

क उ ते शमिता क्विः ॥ ३९ ॥

ऋतयस्त ऋतुया पथं शमितारो वि शासतु ।

संयत्सरस्य तेजसा शमीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ४० ॥

अर्धमासाः परं यि ते मासा आ च्छर्पन्तु शर्म्यन्ताः ।

अहोरात्राणि मरुतो विलिङ्ग्यं यदयन्तु ते ॥ ४१ ॥

(४०१)

दैव्या अर्धव्यवस्था चक्ष्यन्तु वि च शासतु ।  
गात्राणि पर्वशस्ते सिमाः कृण्वन्तु शर्मन्तीः ॥४२॥

द्यौस्तै पृथिव्यन्तरिक्षं वायुश्चिद्भ्रं पृणातु ते ।  
सूर्यस्ते नक्षत्रैः सह लोकं कृणातु साधुया ॥४३॥

शो ते परैभ्यो गार्ग्येभ्यः शमस्त्वर्चरेभ्यः ।  
शमस्थभ्यो मज्जभ्यः शर्म्भस्तु तन्वै तव ॥४४॥

॥ १० ॥ (घा० य० १९।४४)

तीयान् घोषान् कृण्वते वृषपाणयो  
अद्यथा रथेभिः सह वाजयन्तः ।  
अधुक्कामन्तः प्रपदैरभिर्मान्  
क्षिणन्ति शत्रून् रत्नपटययन्तः ॥४४॥

॥ ११ ॥ (अथर्व० ६।१९।३)  
अथर्वो । त्रिष्टुप् ।

तनूयै वाजिन् तन्वै नयन्ती  
याममसभ्य धावतु शर्म तुभ्यम् ।  
अर्द्धतो महो धूर्वणां द्वयो  
विधां ध्व ज्योतिः स्वमा मिमीयात् ॥ ३ ॥

॥ १२ ॥ (अथर्व० १९।१५।१)  
गोपयः । अनुष्टुप् ।

अभ्रान्तस्य त्या मनसा युनिजिं ग्रथमस्य च ।  
उत्कूलमुद्बुद्धो मयोदुह प्रति धायतात् ॥ १ ॥

॥ १३ ॥ (साम० ४।३५)  
अण-प्रचदस्य । पुर लणिक् ।

३ १ ३ ३ १ २ ३ १ २  
वाधिर्मर्या आ वाजं वाजिनो  
३ १ २ २ ३ २  
धामं देवस्य सयितुः सयम् ।  
३ १ २  
स्वर्गा अर्थन्तो जयत ॥ ९ ॥

फल्गु स्वस्तिः ।

॥ १ ॥ (अ १०।१३।१५-१६)

(१-२) वयः प्लात । १५ अगती त्रिष्टुप् । १६ त्रिष्टुप् ।

स्वस्ति नः पृथ्यासु धर्म्बसु  
स्वस्त्यप्सु वृजने स्वर्वति ।  
स्वस्ति नः पुत्रह्येषु योनिषु  
स्वस्ति राये मरुतो दधातन ॥ १५ ॥  
स्वस्तिरिद्धि प्रपये श्रेष्ठा  
रेफणस्वत्यभि या वाममेति ।  
सा नो अमा सो अरणे नि पातु  
स्वायेशा भवतु देवर्गोपा ॥ १६ ॥

॥ २ ॥ (अथर्व० ६।४८।१-३)

अंगिरा प्रचेताः । १ ऐयेन, २ अमु, ३ एवा (स्वस्ति  
वाचनम्) । लणिक् ।

इयेनोऽसि गायत्रच्छन्दा अनु त्वा रमे ।  
स्वस्ति मा सं यद्वास्य यद्वास्योद्वि स्वाहा ॥ १ ॥  
अमुर्गसि जगच्छन्दा अनु त्वा रमे ।  
स्वस्ति मा सं यद्वास्य यद्वास्योद्वि स्वाहा ॥ २ ॥  
वृषोऽसि त्रिष्टुच्छन्दा अनु त्वा रमे ।  
स्वस्ति मा सं यद्वास्य यद्वास्योद्वि स्वाहा ॥ ३ ॥

॥ ३ ॥ (अथर्व० ७।१८।१)

मेधातिथिः । वेदः (स्वस्ति) । त्रिष्टुप् ।

वेदः स्वस्तिर्दुष्णः स्वस्तिः  
परशुर्वेदिः परशुर्नैः स्वस्तिः ।  
हविष्कृतो यक्षियां यज्ञकामाः  
ते देयास्तो यज्ञमिमं जुषन्ताम् ॥ १ ॥

॥ ४ ॥ (अथर्व० ७।५५।१)

मृगः । इन्द्रः [ मार्गस्वस्तियनम् ] । तिराट् परोक्षिक् ।

ये ते पन्थानोऽयं द्वयो येभिर्विष्टमैरयः ।  
तेभिः सुमन्या र्धेदि नो वसो ॥ १ ॥

(७।१००)



मातृभूमि

# पृथिवी

॥ १ ॥ ( अ० १।११।१५ )

मेधासिधिः काण्वः । गायत्री ।

स्योना पृथिवि भवानुक्षरा निवेशनी ।

यच्छा नः शर्म सप्रथः

॥ १५ ॥

॥ २ ॥ ( अ० ५।८४।१-२ )

मौमोऽग्निः । अत्रुष्टु ।

बद्धिस्था पर्येतानां पिद्रं विभर्वि पृथिवि ।

प्र या भूमिं प्रयत्यति

मग्ना जिनोपि मदिनि

॥ १ ॥

स्नोमांसस्या पिचारिणि प्रति घोमन्यक्तुभिः ।

प्र या याजुं न देपन्तं पेदमस्यस्यर्जुनि ॥ २ ॥

दृग्दा विद्या यनस्पतीन् इमुया दध्प्योर्जसा ।

यत् ते अधस्यं विद्यतो विद्यो वपेन्ति युष्टयः ॥ ३ ॥

॥ ३ ॥ ( या० य० ४।११ )

इयं ते पृथिवी तनूरपो मुंयामि न प्रजाम् ।

अरुहोमुचः स्यादोहताः

पृथिवीमा विदात पृथिव्या सम्भवं

॥ १३ ॥

॥ ४ ॥ ( या० य० ५।९ )

तुनावनी मेऽसि पितावनी मेऽस्यप्यताग्मा

नभिनादप्यताग्मा व्ययितात्

॥ ९ ॥

॥ ५ ॥ ( या० य० ११।३९ )

हं ते वायुमीतृभिर्वा दधातु

श्मनावा ददयं यद्विर्बलम् ।

यो देवानां चरसि प्राणयेन

कस्मै देव वर्यडस्तु तुभ्यम्

॥ ३९ ॥

॥ ६ ॥ ( या० य० १३।१८ )

भूरसि भूमिरस्यदितिरसि

विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्मी ।

पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दधेह

पृथिवी मा हिंसेः

॥ १८ ॥

॥ ७ ॥ ( या० य० २२।१७ )

पृथिव्ये स्वाहा

॥ ३७ ॥

॥ ८ ॥ ( या० य० ३७।५, १९ )

इत्यम्रं आसीन्मरास्यं तेऽद्य शिरौ

राष्यासं देवयर्जने पृथिव्याः ।

मन्वायं त्वा मरास्यं त्वा क्षीणं

॥ ५ ॥

अनाधृष्टा पुरस्तादुत्तेराधिपत्य आयुं मे दा

पुत्रपती दक्षिणत इन्द्रस्याधिपत्ये प्रजां मे दा ।

सुषमा पश्चादेवस्य सवितुराधिपत्ये चरमं दा

भार्गवतिरक्तलो धातुराधिपत्ये रावस्यो मे दा ।

विष्पतिरुपरिष्टादृष्टस्तेराधिपत्य भोजो मे दा

विष्वाभ्यो मा नापुम्यस्यादि मनोरथाणि ॥ १२ ॥

(०।१८)

॥ ९ ॥ वा० य० (०१-३)

पृथिवि मातर्मो मां हि संस्रामो अहं त्याम ॥ २३ ॥

॥ १० ॥ (अथर्व० ३।१९।८)

चरातकः । चराष्टाद्वहती ।

भूमिं धृवा प्रति गृहात्यन्तरिक्षमिदं महत् ।

माऽहं प्राणेन माऽऽत्मना

मा प्रजया प्रतिगृह्य वि राधिपि

॥ ८ ॥

॥ ११ ॥ (अथर्व० ४।१०।५)

शुकः । त्रिष्टुप् ।

येऽधस्तात्पुङ्गवति जातयेदो

ध्रुवायां त्रिशोऽभिदासंस्त्यस्मान् ।

भूमिं मृत्वा ते पराजो व्ययन्तां

प्रत्यर्गोनान् प्रतिसुरेणं हन्मि

॥ ५ ॥

॥ १२ ॥ (अथर्व० ७।२७।१)

नेयातिथिः । इडा । त्रिष्टुप् ।

इडेवास्माँ अनु वस्तां प्रतेन

यस्याः पदे पुनर्ते देवयन्तः ।

घृतपर्वी शम्भ्वरी सोमं पूषा

उप यज्ञमस्थित वैदधयेयी

॥ १ ॥

॥ १३ ॥ (अथर्व० ११।१।१-६३)

अथर्वी । भूमिः । त्रिष्टुप्, १ मुरिक्, ४-६, १०, १८ अथर्व-  
साना वदपदा अगती; ७ प्रस्तारपंक्तिः; ८, ११ अथर्व० वद-  
विराट्पङ्क्तिः; ९ पराऽनुष्टुप्; १२-१३, १५ पञ्चपदा शकरी  
(१२-१३ अथर्व०); १४ महावृहती; १६, २१ एकपद-  
छान्ना त्रिष्टुप्, १८ अथर्व० वद- त्रिष्टुबनुष्टुगमातिशयशकरी,  
११-२० पुरोवृहती (२० विराट्); २२ अथर्व० वद- विराट्-  
तिशयशकरी; २३ पञ्चपदा विराट्तिशयशकरी; २४ पञ्च- अनुष्टुगमा  
अगती; २५ अथर्व० छान्ना त्रिष्टुबनुष्टुगमातिशयशकरी; २६-२८,  
३३, ३५, ३९-४१, ५०, ५३-५४, ५६, ५९, ६३ अनुष्टुप्  
(पुरोवृहती); ३० विराट् गायत्री; ३२ पुरस्तात्त्रयोतिः; ३४  
अथर्व० वद- त्रिष्टुबनुष्टुगमातिशयशकरी; ३६ विपरीतपादकदमा  
पंक्तिः; ३७ अथर्व० पञ्च- शकरी; ३९ अथर्व० वद- ककु-  
म्भती शकरी; ४२ स्वराऽनुष्टुप्; ४३ विराटास्तारपंक्तिः;  
४४-४५, ४९ अगती; ४६ वद- अनुष्टुगमा परा शकरी;

४७ वद- त्रिष्टुबनुष्टुगमा पराऽतिशयशकरी; ४८ पुरोऽनुष्टुप्;  
५१ अथर्व० वद- अनुष्टुगमा ककुम्भती शकरी; ५२ पञ्च-  
अनुष्टुगमा पराऽतिशयशकरी; ५३ पुरोऽतिशयशकरी अगती; ५८  
पुरस्ताद्वृहती; ६१ पुरोवृहती; ६२ परा विराट् ।

सत्यं बृहद्वतमुग्रं वीक्षा तपो

ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति ।

सा नो मृतस्य मर्त्यस्य परनी

उवं लोकं पृथिवी नः कृणोतु

॥ १ ॥

असंघाद्यं धृष्टतो मानवानां

यस्यां उद्धतः प्रवर्तः सुमं बहु ।

नानावीर्या मोपघीर्या विमर्ति

पृथिवी नः प्रथतां राघ्यतां नः

॥ २ ॥

यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो

यस्यामर्गं कृष्टयः संवन्धुः ।

यस्यामिदं जिम्बन्ति प्राणदेज्ज्व

सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु

॥ ३ ॥

यस्यामर्गं कृष्टयः संवन्धुः ।

या विमर्ति बहुधा प्राणदेज्ज्व

सा नो भूमिर्गोप्यधर्षे दधातु

॥ ४ ॥

यस्यां पूर्वं पूर्वजना विचक्रिरे

यस्यां देवा असुरानभ्यवर्चतयन् ।

गवामभ्यानां वयंसस्य धिया

भगं बर्षैः पृथिवी नो दधातु

॥ ५ ॥

विश्वंमरा र्सुधाचीं प्रतिष्ठा

द्विरण्यधस्ता अगतो निवेशनी ।

वैदवानं बिभ्रती भूमिरासि

इन्द्रं ऋषमा द्रविणे नो दधातु

॥ ६ ॥

यां रक्षन्त्यस्वप्ना विदध्वानां

देवा भूमिं पृथिवीमप्रमादम् ।

सा नो मर्षु मित्रं वृद्धामयो उक्षतु बर्षसा ॥ ७ ॥

या ण्वेऽपि सलिलमप्र आसीद्	तवेमे पृथिवि पञ्च मानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं
यां मायाभिरन्वचरन् मनीषिणः ।	मर्त्येभ्य उच्यन्त्यस्यो रश्मिभिरातुनोति ॥ १५ ॥
यस्या हृदयं परमे ध्योऽमन्तत्येनावृतममृतं पृथिव्याः	ता नः प्रजाः सं दुहतां समप्रा
ना नो भूमिस्त्वियं बलं राष्ट्रे दधातुत्तमे ॥ ८ ॥	वाचो मधुं पृथिवि धेहि मह्यम् ॥ १६ ॥
यस्यामार्यः परिचराः संमानीः	विद्वस्वस्व मातरमोपधीनां ध्रुवां
अहोरात्रे अग्रमादं क्षरन्ति ।	भूमिं पृथिवीं धर्मेणा धृताम् ।
सा नो भूमिर्भरिधार पयो दुहां	शिवां स्योनामनु चरेम विभवा ॥ १७ ॥
अयो उक्षतु पयसा ॥ ९ ॥	महत् सधस्यं महती यमूयिष
यामभिवनायमिमातां पिप्पुयेस्यां विचक्रमे ।	महान् वेगं एजयुर्वेपयुष्टे ।
इन्द्रो यां चक्र आत्मनेऽनमित्रां शचीपतिः ।	महांस्त्वेन्द्रो रक्षत्यग्रमादम् ।
या नो भूमिर्पि सृजतां माता पुत्रार्य मे पयः ॥ १० ॥	सा नो भूमे प्र रौचय हिरण्यस्येव सुवशि
गिर्यमने पयसा हिमवन्तो	मा नो दिक्षत वक्षन् ॥ १८ ॥
अरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु ।	अग्निर्मम्यामोपधीप्यशिमार्पो बिभ्रत्यगिर्यमस्तु ।
बधुं वृक्षां रोहिणीं विभ्ररूपां	अग्निरन्तः पुरं पेपु गोप्यद्वेप्युत्तर्यः ॥ १९ ॥
ध्रुवां भूमिं पृथिवीमिन्द्रगुताम् ।	अग्निर्विष आ तपत्यग्नेर्देवस्योपं न्तरिक्षम् ।
अज्ञातोऽहं तो अज्ञातोऽप्येष्टां पृथिवीमहम् ॥ ११ ॥	अग्निं अतीत्य इगधते हव्यवाहं पतमिदम् ॥ २० ॥

यस्ते गन्धः पुरुषेषु स्त्रीषु पुंसु मणो रविः ।  
 यो अश्वेषु वीरेषु यो मृगेषु हस्तिषु ।  
 कन्यायां वचो यद् भूमे  
 तेनास्मा अपि सं संजु मा नो दिक्षत कश्चन ॥२५॥  
 शिला भूमिरदमा पांसुः सा भूमिः संघृता घृता ।  
 तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरं नमः ॥ २६ ॥  
 यस्यां धृक्षा दानस्पत्या धृवास्तिष्ठन्ति विश्वहा ।  
 पृथिवी विश्वधायासं धृतामच्छावदामसि ॥ २७ ॥  
 उदीराणा उतासीनास्तिष्ठन्तः प्रकामन्तः ।  
 पन्नपां दक्षिणस्रव्याभ्यां मा व्यथिष्यहि भूम्याम् २८  
 विमृग्वर्षी पृथिवीमा वदामि  
 क्षमां भूमिं ब्रह्मणा वावृधानाम् ।  
 ऊर्जं पुष्टं पिभ्रतीमन्नम्रागं  
 घृतं त्वाऽमि नि पीदम भूमे ॥ २९ ॥  
 शुद्धा न आपस्तन्वेऽक्षरन्तु  
 यो नः सेदुरप्रिये तं नि दमः ।  
 पृथिव्यै पृथिवी मोर्युनामि ॥ ३० ॥  
 यास्ते प्राचीः प्रविशो या उदीचीः  
 यास्ते भूमे अधरायाश्च पश्चात् ।  
 स्योनास्ता मह्यं चरते भवन्तु  
 मा नि पतं भुवने क्षिप्रियाणः ॥ ३१ ॥  
 मा नः पश्चान्मा पुरस्तात्  
 जुदिष्ठा मोक्षार्दधरादुत ।  
 स्युस्ति भूमे नो भव मा विदन्  
 परिपुन्यन्तो वरीयो यावया वधम् ॥ ३२ ॥  
 यावत् तेऽमि विपश्यामि भूमे सूर्येण मेदिना ।  
 तावन्मे चक्षुर्मा मेघोर्त्तारमुत्तरां समाम् ॥ ३३ ॥  
 यच्छयानः पर्यावतं दक्षिणं स्रव्यममि भूमे पार्श्वम् ।  
 उत्तानास्त्या प्रतीचीं यत् पृथीमिरधिरोमहे ।  
 मा हिंसीस्तत्र नो भूमे सर्वस्य प्रतिशीवहि ॥३४॥

यत् ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु ।  
 मा ते भूमिं विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पयम् ॥ ३५ ॥  
 ग्रीष्मस्ते भूमे वर्षाणि शरद्धमन्तः शिशिरो वसन्तः ।  
 श्रुतवस्ते विहिता ह्ययनीः  
 अहोरात्रे पृथिवि नो दुहाताम् ॥ ३६ ॥  
 यार्प स्रपे विजमाना विमृग्वरि  
 यस्यामासंघृता यो ये अप्सवन्तः ।  
 पप दस्युन् ददती देवपीयून्  
 इन्द्रं वृणाना पृथिवी न वृत्रम् ।  
 शक्राय दधे वृषमाय वृष्णे ॥ ३७ ॥  
 यस्यां सदेहविर्धाने यूयो यस्यां निमीयते ।  
 ब्रह्माणो यस्यामर्चन्त्यग्निः साक्षा यजुर्विदः ।  
 युज्यन्ते यस्यामृत्विजः सोममिन्द्राय पातये ॥३८॥  
 यस्यां पूर्वे भूतकृत ऋषयो गा उदानुसुः ।  
 सप्त स्रवेण वेधसो यधेन तपसा सह ॥ ३९ ॥  
 सा नो भूमिप दिशतु यद्वनं कामयामहे ।  
 मणो अनुप्रयुङ्क्तामिन्द्रं पतु पुरोगवः ॥ ४० ॥  
 यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या ज्यैष्ठ्याः ।  
 युज्यन्ते यस्यामाक्रन्दो यस्यां वदति दुन्दुभिः ।  
 सा नो भूमिः प्र पुदतां  
 स्रपक्षानस्रपक्षं मा पृथिवी कृणोतु ॥ ४१ ॥  
 यस्यामन्नं व्रीहियवौ यस्यां इमाः पञ्च कृष्यः ।  
 भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु चर्यमैदसे ॥ ४२ ॥  
 यस्याः पुरो देवकृताः क्षेत्रे यस्यां विकुर्वते ।  
 प्रजापतिः पृथिवी विश्वर्गमा  
 आशामाशां रण्यां नः कृणोतु ॥ ४३ ॥  
 निधिं विभ्रती बहुधा गुहा वसुं  
 मणिं हिरण्यं पृथिवी ददातु मे ।  
 वसुनि नो वसुदा रासमाना  
 देवी दधातु सुमनस्यमाना ॥ ४४ ॥

या ण्वेऽधि सलिलमग्र आसीद्  
 यां मायाभिरग्वचरन् मनीषिणः ।  
 यस्या हृदयं परमे व्योमन्सत्येनावृतममृतं पृथिव्याः  
 सा नो भूमिस्त्वियं बलं राप्ते दधातुस्ते ॥ ८ ॥  
 यस्यामार्यः परिचराः संमानीः  
 बंहोरात्रे अग्रमादं क्षरन्ति ।  
 सा नो भूमिर्मरिधारु पयो दुह्नां  
 अयो उक्षतु वर्षसा ॥ ९ ॥  
 यामभ्वनाचमिमातां विष्णुर्वस्यां विचक्रमे ।  
 इन्द्रो यां चक्र आत्मनैऽनमित्रां शचीपतिः ।  
 सा नो भूमिर्पि सृजतां माता पुत्राय मे पर्यः ॥ १० ॥  
 गिर्यस्ते पर्यता हिमयन्तो  
 अरण्यं ते पृथिवि स्थोनमस्तु ।  
 यधुं कृष्णां रविर्हिर्णा विभ्वरूपां  
 ध्रुवां भूमिं पृथिवीमिन्द्रगुप्ताम् ।  
 अज्ञीतोऽहोतु अज्ञतोऽप्यष्टां पृथिवीमहम् ॥ ११ ॥  
 यत् ते मर्षं पृथिवि यश्च नभ्यं  
 याम्न् ऊर्जस्तन्याः संपमृषुः ।  
 तारुं नो धेनुमि नः पयस्य  
 माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः ।  
 पुञ्ज्यः पिता न उ नः पिपतु ॥ १२ ॥  
 यस्यां वेदिं परिगृह्णन्ति भूम्यां  
 यस्यां पुषं तृप्यते विभ्वर्कमाणाः ।  
 यस्यां मीयन्ते स्वरेषः पृथिव्यां  
 ऊषाः क्षुद्रा साहुरयाः पुस्तान् ।  
 सा नो भूमिर्वर्षेष्टपमाना  
 यो नो देवं पृथिवि या दृप्तग्यान्  
 योऽग्निरात्माग्ननं यो वुधेनं ।  
 न नो भूमे गन्धर्व पूर्वहावति  
 स्वर्गनागनदि अरन्ति मर्षाः  
 न दितां विदुस्त्वयं वसुन्धरा ।

तवेमे पृथिवि पञ्च मानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं  
 मर्त्येभ्य उद्यन्तसूर्यो रश्मिभिरातुनोति ॥ १५ ॥  
 ता नः प्रजाः सं दुहतां समग्रा  
 वाचो मधुं पृथिवि धेहि मह्यम् ॥ १६ ॥  
 विश्वस्वं मातरमोपधीनां ध्रुवां  
 भूमिं पृथिवीं धर्मेणा धृताम् ।  
 शिवां स्थोनामनु चरेम विश्वहा ॥ १७ ॥  
 महत् सधस्थं महती बभूविध  
 महान् वेगं एजधुर्वेपुष्टे ।  
 महांस्त्वेन्द्रो रक्षत्यग्रमादम् ।  
 सा नो भूमे प्र रौचय हिरण्यस्येव सुंदशि  
 मा नो द्विषत कश्चन ॥ १८ ॥  
 अग्निर्मय्यामोर्पधीष्वभिमापो विभ्रत्यग्निरहस्तु ।  
 अग्निरन्तः पुरुषेषु गोप्यह्यैष्यन्नयः ॥ १९ ॥  
 अग्निर्दिय आ तपत्यस्तेर्वैवस्थोर्वैऽन्तरिक्षम् ।  
 अग्निं मर्तांस इन्धते हव्यवाहं घृतमिदम् ॥ २० ॥  
 अग्निषांसाः पृथिव्यः सितहः  
 त्विषीमन्तं संशितं मा कृणोतु ॥ २१ ॥  
 भूम्यां देवेभ्यो ददति यधं हव्यमरैकतम् ।  
 भूम्यां मनुष्या जीवन्ति स्वधयाऽप्रेन मर्त्याः ।  
 सा नो भूमिः प्राणमायुर्वधातु ॥ २२ ॥  
 जुरदधि मा पृथिवी कृणोतु  
 यस्ते गन्धः पृथिवि संवभू  
 यं विधृत्योर्पधयो यमार्यः ।  
 यं गन्धुर्वा अपरतरस्य भेजिरे  
 तेन मा नुरग्निं कृणु मा नो द्विषत कश्चन ॥ २३ ॥  
 यस्ते गन्धः पुष्करमाविशे  
 यं पृथिव्याः सुयोधो विधादे ।  
 अर्षण्याः पृथिवि गन्धमग्रे  
 तेन मा नुरग्निं कृणु मा नो द्विषत कश्चन ॥ २४ ॥



यस्ते गन्धः पुरुषेषु स्त्रीषु पुंसु मणो कचिः ।  
 यो अश्वेषु वीरेषु यो मृगेषु हस्तिषु ।  
 कन्यायां यच्चो यद् भूमे  
 तेनास्मा अपि सं रज मा नो विद्वत् कञ्चन ॥२५॥  
 शिला भूमिरदमा पांसुः सा भूमिः संपृता धृता ।  
 तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरं नमः ॥ २६ ॥  
 यस्यां वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तितृण्ति विश्वहा ।  
 पृथिवीं विश्वचायसं धृतामच्छावदामसि ॥ २७ ॥  
 उदीराणा उतासीनास्तितृण्तः प्रकामन्तः ।  
 पद्भ्यां वक्षिणसुव्याभ्यां मा व्यथिष्महि भूम्याम् २८  
 विमृश्वरीं पृथिवीमा वदामि  
 क्षमां भूमिं ब्रह्मणा वावृधानाम् ।  
 ऊर्जं पुष्टं विश्रंतीमन्नभानं  
 धृतं त्वाऽमि नि पीदेम भूमे ॥ २९ ॥  
 शुद्धा न आपस्तन्वे क्षन्तु  
 यो नः सेदुरप्रिये तं नि दध्मः ।  
 पृथिवीं पृथिवीं मोक्षुनामि ॥ ३० ॥  
 यास्ते प्राचीः प्रविशो या उदीचीः  
 यास्ते भूमे अधराद्याश्च पश्चात् ।  
 स्योनास्ता मह्यं चरते भयन्तु  
 मा नि पतं भुवने शिश्रियाणः ॥ ३१ ॥  
 मा नः पश्चात्मा पुरस्तात्  
 लुदिष्टा मोक्षरादधरादुत ।  
 स्वस्ति भूमे नो मय मा विद्वत्  
 परिपन्थिनो वर्तियो यावया वधम् ॥ ३२ ॥  
 यावत् तेऽमि विपदयामि भूमे सूर्येण मेदिना ।  
 तावन्मे चक्षुर्मा मेष्टोत्तरामुत्तरां समां ॥ ३३ ॥  
 यच्छातः पर्यावर्ते दक्षिणं सुव्यममि भूमे पावर्धम् ।  
 उत्तानास्त्या प्रतीची यत् पृथीमिरथिशेमेहे ।  
 मा हिंसीत्तत्र नो भूमे सर्वस्य प्रतिशीवदि ॥३४॥

यत् ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोदतु ।  
 मा ते मम विमृश्वरी मा ते हृदयमपिपम् ॥ ३५ ॥  
 प्रीप्सते भूमे वर्षाणि शरद्वेमन्तः शिशिरो वसन्तः ।  
 श्रुतवस्ते विहिता हायनीः  
 अहोरात्रे पृथिवि नो दुहाताम् ॥ ३६ ॥  
 याप सपे विजमाना विमृश्वरी  
 यस्यामासंक्षयो ये अप्स्यन्तः ।  
 पपु दस्यन् ददती देवपीयून्  
 इन्द्रं वृणाना पृथिवी न वृत्रम् ।  
 शक्राय वक्षे वृषमाय वृत्ते ॥ ३७ ॥  
 यस्यां सदाहविर्धाने यूयो यस्यां निमीयते ।  
 ब्रह्माणो यस्यामर्चन्त्यग्निः साक्षा यजुर्विदः ।  
 युज्यन्ते यस्यामृत्विजः सोममिन्द्राय पातये ॥३८॥  
 यस्यां पूर्वे भुतकृत ऋषयो गा उदानुशुः ।  
 सप्त सुत्रेण वेधसो यशेन तपसा सह ॥ ३९ ॥  
 सा नो भूमिर्वा दिशतु यद्वनं कामयामहे ।  
 मणो अनुप्रयुङ्क्तामिन्द्रं पतु पुरोगवः ॥ ४० ॥  
 यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या व्यैलयाः ।  
 युज्यन्ते यस्यामाक्रन्दो यस्यां वदति दुन्दुभिः ।  
 सा नो भूमिः प्र शुदतां  
 सपत्नानसपत्नं मा पृथिवी रुणोतु ॥ ४१ ॥  
 यस्यामर्चं ब्रीहियवौ यस्यां इमाः पञ्च कृष्टयः ।  
 भूर्भुव पर्जन्यपत्न्ये नमोऽस्तु धर्पमेदसे ॥ ४२ ॥  
 यस्याः पुरो देवकृताः क्षेत्रे यस्यां विकुर्वते ।  
 प्रजापतिः पृथिवीं विश्वगर्भा  
 आशमाशं रण्यो नः रुणोतु ॥ ४३ ॥  
 निधिं विश्रंती बहुधा गुहा वसुं  
 मणिं हिरण्यं पृथिवी ददातु मे ।  
 वसुनि नो वसुदा रासमाना  
 देवी दधातु सुमनस्यमाना ॥ ४४ ॥

जनं विभ्रती बहुधा विवाचसं  
नानाधर्मोणं पृथिवी यथाकैसम् ।

सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां

ध्रुवेवं धेनुरनपस्कुरुन्ती

यस्तं सपो वृद्धिक्स्तृष्टदमा

हेमन्तजंघो भूमलो गुहा शयं ।

क्रिमिर्जिन्वत् पृथिवि यद्यदेजति

प्रावृषि तद्यः सर्पगमोप सृपयच्छुधं

तेन नो मृद

ये ते पयानो गृह्वो जनार्यना

र्यस्य धर्मनसह यातये ।

यः संचरन्त्युभयं भद्रपापास्तं

पयानं जयेमानमिप्रमत्तस्करं यच्छिधं

तेन नो मृद

मृत्यं विभ्रती गुरुध्व

भद्रपापस्य निधनं तितिधुः ।

पुण्ड्रेण पृथिवी संविद्वाना

गृह्णाय वि जिहीते मृगायं

ये न आरुण्याः पशवो मृगा यनं हिताः

मिदा व्याघ्राः पुंरुपादधरन्ति ।

उलं पुर्कः पृथिवि दुष्पुनमिति

शुक्लीषां रक्षो गर्वं वाधयास्तत्

ये गंगुषां भेषुरग्नो मे चाराषाः किमीदिनः ।

विनायामरवा रदाति तानसाद् ममे वाधय ॥५०॥

यां द्विपादः पुरिषः संपतन्ति

दंयाः सुपुलाः दक्षिणा यवाणि ।

यस्यां यानो मातृभिरेयंते

रजाति हृषंरुष्पावर्षध वृहान् ।

यानंय प्रवानुपवान् यवापुधिः

यस्यां हृषमंरुषं च रंदिने

भटोरुषं रंदिने भासायधि ।

॥ ४५ ॥

॥ ४६ ॥

॥ ४७ ॥

॥ ४८ ॥

॥ ४९ ॥

॥ ५० ॥

ययेण भूमिः पृथिवी वृतावृता

सा नो दधातु भद्रया प्रिये धामनिधामनि ॥५२॥

चौध्वं म इदं पृथिवी चान्तरिक्षं च मे व्यवः ।

अग्निः सूर्य आपो मेघां विश्वं देवाश्च सं वदुः ५३

अहमस्मि सहमान उत्तरो नाम भूम्याम् ।

अमीपाडसि विद्वापाडाशाभाशां विपासिहि । ५४

अदो यद् वैवि प्रथमाना पुरस्ताद्

देवैरुक्ता व्यसपो महित्वम् ।

आ त्वां सुभूतमविशत् त्वानी

अकल्पयथाः प्रदिशश्चतस्रः

ये ग्रामा यदरण्यं याः सुमा अग्नि भूम्याम् ।

ये संग्रामाः समितयस्तेषु चार्चं यदेम ते ॥ ५६ ॥

अथ इष रजो दुधुवे वि तान् जनान्

य आऽक्षियन् पृथिवीं यादजापत ।

मन्त्राग्नेर्यवी भुवनस्य गोषा

वनस्पतीनां गृध्रिरोपधीनाम्

यद् यदामि मधुमत् तद् यदामि

यदीक्षे तद्वनन्ति मा ।

विर्यमानसि जतिमान्

अयान्यान् हन्मि दोषतः

गन्तिवा सुदग्निः रक्षोश्च जनिगर्तोऽपि पर्यवती ।

भूमिरपि प्रवीतु मे पृथिवी पर्यसा तद् ॥ ५९ ॥

याम्यैच्छं पृथिवीं विश्वकर्मा

अग्नरणीये रजति प्रविशाम् ।

मुजिष्यं पात्रं निर्दिनं गुहा यत्

आयिमोर्गं अमयमाम्नामद्रवः

स्वमस्यावर्षनी जनानां

अदिदिः कामवुषां यप्रधाना ।

यन् मे ऊनं तन् मा पृथ्यानि

प्रजापतिः प्रथमजा कुमर्य

॥ ५१ ॥

(३८८)

उपस्थास्ते अनमीवा अयस्मा  
असम्यं सन्तु पृथिवि प्रवृत्ताः ।

दीर्घं न आर्यः प्रतिबुध्यमाना

वयं तुभ्यं बलिद्वतः स्याम ॥ ६२ ॥

भूमै मातर्नि घेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम् ।

संविदाना दिवा कंधे थियां मां घेहि भूत्याम् ॥ ६३ ॥

## पृथिवी-सहचारी देवगणः

(१) पृथिव्यन्तरिक्षे ।

॥ १४ ॥ ( ऋ० ७।१०४।२३ [ उत्तरार्धस्य ] )

मैत्रावरुणैरंसिष्ठः । जगती ।

पृथिवी नः पार्थियात् पातवर्हसो

अन्तरिक्षं दिव्यात् पातवसान् ॥ २३ ॥

(२) पृथिवी-द्वयन्तरिक्ष-सोम-पृथ-पथ्या-स्वस्तयः ।

॥ १५ ॥ ( ऋ० १०।५९।७ )

बभ्रुःश्रुतवर्गुर्दिप्रबभ्रुर्गोपायनाः । त्रिष्टुप् ।

पुनर्नो अर्धं पृथिवी ददातु

पुनर्घोर्देवी पुनरन्तरिक्षम् ।

पुनर्नः सोमस्तन्वर् ददातु

पुनः पुषा पथ्यां या स्वस्तिः ॥ ७ ॥

(३) पृथिवीसधितारी ।

॥ १६ ॥ ( धा० य० ९।५ )

घार्जस्य नु प्रसवे मातर् मही

अद्विंति नाम वचसा करामहे ।

यस्यामिर्दं विध्वं भुवनमाविवेश

तस्यां नो देवः संविता धर्म साविपत् ॥ ५ ॥

## पृथिवी-देवताः ।

॥ १ ॥ ( ऋ० १।१०४।१३-१४ )

मैत्रातिथिः काण्वः । गायत्री ।

मही घोः पृथिवी च न इमं यन्नं मिमिक्षताम् ।

पिपृता नो भरीममिः ॥ १३ ॥

तयोरिदं धृतवत् पयो विप्रा रिहन्ति धीतिर्मिः ।

गन्धर्वस्य ध्रुवे पदे ॥ १४ ॥

॥ २ ॥ ( ऋ० १।१११।१ [ आद्यपादस्य ] )

ध्रुव आहिरणः । जगती ।

रिं धावापृथिवी पूर्वचिंसये ॥ १ ॥

॥ ३ ॥ ( ऋ० १।१५९।१-५ )

होचैतमा ओषध्याः । जगती ।

प्र धावां यज्ञैः पृथिवी ऋतावृधा

मही स्तुपे विदधेपु प्रचैतसा ।

देधेमिये देवपुत्रे सुदर्शसो

इत्या धिया वार्याणि प्रमूरतः ॥ १ ॥

उत मन्ये पितर्युहो मनो

मातुर्महि स्वतवस्तद्वर्धममिः ।

सुरेतसा पितरा भूमं चक्रतुः

उव प्रजार्या अमृतं वर्धममिः ॥ २ ॥

ते सुनवः स्वर्षसः सुदर्शसो

मही जहृर्मातरां पूर्वचिंसये ।

स्यातुर्ध्वं सत्यं जगतश्च धर्मेणि

पुत्रस्य पाथः पदमद्वयाधिनः ॥ ३ ॥

ते मायिनो ममिरे सुप्रचैतसो

जामी सयोनौ मिथुना समोकसा ।

नव्यनव्यं तन्तुमा तन्वते दिवि

संमुद्रे अन्तः कवयः सुदीतयः ॥ ४ ॥

तद् रावो अथ संधितुर्धरेण्यं

वयं देवस्य प्रसवे मनामहे ।

अस्मभ्यं धावापृथिवी सुचेतुनां

रथि घंसं वसुमन्तं शतगिर्यम् ॥ ५ ॥

॥ ४ ॥ ( ऋ० १।१६०।१-५ )

ते हि धावापृथिवी विध्वर्शमुघ

ऋतावर्षी रजसो धारयत्कवी ।

सुजग्मनी धियर्णे अन्तरिपते

देवो देवी धर्मेणा सूर्यः श्रुचिः ॥ १ ॥

उरुयचसा महिनी असञ्चता  
पिता माता च भुवनानि रक्षतः ।

सुधृष्टमे वपुष्ये न रोदसी  
पिता यत् सीमामि रूपैरत्वासयत्

स धर्हिः पुत्रः पित्रोः पवित्रवान्  
पुनाति धीरो भुवनानि मायया ।

धेनुं च पृथि्वीं धृपमं सुरेतंसं  
विभवाद्वा शक्रं पर्यो अस्य दुक्षत

अयं देवानामपसामपस्तमो  
यो ज्ञानं रोदसी विभ्यर्शमुवा ।

यि यो ममे रजसी सुक्रतुयया  
भजयेमिः स्कर्मनेमिः समानृचे

ते नो गृणाने महिनी महि धर्षः  
क्षत्रं चापापृथिवी धासथो वृष्टत् ।

येनामि कृष्टीस्ततनाम विभ्यर्श  
पुनाप्यमोजो अस्मे समिग्यतम्

॥ ५ ॥ (अ० १।१८१।१-११)

अगरलो मैत्रावरुणः । त्रिष्टुप् ।

कतरा पूर्वा कतराऽर्पराऽयोः  
कथा ज्ञाते कथयः को यि र्षेद् ।

विभ्वं तमना विभृतो यद्वा नाम  
यि र्षेते भदेनी चक्रिरेय

भूर्नि दे अर्चरणी चररुतं  
पृथग्गं गर्भमपरी दधाते ।

त्रियं न सुनुं पित्रोऽरुग्ये  
चापा रक्षते पृथिवी नो अग्वात्

अग्नेहो वात्रमदिनेरुयं  
दुवे र्षेदेदृषधं नमत्सम् ।

मर् र्चरणी जनयन् जत्रिरे  
चापा रक्षते पृथिवी नो अग्वात्

अतप्यमाने अवसाऽयन्ती  
अनु प्याम रोदसी देवपुत्रे ।

उमे देवानामुभयेभिरक्षां  
चापा रक्षते पृथिवी नो अग्वात्

संगच्छमाने युवती समन्ते  
स्वसारा जामी पित्रोऽरुपस्थे ।

अमिजिघ्रन्ती भुवनस्य नामि  
चापा रक्षते पृथिवी नो अग्वात्

उर्वी सधनी गृह्णीति ऋतेन  
दुवे देवानामयसा जनित्री ।

दधाते ये अमृतं सुप्रतीके  
चापा रक्षते पृथिवी नो अग्वात्

उर्वी पृथ्वी वहुले वुरेभन्ते  
उर्प द्रुये नमसा यजे असिन् ।

दधाते ये सुमगे सुप्रतीकी  
चापा रक्षते पृथिवी नो अग्वात्

देवान् वा यषाकृमा कश्चिदागः  
सर्पायं वा सदमिज्जास्पर्ति वा ।

इयं धीमूया अययानमेघां  
चापा रक्षते पृथिवी नो अग्वात्

उमा दांसा नयो मामविष्टां  
उमे मामुती अयसा मचेताम् ।

भूर्नि चिद्वयः सुदास्तारय  
रपा मर्दन्त इत्येव देवाः

ऋतं दिवे तर्दयोचं पृथिव्या  
अमिधाधार्यं प्रथमं सुतेषाः ।

पातामवपाद् बुद्धितानुभीषे  
विना माता च रक्षतामयोमिः

इदं चापापृथिवी सत्यमरु  
पितृमांनर्यदिहोर्पमुवे वाम् ।

भूतं देवानामपयो अयोमिः  
विद्यामेघं वृजने जीर्यानुम्

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १० ॥

॥ ११ ॥

(०११)

॥ ६ ॥ ( अ० १।३१।१ )

यत्समद ( आग्निः शौनहोत्रः पश्चाद् )  
सार्गः शौनहः । अगती ।

अस्य मे चावापृथिवी ऋतायतो  
भुतमवित्री चर्चलः सियासतः  
ययोरार्युः प्रतरं ते इदं पुर  
उपस्तुते वसुधुवी महो देधे

॥ १ ॥

॥ ७ ॥ ( अ० १।३१।१९-२१ )  
( हविर्वाणि वा ) गायत्री ।

प्रेतां यक्षस्य शंभुवा युवामिवा वृणीमहे ।  
अग्निं च हव्यवाहनम् ॥ १९ ॥  
चावा नः पृथिवी इमं सिधमघ विविस्पृशम् ।  
यक्षं वेधेयुं यच्छताम् ॥ २० ॥  
आ वामुपस्यमद्गुहा देवाः सीदन्तु यज्ञियाः ।  
इहाय सोमपीतये ॥ २१ ॥

॥ ८ ॥ ( अ० १।३८।१ )

वामदेवी गीतमः । त्रिष्टुप् ।

उतो हि वां वाग्ना सन्ति पूर्वा  
या पूर्यन्त्यसदस्युर्निताशे ।  
क्षेत्रासां ददधुर्द्वयसां  
घनं दस्युभ्यो अभिर्मतिमुग्रम् ॥ १ ॥

॥ ९ ॥ ( अ० १।५६।१-७ )

त्रिष्टुप्, ५-७ गायत्री ।

मही चावापृथिवी इह ज्येष्ठे  
रुचा मयतां शुचयद्रिर्कः ।  
यत् सीं यरिष्ठे बृहती विमिन्यन्  
रुवक्षोक्ष पप्रयानेमिरेवैः ॥ १ ॥  
देवी देवेभिर्यजते यजैः  
अमिनती तस्यतुरुक्षमाणे ।  
अतापरी अद्गुहा देवपुत्रे  
यक्षस्य नेत्री शुचयद्रिर्कः ॥ २ ॥

स इत् स्वप्ना भुवनेष्वास  
य इमे चावापृथिवी ज्ञानं ।

उवां गमीरे रजसी सुमेकं  
अवंशे धीरः शच्या समैरत् ॥ ३ ॥

न रौदसी बृहद्विन्नो वरुथैः  
पत्नीवद्विरिपयन्ती सजोपाः ।

उरुची विश्वे यजते नि पातं  
धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥ ४ ॥

प्र वां महि धर्वा अभ्युपस्तुतिं भ्रामहे ।  
शुची उप प्रशस्तये ॥ ५ ॥

पुनाने तुवां मिथः स्वेन दक्षेण राजभः ।  
कुहार्ये सुनाहतम् ॥ ६ ॥

मही मित्रस्य साधयस्तन्ती पिप्रती अतम् ।  
परि यवं नि रैवधुः ॥ ७ ॥

॥ १० ॥ ( अ० ६।४८।१० )

शंभुर्वाहस्यः ( तुगवाणिः ) ।

चावाम्नी वा शुभिर्वा । अनुष्टुप्

सकृद् धीरजायत सकृद्भूमिरजायत ।  
पृथ्या दुग्धं सकृत् पयः

तदभ्यो नानु जायते ॥ २२ ॥

॥ ११ ॥ ( अ० ६।७०।१-६ )

भद्रात्रो वाहस्यः । अगती ।

भूतवती भुवनानामभिधया  
उवां पृथ्वी मधुदुधे सुपेक्षा ।

चावापृथिवी वरुणस्य धर्मेणा  
विष्कमिमे अजरे भूरिरेतसा ॥ १ ॥

असंख्यन्ती भूरिधारे पर्यस्वती  
भूतं दुहाते सकृते शुचिप्रते ।

राजन्ती अस्य भुवनस्य रोदसी  
अस्मे रेतः सिञ्चन् यगमनुर्दितम् ॥ २ ॥

यो वामूजवे क्रमणाय रोदसी  
मर्तो द्वादशी धिपणे स साधति ।

प्र प्रजामिर्जायते धर्मणस्परि

युवोः सिक्ता विपुरुपाणि समता

घृतेन चावापृथिवी अमीघृते

घृतधियां घृतपृचां घृतावृधा ।

उर्ध्वी पृथ्वी हौतवूर्ये पुरोहिते

ते इद् विमा ईळते सुधमिष्ये

मधु नो चावापृथिवी मिमिक्षतां

मधुक्षतां मधुदुधे मधुघते ।

दधाने यज्ञं द्रविणं च देवता

महि भयो वाजमसे सुवीर्यम्

ऊर्जे नो चौक्षं पृथिवी च पिन्वतां

पिता माता विश्वविदा सुदंसता ।

संरराणे रोदसी विश्वशम्भुवा

सुनि वाजै रयिमस्मे समिन्धताम्

॥ ११ ॥ (अ० ७/५३/१-३)

मैत्रावरुणवैशिष्टः । शिष्टम् ।

प्र चावा यज्ञैः पृथिवी नमोभिः

सुवाध ईळे बृहती यजत्रे ।

ते विद्धि पूर्वे कृययो गुणन्तः

पुरो मही वधिरे देवपुत्रे

॥ पूर्वजे पितरा नव्यसीभिः

गोभिः कृणुष्व सदेने ऋतस्य ।

आ नो चावापृथिवी देव्येन

जनैर्न यातुं महिं यां परकथम्

उतो हि यां रत्नधेयानि सन्ति

पुरुणि चावापृथिवी सुदासे ।

धस्ते धन्वं पदसदस्सुधोयु

युयं पात स्युस्तिभिः सदा नः

॥ १२ ॥ (अ० १०/५९/८-१०)

बन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुर्गोपायनाः । [ १० पूर्वार्धस्य  
इद-चावापृथिवी ] । ८ वंकिः ९ महावंकिः,

१० वंक्युतरा ।

॥ ३ ॥

शं रोदसी सुवन्धवे यसी ऋतस्य मातरा ।

मरतामप यद्रपो द्यौः पृथिवि क्षमा रपो

मो पु ते किं चनाममत् ॥ ८ ॥

अथ हके अथ त्रिकां त्रिवक्षरन्ति भेयजा ।

॥ ४ ॥

क्षमा चरिण्यैककं मरतामप यद्रपो

द्यौः पृथिवि क्षमा रपो मो पु ते किं चनाममत् ९

समिन्धेय गार्मन्द्वाहुं य आसधेदुशीनराण्या अना ।

मरतामप यद्रपो द्यौः पृथिवि क्षमा रपो

॥ ५ ॥

मो पु ते किं चनाममत् ॥ १० ॥

॥ १४ ॥ (अ० य० १/१०)

उपहृता पृथिवी मातोप मां

पृथिवी माता ज्यताम् ॥ १० ॥

॥ ६ ॥

॥ १५ ॥ (अ० य० ५/१८)

घृतेन चावापृथिवी पूर्वधाम् ॥ २८ ॥

॥ १६ ॥ (अ० य० ६/१६, ११, ३५)

घृतेन चावापृथिवी मोर्णुधधाम् ॥ १९ ॥

चावापृथिवी गच्छ स्वाहा ॥ २१ ॥

मा भेमां संविक्था ऊर्जे धस्व

धिपणे वीङ्घी सती वीङ्घयेधाम् ऊर्जे वधाधाम् ।

॥ १ ॥

पाप्मा हतो न सोमः ॥ ३५ ॥

॥ १७ ॥ (अ० य० ७/११)

चावापृथिवीभ्यां पयते ॥ २१ ॥

॥ १८ ॥ (अ० य० ११/१८)

॥ २ ॥

चावापृथिवीभ्यां स्वाहा ॥ २८ ॥

॥ १९ ॥ (अ० य० १७/१)

देवी चावापृथिवी मरस्यं यामघ

शितौ राध्यासं देव्यजने पृथिव्याः ।

॥ ३ ॥

मन्थार्य त्वा मन्थस्य त्वा शीर्ष्णं ॥ ११ ॥  
(७१४५)

॥ १० ॥ ( वा० य० ३८६, १४ )

धावापृथिवीभ्यां त्वा परं गृह्णामि ॥ ६ ॥

धावापृथिवीभ्यां पिबन्स्व ॥ १४ ॥

॥ ११ ॥ ( अथर्व० १३१।१-४ )

वृद्धा । अनुष्टुप् ; २ कृष्णमती अनुष्टुप् ।

इदं जनासो विदये मद्वृद्धा वदिष्यति ।

न तत् पृथिव्यां नो दिवि येन प्राणन्ति वीरुधः १

अन्तरिक्ष आसां स्याम भ्रान्तसदामिव ।

आस्थानमस्य मृतस्य विदुष्टदेवतो न वा ॥ २ ॥

यद्रोर्वसी रेजमाने भूमिश्च निरतस्ततम् ।

आद्रं तद्वद्य सर्वदा समुद्रस्यैष क्रोत्याः ॥ ३ ॥

विश्वमन्याममीवारं तद्वन्यस्यामधिधितम् ।

विषे च विश्ववैदसे पृथिव्यै चाकरं नमः ॥ ४ ॥

॥ ११ ॥ ( अथर्व० ५।१४।३ )

अथर्व । चतुष्टुपाऽतिशयवरी ।

धावापृथिवी वातूणामधिपत्नी ते मावताम् ।

अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां

पुष्टेयायामस्यां प्रतिघ्रायामस्यां

चित्स्यामस्यामाकृत्यामस्यां ।

आशिष्यस्यां देवहृत्यां स्वाहा ॥ ३ ॥

॥ १३ ॥ ( अथर्व० १९।१४।१ ) त्रिष्टुप् ।

इदमुच्छ्रयोऽवसानमार्गं

शिवे मे धावापृथिवी भूमताम् ।

असपत्नाः प्रदिशो मे भयन्तु

न वै त्वा द्विष्मो अमयं नो अस्तु ॥ १ ॥

॥ १४ ॥ ( सा० ६१९ )

वामदेवो गीतमः । त्रिष्टुप् ।

मन्ये वां धावापृथिवी सुमोजसो

ये अप्रयेधाममितमभि योजनम् ।

धावापृथिवी भधत् स्योने ते नो मुखतमहसः ॥ ८ ॥

## धावापृथिवी-सहचारी-देवगणः

( १ ) सुभृग्यश्विनः ।

॥ १५ ॥ ( ऋ० १०।३१।१ )

शक्रपतो नर्मधः । न्यहकुसारिणी ।

ईजानमिद् द्यौर्गुतावसु-रीजानं भूमिरामि प्रभूपणि ।

ईजानं देवावश्विनां-वमि सुक्षैरवधताम् ॥ १ ॥

संज्ञानम् ।

॥ १ ॥ ( ऋ० १०।१९।१-४ )

संवनव आश्रितः । अनुष्टुप्, ३ त्रिष्टुप्

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं धो नर्नासि जानताम् ।

देवा भागं यथा पूर्वं संजानाना उपार्सते ॥ २ ॥

समानो मन्त्रः समितिः समानी

समानं मनः सह चित्तमेयाम् ।

समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः

समानेन वो हविषा जुहोमि ॥ ३ ॥

समानी व आकृतिः समाना हृदयानि वः ।

समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसुहासति ॥ ४ ॥

॥ २ ॥ ( वा० य० १९।४३ )

संज्ञानमसि कामधरणं

मयि ते कामधरणं भूयात् ॥ ४६ ॥

॥ ३ ॥ ( वा० य० २६।१ )

सुत सु ५ सदा अपृमी मृतसाधनी

सकामां २५ अर्ध्वनस्कुरु

संज्ञानमस्तु मेऽमुना ॥ १ ॥

॥ ४ ॥ ( वा० य० ३०।९ )

संज्ञानाय सरकारीम् ॥ २ ॥

॥ ५ ॥ ( अथर्व० ३।३०।१-७ )

अथर्व । चन्द्रमाः धीयनस्यम् । अनुष्टुप्, ५ विराट् अथर्व ।

६ प्रस्तायीकः । ७ त्रिष्टुप् ।

सहृद्वयं सांमनस्यमविद्वेधं कृणोमि वः ।

अन्यो अन्यमभि हर्षत घृत्सं जातमिवाच्या ॥ १ ॥

अनुवतः पितुः पुत्रो भ्रात्रा भवतु संमनाः ।  
 जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम् ॥ २ ॥  
 मा भ्राता भ्रातरं दिक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा ।  
 सम्यञ्चः सर्वता भूत्वा वाचं वदत मुद्रया ॥ ३ ॥  
 येन देवा न विपन्ति नो चं विद्विषते मिथः ।  
 तत् कृणो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः ॥ ४ ॥  
 ज्यायस्वन्तश्चितिनो मा वि यौष्ट  
 संराधयन्तः सधुराध्वरन्तः ।  
 अन्यो अन्यस्मै वल्लु वदन्त पतं  
 सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोमि ॥ ५ ॥  
 समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः  
 समाने योफत्रे सह वो पुनश्मि ।  
 सम्यञ्चोऽग्निं संपर्यतारा नाभिमिवाभितः ॥ ६ ॥  
 सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोमि  
 एकश्नुप्रीन्सुवर्ननेन सयान् ।  
 देवा इष्टामृतं रक्षमाणाः  
 सायं प्रातः सौमनसो वो अस्तु ॥ ७ ॥

॥ ६ ॥ ( अथर्व० ७।५१।१-१ )  
 ( सामनस्यं, अभिनो ) । १ ककुमलनृपृ. १ जगती ।  
 संज्ञानं नः स्वेभिः संज्ञानमरणेभिः ।  
 संज्ञानमश्विना युयमिहास्मासु नि यच्छतम् ॥ १ ॥  
 सं जानामहे मनसा सं चिकित्वा  
 मा युष्महि मनसा वैव्येन ।  
 मा योषा उत्स्यर्वहुले विनिर्दते  
 मेधुः पत्तदिन्द्रस्याहुन्यागते ॥ २ ॥

॥ ७ ॥ ( अथर्व० ६।९४।१-१ )  
 अथर्वगिराः । सरस्वती ( सामनस्यं ) । अनुष्टुप  
 २ विशद् जगती ।  
 सं वो मनोसि सं वृता समाकृतीर्नमामसि ।  
 अमी ये विव्रता स्थन ताम्बः सं नमयामसि ॥ १ ॥  
 अहं गृभ्णामि मनसा मनोसि  
 मम चित्तमनु चित्तेमिरेत ।  
 मम वदेषु हृदयानि वः कृणोमि  
 मम यातमनुवर्तमानं पतं ॥ २ ॥  
 ओतं मे यावापृथिवी ओतां वेवी सरस्वती ।  
 ओतां मे इन्द्रश्चाग्निश्चर्यास्मेदं सरस्वति ॥ ३ ॥  
 ( ७।१०१ )





## निर्ऋतिः

॥ १ ॥ ( अ० १०१९, १-३ )

बन्धुः धृतबन्धुर्विप्रबन्धुर्गोपायनाः । त्रिष्टुप् ।

प्र तापार्थः प्रतुरं नदीयः

स्थातारिषु क्रतुमता रथस्य ।

अथ वयसान् उव तवीत्यथै

परातुरं सु निर्ऋतिर्जिहीताम्

सामन् तु राये निधिमन्वन्तं

करामहे सु पुंश्च अवांसि ।

ता नो विश्वानि जरिता ममसु

परातुरं सु निर्ऋतिर्जिहीताम्

भूमी प्युर्वं पौर्त्यैर्मयेम

धौर्न मूर्मि गिरयो नाज्जान् ।

ता नो विश्वानि जरिता विंकेत

परातुरं सु निर्ऋतिर्जिहीताम्

॥ २ ॥ ( वा० य० ११११-१५ )

असुम्यत्तमर्यजमानमिच्छ

स्तेनस्येत्यामन्धिदि तस्करस्य ।

अन्यमस्मदिच्छ सा तं इत्या

नमो देपि निर्ऋते तुम्यमस्तु

नमः सु तं निर्ऋते तिग्मतेजा

अपस्मपं पि रूता बन्धमेतम् ।

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

यमेन त्वं यम्या सविद्वाना

उत्तमे नाके अधिरोहयैनम्

यस्यास्ते घोर आसञ्जुहोमि

यदां दुग्धानामवसर्जनाय ।

यं त्या जनो भूमिरिति प्रमन्दते

निर्ऋतिं त्वाऽहं परिवेद विभ्वतः

यं तं देवी निर्ऋतिरावयन्

पादां ग्रीवास्याविचक्ष्यम् ।

तं ते विप्याम्यायुयो न मध्यात्

अथैतं पितुर्मसि प्रवृतः

॥ ३ ॥ ( वा० य० १५१२ )

निर्ऋतिं निर्जैत्रेत्येन दाप्स्यां

( वा. य. १०१९, १४ )

निर्ऋत्यै परिविधिवानम्

निर्ऋत्यै कोदाकारम्

अक्षाः ।

॥ १ ॥ ( अ० १०१४, १, ७, १, ११ )

वयस्य देवः, अतो ममवान् वा । त्रिष्टुप्, ५ अक्षराः ।

प्रायेषा मां गृह्णतो मादयति

प्रयातेजा इरिषे यधूतानाः ।

सोमस्येय मौजयतस्यं मसो

विभीर्दको जार्धविर्मष्टमच्छान्

॥ १३ ॥

॥ १४ ॥

॥ १५ ॥

॥ २ ॥

॥ ९ ॥

॥ १४ ॥

॥ १ ॥

(०१८३)

अक्षास इदं कुशिनो नितोदिनो  
निकृत्वा नस्तर्पनास्तापयिष्णवः ।

कुमारदेव्या जयतः पुनर्हणो  
मध्वा संपृक्ताः कितवस्य वर्हणा

नीचा वर्तन्त उपरि स्फुरन्ति  
अहस्तासो हस्तधन्तं सहन्ते ।

दिव्या अङ्गारा शरिणे न्युक्ताः  
शीता. सन्तो हृदयं निर्वहन्ति

यो वः सेनानीर्मेहतो गणस्य  
राजा वार्तस्य प्रथमो वभूव ।

तस्मै कृणोमि न धनां कृणमि  
दशाह प्राचीस्तद्वत् वदामि

॥ १ ॥ ( धा० य० ५।१७ )

देवधृतौ देवेष्वाम धोपतं

प्राचीं प्रेतमभ्यर्च कल्पयन्ती

ऊर्ध्वं यदं नयतं मा जिह्वरतम् ।

स्यं गोष्ठमा वदतं देवी दुयै

आयुर्मा निर्वादिष्टं प्रजां मा निर्वादिष्टं

अत्र रमेयां यस्मै न पृथिव्याः

॥ २ ॥ ( धा० य० १०।१८-१९ )

अभिभूरस्येतास्ते पञ्च दिशः कल्पन्तां

प्रह्वं—स्यं प्रह्वाऽसि सविताऽसि सत्यप्रसवो

वर्हणोऽसि सत्यौजा इन्द्रोऽसि विश्वौजा

रुद्रोऽसि सुशेवः ।

वहुकारं धैर्यस्करं मूर्यस्करं

इन्द्रस्य वज्रोऽसि तेन मे रघ्य

अग्निः पृथुर्धर्मणस्पतिर्जुषाणो अग्निः

पृथुर्धर्मणस्पतिराज्यस्य पेतु स्वाहा

स्वादाहता. सूर्यस्य रुदिमर्गः

यतश्चरन् मज्जातानां मय्यमेष्टयाय

॥ ७ ॥

॥ ९ ॥

॥ १२ ॥

॥ १७ ॥

॥ २८ ॥

॥ २९ ॥

## अक्ष-कितव-निन्दा ।

॥ १ ॥ ( अ० १०।३४।१-६, ८, १०-११, १४ )

कवच ऐल्य, अक्षो मौमवान् वा । शिष्ट्यु ।

न मा मिमेष न जिहील एषा  
शिवा सखिभ्य उत महामासीत् ।

अक्षस्याहमेकपरस्य हेतोः

अनुवतामप जायामरोधम्

हेष्टिं भवधूरप जाया कणक्षि

न नाथितो विन्दते मर्हितारम् ।

अश्वस्येव जर्तो वस्यस्य

नाहं विन्दामि कितवस्य भोगम्

अन्ये जायां परि मृशन्त्यस्य

यस्यागृध्रदेवने वाज्यक्षः ।

पिता माता भारतर एनमाहुः

न जानीमो नयता वदमेतम्

यदादीष्टे न दधिषाप्येभिः

परायदभ्योऽव हीये सखिभ्यः ।

न्युक्ताश्च बभूवो वाचमकतु

एमीदैवौ निष्कृतं जारिणीव

सुभामेति कितवः पूच्छमानो

जेप्यामीति तन्वाक्षु दशुजानः ।

अक्षासो अस्य यि तिरन्ति कामं

प्रतिदीन्वे दधत आ कृतानि

त्रिपञ्चाशः कीलति वार्त एषां

देव इव सविता सत्यधर्मा ।

उग्रस्य चिन्मन्यवे ना नमन्ते

राजां चिदेभ्यो नम इत् कृणोति

जाया संप्यते कितवस्य हीना

माता पुत्रस्य चरतः पय सित् ।

श्रुणाया विभ्यद्वर्नमिच्छमानो

अन्येषामस्तमुप नक्तमेति

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ८ ॥

॥ १० ॥

( ७११७ )

स्त्रियं दृष्ट्वाय कितव तताप  
अन्येषां जायां सुकृतं च योनिम् ।  
पूर्वाण्डे अर्धान् युयुजे हि बभूव  
सो अमेरन्ते वृषलः पपाद  
मित्रं कृणुष्व खलु मूढतां नो  
मा नो घोरेण चरतामि धृणु ।  
नि वो तु मन्युर्विशतामरातिः  
अन्यो बभूणां प्रसितो न्वस्तु

॥ ११ ॥

॥ १४ ॥

इहान्म

॥ १ ॥ ( ऋ० १।१६४।१७ )

दीर्घतमा औचक्यः । ( आत्मज्ञानम् ) । त्रिष्टुप् ।

न वि जानामि यदिधेदमसि  
निण्यः सध्रजो मनसा चरामि ।  
यदा माऽगन् प्रथमजा ऋतस्य  
आदिद् धाचो अश्रुवे आगमस्याः

॥ ३७ ॥

॥ १ ॥ ( ऋ० १०।७१।१-११ )

बृहस्पतिराश्रितः । त्रिष्टुप्, ९ अगती ।

बृहस्पते प्रथमं धाचो अश्रु  
यत् प्रैरत नामधेयं वर्धनाः ।  
यदेषां धेष्टं यदप्रिमार्सीत्  
प्रेणा तदेषां निहितं गुहाऽऽविः  
सकृत्तमिष तितउना पुनन्तो  
यत्र धीरा मनसा धाचमकृत ।  
अत्रा सखायः सख्यानि जानते  
भद्रैर्षां लक्ष्मीर्निहिताऽधि धाचि  
यज्ञेन धाचः पदधीर्यमायन्  
तामन्यविन्दुर्धृषिषु प्रविष्टाम् ।  
तामाभृत्या व्यदधुः पुष्ट्या  
तां सुत देवा अमि सं नयन्ते  
उत त्यः पश्यन् न ददर्श धाचं  
उत त्वः द्रुपन् न दृणोत्येनाम् ।

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

उतो त्वस्मै तन्वं वि संसे  
जायेव पत्य उशती सुवासाः  
उत त्वं सख्ये स्थिरपीतमाहुः  
नेनं हिन्वन्त्यपि वाजिनेषु ।  
अधेन्वा चरति माययैष  
धाचं शुश्रुवां अफलामपुष्पाम्  
यस्तित्याज सविदं सखायं  
न तस्य वाच्यपि भागो अस्ति ।  
यदा दृणोत्सलकं शृणोति  
नहि प्रवेदं सुकृतस्य पन्थाम्  
अक्षयन्तः कर्णयन्तः सखायो  
मनोजवेध्वसमा यमधुः ।  
आदमास उपकृतास उ त्वे  
हृदा इष आवा उ त्वे वदधे  
हृदा तृष्टे पु मनसो जवेपु  
यद्वाहणाः संयजन्ते सखायः ।  
अत्राह त्वं वि जहुर्वेद्याभिः  
मोहव्रह्माणो वि चरन्त्यु त्वे  
हमे ये नार्वाङ्क परध्वरन्ति  
न ब्राह्मणास्तो न सुतेकरासः ।  
त एते धाचमसिपय प्रापया  
सिरीस्तन्त्रं तन्वते अप्रजययः  
सर्वे नन्दन्ति यशसाऽऽगतेन  
समासाहेन सख्या सखायः ।  
किंलिपस्पृष्ट पितुपण्डितं  
अरं हितो भवति यार्जिनाय  
श्रुचां त्वः पीपमास्ते पुपुष्यान्  
गायत्रं त्वो गायति शकरीषु ।  
ग्रह्या त्वो यदति जातप्रियां  
यज्ञस्य मात्रां वि मिमीव उ त्वः

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १० ॥

॥ ११ ॥

(७।११)

## अनुमतिः ।

॥ १ ॥ (अथर्व० ७।२०।१-६)

अथर्वः । १-२ अनुष्टुप्, ३ त्रिष्टुप्, ४ श्रुति, ५ जगती  
६ अतिशक्वरी गमो जगती ।

अन्यथ नोऽनुमतिर्यहं देवेषु मन्यताम् ।

अग्निश्च हव्यवाहनो भवतां दाशुषे मम ॥ १ ॥

अग्निरनुमते त्वं मंससे शं च नस्कृधि ।

जुपस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि ररास्व नः ॥ २ ॥

अनुमन्यतामनुमन्यमानः

प्रजावन्तं रयिमक्षीयमाणम् ।

तस्य ध्रुवं दृढं सि माऽपि भूम

सुमृष्टीके अस्य सुमृतौ स्याम ॥ ३ ॥

यत्ने नाम सुहृदं सुप्रणीते

अनुमते अनुमतं सुदान् ।

तेना नो यद्यं पिपृहि विश्वयारे

रयिं नो धेहि सुभगे सुवीरम् ॥ ४ ॥

एवं यद्धमनुमतिर्जगाम

सुक्षेत्रतायै सुवीरतायै सुजातम् ।

भद्रा ह्यऽस्याः प्रमतिर्यभूष

येमं यद्धमयतु देवर्षीणा ॥ ५ ॥

अनुमतिः सर्वमिदं यमुष

यत्तिष्ठति चरति यदु च विश्वमेजति ।

तस्मात्ते देवि सुमती स्याम

अनुमते अनु दि मंससे नः

## उपपत्त्यः ।

॥ १ ॥ (अ० १।२६।९)

विधामित्रो गायित्रः । त्रिष्टुप् ।

ज्ञतपारमुत्तमक्षीयमाणं

विपश्चितं पितरं यक्षयानाम् ।

मेति मर्दन्तं पित्रोरुपस्थे

नं रोदसी पिपुनं नारयार्थम्

॥ १ ॥

## श्रद्धा ।

॥ १ ॥ (अ० १।१।६)

मधुच्छन्दा वैशामित्रः । (सूर्यस्य इहिता धद्रादेरी-  
सावणः १ गायत्री ।

पुनरिति ते परिश्रुतं सोमं सूर्यस्य इहिता ।

वारैर्ण शश्वता तना ॥ ६ ॥

॥ २ ॥ (अ० १०।१५।१-५)

श्रद्धा कामायनी । अनुष्टुप् ।

श्रद्धयाऽग्निः समिधयते श्रद्धया हूयते हविः ।

श्रद्धां भगस्य मुधेति वज्रसा वैदयामसि ॥ १ ॥

प्रियं श्रद्धे वदतः प्रियं श्रद्धे विदासतः ।

प्रियं भोजेषु यज्यास्विदं म उदितं कृधि ॥ २ ॥

यथा देवा असुरेषु श्रद्धामुप्रेयु चक्रिरे ।

एवं भोजेषु यज्वस्वस्माकमुदितं कृधि ॥ ३ ॥

श्रद्धां देवा यजमाना वायुर्गोपा उपासते ।

श्रद्धां हृदय्युयाकृत्या श्रद्धया विन्दते वसु ॥ ४ ॥

श्रद्धां प्रातर्हयामहे श्रद्धां मध्यन्दिनं परि ।

श्रद्धां सूर्यस्य निमृचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः ॥ ५ ॥

## अफश्विः [ अफश्वः ]

॥ १ ॥ (अ० १०।८५।१०-१८)

शुशो वाशिनी । (शुशो विवाहयन्त्रः) । अनुष्टुप् । १०,  
२१, २३, २४, २६ त्रिष्टुप् ; २७ जगती ।

॥ ६ ॥

सुकिशुकं शोत्सलि विश्वरूपं

हिरण्ययर्णं सुवृत्तं सुचक्रम् ।

आ रोद सूर्ये अमृतस्य लोकं

स्योनं पत्ये घटुं कृणुष्व ॥ २० ॥

उदीर्यातः पतिपती रोषा

विभ्यार्पुं नमसा गीर्मिरीति ।

अग्यामिच्छ पितृपदं ध्येयतां

त ते भागो जनुया तस्य विधि

॥ २१ ॥

(०।१५)

उदीर्घातो विश्वावसो नमसेत्थामहे त्वा ।  
अन्यामिच्छ प्रफुर्यं सं जायां पत्यां सृज ॥२२॥

अनुक्षराः अजवः सन्तु पन्या  
येभिः सर्वायो योन्ति नो धरेयम् ।  
समर्पमा सं मर्गो नो निनीयात्  
सं जास्यत्यं सुयममस्तु देवाः ॥ २३ ॥

प्र त्वां मुञ्चामि धरेणस्य पाशात्  
येन त्वाऽर्थात् सविता सुतोषः ।  
अतस्य योनौ सुकृतस्य लोके  
अरिष्टां त्वा सह पत्यां दधामि ॥ २४ ॥

प्रेतो मुंचामि नामुतः सुयदाममुतस्करम् ।  
यथेयमिन्द्र मीढः सुपुत्रा सुमगाऽसति ॥ २५ ॥  
पुषा त्वेतो नयतु हस्तपृष्ठ  
अभिनां त्वा प्र वदतां रयेन ।

गृहान् गच्छ गृहपत्नीं ययासौ  
पदिनीं त्वं विदधमा वदसि ॥ २६ ॥  
इह प्रियं प्रजयां ते समृष्यतां  
अस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि ।

एना पत्यां त्वयं सं सृजस्व  
अथा जिमीं विदधमा वदायः ॥ २७ ॥  
नीललोहितं भयति हृत्पासुकिर्व्यज्यते ।  
यद्यन्ते अस्या ज्ञातयः पतिर्व्यधेयं धन्यते ॥ २८ ॥

॥ १ ॥ (वा० य० २।१०)  
मयीदमिन्द्र इन्द्रियं दधातु  
अस्मान् रायो मययानः सञ्जन्ताम् ।  
अस्माकं सन्त्याशिषः सत्या नः सन्त्याशिष  
उपहृता पृथिवी मातोप मां पृथिवी माता  
इयतामभिरामिभ्रातृ स्वाहा ॥ १० ॥

॥ ३ ॥ (वा० य० ४।१५)  
आ यो देवास ईमहे धामं प्रयत्यथरे ।  
आ यो देवास आशिषो यजिषांसो हवामहे ॥५॥

॥ ४ ॥ (वा० य० ८।५)

अदस्मै नरो वचसे दधातु  
यदाशीर्दा दम्पती वाममश्नुतः ।  
पुमान् पुत्रो जायते विन्दते वसु  
अथा विश्वाहारप पधते गृहे ॥ ६ ॥

॥ ५ ॥ (वा० य० १२।१०५)

इपमूर्जमहमित आद  
अतस्य योनिं महिषस्य धाराम् ।  
आ मा गोपुं विशत्या तनू  
जहामि सेदिमर्नितामर्मावाम् - ॥ १०५ ॥

होत्राः शिषः ।

॥ १ ॥ (श्र० १०।१८३।३)

प्रजावाय प्रजापत्यः । त्रिपुत्र ।

अहं गर्भमदधामोर्पधीपु  
अहं विभ्वेषु भुवनेष्वन्तः ।  
अहं प्रजा अजनयं पृथिव्यां  
अहं जानिग्यो अपरिपु पुत्रान् ॥ ३ ॥

॥ २ ॥ (वा० य० ७।१५)

तुपन्तु होत्रा मण्यो याः स्थिष्टा  
याः सु मीताः सुहृता यत् स्वाहा ॥ १५ ॥

॥ ३ ॥ (वा० य० २५।२८)

होताऽध्वर्युरावया अग्निमिण्यो  
प्राच ग्राम उत शरस्ता सुर्विप्रः ।  
तेन यजेन स्यरुतेन  
स्थिष्टेन यज्ञेना आ पृणत्यम् ॥ २८ ॥

॥ ४ ॥ (सा० ९३)

राये अग्ने महे त्या वानाय समिधीमहि ।  
इहिष्या हि महे वृषं यावा होत्राय पृथिवी ॥८३॥

॥ ५ ॥ ( साम. ९८ )

विश्वामित्रो गाधिनः । उष्णिक् ।

१ २९ ३२३ ३ १ २ ३ २  
प्र होत्रे पूर्वे यचोऽग्नये भरता बृहत् ।३ १ २२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २  
विषां ज्योतीषि विभ्रते न वेधसे

॥ ९८ ॥

॥ ६ ॥ ( साम० १५१ )

३ १ २२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २  
इष्टा होत्रा असृक्षतेन्द्रे वृधन्तो अश्वरे ।१ २ ३ १ २  
अच्छावभृथमोजसा

॥ १५१ ॥

॥ ५ ॥ ( साम० १७९ )

वामदेवो गातुमः । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २ १ २ ३ २ ३ २ १ २ ३ २  
ये ते पथा अधो दिवो येभिर्द्यैश्चमैरयः ।१ १ ३ १ २  
उत ओषन्तु नो भुयः

॥ ८ ॥

अभिशापः ।

॥ १ ॥ ( झ० ३।५३।११-१४ )

विश्वामित्रो गाधिनः । त्रिष्टुप्, २२ अनुष्टुप् ।

इन्द्रोतिभिर्वहुलार्भिर्नो अद्य

याच्छ्रेष्ठाभिर्मध्यच्छूर जिग्य ।

यो नो द्वेष्ट्यधरः सत्सर्वीष्ट

यमु द्विप्सस्तमु प्राणो जह्वातु

॥ २१ ॥

एच्छं चिद् यितपति शिष्यलं चिद् यि वृक्षति ।

उष्टा चिद्विन्दु येपन्ती प्रयस्ता केनमस्यति ॥२२॥

न सार्यकस्य चिकिते जनासो

लोपं नैयगति पशु मय्यमानाः ।

नार्याजिनं पाजिनां दासयन्ति

न गीर्दमं पुरो अश्वान्नयन्ति

॥ २३ ॥

इम ईन्द्र भूतस्य पुत्रा

भैर्यायं चिचितुर्न प्रपित्यम् ।

द्विगम्यस्वमर्त्तं न निरयं

उपावाजं परि जयगयाजौ

॥ २४ ॥

रायिसंवर्धनम् ।

॥ १ ॥ ( अथर्व० ३।१०।८-९ )

वशिष्ठः । ८ विश्वा भुवनानि, ९ पंचः प्रदिशाः । ८ विशाद्  
जगती, ९ अनुष्टुप् ।

वार्जस्य तु प्रसवे सं यम्विम

इमा च विश्वा भुवनान्यन्तः ।

उतादित्सन्तं दापयतु प्रजानम्

रयिं च नः सर्ववीरं नियच्छ ॥ ८ ॥

हुहां मे पंचं प्रदिशो हुहामुर्वीर्याधुलम् ।

प्रापेयं सर्वा आकृतीर्मेनसा हृदयेन च ॥ ९ ॥

वाक् ।

॥ १ ॥ ( झ० १।१६।४१, ४५ )

दीर्घतमा ओच्यः । ४२ आद्यार्धस्य वाक्, द्वितीयाक्षरात्, ४५ वाक् । ४२ प्रस्तरपक्षि, ४५ त्रिष्टुप् ।

तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति

तेन जीवन्ति प्रविशन्ततः ।

ततः क्षरत्यक्षरं तद्विभ्यमुप जीवति ॥ ४२ ॥

सत्वारि वाक्पारिमिता पुद्गानि

तानि विबुध्राहणाः ये मनीषिणः ।

शुद्धा त्रीणि निहिता नैर्ज्ञयन्ति

तुरीयं वाचो मनुष्या यदन्ति ॥ ४५ ॥

॥ २ ॥ ( झ० ३।५३।१५-१६ )

विश्वामित्रो गाधिनः । (उषर्परी) । त्रिष्टुप्, १६ गायत्री ।

सत्सर्परीरमंति वार्धमाना

बृहन्मिमाय जमदग्निदत्ता ।

आ सूर्यस्य दुहिता तंतानः

अयो देवेभ्यमृतमजुषम् ॥ १५ ॥

सत्सर्परीरमस्त नयमेग्यो

अधि अयः पाञ्चजन्यासु रुष्टिपुं ।

सा एस्यां नयमायुर्धर्माता

या मे पलन्तिजमदग्नायो वृद्धः

॥ १६ ॥

(७१४)

॥ ३ ॥ (क्र० ८।१००।१०-११)

नेमो भार्गवः । त्रिष्टुप् ।

यद्वाग्वर्धन्यविचेतनानि

राष्ट्रीं देवानां निपसादं मुन्द्रा ।

चतस्र ऊर्जं दुदुहे पर्यासि ।

कथं स्विदस्याः परमं जगाम

॥ १० ॥

देवीं वार्चमजनयन्त देवां

तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति ।

सा नो मुन्द्रेपमूर्जं दुहाना

धेनुर्वागस्मानुषं सुष्टुतैर्

॥ ११ ॥

॥ ४ ॥ (अथर्व० ७।१०५।१)

अथर्व । (देव्यं वचः) । अनुष्टुप् ।

अपक्रामन् पौरुषेयाहृणानो दैव्यं वचः ।

प्रणीतीत्यायर्तस्य विश्वेभिः सखिभिः सह ॥ १ ॥

॥ ५ ॥ (वा० य० १।१५, १६)

अग्नेस्तनूरसि वाचो विसर्जनं

देवर्षीतये त्वा गृण्हामि वृहद्भावाऽसि धानस्पत्यः

स इदं देवेभ्यो हविः शमीष्य सुशमिं शमीष्य

हविष्कृदेहि हविष्कृदेहि ।

॥ १५ ॥

कुक्कुटोऽसि मधुजिह्व इयमूर्जमायद्वं

त्वर्या वयं संघातं संघातं जेष्म

वपेवृक्षमसि प्रतै त्वा वपेवृक्षं घेसु ।

परंपृतं रक्षः परंपृता अरांतयो

अपहतं रक्षो वायुवो विविनक्तु ॥

देवो यः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृष्णातु ॥

अर्चिष्ठेण पाणिना ।

॥ १६ ॥

॥ ६ ॥ (वा० य० ४।१४, १५-११, १३)

याकपतिर्मा पुनातु

॥ ४ ॥

पूया तै शक्र तनूरेतद्वचः

तया सम्मय भ्राजं गच्छ ।

जूरसि धृता मनसा जुष्टा विष्णवे

॥ १७ ॥

चिदसि मनासि धीरसि

दक्षिणासि क्षत्रियासि यशियासि

अदितिरस्युमयतः शीर्ष्णी ।

सा नः सुपर्वाक्षी सुप्रतीच्येधि

मित्रस्त्वां यदि वंघ्नीतां

पूयाऽर्चनस्यात्विन्द्रायाध्वक्षाय

॥ १९ ॥

अनु त्वा माता मन्यतामनु पिता

अनु भ्राता सगम्योऽनु सखा सपर्य्यः ।

सा देवि देवमच्छेद्दीन्द्राय

सोमं रुद्रस्त्वा वंसयतु

स्वस्ति सोमसखा पुनरेहि

॥ २० ॥

वस्यदितिरस्यादित्यासि रुद्रासि चन्द्रासि ।

वृहस्पतिर्ष्या सुम्ने रम्णातु

रुद्रो वसुभिर्वा चके

॥ २१ ॥

समक्ष्यै देव्या धिया सं दक्षिणोर्वचक्षसा ।

मा म आयुः प्रमोषीमो अहं

तव धीरं विदेय तव देवि सुहृदि ॥ २३ ॥

॥ ७ ॥ (वा० य० ५।३३)

वागस्येन्द्रमसि सवोऽसि

॥ ३३ ॥

॥ ६ ॥ (वा० य० ६।११, १४, १५)

रेवति यजमाने प्रियं धा आ पिंश ।

उरोरुतर्क्षाव सज्ज्वेन वारतेनास्य

हविष्स्मना यज समस्य तन्वा मय

॥ ११ ॥

वाचं ते शुग्धामि

॥ १४ ॥

वाक् त माप्यायताम्

॥ १५ ॥

॥ ९ ॥ (वा० य० ८।३३)

वाग्देवी जुषाणा सोमस्य वप्यतु

सह प्राणेन स्वाहा

॥ ३७ ॥

॥ १० ॥ (वा० य० ९।१९)

प्र नो वच्छत्वयमा प्र पूया प्र वृहस्पतिः ।

प्र वाग्देवी यदातु नः स्वाहा

॥ २९ ॥

॥ ४ ॥ ( ता० य० १८।१९ )

वाग्युक्षेने कल्पताम्

॥ २९ ॥

॥ १२ ॥ ( घा० य० १२।१३ )

वाग्युक्षेने कल्पताम् स्वाहा

॥ ३३ ॥

॥ १३ ॥ ( घा० य० ३७।१६ )

धृता दिवो वि भाति तपसस्पृथिव्यां

धृता देवो देवानाममर्त्यस्तपोजाः ।

वाचमस्मे नि यच्छ देवायुषम्

॥ १६ ॥

॥ १४ ॥ ( अथर्व० ७।४३।१ )

प्रस्कम् । त्रिष्टुप् ।

शिवास्त एका अशिवास्त एकाः

सर्वी विभर्षि सुमनस्यमानः ।

तिन्नो वाचो निर्हिता अन्तरस्मिन्

तासामेका वि पपातानु घोषम्

॥ १ ॥

हस्तः ।

॥ १ ॥ ( अ० १०।६०।१२ )

बन्धु धुतश्चुर्विप्रबन्धुर्गोपायना । अनुष्टुप् ।

अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः ।

अयं मे विश्वमेवजोऽयं शिवाभिर्मर्शनः

॥ १२ ॥

॥ २ ॥ ( अथर्व० ४।१३।७ )

यन्ताति । अनुष्टुप् ।

हस्ताभ्या दशशाय्याभ्यां जिह्वा वाचः पुरोगमी ।

अनामयित्नुभ्यां हस्ताभ्यां

ताभ्यां त्वामि मृशामसि

॥ ७ ॥

मन्युः ।

॥ १ ॥ ( अ० १०।८३।१-७ )

म युक्ताय । त्रिष्टुप् । १ अगती ।

यस्तं मन्योऽविधच्छ सायक

सह भोजः पुष्यति विश्वमानुषक् ।

सा दाम दासमार्यं त्वया युजा

सदस्वतेन सहसा सहस्यता

॥ १ ॥

मन्युरिन्द्रो मन्युरेवास देवो

मन्युर्होता वरुणो जातयेदाः ।

मन्युं विश ईळते मानुषीर्याः

पाहि नो मन्यो तपसा सजोपाः

॥ २ ॥

अमीहि मन्यो त्वसस्तर्षीयान्

तपसा युजा वि जहि शत्रून् ।

अमित्रहा वृत्रहा दस्युहा च

विश्व वसुन्या मरा त्वं नः

॥ ३ ॥

त्वं हि मन्यो अभिमृत्योजाः

स्वयंभूमौ अभिमातिपाहः ।

विश्वचर्षणिः सद्गुरिः सहावान्

असास्वोजः पृतनासु धेहि

॥ ४ ॥

अमागः सन्नप परेतो अस्मि

तव कत्वा तविषस्यं प्रचेतः ।

तं त्वा मन्यो अक्रतुर्जिहील

अहं स्वा तनूर्धूलदेयाय मेहि

॥ ५ ॥

अयं ते अस्त्युप मेहर्वाह

प्रतीचीनः सद्गुरे विश्वधायः ।

मन्यो वसिन्ममि मामा वचुत्स्व

हनाव दस्यूरुत बौध्यापेः

॥ ६ ॥

अभि मेहि वक्षिणतो मवा मे

अघा वृत्राणि अघनाव भूरि ।

जुहोमि ते घृणं मघो अग्रं

उमा उपांशु प्रथमा विवाध

॥ ७ ॥

॥ २ ॥ ( अ० १०।८४।१-७ )

अगती १-३ त्रिष्टुप् ।

त्वया मन्यो सुर्यमारुजन्तो

हयमाणासो धृषिता मर्दयः ।

तिग्मेपय आर्युधा संशिशाना

अभि प्रयन्तु नरो अभिरूपाः

॥ १ ॥

(७१८५)



अग्निरिव मन्यो त्विषितः सहस्व  
सेनानीनः सहुरे द्रुत पथि ।  
हृत्वाय शत्रुन् वि भंजस्व वेद  
ओजो मिमानो वि मृधो जुदस्व  
सहस्व मन्यो अभिमातिमस्मे  
रुजन् मृणन् प्रमृणन् प्रेहि शत्रून् ।  
उग्रं ते पाजो नृणा रुदध्रे  
वशी वशी नयस एकज त्वम्  
एको बहुनामसि मन्यवीलितो  
विशं विशं युधये सं शिशाधि ।  
अरुत्तक् त्वया युजा युयं  
युमन्तं धीर्यं विजयाय कृणुमहे  
विजेयकदिन्द्र इवानययोः  
अस्माकं मन्यो अभिपा भवेद् ।  
प्रियं ते नाम सहुरे गृणीमसि  
विद्या तमुक्तं यत आ बभूय  
आमृत्या सहजा वज्र सायक  
सहो विमर्षमिमूत उत्तरम् ।  
क्रत्वा नो मन्यो सह मेघंधि  
महाघनस्य पुरुहत संसृजि  
संसृष्टं धनमुमयं समाकृतं  
अस्मभ्यं दत्तां वरुणश्च मन्युः ।  
मियं वर्धना हृदयेषु शत्रवः  
पराजितासो अप नि लयन्ताम्

॥ ३ ॥ [१-१७] (पा० य० १८४)

मन्युश्च मे मामश्च मे यशेन कल्पन्ताम्

॥ ४ ॥ (पा० य० १९९)

मन्युरसि मन्युं मयिं चेदि

॥ ५ ॥ (पा० य० २०१४)

मन्यवेऽयस्तापम्

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १४ ॥

॥ ६ ॥ (अथर्व० ६।१२।१-२)

मृगश्रिणाः (परस्परं चित्तौकीकरणकामः) अनुष्टुप् १-२  
गुरिक् ।

अव ज्यामिव धन्वनो मन्युं तनोमि ते दृदः ।  
यथा संमनसौ भूत्वा सप्तायाविव सचावहे ॥१॥  
सप्तायाविव सचावहा अव मन्युं तनोमि ते ।  
अघस्ते अर्धमनो मन्युमुपास्यामसि यो गृधः ॥ २ ॥  
अभि तिष्ठामि ते मन्युं पाण्यो प्रपदेन च ।  
यथाऽवशो न वादिषो मर्म चित्तमुपायसि ॥ ३ ॥

शकुन्तः ।

(कपिजलरूपिन्द्रः)

॥ १ ॥ (ऋ० २।४२।१-२)

युत्तमद (आगिरवः शौनहोत्रः पश्चात्) मार्गद. शौनक. ।  
त्रिष्टुप् ।

कर्त्तिकदञ्जुनयं प्रमुखाणः

इयतिं वार्चमरितेषु नार्वम् ।

सुमङ्गलश्च शकुने भवसि

मा त्वा का विदमिमा विदया विदव ॥ १ ॥

मा त्वा श्येन उद्रीयन्मा सुपणो

मा त्वा विददिषुमान् वीरो अस्ता ।

विश्यामनुं प्रदिशुं कर्त्तिकद

सुमङ्गलो भद्रवादी धेद्व ॥ २ ॥

अयं क्रन्द दक्षिणतो गृह्णाणो

सुमङ्गलो भद्रवादी शकुन्ते ।

मा नः स्तेन ईशत माघदीसो

बृहददेम विदये सुवीराः ॥ ३ ॥

॥ १ ॥ (ऋ० २।४३।१-२)

जगती. २ अतिउग्रो अदिवा ।

प्रदक्षिणिदमि गृणन्ति कारयो

धयो धदन्त क्रतुया शकुन्तयः ।

उमे याचौ यदति सामगा इय

गायत्रं च श्रेष्टुं चानु राजति ॥ १ ॥

(७४०१)

उद्गातेषु शकुने सामं गायसि  
ब्रह्मपुत्र इव सर्वनेषु शंससि ।  
पृथेव वाजी शिशुमतीरपीत्या  
सर्वतो नः शकुने भद्रमा ध्व  
विश्वतो नः शकुने पुण्यमाध्व  
आध्वंस्त्वं शकुने भद्रमा ध्व  
तूष्णीमासीनः सुमति चिकिञ्चि नः ।  
यदुत्पन्नं ध्वंसि कर्करिण्या  
पृथ्वीदेम ध्वये सुधीराः

**इत्येनः ।**

॥ १ ॥ ( ऋ० ४।१६।४-७ )

वामदेवो गौतमः । त्रिष्टुप् ।

प्र सु ७ विभ्यो मरुतो विरस्तु  
प्र इयेनः इयेनेभ्य आशुपत्वा ।  
अचक्रया यत् स्वधया सुपर्णो  
हव्यं भरन्मनवे देवजुष्टम्  
भरद्यदि विरतो धेविजानः  
पथोरुणा मनोजया असजि ।  
स्यै ययौ मधुना लोग्येन  
उत श्रवो विधिदे इयेनो अर्ध  
अजीपी इयेनो ददमानो अंशु  
परापतः शकुनो मन्त्रं मर्दम् ।  
सोमं भरद्वाहदाणो देवार्धान्  
दिपो अमुष्मादुत्तरादाध्व  
आध्वय इयेनो अमरत् सोमं  
सदस्यै सया अयुतं च साकम् ।  
धरा पुरंधिरजहादरातीः  
मदे गोमस्य मूत अमूरः

॥ १ ॥ ( ऋ० ४।१७।१-५ )

( ५ इन्द्रो वा ) । त्रिष्टुप्, ५ शकवरी ।

गर्भे नु सधन्वेषामवेदं  
अहं देवानां जनिमानि विश्वा ।  
शतं मा पुर आर्यसौररक्षन्  
अध इयेनो जवसा निरदीयम् ॥ १ ॥

न घा स मामप जोरं जमार  
अभीमास त्वक्षसा धीर्येण ।  
ईमां पुरंधिरजहादरातीः  
उत वार्तो अतरुदृशुवानः ॥ २ ॥

अव यच्छयेनो अस्वनीदध घोः  
वि यद्यदि वार्त ऊहुः पुरंधिम् ।  
सुजघर्वस्मा अवे ह क्षिपज्या  
कुशानुरस्ता मनसा भुरण्यन् ॥ ३ ॥

अजिप्य ईमिन्द्रावतो न भुज्यु  
इयेनो जमार चहतो अधि णोः ।  
अन्तः पतत्पतव्यस्य पर्ण  
अध धामति प्रसितस्य तद् धेः ॥ ४ ॥

अध भ्वेत कलशं गोभिरकं  
आपिप्यान् मधवा शुक्रमन्थः ।  
अध्वर्युभिः प्रयत मध्वो अग्रं  
इन्द्रो मदाय प्रति धत् पिबन्धै ॥ ५ ॥

शूरो मदाय प्रति धत् पिबन्धै  
॥ ५ ॥  
॥ ३ ॥ ( अथर्व० ७।४१।१-१ )  
प्रस्कन्धः । १ अगती, -२ त्रिष्टुप् ।

अति धन्वान्यत्यपस्तद्व  
इयेनो नृचक्षा अयसानवर्षाः ।  
तरन् विश्वान्यवसा रक्षांसि  
इन्द्रेण सख्या शिव आ जंगम्यात् ॥ १ ॥

इयेनो नृचक्षा दिव्याः सुपर्णः  
सहस्रपाच्छतयोनिर्वयोधाः ।  
स नो नि यच्छाद्रसु यत् पराभृतं  
असाकमस्तु पितृयु स्वधार्वात् ॥ २ ॥  
( ०४१७ )

## सरमा ।

॥ १ ॥ ( ऋ० १०।१०।१,२,५,७,९ )

पणयोऽमुराः । मिष्टम् ।

किमिच्छन्ती सरमा प्रेदमानड  
दूरे ह्यध्वा जर्गुरिः पराचैः ।  
काऽस्मेदितिः का परितक्म्याऽसीत्  
कथं रसाया अतरः पर्यासि  
कीदृङ्मिन्द्रः सरमे का दंशीका  
यस्येदं दूतीरसरः पराकात् ।  
वा च गच्छान्मिन्द्रमेता दधाम  
अथा गवां गोपतिनो मवाति  
इमा गावः सरमे या पेच्छः  
परि द्विचो अन्तान् सुभगे पतन्ती ।  
कस्तं पत्ना अर्ब, सृजादयुष्धी  
उतास्माकमार्युधा सन्ति त्रिम्मा  
अयं निधिः सरमे, अद्रिद्युज्जो  
गोमिरभ्यैर्मिर्वसुमिर्गृष्टः ।  
रक्षन्ति तं पुण्यो ये सुगोपा  
रेकुं पद्मलकुमा जगन्ध  
पृथा च त्वं सरम आजगन्ध  
प्रयाधिता सहसा वैव्येन ।  
स्वसारं त्या हणवै मा पुनर्गा  
अप ते गवां सुभगे मजाम

## —स्वर्गः ।

॥ १ ॥ ( ऋ० १०।१८।१०-११ )

वेवसतो यमः । मिष्टम् ।

अतिं द्रय सारमेयो भ्वानीं  
चतुरक्षौ शयलौ साधुर्ना पृथा ।  
अर्था पितृन्सुविदभ्रां उपेदि  
यमेन ये सधमादं मर्दन्ति

यौ ते भ्वानीं यम रक्षितारौ  
चतुरक्षौ पथिरक्षौ नृचक्षसौ ।

ताभ्यामेनं परि देहि राजन्

स्वस्ति चास्मा अनमीवं च धेहि

॥ ११ ॥

उरुणसार्वसुवृषा उदुम्यलौ

यमस्य दूतौ चरतो जनां अनु

तावस्मभ्यं दृशये सूर्याय

पुनर्गतामसुमघेह भद्रम्

॥ १२ ॥

## —स्वर्गः ।

॥ १ ॥ ( ऋ० ३।८।११ )

विश्वामित्रो पाणिनः । मिष्टम् ।

वनस्पते शतवल्गो वि रौहं

सहस्रवल्गो वि वयं रौहेम ।

यं त्वामयं स्वधितिस्तेजमानः

प्रणिनाय महते सौमगाय

॥ ११ ॥

## अरण्यानी ।

॥ १ ॥ ( ऋ० १०।१४।१-६ )

देवगुनिरग्मदः । अदुष्टम् ।

अरण्यान्यरण्या न्यसौ या प्रेत् नदयासि ।

कृया ग्रामं न पृच्छसि

न त्वा भीरिं विन्दतोऽ

॥ १ ॥

वृषारुषाय वदते यदुपार्वति चिच्छिकः ।

आयाटिमिरिष धावर्यं अरण्यानिर्महीयते

॥ २ ॥

उत गाव इवाद न्युत वेदमेव ददयते ।

उतो अरण्यानिः सायं शंकुदीरिष सजंति

॥ ३ ॥

गामक्षय आ ह्वयति दार्षक्षेपो अपावधीत् ।

वसं प्ररण्यान्यां सायं मरुतमर्दिति मन्यते

॥ ४ ॥

न या अरण्यानिर्हन्त्य न्यधेप्रासिगच्छति ।

स्वादोः फलस्य जग्घार्य ययाकामं नि पद्यते

॥ ५ ॥

॥ १० ॥

(७२८)

आञ्जनगन्धिं सुरभिं बह्वभ्रामर्कपीवलाम् ।  
प्राहं मृगाणां मातरं मरण्यानिर्मशंसिपम् ॥ ६ ॥

**अहिः, अहिर्बुध्न्यः ।**

॥ १ ॥ (श्रु० १।१।१६)

शरवसः (आङ्गिरसः सोनहोत्रः पद्बाद्) भार्गवः सोनकः ।  
जगती ।

उत वः शंसमुशिजांमिव हम्  
अहिर्बुध्न्योऽज एकपादुत ।  
क्षित ऋभुक्षाः संविता चनो दधे  
अपां नपादाशुहेमा धिया शभिं ॥ ६ ॥

॥ १ ॥ (श्रु० ७।१४।१५-१७)

मैत्रावतगिर्वक्षिणः । द्विपदा विराट् ।

अभ्यामुष्यैरहिं गृणीये  
पुष्ने नदीनां रजःसु पीदन्  
मा नोऽहिर्बुध्न्यो रिये घात  
मा यज्ञो अस्य स्निधदतायोः ॥ १७ ॥

॥ १ ॥ (वा० य० १४।५३)

उत नोऽहिर्बुध्न्यः शृणोतु  
अज एकपात् पृथिवी संमुद्रः ।  
विश्वे देवा ऋतावृधो ह्यवानाः  
स्तुता मन्याः कविशुस्ता अंगवतु ॥ ५३ ॥

**दक्षिणा, दक्षिणादात्तारो धा**

॥ १ ॥ (श्रु० १०।१०।१-११)

विष्म आङ्गिरा, दक्षिणा वा प्राजापत्या । त्रिष्टुप्, ४ जगती ।

आयिरंमन्महि माघेनमेवां  
विश्वे जीयं तमसो निरमोचि ।  
महि ज्योतिः पितृभिर्देवमागोत्  
उदः पण्या दक्षिणाया अदति ।  
उषा द्विपि दक्षिणापन्तो अस्युः  
ये अभ्यदाः सत ते न्येण । ॥ १ ॥

हिरण्यदा अमृतत्वं भजन्ते  
वासोदाः सोम प्र तिरस्व धायुः ॥ २ ॥

दैवी पुतिर्दक्षिणा देवधृज्या  
न कवारिभ्यो नहि ते पूणन्ति ।  
अथा नरः प्रयतदक्षिणासो  
अवद्यभिया बहवः पूणन्ति ॥ ३ ॥

शतधारं धायुमर्कं स्वविदं  
नचक्षसस्ते अभि चक्षते हविः ।  
ये पूणन्ति प्र च यच्छन्ति संगमे  
ते दक्षिणां दुहते सतमातरम् ॥ ४ ॥

दक्षिणावान् प्रथमो हूत ऐति  
दक्षिणावान् ग्रामणीरप्रमेति ।  
तमेव मंग्ये नृपतिं जनानां  
यः प्रथमो दक्षिणामाविषाय ॥ ५ ॥

तमेव ऋषिं तमु ब्रह्मणमाहुः  
यज्ञन्यं सामगामुष्यशासम् ।  
स शुक्रस्य तन्वो वेद तिन्नो  
यः प्रथमो दक्षिणया द्राघ ॥ ६ ॥

दक्षिणाभ्वं दक्षिणा गां ददाति  
दक्षिणा चन्द्रमत यद्विरण्यम् ।  
दक्षिणा च वनते यो न आरमा  
दक्षिणां धर्मं कृणुते विजानन् ॥ ७ ॥

न भोजा भर्तुर्न न्यर्थमीयुः  
न रिर्यन्ति न व्यर्थन्ते ह भोजाः ।  
इदं यद्विभ्वं भुवनं स्वह  
एतत् सर्वं दक्षिणेभ्यो ददाति ॥ ८ ॥

भोजा जिग्युः सुरभिं योनिमग्ने  
भोजा जिग्युष्यं या सुवाताः ।  
भोजा जिग्युस्तः पेयं सुरायाः  
भोजा जिग्युये अहृताः प्रयन्ति ॥ ९ ॥

भोजायाश्च सं भुजन्त्याहुः  
भोजार्यास्ते कन्याः शुभ्रमाणाः ।  
भोजस्येदं पुष्करणीं च वेदम्  
परिष्कृतं देवमानेन चित्रम्  
भोजमश्वाः सुपुत्राहो वहन्ति  
सुवृद्धयो वर्तते दक्षिणायाः ।  
भोजं देवासाऽवता भरैषु  
भोजः शत्रून्तस्मनीकेषु जेतां

॥ १० ॥

॥ ११ ॥

### भाष्यकृत्कृ

॥ १ ॥ (श्रु० १०।१२१।१-७)  
प्रजापतिः परमेष्ठी । त्रिष्टुप् ।

नासंदासीन्नो सदासीत् तदानीं  
नासीद्भजो नो व्योमा परो यत् ।  
किमावर्षाः कुह कस्य शर्मन्  
अस्मः किमासीद्भहनं गभीरम्  
न मृत्युर्वासीद्वृत्तं न तर्हि  
न राज्या अहं आसीत् प्रकेतः ।  
आनीदद्यात् स्वधया तदेकं  
तस्माद्भान्यन्न पृथुः किं ब्रूनासं  
तमं आसीत् तमसा गूळदमग्रे  
अप्रकेतं संलिलं सर्वमा इदम् ।  
तुच्छयेनाभ्यर्पितं यदासीत्  
तपसस्तर्माहिनाजायतैकम्  
कामस्तदग्रे समवर्तताधि  
मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ।  
सतो यन्धुमसति निरयिन्दन्  
इदि प्रतीप्या कुर्या मनीषा  
तिर्य्योऽनो विततो रुमिर्योषां  
अथः स्विदासीद्दुपरि स्विदासीद्दृष्ट्वा ।  
रेतोधा आसन् मदिमान आसन्  
स्वधा अयस्तात् प्रयतिः परस्तात्

को अद्वा वेदं क इह प्र वोचत्  
कुत आजाता कुत इयं विश्वः ।  
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेन  
अथा को वेदं यत आबभूव  
इयं विश्वः प्रियत आबभूव  
यदि वा दधे यदि वा न ।  
यो अस्याध्वंशः परमे व्योमन्  
सो अहं वेदं यदि वा न वेदं

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ १ ॥ (श्रु० १०।१२१।१-७)

यज्ञः प्राजापत्यः । त्रिष्टुप् । १ अगती ।

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

यो यज्ञो विश्वस्तन्तुमिस्तत्  
एकंशतं देवकर्मभिरायतः ।  
इमे वयन्ति पितरो य आययुः  
प्र वयापं वयेत्यासते तते  
पुमौ पनं तनुत् उव ऊणति  
पुमान् वि तले अधि नाकै अस्मिन् ।  
इमे मयूखा उरपं सेदुरु सद्ः  
सामानि चरुस्तसराण्योतये  
काऽसीत् प्रमा प्रतिमा किं निदानं  
आज्यं किमासीत् पतिधिः क आसीत् ।  
छन्दः किमासीत् प्रउगं किमुक्यं  
यदेवा देवमयजन्त विश्वे  
अग्नेर्गोयज्यमयत् सपुत्रा  
उष्णिहया सयिता सं वभूय ।  
अनुपुमा सोमं उफ्यैर्महस्यान्  
बृहस्पतेर्बृहती चार्चमायत्  
विराग्मिन्नायर्णयोरभिध्रीः  
इन्द्रस्य त्रिष्टुविह भागो अहंः ।  
विश्वान् देवाभ्यजगत्या विवेन  
तेन चास्त्यष्ट्रं अय्यो मनुष्याः

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

(७३५७)

चाक्लुप्ते तेन ऋषयो मनुष्याः ।  
यथे जाते पितरो नः पुराणे ।  
पश्यन् मन्ये मनसा चक्षसा तान्  
य इमं यक्षमयजन्त पूर्वे

॥ ६ ॥

सहस्तोमा सहस्रन्दस आयुतः  
सहस्रमा ऋषयः सप्त देव्याः ।

पूर्वेषां पन्थामनुदृश्य धीराः  
अन्वालेभिरे रम्योऽनु न रम्यीन्

॥ ७ ॥

॥ ३ ॥ ( ऋ० १०।१५४।१-५ )

यमी वैवस्वतोऽनुपुष्टः ।

सोम एकैभ्यः पयते घृतमेक उपासते ।

येभ्यो मधु प्रधारयति तौद्धिदेवापि गच्छताम् ॥ १ ॥

तपसा ये अनाध्व्यास्तपसा ये स्वर्ययुः

तपो ये चक्रिरे मह-स्तौद्धिदेवापि गच्छताम् ॥ २ ॥

ये युष्यन्ते प्रधनेषु शूरास्तो ये तनूत्यजः ।

ये यो सहस्रदक्षिणा-स्तौद्धिदेवापि गच्छताम् ॥ ३ ॥

ये चित् पूर्वे ऋतसापे ऋतार्थान् ऋतायुषः ।

पितृन् तपस्यतो यम तौद्धिदेवापि गच्छताम् ॥ ४ ॥

सहस्रणीथाः कथयो ये गोपायन्ति सूर्यम् ।

ऋषीन् तपस्यतो यम तपोजो अपि गच्छताम् ॥ ५ ॥

॥ ४ ॥ ( ऋ० १०।१२०।१-३ )

अयमर्थो माधुच्छन्दसः । अनुष्टुप् ।

ऋतं च सत्यं चाभीजात् तपसोऽर्चयत ।

ततो राज्यं जायत ततः समुद्रो अर्णवः ॥ १ ॥

समुद्रादर्णवादर्धे संवत्सरो-अजायत ।

अहोरात्राणि विदध-द्विभ्यस्य मिततो वशी ॥ २ ॥

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूषमकल्पयत् ।

दिवं च वृषिर्वीचा-न्तरिक्षमयोऽस्यः ॥ ३ ॥

(७४९१)-११



अथ ऋषयः

अत्रिः

॥ १ ॥ ( अ० ५।४०।६-९ )

अत्रिमौनः । त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् ।

स्वर्मानोरध यद्विन्द्र माया  
अथो द्वियो वर्तमाना अबाहन् ।

गुरुहं सूर्यं तमसाऽपमतेन  
तुरीयेण ब्रह्मणाऽपिन्द्रविः

आ मामिमं तव सन्तमथ  
इत्स्या दुग्धो मियसा नि गारीव ।

त्वं मित्रो असि सत्यरोस्तौ  
मेहावतं वरेणश्च राजा

प्राण्यो ब्रह्मा युयुजानः सपर्यन्  
कीरिणा देवान् नमसोपदिक्षन् ।

अत्रिः सूर्यस्य दिवि चक्षुराघात्  
स्वर्मानोरप माया अघुक्षत्

यं वै सूर्यं स्वर्मानुस्तमसाऽविध्यदासुरः ।  
अत्रयस्तमन्वविन्दन् तदा पुन्ये अशक्नुवन्

क्षिक्कामिन्द्रः ।

॥ १ ॥ ( अ० ३।३।४, ८, १० )

नदी ऋषिः । त्रिष्टुप् ।

पना वयं पर्यसा पिन्वमाना

अनु योनिं देवकृतं चरन्ताः ।

८०

7

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

न वर्तये प्रसवः सर्गतकः

क्रियुर्विप्रो नद्यो जोहवीति

एतद् वचो जस्तिर्माऽपि मृष्टा

आ यव ते घोषानुत्तरा युगानि ।

उक्थेयुं कारे प्रति नो जुपस्व

मा नो नि कः पुरुषा नमस्ते

आ ते कारे ऋणवामा वचांसि

युयार्थं दूरादनेसा रथेन ।

नि ते नसे पीप्यानेष योषा

मर्यायेव कन्या शश्वचे ते

क्षमिद्देवः ।

॥ १ ॥ ( अ० ४।१।१, ७ )

१ इन्द्रः, ७ अदितिः ऋषिः । त्रिष्टुप् ।

अयं पन्था अनुविचः पुराणो

यतो देवा उदजायन्त धिर्वे ।

अतश्चिदा जनिपीष्ट प्रवृद्धो

मा मातरममुया पचवे कः

किमु श्विदस्मै निचिदो मनन्त

इन्द्रस्यावधं दिधिपन्त आपः ।

ममैतान् पुत्रो महुता वधेन

वृत्रं जघन्यो अंसज्द वि सिन्धून्

॥ ४ ॥

॥ ८ ॥

॥ १० ॥

॥ १ ॥

॥ ७ ॥

(७२५५)

# कसिष्ठपुत्राः इन्द्रो वा ।

॥ १ ॥ ( क्र० ७३११-९ )

वशिष्ठो मैत्रावरुणिः । त्रिष्टुप् ।

भित्तयंचो मा दक्षिणतस्कपदां  
धियंजिन्वासो अभि हि प्रमृन्दुः ।  
उत्तिष्ठन् चोद्ये परिं वहियो नृन्  
न मे दुरादवितथे वसिष्ठाः  
दुरादिन्द्रमनयसा सुतेन  
तिरो वैश्वतमति पान्तमुग्रम् ।  
पार्श्वस्य वापतस्य सोमात्  
सुतादिन्द्रोऽवृणीता वसिष्ठान्  
एषेष् कं सिन्धुमेभिस्ततार  
इषेष् कं मेदमैभिर्जघान ।  
एषेष् कं दाशराशे सुदासं  
प्रावदिन्द्रो ब्रह्मणा यो वसिष्ठाः  
जुष्टी नरो ब्रह्मणा यः पितृणां  
अक्षमव्ययं न किला रिपाथ ।  
यच्छफर्वरीषु घृता रवेण  
इन्द्रे शुष्ममर्दघाता वसिष्ठाः  
उक् धामिवेत् तृष्णजो नायितासो  
अदीधुर्दाशराशे घृतासः ।  
वसिष्ठस्य स्तुयत इन्द्रो भधोत्  
उद्यं तत्सुग्यो अरणोडु लोकम्  
दण्डा इवेद् गोमर्जनात् आसुन्  
परिच्छिन्ना भ्रुता बर्मुकासः ।  
अमयष पुरप्ता वसिष्ठ  
आदिक् तत्सुनां पिशो अग्रथन्त  
त्रयः एणयन्ति मुयनेषु रेतः  
तिष्ठः भृजा भार्या ज्योतिरघ्राः ।  
त्रयो धर्मास्त उपसं सचन्ते  
सर्पा इन् तां धनुं पिदुर्पसिष्ठाः

सूर्यस्येव वस्यो ज्योतिरेयां  
समुद्रस्येव महिमा गंभीरः ।  
वार्तस्येष प्रज्जघो नान्येन  
स्तोमो वसिष्ठा अन्येतथे यः  
त इभिष्यं हृदयस्य प्रकेतैः  
सहस्रवत्सामि सं चरन्ति ।  
यमेनं ततं परिधिं वयन्तो  
अप्सरस उर्प सेदुर्धसिष्ठाः

॥ ८ ॥

॥ १ ॥

॥ ९ ॥

## कसिष्ठः ।

॥ १ ॥ ( क्र० ७३११-१०-१४ )

वशिष्ठपुत्राः । त्रिष्टुप् ।

॥ २ ॥

विद्यतो ज्योतिः परिं संजिहानं  
मित्रावरुणा यदपश्यतां त्वा ।  
तत् ते जन्मतैकं वसिष्ठा  
अगस्त्यो यत् त्वा विश आजभारं  
उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठ  
उर्वदयां ब्रह्मन् मनसोऽधि जातः ।  
द्रुप्तं स्कृजं ब्रह्मणा दैव्येन  
विश्वे देवाः पुष्करे त्वादवन्त  
स प्रकृत उमयस्य प्रविद्धान्  
सहस्रदान उत वा सदानः ।  
यमेनं ततं परिधिं वयिष्यन्  
अप्सरसः परिं जज्ञे वसिष्ठः  
सत्रे ह जातारिपिता नमोभिः  
कुम्भे रतः सापिचतुः समानम् ।  
ततो मान उर्वियाय मध्यात्  
ततो जातमूर्धमाहुर्वसिष्ठम्  
वक्ष्यभृतं सामभृतं विभर्ति  
प्राषाणं विभ्रत् प्र यदात्यग्रे ।  
उपैनमाध्वं सुमनस्यमाना  
वा यो गच्छाति प्रददो वसिष्ठः

॥ १० ॥

॥ ४ ॥

॥ ११ ॥

॥ ५ ॥

॥ १२ ॥

॥ ६ ॥

॥ १३ ॥

॥ ७ ॥

॥ १४ ॥

(७४८९)



## कशिष्टाशिः ।

॥ १ ॥ (अ० ७।१०४।२३) [पूर्वाधेय]

वधितो मेघावधितः । अगती ।

मा नो रक्षो अभि नड्यातुमर्वातां

अपोच्छतु मिथुना या किमीदिनां

॥ २३ ॥

## रोमहाः ।

॥ १ ॥ (अ० १।१२६।६)

(१) स्वमयो मावयस्यः । अनुष्टुप् ।

आर्गाधिता परिगाधिता या कशीकेव जङ्गहे ।

वदाति महां यादुरी यादानां भोज्यां शता ॥ ६ ॥

## अंगिरः पित्र्यध्वं-

## मृगुसोमः ।

॥ १ ॥ (अ० १०।१४।६)

यतो वैवस्वतः । त्रिष्टुप् ।

अङ्गिरसो नः पितरो नर्गवा

अयर्वाणो भुर्गवः स्रोण्यासः ।

तेषां वयं ह्युमता यज्ञियांनां

अपि मदे सौमनसे स्याम

॥ ६ ॥

## भाक्कयव्यः ।

॥ १ ॥ (अ० १।१२६।१-५, ७)

कशीवान् ओशितो दर्पतमहाः, ७ रोमशा

महापादिनी । १-५ त्रिष्टुप्, ७ अनुष्टुप् ।

अमन्वान्तस्तोमान् प्र भरे मनापा

सिन्धावार्धि क्षियतो माव्यस्य ।

यो मे सहस्रममिमीत सवान्

अतुतो राजा अवं हृच्छमानः

॥ १ ॥

शतं राहो नार्धमानस्य निष्कान्

शतमश्वान् प्रयतान्स्य आदम्

शतं कशीषो अहुरस्य गोर्ना

दिवि अवोऽजरा ततान्

॥ २ ॥

उप मा श्यावाः स्वनयेन दत्ता

यधूर्मन्तो दश रथासो अस्थुः ।

पथिः सहस्रमनु गव्यमागात्

सर्नत् कशीषो अमिपित्वे अहाम्

॥ ३ ॥

चत्वारिंशद् दशरथस्य शोणाः

सहस्रस्याग्ने धेयिं नयन्ति ।

मदच्युतः कृशानावतो अत्यान्

कशीवन्त उर्दमृशन्त पञ्चाः

॥ ४ ॥

पूर्वामनु प्रयतिमा ददे वः

जीन युक्तो अष्टावरिचायसो गाः ।

सुयन्धवो ये विश्या इव मा

अनस्वन्तः अवं परेन्त पञ्चाः

॥ ५ ॥

उपोष मे परां सृश मा मे दध्राणि मन्यथाः ।

सर्वाहर्मस्मि रोमशा गुण्यारिणामिवाविका ॥ ७ ॥

## मजापतिः हरिश्चन्द्रः

## वर्म सोमो वाः

॥ १ ॥ (अ० १।१८।९)

ह्यन रोप आबोगतिः । गायत्री ।

उच्छिष्टं चर्मोमेर् सोमं पयिष आ सृज ।

नि धेहि गोरधि त्वचि

॥ ८ ॥

## सोमकः साहदेव्यः ।

॥ १ ॥ (अ० ४।१५।७-८)

यामदेवो गौतमः । गायत्री ।

बोधयन्मा हरिभ्यां कुमारः साहदेव्यः ।

अच्छा न हूत उर्दरम्

॥ ७ ॥

उत त्या यजता हवीं कुमारात् साहदेव्यात् ।

प्रयता स्य आ ददे

॥ ८ ॥

(७५०१)

## पुरुमीळहो वैददधिः, तरन्तो वैददधिः ।

॥ १ ॥ ( ऋ० ५।६।१९-१० )

इमावाधः आत्रेयः । ८ सतो बृहती, १० गायत्री ।

उत मेऽरपद्युतिर्ममन्वुषी ।  
प्रति इयावार्य वर्तनिम् ।  
यि रोहिता पुरुमीळहाय  
येमतुः विप्राय दीर्घयशसे ॥ ९ ॥  
यो मे धेनुनां शतं वैददधिर्यथा ददत् ।  
तन्त इव मंहना ॥ १० ॥

## तरन्तमहिषी शशियसी ।

॥ १ ॥ ( ऋ० ५।६।१५-८ )

इमावाधः आत्रेयः । गायत्री, ५ अश्विपु ।

सनत् साक्षर्यं पशुमुत गव्यं शतार्धयम् ।  
इयावाद्वस्तुताय या दोर्वीरायोपवृद्धत् ॥ ५ ॥  
उत त्या स्त्री शशीयसी पुंसो भवति वस्यसी ।  
अर्धेधमद्राधसः ॥ ६ ॥  
यि या जानाति जसुरि  
यि तृप्यन्तं यि कामिनम् ।  
देधम्रा कृणुते मनः ॥ ७ ॥  
उत या नेमो अस्तुतः पुमां इति मुवे पुणिः ।  
स वैरिदेय इत् समः ॥ ८ ॥

## रथकीर्तिर्दाम्यः ।

॥ १ ॥ ( ऋ० ५।६।१७-१९ )

इमावाधः अत्रेयः । गायत्री ।

एतं मे स्तोममृग्यं वाम्याय परां वह ।  
गिरौ देवि रथीरिय ॥ १७ ॥  
उत मे योचतादिति सुतसोमे रथंवीली ।  
न वामो धर्पं वेति मे ॥ १८ ॥

एष वेति रथंवीतिर्मघवा गोमतीरन्तु ।  
पर्यतेष्वपथितः ॥ १९ ॥

## सुदासः पैजवनः ।

॥ १ ॥ ( ऋ० ७।१।८।१२-१५ )

वैत्रावस्यगिर्वशिष्ठः शिशुपु ।

द्वे नपुनर्वैजयंतः शते गोः  
द्वा रथा वधूमन्ता सुदासः ।  
अर्धेधमे पैजवनस्य दान  
होतेषु सप्त पर्यमि रेभन् ॥ २२ ॥  
चत्वारो मा पैजवनस्य दानाः  
साहिष्टयः कृशनिर्गो निरेके ।  
ऋषासो मा पृथिविष्ठा सुदासः  
तोके तोकाय अयसे वहन्ति ॥ २३ ॥  
यस्य अश्वो रोदसी अन्तरुषी  
शीर्षो शीर्षो विब्रमाजा धिमक्ता ।  
सुतेदिन्मं न स्रवतो गुणान्ति  
नि युध्यामधिर्मशिशावभीके ॥ २४ ॥  
इमं नरो मरुतः सश्चतानु  
दिवोदासं न पितरं सुदासः ।  
अविष्टना पैजवनस्य केतं  
दृणाशो क्षत्रमजरं दुधोयु ॥ २५ ॥

## वृकुस्तक्षः ।

॥ १ ॥ ( ऋ० ६।४।५।३१-३३ )

अंयुर्वाहस्यत्वं ३१ पादमिबुत्, ३२ गायत्री, ३३ अश्वपु ।  
अधि ध्रुवः पंणीनां वरिष्ठे मुर्धनस्यात् ।  
उरुः कशो न गाक्ष्यः ॥ ३१ ॥  
यस्य धायोरिव द्रवद् अद्रा रातिः संहसिणी ।  
सद्यो दानाय मंहते ॥ ३२ ॥  
तत् सु नो विश्वे अयं आ सदा गृणन्ति वार्यः ।  
ध्रुवं संहस्रदातमं सूरिं संहस्रदातमम् ॥ ३३ ॥  
( ७।१।९ )

## सार्जयः प्रस्तोक्तः

( दानस्तुतिः ) ।

॥ १ ॥ ( अ० ६।४७।१९-२५ )

गणो भारद्वाज । २२ त्रिष्टुप्, २३ अनुष्टुप् २४ गायत्री,  
२५ द्विपदा त्रिष्टुप् ।

प्रस्तोक्त इष्टु राधसस्त इन्द्र  
दश कोशयीर्दश आजिनोऽदात् ।

त्रिचोदासादतिथिग्वस्य राधः

शाम्भुरं वस्तु प्रत्यग्रमीप्स ॥ २२ ॥

दशाश्वान् दश कोशान् दश घत्नाधिं मोजना ।

दशो हिरण्यपिण्डान् दिव्योदासादसानिपम् ॥ २३ ॥

दश रथान् प्रतिमतः शतं गाः अर्थवर्म्यः ।

अद्वयः पापर्वेऽदात् ॥ २४ ॥

महि राधो विश्वजन्यं वर्धानान् ।

भ्रष्टाजान्स्तार्जियो अग्न्यष्ट ॥ २५ ॥

## आसङ्गः ।

॥ १ ॥ ( अ० ८।१।३०-३४ )

आर्षाः पञ्च योगिः । ३४ शश्वती आगिरसी ऋषिः ।

त्रिष्टुप्, ३०-३२ बृहती ।

स्तुहि स्तुहीदेते घां ते महिष्ठासो मघोनाम् ।

निन्द्रिताश्वः प्रपथी परमृज्या

मघस्य मध्यातिथे ॥ ३० ॥

आ यदश्वान् वनन्वतः श्रद्धयाऽहं रथे रुहम् ।

उत यामस्य वसुनश्चिकेतति

यो अस्ति यादः पशुः ॥ ३१ ॥

य ऋज्जा मह्यं मामहे सह त्वचा हिरण्यया ।

एव विश्वान्यभ्यस्तु सौमगा

आसंगस्य स्वन्द्रथः ॥ ३२ ॥

अथ ग्राधोगिरतिं दासदन्यान्  
आसंगो अग्ने दशभिः सहस्रैः ।

अघोक्षणो दश मह्यं रुशन्तो

नृच्छा इव सरसो निरतिष्ठन् ॥ ३३ ॥

अन्वस्य स्थुरं ददशो पुरस्तात्

अनुस्य ऊरुरवरम्यमाणः ।

शाम्वती नार्यमिचस्याह

सुभद्रमयं भोजनं विभर्षि ॥ ३४ ॥

## विमिन्दुः ।

॥ १ ॥ ( अ० ८।१।३१-३२ )

मेघ तिथिः काण्वः । गायत्री ।

शिक्षां विमिन्दो अस्मै स्तार्ययुता ददत् ।

अष्टा पुरः सहस्रा

॥ ४१ ॥

उत सु त्ये पयोवृषां माकी रणस्य नृप्या ।

जनिवन्नायं मामहे

॥ ४२ ॥

## पाकस्थामा कौरयाणः ।

॥ १ ॥ ( अ० ८।३।२१-२४ )

मेघ्यातिथिः काण्वः । गायत्री, २१ अनुष्टुप्, २४ बृहती ।

यं मे दुरिन्द्रो मुक्तः पाकस्थामा कौरयाणः

विश्वेषां तमना शोभिष्टं

उपैव द्विवि धार्वमानम्

॥ २१ ॥

रोहितं मे पाकस्थामा सुधुरं कस्यमाम् ।

अदाद् रायो विवोधनम्

॥ २२ ॥

यस्मा अन्ये दश प्रति धुरं वहन्ति वद्वयः ।

अस्तं वयो न तुम्यम्

॥ २३ ॥

आत्मा पितुस्तनूवांस ओजोदा अग्न्यजनम् ।

तुरीयमिद् रोहितस्य पाकस्थामानं

भोजं दातारमव्रवम् ।

॥ २४ ॥

(७१३१)

**कुरुङ्गः ।**

॥ १ ॥ ( अ० ८।४।१९-२१ )

देवातिथिः काण्वः । प्रगायः ( विषमा बृहती-षमा सती बृहती ) ।

स्युरं राधेः शताद्वै कुरुङ्गस्य दिविष्टेषु ।

राधेस्त्येषस्य सुमर्गस्य ।

रातिपुं तुर्वर्तोष्यमग्निदि

॥ १९ ॥

धीभिः सातानि याणस्य

प्राजिनः प्रियमैधैरभियुग्मिः ।

पष्टि सुदन्तानु निर्मेजामजे ।

निर्युधानि गयामृषिः

॥ २० ॥

पुष्टाधिग्मे अभिपित्रे वरारणुः ।

गां मजन्त मेदनाऽभ्यं मजन्त मेदनां

॥ २१ ॥

**कशुश्चैधः ।**

॥ १ ॥ ( अ० ८।५।१७ [ वसराधस्य ]-१९ )

प्रगातिथिः काण्वः । बृहती, १९ अश्विपुः ।

यथा चिष्टैः वदुः शतं

उष्टानां वदत् सुदद्या ददा गोनाम्

॥ २७ ॥

यो मे हिरण्यसदृशो ददा राशो भर्मदत् ।

अध्वस्यदा इष्टैरस्य

हृष्टपद्ममन्ता अभितो जनाः

॥ २८ ॥

मार्बिरेना पुषा गाद् येनेमे यन्नि चेष्टयः ।

अग्नो नेत्र सुखिरोदन्ते भूरिदापसरो जनेः ॥ २९ ॥

**तिरिन्दिरः पार्श्वः ।**

॥ १ ॥ ( अ० ८।६।४६-४८ )

वायुः काण्वः । शायनी ।

शतमदं तिरिन्दिरं सुदद्यं पर्जाया वदे ।

राध्याम् याष्टानाम्

॥ ४६ ॥

धीनि शतमदयन्ता सुदद्या ददा गोनाम् ।

बहुप्राप्य तापं

॥ ४७ ॥

वशीकृतं वृष्टो दिवगुह्यं वसुधुं वदत् ।

अवन्ता याष्ट जनाम्

॥ ४८ ॥

**असदस्युः पौरुकुत्स्यः ।**

॥ १ ॥ ( अ० ८।११।३६, ३७ )

शोभिरः काण्वः । ककुप, ३७ पंक्तिः ।

अदान्मे पौरुकुत्स्यः पौवाशतं असदस्युर्वधुनाम् ।

महिष्ठो अयः सत्यतिः

॥ ३६ ॥

उत मे प्रयियोर्वयियोः सुवास्वा अधि तुग्वनि ।

तिसृणां संसतीनां श्वायः

प्रणेता भुवद् वसुर्दियानां पतिः

॥ ३७ ॥

**विश्वः ।**

॥ १ ॥ ( अ० ८।११।१७-१८ )

शोभिरः काण्वः । प्रगायः ( विषमा बृहती-षमा सती बृहती )

शत्रो वा घेदिर्यमघं

सरस्वती वा सुमर्गा वृद्धिस्तु ।

सं वा चित्र वामुषे

॥ १७ ॥

चित्र इद् राजा राजका

इदंन्यके युके सरस्वतीमनु ।

पर्जन्य इय ततनदि वृष्ट्या

सुदद्यंमपुता वदत्

॥ १८ ॥

**धरुः सौफस्मिन्ः ।**

॥ १ ॥ ( अ० ८।१४।१८-१९ )

विषमनाः वैधयः । वणिक्, १० अश्विपुः ।

यथा वरो सुपाज्जे तानिभ्य भार्यहो वणिम् ।

व्यंभेभ्यः सुमगे याजिनीयति

॥ १८ ॥

या नार्यस्य दक्षिणा व्यंभो यत् सौमिनिः ।

स्युं य राधेः शतवत् सुदद्यंयत्

॥ १९ ॥

यत् स्यां पुष्टादीजानः वृष्ट्या वृष्टयाहते ।

य्यो कर्पयितो वृष्टो नौमनीमव तिष्ठति

॥ २० ॥

## पृथुश्रवाः कानीतः ।

॥ १ ॥ ( ऋ० ८।३।११-२४ )

वसोऽस्य । पंक्तिः, २२ संस्तारपंक्तिः, २३ गायत्री ।

आ न एतु य ईवदो अदेवः पुर्तमाददे ।

यथा चिद्वशो अदस्यः

पृथुश्रवस कानीतेऽस्या व्युप्याददे ॥ २१ ॥

पथि सहस्राक्ष्यस्यायुतांसनं

उपानां पिशति शता ।

वश इयावीनां शता दश

अयंरुगीणां दश गवां सहस्रां ॥ २२ ॥

दश इयावा ऋधद्रयो वीतयारास आशवः ।

मथा नेमि नि वावृतुः ॥ २३ ॥

दानांसः पृथुश्रवसः कानीतस्य सुरार्धसः ।

रथं हिरण्यय ददन्महिष्ठः सुरिरिभूद्

वर्षिष्ठमरुतु श्रवः ॥ २४ ॥

## शुतर्का आर्क्षः ।

॥ १ ॥ ( ऋ० ८।७।१३-१५ )

गोपवन आदेयः । अनुष्टुप् ।

अहं हृषान आर्क्षे धुतर्वणि मद्रुयुति ।

शर्धोसीव स्तुकाधिनां मृक्षा शीपां चतुर्णाम् ॥ १३ ॥

मां चत्वार आशयः शर्विष्ठस्य द्रविन्नवः ।

सुरधांसो अमि प्रयो वक्षन् वयो न तुम्यम् ॥ १४ ॥

स्त्यमित्त्वां महेनदि परुण्यव देदिशम् ।

नेमापो अश्वदातरः शर्विष्ठादस्ति मर्त्यैः ॥ १५ ॥

## ऐन्द्रो वसुक्रः ।

॥ १ ॥ ( ऋ० १०।१८।९, ६, ८, १०, ११ )

इन्द्र ऋषिः । निष्ठुप् ।

स रोहवद्रपमस्तिग्मशृङ्गे

वर्ष्मन् तस्यो वरिमृषा पृथिव्याः ।

विश्वेध्वेन वृजनेपु पाप्मि

यो मे कुक्षी सुतसोमः पुणार्ति - ॥ २ ॥

एषा हि मां तवसं वर्धयन्ति

विचक्षिन्मे बृहत् उत्तरा धः ।

पुरु सहस्रा नि शिशामि साकं

अश्रुं हि मां जनिता अजानं ॥ ६ ॥

देवासं आयन् परशूरविभ्रन्

वनां वृश्चन्तो अमि विडभिरायन् ।

नि सुद्रवं, र्धतो वक्षणांसु

यत्रा कृपीदमनु तदहन्ति ॥ ८ ॥

सुपर्ण इत्या नखमा सिपाय

अयंरुदः परिपदं न सिंहः

निरुद्धश्चिन्महिपस्तुप्यावान्

गोधा तस्मा अयथ कर्पदेतत् ॥ १० ॥

एते शर्माभिः सुशर्मा अभूवन्

ये हिंस्विरे तुन्वः सोम उक्थैः ।

नृषद्वदुप नो माहि वाजान्

विवि श्रवो दधिपे नाम धीरः ॥ १२ ॥

## कुरुश्रवणस्त्रासदक्षकः ।

॥ १ ॥ ( ऋ० १०।३।४-५ )

कवय ऐक्षः । गायत्री ।

कुरुश्रवणमावृणि राजानं त्रासदस्यवम् ।

महिष्ठं वाघतामृषिः ॥ ४ ॥

यस्य मा हरितो रथं तिस्रो बहन्ति साधुया ।

स्तथै सहस्रदक्षिणे ॥ ५ ॥

## उपमश्रवा मैत्रातिथिः ।

॥ १ ॥ ( ऋ० १०।३।६-९ )

कवय ऐक्षः । गायत्री ।

यस्य प्रस्वादसो गिर उपमश्रवसः पितुः ।

क्षेत्रं न रणवमुचुपे ॥ ६ ॥

अर्धं पुत्रोपमश्रवो नपाग्मित्रातिथेतिहि ।

पितुर् अस्मि वन्दिता ॥ ७ ॥

यदीशीयामृतानामुत वा मर्यानाम् ।  
जीवेदिन्मपया मर्म  
न वेद्यानामर्ति मृतं शतारमा चन जीयति ।  
तथा युजा वि वाधृते

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

## ऋक्षध्वमेधी ।

॥ १ ॥ (ऋ० ८।१८।१४-१९)

प्रियमेध आधिरसः । नावर्जः ।

उपमा पङ्गु द्राक्षा नरः सोमस्य हृष्या ।  
तिष्ठन्ति स्वादुरातयः  
ऋक्षाविन्दोत भा ददे हरी ऋक्षस्य सुनवि ।  
आध्वमेधस्य रोहिता  
सुर्या आतिथिगवे स्वमीश्वराक्षे ।  
आध्वमेधे सुपेशसः  
पळदधौ आतिथिगव इन्द्रोते वधूमतः ।  
सर्वा पुतकतौ सनम् ।  
एतु चेतद्वपण्यत्यन्तऋजेध्वरुषी ।  
स्वमीशुः कशाघती  
न युष्मे वाजयन्ध्रवो नितित्सुञ्जन मन्यैः ।  
अवधमधि दीधरत्

॥ १४ ॥

॥ १५ ॥

॥ १६ ॥

॥ १७ ॥

॥ १८ ॥

॥ १९ ॥

## उर्वेशि ।

॥ १ ॥ (ऋ० १०।९।१,२,६,८-१०,१२,१४,१७)

पुरुषा ऐक कविः । त्रिष्टुप् ।

हुये जाये मर्नसा तिष्ठ घोरे  
वचांसि मिधा कृणवायहै जु ।  
न नौ मन्त्रा अनुदितास एते ।  
मयस्करन् परतरे वनाहन्  
इपुनं ध्रिय इपुधेरसना गोषाः शतसा न रंहिः ।  
अवीरे क्रतौ वि दधिपुतप्रोय  
न मायुं वितयन्तुः पुन्यः

॥ १ ॥

॥ ३ ॥

या सुजुषिः श्रेणिः सुम्न आपिः  
हृदेचधुर्न प्रथिनी चरण्युः ।  
ता अंजयोरुणयो न संसुः  
ध्रिये गावो न धेनवोऽनवन्त

॥ ६ ॥

सचा यदासु जहतीष्वत्कं  
अमानुषीषु मानुषो निषेवे ।

अपं स्म मत्तरसंग्ती न मुज्युः  
ता अत्रसन् रथस्पृशो नाभ्वाः

॥ ८ ॥

यदासु मर्तो अमृतासु निस्पृक्  
सं क्षोणीभिः क्रतुभिर्न पृङ्क्ते ।

ता आतयो न तन्वः शुम्भत स्वा  
अभ्वासो न क्रीळयो दन्दशानाः

॥ ९ ॥

विद्युश्च या पतन्ती दर्विषोत्  
अरन्ती मे अग्न्या काम्यानि ।

जनिष्ठो अपो नर्यः सुजातः  
प्रोर्वशी तिरत दीर्घमार्युः

॥ १० ॥

कदा सुनुः पितरं जात ईळाव  
चक्राभ्रं वर्तयद्विज्ञानम् ।

को दंपती समनसा वि यूयोत्  
अथ यदग्निः भवशुरेषु दीर्घयत्

॥ १२ ॥

सुदेवो अथ प्रपतेदनाधृत्  
परधर्त परमां पन्तया उ

अथा शयीत् निष्कृतेरुपस्थे  
अर्धेन धृक् अमसासो अघः

॥ १४ ॥

अन्तरिक्षमां रजसो यिमात्रं  
उपं शिक्षाम्युर्वशीं योतिष्ठः ।

उपं त्वा रातिः सुभूतस्य तिम्राव  
नि वर्तस्व हृदयं तप्यते मे

(७०१)

# पुष्करका ।

॥ १ ॥ ( अ० १०१२-११४-५, ७, ११, १३, १५-१६, १८ )  
नवशी अधिका । त्रिष्टुप् ।

किमेता वाचा कृणुषा तवाहं  
प्राकमिपमुपसामप्रियेव ।  
पुंरुखः पुनरस्तं परेहि  
दुरापना घातं हवाहमस्मि  
सा वसु दधती भवशुखाय वयं  
उपो यदि वष्टयन्तिगृहात् ।  
अस्तं ननक्षे यस्मिञ्चाकन्  
दिवा नक्तं अधिता वैतसेन  
त्रिः स्म माहः अययो वैतसेन  
उत स्म मेऽव्यस्यै पूणासि ।  
पुंरुखोऽनु ते केतमायं  
राजा मे वीर तन्वदुस्तवासीः  
समस्मिज्जायमान आसत् मा  
उतेमवर्धन् नद्यः स्वर्गताः ।  
महे यत् त्वां पुंरुखो रणाय  
अवर्धयन् वसुहृत्पाय देवाः  
जह्रिप इत्या गोपीव्याय हि  
वधाथ तत् पुंरुखो म औजः ।  
अशासं त्वा धिदुषीं सस्मिन्नहन्  
न म आशृणोः किममुववांसि  
प्रति व्रथाणि वर्तयति अश्रुं  
चक्रन् न क्रन्ददार्घ्यं शिवायै ।  
प्र तत् ते दिनवा यत् ते अस्मे  
परेहास्तं नहि मूर मापः  
पुंरुखो मा मृथा मा प्र पंतो  
मा त्या वृकांसो अशिवास उ क्षन् ।  
न वै स्त्रैणानि सुष्पानि सन्ति  
सालावकाणां हृदयान्येता

यद्विरूपाचरं मत्पैष्ववसे रात्रीः शरदश्चतस्रः ।  
घृतस्य स्तोत्रं सकृदहं आश्रामं  
तादेवेदं तातृपाणा चरामि ॥ १६ ॥  
इति त्वा देवा इम आहुरैल्ल  
यथैमेतद्भवसि मृत्युर्वन्धुः ।  
प्रजा ते देवान् हविषा यजाति  
स्वर्ग उ त्वमपि मादयासे ॥ १८ ॥

## स्वनयस्य दानस्तुतिः ।

॥ १ ॥ ( अ० १११५-१२-७ )

कधीवान् औषिभो देवतमघ । त्रिष्टुप्, ४-५ अगती ।

॥ ४ ॥

प्राता रत्नं प्रातरित्या वधाति  
तं चिकित्वा प्रतिगृह्णा नि धसे ।

॥ ५ ॥

तेन प्रजां वर्धयमान आयुं  
शयस्पोषेण सचते सुधीरः ॥ १ ॥

॥ ७ ॥

सुगुरसत् सुहिरण्यः स्वर्ध्वो  
युद्धस्मै वय इन्द्रो वधाति ।  
यस्त्वायन्तं वसुना प्रातरित्यो  
सुधीर्जयेव पर्विसुस्तिनार्ति ॥ २ ॥

॥ ११ ॥

आयमद्य सुकृतं प्रातरिच्छन्  
इष्टे पुत्रं वसुमता रथेन ।  
अशोः सुतं पायय मत्सुरस्यं  
क्षयक्षीरं वर्धय सुनुताभिः ॥ ३ ॥

॥ १३ ॥

उप क्षरन्ति सिन्धवो मयोभुव  
ईजान च यस्यमाणं च धेनवः ।  
पूणन्तं च पर्परि च अवस्यवो  
घृतस्य घारा उप यन्ति विभर्तः ॥ ४ ॥

॥ १५ ॥

नार्कस्य पृष्ठे अधि तिष्ठति श्रितो  
यः पूणाति स ह देवेषु गच्छति ।  
तस्मा आपो घृतमपान्त सिन्धवः  
तस्मा ह्य दक्षिणा पिबन्ते सदा ॥ ५ ॥

(७१९३)

यदीशीयामृतांनामृतं वा मर्यानाम् ।

जीयेदिन्मघया ममे

॥ ८ ॥

न देवानामतिं यतं शतारमां च न जीयति ।

तथा युजा वि वावृते

॥ ९ ॥

## ऋक्षस्यमेधो ।

॥ १ ॥ ( ऋ० ८।६।१४-१९ )

प्रियमेध आगिरसा । गावर्त्रा ।

उपमा पद् द्वाद्वा नरः सोमस्य हर्ष्यो ।

तिष्ठन्ति स्वादुरातयः

॥ १४ ॥

ऋज्जार्विन्द्रोत आ देवे हरी ऋक्षस्य सुनर्यि ।

आह्वमेधस्य रोहिता

॥ १५ ॥

सुरथो आतिथिग्वे स्वमीश्वरासे ।

आह्वमेधे सुपेशसः

॥ १६ ॥

पल्लवो आतिथिग्व इन्द्रोते यध्वमतः ।

सचां पृतकतौ सनम् ।

॥ १७ ॥

एषु चेतद्वृषण्यत्यन्तर्ऋज्वेधवकी ।

स्वमीशुः कशावती

॥ १८ ॥

न युष्मे वाजयन्ध्रवो निनिस्तुश्चन मर्यः ।

अयधमधि दीधरत्

॥ १९ ॥

## उर्वशी ।

॥ १ ॥ ( ऋ० १०।९।१, २, ६, ८-१०, ११, १४, १७ )

पुष्टरवा ऐल ऋषिः । त्रिष्टुप् ।

हृये जाये मनसा तिष्ठे घोरे

घर्चांसि मिथ्वा कृणवावहै नु ।

न नौ मन्त्रा अतुदितास पते ।

मयस्करन् परतरे चनाहन्

॥ १ ॥

इपुर्न प्रिय इपुधेरसना गोपाः शतसा न रहिः ।

अयोरे क्रतौ वि देविद्युतधोरा

न मायुं चितयन्तः धुनयः

॥ ३ ॥

या सुजृणिः श्रेणिः मुम्न आपिः

हृदेचधुर्न प्रथिनी चरण्युः ।

ता भंजयोऽरुणयो न संधुः

धिये गाथो न धेनवोऽनयन्

॥ ६ ॥

सचा यदासु जहतीप्यन्कं

अमानुषीषु मानुषो निर्येयं ।

अपं स्म मत्सरसन्ती न मुन्युः

ता भंजसन् रथस्पृशो नाश्वः

॥ ८ ॥

यदासु मतो अमृतासु निस्पृक्

सं क्षाणीमिः क्रतुमिर्न पृङ्कते ।

ता मातयो न तन्वः शुम्भत स्वा

अध्यासो न श्रीळयो दन्दशानाः

॥ ९ ॥

विद्युन्न या पतन्ती दधिद्योत्

भरेन्ती मे अप्या काम्यानि ।

जनिषो अपे नर्यः सुजातः

शोर्वशी तिरत दीर्घमायुः

॥ १० ॥

कदा स्रुजः पितरं जात ईकृतात्

चक्रन्नाशुं वर्तयन्निजानन् ।

को दंपती समनसा वि यूयोत्

अघं यदग्निः भवतुरेषु दीर्घयत्

॥ १२ ॥

सुदेवो अघं प्रपतेदनावृत्

परावर्त परमां पन्तवा उ

अघा शयीत निष्कृतेरुपस्थे

अधैनं वृका रभसासौ अघः

॥ १४ ॥

अन्तरिक्षमां रजसो विमानीं

उपं शिक्षाम्युर्वशीं वसिष्ठः ।

उपं त्वा रातिः सुकृतस्य तिघ्रात्

नि वर्तस्व हृदयं तप्यते मे

(७१७९)



## पुष्करका ।

॥ १ ॥ (अ० १०१२-१०, ४-५, ७, ११, १३, १५-१६, १८)

वर्धनां श्रयिका । त्रिष्टुप् ।

किमेता चाचा कृणवा तवाहं  
प्राकमिपमुपसामप्रियेव ।  
पुर्कस्वः पुनरस्तं परेहि  
दुरापता वार्त इवाहमस्मि  
सा वसु दर्धती भवशुताय वयं  
उपो यदि घट्टयन्तिष्टहात् ।  
अस्तं ननक्षे घस्मिञ्जाकन्  
दिषा नर्तते अथिता वैतसेन  
त्रिः स्म माहः श्रययो वैतसेन  
उत स्म मेऽव्ययै पृणासि ।  
पुर्कस्वोऽनु ते केतमायं  
राजा मे वीर तन्वदुस्तदासीः  
समस्मिञ्जायमान आसत् मा  
उतेमवर्धन् नद्यः स्वर्गताः ।  
मुहे यत् त्वां पुर्कस्वो रणाय  
अवर्धयन् दस्युहृत्पाय देवाः ।  
जहिष इत्या गोपीधर्पाय हि  
दद्यात् तत् पुर्कस्वो म ओजः ।  
अशांस त्वा विदुषो सस्मिन्नहुन्  
न म आशृणोः किमभुवदासि  
प्रति व्रवाणि वर्धयते अश्रुः  
क्षन् न क्रन्ददार्प्ये शिवायै ।  
प्र तत् ते दिनवा यत् ते अस्मे  
परेहस्तं नदि मूर्ध मापः  
पुर्कस्वो मा मृया मा प्र पतो  
मा त्वा वृकांसो अशिवास उ क्षन् ।  
न वै खैणानि सख्यानि सन्ति  
सालावृकाणां हृदयान्येता -

यद्विरूपाचरं मर्त्येष्ववसुं रात्रीः शरद्वर्तनः ।

धृतस्य स्तोके सकृदहं आश्रां

तादेवेदं तातृपाणा चरामि

इति त्वा देवा इम आहुरैल्ल

यथैमेतद्भवसि मृत्युवन्धुः ।

प्रजा ते देवान् हविषा यजाति

स्वर्ग उ त्वमपि मादयासे

॥ २ ॥

॥ १९ ॥

॥ १८ ॥

## स्वनयस्य दानस्तुतिः ।

॥ १ ॥ (अ० १११५।२-७)

कृष्णिवान् औघिमो देवतमघः । त्रिष्टुप्, ४-५ अणतो ।

॥ ४ ॥

प्राता रत्नं प्रातरित्या दधाति

तं चिकित्वाय प्रतिगृह्णा नि घसे ।

तेन प्रजां वर्धयमान् आयू

ययस्पोषेण सचते सुवीरः

॥ ५ ॥

॥ १ ॥

सुशूरसत् सुहिरण्यः स्वभ्यो

बुद्धस्मै वय इन्द्रो दधाति ।

यस्त्यायन्तं वसुना प्रातरित्यो

मुक्षीर्जयेषु पर्वेदुस्तिनाति -

॥ ७ ॥

॥ २ ॥

आर्यमद्य सुहृतं प्रातरिच्छन्

इष्टेः पुत्रं वसुमता रथेन ।

अशोः सुतं पायय मत्सुरस्य

क्षयर्दीरं वर्धय सुमुताभिः -

॥ ११ ॥

॥ ३ ॥

उप क्षरन्ति सिन्धवो मयोभुव

ईजान च यक्ष्यमाणं च धेनवः ।

पूणन्तं च पर्परि च अवस्यवो

धृतस्य धारु उप यन्ति विभवतः

॥ १३ ॥

॥ ४ ॥

नार्कस्य पृष्ठे अथि तिष्ठति श्रितो

यः पूणाति स ह'देवेषु गच्छति ।

तस्मा आपो धृतमपान्तु सिन्धवः

तस्मा इय दक्षिणा पिब्यते सदा -

॥ १५ ॥

॥ ५ ॥

(७१९३)

दक्षिणावतामिदिमानि चित्रा  
दक्षिणावतां द्विवि सूर्यासः ।  
दक्षिणावन्तो अमृतं भजन्ते  
दक्षिणावन्तः प्र तिरन्त आरुः ॥ १ ॥  
मा पूणन्तो दुरितमेन आरु  
मा जारिपु सूरयः सुयतासः ।  
अन्यस्तेषां परिधिरस्तु कश्चित्  
अपुणन्तमुभि सं यन्तु शोकाः ॥ ७ ॥

## असमाप्तिः ।

॥ १ ॥ ( अ० १०।१०।१-४, ६ )

अथ धृत-धुर्विप्रबन्धुगौपायनाः । १ अगस्त्यस्वरा  
क्रयिका । गायत्री, ६ अनुष्टुप् ।

आ जनं त्वेपसंभृशं माहीनानामुपस्तुतम् ।  
अगन्तु विभ्रतो नमः ॥ १ ॥  
असमाप्तिं नितोद्यानं त्वेयं निययिन् रथम् ।  
भुजैरथस्य सत्पतिम् ॥ २ ॥  
यो जनान् महिषो हर्षातितस्थौ पवीरवान् ।  
उतापवीरवान् युधा ॥ ३ ॥  
यस्यैस्वाकुरुषं व्रते रेवान् मंगल्येधते ।  
विषीव पंचकृन्ध्यः ॥ ४ ॥  
अगस्त्यस्य नम्रयः सती युनक्ति रोहिता ।  
पुणीन् न्यक्रमीरुभि विश्वान् राजन्नराधसः ॥ ६ ॥

## साक्षर्यदीनम् ।

० १ ॥ ( अ० १०।६१।८-११ )

नामानेदिष्टो मानव । अनुष्टुप्, १० गायत्री, ११ त्रिष्टुप् ।

प्र नूनं जायतामये मनुस्तापमेव रोहतु ।  
यः सुहृदं ज्ञाताभ्यं सद्यो वानाय मंहते ॥ ८ ॥  
न तमश्नोति कश्चन द्विय इव सान्वारमम् ।  
सायण्यस्य दक्षिणा यि सिन्धुरिव पप्रये ॥ ९ ॥

उत वासा परिधिपे स्मर्हिणी गोपरीणसा ।  
यदुस्तुर्वधं मामदे ॥ १० ॥  
सदस्रवा त्रीमणीमां रिपुन्मनुः  
सूर्येणास्य यतमानेतु दक्षिणा ।  
सार्येणैवेयाः प्र तिरन्त्यायुः  
यस्मिन्नध्रान्ता अर्सनाम् धार्जम् ॥ ११ ॥

## शितिपाद अक्षिः ।

॥ १ ॥ ( अ० १०।११।१-६ )

अक्षिपादः । शितिपादः अक्षिः । अनुष्टुप्, १।१ पद्य  
पञ्चभिः, ७ अक्षयानां यद्वदा उपरिष्टेभ्यो वृहती ककुम्भ  
योग्या विराट्त्रयती, ८ उपरिष्टाद्बृहती ।

यद्राजानो विभजन्त इष्टापूर्तस्य  
पोडशं यमस्यामी संभासदः ।  
अविस्तस्मात् प्र मुञ्चति दत्तः शितिपाद स्वधा ॥ १ ॥  
सर्वान् कामान् पूरयस्याभयं प्रभवन् भवन् ।  
आकृतिप्रोऽविर्दत्तः शितिपादोप दस्यति ॥ २ ॥  
यो ददाति शितिपादमर्थं लोकेन संमितम् ।  
स नाकमभ्यारोहति यत्र शुक्लो  
न क्रियते अयलेन यलीयसे ॥ ३ ॥  
पञ्चाप्यं शितिपादमर्थं लोकेन संमितम् ।  
प्रदातोप जीवति पितृणां लोकेऽक्षितम् ॥ ४ ॥  
पञ्चाप्यं शितिपादमर्थं लोकेन संमितम् ।  
प्रदातोप जीवति सूर्यामासयोरक्षितम् ॥ ५ ॥  
हरेव नोप दस्यति समुद्र इव पयो महत् ।  
देवो संवांसिनाविव शितिपादोप दस्यति ॥ ६ ॥

## अथ परिशिष्टानि ।

अथ खिलसूक्तानि ।

( १ )

ज्ञानैर्दिचदद्य सूर्येणादित्येन सहोयसा ।  
अहं यशस्विनां यशो विचारूपमुपा वदे ॥ १ ॥  
( ७६११ )

आवदंस्त्वं शकुने भद्रमा घद -  
तुष्णीमासीनः सुमतिं चिक्विक्षि नः ।  
यदुत्पतन् घर्दसि कर्करिण्या  
बृद्धद्वेदम विदथे सुवीराः

( ५ )

आर्गपि त्वं भुवने जातवेदो  
जागर्गि यत्र यजते हविष्मान् ।  
इदं हविः श्रद्धधानो जुहोमि  
तेन पासि गुह्यं नाम गोमोम्

( ६ )

सूक्तान्तेऽस्येष्टृणान्यज्ञा—चिरिणे वोदुकेऽपि वा ।  
यदस्तृणैरधीतं तत् तुणानि भवति ध्रुवम् ॥ १ ॥  
घार्पिकूपतडागानां समुद्रं गच्छ स्वाहा  
[ अग्निं गच्छ स्वाहा ]

( ७ )

स्वस्त्ययनं तार्क्ष्यमरिष्टनेमि  
महद्रतं वायुसं देवतानाम् ।  
असुरप्रमिन्द्रसखं समत्सु  
बृद्धयशो नार्यमिवा वहेम  
अहोमुचमाक्षिरसं गर्भं च  
स्यस्त्यात्रेयं मनसा च तार्क्ष्यम् ।

( ८ )

प्रयतपाणिः शरणं प्रपद्ये  
स्यस्ति क्षणधेयभयं नो भूतु

( ९ )

घर्षन्तु ते विभावरि द्विषो अश्वस्यं विद्युतः ।  
रोहन्तु सर्वयज्ञा—स्यस्य प्रह्लाद्विषो जहि ॥ १ ॥

( १० )

आ ते गर्भो योनिर्मैतु पुमान् घार्ण इयेषुधिम् ।  
आ घीरो जायतां पुत्रस्तं दशमास्यः ॥ १ ॥

ब्रह्मो मे ते प्राज्ञापत्य—मा गर्भो योनिर्मैतु ते ।  
धनुः पूर्णो जायता—मन्त्रोणोऽर्विशाचधीतः ॥ २ ॥  
पुमोस्ते पुत्रो नारिं त पुमाननुजायताम् ।  
घार्णि भद्राणि धीजा—न्यूपमा जनयन्ति नौ ॥ ३ ॥

घार्णि भद्राणि धीजा—न्यूपमा जनयन्ति नः ।  
तैस्त्वै पुत्रान् विन्दस्व सा प्रसूधेनुका मेव ॥ ४ ॥  
कामः समृद्धयतां मद्य—मपराजितमेव मे ।

यं कामं कामये देव तं मे वायो समर्द्धय ॥ ५ ॥

( १० )

अक्षिरैतु प्रथमो देवतानां  
सोऽस्यै प्रजां मुञ्चतु मृत्युपाशात् ।  
तदयं राजा वरुणोऽस्तुमन्यतां  
ययेयं स्त्री पौत्रमयं न रोदात् ॥ १ ॥

हमामग्निर्त्वायतां गार्हपत्यः  
प्रजामस्यै नयतु दीर्घमायुः ।  
अशून्योर्पस्था जीवतामस्तु माता  
पौत्रमानन्दमभि प्रबुद्धयतामियम् ॥ २ ॥

मा ते गृहे निशि घोष उत्थात्  
अन्यत्र त्वद्रुदत्यः सं विंशन्तु ।  
मा त्वं विकैर्युर आर्चधिष्ठा  
जीवपत्नी पतिलोके विराज पदयन्ती  
प्रजां सुमनस्यमाना ॥ ३ ॥

अप्रजुत्तां पौत्रमृत्युं पाप्मानमुत घाघम् ।  
शीर्ष्णः स्रजमिवोन्मुच्य  
द्विर्पद्मः प्रतिमुञ्चामि पाशम् ॥ ४ ॥  
देवकृतं ग्राह्यं कल्पमानं  
तेन हन्मि योनिपदः पिशाचान् ।

ऋग्वेदो मृत्युर्नधरान् पातयामि  
दीर्घयायुस्त्वयं जीवन्तु पुत्राः ॥ ५ ॥

( ११ )

अथ अग्निसूक्तम् ।

( आगम - आगम द-वदय-धाद-चिह्नताः धीशुश ।

दस्ता-धराप्रथ । छन्द-अनुष्टुप्, ४ धातो,

५-६ त्रिषुप्, ६५ आगत रचिताः । )

द्विरण्यवर्णी द्विर्णी सुवर्णैरजुतस्रजाम् ।  
घन्त्रा हिरण्यवीं हस्मी जातवेदो म आ घद ॥ १ ॥

( ७१५ )

तां म आ वह जातवेदो लक्ष्मीमर्नपगामिनीम् ।  
यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम् ॥ २ ॥  
अश्वपुत्रो रथमस्यां हस्तिनादप्रमोदिनीम् ।  
श्रियं देवीमुप ह्वये श्रीमीं देवी जुषताम् ॥ ३ ॥  
कां सोऽस्मितां हिरण्यप्राकारामाद्रां  
ज्वलन्तीं ततां तपयन्तीम् ।  
पुत्रेस्थितां पशवर्णां तामिहोष ह्वये श्रियम् ॥ ४ ॥  
चन्द्रां प्रमासां यशसा ज्वलन्तीं  
श्रियं लोके देवजुष्टासुदाराम् ।  
तां पश्चिनीमां शरणं प्र पथे  
अलक्ष्मीं नश्यतां त्वां वृणे ॥ ५ ॥  
आदित्यर्षणं तपसोऽधि जातो  
घनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ विलसः  
तस्य फलानि तपसा जुदन्तु  
या आन्तरा याश्च शाखा अलक्ष्मीः ॥ ६ ॥  
उपैतु मां देवसुखः कीर्तिश्च माणिना सह ।  
प्राप्तुमृतोऽस्मि राष्ट्रेऽस्मिन् कीर्तिमृद्धिं ददातु मे ॥ ७ ॥  
क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठां मलक्ष्मीं नशयाम्यहम् ।  
अमृतिमसृद्धिं च सर्वो निर्णुद मे वृद्धाव ॥ ८ ॥  
गन्धद्वायां दुःखघ्नीं नित्यपुष्टां करिषिणीम् ।  
हृष्यतां सर्वभूतानां तामिहोष ह्वये श्रियम् ॥ ९ ॥  
मर्नसुः काममाकूतिं घात्रः सत्यमंशीमहि ।  
पशूनां रूपमद्रस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः ॥ १० ॥  
कदमेन प्रजा भुता मयि सम्व कर्दमे ।  
श्रियं वासय मे कुले मातरं पद्ममालिनीम् ॥ ११ ॥  
आपः सृजन्तु स्निग्धानि चिह्नानि वस मे गृहे ।  
नि च देवीं मातरं श्रियं शासय मे कुले ॥ १२ ॥  
आद्रो पुष्करिणीं पुष्टिं पिबन्तीं पद्ममालिनीम् ।  
चन्द्रां हिरण्ययीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह ॥ १३ ॥  
आद्रो यः करिणीं पुष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम् ।  
सुयीं हिरण्ययीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह ॥ १४ ॥

तां म आ वह जातवेदो लक्ष्मीमर्नपगामिनीम् ।  
यस्यां हिरण्यं प्रभूतं गावो  
दास्योऽश्वान् विन्देयं पुरुषानहम् ॥ १५ ॥  
यः शुचिः प्रयतो भूत्वा जुहुयादाज्यमन्वहम् ।  
सूक्तं पञ्चदशक्षं च श्रीकामः सततं जपेत् ॥ १६ ॥  
पशानने पशुविपशपत्रे पशुप्रिये पशुदलायताक्षि ।  
विश्वप्रिये विष्णुमनोऽनुकूले  
त्वयादपशं मयि सं निं धत्स्व ॥ १७ ॥  
पशानने पशुकुल पशुशि पशुसंभवे ।  
तन्मे मजसि पशुशि येन सौख्यं लुप्तमहम् ॥ १८ ॥  
अश्वदार्यं गोदार्यं घनदार्यं महाघने ।  
घनं मे जुषतां देवि सर्वकामांश्च देहि मे ॥ १९ ॥  
पुत्रपौत्रघनं धान्यं हस्त्यश्वश्वतरीं रथम् ।  
प्रजानां भवसि माता मायुष्मन्तं करोतु मे ॥ २० ॥  
घनमग्निर्घनं वायुर्घनं सूर्यो घनं वसुः ।  
घनमिन्द्रो वृहस्पतिर्वरुणो घनमश्विना ॥ २१ ॥  
वैनतेय सोमं पिय सोमं पियतु वृद्धा ।  
सोमं धनस्य सोमिने मष्टं ददातु सोमिनः ॥ २२ ॥  
न क्रोधो न च मात्स्यं न लोभो नाशुमा मतिः ।  
भवन्ति कृतपुण्यानां मुक्त्या श्रीसंज्ञानापिनाम् ॥ २३ ॥  
सरसिजनिलये सरौजहस्ते  
धवलतरंगकुण्डमालयशोभे ।  
मगवति हरिप्रहर्षे मनोमे  
त्रिभुवनभूतिकरे प्र सीद महाम् ॥ २४ ॥  
विष्णुपत्नीं क्षमां देवीं माधवीं माधवप्रियाम् ।  
लक्ष्मीं प्रियसर्पा भूमिं नमाम्यच्युतचहमां ॥ २५ ॥  
महालक्ष्म्ये च विप्रदे विष्णुपत्न्यै च धीमहि ।  
तथो लक्ष्मीः प्र चोदयात् ॥ २६ ॥  
आनन्दः कर्दमः श्रीदक्षिणतीर्थे इति विद्युताः ।  
श्रुपयः श्रियः पुत्राश्च धीर्देवदेवता मताः ॥ २७ ॥  
श्रुणुयोगादिदारिद्र्यपापक्षुद्रपमृत्यवः ।  
भयंशोकमर्नस्त्रापा नश्यन्तु मम सर्वदा ॥ २८ ॥

श्रीवर्चस्वमार्युग्यमारोग्यमाविधात्  
शोभमानं महीयते ।

घनं धान्यं पुनं बहुपुत्रलाभं

शतसंवत्सरं दीर्घमायुः

॥ इति श्रीसूक्तम् ॥x

(१२)

सधुश्च श्रोत्रं च मनश्च धाक् च

प्राणापानौ देह इव शरीरम् ।

द्वौ प्रत्यङ्मायनुलोमौ विसर्गौ

एतं तं मन्ये दशयन्मृतसंम्

नखश्च पृष्ठश्च करौ च ग्राह

जड्ये चोक्त उदरं शिरश्च ।

रोमाणि मांसं रुधिरास्थिमज्जं

एतच्छरीरं जलधुद्वदोपमम्

ध्रुवौ ललाटे च तथा च कूर्णौ

हन् कपोलौ छुषुक्स्तथा च ।

घोष्ठौ च वृन्ताश्च तथैव जिह्वा

मे तच्छरीरं मुपारतनकोशम्

(१३)

सुकान्तेऽस्येत्तृणान्यग्ना—गिरिणे योवुकेऽपि या ।

यद्वस्तुर्नैरधीतं तत् तृणानि भवति ध्रुवम् ॥ १ ॥

घार्पाकृतंङागानां समुद्रं गच्छ स्याद्वा

[ अग्निं गच्छ स्याद्वा ] ॥ २ ॥

(१४)

शंपतीः पारयन्त्येते तं वृच्छन्ति यचो युजा ।

अभ्यारं तं यमार्केतुं य एवेदमिति ध्रुवम् ॥ १ ॥

गामार्केतुं परिधुतं भारतीप्रह्लापनीः ।

संज्ञानाना मदी माता य एवेदमिति ध्रुवम् ॥ २ ॥

इन्द्रं तं पिंभुं प्रभुं आनुतेयं सरस्वतीम् ।

येन सूर्यमरोचय—चनेमे रोदसी उभे ॥ ३ ॥

जुषस्वाग्ने धात्रिः प्राण्यं मेधार्तिधम् ।

मा स्या सोमस्य पश्यत् सप्तस्य मर्षमलमः ॥ ४ ॥

त्वमग्ने धात्रिः शोचस्व देववीतमः ।

आ शतम् शतंमामि—भिष्टिभिः

शान्तिः स्वस्तिमकुर्वत ॥ ५ ॥

शं नः कर्निकदद् देवः पुर्जन्यो अभि वपेतु ।

शं नो धावापृथिवी शं प्रजाभ्यः शं न पथि

द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ ६ ॥

(१५)

स्वम् स्वमाधिकरणे सर्वं नि प्वापया जनम् ।

आसुर्यमन्यन्तस्वापया—व्युत्पं जाभियामहम् ॥ १ ॥

अजगरौ नाम सर्पः सुपिरविषो महान् ।

तस्मिन् हि सर्पः सुधित—स्तेन त्वा स्वापयामसि

सर्पः सर्पो अजगरः सुपिरविषो महान् ।

तस्य सर्पात् सिन्धव—स्तस्य गाधर्मशीमहि ॥ ३ ॥

कालिको नाम सर्पो नवनागसहस्रबलः ।

यमुनहृदे हं सो जातोऽहं यो नारायणवाहनः ॥ ४ ॥

यदि कालिकद्वत्स्य यदि काःकालिकाह्नयात् ।

जन्मभूमिर्मतिक्रान्तो निर्विषो याति कालिका ॥ ५ ॥

आ याहीन्द्र पृथिभिरील्लितेभिः

यसमिं नो आगधेयं जुषस्व ।

तुतां अहुर्मातुलस्येय योपा

आगस्ते पैतृष्यसेयी वषामिव ॥ ६ ॥

यशस्करं बलपन्तं प्रभुत्वं

तमेव राजाधिपतिर्धम्य ।

संकीर्णनागाभ्यपार्तिनपणां

सुमुह्यत्वं सततं वीर्यमायुः ॥ ७ ॥

कालिको नाम सर्पो यो हृदीविष उच्यते ।

तस्य सर्पस्य सर्पस्य तस्मै सर्पं नमोऽस्तु ते ॥ ८ ॥

येऽप्ये रोचने द्वियो ये वा सूर्यस्य रुदिमते ।

येषामप्यु सशस्त्रं तेभ्यः सूर्यभ्यो नमः ॥ ९ ॥

या रप्यो यानुधानां ये वा पनस्पतीनः ।

ये पावदेष्ते रोदते तेभ्यः सूर्यभ्यो नमः ॥ १० ॥

(३३१)

नमो अस्तु संप्रेभ्यो ये के च पृथिवीमनु ।  
 ये अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः संप्रेभ्यो नमः ॥ ११ ॥  
 उग्रायुधाः प्रमतिनः प्रवीरा  
 मायाविनो बलिनो मिच्छमानाः ।  
 ये देवानसुराः पद्ममवन  
 तास्त्वं वज्रेण मघवन निवारय ॥ १२ ॥  
 (१६)  
 यस्य धृतं पशवो यन्ति सर्वे  
 यस्य धृतमुपतिष्ठन्त आपः ।  
 यस्य धृते पुष्टिपतिर्निषिद्धः  
 तं सर्वस्वन्तमवसे हवेम ॥ १ ॥  
 (१७)  
 उपप्लवत मण्डकि घर्षमा ध्व तादुरि ।  
 मध्ये ह्रस्व प्लवस्व निरुष्य चतुरः पदः ॥ १ ॥  
 (१८)  
 पापमानीः स्वस्त्ययनीः सुदुष्टा हि धृतच्छतः ।  
 अर्धैभिः संभृतो रसो ब्राह्मणेष्वमृतं हितम् ॥ १ ॥  
 पापमानीर्विशन्तु न इमं लोकानयो अमुम् ।  
 कामान्समर्धयन्तु नो देवीर्देवैः समाहिताः ॥ २ ॥  
 येन देवाः पवित्रेणात्मानं पुनते सदा ।  
 तेन सहस्रधारेण पापमान्यः पुनन्तु माम् ॥ ३ ॥  
 प्राज्ञापत्यं पवित्रं शतार्घ्यामं हिरण्यमम् ।  
 तेन ब्रह्मविदो धनं पुतं ब्रह्म पुनीमहे ॥ ४ ॥  
 इन्द्रः पुनीतो सह मा पुनातु  
 सोमः स्वस्त्या घर्षणः समीच्या ।  
 यमो राजा प्रमृणामिः पुनातु मा  
 जातयेदा मूर्जयन्त्या पुनातु ॥ ५ ॥  
 श्रुपयस्तु तेषस्तेषुः सर्वे स्वर्गजिगीषवः ।  
 तपन्तस्तपसोम्रेण पापमानीर्धुचोऽमुंवन ॥ ६ ॥  
 यन्ते गर्भे घसतः पापमुग्रं  
 यज्जापमानस्यं च किञ्चिदन्यत् ।  
 जातस्यं च यथापि च धर्मतो मे  
 तत् पापमानीर्भिरहं पुनामि ॥ ७ ॥

मातापित्रोर्युध कृतं वचो मे  
 यत् स्यावरं जह्मममाधुर्व ।  
 विश्वस्य तत् प्रहपितं वचो मे  
 तत् पापमानीर्भिरहं पुनामि ॥ ८ ॥  
 गोघ्नात् तस्करत्वात्  
 स्त्रीवधायच्च किलियम् ।  
 पापकं च चरणेभ्यः  
 तत् पापमानीर्भिरहं पुनामि ॥ ९ ॥  
 ब्रह्मवधात् सुरापानात् स्वर्गलोपाद्  
 दुर्बलितमनमैथुनसंगमात् ।  
 गुरोर्दाराधिगमनाच्च  
 तत् पापमानीर्भिरहं पुनामि ॥ १० ॥  
 बालघ्नान्मारुपितृवधाद्भूमितस्करात्  
 सर्ववर्णगमनमैथुनसंगमात् ।  
 पापेभ्यश्च प्रतिग्रहात् सद्यः  
 प्रहरति सर्वदुष्कृतं तत् पापमानीर्भिरहं पुनामि ॥ ११ ॥  
 कर्षविक्रयाद्योनिदोषाद्  
 भक्षान्नोर्ज्यात् प्रतिग्रहात् ।  
 असंमोज्जनाद्यापि नृशंसं  
 तत् पापमानीर्भिरहं पुनामि ॥ १२ ॥  
 दुर्घटं दुर्घतं पापं  
 यथाज्ञानतो कृतम् ।  
 अयाजिताभ्यासंयज्याः  
 तत् पापमानीर्भिरहं पुनामि ॥ १३ ॥  
 अमन्त्रमन्त्रं यत् किञ्चित् श्रूयते च हृत्ताराने ।  
 संवत्सरकृतं पापं  
 तत् पापमानीर्भिरहं पुनामि ॥ १४ ॥  
 श्रुतस्य योनयोऽमृतस्य धाम  
 विश्वा देवेभ्यः पुण्यगन्धाः ।  
 ता न आपः प्र यदन्तु पापं दुष्टा  
 गच्छामि सुरतामु लोकं  
 तत् पापमानीर्भिरहं पुनामि ॥ १५ ॥

पावमानीः स्वस्त्ययनी—र्याभिर्गच्छति नान्दनम् ।  
पुण्यांश्च भक्षान् भक्षय—त्यमृतत्वं च गच्छति ॥ १६ ॥

पावमानीः पितृन्देवान्  
ध्यायेद्यश्च सुरस्वर्तम् ।

पितृस्तस्योप वर्तेत क्षीरं सर्पिर्मधूदकम् ॥ १७ ॥

पावमानं परं ब्रह्म शुकं ज्योतिः सनातनम् ।

अर्प्यस्तस्योप तिष्ठेत् क्षीरं सर्पिर्मधूदकम् ॥ १८ ॥

पावमानं परं ब्रह्म

ये पठन्ति मनीषिणः ।

सप्त जन्म भवेद्विप्रो धनाढ्यो वेदपारंगः ॥ १९ ॥

दशोत्तराण्यर्चाश्चैव पावमानीः शतानि वट् ।

एतज्जुह्वन् जपेन्मन्त्रं घोरमृत्युमयं हरेत् ॥ २० ॥

एतत् पुण्यं पापहरे रोगमृत्युभयापहम् ।

पठतां शृण्वतां चैव वृदाति परमां गतिम् ॥ २१ ॥

( १९ )

इल्लैष पांमनु यस्तां घृतेन

यस्माः पदे पुनते देवयन्तः ।

घृतपदी शक्यरी सौमपूष्ठा

उप यष्टमस्ति यैश्चदेवी

॥ १० ॥

यैश्चदेवी पुनती देव्या गात्

यस्यामि मा बहुपस्तन्यो पीतपूष्ठाः ।

तया मर्दतः सधुमदैषु

ययं ह्याम पतयो रयीणाम् ।

( २० )

यत्र तत् परमं पुत्रं पिण्डोलोके महीयते ।

देवैः सुरुतकर्मभि—स्तत्र माममृतं एधि

इन्द्रोयेन्द्रो परि स्रव

॥ १ ॥

यत्र तत् परमार्थं भूतानामधिपतिम् ।

भाषमायी च योगीश्वर तत्र माममृतं कृषी० ॥ २ ॥

यत्र लोकास्तनूयजः धरया तपसा जिताः ।

मेजेश्वर यत्र ब्रह्मा च तत्र माममृतं ॥ ३ ॥

यत्र देवा महांत्मानः सेन्द्राश्च समूहणाः ।

ब्रह्मा च यत्र विष्णुश्च तत्र माममृतं ॥ ४ ॥

यत्र गंगा च जमुना च यत्र प्राची सुरस्वती ।

यत्र सोमेश्वरो देव स्तत्र माममृतं ॥ ५ ॥

यत्र तद्विष्णुर्महीयते नराणामधिपतिम् ।

यत्र शङ्खचक्रगदाधरस्मरणं मुक्तिश्च तत्र ॥ ६ ॥

( २१ )

सद्युपिस्तदपसो दिवा नक्तं च सद्युपीः ।

वरैण्यक्रतूरहमा देवीरवसे हुये ॥ १ ॥

( २२ )

सितासिते सूरिते यत्र संगथे

तत्राभुतासो दिवमुत्पतन्ति ।

ये वै तन्व वि सृजन्ति धीराः

ते जनांसो अमृतत्वं भजन्ते ॥ १ ॥

( २३ )

अविधवा भयं यपाणि शतं साप्रं तु सुव्रता ।

तेजस्वी च यशस्वी च धर्मपत्नी पतिव्रता ॥ १ ॥

जनयद्बहुपुत्राणि मा च दुःखं लभेत् क्वचित् ।

भर्ता ते सोमपा नित्यं भवेद्धर्मपरायणः ॥ २ ॥

अष्टपुत्रा भयं त्वं च सुभगा च पतिव्रता ।

भर्तुश्चैव पितुर्भ्रातु—हृदयानन्विनी संदा ॥ ३ ॥

इन्द्रस्य तु यथेन्द्राणीं श्रीधरस्य यथा धिया ।

शंकरस्य यथा गौरी तज्जर्तुरपि भर्तारि ॥ ४ ॥

अथैय्याऽनुसूया स्याद् वसिष्ठस्याप्यरुधती ।

कौशिकस्य यथा सती तथा त्वमपि भर्तारि ॥ ५ ॥

ध्रुवैधि पोण्या मयि मह्यं त्वादाद् स्पतिः ।

मया पत्या प्रजायती सं जीव शरदः शतम् ॥ ६ ॥

( २४ )

धर्मा या सेना मरुतः परेषां

धर्म्यैति न धोर्जसा स्वर्धमाना ।

तां गूढत तमसाऽपमतेन

यथाऽमीषामग्यो अग्यं न जानात् ॥ १ ॥

अन्धा अमित्रा भवता—शीर्षाणा अहय इव ।  
तेषां वो अग्निर्दग्धाना—मग्निर्मूळहानां  
इन्द्रो हन्तु वरवरम् ॥ २ ॥

( १५ )

हविर्भिरैके स्वरितः सचन्ते  
सुन्वन्त एके सर्वनेषु सोमाम् ।  
शचीर्मदन्त उत दक्षिणामिः  
नेज्जिह्वायन्त्यो नरैके पताम ॥ १ ॥

( २६ )

### अथ रात्रीसूक्तम्

आ रात्रि पार्थिवं रजः पितरः प्रायु धाममिः ।  
द्विषः सदांसि बृहती वि तिष्ठसु  
आ त्वेषं धत्ते तमः ॥ १ ॥  
ये तं रात्रि नृचक्षसो युकासो नयतिनयं ।  
अशीतिः संवत्सरा उतो तं सप्त सप्तैः ॥ २ ॥  
रात्रीं प्र पथे जननीं सुधभूतनिवेशनीम् ।  
भद्रां भगवतीं कृष्णां विश्वस्य जगतो निशाम् ॥ ३ ॥  
संधेदिनीं सैयमिनीं ग्रहनक्षत्रमालिनीम् ।  
प्रपन्नोऽहं दिवा रात्रीं भद्रे पारमशीर्महि  
[ भद्रे पारमशीर्महो नमः ] ॥ ४ ॥  
स्तोष्यामि प्रयतो देवीं शरण्यां बह्वृचप्रियाम् ।  
सहस्रसंमितां दुर्गां जातवेदसे सुनयाम् सोमम् ॥ ५ ॥  
शान्त्ययं तद् द्विजातीनां ।  
ऋषिभिः सोममाधिताः ।  
ऋग्वेदे त्वं संमुत्पन्ना  
अरातीयतो नि ददाति वेदः ॥ ६ ॥  
ये त्वां देवि प्र पथन्ति  
ग्राहणां हव्यवाहनीम् ।  
अविद्या बहुविद्या या  
स नः पर्यदति दुर्गाणि विभ्वा ॥ ७ ॥

८५

ये अग्निवर्णा गुमां सौम्यां  
कीर्तयिष्यन्ति ते द्विजाः ।  
तांस्तारयति दुर्गाणि  
नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥ ८ ॥  
दुर्गेषु विप्रे घोरं संग्रामं रिपुसंकटे ।  
अग्निचोरनिपातेषु दुष्टग्रहनिवारिणि ॥ ९ ॥  
दुर्गेषु विप्रेषु त्वं संग्रामेषु वनेषु च ।  
मोहयित्वा प्र पथन्ते तेषां मे अमयं कुंठ  
[ तेषां मे अमयं कुर्वो नमः ] ॥ १० ॥  
केशिनीं सर्वभूतानां पञ्चमीति च नाम च ।  
सा मां समा निशा देवीं सर्वतः परि रक्षतु  
[ सर्वतः परि रक्षत्वो नमः ] ॥ ११ ॥  
तामग्निवर्णां तपसा ज्वलन्तीं  
बैरोचनीं कर्मफलेषु जुष्टाम् ।  
दुर्गां देवीं शरणमहं प्र पथे सुतरसि तरसे नमः  
सुतरसि तरसे नमः ॥ १२ ॥  
दुर्गां दुर्गेषु स्थानेषु हां नो देवीतमिष्टये ।  
य इमं दुर्गास्तंथं पुण्यं शुभ्राचारीं सुश पठेत् ॥ १३ ॥

[ रात्रिः कुशिकः सोमरो रात्रिर्मादवाजो रात्रिस्वरो  
गायत्री । ]

रात्रीसूक्तं जपेन्नित्यं तत्कालमुपपद्यते ।  
न योनिं पुनरायाति संधर्षापैः प्रमुच्यते ॥ १४ ॥  
क्षीरेण स्नापिता दुर्गा चन्दनेन विलेपिता ।  
वित्त्यपत्रकृतापीडा नमो दुर्गे नमो नमः ॥ १५ ॥  
सर्वभूतपेदाचेम्यः सर्वसर्पसुरीक्षपैः ।  
दैवैर्म्यो मानुषैर्म्यश्च उभयैर्म्योऽभिरक्ष माम् ॥ १६ ॥  
या ऋग्वेदे स्तुता देवी कादपरेण उदाहता ।  
जातवेदप्रभां गौरां जातवेदसे सुनयाम् सोमम् ॥ १७ ॥  
सुप्रसुरौर्द्वजुरैः पिशाचोरगपार्हसैः ।  
अरातिमयं उत्पन्ने अरातायतो नि ददाति वेदः ॥ १८ ॥

(७३६९)



गजद्वारेऽपथे घोरे संग्रामेषु च गौतमी ।  
सर्वे रक्षतुं दुरितं  
स नः पर्यदति दुर्गाणि विश्वा ॥ १९ ॥  
महाभये समुत्पन्ने सरन्ति च जपन्ति च ।  
सर्वे तारयन्ते दुर्गा  
नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥ २० ॥  
य इमं दुर्गास्तवं पुण्यं शृण्वन्ति च जपन्ति च ।  
त्रिषु लोकेषु विख्यातं त्रिषु लोकेषु पूजितम् २१  
अपुत्रो लभते पुत्रान् धनहीनो धनं लभेत् ।  
अवधुर्लभते चक्षु-र्यक्षो मुच्येत वर्धनात् ॥ २२ ॥  
व्याधितो मुच्यते रोगा-दुरोगी धियमाप्नुयात् ।  
वदाति कामित सर्वे कात्यायनि नमोऽस्तु ते २३

( २७ )

सनक सनन्दन-सनातनादयः । द्विः १००म् अनु० पु, ५,  
८-९ त्रिष्टुप्, ५ अतिशङ्करी, ११ जगती ।

आयुष्यं सर्वस्य रायस्पोषमौज्ज्वलम् ।  
इदं हिरण्यं सर्वस्य-जैत्राया विंशतादिमाम् ॥ १ ॥  
लघ्वैर्वीजं पृतनापाद् संसालाहं धनं जयम् ।  
सर्वाः समग्रा ऋद्धयो  
हिरण्येऽस्मिन्समाहिताः ॥ २ ॥  
शुनमहं हिरण्यस्य पितृमानैव जगम ।  
तेन मां सूर्यत्वञ्च-मकरं पुरुषं प्रियम् ॥ ३ ॥  
सुभ्राजं च विराजं चा-भिष्टियां च मे भ्रुवा ।  
लक्ष्मी राष्ट्रस्य या मुने  
तया मामिन्द्र सं रञ्ज ॥ ४ ॥  
अग्नेः प्रजातं परि यद्विरण्यं  
यमृतं यद्ये अधि मर्त्येषु ।  
य पंतद्रेद् स इदं नमदति  
जराभृत्युर्भवति यो विमर्ति ॥ ५ ॥  
यद्ये राजा परणो यद्दे देवी सरस्यती ।  
रद्रो यद्देद्रा यद्दे तन्मे सर्वं आयुषे ॥ ६ ॥

न तद्रक्षांस्ति न विशाचाश्चरन्ति  
देवानामोर्जः प्रथमजं ह्येतत् ।  
यो विमर्ति दाक्षायणा हिरण्यं  
स देवेषु कृणुते दीर्घमायुः  
स मनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः ॥ ७ ॥  
यदावधन् दाक्षायणा हिरण्यं  
शतानीकाय सुमनस्यमाना ।  
तन्न आ वध्नामि शतशारदाय  
आयुष्मान् जरदप्रियथाऽस्तत् ॥ ८ ॥  
घृतादुल्लेप्तं मधुमत्सुवर्णं  
धनं जयं ध्रुवं धारयिष्यु ।  
ऋणक् सपत्न्यादधरांश्च कृण्वत्  
आरौह मां महते सौमनाय ॥ ९ ॥  
प्रियं मां कुरु देवेषु प्रियं राजसु मा कुरु ।  
प्रियं विश्वेषु गोत्रेषु मयि धेहि कृत्वा कर्म ॥ १० ॥  
अग्निर्येन विराजति सूर्यो येन विराजति ।  
विराज्येन विराजति तेनास्मान् ब्रह्मणस्पते  
विराज सन्निधौ कुरु ॥ ११ ॥

( १८ )

( विद्वज्जगतिरयः । इन्द्रः । जगती )

अर्वाञ्चमिन्द्रममृतो हवामहे  
यो योजिदन्नजिदध्वजिषः ।  
इमं नो हव्यं विद्वजे जुषस्य  
अस्म कुन्मो हरिवो मेदिर्न त्वा ॥ १ ॥  
( १९ )  
यां कल्पयन्ति नोऽरयः क्रूरां कृत्वा घृधूमिव ।  
तां ब्रह्मणाऽपि निर्णयः प्रत्येककर्तारमृच्छत ॥ १ ॥  
शीर्षण्वतो कर्णयतो धिषुरुपां मयंकुरीम् ।  
यः प्राहिणोदिहाद्य त्वां यि तं त्वं योजयासुभिः २  
येन विद्वेद यद्वसि प्रतिकूलमघायिनि ।  
तमेयेतो निर्वर्तस्य  
माऽस्मान् मृच्छो अनागसः ॥ ३ ॥  
( ७७८५ )

अमिषवर्तस्व कर्तारं निरस्तास्मामिरोजसा ।  
 आर्युरस्य निरुक्तस्व प्रजां च पुरुषादिनि ॥ ४ ॥  
 यस्त्वा कृत्ये चकारेह तं त्वं गच्छ पुनर्नवे ।  
 अरातीः कृत्ये नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ ५ ॥  
 क्षिप्रं कृत्ये निवर्तस्व कर्तुरेव गृहान् प्रति ।  
 पर्शश्चैवास्य नाशय वीरांश्चास्य नि बर्हय ॥ ६ ॥  
 यस्त्वा कृत्ये प्रजिघाय विद्वो अविदुषो गृहान् ।  
 तस्यैवेतः परेत्याशु तनुं कृधि परुणरुः ॥ ७ ॥  
 प्रतीचां त्वाऽपत्नेधतु ब्रह्म रोचिष्णवमिब्रहा ।  
 अमिष कृत्ये रक्षोहा रिप्रहा चार्ज एकपात् ॥ ८ ॥  
 यथा त्वाऽङ्गिरसः पूर्वं भृगुवज्रापं सेधिरे ।  
 अत्रयश्च वसिष्ठाश्च तथैव त्वाऽपं सेधिम ॥ ९ ॥  
 यस्ते परुषि सन्द्ध्यौ रथस्येव विमुर्धिया ।  
 तं गच्छ तत्र तेऽयनमज्ञातस्ते अयं जनः ॥ १० ॥  
 यो नः कश्चिद्रणस्यो वा कश्चिद्वाभ्योऽमि हिंसति ।  
 तस्य त्वं द्यौरिवेक्षोऽमिः ॥ ११ ॥  
 तनूमुच्छस्य हेडिता ॥ ११ ॥  
 मर्षाश्चार्वा देवहेडि—मृत्युर्त पापकृत्स्नने ।  
 हरस्यती त्वं च कृत्ये ॥ १२ ॥  
 मोर्चिषस्तस्य किञ्चन ॥ १२ ॥  
 यो नः कश्चिद्रुद्राणित—मर्नसा प्रतिभूर्यति ।  
 दूरस्यो वाऽङ्गिरकस्यो वा ॥ १३ ॥  
 तस्य हृद्यमलृक् पिथ ॥ १३ ॥  
 येनासि कृत्ये प्रहिता ॥ १४ ॥  
 वृद्धयेनास्मज्जिघांसीया ।  
 तस्य श्यानचचापानश्च ॥ १४ ॥  
 हिनस्तु हरसाऽशनिः ॥ १४ ॥  
 ये नः शिवासुः पर्णानः परायन्ति परापथम् ।  
 तैरेधि राज्याः कृत्या नो गुमरस्यानुरुष्ये ॥ १५ ॥

यदि वैपि द्विपद्यमान् यदि वैपि चतुष्पदी ।  
 निरस्तेतो ब्रजास्माभिः कर्तुरष्टापदी गृहान् ॥ १६ ॥  
 यो नः शपादशपतो यश्च नः शपतः शपात् ॥ १७ ॥  
 वृक्षमिव विद्युदाशु तमामृलादनु शोषय ॥ १७ ॥  
 ये द्विप्पो यश्च नो द्वेष्य—घायुर्यश्च नः शपात् ।  
 शूने पिष्टमिव क्षामं तं प्रत्यस्य स्वमृत्यवे ॥ १८ ॥  
 यश्च सापत्नः शपयो यश्च यामी शपाति नः ।  
 ब्रह्मा च यत् क्रुद्धः शपात् ॥ १९ ॥  
 सर्वं तत् कृष्यधस्पदम् ॥ १९ ॥  
 सर्वन्नुष्माप्यवन्नुश्च यो अस्माँ अमि वासति ।  
 तस्य त्वं भिन्ध्यधिप्रायं पदा विस्फुर्य तच्छिरः ॥ २० ॥  
 अमि प्रोहे सहस्राक्षं युक्त्वा तु शपयं रथे ।  
 शत्रुनन्विच्छती कृत्ये वृकीवाविमृतो गृहान् ॥ २१ ॥  
 परिणो वृद्धि शपयान् बह्वन्नमिरिव हृदम् ।  
 शत्रुनेवाविमृतो जहि दिव्या वृक्षमियाशनिः ॥ २२ ॥  
 शत्रून् मे प्रोथ शपयात् कृत्वाश्च सुदुहोऽसुदुह ।  
 जिह्वाः श्लक्ष्णार्थं दुर्दुहः समिद्धं जातवैदसम् ॥ २३ ॥  
 असपत्नं पुरस्ताभः शिवं वक्षिणतः कृधि ।  
 अमयं सततं पश्चात् मद्रमुत्सृतो गृहे ॥ २४ ॥  
 परैहि कृत्ये मा तिष्ठ विदस्यैव पदं नय ।  
 मृगस्य हि मृगारिप्रो न त्या नीकर्तुमर्हति ॥ २५ ॥  
 अप्यास्यैव घोररूपे विपुलरूपेऽविनाशिनः ।  
 जृम्भिता प्रतिगम्भीष ॥ २६ ॥  
 स्वयमादाय चाहुतम् ॥ २६ ॥  
 त्वमिन्द्रो यमो घर्षण—स्वमापोऽमिरणानिलः ।  
 त्वं ब्रह्मा चैव रुद्रश्च त्वष्टा चैव प्रजापतिः ॥ २७ ॥  
 आर्यतेष्वं निवर्तेष्वं—मृत्युवः परियत्सुराः ।  
 यद्वोरात्राश्चाध्वाश्च त्वं दिशः प्रदिशश्च मे ॥ २८ ॥  
 त्वं यमं घर्षणं सोमं त्यमापोऽमिरमपानिलम् ।  
 अत्राहृत्य पशुंश्चैव—मुत्पादयसि चाहुतम् ॥ २९ ॥

ये मे दमे दारुगर्भे शयानं  
 धिया सहितं पुरुषं निजह्रुः ।  
 कुम्भीपाकं नरकं ग्रीववद्धं  
 हता एवं पुरुषास्तो यमस्य ॥ ३० ॥  
 अम्यक्ताका स्वल्ङ्कृता सयै नो दुरितं दद्व ।  
 जानीथाश्चैव कृत्यानां कर्तुन् नृन् पापचेतसः ॥ ३१ ॥  
 यथा हन्ति पुरासीनं तथैवेषां सुकृत्तरः ।  
 तथा त्वया युजा ध्रुवं निरुण्म स्यास्तु जङ्गमम् ॥ ३२ ॥  
 उत्तिष्ठैव परेहीतो ऽज्ञाति किमिहेच्छसि ।  
 ग्रीवास्ते कृत्ये पादौ च  
 भूमि कर्त्स्यामि विद्रुध ॥ ३३ ॥  
 स्यायसाः सन्ति नोऽस्यो विषा धैव परूषि ते ।  
 तैस्ते निरुण्मस्तान्युमे  
 यदि नो जीवयस्वीन् ॥ ३४ ॥  
 मास्योच्छिर्षो द्विपदं मोतु किञ्चिद्यतुष्यदम् ।  
 मा श्वावीननुजान् पूषान्  
 मा पैन्ति प्रतिवेशिनो ॥ ३५ ॥  
 शूद्रयुता प्रहितासि दृढपेनामि यथायतः ।  
 नरस्तथा स्या नुदतु  
 योऽयमन्तर्मयि धितः ॥ ३६ ॥  
 एषं त्वं निरुणास्माभि—मंश्रणा देवि सर्वदाः ।  
 येषुत्तमाधिता शुक्ला पापुषीर्निष नो जहि ॥ ३७ ॥  
 यथा विपुर्दतो वृक्ष भार्मुलादनु शुष्यति ।  
 एषं स प्रतिशुष्यतु यो मे पापं धिर्षीर्वति ॥ ३८ ॥  
 यथा श्रन्तिशुषो गृध्या तमेव श्रन्तिषार्वति ।  
 पापं तमेव पाषतु यो मे पापं धिर्षीर्वति ॥ ३९ ॥  
 यो नः स्या भारलो यद्वा निरुणो जिघांसति ।  
 देवास्तं तवै ध्रुवंतु मद्वा यमं ममामर्त्यम् ॥ ४० ॥  
 उवाच मरुतु रभोमाः हृणुष्व तपो भद्रिषः ।  
 भवं मद्रुषिर्षो जहि ॥ ४१ ॥

कुर्वे ते सुखं रौद्रं नृन्दिशानन्तुमावह ।  
 ज्वरमृत्युभयं घोरं विश नाशय मे ज्वरम् ॥ ४२ ॥  
 यो मे करोति प्रहारे यो गृहे यो निवेशने ।  
 यो मे केशनये कुर्याद्वज्रं दन्तधावने ॥ ४३ ॥  
 प्रतिसर प्रतिधाव कुमारीव पितुर्गृहान् ।  
 मुर्धानमेपां स्फोटय पदमेपां कुले क्रीध ॥ ४४ ॥  
 ये नो रयि दुश्चरितासो अग्रे  
 जह्मर्तसो अर्जुनं वदन्तः ।  
 तेषां धर्ष्यप्यर्चिषा जातवेदः  
 शुष्कं न वृक्षममि स ददस्व ॥ ४५ ॥  
 कृष्णवर्णे मंहद्रुपे बृहत्कर्णे मंहद्रये ।  
 देवि देवि महांदेवि मम शत्रून् विनाशय ॥ ४६ ॥  
 एतद् फट् जहि महाकृत्ये विधूमाहितमग्निम् ।  
 जहि शत्रूंस्मिशूलेन कृण्वस्व पिपु शोणितम् ॥ ४७ ॥  
 ये नुलुङ्गजये महाभमे  
 कदाधियौ दुर्मदा अहमनासः ।  
 आभयैतान् शोचिषा विष्य तग्नून्  
 येवस्यतस्य सदनं नयस्व ॥ ४८ ॥

( १० )

हिमस्यं त्या जरायुणा शाले परि द्ययामसि ।  
 [ उत ह्रदो हि नो धियो ऽग्निर्देवातु भेषजम् ] ॥ १ ॥  
 शीतह्रदो हि नो धियो ऽग्निर्देवातु भेषजम् ।  
 अन्तिकामेगिमज्जन्य दूयादः दाशुहागमव ॥ २ ॥  
 अजातपुत्रपक्षाया हृदयं मम दूयते ।  
 विपुलं यनं वृद्धाकां चरं जातयेदः कामीय ॥ ३ ॥  
 मां च रक्ष पुत्रांश्च शरणमग्नून् तव ।  
 विद्राक्ष मोहितधीव हृण्वर्षेण तमोऽस्तु ते ॥ ४ ॥  
 धर्ममाग्निबर्हस्तेनां सागरस्तेनोमपो यथा ।  
 एतद्वा शत्रं देवातु यदयमग्निं विन्द्यतु ॥ ५ ॥  
 दात्रयो निधनं यागु जय त्वं मद्रुतेजसा ॥ ६ ॥

कपिलजुष्टौ सर्वमक्षं चाग्निं प्रत्यक्षदैवतम् ॥ ७ ॥

वृक्षं च वृक्षाम्यग्रे मम पुत्रांश्च रक्षतु

[ मम पुत्रांश्च रक्षत्वो नमः । ] ॥ ८ ॥

सार्धं वर्षातु जीव पिव खाद च मोद च ॥ ९ ॥

दुःखितांश्च द्विजांश्चैव प्रजां च पशु पालय ॥ १० ॥

यावदादित्यस्तपति यावद्भाजति चन्द्रमाः ।

यावद्वायुः प्लवायति तावज्जीव जया जय ॥ ११ ॥

येन केन प्रकारेण को हि नाम नु जीवति ।

परैवमुपकारार्थं यज्जीवति स जीवति ।

पुतां वैभानरीं सर्वदेवाग्रमोऽस्तु ते ॥ १२ ॥

न चौरमयं न च सर्पमयं

न च व्याघ्रमयं न च मृत्युमयम् ।

यस्यापमृत्युर्न च मृत्युः सर्वं लभते सर्वं जयते ॥ १३ ॥

॥ इति रात्री-सूक्तम् ॥

( ११ )

## अथ मेधा-सूक्तम् ।

मेधां महामङ्गिरसो मेधां सुत ऋषयो वदुः ।

मेधामिन्द्रश्चाग्निश्च मेधां घाता ददातु ते ॥ १ ॥

मेधां ते परणो राजा मेधां देवी सरस्वती ।

मेधां ते अश्विनौ देवा वा घेतां पुष्करज्जग ॥ २ ॥

या मेधा अंसुरस्तु गन्धर्वेषु च यन्मनः ।

देवी या मानुषी मेधा सा मामा विशतादिमाम् ॥ ३ ॥

यन्मे नोक्तं तद्रमनां शक्यं यदनुभूयै ।

निशामतं नि शामहे मयि व्रतं सह घतेषु भूयान्

ब्रह्मणा सं गमेमहि ॥ ४ ॥

शरीरं मे विचक्षणं वाङ्मे मधुमुद दुर्हाम् ।

अष्टद्वयमहमसौ सूर्यो ब्रह्मणानी स्यः

श्रुतं मे मा प्र दासीः

मेधां देवीं मनसा रेजमानां

गन्धर्वजुष्टां प्रति नो जुपस्व ।

८६

महो मेधां वद महो धियं वद

मेधावी भूयासमजर्जरिष्णु ॥ ६ ॥

सदस्सपतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।

सन्नि मेधार्मयासिपम् ॥ ७ ॥

यां मेधां देवगणाः पितरधोपासते ।

तया मामद्यमेधयां ऽग्रे मेधाविनं कुरु ॥ ८ ॥

मेधाव्यहं सुमनाः सुप्रतीकः

श्रद्धामनाः सत्यमतिः सुशेवः ।

महायशा घारयिष्णुः प्रयुक्ता

भूयासमस्मै शूरयां प्रयोगे ॥ ९ ॥

नाशयित्री पलाशस्या रूपसौ पधिकामसु ।

अथो तस्य यस्मान् मपापा रोगनाशिनी ॥ १० ॥

ब्रह्मवृक्ष पलाश त्वं श्रद्धां मेधां च देहि मे ।

वृक्षाधिप नमस्तेऽस्तु अथ त्वं संनिधा भव ॥ ११ ॥

॥ इति मेधा-सूक्तम् ॥

( १० )

ऊर्ध्वरेषा प्र दहन्ते विष्णुः

इममिन्द्राग्नी अमृतं जुपेधाम् ।

महो दधाना उप दीर्घमायुः

अस्मे धत्तं पुरुमुजा पुरग्धिः ॥ १ ॥

( ३१ )

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्

परि गृहीतममृतेन सर्वम् ।

येन यज्ञस्त्रायते सप्तर्षीता

तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ १ ॥

येन कर्मोण्यपसो मनीषिणो

यधे लुण्ठन्ति विद्वेधेषु धीराः ।

यदपूर्वं यज्ञमन्तव्यजानां

तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ २ ॥

यज्ञाप्रतो दुरमुदिति दैव्यं तदु सुतस्य तर्पयति ।

दुरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं

तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु

॥ ३ ॥

( ७८ )

यत् प्रज्ञानमुत चेत्तौ धृतिश्च  
यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु ।  
यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते  
तन्मे मनः शिवसैकल्यमस्तु ॥ ४ ॥  
यस्मिन्नृचः साम यज्ञैपि यस्मिन्  
प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाहाः ।  
यस्मिंश्चित्तं सर्वमेतौ प्रजानां  
तन्मे मनः शिवसैकल्यमस्तु ॥ ५ ॥  
सुपादयिरध्वानि यमनुध्वानि  
नेनीयतेऽमीशुभिर्वाजिन इव ।  
हृत्प्रतिष्ठं यद्वज्रिं यविष्ठं  
तन्मे मनः शिवसैकल्यमस्तु ॥ ६ ॥  
ये पञ्च पञ्चाशतः शतं च  
सुहृत्सु च नियुतं चार्घ्यं च ।  
ते यद्वचित्तेष्टकाटं शरीरं  
तन्मे मनः शिवसैकल्यमस्तु ॥ ७ ॥  
येदाहमेतं पुरुषं मुहान्तं  
आदित्यवर्णं तमस्तु परस्तात् ।  
तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीराः  
तन्मे मनः शिवसैकल्यमस्तु ॥ ८ ॥  
येन कर्माणि प्रचरन्ति धीरा  
विप्रा वाचा मनसा कर्मणा वा ।  
यत् स्याद्विद्वामनु संयन्ति प्राणिनः  
तन्मे मनः शिवसैकल्यमस्तु ॥ ९ ॥  
ये मे मनो हृदयं ये च देवा  
ये अन्तरिक्षं पटुधा कृत्पयन्ति ।  
ये श्रोत्रं च चक्षुषी संचरन्ति  
तन्मे मनः शिवसैकल्यमस्तु ॥ १० ॥  
यस्येदं धीराः पुनरिति कथयौ  
प्रधानमिदं व्यावृणुत इन्दुम् ।

स्थावरं जङ्गमं च धीराकाशं  
तन्मे मनः शिवसैकल्यमस्तु ॥ ११ ॥  
येन द्यौर्ग्रा पृथिवी चान्तरिक्षं  
येन पर्वताः प्रदिशो दिशश्च ।  
येनेदं सर्वं जगद्वासं प्रजानां  
तन्मे मनः शिवसैकल्यमस्तु ॥ १२ ॥  
अर्घ्यं च आप्रमेयं च व्यक्ताव्यक्तपुं दिवम् ।  
सूक्ष्मात् सूक्ष्मतरं श्रेयं  
तन्मे मनः शिवसैकल्यमस्तु ॥ १३ ॥  
कैलासशिखरे रम्ये शंकरस्य गृहालयम् ।  
देवतास्तत् प्रमोदन्ते  
तन्मे मनः शिवसैकल्यमस्तु ॥ १४ ॥  
आदित्यवर्णं तपसा जलन्तं  
यत् पश्यसि गुहासु जायमानः ।  
शिवरूपं शिवमुदितं शिवालयं  
तन्मे मनः शिवसैकल्यमस्तु ॥ १५ ॥  
येनेदं सर्वं जगतो बभूव  
यदेवा अपि महतो जातवेदाः ।  
यदेवाग्न्यं तपसो ज्योतिरेकं  
तन्मे मनः शिवसैकल्यमस्तु ॥ १६ ॥  
गोभिर्जुष्टो धनेन ह्यायुषा च वृत्तेन च ।  
प्रजया पशुभिः पुष्कराधै  
तन्मे मनः शिवसैकल्यमस्तु ॥ १७ ॥  
योऽसौ सर्वेषु चेदेषु पृथ्वेतऽनन्द ईश्वरः ।  
अकार्यो निर्गुणो ह्यात्मा  
तन्मे मनः शिवसैकल्यमस्तु ॥ १८ ॥  
यो वेदादिषु गायत्री सर्वव्यापी मुद्देश्वरः ।  
तदुक्तं च यदा श्रेयं  
तन्मे मनः शिवसैकल्यमस्तु ॥ १९ ॥

प्रयत्नप्राण ओंकारं प्रणवै च महेश्वरम् ।

यः सर्वं यस्य चित् सर्वं

तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु

॥ २० ॥

यो वै वेद महादेवं प्रणवं पुरुषोत्तमम् ।

ओंकारं परमात्मानं

तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु

॥ २१ ॥

ओंकारं चतुर्भुजं लोकनाथं नारायणम् ।

सर्वस्थितं सर्वगतं सर्वव्याप्तं

तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु

॥ २२ ॥

तत् परात् परतो ब्रह्मा तत् परात् परतो हरिः ।

परात् परतरं ह्यनं

तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु

॥ २३ ॥

य इदं शिवसंकल्पं सदाधीयन्ति ब्राह्मणाः ।

ते परं मोक्षमाप्स्यन्ति

तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु

॥ २४ ॥

अस्ति नास्ति शयित्वा सर्वमिदं

नास्ति पुनस्तथैव इष्टं ध्रुवम् ।

अस्ति नास्ति हितं मध्यमं पुदं

तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु

॥ २५ ॥

अस्ति नास्ति विपरीतो प्रवादो

अस्ति नास्ति गुह्यं वा इदं सर्वम् ।

अस्ति नास्ति पण्यं परं यत् परं

तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु

॥ २६ ॥

( ३४ )

त्वष्टाकृत्तां ( नेत्रेभ्यः ) । विष्णुः । अश्विपुत्रः ।

नेत्रेभ्यः परां पतु सुपुत्रः पुनरा पतं ।

अस्यै मे पुत्रकामायै गर्भमा चेद्दि यः पुमान् ॥ १ ॥

यथेयं पृथिवी मूर्ता चाना गर्भमादधे ।

एवं तं गर्भमा चेद्दि दशमे मासि सृते ॥ २ ॥

विष्णोः धेष्टेन रूपेणास्यां नार्यां गधीन्याम् ।

पुमानं पुत्राना चेद्दि दशमे मासि सृते ॥ ३ ॥

( ३१ )

वत्स आग्नेयः । अग्निः । गायत्री ।

अनीकवन्तमृतयेऽग्निं गोभिर्हवामहे ।

स नः पर्यदति द्विषः

॥ १ ॥

( ३६ )

संज्ञानमृशनावदत् संज्ञानं घर्षणोऽथदत् ।

संज्ञानमिन्द्रश्चाग्निश्च संज्ञानं सधिताऽथदत् ॥ १ ॥

संज्ञानं यः स्वैभ्यः संज्ञानमरणेभ्यः ।

संज्ञानमश्विनां युवमिहास्मासु नि यच्छताम् २

यत् कुक्षीयां संयननं पुत्रो अङ्गिरसां भवेत् ।

तेन नोऽद्य विभ्वं देवाः सं प्रियां समजीजनन् ३

सं वो मनांसि जानतां सुमाकृतिर्मनामसि ।

असौ यो विर्मता मनः सं सुमावर्तयामसि ॥ ४ ॥

नैहस्यं सैनादरणं परि वस्तेतु यद्वयिः ।

तेनामिश्राणां बाहून् हवियां शोषयामसि ॥ ५ ॥

परिवर्तमान्येषामिन्द्रः पुषा च सन्नतुः ।

तेषां यो अग्निर्दग्धानामग्निर्मूढानां

इन्द्रो हन्तु वर्यवत् ॥ ६ ॥

पेषु नद्यवृषाजिनं हरिणस्य धियं यथा ।

परो अग्निर्वा पेष त्वर्वाची गौरुपाजतु ॥ ७ ॥

प्राच्यराणां पते घसो होतुर्वर्येण्यक्रतो ।

तुभ्यं गायत्रमृच्यते ॥ ८ ॥

गोकांमो अर्थकामः प्रजाकाम उत कंदपः ।

भूतं भविष्यत् प्रस्तोति सह प्रदीकमर्धरं

यद्वह्नौ कुमर्धरम् ॥ ९ ॥

यद्वह्नौ मृतकृतं विभ्वं देवा उपासते ।

महं अग्निमस्य गोप्तारं जमदग्निर्कुप्यतम् ॥ १० ॥

जमदग्निराप्यायते छन्दोभिश्चतुर्धरैः ।

राजा सोमस्य भक्षेण ब्रह्मणा दीर्यायता ॥ ११ ॥

( ७८९६ )

शिवा नः प्रदिशो दिशः

सत्या नः प्रदिशो दिशः ।

अजो यत् तेजो ददध्रे

शुक्रं ज्योतिः परो गुह्यं

॥ १२ ॥

यदपिः कश्यपः स्तौति सत्यं ब्रह्म चराचरं

ध्रुवं ब्रह्म चराचरम् ।

अ्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य अ्यायुषं

अगस्त्यस्य अ्यायुषम्

॥ १३ ॥

यद्देवानां अ्यायुषं तन्मे अस्तु अ्यायुषं

सर्वमस्तु शतायुषं बलायुषम्

॥ १४ ॥

तच्छ्रुयोरा बृणीमहे

गातुं यज्ञाय गातुं यज्ञपतये ।

दैवी स्यस्तिरस्तु नः स्यस्तिर्मानुषेभ्यः ।

ऊर्ध्वं जिगातु मेपजं

शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे

॥ १५ ॥

(३७)

निदिशुषनिषदैः ब्रह्मादिभ्यो । अग्निनो, ७ इन्द्रावरुणौ ।

निदुप्, ६ द्विपदा ।

प्रधारयन्तु मधुनो घृतस्य

यदधिन्द्रयुः सुती उक्षिपायाः ।

मित्रावरुणौ भुष्यन्त्य क्राक

तापभिनो ह्यपतां समीके

॥ १ ॥

आयां रथं शतपायानमाशुं

प्रातर्याषाणं सुपदं दिरण्ययम् ।

अतिष्ठपथं दुहिता विपस्वतः

तं मीमर्याश्रमयते वरामहे

॥ २ ॥

आयामभ्यासो रयिर विपश्चितौ

याम्भूपजः सुपुजो घृतघृतः ।

येमियाधोपे मर्या परेयं

मेमिनो दद्यापयते समस्तु

॥ ३ ॥

यद्वा रेतो अश्विना पोषयितु

यद्रासभो यधिमत्यै सुदान् ।

यस्माज्जज्ञे देवकामः सुदक्षः

तदस्यै दत्तं भिषजावभिद्यु

॥ ४ ॥

यश्चासत्या मेपजं चित्रमानु

येनावयुस्तोककामां च घोषाम् ।

तदस्यै दत्तं त्रिषु पुंसुवध्वै

येनाविन्दत्तनयं सा सुहस्यम्

॥ ५ ॥

वर्षद् वां दक्षावस्मिन् सुतो

नारसत्या होता कृणोतु वेधाः

॥ ६ ॥

इन्द्रावरुणा सौमनसमदत्तं

रायस्पोषं यजमानेषु घत्तम् ।

प्रजां पुष्टिं भूतिमस्मास्तु धत्तं

दीर्घायुत्वाय प्र तिरितं न आयुः

(३८)

(अथर्व० १०/४९/१-७)

खिलम् । ४-५ बोधाः, ६-७ मेधातिथिः । गायत्री, ४, ५

प्रगाय= (विषमा बृहती + समा सतो बृहती) ।

यच्छुक्रा वाचमार्कहन्तरिक्षं सिपासथः ।

सं देवा अमदन् धृषा

॥ १ ॥

शक्रो वाचमर्धृष्णयोदेवाद्यो अधृष्णुहि ।

मर्दिष्ट आ मर्दिर्दिवि

॥ २ ॥

शक्रो वाचमर्धृष्णुहि धाम धर्मधिराजति ।

विमदन् मर्दिष्टसर्व

॥ ३ ॥

तं यो वृक्षमृतीपहं यसोर्मन्वानमन्धसः ।

अभि युत्सं न स्वसरेषु धेनय

इन्द्रं गीर्भिर्नयामहे

॥ ४ ॥

पुष्टं सुदानं तयिषीमिरायुतं

गिरिं न पुष्टमोजसम् ।

श्रमन्तं पाजं शक्तिर्न सहधिर्यं

मक्षू गोमन्तमीमहे

॥ ५ ॥

(७९११)

तत्त्वां यामि सुवीर्यं तद्गच्छं पृथ्विस्तये ।  
 येना यतिभ्यो मृगवे घनं द्विते  
 येन प्रस्कण्वमाविष्य  
 येना समुद्रमसृजो महीरपः  
 तदिन्द्र वृष्टिं ते शयः ।  
 सयः सो अस्य महिमा न संनरो  
 यं क्षोणीरनुचक्रदे

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

## अथ कुन्तापस्तकानि ।

(खिलानि ।)

॥ १ ॥ (अथर्वं १०।११७।१-१३)

इदं जना उर्षं ध्रुतं नरांशुं स्तारिष्यते ।  
 पृष्टिं सहस्रां नयति च कौरुम्  
 आ शशमेपु दक्षदे

॥ १ ॥

उष्ठा यस्य प्रयाहणो वधर्मन्तो द्विर्दश ।  
 धूमो रयस्य नि जिहीढते  
 त्रिषु ईपमाणा उपस्पृशः

॥ २ ॥

पुष इपायं मामहे शतं निष्कान् दश अर्जः ।  
 त्रीणि शतान्ययंतां सहस्रां दश गोनाम्

॥ ३ ॥

घर्ष्यस्य रेमं घर्ष्यस्व घृक्षे न पृक्के शुकुनः ।  
 नष्टे जिह्वा चर्चरीति ध्रुवे न मूरिजोरिव

॥ ४ ॥

प्र रेमासौ मनीषा वृषा गायं ह्येरेत ।  
 अमोतपुत्रका पयाममोतं गा ह्यासते

॥ ५ ॥

प्र रेम धीं मरस्य गोविदं वसुविदम् ।  
 देवश्रेमां याचं धीणीदीपुर्नवीरस्तारम्

॥ ६ ॥

राशौ शिष्वजनीनस्य यो देवोऽमर्त्या अति ।  
 धैभ्यान्तरस्य सुपुतिमा सुनोतां परिक्षितः

॥ ७ ॥

परिच्छिन्नः क्षेममकरोन् तम आसन्मचारन् ।  
 कुलायन् कृष्यन् कीर्य्यः पतिवर्दति जाययां

॥ ८ ॥

कनरत् त आ ईराणि दधि मर्त्या परि श्रुतम् ।  
 ज्ञायाः पतिं वि पृच्छति राष्ट्रे राक्षः परिक्षितः ॥ ९ ॥  
 अमीवस्वः प्र जिहीते यवः पृक्कः पयो विलम् ।  
 जनः स मद्रमेघति राष्ट्रे राक्षः परिक्षितः ॥ १० ॥  
 इन्द्रः कार्मवृष्यदुर्तिष्ठ वि चण जनम् ।  
 ममेदुप्रस्य चर्हधि सर्व इव तै पृणादुरिः ॥ ११ ॥  
 इह गावः प्रजायध्वमिहाम्वा इह पूर्वगाः ।  
 इहो सहस्रदग्निणोऽसि पृषा नि रीदति ॥ १२ ॥  
 नेमा इन्द्र गावो रिपन्  
 मो आसां गोपं रीरिपत् ।

मासाममिश्रयुर्जन् इन्द्र मा स्तेन ईशत ॥ १३ ॥  
 उर्षं नो न रमसि सूकेन वचसा  
 वयं मद्रेण वचसा वयम् ।  
 यनादधिष्ठातो गिरे न रिव्येम कदा चन ॥ १४ ॥

॥ २ ॥ (अथर्वं १०।१०८।१-१६)

यः सभेयो विद्वयः सुत्या यज्याय पूरयः ।  
 सूर्यं चाम् रिक्षादसः

तद् देवाः प्रागकल्पयन् ॥ १ ॥

यो जाम्या अग्रययस्तद् यत् सखायं दुर्धूपति ।  
 ज्येष्ठो यदग्रचेतास्तदाहुरघं पति

यद् मद्रस्य पुरयस्य पुत्रो भवति दाघुपिः ॥ २ ॥

तद् विप्रो अग्रवीदु तद् गन्धर्वः काम्यं वचः ॥ ३ ॥

यश्च पुणि रघुजिष्ठो यश्च देवो अदागुरिः ।  
 धीराणां शश्वतामहं तदपतिगतिं शुश्रुम

ये च देवा अयजन्तायो ये च पराददिः ॥ ४ ॥

सूर्यो दिवमिव गन्वायं मघयां नो वि रंथाते ॥ ५ ॥

योनाकाशौ अनभ्युको अमणिषो अदिरण्यवः ।  
 अग्र्या ग्रहणः पुत्रस्तोता कर्त्तव्यं सुमितां

य आकाशः सुभ्यः सुमणिः सुदिरण्यवः ॥ ६ ॥

सुग्र्या ग्रहणः पुत्रस्तोता कर्त्तव्यं सुमितां ॥ ७ ॥



॥ ५ ॥ ( अथर्व ० १०।१३।१-१० )

आर्मिन्नोति मद्यते	॥ १ ॥
तस्य अनु निमज्जनम्	॥ २ ॥
वरुणो याति चस्वमिः	॥ ३ ॥
शतं वा भारती शवः	॥ ४ ॥
शतमाभ्वा हिरेण्ययाः । शतं रथ्या हिरेण्ययाः ।	
शतं कृथा हिरेण्ययाः । शतं निष्का हिरेण्ययाः ५	
अहल कुश चरक	॥ ६ ॥
शफेन इव ओहते	॥ ७ ॥
आयं घनेनती जनी	॥ ८ ॥
वनिष्ठा नावं गृह्यन्ति	॥ ९ ॥
इदं महा मदुरिति	॥ १० ॥
ते वृक्षाः सुहृ तिम्रति	॥ ११ ॥
पाकं धलिः	॥ १२ ॥
शकं धलिः	॥ १३ ॥
अभ्वत्थ जदिरो ध्रुवः	॥ १४ ॥
अरुदुपरम	॥ १५ ॥
शयो हुत इव	॥ १६ ॥
व्यापू पूरुषः	॥ १७ ॥
अद्वहमित्यां पूरुषकम्	॥ १८ ॥
अत्यधर्चं परस्वतः	॥ १९ ॥
दौषं हस्तिनो हृती	॥ २० ॥

॥ ६ ॥ ( अथर्व ० १०।१३।१-१६ )

आदलायुकमेककम्	॥ १ ॥
अलायुकं निष्ठातकम्	॥ २ ॥
कर्करिको निष्ठातकः	॥ ३ ॥
तव घात उन्मथायति	॥ ४ ॥
कुलापं रुणयादिति	॥ ५ ॥
उमं वनिपदाततम्	॥ ६ ॥
न वनिपदनाततम्	॥ ७ ॥
क र्पयां कर्करि लिखत्	॥ ८ ॥

क र्पयां दुन्दुभि हनत्	॥ ९ ॥
यदीयं हनत् कथं हनत्	॥ १० ॥
देवी हनत् कुहनत्	॥ ११ ॥
पर्यागारं पुनः पुनः	॥ १२ ॥
धीण्युष्टस्य नामानि	॥ १३ ॥
हिरण्यं इत्येकं अत्रवीत्	॥ १४ ॥
द्वौ वा ये शिशवः	॥ १५ ॥
नीलशिखण्डवाहनः	॥ १६ ॥

॥ ७ ॥ ( अथर्व ० १०।१३।१-६ )

चित्तौ किरणौ द्वौ तावा पिनष्टि पूरुषः ।	
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥ १ ॥	
मातुष्टे किरणौ द्वौ निर्वृत्तः पुष्टपानुते ।	
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥ २ ॥	
निर्गृह्य कर्षेकौ द्वौ निरापचञ्चलि मर्त्यमे ।	
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥ ३ ॥	
उत्तानायै शयानायै तिष्ठन्ती वाचं गृहसि ।	
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥ ४ ॥	
ऋक्ष्यायां ऋक्षिकायां ऋक्षमेवायं गृहसि ।	
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥ ५ ॥	
अवर्ऋक्षमिव अंशदन्तलोममति हृदे ।	
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥ ६ ॥	

॥ ८ ॥ ( अथर्व ० १०।१३।१-६ )

इहेत्य प्रागपागुर्दग्धराग्	
अरालागुर्दग्धराग्	॥ १ ॥
इहेत्य प्रागपागुर्दग्धराग्	
वृत्ताः पुष्टयन्त आसते	॥ २ ॥
इहेत्य प्रागपागुर्दग्धराग्	
स्वालीपाको वि लीयते	॥ ३ ॥
इहेत्य प्रागपागुर्दग्धराग्	
स वै पुष्ट लीयते	॥ ४ ॥
इहेत्य प्रागपागुर्दग्धराग्	
आर्ये लाहनि टीर्वायी	॥ ५ ॥

अप्रपाणा च वेशन्ता रेवा अप्रतिदिश्ययः ।  
 अयंभ्या कन्या कल्याणी तोता कल्पेपु संमिता ॥ ८ ॥  
 सुप्रपाणा च वेशन्ता रेवान्सुप्रतिदिश्ययः ।  
 सुयंभ्या कन्या कल्याणी  
 तोता कल्पेपु संमिता ॥ ९ ॥  
 परिवृक्ता च महिषी स्वस्या च युधिगमः ।  
 अनाशुरध्यामी तोता कल्पेपु संमिता ॥ १० ॥  
 घाघाता च महिषी स्वस्या च युधिगमः ।  
 श्वाशुरध्यामी तोता कल्पेपु संमिता ॥ ११ ॥  
 यदिन्द्रादो दाशराणे मानुषं वि गाहथाः ।

विरूपः सर्वस्मा आसीत् सह यक्षाय कल्पते ॥ १२ ॥  
 त्वं वृषाक्षं मघवन्नर्त्रं मर्याकरो रविः ।  
 त्वं रौहिणं व्यास्यो वि वृत्रस्याभिर्नच्छिरः ॥ १३ ॥  
 यः पर्वतान् व्यदधाद् यो अपो व्यगाहथाः ।  
 इन्द्रो यो वृत्रहामर्हं तस्मादिन्द्र नमोऽस्तु ते ॥ १४ ॥  
 पृष्ठं धावन्तं ह्योरौषैः श्वसमब्रुवन् ।  
 स्वस्त्यश्च जैत्रायेन्द्रमा बह सुस्रजम् ॥ १५ ॥  
 ये त्वा श्वेना अजैश्वसो हार्यो युञ्जन्ति दक्षिणम् ।  
 पूर्या नमस्य देवानां विभ्रदिन्द्र महीयते ॥ १६ ॥

॥ ३ ॥ ( अथर्व० २०।११९१-२० )

एता अश्वा आ ह्रवन्ते ॥ १ ॥  
 प्रतीपं प्रति सुत्यन्तम् ॥ २ ॥  
 तासामेका हरिक्विका ॥ ३ ॥  
 हरिक्विके किमिच्छसि ॥ ४ ॥  
 साधुं पुत्रं हिरण्यम् ॥ ५ ॥  
 पवाहन्तं परास्यः ॥ ६ ॥  
 यन्नामृत्तिलः शिशपाः ॥ ७ ॥  
 परि वपः ॥ ८ ॥  
 पृष्ठाकयः ॥ ९ ॥  
 दृष्टं धमन्त आसते ॥ १० ॥  
 अयन्मदा ते अवाहः ॥ ११ ॥

स इच्छकं सर्धाघते ॥ १२ ॥  
 सर्धाघते गोमीघा गोगतीरिति ॥ १३ ॥  
 पुमां कुस्ते निर्मिच्छसि ॥ १४ ॥  
 पल्पं यद् वयो इति ॥ १५ ॥  
 यद् यो अघा इति ॥ १६ ॥  
 अजागार केविका ॥ १७ ॥  
 अश्वस्य चारो गोशपथके ॥ १८ ॥  
 इयेनीपती सा ॥ १९ ॥  
 अनामयोपजिहिका ॥ २० ॥

॥ ४ ॥ ( अथर्व० २०।१३०।१-२० )

को अयं बहुलिमा इपूनि ॥ १ ॥  
 को असिधाः पर्यः ॥ २ ॥  
 को अर्जुन्याः पर्यः ॥ ३ ॥  
 कः काण्योः पर्यः ॥ ४ ॥  
 एतं पृच्छ कुर्वं पृच्छ ॥ ५ ॥  
 कुर्वाक पपक्वं पृच्छ ॥ ६ ॥  
 यवानो यतिस्वमिः कुमिः ॥ ७ ॥  
 अकुप्यन्तः कुर्यायकुः ॥ ८ ॥  
 आर्मणको मणत्सकः ॥ ९ ॥  
 देवं त्वप्रतिसूर्य ॥ १० ॥  
 एनश्चिपङ्क्तिका हविः ॥ ११ ॥  
 प्रदुर्दो मर्धाप्रति ॥ १२ ॥  
 शृङ्ग उत्पन्न ॥ १३ ॥  
 मा त्वाऽमि सखा नो विदन् ॥ १४ ॥  
 वृशायाः पुत्रमा यन्ति ॥ १५ ॥  
 इरोवेदुर्मय दत् ॥ १६ ॥  
 अयो इयन्त्रियन्ति ॥ १७ ॥  
 अयो इयन्ति ॥ १८ ॥  
 अयो श्वा अरिश्यरो मघन् ॥ १९ ॥  
 उयं यकांश्लोकका ॥ २० ॥

०५॥ ( अथर्व० २०।१३।१-२० )

आर्मिनोनिमि मघते	॥ १ ॥
तस्य धनु निर्भञ्जनम्	॥ २ ॥
वरुणो याति वस्वभिः	॥ ३ ॥
शतं वा भारती शयः	॥ ४ ॥
शतमाश्वा हिरण्ययाः । शतं रथ्या हिरण्ययाः ।	
शतं कथा हिरण्ययाः । शतं निष्का हिरण्ययाः ५	
अहल कुश वर्चक	॥ ६ ॥
शफेन इव ओहते	॥ ७ ॥
आयं वनेनती जनी	॥ ८ ॥
वनिष्ठा नायं गृह्यान्ति	॥ ९ ॥
इदं मल्लं मदुरिति	॥ १० ॥
ते युष्माः सुहृ तिम्रति	॥ ११ ॥
पाकं यलिः	॥ १२ ॥
शकं यलिः	॥ १३ ॥
अश्वेत्य खादरेो ध्रुवः	॥ १४ ॥
अरुपुरम	॥ १५ ॥
शयो हत ईय	॥ १६ ॥
व्यापु पूरयः	॥ १७ ॥
अद्वहमित्यां पूरकम्	॥ १८ ॥
अत्यध्वं परस्वतः	॥ १९ ॥
वौर्यं हस्तिनो हृती	॥ २० ॥

॥ ६ ॥ ( अथर्व० २०।१३।१-१६ )

आदलायुकमेककम्	॥ १ ॥
अलायुकं निष्ठातकम्	॥ २ ॥
कर्कटिको निष्ठातकः	॥ ३ ॥
तत् घात उन्मेषायति	॥ ४ ॥
कुलायं रुणयादिति	॥ ५ ॥
उम्र धनिपदाततम्	॥ ६ ॥
न धनिपदनाततम्	॥ ७ ॥
क पयो कर्कटी लिखत्	॥ ८ ॥

क पयो दुन्दुभिं हनत्	॥ ९ ॥
यदीयं हनत् कथं हनत्	॥ १० ॥
देवीं हनत् कुर्वनत्	॥ ११ ॥
पर्यागारं पुनः पुनः	॥ १२ ॥
श्रीण्युष्टस्य नामानि	॥ १३ ॥
हिरण्यं इत्येके अत्रवीत्	॥ १४ ॥
द्वौ वा ये शिशवः	॥ १५ ॥
नीलशिखण्डबाह्वनः	॥ १६ ॥

॥ ७ ॥ ( अथर्व० २०।१३।१-६ )

विततो किरणौ द्वौ तावा पिनष्टि पूरयः ।	
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥१॥	
मातुष्टे किरणौ द्वौ निर्वृत्तः पूरयानृते ।	
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥२॥	
निर्गृह्य कर्णकौ द्वौ निरप्यच्छसि मन्यसे ।	
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥३॥	
उत्तानायं शायनायै तिष्ठन्ती धार्य गृहसि ।	
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥४॥	
श्रवणायां श्रवणिकायां श्रवणमेवायं गृहसि ।	
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥५॥	
अवश्रवणमिधं भ्रंशान्तलोममार्तं हृदे ।	
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥ ६ ॥	

॥ ८ ॥ ( अथर्व० २०।१३।१-६ )

इहेत्य प्रागपागुर्दगधराण्	
अरालागुर्दमस्तय	॥ १ ॥
इहेत्य प्रागपागुर्दगधराण्	
यस्ताः पूरयन्त आसते	॥ २ ॥
इहेत्य प्रागपागुर्दगधराण्	
स्यालीपाको वि लीयते	॥ ३ ॥
इहेत्य प्रागपागुर्दगधराण्	
स वै पूयु लीयते	॥ ४ ॥
इहेत्य प्रागपागुर्दगधराण्	
आष्टे लाहमि लीयायी	॥ ५ ॥

इहेत्य प्रागपागुदंगधराग्

अहिल्ली पुच्छिलीयते

॥ ६ ॥

॥ ९ ॥ ( अथर्व० २०।१३५।१-१३.)

भुगित्यभिगतः शलित्यपक्रान्तः फलित्यभिष्ठितः ।

दुन्दुभिमाहननाभ्यां जरितरोथामो दैव ॥ १ ॥

कोशविले रजनि ग्रन्थेर्धानमुपानहि पादम् ।

उत्तमां जनिमां जन्य

अनुत्तमां जनीन् वर्त्मन्यात्

॥ २ ॥

अलावुनि पृषातकान्यश्वत्थपलाशम् ।

पिपीलिकावटश्वसो विद्युत्

स्वार्पणशफो गोशफो जरितरोथामो दैव ॥ ३ ॥

घीमे देवा अंकसुताध्वर्यो क्षिप्रं प्रचरं ।

सुसुत्यमिदं गवामस्यासि प्रखुदासि

॥ ४ ॥

पत्नी यद्वदपते पत्नी

यस्यमाणा जरितरोथामो दैव ।

होता विष्टीमेन जरितरोथामो दैव

॥ ५ ॥

आदित्या ह जरितरङ्गिरोभ्यो दक्षिणाभ्यनयन् ।

तां ह जरितः प्रत्यायन्

तामु ह जरितः प्रत्यायन्

॥ ६ ॥

तां ह जरितनः प्रत्यगृभ्णन्

तामु ह जरितनः प्रत्यगृभ्णः ।

अहानेतरसं न वि चेतनानि

यहानेतरसं न पुरोगवाभः

॥ ७ ॥

उत श्वेत आनुपत्या उतो पद्याभिर्यविष्ठः ।

उतेमाशु मानं विपतिं

॥ ८ ॥

आदित्या रुद्रा पसवस्त्वयन्

न इदं राष्ट्रः प्रति गृभ्णीष्टङ्गिरः ।

इदं राष्ट्रं विभु प्रभु इदं राष्ट्रं वृद्धं पृथुं ॥ ९ ॥

देवा दहत्वारुं न तद् यो धम्नु सृजतनम् ।

गुप्सो धम्नु दिष्टेदिष्टे प्रापेयं गृमापत ॥ १० ॥

त्वमिन्द्र शर्मरिणा हव्यं पारावतेभ्यः ।

विप्राय स्तुवते वंसुवर्णिं दुरश्रवसे वद ॥ ११ ॥

त्वमिन्द्र कपोताय च्छिन्नपक्षाय वञ्चते ।

श्यामाकं पक्वं पल्लुं च वारस्मा भ्रूणोर्ध्वदुः ॥ १२ ॥

अरंगरो वावदाति त्रेधा वद्धो वस्त्रया ।

इरामह प्रशंसत्यानिरामपं सेधति ॥ १३ ॥

॥ १० ॥ ( अथर्व० २०।१३६।१-१६ )

यदस्या अहुमेधाः कृधु स्थूलमुपार्तसत् ।

मुष्काविदस्या एजतो गोशफे शकुलाविद ॥ १ ॥

यदा स्थुलेन पससाणौ मुष्का उपावधीत् ।

विष्वञ्चा यस्या वर्धतः सिकतास्वेव गर्वमौ ॥ २ ॥

यदल्पिकास्वल्पिका कर्कधुकेवपद्यते ।

वासन्तिकमिव तेजनं यन्त्यवाताय विप्यति ॥ ३ ॥

यद् देवासौ ललामगुं प्राविष्टीमिनमाविषुः ।

सकुला दैविष्यते नारी

सुत्यस्याभिभुवौ यथा ॥ ४ ॥

महानग्न्यगृह्मादि मोक्रददस्थानासरन् ।

शक्तिकानना स्वचमशकं सकु पद्यम् ॥ ५ ॥

महानग्न्यगृह्णलमतिप्रामन्यप्रवीत् ।

यथा तयं यनस्पते निरग्नन्ति तथैवति ॥ ६ ॥

महानग्न्युपं मृते अष्टोऽथाप्यभूभुयः ।

यथैव तं यनस्पते पिप्यति तथैवति ॥ ७ ॥

महानग्न्युपं मृते अष्टोऽथाप्यभूभुयः ।

यथा यथो विदाहं स्वयं नमयदहते ॥ ८ ॥

महानग्न्युपं मृते स्वसापेक्षितं पसः ।

इयं फलेस्य वृक्षस्य शर्पे शर्पे मज्जेमदि ॥ ९ ॥

महानग्नी शक्याकं शर्मय्या परि धापति ।

अयं न विद्व यो भुगः

शीष्णं हरति धार्णिकाम् ॥ १० ॥

महानग्नी महानागं धापन्तमनु धापति ।

इमास्तदस्य ना रक्षा यम मामज्योदनम् ॥ ११ ॥

(८०५५)

सुदैवस्त्या महानग्रीर्विधाधते महतः साधु खोदनम् ।

कुसं पीवरो नवत् ॥ १२ ॥

युश दग्धाभिमाहुरि प्रचुजतोऽग्रतं परे ।

महान वै भद्रो यम मारुद्वयौदनम् ॥ १३ ॥

विदैवस्त्या महानग्रीर्विधाधते

महतः साधु खोदनम् ।

कुमारिका पिङ्गलिका कर्द मस्मा कु धावति ॥ १४ ॥

महान वै भद्रो यिल्यो महान भद्र उदुम्बरः ।

महो भक्तिक याधते महतः साधु खोदनम् ॥ १५ ॥

या कुमारो पिङ्गलिका वसन्तं पीवरी लमेत् ।

तैलकुण्डमिमाङ्गुष्ठ रोदन्तं शुद्धमुद्धरेत् ॥ १६ ॥

॥ इति अथ कुन्तापमूकानि ॥

## अथ महानाम्न्याधिकः ।

(६४१-६५०) प्रजापतिः । इन्द्रस्यैकोक्यारवा ।

विदा मघयन् विदा गातुमनुशंसिषो दिशः ।

शिक्षा शचीनां पते पूर्वोणां पुरुषसो ॥ १ ॥

आमिष्टमभिष्टिभिः स्वऽर्थाशु ।

प्रचेतन प्रचेतयेन्द्र पुत्राय न इषे ॥ २ ॥

एषा हि शक्रो राये वाजाय वज्रिवः ।

शविष्ठ धञ्जिष्ट्रञ्जसे महिष्ठ वज्रिष्ट्रञ्जसे

आ याहि पिय मत्स्य ॥ ३ ॥

विदा राये सुवीर्ये

भुवो वाजानां पतिर्वशा अनु ।

महिष्ठ वज्रिष्ट्रञ्जसे य शविष्ठः शूराणाम् ॥ ४ ॥

यो महिष्ठो मघोनामशुभ्र शौचिः ।

चिकित्वो अभि नो नयेन्द्रो निदे तमु स्तुदि ॥ ५ ॥

ईशे हि शक्रस्तमूतये

हवामहे जैतारमपराजितम् ।

स नः स्वपदति द्विपः क्रतुच्छन्द ऋते गृहत् ॥ ६ ॥

इन्द्र धनस्य सातये

हवामहे जैतारमपराजितम् ।

स नः स्वपदति द्विपः ।

स नः स्वपदति द्विपः ॥ ७ ॥

पूर्वेस्य पत्ते अद्रियोऽशुर्मदाय ।

सुम्न आ धेहि नो वसो पूर्तिः शविष्ठ शस्यते ।

वशी हि शक्रो नूनं तक्षम्य संन्यसे ॥ ८ ॥

प्रमो जनस्य वृषहन्तसमर्षे प्रगावहै ।

शरो यो गोयु गच्छति सखा सुदोवो अग्रयुः ॥ ९ ॥

अथ पञ्चपुरीषपदानि ।

एषाहो इऽइऽइ व । एषा हाम्ने । एषाहीन्द्र ।

एषा हि पूयन् । एषा हि देयाः ।

ओम् । एषा हि देयाः । ओम् ॥ १० ॥

(८०७०)

॥ इति पञ्च पुरीषपदानि ॥ इति महानाम्न्याधिकः समाप्तः ॥

॥ इति दैवतछाहिता समाप्ता ॥

